हिन्दी

त्रयोविंश भाग

शाहजहानपुर—युक्तप्रदेशके रोहिलखण्ड विभागका एक जिला। इसका भूपरिमाण १७२७ वर्गमील है और अक्षा० २७° ३५′ से ले कर २८° २९′ उ० तथा देशा० ७९° २०′ से ले कर ८०° २३ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तर-पश्चिम और उत्तर पिलीभीत तथा बरेली जिला, पूरबमें अयोध्या प्रदेशांतर्गत खेरी जिला, दक्षिणमें गंगा नदी और फर्रुखाबाद जिला एवं पश्चिममें बुदाउन और बरेली जिला है। शाहजहान्पुर नगरमें इसका सदर विचारालय है।

यह जिला गंगाके उत्तरसे ले कर हिमालयपाद भूमि-प्रवाहित शारदानदीके किनारे तक फैला हुआ है। उत्तरपूर्वांशमें क्रमसे ऊंची नीची पहाड़ी वनभूमि है। इसके बीच हो कर सर्वदा पहाड़ी जल धारारूपमें बहता रहता है; इस कारण यह स्थान सदा ही सिक्त रहता है। यह मलेरियाका प्रधान स्थान है और प्रायः जनशून्य है।

गोमती और खानौत नदियोंका मध्यवर्त्ती भूभाग समधिक उर्व्वरा है। यहांकी जनसंख्या भी अधिक है। यहांके लोग ईख आदिकी खेती द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं। शाहजहान्पुर नगरके निकट खानौत और देवबहा नदी एक साथ मिल गई है।

उक्त देवबहा और गर्रा नदीका मध्यवर्त्ती भूखण्ड जलमय है। गर्रा नदीके दक्षिण रामगंगानदीकी उपत्यका तककी भूमि बालुकामय है। इस बालुकापूर्ण भूखण्डको पार करनेसे गंगातीरवर्त्ती जलभूमि दृष्टिगोचर होती है। सोत् प्रभृति कई छोटी छोटी स्रोतस्विनी इस स्थानको सींचती रहती हैं। रामगंगा और देवबहा नदी सर्वदा अपनी चाल बदलती रहती है।

शाहजहान्पुरके इतिहासका उतना पता नहीं चलता। रोहिला अफगान जातिके प्रभाव और प्रतिपत्तिसे ही यहांके इतिहासकी कल्पना की जाती है। पहले मुसलमानोंके शासनकालमें यह काठेरिया राजपूतोंका निवासस्थान था। इस कारण यह स्थान काठेरभुक्तिके नामसे विख्यात था। पीछे यह बुदाउनोंके शासनाधीन हुआ। मुगलसम्राट् शाहजहान बादशाहके राजत्वकालमें नवाब बहादुर खान् नामक एक मुसलमानने उक्त नगरकी स्थापना की और सम्राट्के नाम पर उसका नाम शाहजहान्पुर रखा। १७२० ई०में अली महम्मद खाँने रोहिला वंशीय अफगानियोंका नेता बन कर बरेली और मुरादाबादके शासनकर्त्ताको परास्त किया एवं स्वयं उक्त दोनों जिले तथा शाहजहानपुरका शासनभार ग्रहण

किया। १७५१ ई०में उनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद उनके पुत्रका अभिभावक हाफिज रहमत् खाँ रोहिला जातिका सर्दार बन बैठा। इस समय रोहिला जातिके उपद्रवसे पार्श्ववर्त्ती स्थानवासी विह्वल हो उठे। अन्तमें दिल्लीके बादशाहने विद्रोही रोहिला जातिका दमन करनेके लिये सेना भेजी। किन्तु हाफिज महम्मदने सम्राट्की सेनाको हरा दिया। १७७४ ई० तक शाहजहानपुर बरेली के पठान सर्दारवंशके शासनाधीन रहा। इस समय अयोध्याके नवाबके वजीरने वारेन हेष्टिंग्सकी सहायतासे रोहिलखण्ड विभागको मथ डाला।

इस जिलेके पश्चिमांशमें रोहिला जातिका आधिपत्य स्थापित होने पर भी पूर्वांश पर उनका कोई अधिकार न था। उत्तरके वन प्रदेशमें गौड़ वा काठोरिया वंशीय ठाकुरोंने अपना प्रभुत्व जमा रखा था। अयोध्या और रोहिलखण्डके सीमान्त देशमें इस जिलेके स्थापित होनेसे अनुमान होता है, कि इस पर एक एक बार उक्त दोनों प्रदेशोंके राजेश्वरोंने अपना अपना अधिकार जमाया था। शाहजहानपुरके पठानोंने कभी भी रोहिलाजातिको अधीनता स्वीकार नहीं की। वे लोग अयोध्याके नवाबके अधीन थे। १७७४ ई०से ले कर १८०१ ई० तक यह जिला अयोध्याके नवाबके अधीन रहा। १८०१ ई०में अंग्रेज कम्पनीके साथ लखनऊमें नवाबकी जो सन्धि हुई थी, उसमें शाहजहानपुर अंग्रेजोंके अधिकारमें आ गया।

उस समयसे ले कर सिपाही-विद्रोहके तक यहां किसी प्रकारका विप्लव उपस्थित नहीं हुआ। इस पार्श्ववर्त्ती अयोध्या प्रदेशमें उपद्रव और अत्याचारकी पराकाष्ठा होने पर भी शाहजहानपुरमें अंग्रेजोंके शासनकौशलसे किसी प्रकारकी दुर्घटना न घटी। १८५७ ई०की १५वीं मईको मेरठके सिपाहियोंके विद्रोहका संवाद पा कर यहांके सिपाही भी मन ही मन षड़यन्त्र रचने लगे, किन्तु २५वीं मई तक ये लोग शान्तिपूर्वक अपने मनका भाव छिपाये बैठे रहे। ३१वीं तारीखको इन लोगोंने अंग्रेजोंके राजकोष पर छापा मारा तथा उसे लूटा और जला डाला। इस समय स्थानीय अंग्रेज लोग गिर्जाघरमें छिप कर अपनी आत्मरक्षाकी चेष्टा करते रहे। अन्तमें दूसरी दूसरी जगहोंसे अंग्रेजीसेनाके पहुंच जाने पर वे लोग धीरे धीरे पावायनकी ओर भागे और अपनी इच्छाके अनुसार धनरत्न लूट कर नगरके अंग्रेजी निवासस्थानको जला दिया। इसके बाद वे लोग बरेलीकी ओर चले गये। यहां पहलेसे ही बहुतसे विद्रोही दलबद्ध हो गये थे, शाहजहानपुरके पठानोंने वहां पहुंच कर उन लोगोंके दलकी पुष्टि की।

१ली जूनको विद्रोही दलके नेता कादिर अली खाँने शाहजहानपुरमें अपना अधिकार जमा लिया। १८वीं जूनको गुलाम कादिर खाँने बरेली जा कर बहादुर खाँसे सारी बातें कह सुनाईं। बहादुर खाँने उन्हें शाहजहानपुरका नाजिम बना कर फिर वहां ही भेज दिया। गुलाम कादिर खाँ २३वीं तारीखको फिर अपने देशमें आ कर नवाबी मसनद पर बैठे सही, किन्तु किसीने भी उनकी आज्ञाका पालन न किया। उस समय सर्वत्र ही विद्रोहीदलने अपना प्रभुत्व जमा लिया था। १८५७ ई०के जूनसे ले कर १८५८ ई०के जनवरी महीने तक यहां अफगानियोंकी हुकूमत चलती रही। शेषोक्त मासमें अंग्रेजी सेनाने फतहगढ़ पर अधिकार जमा लिया। आत्मरक्षाका उपाय न देख कर फतहगढके नवाब और फिरोज शाहने शाहजहानपुर होते हुए बरेली जा कर शरण ली। इधर लखनऊ नगरके अधःपतनके बाद नानासाहबने भी शाहजहानपुरमें १० दिन रहनेके बाद बरेली जा कर आश्रय लिया। उक्त जनवरी महीनेमें नवाबने हमीद हसन खाँ और महम्मद हसन नामक दो कर्मचारियोंको अंग्रेजोंका षड़यन्त्रकारी समझ कर प्राणदण्ड दिया। उक्त वर्षकी ३०वीं अप्रैलको लार्ड क्लाइडके अधीन एक अंग्रेजी सेनादल शाहजहानपुर आ पहुंचा। विद्रोही दल महम्मदी नामक स्थानमें भाग गया। दूसरी मईको थोड़ीसी अंग्रेजी सेना यहां रख कर लार्ड क्लाइडने बरेलीकी ओर यात्रा की। यहां विद्रोहियोंने नौ दिन तक अंग्रेजी सेनाको घेर रखा। ब्रिगेडियर जोन्सने अपने दलबलके साथ १२ वीं तारीखको यहां पहुंच कर उन लोगोंकी मुक्ति की। इसके बाद शाहजहानपुरमें फिरसे शान्ति स्थापित हो गई।

शाहजहानपुर, तिलहर, जलालाबाद, खुदागंज, मीरनपुर, कटरा और पावायन नगर यहांके व्यापारका

प्रधान स्थान है। देवबहा और रामगंगा नदीके अलावे रोहिलखंड ट्रांक रोड, पावायन-जलालाबाद रोड, लखनऊसे बरेली, शाहजहानपुर और तिलहर तथा फतहगढ़से जलालाबादके बीच हो कर मीरनपुर कटरा तक जो चार पक्की सड़कें हैं, उनसे हो कर शकट (बैलगाड़ी) द्वारा स्थानीय व्यापार चलता है। अवध-रोहिलखंड-रेलपथ इस जिलेके बीच हो कर गया है, जिससे रेलवे स्टेशन ही वर्त्तमान वाणिज्यके केन्द्रस्थान हो गये हैं। यहांका चीनीका कारखाना उल्लेखयोग्य है।

यहां नदी नाला होने पर भी अनावृष्टिके कारण जलका अभाव रहता है। १७८३-८४, १८०३-४, १८२५-२६, १८३७-३८, १८६०-६१, १८६८-६९ और १८७८ ७९ ई०में यहां दुर्भिक्ष तथा हैजेका प्रकोप हुआ था।

इस जिलेमें ६ शहर और २०३४ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ६ लाखसे ऊपर है हिंदूकी संख्या सैकड़े पीछे ८५ है। यहांकी प्रधान उपज गेहूं, धान, चना, बाजरा और ईख है। शाहजहान्पुर और तिलहरमें म्युनिस्पलिटी है। विद्याशिक्षाकी ओर लोगोंका ध्यान इतना आकृष्ट नहीं हुआ है, परंतु कुछ कुछ उन्नति देखी जाती है। अभी कुल मिला कर दो सौ स्कूल हैं। जिलेमें ११ अस्पताल और चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेकी दक्षिण पूर्व तहसील वा उपविभाग। यह अक्षा० २२°३६´ से २८° १´ ३० तथा देशा० ७९°३६ से ८०°५´ पू०के मध्य अवस्थित है। शाहजहानपुर, जमौर और कान्त परगना ले कर यह उपविभाग गठित है। इसका भूपरिमाण ३६४ वर्गमील है। जनसंख्या दो लाखसे ऊपर है। इसमें १ शहर और ४६३ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त जिलेका प्रधान शहर। यह अक्षा० २७°५३´ उ० तथा देशा० ७९° ५४´ पू०के मध्य देवबहा या गड़ा नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ८० हजारके करीब है। गड़ा और खानौतके सङ्गम पर एक प्राचीन दुर्ग है तथा उसके पार्श्वमें खानौत नदी पर हाकिम मेहेन्दी अली निर्मित सुप्रथित सेतु है। १६४७ ई०में नवाव बहादुर खांने सम्राट् शाहजहान्के नाम पर यह शहर बसाया था। नगरकी प्रतिष्ठा होनेके समयसे ले कर आज तक यहांके इतिहासमें सिपाही-विद्रोह की दुर्घटनाके सिवाय और कोई उल्लेखयोग्य घटना नहीं घटी।

यहां अवध-रोहिलखण्ड रेलपथका एक स्टेशन है। जिलेकी चार पक्की सड़कें इस नगरके पास हो कर दौड़ गई हैं। इन सब सड़कोंके अतिरिक्त लखनऊ, बरेली, फर्रुखाबाद पिलीभीत, महम्मदी और हर्दोई प्रभृति नगरोंमें आने-जानेके लिये सुन्दर सड़के हैं। यहांकी अंग्रेजी सेनाके रहनेकी अट्टालिका प्रसिद्ध है। केरु कम्पनीके चीनीका कारखाना और रम नामक मद्यके चुआनेका कारखाना उल्लेखयोग्य है। कलकत्ता प्रभृति भारतवर्षके प्रधान प्रधान शहरोंमें उक्त मद्य "शाहजहानपुर-रम" के नामसे मिलता है।

शाहजहानपुर—मध्य-भारतके ग्वालियर राज्यका एक नगर, बम्बई-आगरा ट्रांकरोड नामक राजपथके किनारे गुनासे १०६ मील तथा इन्दौरकी राजधानीसे ६० मीलकी दूरी पर यह अवस्थित है। यह ग्वालियरके अन्तर्गत शाहजहानपुर जिलेका सदर है।

शाहजहान वेगम—भूपालकी एक शासनकर्त्री। १८६८ ई० की ३वीं अक्तूबरको इनकी माता सिकन्दर वेगमके बाद ये भूपालके राजसिंहासन पर बैठीं। १८७१ ई०में भूपालराज्यके द्वितीय मन्त्री महम्मद शादी हुसेन खांके साथ इनका विवाह हुआ।

शाहजादपुर—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद जिलेकी शिराठु तहसीलके अन्तर्गत एक नगर। यह गंगानदीके किनारे ग्राण्ड्ट्रांक रोड नामक सड़कसे एक मील उत्तर और सिण्ठु से ६ मील पूर्वमें अवस्थित है। यह अक्षा० २५°२६´ ५५″ उ० और देशा० ८१° २७´ पू०के मध्य विस्तृत है। पहले यह नगर खूब उन्नतिशील था, किन्तु वर्त्तमान समयमें जनसंख्या घट जानेके कारण इसकी पूर्वश्री विनष्ट होती जा रही है। यहां एक प्रकारके छपे हुए छींटके कपड़े तैयार किये जाते हैं। यहांका प्रधान व्यापार सोरेका है।

शाहजादा (फा० पु०) बादशाहका लड़का, महाराजकुमार।

शाहजादा खानम्—बादशाह अकबरकी लड़की। इसकी माताका नाम सलीमा वेगम थो। जहान्गीरके राजत्वके प्रारम्भकाल तक यह जीवित थी।

शाहज़ादी (फा० स्त्री०) १ बादशाहकी लड़की, राजकुमारी। २ कमलके फूलके अन्दरका पीला जीरा।

शाह तकी—एक मुसलमान फकीर। ये १४२० ई० तक जीवित थे। झाँसीमें इनका समाधिमन्दिर इस समय भी वर्त्तमान है। इस स्थान पर प्रतिवर्ष मुसलमान लोग एकत्र हो कर इनके स्मरणार्थ महोत्सव करते हैं।

शाह ताहीर जूनाइदी—शाह जाफरका सबसे छोटा भाई। हुमायुन् बादशाहके समय यह भारतवर्षमें आया एवं दाक्षिणात्य प्रदेशमें अहमदनगरके बुरहान निजाम शाहका मन्त्री नियुक्त हुआ। यह शिया सम्प्रदायका अनुयायी था। १५३७ ई०में शाह ताहीरने सम्राट्‌को शिया मतकी दीक्षा दी। १५०४ ई०में इनकी मृत्यु हुई। ये एक सुविख्यात कवि थे। इनके रचे हुए अनेक ग्रन्थ इस समय भी पाये जाते हैं।

शाहदरा—पंजाब प्रदेशके लाहोर जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह ग्राम इरावती नदीके पश्चिमी किनारे लाहोर नगरसे ६ मीलकी दूरी पर अवस्थित और अक्षा० ३१° ४०´ उ० एवं देशा० ७४° २०´ पू०के मध्य विस्तृत है। यहां एक विस्तीर्ण उद्यानके बीच मुगल-सम्राट् जहान्‌गीर, उनकी स्त्री जगत् प्रसिद्ध नूरजहान् बेगम तथा राजाके साले आसफ खाँका समाधिमन्दिर विद्यमान है। इस मसजिदका शिल्प और गठननैपुण्य देखने योग्य है। लाहोरवासी इस उद्यानमें प्रायः घूमने जाते हैं। सिखोंके अभ्युदयसे ये सब समाधिमन्दिर बहुत कुछ श्रीहीन हो गये हैं। सिखोंने इन मसजिदोंसे संगमर्मर निकाल कर अमृतसरके शिवमन्दिरमें लगा दिया है। यहां पंजाब-नार्दर्न स्टेट रेलपथका एक स्टेशन है।

शाहदरा - युक्तप्रदेशके मेरठ जिलेकी गाजियाबाद तहसीलके अन्तर्गत एक नगर। यह पूर्व यमुना-खालकी ओर अवस्थित तथा अक्षा० २८° ४०´ ५´´ उ० एवं देशा० ७७° २०´ १०´´ पू०के मध्य विस्तृत है। यहां सिन्ध-पंजाब-दिल्ली रेलपथका एक स्टेशन है। मुगल बादशाहने इस नगरकी स्थापना की और इसका नाम "शाहद्वार" रखा। इसीसे यह नगर शाहदराके नामसे विख्यात हुआ। उक्त सम्राट्‌के राजत्व कालमें यहां सेना-विभागका शस्य-भंडार स्थापित हुआ था। भरतपुरके जाट सर्दार राजा सूर्यमल तथा पानीपत युद्धके पहले अह्मद शाह दुर्रानीने इस नगरको लूटा था। जूता और अन्यान्य चर्मनिर्मित वस्तु तथा चीनीके कारखानेके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

शाहदादपुर—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके सिन्ध प्रदेशके उत्तर सिन्ध सीमान्त जिलेका एक तालुक। सुजावल, रसोदेरो और मम्बर तालुकोंका कितना ही अंश ले कर यह तालुक सुगठित है।

शाहदादपुर—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके सिन्ध विभागमें हैदराबाद जिलेके हाला उपविभागके अन्तर्गत एक तालुक। इसका भूपरिमाण ६४४ वर्गमील और अक्षा० २५° ४२´ से २६° १६´ उ० तथा देशा० ६८° २७ से ६९° ७´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ७० हजारसे ऊपर है। यहां ७ थाने और तीन फौजदारी अदालतें हैं। इसमें १११ ग्राम हैं। यहां रूई अच्छी मिलती है।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर। यह अक्षा० २७°४०´ से २८° ३´ उ० तथा देशा० ६७° २२´ से ६८° ११´ पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ६२२ वर्गमील और जनसंख्या ३० हजारसे ऊपर है। प्रायः ढाई सौ वर्ष हुए मीर शाहदाद नामक एक मुसलमानने इस नगरकी स्थापना की थी। यहां तेल, चीनी और कपास वस्त्रका विस्तृत कारबार है।

शाहधेरी (धेरी शाहान्)—पंजाब-प्रदेशके रावलपिंडी जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० ३३°१७´ उ० तथा देशा० ७२°४९´ पू०के मध्य विस्तृत है। प्रत्नतत्त्वविद् डा० कनिंहमका कहना है, कि यही नगर प्राचीन तक्षशिला नगर है। प्रायः ६ मील विस्तीर्ण स्थानमें इस नगरका ध्वस्त स्तूप गिरा पड़ा है। उसके बौद्ध स्तूप तथा संघाराम प्रभृतिका निदर्शन आज भी प्रत्नतत्त्वानुसंधित्सु लोगोंके हृदयमें नूतन आलोक और आनन्द उड़ेल देता है। मर्गाला गिरिसंकटके कुछ मील उत्तर यह नगर प्रतिष्ठित था। पाश्चात्य भौगोलिक परियनने इसे सिन्ध और झेलमके मध्यवर्त्ती बहु जनाकीर्ण समृद्धिशाली नगर कहा है। माकिदनवीर अलेकसन्दरने यहां अपनी सेनाके साथ तीन दिन तक राजाका आतिथ्य स्वीकार किया था। करीब ४०० ई०में चीन-

परिव्राजक फाहियान यह पवित्र तक्षशिलापुरीमें आये थे। पीछे उनके सहधर्मी यूएन चुवंगने ६३० और ६४३ ई०में यहां वास किया था। इस समय यहांका शासनकेन्द्र उठ कर काश्मीर चला गया है।

प्राचीन तक्षशिलाका ध्वंसावशेष छः भागोंमें विभक्त है। पर्वतगात्रमें स्थापित वर्त्तमान शाहधेरी ग्रामके पास जो 'वीर' नामक सुवृहत् स्तूप दृष्टिगोचर होता है, उसके भीतरसे ईंट, मिट्टीके बरतन, बहुत-से सिक्के तथा रत्नालङ्कारादि पाये गये हैं। मर्गाला पर्वतके शिखर पर हाथीवाल नामका एक दुर्गांश है, वही प्राचीन नगर और राजप्रासादका निदर्शन है। प्राचीरपरिवेष्टित शिरकाप् नामक स्थान दूसरे एक दुर्गका निदर्शन ज्ञान पड़ता है। बावरखाना एक सुवृहत् स्तूपका ध्वंसावशेष है। डा० कनिंहम् कहते हैं, कि चीनपरिव्राजक यूएनच्वङ्गने जिस अशोक-निर्म्मित स्तूपकी बात लिखी है, यह बावरखाना उसका ही दूसरा निदर्शन है। इसके अलावे यहां बौद्ध-प्रभावज्ञापक अनेक विहार और संघाराम प्रभृतिके बहुत-से निदर्शन पाये जाते हैं।

शाह नवाज खाँ—अवदुल रहीम खाँ खान खानाका लड़का युवराज शाहजहान्से इसकी कन्याका विवाह हुआ था।

शाह नवाज खाँ—बादशाह शाहजहान्के शासनकालका एक उमराव। यह वजीर आसफ खाँके पुत्र आलमगीर बादशाह और उनके भाई युवराज मुराद वकस्का ससुर था। किन्तु "मासिर-उल-उमरा" नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि इसके पिताका नाम मिर्जा रुस्तम कन्दाहारी था। इसे गुजरातके शासनकर्त्तृपद पर नियुक्त किया गया था। किन्तु १६५८ ई०में मुराद वकसके घरमें उसके भाई आलमगीरके आदेशसे इसे वन्दी किया गया। दारासिकोह जब मूलतानसे भाग कर अहमदाबाद आया था, उस समय शाह नवाज खाँ यहीं रहता था। मुरादवकसकी स्त्री भी उसके साथ थी। आलमगीरके प्रति उसका घोर विद्वेष था, क्योंकि आलमगीरने उसके स्वामीकी रक्षा की थी। मुरादवकसकी स्त्रीके परामर्शसे शाह नवाज खाँने दाराका पक्ष लिया और वह आलमगीरके साथ युद्ध करनेके लिये दलबलके साथ अजमीर पहुंचा। १६५६ ई०को १०वीं मार्चके रविवारको अजमीरमें दोनोंमें गहरी मुठभेड़ हुई। इस युद्धमें दारा भाग गया और शाह नवाज खाँ मारा गया।

शाह नवाज खाँ—शाह आलमका एक उमराव। इन्होंने 'मीरट आफताव नुमाई' नामक एक ग्रन्थकी रचना की। आफताव नुमाई वर्त्तमान दिल्लीका एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

शाह नवाज खाँ—इसका असल नाम था अवदुल रजाक। इसने समसाम उद्दौलाकी पदवी पाई थी। इसने खुरासानके खवाफ देशके सादत वंशमें जन्म ग्रहण किया था। इसके प्रपितामह अमीर कमलुद्दीन खोयाक प्रदेशका परित्याग कर अकबरके शासनकालमें हिन्दुस्तान आये और दिल्लीकी राजसभाके सम्भ्रान्त उमरावोंके मध्य प्रतिपालित हुए। कमालउद्दीनका लड़का मीरहुसेन जहांगीरके अमलमें राजकार्यमें नियुक्त हुआ था। मीर हुसेनके पुत्रका नाम था मीर कमाल उद्दीन। लोग इसे अमानत खां भी कहते थे। शाहजहान अमानत खाँको बहुत मानते थे। आलमगीरने भी अमानत खाँको लाहोर, मूलतान, कावुल और काश्मीर आदि स्थानोंमें ऊंचे ओहदे पर नियुक्त किया था। अमानत खाँ किसी समय दाक्षिणात्यमें दीवानी-पद पर नियुक्त हुआ। इसका बड़ा लड़का अवदुल कादर दौलत खां सरकारी प्रधान खजाँची था। दूसरा लड़का मीर हुसेन अमानत खाँ सूरतके शासनकर्त्तृपद पर नियुक्त हुआ था। तीसरा लड़का अवदुल रहमान उजारद खां मालव और बीजापुरके दीवानके पद पर काम करता था। कविता करनेमें इसकी अच्छी योग्यता थी। इसके बनाये दीवान ग्रन्थमें इसका विकामी नाम मिलता है। ४था कासिम मूलतानका दीवान था। इसी कासिमके पुत्र मीर हुसेन अलीके औरससे १७०० ई०की १५वीं मार्चको शाह नवाज खांका जन्म हुआ था। इसने बेरार आदि अनेक स्थानोंमें कार्य किया और पीछे सलावत जङ्गके अधीन ७ हजारी पद पर नियुक्त हुआ। इस समय इसने समसामुद्दौलाकी उपाधि पाई। १७५८ ई०की १ली मईको यह हठात् मारा गया। इसके साथ इसका एक लड़का भी यमपुर सिधारा था। शाह नवाज खां भी एक सुलेखक था। इसने मासिर उल उमराई तैमुरिया

नामका एक ग्रन्थ लिखा। तैमूरवंशीय जो सब प्रधान मनुष्य हिन्दुस्तान और दाक्षिणात्यमें कार्य करते थे, इस ग्रन्थमें उन्हींकी जीवनी है। उसके मृत्युकालमें यह ग्रन्थ असम्पूर्ण और असंगृहीत था। मीर गुलाम अली आजतने इस ग्रन्थका संग्रह किया और उसमें ग्रन्थकारकी जीवनी लिख दी। इसके वाद शाह नवाज खाँका लड़का मीर अवदुल हाइ खाँ इस ग्रन्थको समाप्त कर गया।

शाहनूर एक विख्यात दरवेश। १६९३ ई०की २री फरवरीको इसकी मृत्यु हुई। औरङ्गावादके समीप इसका मकवरा वनाया गया। वह मकवरा देखनेके लिये दूर दूरके मुसलमान यहां आते हैं।

शाहनूर अंसारी—एक विख्यात कवि। यह जाहिरउद्दीन फारियावीका शिष्य था। सुलतान महम्मद ख्वारिजाम शाहके शासनकालमें इसने अच्छी ख्याति पाई थी। इसके पिताका नाम था ताकाम। १२०४ ई०को ताव्रिजमें इसकी मृत्यु हुई।

शाहपुर—पञ्जावके रावलपिण्डी विभागका एक जिला। यह अक्षा० ३१° ३२´ से ३१° ४२´ उ० तथा देशा० ७१° ३७´ से ७३° २३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४८४० वर्गमील है। इसके उत्तरमें पिण्डदादन खाँ और झेलमकी तलागङ्ग तहसील, पूर्वमें गुजरात और गुजरानवाला जिला तथा चनाव नदी, दक्षिणमें झंग जिला, पश्चिममें डेरा-इस्माइल खां और वानू जिला है। यह जिला फिर तीन तहसीलोंमें विभक्त है—पूर्वभागमें भेरा, पश्चिममें शाहपुर और झेलमके दूसरे किनारे खुसाव तहसील। पञ्जावके जिलाओंके भूपरिमाणके हिसावसे शाहपुर सप्तम स्थानीय है; किन्तु अन्यान्य जिलाओंकी तुलनामें इसकी जनसंख्या वहुत कम है। झेलम नदी-तटवर्त्ती शाहपुर नामक छोटे शहरमें इस जिलेका शासनसंक्रांत सदर कार्यालय अवस्थित है।

झेलम नदीके द्वारा यह जिला दो भागोंमें विभक्त हुआ है। इसका अधिकांश स्थल ही अनुर्वर है, परन्तु जलसिञ्चनकी व्यवस्था होनेसे स्थलविशेष फलप्रद हो सकता है। चनाव इस जिलेकी एक दूसरी नदी है। इस जिलेका दक्षिण अंश निरवच्छिन्न वालुकाराशि द्वारा विस्तीर्ण मरुभूमिमें परिणत हो गया है। कहीं कहीं वालुकाराशि ऊंचे पहाड़की तरह शोभा दे रही है। उत्तरांशमें लवणपर्वतश्रेणी क्रमशः प्रसारित हो कर लोकेश्वर पर्वतसे मिल गई है। सोमेश्वर पर्वत प्रदेशमें वहुतसे सुदृश्य हृद दिखाई देते हैं। पर्वतमालाकी उपत्यकामें शस्यश्यामल भूखण्ड दृष्टिगोचर होता है। इन सब स्थानोंसे छोटी छोटी निर्झरिणी कल-कल शब्द करती हुई निम्न भूखण्डमें वह गई है, जिससे भूभागकी उर्वरता वहुत कुछ वढ़ गई है।

झेलम नदी उत्तर दिशासे आ कर समस्त जिलेको दो खण्डमें विभक्त कर दक्षिणकी ओर वह गई है। पार्वत्य प्रदेशमें जव मूषलाधारसे वृष्टि होती, तव झेलममें इतनी वाढ़ आ जाती है, कि आस पासके अनेक ग्राम डूव जाते हैं। इसमें अधिवासियोंको कष्ट होता है सही पर जमीन वहुत उर्वरा हो जाती है।

चनाव नदी शाहपुर और गुजरानवाला जिलेके मध्यवर्त्ती सीमारूपमें विद्यमान है। इस जिलेमें इस नदीकी लंबाई २५ मील है। चनाव झेलमसे विस्तृत होने पर भी झेलमकी तरह उसमें तेज स्रोत नहीं है। झेलमका स्रोत एक घण्टेमें ढाई मील जाता है। झेलमकी वाढ़से जमीन जैसी उर्वरा हो जाती है, चनावकी वाढ़से वैसी नहीं होती।

शाहपुरमें वनविभाग है, किन्तु उस सम्वन्धमें उल्लेखयोग्य कुछ भी नहीं है। खनिज द्रव्योंमें विशुद्ध लवण यथेष्ट है। झेलम जिलेमें ही सर्वापेक्षा लवणका कारखाना है। शाहपुर जिलेके वर्चा नामक स्थानमें सिर्फ एक नमककी खानसे कार्य चलता है। शाहपुरमें क्रिमियन युद्धके समय सोरेके कारखानेमें कार्य होता था, पर अभी वह कारवार विलकुल विलुप्त हो गया है। लौह, सीसा, उद्भिदंगार, सलफट आव लाइम और अभ्रादि इस स्थानकी पर्वतमालामें दिखाई देता है। किन्तु इन सव द्रव्योंका परिमाण इतना अल्प है, कि उससे कोई व्यवसाय नहीं चल सकता।

मुगल-साम्राज्य ध्वंस होनेके पहले इस जिलेका इतिहास अति अस्पष्ट है। किन्तु भूमिकी अवस्थाकी पर्यालोचना करनेसे मालूम होता है, कि प्राचीन कालमें

यहां लोकनिवास था। इस जिलेके विस्तीर्ण परित्यक्त भूखण्डमें कहीं जमीनमें गड़ी हुई ईंटें, कहीं छिछला कूआं, कहीं मिट्टीके बने भग्नपात्रादिके स्तूप देखनेमें आते हैं। क्रमशः जलका अभाव होनेसे ये सब स्थान धीरे धीरे लोक-निवासके अयोग्य हो गये थे। सम्भवतः इसी कारण आज भी इस जिलेमें अनेक स्थान मनुष्यके रहने लायक न रह गये हैं। ६० फुट तक जमीन कोड़ने पर भी कूएँमें जल नहीं निकलता, निकलने पर भी वह जल काममें नहीं लाया जा सकता। किन्तु पहले ऐसा नहीं था। महावीर अलेकसन्दरके सम सामयिक इतिहास लेखकोंका कहना है, कि यहां एक समय लोगोंकी अच्छी आवादी थी। अकवरके शासन-कालमें भी शाहपुर जिलेकी अच्छी उन्नति थी।

महम्मद शाहके शासनकालसे ही हम शाहपुरके परिस्फुट इतिहासका प्रमाण पाते हैं। आनन्दवंशीय राजपूत राजा सलामत रायने मेरामें राजधानी वसाई थी। वे इस स्थानके आस पासके ग्रामोंको अपने आयत्तमें रख कर शासन करते थे। नवाव अहम्मदीयर खाँ खुशावके शासनकर्त्ता थे। इस जिलेके दक्षिणपूर्वस्थ भूखण्डमें मुलतानके शासनकर्त्ता महाराज कुमारमलका शासन विस्तृत था। कभी कभी सिख और अफगानोंने यहां अपना शासन प्रभाव फैलाया था। अहमदशाह दुर्रानीने १७५७ ई०में नूरउद्दीन वमीजको अपने पुत्र तैमूरकी सहायता करने भेजा। इस समय मराठोंके साथ तैमूरका भीषण संग्राम छिड़ा हुआ था। सेनाओंने खुशाके निकट झेलम नदी पार कर, मेरा, मियानी और चकसानु नामक तीन समृद्धिशाली नगरोंको एकदम विध्वस्त कर डाला था। कालक्रमसे मेरा और मियानीने फिर कुछ कुछ तरक्की की, किन्तु चकसानु अभी केवल नाम मात्रके लिये प्राचीन परिचय दे रहा है। नवाव अहमदीमीयरखांकी मृत्युके वाद खुशाव राजा सलामत रायके शासनाधीन हुआ था।

अब्बास खाँ नामक एक शासनकर्त्ता अहमदशाहके प्रतिनिधिरूपमें पिण्डदादन खाँ नामक स्थानमें रहते थे। लवणपर्वतश्रेणी भी इन्हींके शासनाधीन थी। इन्होंने मेराके राजाको विश्वासघातकता द्वारा मार डाला तथा मेरामें अपना अधिकार जमा लिया। अब्बास खाँ इन सब स्थानोंसे जो राजस्व वसूल करते थे, वह स्वयं हड़प कर लेते थे। इस अपराधमें उनका अवशिष्ट जीवन कारागारमें ही व्यतीत हुआ था। इस समय सलामत रायके भतीजे फतेसिंहने मेराको अधिकार किया।

१७६३ ई०में अहमदशाहके साथ सिखोंका घोर युद्ध हुआ। इस युद्धमें सिखोंकी जीत हुई। सुकर-चकिया मिशिलके नेता छत्रसिंहने विजयगौरवसे स्पर्द्धित हो लवणपर्वतश्रेणीको दखल करनेकी कोशिश की। इधर भाङ्गि राजाने पार्वत्यप्रदेशसे चनाव नदीके तट तकके भूखण्डमें अपना आधिपत्य फैला कर उसे आपसमें वाँट लिया। मुसलमान-शासनकर्त्ता सम्राट्की जरा भी अपेक्षा न करके अपनी अपनी वीरतासे साहिवाल, मिठातिवाना और खुसावमें सिखोंके विरुद्ध अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखनेमें समर्थ हुए थे। इसके वाद अराजकताके असंगत आक्रमणसे तथा सीमा सम्बन्धीय विवादसे इस अञ्चलमें सर्वदा अशान्ति विराजती रहती थी। इसी अवस्थामें सिखवीर महासिंहका अभ्युदय हुआ। उनके प्रभावगौरवसे छोटी छोटी राजशक्तियोंका परस्पर कलह विलकुल दव गया। इसके वाद उनके पुत्र स्वनामधन्य वीरकेशरी रणजित्सिंहने पञ्जावमें अपना असाधारण प्रभुत्व स्थापन किया। १६८३ ई०में मियानी नगर मानसिंहके दखलमें आया और १८०३ ई०में उनके लड़के महाराज रणजित्सिंहने मेरामें अपना शासनगौरव प्रतिष्ठित किया था। इसके छः वर्ष पीछे रणजित् शाहवाल और खुशावके दो बलूच शासनकर्त्ताओंको भगा कर इन दोनों स्थानोंमें अपना आधिपत्य फैलाया। इस समय उन्होंने और भी कितने छोटे छोटे तालुक अपने शासनाधीन कर लिये थे। १८१० ई०में झंगके शियाल-वंशीय सामन्तराजाओंके शासित स्थान भी रणजित्के शासनाधीन हुए।

१८१६ ई०में रणजित्की विजयध्वजा मिठातिवांनामें फहराने लगी। मिठातिवानाके मालिकगण रणजित्की विजयोन्मत्त सेनाओंकी वीरता देख भयभीत हो गये और चुपके बहुत दूर भाग गये। परन्तु रणजित् मिठातिवानोंकी क्षमता अच्छी तरह जानते थे। सुचतुर

रणजित् उन्हें परास्त कर पीछे उनके साथ मित्रता-बंधनमें आवद्ध हुए। पीछे उन्होंने हरिसिंह नामक एक सिखसरदार पर तिवानादका शासन भार सौंप दिया। हरिसिंहकी मृत्युके बाद १८३७ ई०में तिवानाद प्रतिनिधि फते खांको रणजित्ने जामरुद नगरमें प्रतिष्ठित किया। रणजित् अपने पुत्र और पौत्रके साथ थोड़े ही समयमें धीरे धीरे इस लोकसे चल बसे। रणजित्सिंह देखो। इस समय मालिक फते खाँका खूब चला बना था।

फते खाँके दुर्व्यवहारसे सिखगण तंग तंग आ गये। फते खाँके चक्रान्तसे सिखनेता ध्यानसिंह मारे गये। इस पर सिखोंने क्रोधसे उन्मत्त हो फते खाँको कैद कर लिया। इस समय लेफ्टेनाण्ट एडवार्डने फते खाँको कारामोचन कर उसे मुलतान-विद्रोह दमन करनेके लिये बानु नगरमें भेज दिया। इसके कुछ समय बाद ही एक छोटी लड़ाईमें सिखोंने फते खाँको गोलीसे उड़ा दिया। फते खांके भाई और पुत्रने अंगरेजोंका पक्ष लिया था।

द्वितीय सिखयुद्धके समयमें ही शाहपुर अङ्गरेजोंके हाथ आया। अङ्गरेजी शासनके प्रारम्भमें शाहपुर एक श्रेणीकी भ्रमणशील असभ्यप्राय जातिका आवास था। ये लोग कहीं भी निर्दिष्टरूपसे घर बना कर नहीं रहते थे, केवल जहाँ तहाँ भ्रमण करते रहते थे। वृटिश-शासन विस्तारके साथ ये लोग घर बाँध कर रहने लगे हैं।

इस जिलेमें ५ शहर और ७८६ ग्राम लगते हैं। जन संख्या पाँच लाखसे ऊपर है। जिसमेंसे मुसलमानोंकी संख्या सैकड़े पीछे ८४ है। इन लोगोंकी भाषा पश्चिमी पञ्जाबी या लहनदा है।

शासनकार्यको सुविधाके लिये यह जिला तीन तहसीलमें विभक्त है, शाहपुर, मेरा और खुशाव। समूचा जिला एक डिपटी कमिश्नर और दो असिष्टांट कमिश्नरके अधीन है।

विद्याशिक्षामें इस जिलेका स्थान सूबाके अट्ठाईस जिलोंमें दशवाँ पड़ता है। अभी कुल मिला कर ७ सिकण्डरी और ८० प्राइमरी स्कूल, १५ अडभांष्ठ और २४० एलिमेण्टरी स्कूल हैं। इनके सिवा दो हाई स्कूल और बारह बालिका स्कूल हैं। जिनमेंसे पण्डित दीवान-चन्द्रका स्कूल सूबे भरमें बड़ा है। स्कूल और कालेजके अलावा सिविल अस्पताल और चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३१° ४२´ से ७२° ५१´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १०२१ वर्गमील है। इसके पश्चिम और उत्तर-पश्चिममें झेलम नदी बहती है। यहांकी जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। इसमें शाहीवाल नामक एक शहर और २८६ ग्राम लगते हैं।

३ शाहपुर जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० ३२° १८´ उ० और देशा० ७२° २७´ पू०के मध्य झेलम नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। जनसंख्या १० हजारके करीब है। इस शहरके दो सैयदवंशीय सम्भ्रान्त मुसलमानोंने इस शहरको बसाया। शाह समस उनके नेता थे। सामके वंशधर ही आज भी इस स्थानके अधिकारी हैं। शहरके पूर्व भागमें शाह सामकी समाधि आज भी नजर आती है। शाह सामको मुसलमान लोग भगवत् प्रेरित साधु मानते थे। आज भी उनकी समाधिके निकट प्रति वर्ष एक बड़ा मेला लगता है। इस जिलेमें कमसे कम बीस हजार आदमी जमा होते हैं। शहरमें एक ऐङ्गलो-वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और पण्डित दीवान-चन्द्रका एक बालिका-स्कूल है।

शाहपुर—बम्बईके काठियावाड़का एक छोटा राज्य। इसका परिमाण दश वर्गमील है।

शाहपुर—हैदराबाद राज्यके गुलबर्गा जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण ५८५ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें सागर नामक एक शहर और १५० ग्राम लगते हैं। भीमा नदी इसके दक्षिण पूर्वमें बहती है।

शाहपुर—मथुरा जिलेकी कोशी तहसीलका एक छोटा ग्राम। इस ग्राममें समृद्धिका कोई परिचय नहीं है। किन्तु पहले नवाब असरफ अलीको राजधानी थी। ग्रामके बाहर आज भी उनके दुर्गका भग्नावशेष नजर आता है। नवाबके समय यह स्थान सब प्रकारसे समृद्धिशाली था।

शाहपुर—पञ्जाबके गुरुदासपुर जिलेका एक शहर।

शाहपुर—मध्यप्रदेशके सागर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम।

शाहपुर—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत निमार जिलेके बुरहानपुरके अधीन एक बड़ा ग्राम।

शाहपुर—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत मण्डला जिलेकी पर्वतश्रेणी। यह स्थान नर्मदा नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित

है। गोंड़ और वैगा इस स्थानके अधिवासी हैं। गेजर और गजाई निर्भर इस स्थान हो कर वह गया है। राहमें बहुत-से छोटे छोटे सोते उनमें मिल गये हैं। सबसे ऊँचे जलप्रपातकी ऊँचाई ६० फुट है। इस जल-प्रपातके पश्चात् मार्गमें अन्धकारसमाच्छन्न व्याघ्र भालूसे परिपूर्ण एक घना जंगल है। जनसाधारणका विश्वास है, कि यह भयङ्कर स्थान महादेवके अनुचर भूत-प्रेत पिशाच और प्रमथोंके महाभैरव ताण्डव नृत्यका रङ्गालय है। भूतनाथ भवानीपति महादेव ही इस पर्वतमालाके अधिपति हैं।

शाहपुर—राजपूतानेकी टोंक एजेन्सीके अधीन एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २५° २६´ से २५° ५३´ उ० तथा देशा० ७४° ४४´ से ७५° ७´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०५ वर्गमील हैं। इसके उत्तर और उत्तर-पूर्वमें वृटिश सरकारका अजमेर जिला और बाकी तीन दिशाओंमें उदयपुर राज्य है। यह अञ्चल वृक्षादि विवर्जित होने पर भी अनुर्वर नहीं है। गोचारणकी भूमि भी यहां काफी है। यहांके राजा शिशोदिया राजपूतवंशीय हैं। उदयपुरके पूर्वतन राणा ही इसके पूर्वपुरुष हैं। सूर्यमल इस राज्यके प्रतिष्ठाता हैं। सम्राट् शाहजहान्‌ने सूर्यमलके लड़के सुजानसिंहकी वीरता पर प्रसन्न हो कर उन्हें फूलिया परगना जागीरस्वरूप दिया। इस कृतज्ञतामें सुजानसिंहने दाता शाहजहान्‌के नाम पर जिलेका शाहपुर नाम रखा और उसी नाम पर शहर बसाया। वे ही शाहपुरके प्रथम सामन्त माने जाते हैं। १६५८ ई०में उज्जैनके निकट फतेहाबादमें दारा और औरङ्गजेबके बीच जो लड़ाई छिड़ी थी, उसीमें दाराकी ओरसे लड़ते हुए थे मारे गये थे। उनके पौत्र भरतसिंह तृतीय सामन्त थे। उन्होंने औरङ्गजेबसे राजाकी उपाधि पाई थी। उनके बाद उमेदसिंह सामन्त हुए। १७६८ ई०को उज्जैनमें मेवारके राणा अरिसिंहकी ओरसे लड़ते हुए वे महादजी सिन्धियाके हाथसे मारे गये। सातवें सामन्त अमरसिंह हुए। उन्होंने १७९६से १८२७ ई० तक राज्य किया। कहते हैं, कि उन्होंने मेवारके महाराणासे 'राजाधिराज' की पदवी पाई थी। ग्यारहवें और वर्तमान सामन्तका नाम राजाधिराज नाहरसिंह है। १८७० ई०में वे राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए और १८७६ ई०में उन्होंने राजकार्यका कुल अधिकार अपने हाथ लिया। वृटिश सरकारकी ओरसे उन्हें K, C, I, E, की उपाधि दी गई। वे वृटिश सरकारको दश हजार रुपया कर देते हैं।

इस राज्यमें शहर और ग्रामको मिला कर १३३ और जनसंख्या ४० हजारसे ऊपर है। यह राज्य चार तहसीलमें विभक्त है,—शाहपुर, धिकोल, कोठियान और फूलिया।

राजाधिराज एक कामदार द्वारा राजकार्य चलाते हैं। कामदारके अधीन राजस्व-कलक्टर और चार तहसीलदार हैं। राज्यकी आमदनी तीन लाख रुपयेसे ऊपर है। सामन्तके पास ४४ घुड़सवार, ६५ सशस्त्र पुलिस और १७६ पदातिक सेना हैं। राजपूतानेके सामन्त राज्योंमें विद्याशिक्षामें इस राज्यका स्थान तीसरा आया है। अभी कुल मिला ८ स्कूल है जिनमेंसे दो बालिका-स्कूल हैं। स्कूलके अलावा एक अस्पताल भी है।

२ उक्त सामन्तराज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २५° ३८´ उ० तथा देशा० ७४° ५६´ पू०के मध्य विस्तृत है। १६२९ ई०में शाहजहान् बादशाहके नाम पर शाहपुरके प्रधान सामन्त सुजानसिंहने इस नगरको बसाया। यहांकी जनसंख्या १० हजारके लगभग है। शहर चारों ओर दीवारसे घिरा है जिसमें चार फाटक लगे हैं। यहां डाक और तार घर, कारावास, एङ्गलो वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल है। दीवारके बाहर और कुन्द फाटकके समीप रामद्वार या रामसनेही सम्प्रदायका मठ खड़ा है। करीब दो सौ वर्ष बीत गये, रामचरणदासने इस सम्प्रदायको प्रवर्त्तित किया। मठमें एक महन्त रहते हैं।

शाहपुर—राजपूतानेके जयपुर राज्यकी सेवाई जयपुर निजामतका एक शहर। यह अक्षा० २७° २३´ उ० तथा देशा० ७५° ५८´ पू०के मध्य जयपुर शहरसे ३४ मील उत्तरमें अवस्थित है। यह मनोहरपुरके रावके अधिकारमें है। यहांकी जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है।

शाहपुरी—चट्टग्राम विभागका एक द्वीप। यह अक्षा० २०° ३८' उ० तथा देशा० ९२° १६' पू०के मध्य नायफ नदीके मुख पर अवस्थित है। इसी स्थानको ले कर पहले ब्रह्मवासियोंके साथ अंगरेजोंका युद्ध हुआ था। अंगरेज लोग बहुत दिनों तक विना किसी छेड़छाड़के इस द्वीपका भोग करते रहे थे। पीछे ब्रह्मराजने उस द्वीपको अपने अधिकारभुक्त बतला कर दावा किया। ब्रह्मदेशके कर्त्तृपक्षने इस स्थानमें घाटकर संस्थापन कर चट्टग्रामके नौव्यवसायियोंसे कर मांगा। इस पर उन्होंने आपत्ति की। फलतः ब्रह्मराजके आदेशानुसार नाविकोंकी नाव जला दी गई तथा एक सारङ्गको भी मार डाला गया। इसके बाद ही नायफ नदके पूर्वी किनारे अस्त्रधारी ब्रह्मसेना एकत्र हुई। यह देख चट्टग्रामवासी बहुत डर गये और उन्होंने वृटिशसरकारको इसकी खबर दी। १८२३ ई०की २४वीं सितम्बरको ब्रह्मदेशके राजकीय कर्मचारी ससैन्य आ कर शाहपुरी अधिकार करनेमें प्रवृत्त हुए। प्रायः एक हजार लोगोंने समरसाजसे सजधज कर अंगरेजोंके पहरुदार आदिको निहत और आहत कर शाहपुरीमें अपनी गोटी जमाई। यह संवाद पा कर अंगरेजोंने कलकत्तेसे एक दल सैन्य भेजा। इसका फल हुआ कि, बहुत दिनों तक मगोंको चट्टग्रामकी पूर्वी सीमा पर अग्रसर हो वीरता दिखानेका साहस न हुआ। किन्तु कुछ दिन बाद ही अंगरेजोंको शाहपुरीसे निकाल भगानेके लिये ब्रह्मराजने आराकानके राजाको हुक्म दिया। पीछे आवासे राजकर्मचारी शाहपुरी दखल करनेके लिये दल-बलके साथ शाहपुरी आये। फलतः शाहपुरका अधिकार निर्वाचन ही ब्रह्मयुद्धका मूलकारण था। इन्हीं सब कारणोंसे १८२७ ई०को २७वीं फरवरीको प्रथम ब्रह्मयुद्ध घोषित हुआ।

शाहपौ—मथुरा जिलेकी शाहाबाद तहसीलका एक शहर यह अक्षा० २७° २७' उ० तथा देशा० ७८° ११' पू०के मध्य शाहाबाद शहरसे ७ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां इष्ट इण्डियन रेलवेके जलेश्वर-रोड स्टेशनके पास ही है। यहां पुलिसथाना और डाकघर दोनों ही हैं। रविवार और बुधवारको यहां हाट लगती है।

शाहबन्दर—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके करांची जिलेका एक महकमा। यह अक्षा० २४° १०' उ० तथा देशा० ६७° ५६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३३७८ वर्गमील और जनसंख्या आठ सौ के करीब है।

यह स्थान प्रधानतः एक समतल भूमि और नदीमातृक है। सिन्धुनदके स्रोत जलसे यह बहुत कुछ उक्त नद या द्वीपमें परिणत हो गया है। यहां बहुत सी नदियां बह गई हैं। उन सब नदियोंमें कोरी खाल और पिञ्जारी या शिरनदी प्रधान है। इसके नाना स्थानोंमें आम और इमलीके वन देखे जाते हैं। इसका दक्षिण पश्चिमांश सिन्धुकी बाढ़से डूब जाया करता है। इसका कटिदेश समुद्रकी ओर अग्रसर हो गया है। उस चर-भूमिमें महिषादि स्वच्छन्दपूर्वक विचरण कर सकते हैं। धान ही यहांकी प्रधान उपज है। इसके सिवा गेहूं, कपास, तमाकू और ईख भी उत्पन्न होती है।

२ इस महकमेका एक तालुक। इसका भूपरिमाण १३८८ वर्गमील है।

३ शाहबन्दर तालुकका प्रधान नगर। मुगलभीनसे ३० मील दक्षिण-पूर्व तथा सुजावालसे ३३ मील दक्षिण सिन्धुनदीके डेल्टा-अंशमें यह बन्दर अवस्थित है। पहले यह स्थान मोसिर नदीके पूर्वप्रान्तमें था। इसके दक्षिण पूर्वभागमें लवणभूमि, पश्चिममें सुदीर्घ तृणपूर्ण जङ्गल हैं। सिन्धुनदकी बाढ़से आरङ्गाबादका कुछ अंश जब नष्ट हो गया, तब अंगरेज लोग आरङ्गाबादसे शाहबन्दरमें अपना कारखाना उठा लाये। १८१९ ई०की सिन्धुबाढ़से शाहबन्दर एक नगण्यग्राममें परिणत हो गया।

शाहबलूत (फा० पु०) बलूत देखो।

शाहबाज (फा० पु०) सफेद रङ्गका एक प्रकारका शिकारी पक्षी।

शाहबाज खाँ कम्बू—सम्राट् अकबरशाहकी सभाका एक अमीर। यह हाजी जमालका वंशधर और उससे छः पीढ़ी नीचे था। हाजी जमाल मुलतानके शेख बाहउद्दीनके धर्मशिष्य थे। जीवनके प्रथमांशमें ये दरवेश या फकीर थे। पीछे अकबर बादशाहने इन्हें उमरावके पद पर नियुक्त किया। धीरे धीरे अमीरके पद पर इनकी तरक्की हुई। १५८४ ई०में शाहबाज खाँ बङ्गालका

शासनकर्त्ता हुआ। १५६६ ई०में ७० वर्षको अवस्थामें इसकी मृत्यु हुई। अजमीरके खाजा मइन उद्दीन चिस्तीके वृहत् समाधिमन्दिरके पास इसका मकवरा है। शाहबाज खाँ एक विख्यात दाता था। इसकी दानशीलता देख कर बहुतोंकी धारण थी, कि इसके पास कोई मन्त्रपूत प्रस्तरखण्ड है।

शाहबाजनगर—शाहजहान्पुर तहसीलका एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २७°५७´ उ० तथा देशा० ७९°५६´ पू० दाटानदी पर शाहजहान्पुरसे ३ मील दूरमें अवस्थित है। शाहबाज खाँके नामानुसार १७वीं सदीके मध्यभागमें यह नगर बसाया गया। शाहबाज खाँ यहां दुर्ग बना कर अकसर रहा करता था। उसके वंशधर सिपाही-युद्धके समय तक इस स्थानका भोग करते रहे। वे लोग विद्रोहियोंके साथ मिल गये थे, इस कारण वृटिश गवर्मेण्टने यह स्थान उनसे छीन लिया और बरेलीके डिपटी कलक्टर मौलवी शेख खैर उद्दोनको दे दिया।

शाहबाजपुर - युक्तप्रदेशके फतेपुर जिलान्तर्गत कल्याणपुर तहसीलका एक ग्राम। यह अक्षा० २५°५६´ उ० तथा देशा० ८०°४०´ पू० विन्दकीसे ७ मील फतेपुर शहरसे १३ मील दूरमें अवस्थित है।

शाहबाज बन्दा नवाज—इस्क-नामा और सादत्-नामा नामक दो ग्रन्थके रचयिता। इन दोनों पुस्तकोंमें ऐश्वरिक प्रेम, आत्मा और जीवनकी भावी अवस्थाके विषयमें अनेक प्रकारके सम्बन्धोंका समावेश है।

शाहबाला (फा० पु०) शहबाला देखो।

शाहबेग अरघन—सिन्धुदेशके राजा और अरघन वंशके स्थापयिता। इनके पिता जुनानबेग अरघन खुरासानके राजा सुलतान हुसेन मिर्जाके सेनानायक और प्रधान अमराव तथा कन्धहार, सालसिटानक और अरघन प्रदेशके शासनकर्त्ता थे। महम्मद खाँ सैवानी उजबेगको रोकने गये और वहीं मारे गये। पीछे कंधहारके अधिपतिने लड़के शाह बेग अरघनको उस पद पर नियुक्त किया। बाबर शाहने जब कंधहार प्रदेश पर चढ़ाई की, तब शाहबेग उनका मुकाबला न कर सके और सिंधदेशको भाग गये। १५२१ ई०में सामनवंशके अन्तिम राजा जाम फिरोजको परास्त कर वहांके राजा हुए। किन्तु वे यहां अधिक दिन तक राज्य न कर सके। क्योंकि दो वर्ष वाद ही १५२४ ई०को उनकी मृत्यु हो गई।

शाह बेगम—भगवान् दासकी कन्या और जहांगीरकी प्रथम पत्नी। जहांगीर बादशाहने ही इसको शाहबेगम उपाधि दी थी। १५८४ ई०में युवराज सलीम (पीछे जहाँगीर)के साथ इसका विवाह हुआ। इसीके गर्भसे १५८७ ई०में खुसरूने जन्म लिया। जहाँगीर अकबरके राजत्वकालमें एकबार बागी हो गये और कुछ समय इलाहाबादमें जा कर स्वतंत्र और स्वाधीन भावसे रहने लगे थे। इस समय उन्होंने असंयत भावसे अपनी इंद्रियवृत्तिको चरितार्थ किया। अपने बड़े लड़के सुलतान खुसरूको वे देखना नहीं चाहते थे। यह उनके चरित्रकी एक अद्भुत विशेषता थी। खुसरू भी पिताकी तरह असंयतचित्त और अपरिमिताचारी थे। मालूम होता है, कि यह भी उनके पिताका एक प्रधान तम असन्तुष्टिका कारण था। पिता पुत्रका इस प्रकार कलह देख शाहबेगम इतनी मर्माहत हो गई, कि इलाहाबादमें रहते ही उसने अफीम खा कर प्राणत्याग दिया। सुलतान खुसरूके उद्यानमें दफनाई गई। पीछे सुलतान खुसरू भी इस लोकसे चल बसे और उनका भी उसी जगह मकबरा बनाया गया।

शाह बेगम—बदाकशानके खाँ मिर्जाकी माता। यह महावीर अलेकसन्दरकी वंशावतंश कह कर अपना परिचय देती थी।

शाह मदार—एक मशहूर दरवेश। इसका असल नाम बदोउद्दीन था। यह शेख महम्मद तइफरी रुस्तामीका धर्मशिष्य और मदारिया सम्प्रदायका स्थापयिता था। इसके सम्बन्धमें बहुत सी अद्भुत बातें सुनी जाती हैं। १४३४ ई०की २०वीं दिसम्बरको १२५ वर्षकी उमरमें इसका देहान्त हुआ। कन्नौजके अन्तर्गत मकानपुरमें इसकी कब्र है। यहां प्रति वर्ष महोत्सव होता है। यह काजी साहब उद्दीन् दौलताबादीका समसामयिक था। दौलताबादी जैनपुरके सुलतान इब्राहिम सर्कीके राजत्वकालमें जीवित थे।

शाह मनसूर—मुजफरका लड़का और मुजफरवंशका अन्तिम सुलतान। इसने जैन-उल-आबिदिनको अंधा

करके सिराज जीता और पीछे इराक और फारसमें राज्य किया। शाह मनसूर १३९३ ई०की २२वीं मई वृहस्पतिवारको अमीर तैमूरसे पराजित और निहत हुआ।

शाह मीर—शाहमीर खलीफा उमरावका वंशधर। इसका असल नाम शेख महम्मद था। मियान मीर नामसे भी यह पुकारा जाता था। यह अत्यन्त धर्मभीरु था। लोग इसे मुसलमान साधु समझते थे। १५५० ई०को सिस्तानमें इसका जन्म हुआ। पीछे लाहोरमें ६० वर्ष रहनेके बाद १६३५ ई०की ११वीं अगस्त मङ्गलवारको इसकी मृत्यु हुई। लाहोरके निकटवर्त्ती हासिमपुर नामक स्थानमें इसका मकबरा बनाया गया। इसके बहुत-से शिष्य थे, जिसमें शाहजहान्के बड़े लड़के दाराशिकोहका गुरु मुल्ला शाह एक था। इसने जियाउल-आयुन अर्थात् नयनका आलोक नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

शाहमीर—काश्मीरके प्रथम मुसलमान राजा। १३१५ ई०-में राजा सेनदेवके समय काश्मीरमें प्रथम मुसलमान धर्म मत प्रचारित हुआ। इस समय शाहमीर नामक एक मुसलमानने काश्मीर-राजके यहां नौकरी पकड़ी। राजाकी मृत्युके बाद यह राजपुत्र राजा रञ्जनके प्रधान मन्त्रिपद पर प्रतिष्ठित हुआ। रञ्जनकी मृत्युके बाद आनन्द देवने राजपद सुशोभित किया। इस समय भी शाहमीर मन्त्री थे। शाहमीर और उनके परिजनोंका आधिपत्य दिन-पर-दिन बढ़ने लगा। प्रजा भी शाहमीरके प्रति अनुरक्त हो उठी। इस पर शाहमीरके परिजनोंके प्रति राजाको सन्देह हो गया और उन्होंने उन लोगोंको राजसभामें आनेसे मना कर दिया। इस मनाहीका फल विषमय हो उठा। शाहमीर बागी हो गये और कुछ सैन्य सामन्तोंको ले कर काश्मीरकी उपत्यकामें युद्धके लिये प्रस्तुत हुए। राजाके विश्वस्त कर्मचारियों और सेनाओंने शाहमीरका साथ दिया। यह देख राजा बिलकुल हतोत्साह हो गये। हृत्पिण्डकी पीड़ासे १३२९ ई०में वे विधवा पत्नीको छोड़ इस लोकसे चल बसे। राजपत्नी कौलदेवीने शाहमीरकी अङ्कलक्ष्मी हो कर मुसलमान-धर्म ग्रहण किया। इस प्रकार शाहमीर काश्मीरके राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए। कौलदेवीकी विवाह-घटनाको बहुतोंने ही अलीक बताया है। एक ऐतिहासिकने लिखा है, कि दुर्वृत्त मीरशाह जब कौलदेवीका सतीत्व नष्ट करने आया था, तब वे कई दासियोंके साथ शाहमीरके पास आईं और उसे पामर, पाषण्ड, अकृतज्ञ, नराधम, विश्वासघातक आदि गाली देती हुई उसकी छातीमें छूरा भोंक सती रमणीने उसी समय प्राणत्याग किया। इस घटनाके बाद शाहमीरने सुलतान समसुद्दीनकी उपाधि धारण कर १३४१ ई०में काश्मीरका राजसिंहासन ग्रहण किया। १३४४ ई०में इनकी मृत्युके बाद पुत्र जमसीद सिंहासन पर बैठा।

शाहरा—मध्य प्रदेशके निमार जिलांतर्गत खण्डोआ तहसीलका एक शहर।

शाहराह (फा० स्त्री०) राजमार्ग, बड़ी सड़क।

शाहरियार—सम्राट् जहांगीरके कनिष्ठ पुत्र। शेर अफगान खाँके औरससे नूरजहान बेगमकी जो कन्या हुई, उसी कन्याके साथ इनका विवाह हुआ था। १६२७ ई०में जहांगीरकी मृत्युके बाद शाहरियारने लाहोरसे आ खजाने पर दखल जमाया। पीछे वे सैन्य सामन्तोंको संग्रह कर वजीर आसफ खाँ पर चढ़ाई करनेके लिये प्रवृत्त हुए। आसफ खांने सुलतान खसरूके लड़के दावार बकस उर्फ बलाकीको कारामुक्त कर राजपद पर प्रतिष्ठित किया था। इस युद्धमें शाहरियार परास्त और कारावद्ध हुए। पीछे इनकी आंखें फोड़ डाली गईं। शाहजहान् १६२८ ई०की ४थी फरवरीको जब राजसिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने इनको, दावार बक्सको और दानियालके दो पुत्र तैमूर और हुसङ्गको यमपुर भेज दिया।

शाहरुक मिर्जा—तैमूर वंशीय। इनके पिताका नाम इब्राहिम मिर्जा था। बदाकसनके शासनकर्त्ता मिर्जा सुलेमान इनके पितामह थे। १५७५ ई०में इन्होंने अपने पितामहको सिंहासनसे उतार स्वयं सिंहासन अपनाया और दश वर्ष तक राज्यशासन किया। १५८५ ई०में अबदुल्ला खाँ उजबकने अपने पराक्रमसे इन्हें देशसे निकाल दिया। शाहरुक भगाये जाने पर भारतवर्ष आये। सम्राट् अकबरने इन्हें आश्रय दिया, केवल आश्रय ही नहीं अपनी कन्याको भी इनके हाथ समर्पण किया। १५९३ ई०में शाहरुकने अकबरकी कन्या शाकरेन्निशा बेगमसे व्याह कर पञ्चहजारी अमीरका

पद पाया। जहांगीरके समय सात हजारीके पद पर इनकी तरक्की हुई थी। १६२७ ई०को उज्जयिनीमें इनका देहान्त हुआ।

शाह सदर—एक सुविख्यात पीर। अरबसे ये सिन्धु-देशमें आये थे। वहां बहुतोंने इनका धर्ममत ग्रहण किया। शिविस्थान पर्वतके पाददेशमें आज भी इनका मकबरा दिखाई देता है। यह स्थान सिन्धुप्रदेशके लकी ग्रामके पास ही है। पारस्याधिपति नाजिर शाह इनके परम भक्त थे। नाजीबलको इन्होंने अपना दर्शन दे कर गुप्तधनकी बात कह दी थी। नाजिरने स्वप्नादेशानुसार निर्दिष्ट स्थानमें धन पाया और पीछे वे पीर साहबके परम भक्त हुए। सिन्धु प्रदेशमें अभी जो सब सैयद-वंशीय व्यक्तिगण नाजिर सैयद कहलाते हैं, वे इन्हींके वंशधर हैं। इमाम अली नक्किके वंशसे इस वंशकी उत्पत्ति हुई है। 'लकि' शब्द 'नक्कि' शब्दका ही रूपान्तर या अपभ्रंश है।

शाह सरफउद्दीन—एक पीर। १३३६ ई०में इनका देहान्त हुआ। विहारमें आज भी इनकी समाधि है। मुसलमान लोग यह समाधि देखने आते हैं। मृत-तिथिमें प्रति वर्ष इस दरगाहके समीप इनके स्मरणार्थ मेला लगता है। इनका दूसरा नाम शेख शरीफ था। बहोल लोदीके पुत्र सम्राट् सिकन्दर शाह १४९५ ई०में इनकी समाधि देखने आये थे।

शाह सुजा—काबुलके अहमदशाह अबदलीके पौत्र और तैमूरशाहके कनिष्ठ पुत्र। १८१२ ई०में इनके भाईने इन्हें कारारुद्ध किया। रणजित्सिंहने इन्हें कारामुक्त कर दिया था। १८०६ ई०की ८वीं मईको वृटिश गवर्मेण्टने इन्हें काबुलके सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। १८४२ ई०में इनके भतीजेने इनका काम तमाम किया। इन्होंने इनकी जो आत्म-जीवनी लिखी थी वह एशियाटिक सोसाइटीकी पत्रिकामें प्रकाशित हुई है।

शाहसुजा—मुजाफरीय सुलतान। सिराजमें इनकी राजधानी थी। इन्हें एक भारी रोग था, कि ये हमेशा क्षुधासे कातर रहते थे, किसीसे भी क्षुधा निवृत्ति नहीं होती थी। १३५६ ई०में इन्होंने अपने पिताको अंधा बना डाला और स्वयं राज्य शासन करने लगे। १३६५ ई०में इनकी मृत्यु हुई। सिराजके निकटस्थ हफतान उद्यानमें आज भी इनकी समाधि नजर आती है।

शाह सुफो—पारस्यराज शाह अब्बासके पौत्र। इनका असल नाम बहराम मिर्जा था। १६२६ ई०के जनवरी मास में ये शाह सुफी उपाधि धारण कर सिंहासन पर बैठे। ये अत्यन्त दुर्वृत्त, निष्ठुर और दुष्कर्मकारी थे। ये प्रति वर्ष भयानक लोमहर्षण, निष्ठुरता और लोकपीड़ाजनक कार्य करके जनसाधारणको तंग करते रहते थे। सभी राजपरिवारके ऊपर इनका अविश्वास था। ये किसीको यमपुर भेजते, किसीकी आंखें निकाल लेते और किसीको कारागारमें ठूंस कर कष्ट देते थे। प्रायः चौदह वर्ष राज्य करनेके बाद १६४२ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

शाह सुफी—एक पीर। आगराके अन्तर्गत फिरोजपुर परगनेके सुफीपुर ग्राममें इनकी दरगाह है। इस दरगाहके खादिमोंका कहना है, कि सम्राट् अकबरके शासनकालमें शाह सुफी इस्पाहनसे भारतवर्ष आये और यमुनाके तटवर्त्ती पुराने चन्द्रावार नगरमें बस गये। इस स्थानके बहुत दूर तक चारों ओर बहुत-सी मसजिदोंका भग्नावशेष देखनेमें आता है। शाह सुफीकी मसजिद कारुकार्यके लिये विख्यात है, सचमुच यह देखने लायक है। यमुनासे यह मसजिद स्पष्ट दिखाई देती है।

शाहादा—१ बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलेका एक महकमा। यह अक्षा० २१° २४′ से २१° ४८′ उ० तथा देशा० ७४° २४′ से ७४° ४७′ पू०के मध्य अवस्थित है। भू परिमाण ४७६ वर्गमील है। इसमें २ शहर और १५५ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ६० हजारके करीब है। जिले भरमें यह तालुक बहुजनाकीर्ण है। यहां ताप्ती और गोमी नामकी दो नदी बहती है। १३७० ई०में यह स्थान गुजरातके अधीन था। इसी समय खान्देशके शासनकर्त्ता राजा मालिकने इस स्थान पर आक्रमण कर इसे बिलकुल हतश्री कर डाला। इसके बाद यह महकमा मुगलों और पीछे मराठोंके शासनाधीन हुआ। १८१८ ई०में वृटिश सिंहने इस स्थान पर दखल जमाया।

२ उक्त महकमेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २१° ३३′ उ० तथा देशा० ७४° २८′ पू० धूलियासे ४८ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या पांच

हजारसे ऊपर है। १८६६ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें रूई ओटनेके तीन कारखाने, एक चिकित्सालय और चार स्कूल हैं।

शाहाना (फा० वि०) १ बादशाहोंके योग्य, राजाओंका-सा, राजसी। (पु०) २ विवाहका जोड़ा जो दूल्हेको पहनाया जाता है। यह प्रायः लाल रंगका होता है। इसे जामा भी कहते हैं। ३ शहाना देखो।

शाहापुर—बम्बईके थाना जिलान्तर्गत पूर्वीय तालुक। यह अक्षा० १६° १८ से १६° ४४´ उ० तथा देशा० ७३° १० से ७३° ४३´ पू०के मध्य विस्तृत है। भू-परिमाण ६१० वर्गमील और जनसंख्या ८ हजारसे ऊपर है। इसमें १६७ ग्राम लगते हैं जिनमें शाहापुर प्रधान है। यहांकी जमीन लाल और पथरीली है, आबहवा अच्छी नहीं है। धान कूटनेके शहरमें पांच कारखाने हैं।

शाहापुर—बम्बईके सङ्गली राज्यका सदर। यह अक्षा० १५° ५०´ उ० तथा देशा० ७४° ३४ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है। सङ्गली राज्यमें यह प्रसिद्ध वाणिज्य स्थान है।

शाहाबाद—बिहार और उड़ीसाके पटना विभागका एक जिला। यह अक्षा० २४° ३१´ से २५° ४६´ उ० तथा देशा० ८३° १६´ से ८४° ५१´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूप-रिमाण ४३७३ वर्गमील है। इसके उत्तरमें गाजीपुर और सारन जिला, पूर्वमें पटना और गया, दक्षिणमें लोहारडंगा और पश्चिममें मिर्जापुर, बनारस तथा गाजीपुर है। इसके उत्तरमें गंगानदी और पूर्वमें शोन नदी बहती है। ये दोनों नदियां जिलेके उत्तर-पूर्वमें मिल गई हैं। कर्मनाशा नदी उत्तर-पश्चिम विभागसे इस जिलेको पृथक् करती है। कर्मनाशा चौशाके समीप गङ्गासे मिल गई है। शोननदी दक्षिणकी ओर लोहारडगाके सीमारूपमें बहती है।

शाहाबाद भूखण्डमें दो प्रकारके भावोंकी नैसर्गिक अवस्था देखी जाती है। दक्षिण भाग और उत्तर भाग जलवायुके सम्बन्धमें, प्राकृतिक दृश्यके सम्बन्धमें और भूमिजात द्रव्यादिके सम्बन्धमें सम्पूर्ण पृथक् है। उत्तरी भागका परिमाण सारे जिलेका प्रायः त्रिचतुर्थांश है। इस अंशमें खेतीबारी खूब होती है। आम, महुआ, बांस और खजूर वृक्ष आदि देखे जाते हैं। दक्षिणांशमें कैमुर गिरिश्रेणी विराजमान है। यह गिरिश्रेणी विन्ध्यपर्वतकी शाखा है। इस पहाड़ी प्रदेशका परिमाण ७६६ वर्गमील है। शोन और गङ्गा शाहाबाद नदनदीमें प्रधान है। इसके सिवा कर्मनाशा, धोबा, दुर्गावती आदि नदियां भी शाहाबादमें बहती हैं। शूरा, कोरा, गनहुआ और कुद्रा ये नदनदी दुर्गावतीमें मिल गई हैं। धोबा या काउ नदीमें एक सुन्दर जलप्रपात है। दुर्गावती कर्मनाशाके साथ मिली है। गुप्तगुहा दुर्गावतीके किनारे ही अवस्थित है।

इस जिलेमें सड़क मरम्मत करने लायक बहुतसे कंकड़ पाये जाते हैं। उन कंकड़ोंको जलानेसे बढ़िया चूना तय्यार होता है। कैमूर पहाड़ पर प्रासादादि बनाने लायक काफी चुनारके पत्थर हैं। इन्हीं सब पत्थरोंसे शेरशाह अनेक प्रस्तरभवन बनवा गये हैं। करीब तीन सौ वर्ष बीत गये, वे सब भवन ज्योंके त्यों खड़े हैं, कोई अंग टूटा नहीं है। इस प्रस्तरमें ६०० वर्षको प्राचीन शिलालिपि खोदित देखनेमें आती है। कर्मनाशा नदीके गर्भमें भी ऐसे कितने पत्थर पाये जाते हैं। शाहाबादमें खेतोंमें जल सींचनेके लिये १८५५ ई०से आज तक बहुत-सी नहरें काटी गई हैं। बिहिया, आरा, बक्सर, चौसा, डोमराउन आदि स्थानोंमें अनेक नहरें काट कर निकाली गई हैं।

इस जिलेमें रोतस या रोहितासगढ़ नामका एक प्रसिद्ध स्थान है। कहते हैं, कि पुराण-प्रसिद्ध राजा हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वने यह गढ़ बनवाया था। यहां राजा मानसिंहके बनवाये प्रासाद आज भी वर्त्तमान हैं। मानसिंह १६४६ ई०में बङ्गाल और बिहारके राजप्रतिनिधिपद पर प्रतिष्ठित हुए। उसी समय उक्त प्रासाद बनाये गये थे। शेरगढ़ एक प्रसिद्ध स्थान है। यह शेरशाह द्वारा बनवाया गया है। चैनपुर स्थान भी सुविख्यात है। यहां एक दुर्ग और कितने कीर्त्तिस्तम्भ तथा समाधि हैं। इनके अलावा दरौती, वैद्यनाथ और महासार आदि स्थानोंके नाम भी उल्लेखयोग्य हैं। चौसा एक इतिहास-प्रसिद्ध स्थान है। १५३६ ई०में शेरशाहने हुमायुनको यहां परास्त किया था। तिलोथू नामक स्थानमें

एक सुन्दर प्रस्रवण तथा प्राचीन चेद प्रतिमा है। पटना एक सुविख्यात स्थान है, प्राचीन हिन्दू राजाओंने यहां राजधानी बसाई थी, आज भी बिहार-उड़ीसाकी राजधानी पटना ही है। गुप्तसरकी पवित्र गुहा शेरगढ़से ७ मील दूरमें अवस्थित है।

आरा शहर १८६८ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय सुविख्यात हो उठा था। दानापुरसे दो हजार सिपाहियों तथा नाना स्थानके और भी ८ हजार सशस्त्र अधिवासियोंने कुमारसिंहकी अधिनायकतामें जुलाई मासके शेष भागमें आराकी ओर यात्रा की। इन सब विद्रोही सेनाओंने २७ वीं जुलाईको आरा पहुंच कर आरा जेल-कैदियोंको मुक्त कर दिया और धनागार लूटा। इसके पहले ही यूरोपीय महिला और बालक बालिकाओंको स्थानान्तरित किया गया था।

१२ सरकारी और बेसरकारी कर्मचारी तथा नाना सम्प्रदायके ४।५ ईसाई इस स्थानमें रहते थे। पटनाके कमिश्नर मि टेलरने यहां एक दल सेना भेजी। इस सेनादलमें सिर्फ ५० सिख थे। वे लोग आठ दिन तक असीम साहससे इस स्थानकी रक्षा करते रहे। पीछे मेजर-भिनसेण्टने फिर इन्हें विद्रोहियोंके कवलसे उद्धार किया। ठीक इसी समय उस स्थानके सुपरिनटेण्डेण्ट मिः भिकार वायेलकी देखरेखमें इष्ट-इण्डियन-रेलवेका निर्माण-कार्य शेष होने पर था। उन्हें दुर्गादिके सम्बन्धमें बहुत कुछ अभिज्ञता थी। उन्होंने फौरन उस स्थानके दो महलोंको दखल कर लिया। वे अभी दोनों महल जजके महल (dudge's homes) नामसे पुकारे जाते हैं। उनमें जो छोटा महल है, वह दो महलका है और बड़े महलसे २० गजकी दूरी पर अवस्थित है। उस महलको दुर्गकी तरह बना कर रसद आदि रखी जाती थी।

विद्रोही-दल आराकी ओर अग्रसर हो रहा है। यह सुनते ही इन लोगोंने उस छोटे दुर्गमें आश्रय लिया। विद्रोहियोंने नगर लूट कर वायेल साहबके दुर्गकी ओर कदम बढ़ाया। किन्तु उन लोगोंके आक्रमण-कौशलसे वे पीछे हट गये और बड़े महलमें आश्रय लेनेको वाध्य हुए। पीछे उन लोगोंने विभिन्न उपायसे इस छोटे दुर्गको विध्वस्त करनेकी चेष्टा की। किन्तु उन लोगोंके पास बंदूक आदि कुछ भी नहीं थे। कुमारसिंहने आखिर जमीनमें गड़ी हुई दो कमान निकाली और अपने घरकी सामग्री आदि द्वारा गोलन्दाजोंके व्यवहारार्थ कुछ द्रव्य प्रस्तुत कर लिये अंगरेजोंमेंसे कोई भी अधीनता स्वीकार करने पर प्रस्तुत न था। मजिष्ट्रेट मि० हारवाल्ड वेकने सिखसेनाओंकी परिचालना की थी। उन सिखसेनाओंने विद्रोही द्वारा प्रलुब्ध हो कर भी प्रभुभक्तिका जैसा परिचय दिया था, वह प्रशंसाई है। इस समय दानापुरसे १५० अंगरेजी सेना उनकी रक्षामें भेजी गई। उनके शाहाबादमें पहुंचते ही विद्रोहियोंने उन पर चढ़ाई कर दी। कई दिन बीत गये, पर उनकी सहायताके लिये कोई भी अग्रसर न हुआ। दुर्गमें रसद भी घट गई। दुर्गके भीतर ही कूप खोदा कर बड़े कष्टसे जल निकाला गया। दो पहर रातको किसी तरह दो बकरे पकड़े गये और उन्हींके मांससे दुर्गस्थ लोगोंने प्राण रक्षा की।

२री अगस्तको मेजर भिनसेण्ट आयर १५० पदातिक कुछ घुड़सवार सेना, ३ कमान और ३४ गोलन्दाज ले कर इन लोगोंकी सहायतामें अग्रसर हुए। सूर्यास्तके पहले ही विपक्ष सेना वहांसे भाग जानेको बाध्य हुई। दूसरे दिन सवेरे मेजर भिनसेण्टने कुमारसिंहकी सेनाओंको फिरसे लौट जानेके लिये बाध्य किया।

इस जिलेमें ६ शहर और ५५१५ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या २० लाखके करीब है। अधिवासियोंमें ब्राह्मण, राजपूत और अहीरकी संख्या ही ज्यादा है।

शाहाबादके शस्यादिमें धान ही प्रधान है। गेहूं, जौ, जुनहरी, मटर, उड़द, तिल, रेंड़ी, सरसों, कपास, प्याज, पाट, ईख, पान, तमाकू, नील और अफीम आदि यहां यथेष्ट उत्पन्न होती है। अतिवृष्टि अनावृष्टि आदिके कारण यहां शस्यादिकी महती क्षति होती है। शाहाबाद जिलेमें हाट बाजार और मेले आदिमें वाणिज्य व्यवसाय दिखाई देते हैं। रघुनाथपुर रेलवे स्टेशनके निकटवर्ती बहरमपुर, बकरूर, जखानी, धूसरियार, पझानिया, गादाहि, कस्तार, दानवार, धामर, मसाड़ और गुप्तसर नामक स्थानमें प्रति वर्ष मेला लगता है। शाहाबादसे चावल, जौ, उड़द, तीसी, रफ्तनी होती है।

इस जिलेमें २५ सिकेण्ड्री, ६३० प्राइमरी और ३६० स्पेशियल स्कूल हैं। अनार्योंके लिये भी रहेल और वहारमें दो स्कूल हैं। स्कूलके अलावा १२ अस्पताल हैं। यहांका स्वास्थ्य उतना खराव नहीं है। रोगोंमें ज्वर, उदरामय और चर्म रोग हो प्रधान हैं।

शाहाबाद—युक्तप्रदेशके हर्दोई जिलेको उत्तरीय तहसील। यह अक्षा० २७° २५´ से २७° ४६´ उ० तथा देशा० ७६° ४´ से ८०° १६´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ५४२ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखसे ऊपर है। इसमें ३ शहर और ५१८ ग्राम लगते हैं। इसके उत्तरमें शाहजहानपुर; पूर्वमें आलम नगर, सारा और सुखेता नदी, दक्षिणमें सरमन नगर और पश्चिममें पाचोछा तथा पाली है। यहां गेहूं, जौ, बाजरा, जुआर, धान, अरहर और ईख उत्पन्न होती है।

यह भूखण्ड पहले ठठेरोंके शासनाधीन था। वर्त्तमान समयमें जहां शाहाबाद जिला अवस्थित है, वह स्थान अग्निखेरा कहलाता था। यह अग्निखेरा तथा इसके चारों ओरका स्थान ठठेरोंके अधिकारमें था। ८वीं सदीमें उन लोगोंने बनारससे हरिद्वार तीर्थयात्री एक दल ब्राह्मणके हाथसे इस स्थानका अधिकार खो दिया था। इन ब्राह्मणोंने औरंगजेबके शासनकाल तक यहां अपने अधिकारकी रक्षा की थी। इसके बाद दिलेर खाँ नामक एक अफगानने ब्राह्मणोंको मार कर यहां अपना दखल जमाया था। दिल्लीके सम्राट्‌ने उसे इस स्थानके अधिकार सम्बन्धमें सनद दी थी। दिलेर खांने ही अग्निखेरामें शाहाबाद नगर प्रतिष्ठित किया। उसने इस स्थानमें अपने अफगान आत्मीय स्वजनों और कुछ सेनाओंको ला कर वासया तथा जङ्गल जागीर स्वरूप दिया। दिलेर खाँके वंशधरोंने खरीद, बन्धक, बंचना और जोर जुल्म द्वारा इस परगनेका अधिकारभुक्त कर लिया था। ५०।६० वर्ष तक यह स्थान उन्हींके अधिकारमें रहा। आज भी दिलेर खाँके वंशधरगण इस परगनेके प्रायः अर्द्धांशके मालिक हैं।

२ शाहाबाद परगनेका प्रधान नगर। यह अक्षा० २७° ३८´ उ० तथा देशा० ७६° ५७´ के मध्य अवध और रोहिलखण्ड रेलवेके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या बीस हजारसे ऊपर है। शाहाबाद शहर अत्यन्त जनाकीर्ण है। अयोध्यामें यह चतुर्थ शहर माना गया है। यहां अयोध्या रोहिलखण्ड रेलवेका एक स्टेशन है। गत सदीसे इस शहरको अवस्था शोचनीय हो गई है। १७७० ई०में यहां बहुतसे लोगोंका वास था। दिलेर खाँने यहां कारुकार्यपरिपूर्ण अत्यन्त सुन्दर बारहदुआरी प्रासाद बनवाया था। इस नगरमें बड़े बड़े दुर्ग और प्रासाद थे। सर विलियम स्लिमनने अपने 'अयोध्या भ्रमण' ग्रन्थमें लिखा है, 'शाहाबाद अति प्राचीन और प्रधान शहर है। इस शहरमें पठान मुसलमान रहते थे। वे लोग बड़े अशांतिप्रिय थे। शिवसुख राय नामक एक हिन्दू वणिक् यहां रहता था। किसी समय वह मुसलमानोंके अधीन कार्य्यकारकरूपमें काम चलाता था। कभी कभी वह प्रधान प्रधान पठानोंको रुपया भी कर्ज देता था। रुपये वसूल नहीं होने पर शिवसुखने कर्ज देना बन्द कर दिया। इस पर मुसलमान लोग बड़े विगड़े और मुहर्रमके समय उस पर झूठा दोष लगा कर मकान पर टूट पड़े और ७०००) रुपये लूट लिये। शिवसुखने शाहजहानपुर भाग कर अंगरेजोंको शरण ली। इस समय इन पठानोंने एक नकली मसजिद बनवा कर मुसलमानोंको शिवसुख रायके विरुद्ध उभाड़नेके लिये षड़यन्त्र रचा था। चून सुरके आदिसे वह मसजिद नहीं बनाई गई थी। बीच बीचमें पठानोंमेंसे कोई कोई दो चार ईंट फेंक दिया करते थे और लोगोंसे कहा करते थे, कि शिवसुख रायने हम लोगोंकी मसजिदको तहस नहस कर डाला है। वह मसजिद आज भी विद्यमान है। शहरमें तहसीली आफिस और मुन्शफी, अस्पताल और अमेरिकन मेथोडिस्ट मिशन है। यह स्थान साक-सब्जी और फलमूलके लिये प्रसिद्ध है। शहरमें चार स्कूल हैं जिनमेंसे एक बालिकाके लिये है।

शाहाबाद—पञ्जावके करनाल जिलान्तर्गत थानेश्वर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा ३०° १०´ उ० तथा देशा० ७६° ५२´ के मध्य अवस्थित है। अम्बालासे १६ मील दक्षिण दिल्ली अम्बालाकालका रेलवे लाइन पर अवस्थित है। ११वीं सदीके अन्तमें अल्लाउद्दीन महम्मद गोरीके किसी

अनुचर द्वारा यह नगर बसाया गया है। १८६७ ई०में एक वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल हुआ है।

शाहाबाद—१ युक्तप्रदेशके रामपुर राज्यकी दक्षिणी तहसील। यह अक्षा० २८° २१' से २८° ४३' उ० तथा देशा० ७८° ५२' पू०के मध्य विस्तृत है। भू-परिमाण १६६ वर्गमील और जनसंख्या ८० हजारसे ऊपर है। इसमें शाहाबाद नामक एक शहर और १६७ ग्राम लगते हैं। रामगंगाके दोनों किनारे यह तहसील विस्तृत है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८° ३४' उ० तथा देशा० ७६° २' पू०के मध्य विस्तृत है जनसंख्या ८ हजारके करीब है। यह शहर उच्च भूमिके ऊपर प्रतिष्ठित तथा रामपुर राज्यके मध्य सबसे अधिक स्वास्थ्यप्रद है। यहां मिट्टीका बना एक पुराना किला था। आस-पासके ग्रामोंसे यह स्थान प्रायः एक सौ फुट ऊंचा था। यहां बहुतसे पठान वंशीय मुसलमानोंका वास है। शहरका पुराना नाम लखनोर था। कहते हैं, कि रोहिलखण्डके कटेरिया राजाओंकी यहां राजधानी थी। शहरमें अस्पताल और एक तहसीली स्कूल है। वह शहर चीनीके लिये प्रसिद्ध है।

शाहाबाद—काश्मीर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० ३३° ३२' उ० तथा देशा० ७५° १६' पू०के मध्य पड़ता है। पूर्वतन मुगलसम्राट् इस शहरको वासोपयोगी मनोरम स्थान समझते थे। किन्तु अभी यह स्थान बिलकुल श्रीहीन हो गया है। शहर अति मनोरम उपत्यका पर बसा हुआ है। फल फूलसे आज भी यह स्थान बहुत कुछ सुशोभित हो रहा है।

शाहाबाद—हैदराबादके गुलबर्गा जिलान्तर्गत फिरोजाबाद तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १७° ८' उ० देशा० ७६° ५१' पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है। यहां ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवेका एक बड़ा स्टेशन है। शहरमें दो डाकघर, ब्रिटिश और निजामका पुलिस स्टेशन, एक चिकित्सालय और तीन वर्नाक्युलर प्राइमरी स्कूल है।

शाहिद (अ० पु०) १ वह मनुष्य जो आंखों देखी घटनाका न्यायाधीशके समक्ष वर्णन करे, साक्षी, गवाह (वि०) २ सुन्दर, मनोहर, खूबसूरत।

शाहिवाल—पञ्जाबकी शाहपुर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३१° ५८' उ० तथा देशा० ७७° २२' पू०के मध्य विस्तृत है। यह किसी समय स्थानीय राजाओंकी राजधानी थी। झेलम नदीके पूर्वी किनारे पर यह नगर बसा हुआ है। कहते हैं, कि गुलबहलोक नामक एक बलूचने यह शहर बसाया। रणजित्सिंहके प्रादुर्भावके पहले तक इसके पार्श्ववर्ती स्थान भोगाधिकारमें थे। यहां अक्सर मलेरियाका प्रकोप देखा जाता है, इस कारण आब-हवा अच्छी नहीं है। किन्तु यह स्थान शाहपुर अञ्चलका प्रधान वाणिज्य-स्थान समझा जाता है।

शाही (फा० वि०) शाहों या बादशाहोंका, राजसी। जैसे,—शाही दरबार, शाही महल, शाही सवारी।

शाहीन (फा० पु०) १ शाहबाज देखो। २ वह सूई जो तराजूकी डंडीके मध्य भागमें लगी होती है और जिसके बिलकुल सीधे रहनेसे तौल बराबर और ठीक मानी जाती है।

शाहु—सताराका एक अधिपति। यह त्र्यम्बकजी भोंसलेका पुत्र और अब्बा साहब नामसे जनसाधारणमें परिचित था। राजारामने इन्हें गोद लिया था। १७७७ ई०की १२वीं दिसम्बरको यह सताराकी गद्दी पर बैठा सही पर, आजीवन उसे नजरबन्दी भावमें रहना पड़ा था। मृत्युके बाद इसके लड़के प्रतापसिंहने राजपद सुशोभित किया।

शाहुका—बम्बईके झालावर विभागका एक छोटा राज्य। यह अक्षा० २७° २६' उ० तथा देशा० ७८° १०' पू०के मध्य शाहाबाद शहरसे ७ मील पूर्व और इष्ट-इण्डियन रेलवेके जलेश्वर स्टेशनके पास अवस्थित है। यहांके मालिक वृटिश सरकार और जूनागढ़के नवाबको कर देते हैं।

शाहुजी भोंसले १म (शाहजी)—एक महाराष्ट्र सरदार। ये महाराष्ट्र-केशरी शिवाजीके पिता थे। इन्होंने अहमदाबादके अधीश्वर मालिक अम्बरके अधीन सेना विभागीय कार्यमें बड़ी वीरता दिखाई थी। इस कारण कुछ दिन बाद ही इनकी तरक्की हुई। अहमदाबाद नगर जब बंटवारा हो रहा था, तब इनकी जागीर विजापुर राज्यमें पड़ी, इस कारण ये अपनी जागीरकी रक्षाके लिये

विजापुर सरकारके अधीन नौकरी करने लगे। विजापुरराजने इन्हें दाक्षिणात्य जीतनेके लिये भेजा। इस युद्धमें शाहुजीको महिसुर राज्यमें कुछ जागीर मिली तथा शिरा और वङ्गलूर नगर इनके अधिकारभुक्त हुआ। १६६४ ई०को वृद्धावस्थामें जब ये शिकार खेलनेको जा रहे थे, तब घोड़े की पीठ परसे गिर कर पञ्चत्वको प्राप्त हुए। प्रथमा पत्नी शिवाजीकी माताके साथ किसी कारणवशतः विवाद हो जानेसे इन्होंने तुकावाई नाम्नी एक दूसरी स्त्रीसे विवाह किया। उस स्त्रीके गर्भसे एकोजी नामक एक पुत्रने जन्मग्रहण किया। शाहुजीने शिवाजीको सतारा और एकोजीको तंजोर राज्य दिया था। तञ्जोर, महाराष्ट्र और सतारा देखो।

शाहुजी भोंसले २य—महाराष्ट्र सरदार शम्भुजीके पुत्र। ये शाहु या शाहजी नामसे भी इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। १६८६ ई०में शम्भुजीके मरने पर ये शैशवावस्थामें सिंहासन पर बैठे। चचा राजाराम नावालिगके अभिभावक हो कर राजकार्य चलाने लगे। शाहुके आलमगीरके हाथ बन्दी होने पर राजारामने भतीजेके कारागारकालमें अपनेको राजा घोषित कर दिया। इस समय १७०० ई०के अप्रिल मासमें बादशाह आलमगीर दलबलके साथ सतारा दुर्ग पर आक्रमण करने अग्रसर हुए। दुर्ग मुगल अधिकारमें आनेके पहले ही गिंजी नामक स्थानमें वसन्तरोगसे राजारामकी मृत्यु हुई। बादमें उनकी स्त्री ताराबाई अपने दो वर्षके लड़के शिवको सिंहासन पर बिठा कर स्वयं राजकार्य चलाने लगी।

आलमगीरकी मृत्युके बाद आजिम शाहने शाहुजीको कारागारसे निकाल दिया। अब मराठोंने उन्हें सतारा ला कर १७०८ ई०के मार्च मासमें पुनः राज-सम्मानसे भूषित किया था। इस समयसे महाराष्ट्रीय दलने नये उद्यमसे भारतवर्षमें तमाम युद्ध यात्रा की तथा वङ्गालको छोड़ उड़ीसासे पश्चिम समुद्र तथा आगरासे कर्णाटक प्रदेश तकके स्थानोंको लूट महाराष्ट्र प्रभावकी परा काष्ठा दिखलाई थी। इस समय महाराष्ट्रगण प्रायः १००० मील लंबे और ७०० मील चौड़े स्थानमें अपना आधिपत्य फैलानेमें समर्थ हुए थे। प्रधान मन्त्री पेशवा वालाजी वाजीराव विश्वनाथका प्रभुत्व और शासनशक्ति उनका अन्यतम कारण था। उक्त पेशवाने अपने बुद्धिकौशलसे राजाको वशीभूत कर राज्यपरिचालनका भार अपने हाथ लिया। राजा शाहु उनकी कार्यकुशलता पर प्रसन्न हो कर स्वयं कोई कामकाज नहीं देखते थे, सतारा दुर्गमें ही रह कर रात दिन आमोद-प्रमोदमें मस्त रहते थे। १७४६ ई०को ५० वर्ष राज्य करनेके बाद शाहु इस लोकसे चल बसे। पीछे राजपरिवारके सभी लोगोंने उनके दत्तकपुत्र तथा ताराबाईके पौत्र राजारामको सिंहासन पर स्थापित किया। किन्तु राज्य चलानेका कुल भार पेशवा विश्वनाथके हाथ रहा। राजा शाहु भी मृत्युके पहले पेशवाको महाराष्ट्र-साम्राज्यका शासन भार दे गये थे। उस समय इन्होंने यह भी कह था, कि राजारामके पुत्र शम्भुजीके अधिकृत कोल्हापुर राज्य सम्पूर्ण स्वतन्त्र और स्वाधीन रहे। महाराष्ट्र और पेशवा देखो।

शिंगरफ (फा० पु०) ईंगुर, हिंगुल। ईंगुर देखो।

शिंगरफी (फा० वि०) शिंगरफके रंगका, लाल, सुर्ख।

शिंश (सं० पु०) एक प्रकारका फलदार वृक्ष।

शिंशपा (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात तरु, शीशमका पेड़। (Dalbergia sesu, Timber tree) तैलङ्ग—शिशुकर, तामिल—आनुक कुकट्टई, पंशकेदर। संस्कृत पर्याय—पिच्छिला, अगुरु, कपिला, भस्मगर्भा, अगुरु-शिंशपा, कृष्णसारा, पिङ्गला, पिच्छला, वीरा। (रत्नमाला) यह तीन प्रकारका होता है, श्वेत, कृष्ण और पीत। इसका साधारण गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, कफ और वातनाशक, दीपन, शोथ और अतिसारघ्न। श्वेत शिंशपा—तिक्त, शीतल, पित्तदाहनाशक। कपिल वर्ण शिंशपा—तिक्त, शीतवीर्य, श्रमनाशक, वात, पित्त, ज्वर, छर्दि और हिक्कानाशक। उक्त तीनों शिंशपा ही वर्णप्रसाधक, हिम, शोफ और विसर्पनाशक, रुचिकर तथा पित्त और दाहनाशक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—तिक्त, कषाय, शोथकारक, उष्णवीर्य, कुष्ठ, कृमि और वमिनाशक तथा गर्भस्रावकारक। (भावप्रकाश)

किसी किसीने इसे दो प्रकार बताया है, प्रथम कृष्णसार और द्वितीय कपिलपुष्प। इनमेंसे प्रथम श्रेष्ठ और द्वितीय निकृष्ट है।

ऋग्वेदमें लिखा है, कि यह काष्ठनिर्मित तथा अतिशय दृढ़ होता है। "ओजोधेहि स्यन्दने शिंशपायां" (ऋक् ३।५३।१६) २ अशोकका वृक्ष।

शिंशुपास्थल (सं० क्ली०) स्थानभेद। शांशपास्थल देखो।

शिंशुमार (सं० पु०) शिशुमार, सूंस नामक जलजन्तु। (ऋक् १।११६।१८)

शिंहान (सं० क्ली०) १ लौहमल, मरचाई। २ कांचका बरतन। ३ छर्दि।

शि (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ शुभ, सौभाग्य। ३ शान्ति। ४ धैर्य्य।

शिकंजा (फा० पु०) १ दबाने, कसने या निचोड़नेका यन्त्र। २ पेच कसनेका यन्त्र या औजार जिससे जिल्द-बंद किताबें दबाते और उसके पन्ने काटते हैं। ३ पेरनेका यन्त्र, कोल्हू। ४ रूई दबानेकी कल, पेंच। ५ प्राचीन कालका अपराधियोंका कठोर दण्ड देनेके लिये एक यन्त्र जिसमें उनकी टांगे कस दी जाती थीं। ६ वह तागा जिससे जुलाहे घुमावदार बंद बनाते और पनिक बांधते हैं।

शिकन (फा० स्त्री०) सिकुड़नेसे पड़ी हुई धारी, मुड़ कर दबनेसे पड़ी हुई लकीर, सिलवट।

शिकम (फा० पु०) उदर, पेट।

शिकमी (फा० वि०) पेट-सम्बन्धी, निजका, अपना।

शिकमी काश्तकार (फा० पु०) वह काश्तकार जिसे जोतनेके लिये खेत दूसरे काश्तकारसे मिला हो। इसका हक खास काश्तकारके हकसे बहुत कम होता है।

शिकरा (फा० पु०) एक प्रकारका बाज पक्षी।

शिकवा (अ० पु०) शिकायत, उलाहना।

शिकस्त (फा० स्त्री०) १ हार, पराजय, मात। २ भंग, टूटना। ३ विफलता, असिद्धि।

शिकस्ता (फा० वि०) १ भग्न, टूटा हुआ। (स्त्री०) २ उर्दू या फारसीकी घसीट लिखावट।

शिकायत (अ० स्त्री०) १ बुराई करना, चुगली, शिकवा। २ किसी भूल, त्रुटि, दोष आदिकी बात जो मनमें हो। ३ उपालम्भ, उलाहना। ४ शारीरिक अस्वस्थता, रोग, बीमारी।

शिकार (फा० पु०) १ जंगली पशुओंको मारनेका कार्य्य या क्रीड़ा, आखेट, मृगया। २ वह जानवर जो मारा गया हो। ३ आहार, भक्ष्य। ४ कोई ऐसा आदमी जिसके फंसने या वशमें होनेसे बहुत लाभ हो, असामी। ५ गोश्त, मांस।

शिकार गड़हा (हिं० पु०) वह बड़ा गड्ढा जो शिकारी जानवरोंको फंसानेके लिये खोदते हैं।

शिकारगाह (फा० स्त्री०) शिकार खेलनेका स्थान।

शिकारबंद (फा० पु०) वह तसमा जो घोड़ेकी दुमके पास चारजामेके पीछे शिकार लटकाने या आवश्यक सामान बांधनेके लिये लगाया जाता है।

शिकारी (फा० पु०) १ आखेट करनेवाला, शिकार करनेवाला, अहेरी। (वि०) २ शिकार करनेवाला, जङ्गली पशुओंको पकड़ने या मारनेवाला। जैसे,—शिकारी कुत्ता। ३ शिकारमें काम करनेवाला। जैसे,—शिकारी कोट, शिकारी खेमा।

शिकाल (फा० पु०) वह घोड़ा जिसका अगला दाहिना पैर और पिछला बांया पैर सफेद हो। यह दोषी माना जाता है।

शिक्क (सं० त्रि०) अव्यवसायी, बिना रोजगारका।

शिक्क (सं० क्ली०) मधुजात द्रव्यविशेष, मधूच्छिष्ट, मोम। पर्याय—शिक्थक, मधुज, विघस, मधुसम्भव, मोदन, काच, उच्छिष्ट, मक्षिकामल, क्षौद्रेय, पीतराग, स्निग्ध, मक्षिकाज, क्षौद्रज, मधुशेष, द्रावक, मक्षिकाश्रय, मधूत्थित, मधूत्थ। गुण—पिच्छिल, स्वादु, कुष्ठ, वात और अस्रदोषनाशक, मृदु, कटु और स्निग्ध। इसका प्रलेप देनेसे स्फुटिताङ्ग विलेपन अर्थात् शरीरका फटा हुआ स्थान उत्तमरूपसे निराकृत होता है। (राजनि०)

शिक्थक (सं० क्ली०) शिक्थ-स्वार्थे कन्। शिक्थ, मोम

शिक्य (सं० क्ली०) स्रंस (स्रंसेः शि कुट-किच। उण् ५।१६) इति यत्, सच कित्, कुडागमः शिरादेशश्च। १ छतमें लटकता हुआ रस्सीका जालीदार संपुट जिस पर दूध, दही आदिका मटका रखते हैं, छींका, सिकहर। पर्याय—काच, शिक्या, शिक्। २ तराजूकी रस्सी। ३ वहंगीके दोनों छोरों पर बंधा हुआ रस्सीका जाल जिस पर बोझ रखते हैं।

शिक्यक (सं० क्ली०) शिक्य-कन्। शिक्य देखो।

शिक्यत (सं० पु०) शिक्ये स्थापितमित्यर्थे प्रतिपदिका धात्वर्थे इति णिच्, ततः क्तः। शिक्यस्थापित वस्तु, वह वस्तु जो छींके पर रखी हो। पर्याय—काचित। (अमर)

शिक्यवत् (सं० त्रि०) शिक्ययुक्त। (कात्यायनश्रौ० १६।५।५)

शिक्या (सं० स्त्री०) शिक्य-स्त्रियां टाप्। शिक्य देखो।

शिक्याकृत (सं० त्रि०) शिक्य सदृश निर्मित, छींकाकी तरह बना हुआ। "तस्यैव मारुतोगणः स एति शिक्याकृतः।" (अथर्व १३।४।८)

शिक्व (सं० त्रि०) कार्यनिपुण, कुशली, शिल्पकार्यमें पटु।

शिक्वन् (सं० पु०) १ रज्जु, रस्सी। (ऋक् १।१४१।८) २ तेज। (ऋक् २।३५।४)

शिक्वस् (सं० त्रि०) शक्त, समर्थ। (ऋक् ५।५२।१६)

शिक्ष (सं० पु०) गन्धर्वोंका एक नायक, रोहित।

शिक्षक (सं० पु०) शिक्ष-ण्वुल्। शिक्षादायक, सिखानेवाला, गुरु, उस्ताद।

शिक्षण (सं० क्ली०) शिक्ष-ल्युट्। शिक्षा पढ़ानेका काम, तालीम।

शिक्षणीय (सं० त्रि०) शिक्ष-अनीयर्। शिक्षार्ह, शिक्षाके उपयुक्त, सिखाने लायक।

शिक्षा (सं० स्त्री०) शिक्ष (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०३) इत्यः ततष्टाप्। १ किसी विद्याको सीखने या सिखानेकी क्रिया, पढ़ने पढ़ानेकी क्रिया, सीख, तालिम। २ छः वेदाङ्गोंमेंसे एक जिसमें वेदोंके वर्ण, स्वर, मात्रा आदिका निरूपण रहता है। शिक्षाके सम्बन्धमें कुछ ग्रन्थोंके नाम इसके पहले ही 'व्याकरण' शब्दमें लिखे जा चुके हैं। पदपाठ, क्रमपाठ, संहितापाठ, घनपाठ आदि विविध पाठ और उच्चारणादिके उपदेशलाभके लिये शिक्षा वेदाङ्ग आलोचित होता है। स्वर और उच्चारणादिका व्यतिक्रम होनेसे वैदिक मन्त्रादि पाठ निष्फल होता था, इससे प्रत्यवाय होता था, यहां तक, कि यज्ञादिमें विपरीत फल प्राप्त होता था। यथा—

"मन्त्रहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्त न तदर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यमेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात्॥"

इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि शिक्षापाठ वेदपाठका अङ्गस्वरूप समझा जाता था। इसी कारण वेदाङ्गका प्रथम अङ्ग शिक्षा है।

शौनकीय शिक्षा प्राचीन कालमें वेदवत् स्वीकृत होती थी। पाणिनिने लिखा है—

शौनकादिभ्यश्छन्दसि (४।३।१०६)

इसकी व्याख्यामें शब्देन्दुशेखरकारने लिखा है—

"छन्दसि किम् शौनकीया शिक्षा इति।"

प्रातिशाख्योंमें भी शिक्षाके विषय आलोचित हुए हैं। प्राचीन कालमें संहितापाठ ही शिक्षाका एक आलोच्य विषय था। इसके बाद क्रमपाठ प्रवर्त्तित हुआ। पदपाठमें पदच्छेद, समास और सन्धिच्छेद करके पठनका नियम आरम्भ हुआ। जहां इस तरह पदच्छेद नहीं करने पर भी वेदका अर्थ सहजमें वेदार्थ हृदयङ्गम होता है वह पदपाठका प्रवर्त्तन यास्क और पाणिनिके अनुमोदनीय नहीं। पाणिनिके भाष्यकार पतञ्जलिका भी ऐसा ही अभिप्राय है।

प्रातिशाख्यग्रन्थमें संहितापाठ और पदपाठ दोनों ही देखे जाते हैं। प्रातिशाख्य पाणिनिसे भी पहले रचा गया है। वर्त्तमान कालमें ऋग्वेदका, सामवेदका और अथर्ववेदका एक एक, यजुर्वेदकी वाजसनेय संहिताका एक तथा तैत्तिरीय संहिताका एक प्रातिशाख्य देखनेमें आता है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य तीन अध्यायमें विभक्त है। आश्वलायनके गुरु शौनक इस ग्रन्थके रचयिता हैं। वाजसनेय-प्रातिशाख्यमें आठ अध्याय हैं, कात्यायन इसके रचयिता हैं। अथर्ववेदके प्रातिशाख्यमें चार अध्याय हैं। इस प्रातिशाख्यमें शौनकीय शिक्षाका उपदेश है।

३ गुरुके निकट विद्याका अभ्यास, विद्याका ग्रहण। ४ दक्षता, निपुणता। ५ उपदेश, मन्त्र। ६ शासन, दबाव। ७ किसी अनुचित कार्यका बुरा परिणाम, सबक, दंड। ८ श्योनाक वृक्ष, सोनापाढ़ा।

शिक्षाकर (सं० पु०) करोतीति कृ-अच्, शिक्षायाः करः। १ व्यास देव। (त्रि०) २ शिक्षाकर्त्ता, सिखानेवाला।

शिक्षाक्षर (सं० क्ली०) शिक्षाप्राप्त अक्षरयुक्त वाक्य या मन्त्र आदि।

शिक्षाक्षेप (सं० पु०) काव्यमें एक प्रकारका अलंकार जिसमें शिक्षा द्वारा गमन स्वरुप कार्य्य रोका जाता।

शिक्षागुरु (सं० पु०) शिक्षायाः गुरुः। १ विद्यादाता है। गुरु, विद्या पढ़ानेवाला गुरु। २ मन्त्रादि उपदेशकर्त्ता, दीक्षागुरु।

शिक्षाग्राहक (सं० पु०) शिक्षा प्राप्त करनेवाला व्यक्ति, पढ़नेवाला; विद्यार्थी।

शिक्षाचार (सं० पु०) १ शिक्षा और आचार। २ अभ्यस्ताचार।

शिक्षादण्ड (सं० पु०) वह दण्ड जो किसी बालकको छुड़ानेके लिये दिया जाय।

शिक्षानर (सं० पु०) इन्द्र। (ऋक् १।६१।१३।२)

शिक्षापत्र (सं० क्ली०) वह पत्र या पुस्तक जिसके पढ़नेसे विद्यालाभ होता है।

शिक्षापद (सं० पु०) १ उपदेश। २ बौद्धोंके विनयपिटकका एक प्रकरण।

शिक्षापरिषद् (सं० स्त्री०) १ वैदिक कालकी शिक्षासंस्था या विद्यालय जो एक ऋषि या आचार्य्यके अधीन रहता था और उसीके नामसे प्रसिद्ध होता था। २ शिक्षा या पढ़ाईका प्रबन्ध करनेवाली सभा या समिति।

शिक्षार्थी (सं० पु०) शिक्षा प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाला व्यक्ति, विद्यार्थी।

शिक्षालय (सं० पु०) वह स्थान जहां शिक्षा दी जाय।

शिक्षावत् (सं० त्रि०) ज्ञानयुक्त, ज्ञानी।

शिक्षावल्ली (सं० स्त्री०) तैत्तिरीय उपनिषद्का पहला अध्याय।

शिक्षा विभाग (सं० पु०) वह सरकारी विभाग जिसके द्वारा शिक्षाका प्रबन्ध होता है, सरिश्ता तालीम।

शिक्षाव्रत (सं० पु०) जैनधर्मके अनुसार गार्हस्थ धर्मका एक प्रधान अंग जो चार प्रकारका होता है,—सामयिक, देशावकाशिक, पौष और अतिथि संविभाग।

शिक्षाशक्ति (सं० स्त्री०) ज्ञानप्राप्त करनेकी शक्ति, मेधा।

शिक्षास्वर (सं० पु०) शिक्षाक्षर।

शिक्षाहीन (सं० त्रि०) जिसे शिक्षा न मिली हो, अशिक्षित, बेवकूफ़, गंवार।

शिक्षित (सं० त्रि०) १ जिसने शिक्षा पाई हो, पढ़ा लिखा। २ विज्ञ।

शिक्षितव्य (सं० त्रि०) शिक्ष-तव्य। शिक्षणीय, शिक्षाके योग्य।

शिक्षिताक्षर (सं० पु०) शिक्षितानि अक्षराणि येन। १ वह जिसने शिक्षा पढ़ी हो, शिक्षाकारी छात्र। (त्रि०) २ शिक्षित।

शिक्षु (सं० त्रि०) अभिमत फलप्रदान करनेमें इच्छुक।

शिख—सिख देखो।

शिखक (सं० पु०) लेखक, मुहर्रिर।

(संक्षिप्तसार उणादि)

शिखण्ड (सं० पु०) १ मयूरपुच्छ, मोरकी पूंछ। २ शिखा, चोटी। ३ काकपक्ष, काकुल।

शिखण्डक (सं० पु०) शिखण्ड एव कन्। १ काकपक्ष, काकुल। क्षत्रिय कुमारोंके चूड़ाकरणमें तीन भाग करके जो केश वपन किया जाता है, उसीका नाम शिखण्डक है। कोई कोई कहते हैं, कि शिखापञ्चक है, फिर किसीके मतसे चूड़ा काकपक्षकी आकृति वशतः काकपक्ष, मस्तक पर खण्डित होता है, इसलिये शिखण्डक है।

'द्वे क्षत्रियकुमाराणां शिक्षात्रये उक्तञ्च बालानाञ्च शिरः कार्य्यं त्रिशिखं मुक्तमेव च। शिखापञ्चके इत्यन्ये। सामान्येन चूड़ायामित्यन्ये। काकपक्षाकारत्वात् काकपक्षः। शिरसि खण्ड्यते शिखण्डकः, शिखण्डक शिखण्डिकाविति वाचस्पतिः।' (भरत) २ मयूरपुच्छ, मोरकी पूंछ।

शिखण्डिक (सं० पु०) शिखण्डीक कायति शब्दायते इति कै-क, शिखण्डोऽस्यास्तीति शिखण्ड-कन्। १ कुक्कुट, मुर्गा। २ एक प्रकारका मानिक।

शिखण्डिका (सं० स्त्री०) शिखा, चोटी।

शिखण्डिन् (सं० पु०) शिखण्डश्चूड़ाऽस्त्यस्या इति इनि। १ मयूर, मोर। (मेदिनी) २ कुक्कुट, मुर्गा। ३ वाण, तीर। (हेम) ४ गुञ्जा, घुंघची। ५ स्वर्णयूथिका, पीली जूही। ६ विष्णु। (विष्णुसहस्रनाम) ७ शिव। (भारत १३।१७।२१)

८ मयूरपुच्छ, मोरकी पूंछ। ६ द्रुपदराजाका पुत्र। महाभारतमें इनका वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है—काशिराजकी लड़की अम्बाने भीष्मको वरा; किन्तु भीष्मने अपनी पहली प्रतिज्ञाके अनुसार विवाह करनेसे इनकार किया। अम्बा इससे रंज हुई एवं उन्हें मार डालनेके लिये महादेवकी तपस्या करने लगी। रुद्रने उसकी तपस्यासे खुश हो उसे वरदान दिया, कि तुम्हारे द्वारा ही भीष्मका नाश होगा। अम्बाने ऐसा वर पा कर उनसे कहा—"भगवन्! मैं स्त्री हूं। किस तरह मैं विश्वविजयी भीष्मको वध कर सकूंगी?" इस पर महादेवने कहा—"भद्रे! मेरी बात कदापि झूठी नहीं हो सकती! तुम संग्राममें भीष्मका नाश करोगी और वहीं पुरुषत्व भी पाओगी तथा मरनेके बाद भी तुम्हें पहली बात याद रहेगी। तुम द्रुपदवंशमें जन्म ले कर कालक्रमसे क्षिप्रास्त्र और क्षिप्रदेषी पुरुष होगी।" इसके बाद अम्बाने अग्निप्रवेश कर शरीरका त्याग किया। पीछे वह द्रुपदका पुत्र हो कर भीष्मके वधका कारण बना।

दुर्योधनने भीष्मसे पूछा—"शिखण्डीने पहले कन्यारूपमें जन्म ले कर किस प्रकार पुरुषत्वको प्राप्त किया? आप इसका वृत्तान्त कह हम लोगोंका संशय दूर करें।" इस पर भीष्मने कहा—"राजा द्रुपदके कोई पुत्र न था। उन्होंने हम लोगोंको मारने तथा पुत्रप्राप्तिके लिये महादेवकी कठोर तपस्या की। महादेवके प्रसन्न होने पर उन्होंने भीष्मको वध करनेमें समर्थ एक पुत्रके लिये प्रार्थना की। रुद्रने उन्हें वर दिया, "तुम्हें पहले एक कन्या उत्पन्न होगी। पीछे वह कन्या पुरुषत्व प्राप्त करेगी। तुम तपस्या छोड़ घर जाओ। मेरी बात मिथ्या नहीं होगी।"

तब राजा द्रुपद तपस्या छोड़ अपने राजभवनको लौट गये। कुछ समय बाद उनके एक कन्या पैदा हुई। द्रुपदकी स्त्रीने घोषित कर दिया, कि उसे पुत्र ही हुआ है। राजा द्रुपदने भी महादेवके वाक्यानुसार पुत्रकी तरह ही उस प्रच्छन्न कन्याका समुदय जातकर्मानुष्ठान किया। राजा द्रुपद तथा उनकी स्त्रीके सिवा और कोई भी यह गुप्त रहस्य नहीं जानता था। राजाने उस कन्याका नाम शिखण्डी रखा।

इस कन्याने द्रोणाचार्यके निकट यथाविधि अस्त्रशस्त्रकी शिक्षा ग्रहण की। कन्याके क्रमसे युवती होने पर राजा रानी दोनोंको बड़ी चिन्ता लगी। किन्तु दैववाक्य कभी मिथ्या होनेको नहीं, इसी पर भरोसा कर उन्होंने उसका विवाह दशार्णदेशके राजा हिरण्यवर्माकी कन्याके साथ कर दिया। कालक्रमसे दशार्णदेशाधिपतिकी कन्या युवावस्थाको प्राप्त हुई। उस समय उसने शिखण्डीको प्रकृत स्त्री समझ कर धात्री तथा सखियोंसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सखियोंने यह बात राजा हिरण्यवर्मासे एकान्तमें कहा। दशार्णपति दासियोंके मुखसे यह बात सुन कर बहुत क्रोधित हुए। किन्तु उस समय तब भी अपना स्त्रीत्व छिपा कर पुरुषोंकी तरह कपड़ा पहनते थे।

इधर राजा हिरण्यवर्माने अत्यन्त क्रोधित हो कर राजा द्रुपदके पास एक दूत भेजा। उस दूतने एकान्तमें राजा द्रुपदसे कहा—'आपने दशार्णपतिका बड़ा अपमान किया है, अतएव थोड़े ही दिनके अन्दर आपको इसका प्रतिफल मिलेगा। राजा दूतकी बात सुन कर डर गये एवं अत्यन्त नम्रतापूर्वक दूतसे कहा—दशार्णपतिने जो कहा है, वह सरासर झूठ है। वे इस विषयकी अच्छी तरह जाँच पड़ताल करें।

राजाने दूतकी बात सुन कर प्रकृत विषयका अच्छी तरह अनुसन्धान किया। पर फिर भी राजाको मालूम हुआ, कि शिखण्डी कन्या है। तब वे और भी क्रोधित हो कर द्रुपद राजाके साथ युद्ध करने पर तुल पड़े। उन्होंने अपने दूतोंको बुला कर कहा—"तुम लोग शीघ्र द्रुपदराजासे जा कर कहो, कि दशार्णपति आपके साथ युद्ध कर शीघ्र ही आपको उचित शिक्षा देंगे। इसी कारण उन्होंने पहले हम लोगोंको आपके पास भेजा है।"

द्रुपद स्वभावसे ही डरपोक थे। इस समय इस पापाचरणके कारण और भी डर गये तथा उद्विग्न हो उठे। 'मैं अपने ही माता, पिता तथा राज्यका नाश करनेके लिये पैदा हुई हूं' ऐसा सोच शिखण्डीने आत्महत्या करनेकी ठान ली। पीछे वह चुपचाप घर छोड़ अकेली एक सघन जङ्गलमें पहुंची। स्थूणाकर्ण नामक एक यक्ष उस जङ्गलकी रक्षा करता था। उसके भयसे कोई

उस वनमें प्रवेश नहीं करता था। द्रुपदनन्दिनी शिखंडिनी वहां अन्न पानी छोड़ शरीर सुखाने लगी।

एक दिन उस यक्षने शिखण्डीके सामने आ कर मीठे वचनोंमें कहा—"राजनन्दिनी! तुम किसलिये इस तरहका अनुष्ठान कर रही हो? शीघ्र कहो, मैं तुम्हारी वासना पूरी करूंगा।" इस पर शिखण्डीने कहा—"तुम मेरा मनोरथ सिद्ध नहीं कर सकते।" इस पर यक्ष बोला "मैं कुबेरका अनुचर हूं। तुम मेरे पास अपनी इच्छा प्रकट करो। मैं न देने योग्य वस्तु तुम्हें दूंगा, इसमें कुछ सन्देह न करो।"

तब शिखण्डीने यक्षोंके प्रधान स्थूणाकर्णसे अपनी आत्मकहानी कह कर कहा—"दशार्णपति इस अपमानके लिये मेरे पितासे युद्ध करनेकी यात्रा कर चुके हैं। मेरे पिता पुत्रहीन हैं। शीघ्र ही उनके विनष्ट होनेकी संभावना है। आप मेरी तथा मेरे मातापिताको रक्षा करें। आपने प्रतिज्ञा की है, कि आप मेरा दुःख दूर करेंगे। अतएव मुझे ऐसा वरदान देवें, जिसमें मैं पुरुषत्व प्राप्त करूं।"

शिखण्डीकी बात सुन कर यक्षने मन ही मन चिन्ता कर कहा—"भद्रे! मुझे दुःख भोगनेके लिये अवश्य ही स्त्रीविग्रह धारण करना होगा। अतएव मैं इस अवसर पर तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध करूंगा। किन्तु मेरे साथ एक समय निर्देश करलेना होगा। मैं कुछ समयके लिये तुम्हें अपना पुरुषत्व प्रदान करूंगा। किन्तु तुम्हें कालक्रमसे फिर यहां आ कर मेरा पुरुषत्व लौटा देना पड़ेगा। पहले इसकी प्रतिज्ञा करो। मैं कामचारी तथा गगनविहारी हूं। तुम मेरे अनुग्रहसे अपने नगर और मित्रोंकी रक्षा करो। तुम्हारे प्रतिज्ञा कर लेने पर मैं तुम्हारा स्त्रीरूप धारण तथा प्रियानुष्ठान करूंगा।"

इस पर शिखंडीने कहा—"मैं प्रतिज्ञा करती हूं, कि कुछ समयके बाद मैं फिर आपका पुरुषत्व लौटा दूंगी। कुछ दिनोंके लिये आप स्त्रीरूप धारण करें।" उन दोनोंने परस्पर इस प्रकार प्रतिज्ञा कर लिङ्ग परिवर्त्तन कर लिया। देखते देखते स्थूणाकर्ण स्त्री और शिखण्डी पुरुष बन गये।

इसके बाद शिखण्डी बड़े अह्लादित हो घर लौटे और उन्होंने अपने पिता द्रुपदसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय उन्होंने प्रसन्न हो कर सुवर्णवर्म्माके पास यह संवाद भेजा, कि मैं आपसे सत्य कहता हूं, कि मेरा पुत्र पुरुष है। मैंने आपका अपमान नहीं किया है। आपको किसीने भुलावा दे दिया है। आप खूब अच्छी तरह परीक्षा करके सत्य बातका पता लगावें।

उस समय दशार्णपतिने फिर कुछ सोच विचार कर बहुत-सी सर्वांगसुन्दरी रमणियोंको शिखण्डी स्त्री है या पुरुष, इसका पता लगानेके लिये भेजा। उन रमणियोंने पता लगा कर कहा—"महाराज! शिखण्डी पुरुष है, इस विषयमें और किसी प्रकारका सन्देह नहीं।" राजा यह बात सुन कर बहुत खुश हुए एवं द्रुपदके पास जा कर हृष्टचित्तसे रहने लगे।

इस तरह कुछ दिन व्यतीत हो जानेके बाद एक दिन कुवेर स्थूणाकर्णके घर आये। यहां आ कर जब उन्हें सारी बातें मालूम हुईं, तब उन्होंने क्रोधित हो कर स्थूणाकर्णको शाप दिया, "तुमने यक्षोंका अपमान कर तथा पापाचरणमें प्रवृत्त हो कर शिखंडीको अपना पुरुषत्व दिया है एवं उसका स्त्रीत्व आप ग्रहण किया है; इसलिये तुम्हें शाप देता हूं—तुम्हारा यह स्त्रीत्व अब सर्वदा अटल रहेगा। तुमने ऐसा विरुद्धाचरण किया है, इसलिये तुम स्त्री और शिखंडी पुरुष रहेगा।"

इसके बाद यक्षगण स्थूणाकर्णके लिये कुबेरकी स्तुति करने लगे। तब कुबेरने प्रसन्न हो कर कहा—"शिखंडीके मरनेके बाद स्थूणाकर्ण फिर पुरुष हो जायगा।" ऐसा वरदान दे कर कुबेर अपने स्थानको चल दिये। स्थूणाकर्ण अभिशप्त हो कर वहां उसी रूपमें वास करने लगा।

अनन्तर जब शिखंडीने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार स्थूणाकर्णके पास जा कर अपना पुरुषत्व लौटा लेनेको कहा, तब उस यक्षने बहुत खुश हो कर उसे कुबेरके अभिशापकी सारी कहानी कह सुनाई और फिर कहा—"मैं तुम्हारे लिये ही कुबेर द्वारा अभिशप्त हुआ हूं। तुम जाओ और आजन्म पुरुषरूपमें विहार करो।" शिखंडी यक्षकी बात सुन कर खुशी खुशी घर लौट आये। द्रुपद-

राज भी अपने इष्ट मित्रोंके साथ अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।
(उद्योगपर्व अम्बोपाख्यान पर्वाध्याय)

महाभारत-युद्धके समय अर्जुन शिखंडीको आगे कर भीष्मके साथ युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए। भीष्मने शिखंडीका स्त्रीरूप स्मरण कर अस्त्र त्याग दिया। उस समय शिखंडी और अर्जुन दोनोंने मिल कर भीष्मका वध किया। भीष्म शब्द देखो।

१० कृष्ण। ११ शिखा, बालोंकी चोटी। १२ रामके दलका एक बन्दर। १३ वृहस्पति।

शिखण्डिनी (सं० स्त्री०) शिखण्डश्चूड़ा अस्त्यस्या इति इनि-ङीप्। १ यूथिका, जूही। २ गुञ्जा, करजनी। ३ मयूरी, मोरनी। ४ मुर्गी। ५ विजिताश्वराजकी पत्नी। (भागवत ४।२४।३) ५ शिखण्डविशिष्टा। ६ द्रुपदराजकी कन्या। इस कन्याने पीछे यक्षके वरसे पुरुषत्वलाभ किया। शिखण्डिन् देखो।

शिखण्डिमत् (सं० त्रि०) चूड़ाविशिष्ट।

शिखण्डी (सं० स्त्री०) शिखण्डिन् देखो।

शिखयुद्ध—सिखयुद्ध देखो।

शिखर (सं० क्ली०) शिखास्यास्तीति (वुन्छनकठजिति। पा ४।२।८०) अश्मादित्वात् र ह्रस्वश्च। १ पर्वत शृङ्ग, पहाड़की चोटी। २ सबसे ऊपरका भाग, सिरा, चोटी। ३ अग्रभाग। ४ मन्दिर या मकानके ऊपरका निकला हुआ नुकीला सिरा, कंगूरा, कलश। ५ मण्डप, गुंबद। (पु०) ६ पुलक, रोमाञ्च। ७ एक रत्न जो अनारके दानेके समान सफेद और लाल होता है। ८ कक्ष, कांख, बगल। ९ लवङ्ग, लौंग। १० एक अस्त्रका नाम। ११ उंगलियोंकी एक मुद्रा जो तान्त्रिक पूजनमें बनाई जाती है। १२ कुन्दकी कली। १३ जैनियोंका एक तीर्थ।

शिखरदशना (सं० त्रि० स्त्री०) जिसके दांत कुन्दकी कलीके समान हों।

शिखरन (हिं० पु०) दही और चीनीका बनाया हुआ एक प्रकारका मीठा पेय पदार्थ या शरवत। इसमें केसर, कपूर तथा मेवे आदि डाले जाते हैं।

शिखरवासिनी (सं० स्त्री०) शिखरे वसतीति वस णिनिङीप्। शिखर पर बसनेवाली, दुर्गा।

शिखरा (सं० स्त्री०) शिखर-टाप्। १ मूर्व्वा, मुर्रा, मरोड़फली। २ एक गदा जो विश्वामित्रने रामचन्द्रको दी थी।

शिखराद्रि (सं० पु०) एक पर्वत। इस पर्वतके तीन शिखर हैं। (मार्क० पु० ५५।६)

शिखरिवरण (सं० पु०) अपमार्ग मूल, चिचड़ेकी जड़।

शिखरिणी (सं० स्त्री०) शिखरिन् स्त्रियां ङीष्। १ रसाला, दहीका पानी। २ नारी-रत्न, स्त्रियोंमें श्रेष्ठ। ३ नवमल्लिका, बेला। ४ रोमावली। ५ नेवारीका पौधा। ६ लघुद्राक्षा, किशमिश। ७ मूर्वा, मरोड़फली। ८ सत्रह अक्षरोंकी एक वर्णवृत्ति। इसमें छठे और ग्यारहवें वर्ण पर यति होती है। ९ तन्नामक संधानविशेष, एक प्रकारका पानक। राजनिर्घण्टमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है—दही ३२ पल, खण्ड ८ पल, मरीच चूर्ण, त्वक् और इलायची चूर्ण ८ पल, मधु और घृत प्रत्येक ४ पल, इन सब द्रव्योंको एकत्र कर एक नये बरतनमें रखे। पीछे हिम वासित करनेसे उसको शिखरिणी कहते हैं। इसकी मज्जिकादि प्रभृति अनेक प्रकार भेद हैं। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे पहले जलविहीन अम्लरसयुक्त भैंसका दही १६ सेर, परिष्कृत चीनी ८ सेर, इन्हें एक साथ मिला कर एक परिष्कार अथच पवित्र वस्त्रखण्डमें धीरे धीरे डाल दे। अनन्तर उसमें ३२ सेर दूध मिला कर नीचे रखे हुए मिट्टीके बरतनमें छान रखे। पीछे उसमें इलायची, लवङ्ग, कपूर और मिर्च छोड़ दे। इसी प्रणालीसे वह प्रस्तुत करनी होती है। इसे रसाला भी कहते हैं। गुण—शुक्रवर्द्धक, बलकारक, रुचिजनक, वायु और पित्तनाशक, अग्निप्रदीपक, शरीरका उपचयकारक, स्निग्ध, मधुर रस, शीतल, सारक तथा रक्तपित्त, पिपासा, दाह और प्रतिश्यायविनाशक। केवल वसन्तऋतुमें इसका सेवन निषिद्ध है। जो प्रति दिन इसका सेवन करते हैं, उनके वीर्य्यकी अत्यन्त वृद्धि तथा इन्द्रियां सबल होती हैं। अत्यन्त परिश्रान्त हो कर इसका सेवन करनेसे उसी समय क्लान्ति दूर होती और शरीर बलवान् होता है। (भावप्र०)

शिखरिन् (सं० पु०) शिखरोऽस्यास्तीति शिखर इनि।

१ पर्वत, पहाड़। २ पहाड़ी दुर्ग। ३ वृक्ष, पेड़। ४ अपामार्ग, चिचड़ा। ५ कोष्ट। ६ कोयष्टि। ७ वन्दाक, बांदा। ८ कर्कटश्रृङ्गी, काकड़ासिङ्गी। ९ कुन्दुरु नामक गन्धद्रव्य। १० एक प्रकारका मृग। इसका मांस लघु, वृष्य और फलप्रद होता है। ११ ज्वार, मक्का। १२ लोबान, गोंद। (स्त्री०) १३ एक गदा जो विश्वामित्रने रामचन्द्रको दी थी, शिखारा।

शिखलोहित (सं० पु०) वृक्षविशेष, कुकुरमुत्ता।

शिखा (सं० स्त्री०) शी (शीङ्गो ह्रस्वश्च। उण् ५।२४) इति ख ह्रस्वो गुणाभावश्च, स्त्रियां टाप्। १ अग्नि-ज्वाला, आगकी लपट। पर्याय—ज्वाल, कील, अर्चिः, हेति। (अमर)

होमकालमें अग्निकी शिखा कैसी होनेसे शुभ या अशुभ होता है, तिथितत्वमें उसका विधान इस प्रकार लिखा है—

जहां होमाग्नि अर्चियुक्त और पिण्डित शिखाविशिष्ट, आहुतिदत्त घृतादि कांचनवर्ण तुल्य, स्निग्ध प्रदक्षिणयुक्त होती है, वहां होमकारीका कार्य सिद्ध होता है।

जहां अग्निशिखा अल्प, रुक्ष, स्फुलिङ्गयुक्त, वामावर्त्त आर्द्र काष्ठ द्वारा सम्पन्न, फुत्कारयुक्त, कृष्णवर्ण और दुर्गन्ध होती तथा मिट्टीकी ओर जाती है, वहां अशुभ लक्षण जानना चाहिये। होमकालमें अग्नि-शिखा उक्त लक्षणाक्रांत होनेसे कर्त्ताका नाश होता है।

२ मुण्डनके समय शिरके बीचो बीच छोड़ा हुआ बालोंका गुच्छा जो फिर कटाया नहीं जाता, चोटी।

शास्त्रमें लिखा है, कि चारों वर्णों को (हिन्दूमात्रको) शिखा धारण करना चाहिये। पूजा जप आदि करनेके समय शिखाबंधन करना होता है, मुक्त शिखा हो कर कोई कार्य नहीं करना चाहिये। शिखाबन्धनकालमें मन्त्र पाठ करके शिखा बांधनी होती है। ब्राह्मणादि तीन वर्ण गायत्री पाठ करके शिखा बन्धन करें। शिखा बन्धन किये विना आचमन करनेसे शुद्धिलाभ नहीं होता। अतएव शिखा बन्धन करके ही आचमन करे। आचमनके बाद धर्मकार्य करना चाहिये।

शूद्र भी शिखाबन्धन और मोचनकालमें निम्नोक्त मन्त्र पाठ करें। वे भी शिखा बाँधे विना कोई कार्य नहीं कर सकते हैं। शूद्रोंका शिखाबन्धनमन्त्र—

"ब्रह्मवाणीसहस्राणि शिववाणीशतानि च।
विष्णोर्नामसहस्रेण शिखाबन्धं करोम्यहं॥"

शिखामोचन मन्त्र—

"गच्छन्तु सकला देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
तिष्ठत्वचला लक्ष्मीः शिखामुक्तं करोम्यहम्॥"

(आह्निकतत्त्व)

भारतीय आर्य-समाजमें बहुत पहले होसे शिखा धारणकी प्रथा चली आती है। शतपथब्राह्मण (१।३।३।५), गोभिल-गृह्यसूत्र (३।४।१६) आदि अति प्राचीन ग्रन्थोंमें शिखा धारणकी कथा है। निष्ठावान् हिन्दुओंका विश्वास है, कि जिस हिन्दूके शिखा नहीं है, उसके हाथका जल शुद्ध नहीं होता। (हरिवंश)

३ शाखा, डाली। ४ मोर, मुर्गे आदि पक्षियोंके सिर पर उठी हुई चोटी या पंखोंका गुच्छा, चोटी, कलगी। ५ दीपककी लौ, टेम। ६ प्रकाशकी किरन। ७ नुकीला छोर या सिरा, नोक। ८ ऊपरको उठा हुआ भाग, चोटी। ९ वस्त्रका अञ्चल, दामन। १० पैरके पंजेका सिरा। ११ स्तनका अग्रभाग, चूचुक। १२ पेड़की जड़। १३ अधिपति, नायक। १४ श्रेष्ठ पुरुष। १५ कलियारी, विषलांगली। १६ मूर्वा, मरोड़फली। १७ जटामांसी, बालछड़। १८ वच। १९ शिफा। २० तुलसी। २१ कामज्वर। २२ एक वर्णवृत्त। इसके विषम पादोंमें २८ लघु मात्राएं और अन्तमें एक गुरु होता है और सम पादोंमें ३० लघु मात्राएं और अन्तमें एक गुरु होता है।

शिखाकन्द (सं० क्ली०) शिखायुक्तः कन्दो यस्य। गृञ्जन, शलजम, शलगम।

शिखाचल (सं० पु०) मयूर, मोर।

शिखाजट (सं० त्रि०) शिखायां जटा यस्य। जिसकी शिखामें जटा फूटी हो, जटायुक्त शिखाविशिष्ट।

(मनु ११२१६)

शिखाण्डक (सं० पु०) काकपक्ष।

शिखातरु (सं० पु०) शिखायाः दीपशिखायास्तरुरिव। दीपवृक्ष, दीवट, दीयट।

शिखादामन् (सं० क्ली०) शिरोमाल्य, मस्तककी माला।

शिखाधर (सं० पु०) शिखाया धरः। १ मयूर, मोर। २ मञ्जुघोष। ३ शिखाधारी।

शिखाधार (सं० पु०) शिखां धरतीति धृ-अण्। मयूर, मोर।

शिखापति (सं० ०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। (संस्कारकौ०)

शिखापाश (सं० पु०) चोटी, चूंदी।

शिखापित्त (सं० पु०) एक प्रकारका रोग। इसमें हाथ और पैरकी उंगलियोंमें सूजन और जलन होती है।

शिखाबन्ध (सं० पु०) शिखाया बन्धः। शिखाबन्धन, शिरके बालोंको मिला कर बांधनेकी क्रिया, चोटी बांधना। शिखा शब्द देखो।

शिखाबन्धन (सं० पु०) शिखाबन्ध देखो।

शिखाभरण (सं० क्ली०) अलङ्कारविशेष, शिरका आभूषण, मुकुट। (विक्रमोर्व्वशी)

शिखामणि (सं० पु०) १ वह रत्न जो शिर पर पहना जाय। (रघुवंश ६।३३) २ श्रेष्ठ व्यक्ति।

शिखामूल (सं० क्ली०) शिखायुक्तं मूलं यस्य। वह कन्द जिसके ऊपर पत्तियोंका गुच्छा हो।

शिखाल (सं० पु०) शिखा अस्त्यर्थे लच्। मयूर, मोर।

शिखालु (सं० पु०) मयूरशिखा।

शिखावत् (सं० पु०) शिखा विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। १ अग्नि, आग। २ चित्रक वृक्ष, चीताका पेड़। ३ केतुग्रह। ४ मयूर, मोर। (त्रि०) ५ शिखायुक्त, शिखावाला।

शिखावती (सं० स्त्री०) १ मूर्वा, मरोड़फली। २ शिखाविशिष्टा।

शिखावर (सं० पु०) शिखा विद्यतेऽस्य-शिखा (दन्तशिखात् संज्ञायां। पा ५।२।११३) इति वलच्, वस्य लत्वं। पनस वृक्ष, कटहलका पेड़।

शिखावर्त्त (सं० पु०) एक प्रकारका यज्ञ।

शिखावल (सं० पु०) शिखा अस्त्यर्थे वलच्। १ मयूर, मोर।

"शिखावलनगरं, शिखावला स्थूणा"

(पा ५।२।११३ काशिका)

२ पनस, कटहल।

शिखावला (सं० स्त्री०) शिखा-वलच्-टाप्। मयूरशिखा।

शिखावली (सं० स्त्री०) अग्निशिखासमूह, शिखासमूह।

शिखावान् (सं० त्रि०) शिखावत् देखो।

शिखावृक्ष (सं० पु०) शिखाया वृक्ष इव। दीपवृक्ष, दीयट।

शिखावृद्धि (सं० स्त्री०) शिखेव वृद्धि यस्याः। कायिकावृद्धि, वह व्याज जो प्रति दिन बढ़ता जाय, सूद दर सूद।

शिखि (सं० पु०) १ मयूर, मोर। २ कामदेव। ३ नाम मन्वन्तरके इन्द्रका नाम। ४ अग्नि। ५ तीनकी संख्या।

शिखिकण्ठ (सं० क्ली०) शिखिनो मयूरस्य कण्ठ इव आकृति यस्य। १ तुत्थ, तूतिया। (त्रि०) २ मोरके कंठके समान।

शिखिकुन्द (सं० पु०) कुन्दुरु, विरोजा।

शिखिग्रीव (सं० क्ली०) शिखिनः ग्रीवेव आकृतिर्यस्य। १ तुत्थ, तूतिया। २ कान्त पाषाण, एक प्रकारका नीला पत्थर।

शिखिता (सं० स्त्री०) शिखिनो भावः तल् टाप्। शिखिका भाव या धर्म।

शिखितीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

शिखिदिश् (सं० स्त्री०) अग्निकोण।

शिखिध्वज (सं० पु०) शिखिनो वह्नेर्ध्वज इव। १ धूम, धूआँ। शिखी मयूरो ध्वजो यस्य। २ कार्त्तिकेय। ३ वह जिस पर अग्नि या मोरका चिह्न बना हो। ४ मयूरध्वज नामक राजा। ५ एक प्राचीन तीर्थका नाम।

शिखिन् (सं० पु०) शिखाऽस्यास्तीति शिखा (व्रीह्यादिभ्यश्च। पा ५।२।११६) १ मयूर, मोर। २ अग्नि। ३ चित्रक वृक्ष, चीतेका पेड़। ४ बलीवर्द, साँड़। ५ शर, बाण, तीर। ६ केतुग्रह। ७ द्रुम, वृक्ष। ८ कुक्कुट, मुर्गा। ९ घोटक, घोड़ा। १० अजलोमा। ११ सितावर। १२ मेथिका, मेथी। १३ पर्वत, पहाड़। १४ ब्राह्मण। १५ दीप। १६ एक प्रकारका विष। (पर्यायमुक्ता०) १७ सुनिषन्नशाक, सुसना साग। १८ शूकशिम्बी, केवांच। १९ बकपक्षी, बगला। २० पित्त। २१ एक

नागका नाम। २२ इन्द्र। २३ जटाधारी साधु। (त्रि०) २४ शिखायुक्त, चोटीवाला।

शिखिनी (सं० स्त्री०) शिखिन् स्त्रियां ङीप्। १ मयूरशिखा। २ मयूरी, मोरनी। ३ मुर्गी। ४ मुर्गकेश,-जटाधारीका पौधा।

शिखिपुच्छ (सं० क्ली०) शिखिनः पुच्छं। मयूरपिच्छ, मयूरबर्ह।

शिखिपुच्छभूति (सं० स्त्री०) शिखिपुच्छरूप भूतिः। पुच्छभस्म।

शिखिप्रिय (सं० पु०) शिखिनः प्रियः। लघुबदर, जंगली बेर।

शिखिमण्डल (सं० पु०) वरुणवृक्ष, तपिया।

शिखिमोदा (सं० स्त्री०) शिखिनं मोदयतीति मुद-णिच्-अच्-टाप्। अजमोदा।

शिखियूप (सं० पु०) श्रीकारी नामका मृग।

शिखिवर्द्धक (सं० पु०) शिखिनं जठराग्निं वर्द्धयतीति-वृध-ण्वुल्। गोलकद्दू, गोल घीया। यह कोष्ठाग्नि वर्द्धन कर होता है।

शिखिवासस् (सं० पु०) पर्वतभेद। (विष्णुपु० २।२।२७)

शिखिवाहन (सं० पु०) शिखी वाहनं यस्य। मयूरवाहन, कार्त्तिक।

शिखिव्रत (सं० क्ली०) शिखिनो व्रतं। व्रतविशेष। प्रतिपद् तिथिमें एक वार भोजन कर यथाविधान यह व्रत करना होता है। यह समाप्त होने पर कपिला धेनु दान करना चाहिये। जो यह व्रत करते हैं, वे वैश्वानरलोकको जाते हैं। (गरुड़पु० १२६ अ०)

शिखिशृङ्ग (सं० पु०) चित्र मृग, चित्तीवाला हिरन।

शिखिहिण्टी (सं० स्त्री०) महाबला, सहदेई।

शिखीन्द्र (सं० पु०) १ तिन्दूक, तेंदूका पेड़। २ आबनूसका पेड़।

शिखीश्रम्रु (सं० स्त्री०) सितावरी क्षुप, बकची। कहते हैं, कि यह साग खानेसे बड़ी नींद आती है।

शिखोपनिषत् (सं० क्ली०) उपनिषद्भेद।

शिगाफ (फा० पु०) १ नश्तर, चीरा। २ दर्ज, दरार। ३ छेद, सूराख। ४ कलमके बीचका चिराव।

शिगूड़ी (हिं० स्त्री०) एक जंगली क्षुप या पौधा जो दवाके काममें आता है। यह चरपरी, गरम तथा वात और पृष्ठशूलका नाश करनेवाली तथा दूसरी ओषधियोंके योगसे रसायन और शरीरको दृढ़ करनेवाली कही गई है।

शिगूफा (फा० पु०) १ बिना खिला हुआ फूल, कली। २ पुष्प, फूल। ३ किसी अनोखी बातका होना, चुटकुला।

शिग्रु (सं० पु०) शेते खल्वेऽपि वायौशी (जन्वादयश्च। उणा० ४।१०२) इति-रुः, ह्रस्वो गुगागमश्च। १ शाक, साग। २ वृक्षविशेष, सहिंजनका पेड़। (Moringa pterygosperma, syn, Horse radish tree) तामिल—मोरुंगा, तैलंग—सुतुगचेट्ट, मुनग। संस्कृत पर्याय—हरितशाक, शाकपत्र, सुपत्रक, उग्रदंश, क्षमादंश, कोमलपत्रक, बहुमूल, देशमूल, तीक्ष्णमूल। गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, तीक्ष्ण, वात, कफ, मुखजाड्य और व्रणदोषनाशक, दीपन, पथ्य और पाचन। यह नील—सफेद और लाल तीन प्रकारका होता है। नीला शिग्रु तीक्ष्ण, कटु, स्वादु, उष्ण, पिच्छिल, जन्तु, वात और शूलनाशक चक्षुका हितकर और रुचिकारक।

सफेद शिग्रु—कटु, तीक्ष्ण, शोफ और वायुदोषनाशक, अंगव्यथाहर, रुचिकर, दीपन और मुखका जड़तानाशक।

लाल शिग्रु—रसायन, शोफ, आध्मान, वायुरोग और पित्तश्लेष्म-रोगनाशक। (राजनि०)

सहिंजनका पत्ता, फूल और फल तीनों खाया जाता है। यह बड़ा मुखरोचक होता है। इसके फूलका गुण—कटु रस, तीक्ष्ण, उष्ण, वीर्य, स्नायु, शोथजनक तथा कृमि, कफ, वायु, विद्रधि, प्लीहा और गुल्मरोगनाशक। लाल सहिंजनका फूल—चक्षुका हितकर और रक्तपित्तप्रसादक।

इसके फलका गुण—मधुर, कषाय रस, अग्निप्रदीपक तथा कफ, पित्त, शूल, कुष्ठ, क्षय, श्वास और गुल्मनाशक। (भावप्र०) वानप्रस्थाश्रमी और विधवाको यह खाना मना है। (मनु ६।१४)

शिग्रुक (सं० पु०) शिग्रु-स्वार्थे कन्। शिग्रु, सहिंजन। (मनु ६।१४)

शिग्रुज (सं० क्ली०) शिग्रोर्जायते इति जन-ड। १ शोभाञ्जन

बीज, सहिंजनका बीया। (त्रि०) २ शिग्रुभव, सहिंजनसे उत्पन्न।

शिग्रुतैल (सं० क्ली०) शिग्रोस्तैलं। शिग्रुबीजभव तैल, सहिंजनके बीयेका तेल। यह कटु, उष्ण, कफ, और वातनाशक, त्वग्दोष, व्रण, कण्डुति और शोफनाशक तथा पिच्छल होता है। (राजनि०)

शिग्रुबीज (सं० क्ली०) शिग्रोर्बीजं। शोभाञ्जन या सहिंजनका बीज।

शिङ्गय—संस्कारपद्धतिके प्रणेता। ये मञ्जनाचार्यके पुत्र थे।

शिङ्गधरणीश—नाटकपरिभाषा, रसार्णवसुधाकर और शिङ्गभूपालीय नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये शिङ्गधरणी सेन और शिङ्गराज नामसे परिचित थे।

शिङ्गण (सं० क्ली०) शिङ्घाण देखो।

शिङ्गणदेव—एक हिन्दू राजा। सङ्गीतरत्नाकरके प्रणेता शार्ङ्गदेव इनकी सभामें विद्यमान थे।

शिङ्घाण (सं० क्ली०) शिङ्घ-आणक, पृषोदरादित्वात् कलोपः (उण् ३।८३) १ काचपात्र, काँचका बरतन। २ लौहमल, मंडूर। ३ नासिका मल, नाकके अन्दरका चेप जिससे भिल्ली तर रहती है। ४ दाढ़ी। ५ फूला हुआ अंडकोश।

शिङ्घाणक (सं० पु० क्ली०) शिङ्घते इति शिघ (आणको लघू शिङ्घिधाञ्भ्यः। उण् ३।८३) इति आणक। १ श्लेष्मा, नाकके अन्दरका चेप। २ कफ, बलगम।

शिङ्घाणिका (सं० स्त्री०) १ काचपात्र, काँचका बरतन। २ लौहमल, मण्डूर। ३ नासामल, नाकके अन्दरका चेप।

शिङ्घिणी (सं० स्त्री०) नासाछिद्र, नाक।

शिङ्घित (सं० त्रि०) शिङ्घ-क्त। आघ्रात, सूंघा हुआ।

शिच् (सं० स्त्री०) १ कूपकी रस्सी। २ बहंगीका छीका या जाल जिस पर बोझ रखा जाता है।

शिञ्जिका (सं० स्त्री०) करधनी।

शिञ्जन (सं० पु०) धातुखण्डका परस्पर बजना, झंकार करना, झनकारना।

शिञ्जा (सं० स्त्री०) शिजि अव्यक्तशब्दे (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०३) इति टाप्। १ भूषणशब्द; करधनी, नूपुर आदि आभूषणोंकी झनकार, झनझनाहट। २ धनुर्गुण, धनुषकी डोरी।

शिञ्जार (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

(ऋक् ८।५।२५)

शिञ्जित (सं० क्ली०) शिञ्ज-क्त। बजता हुआ, झंकार करता हुआ।

शिञ्जिन् (सं० त्रि०) शिञ्जा विद्यतेऽस्य इत्यर्थे इन्। भूषण शब्दविशिष्ट, अव्यक्त ध्वनियुक्त।

शिञ्जिनी (सं० स्त्री०) शिञ्जति आकृष्टमुक्ताशब्दायते इति शिञ्ज णिनि, स्त्रियां ङीप्। १ धनुर्गुण, धनुषकी डोरी, चिल्ला। २ नूपुर या करधनीके घुंघरू।

शिण्डाकी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी काँजी। यह मूलीके पत्तोंके रसमें राई और नमक डाल कर अथवा सरसोंके रसमें चावलका चूर्ण डाल कर बनाई जाती है। वैद्यकके अनुसार यह रुचिकारी, कफकारक, पित्त करनेवाली और भारी होती है।

शित (सं० त्रि० शो तनू करणे क्त (शाच्छोरन्यतरस्यां। पा ७।४।४१) इति इकारादेशः। १ कृश, दुर्बल। २ धारदार, चोखा। ३ नुकीला, पतला। ४ क्षयप्राप्त, नष्ट। (पु०) ५ विश्वामित्रके गोत्रके एक ऋषिका नाम। (भारत १३।४।५३) ६ वृष, बैल, साँड़। (क्ली०) ७ रजत, चाँदी।

शितकर (सं० पु०) कर्पूर, कपूर।

शितकर्णी (सं० स्त्री०) वासक, अड़ूसा।

शितछत्रा (सं० स्त्री०) शताह्वा, सौंफ।

शितता (सं० स्त्री०) शितस्य भावः तल्-टाप्। शितका भाव या धर्म, तीक्ष्णता।

शितद्रु (सं० स्त्री०) १ शतद्रु, सतलज। २ क्षीरमोरट।

शितनिर्गुण्डी (सं० स्त्री०) कृष्णनिर्गुण्डी, शेफालिका।

शितपर्ण (सं० पु०) मुस्तक, मोथा।

शितपुष्प (सं० पु०) शिरीष वृक्ष।

शितपुष्पक (सं० क्ली०) काशतृण।

शितवर (सं० पु०) शिरियारी नामक साग।

शितवार (सं० पु०) शितवर देखो।

शितशाक (सं० पु०) शालिञ्च शाक, शान्तिशाक।

(पर्यायमुक्ता०)

शितशिव (सं० क्लो०) १ सैन्धव लवण, सेंधा नमक । २ मिश्रेया । (स्त्री०) ३ शताह्वा ।

शितशूक (सं० पु०) १ यव, जौ । २ गोधूम, गेहूं ।

शितसार (सं० पु०) तिन्दुक वृक्ष, तेंदूका पेड़ ।

शिताद्रिकर्णी (सं० स्त्री०) श्वेतापराजिता, सफेद कोयल ।

शिताफल (सं० पु०) सीताफल, शरीफा ।

शिताब (फा० क्रि० वि०) शीघ्र, जल्द ।

शिताबी (फा० स्त्री०) १ शीघ्रता, जल्दी । २ तेजी, हड़बड़ी ।

शितामन् (सं० क्लो०) बाहु, यकृत्, योनि और मेद ।
(शुक्लयजुः २१।४३)

शितावर (सं० पु०) १ सोमराजी, वकुली । २ शिरियारी । ३ सतावर ।

शितावरी (सं० स्त्री०) शितावर देखो ।

शिति (सं० त्रि०) शति सौत्रो धातुः (क्रमि तमि शति स्तम्भामत इच । उण् ४।१२१) इति इन्, सच कित्, अत इकारश्च । १ शुक्ल, सफेद । २ कृष्ण, काला । ३ उक्त वर्णविशिष्ट, सफेद और काले रंगका । (पु०) ४ भूर्ज-वृक्ष, भोजपत्रका पेड़ ।

शितिककुद् (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण ककुद्विशिष्ट ।
(तैत्तिरीयस० ५।६।१४।२)

शितिकक्ष (सं० त्रि०) शुक्लवर्ण स्कन्धविशिष्ट, सफेद कंधावाला । (शुक्लयजु २४।४)

शितिकण्ठ (सं० पु०) शितिः कण्ठे यस्य । १ शिव, महादेव । २ दात्यूहपक्षी, मुर्गाबी, जलकाक । ३ मयूर, मोर । ४ चातक, पपीहा । ५ नागदेवता ।

शितिकण्ठ—१ प्रयोगदर्पणके प्रणेता पद्मनाभ दीक्षितके गुरु । २ कुलसूत्रके रचयिता । ३ तत्त्वचिन्तामणि टीका और शितिकण्ठीय नामक न्यायशास्त्रके प्रणेता । ४ महार्घप्रकाश नामक तत्त्वग्रन्थके रचयिता ।

शितिकण्ठक (सं० पु०) शितिकण्ठ स्वार्थे कन् । १ मयूर, मोर । (त्रि०) २ कृष्णवर्ण कण्ठयुक्त, जिसका कण्ठ काला हो ।

शितिकण्ठदीक्षित—भवानन्दीप्रकाश आदि ग्रन्थके रचयिता, महादेव पुणतमाकरके गुरु । ये श्रीकण्ठ नामसे भी परिचित थे ।

शितिकुम्भ (सं० पु०) करवीर वृक्ष, कनेरका पेड़ ।

शितिकेश (सं० पु०) स्कन्दके एक अनुचरका नाम ।
(भारत ६ पर्व)

शितिङ्ग (सं० त्रि०) शुभ्रताप्राप्त, जो सफेद हो गया हो ।
(अथर्व ११।५।१२)

शितिचन्दन (सं० पु०) कस्तूरी ।

शितिवार (सं० पु०) शाकविशेष, शिरियारी नामक साग ।

शितिच्छद (सं० पु०) शिति छदौ यस्य । हंस ।

शितिनस् (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण नासाविशिष्ट, सफेद नाकवाला । (पा ५।४।११८ वार्त्तिक)

शितिपक्ष (सं० पु०) शिती शुक्लौ पक्षौ यस्य । हंस ।

शितिपद् (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण पादविशिष्ट, जिसका पैर सफेद हो ।

शितिपाद (सं० त्रि०) शुक्लवर्ण पादविशिष्ट, सफेद पैर वाला । "शिति पादोऽव्यथन् रथं" (ऋक् १।३५।५) 'शितिपादः शितयः श्वेतवर्णाः पादा येषां ते शितिपादाः, यद्वा शिति श्वेतवर्णस्फटिकादिः स इव पादो येषां ते ।' (सायण)

शितिपृष्ठ (सं० त्रि०) शितिः शुभ्रः पृष्ठः यस्य । १ शुभ्र-वर्ण पृष्ठविशिष्ट, सफेद पीठवाला । "शितिबाहुः शितिपृष्ठस्तु मैत्रा वार्हस्पत्याः" (शुक्लयजु० २४।७) 'शितिपृष्ठः श्वेतपृष्ठः' (महीधर)

(पु०) २ एक नाग जो एक यज्ञमें मैत्रावरुण बना था ।

शितिप्रभ (सं० पु०) विष्णु । (विष्णुका सहस्रनाम)

शितिबाहु (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण बाहुविशिष्ट, सफेद भुजा-वाला । (शुक्लयजु० २४।६)

शितिभसद् (सं० त्रि०) पश्चाद् भाग शुभ्रवर्णविशिष्ट, जिसका पिछला भाग सफेद हो । (काठक १३।७)

शितिभ्रु (सं० त्रि०) श्वेतवर्णभ्रूयुक्त, सफेद भौंहवाला । इसके अधिष्ठाता देवता वसु हैं । (शुक्लयजु० २४।६)

शितिमांस (सं० क्लो०) मेदः, मेदोधातु ।

शितिमूलक (सं० क्लो०) उशीर, खस ।

शितिरत्न (सं० पु०) नीलमणि, नीलम ।

शितिरन्ध्र (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण कर्णरन्ध्र ।

शितिललाट (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण ललाटविशिष्ट। (पा ६।२।१३८ वार्त्तिक)

शितिवर (सं० पु०) शितिवार, शिरियारी नामक साग।

शितिवाल (सं० त्रि०) शितिवार रस्य लत्वं। शितिवार। (शतपथब्रा० ५।३।१।१०)

शितिवासस् (सं० त्रि०) शितिः कृष्णः वासो यस्य। नीलाम्बर, बलदेव। (भागवत ६।१६।३०)

शितिसार (सं० पु०) शितिसारक देखो।

शितिसारक (सं० पु०) शितिः सारो यस्य कन्। तिन्दुक वृक्ष, तेंदूका पेड़।

शितीक्षु (सं० पु०) वैदिक देवता उशनाके एक पुत्रका नाम। (विष्णुपुराण)

शितीमन् (सं० क्ली०) शितामन, बाहु, यकृत्, योनि और मेद। (तैत्तिरीयसं० ५।७।१६)

शितेयु (सं० पु०) उशनाके एक पुत्रका नाम। (विष्णुपु०)

शितेषु (सं० पु०) शितेयु देखो।

शित्पुट (सं० पु०) १ बिल्लीकी जातिका एक जानवर। (तैत्तिरीय ५।५।१७।१) २ एक प्रकारका काला भौंरा।

शित्यंस (सं० त्रि०) शितिकक्ष।

शित्योष्ठ (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण ओष्ठयुक्त, सफेद होंठवाला।

शिथिर (सं० त्रि०) शिथिल। "शिथिरेव ह्वेवाघाते स्यामः" (ऋक् ५.८५।८) 'शिथिरेव शिथिलानीव शिथिलबन्धनानि फलानीव'

शिथिल (सं० त्रि०) श्रथ (अजिरशिशिरशिथिलेति। उण् १।५४) इति किरच् प्रत्ययेन-साधु। १ श्लथ, जो कसा या जकड़ा न हो; ढीला। २ श्रान्त, जिसमें और शक्ति न रह गई हो, थका हुआ। ३ मन्द, सुस्त, धीमा। ४ अदृढ़, जो अपनी बात पर खूब जमा न हो। ५ आलस्ययुक्त, जो कार्यमें पूर्ण तत्पर न हो, जो पूरा मुस्तैद न हो। ६ अस्पष्ट, जो साफ सुनाई न दे। ७ जो पूरे दबावमें न रखा गया हो, छोड़ा हुआ। ८ जिसका पालन कड़ाईके साथ न हो, जिसकी पूरी पाबंदी न हो।

शिथिलता (सं० स्त्री०) १ कसे या जकड़े न रहनेका भाव, ढीलापन, ढिलाई। २ श्रान्ति, थकावट। ३ अतत्परता, मुस्तैदीका न होना। ४ सामर्थ्यकी त्रुटि, शक्तिकी कमी। ५ वाक्योंमें शब्दोंका परस्पर गठा हुआ अर्थ-सम्बन्ध न होना। ६ तर्कमें किसी अवयवका अभाव। ७ नियम-पालनकी कड़ाईका न होना।

शिथिलित (सं० त्रि०) जो शिथिल हो गया हो, ढीला पड़ा हुआ।

शिथिलीकरण (सं० क्ली०) शिथिल-कृ-अभूततद्भावे च्वि, कृ-ल्युट्। शिथिल करना, ढीला करना।

शिथिलीभूत (सं० त्रि०) जो शिथिल हो गया हो, ढीला पड़ा हुआ।

शिद्दत (अ० स्त्री०) १ उग्रता, प्रचण्डता, तेजी। २ अधिकता, ज्यादती।

शिना (सं० क्ली०) भुईं आँवला।

शिनाख्त (फा० स्त्री०) १ वह निश्चय कि अमुक वस्तु या व्यक्ति यही है, पहचान। २ स्वरूप या गुणका बोध, परख, तमीज़।

शिनि (सं० पु०) १ गर्ग ऋषिके पुत्रका नाम। २ क्षत्रियोंका एक भेद। (उण् ४।५१) ३ एक यादव वीरका नाम। इन्होंने वसुदेवके लिये देवकीका बलपूर्वक हरण किया था। इस कारण इनका सोमदत्तके साथ घोर युद्ध हुआ था। इनके पुत्रका नाम सत्यक और पौत्रका नाम सात्यकि था जो पाण्डवोंकी ओरसे महाभारतयुद्धमें लड़ा था।

शिनिवाहु (सं० पु०) एक नदीका नाम। (विष्णुपु०)

शिनिवास (सं० पु०) एक पर्वतका नाम। (भागवत ५।१६।६)

शिनेयु (सं० पु०) उशन्तके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश) विष्णुपुराणके मतसे उशनाके एक पुत्रका नाम। शितेयु देखो।

शिनेनप्त (सं० पु०) सात्यकि। (त्रिका०)

शिपविलुक (सं० पु०) कीटभेद, एक प्रकारका कीड़ा।

शिपविष्ट (सं० पु०) शिपिविष्ट।

शिपाटक (सं० पु०) अमात्यभेद। (राजतर० ६।३५०)

शिपि (सं० पु०) १ रश्मि, किरण। (स्त्री०) २ चमड़ा, खाल। ३ कुट्टी, कोठी। (अमरटीका रायमु०)

शिपिविष्ट (सं० पु०) १ खलति, दुश्चर्मा, स्वभावतः अनावृतमेढ्र । २ महेश्वर । (अमर) ३ कुष्ठी, कोढ़ी । (अमरटीका रायमु०) ४ विष्णु । (विष्णुका सहस्रनाम) (त्रि०) ५ पशुविशिष्ट । (भाग० ४।१३।३५)

शिपिविष्टक (सं० त्रि०) शिपिविष्ट सदृश ।

शिपिविष्टवत् (सं० त्रि०) शिपिविष्ट अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । शिपिविष्ट सदृश ।

शिपुरगड्डी (फा० स्त्री०) एक प्रकारका पौधा । इसकी डालके रेशे बुरुश बनानेके काममें आते हैं ।

शिप्र (सं० पु०) देवभोग्य सरोवरविशेष । कालिकापुराणमें इस सरोवरका विषय इस प्रकार लिखा है—पुराकालमें विधाताने देवताओंके उपभोगके लिये हिमालय पर्वत पर शिप्र नामक एक महासरोवरकी सृष्टि की । इन्द्रादि देवगण इस सरोवरमें विहार करते हैं । देवताओंका क्रीड़ासरोवर होनेके कारण वे इसकी यत्नपूर्वक रक्षा करते हैं । मुनिके छोड़ और कोई भी मनुष्य वहां नहीं जा सकते । यदि वहां जांय और जलमें स्नान करें, तो वे अमरत्व लाभ करते हैं । यह सरोवर वर्षाकालमें नहीं बढ़ता और न ग्रीष्मकालमें सूखता ही है । हमेशा एक भावमें रहता है । इस सरोवरसे शिप्रा नदी निकली है ।

शिप्रक (सं० पु०) सुशर्म्माकी हत्या करनेवाला एक व्यक्ति । (विष्णुपु० ४।२४।१२)

शिप्रवत् (सं० त्रि०) शोभनहनुयुक्त, सुन्दर दाढ़ी ।

शिप्रा (सं० स्त्री०) १ नदीविशेष । इस नदीकी उत्पत्तिका विषय कालिकापुराणमें इस प्रकार लिखा है,—वशिष्ठ देवने जब अरुन्धतीसे विवाह किया, तब ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरने उन्हें शान्ति और आशीर्वाद दिया । वह शांतिजल पहले मानस पर्वतकन्दरमें और पीछे सात धाराओंमें विभक्त हो मानस पर्वतसे हिमालय पर्वतकी गुहा, सानु और सरोवरमें पृथक् पृथक् भावमें गिरा । उस जलमेंसे कुछ शिप्र सरोवरमें जा कर मिल गया । उससे शिप्र सरोवर बहुत बढ़ने लगा । पीछे विष्णुने चक्र द्वारा गिरिशृङ्गको काट कर लोकहितके लिये उस प्रवृद्ध जलराशिको पुण्यतमा नदी बना कर पृथिवी पर भेजा । शिप्रसरोवरसे इसकी उत्पत्ति हुई, इस कारण इसका शिप्रा नाम हुआ है । यह नदी गङ्गाकी तरह पापनाशिनी है । कार्त्तिकमासकी पूर्णिमा तिथिको इस नदीमें स्नान करनेसे मानव विष्णुलोकको जाते हैं । (कालिकापु० १९ अ० २४ अ०)

२ उज्जयिनीके निकट प्रवाहित प्रसिद्ध नदी । ३ हनु, दाढ़ी । (ऋक् ८।६५।१०)

शिप्रिणीवत् (सं० त्रि०) शिप्रवान्, इन्द्र । (ऋक् १०।१०५।५)

शिप्रिन् (सं० पु०) शोभन हनुयुक्त इन्द्र । (ऋक् १।२९।२)

शिफ (सं० पु०) शिफा । (अमरटीका विद्याविनोद)

शिफा (सं० स्त्री०) १ एक वृक्षकी रेशेदार जड़ जिससे प्राचीन कालमें कोड़े बनते थे । २ कोड़ेकी फटकार, चाबुककी मार । ३ एक नदीका नाम । (ऋक् १।१०४।३) ४ मांसिका, जटामांसी । ५ माता । ६ शतपुष्पा । ७ हरिद्रा, हल्दी । ८ पद्मकन्द, भसींड़ । (रायमुकुटधृत स्वामी) ९ लता । (मनु ६।२३०, मेधातिथि) १० शिखा, चोटी ।

शिफाक (सं० पु०) शिफा-इव कन् । पद्ममूल, भसींड़ ।

शिफाकन्द (सं० पु०) शिफायुक्तः कन्दो यस्य । पद्ममूल, भसींड़ा । पर्याय—करहाट, शिफाक, पद्मकन्द, कर्कट, शिफा, कन्द । (मुकुटधृत स्वामी)

शिफाधर (सं० पु०) शिफाया धरः । शाखा, डाल ।

शिफारुह (सं० पु०) शिफाया रोहतीति रुह-क । वटवृक्ष, बरगदका पेड़ ।

शिभ्र (सं० त्रि०) १ वसायुक्त, चर्बीवाला । (अथर्व ७।९०।२) २ सुपक्व ।

शिम (सं० पु०) शिम्बी, सेम ।

शिमाल (अ० स्त्री०) उत्तर दिशा ।

शिमि (सं० स्त्री०) शिम्बी, सेम ।

शिमिका (सं० स्त्री०) काश्मीरकी एक छोटी नगरी ।

शिमिदा (सं० स्त्री०) ऐन्द्रजालिकभेद । (अथर्व ४।२५।४)

शिमिद्वत् (सं० त्रि०) वायुयुक्त, आध्मात ।

शिमी (सं० स्त्री०) शिम्बी, सेम ।

शिमीवत् (सं० त्रि०) शिमी-मतुप्, मस्य व। वीर्यकर्मोपेत।' (ऋक् १।८४।१६)

शिमृड़ी (सं० स्त्री०) क्षुपविशेष, चिंगोनी या चंगेनी नामका पौधा। पर्याय—मतिदा, वल्पा, पंगुलयहारिणी, द्रवत्पत्नी, वातघ्नी, गुच्छपुष्पी। गुण—कटु, उष्ण, वात और पृष्ठशूलनाशक। रसायनमें प्रयुक्त होनेसे शरीरका दृढ़ताकारक होता है। (राजनि०)

शिम्ब (सं० पु०) १ चक्रमर्द, चक्रवंड। २ फली, छीमी।

शिम्बल (सं० पु०) शाल्मलीकुसुम। (ऋक् ३।५३।२२

शिम्बा (सं० स्त्री०) शिम्ब टाप्। १ छीमी, फली। पर्याय—समी, सिम्बा, सिम्बी, शिम्बी, शिम्बिका, शिम्बि २ स्वनामख्यात लता, सेम। यह दो प्रकारकी है—शिम्बी-पुस्तक और शिम्बी। गुण—पाकमें मधुर, शीतल, गुरु, वलकर, दाहवर्द्धक, श्लेष्मजनक तथा वातपित्तनाशक। (भावप्र०)

राजवल्लभके मतसे शिम्बा दो प्रकारकी है। यह रुक्ष, वातवर्द्धक, स्वादु और शीतल, विष्टम्भजनक, कषाय, अग्नि, विष्ठा, शुक्र और कफनाशक मानी गई है। ३ मुस्तक, मोथा। (वैद्यकनि०) ४ शिम्बी धान्य।

शिम्बति (सं० त्रि०) सुख। (ऋक् १०।१०६।५)

शिम्बि (सं० स्त्री०) १ शिम्बा। २ परका, एक प्रकार की घास।

शिम्बिक (सं० पु०) मुद्ग, मूङ्गफली।

शिम्बिका (सं० स्त्री०) शिम्बि-कन्-टाप्। शिम्बा।

शिम्बिज (सं० पु०) शिंवि जन-ड। १ शिंविधान्य। २ रक्तकुलत्थ, लाल कुलथी।

शिम्बिजा (सं० स्त्री०) द्विदल अन्न, दाल।

शिम्बिनी (सं० स्त्री०) १ असि शिंवीलता, बड़ी सेम। २ कृष्ण चटका, श्याम चिड़िया।

शिम्बिपर्णिका (सं० स्त्री०) शिम्बीपर्णी स्वार्थे कन्-टाप्। मुद्गपर्णी, वनमूंग।

शिम्बिपर्णी (सं० स्त्री०) शिम्बिपर्णिका देखो।

शिम्बिरिङ्गणी (सं० स्त्री०) वनमूंग। (वैद्यकनि०)

शिम्बिरोटिका (सं० स्त्री०) स्वर्णजीवन्ती।

शिम्बी (सं० स्त्री०) शिम्बि पक्षे ङीप्। १ शिम्बी धान्य। २ छीमी, फली। ३ सेम। ४ मुद्गपर्णी, वनमूंग। ५ कपिकच्छु, केवाँच।

शिम्बीधान्य (सं० क्ली०) द्विदल अन्न, वह अन्न जिसके दानोंमें दो दल हों। जैसे,—मूंग, मसूर, मोठ, उड़द, चना, अरहर, मटर, कुलथी, लोबिया आदि। गुण—मधुर और कषाय रस, रुक्ष, कटु विपाक, वायुवर्द्धक, कफ और पित्तनाशक, मलमूत्ररोधक तथा शीतवीर्य। (भावप्र०)

शिम्बीफल (सं० क्ली०) आहुल्यक्षुप, तरवड़ नामक पौधा। (राजनि०)

शिम्बीभव (सं० पु०) शिम्बी धान्य। (भावप्र०)

शिम्यु (सं० पु०) १ वधकारी राक्षस आदि। २ शम-यिता।

शिया (अ० पु०) १ मददगार, सहायक। २ अनुयायी। ३ मुसलमानोंके दो प्रधान और परस्पर विरोधी सम्प्रदायों-मेंसे एक, हजरत अलीको पैगम्बर ठीक उत्तराधिकारी माननेवाला सम्प्रदाय। उमर, अबूबक्र आदि जो चार खलीफा मुहम्मद साहबके पीछे हुए हैं, उन्हें इस सम्प्र-दायके लोग अनधिकारी मानते हैं तथा पैगम्बरके बाद अली और उनके बेटों हसन और हुसेनको ही आदरका स्थान देते हैं। मुहर्रमके महीनेमें ये अब तक हसन हुसैन-की वीरगतिको प्राप्त होनेके दिनोंमें शोक मनाते हैं।

शिरःकपाल (सं० क्ली०) नरमस्तक, मनुष्यका माथा।

शिरःकपालिन् (सं० पु०) शिरः कपालोऽस्यास्तीति इनि। कापालिक संन्यासी। ये लोग मुंडा ले कर भीख मांगते हैं।

शिरःकम्प (सं० पु०) शिरसः कम्पः। १ मस्तक कम्पन, सिर हिलाना।

शिरःकम्पिन् (सं० त्रि०) कम्प अस्त्यर्थे इनि मस्तक-कम्पविशिष्ट, जिसका सिर हमेशा हिलता रहे।

शिरःकर्ण (सं० क्ली०) मस्तक और कर्ण, सिर और कान इन दोनोंका समाहार।

शिरःकृन्तन (सं० क्ली०) शिरसः कृन्तनः। शिरच्छेदन, मस्तक काटना।

शिरःखण्ड (सं० क्ली०) कपालास्थि, माथेकी हड्डी।

शिरःपट्ट (सं० पु०) उष्णीष, पगड़ी।

शिरःपाक (सं० पु०) शिरोरोग विशेष।

शिरःपीट (सं० क्ली०) ग्रीवा, शिरोधरा।

शिरःपीड़ा (सं० स्त्री०) शिरसः पीड़ा। सिरका दर्द, माथेकी पीड़ा। आयुर्वेदमें ११ प्रकारके और यूनानीमें १६ प्रकारके शिरोरोग कहे गये हैं; परन्तु कोई कोई २१ प्रकारके सिर दर्द बताते हैं। आयुर्वेदके अनुसार वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, क्षयज, कृमिज, सूर्यावर्त्त, अनन्तवात, अर्द्धावभेदक और शङ्खक ये ११ प्रकारके शिरोरोग होते हैं। शिरोरोग देखो।

शिरःप्रदान (सं० क्ली०) शिरसः प्रदानं। मस्तक प्रदान, सिर दान।

शिरःफल (सं० पु०) शिरस्तुल्यं फलं यस्य। नारिकेल, नारियल। (त्रिका०)

शिरःशिल (सं० क्ली०) काश्मीरमें स्थित एक दुर्ग।

शिरःशूल (सं० क्ली०) शिरसः शूलं। सिरकी पीड़ा। शिरोरोग देखो।

शिरःशेष (सं० त्रि०) शिरः शेषो यस्य। १ मस्तकावशेषविशिष्ट, बिना सिरका। (पु०) २ वाहु।

शिरःस्थान (सं० क्ली०) प्रधान स्थान।

शिरःस्नाति (सं० त्रि०) सिरसे स्नान करनेवाला।

शिरःस्नान (सं० क्ली०) १ सिरसे स्नान करना। २ काकस्नान, कौएके समान स्नान करना।

शिर (सं० पु०) १ पिप्पलीमूल, पिपरामूल। २ मस्तक, माथा। ३ कपाल, मुंड, सिर, खोपड़ा। ४ शिखर। ५ किसी वस्तुका सबसे ऊंचा भाग या अंग, सिरा, चोटी। ६ सेनाका अग्र भाग। ७ प्रधान, मुखिया, अगुआ। ८ शय्या। ९ विस्तर। १० पद्यके चरणका आरम्भ, टोंका। ११ अजगर। (संक्षिप्तसार उणा०)

शिरकत (अ० स्त्री०) १ किसी वस्तुके अधिकारमें भाग, सम्मिलित अधिकार, साझा। २ किसी कार्यमें योग, किसी काम या व्यवसायमें शामिल न होना।

शिरखिश्त (फा० पु०) एक वृक्षका गोंद। यह औषधके काममें आता है और साधारणतः लोग ज्वारसे बनी चीनी मानते हैं।

शिरगोला (हिं० पु०) दुग्धपाषाण नामक वृक्ष।

शिरज (सं० पु०) शिरा जायते इति जन ड। केश, बाल।

शिरत्राण (सं० क्ली०) शिरस्त्राण देखो।

शिरनैत (हिं० पु०) गढ़वाल या श्रीनगरके आसपासका प्रदेश।

शिरपेंच (हिं० पु०) सिरपेंच देखो।

शिरफूल (हिं० पु०) सिरमें पहननेका स्त्रियोंका आभूषण, सीसफूल।

शिरमौर (हिं० पु०) १ शिरोभूषण, मुकुट। २ श्रेष्ठ व्यक्ति, मुख्य व्यक्ति, प्रधान। ३ अधिपति, नायक।

शिरश्चन्द्र (सं० पु०) महादेव, शिव।

शिरश्छेद (सं० पु०) शिरसश्छेदः। शिरश्छेदन, सिर काटना।

शिरस् (सं० क्ली०) श्रि श्रेयते (स्वाङ्गे शिरः किच्च। उण् ४।१९३) इति असुन्, सच कित्, धातोः शिरादेशश्च। १ शिखर। २ मस्तक, माथा। सुखबोधमें लिखा है, कि गर्भकालमें एक महीनेमें मस्तक होता है। (सुखबोध) ३ प्रधान। शिर देखो।

शिरसिज (सं० पु० शिरसि जायते इति जन-ड सप्तम्याः अलुक्। केश, बाल।

शिरसिरुह (सं० पु०) शिरसि रोहतीति रुह-क। केश।

शिरस्क (सं० क्लो०) शिरस्-कन्। १ शिरस्त्राण, खोद। (त्रि०) २ शिरसम्बन्धी, मस्तकका।

शिरस्तस् (सं० अव्य०) शिरस्-तसिल्। मस्तकसे, मस्तक पर।

शिरस्त्र (सं० क्लो०) शिरस्त्रायते इति त्रै-क। शिरोरक्षण सन्नाह, लोहेकी टोपी, खोद।

शिरस्त्राण (सं० क्लो०) शिरस्त्रायतेऽनेन त्रै ल्युट्। शिरोरक्षण सन्नाह, युद्ध आदिके समय शिरके बचावके लिये पहनी जानेवाली लोहेकी टोपी, कूंड़, खोद। पर्याय—शीर्षण्य, शीर्षक, शिरस्क, शिरस्त्र।

शिरस्य (सं० पु०) शिरस् (शाखादिभ्यो यत्। पा ५।३।१०३) इति यत्। १ विशद कच, निर्मल केश, साफ बाल। (त्रि०) २ शिरः सम्बन्धी, सिरका।

शिरा (सं० स्त्री०) धमनी, शरीरके मध्यस्थित रक्तागमनका पथ, नस।

शिरा सन्धि स्थानकी बन्धनकारिणी है। शरीरमें जो जो सन्धिस्थान है, शिरा उन सब सन्धिस्थानोंमें

बंधन करती है। यह दोष और धातुवाहिनी शिराएं नाभि संबद्ध हैं। उस नाभिसे सभी शिराएं शरीरके चारों ओर फैल गयी हैं। उद्यानके वृक्ष जिस प्रकार पयःप्रणाली द्वारा पुष्ट होते हैं, नहर द्वारा जिस प्रकार खेतका पोषण होता है, उसी प्रकार शिराओं द्वारा धातु वाहित हो कर शरीरको पुष्ट करता है। कुल मिला कर शिराकी संख्या ७०० है। यही सब शिराएं शरीरकी प्रसारण और आकुञ्चन सम्पन्न करती हैं। अर्थात् शिराओं द्वारा शरीरके सभी अंशोंमें रस सञ्चारित हो कर आकुञ्चन और प्रसारणादिकी सहायतासे देहकी रक्षा और पोषण होता है।

वृक्षके पत्तकी मध्यस्थित सेवनी अर्थात् इससे जिस प्रकार शाखाप्रशाखाविशिष्ट सूक्ष्म सूक्ष्म शिराएं चारों ओर फैला कर समूचे पत्तेको ढक लेती है, उसी प्रकार देहधारियोंकी शरीरकी शिराएं फैली हुई हैं।

सभी जीवोंके प्राण नाभिदेशमें अवस्थित है। वही नाभिदेश शिराओंका मूल है। नाभिदेशसे ही शिराएं निकल कर शरीरमें सभी ओर फैल गयी हैं। इसकी आकृति चक्र-सी है। चक्रको कीलें जिस प्रकार उसकी नाभिके चारों ओर आवद्ध रहती हैं, उसी प्रकार जीवोंकी शरीरस्थ शिराएं उनकी नाभिसे उत्पन्न हुई हैं।

पहले ही कहा जा चुका है, कि शिराएं ७०० हैं। इनमेंसे मूल शिरा ४० हैं, वायुवाहिनी १० और पित्तवाहिनी १०, कफवाहिनी १० और रक्तवाहिनी १० यही ४० मूल शिराएं हैं।

इन सब मूल शिराओंसे ही शाखाप्रशाखारूपमें ७०० सौ शिराएं निकली हैं। १७५ वायुवाहिनी शिराएं निकल कर पक्वाशयमें अवस्थित हैं। पित्तवाहिनी शिरा १७५ हैं। ये सब शिराएं पित्तके स्थान हैं अर्थात् आमाशय और पक्वाशयके मध्य स्थानमें अवस्थित हैं। कफवाहिनी १७५ हैं, ये कफ स्थान आमाशयमें रहती हैं। बाकी १७५ रक्तवाहिनी हैं। ये सब शिराएं रक्ताशय और यकृत् प्लीहादेशमें अवस्थान करती हैं।

शिराका स्थाननिरूपण—पूर्वोक्त १७५ वायुवाहिनी शिराओंमें प्रत्येक सक्थि और बाहुमें २५ करके एक सौ शिराएं, कोष्ठदेशमें ३४ जिनमेंसे नितम्ब, गुह्य और मेढ्र देशमें ८, दोनों पार्श्वमें दो दो करके, ४ पृष्ठमें ६, उदरमें ६ तथा वक्षमें १० हैं। स्कन्धदेशके ऊपरी भागमें ४१ शिराएं अवस्थित हैं। जिनमेंसे ग्रीवादेशमें १४, दोनों कानमें ४, जिह्वा देशमें ९, नासिकामें ६ और दोनों आँखमें चार चार करके ८ वायुवाहिनी शिराएं इस प्रकार कुल मिला कर १७५ हैं।

अवशिष्ट शिराओंका भी इसी प्रकार विभाग कहा गया है। विशेषता सिर्फ इतनी ही है, कि पित्तवाहिनी शिरा दोनों नेत्रमें १०, दोनों कानमें २, रक्तवाहिनी शिरा दोनों चक्षुमें ८, दोनों कानमें ४ और श्लेष्मवाहिनी शिरा ग्रीवादेशमें १६ और कर्णमें २, इस प्रकार ७०० शिराके विभाग जानने होंगे।

वायु जब अपनी शिरामें स्वच्छन्दपूर्वक विचरण करती है, तब यन्त्रक्रियामें कोई व्याघात नहीं पहुंचता तथा बुद्धिशक्तिका मोह नहीं होता, वरं अन्यान्य नाना प्रकारके गुण हुआ करते हैं। किन्तु जब वायु अपनी शिरामें कुपित होती है, तब वायुजन्य नाना प्रकारकी पीड़ा होती है।

पित्त यदि अपनी शिरामें सञ्चरण कर सके, तो शरीरमें कान्ति, अन्नमें रुचि, अग्निकी दीप्ति, शरीरकी स्वस्थता तथा अन्यान्य अनेक गुण उत्पन्न होते हैं। किन्तु पित्तके कुपित हो कर अपनी शिरामें अवस्थान करनेसे पित्तजनित नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं।

श्लेष्मा जब तक प्रकृतिस्थ अवस्थामें अपनी शिराके मध्य विचरण करती है, तब तक सभी अङ्ग प्रत्यङ्गकी स्निग्धता, सभी सन्धियां दार्ढ्य, मनकी स्फूर्त्ति तथा और भी नाना प्रकारके गुण उत्पन्न होते हैं। किन्तु श्लेष्मा कुपित हो कर उक्त शिरामें प्रबल होनेसे श्लेष्मा जनित नाना प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

रक्त यदि प्रकृतिस्थ अवस्थामें अपनी शिराके मध्य विचरण कर सके, तो सभी धातुओंका पूरण; वर्णकी उज्ज्वलता तथा स्पर्शज्ञानकी तीव्रता और बल पुष्टि आदि विविध प्रकारके गुण होते हैं। किंतु उस रक्तके कुपित हो कर विचरण करनेसे रक्तजन्य नाना प्रकारकी पीड़ा होती है।

पूर्वोक्त शिराएं केवल वायु, पित्त या कफको ही वहन करती हैं सो नहीं। अवस्थाभेदसे ये वातादि त्रिदोषको भी वहन किया करती हैं।

शिराका वर्णभेद—जो सब शिराएं वायु द्वारा पूर्ण रहती हैं, उनका वर्ण अरुण, जो पित्तपूर्ण हैं, उनका वर्ण नील होता है तथा उन्हें स्पर्श करनेसे उष्ण मालूम होता है। कफपूर्ण शिराएं शीतल, गौरवर्ण और स्थिर तथा रक्तपूर्ण शिराएं रक्तवर्ण और शीतोष्ण होती हैं।

पाश्चात्य मतसे शिरातत्त्व।

पाश्चात्य देहविज्ञानविदोंने मृतदेहको व्यवच्छेद करके मानवदेहमें जिन सब शिराओंका सन्धान पाया है, 'एनाटमी' नामक ग्रन्थमें उनका विस्तृत विवरण देखनेमें आता है। उन सब विवरणका यहां अच्छी तरह आलोचना करना असम्भव है। शिरातत्त्वका प्रधान और सार अंश यहां लिखा जाता है। समग्र मानवदेह धमनी और स्नायुकी तरह शिराजालसे वेष्टित है। केवल चार फुसफुसीय शिराओंको छोड़ देहकी अपरिष्कृत शोणित राशिको वहन कर फुसफुसमें ले जाना ही शिराओंका प्रधानतम कार्य है। चर्मके नीचे हम अनेक नीलिम शिराएं देख पाते हैं। शिराएं स्पन्दनहीन और अपरिष्कृत रक्तसे परिपूर्ण हैं। उधर धमनी स्पन्दनयुक्त है। धमनियां परिष्कृत और परिशोभित रक्त वहन कर देहमें सर्वत्र सञ्चारित करती हैं।

इन शिराओं द्वारा देहके सभी स्थानोंकी कैशिकाओंसे रक्त हृत्पिण्डमें लाया जाता है। ये सब शिराएं कैशिक शिरा (कैपिलरी)से आरब्ध होती हैं और परस्पर मिल कर स्थूलकाय शैरिक काण्ड बनाती हैं। साधारणतः शिराओंको दो श्रेणीमें विभक्त किया जा सकता है;—प्रथम या अगभीर श्रेणी, सुपरफिश्यल फैसियाके स्तरमें अवस्थान करती है, ये धमनियोंके साथ रहती हैं तथा उनके साथ एक कोष (Sheath) द्वारा परिवेष्टित रहती है; बड़ी बड़ी धमनियोंके साथ केवल एक शिरा रहती है; किन्तु वह शिरा बहुत छोटी है, यथा—, प्रकोष्ठ, हाथ, पैर और धमनीके दो दो शिरा रहती हैं। इन्हें युग्म शिरा ('भेनि कमिटिज') कहते हैं।

धमनीकी अपेक्षा सभी शिराएं परस्पर बाहुल्यरूपमें सम्मिलित होती हैं। इस कारण देहके सभी स्थानोंसे हृत्पिण्डमें रक्त लौटनेकी सुविधा होती है।

कुछ शिराओंका विशेष स्वभाव दिखाई देता है; यथा,—आर्टिब्रोकी शिरा, मस्तिष्ककी शैरिक प्रणाली तथा पोर्टल शिरा, ये सब धमनीकी सहवर्त्ती नहीं होतीं और इनके निर्माण सम्बन्धमें भी वैलक्षण्य दिखाई देता है। शिरामें अक्सर दूषित नीलवर्णका रक्त रहता है, किन्तु पैलमोनारी शिरामें धमनीकी तरह लोहित विशुद्ध रक्त रहता है। ग्रन्थिपदार्थसे जो शिरा निकली है, उसके अन्तर्गत रक्त ग्रन्थिका क्रियाधिक्य होनेसे धमनी के रक्त जैसा लोहित होता है।

शिराओंके वृत्तकी तुलनामें उनका प्राचीर अत्यन्त पतला है; अतएव अनुप्रस्थ भावमें काटनेसे वह मिल जाता है।

शिरा-प्राचीर प्रसारशील है, दृढ़ और धमनियोंकी तरह वह सहजमें छिन्न नहीं होता; साधारणतः सभी शिराएं तीन आवरणसे बनी हैं तथा शैरिक विधानके भिन्न भिन्न स्थानमें इस आवरणकी निर्माण-विभिन्नता देखी जाती है।

आभ्यन्तरिक आवरण या शिराका जो अंश रक्तस्रोतमें संलग्न रहता है, वह साधारण कोषझिल्ली (सेल-मेम्ब्रान्) द्वारा बना है। इस झिल्लीको एण्डोथिलियल कोष सभी धमनियोंके उक्त कोषोंसे छोटे और अपेक्षाकृत कम होते हैं; किन्तु उनके दोनों ओरकी साधारण संस्थानप्रणाली और बाह्यावयव प्रायः एक-से हैं। इस झिल्लीके बाहरी भागमें एक सूक्ष्म अस्पष्ट आवरण रहता है, जिसे इण्टरमिडियेट या मध्यवर्त्ती या व्यवधायक स्तर कहते हैं। यह फिर एक आभ्यन्तरिक स्थितिस्थापक परदेसे ढका रहता है। यह सभी धमनियोंके इस स्तरकी तरह परिवर्द्धित नहीं है।

मध्य-आवरण पेशीय शिरा और स्थितिस्थापक तन्तुका बना है। स्थितिस्थापक तन्तुओंका परिमाण अपेक्षाकृत अल्प है। इन स्थितिस्थापक तन्तुओंके साथ श्वेतवर्णका सौत्रिक (फाइब्रास) तन्तु प्रचुर परिमाणमें वर्त्तमान रहता है। इसी कारण शिराएं धमनीकी अपेक्षा दृढ़ और चापसहिष्णु

होती हैं। अधिकांश स्थलोंमें यह स्थितिस्थापक और पैशिकसूत्र सभी शिराओंको चक्राकारमें घिरे हुए हैं। फिर किसी किसी शिरामें पैशिक सूत्र बिलकुल दिखाई नहीं देता। इस कारण सभी शिराओंको दो भागोंमें विभक्त किया जाता है,—पैशिक और पेशीविहीन। पाया-मेटर और डयुरामेटरकी शिराएं, रेटिनाको शिराएं, इण्टार्नल और एक्सटर्नल जुगुलाकी शिराएं तथा गर्भवती स्त्रीके फूल, प्लासेण्टाके मातृ-अंशकी शिराएं पैशिक सूत्रविहीन हैं।

पैशिक शिराओंको चार श्रेणीमें विभक्त किया जाता है—१, जिन सब शिराओंके सूत्र लम्बभावमें रहते हैं; यथा,—गर्भावस्थाकी जरायुकी शिराएं। २, जिन सब शिराओंके पेशीय आवरणके भीतरी स्तरके सूत्र चक्राकारमें तथा वाह्यस्तरके सूत्र अनुलम्बभावमें रहते हैं, यथा,—भेना-कडार इन्फिरियर, भेना अजाईगस, पोर्टल, हिपैटिक, इण्टर्नल स्परमाटिक, रेन्याल और आकिसलारी शिराएं। ३, जो सब शिराएं एक आभ्यन्तरिक और वाह्य अनुलम्ब सूत्र द्वारा तथा मध्यस्तर मण्डलाकार पैशिक सूत्र द्वारा निर्मित हैं; यथा—क्रूरैल पोप्लिटियल शिराएं। ४ जिन सब सिराओंका पैशिक सूत्र मण्डलाकारमें श्रेणीबद्ध है, यथा—ऊद्दुर्ध्व और निम्न शाखाओंकी कोई कोई शिरा।

इनफिरियर भेनाकाभार थेरैसिक अंशमें या पेशीय आवरणविहीन शिराएं भालवस् या कपाट संयुक्त हैं, निम्नशाखाओंकी शिराओंमें इस कपाटकी संख्या सब से अधिक है। भाल्वस् या कपाट साधारणतः दो दो करके पत्र या खण्डयुक्त है। ये मिलानेवाली शिराके रन्ध्रके नीचे अवस्थित है। कपाटका प्रत्येक पत्र अर्द्ध-चन्द्राकार है, नुब्जप्रदेश रक्तस्रोतके प्रतिकूलमें अवस्थित है। शिराके जिस अंशमें भाल्व रहता है, वह अंश बहुत कुछ सिकुड़ा होता है तथा उसके ऊपर एक साइनस या प्रसारित स्थली वर्त्तमान रहती है। इस स्थली में भाल्वके पीछेकी ओर रक्त प्रवेश कर कपाटको बन्द कर देता है।

भाल्वका प्रत्येक पत्र सूक्ष्म सौत्रिक संयोजक तन्तुका बना है तथा शिराके अन्यान्य अंशोंमें जिस प्रकार सभी कोपोंसे आभ्यन्तरिक आवरण बना है, यह भी उसी प्रकार एण्डोथियाल कोपसे आवृत है।

निम्नलिखित शिराओंमें भाल्वस नहीं देखा जाता। सुपिरियर और इनफिरियर भेनाकाभा, पोर्टाल शिरा, हिपैटिकि, रेनाल और युटेराइन शिरा तथा भेरियन शिरा, पालमोनारी शिरा, करोटि और कशेरुका मध्यस्थ शिरैा-अस्थिरके कैन्सिलेरेड। कोपीय; तन्तुकी शिरा तथा आम्बेलिकल शिरा।

धमनियोंकी तरह सभी शिराएं भी छोटी छोटी रक्तप्रणाली द्वारा परिपोषित होती हैं और सिमपैथेटिक स्नायुविधानसे स्नायु पाती हैं।

शिराप्राचीर धमनीके प्राचीरसे पतला है। क्योंकि इसमें स्थितिस्थापक और पैशिक वस्तुका परिमाण बहुत कम है। गभीर शिराकी अपेक्षा वाह्य शिराओं तथा ऊद्दुर्ध्व शाखाकी अपेक्षा अधःशाखाकी शिराओंका प्राचीर स्थूल है। धमनियोंकी तरह शिराएं भी फुसफुसीय और सार्वाङ्गिक इन दो श्रेणियोंमें विभक्त है।

फुसफुसीय शिराओं द्वारा फुसफुससे रक्त हृत्पिण्डके वाम प्रकोष्ठमें चालित होता है। यह रक्त परिशोधित है। सार्वाङ्गिक कैशिका प्रणाली द्वारा चालित शैरिक रक्त हृत्पिण्डके दक्षिण प्रकोष्ठमें जाता है।

इसके सिवा मस्तकके भीतर तथा सर्वांगमें बहुत-सी छोटी छोटी शिराएं हैं। ड्योरा-मेटरके साइनसकी संख्या १५ हैं।

पालमोनरी शिराकी संख्या चार है। प्रत्येक फुसफुसमें दो दो करके शिराएं हैं। इन सब शिराओं द्वारा फुसफुसका शोधित रक्त हृत्पिण्डके वाम प्रकोष्ठमें लाया जाता है।

शिरा (हिं० पु०) भूरे रंगका एक पक्षी। इसका सिर किरमिजी रंगका तथा पूंछ सफेद होती है। इसकी लम्बाई १२ अंगुलके लगभग होती है। यह कुमायूं, काश्मीर और अफगानिस्तानमें होता है और भटवटैयाके बीज खाता है।

शिराकत (अ० स्त्री०) १ साझा, हिस्सेदारी। २ कार्यमें योग।

शिराकतनामा (फा० पु०) वह कागज जिस पर साझेकी शर्त्तें लिखी हों।

शिराग्रन्थि (सं० पु०) ग्रन्थिरोगविशेष । इसका लक्षण—बलवान्‌के साथ युद्ध या अतिरिक्त व्यायाम प्रयुक्त दुर्बल मनुष्यकी वायु कुपित हो कर सभी शिराओंको आकर्षण करती तथा उन्हें संकुचित, शोषित और संहत कर शीघ्र ही उन्नत अथच गोलाकार ग्रन्थि उत्पादन करती है, इसीको शिराग्रन्थि या शिराज ग्रन्थि कहते हैं। यह ग्रन्थि यदि वेदनायुक्त हो, तो कष्टसाध्य और यदि वेदना न रहे अथच स्थिर और वृहत् हो, तो वह असाध्य होती है। किन्तु मर्मस्थानमें शिराग्रन्थिके उत्पन्न होनेसे ही वह असाध्य हो जाती है । (भावप्र० ग्रन्थिरोगाधि०)

शिराग्रह (सं० पु०) एक प्रकारका वातरोग । इसमें वायु रुधिरके साथ मिल कर गलेकी नसोंको काला कर देती है।

शिराज (हिं० स्त्री०) हिन्दुओंकी एक जाति । यह चमड़ेका काम बहुत अच्छा करती है।

शिराजपिड़का (सं० स्त्री०) नेत्रशुक्लगत नेत्ररोग । चक्षुके शुक्लभागमें एक रोग होता है। इसका लक्षण—जिस नेत्ररोगमें कृष्णमण्डलके ऊपर शिरापरिवृत अथच श्वेतवर्ण पीड़का उत्पन्न होती है, उसे शिराजपिड़का कहते हैं। यह कृष्णमण्डलके पासवाली शिरासे उत्पन्न होती है। (भावप्र० नेत्ररोगाधि०)

शिराजाल (सं० पु०) १ छोटी रक्त नाड़ियोंका समूह । २ आँखका एक रोग । इसमें लाल डोरे मोटे और कड़े पड़ जाते हैं । (भावप्र० नेत्ररोगाधि०)

शिरापत्र (सं० पु०) शिरायुक्त पत्रं यस्य । १ हिन्ताल, एक प्रकारका खजूर । २ कपित्थ, कैथका पेड़ । ३ पीपलका पेड़।

शिरापीड़िक (सं० स्त्री०) आँखका एक रोग। इसमें पुतलीके पास एक फुंसी निकल आती है।

शिराप्रहर्ष (सं० पु०) सर्वगत चक्षुरोग, एक प्रकारका नेत्ररोग । शिरोत्पात रोगीकी यदि मोहवशतः उपयुक्तरूपसे चिकित्सा न की जाय, तो उसे शिराप्रहर्षरोग होता है। चक्षुका शिराजाल कभी वेदनायुक्त, कभी वेदनाहीन और कभी रक्तवर्ण, कभी विकृतवर्णविशिष्ट होनेसे उसको शिरोत्पात कहते हैं। इस नेत्रप्रहर्षरोगमें रोगीके नेत्र लाल हो जाते हैं और उनसे हमेशा पानी गिरता रहता है तथा दर्शनशक्ति घट जाती है।

शिराफल (सं० पु०) १ नारिकेल, नारियल । २ अञ्जीर ।

शिरामलक (सं० पु०) स्वनामख्यात वृक्षविशेष, शिर आँवलाका पेड़।

शिरामूल (सं० पु०) नाभि।

शिरामोक्ष (सं० पु०) रक्तमोक्षण, जोंक लगाना।

शिरायाम (सं० पु०) शिराकी प्रसरणवत् पीड़ा।

शिरायु (सं० पु०) भल्लूक, रीछ ।

शिराल (सं० क्ली०) शिराः सन्ति अस्य (प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्यां । पा ५।२।९६) इति लच् । १ कर्मरङ्ग, कमरख । (त्रि०) शिरायुक्त, शिराविशिष्ट ।

शिरालक (सं० पु०) शिराल इव कन्। १ अस्थिभङ्ग वृक्ष, एक प्रकारका पौधा जिसे हाड़ा भाँग कहते हैं। २ एक प्राचीन जातिका नाम। (त्रि०) ३ शिरायुक्त, बहुत नसों या नाड़ियोंवाला । (भट्टि २।३०)

शिरालपत्र (सं० पु०) तालवृक्षभेद, ताड़ पेड़के समान एक प्रकारका वृक्ष । इसके पत्ते पर अच्छी पोथी लिखी जाती है तथा ताड़के पत्तेसे अधिक दिन तक रहती है।

शिराला (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारका पौधा। २ कमरख।

शिराविका पीड़िका (सं० स्त्री०) प्रमेहपीड़िका, वह घातक फुंसी जो बहुमूत्रके रोगियोंको निकलती है।

शिरावृत्त (सं० क्ली०) सीसक, सीसा।

शिरावेध (सं० पु०) शोणित जन्य दुष्ट रोगोंमें शिराका वेधन, रक्तमोक्षण। दुष्ट शोणितके शरीरमें रहनेसे नाना प्रकारकी पीड़ा होती है, इस कारण शिरा विद्ध करके रक्तमोक्षण करना उचित है। सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें इसका विशेष विधान लिखा है। अति संक्षिप्त भावमें उसका विषय नीचे लिखा जाता है। चिकित्साशास्त्रमें अभिज्ञ वैद्यको चाहिये, कि वे कौन शिरा वेध्य और कौन अवेध्य है, उसकी अच्छी तरह परीक्षा कर शिरावेध करें। बड़ी सावधानीसे शिरावेध करना कर्त्तव्य है, नहीं तो इससे विविध प्रकारकी पीड़ा हो सकती है।

शिरावेधकी विधि और निषेध।—बालकका धातु असम्पूर्ण और वृद्धका धातु क्षीण होता है, अतएव इनका

शिरावेध करना अनुचित है। कफ और धातुक्षीण व्यक्तियोंके वायुरोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। भीरु व्यक्ति स्वभावतः क्रोधी होता है और रक्त देखनेसे मूर्च्छित हो सकता है। परिश्रमकातर व्यक्तियोंका अतिरिक्त रक्तमोक्षण हो कर शरीर विनष्ट हो सकता है, स्त्रीसंसर्गके कारण क्षीण और उन्मत्त लोगोंकी वायुका प्रकोप हो सकता है, मद्यपानमें मत्त लोगोंकी अधिक मूर्च्छा हो सकती है, इन सब कारणोंसे उक्त व्यक्तियोंका शिरावेध नहीं करना चाहिये। इसके सिवा जिन्होंने वन्ति अर्थात् वमि की है, विरिक्त या विरेचन द्वारा जिन का कोष्ठ परिष्कृत है, उनका शिरावेध करनेसे वायु विगड़ सकती है। धातुक्षय जन्य क्षीण अर्थात् जिनका धातुक्षय हुआ है, उनका तथा गर्भिणियोंका शरीर विनष्ट हो सकता है, अतएव इनका भी शिरावेध नहीं करना चाहिये। कास और यक्ष्मरोगी, जीर्ण ज्वरग्रस्त, आक्षेप और पक्षाघातरोगी, उपवासी, मूर्च्छित और पिपासित व्यक्तिका शिरावेध अकर्त्तव्य है।

विशेष विधि—पहले कहा जा चुका है, कि बालक और वृद्ध आदिका शिरावेध करना उचित नहीं। किन्तु विषोपसर्गमें अर्थात् जिनके सर्पादिके दंशनके कारण शरीरमें विष घुस गया है, उनका प्राणनाश अवश्य होता है, अतएव उक्त निषेध रहने पर भी इनका शिरावेध कर्त्तव्य है। पहले वेध्य और अवेध्य शिरा स्थिर करके शिरावेध करना होता है।

अवेध्य शिरा—हाथ और पैर प्रत्येकमें एक एक सौ शिराएं हैं। इनमेंसे जालधरा शिरा एक, उर्वी नामक मर्म स्थानकी दो, लोहिताक्ष नामक मर्मस्थानकी एक, इस प्रकार हाथ और पदकी १६ शिराएं विद्ध नहीं करनी चाहिये।

पृष्ठ, उदर और वक्षस्थलकी ३२ शिराएं विद्ध नहीं करनी चाहिये। वहां विटप और कटीक तरुण नामके दो मर्ममें ८ है। प्रत्येक पादमें जो आठ आठ करके शिराएं हैं उनमें ऊद्‌र्ध्वगामिनी दो, पार्श्वसन्धि दो, मेरुदण्डके दोनों पार्श्वमें २४ शिराएं हैं, उनमें ऊद्‌र्ध्व-गामिनी वृहती नामक शिरा ४; उदरकी २४ शिराओंमें-से लिङ्गदेशमें रोमराजिके दो पार्श्वोंमें दो दो करके ४ हैं। वक्षमें जो ४० शिराएं हैं, उनमेंसे हृदयदेशमें दो दो करके ४, स्तनरोहित, अपलाप और अपस्तम्भ नामक मर्मके दो दो कर ६, इस प्रकार पृष्ठ, उदर और वक्षःस्थल-की कुल ३२ शिराएं विद्ध नहीं करनी चाहिये।

स्कन्धसन्धि—स्कन्धसन्धिके ऊद्‌र्ध्वदेशमें जो १६४ शिराएं हैं, उनमें ग्रीवा देशकी ५६ शिराओंके मध्य कण्ठनालीके दोनों ओरकी शिरा मातृका ८, नीला २, मन्या २, कृकाटिका मर्ममें २ तथा विधुरमर्ममें २ कुल १६ शिराओंको विद्ध करना अनुचित है। हनुद्वय-के दोनों पार्श्वमें जो आठ आठ करके शिराएं हैं, उनमें से दो दो करके ४ शिराएं विद्ध नहीं करनी चाहिये। जिह्वादेशमें ३६ शिराएं हैं जिनमेंसे जिह्वाकी अधोभागस्थ १६ शिराओंमें रसवाहिनी २ और वाग्वाहिनी २ शिराओंको विद्ध करना उचित नहीं। नासिकामें २४ शिराएं हैं, इनमेंसे नासिकाके पास जो चार और तालु-देशमें जो एक शिरा है, वह अवेध्य है। चक्षुमें ३८ शिराएं हैं जिनमेंसे अपाङ्गकी दो शिराओंको विद्ध करना उचित नहीं। दोनों कानमें १० शिराएं हैं। उनमेंसे शब्दवाहिनी एक एक शिरा अवेध्य है। नासा-देशमें २४, दोनों नेत्रमें ३६ और ललाटदेशमें कुल मिला कर ६० शिराएं हैं। इसमेंसे आवर्त्त नामक मर्मके पासवाली ४ शिराएं विद्ध नहीं करनी चाहिये। आवर्त्त नामक मर्मगत एक एक, स्थपनी नामक मर्मस्थित एक और शङ्ख देशस्थ १० शिराओंमें शङ्ख सन्धिगत एक एक शिरा अवेध्य है। मूर्द्ध देशमें जो १२ शिराएं हैं, उनमेंसे उत्क्षेप नामक मर्मगत दो, प्रत्येक सीमान्तकी एक एक तथा अधिपति मर्मकी एक शिरा अवेध्य है।

अज्ञ चिकित्सक ये सब अवेध्य शिराएं यदि विद्ध करे, तो नाना प्रकारकी पीड़ा तथा मृत्यु तक भी हो सकती है। अतएव अच्छी तरह सोच-विचार कर बड़ी धीरतासे विद्ध करना उचित है। जो सब शिराएं अवेध्य हैं अथवा जो वेध्य होने पर भी अयन्त्रित हैं अर्थात् यन्त्र द्वारा जो बन्धन नहीं की जाती तथा यन्त्रबद्ध होने पर भी जो उसे भेद नहीं कर सकता, वैसी शिराएं भी विद्ध नहीं करनी चाहिये।

अति शीत और गरम कालमें अथवा प्रबल वायुके

बहते समय यदि आकाश मेघाच्छन्न हो जाय, तो शिरा विद्ध नहीं करनी चाहिये। वर्षाके समय मेघशून्य कालमें, ग्रीष्मके समय शीतल कालमें और हेमन्तके समय मध्याह्नकालमें शिराविद्ध करनी होती है।

शिराविद्ध करनेमें रोगीको यन्त्रित कर शिरावेध करना होता है। यन्त्रित करनेका उपाय यह है, कि जब शिरा विद्ध की जाती है, तब रोगीको अरत्नि अर्थात् कनिष्ठाङ्गुलके अग्रभाग पर्यन्त एक हाथ ऊंचे आसन पर सूर्यकी ओर मुंह करके बैठाना होता है। उस समय *रोगीके दोनों उरु आकुंचित रहने चाहिये, दोनों जानु*-सन्धिके ऊपरी भाग पर दो कुहनी रखनी होगी तथा दोनों हाथकी उंगलियोंको मुष्टिबद्ध कर गलेके दोनों पार्श्वमें रखना होगा। एक बन्धन रज्जुके दोनों ओर को गलदेशको उन दोनों मुष्टिके ऊपरसे पीछेकी ओर फेंक देना होगा। एक दूसरा आदमी रोगीके पीछे बैठ कर अपने बाएं हाथसे उत्तान भावमें उन दोनों रस्सोंके छोरको पकड़े रहे तथा दाहिने हाथसे उस वेध्य शिराका पीड़न और पृष्ठदेश मर्दन करे। वेध्य शिरा पीड़न करनेसे वह स्पष्ट प्रकाशित हो जाती है तथा पृष्ठदेश मर्दन करनेसे शोणित सम्यक्‌रूपसे निकलता है। उस समय रोगी अपना मुंह वायुसे पूर्ण कर रखे। जब तक शिरावेध कार्य्य सम्पन्न नहीं होता, तब तक श्वास प्रश्वास त्याग करना उचित नहीं। जिन सब शिराओंका मुख शरीरके भीतरकी ओर है, उन सब शिराओंको छोड़ मस्तककी शिराएं विद्ध करनेमें रोगीको उक्त रूपसे यन्त्रित करना उचित है।

पैरकी शिरा विद्ध करनेमें जिस पैरकी शिरा विद्ध करनी होगी, उस पैरको समतल स्थानमें स्थिर भावसे और दूसरा पैर कुछ झुका कर रखना होगा। पीछे वेध्य पादके घुटनेके नीचे रस्सी बांध कर हाथसे उस पैरकी उंङ्गियोंको पीड़न करना होगा तथा वेध्य स्थानसे ४ उंगली ऊपर पूर्वोक्त वस्त्र-वल्कलादिमेंसे किसी एकको भेद कर वह शिरा विद्ध करे।

हाथके ऊपर भागकी शिरा विद्ध करनेमें दोनों हाथको बांध कर रोगीको स्वच्छन्दभावसे पूर्वोक्त रूपसे आसन पर बैठावे तथा चिकित्सक उसकी कूर्पर सन्धिके नीचे और प्रकोष्ठको पूर्ववर्णित प्रक्रियासे बांध कर उसकी शिरा विद्ध करे।

गृध्रसी और विश्वाची नामकी वातव्याधिमें घुटना टेक कर श्रोणी, पृष्ठ और स्कन्ध देशकी शिरा विद्ध करनेमें पृष्ठ देशको उन्नत और आयत तथा मुखको अवनत कर शिरा विद्ध करनी होती है। हृदय और वक्षस्थलकी शिरा विद्ध करनेमें वक्षस्थल विस्तारित, मस्तक उन्नत और शरीर संकुचित कर बैठना होता है। दोनों पार्श्वकी शिरा विद्ध करनेमें रोगी दोनों हाथके ऊपर बल दे कर *अवस्थान करे। मेढ्रदेशकी शिरा विद्ध करनेमें मेढ्रको* झुका कर रखना होगा। जिह्वाके अधोदेशकी शिरा विद्ध करनेमें जिह्वाके अग्रभागको ऊपर उठा कर ऊपरवाले दांतोंसे दाब कर पकड़ना होगा। तालुदेश या दन्तमूलकी शिरा विद्ध करनेमें मुखको बाये रखना होता है।

शिरावेध करनेसे यदि मुहूर्त्तकाल रक्तस्राव हो कर रक्त बन्द हो जाय, तो उसे सुविद्ध हुआ जानना चाहिये। कुसुमफूल पीड़न करनेमें पहले जिस प्रकार पीतवर्ण स्राव निकलता है, उसी प्रकार शिराविद्ध करनेसे दूषित रक्त सबसे पहले निकलता है।

मूर्च्छित, अत्यन्त भीत, श्रान्त और तृषित इन सब व्यक्तियोंकी शिरा विद्ध करनेसे उससे अच्छी तरह रक्त नहीं निकलता तथा जो शिरा बन्धन करने पर भी देहके ऊपरी भाग पर दिखाई नहीं देता, उस शिरासे भी शोणित उपयुक्त परिमाणमें नहीं निकलता। शिरावेध सम्यक्‌रूपसे नहीं होने पर उसे फिर विद्ध करना उचित है। क्षीण, बहुदोषविशिष्ट और मूर्च्छित व्यक्तिकी शिरा जिस दिन पहले विद्ध की जाती है, उसी दिन अपराह्नकालमें अथवा तीसरे दिन फिरसे विद्ध करना उचित है।

शिरावेध करके दूषित सभी रक्तको निकाल देना उचित नहीं, क्योंकि अधिक रक्तस्राव होनेसे अनिष्ट होनेकी सम्भावना है। अतएव अवशिष्ट जो दूषित रक्त रहेगा, संशमन औषधका प्रयोग कर उसका शोधन करना आवश्यक है।

अनेक दोषोंसे ग्रस्त पूर्ण वयस्कका शोणित स्राव

करनेमें ऊद्धर्वमात्रामें एक प्रस्थ रक्त मोक्षण किया जा सकता है। उससे अधिक रक्तस्राव होने पर अनिष्टकी सम्भावना है।

शिरावेधके वीस प्रकारके दोष कहे गये हैं, यथा—१ दुर्विद्ध, २ अतिविद्ध, ३ कुंचित, ४ पिच्छित, ५ कुट्टित, ६ अपस्रुत, ७ अत्युदीर्ण, ८ अन्तमें अभिहत, ९ परिशुष्क, १० कुणित, ११ वेपित, १२ अनुत्थितविद्ध, १३ शस्त्रहत, १४ तिर्यग्विद्ध, १५ अविद्ध, १६ अव्याध्य, १७ विद्रुत, १८ धेनुक, १९ पुनःपुनर्विद्ध, २० शिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि और मर्मस्थलमें विद्ध। ये २० प्रकारके शिरावेध दूषणीय हैं। इनका लक्षण—

१—सूक्ष्म अस्त्र द्वारा शिरावेध करनेसे यदि रक्त अधिक परिमाणमें न निकले तथा वेदना और शोथ हो, तो उसे दुर्विद्ध कहते हैं।

२, ३—उपर्युक्त परिमाणसे अधिक विद्ध होने पर यदि रक्त देहके भीतर घुस जाय अथवा अधिक परिमाणमें रक्त निकले, तो उसे अतिविद्ध और कुञ्चित कहते हैं।

४—कुण्ठ शस्त्र (हथियार) द्वारा विद्ध करनेसे यदि वह स्थान अच्छी तरह विद्ध न हो सके और फूल जाय, तो वह पिच्छित कहलाता है।

५—शस्त्रके अग्रभाग द्वारा अत्यन्त गभीर भावमें पुनः पुनः विद्ध करनेसे उसको कुट्टित कहते हैं।

६—शीत, भय और मूर्च्छा आदि कारणोंसे शोणित स्राव नहीं होने पर उसको अपस्रुत कहते हैं।

७—तीक्ष्ण और वृहत् मुखविशिष्ट अस्त्र द्वारा पेशी विद्ध होने पर वह अभ्युदीर्ण नामसे पुकारा जाता है।

८—अल्प परिमाणमें रक्त निकलनेसे वह अविद्ध है।

९—अल्परक्तविशिष्ट व्यक्तिका विद्धस्थान वायुपूर्ण होनेसे वह परिशुष्क है।

१०—अल्प रक्त निकल कर विद्ध स्थान चार भागोंमें विच्छिन्न होनेसे उसे कुट्टित कहते हैं।

११, १२—अनुपयुक्त स्थलमें शिराबन्धन करनेसे कम्पन होता है तथा उसके कारण स्राव नहीं निकलता, ऐसी हालतमें शिरावेध होनेसे उसको वेपित और अनुत्थितविद्ध कहते हैं।

१३—शिरा छिन्न हो कर अतिरिक्त रक्त स्रावके कारण गमनादि शक्तिलोप होनेसे उसको शस्त्रहत कहते हैं।

१४—जहां तिर्यक् भावमें विद्ध करनेसे अस्त्रक्रिया अच्छी तरह सिद्ध नहीं होती, वहां उसे तिर्यक् विद्ध कहेंगे।

१५—असावधानीसे शस्त्र द्वारा वार वार विद्ध होनेसे उसका नाम अपविद्ध है।

१६—अस्त्र द्वारा छेदने लायक न होनेसे उसको अव्याध्य कहते हैं।

१७—अनवस्थित भावसे अर्थात् अत्यन्त शीघ्रतासे विद्ध करने पर वह विद्रुत कहलाता है।

१८—वेध्यस्थान अनेक वार अवघट्टित अर्थात् रगड़ कर वार वार शस्त्रपात करने तथा उससे अधिक परिमाणमें शोणित निकलने पर उसे धेनुका कहते हैं।

१९—सूक्ष्म अस्त्र द्वारा अनेक वार विद्ध करनेसे विद्धस्थानमें वहुत से छेद हो जाते हैं, इसीको पुनः पुनः विद्ध कहते हैं।

२०—स्नायु, अस्थि, शिरा, संधि और मर्मस्थलके विद्ध होनेसे उत्कट वेदना, शोथ, अङ्गवैकल्य, अथवा मृत्यु हो सकती है।

ऐसे २० प्रकारके शिरावेधोंको दूषणीय कहा गया है। शिराएं चञ्चल होती हैं। ये मछलीकी तरह हमेशा परिवर्त्तित होती है। इस कारण शिराके सम्बन्धमें जब तक विशेष अभिज्ञता लाभ न हो लेगी, तब तक शिरावेध करना उचित नहीं।

शिरा विद्ध करनेसे व्याधि जितनी जल्द प्रशमित होती है, स्नेह और लेपनादि द्वारा उतना जल्द फल प्राप्त नहीं होता। चिकित्साशास्त्रमें शल्यतन्त्रके मध्य शिरावेध ही सर्वप्रधान है।

रोग विशेषमें भिन्न भिन्न स्थानमें शिरावेध करना होता है। उसका विषय इस प्रकार लिखा है, पाददाह, पादहर्ष, अववाहक, विसर्प, वातरक्त, वातकण्टक, विचर्चिका और पाददारी आदि रोगोंमें क्षिप्र नामक मर्मके ऊपर दो उंगलीके अन्तर पर व्रीहिमुख नामक अस्त्र द्वारा शिरा विद्ध करे। क्रोष्टुकशीर्ष, खञ्ज और पंगु इन तीन

प्रकारकी वातव्याधिमें गुल्फदेशसे ४ उंगली ऊपर जङ्घाकी शिर विद्ध करनी होती है। अपची रोगमें इन्द्रवस्तिसे से दो उंगली नीचे शिर विद्ध करनी होती है। गल रोगमें ऊरु मूलकी शिरा विद्ध करना आवश्यक है।

प्लीहारोगमें वाम बाहुकी कूर्पर सन्धिके भीतर अथवा कनिष्ठा और अनामिकाके मध्यस्थलमें शिरा विद्ध करनी होती हैं। यकृत्, कफोदर, श्वास और कासरोग में दक्षिण बाहुको कर्पूर सन्धिके अभ्यन्तर अथवा कनिष्ठा और अनामिका उंगलीके मध्यभागमें शिराको विद्ध करना उचित है। विश्वाची नामक वातव्याधिरोगमें जानुसन्धिसे चार उंगली ऊपर अथवा चार उंगली नीचे शिरावेध करे।

शूलयुक्त आमाशय रोगमें कटिदेशके सभी स्थानोंमें दो उंगलीके बीचमें शिरा विद्ध करे। परिकर्त्तिका अर्थात् कर्त्तनवत् वेदनायुक्त उपदंश, शूकदोष और शुक्रपीड़ामें मेढ्रके मध्य शिरा विद्ध करे। मूत्रवृद्धिरोगमें अण्डकोशके दोनों पार्श्वमें, जलोदरी रोगमें नाभिके नीचे, सेवनीके वामपार्श्वमें चार उंगलीके फासले पर शिरावेध करना होता है। उन्माद और अपस्मार, अन्तर्विद्रधि और पार्श्वशूल पीड़ा बाईं ओर, कक्ष और बाईं ओरके स्तनमें शिराविद्ध करे। किसी किसी पण्डितके मतसे बाहु शोष और अववाहुक रोगमें स्कन्दके मध्यदेशमें शिराविद्ध करना उचित है।

तृतीयक विषमज्वरमें त्रिकसन्धिकी मध्यगत शिरा, चातुर्थक-ज्वरमें किसी एक पार्श्वकी स्कन्ध सन्धिकी अधोगत शिरा, उन्माद और अपस्मार रोगमें वक्ष, ललाट और अपाङ्ग देशमें शङ्ख तथा केशान्त सन्धिगत शिरा, किन्तु केवल अपस्मार रोगमें हनुसन्धिकी मध्यगत शिरा विद्ध करे। जिह्वा और दन्तरोगमें तालुदेशमें तथा कर्णशूल और अन्यान्य कर्णरोगोंमें दोनों कानोंके ऊपर चारों ओर शिरा विद्ध करनी होती है। घ्राणशक्तिका अभाव होने पर अथवा अन्य किसी प्रकारके नासारोगमें नासिकाकी अग्रभागस्थ शिरा विद्ध करना आवश्यक है। तिमिर, अक्षिपक्ष्मादि चक्षुरोगमें, शिरोरोगमें और अधिमन्थादि व्याधिमें उपनासिक देशमें अर्थात् नासिकाके समीप ललाट और अपाङ्गदेशमें शिरा विद्ध करनी होती है।

उक्त रोगोंमें निर्दिष्ट स्थलमें उपयुक्त प्रकारसे शिरावेध करने पर व्याधि अति शीघ्र प्रशमित होती है। इस लिये सुविज्ञ वैद्यको चाहिये, कि वे व्याधि और स्थानका निरूपण कर सम्यक् रूपसे शिरावेध करें। मांसलस्थान यदि शिरावेध करना हो, तो अस्त्रका मुख एक जौके परिमाणमें उसमें प्रविष्ट कराना होगा। किन्तु अन्य स्थानमें जहां अधिक मांस नहीं है, वहां आध जौ तक प्रविष्ट करानेसे ही यथेष्ट होगा। इसमें व्रीहिमुख अस्त्र द्वारा एक व्रीहि (धान्य परिमाण) अस्त्र घुसानेसे ही काम चल जायेगा। अस्थिके ऊपर शिराविद्ध करनेमें कुठारिका अस्त्र द्वारा आध जौ भर शिरा विद्ध करनी होती है।

जो सब द्रव्य प्रधान आहार्य्य हैं तथा जिनसे शरीरके दोष दूर होते हैं, स्निग्ध और स्विन्न रोगीको वह पान करा कर चिकित्सक उसे अपने पास बैठावें और जो शिरा विद्ध करनी होगी उसे वस्त्र, पाट, चमड़ेकी वद्धी, वृक्षकी छाल या लता द्वारा स्थानविशेषमें अल्प शक्त या अल्प शिथिलरूपमें बंधन कर व्रीहिमुख आदि अस्त्र द्वारा शिरा विद्ध करनी होगी।

जिनकी शिरा वेध की गई है, वे जब तक पूरा बल न पावें, तब तक क्रोध, मैथुन, परिश्रम, दिवानिद्रा, अधिक बोलना, गाड़ी पर चढ़ना या बैठना, भ्रमण, शैत्य, रौद्र या वायुसेवन तथा विरुद्ध, असात्म्य और अजीर्णकर द्रव्य भोजन उनके लिये विशेष निषिद्ध है। किसी पण्डितके मतसे एक मास तक इन सब नियमोंका पालन करना उचित है। (सुश्रुत शारीरस्थान)

शिराहर्ष (सं० पु०) १ नसोंका झनझनाना। २ आँखका एक रोग। इसमें आंख तांबेके समान लाल हो जाती है और दिखाई नहीं पड़ता।

शिरि (सं० पु०) शृणात्यनेन (कॄ गॄ शॄ पॄ कुटि-भिदि-छिदिभ्यश्च। उण् ४।१४३) इति इ, सच किन्। १ खड्ग, तलवार। २ शर। ३ शलभ, पतिंगा। ४ टिड्डा।

शिरिणा (सं० स्त्री०) रात्रि। रातमें सभी प्राणी शीर्ण हो जाते हैं, इसलिये रात्रिको शिरिणा कहते हैं।

शिरिम्बिठ (सं० पु०) १ मेघ, बादल। २ भरद्वाजके पुत्र।

शिरियारी (हिं० स्त्री०) एक जंगली बूटो या शाक जो औषधमें काम आता है, सुसना। यह हर जगहमें होता है। इसमें चंगेरीके समान एक साथ चार चार पत्ते होते हैं जो एक अंगुल चौड़े और नोकदार होते हैं। पत्तोंके बीचमें कली लगती है। फलोंमें दो चिपटे बीज होते हैं जो कुछ रोईंदार होते हैं। ये बीज सूजाकमें दिये जाते हैं। शिरियारी पंजाब और सिन्धमें अधिक होती है। वैद्यकमें यह कसैली, रूखी, शीतल, हलकी, स्वादिष्ट, शुक्रजनक, रुचिकारी, मेधाजनक और त्रिदोषनाशक कही गई है। इसका साग भी लोग खाते हैं।

शिरीष (सं० पु०) शृणाति झटिति म्लायतीति शृ (शृपृभ्यां किच। उण् ४।२७) इति ईषन्, स च कित्। स्वनामख्यात वृक्ष, सिरिसका पेड़। (*Albizzia lebbec syn. Acacia lebbec*) तैलङ्ग—दिरसन। संस्कृत पर्याय—कपीतन, भण्डिल, मण्डिर, भण्डीर, भण्डील, मृदुपुष्प, शुकतरु, विषनाशन, शीतपुष्प, भण्डिक, स्वर्णपुष्पक, उद्दालक, शुकतरु, लोमशपुष्पक, कपीतक, कलिङ्ग, श्यामल, शङ्खिनीफल, मधुपुष्प, वृत्तपुष्प, भण्डी, प्लवग, शुकपुष्प। अन्य पुस्तकमें 'शिखिनीफल' पर्याय भी देखा जाता है। इसका गुण—कटु, शीतल, विष, वात, पामा, अस्र, कुष्ठ, कण्डुति और त्वग्दोषनाशक। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे गुण—मधुर, अनुष्ण, तिक्त, तुवर, लघु, शोथ, विसर्प, काश और व्रणनाशक। (भावप्र०) कृष्णक शिरीषका पर्याय—कटभी, किणिही, श्वेता, महाश्वेता और रोहिणी। इसका गुण—विष, विसर्प, स्वेद, त्वग्दोष और शोथनाशक।

शिरीषक (सं० पु०) १ सिरिसका पेड़। २ एक नागका नाम। (भारत उद्योगपर्व)

शिरीषपत्रा (सं० स्त्री०) श्वेतकटभी वृक्ष, सफेद कटभीका पौधा।

शिरीषपत्रिका (सं० स्त्री०) शिरीषस्य पत्रमिव पत्रमस्याः, ततः स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। श्वेतकिणिही, सफेद कटभीका पौधा।

शिरीषिन् (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

शिरुआरी (हिं० स्त्री०) शिरियारी देखो।

शिरोगद (सं० पु०) शिरसो गदः पीड़ा। शिरःपीड़ा, सिरमें दर्द।

शिरोगुहा (सं० स्त्री०) शरीरके तीन घटों या कोठोंमेंसे एक जिसमें मस्तिष्क और सुषुम्ना नाड़ीका सिरा रहता है, सिरके भीतरका भाग।

शिरोगृह (सं० क्ली०) शिरसो गृहं। अट्टालिका, कोठा।

शिरोगेह (सं० क्ली०) अट्टालिका, कोठा।

शिरोगौरव (सं० क्ली०) शिरसो गौरवं। मस्तकका गुरुता, सिरका भारीपन।

शिरोग्रह (सं० पु०) वातव्याधिरोग विशेष, सिरका एक वातरोग, समल बाई।

दूषित वायु रक्तको आश्रय कर शिराओंको ऊद्ध्वर्धरा कर डालती है, उस समय ये सब शिराएं रुक्ष, कृष्णवर्ण और वेदनायुक्त हो कर असाध्य शिराग्रहरोग उत्पादन करती हैं। यह रोग होनेसे शिरागत वायुकी जिससे क्रिया हो, उसका विधान करना उचित है। दशमूली कषाय, मातुलुङ्ग रस, शीतल तैल द्वारा अभ्यङ्ग या शिरोवस्ति प्रयोग भी उपकारक है।

शिरोग्रीव (सं० क्ली०) शिरश्च ग्रीवाच द्वयो समाहारः, समाहारत्वात् क्लीवत्वं। मस्तक और ग्रीवा इन दोनोंका समाहार।

शिरोघात (सं० पु०) शिरसो घातः। मस्तकका आघात।

शिरोज (सं० क्ली०) शिरसि जायते जन-ड। शिरोरुह, केश, बाल।

शिरोजानु (सं० क्ली०) शिर और जानु।

शिरोज्वर (सं० पु०) शिरःपीड़ा, सिरका दर्द।

शिरोत्पात (सं० पु०) चक्षुरोगविशेष, आँखका एक रोग। इसका लक्षण—चक्षुका शिराजाल कभी वेदनायुक्त, कभी वेदनाहीन तथा कभी रक्तवर्ण या विकृतवर्ण हो जानेसे वह शिरोत्पात कहलाता है। (माधवनि०)

शिरोदामन् (सं० क्ली०) शिरसो दाम। मस्तकको माला, पगड़ी, साफा।

शिरोदुःख (सं० क्ली०) शिरसो दुःखं। शिरःपीड़ा, सिर दर्द होना।

शिरोधरा (सं० स्त्री०) शिरसो धरा। ग्रीवा, गरदन। इस शब्दका क्लीवलिङ्गमें प्रयोग होता है।

शिरोधाम (सं० पु०) चारपाईका सिरहाना।

शिरोधार्य (सं० त्रि०) आदरपूर्वक माननेयोग्य, सिर पर धरने योग्य।

शिरोधि (सं० स्त्री०) शिरो धीयतेऽनया धा (कर्मण्यधिकरणे च। पा ३।३।९३) इति कि। ग्रीवा, गरदन।

शिरोधिना (सं० स्त्री०) शिरा, नस, नाड़ी।

शिरोधूनन (सं० क्ली०) शिरसो धूननं। शिरःकम्पन, मस्तकस्पन्दन।

शिरोध्र (सं० पु०) शिरोधि, ग्रीवा, गरदन।

शिरोपाव (हिं० पु०) सिरोपाव देखो।

शिरोभाग (सं० पु०) शिरसो भागः। १ मस्तकभाग। २ अग्रभाग।

शिरोऽभिताप (सं० पु०) शिरोरोग, सिरका दर्द।

शिरोऽभ्यङ्ग (सं० पु०) शिरसोऽभ्यङ्गः। मस्तकाभ्यङ्ग, सिरमें तेल लगाना।

अष्टमी, षष्ठी, नवमी, चतुर्दशी तथा पर्व सन्धिमें शिरोऽभ्यङ्ग नहीं करना चाहिये। सिरमें तेल लगानेके बाद निम्न अंगमें तेल लगाना मना है।

शिरोभूषण (सं० क्ली०) शिरसो भूषणं। १ सिर पर पहननेका गहना। जैसे,—सीस फूल। २ मुकुट। ३ शिरोमणि, श्रेष्ठ व्यक्ति।

शिरोमणि (सं० पु० स्त्री०) शिरसो मणिः। १ मस्तकधार्य रत्न, सिर परका रत्न। पर्याय—चूड़ामणि, शिरोरत्न। २ पण्डितोंकी एक उपाधि। जो न्यायशास्त्रमें विशेष पाण्डित्य लाभ करते हैं, उन्हें यह उपाधि मलती है। ३ मालामें सुमेरु।

शिरोमर्मन् (सं० पु०) शिर एव मर्म जीवाधारं यस्य। शूकर, सूअर।

शिरोमात्रावशेष (सं० त्रि०) शिरोमात्रः अवशेषो यस्य। १ मस्तकमात्र अवशेषविशिष्ट। (पु०) २ राहुग्रह।

शिरोमालिन् (सं० पु०) मुण्डकी माला धारण करनेवाले, शिव, महादेव।

शिरोमौलि (सं० पुं०) १ सिरका रत्न। २ श्रेष्ठ व्यक्ति।

शिरोरक्षिन् (सं० पु०) सदा राजाके साथ रहनेवाला रक्षक, बाडी गार्ड।

शिरोरत्न (सं० क्ली०) शिरसो रत्नं। शिरोमणि।

शिरोरुज् (सं० स्त्री०) शिरसो रुक्। शिरःपीड़ा, सिरका दर्द।

शिरोरुजा (सं० स्त्री०) शिरसि रुजतीति रुज-क-टाप्। १ सप्तपर्ण वृक्ष, सतिवन। २ मस्तकरोग, सिरकी वेदना।

शिरोरुह् (सं० पु०) शिरसि रोहतीति रुह क्विप्। सिरके ऊपरके बाल, केश।

शिरोरुह (सं० पु०) शिरसि रोहतीति रुह-क। सिरके ऊपरके बाल, केश। (भागवत ४।२८।४४)

शिरोरोग (सं० पु०) शिरोरोगः। शिरःपीड़ा, सिरका दर्द। धूम, आतप, तुषार, जलक्रीड़ा, अतिनिद्रा या अति जागरण, उत्स्वेदादि पुरोवायु सेवन, वाष्पनिग्रह, रोदन, अधिक जलपान और मद्यपान, कृमि और वेगधारण, बहुत देर तक नीचे दृष्टि रखना, दुष्ट गन्धका आघ्राण और अतिशय कथन इत्यादि कारणोंसे वायु कुपित हो कर मस्तककी शिरामें घुस जाती है और पीड़ा उत्पादन करती है, उस समय सिर बहुत दर्द करने लगता है. मस्तकस्थित शङ्खदेश और कन्धेमें पीड़ा होती है। भ्रू मध्य और ललाटदेश ऐसा मालूम होता है मानो दर्दके मारे गिर रहा हो, कानसे स्पष्ट सुनाई नहीं देता, चक्षुद्वय आकर्षण करने लगता और मस्तक ऐसा मालूम होता है मानो सन्धिदेशसे गिर रहा हो तथा सभी शिराएं स्फुरित होती। इत्यादि प्रकारकी कष्टदायक व्याधिको शिरोरोग कहते हैं मस्तकमें शूलवत् वेदनाके साथ जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे भी शिरोरोग कहलाते हैं।

माधवनिदानमें इसकी संख्या और लक्षणादिका विषय इस प्रकार लिखा है,—शिरोरोग ग्यारह प्रकारका है, वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, रक्तज, क्षयज, कृमिज, सूर्यावर्त्त, अनन्तवात, शङ्खक और अर्द्धावभेदक।

चरकसंहितामें अग्निवेशने आत्रेयसे इस प्रकार कहा है,—मलमूत्रादिका वेगधारण, दिवानिद्रा, रात्रिजागरण, मत्तताजनक द्रव्यसेवन, उच्चभाषण, शिशिर, पूर्ववायु, अति मैथुन, असात्म्यगन्धघ्राण, धूलि, धूम, वायु, आतप और गुरुपाक द्रव्य भोजन, अम्लभोजन, आर्द्रकादि भोजन, अति शीतल जलसेवन, मस्तकमें अभिघात, दुष्ट आम, रोदन, अश्रुवेग धारण, मेघागम, मनस्ताप और देश तथा

कालका विपरीत भाव, इन सब कारणोंसे मस्तकस्थ वातादिदोष मस्तकके रक्तको दूषित कर मस्तकमें विविध लक्षणान्वित रोग उत्पादन करते हैं। यह पांच प्रकारका है; यथा—

वातज शिरोरोगनिदान—उच्च भाषण, अतिभाषण, तीक्ष्ण मद्यपान, रात्रिजागरण, शीतल वायुसेवन, व्यायाम, मलमूत्रादिका वेगधारण, उपवास, मस्तकमें अभिघात, अति विरेचन, अतिवमन, रोदन, शोक, भय, त्रास तथा भारवहन और पथगमनके कारण क्लेश, इन सब कारणोंसे वायु कुपित हो कर शिरोगत धमनियोंमें घुसती और मस्तकमें शूल उत्पादन करती है। उस समय शङ्खदेश में सूई चुभने-सी वेदना होती है, कंधा कटा जाता है, दोनों भ्रू का मध्यभाग और ललाटदेश अत्यन्त वेदनान्वित और तापयुक्त होता है। दोनों कानमें हमेशा भन भन शब्द हुआ करता है और दोनों नेत्र ऐसे मालूम होते हैं मानो कोई उन्हें पकड़ कर बाहर खींच रहा हो तथा समूचा मस्तक घूमने लगता है। सभी शिराएं दप् दप् करती हैं और शिरोधरा ग्रीवा स्तम्भित होती है। ये सब लक्षण दिखाई देनेसे उसे वातज शिरोरोग कहते हैं। स्निग्ध और उष्ण द्रव्यके सेवनसे यह प्रशमित होता है।

पित्तज शिरोरोग—कटु, अम्ल, लवण, क्षार, मद्य, क्रोध, सूर्यातप और अग्निसन्ताप इन सब कारणोंसे पित्त कुपित हो कर मस्तकमें शिरोरोग उत्पादन करता है। इस रोगमें मस्तकमें दाह और सूई चुभने-सी वेदना होती है, रोगी शैत्यकी आकांक्षा करता है, दोनों नेत्रमें जलन होती है, रोगीको प्यास बहुत लगती, उसका शरीर घूमता रहता और पसीना बहुत निकलता है।

कफज शिरोरोग—निरन्तर उपवेशनप्रियता, निद्रालुता, गुरुस्निग्धभोजन और अति भोजन इन सब कारणोंसे कफ दुष्ट हो कर मस्तकमें शिरोरोग पैदा करता है। इस शिरोरोगमें मस्तक मन्द मन्द वेदनान्वित, स्पर्शशक्तिहीन और भाराक्रांत होता है। इसमें तन्द्रीरोग, आलस्य और अरुचि होती है।

त्रिदोषज शिरोरोग—त्रिदोषज शिरोरोगमें वातादि त्रिदोषके ही लक्षण दिखाई देते हैं। वातप्रकोपके कारण शूलवत् वेदना, घूर्णन, कम्प, पित्त प्रकोपके कारण दाह, मत्तता और तृष्णा, कफप्रकोपके कारण मस्तककी गुरुता और तंद्रा होती है।

कृमिज शिरोरोग—प्रबल वातादि अनेक दोषोंसे आक्रांत पापी व्यक्ति यदि तिल, दुग्ध, गुड़, पूति और विरुद्ध द्रव्य भोजन करे, तो उसका कफ, रक्त और मांस क्लिन्न होता है तथा उस क्लिन्न कफादिके क्लेदसे कृमि उत्पन्न होते हैं। वे कृमि उत्पन्न हो कर अति कष्टदायक शिरोरोग लाते हैं। उस समय नाकसे पीब निकलती है। इस रोगमें मस्तकमें विद्धवत् और छेदवत् यंत्रणा, वेदना, कण्डु और शोथ उत्पन्न होता है तथा कृमि रोगोक्त सभी लक्षण दिखाई देते हैं।

यह रोग विशेष कष्टदायक है। इसके उत्पन्न होते ही सुविज्ञ वैद्यसे चिकित्सा करावें। भावप्रकाशमें इसकी चिकित्साका विषय इस प्रकार लिखा है,—

वातजन्य शिरोरोगमें स्निग्ध स्वेद तथा पान, आहार और उपनाहस्वेद प्रदान करे। कुटज, एरण्डका मूल और सोंठ समान भागमें ले कर मट्ठा दे पीसे और थोड़ा गरम करके कपालमें प्रलेप दे, तो शिरोरोग प्रशमित होता है। श्वास कुठाररस द्वारा नस्य लेनेसे निश्चय ही शिरःशूल दूर होता है। यह शिरोवस्ति और शिरोरोगमें बड़ा उपकारी है। शिरोवस्ति देखो।

पित्तज शिरोरोगमें चन्दनसिक्त जल, कुमुद, उत्पल और पद्म आदि शीतल स्पर्श तथा शीतल वायु सेवन करे। शतधौत घृत मस्तक पर धारण करनेसे भी यह दूर होता है। अल्प परिमाणमें श्वासकुठाररस, कर्पूर, कुङ्कुम, चीनी और बकरीका दूध इन्हें चन्दनके साथ एकत्र घस कर उसकी सुंघनी लेनेसे पित्तज शिरोरोग विनष्ट होता है। यह नस्य सभी प्रकारके शिरोरोगमें उपकारी है। पुराना गुड़ और सोंठका नस्य लेनेसे भी शिरःशूल नष्ट होता है। रक्तज शिरोरोगमें पित्तजन्य शिरोरोगकी तरह आहार, प्रलेप और सेचन करना कर्त्तव्य है। विशेषतः विपर्य्याय क्रमसे शीतक्रिया और उष्णक्रिया करे अर्थात् शीतक्रियाके बाद उष्णक्रिया और उष्णक्रियाके बाद शीतक्रिया करनी होती है। रक्तज शिरोरोगमें रक्तमोक्षण करना बहुत आवश्यक है।

कफज शिरोरोगमें कफके पाचक रूक्ष और उष्ण स्वेदका प्रयोग करे। त्रिदोषज शिरोरोगमें त्रिदोषनाशक चिकित्सा करनी उचित है। षड्बिन्दुतैल और कुमारीतैल इस रोगमें विशेष उपकारी है। षड्बिन्दु तैलका नस्य लेने और उसे मस्तकमें लगानेसे सभी प्रकारके शिरोरोग प्रशमित होते हैं।

क्षय जन्य शिरोरोगमें क्षयनाशके लिये वृंहणक्रिया, पान और नस्यमें घृतका व्यवहार तथा वातघ्न मधुर द्रव्य साधित घृतका प्रयोग करे। कृमिजन्य शिरोरोगमें त्रिकटु, नाटाकरञ्ज और सहिञ्जनके बीजको गोमूत्रसे पीस कर नस्य ले। गुड़के साथ घृत और घृतपूर (पूआ) भक्षण, दुग्ध और घृत पान तथा नस्य प्रयोग, दुग्ध द्वारा तिल पीस कर उसके द्वारा या जीवनीयगण द्वारा स्वेद-प्रदान अथवा भृङ्गराजका रस और बकरीका दूध सम परिमाणमें ले कर धूपमें सुखा कर उसका नस्य लेनेसे सूर्यावर्त्तरोग प्रशमित होता है। अर्द्धावभेदक रोगमें पहले स्निग्ध स्वेद, पीछे विरेचन द्वारा शरीर शोषण तथा धूम प्रयोग करके स्निग्ध और उष्ण द्रव्य खानेसे विशेष उपकार होता है। विड़ङ्ग और कृष्णतिलको पीस प्रलेप देनेसे या उसके द्वारा नस्य ग्रहण करनेसे अर्द्धावभेदक रोग नष्ट होता है। सूर्यावर्त्त और अर्द्धावभेदक रोगमें चीनी मिला हुआ दूध, नारियलका पानी, ठंढा जल या घृत नाक द्वारा पान करनेसे उसी समय उपकार होता है।

अनन्तवातरोगमें सूर्यावर्त्तप्रशमक क्रिया और शिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण करे तथा वायु और पित्तनाशक क्रिया करना भी उचित हैं। पथ्यादि क्वाथ भी विशेष उपकारी माना गया है।

दारुहरिद्रा, हरिद्रा, मञ्जिष्ठा, निम्ब, खसकी जड़ और पद्मकाष्ठ समान भागमें पीस कर मस्तक पर प्रलेप देनेसे शङ्खक रोग प्रशमित होता है। शीतल जल परिषेचन, शीतल दुग्ध सेवन और खिरनी वृक्षके कल्क द्वारा प्रलेप देनेसे सभी प्रकारके शिरोरोग प्रशमित होते हैं।

भैषज्यरत्नावलीमें शिरोरोगाधिकारमें इसकी चिकित्साका विषय इस प्रकार कहा है—वातिक शिरोरोगमें स्नेहस्वेद, नस्य, वायुनाशक, अन्नपान और प्रलेपकी व्यवस्था कही गई है। कुट और रेड़ीका मूल इन दोनोंको अथवा केवल मोचकन्दके मूलको कांजीमें पीस कर प्रलेप देनेसे शिरोरोग अति शीघ्र नष्ट होता है। मस्तक सदृश आयत ८ अंगली ऊंचा एक चमड़ा रोगीके मस्तकमें लपेट कर उस वस्तिके नीचे मस्तकके ऊपरी भाग पर उड़द पीस कर प्रलेप दे। पीछे कुछ गरम तेल द्वारा वह चर्म्मवस्ति भर दे। जब तक स्वास्थ्य लाभ न हो जाये, तब तक वस्तिधारण कर्त्तव्य है। ४ दण्ड या एक पहर तक वस्ति धारण कर निश्चलभावमें बैठना उचित है। इससे वायुजनित शिरोरोग, मस्तक कम्पन, हनु, मन्या, चक्षु और कर्णकी पीड़ा प्रशमित होती है।

पैत्तिक शिरःपीड़ामें घृत, दुग्ध, जलसेचन, शीतल प्रलेप, नस्य, जीवनीयगणके साथ सिद्ध घृत और पित्तनाशक अन्नपानका प्रयोग करना होता है।

कफजमें लङ्घन, स्वेद, रूक्षोष्ण, पाचन और तीक्ष्ण, कवल विशेष उपकारी है। अनन्तमूल, कुट, उत्पल और मुलेठी इन सब वस्तुओंको कांजीमें पीस कर घृत और तेलके साथ प्रलेप देनेसे सूर्यावर्त्त और अर्द्धभेद दूर होता है। हुरहुरके बीजको हुरहुरके रसमें पीस कर प्रलेप देनेसे सूर्यावर्त्त और अर्द्धावभेदककी वेदना दूर होती है। सूर्यावर्त्तमें नस्यादि दे कर और गुड़के साथ घृत तथा घृत संयुक्त पिष्टक भोजन करावे। इसमें शिराविद्ध कर रक्तमोक्षण और दुग्धोत्थ घृतका नस्य विशेष उपकारी है। प्रतिदिन यवक्षार और घृत भोजन तथा बीच बीचमें उसके विरेचनसे बहुत लाभ पहुंचता है। अमलतासके पत्तोंका रस २ सेर, नवनीत १ सेर और अपाङ्ग बीज २ पल एकत्र पाक करे। इसका नस्य ग्रहण करनेसे सूर्यावर्त्त रोग अति शीघ्र नष्ट होता है। दशमूलके क्वाथमें घृत और सैन्धव डाल उसका नस्य लेनेसे भी विशेष उपकार होता है। शिरीष मूलकी छाल और मूलीका बीज, वच और पीपर नस्यमें प्रयुक्त होनेसे उक्त रोगका उपशम होता है। वातनाशक द्रव्यके साथ शशक आदिका मांस सिद्ध कर सैन्धव लवणके साथ यथास्थानमें प्रलेप देनेसे तथा उस मांसका रस पीनेसे शिरका दर्द जाता रहता है। भृङ्गराजका रस २ तोला और बकरीका

दूध २ तोला एकत्र मिला कर धूपमें उत्तप्त करे। पीछे इसका नस्य लेनेसे शिरोरोग जल्द विनष्ट होता है।

निस्तुष कृष्ण तिल और जटामांसी पीस कर मधु और सैन्धवके साथ मिला कर मस्तक पर प्रलेप देनेसे अर्द्धावभेदक दूर होता है। विडङ्ग और कृष्णतिलको एक साथ पीस कर गरम जलमें घोल नस्य लेनेसे या दग्ध चूल्हे की मिट्टीका चूर्ण और मरिचका चूर्ण समान भागमें मिला कर नस्य ग्रहण करनेसे वह शीघ्र प्रशमित होता है।

अनन्तवातमें शिरावेध, वातपित्तघ्न आहारादि और सूर्यावर्त्तकी तरह चिकित्सा करे। शङ्खक नामक शिरोरोगमें स्वेदक्रियाको छोड़ सूर्यावर्त्तोक्त सभी क्रिया तथा दुग्धोत्थ घृतका नस्य और पानकी व्यवस्था है। शङ्खक रोगमें शतमूली, निस्तुष कृष्णतिल, मुलेठी, नीलोत्पल, दूर्वा और पुनर्णवा, इन्हें पीस कर मस्तक पर प्रलेप देने तथा शीतल जल और दुग्ध ले मस्तक धोनेसे विशेष लाभ पहुंचता है। वट, पीपल आदि खिरनी वृक्षकी छालको पीस कर मस्तक पर प्रलेप देनेसे भी इस रोगमें उपकार होता है। बक, कलहंस, हंस, शराह पक्षी और कच्छप इनके मांसका जूस पिला कर शङ्ख सन्धिकी ऊद्र्ध्वस्थ तीन शिरा विद्ध करनेसे विशेष उपकार होता है।

अपराजिता फलके रसकी नास लेनेसे अथवा उसको जड़ कानमें बांधनेसे शिरःपीड़ाकी शांति होती है। कुच और करञ्जवीजको जलमें पीस कर नस्य लेनेसे शिरका दर्द बहुत जल्द जाता रहता है। इसी प्रकार मिर्च और भृङ्गराजके नस्यसे भी उपकार होता है। सोंठको पीस कर दूधके साथ नस्य ग्रहण करनेसे नाना दोषोत्पन्न शिरपीड़ाकी निवृत्ति होती है।

षड्विन्दुतैल, वृहद्दशमूल तैल, महादशमूल तैल, दशमूल तैल, स्वल्पदशमूलतैल, मध्यम दशमूलतैल, धुस्तूर तैल, कनकतैल, महाकनकतैल, रुद्रतैल, तप्तराजतैल, वृहत् किङ्किनी तैल, गुञ्जतैल, इन सब तेलोंकी नास लेने और सिरमें मालिश करनेसे शिरःपीड़ा प्रशमित होती है। मयूराद्यघृत तथा शिरशूलाद्रिवज्ररसके सेवनेसे भी विशेष उपकार होता है। (भैषज्यरत्ना० शिरोरोगाधि०)

चरक, सुश्रुत, चक्रदत्त आदि ग्रन्थोंमें शिरोरोगाधिकारमें नाना प्रकारके औषध कहे गये हैं। कफज, क्रमिज और त्रिदोषज शिरोरोगको छोड़ अन्यान्य सभी शिरोरोग वायुप्रधान हैं। अतएव वातव्याधि कथित पथ्यापथ्य ही इस शिरोरोगमें प्रयोग करना होता है। कफजादि कफप्रधान शिरोरोगमें रुक्ष और लघु अन्न भक्षण करे तथा स्नान, दिवानिद्रा और गुरुपाक द्रव्य भोजन आदि कफवर्द्धक आहार विहारादि परित्याग करना होता है। वातादिभेदमें जिस पथ्यसे वातादि वर्द्धित न हो कर प्रशमित हो वैसा ही पथ्य हितकर है।

शिरोऽर्त्ति (सं० स्त्री०) शिरसोऽर्त्तिः। शिरःपीड़ा, सिरकी वेदना। (कथास० १३.१५२)

शिरोवर्त्तिन् (सं० त्रि०) शिरसि वर्त्तते वृत-णिनि। १ मस्तकवर्त्ती, जो सिरकी ओर हो। २ अग्रवर्त्ती, जो आगेकी ओर हो।

शिरोवल्ली (सं० स्त्री०) शिरसो वल्लीव। वर्हिचूड़ा।

शिरोवस्ति (सं० स्त्री०) वस्तिभेद, मूर्द्धवस्ति। शिरोरोगमें इस वस्तिका प्रयोग करना होता है। इस वस्तिका विधान वैद्यकमें इस प्रकार लिखा है। जितने चमड़ेसे मस्तक अच्छी तरह लपेटा जा सके उतने ही लम्बे तथा १६ उंगली चौड़े चमड़ेसे मस्तक वेष्टन करे। पीछे उड़दके चूरका लेप मस्तक संलग्न चर्मके संयोग स्थान पर इस प्रकार लगा दे, कि उससे तेल निकल न सके। इसके वाद स्थिरभावसे वैठ कर कुछ गरम तेल द्वारा उस चर्मकोषको भर दे। आध पहर अथवा जब तक वेदना दूर न हो, तब तक उसे धारण करना होगा। इसीको शिरोवस्ति कहते हैं। इस वस्तिसे वातजन्य शिरोरोग, हनु, मन्या, चक्षु और कर्णवेदना तथा शिरःकम्प अति शीघ्र दूर होता है। खानेके पहले ही शिरोवस्ति धारण करना उचित है। इस प्रकार पांच या सात दिन शिरोवस्ति प्रयोग कर तेलको उड़ा देना और वंधन खोल देना आवश्यक है। इसके वाद उस तेलसे मस्तक, ललाट, वदन, ग्रीवा और स्कन्धदेश अच्छी तरह मर्दन कर कुछ गरम जल द्वारा प्रक्षालन करे। अनन्तर हितकर अन्नभोजन करना उचित है। जंगली जानवरका मांस, शालि प्रभृति तण्डुल, मूंग,

उड़द और कुलथी कलाथ भोजन करे। रातको केवल कुछ गरम घी और गरम दूध पी कर रहना होगा।

शिरोविरेक (सं० पु०) शिरोविरेचन, नस्य द्रव्य। यह नस्य व्यवहार करनेसे श्लेष्मा निकल कर मस्तक साफ हो जाता है, इसलिये इसको शिरोविरेक कहते हैं।

शिरोविरेचन (सं० क्ली०) नस्य द्रव्य। यह द्रव्य, जैसे—पिप्पली, विड़ङ्ग, अपामार्ग, शिग्रु, सिद्धार्थक, शिरीष, मिर्च, करवीर, बिम्बी और गिरिकर्णिका इन सब द्रव्योंको एकत्र मिला कर नस्य प्रस्तुत करनेसे वह शिरोविरेचन कहलाता है। (सुश्रुत सूत्रस्था० ३९ अ०)

शिरोवृत्त (सं० क्ली०) शिरइव वृत्तं। १ गोल मिर्च, काली मिर्च। २ शीर्षक, अगर। (राजनि०)

शिरोवृत्तफल (सं० पु०) शिरसि वृत्तं फलं यस्य। रक्त अपामार्ग, लाल चिचड़ा।

शिरोवेष्ट (सं० पु०) शिरो वेष्टयतीति वेष्ट-अच्। उष्णीष, पगड़ी, साफा।

शिरोवेष्टन (सं० क्ली०) शिरोवेष्टयतीति वेष्ट-ल्यु। शिरःआवरण, पगड़ी, साफा। पर्याय—उष्णीष, वेष्टन, वेष्टक, शिरोवेष्ट, चेलोण्डुक। (त्रिका०)

शिरोव्रत (सं० क्ली०) महोत्सव।

शिरोऽस्थि (सं० क्ली०) शिरसोऽस्थि, खोपड़ी। पर्याय—करोटि, शिरस्त्राण, शीर्षक। (राजनि०)

शिरोऽस्थिखण्ड (सं० क्ली०) शिरसोऽस्थिखण्डं। शिरःखर्पर, खोपड़ी।

शिरोहर्त्ति (सं० स्त्री०) सिरकी पीड़ा, सिरका दर्द।

शिरोहर्ष (सं० पु०) एक प्रकारका नेत्ररोग। यह शिरोत्पातकी चिकित्सा न करनेसे हो जाता है।

शिरोहारिन् (सं० पु०) सिरोंकी माला पहननेवाले, शिव, महादेव।

शिरोहुण्डन (सं० क्ली०) १ केशभूमि स्फुटन। २ ललाटशङ्खभेद।

शिलंडो (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास। सिंध, बलोचिस्तान, दक्षिण मलवार और लंका आदिके रेतीले स्थानोंमें यह बहुतायतसे पाई जाती है। भारतसे बाहर यह अरब और उत्तरी तथा मध्य अमेरिकामें भी होती है। यह घास जिस स्थान पर होती है, उस स्थान पर जमीनमें चावलकी तरहके एक प्रकारके दाने भी होते हैं जो पौधोंसे बिलकुल स्वतन्त्र और अलग होते हैं। गरीब लोग इन दानोंको उबाल कर अथवा इनका आटा बना कर खाते हैं। इसे बोड़ भी कहते हैं।

शिल (सं० पु०) शिल क। १ उञ्छ, मालिकके ले जानेके पीछे खेतमें पड़े हुए अन्नके एक एक दानेको जीविकाके लिये चुननेका काम। मनुमें लिखा है, कि यह ब्राह्मणोंका एक प्रकारका जीवनोपाय है। ब्राह्मणोंको उञ्छ वृत्ति, शिलवृत्ति या उञ्छ शिलवृत्ति द्वारा जीविका-निर्वाह करना चाहिये। मनुने उञ्छ और शिल इन दोनोंको पृथक् रूपमें निर्देश किया है। मनुके मतसे कृषकोंके खेतसे अनाज ले जानेके पीछे खेतमें पड़े हुए अन्नके एक एक दाने उठानेको उञ्छ तथा धानकी मंजरी अर्थात् सीस ग्रहण करनेको शिल कहते हैं। इस प्रकार उञ्छ और शिल द्वारा जो जीविका निर्वाह करता है, उसको ऋत कहते हैं।

२ रघुवंशमें वर्णित राजा पारियात्रके एक पुत्रका नाम। (रघु० १८।१७)

शिलक (सं० पु०) वैदिक कालके एक ऋषिका नाम।

शिलगर्भज (सं० पु०) पाषाणभेद।

शिलचर—पूर्ववङ्ग और आसाम विभागके कछाड़ जिलेका प्रधान नगर और विचार सदर; यह अक्षा० २४° ४९´ उ० तथा देशा० ९२° ४८´ पू०के मध्य विस्तृत है। नगर अति प्राचीन नहीं है। बराक नदीके दाहिने किनारे अग्रवर्त्ती भूखण्डके ऊपर बसा हुआ है। पहले यहांका जलवायु अच्छा नहीं था, अभी म्युनिसपलिटी हो जानेसे बहुत कुछ सुधर गया है। १८६९ और १८८२ ई०के भूकम्पसे नगरकी राजकीय और साधारण अट्टालिकादि तहस-नहस हो गई है। १८८५ ई०में यहांके सेनावास में दो बड़ी बड़ी कमानें और ४२ नं०के बेङ्गल पदातिक दल रखे गये थे। यहां प्रतिवर्ष पौषमासमें ७ दिन तक मेला लगता है।

शिलज (सं० क्ली०) शैलज, भूरि छरीला।

शिलण्धिर (सं० पु०) एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम। शायद इनका असल नाम शिलन्धर था।

शिलपाटा—आसामके धरङ्ग जिलेके छातागाड़ी द्वार उपविभागांतर्गत एक गण्डग्राम। यहां 'बोरविहु' उत्सवके

उपलक्षमें एक मेला लगता है। इस मेलेमें पहाड़ी कछाड़ी जाति ही साधारणतः जुटती है।

शिलरति (सं० त्रि०) शिले रतिर्यस्य। उञ्छशील, जो उञ्छवृत्तिके द्वारा जीविका निर्वाह करता हो।

शिलवट (हिं० स्त्री०) सिलवट देखो।

शिलवाहा (सं० स्त्री०) नदीभेद। शिलावहा देखो।

शिलवृत्ति (सं० स्त्री०) शिलः वृत्तिर्यस्य, जो शिलवृत्ति द्वारा अपनी जीविका चलाता हो, जो धानकी वाल या सींक चुन कर अपना गुजारा करता हो।

शिलहेटो—रायपुर जिलेकी द्रुग तहसीलके अन्तर्गत एक भू-सम्पत्ति। भूपरिमाण ८३ वर्गमील है। यह भू-सम्पत्ति २८ गांव ले कर गठित है। यहांके जमीन्दार पहले गण्डाई राज्यके अधीन सामन्त थे। ये लोग गोंड़-वंशोद्भव हैं। शिलहेटो गाँव अक्षा० २१° ४७´ उ० तथा देशा० ८१° ६´ पू० तक विस्तृत है।

शिला (सं० स्त्री०) १ पाषाण, पत्थर। २ स्तम्भशीर्ष। ३ पत्थरका बड़ा चौड़ा टुकड़ा, चट्टान, सिल। ४ मनःशिला, मैनसिल। ५ कर्पूर, कपूर। ६ शिलाजतु, शिलाजीत। ७ गैरिक, गेरू। ८ नीलिका, नीलका पौधा। ९ हरीतकी, हर्रे। १० गोराचना, गोरोचन। ११ दूर्वा, दूव। १२ पत्थरकी कंकड़ी अथवा बटिया। १३ भूमिमें पड़ा हुआ एक एक दाना बीननेका काम, उञ्छवृत्ति। शिरा-रसय्लत्वं। १४ शिरा।

शिलाई—मानभूम जिलेमें प्रवाहित एक नदी। उक्त जिलेके लाधुर्का परगनेसे निकल कर भीमीचालसे पूर्व-दक्षिणकी ओर बहती हुई यह रूपनारायण नदमें आ मिली है। मेदिनीपुर बूढ़ी नदी नाड़ाजोलके पास तथा बाँकुड़ा जिलेमें पुरन्धर नदी और गोपा नदी इसका कलेवर पुष्ट करती है। रूपनारायणके सङ्गमसे इस नदीमें जितनी दूर ज्वारका पानी जाता है, उतनी दूर इस नदीवक्षमें पण्यद्रव्यवाही नावें जा आ सकती हैं। वर्षाकालमें बाढ़ आनेसे इस नदीका दोनों किनारा उवडवा जाता है।

शिलाकर्णी (सं० स्त्री०) शिलेव कर्णः कोणो यस्याः ङीप्। शल्लकी वृक्ष, सलई।

शिलाकुट्टक (सं० पु०) शिलां कुट्टयति दारयतीत कुट्ट-ण्वुल्। टङ्क, पाषाणभेदनास्त्र, पत्थर तोड़नेकी छेनी।

शिलाकुसुम (सं० क्ली०) शिलोद्भव, शिलाजतु, शिलाजीत।

शिलाक्षर (सं० क्ली०) शिलापट्टमें लिखा हुआ अक्षर।

शिलाक्षार (सं० क्ली०) चूना।

शिलागृह (सं० क्ली०) प्रस्तरनिर्मित गृह, पत्थरका बना घर।

शिलाचक्र (सं० क्ली०) शालग्रामकी मूर्त्ति।

शालग्राम देखो।

शिलाचय (सं० पु०) पर्वत, पहाड़।

शिलाज (सं० क्ली०) शिलाया जायते इति जन-ड। १ शैलेय, शिलाजतु, शिलाजीत। २ लौह, लोहा। ३ पत्थरका फूल, छरीला।

शिलाजतु (सं० क्ली०) पर्वतजात उपधातुविशेष, शिलाजीत। संस्कृत पर्याय—गैरेय, अर्थ्य, गिरिज, शिलाज, अगज, शैल, अद्रिज, शैलेय, शीतपुष्पक, शिलाव्याधि, अश्मोत्थ, अश्मलाक्षा, अश्मजतुक, जत्वश्मक। गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, रसायन, मेह, उन्माद, अश्मरी, शोथ, कुष्ठ और अपस्माररोगनाशक। (राजनि०)

निदाघकालमें सूर्यकिरण द्वारा सन्तप्त पर्वतोंसे निर्यासकी तरह जो धातुसार निकलता है, उसीको शिलाजतु कहते हैं। यह शिलाजतु चार प्रकारका है, सौवर्ण, राजत, ताम्र और आयस। भावप्रकाशके मतसे गुण—कटु, तिक्तरस, उष्णवीर्य, कटुविपाक, रसायन, छेदी, योगवाही तथा कफ, मेद, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, वायु, अर्श, पाण्डु, अपस्मार, उन्माद, शोथ, कुष्ठ, उदर और कृमिनाशक।

सौवर्ण शिलाजतु जवापुष्पकी तरह लाल, मधुर, कटु, तिक्तरस, शीतवीर्य और कटुविपाक है। राजत शिलाजतु—श्वेतवर्ण, शीतवीर्य, कटुरस और मधुरविपाक। ताम्रशिलाजतु—मयूरकण्ठकी तरह आभाविशिष्ट, तीक्ष्ण और उष्णवीर्य। लौह शिलाजतु जटायुके पंख जैसा आभाविशिष्ट, तिक्त, लवण रस, कटुविपाक और शीतवीर्य होता है। यही शिलाजतु सबसे श्रेष्ठ है।

औषध बनानेमें आयस शिलाजतु ही उत्तम है। शिलाजतुको शोधन कर उसका व्यवहार करना होता

है। जो शिलाजतु गोमूत्रवत् गन्धयुक्त, कृष्णवर्ण स्निग्ध, कोमल, गुरु, तिक्त, कषायरस तथा शीतवीर्य होता है, वही आयस शिलाजतु है। यह शिलाजतु औषध बनानेमें श्रेष्ठ और मारणमें उपयोगी है।

शोधनप्रणाली—शिलाजतु विन्ध्याद्रि पर्वत पर वहुतायतसे उत्पन्न होता है। इस कारण इसमें लोहेका भाग अधिक रहता है। इसलिये शोधित न होनेसे शिलाजतु किसी कामका नहीं होता। पहले शिलाजतुका छोटा छोटा खण्ड कर गरम जलमें एक पहर तक रखे। पीछे उसे मर्द न कर जलको कपड़ेमें छान ले और तब मिट्टीके वरतनमें रख धूपमें छोड़ दे। इसके बाद उस वरतनके ऊपरी भागको दूसरे वरतनमें उठा रखे। इस प्रकार बार बार करके घना अंश ले लेनेसे दो मासके भीतर शिलाजतु कार्यक्षम होता है। पीछे उसे अग्निमें डाल देनेसे यदि उच्छ्वसित हो कर लिङ्गोपम हो, अथच धूम दिखाई न दे, तो उसे शोधित हुआ जानना चाहिये।

वाग्भटने इसको शोधन-प्रणाली इस प्रकार लिखी है,—शिलाजतुका वाहरी मल दूर करनेके लिये पहले विशुद्ध जलमें उसे धो लेना होगा। पीछे उसके भीतरकी मिट्टी और वालू आदि दोष दूर करनेके लिये उक्त क्काथ द्वारा भावना देनी होगी। शिलाजतुको जलमें धो कर धूपमें सुखा कर लौहपात्रमें भावना देनी होगी। जितना शिलाजतु होगा, उतना ही क्काथ्य औषध ग्रहण कर ८ गुने जलमें पाक कर चतुर्थांश रहते उतार लेना होगा। किन्तु उस क्वाथके गरम रहते ही छान कर उसमें शिलाजतु डाल देना होता है। पीछे क्वाथके साथ वह मिल जाने पर उसे सुखा लेना और फिर क्वाथमें डाल कर सुखा लेना उचित है। इस प्रकार सात वार भावना देनी होगी। पीछे पञ्चतिक्तादि घृतमें तीन दिन, डुबा कर रखना होगा। इसके बाद त्रिफलाके क्वाथमें तीन दिन पटोलीके क्वाथमें तीन दिन, मुलेठीके क्वाथमें तीन दिन डुबोये रखनेसे शिलाजतुके सभी दोष दूर होते हैं। नीम, गुलञ्च, घृत और यव इन सब द्रव्यों द्वारा क्वाथ प्रस्तुत करना होता है।

महर्षि अग्निवेशने इसकी शोधन-प्रणाली इस प्रकार बताई है,—ग्रीष्मकालमें जिस दिन प्रखर रौद्र होता है, उस दिन चार काले लोहेके वरतनको समतल भूमि पर धूपमें रखे। पीछे उत्कृष्ट शिलाजतु ले कर एक बरतनमें रखे और शिलाजतुसे दो गुने उष्ण जल और पूर्वोक्त अर्द्धांश उष्ण क्वाथ द्वारा यथानियम शोधन करे। इससे मृत्तिकादि मलदोष दूर होते हैं। इसके बाद धूपमें गरम हो जाने पर जब देखें, कि उसके ऊपरी भाग पर काला सार निकल आया है, तब उस सारको दूसरे बरतनमें रख फिरसे उष्ण जलके साथ धूपमें छोड़ दे। इस बार जो सार निकलेगा उसे तीसरे बरतनमें रख फिरसे उष्ण जल डाल दे। अनन्तर सारको चौथे बरतनमें रख उक्त नियमसे उष्ण जल देना होगा। पीछे जब देखे, कि ऊपरका जल विशुद्ध हो गया है और काला मल बरतनके नीचे जम गया है, तब उस जलको छोड़ दे। इसी प्रणालीसे शिलाजतु विशुद्ध होता है।

शोधित शिलाजतुका गुण—तिक्त, कटुरस, उष्णवीर्य, कटुविपाक, रसायन, योगवाही तथा कफ, मेह, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्, क्षय, श्वास, शोथ, अर्श, पाण्डु, वातरक्त, कुष्ठ, अपस्मार और उदररोगनाशक।

रसेन्द्रसारसंग्रहमें इसकी शोधनप्रणाली इस प्रकार लिखी है—उत्तम शिलाजतु लौहपात्रमें गोदुग्ध, त्रिफलाके क्वाथ और भृङ्गराजके साथ एक दिन मर्द न करनेसे विशुद्ध होता है। इसका गुण तिक्त और कटुरस, रसायन, क्षय, शोथ, उदर, अर्श और वस्ति वेदना नाशक माना गया है। (रसेन्द्रसारसं०)

शिलाजतुप्रयोग (सं० पु०) प्रमेह-रोगाधिकारमें प्रयोग विशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—शालसारादि गणके क्वाथमें शिलाजतुको भावना दे कर तथा उसके क्वाथमें अच्छी तरह पीस कर बलानुसार शिलाजतु सेवन करे। इसको सेवन करनेसे मधुमेह, शर्करा और अश्मरीरोग विनष्ट होते तथा बल, वीर्य तथा आयुकी वृद्धि होती है। शिलाजतु सेवनके बाद यह जीर्ण होने पर जंगली जानवरके मांसके जूसके साथ अन्न सेवन करना होता है।

शिलाजत्वादिलौह (सं० क्ली०) औषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शिलाजतु, मुलेठी, त्रिकटु और रौप्य तथा उतना ही लौह, इन्हें एक साथ मिला कर दो रत्तीकी गोली बनावें। इसका अनुपान दूध है। इसके सेवनसे क्षय आदि रोग नष्ट होते हैं।

शिलाज्ञा (सं० स्त्री०) श्वेतशिला नामक पाषाणभेद, संगमरमर। (राजनि०)

शिलाजीत (हिं० पु० स्त्री०) काले रंगकी एक प्रसिद्ध ओषधि जिसे कुछ लोग मोमियाई भी कहते हैं।

विशेष विवरण शिलाजतु शब्दमें देखो।

शिलाञ्जनी (सं० स्त्री०) शिलामञ्जयतीति अञ्ज-ल्यु, स्त्रियां ङीप्। कालाञ्जनी वृक्ष, काली कपास।

शिलाटक (सं० पु०) शिलामटतीति अट ण्वुल्। १ अट्ट, अट्टालिका, बहुत बड़ा मकान। २ मकानके सबसे ऊपरी भागमें बना हुआ छोटा कमरा, चौबारा। ३ किसी इमारतके चारों ओर बना हुआ बड़ा घेरा, चहारदीवारी, परकोटा। ४ गर्त्त, गड्ढा।

शिलाटिका (सं० स्त्री०) रक्तपुनर्नवा, लाल गदह-पूरना।

शिलातल (सं० क्ली०) शिलायास्तलं। शिलाका तल, शिलाका ऊपरी भाग।

शिलात्मज (सं० क्ली०) शिलाया आत्मजमिव। लौह, लोहा।

शिलात्मिका (सं० स्त्री०) सोना या चाँदी गलानेकी घरिया।

शिलात्व (सं० क्ली०) शिला-भावे त्व। शिलाका भाव या धर्म।

शिलात्वच् (सं० स्त्री०) शिला या वल्का नामकी ओषधि।

शिलाद (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शिलादद्रु (सं० पु०) शिलाया दद्रुरिव। १ शैलेय नामक गन्धद्रव्य, छरीला। २ शिलाजतु, शिलाजीत।

शिलादान (सं० क्ली०) १ शालग्रामशिला ग्रहण। २ शालग्राम शिलादान।

शिलादित्य (सं० पु०) मालवराजभेद। हर्षवर्द्धन देखो।

शिलाद्रुम (सं० क्ली०) शैलेय नामक गन्धद्रव्य, छरीला।

शिलाधातु (सं० पु०) शिलानां धातुः। १ गैरिकभेद, सोनगेरु। २ सितोपल, खरिया मिट्टी। ३ शक्कर, चीनी।

शिलाना—बम्बई प्रेसिडेन्सीके काठियावाड़ विभागके सौराष्ट्र प्रान्तका एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके सरदार बड़ोदाके गायकवाड़को कर देते हैं।

शिलानाथ—दरभंगा जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २६°३४´३०´´ उ० तथा देशा० ८६°६´४५´´ पू०के मध्य कमला नदीके किनारे अवस्थित है। यहां एक समय शिलानाथ महादेवका मन्दिर था। कमला नदीकी गति बदल जानेसे वह मन्दिर तहस-नहस हो गया है। प्रतिवर्ष कार्त्तिक और फाल्गुन मासमें यहां १५ दिन तक मेला लगता है। उस मेलेमें नाना प्रकारके अनाज विक्रयार्थ आते हैं। नेपालके पहाड़ी अधिवासी उस मेलेमें तेजपात, मृगनाभि, कुठार और खनिज लौह आदि द्रव्य बेचनेको आते हैं। वह मेला शिलानाथ महादेवका माहात्म्यज्ञापक है।

शिलानिचय (सं० पु०) शिलाया निचयः। शिलाओंका समूह, पत्थरका ढेर।

शिलानिर्यास (सं० पु०) शिलायाः निर्यासः। शिलाजतु, शिलाजीत।

शिलानीड़ (सं० पु०) शिलानीड़े वासस्थानं यस्य। गरुड़।

शिलान्त (सं० पु०) अश्मन्तक वृक्ष।

शिलान्धस् (सं० क्ली०) शिलेन प्राप्तं अन्धः अन्नं। शिलवृत्ति द्वारा प्राप्त अन्न, उञ्छवृत्ति। इस वृत्तिद्वारा जो अन्न लाभ होता है, उसे शिलान्धः कहते हैं।

शिलापट्ट (सं० पु०) शिलायाः पट्टः। १ पेषणार्थ शिला, मसाला आदि पीसनेकी सिल। २ पत्थरकी चट्टान।

शिलापुत्र (सं० पु०) शिलाया पुत्र इव। पेषणयोग्य शिला, बट्टा जिससे सिल पर कोई चीज पीसी जाती है। पर्याय—घर्षणाल, शिलापुत्रक। (शब्दरत्ना०)

शिलापुष्प (सं० क्ली०) शिलायाः पुष्पमिव। १ शिलाजतु, शिलाजीत। २ शैलेय, छरीला।

शिलाप्रसून (सं० क्ली० शिलापुष्प, शैलज या छरीला नामक गन्धद्रव्य।

शिलाबन्ध (सं० पु०) शिला द्वारा ग्रथित प्राचीर आदि, वह प्राचीर या परकोटा जो पत्थरोंके टुकड़ेसे बना हो।

शिलाभव (सं० क्ली०) शिलाया भवः उत्पत्तिर्यस्य। शैलेय, छरीला।

शिलाभाव (सं० पु०) शिलात्व, पाषाणत्व।

शिलाभिष्यन्द (सं० पु०) शिलाजतु, शिलाजीत।

शिलाभेद (सं० पु०) शिलां भिनत्तीति भिद्-अण्। १ पाषाणभेदी वृक्ष, पखानभेद। (क्ली०) २ प्रस्तरभेदक अस्त्र, पत्थर तोड़नेकी छेनी।

शिलामय (सं० त्रि०) शिला विकारे मयट्। शिलाविकार, पत्थरका बना हुआ।

शिलामल (सं० पु०) शिलायाः मलः। शिलानिर्यास, शिलाजीत।

शिलायु (सं० पु०) गलेमें होनेवाला एक प्रकारका रोग। इसमें कफ और रक्तके कुपित होनेसे गलेमें आँवलेकी गुठलीके समान गांठ उत्पन्न होती है जिसमें बहुत पीड़ा होती है। इसके कारण खाया हुआ अन्न गलेमें अटकता है। इसको गिलायु भी कहते हैं।

शिलायूर (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

शिलारम्भा (सं० स्त्री०) शिलेव दृढ़ा रम्भा। काष्ठ-कदली, कठ केला (राजनि०)

शिलारस (सं० पु०) लोहबानकी तरहका एक प्रकारका सुगन्धित गोंद। कुछ लोग इसे खनिज भी मानते हैं; पर वास्तवमें यह एक वृक्षका गोंद अथवा जमा हुआ दूध है। इसका वृक्ष पूर्वी बङ्गाल, आसाम, भूटान, पेगू, चोन, मलय, मेरगुई, जावा और यूनानमें पाया जाता है। इसका वृक्ष ६०से १०० फुट तक ऊंचा होता है। इसके पत्ते ४॥ इञ्च तक लंबे, अड़की ओर गोलाकार, अनीदार और किंचित् बारीक कंगूरेदार होते हैं। शाखाओंके अंतमें घुड़ीदार फूल होते हैं। फल गोलाकार होते हैं जिनमें बोजोंकी अधिकता होती है। वैद्यकके अनुसार यह कड़वा, चरपरा, स्वादिष्ट, स्निग्ध, गरम, सुगन्धित कर्णोंको सुन्दर करनेवाला और त्रिदोष आदिको शान्त करनेवाला होता है। यह शोधन कर व्यवहार करना होता है। शिलारस मधु द्वारा भावना देनेसे विशुद्ध होता है। इस तरह घोके साथ केसर, केसरके साथ अगर, गोमूत्रके साथ ग्रन्थिपर्ण, मधुजलके साथ मधुरिका तथा भातके साथ तेजपत्र इन सब द्रव्योंमें शिलारस भावना देनेसे विशुद्ध होता है। विशुद्ध शिलारस ही उक्त गुणयुक्त होता है।

शिलालिन् (सं० पु०) एक नटसूत्रके प्रणेता।

शिलालिपि (सं० स्त्री०) पत्थरमें उत्कीर्ण लिपि, शिलाफलक।

शिलालेख (सं० पु०) पत्थर पर लिखा या खोदा हुआ कोई प्राचीन लेख, पुराने लेख जो पत्थरों पर लिखे हुए पाये जाते हैं और जिनमें किसी प्रकारका अनुशासन या दान आदि उल्लिखित होता है।

शिलावर्षिन् (सं० पु०) १ पुराणानुसार एक पर्वतका नाम। (त्रि०) २ पत्थर बरसानेवाला।

शिलावल्का (सं० स्त्री०) शिलेव कठिनो वल्को यस्याः। औषध द्रव्यविशेष। पर्याय—शिलजा, शैलवल्कला, शैलगर्भाह्वा, शिलात्वक्, श्वेता। गुण—शीतल, कृच्छ्र, स्वादु, मेह, मूत्ररोध, अश्मरी, शूल, ज्वर और पित्त नाशक। (राजनि०)

शिलावह (सं० पु०) १ एक प्राचीन जनपदका नाम। २ इस जनपदका निवासी।

शिलावहा (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम।

शिलावृष्टि (सं० स्त्री०) १ शिलावर्षण, आकाशसे ओले या पत्थर गिरना। २ शत्रु पर पत्थर फेंकना।

शिलावेश्मन् (सं० क्ली०) शिलानिर्मितं वेश्म। १ प्रस्तर-गृह, पत्थरका बना हुआ मकान। २ कन्दरा, गुफा।

शिलाव्याधि (सं० पु०) शिलाया व्याधिरिव। शिला-जतु, शिलाजीत। (त्रिका०)

शिलाशस्त्र (सं० क्ली०) शिलानिर्मित अस्त्र, पत्थरका हथियार।

शिलासन (सं० क्ली०) शिला आसनं यस्य। १ शैलेय नामक गन्धद्रव्य। २ प्रस्तरनिर्मित आसन, पत्थरका बना हुआ आसन। ३ शिलाजतु, शिलाजीत।

शिलासार (सं० क्ली०) शिलावत् सारो यस्य। लौह, लोहा।

शिलास्थि (सं० स्त्री०) वह अस्थिखण्ड जिस पर मस्तक रखा हो। (Petrous bone)

शिलास्तम्भ (सं० पु०) शिलाया स्तम्भः। प्रस्तरस्तम्भ, पत्थरका खंभा।

शिलास्वेद (सं० पु०) शिलायाः स्वेदः। शिलाजतु, शिलाजीत।

शिलाहार—बम्बई उपकूलस्थ कोङ्कण राज्यका एक सामन्त राजवंश। आगे चल कर यह दो भागोंमें विभक्त हो कर उत्तर और दक्षिण कोङ्कणमें स्वतन्त्र भावसे राज्य करने

स्नी। किस प्रकार इस राजवंशका अभ्युदय हुआ, उस सम्बन्धमें कोई इतिहास नहीं मिलता। शिलालिपिसे जाना जाता है, कि जीमूतवाहन इस वंशके प्रतिष्ठा थे। ये शाप-भ्रष्ट विद्याधर थे। गरुड़ जब नागोंको खानेके लिये प्रवृत्त हुआ, तब वासुकी बहुत डर गये और उसके भयसे प्रति-दिन उन्होंने शैल या शिलाखण्ड पर एक साँप रख देनेकी व्यवस्था कर दी। एक दिन शङ्खचूड़को उस शिलातल पर देख जीमूतवाहन स्वयं वहां जा बैठ गये। गरुड़ने जीमूतवाहनकी प्रार्थना पर सर्पको छोड़ दिया और उन्हींको खा डाला, केवल मस्तक नहीं खाया। इस समय शोकविह्वला जीमूतवाहनकी स्त्री वहां आई और गरुड़से अरज विनती करने लगी। स्तवसे प्रसन्न हो गरुड़ने जीमूतवाहनको पुनर्जीवन प्रदान किया। तभीसे वे शैलाहार या शिलाहार नामसे प्रसिद्ध हुए।

ऊपरकी किंवदन्ती चाहे जो कुछ क्यों न हो, पर इस राजवंशमें जो विद्यमान थे, उनके मन्त्रियोंका नाम ही उसका प्रमाण है। महाराष्ट्र-जातिमें शेलर नामकी एक वंशोपाधि देखी जाती है। अधिक सम्भव है, कि उस शेलर वंशकी किसी शाखाने सामन्तराजरूपमें अधि-ष्ठित हो शेलर शब्दको संस्कृत शैलाहार रूपमें रूपान्त-रित किया होगा।

सुविख्यात सम्राट् नौशेरवान् (५३१-५७८ ई०) जब पारस्य सिंहासन पर अधिष्ठित थे, उस समय पश्चिम भारतोपकूल पर पारस्यवासियोंका वाणिज्य प्रभाव अप्र-तिहत था। ६३८ ई०में अरब जाति द्वारा शेष-शासनीय राज जर्दजार्द जब राज्यभ्रष्ट हुए, तब बहुतसे पारसियों-ने थाना उपकूलमें आ यादव राणाके राज्यमें आश्रय लाभ किया। मुसलमान इतिहासोक्त यह यादव राणा शायद सञ्जानके यादववंशीय कोई सामन्तराज होंगे। पारस्य आक्रमणके कुछ समय बाद ही अरबवासी थाना आदि पश्चिम भारतोपकूल लूटने गये। खलीफा उमारने (६३४-६४३) अरबोंको यह अन्याय उपद्रव करनेसे रोका था।

यदि इस हिन्दू-मुसलमान संघर्षके समय शिलाहार-राजाओंकी प्रतिष्ठा जम जाती, तो इतिहासमें इस राज-वंशकी कोई न कोई स्मृति अवश्य मिलती। शिला-लिपिसे हमें मालूम होता है, कि दक्षिण कोङ्कणाधीश्वर सणफुल्ल राष्ट्रकूटराज कृष्णराजके सामन्त थे। सम्राट्-ने उन्हें सह्याद्रिसे समुद्रके किनारे तक स्थान दान दे दिया था। राजा सणफुल्ल शायद ७७०-७८३ ई०के मध्य विद्यमान थे। इसके बाद इस वंशमें उनके पुत्र धम्मियर राजा हुए। उनके पुत्रने क्रमशः ऐयपराज, अवसर, आदित्यवर्मा, अवसर २य, इन्द्रराज, भीम, अवसर ३यने और उनके पुत्र रट्टराजने १००१ ई० पर्यन्त राज्यशासन किया था। रट्ट राजा सत्याश्रयके अधीन सामन्त थे। इन्हींसे इस वंशका अवसान हुआ, क्योंकि उत्तर कोङ्कणाधीश्वर अरिकेशरी-को हम १०१७ ई०में समस्त कोङ्कण-राज्यमें आधिपत्य विस्तार करते देखते हैं।
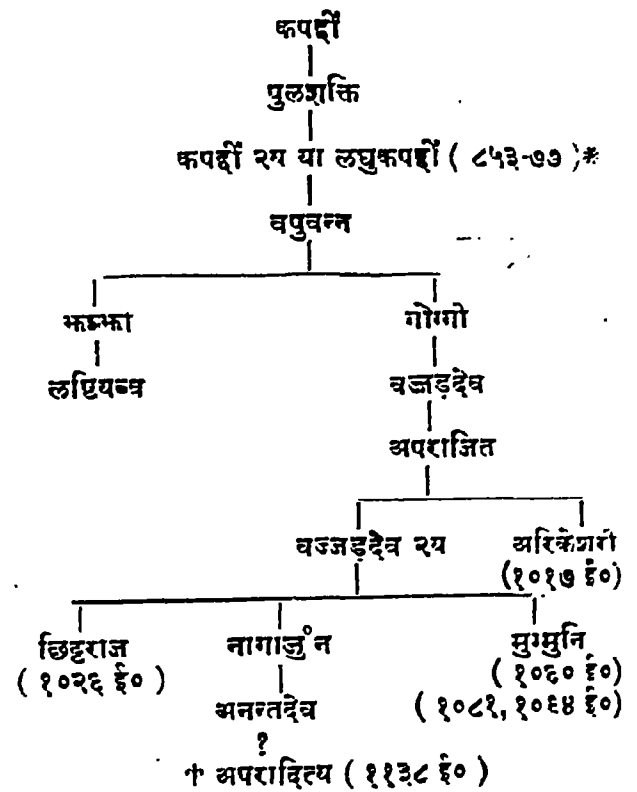
* नामकी बगलमें जो राज्यकालकी संख्या दी गई है, वह उस समयके राजाओंकी उत्कीर्ण शिलालिपिमें पाई जाती है। राज्यकालकी संख्याका निर्णय करना कठिन है।

† अनन्तदेवके पीछे अपरादित्य किस सूत्र पर राजा हुए मालूम नहीं। परवर्ती "?" वंश परम्परामें कुछ गड़बड़ी है।

अपरादित्य
↓
हरिपालदेव (११४९-११५३ ई०)
↓
मल्लिकार्ज्जुन (११५६-११६०)
↓
अपरादित्य २य (११८४-११८७)
↓
केशिदेव (१२०३-१२३८ ई०)
↓
सोमेश्वर (१२४९ १२६० ई०)

उक्त जीमूतवाहन-वंशधर कपर्द्दीके पुत्र पुलशक्ति राष्ट्रकूटराज अमोघवर्णके अधीन शासनकर्त्ता थे। उनके लड़के २य कपर्द्दीने ८७७ ई० तक राज्य किया था। पीछे बप्पुवन्न और झञ्झा यथाक्रम राजा हुए। राजा झञ्झाने अपनी एकमात्र कन्या लच्छियव्वको चालोरके यादवराज भिल्लमके हाथ अर्पण किया। १०६४ ई०की शिलालिपिमें उनके द्वारा शम्भुमन्दिर प्रतिष्ठासे हो वे शैवधर्मावलम्बी समझे जाते हैं।

झञ्झाके बाद उनके भाई गोग्गि और वज्जड़देव राजसिंहासन पर बैठे। राष्ट्रकूटपति कर्कराजको (कक्कल) चालुक्यराज तैलप द्वारा पराजित देख वज्जरपुत्र अपराजित (विरुन्दकराम)ने ९७२ से ९९७ ई० तक स्वाधीनता अवलम्बन की। इसके बाद २य वज्जड़देव और उनके भाई अरिकेशरी यथाक्रम राज्येश्वर हुए। पीछे वज्जड़पुत्र छिट्टराज, नागार्जुन और मुम्मणि (माम्वनि)ने यथाक्रम राज्य किया। माम्वनिके पुत्र अनन्तपाल वा अनन्तदेवसे शिलाहार-वंशकी वीरत्वप्रभा चारों ओर फैल गई। इसके परवर्त्ती छः राजाओंके नामको छोड़ वंशतालिकामें उल्लेखयोग्य कोई सम्बन्ध नहीं मिलता।

इस राजवंशने कभी कभी पुरि, हन्जमान (सम्भवतः सञ्जान), श्रीस्थानक (थाना), शूर्पारक (शोपर), चौल (चेमुली), लोनाद (लवणतत), तगरपुर, षट्षष्ठी (शालसेटी) आदि स्थानोंमें राज्य किया था।

उक्त राजवंशको छोड़ कोल्हापुरमें भी इस वंशकी एक एक शाखा राज्य करती थी। शिलालिपिसे इस वंशकी जो तालिका संगृहीत हुई है वह इस प्रकार है।

१ जटिग १म
|
२ नायिम्ब या नायिवर्मा
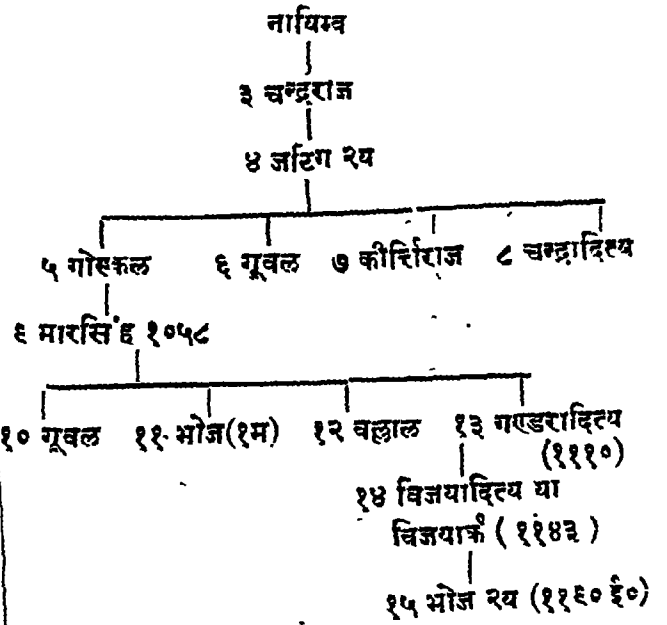
राजा विजयादित्यके १०६५ ई०में उत्कीर्ण कोल्हापुर शिलालिपिमें २य गूवल और १म भोजदेवके मध्य चङ्गदेव नामक राजा मानसिंहके एक पुत्रका उल्लेख मिलता है, किन्तु गण्डरादित्य और २य भोजदेवके ताम्रशासनमे उनका नाम नहीं है।

शिलाहरि (सं० पु०) शालिग्रामकी मूर्त्ति।

शिलाहारिन् (सं० त्रि०) शिलेन आहर्त्तुं शीलमस्य शिल-आ-हृ-णिनि। उञ्छशील, जो शिल या उञ्छवृत्तिसे अपना निर्वाह करता हो।

शिलाह्व (सं० क्ली०) शिला-इत्याह्वा यस्य। शिलाजतु, शिलाजति।

शिलाह्वय (सं० क्ली०) शिलाह्व देखो।

शिलि (सं० पु०) १ भूर्जपत्र वृक्ष, भोजपत्र। (स्त्री०) २ द्वाराधःस्थित काष्ठ, चौकटके नोचेको लकड़ी, डेहरी।

शिलिन् (सं० पु०) नामभेद। (आदिपर्व)

शिलिन (सं० पु०) ऋषिभेद। (वृहदा० उप० ४।१।२)

शिलिन्द (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। गुण—श्लेष्मावर्द्धक, हृद्य और वातपित्तनाशक। (राजव०) यह मछली खानेमें बड़ी स्वादिष्ट होतो है।

शिली (सं० स्त्री०) शिलि-कृदिकारादिति ङीष्। १ द्वाराधःस्थित काष्ठ, चौखटके नोचेको लकड़ी, डेहरी। २ गण्डुपदी, केचुआ। ३ भोजपत्र। ४ भाला। ५ बाण। ६ मण्डूक, मेढ़क।

शिलीन्ध्र (सं० क्ली०) १ कदलीपुष्प, केलेका फूल।

२ करक। ३ त्रिपुटा। (पु०) ४ वृक्षविशेष, भुइं छत्ता, कुकुरमुत्ता। ५ मत्स्यविशेष, शिलिन्द नामक मछली।
शिलीन्ध्रक (सं० क्ली०) गोमयछत्रिका, कुकुरमुत्ता, खुमी। यह द्विजातिको भोजन नहीं करना चाहिये।
शिलीन्ध्रपुष्प (सं० क्ली०) कदलीपुष्प, केलेका फूल।
शिलीन्ध्री (सं० स्त्री०) १ विहगीभेद, एक प्रकारकी चिड़िया। २ गण्डुपदी, केचुआ। ३ मृत्तिका, मिट्टी।
शिलीपद (सं० पु० शिलीव स्थलं पदमस्यात्। पादरोगविशेष, फीलपांव नामक रोग। पर्याय—पदगण्डीर, श्लीपद, पादवल्मीक। (हेम) श्लीपद शब्द देखो।
शिलीपृष्ठ (सं० क्ली०) १ बाण, तीर। २ असि, तलवार।
शिलीमुख (सं० पु०) शिलीव मुखं यस्य। १ भ्रमर, भौंरा। २ बाण, तीर। ३ युद्ध, समर, लड़ाई। ४ जड़ीभूत, मूर्ख, बेवकूफ।
शिलु (सं० पु०) बहुवार वृक्ष, लिसोड़ा।
शिलूष (सं० पु०) १ एक प्राचीन ऋषि। ये नाट्यशास्त्रके आचार्य माने जाते हैं। २ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़।
शिलूण—प्राचीन कलानिपुण एक विद्वान्का नाम। इन्होंने संगीतशास्त्रसम्बन्धी एक ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थका नाम है "संगसर्वस्वसार"
शिलेय (सं० क्ली०) शिलायां भवं शिला ढ। १ शैलज, शिलाजीत। (त्रि०) २ शिला सम्बन्धी, शिलाका। ३ शिलासदृश, शिलाके समान। शिलेय (शिलाया ढः। पा ५।३।१०२) इति ढ। 'शिलेयं दधि' (काशिका) ४ शिला सदृश कठिन दधि, पत्थरके समान कड़ा दही।
शिलोच्च (सं० पु०) शिलाया उच्चयो यत्र। पर्वत, पहाड़। (रघु २।२७)
शिलोञ्छ (सं० पु०) उञ्छशिल वृत्ति, फसल कट जाने पर खेतमें गिरे पड़े दाने चुन कर जीवन निर्वाह करनेकी वृत्ति, शिल और उञ्छवृत्ति।
शिलोञ्छन (सं० क्ली०) शिल और उञ्छवृत्ति।
शिलोत्थ (सं० क्ली०) शिलायाः उत्तिष्ठतीति उत् स्था क। १ शैलेय नामक गन्धद्रव्य। २ शिलाजतु, शिलाजीत।
शिलोद्भव (सं० क्ली०) शिलाया उद्भवो यस्य। १ शैलेय, छरीला। २ शिलाजतु, शिलाजीत। ३ चन्दनविशेष, पीला चन्दन।
शिलोद्भिदा (सं० स्त्री०) पाषाणभेद, पत्थरफोड़।
शिलौकस् (सं० पु०) शिला पर्वतः ओको वासस्थानं यस्य। १ गरुड़। २ वह जो पर्वत पर होता हो।
शिलौन्दी—जबलपुर जिलेकी शिहोरा तहसीलके अन्तर्गत एक नगर।
शिल्गु (सं० पु०) सुख। (निघण्टु ३।६)
शिल्प (सं० क्ली०) शील समाधौ, (खेपशिल्पशष्पवाष्परूपपर्णतल्पाः। उण् ३।२८) इति प ह्रस्वश्च। १ कलादि कर्म, हाथसे कोई चीज बना कर तैयार करनेका काम, दस्तकारी, कारीगरी, हुनर।

वात्स्यायन प्रणीत नृत्यगीत वाद्य आदि ६४ प्रकारकी बाह्यक्रिया तथा आलिङ्गन चुम्बनादि ६४ प्रकारकी आभ्यन्तर क्रिया, स्वर्णकार, कर्मकार आदिका कार्य, ये सभी शिल्प कहलाते हैं। कारुकार्य मात्र ही शिल्पपदवाच्य है। कपड़ा बिनना, नाव बनाना, अलङ्कार गढ़ना, घर बनाना आदि कार्यमात्र ही शिल्प है।

शिल्पविद्या देखो।

२ कला-सम्बन्धी व्यवसाय।
शिल्पक (सं० क्ली०) शिल्प-कन्। शिल्प देखो।
शिल्पकर (सं० पु०) शिल्पकार देखो।
शिल्पकला (सं० स्त्री०) हाथसे चीजें बनानेकी कला, कारीगरी, दस्तकारी।
शिल्पकार (सं० पु०) शिल्पं करोतीति कृ-अण्। १ शिल्पी, वह जो हाथसे अच्छी अच्छी चीजें बना कर तैयार करता हो, कारीगर, दस्तकार। २ राजमेमार।
शिल्पकारक (सं० पु०) हाथसे अच्छी अच्छी चीजें बनानेवाला कारीगर।
शिल्पकारिन् (सं० पु०) शिल्पकर्त्तुं शीलमस्य, णिनि। शिल्पकर्मकर्त्ता, वह जो शिल्पका कार्य करता हो। पौराणिक मतसे शिल्पकारियोंके पिता विश्वकर्मा हैं। विश्वकर्मासे ही सभी शिल्पीकी उत्पत्ति हुई है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि विश्वकर्माने शूद्राके गर्भमें वीर्याधान किया जिससे ६ शिल्पकारोंका जन्म हुआ, १ मालाकार, २ कर्मकार, ३ शंखकार, ४ कुविन्दक, ५ कुम्भकार और ६ कंसकार, ये छःशिल्पियोंमें श्रेष्ठ हैं। इनके

अलावा ७ सूत्रधार, ८ चित्रकार और ९ स्वर्णकार ये तीन हैं।

शिल्पगृह (सं० क्ली०) शिल्पानां गृहं। शिल्पशाला, वह स्थान जहां बहुतसे शिल्पी मिल कर चीजें बनाते हों। मनुमें लिखा है, कि राजा चोर आदिका उपद्रव होने पर शिल्पगृह या कारखानेकी रक्षा करें।

शिल्पगेह (सं० क्ली०) शिल्पगृह देखो।

शिल्पजीविका (सं० स्त्री०) शिल्पमेव जीविका। शिल्परूप उपजीविका।

शिल्पजीविन् (सं० पु०) शिल्पेन जीवति जीव-णिनि। शिल्पोपजीवी, वह जो शिल्पके द्वारा जीविका निर्वाह करता हो, कारीगर, दस्तकार।

शिल्पता (सं० स्त्री०) शिल्पका भाव या धर्म, शिल्पत्व, कारीगरी।

शिल्पत्व (सं० क्ली०) शिल्पस्य भावः त्व। शिल्पका भाव या धर्म, शिल्पता।

शिल्पप्रजापति (सं० पु०) शिल्पस्य प्रजापतिः। शिल्प कर्मस्रष्टा, विश्वकर्मा। विश्वकर्मा ही समस्त शिल्पोंके आविष्कर्त्ता और शिल्पियोंके मूल पुरुष माने जाते हैं।

शिल्पयन्त्र (सं० क्ली०) शिल्पविषयक यन्त्र, कल।

शिल्पलिपि (सं० स्त्री०) शिलालिपि, पत्थर या तांबे आदि पर अक्षर खोदनेकी विद्या।

शिल्पवत् (सं० त्रि०) शिल्प-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शिल्पविशिष्ट, शिल्पयुक्त।

शिल्पविद्या (सं० स्त्री०) शिल्पविषयक विद्या, शिल्पशास्त्र, शिल्पकर्मविषयक ग्रन्थ।

हस्त द्वारा मनुष्य जो कलादि कर्म बड़ी निपुणतासे करते है, वही शिल्प है। स्वर्णकारादि विशेष वृत्तिजीवी जो कर्म सुचारुरूपसे कर जीविका निर्वाह करते हैं, वही शिल्प कहलाता है। किन्तु प्राचीन कालमें देवमन्दिर, प्रासाद, अट्टालिका, देवमूर्त्ति और गृहादिकी दीवालमें जो कारुकार्य खोदा जाता था, वही शिल्प कहलाता था। जिस शास्त्रपद्धतिका अनुसरण कर शिल्पकार अभीष्ट वस्तुको किसी एक नियमाधीन सुप्रणालीसे गठन करते हैं, उसीको शिल्पशास्त्र कहते हैं। जिस ग्रन्थादिमें यह विषय लिखा रहता है, उसका भी नाम शिल्पशास्त्र है।

पुराणादिमें विश्वकर्माको ही देवशिल्पी कहा है। मयदानवने अट्टालिकादि बनानेके विषयमें विशेष पारदर्शिता दिखलाई है। उन्होंने गृहनिर्माणके उपयोगी नियमोंको निबद्ध कर जो प्रथा चलाई, वही मयशिल्प कहलाती है। मयने लोकसमाजमें शिल्प या वास्तुविद्याका यथेष्ट प्रचार किया।

विश्वकर्मशिल्पमें भगवान् शिवने विश्वकर्माको कृतादि युगक्रमसे देवमूर्त्तिका भेद बताया है। उन शिल्पकारोंके भी कर्मांशका विभाग किया गया है। ग्रामादि निर्माण, देवालय गठन, पाषाण, स्वर्ण या लौहादि द्वारा प्रतिमा बनाना ही इनका मुख्य कार्य है। विश्वकर्मीय शिल्पशास्त्रके मतसे शिल्पी सात प्रकारका है। वे लोग एक एक कर अपना अपना कर्मांश करते थे।

"द्विबाहुर्विश्वकर्मा च तक्षकः वर्द्धकिस्तथा॥
स्थपतिः स्थापकः शिल्पी रथकार उदीरितः।
नामभिः सप्तभिश्चैव समवेतः महाश्रमी॥" (११-१०)

वे सब शिल्पी किस किस कार्यके लिये इस प्रकार विशेष नामोंसे अभिहित हुए हैं, उक्त ग्रन्थमें भी यह लिखा है—

"अथ विश्वं करोतीति विश्वकर्माभवत् स्वयं॥
सर्वं लक्षणतः शुद्धे तस्मात्तक्षक ईरितः।
देवालयादिकान् सर्वान् वर्द्धयेदिति वर्द्धकी॥
दृढ़ानि भेदयेदिह स्थपतिर्नामतः स तु।
पर्वतानि भुवञ्चैव स्थापयत्यखिलानि च॥
स्थापकः प्रोच्यते सर्वैः शिल्पिभिः शिल्पिरित्यपि।
त्रिपुरं दग्धकामस्य शिवस्य परमेष्ठिनः॥
रथस्तु जगदाकारं कृतवान् परमं शुभं।
रथकार इति प्रोक्तो विश्वकर्मा स एव हि॥"

(१।११-१७)

दूसरी जगह स्थापक, शिल्पी, वर्द्धकी और तक्षकको देवमूर्त्ति संगठनका प्रधान शिल्पी माना गया है। देवमूर्त्तिनिर्माण स्थपतिका कार्य है। उस प्रतिमादिका स्थापन कार्य केवल स्थापक द्वारा निर्वाहित होगा। शिल्पी चित्र सम्पादन और वर्द्धकी शिलाक्रिया करेंगे तथा तक्षक उक्त चारों शिल्पियोंके कार्यकी देखभाल करेगा। इसके सिवा तक्षकके और भी अनेक कर्म हैं।

तिमा बनानेके लिये उसे शुभ दिनमें पूर्वाह्नकालमें अप-ोमादि कार्य करके पीछे काष्ठादि छेदन आदि कार्य रते हैं।

"देवतानां विनिर्माणं स्थपतिस्तु करोत्ययं।
स्थापकस्तु करोत्येषां स्थापनप्रतिमासु च॥
शिल्पिचित्रविनिर्माणं वर्द्धकेस्तु शिलाक्रिया।
तक्षकस्थापकादीनि दार्वाद्यानां करोत्ययं॥
चतुर्नामपि वर्णानां मध्यमाङ्गं करोत्ययं।
आसन्द्यायाविधौ चापि विस्तारायाः समुच्छ्रयं॥
अलङ्कारक्रियारक्तं सर्वचित्रसमन्वितं।
पादादिकं हस्तमानं विस्तारं ब्राह्मणस्य तु॥
पादोनेनं त्रिहस्तं स्याद्योद्ढकनिर्मितं।
सार्द्धं हस्तं समुत्सेधं प्राभवत् सर्ववृत्तिकं॥
कुर्य्यात्तां याज्ञिके काष्ठे ब्राह्मणानां विशेषतः।
हस्तत्रयन्तु विस्तारं आयामं पञ्चहस्तकं॥
त्रिहस्तोच्छ्रितमेतद्धि क्षत्रियस्य विनिर्मितं।
चतुःशालैः कर्णकूटैर्युक्तं कुर्य्याच्च तक्षकं।
वृक्षेण पनसाम्रेण कुर्य्याद् दृढविनिर्मितं।
अस्यास्तु हस्तविस्तारं आयामन्तु त्रिहस्तकं॥
अध्यर्द्धं हस्तमुच्छ्रय त्रिपर्णैर्निम्बनिर्मितं।
हस्तिपृष्ठाकृती कुर्यात् वैश्यस्यापि विशेषतः॥
वैश्यश्च वृक्षतालस्य कुर्यात्तु शिखराकृतिः।
ब्राह्मणस्य तु वर्णानां चतूर्णां सम्भवोस्ति यः॥
विवाहं कारयेद्विद्वान् क्षत्रियस्य स्त्रियान्तरं।
वैश्यादिकास्त्रिय स्त्रियः वैश्यस्य शूद्रजन्मनां॥
अनिन्द्यमाविलामाद्यमाशुजातश्च सङ्कराः।
षोड़सङ्करजातीनां ब्रह्मादिष्वेव कारयेत्॥
असन्द्यादिनि यान्येषां नैव कुर्यात् कदाचन।
यदि कुर्यात्ततो मोहादज्ञानाद्धनोभवत्॥
कामाद्वा वित्तलोभाद्वा नवजन्मो त्रिविन्दति।
देवपूजा न गृह्णन्ति राष्ट्रक्षोभश्च जायते॥
तस्मात् सङ्करजातिकामासन्द्यादीनि कारयेत्।
पूर्वाह्णे तु क्रियां कुर्यादपराह्णे तु तक्षकः॥
स्वशास्त्रोक्त विधिः कुर्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः।
अपहोमादिकं कुर्यादनुष्टानं समाचरेत्॥"
(विश्वकर्मशिल्प २१।१७-३२।)

उक्त ग्रन्थके तृतीय अध्यायमें तक्षक या स्थपतिको संस्कार कर्त्तव्यता बताई गई है। क्योंकि, संस्कारहीन स्थपति द्वारा देवमूर्त्ति स्थापित होनेसे राजा और राज्य विनाश होता है। चतुर्थ अध्यायमें प्रतिमालक्षण, उसकी प्रतिष्ठाका विवरण और प्रतिष्ठा कालादि, पञ्चममें शिलापीठ या लिङ्गपीठका विवरण और षष्ठ अध्यायमें रथलक्षण अर्थात् द्वितल त्रितल और चूड़ादि क्रमसे रथके परिमाणादिके तारतम्यानुसार किस प्रकार नाम रखा जाता है, वही लिखा है। इसमें रथप्रतिष्ठा और देवदेवी मूर्त्ति विन्यास विधि भी लिखी गई है। इस अध्यायमें तथा परवर्त्ती अध्यायमें देवदेवीकी मूर्त्ति और उनके अङ्गस्थित आभरणादि चिह्नादि, पीछे मुकुटलक्षण अर्थात् स्वर्णकारको किस प्रकार देवता और राजाका शिरोभूषण बनाना चाहिये, उसीके नियमादि लिपिबद्ध हैं। अंतिम दोनों अध्यायमें यथाक्रम वास्तुशास्त्रोक्त जीर्णोद्धारविधि और लिङ्गोद्धार तथा गर्भागारादि निर्माणप्रक्रिया देखी जाती है।

वास्तुनिर्माण विषयमें भी कुछ विशेष शिल्पियोंका प्रयोजन है। मानसार नामक वास्तुशास्त्रसे हम उसका बहुत कुछ आभास पाते हैं। यह ग्रन्थ ५८ अध्यायमें विभक्त है। १ले अध्यायमें स्थापत्य, भास्कर्य और सूत्रधर आदिका विषय, दूसरे अध्यायमें शिल्पियोंका गुणागुण, विश्वकर्मासे पंच शिल्पियोंकी उत्पत्ति और उनका भास्कर, सूत्रधर, कंसकार, मणिकार और कर्मकार वृत्तिका अवलंबन; तीसरे, चौथे और पांचवें अध्यायमें कैसे स्थान पर 'मन्दिर, प्रासाद और साधारण गृह बनाना चाहिये, उसका फलाफल और मृत्तिकादि निर्देश; छठे अध्यायमें शंकुस्थापनपूर्वक कोण निर्देश विवरण; सातवेंमें नगर और राजधानी बनानेका नकशा और वहांका मन्दिरप्रासाद तथा अट्टालिकादि सन्निवेश विवरण; आठवेंमें गृहप्रतिष्ठा, गृहयज्ञ और गद्दी बनानेका विवरण; नववेंमें ग्राम और नगरका रास्ताघाट परान, विभिन्न जातिका वासस्थान और उसमें साम्प्रदायिकोंके उपासनालय या देवमन्दिर आदिका उपयुक्त स्थाननिर्देश; दशवेंमें भिन्न प्रकारकी राजधानी स्थापनका विवरण; ग्यारहवेंमें विभिन्न प्रकारकी

अट्टालिकाओंका परिमाण; बारहवें में गर्भविन्यास अर्थात् अभिप्सित वास्तुका मध्यस्थल भित्ति-प्रस्तर स्थापन; तेरहवें में उपपीठ अर्थात् मूर्त्ति या स्तम्भके मूलदेश निर्माणका विवरण; चौदहवें में अधिष्ठान या भित्ति-प्रतिष्ठा; पन्द्रहवें में भिन्न भिन्न स्तम्भ विवरण और उसका परिमाण; सोलहवें में प्रस्तार अर्थात् अट्टालिकास्थ स्तम्भशिरःनिर्माण विवरण; सत्तरहवें में शाल काष्ठकी ग्रन्थनविधि; अठारवें में विमान, मन्दिर और प्रासाद विवरण; उन्नोसवें से अट्ठाइसवें अध्यायमें विभिन्न प्रकारके मन्दिरका विवरण और परिमाण निर्देशके साथ उसकी चूड़ा और स्तवक निर्माण विधि; उनतीसवें में प्राकार या मन्दिरप्राङ्गण-विन्यासविधि; तीसवें में देवमंदिरकी दीवारमें विभिन्न देवमूर्त्ति संस्थान, इकतीसवें मंदिरका गोपुर-निर्माण, बत्तीसवें मे मण्डप-निर्माणविधि; तेतीसवें में शाला (hall); चौतीसवें में नगरादि; पैंतीसवें में साधारण वासगृह; छत्तीसवें और सैंतीसवेंमे तोरण और द्वारादि निर्माणविरिमाण; अठतीसवें और उनतालीसवेंमे प्रासाद और तत्संलग्न अट्टालिका निर्माणप्रकरण, चालीसवेंमे विभिन्न राज-निर्देश; एकतालीसवें में रथ और यानादि निर्माण विवरण; ब्यालीसवेंमे शय्यासनादि राजभोग्य उपकरणादि निर्माण कथन; तेतालीसवेंमे देव और राजसिंहासन निर्माण प्रणाली; चौआलीसवेंमें शिल्पचित्राङ्कित गुम्बज आदि बनानेको प्रक्रिया; पैंतालीसवेंमें नन्दनकाननस्थ कल्पतरुविवरण, छयालीसवेंमें देवमूर्त्तिको अभिषेक-प्रणाली; सैंतालीसवेंमे देवता और नरनारियोंके रत्न और अलङ्कार धारणकी वैधावैधता, अड़तालिसवेंमे ब्रह्मादिदेवमूर्त्ति निर्माणविवरण, उनचासवें में शिवलिङ्ग गठन; पचासवें में देवमूर्त्ति स्थापनार्थ पीठ, उपपीठ और वेदी आदिका निर्माण विवरण, इक्यावन अध्यायमे विभिन्न शक्ति निर्माणविवरण; बावन और तिरपन अध्यायमे बौद्ध और जैनोंकी उपास्य देवदेवीका गठन, चौवन अध्यायमे यक्ष विद्याधर और नृत्यगीतरत सङ्कीर्तन कारियोंकी मूर्त्तिनिर्माण-प्रक्रिया; पचपन अध्यायमे ?ागधर्मरत योगी ऋषियोंकी मूर्त्तिनिर्माणविधि, छप्पन और सतावन अध्यायमें अपने अपने रथके ऊपर स्थापित देवमूर्त्तिकी निर्माणप्रक्रिया तथा अनठावन अध्यायमें प्रतिमूर्त्तियोंका चक्षुदान और उसके उपलक्षमें पूजादि दैवाचारानुष्ठान।

ऊपर कहे गये ग्रन्थोंके अलावा मयमत, मयशिल्प, काश्यप, वैखानस और अगस्त्यप्रोक्त सकलाधिकार नामक और भी कितने वास्तु या शिल्पशास्त्र देखनेमें आते हैं। उन सब ग्रन्थोंमें पहले ही वास्तुनिर्माण और तदनुसङ्गि प्रस्तार, अधिष्ठान, पाद, उपपीठ, विमान, तोरण गोकार, मण्डप, मन्दिर और देवमूर्त्ति आदिकी गठन-प्रक्रिया लिपिबद्ध है। इनके अतिरिक्त विश्वकर्मप्रकाश, शिल्पकलादीपिका, शिल्पलेख्य, शिल्पशास्त्र, शिल्प-सर्वस्वसंग्रह और शिल्पार्थसार, राजवल्लभमण्डन, अपराजिता पृच्छादि ग्रन्थोंमें भी अट्टालिकादिका गठन-परिमाण दिया गया है।

मन्दिर और प्रासादादि प्रतिष्ठाका पौराणिक विवरण छोड़ कर ऐतिहासिक तत्त्वानुशीलनमें प्रवृत्त होनेसे हम देखते हैं, कि सुप्राचीन वैदिकयुगसे वास्तुविद्याका यथेष्ट आदर था। वैदिक ऋषि भी उस समय गृहादि निर्माण-कालमें शिल्पशास्त्रका नियम अतिक्रम नहीं करते थे। हम ऋक्संहिताके २।४१।५ और ५।६२।६ मन्त्रसे सहस्र-स्तम्भविशिष्ट राजप्रासादका उल्लेख पाते हैं। उक्त ग्रंथके ४।३०।२० मन्त्रमें पाषाण निर्मित नगरी अर्थात् तत्रस्थ सौधमालादि, ७।१५।१४ मन्त्रमें लौहनिर्मित नगरी तथा ६।४३।६ मन्त्रमे त्रिधातुनिर्मितगृहका विषय लिखा है।

इस सुप्राचीन वैदिक युगमें आर्यगण गृहनिर्माणके अलावा अन्यान्य शिल्प-विषयमें भो उन्नतिके चरम मार्ग पर चढ़ गये थे। इन लोगोंने जिस जिस शिल्पकार्यमें हस्तक्षेप किया था, नीचे उसकी एक संक्षिप्त तालिका दी गई है—

आर्यगण उस वैदिकयुगमें वैदेशिक पण्यकी आशासे स्थल और जलपथसे वाणिज्य करते थे। स्थलपथसे पण्य द्रव्य ले जानेके लिये उन्हें गोमेषादि पशु रखने होते थे। गाय दूधके लिये और मेष लोमके लिये भी पाले जाते थे। उस लोमसे शालका वाणिज्य भी चलता था। गान्धार-देशीय मेष ही पशमीनेके लिये

प्रसिद्ध थे।(१) जलपथसे वाणिज्य करनेके लिये वे लोग नाव तैयार करते थे। ऋक् संहिताके १।११६।२-५ मन्त्रमें लिखा है, कि तुग्रने अपने पुत्र भूज्युको समुद्रमें भेजा था। भूज्यु सौ डांड़वाली नाव ले कर जलशून्य समुद्रके किनारे गये। इसके पीछे उन्हें शतचक्रविशिष्ट और षट् अश्वयुक्त रथ पर बिठा कर घर लाया गया।

इस समय कर्मकारगण लौहशिल्पके पराकाष्ठारूप वर्म (१।१४०।१०), शिरस्त्राण (२।३४।३) और तनुत्राणं (२।३९।४) बना सकते थे। अंसत्ना (कवच) और द्रापि (कवचकी तरह परिच्छद विशेष) को वैदिक शिल्पका एक और निदर्शन कहा जाता है।(२) शिल्पी और सूत्रधार रथ बनाना अच्छी तरह जानते थे। वे लोग खैर और शिशु काष्ठकी गाड़ी (३।५३।१७-१९) बना कर भी आर्य्य-सभ्यताको पराकाष्ठा दिखा गये हैं। सङ्गीतविशारदगण क्षोणी, कर्करी आदि वीणाकी तरह वाद्ययन्त्र बनाना जानते थे।(३) आर्य्य रमणियां पुरुषोंके साथ मिल कर सूती कपड़े भी बिनती थीं २।३।६ और २।३८।४)।

ऊपरके शिल्प निदर्शनको छोड़ वैदिक युगमें और भी नाना प्रकारके शिल्पोंका प्रचार था। स्वर्णकार उस समय आर्यपुरुषों और स्त्रियोंके लिये अञ्जि (आभरण विशेष), स्रक् (माला), रुक्म (सुवर्णका वक्षाभरण विशेष), खादि (बाला और मल) और हिरण्मय शिप्र(४) (मस्तकाभरणविशेष) धारण करते थे। उस समय निष्ककी माला(५) गूंथ कर भी गलेमें पहननेकी व्यवस्था थी। कन्याके विवाहमें अलङ्कार दिया जाता था।(६) वे सब अलङ्कार स्वर्णकार ही बनाते थे।(७) स्वर्णकार धातु गलाता(८) और मुद्रा तय्यार भी करता था(९)।

इस समय कर्मकारका अभाव न था। सभी कर्मकारकी वृत्तिका अवलंबन कर अपने अपने व्यवहारोपयोगी लौहपात्रादि निर्माण करते थे। इस व्यवसायके लिये वे जातिभ्रष्ट नहीं होते थे।(१०) कर्मकार सूखी लकड़ी पक्षीके पर और सान देनेके लिये चिकने पत्थर ले कर बाण बनाते थे।(११) उनके पास भांथी यन्त्र रहता था(१२)। उस यन्त्रसे वे लोग आगको सुलगाते थे। उस समय कलसका व्यवहार था।(१३) कर्मकार ही उस समय ऋष्टि (वर्षा), वाशी (वाईश या खड्ग), धनु, इषु, निसङ्ग, हिरण्मय कवच, वर्म, शाणित लौह अस्त्र आदि प्रस्तुत करके आर्य्य जातिका युद्धभाण्डार परिपूर्ण रखते थे।(१४)

उस समय युद्धको अन्यान्य सामग्रीका अभाव न था। सूत्रधार रथ बनाते थे।(१५) उन सब युद्धरथोंको सुदृढ़ करनेके लिये गोचर्म द्वारा आवृत किया जाता था (१६) तथा रणक्षेत्र युद्धदुन्दुभिनादसे प्रकंपित हो उठता था।(१७) घोड़े नाना प्रकारकी सज्जाओंसे सज्जित हो रणाङ्गणमें नृत्य करते थे।(१८)

आर्योंने अट्टालिका-निर्माणके साथ साथ कुआं खोदना भी सीखा था (१९)। वे लोग लोकसमाजके उपयोगी सूती कपड़े बुनना जानते थे (२०)। आर्यजनपद्के दारुण शीतसे देहकी रक्षा करनेके लिये वे लोग मेषलोमजात वस्त्रादि वयन करने और उसे परिष्कार करनेमें अभ्यस्त थे(२१)।

ऋग्वेदके युगमें आर्योंने सभ्यता और शिक्षाबलसे शिल्प विषयमें जो उन्नति की थी, ब्राह्मण और उपनिषद् युगमें उसकी सम्यक् परिपुष्टि होती है। आश्वलायनगृह्यसूत्रमें (१।२।४ और २।८।६) तथा पारस्करगृह्यसूत्रमें

(१) ऋक् १।११६।७ १।१४०।१२ और १०।२६।६।
(२) ऋक् २।३४।१३, २।४३।३। (३) ४।३४।६। ४।५३।२।
(४) ५।५३।४, ५।५४।११, ५।५८।२। (५) ५।१९।३।
(६) ६।४६।२, १०।३९।१४। (७) ८।४८।१५। (८) ६।३।४।
(९) ५।२७।२, ५।३३।६।

(१०) ६।११२।२। (११) ६।११।२।२। (१२) ५।९।५।
(१३) ५।३०।१५। (१४) ५।५२।६, ५।५५।६, ५।७।२, ६।२७।६, ६।४६।११, ६।२।५, ६।४७।१०।
(१५) १०।१९।१२। (१६) ६।४४।२६।
(१७) ६।४७।२९।३०।
(१८) ऋक् ४।२।८ मन्त्रमें युद्धाश्व सज्जादिका उल्लेख मिलता है।
(१९) १०।५।२४ (२०) ८।१७।७, ८।२५।१३।
(२१) १०।२६।६।

(३।४) वास्तु देवताका उल्लेख देख कर वास्तुशिल्पकी प्रधानता प्रतीत होती है। स्वयं भगवान् मनुने (३।८६) वास्तु पुरुषको नमस्कार कर उस शिल्पका गुरुत्व द्योतन किया है। अथर्व्ववेद ७।१०८।१; शतपथब्राह्मण १।७।३।१, ७, १७ और २।१।२।६; तैत्तिरीय संहिता ३।६।१०।३, शाङ्खायनगृह्य २।१५ आदि प्राचीन शास्त्रोंमें वास्तुका उल्लेख देखा जाता है, इसके सिवा वैदिक शिल्पका और अधिक निदर्शन नहीं मिलता। रामायणीय युगमें प्रासादादिके वर्णनसे वास्तुशिल्पका परिचय पाया जाता है। उस समय मनुष्यके व्यवहार्य्य आभरणादि, शय्यास्तरण और सिंहासनादि निर्माण विभिन्न शिल्प और कला विद्याका कुछ निदर्शन समझा जाता था।

महाभारतीय युगमें ही शिल्पविद्याकी विशेष उन्नति हुई है। महाभारतके उद्योग पर्वके "सभावास्तूनि रम्याणि प्रदेष्टुमुपचक्रमे।" इत्यादि वचनोंसे विराटराजसभावर्णनमें उसकी सार्थकता की गई है। सभापर्वमें युधिष्ठिरके सभानिर्माणप्रसङ्गसे हमें मालूम होता है, कि मयदानवने राजा युधिष्ठिरके लिये अपने इच्छानुसार एक सभा बनाई थी। भगवान् श्रीकृष्णने जब मयदानवसे पूछा, कि सभामण्डप कैसा बनाया जायगा, तब शिल्पनिपुण दानवने एक नकशा तैयार कर दिया था। पीछे वह सभामण्डप चारों ओर पांच हजार हाथ लंबा चौड़ा बनाया गया था।

मयदानवने विन्दुसरोवरसे सभा बनाने लायक स्फटिकमय सामग्री संग्रह कर त्रिलोकविश्रुत मणिमय एक सभागृह बनाया था। वह सभा महाविस्तीर्ण, मनोहर, बहुल चित्ररेखान्वित, रत्नप्राचीरवेष्टित थी। उसके चारों ओर पुष्पित, नीलवर्ण, शीतल छायाप्रद नानाविध महावृक्षसमूह और सुगन्धित कानन तथा हंसकारण्डव चक्रवाकादि विहङ्गमाभिराम सरोवर सुशोभित हुए थे। उसके मध्यस्थलमें मयशिल्पकी निपुणताके पराकाष्ठास्वरूप एक अप्रतिम सरोवर बनाया गया था। उसमें मणिमय मृणाल और वैदुर्य्यमय पत्रयुक्त सैकड़ों शतपत्र तथा काञ्चनमय कह्लारकदम्ब शोभा देते थे। उसमें विहङ्गगण इधर उधर केलि करते थे। सुवर्णनिर्मित मत्स्यकूर्मादिसे उस चित्रस्फटिक सोपान निबद्ध सरोवरकी शोभा और बढ़ गयी थी। मन्द मन्द वायुसे सरोवरका जल आन्दोलित होता था। उसके साथ सरोवरके चारों ओर, महामणि शिलापट्ट द्वारा वैदिकाकारमें बद्ध हुई थी। उसका ऊपरी भाग मुक्ता विन्दुमालासे जड़ा था। वायुके झोकोंसे सरोवरका जल कुछ कुछ हिलोरे लेता था और झालरकी आन्दोलित मुक्ताका जो उसमें प्रतिविम्ब पड़ता था, उसमें वह स्थान मानो मणिरत्न विभूषित-सा प्रतीत होता था।

बुद्धाविर्भावके बादसे शिल्पतत्त्वके प्रकृत ऐतिहासिकयुगका आरम्भ हुआ। प्रत्नतत्त्वके निदर्शनस्वरूप जिन सब प्रासाद, अट्टालिका, दुर्ग, मन्दिर, देवायतन, विहार या मठादिका तथा देवमूर्त्तियोंका ध्वस्त निदर्शन आज भी हम लोगोंके नयनगोचर होता है, वही भारतके चिरन्तन अभ्यस्त शिल्पविद्याका निदर्शन है। बुद्धगयामन्दिर, पुरीधामका जगन्नाथ मन्दिर, इलोराका गुहामन्दिर, अजण्टाका गुहाशिल्प इस विषयका परिचय स्थल है। विशेष विशेष नियमोंके वशवर्त्ती हो कर भारतीय शिल्पकारगण वे सब मूर्त्ति, स्तम्भ और चित्रादि अङ्कन कर गये हैं। उनके शिल्पनैपुण्यकी प्रशंसा आज समस्त सभ्यजगत्में गाई जाती है।

शिल्पशाल (सं० क्ली०) शिल्पिनां शाला शिल्पशालेति क्लीवत्वं। शिल्पगृह, वह स्थान जहां बहुतसे शिल्पी मिल कर तरह तरहकी चीजें बनाते हों, कारखाना। पर्याय—आवेशन, शिल्पिशाला, शिल्पशाला।

शिल्पशाला (सं० स्त्री०) शिल्पशाल देखो।

शिल्पशास्त्र (सं० क्ली०) शिल्पस्य शास्त्रं। १ शिल्पविद्या, वह शास्त्र जिसमें हाथसे चीजें बनानेका निरूपण हो। २ वास्तुशास्त्र, गृह-निर्माणका शास्त्र।

शिल्पिक (सं० पु०) १ वह जो शिल्प द्वारा निर्वाह करता हो, कारीगर, दस्तकार। २ शिल्पक, नाटकका एक भेद। ३ शिवका एक नाम।

शिल्पिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका तृण जो दक्षिणमें अधिकतासे होता और औषधिरूपमें काम आता है। महाराष्ट्र—लाहन-शिलिप। कलिङ्ग—किरिय शिपिङ्ग।

संस्कृत पर्याय—शिल्पिनी, शोता, क्षेत्रज्ञा, मृदुच्छदा। इसका गुण—मूत्ररोध, अश्मरी, शूल, ज्वर और पित्त नाशक। (राजनि०)

शिल्पिन् (सं० पु०) शिल्पं क्रियाकौशलमस्यास्तीति इनि। १ शिल्पकार्यकारी, शिल्पकार। पर्याय—कारु। २ राज, थवई। ३ चित्रकार, चितेरा। ४ नखी नामक गन्धद्रव्य।

शिल्पिनी (सं० स्त्री०) १ शिल्पीका स्त्रीलिङ्गरूप। २ एक प्रकारकी घास।

शिल्पिशाला (सं० स्त्री०) शिल्पिनां शाला। शिल्पशाला, शिल्पगृह, कारखाना।

शिल्पिशास्त्र (सं० क्ली०) शिल्पिनां शास्त्रं। शिल्पशास्त्र, शिल्पियोंका शास्त्र।

शिल्पोपजीविन् (सं० त्रि०) शिल्पेन उपजीवति उपजीव-णिनि। शिल्पजीवि, शिल्प द्वारा उपजीविका निर्वाह करनेवाला।

शिल्ह (सं० पु०) शिलारस देखो।

शिल्हक (सं० पु०) शिलारस देखो।

शिल्हन (सं० पु०) कविभेद, शिह्लन कवि।

शिव (सं० क्ली०) शी (सर्वनिघृष्वरिष्वलष्वशिवपद्वप्रह्वेष्वा अतन्त्रे। उण् १।१५३) इति वन् प्रत्ययेन साधु। १ मङ्गल कल्याण। २ सुख। ३ जल, पानी। ४ सैन्धव, सेंधा नमक। ५ समुद्रलवण। ६ श्वेत टङ्कण, सुहागा। ७ धात्रीफल, आँवला। ८ फटकारिका, फिटकरी। ६ मिर्च। १० तिलपुष्प। ११ कुन्दपुष्प। १२ रौप्य, चांदी। १३ चन्दन। १४ लौह, लोहा। (वैद्यकनि०) (पु०) १५ महादेव, महेश्वर, ब्रह्माकी संज्ञाविशेष। भरतने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है "शिवं कल्याणं विद्यतेऽस्य शिवः, श्यति अशुभमिति वा, शेरतेऽवतिष्ठन्ते अणिमा दयोऽष्टोगुणा अस्मिन् इति वा शिवः" (भरत)

जिनमें समस्त मङ्गल विद्यमान हैं, वे शिव हैं अथवा जो अशुभ खण्डन करते हैं, वे ही शिव हैं या जिनमें अणिमादि अष्ट ऐश्वर्य अवस्थित हैं, वे भी शिव हैं।

पर्याय—शम्भु, ईश, पशुपति, शूली, महेश्वर, ईश्वर, शर्व्व, ईशान, शङ्कर, चन्द्रशेखर, भूतेश, खण्डपरशु, गिरीश, गिरिश, मृड, मृत्युञ्जय, कृत्तिवासा, पिनाकी, प्रमथाधिप, उग्र, कपर्द्दी, श्रीकण्ठ, शितिकण्ठ, कपालभृत्, वामदेव, महादेव, विरूपाक्ष, त्रिलोचन, कृशानुरेताः, सर्वज्ञ, धूर्जटि, नीललोहित, हर, स्मरहर, भर्ग, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, गङ्गाधर, अन्धकरिपु, क्रतुध्वंसी, वृषध्वज, व्योमकेश, भव, भीम, स्थानु, रुद्र, उमापति, वृषपर्वा, रेरिहाण, भगाली, पांशुचन्दन, दिगम्बर, अट्टहास, कालञ्जर, पुरह्विट्, वृषाकपि, महाकाल, वराक, नन्दिवर्द्धन, हीर, वीर, खरु, भूरि, कटप्रू, भैरव, ध्रुव, शिविविष्ट, गुडाकेश, देवदेव, महानट, तीव्र, खण्डपर्शु, पञ्चानन, कण्ठेकाल, भरु, भीरु, भीषण, कङ्कालमाली, जटाधर, व्योमदेव, सिद्धदेव, धरणीश्वर, विश्वेश, जयन्त, हररूप, सन्ध्यानाटी, सुप्रसाद, चन्द्रापीड़, शूलधर, वृषभध्वज, भूतनाथ, शिपिविष्ट, वरेश्वर, विश्वेश्वर, विश्वनाथ, काशीनाथ, कुलेश्वर, अस्थिमाली, विशालाक्ष, हिण्डी, प्रियतम, विषमाक्ष, भद्र, ऊर्द्ध्वरेताः, यमान्तक, नन्दीश्वर, अष्टमूर्त्ति, अधीश, खेचर, भृङ्गीश, अर्द्धनारीश, रसनायक, पिनाकपाणि, फणधरधर, कैलासनिकेतन, हिमाद्रितनयापति।

महाभारत अनुशासन पर्व १७वें अध्यायमें शिवका सहस्रनाम वर्णित हुआ है।

पुराणोंमें यहां तक, कि रामायण महाभारतमें शिव-माहात्म्य अच्छी तरह गाया गया है। वेदसंहितामें जो रुद्र नामसे परिचित हैं, रामायण महाभारत और पुराणोंमें उन्हीं रुद्रने शिव नामसे प्रसिद्धि लाभ की है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मणग्रन्थ और उपनिषदमें भी हम रुद्रदेवताका अनेक स्थानोंमें उल्लेख पाते हैं। यही रुद्र परवर्त्ती समयमें शिव और महादेव आदि नामोंसे इस देशमें पूजित होते आ रहे हैं।

ऋग्वेदमें इन्हें मरुद्गणका पिता कहा है। स्थान विशेषमें अग्नि और इन्द्रके अर्थमें भी रुद्र शब्दका प्रयोग देखनेमें आता है।

ऋग्वेद पढ़नेसे जाना जाता है, कि रुद्र देवता अति भीषण, क्रोधी और संहारक हैं। फिर वे ज्ञानी, दाता, भूमिके उर्वरतासाधक, सुखदाता, औषधोंके प्रयोगकर्त्ता और रोगारोग्यकारी हैं। ऋग्वेदका १।२७।१० ऋक् पढ़नेसे जाना जाता है, कि यह रुद्र ही अग्नि हैं। किन्तु

अन्यान्य स्थलोंमें रुद्रको अग्निसे पृथक् देव भी बतलाया है। ऋग्वेदकी २।३३।४ ऋक् में लिखा है—

"मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती।
उन्नो वीरां अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वां भिषजां शृणोमि॥"

हे रुद्र! हम लोग अनुपयुक्त प्रशंसा और अनुपयुक्त प्रणतिसे मानो तुम्हारे क्रोधके कारण न बनें। तुम औषधों द्वारा हमारे वीरोंको समुत्थित करो। हे रुद्र! मैंने सुना है, कि तुम चिकित्सकोंके मध्य प्रधान चिकित्सक हो।

इन रुद्रको श्वेतवर्णविशिष्ट भी कहा है, यथा—

"प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभि र्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम॥"
(ऋक् २।३३।८)

कुछ ऋकोंमें रुद्रको कपर्द्दी बताया है। (ऋक्संहिता १।११४।१) इसके सिवा वाजसनेयसंहितामें रुद्रदेवता गिरीश, गिरित्र, कपर्दी, व्युप्त-केश, उग्र, भीम, भिषज, शिव, शम्भु, शङ्कर, नीलग्रीव, सितिकण्ठ, पशुपति, शर्व और भव आदि नामोंसे वर्णित हुए हैं। यहां तक, कि ऋग्वेदमें भी हम रुद्रको शिव नामसे अभिहित पाते हैं। यथा—

"स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन।
येभिः शिवः स्ववां एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः॥"
(ऋक् १०।९२।९)

सुतरां पौराणिक शिव जो बिलकुल वैदिक भित्ति-विहीन हैं, ऐसी कल्पना असङ्गत है। वेदमें रुद्र शब्द एकवचन और बहुवचनमें प्रयुक्त हुआ है। पुराणमें भी अनेक रुद्रोंका उल्लेख देखनेमें आता है।

रुद्र शब्द देखो।

वैदिक रुद्रगण, विचित्र मृगारोही समुज्ज्वल अस्त्र-धारी और त्रिशूलविशिष्ट हैं। उनके प्रतापसे पृथिवी और पर्वत कम्पित होते हैं। ये सब रुद्र मरुत् नामसे भी प्रसिद्ध हैं। मरुद्गण रुद्रके पुत्र हैं। (ऋक् १।११४।६)

इस सम्बन्धमें पौराणिक इतिहास यह, कि—किसी समय इन्द्रने असुरोंको परास्त किया। असुरकी माता दितिने इन्द्र-वधार्थ एक पुत्रप्राप्तिके लिये तपस्या की। इस तपस्याके फलसे उसने गर्भधारण किया। इन्द्रको जब इस बातकी खबर लगी, तब अणिमासिद्धिके प्रभाव-से वे वज्रके साथ उसके गर्भमें घुस गये। वहां उन्होंने वज्र द्वारा गर्भको सात भागोंमें विभक्त कर, फिर प्रत्येक भागको सात सात भागोंमें विभक्त किया। भ्रूण उन-चास भागोंमें विभक्त हो कर भूमिष्ठ हुआ और रोदन करने लगा। इस समय महादेव और पार्वतीने राहमें उसे देख पाया। पार्वतीने महादेवसे कहा, 'यदि मुझे आप प्यार करते हों, तो इन मांसखण्डोंको जिला कर पुत्ररूपमें परिणत कीजिये।' महादेवने उन्हें समवायक समरूपधारी पुत्ररूपमें परिणत कर पार्वतीसे कहा, 'आजसे ये सब तुम्हारे पुत्र समझे जायंगे।' पौराणिक इस आख्यायिकाका सूत्र उद्धृत ऋक् तथा और भी अनेक ऋकोंमें देखनेमें आता है।

वाजसनेयसंहिता, अथर्ववेद और ब्राह्मणग्रन्थोंमें हम पशुपति नामका उल्लेख तथा ऋग्वेदमें रुद्र देवताके भिन्न भिन्न गुणका परिचय पाते हैं। यथा—ये ज्ञानी, दाता और शक्तिमान् (ऋक् १।४३।१, १।११४।४) हैं। ये परम शक्तिशाली और परम गौरवान्वित (ऋक् २।३३।३) हैं।

ये ईशान हैं अर्थात् जगत्के ईश्वर हैं (ऋक् २।३३।६); जगत्पिता, क्षमताशाली, चित्त प्रफुल्ल और अनश्वर हैं। (ऋक् ६।४९।१०); सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान् (ऋक् ७।४६।२); स्वयम्भू (ऋक् ७।४६।१, १।२९।३; वीरेश्वर (ऋक् १।११४।१, ३-१०, १०।९२।९); सङ्गीताचार्य (ऋक् १।४३।४); शुभ्र सुन्दर देहविशिष्ट (ऋक् २।३३।८); बहुरूपधारी (ऋक् २।३३।९); संहारी (ऋक् २।३३।१२), कपर्द्दी (ऋक् १।११४।५); मरुतोंके पिता (ऋक् १।६४।२, ७।८५।१; १।११४,६,९, २।३३।१, २।३४।२; ५।५२।१६; ५।६०।५, ६।५०।४, ६।६६।३; ७।५६।१, ८।२०।१७), धनुर्बाणविशिष्ट (ऋक् ५।१४।१; १०।१२५।६), मृत्यु, मङ्गलमय और आशुतोष (ऋक् १।११४।६, २।३३।५,७); शिव (ऋक् १०।९२।९); पशु और मनुष्योंके सुखसौभाग्य-कर्त्ता (ऋक् १।११४।१), वैद्यनाथ (ऋक् १।४३।४; १।११४।५, २।३३, २,४,७,१२, १३, ५।४२।११; ६।७४।३, ७।३५।६; ७।४६।३, ८।२९।५), सुखदाता (ऋक् १।११४।१,२, २।३३।६) हैं।

वैदिक मन्त्रके अधिकांश स्थलोंमें रुद्र संहारकरूपमें वर्णित हुए हैं। पौराणिक शिव भी इसी गुणसे विभूषित हैं।

ऋग्वेदमें लिखा है, कि रुद्र कहीं कहीं अग्नि कह कर भी स्तुत हुए हैं। यथा—

१। "त्वमग्नि रुद्र असुर"—(२।१।६)

२। "जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे स्तोमं रुद्राय दृशीकम्।" (१।२७।१०)

सामवेदमें (१।१५) भी यह ऋक् देखनेमें आती है। निरुक्तकार यास्कने इस ऋक्की व्याख्यामें कहा है,—

"अग्निरपि रुद्र उच्यते । तस्यैवं भवति।"

हम पुराणमें भी रुद्रकी यह अग्निमूर्त्ति देखते हैं। यथा—

"इत्युक्तः शङ्करः क्रुद्धो वदनं घोरचक्षुषा।
निर्दग्धकः प्रत्यानिशं ददर्श भगवानजः।'
(वामनपु० २ अध्याय)

मदनभस्मके समय भी हमें रुद्रका यह वैदिक आग्नेय प्रभाव देखनेमें आता है। (शिवपुराण ११।६)

ऋग्वेदमें और भी कई जगह रुद्रके आग्नेय प्रभावका विषय लिखा है। (६।१६।३९)

इस ऋक्की व्याख्यामें सायणने लिखा है—

"रुद्रो य एष यद् अग्निरिति श्रुतिः। रुद्रकृतमपि त्रिपुरदहनम् अग्निकृतमेव इति अग्निः स्तूयते।"

अर्थात् वेद कहते हैं, कि यह अग्नि ही रुद्र हैं। वेदमें अग्निकी स्तुतिमें लिखा है। यद्यपि त्रिपुरदहन रुद्रका ही कार्य है, किंतु वह अग्नि द्वारा ही किया गया है।

रुद्रके इस आग्नेय तेजके संबन्धमें पुराणमें अनेक प्रमाण-वचन देखनेमें आते हैं। विस्तार हो जानेके भयसे यहां वे उद्धृत नहीं किये गये। उससे जाना जाता है, कि रुद्र जिस किसी मुहूर्त्तमें इच्छा करनेसे ही समस्त चराचरको दग्ध कर सकते हैं—"दग्धुं समर्थोमनसा क्षणेन सचराचरम्।" (शिवपु० २४।२९)

पुराणमें रुद्रके जो त्रिपुर दहनकी कथा है, वह वैदिक भित्तिहीन नहीं है। वेदमें जो सूत्राकारमें लिखा गया है, पौराणिकगण अतीत युगांतरकी जनश्रुतिका विस्तृत विवरण संग्रह कर जनसमाजमें वही प्रकाश करते थे।

वेदसंहिताओंमें शिवका रुद्र नाम ही प्रधान रूपसे उक्त हुआ है, इसके सिवा उनके अन्यान्य नामोंका उल्लेख अधिक नहीं है। पुराणोंमें यद्यपि शिवके अनेक नाम कहे गये हैं, किन्तु वेदव्यवहृत चिरगौरवाहं रुद्र नामका बहुत प्रयोग पुराणोंमें भी देखा जाता है। जो रुद्र हैं, वे ही शिव हैं, कर्मानुसार और भी सैकड़ों नामोंका उल्लेख किया गया है। रुद्र मङ्गलकर हैं, इस कारण उनका नाम शङ्कर है; ब्रह्माका कपाल उनके करमें संलग्न था, इस कारण वे कपाली हैं। (वामन ३ अ०)

हम लोग पुराणोंको वेदका ही पूरण समझते हैं। पुराणमें शिवलीलाके सम्बन्धमें जो कहा गया है, उसे अवैदिक अभिनव कल्पना नहीं कह सकते। पुराणमें शिवकी 'ज्ञानद' नामसे बार बार स्तुति की गई है। ज्ञानार्थियोंको शिवकी शरण लेनी चाहिये, श्रीभागवत आदि पुराणोंमें ऐसे कितने उपदेश देखे जाते हैं। ऋग्वेदमें भी लिखा है—

"रुद्राय प्रचेतसे मीढ़ुष्टमाय तव्यसे।
वोचेम शंतमं हृदे।" (१।४३।१)

इसी ऋग्वेदके पुराणकारने भावसंग्रह कर लिखा है—

"नमामि सततं भक्त्या ज्ञानदं वरदं शिवम्।"

पुराण पढ़नेसे हमें मालूम होता है, कि शिव सङ्गीताचार्य, ताण्डवनर्त्तक और विषाणवादक हैं। ऋग्वेदमें भी इसका सूत्र दिखाई देता है। यथा—

"गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाष भेषजं।
तच्छंयोः सुम्नमीमहे।" (१।४३।४)

यहां जो 'गाथपति' शब्दका प्रयोग हुआ है, उससे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि रुद्रदेव वैदिक युगमें सङ्गीताचार्य कह कर भी सम्मानित होते थे।

शिवका दूसरा नाम पशुपति है। यद्यपि पाशुपत दर्शनमें जीवात्माको पशु और शिवको बद्ध जीवोंके पति कहा है, फिर भी ऋग्वेदमें पशुपति शब्दका मुख्य अर्थ और व्याख्या देखनेमें आती है। यथा—

"शं नः करोत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्यं।
नृभ्यो नारिभ्यो गवे।" (१।४३।६)

अर्थात् रुद्रदेव हम लोगोंकी सम्पद् बढ़ाते हैं और हमारे घोड़े, मेढ़े और गाय आदि पशुओंका कल्याण करते हैं।

इस प्रकार और भी कितनी ऋकोंमें पश्वादिके ऊपर रुद्रदेवताका प्रभुत्व देखनेमें आता है। अतएव शिवका पशुपति नाम भी अवैदिक नहीं है।

पहले कहा जा चुका है, कि ऋग्वेदमें भी रुद्रको कपर्दी कहा है। यथा—

"इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः।
यथा समसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्न-
नातुरम्॥" (१।११४।१)

कपर्दी रुद्र जो पशुपति हैं, वे जो गृहस्थोंको आपद विपद्में 'शङ्कर' और रोगमें 'वैद्यनाथ' हैं, इस ऋक्में उसका भी प्रमाण है।

शिव वीरोंके वरदाता हैं। पुराण पढ़नेसे जाना जाता है, कि कितने सौ दैत्य शौर्यवीर्य और विजयलाभके लिये शिवके उद्देशसे तपस्या करते थे, शिवसे वर पाते थे। वाण, रावण, शाल्व आदि हजारों योद्धा शिवके अनुचर थे। शिव जो वीरोंके प्रभु हैं, पुराणमें उसके दृष्टान्तका अभाव नहीं है। ऋग्वेदके १म मण्डलका ११४वां सूक्त पढ़नेसे मालूम होता है, कि शिव वीरोंके वीर हैं; शिव सुख शांति और मङ्गलदाता हैं तथा रणदुर्मद योद्धा हैं और युयुत्सुयोंके वरदाता हैं। समरमें विजयलाभके लिये पौराणिक शिवभक्तगण जिस तरह शिवकी प्रार्थना करते हैं, वैदिककालमें भी उसी प्रकार युयुत्सुगण रुद्रसे प्रार्थना करते थे। यथा—

"अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्रमीढ्वः।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः।"
(१।११४।३)

हे रुद्र! आप वीरोंके प्रभु हैं, आप परोपकारी हैं, आप हम लोगोंके प्रति दया कीजिये, हम लोग जिससे अपने अविपन्न योद्धाओंके साथ आपके लिये हवन करनेमें समर्थ हों

ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलके ३३वें सूक्तमें बहुत-से रुद्रस्तोत्र देखनेमें आते हैं। पौराणिक रुद्रस्तोत्रकी तरह ये सब स्तोत्र भी विविध कामनाओंसे पूर्ण हैं। इन सब स्तोत्रोंका मर्म इस प्रकार है—हे रुद्र, तुम हम लोगोंके प्रति दया करो, हम लोगोंको जिससे सूर्यहीन देशमें वास करना न पड़े, हम लोगोंके घोड़े नष्ट न हों और हम लोगोंके वंशकी वृद्धि हो। तुम्हारी सञ्जीवन औषधसे जिससे मैं दीर्घजीवी होऊं। हम लोगोंका पाप ताप रोग शोक विनष्ट करो।

गुणावतारोंमें शिवको सृष्टिसंहारक' कहा है। ऋग्वेदमें कई जगह रुद्रके सम्बन्धमें यह गुण आरोपित हुआ है। पुराणमें हम लोग शिवको जिस प्रकार संहारकरूपमें देखते हैं, वैदिकयुगके रुद्र भी उसी प्रकार संहारधर्मी कह कर विख्यात हैं।

पुराणमें शिवको 'वृषध्वज' कहा है। हम ऋग्वेदमें स्पष्टरूपसे ऐसे वर्णनकी भित्ति देख पाते हैं। यथा—

१। "क्वस्य ते रुद्र मृळया कुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः।
अपभर्त्तारपसो दैवस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः॥"
(२।३३।७)

२। "प्रबभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महोमहीं सुष्टुतिमीरयामि।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम।"
(२।३३।८)

लक्षणालङ्कार द्वारा वृषवाहन रुद्र यहां पर 'वृषभ' कहे गये हैं। वे जो 'रजतगिरिनिभ' शुभ्र वर्ण हैं, उद्धृत ऋक्के 'श्वितीचे' पदमें उसका भी प्रमाण मिलता है। इसके सिवा और भी एक ऋक्में 'वृषभ' शब्दका उल्लेख है। यथा—

"एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥"
(२।३३।१५)

रुद्रको देहका वर्ण बभ्रु (brown) कह कर भी वर्णित हुआ है। तन्त्रमें शिवका भिन्न भिन्न ध्यान है। अतएव वैदिक रुद्रका भी भिन्न २ ध्यान रहना असम्भव नहीं। वास्तविक शिव जिस प्रकार बहुमूर्त्तिविशिष्ट हैं, रुद्र भी उसी प्रकार बहुमूर्त्तिविशिष्ट हैं। ऋग्वेदमें उसका भी प्रमाण है। यथा—

"स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रोवभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्नवाउ योषद् रुद्रादसूर्यम्॥"
(२।३३।६)

शिव जिस प्रकार 'रजतगिरिनिभ' शुभ्र समुज्ज्वल हैं, ऋग्वेदमें रुद्र भी उसी प्रकार वर्णित हुए हैं। यथा—

"यः शुक्रइव सूर्यो हिरण्यमिव रोच्यते।" (१।४३।५)

ऋग्वेदमें दूसरी जगह भी (१।११४।५) रुद्रकी इस प्रकार रजतगिरिनिभ समुज्ज्वलताका प्रमाण मिलता है।

अथर्व्ववेदमें रुद्र 'सहस्र चक्षुः' कह कर वर्णित हुए हैं। (अथर्व्ववेद ११।२।२७) वाजसनेयसंहितामें भी सहस्रनयन रुद्रका परिचय पाया जाता है। यथा—

"असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः।
ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवेषां हेड ईमहे। (१६।७)

विद्युत् शिवका ही प्रहरण है, शिवने जिससे मदनको भस्म और त्रिपुरको दहन किया, वह वैद्युतिक शक्तिका ही लीलाविकाश है। ऋग्वेदमें लिखा है—

"याते विद्युदव सृष्टा दिवस्परि" इत्यादि (७।४६।३)

यहां पर यह दिखलाया गया है, कि विद्युत् ही रुद्रशक्ति है। इस सप्तममण्डलके ४६वें सूक्तकी १म ऋक्में ही रुद्रको "तिग्मायुध" कहा है। ऋग्वेदके २।३३।१० ११, ५।४२।११ और १०।१२५।६ इत्यादि स्थानोंमें रुद्रके आयुधका उल्लेख है। शिवके ऐसे आयुधतत्त्व भी पौराणिकोंसे विदित हैं। अथर्वावेदमें भी (१।२८।१, ६।९३।१,१५।५।१-७) रुद्रायुधका परिचय मिलता है। पुराणकारोंने संहारक शूलीके हाथमें भी विविध अस्त्रोंका वर्णन किया है। कार्यतः रुद्रास्त्र और शिवास्त्र एक ही अर्थमें ही व्यवहृत हुआ है। महाभारतके अनुशासनपर्व्वमें शिवसहस्रनाममें लिखा है—

"वज्रहस्तश्च विष्कम्भी चमूस्तम्भन एव च"।

हम ऋग्वेदमें भी 'वज्रहस्त' रुद्र देवको देख पाते हैं। यथा—

"श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रवाहो।
पर्षिणः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि॥"
(२।३३।३)

शुक्ल यजुर्वेद या वाजसनेयसंहितामें भी हम शिवनामका उल्लेख पाते हैं। यथा—

"एकन्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽती हि अवतत धन्वा पिनाकावासः कृत्तिवासा अहिं सन्नः शिवोऽताहि।"
(३।६१)

रुद्र देवका शिव नाम क्यों पड़ा, वहां उसका कारण भी लिखा गया है। रुद्र अपने सेवकोंकी प्रतिहिंसा नहीं करते, उन्हें क्रोध नहीं होनेसे ही प्रजाका मङ्गल होता है, अतएव वे शिव हैं। फिर वे अपने सेवकोंको सब प्रकारकी विपदोंसे बचाते हैं। इसलिये भी वे शिव हैं। वे मूजवान् नामक पर्वतवासी हैं। वे कृत्तिवास और पिनाकधारी हैं तथा शत्रुका नाश करनेके लिये हमेशा धनुष चढ़ाए हुए हैं। शुक्ल यजुर्वेदके इस मन्त्रमें पौराणिक शिवका और भी परिस्फुट परिचय पाया गया है।

शिव जो व्याधिनाशक हैं, यह ज्ञान भारतवासी हिन्दुओंके हृदयमें बहु प्राचीनकालसे चला आता है। वैदिकयुगके ऋषिगण प्राचीन ऋकमन्त्रमें इसे "भिषक्तमं" (२।३३।४) कहा करते थे और रोगसे मुक्त रखते (२।३३।२) तथा वीरोंकी देहको कार्यक्षम बनानेके लिये (२।४३।४) प्रार्थना करते थे। पशुओंकी रोगचिकित्साके लिये ही रुद्रदेवकी प्रार्थना की जाती थी। रुद्र औषध देते हैं (२।३३।१२), रुद्र प्रत्येक रोगकी औषध बतला देते हैं (५।४२।११), हजारों औषध उन्हें मालूम है (७।४६।३), अच्छी अच्छी सुनिर्वाचित औषध हमेशा उनके हाथमें रहती हैं (१।११४।५) उनकी हाथके गुणसे सभी रोग आरोग्य होता है, उनके औषधके गुणसे मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं (२।३३।२), बच्चोंकी रोगमुक्तिके लिये उनकी प्रार्थना प्रयोजनीय (७।४६।२) है, मनुष्य और पश्वादिके मारिभयनिवारण और ग्रामके स्वास्थ्यसंरक्षणके लिये उनकी आराधना आवश्यक है (१।११४।१)। इसीलिये वे 'जलाय भैषज' नामसे अभिहित हुए हैं। अथर्वावेदमें भी उनके इस गुणका परिचय आया है (१।२७।६, १।४३।४, २।२७।६) यजुर्वेदमें भी रुद्रके चिकित्सा-कार्यका परिचय है। यथा—

"भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् ।
सुखं मेषाय मेष्यै ।" (३।५६)

हे रुद्र! तुम औषध स्वरूप सभी उपद्रवको नाश करो। अतएव हम मानवोंको गो अश्व मेष आदिको सर्वव्याधिनिवारक औषध दो।

इसके सिवा आश्वलायनगृह्यसूत्रमें (४।८।४०) तथा कौशिकसूत्रमें रुद्रके चिकित्साकार्यका परिचय है। महाभारतमें भी शिवसहस्रनाममें शिवको धन्वन्तरि कहा है। यथा—

"धन्वन्तरि धूमकेतुः स्कन्दो वैश्रवण स्तथा।"

इसकी टीकामें नीलकण्ठने लिखा है—'धन्वन्तरि महावैद्यः' "भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि इति मन्त्रप्रसिद्धः।"

फलतः उस प्राचीनतम वैदिक युगसे रुद्र या शिव इस देशमें वैद्यनाथरूपमें भी पूजित होते आ रहे हैं।

ऋग्वेदके युगमें आर्य्यगण रुद्रसे वंशवृद्धिकी कामना करते थे (२।३३।१), आज भी भारत रमणियां सन्तानकी कामनासे शिवके प्रसादके लिये सोमवारको उपवास करती हैं।

प्राचीन आर्य्यगण धनसम्पत्ति आदिके लिये रुद्रसे ऋक्‌मन्त्रमें प्रार्थना करते थे। यथा—

"यच्छं च योश्च मनुरायजे पिता तदश्याम तव रुद्रप्रणीतिषु।"
(१।११४।२)

हे रुद्र! हमारे पिता मनुने तुम्हारी आराधना करके जो धनसम्पत्ति पाई थी, तुम्हारी कृपा हो, तो हम भी वही धनसम्पत्ति पा सकते हैं। इसके सिवा कुछ ऋक् मन्त्रमें इसी प्रकारकी धनसम्पत्तिलाभकी प्रार्थना देखी जाती है।

वाजसनेयसंहितामें लिखा है, कि रुद्र-उपासकगण रुद्रसे धनसम्पत्तिकी प्रार्थना करते थे। यथा—

"अव रुद्र महीमह्यव देवं त्र्यम्बकम्। यथा नो वस्यस सङ्करद् यथा नः यथा श्रेयसङ्करद् यथा नो व्यवसाययात्।" (३।५८)

यहां जिस प्रकार हम एक ओर धनवरदातृत्वका परिचय पाते हैं, उसी प्रकार दूसरी ओर शिवका दूसरा सुप्रसिद्ध त्र्यम्बक नाम भी देखा जाता है। त्र्यम्बक शब्दकी व्याख्यामें महीधरने लिखा है, 'त्र्यम्बकम्—त्रीण्यम्बकानि नेत्राणि यस्य तादृशं देव मव त्रिनेत्रोत्वयं देव इत्यादि।'

यहां रुद्रदेवको स्पष्ट तौर पर त्रिनेत्र कहा गया है। हम शिवके ध्यानमें भी "पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं" पाते हैं। अतएव इस त्रिनेत्रसे भी शिव जो यजुर्वेदके समय यजुर्मन्त्रमें उपासित होते थे, यहां यह प्रमाणित होता है। पहले वाजसनेयसंहितासे एक मन्त्र (३।६१) उद्धृत किया जा चुका है, कि ये कृत्तिवास हैं। अतएव शिवके ध्यानका 'व्याघ्रकृत्तिं वसानं' पद इसीसे जाना जाता है। फिर रुद्रदेव वैदिक युगके जिस प्रकार धनवर दान कर ऐश्वर्यकामियोंके हृदयमें सकाम भक्ति वर्द्धन करते थे, पौराणिक युगमें वह भीषण संहारक रुद्र 'शिव' नामसे प्रसिद्ध हो धनलोलुप भक्तोंकी कामना पूरी करनेमें सर्वदा तैयार रहते हैं। (भागवत १०।८८)

रुद्रके धनदातृत्वके सम्बन्धमें अथर्ववेदमें भी प्रमाण है। यथा—

"सोऽर्यमा स वरुणः सरुद्रः स महादेवः।
स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनुसंहितः॥"
(१३।४।४)

रुद्रको यहां महादेव नामसे भी अभिहित किया गया है। अथर्ववेदमें हम कई जगह रुद्रका पशुपति नाम पाते हैं शर्व और भव नामका उल्लेख भी यथेष्ट है। फलतः शिव, पशुपति और महादेव आदि नाम जो प्राचीन वैदिक कालमें भी सुप्रचलित था, इन सब प्रमाणोंसे यह सहजमें विश्वास किया जा सकता है।

यजुर्वेदका 'शतरुद्रीय' क्रोध प्रशमनके लिये स्तुति-विशेष है। इसमें पूर्वलिखित विषयोंको बहुत-सी बातें ही सन्निविष्ट हैं। शतरुद्रीय स्तवमें हम महादेवके निम्नलिखित पुराण-प्रसिद्ध नाम देखते हैं—गिरिश ('गिरौ कैलासे शेते गिरिशरिति' महीधरः) गिरित्र ('गिरौ कैलासे स्थितो भूतानि त्रायत इति गिरित्र' महीधरः), भिषक्, नीलग्रीव (नीलकण्ठ), कपर्द्दी, भव, शर्व, पशुपति, शितिकण्ठ, सोम, रुद्र, उग्र, शिव, शिवतर, नीललोहित (१६।४१)

शतपथब्राह्मणमें (६।१।३।७।१६) रुद्र और अग्निको

एक ही देवता कहा है तथा रुद्रकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें भी इतिवृत्त है। शर्व और भवादि नाम अग्निके ही पृथक् नाम हैं। भाष्यकारने लिखा है, "प्राच्यादिदेश-भेदेन शर्वादि नामभेदेऽपि देवता एक एव।" अर्थात् प्राच्यादि देशभेदसे नामभेद होने पर भी देवता एक ही हैं। सर्वादि अष्टमूर्त्तिका विवरण सबसे पहले इसी शतपथब्राह्मणमें देखनेमें आता है। मार्कण्डेय और विष्णुपुराणमें जो रुद्रोत्पत्तिका प्रसङ्ग है, वह शतपथ-ब्राह्मणके विवरणकी ही तरह है। शाङ्खायन या कौषि-तकी-ब्राह्मणमें भी यह आख्यायिका कुछ पृथक्भावमें वर्णित हुई है। रुद्रदेवताके साथ अग्निदेवताके एकता सम्बन्धमें महाभारतके वनपर्वमें भी परिचय पाया जाता है। यथा—

"आगम्य मनुजव्याघ्र सह देव्या परन्तप।
अर्च्चायामास सुप्रीतो भगवान् गोवृषध्वजः।
रुद्रमग्निं द्विजाः प्राहुः रुद्रसुनुस्ततस्तु सः।
रुद्रेण शुक्रमुत्सृष्टं तत् श्वेतं पर्वतोऽभवत्।"

कालाग्निरुद्र नामसे भी महादेवकी पूजा होती है। इस नामका एक उपनिषद् भी देखनेमें आता है।

श्वेताश्वतर उपनिषद्में लिखा है, कि रुद्रके विश्वतो मुख हैं। अतएव शिवप्रतिमाके पञ्चमुखकी श्रौत-भित्तिका प्रमाण भी उतना दुर्बल नहीं है। अथर्वशिर उपनिषद्में महेश्वर ईशान, शम्भु और महादेव आदि तथा कहीं कहीं रुद्रदेव नामसे अभिहित हुए हैं। इस उपनिषद्में उमाका नाम भी देखनेमें आता है। महे-श्वरादि नामकी व्याख्या भी अथर्वशीर्ष उपनिषद्में लिखी है।

कैवल्य उपनिषद्में शिवमूर्त्ति और भी प्रस्फुट है। यथा—

"उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्"

इसके सिवा नीलरुद्रोपनिषद् आदि और भी कितने उपनिषद् आदि और भी कितने उपनिषदोंमें रुद्र तथा शिवमाहात्म्य कीर्त्तित हुआ है।

कैवल्योपनिषद्में हम शिवपत्नी उमाका नाम पाते हैं। शुक्लयजुर्वेद पढ़नेसे जाना जाता है, कि अम्बिका देवी महादेवके साथ यज्ञभाग ग्रहण करती थी। (३।५७) किन्तु वे रुद्रकी भगिनी कह कर ही परिचित हैं। केन-उपनिषद्में हम सबसे पहले हैमवती उमाका परिचय पाते हैं। यथा—

"स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानां उमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद् यक्षमिति॥"

(केन ३।१२)

देवताओंको किस प्रकार सबसे पहले इन हैमवती उमाका दर्शन हुआ, इस उपनिषद्में उसका भी विवरण है। उसका संक्षिप्त मर्म यह है, कि ब्रह्मने एक दिन देवताओंको विजय प्रदान किया, किन्तु देवगण ब्रह्म-शक्ति न समझ कर अपनेको ही प्रकृत विजेता समझने लगे। देवताओंका यह भ्रम दूर करनेके लिये ब्रह्म उनके सामने उपस्थित हुए। इस पर देवताओंने ब्रह्मके निकट वायु और अग्निको भेजा। ब्रह्मने पूछा, 'तुम लोगोंके पास कौन शक्ति है?' अग्निदेव बोले, 'मैं जिस किसी पदार्थको दहन कर सकता हूं।' वायु-ने कहा, 'मैं सभी वस्तुको उड़ा सकती हूं।' इस पर ब्रह्मने उनकी शक्तिपरीक्षाके लिये एक तृण उनके सामने ला रख दिया, किन्तु अग्नि उसे जला न सके, और न वायु ही उसे उड़ा सकी। वायु और अग्नि अप्रतिभ हुए तथा कौन उनके सामने उपस्थित थे, उसका निर्णय वे न कर सके। तब देवताओंने इन्द्रको भेजा। इन्द्रके उपस्थित होते ही ब्रह्म अन्तर्हित हो गये। उस समय इन्द्रने आकाशमें बहुशोभमाना उमा हैमवतीको देखा। पूछने पर उमाने कहा, 'ये ब्रह्म हैं।'

भाष्यकारने उमाको ब्रह्मविद्या कहा है। स्वयं ब्रह्म-विद्या रमणीया रमणीमूर्त्ति धारण कर इन्द्रके सामने प्रकट हुई थीं।

तैत्तिरीय आरण्यकमें (१८ अनुवाक) "अम्बिका-पतये" पद है। यथा नारायणीयोपनिषद्में "अम्बिका पतये उमापतये पशुपतये नमोनमः।" सायणने इसके भाष्यमें लिखा है, "अम्बिका जगन्माता पार्वती—तस्याः भर्त्रे अम्बिकापतये।" तैत्तिरीय आरण्यकमें उमा शब्द-का भी प्रयोग है। सायणने इस उमाको भी रुद्रपत्नी ही कहा है। इसके सिवा गौरी और पार्वती नाम भी

वैदिक युगसे ही प्रचलित है। पार्वती भी रुद्रपत्नी कह कर वैदिक युगसे परिचित हैं।

नारायणीय उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेदके अन्तर्गत है। इस उपनिषद्को तैत्तिरीय आरण्यक उपनिषद् भी कहते हैं। इसमें हम रुद्र और उनकी पत्नीका यथेष्ट परिचय पाते हैं। इस उपनिषद्में रुद्रगायत्री और दुर्गागायत्री है। दुर्गा कात्यायनी नामसे प्रसिद्ध है। दुर्गा इस उपनिषद्में दुर्गि और कन्या कुमारी नामसे भी अभिहिता हैं। दुर्गाका एक प्रणाम भी इस उपनिषद्में देखा जाता है; यथा—

"तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्म्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः॥"

यहां दुर्गा 'अग्निवर्णा' कह कर वर्णित हुई हैं। अग्नि रुद्रकी ही एक मूर्त्ति हैं। अग्नि और रुद्र एक ही कह कर जगह जगह वर्णित हुए हैं। मुण्डकोपनिषद्में लिखा है—

"काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वाः॥"

काली कराली आदि नाम यहां अग्निजिह्वा कह कर वर्णित हुए हैं। तात्पर्य यह, कि ये अग्नि या रुद्रशक्ति हैं।

दुर्गा उमा हैमवती और पार्वती नाम रुद्रपत्नी अर्थमें ही व्यवहृत हुए हैं। दुर्गाके पार्वती नामकी व्युत्पत्ति तैत्तिरीय आरण्यकमें भी देखी जाती है। यथा नारायणीयोपनिषद्में लिखा है—

"उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतमूर्द्धनि।
ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथा सुखम्॥"

इस उपनिषद्में रुद्रकी भी कितनी स्तवस्तुति देखनेमें आती है।

पुराणके मतसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीनों ही एक हैं। जो इस जगत्की सृष्टि करते हैं, वे ब्रह्मा, पालनकर्त्ता विष्णु और जो संहारकारक हैं वे, ही शिव कहलाते हैं।

"न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न शम्भूर्ब्रह्मणस्तथा।
न चाहं युवयोर्भिन्नो ह्यभिन्नत्वं सनातनम्॥"
(कालिकापु० ११ अ०)

भगवान् गरुड़ध्वजने महादेवसे कहा था, कि ब्रह्मा आपसे भिन्न नहीं हैं और आप भी ब्रह्मासे अभिन्न हैं तथा मैं भी आप दोनोंसे भिन्न नहीं हूं। आपसको जो यह अभिन्नता है, वह सनातन है।

एक दिन शिवने भगवान् विष्णुसे पूछा था, "ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीन एक हो कर भी विभिन्न क्यों हुए हैं, इनका स्वरूप मुझसे कहिये" विष्णुने उत्तर दिया, 'पहले जब जगत् नहीं था, ये सभी परिदृश्यमान प्रसुप्तकी तरह तमोगुणके दुर्भेद्य आवरणसे आवृत, अलक्ष्य और अपरिज्ञात थे, उस समय दिवारात्रि, पृथिवी, ज्योतिः, आकाश, जल, वायु आदि कुछ भी न था, ये सिर्फ सूक्ष्म, अतीन्द्रिय, अव्यक्त, अद्वय, ज्ञानमय एक परमब्रह्म थे, उस परब्रह्मके ही ये तीन रूप हैं। उस परब्रह्मका काल नामक एक और नित्यरूप है। जब परब्रह्मने इस जगत्की सृष्टि करने की इच्छा प्रकट की, तब अपनी प्रकृतिको विक्षोभित तथा प्रकृतिके इच्छाक्रमसे त्रिगुणमय निज शरीरको भी तीन भागोंमें विभक्त किया। यह विभक्त शरीरत्रय त्रिगुणमय हुआ। उस अखण्ड शरीरका ऊर्द्ध्वभाग चतुर्मुख, चतुर्भुज और कमलकेशरसन्निभ आरक्तवर्ण विरिञ्चिके शरीरमें परिणत हुआ। उसके मध्य भागमें एकमुख, श्यामवर्ण, शङ्ख चक्र गदा पद्मधारी चतुर्भुज विष्णु शरीर और अधोभागमें पञ्चानन चतुर्भुज स्फटिकवत् शुक्लवर्ण शिवदेह हुई। उस समय वे ब्रह्मशरीरमें सृष्टिशक्ति नियोजित कर आप ब्रह्मारूपमें सृष्टिकर्त्ता हुए। विष्णुशरीरमें स्थितिशक्ति तथा शिवशरीरमें प्रलयकारिणी शक्ति नियोजित की गई। एक परब्रह्म ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय ये तीनों कार्य करनेमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव पृथक् पृथक् नामोंसे अभिहित हुए हैं। यथार्थमें हम लोग विभिन्न नहीं हैं, तीनों ही एक हैं, अभिन्न हैं।' (कालिकापु० १२ अ०)

शिवने पिताके औरस या माताके गर्भसे जन्मग्रहण किया है, ऐसा कोई भी प्रमाण न पा कर कवि कालिदासने कुमारसम्भवमें लिखा है—

"वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता"

अर्थात् शिवके कुलका कोई भी परिचय नहीं है। फलतः शिव स्वयम्भु हैं। पुराणमात्रमें ही शिवकी बहु-

लीला वर्णित हुई है। शिव पर्वतवासी हैं, वेदमें भी इसका प्रमाण है। इसी कारण वे 'गिरिश' कहलाते हैं। पुराणमें कैलास ही शिवके वासस्थानरूपमें प्रकल्पित हुआ है। शिवपुराणमें शिवका जो ध्यान है, वही ध्यान सुविख्यात है। यथा—

"ओं ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं।
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणै र्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्।
कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानी सहितं नमामि।
कैलासपीठासनमध्यसंस्थं भक्तैश्च नन्द्यादिभिः सेव्यमानम्।
भक्तास्तिदावानलमप्रमेयं ध्यायेदुमानन्दितविश्वरूपम्॥"

हम इन तीन श्लोकोंमें शिवदुर्गाकी अति परिस्फुट प्रतिच्छवि मानसनेत्रमें देख पाते हैं। शिवका वर्ण कर्पूरधवल है ऋग्वेदमें भी हमने उसका प्रमाण पाया है। हिमगिरिके कैलासशृङ्ग पर रजतगिरिनिभ कर्पूरगौर महादेव पद्मासन पर बैठे हैं, बाईं ओर गिरिजा हैं। वे पिनाकपाणि और त्रिगुणधारी हैं, डमरू और कपाल भी उनके हाथमें शोभा पा रहा है। इसके सिवा परशु भी उनका आयुध है। उनका पाशुपतास्त्र भुवनविख्यात है। वे जटाजूटधारी (कपर्दी), वृषवाहन, वृषध्वज और नीलकण्ठ हैं। भुजङ्गमाला ही उनके अङ्गप्रत्यङ्गका अलङ्कार है। तन्त्रमें शिवके अनेक प्रकारके ध्यान हैं, जो पीछे लिखे जायेंगे। पुराणमें शिवलीलाके अनेक आख्यान हैं। कुछ आख्यानोंसे शिवचरित्रका वर्णन संक्षेपमें किया जाता है।

शिवका एक नाम कपाली है। इस नामके साथ शिवकी एक लीला संश्लिष्ट है। वामनपुराणमें लिखा है, कि पूर्वकालमें समस्त जगत् एकार्णवमें जलमग्न हो कर स्थावर जङ्गम चन्द्र सूर्य नक्षत्र अनल अनिल आदि विनष्ट हुए थे। उस समय अप्रतर्क्य, अज्ञेय भाव कुछ भी न था, वृक्ष लता आदि समस्त वस्तु कारणसलिलमें निमग्न थी। अर्णवशायी भगवान् देवपरिमाण सहस्र वर्ष इस कारण-सलिलमें निद्रित थे। नींद टूटने पर उन्होंने रजोगुणमें पञ्चवदन ब्रह्माकी और तमोगुणमें पञ्चवदन शङ्करकी सृष्टि की। कपर्दीने उत्पन्न होते ही अक्षमाला ले कर योग आरंभ कर दिया। भगवान्‌ने शङ्करका योगप्रभा देख कर समझा, कि इनसे इस प्रकार सृष्टिका कार्य नहीं चलेगा। तब उन्होंने अहङ्कारकी सृष्टि की। ब्रह्मा और शङ्कर अहङ्कारके वशीभूत हुए। दोनोंमें भीषण कलह उपस्थित हुआ। शङ्करने अपने नखसे ब्रह्माका एक मस्तक काट डाला। तभीसे ब्रह्मा चतुर्मुख हुए तथा वह छिन्नमस्तक शङ्करके करतलमें संलग्न रहा। इसी समयसे महादेव कपाली नामसे प्रसिद्ध हुए। पीछे उनके शरीरमें ब्रह्महत्या पाप घुस गया। महादेव धीरे धीरे निस्तेज होने लगे। ब्रह्महत्यापापसे मुक्तिलाभ करनेके लिये महादेवने अनेक तीर्थोंमें पर्यटन किया, किन्तु कहीं भी वह नरकपाल हाथसे न गिरा। आखिर वे नारायणकी तपस्या करने लगे। नारायणने तपस्यासे सन्तुष्ट हो उन्हें वाराणसी धाममें असिवरुणाके मध्य स्नान करनेके लिये उपदेश दिया था। वहां स्नान करनेसे ब्रह्महत्या पाप दूर हुआ सही पर ब्रह्माका कपाल हाथसे न छूटा। अनन्तर उन्होंने भगवान् केशवके दर्शन किये और उनके आदेशसे सामनेवाले एक सर्वतीर्थाग्रगण्य ह्रदमें स्नान किया। स्नान करते ही उनके हाथसे कपाल नीचे गिर पड़ा। तभीसे वह स्थान कपालमोचन' नामसे प्रसिद्ध हुआ है।

दक्षयज्ञविनाश शिवलीलाकी एक अति प्रधान घटना है। पौराणिकोंने शिवलीलाके मध्य इस लीलाकी सबसे अधिक प्रधानता दिखलाई है। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—दक्ष प्रजापतिकी कन्या सतीके साथ शिवका विवाह हुआ। किसी समय दक्ष प्रजापतिने एक यज्ञका आरम्भ किया। उस यज्ञमें शिवको छोड़ और सभी ऋषि देवता आदिको निमन्त्रण दिया गया। दक्षप्रजापति नाना कारणोंसे शिवके प्रति असन्तुष्ट थे। दक्षके असन्तोषका कारण भिन्न भिन्न पुराणमें भिन्न भिन्न रूपसे वर्णित है। जो हो, शिवपत्नी सती इस यज्ञमें विना निमन्त्रणके ही गई। दक्ष प्रजापति अपनी कन्याके सामने उसके पति शिवके प्रति अवमाननासूचक कटुवाक्य कहने लगे। इस पर पतिप्राणा सती-

को मर्मान्त क्लेश उपस्थित हुआ और उसी समय उन्होंने प्राणत्याग किया। सतीके देहत्यागका संवाद सहसा कैलास पहुंचा। महादेवके हृदयमें क्रोधकी आग धधक उठी। वे अब क्षणकाल भी ठहर न सके और भूतप्रेतप्रमथोंके साथ दक्षालयको चल दिये। वहां पहुंच कर हजारों शिवसेनाने दक्षयज्ञको विध्वंस किया और यज्ञमें आये हुए देवता और ऋषियोंके प्रति घोर अत्याचार आरंभ कर दिया। यज्ञस्थलमें भीषण युद्ध छिड़ गया। पिनाकपाणि महादेवने दक्षका शिर काट डाला। महादेवका दुरन्तवीर्य्य और प्रभाव देख कर देवगण उनका स्तव करने लगे।

आशुतोषने स्तवसे संतुष्ट हो क्षतिग्रस्त देवताओंके अङ्गकी क्षति उसी समय पूरी कर दी। जिसका जो अङ्ग विनष्ट हुआ था, महादेवके प्रभावसे उसे वह अङ्ग प्राप्त हो गया। दक्ष पर भी शिवने अनुग्रह दरसाया। परन्तु जिस मुखसे दक्षने शिवनिन्दा की थी, वह मुख अब प्राप्तियोग्य न होनेके कारण महादेवने दक्षके शरीरमें छागमुण्ड जोड़ दिया। महादेव देवताओंमें प्रधानतम चिकित्सक थे। अस्त्रविद्या और भैषज्यविद्याके वे शिक्षा गुरु थे। अतएव उनकी कृपासे किसीने विनष्ट अंग प्रत्यंग लाभ किया, किसीने छिन्नकेश फिरसे पाया, किसीका क्षत अंग उसी समय चंगा हो गया, किसीकी असहनीय गात्रवेदना उसी समय प्रशमित हो गई। देवगण विस्मित हो कर अपने अपने धामको चल दिये। किन्तु प्रियतमा प्रणयिनी सतीविरहसे महादेव बिलकुल उन्मत्त हो गये। परम प्रेमिक महादेव पत्नीप्रेमसे अधीर हो मृतदेहको अपने कन्धे पर ले कर उन्मत्तकी तरह तांडव नृत्य करते करते बड़ी उदासीनतासे परिभ्रमण करने लगे।

विष्णु शङ्करकी यह दशा देख बड़े दुःखित हुए। वे शिवके कंधे पर रखी हुई सतीदेहको सुदर्शन चक्रसे काटने लगे। एक एक स्थानमें सतीकी देहका एक एक अंश छिन्न हो कर गिरा। जहां जहां सतीदेहका अंश गिरा था, वे सब स्थान पीठस्थान और परम पवित्र तीर्थरूपमें गिने गये हैं।

शिव देवताओंमें ज्ञान वैराग्यका आदर्शावतार हैं। तपस्या और योग शिवको स्वभावसुलभ नित्य सम्पत्ति है। सतीके देहत्याग करने पर शिवजी एक निर्जन वनमें तपस्या करने लगे। इधर सतीदेवीने नगेन्द्रराज हिमवान्‌की गृहिणी मेनकादेवीके गर्भमें फिरसे जन्म लिया। उनका अलोकसामान्य सौन्दर्य्य और शङ्करको पानेके लिये असाधारण तपस्याका विवरण, विविध पुराणमें विशेषतः महाकवि कालिदासके कुमारसम्भव ग्रन्थमें विस्तृतरूपसे लिखा है। इस संबन्धमें शिवपुराण, वामनपुराण और कुमारसंभवके वर्णनमें यथेष्ट सादृश्य है। ये सब घटनाएं पाठकोंसे छिपी नहीं हैं, अतएव बहुत बढ़ जानेके भयसे उसका वर्णन यहां नहीं किया गया। शङ्कर जिस निभृत वनमें तपस्या करते थे, पर्वतराजतनया पार्वती भी शिवप्राप्तिके लिये उसी वनमें कठोर तपस्या करती थी। समाधिमग्न महायोगी महेश्वर इस समय वाह्यज्ञानविरहित थे। अतएव गिरिराजनन्दिनी उनकी पार्श्ववर्त्तिनी महायोगिनीके वेशमें वहां रहने पर भी शिवजी उन्हें पहचान न सके।

इधर तारकासुरके उपद्रवसे देवगण तंग आ गये थे। शिववीर्य्यसंभूत सन्तानको छोड़ तारकासुर और किसीसे वधार्ह नहीं है, जब यह रहस्य देवताओंको मालूम हुआ, तब उन्होंने हरयोगभंगके लिये वसन्तके साथ मदनको नियुक्त किया। अपने अनुचरोंके साथ शिवके योगस्थलमें पहुंच कर मदनने देखा, कि महादेव ध्यानमग्न हैं। उन्होंने अपना परिणाम जान कर भी महायोगी महादेवके प्रति अपना वाण फेंका। मदनका वाण अव्यर्थ था। उस वाणसे देवादिदेव महायोगी महेश्वर भी उसी समय विचलित हो उठे, जब उन्हें वाह्यज्ञान हुआ, तब उन्होंने देखा, कि पुष्पधनु उनके सामने खड़े हो कर उन पर वाण फेंक रहे हैं। क्रोधसे शङ्कर अग्निमय हो उठे। उनके तृतीय नेत्रसे भीषण अनलधारा उसी समय बहने लगी। उस धाराने तड़िद्वेगसे जा कर मदनको जला दिया।

रतिने धूलिधूसरित हो रोती रोती प्रस्थान किया। सुखमय वसन्तवन अचानक मानो श्मशानमें परिणत हो गया। ध्यानभङ्गके बाद महादेवने पार्वतीको मानो देख कर न देखा और वे वहांसे चल दिये। हरकोपानलसे

मदन भस्मीभूत हुए सही, पर वे शङ्करके हृदयमें जो वाण फेंक गये थे, उस वाणकी आग न बुझी। उससे महादेवके हृदयमें विकार उपस्थित हुआ। ध्यानभङ्ग होनेके बाद वे पार्वतीको देख कामवाणसे विमुग्ध हो गये थे। किन्तु वे हठात् अपनी मूर्त्तिमें पार्वतीके पास न जा कर एक जटिल ब्रह्मचारीके वेशमें तपस्विनी पार्वतीके कुटीरद्वार पर गये और उनकी शिवानुरागपरीक्षा करनेके लिये उनके सामने नाना प्रकारकी शिवनिन्दा करने लगे। पार्वतीने भी उसका यथायोग्य उत्तर दे कर ब्रह्मचारीको शिवनिन्दा करनेसे रोका। परन्तु जटिल ब्रह्मचारीने उनकी एक न सुनी और पुनः पुनः शिवनिंदा करने लगे। पार्वती शिवनिन्दा सुन कर आशङ्कासे स्थान छोड़ देनेके लिये तत्पर हो गईं। इस समय परम करुणामय महेश्वरने अपना असली रूप दिखा कर शैलाधिराजतनयाको कृतार्थ किया। उमाकी तपस्या फलवती हुई। सखियोंने शैलराज और मेनका देवीसे कुल वृत्तान्त जा कहा। इसके बाद नगेन्द्रराज हिमवान्ने बड़ी धूमधामसे शिवके साथ अपनी कन्या पार्वतीका शुभविवाह कर दिया।

ये सब विषय वामनपुराण, शिवपुराण और कुमारसम्भवमें विस्तृत रूपसे लिखे हैं। विवाहके बाद बहुत दिनों तक शिव पार्वती दोनों एक साथ रहे। इस समय शिववीर्य (पार्वतीके गर्भसे नहीं) कुमार कार्त्तिकेयकी उत्पत्ति हुई। उन्होंने ही देवसेनापतिरूपमें तारकासुरको निहत किया।

शिवका एक नाम त्रिपुरारि है। शङ्करने त्रिपुरका दहन करके ही यह नाम पाया था। त्रिपुरदहन शिवलीलाकी एक दूसरी प्रधान घटना है। इसका मर्म इस प्रकार है,—तारकासुरके मारे जाने पर उसके तीन पुत्रों विद्युन्माली, तारकाक्ष और कमलाक्षने देवताओंका प्रभाव खर्व करने तथा अपना आधिपत्य फैलानेके लिये कठोर तपस्या ठान दी। तपस्यासे प्रसन्न हो ब्रह्मा वर देनेके लिये आये। ब्रह्माके वरसे तीनों भाईयोंने इन्द्रादि देवताओंके अभेद्य तीन पुर पाये, पहला स्वर्णमय, दूसरा रजतमय और तीसरा लोहमय था। ब्रह्माके कहनेसे मयदानवने इस त्रिपुरकी रचना की थी। इस त्रिपुरका अनन्त वैभव तथा अलोकसामान्य प्रभाव अति विस्तृतरूपसे शिवपुराणकी ज्ञानसंहिताके १९वें अध्यायमें लिखा है। विना धर्मके कोई भी वैभव नित्य प्रतिष्ठित नहीं रह सकता, यह तीनों दैत्य अच्छी तरह जानते थे। इस कारण उन्होंने त्रिपुरमें धर्मकार्यके लिये अच्छी व्यवस्था कर दी थी। अतएव धर्मबलसे, ऐश्वर्यबलसे और महावीर्यसे तीनों त्रिपुराधिपोंने इन्द्रादि देवताओंको विध्वस्त कर डाला था।

देवगण दुःखित हो कर ब्रह्माके पास गये और अपना दुखड़ा रोया। ब्रह्माने कहा, 'मैं उनका वरदाता हूं, अतएव वे मुझसे नहीं मारे जा सकते। विशेषतः त्रिपुर पुण्यमय नगर है। पुण्य रहते किसीका विनाश नहीं होता। आप लोग शङ्करके पास जायं, वही आपका दुःख दूर कर सकते हैं। तदनुसार देवगण शिवके पास गये। शिवने कहा, 'त्रिपुर पुण्यमय स्थान है, पुण्य रहते त्रिपुरका विनाश नहीं हो सकता। आप लोग चक्री विष्णुके पास जायं, वही उपयुक्त मन्त्रणा देंगे।' देवताओंने विष्णुके पास जा कुल वृत्तान्त कह सुनाया। विष्णु बोले, 'इस छोटी-सी वातके लिये आप लोग चिन्ता न करें, त्रिपुरका विनाश महादेव द्वारा ही होगा, पर हाँ, जब तक त्रिपुरमें वेदधर्म प्रबल रहेगा, तब तक त्रिपुरका विनाश नहीं है। अतएव त्रिपुर-विनाशके लिये सबसे पहले त्रिपुरवासीका धर्म नष्ट करना होगा। धर्मके विनष्ट होनेसे ही त्रिपुरवैभव आपे आप विनष्ट होगा। तब देवादिदेव महादेव त्रिपुरको भस्म कर डालेंगे। दैत्यगण देवताओंके चिरशत्रु हैं। इनका प्रभाव जगत्का मङ्गलजनक नहीं है। अतएव इसके लिये अवश्य ही कोई व्यवस्था करनी होगी।'

विष्णुकी युक्तिपूर्ण उक्ति सुन कर देवगण आश्वस्त हो चले गये। इधर विष्णुने मायी मुण्डी नामक एक धर्मध्वंसकारी पुरुषकी सृष्टि करके उसे त्रिपुरमें भेज दिया। उसका वेदविरुद्ध उपदेश त्रिपुरमें प्रचारित होने लगा। त्रिपुरवासिगण आपातमनोरम उपदेशोंको ग्रहण कर धर्मभ्रष्ट हो गये। धर्म और लक्ष्मी त्रिपुरसे निकल गईं।

देवगण सुसमयकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वे लोग

उपयुक्त समय देख कर शिवके पास गये और उन्हें कुल वृत्तान्त कह सुनाया। महादेव बड़ी धूमधामसे असंख्य सैन्य समरसज्जासे सज्जित हो त्रिपुर विनाशके लिये चल दिये। देवताओंने ससैन्य उसका साथ दिया। देवताओंके साथ पिनाकपाणि तीनों पुरके सामने गये तथा एक कालाग्निरुद्र स्वरूप पाशुपतवाणसे निमिष भरमें धूर्जटी तीनों दैत्योंके अनन्तवैभवपूर्ण अमेय त्रिपुरको भस्मीभूत कर डाला। वे मुहूर्त्त भरमें केवल इच्छाशक्तिसे विशाल अनन्त ब्रह्माण्डको दग्ध कर सकते थे, त्रिपुरदहनकालमें उनका यह आडम्बरपूर्ण उद्योग केवल लौकिक लीलामात्र था। इसी घटनासे महादेवके रुद्र त्रिपुरारि और त्रिपुरान्तक आदि नाम पड़े।

रामायण और महाभारतमें महादेव वीररूपमें वर्णित हुए हैं। इन दो ग्रन्थोंमें भी उनके वीरत्वकी अनेक आख्यायिकाएं हैं। विष्णुके साथ महादेवके युद्धकी कथा रामायणमें भी देखी जाती है। श्रीकृष्ण जो महादेवकी यथेष्ट श्रद्धा करते थे तथा उनसे जो इन्होंने अस्त्रादि संग्रह किये थे, महाभारतमें इसका विवरण दिया गया है। महाभारतीय वाणपर्वाध्याय पढ़नेसे जाना जाता है, कि जयद्रथवधके लिये कृष्णार्जुनने महादेवके पास जा कर स्तव स्तुतिसे उन्हें सन्तुष्ट किया तथा उनसे पाशुपत अस्त्र पाया था। अनुशासनपर्वमें भी कृष्ण द्वारा महादेवका माहात्म्य कीर्त्तित है। हम शिवपुराणमें उसीकी प्रतिध्वनि सुनते हैं। अनुशासनपर्वका चौदहवां अध्याय महादेवके माहात्म्यसे पूर्ण है। इसके सिवा और भी अनेक स्थलोंमें महादेवका माहात्म्य कीर्त्तित हुआ है। इस अध्यायमें उपमन्युकी माताने महादेवका जो चरित प्रकट किया है, वह शैवमात्रका ही अतीव समादृत तत्त्व है। महादेवकी अनन्तमूर्त्ति और अनन्त भावकी कथा यहां अभिव्यक्त हुई है। यथा—

"एकवक्त्रो द्विवक्त्रश्च त्रिवक्त्रोऽनेकवक्त्रकः।"

(महाभारत अनु० १४।१४०)

महाभारतमें शिवमाहात्म्य सम्बन्धीय अनेक कहानियां वर्णित हैं। भारविके किरातार्जुनीय महाकाव्यका मूल सूत्र भी महाभारतसे लिया गया है। एक दिन अर्जुनने एक शूकर देख कर उसका पीछा किया। एक दानवने मायाबलसे शूकररूप धारण किया था। इस समय महादेव अर्जुनके वीरत्वकी परीक्षा करनेके लिये किरातरूपधारण कर वहां गये। किरातरूपी महादेवने कहा, "मैं शूकरको मारूंगा, परन्तु अर्जुन इस पर सम्मत न हुए। दोनोंने ही एक साथ वाण फेंका। इस पर वीरकेशरी अर्जुन क्रुद्ध हो बोले, 'व्याध! तुमने मृगयाधर्मका लङ्घन किया है, अतएव तुझे मैं मारूंगा।' किरातने जवाब दिया, 'मैंने ही पहले शूकरको देखा था, शूकरको मैंने मारा है, अब तुम्हें भी मारूंगा।' इसके बाद दोनोंमें तुमुल संग्राम छिड़ गया। अर्जुनकी अलोकसामान्य वीरता पर प्रसन्न हो कर महादेवने उन्हें पाशुपत अस्त्र प्रदान किया।

रामायणमें शिवकी जटासे गङ्गाप्रादुर्भावकी कथा लिखी है।

भगीरथने पितृकुल उद्धारार्थ गङ्गावतरणके लिये घोर तपस्या की। तपस्यासे संतुष्ट हो कर ब्रह्माने अपने कमण्डलुसे गङ्गादेवीको निकाल कर भगीरथके प्रार्थनानुसार पृथ्वी पर छोड़ दिया। ब्रह्माने भगीरथको वर दे कर कहा, 'गङ्गा पृथ्वी पर अवतरण करेंगी सही, पर अवतरणकालमें शिवको छोड़ और कोई भी इनका वेग रोक न सकेगा। अतएव शिवसे भी प्रार्थना करनी होगी।'

भगीरथ ब्रह्माके आदेशानुसार शिवजीकी आराधना करने लगे। आशुतोष भगीरथकी आराधनासे प्रसन्न हो गङ्गावेग धारण करनेमें स्वीकृत हुए। किन्तु गङ्गादेवीके मनमें इस समय एक अभिनव भावका उदय हुआ। वे अवतरणके समय सोचने लगीं, 'मैं दुःसह स्रोतसे शङ्करको ले कर पाताल प्रवेश करूंगी।' सर्वज्ञ महादेवको गङ्गादेवीके इस गर्वपूर्ण दुःसाहसकी बात उसी समय मालूम हो गई। इसलिये उनका गर्वनाश करनेके लिये शिवजीने अपना जटाजाल फैला दिया। हिमालयके विशाल गह्वरकी तरह जटागर्भमें प्रविष्ट हो कर जाह्नवीने फिर निकलनेका कोई रास्ता न पाया। वे अकुला हो कर शिवकी जटामें बहुत दिनों तक विचरण

करने लगों। कपर्द्दीने कई वर्ष तक अपने जटाजालमें जाह्नवीको छिपा रखा था।

भगीरथने फिरसे महादेवको आराधनासे सन्तुष्ट किया। आखिर भगीरथकी तपस्यासे शिव जटाजालसे जाह्नवी मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ हुई थीं।

शिवका एक और प्रसिद्ध नाम नीलकण्ठ है। इस नामके साथ भी शिवलीलाका इतिहास विजड़ित है। किसी समय देवासुरोंने समुद्रमन्थन करके अमृत पानेको चेष्टा की। किन्तु अमृत निकलनेके पहले ही मन्थन-वेगसे समुद्रसे नीलाञ्जन सदृश भीषण हलाहल उद्गीर्ण होने लगा। वह कालकूट देख कर देवदानवगण विस्मित और भयभीत हुए और सबके सब ब्रह्माके पास गये। ब्रह्मा देवासुरकी विपद्‌की कथा सुन कर उनकी भलाईके लिये स्वयं शिवका स्तव करने लगे। भगवान् भवानी-पतिने ब्रह्माके स्तवसे संतुष्ट हो उसी समय ब्रह्माको दर्शन दिये। ब्रह्माने कहा, 'समुद्रमंथनसे नीलाञ्जन सदृश कालकूट उद्गीर्ण हुआ है। आप यदि इसे पान न करेंगे, तो इस विषवेगसे यह जगत् विनष्ट हो जायेगा। सभी प्राणीकी भलाईके लिये आपको यह हलाहल पान करना होगा। सिवा आपके और कोई यह विषवेग सहन नहीं कर सकता। परम करुणामय आशुतोषने इस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। वे उसी समय संवर्त्ताग्निकी तरह घोर नीलवर्ण हलाहल पान करनेमें प्रवृत्त हुए। उस हलाहल पानके समय उसका तीव्र नील तेज मृणालधवल महादेवका रजतशुभ्र कण्ठ फाड़ कर निकलने लगा तथा महादेवकी इस सर्व लोकरक्षाजनक कीर्त्तिकी विजयपताका रूपमें वह नीलवर्ण उनके कण्ठमें सदाके लिये आसक्त हो रहा। इसी घटनासे महादेवका नीलकण्ठ नाम हुआ है।

जालन्धर, अन्धक और दारुक आदि भयङ्कर दैत्योंके विनाशके समय शङ्करका प्रभूत शौर्यवीर्यमयी लीलाका परिचय पाया जाता है। चन्द्रार्द्ध जटा-कलाप-कीर्त्ति-प्रभाद्योतितशेखर महादेवका योगवैभव, वैराग्यवैभव और शौर्यवैभव श्रुति स्मृति पुराणादिके पत्र पत्रमें वर्णित है। कोई भी उनका लीलामाहात्म्य वर्णन कर शेष नहीं कर सकता। यही सभी शास्त्रों और स्तोत्रोंका अंतिम सिद्धांत है।

महाभारतके अनुशासनपर्व्वमें लिखा है—

"हृदिस्थः सर्व्वभूतानां विश्वरूपो महेश्वरः।
भक्तानामनुकम्पार्थं दर्शनञ्च यथा श्रुतम्॥" (१४।१३७)

वह विश्वरूपी महेश्वर सर्व्वभूतके हृदयमें अवस्थित हैं। भक्तोंके प्रति दया करके वे भिन्न भिन्न मूर्त्तिमें उन्हें दर्शन देते हैं। वास्तविक नाना तन्त्रोंमें हम शिवकी नाना मूर्त्तियोंका परिचय पाते हैं। उनमेंसे सारदा-तिलकतन्त्र (१९वां और २०वां पटल)-से उनकी कुछ प्रधान मूर्त्तियोंका ध्यानरूप उद्धृत किया जाता है—

१। सदाशिवका रूप यथा—

"मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवा-वर्णैर्मुखैः पञ्चभि-
स्त्र्यक्षैरञ्जितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभं।
शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान्नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्
पाशं भीतिहरन्दधानममिताकल्पोज्ज्वलं चिंतयेत्।"

२। ईशानका रूप—

"शक्तिडमरुकाभीतिवरान् संबिभ्रतं करैः।
ईशानं तीक्ष्णं शुभ्रमैशान्यां दिशि पूजयेत्॥"

३। तत्पुरुषका रूप—

"परश्वेणवराभीतीर्दधानं विद्युदुज्ज्वलं।
चतुर्मुखं तत्पुरुषं त्रिनेत्रं पूर्वतोऽर्च्चयेत्॥"

४। अघोरका रूप—

"अक्षस्रजं वेदपाणी शूणिं डमरुकं ततः।
खट्वाङ्गं त्रिशिखं शूलं कपालं बिभ्रतं करैः॥
अञ्जनाभं चतुर्वक्त्रं भीमदंष्ट्रं भयावहं।
अघोरं तीक्ष्णं याम्ये पूजयेन्मन्त्रवित्तमः॥"

५। वामदेवका रूप—

"कुङ्कुमाभं चतुर्वक्त्रं वामदेवं त्रिलोचनं।
वराभयाक्षवलयकुठारन्दधतं करैः।
विलासिनं स्मेरवक्त्रं सौम्ये सौम्यकमर्च्चयेत्।"

६। सद्योजातका रूप—

"कर्पूरेन्दुनिभं देवं सद्योजातं त्रिलोचनं।
हरिणाक्षगुणाभीतिवरहस्तं चतुर्मुखं।
बालेन्दुशेखरो लासिमुकुटं पश्चिमे यजेत्।"

७। हरपार्वतीका रूप—

"वन्दे सिन्दूरवर्णं मणिमुकुटलसच्चारुचन्द्रावतंसं
भालोद्यन्नेत्रमीशं स्मितसुखकमलं दिव्यभूषाङ्गरागं
वामोरून्यस्तपाणेररुणकुवलयं सन्दधत्याः प्रियाया
वृत्तोत्तुङ्गस्तनाग्रे निहितकरतलं वेदटङ्केष्टहस्तं ॥"

८। मृत्युञ्जयका रूप—
"चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तस्थितं।
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभं।
कोटीरेन्दुगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं
कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावयेत् ॥"

९। महेशका रूप—
"कैलासाद्रिनिभं शशाङ्कसकलस्फुर्ज्जज्जटामण्डितं
नासालोकनतत्परं त्रिनयनं वीरासनाध्यासिनं।
मुद्राटङ्ककुरङ्गजानुविलसत्पाणिं प्रसन्नाननं
कक्षाबद्धभुजङ्गमं मुनिवृतं वन्दे महेशं परं।"

१०। दक्षिणामूर्त्तिका रूप—
"स्फटिकरजतवर्णं मौक्तिकीमक्षमाला-
ममृतकलसविद्याज्ञानमुद्राकराग्रैः।
दधतमुरगशूलं चन्द्रचूड़ं त्रिनेत्रं
विधृतविविधभूषं दक्षिणामूर्त्तिमीड़े।"

११। नीलकण्ठका रूप—
"बालार्कयुततेजसं धृतजटाजूटेन्दुखण्डोज्ज्वलं
नागेन्द्रैः कृतभूषणैर्जपवटीशूलं कपालं करैः।
खट्वाङ्गं दधतं त्रिनेत्रविलसत् पञ्चाननं सुन्दरं
व्याघ्रत्वक्परिधानमब्जनिलयं श्रीनीलकण्ठं भजे।"

१२। अर्द्धनारीश्वर यथा—
"नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं
पाशारुणोत्पल-कपालकशूलहस्तं।
अर्द्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं
बालेन्दु-बद्धमुकुटं प्रणमामि रूपं।"
रक्ताभमिन्दुसकलाभरणं त्रिनेत्रं
खट्वाङ्गपाशसृणिशुभ्रकपालहस्तं।
वेदाननं निबिड़नासमनर्घ्यभूषं
रक्ताङ्गरागकुसुमांशुकमीशमीड़े।"

१३। पञ्चानन यथा—
"घण्टाकपालसृणिमुण्डकृपाणखेट-
खट्वाङ्गशूलडमरुमभयन्दधानं।
रक्ताम्बुमिन्दुसकलाभरणं त्रिनेत्रं
पञ्चाननाब्जमरुणांशुकमीशमीड़े।"

१४। अघोरका दूसरा रूप—
"सजलघनसमाभं भीमदंष्ट्रं त्रिनेत्रं
भुजगधरमघोरं रक्तवस्त्राङ्गरागं।
परशुडमरुखड्गान् खेटकं बाणचापौ
त्रिशिखनरकपाले बिभ्रतं भावयामि।"

१५। पशुपतिका रूप—
"मध्याह्नार्कसमप्रभं शशिधरं भीमाट्टहासोज्ज्वलं
त्र्यक्षं पन्नगभूषणं शिखिशिखाश्मश्रुस्फुरन्मूर्द्धजं।
हस्ताब्जैस्त्रिशिखं समुद्गरमसिं शक्तिन्दधानं विभुं
दंष्ट्राभीमचतुर्मुखं पशुपतिं दिव्यास्त्ररूपं स्मरेत्।"

१६। नीलग्रीवका रूप—
"उद्यद्भास्करसन्निभं त्रिनयनं रक्ताङ्गरागस्रजं
स्मेरास्यं वरदं कपालमभयं शूलन्दधानं करैः।
नीलग्रीवमुदारभूषणशतं शीतांशुचूड़ोज्ज्वलं
वन्दे कारुणवाससं भयहरं देवं सदा भावयेत्।
ध्यायेन्नीलाद्रिकान्तं शशिसकलधरं मुण्डमालं महेशं
दिग्वस्त्रं पिङ्गकेशं डमरुमथ सृणिं खड्गपाशाभयानि।
नागं घण्टां कपालं कलसरसिरुहैर्बिभ्रतं भीमदंष्ट्रं
सर्पाकल्पं त्रिनेत्रं मणिमयविलसत्किङ्किणीनूपुराढ्यं"

१७। चण्डेश्वर—
"चण्डेश्वरं रक्ततनुं त्रिनेत्रं रक्तांशुकाढ्यं हृदि भावयामि।
टङ्कं त्रिशूलं स्फटिकाक्षमालां कमण्डलुं बिभ्रतमिन्दु-
चूड़म् ॥"

शिवक (सं० क्ली०) १ कील, काँटा। २ खूँटा।

शिवकर (सं० पु०) शिवस्य करः। १ जैनोंके चौबीस जिनोंमेंसे एक जिनका नाम। (त्रि०) २ मङ्गल कारक, भलाई करनेवाला।

शिवकर्णी (सं० स्त्री०) कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम।

शिवकवि—१ एक भाषाके कवि। ये देउतहा जिला गोंडाके रहनेवाले थे। इनका जन्म सं० १७९६में हुआ था। ये वन्दीजन थे। असोथरके शम्भु कविसे इन्होंने काव्यशास्त्रका अध्ययन किया था। ये जगत्-सिंह विसेनके यहां रहते थे। इन्होंने जगत्सिंहको काव्यमें प्रवीण बनाया था। इनके बनाये रसिकविलास,

अलङ्कारभूषण और पिङ्गल ये तीन उत्तम ग्रन्थ भाषा साहित्यमें हैं।

२ एक दूसरे वन्दीजन। ये विलग्रामके निवासी थे। सं० १७९५ में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने शृङ्गारविषयक रसनिधि नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

शिवकाञ्ची (सं० स्त्री०) पुरीविशेष, दक्षिण भारतका एक प्रसिद्ध नगर। कृष्णा और पोलर नदीके बीचमें स्थित करमंडलके एक भागकी राजधानी कांची थी। इसके दो हिस्से हैं—एक विष्णुकांची और दूसरा शिवकांची। शिवकांची उत्तरकी ओर है। दक्षिण भारतके शैवोंका यह एक प्रधान तीर्थ और सप्तपुरियोंमेंसे एक है। विशेष विवरण काञ्ची और काञ्चीपुरमें देखो।

शिवकान्ता (सं० स्त्री०) शिवस्य कान्ता। शिवकी पत्नी, दुर्गा।

शिवकान्ती (सं० स्त्री०) तीर्थभेद।

शिवकामदुघा (सं० स्त्री०) नदीभेद।

शिवकारिन् (सं० त्रि०) शिवं कर्त्तुं शीलमस्य कृ णिनि मङ्गलकारी, कल्याण करनेवाला।

शिवकारिणी (सं० स्त्री०) १ शिवा, दुर्गा। २ मङ्गलकारिणी।

शिवकाशी—मन्द्राज-प्रेसिडेन्सीके तिन्नेवल्ली जिलेके सत्तूर तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ९° २७′ १०″ पू० तथा देशा० ७७° ५९′ २०″ पू०के बीच पड़ता है। यहां तमाकूका विस्तृत कारबार है।

शिवकिङ्कर (सं० पु०) शिवस्य किङ्करः। शिवका गण या दूत।

शिवकीर्त्तन (सं० पु०) शिवं सुखकरं, कीर्त्तनं यस्य। १ भृङ्गरीट। २ विष्णु। ३ वह जो शिवका कीर्त्तन करता हो, शैव।

शिवकुण्ड (सं० क्ली०) ग्रामभेद, एक गाँवका नाम।

शिवकेसर (सं० पु०) एक प्रकारका गुल्म।

शिवकोपमुनि (सं० पु०) एक ग्रन्थकारका नाम।

शिवक्षेत्र (सं० क्ली०) शिवस्य क्षेत्रं। शिवका अधिष्ठित स्थान, कैलास, काशी, श्मशान।

शिवगङ्गा (सं० स्त्री०) नदीभेद। शिवजीके मन्दिरके समीप जो नदी या पुष्करिणी रहती है, उसे शिवगङ्गा कहते हैं।

शिवगङ्गा—१ मन्द्राजप्रदेशके मदुरा जिलान्तर्गत एक जमींदारी। भूपरिमाण १२२० वर्गमील है। पहले यह रामनादके सेतुपतियोंके अधिकारमें था। सेतुपति कुट्ट तेवनने करीब १७३० ई०में नलकोट्टईके अधिपति पलेगर सरदारसे शेषवर्ण तेवनको अपने राज्यका दो पञ्चमांश प्रदान किया। तभीसे यह रामनादके हाथसे जाता रहा। १७७२ ई०में अंगरेज सेनापति कर्नल योसेफ स्मिथने पलेगर सरदारोंका अधिकृत समस्त प्रदेश हस्तगत किया। इस समय कलैयाके कोविलदुर्गसे पलायित राजा अंगरेजोंके हाथ मारे गये तथा रानीने अपने आत्मीयवर्गसे परिवृत हो दिण्डिगलमें भाग कर हैदरअलीकी शरण ली। इसके बाद अंगरेजोंने रानीको शिवगङ्गा सम्पत्ति लौटा दी, किन्तु १८०० ई०में रानीके अपुत्रक अवस्थामें मरनेसे अंगरेज गवर्मेण्टने १८०१ ई०के जुलाई मासमें उदय तेवान नामक एक व्यक्तिके साथ उस सम्पत्तिका बन्दोवस्त कर दिया। १८०३ ई०में उसका राजस्व निर्द्धारित हुआ।

२ उक्त सम्पत्तिका प्रधान नगर। यह अक्षा० ९° ५१′ उ० तथा देशा० ७८° ३१′ ५०″ पू० मथुरा नगरसे २५ मील पूर्वमें अवस्थित है।

शिवगङ्गा—महिसुर राज्यके बङ्गलूर जिलान्तर्गत एक शैल। यह अक्षा० १३° १०′ उ० तथा देशा० ७७° १७ पू० समुद्रपृष्ठसे ४५९९ फुटकी ऊंचाई पर अवस्थित है। इस पर्वतके साथ हिन्दू जातिकी देवलीलाके अनेक उपाख्यान संसृष्ट हैं। इस सम्पर्कमें इसके ऊपर बहुतसे मन्दिर भी शिलालिपिसे युक्त देखे जाते हैं। पर्वतके पूर्वांशका बाह्य गठन वृष जैसा, पश्चिमांश गणेश जैसा, उत्तरांश सर्प जैसा और दक्षिणांश लिङ्ग जैसा है। यहांका गङ्गाद्वारेश्वर और होण्ण-देवम्मा देवदेवीका मन्दिर उल्लेखयोग्य है। यह उत्तरकी ओर अवस्थित है। पूर्व विभागमें लिङ्गायत-सम्प्रदायका एक मठ है। पर्वतके उत्तरपादमूलमें शिवगङ्गा ग्राम है। यहां रथोत्सवमें खूब धूमधाम होती है।

शिवगण (सं० पु०) शिवस्य गणः। १ शिवका अनुचर, शिवकिङ्कर। २ राजभेद, एक राजाका नाम।

शिवगति (सं० पु०) जैनोंके अनुसार एक अर्हत्का नाम।

शिवगिरि (सं० पु०) कैलासपर्वत ।

शिवगिरि—मन्द्राज प्रसिडेन्सीके तिन्नेवल्ली जिलेमें शङ्करनैनार्कैल तालुकके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० ६° २०' २०'' उ० तथा देशा० ६७° २८' पू० तक विस्तृत है । यह शिवगिरि जमींदारीका सदर है । यहांके जमींदार अंगरेज सरकारको वार्षिक ५४५८०) रुपये कर देते हैं ।

शिवगुरु (सं० पु०) शङ्कराचार्यके पिताका नाम जो विद्याधिराजके पिता थे ।

शिवधर्मज (सं० पु०) शिवधर्माज्जायते इति-जन-ड । मङ्गलग्रह ।

शिवङ्कर (सं० त्रि०) १ मङ्गलकर्त्ता, कल्याण करनेवाला, पर्याय—क्षेमङ्कर, अरिष्टताति, शिवताति । (पु०) २ असि, तलवार । ३ शिवका एक गण । ४ रोग फैलानेवाला एक असुरका नाम । ५ एक प्रकारका बालग्रह ।

शिवचतुर्दशी (सं० स्त्री०) शिवप्रिया चतुर्दशी । चतुर्दशीमें होनेवाला शिवव्रत, फाल्गुनमासकी कृष्ण चतुर्दशी । इस दिन रातमें शिवके उद्देश्यसे व्रतानुष्ठान करना होता है, इसलिये इसे शिवचतुर्दशी कहते हैं ।

शिवरात्रि शब्दमें विशेष विवरण देखो ।

मत्स्यपुराणके मतसे अग्रहायण मासकी शुक्ला चतुर्दशी तिथिको शिवचतुर्दशी कहते हैं । मत्स्यपुराणके ८०वें अध्यायमें इस व्रतका विधान है । अग्रहायण मासकी शुक्ला त्रयोदशीके दिन एक बार भोजन कर दूसरे दिन चतुर्दशी तिथिमें उपवास करके महेश्वरके उद्देश्यसे यह व्रत करे । पूर्णिमाके दिन व्रतके बाद पारण करना होता है ।

यह व्रत करनेसे अश्वमेध यज्ञ करनेका फल और ब्रह्महत्या आदि पातकसे मुक्तिलाभ होता है ।

शिवचन्द्र—नवद्वीपके अधिपति कृष्णचन्द्रके पुत्र । इन्होंने अष्टादशोत्तरशत श्लोकी नामक एक सुन्दर देवीस्तोत्रकी रचना की । कृष्णनगर और नदीया देखो ।

शिवचन्द्रसिद्धान्त—उत्तरबङ्गके एक अद्वितीय पण्डित । इन्होंने राजशाही जिलान्तर्गत वैद्यबेलघरिया ग्राममें बङ्गला १२०४ सालको जन्मग्रहण किया । शिवचन्द्रके पिताका नाम रामकिशोर तर्कालङ्कार था । तर्कालङ्कार महाशयको धर्म और दर्शनशास्त्रमें अच्छी व्युत्पत्ति थी । और तो क्या, शिवचन्द्रके गभीर पाण्डित्यके ये ही प्रथम और प्रधान सहाय थे ।

शिवचन्द्रने वाराणसीधाममें रामकृष्णमिश्र या काकाराम शास्त्रीको ही गुरु या आचार्य पद पर अभिषिक्त कर उन्हींसे अध्ययन करना शुरू कर दिया । वे अपने हाथसे सांख्य, पातञ्जल, मीमांसा, वेदान्त और ज्योतिषादि शास्त्र लिख कर अध्ययन करने लगे । प्रख्यातनामा ज्योतिर्विद् बापुदेव शास्त्री भी इन्हीं काकारामके छात्र थे । अतएव दोनों ही एक गुरुके शिष्य थे । बापुदेव शास्त्री शिवचन्द्रकी तीक्ष्ण बुद्धिमत्ताका विषय देख कर अनेक समय कहा करते थे, कि शिवचन्द्र जैसे बुद्धिमान् छात्रको उन्होंने बहुत ही कम देखा है । यथार्थमें शिवचन्द्रकी बुद्धिमें हीरेकी धार थी । पहले कहा जा चुका है, कि इनसे उत्थापित पूर्वपक्षादिका सदुत्तर देना बहुतोंके लिये कठिन था । यहां तक, कि गुरु काकाराम शास्त्री भी ठीक ठीक उत्तर नहीं दे सकते थे । शिवचन्द्रने असाधारण अध्यवसायके साथ पांच वर्ष तक रामकृष्ण मिश्रसे अध्ययन किया । इस समय मिश्र महाशय पश्चिमादि प्रदेशोंमें घूमने निकले । छात्र शिवचन्द्र भी उनके साथ थे, अतएव उन्होंने भी गुरुके साथ काश्मीर, गुजरात, पूना आदि नाना स्थानोंमें पर्यटन किया । इन सब विभिन्न स्थानोंमें रहते समय अनेक विद्वानोंके साथ शिवचन्द्रका शास्त्रवाद हुआ था । मिश्र महाशय शास्त्रमीमांसामें शिष्यकी अत्याश्चर्य क्षमता देख बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें "सिद्धान्त"की उपाधि दी । तभीसे 'शिवचंद्र सिद्धान्त' नामसे परिचित हुए ।

शिवचन्द्र भोलेभाले, विनयी और निरभिमानी थे । सनातन आर्यधर्ममें उनकी प्रगाढ़ भक्ति और श्रद्धा थी । जनकजननीको वे साक्षात् देवता समझते थे । वे बचपनसे ही अध्यापना और ग्रन्थरचनामें समय बिताते थे । इनके बनाये हुए अनेक संस्कृत ग्रन्थ आज भी विद्यमान हैं । उनमेंसे १७ महाकाव्य और खण्डकाव्य तथा १७ दर्शनादि हैं । जो सब विद्योत्साही जमींदार उनके अध्यापनाकार्यमें सहायता करते थे, उनका गुणग्राम अपने ग्रन्थमें लिख कर वे उनके नामादि स्मरणीय कर गये हैं । कुछ ग्रंथ इन्होंने पुटियाके राजा और कुछ

दिघापतियाके राजा दक्षरामके नाम पर उत्सर्ग किया है। साधारण पाठकोंकी जानकारीके लिये इनके कुछ ग्रन्थोंकी तालिका नीचे दी गई है।

१ सटीक सिद्धान्तचन्द्रिका श्लोकसंख्या प्रायः ६ हजार, २ सुधासिन्धु (पाणिनि व्याकरणकी टीका), ३ चण्डी दुरूपर्थव्याख्या (बाह्य और आध्यात्मिक), ४ गूढ़ भावार्थकाशिनी (रुद्राध्यायटीका), ५ विद्वन्मनोरञ्जनं काव्यम्, ६ वासुदेवविजयं महाकाव्यम्, ७ कालियदमनं काव्यम्, ८ कुलशास्त्रकौमुदी (वारेंद्र कुलीन ब्राह्मणोंका कुलपरिचय), ९ दोलयात्राविधिः, १० दुर्गोत्सवमें विसर्जनविधिः, ११ श्रीमद्भागवतविचारः इत्यादि।

पण्डित शिवचन्द्रका ७४ वर्षकी अवस्थामें बङ्गला १२२४ सालको देहान्त हुआ। आप स्वयं कुलशास्त्रज्ञ थे। अपने अपने ग्रन्थमें वंशपरिचय दिया है।

शिवजा (सं० स्त्री०) शिवलिङ्गी लता, पचगुरिया।

शिवज्योतिर्विद् (सं० पु०) एक प्रसिद्ध ज्योतिषी।

शिवज्ञ (सं० त्रि०) शिवं जानाति ज्ञा-क। मङ्गलज्ञ।

शिवज्ञान (सं० क्ली०) शिवस्य ज्ञानमस्यात्। शुभाशुभ कालबोधक शास्त्र। जिस समय यात्रादि कार्य अवश्य कर्त्तव्य है, अथच ज्योतिषोक्त दिन नहीं है, उस समय शिवज्ञानके मतसे यदि यात्रादि कार्य किये जायें, तो शुभ होता है। किंतु सावकाश स्थलमें ज्योतिषोक्त दिन देख कर यात्रा आदि कार्य करना ही उचित है। इस मतसे चार योग हैं, महेन्द्र, अमृत, शून्य और वक्र। इन चार योगोंमेंसे माहेन्द्रयोगमें यात्रा करनेसे विजयलाभ, अमृतयोगमें कार्यसिद्धि, वक्रयोगमें कार्यनाश और शून्ययोगमें मृत्यु या अपमान होता है। अतएव माहेन्द्र और अमृत ये दोनों ही योग श्रेष्ठ हैं। इन दो योगोंमें सभी कार्य करने होते हैं। योग माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, श्रावण और भाद्रमासमें दिवा और रात्रिकालमें एक तरह तथा आश्विन, कार्त्तिक, अग्रहायण और पौषमासमें एक तरह तथा ज्यैष्ठ और आषाढ़ मासमें भी एक तरह होता है। प्रतिवारको यह भिन्न रूपसे हुआ करता है। इस प्रकार शिवज्ञान अनेक प्रकारका देखनेमें आता है।

माघ आदि मासमें रवि आदि वारमें कितना दण्ड करके यह योगादि होगा, इसका विषय नीचे एक तालिकामें दिया गया है। इससे सहजमें जाना जायेगा, कि किस मासके किस वारमें कितना दण्ड तक यह योगादि होगा।

शिवज्ञान-दण्डादि जाननेका सहज उपाय।

वार और शिवज्ञान दण्डादिका आदि अक्षर ग्रहण किया गया है—

माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, श्रावण और भाद्र मासका दिवादण्ड।

रवि मा २, अ ८, शू ८, मा २, व १०;
सोम अ ४, व ८, अ ६, व ६, मा ४, शू २।
मङ्गल व ४, शू २, अ ६, व ४, शू २, अ ४, शू २, अ ४, शू २।
बुध अ ४, व ६, अ ४, शू २, व ४, मा ४, अ ४, शू २।
वृह मा ४, शू २, व ६, मा ६, शू ४, व ४, शू ४।
शुक्र अ २, व २, अ ६, अ ६, शू ४, अ ४।
शनि शू ४, व ४, शू २, अ ८, शू ४, व ४, शू ४।

माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, श्रावण और भाद्र मासका रात्रिदण्ड।

रवि शू २, मा २, अ ४, व ८, मा ८, शू ६।
सोम व २, अ ६, व ६, अ ८, शू ८।
मङ्गल अ २, व ४, शू २, अ ६, व ६, अ ४, व ४, शू २।
बुध शू २, अ ६, मा ४, व ४, शू ४, अ १०।
वृह व १४, शू ८, व ४, अ २, शू ६।
शुक्र व ४, अ ४, शू ४, मा २, व ६, शू ४, अ २, मा २, शू २।
शनि शू २, व ४, अ ६, व ४, अ ४, व २, अ ४, शू ४।

माघादि इन छई महीनोंमें दिवा भागके प्रथमसे रात्रिकालमें रात्रिके प्रथमसे मानना होगा।

आश्विन, कार्त्तिक, अग्रहायण और पौष मासका दिवादण्ड।

रवि शू २, अ ६, व ८, अ ८, शू २, मा २, शू २।
सोम अ ४, शू ४, अ ६, व १६।
मङ्गल अ २, व २, अ १०, व ६, शू ६, व ४।
बुध अ २, मा २, अ २, व ६, अ ६, शू २, मा ६, व ४।
वृह अ ४, व ४, शू ४, व ६, शू २, अ ४, व ६।
शुक्र अ २, व २, अ ६, व ६, अ ८, शू २, अ ४।
शनि अ २, व २, अ ६, व ६, अ ८, शू २, अ ४।

आश्विन, कार्त्तिक, अग्रहायण और पौष मासका रात्रिदण्ड।

रवि शू २, व ४, अ ४, व ६, अ ४, शू २, अ ८।

सोम व ६, अ ८, व ८, अ २, व ६।
मङ्गल मा ६, अ २, शू २, अ ६, व ४, मा ४, शू २, अ ४।
बुध व २, अ २, व ४, अ १६, व २, शू ४।
वृह शू २, अ ८, व ६, अ ८, शू २, अ ४।
शुक्र व २, अ ८, व ६, अ ८, शू २, अ ४।
शनि व १४, शू ८, व ४, अ २, शू ६।

ज्यैष्ठ और आषाढ़ मासका दिवादण्ड।

रवि शू ४, अ ६, व ६, अ ६, व ४, मा २, शू २।
सोम व ८, अ ४, शू ६, व ८, शू ४।
मङ्गल अ ६, शू ४, अ ६, व ६, मा २, अ २, मा २, शू २।
बुध शू २, व ४, अ ८, व ६, अ ८, शू ४।
वृह मा २, शू २, व ६, मा ४, शू ४, व ६, अ ६।
शुक्र शू २, मा २, व ६, मा २, शू ४, अ ६, व ४, शू ४।
शनि मा २, शू २, व ६, मा ६, शू ४, व ४, अ ६।

ज्यैष्ठ और आषाढ़ मासका रात्रिदण्ड।

रवि अ ४, शू ४, व ४, अ ६, व ८, शू ४।
सोम व ८, अ ८, शू ४, अ ४, शू ४, मा २, शू २।
मङ्गल अ २, व ४, मा ४, शू ४, व २, अ ६, शू २, व ६।
बुध अ १०, शू ५, २, व ४, अ ४, शू १०।
वृह शू २, अ ६, शू २, व ४, शू २, अ ६, शू ४, अ ४।
शुक्र अ ६, शू २, व ४, शू ६, अ ६, शू २, अ ४।
शनि शू २, अ २, व ८, शू २, अ ६, शू ४, अ ६।

इस प्रकार दण्डादि निरूपण करके अमृतयोग और माहेन्द्रयोगमें यात्रादि करे। इसमें शुभ होता है।

शिवतन्त्र (सं० पु०) तन्त्रभेद।

शिवता (सं० स्त्री०) शिवस्य भावः तल्-टाप्। १ शिवका भाव या धर्म। २ मनुष्यके शिवमें लीन होनेकी अवस्था, मोक्ष।

शिवताति (सं० स्त्री०) कल्याणकारिणी। (हेम)

शिवतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद। शिवनिर्मित तीर्थ, काशी। शिवने यह तीर्थ निर्माण किया है, इसलिये यह शिवतीर्थ नामसे प्रसिद्ध है।

शिवतेजस् (सं० क्ली०) पारद, पारा। (रसेन्द्रसारस०)

शिवदत्त (सं० क्ली०) १ विष्णुका चक्र, सुदर्शन चक्र। (पु०) २ वासवदत्ता वर्णित एक व्यक्ति। ३ शिवकोषके प्रणेता।

शिवदत्तपुर (सं० क्ली०) नगरभेद।

शिवदारु (सं० क्ली०) देवदारु, देवदार।

शिवदास—बहुतेरे संस्कृत ग्रन्थकार। १ कथार्णव, वेतालपचीसी और शालिवाहनचरितके प्रणेता। २ जातकमुक्तावली और ज्योतिर्निबन्धसंग्रहकार। ३ मानवशुल्वसूत्रभाष्यके रचयिता। ४ कातन्त्रव्याकरणके उणादिसूत्रके टीकाकार। ५ एक प्राचीन कवि।

शिवदास सेन—एक आयुर्वेदवित् प्रसिद्ध पण्डित। ये पञ्चकोट या शिखरभूमके राजसभासद शाङ्गसेनके प्रपौत्र-पुत्र अनन्तसेनके पुत्र थे। इन्होंने चक्रपाणिदत्तरचित चिकित्सासंग्रह और द्रव्यगुणसंग्रहकी एक उत्तम टीका लिखी।

शिवदिश् (सं० स्त्री०) शिवस्य दिक्। शिवकी अधिष्ठात्री दिशा, ईशान कोण। एक एक दिशाके एक एक अधिपति हैं, ईशान कोणके अधिपति शिव हैं, इसलिये इसे शिवदिश् कहते हैं।

शिवदीन—शब्दप्रभेद नामक कोषके रचयिता।

शिवदीन कवि—भिनगा जिला बहरायचके रहनेवाले एक कवि। ये भिनगाके राजा कृष्णदत्तसिंह विसेनके दरबारमें रहते थे। इन्होंने भाषामें कृष्णदत्तभूषण नामक एक उत्तम ग्रन्थ बनाया है।

शिवदीन दास—मणिमाला नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।

शिवदूतिका (सं० स्त्री०) शिवदूती स्वार्थे कन्। कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। (शब्दरत्ना०)

शिवदूती (सं० स्त्री०) शिवेन दूतयति संदेशं प्रापयति इत्यर्थे दूत-णिच्, पचाद्यच्, यद्वा शिवो दूतो यस्याः, गौरादेराकृतिगणत्वात् ङीष्। १ दुर्गा। २ योगिनीविशेष। कालिकापुराणमें इसकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है, कि महादेवका ध्यान करनेसे कौषिकीके हृदयसे जो सब देवियां निकली थीं, वही शिवदूती कहलाईं।

आठ योगिनियोंमेंसे शिवदूती शेष योगिनी है, इन सब योगिनियोंकी पूजा और साधन करनेसे अभीष्ट सिद्धि होती है।

कालिकापुराणमें इन सब योगिनियोंकी पूजा और मन्त्रादिका विशेष विवरण लिखा हुआ है।

शिवदेव (सं० पु०) एक वैयाकरण।

शिवदैव (सं० क्ली०) शिवो देवताऽस्य अण्। नक्षत्र-भेद, आर्द्रा नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिष्ठातृ देवता शिव हैं, इसीसे इसको शिवदैव कहते हैं। (वृहत्स० ७।६)

शिवद्रुम (सं० पु०) शिवप्रियो द्रुमः। विल्ववृक्ष, बेलका पेड़। यह वृक्ष महादेवका अतिप्रिय है, इसीसे इसका नाम शिवद्रुम हुआ है।

शिवद्विष्टा (सं० स्त्री०) शिवेन द्विष्टा तत्पूजनानर्हत्वात्। केतकी, केवड़ा। केतकीका फूल शिवजी पर चढ़ाना मना है।

शिवधातु (सं० पु०) शिवस्य धातुः। १ पारद, पारा। २ गोदन्तमणि।

शिवनक्षत्रपुरुषव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष।

शिवनन्दन (सं० पु०) शिवजीके पुत्र गणेश।

शिवनाथ (सं० पु०) शिव, महादेव।

शिवनाथकवि—एक भाषा कवि। ये बुन्देलखण्डके रहनेवाले थे। छत्रशालके पुत्र जगत्सिंह बुन्देलाकी सभामें ये वर्त्तमान थे। 'रसरञ्जन' नामक एक ग्रन्थ इन्होंने रचा।

शिवनाभि (सं० पु०) शिवस्य नाभिरिव। शिवलिङ्ग-विशेष। यह लिङ्ग सब लिङ्गोंसे श्रेष्ठ है, इसलिये बड़ी सावधानीसे इसकी पूजा करनी चाहिए। यह लिङ्ग उत्तम, मध्यम, और अधम तीन प्रकारका है। इनमेंसे जिस लिङ्गका उत्सेध चार अंगुल तथा जो रम्य वेदिकाके ऊपर अवस्थित है, वह उत्तम, इसका आधा मध्यम तथा इसका भी आधा अधम समझा जाता है।

शिवनारायण (सं० पु०) शिव और नारायण, महादेव और विष्णु।

शिवनारायणदास सरस्वतीकण्ठाभरण—एक प्रसिद्ध पण्डित। ये दुर्गादासके पुत्र थे। इन्होंने ईस्वीसन् १७ सदीके प्रथम भागमें काव्यप्रकाशटीका, दानकुसुमाञ्जलि तथा सेतुबन्ध नामक प्रसिद्ध प्राकृतकाव्यका सेतुशरणि नामक संस्कृत अनुवाद किया।

शिवनारायणानन्दतीर्थ—शङ्करानन्दतीर्थके गुरु। इन्होंने पञ्चकोशमञ्जरी और पञ्चकोशयात्रा नामक दो संस्कृत ग्रन्थ लिखे।

शिवनारायणी (सं० पु०) हिन्दुओंका एक सम्प्रदाय।

शिवनिर्माल्य (सं० पु०) १ वह पदार्थ जो शिवजीको अर्पित किया गया हो, शिव पर चढ़ा हुआ नैवेद्य आदि। पुराणोंमें ऐसी चीजोंके ग्रहण करनेका निषेध है। २ परम त्याज्य वस्तु, वह चीज जो किसी प्रकार ग्रहण न की जा सकती हो। जैसे,—हमारे लिये तुम्हारी यह सम्पत्ति शिवनिर्माल्य है।

शिवनी—शेउनी देखो।

शिवनृत्य (सं० क्ली०) गतिभेदके अनुसार एक प्रकारका नृत्य।

शिवपत्र (सं० क्ली०) रक्तपद्म, लाल कमल।

शिवपुर (सं० क्ली०) नेपालका एक नगर।

शिवपुर—बङ्गालके हुगली जिलान्तर्गत हवड़ा नगरके दक्षिणमें अवस्थित एक नगर। यह अक्षा० २२° ३४´ उ० तथा देशा० ८८°१६´ पू०के मध्य गङ्गाके किनारे फोर्ट-विलियम दुर्गके दूसरे किनारे अवस्थित है। १९वीं सदीके प्रारम्भमें यह स्थान एक छोटे गांवमें परिणत था। हवड़ामें इष्टइण्डिया रेलवे-लाइनके खुल जाने तथा शिवपुरके सन्निकटस्थ नदीके किनारे कल-कारखानोंके वादसे ही यह स्थान नाना स्थानोंके भद्र प्रवासी तथा कुली मजूरोंसे पूर्ण हो कर धीरे धीरे एक वर्द्धिष्णु नगरमें परिणत हुआ।

आलवियन वर्कस् नामक मैदेको कल तथा ढुलाईका कारखाना यहांका प्रधान है। इसके सिवा और भी बहुत सी कलें हैं। यहांका राजकीय भैषज्योद्यान (Royal Botanical Gardens) भिन्न भिन्न देशोंके पेड़ पौधे लता गुल्मोंसे परिपूर्ण है। पृथ्वीके दूसरे देशमें ऐसा उद्यान और कहीं भी देखनेमें नहीं आता। विशप्स कालेज नामक विद्यालय यहीं पर पहले पहल स्थापित हुआ। पीछे वह कलकत्तेमें उठ कर चले जानेके बाद उस मकानमें एक इञ्जिनियरिं विश्वविद्यालय (Sibpur Engineering College) प्रतिष्ठित हुआ है। निकटवर्त्ती ग्रामादिमें उत्पन्न शस्यादि बेचनेके लिये एक बड़ी हाट है। यहांके बहुतसे लोग ईंटा बना कर कलकत्ते भेजते हैं।

शिवपुर—मध्यभारत एजेंसीके अधीन ग्वालियर राज्यकी

पश्चिमी सीमा पर अवस्थित एक नगर। यह अक्षा० २५°२६´३० तथा देशा० ७६°४´ पू०के मध्य विस्तृत है। पहले यह नगर एक राजपूत सामन्तराजके अधीन था। १६वीं सदीके प्रारम्भमें दौलतराव सिन्देकी सेनाने इस नगरको अधिकार कर लिया। १८१६ ई०में जब सिन्दे-सेनापति जेनरल वैपूतिस्ते २०० सेना ले कर नगर और दुर्गकी रक्षा कर रहे थे, उस समय राजपूत सरदार जयसिंहने सिर्फ साठ सेना ले कर वैपूतिस्तेको सपरिवार कैद कर लिया।

शिवपुराण (सं० क्ली०) पुराणविशेष, आठारह पुराणोंमेंसे एक पुराण जो शैवपुराण भी कहा जाता है। यह शिवप्रोक्त माना जाता है और इसमें शिवका माहात्म्य वर्णित है। विशेष विवरण पुराण शब्दमें देखो।

शिवपुरी (सं० स्त्री०) शिवस्य पुरी। वाराणसी, काशी।

शिवपुष्पक (सं० पु०) आकका वृक्ष, मदार।

शिवप्रकाशसिंह—डुमराँवके महाराज जयप्रकाशसिंहके भाई। इन्होंने रामतत्त्वबोधिनी नामक विनयपत्रिकाको एक सुन्दर टीका लिखी।

शिवप्रसाद सितारेहिन्द—परमारवंशीय एक क्षत्रिय। इनके पूर्वज दिल्लीमें जौहरीका काम करते थे। जैनधर्म इनका पुरुषानुक्रमका धर्म है। नादिरशाहके समय इनके पूर्वज दिल्लीसे मुर्शिदाबाद भाग आये थे। नवाब कासिम अली खाँके अत्याचारसे पोड़ित हो कर राजा शिवप्रसादके पितामह डालचन्द जी काशी आ बसे।

इनका जन्म माघ शुक्ल २ या सं० १८८०में हुआ था। इनके पिताका नाम था बाबू गोपीचन्द। जब इनकी उम्र सिर्फ पांच वर्षकी थी, तभीसे इनकी शिक्षाका प्रबन्ध हो गया। पहले घर पर उर्दू और हिन्दीका अध्ययन किया। पीछे ये बीबीहरियाके स्कूलमें फारसी पढ़ने लगे। इसके बाद इन्होंने संस्कृतका भी अभ्यास किया। जब राजा साहबकी अवस्था १३।१४ वर्षकी थी, उसी समय फोर्टविलियम कालेजके प्रोफेसर तारिणीचरण मित्र रहनेके लिये काशी आये। उनके पुत्रोंसे राजा साहबकी मित्रता हो गई। राजा साहबने उन्हींसे अंगरेजी और बंगला भाषाएं सीखीं और १६ वर्षकी अवस्थामें संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फारसी, अंगरेजी और बंगलामें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

इस प्रकार शिक्षा खतम कर चुकने पर अपने मामाकी सहायतासे बाबू शिवप्रसाद भरतपुर दरबारमें नौकर हुए। वहां जा कर इन्होंने राज्यके दीवानको ८० कायस्थोंके साथ जेल भेजवाया, कारण वह दीवान महाराजको दबा कर राज्यमें मनमानी करता था। इस पर प्रसन्न हो कर भरतपुरके महाराजने इन्हें अपना वकील बनाया।

कुछ समय वहां रह शिवप्रसाद भरतपुरकी नौकरी छोड़ घर चले आये और फिर भरतपुर न गये। १८४५ ई०में इन्होंने अंगरेज सरकारकी सेवा स्वीकार की। उसी समय पंजाबमें सिखयुद्ध प्रारम्भ हुआ था। राजा साहब अंगरेजी सेनाके साथ सरहद पर गये और वहां गवर्नर जनरलकी आज्ञासे ये अपने साहस और वीरता पर भरोसा रख कर शत्रुसेनामें घुस पड़े और वहांकी तोपें गिन आये तथा और भी उनके भेद ले आये। फिर महाराज दिलीपसिंहको बंबई तक पहुंचा कर जहाज पर सवार करा आये।

सिखोंसे सन्धि हो जाने पर गवर्नर जनरलके साथ ये शिमले गये थे। वहां ये एक विशेष पद पर नियुक्त किये गये। इन्होंने अङ्गरेज सरकारको बड़ी सेवा की थी।

शिमलेसे आ कर राजा कुछ दिनों तक कमिश्नर साहबके मीर मुन्शी रहे। परन्तु इनकी विद्याकी अभिरुचि देख कर सरकारने इन्हें स्कूलोंके इन्सपेक्टर नियुक्त किया। अपनी इन्सपेक्टरीके समय राजा साहबने हिंदीका बड़ा उपकार किया था। इन्होंने साहित्य, भूगोल, इतिहास आदि विषयोंकी पुस्तकें प्रायः ३५ लिखी हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इनके शिष्य थे।

सन् १८७२ ई०में इन्हें सी० एस० आई अर्थात् सितारे हिन्दकी उपाधि और १८८७ ई०में इन्हें वंशपरम्पराके लिये राजाकी उपाधि मिली। सन् १८६५ ई०में आप इहलोक छोड़ परलोक सिधारे।

शिवप्रिय (सं० क्ली०) शिवस्य प्रियम्। १ रुद्राक्ष। (पु०) २ वक वृक्ष, अगस्त। ३ स्फटिक, बिल्लौर। ४ धुस्तूर, धतूरा। ५ विजिया, भंग। (त्रि०) ६ शिवका प्रिय।

शिवप्रिया (सं० स्त्री०) शिवस्य प्रिया। दुर्गा।

शिवप्रीति (सं० स्त्री०) बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़।

शिवबीज (सं० क्ली०) शिवस्य बीजं। पारद, पारा जो शिवका बीज माना जाता है।

शिवब्राह्मी (सं० स्त्री०) शङ्खपुष्पी, शंखाहुली।

शिवभक्त (सं० पु०) शिवस्य भक्तः। वह जो शिवका भक्त हो, शैव।

शिवभक्ति (सं० पु०) शिवस्य भक्तिः। शिवकी भक्ति।

शिवभद्र (सं० पु०) एक राजाका नाम।

शिवभागवत (सं० पु०) शिवभक्त।

शिवभास्कर (सं० पु०) शिव और सूर्य।

शिवमत (सं० पु०) श्वेत रक्तवसुक वृक्ष। (राजनि०)

शिवमय (सं० लि०) शिवस्वरूपे मयट्। शिवस्वरूप, शिवके समान।

शिवमल्लक (सं० पु०) अर्जुन वृक्ष।

शिवमल्लिका (सं० स्त्री०) शिवप्रिया मल्लिका। १ वसुक, वसु नामक पुष्प वृक्ष। २ श्वेत रक्तार्क वृक्ष, सफेद और लाल मदार या आक। ३ वक वृक्ष। ४ बाकसका पेड़। ५ लिङ्गिनी नामकी लता। ६ श्रीवल्ली नामक कंटीला पेड़।

शिवमल्ली (सं० स्त्री०) शिवप्रिया मल्ली। १ पाशुपति, मौलसिरी। २ आक, मदार। ३ वक नामक वृक्ष। ४ लिङ्गिनी नामकी लता।

शिवमात (सं० पु०) बौद्धोंके मतसे एक बहुत बड़ी संख्याका नाम।

शिवयोगिन् (सं० पु०) षड्गुरुके शिष्य एक आचार्य।

शिवयोषित् (सं० स्त्री०) शिवस्य योषित्। शिवकी पत्नी, दुर्गा।

शिवरथ (सं० पु०) काश्मीरके एक सामन्त।

शिवरस (सं० पु०) तीन दिनसे अधिक बासी भातका पानी। यह दीपन, मधुर, अम्ल, असृग् दाहप्रद, लघु और तर्पण होता है। (राजनि०)

शिवराज (सं० पु०) इस नामके बहुतेरे प्राचीन उत्कलके राजे।

शिवराज—शेउराज देखो।

शिवराजधानी (सं० स्त्री०) काशी। यहां शिव सर्वदा विराजित रहते हैं, इसलिये इसको शिवराजधानी कहते हैं।

शिवराजी (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत बड़ा कबूतर।

शिवरात्र (सं० स्त्री०) शिवरात्रिव्रत देखो।

शिवरात्रि (सं० स्त्री०) शिवचतुर्दशी।

शिवरात्रिव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष, शिवचतुर्दशी व्रत। शिवचतुर्दशी तिथिमें रातको यह व्रत करना होता है, इसीसे इसको शिवरात्रि व्रत कहते हैं। यह व्रत चण्डालसे ले कर ब्राह्मण तक सभीको करना कर्त्तव्य है। माघमासके शेष या फाल्गुनमासके प्रथममें जो कृष्ण चतुर्दशी पड़ती है, उसीमें यह व्रत करे। माघमासके शेष और फाल्गुन मासके प्रथमसे मुख्य चान्द्र माघ और गौणचान्द्र फाल्गुन समझा जाता है। अर्थात् मुख्यचान्द्रमासकी कृष्ण चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत होता है। अतएव यह तिथि माघमासके शेष या फाल्गुन मासके प्रथममें होती है।

इस व्रतमें उपवास ही एकमात्र प्रधान है। महादेवने स्वयं कहा था, कि स्नान पूजा आदि द्वारा मैं जिस प्रकार संतुष्ट नहीं होता, एकमात्र उपवास द्वारा उसी प्रकार संतुष्ट होता हूं।

शिवकी प्रीतिकामनासे रातको पहर पहरमें स्नान और पूजन करना होता है। रातको विशेष विशेष द्रव्य और मन्त्र द्वारा चार पहर स्नान और पूजा करनेको कहा गया है। इसमें प्रथम पहरमें जब पूजा करनी होती है, तब दुग्ध द्वारा स्नान, इसी प्रकार द्वितीय प्रहरमें दधि द्वारा स्नान, तृतीय प्रहरमें घृत और चतुर्थ प्रहरमें मधु द्वारा स्नान करा कर पूजा करनी होती है।

यह व्रत सबोंको करना कर्त्तव्य है। शैव, वैष्णव आदि चाहे जो हों, वे यदि यह व्रत न करें, तो उनका सभी पूजाफल विनष्ट होता है। माघमासकी शिवचतुर्दशी तिथिमें यदि रवि या मङ्गलवार पड़े, तो उसे शिवयोग कहते हैं। इस योगमें यह व्रत उत्तमोत्तम होता है। यह व्रत समस्त पापनाशक तथा आचण्डाल मानवका भुक्तिमुक्तिप्रदायक है। इस तिथिमें उपवास, रात्रिजागरण और लिङ्गपूजा द्वारा अक्षयलोक और शिवसायुज्य लाभ होता है। जो यह व्रत करते हैं, उन्हें इस लोकमें नाना प्रकारके सुखसौभाग्य और परलोकमें शिवलोककी प्राप्ति होती है।

इस व्रतका विधान रात्रिको कहा गया है। किंतु जिस दिन यह चतुर्दशी तिथि प्रदोष और निशीथ यह दोनों व्यापिनी हो, उसी दिन यह व्रत होगा और यदि यह तिथि पूर्व दिनमें निशीथव्यापिनी तथा दूसरे दिन प्रदोषमात्रव्यापिनी हो, तो पूर्वदिनमें यह व्रत होगा।

व्रतके पूर्व दिन संयत हो कर रहना होता है तथा व्रतके अन्तमें पारण करना उचित है।

व्रतपद्धति—चतुर्दशी तिथिमें सवेरे प्रातःकृत्य और नित्य क्रियादि समाप्त करके पहले स्वस्तिवाचन और 'सूर्य्य सोम' इत्यादिका मन्त्रपाठ और पीछे संकल्प करना होता है।

पूजाके विधानानुसार सामान्यार्घ्य आदि स्थापन, जलशुद्धि, आसनशुद्धि आदि करके गणेशादिकी पूजा करनी होती है। समर्थ होने पर भूतशुद्धि करके पूजा करे। शिवपूजा शब्दमें शिवपूजाका जो विधान कहा गया है, तदनुसार पूजा करना कर्त्तव्य है। स्नान और अर्घ्य आदिमें जो विशेषता है, वही कही गई है। प्रतिष्ठित लिङ्गकी पूजा करनेमें आवाहन, प्राणप्रतिष्ठा और विसर्जन नहीं होता। मिट्टीका लिङ्ग बना कर पूजा करनेमें शिवपूजाके क्रमसे पूजा करे। चार पहरमें चार बार पूजा और दुग्धादि द्वारा स्नान करना होता है। चार पहरमें अर्घ्यमन्त्र भी पृथक् है। पहले 'ओं पशुपतये नमः' इस मन्त्रसे जल द्वारा स्नान करा कर पीछे विशेष द्रव्य और विशेष मन्त्रसे स्नान करावे। प्रथम प्रहरमें 'ओं ह्रौं ईशानाय नमः' इस मन्त्रसे दुग्ध द्वारा स्नान कराना होता है। अर्घ्य मन्त्र—

'ओं शिवरात्रिव्रतं देव पूजाजपपरायणः।
करोमि विधिवद्दत्तं गृहाणार्घ्यं महेश्वर॥
इदमर्घ्यं ओं नमः शिवाय नमः।'

द्वितीय प्रहरमें "ओं ह्रौं अघोराय नमः" इस मन्त्रसे दधि द्वारा स्नान कराना होता है। अर्घ्यमन्त्र—

"ओं नमः शिवाय शान्ताय सर्व्वपापहराय च।
शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं प्रसीद उमया सह॥
इदमर्घ्यं ओं नमः शिवाय नमः।"

तृतीय प्रहरमें 'ओं ह्रौं वामदेवाय नमः' इस मन्त्रसे घृत द्वारा स्नान कराना होता है।

अर्घ्य मंत्र—

"ओं दुःखदारिद्र्यशोकेन दग्धोऽहं पार्वतीश्वर।
शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं उमाकान्त गृहाण मे॥
इदमर्घ्यं ओं नमः शिवाय नमः।"

चतुर्थ प्रहरमें—'ओं ह्रौं सद्योजाताय नमः' इस मंत्रसे मधु द्वारा स्नान करावे। अर्घ्य मंत्र—

"ओं मया कृतान्यनेकानि पापानि हर शङ्कर।
शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं उमाकान्त गृहाण मे॥
इदमर्घ्यं ओं नमः शिवाय नमः।"

उक्त विधानानुसार चार पहरमें चार बार पूजा करनी होती है। पूजाके अंतमें कथाश्रवण-स्तवपाठ आदि करना होता है।

कथा सुन कर भोज्योत्सर्ग करना होता है। दूसरे दिन प्रातःकृत्यादि समापन तथा स्नान नित्य क्रिया समाप्त करके मूल मंत्रसे शिवपूजा करे। पीछे ब्राह्मण और ज्ञाति बंधुबांधवोंको भोजन करा कर स्वयं पारण करे। पारणके समयमें मंत्र पाठ करके जलपान करना होता है। पारण मंत्र -

"संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शंकर।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥"

शिवरानी (हिं० स्त्री०) शिवजीकी पत्नी, पार्वती।

शिवरानी—शंकरानी देखो।

शिवराम—बहुत-से संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम। १ भिषगीश यज्वाके पुत्र। इन्होंने आरामोत्सर्गपद्धति, आह्निकसंक्षेप, जटापटलभाष्य, दर्शश्राद्धप्रयोग और रुद्रार्च्चनचंद्रिका आदिकी रचना की। २ एक वैयाकरण, कातंत्रपरिशिष्टसिद्धांतरत्नांकुर और कृन्मञ्जरीके प्रणेता। ३ एक विख्यात तांत्रिक, क्रमरत्नं, गायत्रीपुरश्चरण और तंत्रराजटीका। ४ गिरिजाकमलाविवादकाव्यके प्रणेता। ५ भावार्थदीपिका नामकी भागवतपुराणकी टीकाके रचयिता। ६ संक्रांतिफल नामक ज्योतिग्रंथके प्रणेता। ७ एक प्रसिद्ध स्मार्त्त, विश्राम शुक्लके पुत्र। ये १७वीं सदीमें विद्यमान थे। इन्होंने छन्दोगानीयाह्निक, मंत्रचिन्तामणि, शांतिचिन्तामणि, श्राद्धचिंतामणि और सुबोधिनी नामकी गोभिल गृह्यसूत्रपद्धतिकी रचना की।

शिवराम आचार्य—बालिकार्चनदीपिकाके प्रणेता।

शिवरामचक्रवर्त्ती—अंग्रघटीय एक विख्यात पण्डित, सर्वानन्द मिश्रके प्रपौत्र और चन्द्रगंधके पुत्र। सुविख्यात रघुनाथ तर्कवागीश और मथुरेश विद्यालङ्कारके ये पिता थे।

शिवराम त्रिपाठी—एक विख्यात टीकाकार। इनके पिताका नाम कृष्णराम और पितामहका नाम त्रिलोकचंद था। इन्होंने काञ्चनदर्पण नामक काव्यप्रकाशकी टीका, चरितभूषण नामक दशकुमारचरितकी टीका, नक्षत्रमाला और उसकी टीका, भूपालभूषण, रसरत्नहार, लक्ष्मीविलासाभिधान नामक एक उणादिकोष और विद्याविलास आदि ग्रंथ लिखे। इनका लक्ष्मीविलासमें जो 'परिभाषेन्दुशेखर' उद्धृत हुआ है, उससे जाना जाता है, कि शिवराम १८वीं सदीमें विद्यमान थे।

शिवरामभट्ट—१ रंगतरङ्गिणीकाव्यके रचयिता। २ वेदांतसंग्रहके प्रणेता। ३ सन्निधानपरिशिष्टके प्रणेता।

शिवराम भट्टाचार्य—नव्यमुक्तिवादटिप्पणीके रचयिता।

शिवराम संन्यासी—रामायणटीकाके प्रणेता।

शिवरामेन्द्र यति—एक वैयाकरण। इन्होंने १८५० ई०में गजसूत्रव्याख्या नामकी पाणिनि की टीका लिखी।

शिवरामेन्द्र सरस्वती—१ अन्नपूर्णाकल्पवल्लीकार। २ एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने सिद्धांतरत्नप्रकाश नामकी महाभाष्यकी टीका तथा सिद्धांतरत्नाकर नामकी सिद्धांतकौमुदीकी टीका लिखी।

शिवलाल—१ एक ज्योतिर्विद्, अद्भुत संग्रह और प्रश्नमनोरमा नामक दो ज्योतिर्ग्रन्थके टीकाकार। २ श्यामलारहस्यके रचयिता। ३ सिद्धांततत्त्वविंदुप्रदीपिकाके प्रणेता।

शिवलाल पाठक—रामाश्वमेधोपानके रचयिता।

शिवलाल शुक्ल—जातिसाङ्कर्य नामक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थके प्रणेता।

शिवलिङ्ग (सं० पु०) महादेवका लिङ्ग या पिण्डी जिसका पूजन होता है।

शिवलिङ्ग चोल—चोलवंशीय एक भूपति, चतुर्वेदतात्पर्य संग्रह व्याख्याकार।

शिवलिङ्गिनी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी प्रसिद्ध लता। यह चौमासेमें जङ्गलों और झाड़ियोंमें बहुत अधिकतासे मिलती है। इसकी डंडियां बहुत पतली और पत्ते करेलेके पत्तोंके समान ३से ५ इञ्चके घेरेमें गोलाकार, गहरे, कटे किनारेवाले और ५-७ भागोंमें विभक्त रहते हैं। पत्र-दण्डकी जड़में ५-६ फूलोंके छोटे छोटे गुच्छे लगते हैं। ये फूल पीले होते हैं। इसका व्यवहार ओषधिके रूपमें होता है। वैद्यकके अनुसार यह चरपरी, गरम, दुर्गन्धयुक्त, पौष्टिक, शोधक, गर्भ धारण करानेवाली और कुष्ठ आदिका नाश करनेवाली होती है। इसके फलने पर इसका सर्वाङ्ग ओषधिके निमित्त संग्रह किया जाता है। इसे बिजगुरिया या पचगुरिया भी कहते हैं।

शिवलोक (सं० पु०) शिवजीका लोक, कैलास।

शिववल्लभ (सं० पु०) शिवस्य वल्लभः। शिवप्रिय।

शिववल्लभा (सं० स्त्री०) शिवस्य वल्लभा। १ शिवप्रिया, दुर्गा। २ शतपत्री, सेवती।

शिववल्लिका (सं० स्त्री०) शिवस्य वल्लिका। शिवलिङ्गिनी देखो।

शिववल्ली (सं० स्त्री०) शिवस्य वल्ली। शिवलिङ्गिनी देखो।

शिववाहन (सं० पु०) शिवस्य वाहनः। शिवका वाहन, बैल।

शिववीर्य (सं० क्ली०) शिवस्य वीर्य। १ शिववीज, शिवका वीर्य। २ पारद, पारा।

शिववृषभ (सं० पु०) शिवजीकी सवारीका बैल।

शिवशक्ति सं० स्त्री०) शिव एवं शक्ति, शिव-पार्वती।

शिवशक्तिमय (सं० त्रि०) शिवशक्तिस्वरूपे मयट्। शिव और शक्ति स्वरूप।

शिवशङ्कर—विष्णुपूजाक्रमदीपिकाकार।

शिवशङ्करा (सं० स्त्री०) देवीकी एक मूर्त्तिका नाम।

शिवशर्म्मन् (सं० पु०) एक ग्रन्थकारका नाम।

शिवशेखर (सं० पु०) शिवः सुखकरः शिवप्रियो वा शेखरोऽग्रो यस्य। १ वक वृक्ष। (जटाधर) २ धुस्तूर, धतूरा। ३ शिवका मस्तक। ४ सफेद मदार।

शिवशैल (सं० पु०) कैलास पर्वत।

शिवश्री (सं० पु०) पुराणानुसार एक राजाका नाम। (विष्णुपु० ४।२४।१३)

शिवसङ्कल्प (सं० त्रि०) शुभसंङ्कल्पयुक्त ।

शिवसमुद्र (सं० पु०) जलप्रपातभेद ।

शिवसमुद्रम् (शिवनासमुदरम्)—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कोयम्वतोर जिलेमें अवस्थित एक द्वीप । महिसुर-राज्य-प्रांतमें कावेरी नदीने दो भागोंमें विभक्त हो कर इस भूभागकी सृष्टि की है। जनसाधारण इस स्थानको हेगुरा कहते हैं। किन्तु प्राचीन शिवसमुद्रम् नगरके (अक्षा० १२° १६´ उ० एवं देशा० ७७° १४´ पू०) नामसे इसका शिवसमुद्रम् नाम हुआ है। इस समय कई ध्वस्त निदर्शनके अतिरिक्त इस नगरका और कोई चिह्न नहीं पाया जाता । प्रवाद है, कि १६वीं सदीमें विजयनगर राजवंशके गङ्गा नामक राजाने इस नगरकी प्रतिष्ठा की। इस राजधानीमें उन लोगोंने दो पीढ़ी तक राज्य किया। इसके बाद यह राज्य नष्ट हो गया।

१७९१ ई०में लार्ड कर्नवालिसकी अध्यक्षतामें अंगरेजी सेना श्रीरङ्गपट्टन पर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुई । उनके भाग जाने पर टीपू सुलतान इसके आसपासके स्थानोंको लूटता हुआ चला गया। उस समय वहांके अधिवासियोंने अपने गोमहिष आदि ले कर इस द्वीपमें आश्रय लिया था । समय पा कर यह स्थान जंगलोंसे भर गया एवं नदीमें जो पत्थरका पुल था, वह भी जंगलसे अगम्य हो उठा।

१८२४ ई०मे महिसुरके अङ्गरेज रेसिडेण्टके एक कर्मचारी रामस्वामी मुदलियरने इसके संस्कारका बीड़ा उठाया। उन्होंने अपने अध्यवसाय तथा परिश्रमसे अङ्गरेज गवर्नमेण्टसे 'जनोपकारकर्मकर्त्ता' की उपाधि प्राप्त की थी। इसके अलावे उन्हें महिसुर राजासे ६०००) रुपये और अंगरेज गवर्नमेण्टसे ८०००) रुपये वार्षिक आयकी सम्पत्ति मिली । इसके अतिरिक्त यहां नदी पर और भी कई नये पुल बनाये गये हैं।

शिव सहाय—१ महाराष्ट्रवासी एक दार्शनिक। इन्होंने व्याप्तिपरिष्कार नामक एक वैशेषिक ग्रंथ लिखा। २ जातकमञ्जरीके रचयिता।

शिवसागर—आसामके उत्तर उपत्यकादेशके अन्तर्गत अंगरेजी शासनाधीन एक जिला। यह अक्षा० २५° ४६´ से ले कर २७°१६´ उ० तथा देशा० ९३° ३´ से ले कर ९५° २२´ पू०के मध्य विस्तृत है। इसका भू-परिमाण ४९९६ वर्गमील है। इसके उत्तर और पूर्वमें लखिमपुर जिला और ब्रह्मपुत्र नद, दक्षिणमें नागा शैल नामक जिला एवं पश्चिममें नवगाँव जिला है । शिवसागर नगर इसका विचारसदर है।

इस जिलेकी भूमि समतल प्रांतरोंसे भरी है । बीच बीचमें घाससे भरे हुए क्षेत्र तथा जंगल दृष्टिगोचर होते हैं। इस भूमिके बीचसे कई शाखाप्रशाखाओंमें ब्रह्मपुत्रनद के बहनेके कारण नदीतीरवर्त्ती भूभाग साधारणः निम्न हो गया है। प्रति वर्ष बाढ़के पानीमें यह डूब जाता है। भूतत्त्वकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि दिशाई नदीके पूर्व ओरमें स्थित भूभाग सफेद गीली मिट्टीसे परिपूर्ण है। वह जिलेके दूसरे स्थानोंकी अपेक्षा अधिक उपजाऊ है एवं धानकी खेतीके लिये विशेष उपयोगी है।

उक्त नदीके पश्चिमांशमें इस तरहकी मिट्टी होने पर भी उसके निम्न भागमें गेरुई मिट्टीका स्तर है और उसके मध्य खनिज लौहकी खान पाई जाती है। यह विभाग कई नदी खाई तथा विस्तृत जलभूमिमें विभक्त होनेके कारण मध्यवर्त्ती शस्यक्षेत्रोंकी शोभा मनोहर है। नागाशैलके सामने यह भूमि क्रमसे ऊंची हो गई है। पर्वतकी पार्श्ववर्त्ती भूमि स्वभावतः ऊंची नीची है। इस निम्न भागमें प्रायः सरकंडे और बेंतका वन देखा जाता है। उसके ऊपर बड़े बड़े वृक्षोंका घना जंगल है। इस अरण्यके मध्य भागमें कहीं-कहीं हरे भरे अनाजके खेत और कहीं कहीं बीस फीट ऊंचे तृणोंसे आच्छादित प्रान्तरभूमि देखी जाती है। कृषकोंका समागम तथा उनकी संगीतध्वनि यहांकी निर्जनता दूर करती है।

यहांकी प्रधान नदी ब्रह्मपुत्र है। इसकी दिहिंग शाखा लखिमपुरसे शिवसागरको अलग करती है। इसके अलावे दिसंग, दिखू, थान्जी, काकडंगा धनेश्वरी, प्रभृति शाखा नदियां सर्वदा जलपूर्ण रहती हैं। ब्रह्मपुत्र और लोहित्य नामक उसके पुरातन खातोंका मध्यवर्त्ती 'माजुलीचरी' उर्व्वर गीली मिट्टीसे परिपूर्ण है। यहां कई प्रकारकी खेती होती है। सुवर्णश्री नामक शाखा नदी लोहित नदीकी धारा पुष्ट करती है।

अङ्गरेजी राज्यके शासनाधीन होनेके पहले यह जिला प्रायः ४०० वर्ष तक आहोम राजवंशके अधिकारमें था। उसके पहले छुटिया जाति ही यहांकी सर्वमय कर्त्ता थी। आहोम सेनाने छुटिया जातिको पराजित कर अपना अधिकार जमा लिया।

ऐसी किम्वदन्ती चली आती है, कि शानवंशीय आहोम लोग १८वीं सदीमें उत्तर-आसाममें आ कर वस गये। इस समय कामरूपमें हिन्दू राजे राज्य करते थे। धीरे धीरे उस राजवंशका प्रभाव घट जाने पर आहोम जाति क्रमशः ब्रह्मपुत्रनदके उपत्यका देशमें आ कर चारों ओर फैल गई। १७वीं सदीमें वे लोग गौहाटी पर अधिकार जमा कर मुगल-सम्राट्के विरुद्ध अस्त्रधारण करनेमें समर्थ हुए।

आहोम जातिने स्वजातीय वीर्य्य और वाहुवलसे आसाम पर अपना अधिकार जमा लिया सही, किन्तु उन लोगोंको वीर धर्मके उपयोगी धर्मवल न था। उन्हीं ने हिन्दुओंके अधिकारमें आ कर धीरे धीरे सत्वगुण प्रधान हिन्दू धर्मका ही आश्रय लिया। सात्विक भावसे क्रमशः उन लोगोंका हृदय परिपूर्ण हो गया। वे हिंसा द्वेषको धीरे धीरे भूलने लगे। पीछे पवित्र पुण्य धर्मका आश्रय ले कर उन लोगोंने वीरधर्मकी जलांजलि दे दी। जिस वाहुवलने एक दिन दूसरेकी उन्नति देख ईर्षान्वित हो कर आहोम-राज्यकी प्रतिष्ठा की थी, वही भुजा धर्मकी महिमासे हिंसासे हिचक पड़ी तथा दूसरेका सर्वनाश करना पापजनक समझ कर अस्त्र शस्त्र धारण करनेसे पराङ्मुख हो गई। इस समय आहोम-राज्यमें विप्लव उपस्थित हुआ। लड़ाई झगड़ेसे दूर रहनेके अभिप्रायसे आहोम लोगोंने ब्रह्मवासियोंसे सहायता मांगी, परन्तु दुर्वृत्त ब्रह्मसैनिकोंने निरीह आहोम जातिको युद्धसे विमुख देख कर उन्हीं लोगों पर आक्रमण करना शुरू किया और थोड़े ही दिनोंमें वह राज्य हस्तगत कर लिया। १८२३ ई०में अंग्रेजोंने ब्रह्मराजाको युद्धमें परास्त कर आसाम राज्य पर अधिकार कर लिया।

वर्त्तमान शिवसागर नगरसे थोड़ी दूर दक्षिणपूर्व्व दिखू नदीके किनारे गढ़गाँव नामक स्थानमें आहोम लोगोंने अपनी राजधानी वसाई। इस समय भी उस नगरका ध्वंसावशेष वहुत दूरमें फैला हुआ है। प्राचीन राजप्रासादकी वाहरी दीवारकी सीमा आज भी दृष्टिगोचर होती है। उसकी परिधि प्रायः दो गोलकी होगी। इन सब ध्वस्त कीर्त्तियोंके मध्य प्रस्तर निर्म्मित एक वड़े फाटकका निदर्शन पाया जाता है। उसके सभी पत्थर लोहेके तारसे बँधे हैं। उसे देखने हीसे मालूम पड़ता है, कि सुप्राचीन कामरूप-राजवंशकी पूरी उन्नतिके समय प्रासादका यह द्वारांश तैयार किया गया था। वर्त्तमान समयमें यह स्थान जङ्गलोंसे भर गया है। प्राचीन नगरकी वहुत-सी ईंटें आदि स्थानवासी अपने व्यवहारके लिये उठा ले गये हैं। चाय वगानोंमें इस तरहकी अनेक प्राचीन ईंटें पाई जाती हैं।

किसी कारणसे उक्त राजधानीके श्रीभ्रष्ट हो जाने पर १६९० ई०में राजा रुद्रसिंहने शिवसागरके दक्षिण रङ्गपुर नामक स्थानमें अपनी राजधानी वसाई। रुद्रसिंह ने ही सवसे पहले ब्राह्मण्यधर्मकी दीक्षा ली थी। उनका वनाया हुआ प्रासाद और जयसागरतीरस्थ देवमन्दिर इस समय भी भग्नावस्थामें विद्यमान हैं। उनके वड़े लड़केने शिवसागर डिग्गी खोदवाई थी। उसकी जल धारा प्रायः ४ सौ वीघेमें है। इस सुविस्तृत दिग्घीके चारों पार्श्वमें शिवसागर नगर प्रतिष्ठित है। १७८४ ई० तक रङ्गपुरमें आहोम राजाओंकी राजधानी और राजप्रासाद विद्यमान था। इसी समय राष्ट्रविप्लवकी सूचना हुई और आहोम शक्ति टुकड़े टुकड़ेमें विभक्त हो गई। राजा गौरीनाथ इस समय विद्रोही प्रजाओंके द्वारा आक्रान्त हो कर दिशाई तीरस्थ जोड़हाट नामक स्थानमें भाग गये। शत्रुओंके पीछा करनेके कारण वे यहांसे भी गौहाटीकी ओर भाग जानेके लिये लाचार हुए। इसके वाद अङ्गरेजी-सेनाकी सहायतासे वे जोड़हाट लौट आये। यहां १७९३ ई०में उनकी मृत्यु हो गई।

राजधानीकी ध्वस्त कीर्त्तिको छोड़ आहोम राजाओंकी और भी कई अक्षय कीर्त्तियां हैं। नदीकी वाढ़से देशरक्षाके लिये उन्होंने कितने ही वाँध वंधवाये थे, जो

इस समय भी निदर्शन स्वरूप विद्यमान हैं। इस बांध परसे लोग आते जाते थे। आहोम राजाओं-ने सम्भवतः बिना खर्चाके प्रजाओंको बाध्य करके इन बाँधोंका निर्माण किया था। क्योंकि उनकी शासन-प्रणाली भी स्वतन्त्र थी। वे अपने अधिकृत प्रदेशको टुकड़े टुकड़े में विभक्त कर तथा एक एक विभागको एक एक शासनकर्त्ताके अधीन कर राज्यकार्य चलाते थे। ये कर्मकर्त्ता प्रजासे किसी प्रकारका राजकर वसूल नहीं कर सकते थे।

वे प्रजाओंमेंसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा राजकीय वा राज्य-के मंगलजनक कोई न कोई कार्यका कुछ अंश निवटवा ही लेते थे। उसके लिये उन्होंने सरकारकी ओरसे किसी प्रकारका मेहनताना देनेकी व्यवस्था न थी। जो कार्य करनेमें आनाकानी करता था, उससे बलपूर्वक कार्य कराया जाता था। इस कारण राज्यकार्यमें उनकी विशेष आस्था न थी। धीरे धीरे आहोम राजवंशकी अवनतिके साथ साथ उन सब बांधोंकी अवस्था भी बिगड़ने लगी। नदीकी बाढ़से स्थान स्थान पर बांध टूट गये और खेती नष्ट होने लगी।

१८२३ ई०में ब्रह्मसेनाको भगा कर अंग्रेजोंने शिव-सागर पर दखल जमा लिया। ब्रह्मसेनाके पुनः आक्र-मणसे देशरक्षाके लिये अंग्रेजी सरकारने पहले ही ब्रह्मपुत्र उपत्यकाके सीमान्तवर्त्ती सदिया नगरमें एक सेनानिवेश स्थापित कर लिया। उस समय अंग्रेजी सरकारके कर्मचारी लोग नवगाँवमें बैठ कर राजकार्य सम्हालते थे। इसके बाद वर्त्तमान शिवसागर जिला तथा लखिमपुरके दक्षिण भागका कुछ अंश अंग्रेजी सरकारने ५००००) रुपये वार्षिक राजकर ठीक कर राजा पुरन्दर-सिंह नामक एक देशी राजाके हाथ सौंप दिया। राजा पुरन्दर सिंह अंग्रेजोंकी सहायता पा कर बहुत अत्या-चार करने लगे। निर्दय ब्रह्मवासी राजाका अत्याचार उत्तरोत्तर बढ़ते देख अंग्रेजी सरकारने १८३८ ई०में राजा पुरन्दरको पदच्युत कर इस प्रदेशका राजकार्य सम्हालनेके लिये एक स्वतंत्र अंग्रेजशासनकर्त्ता नियुक्त किया। उस दिनसे यहां किसी प्रकारका गोलमाल उपस्थित नहीं हुआ। नदीकी बाढ़से प्रजाओंको खेती चौपट हो जाती थी जिससे उनकी बड़ी क्षति होती थी। किन्तु चायबगानकी स्थापना होनेके बादसे उनकी अवस्था बहुत कुछ सुधर गई है।

शिवसागर नगरको छोड़ जोड़हाट, गोलाघाट और नाजिरा नगर वर्त्तमान समयमें पण्यद्रव्यसे परिपूर्ण रहने-के कारण एक एक वाणिज्यकेन्द्र हो गया है। प्राचीन राजधानी गढ़गाँव और रंगपुर इस समय समृद्धिहीन छोटे गाँवमात्र हैं। इनके अतिरिक्त इस जिलेमें २१०६ ग्राम हैं। जनसंख्या ६ लाखके करीब है। अधिवासियोंके मध्य आहोम, कोच, चुटिया, ब्रह्म, चीन, डोम, राजपूत, कलिता प्रभृति अपेक्षाकृत उन्नतिशील हैं। निम्नश्रेणीके मध्य केवट, कतानी, मुण्डा वा मुरा, कुर्म्मी, वेड़िया, नाट, गणक, हाड़ी, कुम्हार, बाउरी, कहार, घार-वाल, हज्जाम, ग्वाला प्रभृति जातियां देखी जाती हैं। आदिम असभ्य जातिके मध्य मिरि, मिकिर नागा, शान, लालुंग, मेछ, गारो, मणिपुरी, कोल, बरायन और संथाल प्रधान हैं। शेषोक्त जातिके लोग चायबगानके कुली बन कर छोटानागपुर जिलेसे यहां आ गये हैं। सब जातियोंमें अधिक लोग ही कृषिजीवी हैं। कोई कोई कुलीका काम कर जीविका चलाते हैं।

कपास और रेशमी वस्त्र बुननेका कारबार यहांका प्रधान कारबार है। आदाकुड़ी वृक्ष पर जो कीड़े पाले जाते हैं, उससे मेजांकुड़ी नामक रेशम तैयार होता है। इस रेशमके कपड़े यहांके सभी प्रकारके रेशमी वस्त्रोंसे अच्छे होते हैं। तूतके पेड़ पर जिस चीन देशीय कीड़ों-की खेती होती है, उससे पाट नामक रेशम तैयार होता है। सुम नामक पेड़के फूल पर जो कीड़े पाले जाते हैं, उससे मूंगा और अरंडी वृक्षके कीड़ोंसे अंडी रेशम तैयार होता है। इन सब प्रकारके रेशमी वस्त्र भारतके सभी स्थानोंमें तथा विदेशमें भी बड़े आदरके साथ ग्रहण किये जाते हैं। इसके अलावे यहां नाना प्रकारके पीतल और कांसेके बरतन तैयार होते हैं। मारवाड़ी वणिक्-समिति ये सब चीजें तैयार करनेवाले कारीगरोंको मजूरी दे कर चीज तैयार करवाती है और उन्हें बेचनेके लिये दूर दूरके देशोंमें भेजी जाती है एवं लवण, तेल, अफीम, कपास वस्त्र और लौहनिर्मित नाना प्रकारके विदेशी द्रव्य यहां रेल तथा स्टीमर द्वारा मंगाये जाते हैं।

यहांका जलवायु उतना बुरा नहीं है। कार्त्तिकसे चैत्र मास तक यहां जाड़ा पड़ता है, इसके बाद कई महीने ग्रीष्म और वर्षा रहती है। इस कारण यहां साधारणतः दो ही ऋतु देखी जाती है। सविराम और अविराम ज्वर, उदरामय तथा रक्तामाशाय, वात, गलगण्ड, कुष्ठ प्रभृति चर्मरोग तथा नाना प्रकारके हृद्रोग यहांके अधिवासियोंको क्लिष्ट कर देते हैं। सालमें एक बार विसूचिका रोग देखा जाता है और ४।५ वर्षके अन्तर पर वसन्तरोगका प्रादुर्भाव होता है।

विद्या-शिक्षामें यह जिला बहुत बढ़ा चढ़ा है। अभी कुल मिला कर ३२५ प्राइमरी और २० सिकेण्डरी स्कूल हैं। स्कूलके अलावा ३ अस्पताल और ४ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २६° ४२′से २७° १६′ उ० तथा देशा० ६४° २४′से ६५° २२′ पू०के मध्य पड़ता है। भूपरिमाण ११६२ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखसे ऊपर है। इसमें १ शहर और ६६६ ग्राम लगते हैं। शिवसागर और बड़तला थाना ले कर यह उपविभाग गठित है।

३ शिवसागर जिलेका प्रधान नगर और विचार सदर। यह ब्रह्मपुत्रनदके दक्षिणी कछारसे ६ मील दूर दिखू नदीके तीर पर अक्षा० २६° ५९′ उ० तथा देशा० ६४° ३८′ पू०के मध्य विस्तृत है। आहोम राजवंश हिन्दूधर्ममें दीक्षित होनेके बाद 'शिवसागर'के किनारे राजधानी बसा कर राज्य करते थे। इस समय भी वह शिवसागर और उसके चतुर्दिक्स्थ प्राचीन मन्दिरादि विद्यमान हैं। कहते हैं, कि करीब १७२२ ई०में आहोम राजा शिवसिंहने बहुत रुपये खर्च कर यह डिग्गी खोदवाई थी। प्राचीन नगरभाग ध्वस्तावस्थामें गिरा पड़ा है। गवर्मेण्टके यत्नसे वर्त्तमान नगर तथा बाजार प्रभृति श्रीसम्पन्न हो गया है। जनसंख्या छः हजारके करीब है। शहरमें दो हाई स्कूल हैं।

शिवसायुज्य (सं० क्ली०) शिवस्य सायुज्यं। १ शैवोंके अनुसार वह मोक्ष जिसमें मनुष्य शिवमें लीन हो जाता है। २ मृत्यु, मौत।

शिवसिंह—शिवसिंहसरोजके कर्त्ता। इन्होंने अपने सरोजमें अपना परिचय इस प्रकार दिया है, अपना नाम लिखना इस ग्रन्थमें बड़े अचम्भेकी बात है। कारण यह है, कि हमको इस मार्गमें कुछ भी ज्ञान नहीं है सो हमारी ढिठाईको विद्वज्जन माफ करेंगे। हमने बृहच्छिव पुराणको भाषा और उर्दू दोनों बोलियोंमें उलथा करके छपाया है। हमने ब्रह्मोत्तरखण्डका भी भाषा किया है। काव्य करनेकी मुझमें शक्ति नहीं। ग्रन्थोंको एकत्रित करनेकी हमें बड़ी अभिलाषा है। अरबी, फारसी और संस्कृतके सैकड़ों अद्भुत ग्रन्थ हमने संग्रह किये हैं। इन भाषाओंका थोड़ा बहुत ज्ञान भी हमको है।

शिवसिंह—१ मिथिलाके एक प्रसिद्ध राजा। ये देवसिंहके पुत्र और विद्यापतिके प्रतिपालक थे। मिथिला देखो। २ आसामके चन्द्रवंशीय एक राजा।

शिवसिंह मल्ल नेपालके एक राजा।

शिवसुन्दरी (सं० स्त्री०) शिवस्य सुन्दरी। दुर्गा। (तन्त्र)

शिवसूत्र (सं० क्ली०) शिवकर्त्तृक कथित सूत्र, दर्शन और व्याकरण।

शिवस्कन्ध (सं० पु०) एक राजाका नाम।

शिवस्तुति (सं० स्त्री०) शिवस्य स्तुतिः। शिवका स्तव, महादेवका स्तव।

शिवस्वाति (सं० पु०) एक राजाका नाम।

शिवस्वामी—बहुतेरे प्राचीन संस्कृत ग्रंथकारोंके नाम। १ काश्मीरपति अवन्तिवर्माकी सभाके एक प्राचीन कवि। २ एक प्राचीन वैयाकरण। क्षीरस्वामी और माधवने इनका नामोल्लेख किया है। ३ शिवाचार्य नामसे प्रसिद्ध एक ग्रन्थकार। इन्होंने सुखजीवन नामक एक राजाके आश्रयमें विज्ञानभैरवोद्द्योतसंग्रहकी रचना की।

शिवा (सं० स्त्री०) शिव-टाप्। १ दुर्गा। २ पार्वती, गिरिजा। ३ मुक्ति, मोक्ष।

"शिवा मुक्तिः समाख्यातो योगिनां मोक्षगामिनी।
शिवाय यां जपेद्देवीं शिवा लोके ततः स्मृता॥"
(देवीपु० ४५ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तमें शिवा शब्दकी नामनिरुक्ति इस प्रकार है—

"शश्च कल्याणवचन इरेवोत्कृष्टवाचकः।
समूहवाचकश्चैव वाकारो दातृवाचकः॥

श्रेयः सङ्घोत्कृष्टदात्री शिवा तेन प्रकीर्त्तिता ।
शिवराशि मूर्त्तिमती शिवा तेन प्रकीर्त्तिता ॥
शिवोहि मोक्षवचनश्चाकारो दातृवाचकः ।
स्वयं निर्माणदात्री या सा शिवा परिकीर्त्तिता ॥"
(ब्रह्मवैवर्त्त पु० श्रीकृष्णजन्मख० २७ अ०)

शि शब्द कल्याणवाची, इ शब्द उत्कृष्ट और समूहवाचक या शब्दका अर्थ दाता, जो उत्कृष्ट श्रेयः समूह प्रदान करते हैं, उसे शिवा कहते हैं ।

४ शमीवृक्ष, सफेद कीकर । ५ हरीतकी, हर्रे । ६ शृगाली, सियारिन । ७ आमलकी, आँवला । ८ वुद्ध-शक्तिविशेष । ये २३वें जिनकी माता हैं । ९ हरिद्रा, हल्दी । १० दूर्वा, नीली दूव । ११ गोरोचना, गोरोचन । १२ वहुपुत्री, मेथी । १३ श्यामा नामकी लता । १४ भूम्यामलकी, भुइं आँवला । १५ अनंतमूल । १६ धौ, धव ।

शिवाकु (सं० पु०) एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम । (पा ४।१।६६)

शिवाक्ष (सं० क्ली) शिवस्य अक्षि कारकत्वेनास्त्यस्येति अच् । रुद्राक्ष ।

शिवाख्या (सं० स्त्री०) शिवा इति आख्या यस्याः । १ वल्लीदूब । २ शिवा देखो ।

शिवागम (सं० पु०) तन्त्रशास्त्र, शिवप्रोक्त तन्त्र ।

शिवाघृत (सं० क्ली०) वैद्यकमें एक प्रकार तैयार किया हुआ घृत । इसके प्रस्तुत करनेके लिये गीदड़का मांस, वकरीका दूध, मुलेठी, मजीठ, कुड़ा, लाल चंदन, पद्मकाठ, हर्रे, वहेड़ा, आँवला, विडंग, देवदार, दंतीमूल, श्यामालता, काकोली, हल्दी, दारुहल्दी, अनन्तमूल, इलायची आदि पदार्थोंको घीमें डाल कर घृतपाककी विधिसे पकाते हैं । यह घृत पागलपनके लिये वहुत उपकारी माना जाता है । इसके अतिरिक्त वात, अपस्मार, मेह आदिमें भी इसका व्यवहार होता है ।

शिवाङ्क (सं० पु०) वकवृक्ष, अगस्तका पेड़ ।

शिवाची (सं० स्त्री०) वंशपत्री ।

शिवाजी—भोंसलेवंशीय सुविख्यात महाराष्ट्र-दलपति और दाक्षिणात्यमें स्वाधीन महाराष्ट्र राज्यके प्रतिष्ठाता । ये फलतानके नायक निम्वलकर शाहजी भोंसलेके लड़के थे । जिस वंशमें शिवाजीने जन्म ग्रहण किया, वह उदयपुरके सुप्रसिद्ध राणावंशके साथ संसृष्ट है । राजोपाख्यानमें इस भोंसलेवंशकी उत्पत्ति कहानी इस प्रकार देखी जाती है,—राजपूतानेके अन्तर्गत उदयपुर राज्यके वीरश्रेष्ठ राणा भीमसिंहके भागसिंह नामक एक पुत्र था । भागसिंहकी माता नीचवंशकी थीं । इस कारण राणावंशके लोग जारज कह कर उनकी उपेक्षा करते थे ।

कुटुंब, भ्राता और शिशोदीय राजपूतकुल द्वारा इस प्रकार तिरस्कृत हो कर भागसिंह मातृभूमि और पितृगृहका परित्याग कर खान्देश राज्यमें चले गये तथा वहांके जमींदार राजा अली मोहनके अधीन काम करने लगे । पीछे उन्होंने अपने उपार्जित धनसे दक्षिण-भारतमें पूना-राजधानीके पास कुछ जमीन खरीदी और स्वयं जमींदारकी तौर पर रहने लगे ।

दूसरे ग्रन्थमें लिखा है, कि शिवाजीके आदिपुरुष शिवराय एक प्रकृत योद्धा थे । चितोरदुर्गमें उनका जन्म हुआ था । शिशोदिया राजपूत कुलकी प्रतिभा उन्हींसे चमक उठी थी । उनके तीन पुत्रोंमेंसे दो पठानोंके विरुद्ध युद्ध करके मारे गये तथा छोटे भीमसिंहने वड़े कौशलसे समरक्षेत्रसे भाग कर भोंसले दुर्गमें आश्रय लिया था । इसी सूत्रसे उनके वंशधरगण भोंसले कहलाये ।

भीमसिंहके पुत्र विजयभानु अमितवलशाली थे । वे अपने समाजमें योद्धा समझ जाते थे । विजयभानुके पुत्र खेलकर्णके जीवित कालमें मुसलमानोंने वार वार चित्तोर दुर्ग पर आक्रमण कर राजपूतशक्तिको खर्व कर डाला । खेलकर्ण दुर्द्धर्ष मुसलमानोंका मुकावला कर न सके और दलवलके साथ देवगिरिके निकटवर्त्ती वेरुल ग्राममें जा कर रहने लगे । उनके पुत्र जयकर्ण और जयकर्णके पुत्र महाकर्ण थे । महाकर्णके पुत्र राजा शिव भीमा नदीके जलमें डूब मरे । उनके पुत्र वावाजी या शम्भाजी १५३१ ई०में उत्पन्न हुए । इस समय इनकी भूसम्पत्ति केवल थोड़े ही ग्रामोंमें सीमावद्ध थी ।

शम्भाजीके मल्लोजी (मालोजी) और विठोजी नामक

दो पुत्र थे। वे दोनों ही बुद्धिमान्, उद्योगी, कर्मठ और उन्नतचेता थे। आपसका भातृप्रेम इतना घनिष्ठ था, कि एक दूसरेको सलाह लिये विना कोई काम नहीं करते थे। दोनों भाई अपनी अवस्थाको सुधारनेके लिये सिंखेड़ (सिन्दखेड़)-निवासी लाखोजी नामक एक महाराष्ट्र सरदारके यहां नौकरी करने लगे। उक्त यादवराय बहादुर निजामशाहके एक विश्वस्त और प्रधान कर्मचारी तथा बारहहजारी मनसवदार थे। लाखोजीकी कृपासे मालोजी गृहकर्मचारी पद पर और विठोजी अश्वारोही सेनादलमें नियुक्त हुए।

यहां रहते समय मालोजीके दो पुत्रोंने जन्मग्रहण किया। शाहशरिया नामक एक फकीरके अनुग्रहसे दोनों पुत्र उत्पन्न हुए थे। इस कारण मालोजीने उनका नाम शाहजी और शरिफजी रखा। यादवराव पहलेसे ही प्रभुभक्त और कर्त्तव्यनिष्ठ मालोजीके प्रति प्रसन्न थे। १५९९ ई०की फाल्गुन पूर्णिमाके समय एक दिन मालोजी अपने बड़े लड़के शाहजीको ले कर लाखोजीके सामने खड़े हुए। शाहजीकी कमनीय मूर्त्ति देख कर लाखोजी बड़े प्रसन्न हुए और इन्होंने अपनी कन्याका विवाह उसके साथ कर देनेका वचन दिया। पीछे उन्होंने अपनी स्त्रीके परामर्शानुसार कुछ दिनोंके लिये वह विवाह वन्द रखा, किंतु आखिर नवावकी मध्यस्थतामें अपनी कन्या जीजीबाईके साथ शाहजीका विवाह कर दिया।

इस समय मालोजी अपने अध्यवसायसे एक हजार सेना रखनेमें समर्थ हुए थे। नवावने उनकी वीरता देख कर उन्हें पांचहजारी मनसवदार बनाया और उन्हें पूना और सूप परगने जागीर स्वरूप मिले। शिवनेर और चाकन तथा उसके अधीनस्थ प्रदेशके राजस्वसंग्रहका भार भी उन पर सौंपा गया। १६१९ ई०में मालोजीकी मृत्यु हुई। मालोजी देखो।

पिताकी मृत्युके वाद शाहजीकी प्रतिभा बढ़ने लगी। इस समय निजामशाही वंशके दशवें राजा बहादुरशाहको मृत्यु हो जानेसे राज्यमें विश्रृङ्खला उपस्थित हुई। शाहजी अपने पूर्व प्रभुकी विपदवार्त्ता और मुगल कर्मचारियोंका दुर्व्यवहार सुन कर फौरन अहमदनगरको चल दिये और वेगमसाहवा द्वारा मन्त्रिपद पर अधिष्ठित हुए। इस पर उनके श्वशुर लाखोजीका ईर्षानल प्रज्वलित हो उठा। इसी सूत्रसे दोनोंमें मुठभेड़ हो गई। शाहजी युद्धमें वृथा वलक्षय होना अच्छा न समझ कर वीजापुरराजद्वारमें कर्मप्रार्थी हुए। नवाव इब्राहिम आदिलशाहने उनकी अच्छी खातिर की।

शाहजी जिस समय वीजापुर पहुंचे उस समय वीजापुर राज्यके साथ कर्णाटक प्रान्तमें युद्ध छिड़ा हुआ था। राजमंत्री मुरारी जगदेवने शाहजीको उसी समय द्वितीय सेनापति और दशहजारी मनसवदार वना कर कर्णाटकप्रदेशमें भेज दिया। युद्धमें उनकी जीत हुई। इस पुरस्कारमें वीजापुरकी ओरसे उन्हें विजयलब्ध प्रदेशका कुछ अंश जागीर स्वरूप मिला।

शाहजी जब वीजापुर आये, तब उनके श्वशुर यादवरावने उनका पीछा करते हुए अपनी गर्भिणी कन्याको शिवनेर-दुर्गमें कैद कर रखा। कारागारमें ही जीजीवाईने १६२७ ई०को वैशाखी-शुक्ल-द्वितीयाके वृहस्पतिवारको महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीको प्रसव किया। दुर्गाधिष्ठात्री शिवाई देवीके नामानुसार जातवालकका शिवाजी नाम रखा गया। इधर शाहजी अपने श्वशुरसे स्त्री लौटा देनेकी प्रार्थना करने पर भी जब व्यर्थ मनोरथ हुए, तब उन्होंने वङ्कोजीकी माता तुकावाईसे दूसरा विवाह कर लिया।

इसके वाद निजामशाही राज्यमें शांति स्थापित होने पर शाहजीने वीजापुर-दरवारकी मध्यस्थतामें अपनी जागीर और स्त्रीपुत्रप्राप्तिके लिये आवेदन किया। इस वार कर्मचारियोंने विना किसी आपत्तिके उन्हें जागीर आदि लौटा दी। शाहजी देखो।

पिताके यत्नसे शिवाजीका शिक्षाभार दादाजी कोण्डदेव नामक एक उपयुक्त ब्राह्मणके हाथ सौंपा गया। उनकी चेष्टासे शिवाजी वचपनमें ही अद्वितीय अश्वारोही, स्थिरलक्षनिपुण, अस्त्रपरिचालक और युद्धविद्यामें पारदर्शी हो उठे। उन्हींके उपदेशवलसे शिवाजीका शैशवकालमें ही भारतकी शोचनीय अवस्थाकी ओर ध्यान दौड़ा और उसीसे उनके हृदयमें भारतमें हिन्दू-साम्राज्य-स्थापनकी आशा वलवती हुई। वचपनसे ही उनके हृदयमें मुसलमान-विद्वेष प्रवल हो उठा। दश वर्षका लड़का शिवाजी

बीजापुर-राजदरवारमें पहुंच कर भी वह विद्वेष दिखाने-से वाज नहीं आया। शिवाजीको पासमें रखना विपज्जनक समझ कर शाहजीने उनका विवाह कर पूना भेज दिया।

पूना लौटनेके वाद अपनी आंखोंसे बीजापुरराजकी समृद्धि और गौरव गरिमाव्यञ्जक अवस्था देख शिवाजीके हृदयमें स्वजाति और स्वदेशकी परिणामचिन्ता जग उठी। इस समय शिवाजी जात्यभिमान और धनाभिमान पर लात मार कर स्वदेश-प्रेममें विह्वल हो उठे। वालक शिवाजीके प्रेमपाशमें आवद्ध हो सभी श्रेणियोंके लोग उनके साथ प्रीतभावमें मिल गये, यहां तक, कि शिवाजीका इशारा पाते ही चाहे कैसा ही कार्य्य क्यों न हो, वे लोग करनेसे वाज नहीं आते थे।

धीरे धीरे युद्धविशारद मावलजाति प्रीतिनेत्रसे इन्हें देख अपना अपना विद्वेष भूल गई और सवोंने मिल कर इन्हें अपना नेता वनाया। इससे शिवाजीका वल धीरे धीरे बढ़ने लगा।

१६४६ ई०में शिवाजीने १६वें वर्षमें कदम बढ़ाया। इस समय बीजापुरके राजा कर्णाटयुद्धमें लगे हुए थे। सुयोग देख कर शिवाजीने दुर्ग-कर्मचारियोंको वशीभूत कर रात्रिकालमें तोरणादुर्ग पर धावा बोल दिया। विना खून खराबीके यहां भावी महाराष्ट्र-साम्राज्यकी नींव डाली गई। इस समय उनके वाल्य-सहचर येशाजी-कङ्क, तानाजी मालुसरे, वाजी फसलकर आदि वीरगण आजीवन विश्वस्त भावसे उनके जीवनयज्ञके प्रधान अध्वर्य्यु हुए थे।

तोरणादुर्गको अधिकारमें ला कर शिवाजीने उसका जीर्णसंस्कार करना चाहा। दुर्गकी चहारदीवारीसे मजवूत करते समय इन्होंने उसका एक स्थान खोदा। उस गड़हेसे उन्हें स्वर्णमुद्रा अधिक संख्यामें मिली। उस धनसे शिवाजीने मुरावांद पर्वतके ऊपर एक दुर्ग वनवाया और उसे नाना जातीय युद्धोपयोगी द्रव्यसे भर दिया। इस दुर्गका नाम रायगढ़ रखा गया। इसी दुर्गमें शिवाजी राज्याभिषेक-काल तक ठहरे थे। पुत्रके इस असमसाहसिक कार्य्य पर विचलित और भीत हो शाहजीने इन्हें ऐसे दुष्कर्मसे हाथ खींच लेनेका उपदेश दिया।

दादाजी कोण्डदेव इनकी निर्भीकता देख कर बहुत ही खुश रहा करते थे। उन्होंने महाराष्ट्र साम्राज्यकी नींव बहुत मजवूत कर दी थी। १६४७ ई०को सत्तर वर्षकी उमरमें दादाजी इस लोकसे चल वसे।

दादाजीकी मृत्युके वादसे शिवाजीके ऊपर पैतृक सम्पत्तिका शासन-भार सौंपा गया। इसी समयसे इन्होंने सम्पूर्ण स्वाधीनभावमें कार्य्य करनेका सुयोग पाया। पराधीन देशमें रह कर किस प्रकार कार्य्य करने-से अन्तमें सफलता लाभ हो सकती है, शिवाजी उसी-की चिन्ता करने लगे। इस समय पुत्र शिवाजीको शाहजीने एक पत्र लिखा, कि वह सञ्चित धन शीघ्र भेज दे। किन्तु यह संचित धन हाथसे निकाल देना उचित न समझ कर शिवाजीने गुरुदेवकी मृत्युकथा, दरिद्र देशका राजस्व और शासन-व्यवस्थाके कारण अधिक व्यय आदि कारणोंका उल्लेख करते हुए वर्त्तमान समयमें अर्थप्रेरण सम्भावित नहीं है, ऐसा लिख कर पिताके पत्रका जवाब दिया।

इसके वाद देशमें देशहितैषणा प्रचार करनेके लिये शिवाजी वद्धपरिकर हुए। वे जानते थे, कि विलास-प्राण धनवान् उनकी सहायतामें हाथ न उठायेंगे, इस-लिये उनसे सहायता पानेकी आशा छोड़ कर उन्होंने निम्न और मध्यवित्त श्रेणीमें स्वाधीनताका माहात्म्य प्रचार किया और उन्हें अपने अभीष्टपथ पर खींच लाया। शिवाजीकी देशहितकी ऐकान्तिक इच्छा, शत्रुदलनमें असामान्य अध्यवसाय और अपूर्व वीररसपूर्ण वक्तृता सुन कर चाकन दुर्गके हवलदार फेरङ्गजी नरसालाके हृदयमें देशाभिमान और स्वधर्माचरण प्रवृत्ति अत्यन्त वलवती हो उठी। शिवाजीके आनन्दका पारावार न रहा, जव उन्होंने देखा, कि फेरङ्गजी उनके पक्षमें हैं। पीछे उन्होंने चाकन दुर्गको युद्धोपयोगी द्रव्योंसे परिपूर्ण कर फेरङ्गजीके हाथ उसका शासन भार सौंपा। वारामती, इंदुपुर आदि प्रदेशोंके कर्मचारिगण विना आपत्तिके शिवाजीके पास राजस्व भेजने लगे।

शिवाजीने माणकोजी दहातोण्डेको सेनापति और श्यामराव नीलकण्ठको पेशवाके पद पर नियुक्त किए

फिर जिन्हों ने दुर्गादि विजय कालमें वीरता दिखलाई थी, वे सरदारकी उपाधिसे भूषित किये गये।

शिवाजीके गुण पर मुग्ध वीर तानाजीने एक दिन उनके पास आ कर आत्मसमर्पण किया। शिवाजी उनके प्रस्तावसे अतीव दुर्गम कोवना दुर्ग पर आक्रमण करनेके लिये प्रोत्साहित हुए। शिवाजीने यह अभिप्राय प्रकट किया, कि यदि तानाजीकी चेष्टासे वह दुर्ग अधिकृत हुआ, तो वह कोवनाके शासनकर्त्ता बनाये जायंगे। साहसी तानाजीने चुपके कोवना दुर्गका पूरा हाल मालूम कर लिया और एक दिन रातको प्रबल पराक्रान्त मावली सेना ले कर दुर्ग पर अचानक धावा बोल दिया। सुषुप्त मुसलमानोंने शत्रु से आक्रान्त हो और पहले ही अस्त्रागार आक्रान्त होते देख तुरत पराभव स्वीकार कर लिया। शिवाजीने तानाजीका असाधारण बुद्धिचातुर्य और वीरता देख कोवना दुर्गका प्राचीन नाम बदल कर तानाजीके पराक्रमप्रतिपादक सिंहगढ़ नामसे उसे प्रसिद्ध किया तथा अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तानाजीको वहांका शासनकर्त्ता बनाया। दुर्गको सभी प्रकार सुरक्षित कर शिवाजी माताके निकट पूना गये। वहां पहुंच कर शिवाजीने सुना, कि पुरन्दरका दुर्गाध्यक्ष नीलकण्ठ राव परलोकवासी हो गया। दुर्गाधिकारके लिये झगड़ते हुए नीलकण्ठ रावके दो पुत्र शिवाजीके पास आये और विवाद मिटानेके लिये उन्हें मध्यस्थ बनाया। शिवाजीने दोनोंमें मेल करा दिया और उन्हें जागीर तथा उच्च पद दे कर दुर्गको अपने कब्जेमें कर लिया। सच यह है, यदि वे दुर्ग पर हस्तक्षेप न करते, तो कोई प्रबल व्यक्ति अवश्य ही उस पर अधिकार कर बैठता। पुरन्दर दुर्गको हस्तगत कर उसका शासनभार उन्होंने स्वयं अपने हाथ लिया। इसके बाद मोरोपन्त पिङ्गलेके हाथ उसका शासनभार सौंपा गया।

दादाजी कोण्डदेवकी मृत्युके थोड़े ही महीनोंके अंदर विना खून खराबीके शिवाजी चाकन और निराके मध्यवर्ती भूभागके अधिपति हुए।

बीजापुरके राजाको पहले शिवाजीके क्रियाकलापका अर्थ समझमें न आया जिससे शिवाजीकी उद्देश्यसिद्धिमें बड़ी सुविधा हुई थी। यहां तक, कि अन्तमें बीजापुरराजको अपनी अनवधानताके कारण पश्चात्ताप करना पड़ा था।

१६४८ ई०में बीजापुरके साथ शिवाजीको एक भीषण संग्राममें प्रवृत्त होना पड़ा। इस समय उनकी अवस्था सिर्फ २१ वर्षकी थी। शिवाजी युद्धका साजोसामान इकट्ठा कर अचानक इस युद्धमें प्रवृत्त हुए थे। उनकी समर-निपुणतासे प्राचीन समर-विद्या-विशारदोंको भी मुग्ध होना पड़ा था। इस समयसे शिवाजीने शत्रुओंके अनेक दुर्ग दखल किये तथा स्वयं कितने दुर्ग भी बनवाये। बहुतसे ग्राम और नगर इस समय शिवाजीके हाथ आये। नेताजी पालकर, फिरङ्गोजी नरशाले, तानाजी मालसुरे, मोरोपन्त पिङ्गले आदि महाराष्ट्रीय वीरगण इन सब कामोंमें शिवाजीके सहायक थे। छद्मवेश, गुप्तभाव, अतर्कितरूपसे आक्रमण आदि उपायोंमें ये सिद्धहस्त थे। इन्हीं सब उपायोंसे कांगेरी, तिकोना, लोहगढ़, राजमारी, कुवारो, मोरोप, घनगढ़ और कोलना आदि दुर्ग इनके हाथ लगे थे।

शिवाजीके इन्द्रियसंयम और चरित्र गौरवका एक उदाहरण यहां दिया जाता है। किसी समय आवाजी सोनदेव नामक एक ब्राह्मणने बम्बईके निकटवर्त्ती कल्याण नगर पर आक्रमण किया। मौलाना अह्मद उस नगरके शासनकर्त्ता थे। वे पुत्रवधूके साथ कैद कर लिये गये। सोनदेव शिवाजीको प्रसन्न करनेके लिये विजयलब्ध द्रव्यादिके साथ अह्मदकी गर्भिणी पुत्रवधूको शिवाजीके पास ले गये। उस समय शिवाजी अपने कर्मचारी और मित्रोंके साथ बैठे हुए थे। सोनदेवके मनका भाव समझ कर उन्होंने जोर शब्दोंमें कहा, 'यदि हम लोगोंकी जननी इस रमणीकी तरह सुन्दरी होती, तो हम लोग भी सुन्दर होते।' शिवाजीने इस वाक्यसे सबोंको समझा दिया, कि परस्त्री देखनेसे ही उसे माताके समान समझना होगा। इतना कह कर उन्होंने बहुमूल्य वसनभूषण दे कर उस रमणीको सुरक्षित भावमें बीजापुर उनके अभिभावकोंके पास भेज दिया। इस उपलक्षमें शिवाजीने अपने स्वजनों और कर्मचारियोंको परस्त्रीलोभके विरुद्ध जो सब उपदेश दिये थे, वे सभी मूल्यवान् थे।

इसके बाद कल्याण और कोङ्कण प्रदेशके दुर्ग

शिवाजीके हाथ आये तथा अरक्षित गिरिपथमें दुर्गादि बनाये गये। इसके सिवा शिवाजीने रायरीके निकटवर्त्ती लिङ्गाना और घोषालाके निकटवर्त्ती विखाड़ी नामक स्थानमें दो दुर्ग बनवाये।

शिवाजीने जिस चतुराईसे अपने कैदी पिताका उद्धार किया, वह भी सराहनीय है। शिवाजीकी विजयवार्त्ता चारों ओर फैल जाने पर बीजापुरके शासनकर्त्ता बड़े विचलित हो उठे। उन्होंने शिवाजीके पिता शाहजीको क्रोधपूर्ण पत्र लिख कर इन सब कामोंसे उन्हें रोकनेको कहा। इस पर जब कोई फल न देखा, तब बीजापुरपतिने शाहजीके किसी मित्रको प्रलुब्ध करके उसीके द्वारा उन्हें कैद कर लिया। उस मित्रने एक दिन रातको भोजनके लिये शाहजीको निमन्त्रण किया। शाहजीके पहुंचते ही बीजापुरराजपुरुषोंने उन्हें गिरफ्तार किया। कारागारमें ठूस कर शाहजीको कहा गया, कि यदि शाहजी बीजापुरके अधीन स्थानोंका अधिकार बिना आपत्तिके लौटा दें, तो उनकी प्राणरक्षा हो सकती है, नहीं तो वे प्राणसे हाथ धो बैठेंगे। शिवाजी यह रोमाञ्चकारी संवाद पा कर बड़े उद्विग्न हुए। उनकी पतिप्राणा सहधर्मिणी सैंवाईने इस समय शिवाजीको जो उपदेश दिया, वह बड़ा ही तत्त्वपूर्ण था और उसमें सैंवाईकी बुद्धिमत्ता स्पष्ट झलकती थी। उन्होंने कहा, कि परमाराध्य स्नेहमय श्वशुर महाशयका उद्धार करना सबसे पहला कर्त्तव्य है। किन्तु व्यक्तिगत स्वार्थके कारण जिससे देशके उद्धारमें कोई बाधा न पहुंचे, उसका भी विचार करना होगा। शिवाजीने मन्त्रियोंसे सलाह करके दिल्लीश्वर शाहजहान्‌की शरण लेना ही इस समय उचित समझा। दिल्लीश्वरने शिवाजीको पांच हजार घोड़ोंका मनसबदार बना कर शाहजीकी मुक्तिके लिये बीजापुरपतिको पत्र लिखा। इस उपायसे शाहजीने छुटकारा पाया था।

बीजापुरके महम्मद शाहने पीछे जब देखा, कि शिवाजीकी क्षमता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है, तब उन्होंने शिवाजीको कैद करनेके लिये जावलीके चन्द्रराबके साथ परामर्श किया। बाजी श्यामराव भी इसमें शामिल थे। किन्तु शिवाजीने इन लोगोंकी अभिसन्धि जान कर चन्द्रराव और श्यामरावको युद्धमें हराया। इस संवादसे महम्मद शाह और भी निस्तेज हो गये।

हबसी राज्य आक्रमणके बाद शिवाजी कुछ दिनोंके लिये हरिहरेश्वर नामक स्थानमें ठहरे। यहां एक सम्भ्रान्त वीरपुरुषने उन्हें एक उत्कृष्ट तलवार उपहारमें दी थी। इसके बदलेमें शिवाजीने उक्त वीरपुरुषको प्रायः आठ सौ (तीन सौ होण) रुपयेका जवाहरात और परिच्छद दिये थे। शिवाजीने इस तलवारका 'भवानी' नाम रखा था। वह तलवार आजीवन शिवाजीके साथ थी। लोगोंका विश्वास था, कि शिवाजीके भवानी तलवारके साथ रणक्षेत्रमें पहुंचते ही शत्रुकी जय-आशा पर पानी फिर जाता था।

१६५५ ई०में शिवाजीने जावली पर अचानक धावा बोल दिया। चन्द्रराव जावलीके अधिकारी थे। रघुनाथ पन्त और शम्भाजी बातकी बातमें वहां पहुंच गये। चन्द्रराव और उनके भाई सूर्यराव युद्धक्षेत्रमें खेत रहे। इसके बाद जो एक युद्ध हुआ उसके फलसे जावली शिवाजीके अधिकारभुक्त हुआ था।

इस समय शृङ्गारपुरके राजा सुरवेरावने शिवाजीकी अधीनता स्वीकार की तथा वे शिवाजीके साथ मिल कर उनके कार्योद्धारके विश्वस्त सहायक हुए। सुरवेरावके साथ शिवाजीकी मित्रता दिनों दिन गाढ़ी होती गई। शिवाजीने इस मित्रताको और भी गाढ़ी करनेके लिये सुरवेरावकी कन्याको अपनी पुत्रवधूके रूपमें ग्रहण किया।

शिवाजीके सेनानायकोंमें मोरोपन्तका नाम विशेष उल्लेखयोग्य है। मोरोपन्तने बहुतसे नगर जीते और कितने दुर्ग बनवाये थे। दुर्गोंमेंसे प्रतापगढ़ दुर्ग बनवानेमें मोरोपन्तने जो असाधारण क्षमताका परिचय दिया था, आज भी उसका समुज्ज्वल निदर्शन देखनेमें आता है।

दिल्लीके सम्राट् औरङ्गजेब बीजापुरके शासनकर्त्ताके साथ लड़नेके लिये सजधज कर बीजापुर आये और शिवाजीको अपने पक्षमें लानेकी कोशिश करने लगे। किन्तु चतुर शिवाजीने देखा, कि बीजापुर औरङ्गजेबके अधीन होनेसे उनके हकमें अच्छा नहीं होगा। यह सोच कर वे उन्हें मदद पहुंचानेमें राजी न हुए। इससे

औरङ्गजेवके साथ शिवाजीकी दुश्मनी वंध गई। इसके वाद शिवाजीने मुगलसम्राट्के अधीन ग्रामों और नगरोंका लूटना आरंभ कर दिया। किन्तु इधर वीजापुरके अधिपति औरङ्गजेवसे मेल करनेके लिये तैयार हैं, सुन कर शिवाजी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये और अकेला युद्ध करना अच्छा न समझ कर उन्होंने औरङ्गजेवसे मेल करनेकी इच्छा प्रकट की। औरङ्गजेवने शिवाजीको सन्धिमें आवद्ध किया। शिवाजीने भी औरङ्गजेवसे मित्रता कर ली। किन्तु वीजापुरके शासनकर्त्ताके साथ शिवाजीकी शत्रुता दिनोंदिन बढ़ती ही गई। इस समय वीजापुरके अधिपति महम्मद आदिलका देहान्त हुआ। वेगम साहवाने अफजल खाँको प्रधान सेनापति वनाया। अफजल खाँ वड़ा ही दाम्भिक और अभिमानी था। ऊंचा ओहदा पा कर उसके अत्याचारकी स्पृहा दिनों पर वढ़ने लगी। शिवाजी उसके दुर्व्यवहारकी वात सुन कर उसका काम तमाम करनेका उपाय ढूंढने लगे। इस समय कृष्णाजी पन्त इस उद्देशके प्रधान सहायक रूपमें खड़े हुए।

कृष्णाजी पन्त और गोपीनाथ पन्तने अफजल खाँके पास आ कर कहा, "शिवाजी आपके अधीन होनेके लिये तैयार हैं, इसलिये एक वार आपको प्रतापगढ़ जाना पड़ेगा। शिवाजीने आपको निमन्त्रण किया है, निमन्त्रणकी रक्षा करनी आपका मुनासिव है।" तदनुसार अफजल खाँ सुशोभित निमन्त्रणालयमें उपस्थित हुआ। शिवाजीने निमन्त्रणके सभी सामान अर्थात् सैन्यादि पहलेसे ही संग्रह कर रखे थे। अफजल खाँके दिलमें भी काली थी। वह भी सेनाके साथ वहां पहुंचा था। किंतु कृष्णाजीकी सलाहसे वह अपनी सेनाको वहुत दूर रख आया था। अफजल खाँ शिवाजीको आलिङ्गन करने आगे वढ़ा और गुप्त अस्त्र द्वारा उन्हें यमपुर भेजना चाहा। चतुर शिवाजीने क्षण भरमें हस्तस्थित व्याघ्रनखसे उसका पेट फाड़ डाला। इस प्रकार अफजल खाँ शिवाजी द्वारा यमपुरका मेहमान वना। इसके वाद ही मुसलमान सेनाके साथ शिवाजीकी गहरी मुठभेड़ हुई। युद्धमें शिवाजीकी जीत हुई। इस युद्धमें शिवाजीको ६५ हाथी, ४००० घोड़े, १२०० ऊंट, २००० वंडल कपड़ा और ७ लाख रुपये सोने चांदीके द्रव्य हाथ लगे थे। इसके सिवा उन्होंने वहुतसी वंदूक, कमान और तलवार आदि भी पाई थी। इसके वाद शिवाजीने स्वयं खड़े हो कर प्रतापगढ़में अफजल खाँकी लाशको दफनाया। आज भी वह मकवरा मौजूद है।

कहते हैं, कि शिवाजीने कोङ्कण प्रदेशके धीवरोंको नाविकसैन्यमें भर्त्ती किया था तथा वहुत-से अर्णवयान वना कर देशके नौवलकी वृद्धि की थी।

शिवाजीके शरीरमें कभी कभी भगवतीका आविर्भाव हुआ करता था। वे शिवाजीको अनेक प्रकारके उपदेश देती थीं। शिवाजी भगवतीके उसी उपदेशके अनुसार काम करते थे। किसी समय शिवाजी पारमार्थिक गुरुके लिये व्याकुल हुए। तव भगवतीने उन्हें सलाह दी, कि रामदास स्वामी उनके उपयुक्त गुरु होंगे। शिवाजीने इस समय रामदास स्वामीको गुरुके पद पर वरण किया। रामदास परिव्राजक थे, अतएव वहुत खोज करनेके वाद शिवाजीने उन्हें पाया था। रामदास स्वामीके परामर्शसे शिवाजी प्रायः सभी कार्य्य किया करते थे।

रामदास स्वामी विविध विषयोंका शिवाजीको उपदेश देते थे। शिवाजीने किसी समय अपनी सारी सम्पत्ति रामदास स्वामीके चरणोंमें न्योछावर कर दी थी। उस समय स्वामीजीने कहा था, 'राज्य सम्पत्तिका इस प्रकार परित्याग कर देनेसे भला कहो तो सही, तुम अभी कौन काम करोगे?" शिवाजीने उत्तर दिया, "आपके सैकड़ों शिष्य हैं, मैं भी उन्हीं लोगोंकी तरह आपकी चरणसेवा करूंगा।" स्वामीजीने कहा, 'यदि ऐसा है, तो कौपीन पहन कर दरवाजे दरवाजे भिक्षा मांगनी होगी, क्या सकोगे?" गुरुकी आज्ञासे शिवाजीने वह भी किया था। स्वामीजीने शिवाजीकी गुरुभक्ति देख कर कहा, 'शिवाजी! तुम राजा हो, यह कार्य्य तुम्हारे लिये नहीं है। तुम स्वधर्म और स्वराज्यकी उन्नति करो।' गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य कर शिवाजी तदनुसार कार्य करनेमें लग गये।

१६६१ ई०में शाइस्ता खाँके साथ शिवाजीका घोर संग्राम छिड़ा। इस युद्धमें शिवाजीकी जीत हुई। इसी साल शिवाजीके एक पुत्र-रत्नने जन्म लिया। पुत्रका

नाम राजाराम रखा गया। फिर उसी साल शिवाजीके पिता शाहजी परलोकवासी हुए। शिवाजीने लाखसे अधिक रुपये श्राद्धमें खर्च किये थे। इधर शाहजी जैसे वीर थे, उधर वैसे ही धर्मभीरु थे। ये मुगल-बादशाहके अधीन ऊँचे ओहदे पर काम करते थे। अपने अंतिम जीवनमें उन्होंने बीजापुरके सेनापतिपद पर ३१ वर्ष काम किया था।

सूरत आक्रमण भी शिवाजीके जीवनकी एक प्रधान घटना है। १६६४ ई०में शिवाजीने सूरत पर आक्रमण किया। इस युद्धमें मुगल-सेना पूरी तरहसे हार खा कर सूरत छोड़ भाग गई। इस युद्धके फलसे शिवाजीने एक करोड़ बीस लाख रुपयेकी सम्पत्ति पाई थी। इसके बादसे मुसलमान लोग शिवाजीसे यमके समान डरते थे।

शाहजीकी मृत्युके बाद शिवाजी दुर्गमें रहते थे। इसी समय उन्होंने राजाकी उपाधि पाई तथा अपने नाम पर सिक्का चलाया।

शिवाजीने कई बार मुगलशक्तिको ध्वंस करनेकी चेष्टा की थी। जलपथसे युद्ध करके भी शिवाजी अपने समरशौर्य पर यथेष्ट वीरकीर्त्ति छोड़ गये हैं। बीजापुरके शासकने जब शिवाजीकी अनुपस्थित संधि तोड़ डाली, तब शिवाजी मेंगुरला नामक स्थानमें युद्ध करने डट गये। इस युद्धमें भी बीजापुरकी हार हुई थी। इस समय शिवाजी अकेले दशों ओर शत्रुओंकी गतिविधि देखा करते थे तथा निद्राका परित्याग कर शत्रुका दमन करनेमें तत्पर रहते थे। गोआके पुर्त्तगीजोंको भी शिवाजी अपने काबूमें लाये थे। गोआसे ६० कोस दक्षिण रणतरियोंके साथ यात्रा करके शिवाजीने अचानक बारसिलोर नगर पर चढ़ाई कर दी। यहां भी उन्हें काफी रकम हाथ लगी थी। काड़वानगरमें जो सब अंगरेज वणिक रहते थे, शिवाजीकी आज्ञासे उन्हें भी इस समय ११२०) रु० कर देना पड़ता था।

१६६५ ई०में शिवाजीने जब गोआ नगरको लूट उत्तर कनाड़ामें अपनी गोटी जमाई, तब मुगल सम्राट् औरङ्गजेब बड़े चिन्तित हुए। इसके पहले ही शिवाजीने सूरत पर आक्रमण किया था, मुगल सेनाको हराया था, मुसलमान तीर्थयात्रियोंको कैद किया था और सिंहासन पर आरोहण किया था। इससे सम्राट् औरङ्गजेब झलभुन गये थे। अभी उनकी बलवृद्धि और पूनामें शाईस्ता खाँकी अकर्मण्यताने उन्हें और भी क्षुब्ध कर डाला। उसी प्रतिहिंसाके वशवर्त्ती हो कर सम्राट्ने उसी साल अम्बाराधिपति सुविख्यात सेनापति जयसिंहको शिवाजीका दर्प चूर्ण करनेके लिये भेजा। जयसिंहके पुत्र रामसिंहको प्रतिभूस्वरूप रख कर और दोनोंको बहुत दूर दाक्षिणात्यमें भेज कर सम्राट्ने अपना मतलब गांठ लिया था।

समुद्रयात्रासे रायगढ़ लौटते ही शिवाजीको मालूम हुआ, कि विपुल मुगलवाहिनी ले कर दिलेर खाँ और जयसिंह धैरोकटोक पूना आ धमके हैं। बस फिर क्या था, उन्होंने फौरन नेताजी पालकर और कर्त्तोजी गुजर आदिके अधीनस्थ योद्धाओंको मुगलसेना पर पीछेसे धावा बोलने तथा उनकी रसद भेजनेके रास्तेको रोकनेका हुकुम दे दिया। ये सब महाराष्ट्र सेनापति लुक छिप कर गोली वर्षण करते हुए मुगलवाहिनी पर एकाएक टूट पड़े और उन्हें नाकोंदम लाये। मराठी सेनाको जरा भी अधीनता स्वीकार करते न देख जयसिंहने पुरन्दर दुर्गको घेर लिया। दिलेर खाँके ऊपर उसका कुल दारमदार सौंप कर वे स्वयं सिंहगढ़ पर आक्रमण करने अग्रसर हुए और रायगढ़की ओर अग्रगामी सेनादलको भेज उन्होंने मराठी सेनाको तंग करनेकी चेष्टा की।

महीनों बीत गये, फिर भी पुरन्दर दुर्ग हाथ न लगा देख दिलेर खां पुरन्दरके पास ही रुद्रमाल पर्वत पर कमान सजा कर गोली बरसाने लगा। पुरन्दर दुर्ग समुद्रकी तहसे १७०० फुट ऊंचा है। यह दुर्भेद्य और दुरारोह है। इसके प्रायः ४०० फुट नीचे और भी एक दुर्ग है। दिलेर खाँने ऊपरके दुर्गको उड़ानेकी लाख चेष्टा की पर उसका कुछ भी न बिगड़ा, केवल नीचेके दुर्गकी दीवार जहां तहां टूट फूट गई।

पुरन्दरके दुर्गरक्षक प्रभुकायस्थवंशीय वीरचूड़ामणि महाड़वासी मुरारि बाजी देशपाण्डे असीम साहस और निर्भीकतासे सिर्फ दो हजार मराठी सेना ले कर मुगल आक्रमणसे पुरन्दरकी तटभूमिकी रक्षा कर रहे थे। मुगलसेनाने जब निम्न दुर्गकी दीवारको तोड़ फोड़ कर बड़े उत्साहसे दुर्गको अधिकार कर लिया और वहांके ग्रामोंमें लूटपाट मचा दी, तब सुविधा पा कर मावलगण ऊपरसे गोलावर्षण करने लगे जिससे कितनी मुगल सेना यमपुर सिधारीं। वीरश्रेष्ठ बाजी प्रभु सात सौ मावलयोद्धा ले कर नीचे उतरे अब दोनों पक्षमें तलवारें बजने लगीं। कायस्थकुलरवि मध्याह्नकालीन सूर्यकी तरह रिपुओंका दमन कर अकाल ही राहुग्रस्त हुए। उनकी मृत्यु पर मावलगण जरा भी निरुत्साह न हुए और असीम साहससे मुगलसेनाको भुनने लगे। इस युद्धमें तीन सौ मावल योद्धा और हजारसे ऊपर मुगल योद्धा यमपुरके मेहमान बने थे। बाकी चार सौ मावल कुशलपूर्वक दुर्ग लौटे। दूसरे दिन दिलेर खाँने फिरसे अपनी सेनाको प्रोत्साहित कर दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। बाजी प्रभुकी मृत्युसे मावलोंकी वैरनिर्यातनस्पृहा, साहस और वीर्य्य और भी बढ़ गया था। नायकविहीन होने पर भी वे लोग नायकके नाम और स्मृतिको हृदयमें धारण कर अपने अपने उत्साहसे परिचालित हुए। प्रचण्ड आक्रमणसे मावलोंने मुगलोंका प्रयास व्यर्थ कर डाला। इस पराजयके बाद वर्षाका आरम्भ हुआ। वृष्टिपातसे दिलेर खाँकी बारूद भींग गई जिससे बन्दूकका चलाना बंद करना पड़ा। अब मुगलसेनाको दुर्गद्वार पर क्षण भर भी ठहरनेका साहस न हुआ। इसके बाद मावलोंने विशेष यत्नसे दुर्गके टूटे फूटे स्थानोंकी मरम्मत करा ली।

यथाकालमें मुरारि बाजि प्रभुका मृत्युसंवाद शिवाजीके पास पहुंचा। मावलोंके साहस और युद्धनिपुणताका हाल सुन कर वे उन्हें मदद पहुंचानेमें बड़े चिंतित हुए। इसी समय महाराज जयसिंहका भेजा हुआ दूत संधिका प्रस्ताव ले कर उनके पास आया। आपसमें संधि स्थापित हुई। शिवाजी स्वयं महाराज जयसिंहके शिविरमें गये और एक साथ भोजन कर दोनोंने आपसका मनोमालिन्य दूर किया। संधिकी शर्तोंके अनुसार शिवाजीने खानदेश, नासिक, त्र्यम्बक आदि अधिकृत मुगलराज्य छोड़ दिये। पुरन्दर, सिंहगढ़ आदि २७ दुर्ग सम्राट्को लौटा दिये गये। श्रीमान् शम्भाजी सम्राट्के अधीन पांच हजारी घुड़सवार सेनाके मनसबदार हुए। दोनोंमें यही बात रही, कि शिवाजी सभी युद्धोंमें मुगलोंकी सहायता करेंगे। उनकी अन्यान्य सम्पत्ति उन्हींके पास रही। बीजापुरका चौथ और सरदेशमुखी वे ही वसूल करेंगे। कुछ समय बाद ही शिवाजी द्वारा प्रेरित रघुनाथ बल्लाल दिल्लीसे सन्धिके सम्बन्धमें सम्राट्का स्वीकृतिपत्र ले कर आया। उसके साथ मुगल सेनापति जयसिंहने बीजापुरराज्य जीतनेके लिये यात्रा कर दी। सन्धिके अनुसार शिवाजी नेताजि पालकर आदि महाराष्ट्र सेनापति दो हजार घुड़सवार और आठ हजार पैदल सेना ले कर मुगल-वाहिनीसे मिले। इस युद्धमें बीजापुर-राजमन्त्री और सेनापति अबदुल करीम, खावास खाँ, रुस्तम जमान और शिवाजीके वैमात्रेय भाई बङ्कोजी भोंसले मुगल सेनासे परास्त हुए। बीजापुरके युद्धमें शिवाजीका व्यवहार, विचार, शौर्य्य और देख कर सम्राट् औरङ्गजेबने बड़े प्रसन्न हो कर उन्हें अनेक प्रकारके बहुमूल्य उपहार दिये तथा उनकी देहरक्षामें प्रतिज्ञाबद्ध हो उन्हें बड़े आह्लादसे दिल्ली बुलाया।

बीजापुर समरसे रायगढ़ लौटने पर उन्होंने दिल्ली जानेके पहले एक बार राज्यके प्रधान प्रधान नगर और दुर्गको देख आनेका विचार किया। तदनुसार इन्होंने अपने अधिकृत नगरों और दुर्गोंमें परिभ्रमण कर वहांके नेताओंको ओजस्विनी भाषामें देशकी अवस्था समझा बुझा दी। इसके बाद वे मोरोपन्त पेशवे, नीलपन्त मजुमदार और नेताजी पालकरके हाथ राज्यका शासनभार दे कर माता जिजिबाई और रामदास स्वामीकी अनुमति ले कर १६६५ ई०के पौषमासमें दिल्लीको चल दिये। उनके साथ नीराजी रावजी न्यायाधीश, बालाजी आवजी चिटनिस, त्र्यंबक द्रोणदेव द्राविड़, जीवनराव माणको, नरहर बल्लाल सबतीस, दत्ताजी गङ्गाजी, रघुजी मिश्र, प्रतापराव गुजर सरणोवत, दावजी गाड़वे, हीराजी फरजन्द आदि विश्वासी कर्मचारी तथा एक हजार चुनी

हुई मावला सेना, तीन हजार घुड़सवार और आठ वर्षके पुत्र शम्भूजी गये थे* ।

शिवाजी दिल्लीके लिये रवाने हुए । औरङ्गाबाद-में उन्होंने महाराज जयसिंहका आतिथ्य स्वीकार किया। इस समय जयसिंहने उनसे कहा था, 'सम्राट् तीक्ष्णबुद्धि, पर पापमति हैं, अतएव उनके पास बड़ी सावधानीसे आपको जाना उचित है। मेरा लड़का रामसिंह आपको अपना बड़ा सहोदर भाई मानेगा, हमेशा आपकी आज्ञाका प्रतिपालन करेगा।' शिवाजी धीरे धीरे मथुरा पहुंचे। सम्राट्ने उनके आनेकी खबर सुन कर राहमें पड़नेवाले ग्राम और नगरोंके प्रधान प्रधान कर्मचारियोंको हुकुम दिया था, कि जिससे शिवाजीको आनेमें किसी प्रकारका कष्ट न हो, वैसा करना। शिवाजीके दिल्ली पहुंचने पर राजा रामसिंह और कुछ राजकर्मचारियोंने उनका स्वागत किया। शिवाजी सम्राट्के इस असद्व्यवहारसे मन ही मन ताड़ गये। किन्तु उस समय उसका कोई सदुपाय होनेको आशा न देख उन्होंने मनका भाव मन-में ही छिपा रखा।

विश्राम करनेके बाद शिवाजी सम्राट्से मिलने चले। साथमें राजा रामसिंह थे। दरबारमें पहुंचने पर सम्राट्ने शिवाजीको मारवाड़पति यशोवन्त सिंहकी बगलमें बैठनेका आसन दिया। ऐसे सत्कारसे भी उनके मनमें घृणा और क्षोभका उदय हुआ। जो हो, दरबारसे आ कर शिवाजी रामसिंहके मकानमें गये¶।

सम्राट्के मामा शाइस्ता खाँने पूर्व शत्रुताका बदला लेनेके लिये दीवान जाफरान खाँको शिवाजीके विरुद्ध उभाड़ा। उसके परामर्शानुसार सम्राट्ने शिवाजीको अरक्षित अवस्थामें रखना अच्छा नहीं समझा। इस कारण उन्होंने नगरपाल पोलद खाँको शिवाजीकी गति-विधि देखने तथा जिससे वे भाग न सकें, उस ओर विशेष लक्ष्य रखनेका हुकुम दिया। पोलाद खाँने दूसरे दिन सवेरे पांच हजार सेनाका शिवाजीके शिविरमें रात दिन पहरा बैठा दिया। शिवाजीने सम्राट्का ऐसा आचरण देख कर गम्भीर भाव धारण कर लिया। उसी समय उन्होंने अस्वस्थ और जलवायुसे अनभ्यस्त मराठी सेनाको देश भेज देनेके लिये सम्राट्से प्रार्थना की। सम्राट्ने बड़े हर्षसे उनकी प्रार्थनाका स्वीकार कर लिया, किन्तु कोई भी मराठी सेना उन्हें इस शत्रुसंकुलदेशमें अकेला छोड़ जानेके लिये राजी न हुई। इस पर शिवा-जीने उन्हें बुला कर समझाया, 'मेरे साथ आप लोगोंको रहनेसे विपद् और भी बढ़ जायगी। दो चार होनेसे आसानीसे शत्रुकी आँखोंमें धूल डाल कर भाग सकते थे। ऐसी अवस्थामें बहुत-से लोगोंका एक साथ रहना उचित नहीं और सबोंका लुक छिप कर जाना भी असम्भव है। इसलिये आप लोग अपने अपने देशको चले जायं तथा निकट भविष्यमें एक लोमहर्षण युद्ध होनेकी सम्भावना है, इसके लिये सभी तैयार रहें।'

मराठी सेना और नायकोंको इस प्रकार समझा बुझा कर शिवाजीने देश भेज दिया और आप भागनेका उपाय ढूँढ़ने लगे। एक दिन शिवाजी, नीराजी पन्त, दत्ता-जी पन्त और त्र्यम्बक पन्त एकत्र बैठ कर इस कारा-मुक्ति पर विचार कर रहे थे; किन्तु कोई उपयुक्त विचार समझमें नहीं आता था। इस समय वे अपनी इष्टदेवी भवानीकी चरणोंकी चिन्ता करने लगे। ध्यानमें मालूम हुआ, देवी उनके कानोंमें मानो कुछ उपदेश दे रही हैं। देवीके आश्वास वचनसे आह्लादित हो शिवाजी-ने प्रति वृहस्पतिवारको गुरुपूजा आरंभ कर दी। रात-में संकीर्त्तन चलने लगा। दूसरे दिन शुक्रवारको वे बड़े बड़े बकसमें नाना प्रकारके खाद्य द्रव्य भर कर प्रधान प्रधान राजकर्मचारी, ब्राह्मण, संन्यासी और फकीरोंको बांटने लगे। पहले पहरूदार बकसको बिना देखे सुने नहीं छोड़ते थे; पीछे जब प्रति शुक्रवारको सुमिष्ट खाद्यपूर्ण ऐसे कितने बकस बांटे जाने लगे, तब उन लोगोंको जो कुछ संदेह था, वह जाता रहा। अब वे बिना जांचे ही बकसको छोड़ देने लगे। शिवाजीने जब देखा, कि अब बकसकी जांच नहीं होती, तब वे एक दिन अस्वस्थका बहाना करके खाट पर पड़

* डफके मतसे शिवाजी ५ सौ घुड़सवार और १ हजार पैदल सेना ले कर दिल्ली गये थे।

¶ मलहारराव चिट्निसके कथनानुसार शेषोक्त व्यक्तिकी जगह अन्नजीदत्त सचनीसका नाम मिलता है।

रहे। निर्दिष्ट व्यक्तिको छोड़ और किसीको भी उनके घरमें घुसनेका अधिकार न था। देखते देखते वृहस्पतिवार आ गया। इस दिन शिवाजीकी शारीरिक अवस्थाके कारण अधिक परिमाणमें नैवेद्य कबूला गया था। शुक्रवारके सवेरेसे यथारीति पहरुओं और समागत दरिद्रोंको भोज्यद्रव्य मिलने लगा। नगरके भीतरी और बाहरी योगमाया और कालिका आदि देवालयोंमें तथा निजाम उद्दीन औलिया ,आदि पीरस्थानोंमें यथेष्ट भोग भेजा गया। इसी सुअवसरमें शिवाजी और शम्भाजी एक एक सन्दूकमें घुस गये। दो बलशाली मावलयोद्धा मस्तक पर रख कर उन्हें नगरके बाहर धीरे धीरे ले चले। यहां एक निभृत स्थानमें उन्होंने सपुत्र शिवाजीको सन्दूकसे बाहर निकाला। अब वे यहां एक कुम्भकारके घरमें पूर्वप्रेरित कर्मचारीके साथ मिल कर मथुराकी ओर छद्मवेशमें जाने लगे।

इधर शिवाजीके भागनेके बाद हीराजी फरजन्द उनका पहनावा पहन कर पलंग पर सो गये। सारी रात बीत गई। दूसरे दिन तीसरे पहर तक हीराजी उसी तरह मुंह ढके सो रहे थे, एक लड़का उनके शरीर पर हाथ चला रहा था। किसीको कुछ संदेह न था।

तीसरा पहर बीतने पर हीराजी अपनी पोशाक पहन कर बाहर निकले। पहरुओंने बड़े आग्रहसे शिवाजीकी स्वस्थताका हाल पूछा। उत्तरमें हीराजीने कहा, 'उन्हें अभी गाढ़ी नींद आई है, मैं औषध लाने बाहर जाता हूं। इस बीचमें देखना घरमें कोई घुस कर अथवा चीत्कार कर राजाकी नींद न तोड़े।' इस प्रकार कह कर वे भी कारागारके बाहर चले आये और रामसिंहकी सभी घटना सुना कर अपने देशको चल दिये। वह रात तो इसी प्रकार निःसंदेह बीत गई।

दूसरे दिन आठ नौ बज गये। शिवाजीके कमरेसे कोई शब्द सुनाई न दिया। पहरुओंने संदिग्ध हो कर जब घरकी ओर दृष्टि डाली, तो भीतर किसीको भी नहीं देखा—घर बिलकुल खाली पड़ा है।

पोलाद खाँ शिवाजीके चम्पत हो जानेकी खबर पा कर बहुत डर गया और तुरत उसने जा कर सम्राट्को इत्तला दी। यह घटना उनके सामने स्वप्नवत् मालूम होने लगी। हाथमें आये शत्रुको चम्पत हुए देख सम्राट्का क्रोध दूना बढ़ गया। उन्होंने पोलाद खाँ और गुप्तचर विभागके अध्यक्ष तारवत् खाँको पदच्युत किया। रामसिंहका दरबार आना बन्द हुआ। शिवाजीके भागनेके बाद जो सब मरहठे पकड़े गये, वे बड़ी निर्दयतासे पीटे जाने लगे। सम्राट्की कोपवह्निमें पड़ कर वे लोग अच्छी तरह जलभुन गये।

जो हो, शिवाजी बेरोकटोक मथुरामें मोरोपन्त पेशवाके साले मथुराप्रवासी कृष्णाजी पन्तके घर पहुंचे। यहां उन्होंने सारी बातें खोल दीं। कृष्णाजीने शम्भाजीका रक्षाभार ग्रहण किया और प्रतिज्ञा की, कि वे बालकको रायगढ़में निरापद पहुंचा आयेंगे। इधर शिवाजी, निराजी पन्त, दत्ताजी पन्त और राघव मित्र शिरके बाल और दाढ़ीमूछ मुंड़वा कर गेरू वस्त्र और रुद्राक्ष धारण किये संन्यासीके वेशमें प्रयागधामको चल दिये। यहां त्रिवेणीमें स्नान कर वे पुण्यमयी वाराणसी पुरीमें आये। विश्वेश्वरादि देवमूर्त्तिके दर्शन और गङ्गास्नान कर वे विष्णुपादपद्ममें पिण्ड देनेके लिये गयाधामको चल दिये। यहांसे बङ्गदेशमें गङ्गासागरसङ्गमके दर्शन कर उन लोगोंने कटक नगरमें पदार्पण किया। अविरत पथ पर्यटन और यथासमय पान भोजन न मिलनेसे उनका शरीर बिलकुल अवसन्न हो गया। इस कारण यहां कुछ समय विश्राम कर वे पुरुषोत्तमधाममें आये और श्रीश्रीजगन्नाथ मूर्त्तिके दर्शन कर गोण्डवना होते हुए भागानगर (वर्त्तमान हैदराबाद) पार कर महाराष्ट्र राज्यमें पहुंचे।

महाराष्ट्रसे जाते समय शिवाजी एक दिन दो पहरमें एक दरिद्रके घर अतिथि हुए। गृहस्वामिनी वृद्धा थी। उन्होंने संन्यासीरूपी मराठोंका विधिपूर्वक सत्कार कर जाते समय शिवाजीको लक्ष्य कर कहा 'बाबा! मैं दरिद्र हूं, कुछ दिन पहले सेनाके उपद्रवसे मेरा सर्वस्व हरण हो गया है, अतएव ऐसी हालतमें मैं अतिथि-सेवा अच्छी तरह न कर सकी, अपराध क्षमा करेंगे।' शिवाजीने सेनाके उपद्रवकी बात सुन कर कहा 'किसकी सेना थी?' वृद्धाने उत्तर दिया, 'महाराजके नहीं रहने पर

महाराजका नियम पददलित करके तैलङ्गरावकी परिचालित मराठो-सेनाने हम लोगोंको बहुत सताया है।' यह सुन कर शिवाजीको बहुत दुःख हुआ। जाते समय उन्होंने वृद्धाका नाम धाम लिख लिया। वृद्धाके प्रति शिवाजीको इतनी दया आई, कि रायगढ़ पहुंचते ही उन्होंने वृद्धाके भरण पोषणके लिये बहुत रुपये भेज दिये।

नाना प्रकारकी कठिनाइयां झेलते हुए और भिन्न भिन्न स्थानका आचार-व्यवहार जानते हुए शिवाजी निराजी पन्त, दत्ताजी पन्त और राघवजी मराठाके साथ १५८८ शक (१६६६ ई०)-को अग्रहायण मास कृष्णपक्षकी दशमी तिथिमें रायगढ़के द्वार पर पहुंचे। उन्होंने आते ही माता जिजावाईके चरणोंमें प्रणाम किया। जिजावाई पहले संन्यासीके आचरण पर अवाक्-सी खड़ी रह गई। पीछे परिचय पा कर आनन्दसागरमें गोता खाने लगी।

रायगढ़ पहुंचते ही शिवाजीने अपने निर्विघ्न पहुंचनेका संवाद मथुरामें कृष्णाजी पन्तके पास भेज दिया। कृष्णाजी भी अपने दोनों भाइयों और स्त्रीके साथ बालक शम्भाजीको छिपाये हुए शिवाजीके पास पहुंचे। महाराज शिवाजीने इस कार्यके लिये कृष्णाजीको 'विश्वास राव' की उपाधि, लाख अशर्फियां और वार्षिक दश हजार रुपये आयकी सम्पत्ति दी। पीछे वे सबके सब उच्च राजपद पर नियुक्त हुए। इस समय शिवाजीने अपने दिल्लीके सहचरोंको भी सम्मान और पुरस्कारसे सम्मानित किया था।

शिवाजीने दिल्लीसे लौट कर देखा, कि राजकार्य सुचारुरूपसे ही चलता है। १० महीनेसे वे राज्यसे चले गये हैं, यह बात जैसे किसीके भी मनमें उदय नहीं हुई। एक भी मराठा देशका शत्रु बन कर शत्रुपक्षमें नहीं मिला था। राजदरबारमें कार्यावली जिसके ऊपर जिस तरह उन्होंने सौंप दी थी, वह उसी तरह करता आ रहा था। कोई हेर-फेर नहीं हुआ था। केवल दोष इतना ही था, कि मुगलोंने अनेक दुर्ग और देश जीत कर विश्रृङ्खला खड़ी कर दी थी। इसके सिवा बीजापुरराजके साथ मुगल-सेनाका लगातार युद्ध चल रहा था

इस काममें एक ओर मुगलसेनाका अत्याचार देखनेसे व्याकुल हो कर गोलकुण्डाके राजाने नेकनाम खाँको बीजापुर राजाकी सहायतामें सेना सहित भेजा है तथा दूसरी ओर मुगल सम्राट्की सहायता नहीं पानेसे मुगलसेना और सेनापति धीरे धीरे श्रद्धाहीन हो गये हैं, यह देख कर शिवाजी बड़े आह्लादित हुए।

इस शुभ अवसरमें शिवाजीने सेनापति और प्रधान कर्मचारियोंको बुला कर अपने अपने कर्त्तव्य पर तैयार हो जाने कहा। मोरोपन्त पेशवे, नीलोपन्त मजुमदार, अन्नाजी सबनीस, नेताजी पालकर, तानाजी मालसुरे, प्रतापराव गुजर आदि प्रसिद्ध महाराष्ट्र-नेताओंने युद्ध ठान देनेके लिये सङ्कल्प किया तथा यह विचार किया, कि किस उपायसे सभी दुर्ग हाथ आवें। शिवाजीके परामर्शानुसार रातको छिप कर प्रबल मुगल शत्रु पर आक्रमण करना तथा रास्ता घाट और रसद बंद कर देना ही अच्छा समझा गया।

शिवाजीके स्वराज्य आनेके पहले जब मोरोपन्तने देखा, कि महाराज जयसिंह दाक्षिणात्यसे लौट आये हैं, तब अच्छा मौका देख उन्होंने पूनाके उत्तरस्थ दुर्गोंको अधिकार कर लिया। इस सूत्रसे कल्याण प्रदेशका कुछ अंश भी उनके हाथमें आया था। उक्त नेताओंके हृदय इस घटनाके कारण पहलेसे ही उत्फुल्ल थे। अभी शिवाजीके मुखसे नाना उत्साहपूर्ण वक्तृता और उपदेश सुन कर वीरवर तानाजीने वीरगम्भीर वाक्यमें उत्तर दिया, कि मैंने सिंहगढ़ दुर्ग जीतनेका भार लिया। तानाजीकी बात पर और सभी प्रोत्साहित हो गये।

मिर्जा जयसिंह शिवाजीके हाथसे सिंहगढ़ विच्छिन्न कर उदयभानु नामक एक राजपूतसेनापतिके हाथ उसका शासनभार सौंप गया था। उसके अधीन बारह सौ राजपूत वीर प्राणकी बाजी रख कर दुर्भेद्य सिंहगढ़ दुर्गकी रक्षामें डटे हुए थे। तानाजी वीरप्राण राजपूत जातिके वीरत्व गौरवको तुच्छ समझ कर अपने छोटे भाई सूर्यजीके साथ सिंहगढ़की ओर चल दिये। उनके अधीन सिर्फ ५ सौ निर्वाचित मावलसेना गई थी। १६६७ ई०में (१५८६ शकमें) माघ मासकी कृष्णानवमी तिथिको अंधेरी रातमें सिर्फ दो सेनाके साथ-तानाजी

जल्दीमें पर्वतके दुर्गम प्रदेश पर चढ़ गये और वहां उन्होंने दीवारमें एक रस्सी लटका दी। जाड़ा जोरोंसे पड़ रहा था। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग शिथिल हो रहे थे, बड़ी मुश्किलसे कदम उठाते थे, फिर भी उस ओर किसीका ध्यान नहीं गया। सभी तानाजीके उत्साहसे उत्साहित हो सिंहगढ़ विजयका गौरव पानेकी आशासे अग्रसर हुए। एक एक कर सभी उस रस्सीके बल दुर्ग पर चढ़ने लगे। सबके आगे तेज तलवार हाथमें लिये वीरवर तानाजी थे। सूर्याजी दो सौ सेनाके साथ दुर्गके नीचे खड़े थे। उनके पैरोंका शब्द सुन कर एक राजपूत पहरू वहां आया। ज्यों ही उसने मस्तक उठाया त्यों ही तानाजीने तीरका ऐसा निशान किया, कि उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। दुर्गकी दीवारसे उसकी देह पृथ्वी पर धड़ाम सी गिर गई। आवाज सुन कर अन्यान्य पहरू वहां आये और मावल सेना आड़में रह कर उन पर वाणकी वर्षा करने लगी। उस वाणाघातसे जर्जरित हो राजपूत पहरू एक एक कर जमीन पर गिरते गये। राजपूत सेनाकी जब नींद टूटी, तब जहां जो अस्त्र मिला, उसे ले कर मावल सेनादलके पीछे दौड़ी। तानाजी भी कब चुप बैठनेवाले थे, उन्होंने फौरन प्रचण्ड वेगसे उन लोगों पर धावा बोल दिया। राजपूतगण एक ही समय चारों ओरसे आक्रान्त हो कर लक्ष्य स्थिर कर न सके। उन्होंने मशाल जाल दिया जिससे मावल सेना-को और भी सुविधा हुई। वे लोग लक्ष्यको स्थिर कर-के वाण वर्षा करने लगे। तानाजी कृपाण हाथमें लिये एक दल सेनाके साथ उस ओर दौड़े। दोनोंमें मुठभेड़ हो गई, तलवारोंकी झंकारसे कान मानों बहरे हो गये। सूर्याजी स्थिर रह न सके। ऊपर क्या होता है, जाननेके लिये वे व्याकुल हो उठे और दलबलके साथ वहां जा धमके। तानाजी युद्ध करते करते राजपूत-सरदार उदयभानुके समीप पहुंचे। दोनों वीरोंमें घोर युद्ध हुआ। उदयभानुकी तलवारके वारसे ताना-जीका ढाल बेकाम हो गया, अब उन्होंने अपने हाथसे तलवारके वारको सहते हुए शत्रुके शरीरको दो खण्डों-में काट डाला। किन्तु वे भी उस आघातसे जमीन पर गिर पड़े। इस समय नेताजीके पतन पर मावलसेना हताश हो गई और भागनेकी तैयारी करने लगी। इसी समय सूर्याजीने दलबलके साथ वहां पहुंच ललकार कर उन लोगोंसे कहा, 'पितृतुल्य सेनापतिकी देहको अर-क्षित अवस्थामें छोड़ कर कौन आदमी भागनेके इच्छा कर सकता है।' इतना कह कर उन्होंने दुर्ग पर चढ़ने-की जो रस्सी थी, उसे काट डाली।

सूर्याजीके उपदेशसे उत्साहित हो कर मावल सेनाने फिरसे 'हर हर महादेव' शब्दसे दिग्मण्डलको गुंजा दिया। वे लोग कालान्तक यमकी तरह राजपूतों पर टूट पड़े। उन लोगोंका वह भीमवेग सहन करनेकी किसीको भी ताकत न थी। इस युद्धमें ५०० राजपूत वीर मारे गये, कुछ तो पर्वत पर भाग या गिर कर यम-पुर सिधारे और बाकी सूर्याजीके हाथ बन्दी हुए। सिंहगढ़ अधिकृत हुआ सही, पर युद्धमें जो तानाजी मारे गये उससे शिवाजीको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने बाल्य सहचरकी मृत्यु पर बारह दिन पगड़ी न पहन कर सम्मान दिखलाया था।

इसके बाद शिवाजीने सूर्याजीको सिंहगढ़का किला-दार बनाया। जिन सब वीरप्राण मावल सेनाने मराठा गौरवको अक्षुण्ण रखनेके लिये प्राणपणसे युद्ध किया था, वे भी शिवाजीका अनुग्रह पानेसे वञ्चित न हुए। उन्होंने राजपूत कैदियोंको भी यथोपयुक्त पुरस्कार दे कर स्वदेश भेज दिया।

तानाजीकी सिंहगढ़-विजयके दृष्टान्तका अनुसरण कर आवाजी सोणदेवने भी दुर्गाधिपति अलीवर्दी खाँको रणक्षेत्रमें मार माहुली दुर्ग पर अधिकार जमाया। उन्हों-ने कल्याण भिवण्डीके किलादार उजरफ खाँको भी युद्धमें परास्त कर तदधिकृत प्रदेश फतह किया था। इस समयसे चार मासके भीतर मोरोपन्त, नीलोपन्त, अन्नाजीपन्त और प्रतापराव गुजर आदि वीरोंने मुगला-धिकृत अधिकांश दुर्गोंको हस्तगत कर लिया तथा महा राज जयसिंहने रणविजय कालमें जिन सब दुर्गोंको तोड़ फोड़ कर आग लगा देनेकी चेष्टा की थी, मोरोपन्त पेशवाने उन सब दुर्गोंका अभी बड़ी तत्परतासे जीर्णो-द्धार कर उन्हें कार्योपयोगी बना दिया।

१६६१ ई०के बादसे प्रायः प्रति वर्ष शिवाजी

जिञ्जिरा दुर्ग जीतनेकी इच्छासे सेना भेजते रहे। मुगल नौसेनापति फते खाँ शिवाजीवाहिनीसे स्थलपथ और जलपथसे बार बार आक्रान्त हो आखिर शेषोक्तयुद्धमें विशेष विपदापन्न हुआ। कोई उपाय न देख उसने जिञ्जिरा दुर्ग शिवाजीके हाथ सौंप सन्धि कर ली। इस समय वर्षाका आरम्भ हो गया जिससे शिवाजी रायगढ़ लौट आये। वर्षाके बाद शिवाजीने प्रायः पन्द्रह हजार घुड़सवार सेना ले कर सूरत पर छापा मारा। वहांका मुगल शासनकर्त्ता नगररक्षाके लिये डटा हुआ था, पर कृतकार्य न हो सका। शिवाजी नगर-प्राचीरको तोड़ फोड़ कर नगरमें घुसे और वहां तीन दिन रह कर वार्षिक १२ लाख रुपये चौथका बन्दोबस्त कर बहुमूल्य उपहारके साथ स्वदेश लौटे। मुगल-सेनापति दाऊद खाँने चरके मुखसे उनके सूरत आनेकी खबर सुन कर दलबलके साथ काञ्चन-मञ्चन गिरिपथको रोका। शिवाजीने भी मुगलसेनाका आगमन जान कर उसी समय अपने सेनादलको तीन भागोंमें बांट लिया। एक भाग पहले ही अग्रगामी मुगल सेनापति आखलस खाँके साथ युद्धमें भिड़ गया। दूसरा दल ले कर उन्होंने स्वयं दाऊद खाँ पर आक्रमण किया और तीसरा दल विजयलब्ध द्रव्यकी रक्षामें नियुक्त रहा। युद्धमें मुगलपक्षकी तीन हजार सेना मारी गई, चार हजार घोड़े पकड़े गये और प्रधान दो सेनानायक बन्दी हुए।

इस समय उनकी गति रोकने तथा मुगल सेनाकी सहायता पानेकी इच्छासे माहुरवासी उदयरामकी विधवा स्त्री ५ हजार सेना ले कर युद्धक्षेत्रमें उतर पड़ी। इस वीरनारीके साथ मराठी सेनाका तुमुल संग्राम छिड़ा। रमणी नंगी तलवार लिये रणक्षेत्रमें खड़ी हो अपने सेनादलको उत्तेजित करने लगी। किन्तु विजयोद्दीप्त शिवाजीकी सेनाके सामने वे ठहर न सके। युद्धमें पराजित राजहितैषी वीरनारीने शिवाजीकी अधीनता स्वीकार कर ली। शिवाजीने भी उनके पुत्र जगजीवनको अभयदानसे संतुष्ट किया था।

बीजापुर-समरसे औरङ्गाबाद लौट कर महाराज जयसिंह दिल्लीपथमें पञ्चत्वको प्राप्त हुए। दिलेर खांको भी दाक्षिणात्यमें कोई सुव्यवस्था करते न देख सम्राट्ने उन्हें राजधानी लौट आनेको कहा। शिवाजीके नेतृत्वमें मराठोंका अभ्युत्थान और मुगल सेना उत्तरोत्तर अधःपतन देख सम्राट् औरंगजेब स्थिर रह न सके। उन्होंने दाक्षिणात्यमें सुश्रृङ्खला स्थापनके लिये अपने पुत्र कुमार शाह आलमको दक्षिणापथका सूबादार तथा योधपुराधिपति राणा यशोवन्तसिंहको सेनापति बना कर उनके अधीन एक विपुल मुगलवाहिनी भेजी। दिल्लीमें रहते समय कुमार शाह आलम और राणा यशोवन्तके साथ महाराष्ट्रपति शिवाजीकी मित्रता हो गई थी। शिवाजीने दोनों मित्रोंका आगमन संवाद पाते ही उनके सम्मानार्थ औरंगाबादमें उपहारके साथ एक आदमीको भेजा। कुमार शाह आलमने उपहार दे कर शिवाजी प्रेरित दूतकी सम्मान रक्षा की और उन्हें कहला भेजा, कि महाराज शिवाजी पूर्व सन्धिके अनुसार कार्य करें, तो सम्राट् उन पर बड़े प्रसन्न होंगे तथा उस विषयमें हम लोग भी उनकी सहायता करेंगे।

शिवाजीके सहमत होने पर सम्राट्ने राजाकी उपाधि दे उनका सम्मान किया। उनके पुत्र शम्भाजी पांच हजार घुड़सवारके मनसबदार बनाये गये। जुन्नर और अहमद नगरके स्वत्वत्यागके लिये सम्राट्ने उन्हें बेरार प्रदेश जागीरस्वरूप दे कर संतुष्ट रखा। पूर्वतन जागीर पूना, चाकन और सुपा परगना उन्हें लौटा दिया गया। केवल सिंहगढ़ और पुरन्दर दुर्गको मुगलराजने अपने अधिकारमें रखा।

इस घटनाके बादसे महाराज शिवाजी मुगल दरबारमें एक प्रधान उमराव गिने जाने लगे। शिवाजीने भी युद्धकालमें घुड़सवार सेनासे सम्राट्को मदद पहुंचानेका वचन दिया। प्रतापराव गुजर साहाय्यकारी सेनादल ले कर औरंगाबादमें रहने लगे। इस तरह प्रायः दो वर्ष बीत गये। बीजापुरराजके साथ १६६६ ई०में मुगलसम्राट्को युद्धसमाप्ति तक यही व्यवस्था चलती रही।

बीजापुर-राजदरबारके साथ मुगल-सेनापतिकी जो संधि हुई, उसमें शिवाजीका हाथ नहीं था। दाक्षिणात्यके मुगल सूबादारके साथ इस प्रकार संधि करसे शिवाजीने बीजापुर और सरदेशमुखी उगाहनेके लिये

आदमी भेजा। पहले भी वे चौथ उगाहनेके लिये कितनी बार आदमी भेज चुके थे। इस बार बीजापुर दरबारने शिवाजीके भेजे हुए आदमीका बड़ा अपमान किया। इस अपमानका बदला चुकानेके लिये शिवाजी पहले सीमान्त प्रदेशके दुर्गोंको देखने गये। उनके पनहाला दुर्गमें रहते समय सिद्दी जहर और अफजल खाँके पुत्र फजल खाँने बीस हजार सेना ले कर दुर्गको घेर लिया। छः मास घिरे रहनेके बाद शिवाजीने जब देखा, कि दुर्गमें खानेको कोई चीज रह न गई, तब दुर्गमें अनाहार रहना उन्होंने अच्छा नहीं समझा। उन्होंने दुर्ग-मध्यस्थ सेना और सेनापतियोंको बुला कर कहा, 'मैंने कल सवेरे शत्रु व्यूहभेद कर रंगणा दुर्गमें जानेका इरादा किया है। शत्रुगण जब मेरा पीछा करेंगे, तब तुम लोग पीछेसे उन पर टूट पड़ना।'

आखिर हुआ भी वही, शिवाजी दो हजार संसक्त मावल सेना ले कर दुर्गसे निकल पड़े। सिद्दी जहर-के हुकुमसे फजल खाँने शिवाजीका पीछा किया। पूर्व परामर्शानुसार कायस्थवीर बाजी प्रभु पांच हजार मावली सेना ले कर फजल खाँ पर टूट पड़े। शत्रुसेनाको अब आगे बढ़नेका साहस न हुआ, उन्होंने आततायी की ओर लौट कर युद्ध ठान दिया। उस अवसरमें शिवाजीने भी निरापद रङ्गना दुर्ग पहुंच कर तोपध्वनि की। बाजी प्रभु तब भी रणो-मत्त शत्रुके गोलाघातसे बुरी तरह घायल हो घोड़े परसे गिर पड़े। इस युद्धमें पांच मुसलमानी सेना मारी गई थी।

वर्षाका आगमन देख तथा शिवाजी कहीं मौका पा कर दुर्गसे बाहर निकल बीजापुरसेना पर चढ़ाई न कर दें, इस आशङ्कासे सिद्दी जहरने दलबलके साथ बीजा-पुरको प्रस्थान किया। इसके बाद (१६६६ ई०) गोल-कुण्डा और बीजापुरपति शिवाजीको वार्षिक ५ लाख कर देनेको राजी हुए।

शिवाजीने चौथ और सरदेशमुखी वसूल कर बहुत धन संग्रह किया है तथा कितने दुर्ग और प्रदेशोंको जीत कर अपना बल बढ़ा लिया है, यह सुन सम्राट् दंग रह गये। फिर कुमार शाह आलम करीब दो वर्षसे शिवाजी-को हस्तगत करनेकी चेष्टा नहीं करते, वरं उनके साथ कुमारकी दिनोंदिन मित्रता ही बढ़ती जा रही, इस मित्र-के फलसे वे भी शिवाजीके साथ मिल कर सम्राट्के विरुद्ध खड़े हो सकते हैं। इस चिन्तास्रोतमें बह कर सम्राट्ने चुप बैठ रहना अच्छा नहीं समझा। उन्होंने छिपके एक दल सेना भेज कर निराजीपन्त और प्रताप-राव आदि शिवाजीके प्रधान प्रधान कर्मचारियोंको अव-रोध करनेका हुकुम दिया। यथासमय यह खबर राज-कुमारके कानोंमें पहुंची। उन्होंने निराजीपन्त आदि-से सचेत कर दिया। औरङ्गावादमें अवस्थित महा-राष्ट्रीय घुड़सवार सेनादल ले कर प्रताप राव गुजर रातोरात औरङ्गावादका परित्याग कर रायगढ़ चले गये।

सम्राट्की यह दुराकाङ्क्षा तथा १६६७ ई०के सन्धि-भङ्गकी विश्वासघातकता देख शिवाजी बहुत बिगड़े। तानाजीकी वीरता तथा मृत्युने उनके हृदयमें मुगलोंके प्रति विद्वेषानलको और भी प्रज्वलित कर दिया था। इन सब कारणोंसे अत्यन्त दुःखी हो इन्होंने वृथा समय खोना अच्छा न समझा। जलपथ और स्थलपथसे वे मुगलसेना पर आक्रमण करनेके लिये उद्यत हो गये। उनकी अनुमतिसे मोरोपन्त पेशवे बीस हजार पैदल सिपाही ले कर अन्वा, पुन्ना और शालह दुर्ग पर आक्र-मण करने रवाने हुए। दश हजार घुड़सवार सेना ले कर प्रताप राव उनकी सहायतामें चले। जिन सब ग्रामों और नगरोंका चौथ स्थिर कर दिया गया था, प्रतापके ऊपर उसकी वसूलीका भी भार सौंपा गया। इस समयसे दाक्षिणात्यकी मुगल प्रजाने भी नियमित-रूपसे चौथ देना शुरू कर दिया।

जलपथसे शिवाजीने छोटी और बड़ी १६० रणतरी पर युद्ध-सामग्री लाद बम्बई, सूरत और भरोंचकी ओर युद्धयात्रा कर दी। दुर्भाग्यक्रमसे वे सब रणपोत गन्तव्य स्थानमें न जा कर इधर उधर भटकने लगे। रातमें पुर्त्तगीजोंके साथ एक घोर संग्राम छिड़ा। युद्धमें शिवाजीकी सेना पुर्त्तगीजोंका एक बड़ा रणपोत दखल कर दभोलकी ओर लौटी। युद्धमें मराठा नौ-सेनादलके अध्यक्ष मयनायक भण्डारीने जो वीरत्व और रणपाण्डित्यका परिचय दिया था, उससे नौबलमें

सुदक्ष पुर्त्तगीज जातिको भी दांतों उंगली काटनी पड़ी थी।

पूर्व व्यवस्थानुसार मोरोपन्त अन्धा, पुत्ता आदि दुर्गोंको जीत कर बागलानके अंतर्गत सलह दुर्ग जीतनेके लिये आगे बढ़े (१६७१ ई०)। प्रतापराव बेरघाट सङ्कटको पार कर पेशवाके दलमें मिलने चले गये। राहमें मुगलसेनापति इसलाम खाँने उन्हें रोका। इससे मराठी सेनाके साथ मुगलोंकी मुठभेड़ हुई। रणदुर्मद प्रतापने इसकी जरा भी परवाह न कर बड़ी तेजीसे सलहके दुर्गमें प्रवेश किया। मोरोपंत और प्रतापके युगपत् आक्रमणसे मुगलसेना तितर बितर हो गई। युद्धमें १० हजार मुगलसेना और २ सेनापति मारे गये। इखलास खाँ, माखमसिंह आदि कुछ सेनापति बंदीभावमें मराठाशिविरमें लाये गये। छः हजार ऊंट और घोड़े, १०० हाथी और नाना प्रकारके युद्धोपकरण महाराष्ट्र-सेनापतिके हाथ लगे।

महाराष्ट्रपक्षमें इस इतिहास-प्रसिद्ध समरमें आनंदराव खण्डाजी जगतपे, विशाजी बल्लाल, मुकुंद बल्लाल मोरे, रङ्गनाथ रूपजी भोंसले, सुरेराव काकड़े आदि वीरोंने सिंहविक्रमसे मुगलसेनाको कुचल दिया था। इस युद्धमें जावली रायरी आदि दुर्गविजेता सुरेराव कांकड़े यमपुर सिधारे।

सलह दुर्गमें मुगलसेनाकी पराभववार्त्ता सुन कर नजदीक पहुंचे हुए दिलेर खाँ शत्रु द्वारा आक्रांत होनेके भयसे उसी समय औरङ्गाबादकी ओर चंपत हुए। जयमदसे उन्मत्त प्रतापरावने उनका पीछा किया। वे खानदेशको आक्रमण कर बुरहानपुर तक अग्रसर हुए। लौटते समय वे कई नये स्थानोंमें चौथ कायम कर तथा नाना स्थानोंसे पुराना चौथ वसूल कर रायगढ़ आये।

इस प्रकार उत्तरोत्तर मराठाबलवृद्धि, मुगलवाहिनी का क्षय और यशोवन्तसिंह, दिलेर खाँ, महव्वत खाँ आदि सेनापतियोंकी वार बार पराजय देख कर सम्राट् औरङ्गजेब डर गये और भावी अमङ्गलकी आशङ्का करके उन्होंने गुजरातके सूबादार बहादुर खाँको (खानजहान्) दाक्षिणात्यका सूबादार बनाया। इसका फल कुछ भी न हुआ। बहादुर खाँको शिवाजीका अतुल प्रताप देख एक कदम आगे बढ़नेका साहस न हुआ। निश्चेष्ट भावसे उन्हें औरङ्गाबादमें अवस्थान करते देख शिवाजीने एक दल सेना उत्तरकी ओर भेजी और आपने गोलकुण्डा प्रदेशमें आक्रमण कर चौथ कायम किया।

१६७१ ई०में सलह-दुर्ग महाराष्ट्रके हाथ आने पर भी मुगलसेनापतियोंने दूसरे वर्ष १६७२ ई०को अपनी अपनी वाहिनी ले कर फिरसे उक्त दुर्गको घेर लिया। महाराष्ट्र नायक बड़ी वीरता और साहससे आत्मरक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। अन्तमें मोरोपन्त पेशवा उन लोगोंके दुर्भेद्य-व्यूहको भेद कर विजयलक्ष्मी प्राप्त की। १६७२ ई०में पनहाला दुर्ग फिरसे शिवाजीके अधिकारभुक्त हुआ तथा उन्होंके एक दूसरे सेनापति अन्नाजोदत्तो हुवली लूट कर प्रचुर अर्थ और बहुमूल्य द्रव्यादि संग्रह कर लौटे।

इसी समय शिवाजीने कारवाड़ प्रदेशकी ओर एक नौवाहिनी भेजी। फलतः उक्त प्रदेशके समुद्रोपकूलवर्त्ती जिला महाराष्ट्रके हाथ लगे। यहां तक, कि बेदनोरके राजा भी गोलकुण्डाधिपकी तरह शिवाजीकी अधीनता स्वीकार करनेसे वाध्य हुए।

शिवाजीकी अनुपस्थितिमें सूरत और जिञ्जिराके नौसेनापतिने समुद्रतीरवर्त्ती दण्डाराजपुरी पर हठात् चढ़ाई कर दी। उस दिन रातको दुर्गके भीतरका मराठा सेनादल शिवपूजामें मत्त था, सभी भंगके नशेमें चूर थे, किसीको भी ज्ञान न था। इसी सुअवसरमें मुसलमानोंने दुर्गमें रस्सी लटका कर ऊपर आरोहण किया और दुर्ग पर चढ़ाई कर दी। दुर्गाध्यक्ष रघुनाथ पन्तने युद्धमें प्राण विसर्जन कर अनवधानताका प्रायश्चित्त किया।

इस समय बीजापुर सुलतानकी मृत्यु हो जानेसे बीजापुर राज्यमें अन्तर्विप्लव उपस्थित हुआ। उस समय दाक्षिणात्यमें मराठा और मुगल शक्ति प्रबल थी। अवदुल करीम खाँ प्रमुख व्यक्तिगण शिवाजीके किये हुए अपमानका स्मरण कर मुगलोंसे मिले और उनके अनिष्टमें लग गये। खावस खाँके पृष्ठपोषकोंने शिवाजीको अपने पक्षमें लाना और मुगलशक्तिको खर्व

करना ही युक्तिसंगत समझा। किन्तु किसी एक सिद्धान्त पर पहुंचनेके पहले ही करीम खाँने अपने अधीनस्थ सेनाओंको शिवाजीके विरुद्ध अग्रसर होनेकी आज्ञा दी।

शिवाजीने बीजापुर सेनासे आक्रान्त होने पर प्रतापरावको दलबलके साथ उनके विरुद्ध भेजा। करीम खाँ आत्मरक्षामें असमर्थ हो रणक्षेत्रसे भाग चले। प्रताप उन्हें खदेड़ते हुए। पर्वतवेष्टित जलशून्य स्थानमें ले गये और वहीं आवद्ध किया। जलाभावसे ससैन्य मृत्युमुखमें पतित देख करीमने आत्मसमर्पण कर छुटकारा पाया। प्रतापरावने बीजापुर जीत कर हैदराबाद रामगिरि और देवगढ़ आक्रमण कर उन सब स्थानोंमें चौथ स्थापन किया।

इधर करीम खाँ बीजापुर पहुंचते ही बहोल खाँके साथ मिले और फिरसे पनहाला प्रांतमें आ कर आसपासके ग्रामोंमें लूटपाट मचाने लगे। यह खबर पाते ही शिवाजीने फिरसे करीम खाँको उपयुक्त शिक्षा देनेके लिये प्रतापरावको ससैन्य भेजा। जेसरी रणक्षेत्रमें दोनों पक्षमें मुठभेड़ हुई। पहले प्रतापरावने बड़ी वीरतासे मुसलमानी सेना पर आक्रमण किया। वे क्रमशः अग्रसर होते गये और केवल थोड़ेसे अनुचरोंके साथ मुसलमान सेनादलके बीच आ धमके। मावलीसेन बहुत पीछे छूट गई थी। रणक्षेत्रमें शत्रुके हाथ वे परलोक सिधारे। यह खबर पाते ही मावलसेना विचलित हो उठी। इस समय मराठा सेनानायक हंसाजी मोहितमें पांच हजार सेना ले कर रणक्षेत्रमें उतर पड़े। यह घटना १६७४ ई०में घटी थी।

दोनो दलमें फिरसे भीषण युद्ध चलने लगा। करीम खाँ मराठाके हाथ सैन्यक्षय और पराजय अवश्यम्भावी जान बची खुची सेना ले कर रणक्षेत्रसे बीजापुरकी ओर भाग गये। युद्धमें जीत तो हुई, पर प्रतावरावकी मृत्यु पर मराठाशक्तिका एक अंश चूर हो गया। शिवाजीने हंसाजीको 'हम्बीरराव'की उपाधि दे कर सरनौवत पद पर प्रतिष्ठित किया।

इसके बाद सेनापति हम्बीररावको सम्पत गांव नामक स्थानमें आये देख बीजापुरसरदार हुसेन मयान खाँ दलबलके साथ आगे बढ़े। अब दोनोंमें घमसान लड़ाई छिड़ी। किसी समय फुरसत नहीं, ज्यों ज्यों रात चढ़ती जाती थी, त्यों त्यों लड़ाई भी बढ़ती थी। आखिर सेनापति हम्बीर रावको जीत हुई। युद्धमें चार हजार घोड़े, बारह हाथी और ऊंट तथा कुछ कमान उनके हाथ लगी।

इस समय मोरोपन्त पेशवेने अपनी विजयवाहिनी परिचालित कर कोपल दुर्गमें घेरा डाला। हुसेन खाँके सहोदर भाई उस दुर्गके अधिपति थे। उन्होंने मराठा सेनानायकके अद्भुत बुद्धिकौशल और वीरत्व देख कर शिवाजीकी अधीनता स्वीकार कर ली। दुर्गाधिकारके बाद मोरोपन्त कनकगिरि, हर्पणपल्ली, रायदुर्ग आदि स्थानोंको जीत कर तुङ्गभद्रातट पर्यन्त महाराष्ट्र राज्य फैलाया।

इस प्रकार १६६६ ई०में नये ढंगसे मुसलमानके विरुद्ध प्रतिहिंसानल प्रज्वलित करके शिवाजीने चार वर्षके भीतर मुगलों द्वारा उनके जितने राज्य छीन लिये गये थे, अमित विक्रम और तलवारके बल उनका उद्धार किया था। इसके सिवा जल और स्थल-विभागमें बहुत दूर तक उन्होंने अपना राज्याधिकार फैलाया। उत्तरमें सूरत, दक्षिणमें वेदनोर और हुबली तथा पूर्वमें बेरार, बीजापुर और गोलकुण्डा तक उनका शासनदण्ड परिचालित हुआ था। ताप्तीनदीके दक्षिणस्थ मुगलाधिकृत सूबा उन्हें चौथ और सरदेशमुखी दे कर निश्चिन्त थे। गोलकुण्डा और वेदनोरपति महाराष्ट्रपति शिवाजीके हाथ अपनी हार स्वीकार कर उनके अधीन सामन्तरूपमें रहे।

महाराष्ट्रप्रचलित बखर नामक देशीय ऐतिहासिककी आख्यायिकामें लिखा है, कि शिवाजीने दाक्षिणात्यके प्रतापशाली तीन मुसलमान पादशाहोंको पराभूत और वशीभूत कर स्वयं हिन्दू पादशाह होनेकी इच्छा की थी। इसी कारण उनकी मन्त्रिसभाको प्रकाश्य भावसे महाराज शिवाजीका अभिषेककार्य्य करनेकी प्रयोजनीयता सूझ पड़ी थी। उन लोगोंने तीस वर्ष अविश्रांत परिश्रम और अध्यवसायसे जो राजैश्वर्य पाया था, अभी उसीका महत्व उद्घाटन करनेकी सूचना हुई। शिवाजी-

का अभिषेकोत्सव और उसके कारण प्रभूत अर्थव्यय उनके स्वाधीनराज्यका परिचयस्थल है।

शिवाजीने जिस समय मुसलमान राजाओंको पद-दलित कर उन्नतिके शीर्ष सोपान पर आरोहण किया था, ठीक उसी समय काशीधामसे वेदान्ततत्त्वदर्शी प्राज्ञ पण्डित गागाभट्ट तीर्थदर्शनके उपलक्षमें दाक्षिणात्य आये और शिवाजीसे मिले। इन्हींके अनुरोधसे राणावंशीय महाराज शिवाजी शास्त्रोक्त प्रक्रियानुसार अभिषिक्त हो राज्यशासन करने स्वीकृत हुए। उनके उपदेशवाक्य तथा मोरोपंत और निराजीपंतके अनु-मोदनसे शिवाजीने अपने मेवाड़के कुटुम्बोंकी तरह यज्ञ-सूत्र धारण कर वर्णाश्रमधर्म पालन करते हुए शास्त्र-मर्यादाकी रक्षा की।

चित्तोरसे दाक्षिणात्य आ कर नाना दुर्विपाकसे शिवाजीके पूर्वपुरुषगण (६।१० पीढ़ी)'उपनयनसंस्कार-भ्रष्ट हो गये। इसके बाद गागाभट्टके विधानानुसार 'व्रात्यस्तोमप्रायश्चित्त' करने पर उन्हें यज्ञोपवीत प्रदान कर अभिषेककी व्यवस्था हुई। तदनुसार १५९६ शक (१६७४ ई०)में ज्यैष्ठमासकी शुक्ला चतुर्थीको निमंत्रित राजाओं और ब्राह्मणोंके समीप महाराष्ट्रकेशरी शिवाजी-ने यज्ञोपवीत धारण किया। सच पूछिये, तो इसी दिनसे राज्याभिषेकोत्सव आरम्भ हुआ।

उसी वर्षकी ज्यैष्ठशुक्ला त्रयोदशी तिथि वृहस्पतिवारको उनका अभिषेक कार्य्य समाप्त हुआ और वे सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इस घटनाका स्मरण कर उसी दिनसे दाक्षिणात्यमें 'शिव-शक' प्रचलित हुआ। आज भी कोल्हापुर-राजसंसारमें शिवाजीके वंशधर उसी शकका व्यवहार करते हैं। इस राज्याभिषेक उपलक्षमें प्रायः १ करोड़ ४४ लाख ४ हजार रुपये खर्च हुए थे।

राज्याभिषेक समाप्तके बाद महाराज शिवाजीने आये हुए राजाओं और राजदूतोंका यथोचित सम्मान और सत्कार कर विदा किया। इसी समय अंगरेज कम्पनीने वाणिज्यकी सुविधाके लिये महाराष्ट्र दरबारमें दूत भेजा। अंगरेजी दूत सर हेनरी आक्सेण्डेन जब बहुमूल्य उपहारके साथ रायगढ़ आये, तब महाराजाने उनका यथोचित सम्मान किया। महाराज शिवाजी उनकी प्रार्थनाके अनुसार जिस वाणिज्यविषयक सन्धि-सूत्रमें आवद्ध हुए, उसके मध्य राजापुर ध्वंसका क्षति-पूरण तथा राजापुर, दभोल, चेउल और कल्याण नगरमें अङ्गरेजका वाणिज्यकोठी-निर्माण उल्लेखयोग्य घटना है। इसके ठीक बाद ही महाराजने तुलादान किया। इस उपलक्षमें उन्होंने रायगढ़के सुप्रसिद्ध 'जगदीश्वर-मन्दिर'की प्रतिष्ठा की थी। उस मन्दिरके गात्रमें निम्नोक्त शिलालेख उत्कीर्ण है—

"प्रासादो जगदीश्वरस्य जगतामानन्ददोऽनुज्ञया
श्रीमच्छत्रपतेः शिवस्य नृपतेः सिंहासने तिष्ठतः।
शाके षण्णवबाणभूमिगणनादानन्दसंवत्सरे
ज्योतिराजमुहूर्त्तमहिते शुक्रे शसापे तिथौ॥
वापीकूपतड़ागराजिरुचिरं रम्यं वनं वीतिके
स्तम्भैः कुम्भिगृहे नरेन्द्रसदनैरभ्रंलिहैर्मीहिते।
श्रीमद्रायगिरौगिरामविषये हीराजिनानिर्मिता
यावच्चन्द्रदिवाकरौ विलसतस्तावत् समुज्जृम्भताम्॥"

माता और पत्नीवियोग पर शिवाजीको यद्यपि भारी शोक हुआ, फिर भी वे अविचलित भावसे राजशासन करने लगे। उनके नियोजित अष्टप्रधान उन्हें राज कार्य्यमें विशेष सहायता पहुंचाते थे। उन्होंने जैसी शासनविधिका अवलम्बन कर प्रजापालन तथा सामरिक विभागको व्यवस्था की थी, उसके पुनरुल्लेखका निष्प्रयोजन है। उनका घुड़सवार सेनादल शिलेदार और बर्गीरदार भेदमें विभक्त था। ये लोग दूरदेश आक्र-मणके समय जाते थे, पैदल सिपाहीमें घाटमाथाके मावलो और कोङ्कण प्रदेशके हाटकारीगण प्रधान थे।

महाराष्ट्र देखो।

इसके बाद शिवाजीके जीवननाटकके अन्तिम दृश्यका अभिनय आरंभ हुआ। उत्तरमें मुगल और बीजापुर-के साथ युद्ध बंद हो जानेसे दोनों पक्षने एक तरह शान्तिभाव धारण किया था सही, पर यथार्थमें मित्रता स्थापित नहीं हुई थी, तथापि दोनों पक्ष वैरभावका परित्याग कर शांतभाव अवलम्बन करनेके लिये वाध्य हुए।

शिवाजी जब इस प्रकार शान्तिसुखका भोग कर रहे थे, तब कर्णाट देशमें शाहजी द्वारा प्रतिष्ठित विशाल

जागीरमें वङ्कोजीके साथ रघुनाथ नारायण नामक दो भाइयोंका मनमुटाव हो गया। दोनों भाई शाहजीके प्रधान कर्मचारी नारोत्रिमल हनुमन्तके योग्य पुत्र थे। ये लोग भी वङ्कोजोको सामने रख कर द्राविड़मण्डलमें स्वतन्त्रभावसे महाराष्ट्र-विजयपताका फहरानेकी सलाह कर रहे थे। शिवाजीके विरुद्ध खड़ा होना वङ्कोजीने नहीं चाहा, इस कारण दोनों भाई उनके दुश्मन हो गये। वे लोग अब वहां रहना अच्छा न समझ कर भागानगरमें चले गये। पीछे वहांसे उन दोनोंने शिवाजीके पास आ कर उनसे कहा, कि दाक्षिणात्य प्रदेशमें अराजकता फैल गई है तथा वहां हिन्दूराज्यस्थापनकी बड़ी सुविधा है। इतना सुनते ही शिवाजीने दक्षिण प्रदेश जीतनेका सङ्कल्प किया।

भागानगरपति तानशाह मुगल भी इस घटनाके कुछ पहले शिवाजीको वार्षिक ५ लाख हूनमुद्रा देना स्वीकार कर उनके साथ सन्धिसूत्रमें आवद्ध हुए। शिवाजीने उस मित्रताको दृढ़ करनेके लिये निराजी पन्तके लड़के प्रह्लाद पन्तको विविध प्रकारके उपहारके साथ भागानगर भेजा और उससे कह दिया था, कि शिवाजीको भागानगर देखनेकी बड़ी इच्छा है।

शिवाजी पचीस हजार मावली पदातिक सेना ले कर भागानगरको चल दिये। यहां भागानगराधिपने उनकी बड़ी खातिर की। कुछ दिन यहां आमोद-प्रमोदमें समय बिता कर शिवाजी प्रह्लाद पन्तको यहां दूत स्वरूप रख आप ससैन्य दक्षिणकी ओर रवाने हुए। जाते समय उन्होंने तुङ्गभद्रा नदी तट पर अवस्थित कर्णाल, कड़ापा आदि स्थानोंसे ५ लाख हूण चौथमें संग्रह किये। बादमें वे निवृत्तिसङ्गममें स्नानादि कार्य करके कुछ प्रधान कर्मचारियोंके साथ श्रीशैलको गये। यहां बारह दिन ठहर कर शिवाजी देश देशमें गुहा और गृहनिर्माण तथा ब्राह्मण-भोजनादि नाना पुण्यकर्मानुष्ठान कर फिरसे अपने सेनादलमें मिले। इसके बाद इन्होंने दलबलके साथ दमलचेरी घाटी हो कर पेनघाट पर्वतमाला पार कर कर्णाटदेशमें पदार्पण किया।

यहां आ कर उन्होंने मन्द्राज नगरसे ७ कोस दूर चण्डीरदुर्गमें घेरा डाला (१६७७ ई०)। दुर्गाध्यक्ष रूप खाँ और नाजिर महम्मदने पराजय स्वीकार कर शिवाजीकी शरण ली। चान्दी और तत्समीपवर्ती प्रदेश हस्तगत कर शिवाजीने विट्ठल पिलदेव गोराड़करको सूबादार, रामजी नलगेको चण्डीदुर्गाधिपति, त्रिमाजी केशवको सवनिस और रुद्राजी सालवीको पूर्वविभागके प्रधान कर्मचारी पद पर नियुक्त किया और आप कावेरीकी ओर चल दिये। राहमें बीजापुरराज-सेनापति शेर खाँने ५००० हजार घुड़सवार सेना ले कर उन्हें रोका। शिवाजीके सामने मुसलमानी सेना कब तक ठहरनेवाली थी। वे सबके सब विमर्दित हो जहां तहां भाग गये।

लौटते समय शिवाजीने ब्राह्मणवीर नरहरि बल्लालके अधीन दश हजार मावली सेना भेज कर वेल्लूर दुर्गको घेर लिया। दुर्ग जल्द ही महाराष्ट्रसेनाके हाथ लगा। इस समय वङ्कोजी चन्दावर (तंजोर) राज्यमें राज्य करते थे। वे भाईके आनेकी खबर सुन कर सत्कारपूर्वक उन्हें अपने यहां ले आये। आठ दिन आपसमें सम्मिलन सुखभोगके बाद एक दिन शिवाजीने भाई वङ्कोजीके निकट पितृसम्पत्तिका अपना अंश पानेकी बात छेड़ी। वङ्कोजीने इसका उत्तर न दे कर अपने परामर्शदाताओंसे कुल बातें जा कहीं। उन लोगोंने शिवाजीकी कुटिलता समझी। वङ्कोजी डर गये, कि कहीं शिवाजी अपमान न कर दे, इस आशङ्कासे उन्होंने रातोरात भाग कर चान्देरीमें आश्रय लिया। दूसरे दिन सवेरे वङ्कोजीके भाग जानेका संवाद सुन कर शिवाज बहुत दुःखित हुए और उनकी तलाशमें द्रुतगामी अश्वारोहियोंको भेजा। वे लोग वङ्कोजीके बदले कुछ भागते हुए कर्मचारियोंको पकड़ लाये। शिवाजीने उन लोगोंके साथ सदय व्यवहार कर कहा, 'वङ्कोजी मेरा छोटा भाई है। मैं इस पवित्र तलवारका भाईके ऊपर वार करके राज्योपार्जन नहीं करने आया हूं। आप लोग अभी घोड़े पर चढ़ कर उनके पास जायं।

इसके बाद शिवाजी नये जीते हुए प्रदेशका शासनभार रघुनाथ नारायण पर सौंप कोल्हार और बालापुर प्रदेश गये। जिन सब स्थानोंके मुसलमान दुर्गरक्षकोंने शिवाजीकी अधीनता स्वीकार करना नहीं चाहा, वे

सेनापति हम्बीररावके हाथ परास्त और बन्दी हो महाराजके पास भेज दिये गये। ये सब प्रदेश हाथ आने पर शिवाजीने मानसिंह मोरे और रङ्गनारायण नामक दो उपयुक्त कर्मचारीके ऊपर शासनभार सौंपा।

यहांसे सम्पत्गाँवके रास्ते पर शिवाजीकी सेनाने बलवाड़ा दुर्गकी अधीश्वरी मालवाई देशाइनके राज्य पर धावा बोल दिया। वीररमणी प्राणपणसे सम्मानरक्षा करने लगी। सेनादल ले कर उन्होंने शिवाजी पर आक्रमण कर दिया। दोनोंमें तुमुल युद्ध चलने लगा। आखिर मालवाईने दुर्गमें आश्रय लिया। २७ दिन घेरे रहनेके बाद उन्होंने शिवाजीके हाथ आत्मसमर्पण किया। महाराजने वीरनारीकी सम्मानरक्षा की थी। पीछे शिवाजी रानी पर ही राज्यभार सौंप कर लौटे।

कर्णाटसे रायगढ़ आने पर शिवाजीने सुना, कि वङ्कोजी मुगल, पठान और महाराष्ट्र सेना ले कर उनके ही विरुद्ध युद्धका आयोजन कर रहा है। रघुनाथपन्तको जब यह हाल मालूम हुआ, तब उन्होंने वङ्कोजीको बार बार निषेध किया, परन्तु वङ्कोजीने उनकी बात पर जरा भी ध्यान न दिया। उन्होंने संगृहीत सेनादलको ले कर यालगोड़ापुरमें मराठा-सेनापति हंबीरराव पर चढ़ाई कर दी। युद्धमें वङ्कोजीके साथ प्रतापजी, भीवाजी, शिवाजीपन्त दबीर आदि कैद हुए। शिवाजीने भाईको मुक्तिदान दे कर धीरभावसे राजकार्य करने कहला भेजा। पीछे उनकी आज्ञासे रघुनाथपन्तने दश हजार सेना ले कर कर्णाट प्रदेशको प्रस्थान किया और हम्बीरराव राजधानी चले आये।

दाक्षिणात्यमें हिन्दूराज्य स्थापन करनेके लिये शिवाजीको प्रायः डेढ़ वर्ष तक वहां रहना पड़ा था। इस समय उत्तर प्रदेशके मुगल-शत्रु उनके विरुद्ध खड़े हो गये और युद्धका आयोजन करने लगे। शिवाजीके रायगढ़ लौटते ही मोरोपन्तने शत्रुका दमनके लिये उनसे प्रार्थना की। शिवाजीने विपुल अनीकिनी संग्रह कर कुछ राज्यकी रक्षामें छोड़ बाकी दो दो दलोंमें विभक्त किया। एक दल मोरोपन्तके अधीन भिन्न मार्गसे गया और दूसरा दल उन्हींके अधीन परिचालित हुआ। इस बार महाराज जयसिंहके पौत्र केशरीसिंह और युद्धविद्याविशारद रणमस्त खाँ मुगल-सेनाके नायक बन कर आये। लालपुर रणक्षेत्रमें शिवाजीके प्रचण्ड आक्रमणसे मुगल-सेना तितर बितर हो गई। रणमस्त खाँ भी रणक्षेत्रसे भाग चले। युद्धमें विजयलाभ कर शिवाजी नाना युद्धोपकरण और बहुमूल्य द्रव्योंके साथ रायगढ़ लौटे।

इधर कर्णाट प्रदेशमें रघुनाथ पन्तको उपयुक्त सेना दे कर हम्बीरराव शिवाजीके समीप जा रहे थे, इसी समय राहमें बीजापुर-सेनापति हुसेन खाँ और लोदी खाँने उन पर चढ़ाई कर दी। दोनोंमें भीषण संग्राम चलने लगा। बहुत-सी मुगल-सेना आहत और निहत हुई। आखिर दोनों सेनापति बन्दी हो कर शिवाजीके पास लाये गये।

जब शिवाजी और हम्बीरराव इसी तरह मुसलमानोंके विरुद्ध युद्धमें लिप्त थे, उस समय ब्राह्मणवीर मोरोपन्त खान्देश प्रान्तमें तलवार घुमा कर मुगलोंको भय दिखला रहे थे। उन्होंने असीम साहससे आउल नयागढ़ आदि दुर्गोंको हस्तगत कर लिया। इस समय प्रत्येक क्षेत्रमें मराठासेनाकी विजयपताका फहराने लगी थी। शिवाजीने जब जलालपुरकी ओर यात्रा की, तब ब्राह्मणकन्याके ऊपर अत्याचारी पुत्र शम्भाजीको पनहाला दुर्गमें कैद कर जगन्नाथ हनुमन्तकी देखरेखमें रख छोड़ा। उसे पकड़ लानेके लिये स्वयं शिवाजी महाराज पुरन्दर दुर्गमें गये थे।

इसके बाद शिवाजीने सुना, कि मुगल सेनापति दिलेर खाँने बीजापुर राजमहिषीको बड़े कौशलसे हस्तगत किया है तथा बीजापुर राज्यमें समरानल प्रज्वलित कर वहां उसने अपनी गोटी जमानेकी भी चेष्टा की है। इधर विश्वासघातक दिलेर खाँके व्यवहारसे विरक्त हो कर बीजापुर-मन्त्री उन्हें बुला रहे हैं। शिवाजी कब रुकनेवाले थे, उन्होंने फौरन दलबलके साथ दिलेर खाँका पीछा किया। रणमस्त खाँको परास्त कर हम्बीरराव भी वहां पहुंच गये। दोनोंके आक्रमणसे दिलेर खाँका बीजापुर-प्राप्तिकी आशा पर पानी फिर गया। पीछे वे कृष्णानदी पार कर कर्णाट राज्य लूटते और जलाते हुए आगे बढ़े। कर्णाटमें अवस्थित ब्राह्मणवीर जनार्दनपन्तने

छः हजार घुड़सवार सेना ले कर दिलेर खाँको आक्रमण और परास्त किया ।

पनहाला दुर्गसे भाग कर शम्भाजीने दिलेर खाँके शिविरमें आश्रय लिया । उन्होंने शम्भाजीका सादर सत्कार कर सम्राट्से राजाकी उपाधि और सात हजारी अश्वारोही मनसबदारका पद दिला दिया । इस क्षेत्रमें पराभूत और अपमानित दिलेर खाँने शम्भाजीको आगे कर भूपाल दुर्ग पर छापा मारा । चाकन दुर्ग पतनके वादसे ही फिरङ्गजी नरशाले भूपालगढ़की रक्षा करते आ रहे थे । वे दिलेर खाँसे दुर्ग आक्रांत होते देख मुगल-सेना पर गोला बरसाने लगे । इस पर चतुर दिलेर खाँने शम्भाजीको सामने रख कर युद्धमें बाधा डाली । फिरङ्गीजीने अपने मालिकके लड़केको न मार कर भूपालगढ़ शत्रुके हाथ लगा दिया और आप शिवाजीके निकट चले गये । शिवाजीने दिलेर खाँकी शठता सुन कर कहा, 'जब शम्भाजीने शत्रुका पक्ष लिया है, तब हम लोगोंको कभी भी उस पर दया नहीं करनी चाहिये । तुम लोग जिस प्रकार हो सके उसे मारो, घायल करो अथवा कैदमें ठूस दो, इसमें जरा भी सङ्कुचित होनेकी आवश्यकता नहीं ।'

युद्धकी फिर तैयारी होने लगी । कूटबुद्धि औरङ्गजेबको जब मालूम हुआ दृढ़प्रतिज्ञ शिवाजी प्रजाकी भलाईके लिये *प्रियपुत्रको भी छोड़ रहे हैं, तब उन्होंने दिलेर* खाँको कहला भेजा, 'शम्भाजीको फौरन मेकाल शिविर छोड़ कर पनहाला दुर्गमें आश्रय लेने कहो, नहीं तो उन पर विपद्का पहाड़ टूटनेकी सम्भावना है ।'

दिलेर खाँके मुखसे सम्राट्का अभिप्राय जान कर शम्भाजी पनहाला दुर्ग चले गये । शिवाजीने पुरन्दर दुर्गसे आ कर पुत्रको गोद लिया । पुत्रने पिताके चरणोंमें पड़ कर क्षमा प्रार्थना की । इसके बाद शिवाजी ने उच्छृङ्खल शम्भाजीको राजकार्य चलानेका उपयुक्त उपदेश दे कर कहा, 'मेरे नहीं रहने पर तुम और राजाराम मेरा राज्य इस प्रकार बांट लेना,—तुङ्गभद्राके किनारेसे ले कर कावेरीतट तक तुम्हारे अधिकारमें और तुङ्गभद्रासे गोदावरीतट तक राजारामके अधिकार में रहेगा । दोनोंमें कभी भी लड़ाई झगड़ा न करना ।

इसके कुछ दिन बाद शिवाजीने मृत सेनापति प्रतापरावकी कन्याके साथ राजारामका विवाह कर दिया । इसके बाद वे राज्यके कुछ मङ्गलजनक कार्योंमें लग गये । इस समय उनके दोनों घुटने सूज आये जिससे वे कठिन ज्वरसे पीड़ित हुए । सात दिन तक रोग भुगतनेके बाद १६८० ई० (१६०२ शक) रौद्र संवत्सर चैत्र शुक्ल पूर्णिमा रविवारको महाराष्ट्रगौरवने नश्वरदेह का परित्याग किया । शम्भाजी और राजाराम देखो ।

शिवाजीका नैतिक और गार्हस्थ्य जीवन रमणीय और शिक्षाप्रद है, वे महापुरुषका आदर्श लक्षण कह कर ग्रहण करने योग्य हैं । वयोवृद्धिके साथ साथ उनकी बुद्धिवृत्ति भी परिस्फुट होती गई थी । बाल्यकालमें वे पितामाताको देवता समझते थे । राजेश्वर हो कर भी उनकी वह असीम पितृमातृभक्ति जरा भी विचलित न हुई थी । बीजापुर-राजदरबारसे जब शाहजी दूतरूपमें उनके पास आये, तब उन्होंने यथेष्ट पितृभक्ति दिखलाई थी । पिताके आज्ञानुसार उन्होंने अपने स्वार्थ पर जलाञ्जलि दे कर बीजापुरराजका अभिलाष पूरा किया था । मालूम होता है, कि इसी पितृभक्तिके बल उन्होंने पिताकी जीवित कालमें राजोपाधि नहीं पाई थी और न अपने नाम पर सिक्का ही चलाया था । राज्यशासन विषयक कूट या सामान्य विषयमें भी वे विना माताकी सलाहके कोई कार्य नहीं करते थे । उनका भ्रातृ और पुत्रस्नेह प्रगाढ़ था । शम्भाजी और वङ्कोजीको क्षमा ही उसका *उज्ज्वल दृष्टांत है । क्षमा* उनका एक प्रधान गुण था ।

वे असाधारण मुक्तहस्त थे । आत्मीय, बंधु बांधव या कर्मचारियोंकी बात तो दूर रहे, शत्रुका कैदी सेनादल भी उनसे यथेष्ट पुरस्कार और परिच्छदादि पा कर उनके आचरण पर संतुष्ट रहते थे । अन्यान्य सभी विषयोंमें वे मितव्ययी थे । सैनिक विभागके परिच्छदकी सरलता और स्वल्पव्यय अच्छी तरह दिखाई देता था । अपव्ययी कर्मचारीको वे उसी समय राजकार्यसे निकाल देते थे । ऋणग्रस्त व्यक्तिको वे घृणाकी दृष्टिसे देखते थे । उनके दृष्टांत पर महाराष्ट्र सरकारके सभी लोग मिताचारी और मितव्ययी हो गये थे ।

शिवाजी।

धर्म-सम्बन्धमें उनकी उदारता अतुलनीय थी। उनके अभ्युदय कालमें दाक्षिणात्य मुसलमानोंके अधिकारमें था, अतएव मुसलमानी धर्मके प्रति विद्वेषका उनके उदयमें आपे आप जागरित होना सम्भव था, किन्तु वे वर्ण या धर्मगत विभेद पर लक्ष्य नहीं रखते थे। जिसका जो धर्म है, वह अवश्य पालन कर सकता है। यही कारण है, कि उन्होंने राजकोषसे वृत्तिका बन्दोबस्त करके भी मसजिद, पीरस्थान आदिकी रक्षा की थी। किन्तु जो हिन्दूद्वेषी था, उस पर महाराजकी विशेष घृणा रहती थी। स्वार्थपरायण और हिन्दूजातिका उच्छेद करनेमें बद्धपरिकर मुगल-सम्राट् औरङ्गजेब उनकी दृष्टिमें विषतुल्य था। उनके सेनादलमें हिन्दू मुसलमान एक-सा सम्मान पाते थे। सेनापति दरिया खाँ और इब्राहिम खाँने मराठी सेनाको परिचालित कर अंगरेज, फरासी, पुर्त्तगोज, दिनेमार, मुगल आदिको धर्रा दिया था। तानाजी, प्रतापराव, मोरोपंत और हम्बीरराव आदि हिंदू योद्धागण भी सैन्य चालनामें क्षिप्रहस्त थे।

अपने शिष्ट व्यवहार और मधुर सम्भाषणसे इन्होंने महाराज जयसिंह और दिल्लीके प्रधान अमात्योंको अपना मित्र बना लिया था। दिल्लीमें जब ये शत्रुओंसे परिवेष्टित हो बन्दिभावमें रहते थे, उस समय इन्होंने आत्मसंयमका जो परिचय दिया था, वह किसीसे भी छिपा नहीं है। युद्धकालमें भी उनके असीम आत्मसंयमका परिचय मिलता था। उन्होंने कहीं भी महावीर अलेकसन्दर या नादिर शाहकी तरह निष्ठुरता नहीं दिखलाई। रणक्षेत्रमें नाना कार्योंमें लगे रहनेसे वे केवल खिचड़ी खा कर रहते थे। इसके सिवा निरामिष ही उनका दैनिक आहार था। युद्धयात्राकालमें सारा दिन घोड़े पर बिता कर भी वे क्लान्त नहीं होते थे।

पहले ही कहा जा चुका है, कि वे कट्टर धर्मानुरागी थे। असत्संसर्ग या असत् आलापमें उनकी विजातीय घृणा थी। राजकार्यमें व्यापृत रहने पर भी वे विद्वानोंका आदर करना नहीं भूलते थे। महाराष्ट्र भाषाकी उन्नति पर इनका विशेष ध्यान रहता था। इन्हींके आन्तरिक उत्साह और अध्यवसायसे महाराष्ट्र दरबारसे 'राजव्यवहारकोष' संगृहीत हुआ। उस समय महाराष्ट्र भाषामें बहुतसे मुसलमानी शब्द प्रचलित थे। उक्त ग्रंथमें उन्हीं सब शब्दोंका संस्कृत भाषामें परिवर्त्तन किया गया।

उनके गुरु रामदास स्वामी, धर्मशील कवि तुकाराम, भगवद्गीताटीकाके प्रणेता वामन कवि आदि जैसे विद्वानोंसे वे धर्मबलमें बलिष्ठ हो कर्मयोगमें व्रती हुए थे।

शिवाजीने अपने बाहुबलसे जिस विस्तीर्ण भूभागमें आधिपत्य फैलाया तथा जो सब दुर्ग अधिकार किये थे, वे इस प्रकार हैं—

सतारा प्रदेशमें—सतारा, वैराठगढ़, वर्द्धनगढ़, परली या सज्जनगढ़, पाण्डवगढ़, महिमानगढ़, कमलगढ़, वन्दनगढ़, ताथवाड़ा, चन्दनगढ़, नन्दिगिरि।

कराड़प्रदेशमें—वसन्तगढ़, मचिन्द्रगढ़, भूषणगढ़, कसबाकराड़।

सह्याद्रि मावल प्रदेशमें—रोहिड़ा, सिंहगढ़, नारायणगढ़, कुवारी, केलना, पुरन्दर, दौलतमङ्गल, मोरगिरि, लोहगढ़, रुद्रमाल, राजगढ़, तुङ्ग, तिकोना, राजमाची, तोरणा, दांतिगढ़, विशापुर, वान्सोटा, शिवनेर।

पन्हाला प्रदेशमें—पन्हाला, खेलना, विशालगढ़, पावनगढ़, रङ्गणा, गजेन्द्रगढ़, भूधरगढ़, पारगढ़, मदनगढ़, अवगढ़, भूपालगढ़, गगनगढ़, वावड़ा।

कोङ्कण, वन्धारी और नलदुर्गप्रदेशमें—मालवन, सिंधु-दुर्ग, विजयदुर्ग, जयदुर्ग, रत्नागिरि, सुवर्णदुर्ग, खान्देरी, उन्देरी, कुला या राजकोट, अञ्जनवेल, रेवदण्डा, रायगढ़, पाली, कलानिधिगढ़, आरनाल, सुरङ्गगढ़, मानगढ, महिपतगढ, महिमण्डलगढ, सुमारगढ, रसालगढ, कर्णाला, मोरोप-वल्लालगढ, सारङ्गगढ, माणिकगढ, सिन्देगढ, मण्डलगढ, बालगढ, महिमन्तगढ़, लिङ्गाणा, प्रचेतगढ, समानगढ़, काञ्चेरी, प्रतापगढ़, तलागढ़, घोषालगढ़, विखाड़ी, भैरवगढ़, प्रवलगढ़, अवचितगढ़, कुम्भगढ़, सागरगढ़, शिकेरागढ़, मनोहरगढ़, सुभानगढ़, मित्रगढ़, प्रह्लादगढ़, मण्डलगढ़, सहनगढ़, शिकेरागढ़, वीरगढ़, महीधरगढ़, रणगढ़, सेठागागढ़, मकरन्दगढ़, माहुली भास्करगढ़, कवन्थी।

थाना प्रदेशमें—कल्याण, भिम्बड़ी, वाई, कराड़, सुपे खटाव, वारामती, चाकन, शिरवल, मिरज, तासगांव, करवीर,।

वागलान प्रदेशमें—सालहेर, नाहारा, हरशाल, मूलेरी, कनेरा, अहिवन्तगढ़, धोड़ोप।

नासिक-त्रिम्बक-प्रदेशमें—त्रिम्बक, वाहुला, मनोहरगढ, वाखलागढ़, चावण्डस, मृगगढ़, करोला, राजपेहर, रामसेन, माचनागढ़, हर्षण, आवलिगढ़, चान्दगढ़, सवलगढ, आवढ़ा, कनकई, गड़गड़ा, मनोरञ्जन, जीवन धन, हुड़सर, हरीन्द्रगढ़, मार्कण्डेयगढ़, पटागढ़, रङ्कई, सिद्धगढ़।

खोंद और वेदनुर प्रदेशमें—कोट फोण्ड, कोट काहुर, कोट वकर, कोट ब्राह्मणाल, कोट कड़वल, कोट आकोले, कोट कठर, कोट कुलवर्ग, कोट शिवेश्वर, कोट मङ्गलूर, कोट कड़नार, कोट कृष्णागिरि।

कर्णाटकादिप्रदेशमें—जगदेवगढ़, सुदर्शनगढ़, रमणगढ़, नंदीगढ़, प्रवलगढ़, भैरवगढ, महाराजगढ, सिद्धगढ, जवादिगढ, मार्त्तण्डगढ़, मङ्गलगढ, गगनगढ, कृष्णागिरि, मल्लिकार्जुनगढ, दीर्घपालिगढ़, रामगढ।

श्रीरङ्गपट्टन प्रदेशमें—कोठे धर्मपुरी, हरिहरगढ, कोटगरुड़, प्रमोदगढ, मनोहरगढ, भवानीदुर्ग, कोट अमरापुर, कोटकसुर, कोट तलेगिरि, सुंदरगढ, कोट तलगोण्डा, कोट आटनूर, कोट त्रिपुराबुरे, कोट दुदानेटो, कोट वखनुर, कलापगढ, माहिनदीगड़, कोट आलूर, कोट श्यामल, कोट विराड़े, कोट चन्द्रमाल।

वेल्लुर प्रदेशमें—कोट आरकाड़, कोट लखनूर, कोट पालनापत्तन, कोट लिमल, कोट त्रिवाड़ी, पालेकोट, कोट त्रिकोणदुर्ग, कैलासगढ, चञ्जिवरा, कोट वृन्दावन, चेतपावनी, कोलवालगढ, कर्मठगढ, यशोवन्तगढ, मुख्यगढ, गर्जनगढ, मड़विड़गढ, महिमन्तगढ़, प्राणगढ, सामारगढ, साजरागढ, दुर्भेगढ, गोजरागढ, मनुरगढ।

वनगढ प्रदेशमें—वनगढ, गहनगढ, हिमदुर्ग, नलदुर्ग, मिरागढ़, श्रीमन्तदुर्ग, श्रीगदनगढ, नरगुण्डगढ, कोपलगढ, वहादुर, चिन्ता, वेङ्कटगढ, गन्धर्वगढ, टाकेगढ, सुपेगढ, पराक्रमगढ, कनकाद्रिगढ, ब्रह्मगढ, चित्रगढ, मसन्नगढ, हड़पसरगढ, काञ्चनगढ, अवलागिरिगढ, मन्दनगढ।

वाला प्रदेशमें—कोलथार, ब्रह्मगढ, वड़न्नगढ, भास्करगढ़, महिपालगढ़, मृगमदगढ, आम्बे निराईगढ, बुधलाकोट, माणिकगढ़, नन्दीगढ़, गणेशगढ़, जवलगढ़, हातमंगलगढ, मञ्जकप्रकाशगढ़, भीमगढ़, प्रवालगढ़, मेदगिरि, वेनगढ़, श्रीवर्द्धनगढ़, वेदनुर कोट, मल-केल्हर कोट, ठाकुरगढ़, सरसगढ़, मलहारगढ़, भूमण्डलगढ़, विराटकोट।

चण्डीप्रदेशमें—राजगढ, वेनगढ़, कृष्णागिरि, मदोन्मत्तगढ़, आरवलुगढ़, वालाकोट।

शिवाटिका (सं० स्त्री०) १ वंशपत्री नामक तृण। २ श्वेत पुनर्नवा, सफेद गदहपूरना। ३ रक्तपुनर्नवा, लाल गदहपूरना। ४ हिंगुपत्री। ५ काकोदुम्बरिका, कठूमर।

शिवात्मक (सं० क्ली०) शिवः सुखकरः आत्मा स्वरूपो यस्य। १ सैन्धव लवण, सेंधा नमक। (त्रि०) २ शिवमय, शिवस्वरूप।

शिवादित्यमिश्र—सप्तपदार्थीके प्रणेता। इनकी उपाधि न्यायाचार्य थी। न्यायसिद्धांत-मञ्जरीके प्रणेता जानकीनाथने इनका उल्लेख किया है।

शिवादेशक (सं० पु०) ज्योतिर्विद्।

शिवाधूत (सं० स्त्री०) शतद्रु देखो।

शिवानन्द—कई एक संस्कृत ग्रंथकार। १ उपनन्द

चिन्तामणिके प्रणेता। २ देवावतरण काव्यके रचयिता। ३ प्रकाशोदयतन्त्रकार। ४ निर्णयदर्पण नामक दिधीति कार। ये तारापति ठाकुरके पुत्र थे।

शिवानन्द आचार्य—कुलप्रदीप नामक तन्त्रके रचयिता।

शिवानन्द गोस्वामी—विद्यारत्न और विद्याविनोद नामक दो वैद्यक-ग्रन्थके प्रणेता।

शिवानन्द नाथ—एक ग्रन्थकार। ये जयरामभट्टके पुत्र और शिवराम भट्टके पौत्र तथा अनन्तके शिष्य थे। कालनिर्णयदीपिका, कौलगजमर्द्दन, गणेशार्च्चानदीपिका, गुरुपूजाक्रम, गूढ़ार्थादर्श (ज्ञानार्णवतन्त्रकी टीका), चण्डीपूजारसायन, चण्डीमाहात्म्यटीका, त्रिकूटारहस्य-टीका, दक्षिणाचारदीपिका, पदार्थादर्श (कवीन्द्र चन्द्रोदयटीका), पुरश्चरणदीपिका, बटुकार्च्चनदीपिका, मन्त्रचन्द्रिका, मंत्रप्रदीप, मंत्रमहोदधि, पदार्थादर्श (महीधरकृत मंत्रमहोदधिकी टीका), सारदातिलकटीका, श्यामासपर्याविधि और सपर्यासार नामक बहुतेरे ग्रंथ इनके रचे हैं।

शिवानन्द भट्ट—मध्यसिद्धांतकौमुदीटीकाके प्रणेता रामशर्माके प्रतिपालक।

शिवानन्दभट्ट गोस्वामी—लक्ष्मीनारायणार्चाकौमुदी और सिंहसिद्धांतसिंधु नामक दो तंत्रके रचयिता। ये जगन्निवास गोस्वामीके पुत्र थे।

शिवानन्दसरस्वती—योगचिंतामणिके प्रणेता। ये रामचंद्र सदानंद सरस्वतीके शिष्य थे।

शिवानन्द सेन—कृष्णचैतन्यचंद्रोदयके प्रणेता। ये विश्वरूप और कविकर्णपुरके पिता तथा श्रीकृष्णचैतन्यके समसामयिक थे।

शिवानी (सं० स्त्री०) शिवस्य भार्या, यद्वा शिवं मङ्गलमानयतीति आ-नी-ड, गौरादित्वात् ङीष्। १ दुर्गा। २ जयन्ती वृक्ष।

शिवापर (सं० त्रि०) अमङ्गल, शिवेतर।

शिवापीड़ (सं० पु०) १ अगस्त या वक नामक वृक्ष। २ शिवके शेखर।

शिवाप्रिय (सं० पु०) शिवायाः प्रियः। १ वकरा जिसके वलिदानसे दुर्गाका प्रसन्न होना माना जाता है। २ शिवाके पति, शिव। ३ शिवप्रियाको अप्रिय वस्तु।

शिवाफला (सं० स्त्री०) शिवाया इव फलमस्याः। शमी वृक्ष, सफेद कीकर।

शिवावलि (सं० पु०) शिवाभ्यो दीयमानो वलिः। रात्रिकालमें शिवाओंके उद्देशसे देनेयोग्य मांसप्रधान वलि अर्थात् नैवेद्य। तन्त्रसारमें शिवावलिका विषय इस प्रकार लिखा है—

साधक सायंकालमें बिल्वमूल, प्रान्तर या श्मशानमें शिवा देवीके उद्देशसे मांसप्रधान नैवेद्य चढ़ावे। साधक वलिद्रव्य ला कर यदि काली कह कर देवीको आह्वान करे, तो देवी परिवारोंके साथ शिवारूप धारण कर वहां पहुंचती हैं और साधकप्रदत्त वलि ग्रहण करती हैं। वह शिवा यदि वलिद्रव्य भोजन कर ईशानकोणमें रहें और मुख उठा कर सुस्वरसे ध्वनि करें, तो साधकका शुभ जानना होगा। इसका व्यतिक्रम होनेसे अशुभ होता है।

नित्यश्राद्ध, संध्यावन्दन और पितृतर्पण जिस प्रकार अवश्य कर्त्तव्य है, शिवावलि भी उसी प्रकार कौलोंका कर्त्तव्य है। शिवावलि नहीं देनेसे शिवासाधककी जप-पूजा और अन्यान्य सभी कर्म निष्फल होते हैं तथा शिवागण उसे शाप दे कर रोदन करती हैं। जिस समय देशमें राजभय, मारीभय आदि विपद् उपस्थित होती है, उस समय भी शिवावलि देनी होती है। इससे सभी भय दूर और नाना प्रकारके शुभ होते हैं।

साधकके शिवावलि देनेसे एक शिवा यदि उसे प्रीति-पूर्वक भोजन करे, तो सभी शक्तिकी परम प्रीति लाभ होती है। साधककी पशुशक्ति, पक्षिशक्ति और नरशक्ति-पूजामें यदि कोई वैगुण्य हो जाय, तो भी उसके फलसे वह शुभ होता है।

शिवावलि मंत्र पढ़ कर देनी होती है। यह मंत्र इस प्रकार है—

"गृह्ण देवि महाभागे शिवेकालाग्निरूपिणि।
शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्णं वलिन्तव॥
एष सामिषान्नवलिः पशुरूपधरायै नमः।" (तन्त्रसार)

इस मन्त्रसे मांसयुक्त अन्न चढ़ाना होगा। शिवा यह वलि ग्रहण कर यदि सब भक्षण कर ले, तो शुभ और यदि भक्षण नहीं करे, तो अशुभ होता है। इस प्रकार पहले शिवावलि द्वारा शुभाशुभ जान कर पीछे शान्ति-

स्वस्त्ययनादिका अनुष्ठान करना होता है। यथाविधान शिवावलि यदि शुभ हो, तो शान्तिस्वस्त्ययन करना उचित है।

शिवाभिमर्शन (सं० त्रि०) मङ्गलस्पर्शन, मंगलस्पर्शयुक्त। (ऋक् १०।६०।१२)

शिवायतन (सं० क्ली०) शिवस्य आयतनं गृहं।

शिवालय देखो।

शिवाराति (सं० पु०) शिवायाः शृगालस्य अरातिः। कुत्ता जो गीदड़ (शिवा) का शत्रु होता है।

शिवारि (सं० पु०) शिवायाः अरिः। शिवका अरि।

शिवाराति देखो।

शिवारुत (सं० क्ली०) शिवायाः रुतं। शृगालकी ध्वनि, गीदड़के बोलनेका शब्द। शकुनशास्त्रमें शिवारुतका शुभाशुभ विशेष रूपसे लिखा है। शृगालके किस ओर किस तरह बोलनेसे शुभ और किस ओर बोलनेसे अशुभ होता है. वह इस शास्त्रमें अभिज्ञता रहनेसे जाना जा सकता है। वसन्तराजशाकुन और बृहत्संहितामें इसका विषय आलोचित हुआ है। संक्षेपमें यहां लिखा जाता है।

शृगाल यदि 'हू हू' शब्दके बाद 'टा टा' शब्द करे, तो वह उनका स्वाभाविक शब्द जानना होगा। उनका अन्य प्रकारका स्वर प्रदीप्त कहलाता है।

शृगाली यदि 'कक' ऐसा शब्द करे, तो वह उनका स्वाभाविक है। उनका अन्य प्रकारका शब्द अस्वाभाविक है तथा दीप्त कहलाता है। शृगाली यदि किसी दिशासे ऐसे दीप्त स्वरमें बोले, तो विशेष अमङ्गल होता है।

शिवागणके 'थाहि थाहि' ऐसा शब्द करनेसे अग्निभय होता है, 'टाटा' शब्द करनेसे महामारी तथा 'धिक् धिक्' शब्द करनेसे पाप और अग्निभय होता है। शृगालके अनुशब्दमें यदि शिवागण दक्षिणकी ओर रह कर शब्द करे, तो उद्वन्धनसे मृत्यु तथा पश्चिमकी ओर शब्द करनेसे वधू आदिकी जलमें मृत्यु होती है।

जिस शिवाके रवसे मनुष्यके रोंगटे खड़े हो जाते और हाथी घोड़ोंके विष्ठामूत्रत्याग हो कर भय उपस्थित होते हैं, वैसा शिवारव मङ्गलजनक नहीं है। मनुष्य, हाथी और घोड़ेके प्रतिशब्दसे यदि शिवा चुप रह जाय, तो मङ्गलजनक होता है। शिवा 'भे भा' शब्द करने पर अमङ्गल, 'भो भो' शब्द करने पर मृत्यु, 'फिक् फिक्' शब्द करने पर बन्धन और मृत्यु तथा 'हु हु' शब्द करने पर शुभ होता है। शिवा यदि पहले अवर्णके बाद ओं शब्द करते करते पीछे 'टा टा' तथा पहले 'टे टे' और पीछे 'थे थे' शब्द करे, तो अशुभ होता है। यह शिवागणका सन्तोषजनक शब्द है। जो शिवा पहले उच्च घोरवर्ण उच्चारण करके पीछे शृगालानुरूप शब्द करे, तो मङ्गल, धनलाभ और परदेश गये हुए मित्रजनोंका मिलन होता है। (बृहत्संहिता ९० अ०)

शिवालय (सं० पु०) शिवस्य आलयः। १ वह मन्दिर जिसमें शिवजीकी मूर्त्ति या लिङ्ग स्थापित हो, शिवजीका मन्दिर। शास्त्रमें लिखा है, कि चन्द्र-सूर्यग्रहण, सिद्धक्षेत्र तथा शिवालय इन सब स्थानोंमें मन्त्र देनेसे ही दीक्षा होती है। दीक्षापद्धतिमें जो विशेष विधान हैं, उसके अनुसार न दे सकने पर भी दोष नहीं होता, सिर्फ मन्त्रोपदेश देने हीसे होता है।

२ कोई देव-मंदिर। ३ रक्ततुलसी, लाल तुलसी। (क्ली०) शिवा आलीयतेऽत्रेति आ-ली-अच्। ४ श्मशान, मरघट। (कथासरित्सा० ३।३३)

शिवाला (हिं० पु०) १ शिवजीका मन्दिर, शिवालय। २ देवमंदिर। ३ कोयला जलानेकी भट्ठी।

शिवालु (सं० पु०) शृगाल, सियार, गीदड़।

शिवास्मृति (सं० स्त्री०) जयन्तीवृक्ष।

शिवाह्लाद (सं० पु०) शिवस्याह्लादो यस्मात्। १ वक वृक्ष। २ शिवका आनन्द, शिवका आह्लाद।

शिवाह्वय (सं० पु०) १ पारद, पारा। (भावप्रकाश) २ श्वेतार्क, सफेद मदार। ३ वटवृक्ष, वरगद।

शिवाह्वा (सं० स्त्री०) शिवेन आह्वा यस्याः। १ रुद्रजटा, शङ्करजटा। (लि०) २ शिव नामक, शिवके नामका।

शिवि (सं० पु०) १ हिंस्रपशु। (त्रिका०) २ भूर्ज्ज-वृक्ष, भोजपत्रका पेड़। ३ राजविशेष, उशीनर राजाके पुत्र। (मेदिनी) उशीनर राजाके पुत्र शिवि अत्यन्त धार्मिक और दाता थे। एक दिन देवताओंने ऐसा निश्चय किया, कि वे लोग शिविके धर्मकी परीक्षा

करेंगे। पीछे एक दिन अग्निने कपोतका रूप धारण किया और इन्द्र श्येन पक्षीका रूप धारण कर कपोतको मारनेका मिस करके उनके पीछे दौड़ चले। इधर राजा शिवि अपने राजसिंहासन पर बैठे थे, इसी समय वह कपोत राजाकी गोदमें आ गिरा। इसके बाद उस कपोतने राजासे कहा, "मैं श्येनपक्षीके भयसे विह्वल हो कर अपनी प्राणरक्षाके लिये आपकी शरण आया हूं, आप मेरी रक्षा कर अक्षय कीर्त्तिलाभ करें। आप मुझे स्वाध्यायसम्पन्न मुनि समझें। कर्म्मानुसार मैंने कपोतका शरीर धारण किया है।" इसके बाद श्येनने राजाको अभिवादन करके कहा—"महाराज! कपोत मेरा आहार है, आप मेरे भोजनमें विघ्न न डाल कर कपोतको मेरे हवाले करें। मैं इसे खा कर अपनी भूख बुझाऊं।" राजा थोड़ी देर सोच कर बोले—"शरणागतकी रक्षा करना ही राजाका धर्म है। जब यह कपोत मेरी शरणमें आया है, तब मैं इसकी रक्षा अवश्य करूंगा। विशेषतः जो मनुष्य शरणागत को शत्रुके हाथ सौंपता है, वह समय पर इच्छा करनेसे भी परित्राण नहीं पाता। उसके राज्यमें नाना प्रकार का विघ्न उपस्थित होता है। उसके पितृलोग स्वर्ग-से निकाल दिये जाते हैं। पर तुम भी भूखे हो, इस-लिये इस कपोतके बदले तुम्हें एक वृष अन्नके साथ सिद्ध करा कर दिया जाता है; तुम संतुष्ट हो कर इस कपोतको छोड़ दो।" इस पर श्येनने कहा—"राजन्! यह देवदत्त कपोत ही विधाता द्वारा मेरा खाद्य स्थिर किया गया है। अतएव यह कपोत ही मुझे देवें। दूसरे किसी प्रकारके भोजनके लिये मैं प्रार्थना नहीं करता।" तब राजाने कहा—"मैं कपोतको किसी प्रकार नहीं छोड़ सकता, इसके बदले तुम जो कुछ मांगो मैं देनेके लिये तैयार हूं।"

इस पर श्येनने कहा—"राजन् आप यदि इस कपोत-के बराबर अपनी बांई छातीका मांस काट कर मुझे देवें, तो मैं कपोतकी आशा छोड़ सकता हूं।"

राजा श्येनकी ऐसी बात सुन कर उसी समय बांई छातीसे एक टुकड़ा मांस काट कर तराजूके पलरे पर कपोतके बराबर मांस तौलने लगे। किन्तु कपोतने अपना वजन कुछ बढ़ा दिया। तब राजाने अपने शरीर के दूसरे स्थानसे मांस काट कर पलरे पर चढ़ाया पर कपोतका वजन बढ़ता ही गया। फिर राजाने अपने सारे शरीरका मांस काट कर पलरे पर चढ़ा दिया, पर फिर भी कपोतका वजन ही अधिक ठहरा। अनन्तर राजा कोई उपाय न देख आप ही तराजूके पलरे पर चढ़ गये। राजाका यह व्यापार देख कर श्येनने कहा, "राजा! मैं कपोत और तुम्हें दोनोंको मुक्त करता हूं।" इतना कह वह वहांसे चल दिया।

उस समय राजाने अत्यन्त आश्चर्यान्वित हो कर कपोतसे पूछा—"यह श्येन कौन है? ईश्वरके सिवाय कोई ऐसा कार्य्य नहीं कर सकता।" शिविसे इस तरह पूछे जाने पर कपोतने कहा—"मैं अग्निदेव हूं और ये श्येन स्वयं इन्द्र हैं। तुम्हारी परीक्षा करनेके लिये ही हम दोनों इस तरह तुम्हारे सामने उपस्थित हुए हैं। तुमने जो मेरे लिये तलवार द्वारा अपने शरीरका मांस काटा है; इसलिये मैं तुम्हारे अङ्गचिह्नको शुभ, मनोहर, सुगन्धित एवं हिरण्यवर्ण बनाता हूं। तुम अत्यन्त पुण्यवान् और यशस्वी हो। तुम्हारे अङ्गपार्श्वसे कपोतरोमा नामक एक पुत्र पैदा होगा। वह पुत्र अति बलवान् और धार्मिक होगा।" इस प्रकार वरदान दे कर कपोतने वहांसे प्रस्थान किया।

शिवि—दाक्षिणात्यमें तूमकूड़ जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। यह तूमकूड़ नगरसे १५ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहांका नरसिंह-मन्दिर अधिक विख्यात है। प्रति वर्ष माघी पूर्णिमाके अवसर पर यहां इस विष्णुमूर्त्तिके माहात्म्यका प्रचार करनेके लिये १५ दिनका एक मेला लगता है। इस मेलेमें बहुतसे यात्री जुटते हैं और नाना प्रकारकी चीजें बिक्रीके लिये आती हैं।

शिवि—अफगानिस्तानके दक्षिणस्थ एक जिला। १८८१ ई०की गण्डामाक संधिके शर्त्तानुसार यह जिला अङ्ग-रेजोंके शासनाधीन हुआ। यह अक्षा० २६°२०´से ले कर २६°४५´ उ० और देशा० ६७°२५´ से ले कर ६८°१५´ पू०के मध्य विस्तृत है। यह काची नामक प्रसिद्ध समतल प्रान्तरके सर्वोत्तरमें अवस्थित है। एक पर्वत

श्रेणी द्वारा शिवि जिला दो भागोंमें विभक्त है। यह पर्वतश्रेणी दो स्थान पर विच्छिन्न हो कर अत्यन्त गहरी खाई उत्पन्न करती है। इन दोनों खाइयोंमें एक-से हो कर नरी नदी एवं दूसरीसे हो कर माली नदी बहती हैं। शिविका पूर्व भाग कन्धारस्थित अफगान शासनकर्त्ताके शासनाधीन है।

इस जिलेके उत्तर तथा उत्तर-पूर्वमें मारिस और बुमार नामक पठानोंकी अधिकृत पार्वत्य भूमि है। इसे छोड़ एक नरी नदी ही पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिणकी ओर अपना अधिकार जमा रही है। उत्तर दिक्स्थ पर्वतमालाको छोड़ उक्त उपत्यकाभूमिके मध्यभागमें दूसरे दूसरे कई पर्वत हैं। इन पर्वतोंके मध्य एकके ऊपर शिवदुर्ग प्रतिष्ठित है।

उत्तरस्थ पर्वतश्रेणीसे जो नदियां निकली हैं, नरी नदी ही उन सबमें विशेष उल्लेखयोग्य है। यह गुमाल गिरिसङ्कटके दक्षिण प्रांतमें सिन्ध नदीके साथ बहने-वाली प्रवाहिकाओंमें प्रधान गिनी जाती है। नरीको छोड़ और भी कई नदियां इस जिलेमें देखी जाती हैं। उनमें थाली, आरन्द, गाजी एवं छिम्म प्रधान हैं। इन शेषोक्त नदियोंका जल खरीफ अनाजको परिपुष्ट करनेमें उपकारी है। नरी नदीका बाँध सभी स्थानोंमें ऊंचा है। इन ऊंचे बांधोंके एक स्थानमें नरोकाच नामक एक ऊंची समतल भूमि दृष्टिगोचर होती है। बाढ़के समय इस नदीके प्रायः दोनों कछार डूब जाते हैं; किन्तु इस स्थान पर भयका कोई कारण नहीं रहता। थाली नदीका पार्श्ववर्त्ती स्थान थाली भूभाग कहलाता है। ग्रीष्मऋतुमें इस नदीमें बाढ़ आ जाती है, उस समय इन दोनों भूभागोंमें रूई और जुआरकी खेतीके लिये अधिक परिमाणमें उसका जल व्यवहार किया जाता है।

यह अंचल देवमातृक नहीं है अर्थात् यहां अच्छी वर्षा नहीं होती। सुतरां खाई अथवा नदीके जलसे विना खेत सींचे शस्यादि उत्पन्न नहीं होते। गेहूं, जौ, जुआर, कपास और तिल यहांके प्रधान शस्य हैं। यहां कृषिकार्यकी उपयोगी भूमिका परिमाण बहुत कम है। जमीनको दो वर्ष परती छोड़े बिना शस्य अच्छी तरह उत्पन्न नहीं होता। इस स्थानका गेहूं और कपास बहुत प्रसिद्ध है। कहीं कहीं धानकी आवादी भी देखी जाती है।

पठान, बेलुची, ब्राहुई, जाट और हिन्दू यहांके प्रधान अधिवासी हैं। इनमें पठान ही अधिक क्षमताशाली हैं। पठानोंके कई सम्प्रदाय हैं। उनमें बारकजाई, पन्नी और खाजक प्रभृतिके नाम ही विशेष उल्लेखयोग्य हैं। अधिकांश ग्रामोंमें जाट लोग ही वास करते हैं, किन्तु बरकजाई पठानवंश विशेष सम्भ्रान्त है। यहांके पन्नी पठानोंमें भी पांच सम्प्रदाय हैं। मार्घोजानी, सफी, कुर्क, दफाल और मिजरी, इनके अलावे अबदुल्ला, खद्दली, उतरामी, बदुनी, सोहो, विरान, दहर और दोधो प्रभृति छोटे पठान सम्प्रदाय देखे जाते हैं।

शिवि जिलेमें सात शहर हैं, जैसे शिवि, कुर्क, खाजक, गुलुशहर, गुलामबोलाक, थाली और मल। इनके अलावे कहीं कहीं बड़े बड़े ग्राम देखे जाते हैं। इस जिलेमें पुश्तु, बेलुची और सिन्धी भाषा ही अधिक व्यवहृत होती हैं।

यहां स्थानीय लोगोंके व्यवहारके लिये मोटा वस्त्र तैयार किया जाता है। खुरासान और सिन्ध प्रदेशके साथ यहांका व्यापार चलता है। यहां खुरासानसे चावल, मूंग, दाल और बकरीके लोम आदिकी आमदनी होती है। सिन्धसे चीनी, गुड़, मिष्टान्न, मसाला, लवण एवं वस्त्रादि मंगाये जाते हैं। स्थानीय उत्पन्न द्रव्योंके मध्य पशम, घी, गेहूं, जौ और जुआर अधिक होता है।

शिविके प्राचीन इतिहासका अधिक पता नहीं चलता, किन्तु जनश्रुतिसे जाना जाता है, कि किसी समय शिवि एक विशाल राज्यका केन्द्र था। इसके उत्तरांशमें सुविख्यात स्यूलिस्तान नामक एक विशाल जनपद था। बाबरके आत्मजीवनीग्रंथमें शिवि नगरके नामका उल्लेख पाया जाता है। उसके पढ़नेसे मालूम होता है, कि बाबर सिन्धप्रदेशसे साथीसरवार गिरिसंकट-के मध्य हो कर सटियाली प्रदेश गये थे। रास्तेमें उन्होंने रूति नामक एक नगर देखा था। उस नगरमें शिवि जिले-का दारोगा फाजिल गोकानतास नामक एक व्यक्ति २० लोगोंके साथ नगरकी रक्षाके लिये आये थे। उक्त दारोग

साहवेद अरगनके कर्मचारी थे। १५०५ ई०में ववर यहां उपस्थित हुए। साहवेद कन्धहारके शासनकर्त्ता जाल्लनवेगके पुत्र थे। १५२१ ई०में इन्होंने सारे सिन्ध प्रदेशको अपने अधिकारमें ला कर अरगन राज्यकी प्रतिष्ठा की थी। फरिस्तामें विशेष विवरण देखो।

वावर शिवि तक नहीं गये। यह स्थान उस समय भी अरगन राजाके अधीन था। इसके पहले शिव दुर्ग-का उल्लेख किया गया है। कहा जाता है, कि वेलुची वीर मीर चाकरने शिवदुर्गको प्रतिष्ठा की थी। मीर चाकर हुमायूंके समसामयिक व्यक्ति थे। हुमायूंके साथ इनकी कई लड़ाइयां भी हुई थीं। मुगलोंके सिन्ध-प्रदेश विजय कर लेनेके वाद शिवि मुगल राज्यमें मिल गया एवं अहमद शाहके अभ्युत्थानके पहले तक यह स्थान मुगलोंके ही अधीनमें था। दुर्रानी राज्यके नाश हो जानेके वाद शिवि अन्यान्य स्थानोंके साथ वरकजाई सर्दारके अधिकारमें चला गया। १८३६ ई०-से ले कर १८४२ ई० तक शिवि अङ्गरेजोंके अधिकारमें रहा। उस समय शिविके पुरातन दुर्गका जीर्णसंस्कार और कमिसरियट डिपो रूपमें उसका व्यवहार किया गया। उस समय यहां शस्यका जो गोदाम तैयार किया गया था, आज भी वह देखा जाता। वृटिश गवर्मेंट प्रजाकी उपजका एक तिहाई भाग कर स्वरूप वसूल करती थी। एक समय जब खाजक लोगोंने इस प्रकारका कर देना अस्वीकार किया; तब वृटिश सर-कारने एक सेना भेज कर शिवि शहरको विध्वस्त कर डाला। इसके वाद खाजकोंने अधीनता स्वीकार कर ली और वृटिश सरकार उपजका पांचवाँ भाग ही कर स्वरूप लेनेको राजी हुई। १८४३ ई०में कन्धारके सर्दार सदीक महम्मद खाँ तथा खाँदिल खाँने पुनः शिवि पर अधिकार कर लिया। १८४७ ई० तक शिवि उन लोगोंके अधीन रहा। वहुत दिनों तक लगातार लड़ाई दंगेके कारण शिवि नगरकी दुर्दशा सुधर न सकी, इस पर भी वीच वीचमें दुर्द्दान्त मारी लोग शिवि नगरमें लूटपाट मचाते थे। गंडामककी सन्धिके वाद यह अफगानी जिला गवर्मेण्टके हाथमें चला आया। वेलुचिस्तान-स्थित भारतीय गवर्नर जेनरलके एजेण्ट इस स्थानके शासनकर्त्ता नियुक्त हैं। मालचटियारोंके पालिटिकल एजेण्टके ऊपर ही यहांके शासनका भार है। इनके अधीन तहसीलदार, मुन्सिफ तथा पुलिस नियुक्त हैं। वर्त्तमान कालमें यहां म्युनिसपलिटी एवं सिन्धु पिशिन-रैलपथका एक स्टेशन स्थापित हुआ है।

शिविका (सं० स्त्री०) शिवं करोतीति शिव-णिच्, ततो ण्वुल् टापि अत इत्वं। १ यानविशेष, पालकी। पर्याय—याप्ययान, शिवीरथ।

शिविकादान महादानके अन्तर्गत है। यह दान करने-से उसी समय नरकसे मुक्ति होती है। प्रेतके उद्देशसे यदि शिविका दान की जाय, तो नरककी दवा नहीं करनी पड़ती। इस दानका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

शिविका दान महाफलजनक है। यह दान करनेसे नरकका भय नहीं रहता। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिमें, माघ, फाल्गुन या वैशाख मासमें और शरत्कालमें कलसके ऊपर अवस्थित नारायणकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें पूजा करके शिविकादान करना होता है। जो यह दान करते हैं, वे सभी पापोंसे मुक्त होते तथा इस लोकमें नाना प्रकारका ऐश्वर्य्य भोग कर अन्तमें विष्णुलोकको जाते हैं। (अग्निपुराण शिविकादानाध्याय)

२ खाद्यद्रव्यविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—भूसी रहित गेहूंके चूरको दूधमें मर्द्दन करे। पीछे वह तण्डूलयोग्य होनेसे पत्थरके ऊपर कूटे। वाहरमें उसे समान कराके सुखा ले। दूध या जलमें चीनीके साथ इसका पाक करनेसे शिविका प्रस्तुत होती है। गुण—तृप्तिकर, वल-प्रद, गुरु, ग्राहक, रुचिकर, अस्थिसन्धानकारक, पित्त और वायुनाशक। (वैद्यकनि०)

शिविपिष्ट (सं० पु०) महादेव।

शिविर (सं० क्ली०) शेरते राजवलान्यत्र शीङ् स्वप्ने वाहुलकात् किरच्। १ निवेश, डेरा, खेमा। २ किला, कोट। ३ सेनानिवाश, पड़ाव, छावनी।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्ड १०२ अध्याय-में लिखा है, कि शिविर परिखायुक्त तथा उच्च प्राकार वेष्टित और शिविरमें १२ द्वार तथा सम्मुखमें सिंहद्वार होना चाहिये। इन सब द्वारोंमें चित्रविचित्र कपाट

रहेगा। इसमें निषिद्ध वृक्ष नहीं रहेगा तथा प्राङ्गण और सुलक्षण चन्द्रवेध होगा। ४ चरकके अनुसार एक प्रकार तृणधान्य।

शिविगिरि (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

शिवीरथ (सं० पु०) याप्ययान, पालकी।

शिवेतर (सं० त्रि०) शिवादितरः। शिव भिन्न, शुभ-विना।

शिवेनक—शास्त्रसिद्धान्तलेशसंग्रहसारके रचयिता।

शिवेन्द्र सरस्वती—वेदान्तनामरत्नसहस्रव्याख्यान या स्वरूपानुमानके प्रणेता। ये अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वतीके शिष्य थे।

शिवेश (सं० पु०) शृगाल, सियार, गीदड़।

शिवेष्ट (सं० पु०) शिवस्य इष्टः। १ वकवृक्ष। २ श्रीफल, बेल। (त्रि०) ३ शिवका प्रिय।

शिवेष्टा (सं० स्त्री०) दूर्वा, दूब।

शिवोद्भेद (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन तीर्थ। इस तीर्थमें स्नान करनेसे इहलोकमें सुख और अन्तमें स्वर्गमें गति होती हैं। (भारत वनप०)

शिवोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम।

शिवोपपुराण—एक उपपुराण। देवीभागवतपुराणमें इसका उल्लेख है।

शिशन (सं० पु०) १ सेशन देखो। २ शिश्न देखो।

शिशय (सं० त्रि०) अतिशय दानशील, बड़ा दानी।

शिशयिषा (सं० स्त्री०) शयितुमिच्छा शी-सन्-अ टाप्। सोनेकी इच्छा।

शिशयिषु (सं० त्रि०) शयितुमिच्छुः, शी-सन्, शिशयिष उ। सोनेकी इच्छा करनेवाला।

शिशिर (सं० पु० क्ली० शशति गच्छति वृक्षादिशोभा यस्मात् शश-(अजिरशिशिरशिथिलेति। उण् १।५४) इति किरच् प्रत्ययेन साधुः। १ ऋतुविशेष, शिशिर ऋतु। पर्याय—कम्पन, शीत, हिमकूट, कोटन। किसी किसी पुस्तकमें कोटनकी जगह 'कोड़व' ऐसा पाठ देखनेमें आता है। माघ और फाल्गुन इन दोनों महीनोंको शिशिर ऋतु कहते हैं। इस ऋतुका गुण—शीतल, अतिशय रुक्ष, वायुवर्द्धक और अग्निवृद्धिकारक। इस समय स्निग्ध और शीतल जलादिके सेवनसे श्लेष्माका सञ्चय होता है। इस समय हेमन्तकालसे भी अधिक जाड़ा पड़ता है और आदान कालके लिये स्वभावतः शरीरमें रुक्षता उत्पन्न होती है। अतएव इस समय हेमन्तकालकी तरह इन सब विधियोंका पालन करना होता है। यथा—इस समय अर्थात् एक प्रहरके मध्य भोजन, अम्लद्रव्य, मधुरद्रव्य, लवणरसयुक्त द्रव्य, तैलादि अभ्यङ्ग, रौद्रसेवन, व्यायाम, गोधूम, इक्षु विकृति, शालितण्डुल, माषकलाय, मांस, पिष्टान्न, नये चावलका भात, तिल, मृगनाभि, गुग्गुल, कुंकुम, अगुरु, शौचादि क्रियामें उष्ण जल, स्निग्ध द्रव्य, स्त्रीसंसर्ग, गुरु और उष्ण वस्त्र, इनका सेवन और व्यवहार करना कर्त्तव्य है। इससे सभी दोष प्रशमित होते हैं। इस विधिका पालन करनेसे ऋतुजन्य व्याधि होती। (भावप्रकाश)

कविकल्पलताके मतसे इस ऋतुमें वर्णनीय विषय—करीष धूम, कुन्द, पद्मनाश, शिशिरोत्कर्ष। कोष्ठीप्रदीपके मतसे इस ऋतुमें जन्म होनेसे मिष्टान्नभोजी, मधुर स्वर, कलत्रपुत्रादियुक्त, क्षुधाकातर, क्रोधी, सुधी और सुन्दर आकृतिवाला होता है।

२ जाड़ा, शीतकाल। ३ हिम। ४ विष्णु। ५ एक प्रकारका अस्त्र। ६ सूर्यका एक नाम। ७ लाल चन्दन। (त्रि०) ८ शीतल, ठंढा। इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग यौगिक शब्दोंके बनानेमें उनके आरंभमें होता है।

शिशिरकर (सं० पु०) शिशिरः करः किरणो यस्य। चन्द्रमा जिसकी किरणें शीतल होती हैं।

शिशिरकिरण (सं० पु०) चन्द्रमा।

शिशिरगभस्ति (सं० पु०) चन्द्रमा।

शिशिरगु (सं० पु०) शिशिरः गौर्यस्य। चन्द्रमा।

शिशिरता (सं० स्त्री०) शिशिरस्य भावः तल् टाप्। शिशिरका भाव या धर्म, शैत्य।

शिशिरदीधिति (सं० पु०) शिशिरः दीधितिर्यस्य। चन्द्रमा।

शिशिरमयूख (सं० पु०) चन्द्रमा। (वृहत्स० ४२।१३)

शिशिरांशु (सं० पु०) शिशिरः अंशुर्यस्य। चन्द्रमा।

शिशिराक्ष (सं० पु०) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम। यह सुमेरुके पश्चिम ओर बतलाया गया है। (मार्कण्डेयपु० ५५।६)

शिशिरात्यय (सं० पु०) शिशिरस्य अत्ययः। शिशिरागम, शिशिरविगम।

शिशु (सं० पु०) श्यतोति शे-(शेः कित्सन्वच । उण् १।२१) इति उ । १ बालक, छोटा लड़का । पर्याय—पोत, पाक, अर्भक, डिम्भ, पृथुक, शावक, शाव, अर्भ, शिशुक, पोतक, भिप्रक, गर्भ । (जटाधर) किसीके मतसे जातबालक अन्नप्राशनके पहले तक शिशु कहलाता है और उसके अभ्युक्षणमें शुद्धिलाभ होता है ।

ब्रह्मपुराण और मनुवचनमें देखा जाता है, कि जन्मसे आठ वर्ष तकके बालकको शिशु कहते हैं, इस समय उसके भक्ष्याभक्ष्य , वाच्यावाच्य आदि कुछ भी दोषावह नहीं है । चार वर्षके बाद आठ वर्ष तक शिशुओंके बदले-में जो कोई व्रत उसके माता पिता आदि गुरुजन अनुष्ठान कर सकते हैं ।

मनुमें लिखा है, कि जातशिशुको चार महीनेमें सूतिकागृहसे सूर्य दिखानेके लिये बाहर निकालना होता है । जन्मके बाद चार महीने तक शिशुको सूतिकागृहमें रखना होता है । शिशुका जब प्रथम विद्यारम्भ हो, तो गुरु पूरब मुँह बैठें और शिशुको पश्चिम ओर बैठा कर उसे विद्यारम्भ करावें ।

महानिर्वाणतन्त्रमें लिखा है, कि शिशुपुत्र परित्याग कर प्रव्रज्या अवलम्बन नहीं करना चाहिए । २ पशुओं आदिका बच्चा । ३ कुमार, कार्त्तिकेय । (भारत ३।२३१।४) ४ जातकसारके रचयिता । ये वटेशके पुत्र थे ।

शिशुक (सं० पु०) शिशोरिव प्रतिकृतः, शिशु इवार्थे कन् । १ शिशुमार या सूँस नामक जलजन्तु ।

शब्दरत्नावलीमें लिखा है, कि शिशुमारकी आकृति जैसी मछलीको शिशुक कहते हैं । पर्याय—उलूपी, चुलुपी, चुलकी और शिशुक । कोई कोई उत्पल मत्स्यको इसका पर्याय बताते हैं ।

२ शिशु, बालक, बच्चा । ३ एक प्रकारका वृक्ष । ४ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका साँप ।

शिशुक—अन्ध्रभृत्यराजवंशके प्रतिष्ठाता ।

शिशुकाल (सं० पु०) बालककाल, बाल्यसमय, बचपन ।

शिशुकृच्छ् (सं० क्ली०) एक प्रकारका चान्द्रायणव्रत । इसे शिशुचान्द्रायण या स्वल्पचान्द्रायण भी कहते हैं ।

शिशुक्रन्द (सं० पु०) शिशुओंका क्रन्दन, बच्चोंका रोना ।

शिशुगन्धा (सं० स्त्री०) शिशोर्गन्धो यत्र । मल्लिका, मोतिया ।

शिशुचान्द्रायण (सं० क्ली०) शिशुरिव चान्द्रायणं । स्वल्प चान्द्रायण । इसमें कठोरता अल्प है, इसीसे इसका नाम शिशुचान्द्रायण है । ब्राह्मणको चाहिये, कि वे संयतचित्तसे प्रातःकाल चार ग्रास और सायंकाल चार ग्रास भोजन करें । चन्द्रमाको ह्रासवृद्धि न करके उक्त नियमसे आहार करनेसे शिशुचांद्रायण होता है ।

शिशुता (सं० स्त्री०) शिशुका भाव या धर्म, शिशुत्व, बचपन ।

शिशुत्व (सं० क्ली०) शिशोर्भावः त्व । १ शिशुका भाव या धर्म, शिशुता । २ शैशव ।

शिशुदेश्य (सं० त्रि०) शिशुसदृश ।

शिशुनन्दि (सं० पु०) एक राजाका नाम ।

शिशुनाग (सं० पु०) १ एक राक्षसका नाम । २ भागवतके अनुसार एक राजाका नाम । इनके पुत्र काकवर्ण और पौत्र क्षेमधर्मा थे । (भागवत १२।१।४) ३ शैशुनाग देखो ।

शिशुनामन् (सं० पु०) उष्ट्र, ऊंट ।

शिशुपाल (सं० पु०) राजभेद, चेदिवंशीय राजा । पर्याय—दमघोषसुत, चैद्य, चेदिराट् । (जटाधर) कृष्ण द्वारा इनका नाश हुआ था । महाभारतमें इनकी उत्पत्ति प्रभृतिका विवरण इस प्रकार लिखा है—शिशुपालके पिताका नाम दमघोष था । ये श्रीकृष्णके फुफेरे भाई थे । जिस समय इनका जन्म हुआ, उस समय इनके तीन नेत्र और चार भुजाएं थीं । ये जन्म लेते ही गीदड़की तरह चीत्कार करने लगे । इससे इनके माता-पिता, बन्धु, बान्धव सभी अत्यन्त डर गये और उन लोगोंने इन्हें परित्याग करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया । उसी समय आकाशवाणी हुई, 'राजा ! तुम्हारा यह पुत्र अत्यन्त बलवान् और वीरोंका सर्दार बनेगा । अतएव इस लड़केसे तुम्हारे डरनेकी कोई जरूरत नहीं, तुम निःशंकचित्तसे इसका पालन करो । तुम्हारे यत्नसे इसकी मृत्यु न होगी तथा इसका मृत्युकाल भी इस समय उपस्थित नहीं हुआ है । यह जिसके हाथसे मारा जायगा, वह उत्पन्न हो चुका है । इस शिशुका पालन करो ।' ऐसी दैववाणी हुई थी; इसीलिये इसका नाम शिशुपाल पड़ा ।

शिशुपालकी माताने ऐसी दैववाणी सुन तथा पुत्र-स्नेहके वशीभूत हो उस अदृश्य आत्माको लक्ष्य करके कहा—"जिनके मुखसे ऐसी दैववाणी हुई है, उनके चरणोंमें मेरा कोटि कोटि प्रणाम है। मेरे पुत्रका मारनेवाला कौन है, दयाकी राह उसका नाम बता कर मुझे कृतार्थ करें।" इस पर फिर इस तरह दैववाणी हुई, 'जिसकी गोदमें जाते ही इसकी दो भुजाएं आपसे आप कट कर गिर जायगीं तथा जिसे देखते ही इसके ललाटकी तीसरी आँख विलुप्त हो जायगी, उसीके द्वारा ही यह मारा जायेगा।'

सारे संसारके राजा दमघोषके त्रिलोचन और चतुर्भुजपुत्र पैदा होनेकी बात सुन कर उसे देखने आये। चेदिराजने भी समागत राजाओंको स्वागत करनेके बाद प्रत्येककी गोदमें अपने लड़केको समर्पण किया। इस तरह क्रमसे सहस्रों राजाओंकी गोदमें जाने पर भी शिशुपालके दोनों हाथ कट कर नहीं गिरे और न उसके ललाटकी तीसरी आँख ही विलुप्त हुई।

द्वारकामें जब बलराम और जनार्दनने यह वृत्तान्त सुना, तब अपनी फूफीसे मिलनेके लिये दोनों भाई चेदिनगर पहुंचे। प्रेमसे गद्गद हो कर राजमहिषीके श्रीकृष्णकी गोदमें रखते ही शिशुपालकी दोनों अतिरिक्त भुजाएं आप ही आप कट कर गिर गईं और ललाटस्थ नेत्र भी विलुप्त हो गया, यह देख कर रानी बहुत डर गईं और रो कर बोलीं "कृष्ण! मैं डरके मारे विह्वल हो रही हूं। मुझे एक वरदान दो, क्योंकि तुम आर्त्तोंकी आशा और भयभीतोंके अभयप्रद हो।"

अपनी फूफीकी ऐसी कातरवाणी सुन कर श्रीकृष्णने उन्हें धैर्य देते हुए कहा—देवि! तुम डर मत करो। मुझसे डरनेका कोई कारण नहीं है। मुझे क्या करना होगा और मैं तुम्हें कौन-सा वरदान दूंगा आज्ञा दो, वह साध्य वा असाध्य जो कुछ भी हो, मैं अवश्य तुम्हारी आज्ञाका पालन करूंगा। कृष्णकी बात सुन कर राजमहिषीने कहा, "मेरे लिये तुम शिशुपालके सभी अपराध क्षमा करोगे। मेरी यही एकमात्र प्रार्थना है।" कृष्णने कहा 'आपके पुत्रके सौ अपराध मैं क्षमा करूंगा। आप किसी प्रकारकी चिंता न करें।'

क्रमसे शिशुपालने युवावस्थामें पाँव रखा और कृष्णका घोर विरोधी हो उठा। वह कृष्णके साथ नाना प्रकारका अन्याय आचरण करने लगा, किन्तु अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार श्रीकृष्णने उसकी कोई बुराई न की।

राजा युधिष्ठिरने राजसूययज्ञ समाप्त करके सभी उपस्थित राजाओंके सामने भीष्मसे पूछा, कि यज्ञका अर्घ्य किसे प्रदान किया जाय। इस पर भीष्मने कहा 'संसारपूज्य भगवान् कृष्णको छोड़ कर और किसे अर्घ्य प्रदान करोगे? उन्हें ही अर्घ्य प्रदान करो।' जब युधिष्ठिरने अर्घ्य द्वारा श्रीकृष्णकी पूजा की, तब शिशुपाल उसका घोर प्रतिवाद करके भीष्म और श्रीकृष्णकी निन्दा करने लगा तथा समागत राजाओंको उत्तेजित करते हुए बोला—"श्रीकृष्णको अर्घ्य प्रदान कर हमलोगोंका भारी अपमान किया गया है। अतएव हम लोग परस्पर संगठित हो कर श्रीकृष्णके विरुद्ध अस्त्र धारण करें और उसका नाश करें।" क्रमसे एक एक कर शिशुपालके सौ अपराध पूर्ण हो जाने पर भगवान् कृष्णने उसे ललकारा और उसका सर काट डाला। उस समय आकाशसे सूर्यकी तरह एक तेज प्रकट हुआ और भगवान् कृष्णके शरीरमें विलीन हो गया। चेदिपति शिशुपालके मरते ही बिना बादलकी वर्षा, वज्रपात और भूकम्प होना शुरू हो गया। पीछे युधिष्ठिरके आदेशानुसार उनके भाइयोंने शिशुपालका अग्निसंस्कार किया। (भारत वनप० ३६ अ० से ४५ अ० तक)

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके ७४वें अध्यायमें शिशुपालका वध-वृत्तान्त वर्णित है। २ माघ कविकृत काव्य, शिशुपालवधकाव्य। यह संस्कृत साहित्यका अत्युज्ज्वल रत्नस्वरूप है। कविने इसमें असाधारण कवित्व दिखलाया है। प्रवाद है, कि उपमामें कालिदास, अर्थगौरवमें भारवि और पदलालित्यमें नैषध सर्वश्रेष्ठ हैं, किन्तु शिशुपालवधमें उक्त तीनों ही गुण हैं।

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥" (उद्भट)

शिशुपालक (सं० पु०) शिशुपाल स्वार्थे कन्। १ दमघोषका पुत्र शिशुपाल। २ केलिकदम्ब, नीम। (त्रि०)

शिशु पालयतीति पालि-ण्वुल्। ३ बालकपालक, बच्चे-की रक्षा करनेवाला।

शिशुपालवध (सं० पु०) महाकवि माघकृत एक प्राचीन काव्य। इसमें श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपालके मारे जानेकी कथा वर्णित है।

शिशुपालहन् (सं० पु०) शिशुपालं हतवान्-क्विप्। शिशुपालको मारनेवाले श्रीकृष्ण।

शिशुभाव (सं० पु०) शिशोर्भावः। १ शिशुत्व, शिशु-का स्वभाव। २ तात्त्विक भावविशेष।

शिशुमत् (सं० त्रि०) शिशु-अस्त्यर्थे मतुप्। शिशु-विशिष्ट, बालकोपेत। "शिशुमती भिषगृघेनुः" (शुक्ल यजु० २१।२३) 'शिशुमती बालकोपेता' (महीधर)

शिशुमार (सं० पु०) शिशून् मारयतीति मृ-णिच्-अण्। १ जलजंतुविशेष, सूंस। २ मगरकी आकृतिवाला, नक्षत्र मण्डल। ३ शिशमारचक्र देखो। ४ कृष्ण। ५ विष्णु। श्रीमद्भागवतके ५म स्कन्धमें भगवान् विष्णुकी शिशु-माररूपमें कल्पना करके अङ्गविशेषसे समुदय ज्योतिश्चक्र-का संस्थान कल्पित हुआ है।

शिशुमारचक्र (सं० पु०) सब ग्रहों सहित सूर्य, सौर जगत्।

शिशुमारमुखी (सं० स्त्री०) कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। (भारतकर्णप०)

शिशुरोमन् (सं० पु०) नागभेद। (भारत आदिप०)

शिशुवाहक (सं० पु०) शिशु वहतीति वह-ण्वुल्। १ वनछागल, जंगली बकरा। (त्रि०) २ बालकवोढा, शिशुवहनकारी।

शिशुवाह्यक (सं० पु०) शिशुर्वाह्यो यस्य, ततः कन्। वन-छाग, जंगली बकरा।

शिशूल (सं० पु०) शिशु, बालक। (ऋक् १०।७८।६)

शिशोक—एक प्राचीन कवि।

शिश्न (सं० पु०) शशतीति शश बाहुलकात् नक् प्रत्य-येन साधुः। मेढ्, पुरुषकी उपस्थेन्द्रिय, लिङ्ग।

शिश्नदेव (सं० पु०) अब्रह्मचर्या। उपस्थ संयमका नाम ब्रह्मचर्य है। (ऋक् १०।९९।३)

शिश्विदान (सं० त्रि०) श्वेतितुमिच्छतीति श्वित-सन् (श्वितेर्दश्च। उण् २।९३) इति आनच, सनोलुक्, तका-रस्य दकारः। पापकर्मा, कृष्णकर्मा, दुराचार। (अमर) किसी किसीके मतसे शुक्लकर्माको भी शिश्विदान कहते हैं।

शश्वत् अर्थात् बहुत दिनोंसे सभी लोग निन्दा करते आये हैं, इसलिये शिश्विदान शब्दसे पापाचारीका बोध होता है। पुण्यकर्मा अर्थकी जगह श्विद्धातुका अर्थ शुक्ल, शुक्लकर्मविशिष्ट होता है।

शिष—१ वध, हिंसा। भ्वादि० परस्मै० सक० सेट्। लट् शेषति। २ विशेष करण। रुधादि० परस्मै० सक० अनिट्। लट् शिनष्टि, शिंष्टः, शिंशन्ति। शिश ३ असर्वोप-योग, परिशेषीकरण, अवशेष करण।

चुरादि० पक्षमें भ्वादि० परस्मै० सक० सेट्। लट् शेषयति। भ्वादि पक्षमें लट् शेषति। अव+शिष= अवशेष। उद्+शिष=उच्छिष्ट। निर+शिष=निःशेष। परि+शिष=परिशेष, विनाश। वि+शिष=विशेष।

शिषी (सं० पु०) शिखिन् देखो।

शिष्ट (सं० त्रि०) शास-क्त (शास् इदङ् हलोः। पा ६।४।३४) इति उपधाया इकारः (शासि-वसि घसी-नाञ्च। ८।३।६०) इति सत्य ष। १ शान्त, धीर, सुबोध, सुशील, सुबुद्धि। जिसके पाणि, पाद, नेत्र, वाक्य और अङ्ग चपल नहीं, वे ही शिष्ट हैं।

विशेष शब्दनिष्ठ अर्थात् जो श्रेष्ठ हैं, उन्हें शिष्ट कहते हैं। ये शिष्टगण मन्वन्तरकाल तक अवस्थित रहते हैं। मनु और सप्तर्षि आदि लोकविस्तार और धर्मार्थके लिये ये अवस्थान करते हैं। इन शिष्टों द्वारा धर्म पालित और युग युगमें स्थापित होता है। २ अव-शिष्ट। (गीता ४।३०) ३ नीतिज्ञ। ४ वशतापन्न, आज्ञा-कारी। ५ शिक्षित, विनीत। ६ प्रधान, विख्यात। ७ आज्ञप्त। ८ प्रसिद्ध, मशहूर। (पु०) ९ मन्त्री, वजीर। १० सभ्य, सभासद्।

शिष्टता (सं० स्त्री०) १ शिष्ट होनेका भाव या धर्म। २ सभ्यता, सज्जनता, भद्रता। ३ श्रेष्ठत्व, उत्तमता। ४ अधीनता।

शिष्टत्व (सं० क्ली०) शिष्टस्य भावः त्व। शिष्टता देखो।

शिष्टसभा (सं० स्त्री०) राज-सभा, राजपरिषद्।

शिष्टसमाज (सं० पु०) सभ्य समाज, वह समाज जिसमें पढ़े लिखे तथा सदाचारी व्यक्ति हों, भले आदमियोंका समाज।

शिष्टाचार (सं० पु०) शिष्टः आचारः, शिष्टानामाचारो वा। साधु व्यवहार, भले आदमियोंका सा बरताव। साधु जिस आचारका अवलम्बन करते हैं, उसे शिष्टाचार कहते हैं। मत्स्यपुराणमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

वर्णाश्रमके विभागानुसार स्मृतिविहित जो धर्म है अर्थात् स्मृतिशास्त्रमें जो सब वर्णाश्रम धर्म कहे गये हैं, उन्हींको शिष्टाचार कहते हैं। शिष्टगण त्रयी वार्त्ता और दण्डनीति आदि द्वारा आचरण करते हैं, इस कारण भी यह शिष्टाचार कहलाता है। दान, सत्य, तपस्या, अलोभ, विद्या, इज्या, पूजा और दम ये आठ इसके लक्षण हैं। मनु और सप्तर्षि आदि मन्वन्तर कालमें इस आचारका अवलम्बन करते हैं। श्रुति और स्मृतिशास्त्रमें वर्णाश्रम विहित जो धर्म कहा गया है, वही शिष्टाचार है तथा वह धर्म साधुसम्मत है।

शिष्टि (सं० स्त्री०) शास्-क्तिन् (शास इदङ्हलोः। पा ६।४।३४) इति उपधाया इ। १ आज्ञा, अनुशासन, हुकुम। २ शासन, हुकूमत। ३ सुधार। ४ सहायता, मदद। ५ दण्ड, सजा।

शिष्ण (सं० पु०) शिश्न देखो।

शिष्य (सं० त्रि०) शिष्यतेऽसाविति शास (एतिस्तु शास्वृदृजुषः क्यप्। पा ३।१।१०९) इति क्यप्। (शास इदं हलोः। पा ६।४।३४) इति इ (शासवसीति। पा ८।३।६०) इति ष। १ उपदेश्य, वह जो शिक्षा या उपदेश देनेके योग्य हो। पर्याय—छात्र, अन्तेवासी, अन्तेसद्, अन्तेषद्। दीक्षातत्त्व और तन्त्रसारमें शिष्यका लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

जो वाक्य, मन, काय और धन द्वारा गुरुसुश्रूषामें रत रहते हैं, वैसे गुणविशिष्ट व्यक्ति ही शिष्य कहलाते हैं। मन, वाक्य, काय और कर्म द्वारा देवता और गुरुकी जो सुश्रूषा करते हैं तथा सर्वदा शुद्धभाव और महोत्साहयुक्त होते हैं, वे भी शिष्यके लायक हैं। तन्त्रसारमें लिखा है, कि समादिगुणयुक्त, विनयी, विशुद्ध स्वभाव, श्रद्धावान, धैर्यशील, सर्वकर्मसमर्थ, सद्वंशजात, अभिज्ञ, सच्चरित्र और सत्याचारयुक्त ये सब गुणविशिष्ट व्यक्ति प्रकृत शिष्य पदवाच्य हैं, इसके विपरीत गुणविशिष्ट व्यक्तिको शिष्य नहीं बनाना चाहिये। पुण्यशील, धार्मिक, शुद्धान्तःकरण, गुरुभक्त, जितेन्द्रिय, दानशील और ईश्वराधनामें तत्पर, ऐसे गुणविशिष्ट व्यक्ति शिष्यके उपयुक्त हैं।

गुरु निषिद्धलक्षणविशिष्ट शिष्यको शिष्य न बनावें। निषिद्ध शिष्य ये सब हैं—जो व्यक्ति पापात्मा, क्रूरकर्मा, वञ्चक, कृपण, अतिदरिद्र, आचारभ्रष्ट, महाद्वेषी, निन्दक, मूर्ख, तीर्थद्वेषी, गुरुभक्तिहीन और मलिनांतःकरण इन सब निन्दित गुणविशिष्ट व्यक्तिको गुरु मंत्र न दें। इनके सिवा अलस, मलिनवेशी, अतिशय कातर, दांभिक, कृपण, दरिद्र, रोगी, सर्वदा क्रोधपरायण, विषयके प्रति अतिशय अनुरागी, लोभपरतंत्र, असूया और मात्सर्ययुक्त कर्कशभाषी, अन्यायसे उपार्जनसे अर्थशाली, परस्त्रीरत, पण्डितद्वेषी, पण्डिताभिमानी, आचारभ्रष्ट, सूचक, खल, बहुभोक्ता, क्रूरकर्मा, दुश्चरित्र और निंदित इन सब दोषयुक्त व्यक्तिको भी शिष्य नहीं बनाना चाहिये।

जिस व्यक्तिको शिष्य बनाना हो, उसे एक वर्ष तक गुरु अपने पास रख उसके स्वभावादिकी परीक्षा करें। क्योंकि शिष्य यदि पाप करे, तो वह पाप गुरु पर पड़ता है, अतएव गुरु बिना परीक्षा लिये मंत्र न दें। इसमें विशेषता यह है, कि गुणवान् ब्राह्मण एक वर्ष, क्षत्रिय दो वर्ष, वैश्य तीन वर्ष और शूद्र चार वर्ष गुरुके पास रह कर शिष्ययोग्यताको प्राप्त होते हैं।

शिष्यके जो सब गुण और दोष कहे गये हैं, गुरु उनकी अच्छी तरह परीक्षा करनेके बाद मंत्रप्रदान करें। शिष्य कायमनोवाक्यसे गुरुके अनुगामी होवें। कभी भी गुरुके अप्रियाचरण न करें।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि पुत्र और शिष्यमें कोई प्रभेद नहीं है, पुत्रकी तरह शिष्यके प्रति व्यवहार करना होता है।

किन्तु वामनपुराणके मतसे पुत्र और शिष्यमें थोड़ा प्रभेद है, पुन्नाम नरकसे त्राण करता है, इस कारण

पुत्र और अन्तमें पाप हरण करता है, इस कारण शिष्य कहलाता है।

"पुन्नाम्नो नरकात्त्राति पुत्रस्तेनेह गीयते।
शेषपापहरः शिष्य इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥"

(वामनपु० ५७ अ०)

२ वह जो विद्या पढ़नेके उद्देश्यसे किसी गुरु या आचार्य आदिके पास रहता हो, विद्यार्थी। ३ वह जिसने किसीसे शिक्षा प्राप्त की हो, शागिर्द। ४ वह जिसने किसी धार्मिक आचार्यसे दीक्षा या मन्त्र आदि ग्रहण किया हो, मुरीद, चेला। ५ वह जो हालमें श्रावक बना हो।

शिष्यता (सं० स्त्री०) शिष्यस्य भावः तल्-टाप्। शिष्यके होनेका भाव या धर्म, शिष्यत्व।

शिष्यत्व (सं० क्ली०) शिष्य होनेका भाव या धर्म, शिष्यता।

शिष्या (सं० स्त्री०) एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें सात गुरु अक्षर होते हैं। इसका दूसरा नाम शीर्षरूपक भी है।

शिस्त (फा० स्त्री०) १ मछली पकड़नेका कांटा। २ अगूंठा। ३ निशाना, लक्ष्य। ४ दूरबीनकी तरहका एक प्रकारका यन्त्र। इससे जमीन नापनेके समय सीध आदि देखी जाती है।

शिस्तबाज़ (फा० पु०) १ निशाना लगानेवाला, निशानेबाज। २ शिस्त लगा कर मछली पकड़नेवाला।

शिह (सं० पु०) शिह्लक देखो।

शिह्लक (सं० पु०) शिह्ल एव स्वार्थे कन्। गन्धद्रव्यविशेष, शिलारस। पर्याय—कपि, तैल, कृत्रिम, कपिल, चला, तुरुष्क, मुक्तिमुक्त, पिण्डात, वर, पिण्डक, सिह्ल, यावन। (अमर) गुण—रक्षोघ्न और ज्वरनाशक। (राजव०)

शिह्लन (सं० पु०) एक प्रसिद्ध संस्कृत कवि।

शी—स्वप्न, निद्रा। शीङ् शी-धातु, अदादि० आत्मने० अक० सेट्। लट् शेते शयाते शेरते।

शी (सं० स्त्री०) शी-क्विप्। १ शांति। २ शयन, सोना। ३ भक्ति।

शीकर (सं० क्ली०) शीकयतेऽनेनेति शीक बाहुलकादर। (उण् ३।१३१ उज्ज्वल) १ सरल द्रव। (पु०) २ तुषार, ओस, शबनम। ३ वायु, हवा। ४ गन्धा विरोजा। ५ शीत, जाड़ा। ६ जलकण, पानीकी बूंद। ७ धूप, धूना। ८ वर्षाकी छोटी छोटी बूंदें, फुहार।

शीकरिन् (सं० त्रि०) शीकः अस्त्यर्थे इनि। शीकरयुक्त, जलकणाविशिष्ट।

शीघ्र (सं० क्ली०) शिङ्घति व्याप्नोतीति शिघे व्याप्तौ रक् प्रत्ययेन साधुः। १ विलम्बाभाव, जल्द, चटपट, तुरन्त। पर्याय—त्वरित, लघु, क्षिप्र, अर, द्रुत, सत्वर, चपल, तूर्ण, अविलम्बित, आशु, स्राक्, झटिति, अञ्जसा, अह्नाय, सपदि, द्राक्, मंक्षु ये कुछ अव्यय शब्द शीघ्रवाचक हैं। (अमर) शीघ्रका वैदिक पर्याय—नु, मक्षु, द्रवत्, ओष, जीरस, जूर्णि, शूर्त्तस, शूघनाश, शीभ, तृषु, तूर्णि, अजिर, भुरण्यु, शु, आशु, तुतुजि, तूतुजान, तुज्यमानस, अज्रा, साचिवित्, द्युगत, ताजत्, तरणि, वातरंहा।

२ लामज्जक या लामज नामका तृण। (राजनि०) (पु०) ३ कुरुवंशीय अग्निवर्णके पुत्रका नाम। ४ वायु, हवा। ५ ग्रहोंकी गतिविशेष। ग्रहोंकी स्फुट गणना करनेमें शीघ्र, मध्य, केन्द्र आदि स्थिर करके पीछे स्फुट बाहर करना होता है। ६ चक्राङ्ग। (त्रि०) ७ शीघ्रविशिष्ट, जल्द चलनेवाला।

शीघ्रकारिन् (सं० त्रि०) शीघ्रं करोतीति कृ-णिनि। १ क्षिप्रकारी, जल्दीसे काम करनेवाला। २ शीघ्र प्रभाव उत्पन्न करनेवाला। ३ तीव्र, कड़ा।

(पु०) ४ सन्निपात ज्वरविशेष। इसका लक्षण—यह सन्निपात ज्वर वातश्लेष्मोल्बण है। इसमें मूर्च्छा, तन्द्रा, प्यास, श्वास और पार्श्वमें पीड़ा होती है। इस अवस्थामें यदि स्वेद न दिया जाय, तो शूल उत्पन्न होता है। यह सन्निपात ज्वर असाध्य है और इसीका नाम शीघ्रकारी है। इस ज्वरसे आक्रान्त होने पर रोगी एक दिनके भीतर मृत्युमुखमें पतित होता है। अतएव इस सन्निपात ज्वरको मृत्युका पूर्व लक्षण जानना चाहिये।

शीघ्रकृत् (सं० त्रि०) शीघ्रं करोतीति कृ-क्विप् तुक् च। शीघ्रकारक, जल्द करनेवाला।

शीघ्रकृत्य (सं० त्रि०) शीघ्रकरणीय, हठात् किया जाने-योग्य।

शीघ्रकोपी (सं० त्रि०) १ जल्दी गुस्सा होनेवाला। २ चिड़चिड़ा।

शीघ्रग (सं० त्रि०) शीघ्रं गच्छतीति गम-ड। १ द्रुतगामी, शीघ्र चलनेवाला। (पु०) २ सूर्य्य। ३ वायु। ४ खरगोश। ५ अग्निवर्णके पुत्रका नाम।

शीघ्रगति (सं० स्त्री०) शीघ्रा गतिर्यस्य। १ द्रुतगति। (त्रि०) २ शीघ्रगतिविशिष्ट, जल्द चलनेवाला।

शीघ्रगत्व (सं० क्ली०) शीघ्रगस्य भावः त्व। शीघ्रगका भाव या धर्म्म, शीघ्रगति।

शीघ्रगामिन् (सं० त्रि०) शीघ्रं गच्छति गम-णिनि। आशु गमनशील, जल्दी या तेज चलनेवाला।

शीघ्रचेतन (सं० पु०) शीघ्रं चेततीति चित-ल्यु। १ कुक्कुर, कुत्ता। (त्रि०) २ द्रुत चेतनायुक्त, जो किसी बातको बहुत शीघ्र समझे, चतुर।

शीघ्रजन्मन् (सं० पु०) शीघ्रं जन्म यस्य। करञ्जविशेष, कण्ट करञ्ज।

शीघ्रजव (सं० त्रि०) शीघ्रः जवो यस्य। शीघ्रगतिविशिष्ट, द्रुतगति, शीघ्र चलनेवाला। (रामायण २।६८।६)

शीघ्रजीर्ण (सं० क्ली०) तण्डुलीय शाक, चौलाईका साग।

शीघ्रता (सं० स्त्री०) शीघ्रस्य भावः तल्-टाप्। शीघ्रका भाव या धर्म, जल्दी, तेजी, फुरती।

शीघ्रत्व (सं० क्ली०) शीघ्रका भाव या धर्म, जल्दी, तेजी, फुरती।

शीघ्रपतन (सं० पु०) स्त्री सहवासके समय वीर्यका शीघ्र स्खलित हो जाना, स्तम्भनशक्तिका अभाव। वैद्यकमें इसकी गणना एक प्रकारके नपुंसकमें की जाती है।

शीघ्रपाणि (सं० पु०) वायु।

शीघ्रपातिन् (सं० त्रि०) शीघ्रपतनयुक्त।

शीघ्रपुष्प (सं० पु०) शीघ्रं पुष्पं यस्य। अगस्त्य वृक्ष।

शीघ्रबाहुकायन (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शीघ्रवेधिन् (सं० पु०) शीघ्रं विधतीति विध छिद्रीकरणे णिनि। क्षिप्र शरवेधकर्त्ता। जल्दीसे बाण चलानेवाला। पर्याय लघुहस्त।

शीघ्रबोध (सं० त्रि०) शीघ्रबोधविशिष्ट।

शीघ्रयान (सं० क्ली०) शीघ्रग, तेजीसे जानेवाला।

शीघ्रवह (सं० त्रि०) द्रुतवहनकारी, तेजीसे ढोनेवाला।

शीघ्रवहा (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

शीघ्रवाहिन् (सं० त्रि०) शीघ्र-वह णिनि। शीघ्रवहनकारी।

शीघ्रसञ्चारिन् (सं० त्रि०) शीघ्रगामी, तेजीसे चलनेवाला।

शीघ्रा (सं० स्त्री०) १ एक नदीका नाम। २ उदुम्बरपर्णी, दन्ती वृक्ष।

शीघ्रास्त्र (सं० त्रि०) शीघ्र अस्त्रप्रयोगकुशल, शीघ्रतासे बाण चलानेवाला।

शीघ्रिन् (सं० त्रि०) त्वरान्वित।

शीघ्रिय (सं० पु०) १ विष्णु। २ महादेव। ३ बिल्लियोंका लड़ना।

शीघ्रीय (सं० पु०) १ द्रुतसम्बन्धी, शीघ्रका। २ शीघ्रभव।

शीघ्र्य (सं० त्रि०) शीघ्र-यत्। शीघ्रभव, जल्दी उत्पन्न होनेवाला। (शुक्लयजु० १६।३१)

शीत (सं० क्ली०) श्यै-गतौ क्त। (द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः। पा ६।१।२४) इति सम्प्रसारणं (हलः। पा ६।४।२) इति दीर्घः। १ हिमगुण, जाड़ा, सर्दी। २ जल, पानी। ३ त्वच्, चमड़ा। ४ तुषार, ओस। ५ बहुवारद्रुम, लिसोड़ा। ६ वेतसवृक्ष, बेंत। ७ अशनपर्णी, विजयसार। ८ पर्पट, पित्तपापड़ा। ९ निम्ब, नीम। १० कर्पूर, कपूर। ११ दालचीनी। १२ दुर्गन्धतृण। १४ बर्वरचन्दन। १४ हिमऋतु, जाड़ेका मौसिम। साधारणतः अगहन, पूस और माघ ये तीन मास शीत हैं। इन तीन मासोंमें खूब जाड़ा पड़ता है, इसीसे ये तीन मास शीत हैं। किसीके मतसे अगहन और पूस, किसीके मतसे पूस और माघ शीत ऋतु हैं। गुण—यह समय शीतल और स्निग्ध है। इस समय प्रायः सभी मधुर भावापन्न होते हैं तथा प्राणियोंका जठरानल प्रदीप्त रहता है। इस समय पित्तका उपशम तथा वायु और कफका सञ्चय होता है। अतएव इस समय इस प्रकार चलना चाहिये, जिससे वायु और कफ बढ़ न सके।

प्रातःकालमें अर्थात् एक पहरके भीतर भोजन, अम्लद्रव्य, मधुरद्रव्य, लवण रसयुक्त द्रव्य, तैलादि अभ्यङ्ग,

रौद्रसेवन, व्यायाम, गेहूं, ईख, शालितण्डुल, उड़द, मांस, मिष्टान्न, नये चावलका भात, तिल, मृगनाभि, गुग्गुल, केसर और शौचादिक्रियामें उष्ण जल, स्निग्ध द्रव्य, स्त्रीसंसर्ग, गुरु और उष्णवस्त्र, शीतकालमें इन सब द्रव्योंका व्यवहार करना उचित है।

हेमन्त शब्द देखो।

(त्रि०) १५ शीतल, ठंढा। १६ अलस, सुस्त। १७ क्वथिता, काढ़ा।

शीतक (सं० पु० शीत-स्वार्थे कन्। १ शीतकाल, जाड़ेका मौसिम। २ आलसी, सुस्त, काहिल। ३ सन्तोषी पुरुष। ४ दीर्घसूत्री, वह जो हर काममें बहुत देर लगाता हो। ५ अशनपर्णी, वनसनई। ६ वृश्चिक, बिच्छू। ७ देशविशेष। (वृहत्संहिता १४।२७)

शीतकटिबन्ध (सं० पु०) पृथ्वीके उत्तर और दक्षिणके भूमिखण्डके वे कल्पित विभाग जो भूमध्यरेखासे २३$\frac{१}{२}$ अंश दक्षिणके बाद माने गये हैं। इन विभागमें जाड़ा बहुत अधिक पड़ता है। ये दोनों विभाग उष्ण कटिबन्धके उत्तर और दक्षिणमें कर्कट और मकर रेखाके बाद पड़ते हैं।

शीतकण (सं० पु०) जीरक, जीरा।

शीतकर (सं० पु०) शीतः शीतलः करो यस्य। १ ठंढी किरणोंवाला, चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर। (त्रि०) ३ शीतल पाणियुक्त। ४ शीतल करनेवाला, ठंढा करनेवाला।

शीतकषाय (सं० पु०) वैद्यकमें किसी काष्ठौषध आदिका वह कषाय या रस जो उसे छुकुने ठंढे पानीमें रात भर भिगो रखनेसे तैयार होता है।

शीतकाल (सं० पु०) शीतस्य कालः। १ हिम ऋतु, अगहन और पूसके महीने। २ हेमन्त और शिशिर, जाड़ेका मौसिम। पर्याय—शीतक, हेमन्त, सहाः, हैमन।

"कूपोदकं वटच्छाया श्यामा स्त्री इष्टकालयम्।
शीतकाले भवेदुष्णं उष्णकाले च शीतलम्॥"
(चाणक्य शतक)

कूपका जल, वट वृक्षकी छाया, ईंटेका घर और श्यामास्त्री शीतकालमें उष्ण और ग्रीष्मकाल शीतल होती है।

शीतकिरण (सं० पु०) शीतं शीतलं किरणं यस्य। शीतकिरणोंवाला, चन्द्रमा।

शीतकुम्भ (सं० पु०) करवीर, कनेर। (रत्नमाला)

शीतकुम्भिका (सं० स्त्री०) कुम्भोरिका नामकी लता, जलकुम्भी। (चरक)

शीतकुम्भी (सं० स्त्री०) जलजवृक्षविशेष, जलमें उत्पन्न होनेवाली एक प्रकारकी लता जिसे शीतली जटा भी कहते हैं।

शीतकूर्चिका (सं० स्त्री०) लघु वाट्यालक, बरियारा, बला।

शीतकृच्छ्र (सं० पु०) मिताक्षराके अनुसार एक प्रकारका व्रत। शीतल दूध आदि सेवन करके यह व्रत करना होता है, इसलिये इसका नाम शीतलकृच्छ्र पड़ा है। इस व्रतमें तीन दिन तक ठण्ढा जल, तीन दिन तक ठण्ढा दूध और तीन दिन तक ठण्ढा घी पी कर और तीन दिन तक विना कुछ खाये पीये रहना पड़ता है।

शीतकेशरिरस (सं० पु०) ज्वररोगाधिकारोक्त रसौषध-विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—विशुद्ध पारा, गन्धक, तूतिया, हिङ्गुल और विष इनका बराबर भाग। विषसे आठ गुना सोंठ और मिर्च इन्हें एक साथ अच्छी तरह चूर्ण कर असगंध, भांग, कालकासुन्दा और तुलसीके रसमें घोंट कर एक रत्तीकी गोली बनावे। इसका अनुपान तुलसी पत्तेका रस और मधु है। इसका सेवन करनेसे शीत-ज्वर बहुत जल्द आराम होता है।

शीतक्रिया (सं० स्त्री०) शैत्य क्रिया, वह क्रिया जिससे शैत्यगुण हो।

शीतक्षार (सं० क्ली०) शीतः क्षारो यस्य। श्वेत टङ्कण, शुद्ध सोहागा।

शीतगन्ध (सं० क्ली०) शीतो गंधो यस्य। श्वेतचंदन, सफेद चंदन।

शीतगात्र (सं० पु०) एक प्रकारका सन्निपात ज्वर। इसमें रोगीका शरीर बहुत ठण्ढा रहता है। उसे श्वास, खाँसी, हिचकी, मोह, कम्प, प्रलाप, क्लम, बलह्रास, अंत-र्दाह और कै होती है। उसके शरीरमें बहुत पीड़ा होती है। उसका स्वर बिलकुल बदल जाता है और वह बकता झकता है। विशेष विवरण ज्वर शब्दमें देखो।

शीतगु (सं० पु०) शीतो गौः किरणो यस्य। १ चंद्रमा। २ कपूर, कपूर।

शीतगुणकर्मन् (सं० क्ली०) शैत्यगुणप्रधान कर्म। गुण—छादन, मूर्च्छा, तृष्णा, क्लेद और दाहनाशक।

शीतचम्पक (सं० पु०) १ दर्पण, शीशा; आइना। २ प्रदीप, दीआ। (मेदिनी)

शीतच्छाय (सं० पु०) शीता शीतला छाया यस्य। १ वट वृक्ष, बरगद जिसकी छाया बहुत शीतल होती है। (त्रि०) २ शीतल छायाविशिष्ट, शीतल छायावाला।

शीतज्वर (सं० पु०) जाड़ा दे कर आनेवाला बुखार, जूड़ी, जड़ैया।

शीतता (सं० स्त्री०) शीतस्य भावः तल्-टाप्। शीतका भाव या धर्म, शीतत्व, ठण्ढक।

शीतत्व (सं० क्ली०) शीतका भाव या धर्म, शीतता, ठंढापन।

शीतदन्त (सं० पु०) ठंढी वायु या ठंढे जलका दाँतोंसे लगना या एक प्रकारकी वेदना उत्पन्न करना जो वैद्यकके अनुसार दाँतोंका एक रोग माना गया है।

शीतदन्तिका (सं० स्त्री०) नागदन्ती, हाथीशुंडी।

शीतदीधिति (सं० पु०) शीतः दीधितिर्यस्य। चन्द्रमा जिसकी किरणें शीतल होती हैं।

शीतदीप्य (सं० क्ली०) श्वेत जीरक, सफेद जीरा।

शीतदूर्वा (सं० स्त्री०) श्वेत दूर्वा, सफेद दूब।

शीतद्युति (सं० पु०) शीता द्युतिर्यस्य। चन्द्रमा।

शीतद्रु (सं० पु०) क्षीर मोरट। मोरट देखो।

शीतपत्रा (सं० स्त्री०) श्वेत लज्जालुका, सफेद लजालू।

शीतपर्णी (सं० स्त्री०) शीतं पर्णं यस्याः ङीष्। अर्कपुष्पिका, अंधाहुली।

शीतपल्लवा (सं० स्त्री०) शीतं पल्लवं यस्याः। भूमिजम्बू, छोटा जामुन।

शीतपाकिनी (सं० स्त्री०) शीते पाकोऽस्या अस्तीति इनि। १ काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि। २ महासमङ्गा, ककही।

शीतपाकी (सं० स्त्री०) शीते पाको यस्याः ङीप्। १ वाट्यालक, बला। २ काकोली। ३ गुञ्जा, चौंटली, घुंघची। ४ अतिबला, ककही।

शीतपित्त (सं० पु०) रोगविशेष, जुड़-पित्ती नामक रोग। इसका लक्षण—

शीतल वायुके सम्पर्कसे अर्थात् अधिक शीतल वायु सेवन करनेसे कफ और वायु बढ़ जाती है तथा वह पित्तके साथ मिल कर बहिःस्थ चर्म और आभ्यन्तरिक रसरक्तादिमें विचरण कर यह शीतपित्त रोग उत्पादन करती हैं। यह रोग होनेके पहले पिपासा, अरुचि, हृल्लास, शरीरकी अवसन्नता, गुरुत्व और चक्षु लाल हो जाता है।

लक्षण—जिस रोगमें चमड़ेके ऊपर बिरनी काटनेकी तरह वेदना और कण्डुयुक्त शोथ उत्पन्न होता है। तथा रोगी अत्यन्त वमन, ज्वर दाहसे पीड़ित होता है, उसका नाम शीतपित्त है। यह रोग वायुकी अधिकतासे होता है। इसकी चिकित्साका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—इस रोगमें परवलका पत्ता, नीम और अड़ूसके काढ़ेमें मदनफलचूर्ण डाल पान करा कर वमन कराना होता है। इसके बाद त्रिफलाके काढ़ेमें पिप्पलीचूर्ण और गुग्गुल डाल कर विरेचन करना होता है। ऐसा करनेसे यह रोग प्रशमित होता है। शीतपित्तरोगी सरसों तेलकी शरीरमें मालिश और उष्ण जल द्वारा स्नान करे। त्रिफलाके काढ़ेमें मधु डाल सेवन करने या त्रिफला ३ कर्ष, गुग्गुल ५ कर्ष और पिप्पली १ कर्ष इन सब द्रव्यों द्वारा नवकार्षिकवटी प्रस्तुत करके सेवन करनेसे यह प्रशमित होता है। चीनी, मुलेठी, गुड़, आमलकी, यवानी, त्रिकटु और यवक्षार इन सबका चूर्ण समान भागमें ले कर उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे यह रोग शीघ्र चंगा हो जाता है। अदरकके रसमें पुराना गुड़ डाल सेवन करनेसे भी उपकार होता है।

श्वेत सर्षप, हरिद्रा, इलायची और तिल इन सबका चूर्ण कर कटु तैलके साथ मिला उद्वर्त्तन करनेसे शीतपित्तरोग अच्छा हो जाता है।

इस रोगमें पहले महातिक्तघृत पान करावे। स्निग्ध और स्विन्न व्यक्तिको पहले वमन और विरेचनादि द्वारा शरीर शोधन करना आवश्यक है। इस रोगमें आर्द्रकखण्ड विशेष उपकारी है। (भावप्र० शीतपित्तरोगाधि०)

भैषज्यरत्नावलीमें इसकी चिकित्साका विषय इस

प्रकार लिखा है—दूब और हल्दीको एक साथ पीस कर प्रलेप देने अथवा यवक्षार और सैन्धव संयुक्त तैल मर्दन करनेसे यह रोग प्रशमित होता है। गनियारीका मूल पीस कर घृतके साथ सेवन करनेसे ७ दिनमें यह रोग आरोग्य होता है। इस रोगमें लक्षणानुसार कुष्ठोक्त या अम्लपित्तोक्त विधानानुसार चिकित्सा करना आवश्यक है। महातिक्तघृत पान भी इसमें विशेष उपकारी है। गायका घी २ तोला और मिर्च एक तोला सवेरे भक्षण करनेसे शीतपित्तरोग नष्ट होता है। हरिद्राखण्ड और बृहत् हरिद्राखण्ड भी इसमें विशेष उपकारी है।

पथ्यापथ्य—इस रोगमें तिक्त रसयुक्त द्रव्य, कच्ची हल्दी और नीमपत्र भोजन उपकारी है। वातरक्त रोगमें जो सब विधि और निषेध है, उसीके अनुसार चलना आवश्यक है। इसमें स्नान और उष्ण वस्त्रसे शरीर ढका रखना विशेष उपकारी है।

शीतपुष्प (सं० क्ली०) शीतं पुष्पं यस्य। १ परिपेल तृण, केवटी मोथा। २ शैलेय, छरीला। (पु०) ३ शिरीष वृक्ष, सिरिस।

शीतपुष्पक (सं० क्ली०) शीतं पुष्पमिव कन्। १ शैलेय, छरीला। २ परिपेल तृण, केवटी मोथा। (पु०) शीतं पुष्पं यस्य कन्। ३ अर्क वृक्ष, आक, मदार।

शीतपुष्पा (सं० स्त्री०) शीतं पुष्पं यस्याः। अतिवला, ककही।

शीतपुष्पी (सं० स्त्री०) शीतपुष्प, अतिवला, ककही, कंघी।

शीतपूतना (सं० स्त्री०) भावप्रकाशके अनुसार एक प्रकारका वालग्रह या वालरोग। इस रोगमें वालक कांपता और खाँसता है, उसकी आँखें दुखती हैं और शरीर दुवला पड़ जाता है, शरीरसे दुर्गन्ध आती है और उसे वमन तथा अतिसार होता है।

वालरोग शब्द देखो।

शीतपूर्वकज्वर (सं० पु०) एक प्रकारका विषम ज्वर। इसमें त्वक् स्थित श्लेष्मा और अनिल पहले ज्वरकालमें ठंढा लगता है, पीछे जब वह ठंढक शान्त होता है तब अतिशय दाह होने लगता है। जिस ज्वरमें ये सब लक्षण होते हैं, उसे शीतपूर्वकज्वर कहते हैं।

शीतप्रभ (सं० पु०) शीता प्रभा यस्य। १ कर्पूर, कपूर। (त्रि०) २ शीतल प्रभायुक्त, ठंढी किरणोंवाला।

शीतप्रिय (सं० पु०) शीतः प्रियो यस्य। पर्पट, पित्तपापड़ा।

शीतफल (सं० पु०) शीतं फलं यस्य। १ उडुम्बर, गूलर। २ पीलू। ३ आमलक वृक्ष, अखरोटका पेड़। ४ आमलकी, आँवला। ५ वहुवार वृक्ष, लिसोड़ाका पेड़।

शीतवला (सं० स्त्री०) महासङ्गा, ककही।

शीतभञ्जीरस (सं० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—हरिताल और शुक्तिभस्म समभाग, तूतिया उसका नवांश एक साथ घृतकुमारीके रसमें घोंटे। पीछे सूखी वनगोइंठीकी आगमें गजपुटमें पाक करे। जब वह ठंढा हो जाय, तब चूर्ण करे। यह औषध चीनीके साथ आध रत्ती भर सेवन करनी पड़ती है। इसका सेवन करनेसे शीतज्वर नष्ट होता है। यह औषध पीनेसे किसी किसीको कै भी हो जाती है।

शीतभानु (सं० पु०) शीतो भानुर्यस्य। चन्द्रमा।

शीतभीरु (सं० त्रि०) शीताद् भीरुः। १ ठंढकसे भय करनेवाला। (स्त्री०) २ मल्लिका, मोतिया। ३ निर्गुण्डी देखो।

शीतभीरुक (सं० पु०) १ मल्लिका, जूही। २ एक प्रकारका शालिधान्य। ३ कृष्णनिर्गुण्डी, काली निसोथ। (त्रि०) ४ शीतसे भीत, जाड़से डरा हुआ।

शीतभोजिन् (सं० त्रि०) शीत-भुज-णिनि। शीतभोगकारी, जाड़ा भुगतनेवाला।

शीतमञ्जरी (सं० स्त्री०) शीतो मञ्जरी यस्याः। शेफालिका, निर्गुण्डी।

शीतमय (सं० त्रि०) शीत स्वरूपे मयट्। शीतस्वरूप।

शीतमयूख (सं० पु०) शीतो मयूखो यस्य। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

शीतमयूखमालिन् (सं० पु०) शीता मयूखमालाऽस्यास्तीति इनि। शीतमयूख, चन्द्रमा। (बृहत्सं० ८।२४)

शीतमरीचि (सं० पु०) शीतो मरीचिर्यस्य। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

शीतमूलक (सं० क्लो०) शीतं मूलं यस्य बहुव्रीहौ कन्। १ उशीर, खस। (त्रि०) २ शीतल मूलयुक्त।

शीतमेह (सं० पु०) शुक्रमेह। (माधवनि०)

शीतमेहिन् (सं० पु०) प्रमेहरोगी, जिसे प्रमेह रोग हुआ हो। (चरक)

शीतरम्य (सं० पु०) शीते रम्यः। १ प्रदीप, दीआ। (त्रि०) २ शीत रमणीय, शीत कालमें जो रमणीय होता हो।

शीतरश्मि (सं० पु०) शीतो रश्मिर्यस्य। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

शीतरस (सं० पु०) ईखके कच्चे रसकी बनी हुई एक प्रकारकी मदिरा।

शीतरसिक (सं० पु०) शीतलरसकृत आसव। गुण—जीर्णकारक, विवन्धनाशक, स्वर और वर्णविशोधक, लेखन, शोफ, उदर और अर्शरोगमें हितकर।

शीतरुच् (सं० पु०) शीता रुक् यस्य। चन्द्रमा।

शीतरुह (सं० क्लो०) श्वेतरक्तपद्म, सफेद और लाल कमल। (वैद्यकनि०)

शीतल (सं० त्रि०) शीतोऽस्यास्तीति शीत (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९८) लच्। १ शीतगुणविशिष्ट, ठंढा, सर्दी। पर्याय—सुषीम, शिशिर, जड़, तुषार, शीत, हिम। (अमर) २ प्रसन्न, तृप्त। ३ क्षोभ या उद्वेगरहित, जिसमें आवेशका अभाव हो। (क्लो०) शीतं लातीति ला-क। ४ कसीस। ५ शैलज, छरीला। ६ श्रीखण्डचन्दन, श्वेतचन्दन। ७ शैत्य, शीत, ठंढक। १० वीरणमूल, उशीर, खस। ११ पीतचन्दन। (पु०) १२ अशनपर्णी, वनसनई। १३ राल, धूना। १४ भीमसेनीकर्पूर। १५ शाल वृक्ष। १६ हिम, बर्फ। १७ मटर, केराव। १८ पदुमकाठ। १९ चम्पकवृक्ष, चम्पा। २० बहुवार, लिसोड़ा। २१ अर्हद्विशेष, चौवीस तीर्थङ्करोंमें एक, दशवां तीर्थङ्कर। जैन शब्दमें विवरण देखो। २२ व्रतविशेष। मेषसंक्रान्ति अर्थात् महाविषुव संक्रान्तिमें यह व्रत करना होता है। २३ चन्द्रमा। (शब्दच०)

शीतलक (सं० क्लो०) शीतल-कन्। १ सितोत्पल। (पु०) २ मरुवक, मरुआ। (राजनि०) स्वार्थे कन्। ३ शीतल देखो।

शीतलचीनी (हिं० स्त्री०) कवावचीनी।

शीतलच्छद (सं० पु०) शीतलच्छदो यस्य। १ चम्पक, चंपा। २ शीतलपत्र।

शीतलजल (सं० क्लो०) शीतलं जलं यस्य। १ उत्पल, कमल। २ हिमजल, ठंढा पानी।

शीतलता (सं० स्त्री०) शीतलस्य भावः तल्-टाप्। १ शीतलत्व, ठंढापन, सर्दी। २ अमृतवल्ली। ३ जड़ता।

शीतलत्व (सं० क्लो०) शीतलस्य भावः त्व। शीतलता देखो।

शीतलप्रद (सं० पु०) शीतलं प्रददाति प्र-दा-क। १ चन्दन। (त्रि०) २ हिमदाता, शीतल देनेवाला।

शीतलवातक (सं० पु०) शीतलो वातो यस्य, कन्। १ अशनपर्णी, अपराजिता। (त्रि०) २ ठंढी हवावाला।

शीतलस्वामिन् (सं० पु०) जैनतीर्थङ्करभेद, अवसर्पिणीका दशवाँ अर्हत्। जैन शब्दमें विवरण देखो।

शीतला (सं० स्त्री०) शीतल स्त्रियाँ टाप्। १ देवीविशेष, शीतला देवी। यह वसन्त और विस्फोटकादिकी अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं। वसन्तरोग होने पर उसके निवारणार्थ शीतला देवीकी पूजा करनी होती है।

कृत्यतत्त्वमें चैत्रकृत्यके मध्य लिखा है, कि चैत्रसंक्रान्तिमें थूहर पेड़ पर घण्टाकर्णकी पूजा करके विस्फोटक आदिके छूटनेकी इच्छासे शीतलादेवीकी यथाविधान पूजा करे। पूजा करके स्कंदपुराणोक्त शीतलाका स्तव करे। स्तव इस प्रकार है—

"नमामि शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बरीं।
मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालङ्कृतमस्तकां॥"

हिंदू और बौद्धोंका विश्वास है, कि शीतला देवीकी कृपा ही वसंत आदि दुष्ट रोगसे छुटकारा पानेका एकमात्र उपाय है। इस रोगका मंत्र और औषध आदि कुछ भी नहीं है, केवल शीतला देवी ही त्राणकारिणी हैं। यह देवी श्वेतवर्णा रासभोपरिसंस्थिता हैं, हाथमें समार्जनी और कुम्भ तथा मस्तक पर सूर्पा है। सोम और शुक्रवारको इस देवीकी पूजा होती है।

वैद्यकके मतसे मसूरिका रोगका नाम शीतला है। विशेष विवरण मसूरिका शब्दमें देखो।

२ कुटुम्बिनी लता। ३ आरामशीतला। ४ नील दूर्वा, नीली दूब। ५ शीतली वृक्ष। (सुश्रुतसू० १६ अ०)

शीतलाषष्ठी (सं० स्त्री०) माघमासकी शुक्लाषष्ठी। सन्तानकी मंगल कामनासे द्वादश मासकी शुक्लाषष्ठी तिथिमें षष्ठी देवीकी पूजा करे। प्रति मासमें एक एक षष्ठीका नाम है। माघमासकी शुक्लाषष्ठीका नाम शीतलाषष्ठी है। स्त्रियोंके सन्तान होने पर इस प्रकार षष्ठीव्रत करना अवश्य कर्त्तव्य है।

शीतली (सं० स्त्री०) १ जलमें होनेवाला एक पौधा, शीतली जटा, पातड़ा। पर्याय—शीतकुम्भी, शुक्लपुष्पा, जलोद्भवा, कालानुसारिवा। (रत्नमाला) २ श्रीवल्ली। ३ विस्फोटक, चेचक।

शीतवर (सं० पु०) शिरियारी, गुठवा।

शीतवरा (सं० स्त्री०) ककही, कंघी।

शीतवल्क (सं० पु०) शीतलो वल्को यस्य। उडुम्बर, गूलर।

शीतवल्लभ (सं० पु०) पर्पटका पित्तपापड़ा, शाहतरा।

शीतवल्ली (सं० स्त्री०) नीलदूर्वा, नीली दूब।

शीतवहा (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

शीतवातोष्णवेताली (सं० स्त्री०) भूतयोनिविशेष।

शीतवासा (सं० स्त्री०) यूथिका, जूही।

शीतवीर्य (सं० क्ली०) १ शीतगुणद्रव्य, मधुर द्रव्यमात्र ही शीतवीर्य है। गुण—गुरु, कफ और वायुकारक, पित्तनाशक, वात और कफ जन्य रोगनाशक। (सुश्रुत सू०) २ पद्मकाष्ठ, पदुमकाठ। (पु०) ३ पाषाणभेद, पखानभेद। ४ पर्पटक, पितपापड़ा। ५ प्लक्षवृक्ष, पाकड़ी पकड़ी। ६ नीलदूर्वा, नीली दूब। ७ वचा, वच। (त्रि०) ८ खानेमें जिसका प्रभाव ठंढा हो, जिसकी तासीर सर्द हो।

शीतवीर्यक (सं० पु०) शीतं वीर्यं यस्य, कन्। १ प्लक्षवृक्ष, पाकड़ा। (त्रि०) २ शीतवीर्ययुक्त।

शीतवृक्षा (सं० स्त्री०) सुवर्चला, हुरहुरका पेड़।

शीतशिव (सं० पु०) शीते शीतकाले शिवः शुभप्रदः। १ मधुरिका, सौंफ। २ शक्तुफलावृक्ष। (क्ली०) ३ सैन्धव लवण, सेंधा नमक। ४ शैलेय नामक गन्ध द्रव्य, शैलज। ५ कर्पूर, कपूर।

शीतशिवा (सं० स्त्री०) शीते शिवा मङ्गलप्रदा। १ मिश्रेयाख्य क्षुप, सोआ। २ शमीवृक्ष सफेद कीकर।

शीतशूक (सं० पु०) शीते शूको यस्य। १ यव, जौ। (भावप्र०) (त्रि०) २ शीतल शूकयुक्त।

शीतशैल (सं० पु०) शीतप्रधानः शैलः। शीताद्रि, हिमालयपर्वत।

शीतसंवासा (सं० स्त्री०) शीतवासा, जूही।

शीतसंस्पर्श (सं० त्रि०) शीतः संस्पर्शो यस्य। १ वायु। २ प्रबलस्पर्शयुक्त।

शीतसन्निपात (सं० पु०) एक प्रकारका सन्निपात जिसमें शरीर सुन्न और ठंढा हो जाता है, पक्षाघात, अर्द्धांग।

शीतसह (सं० पु०) शीतं सहते इति सह अच्। १ पीलु, झलु वृक्ष। (त्रि०) २ शीतसहनीय।

शीतसहा (सं० स्त्री०) शीतसह-टाप्। १ वासन्ती वृक्ष, नेवारी। २ नीलसिन्धुवारवृक्ष, नीली निसिन्दा। ३ मल्लिकाभेद, मोतिया, बेला। ४ जाती वृक्ष, चमेली। ५ शेफालिका, निर्गुंडी। ६ पीलू वृक्ष।

शीतह्रद (सं० पु०) शीतलह्रदयुक्त।

शीतांशु (सं० पु०) शीताः अंशवो यस्य। १ कर्पूर, कपूर। २ चन्द्रमा।

शीतांशुतैल (सं० क्ली०) शीतांशोः कर्पूरस्य तैलं। कर्पूरतैल।

शीतांशुमत् (सं० पु०) शीतांशु-मतुप्। शीतांशुविशिष्ट शीतकरणयुक्त चन्द्रमा। (रामायण २।८८।१५)

शीता (सं० स्त्री०) १ रामकी पत्नी। (शब्दरत्ना०) २ लाङ्गलपद्धति। ३ मद्यसामान्य। ४ मल्लिकावृक्ष। ५ अतिवला। ६ महासमङ्गा, ककही। ७ कुटुम्बिनी क्षुप। ८ नीलदूर्वा, नीली दूब। ९ शिल्पनी तृण, शिल्पिका घास। १० दूर्वा, दूब। ११ आमलकी, आंवला। १२ क्षीरणी, खिरनी। १३ तेजोवल्कल, तरवरकी छाल। १४ शमीवृक्ष। १५ मेथिका, मेथी। १६ लाङ्गलिया। १७ विषलाङ्गलिया। (वैद्यकनि०)

शीताङ्ग (सं० पु०) १ शीत नामक सन्निपात। यह सन्निपात ज्वर होनेसे रोगीका गात्र शीतल, श्वास, कास, हिक्का, मोह, कम्प, प्रलाप, क्लम, बलह्रास, अन्तर्दाह,

वमि, शरीरमें वेदना और स्वर विकृत हो जाता है।

इस सन्निपात ज्वरमें सर्वांग शरीर शीतल, छर्दि, अतिसार, कम्प, क्षुधानाश, अङ्गमर्द, हिक्का, श्वास, श्रम तथा सर्वांग शिथिल ये सब लक्षण होते हैं। २ शीतल अङ्ग, ठंढा बदन। ज्वर शब्द देखो।

शीताङ्गी (सं० स्त्री०) १ शीतल अङ्गयुक्ता, वह स्त्री जिसका बदन ठंढा हो। २ हंसपदी लता।

शीतातपत्र (सं० क्ली०) शीतातपत्राणक। शीत और आत पनिवारक छत्र। (वृहत्सं० ७३।६)

शीताद (सं० पु०) शीतमादत्ते आ-दा-क। दाँतके मसूड़ोंका एक रोग। इसमें मसूड़े जगह जगह पर पक जाते हैं और उनमेंसे दुर्गन्धि निकलने लगती है

शीताद्य (सं० पु०) एक प्रकारका विषमज्वर।

शीताद्रि (सं० पु०) शीतजनकोऽद्रिः। हिमालय पर्वत।

शीतान्त (सं० पु०) १ पर्वतविशेष। (विष्णु पु० २।२।२५) २ शीतावसान।

शीताबला (सं० पु०) महासमङ्गा, ककही।

शीताभ (सं० पु० क्ली०) १ कर्पूर, कपूर। २ चन्द्रमा।

शीताम्बु (सं० स्त्री०) १ दुग्धिका, दुद्धी नामकी घास। (क्ली०) २ शीतल जल, ठंढा पानी।

शीतारिरस (सं० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा एक भाग, गन्धक एक भाग, सोहागा एक भाग, तांबा एक भाग, निस्तुष जयपाल दो भाग, सेंधा नमक एक भाग, मिर्च एक भाग, इमली छालकी राख एक भाग, चीनी या गुड़ एक भाग, इन्हें जंबीरी नीबूके रसमें एक दिन घोंट कर दो रत्तीकी गोली बनावे। इस औषधका सेवन करनेसे वातश्लेष्मज्वर और शीतज्वर आराम होता है।

शीतार्त्त (सं० त्रि०) शीतेन कृतः 'ऋतस्य तृतीया समासे' इति सूत्रेण वृद्धिः। शीतालु, शीतसे पीड़ित।

शीताल (सं० पु०) हिन्ताल वृक्ष।

शीतालु (सं० त्रि०) शीतं न सहते इति (शीतोष्ण-तृप्रेभ्यस्तन्न सहते। पा ५।२।१२२) इति वार्त्ति-कोक्त्या आलुच्। शीतार्त्त, शीतसे पीड़ित।

शीताश्मन् (सं० पु०) शीतः शीतलोऽश्मा। १ चन्द्र-कान्तमणि। २ शीतल प्रस्तर।

शीतिकावत् (सं० त्रि०) शीतलयुक्त, शैत्यविशिष्ट।

शीतिमन् (सं० पु०) शीतस्य भावः (वर्णादृढ़ादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति शीत-इमनिच्। शीतका भाव, शैत्य।

शीतीकरण (सं० क्ली०) शीत-कृ-ल्युट्, अभूततद्भावे च्वि। द्रव द्रव्यका विशेष रूपसे शीतल करनेका उपाय। सुश्रुतमें लिखा है, कि प्रवात देशमें स्थापन, उदक-क्षेपण, यष्टिका भ्रामण, व्यजन, वालुकाप्रक्षेपण और शिकतावलम्बन, इन सब उपायोंसे द्रव्य शीतल होता है।

शीतीभाव (सं० पु०) शीत-भू-घञ्, अभूततद्भावे च्वि। १ मोक्ष, मुक्ति। (त्रिका०) २ शीतलत्व, शीत-लता। ३ मनोविकारोंके वेगका न रह जाना, शांति, शम।

शीतेतर (सं० त्रि०) शीतादितरः। उष्ण, गरम।

शीतेषु (सं० पु०) मन्त्रपूत शीतल बाण, वरुण बाण।

शीतोत्तम (सं० क्ली०) शीतेषु वस्तुषु मध्ये उत्तमं। जल।

शीतोद (सं० क्ली०) शीतं उदकं यस्य शब्दस्य उदा-देशः। मेरुके पश्चिममें अवस्थित सरोवरविशेष।

शीतोदक (सं० पु०) एक नरकका नाम।

शीतोपचार (सं० पु०) शीतल उपचार।

शीतोष्ण (सं० त्रि०) शीत और उष्ण।

शीतोष्मन् (सं० क्ली०) सामभेद।

शीत्कार (सं० पु०) शीदिति शब्दस्य कारः करणं। १ वर स्त्रियोंकी रतिकालध्वनि। २ शीत्कृति मात्र।

शीत्कारिन् (सं० त्रि०) शीत कृ-णिनि, शीत्कारकारी, शीत्कार शब्द करनेवाला।

शीत्कृत (सं० क्ली०) शीदिति शब्दस्य कृतं करणं। शीत्कार।

शीत्कृतिन् (सं० त्रि०) शीत्कृत-अस्त्यर्थे इनि। शीत्कार-युक्त, शीत्कारकारी।

शीधु (सं० पु० क्ली०) शेतेऽनेनेति शी (शीङो धुग् लग् वलच वालनः। उण् ४।३८) इति धुक्। मद्यभेद, पकी हुई ईखके रससे बनी हुई मदिरा। शीधु दो प्रकारका होता है—ईखका रस सिद्ध कर जो शीधु प्रस्तुत किया जाता है उसे पक्वरस शीधु तथा कच्चे ईखके रससे

जो शीधु बनाया जाता है, उसे शीतरस शीधु कहते हैं। गुण—पक्करस शीधु श्रेष्ठ गुणदायक, स्वर और वर्ण-प्रसादक, अग्निवर्द्धक, बलकारक, वायु और पित्तवर्द्धक, सद्य स्निग्धकारक, रुचिजनक तथा विवन्ध, मेद, शोथ, अर्श, उदर और कफरोगनाशक। शीतरसशीधु पक्करस शीधुसे अल्प गुणदायक, विशेषतः लेखन गुणयुक्त होता है। (भावप्र०)

शीधुगन्ध (सं० पु०) शीधो मंद्यविशेषस्य गन्धो यत्र। १ वकुल वृक्ष, मौलसिरी। २ मद्यगन्ध।

शीधुप (सं० त्रि०) शीधुं पातीति पा-क। शीधुपान-कर्त्ता, शराब पीनेवाला।

शीन (सं० त्रि०) श्यै-गतौ क (द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः। पा ६।१।२४) इति सम्प्रसारणं (श्योऽस्पर्शे। पा ८।२।४७) इति न। १ घनीभूत, जमा हुआ। (पु०) २ मुख। ३ अजगर। (मेदिनी)

शीपत्य (सं० त्रि०) शीपाल-सम्बन्धी।

शीपाल (सं० पु०) शैवाल। (ऋक् १०।६८।५)

शीपुद्रु (सं० पु०) वृक्षविशेष।

शीफर (सं० त्रि०) १ स्फीत। २ रम्य।

शीफालिका (सं० स्त्री०) शेफालिका, निर्गुण्डी।

शीभ (सं० पु०) शीघ्र। "प्रयति शीभ माशुभिः" (ऋक् १।३७।१४) "शीभं शीघ्रं" (सायण)

शीभव (सं० पु०) १ शीकर। २ आत्मश्लाघी। (शुक्ल यजु० १६।३१) ३ जलप्रवाह।

शीभ्य (सं० पु०) शीभ्यते प्रशंस्यते इति शीभ-ण्यत्। १ शिव, महादेव। २ वृष, बैल। (त्रि०) ३ आत्म-श्लाघिभव। ४ जलप्रवाहभव। ५ क्षिप्रभव।

शीमूल (सं० पु०) शाल्मलिवृक्ष, सेमलका पेड़।

शीर (सं० पु०) शेते इति (स्थायितञ्चीति। उण् २।१३) इति रक्। १ अजगर। २ नागरङ्गवृक्ष। (त्रि०) ३ तेज, नुकीला।

शीर (फा० पु०) क्षीर, दूध।

शीरखिश्त (फा० पु०) हकीमोंमें एक रेचक औषध। कहते हैं, कि खुरासानमें पेड़ों और पत्थरों पर ओसकी बूंदोंकी तरह जमी हुई मिलती है।

शीरखोरा (फा० पु०) १ दूध पीता बच्चा। २ अनजान बालक।

शीरमाल (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी खमीरी रोटी। इस पर पकाते समय दूधका छींटा दिया जाता है।

शीरा (फा० पु०) १ चीनी मिला हुआ पानी, शर्बत। २ चीनी या गुड़को पका कर शहदके समान गाढ़ा किया हुआ रस, चाशनी।

शीराजा (फा० पु०) १ वह बुना हुआ रङ्गीन या सफेद फीता जो किताबोंकी सिलाईकी छोर पर शोभा और मजबूतीके लिये लगाया जाता है। २ प्रबन्ध, इन्तजाम। ३ सिलसिला।

शीरि (सं० स्त्री०) रक्तनाड़ी, शिरा।

शीरिका (सं० स्त्री०) वंशपत्री नामक तृण।

शीरिन् (सं० पु०) १ मुञ्जतृण। २ हरितदर्भ, कुश, कुशा। ३ लाङ्गली, कलिहारी।

शीरी (सं० वि०) १ मीठा, मधुर। २ प्रिय, प्यारा।

शीरीनी (फा० स्त्री०) १ मिठास, मीठापन। २ खानेकी वस्तु जिसमें खूब चीनी या मीठा पड़ा हो, मिठाई। ३ बताशा, सिरनी।

शीर्ण (सं० त्रि०) शॄ-क्त। १ कृश, दुबला, पतला। २ छितराया हुआ, टूटा फूटा हुआ, खंड खंड। ३ च्युत, गिरा हुआ। ४ मुरझाया हुआ, सूख कर सिकुड़ा हुआ। ५ जीर्ण, फटा पुराना। ६ चुपका हुआ। (क्ली०) ७ स्थौनेयक, थुनेर।

शीर्णत्व (सं० क्ली०) शीर्णस्य भावः त्व। शीर्णका भाव या धर्म, कृशता।

शीर्णदल (सं० पु०) १ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। (त्रि०) २ शीर्णदलविशिष्ट, जिसका दल सूख गया हो।

शीर्णपत्र (सं० पु०) शीर्णपत्रमस्य। १ कर्णिकार वृक्ष, कनियारी। २ पट्टिकालोध्र, पठानी लोध। ३ निम्ब-वृक्ष, नीमका पेड़। (क्ली०) शीर्णं पत्रं। ४ विशीर्ण-पत्र, सूखा हुआ।

शीर्णपर्ण (सं० पु०) शीर्णं पर्णमस्य। १ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। (क्ली०) २ विशीर्ण पत्र, सूखा पत्ता।

शीर्णपाद (सं० पु०) शीर्णौ पादौ यस्य विमातृशापा-देवास्य तथात्वं। १ यमराज। पुराणोंमें कथा है, कि माताके शापसे यमराजके पैर क्षीण हो गये थे। (त्रि०) २ कृशपाद, जिसका पैर शीर्ण हो।

शीर्णपुष्पिका (सं० स्त्री०) शीर्णं पुष्पं यस्याः शीर्णपुष्पी, ततः स्वार्थे कन्। १ मधुरिका, सौंफ। २ सोआ।

शीर्णपुष्पी (सं० स्त्री०) शीर्णपुष्पिका देखो।

शीर्णमाला (सं० स्त्री०) १ पृश्निपर्णी, पिठवन। २ विशीर्णमाला।

शीर्णरोमक (सं० पु०) ग्रन्थिपर्णभेद, एक प्रकारका गठिवन।

शीर्णवृन्त (सं० क्ली०) शीर्णं वृन्तं यस्य। वृहद्गोल तरबूज। पर्याय—सुखवास, सुखाश। (रत्नमाला) गुण—कफ, मेद, अग्नि, रुचि और शुक्रकारक, क्षार, मधुर, आनाह और प्लीहानाशक तथा लघुपाक।

शीर्णाङ्घ्रि (सं० पु०) शीर्णौ अङ्घ्री यस्य, विमातृशापादेवास्य तथात्वं। १ यमराज। (त्रि०) २ कृशपाद, जिसका पैर शीर्ण हो।

शीर्त्ति (सं० स्त्री०) १ भङ्ग, चूर्ण। २ खण्डन, तोड़ने फोड़नेकी क्रिया।

शीर्य (सं० त्रि०) १ भंगुर, नाशवान, टूटने फूटने योग्य। (क्ली०) २ एक प्रकारका दूब या घास जिसका प्रयोजन यज्ञोंमें पड़ता था।

शीर्व्वि (सं० त्रि०) शृणातीति शॄ-क्विन्। (शॄ वॄ स्तॄ जागृभ्यः क्विन्। उण् ४।५४) १ अपकारक। २ हिंसक। ३ वर्बर, जंगली।

शीर्ष (सं० क्ली०) १ मस्तक, माथा। २ शिर, कपाल, मुण्ड। ३ अग्रभाग, सामना। ४ शिखा, चोटी। ५ कृष्णागुरु, काला अगर। ६ एक पर्वतका नाम। ७ एक प्रकारकी घास।

शीर्षक (सं० क्ली०) शीर्षे कं सुखमस्मात्। १ मुण्ड, शिर। २ मस्तक, माथा। ३ शिखा, चोटी। ४ शिरमें लपेटनेकी माला। ५ शिरोरक्षण सन्नाह, टोपी। पर्याय—शीर्षण्य, शिरस्त्र। ६ नारिकेल वृक्ष, नारियल। ७ अगर ८ व्यवहार या अभियोगका निर्णय, फैसला। ९ वह शब्द या वाक्य जो विषयके परिचयके लिये किसी लेख या प्रबन्धके ऊपर लिखा जाय। १० शीष धातु, सीसा। (पु०) शीर्षभिद्य इवार्थे कन्। ११ राहुग्रह।

शीर्षकपाल (सं० क्ली०) करोटिका, खोपड़ी।

शीर्षक्ति (सं० स्त्री०) शिरोरोग, शिरका पीड़ा।

शीर्षक्तिमत् (सं० त्रि०) शीर्षक्ति अस्त्यर्थे मतुप्। शिरोरोगविशिष्ट, जिसका माथा दुखाता हो।

शीर्षघातिन् (सं० त्रि०) शीर्षं हन्तीति हन (कुमारशीर्षयो णिनि। पा ३।२।५१) इति णिनि। मस्तकच्छेदकारी, शिर काटनेवाला।

शीर्षच्छेद (सं० पु०) शीर्षस्य छेदः मस्तकच्छेद, शिर काटना।

शीर्षच्छेदिक (सं० त्रि०) शीर्षछेदमर्हतीति शीर्षच्छेदठक्। वधार्ह, मारने लायक।

शीर्षच्छेद्य (सं० त्रि०) शीर्षच्छेदं नित्यमर्हतीति (शीर्षच्छेदात् यच्च। पा ५।१।६५) इति यत्। मस्तकच्छेदनोपयुक्त, शिर काटनेके लायक।

शिर्षणी (सं० पु०) शीर्षदेश, शीर्षण्य।

शीर्षण्य (सं० क्ली०) शिरसे हितं शिरस् (शरीरावयवात् यत्। पा ५।१।६) इति यत् (ये च तद्धिते च। पा ६।१।६१) इति शिरसः शीर्षन्नादेशः। १ शीर्षक, शिरस्त्र, टोप। २ सुलझा हुए साफ बाल। ३ विशद कच, चारपाईका सिरहाना। पर्याय—शिरस्य। (त्रि०) ३ शिरोदेशमें निबद्ध। (ऋक् २।१६।२८ सायण) ४ श्रेष्ठ।

शीर्षण्वत् (सं० त्रि०) मस्तकयुक्त, मस्तकविशिष्ट।

शीर्षतस् (सं० अव्य०) शीर्ष-तसिल्। मस्तकसे या मस्तक पर।

शीर्षन् (सं० क्ली०) शिरः, मस्तक।

शीर्षपट्टक (सं० पु०) मस्तकवन्धनार्थं पट्ट, माथा बाँधनेको पट्टी।

शीर्षपट्टक (सं० पु०) १ शिरमें लपटनेका कपड़ा। २ पगड़ी, मुरेठा, साफा।

शीर्षपर्णी (सं० स्त्री०) शीर्षपर्णा देखो।

शीर्षबन्धना (सं० स्त्री०) शीर्षपट्टक, माथा बाँधनेकी पट्टी।

शीर्षविन्दु (सं० पु०) १ शिरके ऊपर और ऊंचाईमें सबसे ऊपरका स्थान। २ मोतिया विंद।

शीर्षभार (सं० पु०) शिरका बोझ, माथेका मोट।

शीर्षभारिक (सं० त्रि०) शिर पर भार ढोनेवाला।

शीर्षभिद्य (सं० क्ली०) शीर्षभेदनीय, मस्तक काटनेके योग्य।

शीर्षमालय (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

शीर्षरक्ष (सं० क्लो०) शीर्षं मस्तकं रक्षतीति रक्ष-अण्। शिरस्त्राण, टोप।

शीर्षरक्षण (सं० क्ली०) शिरस्त्राण, पगड़ी, साफा।

शीर्षरोगिन् (सं० त्रि०) शिरोरोगी, जिसका माथा दुखता हो।

शीर्षवत् (सं० त्रि०) शीर्षन् अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य व, नकारस्य लोपः। मस्तकविशिष्ट, शिरवाला।

शीर्षवर्त्तन (सं० पु०) अभियोग चलानेवालेका उस दशामें दण्ड सहनेके लिये तैयार होना जब कि अभियुक्तने दिव्य परीक्षा दे कर अपनेको निर्दोष प्रमाणित कर दिया हो, शिरोपस्थायी।

शीर्षविरेचन (सं० क्ली०) शिरोविरेचन, नस्यद्रव्य।

शीर्षव्यथा (सं० स्त्री०) शिरोव्यथा, माथा दुखना।

शीर्षशोक (सं० पु०) शिरःपीड़ा, शिरमें दर्द होना।

शीर्षान्त (सं० त्रि०) मस्तकके समीप।

शीर्षामय (सं० पु०) शीर्षस्य आमयः। शिरःपीड़ा, शिरमें दर्द होना।

शीर्षायन (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शीर्षभार (सं० पु०) शीर्षभार, मस्तकका बोझ।

शीर्षभारिक (सं० त्रि०) शीर्षभारिक, मस्तक पर भार उठानेवाला।

शीर्षोदय (सं० पु०) शीर्षे शीर्षदेशे उदयो यस्य। राशि और लग्नविशेष। मिथुन, कन्या, सिंह, तुला, वृश्चिक, कुम्भ और मीन इन सब राशि और लग्नको शिर्षोदय कहते हैं।

शील (सं० क्ली०) शीलयतीति शील अतिशायने अच्, यद्वा शीङ् स्वप्ने (शीङो धुक् लक् वलच् वालनः। उण् ४।३८) लक्, अर्द्धर्चादित्वात् पुंलिङ्गमपि। १ आचरण, चाल, व्यवहार, चरित्र। २ प्रवृत्ति, स्वभाव, आदत, मिजाज। ३ सद्वृत्त, उत्तम आचरण।

ब्रह्मण्यादि तेरह प्रकारका धर्ममूल। मनुटीकामें कुल्लूकने लिखा है, कि ब्रह्मण्यता आदि तेरह प्रकारके शील हैं। जैसे—ब्रह्मण्यता, देवपितृभक्तता, सौम्यता, अपरोपतापिता, अनसूयता, मृदुता, अपारुष्य, मित्रता, प्रियवादित्य, कृतज्ञता, शरण्यता, कारुण्य और प्रशान्ति। रागद्वेष परित्यागका नाम शील है। (मनु २।६)

४ उत्तम स्वभाव, अच्छी प्रकृति, अच्छा मिज़ाज। ५ संकोचका स्वभाव, मुरौवत। ६ दूसरेका जी न दुखे यह भाव, कोमल हृदय। (पु०) शील—अतिशायने अच्। ७ अजगर। (त्रि०) ८ प्रवृत्त, तत्पर, प्रवृत्तिवाला। जैसे—दानशील, पुण्यशील।

शीलक (सं० क्ली०) शाल स्वार्थे कन्। शील देखो।

शीलकीर्त्ति (सं० पु०) एक बौद्धयतिका नाम।

शीलखण्डन (सं० क्ली०) दुर्विनीतशीलताखण्डनकारी।

शीलता (सं० स्त्री०) शीलस्य भावः तल्-टाप्। शीलका भाव या धर्म, शीलत्व, साधुता।

शीलत्याग (सं० पु०) शीलस्य त्यागः। शीलतापरित्याग, शीलतावर्जन।

शीलधर (सं० त्रि०) धरतीति धृ-अच्, शीलस्य धरः। सुस्वभाव, सच्चरित्र। (भागवत ३।१४।३६)

शीलन (सं० क्ली०) शील-ल्युट्। १ अभ्यसन, अभ्यास। २ अतिशायन। ३ उपधारण। ४ सेवानुभावन। ५ प्रवर्त्तन। ६ पाठनिश्चय। 'भविनो गुणनो शालनं स्मृतं।' (त्रिका०)

शीलपालित (सं० पु०) बौद्धाचार्यभेद।

शीलभङ्ग (सं० पु०) शीलतावर्जन।

शीलभद्र (सं० पु०) बौद्धयतिभेद।

शीलभाज् (सं० त्रि०) शीलं भजते शील-भज-ण्वि। सुशील, सच्चरित्र, सुस्वभाव।

शीलभ्रंश (सं० पु०) शीलत्याग, शीलताका परित्याग।

शीलवत् (सं० त्रि०) शीलमस्यास्तीति शील-मतुप्, मस्य व। १ शीलविशिष्ट, अच्छे आचरणका, सात्विक वृत्तिका। २ अच्छे या कोमल स्वभावका, मुरौवत-वाला।

शीलवान् (हिं० वि०) शीलवत् देखो।

शीलविप्लव (सं० पु०) शीलताका विपर्यय, शीलता-का परित्याग।

शीलविलय (सं० पु०) शीलताविलोप, शीलत्याग।

शीलविशुद्धनेत्र (सं० पु०) देवपुत्रभेद।

शीलवृत्त (सं० त्रि०) सुशील।

शीलशालिन् (सं० त्रि०) शीलेन शालते शोभते शील शाल-णिनि। सुस्वभाव, अच्छे मिजाजका।

शीला (सं० स्त्री०) शीलमस्यास्तीति शील-अच्-टाप्। १ शीलयुक्ता, सद्वृत्ता, सुशीला। २ कौण्डिन्य मुनिकी पत्नीका नाम।

शीलिक (सं० स्त्री०) शीलयुक्ता।

शीलित (सं० क्ली०) शील-क्त। १ चीन। (त्रि० २ अभ्यस्त।

शीलिन् (सं० त्रि०) शील-णिनि। शीलयुक्त, शील-विशिष्ट। यह शब्द प्रायः ही उपपदपूर्वक व्यवहार होता है।

शीलेन्द्रबोधि (सं० पु०) एक बौद्धयतिका नाम।

शीलोष्णा (सं० स्त्री०) भूतयोनिविशेष।

शीवन् (सं० पु०) शेते इति शी (शीङ्कुशि वहीति। उण् ४।११३) इति क्वनिप्। अजगर।

शीवल (सं० क्ली०) शी-बाहुलकात् वलः गुणाभावश्च। १ शैलेय, छरीला, पथरफूल। २ शैवाल, सेवार।

शीशम (फा० पु०) एक प्रकारका पेड़। इसका तना भारी, सुन्दर और मजबूत होता है। यह पेड़ बहुत ऊंचा और सीधा जाता है। इसकी पत्तियाँ छोटी और गोल होती हैं। लकड़ी लाल रङ्गकी होती है और मजबूती तथा सुन्दरताके लिये प्रसिद्ध है। इससे पलङ्ग, कुरसी, मेज़ आदि सजावटके सामान बहुत बढ़िया बनते हैं।

शीशमहल (अ० पु०) १ वह कमरा या कोठरी जिसकी दीवारोंमें सर्वत्र शीशे जड़े हों। २ कांचका मकान।

शीशा (फा० पु०) १ एक मिश्र धातु। यह बालू या रेह या खारी मिट्टीको आगमें जलानेसे बनती है। यह पारदर्शक होती है तथा खरी होनेके कारण थोड़े आघात से टूट जाती है। इसे कांच भी कहते हैं। २ भाड़, फानूस आदि कांचके बने सजावटके सामान। ३ कांचका वह खण्ड जिसमें सामनेकी वस्तुओंका ठीक प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है और जिसका व्यवहार चेहरा देखनेके किया जाता है, दर्पण, आइना।

शीशी (फा० स्त्री०) शीशेका छोटा पात्र जो तेल, इत्र, दवा आदि रखनेके काममें आता है, कांचकी लम्बी कुप्पी।

शुक (सं० क्ली०) शोभते इति शुभ दीप्तौ (शुकवल्कोल्काः। उण् ३।४२) इति कप्रत्ययेन निपातनात् साधुः। १ ग्रन्थिपर्ण, गठिवन। २ वस्त्र, कपड़ा। ३ वस्त्राञ्चल, कपड़ेका आँचल। ४ शिरस्त्राण, पगड़ी, साफा। ५ शोणक वृक्ष, सोनापाठा। ६ स्वर्णक्षीरी, भरभांड़। ७ लोध्र, लोध। ८ तालीशपत्र। ९ सिरिसका पेड़। (पु०) १० पक्षिविशेष, तोता, सुग्गा। पर्याय—कीर, वक्रतुण्ड, मेधावी, दाड़िमप्रिय, रक्ततुण्ड, वक्रचञ्चु, चिमि, चिमिक, शूक, प्रियदर्शन, मञ्जुपाठक। इसका मांस—परम वृष्य, विपाकमें गुरु, शीतल, कास, श्वास और क्षयनाशक, संग्राही, लघु और दीपन होता है। (राजनि०) इस पक्षीको पढ़ानेसे यह अविकल मानवकी तरह बोल सकता है। ११ व्यासके पुत्र, शुकदेव। परिक्षितको ब्रह्मशाप होने पर इन्होंने उन्हें श्रीमद्भाग वत सुनाया था। शुकदेव देखो। १२ रावणके एक दूतका नाम।

शुककर्णी (सं० स्त्री०) शुकस्य कर्णमिव कर्णं यस्याः। १ वह जिसका कान सुग्गेके समान हो। २ एक प्रकार का पौधा।

शुककीट (सं० पु०) हरे रङ्गका एक फतिङ्गा जो खेतोंमें दिखाई पड़ता है।

शुककूट (सं० पु०) दो खम्भोंके बीचमें शोभाके लिये लटकाई हुई माला।

शुकच्छद (सं० क्ली०) शुकवत् छन्दोऽस्य। १ ग्रन्थि-पर्ण, गठिवन। २ तेजपत्ता। ३ तोतेका पर।

शुकजिह्वा (सं० स्त्री०) शुकस्य जिह्वेव फलं यस्याः। वृक्षविशेष, सुआठोंठी नामक पौधा।

शुकतरु (सं० पु०) शुकवत् तरुः, शुकवर्णपर्णविशिष्टत्वादस्य तथात्वं, शुकप्रियस्तरुर्वा। शिरीषवृक्ष, सिरिसका पेड़।

शुकता (सं० स्त्री०) शुकस्य भाव तल् टाप्। शुकका भाव।

शुकतुण्ड (सं० पु०) १ हिंगुल, सिंगरफ। २ तोतेकी चोंच। ३ हाथकी एक मुद्रा जो तान्त्रिक पूजनमें बनाई जाती है।

शुकतुण्डी (सं० स्त्री०) शुकजिह्वा या सूआठोंठी नामक पौधा।

शुकत्व (सं० क्ली०) शुक-भावे-त्व। शुकता।

शुकदेव—ऋषिभेद। ये वेदव्यासके पुत्र थे। इनकी जन्म-कथा देवीभागवतमें इस प्रकार लिखी है—एक समय घृताची नामकी अप्सरा वेदव्यासके पास आई। वेदव्यास उसे देख कर सोचने लगे, कि यह देवकन्या मेरे योग्य नहीं है, मैं इसे ले कर क्या करूंगा? उस समय घृताची वेदव्यासको चिन्तित देख शापके डरसे डर गई और सोचने लगी, कि किस तरह वेदव्यासके पाससे भाग कर जान बचाऊं। अन्तमें वह शुकपक्षीका रूप धारण कर वहांसे भाग चली। इधर महर्षि कृष्ण-द्वैपायनने जिसे सर्वसुलक्षणा दिव्य कामिनीमूर्त्तिमें देखा था, अभी उसे पक्षीरूपमें देख कर आश्चर्यसागरमें डूब गये। इस संसारमें ब्रह्मर्षि या देवता कोई भी हो किन्तु पञ्चवाणके लक्ष्यसे कोई बच नहीं सकता। वेदव्यासकी भी वही दशा हुई। उस समय वेदव्यास कामवाणसे अत्यन्त पीड़ित हो उठे। उस समय उन्होंने सोचा, कि कामवाणसे विह्वल होना तपस्वियोंके पक्षमें बहुत ही घृणाजनक है, अतएव वे कामवेगका दमन करनेके लिये अत्यन्त चेष्टा करने लगे; किन्तु सारे विश्वमें ऐसी किसकी सामर्थ्य है, जो हो॰महारको रोक सके, सुतरां वेदव्यास तपस्वियोंमें सर्वश्रेष्ठ होने पर भी कामवेगकी ज्वाला नहीं सह सके। तब वे कामवेग दमन करनेके लिये अग्नि उत्पन्न करनेकी इच्छासे दोनों अरणियोंको मथने लगे। हठात् उसका वीर्य स्खलित हो कर उस अरणिकाष्ठके बीचमें जा गिरा। उस समय वे वीर्यपातकी ओर ध्यान न दे कर लगातार अरणिकाष्ठका संघर्षण करते रहे। कुछ ही क्षणके अभ्यन्तर उस अरणिकाष्ठसे द्वितीय वेदव्यासकी मूर्त्ति धारण कर एक सर्वांग सुन्दर बालक प्रकट हुआ।

व्यासदेव उस सर्वांग सुन्दर बालकको देख कर बहुत ही आश्चर्यान्वित हुए और सोचने लगे, कि यह क्या हो गया? अन्तमें उन्होंने निश्चय किया, कि यह भगवान् सदाशिवके वरप्रभावके सिवा और कुछ भी नहीं है। इसके बाद वेदव्यासने उस अग्निसदृश तेजस्वी कुमारकी जातक्रियादि सम्पन्न की। स्वयं गंगादेवीने वहां पहुंच कर उस बालकके शरीरके भीतरकी सभी नाड़ियोंको अपने पवित्र जलसे धो दिया। उस बालकके जन्मोत्सवके उपलक्षमें आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी, आकाशमें देवता लोग दुन्दुभि बजाने लगे, अप्सराएं नृत्य करने-लगीं और नारद, तुम्बुरु प्रभृति वहां जा कर गान करने लगे।

घृताचीने शुकपक्षीका रूप धारण कर वहांसे प्रस्थान किया था, इसीलिये वेदव्यासने उस बालकका नाम शुकदेव रखा था। सभी देवता और विद्याधर वहां उपस्थित हुए और उस अरणिगर्भसे उत्पन्न बालकको देख कर आनन्दसे पुलकित हो उठे एवं सब मिल कर उनकी स्तुति गाने लगे। उसी समय आकाशसे वहां दण्ड, कमण्डलु और काला-मृगचर्म पतित हुए। इधर वह बालक जन्म लेते ही प्रदीप्त अग्निशिखाकी तरह नवयुवक जैसा बड़ा हो गया। यह देख कर व्यासदेवने विधिपूर्वक उनका उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया। संस्कारके बाद शुकदेवजी सुरगुरु बृहस्पतिको अपना आचार्यगुरु मान कर ब्रह्मचर्यव्रतके अनुष्ठानमें प्रवृत्त हुए। बाद महात्मा शुकने ब्रह्मचर्य-व्रतानुष्ठायी हो कर रहस्यके साथ चारों सांगवेद, आयुर्वेद प्रभृति उपवेद तथा समस्त धर्मशास्त्र अध्ययन करनेके बाद गुरुदक्षिणा दे कर समावर्त्तन किया।

शुकदेवजी समावर्त्तनके बाद पिताके पास उपस्थित हुए। व्यासदेव उनको समावर्त्तन करते देख बड़े प्रसन्न हुए और गार्हस्थ्याश्रमके लिये विवाह करनेका अनुरोध करते हुए बोले—"वत्स! तुमने समस्त वेदोंका अध्ययन किया है, ब्रह्मचर्यके अनुष्ठानसे तुम्हारे मनका सारा विकार दूर हो चुका है। अब किसी सुन्दरी कामिनीका पाणिग्रहण कर गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करो। गार्हस्थ्याश्रम सभी आश्रमोंमें श्रेष्ठ है; अतएव इस आश्रममें प्रवेश कर अपने तीनों ऋणसे उऋण होओ।

महर्षि व्यासने जब अपने पुत्रको गार्हस्थाश्रममें प्रवेश करनेका अनुरोध किया तब विषयभोगविरागी जीवन्मुक्त महात्मा शुकदेवने पिताको संसारासक्त देख कर कहा—"पिता! आप पूरे तपस्वी हैं, आप अपनी तपस्याके प्रभावसे वेदको विभक्त करनेमें समर्थ

हुए हैं, सुतरां आप धर्मतत्त्व विषय अच्छी तरह जानते हैं और जब मैं आपका पुत्र हूं, तब आपका आज्ञानुवर्त्ती हूं, किन्तु परमार्थ के लिये मुझे जो कुछ आज्ञा देंगे, मैं उसका पालन करूंगा।"

व्यासजीने शुकदेवको संसारसे विरक्त देख कर उन्हें संसाराश्रममें प्रवेश करनेके लिये नाना प्रकारके वचनोंमें समझाते हुए कहा—"वत्स! मैंने अत्यन्त कठोर तपस्या करके तुम्हें प्राप्त किया है। तुम भी वेदशास्त्र अध्ययन करके सभी प्रकारका ज्ञान प्राप्त कर चुके हो। अतएव तुम्हें और कुछ कहना न होगा। देखो, युवावस्था ही विषयभोगका समय है। इसलिये तुम अपनी युवावस्थाको व्यर्थ न करो। यदि दरिद्रताके भयसे वैराग्य करने चले हो, तो उस भयको शीघ्र अपने हृदयसे दूर कर दो। क्योंकि मैं किसी राजाके यहांसे यथेष्ट धन ला दूंगा, तुम स्वच्छन्दतापूर्वक संसारका सुख उपभोग करो।"

शुकदेवजी पिताकी ऐसी बातें सुन कर और चुप नहीं रह सके। उन्होंने कहा "पिता! बड़े बड़े ऋषियों-का कहना है, कि सांसारिक सुख वास्तवमें सुख नहीं हैं, वह दुःखके जालसे आच्छन्न है। अच्छा आप ही बतावें, इस मनुष्यलोकमें ऐसा कौन सा निर्मल सुख है, जिसे किसी प्रकारका भी दुःख स्पर्श नहीं कर सकता हो? पिता! आपमें कठोर तपश्चर्याका प्रभाव विद्य-मान है, सुतरां आपको कुछ समझना मेरी मूर्खता है। तथापि मैं जो कुछ कह रहा हूं, उस पर जरा विचार करें। मैं आपके आदेशानुसार विवाह करते ही स्त्रीके वशीभूत हो जाऊँगा। पराधीन व्यक्तिको खास कर इन्द्रियपरायण पुरुषको किस प्रकार सच्चा सुख मिल सकता है? मनुष्य काष्ठ वा लौहादि निर्मित कारागार-में बन्द रहने पर भी किसी प्रकार मुक्त हो सकता है; परन्तु स्त्री-पुत्रादिके बन्धनमें पड़ा हुआ व्यक्ति आजन्म मुक्त नहीं हो सकता। जब मैं अयोनिसम्भूत हूं, तब योनिमें मेरी प्रवृत्ति क्यों कर हो सकती है? विशे-षतः मैं अनिर्वचनीय परमात्मजनित सुख छोड़ कर क्या विष्ठाभोगसुखकी इच्छा करूंगा? मैंने जब पहले ही वेदाध्ययन करके उस विषय पर अच्छी तरह विचार किया, तब मुझे मालूम हुआ, कि वह केवल कर्ममार्गप्रवर्त्तक हिंसामय शास्त्र है। उसके बाद बृहस्पतिको अपना आचार्य गुरु मान कर देखा, तो पता चला, कि उनका हृदय भी अत्यन्त अविद्याग्रस्त है। सुतरां वैसे मनुष्य दूसरेको किस प्रकार मुक्त कर सकते हैं? पिता! इसीलिये मैं वैसे गुरुका परित्याग कर आपके पास आया हूं। आप मुझे तत्त्वज्ञान सिखा कर इस भीषण संसारसर्पके ग्राससे मेरी रक्षा करें।"

व्यासदेवने जब देखा, कि शुकदेवका हृदय विशुद्ध सत्त्वगुणसे परिपूर्ण है, किसी तरह वह संसारमें आसक्त नहीं हो सकता; तब उन्होंने कहा, "मैंने जो सर्वप्रधान भागवत ग्रन्थ तैयार किया है, तुम उसका पाठ करो। उससे शीघ्र ही तुम्हारा संशय दूर हो जायगा और तुम्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा।"

पिताके आज्ञानुसार भागवत पाठ करनेसे भी जब उनका सन्देह दूर नहीं हुआ, तब व्यासजीने उन्हें राजर्षि जनकके यहां जा तत्त्वज्ञान सीखनेके लिये कहा। शुकदेवजीने राजर्षि जनकजीके पास जा कर तत्त्वोपदेश करनेकी प्रार्थना की और कहा, "आप जीवन्मुक्त कहलाते हैं, परन्तु आचरण व्यवहारसे मालूम पड़ता है, कि आप घोर विषयी हैं, अतएव सारी बातें समझा कर मेरा सन्देह दूर कीजिये।"

राजर्षि जनक शुकदेवजीकी बातें सुन कर उन्हें नाना प्रकारके युक्तिपूर्ण वचनोंमें तत्त्वोपदेश करते हुए नम्रतापूर्वक बोले "आपने वेदव्यासकी बातोंकी अवहेला कर भारी भूल की है। बिना आश्रमधर्मको प्रतिपालन किये हठात् योगावलम्बन करना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि योगकी अपक्वावस्थामें मालूम पड़ता है, कि इन्द्रियां वशीभूत हो गई, किन्तु ऐसा सोचना भूल है। कारण, मायाबद्ध जीव दुर्दमनीय इन्द्रियोंका निग्रह नहीं कर सकता। अधिक कहना व्यर्थ है, ये दुर्जय इन्द्रियाँ समय समय पर उत्तेजित हो कर पूज्यपाद महात्माओं-को भी प्रकृत पथसे भ्रष्ट कर देती हैं। तब ये इन्द्रियां नवीन विरक्त योगियोंके मनमें नाना प्रकारके विकार पैदा करेंगी, इसमें सन्देह ही क्या है? अतएव गार्ह-स्थ्याश्रमका सहारा ले कर इन्द्रियनिग्रह करना कर्त्तव्य

है।" इस तरह शुकदेवके साथ राजर्षि जनक तर्क वितर्क करते रहे। अन्तमें जनकजीने कहा "आप इस संसारमें पैदा हो कर निःसंगावस्थामें कहीं वास नहीं कर सकते। आप पिताको साथ छोड़ वनमें जाना चाहते हैं, किन्तु वनमें जा कर भी आप वनमृगोंके साथ रहेंगे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। विशेषतः सर्वत्र ही आकाशादि पञ्च महाभूत विद्यमान है। अतएव आप किसी भी स्थानमें जा कर संगविरहित न होंगे। और भी देखिये जंगलमें जा कर भोजनके लिये चिन्ता करनी होगी। यदि कहें, कि निराहारी बन कर रहूंगा, तो भी दंड और अजिनादिकी चिन्ता रहेगी। संसारमें रह कर मेरी राजचिन्ता भी उसी प्रकारकी है। आप केवल सन्देहमें पड़ कर ही इतनी दूर आये हैं, किन्तु मेरे हृदयमें किसी प्रकारका संशय नहीं है; इसलिये सदा निःसन्दिग्ध चित्तसे एक ही जगह रहता हूं। मैं विषय भोग करता हूं, किन्तु किसी विषयके बन्धनमें नहीं हूं। इसी ज्ञानसे मैं सुखी हूं और आप सब विषयोंमें ही बद्ध हैं। इस ज्ञानमें सर्वदा सुखी रहते हैं अतएव आप सारा सन्देह दूर कर नित्यसुखका साधन करें। देखिये जीव यह मेरा है, इस ज्ञानसे बद्ध और यह शरीर मेरा नहीं है, इस ज्ञानसे मुक्त होता है।"

जनकके उपदेशसे शुकदेवजीका सारा सन्देह दूर हो गया। तब वे प्रसन्न चित्तसे व्यासजीके पास लौट आये। इसके बाद उन्होंने पीवरी नाम्नी एक सुयोग्य कन्याका पाणिग्रहण किया। समय पर उस कन्याके गर्भसे उनके कृष्ण, गौरप्रभ, भूरि और देवश्रुत नामक चार पुत्र एवं कीर्त्तिमती नामकी एक कन्या हुई।

इस तरह कुछ दिनों तक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करनेके बाद शुकदेवजी कैलास पर्वत पर जा कर गभीर ध्यानमें निमग्न हो गये। (देवीभागवत १।१०।१६ अ०)

शुकदेवजीने राजा परीक्षित्के ब्रह्मशापकालमें उनकी सभामें जा कर उन्हें भागवत सुनाया जिससे राजा परीक्षित् ब्रह्मशापसे छूट कर मुक्तिको प्राप्त हुए।

शुकद्रुम (सं० पु०) शुकवत् द्रुमः तद्वर्णपर्णविशिष्टत्वात् तथात्वं। शिरीषवृक्ष।

शुकनलिकान्याय (सं० पु०) न्यायभेद, तोता जिस प्रकार फसानेकी नली या नलनीमें लोभके कारण फंस जाता है, वैसे ही फंसनेकी रीति। न्याय देखो।

शुकनसा (सं० स्त्री०) १ श्योनाकवृक्ष, छोंकर। २ सूआठोंठी। (सुश्रुत चि० १६ अ०)

शुकनामा (सं० स्त्री०) शुक इति नाम यस्याः। १ शुकजिह्वा, सुआठोंठी नामक पौधा। (त्रि०) २ शुकसंज्ञक।

शुकनाश (सं० पु०) शुकनास, केवांच।

शुकनाशन (सं० पु०) शुकं नाशयतीति नश-णिच्-ल्यु। १ चक्रमर्द, चकवंड़। (त्रि०) २ शुकनाशक, सुग्गेका मारनेवाला।

शुकनास (सं० पु०) शुकस्य नासेव फलं यस्य। १ श्योनाकवृक्ष, छोंकर। २ अगस्तका पेड़। ३ कपिकच्छु, केवांच, कौंछ। ४ शुकजिह्वा, सुआठोंठी। ५ सोनापाठा। ६ नलिका। ७ गंभारी।

शुकनासा (सं० स्त्री०) शुकनास देखो।

शुकनासिका (सं० स्त्री०) शुकनासा देखो।

शुकपत्र (सं० पु०) गन्धक।

शुकपिच्छ (सं० पु०) १ गन्धक। (रसेन्द्रसारस०) २ ग्रन्थिपर्ण, गठिवन। (वैद्यकनि०)

शुकपिण्ड (सं० पु०) शुकशिम्बी, केवांच।

शुकपुच्छ (सं० पु०) शुकस्य पुच्छ इव। १ गन्धक। २ शुकका लांगूल, सुग्गेकी पूंछ।

शुकपुच्छक (सं० क्ली०) शुकस्य पुच्छइव कन्। १ एक प्रकारकी गठिवन, थुनेर। (त्रि०) २ शुकवत् पुच्छयुक्त, सुग्गेके समान पूंछवाला।

शुकपुष्प (सं० क्ली०) शुकप्रियं पुष्पमस्य। १ स्थौणेयक, थुनेर। (पु०) २ शिरीषवृक्ष। ३ अगस्तका पेड़। ४ गन्धक।

शुकप्रिय (सं० पु०) शुकस्य प्रियः। १ शिरीषवृक्ष, सिरिसका पेड़। २ शुकवल्लभ, अनार। ३ कमरख।

शुकप्रिया (सं० स्त्री०) १ शुकप्रिया जम्बू, जामुन। २ निम्ब, नीम।

शुकफल (सं० पु०) शुक इव फलमस्य, तद्वर्णफलवत्त्वात् तथात्वं। १ अर्कवृक्ष, आकका पौधा। २ सेमर।

शुकवभ्रु (सं० त्रि०) शुकपक्षीकी तरह वर्णविशिष्ट, जिसका रंग सुग्गेकी तरह हो। (शुक्लयजु० २४।२)

शुकवर्ह (सं० क्ली०) शुकस्य वर्हमिव। गन्धद्रव्यविशेष, गठिवन।

शुकम् (सं० अव्य०) शीघ्र, क्षिप्र।

शुकरहस्य (सं० क्ली०) उपनिषद्विशेष।

शुकरान (हिं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष। इसके फल कड़ुए होते हैं।

शुकराना (अ० पु०) १ शुक्रिया, कृतज्ञता। २ वह धन जो कार्य हो जानेके पश्चात् धन्यवादके रूपमें किसीको दिया जाय।

शुकरूप (सं० त्रि०) शुकपक्षीकी तरह वर्णविशिष्ट, जिसका रंग सुग्गेके समान हो। (शुक्लयजुः २४।७)

शुकरोग (सं० पु०) रोगविशेष, शूकरोग।

शुकवल्लभ (सं० पु०) शुकस्य वल्लभः प्रियः। १ दाड़िम, अनार। (त्रि०) २ शुकप्रिय।

शुकवाच् (सं० पु०) कृष्णका एक नाम।

शुकवाह (सं० पु०) शुको वाहो वाहनं यस्य। १ कामदेव जिसका वाहन शुक या तोता माना गया है। (त्रि०) २ शुकपक्षीग्राहक, सुग्गा ले जानेवाला।

शुकवृक्ष (सं० पु०) शिरीषवृक्ष, सिरिसका पेड़।

शुकशालक (सं० पु०) महानिम्ब, बकायन।

शुकशिम्बा (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, केवाँच।

शुकशिम्बि (सं० स्त्री०) शुकशिम्बा देखो।

शुकशीर्षा (सं० स्त्री०) १ तालीशपत्र। २ ग्रन्थिपर्णभेद, गठिवन। ३ तेजपत्र, तेजपत्ता।

शुकाख्य (सं० पु०) शुक इति आख्या यस्य। १ शिरीषवृक्ष, सिरिसका पेड़। २ चर्मघट। ३ शुकनासा, केवाँच।

शुकाख्या (सं० स्त्री०) शुकाख्य देखो।

शुकादन (सं० पु०) शुकैरद्यतेऽसौ इति अद कर्मणि ल्युट्। १ दाड़िम, अनार। २ सुग्गेका खाद्यद्रव्य।

शुकानन (सं० त्रि०) शुकस्याननमिवाननं यस्य। शुकतुल्य मुख, जिसका मुँह सुग्गेके समान हो।

शुकानना (सं० स्त्री०) शुकाख्या नामक पौधा।

शुकायन (सं० पु०) १ बुद्ध। २ अर्हत्।

शुकाह्व (सं० पु०) शुकाह्वय देखो।

शुकाह्वय (सं० पु०) १ कैवर्त्तमुस्ता, केवट मोथा। २ चर्मकार। (सुश्रुत चि० १८ अ०)

शुकी (सं० स्त्री०) शुक-ङीष्। १ कश्यपकी पत्नी। (गरुड़पु० ६ अ०) २ शुकपक्षिणी, मादा तोता, सुग्गी।

शुकेष्ट (सं० पु०) शुकस्य प्रियः। १ शिरीष वृक्ष, सिरिसका पेड़। २ राजादनवृक्ष, सिरनीका पेड़।

शुकेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

शुकोदर (सं० क्ली०) शुकस्योदरमिव १ तालीश पत्र। (राजनि०) २ कीर जठर।

शुक्त (सं० क्ली०) शुच्-क्लेदे-क्त। १ मांस। २ काञ्जिक, कांजी। ३ द्रवद्रव्यविशेष, व्यंजनविशेष। कन्द, मूल और फल आदि स्नेह द्रव्य लवण आदिके साथ पक्व होने पर उसे शुक्त कहते हैं। गुण—तीक्ष्ण, उष्ण, लवण, पित्तकारक, कटु, लघु, रूक्ष, कृमि, उदर, आनाह, शोफ, अर्श, विष और कुष्ठनाशक। (राजनि०) ४ सड़ा कर खट्टी की हुई कोई वस्तु। वैदिक और धर्मशास्त्रके अनुसार ऐसी वस्तु खाना मना है। ५ सिरका। ६ चुक। ७ अम्लता, खटाई। ८ कठोर वचन। ९ वसिष्ठके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) १० निष्ठुर, कठोर। ११ पूत, पवित्र। १२ अप्रिय, नापसन्द। १३ अम्ल, खट्टा। १४ श्लिष्ट, मिला हुआ। १५ निर्जन, सुनसान, उजाड़। १६ सड़ा कर खट्टा किया हुआ, खमीर उठाया हुआ।

शुक्तक (सं० क्ली०) अम्लोद्गार। खाया हुआ अन्न न पच कर जो खट्टी ढकार आती है, उसे शुक्तक कहते हैं।

शुक्तस्वर (सं० पु०) अव्यक्त स्वर।

शुक्ता (सं० स्त्री०) शुक्त-टाप्। १ चुक्रिकाका पौधा, चूका। २ कांजी।

शुक्ताम्ल (सं० क्ली०) चुक्रिका शाक, चुकका साग।

शुक्ति (सं० स्त्री०) शुच्-क्तिन्। १ जलजन्तुविशेष, सीप, सीप। पर्याय—मुक्तास्फोट, शुक्तिका, मुक्तिप्रसू, महाशुक्ति, तौतिक, मौक्तिकप्रसवा, मौक्तिकशुक्ति, मुक्तामाता। गुण—कटु, स्निग्ध, श्वास, मद और शूलरोगनाशक, रुचिकर, मधुर, दीपन। (राजनि०)

२ शङ्ख। ३ तालकी सीपी, सुतुही। ४ शङ्खनख। ५ आश्वावर्त्त। ६ अश्वरोग, घोड़ेकी गरदनकी एक

भौंरी। ७ बदरी वृक्ष, बेरका पेड़। ८ अस्थि, हड्डी। ९ अर्श, बवासीर। १० नखी नामक गन्धद्रव्य। ११ कपाल जो काली या कापालिकोंके हाथमें रहता है। १२ दो कर्ष या चार तोलेकी एक तौल। पर्याय—अष्टमिका। (वैद्यक परिभाषा) १३ शुक्लगत नेत्ररोगविशेष, आँखका एक रोग। इसमें सफेद डेलेके ऊपर मांसकी एक बिंदो-सी निकल आती है। (भावप्र० चक्षुरोगाधिकार)

शुक्तिक (सं० पु०) शुक्ति कन्। १ गन्धक। २ एक प्रकारका नेत्ररोग। ३ शुक्ति, सीपी। ४ चुक्रिका, चूका।

शुक्तिकर्ण (सं० पु०) नागभेद। (हरिवंश)

शुक्तिका (सं० स्त्री०) शुक्तिरेव स्वार्थे कन्।

शुक्तिज (सं० क्ली०) शुक्तौ जायते इति शुक्ति-जन-ड। मुक्ता, मोती।

शुक्तिपत्र (सं० पु०) शुक्तिरिव पत्रं यस्य। सप्तपर्ण, छतिवन।

शुक्तिपर्ण (सं० पु०) सप्तपर्ण, छतिवन।

शुक्तिपुटोपम (सं० क्ली०) शुक्तिपुटस्य उपमा यस्य। बाताद, बादाम।

शुक्तिबीज (सं० क्ली०) शुक्तौ बीजमिव। मुक्ता, मोती।

शुक्तिमणि (सं० पु०) शुक्तौ जातः मणिः। मुक्ता, मोती।

शुक्तिमत् (सं० पु०) एक पर्वत जो सात कुल पर्वतोंमेंसे है।

शुक्तिवधू (सं० स्त्री०) शुक्ति, सीप, सीपी।

शुक्तिसाह्वया (सं० स्त्री०) नगरभेद, चेदिराज्यका प्रधान नगर।

शुक्तिस्पर्श (सं० पु०) शुक्तिको स्पर्श करना या छूना।

शुक्त्यङ्गी (सं० पु०) सम्भालू, सिंदुवार, मेउड़ी।

शुक्र (सं० क्ली०) शुच-क्लेदे (ऋजेन्द्राग्रवज्र इति। उण् २।२८) इति रन् प्रत्ययेन साधुः। १ मज्जागत धातु। पर्याय—पुंस्त्व, रेतः, बीज, वीर्य, पौरुष, तेजः, इन्द्रिय, अर्भचिर, मज्जारस, रोहण, बल। (राजनि०)

खाये हुए द्रव्यका सारांश रस रूपमें परिणत होता है, इस रसके सारसे रक्त और रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि और अस्थिसे मज्जा तथा मज्जासे शुक्रकी उत्पत्ति होती है। अतएव शुक्रधातु सभी धातुओंका सार है।

भावप्रकाशके मतसे कैसा भुक्त द्रव्य परिपाक हो कर शुक्ररूपमें परिणत होता है, वह इस प्रकार लिखा है—

जो सब भुक्त वस्तु खाई जाती है, वह बाह्य अग्निके द्वारा इक्षु रस परिपाककी तरह पाचक अग्नि द्वारा परिपाक होती है, पीछे परिपक्व आहारका सार अंश रसरूपमें परिणत होता है। असार भाग मलमूत्ररूपमें परिणत हो कर निकलता है। वह आहारजातरस स्थूल और सूक्ष्म इन दो भागोंमें विभक्त होता है। उनमें स्थूलभाग शरीरारम्भक स्थायिरसके साथ संयुक्त हो कर वैसा ही हो जाता है। पीछे सर्वशरीरव्यापी व्यान वायु कर्तृक धमनी पथसे प्रेरित हो कर स्वेदन और जठराग्निके उष्माजनित सन्ताप निवारण आदि गुण द्वारा सारे शरीरको पोषण करता है। सूक्ष्म भाग प्राणवायु द्वारा प्रेरित हो कर धमनीपथ द्वारा शरीरारम्भक रक्तके स्थान यकृत् प्लीहामें जा स्थायिरक्तसे मिल जाता है। इसके बाद वह स्थायिरक्तस्थ तेजो द्वारा फिरसे परिपाक हो कर पांच दिन, पांच रात और डेढ़ दण्डके पीछे रक्त धातुमें परिणत होता है।

यह रक्त फिर स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो भागोंमें विभक्त होता है। उनमेंसे स्थूल भाग रञ्जक नामके पित्त द्वारा रक्ताकृति हो कर शरीरारम्भक रक्तको पोषण करता है तथा व्यान वायु कर्तृक प्रेरित हो कर धमनियोंमें विचरण कर सर्वशरीरगत रक्तको पोषण करता है। सूक्ष्मभाग व्यानवायु कर्तृक चालित हो कर धमनी और शिराओं द्वारा शरीरारम्भक मांसमें जाता है। इसके बाद मांसधातुस्थ अग्नि द्वारा परिपाक होनेसे पांच दिन, पांच रात और डेढ़ दण्डके बाद वह मांसधातुमें परिणत होता है।

अनन्तर वह मांस मेदोधातुस्थ अग्नि द्वारा फिरसे परिपाक होने लगता है और पांच दिन, पांच रात और डेढ़ दण्डमें मेदोरूपमें परिणत होता है। अपनी अग्नि द्वारा परिपक्व मेदका स्वेदरूपी मल निकलता है। वह स्वेद शीतल अवस्थामें इन्द्रियपथमें रहता है। किन्तु शारीरिक तेजो द्वारा अत्यन्त तप्त होने पर व्यानवायु

कर्त्तृक चालित शिरा मार्गाभिमुखी हो स्वेदरूपमें लोम-कूप द्वारा वाहर निकलता है।

परिपक्व मेदका सारांश स्थूल और सूक्ष्मभेदसे दो भागोंमें विभक्त है। उनमेंसे स्थूल भाग मेदोधातुको पुष्ट कर उदरमें अवस्थान करता तथा व्यानवायुकर्त्तृक प्रेरित हो स्रोतपथसे जा कर सूक्ष्मास्थिस्थित मेदको भी पुष्ट बनाता है। सूक्ष्मभाग व्यानवायु कर्त्तृक चालित हो धमनी और शिराओं द्वारा शरीरारम्भक अस्थिमें गमन करता है। इसके बाद अस्थिधातुस्थ अग्नि द्वारा फिरसे परिपाक हो कर पांच दिन, पांच रात और डेढ़ दण्डके वाद अस्थिधातुमें परिणत होता है। इस पच्यमान अस्थिसे भी मल निकलता है। वह मल व्यानवायु द्वारा चालित हो शिरापथ द्वारा यथास्थानमें जा कर उंगलीके नख और देहके लोम हो जाता है।

वह अस्थि भी अपनी अग्नि द्वारा परिपाक हो कर स्थूल और सूक्ष्म दो भागोंमें विभक्त होती है। उनमेंसे स्थूल अंश शरीरारम्भक अस्थिको पोषण करता है, सूक्ष्म अंश व्यानवायु कर्त्तृक चालित हो कर स्रोतोपथ द्वारा मज्जाके स्थान स्थूल अस्थिमें जाता है। इसके बाद मज्जाधातुस्थ अग्नि द्वारा फिरसे परिपाक हो कर पांच दिन, पांच रात और डेढ़ दण्डके पीछे मज्जाधातुमें परिणत होता है। उस मज्जासे भी मल निकलता है। वह मल व्यानवायु कर्त्तृक चालित हो कर शिरामार्ग द्वारा दोनों आंखोंमें लाया जाता और दूषिका तथा चक्षुःस्नेह हो जाता है।

परिपक्व मज्जाका सार अंश स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो भागोंमें विभक्त है। उनमेंसे स्थूल भाग शरीरारम्भक मज्जाको पोषण करता है। सूक्ष्मभाग व्यानवायु कर्त्तृक चालित हो कर शुक्रके स्थान समस्त शरीरमें जाता और शरीरारम्भक शुक्रके साथ मिल जाता है। इसके बाद शुक्रधातुस्थ अग्नि द्वारा फिरसे परिपाक होता है। किन्तु पच्यमान इस शुक्रका कोई मल नहीं है। जिस प्रकार सोना हजार वार तपाने पर भी मैला नहीं होता, उसी प्रकार शुक्रधातु पुनः पुनः पाक होने पर भी उसमें मल नहीं रहता। यह परिपक्व शुक्र भी स्थूल और सूक्ष्मभेदसे दो भागोंमेंसे विभक्त और उनमेंसे स्थूल अंश शुक्रधातुमें और सूक्ष्म अंश ओजोरूपमें परिणत होता है।

शुक्रधातुका जो परम तेजोभाग है, वही ओजः है। यह सर्वशरीरव्यापी है। मध्यमाग्निविशिष्ट व्यक्तिके रससे समस्त धातु परिपाक हो कर शुक्र पैदा होनेमें एक महीना लगता है; तीक्ष्णाग्निविशिष्ट व्यक्तिके एक महीनेसे कुछ कम और मन्दाग्निविशिष्ट व्यक्तिके महीनेसे कुछ अधिक समयमें आहारजात रस परिपाक हो कर शुक्रधातुमें परिणत होता है। शुक्रस्वरूप शुक्रधातु सोमात्मक, श्वेतवर्ण, स्निग्ध, वलकारक, पुष्टिकर, गर्भका वीज और शरीरका सार तथा जीवका उत्तम आश्रयस्थान है। जीव सारे शरीरमें ही अवस्थान करता है, किन्तु उनमेंसे शुक्रमें, रक्तमें और मलमें विशेषरूपसे अधिष्ठित है क्योंकि इसके क्षीण होने पर थोड़े ही समयमें जीवका क्षय होता है।

शुक्रका अवस्थिति स्थान—जिस प्रकार दूधमें घी और ईखमें गुड़ रहता है, शुक्र भी उसी प्रकार देहियोंके सारे शरीरमें फैला हुआ है। घी और ईखके रसका दृष्टान्त यथाक्रम वहुशुक्र और अल्पशुक्रविशिष्ट व्यक्तिके सम्बन्धमें जानना होगा अर्थात् दूधको थोड़ा मथनेसे ही उसमेंसे घी निकलता है, उसी प्रकार वहुशुक्रविशिष्ट व्यक्तिको थोड़ा मथनेसे ही शुक्र निकल पड़ता है। फिर जिस प्रकार खूव दवानेसे ईखका रस निकलता है, उसी प्रकार अल्पशुक्रविशिष्ट व्यक्तिका शुक्र अत्यन्त मथन द्वारा निकलता है।

शुक्रका क्षरणमार्ग—वस्तिद्वारके अधोदेशमें दाहिनी ओर दो उंगलीके फासले पर जो मूत्रनाली है, उसीसे पुरुषका शुक्र निकलता है।

शुक्रक्षरणका कारण—शुक्र सारे शरीरमें आश्रय किये हुए है, मन प्रसन्न रहनेसे स्त्रीके साथ रतिक्रिया द्वारा शरीर हृष्ट हो शुक्र निकलता है। कामभावापन्न हो कर स्त्रीका दर्शन, स्पर्शन अथवा उसका शब्दश्रवण या चिन्तन करनेसे भी शुक्रक्षरण होता है।

शुक्रसे गर्भ रहता है। किन्तु शुक्रका विशुद्ध होना आवश्यक है। जिस शुक्रका वर्ण स्फटिककी तरह तथा तरल, स्निग्ध, मधुररस और मधुगन्धविशिष्ट है, वही शुक्र

निर्दोष है। किसी किसीका कहना है, कि तेल अथवा मधुकी तरह आभाविशिष्ट शुक्र विशुद्ध होता है और वही गर्भजनक है।

यौवनकालसे ही शुक्रक्षरण होता है। वालकोंके शुक्रक्षरण नहीं होता। उसका कारण यह है, कि जिस प्रकार मुकुल अवस्थामें पुष्पमें गंध रहते हुए भी सूक्ष्मताके कारण वह देखनेमें नहीं आता, फिर जिस प्रकार पुष्पके केशरादि दिखाई देनेसे गंध निकलती है, उसी प्रकार यौवन प्राप्त होनेसे वालकोंका वह शुक्र वर्द्धित हो कर प्रकाशित होता है। पुरुषोंको तरह स्त्रियोंके भी शुक्रधातु है।

पुरुषका जिस प्रकार एक महीनेमें आहारजातरस शुक्रधातुमें परिणत होता है, उसी प्रकार स्त्रियोंके भी एक महीनेमें आहारजातरस परिपाक हो कर आर्त्तव और शुक्ररूपमें परिणत होता है। पुरुषोंका जिस प्रकार स्त्रीसंसर्गसे शुक्र निकलता है उसी प्रकार स्त्रियोंका शुक्र भी पुरुष संसर्गसे स्रावित होता है। किन्तु वह शुक्र गर्भोत्पत्तिमें कोई सहायता नहीं पहुंचाता तथा विशुद्ध गर्भका भी कोई कारण नहीं होता, वरं विकृत गर्भका कारण हुआ करता है।

इसके प्रमाणस्वरूप सुश्रुतमें लिखा है, कि अतिशय कालभावापन्न दो स्त्री आपसमें उपगत हो किसी प्रकार शुक्रत्याग करे, तो अस्थिरहित सन्तान उत्पन्न होती है। स्त्रियोंका शुक्रधातु गर्भोत्पत्तिके उपयोगी नहीं है, आर्त्तवधातु ही गर्भोपयोगी है। किन्तु यह शुक्रधातु ही स्त्रियोंका बल है, वर्णकी प्रसन्नता है और शरीरको पुष्ट करने वाला है।

आहारजात रसके परिपाक होनेसे ही यदि शुक्रकी उत्पत्ति हो, तो वाजीकरण औषधका प्रयोजन ही क्या? उत्तरमें यही कहा जाता है, कि वाजीकरण औषध अपने प्रभावसे तथा गुणकी उत्कर्षताके कारण विरेचक द्रव्यकी तरह सद्य सद्य कार्यकारी है। (भावप्रकाश)

शुक्र ही एक प्रकार जीवन है। जिससे शुक्रधातु अधिक परिमाणमें क्षय न हो उस ओर विशेष लक्ष्य रखना आवश्यक है। शुक्रधातुके क्षय होनेसे रतिशक्ति अधिक, मेढ़ और मुष्कदेशमें वेदना तथा बहुत देरीसे रक्तके साथ अल्प शुक्र स्खलन होता है। वलह्रास, शरीर निस्तेज और मेधाशक्ति विनष्ट होती है।

शुक्रक्षयकारक द्रव्य—सार्षपतैल, राजमाष, तिल, पटोल, वास्तूक शाक, लकोच, पुनर्नवा शाकको छोड़ सभी प्रकारका शाक, सभी प्रकारका अम्ल द्रव्य, कारवेल्लफल, कर्कोटकफल, वादाम, लिकुच, शुष्कमिर्च, गुड़त्वक्, पीपर और सोंठको छोड़ कटुरस ये सब द्रव्य क्षयकारक हैं।

शुक्रवर्द्धक द्रव्य—पानीय, विशेषतः हैमन्तिक जल, तालाम्बु, चन्दनादि द्रव्यानुलेपन, रक्तशालिधान्य, हैमन्तिक षष्टिकधान्य, गोधूम, माष, सामान्य नारीच पत्र शाक, सामान्य शुष्क नारीचपत्रशाकजल, कलंवी शाक, काकमाचीशाक (लकोच), गोक्षुरशाक, मुञ्जातक, वार्त्ताकु, विदारी, हस्त्यालुका, मध्वालुक, पक्वाम्र, दुग्धाम्र, नागरङ्ग, वहुवारफल, पक्ककण्टाफल, कण्टाफलास्थि, पक्वताल, पक्वकदली, चम्पकदल, द्राक्षा, खर्जुर धात्री, कुष्माण्डमज्जा, सभी प्रकारके मत्स्य विशेषतः वृहत्मत्स्य, समुद्रमत्स्य, रोहितमत्स्य, भाकुटमत्स्य, पाठीनमत्स्य, मेकटिमत्स्य, चित्रफलमत्स्य, वाउशमत्स्य, मद्गुरमत्स्य, वर्मिमत्स्य, फलोमत्स्य, चिङ्गटमत्स्य, पर्वतमत्स्य, पलङ्गमत्स्य, शकुलीमत्स्य, चम्पकुन्दमत्स्य, प्रोष्ठीमत्स्य, दग्धमत्स्य, मांसमात्र विशेषतः प्रसहामांस, भूशयामांस, अनूपमांस, जलजमांस, जलचरमांस, छागमांस वाराहमांस, कूर्ममांस, तित्तिर, कुलिङ्ग, चटकमांस, हंसमांस; हंसवीज, शुकपक्षिमांस, मयूर; शरारि, मद्गु, कादम्ब, वलाका और वकमांस, जीर्णमद्य, समस्त क्षीर, विशेषतः गोदुग्ध, हस्तिनी, दुग्ध, दुग्धसन्तानिका, महिषदधि, दधिसर, दधिमस्तु, नवनीत, घृतमात्र, सभी प्रकारकी ईख, विशेषतः पौण्ड्रकेक्षु, दन्तनिष्पीड़ित इक्षुरस, इक्षुफानित, इक्षुगुड़, इक्षुखण्ड, मधुरी, शुष्कपिप्पली, शुण्ठी, आर्द्रक, लशुन, पलाण्डु, सैन्धव, अन्न, सतैल लवणान्वित दग्ध मत्स्य, मांसरस, परिशुष्कात्यमांस, घृतपूर मधुमस्तक, दुग्धफनक, भूशय्या, एरण्डमूल, गोक्षुर, सामान्यवला, विशेषतः पीतवला, अश्वगन्धा, प्रसारणी, माषपर्णी, रुदन्तीवृक्ष, राजवृक्षफल और शिलाजतु। (राजवल्लभ)

वायुदोष—शुक्र वायु कर्त्तृक दूषित होने पर वह अरुण कृष्णादि वर्णविशिष्ट होता है तथा वह सूचीवेधवत् वेदनासे निपीड़ित हो जाता है। पित्तदोष—पित्तकर्त्तृक शुक्र दूषित होने पर उसका पित्तजन्य वर्ण होना और उसमें वेदना होती है। श्लेष्मदोष—कफ द्वारा शुक्र दूषित होने पर उसका श्लेष्मजन्य वर्ण अर्थात् शुक्लवर्ण होता है तथा उसमें वेदना और कण्डू आदि होते हैं। रक्तदोष—रक्त द्वारा शुक्र दूषित होने पर वह शोणितजन्य वर्ण और वेदनाविशिष्ट होता है तथा उसमेंसे मुर्दे की-सी गन्ध निकलती है। वातश्लेष्मदोष—वातश्लेष्म द्वारा शुक्र दूषित होने पर वह ग्रन्थि अर्थात् गांठकी तरह सख्त हो जाता है। पित्तश्लेष्मदोष—पित्तश्लेष्म द्वारा शुक्र दूषित होने पर वह दुर्गन्धित पीवकी तरह होता है। वातपित्तदोष—वातपित्त कर्त्तृक शुक्र दूषित होने पर अत्यन्त क्षीण हो जाता है। सन्निपातदोष—वातादि-त्रिदोष कर्त्तृक शुक्र दूषित होनेसे मूत्र और विष्ठाकी तरह दुर्गन्ध निकलती है।

पूर्वोक्त सभी प्रकारके दुष्टशुक्रोंमें कुणप गंध, ग्रन्थीभूत, पूतिपूयसदृश और क्षीणशुक्र कृच्छ्रसाध्य हैं तथा जो शुक्र मूत्र और विष्ठाकी तरह दुर्गन्धयुक्त होता है, वह असाध्य है। इसके सिवा अन्य सभी प्रकारके शुक्रदोष साध्य हैं।

शुक्रदोषकी चिकित्सा—शुक्र प्रथमोक्त तीन दोषोंसे अर्थात् वात, पित्त और कफ द्वारा दूषित होने पर सुचिकित्सकको चाहिये, कि वे स्नेहस्वेदादि प्रयोग या उत्तर वस्ति द्वारा चिकित्सा करें। शुक्रमें कुणप गंध रहनेसे धवका फूल, खैरकी लकड़ी, अनार फलकी छाल और अर्जुनवृक्षकी छाल इन सब द्रव्योंके कल्क और कषायके साथ घृतपाक करके उस घृतको अथवा शालसारादिगणीय द्रव्योंके कल्क और क्वाथके साथ गव्यघृतको पाक करके उपयुक्तमात्रामें पान करनेसे वह दोष दूर होता है।

शुक्र ग्रन्थीभूत होने पर रोगीको कचूरका कल्क और कषायके साथ घृत पाक करके पान करानेसे प्रशमित होता है, अथवा गव्यघृत ४ सेर, पलाशभस्म ८ सेर, जल १२८ सेर, पाकशेष ६४ सेर। इसे ७ वार परिस्रुत करके एकत्र पाक करना होता है। यह घृत उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे विशेष लाभ पहुंचता है।

शुक्र पूयसदृश दुर्गन्धविशिष्ट होनेसे परुषकादि और न्यग्रोधादिगणके कल्क और क्वाथके साथ घृत पाक कर के उपयुक्त मात्रामें सेवन करे। शुक्र क्षीण होने पर शुक्रवर्द्धक द्रव्य और शुक्रवर्द्धक औषधादि सेवन करना होता है। शुक्र विष्ठा और मूत्रकी तरह दुर्गन्धियुक्त होने पर चीतेके मूल, खसकी जड़ और हींग इन सब द्रव्योंके साथ घृत पाक करके उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे वह अवश्य प्रशमित होता है। (सुश्रुत)

(पु०) २ ग्रहविशेष, शुक्रग्रह। नवग्रहमें शुक्र पञ्चम ग्रह है। पर्याय—दैत्यगुरु, काव्य, उशनाः, भार्गव, कवि, आस्फुजित्, शतपर्वेश, भृगुसुत, भृगु, षोड़शार्चिः, मघाभूः, श्वेत, श्वेतरथ, षोड़शांशु। (जटाधर)

ग्रहोंमें शुक्र शुभग्रह है। यह ग्रह यदि दुःस्थ न हो, तो मानवका इस ग्रहकी दशामें शुभ होता है। शुक्रकी कारकता आदिका विचार ज्योतिःशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है।

शुक्रकी कारकता—शुक्र सुख, श्री, विलास, भूषण, विज्ञानशास्त्र, भगिनी, स्त्री, सङ्गीत और कविता शक्ति कारक है। इस ग्रहके आनुकूल्यसे मानवगण भूतत्त्व और विज्ञानशास्त्रमें व्युत्पत्ति लाभ करते हैं। इसके द्वारा सुन्दरी स्त्री, नटी, नट, गायक, चित्रकर, वस्त्रादिरञ्जनकारी, शौण्डिक और विज्ञानशास्त्रवेत्ता आदिका विवरण जाना जाता है। शुक्रग्रह भारतवर्षके मध्यवर्त्ती भोजदेशका अधिपति है। यह ग्रह अग्निकोणमें बलवान् है।

अवयव—मानवके शरीरमें शुक्रका भाग अधिक होनेसे सौम्यमूर्त्ति, मध्याकार, उज्ज्वल नयन, उन्नत नासिका, गण्ड और चिबुक मध्यस्थित कूप प्रचूर और चिक्कण केशयुक्त होता है।

स्वभाव—जन्मकालमें शुक्रके अनुकूल रहने पर जातक आमोद, सुगन्धि और सङ्गीतप्रिय, धीर परिष्कार परिच्छन्न, सामाजिकतासम्पन्न, प्रफुल्लचित्त, कलहद्वेषी, लोकरञ्जनकारी, रमणीवल्लभ तथा यात्रा महोत्सवमें उत्साही होता है। शुक्र विगुण होनेसे मानव विद्याहीन, लम्पट,

कापुरुष, रमणदूत, नीच सङ्गरत, मादकप्रिय और सम्मानबोधकशून्य होता है।

व्याधि—शुक्रग्रहके वैगुण्यवशतः शुक्रके विगुण होनेसे धातुकी पीड़ा, उपदंश, वीर्यहीनता, बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ, गर्भाशयका रोग और समस्त निन्दनीय पीड़ा होती है।

कार्य—शुक्रके अनुकूल होने पर मानवशास्त्र, सङ्गीत, पट्टवस्त्र या रत्नव्यवसायी, सुकवि, चित्रकर अथवा रङ्गभूमिका अध्यक्ष होता है। शुक्र प्रतिकूल होने पर मालाकार, गन्धवणिक्, स्त्रीका वसन, भूषण अथवा चित्रविक्रेता, नट, शौण्डिक, घटक या रमणदूत होता है।

श्वेत अश्व, मेष, वृष, छाग, चटक, पारावत, पण्डुक और मनोहर स्वरविशिष्ट पक्षिगण शुक्रके प्रिय हैं। रामवासक, तमाल, आमलकी, चम्पक, गुवाक, मेद, उडुम्बर, कबाबचीनी, पान, इलायची, दारचीनी, गन्धपुष्प और लता आदि भी शुक्रके प्रिय हैं। शुक्रकी प्रीति और शान्तिके लिये हीरा उत्तम है, धातुमें चाँदी और रांगा इसकी प्रिय है। इसका वर्ण शुक्र होता है। मीनराशि शुक्रका उच्च स्थान है। मीनके २७ अंशमें शुक्रके अवस्थान करनेसे उसे पूच्य कहते हैं। इसी प्रकार कन्याराशि शुक्रका नीचस्थान है और २७ अंश इसका सुनीच है। वृष और तुलाराशि शुक्रका स्वगृह है।

शुक्र सूच्चांशमें रहनेसे विशेष बलवान् तथा विशेष शुभफलप्रद होता है। नीच अथवा सुनीचांशमें रहनेसे अशुभ फल देता है; विशेषतः जातव्यक्तिका उच्चस्थानसे प्रायः अधःपतन हुआ करता है।

शुक्रकी सरल, शीघ्र, मन्द, वक्र, अतिवक्र अतिचार और महातिचार ये ७ प्रकार गति है। यह ग्रह २२४ दिन ४२ दण्ड और ३ पलमें राशिचक्रका एक बार भ्रमण करता है। किन्तु पृथ्वीके सम्बन्धमें सूर्यका ४७ अंश ४८ कलाके मध्य अपनी कक्षा पर उसे परिभ्रमण करते देखा जाता है। प्रायः २६० दिन सूर्योदयके पहले पूर्वकी ओर और उतना ही दिन सूर्यास्तके बाद पश्चिमकी ओर दृष्टिगोचर होता है। इस कारण प्रातःकालमें उदित होनेसे इसको शुकतारा और सायंकालमें उदित होनेसे उसे सन्ध्यातारा कहते हैं। इसकी दैनिक शीघ्र गति १ अंश, १६ कला, ७ विकला और ४४ अनुकला है। ४२ दिन वक्रगति और ३४ दिन स्थिरस्थिति है।

शुक्रके जन्मराशि आदिमें रहनेसे विभिन्न प्रकारका फल होता है। शुक्रके जन्मराशिमें जानेसे सुखवृद्धि, आमोद प्रमोदमें कालयापन, सांसारिक कुशल और आत्मीयगणके साथ सौहार्दकी वृद्धि होती है। द्वितीय स्थानमें आनेसे अर्थ और वसन भूषणादि लाभ होते हैं, तृतीयमें आत्मीय स्वजनके साथ सुखसे कालयापन और भ्रमणजनित आनन्द लाभ होता है। चतुर्थमें स्वच्छन्दता और अर्थलाभ; पञ्चममें विलास, पुण्यवृद्धि, सांसारिक कुशल और सन्तानादि लाभ; षष्ठमें रोग और शत्रुवृद्धि; सप्तममें स्त्रियोंके साथ कलह, प्रणयभङ्ग, मनका चाञ्चल्य, कलङ्क, बलक्षय, शारीरिक अत्याचार और शुक्रदोषजनित पीड़ा होती है। अष्टममें अर्थलाभ, विशेषतः स्त्रीधनप्राप्ति; नवममें सुखवृद्धि और नाना प्रकारका लाभ; दशममें स्त्रियोंके साथ विच्छेद, कलङ्क और अव्यवस्थितचित्त; एकादशमें स्त्रीकी सहायतासे अर्थलाभ, बन्धुबांधवोंके साथ सौहार्दवृद्धि और स्वच्छन्दता लाभ तथा द्वादशमें अर्थागम और सुखलाभ होता है।

शुक्रका शुभाशुभ फल स्थिर करनेमें पहले शुक्र दक्षिण वेधमें शुद्धि है या नहीं यह देखना होता है, शुक्रके दक्षिण वेधमें शुद्ध होनेसे शुभ फल होता है।

इस ग्रहका स्वरूप—शुभग्रह जलदसदृश नीलवर्ण, श्लेष्मातिशययुक्त, वायुप्रधान, पद्मपलाश लोचन, अलस बाहुशाली, रजोगुणावलम्बी, अतिकामी, गर्वित, गजकामी और अधिक शुक्रविशिष्ट होता है।

लग्नादि द्वादशस्थानमें शुक्रके अवस्थान करनेसे निम्नोक्त फल प्राप्त होता है। यथा—लग्नमें शुक्रके रहनेसे जातक विलासी, गुणवान्, सुन्दरी स्त्री अथवा बहुललनायुक, शिल्पशास्त्र-विशारद, सङ्गीत और काव्यशास्त्रप्रिय, सदालापी और प्रफुल्लचित्त होता है। यदि तुला लग्नमें शुक्र और कुम्भराशिमें वृहस्पति रहे, तो जातक अत्यन्त सुरूप सम्पन्न होता है। किन्तु लग्नगत शुक्र पापयुक्त या पापदृष्ट होनेसे मानव नीच सङ्ग-

प्रिय, नीचामोदरत, अपव्ययी, क्रीड़ासक्त और परस्त्रीरत होता है।

द्वितीय अर्थात् धन स्थानमें शुक्रके रहनेसे जातक अपनी विद्या वा स्त्रीकी सहायतासे अथवा मद्य या गन्ध-द्रव्य और पट्टवस्त्र आदि व्यवसाय द्वारा प्रचुर अर्थ लाभ करता है।

तृतीय स्थानमें शुक्रके रहनेसे जातक सुन्दरी भगिनीयुक्त, विद्यानुशीलनमें विरत, ललनासक्त, भीरु और असहिष्णु होता है।

चतुर्थ स्थानमें रहनेसे जातक बहुमित्रयुक्त, सुशील, विनीत, निर्विरोध और प्रफुल्लचित्तवाला होता है। वह व्यक्ति अपूर्व आलय, उत्तम वाहन और नाना प्रकारका सुख लाभ करता है।

पञ्चम स्थानमें शुक्रके रहनेसे जातक कन्यासन्ततिविशिष्ट, ललनासक्त, विलासी, रहस्यकारक, विद्वान्, काव्यप्रिय, शास्त्रवेत्ता, गुणवान्, धनवान् और सुविख्यात होता है। वह शुक्र यदि पापग्रहसे न देखा गया हो, तो जातबालक उत्तम स्त्री पाता है। शुक्रके अस्तगत या नीचस्थ हो कर छठे स्थानमें रहनेसे जातक विद्याहीन, भीरु, स्त्री शत्रुयुक्त और निन्दनीय पीड़ाक्रान्त होता है। वह शुक्र तुङ्गी या स्वक्षेत्रगत होनेसे जात व्यक्ति बहु भृत्य, भगिनी और कन्यासन्ततियुक्त, निर्विरोध और स्त्रीवशतापन्न होता है।

सप्तम स्थानमें शुक्रके रहनेसे जात मनोरमा स्त्री पाता है तथा वह गुणवान्, विलासी, आमोदप्रिय और रहस्यकारी होता है। किन्तु वह शुक्र शनि और मङ्गल द्वारा दृष्ट होने पर वह व्यक्ति इन्द्रियासक्त, परस्त्रीरत और दुःशीला रमणीका पति होता है।

अष्टम स्थानमें शुक्रके रहनेसे जातक स्त्रीसे धनलाभ करता है, परन्तु कलत्र, भगिनी या कन्याका नाश होता है तथा उसके विद्यानुशीलनमें व्याघात पहुंचता और बहुमूत्र अथवा शुक्रजनित पीड़ा या किसी निन्दनीय रोगसे उसकी मृत्यु होनेकी सम्भावना रहती है।

नवम स्थानमें शुक्रके रहनेसे मनुष्य विद्वान्, शिल्पविद्यानुरागी, वाणिज्यकुशल, विनीत, भाग्यवान् और धर्मरत होता है। किंतु वह शुक्र पापयुक्त या पापदृष्ट होनेसे इसका विपरीत फल मिलता है।

दशम स्थानमें शुक्रके रहनेसे जातक स्त्रीधनसम्पन्न, ज्योतिष अथवा विज्ञानशास्त्रानुरागी, सदालापी, लोकरञ्जन और सङ्गीतप्रिय होता है। किंतु उस शुक्रके पापदृष्ट होने पर जातक शौण्डिक या स्त्रीभूषणादि विक्रेता होता है।

एकादश स्थानमें शुक्रके रहनेसे जातक सङ्गीतप्रिय उपार्जनक्षम, गुणसम्पन्न, स्वजनरञ्जन, स्त्रीमित्रयुक्त, सुश्री, विलासी और भोगी होता है।

द्वादश स्थानमें शुक्रके रहनेसे मनुष्य ललनायुक्त प्रमोदी और विलासी होता है।

यह ग्रह यदि जन्मकालमें वक्री रहे, तो शुभफल प्राप्त होता है और यदि अशुभ गृहाधिपति हो कर शुक्र शुभगृहमें रहे, तो शुभाशुभ दोनों ही ग्रहके फलोत्पादन करता है।

बुध और शनिग्रह शुक्रग्रहका मित्र, रवि और चंद्र शत्रु तथा मंगल और बृहस्पति सम हैं। अतएव शुक्रग्रहके मित्रक्षेत्रमें अथवा मित्रके साथ एकत्र अवस्थान करनेसे इस प्रकार शत्रुके घर या शत्रुके साथ रहनेसे अशुभ फलप्राप्त होता है। समग्रहके गृहमें अथवा उनके साथ रहनेसे समरूप फललाभ होता है।

मेषादि द्वादश राशिमें शुक्रके अवस्थान करनेसे जो फल होता है, वह नीचे लिखा है—

मेषराशिमें शुक्रके रहनेसे रोगार्त्त, बहुदोषयुक्त, विरोधशील, पराङ्गनाचोर, ईर्षायुक्त, वन और पर्वत पर विचरणकारी, स्त्रीके लिये बन्धनग्रस्त, नीच, कठोर, सेनानायक, विश्वासी और दाम्भिक होता है।

वृषराशिमें शुक्रके रहनेसे अनेक युवतीसेवित, धनी, कृपीवल, गन्धवस्तुदाता, बन्धुपोषक, सुन्दर आकृति, विद्वान्, बहुसन्ततिविशिष्ट, सर्वप्राणीका हितकारी और गुण द्वारा सर्वोका प्रधान तथा परोपकारी होता है।

मिथुन राशिमें शुक्रके रहनेसे विज्ञान और कलाशास्त्रमें ज्ञानसम्पन्न, विख्यात, वाग्मी, आलेख्य, बन्धुबान्धवोंके प्रति साधु व्यवहारकारी, गीतशास्त्रमें निपुण, सुहृज्जनयुक्त, देवद्विजानुरत और दयाशील होता है।

कर्कटराशिमें शुक्रके रहनेसे रतिधर्मरत, पण्डित, मृदुस्वभाव, गुणियोंमें अग्रणी, सुखी, प्रियदर्शन, सुनीति-

परायण, स्त्री या पानदोष प्रभावसे व्याधिपीड़ित और अपने कुलोत्पन्न व्यक्ति द्वारा सन्तप्त होता है।

सिंहराशिमें शुक्रके रहनेसे युवतियोंकी उपासना द्वारा धन सुख और आमोदलाभकारी, लघुसत्त्व, बन्धुप्रिय, विचित्र सुखविशिष्ट, परोपकारी, गुरु, द्विज और आचार्य पोषणमें रत तथा अपने कार्यमें अमनोयोगी होता है।

कन्याराशिमें रहनेसे क्षुद्रचेता, मृदु, निपुण, परोपसेवी, कलविज्ञाता, स्त्रीभूषणादि कातर, ·पापयुक्त, विफलचेष्ट, स्त्रीदोषदूषित, प्रणयी, दीन, सुखभोगविहीन, तीर्थ और सभा आदिका हितकारी होता है।

तुलाराशिमें शुक्रके रहनेसे श्रमलब्ध वित्त द्वारा धनी, शूर, विचित्रमाल्याम्बरधारी, विदेशरत, सुदुष्करकर्मनिपुण, रक्षणशील, मनोहर सत्कर्मकारी, द्विज और देवार्चना द्वारा लब्धकीर्त्ति, पण्डित और सौभाग्ययुक्त होता है।

वृश्चिकराशिमें शुक्रके रहनेसे विद्वेषरुचि, निष्ठुर, गर्वित, अति शठ, शत्रुदमनकारी, श्रेष्ठ, कुलटाद्वेषी, बन्धनग्रस्त, दरिद्र, गर्हितकार्यकारी और समस्त गुप्त रोगग्रस्त होता है।

धनुराशिमें शुक्रके रहनेसे उत्तम कर्म द्वारा धनी और ख्यात, सबोंका प्रिय, सुन्दर आकृतियुक्त, विद्वान्, सच्चरित्र, स्त्रीसौभाग्ययुक्त, राजमन्त्री, सबोंका प्रधान, साधुओंका पूज्य और सुकवि होता है।

मकर राशिमें शुक्रके रहनेसे व्यायामकातर, दुर्बलदेह, वेश्यासक्त, कासरोगाक्रान्त, धनलुब्ध, मिथ्यावादी, वञ्चक, क्लीवभावापन्न, दुःखी, मूर्ख और क्लेशसहिष्णु होता है।

कुम्भराशिमें शुक्रके रहनेसे सर्वदा विफल कार्यमें नियुक्त, वेश्यासक्त, स्वधर्मत्यागी, गुरु और पुत्रके साथ सदा कलहकारी, स्थान, भूषण और भोगरहित और बलवान् होता है।

मीनराशिमें शुक्रके रहनेसे दाक्षिण्ययुक्त, दानशील, गुणवान्, धनी, शत्रुविजेता, लोकविख्यात, श्रेष्ठ, राजप्रिय, स्वजनप्रतिपालक, पण्डित, कुलश्रेष्ठ और ज्ञानवान् होता है। मीनराशि शुक्रका तुङ्गस्थान है अतएव उस स्थानमें शुक्रके रहनेसे सभी प्रकारका शुभफल मिलता है। शुक्र स्वाभाविक जो सब भावकारक है, उन सब भावोंकी वृद्धि होती है।

शुक्र द्वादश राशिमें रह कर उक्त प्रकारका फल देता है सही, पर उन सब राशिमें रहते समय रव्यादि ग्रह द्वारा दृष्ट होने पर फलकी भिन्नता होती है। यथा—

शुक्र मङ्गलके गृहमें रह कर यदि रवि कर्त्तृक दृष्ट हो, तो स्त्रीसे दुःखी तथा स्त्री द्वारा सुख नष्ट और धनी होता है। वह शुक्र यदि चन्द्र कर्त्तृक दृष्ट हो, तो उद्धत, चपल, कामातुर और अधम युवतीका भक्त होता है। वह शुक्र मङ्गल द्वारा दृष्ट होने पर धन, सुख और मानहीन, दीन, पराकांक्षी और मलिनवेशधारी, बुधके देखनेसे मूर्ख, प्रचण्ड, अनार्यभावसम्पन्न, बन्धुओंका अनिष्टकारी, विनयहीन, चोर, क्षुद्रप्रकृतिवाला और क्रूर, वृहस्पतिके देखनेसे विनयी, उत्तम पत्नीयुक्त, सुन्दर और आयतदेह तथा बहु पुत्रयुक्त ; शनिके देखनेसे अतिशय मलिनदेहयुक्त, निर्धन, लोकसेवक और चोर होता है।

स्वगृहस्थित शुक्र रवि कर्त्तृक दृष्ट होने पर उत्तमस्त्रीसम्पन्न तथा स्त्रीहेतुक निर्जित होता है। वह शुक्र चन्द्र द्वारा दृष्ट होने पर सुखी, धनी और उत्तम पत्नीयुक्त, गुणवान् पुत्रविशिष्ट, धार्मिक और सुन्दरकांति ; मङ्गलके देखनेसे दुःशीला स्त्रीके स्वामी, स्त्रीके लिये सम्पत्तिविहीन और अतिशय कामुक ; बुधके देखनेसे सुन्दर आकृति, मधुरभाषी, भाग्यवान्, धैर्यशील, सुखी, बलवान्, सर्वगुणान्वित और विख्यात; वृहस्पतिके देखनेसे स्त्री, पुत्र, गृह, धन और वाहनविशिष्ट तथा अतिशय चेष्टायुक्त ; शनिके देखनेसे अल्प सुख और अल्प धनसम्पन्न, दुःशील, असती स्त्रीका पति और सर्वदा पीड़ित होता है।

बुधके घर शुक्र रह कर यदि रवि द्वारा दृष्ट हो, तो राजा, जननी और स्त्रीका प्रिय तथा धनी और सुखी होता है। वह शुक्र चन्द्रकर्त्तृक दृष्ट होने पर कृष्णचक्षुः, सुकेशयुक्त, कमनीय मूर्त्ति, मृदुस्वभाव, सुन्दरभाग्ययुक्त, मङ्गलके देखने पर अति कामुक और युवती स्त्रीके लिये सर्वस्वान्त होता है। बुधके देखनेसे पण्डित, मधुरभाषी, धनवान्, उत्तम भाग्ययुक्त, गणाध्यक्ष और प्रभु ; वृहस्पति

के देखनेसे अति दुःखी, प्राज्ञ, आचार्य्य तथा शनिके देखनेसे अति दुःखी, खल द्वारा पराभूत, चपल, द्वेष्य और मूर्ख होता है।

चन्द्रके घर शुक्र रह कर रवि द्वारा दृष्ट होने पर कर्मकुशल, क्रोधी और धनयुक्त तथा पत्नी उसके धनसे धनी होती है। वह शुक्र चन्द्र द्वारा दृष्ट होने पर पहले कन्या जन्म लेती है तथा जातक अधिक सन्ततिविशिष्ट, उत्तम भाग्यवान् और मलिन देहवाला होता है; मङ्गलके देखनेसे सुन्दर कलावेत्ता, अति धनी, स्त्रीहेतुक दुःखी, सुखी और बंधुओंका वृद्धिकर; बुधके देखनेसे विदुषी भार्य्यायुक्त, बन्धुके लिये दुःखभागी, असुखी, धनहीन और प्राज्ञ; बृहस्पतिके देखनेसे सर्व्वदा धन, पुत्र, भृत्य, वाहन, वन्धुविशिष्ट और राजप्रिय, शनिके देखनेसे स्त्री निर्जित, दरिद्र, पण्डित, रूपहीन, चपलस्वभाव और सुखविहीन होता है।

रविके घर शुक्र रह कर यदि रवि द्वारा दृष्ट हो, तो ईर्षायुक्त, कन्याप्रिय, कामार्त्त, युवतीके लिये धनी होता है। वह शुक्र यदि चन्द्र द्वारा दिखाई दे, तो माता सपत्नीके लिये और पिता युवतीस्त्रीके लिये सर्व्वदा दुःखित होते हैं तथा स्वयं धनी और बुद्धिमान् होता है। उस शुक्रको मङ्गल देखनेसे राजपुरुष, विख्यात, युवती स्त्रीका कार्य्यप्रिय, धनी, भाग्यवान् और परदाररत, बुधके देखनेसे लोभी, परदारपरायण, शूर, शठ, मिथ्यावादी और धनी; बृहस्पतिके देखनेसे वाहन, धन और भृत्ययुक्त तथा बहुदारपरिग्रहणशील; शनिके देखनेसे राजा या राजाके समान, विख्यात, कोषवाहन, समृद्धिसम्पन्न, रण्डापति, सुन्दररूपविशिष्ट और दुष्टपुत्रविशिष्ट होता है।

बृहस्पतिके घर शुक्र रह कर रवि द्वारा दृष्ट हो, तो अति शय क्रूर, अत्यन्त शूर, पण्डित, धनी और विदेशगामी होता है। यदि उस शुक्रको चन्द्र देखता हो, तो विख्यात राजपुरुष, भोगी, लुब्ध और बलहीन होता है। मङ्गलके देखने पर स्त्रीद्वेष्टा और सुख, बुधके देखने पर आभरण, भूषण, अन्न, पान, वस्त्र वाहनयुक्त और धनी, बृहस्पतिके देखनेसे हस्ती और गोधनयुक्त, अनेक पुत्रकलत्र विशिष्ट, सुखी और धनशाली; शनिके देखनेसे सुखी, सर्व्वदा रोगी तथा धनवान् और शूर होता है।

शनिके घर शुक्र रह कर रवि द्वारा दृष्ट होने पर महावीर्य्यवान् और सुखी होता है। वह शुक्र यदि चन्द्र द्वारा दृष्ट हो, तो तेजस्वी, रूपवान्, उत्तम भाग्यविशिष्ट और कमनीय मूर्त्तिवाला होता है। उस शुक्रको मङ्गल देखनेसे सम्पत्तिविनष्टकारी, बहुल अनर्थयुक्त, रोगी, श्रमरत और वृद्धावस्थामें सुखी। बुधके देखनेसे वस्त्र, माला और गन्धप्रिय, सुन्दर आकृतिसम्पन्न, गीतवाद्यकुशल और सुन्दरी पत्नीविशिष्ट; बृहस्पतिके देखनेसे बुद्धिमान, रत्नप्रिय और सुखी; शनिके देखनेसे श्रेष्ठवाहन, अर्थ और भोगविशिष्ट तथा शोभाहीन होता है।

ऊपरमें जो दृष्टिका विषय लिखा गया, उसे पूर्ण दृष्टि समझना होगा। अर्द्ध दृष्टि या त्रिपाद दृष्टिविषयमें उक्त प्रकारका सम्पूर्ण फल नहीं होगा।

शुक्रारिष्ट—कर्कट और सिंहराशि यदि जातवालकके जन्मलग्नकी द्वादश, षष्ठ अथवा अष्टमराशिकी कोई राशि हो तथा उसमें शुक्रग्रह रहे और पापग्रह उस शुक्रको देखता हो, तो जातवालककी ६ वर्षके भीतर मृत्यु होती है।

इसके सिवा शुक्रके शयनादि द्वादश भावका भी विचार कर फल निरूपण करना होता है। क्योंकि, भावफलका भी अच्छी तरह विचार कर देखना आवश्यक है। इस फलका विषय फलितज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—

लग्नसे सप्तम अथवा एकादश स्थानमें शुक्रके शयनभावमें रहने पर जिसका जन्म हो, वह नाना प्रकारका सुखभोग करता है, जीवनमें कभी दरिद्र नहीं होता। उसे अधिक सन्तान होती है। शुक्र यदि दुर्बल हो, तो अल्पसंख्यक पुत्र जन्म लेता है। फिर यदि सप्तम या एकादश स्थानमें न रह कर अन्य स्थानमें निद्राभावमें रहे, तो वह जातक विद्वान्, धनी, धार्मिक और नाना प्रकारका सुखसम्पन्न होता है, किन्तु उसके पुत्रका नाश अवश्यम्भावी है।

शुक्रके उपवेशनभावकालमें जन्म होनेसे जातक धनी और धार्मिक होता है तथा उसके दक्षिणाङ्गमें क्षतचिह्न और सन्धिस्थानमें वेदना रहती है। वह शुक्र यदि तुङ्गगत या स्वक्षेत्रगत हो, तो जातक अति दाता और सुखी होता है।

जन्मकालमें शुक्रके नेत्रपाणिभावमें रहनेसे जातकके चक्षु विनष्ट होते हैं और यदि सप्तम स्थानमें उसी भावमें रहे, तो चक्षु नाश निश्चय ही होता है। इसी भावमें कर्मस्थानमें रहनेसे इतनी दरिद्रता आ जाती है, कि वह समुद्र भी शोषण कर सकता है। इन सब स्थानोंको छोड़ अन्यस्थानमे उसी भावमे रहनेसे जातक दो पत्नीका पति और नानाविध सुखऐश्वर्य पाता है।

शुक्रके लग्नस्थानमें, द्वितीयमें, सप्तम या नवमगृहमें प्रकाशभावमें रहनेसे जातक धार्मिक और विशुद्ध होता है। वह शुक्र तुङ्गगत या मित्रक्षेत्रगत हो, तो प्रसूत बालक राज्यप्रतिष्ठा लाभ करता है। उन सब स्थानोंको छोड़ अन्य स्थानमें रहनेसे जातक सर्वदा रोगग्रस्त, नियत विदेशवासी, दुःखभोगी और नृत्यकर्ममें रत होता है।

जन्मकालमे शुक्रके गमनेच्छाभावमे रहनेसे जातकका भ्रातृनाश और मातृवियोग होता है तथा बाल्यकालसे ही वह रोग भुगता है।

जन्मकालमें शुक्रके गमनभावमे रहनेसे जातबालक सभी कार्योंमे उत्साही, शिल्पकर्ममें निपुण और तीर्थगमनमें रत होता है तथा उसके गुल्फदेशमें क्षतचिह्न रहता है।

जन्मकालमें शुक्रके स्वभावस्थितिभावमें रहनेसे मानव राजमन्त्री, धनी और सभी कार्यों में दक्ष होते हैं, किन्तु उन्हें शूलरोग हुआ करता है। वह शुक्र यदि अरिगृहवासी हो या अरिके साथ रहता हो, अथवा शत्रु कर्त्तृक पूर्णेक्षित हो, तो उसका सर्वस्व नाश होता और उसे नाना प्रकारकी व्याधि होती है।

शुक्रजन्मके समय यदि आगमनभावमें रहे, तो मानव दुःखी, बहुभाषी, दद्रु रोगी, पुत्रशोकातुर और नराधम होते हैं। वह शुक्र रिपुगृहगत या रिपुके साथ एकत्रावस्थित या रिपुकर्त्तृक वीक्षित होने पर उसकी सर्वसम्पत्तिका नाश, विशेषतः स्त्री और पुत्रका नाश होता है। आगमनभावस्थ शुक्रके लग्नसे द्वितीय, दशम, चतुर्थ अथवा अष्टमगृहमें रहनेसे जातबालक सभी प्रकारके दुःखोंका भाजन होता है। इसमें फिर कोई विचार करनेकी आवश्यकता नहीं।

जन्मकालमे शुक्रके भोजनभावमें रहनेसे जातक बलवान्, धार्मिक, वाणिज्य वा नौकरीसे अत्यन्त धनवान्, मन्दाग्नियुक्त, पित्तशूलरोगी, शिरोरोगी, सर्वदा पीड़ित और विदेशवासी होता है।

शुक्र नृत्यलिप्सा भावमें रहनेसे जातक वाग्मी होता है तथा दिनों दिन उसकी कवित्वशक्ति और पाण्डित्यकी वृद्धि होती है। किन्तु वह शुक्र नीचगृहस्थित हो, तो जातक मूर्ख होता है। यदि उक्त शुक्र अपने तुङ्ग स्थान अथवा स्वक्षेत्रमें रहे, तो वह व्यक्ति राजमन्त्री, महाबलशाली, कामुक, अनेक स्त्रीविशिष्ट, सर्वदा परस्त्रीरत, श्यामवर्ण, मानी और धनी होता है।

जन्मकालमें शुक्रके कौतुकभावमें रहनेसे मानव धनवान्, सात्त्विक, अतिशय, आह्लादयुक्त, उत्तमवक्ता, सर्वदा कौतुककारी, बहुपुत्र और बहुकलत्रयुक्त तथा नाना प्रकारका सुखविशिष्ट होता है। किन्तु वह शुक्र यदि नीचस्थान स्थित हो, तो उक्त फलोंका विपरीत फल होता है।

शुक्रके निद्राभावमें जन्म होनेसे मानव नियत क्लेशयुक्त, रोगी, दरिद्र, विकलाङ्ग और स्थूलदेहवाला होता है, किन्तु वह शुक्र यदि उसके मित्रक्षेत्रमें रहे, तो उसकी सर्वसम्पत्ति विनष्ट होती है।

इसी प्रकार शयनादि बारह भावोंका फल स्थिर करके ग्रहका शुभाशुभ निरूपण करना होता है।

शुक्रका क्षेत्रफल—शुक्रके क्षेत्रमे जन्म होनेसे जातक वाणिज्यकुशल, धीर, विषयी, प्रियदर्शन और नृत्यगीतानुरक्त होता है।

शुक्रका द्रेक्काणफल—शुक्रके द्रेक्काणमें जन्म होनेसे सुरूप राजमन्त्री, स्वजनानुरागी, कर्मकुशल, दाता और साधुजनोंका प्रतिपालक, उत्तमा पत्नी और गुणवान्, पुत्रयुक्त, दयालु, शुचि और शांत प्रकृतिवाला तथा धर्मानुरागी होता है।

शुक्रका नवांश फल—शुक्रके नवांशमें जन्म होनेसे मनोहर चक्षु, सुन्दरकेश, शोभनमूर्त्ति, शूर, विद्वान् और कवित्वशक्तिसम्पन्न, धनी, दाता और गुणग्राही होता है।

शुक्रका द्वादशांश फल—शुक्रके द्वादशांशमे जन्म लेनेसे

जातक कीर्त्ति और बलशाली, लोकपूजित, कवि, विचक्षण और दाता होता है।

शुक्रका त्रिंशांश फल—शुक्रके त्रिंशांशमें जन्म होनेसे सुरूप, दाता, धर्मपरायण और नृत्यगीतानुरागी होता है।

शुक्रग्रहका भोग दिन शुक्रवार और शुक्रग्रह है। अतएव यह ग्रहभोग्य दिन भी शुभदिन हैं। इस दिन सभी शुभकार्य किये जा सकते हैं। इस वारमें जन्म होनेसे जातक कुटिल, दीर्घजीवी, नीतिशास्त्रविशारद और नारियोंका चित्तहारक होता है।

इन सब फलोंका अपने दशाकालमें विशेषरूपसे भोग होता है। अष्टोत्तरी मतसे शुक्रका दशाभोगकाल २१ वर्ष है। सभी ग्रहोंसे इस ग्रहका दशाभोगकाल बहुत लंबा है।

उत्तरभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रमें जन्म होनेसे पहले शुक्रकी दशा होती है। यह दशा २१ वर्ष है। इसके प्रति नक्षत्रमें ५ वर्ष, ३ मास, २२ दिन, ३० दण्ड भोग, प्रतिदण्डमें १ मास, १ दिन, ३० दण्ड और प्रति पलमें ३१ दण्ड ३० पल भोग होता है।

शुक्रके दशाभोगकालमें मानवकी मंत्रसिद्धि, प्रमदासंगलाभ, सम्मान, वदान्यता, राजपूजा, हाथी, घोड़े आदि सवारियोंसे जाना, मनोरथसिद्धि, अर्थसञ्चय और राजलक्ष्मी लाभ होती हैं। यह शुक्रका स्थूल फल है। शुक्र शुभग्रह है, इस कारण उसकी दशामें उक्त प्रकारका शुभफल होता है। किंतु फलविचार कालमें शुक्र किस भावमें है, उसका लक्ष्य रखना कर्त्तव्य है। यदि वह ग्रह शुभ भावमें अवस्थित हो, तो शुभफल, नहीं तो अशुभफल होता है।

शुक्रकी स्थूलदशा २१ वर्ष है, इस २१ वर्षमें फिर अन्तर्दशा आदि हैं। उनका भोगकाल इस प्रकार लिखा है।

शुक्रकी दशाका प्रथम ४ वर्ष १ मास शुक्रकी ही अन्तर्दशा है, पीछे शु, र, १ वर्ष २ मास। शु, च, २ वर्ष ११ मास। शु, म, १ वर्ष ६ मास २० दिन। शु, बु, ३ वर्ष ३ मास २० दिन। शु, श, १ वर्ष ११ मास १० दिन। शु, बृ, ३ वर्ष ८ मास १० दिन। शु, र, २ वर्ष ४ मास।

इस अन्तर्दशामें फिर प्रत्यन्तविभाग है, विस्तार हो जानेके भयसे वह नहीं लिखा गया।

विंशोत्तरीमतसे इस दशाका भोगकाल २० वर्ष है। पूर्वाफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा वा भरणी नक्षत्रमें जन्म होनेसे शुक्रकी दशा होती है।

इस दशाकी अन्तर्दशा—शुक्र, शुक्र, ३ वर्ष ४ मास, शु, र, १ वर्ष। शु, च, १ वर्ष ८ मास। शु, म, १ वर्ष २ मास। शु, र, ३ वर्ष। शु, बृ, २ वर्ष ८ मास। श, श, ३ वर्ष २ मास। श, बु, २ वर्ष १० मास। श, के, १ वर्ष २ मास।

विंशोत्तरी मतसे किस प्रकार दशान्तर्दशादिका स्थिर और उसका विचार करना होता है, पराशर उसे अच्छी तरह निर्णय कर गये हैं। विस्तार हो जानेके भयसे उसका उल्लेख नहीं किया गया।

३ ज्येष्ठ मास, जेठ। यह कुबेरका भंडारी कहा गया है। ४ स्वच्छ और शुद्ध सोम। ५ चित्रक वृक्ष, चीता। ५ सार, सत। ६ बल, सामर्थ्य, पौरुष। ७ सप्ताहका छठा दिन जो वृहस्पतिवारके बाद और शनिवारसे पहले पड़ता है। ८ आंखकी पुतलीका एक रोग, फूला, फूली। ९ एरण्डवृक्ष, रेंड। १० स्वर्ण, सोना। ११ धन, दौलत।

शुक्र (अ० पु०) धन्यवाद, कृतज्ञता प्रकाश।

शुक्रकर (सं० पु०) करोतीति कृ पचाद्यच्, शुक्रस्य करः। १ मज्जा। (त्रि०) २ वीर्यकारक, शुक्रवर्द्धक।

शुक्रकृच्छ्र (सं० क्ली०) शुक्रस्य कृच्छ्रं। मूत्रकृच्छ्र रोग, सूजाक।

शुक्रगतज्वर (सं० पु०) शुक्राश्रित ज्वर, वह ज्वर या बुखार जो शुक्र धातुको आश्रय करके होता है। जिस ज्वरमें लिङ्गकी स्तब्धता तथा विशेषरूपसे शुक्र क्षरण होता है, उसे शुक्रगत ज्वर कहते हैं।

शुक्रगुजर (फा० पु०) एहसान माननेवाला, धन्यवाद देनेवाला, कृतज्ञ।

शुक्रगुजारी (फा० स्त्री०) एहसानमंदी, किये हुए उपकारको मानना।

शुक्रज (सं० पु०) शुक्राज्जायते जन-ड। १ शुक्रजातमात्र, पुत्र, बेटा। २ देवताओंका एक भेद। ३ मेह रोग विशेष।

शुक्रज्योतिस् (सं० क्ली०) अत्यन्त उज्ज्वल।

शुक्रतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद, शुक्लतीर्थ।

शुक्रद (सं० त्रि०) शुक्रं ददातीति दा-क। १ शुक्रदायक, शुक्रकारक। (पु०) २ गोधूम, गेहूं।

शुक्रदन्त (सं० पु०) काश्मीरका एक मन्त्री।

शुक्रदुघ (सं० पु०) दुग्धदोग्ध्री धेनु, वह गाय जिसका दूध दूहा जाय। (ऋक् ६।३५।५)

शुक्रदोष (सं० पु०) क्लीवत्व, नपुंसकता।

शुक्रधारा (सं० स्त्री०) सप्तमी कला। यह प्राणियोंकी सर्वशरीरव्यापिनी है।

शुक्रप (सं० त्रि०) निर्मल सोमपायी।

शुक्रपिश् (सं० त्रि०) शोचमानरूपा श्री।

शुक्रपुष्प (सं० पु०) कुरुवक शाक, कटसरैया।

शुक्रपुष्पा (सं० स्त्री०) श्वेतापराजिता, सफेद अपराजिता।

शुक्रपूतप (सं० त्रि०) निर्मल सोमपायी।

शुक्रप्रमेह (सं० पु०) धातुक्षीणता, धातका गिरना। यह एक रोग है।

शुक्रभुज् (सं० पु०) शुक्रं भुङ्क्ते इति भुज-क्विप्। १ मयूर, मोर। (त्रि०) २ रेतोभोजक।

शुक्रभू (सं० पु०) शुक्राद् भूरुत्पत्तिर्यस्य। मज्जा।

शुक्रमातृ (सं० स्त्री०) भार्गी, बभनेटी।

शुक्रमातृकावटिका (सं० स्त्री०) प्रमेहरोगाधिकारकी एक औषध। इसके बनानेकी तरकीब—गोखरूका बीज, त्रिफला, तेजपत्र, इलायची, रसाञ्जन, धनिया, जीरा, तालीशपत्र, सोहागा, अनारका बीज प्रत्येक ४ तोला, पारा, अभ्र, गन्धक और लौह प्रत्येक ८ तोला, इन्हें अनारके रसमें मर्द्दन कर ५ रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान अनारका रस बकरीका दूध या जल है। इस औषधका सेवन करनेसे प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोग दूर होता है।

शुक्रमूत्रल (सं० त्रि०) शुक्र और मूत्रयुक्त।

शुक्रमेह (सं० पु०) मेहरोग-भेद, प्रमेहरोग। जिस प्रमेह रोगमें शुक्रके समान सफेद और पेशाबके साथ शुक्र (धातु) निकलता है, उसे शुक्रमेह कहते हैं। विशेष विवरण प्रमेह शब्दमें देखो।

शुक्रमेहिन् (सं० त्रि०) शुक्रं मेहति मिह-णिनि। शुक्रमेहरोगी, जिसे शुक्रमेह रोग हुआ हो।

शुक्ररूप (सं० पु०) शुक्रं रूपं यस्य। अग्नि।

शुक्रल (सं० त्रि०) १ वीर्यदाता, वीर्यवर्द्धक। २ अधिक शुक्रविशिष्ट।

शुक्रला (सं० स्त्री०) शुक्रं लाति ददाति ला-क-टाप्। १ उच्चटा, उटंगनके बीज। २ आमलकवृक्ष, आंवलाका पेड़।

शुक्रवत् (सं० त्रि०) शुक्र अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शुक्रविशिष्ट, प्रशस्त शुक्रयुक्त।

शुक्रवर्चस् (सं० त्रि०) निर्मल तेजस्क।

शुक्रवर्ण (सं० त्रि०) दीप्तवर्ण, उज्ज्वलवर्ण।

शुक्रवह (सं० त्रि०) शुक्रवहनकारी स्रोतः।

शुक्रवहस्रोतस् (सं० क्ली०) शुक्रवहनाड़ी, वह नाड़ी जिससे शुक्र प्रचालित होता है। इसका मूल लिङ्ग और दो वृषण (पोता) है। (चरक)

शुक्रवार (सं० पु०) शुक्रस्य वारः। शुक्रग्रहभोग्य दिन, सप्ताहका छठा दिन जो बृहस्पतिवारके बाद और शनिवारके पहले पड़ता है। शुक्र ग्रह शुभ ग्रह है, सुतरां यह ग्रह भोग्य दिन भी सभी कामोंमें शुभ है। ज्योतिःशास्त्रके मतसे इस दिन पश्चिमकी ओर यात्रा नहीं करनी चाहिए। विद्यारम्भमें यह दिन मध्यम माना गया है। शुक्रवारको तिल तर्पण करना उचित नहीं, किन्तु यदि अयन, विषुवसंक्रान्ति, ग्रहण, उपाकर्म, उत्सर्ग, युगादि और मृतदिनमें शुक्रवार पड़े, तो तिलतर्पणमें दोष नहीं होगा। (प्रायश्चित्ततत्त्व)

शुक्र शब्द देखो।

शुक्रवासस् (सं० पु०) शुक्रं वासो यस्य। १ श्वेतवसन, सफेद कपड़ा। २ निर्मल दीप्ति।

शुक्रशिष्य (सं० पु०) शुक्रस्य शिष्यः। शुक्राचार्यका शिष्य, असुर, दैत्य।

शुक्रशोचिस् (सं० त्रि०) दीप्तवर्ण अग्नि।

शुक्रसद्मन् (सं० त्रि०) निर्मल अन्तरीक्षवासी।

शुक्रसुत (सं० पु०) शुक्रस्य सुतः। १ शुक्रका पुत्र। २ केतुभेद। चतुरशीति संख्यक केतुका नाम शुक्रसुत है। यह केतु उत्तर दिशा या ईशान कोणमें दिखाई देता है। (बृहत्संहिता ११।१७)

शुक्रस्तम्भ (सं० पु०) ध्वजभङ्ग या नपुंसकताका एक

भेद। यह बहुत दिनों तक ब्रह्मचर्य पालन करनेसे होता है।

शुक्रस्तोम (सं० पु०) साध्ययज्ञभेद।

शुक्रहरण (सं० क्ली०) शुक्रका नाश, शुक्रका क्षय।

शुक्रा (सं० स्त्री०) वंशलोचना, वंशलोचन।

शुक्राङ्ग (सं० पु०) मयूर, मोर।

शुक्राचार्य (सं० पु०) एक ऋषि। ये दैत्योंके गुरु और महर्षि भृगुके पुत्र थे। इनकी कन्याका नाम देवयानी और पुत्रोंका षंड तथा अमर्क था। देवगुरु बृहस्पतिके पुत्र कचने इनसे संजीवनी विद्या सीखी थी। पौराणिक उपाख्यानके शर्म्मिष्ठा-देवयानीसंवादमें तथा बलिराजके यज्ञमें इनकी क्रूरता और चक्षुहीनताका परिचय मिलता है। ययाति और बलि देखो।

शुक्राधिक्य (सं० क्ली०) शुक्रस्य आधिक्यं। श्लेष्म-जन्य रोगविशेष।

शुक्राल्पता (सं० स्त्री०) पित्तजन्य रोगविशेष।

शुक्राश्मरी (सं० स्त्री०) शुक्रजन्य अश्मरीरोग, वह पथरी जो स्खलित होते समय वीर्यको रोकनेसे उत्पन्न होती है।

शुक्रवेगधारणके हेतु महत् अर्थात् वयःप्राप्त व्यक्तियों-के यह रोग होता है। छोटे छोटे लड़कोंके यह नहीं होता, क्योंकि उसके सूक्ष्म शुक्र रोकनेसे अनिष्टकी सम्भा-वना नहीं है। जब कामवेगवशतः स्वस्थानच्युत शुक्र स्खलित न हो कर वायुकर्त्तृक शिश्न और दोनों शुष्कके मध्यगत वस्तिमुखमें धृत और शोषित होता है, तब यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें रोगीके मूत्रा-शयमें वेदना होती और बड़े कष्टसे पेशाब उतरता है तथा दोनों अण्डकोष सूज आते हैं। इस रोगके उत्पन्न होते ही शुक्रस्खलन होने लगता है तथा शिश्न और मुष्कका मध्यदेश दर्द करनेसे अश्मरी भीतरमें लीन हो जाती है। यह रोग होनेसे दुर्बल, शरीरकी अवसन्नता, कृशता, कुक्षिशूल, अरुचि, पाण्डु, मूत्राघात, पिपासा, हृद्रोग और वमि ये सब उपद्रव होते हैं।

शुक्रिमन् (सं० पु०) शुक्रस्य भावः शुक्र (वर्णादृढा-दिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति इमनिच्। शुक्रका भाव।

शुक्रिय (सं० त्रि०) १ शुक्र-सम्बन्धी, शुक्रका। २ शुक्र देवताक हविः आदि। (याज्ञवल्क्य ३।३०८) ३ शुक्रवत्, शुक्रविशिष्ट।

शुक्रिया (फा० पु०) धन्यवाद, कृतज्ञता प्रकाश।

शुक्रेश्वर (सं० क्ली०) शिवलिङ्गभेद।

शुक्ल (सं० पु०) शुच-रन्, रस्य ल। १ वर्णविशेष, सफेदी। पर्याय—शुभ्र, शुचि, श्वेत, विशद, श्येत, पाण्डर, अवदात, सित, गौर, वलक्ष, धवल, अर्जुन, श्वेता, श्येता, स्येनी, विपद, सिता, अवलक्ष, शिति, पाण्डु, राम, खरु। (जटाधर)

२ शुक्लपक्ष, प्रतिमासमें दो पक्ष होते हैं, शुक्ल और कृष्ण। जब चन्द्रवृद्धि होती है, तब शुक्लपक्ष और जब चन्द्रका क्षय होता है, तब उसे कृष्णपक्ष कहते हैं।

(त्रि०) ३ शुक्लगुणयुक्त। शुक्लवस्तु ये सब हैं—सुधांशु, उच्चैःश्रवाः, शम्भु, कीर्त्ति, ज्योत्स्ना, शरद्घन, प्रासाद, सौध, तगर, मन्दारद्रुम, हिमाद्रि, सूर्येन्दुकान्त, कर्पूर, करभ, रजत, हली (बलराम), निर्मोक, भस्म, हिण्डीर, चन्दन, करका, हिम, हार, ऊर्णनाभ, तन्तु, अस्थि, स्वर्गङ्गा, हस्तिदन्त, अभ्रक, शेषाहि, शर्करा, दुग्ध, दधि, गङ्गा, सुधा, जल, मृणाल, सिकता, बक, कैरव, चामर, रम्भागर्भ, पुण्डरीक, केतकी, शङ्ख, निर्झर, लोध्र, सिंह-ध्वज, छत्र, चूर्ण, शुक्ति, कपर्दक, मुक्ता, कुसुम, नक्षत्र, दन्त, पुण्य, गुण, कैलास, काश, कार्पास, हास, श्वेत-कुञ्जर (ऐरावत), नारद, पारद, कुन्द, खटिक और स्फटिक आदि द्रव्य शुक्लवाचक हैं। शुक्लकृष्णवाचक—

विधु—इस शब्दसे चन्द्र और विष्णुका बोध होता है, चन्द्र शुक्ल और विष्णु कृष्ण हैं, अतएव यह शब्द शुक्लकृष्णवाचक है। इसी प्रकार हरिकृष्ण, सिंह। शिति—धवल और मोचक। तारा—नक्षत्र और चक्षु-की कनीनिका। अभ्रक—गिरिज और मेघ। नागराज—शेष और गज। घनसार—कर्पूर और मेघश्रेष्ठ। राम—बलराम और दाशरथि। पयोराशि—दुग्धसमूह और समुद्र। अर्जुन—शुभ्र और पार्थ। सिंहीज—सिंह और राहु। अनन्त—बलभद्र और कृष्ण। चंद्र-हास—चन्द्रहास्य और खड्ग। शङ्कर—कम्बुकान्ति

और कृष्ण। तारकेश—चन्द्र और उज्ज्वलकेश। सदा-काश—सर्वदा काश और सद्‌गगन। व्योमकेश—शिव और नभोवाल। तालाङ्क—बलभद्र और ताल-कलङ्क। नीलांशुक—बलभद्र और कृष्णकांति। अधि-केश—अधिक शिव और अधिककेश। अरिष्ट—शुक और काक। सदासिचय—सिचय शब्दसे वस्त्र और असिचय खड्‌गका बोध होता है। कलकण्ठ—हंस और पिक। इत्यादि। (कविकल्पलता)

(क्ली०) ४ रजत, चाँदी। ५ नवनीत, मक्खन। ६ शबरलोध्र, सफेद लोध। ७ धववृक्ष, धौ। ८ श्वेत एरण्ड, सफेद रेंड़। ९ नेत्ररोगविशेष, आंखोंका एक रोग। यह रोग आंखोंके तल या डेले पर होता है। वैद्यकमें लिखा है, कि दोनों नेत्रके शुक्ल भागमें प्रस्ता-र्य्यर्म, शुक्लार्म्म, रक्तार्म्म, अधिमांसार्म्म और स्नार्य्यर्म, शुक्ति, अर्जुन, पिष्टक, शिराजाल, शिरापीड़का और बलासग्रन्थि ये ग्यारह प्रकारके रोग होते हैं।

इनका लक्षण नेत्ररोग शब्दमें देखो।

जिस रोगमें शुक्लमण्डलमें कुछ सफेद अथच कोमल मांसोच्छ्राय हो कर देरीसे बढ़ता है, उसे शुक्लार्म कहते हैं।

१० ब्राह्मणोंकी एक पदवी। ११ योगविशेष, शक्ल-योग। १२ विष्णुका एक नाम।

(त्रि०) १३ सफेद, उजला।

शुक्लक (सं० पु०) शुक्ल स्वार्थे कन्। १ शुक्लपक्ष। २ श्वेतवर्ण। ३ क्षीरिणी वृक्ष, खिरनीका पेड़।

शुक्लकण्ठ (सं० पु०) शुक्लकण्ठक देखो।

शुक्लकण्ठक (सं० पु०) शुक्लः कण्ठो यस्य कन्। १ दात्यूहपक्षी, मुर्गावी। (त्रि०) २ श्वेतवर्ण गलयुक्त, जिसका गला सफेद हो।

शुक्लकन्द (सं० पु०) शुक्लः कन्दो यस्य। महिष-कन्द, भैंसाकंद। २ अतीस। ३ श्वेतालुक, शंखालू।

शुक्लकन्दा (सं० स्त्री०) १ अतिविषा, अतीस। २ विदारी कंद। ३ भूमिकुष्माण्ड, भूईं कुम्हड़ा।

शुक्लकर्मन् (सं० त्रि०) शुक्लं पूतं कर्म यस्य। १ अकृष्ण-कर्मा, सुकर्मशील, जो शुक्ल अर्थात् पुण्यजनक कर्म करे। (क्ली०) २ पुण्यजनककर्म। कर्म तीन प्रकारका है,—शुक्ल, कृष्ण और शुक्लाकृष्ण। पवित्र और निर्दोषकर्मका नाम शुक्ल, पापकर्मका नाम कृष्ण तथा शुभाशुभ मिश्रकर्मका नाम शुक्लाकृष्ण कर्म है—इनमेंसे जो शुक्लकर्म करते हैं, उन्हें शुभगति होती है।

शुक्लकुष्ठ (सं० क्ली०) शुक्लं कुष्ठं। श्वेतवर्ण कुष्ठरोग, वह कुष्ठ जिसमें शरीर पर सफेद सफेद चकत्ते पड़ जाते हैं। सोमराजका बीज मक्खनमें मिला कर मधुके साथ खाने-से शुक्लकुष्ठ आराम होता है। (गरुड़पु० १९५ अ०)

श्वित्र देखो।

शुक्लक्षीरा (सं० स्त्री०) शुक्लं क्षीरं यस्याः। १ काकोली। (त्रि०) २ श्वेतदुग्धयुक्त, जिसमें सफेद दूध हो।

शुक्लक्षेत्र (सं० क्ली०) पवित्र क्षेत्र, तीर्थस्थान।

शुक्लजनार्दन (सं० पु०) एक प्राचीन पण्डित। ये ओष्ठशतकके प्रणेता नीलकण्ठके पिता थे।

शुक्लता (सं० स्त्री०) शुक्लस्य भावः तल्-टाप्। १ शुक्लका भाव या धर्म। २ श्वेतता, सफेदी।

शुक्लतीर्थ (सं० क्ली०) एक प्राचीन तीर्थका नाम। इसे विष्णुतीर्थ भी कहते हैं। (भाग० ३।२३।२३)

शुक्लत्व (सं० क्ली०) १ शुक्लका भाव या धर्म। २ श्वेतता, सफेदी।

शुक्लदत् (सं० त्रि०) शुक्लाः दन्ताः यस्य, दन्तशब्दस्य दत् आदेशः। शुक्लदन्त, साफ दांतवाला।

शुक्लदती (सं० स्त्री०) श्वेतदन्ता, साफ दांतवाली।

श्वेतदुग्ध (सं० पु०) शुक्लं दुग्धं निर्यासो यस्य। १ शृङ्गाटक, सिंघाड़ा। (त्रि०) २ श्वेतदुग्धयुक्त, जिस-में सफेद दूध हो।

शुक्लधातु (सं० पु०) शुक्लः शुक्लवर्णः धातुः। १ कठिनी खड़ी मिट्टी। २ श्वेतवर्ण धातु द्रव्य।

शुक्लधान्य (सं० क्ली०) शुक्लवर्ण धान्य, सफेद धान।

शुक्लपक्ष (सं० पु०) शुक्लः पक्षः। सित पक्ष, जिस पक्षमें चन्द्रमाकी वृद्धि होती है, वही शुक्लपक्ष है। प्रति-पदसे ले कर पूर्णिमा तक पन्द्रह तिथियोंमें एक एक कला करके चन्द्रमाकी वृद्धि हुआ करती है। यह पन्द्रह तिथियां शुक्लपक्ष कहलाती है।

शुक्लपक्षकी तिथि सब काममें प्रशस्त है। तिथि

यदि उभय दिनगामिनी हो, तो शुक्लपक्षकी जिस तिथिमें सूर्य उदित होते हैं, वही तिथि ग्रहणीया है अर्थात् इसी तिथिमें कार्यादि करना होगा तथा कृष्णपक्षकी जिस तिथिमें सूर्य अस्तमित होते हैं, वही दिन क्रियाकाण्डमें सुप्रशस्त है।

संस्कार कार्यमात्रही शुक्लपक्षमें उत्तम है। विद्यारम्भ, देवप्रतिष्ठा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश आदि शुभकर्म मात्र ही शुक्लपक्षमें करना होता है।

शुक्लपुष्प (सं० पु०) शुक्लं पुष्पमस्य। १ छत्रकवृक्ष। २ कुन्द नामक फूलका पौधा। ३ श्वेत कोकिलाक्ष, सफेद तालमखाना। ४ मरुवक, मरुआ। ५ पिण्डार। ६ मैनफल। (त्रि०) ७ श्वेत कुसुमयुक्त।

शुक्लपुष्पा (सं० स्त्री०) शुक्लपुष्प-टाप्। १ नागदन्ती। २ शीतकुम्भी, शीतली लता। ३ हस्तिशुण्ड वृक्ष, हाथीसुंडी नामक क्षुप। (पर्यायमु०)

शुक्लपुष्पी (सं० स्त्री०) शुक्लपुष्पा देखो।

शुक्लपृष्ठक (सं० पु०) शुक्लं पृष्ठं यस्य कन्। १ सिन्धुक वृक्ष, सिंधुआर। (त्रि०) श्वेतवर्ण पृष्ठयुक्त, जिसकी पीठ सफेद रंगकी हो।

शुक्लफल (सं० पु०) आक, मदार।

शुक्लफला (सं० स्त्री०) १ शमी वृक्ष, छीकुर। २ आक, मदार।

शुक्लफेन (सं० पु०) समुद्रफेन।

शुक्लबल (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार एक जिनदेवका नाम।

शुक्लभण्डी (सं० स्त्री०) शुक्ला त्रिवृत्। सफेद सरसों।

शुक्लभूदेव (सं० पु०) एक कवि। भूदेव देखो।

शुक्लमञ्जरी (सं० स्त्री०) श्वेत निर्गुण्डी, सफेद निसिन्दा।

शुक्लमण्डल (सं० क्ली०) शुक्लं मण्डलं। १ आँखोंका सफेद भाग जो पुतलीसे भिन्न होता है। २ श्वेत वर्ण गोल वस्तु।

शुक्लमथुरानाथ (सं० पु०) एक कवि। मथुरानाथ शुक्ल देखो।

शुक्लमेह (सं० पु०) चरकके अनुसार एक प्रकारका प्रमेह रोग।

शुक्लमेहिन् (सं० पु०) शुक्रं शुक्लवर्णं मूत्रं मेहतीति मिह-णिनि। प्रमेहरोगाक्रान्त, वह जिसे प्रमेह रोग हुआ हो।

शुक्लरोहित (सं० पु०) शुक्लः श्वेतवर्णो रोहितः। १ श्वेतरोहित वृक्ष, सफेद रोहेड़ा। २ शुभ्ररोहित।

शुक्लल (सं० त्रि०) शुक्लं लातीति ला-क। श्वेतदाता।

शुक्लला (सं० स्त्री०) १ उच्चटा, कूचका पेड़। २ आमलक, आँवला।

शुक्लवंश (सं० पु०) श्वेतवंश, सफेद बांस।

शुक्लवचा (सं० पु०) श्वेत वच।

शुक्लवत् (सं० त्रि०) शुक्ल-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शुक्लवर्ण, सफेद।

शुक्लवर्ग (सं० पु०) शुक्लानां वर्गः समूहः। श्वेतवर्ण सजातीय द्रव्य, शङ्ख, सीप, कौड़ी आदि।

शुक्लवायस (सं० पु०) शुक्लो वायस इव। १ बक, बगुला। २ शुक्लवर्ण काक, सफेद कौआ।

शुक्लविश्राम (सं० पु०) एक कवि। विश्राम शुक्ल देखो।

शुक्लवृक्ष (सं० पु०) धव या धौका वृक्ष।

शुक्लवृहती (सं० स्त्री०) श्वेत वृहती, सफेद कटाई।

शुक्लशाल (सं० पु०) शुक्लः शाल इव। १ गिरिनिम्ब। २ सफेद शाकका वृक्ष।

शुक्लसारंग (सं० पु०) शुक्ल चातक।

शुक्ला (सं० स्त्री०) शुक्लो वर्णोऽस्त्यस्या इति अच्-टाप। १ सरस्वती। २ शर्करा, शक्कर, चीनी। ३ काकोली। ४ विदारी। ५ स्नुही। ६ क्षीर काकोली। ७ भूकुष्माण्ड, भुइं कुम्हड़ा। ८ शेफालिका, निर्गुंडी। ९ निशिन्दा। (त्रि०) १० शुक्लवर्णा, सफेद रंग की।

शुक्लाक्ष (सं० पु०) एक प्रकारका पक्षी।

शुक्लागुरु (सं० क्ली०) अगुरुभेद, सफेद अगर।

शुक्लाङ्ग (सं० त्रि०) शुक्लं अङ्गं यस्य। १ श्वेत अवयवयुक्त। (पु०) २ शुक्लापाङ्ग, मयूर पक्षी, मोर। ३ द्वीपान्तरवचा, चोबचीनी।

शुक्लाङ्गा (सं० स्त्री०) शुक्लाङ्गी देखो।

शुक्लाङ्गी (सं० स्त्री०) १ शेफालिका, निर्गुण्डी। २ निशिन्दा।

शुक्लादिश्रावण कृष्णाष्टमी (सं० स्त्री०) व्रतविशेष। श्रावणमासके आदि या शुरूमें शुक्लपक्ष होनेसे उसके परवर्त्ती कृष्णपक्षीय अष्टमीमें यह व्रत करना होता है।

शुक्लादिश्रावण कृष्णासप्तमी (सं० स्त्री०) व्रतविशेष। श्रावण मासके प्रथममें शुक्लपक्ष होनेसे परवर्त्ती कृष्णपक्षकी सप्तमीमें यह व्रत करना होता है।

शुक्लापाङ्ग (सं० पु०) शुक्लौ अपाङ्गौ यस्य। १ मयूर, मोर। (त्रि०) २ श्वेतवर्ण नेत्र प्रान्त।

शुक्लाम्ल (सं० क्ली०) अम्लशाक, चुक्रिका या चूका नामक साग।

शुक्लायन (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शुक्लार्क (सं० पु०) श्वेतार्क, सफेद मदार। गुण—सारक, वात, कुष्ठ, कण्डु, विष, व्रण, प्लीहा, गुल्म, अर्श, कफ, उदर और कृमिनाशक। इसका फूल—शुक्रप्रद, लघु, दीपन, पाचक तथा अरोचक, अर्श, कास और श्वासनाशक। (भावप्र०) कटु, तिक्तोष्ण और मलशोधक। (राजनि०)

शुक्लार्मन् (सं० पु०) नेत्ररोगभेद, आँखोंका एक रोग। इसमें आँखोंके सफेद भागमें एक प्रकारका सफेद मस्सा हो जाता है जो धीरे धीरे बढ़ता रहता है।

शुक्लाहिफेन (सं० पु०) शुक्लपुष्पा अहिफेन वृक्ष, पोस्तेका पेड़।

शुक्लिमन् (सं० पु०) शुक्लस्य भावः शुक्ल (वर्णदृढ़ादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति इमनिच्। शुक्लता, सफेदी।

शुक्लेतर (सं० त्रि०) शुक्लादितरः। शुक्लसे भिन्न, जिस प्रकार नीलकृष्ण इत्यादि।

शुक्लेश्वर—प्रमाणा दर्शनाटकके प्रणेता।

शुक्लेश्वरनाथ—स्मृतिकल्पद्रुमके रचयिता।

शुक्लोदन (सं० पु०) ललितविस्तरके अनुसार महाराज शुद्धोदनके भाई।

शुक्लोपल (सं० पु०) शुक्ल उपलः। श्वेत प्रस्तर, सफेद पत्थर।

शुक्लोपला (सं० स्त्री०) शुक्ल उपल इव आकृतिर्यस्याः। शर्करा, चीनी।

शुक्लौदन (सं० क्ली०) शुक्लः ओदनः। आतपान्न, अरवा चावल।

शुक्षि (सं० पु०) शुष्यत्यनेनेति शुष (प्लुषि कुषि शुषिभ्यः क्सिः। उण् ३।१५५) इति क्सि। १ वायु, हवा। २ तेज। ३ चित्र, तसवीर।

शुग—एक प्राचीन कवि।

शुङ्ग (सं० पु०) १ वटवृक्ष, बरगद। २ आम्रातक वृक्ष, आँवलाका पेड़। ३ शूक, सींका। ४ पर्कटीवृक्ष, पाकड़का पेड़। ५ नवपल्लव। ६ फूलके नीचेका आधार या कटोरी।

शुङ्गवंश—एक प्राचीन क्षत्रिय वंश जो मौर्योंके पीछे मगधके सिंहासन पर बैठा था। इस वंशका स्थापक मौर्यवंशका सेनापति पुष्पमित्र था। इसने मौर्यवंशके अन्तिम राजा वृहद्रथको मार कर उसके साम्राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया और शुङ्गवंशकी प्रतिष्ठा की। चन्द्रगुप्तके राज्याभिषेकसे १३७० वर्ष पीछे यह घटना घटी थी। अनन्तर पुष्पमित्रकी मृत्यु होने पर उसका लड़का विदिशराज अग्निमित्र मगधके सिंहासन पर बैठा। लगभग ११२ वर्ष तक शुङ्गवंशियोंने दोर्दण्ड प्रतापसे मगधराज्यका शासन किया। इस वंशके शेष राजा देवभूतिको छिपके मार कर उसके मन्त्री कण्ववासुदेवने मगधका सिंहासन हथिया लिया, तभीसे मगधमें कण्ववंशकी प्रतिष्ठा हुई।

विष्णुपुराणमें इस राजवंशकी तालिका इस प्रकार दी हुई है—

१ पुष्पमित्र (पुष्यमित्र), २ अग्निमित्र, ३ सुज्येष्ठ, ४ वसुमित्र, ५ आर्द्रक (अन्तक, अन्तक या भद्रक), ६ पुलिन्दक, मरुनन्दन या मधुनन्दन, ७ घोषवसु, ८ वज्रवसु, ९ भागवत, १० देवभूति (क्षेमभूति या देवभूमि)।

उक्त तालिकाके साथ वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड और भागवतोक्त शुङ्गवंशका बहुत कुछ सामञ्जस्य है। वायुपुराणमें राजा अग्निमित्रका नामोल्लेख नहीं रहने पर भी पुष्पमित्रके पुत्र ८ वर्ष राज्यकालकी बात लिखी है। राजा अग्निमित्रको ले कर महाकवि कालिदास मालविकाग्निमित्र नाटककी रचना कर गये हैं। मत्स्य-

पुराणकी किसी किसी पोथीमें वसुमित्रके बाद सुज्येष्ठका राज्यकाल वर्णित है।

शुङ्गा (सं० स्त्री०) शुङ्गोऽस्त्यस्याः अच् टाप्। १ पर्कटिभेद, पाकड़का पेड़। २ नवपल्लवकोशी। ३ धान्यादि शूक, धान आदिकी बाल या सींक। (सुश्रुत ४।२६)

शुङ्गाकर्मन् (सं० पु०) पुंसवन संस्कारविशेष। इस संस्कारमें होम कार्य्यमें शोभननामक अग्नि स्थापन करके होम करना होता है। (तिथितत्त्व)

शुङ्गिन् (सं० पु०) शुङ्गा अस्त्यस्येति शुङ्गा-इनि। १ प्लक्षवृक्ष, पाकड़का पेड़। २ वटवृक्ष, बरगद। (त्रि०) ३ शुङ्गाविशिष्ट, सींकवाला।

शुङ्गोक—एक कवि।

शुचद्रथ (सं० त्रि०) उज्ज्वल रथविशिष्ट।

शुचा (सं० स्त्री०) शुच-शोके क्विप् पक्षे टाप्। १ शोक। (शब्दरत्ना०) २ शुचि। (ऋक् १०।१६।६)

शुचि (सं० पु०) शुच्यति अनेनेति शुच (इगुपधात् कित्। उण् ४।११९) इति इन्, सच कित्। १ अग्नि। (भागवत ४।२४।४) २ चित्रकवृक्ष, चीताका पेड़। ३ ज्येष्ठ मास। ४ आषाढ़ मास। ५ ग्रीष्म, गरमी। ६ शृङ्गार रस। ७ सौराग्नि। (कूर्मपु० ११ अ०) ८ सूर्य्य। ९ चन्द्रमा। १० शुक्र। ११ ब्राह्मण। १२ शुद्धमन्त्र। १३ अन्धकके एक पुत्रका नाम। (भागवत ९।२४।१९) १४ कार्त्तिकेय। (भागवत ३।२३।१४) (स्त्री०) १५ पुराणानुसार कश्यपकी पत्नी ताम्राके गर्भसे उत्पन्न एक कन्याका नाम। (गरुड़पु० ६ अ०) १६ पवित्रता, शुद्धता, सफाई। (त्रि०) १७ शुद्ध, पवित्र। १८ स्वच्छ, साफ। १९ निरपराध, निर्दोष। (भागवत १।१४९।१४) २० शुद्धान्तःकरण, जिसका अन्तः शुद्ध हो, स्वच्छ हृदयवाला। (मनु ७।३८) २१ अनुपहत। (मेदिनी)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि दैवात् यदि दूसरेका स्वर्ण स्पर्श हो, तो हस्तप्रक्षालनसे शुचि होती है।

शुचिकर्मन् (सं० त्रि०) कर्मनिष्ठ, सदाचारी, पवित्र कार्य्य करनेवाला।

शुचिका (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक अप्सराका नाम।

शुचिकापुष्प (सं० क्ली०) केतकी, केवड़ा।

शुचिकाम (सं० त्रि०) शुचिः कामो यस्य। शुद्धिकाम, शुचिकामनायुक्त।

शुचिक्रन्द (सं० पु०) शुद्ध स्तोत्र। (ऋक् २।६०।१)

शुचिजन्मन् (सं० त्रि०) दीप्ति या आलोकसे जात।

शुचिजिह्व (सं० त्रि०) दीप्त शिखायुक्त।

शुचिता (सं० स्त्री०) शुचेर्भावः तल्-टाप्। शुचिका भाव या धर्म, शुचित्व।

शुचिद्रुम (सं० पु०) शुचिः पवित्रो द्रुमः। १ अश्वत्थ वृक्ष, पीपल। २ शुद्ध वृक्ष।

शुचिन् (सं० त्रि०) १ शुचि, पवित्र। २ स्वच्छ, साफ।

शुचिनेत्ररतिसम्भव (सं० पु०) गन्धर्वराजभेद।

शुचिपदी (सं० स्त्री०) विशुद्ध पादयुक्ता।

शुचिपा (सं० त्रि०) शुचिं पाति पा-क्विप्। विशुद्ध सोमपाता।

शुचिपेशस् (सं० त्रि०) शोभन रूपयुक्त, सुन्दर रूपवाला, खूबसूरत।

शुचिप्रणी (सं० पु०) प्रणयति प्र नी क्विप्। आचमन।

शुचिप्रतीक (सं० त्रि०) १ शोभनावयव, शोभन शरीर। २ शोभन ज्वालायुक्त अग्नि। (ऋक् १।१४३।६)

शुचिबन्धु (सं० त्रि०) दीप्ततेजस्क पावक, अति तेजोयुक्त अग्नि।

शुचिभ्राजस् (सं० त्रि०) शोभन दीप्तियुक्त।

शुचिमल्लिका (सं० स्त्री०) नवमल्लिका, नेवारी।

शुचिरथ (सं० पु०) राजभेद। (विष्णुपु० ४।२१।४)

शुचिरोचिस् (सं० पु०) शुचिः शुक्लं रोचिः किरणो यस्य। १ चन्द्रमा। २ शुक्र किरण।

शुचिवन (सं० क्ली०) शुष्क, सूखा।

शुचिवर्चस् (सं० त्रि०) उज्ज्वल तेजोयुक्त।

शुचिवर्ण (सं० त्रि०) प्रदीप्त वर्ण। (ऋक् ५।२।३)

शुचिवर्मन्—राजपूतानेके मेवाड़राज्यके गुहिलवंशीय राजा शक्तिकुमारके पुत्र।

शुचिवाच् (सं० पु०) १ पर्वतभेद। (हरिवंश) (त्रि०) २ विशुद्ध वाक्ययुक्त।

शुचिवासस् (सं० त्रि०) विशुद्ध वस्त्रविशिष्ट, साफ कपड़ा पहननेवाला।

शुचिवृक्ष (सं० पु०) एक प्राचीन प्रवरकार ऋषिका नाम।

शुचिव्रत (सं० त्रि०)·शुचिः व्रतं यस्य। शुद्धकर्मा. विशुद्ध कर्मकारी। (ऋक् १।१६।१)
शुचिश्रवस् (सं० त्रि०) १ विशुद्ध यशोयुक्त। (भागवत १।५।१३) २ विष्णु। (भारत विष्णुका सहस्रनाम)
शुचिषद् (सं० पु०) १ द्युलोकवासी आदित्य। (ऋक् ४।४०।८) २ परमात्मा, परब्रह्म, हंस।
शुचिषह् (सं० पु०) अग्नि जो मेध्यको छोड़ अमेध्य द्रव्य ग्रहण नहीं करती। (नीलकण्ठ शांतिपर्व)
शुचिष्मत् (सं० पु०) अग्निका एक नाम।
शुचिसंक्षय (सं० पु०) शुचेः संक्षयः। ग्रीष्मावसान, ग्रीष्मका क्षय, वर्षाका प्रारम्भ।
शुचिस्मित (सं० त्रि०) १ उज्ज्वलज्योतिर्मय। २ विशुद्ध हास्ययुक्त।
शुचिव्रती (सं० स्त्री०) शुद्धिविशिष्टा, शुचियुक्ता।
शुची (सं० त्रि०) शुचिन् देखो।
शुचीरता (सं० स्त्री०) वीर्य्या। (त्रिका०)
शुजा (अ० वि०) बहादुर, शूरवीर, दिलेर।
शुजाअत (अ० स्त्री०) बहादुरी, वीरता।
शुटीर्य (सं० क्ली०) शुक्र, वीर्य।
शुण्ठाकर्ण (सं० त्रि०) ह्रस्वकर्ण, ह्रस्वकर्णविशिष्ट, छोटा कानवाला। (शुक्लयजु० २४।४)
शुण्ठि (सं० स्त्री०) शुठि-शोषणे इन्। शुण्ठी, सोंठ।
शुण्ठी (सं० स्त्री०) शुण्ठि वा ङीष्। स्वनामख्यात ओषधि, शुष्कार्द्रक, सोंठ (Gingiber officinale)। पर्याय—महौषध, विश्व, नागर, विश्वभेषज, शुण्ठि, विश्वा, महौषधी, इन्द्रभेषज, भेषज, विश्वौषध, कटुग्रन्थि कटुभद्र, कटूषण, सौपर्ण, श्रृङ्गवेर, कफारि, चान्द्रक, शोषण, नागराह्व। गुण—कटु, उष्ण, स्निग्ध, कफ, शोफ, अनिल, शूल, उदराध्मान, श्वास और श्लीपदनाशक। (राजनि०) गुण—रुचिकर, आमवात-नाशक, पाचन, कटु, लघु, स्निग्धोष्ण, पाकमें मधुर, कफ, वात और विवन्धनाशक, वृष्य, निःश्वास, शूल, कास और हृदामयनाशक, श्लीपद, शोथ, अर्श, आनाह, उदरवायुनाशक, आग्नेय गुणभूयिष्ट, जलांशशोषणकारी मलसंग्राहक। (भावप्र०)

सोंठका चूर्ण बड़ा फायदेमंद होता है। विसूचिका आदि रोगोंमें हाथ और पैर हिमाङ्ग होने पर इसकी थोड़ी थोड़ी मालिश करनेसे हाथ और पैर गरम हो जाते हैं। गरम दूधके साथ सोंठका चूर्ण सेवन करनेसे खाँसी और सर्दीमें बड़ा फायदा पहुंचता है। भातमें घी मिला कर सोंठका चूर्ण खानेसे वात और श्लेष्मा दूर होती है।

शुण्ठीखण्ड (सं० पु०) अम्लपित्त रोगाधिकारोक्त औषध-विशेष। इसके बनानेका तरीका—सोंठका चूर्ण आध सेर, चीनी २ सेर, घी १ सेर, दूध ८ सेर इन्हें एकत्र विधिपूर्वक पाक करे। पाक हो जाने पर प्रक्षेपार्थ आँवला, धनिया, मोथा, जीरा, पीपल, वंशलोचन, दारचीनी, तेजपत्ता, इलायची, मंगरैला और हर्रे प्रत्येक डेढ़ तोला, मिर्च और नागेश्वर प्रत्येक ६ माशा, ठण्ढा होने पर मधु ३ पल मिलावे। उपयुक्त मात्रामें इस औषधका सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल, हृद्रोग, वमि और आमवात रोग प्रशमित होते हैं। (भैषज्यरत्ना०)

शुण्ठीघृत (सं० क्ली०) घृतौषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—घृत ४ सेर, कल्कार्थ सोंठका चूर्ण १ सेर, कांजि १६ सेर, घृतपाकके विधानानुसार पाक करे। इसको सेवन करनेसे अग्नि वृद्धि होती है। खास कर आमवात रोगमें यह घी रामवाण है।

दूसरा तरीका—घृत ४ सेर, कल्कार्थ सोंठका चूर्ण १ सेर, सोंठका क्वाथ या जल १६ सेर। पीछे घृतपाक विधानानुसार पाक करे। इस घृतका सेवन करनेसे वात, श्लेष्मा, कटिशूल और आमवात दूर होता तथा अग्नि वृद्धि होती है। (भावप्र०)

शुण्ठीधान्याकघृत (सं० क्ली०) आमवात रोगोक्त घृतौषधविशेष। सोंठ तीन पाव तथा धनिया एक पाव, इसका कल्क भी १६ सेर जलसे ४ सेर घी यथाविधानसे पाक करे। यह घृत उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे वात श्लेष्मिक रोग, अर्श, श्वास और कास विनष्ट होता तथा बल, वर्ण और अग्नि वृद्धि होती है।

शुण्ठ्य (सं० क्ली०) शुण्ठी, सोंठ।
शुण्ड (सं० पु०) शुन गतौ डमन्तात् ड। १ करिकर, हाथीका सूंड़। २ हाथीका मद जो उसकी कनपटीसे बहता है।

शुण्डक (सं० पु०) १ शुद्रवेणु, एक प्रकारका रणवाद्य, भेरी । २ शौण्डिक, मद्य उतारने या बेचनेवाला ।

शुण्डरोह (सं० पु०) शुण्डवत् रोहतीति रुह-अच् । भूतृण, अगिया घास ।

शुण्डा (सं० स्त्री०) शुन-ड-टाप् । १ मद्यपानगृह, हौली । २ जलहस्तिनी । ३ वेश्या, रण्डी । ४ सुरा, शराब । ५ हस्तिहस्त, हाथीकी सूंड़ । ६ नलिनी । ७ कुट्टनी, कुटनी ।

शुण्डादण्ड (सं० पु०) हाथीकी सूंड़ ।

शुण्डापान (सं० क्ली०) शुण्डाया उपानं । मद्यपान-गृह, हौली । पर्याय—मदस्थान, मदस्थल ।

शुण्डार (सं० पु०) शुण्डां रातीति रा-क । १ शौण्डिक, मद्य उतारने या बेचनेवाला । हस्वा शुण्डा (कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः । पा ५।३।८८) इति र । २ स्वल्पशुण्डा अपकृष्ट शुण्डा । ३ करिशुण्डाकार वकयन्त्रभेद, वकयन्त्र, मद्य आदि चुआनेका यन्त्र । ४ साठ वर्षका हाथी । ५ हाथीकी सूंड़ ।

शुण्डारोचनिका (सं० स्त्री०) १ रञ्जिनी, नागवल्ली नामकी लता । २ नीली । ३ जम्भकालता । ४ मञ्जिष्ठ, मजीठ । ५ शेफालिका, निर्गुंडी । ६ हरिद्रा, हल्दी । ७ पर्पटी ।

शुण्डाल (सं० पु०) शुण्डेन अलतीति अल पर्याप्तौ अच् । हस्ती, हाथी ।

शुण्डिक (सं० पु०) १ मद्य बिकनेका स्थान, कलवरिया । २ एक प्राचीन जातिका नाम जिसका व्यवसाय मद्य उतारना और बेचना था ।

शुण्डिका (सं० पु०) १ अलिजिह्वा, उपजिह्विका । २ स्फोटक, फोड़ा । ३ शुण्डा देखो ।

शुण्डिन् (सं० पु०) शुण्डाऽस्त्यस्येति शुण्डा-इनि । १ शौण्डिक, कलवार । २ हस्ती, हाथी ।

शुण्डिनी (सं० स्त्री०) छुछुन्दरी ।

शुण्डिभूषिका (सं० स्त्री०) शुण्डिना शुण्डविशिष्टा भूषिका । छुछुन्दरी ।

शुण्डिरोचनिका (सं० स्त्री०) रोचनी ।

शुण्डी (सं० स्त्री०) १ हस्तीशुण्डी वृक्ष, हाथीसूंड़ोका पौधा । २ घांटी । ३ कौसुम्भी । ४ शालि ।

शुतुद्रि (सं० स्त्री०) शतद्रु नदी ।

शुतुद्र (सं० स्त्री०) शतद्रु नदी । शतद्रु देखो ।

शुतुरगाव (फा० पु०) जिराफा नामक जन्तु ।

विशेष विवरण जिराफा देखो ।

शुतुरमुर्ग (फा० पु०) एक प्रकारका बहुत बड़ा पक्षी । यह अमेरिका, अफ्रिका और अरबके रेगिस्तानमें पाया जाता है । यह प्रायः तीन गज तक ऊंचा होता है । इसकी गरदन ऊंटकी तरह बहुत लम्बी होती है । यह उड़ तो नहीं सकता, पर रेगिस्तानमें घोड़ेसे भी अधिक तेज दौड़ सकता है । यह घास और अनाज खाता है । कभी कभी कंकड़ पत्थर भी खा जाता है । इसके पर बहुत दाम पर बिकते हैं । यह एक बारमें तीससे कम अंडे नहीं देता ।

शुदनी (फा० स्त्री०) वह बात जिसका होना पहलेसे ही किसी दैवी शक्तिसे निश्चित हो, होनी, भावी होनहार ।

शुदी (हिं स्त्री०) सुदी देखो ।

शुद्ध (सं० क्ली०) शुध-क्त । १ सैन्धव, सेंधा नमक । २ मरिच, काली मिर्च । ३ रजत, चांदी । ४ शुण्डा नामकी घास । ५ शिवका एक नाम । ६ चौदहवें मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक ।

(त्रि०) ७ निर्दोष, दोषरहित, बेऐब । ८ पवित्र साफ, स्वच्छ । ९ शुक्ल, सफेद, उज्ज्वल । १० जिसमें किसी प्रकारकी अशुद्धि न हो, जो गलत न हो, ठीक, सही । ११ जिसमें किसी तरहकी मिलावट न हो, खालिस ।

(क्ली०) १२ रागांतर मिश्रित राग । (सङ्गीतशास्त्र) शरीर और द्रव्यादि किस प्रकार विशुद्ध होता है, शास्त्रमें उसका विशेष विधान है । बहुत संक्षेपमें उसका विषय लिखा जाता है—पाप कर्म करनेसे देह और मन अशुद्ध होता है तथा उस पापके फलसे अनेक प्रकारकी कष्टदायक व्याधि होती है । अतएव जिससे उस पापकी शुद्धि हो वैसाही करना कर्त्तव्य है । जिस प्रकार वस्त्र मैला होने पर उसमें क्षार और अग्न्युत्ताप संयोग कर पीछे पानीमें धो डालनेसे वह परिष्कार हो जाता है, उसी प्रकार तपस्या, दान, यज्ञ और अनुतापादि द्वारा पापाचारीका पापक्षय होता है । इसी प्रकार क्षीणपाप होनेसे

उसको शुद्ध कहते हैं, अतएव पापी व्यक्ति प्रायश्चित्त द्वारा ही किस तरह शुद्ध हो सकता है ?

ज्ञान, तपस्या, अग्नि, आहार, मृत्तिका, मन, वारि, उपाञ्जन अर्थात् गोमयादि द्वारा अनुलेपन, वायुकर्म, सूर्य और काल ये सब देहधारियोंको शुद्धिके कारण हैं। यही सब द्रव्य शुद्धिके साधन हैं। इन्हीं सब साधन द्वारा ही मानव शुद्ध होते हैं। जिस प्रकार ज्ञान द्वारा बुद्धि शुद्धि होती है अर्थात् अविद्याके नाश होनेसे जब ब्रह्मज्ञान लाभ करता है, तब बुद्धि शुद्ध होती है। उस समय बुद्धिमें फिर कोई दोष रहने नहीं पाता। ज्ञान लाभ होनेसे जानना चाहिये, कि बुद्धि शुद्ध हुई है। इसी प्रकार तपस्या द्वारा ब्राह्मणादि और अग्निपाक द्वारा मृण्मय पात्रादि शुद्ध होते हैं। अतएव पूर्वोक्त ज्ञानादि ही शुद्धिका कारण है।

देह, मन आदि शुद्धकर सभी पदार्थोंमें अर्थशुद्धि अर्थात् अर्थार्जन विषयमें अन्यान्य या स्वधर्म परित्याग नहीं करनेको ऋषियोंने परम शुद्धि कहा है। जो व्यक्ति अर्थोपार्जनमें शुचि हैं वे ही प्रकृत शुचि हैं। मिट्टी या जल द्वारा देह शुद्ध करनेको प्रकृत शौच नहीं कहते।

विद्वद्गण क्षमा द्वारा, अकार्यकारी दान द्वारा, प्रच्छन्न पापागण जप द्वारा और वेदविद् ब्राह्मण तपस्या द्वारा शुद्ध होते हैं। शोधनीय बाह्य द्रव्य तथा यह देह मिट्टी और जल द्वारा शुद्ध होती है। मलवहा नदी स्रोतोवेग-से, मनोदुष्टि अर्थात् परपुरुषाभिगमन-सङ्कल्प दोषसे भी दूषितमना स्त्री रजस्वला होने पर शुद्ध होती है। त्याग या प्रव्रज्या द्वारा द्विजोत्तमगण शुद्ध होते हैं। जल द्वारा देह शुद्ध होती है, सत्य कहनेसे मन शुद्ध होता है, विद्या और तप द्वारा जीवात्माकी तथा ज्ञान द्वारा बुद्धिकी शुद्धि होती है। इसी प्रकार शारीरिक शुद्धिका विषय कहा गया है।

अनेक प्रकारके द्रव्योंकी शुद्धिका उपाय इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है। रजत और सुवर्णादि धातु, मरकतादि मणि और प्रस्तर निर्मित द्रव्य है भस्म और जल अथवा मिट्टी और जल द्वारा शुद्ध होते हैं। उच्छिष्टादि-प्रलेपरहित सुवर्णपात्र जलसे धो देनेसे ही शुद्ध होता है। शङ्ख मुक्तादि जलज, प्रस्तरनिर्मित पात्र और रौप्यपात्र यदि रेखायुक्त न हो, तो जलसे प्रक्षालन करनेसे ही शुद्ध होता है। जल और अग्निके संयोगसे सुवर्ण और रजतकी उत्पत्ति हुई है, इस कारण अपने उत्पत्तिस्थान जल और अग्नि द्वारा सुवर्ण और रजत-की शुद्धि अति प्रशस्त है।

तांबा, लोहा, कांसा, पीतल, रांगा और सीसा, इन सब धातुओंके पात्र भस्म, अम्ल और जल द्वारा शुद्ध होते हैं अर्थात् लोहा जलसे, कांसा राखसे तथा तांबा और पीतल खट्टेसे विशुद्ध होता है।

घृत तैलादि तरल पदार्थ काककीटादि द्वारा यदि दूषित हो जाय, तो प्रादेश प्रमाणके दो कुशपत्र द्वारा विलोड़न करनेसे वह शुद्ध होता है। शय्यादिकी तरह सूत्रसंयुक्त संहत द्रव्य जल डालनेसे ही शुद्ध हो जाता है तथा काष्ठमय द्रव्य अत्यन्त उपहत होनेसे उसे छिल कर देनेसे ही शुद्ध होता है। यज्ञीय चमसे (जलपात्र भेद) और उससे संबन्ध रखनेवाले दूसरे दूसरे बरतन पहले हाथसे रगड़ कर पीछे जलमें प्रक्षालन करनेसे शुद्ध होते हैं। चरुस्थाली, स्रुक्, स्रुव, शकट, मूषल और उदूखल आदि यज्ञीय द्रव्य घृत तैलादि स्नेहाक्त होनेसे उष्णजल द्वारा प्रक्षालन करनेसे ही शुद्ध होते हैं।

बहुधान्य या अनेक वस्त्र यदि किसी तरह अशुद्ध हो जाय, तो जल प्रोक्षण द्वारा उसकी शुद्धि होती है। पादुकादि स्पृश्य पशुचर्म और बेंत बांस आदिका बना हुआ आसनकी शुद्धि वस्त्रकी तरह है। शाक, मूल और फल इनकी शुद्धि धानकी तरह होती है। कौषेय अर्थात् रेशमी वस्त्र, आविक अर्थात् मेषलोमजात कम्बलादि क्षार और मिट्टीसे शुद्ध होते हैं। तृण और पाकका काष्ठ जलप्रक्षालन द्वारा तथा मार्जन और गोमयादि लेपन द्वारा गृह शुद्ध होता है। मिट्टीका बरतन पुनःपा . द्वारा विशुद्ध होता है, किन्तु वह पात्र यदि मद्य, मूत्र, विष्ठा, श्लेष्मा और पूय या शोणित द्वारा उपलिप्त हो, तो उसकी फिर शुद्धि नहीं होती।

सम्मार्जन, गोमयादि द्वारा विलेपन, गोमूत्रादिकादि सिञ्चन, उल्लेख अर्थात् छिल देना तथा एक अहोरात्र गौके वास इन पांच उपायोंसे भूमि शुद्ध होती है।

पक्षी कर्त्तृक उच्छिष्ट, गाभी कर्त्तृक आघ्रात, वस्त्राञ्चल वा पद स्पृष्ट, अवक्षुत अर्थात् जिस पर थूक गिरा हो तथा जो केशकीटादि द्वारा दूषित हो गया है, वे सब द्रव्य मिट्टी डालनेसे शुद्ध होते हैं।

पहले अदृष्ट अर्थात् जिस द्रव्यका उपघात वा संस्पर्श दोष मालूम नहीं, दूसरे जो जल द्वारा प्रक्षालन किया गया है और तीसरे शिष्ट जनोंने जिसके सम्बन्धमें पवित्र वाक्यका उच्चारण किया है, उन सब द्रव्योंको देवताओंने ब्राह्मणोंके लिये शुद्ध माना है। जितने जलसे गायकी प्यास दूर हो, उतना जल यदि विशुद्ध भूमिगत तथा स्वाभाविक गन्ध, वर्ण और रसयुक्त हो अथच अपवित्र द्रव्य लिप्त न रहे, उस जलको शुद्ध जानना होगा। कारीगरका हाथ जब कारीगरीमें नियुक्त रहता है, तब वह हमेशा शुद्ध रहता है। बाजारमें जो सब चीजें बिक्रीके लिये चारों ओर फैली रहती हैं, वह भिन्न भिन्न जाति द्वारा स्पृष्ट होने पर भी शुद्ध है। ब्रह्मचारिगण जो भिक्षा लाभ करते हैं वह नित्य शुद्ध है। काकादिकी चोंच डंठलमें लग कर जो फल गिरता है, वह भी शुद्ध है। जो सब पशु या पक्षी कुत्तेसे मारे गये हैं, मांसजीवी या अन्यान्य पशुपक्षी जो मांस लाते हैं और चण्डालादिव्याध जो सब पशु आदि हनन करते हैं, इनका मांस शुद्ध कहा गया है। (मनु ५ अ०)

शुद्धगणपति (सं० पु०) गणपतिभेद, उच्छिष्ट गणपति।

शुद्धजङ्घ (सं० पु०) शुद्धा जङ्घा यस्य। १ गर्दभ, गदहा। (त्रि०) २ पवित्र जङ्घायुक्त, जिसकी जाङ्घ पवित्र या सुन्दर हो।

शुद्धता (सं० स्त्री०) शुद्धस्य भावः तल्-टाप्। १ शुद्ध होनेका भाव या धर्म, पवित्रता। २ निर्दोषता।

शुद्धत्व (सं० क्ली०) शुद्ध होनेका भाव या धर्म, शुद्धता, पवित्रता।

शुद्धदत् (सं० त्रि०) शुद्धा दन्ता यस्य सः (आग्रान्तशुद्ध शुभ्रवृषवराहेभ्यश्च। पा ५।४।१४६) इति दंतस्य दता देशः। शुक्ल दन्तयुक्त, सफेद दाँतवाला।

शुद्धधी (सं० त्रि०) शुद्धा धीर्यस्य। शुद्धमति, विशुद्ध बुद्धियुक्त, विलक्षण बुद्धिवाला।

शुद्धपक्ष (सं० पु०) शुद्धः शुक्लः पक्षः। अमावस्याके उपरांतकी प्रतिपदासे पूर्णिमा तकका पक्ष, शुक्लपक्ष। कृष्ण और शुक्ल इन दो पक्षोंमें शुक्लपक्ष शुद्ध तथा कृष्णपक्ष अशुद्ध होता है। शुक्लपक्षमें ही सभी शुभ कार्य करनेका विधान है, इसलिये यह शुद्ध है।

शुद्धपाद (सं० पु०) एक विख्यात हठयोगी इनका दूसरा नाम था सिद्धपाद।

शुद्धपुरी (सं० स्त्री०) दाक्षिणात्यका एक प्राचीन देवक्षेत्र। यह त्रिचनापल्ली जिलेके तिरुपिरु विभागमें अवस्थित है। स्कन्दपुराणोक्त शिवरहस्य और शुद्धपुरी-माहात्म्यमें इसका माहात्म्य वर्णित है।

शुद्धबुद्धि (सं० त्रि०) शुद्धा बुद्धि र्यस्य। विशुद्ध बुद्धियुक्त, विलक्षण बुद्धिवाला।

शुद्धबोध (सं० त्रि०) विशुद्ध बोधविशिष्ट, ज्ञानयुक्त।

शुद्धभाव (सं० पु०) विशुद्ध भावयुक्त, शुद्धचेताः।

शुद्धभिक्षु (सं० पु०) हठयोगाचार्यभेद। इन्होंने हठयोगविषयक ग्रंथ प्रणयन किया है।

शुद्धमति (सं० त्रि०) शुद्धा मतिर्यस्य। १ शुद्धबुद्धि विशिष्ट, विलक्षण बुद्धिवाला। (पु०) २ चौबीस भूत अर्हतोंमेंसे जिनविशेष। (स्त्री०) शुद्धा मतिः। ३ पवित्र बुद्धि।

शुद्धमांस (सं० क्ली०) शुद्धं मांसं यस्य। वैद्यकके अनुसार वह पकाया हुआ मांस जिसके साथमें हड्डी आदि न लगी हो। ऐसा मांस अत्यन्त शुक्रवर्द्धक, बलकारक, त्रिदोष शांतिके लिये श्रेष्ठ, अग्निप्रदीपक और धातुपोषक माना गया है। (भावप्र०)

शुद्धरूपिन् (सं० त्रि०) शुद्धरूपयुक्त, उज्ज्वल रूपविशिष्ट। (अष्टावक्रस०)

शुद्धवंश्य (सं० त्रि०) शुद्धवंशे भवः यत्। विशुद्ध कुलजात, जिसका जन्म कुलीन वंशमें हुआ हो।

शुद्धवत् (सं० त्रि०) शुद्ध अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। विशुद्ध, शुद्धविशिष्ट।

शुद्धवल्लिका (सं० स्त्री०) शुद्धा वल्लिका लता। १ गुड़ूची, गुरुच। २ पवित्र लता।

शुद्धवाल (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण केशयुक्त, जिसके बाल सफेद हों। (शुक्लयजु० २४।३)

शुद्धविराज (सं० स्त्री०) छन्दोभेद।

शुद्धविराड़्पभ (सं० क्ली०) छन्दोभेद ।

शुद्धशुक्र (सं० क्ली०) शुद्धं शुक्रं । विशुद्ध शुक्र, जिस शुक्रमें कोई दोष न हो । तरल, स्निग्ध, मधुदुग्धयुक्त, तथा स्फटिकवर्णाभ शुक्र विशुद्ध होता है । (सुश्रुत)

शुद्धसाध्यवसाना (सं० स्त्री०) शब्दकी एक लक्षणाशक्ति । साध्यवसाना लक्षणा शुद्ध और गौण भेदसे दो प्रकारकी होती है । (काव्यप्रकाश २।१२)

शुद्धसारोपलक्षणा (सं० स्त्री०) लक्षणभेद ।

शुद्धहस्त (सं० त्रि०) विशुद्ध हस्तविशिष्ट, जिसके हाथ शुद्ध हों । (अथर्व० १२।३।४४)

शुद्धा (सं० स्त्री०) १ कुटज बीज, इन्द्रजौ । (त्रि०) २ विशुद्ध ।

शुद्धाक्ष (सं० पु०) व्यक्तिविशेष ।

शुद्धात्मन् (सं० त्रि०) शुद्धः पवित्रः आत्मा स्वभावो यस्य । १ शुद्ध स्वभाव, पवित्र स्वभावका, साफ दिल वाला । (रामायण २।२६।१६) (पु०) २ शिव ।

शुद्धानन्द (सं० पु०) एक आचार्य तथा गौड़पादीयभाष्यटीकाके प्रणेता । ये आनंदतीर्थके गुरु थे ।

शुद्धानन्द सरस्वती—वेदान्तचिन्तामणि और वेदांतचिन्तामणिप्रकाशके रचयिता । इनका दूसरा नाम था शुद्ध भिक्षु ।

शुद्धानुमान (सं० क्ली०) शुद्धं अनुमानं । विशुद्ध अनुमान, वह अनुमान जिसमें कोई दोष नहीं हो ।

शुद्धान्त (सं० पु०) शुद्धः अन्तो यस्य, शुद्धा रक्षकाः अन्ते यस्य इति वा । १ अन्तःपुर, रनिवास, जनानखाना । २ राजयोषित, राजस्त्री । (अजय) ३ अशौचान्त ।

शुद्धान्तपालक (सं० पु०) शुद्धांतं पालयतीति पालिण्वुल् । अन्तःपुररक्षक, वह जो अन्तःपुरके द्वार पर पहरा देता हो । पर्याय—गृहदौवारिक, कक्षारक्षक, रातिहिण्डक । वृद्ध, कुलीन तथा पिता या पितामहसे काम करनेवाला, अच्छी चाल चलनका तथा नम्र व्यक्ति ही राजाओंका अन्तःपुररक्षक हुआ करता है ।

शुद्धान्तरगुज् (सं० स्त्री०) संगीतमें ताल, लय या स्वर परिवर्त्तन कर गीत वाद्यादिका जो रूपांतर साधन करता हो ।

शुद्धान्ता (सं० स्त्री०) शुद्धान्त आश्रयत्वेनास्त्यस्या इति अच् टाप् । राज्ञी, रानी ।

शुद्धापह्नुति (सं० स्त्री०) शुद्धा अपह्नुतिः । एक प्रकारका अलंकार जिसमें प्रकृति अर्थात् उपमेयको झूठ ठहरा कर या उसका निषेध करके उपमानको सत्यता स्थापित की जाती है । इसे अपह्नुति अलंकार भी कहते हैं ।

शुद्धाभ (सं० त्रि०) शुद्धमिवाभाति शुद्ध-आ-भा क । शुद्धकी तरह आभायुक्त, विशुद्ध, निर्मल ।

शुद्धावर्त्त (सं० पु०) प्रदक्षिणावर्त्त, पेचवाला ।

शुद्धावास (सं० पु०) १ विशुद्ध आवास । २ स्वर्ग ।

शुद्धाशय (सं० त्रि०) शुद्धः आशयो यस्य । १ शुद्ध आशययुक्त, शुद्ध चिन्तायुक्त । (पु०) २ विशुद्ध आशय, विशुद्धचित्त ।

शुद्धाशुद्धीय (सं० क्ली०) १ सामभेद । (लाट्या० ३।४।१३) (त्रि०) २ शुद्ध और अशुद्ध-सम्बन्धी ।

शुद्धि (सं० स्त्री०) शुध-क्तिन् । १ स्वच्छता, सफाई । २ दुर्गा । नामनिरुक्ति इस प्रकार है—

भगवती दुर्गाको स्मरण या चिन्ता करनेसे मानव पातकसे शुद्धिलाभ करता है । इसलिये वे शुद्धि कहलाती हैं ।

३ मार्जना । (जटाधर) ४ वैदिक कर्माहत्वप्रयोजक संस्कारविशेष । अशौच होने पर वैदिककर्ममें अधिकार नहीं रहता । अशौच जाने पर शुद्धि होती है । अर्थात् तब पुनः वैदिक कर्म करनेका अधिकार रहता है । अशौच शब्द देखो ।

५ विशुद्धता सम्पादन । पूजाके समय भूतशुद्धि और जल, आसन, पुष्प आदि शुद्धि करके पूजा करनी होती है । भूतशुद्धि देखो । जलशुद्धि यथा—

"गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥"

पूजा करनेके जलसे यह मन्त्र पढ़नेसे जलशुद्धि होती है ।

आसनशुद्धि—आसन पर बैठ कर "एते गन्धपुष्पे आधारशक्तिकमलासनाय नमः । आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनोपवेशने विनियोगः ।

"पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् ॥"

पंचगव्य द्वारा मण्डप शुद्धि होती है। ये सब द्रव्य भगवदुद्द शसे निवेदित होते हैं तथा जिससे भगवत्पूजा की जाती है, उसका शोधन कर कग्नी होती है। शास्त्रमें प्रत्येक द्रव्यका ही शुद्धिमन्त्र निर्दिष्ट है।

शुद्धिकन्द (सं० क्ली०) लहसुन।

शुद्धिकृत् (सं० त्रि०) शुद्धिं करोतीति कृ-क्विप तुक् च। शुद्धिकारक।

शुद्धितम (सं० त्रि०) शुद्धि-तमप्। अति विशुद्ध।

शुद्धितत्त्व—रघुनन्दन कृत स्मृतितत्त्वका चौथा ग्रन्थ। इसमें मृत और जननाशौचविधि, स्वर्णरौप्यादि धातव पात्रशुद्धि आदि विषय लिखे हैं।

शुद्धिपत्र (सं० पु०) वह पत्र जिसमें छपनेके समय पुस्तकमें रही हुई अशुद्धियां बतलाई गई हों, वह पत्र जिससे सूचित हो, कि कहां क्या अशुद्धि है।

शुद्धिभूमि (सं० स्त्री०) एक जनपदका नाम।

शुद्धिमत् (सं० त्रि०) शुद्धि अस्त्यर्थे मतुप्। शुद्धिविशिष्ट, विशुद्ध। (रघुवंश १।१२)

शुद्धोद (सं० त्रि०) शुद्धानि केवलानि उदकानि यत्र, उदकशब्दस्य उदादेशः। १ केवल जलयुक्त। (पु०) २ समुद्र, सागर। (भागवत ५।१।३३) ३ सूर्यवंशीय शाक्य राजाके पुत्र। (भागवत ९।१२।१४)

शुद्धोदन (सं० पु०) एक सुप्रसिद्ध शाक्य राजा। ये भगवान् बुद्धदेवके पिता थे। प्राचीन कोशलराज्यके पूर्वांशमें स्थित कपिलवास्तु नगरी इनकी राजधानी थी। इन्होंने कोलियान राजकी दो कन्याओंका पाणिग्रहण किया। बुद्धदेव देखो।

शुद्धोदनसुत (सं० पु०) शुद्धोदनस्य सुतः। शुद्धोदनके पुत्र, बुद्धदेव। बुद्ध देखो।

शुद्धोदनि (सं० पु०) विष्णु। (पञ्चरात्र)

शुनःशेफ (पु०) मुनिविशेष। ये ऋचीक मुनिके पुत्र थे। रामायणमें इनकी कथा इस प्रकार लिखी है—एक समय अयोध्याधिपति राजा अम्बरीषने एक बड़े यज्ञका अनुष्ठान किया। इन्द्रने राजाका यज्ञपशु चुरा लिया, इस पर ऋत्विकोंने कहा, "महाराज! आपकी असावधानता ही यज्ञके विघ्नका मूल कारण है। यज्ञविध्वंशके पापका प्रायश्चित्त करना आपका कर्त्तव्य है। प्रायश्चित्त न करनेसे आपका सर्वनाश हो जायगा। इस पापके प्रायश्चित्तके लिये एक मनुष्यका बलिदान करनेका नियम है। अतएव इस यज्ञमें एक नरबलि प्रदान कीजिये।

राजा अम्बरीष एक नरबलि प्रदान करनेके अभिलाषी हो कर उसकी खोजमें अनेकों जनपद, देश, नगर, वन और पुण्य आश्रमोंमें भ्रमण करने लगे। इस प्रकार घूमते घूमते अन्तमें वे भृगुतुङ्ग नामक स्थानमें पहुंचे। यहां ऋचीक नामक एक मुनि रहते थे। उनके तीन पुत्र थे। राजाने अत्यन्त नम्रतापूर्वक निवेदन किया, "यदि आप एक लाख गोका दाम ले कर अपने एक पुत्रको मेरे हाथ बेचें, तो मेरा बड़ा उपकार हो। आपके तीन लड़के हैं, कृपा कर मूल्य ले कर अपना एक पुत्र मुझे प्रदान करें। बलिप्रदान करनेके लिये एक मनुष्य खरीदनेकी इच्छासे मैंने अनेक स्थानोंमें भ्रमण किया है, पर कहीं नहीं मिला।"

इस पर ऋचीकने कहा, "बड़ा लड़का मेरा बड़ा प्यारा है, इसलिये उसे नहीं बेच सकता।" ऋचीककी बात सुन कर ऋचीकपत्नी बोली, "छोटा लड़का मेरे प्राणोंसे बढ़ कर प्रिय है, इसलिये वह नहीं बेचा जा सकता।" मध्यम पुत्रका नाम शुनःशेफ था। शुनःशेफने मातापिताकी ऐसी उक्ति सुन कर कहा—"राजन्! बड़ा और छोटा लड़का मातापिताको बड़ा प्यारा होता है, अतएव नहीं बेचा जा सकता। मैं मध्यम पुत्र हूं, सुतरां बेचा जाने योग्य हूं। आप मुझे ले चलिये।" राजा शुनःशेफकी बात सुन कर कई करोड़ सुवर्ण मुद्राएं, अनेक रत्न तथा एक लाख गो शुनःशेफके पिताको दे कर शुनःशेफके साथ वहांसे चल दिये।

राजाने शुनःशेफको साथ ले कर चलते चलते दो प्रहरको विश्राम करनेके अभिप्रायसे पुष्करतीर्थमें डेरा डाला। इस पुष्करतीर्थमें विश्वामित्र ऋषि तपस्या करते थे। विश्वामित्र शुनःशेफके बड़े मामा थे। शुनःशेफने विश्वामित्रको देख उनके पास जा कर कहा, "मेरे मातापिताने धनके लालचमें पड़ कर मुझे बलिके लिये राजाके हाथ बेच दिया है। मैं प्राणके भयसे भयभीत हो कर आपकी शरणमें आया हूं। आप कुछ ऐसा उपाय कर देवें, जिससे मैं भी आपकी दयासे दीर्घायु हो कर तपस्या द्वारा स्वर्ग प्राप्त कर सकूं और राजा भी यज्ञ समाप्त कर कृतकार्य होवें।"

विश्वामित्रने शुनःशेफकी बातें सुन कर उसे सांत्वना दी और उसी समय अपने पुत्रोंको बुला कर कहा—'पुत्रो! यह बालक मेरा शरणागत है, तुम लोग इसकी प्राणरक्षा कर मेरा प्रिय कार्य्य सम्पादन करो। तुम लोग इस राजाके यज्ञमें बलि बन कर अग्निकी तृप्ति करें, इससे राजाका यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो जायगा और देवताओंके सन्तुष्ट होनेसे राजाका अभीष्ट सिद्ध होगा।'

विश्वामित्रकी ऐसी वाणी सुन कर पुत्र मधुच्छन्द प्रभृति हस कर बोले—"आप दूसरेके पुत्रकी रक्षा करनेके लिये अपने पुत्रका परित्याग करने पर तुल पड़े हैं, किन्तु इसमें हम लोगोंको सम्मति नहीं होती, यह आत्म-मांस भक्षण करने की तरह अत्यन्त अकर्त्तव्य जान पड़ता है।' विश्वामित्र पुत्रकी बात पर क्रोधसे अधीर हो उठे, अतएव उन्होंने पुत्रोंको श्राप दे कर शुनःशेफसे कहा—"पुत्र! तुम जिस समय अम्बरीषके यज्ञमें रक्त-माल्यधारी तथा रक्तानुलेपित हो कर वैष्णव यूपमें पाश द्वारा आबद्ध होगे, उस समय आग्नेय मन्त्रसे अग्निका स्तव और दिव्य गाथा गान करना, उससे तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी।" शुनःशेफने समाहित हो कर उन दोनों गाथाओं-को ग्रहण किया।"

तब शुनःशेफ प्रसन्नतापूर्वक राजा अम्बरीषके पास आये और बोले—"राजा! आप शीघ्र चल कर यज्ञ समा-पन करें।" इस पर राजा तुरत शुनःशेफके साथ यज्ञ-भूमिकी ओर रवाना हुए। अनन्तर यज्ञभूमिमें उपस्थित हो कर राजाने विधिपूर्वक शुनःशेफको रक्ताम्बर पहनाया और पशुरूपसे उसे पवित्र कुशकी डोरीसे यूपमें बाँध दिया। शुनःशेफने इस प्रकार यूपमें बँध जाने पर आग्नेयमन्त्रसे अग्निका स्तव कर इन्द्र और इन्द्रानुज विष्णु, इन दोनों देवताओंका स्तव दो गाथाओं द्वारा किया। इन्द्र और उपेन्द्रने उनके स्तवसे परितुष्ट हो कर उन्हें दीर्घायु प्रदान किया। राजाने भी उन देवताओं-के प्रसादसे उस यज्ञका पूरा फल प्राप्त किया।

देवीभागवतमें लिखा है, कि राजा हरिश्चन्द्र वरुण-के अभिसम्पातसे जलोदररोगसे पीड़ित हो कर अति कष्ट भोग करते थे। उस समय वे वरुणके शापसे छुट-कारा पानेके लिये वसिष्ठ मुनिकी शरणमें गये। वसिष्ठ-जीने उन्हें एक पुत्र खरीद कर यज्ञानुष्ठान करनेका परा-मर्श दिया। हरिश्चन्द्रने वसिष्ठके उपदेशसे यज्ञानुष्ठान किया एवं एक पुत्र खरीदनेके लिये मन्त्रीसे कहा।

हरिश्चन्द्रके राज्यमें अजीगर्त्त नामक एक अत्यन्त दरिद्र ब्राह्मण रहता था। उसके तीन पुत्र थे। बड़े पुत्रका नाम शुनःपुच्छ, मझलेका शुनःशेफ और छोटे लड़केका नाम शुनोलांगुल था। मन्त्रीने रुपये दे कर उस दरिद्र ब्राह्मणका पुत्र खरीदनेकी इच्छा प्रकट की। अजीगर्त्त अन्नाभावसे अत्यन्त कातर हो रहा था, सुतरां मन्त्रीको बात सुन कर उसने अपने एक पुत्रको बेचना चाहा। किन्तु बड़े लड़केको औद्ध्व‍र्दैहिक क्रियाका अधिकारी समझ कर उसे नहीं बेचा। माताने कहा, "छोटा लड़का मेरा बड़ा प्यारा है।" अतएव अजीगर्त्तने अपने मझले पुत्र शुनःशेफको नरमेध यज्ञका पशु बनाया। बालक यूपकाष्ठमें आबद्ध हो कर रोने लगा। मुनिगण उसका रोदन सुन कर चिल्ला उठे। यह दृश्य देख कर शमिता (बलि चढ़ाने वाला शिरश्छेदक) अस्त्र फेंक कर बोला, "यह ब्राह्मणका लड़का अत्यन्त कातर हो कर करुणस्वर-से रोदन करता है, अतएव मैं लोभके वशीभूत हो कर इसका वध नहीं कर सकता।" उस समय यज्ञभूमिमें कोलाहल मच गया।

अनन्तर शुनःशेफके पिता अजीगर्त्तने सभास्थलमें पहुंच कर कहा, "राजन्! आप धैर्य्य धारण करें। आप मुझे दूना धन देवें, मैं ही आपका कार्य्य सम्पादन करूंगा।" जब राजाने अजीगर्त्तके कथनानुसार धन देना स्वीकार किया, तब वह अपने पुत्रका संहार करनेको तैयार हो गया। उसे पुत्रहत्या करने पर तैयार देख सभासद लोग 'हाय! हाय!' करने लगे। उस समय शुनःशेफका करुण क्रन्दन सुन कर विश्वामित्रका हृदय दयासे भर गया। वे राजाके पास जा कर बोले—'तुम इस बालकको छोड़ दो, इससे अवश्य तुम्हारा यज्ञ सम्पूर्ण होगा और तुम रोगसे भी मुक्त हो जाओगे। यह बालक अत्यन्त कातर हो कर बड़ी दीनतासे रो रहा है, अतएव इसे मुक्त करो।'

जब राजा उस बालकको छोड़ देनेके लिये तैयार नहीं हुए, तब विश्वामित्रने उसके निकट जा कर

उसे वरुणमन्त्रका उपदेश दे कर कहा, "तुम यह मन्त्र जपो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।" शुनःशेफके वरुण-मन्त्रके जप करते ही वरुण-देवता वहां आ उपस्थित हुए। तब वरुणकी स्तुति करने लगे। वरुण बोले, "शुनःशेफने अत्यन्त कातर हो कर मेरी स्तुति की है, इसे छोड़ दो। तुम्हारा यज्ञ सम्पूर्ण हो गया। तुम्हें रोगसे मुक्त करता हूं।" वरुण-देवकी दयासे द्विजपुत्र पाशबन्धनसे मुक्त हुआ, उस समय सभामें चारों ओरसे 'जय जय' की ध्वनि आने लगी। राजाका वह निदारुण रोग उसी क्षण दूर हो गया।

इसके बाद शुनःशेफने सभासदोंसे पूछा—"सज्जन वृन्द! इस समय मैं किसका पुत्र हूं? मेरे पिता कौन हैं, आप लोग इसका निर्देश कर देवें।" इस विषय पर उस समय नाना प्रकारका मतभेद होने लगा। अन्तमें वसिष्ठने सभी कलह करनेवालोंसे कहा, "जब पिताने पुत्रस्नेह त्याग कर इसे वेच दिया, तब वह इसके पिता होनेका अधिकारी नहीं है। इसके बाद यह हरिश्चन्द्रका क्रीतपुत्र हुआ। किन्तु जब राजाने इसे यूपमें बांध दिया, तब यह राजाका भी पुत्र नहीं हो सकता। इस बालकने वरुणकी स्तुति की थी, जिससे उन्होंने सन्तुष्ट हो कर इसका उद्धार किया। सुतरां यह वरुणका भी पुत्र नहीं हो सकता। क्योंकि जब कोई किसीका स्तव करता है, तब वह प्रसन्न हो कर स्तव करने वालोंको सब कुछ प्रदान कर देता है। संकटके समय महर्षि विश्वामित्रने द्रवीभूत हो कर उसे वरुणका महावीर्य मन्त्र प्रदान किया था, जिस मन्त्रसे ही इस बालक की रक्षा हुई है, इसलिये यह बालक विश्वामित्रका पुत्र हुआ।" शुनःशेफ यह सुन कर विश्वामित्रका अनुगामी हुआ। (देवीभागवत ७।१५।१८ अ०)

वैदिक मन्त्रोक्त ऋषिभेद। अनेक वैदिक मन्त्रोंमें इस ऋषिका उल्लेख है। ऋग्वेदमें लिखा है, कि शुनःशेफने यूपमें आबद्ध हो कर वरुणदेवका गान किया था। वरुणने सन्तुष्ट हो कर इसे मुक्त किया।

"शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु" (ऋक् १।२४।१२) 'गृभीतो. गृहीतो यूपे बद्धः शुनःशेप एतन्नामको जनः यं वरुणमह्वत् आहुतवान् स वरुणो राजा अस्मान् शुनःशेपान् मुमोक्तु, बन्धनात् मुक्तं करोतु' (सायण)

"शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद् विद्वान् अदब्धो विमुमोक्तु पाशान्॥"
(ऋक् १।२४।१३)

ऐतरेय ब्राह्मणमें ७।१५, शांखायन श्रौतसूत्र १५।२०।१, १६।११।२, महाभारत अनुशासनपर्व, भागवत ७।२।४६ प्रभृति स्थानोंमें शुनःशेपका विवरण लिखा है। ये एक वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि थे। पुरुषमेध देखो।

शुनःसख (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक ऋषिका नाम।

शुनःहकर्ण (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शुन (सं० पु०) शुनति सदा इतस्ततो गच्छतीति शुन-क। १ कुक्कुर, कुत्ता। शुनति क्षिप्रं गच्छति शुन क। २ वायु। (निघण्टु टीका देवराज यज्वा ५।३।३४) (क्ली०) ३ सुख (ऋक् ४।५७।६)

शुनक (सं० पु०) शुनति इतस्ततो गच्छतीति शुन-गतौ (वुन् शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि। उण् २।३२) इति क्वुन्। १ कुक्कुर, कुत्ता। २ एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम।

शुनकचञ्चुका (सं० स्त्री०) शुनकस्य चञ्चुरिव इवार्थे कन्। क्षुद्र चञ्चुक्षुप, चेंच नामका साग।

शुनकचिल्ली (सं० स्त्री०) शुनकप्रिया चिल्ली। शाकविशेष, बथुआ। पर्याय—श्वचिल्ली, श्वानचिल्लिका। गुण—कटु, तीक्ष्ण, कण्डु और व्रणनाशक। (राजनि०)

शुनहोत्र (सं० पु०) १ एक प्राचीन ऋषिका नाम। २ भरद्वाज ऋषिके पुत्रका नाम। ये ऋग्वेदके ६।३३ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। ३ क्षत्रवृद्धके पुत्रका नाम।

शुनामुख—हिमालयके उत्तरका एक जनपद। यह बिन्दुसरोद्भवा सिन्धुनद द्वारा प्लावित है। (मत्स्यपु० १२१।४८) भौगोलिक Ktesias इसे Kynokaphallai शब्दमें नेपालके उत्तरमें अवस्थित बताया है। इसका वर्त्तमान नाम खुनमुष है।

शुनाशीर (सं० पु०) शुनाशीरौ वायुसूर्यौ अस्य स्त इति, अर्श आदित्वादच्। इन्द्र और वायु।

शुनासीर (सं० पु०) शुनाशीर-अच्। शुनाशीर देखो।

शुनासीरिन् (सं० त्रि०) १ शुन और सीरयुक्त। (पु०) २ इन्द्र।

शुनासीरीय (सं० त्रि०) इन्द्र सम्बन्धी, इन्द्रका। २ सूर्य्य देवताके सम्बन्धका। ३ वायुदेवताके सम्बन्धका।

शुनि (सं० पु०) शुनति क्षिप्रं गच्छतीति (शुन गतौ इगुपधात् कित। उण् ४।११६) इति इन् स च कित्। कुक्कुर, कुत्ता। (हेम)

शुनिन्धम (सं० पु०) शुनी+ध्मा-खश्। वह जो कुत्ते को अग्नि उत्ताप देता हो। (वोपदेव)

शुनिन्धय (सं० पु०) शुनी-धे-खश्। वह जो कुत्ते को खिलाता हो। (वोपदेव)

शुनी (सं० स्त्री०) श्वन् गौरादित्वात् ङीष्। १ कुक्कुरी, कुत्ती। (अमर) २ कुष्माण्डी, कुम्हड़ी। (राजनि०)

शुनीर (सं० पु०) कुत्तियोंका समूह। (त्रिका०)

शुनेषित (सं० त्रि०) शुना इषितं। कुक्कुर द्वारा प्रापित।

शुनोलाङ्गूल (सं० पु०) शुनःशेफके छोटे भाईका नाम।

शुन्धन (सं० त्रि०) शुद्ध, परिष्कृत।

शुन्ध्यु (सं० पु०) शुन्ध शुद्धौ यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच्। (उण् ३।२०) इति युस्। १ अग्नि। (उज्ज्वल) २ आदित्य। ३ श्वेतवर्ण पक्षिविशेष, सफेद रंगका एक प्रकारका पक्षी।

शुन्य (सं० क्ली०) १ शुनीसमूह, कुत्तियोंका समूह। (त्रिका०) (त्रि०) २ रिक्त, खाली। शुने हितं श्वन्। (उगवादिभ्योयत। पा ५।१।२) इति यत्, शुनः सम्प्रसारणं। ३ कुत्तेके लिये हितकर।

शुप्त (सं० स्त्री०) शोभमान, स्वकीयमुख। "स्वधामियं अधिशुप्ता वजुहृत" (ऋक् १।५१।५) "शुप्तौ शोभमाने स्वकीये मुखे, शुभ दीप्तौ कर्मणि-क्तिन्' (सायण)

शुबहा (अ० पु०) १ संदेह, शक। २ धोखा, वहम, भ्रम।

शुभंया (सं० स्त्री०) शुभं यातीति क्विप्। शुभप्राप्त।

शुभंयावन् (सं० त्रि०) शोभनरूपमें गमनकारी।

शुभंयिका (सं० स्त्री०) अज्ञात शुभं या वह जो शुभंयाओंको नहीं जानती हो।

शुभंयु (सं० त्रि०) शुभस्यास्तीति शुभम् (अहंशुभमोर्युस्। पा ५।२।१४०) इति युस्। मङ्गलान्वित, शुभान्वित।

शुभ (सं० क्ली०) शोभते इति शुभ दीप्तौ-क। १ मङ्गल, क्षेम, भलाई। २ पद्मकाष्ठ, पदुमाख। ३ उदक। (निघण्टु १।१२) शुभ शब्दके पर्यायमें 'शुभम्' एक अव्यय पद है। (पा ५।२।११० काशिका) (पु०) शोभते इति शुभ-क। ४ विष्कम्भादि सत्ताइस योगोंके अन्तर्गत एक योग। फलितज्योतिषके अनुसार जो बालक इस योगमें जन्म लेता है, वह सब लोगोंका कल्याण करनेवाला, अच्छे कर्म करनेवाला, पण्डितोंका सत्संग करनेवाला और बुद्धिमान होता है। (त्रि०) शुभमस्त्यस्तीति अर्श आदित्वादच्। ५ क्षेमशाली, कल्याणकारी। ६ सुखी। ७ कुशली। ८ सुन्दर, मनोहर, उत्तम।

शुभकर (सं० त्रि०) करोतीति कृ-ट, शुभस्य करः। शुभजनक, मङ्गलकर।

शुभकरी (सं० स्त्री०) पार्वती।

शुभकर्मन् (सं० क्ली०) १ मङ्गलजनक कर्म। २ विवाह अन्नप्राशनादि संस्कार कार्य।

शुभकूट (सं० पु०) सिंहल द्वीप या सिलोनका एक प्रसिद्ध पर्वत जिस पर चरणचिह्न बने हुए है। ईसाई इन्हें हजरत आदमके चरणचिह्न और बौद्ध महात्मा बुद्धके चरण-चिह्न मानते हैं। अङ्गरेजोंमें इसे Adam's peak कहते हैं।

शुभकृत् (सं० त्रि०) शुभं करोतीति कृ-क्विप्, तुक्—शुभकर, शुभजनक।

शुभकृत्स्न (सं० पु०) बौद्ध देवताओंका एक वर्ग।

शुभकेशी—कादम्बवंशीय एक नरपति। ये कर्णाटक देशमें राज्य करते थे। शिलालिपिमें इनका शुचकेशी और षष्ठदेव नाम मिलता है। इनके पुत्र जयकेशी चालुक्यराज कर्णके (१०६४-१०६४ ई०) ससुर थे।

शुभक्षण (सं० क्ली०) शुभ समय, मङ्गलजनक मुहूर्त्त।

शुभगन्धक (सं० क्ली०) शुभो गन्धो यस्य १ बोलनामक गन्धद्रव्य, गन्धवाला। (राजनि०) (त्रि०) २ मङ्गलगन्धयुक्त।

शुभग्रह (सं० पु०) शुभः ग्रहः। सौमग्रह, बृहस्पति और शुक्र ये दोनों ग्रह ही प्रकृत शुभग्रह हैं। इनके सिवा बुध ग्रह यदि पापयुक्त न हों, तो वह भी शुभ हैं। बुध पापयुक्त होनेसे पापग्रह गिने जाते हैं। अर्द्धाधिक चन्द्र अर्थात् शुक्लाष्टमीके बादसे कृष्णाष्टमी पर्यन्त चन्द्र शुभ हैं। (ज्योतिषसारस०)

शुभग्रहके वारमें अर्थात् शुभवारमें शुभलग्नमें और शुभ तिथि आदिमें शांतिपौष्टिक आदि शुभ कार्य करने होते हैं।

शुभङ्कर (सं० त्रि०) शुभं करोतीति शुभ कृ खच्। मङ्गलकारक, शुभ या मङ्गल करनेवाला।

शुभङ्कर—१ एक प्रसिद्ध नैयायिक इनका असल नाम प्रगल्भ आचार्य था। प्रगल्भ आचार्य देखो। २ एक कवि। ३ तिथिनिर्णयके प्रणेता। ४ सङ्गीतदामोदरके रचयिता। ये श्रीधरके पुत्र थे।

शुभङ्कर—एक प्रसिद्ध मानसाङ्कवेत्ता। ये अङ्कशास्त्रके दुर्बोध नियम बहुत संक्षेपसे सुललित बंगलाकवितामें रचना कर सुकुमारमति बालकवृन्दके चित्तमें उसको निर्मल छवि अङ्कित कर गये हैं। शुभङ्कर दास जातिके कायस्थ थे। नवाबी अमलमें प्रायः दो सौ वर्ष आगे राजकीय विभिन्न विभागमें कैसा बन्दोबस्त था तथा किस नियमसे नवाब सरकारके कार्य परिचालित होते थे, उन्होंने स्वरचित 'छत्तीस कारखाना' नामक ग्रंथमें उन सबोंका सम्यग् विवृत कर दिया है।

शुभङ्करी (सं० स्त्री०) शुभङ्कर-ङीप्। १ पार्वती। दुर्गादेवी शुभ विधान करती हैं। इसलिये वे शुभङ्करी कहलाती हैं। (शब्दरत्ना०) २ शुभङ्कर-प्रणीत अङ्कशास्त्र।

शुभचन्द्र—शब्दचिन्तामणिवृत्तिके प्रणेता।

शुभचिन्तक (सं० त्रि०) हितैषी, शुभ या भला चाहनेवाला, खैरख्वाह।

शुभताति (सं० स्त्री०) सौभाग्य, समृद्धि।

शुभतुङ्ग—गुजरातके राष्ट्रकूटवंशीय एक राजा। ये ८६७ ई०में पिता ध्रुवदेवके मरने पर राजगद्दी पर बैठे। इनका दूसरा नाम अकालवर्ष था।

शुभद (सं० पु०) शुभं ददातीति दा-क। १ अश्वत्थ वृक्ष, पीपलका पेड़। (त्रि०) २ शुभदाता, शुभदायक।

शुभदन्त (सं० त्रि०) उत्तमदंतविशिष्ट, जिसके दांत सुन्दर हों।

शुभदन्ती (सं० स्त्री०) शुभदंतो यस्याः ङीष्। १ सुदंती, शोभन दंतविशिष्ट, वह स्त्री जिसके दाँत सुन्दर हों। २ पुराणानुसार पुष्पदंत नामक हाथीकी हथनीका नाम।

शुभदर्शन (सं० त्रि०) १ सुन्दर, सुश्री, खूबसूरत। २ जिसकी मुंह देखनेसे कोई शुभ या मङ्गल बात हो।

शुभदायिन् (सं० त्रि०) शुभं ददातीति दा-णिन्, युकागमः। शुभद, शुभ या मङ्गल करनेवाला।

शुभधर (सं० पु०) व्यक्तिभेद। (राजत० ५।२४०)

शुभनय (सं० पु०) मुनिभेद। (कथासरित्सा० ७२।३६६)

शुभनामा (सं० स्त्री०) शुक्ला पंचमी, दशमी और पूर्णिमा तिथि।

शुभपत्रिका (सं० स्त्री०) शुभानि पत्राणि यस्याः स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। १ शालपर्णी, सरिवन। (राजनि०) २ मङ्गलपत्रिका।

शुभपुष्पितबुद्धि (सं० पु०) समाधि।

शुभप्रद (सं० त्रि०) शुभं प्रददातीति दा-क। शुभदा, शुभ या मङ्गल करनेवाला।

शुभभावना (सं० स्त्री०) मङ्गलजनक भावना, मङ्गलविषयक चिन्ता।

शुभमङ्गल (सं० क्ली०) शुभ और मङ्गल।

शुभमणिनगर—एक प्राचीन नगर। यह वाराणसी विभागके बस्ति जिलेके रामपुर देवरिया ग्रामसे १३ मील दक्षिणमें अवस्थित है। आज कल यहां प्राचीन कीर्त्तिका कुछ भी निदर्शन नहीं है, सिर्फ पिपुरावा-महादेव और चवेरा-महादेव नामक भग्न मन्दिरके दो स्तूप और दूसरे दो बड़े स्तूप तथा भग्न सूर्य मूर्त्ति आदि उसकी अतीत स्मृति घोषणा करती है।

शुभमय (सं० त्रि०) शुभ स्वरूपे मयट्। शुभस्वरूप, मङ्गलमय।

शुभम्भावुक (सं० त्रि०) १ शुभदर्शन। २ शुभचिंतक।

शुभवक्त्रा (सं० स्त्री०) कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम।

शुभवत् (सं० त्रि०) शुभ-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शुभविशिष्ट, मङ्गलयुक्त।

शुभवस्तु (सं० स्त्री०) १ नदीभेद, वैदिक सुवास्तु नदी। इसका वर्त्तमान नाम सोयात् है। (क्ली०) २ माङ्गलिक द्रव्य।

शुभवासन (सं० पु०) शुभं शोभनं यथा तथा वासयति मुखमिति शुभ-वस-णिच् ल्यु। मुखवासकर गंध, मुखका सुगंधजनक वास।

शुभविमलगर्भ (सं० पु०) एक बोधिसत्वका नाम।

शुभव्यूह (सं० पु०) राजभेद।

शुभव्रत (सं० क्लि०) एक प्रकारका व्रत। कार्त्तिक शुक्ला पञ्चमीको यह व्रत किया जाता है।

शुभशंसिन् (सं० त्रि०) शुभं शंसति-शंस-णिनि। शुभ-सूचक, जिसके द्वारा शुभकी सूचना हो।

शुभशीलगणि—भोजप्रबन्धके रचयिता तथा मुनिसुन्दरके शिष्य। ये श्वेताम्बर जैन थे।

शुभशैल (सं० पु०) एक कल्पित पर्वतका नाम।

शुभश्रवा (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम।

शुभसंयुत (सं० त्रि०) शुभने संयुतः। शुभसंयुक्त, शुभविशिष्ट।

शुभसप्तमीव्रत (सं० क्ली०) सप्तमीव्रतभेद।

शुभसार (सं० पु०) एक राजाका नाम।

शुभसूचनी (सं० स्त्री०) शुभं सूचयतीति-सुच-णिच्-ल्यु, स्त्रियां ङीष्। एक देवीका नाम। इनकी पूजाका संकल्प किसी शुभ कामके होनेकी आशासे की जाती है और वह शुभ काम हो जाने पर इनकी पूजा की जाती है। इस देवताकी पूजा प्रायः स्त्रियां ही करती हैं। व्यवहार है, कि यदि स्त्रियां पूजा न कर सकती हों, तो पुरुष ही पूजा करें। पूजा हो जाने पर देवीके उद्देश्यसे पालनी तथा देवीकी पांचाली कथा सुननी होती है।

शुभस्थली (सं० स्त्री०) शुभा स्थली। १ यज्ञभूमि। २ मङ्गल भूमि, पवित्र स्थान।

शुभस्पति (सं० पु०) शोभन कर्मका पालक, शुभकर्मका रक्षक। (ऋक् १।३।१)

शुभा (सं० स्त्री०) शुभ अ-टाप्। १ शोभा, कांति। २ इच्छा, चाह। ३ वंशरोचना। ४ गोरोचना। ५ शमी, सफेद कीकर। ६ प्रियंगु, वनिता। ७ श्वेत-दूर्वा, सफेद दूव। ८ देवताओंकी सभा। ९ पार्वती-की एक सखीका नाम। १० मङ्गलजनिका। ११ स्पृक्का, गिडिं साग। १२ शुक्ल वचा, सफेद वच। १३ तमक्षीर, बकरीका दूध। १४ असवरग। १५ पुरइन की पत्ती। १६ शताह्वा, सोआ। १७ अरारोट। १८ एक नदीका नाम। (सह्याद्रि १२।७)

शुभाकर गुप्त (सं० पु०) एक बौद्धाचार्य और बौद्ध-ग्रन्थकार।

शुभाकिनी (सं० स्त्री०) भूम्यामलकी, भूइं आंवला।

शुभागम (सं० पु०) १ हितकर विषयका समागम मन्त्रक्रियाका समागम।

शुभाङ्ग (सं० त्रि०) शुभानि अङ्गानि यस्य। मङ्गल अवयवयुक्त।

शुभाङ्गद (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक राजाका नाम।

शुभाङ्गिन् (सं० त्रि०) शुभाङ्ग अस्त्यर्थे इनि। शुभाङ्ग-विशिष्ट, शोभन अवयवयुक्त।

शुभाङ्गी (सं० स्त्री०) १ कुवेरकी पत्नी। २ कामदेवकी पत्नी, रति। ३ कुरुराजकी पत्नी। इनके गर्भसे विदू-रथका जन्म हुआ। (भारत १।९५।३९)

शुभाचल (सं० पु०) पुराणानुसार एक कल्पित पर्वतका नाम। (कालिकापु० ७८ अ०)

शुभाचार (सं० त्रि०) शुभ आचारो यस्य। शोभन आचारविशिष्ट, जिसका आचार बहुत अच्छा हो, शुभ आचारयुक्त।

शुभाचारा (सं० स्त्री०) पुराणानुसार पार्वतीकी एक सखीका नाम।

शुभाञ्जन (सं० पु०) शोभाञ्जनक वृक्ष, लाल सहिंजन-का पेड़।

शुभात्मक (सं० त्रि०) शुभ आत्मा स्वरूपो यस्य। शुभस्वरूप।

शुभात्मिका (सं० स्त्री०) शुभस्वरूपा।

शुभानन्दा (सं० स्त्री०) दाक्षायणी।

शुभान्वित (सं० त्रि०) शुभेन अन्वितः। मङ्गलयुक्त, शुभविशिष्ट। पर्याय—शुभंयु। (अमर)

शुभार्थिन् (सं० त्रि०) शुभं मङ्गलमर्थयते अर्थ-णिनि। शुभप्रार्थी, शुभकामी।

शुभावह (सं० त्रि०) शुभसूचक, मङ्गलजनक।

शुभाशय (सं० त्रि०) विज्ञ, धार्मिक, विशुद्धचित्त।

शुभाशिस् (सं० त्रि०) शुभा आशीर्यस्य। १ शुभ आशीर्वादयुक्त, शुभ आशीर्वादविशिष्ट। (स्त्री०) २ शुभ आशीर्वाद।

शुभाशुभ (सं० त्रि०) १ शुभ और अशुभयुक्त, शुभ और

अशुभकर्मविशिष्ट। २ शुभ और अशुभ, अच्छा और खराब।

शुभासन (सं० पु०) एक तान्त्रिक आचार्यका नाम।

शुभैकदृश् (सं० त्रि०) मङ्गलकामी।

शुभोदय (सं० पु०) १ एक तान्त्रिक आचार्यका नाम। २ शुभ नक्षत्र आदिका उदय।

शुभ्र (सं० क्ली०) शोभते इति शुभ दीप्तौ (स्फायि तञ्चि वञ्चीति। उण् २।१३) इति रक्। १ अभ्रक, अबरक। २ गड़लवण, सांभर नमक। ३ रौप्य, रूपा, चांदी। ४ कसोस। ५ पद्मकाष्ठ, पद्माख। ६ रौप्य माक्षिक, रूपामक्खी। ७ मेदो धातु। ८ सैन्धवलवण, सेंधा-नमक। ९ उशीर, खस। (पु०) १० शुक्लवर्ण, सफेद रंग। ११ चन्दन। (त्रि०) १२ उद्दीप्त। १३ शुक्ल-गुणयुक्त।

शुभ्रखादि (सं० त्रि०) १ शोभनायुध, आयुधविशिष्ट। २ शोभन हविष्क, शोभन हवियुक्त।

शुभ्रतरु (सं० पु०) शिरीष वृक्ष, सिरिसका पेड़।

शुभ्रता (सं० स्त्री०) शुभ्रस्य भावः तल् टाप्। शुभ्रका भाव या धर्म, शुक्लता, सफेदी।

शुभ्रदन्त (सं० त्रि०) शुभ्रवर्ण दन्तविशिष्ट, जिसके दांत सफेद हों।

शुभ्रदन्ती (सं० स्त्री०) शुभ्रौ दन्तौ यस्याः। शु दन्ती; पुष्पदन्त नामक दिग्गजकी हथनीका नाम।

शुभ्रपर्ण (सं० पु०) सफेद पान।

शुभ्रपुङ्खा (सं० स्त्री०) श्वेत शरपुङ्खा।

शुभ्रपुर—एक प्राचीन नगरका नाम। शालके पुत्र सूर्यने यह नगर बसाया। (जैनहरि० १७।३२)

शुभ्रपुष्प (सं० क्ली०) वीरणतृण, खस।

शुभ्रभानु (सं० पु०) शुभ्राः भानवो यस्य। शुभ्रकिरण-विशिष्ट, चन्द्रमा, शुभ्रांशु।

शुभ्रमती (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

शुभ्रयामन (सं० पु०) दिन। (ऋक् ३।५८।१)

शुभ्रयावन् (सं० त्रि०) शोभनशील गमनयुक्त।

शुभ्ररश्मि (सं० स्त्री०) शुभ्रा रश्मयो यस्य। १ चन्द्रमा। २ श्वेत किरण।

शुभ्रवती (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

शुभ्रवेष्ट (सं० पु०) श्वेतशाल्मलि, सफेद सेमल।

शुभ्रव्रत (सं० पु०) व्रतविशेष। (वराहपुराण)

शुभ्रशस्तम (सं० त्रि०) अतिशय दीप्यमान, निर्मल होने पर भी निर्मल यशोयुक्त। (ऋक् ६।६६।१६)

शुभ्रांशु (सं० पु०) शुभ्रा अंशवो यस्य। १ चन्द्रमा। (अमर) २ कर्पूर, कपूर।

शुभ्रा (सं० स्त्री०) १ वंशरोचना। २ फिटकरी। ३ शर्करा, चीनी। ४ श्वेत वृद्धदारक, सफेद विधारा।

शुभ्रालु (सं० पु०) शुभ्रः शुक्ल आलुः। १ महिषकन्द, भैंसाकन्द। २ शङ्खालु।

शुभ्रावत् (सं० त्रि०) शोभाविशिष्ट। (ऋक् ६।१५।३)

शुभ्रि (सं० पु०) शोभते इति शुभ (अदि शदि भू शुभिभ्यः क्रिन्। उण् ४।६५) इति क्रिन्। ब्रह्मा।

शुभ्रिका (सं० स्त्री०) मधुशर्करा, शहदसे तैयार की हुई चीनी।

शुम्भन् (सं० त्रि०) शोभमान। (ऋक् ४।३८।६)

शुम्ब (सं० क्ली०) शुल्व।

शुम्बल (सं० क्ली०) ज्वलन्त अग्नियुक्त दण्ड, मशाल।

शुम्भ (सं० पु०) दानवविशेष। यह प्रह्लादका पोता और गवेष्ठीका पुत्र था। वामनपुराणके मतानुसार कश्यप-की दनु नामक एक स्त्री थी। उसके गर्भसे दो पुत्र पैदा हुए। जिनमें बड़े लड़केका नाम शुम्भ और छोटे-का निशुम्भ था। (वामनपुराण ५२ अ०)

मार्कण्डेयपुराणके अन्तर्गत चण्डीमें लिखा है, कि शुम्भ देवताओंको परास्त कर स्वर्गका इन्द्र बन बैठा था और जबर्दस्ती यज्ञका भाग ग्रहण करता था। देवगण अपने स्वर्गका राज्य खो कर असुरोंके अत्याचारसे नाना प्रकारका कष्ट भोग रहे थे। उस समय देवता लोग अपने निस्तारके लिये हिमालयमें जा कर महामायाकी प्रार्थना करने लगे। महामायाने उनकी प्रार्थनासे सन्तुष्ट हो कर देवताओंसे कहा—"तुम लोग जाओ, मैं तुम्हारा उद्धार करूंगी।" इसके बाद देवी भगवती एक सुन्दर तरुणी स्त्रीका रूप धारण कर अपनी रूपच्छटासे दशों दिशाओंको उद्भासित करती हुई उसी स्थानमें वास करने लगीं। चण्ड और मुण्ड नामक दो प्रधान सेना-पतियोंने उस परम कमनीय नारीमूर्त्तिको देख कर शुंभसे

जा कहा। शुम्भने उसे पकड़ लानेके लिये सुग्रीव नामक एक दूतको वहां भेजा। सुग्रीव देवीके पास जा कर बोला—"हे देवि! शुम्भ त्रिलोकके अधीश्वर हैं। उनका छोटा भाई निशुम्भ भी उन्हींके समान तेजस्वी हैं और आप भी नारियोंमें रत्नस्वरूप हैं। त्रिलोकमें जितनी सर्वश्रेष्ठ वस्तुएं हैं, वे सब शुम्भके पास विद्यमान हैं। अतएव आप इसी समय मेरे साथ चल कर उन्हें वरमाल्य पहनावें। आपको बुला लानेके लिये ही उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है।"

महामायाने राक्षसकी बातें सुन मुसकुरा कर कहा—"तुम्हारा कहना सत्य है, किन्तु मैं विना समझे बूझे ही एक प्रतिज्ञा कर चुकी हूं, कि जो व्यक्ति मुझे संग्राममें परास्त करेगा वा मेरा अभिमान चूर करनेमें समर्थ होगा अथवा मेरे जोरके बराबर होगा, उसे ही मैं वरमाल्य पहनाऊंगी, अपना प्यारा पति बनाऊंगी। तुमने कहा है, कि शुम्भ त्रिलोकके अधिपति हैं, अतएव वे अनायास ही मुझे रणमें जीत कर ले जा सकते हैं।"

सुग्रीवने शुम्भके पास जा कर देवीका सम्वाद दिया। शुम्भने भगवतीको जीत कर लानेके लिये ५० हजार सेनाके साथ धूम्रलोचन नामक एक सेनापतिको वहां भेजा। धूम्रलोचनके सामने आते ही देवीने एक हुंकार भरा। उस हुंकारसे धूम्रलोचन अपनी सेनाके साथ जल कर खाक हो गया। शुम्भने यह संवाद पा कर चण्ड मुण्डको भेजा। युद्धमें देवी द्वारा चण्डमुण्डके मारे जाने पर रक्तवीज नामक राक्षस देवीको लाने गया। इस रक्तवीजका एक बूंद रक्त शरीरसे जिस स्थान पर गिरता, वहांसे उसी आकारका एक दूसरा रक्तवीज उत्पन्न हो जाता था। जब देवीने रक्तवीजको युद्धमें मार डाला, तब निशुम्भ समरक्षेत्रमें पहुंचे। पर वे भी देवी-युद्धमें मारे गये। इस तरह शुम्भके सभी सैनिक देवी द्वारा मार डाले गये। अन्तमें शुम्भ स्वयं रणक्षेत्रमें आ डटा। उसके साथ बहुत दिनों तक देवी लड़ती रहीं। अन्तमें वह भी देवीके द्वारा मारा गया। इस तरह शुम्भके मारे जाने पर स्वर्गका आकाश निर्मल हो गया और देवगण अपने अपने अधिकारको प्राप्त हुए।

शुम्भघातिनी (सं० स्त्री०) शुम्भं हन्तीति-हन-णिनि, ङीप्। दुर्गा।

शुम्भदेश (सं० पु०) सुह्म, अङ्ग और वङ्गका दक्षिणांश, राढ़।

शुम्भपुर (सं० क्ली०) शुंभस्य पुरं। शुंभदैत्यकी पुरी। पर्याय—एकचक्र, हरिगृह। (भूरिप्र०) कोई कोई शम्वलपुरको शुम्भपुरी कहते हैं।

शुम्भपुरी (सं० स्त्री०) शुंभस्य पुरी। शुंभपुर।

शुम्भमर्द्दिनी (सं० स्त्री०) शुभं मृद्नातीति मृद्-णिनि। दुर्गा, शुंभघातिनी। (हेम)

शुम्भमान (सं० पु०) मुहूर्त्तभेद।

शुम्भु (सं० पु०) शुम्भमान।

शुरवा (फा० पु०) शोरवा देखो।

शुरुध् (सं० स्त्री०) क्षुद्रूप शोकका रोधक, क्षुधारूप शोकनाशक।

शुरू (अ० पु०) १ किसी कार्यकी प्रथमावस्थाका सम्पादन, आरंभ, प्रारंभ। २ वह स्थान जहांसे किसी वस्तुका आरंभ हो, उत्थान।

शुल्क (सं० पु०) शुल्क घञ्। १ वह महसूल जो घाटों और रास्तों आदि पर राज्यकी ओरसे वसूल किया जाता है। अमरटीकामें भरतने लिखा है, "घट्टः पन्थाः तत्र आदिना द्रव्यक्रयविक्रयस्थानादौ च यद्देयं दीयते स शुल्कः"

मनुमें लिखा है, कि राजा प्रजाका यथारीति पालन न करके यदि उनसे कर और शुल्कादि ग्रहण करे, तो उन्हें नरक होता है।

"योऽरक्षन् वलिमादत्ते करं शुल्कञ्च पार्थिवः।
प्रतिभागञ्च दण्डञ्च स सद्यो नरकं व्रजेत्॥"

(मनु० ८।३०७)

जलपथ और स्थल आदिसे राजा जो राजग्राह्य कर वसूल करते हैं, उसे शुल्क कहते हैं। पण्यद्रव्यके ऊपर राजदरवारसे जो कर (Duty) लगाया जाता है, वह भी शुल्क है। प्राचीन राजाओंका शुल्कगृह अभी Custom-house आदिमें रूपान्तरित हुआ है। उन सब स्थानोंमें विभिन्नसे विभिन्न प्रकारका निर्दिष्ट महसूल वसूल किया जाता है।

२ विवाहका पण, वह धन जो कन्याका विवाह करनेके बदलेमें उसका पिता वरके पितासे लेता है।

शास्त्रमें इस प्रकार धन या शुल्क लेनेका बहुत अधिक निषेध किया गया है। मनुमें लिखा है, कि कन्याका पिता कन्यादानके लिये कुछ भी शुल्क न ले, क्योंकि कन्याविनिमयरूप अर्थग्रहण करनेसे उसे कन्याविक्रयी होना पड़ता है। कन्याविक्रय और गोवध दोनों ही समान पातक है।

"न कन्यायाः पिता विद्वान् गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि।
गृह्णन् शुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी॥"

(मनु ३।५१)

३ विवाहका यौतुक, विवाहके समय दिया जानेवाला दहेज। ४ मूल्य, दाम। ५ बाजी, शर्त। ६ वह धन जो किसी कार्य्यके बदलेमें लिया या दिया जाय। जैसे—प्रवेशशुल्क।

शुल्कता (सं० स्त्री०) शुल्कका भाव या धर्म।

शुल्कत्व (सं० क्ली०) शुल्क भावे त्व। शुल्वका भाव या धर्म।

शुल्कशाला (सं० स्त्री०) १ वह स्थान जहां पर घाट या मार्ग आदिका महसूल चुकाया जाता हो। २ वह स्थान जहां किसी प्रकारका शुल्क चुकाया जाता हो, महसूल अदा करनेकी जगह।

शुल्कस्थान (सं० क्ली०) वह स्थान जहां आने जानेवालोंको शुल्क देना पड़ता हो।

शुल्किका (सं० स्त्री०) एक देशका नाम।

शौल्किकेय देखो।

शुल्ल (सं० क्ली०) १ रज्जु, रस्सी। २ ताम्र, तांबा।

शुल्व (सं० क्ली०) शुल्वयत्यनेनेति शुल्व माने घञ्, यद्वा शुच शोके (उल्बादयश्च। उण् ४।९५) इति वन्प्रत्ययेन निपातनात् साधु। १ ताम्र, तांबा। २ रज्जु, रस्सी। ३ यज्ञकर्म। ४ आचार। ५ जलसन्निधि। (मेदिनी)

शुल्वसूत्र—कात्यायनकृत श्रौतसूत्रका ९म परिशिष्ट।

शुल्वारि (सं० पु०) शुल्वस्य अरिः। गंधक। (हेम)

शुशिर—एक प्रकारका दन्तरोग। इसमें कीड़ा दांतमें छेद कर देता है।

शुशुक (सं० पु०) शिशुमार, सूंस नामका जलजन्तु। इसका तेल वातरोगमें बड़ा फायदा पहुंचाता है।

शुशुनिया—बांकुड़ाके अन्तर्गत एक गण्डशैल। यह बांकुड़ा शहरसे आठ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। छातनासे रानीगंज तकका रास्ता इसके पार्श्व हो कर चला गया है। यहां राजा चन्द्रवर्माकी शिलालिपि निकली है। पहाड़के जिस अंशमें यह शिलालिपि है, लोगोंका विश्वास है, कि वहां विरूपाक्ष ऋषिका आश्रम था। उसके पास ही यमधारा नामक प्रस्रवण है। पहाड़के नीचे वा जड़में बहुत-सी पत्थरकी देव-मूर्त्तियां देखी जाती हैं।

शुशुक्वन (सं० त्रि०) आज्यादि संयोगसे अतिशय दीप्त।

शुशुक्वनि (सं० त्रि०) दीपनशील। (ऋक् ८।२३।५)

शुलमा (सं० स्त्री०) शिशुपत्नी।

शिशुलुकयातु (सं० पु०) एक राक्षसका नाम।

शुश्रुक (सं० पु०) एक राजाका नाम। (सह्या० ३२।४)

शुश्रुवस् (सं० त्रि०) श्रु-क्वसु। जिसने श्रवण किया हो। अतीत कालमें धातुके उत्तर क्वसु प्रत्यय होता है तथा क्वसुप्रत्यय होनेसे द्वित्व होता है।

शुश्रू (सं० स्त्री०) बालककी सेवा शुश्रूषा करनेवाली, माता, माँ, जननी।

शुश्रूषक (सं० त्रि०) श्रु-सन् शुश्रूष-ण्वुल्। शुश्रूषाकारी, सेवा करनेवाला। शुश्रूषक पांच प्रकारका होता है,—शिष्य, अन्तेवासी, भृतक, अधीनस्थ कार्य्यकारक और दास।

शुश्रूषण (सं० क्ली०) श्रु-सन्-ल्युट्। १ सेवा, परिचर्या, खिदमत-गुजारी। २ श्रवणेच्छा, किसीसे कुछ सुननेकी इच्छा।

शुश्रूषा (सं० स्त्री०) श्रु-त-सन् शुश्रूष (अप्रत्ययात्। पा ३।३।१०२) इति-अ। १ उपासना, सेवा, परिचर्या, टहल। मनुमें लिखा है, कि जहां किसी प्रकारकी शुश्रूषा, धर्म या अर्थलाभ नहीं है, वहां विद्यावीज वपन नहीं करना चाहिये। (मनु २।११२) २ कथन। ३ किसीसे कुछ सुननेकी इच्छा। ४ खुशामद।

शुश्रूषितृ (सं० त्रि०) श्रु-सन्-तृच्। शुश्रूषक, सेवा टहल करनेवाला।

शुश्रूषितव्य (सं० त्रि०) शुश्रूष-तव्य। सेवितव्य, सेवाके योग्य।

शुश्रूषिन् (सं० त्रि०) शुश्रूष इन्। शुश्रूषक, सेवा करनेवाला।

शुश्रूषु (सं० त्रि०) शुश्रूष सनन्ताद् उः। १ शुश्रूषा करनेमें इच्छुक, सेवा करनेमें अभिलाषी। २ किसीकी बात सुननेमें इच्छुक।

शुश्रूषेण्य (सं० त्रि०) शुश्रूषाई, सेवा करनेके योग्य।

शुश्रूष्य (सं० त्रि०) शुश्रूष-यत्। शुश्रूषितव्य, सेवितव्य।

शुष (सं० पु०) शुष-क। १ शोषण। २ गर्त्त, विवर।

शुषणी (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात शाक, सुसना साग। यह साग कफ और वातनाशक होता है।

शुषि (सं० स्त्री०) शुष-इन स च कित्। १ शोष। २ बिल। (मेदिनी)

शुषिर (सं० क्ली०) शुष शोषणे (इषिमदि मुदीति। उण् १।५२) इति किरच्, यद्वा शुषिश्छिद्रमस्यास्तीति शुषि (ऊषशुषिमुष्कमेधा रः। पा ५।२।१०७) १ विवर, गर्त्त, बिल। २ वह बाजा जो मुंहसे फूंक कर बजाया जाता हो। जैसे,—वंशी, अलगोजा, शहनाई आदि। (पु०) ३ आकाश। ४ मूषिक, मूसा। (मेदिनी) ५ अग्नि। (त्रि०) ६ सरन्ध्र, छिद्रविशिष्ट, छेदवाला।

शुषिरा (सं० स्त्री०) शुषिर-टाप्। १ नदी, दरिया। (धरणि) २ धरणी। ३ नली या नलिका नामक गन्ध-द्रव्य। (अमर)

शुषिल (सं० पु०) शुष (गुपादिभ्यः कित। उण् १.५७) इति इलच्, स च कित्। वायु। (उज्ज्वल)

शुषेण (सं० पु०) सुषेण देखो।

शुष्क (सं० त्रि०) शुष-शोषे-क्त, यद्वा (सृ वृ भू शुषि मुषिभ्यः कक्। उण् ३।४१) इति कक्। १ निस्नेह, आर्द्रता-रहित, जिसमें किसी प्रकारकी नमी या गीलापन न रह गया हो, सूखा। २ जिसमें जल या और किसी तरल पदार्थका व्यवहार न किया गया हो। ३ नीरस, रसहीन, जिसमें रसका अभाव हो। ४ जीर्ण शीर्ण, जो बिलकुल पुराना और बेकाम हो गया हो। ५ जिसमें सौहार्द्र आदि कोमल मनोवृत्तियां न हों, स्नेह आदिसे रहित, निर्मोही। ६ जिससे मनोरञ्जन न होता हो, जिसमें मन न लगता हो। ७ जिसका कुछ परिणाम न निकलता हो, निरर्थक, व्यर्थ। (क्ली०) ८ कृष्णागुरु, काला अगर।

शुष्कक (सं० त्रि०) जो शुष्क हो अथवा नहीं हो। (पा ४।३।७२) स्त्रीलिङ्गमें शुष्किका पद होता है।

शुष्ककण्ठ (सं० त्रि०) शुष्कः कण्ठो यस्य। शुष्क कण्ठयुक्त, पिपासातुर, जिसका कण्ठ प्याससे सूख गया हो।

शुष्ककलह (सं० पु०) सामान्य विषय ले कर विवाद।

शुष्कक्षेत्र (सं० पु०) वितस्ता नदीके किनारे एक पर्वतका नाम।

शुष्कगर्भ (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार स्त्रियोंका एक रोग। इसमें वायुके प्रकोपसे स्त्रियोंका गर्भ सूख जाता है।

शुष्कगोमय (सं० पु०) वन करीष, वनगोइंठी।

शुष्कता (सं० स्त्री०) शुष्कस्य भावः तल् टाप्। शुष्क होनेका भाव या धर्म, सूखापन।

शुष्कपत्र (सं० क्ली०) शुष्कं पत्रं। १ स्नेहरहित पत्र, नीरस या सूखा पत्ता। २ आतप आदि शोषित पट्टशाक, पाटसाग। पाटशाक धूपमें सुखानेसे वह शुष्कपत्र कहलाता है। यह साग जलके साथ पीनेसे जलदोष तथा पित्त और कफज्वर नाश होता है। इसे जलमें भिगो कर वह जल नित्य सेवन करनेसे पित्त दमन होता है तथा यह पत्र तरकारीके साथ मिला कर रींध कर खानेसे बड़ा स्वादिष्ट होता है।

शुष्कपाक (सं० पु०) १ जलशून्य व्यञ्जनादि। २ शुष्काक्षिपाक रोग।

शुष्कमत्स्य (सं० पु०) शुष्को मत्स्यः। धूपमें सुखाई हुई मछली, सुंगठी।

शुष्कमांस (सं० क्ली०) शुष्कं मांसं। सुखाया हुआ मांस। पर्याय—उत्तप्त, वल्लूर, वल्लूरा, शुष्कणी। यह मांस शूलरोगनाशक और गुरु होता है। वैद्यकमें शुष्क मांस खाना निषिद्ध कहा है। यह सद्यःप्राणनाशक है।

शुष्कमुख (सं० त्रि०) १ मुखशोषयुक्त। (वाभट-चि ६ म०) २ शुष्कमुखयुक्त, जिसका मुंह उपवास आदि करनेसे सूख गया हो। ३ व्ययकुण्ठ, कृपण, कंजूस।

शुष्कमूल (सं० क्ली०) शुष्कं मूलं। रौद्र शोषित मूलक।

शुष्कमूलकाद्यतैल (सं० क्ली०) शोथरोगोक्त तैलौषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शुष्कमूल, दशमूल, पिप्पलीमूल, पुनर्नवामूल, प्रत्येक १६ पल, जल ५१२ पल,

शेष ६४ पल, तिल तैल ६४ पल, गोमूत्र ६४ पल और कल्कार्थ शुष्कमूली, गुलञ्च, सोंठ, परवलका पत्ता, पीपरका मूल, विजबंद, आकनादि, पुनर्नवा, सुगंधवाला, खसकी जड़, सहिञ्जनका बीज, सम्हालू, अनन्तमूल, करञ्जबीज, अडूसको छाल, पीपर, हरीतकी, वच, कुट, रास्ना, विड़ङ्ग, चव्य, हरिद्रा, धनियां, यवक्षार, सार्चिक्षार सैन्धव, देवदारु, पद्मवीज, कचूर, गजपीपर, वेलसोंठ और मञ्जिष्ठा प्रत्येक ४ तोला तैल पाकके विधानानुसार पाक करे। व्रणशोथमें भी इस तैलका प्रयोग करनेसे शोथ अति शीघ्र प्रशमित होता है।

शुष्कमूलाद्यघृत (सं० क्ली०) उदावर्त्त रोगाधिकारोक्त घृतौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शुष्कमूल और अद्रक, पुनर्नवा, पञ्चमूल और कतक फल, इन सब द्रव्योंके कल्कके साथ घृत पाक करे। उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे उदावर्त्तरोग प्रशमित होता है। (रसरत्नाकर)

शुष्करेवती (सं० स्त्री०) १ पुराणानुसार एक मातृकाका नाम। (मत्स्यपु० १५४ अ०) २ एक प्रकारका वालग्रह। इसके प्रकोपसे वालकोंके अंग सूखने या क्षीण होने लगते हैं। बालग्रह शब्दमें देखो।

शुष्कल (सं० पु०) १ आमिष, मांस, गोश्त। (त्रि०) २ आमिषाशी, मांस खानेवाला।

शुष्कली (सं० स्त्री०) मांस, गोश्त।

शुष्कलेत (सं० पु०) वितस्ता नदीके किनारे पर स्थित एक पर्वत।

शुष्कवत् (सं० त्रि०) शुष्क अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शुष्कयुक्त, सूखा हुआ।

शुष्कवृक्ष (सं० पु०) शुष्को वृक्षः। १ धव या धौंका पेड़। २ सूखा हुआ पेड़।

शुष्कव्रण (सं० पु०) शुष्को व्रणः। १ किण्। २ स्त्रियोंका योनिकन्द नामक रोग।

शुष्कसम्भव (सं० क्ली०) वृक्षविशेष। (Costus arabicus)

शुष्का (सं० स्त्री०) स्त्रियोंका योनिकन्द नामक रोग। स्त्रियोंके ऋतुकालमें वेगरोधके कारण वायु दुष्ट हो कर विष्ठा और मूत्रका संग्रह तथा योनिमें शोष उत्पादन करती है इससे योनिमें बहुत दर्द होता है। ऐसा लक्षण होनेसे उसे शुष्का रोग कहते हैं। योनिरोग देखो।

शुष्काक्षिपाक (सं० पु०) आंखोंका एक प्रकारका रोग। इसमें आंखोंकी पलकें कठोर और रूखी हो जाती हैं और उनके खोलने बन्द करनेमें पीड़ा होती है, आंखोंमें जलन होती है और साफ देख नहीं पड़ता।

शुष्काग्र (सं० पु०) शुष्क अग्र या शिरोदेशयुक्त।

शुष्काङ्ग (सं० पु०) शुष्कं अङ्गं यस्य। १ धववृक्ष, धौंका पेड़। २ स्नेहशून्यावयव, नीरस देह।

शुष्काङ्गी (सं० स्त्री०) शुष्कानीव अंगानि यस्या। १ गोधिका, गोह। २ प्लव जातिका एक प्रकारका पक्षी।

शुष्काप (सं० पु०) १ शुष्क पुष्करिणी, सूखा हुआ तालाव। २ कर्द्दम, कीचड़। ३ जलहीन स्थानविशेष।

शुष्कार्द्र (सं० क्ली०) शुष्कं आर्द्रं। शुण्ठी, सोंठ।

शुष्कार्शस् (सं० क्ली०) आंखोंका एक प्रकारका रोग। इसमें आंखकी पलकोंके भीतर खरखरी और कठिन फुंसियां उत्पन्न हो जाती हैं।

शुष्काशुष्क (सं० पु०) १ समुद्रफेन। २ शुष्क और अशुष्क।

शुष्कास्य (सं० त्रि०) विशुष्क वदन, सूखा हुआ मुंह।

शुष्ण (सं० पु०) शुष्यत्यनेति शुष—(तृपि-शुपि रसिभ्यः कित्। उण् ३।१२) इति सच कित्। १ सूर्य्य। २ अग्नि। (क्ली०) ३ वल, शक्ति, ताकत। (निघण्टु २।९)

शुष्म (सं० क्ली०) शुष्यत्यनेनेति शुष शोषे (अर्त्तिस्तुसुहु-पिभ्यः कित्। उण् १।१४३) इति सन्, स च कित्। १ तेज, पराक्रम। (पु०) २ सूर्य। (मेदिनी) ३ अग्नि। (त्रिका०) ४ वायु। ५ पक्षी, चिड़िया। (संक्षिप्तसार ऊणादि) ६ अर्च्चिः।

शुष्मद (सं० त्रि०) तेजोदानकारी, पराक्रमशील।

शुष्मन् (सं० क्ली०) शुष-मनिन्, संज्ञापूर्वकत्वात् नगुणः। १ तेज, पराक्रम। २ सौर्य। (हेम) (पु०) ३ अग्नि। ४ चित्रक, चीता।

शुष्मय (सं० त्रि०) वलप्रापक।

शुष्मवत् (सं० त्रि०) वीर्यवत्, वीर्यवान्, तेजशाली।

शुष्मिण (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

शुष्मिन् (सं० त्रि०) शोषकवलयुक्त। (अथर्व ६।२०।१)

शूंडल (हिं० पु०) मझोले आकारका एक प्रकारका वृक्ष। इसके हीरकी लकड़ी मजबूत, कड़ी और लाली

लिए होती है और अच्छे दामों पर बिकती है। यह इमारतों और पुलोंके बनानेके काममें आती है। इसकी छाल बहुत पतली होती है और उतारनेसे बारीक कागज के वरकोंकी तरह उतरती है। बंगालके सुन्दरवनमें यह पेड़ बहुत होता है।

शूक (सं० पु० क्ली०) शो-तनूकरणे उलूकादयश्च इति ऊक प्रत्ययेन साधु। १ श्लक्ष्णतीक्ष्णाग्र, अन्नकी बाल या सींका जिसमें दाने लगते हैं। पर्याय—किंशारु, शुङ्गा, कोशी। २ यव, जौ। ३ कीटभेद, एक प्रकारका कीड़ा। ४ एक प्रकारका तृण जिसे शूकड़ी कहते हैं। यह दुर्बल पशुओंके लिये बहुत बलकारक माना जाता है। ५ शूकप्रधान लिङ्गवृद्धिकर रोग।

शूकरोग शब्द देखो।

शूकक (सं० पु०) शूकेन कायतीति-कै-क। १ प्रावट। २ रस।

शूककीट (सं० पु०) शूकविशिष्टः कीटः। शूकयुक्त कीटविशेष, एक प्रकारका रोएंदार कीड़ा। पर्याय—वृश्चिक।

शूकज (सं० पु०) यवक्षार, जवाखार।

शूकतृण (सं० क्ली०) शूकप्रधानं तृणं। तृणविशेष, एक प्रकारकी घास। पर्याय—शूक, शूकाढ्य, कनिष्ठक। इसे शूकड़ी या चोरहुली भी कहते हैं। यह दुर्बल पशुओंके लिये बहुत बलकारक मानी जाती है।

शूकदोष (सं० पु०) शूकरोग, एक प्रकारकी व्याधि जो लिङ्ग-वर्द्धक औषधोंके लेपके कारण होती है।

विशेष विवरण शूकरोग शब्दमें देखो।

शूकधान्य (सं० क्ली०) शूकविशिष्टं धान्यं। शूङ्गायुक्त शस्यमात्र, वह अन्न जिसके दानेवालों या सींकोंमें लगते हैं।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि शूकधान्यमें यव प्रसिद्ध है। यव, सितशूक, निःशूक, अतियव और तोक्म ये सब शूकधान्यके अन्तर्गत हैं। गुण—कषाय, मधुर रस, शीतवीर्य, लेखनगुणयुक्त, मृदु, व्रणरोगमें तिलके समान हितकारक, रूक्ष, मेधाजनक, अग्निवर्द्धक, कटुविपाक, अनभिष्यन्दी, स्वरप्रसादक, बलकारक, गुरु, अत्यन्त वायु और मलवर्द्धक, वर्णप्रसादक, शरीरकी स्थिरता सम्पादक, पिच्छिल तथा कण्ठगतरोग, चर्मगतरोग, कफ, पित्त, मेद, पीनस, श्वास, कास, उरुस्तम्भ, रक्तदोष और पिपासानाशक। (भावप्रकाश)

यहां व्रीहि आदि जो कुछ शूकयुक्त होता है, उसे शूकधान्य कहते हैं। यह त्रिदोषनाशक, लघु, तेज, बल और वीर्यवृद्धिकारक माना गया है। यह शूकधान्य बहुप्रकार होता है। इसका नाम करना बड़ा मुश्किल है।

शूकपत्र (सं० पु०) निर्विष सर्प, वह साँप जिसमें विष न होता हो। जैसे,—पानीका साँप या डेड़हा।

शूकपाक्य (सं० पु०) यवक्षार, जवाखार।

शूकपिण्डि (सं० स्त्रि०) शूकैः पिण्डते इति पिण्ड संहतौ इन्। शूकशिम्बी, केवाँच।

शूकपिण्डी (सं० स्त्री०) शूकपिण्डि वा ङीष्। शूकशिम्बी, केवाँच।

शूकर (सं० पु०) शूक तद्वल्लोम रातीति रा-क। १ पशुविशेष, सूअर। पर्याय—वराह, स्तब्धरोमा, रोमश, किरि, चक्रदंष्ट्र, किटि, दंष्ट्री, क्रोड़, दन्तायुध, बली, पृथुस्कन्ध, पोत्री, घोनी, भेदन, कोल, पोत्रायुध, शूर, बहुपत्य और रदायुध। यह दो तरहका होता है—घरेलू सूअर और वनसूअर। वनसूअरके मांसका गुण-गुरु, वातहारक, वृष्य, बल और स्वेदजनक। घरेलू सूअरके मांसका गुण—वनसूअरसे लघु, मेद, बल और वीर्यवृद्धिकारक। (राजनि०) २ विष्णुका तीसरा अवतार, वराह अवतार। वराह शब्द देखो।

शूकरकन्द (सं० पु०) शूकरप्रियः कन्दः। वाराही कंद।

शूकरक्षेत्र (सं० पु०) एक तीर्थ जो नैमिषारण्यके पास है। कहते हैं, कि भगवान् विष्णुने वराह अवतार धारण करने पर हिरण्यकेशीको यहीं मारा था। आज कल यह स्थान सोरोन नामसे प्रसिद्ध है। सोरोन देखो।

शूकरदंष्ट्र (सं० पु०) एक प्रकारका क्षुद्र रोग। इसे सूअरडाढ़ कहते हैं। यह रोग प्रायः बालकोंको होता है। इसमें दाहसहित सूजन हो जाती है जो पकती, पीड़ा करती और खुजलाती है और इसके विकारसे ज्वर उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—भृङ्गराजका मूल और हरिद्राचूर्ण एकत्र कर प्रलेप देनेसे यह रोग शीघ्र दूर होता है। पद्ममूलका कल्क गायके घीके साथ रोज सबेरे पीनेसे यह रोग और तज्जनित ज्वर विनष्ट होता है। हरिद्रा और भृङ्गराजका मूल ठंढे जलके साथ पीस कर प्रलेप देनेसे भी इस रोगमें फायदा पहुंचता है। (भावप्र० क्षुद्ररोगाधिकार)

शूकरपादिका (सं० स्त्री०) शूकरस्य पादाइव मूला न्यासाः कन्-टाप्, अत इत्वं। कोलशिम्बी, सेमकी फली।

शूकरशिम्बी (सं० स्त्री०) कोलशिम्बी, सेमकी फली।

शूकराक्रान्ता (सं० स्त्री०) शूकरेणाक्रम्यते स्मेति आ-क्रम-क्त, टाप्। वराहकान्ता, खैरी साग।

शूकरी (सं० स्त्री०) शूकर-ङीष्। १ वराहक्रान्ता, खैरी साग। २ वाराहीकन्द, गेंठी। ३ सुइंस या सूंस नामक जलजन्तु। ४ वृद्धदारक, विधारा। ५ शूकरपत्नी, सूअरकी मादा, सूअरी।

शूकरेष्ट (सं० पु०) शूकराणामिष्टः। १ कसेरू। (त्रि०) २ शूकर प्रिय।

शूकरोग (सं० पु०) रोगविशेष, लिङ्गवर्द्धक औषधलेपन-को अपथ्यव्यवहारजनित व्याधिविशेष।

जो मूढ़ व्यक्ति अनियमित रूपसे शिश्नवृद्धिकी इच्छा कर जलशूकादिका शिश्नमें प्रयोग करते हैं, उन्हें अठारह प्रकारके शूकदोष नामक रोग उत्पन्न होते हैं।

शूक शब्दसे शूकप्रधान लिङ्गवृद्धिकारक वात्स्या-यनोक्त योग समझना होगा। यथा,—भल्लातकवीज, जलशूक और पद्मपत्र इन्हें अन्तरग्निमें जला कर सैन्धव-के साथ पक्व वृहती फलके रस द्वारा पीसे। पीछे भैंसके गोवरके साथ इसे पुरुषाङ्गमें लेपन करनेसे लिङ्ग अवश्य बढ़ता है। तिल तैल ४ सेर, कल्कार्थं असगंध, शतावर, कुट, जटामांसी और वृहती फल कुल मिला कर १ सेर, दूध १६ सेर। यथाविधान तैलपाक करना होगा। इस तेलकी लिङ्गमें मालिश करनेसे लिङ्ग बढ़ता है।

इन सब औषधोंका अयथा प्रयोग करनेसे निम्नोक्त अठारह प्रकारके शूकरोग होते हैं; १ सर्षपिका, २ अष्ठी-लिका, ३ ग्रथित, ४ कुम्भिका, ५ अलजी, ६ मृदित, ७ संमूढ़-पीड़का, ८ अधिमन्थ, ९ पुष्करिका, १० स्पर्श-हानि, ११ उत्तमा, १२ शतपोनका, १३ त्वक्पाक, १४ शोणितार्बुद, १५ मांसार्बुद, १६ मांसपाक, १७ विद्रधि और १८ तिलकालक। इन सब शूकरोगोंमें मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक असाध्य हैं। वैद्यकमें इनका लक्षण इस प्रकार कहा है। यथा—

सर्षपिका—शूकप्रयोग या दुष्टयोनिमें रमण करनेसे लिङ्गमें जो गौर सर्षपकी तरह पीड़का उत्पन्न होती है, उसे सर्षपिका कहते हैं। यह रोग वायु और श्लेष्मासे कुपित होता है।

अष्ठीलिका—शिश्नदेशमें अष्ठीलाकी तरह कठिन, ह्रस्व या दीर्घाकृति अथच वक्रपीड़का उत्पन्न होनेसे उसे अष्ठीलिका शूकदोष कहते हैं। यह रोग वातात्मक है।

ग्रथित—सभी समय शिश्नमें शूकपूरित रहनेसे शिश्नमें ग्रन्थिवत् उत्पन्न होनेसे उसको ग्रथित शूकदोष कहते हैं। यह रोग कफदोषसे उत्पन्न होता है।

कुम्भिका—शिश्नमें जामुनकी गुठलीकी तरह पीड़का उत्पन्न होनेसे उसको कुम्भिका कहते हैं। यह रोग रक्त और पित्तजनित है।

अलजी—अलजो नामक प्रमेह जन्य पीड़काके लक्षणकी तरह शिश्नमें पीड़का होनेसे उसको अलजी शूकदोष कहते हैं। इस पीड़काके चारों ओर लाल या काली फुंसियां निकलती हैं।

मृदित—शूक प्रयोगमें शिश्न पीड़न द्वारा शोथ उत्पन्न होनेसे उसको मृदित शूकदोष कहते हैं। यह रोग वायुके प्रकोपसे उत्पन्न होता है।

संमूढ़-पीड़का—शूकसंयुक्त लिङ्ग हस्त द्वारा अति घर्षण करनेसे यदि पिच्छित हो कर अवनत हो जाय, तो उसीका नाम संमूढ़-पीड़का है। यह रोग भी वायु प्रकोपसे उत्पन्न होता है।

अधिमन्थ शिश्नदेशमें दीर्घाङ्ग विशिष्ट बहुसंख्यक पीड़का उत्पन्न हो कर वेदना और रोमहर्षके साथ मध्य-भाग जब फट जाता है, तब उसे अधिमन्थ शूकदोष कहते हैं। यह रोग कफ रक्तजनित है।

पुष्करिका—शिश्नदेशमें पीड़का उत्पन्न हो कर धीरे धीरे वह पद्मकर्णिकाकी तरह छोटी छोटी फुंसियों द्वारा घिर जानेसे उसको पुष्करिका कहते हैं। यह रोग पित्त और रक्तसम्भूत है।

स्पर्शहानि—बार बार शूकप्रयोग प्रयुक्त रक्त दूषित हो कर शिश्नको स्पर्शासहिष्णुता उत्पादन करनेसे वह स्पर्शहानि कहलाती है।

उत्तमा—पुनः पुनः शूक प्रयोग द्वारा शिश्नमें मूंग या उड़दकी तरह पोड़का उत्पन्न होनेसे उसको उत्तमा कहते हैं, यह रोग रक्त और पित्तजनित है।

शतपोनक—चलनीकी तरह सूक्ष्म मुखविशिष्ट छिद्र द्वारा शिश्न व्याप्त होनेसे उसको शतपोनक शूकदोष कहते हैं। यह रोग वातरक्तसम्भूत है।

त्वक्पाक—वायु और पित्त विकृत हो कर त्वक्पाक नामक शूकदोष उत्पादन करता है। इसमें ज्वर और दाह होता है।

शोणितार्बुद—शिश्नदेशमें काली या लाल बहुत दर्द करनेवाली फुंसियोंके होनेसे उसको शोणितार्बुद कहते हैं।

मांसार्बुद—शूकप्रयोग निवन्धन मांस दूषित हो कर लिङ्गमें अर्बुदाकृत उत्पन्न होनेसे वह मांसार्बुद कहलाता है।

मांसपाक—यदि शिश्नका मांस विशीर्ण हो जाय तथा वातज, पित्तज और कफज समस्त वेदना उत्पन्न हो, तो उसे मांसपाक कहते हैं। यह रोग त्रिदोषसे कुपित होता है।

विद्रधि—सान्निपातिक विद्रधिका जैसा लक्षण कहा गया है, शूक प्रयोगके कारण वे सब लक्षण दिखाई देनेसे उसको विद्रधि नामक शूकदोष कहते हैं।

तिलकालक—कृष्ण, शुक्ल अथवा विचित्र वर्ण सविषशूकके प्रयोगके कारण समूचा शिश्न जल्द पक जाता है और उसका मांस काला हो कर सड़ने लगता है, ऐसे लक्षणविशिष्ट सान्निपातिक शूकरोगको तिलकालक कहते हैं।

शूकदोषकी चिकित्सा—शूकदोषके कारण ये सब रोग उत्पन्न होनेसे विषघ्न क्रिया, जोंक द्वारा खून चुसवाना और विरेचन विशेष उपकारी है। इन सब क्रियाओंके बाद लघु आहार देना होता है। इसके सिवा त्रिफलाके काढ़ेमें गुग्गुलके साथ दूधका प्रलेप देने और दूध सेचन करनेसे शूकदोष अति शीघ्र प्रशमित होता है।

किन्तु शूकदोषमें शीतक्रिया सर्वदा वर्जनीय है।

तेल ४ सेर, कल्कार्थ दारुहरिद्रा, तुलसी, मुलेठा, गेहूं और हरिद्रा कुल मिला कर १ सेर, जल १६ सेर। तैलपाकके विधानानुसार इस तेलका पाक कर लिङ्गमें लगानेसे शूकदोष नष्ट होता है। शूकदोषमें एकमात्र रसाञ्जनका प्रलेप देनेसे भी उपकार होता है।

शूकल (सं० पु०) शूकवत् क्लेशं लाति ददातीति ला-क। दुर्विनीताश्व, वह घोड़ा जो जल्दी चौंक या भड़क जाता हो।

शूकवत् (सं० त्रि०) शूकाः सन्त्यस्य शूक-मतुप् मस्य व। शूकयुक्त।

शूकवती (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, केवांच।

शूकवृन्त (सं० पु०) कीटविशेष, एक प्रकारका कीड़ा। इसके काटनेसे गात्रकण्डू वर्द्धित होता है।

शूकशिम्बा (सं० स्त्री०) शूकविशिष्टा शिम्बा यस्य। कपिकच्छु, केवांच, कौंछ। तामिल—पूनाइक, कालि; तैलङ्ग—पिल्लि अडुगड; महाराष्ट्र—कवच; बम्बई—कुहिला।

शूकशिम्बि (सं० स्त्री०) शूकविशिष्टा शिम्बिर्यस्याः। कपिकच्छु, केवाँच। पर्याय—शूकशिम्बिका, शूकशिम्बी।

शूकशिम्बिका (सं० स्त्री०) शूकशिम्बि देखो।

शूका (सं० स्त्री०) शूकाः सन्त्यस्या इति अर्श आदित्वादच्। कपिकच्छु, केवाँच।

शूकाक्ष (सं० पु०) शिरीष, सिरिस।

शूकाढ्य (सं० क्ली०) शूकतृण, शूकड़ी नामकी घास।

शूकापट्ट (सं० पु०) तृणमणि, कहरुवा नामक गोंद जो बरमाकी खानोंसे निकलता और औषधके काममें आता है। कहरुवा देखो।

शूकामय (सं० पु०) शूकदोष, शूकरोग। (शार्ङ्गधरस०)

शूकुल (सं० पु०) १ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। २ गंधतृणविशेष, एक प्रकारकी सुगन्धित घास।

शूकृत (सं० त्रि०) शब्दानुकरणकारी। (ऋक् १।१६२।१७)

शूक्त (सं० पु०) सिरका।

शूक्ष्म (सं० त्रि०) १ अल्प, अस्थूल, महीन, बारीक। (पु०) २ कतक। ३ अध्यात्म। (उज्ज्वल)

शूक्षन (सं० त्रि०) क्षिप्र। (निघण्टु २।१५)

शूची (सं० स्त्री०) सूई।

शूटिंग स्टिक (अं० स्त्री०) छापेखानेमें काम आनेवाली एक लकड़ी। यह प्रायः एक बालिश्त लंबी होती है। इसके मुंह पर एक गड्ढेदार पीतलकी सामी होती है। इसीमें गुल्ली अड़ा कर ठोंकते हैं जिससे वह सूजे पर चढ़ कर टाइपको कस देती है। किसी किसीमें स्टिक सामी नहीं भी होती।

शूतिपर्ण (सं० पु०) आरग्वधवृक्ष, अमलतास।

शूद्र (सं० पु०) शोचतीति शुच-शोके (शूचेर्द्दश्च। उण् २।१६) इति रक् दश्चान्तादेशो धातोर्दीर्घश्च। चारों वर्णों के अन्तर्गत चतुर्थ वर्ण। पर्याय—अवर-वर्ण, वृषल, जघन्यज। (अमर) दास, पादज, अन्त-जन्मा, जघन्य, द्विजसेवक। (शब्दरत्ना०) पद्य, अन्त्य-वर्ण, पज्ज्वचतुर्थ, द्विजदास, उपासक। (राजनि०) प्लक्षद्वीपमें शूद्रकी संज्ञा सत्यांग, शाल्मलद्वीपमें इयुन्धर, कुशद्वीपमें कुलक, क्रौंचद्वीपमें सेवक एवं शाकद्वीपमें सभी एक वर्ण हैं।

वेदमें लिखा है, कि ब्रह्माके पैरसे इस वर्णकी उत्पत्ति हुई। "पद्भ्यां शूद्रोऽजायत" (श्रुति)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्णों की सेवा करना ही शूद्रका शास्त्रीय एकमात्र धर्म और जीविका है। इस वर्णका गार्हस्थ्याश्रम ही एकमात्र आश्रम है। दूसरे आश्रमधर्म में इसका अधिकार नहीं है।

"वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च।
पशूनां रक्षणञ्चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम्॥"
(मनु ८।४।१०)

राजा शूद्रको द्विजातिकी सेवामें नियुक्त करें। द्विजातियोंकी दासता ही शूद्रका धर्म है। द्विजातिगण शूद्रसे दास्य कर्म करावें, वह चाहे खरीदा हुआ दास हो अथवा न हो। विधाताने दासता करनेके लिये ही शूद्रकी सृष्टि की है। शूद्र अपने मालिकसे मुक्त होने पर भी दास-वृत्तिसे मुक्त नहीं हो सकता, कारण दासत्व उसका स्वाभाविक धर्म है।

"शूद्रन्तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव च।
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा॥
न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते।
निसर्गजं हि तत् तस्य कस्तस्मात् तदपोहति।"
(मनु १०।४१ श्लो० १४)

शूद्र धन संचय न करे। यदि किसी तरह धन संग्रह भी करें, तो वह उस धनका अधिकारी नहीं हो सकता, कारण शूद्र जिसके यहां दासत्व करता है, वही उस धनका अधिकारी होगा। द्विजातीय लोग विशुद्ध चित्तसे दास शूद्रके संग्रह किये हुए धनको उपभोग कर सकते हैं। कारण दासका अपना कुछ नहीं होता। उसका सर्वस्व उसके मालिकका है।

राजा यत्नपूर्वक वैश्य और शूद्रको अपने अपने धर्म पर नियुक्त रखें। कारण उक्त दोनों वर्णों के कार्य-च्युत होनेसे संसारमें नाना प्रकारकी विशृंखला उप-स्थित होती है। इसलिये उन लोगोंको स्ववृत्तिमें नियुक्त रखना अत्यावश्यक है।

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि शूद्रगण सब प्रकारके शिल्पकार्य द्वारा अपनी जीविका चलावें। शूद्रोंका धर्म द्विजातिकी सेवा करना है। अतएव अपने धर्मको रक्षा करनेके लिये वह द्विजातियोंकी सेवा करे।

"वृत्तयः शूद्रस्य सर्वशिल्पानि।
धर्म्मः शूद्रस्य द्विजाति-शुश्रूषा॥" (विष्णुसंहिता २ अ०)

इसके अतिरिक्त सभी वर्णोंका एक साधारण धर्म है। वे ये हैं—क्षमा, सत्य, दम, शौच, दान, इन्द्रिय-दमन, अहिंसा, गुरु-शुश्रूषा, तीर्थगमन, दया, ऋजुता, लोभशून्यत्व, देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा एवं अनभ्य सूया। ब्राह्मणसे ले कर शूद्र पर्य्यन्त सभी वर्णोंको ये सब माननीय हैं। (विष्णुस० २ अ०)

ब्राह्मणोंकी अर्चना ही शूद्रोंका नित्य धर्म है। यदि कोई शूद्र ब्राह्मणोंसे द्वेष करे वा ब्राह्मणोंका धन चोरी करे, तो वह चाण्डाल बन जाता है और सैकड़ों जन्म तक गृध्र, शूकर प्रभृति योनिमें भ्रमण करता है। जो शूद्र ब्राह्मणकी स्त्रीको हर ले जाता है, वह मातृगमन करनेके पापका भागी होता है एवं वह शूद्र ब्रह्माके शत वर्ष परि-माण काल तक कुम्भीपाक नरक भोग करता है।

शास्त्रके मतसे शूद्रके राज्यमें वास करना उचित नहीं। जहां धार्म्मिक लोगोंका वास न हो, जहां रोग और पाषण्डी पुरुषोंका अड्डा हो एवं जहां शूद्र राजा राज्य करता हो, वहां वास करना सर्वथा अनुचित है।

शूद्रको बुद्धिदान देना निषेध है, इसलिये उसे भूल कर भी धर्मका उपदेश नहीं देना चाहिये।

"न शूद्राय मतिं दद्यात् कृशरं पायसं दधि।
नोच्छिष्टं वा मधुघृतं न च कृष्णाजिनं हविः॥
न चैवास्मै व्रतं ब्रूयात् न च धर्म्मान् वदेद्बुधः॥"
(कूर्म्म उपवि० १५ अ०)

शूद्रोंको वेद पढ़नेका अधिकार नहीं है। शूद्रके अतिरिक्त दूसरे तीनों वर्ण वेदका पठन पाठन कर सकते हैं।

शास्त्रमें शूद्रको भी मद्यपान करना निषेध किया गया है। यदि कोई मद्यपान वा ब्राह्मणीके साथ भोग करे, तो वह चाण्डालत्वको प्राप्त होता है।

"तथा मद्यस्य पानेन ब्राह्मणीगमनेन च।
वेदाक्षरविचारेण शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत्॥"
(शूद्रकमलाकरधृत पराशरवचन)

ब्राह्मणको शूद्रका अन्न नहीं खाना चाहिये। ब्राह्मण यदि एक मास वा अर्द्ध मास शूद्रका अन्न भोजन करे, तो वह मरनेके उपरान्त शूद्रयोनिमें जन्म ग्रहण करता है। शूद्रका अन्न पेटमें रहते हुए ब्राह्मणकी मृत्यु होने पर उसका जन्म कुक्कुर, गृध्र और शूकर प्रभृति दुष्टयोनियोंमें होता है। ब्राह्मणके शूद्रान्न भोजन करने पर यथाविधि पाठ, होमादि करने पर भी उसकी गति नहीं होती। ब्राह्मणका अन्न अमृत, क्षत्रियका अन्न दूध, वैश्यका अन्न अन्न एवं शूद्रका अन्न रुधिरके समान है। इसलिये द्विजातीय लोग यज्ञके लिये शूद्रसे भिक्षा नहीं मांगेंगे। इसमें एक विशेषता यह है, कि यदि ब्राह्मण अति विपन्न हो कर शूद्रके गृहमें कणाभिक्षा ग्रहण करे, तो उससे उसे पातक नहीं लगता।

शूद्रान्न शब्दसे शूद्रस्वामिक अन्न वा शूद्र-दत्त अन्न समझना चाहिये। भोजनके समय गृहमें शूद्रके उपस्थित रहनेसे उसे शूद्रान्न कहते हैं। शूद्र साक्षात् सम्बन्धमें घृत तण्डुलादि जो कुछ भी दान करता है, उसे शूद्रान्न कहते हैं। किन्तु शूद्रके धन द्वारा ये सब वस्तुएं खरीदी जाने पर शूद्रान्न पदवाच्य नहीं होता।

जिस प्रकार जल नदीमें पहुंच कर निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार घृत, तण्डुलादि शूद्रके गृहसे ब्राह्मणके गृहमें जा कर विशुद्ध हो जाता है। ब्राह्मणका हाथ स्पर्श होते ही उस अन्नका दोष दूर हो जाता है। ब्राह्मण शूद्रका दिया हुआ घृत, तण्डुलादि जलसिक्त कर ग्रहण करेंगे, इससे कोई पाप नहीं लगेगा। इस विषय पर अंगिरा कहते हैं, कि शूद्रका दिया हुआ अन्न ब्राह्मणके पात्रमें जाते ही विशुद्ध हो जाता है।

कन्दुपक्व अर्थात् जलोपसेक विना केवल अग्नि द्वारा पकाये गये अन्न, दधि, सत्तू और पायस प्रभृति द्रव्य शूद्रके गृहमें शूद्रके द्वारा तैयार किये जाने पर भी ब्राह्मण खा सकते हैं। यहां पायस शब्दसे कठिन भावापन्न दुग्ध समझना चाहिये।

शूद्र श्राद्धादि कार्य्यमें वैदिक मन्त्रको छोड़ दूसरा ही मन्त्र पाठ कर कार्य्य सम्पन्न करे, केवल वेद मन्त्रसे कार्य्य सम्पन्न करनेका उसे अधिकार नहीं है। ब्राह्मण वेदमन्त्र पाठ करेंगे और शूद्र उसे सुनेगा। किन्तु पञ्चमहायज्ञमें शूद्रको सब कार्य्य विना मन्त्रके ही करना चाहिये। पौराणिक मन्त्रादि भी पाठ नहीं करें एवं स्नान भी विना मन्त्रके ही करना कर्त्तव्य है।

शूद्रक—१ मृच्छकटिका नामक नाटकके प्रणेता। २ शूद्र। ३ एक ऋषि। रामायण उत्तरकाण्डमें लिखा है, कि यह शूद्र जातिका था और इसका नाम शंबुक था। कलिकालको छोड़ शूद्रको तपस्याका अधिकार नहीं। अकस्मात् रामराज्यमें एक ब्राह्मणका लड़का मर गया। उसने जा कर रामचन्द्रजीके यहां प्रार्थना की। नारद आदि ऋषियोंने कहा, कि इस राज्यमें कोई शूद्र तपस्या कर रहा है। उसीके फलस्वरूप इस ब्राह्मणका पुत्र इसके सामने मरा है। इस पर रामचन्द्रजीने इसका पता लगवाया और तब इसका सिर कटवा डाला। ४ एक हिन्दू नरपति। ३३०० कल्पाब्दमें ये विद्यमान थे।

शूद्रकर्म्मन् (सं० क्ली०) शूद्रस्य कर्म। शूद्रका कर्त्तव्य शास्त्रविहित कर्म। ब्राह्मणोंकी सेवा ही शूद्रका शास्त्रनिर्दिष्ट कार्य है।

शूद्रकृत्य (सं० क्ली०) शूद्रस्य कृत्यं। शूद्रका कर्त्तव्य कर्म। रघुनन्दनने शूद्राह्निकाचारतत्त्वमें शूद्रकृत्यका विषय निर्णय किया है, कि शूद्र अमन्त्रक श्राद्धादि कर्मका अनुष्ठान तथा अष्टादश पुराण, रामायण और

महाभारत धर्मकामार्थसिद्धिके लिये पाठ करे। पुराणादिमें सभी वेदोंका अर्थ दिया हुआ है, अतएव उसीका पाठ और श्रवण करनेसे शूद्रका स्वाध्याय सम्पन्न होगा।

शूद्रकेश्वर (सं० पु०) एक शिवलिङ्गका नाम।

शूद्रक्षेत्र (सं० पु०) वह भूमि जिसका रंग काला हो और जिसमें अनेक प्रकारकी घास, तृण, बबूरके वृक्ष तथा नाना प्रकारके धान उत्पन्न हों।

शूद्रजन्मन् (सं० त्रि०) १ शूद्रवर्णमें जिसका जन्म हुआ हो, जो दूसरे जन्ममें शूद्र हो कर जन्मा हो। २ निकृष्ट जन्म।

शूद्रता (सं० स्त्री०) शूद्रस्य भावः तल्-टाप्। शूद्रका भाव या धर्म, शूद्रत्व, शूद्रपन।

शूद्रत्व (सं० क्ली०) शूद्र होनेका भाव या धर्म, शूद्रता, शूद्रपन।

शूद्रदास—एक विष्णु-भक्त। (भविष्यभक्ति २२०।१)

शूद्रद्युति (सं० पु०) नीला रंग जो रंगोंमें शूद्र वर्णका माना जाता है।

शूद्रधर्म (सं० पु०) शूद्रस्य धर्मः। शूद्रका शास्त्रविहिता चार। शूद्र शब्द देखो।

शूद्रपति (सं० पु०) शूद्रोंका सरदार।

शूद्रप्रिय (सं० पु०) शूद्राणां प्रियः। १ पलाण्डु, प्याज। २ शूद्रका प्रिय द्रव्यमात्र।

शूद्रप्रेष्य (सं० पु०) शूद्रस्य प्रेष्यः। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य जो किसी शूद्रकी नौकरी या सेवा करता हो।

शूद्रशासन (सं० क्ली०) शूद्रस्य शासनः। शूद्रका अधिकार या लेख्य पत्रादि।

शूद्रा (सं० स्त्री०) शूद्रस्य जातिः शूद्रः 'शूद्रा चामहत् पूर्वा जातिः' इति टाप्। शूद्रकी स्त्री, शूद्राणी।

शूद्राधिकरण (सं० क्ली०) अधिकरणभेद। शारीरिकसूत्रमें शूद्रोंका विद्यामें अधिकार है या नहीं? यह शक पैदा होने पर उन्हें विद्यामें अधिकार नहीं—ऐसा निर्णायक अधिकरण है।

शूद्रान्न (सं० क्ली०) शूद्रस्य अन्नः। शूद्रस्वामिक अन्न। शूद्र शब्द देखो।

शूद्राभार्य (सं० पु०) शूद्रा भार्या यस्य सः। शूद्रास्वामी, शूद्रापति।

शूद्रार्त्ता (सं० स्त्री०) शूद्रेण आर्त्ता। प्रियङ्गु वृक्ष, वनिता।

शूद्रावेदिन् (सं० पु०) शूद्रां विन्दतीति-विद्-णिनि। उच्च वर्णका वह व्यक्ति जिसने शूद्र जातिकी किसी स्त्रीके साथ विवाह कर लिया हो। शूद्रा स्त्रीके व्याहनेसे ही ब्राह्मण आदि पतित होते हैं, यह अत्रि और उतथ्यपुत्र गौतम मुनिका मत है। शौनक मुनिके मतसे शूद्रासे पुत्रोत्पादन करनेसे तथा भृगुके मतसे शूद्रोत्पन्न सन्तानकी सन्तान होनेसे पतित होना पड़ता है। ब्राह्मण चारों वर्णोंकी कन्यासे विवाह कर सकते हैं; किन्तु ऐसा होने पर भी शूद्राके साथ विवाह उनके लिये विशेष निन्दित है।

शूद्रासुत (सं० पु०) शूद्रायाः द्विजातिभिरूढ़ायाः सुतः। वह व्यक्ति जो किसी उच्च वर्णके व्यक्तिके वीर्यसे शूद्रा माताके गर्भसे उत्पन्न हुआ हो।

शूद्री (सं० स्त्री०) शूद्रस्य स्त्री (पुंयोगादाख्यायां। पा ४।१।४८) इति ङीष्। शूद्रकी भार्या, शूद्रा।

शून (सं० त्रि०) टु ओ श्वि गतिवृद्धोः क ओदितश्च (पा ८।२।४५) इति निष्ठा तस्य नः, वचिस्वपियजादीनां किति (पा ६।१।१५) इति सम्प्रसारणं, हलः (पा ६।४।२) इति दीर्घः, श्वादितो निष्ठायाम् (पा ७।२।१४) इड़ागमश्च न। १ वर्द्धित। (व्याकरण) २ शून्य, खाली।

शूनक (सं० त्रि०) शोथयुक्त।

शूनकचञ्चुक (सं० पु०) क्षुद्रचञ्चु या छोटा चेंच नामका साग।

शूनत्व (सं० क्ली०) स्फीतिभाव।

शूनवत् (सं० त्रि०) श्वि-क्त-वतु। वर्द्धित। (व्याकरण)

शूना (सं० स्त्री०) श्वयन्ति मृत्युं गच्छन्ति कीटादयो यत्र श्वि-क्त-टाप्। १ प्राणियोंके वधस्थान, चुल्ली, पेषणी आदि। चुल्ली (चूल्हा), पेषणी (चक्की), उदुखल मूषल, उदकपात्र (पानीका बरतन) तथा गृहस्थोंके नित्य व्यवहार्य अन्यान्य उपकरणोंसे ज्ञान या अनजानमें अनेक जीवोंकी रोज रोज हत्या हुआ करती है, इसलिये ये पांच वस्तुएं शूना कहलाईं। (हलायुध) इन पांच वस्तुओंके सर्वदा व्यवहारसे गृहस्थोंके हमेशा पाप सञ्चित होते हैं,

उन्हीं सब पापोंको दूर करनेके लिये प्रत्यह मानवके अध्यापनरूप ब्रह्मयज्ञ, तर्पणरूप पितृयज्ञ, होमरूप दैवयज्ञ, बलिरूप भूतयज्ञ अर्थात् पूजादि उपकरण सामग्री जिस किसी प्राणीको दान तथा अतिथिसत्कार रूप नृयज्ञका अनुष्ठान करना हरहालतसे कर्त्तव्य है, नहीं तो कदापि वे इन सब पापोंसे छुटकारा पा नहीं सकते। २ अधो जिह्विका, तालूके ऊपरकी छोटी जीभ। ३ स्नूही, थूहर।

शूनावत् (सं० पु०) शूना विद्यते यस्य सः शूना-मतुप् मस्य वः। कसाई।

शून्य (सं० क्ली०) १ वह स्थान जिसमें कुछ भी न हो, खाली स्थान। २ आकाश। ३ विन्दु, बिंदी, सिफर। ४ एकान्त स्थान, निर्जन। ५ अभाव, राहित्य, कुछ न होना। ६ स्वर्ग। (पु०) ७ विष्णु। (भाग० १३। १४९।९२) ८ ईश्वर। (त्रि०) ९ अति कम, बहुत थोड़ा। १० अभावविशिष्ट। ११ असम्पूर्ण, जिसके अंदर कुछ न हो, खाली। पर्याय—वशिक, तुच्छ, रिक्तक।

नीचे लिखे कई विषय शून्यमें गिने जाते हैं। जैसे,—विद्याहीन जीवन, बान्धवहीन दिक्, पुत्रहीन गृह तथा दरिद्रोंका यावतीय विषय।

शून्यक (सं० त्रि०) शून्य-कन् स्वार्थे। शून्य।

शून्यगर्भ (सं० त्रि०) १ जिसके अन्दर कुछ न हो। २ जिसमें कुछ भी सार या तत्त्व न हो। ३ मूर्ख, बेवकूफ। (पु०) ४ पपीता नामक फल।

शून्यगृह (सं० त्रि०) १ गृहहीन। (क्ली०) २ खाली घर।

शून्यता (सं० स्त्री०) १ शून्यभाव। २ जगत्कर्त्ताकी अस्तित्व-हीनता (Nihilism)। ३ पञ्चभूतवर्जितका भाव (Vacuity)।

शून्यत्व (सं० क्ली०) शून्यका भाव या धर्म, शून्यता।

शून्यपदवी (सं० स्त्री०) ब्रह्मरन्ध्र।

शून्यपाल (सं० पु०) १ सहयोगी, सहायक। २ वह जो किसीके रिक्त स्थान पर अस्थायीरूपसे काम करता हो, एवजी।

शून्यपुष्प (सं० क्ली०) १ पुष्पहीन। (पु०) २ बौद्धभेद।

शून्यबन्धु (सं० पु०) विशाल राजवंशोद्भव तृणविन्दुके पुत्र। (भागवत ९।२।३३)

शून्यबहरी (सं० स्त्री०) पांवका सुन्न हो जाना या उसमें झुनझुनी चढ़ना।

शून्यभाव (सं० पु०) १ खाली भाव। २ भावहीन। ३ शून्यत्व।

शून्यमध्य (सं० पु०) शून्यं मध्यं यस्य। १ नल। २ शून्यगर्भ वस्तुमात्र।

शून्यमूल (सं० त्रि०) १ भित्तिहीन। (पु०) २ सेनाकी एक प्रकारकी सजावट।

शून्यवाद (सं० पु०) बौद्धोंका एक सिद्धान्त जिसमें ईश्वर या जीव किसीको कुछ भी नहीं माना जाता।

शून्यवादिन् (सं० पु०) १ शून्यवादका माननेवाला अर्थात् वह व्यक्ति जो ईश्वर और जीवके अस्तित्वमें विश्वास न करता हो। २ बौद्ध। ३ नास्तिक।

शून्यहर (सं० त्रि०) १ शून्यनाशक। (पु०) २ अलोक, प्रकाश, उजाला। ३ स्वर्ण, सोना।

शून्या (सं० स्त्री०) १ नलिका या नली नामक गन्धद्रव्य। २ स्नूही या थूहरका वृक्ष। ३ वन्ध्या स्त्री, बाँझ औरत।

शून्यागार (सं० पु०) १ शून्यगृह, वह व्यक्ति जिसे घर न हो। (त्रि०) २ एकाकी, अकेला।

शून्यालय (सं० पु०) शून्यः आलयः। एकान्त स्थान, वह स्थान जहां कोई न हो। आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि शून्यालय, श्मशान, चतुष्पद आदि स्थानोंमें शयन नहीं करना चाहिये। शयन देखो।

शून्याशून्य (सं० क्ली०) जीवन्मुक्ति।

शूनैष (सं० त्रि०) शून्याकाङ्क्षी। (अथर्व १४।२।१९)

शूप (हिं० पु०) बेंत, सींक या बांस आदिका बना हुआ एक प्रकारका लम्बा चौड़ा पात्र जिसमें रख कर अन्न आदि पछोड़ा जाता है। इसकी लम्बाईके बलमें एक सिरे पर कुछ ऊंची लम्बी बाढ़ होती है और दूसरा सिर बिलकुल खाली रहता है। चौड़ाईके बलमें दोनों ओर कुछ ऊंची ढालुआँ बाढ़ होती है जो बिलकुल आगेके सिरे पर पहुंच कर खतम हो जाती है। इसे सूप या फटकनी भी कहते हैं।

शूपकार (सं० पु०) शूपं करोतीति कृ-अण्। शूद्रोंका पाचक, वह जो शूद्रोंकी रसोई बना कर अपनी जीविका चलाता हो। सूपकार शब्द देखो।

शूम (सं० पु०) सूम देखो।

शूर (सं० पु०) शूरयति विक्रामतीति शूर-अच् यद्वा शरति वीर्यां प्राप्नोतीति शु-शुसिचिमिभ्यां दीर्घश्च इति क्रन् (उण् २।२५) १ वीर, बहादुर, सूरमा। (महाभारत १।१०६।४) २ यादव। ये श्रीकृष्णके पितामह थे। ३ सूर्य। ४ सिंह। ५ शूकर, सूअर। ६ चित्रकव्याघ्र, चीता बाघ। ७ शाल, साखू। ८ लकुच, बड़हर। ६ मसूर, माङ्गल्य। १० अर्कवृक्ष, मदार। ११ चित्रकवृक्ष, चीताका पेड़। १२ योद्धा, भट, सिपाही। १३ विष्णु। (भा० १३।१४६।५०) १४ जैनहरिवंशके अनुसार उत्तर दिशाके एक देशका नाम।

शूर—एक कवि। गानरत्नमहोदधि ग्रन्थमें इनकी रची श्लोकावली उद्धृत है। ग्रन्थान्तरमें भदन्तशूर और भागवत श्रीशूर नाम कविका भी उल्लेख है। एक श्लोककी भणितामें शूरकवि सिंहराजके आश्रित थे, ऐसा उल्लेख पाया जाता है।

शूरई—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर-आर्काट जिलेके वालाजापेट तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यहां चोलराजाओंका प्रतिष्ठित एक प्राचीन शिवमन्दिर है। तीन सौ वर्ष पहले सिर्फ एक बार उसकी मरम्मत हुई थी।

शूरग्राम (सं० त्रि०) १ शूरसङ्घविशिष्ट। (ऋक् ६।६०।३) २ शूरोंका समूह, शूरसङ्घ।

शूरज (सं० पु०) १ एक राजसेवकका नाम। (राजत० ८।३३५) २ शूरवर्माके पुत्रका नाम।

शूरण (सं० पु०) शूर्यते इति शूर हिंसे ल्युः। १ कन्दविशेष, जमीकंद, ओल। यह भिन्न भिन्न देशमें भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है, यथा—तेलगू—मुञ्चकुन्द, बम्बई—जंलिसूरण, तामिल—सूरण, महाराष्ट्र और कर्णाट—सूरणु, सूरणा। यह श्वेत, रक्त और अरुणभेदसे तीन प्रकारका है। पर्याय—अर्शोघ्न, कन्द, सूरण, ओल, ओलल, कण्डुल, कन्दी, सुकन्दी, स्थूलकन्दक, दुर्नामारि, सुवृत्त, वातारि, कंदशूरण, तीव्रकन्द, कन्दार्ह, कन्दवर्द्धन, बहुकन्द, रुच्यकन्द, शरणकन्द। गुण—कटु, रुचिकर, दीपन, पाचन, कृमि, कफ, वायु, श्वास, कास, वमि, अर्श, शूल और गुल्मनाशक तथा रक्तका हानिकारक। (राजनि०) इसके सिवा भावप्रकाशमें और भी कितने गुण लिखे हैं, यथा—कषाय, विष्टम्भी, विशद, लघु, प्लीहनाशक, कण्डुकर, दद्रु, रक्तपित्त और कुष्ठरोगका अहितकारक। सभी प्रकारके कंदशाकमें शूरण कंद ही श्रेष्ठ है। फिर इसमें ग्राम्यकन्दकी अपेक्षा वन्यकन्द ही अर्शादिरोगमें विशेष उपकारी है। २ श्योनाकवृक्ष।

शूरणपिण्डिका (सं० स्त्री०) अर्शोरोगका औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—ओलका चूर्ण १६ तोला, चित्रकमूल ८ तोला, सोंठका चूर्ण २ तोला, मिर्चका चूर्ण २ तोला, गुड़ २७ तोला। पहले धीमी आंचमें गुड़का पाक कर पीछे पाक हो जाने पर उसमें ओलका चूर्ण आदि डाल देना होगा।

शूरणमोदक (स्वल्प)—यह भी एक अर्शोघ्न औषध है। प्रस्तुत प्रणाली—मिर्च १ भरी, चिताका मूल ४ तोला, ओलका चूर्ण ८ तोला, कुल मिला कर जितना हो उतना ही गुड़। ऊपर कहे गये शूरण पिण्डिकावत् पाक करना होगा।

अन्यविध (वृहत्)—ओल ३२ तोला, चितामूल १६ तोला, सोंठ ८ तोला, त्रिफला प्रत्येक ८ तोला, पीपर, पीपरमूल, तालिशपत्र, भिलावेका रस, विड़ङ्ग, प्रत्येक ८ तोला, तालमूली १६ तोला, वृद्धदारक-बीजचूर्ण ३२ तोला, दारुचीनी ४ तोला, इलायची ४ तोला, कुल मिला कर जितना हो उससे दूना गुड़। पूर्ववत् पाक करना होगा।

शूरणोद्भुज (सं० पु०) हरिद्राङ्ग पक्षी, हरियल या हारिल नामकी चिड़िया।

शूरता (सं० स्त्री०) शूर होनेका भाव, शौर्य, बहादुरी, वीरता।

शूरदास—आगरेके रहनेवाले एक हिंदी कवि। ये वल्लभाचार्यके शिष्य थे।

शूरदेव (सं० पु०) १ जैनियोंके अनुसार भविष्यमें होनेवाले चौबीस अर्हतोंमेंसे एक अर्हत्का नाम। २ वीरदेव राजाका पुत्र।

शूरन (हिं० पु०) सूरन देखो।

शूरनूर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके मदुरा जिलेके रामनाद

तालुकका एक ग्राम। यहां सोमशेखर और पराक्रम पाण्ड्य द्वारा प्रतिष्ठित शिवमन्दिर विद्यमान है।

शूरपत्नी (सं० स्त्री०) १ यजमान या रक्षोगण द्वारा पालिता। (ऋक् १।१७४।३)। २ वीरभार्या।

शूरपुत्रा (सं० स्त्री०) अदिति।

'शूरपुत्राः शूराः विक्रान्ताः शौर्योपेताः पुत्रा मित्रावरुणादयो यस्याः सा तथोक्ता तां देवी दानादिगुणयुक्तां अदितिं' (सायण)

शूरपुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम।

शूरबल (सं० पु०) १ वीरबल, असुरबल। २ देवपुत्रभेद। ये बोधिमण्डपरिपालक कहलाते थे। (ललितविस्तर)

शूरभू (सं० स्त्री०) उग्रसेनकी कन्या।

शूरभूमि (सं० स्त्री०) भागवतके अनुसार उग्रसेनकी एक कन्याका नाम। लिखा है वसुदेवके छोटे भाई श्यामकने इससे विवाह किया था। इनसे हरिकेश और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

शूरमानिन् (सं० त्रि०) आत्मानं शूरं मन्यते शूर-मन णिनि (पा ३।१।१३४) जिसे अपनी शूरताका बहुत अभिमान हो, अपनी बहादुरी पर भरोसा रखनेवाला। (महाभारत ४था और ११वां पर्व)

शूरमूर्द्धमय (सं० त्रि०) वीरमुण्डसमाकीर्ण।

शूरराजवंश—बंगालका एक प्राचीन राजवंश। इस वंशके महाराज जयन्त आदिशूरने बंगालमें हिन्दू-धर्मकी प्रतिष्ठा की।

शूरवंश—दिल्लीका एक पठान-राजवंश। इस वंशके प्रतिष्ठाता शेरशाह शूरने १५३९ ई०में मुगल सम्राट् हुमायूंको चौसा रणक्षेत्र और कन्नोज-युद्धमें परास्त कर दिल्लीसिंहासन पर अधिकार जमाया। १५४५ ई०में उसका राज्यकाल शेष हुआ। पीछे १५४५ से १५५४ ई० तक सलीम शाह शूर राजा हुआ। शेषोक्त वर्ष उसकी मृत्यु हो जाने पर उसका लड़का फिरोज शाह कुछ समयके लिये राजतख्त पर बैठा। किन्तु उसके मामा मुबारिज खाँने उसका काम तमाम कर महम्मद शाह आदिल नामसे सिंहासन पर दखल जमाया। इसके शासनकालमें गृहविप्लवका सूत्रपात हुआ। ११ मास तक हिन्दू-योद्धा हीमूने आदिल शाहको स्वार्थरक्षामें बद्धपरिकर हो राजाके आत्मीय इब्राहिम शूर और सिकन्दर शूरके साथ घोर युद्ध किया। इब्राहिम दिल्ली और आगरेको जीत राज्येश्वर हुआ और अह्मदने (सिकन्दर) पञ्जावमें राजछत्र स्थापन किया। इस समय १५५५ ई०में हुमायूं शाहने धीरे धीरे आ कर पञ्जाबमें सिकेन्दर सेनादलको हराया। इब्राहिम शाह शूर भी इस समय युद्धमें हार खा कर बङ्गालमें भाग आया। यह शत्रुके हाथसे यमपुर सिधारा। भारतवर्ष देखो।

शूरवज्र (सं० पु०) बौद्धराजभेद। (तारनाथ)

शूरवरम्—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत नुजिविड़ तालुकका एक बड़ा गांव। इस गाँवसे एक मीलकी दूरी पर पत्थरका बना दुर्ग है और उसके पास ही एक प्राचीन शिवमन्दिर दिखाई देता है। उसके चार स्तम्भमें और नन्दोस्तम्भमें ५ शिलालिपि हैं।

शूरवर्मा—१ एक कवि। २ काश्मीरके एक राजा। यह पंगुके औरस और मृगावतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। नवें वर्षमें मन्त्रियोंने चक्रवर्माको पदच्युत करके शूरवर्माको राजा बनाया। परन्तु ये बहुत दिनों तक राजा नहीं रह सके। एक वर्षके बाद ये राजसिंहासनसे उतार दिये गये।

शूरवाक्य (सं० क्ली०) वीरोचित वाक्य, वीरत्व प्रकाशक उक्ति।

शूरवाणेश्वर (सं० पु०) विष्णु। (भा० १३।१४९।८२)

शूरविद्या (सं० स्त्री०) युद्ध आदि करनेकी विद्या।

शूरवीर (सं० पु०) १ अतिशय योद्धा, सूरमा। २ माण्डुकेय-गोत्रीय एक वैदिक आचार्यका नाम। ३ जातिविशेष।

शूरवीरता (सं० स्त्री०) शौर्य, बहादुरी।

शूरल—१ विन्ध्यपार्श्वस्थ एक ग्राम। २ वीरभूमके अन्तर्गत एक ग्राम।

शूरश्लोक (सं० पु०) वीरगाथा, वीरोंके वीरतापूर्ण कृत्योंकी कहानी।

शूरसाति (सं० स्त्री०) सन-क्तिन् सातिः, ऊतियूतिजूति-सातिहेति कीर्त्तयश्च। (पा ३।३।९७) शूरणां सातिः सम्भजनं यत्र। शूरसेवित, वीरसेवित।

शूरसिंह (सं० पु०) सारस्वतव्याख्यातदीपिका नामक व्याकरणके प्रणेता।

शूरसिंह—पञ्जाब प्रदेशके लाहौर जिलेके कसूर तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह फिरोजपुरसे अमृतसर जानेके रास्ते पर पड़ता है। यहां छींट कपड़ेका कारबार होता है।

शूरसिंह—जोधपुरके एक राजा। ये महाराज उदयसिंहके पुत्र थे। उदयसिंहके मरने पर सन् १५९५ ई०में उनका पुत्र शूरसिंह मारवाड़के सिंहासन पर बैठा। शूरसिंह बादशाह अकबरकी सेनाको लिये लाहौरमें भारतकी सीमाका रक्षक रहा था। सिन्धुके जीतनेके समयसे शूरसिंह वहीं थे। शूरसिंह एक पराक्रमी और रणकुशल राजा थे। पिताके जीते ही इन्होंने रणकौशल तथा वीरताका परिचय दिया था जिससे प्रसन्न हो कर बादशाहने इन्हें एक ऊंचा पद और सवाई राजाकी उपाधि दी।

बादशाह अकबर शूरसिंहके गुणोंसे परिचित हो गया था। अतएव उसने उन्हें एक कठोर काम पूरा करनेके लिये कहा। उस समय सिरोहीका अधिपति राव सुरतान बड़ा गर्वित हो उठा था। वह अपने दुर्भेद्य किलेमें रह कर अपनेको अजेय समझे हुआ था। बादशाहने राव सुरतानके शासनका भार शूरसिंहको सौंपा। शूरसिंहकी वीरताके सामने राव सुरतानको सिर नीचा ही करना पड़ा था। शूरसिंहकी वीरताने राव सुरतानसे बादशाहकी अधीनता स्वीकार करा ली। दिल्लीसे आये हुए फरमानको राव सुरतानने मंजूर किया और अपनी सेनाके साथ बादशाहकी सेवाके लिये प्रस्थित हुआ। इसी समय बादशाहकी आज्ञासे गुजरातके शाह मुजफ्फरके विरुद्ध शूरसिंहने यात्रा की। राव सुरतानकी भी सेना उनकी सेनामें सम्मिलित हुई। दोनों ओरकी सेना लड़ने लगी। परन्तु विजयी शूरसिंह ही हुए। शूरसिंहको वहां बहुत धन हाथ लगा। इन्होंने प्रायः सभी धन दिल्ली भेज दिया उसमेंसे कुछ जोधपुर भेज दिया। इस विजयसे शूरसिंहका यश चारों ओर फैल गया। उसी समय नर्मदाके किनारेका अमरबलेचा नामक एक तेजस्वी राजपूत वास करता था। उसने अभी तक असली स्वाधीनता की रक्षा की थी बादशाहकी आज्ञासे शूरसिंहने उसके विरुद्ध यात्रा की। उस युद्धमें अमरबलेचा मारा गया। वह राज्य शूरसिंहके हाथमें आया। इस संवादको सुन कर बादशाह बड़े खुश हुए और इन्होंने कई और प्रदेश मिला कर उस राज्यका अधिपति उनको बनाया। इसी समय अकबरकी मृत्यु हुई। राजा शूरसिंह अपने पुत्र गजसिंहको साथ ले कर जहांगीरके दरबारमें उपस्थित हुए। जहांगीरने गजसिंहके हाथमें तलवार रख दी। सन् १६२० ई०में राठोर राजा शूरसिंहने दक्षिण देशमें प्राण त्याग किया।

शूरसेन (सं० पु०) शूराः सेना यस्य। १ मथुराके एक प्रसिद्ध राजा जो कृष्णके पितामह और वसुदेवके पिता थे। २ मथुरा और उसके आस पासके प्रदेशका प्राचीन नाम जहां राजा शूरसेनका राज्य था।

शूरसेनक (सं० पु०) शूरसेन, मथुरा। (मनु २।१९ कुल्लूक)

शूरसेनकोट—मन्द्राजप्रदेशके कृष्णाजिलान्तर्गत नुजिविड़ तालुकका एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष आज भी उस अतीत समृद्धिका परिचय देता है। वह स्थान आज जंगलसे परिवृत है।

शूरसेनज (सं० पु०) माथुर, मथुराका रहनेवाला।

शूरसेनप (सं० पु०) शूर वीरोंकी सेनाका पालन करनेवाला, कार्त्तिकेय।

शूरहर—युक्तप्रदेशके ललितपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर।

शूरहारपुर—युक्तप्रदेशके फैजाबाद जिलान्तर्गत एक छोटा नगर। यह बीकापुर तहसीलके पच्छिमराठ परगनेमें अवस्थित है। यहां जो प्राचीन पक्का दुर्ग का दिखाई देता है, वह भरजातीय सरदारोंकी कीर्त्ति समझा जाता है। मुगल-सम्राट् अकबर शाहके समय यहांकी मझाई नदीके ऊपर एक पक्का पुल बनाया गया है।

शूरा (सं० स्त्री०) १ क्षीरकाकोली, अष्ट वर्गीय ओषधि।

शूरा (हिं० पु०) सूर्य।

शूरादित्य—एक पण्डित। ये गुणादित्यके पुत्र तथा स्तवचिन्तामणिवृत्तिके प्रणेता क्षेमराजके पिता थे।

शूरिमृग (सं० पु०) वराह आदि जंगली पशु।

शूरीवान्—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह रामदुर्ग राज्यके अधीन है तथा नरगुण्डसे

६ कोस उत्तर पड़ता है। १८५४ ई०में अङ्गरेजराज पालिटिकल एजेण्ट मेसन साहबने यहां दलबलके साथ छावनी डाली थी। किसी कारणवश मेसन साहब वहांके अधिवासियोंके अप्रियभाजन हो गये। विरक्त प्रजावर्गने उन्हें तथा उनके १० साथियोंको मार डाला और ११ को घायल किया। आखिर ३०वीं मईको सेनापति लेफ्टेनाण्ट लाटुकने कालादगीसे दलबलके साथ आ कर मुण्डहीन मेसन देहको ले जा कर समाधिस्थ किया।

शूरेश्वर (सं० पु०) राजतरङ्गिणी-वर्णित एक देवमूर्त्ति। यह मूर्त्ति शूरमठमें अवस्थित है। (राजतर० ५।४८)

शूर्त्त (सं० पु०) १ क्षिप्र। (लि०) २ क्षिप्त, निक्षिप्त, वर्ज्जित, त्यक्त। (ऋक् १।१७४।६)

शूर्प (सं० पु० क्ली०) शूर्पयति धान्यादीनिति शूर्प-अच् यद्वा शृ हिंसायां पुश्शृभ्यां निच्च (उण् ३।२६) इति पः, चकारात् स च कित्। १ गेहूं, चावल आदि अन्न पछोड़नके लिये बना हुआ बाँस या सींकका पात्र, सूप। पर्याय—प्रस्फोटन। २ एक प्राचीन तौल जो २०४८ तोले या ३२ सेरको होती थी।

शूर्प—राजगृहके अन्तर्गत एक ग्राम।

शूर्पक (सं० पु०) शूर्प इव प्रतिकृतिरस्य 'इवे प्रतिकृतौ' इति कन्। एक असुर। यह किसी किसीके मतसे कामदेवका शत्रु और किसी किसीके मतसे उसका पुत्र था। (हेम)

शूर्पकर्ण (सं० पु०) शूर्पाविव कर्णौ यस्य। १ हस्ती, हाथी। (त्रिका०) २ गणेश। ३ एक प्राचीन देशका नाम। ४ इस देशका निवासी। ५ पुराणानुसार एक पर्वतका नाम। (मार्क० पु० ५८।११) (लि०) ६ कुल्यतुल्य श्रुतियुक्त, जिसका कान सूपके समान हो।

शूर्पकाराति (सं० पु०) शूर्पकस्तन्नामासुरः अरातिर्यस्य। शूर्पक नामक राक्षसका शत्रु, कामदेव।

शूर्पकारि (सं० पु०) शूर्पक नामक राक्षसका शत्रु, कामदेव।

शूर्पग्राह (सं० लि०) जिसका हाथ सूपके समान हो।

शूर्पणखा (सं० स्त्री०) शूर्पा इव नखा यस्याः (पूर्वपदात् संज्ञायामगः। पा ८।४।३) इति णत्वं (नखमुखात् संज्ञायां। पा ४।१।५८) इति न ङीष्। रावणकी बहन। रामायण में लिखा है, कि मुनिश्रेष्ठ विश्रवाके औरस और कैकसीके गर्भसे शूर्पणखाका जन्म हुआ। भगवान् रामचंद्र जब दण्डकारण्यमें रहते थे, उस समय कामसे पीड़ित हो कर यह रामके पास उनके साथ ब्याह करनेको इच्छासे गई थी। यहां रामके इशारेसे लक्ष्मण नाक और कान काट लिये थे। इसीका बदला लेनेके कारण छद्मवेशमें सीताको हर ले गया था। उसके फलसे रामचन्द्र द्वारा रावणके साथ राक्षसवंश ध्वंस हुआ। कहते हैं, कि शूर्पणखाके नख सूपके समान थे।

शूर्पनखी (सं० स्त्री०) सूर्पाकाराणि नखानि यस्याः, केवल यौगिकत्वे ङीष्। शूर्पणखा देखो।

शूर्पणाय (सं० पु०) वैदिककालके एक ऋषिका नाम।

शूर्पणायीय (सं० पु०) शूर्पणायका अपत्य या शिष्य सम्प्रदाय। (पा ४।२।९०)

शूर्पनखा (सं० स्त्री०) शूर्पणखा देखो।

शूर्पपर्णी (सं० स्त्री०) शूर्पा इव पर्णानि यस्याः ङीष्। १ शिम्बीविशेष। २ मुद्गपर्णी, मुगानी। ३ माषपर्णी, माषाणी। (वाभट)

शूर्पवात (सं० पु०) शूर्पस्य वातः। शूर्पको वायु, सूपकी हवा। पर्याय—फुल्लफाल। (त्रिका०) शास्त्रानुसार यह हवा अमंगलजनक होती है, यह शरीरमें लगानेसे अलक्ष्मीकी वृद्धि होती है।

शूर्पश्रुति (सं० पु०) शूर्पौ इव श्रुती यस्य। हस्ती, हाथी। (हारावली)

शूर्पा (हिं० पु०) बच्चोंके खेलनेका एक प्रकारका खिलौना।

शूर्पाद्रि (सं० पु०) दक्षिणी भारतके एक पर्वतका नाम। इसे कुछ लोग सूर्पाद्रि भी कहते हैं।

शूर्पारक (सं० पु०) बम्बई प्रेसिडेन्सीके थाना जिलान्तर्गत एक देश या नगर। (मार्कण्डेयपु० ५७।४९) इसे कुछ लोग सूर्पारक कहते हैं। इसका वर्त्तमान नाम सोपार है। सोपार देखो।

शूर्म (सं० पु०) लौहप्रतिमा, लोहेकी बनी हुई मूर्त्ति।

शूर्मि (सं० स्त्री०) १ लौहप्रतिमा। २ कर्णिकाविशेष।

शूर्मिका (सं० स्त्री०) शूर्मि देखो।

शूल (सं० पु०.क्ली०) शूलति लोकानिति शूल-रोगे अच्। १ अस्त्रविशेष, बर्छा। २ मृत्यु, मौत। ३ केतन। ४ विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगोंमेंसे नवाँ योग। इस योगमें यदि जातक जन्मग्रहण करे, तो वह भीत, दरिद्र, दयिताप्रिय, विद्याहीन, शूलरोगी, लोकका अनिष्टकारी तथा स्ववन्धुओंके लिये शूल सदृश होता है।

ज्योतिषशास्त्रमें इस शूलयोगमें शुभकर्मादि निषिद्ध बताया है। यदि कार्य करना नितान्त प्रयोजन हो, तो इस योगका प्रथम ७ दण्ड वाद दे कर कार्य करे।

"त्यजादौ पञ्चविष्कम्भे सप्त शीले च नाड़िका।"

(ज्योतिषसारस०)

(त्रि०) ५ सुतीक्ष्ण, बहुत तेज। (क्ली०) ६ अयःकील, लोहेकी कील। प्राचीनकालमें प्राणदण्डके अपराधीको शूल पर चढ़ानेकी व्यवस्था थी। पुराणादिमें उसका उल्लेख है। इस शूलकी आकृति सम्भवतः कोणाकार और उसका अगला हिस्सा नुकीला होता है। ७ त्रिशूल। ८ व्यथा। ९ विक्रेतव्य। १० रोगविशेष, शूलरोग। इसके वैद्यकोक्त निदान और चिकित्सादिका विषय नीचे लिखा जाता है।

निदान—व्यायाम, अश्वादियानारोहण, अति मैथुन, रात्रि-जागरण, अतिरिक्त शीतल जलपान, कलाय, मूंग, अरहर, कोदो और अत्यन्त रुक्ष द्रव्यका सेवन, अध्यशन, अभिघात, कषाय और तिक्त रसयुक्त द्रव्य, अङ्कुरित धान्यका अन्न, विरुद्धभोजन, शुष्कमांस और शुष्कशाकका सेवन, विष्ठा, शुक्र, मूत्र और वायुवेगधारण तथा शोक, उपवास और अत्यन्त हास्य इन सब कारणोंसे वायु वर्द्धित हो कर वस्तिदेशमें शूलरोग उत्पादन करती है। खाये हुए पदार्थके पच जाने या प्रदोषकालमें बदलीके समय या शीतकालमें यह रोग बहुत बढ़ जाता है तथा रोगी मलरुद्धता, सूचीवेधवत् और भेदनवत् वेदनासे पीड़ित रहता है। इस रोगमें वायुकी सचलताके कारण बार बार प्रकोप और प्रशमन हुआ करता है। शूलविद्धकी तरह यन्त्रणा होनेके कारण इसका नाम शूलरोग हुआ है। स्वेद, अभ्यङ्ग, मर्दनादि तथा स्निग्ध और उष्ण द्रव्यके भक्षण द्वारा इसकी शान्ति होती है। यह रोग वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आमज तथा वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक और वातपैत्तिक भेदसे आठ प्रकारका है। उक्त सभी प्रकारके शूलरोगोंमें वायुकी प्रधानता रहती है।

हृत्शूलका लक्षण—रसस सृष्ट हृदयाश्रित वायु, कफ और पित्तको अवरुद्ध कर उच्छ्वासका अवरोधक शूल उत्पादन करता है। इसको हृत्शूल कहते हैं।

पार्श्वशूलका लक्षण—पार्श्वदेश संश्रित वायु कफके साथ दोनों पार्श्वोंमें शूल उत्पादन करके उदराध्मान, अनिद्रा और अन्न भोजनमें अरुचि पैदा करती है तथा रोगीके मुखसे श्वास निकलता है।

वस्तिशूलका लक्षण—जिस रोगमें मलमूत्रादिका वेग रोकनेसे वायु कुपित हो कर वस्तिदेशमें आश्रय लेती और वहां शूलरोग उत्पादन करती तथा उससे रोगीकी विष्ठा, मूत्र और वायु रुक जाती है, उसे वस्तिशूल कहते हैं।

पैत्तिकशूल—क्षार, अत्यन्त तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही तथा कटु और अम्लरसयुक्त द्रव्यसेवन, तैल, राजमाष, सर्षपादिका कल्क, कुलथी कलायका जूस, विदग्ध द्रव्य भक्षण तथा क्रोध, अग्निसेवन, परिश्रम, रौद्रसेवन और अतिरिक्त मैथुन, इन सब कारणोंसे पित्त कुपित हो कर नाभिदेशमें शूल उत्पादन करता है। इसमें रोगीके पिपासा, दाह, स्वेदोद्गम, मनोमोह, इन्द्रियमोह, भ्रम, और शोष उत्पन्न होता है। मध्याह्नमें, रात्रिके मध्यभागमें, ग्रीष्म, और शरत्कालमें यह रोग बढ़ता है तथा शीतकालमें तथा शीतल उपचार और सुमधुर अथच शीतल द्रव्य खानेसे यह प्रशमित होता है।

श्लैष्मिक लक्षण—जलबहुल देशज मत्स्य, जलज शालुकादि, पायसादि क्षीरविकार, मांस, इक्षु, माषादि निर्मित पिष्टक, तिलतण्डुल, माषकृत यवागू, तिलपुली तथा अन्यान्य गुरु और कफजनक द्रव्य सेवन करनेसे कफ कुपित हो कर आमाशयमें शूल उत्पादन करता है। इस रोगमें रोगीके हृल्लास, कास, शरीरकी अवसन्नता, अरुचि, मुखप्रसेक, कोष्ठका स्तैमित्य और मस्तकका गुरुत्व होता है। भोजनके ठीक बाद हो, दिनके प्रथम भागमें, शिशिर और वसन्तकालमें वेदना बहुत बढ़ जाती है।

द्वन्द्वज लक्षण—ऊपर कहे गये द्विदोषके मिलित लक्षण द्वारा द्वन्द्वज शूल स्थिर करना होगा।

त्रिदोषजात शूलरोगमें हृदय, पृष्ठ, पार्श्व, त्रिक, वस्ति, नाभि और आमाशय स्थानमें वेदना तथा त्रिदोषके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। यह सान्निपातिक शूल अति भयानक और कष्टदायक है। सुचिकित्सक उक्त रोगी-का परित्याग कर दें।

आमज लक्षण—आमजन्य शूलरोगमें पेटमें गुड़ गुड़ शब्द, हल्लास, वमि, देहको गुरुता और स्तिमितता तथा कफज शूलके लक्षण दिखाई देते हैं। यह शूल वातात्मक होने पर वस्तिदेशमें, पित्तात्मक होने पर नाभि-में और पार्श्वके साथ कुक्षिदेशमें उत्पन्न होता है।

तन्त्रान्तरमें लिखा है, कि उपयुक्त परिमाणसे अधिक खा लेने पर उससे अग्निकी मृदुताके कारण खाया हुआ अन्न पेटमें स्थिरभावसे रहता है। जिससे वायु अव-रुद्ध होती है। अतः भुक्त द्रव्य नहीं पचता और अत्यन्त शूल पैदा होता है। इससे अंतमें मूर्च्छा, आध्मान, विदाह, हृत्क्लेश, विलंबिका, कम्प, वमन, अतीसार और प्रमेहरोगकी उत्पत्ति होती है।

वातश्लैष्मिक शूल वस्ति, हृदय, कटि और पार्श्व-देशमें तथा पित्तश्लैष्मिक शूल कुक्षि, हृदय और नाभि-देशमें उत्पन्न होता है। इस रोगमें अति दाह और ज्वर होता है।

साध्यासाध्यादि—एकदोषोद्भव शूलरोग साध्य, द्विदोषज शूल कष्टसाध्य तथा सान्निपातिक शूल असाध्य है। अत्यधिक उपद्रव विशिष्ट सभी प्रकारके शूल असाध्य होते हैं।

अरिष्ट लक्षण जिस शूलरोगीके अत्यधिक वेदना, अत्यन्त पिपासा, मूर्च्छा, आनाह, देहका गुरुत्व, ज्वर, भ्रम, अरुचि, कृशता और वलहानि, ये दश उपद्रव होते हैं, उसके जीवनकी आशा नहीं करनी चाहिये।

भुक्तद्रव्यके परिपाक कालमें शूल उपस्थित होनेसे उसको परिणामशूल कहते हैं।

परिणाम-शूल लक्षण—पूर्वोक्त कारणसे कुपित वल-वान् वायु, कफ और पित्तको दूषित कर परिणाम शूल उत्पादन करती है। यह शूल भुक्त द्रव्यकी जीर्णावस्था में होती है।

वातजादि लक्षण—वातज परिणाम शूलमें आध्मान, आटोप, मलमूत्रकी रुद्धता, ग्लानि और कंप होता है; किंतु स्निग्ध और उष्ण क्रिया द्वारा वह प्रशमित होता है। पैत्तिक परिणाम शूलमें पिपासा, दाह, ग्लानि और घर्मोद्गम होता है। कटु, अम्ल और लवण रस-युक्त द्रव्यका सेवन करनेसे यह रोग वढ़ता और शीत-क्रियासे घटता है। श्लैष्मिक परिणामशूलमें वमि, हल्लास, संमोह और अल्पवेदना होती है तथा यह वेदना देर तक रहती है। कटु और तिक्तरसका सेवन करनेसे इसका उपशम होता है। उक्त दो दोषोंके मिलित लक्षण द्वारा द्विदोषज तथा तीन दोषोंके लक्षण द्वारा त्रिदोषज शूलरोग स्थिर करना होगा। त्रिदोषज परि-णाम शूलमें रोगीका मांस, वल और जठराग्नि क्षीण होने-से रोगको असाध्य समझना चाहिये।

अन्नद्रवशूल लक्षण—भुक्तद्रव्य जीर्ण होने पर भी पच्यमान अवस्थामें जो शूल हमेशा हुआ करता है और जो पथ्य या अपथ्य, आहार या अनाहार, नियमानियम किसीसे भी निवृत्त नहीं होता उसे अन्नद्रवशूल कहते हैं। यह शूलरोग साध्य है, यत्नपूर्वक चिकित्सा करने-से वहुत जल्द चंगा हो जाता है। उक्त प्रकारके लक्षण द्वारा शूलरोग निर्णय करके अति शीघ्र यथाविधान चिकित्सा शुरू कर देनी चाहिये। यह रोग अति यन्त्र-णादायक है, इस कारण वड़ी सावधानीसे इसकी चिकित्सा करनी होगी।

चिकित्सा—शूलरोग निवारणके लिये वमन, लङ्घन, स्वेद, पाचन, फलवर्त्ति क्षारप्रयोग, चूर्ण और मोदक-प्रयोग लाभदायक है। वातजन्य शूलरोगीको स्नेह और स्वेद प्रयोग द्वारा चिकित्सा करनी होगी। स्वल्प-शूलमें एकमात्र स्वेदका प्रयोग करनेसे ही वह प्रशमित होता है।

मिट्टी और जलको एकत्र कर्दमाकृति करनेके वाद उसे अग्निमें पाक कर घना करे। पीछे उस गरम मिट्टी-को कपड़ेमें पोटली वांध कर उसका सेंक दे। यह सेंक देनेसे शूलवेदना जल्द जाती रहती है। इसको मृत्तिका

स्वेद कहते हैं। इसके सिवा कार्पासास्थ्यादिका स्वेद भी विशेष उपकारी है। यह स्वेद देनेका विधान इस प्रकार है—कपासका बीज, कुलथी कलाय, तिल, जौ, भरेण्डका मूल, तोसी, पुनर्नवा, शणबीज और काँजी इन्हें एकत्र करके हो या अलग अलग हो, स्वेद देनेसे सभी प्रकारको शूलवेदना उसी समय प्रशमित होती है।

शिला पर पीसे हुए तिलको कुछ गरम कर पेट पर प्रलेप देनेसे दुःसाध्य शूल भी शीघ्र निवृत्त होता है। मैनफलको कांजीसे पीस कर नाभिदेशमें प्रलेप देनेसे नाभिशूल निवारण होता है। आध तोला सोंठ और डेढ तोला भरेण्डका मूल, इसका काढ़ा बनावे पीछे उसमें हींग और सौवर्चल डाल कर पान करनेसे तत्क्षणात् शूल जाता रहता है। पुराना गुड़, शालितण्डुल, जौ, दूध और घृतपान, विरेचन और जंगली पशुका जूस, ये सब पित्तशूल रोगीके लिये रामबाण हैं। मणि, रौप्य या ताम्र-निर्मित वृहत् पात्रको जलसे पूर्ण कर शूलस्थान पर रखनेसे भी पित्तशूलवेदना दूर होती है। पित्तघ्न विरे-चन तथा शशक और लावपक्षीके मांसका जूस पित्तज शूलमें लाभदायक है। गुड़ और घृत संयुक्त हरीतको-को खाने अथवा आंवलेका चूर्ण मधुके साथ चाटनेसे पित्तशूल दूर होता है।

कफज शूलरोगीको शालि तण्डुलका अन्न, जंगली पशुका मांस, कटु रसात्क द्रव्य तथा मधुके साथ पुराना गेहूं खानेको दे। सैन्धव, सचल, लवण, विट्लवण, पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चिता, सोंठ और हींग, इन्हें कुछ गरम जलके साथ खिलानेसे कफजशूल नष्ट होता है।

आमज शूलमें उक्त कफज शूलकी तरह चिकित्सा करे तथा आमनाशक अथच अग्न्युद्दीपक द्रव्य सेवन करावे। राजकादि तीक्ष्ण द्रव्यचूर्णके साथ त्रिफला-चूर्ण, मधु और घृत द्वारा प्रयोग करनेसे सभी प्रकारके शूल निवृत्त होते हैं। देवदारु, स्वर्णक्षीरी, कुट, सोयाँ, हींग और सैन्धव इन्हें कांजीसे पीस कर कुछ गरम रहते पेट पर प्रलेप देनेसे शूलव्यथा दूर होती है।

बिल्वमूल, भरेण्डका मूल, चितामूल, सोंठ, हींग और सैंधव, इन्हें पीस कर पेट पर प्रलेप देनेसे भी शूल-निवृत्ति होती है। कुम्हड़ेको छोटा छोटा काट कर धूप-में सुखावे। पीछे उसे हंडीमें भर कर एक ढक्कनसे मुंह बंद कर दे। अनन्तर उस संधिस्थानको अच्छी तरह बंद कर अग्निमें पाक करे। जब वह कुम्हड़ा जल कर कठिन अङ्गार हो जाय, तब उसे नीचे उतार ले। किन्तु इस ओर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये, कि वह एकदम जल कर राख न हो जाय। बादमें जब वह ठंढा हो जाय, तब उसे चूर्ण कर २ माशा तथा सोंठका चूर्ण २ माशा एकत्र मिला कर जलके साथ प्रतिदिन भक्षण करे। इसमें सभी प्रकारका असाध्य शूल भी प्रशमित होता है।

परिणाम शूलको चिकित्सा—परिणामशूल रोग दूर करनेके लिये पहले उपवास, वमन और विरेचनका प्रयोग करे। वमनका विधान—दूधके साथ मैनफलका काढ़ा अथवा कान्तार, पौण्ड्रक और कोशकार ईखका रस या नीमका काढ़ा या तितलौकीका रस भर पेट पिला कर वमन करावे। निसोथ या दन्तीमूलका चूर्ण भरेण्डके तेलके साथ पिलानेसे विरेचन हो परिणाम शूल उसी समय प्रशमित होता है।

वायविडङ्गका तण्डुल, त्रिकटु, निसोथ, दन्ती और चिता इनका बराबर बराबर भाग चूर्ण ले कर जितना होगा उससे दूने गुड़के साथ मोदक तैयार करे। यह मोदक २ तोला प्रति दिन गरम जलके साथ सेवन करने-से त्रिदोषज परिणामशूल अति शीघ्र नष्ट होता है।

सोंठ, तिल और गुड़ समान भाग ले कर दूधमें पीस चाटनेसे तीन रातमें परिणामशूल दूर होता है। शम्बूक भस्मके चूर्णको उष्ण जलके साथ आध तोला करके पान करनेसे उसी समय परिणाम-शूल नष्ट होता है। लोहा, हरीतकी, पिप्पली और सोंठका चूर्ण समान भाग ले कर आध तोला परिमाणमें घी और मधुके साथ चाटनेसे वह शूल दूर होता है।

जलसंयुक्त सुपक्व त्वग्विहीन नारियलमें सैन्धव-लवण भर कर ऊपरसे एक उंगली भर मिट्टीका लेप लगा दे। पीछे उसको अग्निमें जला कर उसके भीतर-का सैन्धवलवण संयुक्त गूदा निकाल ले। उस गूदेको पीपरके साथ उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे सभी कार-का परिणाम शूल जाता रहता है।

अन्नद्रवशूल चिकित्सा—इस शूलरोगमें जब तक कटु और अम्लाक्त पित्तसंयुक्त भुक्तद्रव्य वमन न कराया जाय, तब तक यह शूल प्रशमित नहीं होता। इस शूलमें जिससे शीघ्र वमन हो वैसी ही औषधका प्रयोग करना उचित है। अम्लपित्त रोगकी तरह इसकी चिकित्सा करे। अम्ल पित्तोक्त प्रणालीके अनुसार चिकित्सा करनेसे आमाशय और पक्वाशय शोधित होता है, इस कारण इससे उत्पन्न शूलरोग भी विनष्ट होता है।

आँवलेके चूर्णको लोहे अथवा मुलेठी चूर्णके साथ समान भागमें मिला कर मधु द्वारा चाटनेसे अम्लपित्त और अन्नद्रवशूल विनष्ट होता है। श्यामाधान्य, कोद्रव धान्य या कङ्गनी धान्य इनके चावलका पायस बना कर भोजन करनेसे उपकार होता है। गुड़ाकपक्वान्न, शूरणकन्द, कुष्माण्ड, उड़द, कुलथी कलायका सत्तू, कोदों धानका सत्तू और अन्न दधिके साथ या दधि-संस्कृत अन्न अन्नद्रव शूलमें विशेष उपकारी है। घृत और गुड़ संयुक्त गोधूमका मण्ड चीनी और शीतल दुग्धके साथ आलोड़न कर भक्षण करनेसे भी अन्नद्रव शूलका उपशम होता है।

यह शूलरोग अति कष्टसाध्य है। अतएव इसके प्रशमनके लिये विशेष यत्न करना आवश्यक है। इस रोगमें अग्निमान्द्य होता है, अतः इसमें खानेका नियम रखना बहुत जरूरी है। जितना आसानीसे पच सके, उतना ही लघु भोजन करना कर्त्तव्य है।

गुड़, आमलकी और हरीतकीका चूर्ण प्रत्येक आध पाव तथा मण्डूर डेढ़ पाव एक साथ मिला कर तथा समपरिमाण मधु और घृतके साथ आलोड़न कर प्रति दिन दो तोला भोजनके आदि मध्य और अन्तमें सेवन करे। यह शूलरोगमें विशेष उपकारी है। कलाय, जौ, गेहूं, श्यामाधान्य, कोद्रव, राजमाष, माष कलाय, कुलथीकलाय, कंगनी और शालि तण्डुल, गाय और भैंसका घी, वास्तूक-शाक, करेला और ककड़ी, हरिन, मयूर और कपिञ्जल पक्षीका रस तथा रोहित मछली ये सब अन्नद्रव शूलमें हितकारक माने गये हैं।

अम्लपित्तशूलमें अम्लपित्त रोगोक्त चिकित्सा करना उचित है। इसके सिवा इस रोगमें समुद्राद्य चूर्ण, तारामण्डूर गुड़, शतावरी मण्डूर, वृहत् शतावरी मण्डूर, दो प्रकारका धात्री लौह, आमलकी खण्ड, नारिकेल-खण्ड, वृहत् नारिकेल-खण्ड, श्रीविद्याधराभ्र, शूलगज-केशरी, शूलवज्रिणीवटी, पिप्पलीघृत और शूल-गजेन्द्रतैल तथा अम्लपित्त रोगोक्त औषधोंका शूलरोगमें यथाविधान प्रयोग करनेसे तुरत लाभ पहुंचता है।

भैषज्यरत्नावलीमें इस रोगाधिकारमें निम्नोक्त औषध कही गई हैं—चतुःसमचूर्ण, शम्बुकादि गुटिका, शङ्खरस-गुटिका, सामुद्राद्य चूर्ण, नारिकेल-लवण, सप्तामृत लौह, पिप्पलीघृत, बीजपूराद्यघृत, कोलादिमण्डूर, शतावरी-मण्डूर, वृहच्छतावरीमण्डूर, चतुःसममण्डूर, रसमण्डूर, धात्रीलौह, शर्करालौह, खण्डामलकी, नारिकेलखण्ड, वृहन्नारिकेलामृत, हरीतकीखण्ड, पूगखण्ड, वैश्वानरलौह, शूलगजकेशरी, शूलवज्रिणीवटी, शूलान्तकरस, श्रीविद्याधराभ्र, चतुः समलौह और शूलगजेन्द्र तैल आदि।

पथ्यापथ्य—पीड़ा प्रबल रहनेसे अन्नाहार भोजन करना कर्त्तव्य है। दोनों शाम लघु भोजन करना आवश्यक है। पित्तज शूलके साथ वमि, ज्वर, अत्यन्त दाह और अत्यन्त तृष्णा आदिका उपद्रव रहनेसे मधु-मिश्रित यवागू पीना हितकर है। पीड़ाका उपशम होनेसे दिनमें पुराने चावलका भात; मांगुर, रोहित या छोटी मछलीका शोरवा; मानकच्चू, ओल, परोल, बैंगन, डूमर, पुराना कुम्हड़ा, करेला आदिकी तरकारी उपकारी है। उस समय जितना कम हो उतना ही खाना उचित है। इस रोगमें केवल दूध भात खा सकनेसे विशेष लाभ पहुंचता है। इस रोगमें खाते समय जल-पान न कर कमसे कम खानेके दो घंटे बाद जलपान करना उचित है। निषिद्ध द्रव्य भोजन, अधिक परिमाणमें भोजन, सभी प्रकारकी दाल, शाक, बड़ी मछली, दही, रुक्षद्रव्य, कषाय और शीतल द्रव्य, अम्ल द्रव्य, लालमिर्च, मद्य, रौद्रादि सेवन, परिश्रम, मैथुन, शोक, क्रोध, मलमूत्रादिका वेगधारण और रात्रिजागरण, ये सब शूलरोगके विशेष अनिष्टकारक हैं। शूलरोगी उक्त निषिद्ध द्रव्यका परित्याग कर विहित द्रव्य तथा यथा-विधान औषधका सेवन करे, तो इस रोगसे अतिशीघ्र आरोग्यलाभ कर सकते हैं।

पाश्चात्य चिकित्साग्रंथमें शूलरोगको Colic कहा है। विविध कारणोंसे यह शूलव्यथा उपस्थित हो सकती है। यकृत्‌में अश्मरी या पथरी (Gall stone) होनेसे शूलरोग उत्पन्न होता है। अन्त्रमें अम्लके सञ्चित रहने पर यह रोग होता है।

बाइकार्बनेट आव सोडा, बाइकार्बनेट आव पटाश आदि द्वारा यह शूल जल्द दूर होता है। अजीर्णरोग ही इस प्रकारके अम्लशूलका प्रकृत निदान है। इस कारण टिंचर नक्स भमिका, टिंचर कलम्बा जेनसियेन और टीकाडायेसटिस आदि औषधोंका व्यवहार करना चाहिये। मूत्रकोषमें अक्जेलेट आव लाइम आदिके संचित होनेसे भी एक प्रकारकी पथरी (Calculas) उत्पन्न होती है। ये सब पथरियां जब मूत्रप्रणालीके (Ureter) मध्यसे मूत्राशय (Bladder) की ओर उतरती हैं, तब भयङ्कर शूलवेदना होती है। इसको Renal Colic कहते हैं। लिथिया, इथेरोट्रपिन, बकु, कुलथी कलायका क्वाथ आदिका सेवन इस रोगके प्रशमनका प्रधान उपाय है। किन्तु इस प्रकारके शूलकी भयङ्कर यातनाके समय मर्फिया अधस्त्वाच् निक्षेप करनेसे (Hypodermic injection) रोगी कुछ घण्टेके लिये शान्ति पाता है। फलतः इस जातिकी शूलवेदनामें मर्फियर हाइपोडारमिक इनजेक्सनके सिवा रोगीकी यातना निवारण करनेका और कोई उपाय नहीं है।

इसके सिवा पाश्चात्य चिकित्साविज्ञानमें स्नायु शूल (Neuralgia) नामक एक और प्रकारके शूलका उल्लेख है। इस शूलरोगमें फेनासिटिन और तद्‌घटित औषध द्वारा यथेष्ट उपकार होता है।

शूलक (सं० पु०) शूल इव दुर्विनीतत्वात् कन्। १ दुर्वृत्त घोटक, दुष्ट या पाजी घोड़ा। २ एक ऋषिका नाम। (सह्याद्रि० ३०।३०)

शूलकार (सं० पु०) पुराणानुसार एक भील जातिका नाम। (मार्क०पु० ५७।४०)

शूलगजकेशरिन् (सं० पु०) शूलरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—विशुद्ध पारा २ तोला, विशुद्ध गंधक ४ तोला, दोनोंकी कज्जली बना कर नीबूके रसमें घिसे और उससे ६ तोला परिमित ताम्रपुटके अभ्यन्तर भागको लिप्त करे। पीछे एक हंडीमें नमक रख कर थालीका मुंह बंद कर गजपुटमें पाक करे। दूसरे दिन ताम्रपुटको उद्धृत और चूर्ण कर उपयुक्त पात्रमें रखे। २ रत्ती प्रति दिन पानके रसके साथ सेवन करे। औषध सेवनके बाद सोंठ, जीरा, बच, मरिच, इनके चूर्णको कुछ गरम जलके साथ सेवन करनेसे असाध्य शूल भी शीघ्र प्रशमित होता है।

शूलगजेन्द्रतैल (सं० क्ली०) शूलरोगाधिकारोक्त तैलौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल ८ सेर, क्वाथार्थ रेंडीका मूल और दशमूल प्रत्येक ५ पल, जल ५५ सेर, शेष १३॥० सेर; जौ ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दुग्ध १६ सेर; कल्कार्थ सोंठ, जीरा, यमानी, धनिया, पीपल, बच, सैन्धव और बेरका पत्ता, प्रत्येक २ पल। तैलपाकके विधानानुसार इस तेलका पाक करे। इसकी मालिश करनेसे आठ प्रकारके शूल और तज्जनित वमि आदि उपद्रव शीघ्र प्रशमित होते हैं। इसके सिवा ज्वर, रक्तपित्त, प्लीहा और गुल्म आदि रोगोंमें भी यह विशेष लाभ पहुंचाता है।

शूलगव (सं० पु०) १ शूल और गोविशिष्ट। २ शिव।

शूलगिरि—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके सालेमजिलेके होसुर तालुकान्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां ८०० वर्षके प्राचीन एक पोलेगार सरदार वंशका वास था।

शूलग्रन्थि (सं० स्त्री०) मालादूर्वा, माला दूब।

शूलग्रह (सं० पु०) हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव।

शूलग्राहिन् (सं० पु०) महादेव।

शूलघातन (सं० क्ली०) शूलं तद्रोगं घातयतीति हनणिच्-ल्यु। मण्डूर, लौहकिट्ट।

शूलघ्न (सं० क्ली०) शूल-हन-टक्। १ तुम्बुरुवृक्ष। (रत्नमाला) (त्रि०) २ शूलनाशक।

शूलघ्नी (सं० स्त्री०) सर्जिक्षार, सज्जीमिट्टी।

शूलदावानलरस (सं० क्ली०) वैद्यकमें एक प्रकारका रस। यह दो तरहसे बनता है। पहला तरीका—शुद्ध पारा, शुद्धसिंगी मुहरा, काली मिर्च, पिप्पली, सोंठ, भूनी हींग, पांचों नमक, इमलीका खार, जंभीरीका खार, शंख भस्म और नीबूके रसके योगसे बनता है और शूल

रोगको तत्काल दूर करता है। दूसरा तरीका—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सिङ्गी मुहरा, पिप्पली, भूनी हींग, पांचों नमक, इमलीके खार और नीबूके रसमें बुझे हुए शंखको राख तथा नीबूके रससे बनता है और शूल, अजीर्ण, उदर रोग और मन्दाग्निको दूर करता है।

शूलदोषहरा (सं० स्त्री०) शूलपर्णी।

शूलद्विट् (सं० पु०) शूलस्य द्विट् शत्रुः। हिङ्गु, हींग।

शूलधन्वन् (सं० पु०) शूलो धनुर्यस्य। शिव, महादेव।

शूलधर (सं० पु०) शूलस्य धरः। शिव, शंकर।

शूलधरा (सं० स्त्री०) दुर्गा।

शूलधारिणी (सं० स्त्री०) शूलधरा, दुर्गा।

शूलधारिन् (सं० पु०) शूलं धरतीति धृ-णिनि। त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव, महादेव।

शूलधृक् (सं० स्त्री०) शूलं धरतीति धृञ-क्विप्। १ दुर्गा। (त्रिका०) (पु०) २ महादेवका 'शूलधृत्' नाम भी कहीं कहीं देखा जाता है।

शूलधृष् (सं० पु०) शूलेन धर्षति दैत्यान् धृष क्विप्। १ शिव, महादेव। (स्त्री०) २ दुर्गा।

शूलनाशन (सं० क्ली०) शूलं तद्रोगं नाशयतीति नश-णिच् ल्यु। १ सौवर्चल लवण। २ हिङ्गु, हींग। ३ पुष्करमूल। ४ वैद्यकमें शंख, भस्म, करंजमूल, भूनी हींग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और सेंधा नमकके योगसे बनाया हुआ एक प्रकारका चूर्ण। इसका व्यवहार प्रायः शूल रोगमें किया जाता है।

शूलनाशिन् (सं० त्रि०) १ शूलरोगनाशक। (पु०) २ हिंङ्गु, हींग।

शूलनाशिनीवटी (सं० स्त्री०) वैद्यकमें एक प्रकारकी वटी या गोली। इसके लिये हड़का छिलका, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, शुद्ध कुचला, शुद्ध गंधक, भूनी गंधक, भूनी हींग सेंधा नमक जलसे खरल करके चनेके बराबर गोलियां बनावे। कहते हैं, कि प्रातःकाल इसे गरम जलके साथ सेवन करनेसे संग्रहणी, अतिसार, अजीर्ण, मन्दाग्नि आदि दूर होती है।

शूलनिर्मूलन (सं० पु०) दुःखका नाश करनेवाले, शिव, महादेव।

शूलपत्री (सं० स्त्री०) शूलवत् पत्रमस्याः ङीप्। शूलोतृण, एक प्रकारकी घास।

शूलपदी (सं० स्त्री०) शूलवत् पादौ यस्याः। शूलके समान पादविशिष्टा, वह स्त्री जिसके पैर शूलके समान हों।

शूलपर्णी (सं० स्त्री०) शूलपत्री, एक प्रकारकी घास।

शूलपाणि (सं० त्रि०) शूलं पाणौ यस्य। १ शूलधारी, जिसके हाथमें शूल हो। (पु०) २ महादेव, शिव।

शूलपाणि—१ एक कवि। कविकण्ठाभरणमें इनको भट्टवाचस्पति उपाधिको कथा लिखा है। २ तिथिद्वैतप्रकरण, तिथिविवेक, दत्तकपुत्रविधि, दत्तकविवेक, दीपकालिकानाम्नी याज्ञवल्क्यटीका, दुर्गोत्सवविवेक, दोलयात्राविवेक, प्रायश्चित्तविवेक, रासयात्राविवेक, व्रतकालविवेक, श्राद्धविवेक, संक्रान्तिविवेक, सम्वत्सरप्रदीप, समयविधान और सम्बन्धविवेक आदि ग्रन्थोंके रचयिता। इनके ग्रन्थमें भोजदेव, धारेश्वर आदि कवियोंका उल्लेख दिखाई देता है। मित्रमिश्र, गोपाल आदि प्राचीन कवि रचित ग्रन्थमें इनका उल्लेख रहनेसे इन्हें उन लोगोंसे भी बहुत पहलेका आदमी मान सकते हैं। ३ वैद्यकग्रन्थके प्रणेता।

शूलपानि (सं० पु०) शिव, महादेव।

शूलप्रोत (सं० पु०) नरकके एक भागका नाम।

शूलफी (सं० क्ली०) शूलके समान वेधनास्त्र, बर्छी, बल्लम आदि।

शूलवज्रिणी (सं० स्त्री०) शूलरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गंधक, लोहा प्रत्येक ४ तोला, सुहागेका लावा, हींग, बेलसोंठ, सोंठ, पीपल, मिर्च, आंवला, हरीतकी, बहेड़ा, कचुर, दारचीनी, इलायची, तेजपत्र, तालिशपत्र, जायफल, लवङ्ग, यमानी, जीरा, धनिया, प्रत्येक १ तोला ले कर बकरीके दूधमें अच्छी तरह पीसे। पीछे १ माशाकी गोली बनावे। इसका अनुपान ठंढा पानी या बकरीका दूध है।

शूलभेद (सं० पु०) स्थानभेद।

शूलमर्दन (सं० क्ली०) कोकिलाक्ष, तालमखाना।

शूलयोग (सं० पु०) फलितज्योतिषके अनुसार एक योगका नाम। शूल देखो।

शूलरस (सं० पु०) शूलरोगोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, निसोथ, चितामूल, प्रत्येक १ तोला, कज्जली २ तोला, लोहा, अबरक, विड़ङ्ग, प्रत्येक २ तोला, कुल चूर्णको त्रिफलाके काढ़ेमें मर्द्दन कर गोली बनावे। इसका अनुपान काँजी है। इस औषध का सेवन करनेसे अन्नद्रव आदि सभी प्रकारके शूल प्रशमित होते हैं।

शूलरोग (सं० पु०) अम्लजनित वेदनारूप रोगविशेष। शूल देखो।

शूलवत् (सं० त्रि०) शूलरोगविशिष्ट, शूलरोगग्रस्त।

शूलवेदना (सं० स्त्री०) १ तीव्रवेदना, अत्यन्त कष्टदायक व्यथा (Acute pain)। २ शूलव्यथा, अम्लजन्य देहकी पीड़ा (Colic pain)।

शूलव्यथा (सं० स्त्री०) शूलवेदना।

शूलशत्रु (सं० पु०) शूलस्य शत्रुः। एरण्डवृक्ष, रेंड़का पेड़। (शब्दचन्द्रिका)

शूलशब्द (सं० पु०) पेटकी गड़गड़ाहटके कारण होनेवाला शब्द। (माधवनि०)

शूलहन्त्री (सं० स्त्री०) यमानी क्षुप, अजवाइनका पौधा।

शूलहर (सं० क्ली०) पुष्करमूल।

शूलहरयोग (सं० पु०) शूलरोगोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—हरीतकी, सोंठ, पीपर, मिर्च, कुचिला, हींग, सैन्धव लवण और गन्धक ये सब द्रव्य समान भागमें ले कर बेरकी आंठीके बराबर गोली बनावे। प्रातःकाल इस औषधका जलके साथ सेवन करनेसे शूल, ग्रहणी, अतिसार आदि रोग आरोग्य होते हैं।

शूलहस्त (सं० पु०) १ शूलपाणि, महादेव। २ रक्षः। (त्रि०) ३ जिसके हाथमें शूल हो।

शूलहृत् (सं० पु०) शूलं हरतीति हृ-क्विप्। हिङ्गु, हींग।

शूला (सं० स्त्री०) १ दुष्टवधार्थ कीलक, वह कीलक जिस पर बैठा कर प्राचीनकालमें दुष्टोंको प्राणदण्ड दिया जाता था। २ वेश्या, रंडी। ३ लौहशलाकाविशेष, सीख, छड़।

शूलाकृत (सं० पु०) शूलेन कृतं शूलात् पाके (पा ५।४।६५) इति गच्। लोहेकी सीखमें खोंस कर भूना हुआ मांस, कबाब आदि। पर्याय—भटित्र, शूल्य, वासितार, शूलिक।

शूलाग्र (सं० क्ली०) शूलस्य अग्रं। शूलका अग्र भाग।

शूलाङ्क (सं० पु०) शूलो अङ्कः चिह्नं यस्य। शिव, महादेव।

शूलान्तकरस (सं० पु०) शूलरोगकी एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेका तरीका—त्रिकटु, त्रिफला, चितामूल प्रत्येक १ तोला, कज्जली १ तोला, लौह, अभ्र, विड़ङ्ग प्रत्येक २ तोला, इन सबोंका चूर्ण त्रिफलाके क्वाथमें मर्द्दन कर गोली बनावे। इसका अनुपान कांजी है। शूल आदि रोग विनष्ट होते हैं।

शूलापाल (सं० पु०) वेश्यापाल, वह जो वेश्याका पालन करता हो।

शूलारिवटी (सं० स्त्री०) शूलरोगमें फायदा पहुंचानेवाली एक प्रकारकी दवा। (चिकित्सा०)

शूलि (सं० पु०) १ शूली, महादेव, शिव। (स्त्री०) २ सूली देखो।

शूलिक (सं० क्ली०) शूलः निमित्तत्वेनास्त्यस्येति शूल-ठन्। १ शूलाकृत, शूल्य, कबाब। (पु०) २ शशक, खरगोस, खरहा। (हेम०) शूलः अस्यास्तीति ठन्। (त्रि०) ३ फांसी देनेवाला, सूली देनेवाला।

शूलिका (सं० स्त्री०) सीखमें गोद कर भूना हुआ मांस, कबाब।

शूलिकाप्रोत (सं० पु०) शूलिका देखो।

शूलिन् (सं० पु०) शूलमस्यास्तीति शूल-इनि। १ शिव, महादेव। २ शशक, खरगोस। ३ एक नरकका नाम। (त्रि०) ४ शूलास्त्रधारी, शूल धारण करनेवाला। शूलरोगग्रस्त, जिसे शूलरोग हुआ हो।

"वर्ज्जयेद्विदलं शूली कुष्टी मांसं क्षयी स्त्रियं।"
(वैद्यक)

शातातपीय कर्मविपाकमें लिखा है, कि दूसरेको दुःख देनेसे शूल रोग होता है तथा हमेशा अन्नदान और रुद्र मन्त्रका जप करनेसे उसका नाश होता है।

"शूली परोपतापेन जायते तत्प्रभाज्जीकः।
सोऽन्नदानं प्रकुर्व्वीत तथा रुद्रं जपेन्नरं॥
(शातातपीय-कर्मविपाक)

शूलिन (सं० पु०) १ भाण्डीरवृक्ष। २ उदुम्बर वृक्ष, गूलरका पेड़।

शूलिनी (सं० स्त्री०) शूलं अस्या अस्तीति शूल-इनि ङीप्। १ दुर्गाका एक नाम जो त्रिशूल धारण करनेवाली मानी जाती है। २ नागवल्ली, पान। ३ पुत्रदात्री नामकी लता।

शूलिमुख (सं० पु०) एक नरकका नाम। माताकी हत्या करनेवाला एक सौ वर्ष तक इस नरकमें वास करता है।

शूली (सं० स्त्री०) १ स्वनामख्यात तृणभेद, एक प्रकारकी घास। बम्बई—शूली, कर्णाट—सोगले। संस्कृत पर्याय—शूलपत्री, अशाखा, धूम्रमूलिका, जनाश्रया, मधुलता, महिषीप्रिया। इसे पशु बड़े चावसे खाते हैं और इसका व्यवहार औषधरूपमें होता है। वैद्यकके अनुसार यह किंचित् उष्ण, गुरु, बलकारक, पित्त तथा दाहनाशक और गौओं तथा भैंसोंका दूध बढ़ानेवाली मानी जाती है। २ शूली देखो।

शूली (हिं० स्त्री०) शूल, पीड़ा।

शूलुर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कोयम्बतुर जिलेके पल्लड़म तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यहां कोयम्बतुरके माद्यराज द्वारा प्रतिष्ठित एक बड़ा छत्र है। यह छत्र महिसुरके कृष्णराज उदैयारके राज्यकाल १७६१ ई०में बना था।

शूलेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष।

शूलोखा (सं० स्त्री०) सोमराजी लता, बकुची।

शूल्य (सं० क्ली०) शूलेन संस्कृतं शूल-यत् शूलोखाद्यत् (पा ४।२।१७) १ शूलाकृत, सीखमें वेध कर पकाया हुआ मांस, कवाव। पाकप्रणाली—यकृत् आदिके मांसको टुकड़े टुकड़े कर उसमें घी और लवण मिलावे। पीछे सीखमें वेध कर निर्धूम प्रतप्त अग्निमें अच्छी तरह सिद्ध करे। इसीका नाम शूल्य या कवाब है। यह अति मधुर तथा बलकारक, रोचक, अग्न्युद्दीपक, लघु, वातपित्तकफहारक और पुष्टिवर्द्धक है

(त्रि०) २ शूल अर्थात् शलाकादि द्वारा दग्ध।

शूल्यपाक (सं० पु०) शूल्येन पाको यस्य। कवाव।

शूल्यमांस (सं० क्ली०) कवाव।

शूलशाण (सं० पु०) भूतयोनिविशेष।

शूष्य (सं० त्रि०) सुखभव। 'अर्चा दिवे बृहते शूष्य' वचः।' (ऋक् १।५४।३)

शृकाल (सं० पु०) शृगाल, गीदड़।

शृगाल (सं० पु०) सृजति मायामिति सृज-कालन्, पृषोदरादित्वात् साधु। स्वनामप्रसिद्ध पशुविशेष, गीदड़। पर्याय—शिवा, भूरिमाय, गोमायु, मृगधूर्त्तक, वञ्चक, क्रोष्टु, फेरु, फेरव, जम्बुक, सृगाल, जम्बूक, मृतमत्त, कुरव, घोरवासन, वनश्वा, फेरं, स्वधूर्त्त, शालावृक, गोमी, कटखादक, शिवालु, फेरण्ड, व्याघ्रनायक।

प्राणितत्त्वविदोंने इस जातिके जीवको चतुष्पद स्तन्यपायी पशु-श्रेणीके अन्तर्भुक्त किया है। जीवतत्त्वमें यह Canis aureus वा C, aureus Indicus के नामसे परिचित है। इसके अतिरिक्त विभिन्न देशोंमें यह विभिन्न नामसे पुकारा जाता है। अरब देशमें—शिघाल, पारस्य—शिगाल, भोट—अमु, कनाड़ी और तामिल—नारि, अंग्रेजी—Jackal, ओलन्दाज—gackhals, जर्मन—Alopex, तेलगू—नाका, मराठी—कोला, हिब्रु—Shu'al।

ब्रह्मपुत्रके पश्चिमस्थ सारे भारतमें, दक्षिणपूर्व यूरोप खण्डमें तथा सीरिया, अरब और पारस्य राज्यमें स्थान स्थान पर यह दलबद्ध हो कर विचरण करता है। अफ्रिका और गिनिराज्यमें कास्पीय सागरके किनारे भी एक प्रकारका शृगाल देखा जाता है। निर्जन वनमय प्रांतरके अलावे यह उच्च पार्वत्य प्रदेशमें भी रहता है। यह निशाचर, साहसी और चोरप्रकृतिका जानवर है। रात्रिके समय जब ये दलबद्ध हो कर निर्जन प्रांतरमें आहारकी खोजमें घूमते फिरते हैं, उस समय स्वभावतः बड़े जोरसे 'हुआं हुआं' कर चिल्लाते हैं, जो सुननेमें बहुत ही विरक्तकर मालूम पड़ता है। हायना जातीय पशु दलबद्ध रहने पर भी रात्रिमें शिकार ढूंढ़नेके समय शिकारके पीछे पीछे दौड़ता है, किंतु शृगालका वैसा स्वभाव नहीं है। वे दलबद्ध हो कर ही रात्रिमें बाहर निकलते हैं और सामनेमें मृत वा जीवित छोटे छोटे जानवर अथवा सड़े गले मांसादि जो कुछ पाते हैं, उसे बड़े चावके साथ भोजन करते हैं। गलित शव वा गोमहिषादिके मांसमें भी उनकी अतृप्ति नहीं देखी जाती।

गङ्गा-प्रवाहित देशभागमें, विशेषतः निम्नवंगमें जो सब शृगाल दलवद्ध रहते हैं, वे जो कुछ पाते हैं, उससे ही पेट भर लेते हैं। बङ्गालको अपेक्षा दाक्षिणात्यका शृगाल कुछ बड़ा होता है। यह प्रायः अकेला वा जोड़ा करके निर्जन स्थानमें विचरण करता है। जङ्गली फलमूल तथा कहवेके खेतमें पड़े हुए उसके वीज इनका प्रधान आहार है।

शृगालकी चतुराईके संबंधमें कई गल्प सुननेमें आती हैं। हितोपदेशमें इस विषयकी अनेक गल्प लिखी हैं, किंतु कटहल चोरी करनेका कौशल तथा केंकड़ेके विलमें पूंछ घुसा कर केंकड़ेको वाहर करना इनकी कूटवुद्धिका परिचायक है। ये चुपकेसे गृहस्थोंके आंगनमें घुस कर हंस तथा पालतू भेंड़ वकरेके वच्चे आदि पकड़ लाते हैं और उन्हें ग्रामके वाहर ले जा कर आनन्दसे खाते हैं।

दक्षिण भारतमें तथा सिंहलद्वीपके समतल प्रांतरमें कभी कभी ये दलवद्ध हो कर शिकारकी खोजमें वाहर निकलते हैं। उस समय एक शृगाल उस दलका नेता वन कर आगे आगे चलता है और सव उसका अनुसरण करते हैं। यदि उस समय एक वड़ा हरिण भी उनके सामने आ पड़ता है, तो वे निडर हो कर उस पर टूट पड़ते हैं तथा सव मिल कर दांतोंके आघातसे उसे क्षत विक्षत कर मार डालते हैं। जिन स्थानोंमें अधिक खरगोश पाये जाते हैं, वहां ही शृगालका दौरात्म्य अधिक होता है। वे खरगोशको पकड़ कर निभृत स्थानमें ले आते हैं और उसे मार कर पार्श्ववर्त्ती किसी निर्जन जंगलमें छिपा रखते हैं; फिर दूसरे ही क्षण वे उस स्थानसे वाहर चले आते हैं। मनुष्य वा कोई वलवान पशु उनके शिकार करते देख तो नहीं रहा है, वे कुछ समय तक इसकी परीक्षा करते हैं। जब वे वहां किसी प्रकारका आततायी नहीं देखते, तव उस वनसे उसे दूर ले जा कर अपने दलके साथ भक्षण करते हैं। किन्तु यदि शिकार छिपा रखनेके वाद वे किसी मनुष्य अथवा मांसाहारी पशुको वहां देख पाते हैं, तो अपने शत्रुको भुलानेके वहाने नारियल फल । छिलका वा काठका टुकड़ा मुखमें ले कर वहांसे तेजीसे भागते हैं। चतुर शृगाल इस उपायसे शत्रुओंको दिखाते हैं मानो वे अपने शिकारको मुखमें ले कर भाग रहे हों। पीछे वे समय पा कर अपना गुप्त शिकार कर ले जाते हैं।

इनका स्वभाव कुत्तोंके स्वभावसे वहुत कुछ मिलता जुलता है। वुल नामक कुत्ते जिस प्रकार हरिणादि वन्यपशुके शिकारके समय एकवारगी शिकारका गला धर दवाते हैं और किसी तरह छोड़ना नहीं चाहते, शृगाल भी उसी तरह शिकार पकड़ कर छोड़ना नहीं जानते। ये ऐसे धूर्त्त होते हैं, कि शिकारी जिस समय वनमें शिकार करनेके अभिप्रायसे प्रवेश करता है, उस समय ये दूर ही दूर छिप कर उनके साथ जाते हैं और ज्यों ही शिकार किसी हरिण वा दूसरे जंगली पशुको मारता है, त्यों ही ये वनके गुल्म लताओंसे वाहर निकल कर उस आहत शिकार पर आक्रमण करते हैं और शिकारीकी नजर वचा शिकार ले भागते हैं।

कुत्तोंकी तरह इनके दाँतोंमें भी विष होता है। शृगालके काट लेनेसे गोमहिषादि पशुओंको जलातङ्क (Hydrophobia) रोग हो जाता है। किसी किसी शृगालके मस्तक पर शृंगकी तरह कोणाकार एक अर्द्ध इंच लम्वा अस्थिखण्ड वाहर होते देखा जाता है। सिंहलद्वीपवासी उसे नाड़ी-कोम्वू कहते हैं। उनका विश्वास है, कि यह शृंग जिसके पास रहेगा, उसकी सभी वासनाएं पूरी होंगी। उसकी खोई सम्पत्ति लौट आयगी तथा उसका संचित धन चोर वा डकैत नहीं ले सकते।

कुत्तेकी तरह ही इनकी भी दंतपंक्ति होती है। इसके नेत्र कुत्ते वा लकड़वग्घेकी तरह गोलाकार होते हैं। देहका ऊपरी भाग हरिद्राभ-धूसर वर्ण एवं निम्न भाग अपेक्षाकृत सफेद होता है। जाँघ और पाँव हरिद्रावर्ण रोएँसे ढके रहते हैं। कान कुछ लाल वर्ण और मुख कुछ चौड़ाई लिये लम्बा होता है। पूँछ रोओंसे भरी रहती है। स्थानभेदसे शरीरके रंगमें भी अन्तर दिखाई पड़ता है। किसी किसी स्थानके शृगालके पृष्ठ और पार्श्वदेश धूसर तथा कृष्णवर्णके रोओंसे समाच्छन्न रहता है। मस्तकके रोएं प्रायः शरीरकी तरह होते हैं।

इनकी स्त्री जाति कुत्तोंकी तरह एक ही ऋतुमें गर्भ-

धारण करती है एवं उसी तरह पूर्णकाल गर्भधारणके बाद यथासमय पर बच्चा प्रसव करती है। बच्चोंकी आँखें जन्मके समय बन्द रहती हैं; पीछे कुछ दिनोंके बाद क्रमशः खुल जाती हैं। उस समय शृगालके बच्चे चलने फिरने लगते हैं। अनेक समय ये मिट्टी खोद कर बिलमें वास करते हैं। वन्य शृगालके शरीरसे एक प्रकारकी दुर्गन्ध निकलती है; इसलिये कोई इस पशुको नहीं पालता। किन्तु कर्णल साइकस्ने एक शृगालीको पाल रखा था। ऐसे तो इसकी दुर्गन्ध मालूम नहीं पड़ती, पर इसके शरीरके पास नाक ले जानेसे एक प्रकारकी बुरी गंध पाई जाती है।

उपरोक्त जातियोंके अतिरिक्त क्यूभियरने Canis authus नामक और भी एक जातिके शृगालका उल्लेख किया है। इसका मुख अपेक्षाकृत नुकीला, पूंछ लम्बी और चारों पांव सीधे होते हैं। इस कारण ये पाँवके बल सीधी तरह खड़े हो सकते हैं। Canis Vulpes नामक एक अन्य जातीय छोटा शृगाल देखा जाता है। गाजाके निकटवर्त्ती जाफा नगरमें और गालिलीमें इस जातिके शृगाल बहुत पाये जाते हैं। बाइबिल ग्रंथमें लिखा है, कि फिलिष्टाइन लोगोंका शस्यक्षेत्र जला देनेके लिये स्यमृसन्ने ३०० शृगालोंकी पूंछमें मसाल बांध दिया था (Judges XV, 45)। कोई पाश्चात्य पण्डित अनुमान करते हैं, कि ईसाइयोंके धर्मशास्त्रमें लिखे हुए वे खेकसियार ही सम्भवतः शृगाल होंगे। तब वे शृगाल तुर्कीवासी चिकल (Chical) या पारसके शियागल, शियाकाल वा शाकाल अथवा हिब्रू जातिके कहे हुए शुयाल जातीय शृगाल थे, इसका ठीक ठीक निर्णय नहीं किया जाता। बाइबिल ग्रन्थके Psalm LXIII, 10 स्थानमें शृगालके शवभक्षणकी कथा है। हिन्दुओंके पुराण और नाटकोंके अन्दर फेरुपालके निहत सैनिकोंका मांस खानेका यथेष्ट परिचय है।

कब्र खोद कर शृगाल शव देह खा जाते हैं इसके अनेकों प्रमाण पाये गये हैं।

एक पाश्चात्य पण्डितने शृगालके अर्द्ध चीत्कार और अर्द्ध क्रन्दन मिश्रित विभिन्न स्वरोंका लक्ष्य करके लिखा है, कि इस जन्तुके स्वरको मनुष्यकी भाषामें तथा संगीतके सुरमें रूपान्तरित करनेसे जान पड़ता है, कि शृगालके स्वर अंग्रेजी भाषामें निम्नोक्त भाव प्रकाश करते हैं:—

"A dead Hindu! a dead Hindu.
Where where? where where?
Here-here; Here-here."

शृगालकी आवाजसे शुभाशुभका पता लगाया जाता है। शिवारुत शब्दमें विशेष विवरण देखो।

२ दैत्यभेद। (मेदिनी) ३ वासुदेव। ४ निष्ठुर ५ खल। (सारस्वताभिधान) ६ भीरु।

शृगालकण्टक (सं० पु०) शृगालरोधकः कण्टको यस्य। क्षुपविशेष, भरभांड़ या सत्यानासी नामका कंटीला क्षुप। प्रतिदिन सवेरे और शामको इसका डंठल तोड़नेसे जो हरिद्राभ रस पाया जाता है, उसे फोड़ेमें लगानेसे वह चंगा हो जाता है। उसके फलके बीजमें तेल है। वह तेल सरसोंके साथ मिला कर निकाला जाता है। उद्भिद्‌शास्त्रमें इसे Zyzyphus कहा है।

शृगालकोलि (सं० पु०) शृगालप्रियः कोलिर्यस्य। क्षुद्रकोलिवृक्ष, उन्नाव, कर्कन्धु। (रत्नमाला)

शृगालघण्टी (सं० स्त्री०) कोकिलाक्ष, तालमखाना।

शृगालजम्बु (सं० पु०) शृगालस्य जम्बुरिव। १ गोडुम्ब, गोमाककड़ी। २ कर्कन्धु, उन्नाव। ३ तरबूज।

शृगालविन्ना (सं० स्त्री०) पृश्निपर्णी, पिठवन।

शृगालिका (सं० स्त्री०) १ शृगालपत्नी, सियारिन, गीदड़ी। २ त्रासहेतु पलायन, त्रासके कारण भागना। ३ भूमिकुष्माण्ड, भूइँकुम्हड़ा। ४ क्षुद्र शृगाल, खेकसियार। पर्याय—लोमालिका, दीप्तजिह्वा, किखि, उल्कामुखी। ५ पृश्निपर्णी, पिठवन। ६ विदारीकन्द।

शृगाली (सं० स्त्री०) १ शृगालपत्नी, गीदड़ी। २ विद्रव, पलायन, भागना। ३ कोकिलाक्ष, तालमखाना। ४ विदारीकंद।

शृङ्खल (सं० पु०) १ एक प्रकारका आभरण जो प्राचीन कालमें पुरुष लोग कमरमें पहनते हैं, मेखला। २ हाथी आदिके बांधनेकी लोहेकी जंजीर, साँकल, सिकड़। पर्याय—अन्दूक, निगड़, शृङ्खला। ३ लोहरज्जु, हथ-

कड़ी, बेड़ी। ४ बन्धन। ५ नियम, रीति। ६ बन्धनी। Bracket नामक चिह्न।

शृङ्खलक (सं० पु०) शृङ्खलं बन्धनमस्य, शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे। (पा ५।२।७९) इति कन्। १ उष्ट्र, ऊँट। २ शृङ्खल देखो।

शृङ्खलता (सं० स्त्री०) क्रमबद्ध या सिलसिलेवार होनेका भाव।

शृङ्खला (सं० स्त्री०) १ क्रम, सिलसिला। २ पुंस्कटी-वस्त्रबन्ध, मेखला। ३ चांदीका एक आभूषण जिसे स्त्रियां कमरमें पहनती हैं, करधनी, तागड़ी। ४ एक प्रकारका अलंकार जिसमें कथित पदार्थोंका वर्णन शृङ्खलाके रूपमें सिलसिलेवार किया जाता है। ५ श्रेणी, कतार। ६ नियम, रीति।

शृङ्खलाबद्ध (सं० त्रि०) १ जो क्रमसे हो, सिलसिलेवार। २ जो शृङ्खलासे बाँधा हुआ हो।

शृङ्खलित (सं० त्रि०) शृङ्खलो जातोऽस्येति इतच्। १ क्रमबद्ध, श्रेणीबद्ध, सिलसिलेवार। २ शृङ्खलबद्ध, निगड़ित।

शृङ्खली (सं० स्त्री०) कोकिलाक्ष, तालमखाना।

शृङ्खाणिका (सं० स्त्री०) नाकसे निर्गत शिकनि या सर्दी। (आपस्तम्ब १।१६।१४) इसे शृंघाणिका और शिङ्घाणिका भी कहते हैं।

शृङ्ग (सं० क्लो०) शृ-हिंसे (शृणाते र्ह्रस्वश्च। उण् १।१२५) इति गन्, धातो र्ह्रस्वत्वं नुट्च प्रत्ययस्य। १ पर्वतोपरिभाग। पर्वतका ऊपरी हिस्सा, शिखर, चोटी। पर्याय—कूट, शिखरदण्ड, प्राग्भार, शैलाग्र। २ सानु, कंगूरा। ३ प्रभुत्व, प्रधानता। ४ चिह्न, निशान। ५ क्रीड़ाजलयन्त्र, पानीका फौवारा। ६ विषाण, गो, भैंस, बकरी आदिके सिरके सींग। देशी और विदेशी शिल्पी इससे कंगही, बटन, तरह तरहके खिलौने तैयार कर बेचते हैं।

गायका सींग तोड़ देनेसे प्रायश्चित्त करना होता है। भवदेवभट्टधृत यमवचनमें लिखा है, कि गोशृंग तोड़ देनेसे आध मास तक यवमण्डादि खा कर रहना होता है।

गायका सींग तोड़ देनेसे यदि वह गाय ६ मासके भीतर मर जाय, तो सींग तोड़नेवाला गोवध प्रायश्चित्तके योग्य होगा। ६ मासके बाद मरनेसे पृथक् कोई प्रायश्चित्त नहीं करना होगा, केवल पूर्वोक्त यावक पान अथवा प्राजापत्यव्रत करनेसे ही काम चलेगा।

७ महिषादिके सींगका बना हुआ वाद्ययन्त्रविशेष, सिंगीबाजा। ८ पङ्कज, कमल। ९ कूर्चशीर्षक वृक्ष, जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। १० शुण्ठी, सोंठ। ११ आर्द्रक, अदरक। १२ अगरु, अगर। १३ कामोद्रेक, कामकी उत्तेजना। १४ स्तन, छाती। १५ एक प्राचीन ऋषिका नाम। ऋष्यशृङ्ग देखो। १६ कोटि, धनुषका सिरा। १७ ऊर्द्ध्व, ऊपर। (त्रि०) १८ उत्कर्ष, बढ़िया। १९ तीक्ष्ण, तेज।

शृङ्गक (सं० पु०) शृंग इव कन्। १ जीवक वृक्ष। (जटाधर) शृंग स्वार्थे कन्। २ शृङ्ग देखो।

शृङ्गकन्द (सं० पु०) शृंगवत् कन्दो यस्य। शृंगाटक, सिंघाड़ा।

शृङ्गकूट (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

शृङ्गगिरि (सं० पु०) शृंगकूट नामक पर्वत।

शृङ्गग्राहिका (सं० स्त्री०) १ शृंगग्रहणकारी। २ सूक्ष्मसूत्रसे ग्रहणकारी, शीघ्र अधिगमनशील।

शृङ्गग्राहिता न्याय (सं० पु०) एक न्याय। इसका उपयोग उस समय होता है, जब किसी कठिन कामका एक अंश हो जाने पर शेष अंशका सम्पादन उसी प्रकार सहज हो जाता है। जिस प्रकार सींग मारनेवाला बैलका एक सींग पकड़ लेने पर दूसरा सींग भी पकड़ लेना सहज हो जाता है।

शृङ्गज (सं० क्लो०) शृंगाज्जायते इति जन-ड। १ अगुरु, अगर। (पु०) २ शर, तीर। शृंगवत् शरो जायते (संक्षिप्तसा० कारक) (त्रि०) ३ शृंगजातमात्र।

शृङ्गजाह (सं० क्लो०) शृंगस्य मूलं शृंग (तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कणज्जाह चौ। पा ५।२।२४) इति जाहच। शृंगका मूल भाग।

शृङ्गधर (सं० पु०) एक बौद्धयतिका नाम।

शृङ्गनाभ (सं० पु०) एक प्रकारका विष।

शृङ्गनाम्नी (सं० स्त्री०) कर्कटशृंगी, काकड़ासिंगी।

शृङ्गपुर (सं० क्लो०) पुरभेद; शृंगेरिपुर।

शृङ्गभेदिन् (सं० पु०) गुन्द्रा नामक तृण ।

शृङ्गमय (सं० त्रि०) शृंग विकारे मयट्। १ शृङ्गविकार, शृंग द्वारा बना हुआ। २ शृंगस्वरूप ।

शृङ्गमूल (सं० क्ली०) शृंगवत् मूलं यस्य । शृंगाटक, सिंघाड़ा ।

शृङ्गमोहिन् (सं० पु०) शृंगाय मन्मथोद्भेदाय मोहयतीति मुह-णिच्-णिनि । चम्पक, चम्पा ।

शृङ्गरुह (सं० पु०) शृंगाटक, सिंघाड़ा ।

शृङ्गरोहस् (सं० क्ली०) सुगन्धक तृण, रामकर्पूर ।

शृङ्गला (सं० क्ली०) शृंगवत् लातीति ला-क-टाप् । अजशृंगी, मेढ़ासिंगी ।

शृङ्गवत् (सं० त्रि०) शृंगाणि सन्ति अस्येति शृंग मतुप् मस्य व । कुरु-वर्षीय सीमान्त पर्वत । यह पर्वत लम्बाईमें अस्सी सहस्र योजन और चौड़ाईमें दो सहस्र योजन है । (विष्णुपु० २।२ अ०)

श्रीमद्भागवतके मतसे यह पर्वत लम्बाईमें दश हजार योजन और चौड़ाईमें दो सहस्र योजन है ।

शृङ्गवृष (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

शृङ्गवेर (सं० क्ली०) शृंगस्यैव वेरं शरीरं यस्य । १ आर्द्रक, अदरक, आदी । २ शुण्ठी, सोंठ । ३ एक नागका नाम । (भारत आदिपर्व) ४ शृङ्गवेरपुर देखो ।

शृङ्गवेरक (सं० क्ली०) शृंगवेरमेव स्वार्थे कन् । १ आर्द्रक, अदरक, आदी । २ शुण्ठी, सोंठ ।

शृङ्गवेरपुर (सं० क्ली०) गुहक चण्डालकी पुरी । रामायणके अनुसार यह नगर अति प्राचीन है । इसका वर्त्तमान नाम शिङ्गरोर है । यह गंगानदीके उत्तर किनारे प्रयागसे २२ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है । यहां एक समय सौर-सम्प्रदायका मन्दिर था ।

शृङ्गवेराभमूलक (सं० पु०) शृंगवेराभं मूलं यस्य, कन् । परका; गुंद्रा नामक तृण ।

शृङ्गवेरिका (सं० स्त्री०) गोजिह्वा शाक, गोभी ।

शृङ्गसुख (सं० क्ली०) शृंगवाद्य, सिंगी या सिंघा नामक बाजा ।

शृङ्गाट (सं० क्ली०) शृङ्गमुत्कर्षमटतीति अट-अच् । १ चतुष्पथ, चौराहा, चौमुहानी । (पु०) शृंगवत् कण्टकं अटतीति अट-अच् । २ जलकण्टक, सिंघाड़ा । ३ स्वादुकण्टक, कंटाई । ४ गोक्षुर, गोखरू । ५ कामाख्यादेशस्थ पर्वतविशेष । कालिकापुराणमें इस पर्वतका विषय इस प्रकार लिखा है—हिमालयसे दीप नामकी एक नदी निकली है । यह नदी दीपकी तरह अन्धकारको दूर करता है, इसीसे इसको सभी दीपवती कहते हैं । इस दीपवती नदीके पूर्व ओर शृंगाट पर्वत अवस्थित है । इस पर्वत पर महादेवका एक लिंग प्रतिष्ठित है । सिद्धस्रोता नामकी दक्षिण सागर गामिनी एक नदी इस पर्वतसे निकल कर इसके पादमूलमें ही बहती है । यदि कोई इस नदीमें स्नान कर शृंगाटक पर्वत पर चढ़ शिव-लिंगकी पूजा करे, तो उसके सभी पाप दूर होते हैं तथा वह इस लोकमें विविध ऐश्वर्य भोग कर अन्तमें शिवलोक जाता है । (कालिकापु० ८२ अ०)

शृङ्गाटक (सं० क्ली०) शृंगाटमेव स्वार्थे कन् । १ चतुष्पथ, चौराहा, चौमुहानी । २ जलज लताका फलविशेष, सिंघाड़ा । (Trapabis pinosa) पर्याय—जलसूचि, संघाटिका, वारिकण्टक, शृंगाट, वारिकुब्जक, क्षीरशुक्त, जलकण्टक, शृंगरुह, शृंगकन्द, शृंगमूल, विषाणी । गुण—शोणितपित्तनाशक, लघु, वृष्यतम, विशेषरूपमें त्रिदोष, वात, भ्रम और शोकनाशक, रुचिप्रद, गुरु, विष्टम्भी, शीतल । (राजव०)

३ खाद्यद्रव्यविशेष । यह खाद्य मांससे बनाया जाता है । भावप्रकाशमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है—शुद्ध मांसको खूब बारीक खण्ड करके जलमें सिद्ध करे । पीछे उस मांसमें लवण, लवङ्ग, हींग, मिर्च, अदरक, इलायची, जीरा, धनिया और नीबूका रस मिला कर गायके घीमें भुन ले । बादमें मैदेका शृंगाटक अर्थात् सिंघाड़ा बना कर उसमें मांस भर फिरसे भुन ले, अच्छी तरह भुन जाने पर उसे नीचे उतार ले । इसीको शृंगाटक या मांस शृंगाटक कहते हैं । गुण—रुचिकारक, शरीरका उपचयकारक, गुरु, वायु, पित्तनाशक, शुक्रजनक, कफापहारक तथा वीर्यवर्द्धक ।

४ मर्मभेद । यह मस्तकमें उस स्थान पर माना जाता है, जहां नाक, आंख और जीभसे सम्बन्ध रखनेवाली चारों शिराएं मिलती हैं । कहते हैं, कि यह मर्मस्थान चार अंगुलका होता है और इसके चारों ओरसे

चारों शिराएं निकलती हैं, इसीसे इसको शृंगाटक कहते हैं। यह मर्मविद्ध होनेसे उसी समय मृत्यु होती है।

५ श्वदंष्ट्रा। ६ गोक्षुर, गोखरू। (पु०) शृंगाट स्वार्थे कन्। ७ जलकण्टक।

शृङ्गाटी (सं० पु०, जीवन्ती।

शृङ्गादिचूर्ण (सं० क्लो०) हिक्काश्वासाधिकारोक्त चूर्णौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—कर्कटशृंगा, सोंठ, पीपर, मिर्चा, आंवला, हर्रे, बहेड़ा, कटैया, बरंगी, कुट, जटामांसी और पञ्चलवण प्रत्येकका चूर्ण समान भागमें ले कर एक साथ मिलावें। पीछे दो माशा भर शीतल जलके साथ सेवन करनेसे हिक्का, ऊर्द्धश्वास और कास आदि शीघ्र प्रशमित होता है। (भैषज्यरत्ना०)

शृङ्गान्तर (सं० क्लो०) शृङ्गस्य अन्तरं। दो शृङ्गका मध्य भाग। (रघु २।२१)

शृङ्गार (सं० क्लो०) शृङ्गं प्राधान्यं ऋच्छतीति ऋ अण्। १ लवंग, लौंग। २ सिन्दूर, सेंदुर। ३ चूर्ण, चूरन। (मेदिनी) ४ आर्द्रक, अदरक। (शब्दच०) ५ कृष्णागुरु, काला अगर। ६ सुवर्ण, सोना। (राजनि०) (पु०) शृंगं कामोद्रेकमृच्छतीति ऋगतौ (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) यद्वा शृ हिंसायां शृंगारशृंगारौ (उण् ३।१३६) इति आरन् प्रत्ययेन साधुः। ७ रति, मैथुन। ८ गजभूषण। ९ नाटकोक्त आद्यरस। नाटकादिमें इसका निम्नोक्त लक्षण दिया गया है। रति क्रीड़ादिके लिये यदि पुरुष स्त्रीके साथ अथवा स्त्री पुरुषके साथ सम्भोग करनेकी कामना करती है, तो उससे आदि वा शृंगाररसका आविर्भाव होता है।

"पुंसः स्त्रियां स्त्रियाः पुंसि संयोगं प्रति या स्पृहा।
स शृंगार इति ख्यातो रतिक्रीड़ादिकारणम्॥"

(अमरटीकामें भरत)

विप्रलम्भ और सम्भोग भेदसे शृंगाररस दो प्रकारका है। इसका पूरा पूरा विवरण उन दोनों शब्दोंमें वर्णित किया गया है। यहां उनका संक्षिप्त वर्णन किया जाता है। विप्रलम्भ—जहां नायक वा नायिकाका अनुरागसे परिपूर्ण रहने पर अपने अपने अभिलषित लोगोंके साथ संयोग नहीं होता, वहां विप्रलम्भ शृंगार होता है। पूर्णराग, मान, प्रवास और करुणभेदसे यह चार भागोंमें विभक्त है। उनके मध्य नायक-नायिका दोनोंके अन्दर परस्परके रूपादि दर्शन वा गुणादि श्रवणके कारण दृढ़ अनुराग प्राप्त होने पर भी अन्यान्य किसी कारणसे व्याघात उपस्थित होता है, उस समय उनकी जो अवस्था उपस्थित होती है, उसे पूर्णराग कहते हैं। पूर्वराग भी नीली, कुसुम्भ और मञ्जिष्ठा भेदसे तीन भागोंमें विभक्त है। जिस स्थान पर दम्पतीके मध्य राम और सीताकी तरह परस्परके अनुरागमें किसी प्रकारका ह्रास वा वृद्धि नहीं देखी जाती, वहां नीली एवं जहां इसके विपरीत भाव देखा जाता है अर्थात् जहां दम्पतीके प्रणयमें ह्रास, वृद्धि वा उदयापगम परिदृष्ट होता है, वहां कुसुम्भ और जहां अनुरागमें कुछ भी न्यूनता न हो कर केवल उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि ही देखी जाती है, वहां मञ्जिष्ठा राग समझना चाहिये। मान अर्थात् कोप, यह प्रणय और ईर्षा दोनोंसे पैदा होता है। नायक वा नायिकाके मध्य यदि कोई कुटिल स्वभावका हो और यदि उससे दोनोंमें अत्यन्त प्रेम रहने पर भी अपनी कुटिलताके कारण कोई कोप करे, तो उसे प्रणयगर्भ मान कहते हैं। यदि किसी दूसरी स्त्रीमें पतिकी आसक्तिका विषय देख कर वा सुन कर अथवा अनुमान कर (अर्थात् पतिके शरीरमें किसी प्रकारका सम्भोग) चिह्न अथवा स्वप्नमें परकीय विलास-सुखके यथायथ वृत्तान्तका अनुकीर्त्तन वा पतिके द्वारा दूसरी रमणीके नामका गुणानुवर्णन सुन कर स्त्रीके मनमें जो अतिशय ईर्षा पैदा होती है, उसे ईर्षाभिमान कहते हैं। अपने अभीष्ट फलकी प्राप्तिके लिये, शाप-भ्रष्टावस्थामें अथवा किसी तरहकी उत्पीड़नाके भयसे नायक वा नायिकाको विदेशयात्रा करने पर यदि उस समय उनके मध्य किसीके हृदयमें अनुरागका संचार हो कर उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहे और उसके लिये शरीरकी मलिनता, दीर्घोच्छ्वास एवं मानसिक भावमें (अर्थात् मनही मनमें) स्पष्टतः क्रन्दन तथा भूशय्याशायिता इत्यादि लक्षण दिखाई पड़े और उस शायितावस्थामें स्त्रीकी यदि मुक्तिवेणी दृष्टिगोचर हो, तो समझना चाहिये, कि वहां प्रवासरूप विप्रलम्भ हुआ है।

नायक नायिकाके मध्य किसीकी मृत्यु हो जाने पर यदि देवताओंके वरदानसे उसी जन्ममें या दूसरे जन्ममें पुनर्मिलनकी आशाका संचार हो, एवं उसके लिये वे अत्यन्त विमना हो कर यत्परोनास्ति विलाप करते रहें, तो वहां करुण विप्रलम्भ उपस्थित होता है। सम्भोग—जिस समय दो दम्पतीके दर्शन, स्पर्शन, चुम्बन एवं परिरम्भणादिका संघटन होता है, उस समय सम्भोग शृंगारकी उत्पत्ति होती है। यह शृंगार प्रायः पूर्वोक्त चारो रागोंके आनन्तर्यमें ही उपस्थित होता है। क्योंकि विना विप्रलम्भके सम्भोग कभी सम्यक् परिपुष्ट नहीं हो सकता, वरं कषाय जलसे वस्त्रादि रंग लेने पर अनुरागकी और भी वृद्धि होती है।

"न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भुयान् रागो विवर्द्धते ॥"

जलकेलि, वनविहार और मधुपान प्रभृति भी इस रसके अन्तर्गत है। मैथुन शब्द देखो।

सदा अनुरक्त, परिहासादि क्रीड़ानिपुण, कुपित प्रेमीके मानभञ्जनमें पटु एवं शुद्धान्तःकरण विशिष्ट विट, चेट, विदूषकादि प्रभृति शृंगाररसके सहायक हैं अर्थात् ये ही शृंगाररसकी समधिक पुष्टिसाधन करते हैं।

पूर्वरागकी चरम अवस्था उत्तरोत्तर आकांक्षाकी वृद्धि, अपने प्रेमीको पानेके लिये नियत उपायका चिन्तन, सर्वदा प्रणयी वा प्रणयिनीका स्मरण, सदा परस्परका गुणकीर्त्तन, भयानक उद्वेग, प्रलाप अर्थात् सर्वदा चित्तकी अस्थिरताप्रयुक्त असम्बन्ध वाक्यप्रयोग, उन्मत्तता एवं निरन्तर दीर्घश्वास पाण्डुता, कृशता प्रभृति रोग तथा जड़ता अर्थात् शारीरिक एवं मानसिक चेष्टाहीनता, यहां तक कि अतिरिक्त मन्मथपीड़ासे मृत्यु तक हो जाता है, किन्तु रसविच्छेद होता है, ऐसा तो कोई कोई वर्णन नहीं करते। तब हां, किसी किसी स्थानमें आसन्न मृत्यु पर्य्यन्त वर्णन किया गया है। जैसे—कोई कामविह्वला कामिनी कह रही है, कि भ्रमरसमुदाय अपने झङ्कारसे दिग्दिगन्त परिपूर्ण करे, चन्दन-वनजात अनिल मन्द मन्द प्रवाहित होवे, चूतशिखरस्थ केलिपिक समूह आम्रमुकुलास्वादनसे उल्लासित हो कर पञ्चमस्वरमें गान करे एवं उससे मेरा यह पत्थर समान कठोर प्राण शीघ्र निकल जाय, वायुमें विलीन हो जाय।

मान—इससे कोई विशेष अनिष्टकारिणी अवस्था नहीं घटती। क्योंकि मान होनेसे पहले प्रिय वचनोंसे अपनी प्रणयिनीको सन्तुष्ट करना होता है, उससे सफलता न मिलने पर उसकी सखीकी उपासना की जाती है। इसमें भी असफल होने पर भूषणादि दे कर मानिनीको तुष्ट करनेकी चेष्टा और इससे विफल होने पर अन्तमें पावों पर गिर कर प्रणयिनीके मानभञ्जनका उपाय किया जाता है। इन सब उपायोंसे भी सफलता न देख किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाने पर भी नाना प्रकारकी चेष्टाओंसे मानिनीके हृदयमें सहसा भय वा हर्ष प्रभृति भाव पैदा कर मानभञ्जन किया जाता है।

प्रवास—चरम अवस्थामें शारीरिक मलिनता, विरह ज्वर, अतिशय मनःकष्ट द्वारा शारीरिक तेजनाश अर्थात् शरीरका पांडुवर्ण हो जाना, वस्तु साधारणके प्रति विगतस्पृहत्व और असन्तुष्टि, हृदय-शून्यताका अनुभव, अवलम्बन साहित्य अर्थात् संसारमें खड़े होनेका मानो कोई स्थान नहीं हैं, ऐसा अनुभव और तन्मयत्व अर्थात् वाह्य और आभ्यन्तरिक कार्य द्वारा अनिच्छा रहने पर भी अभीष्ट विषयका प्रकाश प्रभृति नव प्रकारके लक्षण दिखाई पड़ते हैं तथा अन्तमें मृत्यु भी हो सकती है। यथा—कोई रमणी अपने पतिको विदेश जानेके लिये तैयार देख पतिके विरहकी कल्पना कर अपने जीवनसे कह रही है—"हे जीवन! प्रियतमकी यात्राके साथ साथ जब तुम्हारे सभी साथी प्रस्थान कर रहे हैं, तब तुम उसका त्याग क्यों करते हो? यह तुम्हारा भारी अन्याय है। क्योंकि तुम्हारा एक साथी मेरा मन है, वह निश्चय प्रियवरके अग्रवर्त्ती रहेगा, ऐसा कह कर वह मुझसे विदा हो चुका है और दूसरा साथी धैर्य है, वह किसी तरह धैर्य धारण कर मेरे पास नहीं रहा अर्थात् प्राणनाथको गमनोद्यत देख मैं किसी तरह धैर्य धारण नहीं कर सकती। तुम्हारा एक साथी अश्रु है, वह भी वहता जा रहा है और किसी तरह रुकना नहीं चाहता। तुम्हारी एक और संगिनी मेरे हाथकी वाली है, वह भी हृदयेश्वरके विछोहकी चिन्तामें मेरे शरीरके

कृशतापन्न हो जानेके कारण अपना स्थान छोड़ रही है ; अतएव मैं अनुरोध करती हूं—तुम्हारा भी अपने साथियों का त्याग न करके मेरा त्याग करना ही कर्त्तव्य है।

करुण—इस विप्रलम्भमें नायक-नायिकाकी अवस्था-की विशेष कोई परिणति नहीं, कारण, इससे परस्परका मिलन प्रायः ही असम्भव होनेके अतिरिक्त वृद्धि नहीं होती ; तब यदि सहसा दैववाणी प्रभृति द्वारा दूसरे जन्ममें मिलनकी क्षीण आशा पाई जाती है ; तो वह बहुत दूरवर्त्ती होनेके कारण एक प्रकारसे उससे भी निरस्त हो जाना पड़ता है।

शृंगारादि रसके वर्णनके सम्बन्धमें शास्त्रमें अनेक दोष और गुणकी आख्या की गई है। यहां उन दोषों और गुणोंके सम्बन्धमें कुछ उदाहरण दिये जाते हैं ; यथा—

दोष शृंगार रसकी वर्णनामें 'शृंगार', 'रस', 'रति', 'केलि' प्रभृति शब्दोंके उल्लेख करनेसे दोषमें गिना जाता है। जैसे—"चन्द्रमंडलमालोक्य शृंगारे मग्नमन्तरम्" चन्द्रमंडलका निरीक्षण करके अन्तःकरण सुरतक्रियामें निमग्न हो जाता है; इस स्थानमें 'शृंगार' शब्दका व्यवहार करना शास्त्रीय दोषावह है। वर्णनामें विरोधी रस सूचित होनेसे दोष गिना जाता है। जैसे—"मानं मा कुरु तन्वंगि ! ज्ञात्वा यौवनमस्थिरं" "अयि ! कृशांगि ! निश्चय जानो—यह यौवन कभी स्थिर नहीं रहता, अतएव मान सम्वरण करो और मान मत करो।" यहां शृंगार रसका उद्दीपनाख्यविभाव वर्णन करनेमें 'यौवन कभी स्थिर नहीं रह सकता', इस बातसे उसके विरुद्ध शान्त रसका विषय सूचित होनेके कारण विरोधिता दोष घटता है। असमयमें नायकनायिकाका मिलन वा विच्छेद वर्णन करनेसे दोष माना जाता है। जैसे—वेणीसंहारके द्वितीय अंकमें बहुतसे सैनिकोंके मरनेके समय भानु-मतीके साथ दुर्योधनका जो शृंगार-प्रसंग वर्णित है, उसमें समयोचित (अर्थात् उस समयके अनुसार करुण रसका) वर्णन न करके शृंगार रसका वर्णन करना अनुचित हुआ है। क्योंकि उस प्रकार स्वजन वियोगके समय हृदयमें करुणादिरसका प्रवेश न हो कर शृंगाररस-का आविर्भाव होना नितान्त असंगत है। आलंकारिक-गण कुमारसम्भवोक्त उमामहेशके सम्भोग शृंगार वर्णन-को कवि द्वारा अपने मातापिताके सम्भोग वर्णनकी तरह अत्यन्त दोषावह समझते हैं।

गुण—किसी किसी स्थानमें भावसुलभ प्रयुक्त श्रुतिकटुदोषादि गुणमें परिणत होता है।

सुरत-प्रारम्भ-कालीय चेष्टादि वर्णनके स्थानमें अश्लीलता रहने पर भी यदि उन सभी वर्णनाओंको अकारान्तसे सचाईमें परिणत किया जाय, तो उस वर्णनमें किसी प्रकारका दोष न हो कर गुणका ही वर्णन होता है।

कालिदासकृत शृंगारतिलक, अमरु और भर्तृहरि कृत शृंगार शतक इस विषयके पाठोपयोगी ग्रन्थ हैं। इस अभिज्ञताका भी यथेष्ट परिचय है।

१० स्त्रियोंका वस्त्राभूषण आदिसे शरीरको सुशोभित और चित्ताकर्षक बनाना, सजावट। शृंगार १६ कहे गये हैं—अंगमें उबटन लगाना, नहाना, बाल संवारना, काजल लगाना, सेंदुरसे मांग भरना, महावर देना, भाल पर तिलक लगाना, चिबुक पर तिल बनाना, मेंहदी लगाना, अर्गजा आदि सुगंधित वस्तुओंका प्रयोग करना, आभूषण पहनना, फूलोंकी माला धारण करना, पान खाना, मिस्सी लगाना। ११ किसी चीजको दूसरे सुन्दर उपकरणोंसे सुसज्जित करना, सजावट। १२ भक्तिका एक भाव या प्रकार जिसमें भक्त अपने आपको पत्नीके रूपमें और अपने इष्टदेवको पतिके रूपमें मानते हैं।

शृङ्गार—१ एक कवि। २ श्रीकण्ठचरित (३।४५) धृत एक पण्डित। ये विश्वावर्त्तके पुत्र और मङ्खके भाई थे। ३ सह्याद्रि वर्णित एक राजा।

शृङ्गारक (सं० क्ली०) शृंगारमेव स्वार्थे कन्। १ सिन्दुर, सेंदुर। (शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन् वक्तव्यः। पा ५।२।१२२) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या आरकन्। (त्रि०) २ शृंग विशिष्ट। (पुं०) ३ शृंगार। ४ अगुरु, अगर। ५ लवंग, लौंग। ६ आर्द्रक, अदरक, आदा।

शृङ्गारगुप्त—वासवदत्ता-विवृतिके रचयिता।

शृङ्गारजन्मन् (सं० पु०) शृंगारे जन्म उत्पत्तिर्यस्य। कामदेव, मदन। (हेम)

शृङ्गारण (सं० क्ली०) किसी रूपवती स्त्रीको देख कर उस पर अपनी कामना प्रकट करनेकी क्रिया, प्रेम-प्रदर्शन, मुहब्बत जतलाना।

शृङ्गारना (हिं० क्रि०) आभूषण आदिसे या और किसी प्रकार संवारना, शृंगार करना, सजाना।

शृङ्गारभूषण (सं० क्ली०) शृंगारस्य भूषणं। १ सिन्दुर, सेंदुर। २ हरिताल, हरताल।

शृङ्गारमञ्जरी (सं० स्त्री०) वासवदत्तावर्णित एक नायिका। (वासवदत्ता)

शृङ्गारमण्डप (सं० क्ली०) १ रतिगृह, वह स्थान जहां प्रेमी और प्रेमिका मिल कर काम-क्रीड़ा करते हैं। २ व्रजका वह स्थान जहां पर श्रीकृष्णने राधिकाका शृंगार किया था।

शृङ्गारयोनि (सं० पु०) शृंगारे योनिमुत्पत्तिर्यस्य। कामदेव, मदन।

शृङ्गारवत् (सं० त्रि०) शृंगार अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शृंगारविशिष्ट, शृंगारयुक्त।

शृङ्गारवती (सं० स्त्री०) शृंगारविशिष्टा।

शृङ्गारवेश (सं० पु०) १ उज्ज्वलवेश, शृंगारके लिये सजावट, वह सुन्दर साज सजा जिससे नायक अपनेको सजा कर रतिकी इच्छासे नायिकाके पास जाता है। २ देव-प्रतिमादिका सुन्दर वेशधारण, देवमूर्त्तियोंको सजाना। वृन्दावनतीर्थमें भगवान् श्रीकृष्णको खूब अच्छी तरह सजाया जाता है। भक्तगण भगवान्‌को अच्छी तरह सजा कर उस मनोहररूपके दर्शन करते हैं। कोई कोई इसे शृंगारोद्योतक वेशसज्जा कह कर कल्पना करते हैं। प्रत्येक विष्णु या शिवमन्दिरमें मन्दिराधिष्ठातृ-देवमूर्त्तिको दिनमें या सोनेके पहले रातको चन्दनकस्तूरादि गन्धानुलेपन और पुष्पमाल्यादि धारण द्वारा अपूर्व भूषासे भूषित किया जाता है। पीछे देवमूर्त्तिके अभिषेकके साथ यथारीति देव-पूजा और आरतिक समाप्तिके बाद मन्दिरका बंद कर दिया जाता है। भक्तोंका विश्वास है, कि भगवान् शृंगारवेशमें भगवतीके साथ रतिक्रियामें समय विताते हैं। वृन्दावनके गोविन्दजी आदि विष्णुमन्दिरमें, काशीके विश्वनाथदेव, वैद्यनाथ और तारकेश्वर, तथा पुरीधाममें मूर्त्तियोंकी शृंगार-सज्जा होती है।

शृङ्गारशेखर (सं० पु०) एक राजाका नाम।

शृङ्गारसिंह (सं० पु०) काश्मीरका एक सामन्त।

शृङ्गारहार (हिं० स्त्री०) वह बाजार जहां वेश्याएं रहती हों, चकला।

शृङ्गाराभ्र (सं० क्ली०) कासरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—अवरक १६ तोला, कपूर, सुगंधवाला, गजपिप्पली, तेजपत्र, लवंग, जटामांसी, तालिशपत्र, दारचीनी, नागेश्वर, कुट, धवफूल, प्रत्येक आध तोला, हर्रें, आंवला, बहेड़ा और त्रिकटु प्रत्येक चार आना, इलायची और जायफल प्रत्येक १ तोला, गंधक १ तोला; पारद आध तोला इन्हें अच्छी तरह चूर्ण कर जलमें मर्दन करे। पीछे सिद्ध चनेके बराबर गोली बनावे। अदरख और पान रसके साथ इसका सेवन करना होता है। औषध सेवनके बाद कुछ जलपान करना आवश्यक है। इसका सेवन करनेसे सभी प्रकारके कासरोग, राजयक्ष्मा, क्षय आदिका उपशम होता है तथा वाजीकरण और रसायन अधिकारोक्त औषधकी तरह फल पाया जाता है।

शृङ्गारिक (सं० त्रि०) शृंगार-सम्बन्धी।

शृङ्गारिणी (सं० स्त्री०) १ शृंगार करनेवाली स्त्री, शृंगारप्रिय। २ एक वृत्तिका नाम। इसके प्रत्येक पादमें चार रगण होते हैं। इसको स्रग्विणी कामिनी, मोहन, लक्ष्मीधरा, और लक्ष्मीधर भी कहते हैं।

शृङ्गारित (सं० त्रि०) जिसका शृंगार किया गया हो, सजा हुआ, संवारा हुआ।

शृङ्गारिन् (सं० पु०) शृंगारोऽस्यास्तीति इनि। १ पूंग, सुपारी। २ गज, हाथी। ३ माणिक्य, मुन्नी। (त्रि०) ४ शृंगारविशिष्ट।

शृङ्गारिया (हिं० पु०) १ वह जो देवताओं आदिका शृङ्गार करता हो। २ वह जो तरह तरहके वेश बनाता हो, बहुरूपिया।

शृङ्गारुहा (सं० स्त्री०) शृङ्गाटक, सिंघाड़ा।

शृङ्गालिका (सं० स्त्री०) विदारी कन्द।

शृङ्गाली (सं० स्त्री०) शृङ्गालिका देखो।

शृङ्गाह्व (सं० पु०) १ जीवक नामक अष्टवर्गीय औषधि। २ शृंगाटक, सिंघाड़ा।

शृङ्गाह्वा (सं० स्त्री०) शृङ्गाह्व देखो।

शृङ्गि (सं० पु०) मत्स्यविशेष, सिंगी मछली।

शृङ्गिक (सं० पु०) स्थावरविषभेद, सिंगिया विष।

"यस्मिन् गोशृङ्गके बद्धे दुग्धं भवति लोहितम्।
स शृङ्गिक इति प्रोक्तं द्रव्यतत्त्वविशारदैः।"

यह विष गायके सींगमें बांध रखनेसे गायका दूध लाल होता है।

शृङ्गिका (सं० स्त्री०) १ कर्कटशृंगी, काकड़ासिंगी। २ मेषशिंगी, मेढ़ासिंगी। ३ पिप्पली, पीपल। ४ अतिविषा, अतीस। ५ बहुत प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा जो मुंहसे फूंक कर बजाया जाता था, सिंगी।

शृङ्गिणी (सं० स्त्री०) शृङ्गिनी देखो।

शृङ्गिन् (सं० पु०) शृंग-इनि। १ हस्ती, हाथी। २ वृक्ष, पेड़। ३ पर्वत, पहाड़। ४ एक ऋषि। ये शमीकके पुत्र थे। इन्हींके शापसे अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्‌को तक्षकने डसा था। ५ प्लक्षवृक्ष, पाकड़। ६ वटवृक्ष, बरगद। ७ आम्रातकवृक्ष, अमड़ाका पेड़। ८ ऋषभक नामक अष्टवर्गीय औषधि। ९ महिष, भैंस। १० वृष, बैल। ११ जीवक। १२ विषभेद, सिंगिया नामक विष। १३ कन्दविशेष। (सुश्रुत कल्प० ८ अ०) १४ सींगका बना हुआ एक प्रकारका बाजा जिसे फनकरे बजाते हैं। १५ महादेव, शिव। १६ एक प्राचीन देशका नाम। (त्रि०) १७ शृङ्गयुक्त।

शृङ्गिन (सं० पु०) शृंगेस्तः अस्येति शृंग (व्यास्नात-मिसेति। पा ५।२।११४) इति इनच्। मेष।

शृङ्गिनी (सं० स्त्री०) शृंगे स्तः अस्या इति शृंग-इनि-ङीष्। १ गो, गाय। २ श्लेष्माध्वीलता। ३ मल्लिका, मोतिया। ४ ज्योतिष्मतीलता, मालकङ्गनी। ५ अतिविषा, अतीस। ६ नदीवट।

शृङ्गिपुत्र (सं० पु०) एक वैदिक आचार्य, ऋषिका नाम।

शृङ्गिरा (सं० पु०) सह्याद्रिवर्णित एक राजाका नाम।

शृङ्गी (सं० स्त्री०) शृंगि वा ङीष्। १ मत्स्यविशेष, सिंगी मछली। पर्याय—मद्गुरप्रिया, मद्गुरी, मद्गुरसी, अप्रिया, शृंगि। गुण—स्वादुरस, स्निग्ध, बृंहण, कफवर्द्धक, शोथ, पाण्डु, वायु और पित्तनाशक। २ अतिविषा, अतीस। ३ ऋषभक नामक औषधि। ४ कर्कटशृंगी, काकड़ासिंगी। ५ प्लक्ष, पाकर। ६ वट, बड़। ७ विष, जहर। ८ अलङ्कार सुवर्ण, वह सोना जिससे गहने बनाये जाते हैं। ९ मञ्जिष्ठा, मजीठ। १० आमलकी, आंवला। ११ पूतिका, पोईका साग। १२ श्वेतातिविषा।

शृङ्गीक (सं० पु०) नकशृंगी मण्डन स्वर्ण तथैव कनकं। अलङ्कार सुवर्ण, वह सोना जिससे गहने बनाये जाते हैं।

शृङ्गीगुड़घृत—हिक्का और श्वासादि रोगमें व्यवहृत औषधविशेष।

शृङ्गीगिरी (सं० पु०) एक प्राचीन पर्वतका नाम। इस पर शृङ्गी ऋषि तप किया करते थे।

शृङ्गीश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

शृङ्गीरिपुर (सं० क्ली०) नगरभेद, शृङ्गगिरिपुर।

शृङ्गीरिमठ (सं० पु०) शङ्कराचार्य प्रतिष्ठित शृंगेरीका प्रसिद्ध मठ। शृङ्गेरी देखो।

शृङ्गेरी—दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यके कादूर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यहां शङ्करका मठ प्रतिष्ठित रहनेसे यह शङ्करमतावलम्बियोंके निकट एक पवित्र क्षेत्र समझा जाता है। यह अक्षा० १३° २५´ १०´´ उ० तथा देशा० ७५° १७´ ५०´´ पू०के मध्य तुंगा नदीके किनारे अवस्थित है।

स्थानीय प्रवाद है, कि यहां विभाण्डक ऋषि तपस्या करते थे तथा रामायणप्रसिद्ध ऋष्यशृंग ऋषिका इसी स्थानमें जन्म हुआ था। ७वीं सदीमें वेदान्तमतप्रवर्त्तक सुप्रसिद्ध भाष्यकार शङ्कराचार्यने यहां आ कर मठ खोला था। इसीसे इस स्थानको इतनी प्रसिद्धि है। कहते हैं, कि शङ्कराचार्यने उसी समय काश्मीरसे सारदअम्मा या सरस्वतीमूर्त्ति ला कर यहां प्रतिष्ठा की थी।

शङ्करके बादसे शृंगेरि मठकी गुरुप्रणाली एक तौर पर चली आती है। वे सभी 'जगद्गुरु' कहलाते हैं। स्थानीय स्मार्त्त ब्राह्मण और शैव धर्मावलम्बी जगद्गुरुका विशेष सम्मान और भक्ति करते हैं। शृंगेरिमठाचार्य जगद्गुरु नृसिंह आचार्य अद्वितीय पण्डित थे। वे कभी कभी भारतके नाना स्थानोंमें जा कर वहांके अधिवासियोंको धर्मोपदेश देते थे। वे भ्रमणकालमें कई जगह देशहितकर कार्यमें प्रचुर अर्थ दान कर गये हैं।

तुंगा नदीके किनारे इस मठको पर्याप्त भूसम्पत्ति है। जो मांगनी भूमि कहलाती है, यह भूसम्पत्ति बहुत पहले देवोत्तर रूपमें दी गई है। इसके सिवा महिसुर-राज भी शृंगेरी मठके खर्चा वर्चाके लिये मासिक वृत्ति देते हैं। सालमें कई बार शृंगेरि पर उत्सव होता है। उस उत्सवमें हजारों लोग जुटते हैं। उत्सवके समय मठकी ओरसे ही लोगोंको भोजन मिलता है। इस समय कंगाल स्त्रियोंको कपड़े और पुरुषोंको रुपये पैसे बांटे जाते हैं।

शृङ्गेश्वर (सं० पु०) शिवलिंगभेद, सम्भवतः शृंगीश्वर तीर्थका प्रसिद्ध लिंग।

शृङ्गोत्पादन (सं० त्रि०) शृंगस्य उत्पादनं यस्मात्। १ शृंगोत्पादनकारी, जिससे शृंग उत्पन्न हो। (क्ली) २ शृंगका उद्गम।

शृङ्गोत्पादिनी (सं० स्त्री०) यक्षिणीभेद।

शृङ्गोच्छ्रय (सं० पु०) उच्चशृंग।

शृङ्गोन्नति (सं० स्त्री०) ग्रहों और नक्षत्रों आदिको एक प्रकार गति (Right ascension)।

शृङ्गोष्णीष (सं० पु०) सिंह, शेर।

शृङ्ग्य (सं० त्रि०) शृंग इव (शाखादिभ्यो यः। पा ५।३।१०३) इति य। शृंग सदृश।

शृणि (सं० स्त्री०) अङ्कुश, आँकुस।

शृत (सं० पु०) श्रा पाके क्त (श्रृतं पाके। पा ६।१।२७) इति शृभावः। १ पक्व क्षीराज्यपयः, औटा हुआ दूध या पानी। २ क्वाथ, काढ़ा। पर्याय—क्वाथ, कषाय, और निर्यूह।

वैद्यक मतसे इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—एक पल परिमित द्रव्यको अच्छी तरह कूट कर उसे १६ गुणे जलमें मिट्टीके बरतनमें उबाले। पीछे आठवां भाग रहते उसे उतार ले। इसीको शृत या क्वाथ कहते हैं। एक कर्षसे एक पल पर्यन्त द्रव्यमें १६ गुणा जल डालना होगा। यदि उसका परिमाण आध सेर हो, तो उसके ८ गुने जलसे शृतपाक करे। उससे ऊपर प्रस्थ आदि कर द्रव्यका मान जितना ही बढ़ता जायगा, जल चौगुना देना उचित है। धीमी आंचमें पाक करना होता है।

पानविधि—यह प्रबल अग्निविशिष्ट व्यक्तिके लिये १ पल अर्थात् ८ तोला, मध्यमाग्निविशिष्ट व्यक्तिके लिये ६ तोला और हीनाग्नि व्यक्तिके लिये ४ तोला कहा गया है।

दूसरे तन्त्रमें लिखा है, कि शृत द्रव्य एक पल ले कर उसे १६ गुने जलमें पाक करे। पीछे चतुर्थांश रहते उतार ले। वह पादशेष प्रबल अग्निविशिष्ट व्यक्तिको कुल मध्याग्निविशिष्टको आधा और हीनाग्निविशिष्टको आठवाँ भाग पिलावे। पादशेष क्वाथकी अपेक्षा अष्टांश शेष क्वाथ अधिक गुरु और गुणविशिष्ट होता है, इस कारण प्रबलाग्नि व्यक्ति २ पल और हीनाग्नि विशिष्ट १ पल पान करे।

शृतमें यदि कोई द्रव्य डालना हो, तो उक्त नियमसे डालना होता है। चीनी डालनेसे वातजनित रोगमें चार भागका एक भाग, पित्तजनित रोगमें ८ भागका एक भाग और कफजनित रोगमें १६ भागका एक भाग देना होता है। मधु प्रक्षेपके सम्बन्धमें इसका विपरीत अर्थात् वातजनितरोगमें १६ भागका एक भाग, पित्तजनित रोगमें ८ भागका एक भाग कफजनित रोगमें ४ भागका एक भाग है।

जीरा, गुग्गुल, यवक्षार, सैन्धव, शिलाजीत, हींग और त्रिकटु इनके प्रक्षेपमें आध तोला दूध, घृत, गुड़, तेल अथवा अन्य किसी प्रकारके द्रव पदार्थ, कल्क चूर्ण आदिको प्रक्षेपमें २ तोला परिमाण डालना होता है।

अच्छी तरह कूटे हुए द्रव्यको भलीभांति धो कर पाक करनेसे जो विशुद्ध रस निकलता है, उसे शृत कहते हैं।

शृतकाम (सं० त्रि०) १ दूध औटनेमें इच्छुक। २ पाक करनेमें इच्छुक।

शृतङ्कर (सं० त्रि०) पाककारी, रीन्धनेवाला।

शृतङ्कर्तृ (सं० त्रि०) सिद्धकार, रींधने या पाक करनेवाला।

शृतकृत्य (सं० क्ली०) पाककार्य, रींधना।

शृतत्व (सं० क्ली०) पाकका भाव या धर्म, शृतकार्य।

शृतपा (सं० स्त्री०) एक सोमादि हविः अपहरण करके पानकारी।

शृतपाक (सं० त्रि०) देवताओंका उपयुक्त पाकविशिष्ट।

शृतशीत (सं० क्ली०) पक्वशीतल जलादि, औटाया हुआ पानी जो प्रायः ज्वरके रोगियोंको दिया जाता है। यह जीर्णज्वर और सन्निपातनाशक, धातुक्षय, रक्तविकार, वमि, रक्तमेह और विषविभ्रममें पथ्य माना जाता है। (भावप्र०) राजनिर्घण्टके मतसे यह जल पार्श्वशूल, प्रतिश्याय, वात, नवज्वर, हिक्का और आध्मानमें विशेष उपकारी होता है।

शृतातङ्क (सं० त्रि०) १ पाकभय। २ पाकरोग। ३ औट कर दूध गाढ़ा करना।

(तैत्तिरीयस० ५।२।६।३)

शृतावदान (सं० क्ली०) वह काष्ठ या लकड़ी जो पुरोडाश या पिष्टक आदि प्रस्तुत करनेके लिये काटी गई हो।

शृतोष्ण (सं० त्रि०) १ पाकतप्त। २ पाक द्वारा उत्तम खाद्यादि।

शृधु (सं० पु०) शृध बाहुलकात् कु। १ बुद्धि। २ मलद्वार, गुदा।

शृधू (सं० पु०) शृध (भृति शृध्वोः कुः। उण् १।९३) इति कू। १ मलद्वार, गुदा। (संक्षिप्तसा० उणादि) (त्रि०) २ कुत्सित बुरा, खराब।

शृध्या (सं० स्त्री०) उत्साहनीय कर्म। "यः शर्वते नानुददाति शृध्यां" (ऋक् २।१२।१०) 'शृधां उत्साहनीयं कर्म। (सायण)

शृष्टि (सं० पु०) कंसके आठ भाइयोंमेंसे एक।

शेउड़ा—मध्यभारत एजेन्सीके अन्तर्गत एक नगर। यह मेवाड़से ३६ मील पूर्वमें अवस्थित है। हिन्दू-अधिवासियोंकी संख्या ही अधिक है।

शेउता—युक्तप्रदेशके अयोध्याविभागान्तर्गत सीतापुर जिलेकी बिश्वान् तहसीलका एक नगर। यह सीतापुर नगरसे ३२ मील पूरब चौका और घघरा नदीके संगमस्थान पर अवस्थित है। कन्नौजराज जयचांदने अनुगृहीत आल्हा नामक एक चन्देल राजपूतसरदार राजासे गनजार प्रदेश जागीरमें पाया। उन्हींके वंशधर ठाकुर उपाधिसे यहांके अधिकारी हैं। यहां आज भी आल्हा द्वारा प्रतिष्ठित किला और पुरानी मसजिद विद्यमान है।

आल्हा ठाकुर एक विशिष्ट योद्धा थे। दूसरे कहना है, कि वे महोबाराज परमालदेवके एक प्रधान सेनानायक थे। आप बनाफरवंशीय कह कर प्रसिद्ध हैं।

शेउदिवदार—बम्बईप्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत गोहेलवाड़ प्रान्तका एक सामन्तराज्य। यहांके अधिकारी बड़ौदाके महाराज और जुनागढ़के नवावको वार्षिक कर देते हैं।

शेउनी (शिवनी या शिवानी)—मध्यप्रदेशके जब्बलपुर विभागका एक जिला। यह अक्षा० २१° ३६´ से २२° ५७´ तथा देशा० ७९° १९´ से ८०° १७´ पू०के मध्य विस्तृत है। इसके उत्तरमें जब्बलपुर, पूर्वमें मण्डला और बालाघाट जिला, दक्षिणमें बालाघाट, नागपुर और भंडरा जिला तथा पश्चिममें नरसिंहपुर और छिन्दवाड़ा जिला हैं। भूपरिमाण ३२०६ वर्गमील। शिवनीनगरमें इसका विचार-सदर है।

सतपुरा पर्वतकी अधित्यकाभूमि ले कर यह जिला संगठित हुआ है। इसके उत्तरमें नर्मदा उपत्यका भूमि और दक्षिणमें नागपुरका विस्तीर्ण प्रान्तर है। जिलेके उत्तर और पश्चिम लक्ष्णादोन और शिउनी नामका विस्तृत अधित्यका भूमि तथा उनके मध्यभागकी उपत्यकाभूमि, पूर्वांशमें एकमात्र वेणगंगा नदीका पार्वत्य अववाहिका प्रदेश और उसके मध्यभागकी उच्च भूमि देखी जाती है। शेउनी और लक्ष्णादोन अधित्यका समुद्रकी तहसे १८००—२००० फुट ऊंची है।

वेणगंगा ही यहांकी प्रधान नदी है। यह नदी कुराइघाटके समीप नागपुरसे कुछ पूरब दक्षिणपूर्वाभिमुखी हो बालाघाट और शिउनीकी सीमारूपमें चली गई हैं। हीरो और सागर नामको दो शाखा-नदी दक्षिणी किनारेसे तथा थेली, बिजना और थानवार बायां किनारेसे इसके कलेवरको पुष्ट करती रहती हैं। इनके सिवा तीमार और शेर नामकी नदियां उत्तराभिमुख हो नर्मदामें मिल गई हैं। जिलेके पश्चिम शिउनीके मध्य पेंच नामक नदी बहती है। सोनाई डोंगरी नगरके पास नागपुर और जब्बलपुरके रास्तेको कोर नदीने अतिक्रम किया है। नदीके ऊपर एक सुन्दर पत्थरका

पुल है। इस जिलेके नाना स्थानोंमें लोहा पाया जाता है। किन्तु एकमात्र पिपावाणीके पास जुतामा नामक स्थानमें लोहेका कारखाना खोला गया है। छोटी छोटी नदियोंसे स्वर्णरेणु बह कर आते हैं। स्थानीय सोझिरिया और मुण्डिया नामकी जातियां बालू धो कर सोना इकट्ठा करती हैं। इस पर्वत प्रधान देशके दक्षिण crystalline rock, पश्चिम metamorphic rock, gneiss और micaceous schist और पूरबमें स्फटिक और trap नामक प्रस्तरस्तर पाया जाता है। उत्तरमें भी Laterite प्रस्तरका विस्तीर्ण स्तर है।

इस विस्तीर्ण अधित्यका देशके बीच बीचमें जो सब उपत्यकाभूमि दृष्टिगोचर होती है, वे सभी उर्वरा नहीं हैं। जहां काली मिट्टी पाई जाती है वहां खेती बारीको सुविधा तो है, पर जहां मिट्टीमें चूना मिला हुआ है वहां किसी प्रकारकी उत्पन्न नहीं होती। जिलेके दक्षिण उन्नत पार्वत्य देशमें जो खण्ड खण्ड बालुकामय उपत्यका है वहां अनाज बहुतायतसे उत्पन्न होता है। यहां पहले शाल और देवदारुका विस्तृत वन था। जलावन और कोयलेके लिये पुराने शालके पेड़ काट डाले गये हैं। जबसे अंगरेजोंने वनविभागके लिये आईन निकाला, तबसे शालवृक्षकी रक्षा होती है। वेणगंगा नदीके किनारे भी देवदारुका वन देखा जाता है। सोनावाणीके समीप विस्तृत बांसका जंगल है।

इस स्थानका कोई प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। पुराण-वर्णित राजा विन्ध्यशक्ति विन्ध्याद्रि प्रदेशमें राज्य करते थे। अधिक सम्भव है, कि उनके वंशधरोंने सतपुराके अधित्यका देशमें भी शासन विस्तार किया था। ५वीं सदीमें राष्ट्रकूट, चालुक्य आदि कुछ विजेतृ राजवंशने यहां राज्य फैलाया। अजण्टा गुहामन्दिरकी राशिचक्र गुहाकी शिलालिपि और शिवनीमें प्राप्त कुछ ताम्रफलकसे इसका प्रमाण मिलता है। किन्तु यहांका प्रकृत इतिहास गढ़मण्डलाधिपति राजा संग्राम शाहके राज्यकालसे माना जाता है।

राना संग्राम शाहने १५२० ई०में अपने भुजबलसे ५२ सामन्त सरदारोंके अधिकृत प्रदेश दखल किये। उनमेंसे घनशोर, चौरी और डोङ्गरतालनायक प्रदेश वर्त्तमान जिलेका अधिकांश स्थान ले कर गठित था। प्रायः दो सदी पीछे उस वंशके राजा नरेन्द्र शाहने उक्त तीनों स्थान देवगढ़पति राजा भक्त बलन्दको पुरस्कारमें दे दिये, क्योंकि उन्होंने शाहजीको राजद्रोह दबानेमें मदद पहुंचाई थी। राजा भक्त बलन्दने नवप्राप्त शिवनी राज्यका सुशासन करनेके लिये अपने आत्मीय राजा रामसिंहको उस प्रदेशका शासनकर्त्ता बनाया। राजा रामसिंहने ही वहांके छपरा नगरमें एक दुर्ग बनवा कर वहां राजधानी बसाई थी।

इसके कुछ समय बाद राजा भक्त बलन्द राज्य वृद्धिकी वासनामें उद्दीप्त हो सैन्यसंख्या बढ़ाने लगे। इस समय ताज खाँ नामक एक मुसलमान वीरके साथ उनकी मित्रता हुई। राजाकी सहायता पा कर ताज खाँने भंगरा जिलेके अन्तर्गत सानगढ़ीको अधिकार कर लिया।

१७४३ ई०में नागपुरराज रघुजी भोंसलेने देवगढ़के राजाको परास्त कर उनकी राजशक्ति चूर कर दी, किन्तु ताज खाँके पुत्र महम्मद खाँने नागपुरपतिको राजा स्वीकार नहीं किया; उन्होंने सानगढ़ीमें रह कर लगातार तीन वर्ष तक महाराष्ट्र सेनाके विरुद्ध युद्ध किया था। नागपुरराजने उनके असाधारण वीरत्व पा मुग्ध हो उन्हें कहला भेजा, कि यदि वे सोनगढ़ी छोड़ दें, तो उसके बदले उन्हें शिवनी जिला अर्पण किया जाय। महम्मदने इसे कबूल कर लिया इस पर रघुजीने उन्हें दीवानकी उपाधि दे कर छपरा भेजा। तदनुसार वे छपरामें आ कर शिवनीका शासन करने लगे।

इस समय किसी विशेष कार्योपलक्षमें दीवान महम्मद खाँको नागपुर-राजधानीमें जाना पड़ा। इस सुअवसरमें मण्डलाके राजाने छपराको आक्रमण कर अधिकार कर लिया। युद्धमें जो सब सेना मारी गई उन्हें दुर्गमें एक लंबा चौड़ा गड्ढा खोद कर गाड़ दिया गया। पीछे उसके ऊपर एक चौकोन मीनार खड़ा किया गया, आज भी भग्न दुर्गमें उस मीनारका निदर्शन दिखाई देता है।

जो हो, छपरेमें मुसलमानोंकी पराजयका संवाद

यथा समय महम्मद खाँको मिला। उन्होंने फौरन नागपुरसे बहुसंख्यक सेना लेकर छपरेको दखल किया। इस युद्धमें सन्धिके अनुसार थानवार और गंगा नदी शिवनी और मण्डला राज्यकी सीमारूपमें निर्द्धारित हुई। १७६१ ई०में महम्मदकी मृत्युके बाद उसका लड़का माजिद खाँ तथा १७७४ ई०में माजिदका लड़का महम्मद अमीन खां पितृराज्यका अधिकारी हुआ। अमीन खाँ शिवनीमें प्रासाद बना कर वहां राजधानी उठा ले गया। प्रायः २० वर्ष राज्य करनेके बाद अमील खाँ इस लोकसे चल बसा। पीछे उसका बड़ा लड़का महम्मद जमाज शाह मसनद पर बैठा। इस नवीन दीवानके राज्य-कार्यमें अक्षम होनेसे चारों ओर अशान्त फैल गई। उस समय छपरा नगरकी राजधानीरूपमें गिनती नहीं रहने पर भी वहांकी आबादी कम न थी। इसी समय पिण्डारी दस्युदल समृद्ध नगर लूटनेकी आशासे दलबलके साथ वहां आ धमका। उन लोगोंने नगरवासीका धन रत्न लूटते समय प्रायः चालीस हजार नगरवासियोंके प्राण लिये थे। उनके अत्याचारसे नगर श्रीभ्रष्ट और समृद्धिहीन हो गया। दीवानकी इस अकर्मण्यतासे १८०४ ई०में अंगरेजराजने नूतन सम्पत्ति हस्तगत करनेके अभिप्रायसे नागपुरपति महम्मद जमान शाहको पदच्युत किया। पीछे उन्होंने वह सम्पत्ति ३ लाख रुपयेके मुनाफे पर खड्ग भारती नामक एक गोसांईके हाथ बंदोबस्त कर दी।

नागपुर-राजशक्तिके अवसानके बाद शिवनी अंगरेजोंके दखलमें आया। तभीसे यहां कोई युद्धविग्रह नहीं हुआ। यहांके उमरगढ़, भैंसागढ़, प्रतापगढ़ और कनाईगढ़ नामक स्थानमें कुछ ध्वस्त गिरिदुर्ग दिखाई देते हैं। इसके सिवा सोनवारा वनमें अष्टाग्राम और उगलीके समीप हीरी नदीगर्भस्थ उच्च शैल खण्ड पर दो गोंड़ दुर्ग हैं। बनसोर नामक स्थानमें ४० भग्नमन्दिरका निदर्शन मौजूद है। उससे नगरकी प्राचीन समृद्धिका परिचय मिलता है। उन मन्दिरोंमेंसे कुछ दाक्षिणात्यके हेमाड़पन्थी सम्प्रदायके खर्चा और उद्योगसे बनाये थे।

इस जिलेमें १ शहर और १३८९ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या तीन लाखसे ऊपर है। सैकड़े पीछे ५५ हिन्दू, ४० ऐनिमिष्ट और ५ मुसलमान हैं। यहांकी प्रधान उपज गेहूं, कोदो और धान है।

शिक्षा विभागमें यह जिला ग्यारहवां पड़ता है। अभी यहां एक हाई स्कूल, दो मिडिल इंगलिश स्कूल और साठ प्राइमरी स्कूल हैं। स्कूलके अलावा पाँच अस्पताल हैं। शिउनी शहरमें म्युनिसपलिटी स्थापित है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २१° ३६′ से २२° २४′ उ० तथा देशा० ७९° १९′ से ८०° ६′ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १६४८ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसमें शिउनी नामक एक शहर और ६७७ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २२° ५′ उ० तथा देशा० ७९° ३३′ पू० नागपुरके जब्बलपुर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। छपराके पठान गवर्नर महम्मद अमीन खाँने १७७४ ई०में इसे बसाया। वह अपना सदर यहाँ उठा लाया और एक दुर्ग बनवा गया। उस दुर्गमें आज उसीका वंशधर रहता है। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई। शहरमें एक हाई स्कूल, बालिका स्कूल और एक म्युनिसिपल मिडिल इंगलिश स्कूल है।

शिउनी मालवा—१ मध्यप्रदेशके होसङ्गाबाद जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २२° १३′ से २२° ३९′ उ० तथा देशा० ७७° १३′ से ७७° ४४′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४६० वर्गमील और जनसंख्या ७० हजारके करीब है। इसमें १ शहर और करीब दो सौ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २२° २७′ उ० तथा देशा० ७७° २९′ पू० बम्बईसे ४४३ मील ग्रेट इण्डियन पेनुनसला रेलवे लाइन पर अवस्थित है। जनसंख्या ७ हजारसे ऊपर है। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है जिससे नगर खूब साफ सुथरा है।

१७५० ई०में रघुजी भोंसले जब इस प्रदेश पर आक्रमण किया उसके बादसे नगरकी प्रतिष्ठा हुई। उस समय

यहां एक दुर्ग बनाया गया था। १८१८ ई०में अंगरेजी सेनाने होसङ्गावादसे आ कर दुर्ग पर कब्जा कर लिया। यह नगर नर्मदा उपत्यकाका एक वाणिज्यकेन्द्र है। भूपाल, नरसिंहपुर और होसंगावाद आदि स्थानोंसे रुईकी आमदनी होती है। यहांसे बम्बई शहरमें माल भेजनेके लिये एक पक्की सड़क चली गई है। ग्रेट इण्डियन पेनुनसुला रेलवेका यहां एक स्टेशन है। शहरमें एक मिडिल इंगलिश स्कूल और एक अस्पताल है।

शेउपुर—शिवपुर देखो।

शेउराज—पञ्जाबके कांगड़ा जिलान्तर्गत एक पहाड़ी प्रदेश, यह शौञ्ज और शतद्रु नामकी दो नदियोंके मध्यस्थलमें अवस्थित है। मध्य हिमालय पर्वतकी जलोरी नामक एक गिरिश्रेणी इस प्रदेशको दो भागोंमें विभक्त करती है। यहांका पहाड़ी प्रदेश बड़ा ही मनोरम है। पर्वतगात्रस्थ ग्राम स्वीजरलैण्डके 'Chalets' जैसा है। स्थानीय रमणियां बहुस्वामिताचार परायण हैं।

शेउरानी (शिवरानी)—तख्त्-इ-सुलेमान नामक पर्वत का एक अंश। यह देराइस्माइल खांसे देराफते खां तक विस्तृत है। उस पर्वत पर जिस मिश्र पठान जातिका वास है वह भी शेउरानी कहलाती है।

शेउरी नारायण—मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहां एक सुप्राचीन नारायण-मन्दिर विद्यमान है। उस मन्दिरगात्रमें ८४१ ई०में उत्कीर्ण एक शिलालिपि देखी जाती है। एक समय इस नगरमें रत्नपुर राजाओंकी राजधानी और प्रासाद थे। प्रति वर्षके माघ महीनेमें यहां देवताके उद्देशसे एक मेला लगता है।

शेख् (अ० पु०) १ पैगम्बर मुहम्मदके वंशजोंका उपाधि। २ मुसलमानोंके चार वर्गोंमें सबसे पहला वर्ग। ३ मुसलमान उपदेशक, इसलामधर्मका आचार्य। ४ पीर, बड़ा बूढ़ा।

शेख्चिल्ली (हिं० पु०) १ एक कल्पित मूर्ख व्यक्ति जिसके संबंधमें बहुत-सी विलक्षण और हंसानेवाली कहानियां कही जाती हैं। २ बैठे बैठे बड़े बड़े मंसूबे बांधनेवाला, झूठ झूठ बड़ी बड़ी बातें हांकनेवाला, मूर्ख मसखरा।

शेखपुरा—मुङ्गेर जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २५° ८′ उ० तथा देशा० ८५° ५१′ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या १० हजारसे ऊपर है। यह साउथ विहार रेलवे लाईन पर तथा वाणिज्य-प्रधान शहर है। यहां हुक्केका नारा तैयार होता है।

शेखबुदीन—पश्चिम भारतके देरा इस्माइल खां और बन्नू जिलेकी सीमा पर स्थित एक शैलवास। यहां मुसलमानसाधु शेख वहाउद्दीनका मकवरा है। यह अक्षा० ३२° १८′ उ० तथा देशा० ७०° ४६′ पू०के मध्य विस्तृत है। शेख वहाउद्दीनसे इस स्थानका शेखबुदीन नाम पड़ा है।

शेखर (सं० पु०) शिखि गतौ वाहुलकात् खर प्रत्ययेन साधुः। १ शिखावस्थित माल्य, शिर पर धारण की जानेवाली माला। २ शिरोभूषण, मुकुट, किरीट। ३ संगीतमें ध्रुव या स्थायी पदका एक भेद। ४ शृङ्ग, सिरा, चोटी। ५ शीर्ष, शिर, माथा। ६ श्रेष्ठतावाचक शब्द, सबसे श्रेष्ठ या उत्तम व्यक्ति या वस्तु। ६ रगणके पांचवें भेदकी संज्ञा। यथा,—व्रजनाथ। (क्ली०) ८ लवङ्ग, लौंग। ९ शिग्रुमूल, सहिंजनकी जड़।

शेखरज्योतिस् (सं० पु०) राजभेद।

शेखरभट्ट—स्तोभभाष्यके प्रणेता।

शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर (सं० पु०) धूर्त्तसमागमके प्रणेता। इनको कविशेखर और आचार्य उपाधि थी।

शेखरापीड़योजन (सं० पु०) चौंसठ कलाओंमेंसे एक कलाका नाम, शिर पर या केशोंमें फूलोंसे अनेक प्रकारकी रचना करना।

शेखरित (सं० त्रि०) मुकुटयुक्त।

शेखरी (सं० स्त्री०) १ वन्दा, वंदाक। २ लवङ्ग, लौंग। ३ शिग्रुमूल, सहिजनकी जड़।

शेख सद्दो (हिं० पु०) मुसलमान स्त्रियोंके उपास्य एक पीर जो कभी कभी भूतकी तरह उनके शिर पर आते हैं।

शेखावत (अ० स्त्री०) क्षत्रियोंकी एक जाति, कछवाहे राजपूतोंकी एक शाखा। कहते हैं, कि किसी मुसलमान शेख या फकीरोंको दुआसे इस वंशके प्रवर्त्तक उत्पन्न हुए थे जिनका नाम इसी कारण शेखाजी पड़ा।

जयपुर राज्यके अन्तर्गत शेखावारी नामक स्थानमें इस शाखाके राजपूत बसते हैं।

शेखावती—राजपूतानेके जयपुर राज्यका एक जिला या सबसे बड़ी निजामत। यह अक्षा० २७° २०' से २८° ३४' उ० तथा देशा० ७४° ४१' से ७६° ६' पू०के मध्य विस्तृत है। इसके उत्तर-पश्चिममें बीकानेर, दक्षिण-पश्चिममें जोधपुर, दक्षिण-पूर्वमें जयपुर और उत्तर-पूर्वमें पतियाला और लोहारु है। भूपरिमाण ४२०० वर्ग-मील है। इसमें १२ शहर और ६५३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ५ लाखके करीब होगी। सीकर, फतहपुर, नवलगढ़, झुनझुन, रामगढ़, लक्ष्मणगढ़ और उदयपुर ये सब प्रसिद्ध शहर हैं।

यहांका प्राकृतिक सौन्दर्य उतना अच्छा नहीं है। पश्चिमका अधिकांश स्थान बीकानेर राज्यकी तरह बालुकामय मरुसदृश है। उर्वर शस्यक्षेत्र मण्डित पूर्वांशका कुछ स्थान जयपुर राज्यके समान श्यामल भूषासे भूषित है। यहाँ एक छोटी नदी बहती है जो जयपुर राज्यके उत्तरांशसे निकल कर शेखावतीके मध्यस्थ बालुकामय प्रान्तरमें विलीन हो गया है। यहांके कछोररस नामक स्थानीय लवणहृदसे प्रति वर्ष १ लाख ७५ हजार मन नमक तैयार होता है। विशेष यत्नपूर्वक यदि कार्य किया जाय, तो वहाँसे और भी काफी परिमाणमें नमक तैयार हो सकता है। इसके सिवा यहाँ क्षेत्रि नामक स्थानके पास एक बड़ी ताँबेकी खान है। भारतमें और कहीं ऐसी खान देखनेमें नहीं आती। इसके सिवा ताम्रमिश्रित अग्निप्रस्तर (Copper pyrites and tetrahedrite), कबंनेटस, हीराकसीस, मैनसिल आदि भी पाये जाते हैं।

जयपुरराजके कुछ वंशधर राजपूत सरदारोंने शेखावतीका शासनभार ग्रहण किया। वे लोग आपसमें सौहार्दसूत्रसे आबद्ध तथा विपद्‌के समय जयपुरपतिको मदद देनेमें प्रतिज्ञाबद्ध हैं। शेखावत्‌गण कच्छवाहवंशीय हैं तथा सभी अम्बरेश्वरको ही अपना अधिपति मानते हैं। १३३६ ई०में जयपुर महाराजके छोटे लड़के बालाजीके एकलौते शेखाजीसे उनके वंशधरोंका शेखावत् नाम पड़ा है। शेखाजीने महाराजसे यह प्रदेश जीविकानिर्वाहकी वृत्तिस्वरूप पाया। शेखाजीके पिताने पुत्रकी कामनासे आयरोलके मुसलमान साधु शेख बुर्हानकी पूजा की। पीछे उस साधुके नामानुसार जात सन्तानका नाम शेखाजी रखा गया। उस घटनाका स्मरण कर आज भी सद्योजात शेखावत् बालकोंके हाथ शेखके सम्मानार्थ 'बधिया' (सूत्र) बांध दिया जाता है। दो वर्ष तक वह धागा बंधा रहता है तथा उस समय नील रंगका कुर्त्ता और टोपी पहनाई जाती है। उक्त पीरके प्रति भक्ति दिखलानेके लिये शेखावत लोग आज भी शूकरका शिकार नहीं करते।

शेखाजीने अपने भुजबलसे विपुल अर्थ और राज्य अर्जन किया। कई पीढ़ी तक उनके वंशधरोंकी शक्ति ऐसी बढ़ी कि उन्होंने जयपुर राजकी अधीनता पाश तोड़ कर एक स्वतन्त्र स्वाधीन राजपूत राज्यकी प्रतिष्ठा कर ली थी। शेखाजीके प्रपौत्र रायशीलसे दक्षिण शेखावत् या "रायशीलोत" राजपूत शाखाका तथा रायशीलके कनिष्ठ पुत्र उत्तर शेखावत् या साधनी नामक राजपूत सरदारवंशका उद्भव हुआ। साधनी राजवंश उक्त देशके उदयपुर नगरमें तथा रायशीलोतके वंश खान्देला राजधानीमें राज्य करने लगे। इसके सिवा उक्त वंशसे और भी कई छोटे छोटे सरदारवंशकी प्रतिष्ठा हुई। वे सब सरदार आपसमें लड़ कर मर कट रहे थे। किन्तु सभी समय शेखावत्‌गण रायशीलोतोंको अपने दलका अधिनायक बनाते थे। दिल्लीश्वरने रायशीलको खान्देल और उदयपुरवासी दुर्द्धर्ष शेखावतोंका अधिनायक नियुक्त कर दिया। आईन अकबरीमें लिखा है, कि सम्राट् अकबरने उन्हें १२५० सेनाका मनसबदार बनाया था।

१७५४ ई०में डि बोइनकी परिचालित मराठासेनाने मेर्त्तायुद्धमें शेखावतोंको परास्त किया तथा उनके उपद्रवसे खान्देला राजधानी और अन्यान्य नगर तहस नहस हो गये। क्षतिपूरणस्वरूप शेखावत्‌गण काफी रकम दे कर खान्देल-राजधानीकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए। इसके बाद अदृष्टान्वेषी यूरोपीय वीरपुङ्गव जार्ज टामस एक बार जयपुर राज्य पर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुए। इस समय खान्देलपतिने जयपुरराजके विरुद्ध जार्ज टामसको सहायता पहुँचाई थी। जो हो, आखिर

खान्देलपति जयपुरराजको ही अपना नायक माननेके लिये वाध्य हुए।

शेखी (फा० स्त्री०) १ गर्व, अहंकार, घमण्ड। २ शान, ऐंठ, अकड़। ३ अभिमान भरी वात, डींग।

शेखीवाज़ (फा० वि०) १ अभिमानी, घमण्डी। २ डींग मारनेवाला व्यक्ति।

शेखूपुरा—पञ्जावके गुजरानवाला जिलेका एक सामन्त राज्य। इसमें १८० ग्राम लगते हैं, राजस्व १२००००) रु० है। १८४५ ई०में सिखसैन्यके अधिनायक और पेशावरके गवर्नर राजा तेजसिंहने इस राज्यकी प्रतिष्ठा की। तेजसिंहके प्रपौत्र राजा कोरसिंहकी १९०६ ई०में आकस्मिक मृत्यु हो गई। राज्य पर अभी इतना ऋण है, कि कोर्ट आव वार्ड इसकी देख रेख करता है।

शेखूपुरा—पञ्जावके गुजरानवाला जिलान्तर्गत खांगा दोगरान तहसीलका एक प्राचीन शहर। यह अक्षा० ३१°४३' उ० तथा देशा० ७४° १' पू० हफीजावाद और लाहोरके वीचमें अवस्थित है। जनसंख्या दो हजारसे ऊपर है। सम्राट् जहांगीरका वनाया एक प्राचीन ध्वस्त दुर्ग आज भी यहां विद्यमान है। जहांगीरके पौत्र कुमार दारा शिकोहके नामानुसार इस नगरका शेकोपुरा या शेखूपुरा नाम पड़ा है। दारा शिकोहकी काटी हुई नहर, रणजित्सिंहका रानीभवन और अदूरवर्ती वारदुआरी देखने लायक है।

अङ्गरेजोंके अधिकारमें आनेके वाद कुछ समय यहां जिलेका विचार सदर प्रतिष्ठित रहा। पीछे वह गुजरानवाला उठ कर चला गया।

शेणघण्टा (सं० स्त्री०) उदुम्वरपर्णी, दन्ती।

शेणवी (सं० स्त्री०) ज्ञान, वुद्धि। सेयानी देखो।

शेप (सं० पु०) शी वाहुलकात् प। १ शेफ, लिङ्ग, पुरुषकी इन्द्रिय। २ मुष्क, अण्डकोष। ३ पुच्छ, पूंछ।

शेपस् (सं० क्ली०) शेफस् देखो।

शेपहर्षण (सं० त्रि०) लिङ्गोच्छ्वास, शिश्नोत्थान।

शेपाल (सं० पु०) शी-वालन्, वाहुलकात् वकारस्य पकार। (उण् ४।३८) शैवाल, सेवार।

शेफ (सं० पु० क्ली०) शिश्न, लिंग।

शेफस् (सं० क्ली०) शेते रैतःपातानन्तरमिति शी (वृङ्शीङ्भ्यां स्वरूपाङ्गयोः पुट् च। उण् ४।२००) इति असुन, अत्र केचित् फ चेति पठन्ति इत्यतो फः। शिश्न, लिंग। (अमर) भरतने इस शब्दकी व्युत्पत्तिमें लिखा है—'शुक्र पाते सति शेते पतति इति शेफः शीङ् धातो र्नाम्नीति फस् प्रत्ययः। शेफसशेपसो शेफशेपौ शेवश्चेति पञ्च रूपाणि भवन्ति इति आचार्याः' (भरत)

शेफस्, शेपस्, शेफ, शेप और शेव ये पांच रूप होते हैं।

शेफालि (सं० स्त्री०) शेरते इति शेफाः शयनशालिनस्ताहृशा अलयो भृंगा यत्र। शेफालिका, निर्गुण्डी।

शेफालिका (सं० स्त्री०) शेफालि स्वार्थे कन्। १ स्वनाम ख्यात पुष्पवृक्षविशेष, निर्गुण्डी। इसे महाराष्ट्रमें पांढरी, सिगुण्ठी, तामिलमें मनजप, कलिंगमें विलियलोके, वम्बईमें हरसिंगार और पञ्जावमें लहरी कहते हैं। संस्कृत पर्याय—सुवहा, निर्गुण्डी, नीलिका, शेफाली, मलिका, रजनीहासा, निशिपुष्पिका। शुक्ल होने पर इसका पर्याय—शुक्लांगी, शीतमञ्जरी, विजया, वातारि और भूतकेशी। गुण—कटु, तिक्त, रुक्ष, वात, कफ और अङ्गसन्धिवात तथा गुदवातादि दोषनाशक। (राजनि०)

चक्रदत्तमें लिखा है, कि मधुके साथ इसका पत्ररस सेवन करनेसे मल निकलता है और सभी प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

शरत्कालमें इसमें फूल निकलता है। शरद भिन्न अन्य कालमें इसके फूलसे देवपूजा निषिद्ध है।

इसकी गंध कड़ी और मीठी होती है। इसकी प्रत्येक सींकमें अरहरकी पत्तियोंके समान पांच पांच पत्तियाँ होती हैं जिनका ऊपरी भाग नीला और नीचेका भाग सफेद होता है। इसकी अनेक जातियाँ हैं। किसीमें काले और किसीमें सफेद फूल लगते हैं। फूल आमके मौरके समान मंजरीके रूपमें लगते हैं और केसरिया रंगके होते हैं। शेफालिकी माला प्रणयिजनप्रिय है।

२ कृष्णनिर्गुण्डी, काली निसोथ।

शेफाली (सं० स्त्री०) शेफालि कृदिकारादिति वा ङीप्। १ शेफालिका, निर्गुण्डी। (शब्दरत्ना०) २ नील सिन्धुवार। (भावप्र०)

शेमुषी (सं० स्त्री०) शेषे इति शेः मोहः शी-विच्, तं

मुष्णातीति मुष् स्तेये मूलविभुजादित्वात् कः गौरादित्वात् ङीष्। बुद्धि, अक्ल।

शेय (सं० त्रि०) शेतव्य, शयनार्ह, सोनेके योग्य।

शेयर (अं० पु०) १ हिस्सा, भाग, साँझा। २ किसी कारबारमें लगी हुई पूंजीका अलग हिस्सा जो उसमें शामिल होनेवाला हर एक आदमी लगावे।

शेर (फा० पु०) १ बिल्लीकी जातिका सबसे भयंकर प्रसिद्ध हिंसक पशु, बाघ, नाहर। बाघ देखो। २ अत्यन्त वीर और साहसी पुरुष, बड़ा बहादुर आदमी।

शेर (अ० पु०) फारसी, उर्दू आदिकी कविताके दो चरण।

शेर—मध्य प्रदेशके शिवनी जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह खमारिया ग्रामके पाससे निकल कर उत्तर पूर्व गतिसे बहती हुई प्रायः ८० मील रास्ता तै करके बादमें नरसिंहपुर जिलेकी नर्मदा नदीमें (अक्षा० २३° उ० और देशा० ७६° १०′ पू०) मिली है।

शिवनी जिलेमें इस नदीके ऊपर सोणाई डोङ्गरी नगरमें एक पत्थरका बना सुन्दर पुल है। इसके सिवा नरसिंहपुर नगरसे ८ मील पूरब इस नदी पर इण्डियन-पेनिनसुला रेलवेका एक लोहेका पुल भी है। माचा, रेवा और बसरेवा इसके कलेवरको पुष्ट करती हैं। नदी गर्भमें जहां तहां कोयलेका खाद देखा जाता है, पर वाणिज्यपण्यके हिसाबसे उसका आदर नहीं है।

शेर अफगान खाँ—बङ्गालका एक मुसलमान शासनकर्त्ता। यह नूरजहां बेगमका पहला स्वामी था। तुर्क जातीय किसी भद्र वंशमें इसका जन्म हुआ था। इसने मुगल सम्राट् अकबर शाहकी ओरसे लड़ कर उन्हें बड़ा प्रसन्न किया और उन्हींकी कृपासे इसको वर्द्धमान प्रदेशकी जागीर मिली। १६०७ ई०में जहांगीरके उभाड़नेसे बंगालके मुगल-शासनकर्त्ता कुतुबुद्दीनने उसका काम तमाम किया। इसका पहला नाम अष्ट फिल्ली वा अली कुलीबेग था। अपने हाथसे एक सिंह (किसीके मतसे व्याघ्र) मार कर इसने सम्राट्से शेर अफगानकी उपाधि पाई थी।

शेर अली—बम्बई प्रदेशके उत्तर आर्कट जिलेका एक बन्दर। यह वेङ्कटपुर नदीके मुहाने पर अवस्थित है। पहले यहां नमक तैयार हो कर जलपथसे भिन्न भिन्न स्थानोंमें भेजा जाता था। अभी वह वाणिज्य बंद हो गया है।

शेरकोट—युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलान्तर्गत धामपुर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २६° २०′ उ० तथा देशा० ७८° ३६′ पू० बिजापुर शहरसे २८ मील पूरबमें अवस्थित है। जनसंख्या १४ हजारसे ऊपर है। शेरशाहके समय यह नगर बसाया गया। १८०५ ई०में अमीर खाँ पिण्डारीने इस नगरको तहस नहस कर डाला। १८५७ के गदरमें यहां राजभक्त हिन्दू और बागी मुसलमानोंके बीच घमसान लड़ाई छिड़ी थी। पहले यह शहर धर्मपुर तहसीलका सदर समझा जाता था। शेरकोट सम्पत्तिके अधिकारी एक राजपूत सरदारवंशका प्रासाद आज भी यहां मौजूद है। चीनी और फूलदार कार्पेटके कारबारके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

शेरखाँ—एक मुसलमान कवि, आमजाद खाँ लोदीका लड़का। इसने मिरात् उल-खयाल नामक एक तजकिराकी रचना की। वह ग्रन्थ आलमगीर बादशाहके अमलमें रचा गया था। ग्रन्थमें उस समयके मुसलमान-कवि, विज्ञानवित्, सङ्गीताचार्य, ज्योतिर्वित्, आयुर्वेदवित् और भूतत्त्वविदोंकी जीवनी और कार्यावली लिपिबद्ध है।

शेरखाँ—एक अफगान वीर। इसने बङ्गालमें सैन्यसंग्रह करके मुगल सम्राट् हुमायूंको भारतसे निकाल दिया था और आप शेरशाह नाम धारण कर दिल्लीके सिंहासन पर बैठा। शेरशाह देखो।

शेरगढ़—बिहार और उड़ीसाके ससराम उपविभागके अन्तर्गत शाहाबाद जिलेका एक बड़ा गाँव। यह अभी श्रीभ्रष्ट और ध्वस्तावस्थामें पड़ा है और ससरामसे २० मील दक्षिण-पश्चिम अक्षा० २४° ४६′ ४२″ उ० तथा देशा० ८३° ४६′ १५″ पू०के मध्य विस्तृत है। रोहितस दुर्गसे सुरक्षित करते समय दिल्लीश्वर शेरशाहने रोहितसका परित्याग कर यहीं पर दुर्ग बनवाया था। पीछे उसीके नामानुसार इसका शेरगढ़ नाम पड़ा।

शेरगढ़—युक्तप्रदेशके मथुरा जिलान्तर्गत छाता तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २७° ४६′ ४०″ उ० तथा देशा० ७७° ३६′ ५०″ पू०, यमुना नदीके दाहिने किनारे छाता नगरसे ८ मील उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। दिल्लीके

सम्राट् शेरशाहने यहां एक बहुत बड़ा किला बनवाया था। उसी किलेके नामानुसार यह स्थान शेरगढ़ नामसे प्रसिद्ध हुआ। किला अभी टूटी फूटी अवस्थामें पड़ा है।

पहले शेरगढ़ एक पठान जमींदारकी सम्पत्ति था। अभी उस वंशका कोई वंशधर इसके केवल सामान्य अंशका उपभोग करता है। अवशिष्ट सम्पत्ति मथुराके विख्यात महाजन धनी शेठ गोविन्द दासने खरीद कर द्वारकादास मन्दिरके खर्च वर्चके लिये अर्पण कर दी है।

शेरगुलाबी (फा० पु०) गहरा गुलाबी रंग।

शेरघाटी—गया जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २४° ३३´ उ० तथा देशा० ८४°४८´ पू० गया शहरसे २१ मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या तीन हजारके करीब है। नगर म्युनिसपलिटोके अधीन रहनेसे खूब साफ सुथरा है। पहले यह नगर वाणिज्य व्यवसायके कारण बहुत समृद्धिशाली था। इष्ट इण्डिया रेलवेके खुल जानेसे उसका बहुत कुछ ह्रास हो गया है। आज भी यहां पीतल, तांबे और लोहेकी वस्तु बनानेके लिये कारीगर और कारवार है।

शेर दहां (फा० पु०) १ जिसका मुंह शेरका-सा हो। २ जिसके छोरों पर शेरका मुंह बना हो। (पु०) ३ वह जिसकी घुंटी शेरके मुंहके आकारकी बनी हो। ४ पुराने ढंगकी एक प्रकारकी बन्दूक। ५ वह मकान जो आगेकी ओर चौड़ा और पीछेकी ओर पतला या संकरा हो।

शेरपंजा (हि० पु०) शेरके पंजेके आकारका एक अस्त्र, बघनहा।

शेरपुर—युक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° ३४´ उ० तथा देशा० ८३° ५०´ पू०के मध्य विस्तृत है। यह नगर गंगाके किनारे और नदीगर्भस्थ चरके ऊपर बसा है। गाजीपुरसे १० मील पूरब होनेसे उक्त नगरके साथ इसका यथेष्ट वाणिज्य सम्बन्ध है।

शेरपुर—बंगालके बगुड़ा जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २४° ४०´ उ० तथा देशा० ८९° २६´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ४ हजारसे ऊपर है। यह नगर मुसलमानी अमलमें बहुत प्रसिद्ध था। यहां हिंदूकी संख्या ज्यादा होने पर भी इसके चारों ओर जो मुसलमानोंकी कीर्त्तियां हैं, उनसे जाना जाता है, कि एक समय यहां बहुतसे मुसलमान रहते थे। आईन इ-अकबरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह स्थान १५९५ ई०में सलीमनगर नामसे प्रसिद्ध था। सम्राट् अकबर शाहने यहां एक दुर्ग बनवाया। उनके पुत्र सलीम शाहके नामानुसार दुर्ग और नगरका नाम रखा गया। मुसलमान ऐतिहासिकोंने इस स्थानका 'शेरपुर मुरचा' नामसे उल्लेख किया है। यह स्थान उस समय मुगलराज्यका सीमान्त दुर्ग समझा जाता था। मुगल सेनापति राजा मानसिंह यहां एक प्रासाद बनवा गये हैं। कहते हैं, कि वे उस प्रासादमें रह कर बंगेश्वर राजा प्रतापादित्यके विरुद्ध सैन्यपरिचालना करते थे। ढाकामें मुसलमान शासनाधिकार प्रतिष्ठित होनेसे शेरपुरकी प्रधानता लोप हो गई।

शेरपुर—बङ्गालके मैमनसिंह जिलान्तर्गत जमालपुर उपविभागका एक नगर। यह अक्षा० २५° १´ उ० तथा देशा० ९०° १´ पू०के मध्य श्रोनदीसे एक पाव और मिरघो नदीसे आध कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहां नावसे पाट, सरसों और चावल आदिका व्यवसाय चलता है। जनसंख्या १२ हजारसे ऊपर है।

शेरपुर—बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत एक उपविभाग और नगर। यह अक्षा० २१° २१´ उ० तथा देशा० ७४° ५२´ पू०के मध्य अवस्थित है। १३७० ई०में दिल्लीके सम्राट् फिरोज तुगलकने खान्देश राज्यके प्रतिष्ठाता मालिक राजाको यह उपविभाग जागीरमें दिया था। १७८५ ई०में यह होलकर राज्यकी सीमामें मिला दिया गया और १८१८ ई०में होलकरने इसे अङ्गरेजराजको प्रदान किया।

शेरबच्चा (हि० पु०) १ शेरका बच्चा। २ वीर पुत्र, पराक्रमी पुरुष, बहादुर आदमी। ३ एक प्रकारकी छोटी बन्दूक।

शेरबबर (फा० पु०) सिंह, केसरी।

शेरभ (सं० पु०) १ आश्रितका सुखदाता। २ शरभके समान हिंसाकारी राक्षसाधिपति। 'हे शेरभक स्वाश्रितानां सुखस्य प्रापक। शरभवत् सर्वेषां हिंसको वा शेरभः यातुधानाधिपतिः। असौ ग्रामणीः प्रधानभूतो

यस्य तत् सचिवादिः शेरभकः। 'स एषां ग्रामणीः' इति कन् प्रत्ययः।' (अथर्व २।२४।१ सायण)

शेरमर्द (फा० वि०) बहादुर, वीर।

शेरमर्दी (फा० स्त्री०) बहादुरी, वीरता।

शेरवानी (हिं० स्त्री०) अङ्गरेजी ढंगकी काटका एक प्रकारका अंगा। यह घुटनों तक लम्बा होता है। इसमें बालावर, कली और चौबगले काट कर नहीं लगाये जाते। आगे जिस ओर बटन लगाया जाता है, उसकी नीचेका आधा भाग अधिक चौड़ा होता है जिसमें बंद या हुक लगा कर दूसरे भागके नीचे करके बांधते या बंद करते हैं। मुसलमानोंमें इसका रवाज अधिक है।

शेरशाह—शूरवंशीय एक मुसलमान योद्धा। इनका प्रकृत नाम फरीद था। इनके पिता हसन पेशावरके अन्तर्गत रोहनिवासी थे। वे जौनपुरके शासनकर्त्ता जमाल खाँके अधीन ५०० अश्वारोही सेनाकी रक्षा करते थे। इस कार्यके लिये जमाल खाँने उन्हें ससराम और ताण्डा प्रदेश जागीरस्वरूप प्रदान किया था। पञ्जावके अन्तर्गत हिसार नगरमें शेरशाहका जन्म हुआ था, इसलिये वे हिसारनिवासी कहलाये। फरीदने बाल्यकालमें कुछ दिनों तक बिहारके शासनकर्त्ता महम्मद लोहानीके सेनाविभागमें काम किया था। उस समय एक दिन उन्होंने अपने भुजबलसे एक बाघको (मतान्तरसे सिंहको) तलवार द्वारा दो खण्ड कर दिया था, इसलिये उनके प्रतिपालकने उन्हें शेर खाँकी उपाधि दी।

मुगल-बादशाह हुमायूंने जिस समय बिहार पर आक्रमण किया था, शेर खाँने उस समय उन्हें युद्धमें पराम्त किया (१५३९ ई०की २६वीं जून)। इसके बाद शेर खाँने सम्राट्का पीछा किया और १५४० ई०की १७वीं मईको कन्नौजके रणक्षेत्रमें उन्हें सेनाके साथ हरा दिया। मुगल-सम्राट् निरुपाय हो कर क्रमसे उत्तर-पश्चिम भारतकी ओर अग्रसर हुए। उस समय शेर खाँने भी अपनी सेनाके साथ उनका पीछा करते हुए आगरासे लाहोर और खुसावकी यात्रा की। हुमायूं शाह उस समय किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो कर खुसाबसे भाग चले और सिन्धनद पार कर भारतराज्यका त्याग करनेके लिये बाध्य हुए।

शेर खाँ इस विजयसे उल्लसित हो कर मुगलके परित्यक्त दिल्लीके सिंहासन पर जा बैठे। १५४२ ई०को २५वीं जनवरीको शेर खाँ अपना नाम शेरशाह रख भारत-साम्राज्यका अधीश्वर बन बैठे। उनके राज्याधिकारसे ही शूरराजवंशकी प्रतिष्ठा हुई।

भारतवर्ष शब्दमें शूरराजवंश देखो।

उनके शासनकालके पाँचवें वर्षमें वे कालिञ्जर-दुर्ग पर अधिकार करनेके अभिप्रायसे अपनी सेना ले कर आगे बढ़े। उस समय भारतके पार्वतीय दुर्गोंके मध्य यह दुर्ग अजेय गिना जाता था। दुर्ग पर आक्रमण करनेके समय उनकी सेना दुर्गकी दीवार तोड़नेके लिये भीषण अस्त्र ले कर दुर्गके पास जा डटी। शेर खाँकी आज्ञासे कमानवाही सैनिकोंने कमानमें अग्नि लगा दी। अचानक कमानसे बाहर होते ही एक गोला फट गया, जिससे निकले हुए उत्तप्त लोहकणोंसे बहुतसे निकटस्थ सैनिकोंके प्राण नष्ट हो गये। एक अग्निकी चिनगारी उड़ कर निकटवर्त्ती बारूदखानामें जा गिरी और बारूदमें आग लग गई। बारूदमें आग लग जानेके कारण अनेकों सैनिकके प्राण विनष्ट हो गये। शेरशाह भी उस समय वहां ही थे एवं बारूदकी आगसे उनका सारा शरीर दग्ध हो गया। सम्राट् यातनासे विह्वल हो उठे। उस समय सैनिकगण उन्हें युद्धके बाहर ले आये। उन्होंने उसी मृतप्राय अवस्थामें दुर्ग पर आक्रमण करनेके लिये जोशीले वचनोंसे अपने सैनिकोंको उत्तेजित करने लगे।

सन्ध्याके समय कालिञ्जरके दुर्ग पर शेरशाहका अधिकार हो गया। यह सम्वाद पा कर वे हृदयसे ईश्वरका नाम ले कर चिल्ला उठे। उसके कुछ ही क्षणके बाद उनका प्राणपखेरू उड़ गया (१५४५ ई० २४ मई)।

उनकी मृत्युके बाद उनकी लाश ससराममें लाई गई। उन्होंने अपने जीवनकालमें ही पैतृक सम्पत्तिके मध्य अपनी कब्र तैयार कर रखी थी। वह समाधि मन्दिर एक सुदीर्घ दीर्घिकाके ऊपर तैयार किया गया था।

प्रवाद है, कि शेरशाहने ऐसे दोर्दण्डप्रतापसे राज्य शासन किया था, कि उसके राज्य भरमें चोर लुटेरोंका बिलकुल ही भय न था। पथिक वा तीर्थयात्री लोग शिरके तले अपनी गठरी रख निश्चिन्त हो कर सो

सकते थे। उनको मृत्युके बाद उनका पुत्र सलीम शाह दिल्लीके सिंहासन पर बैठे।

शेरसिंह—पञ्जाबकेशरी महाराज रणजित् सिंहके पौत्र और महाराज खड़्गसिंहके द्वितीय पुत्र। बड़े भाई नवनेहाल सिंहको मृत्युके बाद ये पञ्जाबके अधीश्वर हुए। १८४० ई०में वे लाहोरमें पैतृक सिंहासन पर बैठे सही, पर यथार्थमें सिखराज्यका शासनभार उनकी माता चाँदकुमारीके ऊपर रहा। माताकी स्वेच्छाचारिता और बुरे आचरण पर क्रुद्ध हो शेरसिंहने दो वर्षके बाद माताके हाथसे अपनी पैतृक सम्पत्तिका शासनभार छीन लिया। पीछे १८४३ ई० की १३वीं सितम्बरको खालसा-सेनाने राजप्रासादको घेर लिया। सरदार अजितसिंहने इसी समय दलबलके साथ राजपुरमें घुस कर प्रतापसिंह और शेरसिंहको मार डाला। इनके बाल बच्चोंको भी राजप्रासादसे निकाल कर मार डाला। शेरसिंहकी मृत्युके बाद राजा दलीपसिंह सिख-मसनद पर बैठे।

सिख देखो।

शेल (हिं० पु०) सेल देखो।

शेलक (सं० पु०) बहुवारवृक्ष, लिसोड़ा।

शेलमुख (सं० पु०) १ श्रीफल, बिल्ववृक्ष। २ एक प्रकार-का फूल।

शेलु (सं० पु०) शेलतीति शेल-गतौ-उ। १ बहुवारवृक्ष, लिसोड़ाका पेड़। २ उसका फल। मनुके मतसे लिसोड़ा खाना मना है। (मनु ५।६)

३ वनमेथी नामक शाक।

शेलुक (सं० पु०) १ बहुवार, लिसोड़ा। २ मेथिका, मेथी। ३ लोध्रवृक्ष, लोधका पेड़।

शेलुका (सं० स्त्री०) वनमेथी।

शेलुष (सं० पु०) एक प्रकारका लिसोड़ा।

शेव (सं० पु०) शेते रेतःपातानन्तरमिति शी (इण् शीङ्भ्यां वन। उण् १।१५१) इति वन्। १ मेढ्, लिङ्ग। २ अहि, सर्प। ३ अग्निका एक नाम। ४ उन्नति। ५ ऊँचाई। ६ धनसम्पत्ति। ७ मत्स्य, मछली। (क्ली०) ८ सुख (निघण्टु ३।६) (त्रि०) ६ सुखकर। (ऋक् १।५८।६)

शेव (अ० पु०) क्षौरकर्म, हजामत बनानेका काम।

शेवधि (सं० पु०) शेवं सुखं धीयतेऽस्मिन्निति धा-कि। निधि, खजाना। (मनु २।११४)

शेवधिप (सं० त्रि०) निधिपति, धनाधिपति।

शेवधिपा (सं० त्रि०) असुरविशेष।

शेवरक (सं० पु०) असुरविशेष।

शेवल (सं० त्रि०) १ शैवालवत् सम्बन्धविशिष्ट। (पु०) २ आचार्यभेद। (क्ली०) २ शैवाल, सेवार।

शेवलदत्त (सं० पु०) पाणिनिके अनुसार एक व्यक्ति।

शेवलिक (सं० पु०) अनुकम्पितः शेवलदत्तः शेवलदत्त-ठक्, (शेवलसुपरिविशालेति। पा ५।३।८४) इति अन्त-लोपः। अनुकम्पान्वित शेवलदत्त नामक मनुष्य। इस अर्थमें शेवलिर और शेवलिल ये दो पद भी होते हैं।

शेवलिनी (सं० स्त्री०) शेवलं शैवालमस्या अस्तीति इनि। नदी, दरिया।

शेवान (सेवान)—१ बिहारके सारण जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २५° ५६' से २६° २२' उ० तथा देशा० ८४° ७' से ८४° ४७" पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८३८ वर्गमील और जनसंख्या ८ लाखसे ऊपर है। जिले भरमें यहांकी आबादी घनी है। इसमें शेवान नामक एक शहर और १५२८ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर। यह अक्षा० २६° १३' उ० तथा देशा० ८४° २१' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १५ हजारसे ऊपर है। १८६६ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई। यहांकी सरस्वती नदीके किनारे प्राचीन नगरका ध्वस्त स्तूप पड़ा है। उस स्तूपको स्थानीय लोग तेहपोलर कहते हैं। वहां प्राचीन ईंट और शकराजाओंकी मुद्रा पाई गई है। मुगल बादशाहोंके अमलमें बनाया हुआ पुल आज भी वहां मौजूद है। वर्त्तमान नगरकी अवस्था उतनी उन्नत नहीं है। यहां धानकी फसल अच्छी लगती है।

शेवार (सं० पु०) सुखगमक यक्ष, सुखजनक यक्ष।

शेवाल (सं० क्ली०) शेते जले इति शी (शी-भो धुक् लक्-वलच् वालनः। उण् ४।३८) इति वालन्। शैवाल, सेवार।

शेवाली (सं० स्त्री०) आकाशमांसी, जटामांसीका एक भेद।

शेवृध (सं० त्रि०) वह वुद्धि जो रोगको दूर करनेमें प्राप्त होती है। (ऋक् १।५४।११)

शेव्य (सं० त्रि०) शेवं सुखं तत्र साधुः यत्। सुखकर्त्ता। (ऋक् १।१५६।१)

शेष (सं० पु०) शेषति सङ्कर्षति शिष हिंसायां अच्। १ सङ्कर्षण, वलदेव। २ अनन्त, सर्पराज। भविष्यपुराणमें इसका ध्यान इस प्रकार लिखा है।

"फणासहस्रसंयुक्तं चतुर्वाहु किरीटिनं।
नवाम्रपल्लवाकारं पिङ्गश्मश्रु लोचनम्॥
पीताम्बरधरं देवं शङ्खचक्रगदाधरं।
कराग्रे दक्षिणे पद्मं गदां तस्याप्यधःकरे॥
दधानं सर्वलोकेशं सर्वाभरणभूषितम्।
क्षीराब्धिमध्ये श्रीमन्तमनन्तं पूजयेत्ततः।"

शिष वधे भावे घञ्। ३ वध, नाश। ४ गज, हाथी। ५ नाग, सांप। ६ वह वस्तु जो स्वीकार नहीं की गई हो। ७ अवशिष्ट, वाकी। ८ वह शब्द जो किसी वाक्यका अर्थ करनेके लिये ऊपरसे लगाया जाय, अध्याहार। ९ वड़ी संख्यामेंसे छोटी संख्या घटानेसे वची हुई संख्या, वाकी। १० समाप्ति, अन्त। ११ परिणाम, फल। १२ स्मारक वस्तु, यादगारकी चीज। १३ लक्ष्मण। १४ एक प्रजापतिका नाम। १५ दिग्गजोंमेंसे एक। १६ पिङ्गलमें टगणके पाँचवें भेदका नाम। १७ छप्पय छंदके पचीसवें भेदका नाम। इसमें ४६ गुरु, ६० लघु, कुल १०६ वर्ण या १५२ मात्राएं होती हैं। १८ जमालगोटा। १९ अवशिष्टता। अग्निपुराण और नीतिशास्त्रमें लिखा है, कि ऋणका शेष, अग्निका शेष और शत्रुका शेष नहीं रखना चाहिये, रखनेसे वह फिर वढ़ जाता है।

२० भगवान्‌की द्वितीय मूर्त्ति। यह जगत् जव प्रलयकालमें लय होता है, तव भगवान् विष्णु लक्ष्मीके साथ शेष शयन पर सोते हैं। कालिकापुराणमें लिखा है, कि जगत्‌के नष्ट हो जाने पर भगवान् विष्णु लक्ष्मीके साथ क्षीर-सागरमें शेषनागके फणके नीचे शयन करते हैं। शेषनाग अपना पूर्वफण फैला कर कमलपुष्पको आच्छादित किये रहते हैं और अपने उत्तर फणसे भगवान्‌के सिर एवं दक्षिण फणसे पांव ढके रहते हैं। वे अपने पश्चिम फणको फैला कर भगवानको पंखा झलते हैं और ईशान फणके द्वारा शंख, चक्र, नन्द, खड्ग, दोनों तुणीर तथा गरुड़को ईशान फणके द्वारा एवं आग्नेय फणके द्वारा गदा, पद्म प्रभृति धारण किये रहते हैं। इस प्रकार भगवान् विष्णु प्रलयके समय शयन किया करते हैं।

शेष—कुछ प्राचीन ग्रन्थकारोंके नाम। १ अग्निष्टोमयजमानके रचयिता। २ आर्यापञ्चाशीति या परमार्थसारके प्रणेता। ३ गुरुशतक और उसकी टीकाके रचयिता। ४ ज्योतिषभाष्य और पाणिनीय शिक्षाभाष्य नामक ग्रन्थके प्रणेता। ५ ध्यानशतकके रचयिता। ६ वौधायनचयन और साप्रयणाग्न्याध्यानप्रयोग नामक ग्रन्थोंके प्रणेता। ७ मध्वोपकारिणी नाम्नी मध्वविजयटीकाकार। ८ एक प्राचीन कवि। ये चालुक्यराज कर्णके सभापण्डित थे। इसके रचित कर्णसुधानिधिग्रन्थके परिशिष्टमें सङ्गमेश्वरमाहात्म्य वर्णित है।

शेष आचार्य—१ अनुछलारीय नामक दीधितिके प्रणेता। २ आनन्दतीर्थकृत तन्त्रसारटीकाके रचयिता। ३ वायुस्तुति टीकाके प्रणेता। ४ सत्यनाथमाहात्म्यरत्नाकरके प्रणेता सङ्कर्षणके पिता एक प्रसिद्ध पण्डित।

शेषक (सं० पु०) शेष स्वार्थे कन्। शेष देखो।

शेषकरण (सं० क्ली०) जो असम्पन्न हो उसका सम्पादन।

शेषकमलाकर—मेङ्गनाथके पुत्र सुप्रसिद्ध कमलाकर नामक कवि।

शेषकारित (सं० त्रि०) शेषमें सम्पादित।

शेषकाल (सं० पु०) शेष समय, मृत्युका पूर्व समय।

शेषकृष्ण—१ कंसवध नामक नाटकके रचयिता। २ एक पण्डित। ये नृसिंहके पुत्र थे। उषापरिणयचम्पू, कंसवधनाटक, क्रियागोपनकाव्य, पारिजातहरणचम्पू, मुरारिविजय नाटक, सत्यभामा-परिणय नाटक और सत्यभामाविलास नाटक नामक कई ग्रन्थ इनके रचे हैं। ये १६वीं सदीमें राजा नरसिंहकी सभामें विद्यमान थे। ३ शूद्राचारशिरोमणिके प्रणेता।

शेषकृष्ण पण्डित—उपपदमतिङ्सूत्रव्याख्यान और यङ्लुगान्तशिरोमणि नामक व्याकरणके प्रणेता।

शेषगोविन्द पण्डित—एक ज्योतिषके रचयिता।

शेषचक्रपाणि—कारकविचारके रचयिता।

शेषजाति (सं० स्त्री०) गणितमें बचे हुए अङ्कको लेनेकी क्रिया। (assimilation of residues; reduction of fraction of residues or successive fractional remainders,)

शेषण (सं० क्ली०) १ शेष करण, समाधान। २ अक्ष-क्रीड़ा का एक भाव "अक्षाणां ग्रहणं शेषणञ्च।

शेषता (सं० स्त्री०) शेषस्य भावः तल टाप्। १ शेषत्व उपकारित्व। २ पारार्थ्य, परोद्देशक प्रवृत्तिमत्व।

शेषत्व (सं० क्ली०) शेषता देखो।

शेषदीक्षित—कुचेलोपाख्यान, कृष्णविलास, नवकोटि और लोकन्यायामृतके रचयिता।

शेषधर (सं० पु०) शेष अर्थात् सर्पको धारण करनेवाले, शिवजी।

शेषनाग (सं० पु०) १ अनन्त। २ परमार्थसारके प्रणेता।

शेषनारायण—शक्तिरत्नाकर नामक महाभाष्यव्याख्याके प्रणेता।

शेषनारायण पण्डित (सं० पु०) महाभाष्यके एक टीका-कार।

शेषपति (सं० पु०) १ अनन्त। २ राज्यशासक। ३ अध्यक्ष। ४ सर्वोपरिदर्शक।

शेषभाग (सं० पु०) अवशिष्टांश।

शेषभाव (सं० पु०) १ शेषकी अवस्था। २ शेषत्व।

शेषभुज् (सं० लि०) शेषं भुङ्क्ते भुज-क्विप्। शेष-भोजनकारी, सबके पीछे खानेवाला। श्राद्ध करके शेष भोजन करना होता है।

देवलोक, ऋषिलोक, मनुष्यलोक, पितृलोक और गृहदेवता इन सबोंको अन्न आदिसे पूजा कर गृहस्थको उसके बाद भोजन करना होता है।

शेषभूत (सं० लि०) १ शेषस्वरूप। २ अवशिष्ट।

शेषभूषण (सं० पु०) विष्णु।

शेषभोजन (सं० क्ली०) १ घरमें निमन्त्रितको खिला कर अन्तमें खाना। २ पात्रावशेष भोजन, जूठा खाना।

शेषरक्षण (सं० क्ली०) कोई कार्य आरम्भ कर शेष पर्यन्त उसका प्रतिपालन या परिलक्षण।

शेषरत्नाकर—साहित्यरत्नाकर नामक गीतगोविन्द-टीका-के प्रणेता।

शेषराज (सं० पु०) एक वर्णवृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें दो मगण होते हैं। इसे विद्युल्लेखा भी कहते हैं।

शेषरात्रि (सं० स्त्री०) शेषा अवशिष्टा रात्रि। रात्रि-शेष, रात्रिका अन्तिम याम, रातका पिछला पहर। पर्याय—उच्चन्द्र, अपरात्र।

शेषरामचन्द्र (सं० पु०) एक प्रसिद्ध आलङ्कारिक।

शेषरूपिन् (सं० लि०) शेषरूपधारी।

शेषवत् (सं० लि०) शेष अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य वः। १ शेषविशिष्ट, शेषयुक्त। (क्ली०) २ अनुमानविशेष। पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट, यही तीन प्रकार-का अनुमान है। जहां कार्य देख कर कारणका अनुमान होता है, वहाँ उसे शेषवत् अनुमान कहते हैं। कारण देख कर कार्यका अनुमान। जैसे, मेघ देख कर वृष्टिका अनुमान पूर्ववत् है, फिर वृष्टि देख कर मेघके अनुमान-को शेषवत् कहते हैं।

पूर्व शब्दका अर्थ कारण है अर्थात् कारण देख कर जहाँ कार्यका अनुमान होता है, वही पूर्ववत् है, वृष्टिका कारण मेघोन्नति है। यह मेघोन्नति देख कर जो वृष्टिका अनुमान होता है वही पूर्ववत् है। शेष शब्दका अर्थ कार्य है अर्थात् कार्य देख कर जहाँ कारणका अनुमान किया जाता है, वहां उसे शेषवत् कहते हैं। नदीकी पूर्णता और स्रोतोवेगरूप देख कर उसके कारणस्वरूप वृष्टिका अनुमान करनेको शेषवत् अनुमान कहते हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि न्यायदर्शनमें पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट ये तीन प्रकारके अनुमान स्वीकृत हुए हैं। सांख्यकारने भी यही स्वीकार किया है। परन्तु उन्होंने पहले अनुमानको वीत और अवीत इन दो भागोंमें विभक्त किया है। जो अनुमान अन्वय-व्याप्ति द्वारा होता है उसे वीत, उसके सत्त्वमें उसकी सत्ता, व्याप्य धूमादिकी सत्तामें व्याप्य वह्न्यादिकी सत्ता अर्थात् जहां धूम है, वहां निश्चय ही वह्नि है, ऐसा जो अनुमान है वही वीत है। व्यतिरेकव्याप्ति अर्थात् उसके सत्त्वमें उसकी सत्ता, व्यापक साध्यके असत्त्वमें

(अभावमें) व्याप्य हेतुकी असत्ता या अभाव अर्थात् व्यापकके अभावमें ही व्याप्यका अभाव, ऐसे अनुमानको अवीत कहते ह । वह निषेधक है अर्थात् कोई वस्तु नहीं है या नहीं कह कर अन्वयका प्रतिपादक है । इन दो प्रकारके अनुमानमें अवीत अनुमानको शेषवत् अनुमान कहते हैं। शिष्यते इति शिष कर्मणि घञ् शेषः, इस योगार्थ द्वारा शेष शब्दसे अवशिष्ट समझा जाता है। यह शेष विषयतारूप सम्बन्धमें जिस वस्तुमें रहता है, उसको शेषवत् कहते हैं।

इसका तात्पर्य यह है, कि व्याप्यके ज्ञानसे व्यापकके ज्ञानको अनुमान करते हैं। व्याप्ति जिसमें रहती है, उसको व्याप्य कहते हैं, जिसकी व्याप्ति है उसका नाम व्यापक है। नियत सम्बन्धको व्याप्ति कहते हैं। जिसके विना जो नहीं रहता या नहीं रह सकता वह उसका व्याप्य है। वह्निके बिना धूम नहीं रहता या नहीं रह सकता, अतएव धूम वह्निका व्याप्य है। अनुमानके स्थल व्याप्यको हेतु और व्यापकको साध्य कहते हैं। व्याप्य जहां रहता है वहां व्यापकका रहना अवश्य कर्त्तव्य है। जैसे वह्नि धूमकी व्यापक है, क्योंकि जहां धूम है वहां अवश्य वह्नि है।

प्रथमतः धूम और वह्निकी व्याप्ति निश्चय होती है। अर्थात् वह्निके विना धूम कभी भी नहीं रह सकता यह अच्छी तरह देखा गया है। व्याप्ति ज्ञानके प्रति व्यतिरेक निश्चय ही प्रधान कारण है। 'धूम वह्निके विना कभी भी नहीं रह सकता' ऐसा ज्ञान जब तक नहीं होता, तब तक हजारों जगह वह्नि और धूमके एकत्र अवस्थान रूप अन्वयनिश्चयमें व्याप्ति स्थिर नहीं होती। उक्त प्रकारसे व्याप्ति स्थिर होनेके बाद पर्वतादि पर अविच्छिन्नमूल धूम दिखाई देने पर धूम वह्निका व्याप्य है ऐसा स्मरण होता है। उस समय वह्निव्याप्य धूम पर्वत पर है, ऐसा अनुमान होता है।

व्याप्ति दो प्रकारकी है—अन्वयव्याप्ति और व्यतिरेकव्याप्ति। "तत्सत्त्वे तत्सत्ता अन्वयः" जहां व्यापक वह्न्यादि अवश्य रहेगी, वहां व्याप्तिको अन्वयव्याप्ति कहते हैं। अन्वयव्याप्तिकी जगह हेतु और साध्यका समानाधिकरण्य अर्थात् एकत्रावस्थान पहले दिखाई देता है। पाकशालामें धूम और वह्निका सामानाधिकरण्य प्रत्यक्ष होता है। ऐसे अनुमानको वीत अनुमान कहते हैं, इसीका भेद पूर्ववत् और सामान्यतोदृष्ट है।

इसके भिन्न अनुमानको शेषवत् कहते हैं, अतएव वह अवीत है। "तदसत्त्वे तदसत्ता व्यापकाभावात् व्याप्याभावः" उसकी असत्तामें अर्थात् उसके अभावमें उसका अभाव, व्यापकके अभावमें व्याप्यका अभाव, जहां व्यापक वह्नि आदि नहीं है, वहां व्याप्य धूमादि भी नहीं या नहीं रह सकता, ऐसी व्याप्तिको व्यतिरेकव्याप्ति कहते हैं। शेषवत् अनुमान यह व्यतिरेकव्याप्तिमूलक है। यहां हेतुके पहले भी साध्यका सामनाधिकरण्यज्ञान पहले नहीं कहनेसे भी काम चलेगा। स्थलविशेषमें साध्यज्ञान हो ही नहीं सकता, स्थलविशेषमें योग्यता नहीं रहनेसे भी क्षति नहीं होगी। यह अनुमान इस प्रकार है—

"इयं पृथ्वी पृथ्वीतरभिन्ना गन्धवत्त्वात्" यह पृथ्वी या क्षिति गन्धगुणविशिष्ट होनेके कारण पृथ्वीतरसे भिन्न है। क्योंकि क्षितिको छोड़ जलादि पदार्थमें गन्धगुण नहीं है। जिसमें गन्ध है वही पृथ्वी है, यह अनुमानके पहले नहीं जाना जाता। किन्तु पृथिवीतर भेदका अभाव अर्थात् व्यापकाभाव जलादिमें है तथा वहां गंधका भी अभाव है, यही जाना जाता है। अतएव "तदभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वात्" अर्थात् साध्याभावका व्यापक जो अभाव है, उस अभावकी प्रतियोगी हो हेतु है; इसी प्रकार व्यतिरेकव्याप्तिग्रह होता है। हेतुका व्यापक साध्य और साध्याभावका व्यापक हेत्वभाव है। जहां धूम है, वहां वह्नि है, जहां वह्निका अभाव है, वहाँ धूमका अभाव है, यही स्थिर करना होगा।

गन्ध गुणपदार्थ है, अतएव वह द्रव्यमें रहती है। जलादि भी द्रव्य है, अतएव उसमें गन्धका रहना सम्भव था, किन्तु प्रमाण द्वारा यह स्थिर हुआ है, कि गन्ध पृथिवीके सिवा और किसी भी पदार्थमें नहीं है। फिर 'गुणादिर्निर्गुणक्रियः' इस वचनानुसार गुणादिमें गुण रह नहीं सकता। अतएव जलादि पदार्थ और रूपादि गुणोंका गन्धमें रहना असम्भव है, वह सिर्फ पृथिवीमें ही है, ऐसा स्थिर करना होगा। अतएव इस

इस गन्ध ज्ञान द्वारा ही पृथिवीत्वका ज्ञान होता है, यही शेषवत् अनुमान है।

इसे थोड़ा और परिष्कार कर कहा जाता है, कि शेषवत् अनुमानमें हेतु साध्यका व्याप्यव्यापकभावज्ञान नहीं है, किन्तु साध्याभाव और हेत्वभावका व्याप्य व्यापकभावज्ञान है जिसके फलसे साध्याभावका निषेध होता है, अतएव साध्यज्ञान हो जाता है। यथा "पृथिवी पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गंधवत्त्वात्" पृथिवीमें पृथिवीभेद नहीं है; हेतु गंध पृथिवीभेद गंधाभावका व्याप्य है तथा गंधाभाव पृथिवीमें नहीं है, यह ज्ञान होने पर पृथिवीमें पृथिवीभेद नहीं है, ऐसा ज्ञान होता है। परिणाम में पृथिवीत्व उसमें है, इस प्रकार बोध होता है। सांख्यके मतसे यह जो शेषोक्त बोध है वही अनुमिति है। किन्तु पृथिवीत्व इस अनुमितिका विधेय नहीं है, विषयमात्र है। पूर्ववत् अनुमान द्वारा पर्वत पर जो वह्निकी अनुमिति होती है उसमें वह्नि विधेय है। विधेयता मनोवृत्ति विशेष है। जिस अनुमितिमें विधेयतारूप मनोवृत्तिका सम्पर्क नहीं है, वह अनुमितिसाधन प्रमाण ही शेषवत् अनुमान है।

नैयायिकोंके मतसे व्यतिरेक व्याप्तिज्ञानको शेषवत् अनुमान कहते हैं। 'साध्याभावव्यापकाभावप्रतियोगी हेतु' यही ज्ञान व्यतिरेक-व्याप्तिज्ञान है। व्यापकका प्रचलित अर्थ है जो फैला कर रहे और व्याप्यका अर्थ है जिसमें फैला हुआ हो, यही अर्थ सर्ववादिसम्मत है। जिसका अभाव है उसको प्रतियोगी कहते हैं। यथा घटका अभाव, इस अभावका प्रतियोगी घट है। अब गौरसे देखना होगा, कि 'अयं पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गंधवत्त्वात्' गंधके कारण यह वस्तु पृथिवीकी अन्य वस्तुसे भिन्न है। यहां साध्य पृथिवीतरभेद साध्याभाव पृथिवीतरत्व है, उसका व्यापक जो अभाव है वह प्रतियोगी गंध है, अर्थात् गंधाभाव उसका व्यापक है। जो वस्तु पृथिवी नहीं है, उसमें गंध नहीं है, ऐसे ज्ञानको व्यतिरेक-व्याप्तिज्ञान कहते हैं। साध्य जो पृथिवीका अन्य भेद है उसका ज्ञान नहीं होनेसे भी साध्याभाव जो पृथिवीतरत्व है उस विषयमें ज्ञान होता है। इस प्रकार ज्ञान होनेसे ही अनुमिति होती है। यही शेषवत् अनुमान है। (सांख्यतत्त्वकौ०)

प्रमाण और न्यायदर्शन देखो।

शेषशायिन् (सं० पु०) शेषनाग पर शयन करनेवाले, विष्णु। पुराणोंके अनुसार प्रलयकालमें विष्णु भगवान् तीनों लोकोंको अपने पेटमें धारण कर क्षीरसागरमें शेषनागकी शय्या बना कर उस पर शयन करते हैं। कुछ कालके उपरान्त उनको नाभिसे एक कमल निकलता है जिस पर ब्रह्माकी उत्पत्ति होती है और सृष्टिका क्रम फिरसे चलता है।

शेषशार्ङ्गधर—न्यायमुक्तावली और पदार्थचन्द्रिकाके रचयिता।

शेषस् (सं० पु०) अपत्य। 'मा शेषसा मा तमसा'

शेषांश (सं० पु०) १ अवशिष्टभाग, बचा हुआ अंश। २ अन्तिम अंश, आखिरी भाग।

शेषा (सं० स्त्री०) शिष्यतेऽसौ शिष घञ्-टाप्। स्वनिर्माल्यार्पण, देवताको चढ़ी हुई वस्तु जो दर्शकोंको या उपासकोंको बाँटी जाय, प्रसाद।

शेषाचलम्—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कड़ापा जिलेके अन्तर्गत एक पर्वतश्रेणी। यह अक्षा० १४°१२' से ले कर १४°२५' उ० और देशा० ७८°१'३०" से ले कर ७८°५६' पू० पालकोण्डा पर्वतसे पूरब और उत्तर-पूरबमें फैली हुई है। यह पर्वत सिर्फ १२००से ले कर १८०० फीट तक ऊंचा एक अधित्यकामात्र है। नाना प्रकारकी गुल्मलताओंसे परिवेष्टित होनेके कारण इस पर्वतकी प्राकृतिक शोभा अवर्णनीय हो रही है। इसके पश्चिमांश स्थानमें पालकोण्डा गिरिश्रेणीसे निकल कर पेन्नार नदी प्रवाहित होती है।

शेषाद्रि—परिभाषाभास्कर, परिभाषेन्दुभास्कर और सर्वमङ्गला नामक व्याकरणके प्रणेता।

शेषाद्रि आयर—महिसुर राज्यके प्रसिद्ध दीवान। १८४५ ई०में दक्षिणके मलवार जिलेके कुमारपुरम् नामक गांवमें इन्होंने जन्मग्रहण किया था। इनका पूरा नाम था सर शेषाद्रि आयर के० सी० एस० आई०। पहले पहल कालीकटमें इन्होंने पढ़ना आरम्भ किया। तदनन्तर ये मद्रासके प्रेसिडेन्सी कालेजमें पढ़नेके लिये भर्त्ती हुए। यहां होसे इन्होंने सन् १८६६ ई०में बी० ए०

परीक्षा पास की। मद्रासके विश्वविद्यालयके ये सबसे पहले बी० ए० हुए। इसके कुछ दिनोंके पीछे ये कानूनकी परीक्षामें पास हो कर कलक्टरके आफिसमें अनुवादकके काम पर नियत हुए। इस स्थान पर इन्हें बहुत दिनों तक रहना नहीं पड़ा। मद्रासमें रहनेके कारण रंगचालूंसे इनका परिचय हो गया था। सन् १८६८ ई०में रंगचालूं महिसुरके दीवान हुए। उन्होंने ही शेषाद्रिको सरिश्तेदार बनाया। १८७६ ई०में शेषाद्रि डिपुटी कमिश्नर और मजिस्ट्रेट हुए। उसके बाद दीवान रंगचालूंने महिसुर राज्यके कानून बनानेका भार इन्हें सौंपा। इसके दो वर्षके बाद रंगचालूंका शरीरान्त हुआ। इस समय महिसुर राज्यमें शेषाद्रिके अतिरिक्त इस पदके योग्य दूसरा नहीं था। परन्तु उस समय इनकी अवस्था केवल २८ वर्षकी थी, इस कारण बहुतोंने यह संदेह किया कि इस बड़े कामका प्रबंध ये नहीं कर सकते। जो हो, सन् १८८३ में शेषाद्रि महिसुरके दीवान हुए। सन् १८७७ ई०में महिसुर राज्यमें दुर्भिक्ष पड़ा था, इस कारण तीस लाख रुपये कर्ज लेने पड़े थे। फिर इस प्रकारकी विपद न हो इस कारण रंगचालूंने रेलवे बनाना प्रारम्भ किया था। रंगचालूंकी मृत्युके बाद शेषाद्रिने उनके पथका अवलम्बन किया। दो वर्षमें इन्होंने १४० मील रेलपथ बनवाया था। इस कामके लिये बीस लाख रुपये और भी कर्ज लेने पड़े थे। सन् १८६५में महिसुर राज्यमें ३१५ मील तकका रेलपथ बन गया। सन् १७०१ ई०में शेषाद्रिके कार्य्य त्याग करनेके समय महिसुर राज्यमें ४०० मील तक रेलवेका विस्तार हो गया था। अपने शासनके १२ वर्षोंमें कृषिकी सुविधाके लिये इन्होंने ३५५ वर्गमीलमें तालाब खुदवाया था। इस कार्य्यमें इन्हें एक करोड़ रुपये खर्च करने पड़े थे; परन्तु इससे राज्यकी आयमें ८२५००० की वृद्धि हुई। जिस समय इन्होंने इस पदको ग्रहण किया था, उस समय राज्यमें तीस लाख रुपये ऋण थे। उसे इन्होंने बिलकुल चुका दिया। इन्होंने एक करोड़ छिहत्तर लाख रुपये राजकोषमें जमा किये थे। राज्यकी आमदनीको भी इन्होंने बढ़ाया। प्रजाकी सुखशान्तिके लिये इन्होंने राज्यमें अनेक विभाग स्थापित किये थे। पहले इन्हें सरकारसे सी० एस० आई० की और पीछे के० सी० एस० आई० की उपाधि मिली। ये मद्रास विश्वविद्यालयके फेलो भी नियत हुए थे। इन्होंने दूर वर्ष राजकार्य्य करके सन् १६०७ ई०में कार्य्य त्याग किया। इसमें १७ वर्ष तक इन्होंने दीवानी की। इसी वर्ष इनका शरीरान्त भी हुआ।

शेषानन्त (सं० पु०) १ न्यायसिद्धान्तदीपप्रभा नामक न्यायशास्त्रके प्रसिद्ध टीकाकार। इन्होंने राजा पद्मनामके गुरु शार्ङ्गधरके आदेशसे उक्त ग्रन्थ लिखा था। २ सप्तपदार्थीदीपिकाकी पदार्थचन्द्रिका नामक टीकाके रचयिता।

शेषार्ह—अद्वैतचन्द्रिकाके प्रणेता नरसिंहके गुरु। ये नागेश्वर नामसे भी प्रसिद्ध थे।

शेषिन् (सं० त्रि०) प्रधान वस्तु।

शेषोक्त (सं० त्रि०) अन्तमें कहा हुआ।

शेष्य (सं० त्रि०) शेष दर या मूल्य, जिससे अधिक और हो ही नहीं सकता। (कथासरित्सा०)

शैक्यतायनि (सं० पु०) शाक्यतस्य गोत्रापत्यं शीकयत (तिकादिभ्यः फिञ्। पा ४।१।१५४) इति फिञ्। शीकयतका गोत्रापत्य।

शैकि (सं० पु०) एक ऋत्विकका नाम। (प्रवराध्याय)

शैक्य (सं० त्रि०) १ दृढ़, मजबूत। (क्ली०) २ सिकहर, छीका।

शैक्ष (सं० पु०) शिक्षामधीते इति शिक्षा-अण्। प्राथमकल्पिक, शिक्षाध्ययनकारी छात्र, आचार्य्यके निकट रह कर शिक्षा प्राप्त करनेवाला शिष्य।

शैक्षिक (सं० त्रि०) शिक्षां अधीते वा शिक्षा-ठक्। १ शिक्षाशास्त्रवेत्ता। २ शिक्षाशास्त्राध्येता।

शैक्षित (सं० पु०) शिक्षितायाः अपत्यं शिक्षिता (ऋष्द्याभ्यो नदी मानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः। पा ४।१।११३) इति अण्। शिक्षिताका अपत्य।

शैख (सं० पु०) १ व्रात्य ब्राह्मणकी सवर्णा स्त्रीसे उत्पन्न पुत्रका नाम।

'व्रात्यात्तु जायते विप्रात् पापात्मा भूर्जकण्टकः।
आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च॥"
(मनु० १०।२१)

व्रात्य ब्राह्मण द्वारा सवर्णा स्त्रीसे जात पुत्र भूर्ज्ज कण्टक उपाधि पाता है। देशविशेषमें इस भूर्ज्जकण्टकके और भी चार नाम हैं। जैसे—आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध और शैख। इनमेंसे शैख पापी होता है।

(त्रि०) २ शिखा सम्बन्धी।

शैखण्ड (सं० त्रि०) शिखण्डिन्-अण्। शिखण्डी-संबंधी।

शैखण्डि (सं० पु०) शिखण्डीका अपत्यादि।

शैखण्डिन (सं० क्ली०) सामभेद।

शैखरिक (सं० पु०) शिखरे प्रायेण भवतीति शिखर-ठञ्। अपामार्ग, चिचड़ा।

शैखरेय (सं० पु०) शिखरे भवः शिखर-ढञ्। अपामार्ग, चिचड़ा। (भरतधृत रत्नकोष)

शैखायनि (सं० पु०) शिखा (तिकादिभ्यः फिञ्। पा ४।१।१५४ इति अपत्यार्थे फिञ्। १ शिखाका गोत्रापत्य। शिखावत् गोत्रापत्ये अण्। २ शिखावत्का गोत्रापत्य।

शैखावत (सं० पु०) शिखावत् अपत्यार्थे यञ्। शिखावत्का गोत्रापत्य। (पा ४।१।११८)

शैखावत्य (सं० पु०) १ शैखावतराज। २ भारतवर्णित एक ब्राह्मण। (भारत उद्योगपर्व)

शैखिन् (सं० त्रि०) मयूर-सम्बन्धी, मोरका।

शैग्रव (सं० क्ली०) १ शिग्रु वीज, सहिजनके बीज। (वाभट सू० १५ अ०) (पु०) २ शिग्रु या सहिजनका विकार।

शैघ्र (सं० त्रि०) ग्रहोंकी गति या संगतिसम्बन्धीय, ज्योतिषके योगसे सम्बन्ध रखनेवाला।

शैघ्र्य (सं० क्ली०) द्रुतता, शीघ्रता, जल्दी।

शैतान (अ० पु०) १ ईश्वरके सन्मार्गका विरोध करनेवाली शक्ति या देवता, तमोगुणमय देवता जो मनुष्योंको बहका कर धर्म-मार्गसे भ्रष्ट करनेके प्रयत्नमें रहा करता है। यहूदी, ईसाई और इसलाम तीनों पैगम्बरी मतोंमें दो परस्पर विरुद्ध शक्तियां मानी गई हैं—एक सत् दूसरी असत्। सत्स्वरूप ईश्वरके मंगल विधानमें, असत् शक्ति सदा विघ्न डालनेमें तत्पर रहती है। आदि पैगम्बर मूसाने तौरेतमें लिखा है, कि पहले आदम और हौवा ईश्वरकी आज्ञामें रह कर बड़े आनन्दसे स्वर्गके उद्यानमें रहा करते थे। शैतानने हौवाको बहका कर ज्ञानका वह फल खानेके लिये कहा जिसका ईश्वरने निषेध किया था। इस अपराध पर आदम और हौवा स्वर्गसे निकाल दिये गये। तब ये दोनों इस पृथ्वी पर आये। इन्हींसे यह मनुष्य सृष्टि चली। ऐसा लिखा है, कि शैतान भी पहले ईश्वर या खुदाका एक फरिश्ता या पारिषद् था। जब ईश्वरने आदम या मनुष्य उत्पन्न किया, तब वह ईर्ष्यावश ईश्वरसे विद्रोही हो गया और उसकी सृष्टिमें उत्पात करने लगा। ईश्वरने उसे स्वर्गसे निकाल कर नरकमें भेज दिया जहांका वह राजा हुआ। सत् और असत् इन दो नित्य शक्तियोंकी भावना यहूदियोंके पैगम्बर मूसाकी खाल्दियों (बाबुलवालों) और पारसीकों आदि प्राचीन सभ्य जातियोंसे मिली थी। जुरतुश्तने भी आवस्तामें अहुरमज्द (सत् शक्ति) और अहमान (असत् शक्ति) दो शक्तियां कही हैं। २ दुष्ट देवयोनि, भूत, प्रेत। ३ बहुत ही नटखट मनुष्य, बहुत शरारती आदमी। ४ बहुत ही दुष्ट या क्रूर मनुष्य, घोर अत्याचारी। ५ झगड़ा, टंटा, फसाद। ६ क्रोध, तामस, गुस्सा।

शैतानी (अ० स्त्री०) १ दुष्टता, शरारत, पाजीपन। (वि०) २ शैतान-सम्बन्धी, शैतानका। ३ दुष्टतापूर्ण, नटखटीसे भरा।

शैतिकक्ष (सं० पु०) शितिकक्षका गोत्रापत्य।

शैतिवाहेय (सं० पु०) शितिवाहु अपत्यार्थे ढञ् (पा ४।१।१३५) शितिवाहुका गोत्रापत्य।

शैतोष्मन् (सं० क्ली०) सामभेद।

शैत्य (सं० क्ली०) शीतस्य भावः शीत (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति ष्यञ्। १ शीत, ठण्ढक। स्त्रियां टाप्। २ हिमालयकी एक नदी।

शैत्यमय (सं० पु०) शैत्य स्वरूपे मयट्। शैत्यस्वरूप, शीतलता।

शैत्यायन (सं० पु०) एक वैयाकरण।

शैथिल्य (सं० क्ली०) शिथिलस्य भावः शिथिल-ष्यञ्। १ शिथिल होनेका भाव, शिथिलता, ढिलाई। २ तत्परता का अभाव, फुरतीका न होना, सुस्ती।

शैनेय (सं० पु०) शिनेर्गोत्रापत्यं शिनि (इतश्चानिञः। पा ४।१।१२२) इति ढक्। १ सात्यकि। ये श्रीकृष्णके

सारथि थे। (भागवत १८।७) २ शिनिका गोत्रापत्य, यादववंशकी एक शाखा।

शैन्य (सं० पु०) शिविका गोत्रापत्य। ये लोग क्षत्रिय थे, पीछे तपके प्रभावसे ब्राह्मण हो गये।

शैपथ (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

शैव (सं० त्रि०) शिविराज-सम्बन्धीय।

शैव्य (सं० पु०) १ शिविराज। २ विष्णुका घोड़ा।

शैव्या (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक नदी।

शैरसि (सं० पु०) शिरस् गोत्रापत्ये इञ् (पा ४।१।९६) शिरसका गोत्रापत्य।

शैरिक (सं० पु०) नीले फूलकी कटसरैया।

शैरिन् (सं० पु०) ऋषिभेद। (प्रवराध्याय)

शैरीयक (सं० पु०) नीलझिण्टी, नीले फूलकी कटसरैया। कोई कोई इसे शैरेयक भी कहते हैं।

शैरीष (सं० पु०) शिरीषस्य विकारः अवयवो वा (शिरीषपलाशादिभ्यो वा। (पा ४।३।१४१) इति अण्। १ शिरीषका विकार या अवयव। (क्ली०) २ सामभेद।

शैरीषक (सं० क्ली०) स्थानभेद। (भारत २।३२।५)

शैरीषि (सं० पु०) वैदिक सुवेदाः ऋषिका गोत्रापत्य।

शैरीषिक (सं० त्रि०) शिरीष-सम्बन्धी।

शैर्षघात्य (सं० क्ली०) शीर्षघातिनो भावः कर्म वा (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। पा ५।१।१२४) इति ष्यञ्। शीर्षघातीका भाव या धर्म, शीर्षछेदन, सिर काटना।

शैर्षछेदिक (सं० त्रि०) शिरच्छेदं नित्यमर्हति शार्षच्छेदाच्च (पा ५।१।६५) इति ठञ् शिरसः शीर्षभावो निपात्यते, ततो दीर्घः। नित्य शिरच्छेदकारी, रोज सिर काटनेवाला, जल्लाद।

शैर्षायण (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

शैर्ष्य (सं० त्रि०) शीर्ष-सम्बन्धी।

शैल (सं० क्ली०) शिलायां भवं, शिला अण्। १ शैलेय, छरीला। २ चट्टान। ३ रसौत, रसवत। ४ शिलाजतु, शिलाजीत। ५ बहुवार, लिसोड़ा। (पु०) शिलाः सन्त्यत्रेति, ज्योत्स्नादित्वादण्। ६ पर्वत, पहाड़। (त्रि०) ७ शिला-सम्बन्धी, पत्थरका। ८ पथरीला, चट्टानी। ९ कठोर, कड़ा।

शैलक (सं० क्ली०) शैलमेव स्वार्थे कन्। १ शैलज, छरीला। २ शैल देखो।

शैलकटक (सं० पु०) पहाड़की ढाल।

शैलकन्या (सं० स्त्री०) शैलस्य हिमवतः कन्या। हिमालयकी पुत्री, पार्वती।

शैलकम्पिन् (सं० पु०) १ स्कन्दका एक अनुचर। २ एक दानव। (हरिवंश)

शैलकुमारी (सं० स्त्री०) पार्वती।

शैलगङ्गा (सं० स्त्री०) गोवर्द्धन पर्वतकी एक नदी जिसमें श्रीकृष्णने सब तीर्थोंका आवाहन किया था।

शैलगन्ध (सं० क्ली०) शैलस्य गन्धो यत्र। शबरचन्दन, वर्वरचन्दन।

शैलगर्भजा (सं० स्त्री०) करञ्जयोड़ि पाषाणभेद, हड़जोड़ा। (वैद्यकनि०)

शैलगर्भाह्वा (सं० स्त्री०) १ शिलावल्का, शैलजा। २ सिंहपिप्पली, सिंहली पीपल। ३ शुक्लपाषाणभेद, सफेद पत्थरचूर।

शैलगुरु (सं० पु०) शैलस्य गुरुः। हिमालय पर्वत।

शैलज (सं० क्ली०) शैले पर्वते जायते इति जन ड। सुगन्धि तृणविशेष, स्वनामख्यात गन्धद्रव्य, छरीला। पर्याय—शीतशिव, शैलेय, शिलाशन, शिलेय, शीतल, शैल, कालानुसार्य, शैलक, वृद्ध, कालानुसारि, अश्मपुष्पा, शिलापुष्प, गृह। (रत्नमाला) गुण—सुगन्धि, शीतल, तिक्त, कफपित्तघ्न, दाह, तृष्णा, वमि, श्वास और व्रणनाशक। (राजनि०)

शैलजा (सं० स्त्री०) शैलज-टाप्। १ गजपिप्पली। २ सिंहपिप्पली। ३ श्वेत पाषाणभेद, सफेद पत्थरचूर। ४ दुर्गा। हिमालय पर्वतकी कन्या होनेसे दुर्गाको शैलजा कहते हैं।

शैलजात (सं० पु०) शैलेय, छरीला।

शैलजाता (सं० स्त्री०) १ गोलमिर्च, काली मिर्च। २ गजपिप्पली।

शैलजामन्त्रिन्—पुरश्चर्यारसाम्बुधिके प्रणेता।

शैलतटी (सं० स्त्री०) पहाड़की तराई।

शैलतनया (सं० स्त्री०) शैलस्य तनया, शैलकन्या, पार्वती।

शैलता (सं० स्त्री०) शैलस्य भावः तल् टाप्। शैलत्व, शैलका भाव या धर्म।

शैलतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद। (दिग्विजयप्रकाश)

शैलदुहितृ (सं० स्त्री०) शैलस्य दुहिता। पार्वती।

शैलधन्वन् (सं० पु०) शैलवत् दृढ़ं धनुर्यस्य, 'धनुर्धन्वन् वा च नाम्नि' इति धनुषो धन्वन्नादेशः। महादेव, शिव।

शैलधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच् धरः। शैलस्य गोवर्द्धनपर्वतस्य धरः। श्रीकृष्ण। (धनञ्जय)

शैलधातु (सं० पु०) गिरिधातु।

शैलधातुज (सं० क्ली०) शिलाजतु, शिलाजीत।

शैलनन्दिनी (सं० स्त्री०) पार्वती।

शैलनिर्यास (सं० पु०) शैलस्य निर्यास इव रसो यत्र। १ शैलेय, शैलज, छरीला। २ शिलाजतु, शिलाजीत।

शैलपति (सं० पु०) शैलस्य पर्वतस्य पतिः। हिमालय।

शैलपत्र (सं० पु०) शैलवत् सुगन्धिपत्रमस्य। विल्व वृक्ष, बेल।

शैलपथ (सं० पु०) शैलस्य पन्था, अच् समासान्तः। पर्वतपथ, पहाड़का रास्ता।

शैलपुत्री (सं० स्त्री०) शैलस्य पुत्री। १ हिमालयकी कन्या, पार्वती। २ गङ्गा। (रामायण १।३८।११) ३ नौ दुर्गाओंमेंसे एक दुर्गाका नाम।

शैलपुर (सं० क्ली०) नगरभेद।

शैलपुष्प सं० क्ली०) एसफाल्ट (Ashphalt) नामक अलकतरेके समान एक प्रकारका पदार्थ। (सुश्रुत)

शैलप्रतिमा (सं० स्त्री०) प्रस्तर-प्रतिमूर्त्ति।

शैलप्रस्थ (सं० पु०) अधित्यका। (रामा० २।६४।११)

शैलबाहु (सं० पु०) असुरभेद।

शैलबीज (सं० पु०) भल्लातक, भिलावां।

शैलभित्ति (सं० स्त्री०) शैलानां भित्तिर्भेदो यस्याः। टङ्क, सोहागा।

शैलभेद (सं० पु) अश्मभेद, पाषाणभेद।

शैलमय (सं० त्रि०) शैल स्वरूप वा विकारे मयट्। शैलस्वरूप या शैलविकार।

शैलमल्ली (सं० स्त्री०) कुटज, कोरैया।

शैलमृग (सं० पु०) मृगविशेष, पहाड़ी हिरन।

शैलरन्ध्र (सं० क्ली०) पहाड़ी गुफा।

शैलराज (सं० पु०) शैलानां राजा टच् समासान्तः। हिमालय पर्वत।

शैलराजसुता (सं० स्त्री०) शैलराजस्य सुता। १ दुर्गा, पार्वती। २ गङ्गा। (भारत ३।१०।६४)

शैलरोही (सं० पु०) मोगरा चावल।

शैलवर (सं० पु०) शैलश्रेष्ठ, हिमालय पर्वत।

शैलवल्कला (सं० पु०) शैलं शिलावल्कलं यस्याः। १ शिलावल्कला। २ शैलज, छरीला। ३ श्वेतपाषाण-भेद।

शैलशिखा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १६ अक्षर होते हैं, जिनमेंसे पहला, चौथा, छठा, दशवां, तेरहवां और सोलहवां वर्ण गुरु और बाकी सभी वर्ण लघु होते हैं।

शैलशिविर (सं० क्ली०) शैलानां शिविरमिव, समुद्र-गर्भे बहुपर्वतावस्थानत्वात् तथात्वं। समुद्र, सागर। कहते हैं, कि जब इन्द्रने पर्वतों पर चढ़ाई की थी, तब कुछ पर्वत समुद्रमें जा छिपे थे। इसीसे समुद्रका यह नाम पड़ा है।

शैलशृङ्ग (सं० क्ली०) पर्वतका शिखर।

शैलसन्धि (सं० पु०) उपत्यका।

शैलसम्भव (सं० क्ली०) शिलाजतु, शिलाजीत।

शिलासम्भूत (सं० क्ली०) गैरिक, गेरू।

शैलसर्वज्ञ—एक प्राचीन कवि।

शैलसार (सं० पु०) शैल सदृश दृढ़।

शैलसुता (सं० स्त्री०) शैलस्य सुता। १ पार्वती, दुर्गा। २ ज्योतिष्मती लता।

शैलसेतु (सं० पु०) १ पर्वतकी खात परका सेतु या पुल। २ पत्थरका पुल।

शैलाख्य (सं० क्ली०) शैलमिति आख्या यस्य। शैलज, छरीला।

शैलाग्र (सं० क्ली०) शैलस्य अग्रं। पर्वतका अग्रभाग, शिखर, चोटी।

शैलाज (सं० क्ली०) शैलादाजायते इति आ-जन-ड। शैलेय, छरीला।

शैलाट (सं० पु०) शैले अटतीति अट अच्। १ पहाड़ी

आदमी, परवतिया। २ सिंह। ३ स्फटिक, बिल्लौर। ४ किरात।

शैलाद (सं० पु०) शिलाद ऋषिका गोत्रापत्य।

शैलादि (सं० पु०) शिवके गण, नन्दी।

शैलाधिराज (सं० पु०) शैलस्य अधिराजः। नगाधिराज, हिमालय।

शैलाभ (सं० पु०) विश्वदेवभेद।

शैलाल (सं० क्ली०) शिलालकृत नटसूत्रग्रन्थ अथवा उसका अध्ययन करनेवाला।

शैलालय (सं० पु०) भगदत्तराज, प्राग्ज्योतिषके राजा। (भारत १५ प०)

शैलालि (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम। (शतपथब्रा० १३।५।३३) ये गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि थे।

शैलालिन् (सं० पु०) शिलालिना प्रोक्तं नटसूत्रमधीते इति शिलालि (पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। पा ४।३।११०) इति णिनि। शिलाली, नट। (अमर)

शैलासा (सं० स्त्री०) पार्वती।

शैलाह्व (सं० क्ली०) शैल इति आह्वा यस्य। शिलाजतु, शिलाजीत।

शैलिक (सं० पु०) एक जाति और एक देशका नाम।

शैलिक्य (सं० पु०) सर्वलिङ्गी। (जटाधर)

शैलिन (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

शैलिनि (सं० पु०) शैलिन ऋषि।

शैली (सं० स्त्री०) शीलस्येयमिति शील-अण्, ङीप्। १ चाल, ढब, ढङ्ग। २ रीति, प्रथा, रसम, रवाज। ३ प्रणाली, परिपाटी, तर्ज, तरीका। ४ वाक्यरचनाका प्रकार। ५ कठोरता, कड़ाई, सख्ती। ६ शिलाप्रतिमा, पत्थरकी मूर्त्ति।

शैलु (हि० पु०) १ लिसोड़ा, लभेरा। (स्त्री०) २ एक प्रकारकी चटाई जिसका व्यवहार दक्षिण और गुजरातमें होता है।

शैलूक (सं० पु०) १ बहुवार वृक्ष, लिसोड़ा। २ कमलकन्द, भसींड़।

शैलूकी (सं० स्त्री०) कमलकन्द, भसींड़।

शैलूत (सं० क्ली०) स्थानभेद।

शैलूष (सं० पु०) शिलूषस्यापत्यमिति शिलूष-अण्। १ अभिनय करनेवाला, नट। २ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। ३ धूर्त्त, चालाक। ४ गन्धर्वोंका स्वामी, रोहितण। ५ तालधारक।

शैलूषक (सं० पु०) शैलूषाणां विषयो देशः (राजन्यादिभ्यो वुञ्। पा ४।२।५३) शैलूषोंका देश। शैलूष स्वार्थे कन्। २ शैलूष देखो।

शैलूषभूषण (सं० पु०) हरिताल, हरताल।

शैलूषिक (सं० पु०) नटवृत्त्यन्वेषी, नटवृत्तिसे जीवन निर्वाह करनेवाली एक जाति।

शैलूषिकी (सं० स्त्री०) शैलूषिक जातिकी स्त्री, नट जातिकी स्त्री। प्रायश्चित्ततत्त्वमें लिखा है, कि ज्ञानतः इस जातिकी स्त्रीके साथ गमन करनेसे दो चान्द्रायण, अज्ञानतः होनेसे एक चान्द्रायण करे। इस चान्द्रायणका अनुकल्प आठ धेनुदान है।

शैलेन्द्र (सं० पु०) शैलानामिन्द्रः। हिमालय, शैलराज।

शैलेन्द्रस्थ (सं० पु०) शैलेन्द्र तिष्ठतीति स्था क। भूर्ज्जवृक्ष, भोजपत्र।

शैलेय (सं० क्ली०) शिलायां भवं शिला-ढक्। १ शैलजाख्य, गन्धद्रव्य। शैलज देखो। २ तालपर्णी, मूसली। ३ सैन्धव लवण, सेंधा नमक। (पु०) ४ सिंह। ५ भ्रमर, भौंरा। (त्रि०) शैले भवं शिला-ढक्। ६ शैलसम्भव, शिलासे उत्पन्न। ७ पत्थरका, पथरीला। ८ पहाड़ी। शिलेव (शिलायाः ढः। पा ५।३।१०२) इति ढ। ९ शिला सदृश, पत्थरके समान।

शैलेयक (सं० पु०) शैलेय देखो।

शैलेयी (सं० स्त्री०) शैले भवा शैल-ढक्-ङीप्। पार्वती। (त्रिका०)

शैलेश (सं० पु०) शैलस्य ईशः। शैलेश्वर, पर्वतपति, हिमालय।

शैलेशलिङ्ग (सं० क्ली०) हिमालय कर्त्तृक प्रतिष्ठित शिवलिङ्गभेद।

शैलेश्वर (सं० पु०) शिव, महादेव।

शैलोदा (सं० स्त्री०) उत्तर दिशाकी एक नदी।

शैलोत्थगरल (सं० क्ली०) पाषाणघातजन्य विष।

शैलोद्भवा (सं० स्त्री०) शैलादुद्भवो यस्याः। क्षुद्र पाषाणभेदी, पत्थरचूर।

शैल्व (सं० त्रि०) शिलाया इदं शिला-ष्यञ्। १ शिला सम्बन्धी, पत्थरका। २ पथरीला। ३ कठोर, कड़ा।

शैव (सं० क्ली०) शिवमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शिव अण्। १ शिवपुराण। पुराण शब्दमें विशेष विवरण देखो।

२ शैवाल। (शब्दच०) (त्रि०) शिवस्येदमिति शिव-अण्। ३ शिवसम्बन्धी। (पु०) ४ वसुक, वकपुष्प। ५ धुस्तुर, धतूरा। (राजनि०) ६ आचारविशेष। आचारभेदतंत्रमें लिखा है, कि अष्टांग योग संयुक्त हो कर विधि अनुसार देवोंके उद्देशसे उपासना की जाती है और जब तक ध्यान तथा समाधि न हो जाती है, तब तक उसे शैव आचार कहते हैं।

७ शिवो देवता अस्य शैवः। शिवके उपासक शैव कहलाते हैं। वैष्णव सम्प्रदायकी तरह शैव सम्प्रदाय भी अत्यन्त प्राचीन है। वेदमें जिनका नाम रुद्र लिखा गया है, पुराणमें वही शिवके नामसे प्रसिद्ध हैं। शैव संप्रदायके प्राचीनत्व संबंधमें शास्त्रोंके अन्दर बहुत प्रमाण पाये जाते हैं। इसके सम्बन्धमें शिव और लिङ्ग शब्द देखो। वेद, पुराण प्रभृति ग्रन्थोंके अतिरिक्त नाटकोंके मध्य मृच्छकटिक नाटक बहुत प्राचीन है। इस मृच्छकटिक नाटकमें लिखा है—

"पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बुदोपमः।
गौरी भुजलता यत्र विद्युल्लेखेव राजते॥"

मृच्छकटिक नाटकके दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी शैव-भावकी प्रधानता प्रकाश करनेवाले श्लोकप्रमाण देखे जाते हैं। यथा—

"पशाशि वासु शिलशि ग्गहीदा केशेशु वालेशु शिलोलुहेशु।
अक्रोश विक्रोश गवाहि चण्डं शम्भं शिवं शङ्कलमीशलं वा।"

ईसाके जन्मसे बहुत समय पहले हीसे इस देशमें शिवकी पूजा होती आ रही है, यह सब लोक स्वीकार करते हैं। बहुत प्राचीन शिलालिपियोंमें शिवका नाम और उनके रूपका सन्निवेश देखे जाते हैं। मृच्छकटिक नाटकके पढ़नेसे पता चलता है, कि शूद्रक राजाके समय शिव नामांकित मुद्रा प्रचलित थी।

सुविख्यात चीनदेशीय परिव्राजक यूएन चुआंगने अपने तीर्थभ्रमणग्रन्थमें शैवोंके कीर्त्तिकलापका अनेक परिचय दिया है। वे ६४५ ई०में यहां आये थे। उन्होंने काशी, कन्नोज, कराची, मलवार, कन्धार प्रभृति बहुतसे स्थानोंमें शिव और शिवमन्दिर देखे थे। उनमें कई स्थानों पर उन्हें पाशुपत नामक एक उन्नत शैव सम्प्रदाय देखनेमें आया। उन सब सम्प्रदायोंका विवरण इसके बाद वर्णन किया जायगा।

यूएनचुवंग कहते हैं,—"मैंने काशीधाम जा कर सुन्दर शिवमन्दिरोंका सन्दर्शन किया है। किसी एक मन्दिरमें सर्व्वावयवसम्पन्न पित्तलसे जड़ा हुआ न्यूनाधिक छियासठ हाथ लम्बी एक शिवमूर्त्ति देख कर मैं विस्मित हो गया। इस मूर्त्तिका भाव प्रसन्न और गम्भीर था, देखते ही हृदयमें भय और भक्तिका संचार होता था। वह अत्यन्त प्राचीन होने पर भी मुझे बिलकुल नवीन सी प्रतीत हुई।"

पराक्रान्त गुप्तवंशीय राजे चौथी सदीसे राज्य करते थे। वे शिवभक्त थे। उनकी प्रचलित मुद्राओंमें वृष, त्रिशूल और सिंहवाहिनी प्रभृति चिह्न अंकित थे। ४०० ई०में भी सौराष्ट्रीय राजाओंकी मुद्राओंमें वृष, त्रिशूलादिका चिह्न देखा जाता है।

विक्रमादित्य सम्बन्धीय अनेक कहानियोंमें शिव और शिवशक्ति सम्बन्धीय कई प्रसंग परिलक्षित होते हैं। शक, जाट, हूण प्रभृति जातिके लोग इसवी सन्‌के पहलेसे ही शिवोपासक थे। उनके राजोंकी मुद्राओंमें भी शिव, वृष और त्रिशूलादि चिह्न अंकित थे।

दाक्षिणात्यके पाण्ड्य और चोल वंशीय राजाओंने ईसाके जन्मसे बहुत काल पहले शिवमन्दिर और शिवमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा कर शैवप्रभाव विस्तार किया था। शाक्यमुनिके जन्मसे बहुत पहले इस देशमें शिवकी उपासना प्रचलित थी। बुद्धदेवके प्रायः समसामयिक बौद्धग्रन्थोंमें भी शिव, ब्रह्मा आदिके नामका उल्लेख है।

गौड़के पालवंशीय अनेक राजे बौद्धधर्मावलम्बी थे, पर उनके हृदयमें भी शैव धर्मका असर था। भागलपुरसे प्राप्त नारायणपालके ताम्रशासनमें लिखा है, कि वे पाशुपतोंकी तृप्तिके लिये एक बृहत् शिवमन्दिरका

प्रतिष्ठा की थी। उन्होंने शिवभट्टारकके 'पूजावलिचरुसत्रनवकर्म्मार्थ्यर्थ' तथा पाशुपताचार्यों के 'शयनासनग्लानप्रत्ययभैषजपरिष्कारार्थ्थ' उक्त दानपत्रोंमें यथेष्ट भूमिदान किया था। १०वीं शताब्दीके प्रारम्भकालमें नारायणपालका अभ्युदय हुआ था। उस समयसे ही इस देशमें शैवपाशुपतोंका प्रभाव जम चला था।

केवल भारतवर्षमें ही नहीं, दूसरे दूसरे देशोंमें भी शैवप्रभाव फैल चुका था। वलुचिस्तानके अन्तर्गत हिंगलाज हिन्दुओंका एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। अब भी शैव और शाक्त लोग उस तीर्थमें जाते हैं। वाली और यवद्वीपमें बहुत प्राचीन समयसे ही हिन्दूलोग आते जाते हैं। यवद्वीपके अन्तर्गत प्रम्बनन नामक स्थानमें दो सौ से भी अधिक देवमन्दिर वर्त्तमान हैं। वहां शिव, गणेश, दुर्गा और सूर्य प्रभृति देवताओंकी पीतल और पत्थरकी बनी मूर्त्तियां देखी जाती हैं। वालिद्वीपमें शिवकी उपासना सर्वोंसे अधिक प्रचलित है।

भारतवर्षके दाक्षिणात्यमें भी शैवोंका समधिक प्रादुर्भाव है। इसके अतिरिक्त उत्तर और उत्तर-पश्चिमांचलमें भी बहुतसे शिवोपाशक हैं। शैवोंके अनेक शिव मन्त्र हैं, यथा—एकाक्षर मंत्र "ह्रौं" त्रिअक्षर मन्त्र "ओं जुं सः" इसका नाम मृत्युञ्जय मन्त्र है। चतुरक्षर मन्त्र 'ओं हुं फट्' यह चण्डमन्त्र कहलाता है। पञ्चाक्षर मन्त्र "नमः शिवाय" षड़क्षर "ओं नमः शिवाय" इस प्रकार बीस अक्षर तकके मन्त्र देखे जाते हैं। शैव लोग विभूतिलेपन, त्रिपुण्ड्, तिलक और रुद्राक्षधारण बहुत प्रयोजनीय समझते हैं।

योगसारग्रन्थमें लिखा है—

"शिखायां हस्तयो कण्ठे कर्णयो श्चापि यो नरः।
रुद्राक्षं धारयेद्भक्त्या शिवलोकमवाप्नुयात्॥"

अर्थात् शिखामें, दोनों हाथोंमें, कण्ठमें और दोनों कानोंमें जो मनुष्य भक्तिपूर्वक रुद्राक्ष धारण करते हैं, वे शिवलोकको प्राप्त होते हैं।

शैव लोग सम्बिद् सेवन इष्टसाधनाका एक अंग मानते हैं। साधक ध्यान और शुद्धिपूर्वक सम्बिद् पान करते हैं। शैवगण जल मिश्रित विजया और विजया धूम पान करनेके भी पक्षपाती हैं। प्राणतोषिणीमें इस शास्त्रीय प्रमाण उद्धृत देखा जाता है।

वंगालमें यद्यपि ब्राह्मणोंके मध्य अनेकों शिवपूजक हैं, तथापि दाक्षिणात्यकी तरह इस देशमें शैव प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। दाक्षिणात्यमें कई प्रकारके शैव सम्प्रदाय देखे जाते हैं। उनमें अभेद, अष्व, अनाद्य, अणु, अन्तर आदि भेद, गण, क्रिया, महानसपद, निर्गुण, न्यून, ऊद्ध्वर्ध्व, शुद्ध और योग प्रभृति सम्प्रदायोंके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

दाक्षिणात्यमें शिव-मन्दिरोंमें साधारणतः शिवलिंगकी प्रतिमाकी ही पूजा होती है। वहां सैकड़ों शिवमन्दिर हैं। बम्बईकी अपेक्षा मन्द्राजमें ही शैवोंकी संख्या अधिक है। मन्द्राजमें प्रतिवर्ष अनेक शिवोत्सव अत्यन्त समारोहके साथ सम्पन्न किये जाते हैं। पहले ही कहा गया है, कि त्रिपुण्ड्र, तिलक, और रुद्राक्ष शैवोंके प्रधान चिह्न हैं। शैवोंके विविध सम्प्रदायोंमें अन्यान्य विषयोंके अन्दर थोड़ा थोड़ा मतभेद रहने पर भी इन दोनों प्रधान चिह्नोंके धारण करनेमें कोई मतभेद नहीं है। काश्मीर और राजपूतानेमें शैवोंका पूरा प्रभाव है। इसके बाद राजपूतानेके एकलिंग शिवके विषयकी आलोचना अच्छी तरह की जायगी।

काश्मीर, पंजाब, उत्तर-पश्चिम प्रदेश और राजपूतानेके शैव ब्राह्मण मत्स्य मांस आहार एवं सम्बिद् पान करते हैं। काश्मीरके प्रामाण्य ग्रन्थ नीलमतपुराणमें सम्बिद्पानकी व्यवस्था देखी जाती है। शैव आगममें भी इस प्रकारके व्यवहारका अभाव नहीं है। प्राचीन समयसे ही काश्मीरमें शैव धर्मका प्रभाव परिदृष्ट होता है। महाराष्ट्र और गुजरात अञ्चलमें स्मार्त्त ब्राह्मण लोग वंगीय स्मार्त्त ब्राह्मणोंकी तरह शिवपूजा करते तो हैं, किन्तु उनमेंसे कितने ही लोग शिवमन्त्रकी दीक्षा ग्रहण नहीं करते। काश्मीरके ब्राह्मण विधिपूर्वक शिवमन्त्र ग्रहण करते हैं एवं उपयुक्त प्रणालीसे दीक्षित होते हैं। कलादीक्षा ग्रन्थमें इस दीक्षाप्रणालीका विस्तृत विवरण विवृत है।

ऐसा लिखा है, कि प्राचीनकालमें शिव उपासकोंके मध्य केवल पाशुपत सम्प्रदाय ही था। महाभारतमें पाशुपत शैवके सिवाय दूसरे किसी शैव सम्प्रदायका नाम नहीं पाया जाता। किन्तु हमें श्रीभाष्यमें

(२।२।३६) शिवोपासकोंके चार सम्प्रदायोंका परिचय मिला है। यथा—कापाल, कालामुख, पाशुपत और शैव। शंकरभाष्यके टीकाकार गोविन्दानन्द एवं वाचस्पति मिश्र (ब्रह्मसूत्र २।२।३७) इन दोनोंने ही चारों सम्प्रदायोंका नामोल्लेख किया है। वाचस्पति मिश्र कहते हैं—

"माहेश्वरश्चत्वारः—शैवाः पाशुपताः कारुणिक सिद्धान्तिनः कापालिकाश्चेति चत्वारोऽप्यमी महेश्वरः प्रणीतसिद्धान्तानुयायितया माहेश्वराः।"

गोविन्दानन्दने लिखा है—

"चत्वारो माहेश्वराः—शैवाः पाशुपताः कारुणिक-सिद्धान्तिनः कापालिकाश्चेति। सर्व्वेऽप्यमी महेश्वरप्रोक्तागमानुगामित्वान्माहेश्वरा उच्यन्ते।"

आनन्दगिरिने भी इन चारों सम्प्रदायोंका नामोल्लेख किया है।

सायणाचार्य्यके सर्वदर्शनसंग्रहग्रन्थमें भी शिवोपासक लोगोंके दर्शनके नाम देखे जाते हैं, यथा—

१ लकुलीशपाशुपतदर्शन।
२ शैवदर्शन।
३ प्रत्यभिज्ञा।
४ रसेश्वरदर्शन।

लकुलीश पाशुपत सम्प्रदायकी उत्पत्ति एवं उस संप्रदायके दर्शनशास्त्रके सम्बन्धमें सबसे पहले आलोचना करनी है। 'लकुशलीश-पाशुपत' नाम ही सर्व प्रथम आलोचनाके योग्य है। "लकुलीश" शब्द किस प्रकार प्रवर्त्तित हुआ, उसके इतिहासका पता नहीं चलता। किन्तु प्राचीन अनुशासन और शिलालिपिमें "लकुलीश पाशुपत"का नाम पाया जाता है। पुराणादिमें भी इस नामकी उत्पत्तिका इतिहास वर्णित है। यद्यपि सर्वदर्शनसंग्रहमें इस सम्प्रदायके दार्शनिकतत्त्वके सम्बन्धमें कितनी ही कहानियां उल्लिखित हैं तथापि इस सम्प्रदायकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कोई विस्तृतरूपसे सन्दर्भादि प्रकाश नहीं करते।

इस समय इस सम्बन्धमें एक अभिनव ऐतिहासिक प्रकाश प्रत्नतत्त्वविदोंकी आंखोंके सामने उपस्थित हुआ है। मेवारके अंतर्गत उदयपुरसे १४ मील दूर एक लिंगजीका मंदिर है। एकलिंगजी अति सुप्रसिद्ध लिंग है। इसके पास ही नाथजीका एक मंदिर है। इस मंदिरकी पूर्वी दीवारमें एक शिलालिपि है। उसके प्रथम छत्रमें स्पष्टरूपसे लिखा है—

"ओम् ओम् नमो लकुलीशाय।"

यहां सबसे पहले "लकुलीश" शब्द देख कर मनमें एक प्रकारका सन्देह पैदा होता है, कि "नकुलीश" नाम ही तो सबको विदित है। तब "लकुलीश" शब्द क्या लिपिकर प्रमाद है? किन्तु इस शिलाको आद्योपान्त पढ़नेसे वह भ्रम दूर हो जाता है। उसमें लिखा है—मेकलनन्दिनी नर्म्मदातीरवर्त्ती भृगुकच्छ (भरोच) देशमें किसी समय सुरभिद् विष्णु द्वारा भृगुमुनि अभिशप्त हुए। भृगु गतिका उपाय न देख महादेवकी आराधनामें प्रवृत्त हुए। महादेव उनकी आराधनासे संतुष्ट हो कर लकुल वा लगुड़ धारण कर उनके सामने अवतीर्ण हुए। उस समयसे ही महादेव 'लकुलीश' नामसे विख्यात हुए। जिस स्थान पर उनका यह नकुलीश रूपका आविर्भाव हुआ, उसी स्थानका नाम—"कायावरोहण" है। पाशुपतयोगावलम्बी कौशिक प्रभृति कितने ही शिवभक्त योगियोंने अब्रग्राममें इस लकुलीश शिवका मन्दिर निर्म्माण किया। विक्रम-सम्वत् १०२८में अर्थात् ९७१ ई०में यह शिलालिपि उत्कीर्ण हुई थी।

लकुलीश महादेवके आविर्भावके सम्बंधमें और भी एक प्रमाण शिला प्रशस्तिमें देखा जाता है, यथा—उलूकके पुत्रने पिताके शापसे निष्पुत्र हो कर महादेवकी तपस्या की। करुण-हृदय महादेव उनकी आराधनासे संतुष्ट हो कर भट्टारक श्रीलकुलीश वेशमें गदा धारण किये लाटो प्रदेशके कायारोहण नामक स्थानमें अवतीर्ण हुए। उस समय कौशिक, गार्ग्य, कौरुष एवं मैत्रेय नामक चार शिष्य भी आविर्भूत हुए थे। ये चारों शिवोपासक सम्प्रदायोंके प्रवर्त्तक थे।

उक्त दोनों शिलालिपियोंसे स्थिर हुआ है, कि "लकुलीश" शिवका आविर्भाव स्थिर किया जाता है। वे कायावरोहणमें आविर्भूत हुए थे। बरोदाके डाभय तालुकके अन्तर्गत कारण नामक स्थान कायावरोहणका ही आधुनिक नाम है। लकुलीशके चार शिष्योंके द्वारा चार शैव सम्प्रदायोंकी प्रवर्त्तना हुई।

कोई कोई कहते हैं—९४३ ई०में मुनिनाथ चिल्लुकने ही महिसुरमें लकुलीशका अवतार धारण किया था और उन्हींके द्वारा लकुलीश पाशुपत सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई।

जो कुछ भी हो, लकुलीश अवतारके संबंधमें ब्रह्माण्ड पुराण और लिङ्गपुराणमें थोड़ा थोड़ा आभास पाया जाता है। इस विषयका कुछ अंश लिङ्गपुराणसे ले कर यहां उद्धृत किया जाता है। यथा —

"अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्त्ते क्रमागते ॥
पराशरसुतः श्रीमान् विष्णु र्लोकपितामहः।
यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः॥
तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषसत्तमः।
वसुदेवाद् यदुश्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति॥
तदाप्यहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया।
लोकविस्मयनार्थाय ब्रह्मचारिशरीरकः॥
श्मशाने मृतमुत्सृष्टं दृष्ट्वा कायमनामकम्।
ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया॥
दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्द्धं च विष्णुना।
भविष्यामि तदा ब्रह्मन् लकुली नाम नामतः॥१२९॥
कायावतार इत्येवं सिद्धक्षेत्रं च वै तदा।
भविष्यति सुविख्यातं यावद्भूमि र्धरिष्यति॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः।
कुशिकश्चैव गर्गश्च मित्रः कौरुष्य एव च॥
योगात्मानो महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं विमलाह्यूर्द्ध्वरेतसः।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
एते पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः॥"

(लिङ्गपुराण २४ अ० ११४—१३३ श्लोक)

सुतरां लिङ्गपुराणके अनुसार मालूम होता है, कि 'लकुलीश' महादेवका अट्ठाइसवां वा शेषावतार है। लिङ्गपुराणके इस वृत्तान्तके साथ पूर्वोलिखित शिलालिपियोंमें थोड़ा अन्तर रहने पर भी असल बात बिल्कुल मिलती है। कूर्मपुराणमें भी महादेवके लकुलीश्वर अवतारका उल्लेख है एवं इस पुराणमें भी चारों शिष्यों के नाम दिये गये हैं।

राजपूतानेमें कहीं कहीं 'लकुलीश' की मूर्त्तियां देखी जाती हैं। राजपूतानेके अतिरिक्त नर्मदातीरवर्त्ती मान्धाता नामक स्थानमें भी एक लकुलीशकी मूर्त्ति है। दाक्षिण-भारतमें किसी समय लकुलीश मूर्त्तिकी पूजा होती थी। वलगामी नामक स्थान लकुलीशकी आराधनाका केन्द्रस्थान था।

महिसुरके कालामुख शैवगण सम्भवतः लकुलीशके उपासक थे। ये "लकुलागमसमय" नामक ग्रन्थके सिद्धान्तको मान कर चलते हैं। महिसुरके दक्षिण केदारेश्वरका शिवमन्दिर अत्यन्त सिद्ध है। इस शिवमन्दिरके गुरुवंशकी गुरुप्रणालिकासे जाना जाता है, कि कोड़िय मठमें कई विद्वान् गुरु थे। प्रथम गुरुका नाम केदारशक्ति था और इनके शिष्यका नाम श्रीकंठ। सम्भवतः इस श्रीकंठने ही वेदान्तसूत्रके एक भाष्यग्रन्थकी रचना की थी। यह भाष्यग्रन्थ श्रीकंठ-भाष्यके नामसे विख्यात है। वह श्रीरामानुज सिद्धान्तकी तरह विशिष्टाद्वैतवाद-सिद्धान्तमय है। श्रीकंठके शिष्यका नाम सोमेश्वर, उनके शिष्यका नाम गौतम, उनके शिष्यका नाम वामाशक्ति एवं वामाशक्तिके शिष्यका नाम ज्ञानशक्ति था। वलगामीमें कई शिलालिपियां पाई गई हैं। इन सब शिलालिपियोंमें कोड़िया मठके गुरुओंकी विद्याबुद्धिका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। इसकी एक शिलालिपिमें लिखा है, कि सोमेश्वरने लकुलसिद्धान्तका विकाश साधन किया है। दूसरी शिलालिपिमें सर्वप्रथम लकुलीश महादेवकी वन्दना है। गुरुपाद वामशक्तिके सम्बन्धमें भी एक शिलालिपि देखी जाती है। उसमें लिखा है, कि ये व्याकरणमें पाणिनिकी तरह राजनीतिमें श्रीभूषणाचार्यके समान, नाटकालंकारमें भरतमुनि जैसे, काव्यमें सुवन्धुकी तरह, एवं सिद्धांतमें लकुलीश्वरके समान विद्वान् थे। लकुलागमसिद्धांतमें ये अति सुदक्ष थे, यह बात एक दूसरी शिलालिपिमें लिखी है। इन शिलालिपियोंके द्वारा स्पष्ट मालूम पड़ता है, कि दक्षिण केदारेश्वरके मन्दिरके आचार्यगण लकुलीशके उपासक थे। यद्यपि पुराणोंमें लकुलीश महादेवका अवतार बतलाया गया है, तथापि वे मनुष्यका शरीर धारण कर मनुष्यकी तरह विचरण करते थे; इसका भी प्रमाण पाया जाता है। दाक्षिणात्यके मुनिनाथ

चिल्लुक लकुलीशके अवतार माने जाते है। सर्वदर्शन-संग्रहकारने लकुलीश दर्शनकी सूचनामें लिखा है—
"तदुक्तं भगवता ल(न)कुलीशेन।"

हेमावती शिलालिपिके पाठ करनेसे मालूम पड़ता है, कि मुनिनाथ चिल्लुक ही लकुलसिद्धान्त और लकुलागमके शिक्षक थे। कौड़िय-मठके गुरुगण पातंजलोक्त योग शिक्षा प्रदान करते थे। सुतरां लकुलसिद्धांतयोग संमिश्रित है। इसलिये ही लकुलीश पाशुपतदर्शनमें पाशुपतयोगका यथेष्ट परिचय मिलता है।

महाभारतके शान्तिपर्व्वमें सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेद (आरण्यक) और पाशुपत इन पांच प्रकारके तत्त्वोंका उल्लेख है। श्रीरामानुज कहते हैं, कि दक्षिण-भारतके कालामुखगण लगुड़ी धारण करते हैं। सम्भवतः ये लोग लकुलीशका अनुकरण करके ही सम्प्रदायका चिह्नस्वरूप लगुड़ व्यवहार करते हैं। दक्षिण-भारतमें 'गगन शिव' नामक एक शैव सम्प्रदाय है। यह सम्प्रदाय लकुलीश सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त नहीं है। इन लोगोंके सिद्धांतका नाम लकुलशिवसिद्धांत अथवा शिवसिद्धांत है।

दक्षिण भारतका लकुलीशसम्प्रदाय दो भागोंमें विभक्त है। यथा—प्राचीन और नवीन। लकुलीश सिद्धांतके नष्ट हो जानेकी आशंकासे लकुलीशने मुनिनाथ चिल्लुकका अवतार धारण कर जिस सिद्धांतका प्रचार किया था, दक्षिण भारतमें वही नवीन लकुलीश-सिद्धांतके नामसे विख्यात है।

हम इसके पहले कह चुके हैं, कि सर्वदर्शनसंग्रहमें नकुलीशपाशुपतदर्शन, रसेश्वरदर्शन, प्रत्यभिज्ञदर्शन और शैवदर्शन भेदसे शैवसम्प्रदायके चार दर्शन प्रचलित है। प्रागुक्त तीन दर्शनका सार मर्म्म उन शब्दोंमें देखो। यहां शैवदर्शनका संक्षिप्त सिद्धांत प्रकाश किया जाता है।

इस दर्शनके मतानुसार शिव ही परमतत्त्व परमेश्वर हैं और जीव समुदाय 'पशु' हैं। शैवगण कहते हैं, कि परमेश्वर कर्मादिके सापेक्षकर्त्ता हैं। परमेश्वर जीवके कर्मोंका अनुरूप फल प्रदान करते हैं। परमेश्वरने एक ओर जिस प्रकार ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय प्रदान की है, दूसरी ओर उसी तरह विषयकी भी सृष्टि की है। वे केवल अपनी इच्छाके ऊपर संसारकी परिचालनाका भार संलग्न नहीं रखते। इस जगत्में भी जीवोंको अवस्थाकी नाना प्रकारकी विचित्रताएं परिलक्षित होती हैं। सुतरां श्रीभगवान् जो कर्मसापेक्षकर्त्ता हैं, यही सिद्धांत युक्तिसंगत है।

इस प्रकार कर्मसापेक्षकर्त्ता मानने पर भी परमेश्वरको स्वतंत्रकर्त्तृत्वमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुंचती। जो किसी दूसरेके बन्धनमें न रह कर अपनी स्वतंत्र इच्छासे कार्य्य सम्पादन करते हैं, वे ही स्वतंत्र कर्त्ता हैं, ईश्वरने अपने कर्त्तृत्वसे ही जगत्‌की सृष्टि की है।

इन लोगोंका कहना है, कि सभी कार्य किसी न किसीके द्वारा किये जाते हैं, यह संसार कार्य्य है अतएव इसके एक सचेतन कर्त्ता अवश्य हैं, वे ही परमेश्वर हैं और जो निर्म्माता हैं, वे शरीरी हैं। सुतरां जगत् निर्म्माता ईश्वर शरीरवान् हैं। किंतु प्राकृत शरीर जिस प्रकार अनेक दोषोंसे परिपूर्ण है, ईश्वरका शरीर वैसा नहीं है, वह पञ्च-मंत्रात्मक है। ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात, ये पांच मन्त्र क्रमानुसार ईश्वरके मस्तक, वदन, हृदय, गुह्य और पादस्वरूप हैं। ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं।

पति, पशु और पाश भेदसे पदार्थ तीन प्रकारका है। भगवान् शिव ही पति हैं और दीक्षादि उपाय ही शिवत्वको प्राप्तिकी साधनाएं हैं। पशु पदार्थ जीवात्मा है। जीवात्मा महत् क्षेत्रज्ञादि पदवाच्य, देहादिभिन्न सर्वव्यापक, नित्य, अपरिच्छिन्न, दुर्ज्ञेय एवं कर्त्ता-स्वरूप है। किंतु जीव नाना प्रकारके हैं। पाश पदार्थ—मल, कर्म्म, माया और रोधशक्ति भेदसे चार प्रकारका है। स्वाभाविक अपवित्रताका नाम ही मल है। मल दृक् शक्ति और क्रियाशक्तिको आच्छादित रखता है। धर्माधर्मका नाम कर्म्म है। प्रलयावस्थामें जिसके अन्दर सारे कार्य्य लीन हो जाते हैं एवं फिर सृष्टिकालके समय जिससे उत्पन्न होते हैं, उसीका नाम माया है। पुरुष-गतिरोधक जो पाश है, वही रोधशक्तिके नामसे विख्यात है।

जीवका नाम पशु पदार्थ—यह तीन प्रकारका है—विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल। केवल मल स्वरूप पाशयुक्त जीवको विज्ञानाकल कहते हैं। मन और कर्म पाशयुक्त जीव प्रलयाकलके नामसे अभिहित है। मलकर्म और मायाबद्ध जीवको सकल कहते हैं।

समाप्त कलुष और असमाप्त कलुष भेदसे विज्ञानाकल जीव दो प्रकारके हैं। उनमें समाप्तकलुष विज्ञानाकल जीवको परमेश्वर दया करके अनन्त सूक्ष्म, एकनेत्र, शिवोत्तम त्रिमूर्त्तिक श्रीकण्ठ एवं शिखण्डी इन कई विद्येश्वर पदों पर नियुक्त करते हैं। असमाप्तकलुष जीवोंको वे मन्त्रेश्वर बना देते। ये मन्त्र सात करोड़ हैं।

प्रलयाकल जीव भी दो प्रकारके हैं, पक्वपाशद्वय और अपक्वपाशद्वय। पक्वपाशद्वय मुक्तिपद पर पहुंचते हैं और अपक्व पाशद्वयको पुर्य्यष्टक देहधारण कर स्वकर्मानुसार तिर्य्यग् मनुष्यादि विभिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है।

मन बुद्धि अहंकार और चित्तस्वरूप अन्तःकरण, भोगसाधन कला काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण, ये ही सप्त तत्त्व हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पञ्चभूत हैं। इस पञ्चभूतका कारणस्वरूप पंचभूतात्मा है, चक्षुरादि पांच ज्ञानेन्द्रिय और वागादि पाँच कर्मेन्द्रिय हैं; सब एकतीस तत्त्वात्मक सूक्ष्म देहको पुर्य्यष्टक देह कहते हैं।

इन अपक्व पाशद्वय जीवोंके मध्य जो अधिक पुण्यवान् हैं, उन्हें अनन्त महेश्वर दया करके पृथ्वी-पतिका पद प्रदान करते हैं।

सकल स्वरूप जीव भी दो प्रकारके हैं—पक्वकलुष और अपक्वकलुष। उनमें पक्वकलुष जीवोंको महेश्वर द्रवित हो कर मंत्रेश्वरका पद देते हैं। मंत्रेश्वर मण्डल्यादि भेदसे एक सौ अठारह हैं। अपक्व कलुषगण संसारकूपमें पतित होते हैं। यही शैवदर्शनका संक्षिप्त इतिहास है। लिंग, शिव, शाक्तादि शब्दमें अन्यान्य विवरण देखो।

शैवगव (सं० पु०) शिवगुका गोत्रापत्य।

शैवता (सं० स्त्री०) शैवस्य भावः शैव तल्-टाप्। शैवका भाव या कर्म, शिवोपासना, शैवोंका कार्य।

शैवपत्र (सं० क्ली०) बिल्व वृक्ष जिसकी पत्तियां शिव पर चढ़ाई जाती हैं, बेल।

शैवपाशुपत (सं० त्रि०) शिवपशुपतिसम्बंधीय।

शैवपुर (सं० क्ली०) शिवपुरीसम्बन्धी।

शैवपुराण (सं० पु०) शिवपुराण।

शैवमल्लिका (सं० स्त्री०) लिङ्गिनी लता, पचगुरिया।

शैवरूप्य (सं० त्रि०) शिवस्य भूतपूर्वं यत् तत् शिवरूप्यं शिवरूप्य च (पा ४।१।१०६) शिवरूप्य सम्बंधी, शिवका भूतपूर्व वस्तु-सम्बन्धी।

शैवल (सं० क्ली०) शेते इति शी (शीङो-धुक्लग वलन् वालनः। उण् ४।३८) इति वलच्। १ पद्मकाष्ठ, पदुमाख। (पु०) २ शैवाल, सेवार। ३ विंध्यपर्वतका दक्षिणभागवर्त्ती एक पहाड़ या गिरि। (रामायण ७।८८।१३) ४ एक देश। ५ इस देशका निवासी।

शैवलवत् (सं० त्रि०) शैवल अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शैवलविशिष्ट, शैवालयुक्त।

शैवलित (सं० त्रि०) शैवल तारकादित्वादितच्। शैवाल विशिष्ट, जहां सेवार उत्पन्न हुआ हो।

शैवलिनी (सं० स्त्री०) शैवलमस्या अस्तीति इनि। नदी।

शैवल्य (सं० त्रि०) शैवालयुक्त, सेवारसे भरा हुआ।

शैववायवीय (सं० पु०) शिव और वायु सम्बंधी एक पुराण।

शैवाकवि (सं० पु०) शिवाकु अपत्यर्थे इञ् (पा ४।१।९६) शिवाकुका गोत्रापत्य।

शैवागम (सं० पु०) शैवतंत्रविशेष।

शैवायन (सं० पु०) शिव-अपत्यार्थे फञ्। (पा ४।१।११०) शिवका गोत्रापत्य।

शैवाल (सं० क्ली०) शी-बाहुलकात्-वालञ्। जलद्रव्यविशेष, सेवार। पर्याय—जलनीली, शैवल, शैपाल, शेवल, शीवल, जलनीलिका, जलनील, सैवाल, शैवाल, वारिचामर, सलिलकुन्तल, हटपर्णी, अम्बुताल, अरक, जलकेश, कावार, जलज। गुण—शीतल, स्निग्ध, संताप और व्रणनाशक।

शैवालक (सं० क्ली०) शैवाल-स्वार्थे कन्। शैवाल देखो।

शैवि (सं० पु०) शिव ऋषिका गोत्रापत्य।

शैवी (सं० स्त्री०) १ पार्वती। २ मनसा नामकी देवी। ३ कल्याण, मंगल।

शैव्य (सं० पु०) १ श्रीकृष्णका एक घोड़ा। २ पाण्डवोंका एक सेनापति। (गीता १।५) (त्रि०) ३ शिव-सम्बन्धी, शिवका।

शैव्या (सं० स्त्री०) १ प्रतीप राजाकी पत्नी। २ अयोध्याके सत्यव्रती राजा हरिश्चन्द्रकी रानी। (भाग० ३।१०७।३६)

शैशव (सं० क्ली०) शिशोर्भावः शिशु (इग-ताद्यलघु-पूर्वात्। पा ५।१।१३१) इति अण्। १ बाल्य, अनजान बालककी अवस्था, बचपन। २ बच्चोंका-सा व्यवहार, लड़कपन। (त्रि०) शिशु-सम्बन्धी, बच्चोंका। ४ बाल्यावस्था-सम्बन्धी, बचपनका।

शैशव्य (सं० क्ली०) शिशोर्भावः शिशु-ष्यञ्। शैशव, बाल्य।

शैशिर (सं० पु०) शिशिरे ऋतौ भवः शिशिर-अण्। १ श्यामचटक, श्यामापक्षी। २ ऋग्वेदकी एक शाखाके प्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम। (त्रि०) ३ शिशिर-सम्बन्धी। ४ शिशिरमें उत्पन्न।

शैशिरायण (सं० पु०) शिशिर ऋषिका गोत्रापत्य।

शैशिरि (सं० पु०) शिशिर ऋषिका गोत्रापत्य।

शैशिरिक (सं० त्रि०) शिशिरमधीते वेद वा शिशिर (वसन्तादिभ्यष्ठक्। पा ४।२।६३) इति ठक्। शिशिर ऋतुमें अध्ययनकारी।

शैशिरिय (सं० त्रि०) शिशिर नामक महर्षिप्रोक्त।

शैशिरियक (सं० त्रि०) शिशिर ऋषिका कथित।

शैशिरीय शाखा (सं० स्त्री०) ऋग्वेदकी शाकल शाखाओंमेंसे एक।

शैशिरेय (सं० पु०) शिशिरका अपत्य एक ऋषिका नाम। ये एक वैदिक आचार्य थे।

शैशुनाग (सं० पु०) मगधके प्राचीन राजा शिशुनागका वंशज।

शैशुपालि (सं० पु०) शिशुपालका वंशज।

शैशुमार (सं० क्ली०) शैशुमार अण्। शिशुमाराकार ज्योतिश्चक्र। (भागवत २।२।२४)

शैश्न्य (सं० पु०) शिश्नभोगपरायण।

शैष (सं० पु०) दिवसका शेषांश।

शैषिक (सं० त्रि०) शेष-सम्बन्धी।

शैष्योपाध्यायिका (सं० स्त्री०) शिष्योपाध्यायानां भावः कर्म वा, शिष्योपाध्याय (द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च। पा ५।२।१।१३३) इति वुञ्। शिष्याध्यापना, छात्रको पढ़ाना।

शैसीक (सं० पु०) एक प्राचीन जातिका नाम।

शोक (सं० पु०) शुच् घञ्। चित्तविकलता, इष्टके नाश और अनिष्टकी प्राप्तिसे उत्पन्न मनोविकार। बंधु बांधवोंका वियोगजनित मनःपीड़ा, आत्मीय नाशके लिये मनोदुःख। (भावप्र०) पर्याय—मन्यु, शुच्, शुचा, निःसम, शोचन, खेद। (हेम)।

शास्त्रमें लिखा है, कि पण्डित व्यक्ति शोच्यविषयमें शोक प्रकट न करें।

शुद्धितत्त्वमें लिखा है, कि मृत व्यक्तिके उद्देशसे शोक नहीं करना चाहिये, करनेसे मृतव्यक्तिकी अधोगति होती है। इस कारण मृत व्यक्तिकी अन्त्येष्टिक्रिया करके शोक दूर करे।

मृत व्यक्तिके अग्निकार्यादि समाप्त कर स्नान तथा उसके उद्देशसे उदकदान करके आत्मीयवर्ग और बंधुमण्डली कोमल तृणमय भूभाग पर बैठें। पीछे वृद्धगण प्राचीन आख्यानोंसे उसका शोक दूर करें। जो व्यक्ति प्राणियोंके कदलीस्तम्भ स्वरूप निःसार जलबुद्बुद जैसे क्षणभंगुर अस्तित्वके ऊपर स्थिरता आरोप करता है, वह अत्यन्त मूढ़ है। पूर्वजन्ममें परिगृहीत शरीरके साहाय्यसे उपार्जित कर्मफलसे भूमि, जल, तेज, वायु और आकाश यह पञ्चभूत निर्मित देह फिर यदि पञ्चभूतमें मिल जाय, मिट्टीका ढेला मिट्टीमें गिर जाय, गण्डूष जल समुद्रजलमें निःक्षिप्त हो, यदि क्षीणदीपालोक चन्द्रलोकमें मिल जाय, वृन्तवायु मलयानिलमें विलुप्त हो जाय, घटादिके भीतरका क्षुद्र आकाश अनन्त विस्तृतमय महाकाशमें विलीन हो जावे, तो फिर उसके लिये शोक ही क्यों? जब एक दिन इस अचला वसुमतीको भी विनष्ट होना पड़ेगा

उत्तुङ्ग तरङ्गमालासङ्कुल अगाध जलराशिको भी काल-सागरमें निमग्न होना होगा, अजर अमर देवगण भी कालके हाथसे परित्राण न पायेंगे, तब तुच्छ पार्थिव प्राणिवृन्दकी बात ही क्या। ये सब क्या बिना नष्ट हुए रह सकते? विशेषतः बंधुबांधव रोदनके समय जो कफ और नयन जल छोड़ते हैं, इच्छा नहीं रहते हुए भी प्रेतको वह भोजन करना पड़ता है। अतः इस भयसे भी रोदन करना उचित नहीं। केवल उसकी जिससे सद्गति हो, अपनी शक्तिके अनुसार उसका पारलौकिक कार्य करना ही कर्त्तव्य है।

वृद्ध व्यक्तियोंको चाहिये, कि इत्यादि प्रकारसे शास्त्र वाक्यका उपदेश दे कर सबोंका शोक दूर करें।

गीतामें भी भगवान्ने अर्जुनसे कहा है—

"अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्य्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानु शोचितुमर्हसि॥
अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतं।
तथापित्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्य्येऽर्थे नत्वं शोचितुमर्हसि॥"

इत्यादि (गीता २ अ०)

हे अर्जुन! जिनके लिये शोक करना कर्त्तव्य नहीं; तुम उनके लिये शोक करते हो और पण्डितकी तरह बात बोलते हो, किन्तु जो पण्डित हैं, वे मृत या जीवित-के लिये कभी शोक प्रकट नहीं करते। यह आत्मा इन्द्रियकी अतीत है तथा अचिन्त्य और अविकार्य्य अर्थात् निष्क्रिय है, यह जानते हुए भी तुम्हें शोक करना उचित नहीं। फिर यदि तुम इस आत्माको सर्वदा जात और सर्वदा मृत समझते हो, तो भी तुम्हें शोक करना कर्त्तव्य नहीं। क्योंकि, जीवका जन्म होनेसे ही मृत्यु होगी और मृत्यु होनेसे ही फिर जन्म होगा, अतएव ऐसे अवश्यम्भावी विषय पर शोक प्रकट करना बुद्धि-मानोंको उचित नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्णने इत्यादि प्रकारसे अर्जुनको शोक-निवृत्तिके लिये उपदेश दिया था।

शोकवेग सह्य नहीं कर सकनेसे सुस्थ शरीरमें नाना प्रकारके रोग होते हैं तथा रुग्न शरीरमें वह रोग और भी बढ़ जाता है। अतएव बुद्धिमान् व्यक्तिमात्रको हो शोक करना कर्त्तव्य नहीं है।

शोककर (सं० पु०) करोतीति करः-कृ-ट, शोकस्य करः। शोककारक, शोकजनक।

शोककारक (सं० त्रि०) शोक उत्पन्न करनेवाला।

शोकघ्न (सं० पु०) अशोक वृक्ष।

शोकजातिसार (सं० पु०) शोकजः अतिसार। पुत्रादि-की मृत्युके शोकसे उत्पन्न अतिसाररोग। इसके लक्षण—बन्धु-बान्धव तथा धनके नाशसे जो शोक उत्पन्न होता है, उससे मनुष्यकी आँख, नाक और कण्ठका जल सूख जाता है और समूचे शरीरकी गर्मी पेटमें जमा हो कर जठराग्निका नाश कर डालती है; इससे लेहू अपना स्थान छोड़ कर अन्य स्थानोंमें प्रवाहित होने लगता है। वह क्षुब्ध रक्त मलके साथ मिल कर दुर्गन्धित अवस्था-में वा बिना मलके साथ मिले ही हरेंके आकारमें शक हो कर गुह्य द्वारसे बाहर निकल आता है; उसे शोकज अतिसार कहते हैं। (भावप्र० अतिसाररोगाधि०)

अतिसार रोग देखो।

शोकज्वर (सं० पु०) शोकजन्य ज्वर। ज्वररोग देखो।

शोकतर (सं० पु०) शोकमुक्त, शोकसे छुटकारा।

शोकनाश (सं० पु०) शोकस्य नाशो यस्मात्। १ अशोक वृक्ष। २ शोकका नाश, शोकापगम।

शोकमय (सं० त्रि०) शोक स्वरूपे मयट्। शोकस्वरूप।

शोकवत् (सं० त्रि०) शोक अस्त्यर्थे मतुप, मस्य व। शोकविशिष्ट, शोकयुक्त।

शोकशोष (सं० पु०) शोकजन्य शोषरोग। इस रोगमें प्रधान शील अर्थात् स्थिर भावमें रहने, स्रस्ताङ्ग अर्थात् शिथिलावयव विशिष्ट तथा शुक्रक्षय न होने पर भी तत्-विकारविशिष्ट होनेसे यह रोग होता है।

शोष शब्द देखो।

शोकहर (सं० पु०) एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक पदमें ८, ८,८, ६ के विश्रामसे (अन्त गुरु सहित) तीस मात्राएं होती हैं। प्रत्येक पदके दूसरे, चौथे और छठे चौकलमें जगण न पड़े। इसको शुभङ्गी भी कहते हैं।

शोकहारिन् (सं० त्रि०) शोकं हरति-हृ-णिनि। शोक-हरणकारी, शोकको दूर करनेवाला।

शोकहारी (सं० स्त्री०) शोकं हरतीति हृ-अण्-ङीष्। वनवर्व्वरिका, अजगन्धा।

शोकाकुल (सं० त्रि०) शोकसे व्याकुल।

शोकागार (सं० पु०) शोक गृह। राजप्रासादमें शोकागार, रोषागार, स्नानागार आदि स्वतन्त्र गृह निर्दिष्ट हैं।

शोकातुर (सं० त्रि०) शोकसे व्याकुल।

शोकारि (सं० पु०) शोकस्य अरिः। कदम्बवृक्ष, कदम।

शोकार्त्त (सं० त्रि०) शोकसे विकल।

शोकी (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

शोकोपहत (सं० त्रि०) शोकसे विकल।

शोख़ (फा० वि०) १ ढीठ, धृष्ट, प्रगल्भ। २ शरीर, नटखट। ३ चंचल, चपल। ४ जो मंद या धूमिल न हो, गहरा और चमकदार, चटकीला।

शोखी (फा० स्त्री०) १ धृष्टता, ढिठाई। २ चंचलता, चपलता। ३ तेज़ी, चटकीलापन।

शोच (हिं० पु०) शोचन देखो।

शोचन (सं० क्ली०) शुच-ल्युट्। १ शोक, रञ्ज, अफसोस। २ चिन्ता, फिक्र, खटका। (हेम) शोचतीति शुच् शोके (जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधीति। पा ३।२।१५०) इति युच्। (त्रि०) २ शोकशील, शोक करनेवाला।

शोचना (सं० स्त्री०) शोकोत्पादना, शोक प्रकट करना।

शोचनीय (सं० त्रि०) शुच-अनीयर्। १ शोक करने योग्य, जिसकी दशा देख कर दुःख हो। २ जिससे दुःख उत्पन्न हो, बहुत हीन या बुरा।

शोचि (सं० स्त्री०) १ लौ, लपट। २ दीप्ति, चमक। ३ वर्ण, रङ्ग।

शोचितव्य (सं० त्रि०) शुच्-णिच्-तव्य। १ शोक करनेयोग्य, जिसकी दशा देख कर दुःख हो। २ जिससे दुःख उत्पन्न हो, बहुत हीन या बुरा।

शोचिष्केश (सं० पु०) शोचींषि केशाइव यस्य नियतं समासेऽनुत्तरपदस्थस्येति षत्वं। १ अग्नि। २ सूर्य। ३ चित्रक वृक्ष, चीता। (त्रि०) ४ दीप्तिरूप केशयुक्त, जिसके बाल सुन्दर और चमकीले हों।

शोचिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशय दीप्तियुक्त, बड़ा चमकीला।

शोचिष्मत् (सं० त्रि०) शोचिस्-मतुप्। प्रकृष्टदीप्ति। उज्ज्वल दीप्तिविशिष्ट।

शोचिस् (सं० क्ली०) शुच्यत्यनेनेति शुच (अर्चि-शुचि हु-सृपीति। उण् २।१०६) इति इसि। प्रभा, ज्वाला, शिखा। (भागवत ३।१५।२६)

शोच्य (सं० त्रि०) शुच्-यत्। शोचनीय। शोकका विषयक, चिन्ता करनेके योग्य।

शोच्यक (सं० त्रि०) १ अवर। २ क्षुद्र।

शोजवर्म्मन—ककरेड़ीके एक महाराणक। ये दुर्लभके पुत्र थे।

शोटीर्य (सं० क्ली०) १ वीर्य, पराक्रम। २ गर्व, दम्भ।

शोठ (सं० त्रि०) १ मूर्ख, बेवकूफ। २ धूर्त, चालाक, ३ नीच, खोटा। ४ आलसी। ५ पापरत।

शोण (सं० क्ली०) शोणतीति शोण वर्णे पचाद्यच्। १ सिन्दुर। २ रुधिर। (राजनि०) (पु०) ३ रक्तोत्पल तुल्य वर्ण। पर्याय—कोकनदच्छवि, रक्तोत्पलनिभ, रक्तोत्पलाभ। (जटाधर) ४ नदविशेष, शोणनद। पर्याय—हिरण्यवाह।

यह नदी अमरकण्टक देशसे होती हुई पाटलिपुत्र (पटना में गङ्गा नदीमें मिल गई है। इसके जलका गुण—रुचिकर, सन्ताप और शोषापह, पथ्य, अग्निवर्द्धक, बल तथा क्षोणांग वृद्धिकारक। (राजनि०) ५ अग्नि। ६ श्योणाक। ७ लोहिताश्व। ८ समुद्रविशेष (धरणि) ९ रक्तेक्षु। १० श्योणाकभेद। (राजनि०) (त्रि०) ११ रक्तवर्ण। १२ कोकनदच्छाय। १३ मङ्गलग्रह। १४ रक्तधातु। १५ रक्तपुनर्नवा। १६ पृथुशिम्ब, श्योणाक वृक्ष। (राजनि०)

शोण—मध्यभारतमें प्रवाहित एक सुवृहत् नदी। यह गङ्गाकी एक प्रधान शाखा है। अमरकण्टककी भूमि ३५०० सौ फीट ऊंची अधित्यका भूमिसे निकल कर गङ्गाके दक्षिणकूलमें आ कर मिल गई है। उत्पत्ति स्थान—अक्षा० २२° ४१´ उ० एवं देशा० ८२° ७´ पू० है। इस स्थानसे शोण नदी क्रमसे उत्तरमुखी हो कर मध्यप्रदेश और बुन्देलखण्ड एजेन्सीके अन्तर्गत एक राज्यके सीमारूपमें

वक्रगतिसे बहती हुई कैमूरपर्वतमें (अक्षा० २४° ५´ उ० देशा० ८१° ६´ पू०) प्रतिहत हो गई है। यहांसे यह पूर्वकी ओर बहती हुई दानापुरसे १० मील उत्तर गङ्गामें मिलती है। नदीकी समूची धाराकी लम्बाई प्रायः ४६५ मील है। उनमें लगभग ३०० मील पार्वत्य वनप्रदेशमें प्रवाहित है और अवशिष्टांश युक्तप्रदेशके अन्तर्गत मुजफ्फरपुर जिलेसे होती हुई विहारमें आ गई है। यहां वह शाहावाद, गया तथा पटना जिलेके मध्य हो कर प्रवाहित होती है।

शोणनदीका जलप्रवाह तथा उसकी बाढ़की बातें जनसाधारणसे मालूम होती हैं। वर्षाके समय इसकी धारा बहुत चौड़ी हो जाती है; किन्तु अन्यान्य ऋतुओंमें नदीके गर्भमें अधिक जल नहीं रहता। इस कारण इस नदी द्वारा व्यापारकी अधिक सुविधा नहीं होती। जोहिला और महानदी नामक दो नदियां इसकी बाईं ओरसे एवं गोपथ, रेहन्द, कन्हार और कोयल नामक चार नदियां इसकी दाहिनी ओरसे आ कर इस नदीमें मिल गई हैं। उपरोक्त सहायक नदियोंके मध्य कोयल नदी ही सर्वप्रधान है। यह सुप्रसिद्ध रोहतासगढ़की विपरीत दिशामें शोण नदीके गर्भमें निपतित होती है।

शोणनदीका निम्न प्रवाह अर्थात् मुजफ्फरपुरसे गंगासंगम पर्यन्त नदीके गर्भका दृश्य अत्यन्त विस्मयकर है। वर्षाऋतुमें बाढ़के समय जब नदीके दोनों कछार जब जलसे लपलपा जाते हैं, तब उसका दृश्य जलकल्लोलपूरित गभीर समुद्रकी तरह मालूम पड़ता है। भीषण आँधीके समय इस नदीकी तरंग उन्मत्तभावसे नाचती रहती है। उस समय प्रायः २१३०० वर्गमील पार्वत्य भूभागकी जलराशि एक ही समय शोणनदीकी धारामें आ गिरती है, इस कारण उसका जलस्रोत प्रति सेकेण्ड ८ लाख ३० हजार क्युबिट फीट गिना जाता है। किन्तु दूसरे समय नदीगर्भमें बहुत थोड़ा जल रह जाता है एवं उसका जलमान प्रति सेकेण्डमें ६२० क्युबिक फीट होता है। उस समय नदीके दोनों कछारोंकी सुविस्तृत वालुकाराशि देखनेसे ज्ञान पड़ता है, मानो यह सचमुच समुद्र तट ही है।

देहरीके निकटवर्त्ती विस्तृत बाँधके पास हो कर 'ग्राण्डट्रङ्करोड' नामक सड़क उत्तर-पश्चिमकी ओर गई है। इस स्थानमें नदी पार करनेके लिये एक प्रस्तर-निर्मित पुल विद्यमान है। नदीकूलके स्रोतोवेग, कलनाद, दृश्यावली एवं अधित्यका भूमिके सौन्दर्य और स्वास्थ्य इस स्थानको मनोरम कर रहे हैं। इसके दक्षिण कैलवाड़ा नामक स्थानमें इष्टइण्डिया-रेलवे कम्पनीका सुविख्यात लौहनिर्मित पुल है। यह साधारणतः शोणब्रिज कहलाता है। १८५५ ई०में सिर्फ एक लौहवर्त्म चलानेके लिये यह पुल बनाया गया था, किन्तु १८७० ई०में यह दो रेलवर्त्मोंका उपयोगी तैयार कर दिया गया। यह पुल ४१६६ फीट लम्बा और २८ स्पैन (Span) द्वारा विभक्त है। सब स्पैन खम्भोंके ऊपर आपसमें संयोजित हैं। नदीगर्भमें ३० फीट गहरा कुआँ खोद कर खम्भे गाड़े गये हैं।

मेगास्थनीजने मगधकी राजधानी पाटलीपुत्रको (पटनाको) गङ्गा और हिरण्यवाहका सङ्गमस्थल कह कर उल्लेख किया है। एरियन, ष्ट्राबो प्रभृति ग्रीक भौगोलिकने उनके कथनानुसार ही इसे Erannoboas-के नामसे वर्णन किया है। १७वीं सदीमें भी पटनाके निकट जो शोण नदीकी धारा विद्यमान थी, वह १७७२ ई०के बङ्गालके मानचित्रमें दृष्टिगोचर होती है। प्रत्नतत्त्वानुसन्धित्सु वेगलार परान्नोवोयाको हिरण्यवती (गण्डक) नदी अनुमान करते हैं। किसी किसी ग्रीक भौगोलिकके ग्रन्थमें शोण नदीका Sonus नाम भी पाया जाता है। मार्कण्डेयपुराणमें (५७।२१) इस नदीका उल्लेख है। (बृहन्नीलतन्त्र)

शोणक (सं० पु०) शोण एव स्वार्थे कन्। १ शोणाक वृक्ष, सोनापाठा। २ रक्त पुनर्नवा, लाल गदहपूरना। ३ लाल गन्ना।

शोणखाल—विहार प्रदेशमें जल इधर उधर ले जानेके लिये शोणनदीसे जो कई खाइयां खोदी गई हैं, वे Sone-canal कहलाती हैं। ये खाइयाँ साधारणतः शाहाबाद, पटना और गया जिलेके मध्य प्रवाहित हैं। देहरी ग्रामके निम्नवर्त्ती बाँध वा आनिकट द्वारा जलस्रोत रोक कर ये खाइयां कई दिशाओंमें प्रवाहित की गई हैं। नदीके बायें किनारेमें उक्त आनिकटसे थोड़ी दूर पश्चिमी खाई

(The Western main canal) काटी गई है। इसकी चौड़ाई १८० फीट एवं गहराई ६ फीट है। इसमें बन्याके समय प्रति सेकेण्ड ४५११ क्युविक फोट जल बहता है। यह खाई २२ मील लम्बी है। इसके शुरूमें १२ मीलके अन्दर आरा, वक्सर और चौसा खाई काटी गई हैं। १८७४-७५ ई०में दुर्भिक्षके समय मिर्जापुर-की ओर यह ५० मील विस्तृत की गई है। काऊ नामक एक पार्वत्य प्रवल जलस्रोत खाईके निम्नभागमें लानेके अभिप्रायसे यहां स्थापत्य-शिल्पकी अक्षयकीर्त्तिस्वरूप एक २५ खिलानयुक्त साइफोन ऐक्वेडक्ट (Siphon aqueduct) तैयार किया गया है।

पाँच मील रास्ता तय करनेके बाद मूल पश्चिम-खाईसे आरा-खाई आरम्भ होती है। यहां ३० मील तक वह शोणनदीके समानान्तर जा कर आरा नगरके निकट उत्तरमुखी हो गई है और ६० मील आगे जा कर गंगामें मिल गई है। इसमें प्रायः प्रति सेकेंडमें १६१६ क्युविक फीट जल प्रवाहित होता है एवं इस जलसे लगभग साढ़े चार लाख एकड़ भूमि सींची जाती है। चार प्रधान पार्वत्य सोताओंको छोड़ इस खाईसे साढ़े तीस मील लम्बी विहिया-खाई और साढ़े चालीस मील लम्बी डुमरावं खाई काटी गई है।

वक्सर खाल ठीक तीन मोलको दूरीसे आरम्भ होती है। इसमें प्रति सेकेण्ड १२६० क्युविक फीट जल प्रवाहित होता है। ५० मील चल कर यह वक्सर नगरमें गंगासे मिल गई है। चौसा-खाल इससे भो विस्तृत है, पर लम्बी ४० मील है।

पूर्वमूल-खाई (The Eastern main canal) नदीके दक्षिणकूलसे पश्चिम खालकी ठोक विपरीत दिशामें काटी गई है। पहले इसे मुंगेर तक ले जानेका प्रस्ताव हुआ था, किन्तु पीछे वह संकल्प परित्याग कर सिर्फ ८ मील लम्बी पुनपुना नदी तक काटी गई है।

पटना-खाल पूर्व-खालके ठीक चार मील दक्षिणसे आरम्भ होती है। वाँकोपुर और दानापुरके मध्यवर्त्ती दीघा ग्रामके निकट यह गंगामें मिलती है और इसके द्वारा प्रायः ३ लाख एकड़ भूमि सींची जाती है।

शोणगढ़—बड़ौदा राज्यके अन्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २१° १०´ उ० तथा देशा० ७३° ३६´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या तीन हजारके करीव है। पहले यहां धनजनपूर्ण एक नगर था। नगरके पश्चिम प्रान्तमें एक दुर्ग स्थापित है। शोणगढ़ दुर्गके नामानुसार नगरका नाम शोणगढ़ हुआ है। पहले यह भीलोंके अधिकारमें था। अभी शहरमें मजिष्ट्रेटकी अदालत, अस्पताल और स्कूल हैं।

शोणगढ़—बम्बई प्रदेशके गोहेलवाड़-प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्त राज्य। यह शोणपुरी नामसे भी प्रसिद्ध है। यहांके सर्वाधिकारी बड़ौदाके गायकवाड़ और जूनागढ़-के नवावको कर देते हैं। शोणगढ़ ग्राम भावनगरसे १६ मील पश्चिम-दक्षिण और पालितानासे १५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। इसीकी बगलमें अंगरेज कर्मचारियोंका वासभवन है।

शोणगिरि—बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २१° ५´ उ० तथा देशा० ७४° ४७´ पू० धूलिया-से १४ मील उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या चार हजारसे ऊपर है। पहले यह अरव-राजाओंके अधीन था। पीछे यथाक्रम मुगल और निजामने यहां शासन फैलाया। निजामसे पेशवाने छीन लिया। महाराष्ट्र सरकारने इसे विनचरकारवंशको जागीरस्वरूप प्रदान किया। १८१८ ई०में यह अंगरेजोंके अधिकारमें आया। यहां पशमी कम्बल और सूती कपड़ेका जोरों कारवार चलता है। स्थानीय पहाड़ी दुर्ग देखने लायक है।

शोणझिण्टिका (सं० स्त्री०) शोणा रक्तवर्णा झिण्टिका। रक्तसैरेय, लाल कटसरैया।

शोणझिण्टी (सं० स्त्री०) शोणा रक्तवर्णा झिण्टी। १ कुरुबक। २ कण्टकारी।

शोणता (सं० स्त्री०) रक्तता, ललाई।

शोणपत्र (सं० पु०) शोणवत् रक्तानि पत्राणि यस्य। रक्त पुनर्नवा, लाल गदहपूरना।

शोणपद्मक (सं० क्ली०) शोणं रक्तवर्णं पद्मकं। लाल कमल।

शोणपुर—विहारके सारण जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २५° ४२´ उ० तथा देशा० ८५° १२´ पू० गण्डकके बाएं किनारे अवस्थित है। यह ग्राम-बहुत

प्राचीन है तथा जिले भरमें इसकी चिरप्रसिद्धि है। प्रति वर्ष कार्त्तिकी पूर्णमासे दश दिन तक एक बड़ा मेला लगता है। वह मेला 'हरिहर-छत्रका मेला' कहलाता है। यूरोपीय वणिक् इसे Sonepur fair कहते हैं। मेलेके समय यहां भिन्न भिन्न देशसे हाथी, घोड़े, गाय, भैंस, भेड़ आदि जीवजन्तु और कपड़े, पीतल, कांसेके बरतन आदि वस्तुओंकी आमदनी होती है। इस समय यहां एक सप्ताह तक घुड़दौड़ होता है, इस कारण आस पासके स्थानोंके यूरोपीयगण यहां आते हैं। उन लोगोंके लिये एक लंबा चौड़ा तंबू खड़ा किया जाता है। घुड़दौड़का मैदान बड़ा ही मनोहर है।

कुम्भादि मेलेकी तरह इस छत्रका मेला भी अति प्राचीन है। प्रवाद है, कि भगवान् विष्णुने यहां कुंभीरके मुखसे हाथीको बचाया था। दशरथतनय रामचन्द्र जब सीताके स्वयम्बरमें जनकपुर आये, तब उन्होंने इस स्थानकी माहात्म्यकथा सुन कर विष्णुके उद्देशसे एक मन्दिर बनवा दिया। मेलेके प्रथम चार दिन योग उपलक्षमें यात्रिगण गङ्गागण्डक संगममें स्नान दान करने आते हैं।

शोणपुर—मध्यप्रदेशके शम्बलपुर जिलांतर्गत एक सामन्त राज्य। यह अक्षा० २०° ३८' से २१° ११' उ० तथा देशा० ८३° २८' से ८४° १६' पू०के मध्य विस्तृत है। इसके उत्तरमें शम्बलपुर जिला, पूर्वमें रायराखोल, दक्षिणमें बऊद और पश्चिममें पटना सामन्त राज्य है। भूपरिमाण ९०६ वर्गमील है। इसमें शोणपुर नामक शहर और ८९९ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या दो लाखके करीब है।

इस राज्यका सारा स्थान समतल है। यहां भिन्न भिन्न अनाजकी खेती होती है। महानदी तेल और सुख तेल नामकी दो शाखा नदीके साथ इस सामन्तराज्यमें बहती है। जीरा नामकी नदी शम्बलपुर और शोणपुरके बीचसे बह गई है। यहां लोहा मिलता है और एक प्रकारका मोटा सूती कपड़ा भी तैयार होता है।

पहले यह राज्य पटना राज्यके अधीन था। करीब १५६० ई०में मधुकर शाहने अपने बाहुबलसे इसको एक स्वतन्त्र स्वाधीन राज्य बना लिया। तभीसे यह अठारह गढ़जातके अन्तर्भुक्त है। इस वंशके प्रथम राजा पर्यन्त वंशानुक्रमसे राज्य करते आ रहे हैं। राजा नीलाद्रिसिंह देवने अङ्गरेज गवमेंण्टको मदद पहुंचानेके कारण १८७७ ई०में राजा बहादुरका उपाधि पाई थी। १८९१ ई०में उनका देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के प्रतापरुद्रसिंहदेव राजसिंहासन पर बैठे। १९०२ ई०में वे इस लोकसे चल बसे। २८ वर्षकी उमरमें उनके लड़के वर्त्तमान राजा वीर मित्रोदयसिंहदेवने राजसिंहासन सुशोभित किया। वे बुद्धिमान् और दृढ़प्रतिज्ञ हैं। राजकार्य्यकी ओर इनका विशेष ध्यान रहता है। राज्यकी आय तीन लाख रुपयेकी है। अभी राज्यमें कुल मिला कर ३० स्कूल हैं जिनमेंसे दो मिडिल इङ्गलिश स्कूल, एक वर्नाक्युलर स्कूल, दो बालिका स्कूल और एक संस्कृत स्कूल है। स्कूलके अलावा अस्पताल भी है।

२ उक्त राज्यका शहर। यह अक्षा० २०° ५१' उ० तथा देशा० ८३° ५५' पू०के मध्य महानदी और तेलके सङ्गम स्थल पर अवस्थित है। भूपरिमाण ८८८७ वर्गमील है। शहरमें दो जलाशय और महादेवका मन्दिर तथा दो मिडिल इङ्गलिश स्कूल और एक संस्कृत पाठशाला है।

शोणपुर—मध्यप्रदेशके छिन्दवाड़ा जिलान्तर्गत एक जमींदारी। भूपरिमाण ११० वर्गमील है। यहांके सरदार गोंड़ वंशके हैं। शोणपुर ग्राम अक्षा० २२° २१' उ० तथा देशा० ७९° ३' पू०के बीच पड़ता है।

शोणपुरविङ्का—मध्यप्रदेशके शोणपुर सामन्त राज्यके अन्तर्गत एक नगर तथा शोणपुर राज्यका प्रधान वाणिज्य-केन्द्र।

शोणपुष्पक (सं० पु०) शोणं पुष्पं यस्य, कन्। कोविदार, कचनार।

शोणपुष्पी (सं० पु०) शोणवत् पुष्पं यस्याः ङीप्। सिन्दूरपुष्पी, सेंदुरिया।

शोणप्रस्थ (शोनपत)—१ पंजाबके दिल्ली जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८° ४९' से २९° १४' उ० तथा देशा० ७६° ४८' से ७७° १३' पू०के मध्य विस्तृत है।

भूपरिमाण ४६० वर्गमील है। यह यमुना नदीके बाएं किनारे बसा हुआ है। जनसंख्या दो लाखसे ऊपर है। इसमें इसी नामका एक शहर और २२४ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २६´ ३० तथा देशा० ७७´ १´ पू० दिल्ली-अम्बाला-कालका रेलवे लाइन पर अवस्थित है। जनसंख्या १२ हजारसे ऊपर है।

यह नगर बहुत पुराना है। आर्य औपनिवेशिक गण यहां आ कर रहते थे। स्थानीय प्रवाद है, कि राजा युधिष्ठिरने दुर्योधनसे जो पांच ग्राम मांग कर सन्धिका प्रस्ताव किया था, शोणप्रस्थ उसमेंसे एक है। प्रत्नतत्वविद् डा० कनिंहम स्थानीय स्तूपादि देख कर शोनपतको ही प्राचीन शोणप्रस्थ अनुमान कर गये हैं। एक दूसरे उपाख्यानसे जाना जाता है, कि तृतीय पाण्डव अर्जुनसे तेरह पीढ़ी नीचे राजा शोर्णाने इस नगरकी प्रतिष्ठा की। दोनों प्रवादके उल्लिखित आख्यानुसार शोनपतकी प्राचीनता ही सूचित होती है। डा० कनिंहमने १८६६ ई०में जटोंकी जमीनके नीचे एक गली मिट्टीकी सूर्यमूर्त्ति पाई है, उनका सिद्धान्त है, कि वह मूर्त्ति करीब १२०० वर्षकी पुरानी होगी। इसके सिवा यहां १८७१ ई०में जमीनके अन्दरसे प्रायः १२०० यवन वाह्लिक मुद्रा पाई गई है। नगर पार्श्वस्थ पठानोंकी एक मसजिद और दो जैनमन्दिर उल्लेखयोग्य है। शहरमें एक एङ्गलो-वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल, एक सरकारी अस्पताल और रूईका कारखाना है।

शोणप्रस्थ—हैदराबाद राज्यके परभानी जिलांतर्गत महाराज सर कृष्णप्रसाद बहादुरकी जागीर तालुकका सदर। यह अक्षा० १६´ २´ ३० तथा देशा० ७६´ २६´ पू० वान नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या छः हजारके करीब है। शहरमें स्टेटका डाकघर, पुलिश स्टेशन और प्राइवेट स्कूल है। रेशमकी साड़ी और सूती धोती यहां तैयार हो कर भिन्न भिन्न देशोंमें भेजी जाती है। शहरके चारों ओर दीवार खड़ी है तथा यह वाणिज्य व्यवसायका केन्द्र है।

शोणफलिनी (सं० स्त्री०) पीतपुष्प, काञ्चन वृक्ष।

शोणभद्र (सं० पु०) शोण नदी।

शोणमणि (सं० स्त्री०) पद्मरागमणि, मानिक, लाल।

शोणरत्न (सं० क्ली०) शोणं रक्तवर्णं रत्नं। पद्मरागमणि, मानिक, लाल।

शोणवज्र (सं० क्ली०) लौहविशेष, इस्पात।

शोणशालि (सं० पु०) रक्तशालि।

शोणसम्भव (सं० पु०) पिप्पलीमूल, पिपला मूल।

शोणहर (सं० त्रि०) लालवर्ण अश्वयुक्त, लाल घोड़ावाला।

शोणा (सं० स्त्री०) शोणो रक्तवर्णोऽस्त्यस्या इति अच् टाप्। १ शोण वर्णयुक्ता, रक्तवर्णविशिष्टा। (जटाधर) २ शोण नदी। ३ रक्तझिण्टी, लाल कटसरैया।

शोणाक (सं० पु०) वृक्षविशेष, शोणालु। पर्याय—श्योणाक, शुकनास, ऋक्ष, दीर्घवृन्त, कुटन्नट, अरलु, स्वर्णवल्कल, पत्त्रोर्ण, नट, कट्वङ्क, शोणक, अरल, अटट्ट।

शोणाम्बु (सं० पु०) प्रलय कालके मेघोंमेंसे एक मेघ।

शोणाश्व (सं० पु०) १ शोणहर, द्रोण। २ राजाधिदेवके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

शोणित (सं० क्ली०) शोण वर्णे-क्त, शोण जातार्थे इतच् वा। १ रक्त, लेहू। गर्भस्थ बालकको पाँचवें मासमें रक्त होता है। (सुखबोध) जो सब वस्तु खाई जाती है, उसका असारांश मलमूत्र रूपमें निकलता है तथा सारांश रक्तरूपमें परिणत होता है। रक्त शब्द देखो। २ कुंकुम, केसर। ३ तृणकुङ्कुम, तृणकेसर। ४ निर्यास, गोंद। ५ ताम्र, ताँबा। ६ शिंगरफ, ईंगुर। ७ पौधोंका रस। (त्रि०) ८ रक्त वर्णका, लाल।

शोणितचन्दन (सं० क्ली०) शोणितवत् चन्दनं। लाल चन्दन।

शोणितत्व (सं० क्ली०) शोणितस्य भावः त्व। शोणितका भाव या धर्म।

शोणितपित्त (सं० क्ली०) रक्तपित्त, रक्तपित्तरोग।

शोणितपुर (सं० क्ली०) शोणिताख्यं पुरं। बाणासुरकी राजधानी।

शोणितमेह (सं० पु०) पित्तजन्य प्रमेहभेद, लाल प्रमेह। इसका लक्षण—जिस मेहरोगमें रोगीको आम-

गन्धि, उष्ण और लवणाक्त लाल पेशाव होता है, उसे रक्तमेह कहते हैं। पित्त बिगड़ जानेसे यह मेहरोग उत्पन्न होता है। (भावप्र०) प्रमेह शब्द देखो।

शोणितमेहिन् (सं० त्रि०) शोणितं मेहति मिह-णिनि। रक्तमेहरोगी।

शोणितवहस्रोतस् (सं० क्ली०) रक्तवहनाड़ी। जिस नाड़ी द्वारा रक्त चलाचल करता है, उसे शोणितवहस्रोतः कहते हैं। इसका मूल यकृत् और प्लीहा है।

शोणितशर्करा (सं० स्त्री०) मधुशर्करा, शहदकी चीनी।

शोणितसम्भव (सं० क्ली०) मांसधातु।

शोणिताक्ष (सं० पु०) एक राक्षसका नाम।

शोणिताभिध (सं० स्त्री०) कुङ्कुम, केसर।

शोणितार्बुद (सं० क्ली०) १ शूकरोगभेद। इसका लक्षण—लिंगमें जब काली या लाल रंगकी फुंसियां वेदनाके साथ निकलती हैं, तब उसे शोणितार्बुद कहते हैं। (भावप्र०) शूकदोष देखो।

२ रक्तजन्य अर्बुदरोग। लक्षण—यदि दूषित दोष अर्थात् वातादि रक्त और शिराओंको सङ्कुचित तथा संहत कर अल्प पाक और स्रावयुक्त मांसपिण्ड उद्गत करे और वह मांसपिण्ड मांसांकुर द्वारा परिवृत तथा जल्दीसे बढ़ता हो तथा अन्तमें उससे दूषित रक्तस्राव हमेशा निकलता रहे, तो उसे शोणितार्बुद कहते हैं। यह अर्बुद रोग असाध्य है। इस रोगमें अतिरिक्त रक्तक्षय होता है। इस कारण रोगीका शरीर पीला पड़ जाता है। (भाव० अर्बुदरोगाधि०) अर्बुदरोग देखो।

शोणितार्शस् (सं० क्ली०) नेत्रवर्त्मगत रोगविशेष, आंखकी पलकका एक रोग। रक्त कुपित हो कर पलकोंकी कोर पर कोमल और लाल रंगका मांसका अंकुर उत्पन्न होता है। इसके छिन्न करनेसे फिर बढ़ जाता है। इस अंकुरमें दाह, कण्डु और वेदना होती है। यह सब लक्षण होनेसे मांसांकुरको शोणितार्शः कहते हैं।

नेत्ररोग देखो।

शोणितार्शिन् (सं० त्रि०) शोणितार्शोरोगयुक्त, जिसे शोणितार्शोरोग हुआ हो।

शोणिताह्वय (सं० क्ली०) शोणितं आह्वयो यस्य। कुङ्कुम, केसर।

शोणितोत्पल (सं० क्ली०) शोणितवत् रक्तमुत्पलं। रक्तोत्पल, रक्तपद्म, लाल कमल।

शोणितोद (सं० पु०) एक यक्षका नाम।

शोणितोपल (सं० क्ली०) रक्तोपल, मानिक, लाल।

शोणिमन् (सं० पु०) रक्तिमा, रक्तवर्णता।

शोणी (सं० स्त्री०) शोण (शोणात् प्राचां। पा ४।१।४३) इति ङीष्। १ रक्तोत्पलवर्णा स्त्री। (जटाधर) २ वड़वा। (काशिका)

शोणीपुर—एक प्राचीन तीर्थक्षेत्र, शोणप्रस्थ। पद्मपुराणांतर्गत शोणीपुरमाहात्म्यमें इसका विस्तृत विवरण है।

शोणोपल (सं० पु०) शोणो रक्तवर्ण उपलः। माणिक्य, लाल।

शोथ (सं० पु०) शवतीति शु गतौ वाहुलकात् थन् इत्युणादिवृत्तौ उज्ज्वलः (उण् २।४) १ रोगविशेष। पर्याय—शोफ, श्वयथु, शोथक। नीचे इस रोगके निदान, लक्षण और चिकित्साका विषय लिखा जाता है:—

शोथका प्रकार भेद—निज और आगंतु भेदसे शोथ प्रथमतः दो प्रकारमें विभक्त होता है। इनमेंसे निज अर्थात् वातादि दोषज शोथ, वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तश्लेष्मज और सान्निपातिक सात प्रकारका तथा आगंतु शोथ अभिघातज और विषज दो प्रकारका है। अतएव शोथरोग कुल मिला कर नौ भागोंमें विभक्त है।

निदान—वमन विरेचनादि शोधनक्रिया द्वारा या ज्वर, पाण्डु आदि रोग अथवा उपवासादिके कारण कृश और दुर्बल व्यक्ति क्षीर, अम्ल, तीक्ष्णवीर्य और उष्णगुणान्वित अथवा गुरुपाक द्रव्य भोजन करनेसे अथवा दधि, अपक्वरससञ्चायक द्रव्य, मृत्तिका, शाक, क्षीरमत्स्यादि संयोग विरुद्ध द्रव्य और गर अर्थात् दूषितविष संमिश्रित अन्नभोजन, अर्शरोग, श्रमराहित्य, वमनविरेचनादि द्वारा शोधन करने योग्य देह अयथा रूपसे शोधन करना अथवा बिलकुल उसे शोधन न करना, आभ्यन्तरिक कारणोंसे प्रकुपित वातपित्तादि द्वारा किसी तरह मर्मस्थानका अभिघात और गर्भस्रावादि प्रसववैषम्य आदि कारणोंसे निज या वातादि

दोषज शोथकी उत्पत्ति होती है। काष्ठ, अग्नि, शल्य, प्रस्तर, लौह आदिका अभिघात अथवा विषाक्त जीव जन्तुका दंशनादि ही आगन्तु शोथका कारण है।

सम्प्राप्ति—उपर्युक्त विषयोंकी सेवा करनेवाले व्यक्तिको कुपितवायु उसकी वाह्य शिराओंमें घुस जाती और कफ, पित्त तथा रक्तको दूषित कर डालती है तथा वह कफ, पित्त और रक्त द्वारा स्वयं भी रुक जाती है। इस कारण अर्थात् अपने निर्दिष्ट गन्तव्य पथसे न जाने के कारण शरीरमें इधर उधर भ्रमण कर त्वक् और मांसमें घुस जाती तथा सारे शरीरमें, आधेमें या अवयवविशेषमें स्फीति लक्षणयुक्त शोथरोग उत्पन्न करती है। शोथारम्भक वे सब दोष जब शरीरके ऊद्र्ध्व-भागमें अवस्थित रहते हैं, तब ऊद्र्ध्वशोथ, जब पक्वाशयमें रहते हैं तब अधःशोथ, मध्यदेहमें रहनेसे मध्यशोथ, सर्वाङ्गमें रहनेसे सर्वाङ्गशोथ और अङ्गविशेषमें रहनेसे तदङ्गाख्य शोथ उत्पन्न होता है। (चरक)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि वातादि दोष आमाशयमें रह कर शरीरके ऊद्र्ध्वभागमें, पित्ताशयमें रह कर देहके मध्यभागमें, मलाशय अर्थात् पक्वाशयमें रह कर अधोभागमें और सर्वदेहव्यापी हो सर्वावयवमें शोथ उत्पादन करता है।

पूर्वरूप—शरीरका वाह्य ताप, उपताप अर्थात् नेत्रदाहादि और शिराओंकी विस्तृति ये सब साधारण शोथके पूर्वरूप हैं।

लक्षण—शोथकी स्थिति, गुरुत्व अर्थात् काठिन्य वा संहत भाव और स्फीतता, इन सबका अनवस्थितत्व अर्थात् कभी घटना और कभी बढ़ना, शोथ स्थानमें उष्मा, शरीरकी विवर्णता और रोमाञ्च, ये सब शोथ मात्रके ही साधारण लक्षण हैं। प्रत्येकका लक्षण नीचे दिया जाता है।

वातज—वायुजनित शोथ सञ्चरणशील, पतले चमड़ेसे युक्त, कर्कश, अरुण या कृष्णवर्ण, स्पर्शशक्तिहीन और वेदनाविशिष्ट होता है। वायुके चलत्वके कारण कभी कभी विना कारण भी यह शोथ प्रशमित होता है। दावनेसे यह वैठ जाता है; लेकिन छोड़ देनेसे फिर ऊपर उठ आता है। यह शोथ दिनको प्रबल तथा रात्रिको शुष्कप्राय हो जाता है।

पित्तज—इसमें शोथस्थान कोमल, दुर्गन्ध, कृष्ण, पीत या रक्तवर्ण, उष्मान्वित और स्पर्शसह होता है। रोगीकी आँखें लाल हो जातीं तथा उनमें जलन देती है। इस शोथमें रोगीके भ्रम, ज्वर, घर्म, पिपासा और मत्तता उत्पन्न होती है।

कफज—शोथस्थान गुरु अर्थात् शक्त, अचल और पाण्डुवर्णका होता है। इसमें अरुचि, मुखसे जलस्राव, निद्रा, वमि और अग्निमान्द्य आदि उपद्रव होते हैं। यह शोथ धीरे धीरे उत्पन्न और धीरे धीरे गायब भी होता है। कफज शोथ भी दावनेसे वैठ जाता है, सही, पर छोड़ देनेसे वातज शोथकी तरह फिर ऊपर न बढ़ कर नीचे ही दवा रहता है। यह शोथ रातको प्रबल और दिनको शुष्कप्राय हो जाता है।

द्वन्द्वज—ऊपर कहे गये वातजादि शोथके किसी दो प्रकारका लक्षणाक्रान्त शोथ द्वन्द्वज अर्थात् वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक और पित्तश्लैष्मिक शोथ कहलाता है।

सान्निपातिक—वातजादि तीन प्रकारके व्यामिश्र लक्षणाक्रान्त शोथको सान्निपातिक कहते हैं। सम्प्राप्ति लक्षणमें जैसा कहा गया है, उसमें शोथ त्रिदोषज मालूम होता है और यदि यथार्थमें देखा जाय, तो सच भी है। पर हां, वातजादि कह कर पृथक् पृथक् उल्लिखित होनेसे समझना होगा, कि उन सब शोथोंमें सभी दोषोंका प्रादुर्भाव रहने पर भी उसमें जिस दोष या जिन दो दोषोंकी अधिकता रहती है, वह उन्हींसे उत्पन्न समझे जाते हैं।

अभिघातज—खड्गादि द्वारा छेदन, पाषाणादि भेद और शरादि द्वारा क्षत होनेसे या शीतल वायुका सेवन करनेसे अथवा भल्लातकका रस या शुकशिम्बीका फल शरीरमें संस्पृष्ट होनेसे जो शोथ उत्पन्न होता है, उसे अभिघातक शोथ कहते हैं। यह शोथ प्रसरणशील तथा अत्यन्त उष्ण और रक्त वर्णका होता है, परन्तु उसमें अक्सर पित्तज शोथके ही लक्षण दिखाई देते हैं।

विषज—सविष प्राणीके शरीर पर सञ्चारण करने या उस जातिके जीवोंका मूत्रादि अङ्गसंस्पृष्ट होने अथवा विषहीन प्राणियोंके भी दन्त और नखका आघात लगने तथा उनका मल, मूत्र या शुक्र संलग्न वस्त्र पह-

ननेसे, मलमूत्रादि संस्पृष्ट धूल पड़ने, विषवृक्षकी हवा लगने तथा संयोगज विषके किसी वस्तुके साथ शरीरमें मर्दित होनेसे भी विषज शोथ उत्पन्न होता है। यह शोथ मृदु सञ्चरणशील, लम्बमान और अत्यन्त वेदनान्वित तथा अचिरोत्पन्न होता है।

जो सब शोथ शरीरके विशेष विशेष स्थानमें उत्पन्न होते हैं, वे स्थानभेद, रसरक्तादि दूष्यभेद, आकृतिभेद और नामभेदसे अनेक प्रकारके हैं। यहां उनमेंसे कुछ शोथोंके नाम और उनका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

शालूक—मस्तकस्थ प्रकुपित वातादि द्वारा उत्पन्न होता, गलेके भीतर घर घर शब्द करता और श्वासप्रश्वासको रोकता है।

विड़ालिका—यह भी मस्तकके उक्त दोषोंसे उत्पन्न हो कर गलसन्धि, चिबुक या गलेमें आश्रय लेती है। इसका लक्षण—दाहयुक्त, रक्तवर्ण, उग्रश्वासप्रश्वासान्वित और अतिशय यन्त्रणादायक। यह शोथ यदि गलेके भीतर वलयाकारमें उत्पन्न हो, तो प्राणनाशक हो उठता है।

अधि और उपजिह्विका—श्लेष्मप्रकोपके कारण जिह्वाके उपरी भागका शोथ उपजिह्विका और निचले भागका शोथ अधिजिह्विका कहलाता है।

उपकुश और दन्तविद्रधि—दन्तमांसके रक्त और पित्तके प्रकोपसे उपकुश तथा श्लेष्माके प्रकोपसे दन्तविद्रधि नामक शोथ उत्पन्न होता है।

गलगण्ड और गण्डमाला—गलेके पार्श्वमें एक गण्ड या शोथ उत्पन्न होनेसे गलगण्ड तथा अनेक गण्ड होनेसे गण्डमाला रोग होता है। यह गण्डमाला साध्यरोग है सही, पर यदि उसमें पीनस, पार्श्वशूल, कास, ज्वर और वमि आदि उपद्रव रहे, तो उसे असाध्य जानना होगा।

ग्रन्थि—वायु, पित्त और कफ ये पृथक् पृथक् या एक साथ मिल कर शरीरके मांस, मेद और शिरा आदिका आश्रय लेते और पीछे ग्रन्थिवत् शोथ उत्पादन करते हैं। *शिराकी ग्रन्थिमें स्फुरण रहता है*, मांसोद्भव ग्रन्थि बहुत बड़ी होती है। किन्तु उसमें जरा भी वेदना नहीं रहती। मेदोजनित ग्रन्थि बहुत चिकनी और चलनशील होती है। कुक्षि और उदराश्रित तथा गलदेश और मर्मस्थानजात ग्रन्थि असाध्य है। जो ग्रन्थि बहुत मोटी और कठिन हो, वह त्याज्य है तथा बालक वृद्ध और दुर्बल व्यक्तियोंकी ग्रन्थि भी वर्जनीय है।

अर्बुद—इसका निदान, लक्षण और चिकित्सादि सभी ग्रन्थिरोगके समान है।

चिप्प और अलजी—शरीरमें ताम्रवर्ण अवगाढ़मूल जो पीड़का उत्पन्न होती है, उसे अलजी तथा चर्म नखके भीतर मांसरक्तको दूषित करने तथा शीघ्र पकनेवाला जो क्षत उत्पन्न होता है, उसे चिप्प कहते हैं।

विदारिका—वङ्क्षण और कक्षस्थानमें कठिन, आयत और वर्त्तिसदृश अर्थात् वत्तीकी तरह जो शोथ उत्पन्न होता है उसका नाम विदारिका है। यह वायु और श्लेष्माके प्रकोपसे उत्पन्न होता है तथा इसमें दर्द और ज्वर रहता है।

विस्फोटक—यह सर्व शरीरजात तथा ज्वर, दाह और तृष्णाविशिष्ट है।

कक्षा—वायु और पित्तके प्रकोपसे शरीरमें यज्ञोपवीतके आकारमें अवस्थित जो फुंसियाँ उत्पन्न होती हैं उन्हें कक्षा कहते हैं।

पिड़का—यह सर्वशरीरव्यापी है तथा स्थूल, सूक्ष्म और मध्यमाकृतिविशिष्ट है।

रोमान्तिका—यह सर्वशरीरोत्पन्न एक प्रकारकी छोटी पिड़का है। इसमें ज्वर, दाह, तृष्णा, कण्डु, अरुचि और प्रसेकादि उपद्रव होते हैं।

मसूरिका—यह भी सारे शरीरमें होनेवाली मसूरके बराबर एक प्रकारकी फुंसी है। यह पित्त और श्लेष्माके बिगड़नेसे पैदा होती है।

कोषवृद्धि—मेद या मूत्र द्वारा अण्डकोष भर जानेसे कोषमें जब शोथ होता अथवा छोटे छोटे दुष्ट वातादिसे आक्रान्त हो जब कोषमें प्रवेश करता अर्थात् पहले कोषमें और पीछे पेटमें इस प्रकार बार बार दोनों स्थानमें आता जाता है, तब उसे कोषवृद्धि कहते हैं।

भगन्दर—कीटदंशन, तृणकण्टकादि द्वारा क्षणन, *मैथुन, कुन्थन, तेज* घोड़ेकी सवारी इन सब कारणोंसे गुह्यद्वारके पार्श्वमें अति वेदनायुक्त पिड़का हो जब पक जाती है, तब उसे भगन्दर कहते हैं।

श्लीपद (फीलपाव)—जङ्घा और जङ्घाके पश्चाद्भागमें तथा पादके ऊपरी भाग पर मांस, कफ और रक्तका दुष्टभावप्रयुक्त यह रोग उत्पन्न होता है।

जालगर्दभ—पित्तके बिगड़नेसे लाल और पाकविशिष्ट तथा ज्वर और तृष्णायुक्त एक प्रकारका अति तीव्र और विसर्पणशील शोथ उत्पन्न होता है, इसीको जालगर्दभ कहते हैं। (चरक चिकित्सास्थान)

नीचे शोथरोगके उपद्रव और साध्यासाध्यात्वादिका उल्लेख किया जाता है,—

उपद्रव—वमि, श्वास, अरुचि, पिपासा, ज्वर, अतीसार, और दुर्बलता, ये सब शोथरोगके उपद्रव हैं अर्थात् शोथरोगके बाद इन सब रोगोंका प्रादुर्भाव होनेसे वह अत्यन्त कष्टदायक हो उठता है, यहां तक, कि मृत्यु भी हो सकती है।

सुखसाध्यत्व—पुष्टाङ्ग और सबल व्यक्तिका शोथ, एकदेशज शोथ तथा अचिरोत्पन्न शोथ सुखसाध्य है।

असाध्यत्व—शोथरोगीके श्वास, पिपासा, वमि, दुर्बलता, ज्वर और आहारमें अनभिलाष, इन सबकी प्रबलता होनेसे रोगीकी चिकित्सा न करनी चाहिये। यह शोथ अर्द्धनारीश्वराकारमें अर्थात् देहके वामार्द्ध या दक्षिणार्द्ध अथवा पादसे कटि या कटिसे मस्तक, इन सब अर्द्धांशोंसे किसी एकमें होनेसे रोगीकी आशा छोड़ देनी चाहिये। फिर जो शोथ पुरुषोंके पादसे निकल कर क्रमशः मुखकी ओर और स्त्रियोंके मुखसे निकल कर पादकी ओर जाता है तथा जो स्त्रीपुरुष दोनोंके ही वस्तिस्थानमें उत्पन्न होता है, वह असाध्य है। सर्वाङ्ग तथा वक्ष और पक्वाशयका मध्यगत शोथ अतिशय कृच्छ्रसाध्य है। (भावप्र०)

चरकमें लिखा है, कि कृश और दुर्बल व्यक्तिके शोथ, वमि आदि उपद्रवयुक्त शोथ, मर्मस्थानोत्पन्न और शिरासमन्वित तथा परिस्रावी और सर्वाङ्गगत शोथ रोगीकी जान ले लेता है। (चरक चि०)

चिकित्सा।

लङ्घन और पाचन ओषधादि द्वारा आमज शोथकी, वमन विरेचनादि शोधनक्रिया द्वारा उल्वणदोष शोथकी, शिरोविरेचन अर्थात् नस्य आदि द्वारा शिरोगत शोथकी, अधोविरेचन द्वारा ऊर्द्ध्व शोथकी, ऊर्द्ध्व विरेचन द्वारा अधःशोथकी, रुक्षकार्य द्वारा स्नेहोद्भव शोथकी तथा स्नेहन द्वारा रुक्षोद्भव शोथकी चिकित्सा करे। वातज शोथमें मलकी विबद्धता रहनेसे निरूहण और वातपित्तज शोथमें सतिक्तक घृतकी व्यवस्था करे तथा शेषोक्त शोथमें यदि तृष्णा, मूर्च्छा, दाह और अरति अर्थात् कार्यमें अनासक्ति रहे, तो दूधका सेवन करे, रोगी शोधनयोग्य होने पर वह दूध गोमूत्रके साथ देना होगा। क्षार, कटु और उष्णवीर्य कफहर द्रव्य द्वारा अथवा गोमूत्रके साथ तक्र या आसव प्रयोग द्वारा कफोत्थित शोथका प्रशम करे। (चरक)

सोंठ, पुनर्नवा, भरेण्डका मूल, बिल्वमूल, श्योनाक, गाम्भारी, पारुली और गनियारी इनका काढ़ा पीनेसे तथा उसे पाक करनेके समय जब काढ़ा आधा बच जाय, तब उसे उतार ले और पीछे उस काढ़ेसे पेयादि आहारीय द्रव्य प्रस्तुत कर सेवन करनेसे वातज शोथ नष्ट होता है।

पुनर्नवा, सोंठ और मोथा प्रत्येक २ तोला पीस कर उसके साथ ४ सेर दूध अर्द्धावर्त्तित करे। इसका पान करनेसे वातशोथ विनष्ट होता है। अपामार्गमूल, पीपर, सूखी मूली और सोंठ इन्हें पीस कर पूर्ववत् ४ सेर दूधके साथ अर्द्धवर्त्तनपूर्वक सेवन करनेसे भी वातशोथ निवृत्त होता है।

त्रिकटु, निसोथ, कुट और लौहचूर्ण इन्हें त्रिफलाके काढ़ेके साथ अथवा हरीतकीचूर्णको गोमूत्रके साथ पान करनेसे कफज शोथ प्रशमित होता है। हरीतकी, सोंठ और देवदारुका चूर्ण अथवा हरीतकी, सोंठ, देवदारु और पुनर्नवाके चूर्णको कुछ गरम जलके साथ सेवन करनेसे भी कफज शोथ दूर होता है। उक्त चूर्ण गोमूत्रके साथ पान करनेसे वातजादि त्रिविध शोथका ही प्रशम होता है। औषध जीर्ण होने पर स्नान करके दूधके साथ अन्नभोजन करे।

द्विदोषज शोथमें द्विदोषकी मिलित और त्रिदोषज शोथमें त्रिदोषकी मिलित चिकित्सा करना ही साधारण युक्ति है। परन्तु परवलका पत्ता, त्रिफला, नीम और दारुहरिद्राके काढ़ेमें गुग्गुल डाल पान करनेसे पैत्तिक और श्लैष्मिक शोथ नष्ट होता है।

त्रिफला मिला कर २ तोला, गोमूत्र आध सेर, शेष आध पाव, यह काढ़ा पीनेसे वातश्लेष्मजन्य और वृषण-संश्रित शोथ विनष्ट होता है।

बिल्वपत्रका रस छान कर त्रिकटुके चूर्णका प्रक्षेप दे पान करनेसे त्रिदोषज शोथ नष्ट होता है।

आगन्तुक शोथमें शीतल परिषेक और शीतल प्रलेप देनेकी व्यवस्था है। भल्लातकजनित शोथमें तिल और काली मिट्टीको भैंसके दूधमें पीस कर मक्खनके साथ मिला प्रलेप देनेसे लाभ पहुंचता है। केवल तिलको पीस कर प्रलेप देनेसे भी भल्लातक-शोथ निवृत्त होता है। मुलेठी और तिलको भैंसके दूधमें पीस उसमें मक्खन मिला कर प्रलेप देनेसे भल्लातक जन्य शोथ विनष्ट होता है। शालके पत्तोंको चूर्ण कर नवनीतके साथ मिला भल्लातकजनित शोथमें प्रलेप देना कर्त्तव्य है।

पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सहिजन और राई सरसों, इन्हें कांजीमें पीस कुछ गरम रहते प्रलेप देनेसे सभी प्रकारके शोथ विनष्ट होते हैं।

पुनर्नवा और नीमकी छालके काढ़े से अथवा कुछ उष्ण गोमूत्र द्वारा परिषेक करनेसे सभी प्रकारके शोथ दूर होते हैं।

विषचिकित्साकी तरह विषज शोथकी चिकित्सा करनी होगी अर्थात् जिस प्रकार विषसे विपाक्त हो शोथ उत्पन्न हुआ है, उस विषकी शान्ति होनेसे ही उससे होनेवाले शोथकी भी निवृत्ति होगी। विष देखो।

दन्ती, निसोथ, सोंठ, पीपर, मिर्च और चिता इनका चूर्ण आध पाव, दूध १ सेर, जल ४ सेर एकत्र पाक कर दुग्धावशेष रहते उतार ले और शोथ रोगाक्रान्त व्यक्तिको पिलावे। उक्त छः द्रव्योंमेंसे प्रत्येक ४ तोला ले कर ८ सेर दूधके साथ पाक करे और ४ सेर रहते उतार ले। वातपित्त जन्य शोथमें इस दूधका व्यवहार करे। क्वाथविधानसे प्रस्तुत सोंठ और दारुहरिद्राके काढ़े के साथ उतना ही दुग्ध पान अथवा श्यामवर्ण मूलविशिष्ट निसोथका मूल, पीपरका मूल और रेंड़ी मूलके साथ अथवा दारचीनी, दारुहरिद्रा, पुनर्नवा या गुरुच, सोंठ और दन्तीके साथ दुग्धपाकके विधानानुसार पक्व दुग्धमें सोंठका चूर्ण डाल कर पान करनेसे सभी प्रकारके शोथ-रोग विनष्ट होते हैं।

शोथ रोगमें पतला मलभेद तथा वह मल गुरु होनेसे अर्थात् जलमें डालनेसे यदि वह डूब जाय, तो रोगीको त्रिकटु, सौवर्चल लवण और मधुके साथ तक्र पान कराते हैं। यदि सदोष आम और विबद्ध मलभेद हो, तो समपरिमित गुड़ और हरीतकी अथवा समपरिमित गुड़ और सोंठ खिलाना होगा।

शोथरोगमें मल और अधोवायुकी विबद्धता रहनेसे भोजनके पहले दूध या जंगली मांसके जूसके साथ रेंड़ीका तेल पिलावे। मलवह स्रोतकी विबद्धता, अग्निमान्द्य और अरुचि रहनेसे सुजात मद्य और अरिष्ट पान कराते हैं।

निम्नलिखित औषध शोथरोगमें सर्वदा प्रयोज्य है—

कटुकाद्यलौह, त्रिकट्वादिलौह, कंशहरीतकी, फलत्रिकाद्यरिष्ट, क्षारगुड़िका, चित्रकघृत, पुनर्नवाद्यरिष्ट, शुष्कमूलादि तैल, शोथशार्दूल तैल, सौवर्चलाद्यलौह, क्षारगुड़िका, पुनर्नवाष्टकपाचन, माणमण्ड, पुनर्नवाद्य गुग्गुल, शोथारिमण्डूर, रसाभ्रमण्डूर, शोथशार्दूलरस, त्रिनेत्राख्यरस, शोथकालानलरस, शोथारिरस, पञ्चामृत-रस, दुग्धवटी, दधिवटी या वैद्यनाथवटी, क्षीरवटिका, तक्रमण्डूर और कल्पलतावटी, इनके सिवा और भी कितनी औषधोंका शोथरोगमें प्रयोग होता है। विस्तार हो जानेके भयसे उनका उल्लेख नहीं किया गया।

शालूकादि सभी शोथोंमें शिरावेध, वमन, विरेचन, नस्यग्रहण, धूमपान और पुराना घृतपान हितकर है। वक्त्रोद्भव शोथमें लङ्घन तथा उस दोषको हरण करनेवाले द्रव्योंका चूर्ण घर्षण और उसके स्वरसका कवल धारण लाभदायक है।

ग्रन्थि, अर्बुद, स्फोटक, पीड़का, रोमान्तिका, मसूरिका, कोषवृद्धि, भगन्दर, श्लीपद, जालगर्दभ आदि अवान्तर शोथोंकी चिकित्सा इत्यादिका विषय उन्हीं सब शब्दोंमें लिखा जा चुका है।

स्नानविधि—सूर्यसन्तप्त जलमें रोगीको स्नान कराने तथा उसके शरीरमें खसखस आदि सुगन्धित द्रव्योंका अनुलेप दे। रेंड़ी, अड़ूस, अकवन, सहिजन,

गम्भारी और तुलसी इनके पत्तोंको जलमें सिद्ध कर उस क्वाथ जलसे द्रोणी (टब) भर दे। कुछ गरम रहते वातज शोथग्रस्त रोगीको उसमें स्नान करावे।

पथ्य—लघुपाक और अग्निवृद्धिकारक द्रव्य भोजन करना आवश्यक है। पीड़ाकी प्रबल अवस्थामें केवल माणमण्ड, अभावमें दूध या दूधसागू आदि भोजन हितकर है। पीड़ा अधिक प्रबल नहीं रहने पर दिनको पुराने बारोक चावलका भात, मूंगकी दालका जूस, परवल, बैंगन, डूमर, ओल, मानकच्चू, सहिजनका डंठल, छोटोमूली, सफेद गदहपूरना और अदरक आदिकी तरकारियोंमें सेंधा नमक बहुत लाभदायक है। रातको दूध और सागू अथवा अधिक भूख रहने पर पतली रोटो खानेको दे सकते हैं।

पानीय—साधारणतः गरम जल पीना कर्त्तव्य है। किन्तु रोग प्रबल रहने पर जलपानका बिलकुल परित्याग कर दूध द्वारा प्यास बुझाना आवश्यक है। विशेष वातपित्तबहुल शोथरोगीके लिये अन्न जलका परित्याग कर एक सप्ताह या एक मास ऊंटका दूध अथवा गोमूत्रके साथ गाय या भैंसका दूध या केवल दुग्धान्नभोजी हो कर गोमूत्र पान करना उचित है।

अपथ्य—ग्राम्य जंतुका मांस, लवण, शुष्क शाक, नये चावलका भात, गुड़जात द्रव्य, मद्य, अम्ल, भुना हुआ जौ, सूखा मांस, समशन (पथ्यापथ्य एकत्र भोजन) तथा गुरु, असात्म्य और विदाहिद्रव्य भोजन, दिवानिद्रा और मैथुन ये सब विषय शोथरोगीके लिये नितांत वर्जनीय हैं। (चरक चि०)

शोथक (सं० पु०) शोथ एव स्वार्थे कन्। १ शोथरोग। (क्ली०) २ कंगुष्ठ, मुरदा संग।

शोथकालानलरस (सं० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—चितामूल, इन्द्रयव, गजपिप्पली, सैन्धव, पीपर, लवङ्ग, जायफल, सोहागा, लोहा, अबरक, गन्धक और पारा प्रत्येक २ तोला, इन सब द्रव्योंको एकत्र अच्छी तरह घोंट कर एक रत्तोकी गोली बनावे। इसका सेवन करनेसे सभी प्रकारके शोथ, ज्वर, कास, श्वास आदि शीघ्र नष्ट होते हैं।

शोथघ्नी (सं० स्त्री०) शोथं हन्तीति हन (अमनुष्यकर्त्तृके च। पा ३।२।५३) इति टक्। १ पुनर्नवा, गदहपूरना। (अमर) २ शालपर्णी, सरिवन। (त्रि०) ३ शोथनाशक।

शोथज नेत्रपाक (सं० पु०) सर्व्वाक्षिगत रोग। जिस नेत्ररोगमें चक्षु पके डुम्बरके समान लाल कण्डू, शोथ और अश्रुयुक्त तथा प्रलिप्तप्राय बोध होता है और चक्षु पक जाता है, उसे शोथज नेत्रपाक कहते हैं।

शोथजित् (सं० पु०) शोथं जयति जि-क्विप् तुक् च। १ भल्लातक वृक्ष, भिलावांका पेड़। २ पुनर्नवा, गदहपूरना।

शोथजिह्म (सं० पु०) शोथे जिह्मः कुटिल इव तन्नाशकत्वात्। पुनर्नवा, गदहपूरना।

शोथभस्मलौह (सं० क्ली०) शोथरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, द्राक्षा, कुट, सुगंधवाला, कचूर, लोहा, वच, लवङ्ग, कर्कटश्रृंगी, दारचीनी, सोवा, बहेड़ा, विड़ंग, धवका फूल, प्रत्येकका समभाग चूर्ण, कुल मिला कर जितना हो उतना शोधित मण्डूर, इन्हें कुड़चीकी छालके रसमें घोंटे। पीछे उसे जामुनके पत्तोंमें लपेट मिट्टीका लेप दे पुटपाकमें पाक करे। शीतल होने पर औषधका सेवन किया जाता है। इसकी मात्रा २ तोला है। इसका सेवन करनेसे सभी प्रकारके शोथ, ग्रहणी और उदररोग प्रशमित होते हैं।

शोथशार्दूल तैल (सं० क्ली०) शोथरोगोक्त तैलौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कटुतैल ४ सेर, क्वाथार्थ धतूरा, दशमूल, जम्बालु, जयंती, पुनर्नवा और करञ्ज प्रत्येक ६ पल, पाकका जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, कल्कार्थ रास्ना, पुनर्नवा, देवदारु, शुष्कमूलक, सोंठ और पीपर कुल मिला कर एक सेर। पीछे तैलपाकके विधानानुसार यह तैलपाक करना होगा। इसको मालिश करनेसे असाध्य शोथ, ज्वर और श्लीपद आदि रोग अति शीघ्र प्रशमित होते हैं।

शोथहीनाक्षिपाक (सं० पु०) सर्वगत नेत्रविशेष। लक्षण—

"शोथहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोथजे।" (भावप्र०)

शोथज नेत्रपाक रोगके और सभी लक्षण हो कर

अगर सिर्फ शोथ न हो, तो उसे शोथहीनाक्षिपाक कहते हैं।

शोथहृत (सं० पु०) शोथं हरति नाशयतीति हृ क्विप् तुक् च। १ भल्लातक, भिलावां। (त्रि०) २ शोक-हारक।

शोथाङ्कुशरस (सं० पु०) शोथरोगाधिकारोक्त रसौषध-विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, लोहा, तांबा, सीसा और अवरक प्रत्येक समान भाग ले कर सम्हालू, हापरमाली, कतवेलकी छाल, इमलीकी छाल, पुनर्नवा, बेलकी छाल और केशरिया इन सब द्रव्योंके रसमें यथा-क्रम भावना दे बेरकी गुठलीके बराबर गोली बनावे। इस औषधका सेवन करनेसे सर्वाङ्ग शोथ, ज्वर, पाण्डु आदि रोग शीघ्र प्रशमित होते हैं।

शोथारि (सं० पु०) पुनर्नवा, गदहपूरना।

शोथारि-रस—शोथाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—हिंगुलोत्थ पारेको ३ दिन दूवके रसमें भावना दे कर एक मुषामें रखे, पीछे उसके ऊपरी भाग पर दूब और अजवायनका चूर्ण डाल कर मुंह बन्द कर दे। इसके बाद उसको ८ पहर गजपुटमें पाक कर उसी रसके साथ उतना ही गन्धक मिला कर काजल बनावे। पीछे उस काजलके साथ समान अंशमें विष, तांबा और रांगा मिलावे। वह चूर्ण खड़िकाके अग्र भागसे ग्रहण कर रोगीकी जीभ पर रखे तथा कुछ चीनीका शरबत पिला दे। इस प्रकार तीन दिन करनेसे बार बार पेशाब हो कर शोथ दूर होता है।

शोथारिलौह (सं० क्लो०) शोथरोगकी एक प्रकारकी औषध। इसके बनानेका तरीका—त्रिकटु, यवक्षार प्रत्येक १ तोला, लौह ४ तोला इन्हें एकत्र अच्छी तरह मर्दन कर लेना होता है। अनुपान त्रिफलाका रस है। इसका सेवन करनेसे शोथरोग शीघ्र विनष्ट होता है।

शोद्धव्य (सं० त्रि०) जिसे शुद्ध करना हो, शोधनेयोग्य।

शोध (सं० पु०) शुध-घञ्। १ शुद्धिसंस्कार, सफाई। २ ठीक किया जाना, दुरुस्ती। ३ परीक्षा, जाँच। ४ अनुसन्धान, खोज, ढूंढ़। ५ चुकता होना, अदा होना, बेबाक होना।

शोधक (सं० त्रि०) शुध णिच् ण्वुल। १ शोधनकारक, शोधनेवाला। २ खोजनेवाला, ढूंढ़नेवाला। ३ सुधारक, सुधार करनेवाला। (पु०) ४ वह संख्या जिसे घटानेसे ठीक वर्गमूल निकले।

शोधन (सं० क्ली०) शोधयतीति शुध-णिच्-ल्युट्। १ कङ्कुष्ठ, मुरदा संग। शुध भावे ल्युट्। १ शौच, शुद्धता, पवित्रता। ३ प्रायश्चित्त, प्रायश्चित्तसे पापादिकी शुद्धि होती है, इसीसे इसको शोधन कहते हैं।

आत्माके शुद्धिकामी व्यक्तिके लिये प्रतिषिद्ध अन्न भोजन करना कदापि उचित नहीं है। यदि प्रमादवशतः किया जाय, तो उसी समय वमि कर ले अथवा प्राय-श्चित्त करे। ४ विष्ठा, मल। ५ कसीस। ६ विहिताविहित मासादि विचारण; मास, तिथि और नक्षत्र आदिका विहित या निषिद्ध इत्यादि स्थिर करना।

७ धातुनिर्दोषीकरण, धातुओंका औषधरूपमें व्यव-हार करनेके लिये संस्कार। धातु और उपधातु आदि-की शोधन-प्रणाली जिस प्रकार वैद्यकमें कही गई है, उस-के अनुसार उसका शोधन कर औषधमें व्यवहार करना होता है। ८ व्रणादि परिष्करण, घावका परिष्कार करना। ९ लिखित पत्रादिको प्रमाणीकरण, लिखे हुए कागजोंको प्रमाणित करना। १० अङ्कका हरण, घटाना, निकालना। ११ अपहृत द्रव्यका संख्यानिर्णय, खोई हुई चीजोंकी तादात निकालना। १२ निर्दोषकरण, भूल सुधारना। जिन सब द्रव्योंमें दोष रहता है, उन सब द्रव्योंकी शोधनप्रणालीके अनुसार शुद्धि करनी होती है। १३ देहकी धातुओंको शुद्ध करना। वमन, विरेचन, आस्थापन और शिरोविरेचनके भेदसे चार प्रकारके कर्मों द्वारा धातुकी शुद्धि होती है, इसीसे इस-को शोधन कहते हैं। (वाभट सू० १५ अ०) १४ शुद्ध करना, साफ करना। १५ छानबीन, जाँच। १६ खोजना, ढूंढ़ना। १७ ऋण चुकाना, अदा करना। १८ चाल सुधारनेके लिये दण्ड, सजा। १९ हटा कर साफ करना, सफाईके लिये दूर करना। २० शोधनद्रव्य, निम्बूक, नीबू।

शोधनक (सं० पु०) १ भृत्य, प्राचीनकालके न्यायालय या

धर्मसभाका स्थान साफ और ठीक करनेवाला कर्म-चारी। (त्रि०) २ शोधनकारी, शोधनेवाला।

शोधना (हिं० क्रि०) १ शुद्ध करना, साफ करना। २ औषधके लिये धातुका संस्कार करना। ३ ढूंढ़ना, खोजना, तलाश करना। ४ सुधारना, ठीक करना, दुरुस्त करना।

शोधनी (सं० स्त्री०) शोध्यते ऽनयेति शुध-शौचे णिच् करणे ल्युट् ङीप्। १ सम्मार्ज्जनी, झाड़ू, बुहारी। २ ताम्रवल्ली। ३ नीली। ४ ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

शोधनीवीज (सं० क्ली०) शोधन्या वीजमिव वीजं यस्य। जयपाल, जमालगोटाका बीज।

शोधनीय (सं० त्रि०) शुध-अनीयर्। १ शोधितव्य, शुद्ध करने योग्य। २ चुकाने योग्य। ३ ढूंढ़ने योग्य।

शोधयितव्य (सं० त्रि०) शुध-णिच् तव्य। शोधनेके योग्य।

शोधयितृ (सं० त्रि०) शुध-णिच् तृच्। शोधक, शोधनकारी, शोधनेवाला।

शोधवाना (हिं० क्रि०) १ शोधनेका काम कराना, दुरुस्त कराना। २ तलाश कराना, ढुंढ़वाना।

शोधिका (सं० स्त्री०) क्षुपविशेष।

शोधित (सं० त्रि०) शोध्यते स्मेति शुध णिच्-क्त। १ परिष्कृत, शुद्ध या साफ किया हुआ। २ अपनीतमल। पर्याय—निर्णिक्त, मृष्ट, निःशोध्य, अनवस्कर। (अमर और भरत) जो शोधा गया हो। ३ मक्षिकादिका अपनयन द्वारा शोधा हुआ व्यञ्जनादि, केश कीटादिरहित व्यञ्जनादि।

शोधिन् (सं० त्रि०) परिष्करणशील, शुद्ध करनेवाला, शोधनेवाला।

शोधैया (हिं० वि०) १ शोधनेवाला। २ सुधारक।

शोध्य (सं० त्रि०) शुध-यत्। शोधनीय, शोधने-लायक।

शौनकेय (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

शोपार—बम्बई प्रदेशके थाना जिलान्तर्गत वसई तालुक-का एक प्राचीन नगर। यह बम्बई-वड़ोदा सेण्ट्रल इण्डिया रेलवेके वसई स्टेशनसे ३।० मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। आज भी इस नगरकी समृद्धि नष्ट नहीं हुई है। प्रति सप्ताहमें ए हाट लगती है जिसमें आस पासके देशोंकी चीज विकने आती हैं। यह नगर प्राचीन कालमें शूर्पारक नामसे प्रसिद्ध था। (मार्कण्डेय पुराण ५७।४६) महाभारतमें लिखा है, कि पाण्डव-गण जब प्रभासक्षेत्र जा रहे थे, तब वे इसी स्थानमें ठहरे थे। उस समय यह स्थान एक पवित्र तीर्थरूपमें गिना जाता था। बौद्ध शास्त्रकारोंका कहना है, कि गौतम बुद्धने किसी पुराने जन्ममें यहां जन्मग्रहण किया था और बोधिसत्त्व सूर्पारक नामसे प्रसिद्ध हुए थे। प्राचीन शोपारक्षेत्रकी कीर्त्ति-कहानी स्मरण कर बेनफे, रेनाल्ड और रैनो (Renaud) आदि पाश्चात्य ग्रन्थकार अनुमान करते हैं, कि यह शोपार नगरी ही खृष्टधर्मशास्त्रोक्त सलोमन राजाकी Ophir राज-धानी थी। जैनशास्त्रमें भी शोपार नगरीकी पवित्रता और प्रसिद्धिका परिचय है। १ली और २री सदीकी प्राचीन शिलालिपिमें शोपारक, शोपारय और शोपारग नामसे इस नगरका उल्लेख है। किसी किसी पुराणमें शूर्पारककी जगह सूर्पारक भी देखा जाता है। ३री सदीमें पेरिप्लसके रचयिताने Ouppara शब्दमें भरोंच और कल्याण राजधानीके मध्यवर्त्ती समुद्रतीरवर्त्ती शोपार नगरीका उल्लेख किया है।

शोपारीपाक (सं० पु०) क्वाथविशेष।

शोफ (सं० पु०) शु-गतौ-बाहुलकात् फ। १ शोथरोग, सूजन। (राजनि०) २ सर्व्वाक्षिरोग। (त्रिका०)

शोफघ्नी (सं० स्त्री०) शोफं हन्तीति हन-टक्, ङीप्। १ शालपर्णी। २ रक्त पुनर्नवा, लाल गदहपूरना।

शोफनाशन (सं० पु०) शोफं नाशयतीति नश-णिच्-ल्यु। १ नील वृक्ष। (त्रि०) २ शोथनाशक।

शोफहारिन् (सं० पु०) १ वनवर्व्वरिका, वनतुलसी। (त्रि०) शोफं हरति हृ-णिनि। २ शोथनाशक।

शोफहृत् (सं० पु०) शोफं हरति हृ-क्विप् तुक् च। १ भल्लातक, भिलावाँ। (त्रि०) २ शोथहारक।

शोफारि (सं० पु०) शोफस्य अरिः। हस्तिकन्द, हाथी-कंद।

शोफिन् (सं० त्रि०) शोफ या शोथरोगविशिष्ट।

शोवदा (अ० पु०) इन्द्रजाल, जादू, नजरबंदी।

शोभ (सं० पु०) शुभ-घञ्। १ शोभन, शोभा। २ एक प्रकारके देवता। ३ एक प्रकारके नास्तिक। (लि०) ४ शोभायुक्त, सुन्दर, सजीला।

शोभक (सं० लि०) सुन्दर, सजीला।

शोभकृत् (सं० पु०) शोभं शोभनं करोतीति कृ-क्विप् तुकच्। शोभनकारक, शोभा करनेवाला।

शोभजात (सं० पु०) राजभेद। (तारनाथ)

शोभन (सं० क्ली०) शोभते इति शुभ ल्युट्। १ पद्म, कमल। शुभ भावे ल्युट्। २ शुभ, मंगल, कल्याण। (पु०) शुभ-ल्यु। ३ ग्रह। ४ विष्कम्भ आदि सत्ताइस योगोंमेंसे पांचवां योग। ज्योतिषके मतसे यह योग शुभ है। इसमें सभी शुभ कर्म किये जा सकते हैं। इस योगमें जन्म होनेसे दक्ष, शत्रु दमनकारी, धनी, सुन्दर शरीर, सुधीर और प्रवीण होता है। (कोष्ठी-प्रदीप) ५ रांगा। ६ धर्म, पुण्य। ७ दीप्ति, सौन्दर्य। ८ कंकुष्ठ। ९ सिन्दूर, सेंदुर। १० अग्निका एक नाम। ११ शिवका एक नाम। १२ इष्टि योग। १३ बृहस्पति-का ग्यारहवाँ संवत्सर। १४ २४ मात्राओंका एक छन्द। इसमें १४ और १० मात्रा पर यति होती है और अन्तमें जगण होता है। इसको दूसरा नाम सिंहिका है। १५ मालकोश रागका पुत्र एक राग। १६ आभूषण, गहना।

(लि०) शोभते इति सुभ-ल्यु। १७ सुन्दर, मनोज्ञ, सजीला। १८ रमणीय, सुहावना। १९ उत्तम, अच्छा, भला। २० शुभ, मङ्गलदायक। २१ उचित, उपयुक्त, सुहाता हुआ।

शोभनक (सं० पु०) शोभते इति शुभ-ल्यु ततः कन्। १ शोभाञ्जन वृक्ष, सहिंजनका पेड़। (लि०) २ शोभन शब्दकारक।

शोभन देव (सं० पु०) राजभेद। उत्कल देखो।

शोभनरस—पश्चिमचालुक्यराज सत्याश्रयके अधीनस्थ वेलगोलके एक सामन्तराज।

शोभनवती (सं० स्त्री०) नगरभेद।

शोभना (सं० स्त्री०) शोभन टाप्। १ हरिद्रा, हल्दी। २ गोरोचना। ३ नदीभेद। (भविष्यब्र० ख० २६।४) ४ सुन्दर स्त्री। ५ स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका।

शोभनानन (सं० पु०) १ सुगन्धार्जक। (लि०) २ शोभन मुखविशिष्ट, सुन्दर मुखवाला।

शोभनाली—वङ्गालके खुलना जिलान्तर्गत एक छोटी नदी। यह नदी स्थलविशेषमें कुन्दरिया, बेङ्गदह और घुंटियाखाली कहलाती है। बालतिया ग्रामके समीप बायरा नामक विस्तृत दलदलकी छोटी छोटी धाराओंके मिलनेसे यह नदी उत्पन्न हुई है। पीछे दक्षिण-पूर्वको ओर बह कर खोलपेटुआ नदीमें मिली है। यह मिली हुई नदी शोभनाली ग्रामके पाससे चली गई है, इसीसे इसका शोभनीली नाम पड़ा है।

शोभनिक (सं० पु०) एक प्रकारका अभिनयकर्त्ता या नट।

शोभनी (सं० स्त्री०) एक रागिनी जो मालकोश रागको स्त्री कही जाती है।

शोभनीय (सं० लि०) शुभ-अनीयर्। शोभनयोग्य, शोभाके लायक।

शोभनीया (सं० स्त्री०) १ गोरक्षमुण्डी, गोरखमुंडी। २ महामुण्डीरी। ३ शोभनयोग्या।

शोभयितृ (सं० लि०) शोभासम्पादनकारी।

शोभव्यूह (सं० पु०) एक बौद्ध-पण्डितका नाम।

शोभा (सं० स्त्री०) शोभ्यतेऽनया शुभ-करणे घञ्, टाप्। १ दीप्ति, कान्ति, चमक। पर्याय—कान्ति, द्युति, छवि, द्युती, छवी, अभिख्या, शुभा, भास्, श्री, भासा, भा, सुषमा, छाया, विभा, रुक्प्रिया, भान, भाति, कमा, रमा। (राजनि०)

रूपभोगादि द्वारा जो अङ्ग भूषण है, उसका नाम शोभा है। वह शोभा मन्मथाप्यायनोज्ज्वला अर्थात् कामकी प्रीति द्वारा उज्ज्वल होने पर उसे कान्ति कहते हैं।

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि शोभा नायकोंका सात्त्विक गुण है। शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, धैर्य इत्यादि ८ गुण हैं जिनमेंसे शोभाका गुण सात्त्विक है।

शौर्य, दक्षता, सत्यभाषण, कार्यमें अत्यन्त उत्साह, अनुरागिता, नीचोंके प्रति घृणा, स्पर्द्धा अर्थात् अपनी

अपेक्षा बलवान्‌के प्रति विजिगीषा, ये सब गुण जिसमें हैं, उसे शोभा कहते हैं।

रूप, यौवन, लालित्यसौभाग्यादि द्वारा अङ्ग भूषणको शोभा कहते हैं अर्थात् रूपयौवनके अनुगामी सौन्दर्य-वर्द्धक जो अङ्गका वेश-भूषा है, उसीका नाम शोभा है। यही शोभा जब कामदेवसे वर्द्धित होती है, तब उसे कान्ति कहते हैं। स्त्रियोंकी चढ़ती जवानीमें जो सौन्दर्य देखा जाता है, वही शोभा है। यह वेशभूषादि द्वारा और भी बढ़ जाती है।

२ गोपीविशेष। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि यह शोभा गोपीदेहका परित्याग कर चन्द्रमण्डल गई। वहां जब उसका शरीर स्निग्धतेजोरूपमें परिणत हुआ, तब उसने दुःखित चित्तसे इस तेजको रत्न, स्वर्ण, स्त्रियों के मुखमण्डल, पद्म, किशलय, पुष्प आदिमें थोड़ा थोड़ा कर बांट दिया। तभीसे उन सब द्रव्योंमें स्वाभाविक शोभा आ गई है।

३ छवि, सुन्दरता, छटा। ४ सजावट। ५ उत्तम गुण। ६ वर्ण, रंग। ७ बीस अक्षरोंका एक वर्णवृत्त। इसमें क्रमसे यगण, मगण, दो नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं तथा ६, ७ और ७ पर यति होती है। ८ हरिद्रा, हलदी। ९ गोरोचना, गोरोचन। १० शुक्ल-जातिपुष्प, चमेली। ११ फारसी सङ्गीतमें मुकामकी स्त्रियाँ जो चौबीस होती हैं।

शोभाकर (सं० त्रि०) शोभनकारी, शोभा करनेवाला।

शोभाकर भट्ट—नारदशिक्षाविवरण और सामवेदारण्यक-स्तोभविवरण नामक ग्रन्थके प्रणेता।

शोभाकर मित्र—अलङ्काररत्नाकर और उदाहरण नामक ग्रन्थके रचयिता। ये त्रयीश्वर मित्रके पुत्र थे।

शोभाञ्जन (सं० पु०) शोभं रुचिरं अञ्जनं यस्मात्। वृक्ष-विशेष, सहिजनका पेड़। (Moringa pterygosperma, Horse radish tree) महाराष्ट्र—कालासेगुवा; कलिङ्ग—करिर तुम्गि, तैलङ्ग—मुनगा, तामिल—मोरुङ्ग, बम्बे—शेगव, सेगत। संस्कृत पर्याय—शिग्रु, तीक्ष्ण-गन्धक, अक्षीव, मोचक, तीक्ष्णगन्ध, सुतीक्ष्ण, घनपल्लव, श्वेतमरिच, तीक्ष्ण, गन्ध, गन्धक, काक्षीवक, आक्षीव, सुभाञ्जन, त्रोवित्तहारी, द्रविणनाशन, कृष्णगन्धा, मूलक-पर्णी, नीलशिग्रु, जनप्रिय, मुखमोद, कृष्णशिग्रु, चक्षुष्य, रुचिराञ्जन। गुण तीक्ष्ण, कटु, स्वादु, उष्ण, पिच्छिल, जन्तु, वात और शूलनाशक। (राजनि०)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि यह तीन प्रकारका होता है,—श्याम, श्वेत और रक्त। गुण—कृष्ण शोभाञ्जन पाकमें कटु, तीक्ष्णोष्ण, मधुर, लघु, दीपक, रुचिकर, रुक्ष, तिक्त, विदाहकर, संग्राही, शुक्रवर्द्धक, हृद्य, पित्त और रक्तप्रकोप, चक्षुका हितकर, कफ और वातनाशक, विद्रधि, श्वयथु, कृमि, मेद, विषदोष, प्लीहा, गुल्म और गण्डव्रणनाशक। श्वेत शोभाञ्जन उक्त गुणविशिष्ट, विशेषतः दाहकारक, प्लीहा और विद्रधिनाशक, व्रणघ्न और रक्तपित्तवर्द्धक।

रक्त शोभाञ्जन उक्त गुणविशिष्ट, विशेषतः दीपन होता है। शोभाञ्जनका फल मधुर, कषाय रस, अग्नि प्रदीपक; कफ, पित्त, शूल, क्षय, श्वास और गुल्मनाशक। शोभाञ्जनका पुष्प—कटुरस, तीक्ष्ण, उष्ण वीर्य, स्नायु-शोथजनक तथा कृमि, कफ, वायु, विद्रधि, प्लीहा और गुल्मरोगनाशक। रक्त या लाल सहिंजनका फूल चक्षुका हितकर तथा रक्तपित्तप्रदायक होता है।

शोभानक (सं० पु०) शोभाञ्जन वृक्ष, सहिंजनका पेड़।

शोभानुभावकता (सं० स्त्री०) वह वृत्ति जिससे शोभा-का अनुभव किया जा सके।

शोभान्वित (सं० त्रि०) शोभाया अन्वितः। शोभासे युक्त, सुन्दर, सजीला।

शोभापुर—मध्यप्रदेशके हुसंगाबाद जिलेकी सुहागपुर तहसीलका एक नगर।

शोभायमान (सं० त्रि०) सुन्दर, सोहता हुआ।

शोभावती (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १४ अक्षर होते हैं जिनमेंसे १, २, ४, ८, ११, १३, १४वाँ वर्ण गुरु और बाकी लघु होते हैं। २ एक नगरका नाम। यहां कनकमुनिका जन्म हुआ था। इसका वर्त्तमान नाम शुभवपर्शा है।

शोभासिंह (राजा)—बङ्गालके बरदा और चितुयाके प्रसिद्ध जमींदार। इन्होंने वर्द्धमानराज कृष्णराम राय-के जीवितकालमें विद्रोही हो वर्द्धमान पर आक्रमण कर दिया और कृष्णरामको मार डाला। इसके बाद ये

कृष्णरामके अन्तःपुरमें घुसे और उनकी कन्या पर बलात्कार करना चाहा। वीरबालाने कपड़ेमें लपेटा हुआ तेज छुरा निकाल कर पापिष्ठ शोभासिंहकी छातीमें इस प्रकार घुसेड़ दिया, कि उसके प्राणपखेरु उड़ गये। वर्द्धमान देखो।

शोभिक (सं० त्रि०) शोभाशाली, सुन्दर।

शोभित (सं० त्रि०) शुभ-क्त, वा शोभा जाताऽर्थे इतच्। शोभायुक्त, भूषित, शोभाविशिष्ट।

शोभिन् (सं० त्रि०) शोभते इति शुभ-इन्। शोभाशाली, शोभाविशिष्ट। यह शब्द प्रायः उपपद पूर्वक व्यवहार होता है।

शोभिष्ठ (सं० त्रि०) शुभ-इष्ट। अतिशय शोभायुक्त।

शोर (फा० पु०) १ जोरकी आवाज, हल्ला, गुल गपाड़ा। २ धूम, प्रसिद्धि।

शोरबा (फा० पु०) १ किसी उबाली हुई वस्तुका पानी, झोल, जूस। २ पके हुए मांसका पानी।

शोरा (फा० पु०) एक प्रकारका क्षार जो मिट्टीमेंसे निकलता है। यह बहुत ठंढा होता है और इसीलिये पानी ठंढा करनेके काममें आता है। बारूदमें भी इसका योग रहता है और सुनार इससे गहने भी साफ करते हैं। खारी मिट्टीमें क्यारियाँ बना कर इसे जमाते हैं। साफ किये हुए बढ़िया शोरेको कलमी शोरा कहते हैं।

शोरा आलू (हिं० पु०) बन आलू।

शोरापुर—दाक्षिणात्यका एक सामन्त राज्य। पहले यह निजाम राज्यके अधीन था। १८६० ई०से यह उक्त राज्यके अधिकारसे निकल गया। इसके उत्तरमें हैदराबाद राज्य और दक्षिणमें कृष्णानदी है। इसका प्रधान नगर शोरापुर है। यह अक्षा० १६°२१´ उ० तथा देशा० ७६°४८´ पू०के मध्य विस्तृत है।

दक्षिण-महाराष्ट्र देशको दुर्द्धर्ष बेदार जातिके किसी सरदार द्वारा १७वीं सदीमें इस राज्यकी सृष्टि हुई थी। यह सरदारवंश नायक उपाधिसे भूषित था। १८०० ई०में अङ्गरेज गवर्मेण्ट शोरापुर राज्यमें निजामका स्वत्वाधिकार बहाल रखनेमें नियुक्त हुए एवं १८२३ ई०में उन्होंने शोरापुर राज्यसे प्राप्त खजाना पेशवाको छोड़ दिया। इसके बदलेमें शोरापुरके राजाने भी अङ्गरेजोंके अधिकारस्थ अपनी सम्पत्तिका राजस्व छोड़ दिया।

१८२८ ई०में शोरापुरमें उत्तराधिकारीके लिये एक भीषण विवाद उपस्थित हुआ। इस गृहविवादके उत्तरोत्तर बढ़नेके कारण शोरापुर-सरकार राजकरके भारसे दब गई। १८४१-४२ ई०में शोरापुरके राजाने ऋणसे छुटकारा पानेकी आशासे कृष्णानदीके दक्षिणस्थ अधिकृत प्रदेशोंको निजामके हाथ सौंप दिया। शोरापुर राज्यको कर्जमें डूबे हुए देख कर १८४२ ई०में अङ्गरेजी सरकारने कप्तान ग्रेहली नामक एक सेनापतिके हाथमें उसके तत्त्वावधानका भार अर्पण किया। उक्त वर्षमें ही कप्तान मिडस् टेलर शोरापुर राज्यका परिदर्शन भार ग्रहण कर वहां गये एवं उनके यत्न और अध्यवसायसे शोरापुर ऋणसे मुक्त हो गया तथा उन्होंने उसके शासनकी सुन्दर व्यवस्था की। १८५३ ई०में टेलर साहब इस राजकी सुव्यवस्था कर चले आनेके बाद फिर शोरापुर राज्यमें विशृङ्खला उपस्थित हुई। उस समय उद्धत प्रकृति राजवंशीयगण निजाम सरकारकी अधीनता अस्वीकार कर स्वाधीन बन बैठे एवं १८५७-५८ ई०के विख्यात गोंड़राज सिपाहीयुद्धमें हाथ बटानेके कारण राज्यच्युत हो गये। फिर १८६० ई०की सन्धिके अनुसार शोरापुर राज्य निजामराज्यमें मिल गया।

शोरापुश्त (फा० वि०) लड़ाका, झगड़ालू, फसादी।

शोरिश (फा० स्त्री०) १ खलबली, हलचल। २ बलवा, बगावत, दंगा।

शोरी (फा० पु०) १ फारसी संगीतमें एक मुकामका पुत्र। २ एक पञ्जाबी प्रसिद्ध गवैया जिसने टप्पा नामका गीत निकाला था।

शोलङ्की—अनहिलवाड़के सुप्रसिद्ध राजपूतवंश। ये लोग चालुक्यवंशीय थे, पीछे शोलङ्की कहलाये। प्रतिष्ठा और मर्यादामें ये लोग राजस्थानके परमार या चौहान राजपूतसे बहुत निकृष्ट हैं। शोलङ्कीकुलका इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि कल्याणनगरवासी जयसिंह शोलङ्कीके पुत्र राजकुमार मूलराज अपनी मातामह भोजराजकी मृत्युके बाद अनहिलवाड़-पत्तनके सिंहासन पर बैठे। उनके लड़के चामुण्डराजके शासन

कालमें गजनीपति महमूदने अनहिलवाड़को लूटा और उसे जला कर तहस नहस कर डाला। जब महमूद सौराष्ट्र प्रदेशका रक्त चूस रहा था, उस समय इस वंश में प्रतापी जयसिंह सिद्धराज और कुमारपाल आविर्भूत हुए। वे दोनों जैसे वीर, पराक्रमी और युद्धविद्या विशारद थे, धर्मरक्षामें भी उनकी वैसी ही बलवती आकाङ्क्षा थी। दोनों ही बौद्धधर्मके प्रतिपोषक हो कर बौद्ध कीर्त्तिकी प्रतिष्ठाके साथ साथ स्थापत्यविद्याकी यथेष्ट उन्नति कर गये हैं। उस समय कुछ विशाल विजयस्तम्भ भी बनाये गये थे।

शाहबुद्दीन घोरी और उसके प्रतिनिधियोंके दारुण अत्याचारसे कुमारपालका अंतिम जीवन शान्तिहीन हो गया। इसके बाद अनहिलवाड़के सिंहासन पर जब अधस्तन राजगण क्रमशः निस्तेज होते गये, तब इस वंशके अंतिम उत्तराधिकारी त्रिभुवनदेवके राज्यकालमें शोलङ्की वंशकी बघेला शाखाके प्रबल प्रतापी राजा विशालदेवने अनहिलवाड़के सिंहासनको अधिकार किया। पीछे कई पीढ़ी तक इस वंशके अधीन रह कर अनहिलवाड़ मुसलमान सैनिक अलाउद्दीनके हाथ आया तथा शोलङ्की कुलके गौरव सदाके लिये डूब गये। राजस्थान पढ़नेसे जाना जाता है, कि यह शोलङ्की वंश कुल मिला कर सोलह शाखाओंमें विभक्त हैं। उनमेंसे व्याघ्रपल्ली या बघेला शाखा ही सर्वप्रधान है। नीचे दो प्रधान शोलङ्की राजवंशकी तालिका दी गई है—

(क) अनहिलवाड़के शोलङ्कीराजवंश।

नाम	राज्यारम्भ	
१ मूलराज	६४१ ई०	कल्याणराज राजिके पुत्र
२ चामुण्डराज	६६६	१के पुत्र
३ वल्लभराज	१००६	२ „
४ दुर्लभराज	१००६	२ „
५ भीमदेव २य	१०२२	नागदेवके पुत्र और २के पौत्र
६ कर्णदेव १म	१०६३	५के पुत्र
७ जयसिंह सिद्धराज	१०६३	६ „
८ कुमारपाल	११४३	५के प्रपौत्र
६ अजयपाल	११७२	८के भतीजे
१० मूलराज २य	११७६	६ „ पुत्र
११ भीमदेव २य	११७८	„ „
१२ त्रिभुवन पाल	१२४२	११के पुत्र

(ख) बघेला शोलङ्की राजवंश।

नाम	राज्यारम्भ	
१ धवल		राजा कुमारपालका फूफा
२ अर्णोराज		१के पुत्र
३ लवणप्रसाद		२ „ ढोलकर सामन्तराज
४ वीरधवल	१२१६ ई०	ढोलकरके स्वाधीन राणा
५ विशालदेव	१२३५	४ के पुत्र, अनहिलवाड़ सिंहासनके अधिराज
६ अर्जुनदेव	१२६१	५के भतीजे
७ शारङ्गदेव	१२७४	६के पुत्र
८ कर्णदेव २य	११६६	७के पुत्र

चालुक्य या शोलङ्की वंश एक समय तमाम भारतवर्षमें फैल गये थे। उड़ीसामें यह वंश 'शुल्की' कहलाते हैं। तालचर राज्यसे इस शुल्कीवंश (१२वीं से १३वीं सदीमें उत्कीर्ण) का ताम्रशासन पाया गया है। मेदिनीपुरमें कई जगह ये शुल्कीवंशधरगण 'शुङ्की' नामसे परिचित हो बड़ी दीनतासे समय बिताते हैं।

शोलङ्कीपुरम्—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर-आर्काट जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १३° ७' उ० तथा देशा० ७६°२६' पू०के मध्य विस्तृत है। इसका दूसरा नाम शोलिनगढ़ है। यह मन्द्राज रेलवे लाइनकी दक्षिण-पश्चिम शाखाके वेनावरम स्टेशनसे १० मील दूर पड़ता है। नगरमें चोलराजकीर्त्तिज्ञापक एक प्राचीन मन्दिर दिखाई देता है। प्रवाद है, कि कुलोत्तुङ्ग चोलके पुत्र अदोण्डईको स्वप्न हुआ था, तदनुसार उन्होंने उत्साहित हो पुनरुद्यमसे युद्ध ठान दिया और कुरुम्बर पर अधिकार जमाया। उसी घटनाके स्मरणार्थ उक्त मन्दिर बनाया गया है। नगरमें दूसरा जगह एक और भी बड़ा मन्दिर देखा जाता है। वह उतना प्राचीन नहीं होने पर भी जनसाधारणकी दृष्टिको आकर्षण करता है। निकटवर्त्ती शैलशिखर पर एक

प्राचीन और ध्वस्त विष्णुमन्दिर विद्यमान है। उसका शिल्पनैपुण्य हृदयग्राही है। मन्दिर पर चढ़नेके लिये रायोजी नामक एक धर्मशील महाराष्ट्रने पर्वत पर सीढ़ी खोदवा दी है। पर्वतके नीचे एक शिल्पचित्रपूर्ण भग्न मंदिर और उक्त रायोजी निर्मित 'शालग्राम-छत्र' है। वह देखने लायक है। अनेक तीर्थयात्री वह विष्णुमंदिर देखने आते हैं। वह दाक्षिणात्यका एक तीर्थ समझा जाता है।

इस पर्वतपादमूलके पास एक विख्यात रणक्षेत्र दिखाई देता है। यहां १७८१ ई०में अङ्गरेज-सेनापति सर आयर कूटने छोटी-सी सेना ले कर महिसुरपति हैदरअलीको विपुल वाहिनीको परास्त किया था। उस रणक्षेत्रमें मारे गये मुसलमान सेनादलका मकबरा विद्यमान है।

शोलवन्दान—मन्द्राज प्रदेशके मधुरा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १०° २´ ३०´´ उ० तथा देशा० ७८° २´ पू०के मध्य मधुरा नगरसे १२ मील दूर वैगै नदीके किनारे अवस्थित है। १६६६ ई०में विजयनगर-राजके वल्लाल वंशीय कुछ आत्मीयने इस नगरकी प्रतिष्ठा की। मधुरासे डिन्डिगल जानेके पहाड़ी रास्ते पर उन लोगोंके उद्योगसे एक दुर्ग स्थापित हुआ। १७५७ ई०में महम्मद यूसुफने उस दुर्गको अधिकार कर कालियद (Calliaud) के मधुरा आक्रमण पर बाधा डाली थी। उसी साल हैदरअलीने दुर्ग पर अधिकार जमाया। पीछे वह अङ्गरेजोंके हाथ आया। यहां प्राचीन मन्दिर, एक मसजिद और कुछ शिलालिपि विद्यमान है।

शोला (हिं०पु) एक छोटा पेड़। इसकी लकड़ी बहुत हलकी होती है। पानी पर तैरनेवाले जालमें इसकी लकड़ी लगाई जाती है। लकड़ीका सफेद हीर फूल, खिलौने तथा विवाहके मुकुट बनानेके काममें आता है।

शोला (अ० पु०) आगकी लपट, ज्वाला।

शोलागढ़—बङ्गालके ढाका जिलान्तर्गत मुन्शीगञ्ज तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २३° ३३´ ४५´´ उ० तथा देशा० ९०° २०´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह एक स्थानीय वाणिज्यकेन्द्र है।

शोलापुर—बम्बई प्रदेशके दाक्षिणात्य विभागका एक जिला। यह अक्षा० १७° ८´ से १८° ३३´ उ० तथा देशा० ७४° ३७´ से ७६° २६´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४५४१ वर्गमील है। इसके उत्तरमें अहमदनगर जिला, पूर्वमें निजामराज्य और अक्कालकोट राज्य, दक्षिणमें बिजापुर जिला तथा जाट और पटवर्द्धन-परिवारोंके अधिकृत सामन्तराज्य तथा पश्चिममें सतारा, पूना और अहमदनगर जिलेका फल्टन और आनुपाड़ी सामन्तराज्य है। शोलापुर नगर ही यहांका प्रधान विचार सदर है। भीमा और उसकी शाखा मान, नीरा और शिना ही यहांकी प्रधान नदियां हैं। इनके सिवा और भी कितने छोटे छोटे पहाड़ी सोते बहते हैं।

शोलापुर महाराष्ट्र जातिका आदि निकेतन और विख्यात महाराष्ट्र राजवंशको आदिभूमि है। किस प्रकार पूना और शोलापुरवासी मराठोंने मिल कर महाराष्ट्रशक्तिका अभ्युत्थान किया था, भारतवर्षके इतिहासमें वह लिपिबद्ध हुआ है।

भारतवर्ष और महाराष्ट्र शब्द देखो।

ईसा जन्मके प्रारम्भ कालमें अर्थात् करीब ईसा जन्मके पहले ९०से ३०० ई० तक शोलापुर शातकर्णी या अन्ध्रभृत्यराजवंशके अधीन था। शोलापुर नगरसे १५० मील उत्तर-पश्चिम गोदावरीके किनारे पैठान (प्रतिष्ठान) नगरमें उनकी राजधानी थी। इसके बाद १४वीं सदीमें मुसलमानों द्वारा देवगिरिके यादव राजाओंके अधःपतन तक शोलापुर प्रदेश बिजापुर, अहमदनगर, पूना आदि पार्श्ववर्त्ती जिलेकी तरह यथाक्रम ५५०से ७६० ई० तक प्राचीन चालुक्य राजाओंके पीछे ९७३ ई० तक राष्ट्रकूट राजाओंके, उसके बाद ११८४ ई० तक पश्चिम चालुक्य राजाओं और पीछे १३०० ई०में मुसलमानों द्वारा दाक्षिणात्य विजय पर्यन्त देवगिरिके यादव राजवंशके अधिकारमें रहा।

१२९४ ई०में मुसलमानोंने पहले पहल दाक्षिणात्य पर आक्रमण किया, किन्तु वे हिन्दू राजाओंका बाल बांका भी न कर सके। १३१८ ई०में बार बार आक्रमणके बाद देवगिरिके हिन्दूराजे हताश हो गये। उसी साल महाराष्ट्र-प्रदेशका शासन करनेके लिये दिल्लीसे मुसलमान शासनकर्त्ता नियुक्त हुआ। वह देवगिरिमें रह कर दाक्षिणात्य

प्रदेशका शासन करने लगा। १३३८ ई०में दिल्लीके पठान-सम्राट् महम्मद तुगलकके हुकुमसे देवगिरिका नाम बदल कर 'दौलताबाद' रखा गया। १३४६ ई०में पठान साम्राज्यमें विशृङ्खलता उपस्थित हुई। इस समय राजकर्मचारियोंके अत्याचार, उपद्रव और लूटसे दौलताबाद उजाड़सा हो गया। दाक्षिणात्यमें भी इस अत्याचारकी बाढ़ उमड़ आई थी। दाक्षिणात्य-वासोने इन सब घोर अत्याचारोंका सहन न करते हुए दिल्लीश्वरके विरुद्ध अस्त्र उठाया। हसन गांगू नामक एक अफगान योद्धा उस विद्रोहिदलका नेता बना। युद्धमें विद्रोही दलकी जीत हुई और दाक्षिणात्य प्रदेश उत्तर भारतको अधीनतासे उन्मुक्त हुआ। हसन अपने प्रतिपालक ब्राह्मण प्रभुके प्रति कृतज्ञता और भक्ति दिखला कर स्वयं अलाउद्दीन हसन गांगू बाह्मनी नामसे राजसिंहासन पर बैठा। उसके द्वारा प्रतिष्ठित होनेसे उस पठान राजवंशको बाह्मनी राजवंश नामसे इतिहासमें प्रसिद्धि हुई। इस वंशने प्रायः १५० वर्ष तक दाक्षिणात्यमें प्रबल प्रतापसे राज्यशासन किया था। बाह्मनी राजवंश देखो।

इसके बाद १४४६ ई०में विजापुरके मुसलमान शासनकर्त्ता यूसुफ आदिलशाहने स्वाधीनता अवलम्बन की। विजापुरके उत्तरसे भीमा नदीतट पर्यन्त सारा भूभाग उसके अधीन आ गया। इस समयसे ले कर प्रायः दो सदी तक शोलापुर कभी विजापुर और कभी अहम्मदनगरराजके दखलमें रहा, अर्थात् उक्त दोनों राज्योंमें जब जो प्रबल हो उठता था, तभी वह शोलापुरको जीत कर अपना प्रभुत्व फैलाता था। इस प्रकार दोनों ही राजोंने कुछ दिन उक्त प्रदेशका उपभोग किया। पीछे १६६८ ई०में विजापुर राज अली आदिल शाहके साथ मुगल सम्राट् औरङ्गजेबकी आगरेमें जो सन्धि हुई, उसके अनुसार विजापुरराजने दिल्लीश्वरको शोलापुर दुर्ग और उसके अधीन ६३००००) रुपये आयकी सम्पत्ति छोड़ दी। १७००से १७५० ई०के मध्य मुगलशक्तिका अधःपतन होने पर महाराष्ट्रशक्तिकी तूती बोलने लगी। विजापुर और आदिलशाह वंश देखो।

१८१८ ई०में पेशवाओंके अधःपतन तक शोलापुर महाराष्ट्रके अधिकारमें रहा। पीछे वह अंगरेज गवर्मेण्टकी बम्बई प्रसिडेन्सीमें मिला दिया गया। पहले यह पूनाके शासनाधीन था। १८३८ ई०में इसे स्वतन्त्र कलक्टरोमें शामिल किया गया। ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे खुल जानेसे यहांके वाणिज्यमें बड़ी उन्नति हुई है।

इस जिलेमें ७ शहर और ७१२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ७ लाखसे ऊपर है। यहांकी भाषा मराठी है। अधिवासियोंमें सैकड़े पीछे ९१ हिन्दू, और ८ मुसलमान और १में ईसाई आदि जातियां हैं। यहांकी प्रधान उपज जुआर, बाजरा, गेहूं, चना, लालमिर्च और रूई है। जिलेमें अच्छे अच्छे कम्बल, सूती और रेशमी कपड़े बुने जाते हैं।

विद्याशिक्षामें यह जिला बम्बईप्रेसिडेन्सीके चौबीस जिलोंमें पन्द्रहवां पड़ता है। अभी जिले भरमें कुल मिला कर २ हाई स्कूल, ७ मिडिल, ३०० प्राइमरी, १ ट्रेनिङ्ग, २ इनडष्ट्रीयल और एक कमरसियल स्कूल है। स्कूलके अलावा २ अस्पताल, ८ चिकित्सालय, १ कुष्ठाश्रम और ३ अन्यान्य मेडिकल स्कूल हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० १७° २२´ से १७° ५०´ उ० तथा देशा० ७५° ३३´ से ७६° २६´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ८४८ वर्गमील और जनसंख्या २ लाखसे ऊपर है। इसमें शोलापुर नामक १ शहर और १५१ ग्राम लगते हैं। जिले भरमें यहांकी आबादी घनी है। यहांकी आबहवा सूखी है। भीमा और सीना प्रधान नदी है।

३ उक्त तालुकाका एक शहर। यह अक्षा० १७°४०´ उ० तथा देशा० ७५° ५४´ पू०के मध्य ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे लाइन पर अवस्थित है। जनसंख्या ६० हजारसे ऊपर है।

नगरके दक्षिण-पश्चिम कोणमें चहारदिवारीसे घिरा हुआ एक छोटा पर मजबूत किला है। कहते हैं, कि १३४५ ई०में बाह्मनी राजवंशके प्रतिष्ठाता हसन गांगूने यह किला बनवाया। १४८६ ई०में ब्राह्मनी राजवंशका अधःपतन होने पर जेइन खाँने शोलापुरको अधिकार किया। उसके लड़केको नाबालगी अवस्थामें १५११

ई०को कमाल खाँने शोलापुर और पार्श्ववर्त्ती जिलाओं-को विजापुर राज्यमें मिला लिया।

१५२३ ई० में इस्माइल आदिल शाहने अहमदनगर राजके साथ अपनी बहनका विवाह कर दिया। शोलापुर प्रदेश दहेजमें मिला। पीछे १५६२ ई०में अहमदनगर-की राजकन्या चांदबीबीके विवाहमें शोलापुर फिर विजापुर राजको यौतुक-स्वरूप लौटा दिया गया। १६८६ ई० में विजापुर राजशक्तिका जब अवसान हुआ तब यह नगर मुगलोंके हाथ आया। पीछे मराठोंने वह मुगलोंके हाथसे छीन लिया। १८१८ ई०में जेनरल मनरोने पेशवाको परास्त कर यह स्थान दखल किया।

अङ्गरेजी अधिकारमें आनेके बादसे डकैतोंका उपद्रव बिलकुल जाता रहा। १८५६ ई०में रेलवेके खुल जाने-से पूना और हैदराबादके साथ इसका वाणिज्य व्यवसाय चलने लगा है, जिससे इसकी बहुत कुछ उन्नति हुई है। यहां रेशमी और सूती कपड़ेका विस्तृत कारबार और कारखाना है।

शीला नदीकी कलेवरवर्द्धिनी अदिला शाखाके बांधके ऊपर यह नगर बसा हुआ है। समुद्रकी तहसे इसकी ऊंचाई १८०० फुट है। नगरप्राचीरके दक्षिण-पश्चिम प्रान्तमें शोलापुर दुर्ग है। वह दुर्ग लम्बाईमें २३० गज और चौड़ाईमें १७६ गज है। चारों ओर दो पंक्तिमें दीवार खड़ी है। पूरबमें सिद्धेश्वर हदके अलावा इसके चारों ओर १००से १५० फुट विस्तृत एक खाई दौड़ गई है। शहरमें कुल मिला कर ४० स्कूल हैं जिनमेंसे एक सरकारी हाई स्कूल, ४ मिडिल स्कूल १ नारमल स्कूल, १ इनडसट्रियल और १ कमरसियल स्कूल तथा बाकी अपरप्राइमरी स्कूल हैं। इसके सिवा अमेरिकन मिशन द्वारा परिचालित एक किण्डरगार्टन क्लास भी है। स्कूलके अतिरिक्त सब-जजकी अदालत, दो अस्पताल और ४ चिकित्सालय हैं।

शोष (सं० पु०) शुष-घञ् भावे। १ शोषण, सूखनेका भाव। शुष्यत्यनेनेति शुष घञ् करणे। २ यक्ष्मरोग। पहले शरीरको शोषण कर पीछे इस रोगकी उत्पत्ति होती है, इसीसे इसको शोष या यक्ष्मा कहते हैं। रसरक्तादि धातु और मलादिका क्षय ही इस रोगका कारण है।

पहले सामान्य सर्दीसे खांसी होती है, पीछे उस खांसीसे धातुक्षय होने लगता है। आखिर वही क्षय शोष या यक्ष्माका कारण हो जाता है।

चरकमें साहस, वेगधारण, क्षय और विषमाशन इन चार कारणोंसे शोषकी उत्पत्तिकी कथा लिखी है।

साहस—जो व्यक्ति स्वयं दुर्बल हो कर बलवान्के साथ मल्लयुद्धादि करता है, बहुत बड़ा धनुष प्राणपणसे चढ़ाना चाहता है, खूब जोरसे बोलता और गाता है, भारी बोझ ढोता है, बड़ी बड़ी नदियोंमें बहुत दूर तक तैरता है, हल्दी आदिसे शरीर मलता है, बड़े जोरसे अर्थात् अभिमानपूर्वक किसी स्थानमें पदाघात करता है, बहुत दूर तक भ्रमण करता है, इन सब क्रियाओं द्वारा उसका वक्षस्थल क्षत या आहत होता और शरीरस्थ वायु प्रकुपित होती है। अनन्तर वह कुपित वायु क्षत-वक्षमें अच्छी तरह घुस कर श्लेष्मा और पित्तको दूषित कर डालती है तथा धीरे धीरे ऊद्ध्‌र्व, अधः और तिर्यग्-भावमें सारे शरीरमें विचरण करती है।

वह वायु कफ और पित्तके साथ मिल कर जब शरीरके सभी स्थलोंमें आश्रय लेती है, तब जृम्भा, अङ्गमर्द और ज्वर उत्पन्न होता है। आमाशयमें आश्रय लेनेसे मलभेद होता है, हृदयमें आश्रय लेनेसे छातीमें वेदना होती है, जिह्वामें आश्रय लेनेसे कण्ठ खुजलाता या उत्कास या स्वरभङ्ग होता है, प्राणवह स्रोतोंमें आश्रय लेनेसे श्वास और सर्दी तथा मस्तकमें आश्रय लेनेसे शिरःशूल उपस्थित होता है। वक्षःक्षतके कारण, वायुकी विषमगतिके कारण और कण्ठकी खुजलाहटके कारण उसे हमेशा खांसी होती है, तथा पूर्वोक्त क्षतयुक्त वक्षके बार बार क्षत होनेसे रक्तमिश्रित श्लेष्मा निक-लती है। इस प्रकार रक्त निकलनेसे रोगी दुर्बल हो जाता है। अतएव साहससे ही शरीरशोषकर इन सब उपद्रवों द्वारा उपद्रुत हो कर वह व्यक्ति धीरे धीरे सूख जाता है।

वेगधारण—जिस समय राजाके समीप, मालिकके समीप, गुरुके समीप, किसी साधु समाज या स्त्रीसमाजमें अथवा किसी सवारीसे जाते समय यदि

किसी व्यक्तिके अधोवायु, मूत्र या मलका वेग उपस्थित हो और लज्जा या भयके कारण वह उन सब वेगोंको रोक ले, तो उसकी वायु प्रकुपित हो कर पित्त और श्लेष्माको दूषित कर डालती तथा पूर्ववत् ऊपर नीचे विचरण करने लगती है और नाना प्रकारके उपद्रव खड़ी कर देती है। पीछे उस व्यक्तिका शरीर धीरे धीरे सुखने लगता है।

क्षय—जब मनुष्य शोक और चिन्तासे जड़ीभूत रहते हैं अथवा ईर्षा, उत्कण्ठा, भय या क्रोधादि द्वारा अभिभूत होते हैं अथवा कृशावस्थामें रूखा भोजन करते, थोड़ा खाते या अनाहारी रहते हैं, तब उनके हृदयका रस क्षय होने लगता है। रसके क्षय होनेसे उनका शरीर दुबला पतला हो जाता है। फिर यदि कोई व्यक्ति हर्ष या बड़ी आसक्तिके साथ स्त्रीमें रत होता है तथा और धीरे धीरे केवल उसकी विवृद्धि होने लगती है, तब शुक्र बहुत अधिक परिमाणमें गिरता है, इस प्रकार शुक्र गिरनेसे उसकी वायु प्रकुपित हो शोणितवह धमनियोंमें प्रवेश करती और उसके शोणितको अलग कर देती है। इस अवस्थामें उसके शुक्रका परिमाण इतना कम हो जाता है, कि पुनमैथुनकालमें शुक्र न निकल कर वायु द्वारा विपथगामी शोणित शुक्रमार्गमें लाया जाता और वही निकलता है। इस प्रकार शुक्रक्षय और शोणित-निर्गमके कारण उस व्यक्तिकी सभी सन्धियां ढोली पड़ जातीं तथा शरीर बहुत रूखा और कमजोर हो जाता है। इस समय प्रकुपित वायु रसहीन शरीरमें तमाम जा कर श्लेष्मा और पित्तको प्रकुपित कर डालती है तथा मांस और शोणितको सुखा कर उक्त श्लेष्मा और पित्तको निकालती है तथा दोनों पार्श्व और स्कन्धदेशमें वेदना, कण्ठमें खुजलाहट, श्लेष्माको ऊपर ला कर उस श्लेष्मासे मस्तकको परिपूर्ण तथा सन्धिस्थानोंको प्रपीड़ित और अङ्गमर्द, अरुचि, अपाक आदि उपद्रव खड़ी कर देती है। पित्त और श्लेष्माका उत्क्लेश अर्थात् बहिर्गमनोन्मुखता तथा प्रतिलोमगामित्वके कारण ज्वर, कास, श्वास, स्वरभेद और प्रतिश्यायादि रोग उत्पन्न होते हैं। कास प्रकोपके कारण क्रमशः वक्षःक्षत हो जानेसे रोगीके थूकमें रक्त निकलता है। इससे उसका शरीर दुर्बल और सूखा पड़ जाता है।

विषमाशन—साधारणतः अल्प, अधिक और असमयमें भोजन करनेको विषमाशन कहते हैं। चबाने, चूसने, चाटने और पीने ये चार प्रकारके भोजन हैं। भोजन विधिका अर्थात् प्रकृति, करण, राशि, संयोग, देश, काल, उपयोगसंस्था और उपशय, इनके वैषम्यभावमें अर्थात् अयथावत् नियमसे सेवन करनेका नाम ही विषमाशन है। विषमाशन देखो।

उक्त विषमाशन द्वारा त्रिदोष बिगड़ जाता है। वह प्रदुष्ट त्रिदोष सारे शरीरमें जा कर रसरक्तादिवह सभी स्रोतोंको ढक लेता है। इस अवस्थामें खाया हुआ पदार्थ प्रचुर परिमाणमें मलमूत्रादि रूपमें परिणत हो जाता है। अतएव उक्त खाये हुए पदार्थसे शरीरमें रसरक्तादि किसी भी धातुकी सम्यग् उत्पत्ति नहीं हो सकती, बल्कि उनका धीरे धीरे ह्रास ही हुआ करता है। इस अवस्थामें सिर्फ पुरीषके उपष्टम्भके कारण ही मनुष्य बच जाता है। इस समय यदि किसी कारणवशतः रोगीका मल निकलता रहे, तो थोड़े ही समयमें वह मृत्युमुखमें फंस जाता है। इसीलिये कहा गया है; कि शोषाक्रान्त व्यक्तिका मल अवश्य रक्षणीय है।

उक्त कारणवश रसादिके क्षय होनेसे रोगी बहुत कमजोर हो जाता है अथवा उस विषमाशनसे ही प्रकुपित वातादि दोषत्रय पृथक् पृथक् उपद्रव द्वारा रोगीके शरीरको अच्छी तरह चूस लेते हैं। वायु शिरःशूल, अङ्गवेदना, कण्ठ कण्डूयन, पार्श्ववेदना, स्कन्ध वेदना, स्वरभेद और प्रतिश्याय तथा पित्तज्वर, अतिसार और अन्तर्दाह तथा श्लेष्मा, शिरका गुरुत्व, अरुचि और कास आदि उपद्रव लाता है। खांसीकी अधिकतासे वक्षःस्थलमें जखम पहुंचता और रोगीके थूकमें खून निकलता है। इस कारण वह बहुत कमजोर और दुबला पतला हो जाता है।

उक्त चारों निदानके अतिसेवित होनेसे ही अनेक प्रकारके रोगोंको साथ ले कर और सामने रख शोष या यक्ष्मा रोगका अविर्भाव होता है इसीसे इसको राजयक्ष्मा या रोगराज कहते हैं।

३ क्षय, छीजनेका काम। ४ बच्चोंका सुखण्डी रोग। ५ खुश्की, सूखापन।

शोषक (सं० त्रि०) शोषयतीति शुष-णिच्-ण्वुल्। १ शोषणकर्त्ता, सुखानेवाला। २ जल, रस या तरी खींचनेवाला, सोखनेवाला। ३ क्षीण करनेवाला, घुलानेवाला। ४ दूर करनेवाला। ५ नाश करनेवाला।

शोषकर्म (सं० पु०) बावली या तालाव आदिसे पानी निकलवाना और उससे खेत सिंचवाना।

शोषघ्न (सं० पु०) वन प्याज।

शोषण (सं० क्ली०) शुष-ल्युट्। १ जल या रस खींचना, सोखना। २ सुखाना, खुश्क करना। ३ हरापन या ताजापन दूर करना। ४ क्षीण करना, घुलाना। ५ नाश करना, दूर करना। ६ शुण्ठी, सोंठ। ७ पिप्पली, पीपल। (पु०) शोषयतीति शुष-णिच्-ल्यु। ८ कामदेवके एक वाणका नाम। ९ श्योनाक वृक्ष, सोनापाठा। १० षोड़शांश कषाय, जो कषाय १६ भागका एक भाग रहने पर उतारा जाता है, उसे शोषण कहते हैं।

शोषणीय (सं० त्रि०) शुष-अनीयर्। शोषणयोग्य, सोखनेलायक।

शोषयितव्य (सं० त्रि०) १ जो सोखा जानेवाला हो। २ जिसे सुखाना हो।

शोषयितृ (सं० त्रि०) शुष-णिच्-तृच्। १ शोषणकारक, सोखनेवाला। २ सुखानेवाला।

शोषसम्भव (सं० क्ली०) शोषाय रसाकर्षणाय सम्भवो यस्य। पिप्पलीमूल, पिपला मूल।

शोषहन् (सं० पु०) १ जलापामार्ग, चिचड़ा। २ शोषनाशक।

शोषापहा (सं० स्त्री०) शोषं अपहन्तीति हन-ड, टाप्। १ यष्टिमधु, मुलेठी। (त्रि०) २ शोषनाशक।

शोषित (सं० त्रि०) शुष-णिच्-क्त। १ सोखा हुआ। २ सुखाया हुआ।

शोषिन् (सं० त्रि०) शुष-णिनि। १ सोखनेवाला। २ सुखानेवाला।

शोष्य (सं० त्रि०) शुष-यत्। १ सोखनेलायक। २ सुखानेलायक।

शोहदा (अ० पु०) १ व्यभिचारी, लंपट। २ गुण्डा, बदमाश, लुच्चा। ३ छैल चिकनिया, बहुत बनाव सिंगार करनेवाला।

शोहदापन (अ० पु०) १ गुण्डापन, लुच्चापन। ३ छैलापन।

शोहरत (अ० स्त्री०) १ नामवरी, ख्याति। २ खूब फैली हुई खबर, धूम।

शोहरा (अ० पु०) १ ख्याति, प्रसिद्धि। २ धूमसे फैली हुई खबर, जनरव।

शौक (सं० क्ली०) शुकानां समूहः शुक (खण्डिकादिभ्यश्च। पा ४।२।४५) इत्यण्। १ शुकोंका समूह, तोतोंका झुंड। २ स्त्रियोंका करणविशेष।

शौक (अ० पु०) १ किसी वस्तुकी प्राप्ति या निरन्तर भोगके लिये अथवा कोई कार्य करते रहनेके लिये होनेवाली तीव्र अभिलाषा या कामना, प्रबल लालसा। २ आकांक्षा, लालसा, हौसिला। ३ प्रवृत्ति, झुकाव। ४ व्यसन, चसका, चाट।

शौकत (अ० स्त्री०) ठाठ बाट, शान। शान देखो।

शौकर (सं० क्ली०) शूकरस्येदमिति शूकर अण्। तीर्थविशेष, शूकर सम्बन्धीय तीर्थ। भगवान् विष्णुने शूकररूपमें पृथ्वीको रसातलसे जहां उद्धार किया था, वहीं यह तीर्थ विद्यमान है। इस तीर्थमें जानेसे सभी पातक विनष्ट होता है। वराहपुराणमें इसका विवरण विशद रूपसे लिखा है।

शौकरव (सं० क्ली०) तीर्थविशेष, शौकर तीर्थ।

शौकरी (सं० स्त्री०) वाराहीकन्द, गेंठी।

शौकि (सं० पु०) प्राचीन कालके एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम।

शौकिया (अ० क्रि० वि०) १ शौकके कारण, शौक पूरा करनेके लिये, प्रवृत्तिके वश हो कर। (वि०) २ शौकसे भरा हुआ।

शौकीन (अ० पु०) १ वह जिसे किसी बातका बहुत शौक हो, शौक करनेवाला, चाव रखनेवाला। २ वह जो सदा छैला बना रहता हो, सदा बना ठना रहनेवाला। ३ रंडीबाज, ऐयाश, तमाशबीन।

शौकीनी (अ० स्त्री०) १ शौकीन होनेका भाव या काम। २ तमाशवीनी, रंडीवाजी, ऐयाशी।

शौकेय (सं० पु०) शुकस्य गोत्रापत्यं शुक (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। शुकका गोत्रापत्य, एक ऋषि।

शौक्र (सं० क्ली०) सामभेद।

शौक्तिक (सं० क्ली०) मौक्तिक, मुक्ता।

शौक्तिका (सं० स्त्री०) मुक्ता शुक्ति, सीप।

शौक्तिकेय (सं० क्ली०) शुक्तिकायां भवमिति शुक्तिका-ढक्। मुक्ता।

शौक्तेय (सं० क्ली०) शुक्तौ भवमिति शुक्ति-ढक्। १ मुक्ता। (त्रि०) २ शुक्ति-सम्बन्धी।

शौक्र (सं० त्रि०) शुक्रभव, शुक्र-सम्बन्धी।

शौक्रायन (सं० पु०) शुक्रका गोत्रापत्य। (संस्कारकौ०)

शौक्रेय (सं० पु०) शुक्रस्य अपत्यं शुक्र (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। शुक्रका गोत्रापत्य।

शौक्र्य (सं० क्ली०) शुक्रस्य भावः शुक्र (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति ष्यञ्। शुक्रका भाव।

शौक्ल (सं० त्रि०) १ शुक्ल-सम्बन्धी। (पु०) २ सामभेद। सम्भवतः शौक्लसाम।

शौक्ल्य (सं० क्ली०) शुक्लस्य भावः शुक्ल (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति ष्यञ्। शुक्लका भाव, शुक्लता, सफेदी।

शौग्र (सं० पु०) शिग्रुबीज, सहिंजनके बीज।

शौङ्ग (सं० पु०) शुङ्ग (विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु। पा ४।१।११७) इति अण्। शुङ्गका अपत्य, भरद्वाज ऋषि।

शौङ्गायनि (सं० पु०) शौङ्गका गोत्रापत्य।

शौङ्गि (सं० पु०) शुङ्गका गोत्रापत्य। (पा ४।१।११७)

शौङ्गिपुत्र (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम।

शौङ्गीय (सं० त्रि०) शौङ्गि-सम्बन्धी। (पा ४।२।१३८)

शौङ्गेय (सं० पु०) १ गरुड़। (दशकुमार ६३।६) २ श्येन-पक्षी, बाज।

शौङ्ग्य (सं० पु०) शुङ्गका गोत्रापत्य, एक ऋषि।

शौच (सं० क्ली०) शुचे र्भावः शुचि (इगन्ताच्च लघुपूर्वात्। पा ५।१।१३१) इत्यण्। १ शुचिता, पवित्रता। अभक्ष्य वस्तुका परिहार अर्थात् शास्त्रमें जिन सब वस्तुओंका भोजन निषिद्ध बताया है, उनका परित्याग तथा अनिन्दितका संसर्ग और स्वधर्मपालन करनेको शौच कहते हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि, चाहे जिस तरह हो विशुद्ध भावमें रहनेका नाम शौच है। विशुद्ध भावमें पहले आहारशुद्धिकी आवश्यकता है; क्योंकि बिना आहारशुद्धिके संयमशिक्षा नहीं होती। इसके बाद साधुसंसर्ग और स्वधर्मका पालन करना होता है।

जितने प्रकारके शौच हैं, उनमें अर्थशौच ही प्रधान है। जो अर्थविषयमें अशुचि है, उसका मृत्तिका या जल द्वारा शौच नहीं होता। शौच पांच प्रकारका है, सत्य-शौच, मनःशौच, इन्द्रियनिग्रहरूप शौच और सभी भूतोंके प्रति दयारूप शौच। यथा—जिन्हें सत्यशौच प्राप्त हुआ है उनके लिये स्वर्ग दुर्लभ नहीं है। मनुमें भी लिखा है—

सभी प्रकारके शौचोंमें अर्थात् देह मनः आदि शुद्धि-कर पदार्थोंमें अर्थशौच ही प्रधान है। अर्थार्जन विषय-में जो अशास्त्रीय उपायका अवलम्बन न करके शास्त्र-सङ्गत उपायसे अर्थार्जन और उसकी रक्षा करते हैं, उन्हें प्रधान शौचावलम्बी कहा जाता है। जो अर्थोपार्जनमें शुचि हैं, वे ही यथार्थमें शुचि हैं। मिट्टी वा जल द्वारा देह शुद्ध करनेको यथार्थमें शौच नहीं कह सकते। विद्वानों-की क्षमा ही शौच है अर्थात् वे क्षमा द्वारा शुद्ध होते हैं। अकार्यकारी दान द्वारा, प्रच्छन्नपापी जप द्वारा, वेदविद् ब्राह्मण तपस्या द्वारा, परपुरुषाभिलाषके कारण दूषित-मनाः नारी रजस्वला द्वारा, मलवहा नदी स्रोतवेग द्वारा, द्विजोत्तम प्रव्रज्या द्वारा, मन सत्य द्वारा, जीवात्मा विद्या और तपस्या द्वारा तथा बुद्धि ज्ञान द्वारा शुद्ध होती है। इन्हींको शारीरिक शौच कहते हैं।

आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि बाह्य भेदसे भी आभ्य-न्तर शौच दो प्रकारका है। मृत्तिका और जलादि द्वारा शरीरका जो शुद्धि विधान किया जाता है उसे बाह्य-शौच तथा इन्द्रियादिके संयम और चित्तकी जो विशुद्धि है, उसे आभ्यन्तर शौच कहते हैं। भावशुद्धि ही आभ्य-न्तर शौच है। चित्तके शुद्ध नहीं होनेसे प्रकृत शौच

नहीं होता। भावदुष्ट व्यक्ति यदि समस्त गङ्गाजल और पर्वतपरिमित मृत्तिका लेपन द्वारा आजीवन स्नान करे, तो भी उसकी शुद्धि नहीं होती, भावदुष्ट व्यक्तिका कभी भी शौच नहीं होता।

मलमूत्र त्यागके बाद जल और मिट्टी द्वारा जो शुद्धि की जाती है, उसको वाह्यशौच कहते हैं। धर्मविद् व्यक्ति दाहिने हाथका अधःशौचमें प्रयोग न करें अर्थात् गुह्य-द्वार और लिङ्गको पहले मिट्टीसे और बादमें जलसे धो डाले। पहले लिङ्गमें एक बार मिट्टी और जलसे शौच करे, पीछे गुह्य द्वारमें तीन बार मिट्टी और जलसे, बायें हाथमें दश बार और पीछे दोनों हाथमें सात बार मिट्टी और जल दे कर धो डाले। ऐसा करनेसे उसको वाह्य-शौच कहते हैं।

दिनको उत्तरमुखी और रातको दक्षिणमुखी हो कर शौच कार्य करना होता है। इस प्रकार शौच करके दोनों पैरमें भी तीन तीन बार मृत्तिका और जल दे कर धो डालना होता है। तृणादि द्वारा नखमेंसे मलादि निकालनेका भी विधान है। अनन्तर हाथ पांवको अच्छी तरह धो कर दो बार आचमन करे। ऐसा करनेसे शौच अर्थात् शुद्धिलाभ किया जाता है।

शौचके सम्बन्धमें विशेषता यह है, कि जब तक अपनी शुद्धि न हो ले, तब तक शौच करता रहे। पहले जो संख्या कही गई है, उसके अनुसार शौच कार्य करनेसे भी यदि अपनी शुद्धि मालूम न पड़े, तो उससे और अधिक परिमाणमें शौच करना होता है। जो सब व्यक्ति शौचाचारविहीन हैं, उनके सभी धर्म कर्म निष्फल होते हैं।

भगवान् मनुने कहा है,—

"उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यञ्च सन्ध्योपासनमेव च ॥"

(मनु २।६९)

गुरु शिष्यको उपनयन दे कर पहले उसे शौच शिक्षा दें। पहले वाह्यशौच, उसके बाद आभ्यन्तर शौच होता है। वहिःशौच द्वारा देहकी और आभ्यन्तर शौचसे आत्माकी शुद्धि होती है।

जहां शौच क्रिया की जाती है, उस स्थानको जलसे शोधन करे, नहीं करनेसे वह स्थान अशुद्ध रहता है। जिस पात्रमें जल ले कर शौच क्रिया की जाती है, उस पात्रको भी गोबर या मिट्टीसे परिष्कार कर देना होता है। इसके बाद आचमन करके आदित्य, सोम या अग्निदर्शन करने होते हैं।

पातञ्जलयोगसूत्रमें लिखा है—

"शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः।" (२।४०)

वाह्यशौच सम्पन्न होने पर भी जो स्वयं अपनेको सम्यक् रूपकी शुद्धि नहीं समझते, उन्हें दूसरेका शरीर स्पर्श करनेकी प्रवृत्ति जरा भी नहीं हो सकती। इसका तात्पर्य यह, कि शरीरशोधनका शास्त्रोक्त जो उपाय कहा गया है, वही शौच है। यह शौच हो जानेसे उसके द्वारा क्रमशः स्वाङ्ग जुगुप्सा उपस्थित होती है।

शरीरके प्रति घृणा मालूम कर शौच आरंभ करे। पीछे शरीरका अशुद्धिरूप दोष देख कर उसमें अभिष्वङ्ग अर्थात् स्थूल शरीरका सम्बन्ध छोड़नेकी वासना होती है। इसीको स्वाङ्गजुगुप्सा कहते हैं। शरीरके स्वभाव अर्थात् स्थान बीज आदि सम्यक् अनुशीलन करके अपना ही शरीर छोड़नेका इच्छुक हो मिट्टी और जलादि द्वारा बार बार संस्कार करके भी जब शुद्धि मालूम न हो, तब दूसरेका शरीर स्पर्श करना कदापि संभव नहीं है।

घृणा मालूम नहीं होनेसे वैराग्य उत्पन्न नहीं होता, बिना वैराग्यके परित्यागकी वासना नहीं होती और शरीर सुन्दर मालूम पड़ता है। इसका प्रधान कारण यह है, कि उसमें आत्माभिमान रहनेसे ही अपने शरीरको उपकारक परकीय शरीर भी सुन्दर मालूम होता है। यदि इसका ज्ञान हो जाय, कि शरीरसे आत्मा पृथक् है, तब वह सुन्दर भाव रहने नहीं पाता। उस समय शरीरमें नाना दोष देखे जाते हैं, तथा उसे छोड़नेकी इच्छा होती है। पहले वाह्यशौचकी सिद्धिसे ही ऐसा होता है। वाह्यशौचके सिद्ध होनेसे पीछे आभ्यन्तर शौचका अभ्यास करना पड़ता है।

"सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च।"
(पातंजलद० २।४०)

बहिःशुद्धिसे रजः और तमोमल दूर हो कर सत्त्वशुद्धि अर्थात् चित्तकी निर्मलता होती है। इसके बाद सौमनस्य अर्थात् मनकी प्रसन्नता होती है। मनके प्रसन्न होनेसे चित्तकी एकाग्रता अर्थात् विक्षेपकी अभाव रूप स्थिरता उत्पन्न होती है। चित्त स्थिर होनेसे इन्द्रियोंकी भी जय होती है, पीछे चित्तमें आत्मज्ञानलाभकी शक्ति पैदा होती है।

'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' सदाचार, सदनुष्ठान, जप और तप आदि न करके केवल मौखिक आन्दोलनसे चित्तशुद्धि नहीं होती। तीर्थस्थान, पवित्र गङ्गामृत्तिकाप्रलेप आदि वाह्यशौच सर्वदा आचरण करे। यह सब वाह्यशौच करते करते मैत्री, करुणा, मुदिता आदि भावना द्वारा जिससे ईर्षा, द्वेष आदि चित्तमल दूर हो, उसके प्रति विशेष लक्ष्य रखना होगा। इन सब आभ्यन्तर शौचका अभ्यास करनेसे चित्त प्रसन्न रहता है।

वहिःशौच ही अन्तःशौचका कारण है। चित्तशुद्धिके लिये ही नित्य नैमित्तिक सभी क्रियाओंका विधान है। अन्तःशौचकी अभिलाषा रहनेसे वहिःशौचकी ओर विशेष लक्ष्य रखना आवश्यक है। मैं शुचि हूंगा, अन्तःकरण निर्मल होगा, केवल ऐसी इच्छासे कुछ भी होता जाता नहीं, चित्तशुद्धि हुई है या नहीं, ईर्षा द्वेष आदि चित्तमूल दूर हुए हैं या नहीं, इन सब विषयोंकी ओर दृष्टि न रख कर केवल वाह्य आडम्बरसे कोई फल नहीं होता। चित्तशुद्धि अति दुर्लभ पदार्थ है। सर्वदा सदाचार, सत्संसर्ग और सत्कर्मानुष्ठान इत्यादिमें रत रहना तथा व्रतनियमादिकी कठोरताका प्रतिपालन करना होता है।

अन्तःशौचसाधनकालमें मैत्री करुणा आदि विषयोंका अच्छी तरह अभ्यास करना होता है अर्थात् उस समय जगत्के सभी सुखी लोगोंके प्रति सौहार्द अर्थात् प्रेम करे, इससे चित्तका ईर्षामल दूर होगा। दुःखियोंके प्रति दया करे अर्थात् जिस प्रकार अपने दुःख दूर करनेको चिन्ता बनी रहती है, उसी प्रकार दूसरेका दुःख दूर करनेका प्रयत्न करे। इससे दूसरेका अपकाररूप चित्तमल विनष्ट होता है। धार्मिक मनुष्य देख कर सन्तुष्ट होवे, इससे असूयावृत्ति (अर्थात् दूसरेके गुण पर दोषारोप करना) निवृत्ति होती है। अधार्मिक लोगोंके प्रति उदासीन रहे अर्थात् उनका साथ एकदम छोड़ दे। इससे क्रोधरूप चित्तमल विनष्ट होता है।

इस प्रकार सभी कार्य पुनः पुनः करते करते चित्तमें शुक्लधर्म अर्थात् राजसतामसवृत्ति तिरोहित हो कर सात्त्विकवृत्तिका उदय होता है। उसी समय प्रकृत आभ्यन्तर शौचसिद्धि होती है। इस प्रकार आभ्यन्तर शौचकी सिद्धि होनेसे चित्त प्रसन्न और स्थिर होता है। उस समय चित्त फिर पहलेकी तरह तड़ित् वेगसे विषयकी ओर नहीं दौड़ता।

यम नियम आदि योगके आठ अङ्ग हैं। शौच नियमके अन्तर्गत कारण, शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये पांच नियम हैं। चित्तको शुद्ध करनेमें पहले ही इस शौचका आचरण करना होता है।

२ वे कृत्य जो प्रातःकाल उठ कर सबसे पहले किये जाते हैं। जैसे,—पाखाने जाना, मुंह हाथ धोना, नहाना, संध्या वंदन करना आदि। ३ पाखाने जाना, टट्टी जाना।

शौचक (सं० क्ली०) शौच-स्वार्थे कन्। शौच देखो।

शौचत्व (सं० क्ली०) शौचस्य भावः शौच त्व। शौचका भाव या धर्म, शौचकार्य।

शौचद्रथ (सं० पु०) शुचद्रथका अपत्य। (ऋक् ५।७९।२)

शौचवत् (सं० त्रि०) शौच अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शौचविशिष्ट, शौचयुक्त। (याज्ञवल्क्यसं० ३।१३७)

शौचविधि (सं० स्त्री०) मल मूल आदिका त्याग करना, शौच आदिसे निवृत्त होना, निपटना।

शौचाचार (सं० पु०) शौचः आचारः। शुद्धिकर्म, शौचाचारविहीन व्यक्तिकी सभी क्रिया निष्फल होती है।

शौचादिरेय (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शौचाधान (सं० क्ली०) पवित्रतानुष्ठान।

शौचिक (सं० पु०) शौचं गृहादेः शुचिता कार्यत्वेना

स्त्यस्येति शौच-ठन्। वर्णसङ्कर जातिविशेष। इसकी उत्पत्ति शौण्डिक पिता और कैवर्त्त मातासे कही गई है।

शौचिकर्णिक (सं० त्रि०) शुचिकर्णसम्बन्धी।

शौचिन् (सं० त्रि०) शुच-णिनि। शौचविशिष्ट, शुद्धियुक्त, विशुद्धताविशिष्ट। मनु ५।८४ श्लोककी टीकामें कुल्लूकने अशौचिन् पदका उल्लेख किया है।

शौचिवृक्ष (सं० पु०) शुचिवृक्षका अपत्य। बहुवचनमें वंशपरम्परा बोध होने पर शौचवृक्ष पद होता है।

शौचिवृक्षि (सं० पु०) शुचिवृक्षका गोत्रापत्य।

शौचिवृक्ष्या (सं० स्त्री०) शौचिवृक्षिकी स्त्री, शौचिवृक्षी।

शौचेय (सं० पु०) शौचेन वस्त्रादिशुचित्वेन व्यवहरतीति शौच ढक्। रजक, धोबी।

शौचोदक (सं० क्ली०) शौचार्थमुदकं। वह जल जो शौच कार्यके लिये लाया गया हो।

शौटीर (सं० पु०) शौटतीति शौट गर्वे (कृ श्रृ पृ कटि पटि शौटिभ्यः ईरन्। उण् ४।३०) इति ईरन्। १ त्यागी। २ वीर, बहादुर। ३ गर्वान्वित, अभिमानी।

शौटीरता (सं० स्त्री०) शौटीरस्य भावः तल-टाप्। १ शौटीरका भाव या धर्म। २ वीरता, बहादुरी। ३ त्याग। ४ अभि मान, अहंकार, गर्व।

शौटीर्य (सं० क्ली०) शौटीरस्य भावः कर्म वा शौटीर (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। पा ५।१।१२४) इति ष्यञ्। १ वीर्य, शुक्र। २ गर्व, अभिमान। ३ वीरता, बहादुरी।

शौणायन (सं० पु०) शोणस्य गोत्रापत्यं शोण (नडादिभ्यः फक्। पा ४।१।९९) इति फक्। शोणका गोत्रापत्य।

शौणेय (सं० पु०) शोणका गोत्रापत्य।

शौण्ड (सं० त्रि०) शुण्डायां मद्ये रतः शुण्ड-अण्। १ मत्त, जो मद्य पी कर मतवाला हुआ हो। २ प्रगल्भ, चतुर। (पु०) ३ देवधान्य, पुनेरा। ४ कुक्कुट, मुर्गा।

शौण्डता (सं० स्त्री०) शौण्डस्य भावः तल् टाप्। शौण्डका भाव या धर्म, मत्तता, बद-मस्ती।

शौण्डर्य (सं० क्ली०) शौटीर्य।

शौण्डायन (सं० पु०) शुण्डा (गोत्र कुञ्जादिभ्यश्चफञ्। पा ४।१।९८) इति च्फञ्। १ शुण्डका गोत्रापत्य। २ प्राचीन कालकी एक योद्धाजातिका नाम।

शौण्डायन्य (सं० पु०) शौण्डायनोंका राजा।

शौण्डि (सं० त्रि०) प्रगल्भ। (भागवत १।१६।११) किसी किसी ग्रन्थमें शौण्डिकी जगह शौरि और शौण्ड पाठ देखा जाता है।

शौण्डिक (सं० पु०) शुण्डा पण्यमस्य, शुण्डा (तदस्य पण्यं। पा ४।४।५१) इति ठक्। १ वर्णसङ्कर जातिविशेष, कलाल। पर्याय—मण्डहारक, शुण्डार, शौण्डी, शुण्डक, ध्वज, पान, पण, कल्यपाल, सुराजीवी, वारिवास, पानवणिक, ध्वजी, आसुतीवल। पराशरपद्धतिमें इस जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—

"ततो गान्धिककन्यायां कैवर्त्यादेव शौण्डिकः।
कैवर्त्तस्य च कन्यायां शौण्डिकादेव शौचिकः॥"
(पराशरपद्धति)

कैवर्त्तके औरस और गान्धिककन्याके गर्भसे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है। मनुमें लिखा है, कि इस जातिके घर भोजन नहीं करना चाहिये।

याज्ञवल्क्य संहितामें लिखा है, कि इस जातिकी स्त्री यदि ऋण ले, तो उसके स्वामीको वह ऋण शोध करना होता है। क्योंकि उक्त जातियोंकी जीविका स्त्रीके ऊपर ही निर्भर करती है।

गोप, शौण्डिक, शैलूष, रजक और व्याध इन सब जातियोंकी स्त्री जो ऋण लेती हैं, उनके पतिको ही वह ऋण परिशोध करना होता है। क्योंकि उक्त जातियोंकी जीविका स्त्रियों पर ही निर्भर है।

२ पिप्पलीमूल, पिपरामूल। (त्रि०) शुण्डिकादागतः (शुण्डिकादिभ्योऽण्। पा ४।३।७६) इत्यण्। ३ शुण्डिकसे आगत, कलालसे मिला हुआ।

शौण्डिकेय (सं० पु०) शुण्डिका नामक राक्षसीका पुत्र।

शौण्डिन् (सं० पु०) शुण्डा सुरां एव शौण्डं मद्यं स्वार्थे अण्, तत् पणत्वेनास्त्यस्येति शौण्ड-इ। शौण्डिक, सूड़ी।

शौण्डी (सं० स्त्री०) १ पिप्पली, पीपल। २ चव्य, चविका। ३ मिर्च।

शौण्डोक—जातिविशेष। बहुवचनमें यह शब्द प्रयोग होता है।

शौण्डोर (सं० त्रि०) शौड़तीति शौड़-ईरन्, पृषोदरादित्वात् साधुः। अहङ्कारी, घमण्डी।

शौण्डोर्य (सं० क्ली०) शौटीर्य।

शौण्डेय (सं० पु०) शौण्डीका गोत्रापत्य। (संस्कारकौमुदी)

शौत (हिं० स्त्री०) सौत देखो।

शौद्धकर्णि (सं० पु०) शुद्धकर्णका गोत्रापत्य।

शौद्धाक्षर (सं० त्रि०) विशुद्ध अक्षर सम्बन्धी। जो सब वर्ण स्वयं उच्चारित होता है अर्थात् स्वरवर्ण, तत्सम्बन्धी। (ऋक् प्राति ४।३८)

शौद्धोदनि (सं० पु०) शुद्धोदनस्यापत्यं पुमानिति शुद्धोदन (अत इञ्। पा ४।१।९५) इति इञ्। शाक्यवंशावतंस बुद्धमुनि, बुद्धदेव। (अमर)

शौद्धोदनि—केशवमिश्रकृत अलङ्कारशेखरकी टीका और अलंकारसूत्रके प्रणेता।

शौद्र (सं० पु०) शूद्रायां भवः शूद्रा-अण्। १ ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्यके वीर्यसे शूद्रासे उत्पन्न पुत्र जो बारह प्रकारके पुत्रोंमेंसे एक प्रकारका पुत्र माना जाता है। मनुमें लिखा है, कि ऐसा पुत्र अपने पिताके गोत्रका नहीं होता और न इसकी सम्पत्तिका अधिकारी हो सकता है।

शूद्रस्येद मिति अण्। (त्रि०) २ शूद्र-सम्बन्धी।

शौद्रकायन (सं० पु०) शूद्रकस्य गोत्रापत्यं शूद्रक (अश्वादिभ्यः फञ्। पा ४।१।११०) इति गोत्रापत्ये फञ्। शूद्रकका गोत्रापत्य।

शौद्रायण (सं० पु०) शूद्र गोत्रापत्ये फञ्। शूद्रका गोत्रापत्य।

शौद्रायणभक्त (सं० पु०) शौद्रायणानां विषयो देशः शौद्रायण (भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधलभक्तलौ। पा ४।२।५४) इति भक्तल्। शौद्रायणका विषय या देश, शूद्रापत्यका विषयदेश।

शौधिका (सं० स्त्री०) रक्तकङ्गु, लाल कंगनी।

शौन (सं० त्रि०) १ श्वानसम्बन्धी, कुत्तेका। (क्ली०) २ वह मांस जो बिक्रीके लिये रखा हो।

शौनक (सं० पु०) शुनकस्यापत्यमिति शुनक-(अनृष्यानन्तर्यविदादिभ्योऽञ्। पा ४।१।१०४) इति अञ्। एक प्राचीन वैदिक आचार्य और ऋषि जो शुनक ऋषिके पुत्र थे। अनेक वैदिक और लौकिक ग्रन्थ इनके नामसे प्रचलित हैं।

अनुवाकानुक्रमणि, आयुष्यहोमपद्धति, आर्षानुक्रमणि, उग्रग्रशान्तिप्रयोग, उदकशान्तिप्रतिसरबन्धप्रयोग, उपलेखवृत्ति, ऋग्विधान, ऋग्वेदप्रातिशाख्य, ऋषिच्छन्दोनुक्रमणिका, एकदण्डिसंन्यासविधि, पादानुक्रमणी, पुनराधानधार्याग्निहोत्रप्रयोग, बृहद्देवता, वास्तुशान्तिप्रयोग, विवाहपटल, विष्णुधर्म, शान्ति, संन्यासविधि, सूक्तानुक्रमणी, सोमोत्पत्तिपरिशिष्ट आदि ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं। इनके सिवा शौनककारिका, शौनकगृह्य शौनकपञ्चसूत्र, शौनकसूत्र, शौनकस्मृति, शौनकाथर्वणसूत्र, शौनकी, शौनकीय, शौनकीय प्रयोग और शौनकीयस्वराष्टक नामक ग्रन्थ भी इन्हींके रचित हैं। आश्वलायनश्रौतसूत्र १२।८) आदि ग्रन्थोंमें शौनकप्रोक्त वैदिक ग्रन्थादिका उल्लेख मिलता है।

शौनकायन (सं० पु०) शुनकस्य गोत्रापत्यं शुनक (शरद्वत् शुनकदर्भाद्भृगुवत्साग्रायणेषु। पा ४।१।१०२) इति फक्। शुनकके गोत्रापत्य, वात्स्य। जहां केवल शुनकका गोत्रापत्य समझा जायेगा, वहां शौनक पद होगा। फलतः जहां वात्स्यका बोध होगा, वहां शुनक शब्दके उत्तर उक्त फक् प्रत्यय होगा, दूसरी जगह नहीं।

शौनकि (सं० पु०) शौनकका गोत्रापत्य।

शौनकिन् (सं० पु०) शौनकेन प्रोक्तमधीयते इति शौनक (शौनकादिभ्यश्छन्दसि। पा ४।३।१०६) इति णिनि। शौनकप्रोक्त शाखाध्ययनकारी।

शौनकीपुत्र (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद।

शौनकीय (सं० त्रि०) शौनक छ। शौनकप्रोक्त, शौनकका कहा हुआ।

शौनःशेफ (सं० पु०) शुनःशेफ-गोत्रापत्ये अञ्। १ शुनःशेफका गोत्रापत्य। (क्ली०) २ शुनःशेफाख्यान। (त्रि०) ३ शुनःशेफसम्बन्धी।

शौनहोत्र (सं० पु०) शुनहोत्रका गोत्रापत्य।

शौनराज—सह्याद्रिवर्णित राजभेद।

शौनायन (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

शौनासीर्य (सं० त्रि०) शुनासी-सम्बन्धी ।

शौनिक (सं० पु०) शूना प्राणिवधस्थानं प्रयोजनमस्य शूना-ठक् । १ मांसविक्रयकर्त्ता, मांस वेचनेवाला, कसाई । २ मृगया, शिकार, आखेट ।

शौनिकशास्त्र (सं० क्ली०) वह शास्त्र जिसमें शिकार खेलने, घोड़ों आदि पर चढ़ने और पशुओं आदिको लड़ानेकी विद्याका वर्णन हो ।

शौन्दत्ति—बम्बईप्रदेशके बेलगाम जिलान्तर्गत परशगढ़ उपविभागका प्रधान नगर । यह अक्षा० १५° ४६' उ तथा देशा० ७५° ७' पू०के मध्य विस्तृत है । इस नगरसे दो मील दक्षिण परशगढ़के पहाड़ी दुर्गका खंडहर दिखाई देता है । यहांसे साढ़े पांच मील उत्तरपश्चिम एक स्थानमें येल्लमादेवीके उद्देशसे प्रति वर्ष दो बार वैशाखी पूर्णिमा और कार्त्तिकी पूर्णिमाको मेला लगता है। म्युनिस्पलिटीका प्रबंध रहनेसे नगर खूब साफ सुथरा है । शहरमें सब-जजकी अदालत, अस्पताल, म्युनिसपल मिडिल स्कूल और पांच प्राइमरी स्कूल हैं ।

शौभ (सं० क्ली०) शोभायै हितं शोभा-अण् । १ हरिश्चन्द्रपुर, राजा हरिश्चन्द्रकी नगरी । पर्याय—व्योमचारिपुर । (भूरि०) यह पुर शाल्व राजाके अधिकृत था, भगवान् श्रीकृष्णने शौभाधिपति शाल्वको वध कर यह पुर अधिकार किया । भागवतके दशम स्कन्धमें ११ अध्यायमें इसका विस्तृत विवरण लिखा हुआ है । (पु०) शुभाय हितः शुभ-अण् । २ देवता । (त्रिका०) ३ गुवाक, सुपारी । (शब्दरत्ना०)

शौभनेय (सं० त्रि०) १ शोभन-सम्बन्धी । २ शोभनाका अपत्य, सुन्दरी स्त्रीका गर्भजात । (पाणिनि ४।१।१३३)

शौभाञ्जन (सं० पु०) शोभाञ्जन एव स्वार्थे अण् । शोभाञ्जन, सहिंजनका पेड़ । (भरत द्विरूपको०)

शौभायन (सं० पु०) प्राचीन कालकी एक योद्धा जातिका नाम ।

शौभायनि (सं० पु०) शुभस्य गोत्रापत्यं शुभ-(तिकादिभ्यः फिञ् । पा ४।१।१५४) इति फिञ् । शुभका गोत्रापत्य ।

शौभायन्य (सं० पु०) शौभायनोंका राजा ।

शौभिक (सं० पु०) ऐन्द्रजालिक, जादूगर ।

शौभ्रलिङ्ग (सं० पु०) श्वेतवर्ण शिवलिङ्ग ।

शौभ्रायण (सं० पु०) १ प्राचीनकालके एक देशका नाम । २ इस देशका निवासी ।

शौभ्रायणभक्त (सं० पु०) शौभ्रायणानां विषयो देशः । शौभ्रायणका विषय या देश ।

शौभ्रेय (सं० त्रि०) शुभ्राया अपत्यं शुभ्रा-(शुभ्रादिभ्यश्च । पा ४।१।१२३) इति ढक् । १ शुभ्र सम्बन्धी । (पु०) २ शुभ्रका अपत्य । ३ उस देशकी योद्धा जाति । ग्रीक-भौगोलिकोंने Sabraeae शब्दमें इस देशका उल्लेख किया है । अलेकसन्दरके समय यह Sambracae कहा जाता था ।

शौभ्रेय (सं० पु०) शुभ्र-अपत्यार्थे (कुर्व्वादिभ्यो ण्यः । पा ४।१।१५१) इति ण्य । शुभ्रका गोत्रापत्य ।

शौरदेव्य (सं० पु०) शूरदेवका अपत्य ।

शौरसेन (सं० त्रि०) १ शूरसेन-सम्बन्धी । २ शूरसेन-जात । (पु०) ३ आधुनिक व्रजमण्डलका प्राचीन नाम जहाँ पहले राजा शूरसेनका राज्य था ।

शौरसेनिका (सं० स्त्री०) शौरसेनी देखो ।

शौरसेनी (सं० स्त्री०) १ प्राचीनकालकी एक प्रसिद्ध प्राकृत भाषा जो शौरसेन (वर्त्तमान व्रजमण्डल) प्रदेशमें बोली जाती थी । यह मध्यदेशकी प्राकृत थी और शूरसेन देशमें इसका प्रचार होनेके कारण यह शौरसेनी कहलाई । मध्यदेशमें ही साहित्यिक संस्कृतका अभ्युदय हुआ था और यहींकी बोलचालकी भाषासे साहित्यकी शौरसेनी प्राकृतका जन्म हुआ । इस पर संस्कृतका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था और इसीलिये इसमें तथा संस्कृतमें बहुत समानता है । यह अपेक्षाकृत अधिक पुरानी, विकसित और शिष्ट समाजकी भाषा थी । वर्त्तमान हिन्दीका जन्म शौरसेनी और अर्धमागधी प्राकृतों तथा शौरसेनी और अर्धमागधी अपभ्रंशोंसे हुआ है । २ प्राचीन कालकी एक प्रसिद्ध अपभ्रंश भाषा । इसका प्रचार मध्यदेशके लोगों और साहित्यमें था । यह नागर भी कहलाती थी ।

शौरसेन्य (सं० त्रि०) शूरसेन-सम्बन्धी ।

शौरि (सं० पु०) शूरस्यापत्यमिति शूर इञ् । १ विष्णु । २ शनिग्रह । (अमर) ३ शूरवंशीय मात्र । ४ वसुदेव । ५ बलदेव । ६ कृष्ण । (भागवत १।१०।३३)

शौरिदत्त—वाग्वतीतीर्थयात्राप्रकाशके रचयिता।

शौरिप्रिय (सं० पु०) हीरक, हीरा।

शौरिरत्न (सं० पु०) नीलम।

शौरिसूनु—नवरत्नपरलक्षणनामक ग्रन्थके प्रणेता।

शौर्प (सं० त्रि०) शूर्प (शूर्पादन्यतरस्यां। पा ५।१।२६) इति अण्। शूर्पपरिमित।

शौर्पणाय्य (सं० पु०) शूर्पणाय-कुर्वादित्वात् अपत्यार्थे ण्य। (पा ४।१।१५१) शूर्पणायका अपत्य।

शौर्पारक (सं० क्ली०) काले रंगका एक प्रकारका हीरा जो प्राचीन कालमें शूर्पारक प्रदेशमें पाया जाता था।

शौर्पिक (सं० त्रि०) शूर्प ठञ्। (पा ५।१।२६) शूर्प परिमाण।

शौर्य्य (सं० क्ली०) शूरस्य भावः कर्म्म वा, शूर ष्यञ्। १ शूरका भाव, शूरता, वीरता, बहादुरी। २ शूरका धर्म। ३ नाटकमें आरभटी नामकी वृत्ति। आरभटी देखो।

शौर्य्यमण्डन—सह्याद्रिवर्णित एक राजाका नाम।

शौर्य्यवत् (सं० त्रि०) शौर्य्य अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शौर्य्यविशिष्ट, शूर, वीर।

शौर्य्यादिमत् (सं० त्रि०) शौर्यादि अस्त्यर्थे मतुप्। शौर्य्यादिविशिष्ट।

शौल (सं० पु०) लाङ्गल या हलकी फाल।

शौलायन (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम। कौलायन देखो।

शौलिक (सं० पु०) १ प्राचीन कालके एक देशका नाम जो शूलिक भी कहलाता था। शूलिक देखो। २ इस देशका निवासी। (बृहत्सं० १४।१६)

शौलिकि (सं० पु०) अन्तःशौचार्थ योगशास्त्रोक्त धौति नेति आदि छः प्रकारके कर्मोंमेंसे एक कर्म। इस क्रियामें बांए नथनेसे धीरे धीरे साँस खींचते हुए दाहिने नथनेसे बाएं छोड़ते हैं और फिर दाहिने नथनेसे खींचते हुए बाएं नथनेसे छोड़ते हैं। किन्तु यह पूरक और रेचक कार्य धीरे धीरे करना होगा। यदि उसमें किसी तरह अधिक वेग न लगे और वायु देर तक रखो न रहे, तो शरीरके अनिष्ट होनेकी सम्भावना है। इस योगाभ्यास द्वारा कफदोषको शान्ति होती है।

शौल्क (सं० त्रि०) शुल्क-ष्ण। १ शुल्क-सम्बन्धी, शुल्कका। (क्ली०) २ साममेद।

शौल्कशालिक (सं० त्रि०) शुल्कशालाया आगतः शुल्कशाला (ठगायस्थानेभ्यः। पा ४।३।७५) इति ठक्। १ शुल्कशालासे आगत, शुल्कगृहसे प्राप्त। शुल्कशालाया अवक्रयः (अवक्रयः। पा ४।४।५०) इति ठक्। २ शुल्कशालाका अवक्रय अर्थात् शुल्कशालामें दिया जानेवाला कर।

शौल्कायनि (सं० पु०) एक मुनिका नाम। ये वेददर्शके शिष्य थे। भागवतमें लिखा है, कि वेददर्श संहिता प्रणयन कर चार भागोंमें इन्होंने विभक्त किया था तथा यह संहिता शौल्कायनि आदि चार शिष्योंको अध्यापना कराई थी। (भागवत १२।७।२)

शौल्किक (सं० पु०) शुल्के अधिकृतः शुल्क-ठञ्। शुल्काध्यक्ष, वह अधिकारी जो लोगोंसे शुल्क लेता हो, शुल्क या महसूल आदि वसूल करनेवाला अफसर।

शौल्किकेय (सं० पु०) शुल्किको देशभेदस्तत्र भवः ठक्। विषभेद, एक प्रकारका विष। (अमर)

शौल्फ (सं० क्ली०) १ शतपुष्पा, सौंफ। २ सुलफा नामका साग।

शौल्वायन (सं० पु०) शुल्व-गोत्रापत्ये फक्। शुल्वका गोत्रापत्य। (शतपथब्रा० ११।४।२।२७)

शौल्विक (सं० पु०) १ प्राचीन कालकी एक वर्णसंकर जातिका नाम। २ ठठेरा, कसेरा।

शौव (सं० क्ली०) श्वन् (शुनःसङ्कोच उपसंख्यानं। पा ६।४।१४४) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अणि साधु। १ शुनःसङ्कोच। २ शुनोवृन्द। ३ श्वोभव (संक्षिप्तसार उणादि) (पु०) ४ उद्गीथभेद।

शौवदंष्ट्र (सं० त्रि०) श्वदंष्ट्रा सम्बन्धी।

शौवन (सं० क्ली०) श्वन्-अण्। १ कुत्तेका भाव। २ कुत्तेका अपत्य। शुनः समूहः श्वन् (खण्डिकादिभ्यश्च। पा ४।२।४५) इत्यञ्। ३ कुत्तोंका समूह। ४ कुत्तेका मांस। (काशिका ६।४।१३३)

शौवनि (सं० त्रि०) श्वान-सम्बन्धी, कुत्तेका।

शौवनेय (सं० पु०) शुनोऽपत्यं श्वन् (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ठक्। कुत्तेका अपत्य।

शौवस्तिक (सं० त्रि०) श्वो भवं श्वस् (श्वसस्तुट् च। पा ४।३।१५) इति ठञ् तुडागमश्च । भाविदिन स्थायिवस्तु, वह पदार्थ जो भविष्यमें व्यवहार करनेके विचारसे संग्रह करके रखा गया हो ।

शौवाहन (सं० क्लो०) एक नगरका नाम । (पा ७।३।८)

शौवापद (सं० त्रि०) श्वापदस्येदमिति श्वापद अण् (पादान्तस्यान्यतरस्यात् । पा ७।३।६) इति पक्षे ऐच् । श्वापद सम्बन्धी ।

शौष्कल (सं० पु०) शुष्कलं पण्यमस्येति अण् । १ शुष्क मांसका पणक, सूखे हुए मांसका मूल्य । (त्रि०) शुष्कलीमस्तीति शुष्कली-अण् । २ आमिषाशी, मांस मछली खानेवाला ।

शौष्कास्य (सं० क्लो०) मुखका शुष्क भाव, शुष्क मुख ।

शौहर (फा० पु०) स्त्रीका पति, स्वामी, खाविंद । पति देखो ।

श्च्योत (सं० पु०) श्च्योतनमिति श्च्युत-घञ् । प्राग्धार ।

श्नथन (सं० त्रि०) श्नथयतीति श्नथ ल्यु । १ श्नथनकारी, वध करनेवाला । (ऋक् २।२१।४) (क्लो०) श्नथ-ल्युट् । २ वध, हिंसा ।

श्नथितृ (सं० त्रि०) श्नथ तृच् । श्नथनकारी, हिंसा करनेवाला ।

श्नस् (सं० क्लो०) ओष्ठसन्धि । (शुक्लयजुः ५।२१)

श्नाभ (सं० क्ली०) सामभेद ।

श्नुष्टि (सं० स्त्री०) १ आङ्गिरसभेद । (पञ्चविंशब्रा०) २ वैदिककालका 'समय' का एक परिमाण ।

श्नैाष्ट (सं० क्ली०) सामभेद ।

श्मन (सं० क्लो०) १ मुख । २ शरीर । (निरुक्त ३।५) ३ शव, मुरदा ।

श्मशा (सं० स्त्री०) कुल्या, कुलीन स्त्री ।

श्मशान (सं० क्ली०) श्मनां शवानां शानं शयनं यत्र ; यद्वा शवानां शयनमिति (पृषोदरादीनि यथोपदिष्टानि । पा ६।३।१०९) इति शवशब्दस्य श्मादेशः शयनशब्दस्यापि शानशब्द आदेशः । शवदाहस्थान, वह स्थान जहां मुर्दे जलाये जाते हों, मरघट । पर्याय—पितृवन, शतानक, रुद्राक्रीड़, दाहसर, अन्तशय्या, पितृकानन ।

पण्डितोंने श्मशान शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार की है—श्म शब्दका अर्थ शव और शानका अर्थ शयन है, प्रलयकालमें महाभूत भी जहां शव स्वरूपमें शयन करता है, उसे श्मशान कहते हैं ।

स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें वाराणसीक्षेत्रको महाश्मशान और मुक्तिका क्षेत्र कहा है, यथा—

"वाराणसीति विख्याता रुद्रावास इति द्विजाः ।
महाश्मशानमित्येवं प्रोक्तमानन्दकाननं ॥"
(काशीख० २० अ०)

वराहपुराणमें लिखा है, कि श्मशानमें प्रवेश करनेसे प्रायश्चित्त करना होता है । श्मशानसे लौट कर या विना स्नान किये किसी भी विष्णुमूर्त्तिका स्पर्श करनेसे गृध्र और श्रृगालयोनिमें जन्म होता है । पीछे वह यथाक्रम सात और चौदह वर्ष तक नरमांसभोजी हो कर पृथिवी पर अवस्थान करता और पीछे पिशाचरूप धारण कर तीस वर्ष तक उच्छिष्ट दुर्गन्धित मृतदेहको खाना पड़ता है । यहां पर प्रश्न हो सकता है, कि जब श्मशान इतना पापस्थान है, तब शिवजी वहां सर्वदा वास क्यों करते हैं ? यह सत्य है ; किन्तु उक्त वराहपुराणसे यह भी जाना जाता है, कि बालवृद्धवनिताके साथ जब शिवजीने त्रिपुरासुरका वध किया, तब पापग्रस्त हो उन्हें भी विष्णुके उपदेशसे पापप्रक्षालनार्थ श्मशानवासी होना पड़ा है ।

देवादिदेव महादेवने जब बालवृद्धगर्भिणी आदिके साथ त्रिपुरपुरीका विध्वंस किया, तब वे पापके डरसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो श्रीविष्णुके पास गये और पापप्रक्षालनार्थ उनसे प्रार्थना की । विष्णुने कहा—हे रुद्र ! तुम दिव्य सहस्र वर्ष तक समल अर्थात् मनुष्यके अतीप्सित नाना प्रकारके पूतिगन्धयुक्त श्मशानमें नृकपाल धारण कर स्वगणके साथ वास करो, पीछे महर्षि गौतमके आश्रम जाओ । वहां उनके प्रसादसे तुम इस घोर पापसे मुक्त हो सकोगे ।

श्मशानमें जानेवाले व्यक्तिका प्रायश्चित्त इस प्रकार है,—श्मशानमें प्रवेश करनेसे कृतसंस्कार और विष्णुपरायण हो पन्द्रह दिन तक प्रतिदिन सिर्फ एक बार जल पी कर रहे और कुशके आसन पर सोवे । उस समय प्रति

दिन सवेरे पञ्चगव्य पानकी भी व्यवस्था निर्दिष्ट है।

तन्त्रादिमें लिखा है, कि श्मशान शक्तिमन्त्रसिद्धिका एक प्रधान स्थान है। यहां शवके ऊपर बैठ कर शक्तिमन्त्रकी साधना करनेसे अति शीघ्र सिद्धि लाभ होती है। इन सब तन्त्रोक्त मारण वशीकरण आदि कार्यों में श्मशानकी मिट्टी और सिन्दुरादिका प्रयोजन होता है।

आयुर्वेदशास्त्रमें लिखा है, कि औषध प्रस्तुत करनेके लिये श्मशानभूमिमें उत्पन्न कोई द्रव्यजात ग्रहण न करे।

श्मशानकालिका (सं० स्त्री०) तान्त्रिकोंके अनुसार एक प्रकारकी काली जिनका पूजन मांस, मछली खा कर, मद्य पी कर और नंगे हो कर श्मशानमें किया जाता है।

श्मशाननिलय (सं० पु०) श्मशाने निलयो यस्य। श्मशानवासी शिव।

श्मशानपति (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ एक प्रकारका ऐन्द्रजालिक।

श्मशानपाल (सं० पु०) श्मशानरक्षक, चण्डाल।

श्मशानभैरवी (सं० स्त्री०) १ तान्त्रिकोंके अनुसार वे देवियां जो श्मशानमें रहती हैं। २ दुर्गा।

श्मशानवासिन् (सं० पु०) श्मशाने वसतीति वस णिनि। १ शिव, महादेव। २ चण्डाल। शुद्धितत्त्वमें लिखा है, कि शवदाहके बाद शवस्पृष्ट जो सब वस्त्र रहता है, वह श्मशानवासी चण्डालको दिया जाता है।

श्मशानवासिनी (सं० स्त्री०) श्मशाने वसति वस-णिनि-ङीप्। काली।

श्मशानवेताल (सं० पु०) १ भूतयोनिविशेष। २ कथासरित्सागरवर्णित क्रीड़ाकारीभेद।

श्मशानवेश्मन् (सं० पु०) श्मशानं वेश्म यस्य। महादेव।

श्मशानालयवासिन् (सं० पु०) श्मशानालये श्मशानगृहे वसतीति वस-णिनि। शिव।

श्मशानालयवासिनी (सं० स्त्री०) काली।

श्मश्रु (सं० क्ली०) श्म-मुखं श्रयति आश्रयतीति श्म श्रि (श्मनि श्रयते डुन्। उण् ५।२८) इति डुन्। होठों, गालों और ठोढ़ा आदि पर होनेवाले बाल; मुंह परके बाल, दाढ़ी मूछ। स्निग्ध और मृदु अथवा संहत और अस्फुटिताग्र श्मश्रु होनेसे शुभ होता है। श्मश्रु लाल होनेसे चोर, थोड़ा लाल और पुरुषके कानों तक होनेसे अशुभ होता है।

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि केश और श्मश्रु रखनेसे श्रेष्ठ सन्ततिलाभ होता है।

शुद्धितत्त्वमें लिखा है, कि क्षौरकर्ममें पहले केश, पीछे श्मश्रु और तब नख कटाना चाहिए।

श्मश्रुकर (सं० पु०) नापित, हज्जाम।

श्मश्रुकर्मन् (सं० क्ली०) क्षौरकर्म, दाढ़ी बनवाना, हजामत बनवाना।

श्मश्रुजात (सं० त्रि०) जात श्मश्रु यस्य, आहिताग्न्यादित्वात् पूर्वनिपातः (पा २।२।३७) जातश्मश्रु, दाढ़ी मूंछवाला।

श्मश्रुण (सं० त्रि०) श्मश्रुविशिष्ट, दाढ़ी मूंछवाला।

श्मश्रुधारिन् (सं० त्रि०) श्मश्रु धरतीति धृ-णिनि। श्मश्रुधारणकारी, दाढ़ी मूंछ रखनेवाला।

श्मश्रुमुखी (सं० स्त्री०) श्मश्रु मुखे यस्याः ङीष्। श्मश्रुयुक्ता नारी, वह स्त्री जिसके गालों और ऊपरी होंठ पर दाढ़ी और मूंछके बाल हों। पर्याय—पालि, पाली, पोटा। (जटाधर) ऐसी स्त्री क्रूर, कुलक्षणी और पुंश्चली समझी जाती है।

श्मश्रुल (सं० त्रि०) श्मश्रु-सिध्मादित्वात् लच्। श्मश्रुविशिष्ट, दाढ़ी मूंछवाला।

श्मश्रुवर्द्धक (सं० त्रि०) श्मश्रुछेदक, हज्जाम।

श्मश्रुशेखर (सं० पु०) नारिकेल वृक्ष, नारियलका पेड़।

श्माशानिक (सं० त्रि०) श्मशानेऽधीते (अध्यायिन्यदेशकालात्। पा ४।४।७१) इति ठक्। श्मशानमें जो अध्ययन करता हो।

श्मीलन (सं० क्ली०) श्मील-ल्युट्। चक्षुमुद्रितकरण, आँख मूंदना।

श्यान (सं० त्रि०) श्यै-क्त, तस्य नः, ऐकारस्य आकारः। गया हुआ।

श्यापर्ण (सं० पु०) श्यपर्ण अपत्यार्थे अञ्। (पा ४।१।१०४) श्यपर्णका गोत्रापत्य।

श्यापर्णीय (सं० त्रि०) श्यापर्णसम्बन्धी।

श्यापर्णेय (सं० पु०) श्यापर्णका गोत्रापत्य।

श्यापीय (सं० पु०) एक वैदिक शाखाका नाम।

श्याम (सं० त्रि०) श्यायते मनो यस्मात् श्यै-मक्। १ काला और नीला मिला हुआ। २ काला, साँवला। (पु०) ३ प्रयागके अक्षयवटका नाम। ४ मेघ, बादल। ५ वृद्धदारक, विधारा। ६ कोकिल, कोयल। ७ धुस्तूर, धतूरा। ८ पीलू वृक्ष। ९ श्यामाक, साँवाँ नामक अन्न। १० दमनकवृक्ष, दौनाका क्षुप। ११ गन्धतृण, एक प्रकारका तृण। १२ श्रीकृष्णका एक नाम जो उनके शरीरके श्यामवर्ण होनेके कारण पड़ा था। १३ एक राग जो श्रीरागका पुत्र माना जाता है। यह राग उत्सवों आदिके समय गाया जाता है और हास्य रसके लिये भी उपयुक्त होता है। इसके गानेका समय सन्ध्या समय १ दंडसे ५ दंड तक है। इसे श्याम कल्याण भी कहते हैं। (क्ली०) १४ गोल मिर्च, छोटी या काली मिर्च। १५ सिन्धुज लवण, सेंधा नमक।

श्याम आचार्य—निम्बार्क सम्प्रदायके एक गुरु। ये पद्माचार्यके गुरु थे।

श्यामक (सं० क्ली०) श्याम संज्ञायां कन्। १ रोहिष, गन्धतृण या रामकपूर। (त्रि०) २ कृष्णवर्ण, काला। (पु०) श्यामं तद्वर्णं अकतीति शकन्ध्वादित्वात् अकारलोपे साधुः। ३ श्यामक, साँवाँका चावल। भागवतके अनुसार शूरके एक पुत्र और वसुदेवके भाईका नाम। (भागवत ९।२४।२९)

श्यामकण्ठ (सं० पु०) श्यामः कण्ठो यस्य। १ मयूर, मोर। २ शिव, महादेव। ३ नीलकण्ठ। ३ पक्षी विशेष, नीलकण्ठ नामक पक्षी।

श्यामकन्दा (सं० स्त्री०) श्यामः कन्दो यस्याः। अतिविषा, अतीस।

श्यामकर्ण (सं० पु०) वह घोड़ा जिसका सारा शरीर सफेद और एक कान काला होता है।

श्यामकाण्डा (सं० स्त्री०) श्यामकान्ता देखो।

श्यामकान्ता (सं० स्त्री०) श्यामः कान्तो यस्याः। गण्ड-दूर्वा, गाउर दूब।

श्यामकुण्ड—श्रीवृन्दावनधामके निकटका एक पुण्यतोया। राधाकुण्ड नामक जलाशय इसके संलग्न है। दोनों पुष्करिणीका जल परस्पर मिले रहने पर भी एक रंगका नहीं है। गोवर्द्धन शैल पार कर यात्री लोग यह कुण्ड देखने आते हैं।

श्यामचटक (सं० पु०) शैशिर या श्यामा नामक पक्षी।

श्यामचूड़ा (सं० स्त्री०) कृष्णचटक या श्यामा नामक पक्षी।

श्यामजीरा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका धान जो अगहनमें तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रखा जा सकता है। २ कृष्णजीरक, काला जीरा।

श्यामटीका (हिं० पु०) वह काला टीका जो बच्चोंको नजरसे बचानेके लिये लगाया जाता है, डिठौना।

श्यामता (सं० स्त्री०) श्यामस्य भावः तल्-टाप्। १ श्यामका भाव या धर्म। २ कृष्णता, कालापन, साँवलापन। ३ मलिनता, उदासी। ४ एक प्रकारका रोग। इसमें शरीरका रंग काला होने लगता है।

श्याम तीतर (हिं० पु०) प्रायः डेढ़ बालिश्त लम्बा एक प्रकारका पक्षी जो अकेला रहता है और पाला भी जा सकता है। यह काश्मीर, भूटान और दक्षिण हिमालयमें पाया जाता है। ऋतु भेदानुसार यह स्थान परिवर्त्तन करता रहता है। इसकी चोंच लंबी होती है और यह बहुत तेज उड़ता है। इसका शब्द धीमा पर विचित्र होता है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है, इसलिये इसका शिकार भी किया जाता है।

श्यामदास—परिभाषासंग्रह नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता।

श्यामदास—अद्वैतमङ्गलके रचयिता एक वैष्णव कवि। बाल्यकालमें इन्होंने काशीधाममें जा कर लिखना पढ़ना आरम्भ किया। विश्वेश्वरकी कृपासे इन्होंने दिग्विजयी पण्डित हो कर कविचूड़ामणिकी उपाधि पाई थी।

शिवके वरसे ये सभी देशोंके पण्डितोंको विद्यायुद्धमें परास्त कर अन्तमें श्रीपाट शान्तिपुर आये। यहां वेदपञ्चाननोपाधिक श्रीमदद्वैताचार्य प्रभुके साथ गङ्गा और तुलसीमहिमा तथा ब्रह्मवाद ले कर इनका घोर विवाद चला। अद्वैत प्रभुने इन्हें भागवताचार्यकी उपाधि दी थी।

श्यामदेश—एशियाके दक्षिण-पूर्व उपद्वीपके अन्तर्गत एक स्वाधीन राज्य। यह ब्रह्मराज्यके पूरबमें अवस्थित है। यहां एक समय हिन्दू और बौद्धकी प्रधानता थी। श्यामराज्य देखो।

श्यामनगर—बङ्गालके २४ परगना जिलेके अन्तर्गत गङ्गा तीरस्थ एक प्राचीन ग्राम। यह मूलाजोड़ नामसे प्रसिद्ध है और कलकत्तेसे १८॥० मील उत्तर पड़ता है। यहां इष्टर्न बङ्गाल रेलवेका एक स्टेशन है। उक्त स्टेशनके पूरब एक प्राचीन दुर्गका खंडहर और उसकी लंबी चौड़ी खाईकी परिधि ४ मील होगी। प्रवाद है, कि १८वीं सदीमें वर्द्धमान राजवंशके किसी राजाने मराठा डकैतों या वर्गियोंके अत्याचार और आक्रमणसे देशवासीको आश्रय देनेके लिये वह दुर्ग बनवाया था। कोई कोई कहते हैं, कि बङ्गेश्वर महाराज प्रतापादित्यने अपने राज्याधिकारको सुदृढ़ रखनेके लिये वह दुर्ग निर्माण कराया था। वह स्थान अभी कलकत्तेके ठाकुरपरिवारके अधीन है। मूलाजोड़का कालीभवन एक विख्यात स्थान है।

श्यामपण्डित—धर्ममङ्गलके रचयिता एक कवि।

श्यामपत्र (सं० पु०) श्यामानि पत्राणि यस्य। तमालवृक्ष।

श्यामपत्रा (सं० स्त्री०) जम्बुवृक्ष, जामुनका पेड़।

श्यामपर्ण (सं० पु०) शिरीषवृक्ष, सिरिसका पेड़।

श्यामपर्णी (सं० स्त्री०) चाय देखो।

श्याम पूरबी (हिं० पु०) एक प्रकारका सङ्कर राग। इसमें और सब तो शुद्ध स्वर लगते हैं, केवल मध्यम तीव्र लगता है।

श्यामफेन (सं० त्रि०) १ कृष्णवर्ण फेनविशिष्ट, जिसमें काला फेन हो। (पु०) २ कृष्णवर्ण फेन, काला फेन।

श्यामभट्ट—निम्बार्क सम्प्रदायके एक आचार्य। ये माधवभट्टके शिष्य और गोपालभट्टके गुरु थे।

श्यामभूषण (सं० क्ली०) १ मिर्च। २ कृष्णवर्ण भूषण।

श्याममञ्जरी (सं० स्त्री०) काले रंगकी एक प्रकारकी मिट्टी जिससे वैष्णव लोग माथे पर तिलक लगाते हैं। यह मिट्टी प्रायः जगन्नाथजीके आस-पासकी भूमिमें पाई जाती है।

श्याममृग (सं० पु०) काला हिरन।

श्यामराज्य—भारतवर्षके पूर्वांशस्थित पूर्व उपद्वीपके अन्तर्भुक्त एक विस्तीर्ण जनपद। प्राचीन श्यामवासियोंकी भाषामें यह देश तथा इस देशके वासी 'शायाम्' कहलाते हैं। मलयदेशवासियोंकी भाषामें यह राज्य और राज्यवासी शियाम् नामसे अभिहित हैं। यूरोपीय लोगोंने इसे शियाम् (Siam)के नामसे आधुनिक भूगोल ग्रन्थमें सन्निवेशित किया है। वर्त्तमान समय श्यामवासी अपनेको थैजाति बतलाते हैं। श्यामदेशकी भाषामें थै शब्दका अर्थ स्वाधीन है।

श्यामराज्य अक्षा० ४° से ले कर २२° उ० एवं देशा० ९८° से ले कर १०६° ३५′ पू०के मध्य विस्तृत है। इसके उत्तरांशमें स्वाधीन शानराज्य, पूर्वमें कोचिन चीन और आनाम प्रदेश, दक्षिणमें कम्बोडिया (कम्बोज), श्याम उपसागर और मलय प्रायोद्वीप एवं पश्चिममें बंगोपसागर और अङ्गरेजाधिकृत ब्रह्मराज्य है। उत्तर पश्चिममें शालविन नदी और पश्चिममें तुनगोन नदी इसे अङ्गरेजोंके अधिकारसे पृथक् करती हैं। यह लम्बाईमें १०८० और चौड़ाईमें १५०से ले कर ३६० भौगोलिक मील तक विस्तृत है।

श्यामराज्य उपरोक्त रीतिसे सीमाबद्ध होने पर भी वास्तवमें इस राज्यका मुख्यांश अक्षा० १४° से १७° उ०के मध्य स्थापित है और उसका भूपरिमाण ३६००० भौगोलिक वर्गमील है। अक्षा० १८° के उत्तरका अंश श्यामाधिकृत और स्वाधीन शानराज्य है। इसका बंगोपसागरकूल २०० मील एवं श्यामोपसागरकूल प्रायः १ हजार मील विस्तृत होने पर भी यहां जलपथके व्यापारकी उतनी बढ़ती नहीं है। किनारा प्रायः ४५।५० गज गहरा है एवं बीचके जलकी गहराई उससे ५ गुणा अधिक है। इसके अतिरिक्त पूर्व और पश्चिमके उपकूलदेश समुद्रगर्भमें अधिक दूर तक फैल जानेके कारण वहां आँधी पानीका भी विशेष उपद्रव नहीं है। पूर्व और पश्चिमके उपकूल देशोंमें कई छोटे छोटे द्वीप हैं। इन सब द्वीपोंका अधिक भाग जंगलसे भरा है

एवं थोड़ी संख्यामें लोगोंका वास है सही, किन्तु वे लोग भी कृषिकार्य्य द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं।

श्यामराज्यमें सिर्फ तीन पर्वत-श्रेणियां हैं। उनकी अधिक शाखाएं उत्तरसे दक्षिणकी ओर फैली हुई हैं। उनकी सबसे पश्चिमकी श्रेणी मलयपर्वत श्रेणीके मध्य शाखाके नामसे विख्यात है। उसका सबसे ऊंचा स्थान प्रायः ५००० फीट ऊंचा है। इस पर्वत-श्रेणीके १४° अक्षांश पर्य्यन्त उत्तरमें लौह, टिन, स्वर्ण प्रभृति पाये जाते हैं। मध्यभागमें तथा सबसे पूर्वमें उत्तरदक्षिणाभिमुखी जो दो गिरिश्रेणियां फैली हुई हैं, उनका अभी तक कोई विवरण पाया नहीं जाता, कारण अब तक कोई अनुसन्धित्सापरायण भ्रमणकारी उस वन्य प्रदेशमें पर्य्यटन करनेके लिये अग्रसर नहीं हुए वा पर्यटन करनेकी सुविधा ही नहीं पाये। १४° अक्षांशके उत्तर काओ डोनूरैक नामक पूर्व-पश्चिममें विस्तृत एक बहुत बड़ी पर्वतश्रेणी है। यह मेनाम नदीके पूर्व और मेकम नदीके पश्चिममें अवस्थित है। इसका उत्तरांश मेकं नदीकी सेमुन शाखाका अववाहिका प्रदेश है। इस स्थानसे तोक रोन्, से-कसान, से-सामलाम, से-डम और सेएट के नियम आदि छोटी छोटी धाराएं बह चली हैं। दक्षिण भागमें संग-हे, सेएडसेन और द्रुङ्ग-वरंग आदि नदियोंकी अववाहिकाएं हैं। ये सब एक साथ मिल कर कम्बोज राज्यके प्रोमूपेन नामक स्थानमें मेकं नामक नदीमें मिल गई हैं।

यहांकी नदियोंके मध्य मेनाक, मेकं, मेकलोंग, पितृयु और शान्तिवन प्रधान हैं। इन सबोंमें मेनाम श्याम-राज्यका प्रधान जलप्रवाह है। प्रवाद है, चीनराज्यके युन-नन प्रदेशसे निकल कर यह नदी क्रमसे दक्षिणकी ओर बहती हुई श्याम उपसागरमें आ कर गिरती है। पाक्-नाम-पो नामक स्थानमें मे-विं नदी मेनामके साथ मिल गई है। उसके उत्तर मेनाम नदीके गर्भमें फिटसा लोक, क्रोङ्गकयंग प्रभृति नदियां गिर कर उसके कलेवरको पुष्ट करती हैं। मे-पिं नदीकी प्रधान शाखा मेवंग है। श्यामराज्यकी प्राचीन राजधानी अयुथिया (अयोध्या) के निकट सै-हि नामक शाखा मिल गई है। इस संगमके निकट अर्थात् समुद्रतटसे २१ मील उत्तर तथा वर्त्तमान बांकक राजधानीके मध्यस्थलमें अन्यान्य शाखा प्रशाखाएं इस नदीमें गिर कर राजधानीके नदी-प्रवाह-को विस्तृत एवं अधिक जलपूर्ण करती हैं। इस कारण बड़े बड़े पण्यवाही अर्णवपोत भी पोकनाम नामक स्थानमें नदीके मुहानेमें प्रवेश करके अनायास ही प्राचीन राजधानी अयोध्या पर्य्यन्त आ जा सकते हैं। बांकक-राजधानीमें एक सुविस्तृत बन्दरगाह है एवं इस स्थानमें उसकी शाखा मेनांखाबू, पितृयु, मेकलंग और तचीन नदियां छोटी छोटी होने पर भी मेनाम नदीके पास श्यामोपसागरमें गिरती हैं। वाणिज्यकी सुविधाके लिये ये कई नदियां खाई द्वारा मिला दी गई हैं।

उपरोक्त नदियोंके द्वारा उसकी अववाहिकाभूमिके चारों पार्श्वस्थ स्थान जलसिक्त होते हैं एवं उनके द्वारा कृषिकार्यकी यथेष्ट सुविधा होती है। दुःखका विषय है, कि श्रावणमासमें वन्याके जलसे नदीका गर्भ फूल कर चारों ओर जलमय कर देता है। यह जल साधा-रणतः नदीकी जलरेखासे ४० इंच ऊंचा उठ जाता है। कभी कभी वर्षाके समय ८० इञ्च पर्य्यन्त नदीकी जल-रेखा ऊपर उठते देखा जाता है। आश्चर्यका विषय है, कि बाढ़का जल इतना ऊंचा हो कर प्रवाहित होने पर भी समुद्रतटसे ११ लीग (प्रायः ३३ मील) पर्य्यन्त स्थानमें प्रवेश नहीं कर सकता। उसके उत्तर प्रायः ६० लीग लम्बा और ३२ लीग चौड़ा स्थानमें उसका जल फैल जाता है। ज्येष्ठमाससे ले कर कार्त्तिक मासके मध्यकाल पर्य्यन्त जो बाढ़का जल प्लावित करता है, उससे भूमि-के ऊपर एक प्रकारका पांक जम जाता है। वह पांक भूमिको उपजाऊ बनाता है; किन्तु वह जल साधार-णतः श्यामोपसागरकी तरह खरा रहता है। भूतत्त्वकी आलोचनाके द्वारा जाना गया है, कि मेनाम नदीकी उपत्यकाभूमि थोड़े दिन हुए, समुद्रगर्भसे उठ गई है। वर्त्तमान बांकक राजधानीका भूगर्भ खोदनेसे सामुद्री शंख, शम्बुक प्रभृति पाये जाते हैं।

शान्तिवन वा चांटाबुन नामकी नदी क्षुद्र कलेवरकी होने पर भी १२ लीग विस्तृत भूमिको जलप्रदान कर शस्य-शालिनी बनाती है। श्यामोपसागरके पूर्वोपकूलसे १०२° पूर्व देशा०के निकट समुद्रमें मेकं नामक सुवृहत्

नदी है। यह एशियाकी प्रधान नदियोंमें एक प्रधान नदी गिनी जाती है। यह चीन-साम्राज्यके दक्षिणांशसे निकल कर घोर गम्भीर ढालसे दक्षिणकी ओर वहती हुई स्वाधीन शान राज्यके वीच हो कर श्यामाधिकृत शानराज्यमें आ गई है। पीछे वहांसे क्रमसे दक्षिणपूर्वाभिमुखी हो कर कई उपत्यका और अधित्यकाओंको पार करती हुई अक्षा० १३ ३०´ उ० एवं देशा० १०६ पू०के मध्य श्यामराज्यकी सीमा पार करती है तथा कम्बोज राज्यमें पहुंच जाती है। इस स्थानसे नदीका गर्भ विस्तृत और प्रवाह प्रखर दृष्टिगोचर होता है। इसलिये इसे कम्बोज राज्यकी महानदी कहते हैं। इस नदीकी समूची धारा प्रायः ५०० लीग लम्बी होगी। श्यामराज्यके जिस अंशमें मेकं नदी प्रवाहित होती है, उसी अंशमें लाव (Laos) तथा कम्बोज जाति (Kambojans)का वास है।

ऊपर कही गई नदी तथा उनकी शाखाप्रणालीके अतिरिक्त दक्षिण-पूर्वांशमें तथा कम्बोजके उत्तर-पश्चिम कोनेमें तोनले-साप नामक एक सुवृहत् हृद है, वह १२ से ले कर १३ उत्तर अक्षांशमें अवस्थित है। इसके दक्षिण-पूर्वसे एक शाखा नदी प्नोमपेंग नगर पर्यन्त आ कर मेकं नदीमें मिल गई है। संग-हे, कोम्प प्राक, पुरषत्, सेंटङ्गाग, सेएटसेन और ष्टुङ्गवरं नामक छोटी छोटी नदियाँ पार्वत्यभूमिकी जलराशि ले कर इस हृदगर्भमें समा गई है। इस हृदकी परिधि प्रायः २० लीग है। इसमें बहुत-सी मछलियां पाई जाती हैं।

श्यामराज्यके समान अक्षांशवर्त्ती एशियाके अन्यान्य देशोंमें जिस प्रकार ऋतुकी प्रबलता देखी जाती है, यहां भी ठीक उसी प्रकार ऋतुका प्रभाव छा जाता है। साधारतः दक्षिण-श्यामराज्यमें वर्षा और ग्रीष्म ऋतुका प्रादुर्भाव ही अधिक होता है। ज्यैष्ठ माससे आश्विन मासके मध्यकाल तक यहां अत्यन्त वर्षा होती है एवं दूसरे समय बहुत ही कड़ी गर्मी पड़ती है। यहां दक्षिण-पश्चिम तथा ग्रीष्मके समय उत्तर-पूर्व मौसिमी वायु वहती है। बांकक राजधानीमें दिसम्बर और जनवरी मासमें जलवायुका ताप ५०´ से ५३´ फारेनहीट तक रहता है एवं मार्च और अप्रील महीनेमें प्रचंड सूर्यकी गर्मीसे यहांकी आवहवा इस तरह उष्णमात्र धारण करती है, कि वायुमान यन्त्रकी ताप रेखा ८६´ से ९५´ पर्य्यन्त ऊपर उठ जाती है। उत्तरमें पलिमय विस्तृत प्रान्तरकी जलवायु समुद्रतटकी तरह शीतल रहती है, मानो वासन्ती वायु वहां मृदु मन्द हिल्लोलसे प्रवाहित होती है। घने जङ्गलोंसे भरी हुई उपत्यकाओंकी आवहवा बहुत ही विषैली है। यहां मलेरिया ज्वर अधिक होता है। यह ज्वर प्राणनाशक है।

यहां खनिज पदार्थोंके मध्य लौह, टिन, स्वर्ण, दस्ता और रसांजन पाये जाते हैं। स्थानवासी इन सब द्रव्योंका संग्रह करके अपनी आवश्यकीय गृहसम्बन्धी चीजें तैयार करते हैं। इसके अतिरिक्त पद्मराग और नीला नामक मणि इस राज्यको प्रधान आदरकी वस्तु है। शान्तिवन (चाण्टावुन वा चाण्टावुड़ी) पर्वतकी उपत्यकाभूमिमें ये सब मूल्यवान् पत्थर पाये जाते हैं। पश्चिम देशभागमें चूना पत्थरकी विस्तृत गिरिश्रेणी है। समुद्रके किनारे तथा मेकलंग नदीके तट पर सूर्यके उत्तापसे सूख कर रन्धनोपयोगी नमक तैयार हो जाता है।

सब तरहकी खेतीके मध्य यहां ईखकी खेती ही अधिक होती है। एशियाके और किसी राज्यमें यहांसे अधिक ईखकी खेती नहीं होती। यहांसे ईखके रससे तैयार का हुई चीनी यूरोपके कई स्थानोंमें भेजी जाती है। ऊंची भूमिमें रूईकी खेती अधिक परिमाणमें होती है। किन्तु जो सब स्थान बाढ़के जलमें डूब जाता है, वहां रूई नहीं होती। उस रूईसे देशी कपासवस्त्र तैयार किये जाते हैं। चन्दावाड़ी प्रदेशमें काली मिर्चकी खेती होती है, वह देशी भाषामें प्रिक थैके नामसे विख्यात है। यहां तमाकूकी खेती भी होती है। सब लोग इस तमाकूका व्यवहार करते हैं। वनभागमें मनुष्यके उपयोगी नाना प्रकारके काष्ठ तथा वनज द्रव्य पाये जाते हैं। इनमें शाल, श्वेत और रक्तचन्दन, वकम काष्ठ, दारुचीनी, गोंद, गम्बोज प्रभृति प्रधान हैं।

चौपाये जानवरोंके मध्य हाथी, वृष, महिष, वाघ तथा दूसरे दूसरे छोटे छोटे जंगली जानवर निविड़ जङ्गल प्रदेशमें विचरण करते देखे जाते हैं। चांटावूड़ीके लोग बुद्धिमानीसे हाथी पकड़ कर वेचते हैं। लाव और कम्बोज

प्रदेशभागमें भी अनेक हाथी पाये जाते हैं। यहांके घोड़े छोटे होते हैं और टट्टू के (Pony) नामसे प्रसिद्ध हैं। इनकी ऊँचाई अश्वमानके १३ हाथसे अधिक नहीं होती। यहां मोर, गृद्ध प्रभृति बड़े बड़े एवं और भी छोटे छोटे सुन्दर पक्षी देखे जाते हैं। फिलिपाइन और मलय-प्रायोद्वीप तथा यवद्वीपमें भी इस प्रकारके पक्षी विद्यमान हैं।

श्यामवासी आकृति प्रकृतिमें ब्रह्म वा कम्बोज-वासियोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। वास्तवमें इस प्रकारकी मिश्रित गठनवाली जातियां बंगालके पूर्वांशसे ले कर चीन साम्राज्य पर्य्यन्त विस्तृत हैं। चीन-वासियोंकी अपेक्षा ये लोग आकृतिमें छोटे एवं मलयवासियोंकी अपेक्षा कुछ बड़े होते हैं। श्यामराज्यमें प्रधानतः चार मूल जातियां तथा तीन वन्य जातियां निम्नोक्त नामसे विभक्त हैं, यथा—आदि श्याम वा छोटी थै, लाव वा बड़ी थै, कम्बोजीय तथा मालय ये चार प्रधान और सभ्य जातियाँ हैं एवं करेंग, चोंग तथा लावागण वन्य वर्व्वर जातियाँ कहलाते हैं। इनकी भाषाओंमें बहुत अन्तर दिखाई देता है। आचार व्यवहार और सामाजिक नियमोंमें भी यथेष्ट पृथकता है।

यहांके राजा मूल श्याम जातिके हैं। यह जाति प्रायः अक्षा० ७° से ले कर २०° उ० एवं वंगोपसागरकूलसे ले कर १०२° पू० देशा० पर्य्यन्त विस्तृत स्थानमें फैली हुई है। मेनाम् नदी प्रवाहित उर्व्वर भूखण्डमें इन लोगोंका ही आधिपत्य है। इस श्याम जातिके उत्तर और पूर्वकी ओर मेकं नदीके कछार तक फैले हुए स्थानमें लाव जातिका वास है। यह विस्तृत भूभाग टुकड़े टुकड़े हो कर कई सामन्त राज्यमें विभक्त है। उन प्रदेशोंके सामन्तराजे श्यामराजको कर देते हैं। श्यामोपसागरके पूर्वकूलवर्त्ती श्यामराज्यमें कम्बोज लोगोंका वास है।

शान्तिवन वा चांटावनके पूर्वदिग्वर्त्ती पार्व्वत्यप्रदेशमें तथा श्यामोपसागरके पूर्वकूलमें चोंग नामक वन्य जाति रहती है। इनके उत्तर दिशामें कोरङ्ग लोग एवं मेनाम और मर्त्तावान नदीके मध्यवर्त्ती पार्वत्य प्रदेशके लावा लोग वास करते हैं। इन लोगोंकी प्रकृति जंगली और भयङ्कर है। भारतके समतलक्षेत्रवासी सुसभ्य और सुशिक्षित हिन्दू-सम्प्रदायके साथ कोल, भील, शवर प्रभृति असभ्य जातियोंका जैसा सम्बन्ध है, श्याम, लाव वा कम्बोज जातिके साथ उपरोक्त तीनों जातियोंका ठीक वैसा ही सम्बन्ध है। इन सब वन्य जातियोंकी एक स्वतन्त्र भाषा है। कई प्रकारकी शिल्पविद्यामें ये लोग दक्ष हैं, किन्तु श्यामराज्यको कर देते हुए भी उतना राजभक्त नहीं हैं। इनका धार्मिक सम्प्रदाय बहुत कुछ अनार्य्य संस्कारके अनुरूप है।

श्यामराज्यके आदिनिवासीके अतिरिक्त यहां दूसरे दूसरे देशवासी अन्यान्य जातियां भी रहती हैं। उनमें उपकूलदेशवासी वाणिज्यकुशल चीन जाति ही प्रधान है। इस स्थानमें बहुतसे कोचीन वा अनाम राज्यवासी तथा पेगूवासी ब्रह्मजातिका भी वास है। मलयवासियोंकी संख्या भी यथेष्ट है। कंबोज लोगोंकी संख्या ५ लाखसे कम नहीं होगी।

मूल श्याम जातिकी वासभूमि ४१ जिलेमें विभक्त है। प्रत्येक जिलेके सदरके नामसे जिलेका नामकरण हुआ है। इसके अन्तर्भुक्त मलय सामन्त राज्यखण्ड लङ्कनु, कालातेन, पटनी और कोयेडाके नामसे प्रसिद्ध है। लाव जातिके अधिकृत राज्योंकी संख्या सात एवं कंबोजके राज्योंकी संख्या पांच है। इन जिलों वा सामन्तराज्योंके मध्य जिन स्थानोंमें श्याम भाषा प्रचलित है, उन स्थानोंका शासनभार श्यामराजेश्वरके ऊपर है। अन्यत्र स्थानोंके शासनकर्त्ता वा सामन्तराज ही राजकार्य्य संभालते हैं।

श्यामराज्यके राजेश्वर यहांके किनारेवाले स्थान पर अधिकार जमाये हुए हैं। युद्धविग्रह, परराष्ट्र, उत्तरप्रदेश राज्य परिचालन, कृषिकार्य्य तथा न्यायविचार स्थापनके लिये उन्हें सत्परामर्श देनेके लिये पांच प्रधानमन्त्री नियुक्त हैं। इनके अलावे और भी ३० सुविज्ञ तथा राजनीतिज्ञ व्यक्ति उस मंत्रिसभाके सभ्य हैं। वे लोग एकमत हो कर राजाको हर एक कामकी उन्नतिके लिये परामर्श देते हैं। राजाके नीचे राज्यशासन सम्बन्धमें वंग न (द्वितीय राजा) नामसे एक और दर्जा है। वह बहुत कुछ युवराजकी तरह है। वे अपने

कार्य्यके सिवाय दूसरे किसी कार्य्यमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते।

उक्त ४१ जिलोंमें प्रत्येक जिलेका शासनभार एक एक व्यक्ति पर नियुक्त है। वे लोग केवल दीवानी-विचार कर सकते हैं। उन लोगोंके विचारके विरुद्ध राजधानीमें राजदरबारके अन्दर पुनः विचार किया जा सकता है। अपराध अर्थात् नरहत्या तथा डकैती प्रभृति जिसमें प्राणदण्ड होनेकी आशङ्का रहती है, इस प्रकारके व्यापारका विचार राजधानीस्थ 'विशेष विभाग'के विचारालयमें किया जाता है। ग्रामके ग्रामणी वा मंडलगण कामनान्, आम्फोन वा नाखोन् उपाधिसे परिचित हैं। वे ग्रामवासीके द्वारा ही निर्वाचित किये जाते हैं। यदि कोई ग्रामणी ग्रामवासियोंको सताता है, तो वह पदच्युत कर दिया जाता है। अनेक ग्रामणी राजासे वेतन पाते हैं। लाव प्रदेशके श्याम जातीय माण्डारिन् नामक कर्मचारी लोग एवं देशी सामन्त राजे प्रजा पर विशेष अत्याचार नहीं कर सकते। उनके प्रजापीड़क होने पर राजाकी आज्ञासे उनकी शक्ति नष्ट कर दी जाती है। उपरोक्त निम्न राज-कर्मचारियोंके अलावे श्यामराज्यमें चाव, उपरत, रचवंश और रन्बुत् नामक और भी चार प्रधान पद हैं; ये पद वंशगत हैं। चाव शब्द चीन भाषासे लिया गया है। उसका अर्थ है राज्यका प्रधान कर्मचारी, राजा वा अधीश्वर। शेषोक्त तीन पद बौद्धोंके प्रभावकालमें संस्कृत शब्दसे विकृत रूपमें लिये गये थे। राज्याधिकार सूत्रमें अथवा उत्तराधिकारके विषयमें जब राजवंशधरोंके मध्य किसी प्रकारका विग्रह पैदा होता है, उस समय सिर्फ राजधानीमें ही उन लोगोंके झगड़े-की मीमांसा की जाती है।

श्यामदेशके राजनियम बहुत प्राचीनकालमें बनाये गये थे। उसके बादसे फिर उन नियमोंका सुधार नहीं किया गया। १७५२ ई०में अयुथिया राजधानी पर घेरा डालनेके समय प्राचीन स्मृतिका भी अधिकांश नष्ट हो गया। इसमें कुछ सन्देह नहीं, कि ये राजनियम बौद्ध और हिन्दू स्मृतियोंसे तैयार किये गये हैं। यहांके धर्म, नीति तथा शास्त्रविहित कृत्यनिचय सब कुछ भारतीय हिन्दू शास्त्रके अनुकूल हैं। इनके अतिरिक्त श्यामवासियों-के विवाह, शिक्षा, पैतृक सम्पत्तिके अधिकार, दासत्व, ऋणदान वा ग्रहण, पापकी परीक्षा तथा अपराधियोंके दंडविधान आदि विषयोंके कानून अलग अलग हैं। विभिन्न प्रकारके पाप वा चोरीके अपराधकी परीक्षाके लिये यहां भुने हुए चावल चबाने वा जलमें डूब देनेकी विधि है। श्यामदेशीय धर्माधिकरणमें शराबी, व्यसना-सक्त, कुमारो, नरघातक, भिक्षुक, मूर्ख और अनृतकर्मा व्यक्तिकी गवाही नहीं ली जाती। मृत्युके समय उत्तरा-धिकारीको इच्छापत्र द्वारा सम्पत्ति दान न करनेसे वह सम्पत्ति राजाकी हो जाती है एवं मठाध्यक्ष वा धर्म-राजकोंकी सम्पत्ति मठसम्पत्तिके अन्तर्भुक्त हो जाती है। यदि कोई पुत्र, पौत्र अथवा श्राद्धाधिकारी व्यक्ति मृत व्यक्तिकी अन्त्येष्टिक्रिया नहीं करे, तो वह किसी प्रकार मृत व्यक्तिकी सम्पत्तिका अधिकारी नहीं हो सकता। इसके अलावे पैतृक सम्पत्तिके अधिकारके विषयमें हिन्दू-शास्त्रके मतानुसार और भी कई नियम देखे जाते हैं। यदि कोई ऋणी क्रीतदास ऋणदाताके सेवाकालमें कोई अपराध करने पर वर्त्तमान स्वामीके द्वारा दंडित होता है, तो उससे उसके सम्पूर्ण अथवा आंशिक ऋणका परि-शोध हो जाता है।

यहां क्रीतदासकी प्रथा प्रबल है; किन्तु साधारणतः अपना ऋण शोध करनेके लिये ही ऋणी अपनी स्त्री, पुत्र, भतीजा, भांजा तथा भांजीको बन्धक रूपमें बेच सकता है। इस समय विक्रीत व्यक्तिकी स्वाधीनता नष्ट हो जाती है। जितने दिनों तक दिये हुए रुपये शोध नहीं हो जाते हैं, उतने दिनों तक खरीदार उससे इच्छा-नुसार कार्य्य लेते हैं। खरीदार जब जाते हैं, तब विक्रीत व्यक्तियोंको पुनः स्वतन्त्रता मिल जाती है। श्याम-राज्यके वर्त्तमान सुशिक्षित राजाके इस घृणित व्यवहारके उठानेके लिये निषेधाज्ञा प्रचार करने पर भी लाव प्रदेश और पूर्वदिक् स्थित सामन्त राजाओंके राज्यमें इस समय भी यह निन्दित प्रथा बिलकुल बन्द नहीं हुई। वहां अब भी प्राणदंडवाले अपराधियोंको बेचनेके लिये हाट ले जाते हैं। कम्बोज वा श्यामराज्यके वासिन्दे उन्हें खरीद लेते हैं।

ऊपर कहा गया है, कि श्यामराज्य ४१ जिले वा प्रादेशिक विभागमें विभक्त है। प्रत्येक विभागमें एक एक नगर चुन लिया गया है। उन नगरोंमें २४ वाणिज्यप्रधान हैं एवं उनके मध्य किसी किसीमें ४ हजारसे ले कर ८० हजार तक लोगोंका वास है। श्यामराज्यकी राजधानी बांकक नगरी मेनाम् नदीके दोनों किनारे पर अक्षा० १३°३८′ उ० एवं देशा० १००° ३४′ पू० अवस्थित है। यहां प्रायः चार लाखसे अधिक लोगोंका वास है। उनमें अधिक लोग वाणिज्य व्यापार द्वारा ही अपनी जीविका चलाते हैं। चीनके औपनिवेशिक लोगोंकी संख्या प्रायः दो लाखकी होगी। इन लोगोंके उद्योगसे स्थानीय वाणिज्यकी दिनों दिन उन्नति हो रही है। १७६६ ई०में ब्रह्मसेना द्वारा अयुथिया नगरके विध्वस्त किये जाने पर श्यामराजने यह राजधानी स्थापना की। इस नगरमें राजप्रासाद, दुर्ग तथा अनेक मन्दिर स्थापित हैं।

युथिया वा अयुथिया श्यामराज्यकी प्राचीन राजधानी है। श्रीदशरथजीके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीकी सुसमृद्ध अयोध्यापुरीके नामानुसार ही इस नगरका नाम अयोध्या पड़ा था। पीछे अपभ्रंश अयुध्या वा अयुदिया शब्दसे अयुथिया हो गया है। यह नगर बांकक राजधानीसे ५४ मील उत्तर मेनाम नदीके किनारे अवस्थित है। समुद्रोपकूलसे इसका व्यवधान ७८ मील है। इस नगरका चतुष्पार्श्वस्थित स्थान मेनाम नदीकी बाढ़के जलसे प्लावित होता है। उसके रोकनेके लिये नगरके चारों ओर खाई खोदी गई है। इस समय इस नगरका विस्तृत ध्वंसावशेष वर्त्तमान है। असंख्य मन्दिर अब भी अपने ऊंचे मस्तकसे नगरकी अतीत कीर्त्तिका गौरव बढ़ा रहे हैं, किन्तु मरम्मत आदिके अभावके कारण अब वे अधिक दिनों तक नहीं ठहर सकते। वे क्रमसे नष्ट भ्रष्ट होते जा रहे हैं। चांगखै नगर लाव प्रदेशके सामन्तराज्यकी राजधानी है। पुर्त्तगीज ग्रन्थमें इस स्थानका नाम 'जियेङ्गमाई' लिखा है। वह मेनाम नदीके तीरसे थोड़ी दूर पर एक पर्वतके पादमूलमें २०° ४६′ उत्तर अक्षांशमें अवस्थित है। नगरके सामने विशाल समतल क्षेत्र है, उसमें अधिक उपज होनेके कारण नगरवासीकी आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी है।

लौङ्ग फ्रबंग श्यामराज्यके लाव अधिकृत प्रदेशका एक दूसरा नगर है। यह १७° ५०′ उत्तर अक्षांशमें मेक नदीके किनारे अवस्थित है। यह नगर धनजनपूर्ण है एवं यहां व्यापारकी बड़ी उन्नति है।

श्यामराज्यके प्रकृत अधिवासी थैगण यहांकी अन्यान्य जातियोंकी अपेक्षा अधिक सभ्य हैं। उन लोगोंने बहुत कुछ हिन्दू और चीन सभ्यता तथा उनके आचार-व्यवहारका अनुकरण कर लिया है। ये स्वभावतः नम्र और दयालु तथा निरीह और निर्विरोधी हैं। इस कारण ऐसी बहुजनपूर्ण राजधानीमें भी किसी प्रकारका वाद विसंवाद वा मार-पीट तथा खून खराबीका चिह्न तक दृष्टिगोचर नहीं होता। ये गरीबोंको हृदय खोल कर दान देते हैं; किन्तु इनका स्वभाव ऐसा है, कि किसी अपरिचित व्यक्तिके पास किसी प्रकारकी नई चीज देख कर ये बिना उसकी ओर नजर डाले नहीं रह सकते, अर्थात् ये लोग उस अपरिचित व्यक्तिकी नई चीज मांगनेमें भी संकुचित न होते। पाश्चात्य सभ्यतामें दूसरेकी चीज मांगना असभ्यता समझे जाने पर भी नित्यामोदी, भीतचित्त तथा सरल प्रकृति श्यामवासियोंके पक्षमें वह सरलताकी पराकाष्ठा ही समझी जाती है। ये लोग किसीके साथ झगड़ा लड़ाई नहीं करते। जब कोई किसी प्रकारका क्रोध करता है वा किसी व्यक्तिका हाथ पकड़ कर खींचातानी करता है, तब उससे सब लोग विरक्त हो जाते हैं। इस तरहका अस्थिर स्वभाव लोग पसन्द नहीं करते। ये लोग नितान्त आलसीकी तरह क्रीड़ा और नाच-गानमें समय बिताना बहुत पसन्द करते हैं। जब कोई व्यक्ति किसीकी स्त्री वा कन्याके साथ अनुचित प्रेम करता है, तब उसके नामसे राजदरबारमें अभियोग लाया जाता है। इस प्रकारके अपराधीको क्रीतदासरूपमें बेच कर देशनिकालका दंड दिया जाता है।

ये लोग बड़े आदमियोंका पिताकी तरह सम्मान करते हैं एवं राजाको देवता तुल्य समझते हैं। यदि कोई व्यक्ति भूल कर किसी बड़े आदमीका सम्मान

नहीं करता है, तो वह इज्जतदार आदमी उसी क्षण अपने हाथके डंडेसे उस निम्न वयस्क व्यक्तिके ऊपर आघात कर उसे अचैतन्य कर देता है। इस प्रकारके दंडाघातसे कोई किसी पर विरक्त नहीं होता। विदेशी लोग विना किसी प्रकारकी चिन्ता किये अपना धन प्राण ले कर इन लोगोंके साथ वास करते हैं। श्यामवासी किसी समय विदेशियोंका अनादर नहीं करता और न कभी उनका विरोध ही करता है। ये लोग परिश्रमी और शिल्पकार्यनिपुण हैं। चीनवासियोंके साथ रहने पर भी ये कभी उन लोगोंसे ईर्षा नहीं करते।

इनके मध्य जातिभेदकी प्रथा नहीं है। स्वाधीन तथा क्रीतदास व्यक्तियोंके अन्दर थोड़ा प्रभेद दृष्टिगोचर होता है। बड़े बड़े राजकर्मचारी भी कुछ विशेष सम्मानके पात्र हैं, सुतरां सामाजिक हिसावसे उन लोगोंका भी न्यायसंगत विभिन्न आसन है। धर्माचरणके सम्बन्धमें उन लोगोंकी किसी प्रकारकी विभिन्नता नहीं देखी जाती। १५ से ले कर १७ वर्षकी अवस्थामें लड़कियोंकी शादी होती है। अनेक समय इस तरहकी युवती लड़कियां युवकोंके प्रलोभनसे तथा प्रणयका मधुर आनन्द प्राप्त करनेकी आशासे पितृगृहसे निकल भागते हैं। पीछे कानूनके अनुसार वे दोनों (युवक युवती) आपसमें विवाह कर लेते हैं। ये लोग आलस्य प्रिय हैं, इस कारण इन लोगोंमें परिश्रमका मूल्य अधिक है। जो लोग परिश्रमके अभावसे खेतीवारी कर अपने वालबच्चोंकी परवरिश नहीं कर सकते, वे अपने लड़के लड़कियोंको वेच निश्चिन्त और धनी हो जाते हैं। इस कारण आज भी श्यामराज्यमें दासव्यवसाय अधिक प्रचलित है।

मन्दिर और अट्टालिकाओंके लिये शिल्पपूर्ण ईंटें, हंडी और कलसी एवं रेशमी तथा कपास वस्त्रके अतिरिक्त अन्यान्य कार्योंमें ये लोग अधिक शिल्पनिपुण नहीं हैं। चीनवासी ही यहांके प्रधान शिल्पजीवी हैं।

इतिहास।

श्यामवासियोंने अपने इतिहासको दो भागोंमें विभक्त कर रखा है। प्रथम पौराणिक आख्यायिकावली और द्वितीय वर्त्तमान युगका इतिवृत्तमूलक घटनावली। पौराणिक उपाख्यानके अनुसार मालूम होता है, कि ईसाके जन्मसे प्रायः ५४३ वर्ष पहले दो ब्राह्मणकुमार भ्रमण करनेके अभिप्रायसे भारतसे श्यामराज्यमें आ कर वस गये। उस समय भगवान् शाक्यबुद्ध भारतवर्षमें बौद्धधर्मका प्रचार कर संसारको ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित कर रहे थे। इसके वादका कई वर्षोंका इतिहास इतना सन्देहजनक है, कि उससे किसी प्रकारकी सत्य वातका पता लगाना विलकुल असम्भव है।

उसके वाद श्यामराज्यमें पौराणिक आख्यानमें हम ६५० पविलाब्द (अर्थात् ४०७ ई०)में राजा अरुणारथका उल्लेख पाते हैं। उस समय श्यामराज्य कम्बोजके अधीन था। तब भी वह थैके नामसे विख्यात नहीं हुआ था, श्याम शब्द श्याम भाषाके अपभ्रंशमें श्यम्* नामसे विख्यात था। राजा अरुणरथने अपनी वीरतासे श्यामराज्यको कम्बोजवासीके हाथसे मुक्त किया। किंवदन्ती है, कि राजा अरुणरथ श्यामीय वर्णमालाके जन्मदाता थे। उन्होंने ही धर्मकर्मके अनुष्ठानमें कम्बोजवासियोंके धर्मसे श्यामवासियोंका धर्म पृथक् किया था। कई ग्रन्थोंसे पता चलता है, कि ५७५ ई०में लाओंग नगर स्थापित हुआ था। उसके वादकी शताब्दीमें फरा-रोंग नामक एक राजाने कम्बोजोंकी अधीनतासे श्यामवासियोंको मुक्त कर अपनी विजयकीर्त्ति स्वरूप मेनाम नदीके किनारे संगकलोक (शंखलोक?) नामक नगर वसाया। इनके शासनकालमें ही श्यामराज्यमें बौद्धधर्मका प्रवेश हुआ, किन्तु इसके वहुत पहलेसे श्यामराज्यके उत्तर और दक्षिण भागमें भारतवासियोंका संस्रव था। उसके वहुतसे निदर्शन इस समय भी श्यामराज्यमें पाये जाते हैं। भारतीय वणिक् सम्प्रदाय जो श्यामोपसागरसे होते हुए इस देशमें

* किसी किसीके मतसे महाभारतके सभापर्वमें दिग्विजय पर्वाध्यायमें जो 'शर्मक' और 'वर्मक' नामक दो प्राच्य जनपद हैं, वे ही इस समय श्याम और ब्रह्मके नामसे परिचित हैं।

व्यापार करने जाते थे, इसका प्रमाण तो यही है। श्याम-राज्यके उत्तरीय भागमें सिर्फ ब्राह्मणधर्मका प्रभाव था।

६३८ ई०में श्यामराज्यमें एक अब्द प्रचलित हुआ। राजा फयक्रेक ने इस अब्दकी स्थापना की। अनुमान किया जाता है, कि श्यामराज्यमें बौद्ध धर्मके अच्छी तरह फैल जाने पर उक्त राजाने उस घटनाके स्मरणार्थ मानयुगका नवसंवत् स्थापन किया था।

वास्तवमें श्यामराज्यके मध्य बौद्धधर्मका प्रवेश जिस समय हुआ हो, किन्तु श्यामवासी उसके पहले ही सभ्यसंसारमें योग्य आसन पा चुके थे, इसमें कुछ सन्देह नहीं। कारण यदि वे अपने ज्ञानबलसे पहिलेसे ही मन पवित्र नहीं किये होते अथवा देवोपासना-पद्धति द्वारा आध्यात्मिक मुक्तिके मार्गानुयायी नहीं हुए होते, तो कदापि उनके हृदयमें बुद्धदेवका विशुद्ध धर्म स्थान नहीं पाता। उन लोगोंने बौद्धधर्म ग्रहण करनेके बाद मन्दिर और मठादिकी प्रतिष्ठा कर श्रमण लोगोंकी तरह संसारधर्मसे विरक्त हो भिक्षा करके प्राणरक्षा करनेकी शिक्षा प्राप्त की थी। श्यामवासी उसी समयसे बौद्धगण-प्रवर्त्तित प्रतीत्यसमुत्पाद तथा देहान्तर प्राप्ति स्वीकार कर भिक्षु-धर्मको ही संसारका सार और अभीष्ट मानते हैं।

७वीं शताब्दीमें लाव प्रदेशके अन्यान्य स्थानोंमें और भी कई नगर स्थापित हुए। इसमें सन्देह नहीं, कि वे नगर श्यामराज्यकी उस समयकी समृद्धि तथा उस समयके राजवंशके सौभाग्यका पूरा परिचय देते हैं। उस समय इस राजवंशने अपने बाहुबलसे कई स्थानों पर अधिकार कर अपने राज्यकी सीमा बढ़ाई थी। इसके बाद कई शताब्दीके मध्य वे लावा और अन्यान्य पहाड़ी जातियोंको हरा कर धीरे धीरे दक्षिणकी ओर अग्रसर हुए एवं उन्होंने क्रमसे कम्बोजराजकी बहुत दिनोंकी अधिकृत राज्यसीमा पर अधिकार कर लिया। मेनाम नदीके दोनों तटस्थित परस्परके निकटवर्त्ती फित्सलोक (विस्सुन लोक), सुक्कोथै (सुक्-कोटई), संगकलोक, माखोन सवन, काम्फेंग-पेट प्रभृतिके प्रतिष्ठित होनेसे उक्त राजवंशका दक्षिणाभियान प्रतीयमान हुआ। वे उस समय जिस जिस स्थान पर विजय प्राप्त करते हुए आगे बढ़े थे, उन स्थानोंमें एक एक नगरकी स्थापना कर अपनी विजयकीर्त्तिकी घोषणा कर गये हैं।

सुक्-कोटई नगरसे प्राप्त १२८४ ई०की उत्कीर्ण एक शिलालिपिसे जाना जाता है, कि राजा राम कामहेंगने मेकं नदी तीरवर्त्ती प्रदेशसे ले कर पश्चिममें पेचाबूरी नदी तकके भूभाग पर एवं वहांसे ले कर श्यामोपसागर-तटस्थित लिगोर प्रदेश पर्यन्त अपने राज्यकी सीमा परिवर्द्धित की थी। मलयदेशके राज-इतिहाससे मालूम होता है, कि मेनांकाबु नदीके तटसे ११६० ई०के मध्य किसी समय मलयप्रायोद्वीपमें मलयवासियोंका उपनिवेश स्थापित होनेसे पहले श्यामवासियोंने मलयप्रायोद्वीपके मध्यदेशमें अपनी विजयपताका फहराई थी। उस समय श्यामवासियोंके पूर्वपुरुष मेनाम नदीके पश्चिमांशमें वास करते थे। १३५१ ई०में राजा फय-उथंगने (प्रकृत नाम फ्र-राम थिवोड़ी, सम्भवतः ये शान जातीय थे) कम्फेंगपेटसे हटा कर चालियङ्ग नगरमें अपनी राजधानी स्थापित की थी। पूर्वोक्त राजधानीमें उनके ऊपरके पांच पुरुषोंने राज्य किया था। राजा फ्र-रामने शेषोक्त राजधानीमें उलटी रोगसे निपीड़ित हो कर अयुधिया नगरमें अपनी राजधानी बनाई। इस राजाका राज्याधिकार मौलमेन, तावय, तानासेरिम, यावा और मलका द्वीप तक फैला हुआ था। इन सब स्थानोंके अधिवासी उनके अतुल प्रतापसे कांप रहे थे। मलका द्वीपमें पश्चिम श्यामके सोरनौ नामक स्थानवासी व्यापारियोंका उल्लेख पाया जाता है। कोई कोई अनुमान करते हैं, कि सोर-नौ शब्द सहर इ-नौ शब्दका अपभ्रंश है एवं मुसलमानोंने इस नव प्रतिष्ठित अयोध्या नगरीका ही सहर-ई-नौ शब्दसे उल्लेख किया होगा। किन्तु हम लोग उसे 'सुवर्णनगर' शब्दका अपभ्रंश अनुमान करते हैं। राजा फ्र-रामके शासनकालमें अयोध्या नगरी खूब ही उन्नति पर थी, इसकी गवाही वहांकी ध्वस्त स्तूपराशि तथा टूटे फूटे मन्दिर आज भी दे रहे हैं।

यावाद्वीपके इतिहासमें भी श्यामवासियोंकी उस समयकी उन्नतिका परिचय है। उक्त राज-इतिहासमें लिखा है, कि १३४० ई०में कम्बोजके राजाने श्यामराज्य

पर आक्रमण किया। उस समय श्यामराज भी समर-साजसे सुसज्जित हो कर कम्बोजराजको दमन करनेके लिये अपनी विजयी सेनाके साथ कम्बोजके सीमान्त पर जा पहुंचे। युद्धमें कम्बोजराजकी सेना पराजित हुई और श्यामराजने अंगकोर नगर पर अधिकार जमा लिया। उस समय कम्बोजराजकी प्रायः ६० हजार सेना श्यामराजके हाथसे बन्दी हुई थी।

पुर्त्तगोज नौसेनापति आबूकेर (आलबुकार्क) जिस समय मलका द्वीपमें गये थे, उससे प्रायः १६१ वर्ष पहले राजा फय उथंग द्वारा अयोध्या नगर प्रतिष्ठित हो कर सौधमालामें सुशोभित हुआ। आबुकेरने यूरोपवासियोंको श्यामराज्यकी समृद्धिका परिचय दिया।

राजा फय उथंगके बाद प्रायः ४७५ वर्षके मध्य श्यामराज्यके सिंहासन पर आरूढ़ हो कर २६ राजाओंने राज्य किया। उनमें किसी किसीने तो सिर्फ कई महीने वा कई दिन तक ही राजशासन चलाया था। कारण कई राजे अपने भाई, भांजे तथा मंत्रियोंके द्वारा मारे गये थे। इस तरह श्यामराज्यमें क्रमसे चार विभिन्न राजवंश स्थापित हो गये।

उपरोक्त साढ़े चार शताब्दीके मध्य १५वीं वा १६वीं शताब्दीमें श्यामराज्य पेगु, ब्रह्मा तथा कम्बोज-सेना द्वारा आक्रान्त हुआ। उस समय किसी किसी युद्धमें श्यामकी राजधानी अयुथिया नगर लूटा गया था एवं श्यामवासी सर्वस्वान्त और बन्दी हुए थे। किन्तु १५५५ ई०में श्यामराज्य शत्रुओंके हाथमें चला गया। ईसाई १६वीं शताब्दीके शेषभागमें श्यामके राजा फरा-नरेत् (प्रभुनरेश)ने कम्बोजसैन्य द्वारा पद-दलित हो कर उस अपमानका बदला लेनेके लिये खूब सावधानीसे युद्धकी तैयारी की। १५८३ ई०में वे प्रतिहिंसापूर्ण हृदयसे एक बड़ी सेना ले कर कम्बोज पर आक्रमण करनेके लिये आगे बढ़े। इस अभियानके प्रारम्भमें उन्होंने प्रतिज्ञा की थी, कि या तो वे कम्बोजराजके रक्तसे अपना पाँव धो कर हृदयका ताप मिटायेंगे या नहीं तो आप ही रणक्षेत्रमें अपना नश्वर शरीर त्याग कर गिरी हुई जातिका कलङ्क मिटायेंगे। चार सौ वर्ष तक लगातार लड़ते झगड़ते रहनेके कारण कम्बोज पहलेसे ही दुर्बल हो रहा था। युद्धमें श्यामराजकी विजय हुई। उन्होंने कम्बोजकी राजधानी पर अधिकार कर लिया एवं कम्बोजेश्वरको कैद कर अपने राज्य लौट आये। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये कम्बोजेश्वरको अपने सामने मरवा डाला और वाजेगाजेके साथ उसके खूनके ऊपर चहलकदमी करने लगे।

उस समय दुर्बल कम्बोजराज्य खण्डखण्डमें विभक्त हो गया। कम्बोजके राजा केवल नामके लिये ही शासन-कर्त्ता रहे। वे पूरी तरह श्यामराजके अधीन थे। प्रादेशिक शासनकर्त्तागण अब उनका वैसा सम्मान नहीं करते थे। वे सब धीरे धीरे स्वाधीन होने लगे। कोचीन चीनमें रहनेवाली फरासी जातिको राजाकी वह दीनतावस्था बहुत अप्रीतिकर मालूम पड़ने लगी। उन लोगोंने कम्बोजराजको आश्रय दिया। श्यामराज फरासी शक्तिके विरुद्ध लड़ने होनेका साहस नहीं कर सके। अतएव कम्बोजराजसे उनका अधिकार उठ गया।

उस समय श्यामवासियोंने उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्वसे प्रायः लाव प्रदेशान्तर्गत सभी सामन्त राजाओं पर अधिकार जमा लिया। लावनिवासी लोग पकड़े जा कर दूर दूर भेजे जाने लगे। लाव प्रदेश और कम्बोज पर आक्रमण करनेके बाद श्यामराजने पेगु राज्य पर चढ़ाई की। वे आप तो पेगुराजको दण्ड देनेमें समर्थ नहीं हुए, किन्तु उनके किसी वंशधरने १७वीं शताब्दीमें वह प्रतिहिंसा पूरी की। उस समय चियेंग-मै प्रदेश श्यामराजके अधिकारमें चला आया था।

१५८० ई०में फरासियोंके साथ श्यामराजकी सन्धि होनेका सूत्रपात हुआ। परस्परकी दोस्ती निर्विरोध चलने लगी। परवर्त्ती श्यामराजाओंने भी फरासियोंके साथ शत्रुता नहीं की। १६५६ ई०में राजा फरा नारायण अपने पिताके राजसिंहासन पर बैठे एवं अपना नाम फराचौंव चमोक रखा। वे वर्त्तमान राजवंशके द्वितीय राजा थे। उनके पिता राजामात्य थे। उन्होंने कौशलसे अपने प्रभुको मार डाला और खुद राजगद्दी पर बैठ गये।

राजा फरा-नारायणने फरासीराजके चौदहवें लुईके

साथ मित्रता कर ली। उन्होंने इस मित्रताकी परिवृद्धिके लिये फरासीराजके यहां दूत भेजा। इस कार्यके प्रधान परामर्शदाता उनके मन्त्री ग्रीकजातीय कनष्टनटाइन फालकन थे। ये ग्रीकराजके अधीनस्थ सिफालोनिया द्वीपके रहनेवाले थे। भगवानको आत्मसमर्पण कर अदृष्टकी खोजमें वे पूर्वीय द्वीपांचलमें आये और श्यामराजके यहां नौकरी करने लगे। इस व्यक्तिने प्रथम जीवनमें पूर्वभारतवासी किसो अङ्गरेजके अधीन कोषाध्यक्षके पद पर नियुक्त हो कर इस देशमें आगमन किया था। पीछे अपनी बुद्धिमानी, ज्ञान, शिक्षा तथा सद्युक्तिके बलसे क्रमसे श्यामराजके प्रधान मन्त्री बन गये। फरासी ऐतिहासिक भालटेयरने इनके अदृष्ट प्रभावका उल्लेख न कर यूरोपवासीके महत्कार्य एवं पुरुषत्वका वर्णन किया है।

फरासीराजने श्यामराजके दूतका यथेष्ट आदर किया एवं उचित पुरस्कार दिया। पीछे उन्होंने भी श्यामराजके पास प्रत्यभिनन्दनके लिये अपना दूत भेजा। फरासी दूतने श्यामराजके साथ बन्धुत्वकी पराकाष्ठा दिखा कर उन्हें ईसाई धर्म स्वीकार करनेके लिये अपने राजाका अनुरोध जताया। उसी समय मंत्री फालकन् भी जेस्वीट मिसनरियोंके साथ राजाको ईसाई बनानेका षड़यन्त्र रच रहे थे। उन लोगोंकी गूढ़ अभिसन्धि थी, कि राजाके ईसाईधर्म स्वीकार करनेसे श्यामराज्यमें निश्चय फरासियोंका प्रभाव जम चलेगा। किन्तु उनका यह असदभिप्राय कार्य्यमें परिणत नहीं हुआ। ईसाई धर्म ग्रहण करनेकी बात बौद्धमतावलम्बी श्यामवासियोंके हृदयमें विषवत् मालूम पड़ा। उन लोगोंने इनको दण्ड देनेके लिये फालकन पर आक्रमण किया और मार डाला। श्यामवासी ईसाईगण वहांके बौद्धमतावलम्बियोंका असह्य अत्याचार चुपचाप सहन कर रहे थे। किसीका मत है, कि १६८८ ई०में फालकन्‌के आश्रयदाता तथा प्रतिपालक श्यामराज फरा-नारायण इहलोकसे चल बसे और उनके बादके राजाके राजत्वकालमें राजमन्त्री फालकन् पदच्युत एवं निहत हुए। उनकी मृत्युके साथ फरासियोंकी श्यामराज्यमें राजत्व स्थापन करनेकी आशा निराशाके गम्भीर जलमें समा गई। उपरोक्त जिस किसी कारणसे भी हो, फालकन्‌की मृत्युके बाद श्यामराजके साथ फरासियोंका मित्रता नहीं रही।

१५६२ से ले कर १६३२ ई०के मध्य श्यामराज्यकी वाणिज्योन्नतिका एक प्रबल संघर्ष समुपस्थित हुआ। उस समय उन्नतिप्रयासी श्यामवासी शिल्पवाणिज्यकुशल जापानियोंके संस्रवमें पड़ कर एक अभावनीय घटनास्रोतमें बह गये। पहले कई एक जापानी युवक कार्य्यकी खोजमें घूमते हुए श्यामराजधानीमें उपस्थित हुए। उन लोगोंकी कार्य्यकुशलता देख कर श्यामराजने उन्हें राजकार्य्यमें नियुक्त किया। सेनाविभागमें वे लोग धीरे धीरे दुर्द्धर्ष हो उठे। वे लोग सर्वत्र ही अपना प्रभुत्व जमानेकी चेष्टा करने लगे। पहले भारतीय राजधानियोंमें अङ्गरेज लोग जिस प्रकार प्रभुताके साथ विचरण करते थे, वे लोग भी उसी तरह श्यामराजधानीमें घूमते फिरते थे। उनकी यह शक्तिवृद्धि जनसाधारणकी ईर्ष्याका कारण बन गई। अन्तमें श्यामवासी जापानियोंके हत्याकांडमें रह गये। बहुतसे जापानी मारे गये और जो थोड़े से जीवित बच गये थे, राजधानीसे निकाल दिये गये एवं कई जापानी वंशधर श्यामवासियोंके साथ मिल गये। इस घटनाके बाद १६३६ ई०में जापानके राजाने जाप जातिकी विदेश यात्रा निषेध की थी। किन्तु १७४५ ई० तक जापानी लोग वलन्दाज, चीन और अङ्गरेज व्यापारियोंके साथ मिल कर श्यामराज्यमें व्यापार करते थे।

१६८८ ई०में राजा फ्रा-नारायणकी मृत्यु हो गई। इसके बादसे ले कर १७६७ ई० तक श्यामराज्यके राजसिंहासन पर पांच विभिन्न राजे राज्य करते थे। वे सब सिंहासनापहारी एक दूसरे राजाको छलसे मार कर राजेश्वर बन बैठे थे। इन दुर्बल राजाओंके राजत्वकालमें १७५२ ई०में सिंहलराजेने श्यामराजके साथ फिरसे मित्रता स्थापन करनेके अभिप्रायसे एवं बौद्धधर्म संक्रान्त किसी किसी विषयकी मीमांसा करनेके लिये श्यामराजके पास अपना दूत भेजा। उस समय सिंहलस्थ बौद्धपुरोहितोंके साथ ईसाई पादरियोंका हुज्जती झगड़ा खड़ा

हुआ। श्यामराजने उस समय बौद्धपुरोहितोंका पक्षपाती हो कर झगड़ा शान्त कर दिया।

१७५८ ई०में पेगूके राजा आलोम्प्रा (अलपमय)ने श्यामराज्य पर आक्रमण कर अयोध्या नगर पर घेरा डाला। घेरा डालनेके समय उनकी बहुतसी सेना विनष्ट हो गई। अन्तमें वे लौट गये। उसके बाद उनके लड़केने १७६६ ई०में भीषण युद्धके बाद श्यामराज्यको जीत लिया और राजधानीको पूरी तरह लूटा।

अयोध्यानगरके अधःपतनके बाद प्रायः एक वर्षके भीतर ही श्यामराजके सुप्रसिद्ध सेनापति फय-तक्सिनने पुनः बिखरी हुई सेनाको एकत्र किया एवं अयोध्याके नये राजाकी मृत्युसे मौका पा कर उन्होंने श्यामराज्यके राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया और ब्रह्मजातिको श्याम राजधानीसे निकाल बाहर किया। सेनापति फय तक्सिन चीन देशीय माताके गर्भसे पैदा हुए थे। उन्होंने बड़ी दक्षता और न्यायपरताके साथ १५ वर्ष राज्य किया एवं विशेष अध्यवसायसे वे बांककमें राजधानी स्थापित कर तथा श्यामराज्यकी पुनः सौभाग्यवृद्धि कर इतिहासमें गौरवान्वित हुए। शेष जीवनमें राजा फय-तक्सोन् वायुरोगग्रस्त हुए एवं उनके स्वेच्छाचारसे राजदरबारी लोग (प्रधान) उनके विरुद्ध उठ खड़े हुए। १७८२ ई०में उन्होंने प्राणरक्षाके लिये राजधानीके प्रसिद्ध संघारामें जा कर शरण ली। दरबारी लोग उससे भी उन्हें अपराधमुक्त न समझ कर मठसे बाहर खींच लाये और मार डाला। जो प्रधान अमात्य उनके हत्याकांडके प्रधान सहायक थे, वे भी श्यामराज्यके दूसरे सेनापति थे, उनका नाम फयचक्री था। उन्होंने राजसिंहासन पर बैठ कर श्यामराज्यके वर्त्तमान राजवंशकी प्रतिष्ठा की।

इसके बाद राजा फयचक्रीने तेनासेरिम और तावय पर विजय प्राप्त करनेके लिये सेना भेजी। १७९२ ई०में तावय श्यामराजके शासनाधीन हुआ। १८११ ई०में उनकी मृत्युके बाद उनका पुत्र राजा हुआ। १८२६ ई०में इस नवीन राजाकी मृत्यु होने पर राज्यके वास्तविक उत्तराधिकारीको राज्य न दे कर पूर्वोक्त राजाकी एक दूसरी स्त्रीके गर्भजात पुत्रने राजसिंहासन पर अधिकार जमा लिया। उक्त वर्षमें ब्रह्मराजको अंग्रेजोंके साथ युद्धविग्रहमें लिप्त देख कर श्यामराज उस स्वर्ण-सुअवसर पर ब्रह्मराज्यके सीमान्तस्थित नगरों पर अधिकार जमानेकी इच्छासे वहां गये। वहां पहुंच कर उन्होंने गोलावृष्टि द्वारा शत्रुओंकी बड़ी क्षति की।

उस समय चोनराज भी अपना प्रभुत्व जमानेके लिये बीच बीचमें अपना धर्मप्रचारक भेजते रहे। इस नूतन राजवंशके शासनकालमें चीनसम्राट्ने अपनेको श्यामराज्यका प्रकृत अधीश्वर बतलानेके लिये दूत भेज कर श्यामराज्यसे राजमुहर और पञ्जिका ले आनेकी चेष्टा की; किन्तु श्यामराजने चोनसम्राट्की अधीनता स्वीकार नहीं की और न कभी अपना दूत भेज कर उन्हें राजस्व दे कर सन्तोष ही किया। आश्चर्यका विषय है, कि उस समयसे चीनके बन्दर पर अन्यान्य राजाओं तथा श्यामराज्यके वाणिज्यपोत चीन उपकूलमें उपस्थित हो कर पण्यद्रव्य खरीद बिक्री करते हैं।

१८५१ ई०में राजा फयचक्रोके पौत्र सोमदत्-फ्र नाम रख कर राजा हुए। ये वैमातृक भाईके जीवनकालसे हो बौद्धभिक्षुकका वेश धारण कर मठमें शान्तिपूर्वक वास कर रहे थे। वहां उन्होंने २० वर्ष तक ग्रन्थावलोकन कर बहुत ज्ञान प्राप्त किया। उसी ज्ञानके बलसे उनकी बुद्धिवृत्ति परिमार्जित हुई एवं वे विशेष दक्षताके साथ श्यामराज्यका शासन चलाने लगे। उनका कनिष्ठ भाई युवराज पदसे भूषित हो कर राजकार्यमें अधिक सहायता कर रहे थे।

राजा सोमदत्तका दूसरा नाम फर-परमेन्द्र महा मोंग्कुट था। अधिक शिक्षा प्राप्त करनेके कारण उनका क्षेत्र विशाल हो गया था। वे राजा हो कर भी एक संन्यासाचारी तथा धर्मसंस्कारक थे। विज्ञानशास्त्रमें उनकी अधिक अनुरक्ति थी। राज्यकी उन्नतिके लिये कई कार्योंमें अटूट परिश्रम करने एवं भूख प्यासकी ओर विशेष ध्यान न देनेके कारण असमयमें ही अपना नश्वर शरीर त्याग करनेको बाध्य हुए। इनकी मृत्युके बाद थोड़े ही दिनके अन्दर श्यामराज्य राहुग्रस्त हुआ।

इनके ही शासनकालमें १८५५ ई०में सन्धि द्वारा अंग्रेजोंके साथ श्यामवासियोंका वाणिज्य-सम्बन्ध सुदृढ़ किया गया था। इसके पहले श्यामराज्यके साथ अंग्रेजोंकी सन्धि हो गई थी।

१५११ ई०में डी० आलुकेरके मलक्का विजय करनेसे श्यामका प्रथम यूरोपीय संस्रव घटा। आलुकेरकी कही हुई श्यामराज्यकी समृद्धिकी बात अभी तक यूरोप वासी व्यापारी भूले न थे। १७वीं सदीमें वलन्दाजोंने श्यामराज्यमें व्यापार करनेके अभिप्रायसे प्रवेश किया। उनके पीछे अंग्रेज व्यापारी लोग भी श्यामराज्यमें उपस्थित हुए। इंगलैण्डके राजा १म जेम्सके साथ श्यामराज्यकी मित्रता हो गई थी, उस समय कई अंग्रेजोंने श्यामराजके दरबारमें अच्छी अच्छी नौकरी भी प्राप्त कर ली थी। इसके बाद इष्ट-इण्डिया कम्पनीके आदमियोंने श्यामवासियों पर आक्रमण किया। उसके ही फलसे १६८७ ई०में मार्गुई बन्दर पर अंग्रेजोंका हत्याकांड हुआ। १६८८ ई०में अंग्रेज लोग अयुथिया राजधानीकी कोठी छोड़ भाग गये। इसके बाद अंग्रेज व्यापारियोंका पूर्वदेशीय वाणिज्य ह्रास होने लगा। १७८६ ई०में अंग्रेजोंने कौयोदारके अन्तर्गत पिनां प्रदेश पर अधिकार कर लिया। उस समय इस देशोंमें अङ्गरेजोंका व्यापार प्रायः लोप हो गया था। १९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें उस लुप्तप्राय व्यापारका पुनरुद्धार करनेकी चेष्टा की गई। उस उद्देशको पूरा करनेके अभिप्रायसे क्रफोर्डने (१८२२ ई०में) बार्निने (१८२६ ई०में) श्यामराज्यमें आ कर घनिष्ठता बढ़ानेकी चेष्टा की, किन्तु उससे किसी प्रकारकी सफलता न मिली। अन्तमें १८५६ ई०में सर जान बाउरिंगने श्याम राजके साथ एक पक्का बन्दोबस्त कर लिया, जिससे अंग्रेजोंको श्यामराज्यमें वास स्थापन करने, जमीन खरीदने एवं खजानेका बन्दोबस्त करनेका अधिकार मिल गया। इस समय अंग्रेज व्यापारियोंके आमदनी और रफतनी द्रव्यों पर कर लगाया गया। बांकक नगरमें एक कानसेलर अदालत स्थापित हुई एवं चियंग मै नगरमें एक वाइस-कानसेलर अदालत प्रतिष्ठित हुई। शिंगापुरसे समय समय पर एक 'जज' (न्यायाधीश) बांकक अदालतमें आ कर चियंग मै अदालतकी अपीलका विचार किया करते थे।

व्यापारके विषयमें परदेशियोंके साथ सुदृढ़ सन्धिसूत्रसे श्यामके राजा आन्तरिक शान्ति उपभोग करनेमें समर्थ हुए। पहले श्यामराज्यके सीमान्तस्थित निवासी बहुत उतपात मचाते थे एवं कम्बोज, ब्रह्म और पेगूके राजे बीच बीचमें श्यामराजको बहुत तंग किया करते थे। किन्तु जब निम्न कोचीन चीन, आनाम और टोङ्किं प्रदेश फरासियोंके अधिकारमें चले आये एवं अङ्गरेजोंने निम्न और उत्तर-ब्रह्म पर अधिकार जमा लिया, उस समय श्यामराज्य पर और किसी प्रकारकी विपद् आनेकी आशङ्का नहीं रही। ब्रह्म सीमान्त पर अङ्गरेजोंके साथ श्यामका कोई बखेड़ा नहीं रहा, किन्तु फरासियोंने अनाम-सीमान्त ले कर श्यामराजके साथ गोलमाल उपस्थित किया। फरासी लोग मेकं नदीके पूर्वी कछारको ही श्याम और अनामकी सीमा बताने लगे। श्यामराजने वह बात स्वीकार नहीं की। उसी सूत्रसे दोनों पक्षमें १८९३ ई०के प्रारम्भकालमें एक लड़ाई बंध गई। फरासी सेनापति ससैन्य हार गये और पकड़े जा कर मार डाले गये। फिर युद्धकी तैयारी होने लगी, श्यामराजने फरासियोंकी गति रोकनेके लिये आयोजन करने लगे। अङ्गरेज सरकारने इस समय श्यामराजको साम्यभाव धारण करनेकी सलाह दी। परिणाममें युद्ध ही अपरिहार्य्य हो उठा।

उक्त वर्षकी १३वीं जुलाईको दो फरासी-रणपोत बड़े घमण्डके साथ बांकक राजधानीके सामने आ गये। वे लुयंग प्रवंग प्रदेशसे श्यामकी दक्षिण सीमा पर्य्यन्त मेकं नदीके पूर्व तीरस्थ यावतीय प्रदेश अनामकी सीमा बतलाते थे। इसके अतिरिक्त क्षति पूरी करनेके लिये श्यामराजसे मेकं नदीके पश्चिमी किनारे उत्तर-दक्षिणकी ओरसे २५ किलोमिटार (एक नाप) जमीन मांगने लगे। फरासी लोग अपना दावा प्राप्त करनेके लिये बार बार तंग करने लगे। अन्तमें फरासी दलने २५वीं जुलाईसे ले कर ३री अगस्त तक मेनाम नदीका तट जबर्दस्ती आबद्ध कर रखा। लाख चेष्टा करने पर भी जब फरासियोंको नहीं हटा सके, तब लाचार हो कर १८९३ ई०की ३री अक्तूबरको उन्होंने फरासियोंके साथ सन्धि कर ली। इस सन्धिपत्रके लिखे जाने तथा अनुमोदित होनेके पहले श्यामराजकी सम्मतिसे फरासियोंने शान्तिवन प्रदेशमें अपना आधिपत्य फैला लिया। १९०२

ई०में सन्धि होने तक इस स्थान पर फरासियोंका अधिकार रहा। इसके बाद फरासियोंने उसके बदले मेलूप्रे और वसाक नामक दो प्रदेश पा कर उक्त प्रदेश छोड़ दिया। इस सन्धिके शर्त्तानुसार फरासियोंको मेकं नदीके श्यामाधिकृत अववाहिका प्रदेशमें खाई, बन्दर, रेल प्रभृति तैयार करनेका अधिकार मिला। इस समय उत्तर-पूर्व श्याम प्रदेशमें 'ल्' और 'हो' नामक चीन-जातियां उपद्रव मचाने लगी एवं इन जातियोंने अपने दलवलके साथ श्यामराज्यमें प्रवेश कर धीरे धीरे मेकं नदीके किनारेसे ले कर नोंग-कै नामक स्थान तक उजाड़ बना दिया।

श्यामनिवासी बौद्धधर्म्मावलम्बी हैं। इनका धर्म-मत ब्रह्म और सिंहलवासी बौद्धसम्प्रदायके अनुरूप है। किन्तु परस्परकी आनुष्ठानिक क्रियाओंमें थोड़ा अन्तर है। राजा फरा मेङ्कुट (प्रभु मुकुट ?) पहले यतिधर्म पालन करते थे। इसके बाद शिक्षा और दीक्षाके बलसे विशाल ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने स्थानीय बौद्धधर्मका बहुत कुछ सुधार किया। जिन सब नगरवासोने सुधार किये हुए मतको स्वीकार किया, उनका नाम उन्होंने 'धर्मयुत' रखा एवं असंस्कृत धर्मावलम्बी नगरवासी उस समय 'फरा महानिकाय' कहलाने लगे। प्रथमोक्त बौद्धगण बौद्धधर्मशास्त्रके नियमोंका पालन करनेमें रत हैं एवं वे ध्यानादि आध्यात्मिक चिन्ताके विशेष पक्षपाती नहीं हैं। उन लोगोंका प्रथम दल केवल देवचिन्ता वा ध्यानको ही मोक्षका एकमात्र रास्ता समझते हैं एवं दूसरा दल बौद्धशास्त्रकी आलोचनाको ही मोक्षमार्ग समझते हैं।

बांकक राजधानीमें बौद्धधर्मके साथ ब्राह्मणधर्मका अपूर्व समावेश दृष्टिगोचर होता है। उस स्थानमें इस समय भी प्राचीन ब्राह्मण धर्मका प्रभाव परिचायक एक देवमन्दिर विद्यमान है। वहांके पुरोहितगण भारतीय ब्राह्मण-कुलोद्भूत हैं। जनसाधारण बौद्धमतावलम्बी होने पर भी इन ब्राह्मण पुरोहितोंके द्वारा दैवकार्यके अनुष्ठानादि कराते हैं। युद्धाभियान, व्यवसायवाणिज्य, विवाह या पार्व्वणादिके अवसर पर वे लोग ब्राह्मण पुरोहितोंसे शुभ दिन गुणा कर कार्यारम्भ करते हैं।

श्यामवासी कुसंस्कारमें पड़ कर नाट (प्रेतयोनि) तथा फोर (भूतयोनि) की पूजा करते हैं। उन लोगोंका विश्वास है, कि ये भूत प्रेत मानवदेहके अङ्ग प्रत्यङ्गमें प्रवेश कर अपना प्रभाव विस्तार करते हैं। मनुष्यकी जीवितावस्थामें वे (भूतप्रेत) जब चाहे तब मनुष्यके शरीरका नाश कर सकते हैं। उन लोगोंकी धारणा है, कि इन भूतप्रेतोंमें कितनेकी आकृति मनुष्यकी-सी होती और कितनेकी पशु आदिकी तरह। उनमें कितने तो पृथ्वी पर विचरण करते हैं और कितने जलगर्भमें डूबे रहते हैं। कितने तो बालग्रह स्वरूप हैं जो सन्तानादिके रोग और मृत्युके कारण हैं। कोई कोई भूत रास्ते रास्ते घूमता फिरता है और पथिकोंको रकशाकी तरह धोखा दे कर कुपथगामी बना देता है। इन सब काल्पनिक योनियोंकी प्रतिमूर्त्ति बना कर वे लोग स्थान स्थान पर प्रतिष्ठा करते हैं। मध्यम वा उत्तम श्यामवासियोंके हृदयमें इस भूतपूजाका प्रभाव इस तरह पड़ा है, कि वे लोग एक तरहसे बौद्धधर्मसे विमुख हो गये हैं। शहरवासी सभ्य जनसाधारणके मध्य भी इस प्रकारके कुसंस्कारका अभाव नहीं है। वे लोग भूतप्रेतोंको सन्तुष्ट रखनेके लिये पशुकी बलि चढ़ाते हैं एवं मदिरा पान करते हैं। इन्द्रजालविद्या पर इन लोगोंका पूरा विश्वास है। इन लोगोंकी धारणा है, कि मन्त्रके बलसे मनुष्य बाघ आदि पशुका रूप धारण कर लेता है।

यहां लिंगपूजाकी प्रधानता है। यह लिंगपूजा सिर्फ शिवलिंग पूजामें निबद्ध नहीं है। पत्थरके छोटे छोटे टुकड़े (शालिग्राम) यहां विभिन्न देवताके नामसे पूजे जाते हैं। बौद्धधर्मकी मर्य्यादा-रक्षा करनेवाले स्वाधीन राजा होते हुए भी आत्माभिमानी श्यामराज लाख चेष्टा करके बौद्धधर्मविरोधी इस पौत्तलिकाचारका निषेध नहीं कर सके। भारतीय हिन्दू सम्प्रदायकी तरह ये लोग तीर्थयात्रा करते हैं। श्यामराज्यमें भारतीय नामके अनुसार प्रायः सभी प्रधान नगरों तथा प्राचीन तीर्थोंके नाम हैं। इन सब तीर्थों और नगरोंमें मन्दिर, मठ वा संघाराम प्रतिष्ठित हैं। जनसाधारण इन सब स्थानोंमें देवमूर्त्ति दर्शन करने जाते हैं। पुरोहितोंके

अलावे मन्दिरके देवताओंकी सेवाके लिये दो श्रेणियों-की कुमारियाँ (भिक्षुणी) हैं। यदि कोई तीर्थयात्री भिक्षुणियोंकी सेवाके लिये कुछ दान देती हैं, तो वे उसे ग्रहण कर सकते हैं। राजा मन्दिरका दूसरे खर्चा चलाते हैं। पुरोहित तथा भिक्षुणीगण राजाके दिये हुए वार्षिक वेतन द्वारा जीवन-निर्वाह करती हैं। मन्दिरोंकी मरम्मत-का खर्चा भी राजदरबारसे ही मिलता है। पूर्व-लाव प्रदेशके दो एक ग्राममें नंग् तिम् नामक एक ग्राम्यदेवी है। लोग उन्हें जगत्‌माताका अवतार मानते हैं एवं उनकी पूजा और उत्सवादि करते हैं।

श्यामवासियोंके मध्य नाना प्रकारके उत्सव मनाये जाते हैं। उनमें कुछ तो धर्मसंक्रान्त हैं एवं कुछ लौकिक प्रथाके अनुसार पूर्वसे चले आ रहे हैं। सभी उत्सवोंमें नाच, गान तथा बाजेकी मजलिस बैठती है। नये वर्षका एक प्रथम दिन इन लोगोंका एक महान् पर्व-दिन है। बैसाखी-पूर्णिमा तथा कृर्णिपर्वमें श्यामवासी जैसा आनन्द प्रकाश करते हैं, वैसा और जातिमें नहीं देखा जाता। शेषोक्त पर्वदिनमें पहले राजमन्त्री हल चलाते एवं राजकुलकामिनियां उस समय उनके पीछे पीछे बीज बोती चलती हैं। जनसाधारण उन सबके पीछे पीछे चल कर उन बीजोंको चुन लेते हैं और अपने खेतमें छींटे जानेवाले बीजोंमें मिला देते हैं। इसके बाद राजपर्व होता है, उस दिन राजा, मन्त्री एवं अमात्य-वर्ग और परिषद्‌गण एकत्र हो कर जलपान करते हैं और अपना अपना कर्त्तव्य पालन करनेकी सौगन्ध खाते हैं। इस दिन राजा सबके सामने प्रजाओंका निरपेक्ष भावसे न्यायविचार करनेकी एवं अन्यान्य सभी राजा-ओंके प्रति अगाध प्रेम रख कर राजकार्य चलानेकी प्रतिज्ञा करते हैं। सन्ध्याके समय राज-दरबारस्थ सभी लोग नदी किनारे जा कर नैय्याका 'झिंझरी-खेल' देखते एवं अग्निक्रीड़ा देख कर अपने अपने घर लौट जाते हैं।

राजा जब कभी राजनियमके अनुसार नये वा पुराने मन्दिरको देखने चलते हैं, उस समय नौकाएं और सेनादल सजा कर शोभायात्रा की जाती है। दूसरे दूसरे कितने पर्व वर्षाऋतुके प्रारम्भसे ले कर वर्षाके शेष कालके भीतर ही समाप्त हो जाते हैं।

वर्षाके बाद जब बाढ़का पानी आप ही आप घट जाता है, उस समय पुरोहित लोग जलपथसे एक शोभायात्रा-का अनुष्ठान करते हैं। राजाका चूड़ाकरणपर्व बड़ी धूमधामके साथ समाहित होता है। उस दिन राजाके शिरका बाल काट कर साफ कर दिये जाते हैं, केवल चोटी (शिखा) छोड़ दी जाती है। साधारण श्याम-वासियोंमें भी इस प्रकार शिखारक्षा वा चूड़ाकरणकी प्रथा है। श्यामवासी शिखाको बहुत पवित्र मानते हैं। गुरुजनोंकी शिखा छू जानेके भयसे कोई उनसे शिर ऊंचा नहीं करता। राजा वा सम्भ्रान्त व्यक्तियोंकी अन्त्येष्टिक्रिया वा प्रेतकृत्य मृत्युके बाद समाहित नहीं होता। कभी कभी इन लोगोंकी लाश महीनों तक रखी जाती है, श्राद्धके समय कई दिनके लिये एक एक स्वतन्त्र गृह निर्माण किया जाता है एवं उस गृह-में नृत्य, गीत तथा भोजनादि कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। दरिद्र व्यक्तियोंकी लाशें शकुनी, गृद्ध आदि पक्षियों तथा अन्य पशुओंको खिला दी जाती हैं। धनी व्यक्ति मृत्युके समय अपने वंशधरोंको आदेश कर जा सकते हैं, कि मृत्युके बाद उनकी लाश पशुपक्षियोंको खिला दिया जाय। संतान-प्रसवकालमें यदि किसी रमणीकी मृत्यु हो जाती है, तो उसकी मृतदेहको मन्दिरके आंगनमें जलाते हैं और उसी भस्म तथा हड्डियों-को चूनेके साथ मिला कर मन्दिरकी पवित्र दीवार पोती जाती है।

ये लोग चान्द्रमासके हिसाबसे वर्षकी गणना करते हैं। चान्द्रमास २९॥ दिनमें पूरा होता है। इस कारण ये लोग अपनी सुविधाके लिये २९ और ३० दिनका महीना मानते हैं। इससे वर्षमें ३५४ दिन होते हैं। जो कई दिन बाकी बच जाते हैं, उन्हें पूरा करनेके लिये सात मासमें एक दिन बढ़ा देते हैं एवं प्रति १९वें वर्षमें ७।८ मास मलमास गिनते हैं। भारतवासियोंका अनुकरण कर इन लोगोंने षष्टि-संवत्सरकी कल्पना कर ली है। किन्तु सम्पूर्णरूपसे भारतीय षष्टिसंवत्सरका अनुकरण न कर ये लोग चीन देशीय प्रथाके अनुसार ई० सन्‌से २६३७ खृष्ट पहलेसे द्वादश वर्षके अनुसार पञ्जिकाकी गणना करते हैं। यह द्वादश संवत्सर बारह पशुओंके नामसे अभिहित है। एक

वर्ष फिर पर्य्यायक्रमसे वे ही सब दिन और तिथियां गिनी जाती हैं। यहां दो अब्द प्रचलित हैं। इनमेंसे एकके हिसाबसे धार्मिक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं, उसका नाम है पुत्त-शकरत् अर्थात् बुद्धाब्द—यह ई०सन्‌से ५४३ वर्ष पहले चलाया गया था और दूसरा है चूल शकरत् वा पविलाब्द (Civil-era)—यह ई०सन ६३८ वर्ष पहलेसे गिना जाता है और श्यामराजमें बौद्ध-धर्मका प्रवेशप्रसंगज्ञापक है। यहां जो प्राचीन आर्य-शिलालिपियां पाई गई हैं, उनका हिसाब शकाब्दके अनुसार है।

यहां प्राचीन प्रत्नतत्त्वके बहुतसे निदर्शन पाये जाते हैं। श्यामराजके पूर्वांचलस्थित कोरात जिलेके कोरात नगरमें चीन व्यापारियोंकी कीर्त्तिसूचक बहुतसी अट्टालिकाएं विद्यमान हैं। दंगरेक गिरिश्रेणी और मौन नदीके मध्यवर्त्ती विस्तृत स्थानमें जो सब प्राचीन ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होते हैं, उनसे मालूम पड़ता है, कि एक समय यहां कम्बोज जातिका प्रभाव खूब जम चला था। कोरात, वसाक, फिमै और खू-खोन नगरकी विस्तीर्ण स्तूपराशि इस समय भी उस अतुलवैभवका परिचय दे रही है। ये सब कीर्त्तियां श्यामराजमें हिन्दूप्रभावके प्रधान निदर्शन हैं। अंगकोर नगरमें इस श्रेणीकी सुमहती कीर्त्ति अब भी विद्यमान है। तोन्‌ले-साप् नामक सुवृहत् हृदसे १५ मील उत्तर निविड़ जंगलके मध्य श्यामकी प्राचीन राजधानी अंगकोर नगर स्थापित है। इसका दूसरा नाम नखोन है; नखोन शब्द संस्कृत नगर शब्दका अपभ्रंश है। थोम नगर (महानगर)का प्राचीन नाम इन्थफथवुड़ी है। यह महाभारतोक्त भारत-राजधानी इन्द्रप्रस्थपुरीके नामानुसार कल्पित है। पाश्चात्य भ्रमणकारी मौहोत और टमसन उल्लेख कर गये हैं, कि यह नगर ३० फीट ऊंची एवं ८॥० मील परिधिवाली चहारदिवारीसे घिरा था। नगरकी रक्षाके लिये नगर-प्राचीरके बाहर चारों ओर गहरी खाई खोदी हुई थी। कर्णल यूल टमसन-वर्णित नगरसीमाकी अतिशयोक्ति समझते हैं। उन्होंने नगरका घेरा उसकी अपेक्षा कम बताते हुए भी उल्लेख किया है, कि नगर-प्राचीरमें पांच बड़े बड़े दरवाजे थे। उनमें दो दरवाजे पूर्वकी ओर थे। इस नगरके दक्षिणमें ५ मीलकी दूरी पर 'नखोन-वट' (नगरमठ) नामक एक सुवृहत् मठ है। इस मठका शिल्पकार्य संसारमें अद्वितीय है।

५८९ शकमें (६६७ ई०) उत्कीर्ण यहांके किसी मन्दिरमें जड़ी हुई शिलालिपिसे जाना जाता है, कि इस देशके मध्य उक्त अब्दमें शिवलिंगकी स्थापना हुई थी। एक दूसरी शिलालिपिसे पता चलता है, कि उक्त शब्दसे सौ वर्ष पहले भी यहां शैवोंका प्रभाव फैला हुआ था। उक्त शिलालिपिकी वर्णमालाका प्राचीनत्व ही उसका यथेष्ट प्रमाण है। इसके अलावे यहां बौद्धकीर्त्तिके जो प्राचीन निदर्शन पाये जाते हैं, वे निःसन्देह उक्त शैवकीर्त्तिकी अपेक्षा तीन शताब्दीके परवर्त्ती स्वीकार किये जा सकते हैं।

भाषा और साहित्य।

सारे श्यामराज्यमें अर्थात् मलयसीमान्तस्थ पश्चिम समुद्रतटसे मेकं नदीके पूर्वीय अववाहिकादेश पर्य्यन्तके भूभागमें एक ही भाषा प्रचलित है। वह श्यामकी भाषामें 'फासा थै' (स्वाधीन जातिकी भाषा) कहलाती है। उक्त राजके उत्तर पश्चिमस्थ ब्रह्मसीमान्तदेशमें तथा शानराज, लावप्रदेश, अनाम और कम्बोजमें जो भाषा प्रचलित है, उसमें और श्यामीय भाषामें बहुत अन्तर है। उत्तर पूर्वादिक्‌स्थ वन्य जातिकी भाषा इससे अलग है। शानजातिकी भाषाके साथ आहोम, खामती और लाव जातिकी भाषाकी जितनी समानता है, श्यामीय भाषाके साथ शानभाषाका उतना ही मेल देखा जाता है। १२वीं सदीमें श्यामराज कम्बोजकी अधीनतासे मुक्त हो गया, उस समयसे श्यामकी भाषा 'थै' कहलाने लगी। शानजातिकी भाषा भी उसीके अनुकरणसे 'तै' कहलाती है।

शान वा श्यामीय भाषाके स्वरके उच्चारणमें सामान्य विलक्षणता देखी जाती है। शानभाषामें स्वरका ह्रस्व-दीर्घज्ञापक कोई चिह्न न रहने पर भी श्यामभाषामें इस प्रकारकी पांच मात्राएं हैं। इसके अतिरिक्त उस भाषाके व्यञ्जनवर्ण भी तीन भागोंमें विभक्त हैं। फिर प्रत्येक व्यञ्जनवर्णश्रेणीके भी उदात्तानुदात्तस्वरितभेदसे प्रकार निर्देश किये गये हैं। अर्थात् एक वर्ण-

को स्वाभाविक शब्दशक्तिके द्वारा जो अनुदात्तस्वर उच्चारित होता है, वह मात्रायुक्त होनेसे द्वित्व हो जाता है एवं वह स्वरित् स्वरमें उच्चारित न हो कर गम्भीर भावसे उदात्त स्वरमें परिणत हो जाता है। इस प्रकार ह्रस्व और दीर्घके अतिरिक्त और भी लघुतर स्वर इस भाषामें व्यवहृत होता है। इस कारण उनके स्वर-वर्णकी संख्या भी अधिक है।

श्यामराज्यमें भारतीय संस्कृत भाषाके प्रवेश करनेके बादसे भारतीय वर्णमालाकी समासगत पदावलीके उच्चारण करनेकी चेष्टासे श्यामवासियोंके मुखसे एक विचित्र वर्णसमष्टि उच्चारित होती है। इसलिये उनके मध्य प्रायः ४३ व्यञ्जनवर्णकी सृष्टि हुई है; किन्तु स्वाभाविक तौरसे वे लोग २० व्यंजनवर्णसे अधिक वर्णोंका उच्चारण नहीं करते। केवल संस्कृत और पाली भाषाके शब्दोच्चारणके समय इन सब व्यञ्जनवर्णों-का आवश्यकता होती है। यथा ख, ग, घ, वर्ण केवल 'ख' स्वरमें एवं 'फ व, भ' केवल 'फ' स्वरमें उच्चारित होते हैं। इनकी भाषामें दीर्घस्वर तथा तालव्य वर्णके उच्चारणमें कुछ जोर देना होता है. शब्दके शुरूमें साधा-रणतः ल, व, र, य वर्ण संयुक्तरूपमें व्यवहृत होता है एवं शब्दके अन्तमें क, त, प, ं (ङ्) न वा म रहता है। इस कारण श्यामीय भाषामें विदेशी भाषासे अपहृत शब्दके उच्चारणमें अधिक गोलमाल उपस्थित होता है। यथा—सम्पूर्ण—सोम्बुन, भाषा—फासा, नगर—नखोन, सद्धर्म—सथम, कुशल—कुशोन, शेष—शेत, वार—वन, मगध—मखोत इत्यादि।

श्यामवासी १४वीं सदीमें अयुथिया नगरमें राजधानी स्थापित कर प्रतिष्ठित होनेके पहले किस प्रकार अपनी शिक्षा तथा शास्त्रग्रन्थोंकी रक्षा करते आ रहे थे, उसे मालूम करनेका कोई उपाय नजर नहीं आता। ६७१ श्यामाब्दमें सुकोथै नगरकी शिलालिपि उत्कीर्ण हुई एवं उसीके नौ वर्ष पहले श्यामीय वर्ण-मालाकी उत्पत्ति हुई थी, इस प्रमाण पर निर्भर करके किसी सिद्धान्त पर पहुंचना कठिन है। यदि उक्त शिलालिपि ही उनके लिपिमालाविन्यासका प्रथम निद-र्शन हो, तो यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है, कि उनकी प्राचीन ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि तथा उनका संस्कृत पाठ उसी समय गृहीत हुआ था? बिशप पालगों (Bishop Pallegoix) कई प्राचीन पुस्तकों-का उल्लेख कर गये हैं। उसकी अच्छी तरह समा-लोचना करनेसे किसी एक समीचीन सिद्धान्त पर पहुंचा जा सकता है। इन ग्रन्थोंमें छन्द और प्रकृति वर्णन ही अधिक दृष्टिगोचर होती है। उनमें ऐति-हासिक घटनाका कोई असल वृत्तान्त लिपिबद्ध नहीं है। उनकी अधिकांश गल्प पौराणिक एवं किम्वदन्तीके आधार पर हैं। श्यामवासी इन ग्रन्थोंको अधिक आग्रहके साथ पढ़ते हैं।

कई एक उपन्यास अद्भुत रसात्मक हैं। उनकी गल्पें प्रायः भारतीय महाकाव्य रामायण और महाभारत-से ली गई हैं। रामक्यून् (रामायण) ग्रन्थकी गल्प मलय और यवद्वीप-वासियोंके इह्नाव नाटकके रामचरित्र-के आधार पर रची गई है। इनके अतिरिक्त संग-सिन-चै, समुत्नियाई-सो मुयंग, हैं-संग, नंग-प्रथोम, क्षेप-लिन थोन-सुवन्न होंङ्, थाव सवट्टिरच, फरा उनारुन, दर सुरिवोंग, खुन-फन, नोंग-सिप-संग प्रभृति काव्य एवं इह्नाव और फरा सिमुयंग नामक नाटक वीरत्वपूर्ण कहानी तथा कविकल्पनामें रचित हैं।

धर्मशास्त्र प्रायः तन्नामक पाली ग्रन्थका अनुवाद वा उसकी परिवर्त्तितवृत्तिमात्र है। इस श्रेणोके मध्य सोमन खोदोम (श्रमण-गौतम) ग्रन्थमें वेस्सन्तर जातिका भाव लिया गया है। सुफासित (सुभाषित) ग्रन्थमें २२२ सज्जनोंकी उक्ति है। यह ग्रन्थ श्यामीय कोंग नामक दीर्घ-मात्रा छन्दमें लिखित है। बुत चिन्दामणि (वृत्तचिन्ता-मणि) ग्रन्थ पालीभाषामें रचित बुत्तोदय नामक अल-ङ्कार शास्त्रका रूपान्तरमात्र है। अधिकतर इसमें व्याक-रणके कई प्रश्नोंके उत्तरकी मीमांसा की गई है।

बालकोंकी शिक्षाके लिये कई हितोपदेशसूचक ग्रन्थ हैं। इस श्रेणोके कई पुस्तकोंकी गल्पें बड़ी बड़ी गल्प ग्रन्थोंका कुछ अंश ले कर लिखी गई हैं। स्मृति वा कानून ग्रन्थोंका पता नहीं है। यहां पालीभाषामें रचित व्यवहारशास्त्रका विशेष प्रचलन न रहने पर भी जो सब श्यामीय व्यवहारशास्त्र प्रचलित हैं, उनके

मध्य पालीके वचन उद्धृत देखे जाते हैं। इन सब ग्रन्थोंमें लक्षणफरा थम्ममत् लक्षण फुया मिरा उल्लेख· नीय है। इस ग्रन्थके शुरूमें फरा धम्मसत (प्रभुधर्म जात्) अर्थात् भगवान् मनुके कहे हुए शास्त्रका वर्णन है। इन्थफत (इन्द्रपथ) ग्रन्थ शचीपति इन्द्रप्रोक्त (इन्द्रलिखित) कहा जाता है। इस ग्रन्थमें विचारक· के कर्त्तव्याकर्त्तव्यकी विवेचना की गई है। फराथमनुन ग्रंथमें न्यायविचारकी धारा लिखी है। लक्षण·तत फोंग ग्रन्थमें नालिशकी अर्जी तथा मुकदमा खारिजकी विधि वर्णित है। 'कूयंग वेगत मै मुगङ्ग थै नामक राज· विधि श्यामराज्यकी प्रचलित दिवानी तथा फौजदारी विधियोंका संक्षिप्तसार है।

१९०७ ई०में श्यामराज्यने कम्बोडिया फरासी कर्तृ- पक्षको वटमवङ्ग प्रदेश लौटा दिया तथा उसके बदले क्रात और दानसाई प्रदेश पाया। १९०९ ई०के सन्धि सूत्रमें श्यामराजने अंगरेजोंके हाथ केडा, फेलेएटन, ट्रेङ्गनु, पेरेलिस तथा श्यामराज्यके दक्षिणस्थ मालय प्रदेश (अंगरेजोंका अधिकृत मलयका उत्तरांश) की सारी क्षमता दे दी तथा इसके बदलेमें श्यामराज्यसे अंगरेज-संस्रव तिरोहित हो गया। इस सन्धिपत्रसे श्यामको खासी मदद पहुंची थी, कारण इसके साथ साथ अन्यान्य वैदेशिक प्रभावसे श्याम विमुक्त हुआ। शासनपद्धतिके संस्कार और रेलपथ विस्तारके साथ साथ श्याम क्रमशः एक प्रधान वाणिज्यकेन्द्ररूपमें यूरो पीय शक्तियोंके निकट परिगणित हुआ है।

१९१० ई०में राजा चुलाल कर्णकी मृत्यु होने पर युवराज वाजीराव बुध राजा हुए। १९१७ ई०में इन्होंने राजा ४ र्थ राम उपाधि पाई। इनके शासनकालमें श्यामराज्यकी बड़ी उन्नति हुई। इनके समयमें युक्त- राज्य, जापान, डेनमार्क, फ्रांस, ग्रेटब्रिटेन, हालैंड, पुर्त्त- गाल और स्पेनके साथ सन्धि हुई। १९२५ ई०की २६ वीं नवम्बरको ये परलोक सिधारे। इनके कोई पुत्र न था, इस कारण इनके भाई युवराज सुखोदय राजा हुए हैं। इनके समयमें इटली, बेलजियम आदि अन्यान्य यूरोपीय शक्तियोंके साथ सन्धि हुई है। विगत महा- समरके बाद यह राज्य जातिसङ्घ (League of nations) सभ्यरूपमें परिगणित हुआ है।

श्यामल (सं० पु०) श्यामो वर्णः अस्त्यस्येति श्याम (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९७) इति लच्। १ पिप्पल। २ अश्वत्थवृक्ष। ३ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका बहुत जहरीला बिच्छू। ४ नीलभृङ्गराज। (त्रि०) ५ कृष्ण- वर्ण, काला, साँवला। ६ कृष्णगुणविशिष्ट।

श्यामल—काश्मीरके एक कवि। ये दूसरे दूसरे ग्रन्थोंमें श्यामलक नामसे भी पुकारे गये हैं। क्षेमेन्द्रकृत औचित्य- विचारचर्य्यामें इनका उल्लेख पाया जाता है।

श्यामलक (सं० पु०) श्यामल कविका एक नाम।

श्यामलचूड़ा (सं० स्त्री०) श्यामला चूड़ा यस्याः। गुञ्जा, घुंघची।

श्यामलता (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात लता, श्यामालता। पर्याय—

"गोपीगोपा गोपवल्ली सारिवीत्याल्लसारिवा।
अनन्ता शारिवा श्यामा ह्यष्टौ श्यामलताह्वये॥"
(शब्दरत्ना०)

श्यामलस्य भावः तल्-टाप्। २ श्यामलका भाव या धर्म, साँवलापन, कालापन।

श्यामलदेवी (सं० स्त्री०) एक राजमहिषी।

श्यामलवर्मा—एक बङ्गाधिप। वैदिक देखो।

श्यामला (सं० स्त्री०) श्यामल-टाप्। १ पार्वती। २ अश्व- गन्ध, असगंध। ३ कटभी। ४ जम्बू, जामुन। ५ कस्तूरी, मृगमद।

श्यामलाल (सं० पु०) संक्षेपरत्नावलीके प्रणेता।

श्यामलालु (सं० पु०) नीलालुक, नीला आलू।

श्यामलिका (सं० स्त्री०) नीली।

श्यामलित (सं० त्रि०) श्यामलतारकादित्वादि तच्। कृत- श्यामल, जो श्यामवर्ण किया गया हो।

श्यामलिमन् (सं० पु०) श्यामल इमनिच्। अतिशय श्यामल, घोर श्याम वर्ण।

श्यामली—१ युक्तप्रदेशके मुजफ्फरनगर जिलेकी एक तह- सील। इसका भूपरिमाण ४६१ वर्गमील है। श्यामली, थाना भावन, कझना, कैराना और बिदौली परगना ले कर यह उपविभाग बना है। पूर्वयमुना नहर और उसकी जलनालीसे जलका इन्तजाम चलता है।

२ मुजफ्फर जिलेका एक नगर और श्यामाली जिलेका विचार सदर। यह अक्षा० २९° २६' ४५" उ० तथा देशा० ७७° २१' १० पू० पूर्णयमुना नहरके वाएं किनारे अवस्थित है। यह नगर पहले महम्मदपुर जनार्दन नामसे प्रसिद्ध था। मुगल बादशाह जहांगीरके अमलमें श्याम नामक एक व्यक्तिने यहांका सुप्रसिद्ध वाजार वनवा दिया तभीसे इसका श्यामली नाम हुआ है।

१७९१ ई०में यह नगर एक महाराष्ट्र सेनापतिके अधिकारमें था। वह सिखोंके साथ षड़यन्त्र करके महाराष्ट्रशासनकर्त्ताके विरुद्ध युद्ध करनेकी तैयारी कर रहा है, ऐसा संदेह कर महाराष्ट्रशासनकर्त्ताने उसके विरुद्ध जार्ज टामस नामक एक प्रसिद्ध यूरोपीय सेनापतिको भेजा। टामसने उस नगरको तहस नहस कर विद्रोहिदलका निर्मूल कर दिया था।

१८०४ ई०में महाराष्ट्रदलने कर्नल वार्नको दलबलके साथ कैद कर लिया था। इस समय यदि लार्ड लेक नहीं पहुंचते तो न मालूम उन पर और क्या क्या मुसीबत गुजरता। अंगरेज सेनापतिके पहुंच जाने पर लार्ड लेकको वहुत उत्साह हुआ और बड़ी वीरतासे युद्ध कर उन्होंने अपनी प्राणरक्षा की। १८५७ ई०के गदरमें यहांके तहसीलदारने अंगरेजोंकी ओरसे नगररक्षा की थी। किन्तु थाना भवनके विद्रोहिदलने उसे परास्त कर नगर पर कब्जा कर लिया।

श्यामलेक्षु (सं० पु०) श्यामलः कृष्णवर्ण इक्षुः। कृष्णेक्षु, काले रंगकी ईख।

श्यामवर्ण (सं० पु०) श्यामः वर्णः। १ कृष्णवर्ण। (त्रि०) श्यामः वर्णो यस्य। २ कृष्णवर्णविशिष्ट, काले रंगका।

श्यामवर्त्म (सं० पु०) एक प्रकारका नेत्र रोग। इसमें आंखकी पलकें बाहर तथा भीतरसे हो कर फूल जाती हैं और उनमें पीड़ा होती है।

श्यामवाजार—वंगालके हुगली जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २३° ३५' १०" उ० तथा देशा० ८७° ३२' ५" पू० अजयनदके दक्षिण कुछ दूर पर अवस्थित है। यहां ११२५ हिजरीकी प्रतिष्ठित एक प्रचीन सराय विद्यमान है।

श्यामशवल (सं० पु०) पुराणानुसार यमके अनुचर दो कुत्ते जो उनके द्वार पर पहरा देनेका काम करते हैं। इन्हें सन्तुष्ट करनेके लिये एक प्रकारका व्रत करनेका भी विधान है।

श्यामशवलव्रत (सं० क्ली०) यमके अनुचर दो कुत्तेका तृप्तिसाधक एक व्रत।

श्यामशर (सं० पु०) एक प्रकारकी ईख जो बहुत अच्छी और गुणवाली मानी जाती है।

श्यामशालि (सं० पु०) श्यामः श्यामवर्णः शालिः। कृष्ण शालि धान्य, काला शालि धान।

श्यामशाह शङ्कर—वास्तुशिरोमणि नामक वास्तुशास्त्रके प्रणेता।

श्यामसर्प (सं० पु०) कृष्णसर्प, काला सांप।

श्यामसार (सं० पु०) कृष्ण खदिरका वृक्ष।

श्यामसुन्दर (सं० पु०) श्यामः सुन्दरश्च। १ श्रीकृष्ण। २ एक प्रकारका वृक्ष जो कदमें बहुत ऊंचा होता है। इसकी छाल प्रारम्भमें उज्ज्वल होती है, परन्तु ज्यों ज्यों यह पुराना होता जाता है, त्यों त्यों छाल काली होती जाती है। इसके हीरकी लकड़ी चमकदार होती है। पहाड़ों पर यह चार हजार फुटकी ऊंचाई तक पाया जाता है। इसकी लकड़ी प्रायः बढ़िया चीजोंके वनानेमें काम आती है। इससे खेतीके औजार वनाये जाते हैं।

श्यामसुन्दर—१ विवादार्णभङ्ग ग्रन्थके एक संग्रहकर्त्ता। २ दैवप्रतिष्ठा प्रयोगके प्रणेता। ये गङ्गाधर दीक्षितके पुत्र थे।

श्यामसुन्दर चक्रवर्त्ती—एक विख्यात पण्डित। ये शब्दरहस्यके प्रणेता रामकान्त विद्यावागीशके पिता थे।

श्यामा (सं० स्त्री०) श्यामो वर्णोऽस्त्यस्या इति अच्; टाप्। १ शारवौषधि। २ अप्रसूताङ्गना, जिन स्त्रियोंको सन्तानादि पैदा नहीं होती; बंझा। ३ राधाका एक नाम, जो श्याम या श्रीकृष्णके साथ उनका प्रेम होनेके कारण पड़ा था। ४ एक गोपीका नाम। ५ लगभग सवा या डेढ़ वालिस्त लम्बा एक प्रकारका पक्षी जिसका रंग काला और पैर पीले होते हैं। ६ सोलह वर्षकी तरुणी। ७ काले रंगकी गाय। ८ कबूतरी, मादा कबूतर। ९ काला अनन्तमूल; श्यामा लता। १० काली निसोथ। ११ प्रियंगु, वनिता। १२ वकुची; सोमराजी। १३ नील। १४ गुग्गुल। १५ सोमलता,

सामवल्ली। १६ भद्रमोथा। १७ गुडुच, गिलोय। १८ कस्तूरी, मुश्क। १९ वटपत्री, पाषाणभेदी। २० पिप्पली, पीपल। २१ हलदी, हरिद्रा। २२ हरी दूब। २३ तुलसी। २४ कमलगट्टा। २५ विधारा। २६ शिंशपावृक्ष, शीशम। २७ साँवाँ नामक अन्न। २८ काली गदहपूरना। २९ गोलोचन, गोरोचन। ३० परका या गुंदा नामक घास। ३१ मेढ़ासिंगी। ३२ हरीतकी, हर्रे। ३३ कोयल नामक पक्षी। ३४ यमुना। ३५ रात, यामिनी। ३६ स्त्री। ३७ छाया। ३८ शीतकालमें जिस स्त्रीका सर्वाङ्ग सुखोष्ण और ग्रीष्ममें सर्वाङ्ग सुखशीतल हो जाता है तथा जिसका वर्ण तप्तकाञ्चनके सदृश रहता है, उसको श्यामा कहते हैं। ३९ कालिका देवी, भगवती। कालिका देखो। (त्रि०) ४० तपाए हुए सोनेके समान वर्णवाली। ४१ श्याम रंगवाली, काली।

श्यामाक (सं० पु०) श्यामं श्यामवर्णमकतीति अक गतौ अण्। तृणधान्यविशेष, साँवाँ नामक अन्न। पर्याय—श्यामक, श्याम, त्रिबीज, अविप्रिय, सुकुमार, राजधान्य, तृणबीजोत्तम। गुण—मधुर, कषाय, तिक्त, लघु, शीतल, वातकारी, कफ, पित्त और व्रणदोषनाशक, ग्राही।

श्यामाङ्ग (सं० पु०) श्यामानि अङ्गानि यस्य। १ बुध-ग्रह। इसका वर्ण दूर्वा-श्याम माना गया है। (त्रि०) २ कृष्णवर्ण कलेवरविशिष्ट, जिसका शरीर कृष्णवर्णका हो, काले या साँवले रंगवाला।

श्यामाङ्गी (सं० स्त्री०) काले फूलकी अरहर। यह वैद्यकके अनुसार दीपन और पित्त तथा दाहनाशक मानी जाती है।

श्यामादिवर्ग (सं० पु०) सुश्रुतोक्त गणविशेष। श्यामालता, महाश्यामालता, निसोथ, दन्ती, लोध्र, कमलगट्टा, महानिम्ब, पुगीफल, मूसाकानी, ग्वालककड़ी, अमलतास, नाटाकरञ्ज, उहरकरञ्ज, गुड़ीच, छतिवन, मनसासीज, स्वर्णक्षीरीलता प्रभृति श्यामार्गादिवर्ग हैं। ये विषनाशक पौधे हैं और उदररोग तथा उदावर्त्त रोगमें विशेष लाभकारी हैं। (सुश्रुत सू० ३८ अ०)

श्यामानन्द—उत्कलमें वैष्णव धर्मप्रचारक एक महापुरुष। श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके बाद गङ्गा यमुना सरस्वती इस त्रिवेणी प्रवाहकी तरह तीन भक्तिमय विग्रहने श्रीकृष्ण चैतन्यके प्रवर्त्तित भक्तिस्रोतको प्रवाहित रखा। उन तीन महापुरुषोंमें एकका नाम श्रीनिवास आचार्य, दूसरेका ठाकुर नरोत्तम और तीसरेका श्यामानन्द था।

शककी १५वीं सदीके शेष भागमें उड़ीसाके अन्तर्गत दण्डेश्वर ग्राममें श्यामानन्दका आविर्भाव हुआ। इनके पिताका नाम श्रीकृष्णमण्डल था। ये जातिके सद्गोप थे। श्रीकृष्णमण्डलका पूर्ववास गौड़में था। वे गौड़का त्याग कर उत्कलके दण्डेश्वर ग्राममें आ कर बस गये। श्रीकृष्णमण्डलकी पत्नीका नाम दुरिका था। दुरिका भगवद्भक्तिपरायणा और पतिव्रता थी। श्रीकृष्णमण्डल भी धर्मानुरागके लिये लोकसमाजमें प्रसिद्ध थे।

बचपनमें सब कोई श्यामानन्दको दुःखी कृष्णदास नामसे पुकारा करते थे। श्यामानन्द नाम इनके गुरु हृदयानन्दका रखा हुआ है। प्रेमविलास और भक्तिरत्नाकरमें कई जगह इन्होंने कृष्णदास नामसे अपना परिचय दिया है।

कृष्णदासके बाल्यजीवनमें ही भावीमहत्त्वके अनेक चिह्न स्पष्ट दिखाई देते थे। वे बचपनसे ही कृष्णप्रेममें विभोर रहते थे। कृष्णविरहकी दुःसह व्यथासे इनका चित्त व्यथित रहता था। विपुल भोगविलास-वैभव रहने पर भी ये कृष्णविरहमें दुःखी थे। इस तरह कुछ दिन बीत गये। इसके बाद वे किसी तरह घरमें ठहर न सके, घर उन्हें बोझ-सा मालूम पड़ने लगा। बंधु बांधवोंने श्यामानन्दको घरमें रखनेकी बड़ी कोशिश की, पर वे बालूकी दीवाल खड़ी कर उस वैराग्यसिन्धुकी तरङ्गको रोक न सके। कृष्णदास अपने छोटे भाई बलराम पर संसारका कुल भार सौंप तीर्थपर्यटनको निकल पड़े।

घरसे निकल कर पहले वे अम्बुया नगर (अम्बिका) पहुंचे। यहां वैष्णवाचार्य हृदयचैतन्य उन्हें देख कर बड़े प्रसन्न हुए। फाल्गुनी पूर्णिमाको कृष्णदास हृदयानन्दसे दीक्षित हुए। इस समयसे वे गुरुदत्त श्यामानन्द नामसे पुकारे जाने लगे।

गौरीदासशिष्य हृदयचैतन्यसे दीक्षाग्रहणके बाद निम्नलिखित तीर्थस्थानोंके दर्शनार्थ निकले—वक्रे-

श्वर, वैद्यनाथ, गया, काशी, महाप्रयाग, मथुरा, यमुना, विश्रान्तस्थान, गोवर्द्धन, वृन्दावन, हस्तिना, द्वारका, कपिलतीर्थ, मत्स्यतीर्थ, शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची, कुरुक्षेत्र, पृथूदक, विन्दुसरोवर, प्रभास, त्रितकूप, विशाला, ब्रह्मतीर्थ, चन्द्रतीर्थ, सरस्वती, नैमिष, अयोध्या, सरयू, कौशिकी, पौलस्त्यआश्रम, गोमती, गण्डकी, षोड़शतीर्थ, महेन्द्रपर्वत, हरिद्वार, वदरिकाश्रम, पम्पा, सप्तगोदावरी, श्रीपर्वत, द्राविड़, वेङ्कटाद्रि, कामकोष्ठीपुर, मधुपुरी, कृतमाला, ताम्रपर्णी, मलयपर्वत, अगस्त्य, यज्ञशाला, अनन्तपुर, पञ्चाप्सरा, सरोवर, गोकर्ण, कुलालक, त्रिगर्त्तक, दुर्वेशन, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, रेवा, माहिष्मतीपुरी, मल्लतीर्थ, शूर्पारक, प्रतिचिरि, सेतुबंध, अवन्ती, जियड़नृसिंह, देवपुरी, त्रिमल्ल, कूर्मनाथ, गङ्गासागर, पुरुषोत्तम और नवद्वीप। इन सब स्थानोंके दर्शन कर वे अपने घर लौटे। कुछ दिन गृहाश्रममें रह कर इन्होंने फिरसे श्रीवृन्दावनकी यात्रा कर दी। राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड देख कर इनके नेत्रोंसे अश्रुधारा छूटने लगी। श्यामानन्दकी यह असाधारण प्रेमविह्वलता देख कर व्रजवासिमात्र ही विस्मित हो गये। श्रीमत् रघुनाथदास गोस्वामीके शिष्य दास व्रजवासी श्यामानन्दको रघुनाथ दास गोस्वामीके आश्रममें ले गये। दास गोस्वामीको देख कर श्यामानन्दने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। श्यामानन्दकी नयनाश्रुधारा पूर्ववत् चल रही थी। श्रीमत् दासगोस्वामीने श्यामानन्दको एक दिन अपने यहां रख कर दूसरे दिन भक्तिशास्त्र अध्ययनके लिये वृन्दावनमें श्रीजीवगोस्वामीके पास भेज दिया। इसी स्थानमें श्रीनिवास और नरोत्तमके साथ श्यामानन्दका प्रथम परिचय हुआ।

श्यामानन्दने बाल्यकालमें ही संस्कृत भाषामें व्याकरण आदि ग्रन्थोंमें अधिकार कर लिया था। इस समय इन्होंने दार्शनिक पण्डित श्रीजीवगोस्वामीके चरणोंका आश्रय ले कर भक्तिग्रन्थ पढ़ना आरंभ कर दिया। थोड़े ही समयमें भक्तिशास्त्र पर इनका पूरा अधिकार हो गया। इस प्रकार श्यामानन्द वर्षों व्रजमें रह कर फिरसे उत्कल लौटे।

भक्तिरत्नाकरमें लिखा है, कि श्रीनिवासाचार्य, नरोत्तम और श्यामानन्दने भक्तिग्रंथ ले कर वृन्दावनसे यात्रा की। श्रीजीव गोस्वामी काष्ठसम्पुटमें ग्रंथोंकी बड़ी सावधानीसे रख कर इन लोगोंके साथ मथुरा तक आये थे।

आखिर वे तीनों भक्त सर्वत्र पर्यटन करते हुए वनविष्णुपुर तक आये। राजा हम्वीर डकैतोंका सरदार था। उसने सम्पुटको बात सुन कर उसे धनरत्नपूर्ण समझा और साथियोंके साथ रातको जा कर वह सम्पुट चुरा लाया। किन्तु सम्पुट खोल कर देखा, कि वह धनरत्न नहीं है, ग्रंथोंसे परिपूर्ण है। ग्रंथ देखते ही उसका कलुषित मन पवित्र हो गया। उसने स्वामीको खोज लानेका हुकुम दिया। इधर श्रीनिवास आचार्य, नरोत्तम और श्यामानन्द आदिने उठ कर देखा, कि ग्रंथसम्पुट नहीं है, चुरा ले गया। इस पर वे शोकसे अधीर हो गये। चारों ओर इसकी तलाश करने लगे इसी समय किसीने श्रीनिवाससे आ कर कह दिया, कि राजा हम्वीर ग्रंथ चुरा ले गया है। श्रीनिवासने नरोत्तमसे कहा, "तुम श्यामानंदके साथ खेतरी चले जाओ, लोकनाथ प्रभुकी आज्ञाका पालन करो, वहांसे श्यामानंदको अच्छे साथियोंके साथ अम्बिकाके पथसे उत्कल भेज दो। ग्रंथका पता लगने पर मैं शीघ्र तुम लोगोंको खबर दूंगा, मैं खास कर उसी लिये यहां ठहर गया।" नरोत्तम और श्यामानंद यथासमय खेतरी पहुंचे। कुछ दिन बाद नरोत्तम बड़े कष्टसे श्यामानंदको उत्कल भेज देनेके लिये तैयार हुए।

रयनी ग्राममें अच्युत नामक शिष्ट करणवंशीय एक सुप्रसिद्ध जमींदार थे। श्यामानन्दके प्रसिद्ध और प्रधान शिष्य रसिक मुरारि इन्हींके पुत्र थे।

रसिकानंद बाल्यकालमें ही अनेक शास्त्रोंका अध्ययन कर भगवद्भक्त हो गये थे। वे कुछ दिन घण्टाशिला (घाटशिला) ग्रामके निर्जन स्थानमें बैठ कर भगवान्की आराधना किया करते थे। यहां वे एक दिन मन ही मन सोच रहे थे, 'मैं गुरु कहां पाऊंगा?' इस समय दैववाणी हुई, कि श्यामानन्द तुम्हारे गुरु होंगे। इसी स्थानमें तुम उनके दर्शन पाओगे। फलतः यथासमय

श्यामानन्दने वहां आ कर उन्हें दीक्षा प्रदान की।

रसिकानंदके आदेशसे उनकी स्त्री इच्छादेवी श्यामानंदसे मंत्र ले कर श्यामादासी नामसे प्रसिद्ध हुई।

कुछ दिन रसिकानंदके यहां रह कर श्यामानंदने पुरुषोत्तम जानेकी इच्छा प्रकट की। रसिकानंद भी उनके साथ साथ चले। राहमें वे दोनों चाकलिया ग्राममें ठहरे। वहां महायोगी दामोदर गोसांई रहते थे। दामोदर सर्वशास्त्रमें सुपण्डित थे। श्यामानंद और रसिकानंदके साथ दामोदर ज्ञान और योगविषयमें तर्क करके अपना विद्यागर्व दिखलाने लगे। किंतु श्यामानंदके मुखसे भक्तितत्त्वका विचार सुन कर दामोदर परास्त हुए। इसके बाद दामोदरने श्यामानंदसे मंत्रग्रहण किया। यहां और भी कुछ दिन रह कर श्यामानंद पुरुषोत्तमको चल दिये। रसिकमङ्गलमें लिखा है, कि वे एक बार फिर वृन्दावन गये थे। इस समय रसिकेन्द्र भी वहीं थे। व्रजधाममें दोनोंकी भेट हुई। इसके बाद दोनों ही उत्कलमें भक्ति प्रचार करनेके लिये चल दिये। इस बार नागपुरके रास्ते पर वे सेगला ग्राममें ठहरे। यहां विष्णुदास नामक एक धनी उनका शिष्य हुआ। अब विष्णुदास रसप्रयदास कहलाने लगा। वहांसे रोहिणी आ कर वे दोनों हरिनाम कीर्त्तन करने लगे। धीरे धीरे चारों ओर भक्तिकी बाढ़ उमड़ गई।

इसके बाद श्यामानंद द्वारा श्रीगोपीवल्लभ विग्रह प्रतिष्ठित हुआ। जिस ग्राममें उस विग्रहकी प्रतिष्ठा हुई, श्यामानंदने उस ग्रामका नाम गोपीवल्लभपुर रखा।

इस समयसे रसिकानंद और श्यामानंद उत्कलके उत्तराञ्चलमें प्रेमभक्तिका प्रचार करनेके लिये गाँव गाँव घूमने लगे। उत्कलके धनी, दरिद्र, राजा प्रजा बालक वृद्ध सभीके हृदयमें प्रेमभक्ति उमड़ आई। थोड़े ही दिनोंमें श्यामानंदका जीवनव्रत संपूर्ण हो गया। चारों ओर हरिनामका कल्लोल उठने लगा। प्रेमभक्तिके तरङ्गप्रवाहमें समस्त उत्कल बहने लगा। श्यामानंदने उत्कल और मेदिनीपुरमें हजारों महोत्सव किये। इन सब महोत्सवोंमेंसे किसी किसी महोत्सवमें मुसलमान भी शामिल होते थे। मेदिनीपुरके आलमगञ्जमें श्यामानन्दके पदार्पण करने पर एक भारी महोत्सव हुआ। इसमें मेदिनीपुरके सूबेदारने भी साथ दिया था। मुसलमान सूबेदारने इस महोत्सवका कुल खर्च दिया था।

श्यामानन्द ठाकुरकी तीन पत्नी थीं, श्यामप्रिया, यमुना और गौराङ्गदासी। श्यामानन्दके प्रधान प्रधान शिष्योंमें सर्वप्रधान बारह शिष्योंके नाम पर बारह पाट हुए हैं।

उत्कलके उत्तरांश और मेदिनीपुरके पश्चिम-दक्षिण अंशमें श्यामानन्द सम्प्रदायने एक समय प्रेमभक्ति द्वारा वैष्णवधर्मकी विपुल कीर्त्तिध्वजा फहराई थी।

श्यामानन्दने अपने जीवनके शेषभागमें उत्कलके नाना स्थानोंमें पर्यटन किया। एक समय उन्होंने दैववाणी सुनी, कि श्रीवृन्दावनमें महाप्रस्थानके लिये उनकी बुलाहट है। यह सुनते ही उन्होंने घरका परित्याग कर मैदानमें एक वृक्षके नीचे आश्रय लिया। तीन दिन तीन रात वे उसी जगह पड़े रहे। चिकित्सकोंने उन्हें वायुरोगसे पीड़ित बताया, हेमसागर-तैलकी व्यवस्था हुई। इससे उनका वायुरोग कुछ भी न हटा! वहांसे वे काशीयाड़ीको चल दिये। श्यामानन्द जब जहां जाते थे, उसी जगह सङ्कीर्त्तनकी तरङ्ग उमड़ती थी, उसी जगह प्रेमभक्तिका प्रवाह बहने लगता था।

धीरे धीरे श्यामानन्दका स्वास्थ्य खराब होता गया। उन्होंने रसिकानन्दको बुला कर कहा, "मैं अब अधिक दिन नहीं बचूंगा, भक्तोंको ले कर तुम भक्तिका प्रचार करो। वृन्दावनसे कई बार बुलाहट आ चुकी है, मैं अब अधिक दिन ठहर नहीं सकता।" इतना कह कर श्यामानन्द नृसिंहपुरमें उद्दन्तरायके घर आये। रुग्नावस्थामें वे चार मास वहीं ठहरे। जहां तक हो सका, अच्छे अच्छे चिकित्सकोंसे चिकित्सा कराई गई। श्यामानन्दने कहा, 'तुम लोगोंका भ्रम है, यत्न अनर्थक है, श्रीकृष्णकी आज्ञा ही बलवती होगी।' सबोंने मिल कर महाकीर्त्तन आरम्भ कर दिया। इस समय रात-दिनके हरिकीर्त्तनसे नृसिंहपुर गूंज उठा।

विविध उपदेश दे कर श्यामानन्दने अपने हाथसे तिलक लगाया। १५५२ शक आषाढ़ मासकी कृष्ण

प्रतिपद् तिथिको वे इस लोकका परित्याग कर सुरलोकको सिधारे।

श्यामाम्ली (सं० स्त्री०) श्यामा चासौ अम्ली चेति कर्मधारयः। नीलाम्ली।

श्यामायन (सं० पु०) विश्वामित्रके पुत्र। ये एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि थे।

श्यामायनि (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम।

श्यामायनी (सं० पु०) १ वैशम्पायनके शिष्योंका सम्प्रदाय। २ वह जो इस संप्रदायमें हो।

श्यामालता (सं० स्त्री०) कृष्णशारिवा, काला अनन्तमूल।

श्यामाह्वा (सं० स्त्री०) पिप्पली, पीपल।

श्यामिका (सं० स्त्री०) १ श्यामवर्ण, काला रंग। २ श्यामता, कालापन। ३ मलिनता, उदासी। ४ लोहान्तरसंसर्ग, खाद।

"हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा।" (रघु० १ अ०)

श्यामित (सं० स्त्री०) श्यामवर्णविशिष्ट, सांवला।

श्यामेक्षु (सं० पु०) कृष्णेक्षु, काली ईख।

श्यामेय (सं० पु०) श्यामका गोत्रापत्य।

श्याल (सं० पु०) श्यायते नर्मार्थी प्राप्यतेऽसौ इति श्यै बाहुलकात् कालन्। १ पत्नीका भाई, साला। (गीता १।३४) वाक्चोर, श्यालिक, श्वशुर्य्य, आत्मवीर। (जटाधर) सालेकी मृत्यु होने पर एक रात अशौच मानना होता है। २ भगिनीपति, बहनोई।

श्याल (हिं० पु०) गीदड़, सियार।

श्यालक (सं० पु०) श्याल एव स्वार्थे कन्। श्याल, साला। (शब्दरत्ना०)

श्यालकाँटा (हिं० पु०) स्वर्णक्षीरी, भरभाँड़।

श्यालकी (सं० स्त्री०) पत्नीकी बहन, साली। पर्याय—श्याली, केलिकुञ्चिका। (शब्दरत्ना०)

श्यालिका (सं० स्त्री०) पत्नीकी बहन, साली।

श्याव (सं० पु०) श्यै-बाहुलकात् वः। १ कपिशवर्ण, काला और पीला मिला हुआ रंग। २ शाक आदिका रंग। (भावप्रकाश) ३ मन्दविष वृश्चिकभेद, एक प्रकारका बिच्छू जिसका विष बहुत तेज नहीं होता। (सुश्रुत कल्प०) (त्रि०) ४ कपिश, काला और पीला मिला हुआ।

श्यावक (सं० पु०) राजर्षिभेद। (ऋक् ८।३।१२)

श्यावता (सं० स्त्री०) श्याववर्णका भाव या धर्म, कपिशता।

श्यावतैल (सं० पु०) आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

श्यावदत् (सं० त्रि०) श्यावा दन्ता यस्य (विभाषा श्यावतरोकाभ्यां। पा ५।४।१४४) इति दत्रादेशः। कृष्णपीत मिश्रित दन्तयुक्त, जिसके दाँत काले पीले हों। (सिद्धान्तकौ०) महाभारतके किसी ग्रन्थमें 'श्यावद' ऐसा देखा जाता है। (महाभारत १२।३४।३)

श्यावदन्त (सं० त्रि०) श्यावा दन्त यस्य (विभाषा श्यावारोकाभ्यां। पा ५।४।१७४) इति विभाषया पक्षे न दत्रादेशः। स्वार्थे कन् च। १ स्वाभाविक कृष्णवर्ण दशनयुक्त। २ प्रधान दन्तद्वय मध्यस्थ क्षुद्र दन्तविशिष्ट। ३ प्रधान दन्तोपरि दन्तान्तरयुक्त।

विष्णुस्मृतिमें लिखा है, कि शराब पीनेवाला शराबी जब कल्पों तक नरक भोगनेके उपरान्त, चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करता हुआ, मनुष्य योनिमें जन्म ग्रहण करता है, तब वह श्यावदन्तक हो कर ही अवतार लेता है।

"अथ नरकानुभूतदुःखानां तिर्य्यक्त्वमुत्तीर्णानां मानुष्ये लक्षणानि भवन्ति यथा—कुष्ठातिपातकी ब्रह्महा यक्ष्मी। सुरापः श्यावदन्तकः। सुवर्णहारी कुनखी। गुरुतल्पगो दुश्चर्म्मा।" (विष्णु)

कुनखी और श्यावदन्तक व्यक्ति यदि बारह रात तक पराकरूप कृच्छ्र चान्द्रायणव्रत करें, तो वे अपने अपने रोगोंसे छुटकारा पा सकते हैं। जब वे चान्द्रायण व्रत नहीं कर सकें, तो पाँच गाय ब्राह्मणको दान देवें। इससे भी उनका संकट दूर हो सकता है।

"कुनखी श्यावदन्तश्च द्वादशरात्रं कृच्छ्रं चरित्वोद्धरेयातां तद्दन्तनखौ इति। अत्र द्वादशरात्रं पराकरूपं। तत्र पञ्चधेनवः।" (विष्णु)

(पु०) ४ दन्तगतरोगविशेष। लहूकी खराबीसे जो दाँत काला हो जाता है, उसे श्यावदन्तक रोग कहते हैं।

मुखरोग देखो।

श्यावदन्तता (सं० स्त्री०) शावदन्तका भाव या धर्म।

श्यावनाय (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

श्यावनायीय (सं० लि०) श्यावनाय ऋषि-सम्बन्धी।

श्यावनाय्य (सं० पु०) श्यावनाय ऋषिका गोत्रापत्य।

श्यावपुत्र (सं० पु०) श्यावके गोत्रमें उत्पन्न एक ऋषिका नाम।

श्यावपुत्र (सं० पु०) श्यावपुत्रका गोत्रापत्य।

श्यावरथ (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

श्यावरथ्य (सं० पु०) श्यावरथका गोत्रापत्य।

श्यावल (सं० पु०) श्यावलिका गोत्रापत्य।

श्यावलि (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

श्याववर्त्मन् (सं० क्ली०) वर्त्मगत नेत्ररोग। नेत्ररोग देखो।

श्यावाश्व (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

श्यावाश्वि (सं० पु०) श्यावाश्व ऋषिका गोत्रापत्य।

श्यावास्य (सं० लि०) श्याववर्ण मुखविशिष्ट, जिसका मुंह कपिश रंगका हो।

श्यावास्यता (सं० स्त्री०) श्यावास्यका भाव या धर्म।

श्याह्या (सं० स्त्री०) रात्रिमें उत्पन्न तमोराशि।

श्येत (सं० पु०) श्यै गतौ (हृश्याभ्यामितन्। उण् ३।९३) इति इतन्। १ शुक्लवर्ण, सफेद रंग। (लि०) २ शुक्लवर्णयुक्त, सफेद, उजला। (अमर)

श्येतकोलक (सं० पु०) श्येतः कोलः क्रोड़देशो यस्य कन्। मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

श्येताक्ष (सं० लि०) श्वेतनेत्रयुक्त, सफेद आंखवाला।

श्येन (सं० पु०) श्यै गतौ (श्यास्त्या हृञ् विभ्य इनच्। उण् २।४६) इति इनच्। १ पाण्डुवर्ण। २ पक्षीविशेष, बाज।

यात्राकालमें यदि श्येनपक्षी मनुष्यके चारों ओर प्रदक्षिण करे और घरमें घुसते समय उसके बाईं ओरसे उड़ जाय और उस समय शान्तभावसे स्वाभाविक स्वर उच्चारण करे, तो शुभ होता है। दक्षिण, वाम या पृष्ठ इनमेंसे जिस किसी ओर श्येनपक्षी अवस्थान करे, तो जानना चाहिये, कि उसकी भाग्यलक्ष्मी सुप्रसन्न हैं। फिर सम्मुखभागमें रहनेसे वह मृत्युका ज्ञापक होता है, किन्तु युद्धयात्रा कालमें यदि इस प्रकार सम्मुखस्थ देखा जाय, तो छिन्नपताकाविशिष्ट जीर्ण रथारूढ़ व्यक्ति भी जयलाभ कर सकता है।

श्येनकपोतीय (सं० लि०) श्येनपक्षी और कपोतसंबन्धी उपाख्यान।

श्येनकरण (सं० क्ली०) १ किसी कामको उतनी ही तेजी और दृढ़तासे करना जितनी तेजी और दृढ़तासे बाज झपट कर अपने शिकारको पकड़ता है। २ भिन्न चितामें शवदाहन।

श्येनगामिन् (सं० लि०) १ द्रुतगामी, तेजीसे जानेवाला। (पु०) २ एक राक्षसका नाम।

श्येनघण्टा (सं० स्त्री०) दन्ती वृक्ष, उडुम्बरपर्णी।

श्येनचित् (सं० पु०) श्येनेन चयति अन्यपक्षिण इति चि-क्विप्। १ श्येनपक्षीरक्षक। श्येन इव चीयते इति (कर्मण्यग्न्याख्यायां। पा ३।२।९२) इति चि-क्विप्। २ यज्ञ आदिमें अग्नि स्थापित करनेकी वह वेदी जिसका आकार श्येन या बाज पक्षीके समान होता है।

श्येनचित्र (सं० पु०) व्यक्तिभेद।

श्येनजित् (सं० पु०) महाभारतोक्त व्यक्तिभेद।

श्येनजीविन् (सं० पु०) वह जो श्येन या बाज पकड़ और बेच कर जीविका निर्वाह करता हो। मनुने ऐसे आदमीके साथ एक पंक्तिमें बैठ कर खाने पीनेका निषेध किया है। (मनु ३।१६४)

श्येनजूत (सं० लि०) श्येनकर्तृक अपहृत।

श्येनपत्र (सं० क्ली०) श्येनपक्ष्म, बाजका रक्षक।

श्येनपत्वन् (सं० लि०) तेज घोड़ा अथवा बाजके समान शीघ्र गिरनेवाला।

श्येनपात (सं० पु०) १ श्येनपक्षी, बाज। २ बाजका तेजसे जाना। इस अर्थमें 'श्येनंपात' पद भी होता है। ३ बाजकी तरह गमन या शिकार द्वारा दिनपात।

श्येनबृहत् (सं० क्ली०) सामभेद।

श्येनयोग (सं० पु०) यागभेद।

श्येनहृत (सं० लि०) श्येनाहृत। श्येनाभृत देखो।

श्येनाख्य (सं० पु०) पक्षिभेद। (Ardea Sibirica)

श्येनाभृत (सं० लि०) बाज पक्षीके समान आकृतिवाला, गायत्री द्वारा अपहृत या संगृहीत। (ऋक् १।८०।२)

श्येनावपात (सं० पु०) बाज पक्षीको पकड़नेके लिये तेजीसे गिरना।

श्येनाश्व (सं० क्ली०) सामभेद।
श्येनाहृत (सं० पु०) सोमलता।
श्येनाहृत (सं० त्रि०) श्येनहृत।
श्येनिका (सं० स्त्री०) १ छन्दोभेद। यह दो प्रकारका होता है। प्रथम प्रकारके प्रति चरणमें ११ अक्षर होते हैं, जिनमेंसे १, ३, ५, ७, ६ और ११वाँ वर्ग गुरु और बाकी लघु होता है। द्वितीय प्रकारके भी प्रति चरणमें ११ अक्षर हैं, लेकिन उसके १से ६, ८ और १०वाँ वर्ग लघु और बाकी गुरु होता है। २ बाज पक्षीकी मादा।
श्येनी (सं० स्त्री०) १ श्वेनवर्णा। (जटाधर) २ श्येनिका देखो। ३ श्येनपत्नी, मादा बाज।

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि कश्यपसे दक्ष-कन्या ताम्राके गर्भसे श्येनी आदि बहुत-सी कन्याएं उत्पन्न हुईं तथा श्येनी आदिसे बाज, तोते, कबूतर आदि पक्षी उत्पन्न हुए थे। (मार्क० पु० १०४।८)
श्येनोपदेश (सं० पु०) स्त्रियोंका चितामें देह दग्ध करनेका विधान या शास्त्रोपदेश।
श्यैत (सं० पु०) १ वंशोपाधिभेद। (क्ली०) २ सामभेद।
श्यैनम्पाता (सं० स्त्री०) श्येनपातोऽस्यां वर्त्तते इति अः (सास्यां क्रियेति ञः। पा ४।२।५८) ततः श्येनतिलस्य पाते ञे (पा ६।३।७१) इति मुमागमः। मृगयाविशेष, शिकार।
श्यैनिक (सं० पु०) प्राचीन कालका एक प्रकारका याग जो एक दिनमें होता था।
श्यैनेय (सं० पु०) जटायुका एक नाम।
श्योणाक (सं० पु०) श्योनाक देखो।
श्योनाक (सं० पु०) श्यायते इति श्यै गतौ पिणाकादय श्चेति निपातनात् साधु। वृक्षविशेष, सोनापाढ़ा। इसे मङ्गोलियामें टण्टु, उत्कलमें फणफणा, पञ्जाबमें मुलिन्, नेपालमें करुमकन्द और तामिलमें पन कहते हैं। संस्कृत पर्याय—मण्डूकपर्ण, पत्रोर्ण, नट, कट्वङ्ग, टुण्टुक, शुकनाश, ऋक्ष, दीर्घवृन्त, कुटन्नट, शोणक, अरलु, स्योनाक, शोण, अवटु, दीर्घवृन्तक, पृथुशिम्बि, शल्लक, कटम्भर, मयूरजङ्घ, अरलुक, प्रियजीव। इसके दो भेद हैं, जिनमेंसे श्योनाक नामक पक्षी पृथुशिम्बि, पीतवृक्ष और प्रभूतसारविशिष्ट तथा भल्लूक पक्षी दीर्घवृन्तक और निःसार होता है। दोनोंका गुण—तिक्त, शीतल, त्रिदोषघ्न, पित्त, श्लेष्मा और अतिसार तथा सन्निपातज्वरनाशक।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि यह दीपन, पाकमें कटु, शीतल, संग्राही, तिक्त, वात, पित्त, श्लेष्मा, कास और आमनाशक है। इसका अपक्कफल रुक्ष, वातश्लेष्मनाशक, हृद्य, कषाय, मधुर, रोचक, लघु, दीपन, गुल्म, अर्श और क्रिमिनाशक, गुरु तथा वातप्रकोपक है।
श्योनाकपुटपाक (सं० पु०) अतीसार रोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शोणामूलकी छाल कूट कर और पिण्ड बना कर गाम्भारीके पत्ते में लपेट उस पर मिट्टीका लेप चढ़ावे। पीछे अंगारमें पुटपाकके विधानानुसार पाक कर उसका शीतल रस मधुके साथ सेवन करे। ऐसा करनेसे अतिसार रोग नाश होता है।
श्योरा (हिं पु०) बड़ी मेख।
श्रंग (हिं० पु०) शृङ्ग।
श्रंसन (सं० पु०) वह औषधि जो पेटमें जमे हुए मल या गोटेको बाहर निकालती हो। जैसे,—अमलतासका गूदा।
श्रङ्क (सं० पु०) गमन, जाना।
श्रत् (सं० अव्य०) १ सत्य। (निघण्टु) २ श्रद्धा, भक्ति (शुक्लयजुः) ३ विश्वास।
श्रथन (सं० क्ली०) श्रथ-ल्युट्। १ वध, हिंसा। २ यत्न, कोशिश, चेष्टा। ३ बराबर हृष्ट होना। ४ बन्धन। ५ मोक्षण। ६ शिथिलीकरण, अलग करना।
श्रथ्नान (सं० त्रि०) श्रम-शानच्। शिथिलतायुक्त।
श्रद्धान (सं० त्रि०) श्रद्धते इति श्रद्ध धा-शानच्। श्रद्धायुक्त। (भागवत ११२ अ०)
श्रद्धा (सं० स्त्री०) श्रद्धानमिति श्रत् धा (विदुभिदादिभ्योऽङ्। पा ३।३।१०४) इत्यङ् टाप्। १ संप्रत्यय। २ स्पृहा। (रामायण २।३८।२) ३ आदर। ४ शुद्धि। ५ शास्त्रार्थ या धर्मकार्यादिमें दृढ़प्रत्यय। ६ चित्तकी प्रसन्नता।

गीतामें स्वयं भगवान्ने कहा है, कि श्रद्धा या चित्तकी प्रसन्नता सात्त्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन प्रकारकी है। प्रत्येक व्यक्तिको अपनी अपनी प्रकृतिके

अनुसार श्रद्धा अर्थात् चित्तकी प्रसन्नता उत्पन्न होती है। क्योंकि, जीवमात्र ही श्रद्धामय है, अतएव संसारमें जिसकी जैसी श्रद्धा है उसको उसी प्रकृतिका आदमी कहते हैं; अर्थात् जिसकी सात्त्वकी श्रद्धा है, उसे सात्त्विक प्रकृतिका, जिसकी राजसी श्रद्धा है, उसे रजः प्रकृतिका और जिसकी श्रद्धा तामसी है, उसे तमःप्रकृतिका आदमी कहते हैं। सात्त्विकप्रकृतिके लोग देवतादिका, राजसप्रकृतिके लोग यक्षरक्ष आदिका और तामस प्रकृतिके लोग भूत प्रेत आदिका यजन अर्थात् उपासनाचर्चनादि करके चित्तकी प्रसन्नता लाभ करते हैं।

भगवान्‌ने दूसरी जगह कहा है, कि उक्त प्रकारसे अपनी अपनी श्रद्धाके वशवर्त्ती हो कर चाहे जिस किसीकी उपासना क्यों न करे, वह यदि प्रगाढ़ श्रद्धा या भक्तिपूर्वक उनकी अर्चना करे, तो वह मानो मेरी ही अर्चना करता है, यदि वह श्रद्धा विधिपूर्वक न की गई हो, तो उसकी पुनरावृत्तिकी निवृत्ति नहीं होती, क्योंकि जो अत्यन्त श्रद्धान्वित हो देवताओंकी उपासना करते हैं, वे देवत्वको पाते हैं तथा जो अपनी प्रकृतिकी अनुरूप श्रद्धासे यक्ष रक्षकी अर्चना करते हैं। वे उसी भावके होते हैं और जो इसी प्रकार भूत और प्रेतोंकी आराधना करते हैं वे प्रेतत्व और भूतत्वको पाते हैं, फिर जो शुद्ध सत्त्वमयी श्रद्धाका अनुसरण कर मेरा (अर्थात् अक्षय परमानन्द-स्वरूप विष्णुका) भजन करते हैं, वे मुझमें ही लय हो जाते हैं। अतएव उसकी फिर कभी भी पुनरावृत्ति नहीं होती, वे सर्वदा नित्य सत्य अक्षय परमानन्दका उपभोग करते हैं।

वह्निपुराणमें लिखा है, कि धर्मके साथ श्रद्धाका बहुत निकट सम्बन्ध है। विना श्रद्धाके धर्मार्जन हो नहीं सकता। धर्म उस प्रधान पुरुषके भाण्डारका अति सूक्ष्मतम पदार्थ है। विना श्रद्धाके केवल हस्त पदादि इन्द्रिय द्वारा अत्यन्त कष्ट अथवा प्रचुर धन खर्च करने पर भी उन्हें नहीं पा सकते। यहां तक कि देवताओंमें भी यदि श्रद्धाका अभाव रहे, तो वे भी धर्मसे वञ्चित होते हैं अर्थात् धर्मभ्रष्ट हो कर उन्हें भी तरह तरहका कष्ट भोगना होता है। अतएव श्रद्धा ही परम धर्म है, श्रद्धा ही ज्ञान, यज्ञ, तप, होम, स्वर्ग और मोक्ष है। और तो क्या, सारा संसार ही श्रद्धाके वशीभूत हैं, क्योंकि अश्रद्धाके साथ किसीके भी किसी कार्यमें सर्वस्व अथवा जीवन पर्यन्त दान करने पर भी कोई उससे संतुष्ट नहीं हो सकता या नहीं होता।

गीतामें स्वयं भगवान्‌ने भी कहा है, कि अश्रद्धाके साथ यज्ञ, दान, तप जो कुछ भी किया जाय, वह नितान्त साधुविगर्हित कार्य है तथा उससे इहलोक या परलोकका कोई भी फल नहीं मिलता। (गीता)

याज्ञवल्क्यने कहा है, कि दुष्कृतिसम्पन्न मूढ़ व्यक्ति श्रद्धा और विधिविवर्जित कर्म करता है और असुरगण उसका वह फल चुरा लेते हैं। फिर यदि वह व्यक्ति विशुद्धभावसे श्रद्धापूर्वक विधिसङ्गत कर्म करे, तो उसे अनन्त फल प्राप्त होता है।

देवलके मतसे आतिथेयादि सत्कार अन्यान्य सभी सत्कार्यानुष्ठान तथा लोगोंके प्रति किसी प्रकारकी ईर्षा, द्वेष, असूया आदि नहीं करना ही श्रद्धा और इस श्रद्धाके साथ शास्त्रप्रणोदित पात्रको अर्थ प्रदान ही दान है।

श्रद्धा—वैदिकयुग प्रसिद्ध एक आर्य-रमणी। यह महर्षि अत्रिकी पत्नी थीं। कर्द्दम मुनिके औरस देवहूतिके गर्भसे इनका जन्म हुआ। देवहूति ध्रुवके पिता राजा उत्तानपादकी भगिनी और स्वायम्भुव मनुकी कन्या थी।

श्रद्धातव्य (सं० त्रि०) जिस पर श्रद्धा की जा सके, श्रद्धा करनेके योग्य।

श्रद्धातृ (सं० त्रि०) श्रत्-धा-तृच्। श्रद्धाकारक।

श्रद्धादेय (सं० त्रि०) श्रद्धया देयः। श्रद्धापूर्वक दिया जानेवाला।

श्रद्धान (सं० क्ली०) श्रत्-धा-ल्युट्। श्रद्धा।

श्रद्धामनस् (सं० त्रि०) श्रद्धायुक्त, श्रद्धालु।

श्रद्धामनस्या (सं० स्त्री०) श्रद्धायुक्त मनकी इच्छाके साथ। (ऋक् १०।११३।९)

श्रद्धामय (सं० त्रि०) श्रद्धा स्वरूपे मयट्। श्रद्धा स्वरूप।

श्रद्धालु (सं० स्त्री०) श्रद्दधातीति श्रत्-धा (स्पृहि गृहियति दयि निद्रेति। पा ३।२।१५८) इति आ-लुच्। १ दोहदवती, वह स्त्री जिसके मनमें गर्भावस्थाके कारण अनेक प्रकारकी अभिलाषाएं हों। (त्रि०) २ श्रद्धायुक्त, श्रद्धावान्, जिसके मनमें श्रद्धा हो।

श्रद्धावत् (सं० त्रि०) श्रद्धा विद्यतेऽस्य श्रद्धा-मतुप् मस्य व। १ श्रद्धायुक्त, जिसके मनमें श्रद्धा हो। (गीता ४।३९) २ धर्मनिष्ठ, जिसके मनमें धर्मके प्रति निष्ठा हो। श्रद्धावान् व्यक्ति आत्मज्ञान लाभ कर सकते हैं।

"गुरुवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा।" (वेदान्तसार)

गुरु और वेदान्त वाक्यमें जो एकान्त विश्वास है, उसे श्रद्धा कहते हैं। जो गुरु और वेदान्त वाक्यमें विश्वास रख भगवानकी उपासना तथा सभी कार्योंका अनुष्ठान करते हैं, वही ज्ञानलाभ कर उसी ज्ञानसे शान्तिसुख अनुभव करते हैं।

श्रद्धास्पद (सं० त्रि०) जिसके प्रति श्रद्धा की जा सके, श्रद्धापात्र, पूजनीय।

श्रद्धिन (सं० त्रि०) श्रत्-धा-णिनि। श्रद्धायुक्त, जिसके मनमें श्रद्धा हो।

श्रद्धिव (सं० त्रि०) श्रद्धायुक्त, श्रद्धायत्न द्वारा लभ्य। (ऋक् १०।१२५।४) एकमात्र ब्रह्म ही श्रद्धिव अर्थात् श्रद्धा और यत्न द्वारा लभ्य हैं।

श्रद्धेय (सं० त्रि०) श्रत् धा-यत्। श्रद्धार्ह, श्रद्धाके योग्य, श्रद्धास्पद।

श्रद्धेयत्व (सं० क्ली०) श्रद्धेयस्य भावः त्व। श्रद्धेयका भाव या धर्म, श्रद्धा।

श्रन्थ (सं० पु०) श्रथ्नाति मोचयति भक्तान् संसारादिति श्रन्थ-अच्। १ विष्णु। जो भक्तोंको संसारसे अर्थात् जन्म मृत्युके हाथसे मुक्ति देते हैं, उसे श्रन्थ अर्थात् विष्णु कहते हैं। (त्रिका०) श्रन्थ भावे घञ्। २ मोचन। ३ प्रति हर्षण।

श्रन्थन (सं० क्ली०) श्रन्थ भावे ल्युट्। १ सन्दर्भ। २ मोचन। ३ प्रतिहर्षण।

श्रन्थित (सं० त्रि०) श्रन्थ-क्त। १ ग्रन्थित। २ बद्ध, बंधा हुआ। ३ मुक्त। ४ हर्षित, खुश।

श्रपण (सं० पु०) गार्हपत्य अग्निके द्वारा चरु पकानेकी क्रिया।

श्रपणीय (सं० त्रि०) रन्धनयोग्य, पकाने लायक।

श्रपयितृ (सं० त्रि०) रन्धनकारी, पाचक।

श्रपित (सं० त्रि०) श्रप-क्त। १ पक्व, पका हुआ। (पु०) २ घृत, दुग्ध।

श्रपिता (सं० स्त्री०) श्रप-क्त-टाप्। काञ्जिक, कांजी।

श्रम (सं० पु०) श्रम-घञ्, नोदात्तोपदेशस्येति वृद्ध्यभावः। १ तपस्या। २ खेद। ३ श्रान्ति। ४ शास्त्रोंका अभ्यास। ५ चिकित्सा, इलाज। ६ प्रयास। ७ अभ्यास। ८ किसी कार्यके सम्पादनमें होनेवाला शारीरिक अभ्यास, शरीरके द्वारा होनेवाला उद्यम, परिश्रम, मेहनत, मशक्कत। ९ क्लान्ति, थकावट। १० दौड़धूप, परेशानी। ११ स्वेद, पसीना। १२ व्यायाम, कसरत। १३ साहित्यमें संचारी भावोंके अन्तर्गत एक भाव, कोई कार्य करते करते संतुष्ट और शिथिल हो जाना।

श्रमकण (सं० पु०) स्वेद-विन्दु, पसीनेकी बूंदें जो परिश्रम करने पर शरीरसे निकलती हैं।

श्रमकर (सं० पु०) करोतीति करः, श्रमस्य करः। श्रमजनक, जिसमें परिश्रम हो।

श्रमघ्न (सं० त्रि०) श्र ं हन्ति हन-टक्। श्रमनाशक, जिससे श्रम दूर हो।

श्रमछिद् (सं० त्रि०) श्र ं छिनत्ति छिद्-क्विप्। श्रमनाशक, श्रम दूर करनेवाला।

श्रमजल (सं० क्ली०) श्रमस्य जलं। स्वेद, पसीना।

श्रमजित (सं० त्रि०) जो मनमाना परिश्रम करने पर भी न थके, श्रमको जीत लेनेवाला।

श्रमजीविन् (सं० त्रि०) १ शारीरिक परिश्रम करके जीविका निर्वाह करनेवाला, मेहनत करके पेट पालनेवाला। (पु०) २ मजदूर, कुली।

श्रमण (सं० पु०) श्राम्यति तपस्यतीति श्रम-ल्यु। १ बौद्ध यतिविशेष। बौद्ध संन्यासी तपस्या करते हैं, इसलिये इन्हें श्रमण कहते हैं। श्रम धातुका अर्थ तपस्या है। २ साधारण यति। ३ नीच कर्मजीवी, वह जो नीच कर्म करके जीविका निर्वाह करता हो। ४ श्रमजीवी, मजदूर। ५ नीच, घृणित, अपकृष्ट।

श्रमणक (सं० पु०) श्रमण स्वार्थे कन्। श्रमण देखो।

श्रमणा (सं० स्त्री०) श्रमण-टाप्। १ सुदर्शना नामक ओषधि। २ मुण्डिरी, मुंडी। ३ मांसी, जटामांसी। ४ शबर जातिकी एक स्त्रीका नाम। ५ संन्यासिनी।

श्रमणाचार्य—एक भारतीय राजदूत। रोमसम्राट् अगष्टस्की सभामें ये ईसाजन्मके पहले २६-२१ ई०के मध्य पहुंचे। ष्ट्राबोने लिखा है, कि निकोलस डामासेनसको अन्तिओक-एपिडाफने नगरमें एक भारतीय दूतसे भेंट हुई। वह व्यक्ति Pandion या Poros नामक राजासे ग्रीकभाषामें लिखित एक पत्र ले कर सम्राट् अगष्टसके पास जा रहा था। ग्रीकग्रन्थमें उसका नाम Zarmanochegas (श्रमणाचार्य) और धाम *Barygaza* (भरोंच) लिखा है। होरेश, फ्लोरस और स्युटोनियस तथा हिरोनिमासने Conon chronicon नामक ग्रंथमें इसका उल्लेख किया गया है। तारागोणवासी Orosius का कहना है, कि २७ खृष्टपूर्वमें अगष्टस सोजरके साथ एक भारतीय शकदूतको स्पेनराज्यमें भेंट हुई थी। रोम और ग्रीसके साथ भारतीय वाणिज्य वृद्धि ही इसका उद्देश्य था।

श्रमनुद (सं० त्रि०) श्रमं नुदति नुद क्विप्। श्रमापहारक, श्रमनाशक।

श्रमविन्दु (सं० पु०) श्रमकण, पसीनेकी बूंदें जो परिश्रम करने पर शरीरसे निकलती हैं।

श्रमभञ्जिनी (सं० स्त्री०) नागवल्ली लता जो थकावट दूर करनेवाली मानी जाती है।

श्रमयु (सं० पु०) श्रम कर्त्तृक एकीभूत, युक्त, श्रान्त; परिश्रमयुक्त।

श्रमवत् (सं० त्रि०) श्रमो विद्यतेऽस्य श्रम-मतुप् मस्य व। श्रमयुक्त, श्रमविशिष्ट।

श्रमवारि (सं० क्ली०) श्रमजन्यं वारि जलं। स्वेदजल, परिश्रमके कारण शरीरसे निकलनेवाला पसीना।

श्रमविनयन (सं० क्ली०) श्रमस्य विनयनं। १ श्रमापनोदन। (त्रि०) २ श्रमापनोदनकारक।

श्रमविनोद (सं० पु०) श्रमेण विनोदः। वह सुख जो परिश्रमसे हो।

श्रमविभाग (सं० पु०) श्रमस्य विभागः। किसी कार्य्यके भिन्न भिन्न अङ्गोंके सम्पादनके लिये अलग अलग व्यक्तियोंकी नियुक्ति, परिश्रम या कामका विभाग।

श्रम-शीकर (सं० पु०) श्रमकण, श्रमसे होनेवाला पसीना। (गीतगोविन्द १२।२२)

श्रम-सहिष्णु (सं० त्रि०) परिश्रमी, जो यथेष्ट श्रम कर सकता हो, मेहनती।

श्रमसाध्य (सं० त्रि०) जिसके सम्पादनमें श्रम करना पड़े, जो सहजमें या विना परिश्रम न हो सके।

श्रमसिद्ध (सं० त्रि०) परिश्रम द्वारा निष्पादित।

श्रमसीकर (सं० पु०) श्रमविन्दु, पसीना।

श्रमस्थान (सं० क्ली०) १ कर्मस्थान, कारखाना। २ वह स्थान जहां सेना कवायद करती है। अंगरेजीमें इसे Drilling place कहते हैं।

श्रमाधायिन् (सं० त्रि०) १ क्लेशदायक, क्लान्तिजनक। २ जो कष्टसे हो।

श्रमाम्बु (सं० क्ली०) श्रमजल, श्रमवारि, पसीना।

श्रमार्त्त (सं० त्रि०) श्रमकातर, क्लान्त।

श्रमित (सं० त्रि०) श्रान्त, जो श्रमसे शिथिल हो गया हो, थका हुआ।

श्रमिन् (सं० त्रि०) श्रम इन् वा श्राम्यति इति श्रम (शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्। पा ३।२।१४१) इति घिनुण्। १ श्रमविशिष्ट, परिश्रमी। २ श्रमजीवी।

श्रय (सं० पु०) श्रि (एरच्। पा ३।३।५६) इति अच्। आश्रय।

श्रयण (सं० क्ली०) श्रि-ल्युट्। आश्रय। पर्याय—श्राय।

श्रव (सं० पु०) श्रूयतेऽनेनेति श्रु (ऋदोरप्। पा ३।३।५७) इति अप्। १ श्रवणेन्द्रिय, कान। श्रु भावे अप्। २ श्रवण, सुनना। श्रूयते इति कर्म्मणि अप्। ३ शब्द।

श्रवण (सं० क्ली०) श्रूयतेऽनेनेति श्रु-करणे ल्युट्। कर्ण, कान। सुखबोधमें लिखा है, कि गर्भस्थित बालकके छः महीनेमें दोनों कानके छेद निकलते हैं। "षण्मासाभ्यन्तरे श्रवणयोश्छिद्रं भवति" (सुखबोध) २ श्रुति, श्रवणेन्द्रियज्ञान। श्रवणेन्द्रिय द्वारा जो ज्ञान होता है, उसे श्रवण कहते हैं।

नीतिशास्त्रोक्त धीगुणमेंसे एक। शुश्रूषा, श्रवण और ग्रहण आदि धीगुणपद वाच्य हैं।

३ यथोक्त विधानानुसार शास्त्रोक्त वाक्य श्रवण, मनन और निदिध्यासनादि मुक्ति प्राप्तिका कारण। श्रुतिमें लिखा है, कि "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्य मन्तव्यः निदिध्यासितव्यश्च।"

हे आत्रेयि! आत्मा श्रवण, मनन और निदिध्यासन करो। शास्त्रवाक्य केवल सुननेसे ही जो श्रवण किया जाता है सो नहीं, शास्त्र वाक्य सुन कर तदनुसार कार्य्य करनेका नाम ही श्रवण है। पहले श्रवण करना होता है अर्थात् शास्त्रमें जो कुछ कहा गया है, उसे सुनो। उस वाक्यका श्रवण कर उसके तात्पर्य्यका अवधारण तथा उसके अनुसार कार्य करनेको श्रवण कहते हैं। केवल शास्त्र सुननेसे ही वह श्रवणपदवाच्य नहीं होगा। इस प्रकार श्रवणसिद्ध होनेके बाद मनन और निदिध्यासन करना।

वेदान्तसारमें लिखा है, कि षड़्विध लिङ्ग द्वारा अशेष वेदान्तकी अद्वितीय वस्तुमें तात्पर्यावधारणका नाम श्रवण है।

(पु० क्ली०) श्रवणा नक्षत्र।

श्रवणक (सं० पु०) श्रवण स्वार्थे कन्। श्रवण देखो।

श्रवणगोचर (सं० पु०) श्रवणयोर्गोचरः। कर्णगोचर, श्रवण।

श्रवणदत्त (सं० पुं०) कौहलगोत्रीय एक वैदिक आचार्यका नाम।

श्रवणद्वादशी (सं० स्त्री०) श्रवणायुक्ता द्वादशी, श्रवणानक्षत्रयुक्त भाद्रशुक्लाद्वादशी। यह तिथि अत्यन्त पुण्यदायिनी है। इस तिथिमें उपवास करके विष्णुपूजा करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है। इस तिथिका उपवास अत्यन्त फलजनक है। इस दिन बुधवार पड़नेसे महाफलजनक होता है। इस दिन स्नानदान भी शुभ है।

एकादशी या द्वादशी तिथिमें श्रवणानक्षत्र होनेसे उसको श्रवणद्वादशी कहते हैं। इस तिथिका दूसरा नाम विजया है। इस दिन विष्णुपूजा करनेसे अक्षयफल प्राप्त होता है। पूर्व्व दिन एक बार भोजन करके द्वादशीके दिन उपवास करे। इस द्वादशी तिथिमें काँसेके बरतनमें भोजन, माष, मधु, लोभ, मिथ्याभाषण, व्यायाम, व्यवाय, दिवास्वप्न, अञ्जन, शिलापिष्ट द्रव्य और मसूर ये सब द्रव्य वर्जनीय हैं।

तिथितत्त्वधृत भविष्योत्तर वचनमें लिखा है, कि श्रवणोपेता द्वादशी तिथि सर्वपापविनाशिनी है। इस तिथिमें यदि बुधवार पड़े, तो शतगुण फललाभ होता है। द्वादश द्वादशीमें उपवास करनेसे जो फल होता है, इस द्वादशीमें उपवास करनेसे वही फल प्राप्त होता है।

जहां तिथि और नक्षत्रयोगमें उपवास करने कहा है, वहां जब तक एकका क्षय न हो, तब तक उपवास करना होगा। एकादशीके दिन यदि श्रवणानक्षत्र हो, तो उस दिन उपवास करके द्वादशीके दिन पारण करे। किन्तु जहां एकादशीके उपवास दिनमें श्रवणानक्षत्र न हो और द्वादशीके दिन हो, वहां दोनों ही दिन उपवास करना होगा। शास्त्रमें लिखा है, कि एक व्रत आरम्भ करके जब तक वह समाप्त न हो, तब तक अन्य व्रत नहीं कर सकते। अतएव एकादशीके उपवासरूप व्रत करके उस व्रतके अन्तमें पारण शेष नहीं होनेसे श्रवणद्वादशीका उपवास किस प्रकार हो सकता? उत्तरमें यही कहना है, कि दोनों उपवास ही हरिके उद्देशसे किये जाते हैं, इस कारण एकको समाप्त किये बिना दूसरा व्रत करनेमें कोई दोष न होगा।

यदि कोई दोनों दिन उपवास करनेमें असमर्थ हो, तो एकादशीके दिन भोजन करके श्रवणद्वादशीका उपवास करे। उस उपवास द्वारा ही पूर्व्व एकादशीका उपवासजनित पुण्य होगा। किन्तु द्वादशीका कदापि परित्याग न करे।

श्रवणपथ (सं० पु०) श्रवणस्य पन्था, यच् समासान्तः। श्रवणका पथ, श्रवणेन्द्रिय, कान।

श्रवणपालि (सं० स्त्री०) कर्णपालि।

श्रवणभट्ट—निम्बार्क सम्प्रदायके एक गुरु। ये पद्माकर भट्टके शिष्य और भूरिभट्टके गुरु थे।

श्रवणभृत (सं० त्रि०) श्रवण द्वारा धृत। अनुक्षण सुन सुन कर चित्तमें जो धारण किया जाता है, उसे श्रवणभृत कहते हैं।

श्रवणमूल (सं० क्ली०) कर्णमूल।

श्रवणरुज् (सं० क्ली०) श्रवणपीड़ा, कर्णरोग।

श्रवणविद्या (सं० स्त्री०) वह विद्या जो श्रवणेन्द्रियके सम्पर्कसे मानसिक तृप्ति प्रदान करती है। जैसे,—संगीतशास्त्र।

श्रवणविभ्रम (सं० पु०) श्रवणस्य विभ्रमः। अन्यथा श्रवण, सुननेमें भूल।

श्रवणविषय (सं० पु०) श्रवणयोर्विषयः। श्रवणगोचर।

श्रवण-वेलगोल (श्रमण-वेलगोला अर्थात् श्रमणोंकी दीर्घिका)—महिसुरराज्यके हस्सन जिलान्तर्गत एक प्राचीन बड़ा ग्राम। यह अक्षा० १२° ५०′ १०″ उ० तथा देशा० ७६° ३१′ ३१″ पू०के मध्य चन्द्रवेट्टा और इन्द्रवेट्टा नामक दो बड़े शैलके बीचमें अवस्थित है। जैन उपाख्यानसे जाना जाता है, कि जिनधर्म-प्रवर्त्तकके छः प्रधान-शिष्य थे, उनमेंसे भद्रबाहु एक था। भद्रबाहु जिनधर्मका प्रचार करनेके लिये स्वशिष्य सम्प्रदायके साथ उज्जयिनीके दक्षिण भारत गया; यहां उनकी मृत्यु हुई। प्रवाद है, कि मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्तने संसारसे वीतराग हो राज्य सम्पद् पर लात मारी और पीछे संन्यासधर्मका अवलम्बन किया। इस समय वे जगद्वासीकी भलाईके लिये जिनगुरुको दाक्षिणात्य ले गये। यह प्राचीन घटना खृष्टपूर्व ४थी सदीमें वहांके पर्वतगात्रमें उत्कीर्ण है। चन्द्रगुप्तके पुत्र बौद्ध सम्राट् अशोक भी यहां आये थे।

चन्द्रवेट्टा पर्वत समुद्रपृष्ठसे ३३२५ फुट ऊंचा है। इसके सर्वोच्च शिखर पर गोमतेश्वरकी ६०.फुट ऊंची एक प्रतिमूर्त्ति स्थापित है। मूर्त्तिके पादपृष्ठ पर जो लिपि है; उससे जाना जाता है, कि चामुण्डराय नामक एक राजाने ५० ई०सन्‌के पहले उस मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की मूर्त्तिके चारों ओर बड़ी बड़ी अट्टालिकाएं हैं जो चहारदिवारीसे घिरी हैं। चहारदिवारी गङ्गाराय नामक एक व्यक्तिकी कीर्त्ति है। गङ्गाराय होयशाल-वल्लाल वंशके राज्यकालमें उसे बनवा गये हैं।

उक्त मूर्त्ति उलङ्ग है और उत्तरकी ओर मुंह किये ध्यानमग्न अवस्थामें अवस्थित है। शिरके बाल घुंघुराले हैं और दोनों कान बड़े-बड़े हैं। दोनों हाथ घुटने तक लटक रहे हैं, और पैर पद्मके ऊपर स्थापित हैं। वह मूर्त्ति ध्यानमग्न बुद्धकी प्रतिमूर्त्ति-सी जान पड़ती है। प्रत्नतत्त्वविद् मूर्त्तिकी गठनप्रणाली देख कर अनुमान करते हैं, कि पर्वतका शिखरदेश काट छाट कर वह मूर्त्ति बाहर निकाली गई है। उसका शिल्पकार्य इतना मनमुग्धकर है, कि हठात् देखते ही मालूम होता है, कि थोड़े ही दिन हुए किसी निपुणशिल्पीने वह मूर्त्ति काट रखी है। उस मूर्त्तिके चारों ओर छोटी बड़ी अट्टालिका और मन्दिरके घेरे पर इसी तरहकी ७२ मूर्त्तियां हैं।

दूसरी ओर इन्द्रवेट्टा शैलके नीचे प्राचीन अक्षरमें लिखित कुछ शिलालिपि देखी जाती हैं। वे सब अक्षर प्रायः १ फुट लंबे हैं। लिपि देखनेसे मालूम होता है, कि एक समय जैनोंके धर्म और शास्त्रचर्चा करनेका प्रधान केन्द्र था। यहां आज भी जैनोंके गुरु रहते हैं। टीपू सुलतानने जैन गुरुको अपने अधिकार और देवमन्दिरके लभ्यांशसे वञ्चित किया था।

इस स्थानका प्राचीन इतिहास कुछ भी मालूम नहीं। ८६० शकमें उत्कीर्ण एक शिलालिपिसे जाना जाता है, कि राष्ट्रकूटराज खोट्टिग और २य कक्कके अधीन मारसिंह नामक सामन्त द्वारा यह स्थान शासित होता था। यहां जो शिलालिपि मिली है, उसमें लिखा है, कि राजा ३य कृष्णने उक्त मारसिंहको गुजरात जीतनेके लिये भेजा था। मारसिंहने नलम्बवाड़ीके पल्लवोंको परास्त कर मान्यखेट, गोनूर और उच्छङ्गीर पर कब्जा कर लिया था।

१०५० शकमें (११२८ ई०की १०वीं मार्च रविवार) उत्कीर्ण एक समाधिलिपिमें लिखा है, कि जैनाचार्य मल्लिसेन मलधारिदेवने यहां अनशनव्रतका अवलम्बन कर देहरक्षा की थी। ११५९ ई०में उत्कीर्ण यहांकी एक दूसरी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि राजा १म नरसिंह त्रिभुवनमल्ल या भुजवल-वीर होयशालवंशीय राजा विष्णुवर्द्धनके पुत्र थे। एछलदेवीसे इनका विवाह हुआ था। इनके अधीन पश्चिम गङ्गावंशीय राछमल्ल या हुल्लमय यहांके शासनकर्त्ता हो कर जैनधर्मके प्रचारमें नियुक्त हुए। १२२४ ई०में उत्कीर्ण इस स्थानकी एक दूसरी शिलालिपिसे ज्ञात होता है, कि होयशालवंशीय वीरवल्लालात्मज २य नरसिंहने देवगिरिके यादवराजसे हृतराज्य हो द्वारसमुद्रमें राजधानी बसाई थी। उनके राज्यकालमें महाप्रधान पोलाल्वने हरिहर मन्दिरकी स्थापना की। देवमूर्त्तिके नामानुसार वह स्थान हरिहर कहलाया।

अभी यहां पूर्वसमृद्धिका कोई भी चिह्न नहीं है।

स्थानीय अधिवासियोंके यत्नसे यहां पीतलके बरतन बनानेका कारबार आज भी चलता है। ये सब बरतन भारतके नाना स्थानोंमें विक्रयार्थ भेजे जाते हैं। ऊपर कहे गये मन्दिरादि आज भी संस्कृत अवस्थामें खड़े हैं। जैनधर्मका क्षीण स्मृतिनिदर्शन यहां विद्यमान है।

श्रवणव्याधि (सं० पु०) कर्णपीड़ा, कानकी एक बीमारी।

श्रवणशीर्षिका (सं० स्त्री०) श्रावणी वृक्ष, गोरखमुंडी।

श्रवणहारिन् (सं० त्रि०) श्रवणं हरति हृ-णिनि। कर्णमधुर, जो कानोंको भला लगे, सुननेमें अच्छा ज्ञान पड़नेवाला।

श्रवणा (सं० पु० स्त्री०) १ नक्षत्रविशेष, अश्विनी आदि २७ नक्षत्रोंमेंसे बाईसवां नक्षत्र। इस नक्षत्रकी आकृति शरकी तरह है। इसमें तीन तारे हैं, अधिष्ठात्री देवता हरि हैं।

इस नक्षत्रमें यदि किसी बालकका जन्म हो, तो वह शास्त्रानुरागी, बहुमित्र और सुपुत्रयुक्त, शत्रुविजेता और पुराणादि सुननेमें अतिशय अनुरागी होता है।

ज्योतिषमें लिखा है, कि श्रवणादि ७ नक्षत्रोंमें गृहारम्भ या गृहोपकरण तृणकाष्ठादिका संग्रह नहीं करना चाहिये अर्थात् गृहनिर्माण सम्बन्धीय कोई भी कार्य करना मना है। करनेसे अग्निपीड़ा, भय, शोक आदि होते हैं। इस नक्षत्रमें दक्षिण दिशाकी यात्रा भी निषिद्ध है।

श्रवणा नक्षत्रमें जन्म होनेसे मकर राशि होती है। अष्टोत्तरीके मतसे श्रवणा नक्षत्रमें वृहस्पतिकी दशा पड़ती है, किन्तु विंशोत्तरीके मतसे इस नक्षत्रमें जन्म होने पर चन्द्रकी दशा पड़ती है। (स्त्री०) २ मुण्डरिका वृक्ष। ३ प्रपौण्डरीक नामक गन्धद्रव्य, पुंडरिया।

श्रवणाह्वया (सं० स्त्री०) १ निर्विषी नामक तृण। २ जल चौलाई।

श्रवणिका (सं० स्त्री०) श्रवणा देखो।

श्रवणी (सं० स्त्री०) १ पुंडेरी। २ महामुण्डी, गोरखमुंडी।

श्रवणीय (सं० त्रि०) श्रु-अनीयर्। श्रवणयोग्य, सुनने लायक।

श्रवन् (हिं० पु०) श्रवण, कान।

श्रवना (हिं० क्रि०) गिराना, बहाना।

श्रवस् (सं० क्ली०) श्रूयतेऽनेनेति श्रु 'सर्वधातुभ्योऽसुन्' इति असुन्। १ कर्ण, कान। (अमर) २ अन्न। (निघण्टु २।७) ३ धन। (निघण्टु २।१०) ४ यशः। ५ शब्द। ६ आकर्णन, श्रवण। ७ क्षरण, च्युति।

श्रवस्काम (सं० त्रि०) १ अन्नाभिलाषी। (ऋक् ८।२।३८) २ धनकामी, सुखकामी।

श्रवस्य (सं० क्ली०) श्रवस्-यत्। श्रवणीय।

श्रवस्या (सं० स्त्री०) यशः या अन्नकी इच्छा।

श्रवस्यु (सं० त्रि०) अन्नेच्छाकारी, अन्नेच्छुक।

श्रवाय्य (सं० पु०) श्रु श्रवणे (श्रुदक्षिस्पृहिगृहिभ्य आय्यः। उण् ३।९६) इति आय्य। १ बलियोग्य पशु, यज्ञीय पशु। (त्रि०) २ श्रवणीय।

श्रविष्ठ (सं० त्रि०) १ श्रविष्ठा नक्षत्रयुक्त। (पु०) २ एक ऋषिका नाम।

श्रविष्ठक (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

श्राविष्ठायन देखो।

श्रविष्ठा (सं० स्त्री०) श्रवणमिति श्रवः सोऽस्या अस्तीति मतुप्, अतिशयेन श्रववती इति इष्ठन्, विन्मतुपो लुगिति मतुपो लुक्। १ धनिष्ठा नक्षत्र। २ चित्रककी कन्या। (हरिवंश) ३ राजाधिदेवकी कन्या। (हरिवंश) ४ पैप्पलाद और कौशिककी माता। इनका दूसरा नाम प्रविष्ठा भी था।

श्रविष्ठाज (सं० पु०) श्रविष्ठायां जायते इति जन-ड। १ बुधग्रह। (त्रिका०) (त्रि०) २ श्रविष्ठा अर्थात् धनिष्ठा नक्षत्रमें जात।

श्रविष्ठाभू (सं० पु०) बुधग्रह।

श्रविष्ठारमण (सं० पु०) श्रविष्ठा नक्षत्रके अधिपति, चन्द्रमा।

श्रविष्ठीय (सं० त्रि०) श्रविष्ठा सम्बन्धी।

श्रवोजित् (सं० त्रि०) श्रवस् जि-क्विप्। श्रवका जेता।

श्रव्य (सं० त्रि०) श्रु-यत्। श्रोतव्य, जो सुना जा सके, सुनने लायक।

"यत् श्रुत्वा परमेशानि अन्यमन्यन्न रोचते।" (राधातन्त्र ६।३)

श्राण (सं० त्रि०) श्रा-क्त। पक्व; घी, दूध या जलमें पका हुआ; सिद्ध।

श्राणा (सं० स्त्री०) श्रायते स्मेति श्रा-क। यवागू।

श्राणिक (सं० त्रि०) श्राणा नियुक्तं दीयतेऽस्मै इति श्राणा (श्राणा मांसौदनाट्ठिन्। पा ४।४।६७) इति ठिठन्। श्राणा अर्थात् यवागू जिसे दिया जाय।

श्राद्ध (सं० क्ली०) श्रद्धा प्रयोजनमस्य श्रद्धा अण् (चूडादिभ्य उपसंख्यानं। ५।१।१०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अण्। शास्त्रविधानोक्त पितृकर्म, शास्त्रके विधानानुसार पितरोंके उद्देशसे जो कर्म किया जाता है, उसको श्राद्ध कहते हैं। श्रद्धापूर्वक पितरोंके उद्देशसे अन्नादि दानका नाम ही श्राद्ध है।

"संस्कृतव्यञ्जनाढ्यञ्च पयोदधिघृतोन्वितम्।
श्रद्धया दीयते यस्मात् श्राद्धं तेन निगद्यते॥"

इति पुलस्त्यवचनात् श्रद्धया अन्नादेर्दानं श्राद्धं इति वैदिकप्रयोगाधीनयौगिकं (श्राद्धतत्त्व) संस्कृत अन्न व्यञ्जनादिको दुग्ध, दधि और घृत युक्त करके पितरोंके उद्देशसे श्रद्धापूर्वक दिया जाता है, इस कारण वह दानरूप कर्म श्राद्ध कहलाता है।

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि श्राद्ध, सपिण्डन श्राद्ध, पार्वण, गोष्ठीश्राद्ध, शुद्ध्यर्थ, कर्माङ्ग, दैविक श्राद्ध, यात्रार्थ और पुष्ट्यर्थ भेदसे श्राद्ध बारह प्रकारका है।

भविष्यपुराणमें लिखा है,—प्रति दिन जो श्राद्ध किया जाता है, उसको नित्य श्राद्ध कहते हैं। यह श्राद्ध वैश्वदेवविहीन होता है। यह श्राद्ध करनेमें अशक्त होने पर केवल उदक द्वारा करना आवश्यक है। एकोद्दिष्ट श्राद्ध अर्थात् केवल एक व्यक्तिके उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम नैमित्तिक श्राद्ध है। अभिप्रेतार्थ सिद्धिकी कामना करके जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम काम्य; वृद्धि उपस्थित होने पर पार्वण विधानानुसार जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम वृद्धिश्राद्ध; सपिण्डीकरण श्राद्ध, अर्घ्य और पिण्डका 'ये समानाः' इत्यादि मन्त्रपाठ कर प्रेतके साथ पिण्ड और अर्घ्यामिश्रणरूप श्राद्धका नाम सपिण्डीकरण श्राद्ध; अमावस्या या जिस किसी पर्वके दिन अनुष्ठित श्राद्धका नाम पार्वणश्राद्ध, पितरोंकी तृप्तिके लिये गोष्ठीमें जो श्राद्ध होता है, उसका नाम गोष्ठीश्राद्ध है। यह श्राद्ध शुद्धिके लिये किया जाता है। गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन आदि संस्कार कार्योंमें जो श्राद्ध किया जाता है, उसे कर्माङ्ग श्राद्ध; देवताओंके उद्देशसे जो श्राद्ध होता है, उसे दैविक श्राद्ध, तीर्थादि देशान्तर जाते समय जो श्राद्ध करना होता है उसे यात्रार्थ श्राद्ध तथा शरीर और अर्थोपचयके लिये जो श्राद्ध होता है, उसे पुष्ट्यर्थ श्राद्ध कहते हैं।

श्राद्धविवेकधृत बृहस्पतिवचनके अनुसार श्राद्ध पांच प्रकारका है, नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध और पार्वण श्राद्ध। प्रति दिनके श्राद्धका नाम नित्य श्राद्ध, एकोद्दिष्ट काम्य, वृद्धिश्राद्ध नैमित्तिक तथा पर्व निमित्त पार्वण श्राद्ध यही ५ प्रकारका श्राद्ध है। फिर दूसरे शास्त्रके मतसे नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य भेदसे तीन प्रकारका है। सभी प्रकारके श्राद्धको नित्य और काम्यके भेदसे दो भागोंमें विभक्त किया जाता है। पार्वण एकोद्दिष्ट आदि अवश्य कर्त्तव्य है अर्थात् जिन सब श्राद्धोंका अनुष्ठान नहीं करनेसे प्रत्यवायभोगी होना पड़ता है, उन्हें नित्य और अनावश्यक अर्थात् जिसके नहीं करनेसे कोई दोष नहीं, उन्हें काम्य श्राद्ध कहते हैं।

वराहपुराणमें श्राद्धोत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—धरणीने वराहदेवसे पूछा था, कि पितृयज्ञमें क्या गुण है, वे क्यों पूजित होते हैं तथा पहले किस व्यक्तिने इसका अनुष्ठान किया? उत्तरमें वराहदेवने कहा था, कि मनुवंशसम्भूत आत्रेय नामक एक मुनि थे, निमि उनके पुत्रका नाम था। इस निमिके धर्मपरायण एक पुत्र था। वह पुत्र हजार वर्ष तपस्या करके पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। निमि पुत्रशोकसे बड़े कातर हो गये। पीछे उन्होंने उस पुत्रके उद्देशसे अनेक प्रकारके फल मूल आदि उत्तम द्रव्य द्वारा श्राद्धका अनुष्ठान किया। इसी समय नारदने वहां जा कर निमिसे कहा, 'तुमने जिस कार्यका अनुष्ठान किया है, उसका नाम पितृयज्ञ है। पहले स्वयंभुने यह निर्देश किया है। उसके पहले और कोई भी इसे नहीं जानता था और न किसीने इसका अनुष्ठान ही किया। वराहपुराणके श्राद्धोत्पत्तिनामाध्यायमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका उल्लेख नहीं किया गया।

मृत्युके बाद पितृगणके प्रेतभावापन्न होने पर

श्राद्ध कर्म द्वारा उनका प्रेतत्व दूर होता है। इस कारण श्राद्ध करना अवश्य कर्त्तव्य है। मृत्युके बाद प्रेतके उद्देशसे अधिकारीके अनुसार श्राद्ध करना होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण अशौचान्तके दिन प्रेतत्व दूर करनेके लिये आद्य श्राद्धका अनुष्ठान करते हैं। यह श्राद्ध एकके उद्देशसे होता है, इस कारण इसको आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्ध कहते हैं। ब्राह्मण ११ दिनमें, क्षत्रिय १३ दिनमें, वैश्य १६ दिनमें और शूद्र ३१ दिनमें यह आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्ध करें। शास्त्रमें लिखा है, कि षोड़श श्राद्ध ही प्रेतविमुक्तिका कारण है अर्थात् प्रेतके उद्देशसे १६ श्राद्ध करना होता है। १६ श्राद्ध ये हैं,—आद्यैकोद्दिष्ट, द्वादश मासिक श्राद्ध, दो षाण्मासिक श्राद्ध तथा सपिण्डीकरण श्राद्ध, इन सोलह श्राद्ध द्वारा ही पितृगण प्रेतलोकसे विमुक्ति लाभ करते हैं। अतएव यह श्राद्ध अवश्य कर्त्तव्य है। पुत्र इन सब श्राद्धादि द्वारा पितृऋणसे मुक्त होते हैं। अधिकारी क्रमसे यह श्राद्ध करना होता है। शास्त्रमें अधिकारी क्रम इस प्रकार लिखा है। यथा—

प्रेतश्राद्धाधिकारिक्रम—यदि किसी व्यक्तिके एकसे अधिक पुत्र रहे, तो ज्येष्ठ पुत्र ही श्राद्धाधिकारी होगा। ज्येष्ठपुत्रके श्राद्ध करने पर भी बाकी पुत्रोंको दानादिकार्य्य करना अवश्य कर्त्तव्य है। पहले ज्येष्ठ पुत्र पीछे कनिष्ठ पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, अपुत्रपत्नी, कर्मासमर्थपुत्रयुक्त पत्नी, कन्या, वाग्दत्ता कन्या, दत्तकन्या, दौहित्र, कनिष्ठ सहोदर, ज्येष्ठ सहोदर, कनिष्ठ वैमात्रेय भ्राता, ज्येष्ठ वैमात्रेय भ्राता, कनिष्ठ सहोदर-पुत्र, ज्येष्ठ सहोदर-पुत्र, कनिष्ठ वैमात्रेयपुत्र, ज्येष्ठ वैमात्रेयपुत्र, पितामाता, पुत्रवधू, पौत्री, दत्तापौत्री, पौत्रवधू, प्रपौत्री, पितामह, पितामही, पितृव्यादि सपिण्डज्ञाति, समानोदक ज्ञाति, सगोत्र, मातामह, मातुल, भागिनेय, मातृपक्ष, तत्सपिण्ड, तत्समानोदक, असवर्णा भार्या, अपरिणीता स्त्री, श्वशुर, जामाता, पितामहोभ्राता, शिष्य, ऋत्विक्, आचार्य्य, मित्र, पितृमित्र, एकग्रामवासी, गृहीतवेतन और सजातीयगण, ये ४८ आद्यश्राद्धाधिकारी हैं। इन सब अधिकारियोंमेंसे एकके अभावमें दूसरेको स्थिर करना होगा अर्थात् अनेक पुत्र रहने पर ज्येष्ठ पुत्र ही आद्यश्राद्ध करेगा, ज्येष्ठ पुत्रके अभावमें कनिष्ठ पुत्र, इसी प्रकार पुत्र नहीं रहने पर पौत्र, पौत्र नहीं रहने पर प्रपौत्र श्राद्ध करेगा। इस प्रकार एकके अभावमें दूसरेको स्थिर करना होता है, यह अधिकार पुरुष विषयमें जानना होगा।

प्रेतस्त्रियोंका श्राद्धाधिकारिक्रम—ज्येष्ठ पुत्र, उसके अभावमें कनिष्ठ पुत्र, उसके बाद पौत्र, प्रपौत्र, कन्या, वाग्दत्ता कन्या, दौहित्र, सपत्नीपुत्र, पति, स्नुषा, सपिण्डज्ञाति, सगोत्र, पिता, भ्राता, भगिनीपुत्र, भर्त्तृभागिनेय, भ्रातृपुत्र, जामाता, भर्त्तृमातुल, भर्त्तृशिष्य, पितृसमानोदक, पितृवंशीय, मातृसमानोदक और मातृवंशीय तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण, ये सभी स्त्रियोंके प्रेतश्राद्धाधिकारी हैं। पूर्व पूर्ववर्त्तीके अभावमें परपरवर्त्ती अधिकारी हो कर श्राद्ध करे।

जो आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्ध करते हैं, षोड़श श्राद्ध अर्थात् मासिक सपिण्डीकरण आदि १६ श्राद्ध भी उन्हें करने होंगे। किन्तु जिन सब स्त्रियोंके पति और पुत्र नहीं है, उसका सपिण्डीकरण श्राद्ध नहीं होता, सिर्फ मासिकश्राद्ध होता है। आद्य और मासिक श्राद्ध द्वारा उनका प्रेतत्व दूर होता है। (शुद्धितत्त्व)

यदि कोई आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्ध करके मृत्युमुखमें फँस जाय, तो वहां परवर्त्ती अधिकारी मासिक और सपिण्डीकरण श्राद्ध करेगा। आद्यश्राद्ध और मासिक श्राद्धमेंसे बहुत कुछ करके भी यदि मृत्यु हो जाय, तो परवर्त्ती अधिकारी उसका अनुष्ठान करेगा। किन्तु जीवित रहने पर प्रेतश्राद्धाधिकारीको ही षोड़श श्राद्ध करना होगा। दूसरे किसीको भी यह श्राद्ध करनेका अधिकार नहीं है।

अशौचान्तके दूसरे दिन आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्ध करना होता है। जिसके जितने दिन अशौच रहता है, इस अशौचके अन्तिम दिनमें पूरक पिण्ड दे कर अशौचान्त दूसरे दिन श्राद्ध करे। यदि किसीका ३ दिन अशौच रहे, तो ४ दिनका श्राद्ध होगा। अशौचसङ्कर द्वारा यदि अशौचकी ह्रासवृद्धि हो, तो अशौचापगम-द्वितीय दिन श्राद्ध करना होगा। इस आद्य श्राद्धका काल अपने अपने वर्णानुयायी दिनकी गणना करके

निर्णय करना होता है, किन्तु श्राद्ध करनेके समय चान्द्रमासका उल्लेख होगा। सभी श्राद्धोंमें चान्द्र-मासका उल्लेख करना होता है। किन्तु विवाहादि संस्कारकार्य और नान्दीमुखश्राद्धमें सौरमासका उल्लेख ही शास्त्रमें विहित हुआ है।

आद्यश्राद्धके बाद एक वर्ष तक प्रत्येक मासमें मृत्युतिथिको एक एक करके मासिक श्राद्ध करना होता है। षष्ठ और द्वादश मासिककी पूर्वतिथिमें प्रथम और द्वितीय षाण्मासिक श्राद्ध विधेय है। इस प्रकार १४ मासिक श्राद्ध करके सपिण्डीकरण श्राद्ध करे। क्योंकि १६ श्राद्ध नहीं करनेसे मृतव्यक्ति प्रेतत्वसे मुक्तिलाभ नहीं कर सकता। मृतव्यक्तिकी मृत्युके दिनसे एक वर्षके मध्य यदि कोई मास मलमास रहे, तो उसके लिये एक मासिक श्राद्ध करना होगा। अतएव जहां कुल १७ श्राद्ध तथा द्वितीय षाण्मासिक श्राद्ध द्वादश मासिककी पूर्वतिथिमें न हो कर त्रयोदशमासिक-की पूर्वतिथिमें होगा। यदि मृतव्यक्तिकी मृत्युके भीतर अन्तिम मास मलमास हो, तो फिर मासिक-श्राद्धकी वृद्धि न होगी।

मासिक श्राद्ध प्रति मास नहीं कर सकनेसे एक मासमें दो दो श्राद्ध करे।

विघ्नपतित श्राद्धकालनिर्णय—षोड़श श्राद्ध अथवा विघ्न हेतु सांवत्सरिक श्राद्धका किसी प्रकार समय बीत जाय, तो कृष्ण एकादशी या अमावस्या तिथिमें वह करना होगा। यदि पतित श्राद्ध कृष्ण-एकादशी या अमावस्यामें भी न किया जाय, तो वह परवर्त्ती मासिक श्राद्धकालमें करना होता है। यदि यह श्राद्ध जनन या मरणाशौच आदि विघ्न द्वारा पतित हो जाय, तो उस अशौचान्तके दूसरे दिन करे। किन्तु रोगादि विघ्नजनित यदि वह किया जाय, तो परवर्त्ती श्राद्धकालमें अथवा कृष्ण एकादशी या अमावास्यामें वह श्राद्ध करना होगा।

अशौचान्तके दिन यदि मलमास पड़े, तो मलमासके शेषमें शुद्धमासीय कृष्ण एकादशी या अमावस्याको वह पतित श्राद्ध करना होता है। इस प्रकार मासिक श्राद्धादिका समय बीत जाने पर परवर्त्ती शुद्धमासीय कृष्ण एकादशी या अमावस्याको ही वह करना उचित है। किन्तु अन्तिम मास मलमास होने पर तन्मासीय मासिक सपिण्डीकरण मलमासमें किया जाता है। मलमासीय मासिक और सपिण्डीकरण तथा सांव-त्सरिक श्राद्ध पतित होने पर भी मलमासीय कृष्ण एकादशी या अमावस्याको वह अवश्य करना होगा।

आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्धस्थलमें अशौचान्तके दूसरे दिन यदि मलमास हो, तो मलमासमें भी वह आद्यश्राद्ध किया जायेगा। मलमास होनेके कारण उस श्राद्धका निषेध नहीं होगा।

अविज्ञात मृताह श्राद्धका कालनिर्णय—किसी व्यक्तिकी मृत्युतिथि यदि मालूम न हो, केवल मास मालूम हो, तो उस मासकी कृष्ण एकादशी या अमावस्या तिथिमें उसका श्राद्ध किया जा सकता है।

यदि मास न मालूम हो कर केवल तिथि मालूम रहे, तो आषाढ़, भाद्र, अग्रहायण और माघ इन चार महीनोंमेंसे किसी एक महीनेकी उसी तिथिमें श्राद्ध करना होगा।

यदि विदेशगत मृत व्यक्तिका मास दिन आदि मालूम न रहे, तो उसके प्रस्थान मासकी अमावस्यामें श्राद्ध करना होगा।

यदि कोई व्यक्ति निरुद्देश हो और बहुत दिनोंसे उसकी कोई खबर न मिली हो, तो प्रस्थान दिनसे बारह वर्षके बाद उसे मृत समझ लेना होगा और प्रस्थान मास मृत्युमास तथा प्रस्थानतिथि मृत्युतिथि स्थिर कर श्राद्धादिका अनुष्ठान करना होगा।

कृष्णा एकादशी या अमावस्या तिथि ही पतित श्राद्ध-का समय है। अतएव इन दोनों तिथियोंमें ही सभी प्रकारके पतित श्राद्ध किये जा सकते हैं।

आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्ध; मासिक और सपिण्डीकरण श्राद्ध नहीं करने पर उसके उद्देशसे पितृपदका उल्लेख होगा। इन सब श्राद्धोंमें प्रेतपदका उल्लेख होता है। ये सब प्रेत श्राद्ध करनेके बाद उसके उद्देशसे एको-द्दिष्ट या पार्वण श्राद्ध किया जा सकता है।

याज्ञवल्क्य-संहितामें श्राद्धकालका विषय इस प्रकार लिखा है,—अमावस्या, अष्टका, वृद्धि अर्थात् गर्भा-

धानादि संस्कार कार्य उपस्थित, अपर पक्ष, दक्षिणायन-संक्रान्ति, उत्तरायणसंक्रान्ति, कृष्णसारादि मृगप्राप्तिकाल, ब्राह्मणसम्पत्तिलाभकाल, मेषसंक्रान्ति, तुलासंक्रान्ति और सामान्यसंक्रान्ति, व्यतीपातयोग, गजच्छाया अर्थात् चन्द्र मघानक्षत्रमें या सूर्यके हस्तानक्षत्रमें रहनेसे यदि त्रयोदशी तिथि हो, तो उस तिथिमें, चन्द्र सूर्यका ग्रहण और जिस समय श्राद्ध करनेकी विशेष इच्छा हो, उस समयको श्राद्धकाल कहते हैं। श्राद्धमें निम्नोक्त लक्षण-युक्त ब्राह्मणको ही ग्रहण करना होगा, क्योंकि वे ही लक्षणाक्रान्त ब्राह्मण श्राद्धमें ब्राह्मणसम्पद् नामसे अभिहित हुए हैं। चतुर्वेदाध्ययनक्षम श्रोत्रिय, ब्रह्मज्ञ, वेदार्थ-विद् अर्थात् मन्त्रब्राह्मणात्मक वेदके अर्थज्ञ, ज्येष्ठसामा (जिन्होंने ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर ज्येष्ठसाम अध्ययन किया है), जिन्होंने यथाविधि त्रिमधु अर्थात् ऋग्वेदका एकदेश अध्ययन किया है, त्रिसुपर्ण (ऋग्वेद और यजुर्वेदके एकदेशको त्रिसुपर्ण कहते हैं; इसका जिन्होंने अध्ययन किया है), स्वस्रीय, ऋत्विक्, जामाता, याज्य, श्वशुर, मातुल, त्रिनाचिकेत, (यजुर्वेदके एकदेशका नाम त्रिनाचिकेत है, यह जिन्होंने अध्ययन किया है), दौहित्र, शिष्य, संबन्धी तथा बांधव, कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ, अग्निहोत्री और नैष्ठिक उपकुर्वाणक ये दो प्रकारके ब्रह्मचारी, इन सब ब्राह्मणोंको श्राद्धकी सम्पत्ति कहा है। इन सब गुणसम्पन्न ब्राह्मणोंको आमन्त्रण कर उनके सामने श्राद्ध कर्मका अनुष्ठान करना होता है।

श्राद्धमें निन्दनीय ब्राह्मण ये सब हैं—कुष्ठादि रोगाक्रान्त, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, नेत्रहीन, अवकीर्णी (ब्रह्मचर्य अवस्थामें जो निन्दित कर्म करके ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट हुए हैं), कुनखी, श्यावदन्ता, भृतकाध्यापक, क्लीव, कन्य, दूषी, अभिशस्त, मित्रद्रोही, पिशुन, सोमविक्रयी, परिविन्दक, परिवित्ति, कुण्ड और गोलकका अन्नभोजी, अधार्मिकका पुत्र, पुनर्भूपति, चौर, शास्त्रमें जो सब कर्म निन्दित बताये गये हैं, उन सब कर्मोंके करनेवाले और कितवादि ब्राह्मण श्राद्धमें वर्जनीय हैं। इन सब निन्दित ब्राह्मणोंको आमन्त्रण कर श्राद्धानुष्ठान न करना चाहिये।

श्राद्धकारी व्यक्तिको चाहिये, कि वे श्राद्धके पूर्व दिन पूर्वोक्त गुणसम्पन्न ब्राह्मणको निमन्त्रण करें और स्वयं जितेन्द्रिय तथा पवित्रभावमें रहें। निमन्त्रित ब्राह्मण भी वाक्य, मन, काय और कर्म द्वारा संयत होवें।

वेदविद् ब्राह्मण ही श्राद्धके एकमात्र आश्रय है, बिना ब्राह्मणके श्राद्धका अनुष्ठान नहीं हो सकता। इस कारण विशुद्ध ब्राह्मण ग्रहण करनेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। मनुमें लिखा है, कि पितृलोकके उद्देशसे प्रतिमास जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम अन्वाहार्य श्राद्ध है। यह श्राद्ध आमिष द्वारा करना होता है। दैवकार्यमें दो ब्राह्मण और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मण अथवा दैवपक्षमें एक और पित्रादिपक्षमें एक एक ब्राह्मण भोजन करावे। सम्पत्तिशाली होने पर भी इससे अधिक ब्राह्मण-भोजन करानेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि, ब्राह्मणकी अधिकता होनेसे उनकी सेवा, देशकाल, शुद्धाशुद्ध और पात्रापात्र आदिका विचार कुछ भी नहीं रहता। वेदपारग ब्राह्मणका बहुत दूर तक अनुसंधान लेना होता है अर्थात् उसके पिता पितामहादि पूर्वपुरुषोंके भी कैसे आभिजात्यादि गुण थे, उसका निरूपण करे। इस प्रकार वंश परम्परागत विशुद्ध वेदपारग ब्राह्मण हव्यकव्यवहनके तीर्थस्वरूप हैं। वेदानभिज्ञ दश लाख ब्राह्मण भी यदि भोजनादि द्वारा प्रसन्न हों, तो उन दश लाख ब्राह्मण भोजनके फलकी अपेक्षा पूर्वोक्त थोड़ेसे विशुद्ध ब्राह्मण भोजनमें अधिक फल प्राप्त होता है।

अज्ञ ब्राह्मण हव्यकव्यमें जितने ग्रास भोजन करता है, मृत्यु होनेके बाद उसे उतने ही उत्तप्त लौहपिण्ड भोजन करने होते हैं। पितृलोकके उद्देशसे आत्मज्ञाननिष्ठ ब्राह्मणको ही नियोग करना होता है। जिस ब्राह्मणका पिता मूर्ख है और आप वेदपारग हैं अथवा जो स्वयं मूर्ख है, पर पिता वेदपारग है उसीको श्राद्धमें प्रशस्य पात्र समझना चाहिये। श्राद्धकार्यमें मित्रतानिबन्धन भोजन न करावे।

वेदपारग ब्राह्मण पूजित होनेसे पित्रादि सात पुरुषोंकी चिरस्थायिनी तृप्ति होती है। हव्यकव्य देनेमें पूर्वोक्त श्रोत्रिय ब्राह्मणपुत्रको ही मुख्यकल्प जानना होगा। इन सब ब्राह्मणोंके अभावमें अनुकल्प विधान कहा गया है; कि मातामह, मातुल, भागिनेय, श्वशुर, गुरु,

दौहित्र, जामाता, मातृष्वसा और पितृष्वसापुत्र, बंधु, पुरोहित और शिष्य इन्हें भोजन करावे। निन्दित ब्राह्मणको कदापि श्राद्धमें आमन्त्रण न करे। जो सब ब्राह्मण पतित, क्लीव, नास्तिक, वेदाध्ययनशून्य, ब्रह्मचारी, चर्मरोगग्रस्त, द्यूतक्रीड़ापरायण, बहु याजनशील, चिकित्सक, प्रतिमापरिचायक, देवल, मांसविक्रयी, वाणिज्यकारी, कुनखी, श्यावदन्तक, गुरुका प्रतिकूलाचरणकारी, श्रौत और स्मार्त्त अग्निपरित्यागकारी, कुसीदजीवी, पशुपालक, परिवेत्ता, भृतकाध्यापक अर्थात् जो वेतन ले कर पढ़ाते हैं, इत्यादि निन्दित ब्राह्मणोंका पैत्रकार्यमें परित्याग करे। उक्त ब्राह्मणोंको हव्यकव्य प्रदान करनेसे वह राक्षसादि भोजन करता है, पितरोंको उससे कुछ भी तृप्ति नहीं होती। जिन सब ब्राह्मणों को शास्त्रमें पंक्तिपावन कहा है केवल उन्हींको आमन्त्रण करे। पंक्तिदूषक ब्राह्मणको भूल कर भी आमन्त्रण न करे।

श्राद्धकर्म उपस्थित होने पर उसके पूर्व दिन अथवा श्राद्धके दिन कमसे कम तीन पूर्वोक्त गुणसम्पन्न ब्राह्मणोंको यथोचित सम्मानपूर्वक निमन्त्रण करे। जो ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रित हुए हैं उन्हें निमन्त्रणके दिनसे श्राद्धहोरात्र पर्यन्त स्त्रीनिवृत्ति और निष्ठावान् रहना होगा तथा जपादि संध्योपासनाको छोड़ वेदाध्ययन न करना होगा। जो श्राद्धकर्त्ता है उन्हें भी इसी नियमसे चलना होगा। ब्राह्मणोंके निमन्त्रित होने पर पितृगण उन ब्राह्मणोंके शरीरमें अनुप्रवेश करते हैं। वे जहां जाते हैं, पितृगण भी वहीं जाते हैं। उनके परितृप्त होने पर पितृगण भी परितृप्त होते हैं।

दैव और पितृकार्यमें यथाशास्त्र निमन्त्रित हो यदि ब्राह्मण किसी तरह उसका अतिक्रम करे अर्थात् श्राद्ध भोजन न करे अर्थात् नियमवान् ब्रह्मचर्यादि हो कर न रहे, तो उस पापसे उसको शूकरकी योनि प्राप्ति होती है। जो ब्राह्मण श्राद्धमें आमन्त्रित हो कर स्त्रीसंभोगादि करते हैं, श्राद्धकर्त्ताका जो कुछ पाप रहता है, वह उन्हींमें संक्रामित होता है। श्राद्धकर्त्ता और श्राद्धभोक्ता इन दोनोंको ही संयत हो कर विशुद्धभावमें रहना होता है।

श्राद्धकालमें पूर्वोक्त गुणयुक्त ब्राह्मण यदि न मिलते हों, तो उसके प्रतिनिधि स्वरूप कुशमय ब्राह्मण बना कर श्राद्धकार्यका अनुष्ठान करना होता है। वर्त्तमान कालमें वैसे गुणसम्पन्न ब्राह्मण नहीं मिलते, इस कारण श्राद्धकालमें कुशमय ब्राह्मण बना कर उसके आगे श्राद्धकर्मका अनुष्ठान किया जाता है। प्रादेश प्रमाणके ७ या ९ कुश ले कर प्रणवमन्त्रसे अग्रभागको ढाई बार लपेट कर अग्रभागको ऊपरकी ओर रखनेसे कुशमय ब्राह्मण होता है। इस कुशमय ब्राह्मणके आगे श्राद्ध करनेके बाद वे सब द्रव्य ब्राह्मणको देने होंगे।

श्राद्धदेश—शास्त्रमें लिखा है, कि पवित्र स्थानमें रह कर श्राद्धकार्य करना होता है। चण्डीमण्डप आदि देवगृहको गोबरसे अच्छी तरह लीप पोत कर वहां श्राद्ध करना होता है। धूलियुक्त, कृमियुक्त, क्लिन्न, सङ्कीर्ण अथवा दुर्गन्धयुक्त स्थानमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये। म्लेच्छदेशमें अर्थात् जिस देशमें चतुर्वर्ण विभाग नहीं है वहां भी श्राद्ध करना निषिद्ध है।

अपनी भूमिमें पितरोंके उद्देशसे श्राद्ध करना होता है। यदि अपनी भूमिमें न करके दूसरेकी भूमिमें श्राद्ध किया जाय, तो भूस्वामीको अर्थात् जिसकी भूमि है उसके पितरोंको भोज्यादि द्वारा परितृप्त कर श्राद्धानुष्ठान करना उचित है। दूसरेकी भूमिमें श्राद्धके समय भूस्वामीको भूमिका मूल्य नहीं देने अथवा पितरोंकी पूजा नहीं करनेसे वे बलपूर्वक श्राद्धीय द्रव्य हरण करते हैं। इस कारण पहले उनकी पूजा कर पीछे पितरोंकी पूजा करे।

गया, गङ्गा, सरस्वती, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, नैमिषक्षेत्र और पुष्करतीर्थ, नदीतट, तीर्थमात्र, पर्वत, पुलिन और निर्जन स्थानमें पितरोंके उद्देशसे यदि श्राद्ध किया जाय, तो वे बड़े संतुष्ट होते हैं।

अस्वामिक स्थान अर्थात् नैमिषारण्य आदि अटवी, हिमालय आदि पर्वत, गङ्गादि तीर्थ, वाराणसी आदि, इन सब स्थानोंके स्वामी नारायण छोड़ और कोई नहीं हैं। उन सब स्थानोंमें श्राद्ध करनेसे भूस्वामीके पितरोंको पूजा नहीं करनी होती।

इन सब स्थानोंमें श्राद्धके समय पहले वास्तुदेवकी पूजा करनी होती है; क्योंकि, वास्तुदेवकी पूजा नहीं करनेसे श्राद्धभाग राक्षस चुरा ले जाता है। इस कारण

पहले वह पूजा करना नितान्त आवश्यक है। शालग्राम शिलाको सामने रख कर श्राद्धानुष्ठान करनेसे पितृगण प्रसन्न होते हैं। अतएव श्राद्धस्थलमें शालग्राम शिला पर विष्णुपूजा करके उन्हें श्राद्धका अग्रभाग निवेदन करना होता है।

श्राद्धवेला-निर्णय—शास्त्रमें पूर्वाह्णमें मातृकाश्राद्ध, अपराह्णमें पैतृक श्राद्ध और मध्याह्नमें एकोद्दिष्ट श्राद्ध तथा प्रातःकालमें वृद्धि श्राद्ध करनेका विधान देखा जाता है। मातृका श्राद्ध शब्दसे अन्वष्टका श्राद्ध समझा जाता है। दिवामानको १५ भाग करनेसे उनके एक एक भागका नाम मुहूर्त्त है। साधारणतः मुहूर्त्तका परिमाण दो दण्ड है। दिवामानको तीन भाग करनेसे क्रमशः पूर्वाह्ण, मध्याह्न और अपराह्ण ये तीन भाग होते हैं। इसी प्रकार दिनमानको पांच भाग करनेसे प्रातःकाल, सङ्गव, मध्याह्न, अपराह्ण और सायाह्न ये पांच नाम होते हैं। विवाह और पुत्रजन्मके लिये वृद्धि श्राद्ध तथा ग्रहण और संक्रान्त्यादिश्राद्धको छोड़ प्रातःकालके प्रथम डेढ़ मुहूर्त्तमें और सायाह्नके अन्तिम दो मुहूर्त्तमें तथा रात्रिकालमें अन्य कोई भी श्राद्ध न करे।

शुक्लपक्षकी उन सब तिथियोंमें कहे गये पार्वण श्राद्ध पूर्वाह्णमें करे। यहां पूर्वाह्ण शब्दसे सङ्गव कालका बोध होता है। किसी तिथिमें यदि दो दिन तक सङ्गव काल रहे अथवा दो दिनके भीतर यदि किसी भी दिन सङ्गम काल न पाता हो, तो दूसरे दिन श्राद्ध होगा। किन्तु पूर्वदिन रौहिणान्त गौणपूर्वाह्ण पा कर दूसरे दिन सङ्गवकाल नहीं पानेसे पूर्वदिन ही श्राद्ध होगा।

प्रातःकाल ही वृद्धि श्राद्धका मुख्यकाल है। किन्तु यह श्राद्ध डेढ़ मुहूर्त्तमें नहीं कर सकते।

सपिण्डीकरण और कृष्णपक्ष जन्य सभी पार्वण श्राद्ध और मृताह जन्य त्रैपुरुषिक पार्वणका समय अपराह्ण है। रात्र्यादि भिन्न कालमें कुतपादिमुहूर्त्त पञ्चक, रौहिणादि मुहूर्त्तचतुष्टय, दशमादि मुहूर्त्तत्रय अपराह्ण श्राद्धमें इन चार कालोंको प्रशस्त जानना चाहिये। आपराह्णिक श्राद्धीय तिथि दोनों दिन पानेसे पूर्वदिनमें मुख्यकालमें श्राद्ध होगा। दोनों दिन मुख्यकाल न पाया जाय, तो दूसरे दिन श्राद्ध होगा।

वृद्धि श्राद्ध मात्र ही पूर्वाह्णमें करना चाहिये। एकोद्दिष्ट श्राद्ध मध्याह्न कालमें और सपिण्डीकरण श्राद्ध अपराह्णमें करना कर्त्तव्य है। पार्वण श्राद्ध पूर्वाह्ण और मध्याह्न दोनों समय किया जा सकता है। इसमें विशेषता यह है, कि कोई कोई पार्वण श्राद्ध पूर्वाह्णमें और कोई कोई मध्याह्न कालमें विधेय है। किन्तु सायंकालमें कोई भी श्राद्ध नहीं करना चाहिये। सूर्यास्तके पहले तीन मुहूर्त्त सायाह्न कहलाता है। इस कालको राक्षसी वेला कहते हैं। इस कालमें सभी कर्म निषिद्ध है।

अमावस्याश्राद्धकाल—एकादश और द्वादश मुहूर्त्त ही अमावस्या श्राद्धका प्रधान समय है। पूर्वदिन चतुर्दशी जब तक रहेगी, दूसरे दिन अमावस्या उससे कम रहने पर उसको क्षीणा अमावस्या कहते हैं। चतुर्दशीकी समानकालव्यापिनी अमावस्या दूसरे दिन रहनेसे उस अमावस्याको स्तम्भिता कहते हैं। पूर्वदिवसीय चतुर्दशीसे दूसरे दिन अमावस्या अधिक कालस्थायी होने पर उसका नाम वर्द्धमाना अमावस्या है। अमावस्या पूर्वदिन द्वादश मुहूर्त्तसे कुछ कम पा कर दूसरे दिन सम्पूर्ण एकादश मुहूर्त्त काल पाने पर भी श्राद्ध पूर्वदिन होगा। इसमें विशेषता यह है, कि अग्रहायण और ज्येष्ठ मासके अमावस्याश्राद्धमें उक्त प्रकारकी तिथि पड़नेसे दूसरे दिन श्राद्ध होगा। किन्तु उस वर्षमें यदि मलमास पड़े, तो उन दोनों मासके अमावस्याश्राद्धमें पूर्ववत् क्षीणा अमावस्याको करना होगा। यह अमावस्या यदि पूर्वदिन द्वादश मुहूर्त्त पा कर दूसरे दिन एकादश मुहूर्त्तकालव्यापिनी हो, तो ऋग्वेदियोंका पूर्वदिन तथा यजुर्वेदियोंका दूसरे दिन और सामवेदियोंके इच्छानुसार जिस किसी दिन कार्य सम्पन्न हो सकता है। अमावस्या यदि दोनों दिन मुख्यकाल पावे, तो वर्द्धमाना अमावस्याको श्राद्ध होगा।

महागुरु निपातमें वृद्धि श्राद्ध नहीं करना चाहिये, पुत्रका पिता और माता तथा स्त्रीका स्वामी महागुरु पदवाच्य है। जब तक सपिण्डीकरण नहीं होता, तब तक देहाशौच रहता है, अतएव उस अशौचकालमें दैव या पैत्र कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये। उस कालमें यदि पुत्रादिका संस्कार कार्य उपस्थित हो, तो अपकर्ष

सपिण्डीकरण करनेके बाद वृद्धि श्राद्ध करे। मृताह-से एक वर्षके अन्दर वृद्धि उपलक्षमें अपकर्ष सपिण्डी-करण श्राद्ध हो सकता है। एक वर्ष बीतने पर फिर अपकर्ष करके श्राद्ध नहीं होगा। उस समय पतित श्राद्धके विधानानुसार कृष्णा एकादशी या अमावस्यामें सपिण्डीकरण श्राद्ध होगा। कन्यादिके विवाह और नामकरणादि संस्कार कार्यके लिये अपकर्ष श्राद्धमें कार्यके पूर्व दिन श्राद्ध होगा।

देहाशुद्धि रहने पर पार्वणश्राद्धमें भी अधिकार नहीं है। सपिण्डीकरण होनेके बाद पार्वण श्राद्ध करना होता है, किन्तु एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया जा सकता है। काला-शौच होनेसे एकोद्दिष्ट श्राद्ध निषिद्ध नहीं है।

सभी दैवकार्य पूर्व या उत्तरमुखी हो कर करना होता है। किन्तु श्राद्धमें विशेषता यह है, कि दक्षिणमुख हो कर करना ही श्रेय है परन्तु वृद्धि श्राद्ध करनेके समय सामवेदियोंको पूर्वमुख और यजुर्वेदियोंको उत्तरमुख बैठ कर करना चाहिये। पार्वण और एकोद्दिष्ट श्राद्ध वेदीय-गण ही दक्षिणमुखी हो कर कर सकते हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण एकोद्दिष्ट श्राद्ध सिद्धान्न द्वारा और शूद्र आमान्न द्वारा करे। एको-द्दिष्ट भिन्न अन्य श्राद्ध अर्थात् पार्वण और वृद्धि श्राद्ध सभी वर्णोंको आमान्न द्वारा करना होगा। ब्राह्मणादि तीन वर्ण यदि एकोद्दिष्ट तिथिमें पाकपात्रके अभावमें श्राद्धानुष्ठान न कर सकें, तो उस दिन उन्हें उपवास रहना होगा। किसी भी वर्णको मृताह-तिथिका बाद देना उचित नहीं। यदि कोई जानबूझ कर वह तिथि बाद दे दे, तो उसे प्रत्यवायभागी होना पड़ता है। शास्त्र-में लिखा है, कि मृताह-तिथिमें एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं करनेसे देवगण उसकी पूजा ग्रहण नहीं करते तथा मृत्यु-के बाद वह चण्डालयोनिमें जन्म लेता है।

अपुत्रा पत्नी स्वामीकी मृत्युतिथिमें एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। उस तिथिके दिन यदि उसे रजस्वलाशौच रहे, तो पांचवें दिनमें श्राद्ध होगा। स्त्री रजस्वला होने पर चौथे दिनमें स्वामीके निकट और पांचवें दिनमें दैव या पैत्र कर्ममें शुद्ध होती है।

स्त्रियोंको श्राद्धमें अधिकार नहीं है अर्थात् वे पार्वण और नान्दीमुख श्राद्ध नहीं कर सकतीं, परन्तु एकोद्दिष्ट श्राद्ध कर सकती हैं। पिता और माताकी मृताह-तिथि-में स्त्रियां पिता और माताका एकोद्दिष्ट श्राद्ध कर सकती हैं। यदि उसके भाई न रहे और किसी कारणवशतः मृताह-तिथिमें श्राद्ध पतित हो जाय, तो कृष्णा एकादशी या अमावस्यामें भी वह श्राद्धकार्य किया जा सकता है। किन्तु भाईके रहने पर यदि किसी कारणवशतः मृताह तिथिमें श्राद्ध न हो सके, तो एकादशी या अमावस्यामें श्राद्ध नहीं कर सकती। साधारणतः पतित श्राद्धमें उन्हें कोई अधिकार नहीं है।

अपुत्रा पत्नीको स्वामीका एकोद्दिष्ट अवश्य कर्त्तव्य है। भाई नहीं रहने पर वे पिता और माताका एको-द्दिष्ट श्राद्ध भी कर सकती हैं।

श्राद्धमें विहित और निषिद्ध पुष्प—श्वेत पुष्प द्वारा श्राद्धानुष्ठान करना होता है। उनमेंसे श्वेत पद्म, जाति प्रभृति सुगन्धित शुक्ल पुष्प द्वारा श्राद्ध करना ही श्रेय है। उग्रगन्धवाला पुष्प सफेद होने पर भी उससे श्राद्ध नहीं करना चाहिये। जवापुष्प तथा जवा सदृश रक्त वर्ण पुष्प, भाण्डीपुष्प, अर्कपुष्प, पीतझिण्टी, उग्र-गन्धयुक्तपुष्प, गन्धहीन पुष्प, केतकी, करवीर, वकुल और चम्पक तथा रक्तवर्ण जाति, ये सब पुष्प श्राद्धमें निन्दनीय हैं। इन पुष्पों द्वारा पितरोंकी पूजा करनेसे वे उन्हें ग्रहण नहीं करते, निराश हो कर उक्त स्थानसे चले जाते हैं।

जाति, मल्लिका, कुन्द और यूथिका पुष्प ही श्राद्धमें विशेष प्रशस्त हैं।

श्राद्धमें विहित निषिद्ध द्रव्य—कृष्ण, माष, तिल, जौ, हैमन्तिक धान्यका तण्डुल, शरत् कालीन तण्डुल, विल्व, आमलक, द्राक्षा, पनस, आम्रातक, दाड़िम, काम-रङ्ग, करमर्द्दक, अक्षोड़, पाणिवत, खर्जुर, आम्र, कशेरु, कोविदार, तालमूली, मृणाल, दुग्ध, घृत, दधि, कदली, वैकङ्कत, नारिकेल, शृङ्गाटक, परुषक, पिप्पली, मरिच, परवल, वृहतीफल, मधु, कर्पूर, मरिच, सैन्धवलवण आदि द्रव्य श्राद्धमें प्रशस्त हैं। ये सब द्रव्य उपादेय हैं तथा साधारणतः वे सब द्रव्य भोजन किये जा सकते हैं। उन सब द्रव्यों द्वारा श्राद्ध करना कर्त्तव्य है।

किन्तु शास्त्रमें जिन सब द्रव्योंको निषिद्ध कहा है, उन सब द्रव्यों द्वारा श्राद्ध नहीं करना चाहिये। कुष्माण्ड, अलावू, वार्त्ताकी, ग्राम्य महिषदुग्ध, पालङ्की शाक, राजिका और द्वि सिवत्र अर्थात् सिद्ध चावल इन सब द्रव्यों द्वारा श्राद्ध न करे। श्राद्धमें गव्य घृतका ही व्यवहार करना चाहिये, बकरी भैंस आदिका घृत निषिद्ध है। इन सब निषिद्ध द्रव्योंको छोड़ जो सब फलमूल शाक आदि स्वादिष्ट और उपादेय हैं उन्हें पितरोंके उद्देशसे दिया जा सकता है।

श्राद्धदिनमें वर्जनीय—श्राद्ध दिनमें श्राद्धकर्त्ता पितरोंके उद्देशसे श्राद्ध करके विदेशयात्रा, युद्ध, नदीके किनारे जाना, पुनर्वार स्थान और भोजन, पाशादि क्रीड़ा, स्त्री सहवास, परश्राद्धभोजन, द्विभोजन, पुनर्वार दान, दानग्रहण, सायं सन्ध्या, अध्वगमन अर्थात् एक कोससे अधिक दूर जाना, इन सबका वर्जन करे, नहीं करनेसे श्राद्धकारी और पितरोंको नरक तथा श्राद्ध निष्फल होता है। अतएव इन सबका परिहार करना अवश्य कर्त्तव्य है।

पञ्चपात्र श्राद्ध—जिनकी अमावस्याके दिन अथवा प्रेतपक्षमें मृत्यु हुई हो, उनका सपिण्डीकरणके बाद मृताह तिथिमें पार्वण विधि द्वारा पञ्चपात्र श्राद्ध करना होता है। उनका एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं होता। इसके बदलेमें पार्वण विधि द्वारा श्राद्ध होता है। यह श्राद्ध दैवपक्ष, पिता या माता होने पर पितृपक्ष, उससे ऊपर तीन पुरुष अर्थात् पिताका श्राद्ध होने पर पिता, पितामह, और प्रपितामह या माताका श्राद्ध होने पर माता, पितामही और प्रपितामही ये तीन पक्ष, इन पाँच पक्षोंका श्राद्ध पांच पात्रोंमें करना होता है, इस कारण इसको पञ्चपात्र श्राद्ध कहते हैं। अमावस्याके दिन तथा इस प्रेतपक्षमें प्रतिदिन पार्वण श्राद्धका विधान है। इस कारण इस तिथिमें मृत्यु होनेसे उनका साम्वत्सरिक श्राद्ध एकोद्दिष्ट विधिके अनुसार न हो कर पार्वणविधिके अनुसार होगा। इस श्राद्धमें केवल औरस पुत्रका ही अधिकार है। किसी किसीके मतसे औरसकी तरह दत्तकपुत्र भी इसका अधिकारी हो सकता है। किन्तु यह मत सर्ववादिसम्मत नहीं है।

केवल पुत्र पिता माताका ऐसा श्राद्ध कर सकेगा। दूसरेको एकोद्दिष्ट विधानानुसार श्राद्ध करना चाहिये।

मघा-त्रयोदशी श्राद्ध—गौण आश्विनकी कृष्णा त्रयोदशी तिथिमें पार्वण विधिके अनुसार जो श्राद्ध होता है उसको मघात्रयोदशी श्राद्ध कहते हैं। यह श्राद्ध अवश्यकर्त्तव्य है, क्योंकि शास्त्रमें इसे नित्य कहा है, नित्य शब्दका तात्पर्य्य यह है, कि यह श्राद्ध नहीं करनेसे प्रत्यवायभोगी होना पड़ता है।

यह श्राद्ध एकान्नवर्त्ती परिवारमें जो बड़ा है, वही करेगा, सबोंका करनेका अधिकार नहीं है।

अष्टका श्राद्ध—पौष, माघ और फाल्गुन इन तीन मासकी कृष्णाष्टमी तिथिमें यथाक्रम पूपाष्टका, मांसाष्टका और शाकाष्टका श्राद्ध करे। यह अष्टका श्राद्ध भी अवश्यकर्त्तव्य है। यह श्राद्ध पार्वण श्राद्धके विधानानुसार करना होता है।

नवान्न श्राद्ध—नूतन अन्न द्वारा श्राद्ध किया जाता है, इसीसे उसका नाम नवान्न श्राद्ध हुआ है। यह श्राद्ध दो प्रकारका है, यवपाक और व्रीहिपाक। धान पकने पर अगहनके महीनेमें जो श्राद्ध किया जाता है अर्थात् नये चावल द्वारा पितरोंके उद्देशसे पार्वणविधिके अनुसार जो श्राद्ध किया जाता है उसको व्रीहिपाक नवान्न श्राद्ध कहते हैं। जौ पकने पर उस नये जौसे जो श्राद्ध किया जाता है उसको यवपाक कहते हैं। जौ और धान इन दोनों अन्नसे श्राद्ध करना उचित है। जौ या धानसे नवान्न विधानानुसार यदि श्राद्ध न किया जाय, तो उससे फिर कभी श्राद्ध नहीं कर सकते। क्योंकि इन दोनों ही अन्नसे श्राद्ध करके रखना होता है। यह श्राद्ध भी नित्य और अवश्य कर्त्तव्य है। यह श्राद्ध नहीं करनेसे अर्थात् नया धान और जौ पितरोंको नहीं देनेसे पीछे उसके द्वारा श्राद्ध नहीं किया जाता। यह श्राद्ध विशुद्ध दिन देख कर करना होता है।

नवान्न देखो।

नवोदकश्राद्ध—वर्षाऋतु आने पर पितरोंके उद्देशसे पार्वणविधिके अनुसार जो श्राद्ध किया जाता है उसको नवोदक श्राद्ध कहते हैं। रविके आर्द्रानक्षत्रमें जानेसे यह श्राद्ध करना होता है। आषाढ़ मासके प्रथममें रवि

आर्द्रा नक्षत्रमें रहते हैं, अतः आषाढ़ मासके आरम्भमें यह श्राद्ध करना होता है।

ग्रहणश्राद्ध—चन्द्र या सूर्यग्रहणके समय पितरोंके उद्देशसे पार्वण विधिके अनुसार जो श्राद्ध करना होता है उसको ग्रहणश्राद्ध कहते हैं।

पौर्णमासीश्राद्ध—माघ और श्रावण मासकी पूर्णिमातिथिमें पार्वण विधिक्रमसे जो श्राद्ध किया जाता है उसका नाम पौर्णमासी श्राद्ध है। ये दोनों पूर्णिमातिथियुक्त श्राद्ध नित्य कहलाते हैं। अतएव यह अवश्य कर्त्तव्य है।

तीर्थयात्राश्राद्ध—यदि तीर्थ पर्यटन करना हो, तो श्राद्धानुष्ठान करके जाना चाहिये। तीर्थगमनके निर्द्धारित दिनके दो दिन पहले हविष्यादि कर संयत हो कर रहें। तीर्थगमनके ठीक एक दिन पहले मस्तक मुण्डन और उपवास करे, पीछे प्रातःकृत्यादि और इष्टदेवताका पूजन कर आभ्युदयिक श्राद्ध समाप्त कर तथा ब्राह्मण-भोजन करा कर तीर्थपर्यटनमें निकले। किसी किसीका कहना है, कि तीर्थयात्रा निमित्त पार्वणविधानसे श्राद्धानुष्ठान करना कर्त्तव्य है। किन्तु यह सर्ववादिसम्मत नहीं है। तीर्थगमनके लिये जिस प्रकार आभ्युदयिक श्राद्ध करना होता है उसी प्रकार तीर्थसे लौट कर भी आभ्युदयिक श्राद्ध करना होगा। तीर्थसे जिस दिन लौटेंगे, उसी दिन श्राद्धानुष्ठान करना उचित है। उस दिन यदि श्राद्धका समय बीत गया हो, तो उस दिन उपवासी रह कर दूसरे दिन श्राद्ध करना होता है। वृद्धिके उपलक्षमें अर्थात् संस्कारादिकार्यमें भी आभ्युदयिक श्राद्ध करना होता है, किन्तु संस्कारादिकार्यमें तथा तीर्थ जाने और वहांसे लौटनेमें जो श्राद्ध किया जाता है उसमें प्रभेद यही है, कि संस्कारकार्यमें षष्ठी मार्कण्डेय आदिकी पूजा करनी होती है, किन्तु तीर्थश्राद्धमें उसकी पूजा नहीं करनी होती। इसके सङ्कल्प वाक्य इस प्रकार होगा। यथा—

"अद्यामुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा तीर्थयात्राकर्माभ्युदयार्थं सगणाधिपषोड़शमातृकापूजा वसोर्धारा सम्पातनायुष्यसूक्तजपाभ्युदयिकश्राद्धान्यहं करिष्ये" तीर्थसे लौटने पर जो श्राद्ध करना होता है उसमें 'तीर्थयात्राकर्माभ्युदयार्थं' इस पदकी जगह 'तीर्थप्रत्यागमनोत्तरस्वगृहप्रवेशकर्माभ्युदयार्थं' ऐसा वाक्य होगा।

तीर्थमें जाने और वहांसे लौटनेमें जिस प्रकारको श्राद्ध कहा गया है उसी प्रकार तीर्थप्राप्ति निमित्त अर्थात् तीर्थस्थलमें जा कर श्राद्ध करना होता है। यह श्राद्ध पार्वण विधिके अनुसार होगा। आभ्युदयिक श्राद्ध नहीं होगा।

स्त्रियां तीर्थमें गमनागमन अथवा तीर्थप्राप्ति निमित्त, इनमेंसे कोई भी श्राद्ध नहीं कर सकतीं, क्योंकि उन्हें श्राद्धमें अधिकार नहीं है। परन्तु वे श्राद्धका अनुकल्प अर्थात् भोज्योत्सर्ग और दानादि कर सकती हैं।

तीर्थप्राप्ति मात्र ही श्राद्ध करना होता है अर्थात् तीर्थमें जा कर जिस दिन इच्छा हो उस दिन श्राद्ध करूंगा, ऐसा कहनेसे काम नहीं चलेगा, तीर्थमें उपस्थित होते ही श्राद्ध करना कर्त्तव्य है। असमय अर्थात् श्राद्ध विषयमें शास्त्रनिषिद्ध कालमें, जैसे सायं या रात्रिकालमें यदि तीर्थप्राप्ति हो, तो उसी समय श्राद्ध नहीं होगा, दूसरे दिन सबेरे होगा।

तीर्थप्राप्तिकालमें पार्वण विधानसे श्राद्धानुष्ठान कर्त्तव्य है। किन्तु पार्वण विधिसे श्राद्ध होने पर भी थोड़ी विशेषता है, वह यह कि इसमें अर्घ्य और आवाहन नहीं करना होता। अतएव अर्घ्य और आवाहनका वर्जन कर पार्वणविधानसे श्राद्ध कर्त्तव्य है। तीर्थश्राद्धमें पिण्डदान करके वह पिण्ड तीर्थमें फेंक देना होता है। तीर्थभिन्नस्थलमें श्राद्ध करनेसे पिण्ड गो, अज, विप्रप्रभृतिको दान करने अथवा जलमें फेंक देनेका विधान है।

तीर्थमें जा कर यदि कोई श्राद्ध करनेमें असमर्थ हो, तो उसे श्राद्धानुकल्प भोज्यदान कर्त्तव्य है। तीर्थ जानेके पूर्वदिन मुण्डन और उपवासकी व्यवस्था है, किन्तु यद्यपि एक बार तीर्थमें जा कर फिर दश मासके भीतर तीर्थगमन किया जाय, तो मुण्डन और उपवास करना नहीं होगा।

प्रेतपक्षीय पार्वणश्राद्ध प्रेत पक्षमें अर्थात् मुख्यचान्द्र-मासमें कृष्णपक्षकी प्रतिपदसे अमावस्या पर्यन्त पन्द्रह तिथि तक सबोंको करना कर्त्तव्य है। यदि यह श्राद्ध

कोई १५ दिन करनेमें असमर्थ हो, तो षष्ठीसे अमावस्या पर्यन्त दश दिन, इसमें असमर्थ होने पर एकादशीसे अमावस्या पर्यन्त ५ दिन, इसमें भी अशक्त होने पर त्रयोदशीसे तीन दिन तक करना नितान्त आवश्यक है। इस प्रेतपक्षमें शक्ताशक्त भेदसे ही उक्त प्रकारका श्राद्ध करना होता है। इस पक्षमें शक्तिके अनुसार उक्त प्रकार-मेंसे चाहे जिस तरह हो श्राद्ध करना ही होगा, नहीं करनेसे प्रत्यवाय होगा। यह श्राद्ध पार्व्वण विधानसे करना होता है।

प्रायश्चित्ताङ्गिक पार्व्वणश्राद्ध—प्रायश्चित्त या चान्द्रायणानुष्ठानके बाद पार्व्वण श्राद्धके विधानानुसार श्राद्ध करना होता है। प्रायश्चित्ताङ्ग दान करके उसके बाद श्राद्ध और पीछे गोग्रास देना होता है।

आभ्युदयिक श्राद्ध—पुत्रादिके संस्कार कार्यमें जो श्राद्ध कहा गया है उसको आभ्युदयिक श्राद्ध कहते हैं। इस श्राद्धका नामान्तर वृद्धिश्राद्ध या नान्दीमुख श्राद्ध है। संस्कार कार्यको छोड़ वास्तुयाग, गृहप्रवेश, पुष्करिणी प्रतिष्ठा, तीर्थगमन और तीर्थप्रत्यागमन निमित्त भी आभ्युदयिक श्राद्ध करना होता है। नान्दीमुख श्राद्धमें सामवेदियोंके लिये पिता, पितामह और प्रपितामह तथा मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह इन छः पुरुषोंका श्राद्ध कहा गया है। यजुर्वेदियोंके इस श्राद्धमें माता, पितामही, प्रपितामही, पिता, पितामह और प्रपितामह तथा मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह इन ६ पुरुषोंका श्राद्ध करना होता है।

पिण्डहीन आभ्युदयिक-श्राद्ध—यदि कोई अशक्तता के कारण सारा आभ्युदयिक श्राद्ध न कर सके, तो पिण्डविहीन आभ्युदयिक करे। यह श्राद्ध आभ्युदयिक श्राद्धके विधानानुसार अधिवासके बाद वास्तुपुरुषादि की पूजासे ले कर आसन दान पर्यन्त सभी कार्य करे। इसके बाद गन्धादि दान करके अन्नपरिवेशनसे 'अन्नहीनं क्रिया हीनं' यहां तक मन्त्रपाठ कर पिण्ड-दानादि न करके पितृपक्षीय दक्षिणान्तसे अवशिष्ट सभी कार्य करने होंगे। इस प्रकार श्राद्ध करनेसे उसको पिण्डहीन आभ्युदयिक श्राद्ध कहते हैं। यह पिण्ड-रहित आभ्युदयिक श्राद्ध पुत्रमुखदर्शन निमित्तक कहा गया है अर्थात् पुत्रके जन्म लेने पर यदि सारा आभ्युदयिक श्राद्ध न किया जा सके, तो बिना पिण्डके यह श्राद्ध करे। सभी स्थलोंमें असमर्थ होने पर इसी तरह श्राद्ध करना होगा, शास्त्रका ऐसा अभिप्राय नहीं है।

श्राद्धानुकल्प भोज्योत्सर्ग—पूर्वोक्त संस्कारादि कार्यमें आभ्युदयिक श्राद्ध विधेय है। जो समस्त श्राद्ध करनेमें असमर्थ हैं वे पिण्डहीन आभ्युदयिक श्राद्ध करें इसमें असमर्थ होने पर उसे भोज्योत्सर्ग करना कर्त्तव्य है। भोज्योत्सर्ग करनेमें निम्नोक्त प्रकारके वाक्यसे करना होता है—

पहले भोज्य अर्च्चनादि करके 'अद्येत्यादि अमुक-तिथौ अमुकगोत्रस्य श्रीअमुकदेवशर्मणो अमुककर्माभ्युदयार्थं अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितुरमुकदेवशर्मणः (पीछे उसी प्रकार षट्पुरुष या ६ पुरुषका नाम उल्लेख कर) आभ्युदयिक श्राद्धानुकल्प भोज्योत्सर्गवासरमें, फिरसे उन सबका नामोल्लेख कर "स्वर्गकामः इदं आभ्युदयिक श्राद्धानुकल्पसघृतसोपकरणभोज्यमर्चितं श्रीविष्णुदैवतं यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददानि।"

पुत्रकन्याके जन्मसे ले कर विवाह पर्यन्त संस्कारमें पिताको ही आभ्युदयिक श्राद्ध पर अधिकार है। पुत्रादिके जन्मसे विवाह पर्यन्त जो कोई संस्कार उपस्थित होता है उन सब संस्कारकार्यमें पिता ही आभ्युदयिक श्राद्धके अधिकारी हैं। जो श्राद्धाधिकारी होंगे वे अपने ही मातामह पक्षका उल्लेख कर श्राद्धानुष्ठान करें। संस्कार्य बालकके मातामह पक्षका उल्लेख नहीं होगा। इसमें विशेषता यह है, कि पुत्रके प्रथम विवाहमें पिता ही आभ्युदयिक श्राद्ध करेंगे। किन्तु पुत्र यदि दूसरी बार विवाह करे, तो उस श्राद्धमें पिता अधिकारी नहीं होंगे, स्वयं पुत्र ही आभ्युदयिक श्राद्धका अधिकारी होगा। यहां पर उस पुत्रके पिताके मातामह पक्षका उल्लेख न हो कर उसीकी मातामह पक्षका उल्लेख होगा। पत्नीके मरने या जीनेसे कुछ होता जाता नहीं। दूसरी बार विवाह करने पर ही यह व्यवस्था जाननी होगी। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि पुत्रके संस्कारकार्यके लिये ही पिता वृद्धिश्राद्ध करेंगे। पुत्रके प्रथम विवाह-

कालमें उसका संस्कारकार्य शेष हो चुका है, अतएव द्वितीय विवाहस्थलमें पिताका अधिकार नहीं रहेगा। पिता यदि जीवित रहे, तो उन्हें छोड़ कर तीन पीढ़ी ऊपरका श्राद्ध करना होगा। (श्राद्धतत्त्व)

ऊपर जिन सब श्राद्धोंकी बात कही गई, वे सभी श्राद्ध पार्वण, वृद्धि और एकोद्दिष्ट श्राद्धके अन्तर्गत हैं। परन्तु उनमेंसे किसी किसी श्राद्धमें थोड़ा बहुत फर्क है। आद्यश्राद्ध, मासिकश्राद्ध और साम्वत्सरिकश्राद्ध ये एकोद्दिष्ट श्राद्धके अन्तर्गत हैं। श्राद्धकालमें आद्यैकोद्दिष्ट, मासिकैकोद्दिष्ट और साम्वत्सरिकैकोद्दिष्ट इत्यादि रूप वाक्य होंगे। सपिण्डीकरण नहीं होने तक इन सब श्राद्धोंमें पितृ आदि पदका उल्लेख न हो कर प्रेतपद उल्लिखित होगा। इन सब एकोद्दिष्ट श्राद्धमें कुशमय एक ब्राह्मण बना कर उसके सामने श्राद्ध करना होगा।

नवान्न, नवोदक, अष्टका, प्रायश्चित्त, अमावस्या, प्रेतपक्ष, पूर्णिमा आदि तिथियोंमें जो श्राद्ध कहा गया है उसका नाम पार्वणश्राद्ध है। शास्त्रमें जहां श्राद्ध शब्द कहा गया है, वहां पार्वणश्राद्ध ही समझना होगा। इस पार्वणश्राद्धमें भी कुशके चार ब्राह्मण बना कर उनके सामने श्राद्धानुष्ठान करना होता है। इन चार ब्राह्मणोंमें दैव पक्षमें दो और पितृपक्षमें एक और मातामह पक्षमें एक है।

आभ्युदयिक श्राद्धमें दो दो कर ब्राह्मण निर्माण करना होता है। सामवेदियोंके इस श्राद्धमें भी ६ पुरुषका श्राद्ध कहा है। अतएव उन्हें छः ब्राह्मण बनाने होते हैं। यथा— दो दैव पक्षमें, दो पितृपक्षमें और दो मातामह पक्षमें। यजुर्वेदियोंके इस श्राद्धमें ६ पुरुषका श्राद्ध करना होता है। इसमें एक मातृपक्षमें अधिक है, अतः उनके इस श्राद्धमें ८ ब्राह्मण बना कर उनके सामने श्राद्ध करना होता है। इन आठ ब्राह्मणोंमेंसे दो दैवपक्षमें, दो मातृपक्षमें, दो पितृपक्षमें और दो मातामह पक्षमें होंगे।

इन सभी श्राद्धोंका एक एक सूत्र है। साम, ऋक् और यजुर्वेद भेदसे श्राद्धपद्धति भी भिन्न भिन्न प्रकारकी है। श्राद्ध परस्पर भिन्न होने पर भी प्रभेद सामान्य मात्र है, क्रियाप्रणाली एक ही तरहकी है, परन्तु वेदभेदमें मन्त्रकी भिन्नता मात्र देखी जाती है।

नीचे सामवेदीय पार्वणश्राद्धकी पद्धति लिखी जाती है—

जिस दिन पार्वण श्राद्ध करना होगा, उसके पूर्व दिन निरामिष भोजन कर संयत हो कर रहे। यदि किसी कारणवश संयत हो कर न रहा जाय, तो उस दिन दो बार स्नान करके श्राद्ध किया जा सकता है। स्नान, तर्पण और प्रातःकृत्यादि समाप्त करके दक्षिणमुखसे बैठें। श्राद्ध स्थलमें दक्षिणमुखमें तिलतैल वा घृत द्वारा दीप बालना होता है। जहां बैठ कर श्राद्ध करना होगा, उस स्थानको गोबरसे अच्छी तरह लीपना आवश्यक है। आसन पर बैठ कर गङ्गामृत्तिका द्वारा तिलक लगावे। पीछे पूर्व और उत्तरमुखमें बैठ दो बार आचमन कर पहले पूर्वमुखमें भोज्योत्सर्ग करना होता है।

भोज्योत्सर्ग यथा,—

"ओं कुरुक्षेत्रं गयाङ्गाप्रभासपुष्कराणि च।
तीर्थान्येतानि पुण्यानि दानकाले भवन्त्विह॥"

यह मन्त्र पढ़ कर वामपार्श्वस्थित आमान्नको बायें हाथसे पकड़ 'एते गन्धपुष्पे ओं सोपकरणामान्नभोज्याय नमः' ऐसा पढ़े और तीन बार उस भोज्य पर गंधपुष्प चढ़ावे। इसके बाद 'एतदधिपतये श्रीविष्णवे नमः एतत् सम्प्रदानाय ब्राह्मणाय नमः' कह कर त्रिपत्र द्वारा जलका छींटा दे। अनन्तर ताम्रादि पात्रमें कुशत्रिपत्रके साथ जलग्रहण कर निम्नोक्त वाक्य द्वारा दान करे। वाक्य यथा—

'विष्णुरोमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुक गोत्रस्य पितुः अमुक देवशर्मणः, (इसी प्रकार पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह इन छः पुरुषोंका नाम उल्लेख कर) अमुकनिमित्तकपार्वणविधिकश्राद्धवासरे और पीछे फिरसे इन छः पुरुषोंके गोत्र और नामका उल्लेख कर 'स्वर्गकामः एतत् सघृतसोपकरणामान्नभोज्यमर्चितं श्रीविष्णुदैवतं यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददानि' यह पढ़ कर कुशत्रिपत्र द्वारा आमान्नके ऊपर जलका अभ्युक्षण दे।

इस तरह भोज्यदान कर उसकी दक्षिणा देनी होगी। फल या पैसा ले कर उसको अर्चना कर 'अमुकपक्षे अमुक तिथौ (६ पुरुषके नामादिका उल्लेख कर) कृतैतत् सघृतसोपकरणामान्नभोज्यदानकर्मणः साङ्गतार्थं दक्षिणा मिदं फलं श्रीविष्णुदैवत यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददानि।' इस प्रकार दक्षिणान्त करके अच्छिद्रावधारण करे। हाथमें थोड़ा जल ले कर 'कृतैतत् सोपकरणामान्नभोज्यदानकर्माच्छिद्रमस्तु।'

इस दानके बाद वास्तुपूजा करनी होती है। वास्तु पूजा इस प्रकार है—

'एतत् पाद्यं ओं वास्तुपुरुषाय नमः', इस मन्त्र द्वारा दशोपचारसे पूजा करे, पूजामें श्राद्धोयाग्रभाग भोज्य वास्तुपुरुषको चढ़ाना होगा।' एतच्छ्राद्धोयाग्रभागं सघृतसोपकरणामान्नभोज्यं ओं वास्तुपुरुषाय नमः।' पीछे निम्नोक्त मन्त्रसे प्रणाम करना होता है।

"ओं सर्वे वास्तुमया देवाः सर्वं वास्तुमयं जगत्।
पृथ्वीधर त्वं देवेश वास्तुदेव नमोऽस्तुते॥"

विष्णुपूजा—वास्तुपूजाके बाद फिर विष्णुपूजा करनी होती है। 'ओं यज्ञेश्वराय श्रीविष्णवे नमः' इस मन्त्र द्वारा दशोपचार द्वारा पूजा करे, पीछे एतद् श्राद्धीयाग्रभागसघृतसोपकरणामान्नभोज्यं ओं यज्ञेश्वराय श्रीविष्णवे नमः' यह पढ़ कर भोज्य निवेदन करना होगा।

इस प्रकार विष्णुको श्राद्धका अग्रभाग दे कर जहां श्राद्ध होगा, उस स्थानके अधिष्ठात्री देवता और गङ्गाकी पूजा तथा स्तव करना होता है। दूसरेकी जमीनमें यदि श्राद्ध किया जाय, तो भूस्वामीको थोड़ा भूमिमूल्य देना कर्त्तव्य है। अथवा 'इदमन्नं ओं भूस्वामिपितृभ्यः स्वधा' कह कर भूस्वामीके पितरोंके उद्देशसे भोज्य दे।

अपनी भूमि या अस्वामिक भूमिमें पार्वण श्राद्ध करनेसे भूमिका मूल्य देना नहीं पड़ता। शास्त्रमें अस्वामिक भूमिका विषय इस प्रकार लिखा है,—वन, पर्वत, नदीप्रवाहके दोनों किनारे चार हाथ जमीन, पुण्यमय पुरुषोत्तमादिका गृह, गयादि क्षेत्र, दण्डकादि अरण्य, गङ्गा प्रभृति पुण्य नदीका गर्भ और उसके दोनों पार्श्व डेढ़ सौ हाथ तक, तीरके दोनों किनारे दो कोस तक क्षेत्र, ये सब स्थान राजा प्रभृतिके अधिकारमें रहने पर भी अस्वामिक हैं। अतएव इन सब स्थानोंमें श्राद्धानुष्ठान करनेसे भूस्वामिके पितरोंको अन्न देनेकी आवश्यकता नहीं।

ब्राह्मणस्थापन यथा—भूस्वामिपितृपूजा करके ब्राह्मण स्थापन करना होता है। पार्वणमें तीन पक्ष होंगे, दैवपक्ष, पितृपक्ष, और मातामहपक्ष। पहले दैवपक्षमें एक पात्रमें कुछ यव मिश्रित जल द्वारा तथा पितृपक्ष और मातामहपक्षमें दो आसन पर दक्षिणाग्र एक एक कुश तिलोदक द्वारा प्रोक्षण कर दक्षिणदिशामें स्थापन करे। दैवपक्षीय ब्राह्मणका आसन पश्चिमकी ओर स्थापन करना होता है। पीछे ७ या ५ प्रादेशप्रमाणके साग्रकुशद्वारा तीन कुशमय ब्राह्मण बनाने होंगे। ब्राह्मण निर्माण कालमें प्रणव मन्त्रका पाठ करना होता है। पीछे इन तीनोंको एक आसन पर रख—

"ओं सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥"
(शुक्लयजुः ३१।१)

इस मन्त्रसे स्नान करावे, पीछे 'ओं दर्भमय ब्राह्मणेभ्यो नमः' इस मन्त्रसे पाद्यादि दशोपचारसे पूजा कर देवपक्षके आसन पर पश्चिमाग्र एक ब्राह्मण, पितृ और मातामह पक्षमें दक्षिणाग्ररूपमें उत्तरमुखी करके दो ब्राह्मण स्थापनका अनुज्ञा वाक्य करना होगा।

इस श्राद्धमें दैवपक्षमें जब जो कार्य करना होगा, वह उत्तरकी ओर मुंह कर उपवीती और पातित-दक्षिणीजानु हो करना होता है। पितृकृत्यमें अर्थात् पितृपक्ष और मातामह पक्षमें जब जो कार्य करना होगा, तब दक्षिणकी ओर मुंह कर पातित वाम जानु और प्राचीनावीति हो कर करे।

अनुज्ञा—पहले दैवपक्षमें उत्तर ओर मुंह करके उपवीती और पातित दक्षिण जानु अर्थात् दाहिनी जंघा गिरा कर 'ओमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य पितुः अमुकस्य' इस प्रकार पितामह और प्रपितामह इन पुरुषोंका नाम ले कर 'अमुकनिमित्तकपार्वणविधिकश्राद्धे कर्त्तव्ये ओं पुरुरवामाद्रवसौ विश्वेषां देवानां अमुकनिमित्तकपार्वणविधिकश्राद्धं दर्भमय ब्राह्मणेऽहं करिष्ये' इस वाक्य द्वारा कृताञ्जलि-

पुटसे प्रश्न करने पर पुरोहित 'ओं कुरुष्व' यह प्रतिवाक्य बोले।

दूसरेके मतसे दैवपक्षमें दो ब्राह्मण स्थापन करने होते हैं। दो ब्राह्मण स्थापनकी जगह 'दर्भमय ब्राह्मणयोरह' ऐसा वाक्य होगा।

पितृपक्षमें अनुज्ञा—दक्षिणमुखसे प्राचीनावीती हो कर बाईं जांघ गिरा कर पितृपक्षके दर्भमय ब्राह्मणके ऊपर जल दे, पीछे कृताञ्जलि हो, 'ओमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य पितुः अमुकस्य' बादमें पितामह और प्रपितामहका नामोल्लेख कर 'अमुकनिमित्तकपार्वणविधिकश्राद्धं दर्भमयब्राह्मणेऽहं-करिष्ये' ऐसा कहें। पुरोहित भी 'ओं कुरुष्व' यह प्रतिवाक्य बोलें। इसी प्रकार मातामह पक्षमें भी अनुज्ञ वाक्य करना होगा, अर्थात् उस वाक्यके 'अमुकगोत्रस्य मातामहस्य अमुकस्य इत्यादि' रूपभेद वाक्य कहने होंगे।

यह पार्वण श्राद्ध महालयामें होनेसे अमुकनिमित्तककी जगह 'महालयामावास्यानिमित्तक', दीपान्वितामें होनेसे 'दीपान्वितामावास्यानिमित्तक', नवान्नमें होनेसे 'नवान्नागमनिमित्तक' इत्यादिरूप निमित्त विशेषका उल्लेख करना होगा।

पीछे प्रणव-व्याहृतिके साथ प्रणवान्ता गायत्रीका जप कर—

"ओं देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्विति।"

इस मंत्रका तीन बार पाठ करे। पीछे 'ओं तद्विष्णोः' इत्यादि मंत्रोंसे विष्णुका स्मरण कर थोड़ी मृत्तिका जलमें घोल उसमें तुलसी-पत्र दे उस जलसे श्राद्धीय सभी द्रव्य प्रोक्षण करने होते हैं। अनंतर एक पात्रमें दैव ब्राह्मणके दक्षिण पार्श्वकी और एक पात्रमें पितृब्राह्मणके वामपार्श्वकी तथा एक और पात्रमें मातामह-पक्ष ब्राह्मणके वामपार्श्वकी रक्षाके लिये थोड़ा थोड़ा जल रखना होगा। इस प्रकार जल रखनेके बाद दर्भासन दान करना होता है।

दर्भासन दान यथा—उत्तरमुखसे उपवीती हो दाहिनी जांघ गिरा कर दैव ब्राह्मणके हाथमें जल दे कर 'ओं पुरुरवोमाद्रवसौविश्वेदेवा एतद्वो दर्भासनं नमः' यह मंत्र पढ़ कर दैवब्राह्मणके दक्षिणपार्श्वमें एक सरल कुशपत्र रखें। पीछे दक्षिणमुखसे प्राचीनावीती हो और बाईं जांघ गिरा कर पितृब्राह्मणके हाथमें जल दे तथा 'ओं अमुकगोत्रपितः अमुक' इस प्रकार पितामह और प्रपितामहका नामोल्लेख कर 'एतत्ते दर्भासन' ओं ये चात्र त्वामनुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा' मन्त्र पाठ कर कुशनिर्मित मोटक पितृब्राह्मणके वामपार्श्वमें रखे। अनन्तर इसी प्रणालीसे मातामह पक्षके ब्राह्मणको जल दे कर मातामह पक्षके ब्राह्मणके वामपार्श्वमें कुशनिर्मित मोटक देना होता है।

आवाहन—इस प्रकार दर्भासन दान करनेके बाद पितरोंका आवाहन करना होता है। पहले दैवपक्षमें उत्तरमुख उपवीती और पातित वामजानु हो जौ ले कर 'ओं विश्वान् देवान् आवाहयिष्ये' मन्त्र पाठ करनेसे पुरोहित 'ओं आवाहय' यह अनुमति दें। इसके बाद निम्नोक्त मन्त्रका पाठ करना होता है—

'ओं विश्वे देवास आगत शृणुताम इमꣳ हवं एदं बर्हिर्निषीदत' (शुक्लयजुः ७।३४) इस मन्त्रसे आवाहन कर जौ दैव ब्राह्मणके ऊपर छिड़क देना होगा। इसके बाद कृताञ्जलि हो यह मन्त्र पढ़ना होता है, यथा—

'ओं विश्वेदेवाः शृणुतेमꣳ हवं मे ये अन्तरिक्षे य उपद्यविष्ठ। ये अग्निजिह्वा उतवा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्।' (शुक्लयजु ३३।५३) 'ओं ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा। यस्मै कृणोति ब्राह्मण स्तꣳ राजन् पारयामसि।'

इसके बाद दक्षिणमुखसे प्राचीनावीती और पातित वामजानु हो तिलग्रहण कर 'ओं पितॄन् आवाहयिष्ये' कहने पर पुरोहित 'ओं आवाहय' यह अनुज्ञा दें। पीछे निम्नोक्त मन्त्रसे आवाहन करना होगा। मंत्र इस प्रकार है—

'ओं एतः पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्व्याणेभिर्दत्तास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रैञ्च नः सर्ववीरं नियच्छत। ओं उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्त समिधीमहि उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे।' इस मन्त्रसे पितरोंको आवाहन कर कृताञ्जलि हो यह मन्त्र पढ़े।

'ओं आयान्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निस्वात्ता पथिभिर्देवयानैः।' (शुक्लयजु० १९।५८)

'अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु ते अवन्त्वस्मान्।' यह मंत्र पढ़ कर तिल ले "ओं अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः" इस मन्त्रसे पितृ और मातामह ब्राह्मण पर तिल फेंकना होगा।

अर्घ्यदान यथा—आवाहन करनेके बाद अर्घ्यदान करना होता है। जलस्पर्श कर पहले दैवब्राह्मणके सामने दक्षिणाग्र कुशके ऊपर एक पात्र, पीछे पितृपक्षीय ब्राह्मणके सामने दक्षिणाग्र कुशके ऊपर तीन पात्र, बादमें मातामहपक्षीय ब्राह्मणके सामने दक्षिणाग्र कुशके ऊपर तीन पात्र स्थापन करे। अनन्तर दो दो कुश ले 'ओं पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ' मंत्र पढ़ कर प्रादेशप्रमाण अवशिष्ट रख कर नख भिन्न किसी दूसरी वस्तुसे छेदन तथा 'ओं विष्णु मनसा पूते स्थः' मंत्रसे अभ्युक्षण करे। इसके बाद इन पवित्रोंको दैवादि क्रमसे ७ पात्रोंमें रखना होगा।

"ओं शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः।' (शुक्लयजुः ३६।१२) यह मंत्र पढ़ कर उन सात पवित्रोंमें जल देना होगा। अनन्तर जौ ले कर—

'यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः दिवे त्वा अन्तरीक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्तां लोकाः पितृसदनाः पितृसदनमसि' इस मन्त्रसे दैवपक्षके अर्घ्यपात्रमें जौ दे पीछे तिल ले कर 'ओं तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा।' मन्त्र पढ़ कर पितृपक्ष और मातामह पक्षमें तिल देना होगा। इसके बाद दैवादिक्रमसे ७ अर्घ्यपात्रमें अमन्त्रक गंध पुष्प दे कर एक दूसरे कुश द्वारा आच्छादन कर 'ओं अच्छिद्रमिदमर्घ्यपात्रमस्तु' यह मन्त्र पढ़नेसे पुरोहित 'ओं अस्तु' यह प्रतिवाक्य कहें। इन ७ अर्घ्यपात्रोंको जिन ७ कुशोंसे आच्छादन किया गया था, उस आच्छादनको उद्घाटन करना होगा।

इसके बाद उत्तरमुखसे उपवीती और पातित दक्षिण जानु हो दैवब्राह्मणके हाथमें अर्घ्यपात्रके प्रागग्र पवित्रसे अन्य जल और पुष्प दे 'ओं शिरः प्रभृति सर्वगात्रेभ्यो नमः' इस मन्त्रसे पूजा करे। पीछे वह अर्घ्यपात्र वाम हस्तमें ले कर उत्तानभावापन्न दक्षिणहस्त द्वारा आच्छादन कर 'ओं या दिव्या आपः पयसा संबभूवुर्या अन्तरीक्षा उत पार्थिवीर्या हिरण्यवर्णा यज्ञीयास्तान आपः शिवाः संश्योनाः सुहवा भवन्तु।' इस मन्त्रसे वह पात्र जमीन पर रखे। पीछे वाम हस्त द्वारा दक्षिणबाहुमूल स्पर्श कर 'ओं पुरूरवोमाद्रवसौ विश्वे एतद्वोऽर्घ्यं नमः' इस मन्त्रसे दक्षिण हस्त द्वारा दैव ब्राह्मणमें अर्घ्यदान कर पितृपक्षमें अर्घ्य देना होता है।

दक्षिणमुखसे प्राचीनावीती और पतित वामजानु हो कर पहलेकी तरह अर्घ्यपात्र कुश द्वारा आच्छादन और उद्घाटन कर पितृब्राह्मणमें दक्षिणाग्र पवित्र दान करे। इसके बाद अन्न, जल और पुष्प द्वारा 'ओं शिरः प्रभृति सर्वगात्रेभ्यो नमः' मन्त्रसे पूजा करे। अनन्तर वामहस्तमें अर्घ्यपात्र ले कर दक्षिण हस्तको उत्तानभावमें रख उससे आच्छादन करे और 'ओं या दिव्या आपः पयसा' इत्यादि मन्त्र पढ़ कर पात्रको भूमि पर रख वामहस्त द्वारा दक्षिणबाहुमूल स्पर्श कर 'ओं अमुकगोत्र पितरमुकदेवशर्मन्नेतत्तेऽर्घ्यं ओं ये चात्र त्वामनुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा। यह मन्त्र पढ़े। पीछे दक्षिण हस्त द्वारा पितृब्राह्मणमें अर्घ्य दे कर उस पात्रमें शेष जो जल रहेगा उस जलके साथ वह पात्र पूर्वस्थानमें रख दे। इसी प्रणालीसे पितृब्राह्मणमें पितामह और प्रपितामहका तथा मातामहपक्षीय ब्राह्मणमें मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहका अर्घ्यदान कर पूर्वस्थानमें पात्रोंको रखना होगा। केवल नामका पृथक् पृथक् उल्लेख करना होगा। एक अर्घ्य दे कर एक एक बार जल स्पर्श करना होता है।

पीछे पितृपात्रमें पितामह प्रपितामह, मातामह प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह पात्रका जल क्रमशः ग्रहण कर प्रपितामह पात्र द्वारा आच्छादन करे। बादमें अपनी बाँई ओर समूल कुशके ऊपर 'ओं पितृभ्यः स्थानमसि' यह मन्त्र पढ़ कर न्युब्ज करे अर्थात् नीचेके पात्रको ऊपर और ऊपरके पात्रको नीचे रखना होगा।

गंधादि दान यथा—उक्त प्रकारके अर्घ्य दान कर

गंधादि दान करना होता है। दैव, पितृ और मातामह इन तीन पक्षमें तीन पात्रोंमें गन्धादि (गंध, पुष्प, धूप, दीप और वस्त्र) रखने होंगे। इसके बाद उत्तरमुखसे उपवीती और पातित दक्षिणजानु हो 'ओं पुरुरवोमाद्रवसौ विश्वे देवा एतानि वो गन्ध-पुष्प-धूपदीपाच्छादनानि नमः' इस मन्त्रसे गंधादि उत्सर्ग कर 'एष वो गन्धः' कह कर गन्ध, 'एतद्वः पुष्प' इस मन्त्रसे पुष्प, 'एष वो धूपः' इस मन्त्रसे धूप, 'एष वो दीपः' मन्त्रसे दीप, एतद्वः आच्छादनं मन्त्रसे वस्त्र, ये सब द्रव्य दैवपक्षीय दर्भमय ब्राह्मणके ऊपर दें। इस प्रकार दैवपक्षमें गंधादि दान कर पित्रादिपक्षमें गंधादि दान करना होता है।

दक्षिणमुखसे प्राचीनावीती और पातित वाम जानु हो 'अमुकगोत्र पितुः अमुकदेवशर्मन्' इस प्रकार पितामह और प्रपितामहका नामोल्लेख कर 'एतानि ते गन्ध-पुष्पधूपदीपाच्छादनानि ओं ये चात्र त्वा इत्यादि' मन्त्रसे उत्सर्ग कर 'एष ते गन्धः' मन्त्रसे गंध, 'एतत्ते पुष्पं' मन्त्रसे पुष्प, 'एष ते धूपः' मन्त्रसे धूप, 'एष ते दीपः' मन्त्रसे दीप, 'एतत्ते आच्छादनं' मन्त्रसे वस्त्र, पितृपक्षीय ब्राह्मणके ऊपर दे। पुरोहित प्रत्येक द्रव्यदानके बाद सुगन्धः, सुपुष्पं, सुधूपः, सुदीपः स्वाच्छादनं, इस प्रकार प्रतिवाक्य कहें। इस प्रणालीसे मातामह, प्रमातामह और वृद्ध प्रमातामहका नामोल्लेख कर वह द्रव्य मातामह पक्षके दर्भमय ब्राह्मणके ऊपर देना होगा। इस तरह गंधादि दान कर 'ओं गन्धादिदानमिदमच्छिद्र-मस्तु' इस मन्त्रसे अच्छिद्रावधारण करे। पुरोहित 'ओं अस्तु' यह प्रतिवाक्य कहें।

गन्धदानके बाद अन्नदान करना होता है। अन्नदान यथा—

पहले दैवब्राह्मण, पीछे पितृब्राह्मण, उसके बाद मातामह पक्षके ब्राह्मणके सामने खोल आदि फेंक कर उस स्थानको परिष्कार करे, पीछे वहां अन्नपात्र रखे। दैवपक्षमें ईशानकोणसे ले कर दक्षिणावर्त्तक्रमसे पूर्वाग्र एक रेखा खींचे। इस रेखाके ऊपर दैवपक्षीय पात्र रखना होता है। इसके बाद पितृब्राह्मणके सामने नैऋत कोणसे ले कर वामावर्त्त क्रमसे दक्षिणाग्र रेखा खींचे और एक चतुष्कोण मण्डल बना कर पितृपक्षीय पात्र रखे। इसी प्रकार मातामहपक्षीय ब्राह्मणके सामने भी अन्नपात्र रखना होगा।

उक्त प्रणालीसे तीन अन्नपात्र स्थापित होने पर एक पात्रमें जल रखे और दूसरे पात्रमें थोड़ा चावल घृतके साथ ग्रहण कर 'ओं अग्नौ करणमहं करिष्ये' यह मंत्र पढ़े, पुरोहित 'ओं कुरुष्व' यह प्रतिवाक्य कहें। इसके बाद 'ओं स्वाहा सोमाय पितृमते' इस मंत्रसे उक्त जलमें चार अन्न डाल देना होगा। 'ओं स्वाहा अग्नये कव्य-वाहनाय' इस मंत्रसे उस जलमें एक बार तथा अमंत्रक दो बार अन्न निक्षेप करना होता है। पीछे वह अन्न दैवपक्षमें दो बार, पितृपक्षमें तीन बार और मातामह पात्रमें तीन बार परिवेशन करे।

इसके बाद पहले दैवपात्रको अनुत्तान हस्त अर्थात् अधोमुखभावमें वामहस्त नीचे और दक्षिणहस्त उसके ऊपर रख 'ओं पृथिवी ते पात्रं द्यौ पिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहा' यह मंत्र पढ़े। पीछे पितृपक्षके पात्रको उत्तान हस्त अर्थात् चित भावमें वाम हस्त नीचे और दक्षिण हस्त उसके ऊपर रख 'ओं पृथिवी ते पात्रं इत्यादि' मंत्र पाठ करे। इसी प्रणालीसे मातामहपक्षका पात्र भी स्थापन करना होगा।

अनन्तर इन तीनों पात्रमें अन्नादि अर्थात् अन्न और उसका उपकरण और घृत, मधु, जल, फल आदि नाना प्रकारके उपादेय द्रव्य परिवेशन करे। इनमेंसे दैवपात्रमें दो भाग, पितृपात्रमें तीन भाग और मातामहपात्रमें तीन भाग कर देना होगा। सभी उपकरण पृथक् पृथक् पात्रमें रखने होते हैं। यदि पृथक् पात्र नहीं रहे तो अन्नके ऊपर रखना होगा, किंतु पृथक् पात्रमें करके कभी भी अन्नके ऊपर न रखे। अन्य पात्रमें सीसा, लोहा और प्रस्तरनिर्मित पात्र यदि ८ अंगुलसे कम अथवा टूटा-फूटा हो या मृण्मय पात्र हो, तो उसमें कदापि न रखे। किंतु ताम्रपात्र भग्न होने पर भी उसमें परिवेशन किया जा सकता है तथा रौप्यपात्र आठ अंगुलीसे कम होने पर भी वह प्रशस्त है।

इस प्रकार अन्नादि परिवेशन कर दैवपक्षका पात्र वाम हस्तसे पकड़ 'ओं विष्णोः मन्यमिदं रक्षस्व' यह

मंत्र पढ़ पितृ और मातामह पक्षमें यथाक्रम 'ओं इदं विष्णर्वि'चक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढ़मस्य पांशुले, (शुक्लयजुः ५।१५) इस मंत्रका पाठ करे। पीछे 'इद-मन्नं इमा आपः इदं हवि' इस मंत्रसे अन्नादिमें नख-भिन्न अंगुष्ठ स्पर्श करावे। इसके बाद दैवपक्षके अन्न-में जौ छिड़क देना होता है। पितृ और मातामह पक्षके अन्नमें 'ओं अपहता सुरा रक्षांसि वेदिषदः' यह मंत्र पढ़ कर तिल निक्षेप करे। बादमें दैवादि क्रमसे ब्राह्मणको जल देना होता है। अन्नमें मधु तथा मधु नहीं रहने पर गुड़ दे कर प्रणवव्याहृतिके साथ पाठ कर मधुमंत्र पढ़े। मंत्र इस प्रकार है—

"मधुवाता ऋतायते मधु क्षरंतु सिन्धवः।
ओं माध्वीनः सन्त्वोषधीः॥
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।
ओं मधु द्यौरस्तुः नः पिता॥
मधुमान् नो वनस्पतिर्मा।
अस्तु सूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥"
(शुक्लयजु० १३।२७-२६)

पीछे 'ओं मधु मधु मधु' इस मंत्रका जप करे।

इसके बाद दैवपक्षमें अन्नदान करना होगा। उत्तर-मुखसे उपवीती और पातित दक्षिणजानु हो कर अनुत्तान-भावमें वाम हस्तसे दैव अन्नपात्र पकड़ कर दैवब्राह्मण-में जल दे 'ओं पुरुरवोमाद्रवसौ विश्वेदेवा एतद्वोऽन्नं सोपकरणं सयवोदकं नमः।' यह मंत्र पढ़ कर अन्न उत्सर्ग करे। पीछे 'इदमन्नं इमा आपः इदं हविः एतान्युपकरणानि यथासुखं वागपतौ स्वदेतां' मंत्र पढ़े।

इस प्रकार दैवपक्षमें अन्नदान कर पितृपक्षमें अन्न दान करना होगा। दक्षिणमुख प्राचीनावीती और पातित वामजानु हो उत्तान वामहस्तसे अन्नपात्र पकड़ कर पितृब्राह्मणमें जलगण्डूष दे और अन्न पर जलप्रोक्षण करे। पीछे 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढ़-मस्य पांशुले', यह मंत्र जपे और 'ओं अमुकगोत्र पितर-मुकदेवशर्मन्' पीछे पितामह और प्रपितामहका नामो-ल्लेख कर 'एतत्तेऽन्नं सोपकरणं ये चात्र त्वामनुजांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा' यह कह कर उत्सर्ग करे। बादमें 'इदमन्नं इमा आपः इदं हविः एतान्युपकरणानि यथा सुखं वाग्यताः स्वदत' यह मंत्र पढ़े। इसके बाद इसी प्रणालीसे मातामहपक्षका अन्न मातामह प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहका नामोल्लेख कर उत्सर्ग करना होगा। अनंतर प्रत्येक ब्राह्मणमें जल दे कर प्रणव व्याहृतिके साथ गायत्री और मधुमंत्रका पाठ और मधु-जप करे। पीछे कृताञ्जलि हो कर 'ओं अन्नहीनं क्रिया-हीनं विधिहीनञ्च यद्भवेत् तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु' यह मंत्र पढ़ पितरोंसे प्रार्थना करे। इसके बाद फिरसे प्रणव और व्याहृतिके साथ गायत्री-पाठ कर मधुमंत्रका पाठ और मधुजप करना होगा।

पिण्डदान यथा—अन्न दानके बाद पिण्डदान करना होता है। एक पात्रमें अन्न, दधि, क्षीर, कदली आदि उपकरण द्वारा पिण्ड मिलाना होता है। पिण्डमें मिलाते समय निम्नोक्त मन्त्रका पाठ करे।

"ओं यज्ञेश्वरो हव्य समस्त कव्य
भोकाव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र।
तत्सन्निधानादपयान्तु सद्यो
रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे॥
ओं योगीश्वरं याज्ञवल्क्यं संपूज्य मुनयोऽब्रुवन्।
वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रूहि धर्मानशेषतः॥
ओं मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः।
यमापस्तम्बसम्वर्त्ताः कात्यायनबृहस्पती।
पराशरव्यासशङ्खलिखिता दक्षगौतमौ॥
शातातपो वशिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः॥
ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरय
दिवीव चक्षुराततम्।
ओं दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः
स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखा।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे
मूलं राजा धृतराष्ट्रो मनीषी॥
ओं युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः
स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखा।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे
मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च॥
ओं सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालाञ्जरे गिरौ।

चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥
तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदत ॥"

यह श्राव्य मन्त्र पढ़नेमें समर्थ होने पर रुचिस्तव पाठ करे। असमर्थ होने पर निम्नोक्त वाक्य पढ़ना होता है। यथा—

'ओं वृद्धोऽहं साम्प्रतं को मे पितरः संप्रदास्यति ।
भार्या तथा दरिद्रस्य दुष्करो दारसंग्रहः ।

पितर ऊचुः ।

"अस्माकं पतनं वत्स भवतस्त्वात्ययोगतिः ।
न्यूनं भावि भवितेि च नाभिनन्दसि नो वचः ॥
इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तमः ।
बभूवुः सहसादृश्या दीपा वातहता इव ॥
ओं रुचिः ओं रुचिः ओं रुचिः ।
नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्ते दिव्यचक्षुषे ।
नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः ॥"

अग्निदग्धा पिण्डदान यथा—देव और पितृपक्षके मध्य दक्षिणाग्र कुश बिछा कर तिलके साथ जल द्वारा अभ्युक्षण करे। पीछे निम्नोक्त मन्त्र पढ़ कर उस कुशके ऊपर छोड़ दे। मन्त्र इस प्रकार है—

"ओं अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम ।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिं ॥
ओं येषां न माता न पिता न बन्धु-
र्नैवान्नसिद्धिर्न तथान्नमस्ति ।
तत्तृप्तयेऽन्न भुवि दत्तमेतत्
प्रयान्तु लोकाय सुखाय तद्वत् ॥"

यह मंत्र पढ़ कर कुशके ऊपर पिण्ड रखे।

इसके बाद हस्तप्रक्षालन, आचमन और विष्णुस्मरण कर पितरोंके उद्देशसे पिण्ड देना होगा।

पितृपिण्डदान—प्रत्येक ब्राह्मणके ऊपर जल दे कर प्रणव और व्याहृतिके साथ गायत्री पढ़े तथा मधुमंत्र का पाठ और मधुजप करे। मधुजपके बाद बद्धाञ्जलि हो 'ओं शेषमन्नमप्यस्ति क्व देयं' वाक्य कहने पर, पुरोहित 'ओं इष्टैभ्यो दीयतां' यह अनुज्ञा करें। पीछे 'ओं पिण्डदानमहं करिष्ये' यह मंत्र कहने पर पुरोहित 'ओं कुरुष्व' यह प्रतिवाक्य बोलें। इसके बाद पिण्डदानके स्थान पर रेखा खींचनी होगी—

"ओं निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद्भवे-
द्धताश्च सर्वेऽसुरदानवा मया ।
रक्षांसि यक्षाः सपिशाचसङ्घाः
हता मया यातुधानाश्च सर्वे ॥"

यह मंत्र पढ़ कर पितृब्राह्मणके सामने एक तथा मातामहं ब्राह्मणके सामने एक और नैऋत कोणसे आरम्भ कर वामावर्त्त क्रमसे चतुष्कोण मण्डल बनावे। पीछे प्रादेश प्रमाणके साग्र दो कुश वामहस्तसे दक्षिण हस्तमें पकड़ कर

'ओं अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः।' तथा 'ओं निहन्मीत्यादि' ये दो मन्त्र पढ़ कर पूर्वोक्त दो मण्डलके बीच दक्षिणाग्र रेखा खींचे तथा दोनों कुशपत्र उत्तरकी ओर फेंक दे। इसके बाद उस रेखाके ऊपर मूलाग्र सहित कुश बिछा कर—

"ओं देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च ।
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्विति ॥"

यह मन्त्र तीन बार पढ़े। "एतः पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्वेणेभि र्दत्त्वास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रैश्च न सर्ववीरं नियच्छत।" इस मन्त्रका पाठ कर आस्तीर्ण कुश पर तिल फेंकना होता है। पीछे तिल और पुष्प ग्रहण कर ओं अमुकगोत्र पितः अमुकदेवशर्मन् ओं ये चात्र त्वा' इत्यादि मन्त्र पाठ करे।

पहले अन्नदान कालमें जो आहुति दी गई थी, उसका अवशिष्ट अन्न पिण्डमें मिला कर बिल्व प्रमाणके छः पिण्ड बनाने होंगे तथा उन सब पिण्डों पर घृत, मधु, तिल, तुलसी और मोदक दे कर उनमेंसे एक पिण्ड उठा ले। इसके बाद वामहस्तमें जलपात्र तथा दक्षिण हस्तमें पिण्ड ग्रहण कर मधुमन्त्र पाठ और मधु जप करे—

'ओं अक्षन्नमी मदन्त ह्यवप्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रानविष्ठया मती योजान्विन्द्रते हरी।' (शुक्लयजुः ३।५१) 'ओं अमुक गोत्र पितः अमुक देवशर्मन् एष ते पिण्डः ओं ये चात्र त्वामनुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा' यह मन्त्र पढ़ कर पितृपक्ष पर आस्तीर्ण कुशका मूल रखे।

इसी प्रणालीसे पितामहके नामका उल्लेख कर कुशके मध्यभागमें एक और पिण्ड देना होगा। इसके

बाद पितामहका पिण्ड कुशके आगे रखे। मातामहपक्षीय ब्राह्मणके सामने आस्तीर्ण कुश पर उक्त नियमसे मूल, मध्य और अग्रभागमें मातामह, प्रमातामह और वृद्ध प्रमातामहका पिण्ड दे। प्रत्येक पिण्डदानके बाद वाम-हस्तमें जो जलपात्र था उस जलपात्रसे 'गया गङ्गा गदाधरो हरिः' कह कर पिण्ड पर थोड़ा जल देना होता है।

पात्रमें पिण्डका अवशिष्ट जो अंश रहेगा, उसे पिण्डके चारों ओर छिड़क देना होता है। हाथमें पिण्डका जो कुछ अंश रह जाता है, एक कुशसे 'ओं लेपभुजः पितरः प्रीयन्तां' इस मन्त्रसे उसे गिरा कर पिण्डके ऊपर देना होगा। इसके बाद दोनों हाथ प्रक्षालन, आचमन और हरिस्मरण कर पिण्डपात्र प्रक्षालन करे। अनन्तर वह पात्र वामहस्तसे दक्षिण हस्तमें ग्रहण कर—

'ओं अमुकगोत्र पितः अमुकदेवशर्मन्, ओं ये चात्र त्वा' इत्यादि मन्त्र पाठ कर वह जल पिण्डके ऊपर दे। इसी तरह पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह; और वृद्धप्रमातामह, इनके पिण्ड पर भी वह प्रक्षालित जल देना होगा।

पीछे कृताञ्जलि हो 'ओं नमो वः पितरः पितरो नमोवः' (शुक्लयजुः २।३२) यह मन्त्र पढ़े, अनन्तर 'ओं गृहान्नः पितरो दत्तः' (शुक्लयजुः २।३२) यह मंत्र पढ़ कर पत्नीको आवलोकन करना होता है। 'ओं सतो वः पितरो देष्म' (शुक्लयजुः २।३२) इस मंत्रसे पिण्डाव-लोकन करनेकी विधि है।

पिण्ड पर वस्त्रदान—नये वस्त्रसे सूत्र ग्रहण कर छः पिण्डके ऊपर 'ओं एतद्वः पितरो वास आधत्त' (शुक्लयजुः २।३२) अमुकगोत्र पितः अमुकदेवशर्मन् एतत्ते वासः ओं ये चात्रत्वा इत्यादि मंत्रसे पितृपिण्ड-के ऊपर वस्त्रसूत्र देना होगा। इसी नियमसे पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहके पिण्ड पर भी देना होता है। इसके बाद गंध पुष्प द्वारा पिण्डकी पूजा करनी होती है। इस पूजामें परकृताञ्जलि हो कर—

'ओं वसन्ताय नमस्तुभ्यं ग्रीष्माय च नमो नमः।
वर्षाभ्यश्च शरत्संज्ञ ऋतवे च नमः सदा।
हेमन्ताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शिशिराय च।
माससंवत्सरेभ्यश्च दिवसेभ्यो नमो नमः॥'

'ओं षड्भ्यो ऋतुभ्यो नमः' कह कर प्रणाम करे। इसके बाद 'ओं सुप्रोक्षितमस्तु' इस मन्त्रसे देवपक्ष ब्राह्मणकी अग्रभूमि सेचन करे, पुरोहित 'ओं अस्तु' प्रतिवाक्य कहें। 'ओं शिवा आपः सन्तु' इस मन्त्रसे जल, 'ओं सौमनस्य मस्तु' इस मन्त्रसे पुष्प, 'ओं अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्तु' इस मन्त्रसे दूर्वा और तण्डुल देना होगा। पुरोहित प्रत्येक बार 'ओं अस्तु' यह वाक्य कहेंगे। इस प्रणालीसे पितृ और मातामह पक्षके ब्राह्मणमें भी जल, पुष्प, दूर्वा और तण्डुल देना होगा। इसके बाद अक्षय्य दान करना होता है।

अक्षय्य दान—जलमें तिल, घृत और मधु मिला कर वह जल 'ओं अमुकगोत्रस्य पितुः अमुकस्य कृतेऽस्मिन् पार्वणविधिकश्राद्धे दत्तमिदमन्नपानादिकमक्षय्यमस्तु' इस मन्त्रसे पिण्डके ऊपर दे। पुरोहित ओं अस्तु ऐसा प्रतिवाक्य कहें। पीछे इसी तरह पितामह, प्रपितामह और वृद्धप्रपितामह, मातामह, प्रमातामह, और वृद्धप्रमातामहका नाम उल्लेख कर फिर पांच पिण्डके ऊपर देना होगा।

इसके बाद 'अघोराः पितरः सन्तु' यह मंत्र कहनेसे पुरोहित 'ओं सन्तु' कहें। 'ओं गोत्रं नो वर्द्धतां' पुरोहित कहें 'ओं वर्द्धतां' इसके बाद ब्राह्मणके हाथमें जो पवित्र दिया गया था उस पवित्रके साथ कुश पिण्ड-के ऊपर आस्तरण कर 'ओं स्वधां वाचयिष्ये' कहने पर पुरोहित कहेंगे 'वाच्यतां ओं पितृभ्यः स्वधोच्यतां' पुरोहित कहें 'ओं अस्तु स्वधा।' इसी तरह पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहको स्वधा वाचन करना होता है। पुरोहित प्रतिवार 'ओं अस्तु स्वधा' यह मंत्र कहें। इसके बाद—

'ओं ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं पयः कीलालं परिस्रुतं।
स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन्।' (शुक्लयजुः २।३४)

यह मन्त्र पढ़ कर सपवित्र कुशके साथ पिण्डके ऊपर जलधारा द्वारा सेक करे।

दक्षिणान्त—अपनो बांई ओर जो न्युब्ज पात्र था, उसे उठा कर दक्षिणा करनी होती है, रजतखण्ड ग्रहण कर 'ओं विष्णुरोम् तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुके तिथौ अमुक गोत्रस्य पितुः अमुकस्य' इस प्रकार पितामह और प्रपितामहका उल्लेख कर कृतैतत् पार्वण-विधिके श्राद्धकर्मणः प्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं रजतखण्डं (वा तन्मूल्यं) विष्णुदैवतं यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददे ।' इस प्रकार मातामह पक्षमें भी उनके नामोंका उल्लेख कर दक्षिणान्त करे ।

पीछे दैवपक्षमें दक्षिणान्त करना होगा—'ओं विष्णुरोमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ पुरुरवोमाद्रवसौ विश्वेषां देवानां कृतैतत् पार्वणविधिकश्राद्धकर्मणः प्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं काञ्चनखण्डं (वा तन्मूल्यं) यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददे ।' यह कह कर दक्षिणान्त करे । पीछे कृताञ्जलि हो कर कहना होगा—

'अनया दक्षिणया श्राद्धमिदं सदक्षिणमस्तु ।' पुरोहित 'ओं अस्तु' यह वाक्य कहें । इसके बाद 'ओं विश्वेदेवाः प्रीयन्तां' कहने पर पुरोहित 'ओं प्रीयन्तां' कहें । इसके बाद 'ओं देवताभ्यः पितृभ्यः' यह मन्त्र तीन बार पढ़ना होता है ।

इस प्रकार पितरोंका श्राद्ध करके दक्षिणमुखसे उनके निकट कृताञ्जलि हो आशीर्वादके लिये प्रार्थना करे । 'ओं आशिषो दीयन्तां' इस पर पुरोहित 'ओं आशिषः प्रतिगृह्यन्तां' यह वाक्य कहें । इसके बाद निम्नोक्त मन्त्रसे आशीर्वाद ग्रहण करे । मंत्र इस प्रकार है—

"ओं दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयञ्च नोऽस्त्विति ॥
अन्नञ्च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ।
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिस्म कञ्चन ।
अन्नं प्रवर्द्धतां नित्यं दाता शतं जीवतु ॥
येभ्यः सङ्कल्पिता द्विजास्तेषामक्षय्या तृप्तिरस्तु ।
एताः सत्या आशिषः सन्तु । पितृवरः प्रसादोऽस्तु ।'

यह आशीर्वाद प्रार्थना करने पर पुरोहित भी 'अस्तु' कहें ।

इसके बाद 'देवताभ्यः पितृभ्यश्च' इत्यादि मंत्रका तीन बार पाठ करना होता है । यह मंत्र पढ़नेके बाद—

'ओं वाजे वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः । अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ।' (शुक्लयजु० ९।१८)

यह मंत्र पढ़ कर तीन कुश द्वारा ब्राह्मणस्थ पितृपुरुषोंको विसर्जन करना होता है । पिण्डविसर्जनके बाद उस मंत्रसे ब्राह्मणस्थ देवताओंका विसर्जन करे—

'ओं आमावाजस्य प्रसवो जगम्यादमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे । आमागन्तां पितरा मातरा च मा सोमोऽमृतत्वेन गम्यात् ।' (शुक्लयजु० ९।१९)

इस मंत्रसे दक्षिणावर्त्त क्रमसे जलधारा द्वारा ब्राह्मण वेष्टन कर प्रणाम करे ।

"ओं पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परमन्तपः ।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥"

इसके बाद 'ओं नमः ब्रह्मण्यदेवाय' इत्यादि मंत्रपाठ और सूर्यप्रणाम करे ।

इसके बाद एक पात्रमें जल ले कर 'ओं जलनारायणाय नमः' मंत्रसे एक गंधपुष्प दे कर 'ओं येषां श्राद्धं कृतमिदं तेषामक्षयायै तृप्तये त्वयि जले पात्रीयान्नादिकं समर्पितं' यह मंत्र पढ़ कर पितृपात्र और मातामहपात्रका कुछ अन्न उस जलमें समर्पण करे । इसके बाद 'ओं ययोः श्राद्धं कृतं तयो रक्षयायै तृप्तये त्वयि जले पात्रीयान्नादिकं समर्पितं' इस मंत्रसे दैवपक्षका पात्रीयान्न समर्पण करे । गङ्गाजलमें वह अन्न समर्पण करनेसे 'गङ्गाम्भसि' यह वाक्य पढ़ कर देना होगा ।

अनन्तर सभी पिण्ड उठा कर उनमेंसे सूत्र परिष्कार कर ले और उन पिण्डोंको गो, अज और विप्रको खिला दे अथवा जलमें फेंक दे । इसके बाद शांति और आशीर्वाद ग्रहण करना होता है । इस समय उपवीती हो कर पुष्पके साथ जल ले ब्राह्मणोंकी ग्रंथि खोल देनी होती है । 'ओं महावामदेव्यः ऋषिः' इत्यादि शांति मंत्र द्वारा मस्तक पर जलका छींटा दे शांतिजल ग्रहण करना होता है । इस प्रकार शांति ले कर अच्छिद्रावधारण करे ।

अच्छिद्रावधारण—दाहिने हाथसे प्रदीप आच्छादन

कर दोनों हाथ धो डाले और आचमनके बाद हाथमें थोड़ा जल ले कर—

'कृतैतत् पार्वणविधिकश्राद्धकर्माच्छिद्रमस्तु' यह कह कर जल परित्याग करना होता है। इसके बाद विष्णुरोम् तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुके तिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा कृतैतत् पार्वणविधिकश्राद्धकर्मणि यद्वैगुण्यं जातं तद्दोषप्रशमनाय श्रीविष्णुस्मरणमहं करिष्ये, यह कह कर—

'ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततं।' मंत्र पढ़ कर दश बार ओं विष्णुका जप करे। जपके बाद—

'ओं अज्ञानाद् यदि वा मोहाद् प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥'
इत्यादि मंत्र पाठ करे।

इसी प्रणालीसे पार्वणश्राद्ध करना होता है। सामवेदीयगण ही उक्त पद्धतिके अनुसार श्राद्ध करेंगे। यजुर्वेदीय और ऋग्वेदीयगणके श्राद्धमें सामान्य प्रभेद है।

एकोद्दिष्ट श्राद्धमें भी एक ब्राह्मण, एक पवित्र, एक अर्घ्य और एक पिण्ड, उक्त प्रणालीके अनुसार देना होगा। परंतु प्रभेद इतना ही है, कि इसमें दैवपक्ष नहीं है। एक ब्राह्मणकी स्थापना करके उसके सामने एक व्यक्तिके उद्देशसे श्राद्धानुष्ठान करे। इस श्राद्धमें पहले भोज्यादि दान करके ब्राह्मण स्थापन करे। पार्वणश्राद्धमें 'पार्वणविधिकश्राद्धवासरे' यहां पर एकोद्दिष्ट विधिकश्राद्धवासरे' या एकोद्दिष्टविधिकश्राद्ध" इत्यादि प्रकारका वाक्य होगा। इस प्रकार ब्राह्मण स्थापन करके उसे एक आसन, एक अर्घ्य, गंधादिदान तथा अन्नदान और एक पिण्डदान इत्यादि सभी कार्य एक एक कर करने होते हैं। इसमें वे सभी मंत्र पढ़ने होते हैं, परंतु सामवेदीय एकोद्दिष्ट, यजुर्वेदीय एकोद्दिष्ट और ऋग्वेदीय एकोद्दिष्ट इनमें थोड़ी थोड़ी विभिन्नता है। इस एकोद्दिष्ट श्राद्धमें द्विजातियोंका अन्नपाक कर उससे अन्नदान और पिण्डदान करे। शूद्र केवल आमान्न द्वारा पिण्डदान करेगा। आद्य एकोद्दिष्ट और मासिकैकोद्दिष्ट श्राद्धमें प्रेतके उद्देशसे आमिष देना होता है। श्राद्धकी प्रणाली साम्वत्सरिक एकोद्दिष्ट श्राद्धकी तरह है। इस श्राद्धके दिन अङ्गप्रायश्चित्त, तिलदान और मृत्युके पहले वैतरणी नहीं होनेसे वैतरणी, षोड़शादि दान और वृषोत्सर्ग कर श्राद्ध करे। इस श्राद्धमें प्रेतके उद्देशसे षड्ङ्ग अर्थात् आसनार्थं पीढ़ा, छत्र, पादुका, प्रदीप, भोजनार्थं अन्नपात्र और जलपात्र तथा सोपकरण शय्यादान करना होता है। इस षड्ङ्ग द्रव्यमेंसे प्रत्येक विशेष विशेष मंत्र पढ़ कर देना होता है। यथा—

'ओं अमुकगोत्र प्रेत अमुकदेवशर्मन् एतत्ते आसनं स्वधा।' इस मंत्रसे आसन उत्सर्ग कर उक्त मंत्रका पाठ करे।

ओं अत्रासने देवराजाभ्यनुज्ञातो: विश्राम्यतां द्विजवर्ज्जानुग्रहाय प्रसादये त्वासनं गृह्न पूतं ज्ञानाग्निपूतेन करेण विप्र।'

इत्यादि रूपसे आसनादि देने होते हैं। प्रेतको आसन पर बैठने देना होता है, इसी प्रकार छत्र, पादुका और शय्यादि भी देना आवश्यक है।

प्रेतश्राद्धमें आशीर्वादके लिये प्रार्थना नहीं करनी होती, अन्य सभी श्राद्धोंमें पितरोंसे आशीर्वाद ग्रहण करना होता है। किंतु इस श्राद्धमें 'ओं दातारोऽभिवर्द्धन्तां' इत्यादि मंत्रका पाठ नहीं करना चाहिये। इस श्राद्धमें पितृपदका उल्लेख न हो कर प्रेतपदका उल्लेख होता है। सपिण्डीकरण द्वारा प्रेतत्व दूर होने पर पितृपदका उल्लेख होगा।

सपिण्डीकरण श्राद्ध पार्वणविधिके अनुसार होगा। किंतु पार्वणविधिके अनुसार होने पर भी विकृत पार्वण होगा, अर्थात् पार्वण श्राद्धमें ६ पीढ़ीका श्राद्ध करना होता है, किंतु सपिण्डीकरणमें ६ पीढ़ीके श्राद्ध स्थलमें ४ पीढ़ीका श्राद्ध होगा। यदि पिताका सपिण्डीकरण हो, तो पितामह, प्रपितामह और वृद्धप्रपितामह इन तीन पुरुष तथा प्रेतरूपी पिता, कुल चार पीढ़ीका श्राद्ध करना होता है। पिताका पिण्ड पितामह, प्रपितामह और वृद्धपितामहके पिण्डमें मिला कर समन्वय करना होता है।

माताके सपिण्डीकरणस्थलमें पितामही, प्रपितामही और वृद्धप्रपितामही इन चारोंका श्राद्ध करना होगा।

अतएव पार्वणविधानसे श्राद्ध होने पर भी वह ठीक पार्वण-श्राद्ध नहीं है, विकृतपार्वणश्राद्ध है। पिता होने पर पितामह आदि, माता होने पर पितामही आदि तीन पीढ़ीका श्राद्ध पार्वणविधानसे और प्रेतीभूत पिता या माताका श्राद्ध एकोद्दिष्ट विधानानुसार करके अर्घ्य और पिण्डादिका समन्वय करना होता है। इसी कारण उसको सपिण्डीकरण-श्राद्ध कहते हैं। सपिण्डीकरण शब्दमें विशेष विवरण देखो।

आभ्युदयिक श्राद्धमें सामवेदीयगण ६ पुरुष और यजुर्वेदीयगण ९ पुरुषका श्राद्ध करें। ६ पुरुषके श्राद्धस्थलमें पार्वणकी तरह पितृपक्ष और मातामह इन दोनों पक्षमें तीन पुरुष करके ६ पुरुष तथा ९ पुरुष स्थलमें पहले मातृपक्ष अर्थात् माता, पितामही और प्रपितामही ये तीन पुरुष तथा पितृपक्ष और मातामह पक्षमें ६ पुरुष इन ९ पुरुषका श्राद्ध करना होता है।

अन्यान्य श्राद्धमें स्वस्तिवाचन और सङ्कल्प आदि नहीं है। किन्तु इस श्राद्धमें स्वस्तिवाचन और सङ्कल्प करना होता है। सङ्कल्प करनेका विधान इस प्रकार है—"ओमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकगोत्रस्य श्रीअमुकदेवशर्मणोऽमुककर्माभ्युदयार्थं सगणाधिपगौर्यादिषोड़श मातृकापूजां वसोर्धारासम्प्रतेनायुष्यसूक्तजपाभ्युदयिकश्राद्धान्यहं करिष्ये।"

इसी प्रकार संकल्प करना होता है। संस्कारकार्यमें आभ्युदयिक श्राद्ध होनेसे षष्ठी मार्कण्डेय, गौर्यादि षोड़शमातृकापूजा, वसुधारा और अधिवास करके उस समय यह श्राद्ध करना होता है। इस श्राद्धमें पित्रादि पदके पहले प्रत्येक वार नान्दीमुख, इस श्राद्धका उल्लेख करना होता है। जिस कर्मके अभ्युदयके कारण आभ्युदयिक होता है, उस कर्मका भी उल्लेख करना होता है। यथा—'अमुकगोत्रनान्दीमुखपितः अमुकदेवशर्मन्, अमुककर्माभ्युदयार्थ' इत्यादि प्रकारसे उल्लेख होगा।

पार्वण श्राद्धमें जो श्राद्ध प्रणाली कही गई है, यह भी उसी प्रणालीके अनुसार होगा अर्थात् पहले भोज्योत्सर्ग, वास्तुपूजा, यज्ञेश्वर विष्णु आदिकी पूजा, ब्राह्मण स्थापन, आसनदान आदि सभी उसी प्रणालीसे होंगे। पार्वणश्राद्धमें प्रत्येक वार मोटक और तिलसे सभी द्रव्य उत्सर्ग करने होते हैं। किन्तु नान्दीमुखश्राद्धमें त्रिपत्र और यव द्वारा उत्सर्ग करनेका विधान है। आभ्युदयिक श्राद्धमें तिल द्वारा कोई कार्य नहीं होता, सभी कार्य यव द्वारा करने होंगे। मन्त्रादिमें भी कुछ कुछ प्रभेद है, जो श्राद्धपद्धतिमें निर्दिष्ट हुआ है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां उनका उल्लेख नहीं किया गया।

पहले कहा जा चुका है, कि, स्त्रियोंको श्राद्धमें अधिकार नहीं है। इस श्राद्ध शब्दसे पार्वण और नान्दीमुख श्राद्ध समझा जायगा। ये दो ही श्राद्ध स्त्रियां नहीं कर सकतीं, किन्तु एकोद्दिष्ट श्राद्ध स्त्रियां कर सकेंगी। कुश द्वारा ब्राह्मण तैयार कर उसके सामने श्राद्ध करना होता है। किन्तु सधवा स्त्रियोंको कुश और तिल द्वारा श्राद्ध करना निषिद्ध बताया है, अतएव वे कुशके बदले दूर्वा द्वारा ब्राह्मण प्रस्तुत तथा तिलके बदले यव द्वारा श्राद्ध करें। किन्तु विधवा स्त्री कुश और तिल द्वारा श्राद्ध कर सकेंगी।

स्त्री और शूद्रगण श्राद्धके समय श्राद्धोक्त मन्त्रका पाठ नहीं कर सकेंगे, क्योंकि वेदमन्त्रमें उन्हें अधिकार नहीं है। अतएव वे केवल वाक्य करके वे सब द्रव्यादि दान करें। पुरोहित ठाकुरका वेदमन्त्रका पाठ करनेसे ही सभी कार्य सिद्ध होंगे।

श्राद्धमें पितृगणके परितृप्त होनेसे सभी अभीष्टकी सिद्धि होती है। उनसे यही वर मांगना होगा, कि हे पितृगण! हमारे कुलमें जिससे लोगोंका वृद्धि हो, अध्ययन, अध्यापन और यागादि द्वारा वेदशास्त्रकी जिससे सम्यक् आलोचना हो, हमारे पुत्रपौत्रादि वंशपरम्परा जिससे चिरकाल विस्तृत रहे, वेद परसे अटल श्रद्धा जिससे हम लोगोंके कुलसे दूर न हो तथा दान करनेके लिये देय द्रव्योंका जिससे कभी असद्भाव न हो, हम लोगोंके अन्न बहुत हों, हम अतिथि लाभ करें, हमसे लोग प्रार्थना करे, पर हम किसीसे भी प्रार्थना न करें।

पितरोंको प्रार्थना करने पर वे सन्तुष्ट हो कर ये

सब प्रदान करते हैं, उनका यह आशीर्वाद निश्चय ही सत्य होता है।

श्राद्धकर्त्तृ (सं० त्रि०) श्राद्धाधिकारी, जिसे श्राद्ध करनेका अधिकार हो। श्राद्धाधिकारी बहुत है, श्राद्ध शब्दमें उसका उल्लेख हो गया है। श्राद्ध देखो।

श्राद्धकर्म्मन् (सं० क्ली०) श्राद्ध एवं कर्म। श्राद्ध रूप-कार्य्य, श्राद्धकार्य्य।

मनुमें लिखा है, कि श्राद्ध उपस्थित होने पर उसके पूर्व दिन अथवा अगत्या उस कर्मके दिन बहुत कम होने पर शास्त्रप्रणोदित अर्थात् शास्त्रोक्त लक्षणाक्रान्त तीन ब्राह्मणोंको यथाविधान सत्कारपूर्वक निमन्त्रण कर भोजन कराना होता। (मनु ३।१८७)

श्राद्धकाल (सं० पु०) अशौचान्तका दूसरा दिन। यह ब्राह्मणके लिये ११वां, क्षत्रियके लिये १३वां, वैश्यके लिये १६वां और शूद्रके लिये ३१वाँ दिन गिना जाता है। त्रिपक्ष, अमावस्या, श्रावणी और माघी पूर्णिमा, कृष्ण एकादशी, महालया, षाण्मासिक और सम्वत्सरान्तमें एक दिन श्राद्धकाल निर्द्धारित है।

श्राद्धत्व (सं० क्ली०) श्राद्धका भाव या धर्म।

श्राद्धदेव (सं० पु०) श्राद्धस्य देवः। १ यमराज। (अमर) ये सूर्य्यके औरस और संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। २ मनुभेद। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि मनु ज्येष्ठ, श्राद्धदेव और प्रजापति नामसे वैवस्वत तथा यम और यमी ये दोनों कनिष्ठ और यमज हो कर उत्पन्न हुए। (मार्के०पु० १०६।४) ३ धर्मराज। ४ श्राद्धमें निमंत्रित ब्राह्मण। ५ पितृलोग।

श्राद्धदेवता (सं० पु०) श्राद्धदेव। (भागवत ४।१८।१८)

श्राद्धदेवत्व (सं० क्ली०) श्राद्धदेवका कार्य्य।

श्राद्धपक्ष (सं० पु०) तर्पण, पिण्डदान आदिके लिये निश्चित आश्विन मासका कृष्णपक्ष; पितृ-पक्ष।

श्राद्धभुज् (सं० पु०) १ श्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मण। २ पितृपुरुष। ये लोग श्राद्धका अन्न लेते हैं।

श्राद्धभोक्तृ (सं० पु०) श्राद्धभुज् देखो।

श्राद्धशाक (सं० क्ली०) श्राद्धे देयं शाकं। काल शाक, नाड़ी शाक।

श्राद्धशिष्ट (सं० क्ली०) श्राद्धका अवशिष्ट, पितरोंको दिया हुआ अन्न।

श्राद्धसूतक (सं० पु०) श्राद्धके उद्देश्यसे बनाया हुआ भोजन, पितरोंके उद्देशसे ब्राह्मणोंको खिलानेके लिये बनाया हुआ भोजन।

श्राद्धाह्निक (सं० त्रि०) श्राद्धाह्नसम्बन्धी क्रियावान्।

श्राद्धिक (सं० त्रि०) श्राद्धमनेन भुक्तमिति श्राद्ध-ठन् (श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ। पा ५।२।८५) १ श्राद्धभोक्ता। (पु०) २ श्राद्ध-सम्बन्धी द्रव्यादि। याज्ञवल्क्यने कहा है, कि दिवारात्रिको दोनों संधिमें मेघ गर्जन करनेसे, भूकम्प और उल्कापातमें; अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा तिथिमें, चन्द्र सूर्य्य ग्रहणकालमें, ऋतु सन्धिमें तथा श्राद्धिक द्रव्यादि भोजन और प्रतिग्रह कालमें वेदोपनिषद्का पाठ बंद करना होता है अर्थात् उस समय पाठ बंद करनेके बाद उसी दिन या तिथिमें फिर पाठादिका कार्य्य नहीं होगा।

श्राद्धिन् (सं० त्रि०) श्राद्ध इनि (श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ। पा ५।२।८५) श्राद्धभोक्ता, श्राद्धमें भोजन करनेवाला।

श्राद्धीय (सं० त्रि०) श्राद्ध-सम्बन्धी द्रव्यादि, श्राद्ध सम्बन्धी शुष्क और सिद्ध अन्नादि। मनुमें लिखा है, कि श्मशान और ग्रामके समीप, गोचर स्थानमें, श्राद्ध सम्बंधी द्रव्य परिग्रहानन्तर तथा मैथुनवसन पहन कर वेदादि धर्मशास्त्र अध्ययन नहीं करना चाहिए। (मनु ४।११६)

श्राद्धेय (सं० त्रि०) श्राद्धान्न सम्बन्धी। अनुशासनपर्वमें 'अश्राद्धेयानि धान्यानि' पद है।

श्रान्त (सं० पु०) श्रम-क्त। १ शान्त। २ जितेन्द्रिय। (त्रि०) ३ श्रमयुक्त, क्लान्त, थका मांदा। ४ खिन्न, दुःखित। ५ निवृत्त। ६ भोगतृप्त, जो सुख भोग कर तृप्त हो चुका हो।

श्रान्तसंवाहन (सं० क्ली०) श्रान्तस्य संवाहनं। श्रान्त व्यक्तिकी शुश्रूषा, परिश्रान्त व्यक्तिको आसन आदि दे कर उसकी थकावट दूर करना।

श्रान्तसद् (सं० त्रि०) जो सुखोपभोगके निमित्त कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि द्वारा परिश्रान्त हो कर अवस्थान करे, यक्ष गन्धर्व आदि।

श्रान्ति (सं० स्त्री०) श्रम-क्तिन्। १ श्रम, परिश्रम,

मेहनत। २ क्लेश, दुःख। ३ खेद। ४ विश्राम, आराम।

श्रान्तोपचार (सं० पु०) परिश्रान्त अश्वकी शुश्रूषा अर्थात् परिश्रमके बाद उसे मालिश करना।

श्राप (सं० पु०) शाप देखो।

श्रापिन् (सं० त्रि०) श्रा-णिच्-णिनि। जो भोजन बनाता हो, रसोइया। (कात्यायनश्रौ० २१५।१८)

श्राम (सं० पु०) श्रामयतीति श्राम अच्। १ मास, महीना। २ मण्डप, घर। ३ काल, समय।

श्रामण (सं० क्ली०) श्रमणस्य भावः कर्म वा श्रमण-अण् (हायनान्तयुवादिभ्योऽण्। पा ५।१।१३०) इति युवादित्वादण्। श्रमणका भाव या कर्म।

श्रमणेर (सं० पु०) जिनभिक्षु शिष्य। पर्याय—चेलुक, प्रव्रजित, महोपासक, गोमी। (त्रिकाण्डशेष)

श्राय (सं० पु०) श्रि-श्रये (श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे। पा ३।३।२४) इति श्रि घञ्। १ श्रयण, आश्रय। (भट्टि ७।३६) (त्रि०) श्रीर्देवता अस्य श्री-अण्। २ श्री-सम्बंधी, लक्ष्मी-सम्बंधी।

श्रायन्तीय (सं० क्ली०) सामभेद।

श्रायस (सं० त्रि०) श्रेयस्-अण् (देविका-शिंशपेति। पा ७।३।१) इति आदेरचः आत्, श्रेयसि भावः इति सिद्धान्तकौमुदी। मङ्गलार्थ उत्पन्न, मङ्गलजनक।

श्राव (सं० पु०) श्रु-घञ्। १ श्रवण, कान। २ इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा। (महाभारत ३।२०१।३) ३ श्रीवास, गंधाविरोजा। (भावप्रकाश)

श्रावक (सं० पु०) शृणोतीति श्रु-ण्वुल्। १ बौद्ध धर्मको माननेवाला संन्यासी। २ जैन धर्मको माननेवाला संन्यासी। ३ वह जो जैनधर्मका अनुयायी हो। ४ नास्तिक। ५ काक, कौआ। श्रावयतीति श्रु-णिच् ण्वुल्। ६ दूरका शब्द, दूरकी आवाज। ७ शिष्य, छात्र। (त्रि०) ८ श्रवण करनेवाला, सुननेवाला।

श्रावक—भारत महासागरके पूर्वीय द्वीपोंके अंतर्गत वोर्नियो द्वीपका दक्षिण-पश्चिमांशस्थ देशभाग। वर्त्तमान समयमें यह शरावक कहलाता है। यह जनपद समुद्रोपकूलमें अवस्थित है। इसकी लम्बाई ६० मील और चौड़ाई ५० मील है, सुतरां इसका भूपरिमाण ३००० वर्गमील है। यह स्थान प्रायः जङ्गलोंसे भरा है। किंतु बीच बीचमें बहुत कम स्थान जङ्गलसे रहित हैं और वहां लोगोंकी बस्ती दिखाई देती है। वनप्रदेशमें बिना पूंछके बन्दर, हिरण और जंगली सूअर बहुत पाये जाते हैं। इनके सिवाय विभिन्न श्रेणीकी वनवासी असभ्य जातियोंका भी वास है।

यहां तीन प्रधान नदियां हैं, उनमें शरावक नदी ही प्रधान है। यह मध्यदेशस्थ पर्वतसे निकली हुई दो शाखा नदियोंके संमिश्रणसे गठित हुई है। इस संगमके बाद प्रायः बीस मील रास्ता तै कर शरावक नदी समुद्रतटसे १२ मील दूर फिर दो धाराओंमें विभक्त हो कर तीव्र गतिसे समुद्रकी ओर प्रवाहित होती है। समुद्रतटसे वह पुनः नाना शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त हो कर नदी मुहानाको विस्तृत एवं नदी जालमें विक्षिप्त करती है। इस नदीमालाकी सकल पूर्ववाली धारा मरतावास कहलाती है। उसका विस्तार प्रायः एक मीलका तीसरा भाग है और पूर्ण भाटाके समय जलकी गहराई प्रायः ८ फादम रहती है। इस कारण पण्यद्रव्यवाही सुबृहत् अर्णवपोतसमूह इस नदीकी धारामें अनायास ही प्रवेश कर सकते हैं। इस नदीके तीर पर समुद्रतटसे १५ मील दूर कुचिं नामक स्थानमें मलयजातिका एक उपनिवेश है। इस स्थानकी जनसंख्या दो सहस्रसे कुछ अधिक है, किंतु उक्त अधिवासियोंकी अवस्था अच्छी नहीं है।

पहले यह वनप्रदेश यूरोपवासी वणिकोंसे अपरिचित था। कोई भी अनुसंधान करनेके लिये इस वनप्रदेशमें परिदर्शन करने नहीं आये। यहां थोड़े परिमाणमें बालू और दानेदार पत्थर पाये जाते हैं। १८२४ ई०में यहां रसाञ्जनकी खान (Sulphuret of antimony) आविष्कृत हुई, जिससे यूरोपवासियोंकी दृष्टि इस प्रदेश पर आकृष्ट हुई। इस समय वह रसाञ्जन यूरोप तथा अमेरिकाके सभी स्थानोंमें चालान किया जाता है।

१८४१ ई०में सर जेम्स ब्रुक नामक एक अङ्गरेजने इस देशमें आ कर बोर्नियो द्वीपके सुलतानसे इस प्रदेशका शासनाधिकार प्राप्त किया। अनन्तर उन्होंने अपने मानसिक वृत्तिबल, अपरिमित साहस और अध्यवसायसे इस प्रदेशका यथेष्ट शासन-सुधार किया। वे राजाकी

उपाधि धारण कर स्वाधीनतापूर्वक राज्यशासन चलाते थे। इनके शासनके समय श्रावक नगरमें मलय, दायक तथा चीन आदि जातियां आ कर बस गईं जिससे इस नगरकी जनसंख्या उस समय १५ हजारसे भी अधिक हो गई। १८५४ ई०में इस नगरके व्यापारकी खूब उन्नति हुई एवं इसका भाग्य-सितारा चमक उठा।

मलयभाषामें दायक शब्दसे यहांके आदिम वन्य अधिवासियोंका बोध होता है। वास्तवमें दायक लोग एक जातिके अन्तर्भुक्त नहीं थे। उक्त सर जेम्स बुकने विशेष पर्यालोचना करके देखा, कि यहां प्रायः ५० वर्ग-मील स्थानमें बीस भिन्न भिन्न जातियां वास करती हैं। इन लोगोंकी भाषा अफ्रिका वा दक्षिण-अमेरिका-की वन्य जातियोंकी भाषासे बहुत कुछ मिलती है। एशियाके किसी भी देशीय सभ्य वा वन्यभाषासे इस भाषाका मेल नहीं है। मलय उपनिवेश प्रतिष्ठित होने-के बादसे मलयवासी स्थानीय दायक जातिके ऊपर शासन करते आ रहे हैं। सरावक-देखो।

श्रावग (हिं० पु०) श्रावक देखो।

श्रावगी (हिं० पु०) जैनधर्मका माननेवाला, जैनी।

श्रावण (सं० पु०) श्रवणेनाचरति नतु कार्य्येण इति श्रवण-अण्। १ पाषण्ड। (मेदिनी) श्रवणेन गृह्यते श्रवण-अण् (शेषे। पा ४।२।९२) २ श्रवणेन्द्रियग्राह्य, शब्द। (काशिका) श्रवणानक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी श्रावणी सा यत्र विद्यते श्रवणा-अण्। ३ वैशाखादि द्वादश मासके अन्तर्गत चतुर्थ मास। इस मासकी पूर्णिमा तिथिमें श्रवणा नक्षत्र संयुक्त रहनेके कारण इसका नाम श्रवणा पड़ा है। (पु०) नभस् श्रावणिक। (अमर) (क्ली०) नभस्। (शब्दरत्नावली)

श्रावण मास सौर और चांद्र भेदसे दो प्रकारका है। जितने दिन सूर्य्य कर्कट राशिमें अवस्थान करते हैं, उन्हें सौर एवं कर्कटराशिस्थ रहनेके बाद जिस दिनसे शुक्ल प्रतिपद् आरम्भ होता है, उस दिनसे ले कर अमावस्या पर्य्यन्त जो मास पूरा होता है, उसे चांद्र श्रावण कहते हैं। यह चांद्रश्रावण फिर गौण और मुख्यभेदसे दो प्रकार-का है। उनके मध्य जिस प्रकार पहले कहा गया है, उसे मुख्य और उक्त रूपसे कृष्णप्रतिपद्से ले कर पूर्णिमा तक जो महीना समाप्त होता है, वह गौणचांद्र कहलाता है। (मलमासतत्त्व)

देवीपुराणमें श्रावण मासके कार्य्य निम्नोक्त प्रकारसे निर्धारित हैं। यथा—हरिशयन आरम्भ होनेके बादके कृष्णपक्षकी पञ्चमी तिथिमें स्नुहीवृक्ष पर (सीजके पेड़ पर) वास करनेवाली मनसादेवीकी पूजा करनी होगी अर्थात् इस दिन घरके प्राङ्गणमें रोपे हुए सीजवृक्षकी जड़में घटादि स्थापन करके क्षीर, सर्पिः, नैवेद्यादि उप-करण सामग्रियां प्रदान करते हुए पहले मनसादेवीकी विधिपूर्वक पूजा करनी होती है। उसके पीछे अन-न्तादि नागगणकी पूजा की जाती है; इस पूजासे लोगों-को सर्पका भय जाता रहता है।

गरुड़पुराणमें लिखा है, कि अनन्त, वासुकि, शङ्ख, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, धृतराष्ट्र, शङ्खक, कालीय, पिङ्गल, मणिभद्रक, इन सब नागोंकी पूजा करनेसे इस संसारमें सर्पभय दूर हो जाता है और परलोकमें स्वर्ग मिलता है।

पूजाविधि—उक्त गौणचांद्र श्रावण पञ्चमीके दिन स्नानादि नित्यक्रिया समाप्त कर उत्तरकी ओर मुंह करके बैठ, 'अद्य श्रावणे मासि कृष्णपक्षे पञ्चम्यां तिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा सर्पभयाभावकामो मनसा-देवीपूजामहं करिष्ये' इस प्रकार सङ्कल्प करनेके बाद सीजवृक्षकी जड़में उक्त प्रकारसे घट अथवा जलमें पूजा करनी चाहिये। न्यासादि करनेके बाद देवीका 'अद्य' इत्यादि कह कर ध्यान करना कर्त्तव्य है। इसके पीछे 'मनसादेवि इहागच्छ' कह कर देवीका आवाहान किया जाता है और 'एतत् पाद्यं ओम् मनसादेव्यै नमः' इस मंत्रसे यथाशक्ति गंध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्यादि प्रदान करनेकी विधि है। इसके उपरांत अनन्तादि नागोंकी पूजा की जाती है। उस पूजामें क्षीर, सर्पि और नैवेद्य ही प्रधान प्रयोजनीय उपकरण हैं। पहले उक्त अनन्तादिकी पाद्यादि द्वारा पूजा करना प्रयोजनीय है। इसके बाद 'ओम् योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरं। पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमो-नमः' इस मंत्रसे तीन बार पूजा करनी चाहिये। तदन-

न्तर 'ओम् वासुकये नमः, ओम् कम्बलाय नमः, ओम् कर्कोटाय नमः, ओम् शङ्खकाय नमः, ओम् कालीयाय नमः, ओम् तक्षकाय नमः, ओम् पिङ्गलाय नमः, ओम् महापद्माय नमः, ओम् कुलिकाय नमः, ओम् मणिभद्राय नमः, ओम् धनञ्जयाय नमः, ओम् शेवाय नमः, ओम् ऐरावताय नमः' कह कर पृथक् पृथक् भावसे प्रत्येककी पूजा करनी चाहिये; किंतु यदि प्रत्येकके लिये पूर्वोक्त कुल उपकरण सामग्रियां दीनतावश इकट्ठी न हो सके, तो केवल गन्धपुष्पसे भी पूजा की जा सकती है।

उक्त दिवस घरमें नीबूके पत्ते इकट्ठे कर लिये जाते हैं और उन्हें ब्राह्मणको दान एवं स्वयं भक्षण करने होते हैं।

"पिचुमर्द्दस्य पत्राणि स्थापयेद्भवनोदरे।
स्वयं चापि तदश्नीयात् ब्राह्मणानपि भोजयेत्॥"
(रत्नाकर)

यदि तिथि दोनों दिन पड़े और पहले दिन पूर्वाह्नके समय मुहूर्त्ताधिककाल पर्य्यन्त पञ्चमी रहे, तो उसी दिन पूजा करनेकी विधि है।

४ श्रावणमासकी पौर्णमासी तिथि। इस तिथिमें श्राद्धादि करनेका विधान दृष्टिगोचर होता है अर्थात् उस दिन श्राद्धादि करना बहुत ही आवश्यक है।

(त्रि०) ५ श्रवणा नक्षत्र सम्बन्धीय।

श्रावणत्व (सं० क्ली०) श्रवणेन्द्रियग्राह्यत्व।

श्रावणद्वादशीव्रत (सं० क्ली०) व्रतभेद। नारदपुराण, भविष्योत्तरपुराण और सौरपुराणमें इस व्रतका माहात्म्य वर्णित है। श्रावणद्वादशी देखो।

श्रावणप्रत्यक्ष (सं० त्रि०) १ श्रवणेन्द्रिय द्वारा प्रमाणित, श्रवणेन्द्रिय द्वारा जिस पदार्थका ज्ञान हुआ हो। (पु०) २ श्रवणेन्द्रिय द्वारा प्रमाण या ज्ञान।

श्रावणवर्ष (सं० क्ली०) श्रवणाद्य नक्षत्रसम्बन्धी वर्षभेद। श्रवणा या धनिष्ठा नक्षत्रमें गुरु उदित होनेसे तद्दिवसावधि एक वर्ष तक जो समय होता, उसे श्रावणवर्ष कहते हैं। इस वर्षमें शस्यादि विना किसी उपद्रवके परिपक्व होता तथा उससे सभी लोग सुखी हो सकते हैं, किन्तु कुछ पाषंड व्यक्ति और उसके भक्त लोग बड़े पीड़ित होते हैं। (वृहत्संहिता ८।१२)

श्रावणा (सं० स्त्री०) १ सुदर्शना नामक वृक्ष। २ भूकदम्ब, भुंइ कदंब।

श्रावणिक (सं० पु०) श्रवणापौर्णमास्यमिन्नस्तीति श्रवणा-ठक् (विभाषा फल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्यः। पा ४।२।२३) १ श्रावण मास, सावन। २ एक प्रकारकी अग्नि। (त्रि०) ३ श्रावण-सम्बन्धी, श्रावणका।

श्रावणिका (सं० स्त्री०) मुण्डी।

श्रावणी (सं० स्त्री०) श्रवणेन नक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी श्रवण-अण् (नक्षत्रेण युक्तः कालः। पा ४।२।३) ततो ङीप्। १ श्रावणमासकी पूर्णिमा। यह तिथि नित्य श्राद्धकालमें निर्दिष्ट हुई है। इस दिन ब्राह्मणोंका प्रसिद्ध त्योहार 'रक्षाबंधन' या 'सलोनो' तथा कुछ और कृत्य या पूजन आदि होते हैं। इस दिन लोग यज्ञोपवीतका पूजन करते और नवीन यज्ञोपवीत भी धारण करते हैं।

२ वृक्ष विशेष। ३ मुण्डीरी, मुंडी। यह छोटी और बड़ीके भेदसे दो प्रकारकी है। छोटीको मंगोलियामें छोटी मुंडी कहते हैं। संस्कृत पर्याय—मुण्डितिका, भिक्षु, श्रवणशीर्षिका, श्रवणा प्रव्रजिता, परिव्राजी, तपोधना। गुण—कषाय, कटु, उष्ण तथा कफ, वायु, अमातिसार, कास, विष और वमिनिवारक।

भावप्रकाशमें छोटी मुण्डीका पर्याय पूर्वोक्तरूप और बड़ी मुण्डीका पर्याय भूकदम्बिका, कदम्बपुष्पिका, अव्यथा और तपस्विनी आदि कहे गये हैं, किंतु दोनोंके ही गुण समान हैं अर्थात् दोनों ही उष्णवीर्य, मधुर, लघु, मेध्य तथा गण्ड, अपची, मूत्रकृच्छ्र, क्रिमि, योनिपीड़ा, पाण्डु, श्लीपद, अरुचि, अपस्मार, प्लीहा, मेद और गुह्यरोग विनाशक हैं। चरकमें इसका एक और भेद है, रक्तमुण्डीरी। (चरक चि० ३ अ०)

४ महौषधि। ५ वृद्धि नामक औषधि। ६ ऋद्धि नामक औषधि। ७ भूकदम्ब, भुंइ कदंब।

श्रावणीद्वय (सं० क्ली०) श्रावणी और महाश्रावणी।

श्रावणीय (सं० त्रि०) श्रवणके योग्य, सुनने लायक।

श्रावन्ती (सं० स्त्री०) एक देश या नगरी, धर्मपत्तन।

श्रावयत्पति (सं० त्रि०) पितृलोकका विख्यापक, जिसके अपने कर्म द्वारा पितृलोक अतिशय विख्यात हों।

श्रावयत्सखि (सं० त्रि०) प्रधानतम ऋत्विग्विशिष्ट, जिसके ऋत्विग् गण निरतिशय विख्यात हों।

श्रावयितव्य (सं० त्रि०) सुनाने योग्य, सुनाने लायक।

श्रावस्त (सं० पु०) हरिवंशके अनुसार राजा श्रावके पुत्र का नाम। इन्होंने गौड़देशमें श्रावस्ती नगरी बसाई थी।

श्रावस्तक (सं० पु०) श्रावस्त नामक राजगण।

श्रावस्ती—एक प्राचीन जनपद और उसकी राजधानी। इसका दूसरा नाम श्रावस्तीपुरी है। वर्त्तमान कालमें इस समृद्धिशाली नगरका ध्वंसावशेष मात्र दृष्टिगोचर होता है। इस समय यह एक सामान्य ग्राममें परिणत हो गया है और लोग इसे सेट-महेठ कहते हैं। यह स्थान बौद्धधर्मावलम्बियोंका एक पवित्र तीर्थस्थान है। एक समय भगवान् बुद्धने यहां वास किया था। अध्यापक लासेनने बहुत गवेषणाके बाद वर्त्तमान सेट-महेठसे थोड़ी ही दूरी पर नदीके उस पार प्राचीन श्रावस्ती पुरीका अवस्थान निर्णय किया है। प्रत्नतत्त्व-विद् डाक्टर कनिंहम उसकी मीमांसा एवं चीन परिव्राजकोंका पन्थानुसरण करके सेट-महेठ ग्रामको ही प्राचीन श्रावस्तीपुरी बताते हैं। यहां जो विस्तृत ध्वस्त स्तूपराशि गिरी पड़ी नजर आती है, वही श्रावस्तीपुरीकी प्राचीन कीर्त्ति और वैभवका एकमात्र निदर्शन है।

यह ग्राम तथा उसकी पार्श्ववर्त्ती श्रावस्ती नगरीकी स्तूपराशि अयोध्या प्रदेशान्तर्गत गोण्डा जिलेकी राप्ती नदीके दक्षिण कछार पर अक्षा० २७° ३१´ उ० और देशा० ८२° ५´ पू०में अवस्थित है। उक्त जिलेके बलरामपुर नगरसे यह दश मील दूर है। यहां इस समय गौरव-ज्ञापक किसी प्रकारकी समृद्धि विद्यमान नहीं है। केवल कुछ लोगोंकी छोटी बस्ती प्राचीन राजधानीकी क्षीणस्मृति जगा रही है।

हरिवंश ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होता है, कि सूर्यवंशीय राजा युवनाश्वके पौत्र, श्रावतनय श्रावस्तने गौड़देशमें पहले श्रावस्तीकी स्थापना की थी। पीछे रामपुत्र लवने अयोध्याके बाद यहां श्रावस्तीपुरी नामसे दूसरी राजधानी बसाई। विष्णुपुराणमें तृतीय अंशमें, महाभारत वनपर्व्वमें, पाणिनि ४।२।९७ एवं भागवतपुराणके ९।६।२१ श्लोकमें श्रावस्ती राजधानीका उल्लेख है। त्रिकाण्डके अन्तमें (२।१।१३) श्रावस्तीका दूसरा नाम धर्मपत्तन लिखा है। वासवदत्तादि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थमें श्रावस्तीका वर्णन है और उसके बीच हो कर बहनेवाली राप्ती नदी ऐरावतीके नामसे उल्लिखित है। बौद्धपालि ग्रन्थविनयमें श्रावस्तीका 'सवट्ठी' और ऐरावतीका 'अचिरवती' नाम पाया जाता है। इस समय भी राप्तीका पार्वत्य स्रोत पालि नामके बदले अचिरवतीके नामसे परिचित है।

शाक्यबुद्धके जन्मसे पहले श्रावस्ती नगरीकी श्रीसमृद्धि कैसी थी, उपरोक्त ग्रन्थोंमें उसका कोई विशेष परिचय नहीं है। किन्तु रामायणसे इतना पता चलता है, कि उस समय यह उत्तर कोशलकी राजधानी थी। भगवान् श्रीरामचन्द्र अपनी मृत्युके समय यह जनपद अपने पुत्र लवको दे गये थे। शाक्य बुद्धके जन्मकालमें अर्थात् ई०सन्‌से ६०० वर्ष पहले श्रावस्तीपुरी मध्यदेशके छः प्रसिद्ध जनपदोंके मध्य एक गिना जाता था। उस समय इसके दक्षिणमें साकेत (अयोध्या) और पूर्वमें वैशाली (वाराणसी और विहार) राज्य विद्यमान थे। इससे अनुमान किया जाता है, कि वर्त्तमान बराइच, गोंडा, बस्ती तथा गोरखपुर जिला ले कर प्राचीन श्रावस्ती जनपद गठित हुआ था।

बुद्धदेवके आविर्भावके समय श्रावस्ती नगरमें व्यापारकी पूरी उन्नति थी। उस समय यह नगर सुधाधवलित सौधमालासे सुशोभित हो कर समृद्धिकी शीर्ष सीमा तक पहुंच चुका था। उस वक्त अरणेमि ब्रह्मदत्तके पुत्र प्रसेनादित्य यहांके राजा थे। उनको वर्षिका नाम्नी क्षत्रियापत्नीके गर्भसे जेत नामक एक धर्मशील पुत्र पैदा हुआ था। इसके बाद राजाने कपिलवास्तुनिवासिनी मल्लिका नाम्नी एक ब्राह्मण-कुमारीका पाणिग्रहण किया था। मल्लिकाके गर्भसे राजाके पहले विरूढ़क और उसके बाद सागरसान्दोलित नामक दो पुत्र पैदा हुए। इन दोनों पुत्रोंमें ज्येष्ठ पुत्र विरूढ़कने बौद्ध-धर्मका विरोधी बन कर शाक्यकुलका संहार करनेका संकल्प किया। सागरसान्दोलितने तिब्बत राज्यका राजा हो कर उस देशमें बौद्धधर्मका प्रचार किया था।

चीनपरिव्राजक फाहियान ५वीं सदीके प्रारम्भकालमें जब भारत भ्रमण करने आये, तब उन्होंने यहांकी शिल्प

कोर्त्तिकी समृद्धिके परिचायक मठ, संघाराम और भग्न अट्टालिकाओंको देखा था। उस समय भी यहांके सभी सुरम्य हर्म्य भूमिसात् नहीं हुए थे। सिर्फ बौद्ध मठादि श्रमणविरहित और परित्यक्त हो गये थे। नगर बिलकुल जनहीन था। सुतरां राजधानीकी गौरवदीप्ति विनष्ट हो चुकी थी। नगरवासी अज्ञानताके घोर अन्धकारमें पड़ गये थे। धर्म और शास्त्रकी चर्चा वहां उस समय नहीं होती थी। केवल २०० घर दरिद्र व्यक्ति असमर्थताके कारण ही शायद उस अभिशप्त स्थानका परित्याग नहीं कर सके थे। इसके प्रायः आधी शताब्दीके बाद जिस समय यूयनसियंगने श्रावस्तीमें पदार्पण किया था, उस समय नगरकी सभी अट्टालिकाएं विध्वस्त हो गई थीं। वहां लोगोंका पता नहीं था। दो एक बौद्ध यति धर्मकी खोजमें वहांके लीलाक्षेत्र विहारादिमें परिभ्रमण कर रहे थे। उक्त चीन परिव्राजककी वर्णनासे श्रावस्तीका जो कुछ परिचय मिलता है, वह नीचे उद्धृत किया जाता है।

"श्रावस्ती राज्यकी चारों सीमा प्रायः ६००० लीग थी। राजधानीका फैलाव कितनी दूरमें था, वह इस समय निरूपण करना कठिन है। तब हाँ, राजप्रासादके चारों ओरकी दीवार २० लीग होगी। प्राचीन राजप्रासादादिकी सभी अट्टालिकाएं विनष्ट हो जाने पर भी इस समय तक यहां कुछ लोगोंका वास है। उनकी अवस्था उतनी अच्छी नहीं है। यहांके सब लोग कृषिजीवी हैं। वे धर्मनिष्ठ, उदार, जनमनोरञ्जक, विनयी और परोपकारी हैं। यहां जितने संघाराम या मठ विद्यमान हैं, वे सब प्रायः नष्ट हो गये हैं। उनमें एक दो इस समय भी भग्नप्राय अवस्थामें पड़े हैं। इस समय उन मठोंमें कोई वास नहीं करते। जो एक दो धर्माचारनिष्ठ बौद्धयति देखे जाते हैं, वे सब सम्मतीयशाखाके ग्रन्थोंकी आलोचनामें लगे रहते हैं। बौद्धकीर्त्तियोंके सिवाय यहां हिन्दुओंके प्रायः सौसे अधिक देवमन्दिर हैं।"

"यह नगर जिस समय उन्नति पर था, उस समय प्रसेनजित् राजा इस राज्यके अधीश्वर थे। उनके बनाये हुए प्रासादकी चहारदिवारी इस समय भी दृष्टिगोचर होती है। इसके पूर्व 'सद्धर्ममहाशाला' नामक धर्ममन्दिर था, इस समय उसके ध्वंसावशेषके सिवाय और कुछ भी नजर नहीं आता। राजा प्रसेनजित्ने इस महाशालाका निर्माण किया था। बुद्धदेवने इस महाशालामें बैठ कर बौद्धधर्म प्रचार किया था। इसके पास ही बुद्धकी मातुलानी प्रजापती भिक्षुणीके स्मृतिस्मरणार्थ प्रसेनजित् द्वारा बनाया हुआ विहार नजर आता है। इस विहारके ध्वंसावशेषके ऊपर एक स्तूप अब भी विद्यमान है। इसके पूर्वांशमें जो स्तूप है, वहां राजाका कोषाध्यक्ष और मंत्री सुदत्तका महल है।"

"सुदत्तके वासभवनकी बगलमें एक सुवृहत् स्तूप है। इस स्थान पर अंगुलिमाल्य नामक एक जातिका निवास था। इस जातिके लोग बौद्धधर्मके घोर विरोधी, प्राणी-हिंसक, कदाचारी और वज्रहृदय थे; यहां तक, कि इस समय भी कोई नरहत्या करनेमें नहीं हिचकते। साधारणतः ये लोग निहत मनुष्यकी उंगलियाँ काट कर और उनकी माला बना कर गलेमें पहनते हैं, इसी कारण इनका नाम अंगुलिमाल्य पड़ा है। इन लोगोंका विश्वास है, कि यदि कोई अंगुलिमाल्य अपनी माता वा किसी बुद्धको मार सके, तो उसे ब्रह्मलोक प्राप्त होगा।"

"इस अन्ध विश्वासके वशवर्त्ती हो कर एक अंगुलिमाल्य अपनी माताको मारनेके लिये तैयार हुआ। जिस समय उस माताकी हत्या करनेके अभिप्रायसे माताका पीछा किया; उसी समय उसने बुद्धदेवको अपने सामने उपस्थित देखा। वह माताको छोड़ अस्त्र ले कर बुद्धके सामने आया। बुद्धदेव उसके मनका अभिप्राय समझ कर धीरे धीरे उसके सामने आ खड़े हुए और बोले—'वत्स! सत्प्रवृत्तिको छोड़, कुप्रवृत्ति हृदयमें धारण कर क्यों संसारको पापपङ्कमें फंसाते हो?' बुद्धदेवकी शांतसौम्य मूर्त्ति देख कर तथा उनका सदुपदेश श्रवण कर उसे चैतन्यता प्राप्त हुई। वह उसी क्षण शाक्यसिंहके चरणों पर गिर पड़ा और मुक्तिकी कामनासे उनके आश्रयकी भिक्षा मांगने लगा। बुद्धदेवकी दयासे उसे अर्हत्पद प्राप्त हुआ।"

"नगरसे ५।६ लीग दक्षिण जेतवन (प्रसेनजित्के

पुत्र युवराज जेतकी प्रसिद्ध उद्यानवाटिका) है। राज-मन्त्री सुदत्तने उसे खरीद कर भगवान् बुद्धके वासके लिये यहां एक विहारका निर्माण किया था। पहले यहां एक संघाराम भी था, इस समय उसका ध्वंसावशेष विद्यमान है। उक्त विहारसे पूर्व, प्रवेशद्वारकी बांई और दाहिनी ओरसे ७० फीट ऊंचे दो खम्भे हैं। उस-की बांई ओरकी स्तम्भकी जड़में एक धर्मचक्र और दाहिनी ओरके स्तम्भके मस्तक पर एक वृषमूर्त्ति अंकित देखी जाती है। ये दोनों स्तम्भ बौद्ध सम्राट् महाराज अशोकको कीर्त्ति हैं। विहारमध्यस्थित अट्टालिकादि भूमिसात् हो गई है, सिर्फ एक मकान इस समय भी विद्यमान है जिसमें उस समयकी स्थापित एक बुद्ध-मूर्त्ति है।"

"सुदत्त स्वभावतः धर्मशील और नम्र थे। वे दरिद्र-अनाथोंको अन्नदान दिया करते थे, इसीलिये उनका नाम 'अनाथपिंडद' वा 'अनाथपिण्डिक' पड़ा था; उन्होंने बहुत धन खर्च कर जेतवन खरीदा था और उस-में संघारामादि निर्म्माण किया था। इस कारण उनके नामानुसार वह अनाथ पिंडद-विहारके नामसे विख्यात हुआ। इस उद्यानके चारों ओर बुद्धदेवकी लीला और महिमाव्यञ्जक स्तूपावली निर्म्मित है।"

"सुदत्तने राजगृहमें शाक्यबुद्धका दर्शन पाया और उसी स्थानमें उनसे बौद्धधर्मकी दीक्षा ली। उन्होंने अपने धर्मगुरुको श्रावस्तीमें ठहरानेके लिये बहुत धन लगा कर युवराज जेतकी सुरम्य वाटिका खरीदी थी। युवराज जेत भी उसी समय बौद्ध धर्ममें दीक्षित हुए। अनन्तर उन दोनोंने ही अपने अपने अर्थव्ययसे उस उद्यान को अच्छी तरह सजा दिया। शाक्यबुद्धने जिस समय इस उद्यानमें शुभागमन किया, उस समय उन्होंने उसे अपने दोनों भक्तोंको कीर्त्ति समझ कर उसका नाम 'जेतवन-अनाथपिण्डकाराम' रखा। पालिग्रन्थमें यह सुदत्त 'महाशेट्ठो'के नामसे उल्लिखित है। इसलिये कितने ही अनुमान करते हैं, कि जेतवनका दूसरा नाम महाशेट्ठोविहार है श्रावस्तीके महाशेट्ठोविहारके संक्षिप्त परिचयमें यह स्थान 'शेट-महेट' नामसे विख्यात हुआ है।"

"बुद्धदेव जिस समय श्रावस्तीपुर आये, उस समय यहां बौद्धमतविरोधी अनेक धर्ममतावलम्बियों तथा दार्शनिकोंका वास था। उनमें जैनाचार्यगण ही प्रधान थे। सुप्रसिद्ध जैनगुरु पूर्णकाश्यपने यहां बुद्धसे तर्क-युद्धमें परास्त हो कर आत्महत्या कर ली थी। जैन-ग्रन्थसे जाना जाता है, कि तीर्थङ्कर सम्भवनाथ यहां आविर्भूत हुए थे। उसी कारण जैनी लोग इस समय भी यहां तीर्थ करने आते हैं और वहांके एक ध्वस्त स्तूपको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। डाक्टर कनिंहमने उस स्तूपको खोद कर उसमेंसे एक प्राचीन अट्टालिकाकी चहारदिवारीका निदर्शन और कई जैनमूर्त्तियां पाई थीं। इससे कुछ ही दूर पर नगरप्राचीरके मध्य और भी कई जैनमन्दिर दृष्टिगोचर होते हैं। इस समय भी यहां सम्भवनाथका मन्दिर है।"

"उक्त जेतवन विहारके ३ वा ४ लीग पूर्व एक स्तूप है, श्रावस्तीकी प्रसिद्ध बौद्धरमणी विशाखाने बुद्धकी आज्ञासे पूर्वारामविहार निर्म्माण किया था, यह स्तूप उसीके सामने स्थापित है। इस स्तूपके दक्षिणभागमें विरूढ़कने शाक्य लोगोंकी हत्या की थी। इस स्थानमें विशाखाके प्रार्थनानुसार एक स्मृतिस्तम्भ बनाया गया था। उसके आस पासमें विरूढ़कके कुकीर्त्ति-गाथा-स्मारक कई स्तूप नजर आते हैं।'

"पूर्वोक्त संघारामसे ३।४ ली उत्तरपूर्व आप्तनेत्र-वन नामक बुद्धका विहारस्थान है। यहां बुद्धदेवने कई दस्युओंको चक्षुदान किया था। प्रवाद है, राजा प्रसेन-जितके विचारसे इन दस्युओंकी आंखें निकाल ली गई थीं। यहां ही बौद्धरमणी विशाखाने भक्तिपरवश हो कर भगवान् बुद्धके लिये आवासभवन (विहार) तैयार कर दिया था। इसी स्थानमें द्रोणोदनके पुत्र देवदत्त प्रतिहिंसाके वशीभूत हो कर भगवान् बुद्धके जीवन-संहारकी चेष्टा करके अपनी जानको खो बैठे थे। स्वयं शाक्यसिंहने जेतवनविहारके समीपवर्त्ती स्थानमें वहांके निवासियोंको अपने धर्मकी शिक्षा दी थी। यहां ही शाक्यकुल-ध्वंसकारी विरूढ़क तथा उसके मन्त्री अम्बरीष अग्निमें जल कर अपने प्राण परि-त्याग किये थे। प्रवाद है, शाक्यसे शत्रुता रखनेवाले

विरूढ़कने अपने मन्त्री अम्वरीषकी सलाहसे अपने वैमात्रेय भाई जेतको मार डाला था। उसी कार्तिको घोषित करनेके लिये उन्होंने वहां एक दीर्घिकाके मध्य प्रमोदभवन निर्माण किया था। उस प्रासादस्थित सूर्यकान्तमणिमें सूर्यकी रश्मि निपतित होनेसे अकस्मात् महलमें आग लग गई और उसी आगकी लपटमें राजा समन्त्री जल भुन कर खाक हो गये।"

ई०सन्से चार सौ वर्ष पहले बौद्धसम्राट् अशोकने धर्मराजिका द्वारा श्रावस्ती नगरको बौद्धकीर्त्तियोंसे अच्छी तरह सज दिया था। उनके राजत्वकालमें श्रावस्ती नगरी जिस प्रकार समृद्धिपूर्ण थी एवं उस समय यह नगर जो बौद्धधर्मका एक पवित्र तीर्थस्थान माना जाता था, उसकी कल्पना उसके बनाये हुए स्मृतिस्तम्भ और स्तूपोंसे की जाती है। ई०सन्से दो सौ वर्ष पहले यहां प्रसिद्ध बौद्धाचार्य रोहुलताका स्वर्ग वास हुआ था। यहांके जेतवन संघारामसे कई व्यक्तियोंने ईसाकी प्रथम शताब्दीके चतुर्थ महाबोधिसंघमें योगदान किया था। इसके बाद फाहियानके भारतागमन पर्यन्त श्रावस्तीका और कोई परिचय नहीं मिलता।

अधिक सम्भव है, १म और २य सदीमें श्रावस्ती नगरी गान्धारके शकराजाओंके अधीन थी। कारण, राजा कणिष्क और हुविष्कके राज्यकालमें उत्कीर्ण शकाब्द-संख्या-समन्वित शिलालिपियुक्त बुद्धमूर्त्ति ही उसका प्रमाण है। इसके बाद यहां स्थानीय किसी राजवंशका प्रभाव फैला था। सिंहलीय बौद्धग्रंथप्रमाणसे जाना जाता है, कि राजा खिराधार और उनके भ्रातुष्पुत्रोंने यहां २७५ से ३१९ ई० तक राज्य किया था। इसके पश्चात् श्रावस्ती जनपद मगधके गुप्त राजाओंके अधीन चला गया। मगधराज द्वितीय चन्द्रगुप्तको ही यूयनचुवंग श्रावस्तीके राजा विक्रमादित्य बता गये हैं। ये बौद्धोंके शत्रु थे। इन्होंने उन लोगोंको बहुत सताया था। उनके ही राज्यकालमें यहां ब्राह्मण्यधर्मके बहुतसे मन्दिरोंका निर्माण हुआ था।

गुप्तवंशीय राजाओंके राज्यकालमें श्रावस्तीमें हिन्दुओंकी प्रधानता स्थापित होने पर भी यहां बौद्धधर्मका बिलकुल लोप नहीं हो गया। ईंटे, गले हुए सिक्के और भग्न मूर्त्तियोंके मध्य गुप्ताक्षरमें तथा ७वीं और ८वीं शताब्दीके देवनागरी अक्षरोंमें उत्कीर्ण बौद्धोंका सुविख्यात धर्ममन्त्र 'ये धर्माहेतुप्रभवा इत्यादि' खोदा हुआ देखा जाता है। अधिक आश्चर्यका विषय यह है, कि यहां १७वीं शताब्दीकी उत्कीर्ण एक पत्थरकी शिलालिपि पाई गई है, उससे हमें वहांके उस समयके बौद्धप्रभावका परिचय मिलता है। वह शिलाफलक ११७६ सम्वत्में (१२१९ ई०) उत्कीर्ण हुआ था। वह जेतवन-विहारके एक विध्वस्त बौद्धमठके अन्दर पाया गया है। उसमें लिखा है, कि श्रीवास्तव्य वंशीय विल्वशिवके पौत्र तथा जनकके पुत्र विद्याधरने बौद्धयतियोंके निवासके लिये जावृष नगरमें एक संघाराम निर्माण किया था। जनक गाधिपुर (कन्नोज)के राजा गोपालके मंत्री थे। पीछे उनके पुत्र विद्याधर भी राजा मदनके मंत्री हुए। किंवदन्ती है, कि यह जावृष नगर सूर्यवंशी राजा मान्धाता द्वारा प्रतिष्ठित हुआ था। इससे अनुमान किया जाता है, कि बौद्धग्रन्थोक्त श्रावस्तीपुरीका नाम कालचक्रसे धीरे धीरे विलुप्त हो गया। कन्नोजपति जयचन्द्रका राज्य ११९३ ई०में मुसलमानोंने छीन लिया। इस शिलालिपिमें जो दो कन्नोजपतिका उल्लेख पाया जाता है, वे जयचन्द्रके परवर्त्ती और केवल नामके लिये राजा हुए, इसमें सन्देह नहीं।

पहले ही लिखा गया है, कि बहुत पूर्वकालसे ही यहां जैनधर्मका प्रभाव था। भगवान् बुद्धके आविर्भावके बाद यहां बौद्धधर्मकी प्रधानता स्थापित होने पर भी जैनधर्म इस स्थानसे बिलकुल लुप्त नहीं हो गया। सम्वत् १११२, ११२४, ११२५, ११३३ और ११८२ अब्दके लिपियुक्त तीर्थङ्करोंकी प्रतिमूर्त्तियाँ देख कर मालूम होता है, कि ११वीं शताब्दीमें यहां जैनधर्मका बड़ा प्रभाव था। तृतीय तीर्थङ्कर सम्भवनाथने शवट्ठीमें जन्मग्रहण किया था। उनकी स्मृतिके लिये इस समय भी वहां एक मन्दिर है। ८वें तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभानाथका जन्म चन्द्रिकापुरीमें हुआ था। यह चन्द्रिकापुरी श्रावस्तीका दूसरा नाम है। राजा सुहृद्ध्वज यहांके अन्तिम जैन राजा हुए। ये इतिहासमें 'सुहिराल' वा 'सुहलदेव' नामसे प्रसिद्ध हैं। ये महमूद

गजनीके समसामयिक थे। महमूदके सेनापति सालेर मसायुदके साथ सुहलदेवका युद्ध हुआ था।

स्थानीय किम्बदन्तीसे जाना जाता है, कि इस जैन-वंशके आदि पुरुष मयूरध्वज थे। उनके बाद हंसध्वज, मकरध्वज, सुधन्वध्वज प्रभृति राजा हुए। उस समय यह स्थान चन्द्रिकापुरके नामसे विख्यात था। महाभारतके अश्वमेधपर्व्वके अर्जुनदिग्विजय प्रकरणमें लिखा है, कि हंसध्वजके वंशधर सुधन्वा अर्जुन द्वारा पराजित हुए। तदनन्तर यह राजधानी दूसरे नामसे विख्यात हुई। किंवदन्ती और पौराणिक उक्तिसे जो कुछ भी हो, किन्तु इतिहाससे पता चलता है, कि इस वंशके अन्तिम राजा वीर सुहलदेव थे और श्रावस्ती उनकी राजधानी थी। गोंडासे फैजाबाद जानेके रास्तेमें अलोकपुर वा हतीला नामक स्थानमें इनका बनाया हुआ एक दुर्ग है। इन्होंने उक्त दुर्गके सामने श्रावस्ती नगरके समीप मुसलमानी सेनाको दो बार हराया था। अन्तमें बरोचके रणक्षेत्रमें मुसलमान सेनापति इनके द्वारा पराजित हुए और मार डाले गये।

महम्मद गोरीके भारत-विजयके बाद इतिहासमें श्रावस्तीका कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। इसके पश्चात् १९वीं शताब्दीके शेष भागमें डा० कनिंहमने यहांके प्राचीन और लुप्त इतिहासके उद्धारकी कामनासे स्थानीय स्तूपराशिको खोदना शुरू किया। डा० कनिंहमने असाधारण परिश्रम और अनेक जांच पड़तालके बाद स्थिर किया, कि उड़ाभाड़ीके सुवृहत् दोनों स्तूप प्राचीन जेतवन सङ्घारामके निदर्शन हैं। उन्होंने निर्णय किया, कि इसके अन्दर कोशम्बकुटी और गन्धकुटी मन्दिर भी है। उक्त उड़ाभाड़ ग्रामसे एक मील दक्षिण पूर्वमें विशाखाका बनाया हुआ पूर्वाराम विहार है। उक्त संघारामसे २५० फीट पूर्व देवदत्तकी खाई है। यह लम्बाईमें ६०० फीट और चौड़ाईमें २५० फीट है। इस समय यह भूलाननके नामसे प्रसिद्ध है। इसके दक्षिण एक सुदीर्घ जलधारा है जो लम्बाह-ताल कहलाती है, बुद्धदेवकी निन्दा करनेसे दुर्जित हो कर कुकाली भिक्षुणी इसके जलगर्भमें डूब गई थी। इसके बाद ही इन्द्रा नामक ब्राह्मणकुमारीकी खाई है। भगवान् बुद्धको अजितेन्द्रिय कहनेके अनुतापमें उन्होंने इसी पुष्करिणीके जलमें डूब कर प्राणत्याग किया था।

२ पौराणिक नगरभेद। कई पुराणोंके मतसे इक्ष्वाकु-वंशीय श्रावस्तने अपने नाम पर गौड़देशमें यह नगर बसाया था। स्थानीय शिलालिपिके मतसे यह स्थान वरेन्द्रके मध्य है। (वर्त्तमान बगुड़ा जिलेमें)

श्रावस्तेय (सं० त्रि०) श्रावस्तीदेशभव।

श्रावा (सं० स्त्री०) अन्नमण्ड, मांड़।

श्रावितृ (सं० त्रि०) श्रु-णिच् स्वार्थे ततः तृच्। श्रोता, सुननेवाला।

श्राविन् (सं० पु०) सर्ज्जिकाक्षार, सज्जी।

श्राविष्ठ (सं० त्रि०) श्राविष्ठानक्षत्र-सम्बन्धी।

श्राविष्ठायन (सं० पु०) श्रविष्ठ ऋषिका गोत्रापत्य।

श्राविष्ठीय (सं० त्रि०) श्रविष्ठासु जातः श्रविष्ठा-छण् (श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधेति। पा ४।३।३४) श्रवणानक्षत्र-जात। (सिद्धान्तकौ०)

श्राव्य (सं० त्रि०) १ श्रोतव्य, सुननेयोग्य, सुनने लायक। २ सुनानेके योग्य, सुनाने लायक।

श्रित (सं० त्रि०) श्रि क्त (श्र्युकः किति। पा ७।२।११) इति इडागम-निषेधः। १ सेवित। २ आश्रित। (सिद्धान्तकौ०) ३ पक्व।

श्रितवत् (सं० त्रि०) श्रि क्तवतु (श्र्युकः किति। पा ७।२।११) इति इडागमो न। सेवाकारक।

श्रिति (सं० स्त्री०) श्रि-क्तिन्। आश्रयजन्य।

श्रिमन्य (सं० क्ली०) श्रियं मन्या शब्दार्था।

श्रियंमन्या (सं० स्त्री०) आत्मानं श्रियं मन्यते, श्री-मन-खश् ततष्टाप्। जो आत्माको श्री कह कर मान्य करे अर्थात् जो स्वयं अपनेको लक्ष्मी समझे।

श्रिय (हिं० स्त्री०) १ मङ्गल, कल्याण। २ शोभा, प्रभा।

श्रियसे (सं० त्रि०) श्रि-कसेन्। श्रीके लिये, शोभाके निमित्त। (ऋक् ५।५९।३ सायण)

श्रिया (सं० स्त्री०) विष्णुकी पत्नी, लक्ष्मी।

श्रियादित्य (सं० पु०) एक पण्डित। इनके पुत्र रणिग और पौत्र केशकार्क थे।

श्रियानकुल (सं० पु०) एक गांवका नाम।

श्रियावास (सं० पु०) श्रीसम्पन्न, लक्ष्मीयुक्त, धनवान्।

श्रियावासिन् (सं० पु०) महादेव। (भारत अनु० पर्व)

श्री (सं० स्त्री०) श्रयतीति श्रि-क्विप् दीर्घश्च (क्विप् वचिप्रच्छीति। उण् २।५७) १ लक्ष्मी, कमला। (विष्णुपु० १।८।१३) २ लवङ्ग, लौंग। ३ वेशरचना। ४ प्रभा, शोभा। ५ सरस्वती। ६ सरलवृक्ष, धूप सरलका पेड़। ७ त्रिवर्ग, धर्म, अर्थ और काम। ८ सम्पत्ति, धन, दौलत। ९ विधा, प्रकार। १० उपकरण। ११ विभूति, ऐश्वर्य। १२ मति। १३ अधिकार। १४ कीर्त्ति यश। १५ वृद्धि। १६ सिद्धि। १७ वृत्राहं तकी माता। (हेम) १८ कमल, पद्म। १९ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। २० ऋद्धि और वृद्धि नामक औषध। २१ सफेद चन्दन, संदेल। २२ कान्ति, चमक। २३ एक प्रकारका पदचिह्न। २४ स्त्रियोंका बेंदी नामक आभूषण। २५ ऊद्दुर्ध्वपुण्ड्के बीचकी लम्बी नोकदार लाल रंगकी रेखा। २६ आदर सूचक शब्द जो नामके आदिमें रखा जाता है। संन्यासी, महात्माओंके नामके आगे श्री १०८ लिखा जाता है। माता, पिता और गुरुके लिये श्रीके साथ ६, स्वामीके लिये ५, शत्रुके लिये ४, मित्रके लिये ३, नौकरके लिये २ और शिष्य, सुत तथा स्त्रीके लिये श्रीके साथ १ लिखनेकी प्राचीन प्रणाली है। मृत व्यक्तिके नामके पहले श्री शब्दका व्यवहार शिष्टाचारविरुद्ध है, अतएव वैसा करना अकर्त्तव्य है।

(पु०) २७ कुबेर। २८ ब्रह्मा। २९ विष्णु। ३० वैष्णवोंका एक सम्प्रदाय। ३१ एकाक्षर छन्दोविशेष। इस छन्दके प्रत्येक चरणमें सिर्फ एक गुरुवर्ण देखा जाता है अर्थात् सिर्फ चार गुरुवर्णों से यह छन्दः शेष होता है। छन्दः देखो।

३२ रागविशेष। हनुमत्के मतसे यह छः रागोंके अन्तर्गत पांचवां राग है और पृथिवीकी नाभिसे निकला है। इसकी जातिको नाम सम्पूर्ण है। इसको स्वरावलि ष ऋ ग म प ध नि तथा गृहमें षड्जस्वर है। हेमन्त कालके अपराह्न कालमें ही यह गाया जाता है। रागमालामें इसकी आकृति निम्नोक्त रूपसे वर्णित हुई है; यथा सुन्दर पुरुष, गलेमें स्फटिक और पद्मरागमणिनिर्मित मालायुक्त, हाथमें पद्मपुष्पसमन्वित, विचित्र सिंहासनारूढ़, सम्मुखभागमें सङ्गीतकारी गायकगणसे परिवृत। दूसरेके मतसे रक्तवस्त्रपरिधानकारी है।

हनुमत्के मतसे इसकी मालश्री, मारवा या मालवा, धानश्री, वसन्तरागिणी और आशावरी नामकी पांच भार्या हैं। नीचे यथाक्रम उनका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। विस्तृत विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

मालश्री—जाति सम्पूर्ण, स्वरावली ष ऋ ग म प ध नि। गृह षड्जस्वर। गानेका समय हिम ऋतुका दो पहर दिन है। रागमालावर्णित आकृति इस प्रकार है—रक्तवर्णा, कोमलाङ्गी, पीतवस्त्र पहनी हुई, कौतुकवश भ्रमणकारिणी होनेसे नायकसे विभिन्ना, सखियोंके साथ हास्यपरिहासयुक्ता, आम्रतरुके नीचे बैठी हुई।

मारवा या मालवा—जाति षाड़व। स्वरावली ष प ग म ध नि। गृह षड्ज। गानेका समय हिम ऋतुका अन्तिम काल। रागमालावर्णित आकृति—स्वर्णवस्त्रपरिहिता, पुष्पमालाधारिणी, नायकके साथ मिलनेकी कामनासे सङ्केत स्थानमें अकेली बैठी हुई।

धानश्री—जाती षाड़व। स्वरावलि ष प ध नि ऋ ग। गृह षड्ज। गानेका समय हिम ऋतुका दो प्रहर अथवा अपराह्न काल। रागमालाकथित आकृति—वियोगिनी नारी, रक्तवस्त्र पहनी हुई, वियोगज शोकसन्तापसे अत्यन्त दुःखिता और कृशाङ्गी, रोती हुई अवस्थामें अकेली वकुल वृक्षके नीचे बैठी हुई।

वसन्तरागिणी—जाति सम्पूर्ण। स्वरावलि ष ऋ ग म प ध नि। गृह षड्ज। हिमऋतुके मध्याह्नकाल तथा वसन्तऋतुका सारा दिन गानेका समय है। रागमालामें वर्णित स्वरूप प्रकृति—सुन्दर पुरुषकी तरह आकृति, रक्तवसना, शिखा पर मयूरपुच्छ, हाथमें आम्र मुकुल, यौवन और मदनमदोन्मत्ता, गलेमें पुष्पमाला, पुष्पोद्यानमें सुनर्त्तकी और कोकिलकंठी गायिकाओंके साथ आनन्दपूर्वक जाती हुई, वामहस्तमें ताम्बूलवीटिकाधारिणी, स्त्रियोंके साथ हास्य, कौतुक, क्रीड़ा, नृत्य, गीत, वाद्य आदिमें नितान्त आसक्ता। किसी किसी रागमालाग्रन्थमें इसे श्रीकृष्ण सदृश मूर्त्तिविशिष्टा और किसीके मतसे श्यामवर्णविशिष्टा बताया है।

आशावरी—जाति औड़व। स्वरावलि ध नि प म प। गृह धैवत। हिमऋतुका द्वितीय प्रहर गानेका समय। रागमालाध्वनित स्वरूपप्रकृति—श्यामवर्णा

कोमलाङ्गी स्त्री, श्वेतवस्त्र पहनी हुई, कपूर लेपी हुई, हाथ और पैरमें बड़े बड़े सर्प लिपटे हुए, जूड़ा बंधा हुआ, जलमध्यस्थ पर्वतगुहामें बैठी हुई। किसी किसी राग माला ग्रन्थमें इस उक्त गुणयुक्त तथा कमरमें वृक्षपत्र लपेटी नंगी बताया है।

इसके सिन्धु, मालव, गौड़, गुणसागर, कुम्भ, गम्भीर, शङ्कर या आगड़ और विहागर नामक आठ पुत्र हैं। इनमेंसे गौड़ नामकी जगह कोई कोई कल्याण और कोई हामीर पढ़ते हैं।

कल्लिनाथने श्रीरागको प्रथम राग तथा गौरी, गौनाहली, धवली, रुद्राणी, मालकौश या कौशिकी और देवगान्धारी नामकी उसकी छः भार्याका विषय निर्देश किया है। किन्तु इनके भी मतमें हनुमन्‌की तरह आठ ही पुत्रोंका उल्लेख देखा जाता है। परन्तु गौड़, शङ्कर और विहागके स्थानमें यथाक्रम कल्याण, आगड़ा और विगड़ा लिखा है।

सोमेश्वरके मतमें भी यह राग प्रथम राग तथा मालवी या मरवा, त्रिवेणी या तिरवनी, गौरी, केदारा, मधुमाधवी और पहाड़िका या पहाड़ी नामकी छः रागिणी इसकी भार्या तथा पूर्वोक्त दोनों मतकी तरह आठ पुत्र निर्दिष्ट हुए हैं। इस मतसे शिशिर ऋतुमें यह राग और रागिणियां गाई जाती हैं।

भरतके मतसे उक्त राग पञ्चम तथा उसकी सिन्धुवा, काफी, ठुमरी, विचित्रा, शिरहटि या सोरठी ये पांच रागिणी तथा श्रीरमण, कोलाहल, सामन्त, शङ्करण, राकेश्वर, खटराग, बड़हंस और देशकार नामक आठ पुत्र, इन पुत्रोंकी फिर यथासंख्यक विद्या, धार्य्या, कुम्भा, सुदती, शरदा, क्षेमा, शशरेखा और सुरस्वती नामकी आठ भार्या निर्दिष्ट हुई है।

श्रीक (सं० पु०) पक्षिभेद, श्रीकर्ण या श्रीवासक नामक पक्षी।

श्रीकण्ठ (सं० पु०) श्रीः शोभा कण्ठे यस्य। १ शिव, महादेव। २ कुरुजाङ्गलदेश। यह हस्तिनापुरसे उत्तरमें अवस्थित है। ३ पक्षिविशेष। वृहत्संहिता-में यह पक्षी तथा भास आदि बहुतसे पक्षी क्रौसंज्ञक कह कर उल्लिखित हुए हैं। यात्राकालमें यदि ये दक्षिण भागमें रहें, तो शुभ फलप्रद होता है।

श्रीकण्ठ—वैद्यहितोपदेश ग्रन्थ और कुसुमावलीकी टीका-के प्रणेता।

श्रीकण्ठ—बहुतेरे प्राचीन कवि और पण्डित। १ मुहूर्त-मुक्तावलीके प्रणेता। २ नृत्तरत्नाकरटीकाके रचयिता। ३ वृन्दावनकाव्यटीका नामक ग्रन्थके प्रणेता। ४ एक कवि। इनके काव्यमें राजा श्रीमल्लदेवका नाम पाया जाता है। ५ श्रीगर्भके पुत्र और मण्डनके छोटे भाई। ये मङ्खके समसामयिक थे। मङ्खरचित श्रीकण्ठचरित-काव्यमें इनका उल्लेख है।

श्रीकण्ठक—रसकौमुदी नामक नाट्यशास्त्रके रचयिता।

श्रीकण्ठकण्ठ (सं० पु०) १ शिवका कण्ठ। २ मयूरका गला।

श्रीकण्ठतीर्थ—भिक्षुतत्त्वके रचयिता। ये महादेवतीर्थके शिष्य थे।

श्रीकण्ठदत्त—व्याख्याकुसुमावली नामक वैद्यक ग्रन्थके रचयिता।

श्रीकण्ठदीक्षित—तर्कप्रकाश नामक न्यायसिद्धान्तमञ्जरी टीकाके प्रणेता। ये काशीवासी और विश्वनाथ पण्डित-के पुत्र कह कर प्रसिद्ध थे।

श्रीकण्ठनिलय (सं० पु०) श्रीकण्ठ, महादेव, शिव।

श्रीकण्ठ पण्डित—१ योगरत्नावली नामक तन्त्रग्रन्थके रचयिता। २ प्रपञ्चसारटीकाके प्रणेता सिम्वराजके पिता। ये भी एक सुपण्डित थे।

श्रीकण्ठपदलाञ्छन (सं० पु०) श्रीकण्ठ इति पदं लाञ्छनं यस्य। भवभूतिका उपनाम। इन्होंने मालतीमाधवादि बहुत-से नाटक लिखे हैं। भवभूति देखो।

श्रीकण्ठ भट्ट स्पन्दसूत्रवार्त्तिकके रचयिता भास्करके गुरु। ये महादेव भट्टके पुत्र थे।

श्रीकण्ठ मिश्र—कारकखण्डन और कारक खण्डन-मण्डन नामक दो व्याकरणके प्रणेता।

श्रीकण्ठ शम्भु—वैद्यहितोपदेशके रचयिता। प्रयोगामृत नामक ग्रन्थमें इनका उल्लेख है।

श्रीकण्ठ शिव (सं० पु०) शम्भुनाथ शिवका नामान्तर।

श्रीकण्ठशिव आचार्य—ब्रह्मसूत्रभाष्य और शावर महा-तन्त्रके प्रणेता।

श्रीकण्ठसख (सं० पु०) श्रीकण्ठस्य महादेवस्य सख

समासे टच् प्रत्ययः। कुवेर। (हलायुध)

श्रीकण्ठीय (सं० त्रि०) श्रीकण्ठ-सम्बन्धी।

श्रीकन्दा (सं० स्त्री०) श्रीः शोभा तद्युक्तः कन्दो यस्याः। वन्ध्याकर्कोटकी, वनपरवल।

श्रीकर (सं० क्ली०) १ रक्तोत्पल, लाल कमल। (त्रिकाण्ड-शेष) (पु०) २ विष्णु। ३ नौ उपेन्द्रोंमेंसे एक। (त्रि०) ४ श्रीकारक, शोभा बढ़ानेवाला।

श्रीकर—१ पद्यावलीधृत एक कवि। २ एक धर्मशास्त्र-कार। विज्ञानेश्वर और शूलपाणिने इनका मत उद्धृत किया है। ३ एक प्रसिद्ध वैयाकरण। माधवीय धातु वृत्ति नामक ग्रन्थमें इनका उल्लेख है। ४ त्रिपुरासुन्दरी-पूजनके प्रणेता।

श्रीकर आचार्य—१ दायनिर्णयके रचयिता। २ व्याख्या-मृत नामक अमरकोषटीकाके प्रणेता।

श्रीकरण—स्मृतिग्रन्थकारभेद, श्रीकृष्णतर्कालङ्कारकृत दाय-भागाद्य श्लोकको टीका।

श्रीकरण (सं० क्ली०) श्रीः क्रियतेऽनेनेति कृ ल्युट् करणे। १ लेखनी, कलम। (पु०) २ कायस्थोंकी एक शाखा या उपजातिका नाम।

श्रीकर मिश्र—अलङ्कारतिलकके रचयिता।

श्रीकर्ण (सं० पु०) पक्षिविशेष। (वृहत्स० ८६।३८)

श्रीकर्णदेव (सं० पु०) चण्डेलराजभेद। चान्द्रात्रेय देखो।

श्रीकलट (सं० पु०) सिद्धपुरुषभेद। (राजतर० ५।७१)

श्रीकाकोलम्—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके गञ्जाम जिलान्तर्गत चिकाकोलका एक प्राचीन नगर। अभी यह चिकाकोल कहलाता है। यहां प्राचीनकालमें कलिङ्ग राजाओंकी राजधानी थी। किस समय कलिङ्गपतिगण इस राज धानीका परित्याग कर कलिङ्गपत्तनमें राजपाट उठा लाये उसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता।

यहांका कोट या दुर्गस्थित आञ्जनेयस्वामीका मन्दिर अपेक्षाकृत अप्राचीन होने पर भी मन्दिरके भीतर जो हनू मान् मूर्त्ति है, उसकी प्राचीनताके सम्बन्धमें किसी प्रकार का संदेह नहीं होता। स्थानीय श्रीकूर्मम् मन्दिर भी विशेष उल्लेखयोग्य है। यहां एक गृहस्थके घरमें कुंआ खोदते समय छः ताम्रफलक निकले थे। वह उन्हें पुराना तांवा समझ कर बाजारमें बेचने ले गया। वहांके विचारपति ग्राहम साहवको जब इसकी खबर लगी, तब उन्होंने आ कर उसे खरीद लिया और सेन्ट्रल म्युजियम-में भेज दिया। दुःखका विषय है, कि अभी एक ताम्र-शासन नष्ट हो गया है। जो पांच बचे हुए हैं उनमें कलिङ्ग-राज गङ्गवंशीय इन्द्रवर्मा, अनन्तवर्माके पुत्र देवेन्द्रवर्मा, देवेन्द्रवर्माके पुत्र सत्यवर्मा और एक दूसरे नन्दप्रभञ्जन वर्मा नामक राजाओंके नाम मिलते हैं। इन्द्रवर्माके वंशधर ये राजगण शायद ७वीं सदीके पलातक वेङ्गी वंशकी एक शाखाके होंगे। करीब ६७७-१००४ ई०में पूर्वचालुक्यराज्यमें अराजकता उपस्थित होने पर इस राजवंशने मस्तक उठाया था।

पीर महम्मद खाँ नाम निजामके अधीनस्थ एक मुसल-मान सरदारने हिन्दू विद्वेषके वशवर्त्ती हो कर एक देव-मन्दिरको तहस नहस कर डाला और उसीके माल मसालेसे यहां १६४१ ई०में बहुत रुपये खर्च कर एक जुम्मा मसजिद बनवाई। इसके सिवा १६२० ई०में बनाई हुई आघा खाँकी एक मसजिद तथा और भी कितनी टूटी फूटी मसजिदें स्थानीय मुसलमान-प्रभावका साक्ष्य प्रदान करती हैं।

हैदराबाद राजसरकारके जमानेमें यहां जो सब मुसल-मानकर्मचारी शासनकर्त्ताके पद पर नियुक्त थे, नीचे उनके नाम दिये गये हैं,—

मुस्तफा खुले खाँ	१६४० ई०
शीर महम्मद खाँ	१६४१ ,,
महब्बत खाँ	
महम्मद हसन खाँ	१६४६ ,,
रुस्तम दिल खाँ	१६६७ ,,
सनावल्ल खाँ	१७२२ ,,
अमानुल्ला खाँ	१७२३ ,,
राजा विजयरामराज	१७२४ ,,
हाफिज उद्दीन खाँ	१७२५ ,,
महाफिज खाँ	१७४० ,,
जाफर अली खाँ	१७४२ ,,
मोयीन खाँ	१७४५ ,,
सैयद महम्मद तया-बुल हुसेन	१७४८ ,,

इब्राहिम खाँ	१७५४	ई०
आमदात् उलमुल्क	१७५६	,,
सलार जङ्ग बहादुर	,,	,,
अनवर अली खाँ	१७५७	,,

अनवर अली यहांके अंतिम शासनकर्त्ता थे। उनके पुत्र वालाजा महम्मदअली कर्णाटकराज्यके नवाव पद पर अभिषिक्त हुए। इस समयसे श्रीकाकोल विजयनगरके राजवंशके शासनाधीन हुए।

बाजार जानेके रास्ते पर बुर्हानउद्दीन औलियाका एक सुन्दर मकबरा है। १६९१ ई०में बुर्हानउद्दीनकी मृत्यु हुई। नगरसे चार मील उत्तर राजमपेट और सिंहपुरम् ग्रामके मध्यस्थित वरहमपुर जानेके रास्ते पर दो प्राचीन प्रस्तर-स्तम्भ देखे जाते हैं। वह स्तम्भ कब और किससे स्थापित हुआ था, उसका प्रकृत इतिहास जाननेका कोई उपाय नहीं। नगरकी पासवाली लाङ्गुलिया नदी-तीरस्थ रास्तेकी एक बगलमें एक बड़े पहाड़के ऊपर बहुतसी लिङ्गमूर्त्ति खोदी हुई है। वहांके लोग उस पर्वतको 'कोटिलिङ्गालु' कहते हैं। नगरके दक्षिण पश्चिम नदीके दूसरे किनारे 'बुरेल्ल या पुरेल्ला-कोट' नामक एक अठपहला ईंटका बड़ा विजयस्तम्भ है। वहांके लोगोंसे सुना जाता है, कि रणक्षेत्रमें मारे गये मुसलमान सेनादलके शिरकी खोपड़ी ले कर वह स्तम्भ बनाया गया था। चिकाकोल देखो।

श्रीकान्त (सं० पु०) श्रियाः कान्तः। लक्ष्मीपति, विष्णु।

श्रीकान्त—युक्तप्रदेशके गढ़वाल राज्यान्तर्गत एक गिरि-शृङ्ग। यह अक्षा० ३०° ५७´ उ० तथा देशा० ७८° ५१´ पू० भागोरथी नदीके किनारे अवस्थित है। यह शृङ्ग सूक्ष्मचूड़ और समुद्रकी तटसे २०२९६ फीट ऊंचा है। शहारनपुरसे यह चूड़ा दिखाई पड़ती है।

श्रीकान्त - रामविलासके रचयिता हरिनाथके गुरु।

श्रीकान्तभट्ट—आनन्दलहरीटीकाके प्रणेता।

श्रीकान्तमिश्र—पदभावार्थचन्द्रिका नामक गीत-गोविन्दकी टीका और चन्द्रिका नामक व्याकरण ग्रन्थके प्रणेता।

श्रीकाम (सं० त्रि०) धनधान्यादि सम्पत्तिकी कामना करनेवाला। (ऐत्तरेय ब्रा० १।५)

श्रीकारिन् (सं० पु०) श्रियं शोभां करोतीति कृ-णिनि। मृगविशेष। पर्याय - शिखियूप, कुरङ्ग, महाघव, यवन, वेगिहरिण, जङ्घाल, जाङ्घिकाह्वय। इसके मांसका गुण—हृद्य और बलकारक।

श्रीकालस्ती (श्रीकालहस्ती) मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्काट जिलेकी कालहस्ती जमींदारीके अन्तर्गत एक नगर। तिरुपति रेलवे स्टेशनसे यह नगर १५ मील उत्तरपूर्व कोने पर अवस्थित है। यहां वायु-लिङ्गका एक मन्दिर स्थापित है। कहते हैं, कि ब्रह्माने देवशिल्पी विश्वकर्मा द्वारा यह मन्दिर निर्माण करा कर इसमें भगवान् महादेवकी वायवमूर्त्ति स्थापन कराई थी। चोलराजाओंने इस मन्दिरका जीर्णोद्धार करके उसका आयतन बढ़ाया था। पीछे विजयनगरपति कृष्णदेव रायने कई बार उसकी मरम्मत कराई। कालहस्ती देखो।

श्रीकीर्त्ति (सं० पु०) तालके साठ मुख्यभेदोंमेंसे एक भेद। इसमें दो गुरु और दो लघु मात्राएं होती हैं।

श्रीकुक्कुट (सं० पु०) मालव आदि देशमें प्रसिद्ध अम्ल खड़कविशेष। यह प्रमेह रोगमें बड़ा फायदा पहुंचाता है। निःस्नेहीकृत तिल और सर्षपके कल्कके साथ तक्र, कपित्थ, आमरुलि, मिर्चा, कृष्णजीरा और चिता इन सबोंको एक साथ पाक करनेसे उसे श्रीकुक्कुट कहते हैं।

श्रीकुञ्ज (सं० क्ली०) महाभारत वनपर्वके अनुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम। यह सरस्वती नदीके तट पर था।

श्रीकुण्ड (सं० क्ली०) महाभारत वनपर्वके अनुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम।

श्रीकुण्डपुरम्—मन्द्राज प्रदेशके मलवार जिलान्तर्गत एक बड़ा गाँव। यह अक्षा० १२° ३´ उ० तथा देशा० ७५° ३४´ पू० वलरपत्तनम् नदीकी एक प्रधान शाखाके दाहिने किनारे अवस्थित है। यहां दुर्द्धर्ष मापिल्ला (मावली) जातिके लोग रहते हैं। कुलोत्तारी राज-वंशके अधीन छोयाली सामन्तराजके आश्रयमें मावाली लोग यहां आ कर बस गये। यहां ९वीं सदी-में मालिक इबनहीनार द्वारा स्थापित एक प्राचीन मशजिद है।

श्रीकूर्मम्—मन्द्राजप्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत चिकाकोल तालुकका एक प्राचीन तीर्थ यह श्रीकाकोल नगरसे ८ मील पूरब समुद्रके किनारे अवस्थित है। यहां भगवान् नारायणकी कूर्ममूर्त्ति स्थापित एक प्राचीन मन्दिर विद्यमान है। मन्दिरके स्थलपुराणमें बहुतसी प्राचीन पौराणिक आख्याएं लिखी हुई हैं। मन्दिरकी दीवार और स्तम्भगात्रमें अनेक शिलालिपियां देखी जाती हैं। उनमेंसे (१) १२५२ ई०में राजा अनङ्गभीम देवकी उत्कीर्ण भूमिदान प्रशस्ति। (२) १२३१ ई०में भानुदेव राजाके मन्त्री द्वारा ग्रामदानोपलक्षमें उत्कीर्ण। (३) १२७३ ई०में चालुक्यराज विमलादित्यके वंशधर राजराजके आत्मीय विजयादित्य चक्रवर्त्तीको। (४) वीर भानुदेव द्वारा १२३५ ई०में उत्कीर्ण। (५) राजा प्रताप वीर श्रीनृसिंहदेवके राज्यकालमें (१२७६ ई०) मन्दिरके मालिकों द्वारा उत्कीर्ण देवपूजार्थ उद्यान-दानोपलक्षमें। उक्त वीर नृसिंह देव सम्भवतः सरकार प्रदेशप्रसिद्ध लाङ्गुलियानृसिंहदेव हैं। (६) उड़ीसाके राजा प्रतापश्री वी रनृसिंहदेवके राज्यकालमें १३४५ ई०को छिकती धर्मराजके मन्त्री शिष्टु अच्युतप्रधानी द्वारा देवपूजार्थ उद्यानदानकी अवदानज्ञापक। (७) राजा राजदेवके (१२७७ ई०) पुत्र पुरुषोत्तमदेव चक्रवर्त्तीको है। इनके सिवा उस समयकी और भी नौ शिलालिपियां मन्दिरमें खोदी हुई हैं। स्तम्भके ऊपरी भाग पर और भी कितनी प्राचीन अक्षरोंमें लिखित शिलालिपियां नजर आती हैं। उन सबका आज भी पाठोद्धार नहीं हुआ है। प्रवाद है, कि पहले यह मन्दिर शैवमन्दिर समझा जाता था। रामानुजाचार्यके समय इसमें विष्णुका कूर्मरूप प्रतिष्ठित हुआ है। तभीसे यह स्थान एक पवित्र वैष्णवतीर्थ समझा जाता है। प्रपन्नामृत ग्रंथके ३६वें अध्यायमें इसका विशेष विवरण आया है।

इस मन्दिरके कुछ शिल्पचित्राङ्कित प्रस्तर मुसलमानोंने अन्यत्र ले कर एक मसजिद-गात्रमें संलग्न कर दिये हैं। कुछ आज भी श्रीकाकोलके दुर्गमें सुरक्षित है।

श्रीकृच्छ्र (सं० पु०) यापककी एक साधना।

श्रीकृष्ण (सं० पु०) वासुदेव। ये द्वारकानाथ, यशोदाजीवन, नन्दनन्दन आदि नामोंसे पूजे जाते हैं। महाभारतमें ये अर्जुनके सारथि और गीताके प्रवक्ता हैं। कृष्ण देखो।

श्रीकृष्ण—१ ईश्वरविलासकाव्यके रचयिता। २ षट्कर्मदीपिकानामक तन्त्रग्रन्थके प्रणेता। ३ सेतुबन्ध टीकाकर्त्ता। ४ यतीन्द्रमतदीपिकाके प्रणेता श्रीनिवास दासके गुरु। ५ एक कवि। ये पण्डित कृष्णक नामसे भी परिचित थे। ६ कार्त्तवीर्यचरित, नन्दीचरित, पद्यपादिकाविवरणटीका, पञ्चस्वरी टीका, वृहत्पाराशरी, प्रजापतिचरित, लग्नोद्योत और लीलावतीटीका आदि ग्रन्थोंके रचयिता। ७ नलोदयटीकाके प्रणेता। ८ भगवद्गीता टीकाके रचयिता। ९ व्युत्पत्तिवादटीकाके प्रणेता। १० विवादार्णवभङ्ग ग्रन्थके एक सङ्कलयिता। ११ शुद्धिविवेकटीकाके रचयिता। इनका दूसरा नाम कृष्णविप्र भी था। १२ सांख्यकारिकाव्याख्या, सांख्यसूत्रप्रक्षेपिका और सांख्यसूत्रविवरणके प्रणेता। १३ जयतीर्थकृत प्रमेयदीपिकाकी भावप्रकाश नाम्नी टीकाके रचयिता। ये तिरुमलाचार्यके पुत्र थे। १४ लघुपद्धति नामक ग्रन्थके रचयिता, पुरुषोत्तमके पुत्र और रघुनाथके पौत्र। १५ लघुबोध नामक व्याकरणके रचयिता, युधिष्ठिरके पुत्र। इन्होंने १६४५ ई०में उक्त ग्रन्थकी रचना की।

श्रीकृष्ण—१ दाक्षिणात्यके एक राजा। इनके यत्नसे गुणाम्भोनिधि या स्मृतिमहार्णव ग्रन्थ रचा गया। २ एक हिन्दू राजा, महादेवके भाई। ये वेदान्तकल्पतरुके प्रणेता अमलानन्दके प्रतिपालक थे।

श्रीकृष्ण आचार्य—१ कुण्डार्क नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ चंद्रिका नामक व्याकरणके रचयिता। ३ नारायणसारसंग्रह नामक ग्रंथकर्त्ता। ४ प्रौढ़व्यञ्जक नामक वेदान्तग्रंथके रचयिता। ५ वादार्थचूड़ामणि और शब्दकौस्तुभटीकाके प्रणेता। ६ शुद्धिदीपिकाप्रभा नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ७ स्मृतिमुक्तावलीके प्रणेता। ८ ऐतरेयोपनिषत्खण्डार्थसंग्रह और गुरुनामरत्नमालाके रचयिता। इनके पिताका नाम मुक्तिकापरायण था। ९ मञ्जुभाषिणी नामकी आनन्दलहरीटीकाके प्रणेता। ये वल्लभाचार्यके पुत्र थे।

श्रीकृष्णकान्त विद्यावागीश—नवद्वीपस्थ एक सुप्रसिद्ध नैयायिक। ये वैदिकश्रेणीके ब्राह्मण थे। अपने अध्य-

वसायके बल इन्होंने न्याय और स्मृतिशास्त्रमें असाधारण पाण्डित्यलाभ किया था। नवद्वीपवासी रामनारायणसे न्यायशास्त्र सीख कर ये सुविख्यात पण्डित कह कर परिचित हुए। इसके बाद इन्होंने जगदीशकृत शब्दशक्तिप्रकाशिकाकी टीका, रघुनाथ शिरोमणिकृत पदार्थतत्त्वकी टीका, न्यायप्रकाशिका और न्यायरत्नावली नामक चार न्यायशास्त्रीय ग्रंथ लिखे। शेषोक्त ग्रंथ न्यायशास्त्रका सारसंग्रह है।

इनको लिखी हुई जीमूतवाहनकृत दायभागकी टीका इनके स्मृतिशास्त्रज्ञानका परिचय देती है। इसके सिवा इन्होंने गोपाललीलामृत, चैतन्यचिन्तामृत और कामिनीकामकौतुक नामक तीन छोटे छोटे काव्य लिखे। प्रवाद है, कि नवद्वीपाधिपति महाराज श्रीगिरिशचंद्रके समय नवद्वीपके उत्तरी मैदानकी जमीनमेंसे एक गोपालमूर्त्ति निकली। उसी घटनाका अवलम्बन कर कृष्णकान्तने गोपाललीलामृतकी रचना की थी। उस विग्रहकी आज भी कृष्णनगर-राजभवनमें पूजा होती है। उनके वंशधर आज भी नवद्वीप और पूर्वस्थलीमें वास करते हैं।

श्रीकृष्णचैतन्य—१ श्रीचैतन्यमहाप्रभुका एक नाम। २ संक्षेपभागवतामृत और हरिनामविवेकके रचयिता। १४८६ ई०में इनका जन्म हुआ। चैतन्यदेव देखो।

श्रीकृष्णचैतन्यपुरी—एक प्रसिद्ध वेदांतिक। इनका रचित एक वेदांतविषयक ग्रंथ मिलता है।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी—द्वापरयुगके शेषमें भगवान् श्रीकृष्णने कंस-कारागारमें जन्म लिया था। उस दिन भाद्राष्टमी थी, वही तिथि जन्माष्टमी नामसे प्रसिद्ध है।

जन्माष्टमी देखो।

श्रीकृष्णजयन्ती—युग्मदेवप्रतिमाविशेष। पञ्चरात्र और ब्रह्मसंहितामें इसका विषय वर्णित है। श्रीकृष्णजयंतीपूजा, श्रीकृष्णजयंतीव्रत, श्रीकृष्णजयंतीमाहात्म्य और श्रीकृष्णजयन्त्युत्सवक्रम नामक ग्रंथमें इनका विवरण सविस्तार लिखा है।

श्रीकृष्णजीवन—विवादार्णवभङ्ग ग्रंथके एक संग्रहकार।

श्रीकृष्ण तर्कालंकार—१ नवद्वीपवासी एक सुविख्यात स्मार्त्त। मालदह जिलेमें इनका आदि निवास था। पीछे ये स्मृतिशास्त्र अध्ययन करनेके लिये अपनी जन्मभूमि छोड़ कर नवद्वीप आये और यहां अच्छी तरह शिक्षित हो जाने पर इन्होंने पूर्वस्थली ग्राममें एक ब्राह्मणकी कन्याका पाणिग्रहण किया। इसके बाद ये नवद्वीपमें चतुष्पाठी स्थापित करके अध्यापकका काम करने लगे। संस्कृतशास्त्रवित् पाश्चात्य पंडित कोलब्रुकने लिखा है, कि १८०६ ई०में श्रीकृष्ण तर्कालंकारके प्रपौत्र विद्यमान थे। सुतरां १७वीं सदीके शेषभागमें और १८वीं सदीके प्रारम्भमें ये जीवित थे, ऐसा ही अनुमान किया जाता है।

इन्होंने जीमूतवाहनकृत दायभागकी टीका तथा दायक्रमसंग्रह नामक दायभाग सम्बन्धीय दो ग्रन्थोंकी रचना की थी। दायाधिकारके प्रमाणके सम्बन्धमें इस ग्रन्थने दायभागका निम्न स्थान प्राप्त किया है। दायभागकी ऐसी विशद टीका दूसरी नहीं है। इस टीकाको सर्वश्रेष्ठ देखकर उनके बादके अध्यापक सुप्रसिद्ध गोपाल न्यायालंकारने नवद्वीपमें श्रीकृष्णकी पुस्तक पढ़ना शुरू किया। उस दिनसे यह ग्रन्थ नवद्वीपमें अधीत होता आ रहा है। कोलब्रुक साहबने दायक्रमसंग्रहका अङ्गरेजी अनुवाद किया। धर्माधिकरणसे दायभागके सम्बन्धमें श्रीकृष्णका मत बड़े आदरसे स्वीकार किया जाता है।

न्यायशास्त्रमें भी ये पूरे दक्ष थे। साहित्यके लक्षण और अर्थ आदि विचार कर इन्होंने साहित्यविचार नामक एक न्यायग्रन्थकी रचना की।

२ तर्कालंकार और भट्टाचार्योपाधिधारी एक दूसरे सुप्रसिद्ध नैयायिक। इन्होंने तर्कसंग्रह नामक एक दूसरा ग्रंथ लिखा था।

श्रीकृष्णदीक्षित—१ मीमांसापरिभाषाके प्रणेता। ये श्रीकृष्णयज्वन नामसे भी परिचित थे। २ रूपावतार नामक व्याकरणके प्रणेता। ३ और्द्धदैहिकप्रयोगके प्रणेता। ये यज्ञेश्वरके पुत्र थे।

श्रीकृष्णन्यायवागीश भट्टाचार्य—नवद्वीपवासी एक सुपण्डित। इन्होंने जानकीनाथ तर्कचूड़ामणिकृत न्यायसिद्धान्तमञ्जरीकी भावदीपिका नाम्नी टीका लिखी। इनके पिताका नाम गोविन्दन्यायालङ्कार था। पिताकी उपाधिसे परिचित थे।

श्रीकृष्णभट्ट—१ एक प्रसिद्ध संन्यासी। ये विद्याधिराज

तीर्थ नामसे प्रसिद्ध हुए। १३३३ ई०में इनका देहान्त हुआ। २ निम्बार्क सम्प्रदायके एक आचार्य। ये वामनभट्ट और पद्माकर भट्टके पहले गद्दी पर बैठे। ३ एक कवि। ४ अपरकृष्णीय और पूर्वकृष्णीयप्रयोग नामक ग्रंथके प्रणेता। ५ सुभाषितरत्नकोषके प्रणेता।

श्रीकृष्ण वैदिक—मंत्ररत्न नामक तंत्रग्रंथके प्रणेता।

श्रीकृष्ण वैद्य—चरकभाष्य और साहित्यसुधासमुद्र नामक दो ग्रंथके रचयिता।

श्रीकृष्ण शर्मन्—१ रसप्रकाश नामक अलङ्कारके प्रणेता। २ पद्ममञ्जरीकाव्यके रचयिता।

श्रीकृष्णशास्त्री—१ कृष्णराजचम्पूके प्रणेता। २ सुधाकर और सुबन्तप्रकाश नामक व्याकरणके प्रणेता। ३ प्रसिद्ध साधु रघुनाथ तीर्थका पूर्वनाम। १४०३ ई०में इनका देहान्त हुआ।

श्रीकृष्ण शुक्ल—योगसारसंग्रहके रचयिता।

श्रीकृष्णसरस्वती—भगवन्नामकौमुदीके प्रणेता लक्ष्मीधराचार्यके गुरु।

श्रीकृष्णसार्वभौम (भट्टाचार्य)—नवद्वीपवासी एक प्रसिद्ध पण्डित। स्मृतिशास्त्रमें इनका अद्भुत प्रावल्य और पाण्डित्य था। १७वीं सदीके शेषभागमें नवद्वीप ग्राममें इनका जन्म हुआ। उस समय नाटोरके राजा रामजीवन राय राज्य करते थे। नाटोर और राजशाही देखो।

विद्योत्साही राजा रामजीवनने इनकी प्रतिभा देख इन्हें अपना प्रधान राजसभापण्डित बनाया। १७२२ ई०में इनके रचित कृष्णपदामृत और १७२३ ई०में पदाङ्कदूत नामक ग्रंथ नवद्वीपमें प्रचारित हुए। दोनों ही ग्रंथ कृष्णलीलाविषयक हैं। उनमें कवित्वका भी यथेष्ट परिचय है।

श्रीकृष्णसूनु—कर्पूरमञ्जरी नाटकके एक टीकाकार।

श्रीकृष्णानन्द आगमवागीश—नवद्वीपके विख्यात पंडित। ये बंगालमें तांत्रिक पूजापद्धति प्रचार करनेवाले प्रधान गुरु थे। ये बंगालमें आगमवागीश भट्टाचार्यके नामसे विख्यात हैं। इनका जन्मस्थान नवद्वीप है और इनके पिताका नाम महेश्वर गौड़ाचार्य था। महेश्वर गौड़देशसे आ कर नवद्वीपमें बस गये। उन्होंने अपनी पांडित्य-प्रतिभासे नवद्वीपके पंडित समाजमें गौड़ाचार्यकी पदवी पाई। उक्त महात्माके बड़े पुत्रका नाम कृष्णानन्द और छोटेका माधवानन्द सहस्राक्ष था।

कृष्णानन्द श्रीचैतन्य महाप्रभुके समसामयिक थे। काव्यादि पाठ शेष करनेके बाद ये वासुदेव सार्वभौमके पास तन्त्रशास्त्र अध्ययन करने लगे और शक्तिमन्त्रसे दीक्षित हो कर कट्टर तांत्रिक बन गये। उनके भाई माधवानंद कुलदेवता गोपालदेवके उपासक थे। इस कारण दोनों भाइयोंमें कभी कभी घोर विवाद हो जाता था। प्रवाद है, एक समय उनके उद्यानके अन्दर एक कदली वृक्षमें फल निकल आये। पकने पर दोनों भाइयोंने अपने अपने मनमें स्थिर किया, कि उन फलोंके पकने पर अपने अपने इष्टदेवको अर्पण करेंगे। कुछ ही दिनोंमें वे फल पक गये। एक दिन कृष्णानन्द किसी कार्यके उपलक्षमें निकटवर्ती ग्राममें गये और उन सुपक्व रम्भाफलोंको अपने इष्टदेवीको चढ़ानेकी वासनासे वहांसे नौकरके साथ अपने गृहकी ओर लौटे। किन्तु इधर माधवानन्द भाईको अनुपस्थितिका सुअवसर पा कर वह केलेका घौर काट लाये और श्रीगोपालदेवको उसे अर्पण करनेके लिये मन्दिरमें पहुंचे। जब कृष्णानन्दने घर लौट कर देखा, कि वृक्षमें फल नहीं है, तब उन्होंने यह कार्रवाई माधवकी समझ कर उनके प्राण संहार करनेकी प्रतिज्ञा कर ली।

घरके चारों ओर माधवको खोजमें घूमते घूमते कृष्णानंद धीरे धीरे गोपालके मंदिरमें जा पहुंचे। उन्होंने दरवाजेके छेदसे देखा—माधवानंद अपने इष्टदेव गोपालको पके हुए केले चढ़ा रहे थे। इसके अलावे उन्होंने मंदिरके भीतर जो दृश्य देखा, उससे उनका हृदय प्रेमसे पुलकित हो उठा। उनका क्रोध हवा हो गया। मंदिरके अंदर भगवती कालिकादेवी गोपाल-देवको गोद बिठाये केले खिला रही थीं और आप भी खा रही थीं। इस दृश्यको प्रत्यक्ष देख कर उन्होंने अपना जीवन सफल समझा और अपने भाई माधवानंदको धन्यवाद देने लगे। उस दिन उन्हें स्पष्ट मालूम हो गया, कि गोपाल और कालीमें भेद समझना मूर्खता है।

उस समय बंगदेशमें तंत्रशास्त्रकी प्रबल आलोचना चल रही थी। कृष्णानंदने देखा, कि तांत्रिक लोग तंत्रशास्त्रके प्रकृत और विशुद्ध मतको नहीं समझते। वे

केवल तंत्रकी दुहाई दे कर निष्ठुरता और पश्वाचारकी पराकाष्ठा दिखा रहे हैं और मद्यपानसे उन्मत्त हो कर पाप के भयंकर दलदलमें फंसते जा रहे हैं। उनका चित्त इस-के पहले ही विशुद्ध हो चुका था एवं पूर्वका स्वभाव भी बदल चुका था। जनसाधारणके हृदयमें तंत्रशास्त्रका वास्तविक रूप प्रतिफलित करनेके अभिप्रायसे तंत्रशास्त्र-का सारसंग्रह करनेमें प्रवृत्त हुए। उनके रचे हुए सार-संग्रहका नाम तंत्रसार है। इस ग्रंथमें उन्होंने शाक्त और वैष्णवोंके देवदेवियोंकी उपासना और पूजापद्धति प्रकृतिका वर्णन बड़ी दक्षतासे किया है। तंत्रके मतसे सात्विक पूजा किस प्रकार सम्पन्न की जाती है, उसे भी उन्होंने अपने ग्रंथमें बढ़ा चढ़ा कर लिखा है। वर्त्त-मान कालमें कार्त्तिकी अमावस्याकी रातको जो श्यामा पूजा होती है, वह श्यामाकी मूर्त्ति और उनकी पूजापद्धति आगमवागीश भट्टाचार्यकी ही कीर्त्ति है। पहले इस प्रकार पूजा नहीं की जाती थी, उस समय मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा न कर पूजादि सभी कार्य घड़ेमें सम्पन्न किये जाते थे। आगमवागीश द्वारा मूर्त्तिप्रतिष्ठाकी प्रथा प्रचलित होने पर भी घटस्थापना बिलकुल बंद नहीं हुई। अब भी वह प्रथा प्रचलित है। कृष्णानन्द पहले जो घट स्थापित करके पूजा करते थे, वह इस समय भी उनके घरमे विद्यमान है। उनके वंशधर अब भी उस घटकी पूजा करते हैं।

कृष्णानंदके द्वारा श्यामाकी मूर्त्ति निर्माण होनेके सबंधमें बंगालके सभी स्थानोंमें इस प्रकार जनश्रुति चली आती है—आगमवागीश भट्टाचार्यने शक्तिमूर्त्ति निर्माण कर पूजा करनेकी इच्छा की। तंत्रोक्त ध्यानानु सार भयंकर मूर्त्ति किस प्रकार गठित करेंगे एवं दोनों पाँव किस रंगमें रंगेंगे, यह स्थिर न कर सकनेके कारण वे बहुत चिंतित हुए। उन्हें चिंतित देख कर देवीने अत्यन्त प्रसन्न हो कर उन्हें आदेश किया—"वत्स! कल सुबहको शय्यात्याग करनेके बाद तुम पहले पहल जिस मूर्त्तिको देखो, उसे ही मेरा वास्तविक स्वरूप समझो। दूसरे दिन प्रत्यूषामें कृष्णानन्द जिस समय शय्यात्याग कर घरके बाहर निकले, उस समय उन्होंने सामने एक सांवली गोप-रमणीको देखा। वह रमणी पूर्णयौवना थी, लोकलज्जाके भयसे अत्यन्त सवेरे उठ कर गोबरको चिपड़ी पाथ रही थी। उसका दाहिना पैर उस दीवारके पादमूलसे कुछ अंश ऊपर संलग्न था और बायां पैर पास ही पृथ्वी पर स्थिर था। बांये हाथमेंसे थोड़ा थोड़ा गोबर ले कर दाहिने हाथसे उसे दीवार पर छोप रही थी। अत्यन्त परिश्रम करनेके कारण उसके मुखमंडलसे पसीना निकल रहा था। वह रमणी बार बार अपने हाथके पृष्ठदेशसे ललाटका पसीना पोछ लिया करती थी, जिससे उसके ललाटके सिंदूरसे उसकी दोनों भौंहें लोहित रागरंजित हो रही थीं। उस समय उसके मस्तकसे वस्त्रके खिसक जानेके कारण उसकी केशराशि हवामें इधर उधर उड़ रही थी, जिससे एक अभूतपूर्व भाव पैदा होता था। कृष्णानन्द ठीक उसी समय उसके सामने उप-स्थित हुए। गोपरमणीने स्वभावसुलभ लज्जावश अपनी दन्तपंक्तियोंके बीच जीभ दबा ली। आगमवागीशने उसी मूर्त्तिसे देवीकी मूर्त्तिकी कल्पना की एवं वे नित्य उसी मूर्त्तिकी स्थापना कर पूजा करनेके उपरांत रातमें विसर्जन कर देते थे। आगमवागीशकी पूजामें किसी प्रकारके बलिदान तथा मादकताका संस्रव नहीं था। आगमवागीश द्वारा प्रकाशित श्यामा मूर्त्ति आगमेश्वरी-के नामसे विख्यात हुई। उनके वंशधर अब भी उस मूर्त्तिकी पूजा करते हैं। तंत्रसारके अतिरिक्त कृष्णा नन्दने श्रीतत्त्वबोधनी नामक एक और तंत्रग्रंथ लिखा था। उनके पौत्र और हरिनाथके पुत्र गोपाल भी तंत्रशास्त्रमें पूरे पण्डित थे। तंत्रदीपिका नामक उनका लिखा हुआ एक सुबृहद्ग्रंथ पाया जाता है।

श्रीकेशव (सं० पु०) श्रीकृष्णकेशवाचार्य नामक एक प्रसिद्ध पण्डित।

श्रीक्रमतंत्र—तंत्रसारोद्धृत एक तंत्रशास्त्र। वृहत् श्रीक्रम-तंत्र नामक और एक तंत्र मिलता है, शाक्तानन्द तरङ्गिणी-में उसका उल्लेख है।

श्रीक्रियारूपिणी (सं० स्त्री०) राधा।

श्रीक्षेत्र (सं० पु०) जगन्नाथपुरी तथा उसके आस पासके प्रदेश। विशेष विवरण जगन्नाथ शब्दमें देखो।

श्रीखण्ड (सं० पु० क्ली०) श्रियः शोभायाः खण्ड इव

यत्र। चन्दनभेद, हरिचन्दन। राजनिघण्टमें लिखा है, कि वेट्ट और सुक्कड़िके भेदसे श्रीखण्डचंदन दो प्रकारका होता है। उनमेंसे जो आर्द्र अर्थात् अपेक्षाकृत अधिक स्नेहयुक्त तथा जिसका गूदा स्वतःस्वभावसे स्तर स्तरमें विन्यस्त हो, उसका नाम वेट्ट और जिसमें कुछ स्नेहभाग है, ऐसा बोध नहीं हो अर्थात् जो एकदम नीरस हो, उसे सुकड़ि कहते हैं। गुण—कटु, तिक्त, शीतल, कषाय, वृष्य, मुखरोगघ्न, कांतिप्रद तथा पित्त, भ्रांति, वमि, ज्वर, क्रिमि, तृष्णा और संतापविनाशक, गात्रादिमें इसका प्रलेप देनेसे खूब नींद आती है। चन्दन देखो।

श्रीखण्डशैल (सं० पु०) मलयपर्वत जहां श्रीखण्डचन्दन होता है।

श्रीखण्डा (सं० पु०) श्रीखण्ड देखो।

श्रीगणेशा (सं० स्त्री०) श्रीराधाका एक नाम।

श्रीगदित (सं० क्ली०) उपरूपकके अठारह भेदोंमेंसे एक भेद। इसकी रचना प्रायः किसी पौराणिक घटनाके आधार पर होती है। इसका दूसरा नाम श्रीरासिका भी है।

श्रीगन्ध (सं० क्ली०) श्वेतचंदन, सफेद चन्दन।

श्रीगर्भ (सं० पु०) श्रीर्गर्भेऽस्य। १ विष्णु। २ खड्ग, तलवार।

श्रीगर्भ—काश्मीरके एक राजकवि। ये श्रीकण्ठके पिता और मङ्खके समसामयिक थे।

श्रीगर्भ कवीन्द्र—पद्यावलीधृत एक कवि।

श्रीगर्भरत्न (सं० क्ली०) मूल्यवान् प्रस्तर।

श्रीगिरि (सं० पु०) चारुगिरि। इसका दूसरा नाम श्रीशैल भी है।

श्रीगुणलेखा (सं० स्त्री०) काश्मीरकी एक रानी।

श्रीगुन्न—मङ्खके समसामयिक एक मीमांसक। श्रीकण्ठचरितमें इनका उल्लेख पाया जाता है।

श्रीगुप्त—मगधके गुप्तराजवंशके प्रतिष्ठाता। ये घटोत्कचगुप्तके पिता थे।

श्रीगुरु (सं० पु०) वैश्योंकी एक जाति।

श्रीगेह (सं० पु०) पद्म, कमल।

श्रीगोण्ड (हिं० पु०) वैश्योंकी एक जाति।

श्रीगोन्द (श्रीगोविन्द)—१ बम्बई प्रदेशके अह्मदनगर जिलेके दक्षिणका एक उपविभाग। भूपरिमाण ७२५ वर्गमील है। भीमानदीकी उपत्यका ले कर यह उपविभाग संगठित हुआ है और साधारणतः समुद्रतटसे १६०० फुट ऊंचा होनेके कारण यह अधित्यकारूपमें गिना जाता है। यह भूभाग उत्तर-पूर्वसे क्रमशः ढालू हो कर दक्षिण भीमातट और दक्षिण-पश्चिम उसकी गोड़ नामकी शाखातट पर जा कर समतल क्षेत्रमें मिल गया है। उत्तरपूर्वमें २५०० फुट अधित्यकाविस्तृत एक बड़ा पहाड़ है। धोन्द-मनमाड़ रेलपथ इस उपविभागके उत्तर-दक्षिण चला गया है। यहां तरह तरहकी फसल लगती है।

२ उक्त जिलेके उक्त उपविभागका प्रधान नगर। यह अक्षा० १८° ४१' उ० तथा देशा० ७४° ४४' पू०के मध्य विस्तृत है। यहांके चार बड़े मन्दिर और सिन्देराजके दो वासभवन देखने लायक है। गोविन्द नामक एक चमारजातिके वैष्णवसाधुके नामानुसार इस नगरका नाम श्रीगोविन्द हुआ है। इसके बाद यह अपभ्रंशसे श्रीगोन्द नामसे परिचित हुआ है। कोई कोई इसे चामरगोन्द भी कहते हैं।

श्रीगोविन्दपुर—पञ्जावप्रदेशके गुरुदासपुरजिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ३१° ४१' उ० तथा देशा० ७४°४४' पू०के मध्य बतालासे १८ मील दक्षिणपूर्व इरावती नदी पर अवस्थित है। सिखगुरु अर्जुनने यह स्थान खरीद कर अपने पुत्र हरगोविन्दके नामानुसार श्रीगोविन्दपुर नगर बसाया। सिख लोगोंके निकट यह स्थान अति पवित्र समझा जाता है। गोविन्दके वंशधर जालन्धर दोआबके अन्तर्गत कर्तारपुरवासी सिखगुरुगण यहांके अधिकारी हैं।

श्रीगोष्ठी—कावेरी नदीके दक्षिण मणिमुक्त नदीके तट पर अवस्थित एक देवक्षेत्र। ब्रह्माण्डपुराणके अन्तर्गत श्रीगोष्ठी माहात्म्यमें इसका विवरण मिलता है।

श्रीग्रह (सं० पु०) श्रियः ग्रहो यत्र। पक्षियोंके पानी पीनेका घर। पर्याय—शकुनिप्रपा। (हारावली)

श्रीग्राम (सं० पु०) एक प्राचीन ग्राम। यहां ज्योतिर्विद् श्रेष्ठ नारायणने जन्मग्रहण किया। इसलिये वे श्रीग्रामर कहलाते थे।

श्रीग्रामर (सं० पु०) ज्योतिर्विद् नारायणका एक नाम।

श्रीघन (सं० पु०) श्रिया बुद्ध्या घनः। १ बुद्धदेव। २ बौद्धयति या संन्यासी। (क्ली०) श्रिया घनम्। ३ दधि, दही।

श्रीचक्र (सं० क्ली०) श्रियाश्चक्रम्। १ त्रिपुरासुन्दरीका पूजायंत्रविशेष। यह यंत्र या चक्र साधारणतः सृष्टि, स्थिति और प्रलयात्मक है। उनमेंसे अष्टदल, षोड़शदल, वृत्तत्रय, भूगृहत्रय और चतुर्द्वारविशिष्ट चक्र सृष्ट्यात्मक; द्वि, दश या चतुर्दश अरकविशिष्ट, ये तीन प्रकारके चक्र स्थित्यात्मक तथा विन्दुयुक्त, त्रिभुज अथवा अष्टकोणाकृति ये तीन प्रकारके चक्र संहारात्मक हैं।

उक्त चक्र सिंदूर कुंकुम आदिसे लिख कर सुवर्ण, रजत, पद्मरत्न, स्फटिक और ताम्रादि द्वारा उत्कीर्ण करना होता है।

भूतभैरवतंत्रमें लिखा है, कि प्रत्येक देवीके अपने अपने निर्दिष्ट यंत्राङ्कनकालमें यदि किसी तरह व्यतिक्रम हो अर्थात् एक देवीके पूजाकालमें भ्रमवशतः अन्य देवीका निर्दिष्ट चक्र अङ्कित हो जाय अथवा प्रकृत चक्र अङ्कित हो कर भी यदि उसकी रेखा, मुख आदिका अङ्कन समभावमें न हो, तो स्वयं भूतभैरव पूजा करनेवालेका यथासर्वस्व अपहरण करते हैं।

उक्त तंत्रमें यह भी लिखा है, कि रातको किसी प्रकारका चक्र अङ्कित न करे; प्रमादवशतः यदि किया जाय, तो उसे उसी समय अभिशप्त होना पड़ेगा।

स्वच्छन्दभैरवतंत्रमें लिखा है, कि स्थण्डिलाभ्यन्तर हाथ भरका अति सुंदर चक्र या यंत्र प्रस्तुत करे। रत्नादिसे निर्माण करनेमें उन सब रत्नोंका परिमाण इच्छानुसार एक, दो, तीन या चार तोला तक दिया जा सकता है। अधिक देनेसे प्रायश्चित्तार्ह होना पड़ता है।

उक्त तंत्रमें लिखा है, कि यह चक्र रक्त या रजो द्वारा परिपूर्ण कर उसमें देवीकी पूजा करनेसे सब प्रकारके विघ्न नष्ट होते हैं तथा पृथिवी पर अभीष्टानुरूप द्रव्य आसानीसे मिलता है।

१० भाग स्वर्ण, १२ भाग ताम्र और १६ भाग रौप्यके मेलसे चक्र प्रस्तुत कर उसमें पूजा करनेसे अणिमादि अष्टसिद्धिका अधिपतित्व और परमसौभाग्य लाभ होता है। प्रवाल, पद्मराग, इन्द्रनील, वैदूर्य, स्फटिक, मरकत आदि मणिरत्नादिसे चक्र बना कर पूजा करनेसे निश्चय ही स्त्रीपुत्र-यश-धन आदिकी प्राप्ति होती है। ताम्रसे कांति, सुवर्णसे शत्रुनाश, रजतसे शुभफल और स्फटिकसे सर्वसिद्धिलाभ होता है। ये सब फल केवल श्रीचक्र होनेके कारण नहीं हैं, चक्रमात्रको ही लक्ष्य कर कहा गया है। अर्थात् चाहे जो कोई यंत्र क्यों न हो वह उक्त प्रकारसे निर्माण कर उसमें पूजा करनेसे वे सब फल मिलते हैं।

तंत्रसारादिमें लिखा है, कि किसी प्रकारका चक्र या यंत्र स्फुटित, अग्निदग्ध अथवा चौरापहृत होनेसे नितान्त संयत हो कर एक दिन उपवास और भक्तिपूर्वक लाख बार जप, होम, तर्पण, गुरुपूजा तथा ब्राह्मणभोजन आदि कार्य करने होंगे। लाख बार जप करनेके बाद उसके दशांश परिमित होम तथा उसका दशांश परिमित तर्पण करना उचित है। किसी किसीके मतसे दश हजार बार जप करनेसे भी काम चल सकता है।

तंत्रमें लिखा है, कि इच्छापूर्वक यदि कोई चक्र भग्नस्फुटित या उसका कोई चिह्न लोप कर दे, तो वह व्यक्ति शीघ्र ही मृत्युमुखमें पतित होता है। इस कारण उसे किसी प्रधान तीर्थमें, गङ्गादि नदीमें अथवा समुद्रजलमें फेंक देना होगा, नहीं तो भीषण कष्ट भोगना पड़ता है।

गङ्गा, पुष्कर, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, गोमती, गोमुखी, गया, प्रयाग, बदरिकाश्रम, वाराणसी, सिंधु, रेवा, सेतुबंध, सरस्वती आदि तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल होता है, श्रीचक्र उसकी अपेक्षा सहस्रकोटि फल देनेवाला है। मनुष्य सौ यज्ञ, सोलह महादान, साढ़े तीन करोड़ तीर्थस्नान इत्यादि करके जो फल पाते हैं, अतिशय भक्तिपूर्वक एकमात्र श्रीचक्रके दर्शन करनेसे ही वे सब फल आसानीसे मिलते हैं।

२ इन्द्रका रथचक्र। ३ भूचक्र, पृथिवी।

श्रीचण्ड (सं० पु०) कथासरित्सागर-वर्णित व्यक्तिभेद।

श्रीचन्दन (सं० क्ली०) श्वेत चंदन, सफेद चंदन, संदल।

श्रीचमरी (सं० स्त्री०) चमरीमृगभेद, एक प्रकारका हिरन।

श्रीज (सं० पु०) श्रियः जायते जन-ड। १ कामदेव, मदन। २ शाम्बका एक नाम।

श्रीजयसिंह—मेवारके ८४ राणा तथा रत्नसिंहके पुत्र। ये १४वीं सदीके प्रारम्भमें विद्यमान थे।

श्रीटङ्क (सं० पु०) संगीतमें एक प्रकारका राग। इसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

श्रीढक (सं० पु०) काश्मीरान्तर्गत स्थानभेद।

श्रीणा (सं० स्त्री०) शिरिणा, रात्रि, रात। (निघण्टु १।७)

श्रीतरु (सं० पु०) शालवृक्ष, सालका पेड़।

श्रीतल (सं० क्ली०) विष्णुपुराणके अनुसार एक नरकका नाम।

श्रीताल (सं० पु०) मलय देशमें उत्पन्न होनेवाला ताल या ताड़के वृक्षसे मिलता जुलता एक प्रकारका वृक्ष। इसे हिंताल भी कहते हैं। पर्याय—मृदुताल, लक्ष्मीताल, मृदुच्छद, विशालपत्र, लेखार्ह, मसीलेखदल, शिरालपत्रक, याम्योद्भूत। गुण—मधुर, शीतल, कुछ कषाय, पित्तघ्न, कफकर, थोड़ा वातप्रकोपण। (राजनि०)

श्रीतीर्थ (सं० क्ली०) महाभारत वनपर्वके अनुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम।

श्रीतेजस् (सं० पु०) बुद्धभेद। (ललितविस्तर ५।१११)

श्रीद (सं० पु०) श्रियं ददातीति दा-क। १ कुबेर। (त्रि०) २ श्री बढ़ानेवाला, शोभा बढ़ानेवाला।

श्रीदत्त—१ नैषधीय पूर्वभागटीकाके प्रणेता। २ जैनेन्द्र व्याकरणोद्धृत एक प्राचीन पण्डित। ३ भट्टोपाधिक एक कवि।

श्रीदत्तमैथिल—आचारादर्श, आवसथ्याधानपद्धति, छन्दोगाह्निक, पितृभक्ति या श्राद्धकल्प, व्रतसार, समयप्रदीप आदि ग्रन्थोंके प्रणेता। कमलाकर तथा आचारार्क ग्रंथमें दिवाकरने इनका मत उद्धृत किया है।

श्रीदयित (सं० पु०) विष्णु। (वोपदेव)

श्रीदर्शन (सं० पु०) कथासरित्सागरवर्णित व्यक्तिभेद।

श्रीदशाक्षर (सं० पु०) दश पदयुक्त मंत्र।

श्रीदाक्षिनगर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम।

श्रीदामन (सं० पु०) श्रीकृष्णके एक ग्वाल सखाका नाम। इन्हें सुदामा भी कहते हैं। (हरिवंश)

श्रीदुर्गायंत्र (सं० क्ली०) दुर्गादेवीपूजार्थ तन्त्रोक्त यंत्रविशेष।

श्रीदेव—१ योगदीपिका नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। २ स्मृतितत्त्वप्रकाशके प्रणेता। ३ सुप्रसिद्ध ग्रंथकार याज्ञिक देवका एक नाम। याज्ञिकदेव देखो।

श्रीदेव आचार्य—सिद्धांतजाह्नवी नामक वेदांतग्रंथके प्रणेता।

श्रीदेवपण्डित—परिभाषावृत्ति नामक व्याकरणके प्रणेता।

श्रीदेव शर्मन्—स्मार्त्तसमुच्चयके प्रणेता सुप्रसिद्ध नन्द पण्डितके पिता। ग्रन्थकारकी उक्तिसे जाना जाता है, कि उनके पिता सर्वशास्त्रविद् थे। वे भिन्न भिन्न विषयोंके अनेक ग्रंथ लिख गये हैं।

श्रीदेवा (सं० स्त्री०) वसुदेवकी पत्नी। सुदेवा या संदेवा इनका दूसरा नाम है।

श्रीदेवी—देवगिरि यादव राजाओंके प्रधान सामंत इंद्रराज (निकुम्भ) की महिषी। यह सगर जातिकी थीं। स्वामीके परलोक सिधारने पर इन्होंने पुत्रकी अभिभाविकारूपमें खानदेशका शासन किया। (११५६-११६५ ई०)

श्रीदेवीसिंहदेव—योगप्रदीप नामक योगशास्त्रीय एक ग्रंथके रचयिता।

श्रीधन (सं० क्ली०) एक गांवका नाम। (तारनाथ)

श्रीधनकटक—एक प्रसिद्ध बौद्धचैत्य। (तारनाथ)

श्रीधन्वीपुरी—एक प्राचीन देवतीर्थ। श्रीधन्वीपुरीमाहात्म्यमें इस पुण्यक्षेत्रका सविशेष परिचय है।

श्रीधर—अन्निगेड़ीके आस पासके एक सामंतराज। (११५७ ई०) ये कलचुड़ीराज विज्जलके अधीन सामन्त पद पर अभिषिक्त थे।

श्रीधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच् श्रिया धरः। १ विष्णु। २ भूतादिभेद। ३ शालग्रामचक्र। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें श्रीधरचक्रका विषय उल्लिखित है। वे अति क्षुद्र दो चक्रविशिष्ट, वनमालाविभूषित तथा गृहियोंके सम्पद्दाता हैं। ४ जैनियोंके चौबीस तीर्थङ्करोंमेंसे सातवें तीर्थङ्करका नाम। (त्रि०) ५ तेजस्वी, तेजवान्।

श्रीधर—१ एक आभिधानिक। सुन्दरगणिकृत धातुरत्नाकरमें इनका उल्लेख है। २ अमरकोषटीकाके प्रणेता। ३ अशौचके रचयिता। ४ कात्यायनश्रौतसूत्रभाष्यकार। ५ कालविधानपद्धतिके प्रणेता। ६ जयमल्लविलास नामक दीधितिकार। ७ नित्यकर्मपद्धतिके प्रणेता। यह ग्रंथ श्रीधरपद्धति नामसे भी परिचित है। ८ पाशुपतप्रतापके प्रणेता। ६ विश्वामित्रसंहिता नामक दीधितिकार।

श्रीधर आचार्य—एक प्राचीन ज्योतिर्विद्। गणकतरङ्गिणीके मतसे ६६१ ई०में इनका जन्म हुआ था। भास्कराचार्यने वीजगणितमें तथा केशवने जातकपद्धतिमें इनका मत उल्लेख किया है। अरिष्टनवनीतटीका, गणितसार, त्रिशतीगणितसार, पद्धतिरत्न, पाटीसार, लीलावती, श्रीधरपद्धति, श्रीपतिपद्धति और श्रीधरीय नामक ज्योतिःशास्त्र इनके लिखे हैं। उक्त ग्रंथोंसे जान पड़ता है, कि इस नामके कितने ज्योतिर्विद् थे।

श्रीधर आचार्य यज्वन्—स्मृत्यर्थसारके रचयिता। इस ग्रंथमें इन्होंने स्वयं गोविंदराज और तीर्थसंग्रहकारका मत तथा हेमाद्रिने अपने ग्रंथमें इनका मत उद्धृत किया है। इनके अलावा इनका रचा श्रीधरीय नामक एक धर्मशास्त्र भी मिलता है। प्रयोगपारिजातमें और संस्कारकौस्तुभमें उक्त ग्रंथका परिचय है। इनके पिताका नाम था विष्णुभट्ट उपाध्याय।

श्रीधरकवि—१ रामरसामृत नामक काव्यके रचयिता। २ एक ग्रंथकार। इनका नाम था राजा सुब्बासिंह चौहान। ये ओयेल जिला खीरीके रहनेवाले थे। सन् १८७४ ई०में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने भाषामें विद्वन्मोदतरङ्गिणी नामकी एक पुस्तक लिखी है। इस ग्रंथमें इन्होंने अन्य सत्कवियोंके बनाये कितने ही अच्छे अच्छे उदाहरण दिये हैं।

श्रीधरदास—सदुक्तिकर्णामृतके प्रणेता। १२०४ ई०में यह ग्रंथ सङ्कलित हुआ। इनके पिता बटुदास वंङ्गेश्वर लक्ष्मणसेनके सेनापति और परम सुहृद् थे।

श्रीधर दीक्षित—१ प्रयोगवृत्तिके प्रणेता २ सामप्रयोगपद्धतिके प्रणेता।

श्रीधरनन्दिन्—एक प्राचीन कवि।

श्रीधरपति—दानचंद्रिकावलीके रचयिता।

श्रीधर पाठक—एक हिंदी-कवि। आप सारस्वत ब्राह्मण थे। आपके पूर्वपुरुष हजार वर्षसे ऊपर हुए पञ्जाब छोड़ कर जिला आगरे परगना फिरोजाबादके जोंधरी नामक गाँवमें आ बसे थे। पाठकजीके पिताका नाम था लीलाधर पाठक। वे एक सामान्य पण्डित थे। परंतु सच्चरित्रता, पवित्रता और भगवद्भक्तिमें वे अद्वितीय थे।

आपका जन्म सं० १९१६ को माघ कृष्णाचतुर्दशीको हुआ था। प्रारम्भमें आपने संस्कृत पढ़ना शुरू किया था और उसमें आपने अच्छी योग्यता भी प्राप्त कर ली थी। परंतु कई कारणोंसे आपको १२ वर्षकी उम्रमें संस्कृत पढ़ना छोड़ देना पड़ा।

अब पाठकजीको रुचि चित्र तथा मिट्टीकी सुंदर मूर्त्तियां बनानेकी ओर गई। १४ वर्षकी अवस्थासे आपको फिर पढ़ना आरम्भ हुआ। पहले फारसी पढ़ कर आप तहसीली स्कूलसे हिंदीकी प्रवेशिका परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। इस परीक्षामें आप प्रांत भरमें प्रथम रहे। सन् १८८० ई०में आपने प्रथम श्रेणीमें एंट्रेंस परीक्षा पास की।

परीक्षा पास करनेके छः महीने पीछे आप कलकत्ते आये और ६०) मासिक पर सेंसस कमिश्नरके स्थायी दफ्तरमें नौकर हुए। इसी पद परसे आप शिमला गये और हिमालयकी उदग्र मूर्त्तिका आपने दर्शन किया। वहाँसे लौटने पर कुछ दिनोंके बाद प्रयागमें लाट साहबके दफ्तरमें ३०) मासिक पर नियुक्त हुए। इस दफ्तरके साथ पाठकजीको कई बार नैनीताल जानेका अवसर मिला। सन् १८ ८ ई०में जब आपका वेतन २००) था, तब आगरे इनकी बदली हुई और वहांसे सन् १९०१ ई०में २००) मासिक पर आप इरीगेशन कमीशनके सुपरिंटेंडेंट नियुक्त हुए। कमीशनके अंत तक आप उसी पद पर रहे। इसके बाद आप भारत-गवर्नमेण्टके दफ्तरमें सुपरिण्टेण्डेण्टके पद पर रहे। एक वर्षके बाद आपने तीन महीनेकी छुट्टी ली और काश्मीर गये। वहांसे लौटने पर "काश्मीरसुषमा" नामका एक उत्तम काव्य आपने रचा। पाठकजीने सरकारी काम

बड़ी योग्यतासे किया। आप अंगरेजी लिखनेके लिये भी प्रसिद्ध थे। सन् १८९८-९९ की प्रान्तीय इरीगेशन रिपोर्टमें आपकी प्रशंसा छपी है। तदनन्तर आप युक्त प्रदेशके लाट साहबके दफ्तरमें ३००) मासिकको सुपरिण्टेण्डेण्टी पदसे पेंशन ले कर लूकरगञ्जमें रहने लगे।

पण्डित श्रीधर पाठकजीका हिंदी-संसारमें बड़ा नाम है। आप हिन्दीके सुकवि थे। खड़ी बोली और व्रजभाषाके आप समान कवि थे। परंतु खड़ी बोली-की कविताके आप आचार्य माने जाते थे।

आपने स्कूलमें पढ़ते समय सबसे पहले अपने ग्राम जौधरीकी प्रशंसामें कविता रची थी। परंतु वह कविता प्रकाशित नहीं हुई। आपकी फुटकल कविताओंका संग्रह "मनोविनोद" नामक पुस्तकमें प्रकाशित किया गया है। गोल्डस्मिथके तीन ग्रंथोंका आपने पद्यानुवाद किया था। वे "एकान्तवासी योगी", "ऊजड़गाँव" और "श्रान्तपथिक"-के नामसे प्रकाशित हुए हैं। आप प्राकृतिक दृश्योंका चित्र बड़ो उत्तमतासे खींचते थे।

प्रयागमें "पद्मकुटीर" नामक एक निवासस्थान बना कर आप वहीं अन्तकाल तक रहते थे।

श्रीधरभट्ट—१ व्यवहार दशश्लोकीके प्रणेता। २ सपिण्ड-दीपिका नामक ग्रंथके रचयिता। ३ पदार्थधर्मसंग्रहकी न्यायकन्दली नामक टीकाके प्रणेता। इनके पिताका नाम बलदेव, माताका अव्वोका तथा पितामहका नाम वाचस्पति था। दक्षिणराढ़के अन्तर्गत भूरिसृष्टि ग्राममें इनका जन्म हुआ था। पाण्डु दास नामक एक हिन्दू राजाके उत्साहसे ९९१ ई०में किसी किसीके मतसे ९८९ ई०में इन्होंने उक्त ग्रंथ लिखा।

श्रीधर मिश्र—१ दानपरीक्षा, भ्रष्टवैष्णवखण्डन और शुष्क ज्ञाननिरादर नामक तीन ग्रंथके रचयिता। २ वैद्यमनोत्सव और वैद्यामृत नामक ग्रंथके प्रणेता।

श्रीधर सरस्वती—रामश्रीपादशिष्य हरिहरानन्दके शिष्य एवं सिद्धान्ततत्त्व-विन्दुसन्दीपनके रचयिता पुरुषोत्तम सरस्वतीके गुरु।

श्रीधरसान्धिविग्रहिक—काव्यप्रकाशविवेकके प्रणेता।

श्रीधरसूरि—आचारपद्धतिके प्रणेता।

श्रीधर सेन (सं० पु०) राजभेद। वलभी नगरमें इनकी राजधानी थी। भट्टिकाव्यके प्रणेता कवि भर्तृहरि इनकी सभामें विद्यमान थे। (भट्टि २२।३५)

श्रीधरस्वामी—सुप्रसिद्ध टीकाकार। ये परमानन्दके शिष्य थे। सुबोधिनी नाम्नी भगवद्गीता टीका, भगवद्गीता सारटीका, आत्मप्रकाश नामक विष्णुपुराणटीका, वेद-स्तुतिटीका, व्रजविहार आदि ग्रंथोंकी इन्होंने रचना की। पद्यावलीमें इनके रचित कुछ उत्कृष्ट श्लोक मिलते हैं। कहते हैं, कि पदार्थप्रकाशिकानाम्नी एक पुराणटीका इन्हींके लेखनीसे निकली है। ग्रन्थकारने स्वकृत आत्म-प्रकाशमें चित्सुखकी टीकाका उल्लेख किया है। वेद-स्तुति टीका भी इनकी भागवतपुराण टीकासे सङ्कलित हुई है।

श्रीधरानन्द—विष्णुपादादिकेशान्तस्तुतिके प्रणेता।

श्रीधरानन्द यति—पातञ्जलरहस्य नामक योगशास्त्रके रच-यिता।

श्रीधरेन्द्र—भट्टदीपिका आदि ग्रन्थके प्रणेता, खण्डदेव इस नामसे परिचित थे। खण्डदेव देखो।

श्रीधरोलनगर (सं० क्ली०) नगरभेद।

श्रीधात्री (सं० स्त्री०) शिरामलकी, शिरा आंवला।

श्रीधामन् (सं० क्ली०) १ लक्ष्मीका वासस्थान। २ पद्म, कमल।

श्रीनगर—१ कानपुरके अन्तःपाती एक नगर। बुन्देल-खण्डके अन्तर्गत एक नगर।

श्रीनगर—पश्चिम हिमालय प्रदेशके काश्मीर राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० ३४° ५' उ० तथा देशा० ७४° ५०' पू०के मध्य झेलम नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। काश्मीरकी 'हैपि भेली' (Happy Valley) नाम-की उपत्यकाके मध्यस्थलमें अनेक प्राकृतिक सौन्दर्यके बीच यह राजधानी बसी हुई है।

झेलम नदीके दोनों किनारे करीब दो मील तक श्रीनगर राजधानी फैली हुई है। शहरमें जानेके लिये इस नदीके ऊपर सात पुल हैं। यहां नदीगर्भकी चौड़ाई प्रायः १७६ हाथ और ग्रीष्मकालमें जलकी गहराई प्रायः १८ फुट देखी जाती है। नदीके दोनों किनारे चूनके पत्थरसे भरे पड़े हैं। वे सब सफेद और भिन्न भिन्न चित्रोंसे चित्रित पत्थर जलस्रोतसे घुल गये हैं जिससे

उनकी पूर्णश्री जाती रही। कहीं तो नदीका किनारा ध्वंस जानेसे वे सब पत्थर स्थानभ्रष्ट हो गये हैं, इस कारण किनारेकी पहलेसी शोभा बिलकुल नहीं है। कई जगह अब भी पत्थरके बने स्नानघाट स्थानीय सौन्दर्य और समृद्धिका परिचय देते हैं। शान्तिकूट, कुटीकूट और नालो-मार नामकी नहर इसी नगरके बीचसे हो कर बह गई हैं।

समुद्रकी तहसे ५२७६ फुट ऊंचे पर्वतके ऊपर यह राजधानी बसी है। दुःखका विषय है, कि चारों ओर दलदल भूमि रहनेके कारण यहांकी आवहवा बिलकुल खराब हो गई है। यहांकी जनसंख्या डेढ़ लाखसे भी ऊपर है। जिसमेंसे हिन्दूकी अपेक्षा मुसलमानकी संख्या ८ गुनीसे कम नहीं होगी। यहांकी सौन्दर्य शाली अट्टालिकाएं प्रायः काठकी बनी तीन या चार खन वाली हैं। प्रायः सभी घर काष्ठनिर्मित होनेके कारण अकसर आग लगा करती है। कभी कभी तो गांवका गांव स्वाहा हो गया है। राजप्रासाद, दुर्ग, बारद्वारी, कमानका कारखाना, टकसालघर, चिकित्सागार, विद्यालय आदि यहांकी देखने लायक वस्तु है। इनके सिवा कोई राजकीय भवन तो नहीं है, पर प्राचीन मन्दिर, मसजिद और समाधिस्थानादि प्रत्नतत्त्वके यथेष्ट उपकरण हैं। यहां बहुतसे बाजार हैं जिनमेंसे महाराजगञ्जका बाजार ही प्रधान है और यहां आ कर वैदेशिक लोग काश्मीर जात सभी द्रव्यादि पा सकते हैं। श्रीनगर सीमाके बाहर बहुतसी बड़ी बड़ी इमारतें देखी जाती हैं। वे सब इमारतें स्थानीय महाजन और धनशाली व्यवसायी वणिकोंके खर्चसे बनी हैं। यहांका Rotten Row नामक वृक्षसारि सज्जित रास्ता देखने लायक है।

श्रीनगर राजधानीके पास ही तख्त्-इ-सुलेमान पर्वत है। पर्वतके ऊपर खड़े हो कर देखनेसे सारे नगरका प्राकृतिक सौन्दर्य नजर आता है। इसके शिखर पर एक प्राचीन पत्थरका मंदिर विद्यमान है। स्थानीय हिंदू उसे श्रीशङ्कराचार्यका मंदिर बतलाते हैं, किंतु यथार्थमें वह सच नहीं है। बौद्धसम्राट् अशोकके पुत्र जलोकने ईसा जन्मकी तीन सदी पहले उसे बनवाया था, पीछे वह मुसलमानोंकी मसजिदमें परिणत हो गया, समुद्रपृष्ठसे उस स्थानकी ऊंचाई ६६५० फुट है।

शहरके उत्तरी प्रांतमें हरिपर्वत है। वह एक स्वतंत्र गण्डशैलमाला है और भूपृष्ठसे २५० फुट ऊंचा है। इसके ऊपर श्रीनगरदुर्ग स्थापित है। दुर्गप्राचीर समूचे पहाड़को घेरे हुए है। उसके 'काटि दरवाजा' नामक प्रवेशद्वारके ऊपर पारसी भाषामें जो शिलालिपि उत्कीर्ण है, उससे जाना जाता है, कि मुगल-सम्राट् अकबर शाहके जमानेमें १५९० ई०को करोड़ रुपये खर्च करके यह दुर्ग और प्राचीर बनाया गया था। प्राचीर प्रायः ३ मील लम्बा और २८ फुट ऊंचा है।

नगरके बीच शेरगढ़ी नामक स्थानमें राजप्रासाद और दुर्ग स्थापित है। इसकी लम्बाई ८०० हाथ और चौड़ाई ४०० हाथ है। इसका भी प्राचीर २२ फुट ऊंचा है। यहां सेनावासके लिये बारक, राजकार्यालय और राजपुरसंक्रान्त अट्टालिकादि विद्यमान हैं। स्थानीय जुमा-मसजिद एक चौकोन इमारत है। उसके मध्यस्थलमें एक विस्तृत प्राङ्गण है।

नगरके उत्तरपूर्व काश्मीरका सुप्रसिद्ध डाल नामक ह्रद है। उसकी लम्बाई ५ मील और चौड़ाई २॥० मील तथा जलकी गहराई प्रायः १० फुट होगी। इस विस्तृत ह्रदके ऊपर कुछ उद्यान सजे हुए नजर आते हैं। उनमें जहांगीरका स्थापित 'शालिमार उद्यान' और सम्राट् अकबरके अङ्कित चित्रानुसार बना हुआ 'नाजिब बाग' नामक उद्यान विशेष द्रष्टव्य है। इसके सिवा श्रीनगरकी सीमाके मध्य ऐसे कितने उद्यान हैं। कवि मूरने 'Lalla Rookh' नामसे काश्मीरके डाल ह्रदका वर्णन किया है तथा इस शालिमार उद्यानका चित्र उनके रचित "Light of the Harem" नामकी कवितामें अच्छी तरह अङ्कित है।

एक राजप्रतिनिधि और राजस्व-विभागीय कमिश्नर चीफकोर्टके जज, हिसाबनवीश, एक शाल परिदर्शक और एक दीवानी जज द्वारा यहांके राज्यशासन संक्रान्त सभी कार्य चलते हैं। काश्मीर और जम्बू शब्द देखो।

शहरमें एक हाई स्कूल, अस्पताल और एक जनाना

अस्पताल है। १९०२ ई०में एक कुष्ठाश्रम भी खोला गया है।

श्रीनगर—युक्त प्रदेशके गढ़वाल जिलेका एक शहर। यह अक्षा० ३०°१३´ उ० तथा देशा० ७८°४८´ पू० अलकनन्दा-के बायें किनारे अवस्थित। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई १७०६ फुट है। जनसंख्या २०६१ है। पुराना शहर १७वीं सदीमें स्थापित हुआ और गढ़वालकी राजधानी बनाया गया था; किन्तु १८९४ ई०में गोहना लेककी बाढ़-से वह बिलकुल बह गया। नया शहर एक ऊंचे स्थान पर बसा हुआ है। यहां एक सुन्दर अस्पताल, एक पुलिसस्टेशन और एक स्कूल है। विशेष विवरण गढ़-वाल शब्दमें देखो।

श्रीनगर—देवगिरिके यादव वंशके आदि पुरुष राजा दृढ़-प्रहार द्वारा प्रतिष्ठित एक नगर। उक्त राजा शिगन देशके अन्तर्गत द्वारावती या द्वारकापुरीसे पहले दल बल-के साथ मथुरा आये। यहां उन्होंने श्रीनगर राजधानी स्थापन कर कुछ दिन राज्य किया। पीछे चन्द्रादित्यपुरमें राजधानी उठा कर लाई गई।

श्रीनगर—मध्यप्रदेशके नरसिंहपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह उमार नदीके किनारे नरसिंहपुरसे ११ कोस दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। गोंड़ राजवंशके अधिकार कालमें यह स्थान समृद्धिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। महाराष्ट्रीय शासनकालमें यहां सेनारक्षाका एक विस्तृत अड्डा था, अभी उसका नाम-निशान नहीं है।

श्रीनगर—अयोध्या प्रदेशके खेरी जिलेका एक परगना और ग्राम।

श्रीनगर—युक्तप्रदेशके हमीरपुर जिलेका एक प्राचीन नगर। अभी इसके मकान आदि तहस नहस हो जानेके कारण यह भी भ्रष्ट हो गया है। यह महोरा पर्वतमाला-के नवगाँव जानेके रास्ते पर हमीरपुरसे ६३ मील दक्षिणमें अवस्थित है।

विख्यात बुन्देला सरदार छत्रशालकी रखेली स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न मोहनसिंहने १७१० ई०में यह नगर बसाया। उन्होंने बड़े यत्न और परिश्रमसे निकटवर्त्ती शैलश्रृङ्ग पर एक दुर्ग और टकसाल-घर बनवाया था। इसी टकसाल-घरसे दक्षिण बुन्देलखण्डमें प्रचलित प्रसिद्ध श्रीनगरी मुद्राका प्रचार हुआ था। उन्होंने वहां मोहनसागर नामकी एक बहुत बड़ी दिग्गी भी खुदवाई थी। उसके मध्यस्थलमें एक जलवेष्टित भूखण्ड पर उन्होंने जो विश्राम-भवन बनवाया था, वह अभी संस्कार अभावमें जीर्णावस्थामें पड़ा है। १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय देशपत नामक डाकू-सरदारने यह लूट कर देशवासीके बीच धन बांट दिया। पीछे नगरका फिर सुधार न हो सका; पूर्वसमृद्धि बिलकुल जाती रही। इधर पड़ी हुई टूटी फूटी इमारत उसका साक्ष्य प्रदान करती है। यहां पीतलकी अच्छी देवमूर्त्तियां बनती हैं।

श्रीनगर—युक्तप्रदेशके बलिया जिलान्तर्गत बलिया तहसीलका एक ग्राम। यह अक्षा० २५° ४६´ उ० देशा० ८३° २८´ पू० बलिया नगरसे २४ मील दूर वैरिया रैवती रास्तेके ऊपर अवस्थित है।

श्रीनगर—१ कानपुरके अन्तःपाती एक नगर। २ बुन्देल-खण्डके अन्तर्गत एक नगर।

श्रीनन्द—श्रीनंदीय नामक ग्रंथके रचयिता।

श्रीनन्दन (सं० पु०) श्रियः नंदनः। १ कामदेव। २ लक्ष्मी-का पुत्र।

श्रीनन्दनन्दन (सं० पु०) श्रीकृष्ण। भगवान् कृष्णरूपमें नंदघोषके घर गोकुल नगरमें पालित हुए थे। नंद और यशोदाको पितामाता समझते थे इसलिये उनका ऐसा नाम पड़ा।

श्रीनरेन्द्रेश्वर (सं० पु०) काश्मीरका एक शिवलिङ्ग। काश्मीरको रहनेवाली श्रीनरेन्द्र प्रभा नामकी एक रमणी-ने इस लिङ्गमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी।

श्रीनाथ (सं० पु०) विष्णु।

श्रीनाथ—१ ग्रहचिन्तामणि नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। २ दूषणोद्धारके रचयिता। ३ भागवतपुराणस्वरूपविषयक शङ्कानिरासके प्रणेता। ४ रमल नामक ग्रंथकर्त्ता। ५ रसरत्न नामक वैद्यकग्रन्थके रचयिता। ६ विज्ञान-विलास नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ७ दीपिकाटीकाके रचयिता। ८ छन्दोलक्षण नामक वृत्तरत्नाकर टीकाकार। ये गोविन्दभट्टके पुत्र थे।

श्रीनाथ आचार्य—१ श्राद्धदीपिकाके प्रणेता। २ नैषधीय-प्रकाशके प्रणेता।

श्रीनाथ कवि—धीशोधिनी नामकी वृत्तरत्नाकर-टीकाके प्रणेता।

श्रीनाथ पण्डित—परहितसंहिता नामक वैद्यकग्रन्थके रचयिता।

श्रीनाथ भट्ट—१ कोष्ठीप्रदीप नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। २ कामरत्न नामक तन्त्र और यक्षिणीसाधन नामक दो पुस्तकके प्रणेता।

श्रीनाथ शर्म्मन्—१ कर्मप्रकाशक नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। २ श्रीकर आचार्यके पुत्र। इन्होंने आचारचंद्रिका, कृत्यकालविवरण या कृत्यतत्त्वार्णव, छन्दोगपरिशिष्टप्रकाशसारमञ्जरी, शूलपाणिकृत तिथिद्वैधप्रकरणग्रंथकी टीका, दायभागटीका, प्रायश्चित्तविवेक, विवेकार्णव, शुद्धिविवेक और श्राद्धचंद्रिका नामक बहुतसे ग्रंथ लिखे।

श्रीनिकेत (सं० पु०) १ नवनीत धूप, सरलनिर्यास, गंधाविरोजा। (सुश्रुत चि०) २ रक्तपद्म, लाल कमल। ३ सुवर्ण, सोना। ४ लक्ष्मीका निवासस्थान, वैकुण्ठ।

श्रीनिकेतन (सं० पु०) श्रियं निकेतयति वासयतीति नि-कित्-णिच् ल्यु। १ विष्णु। (भागवत ६।१८।१३) २ लक्ष्मीका निवासस्थान, वैकुण्ठ। (भागवत ३।३।२०) ३ सरलनिर्यास, गंधाविरोजा।

श्रीनितम्बा (सं० स्त्री०) १ राधा। (पञ्चरत्न ५।५।६०) २ सुश्रोणी।

श्रीनिधि (सं० पु०) विष्णु। (पञ्चरत्न १।३।८३)

श्रीनिवास (सं० पु०) श्रियो निवासः आश्रयस्थानं। १ विष्णु। (त्रिकाण्डशेष) २ श्री या लक्ष्मीका निवासस्थान, वैकुण्ठ।

श्रीनिवास—१ अधिकरणमीमांसा नामक मीमांसाशास्त्रके रचयिता। २ अभिनववृत्तरत्नाकरटिप्पनी, अलङ्कारकौस्तुभ, काव्यदर्पण और छंदोवृत्ति नामक चारों ग्रंथके प्रणेता। ३ उपाधिखण्डनटिप्पनी नामक वेदान्त ग्रंथके प्रणेता। ४ कल्पदीपिका और सद्मकल्पलता नामक दो ज्योतिर्ग्रंथके रचयिता। ५ काव्यसारसंग्रहके प्रणेता। ६ कृष्णराजगद्य और कृष्णराजप्रभावोदयके प्रणेता। ७ गायत्रीमाहात्म्यके रचयिता। ८ गोस्वाम्यष्टकके रचयिता। ९ तत्त्वसंग्रह नामक वेदांत और सत्यनिधिविलास नामक काव्यके रचयिता। ये सत्यनाथके शिष्य थे। १० निगद और वेदभाष्य नामक दोनों ग्रंथके प्रणेता। निघण्टुभाष्यमें देवराजने इनका उल्लेख किया है। ये नियमानंदके शिष्य तथा श्रुत्यंतसुरद्रुमके रचयिता पुरुषोत्तम प्रसादके गुरु थे। ११ जयतीर्थकृत न्यायसुधाकी टीका, जयतीर्थकृत तत्त्वप्रकाशिकाकी प्रमेयमुक्तावली नाम्नी टीका और आनंदतीर्थकृत भागवततात्पर्यनिर्णयकी भागवततात्पर्यप्रकाशचंद्रिका नाम्नी टीका, जयतीर्थकृत मायावादखण्डनविवरणकी टीका और जयतीर्थकृत विष्णुतत्त्वनिर्णयदीपिकाकी वाक्यार्थदीपिका नाम्नी टीकाके प्रणेता। इन्होंने अपने ग्रंथमें रघूत्तम और वेदेश नामक कविका उल्लेख किया है। १२ न्यासतिलक और उसकी टीकाके रचयिता। यह ग्रंथ भक्तिरससे भरा हुआ है। ग्रंथकार कौशिकगोत्रीय थे। १३ परिभाषाभास्करटीका नामक व्याकरणके प्रणेता। १४ प्रमेयतत्त्वबोध नामक न्यायशास्त्रविषयक ग्रंथकार। १५ रागतत्त्वविबोध नामक संगीतशास्त्रके रचयिता। १६ लक्ष्मीस्वयम्वर नाटकके रचयिता। १७ शतदूषणी नामक वेदांतशास्त्रकार। १८ श्रीनिवासचम्पूके प्रणेता। १९ श्लेषचूड़ामणि और साहित्यसूक्ष्मसरणिके रचयिता। २० सदाचारसंग्रह नामक ग्रन्थकार। २१ सारदीपिका नामक वेदान्तग्रंथके रचयिता। २२ सिद्धान्तचिंतामणिके प्रणेता। २३ सिद्धांतशिक्षा और उसकी टीकाके रचयिता। २४ सौगंधिकविवरणव्याख्याके प्रणेता। २५ हठरत्नावली नामक योगशास्त्रके रचयिता। २६ न्यायसिद्धांतमञ्जरी नामक वैशेषिकग्रंथके प्रणेता, अनंत पण्डितके पुत्र।

श्रीनिवास अतिरात्र याजिन्—भावनापुरुषोत्तम नामक नाटकके रचयिता, भावस्वामीके पुत्र और कृष्ण भट्टारकके पौत्र। ये सुरसमुद्रवासी थे।

श्रीनिवास आचार्य—१ निम्बार्क सम्प्रदायके एक आचार्य। ये विश्वाचार्यके गुरु और निम्बार्कके शिष्य थे। गीतातत्त्वप्रकाशिकाके प्रणेता काश्मीरवासी केशवभट्ट इनके मन्त्रशिष्य थे। २ माध्व सम्प्रदायके एक आचार्य। इनका दूसरा नाम सत्यसङ्कल्प-तीर्थ था। १८४२ ई०में

इनका देहान्त हुआ। ३ एक परम साधु पुरुष। पीछे ये सत्यकामतीर्थ कहलाने लगे। १८३२ ई०में इनका देहान्त हुआ। ४ उक्त सम्प्रदायके एक दूसरे आचार्य। पीछे आप सत्यपराक्रमतीर्थ नामसे प्रसिद्ध हुए। ५ अन्वयक्रोड़ नामक न्यायशास्त्रके प्रणेता। ६ भागवत-पुराण-व्याख्या, महाभारत-व्याख्या और आनन्दतीर्थकृत ईशावास्योपनिषद्भाष्यकी टीका, तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यकी टीका, प्रश्नोपनिषद्भाष्यकी टीका और माण्डुक्योपनिषद्-भाष्यको टीकाके प्रणेता। आप श्रीनिवासतीर्थ नामसे परिचित थे। ७ उषापरिणय नाटकके प्रणेता। ८ सुर-पुर श्रीनिवासाचार्य नामसे भी आपकी प्रसिद्धि थी। उपादानतत्त्वसमर्थनजिज्ञासादर्पण, वृत्तरत्नप्रदीपिका, पञ्चीदर्पण या पञ्चार्थदर्पण, सिद्धान्तचिन्तामणि और हरिगुणमणिदर्पण नामक ग्रन्थ इन्हींके विरचित हैं। ९ तत्त्वत्रयचूलुक नामक भक्तिग्रन्थके प्रणेता। १० तत्त्व-मार्त्तण्ड नामक वेदान्तशास्त्रके रचयिता। ११ दर्पण नामक दीधितिकार। १२ द्वैतभूषण नामक भक्तिग्रंथके प्रणेता। १३ न्यायसिद्धान्ततत्त्वामृत नामक ग्रंथके रच-यिता। १४ प्रणवदर्पण नामक वेदान्तशास्त्रके रचयिता। १५ माध्वमत विध्वंसनके प्रणेता। १६ यादवराघवीय काव्यके प्रणेता। १७ युगलसहस्रनाम, रामबाहुशतक, रामवर्णनस्तोत्र और हनुमच्छतक नामक चारों ग्रंथके रचयिता। १८ वज्रसूचिकाच्छदंशिनीके प्रणेता। १९ वेदान्ताचार्यदिनचर्य्या, वेदान्ताचार्यप्रपदन, वेदान्ता-चार्य-मङ्गलद्वादशी, वेदान्ताचार्यविग्रहध्यानपद्धति और वेदान्ताचार्यसप्ततिके रचयिता। २० सुदर्शनविजय नामक नाटकके प्रणेता। २१ सोमप्रयोग नामक ग्रंथके रचयिता। आप श्रीवत्स श्रीनिवास आचार्य नामसे परिचित थे। २२ द्राविड़ देशीय एक ब्राह्मण, कौण्डिन्या-चार्यके पुत्र और रामचन्द्रके कनिष्ठ जानकीचरणचामर नामक ग्रन्थ आपने लिखा है। २३ एक सुप्रसिद्ध गौड़ीय वैष्णवाचार्य। श्रीनिवासाचार्य देखो।

श्रीनिवासक (सं० पु०) कुरुण्टकवृक्ष, कटसरैया।

श्रीनिवास कवि - दिव्यसूरिचरितके रचयिता। आप वैद्यपुरन्दर उपाधिसे भूषित थे।

श्रीनिवासतीर्थ—१ आथर्वणटीकाके प्रणेता। २ तंत्र-सारटीका नाम्नी वेदान्तविषयक ग्रंथके रचयिता। ३ तर्कताण्डवव्याख्याके प्रणेता। ४ सन्ध्यावन्दनकार। ५ श्रीनिवासतीर्थीय नामक वेदान्तशास्त्रके प्रणेता।

श्रीनिवासदास—१ अधिकारसंग्रहभावप्रकाशिनी नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ दयाशतकदीपिका और पूर्वाचार्य-वृत्तान्तदीपिकाके रचयिता। ३ नारायणमंत्रार्थके प्रणेता। ४ प्रक्रियाभूषण नामक व्याकरणके प्रणेता, वेङ्कटाचार्यके शिष्य। ५ वादाद्रिकुलिश नामक न्यायशास्त्रीय ग्रंथके रचयिता। ६ विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त-के प्रणेता। ७ वेदस्तुतिव्याख्याके रचयिता। ८ वेदान्त-रत्नमालाके प्रणेता। ९ शतदूषणीयमतके प्रणेता। १० यतीन्द्रमतदीपिका नामक ग्रंथकर्त्ता। आप वाधूल गोत्रीय गोविन्दाचार्यके पुत्र थे। ११ भरद्वाज गोत्रीय देवराजा-चार्यके पुत्र, इन्होंने पादुकासहस्रपरीक्षा और उसकी टीका तथा मरकतवल्लीपरिणय नाटकको रचना की।

श्रीनिवासदास—एक हिन्दी ग्रन्थकार। ये जातिके वैश्य थे। इनके पिताका नाम मंगीलालजी था और वे मथुरा-के सेठ लक्ष्मीचन्दजीके प्रधान मुनीम थे। वे दिल्लीकी कोठीमें रहते थे।

लाला श्रीनिवासदास बाल्यावस्थासे ही सदाचारी और चतुर थे। इन्होंने हिन्दी उर्दू अंगरेजी फारसी आदि भाषाओंका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। लालाजीने छोटी अवस्थामें ही अच्छा नाम कमा लिया था। महाजनी कारोबारमें ये इतने दक्ष हो गये थे, कि १८ वर्षकी ही उम्रमें इन्होंने दिल्लीकी कोठीका का संभाल लिया। ये अपनी योग्यताके कारण म्युनि-सिपिल कमिश्नर और आनरेरी मजिस्ट्रेट हुए थे। राजा और प्रजा दोनोंमें इनका बड़ा आदर था।

लाला श्रीनिवासदासको दिल्लीकी कोठीका भी काम संभालना पड़ता था और साथ ही अन्य नगरोंकी कोठियोंकी भी देखभाल करनी पड़ती थी, सुतरां इनको अपनी बुद्धिको परिमार्जित करनेका अच्छा अवसर हाथ लगा था। मातृभाषा हिन्दीसे इनका स्वाभाविक प्रेम था। आप जहां कहीं बाहर जाते, वहांके हिन्दी-रसिकों अथवा लेखकोंसे अवश्य मिलते थे। अपने यहां आये हुए हिन्दी प्रेमीका ये सब काम छोड़ आदर सत्कार करते थे।

इन्होंने हिन्दीके चार ग्रन्थ लिखे हैं। वे इस प्रकार हैं—तप्तसंवरण, संयोगितास्वयम्बर, रणधीर प्रेम मोहिनी और परीक्षागुरु, अन्तिम पुस्तकमें इन्होंने एक साहूकारके पुत्रके जीवनका दृश्य चित्रित किया है। उसे देखनेसे इनके सांसारिक ज्ञानका अच्छा परिचय मिलता है।

इन्हें अधिक दिनों तक इस संसारमें और नाम कमानेका मौका नहीं मिला, केवल ३६ वर्षकी अवस्थामें इन्हें अपनी जीवनलीला संवरण करनी पड़ी।

श्रीनिवासदीक्षित—१ स्वरसिद्धांतचन्द्रिका और स्वरसिद्धान्तकौमुदी नामक ग्रंथके रचयिता। आप रामभद्रयज्वाके पुत्र थे। २ एकाम्रनाथस्तव और शिवभक्ति विलासके प्रणेता। ३ अनुद्धारणप्रायश्चित्तके रचयिता।

श्रीनिवासपुर—१ महिसुर राज्यके कोलर जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १३° १२´ से १३° ३६´ उ० तथा देशा० ७८° ६´ से ७८° २४ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३२५ वर्गमील और जनसंख्या ६० हजारके लगभग है। इसमें एक शहर और ३४१ ग्राम लगते हैं। इस तालुकका अधिकांश स्थान जङ्गलावृत शैलमालासे समाच्छन्न है। अभी यह तालुक चिन्तामणि कहलाता है।

२ उक्त तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह कोलार नगरसे १४ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। पहले यह ग्राम पापनहल्ली नामसे प्रसिद्ध था। राजदीवान पूर्णाइयाने अपने पुत्र श्रीनिवासमूर्त्तिके नामानुसार इस स्थानका श्रीनिवासपुर नाम रखा।

श्रीनिवासभट्ट—१ एक विख्यात पण्डित। आप वाराणसीमें रहते थे। बीकानेरराज सूरतसिंहकी सभामें रह कर आपने १८वीं सदीके अंतमें सुरतकल्पतरु नामक तर्कदीपिकाकी एक टीका लिखी। २ स्मृतिसिन्धु नामक ग्रंथके रचयिता। ३ विरोधवरूथिनीनिरोध नामक ग्रंथके प्रणेता। ४ एक प्राचीन कवि। ५ अभिज्ञानशकुन्तलाटीकाके प्रणेता। ६ सुन्दरराजके शिष्य। ये एक विख्यात पण्डित थे। इनके रचित कालीसपर्य्याक्रमकल्पवल्ली या चण्डीसपर्य्याक्रमकल्पवल्ली, क्रमरत्नावली, द्वितीयाचर्चनकल्पलता, पञ्चमीक्रमकल्पलता, पञ्चमीवरिवस्यारहस्य, बटुकार्च्चनचन्द्रिका, भैरवार्च्चापारिजात, लक्ष्मीसपर्य्यासार और शिवार्च्चनचन्द्रिका नामक ग्रंथ मिलते हैं।

श्रीनिवास महीन्तापणीय—गणितचूड़ामणि और शुद्धिदीपिका नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। इनका पहला ग्रन्थ ११५८ ई०में लिखा गया था।

श्रीनिवासराजयोगेश्वर—शुभगोदयदर्पण नामक तन्त्रके रचयिता।

श्रीनिवास-राघवाचार्य—अपरप्रयोगदर्पण और वेदान्तसंग्रहके प्रणेता।

श्रीनिवासवाधूल—ब्रह्मसूत्रके श्रीभाष्यकी श्रुतिप्रकाशिका नामकी टीकाकी तुलिका नामक टिप्पण और शारीरकन्यायसंग्रह नामक दो ग्रन्थके प्रणेता। ये अध्यात्मचिन्तामणिके प्रणेता सौम्यजामातृमुनिके गुरु थे।

श्रीनिवास वेदान्ताचार्य—रसोल्लास नामक एक भाणके रचयिता।

श्रीनिवासशिष्य—जालन्धरपीठ-माहात्म्यके प्रणेता।

श्रीनिवासाचार्य—एक प्रसिद्ध गौड़ीय आचार्य। श्रीगौराङ्गदेवके तिरोधानके बाद गौड़ीय वैष्णवधर्मके प्रवाह संरक्षकोंमें श्रीनिवास आचार्य एक प्रधान नेता हुए। ये गङ्गातटवर्त्ती चाखन्दि निवासी गङ्गादास भट्टाचार्यके पुत्र थे। माताका नाम लक्ष्मीप्रिया देवी था। वैशाखी पूर्णिमाके रोहिणी नक्षत्रमें दिवाभागमें इन्होंने जन्मग्रहण किया।

श्रीनिवास अति रूपवान् थे। इनका चम्पकगौरवर्ण, बड़े बड़े नेत्र और सुन्दर नाक देख कर तथा मृदुमधुर वाक्य सुन कर सभी प्रसन्न होते थे। पण्डित धनञ्जय विद्यावाचस्पतिके निकट इन्होंने विद्याध्ययन आरम्भ कर दिया।

परन्तु बचपनसे ही श्रीगौराङ्गचरणमें श्रीनिवासके अकृत्रिम अनुराग हो गया था। उनकी प्रेमभक्ति देख कर तत्सामयिक गौरभक्तगण विस्मित हो गये थे। गोविन्द घोष महाशय श्रीनिवासके मुखसे सर्वदा गौर गुण सुना करते थे।

पितृवियोगके बाद भी श्रीनिवासके गौरानुरागका जरा भी ह्रास न हुआ। आप मानो श्रीगौराङ्गकी प्रेममूर्त्ति थे। आपका यह प्रेम दिनों दिन बढ़ने

लगा। एक दिन श्रीगौराङ्गके दर्शनके लिये इनकी उत्कट इच्छा हुई और फौरन पुरीधामको चल दिये। किंतु राहमें इन्होंने सुना कि श्रीगौराङ्गका तिरोधान हो गया। यह सुनते ही इनके शिर पर मानों वज्राघात हुआ। वज्राघातकी तरह ये मूर्च्छित हो रहे। कुछ समय बाद जब होश हुआ, तब 'हा गौराङ्ग! तुम कहां चले गये' कह कर रोने लगे।

कहते हैं, कि मूर्च्छाकालमें श्रीगौराङ्गने स्वप्नमें श्रीनिवासको दर्शन दिये थे। नीलाचल पहुंच कर भी इन्होंने कई बार स्वप्नमें महाप्रभुके दर्शन पाये थे।

श्रीनिवास कुछ दिन पुरीधाममें रह कर फिर गौड़को लौटे। यहांसे फिर वे वृंदावनको चल दिये। यहां श्रीजीवादि गोस्वामियोंके इन्हें दर्शन हुए। श्रीनिवास द्वारा जिस भक्ति ग्रंथ और भक्तिका प्रचार होगा, श्रीपाद सनातनने स्वप्नमें ही श्रीजीव गोस्वामीको इस सम्बंधमें उपदेश दिया था। स्वप्नका मर्म इस प्रकार है—२० वैशाखको श्रीनिवास आचार्य नामक एक भक्त यहां आयेंगे। सन्ध्या-कालमें श्रीगोविन्ददेवकी आरतिके समय जब लोगोंकी भीड़ कम होगी, तब उनकी खोज करना। उनका वर्ण हल्दीकी तरह गौर वर्ण है, कलेवर अति क्षीण है, उमर थोड़ी है, दोनों नेत्र प्रेमाश्रुपूर्ण हैं। उन्हें देखते ही पहचान लोगे। श्रीगोपाल भट्ट द्वारा उन्हें दीक्षा दिलाना और शास्त्रका अध्ययन कराना। अध्ययन समाप्त होने पर उन्हें ग्रंथ समर्पण कर गौड़ भेज देना।

स्वप्नमें जैसा देखा था, वैसी ही मूर्त्ति देख कर श्रीजीव उन्हें अपने श्रीमंदिरमें ले आये।

श्रीनिवास बहुत दिनों तक श्रीवृंदावनधाममें रहे। श्रीजीव गोस्वामीसे इन्होंने भक्तिशास्त्र अध्ययन कर आचार्यकी पदवी पाई। श्रीनिवास इस समय दूसरेको भी शास्त्राध्ययन कराते थे। नरोत्तम और श्यामानन्द श्रीवृंदावनमें श्रीनिवासके प्रियसहचाररूपमें हमेशा उनके साथ घूमा करते थे। श्रीवृंदावनधाममें भक्तिके इन तीन अवतारोंका संमिलन श्रीभगवान्‌का एक सुंदर विधान है। श्रीवृंदावनके तीर्थदर्शन, प्राचीन प्रवीण और भजननिष्ठ वैष्णवोंके सङ्गलाभ, गोस्वामिशास्त्र अध्ययन और सदाचारानुष्ठान द्वारा ये लोग सचमुच भक्तिशास्त्रके उपयुक्त प्रचारक थे तथा इन्होंने मानवसमाजके प्रकृत गुरुका उपयुक्त सामर्थ्यलाभ किया था।

सबोंने मिल कर स्थिर किया, कि अगहन मासके शुक्ल पक्षमें श्रीनिवासको गौड़ भेज देना चाहिये। श्रीजीवगोस्वामीने सभी भक्ति ग्रन्थ प्रस्तुत कर रखे। देखते देखते अगहनका महीना आ पहुंचा। श्रीनिवास, नरोत्तम और श्यामानन्द व्रजधामसे गौड़ लौटे। श्रीपादजीव गोस्वामीने मथुराके एक धनी मनुष्यसे रास्तेका खर्च और कुछ मनुष्य और ग्रन्थ ढोनेकी गाड़ी संग्रह की। काष्ठ सम्पूटको ग्रन्थोंसे भर कर भक्ति प्रचारकने श्रीनिवास, नरोत्तम और श्यामानन्दको गौड़ भेज दिया। कुछ दिन बाद ये लोग वनविष्णुपुरकी सीमा पर आये। उस समय वीर हम्बीर वनविष्णुपुरके अधिपति थे। उनका प्रधान व्यवसाय था डकैती। ग्रन्थपूर्ण काष्ठ सम्पूट देख कर वीर हम्बीरके दूतोंने समझा, कि इसमें अनेक मूल्यवान् पदार्थ हैं।

रातको काष्ठसम्पूटकी चोरी हो गई। नींद टूटने पर श्रीनिवास जग उठे और काष्ठसम्पूट न देख बड़े चिन्तित हुए। पीछे वे तीनों अधीर भावसे उसकी तलाश करने लगे; परन्तु निष्फल हुआ। कुछ समय बाद किसीने श्रीनिवाससे कहा, 'विष्णुपुरके राजाके मकानमें ग्रन्थसम्पूट लाया गया है, वहीं पर आपकी चीज बरामद होगी।' यह सुन कर श्रीनिवासको कुछ आशाका सञ्चार हुआ। उन्होंने श्रीनरोत्तमको बुला कर कहा, 'नरोत्तम! तुम श्यामानंदको ले कर खेतरी जाओ और इसे किसी तरह उत्कल भेज दो। ग्रन्थका पता लगते ही मैं तुम्हें खबर दूंगा।' आचार्यके आज्ञानुसार वे लोग खेतरी चले गये।

इधर श्रीनिवास अकेले वनविष्णुपुर गये। उन्हें देखते ही वनविष्णुपुरके लोग भगवदवतार समझने लगे। श्रीकृष्णवल्लभ नामक एक ब्राह्मण पुत्र आचार्य पर नजर पड़ते ही प्रेमसे गद्गद् हो गया। वह देउलीका रहनेवाला था, श्रीनिवासको वहीं ले गया, उसने आचार्यसे कहा, 'राजा वीर हम्बीर यद्यपि डकैती

करते हैं फिर भी भागवत सुननेमें उनकी सविशेष अनुरक्ति है। अतएव आप राज... चन चलिये।' इतना कह कर कृष्णवल्लभ श्रीनिवासको राजभवन ले गया। राजा आचार्यके तेजःप्रभावको देख कर बड़े विस्मित हुए और उनके चरणोंमें लेट रहे। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया, कि उनके आदमी रत्नलोभसे जो काष्ठसम्पुट चुरा लाये हैं, वे ही उस रत्नसमूहके अधिकारी हैं। राजा डकैत थे सही, पर उनका चित्त भगवद्रससे बिलकुल हीन न था। श्रीनिवासके दर्शन होनेसे उनका चित्त शुद्ध हो गया। उन्होंने श्रीनिवाससे भ्रमरगीता पढ़नेका अनुरोध किया। श्रनिवासने ऐसे अद्भुत ढंगसे गीताकी व्याख्या की, कि उसे सुनते ही राजाका वक्षःस्थल अश्रुसिक्त हो गया। संध्याके समय राजाने श्रीनिवाससे कहा, 'प्रभो! यहां आपके पधारनेका क्या कारण है, कृपया कहिये।' श्रीनिवासने इस उपलक्षमें भूमिका बांध कर हम्बीरको श्रीगौराङ्ग अवतारकी कथा सुनाई। पीछे श्रीगौरभक्तोंकी बातें कहीं, इसके बाद ग्रंथोंके चोरी जानेका हाल भी कहा। राजाने बड़े दुःखित हो अपनी दुष्कृतिकी रामकहानी श्रीनिवासको बड़े कोमल स्वर सुना कर कहा, 'सम्पुट खोलते ही मेरे चित्तमें दूसरा भाव हो आया था। जो हो, ग्रन्थ सुरक्षित है, इसके लिये जरा भी चिन्ता न करें। किन्तु प्रभो! इस नराधमको चरणतलमें स्थान देना होगा, मैं महापापी हूं,मैं मेरी घृणा न करें।'

ग्रन्थ पा कर श्रीनिवासने सबोंको खबर दे दी। वीर हम्बीरने ग्रन्थ ढोनेवाली गाड़ी पर नाना प्रकारके द्रव्यादि लाद कर उसे वृन्दावन भेज दिया। श्रीनिवास कुछ दिन वहां रह कर वीर हम्बीरके दिये हुए प्रचुर द्रव्यादिके साथ याजीग्राममें चले गये। उस समय भी स्नेहमयी लक्ष्मीप्रिया ठाकुराणी जीवित थीं। पुत्रको देख माताके चित्तमें आनन्दकी तरंग उमड़ आई। याजीग्रामके आबालवृद्धवनिता सबके सब फूले न समाये।

इसके बाद श्रीनिवास श्रीखण्ड जा कर श्रीरघुनन्दन और श्रीनरहरि सरकार ठाकुरसे मिले। नरहरिने भी उन्हें विवाह करनेका अनुरोध किया। पीछे श्रीनिवासने कटक नगरमें जा कर प्राचीन भक्त दास गदाधरसे भेंट की। इसके पहले ही वे श्रीविष्णुप्रिया देवीके अन्तर्धानका संवाद पा चुके थे। नवद्वीप उस समय शोक अंधकारसे समाच्छन्न हो गया, इसीलिये शोकके मारे कहीं वे व्याकुल न हो जांय, इस डरसे दास गदाधरने उन्हें कटक नगरसे ही याजीग्राममें भेज दिया। नरोत्तम नवद्वीप और पुरीधाममें भ्रमण कर अन्तमें याजीग्राम आये और आचार्यसे मिले। इस समय श्रीनिवासके पास बहुतसे व्यक्ति भक्तिशास्त्रका अध्ययन करते थे। खण्डवासी श्रीनिवासके विवाहका उद्योग कर रहे थे। उनमें रघुनन्दन ही अगुगामी थे। याजिग्रामके गोपाल चक्रवर्तीकी कन्याके साथ श्रीनिवासका वैशाख मासकी कृष्णा तृतीयाको विवाह हो गया। विवाहके पहले कन्याका नाम द्रौपदी था, परन्तु विवाहके समयसे वे ईश्वरी कहलाने लगीं। कहते हैं, कि गोपाल चक्रवर्त्ती, उनके लड़के श्यामदास और रामचन्द्र तथा गौरभक्त द्विज हरिदासके पुत्र गोकुलानंद दासने आचार्य प्रभुसे दीक्षा ली थी। कुमारनगरवासी सुविख्यात रामचंद्र कविराजको भी श्रीनिवासने दीक्षा दे कर कृतार्थ किया था।

कुछ दिन बाद श्रीनिवास फिरसे वृंदावन गये थे। उनके जानेके दश दिन पहले हरिदासाचार्यका तिरोधान हो चुका था। किंतु सौभाग्यवशतः श्रीगोपालभट्ट, श्रीजीवगोस्वामी, भूगर्भ और लोकनाथ उस समय भी जीवित थे। श्रीनिवासको पा कर सभी आनन्दित हुए। इस समय श्यामानंदने भी दूसरी बार श्रीवृंदावनकी यात्रा की थी। श्रीनिवासके अभावमें गौड़ अंधकारवत् प्रतीत होता था। उन्हें लानेके लिये भक्तोंने रामचंद्रको वृंदावन भेजा। इस समय श्यामानंद, रामचंद्र और आचार्यप्रभु फिर गौड़ लौटे। वनविष्णुपुर आ कर उन्होंने पुनः राजा वीर हम्बीरको कृतार्थ किया। इस बार आचार्यप्रभुने वीर हम्बीर और रानीको मंत्रदीक्षा दी तथा हरिनाम जपनेका क्रम कह दिया।

इसके बाद खेतरीके महामहोत्सवमें भी श्रीनिवास अपने भक्तोंके साथ पधारे थे। श्रीनिवासने ही खेतरीमें नरोत्तमदास ठाकुरके प्रतिष्ठित श्रीगौराङ्ग, बल्लवीकान्त, व्रजमोहन, राधाकृष्ण, राधाकांत और राधारमण मूर्त्तिका अभिषेक किया।

श्रीनिवासने राढ़देशमें गोपालपुरनिवासी राघव चक्रवर्त्ती तथा उनकी गृहिणी माधवी देवीकी प्रार्थनासे उनकी कन्या श्रीमती गौराङ्गप्रिया देवीका पाणिग्रहण किया। आचार्य प्रभुकी दोनों सहधर्मिणियोंमें यथेष्ट सद्भाव था।

कर्णानन्दमें लिखा है, कि श्रीनिवास आचार्य प्रभुके तीन पुत्र और तीन कन्या थीं। पुत्रके नाम श्रीवृन्दावन आचार्य, राधाकृष्ण आचार्य और गीतगोविन्द आचार्य तथा कन्याके नाम हेमलता, कृष्णाप्रिया और काञ्चनलतिका थे। सबोंने श्रीनिवास आचार्य प्रभुसे दीक्षा-मन्त्र लिया था। श्रीनिवासके शिष्य रामकृष्ण चट्टराजके पुत्र गोपीजनवल्लभ चट्टराजके साथ हेमलता देवीका तथा दूसरे शिष्य कुमुद चट्टराजके साथ कृष्णप्रिया देवीका विवाह हुआ। कितने पण्डित और कविराज श्रीनिवासके मन्त्रशिष्य हुए थे।

श्रीप (सं० त्रि०) श्रियं पातीति श्री पा-क। श्रीको पालन करनेवाला। (वोपदेव)

श्रीपञ्चमी (सं० स्त्री०) श्रियः सरस्वत्याः पञ्चमी। माघ शुक्लपञ्चमी, वसन्तपञ्चमी। इस पञ्चमीमें भगवान् कार्त्तिकेय लक्ष्मीके साथ सम्मिलित हुए थे, इसी कारण यह तिथि श्रीपञ्चमी कहलाती है। इस तिथिमें लक्ष्मीपूजा करनेसे अतुल भाग्योदय होता है। इस तिथिमें विद्याकी अधिष्ठात्री सरस्वती देवीकी भक्तिपूर्वक एकान्त मनसे पूजा की जाती है।

श्रीपञ्चमीव्रत (सं० क्ली०) माघ शुक्लपञ्चम्यारब्ध व्रत विशेष। यह व्रत स्त्रियां करती हैं। शुद्धकालमें माघमासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिसे ले कर छः वर्ष तक यथाक्रम इस व्रतकी प्रतिष्ठा करनी होती है।

इस व्रतका प्रतिपालनीय विषय इस प्रकार है—पूर्वदिन संयम कर दूसरे दिन व्रताचरण कर्त्तव्य है; अर्थात् पूर्वोक्त पञ्चमी तिथिके पूर्वदिन यथारीति संयम कर दूसरे दिन व्रताचरण करे। इसी प्रकार तत्परवर्त्ती प्रतिमासीय शुक्लपञ्चमीमें व्रताचरण कर छः वर्ष बिताने होंगे। किन्तु प्रथम दो वर्ष प्रत्येक शुक्ला पञ्चमीको लवणवर्जित अन्न और दो वर्ष सिर्फ हविष्यान्न भोजन, पांचवें वर्षमें केवल फल आहार तथा षष्ठ वर्षमें प्रति पञ्चमीको उपवास कर व्रतप्रतिष्ठा करनी होती है।

श्रीपत (हिं० पु०) विष्णु।

श्रीपति (सं० पु०) श्रियः पतिः। १ विष्णु, नारायण, हरि। २ रामचन्द्र। ३ कृष्ण। ४ कुबेर। ५ पृथ्वीपति, नृप, राजा।

श्रीपति—१ एक प्राचीन कवि। २ एक वैयाकरण। प्रक्रियाकौमुदीटीकामें इनका उल्लेख है। ३ एक विख्यात ज्योतिर्विद्। चन्द्रग्रहणसाधन, तत्त्वप्रदीप, तिथिपत्रनीराजनावली, दैवज्ञवल्लभ (इस ग्रन्थमें ये नीलकण्ठ नामसे परिचित हैं), धीकोटी, ध्रुवमानस, पद्यपञ्चाशिका पर्वप्रकाश, मुहूर्त्तरत्नमाला और उसकी टीका तथा सारावली नामक बहुत से ग्रन्थ इन्होंने प्रणयन किये थे। ३ प्रस्तावतरङ्गिणीके प्रणेता। ४ श्रुतिकल्पलता नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता। ५ सिद्धान्तशेखर नामक ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता। ६ रमलसारके रचयिता। ये लक्ष्मीनृसिंहभट्टके पुत्र थे।

श्रीपति कवि—पयागपुर जिला बहरायचके रहनेवाले एक हिन्दी-कवि। सं० १७०० में इनका जन्म हुआ था। ये भाषा साहित्यके आचार्योंमें गिने जाते हैं। काव्यकल्पद्रुम, काव्यसरोज और श्रीपतिसरोज नामक तीन ग्रन्थ इन्होंने भाषा-साहित्यके बनाये थे। इनके जन्मस्थानका ठीक पता बताया जा नहीं सकता।

श्रीपतिदत्त—कातन्त्रपरिशिष्टके प्रणेता।

श्रीपतिभट्ट—जातकपद्धति या श्रीपतिपद्धति, ज्योतिषरत्नमाला, ज्योतिषरत्नसार और श्रीपत्युदाहरण नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ये केशवके पौत्र और नागदेवके पुत्र थे।

श्रीपतिशिष्य—चतुर्विंशति और बालविवेकिनी नामकी टीकाके प्रणेता।

श्रीपथ (सं० पु०) श्रियः पन्थाः (ऋक् पुरब्धूःपथामानक्षे। पा ५।४।७४) इति अः। राजपथ, राजमार्ग, बड़ी और चौड़ी सड़क।

श्रीपदी (सं० स्त्री०) वार्षिकी मल्लिकापुष्प, बेला।

श्रीपद्म (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

श्रीपरम—मुकुन्दविजय नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। इन्होंने १५६१ सम्वतमें राजा मुकुन्दसेनके आज्ञानुसार उक्त ग्रन्थ लिखा।

श्रीपर्ण (सं० क्ली०) श्रीविशिष्टानि पर्णानि यस्य। १ पद्म, कमल। २ अग्निमन्थ, वृक्ष गनियारी।

श्रीपर्णिका (सं० स्त्री०) १ कटफल वृक्ष, कायफल। २ गंभारी। ३ गणिकारिका, गनियारी। ४ शाल्मली वृक्ष, सेमलका पेड़। ५ पृश्निपर्णी, पिठवन। ६ हठ-वृक्ष।

श्रीपर्णी (सं० स्त्री०) श्रीपर्णिका देखो।

श्रीपर्णीतैल (सं० क्ली०) स्तनरोगाधिकारोक्त तैलौषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—गंभारी छालके क्वाथ और कल्कके साथ तिलका तेल पाक कर उसमें रूई भिगो कर स्तनके ऊपरी भाग पर रखनेसे प्रलम्बमान स्तन पुनः उठ जाता है। (भैषज्यरत्ना०)

रसरत्नाकर ग्रन्थमें उल्लिखित है, कि गंभारी छाल स्वरस द्वारा तैल पाक करना होगा, उस तरह उसका अष्टांशावशिष्ट क्वाथ ग्राह्य है।

श्रीपर्वत (सं० पु०) १ श्रीगिरि। श्रीशैल देखो। २ लिङ्ग-भेद।

श्रीपा (सं० त्रि०) श्री-पा-क्विप्। सौभाग्यशाली, ऐश्वर्य या श्रीरक्षाकारी।

श्रीपाद (सं० पु०) १ पूज्यपाद, वह जो चरण पूजने योग्य हो। २ सिद्धिपाद, श्रेष्ठपाद, लक्ष्मीवन्त या भाग्य-वान् व्यक्ति।

श्रीपाल (सं० पु०) प्रसिद्ध जैनराजभेद।

श्रीपाल—भ्रमराष्टकादिप्रशस्ति नामक ग्रंथके रचयिता।

श्रीपाल कविराज—एक प्राचीन कवि।

श्रीपालित—हाल नामक राजाके आश्रयमें पालित एक कवि। काव्यमालाकी 'गाथासप्तशती' नामक कविताके मुखबन्धमें एक पालित नामक कविविरचित आठ श्लोक मिलते हैं।

श्रीपिष्ट (सं० पु०) श्रियः सरलद्रुमस्य पिष्टः। १ सरल वृक्षका रस, गंधाविरोजा। २ लवण-खोटी।

श्रीपुट (सं० पु०) छन्दोभेद।

श्रीपुत्र (सं० पु०) १ अश्व, घोड़ा। श्रियः पुत्रः। २ कामदेव।

श्रीपुरनगर (सं० क्ली०) नगरभेद।

श्रीपुरुषमङ्गलम्—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्काट जिलेके वन्दीवास तालुकान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यहां प्रत्नतत्त्वके निदर्शनस्वरूप बहुतेरी ब्रोञ्ज धातुकी और पत्थरकी बनी मूर्त्तियां पाई गई हैं।

श्रीपुष्प (सं० क्ली०) श्रीयुक्तं पुष्पमस्य। १ देवपुष्प, लवंग, लौंग। २ पद्मकाष्ठ, पद्मकाठ। ३ प्रपौण्डरीक, पुंडेरी। ४ श्वेत पद्म, सफेद कमल।

श्रीपुष्पमञ्जरी (सं० स्त्री०) प्रपौण्डरीक, पुंडेरी।

श्रीपेरुमातुर—मन्द्राजप्रदेशके चिङ्गलपट जिलान्तर्गत काञ्चीपुरम्का एक प्राचीन नगर। यह मन्द्राजसे २५ मील दूर पश्चिम ट्राङ्करोड नामक रास्ते पर काञ्चीपुरसे १८ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

यह स्थान पहले भूतपुरी कहलाता था। सुप्रसिद्ध वैष्णवमतप्रवर्त्तक श्रीरामानुजाचार्यने १०१६ ई०में यहां जन्मग्रहण किया। जहां वे भूमिष्ठ हुए, वहां आज भी एक पत्थरका घर बना है। रामानुजाचार्यने अपना विशिष्टाद्वैत मतप्रचार करनेके लिये दाक्षिणात्यमें प्रायः ७०० मठ स्थापन किये तथा जिससे सभी मनुष्य उनके प्रवर्त्तित वैष्णवमत ग्रहण कर पवित्र जीवन वहन कर सकें, इसके लिये उन्होंने उन सब मठोंके परिदर्शक रूपमें ८९ आचार्योंको गुरुपद पर वरण किया था। उनमेंसे आज भी कम्बत्तीपुर, श्रीरङ्गम्, रामेश्वर, तोटाद्रि और अहोबल नामक स्थानमें गुरुवंश वर्त्तमान हैं। श्रीरङ्गममें रामानुजस्वामीका तिरोधान हुआ।

रामानुज देखो।

यहां एक सुप्राचीन विष्णुमन्दिरगात्रमें ग्रन्थाक्षरमें लिखित कुछ शिलालिपियां उत्कीर्ण हैं। उसके पास ही एक दूसरा शिव-मन्दिर नजर आता है। स्थानीय लोगोंका विश्वास है, कि वह उक्त विष्णुमन्दिरसे बहुत पुराना है। इस नगरसे १॥ मील पश्चिम अलम्पाकम् नहरमेंसे कुछ पत्थरके बने प्राचीन कालके युद्धास्त्र पाये गये हैं।

श्रीप्रद (सं० त्रि०) भाग्य या ऐश्वर्यदानकारी।

श्रीप्रदा (सं० स्त्री०) राधा।

श्रीप्रभाव (सं० पु०) कम्बलभेद। (तारनाथ)

श्रीप्रसूनक (सं० क्ली०) लवङ्ग, लौंग।

श्रीप्रिय (सं० क्लो०) १ लक्ष्मीका प्रिय द्रव्य। २ हरिताल, हरताल।

श्रीफल (सं० पु०) श्रीयुक्तं फलमस्य। १ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। (क्लो०) ३ बिल्वफल, बेल। ४ आमलक, आंवला। ५ आर्द्र चिक्कण पूग, कच्ची चिकनी सुपारी।

श्रीफलशलाटु (सं० पु०) अपक्व बिल्वफल, कच्चा बेल।

श्रीफला (सं० स्त्री०) १ नीली वृक्ष, नीलका पौधा। २ क्षुद्र कारवेल्ल, करेली। ३ आमलकी, आंवला।

श्रीफलिका (सं० स्त्री०) श्रीफला स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। १ क्षुद्र कारवेल्ली, करेली। २ महानीलीका पौधा।

श्रीफली (सं० स्त्री०) श्री युक्तं फलमस्याः। १ आमलकी, आंवला। २ नीली, नीलका पौधा। ३ महाज्योतिष्मती, बड़ी मालकंगनी।

श्रीबक (पण्डित)—एक कवि। काश्मीरपति जैनोल्लावादिन (जैनुउल्ला आबेदिन) नामक किसी मुसलमान राजाकी सभामें विद्यमान थे।

श्रीबन्धु (सं० पु०) अमृत।

श्रीबलि (सं० क्लो०) एक प्राचीन गांव।

श्रीबाहुशालगुड़ (सं० पु०) अर्शोरोगमें व्यवहारार्थ एक गुड़। प्रस्तुत प्रणाली—निसोथ, चई, दन्ती, गोक्षुर चितक, कचूर, ग्वालककड़ी, सोंठ, मोथा, विड़ङ्ग, हरीतकी, प्रत्येक ८ तोला, भल्लातक ६४ तोला, वृद्धदारक बीज ४८ तोला, ओल १२८ तोला, जल २२८ सेर, शेष ३२ सेर, गुड़ १२३ पल। आसन्नपाकमें निसोथ, चई, ओल, चीतामूल प्रत्येकका चूर्ण १६ तोला तथा इलायची, दारचीनी, मरीच और नागेश्वरचूर्ण प्रत्येक ४८ तोला इनका प्रक्षेप देना होगा।

श्रीबीज (सं० पु०) ताल वृक्ष, ताड़।

श्रीभक्ष (सं० पु०) मधुपर्क जो देवताओंके सामने रखा जाता या दान किया जाता है।

विशेष विवरण मधुपर्क शब्दमें देखो।

श्रीभट्ट—निम्बार्क सम्प्रदायके एक आचार्य। ये केशव काश्मीरीके शिष्य तथा हरिव्यासदेवके गुरु थे।

श्रीभद्र (सं० पु०) मुस्तक, मोथा।

श्रीभद्रा (सं० स्त्री०) भद्रमुस्तक, भद्रमोथा।

श्रीभागवत (सं० क्ली०) श्रीमत्भागवतमिति मध्यपदलोपिसमासः। अठारह महापुराणोंमेंसे अठारह सहस्र श्लोक संयुक्त एक महापुराण। श्रीकृष्ण द्वैपायन इस ग्रन्थके रचयिता हैं।

कोई कोई विष्णुभागवत और देवीभागवतके भेदसे श्रीभागवतको दो भागोंमें विभक्त करते हैं। शिवपुराणमें लिखा है, कि देवी पुराणादिको छोड़ कर जिसमें सिर्फ भगवती दुर्गादेवीका चरितानुकीर्त्तित हुआ है, वही श्रीभागवत या देवीभागवत नामसे ख्यात है।

पुराण और भागवत शब्दमें विशेष विवरण देखो।

श्रीभानु (सं० पु०) श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम। इनका जन्म सत्यभामाके गर्भसे हुआ था। (भाग० १०.६१।११)

श्रीभाष्य—रामानुजाचार्यकृत ब्रह्मसूत्रका एक सुप्रसिद्ध भाष्यग्रन्थ। इस ग्रंथमें आचार्यप्रवर अपना धर्ममत अखण्ड युक्ति द्वारा संस्थापन कर गये हैं।

श्रीभुज् (सं० त्रि०) लक्ष्मीवन्त, धनवान्।

(दशकुमार १४०।२)

श्रीभ्रातृ (सं० पु०) श्रियः भ्राता समुद्रजातत्वात्। अश्व, चंद्र, अमृत आदि चौदह रत्न जो समुद्रसे उत्पन्न होनेके कारण लक्ष्मी या श्रीके भाई कहे जाते हैं।

श्रीमङ्गल (सं० पु०) एक प्राचीन तीर्थका नाम।

श्रीमङ्गल—एक सुविख्यात पण्डित। ये गीतातत्त्वप्रकाशिकाके प्रणेता केशवभट्टके पिता थे।

श्रीमञ्जरी (सं० क्ली०) तुलसी, सुरसा।

श्रीमञ्जु (सं० पु०) पर्वतभेद।

श्रीमण्डप (सं० पु०) पर्वतभेद।

श्रीमत् (सं० त्रि०) श्रीर्विद्यतेऽस्य श्री मतुप्। १ ऐश्वर्यशाली, जिसके पास बहुत अधिक धन हो, धनवान्। पर्याय—लक्ष्मीमान्, लक्ष्मण, श्रील। २ सुन्दर, सुश्री। ३ श्रीयुक्त, सौभाग्यान्वित। (क्ली०) ४ तिलपुष्प। (पु०) ५ तिलकवृक्ष, तिलका पौधा। ६ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। ७ विष्णु। ८ शिव। ९ कुबेर। १० ऋषभक नामक ओषधि। ११ हरिद्रावृक्ष, हल्दीका पौधा।

श्रीमत्—पद्यावलीधृत एक कवि।

श्रीमति (सं० स्त्री०) राधा।

श्रीमती (सं० स्त्री०) श्रीर्विद्यतेऽस्या इति श्रीमतुप् ङीप्। १ 'श्रीमान्'का स्त्रीलिंगवाचक शब्द, स्त्रियोंके लिये आदरसूचक शब्द। जैसे,—श्रीमती सुभद्रा देवी। २ लक्ष्मी। ३ राधा। ४ मुण्डिरी, मुंडी।

श्रीमतीदेवी—स्थिरगुप्तके पुत्र नरेंद्रगुप्त बालादित्यकी महिषी। ये ४६० ई०में विद्यमान थीं।

श्रीमतोत्तर (सं० क्ली०) एक तन्त्रशास्त्र। पञ्चने इस ग्रन्थका मत उद्धृत किया है।

श्रीमत्कुम्भ (सं० क्ली०) स्वर्ण, सोना।

श्रीमत्ता (सं० स्त्री०) श्रीमत् या श्रीमान् होनेका भाव या धर्म। २ सम्पन्नता, अमीरी।

श्रीमदनानन्दमोदक (सं० पु०) ध्वजभङ्गरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—पारा, गंधक और लोहा प्रत्येक १ तोला, अबरक ३ तोला, कपूर, सैन्धव,, जटामांसी, आँवला, इलायची, सोंठ, पीपर, मरिच, जैली, जायफल, तेजपत्र, लवङ्ग, जीरा, मंगरैला, मुलेठा, वच, कुट, नागेश्वर, कर्काटशृंगी, तालिशपत्र, दाख, चितामूल, दन्तीवीज, विजवंद, हल्दी, देवदारु, हीजल बीज, सोहागा, वरंगी, गोपवल्ली, दारचीनी, धनिया, गजपीपल, कचूर, सुगंधवाला, मोथा, गंधभादुली भूमिकुष्माण्ड, शतमूली, आकन्दमूल, केवाँचका बीज, गोक्षुरबीज, वृद्धदारकबीज और सिद्धिबीज प्रत्येकका चूर्ण १ तोला, सब चूर्णको शतमूलीके रसमें घोंट डाले। पीछे सुखा कर फिरसे चूर्ण करे। कुल चूर्ण जितना हो उसका एक चतुर्थांश सेमरमूलका चूर्ण तथा सेमरमूल सहित कुलका आधा सिद्धिचूर्ण। इन्हें एकत्र कर बकरीके दूधमें पीसे। पीछे उससे दूनी चीनी बकरीके दूधमें घोल कर पाक करे तथा यथासमय उल्लिखित द्रव्योंका प्रक्षेप दे कर पाक समाप्त करे। इसके बाद दारचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागेश्वर, कपूर, सैन्धव और त्रिकटु, इनका थोड़ा थोड़ा चूर्ण तथा उपयुक्त परिमाणमें घृत और मधु मिश्रित कर मोदक बनावे। अनुपान गायका दूध और चीनी है। इसका सेवन करनेसे अपस्मार, कास और श्वास आदि अनेक प्रकारके रोगोंकी शान्ति तथा इन्द्रियशक्तिकी वृद्धि होती है। यह रमणीरञ्जनका महौषध है, अतएव केवल इंद्रियचरितार्थताके लिये इस मोदकका सायंकालमें सेवन करना चाहिये।

श्रीमद्दत्तोपनिषत् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।

श्रीमनस् (सं० त्रि०) १ यजमानके ऊपर जिसका अनुग्रह हो या यजमान जिसके मनके भीतर हो। २ भक्तको ऐश्वर्य आदि दान करनेमें जिसका मनन हो।

श्रीमन्त (सं० पु०) १ एक प्रकारका शिरोभूषण। २ स्त्रियोंके सिरके बीचकी मांग। (त्रि०) श्रीमान्, धनवान्, धनाढ्य।

श्रीमन्तसौदागर—बंगालके एक प्रसिद्ध वणिक। कविकङ्कण आदिके चण्डी काव्यमें चण्डीके माहात्म्य प्रचारमें ये ही प्रधान नायक थे। बंगला साहित्य शब्दमें चण्डी देखो।

श्रीमन्मन्य (सं० त्रि०) आत्मानं श्रीमन्तं मन्यते यः श्रीमत् मन-खश्। जो अपनेको लक्ष्मीयुक्त समझता हो।

श्रीमय (सं० पु०) श्रीयुक्त, विष्णु।

श्रीमलापहा (सं० स्त्री०) धूम्रपत्रा, तमाकू।

श्रीमस्तक (सं० पु०) १ रक्तालुक, लाल आलू। २ लहसुन।

श्रीमहादेवी (सं० स्त्री०) शङ्कराचार्यकी माता।

श्रीमहिमन् (सं० पु०) महादेव, शिव।

श्रीमाधोपुर—राजपुतानेके योधपुर राज्यका एक नगर। यह नगर बड़ा समृद्धिशाली है। लोकसंख्या प्रायः आठ हजार है।

श्रीमान् (सं० त्रि०) श्रीमत् देखो।

श्रीमाल (सं० पु०) १ एक देशका नाम। २ इस देशका अधिवासी। ३ पश्चिम भारतके वैश्योंकी एक जाति। वैश्य देखो।

श्रीमालखण्ड—दक्षिण मारवाड़के अन्तर्गत एक जनपद। श्रीमालनगर इस राज्यकी राजधानी है। आज कल इसे भिनाल या भिनमाल कहते हैं। यह भालोर राजधानीके पास कच्छ और गुजरात जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहांके अधिवासी ब्राह्मण श्रीमालीब्राह्मण कहलाते हैं। स्कन्दपुराण और उस पुराणके अन्तर्गत श्रीमालमाहात्म्यमें इन तीर्थवासी ब्राह्मणोंका उत्पत्तिविवरण लिपिबद्ध है। ब्राह्मणोंके अनुकरण पर स्थानीय

वणिक्सम्प्रदाय अपनेको श्रीमालीवनिया कहता है।

महात्मा कर्नेल टाडकृत राजस्थानका इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि अतिप्राचीन कालसे यह भिनमाल नगरी वाणिज्यसमृद्धिसे परिपूर्ण थी तथा प्रायः १५ सौ धनी महाजन यहां रहते थे। नगर गृहशत्रु और बहिःशत्रुके उपद्रवसे उत्सन्न हो गया है। यहांके वाणिज्य-भाण्डारको लोग लक्ष्मीका भंडार समझते थे, इसी कारण यह श्रीमाल कहलाया।

यहांके अधिवासी साधारणतः वैष्णव और जैन-धर्ममें दीक्षित हैं। इस कारण यहां उक्त दोनों सम्प्रदायके कितने धर्ममन्दिर मौजूद हैं।

चीनपरिव्राजक यूएनचुअङ्गने इस राज्यको क्यु-चि-लो (गुजरात) राज्यके अन्तर्भुक्त कहा है तथा उसकी राजधानी वे पि-लो-मि-लो (भिल्लमाल या भिनमाल) लिख गये हैं। उनके आगमन कालमें यह नगर धनजनसे पूर्ण था; राज्यमय लाख मन्दिर थे और सभी अपनी अपनी इष्टमूर्त्तिपूजामें लगे रहते थे। किन्तु किसीको भी बुद्धके धर्ममत पर श्रद्धा न थी। सिर्फ एक संघाराम में सौसे अधिक बौद्धयति हीनयानमतकी सर्वास्तिवाद आलोचनामें व्यापृत थे। उस समय यहांके राजा क्षत्रिय वंशोद्भव बीस वर्षके युवक मात्र थे। वे विद्योत्साही तथा मानी और ज्ञानीकी मर्यादारक्षामें यत्नशील थे। बुद्धके प्रवर्त्तित मतमें उनकी विशेष श्रद्धा थी।

श्रीमाला (सं० स्त्री०) गलेमें पहननेका एक आभूषण, श्रीकण्ठ।

श्रीमालादेवीसिंहनादसूत्र (सं० क्ली०) बौद्धोंका एक सूत्रग्रन्थ।

श्रीमित्र—एक कवि। ये सङ्घश्रीमित्र या सङ्घमित्र नामसे परिचित थे।

श्रीमुख (सं० पु०) १ वृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमेंसे सातवाँ संवत्सर। २ शारीरक ग्रन्थकारभेद। (क्ली०) ३ शोभित या सुन्दर मुख। ४ विष्णुका मुख, भेद। ५ पत्रादि लिख कर उसके पीछे शेष सादे पन्नेमें "श्री—"लिख कर दी जानेवाली पद्धतिको श्रीमुख कहते हैं। महिसुरवासी हाल-कर्णाटकः नामक निम्न श्रेणीके ब्राह्मणसम्प्रदाय आने अपने उच्चवंशोद्भवत्वका प्रचार करनेके लिये शृङ्गेरीमठसे जो शास्त्रीय लिपि लेते हैं, उसे भी श्रीमुख कहते हैं। क्योंकि उसमें जगद्गुरु शङ्कराचार्यका श्रीमुख अङ्कित था।

श्रीमुष्टि—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके तिन्नेवल्ली जिलान्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ। श्रीमुष्टिमाहात्म्यमें इस स्थानका विवरण लिपिबद्ध है।

श्रीमुष्ण—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके मायावरम् नामक स्थानका एक नाम। ब्रह्माण्ड और वराहपुराणान्तर्गत श्रीमुष्णमाहात्म्यमें इस स्थानका शिवमाहात्म्य कीर्त्तित है। यहांके मथुरानाथ स्वामीका मन्दिर बहुत पुराना है।

श्रीमूर्त्ति (सं० स्त्री०) श्रीयुक्ता मूर्त्तिः। १ देवविग्रह। २ विष्णुप्रतिमा। श्रीभागवतमें लिखा है, कि शिलामयी, दारुमयी, धातुमयी, सिकतामयी, मनोमयी, मणिमयी, लेप्या अर्थात् चन्दनादि लेपन द्वारा निर्मिता तथा आलेख्यभेदसे आठ प्रकारकी श्रीमूर्त्तिकी कल्पना करनी होती है। ये सब मूर्त्तियां स्थिरास्थिर भेदसे दो प्रकारमें प्रतिष्ठित होती हैं, उनमेंसे स्थिरामूर्त्तिकी अर्चनामें आवाहन और विसर्जन नहीं है, किन्तु अस्थिरा मूर्त्तिके सम्बन्धमें आवाहन और विसर्जन इच्छानुसार करनेसे भी काम चलता है, नहीं करनेसे भी चलता है। फलतः शालग्राममें आवाहनादि निषिद्ध है और साकेत-प्रतिमामें वह कर्त्तव्य है तथा अन्यान्य मूर्त्तियोंके विषयमें यथेच्छ व्यवहार किया जा सकता है। मानसपूजा स्थलमें मनोमयी मूर्त्तिकी कल्पना करनी होती है। उन सब दृश्य मूर्त्तियोंके अर्चनाकालमें उनकी आलेख्य और लेप्य मूर्त्तिका परिमार्जन और अन्यान्य मूर्त्तियोंकी स्नपनविधि कही गई है।

नीचे हयशीर्षपञ्चरात्रोक्त कुछ श्रीमूर्त्तिके लक्षण दिये जाते हैं, यथा—

केशवमूर्त्ति—इस मूर्त्तिके दक्षिण और निम्न भुजमें पङ्कज तथा ऊद्र्ध्वभुजमें पाञ्चजन्य और बाईं ओरके ऊद्र्ध्वभुजमें गदा तथा अधोभुजमें चक्र व्यवस्थित रहता है। यह आदि या वासुदेवमूर्त्तिका प्रकार भेद है।

नारायणमूर्त्ति—इस मूर्त्तिमें पूर्वोक्त शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म अधरोत्तर भावमें अर्थात् दक्षिण ओरके

निम्नभुजमें शङ्ख और ऊद्ध्वर्भुजमें पद्म, इसी प्रकार बाईं ओर भी विपर्यस्त भावमें नीचे गदा और ऊपर चक्र विन्यस्त करना होगा। यह भी वासुदेव मूर्त्तिका प्रकारभेद है।

माधवमूर्त्ति—बाईं ओरके अधोभुजमें पद्म, ऊद्ध्वमें शङ्ख तथा दक्षिणोद्ध्वर्में गदा और उसके अधोभुजमें चक्र व्यवस्थापित होगा। यह मूर्त्ति भी आदि मूर्त्ति भेद है।

गोविन्दमूर्त्ति—दक्षिणभुजमें चक्र तथा ऊपरके बाहुमें गदा, वामहस्तमें पद्म और उसके अधोभुजमें शङ्ख विन्यास कर इस मूर्त्तिका संगठन करना होता है। यह सङ्कर्षणमूर्त्तिका प्रकार भेद है।

विष्णुमूर्त्ति—दक्षिण भुजमें पद्म, उसके नीचे गदा तथा वामार्द्धमें चक्र और उसके अधोभुजमें शङ्ख विन्यस्त होगा। यह मूर्त्ति भी सङ्कर्षण भेद है।

मधुसूदन—दक्षिण भुजमें शङ्ख, उसके नीचे चक्र तथा वामार्द्धमें पद्म और अधोबाहुमें गदा दे कर स्थापना करनी होगी। यह भी सङ्कर्षणमूर्त्तिभेद है।

त्रिविक्रम—दक्षिणोद्ध्वमें गदा, उसके नीचे पद्म और वामोद्ध्वर्में चक्र तथा अधोभुजमें शङ्ख स्थापन कर वामपद ब्रह्माण्डके ऊपर और दक्षिणपद शेषनागकी पीठके ऊपर विन्यास करना होगा।

श्रीवामनमूर्त्ति—यह मूर्त्ति बलि समीपगत है तथा वामोद्ध्वर्में गदा, उसके नीचे पद्म, दक्षिणोद्ध्वर्में चक्र और उसके अधोभुजमें शंख रहता है। इन्हें सप्तताल अर्थात् प्रायः साढ़े तीन हाथका बनाना होगा।

श्रीधरमूर्त्ति—दक्षिण बाहुमें चक्र, अधोबाहुमें पद्म तथा वामोद्ध्वर्में गदा और उसके नीचे शंख रहता है। इस मूर्त्तिके वाम भागमें पद्महस्ता लक्ष्मीदेवीकी स्थापना करनी होगी। इस मूर्त्तिको उपविष्ट या दण्डायमान जिस किसी अवस्थामें रख सकते हैं, किंतु उसमें विलासभाव रहना आवश्यक है, क्योंकि इसे प्रद्युम्नका प्रकारभेद कहा है।

हृषीकेश—दक्षिणोद्ध्वमें चक्र, उसके नीचे गदा तथा वाममें पद्म और अधोभुजमें शंख विराजमान है।

पद्मनाभ—दक्षिणोद्ध्वर्वे बाहुमें पद्म, उसके अधोभुजमें शंख तथा उपरिस्थ वामभुजमें चक्र और अधस्थ हस्तमें गदा व्यवस्थित होगी।

दामोदर—दक्षिण ओरके उपरिस्थ बाहुमें शंख और अधोस्थ बाहुमें चक्रका विन्यास करना होगा। यह अनिरुद्धका मूर्त्तिभेद है।

ये केशवादि बारह श्रीमूर्त्तियां माघादि बारह मासकी अधिपति मानी गई हैं। (हयशीर्षपञ्चरात्र)

सिद्धार्थसंहितामें शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी वासुदेव, केशव, नारायण, माधव, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, सङ्कर्षण, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, अच्युत, उपेन्द्र, प्रद्युम्न, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, नरसिंह, जनार्दन, अनिरुद्ध, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, हरि और कृष्ण, इन चौबीस श्रीमूर्त्तियोंका विषय लिखा है।

हरिभक्तिविलासमें लिखा है, कि श्रीमूर्त्तिके अनेक प्रकारके भेद होने पर भी हरिसेवापरायण भक्तवृन्द यदि अपने अपने इष्टमन्त्रसे शालग्रामशिलाकी पूजा करें, तो अभीष्टदेवका आराधनाकार्य सुसम्पन्न होगा। इसी प्रकार श्रीकृष्णदैवत द्विभुज नवजलधर श्याम त्रिभङ्ग-मूर्त्तिकी सेवा करनेसे भी अपने अपने इष्टदेव-पूजनका फललाभ होता है।

श्रीयशस् (सं० पु०) राजभेद।

श्रीयामल (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

श्रीयुक्त (सं० त्रि०) श्रिया युक्तः। १ लक्ष्मीविशिष्ट, श्रीमान्। २ शोभासम्पन्न। ३ एक आदरसूचक विशेषण जो बड़े आदमियोंके नामके साथ लगाया जाता है। जैसे,—श्रीयुक्त केशवचन्द्र सेन।

श्रीयुत (सं० त्रि०) श्रिया युतः। श्रीयुक्त देखो।

श्रीर (सं० त्रि०) श्रील देखो।

श्रीरङ्ग (सं० क्ली०) १ देशविशेष, श्रीरङ्गपत्तन। (भागवत १०।७९।१४) (पु०) २ विष्णु, लक्ष्मीपति। ३ तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक भेद।

श्रीरङ्गदेव—शिशुपालवध और सूर्य्यशतकटीकाके रचयिता।

श्रीरङ्गनाथ—वाचस्पत्यव्याख्या नामक भामतीकी एक टीकाके प्रणेता।

श्रीरङ्गपत्तन (सं० क्ली०) मन्द्राजमें प्रसिद्ध एक देश, श्रीरङ्गपत्तनम्।

श्रीरङ्गपत्तनम्—महिसुर राज्यके महिसुर जिलेका प्रधान नगर और महिसुर राज्यकी प्राचीन राजधानी। यह अक्षा० १२° २५' उ० तथा देशा० ७६° ४२' पू० महिसुर शहरसे १० मील पूरबमें अवस्थित है। जनसंख्या ४५८४ है।

श्रीरङ्गस्वामी नामक विष्णुमूर्त्ति और मन्दिरसे ही इस नगरका श्रीरङ्गपत्तनम् नाम हुआ है। यहांसे दक्षिण कावेरी-नदीगर्भमें शिवसमुद्रम् और श्रीरङ्गम् नामक द्वीपके ऊपर भी श्रीरङ्गनाथस्वामीके ऐसे और भी दो मन्दिर विद्यमान हैं, किन्तु उन तीन मन्दिरोंमें यहांका मन्दिर ही सर्वश्रेष्ठ तथा आदिरङ्ग कह कर पूजित हैं।

इस रङ्गस्वामीकी मूर्त्ति और मन्दिर अति प्राचीन है। कहते हैं, कि गौतम बुद्धने यहां आ कर श्रीभगवान् की पूजा की थी। मेकेञ्जी साहबके संगृहीत एक तामिल ग्रंथसे जाना जाता है, कि यह मन्दिर बहुत दिनों तक जंगलावृत रहा। गंगवंशीय अंतिम स्वाधीन हिन्दू राजाने उस वनको कटवा कर ८६४ ई०में रंगनाथमंदिरका जीर्णसंस्कार कराया था। श्रीरंगनाथमाहात्म्यसे हमें मालूम होता है, कि स्वयं भगवान् विष्णुने अपनी रंगनाथ मूर्त्ति ब्रह्माको प्रदान की; ब्रह्माने फिरसे इक्ष्वाकुराजको उसे दे दिया था। तभीसे ले कर दशरथात्मज रामचन्द्रके अधिकार पर्यन्त वह मूर्त्ति इक्ष्वाकुवंशके कुलदेवतारूपमें पूजी जाने लगी। रामचन्द्रने दशाननवधकालमें विभीषणके आचरण पर परितृप्त हो वह मूर्त्ति उन्हींको दे दी थी। विभीषण अयोध्यासे लङ्का लौटते समय वह दिव्यमूर्त्ति साथ ले गये। किसी एक घटनाचक्रसे वे यहां अपना विमान रखनेके लिये बाध्य हुए। तभीसे रंगनाथस्वामी श्रीरंगपत्तनमें विराज कर रहे हैं। वर्त्तमान रंगजीका मन्दिर पीछे किसी चोलराजसे बनाया गया था।

उक्त दोनों ग्रन्थोंसे श्रीरङ्गजीका मन्दिर निर्माणकाल और उसकी प्रतिष्ठाका कोई विवरण ज्ञात नहीं होने पर भी हम लोग सिर्फ इतना अनुमान कर सकते हैं, कि ८वीं सदीमें इस मन्दिरने दक्षिणभारतमें तीर्थक्षेत्ररूपमें प्रतिष्ठालाभ किया था। ११३३ ई०में सुप्रसिद्ध वैष्णव परिव्राजक रामानुज स्वामीने उक्त देवमन्दिरके खर्चवर्च-के लिये यह द्वीप और आसपासका प्रदेश बल्लालवंशीय किसी राजासे पाया था। रामानुज स्वामीके नियुक्त 'हेब्बरी' या स्थानीय कर्मचारीके एक वंशधरने १४५४ ई०में यहां एक दुर्ग बनवाया। इसके बादसे ही श्रीरङ्गपत्तनका प्रकृत इतिहास आरम्भ हुआ। विजयनगरराजके एक प्रतिनिधि श्रीरङ्गरायलु उपाधि धारण कर इस नगरमें राज्य करने लगे। उस वंशके अन्तिम राजप्रतिनिधि तिरुमलने १६१० ई०में महिसुरके उदीयमान राजा उदैयारके हाथ आत्मसमर्पण किया। इस समयसे ले कर १७९९ ई०में श्रीरङ्गपत्तन-पतन तक यहां टीपू-सुलतानका राजपाट स्थापित था।

उस दुर्गको पीछे टीपू सुलतानने फिरसे नये ढंगसे बनाया। उसका प्राचीर और परिखादि इस तरह बनाये गये थे, कि सभी उसे दुर्भेद्य समझते थे। अंगरेजी-सेना लगातार तीन बार दुर्ग पर आक्रमण करके भी दुर्गवासीको पदानत न कर सके। १७९१ ई०में भारत-राजप्रतिनिधि लार्ड कार्णवालिसने दलबलके साथ स्वयं इस दुर्ग पर आक्रमण किया। वे दुर्गप्राचीर-प्रान्त पर्यन्त अग्रसर हो कर भी दुर्ग तो जीत न सके, वरं खाद्याभावसे प्रपीड़ित हो कर लौट आनेके लिये बाध्य हुए। दूसरे वर्ष अंगरेजीसेनाने फिरसे भारतप्रतिनिधि परिचालित हो निकटवर्त्ती रणक्षेत्रमें मुसलमानोंको परास्त कर अपने नायकके आदेशानुसार चारों ओरसे श्रीरङ्गपत्तन नगरको घेर लिया। इस बार हार खा कर टीपू सुलतानने आधा राज्य दे कर सन्धि कर ली।

टीपू सुलतानकी क्रूरता और दुरभिसन्धि समझ कर अंगरेज सेनापति जेनरल हारिसने १७९९ ई०के अप्रिल मासमें फिरसे श्रीरङ्गपत्तन दुर्गमें घेरा डाला। अंगरेजी सेनाने एक मास तक लगातर गोला बरसानेके बाद दुर्ग प्राचीरको तोड़ डाला। टीपू सुलतान देखो।

दुर्गजयकालसे श्रीरङ्गपत्तन दुर्ग अंगरेज गवर्मेण्टके राज्यभुक्त हुआ। अंगरेज गवरमेण्टने वार्षिक ५००० हजार रु०में उसे महिसुरराजके साथ बन्दोबस्त कर दिया। आखिर १८८१ ई०में महिसुरराजके प्रार्थनानुसार अंगरेजराजने उन्हें वह सम्पत्ति निष्कर भोग करनेकी अनुमति दी।

श्रीरङ्गपत्तन विजयके बाद अंगरेज गवर्मेण्टने यहां-का शासनभार प्राचीन हिन्दूराजवंशके ऊपर सौंपा। १८०० ई०में वह राजा महिसुरमें अपना वास और राज पाट उठा ले गये। उसके वादसे ही श्रीरङ्गपत्तन राज-धानीका अधःपतन होना शुरू हुआ। उस समय डा० बुकानन हामिल्टन इस नगरको देखने आये। उस समय यहां प्रायः ३२ हजार लोगोंका वास था, किन्तु टीपू सुलतानके राज्यकालमें जब श्रीरङ्गपत्तन राजधानी वाणिज्य भाण्डारसे परिपूर्ण था, उस समय यहांकी लोक-संख्या प्रायः १ लाख १५ हजार थी। उसके वादही महामारीमें लोकसंख्या घट गई। १८११ ई०में अंग रेज गवर्मेण्ट यहांसे वङ्गलूर नगरमें सेनावास उठा ले गई। तभीसे श्रीरङ्गपत्तन विलकुल जनहीन हो गया, अट्टालकादिके भग्नस्तूपके सिवा यहां और कुछ भी नजर नहीं आता। अभी यहां मलेरिया ज्वरका ऐसा प्रादुर्भाव है, कि कोई वैदेशिक भ्रमणकारी एक रातके लिये भी ठहरना नहीं चाहता। नगरके उपकण्ठस्थ गञ्जाम नगरमें आज भी बहुतेरे लोगोंका वास है। यहां वर्ष भरमें तीन मेले लगते हैं और बहुतसे लोग मेलेमें आते हैं।

श्रीरङ्गपत्तन एक छोटा डेल्टा है। पूर्व-पश्चिममें इसकी लम्बाई प्रायः तीन मील और चौड़ाई १ मील है। उसके पश्चिम प्रान्तमें नदीके ठीक ऊपर ही दुर्ग स्थापित है। दुर्ग पञ्चकोण है और उसका व्यास प्रायः १॥ मील है। दुर्गमें टीपू सुलतानका प्रासादावशेष विद्यमान है। उसका कुछ अंश अभी चन्दनकाष्ठके गोदाममें परिणत हो गया है। इसके सिवा दुर्गमें रङ्गनाथ स्वामीका मन्दिर और टीपू सुलतानकी स्थापित जुमा-मसजिद देखी जाती हैं।

श्रीरङ्गम्—मन्द्राज प्रदेशके त्रिचीनपल्ली जिलेका एक नगर। यह त्रिचीनपल्लीसदरसे दो मील उत्तर श्रीरङ्गम् नामक एक द्वीपके मध्यस्थलमें अवस्थित है। त्रिचिना-पल्ली नगरसे ११ मील पश्चिम कावेरी नदी दो भागोंमें विभक्त हो गई है जिससे नदीगर्भमें डेल्टा बन गया है। आज भी इसकी दक्षिणी शाखा कावेरी तथा उत्तरी शाखा कोल्लिड्रम कहलाती है। यहां आ कर ही श्रीरामानुज स्वामीने अपने अंतिम जीवनका प्रचार कार्य समाप्त किया था। ११वीं सदीके मध्यभागमें इसी नगरमें उनका देहान्त हुआ।

इस स्थानका विष्णु-मन्दिर ही दाक्षिणात्यका एक प्रसिद्ध पुण्यक्षेत्र है। नगरके अधिकांश भवन इस मन्दिर प्राचीरके अभ्यन्तर सन्निविष्ट रहनेसे मन्दिर बहुत बड़ा दिखाई देता है। उस मन्दिरको सचमुच एक नगर कहनेमें जरा भी अत्युक्ति न होगी। ७वीं या ८वीं सदीमें यह मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ है, ऐसा अनुमान किया जाता है। इसके बहिःप्राचीरका परिमाण लम्बाईमें ३०७३ फुट और चौड़ाईमें २५२१ फुट है। उसका मध्यस्थल क्रमशः सात प्राचीरसे परिवेष्टित है। प्रत्येक घेरेमें प्रायः चार करके गोपुर हैं। बहिःप्राचीरके भीतर केवल बाजार और दूकान तथा यात्रीके ठहरनेका स्थान है। इसके गोपुरकी ऊंचाई प्रायः ३०० फुट होगी। उत्तरकी ओर जो गोपुर है उसकी विस्तृति १३० फुट और ऊंचाई १०० फुट है। प्रत्नतत्त्ववित् फार्गुसन-ने उस मन्दिरका पर्यवेक्षण कर कहा है, कि दाक्षिणात्यमें ऐसा सुन्दर शिल्पसमन्वित सुवृहत् मन्दिर और कहीं नहीं है।

प्रति वर्षके पौषमासमें यहां बहुत रुपये खर्च करके एक मेला लगता है। उस मेलेमें भिन्न भिन्न स्थानके लोग जमा होते हैं।

१८७१ ई०में यहां म्युनिसिपलिटी स्थापित हुई। तभीसे नगरकी अवस्था बहुत कुछ उन्नत हो गई है। दाक्षिणात्यके सुप्रसिद्ध कर्णाटकयुद्धके समय श्रीरंगम् दुर्गमें फरासी गवर्नर डुप्लेने सेनासन्निवेश किया था।

त्रिचीनपल्ली और कर्णाटक देखो।

श्रीरङ्गवरपुकोट—मन्द्राज प्रदेशके विशाखपत्तन जिलेका एक जमींदारी तालुक। भूपरिमाण १०२ वर्गमील है। इसमें कुल १ नगर और १७७ ग्राम लगते हैं। उनमेंसे बोनंगी, धर्मवरम्, गुड़िवाड़, काशीपत्तनम्, काशीपुरम्, कोण्डगुड़ि, कोट्टम, लकवरपुकोट, रेग, सोमपुरम् या कपसोमपुरम्, श्रीरामपुरम् आदि स्थानोंमें प्रत्नतत्त्वके निदर्शनस्वरूप अनेक प्राचीन मन्दिर और शिलालिपि मिलती हैं। शृंगवरपुकोटसे ६ मील दक्षिण लकवर-

पुकोट ग्रामका वीरभद्र मंदिर तथा उससे २ मील दक्षिण रेग ग्रामके पश्चिम एक पहाड़ी गुहा और गृद्ध-लिंगेश्वर शिवमन्दिर दृष्टिगोचर होता है।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर और विचार सदर। यह अक्षा० १८° ६´ ३४″ उ० तथा देशा० ८३° ११´ ११″ पू०के मध्य विपलिपत्तनसे २८ मील पश्चिम-उत्तरमें अवस्थित है। यहां एक दुर्ग है।

श्रीरत्नगिरि (सं० पु०) १ वम्बई प्रदेशका एक जनपद। रत्नगिरि देखो। २ एक गाँवका नाम। (तारनाथ)

श्रीरमण (सं० पु०) १ एक संकर राग। यह शंकराभरण और मालश्रीको मिला कर बनाया गया है। २ विष्णु।

श्रीरस (सं० पु०) श्रीवेष्ट, गंधाविरोजा।

श्रीराग (सं० पु०) संगीतमें छः रागोंमेंसे तीसरा राग। यह सम्पूर्ण जातिका है और पृथ्वीको नाभिसे उत्पन्न माना गया है। हनुमत्‌के मतसे यह पाँचवाँ राग है। यह हेमन्त ऋतुमें तीसरे पहर या सन्ध्या समय गाया जाता है। सोमेश्वरके मतानुसार मालवश्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारा, मधुमाधवी और पहाड़ी ये छः इसकी भार्य्याएं या रागिनियां हैं और संगीत दामोदरमें गान्धारी, देवगान्धारी, मालवश्री, सावी और रामकीरी ये पाँच रागिनियाँ कही गई हैं। सिंधु, मालव, गौड़, गुणसार, कुम्भ, गंभीर, विहाग और कल्याण ये आठ इसके पुत्र कहे गये हैं।

श्रीराधावल्लभ (सं० पु०) १ विष्णुकी एक मूर्त्ति। २ श्रीकृष्ण।

श्रीराम (सं० पु०) श्रीयुतो रामः। श्रीरामचंद्र।

श्रीरामनवमी (सं० स्त्री०) श्रीरामस्य नवमी तज्जन्मदिनत्वात्। चैत्रमासकी शुक्ला नवमी। इस तिथिमें भगवानके अवतारमें श्रीरामचन्द्रजीने जन्म लिया था इसीसे यह श्रीरामनवमी नामसे प्रसिद्ध है। इसमें सबोंको व्रतोपवासादि करना कर्त्तव्य है, इससे सर्वाभीष्टकी सिद्धि होती है। व्रतादिका विस्तृत विवरण रामनवमीव्रत शब्दमें देखो।

श्रीरामपुर—बङ्गालके हुगली जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २२° ४०´ से २२° ५५´ उ० तथा देशा० ८७° ५८´ से ८८° २२´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३४३ वर्गमील और जनसंख्या ४ लाखसे ऊपर है। इसमें श्रीरामपुर, उत्तरपाड़ा, वैद्यवाटी, भद्रेश्वर और कोतरङ्ग नामक ५ शहर और ७८३ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २२° ४५´ उ० तथा देशा० ८८° २१´ पू० हुगली नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ४४ हजारसे ऊपर है, जिनमेंसे सैकड़े पीछे ८० हिन्दू, १६ मुसलमान और १ ईसाई हैं। यह शहर हवड़ासे १३ मील दूर पड़ता है। यहां इष्ट इण्डिया रेलवेका एक स्टेशन है। पहले यह दिनेमारों (Danes) के अधिकारमें था। १८४५ ई०को सन्धिके अनुसार इष्ट इण्डिया कम्पनीने १२॥ लाख रुपये दे कर दिनेमारोंसे श्रीरामपुर खरीद कर लिया।

यह स्थान एक समय सारे बङ्गालकी साहित्यालोचनाका प्रधान केन्द्र हो गया था। वाप्तिस्त मिशनरी दलके अध्यक्ष केरी, मार्समान और वार्ड साहब उसके नेता थे। उन लोगोंके यत्नसे यहां खृष्टधर्मके गिरजाघरकी प्रतिष्ठाके साथ साथ स्कूल, कालेज और एक पुस्तकालय खोला गया था। इन मिशनरियोंके उत्साह और आग्रहसे यहां सबसे पहले लकड़ीमें खुदे अक्षरोंसे कृत्तिवासका रामायण मुद्रित हुआ। पीछे धातव अक्षरमाला भी प्रस्तुत हुई थी। १९वीं सदीके प्रारम्भमें इस मिशनरी सम्प्रदायके उद्योग और बङ्गलाशिक्षा विस्तारके उद्देशसे यहां समाचारचन्द्रिका और Friend of India नामक दो समाचार-पत्र निकाले गये। बङ्गदेश देखो।

यहां पहले एक प्रकारका कागज तैयार होता था, जो श्रीरामपुरी कागज कहलाता था। अभी टीटागढ़, वाली और रानीगंजमें कागजकी कल खुल जानेसे श्रीरामपुरी कागजका आदर बहुत घट गया है। यहां प्रति वर्ष माहेश और वल्लभपुरमें स्नानयात्रा और रथयात्राके उपलक्षमें दो मेले लगते हैं। स्नानयात्रामें जगन्नाथजीकी मूर्त्ति अपने मन्दिरसे माहेश लाई जाती और वहां उन्हें स्नान कराया जाता है। रथयात्रामें प्रसिद्ध मूर्त्ति राधावल्लभके मन्दिरमें लाई जाती और आठ दिन

के बाद फिर अपने मन्दिरमें पहुंचाई जाती हैं। इस समय माहेशमें करीब ५० हजार मनुष्य एकत्र होते हैं। अभी शहरमें बहुतसी कलें, रेशमी और सूती कपड़े बुननेके करघे चलते हैं। इसके सिवा यहां सरकारी अदालत, १८०५ ई०में निर्मित डिनेमारोंका गिरजाघर, मिशन-गिरजा घर, रोमन कैथलिक गिरिजाघर, छोटी जेल, अस्पताल, राधावल्लभ और जगन्नाथके मन्दिर, एक सुन्दर पुस्तकालय, ४ हाई स्कूल, ६ मिडिल वर्नाक्युलर स्कूल और १५ प्राइमरी स्कूल हैं।

श्रीरामपुरम्—मन्द्राज प्रदेशके विशाखपत्तन जिलान्तर्गत श्रीरङ्गवर-पुकोट तालुकका एक बड़ा ग्राम। यहांके रामस्वामीका मन्दिर हजार वर्षका पुराना है।

श्रीरूपा (सं० स्त्री०) राधा।

श्रील (सं० त्रि०) श्रीरस्त्यस्येति श्री-लच् (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९७) १ लक्ष्मीवान्, धनाढ्य। २ शोभायुक्त।

श्रीलक्ष्मन् (सं० पु०) श्रीलक्ष्मण, लक्ष्मीयुक्त।

श्रीलता (सं० स्त्री०) श्रीविशिष्टा लता। महाज्योतिष्मतीलता, बड़ी मालकंगनी।

श्रीलाभ (सं० पु०) लक्ष्मीलाभ, सौभाग्य वृद्धि।

श्रीलेखा (सं० स्त्री०) काश्मीरराजकी पत्नी। इनके पिताका नाम था यशोमङ्गल।

श्रीवत्स (सं० पु०) श्रीयुक्तं वत्सं वक्षो यस्य। १ विष्णु। २ विष्णुके वक्षस्थल पर अंगुष्ठप्रमाण श्वेत बालोंका दक्षिणावर्त्त भौंरीकासा चिह्न जो भृगुके चरण प्रहारका चिह्न माना जाता है। ३ जैनोंके अनुसार अर्हतोंका एक चिह्न। ४ सुरङ्गभेद। ५ गृहविशेष।

६ उपाख्यानवर्णित एक राजा। ये पृथ्वीश्वर चित्ररथके पुत्र थे। पिताके मरने पर ये अपने बाहुबलसे सारी पृथ्वीके अधीश्वर हुए थे। परम रूपवती पतिव्रता चित्रसेनकी कन्या चिन्तादेवी इनकी महिषी थी। शनिकी कुदृष्टिसे तरह तरहके कष्ट झेलनेके बाद इन्होंने आखिर लक्ष्मीकी कृपासे पुनः राज्यधन प्राप्त किया था।

श्रीवत्स—मङ्खके समसामयिक एक कवि।

श्रीवत्स आचार्य—लीलावती नामकी प्रशस्तपादभाष्यटीकाके रचयिता।

श्रीवत्सकिन् (सं० पु०) श्रीवत्सवत् चिह्नमस्त्यस्येति श्रीवत्सक इनि। इदुचक्रावर्त्त, अश्व, वह घोड़ा जिसके वक्षःस्थल पर भौंरीका-सा चिह्न हो।

श्रीवत्सभृत् (सं० पु०) श्रीवत्सं बिभर्त्तीति भृ-क्विप्। विष्णु।

श्रीवत्सलाञ्छन (सं० पु०) विष्णु, नारायणके वक्षःस्थल पर श्रीवत्सचिह्न है, इस लिये उन्हें श्रीवत्सलाञ्छन कहते हैं।

श्रीवत्सलाञ्छन—काव्यपरीक्षा और काव्यमृत नामक अलङ्कारशास्त्र तथा रामोदयनामक और सारबोधिनी नामकी काव्यप्रकाशटीकाके प्रणेता।

श्रीवत्स शर्म्मन्—सिद्धान्तरत्नमाला नामक वेदान्तशास्त्रके प्रणेता।

श्रीवत्साङ्क—१ अतिमानुषस्तव, कूरेशविजय, वरदराजस्तव और वैकुण्ठस्तवके प्रणेता। २ गुणरत्नकोषके प्रणेता पराशरभट्टके पिता।

श्रीवत्साङ्क (सं० पु०) श्रीवत्सः अङ्कश्चिह्नं यस्य। विष्णु।

श्रीवद (सं० त्रि०) भावी शुभफलवक्ता।

श्रीवन्त (सं० त्रि०) ऐश्वर्यवान्, सम्पत्तिशाली।

श्रीवर—कथाकौतुक और जैनतरङ्गिनी नामक दो ग्रन्थोंके रचयिता। ये जोनराजके शिष्य थे।

श्रीवरबोधिभगवत् (सं० पु०) एक बौद्धयतिका नाम।

श्रीवराह (सं० पु०) श्रिया युक्तो वराहः। विष्णुका वराह अवतार।

श्रीवर्द्धन (सं० पु०) १ एक रागका नाम। २ शिव।

श्रीवर्द्धन—एक प्राचीन कवि। ये वर्द्धनकवि नामसे प्रसिद्ध थे।

श्रीवर्द्धन—बम्बई प्रदेशके जञ्जिरा राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १८° ४' उ० तथा देशा० ७३° ४' पू०के मध्य जञ्जिरा ग्रामसे १२ मील दक्षिणमें अवस्थित है जनसंख्या ६० हजारके करीब है। प्राचीन यूरोपीय भ्रमणकारियोंने इसे जिफार्दान शब्दसे उल्लेख किया है। १६वीं और १७वीं सदीमें यह यथाक्रम अहमदनगर और बीजापुर राज्यके अधीन एक प्रधान बंदर समझा जाता था।

वहां सुपारीका वाणिज्य ही प्रधान है। प्रति वर्ष एक मेला लगता है।

श्रीवल्लभ—दुर्गपदप्रबोध नामक हेमचन्द्रकृत लिङ्गानुशासनवृत्तिकी टीकाके प्रणेता। ये ज्ञानविमल सूरिके शिष्य थे। १६०५ ई०में योधपुरके राजा सूर्यसिंहकी सभामें रह कर इन्होंने उक्त ग्रन्थ लिखा था।

श्रीवल्लभ—दाक्षिणात्यके एक राजा। ये कृष्णराजके पुत्र तथा इन्द्रायुध और अवन्तीश्वर वत्सराजके समसामयिक थे।

श्रीवल्लभ उत्प्रभातीय—विनोदमञ्जरी नामक वेदान्तके रचयिता।

श्रीवल्लभ विद्यावागीश (भट्टाचार्य)—बालबोधिनी नामकी मुग्धबोधटीकाके प्रणेता। ये श्यामदासके पुत्र थे।

श्रीवल्लभ सेनानन्द—सेन्द्रकवंशीय एक राजा। चालुक्यराज १म कीर्त्तिवर्मा (५६७ ई०सन्) इनके बहनोई थे।

श्रीवल्ली (सं० स्त्री०) श्रीयुक्ता वल्ली। एक प्रकारकी कंटीली लता या चढ़नेवाली झाड़ी। इसका व्यवहार औषधमें होता है। यह लता कुछ दिनों तक यों ही खड़ी रहती है, पीछे बढ़ने पर किसी वृक्ष आदिका आश्रय लेती हैं। इसके डंठल और टहनियाँ भूरे रंगकी होती हैं तथा उन पर टेढ़े, कांटे होते हैं। यह फागुनसे फूलने लगती है और आषाढ़ तक फलती है। इसमें छोटी छोटी फलियां लगती हैं। इसका पर्याय—शिववल्ली, कण्टवल्ली शीवली, अम्ला, कटुफला, दुरारोहा। गुण—कटु, अम्लवात, शोफ और कफनाशक। इसके फलका गुण—अत्यम्ल, रुचिकर और तैललेपघ्न।

श्रीवसुक—एक प्रसिद्ध वैयाकरण, गणरत्नमहोदधि ग्रंथमें इनका उल्लेख मिलता है।

श्रीवह (सं० पु०) नागभेद।

श्रीवाटी (सं० स्त्री०) नागवल्लीभेद, एक प्रकारका पान।

श्रीवारक (सं० पु०) श्रियं वारयति कामयते इति वृ-णिच्-ण्वुल्। शिरियारी, सितावर साग।

श्रीवास (सं० पु०) श्रियं सरलवृक्षं वासयतीति वस-णिच्-अच्। १ सरलनिर्यास, तारपीनका तेल। पर्याय—पायस, वृकधूप, श्रीवेष्ट, सरलद्रव, तैलपर्णी, श्रीपिष्ट, श्रीवेश। गुण—मधुर, तिक्त, स्निग्धोष्ण, तुवर, पित्तल, वात, मूर्द्धा, अक्षि और स्वररोग तथा कफनाशक, रक्षोघ्न, स्वेद, दुर्गन्ध, यूका, कण्डू और व्रणनाशक। (भावप्र०) श्रियो लक्ष्म्या वासः आश्रयस्थानं। २ पद्म, कमल। (राजेन्द्रकर्णपूर ४२) ३ विष्णु। ४ शिव। ५ गुग्गुलु, गुग्गुल। ६ देवदारु। ७ धूप, राल। ८ चन्दन, संदल।

श्रीवासक (सं० पु०) श्रीवास देखो।

श्रीवासच्छद (सं० पु०) १ सरल वृक्ष, धूपका पेड़। २ पद्मकाष्ठ, पदुमाख। ३ चन्दन।

श्रीवाससार (सं० पु०) १ गंधाविरोजा। २ तारपीनका तेल।

श्रीवासस् (सं० पु०) श्रियं सरलवृक्षं वासयतीति वस-णिच्-असुन्। सरल द्रव, गंधाविरोजा।

श्रीवासाचार्य—नवद्वीपवासी एक परम वैष्णव और साधु पुरुष। ये श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके समसामयिक थे। इनका आदिनिवास श्रीहट्टमें था। वहांसे श्रीवासादि चार भाई विद्या सीखनेके लिये नवद्वीप आये और यहीं एक घर बना कर रहने लगे।

बाल्यकालसे ही श्रीवास हरिभक्तिपरायण थे। वे अपने घरमें बैठ कर उच्चैःस्वरसे हरिनामकीर्त्तन किया करते थे। इससे बहुतेरे नवद्वीपवासी कभी कभी विरक्त हो इनके पास आते और वैष्णव धर्म-सम्बन्धमें इनसे वादानुवाद किया करते थे। इससे वे लोग इन पर इतने चिढ़ जाते, कि कभी कभी इनके प्रति अत्याचार भी कर डालते थे।

श्रीचैतन्यने जब अध्ययन समाप्त किया, उस समय ईश्वर पुरी (भारती) नामक एक परम भागवत नवद्वीपमें आ कर श्रीवासके घर ठहरे। ईश्वरपुरीके ज्ञान और भक्तिका परिचय पा कर श्रीचैतन्य यहां आ कर उनसे मिले। इसी शुभवसरमें निमाईके साथ श्रीवासादि वैष्णवोंका विशेष सद्भाव हो गया। यही संयोग नवद्वीपका मणिकाञ्चनयोग है। श्रीवासके घर हरिप्रेमका सम्मेलन देख उनका हृदय हरिभक्तिके प्रेमरससे उमड़ आया। वे प्रति दिन शामको श्रीवासके घर आते और हरिकीर्त्तनमें शामिल होते थे। श्रीवास पीछे श्रीचैतन्यके परम भक्त हो गये और स्वयं 'चैतन्यकी जय' कह कर संकीर्त्तन करते थे। चैतन्यचन्द्र देखो।

श्रीविद्या (सं० स्त्री०) श्रिया विद्या। महाविद्याविशेष। त्रिपुरसुन्दरीका नाम श्रीविद्या है। इस महाविद्याको उपासना करनेसे साधक सिद्धि लाभ करते हैं। तन्त्रसारमें इस विद्याका भेद, मन्त्र, पूजा और पुरश्चरणप्रणाली विशेषरूपसे लिखी है। इस विद्याके मन्त्र ३६ प्रकारके हैं। गुरु इस देवताके मन्त्र देनेके समय मंत्र-विचार प्रणालीके अनुसार विचार कर दें। मंत्र इस प्रकार है—

'ल स ह ह्रीं ए र क्रं' यह नवाक्षर मेरुमन्त्र है। अर्द्धचन्द्र और विन्दुको पृथक् वर्ण रूपमें ग्रहण करनेसे ये नवाक्षर मंत्र हुए हैं। यह नवाक्षर मंत्र त्रिपुरसुन्दरीका मेरुमन्त्र कहलाता है। 'क ल ह्रीं' यह मंत्र कामेशी बीज है तथा 'क ए ई ल ह्रीं', यह पञ्च वर्णात्मक मंत्र वाग्भवकूट नामसे प्रसिद्ध है।

'ह स क ह ल ह्रीं' इस षड्क्षर मंत्रको कामराजकूट कहते हैं। 'स क ल ह्रीं' इस मंत्रका नाम शक्तिकूट है। कामदेव इस मंत्रको उपासना कर सर्वाङ्गसुन्दर और कामराज हुए थे। यह विद्या साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी है। 'ह स क ल ह्रीं ह स क ल ह ह्रीं स क ल ह्रीं' इस त्रिकूट मंत्रका नाम लोपामुद्रा मंत्र है। महर्षि अगस्त्यने इस मंत्रकी उपासना की थी।

तंत्रसारमें इस विद्याकी संक्षेप पूजा और विशेष पूजा लिखी है। असमर्थ व्यक्ति संक्षेपमें और समर्थ व्यक्ति विशेष पूजाके अनुसार पूजा करें। तंत्रसारमें इस देवीकी पूजापद्धति लिखी है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका उल्लेख नहीं किया गया।

श्रीविल्लिपत्तूर—१ मंद्राज प्रदेशके तिन्नेवली जिलेका एक तालुक या उपविभाग। यह अक्षा० ९° १७´ से ९° ४२´ उ० तथा देशा० ७७° २०´ से ७७° ५१´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५८५ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखसे ऊपर है। इसमें चार शहर और ६४ ग्राम लगते हैं। यहां ६ थाना, १ दीवानी और ३ फौजदारी अदालतें हैं।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर और विचार-सदर। यह अक्षा० ९° ३०´ उ० तथा देशा० ७७° ३७´ पू० सत्तुर रेलवे स्टेशनसे २४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यहां एक प्राचीन विष्णुमंदिर है। उसका शिल्पकार्य बड़ा ही चमत्कार है। उस विष्णुमूर्त्तिके रथयात्रा उपलक्षमें यहाँ प्रति वर्ष एक मेला लगता है। नगरके दक्षिण जिस पथसे रथ आता है, उसकी बगलमें शेरूये नामक एक बहुत बड़ा मण्डप निर्मित देखा जाता है। प्रवाद है, कि मदुराके राजा तिरुमल नायकने (१६२३-१६५९ ई०) उसे बनवा दिया है। मदुरा जानेके रास्ते पर चतुर्थ और द्वादश मील ज्ञापक प्रस्तरखण्डके समीप वैसे और भी दो मण्डप हैं। उस पथके किनारे जहां तहां राजा तिरुमल द्वारा स्थापित कुछ नौबतखाने देखे जाते हैं। यहां एक और प्राचीन शिवमन्दिर है। उक्त विष्णु और शिवमन्दिर अच्छे अच्छे गोपुरसे शोभित हैं तथा उनमें कितने शिलाफलक उत्कीर्ण हैं। स्थानीय कृष्णस्वामीका मन्दिर अपेक्षाकृत छोटा होने पर भी उसमें जो शिलालिपि खुदी है, उसके अनुसार मन्दिरको बहुत अप्राचीन नहीं कह सकते।

यहांके नायक राजाओंका प्रासाद अभी कचहरीमें परिणत हो गया है। स्थान वाणिज्यप्रधान है।

श्रीवीर उदयमार्त्तण्डवर्मा (२य)—दाक्षिणात्यके त्रिवांकुर विभागके वेनाड़ प्रदेशके एक सामन्त राजा। ये वीर पाण्ड्य उपाधिसे भूषित थे।

श्रीवृक्ष (सं० पु०) श्रीपदः श्रीप्रियो वा वृक्षः शाकपार्थिवादिवत् समासः। १ अश्वत्थ वृक्ष, पीपल। २ बिल्व वृक्ष, बेलका पेड़। शारदीया दुर्गापूजाके समय श्रीवृक्ष पर भगवती दुर्गाका बोधन करके दुर्गाकी पूजा करनी होती है। ३ विष्णुके वक्षःस्थल पर स्थित शुभावर्त्त विशेष। ४ रुद्रावर्त्त, घोड़ेकी छाती परकी भंवरी।

श्रीवृक्षक (सं० पु०) श्रीवृक्ष एव स्वार्थे कन्। १ अश्वका रुद्रावर्त्त, घोड़ेकी छाती परकी एक भंवरी जो शुभ मानी जाती है। २ एक व्रतका नाम। ३ श्रीवृक्ष देखो।

श्रीवृक्षकिन् (सं० पु०) श्रीवत्स चिह्नयुक्त अश्व।

श्रीवृद्धि (सं० स्त्री०) १ बोधिद्रुम परकी एक देवी। (ललितविस्तर) २ भाग्य या सम्पद् वृद्धि।

श्रीवेष्ट (सं० पु०) श्रियः सरलवृक्षस्य वेष्टः निर्यासः।

सरलवृक्षका निर्यास, गंधाविरोजा, तारपीन। पर्याय—वृक्षधूप, चितागंध, रसायक, श्रीवास, श्रीरस, वेष्ट, लक्ष्मीवेष्ट, वेष्टक, वेष्टसार, रसावेष्ट, श्रीरशीर्ण, सुधूपक, धूपाङ्ग, त्रिलपर्ण और सरलांग। गुण—कटु, तिक्त, कषाय, श्लेष्म और पित्तनाशक, योनिदोष, अजीर्ण, व्रणघ्न और आध्मानानाशक। (राजनि०)

श्रीवेष्टक (सं० पु०) श्रीवेष्ट देखो।

श्रीवैकुण्ठम्—१ मन्द्राज प्रदेशके तिन्नेवल्ली जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ८° १७´ से ८° ४८´ उ० तथा देशा० ७७° ४८ से ७८° १०´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ५४२ वर्गमील और जनसंख्या ३ लाखसे ऊपर है।

२ उक्त तालुकका एक नगर। यह अक्षा० ८° ३८´ उ० तथा देशा० ७७° ५५´ पू० तिन्नेवल्लीसे १६ मील दक्षिण-पूर्व ताम्रपर्णी नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या १० हजारसे ऊपर है। यहां प्रायः तीन सौ वर्षसे भी अधिक पुराने १० मंदिर हैं जिनमेंसे स्थानीय विष्णुमंदिर और कैलासनाथ-मंदिर सबसे बड़े और स्थापत्यशिल्पपूर्ण हैं। नगरपार्श्वस्थ आदिच्छ नल्लूर नामक बड़े पर्वत पर कुछ जैनमूर्त्ति और प्राचीन कब्रमें गड़े हुए पात्रादिके निदर्शन पाये जाते हैं। यहां कोरवेल्लाल नामक एक निम्नश्रेणीकी शूद्र जातिका वास है। उनका आचार व्यवहार बिलकुल नये ढंगका है। वे लोग जिस दुर्गमें रहते हैं उनमेंसे कभी भी किसी कारणवशतः निकलना नहीं चाहते। इन लोगोंके पास राजदत्त शासन है। उक्त ताम्रपर्णी नदीके ऊपर लोहेका जो पुल है, वह भी श्रीवैकुण्ठम् कहलाता है।

श्रीवैष्णव (सं० पु०) रामानुजका अनुयायी वैष्णव, वैष्णवोंका एक सम्प्रदाय।

श्रीव्याघ्रमुख—चापवंशीय एक राजा। इनके राज्यकालमें ६२८ ई०में ब्रह्मगुप्तने ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त प्रणयन किया।

श्रीश (सं० पु०) श्रियाः ईशः। १ विष्णु। २ श्रीराम।

श्रीशान्त—एक प्राचीन ग्रन्थकार।

श्रीशाल्मलीखण्ड (सं० क्ली०) एक प्राचीन तीर्थका नाम।

श्रीशुक (सं० पु०) १ एक प्राचीन तीर्थका नाम। २ जातकालङ्कारकर्मके प्रणेता।

श्रीशैल—बम्बई प्रेसिडेन्सीके धारवाड़ जिलेका एक प्राचीन तीर्थ। (भागवत ५।१९।१६) तुङ्गभद्रा नदीके किनारे यह तीर्थ अवस्थित है। यहां मल्लिकार्ज्जुन नामक अनादिलिङ्ग प्रतिष्ठित हैं। यहां देवालयादि तथा नदीतीरस्थ सोपानश्रेणीकी शोभा बड़ी मनोमोहिनी है। स्कन्दपुराणके श्रीशैलखण्डमें इस स्थानका माहात्म्य कीर्त्तित है।

श्रीशैलताताचार्य—तात्पर्यसंग्रह नामक वेदान्त तथा वचनसारसंग्रह नामक दीधितिके रचयिता।

श्रीश्वर विद्यालङ्कार—देवीशतक, शिवकुसुमाञ्जली, शुद्धि-स्मृति, सप्तशती-काव्य और सूर्य्यशतक नामक ग्रन्थके रचयिता। ये १९ वीं सदीके शेषार्द्धमें जीवित थे।

श्रीषेण—१ रोमकसिद्धान्तके प्रणेता। ब्रह्मगुप्तने इनका उल्लेख किया है। २ राजभेद।

श्रीसंग्राम (सं० पु०) काश्मीरका एक सुप्रसिद्ध मठ।

श्रीसंज्ञ (सं० पु०) श्रियः संज्ञा यस्य। लवङ्ग, लौंग।

श्रीसदा (सं० स्त्री०) रजनी, निशि, रात्रि।

श्रीसमाध (सं० पु०) एक राग जो श्री, शुद्ध, मालश्री, भीमपलाश्री और टङ्कको मिला कर बनाया गया है।

श्रीसम्पदा (सं० स्त्री०) ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

श्रीसम्प्रदाय—श्रीरामानुजमतावलम्बी वैष्णव श्रीसम्प्रदाय या श्रीवैष्णव कहलाते हैं। श्री अर्थात् लक्ष्मीसे यह वैष्णव प्रवर्त्तित हुआ है, इसीसे इनका नाम श्रीवैष्णव हुआ है। यथा,—

"रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे निम्बादित्यं चतुःसनः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रं मध्वाचार्यं चतुर्मुखः॥"

पहले वैष्णव शब्दमें लिखा जा चुका है, कि रामानुजमतावलम्बी विशिष्टाद्वैतवादी हैं। विशिष्टाद्वैतमतमें परब्रह्म नित्य, सत्य, ज्ञान, अनन्त, विभु, सर्वज्ञ और सर्वशक्ति हैं। उक्त मतसे परब्रह्म ही विश्वके उपादान, निमित्त और सहकारी कारण है। वे ही वेद और उपनिषद्‌में सत्, आत्मा, ब्रह्म, ईश, विष्णु, नारायण, पुरुषोत्तम, वासुदेव आदि नामोंसे अभिहित हुए हैं। शास्त्रमें चित् और अचित्‌को परब्रह्मके शरीररूपमें कहा है, इसी कारण परब्रह्मको शरीरी कहते हैं। चित् कहनेसे ज्ञान और अचित् कहनेसे काल, मूलप्रकृति और शुद्धसत्त्व समझा जाता है। मूलप्रकृतिका दूसरा नाम

प्रकृति, प्रधान, अव्यक्त और माया है। उससे कभी कभी तम, अक्षर और परब्रह्म बोध होता है। अद्वैत अर्थमें एक भिन्न दूसरा नहीं है, विशिष्ट अर्थमें विशेषण अर्थात् चित् और अचित् शरीरीरूपमें व्याप्त है। विशिष्टाद्वैतका अर्थ एक सत्य द्वितीय नहीं है। जो चित् और अचित् के साथ शरीरीरूपमें वर्त्तमान रहते हैं, वे ही परब्रह्म हैं।

श्रीवैष्णव विष्णुकी भिन्न भिन्न मूर्त्तिकी पूजा करते हैं, ईश्वर-मन्दिरमें प्रायः नहीं जाते, यहां तक कि महा देवकी पूजा भी नहीं करते। इस सम्प्रदायके ब्राह्मण निरामिषभोजी हैं।

रामानुजकी जीवद्दशामें उनके अनेक शिष्य थे। उन्होंने अपने मतमें दीक्षित करनेके लिये ८० विद्वान् शिष्योंका आचार्य पुरुष या पीठाधिपति नाम रखा। वे सभी गार्हस्थधर्मावलम्बी हैं। उनके वंशधर आज भी आचार्य उपाधिधारी और श्रीवैष्णवोंके गुरु हैं।

उक्त आचार्यपुरुषोंका कुछ संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है,—

पुण्डरीकर—ये महापूर्ण आचार्यके पुत्र थे। रामानुजाचार्यने इनसे वेदाध्ययन कर संन्यास ग्रहण किया था। इनका तामिल नाम पेरिरुनम्बि है। इनके वंशधर अभी तिन्नेवल्ली जिलेमें रहते हैं।

सुन्दर सौलुड़ैयान्—इनके पिता तिरुमलयैयानसे रामानुजाचार्यने द्राविड़ वेदान्त सीखा। इनके वंशधर मदुरासे दश मील दूर आलघर तिरुमलै नामक स्थानके देवालयके आचार्य हैं। उन लोगोंकी शिखा पुरश्चूड़ है अर्थात् वे मस्तकके आगे शिखा रखते हैं।

पोमठत्तालवान—इनके पिता पेरिय तिरुमलैनम्बि रामानुजाचार्यके मामा थे। इनके वंशधर तिरुमालै कहलाते हैं। तिरुमालै दो सम्प्रदायमें विभक्त हैं, एकका नाम वड़गलै (अर्थात् संस्कृत वेदाध्यायी) और दूसरेका नाम तेङ्गलै (अर्थात् द्राविड़ दिव्य प्रवन्ध ग्रन्थाध्यायी) है। दक्षिण देशके प्रायः सभी जिलोंमें इनका वास देखा जाता है। वड़गल और तेङ्गल देखो।

भट्टर—इनके पिताका नाम कुरेश उर्फ कुरुत्तालान था। इनकी शाखा श्रीरङ्गममें रहती है।

कण्डाड़ैयाण्डान्—ये रामानुजाचार्यकी ममेरो बहन-के पुत्र, दाशरथि उर्फ मुदलियाण्डानकी सन्तान थे। इनके वंशधर कण्डलै कहलाते हैं। इस वंशमें अन्नन और अप्पन नामक दो सहोदर अपनी अपनी विद्या और प्रतिभाके बलसे प्रसिद्ध हुए थे। ये लोग मनवालम्बा मुनिके प्रतिष्ठित अष्टदिग्गजमेसे एक समझे जाते हैं। इनके वंशधर अभी श्रीरङ्गम्में रहते हैं।

नडु विलाल्वान्—इनके वंशधर आनियुर कहलाने पर भी अण्णन नामक किसी एक पत्तङ्गि परवस्तु पट्टर्पि-रान नामक गुरुका शिष्यत्व ग्रहण करनेके कारण वारिश अण्णन गार्गगोत्र परवस्तु कहलाते हैं। काञ्चीपुरमें इनका वास है। इस वंशकी और दूसरी शाखा पिल्लोकम् कहलाती है।

गोमठत्तालवान्—इनका वंश गोमठम् कहलाता है।

नड़ा दूराल्लान्—इनके वंशधर नड़दूर नामसे प्रसिद्ध हैं। कुम्भकोनम्में वे लोग रहते हैं।

पेङ्गलाल्लान्—इनका दूसरा नाम विष्णुचित्त है। इन्होंने विशिष्टाद्वैत मतसे विष्णुपुराणकी टीका की है। इनके वंशधर पुरश्चुड़ा धारण करते हैं।

आनन्दाल्लान्—इनके वंशधर आनन्दाम्बिल्लै कहलाते हैं। काञ्चीपुर, महिसुर और तञ्जाउरमें इनका वास है।

शेट्टलुर शिरियाल्लान्—इनके वंशधर शेट्टालूर नामसे प्रसिद्ध हैं।

अरण पुरत्ताल्लान्—ये भरद्वाज गोत्रोद्भव सामवेदी ब्राह्मण हैं। इनके वंशधर पौथी परवस्तु कहलाते हैं। इस वंशमें सुप्रसिद्ध पट्टर्प्पिराम उर्फ गोविन्ददासर आप्पनने जन्मग्रहण किया था। ये भी पूर्वोक्त अष्टदिग्गजोंमेंसे एक हैं। विशाखपत्तनके महामहोपाध्याय श्रीपरवस्तु वेङ्कट रङ्गाचार्य आर्यवर गुरु इसी वंशके थे।

ऐम्बार—इनका वंश ऐम्बार कहलाता और तञ्जाउरमें रहता है।

किड़ाम्बिराच्चान—इनके वंशधर किड़ाम्बि उर्फ घटाम्बु कहलाते हैं।

ईच्चाङ्गाड़ियाच्चान—इस वंशके लोग ईच्चाम्बाड़ि नामसे प्रसिद्ध हैं। वह दो सम्प्रदायमें विभक्त हैं—वड़गलै और तेङ्गलै।

तिरुमालैनल्लान्—इनके वंशधर नल्लान चक्रवर्त्ती नामसे मशहूर हैं।

तिरुकुरु—कैपिराग्विल्ला—इन्होंने सबसे पहले रामानुजाचार्यका श्रीभाष्य अपने शिष्योंको सिखाया था।

असुरि-पेरुमाल—इनका वंश आसुरि कहलाता है।

मुड़म्बैनम्बि—इनका वंश मुड़म्बै नामसे प्रसिद्ध है। इस वंशमें अन्नान् प्रतिवादिभयङ्कर नामसे मशहूर हुए और अष्टदिग्गजोंमें एक कहलाये। अन्नारके वंशधर प्रतिवादी-भयङ्कर नामसे अभिहित हो कर काञ्चीपुर, तञ्जावुर, महिसुर इत्यादि स्थानोंमें वास करते हैं।

वङ्गि सुरत्तुनम्बि—इनके वंशधर वङ्गिपुरम् कहलाते हैं।

कुमान्तुरिल्लैयवल्लि उर्फ कालधन्वि—इनके वंशधर कुमान्तुर अथवा इलावल्लि नामसे प्रसिद्ध हैं।

किड़ाम्बि पेरुमाल—इनके वंशधर किड़ाम्बि कहलाते हैं।

श्रीरामानुजाचार्यकी मृत्युके बाद श्रीवैष्णव दो सम्प्रदायमें विभक्त हो गये थे। एकका नाम वड़गलै और दूसरेका तेङ्गलै था। वड़गलै और तेङ्गलै शब्द देखो।

प्रथमोक्त सम्प्रदाय वेदशास्त्र और श्रीभाष्य मान कर चलते हैं। ये लोग सफेद रंगका ऊद्ध्वपुण्ड्र तिलक जिसका आकार अंगरेजी अक्षर U-के जैसा होता है, लगाते हैं। बीचमें कुङ्कुमकी ऊद्ध्वरेखा रहती है। द्वितीय सम्प्रदाय चार हजार श्लोकसमन्वित दिव्यप्रबन्ध नामक तामिल ग्रन्थके मतानुसार चलते हैं। उनकी ऊद्ध्व तिलक Yके जैसा और भीतर कुङ्कुमकी ऊद्ध्वरेखा रहती है। ये दोनों सम्प्रदाय चार सौ वर्षके पहलेसे चले आते हैं।

वड़गलैका कहना है, कि सत्कर्म करनेसे भगवान्‌का प्रसाद मिलता है। तेङ्गलै कहते हैं, कि मनुष्य सत्कर्म द्वारा भगवानका प्रसाद नहीं पा सकते।

वड़गलैके मतानुसार लक्ष्मी विष्णुकी शक्ति और विभु हैं, इसलिये वे मुक्ति देनेमें समर्थ हैं, किन्तु तेङ्गलै इसे स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि वे केवल मुक्ति देनेके लिये विष्णुका अनुरोध कर सकती हैं। वड़गलै कहते हैं, कि अज्ञात पापकी ओर भगवान्‌का लक्ष्य नहीं रहता। किन्तु तेङ्गलै इसे माननेको तैयार नहीं। उनका कहना है, कि अज्ञात पाप भी वे पकड़ लेते हैं परन्तु मानवजातिके ऊपर उनका स्नेह है, इसी कारण वे लोग पापसे मुक्ति पा सकते हैं। वड़गलैका विश्वास है, कि नीच वर्णका कोई भी व्यक्ति यदि ज्ञानोपार्जन करे, तो भी उसका नीचत्व दूर नहीं होता। तेगलै कहते हैं, कि ज्ञानी और निष्ठावान् शूद्र स्वधर्मवर्जित ब्राह्मणसे भी श्रेष्ठ हैं।

वड़गलै लोग पितृपुरुषोंके वार्षिक श्राद्धमें पुरोहितके चरण धो कर पादोदक ग्रहण करते हैं, किन्तु तेङ्गलै वैसा नहीं करते। वड़गलै एकादशीको पितरोंका श्राद्ध कर ब्राह्मण भोजन कराते हैं। तेङ्गलै एकादशीको श्राद्ध न कर केवल उपवास करते हैं। वड़गलैकी विधवाएं मस्तक मुंड़ाती हैं, परन्तु तेङ्गलैकी विधवाएं वैसा नहीं करतीं। वड़गलै प्रतिदिन स्नान करते हैं और समझते हैं, कि स्नान करनेसे शरीरका पाप दूर होता है। तेङ्गलैका कहना है, कि स्नान करनेसे शरीर केवल परिष्कार होता है, शरीरका पाप दूर नहीं हो सकता। उक्त दोनों सम्प्रदायका इसी प्रकार नाना विषयमें बहुत दिनोंसे मत विरोध चला आता है। यहां तक, कि एक दूसरेके घर जल ग्रहण तक भी नहीं करता और न आपसमें आदानप्रदान ही चलता है।

रामानुज और वैष्णव शब्द देखो।

श्रीसम्भूता (सं० स्त्री०) ज्योतिषमें कर्मामासकी छठी रात्रि।

श्रीसहोदर (सं० पु०) श्रिया सहोदरः समुद्रजातत्वात्। चन्द्रमा। चन्द्रमा और लक्ष्मी दोनों समुद्रसे उत्पन्न हुए हैं।

श्रीसिंह—चूड़ासमावंशीय एक नरपति।

श्रीसुख—आयुर्वेदमहोदधि और उसके अन्तर्गत शारीरक नामसे दो वैद्यक ग्रंथके रचयिता।

श्रीसुखलल—आयुर्वेद नामक ग्रन्थके प्रणेता।

श्रीसूक्त (सं० क्ली०) मन्त्रभेद। देवताओंके महास्नानके समय इस देशके ब्राह्मण श्रीसूक्त और पुरुषसूक्त पढ़ कर देवमूर्त्तिको स्नान कराते हैं।

यह श्रीसूक्त एक समय चारों वेदसे लिया गया था,

उसका प्रमाण हम लोग अग्निपुराणके निम्नोक्त श्लोकमें देखते हैं। यथा—

"श्रीसूक्तं प्रतिवेदञ्च ज्ञेयं लक्ष्मीविवर्द्धनम्।
हिरण्यवर्णां हरिणीमृचः पञ्चदश श्रियः॥
रथेष्वक्षेषु वाजेति चतस्रो यजुषि श्रियः।
श्रावयन्तीयं तथा साम श्रीसूक्तं सामवेदके।
श्रियं धातर्मयि धेहि प्रोक्तमाथर्व्वणे तथा।
श्रीसूक्तं ये जपेद्भक्त्या हुत्वा श्रीस्तस्य वै भवेत्॥"
(अग्निपु० २६३।१-३)

श्रीसूर्यपहाड़—आसाम प्रदेशके ग्वालपाड़ा जिलान्तर्गत एक बड़ा पहाड़। यह ग्वालपाड़ा नगरसे ८ मील उत्तर-पूर्व ब्रह्मपुत्रनदके बाएं किनारे अवस्थित है। एक समय प्राग्ज्योतिषपुरीके आर्य ज्योतिर्विदगण इस पर्वत पर चढ़ कर ग्रहवेधकी गणना करते थे, इसी कारण ग्रहराज सूर्यके नामानुसार इस पर्वतका नामकरण हुआ है।

श्रीस्थल (सं० क्ली०) दाक्षिणात्यकी मदुरा राजधानीके पासका एक प्रसिद्ध शैवतीर्थ और मन्दिर। स्कन्दपुराणान्तर्गत श्रीस्थलमाहात्म्यमें यहांका विशेष विवरण वर्णित है।

श्रीस्रज (सं० क्ली०) श्रीश्च स्रक् च तयो समाहारः (पा ५।४।१०६)। श्री और स्रक्‌का एकत्र समावेश।

श्रीस्वरूप (सं० पु०) श्रीचैतन्यके एक शिष्यका नाम।

श्रीस्वरूपिणी (सं० स्त्री०) राधा। (पद्मरत्न ५।५।५६)

श्रीस्वामी—१ काश्मीरके एक राजाका नाम। (राजतर० ५।१५६) २ भट्टिके पिता। (भट्टि २२ ३५)

श्रीहट्ट—आसामके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २३°५६´से २५° १३´उ० तथा देशा० ९०° ५६´से ९२°६६´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ५३८८ वर्गमील है। इसके उत्तरमें खासिया और जयन्ती पहाड़, पूर्वमें कछाड़ दक्षिणमें पहाड़ी त्रिपुराका स्वाधीन राज्य तथा बङ्गके अन्तर्गत त्रिपुरा जिला और पश्चिममें मैमनसिंह हैं।

श्रीहट्टमें बहुतसे छोटे छोटे पहाड़ हैं। सबसे बड़े पहाड़की ऊंचाई १००० फुट है। इस जिलेके केन्द्रमें इटा पहाड़ श्रेणी विद्यमान है। श्रीहट्टकी नदनदियोंमें बराक नदी ही प्रधान है। यह नदी कछाड़से आ कर श्रीहट्टमें घुस गई है। श्रीहट्टमें इसकी दो शाखा है। प्रधान शाखाका नाम सुर्मा और दूसरी शाखाका नाम कुशियारा है। ये दोनों शाखाएं मिल कर मेघना कहलातीं और घलेश्वरीमें गिरती हैं। इनके बहनेसे श्रीहट्टका अधिकांश स्थान उर्वरा हो गया है। यहां धानकी फसल अच्छी लगती है। कोयलेकी खान भी जहां तहां दिखाई देती है, परन्तु उसका आविष्कार नहीं हुआ है। जंगलमें बड़े बड़े वृक्ष दिखाई देते हैं। दूर दूर देशोंमें इनकी रफ्तनी होती है। इसके सिवा लाह, मोम और मधु आदि भी यथेष्ट उत्पन्न होता है। कमला नीबूके लिये भी श्रीहट्ट प्रसिद्ध है। यहां हाथी पकड़नेके बहुतसे गड्ढे बने हुए हैं।

१८७४ ई०में श्रीहट्ट आसामके चीफ कमिश्नरके शासनाधीन हुआ। प्राचीन कालमें श्रीहट्टगढ़, लाउड़ और जयन्तीया इन तीन राज्योंमें विभक्त था। कोई कोई कहते हैं, कि इन तीन प्रदेशोंमें बहुत पहले असभ्य जातिके लोगोंका वास था। किन्तु आदिशूरके पहलेसे ही जब बंगमें ब्राह्मणोंका समागम हुआ, उसी समयसे श्रीहट्टमें ब्राह्मणोंने जा कर उपनिवेश बसाया।

वैदिक देखो।

१४वीं सदीके अन्तमें मुसलमानोंने श्रीहट्ट पर आक्रमण किया। उस समय अफगानराज समसुद्दीन गौड़के शासनकर्त्ता थे। फकीर शाह जलाल मुसलमानी सेना ले कर सबसे पहले चट्टग्राम पहुंचे। इस समय गौरगोविन्द नामक एक हिन्दू श्रीहट्टके राजा थे। किन्तु शाह जलालके प्रतापसे गौरगोविन्दको हार खानी पड़ी। आज भी शाह जलालकी मसजिद श्रीहट्टमें अति प्रसिद्ध है। इस समय गड़ नामक राज्य ही मुसलमानोंके शासनाधीन हुआ था। अकबरके समय तक भी लाउड़में हिन्दूशासन अक्षुण्ण रहा। ऐसा सुना जाता है, कि लाउड़के हिन्दूराजा गोविन्दको अकबर बादशाहने दिल्ली ले जा कर मुसलमानी धर्ममें दीक्षित किया। १८ वीं सदीके आरम्भमें उनके पौत्रने बनिया चंगमें राजधानी बसाई।

१७६५ ई०में अंगरेजोंको बंगालकी दीवानी मिली। इस समय भी जयन्ती स्वाधीन था। इसके बाद ढाकाके नवाबके अधीन आमीनों द्वारा श्रीहट्ट जिलेके अनेक

स्थान शासित होते थे। वृटिश गवर्मेण्टने यहां पहले सीमान्तशासन नीतिका प्रवर्त्तन किया। पहले जमीन की बहुत कम मालगुजारी लगती थी। मुसलमानोंको जागीर दे कर सेनामें भर्त्ती किया जाता था। श्रीहट्टकी प्रान्त सीमाके असभ्य लोगोंके कारण हमेशा गोलमाल और अशान्ति हुआ करती थी। इसलिये इस प्रान्तमें सेना रखनेका विशेष प्रयोजन होता था। वृटिश गवर्मेण्टकी धारणा थी, कि जयन्तीराज्यमें नरवलि होती है। १८३१ ई०में कुछ वृटिश प्रजाको जयन्तीके अधिवासियोंने कालीके सामने वलि दी। इसी हीलेसे वृटिश गवर्मेण्टने जयन्ती राज्य जब्त कर अपने अधीन कर लिया। राजा इन्द्रसिंहको वार्षिक ६०००) रु०की वृत्ति कायम कर दी गई। वे वही वृत्ति ले कर शान्ति भावसे श्रीहट्टमें रहने लगे। १८६१ ई०में राजा इन्द्रसिंहकी मृत्यु हुई। १८०२ ई०से इनाम भूमिका राजस्व ले कर जमींदारोंके साथ गवर्मेण्टका झगड़ा खड़ा हुआ। १८६६ ई०में बङ्गालके छोटे लाट बहादुरने झगड़ा मिटा दिया। श्रीहट्टमें हिन्दूकी अपेक्षा मुसलमानोंकी संख्या ही अधिक है। वैष्णवोंमें विशुद्ध वैष्णवकी अपेक्षा किशोरीभजन सम्प्रदाय ज्यादा है।

श्रीहट्टमें जो सब हिन्दूदेवमन्दिर हैं, उनमेंसे जयन्तीपुरके पहाड़ पर रूपनाथ मन्दिर है। फालजुर परगनेके फालजुर मन्दिरके देवताके निकट किसी समय नरबलि दी जाती थी। इसी पापसे जयन्ती वृटिश शासनाधीन हुआ। जयन्तीपुरकी जयन्तेश्वरीका मन्दिर, ढाकाके दक्षिण श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका मन्दिर, छापघाटमें सिद्धेश्वर, सप्तग्राममें निर्माये शिव और वासुदेव मन्दिर प्रसिद्ध है।

अभी विमङ्गल परगनेके अखेड़ेकी भी खूब प्रसिद्धि है। कैवर्त्तकुलके रामकृष्ण गोसाईं नामक एक आदमी उस अखाड़ेकी प्रतिष्ठाके साथ साथ यहां एक प्रकारका फकीरी धर्म भी चला गये हैं। इसी अखेड़ेमें उनकी समाधि है। वृथा तुलसी और गोमय स्पर्श उनके मतसे निषिद्ध है। यह पवित्र द्रव्य स्पर्श कर शपथ नहीं खानी चाहिये। उनके शिष्य आज भी उस विधिका पालन करते हैं।

श्रीहट्टमें कुकी खासिया आदि पहाड़ी जातिके लोग देखनेमें आते हैं। इनमेंसे बहुतोंने अभी वैष्णव धर्म ग्रहण कर लिया है। श्रीहट्टकी हाजङ्ग जातिके लोग पहले पर्वतवासी थे। मणिपुर, पहाड़ीत्रिपुरा, खासिया और जयन्ती पहाड़से कितने लोग श्रीहट्टमें आ कर बस गये हैं। इस जिलेमें ५ शहर और ८३३० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या २२ लाखसे ऊपर है।

आउस धान, आमन धान, तीसी, सरसों, तिल, पाट, मटर, खेसारी, ईख, कपास आदि फसल श्रीहट्टमें काफी उपजती है। यहां जो सब मणिपुरी रहते हैं, उनमें बहुतोंकी स्त्रियां मणिपुरखेस नामक एक प्रकारका कपड़ा बुनती हैं। इनके हाथके तैयार किये हुए रुमाल और मशहरीके कपड़े बड़े अच्छे होते हैं। मणिपुरके बढ़ई बहुत विख्यात हैं।

विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत बढ़ा चढ़ा है। अभी कुल मिला कर ६०० प्राइमरी और ०० सिकेण्डरी और एक सरकारी साहाय्य-प्राप्त सिकेण्ड ग्रेड आर्ट कालेज है। इसके सिवा ५ अस्पताल और ४५ चिकित्सालय हैं।

श्रीहत (सं० त्रि०) १ शोभा-रहित। २ निस्तेज, निष्प्रभ, प्रभाहीन।

श्रीहर (सं० त्रि०) समग्र श्री हरणकारी, सातिशय श्री-सम्पन्न।

श्रीहरा (सं० स्त्री०) राधा।

श्रीहर्ष (सं० पु०) विष्णु, नारायण।

श्रीहर्ष—१ बङ्गदेशीय राढ़ीय ब्राह्मणोंकी एक शाखाके आदिपुरुष और एक सत्कवि। आदिशूरने वैदिक यज्ञके अनुष्ठानके लिये कनौजसे इसके पिता मेधातिथिके साथ इनको अपने राज्यमें ला कर बसाया था। ये भरद्वाज गोत्रीय थे। इनके वंशधर धुरन्धर बङ्गीय मुखरी वंशके आदिपुरुष हैं। कुलीन शब्द देखो।

२ नैषधीय या नैषधचरित और खण्डनखण्डखाद्यके प्रणेता एक प्रसिद्ध कवि। ये कनौजराज जयचन्द्रके आश्रय में पालित और परिवर्द्धित हुए थे। कविने उस कृतज्ञताका अपने नैषधचरितके शेषमें "ताम्बूलद्वयमासनञ्च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।" इत्यादि श्लोकोंमें उल्लेख

किया है। उक्त ग्रन्थके प्रथम अध्यायके अन्तमें कविने आत्मपरिचय इस प्रकार दिया है--कविकुल श्रेष्ठ श्रीहीर उनके पिता और माता मामल्लदेवी थीं।

सुप्रसिद्ध जैनकवि राजशेखरने १३४८ ई०में संस्कृत प्रबन्धकोषमें लिखा है, कि श्रीहीरपुत्र श्रीहर्षदेवने वाराणसीधाममें जन्मग्रहण किया। उन्होंने वहांके अधीश्वर गोविन्दचन्द्रके पुत्र श्रीमन्महाराज जयचन्द्रके आदेशसे नैषधीय काव्य प्रणयन किया। राजशेखरके ग्रन्थमें जयन्तचन्द्र पङ्गु ल नामसे विख्यात हैं तथा वे अनहिलवाड़-पत्तनके अधीश्वर कुमारपालके समसामयिक थे। डा० बुह्लरका कहना है, कि उक्त जयन्तचन्द्र ही राष्ट्रकूट राजा थे और वे ही कन्नौजके राठोरराज जयचन्द्र वा जयचांद नामसे प्रसिद्ध थे।

श्रीहर्ष एक असाधारण कवि थे। उनका काव्यालङ्कार और स्वभाववर्णन अत्यन्त मनोहर होता था। दुःखका विषय है, कि उनकी रचनामें अत्युक्ति दोष पाया जाता है। काश्मीरवासी प्रसिद्ध आलङ्कारिक काव्यप्रकाशके रचयिता मम्मट भट्ट इनके मामा थे। प्रवाद है, कि बाल्यकालमें मामाके घर रह कर ही काव्य-रचना कर उन्हें स्वयं संशोधन और परिवर्त्तन करते देख उनके मामाने समझा, कि यह सन्दिग्धचित्तता श्रीहर्षकी मार्जित बुद्धिका फल है; अतएव इस तरह काव्यरचना-चेष्टा करनेसे वह बहुत समयमें भी सम्पूर्ण नहीं हो सकेगी। जिससे भांजेका यह भाव दूर हो जाय अर्थात् स्थूल बुद्धि हो संशोधनसे सर्वदा विरत रहें उसके उपायस्वरूप उन्हें उमड़ खानेकी व्यवस्था दी। इससे उनकी बुद्धिकी प्रखरता घट जानेसे उन्होंने आक्षेप कर लिखा है—

"अशेषशेमुषीमोषमाषमश्नामि केवलम्।"

ग्रन्थकारने एक ओर जिस तरह कवित्व प्रतिभासे संस्कृत जगत्‌को प्रभान्वित कर दिया है, दूसरी ओर वे उसी तरह दार्शनिक तत्त्वके उद्घाटनमें जगद्वासीको नूतन भावमें पारमार्थिक पथान्वेषी करने समर्थको हुए थे। उनका रचित खण्डनखण्डखाद्य ग्रंथ गौतमीय न्याय-शास्त्रकी तरह खण्डन मात्र है।

उक्त दोनों ग्रन्थोंसे उनके रचित अर्णववर्णन, गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति, छन्दःप्रशस्ति, नवसाहसाङ्कचरित, विजयप्रशस्ति, शिवशक्तिसिद्धि और स्थैर्यविचारण नामक अन्यान्य ग्रन्थोंका उल्लेख मिलता है।

श्रीहर्ष—१ जानकीगीतके रचयिता। २ श्रीफलवर्द्धिनी नाम्नी नीलकण्ठी नामक ज्योतिर्ग्रन्थकी टीकाके प्रणेता। ३ कान्तालीयखण्डन, द्विरूपकोष और श्लेषार्थपदटीकाके प्रणेता।

श्रीहर्ष—स्थाण्वीश्वरके प्रबल पराक्रान्त हिन्दू राजा। कादम्बरीके प्रणेता सुप्रसिद्ध बाणभट्टने श्रीहर्षचरितमें इनका चरित्र चित्रित किया है। चीनपरिव्राजक यूएन-चुवंगने इनकी सभा देख कर इन्हें बौद्धधर्मका प्रतिपालक कहा है, किन्तु इनकी मधुवन प्रशस्तिसे जाना जाता है, कि राजा हर्षवर्द्धन शैव थे। हर्षवर्द्धन शिलादित्य देखो।

श्रीहर्षदेव—काश्मीरके एक राजा। ये भी श्रीहर्ष कवि कह कर परिचित थे। पिता कलश देवकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के उत्कर्ष राजसिंहासन पर बैठे। कुछ दिन राज्य करनेके बाद उत्कर्षने आत्महत्या कर डाली। पीछे उनके छोटे भाई श्रीहर्षने १०८६ ई०में राजसिंहासन सुशोभित किया। यह एक सत्कवि और बहुभाषावित् थे, राजतरङ्गिणीसे उसका आभास पाते हैं। (राजतर० ८ तर०) राजेन्द्रकर्णपुर और अन्योक्तिमुक्तालताशतकके प्रणेता शम्भु कवि इनकी सभामें विद्यमान थे।

श्रीहर्षदेव—नागानन्दनाटक, प्रियदर्शिकानाटक और रत्नावली नाटिकाके प्रणेता। ये भी श्रीहर्षकवि कह कर परिचित थे। सिन्धुराजपुत्र धाराधिपति भोजदेव-कृत सरस्वतीकण्ठाभरणमें तथा मालवेश्वर मुञ्जके सभासद धनञ्जयकृत दशरूपग्रंथमें नागानन्द और रत्नावलीका श्लोक उदाहरणस्वरूप उद्धृत हुआ है। वाक्‌पति मुञ्ज ९७४-९९५ ई०में विद्यमान थे; क्षेमेन्द्रकृत कविकण्ठाभरणमें भी इसका उल्लेख है। क्षेमेन्द्र काश्मीरपति अनन्तराजकी सभामें (११२९-११६४ ई०) रहते थे। अतएव रत्नावलीके रचयिता श्रीहर्षकवि उनके भी बहुत पहलेके थे, इसमें सन्देह नहीं। कन्नौजराज महेन्द्रपाल और महीपाल (९०३-९०७ ई०में)के सभाकवि राजशेखरने लिखा है, कि इनकी सभामें कवि मतङ्ग और दिवाकर रहते थे। रत्नावलीके नान्दीमुखमें श्रीहर्षराजने हर-पार्वतीको प्रणाम किया है, किन्तु इन्होंने नागानन्दके

रचनाकालमें बुद्धदेवको नमस्कार करके ही मङ्गलाचरण किया। इससे अनुमान किया जाता है, कि राजा श्रीहर्ष पहले ब्राह्मणधर्मके पक्षपाती थे, अन्तमें वे बौद्धधर्मावलम्बी हुए। बहुतेरे इन्हें और सम्राट् हर्षवर्द्धनको एक समझते हैं। हर्षवर्द्धन देखो।

श्रीहर्षदेव—एक कामरूपराजवंशोद्भव। ये गौड़, ओड्र, कलिङ्ग, कोशल आदि देशोंके अधिपति थे। इनकी कन्या राज्यमतीका नेपालके लिच्छवि राज २य जयदेवके साथ ८वीं सदीमें विवाह हुआ। राजा श्रीहर्ष भगदत्तवंशीय थे।

श्रीहस्तिनी (सं० स्त्री०) श्रीयुक्ता हस्तिनीव। १ वृक्षविशेष, हस्तिशुण्डी। पर्याय—भूरुण्डी, नागदन्ती। २ सूर्यमुखीका पौधा।

श्रुग्वाण (सं० क्ली०) विकङ्कत, कंटाई।

श्रुघ्निका (सं० स्त्री०) सज्जीखार।

श्रुत् (सं० त्रि०) श्रोता।

श्रुत (सं० क्ली०) श्रूयते स्मेति श्रु-क्त। १ शास्त्र। २ श्रवणगोचर। (पु०) ३ कालिन्दीके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णके पुत्रका नाम। (त्रि०) ४ जो श्रवण-गोचर हुआ हो, सुना हुआ। ५ जिसे परम्परासे सुनते आते हों। ६ ज्ञात, प्रसिद्ध, ख्यात।

श्रुतकक्ष (सं० पु०) आङ्गीरसगोत्रीय एक वैदिक आचार्यका नाम। (ऋक् ८।८१।२५)

श्रुतकर्मन्—१ सहदेवके पुत्रका नाम। (भाग० ९।२२।२९) २ अर्जुनके पुत्रका नाम। (भारत आदिपर्व) ३ सोमापिके पुत्रका नाम। (विष्णुपुराण)

श्रुतकीर्त्ति (सं० स्त्री०) श्रुता कीर्त्तिर्यस्याः। १ राजा जनकके भाई कुशध्वजकी कन्या जो शत्रुघ्नको ब्याही थी। (रामायण बालका० ७३ स०) २ राजा शूरकी कन्या जो वसुदेवकी बहन और धृष्टकेतुकी पत्नी थी। (भाग० ९।२४।२९) (पु०) ३ देवर्षि। ४ द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न अर्जुनके एक पुत्रका नाम। (भारत १।९३।१२० (त्रि०) ५ कीर्त्तियुक्त, जिसकी कीर्त्ति प्रसिद्ध हो।

श्रुतकीर्त्ति—एक ज्योतिषी। भट्टोत्पलने वृहज्जातकमें इनका उल्लेख किया है।

श्रुतकेवलिन् (सं० पु०) एक प्रकारके अर्हत् जो छः कहे गये हैं। जैन देखो।

श्रुतञ्जय (सं० पु०) १ सेनजित्के पुत्रका नाम। (विष्णुपुराण) सत्यायुके पुत्रका नाम। (भाग० ९।१५।१२)

श्रुततस् (सं० अव्य०) श्रुत-तसिल्। १ शास्त्रतः, शास्त्रसे। २ श्रुतमात्र।

श्रुतत्व (सं० क्ली०) श्रुतस्य भावः। श्रुतका भाव या धर्म, श्रवण।

श्रुतदेव (सं० पु०) श्रीकृष्णके पुत्रका नाम। (भागवत १०।९०।३४)

श्रुतदेवी (सं० स्त्री०) १ शूरकी कन्या और वसुदेवकी बहन। (भाग० ९।२४।२९) श्रुतस्य शास्त्रस्य देवी। २ सरस्वती।

श्रुतधर (सं० त्रि०) धरतीति धरः धृ-अच् श्रुतस्य धरः। १ श्रुतमात्र अर्थधारणकारी। (पु०) २ शाल्मली-द्वीपवासी ब्राह्मणोंकी संज्ञा। (भाग० ५।२०।११) ३ राजभेद। (कथासरित्सा० ७४।२४) ४ एक कवि। जयदेवने गीतगोविन्दकाव्यमें इनका उल्लेख किया है।

श्रुतधर्मन् (सं० पु०) उदापुके एक पुत्रका नाम।

श्रुतधारण (सं० त्रि०) १ श्रुतधर, श्रुतमात्रधारणकारी। २ भगवान्में मनःसंयमनकारी। (भागवत २।७।४६)

श्रुतध्वज (सं० पु०) भारत-वर्णित एक योद्धा।

श्रुतनिगदिन् (सं० त्रि०) जो एक बार सुने हुए पद्य आदिको ज्योंका त्यों कह सके।

श्रुतपाल—एक वैयाकरण। हेमचन्द्र विरचित वृहद्वृत्ति नामक ग्रन्थके न्यासाध्यायमें इनका उल्लेख है।

श्रुतपूर्व (सं० त्रि०) जो पहले सुना गया हो, जाना बूझा।

श्रुतबन्धु (सं० पु०) गौपायन या लौपायन गोत्रसम्भूत एक वैदिक आचार्यका नाम। (ऋक् ५।२४।३)

श्रुतरथ (सं० पु०) सर्वत्र प्रसिद्ध रथयुक्त।

श्रुतर्य (सं० पु०) ऋग्वेद वर्णित एक ऋषिका नाम।

श्रुतर्वन् (सं० पु०) ऋषिभेद। हरिवंश)

श्रुतर्षि (सं० पु०) श्रुतप्रधान ऋषिः। ऋषिविशेष। सुश्रुत आदि ऋषियोंको श्रुतर्षि कहते हैं।

श्रुतवत् (सं० त्रि०) श्रुतं विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य वः। श्रुतज्ञानसम्पन्न, शास्त्रज्ञ। (मनु ३।२७)

श्रुतवर्द्धन (सं० पु०) एक सुप्रसिद्ध चिकित्सक।
श्रुतवर्मन् (सं० पु०) बौद्धभेद।
श्रुतविद् (सं० त्रि०) श्रुतं वेत्ति विद्-क्विप्। श्रुतवेत्ता, शास्त्रवेत्ता।
श्रुतविन्दा (सं० स्त्री०) एक नदी जो कुशद्वीपके वर्षपर्वतसे निकली है।
श्रुतविस्मृत (सं० त्रि०) श्रुत और पीछे विस्मृत।
श्रुतशर्म्मन् (सं० पु०) १ उग्रायुके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश) २ विद्याधर राजभेद।
श्रुतशील (सं० पु०) १ विद्या और सदाचार। (त्रि०) २ विद्वान् और सदाचारी।
श्रुतश्रवस् (सं० पु०) राजभेद।
श्रुतश्रवोऽनुज (सं० पु०) श्रुतश्रवसोऽनुजः। शनैश्वर-ग्रह। (हारावली)
श्रुतश्री (सं० पु०) दैत्यभेद। (भारत उद्योगपर्व)
श्रुतश्रेणी (सं० स्त्री०) द्रवन्ती वृक्ष। इसका दूसरा नाम श्रुतश्रेणी है।
श्रुतसद् (सं० त्रि०) वक्तृतागृह और तत्रत्य श्रोतृ-मण्डली।
श्रुतसेन (सं० त्रि०) प्रसिद्ध सेनायुक्त।
श्रुतसेन (सं० पु०) १ नागभेद। (भारत आदिपर्व) २ दैत्यभेद। ३ जनमेजयके भ्राता। (शतपथब्रा० १३।५।४।३) ४ जनमेजयके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश) ५ परीक्षितके पुत्र। ६ सहदेवके एक पुत्रका नाम। ७ वृकोदरके एक पुत्रका नाम। (विष्णुपु०) ८ शत्रुघ्नके पुत्र। (भारत ६।११।१३) ९ गोकर्णराजभेद।
श्रुतसेना (सं० स्त्री०) श्रीकृष्णकी पत्नीका नाम।
श्रुतसोम (सं० पु०) भीमसेनके एक पुत्रका नाम।
श्रुतादान (सं० क्ली०) श्रुतस्य आदानं। ब्रह्मवाद।
श्रुतानीक (सं० पु०) ऋषिभेद। (भारत द्रोणपर्व)
श्रुतान्त (सं० पु०) भारत वर्णित व्यक्तिभेद।
श्रुतामघ (सं० पु०) १ परिचित व्यक्ति। २ बन्धु।
श्रुताध्ययनसम्पन्न (सं० पु०) श्रुतस्य शास्त्रस्य अध्ययने सम्पन्नः युक्तः। धर्मशास्त्रज्ञ, जो धर्मशास्त्र जानता हो।
श्रुतान्वित (सं० त्रि०) श्रुतेन शास्त्रेन अन्वितः। शास्त्रज्ञ, शास्त्रका जाननेवाला। (भट्टि ९।१)

श्रुतार्थ (सं० पु०) श्रुतोऽर्थः। १ शब्दबोधविषयीभूतार्थ, श्रवणमात्रबोध्य अर्थ, सुननेके साथ ही जो अर्थ समझमें आ जाय। (त्रि०) श्रुतोऽर्थो येन। २ जिससे अर्थ सुना गया हो, जिसने अर्थ सुनाया हो।
श्रुतायु (सं० पु०) १ सूर्यवंशीय एक राजा। ये कुशके चौदहवें पुरुष थे। (मत्स्यपु० १२२) २ विदेहराजभेद। (भागवत ६।१३।२ अ०)
श्रुतायुध (सं० पु०) एक राजा। इसके पिता वरुणने इसे एक ऐसी गदा दी थी, कि जो युद्धकर्त्ता पर फेंकनेसे उसका अवश्य नाश कर देती थी, पर युद्ध न करनेवालेके ऊपर चलानेसे वह लौट कर चलानेवाले हीके प्राण ले लेती थी।
श्रुतावती (सं० स्त्री०) भरद्वाजकी एक कन्याका नाम। (भारत ६ पर्व)
श्रुति (सं० स्त्री०) श्रूयतेऽनयेति श्रु (श्रुयजिस्तुभ्यः करणे। पा ३।३।६४) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या करणे क्तिन्। १ वेद।

"श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रस्तु वै स्मृतिः।"
(मनु २।१०)

वेदको श्रुति और धर्मशास्त्रको स्मृति कहते हैं। जहां वेद और धर्मशास्त्रका विरोध होता है, वहां श्रुतिका प्रमाण ही ग्रहणीय है।
वैदिक और तान्त्रिकभेदसे श्रुति दो प्रकारकी है।
"वैदिकी तान्त्रिकी चैव द्विविधा श्रुतिः कीर्त्तिता।"
(मनुटीकामें कुल्लुकधृत)

२ कर्ण, कान। ३ श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य शब्द और तन्निष्ठ शब्दत्वादिगुण, सुनी हुई बात। ४ श्रु-भावे-क्तिन्। श्रोत-कर्म, सुनना। ५ वार्त्ता, बात, कथन। ६ श्रवणा नक्षत्र। ७ किंवदन्ती, शुहरत, खबर। ८ वाचक शब्द। ९ षड्जाद्यारम्भिका, सूक्ष्म स्वरविशेष, स्वरका अवयव। जब कोई गायक या वादक एक स्वरसे दूसरा स्वर अविच्छेदमें प्रकाश करता है, तब उन दोनों स्वरोंके मध्य, स्थलमें जो अति सूक्ष्म सुरांश अनुभूत होता है, उसे श्रुति कहते हैं। यह श्रुति बाईस प्रकारकी है। यथा—नान्दी, चालनिका, रसा, सुमुखी, चित्रा, विचित्रा, घना, मातङ्गी सरसा, अमृता, मधुकरी, मैत्री, शिवा, माधवी, बाला,

शाङ्गरवी, कला, कलरवा, माला, विशाला, जया और मात्रा।

१० शब्द, ध्वनि। ११ अनुप्रासका एक भेद। १२ श्रुत्यनुप्रास देखो। १३ त्रिभुजके समकोणके सामनेकी भुजा। १४ नाम, अभिधान। १५ विद्वत्ता। १६ विद्या। १७ अत्रि ऋषिकी कन्या जो कर्दमकी पत्नी थीं।

श्रुतिकट (सं० पु०) श्रुति कटतीति कट-अच्। १ प्रायश्चित्त लौह। २ अहि, सर्प, सांप। ३ पापशोधन, प्रायश्चित्त।

श्रुतिकटु (सं० पु०) श्रुतौ कटुः। १ कठोर शब्द। २ काव्य रचनामें एक दोष, कठोर और कर्कश वर्णोंका व्यवहार, दुःश्रवत्व द्वित्ववर्ण, टवर्ग, मूर्द्धन्य वर्ण कठोर माने गये हैं। श्रुतिकटु नित्य दोष नहीं है, अनित्य दोष है, क्योंकि यह सर्वत्र दोष नहीं होता केवल श्रृङ्गार, करुण आदि कोमल रसोंमें कठोर वर्ण दोषावधायक होते हैं, वीर, रौद्र आदिमें नहीं।

श्रुतिकण्ठ (सं० पु०) १ नागभेद। २ प्रथित लौह।

श्रुतिकथित (सं० त्रि०) श्रुतौ कथितः। श्रुत्युक्त, वेदोक्त।

श्रुतिकीर्त्ति (सं० स्त्री०) श्रुतकीर्त्ति देखो।

श्रुतिजीविका (सं० स्त्री०) श्रुतिरेव जीविका यस्याः। १ धर्मशास्त्र। २ वेदजीवनोपाय, श्रुति ही जिसकी जीविका हो।

श्रुतितत्पर (सं० त्रि०) श्रुतौ तत्परः। १ सकर्ण। २ वेदाभ्यासरत।

श्रुतितस् (सं० अव्य०) श्रुति पञ्चम्यर्थे तसिल्। श्रुतिसे या श्रुतिमें।

श्रुतिता (सं० स्त्री०) श्रुतेर्भावः तल् टाप्। श्रुतिका भाव या धर्म, श्रवित्व।

श्रुतिदुष्ट (सं० पु०) श्रुतिकटु दोष, दुःश्रवत्व।

श्रुतिधर (सं० त्रि०) श्रुत्वा श्रवणमात्रेण धरतीति धृ-अच्। श्रुतिमात्रधारक, जिसे सुनते ही स्मरण हो जाता हो। जो श्लोकादि सुनते ही स्मरण रखता हो, उसे श्रुतिधर कहते हैं। गरुड़पुराणमें श्रुतिधर होनेका एक औषध लिखा है; यथा—हस्तिकर्णके मूलको अच्छी तरह चूर्ण कर सौ पल दूधके साथ ७ दिन भोजन करना होता है। इससे भी रोग दूर होते और श्रुतिधरत्व लाभ होता है। मधु और सर्पि खानेसे भी श्रुतिधरत्व लाभ होता है।

श्रुतिन् (सं० त्रि०) श्रुतमनेन श्रुत (इष्टादिभ्यश्च। पा ५।२।८८) इति इनि। श्रवणकारी, जिससे सुना गया हो।

श्रुतिपथ (सं० पु०) श्रुतिरेव पन्थाः। १ श्रुतिमार्ग, वेदरूप पथ। २ श्रवणपथ, श्रवणेन्द्रिय।

श्रुतिमत् (सं० त्रि०) श्रुति-अस्त्यर्थे मतुप्। १ श्रुतिविशिष्ट, श्रुतियुक्त। २ श्रुतवत्, शास्त्रज्ञ।

श्रुतिमण्डल (सं० क्ली०) कर्ण।

श्रुतिमय (सं० त्रि०) श्रुति स्वरूपे मयट्। श्रुतिस्वरूप।

श्रुतिमार्ग (सं० पु०) श्रुतेर्मार्गः। श्रुतिरूपमार्ग, वेदरूपमार्ग, वेदपथ।

श्रुतिमाला (सं० पु०) ब्रह्मा।

श्रुतिमुख (सं० त्रि०) श्रुतिर्मुखे यस्य। १ वेद ही जिसका मुख है। (पु०) २ ब्रह्मा।

श्रुतिमूल (सं० क्ली०) कर्णमूल।

श्रुतिवर्ज्जित (सं० त्रि०) श्रुत्या वर्ज्जितः। १ बधिर, बहिरा। २ वेदरहित।

श्रुतिविन्द (सं० स्त्री०) कुशद्वीपकी एक नदी।

श्रुतिविवर (सं० क्ली०) श्रुत्या विवरं। कर्णविवर।

श्रुतिवेध (सं० पु०) श्रुतेः कर्णस्य वेधो यत्र। कर्णवेध, कनछेदन। ज्योतिषके मतसे शुभ दिन देख कर कर्णवेध करना होता है। ये शुभ दिन ये हैं—रिक्ता भिन्न तिथि, बृहस्पति, बुध और शुक्रवार, अश्विनी, रेवती, हस्ता, चित्रा, पुनर्वसु, धनिष्ठा, मृगशिरा, पुष्या, श्रवणा, अनुराधा, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद और स्वातिनक्षत्र तथा वृष, तुला, धनु और मीनलग्न, शुक्लपक्ष, जन्ममास, चैत्र, पौष और अग्रहायण भिन्न मास, हरिशयन भिन्नकाल, चन्द्र और तारा शुद्धि होनेसे और कालशुद्ध रहनेसे कर्णवेध प्रशस्त है।

श्रुतिशिरस् (सं० क्ली०) वेदशिरा।

श्रुतिशीलवत् (सं० त्रि०) श्रुति-शील अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। श्रुति और शीलयुक्त अर्थात् शास्त्रज्ञ और आचारविशिष्ट। (मनु ३।२७)

श्रुतिसागर (सं० पु०) विष्णुका एक नाम।

श्रुतिस्फोटा (सं० स्त्री०) श्रुतिं स्फोटयतीति स्फुट-अच् टाप्। १ कर्णस्फोटालता। २ कनफोड़ा।

श्रुतिहारिन् (सं० त्रि०) कानोंको अच्छा लगनेवाला, सुननेमें मधुर।

श्रुती (सं० स्त्री०) श्रुति। (मनु ११।३३)

श्रुत्कर्ण (सं० त्रि०) श्रवणसमर्थ कर्णयुक्त।

श्रुत्य (सं० त्रि०) १ श्रवणीय, सुना जाने योग्य। "वाजं श्रुत्यं युवस्व" (ऋक् ७।५।६) 'श्रुत्यं श्रवणीयं' (सायण) २ प्रशस्त। ३ प्रसिद्ध।

श्रुत्यनुप्रास (सं० पु०) अनुप्रास अलङ्कारभेद।

शब्दसाम्य अर्थात् शब्दकी समता होनेसे अनुप्रास कई प्रकारका होता है। जहां अर्थात् तालव्य और दन्त्यादि वर्णके उच्चार्यस्थानमें एकत्र उच्चार्य हेतुक व्यञ्जनका सादृश्य होता है, वहां यह अलङ्कार होता है। एक स्थानसे जिन सब व्यञ्जनोंका उच्चारण होता है, उन सब व्यञ्जनोंका सादृश्य होनेसे उक्त अलङ्कार होगा।

कण्ठ तालु आदि जिस किसी उच्चारण द्वारा व्यञ्जन का सादृश्य होनेसे यह अलङ्कार होता है। यह अलङ्कार गौड़ोंका श्रुतिसुखावह है, इस कारण इसका नाम श्रुत्यनुप्रास हुआ है।

श्रुधीयत् (सं० त्रि०) अपने यश या अन्नकी इच्छा करनेवाला।

श्रुध्य (सं० क्ली०) सामभेद। (लाट्या० ७।३।३५)

श्रुमत् (सं० पु०) ऋषिभेद। (पा ५।३।११८)

श्रुयमाण (सं० त्रि०) श्रु-शानच्। जो सुना जाय।

श्रुव (सं० पु०) श्रु-क। १ याग। (जटाधर) (क्ली०) २ स्रुव।

श्रुवा (सं० स्त्री०) मूर्व्वा।

श्रुवावृक्ष (सं० पु०) विकङ्कतवृक्ष।

श्रुष—वैदिक धातु, श्रोषमाणार्थ। (ऋक् ३।८।१०)

श्रुषा (सं० स्त्री०) कासमर्द, कसौंदा।

श्रुष्टि (सं० स्त्री०) १ यजमान, क्षिप्रकर्मानुष्ठाता। (ऋक् १।६७।१) २ सब जगह श्रूयमाणा समृद्धि। (ऋक् १।१७६।१) ३ क्षिप्र। (निघण्टु ४।३) ४ धन।

श्रुष्टिगु (सं० पु०) काण्वगोत्रीय ऋषिविशेष। इनके वंशधर श्रौष्टिगव कहलाते हैं।

श्रुष्टिमत् (सं० त्रि०) श्रुष्टि अस्त्यर्थे मतुप्। धनयुक्त, धनाढ्य।

श्रेष्टीवन् (सं० त्रि०) फलदानभागी।

श्रेढ़ी (सं० स्त्री०) अङ्कविशेष, एक प्रकारका पहाड़ा। कितनी राशि यदि इस प्रकार विन्यस्त रहे जो प्रत्येक अपनी अपनी परवर्त्ती राशिकी अपेक्षा समान परिमाणमें गुरु या लघु हो, तो उसे श्रेढ़ी कहते हैं। लीलावतीमें इस अङ्कके विशेष नियम और उदाहरण दिये हुये हैं।

श्रेणि (सं० पु० स्त्री०) श्रयति श्रीयते वा श्रि (वहिश्रिश्रुयुद्रिति। उण् ४।५१) इति णि। १ निच्छिद्रपंक्ति, बहुत-सी वस्तुओंका ऐसा समूह जो उत्तरोत्तर रेखाके रूप में कुछ दूर तक चला गया हो, पांति, कतार। पर्याय—पंक्ति, श्रेणी, विञ्जोली, वीथी, आलि, पालि, आवलि, आली, पाली, आवली, वीथी, वीथिका, राजी, राजि, रेखा, लेखा। (शब्दरत्ना०) २ एकके उपरान्त दूसरा लगातार क्रम, शृङ्खला, परम्परा, सिलसिला। ३ समान व्यवसायियोंका दल, एक ही कारवार करनेवालोंकी मंडली। ४ दल, समूह। ५ सेना, फौज। ६ किसी वस्तुका अगला या ऊपरी भाग। ७ सीढ़ी, जीना। ८ जंजीर, सिकड़ी। ९ पानी भरनेका डोल।

श्रेणिक (सं० पु०) १ मगध देशीय राजविशेष। ये शाक्यबुद्धके समसामयिक थे और बिम्बिसार नामसे प्रसिद्ध थे। श्रेणि स्वार्थे-कन्। २ श्रेणि देखो। ३ छन्दोभेद। इसका १, ३, ५, ७, ९ और ११ वां वर्ण लघु तथा २, ४, ६, ८, १० वां वर्ण गुरु होता है। ४ राजदन्त, अगला दांत।

श्रेणिका (सं० स्त्री०) १ डेरा, खेमा, तंबू। २ एक तृण।

श्रेणिकृत (सं० त्रि०) श्रेणिबद्धभावमें विद्यमान, कतार बांधे हुए।

श्रेणिदत् (सं० त्रि०) स्तोत्रसे अभीष्ट फलसमूहप्रदानकारी या शत्रुओंका ज्वालाकारी। (ऋक् १०।२०।३)

श्रेणिबद्ध (सं० त्रि०) कतार बांधे हुए, पंक्तिके रूपमें स्थित।

श्रेणिमत् (सं० पु०) १ सेनापति। २ दलपति। ३ वणिग्दलका नेता।

श्रेणिशस् (सं० अव्य०) श्रेणि-व-शस्। श्रेणिरूपमें, श्रेणिवद्धभावमें।

श्रेणी (सं० स्त्री०) श्रेणि देखो।

श्रेणीकृत (सं० त्रि०) श्रेणिकृत, कतारसे सजा हुआ।

श्रेणीधर्म (सं० पु०) व्यवसायियोंकी मण्डली या पंचायतकी रीति या नियम। (मनु ८।४१)

श्रेणीवन्ध (सं० त्रि०) पंक्तिके रूपमें स्थित, कतार बांधे हुए।

श्रेण्य (सं० पु०) श्रेयिक देखो।

श्रेतृ (सं० त्रि०) श्रि-तृच्। १ आश्रय ग्रहणकारी, शरण लेनेवाला। २ सेवा करनेवाला।

श्रेमन् (सं० पु०) प्रशस्य-इमन्। श्रेष्ठत्व, जगद्वन्द्यत्व।

श्रेय (सं० क्ली०) सामभेद।

श्रेयस् (सं० क्ली०) इदमनयोरतिशयेन प्रशस्यं प्रशस्य ईयसुन् (प्रशस्यस्य श्रः। पा ५।३।६०) इति ईयसुन्। १ धर्म, पुण्य, सदाचार। २ मुक्ति। मनुमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों श्रेयः कहलाते हैं। ३ कल्याण, मंगल, वेहतरी। ४ अच्छापन। ५ ज्योतिषमें दूसरा मुहूर्त्त। ६ वर्त्तमान अवसर्पिणीके ग्यारहवें अर्हत्। (त्रि०) ७ अधिक, अच्छा, वेहतर। ८ कल्याणकारी, मंगलदायक। ९ कीर्त्तिकर, यश देनेवाला। १० श्रेष्ठ, उत्तम।

श्रेयसी (सं० स्त्री०) श्रेयस् उगित्वात् ङीष्। १ हरीतकी, हर्रे। २ पाठा, पाठी। ३ करिपिप्पली, गजपीपल। ४ रास्ना। ५ प्रियंगु। ६ शुभयुक्ता।

श्रेयःकेत (सं० त्रि०) श्रेष्ठ विचारक।

श्रेयःपरिश्रम (सं० त्रि०) मुक्तिके लिये श्रम या कामना करनेवाला।

श्रेयस (सं० क्ली०) अतिशय मङ्गल।

श्रेयस्कल्प (सं० पु०) १ श्रेष्ठकल्प। २ शुभकल्प। ३ शुभ किंवा श्रेष्ठ सदृश।

श्रेयस्कर (सं० त्रि०) श्रेयः करोतीति कृ-ट। शुभकर, मङ्गलजनक।

श्रेयस्काम (सं० पु०) श्रेयः कामो यस्य। शुभकामो, मंगल चाहनेवाला।

श्रेयस्कृत (सं० त्रि०) श्रेयस्करोतीति कृ-क्विप् तुकच। श्रेयस्कर, शुभकर, मङ्गलजनक।

श्रेयस्त्व (सं० क्ली०) श्रेयसो भावः श्रेयस्-त्व। श्रेयका भाव या धर्म, श्रेष्ठत्व, शुभत्व।

श्रेयांस (सं० पु०) वृत्ताद्विशेष।

जैन शब्दमें जीवनी देखो।

श्रेयांसनाथ (सं० पु०) वर्त्तमान अवसर्पिणीके ग्यारहवें अर्हत् या तीर्थंकर।

श्रेयोमय (सं० त्रि०) श्रेयस् स्वरूपे मयट्। श्रेयः स्वरूप, मङ्गलमय, शुभमय।

श्रेष्ठ (सं० क्ली०) अयमेषामतिशयेन प्रशस्य-इष्ठन् (प्रशस्य श्रः, पा ५।३।६०) इति श्र। १ गोदुग्ध, गायका दूध। (पु०) २ कुवेर। ३ नृप, राजा। ४ द्विज, ब्राह्मण। ५ विष्णु। (विष्णुसहस्रनाम) ६ महादेव। (भारत १३।१७।४०) (त्रि०) ७ प्रशस्त, वर। पर्याय—श्रेयस्, पुष्कल, सत्तम, अतिशोभन, मुख्य, वरेण्य, प्रमुख, अग्र, अग्रहर, उत्तम, प्रग्रह, अनुत्तम, अग्रीय, प्रवेक, अग्र्य, अग्रिय, अनवर, अग्रिम, प्राग्र, प्राग्रहर, प्रवर्ह। ८ वृद्ध, बूढ़ा। ९ ज्येष्ठ, वड़ा। १० कल्याण-भाजन।

श्रेष्ठकाष्ठ (सं० पु०) श्रेष्ठं काष्ठमस्य। १ शाकवृक्ष, सागवानका पेड़। २ घरमें लगा प्रधान स्तम्भ।

श्रेष्ठतम (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन श्रेष्ठः श्रेष्ठ (अतिशयने तमविष्ठनौ। पा ५।३।५५) इति तमप्। सर्वोमें जो प्रधान हो उसे श्रेष्ठतम कहते हैं।

श्रेष्ठतर (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन श्रेष्ठः श्रेष्ठ तरप्। दोमें जो प्रधान हो।

श्रेष्ठतस (सं० अव्य०) श्रेष्ठ-तसिल्। श्रेष्ठ व्यक्तिसे।

श्रेष्ठता (सं० स्त्री०) श्रेष्ठस्य भावं तल्-टाप्। १ श्रेष्ठ होनेका भाव, प्रधानता, गुरुता, वड़ाई। २ उत्तमता।

श्रेष्ठपाल (सं० पु०) वौद्धराजभेद।

श्रेष्ठभाज (सं० त्रि०) श्रेष्ठं भजते भज-ण्वि। प्रधानभागी।

श्रेष्ठमल्लिका (सं० स्त्री०) शतदलमल्लिका। (पर्यायमुक्ता)

श्रेष्ठलवण (सं० क्ली०) सैन्धवलवण, सेंधा नमक।

श्रेष्ठवर्चस् (सं० त्रि०) श्रेष्ठं वर्चो यस्य। प्रशस्ततेजस्क, प्रशस्त तेजोयुक्त। (ऋक् ५।६५।२)

श्रेष्ठवाच् (सं० त्रि०) श्रेष्ठा वाक् यस्य। श्रेष्ठवाक्य-युक्त, उत्तम वाक्यविशिष्ट। (रामायण २।७६।१)

श्रेष्ठवृक्ष (सं० पु०) १ वरुणवृक्ष। २ कृष्णागुरु वृक्ष, काला अगरका पेड़।

श्रेष्ठवेधिका (सं० स्त्री०) कस्तूरी, मृगनाभि।

श्रेष्ठव्रीहि (सं० पु०) षष्टिक शालि, साठी धान।

श्रेष्ठशाक (सं० क्ली०) वरपोत शाक।

श्रेष्ठशोचिस् (सं० त्रि०) प्रशस्ततम तेजोयुक्त, अति तेजस्वी। (ऋक् ८।१६।४)

श्रेष्ठसेन (सं० पु०) काश्मीरका एक राजा। (राजतर० ३।९७)

श्रेष्ठा (सं० स्त्री०) श्रेष्ठ टाप्। १ स्थलपद्मिनी, स्थल पद्म। २ मेदा। ३ त्रिफला। (वाभट चि० १२ अ०) ४ बहुत उत्तमा स्त्री।

श्रेष्ठाम्बु (सं० क्ली०) १ तण्डुलोदक। (वाभट उ० ३७ अ) २ श्रेष्ठ जल, उत्तम जल।

श्रेष्ठाम्ल (सं० क्ली०) श्रेष्ठं अम्लं। वृक्षाम्ल।

श्रेष्ठाश्रम (सं० पु०) श्रेष्ठः आश्रमः। गृहस्थाश्रम। इस आश्रमके लोग दूसरे आश्रमियोंका पालन करते हैं, इसीसे गृहस्थाश्रम श्रेष्ठाश्रम है।

श्रेष्ठिन् (सं० पु०) श्रेष्ठं धनादिकमस्त्यस्येति इनि। व्यापारियों या वणिकोंका मुखिया, प्रतिष्ठित व्यवसायी, महाजन।

श्रेष्ठ्य (सं० क्ली०) श्रेष्ठ। (अथर्व १।९।३)

श्रोण (सं० पु०) श्रोणतीति श्रोण संघाते अच् यद्वा शृणोतीति श्रो श्रवणे बाहुलकात् न। पंगु, खञ्ज।

श्रोणकोटिकर्ण (सं० पु०) बौद्धयतिभेद।

श्रोणकोटिविंश (सं० पु०) बौद्धयतिभेद।

श्रोणा (सं० स्त्री०) श्रोण संघाते अच् टाप्। १ श्रवणा नक्षत्र। (भाग० ८।१८।५) २ काञ्जि, भातका मांड़। (त्रि०) ३ पक, पका हुआ या सिद्ध।

श्रोणापरान्त (सं० क्ली०) जनपदभेद।

श्रोणि (सं० स्त्री०) श्रोण संघाते इन्, यद्वा श्रु श्रवणे यद्वा (वहि श्रु श्रुत्विति। उण् ४।५१) इति णि। १ कटि-देश, कमर। २ नितम्ब, चूतड़। ३ पथ, मार्ग। ४ यज्ञकी वेदिका किनारा।

श्रोणिकपाल (सं० क्ली०) जङ्घास्थि। (एतरेयब्रा० १।२२)

श्रोणिका (सं० स्त्री०) नितंब, चूतड़। (पञ्चरत्न २५।२८)

श्रोणितस् (सं० अव्य०) कटि या कमरसे। (शुक्लयजु० २१।४३)

श्रोणिप्रतोदिन् (सं० त्रि०) पीछेसे पीड़ा करनेवाला। (अथर्व ८।६।१३)

श्रोणिफल (सं० क्ली०) श्रोणिः फलं फलकमिव। कटिदेश, मध्यभाग।

श्रोणिफलक (सं० क्ली०) श्रोणिफल स्वार्थे कन्। कटि-पार्श्व। पर्याय—कट।

श्रोणिबिम्ब (सं० क्ली०) कटिसूत्र, करधनी।

श्रोणिवेध (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

श्रोणिसूत्र (सं० क्ली०) श्रोणिस्थितं सूत्रं। १ खड्ग-बन्धनसूत्र, परतला। २ कटिबन्धनसूत्र, करधनी।

श्रोणी (सं० स्त्री०) श्रोणि वा ङीप्। १ कटि, कमर। २ पथ, मार्ग। ३ नितम्ब, चूतड़। ४ कटिप्रदेश, मध्य-भाग।

श्रोणीका (सं० स्त्री०) नितंब, चूतड़। (पञ्चरत्न १।१०।६७)

श्रोणीफल (सं० क्ली०) कटिदेश, मध्यभाग।

श्रोण्य (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

श्रोतः आपत्ति (सं० स्त्री०) बौद्धशास्त्रके अनुसार मुक्ति या निर्वाणसाधनाकी प्रथम अवस्था जिसमें बंधन ढीले होने लगते हैं। बौद्धशास्त्रमें पांच प्रतिबन्ध माने गये हैं—आलस्य, हिंसा, काम, विचिकित्सा और मोह। श्रोतःआपन्नको ये पांचों बन्धन छोड़ते तो नहीं पर क्रमशः ढीले होते जाते हैं। इस अवस्थाको प्राप्त साधक-को केवल सात बार और जन्म लेना पड़ता है। इस अवस्थाके उपरान्त 'सकृदागामी' की अवस्था है जिसमें प्रथम तीन बंधन सर्वथा छूट जाते हैं और एक ही जन्म और लेना रह जाता है।

श्रोतः आपन्न (सं० त्रि०) बौद्धशास्त्रके अनुसार मुक्ति या निर्वाणकी साधनामें प्रथम अवस्थाको प्राप्त जिसमें क्रमशः बंधन ढीले होने लगते हैं।

श्रोतक (सं० त्रि०) १ श्रवणीय, सुनने योग्य। २ जिसे सुनना हो।

श्रोतव्य (सं० त्रि०) श्रो-तव्य। श्रवणीय, सुनने योग्य।

श्रोतस् (सं० क्ली०) श्रो-असुन् तुट् च। १ कर्ण, कान। २ नदीका वेग। ३ इन्द्रिय।

श्रोतुराति (सं० त्रि०) सब जगह श्रूयमाण धनशाली, जिसके धनका विषय सब जगह सुना जाय, प्रसिद्ध धनी। (ऋक् १।१२२।६)

श्रोतृ (सं० त्रि०) शृणोतीति श्रु-तृच्। १ श्रवणकर्त्ता, सुननेवाला। २ कथा या उपदेश सुननेवाला।

श्रोत्र (सं० क्ली०) श्रूयतेऽनेनेति श्रु (हु या मा श्रु भसिभ्य त्रन्। उण् ४।१६७) इति त्रन्। १ कर्ण, कान। २ वेदज्ञान।

श्रोत्रकान्ता (सं० स्त्री०) एक पौधा जो औषधके काममें आता है।

श्रोत्रज्ञ (सं० त्रि०) श्रोत्र-ज्ञा-क। १ श्रवणपटु। २ श्रोत्र-विषयमें अभिज्ञ।

श्रोत्रज्ञता (सं० स्त्री०) श्रोत्रज्ञस्य भावः तल-टाप्। श्रोत्रज्ञका भाव या धर्म, श्रवणेन्द्रिय, श्रवण।

श्रोत्रतस् (सं० अव्य०) श्रोत्र-तसिल्। श्रोत्रसे, श्रोत्र-विषयमें।

श्रोत्रता (सं० स्त्री०) श्रोत्रस्य भावः तल टाप्। श्रोत्रका भाव या धर्म, श्रवण।

श्रोत्रनेत्रमय (सं० त्रि०) श्रोत्रनेत्रस्वरूपे मयट्। श्रोत्र और नेत्रस्वरूप।

श्रोत्रपति (सं० पु०) श्रोत्रेन्द्रियाधिपति।

श्रोत्रपदवी (सं० स्त्री०) श्रोत्रस्य पदवी पन्थाः। श्रोत्र-पथ।

श्रोत्रपा (सं० त्रि०) श्रोत्रं पाति रक्षति पा-क्विप्। श्रोत्ररक्षक, श्रोत्रेन्द्रियरक्षक।

श्रोत्रपालि (सं० पु०) कर्णपालि।

श्रोत्रपटु (सं० पु०) श्रोत्रे श्रवणविषये पटुः। श्रवणशक्ति-पटु, श्रवणपटु, श्रवणकुशल।

श्रोत्रपेय (सं० त्रि०) सम्मानके साथ जो सुना गया हो।

श्रोत्रभिद् (सं० त्रि०) कर्णभेदकारी, कान छेदनेवाला।

श्रोत्रभृत् (सं० स्त्री०) इष्टका-यागभेद।

श्रोत्रमय (सं० त्रि०) श्रोत्र-स्वरूपे मयट्। श्रोत्रस्वरूप।

श्रोत्रमार्ग (सं० पु०) श्रोत्रस्य मार्गः। श्रवणमार्ग, श्रवण पथ।

श्रोत्रमूल (सं० क्ली०) श्रोत्रस्य मूलं। श्रवणमूल, कर्ण-मूल।

श्रोत्रवत् (सं० त्रि०) श्रोत्र अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। श्रोत्रविशिष्ट, श्रवणशक्तिविशिष्ट।

श्रोत्रवादिन् (सं० त्रि०) १ इच्छुक। २ प्रशस्तमना।

श्रोत्रस्विन् (सं० त्रि०) श्रोत्रसम्पन्न।

श्रोत्रहीन (सं० त्रि०) श्रोत्रेण हीनः। श्रोत्ररहित, श्रवणशक्तिहीन, बहिरा।

श्रोत्रिय (सं० पु०) छन्दोऽधीते इति छन्दस् (श्रोत्रियं श्छन्दोऽधीते। पा ५।२।८४) इति घन् प्रत्ययेन साधुः। १ वेदविद्‌ब्राह्मण।

जिससे धर्म और अधर्म जाना जाता है, उसे श्रोत्र कहते हैं। वेदसे धर्माधर्मका विषय ज्ञात होता है, इस कारण वेदका नाम श्रोत्र है। यह वेद जो अध्ययन करते या जानते हैं, वे ही श्रोत्रिय हैं।

"जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।
वेदाभ्यासी भवेद्विप्रः श्रोत्रियस्त्रिभिरेव हि॥"
(पद्मपु० उत्तरख० ११६ अ०)

जन्म द्वारा ब्राह्मण अर्थात् ब्राह्मण पिताके औरस और ब्राह्मणी माताके गर्भसे उत्पन्न सन्तान ब्राह्मण हैं। उनका यथाविधान उपनयनादि संस्कार होनेसे वे द्विज हुए। अनन्तर गुरुके घर नियमानुसार वेदाभ्यास करनेके बाद वे विप्र कहलाये। जन्म, संस्कार और वेदाभ्यासी ये तीनों गुण जिनमें हैं, वे ही श्रोत्रिय हैं।

"एकां शाखां सकल्पां वा षड्‌भिरङ्गैरधीत्य च।
षट्‌कर्मनिरतो विप्रः श्रोत्रियो नाम धर्मवित्॥"
(दानकमलाकर)

जो ब्राह्मण ६ अङ्गोंके साथ सकल्प एक शाखा और षट्‌कर्ममें निरत रहते हैं, उन्हें श्रोत्रिय कहते हैं।

२ गौड़वासी जो सब ब्राह्मण कुलीन न समझे जाते हैं, वे ही श्रोत्रिय हैं। शुद्ध, साध्य और कष्टभेदसे श्रोत्रिय तीन प्रकारका है। कुलीन शब्द देखो।

श्रोत्रियता (सं० स्त्री०) श्रोत्रियस्य भावः तल्-टाप्। श्रोत्रिय धर्म। पर्याय—श्रोत्र। (त्रिका०)

श्रोत्रियत्व (सं० क्ली०) श्रोत्रिय भावे त्व। श्रोत्रियता।

श्रोत्रियसात् (सं० अव्य०) श्रोत्रियको देय, वेदविद् ब्राह्मणको जो दिया जाय।
श्रोत्री (हिं० पु०) श्रोत्रिय देखो।
श्रोत्रेन्द्रिय (सं० क्ली०) श्रावणेन्द्रिय।
श्रोमत (सं० क्ली०) कीर्त्तिमत्त्व, कीर्त्तिमानका भाव या धर्म। (ऋक् १।१८२।७)
श्रौत (सं० क्ली०) श्रुतौ भवं श्रुति-अण्। १ अग्नित्रय, तीन प्रकारकी अग्नि—गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण। श्रुतौ भवः श्रुति-अण्। २ श्रुतिविहित धर्मादि। धर्म दो प्रकारका है,—श्रौत और स्मार्त्त। वेदविहित जो सब धर्म है, उसका नाम श्रौत ; दान, अग्निहोत्र और यज्ञ ये सब श्रौत तथा वर्णाश्रम, आचार, यमनियम आदि स्मार्त्त अर्थात् स्मृतिविहित हैं। यही दो प्रकारका धर्म है। वैदिक यज्ञादि कर्म ही श्रौत कहलाता है।
श्रौतकर्म स्वयं करना चाहिए। यह कर्म करनेमें नितान्त असमर्थ होने पर दूसरेसे भी करा सकते हैं।
श्रौतऋषि (सं० पु०) ऋषिभेद, श्रौतर्षि।
श्रौतकक्ष (सं० क्ली०) सामभेद। (पञ्च० ब्रा० ६।२.७)
श्रौतवर्ण (सं० क्ली०) सामभेद।
श्रौतर्ष (सं० पु०) श्रौतर्षिका गोत्रापत्य, देवभाग नामक ऋषि। (तैत्तिरीयब्रा० ३।१०।६।११)
श्रौतश्रव (सं० पु०) श्रौतश्रवाके अपत्य, शिशुपाल।
श्रौतसूत्र (सं० क्ली०) यज्ञादिके विधानवाले सूत्र। कल्प ग्रन्थका वह अंश जिसमें पौर्णमास्येष्टिसे ले कर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञोंका विधान है। दो प्रकारके वैदिक सूत्रग्रन्थ मिलते हैं—श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र। श्रौतसूत्रोंमें यज्ञोंका विधान है। सूत्रकार कई हैं। जैसे,—आश्वलायन, आपस्तम्ब, कात्यायन, द्राह्यायण।
श्रौतहोम (सं० क्ली०) सामवेदका एक परिशिष्ट।
श्रौति (सं० पु०) श्रौत ऋषिका अपत्यादि। इनके वंशधर श्रौतीय कहलाते हैं।
श्रौत्र (सं० क्ली०) श्रोत्रमेव प्रज्ञादित्वादण्। १ कर्ण, कान। श्रोत्रियस्य भावः कर्म वा (हायनान्तयुवादिभ्योऽण्। पा ५।१।१३०) इत्यण्। 'श्रोत्रियस्य यलोपश्च वाच्याय' इति यलोपः। २ श्रोत्रियका भाव या कर्म पर्याय—श्रोत्रियता। (शब्दरत्ना०) श्रोत्रस्य भावः कर्म वा अण्। श्रौत्रकर्म। श्रोत्राणां समूहः (भिक्षादिभ्योऽण्। पा ४।२।३८) इति अण्। ४ श्रोत्रसमूह।
श्रौत्रकर्म (सं० पु०) वेदविहित यागादि कर्म, यज्ञ।
श्रौत्रजन्मन् (सं० पु०) द्विजोंका उपनयन संस्कार जिसमें वे वेदके अधिकारी हो कर द्वितीय जन्म प्राप्त करते हैं।
श्रौत्रियक (सं० क्ली०) श्रोत्रियस्य भावः कर्म वा (द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च। पा ५।१।१३३) इति वुञ्। श्रोत्रियका भाव या कर्म।
श्रौमत (सं० पु०) श्रुमतका गोत्रापत्य।
श्रौमत्य (सं० पु०) श्रौमत स्वार्थे ष्यञ्। श्रुमतका अपत्य।
श्रौषट् (सं० अव्य०) १ देवहविर्दान। देवताओंके उद्देश्यसे हविर्दान किये जाने पर इस मन्त्रसे देना होता है। २ श्रवण या श्रोता। (ऋक् १।१३९।१)
श्रौष्ट (सं० क्ली०) सामभेद।
श्रौष्टी (सं० त्रि०) क्षिप्रगामी, तेजीसे जानेवाला।
श्रौष्टीगव (सं० क्ली०) सामभेद।
श्रौष्टीय (सं० क्ली०) सामभेद।
श्लाह्न (सं० क्ली०) श्रिय आह्वा यस्य। पद्म, कमल।
श्लक्ष्ण (सं० त्रि०) श्लिषा-अलिङ्गने। (श्लिषेश्चोपधायाः। उण् ३।१९) इति क्स्नः, अकारश्चोपधायाः। १ अल्प, थोड़ा। २ सूक्ष्म, कृश। ३ स्निग्ध। ४ चिक्कण। ५ मनोहर।
श्लक्ष्णक (सं० त्रि०) श्लक्ष्णमेव स्वार्थे कन्। १ मनोहर। २ श्लक्ष्ण देखो। (क्ली०) पूगीफल, सुपारी।
श्लक्ष्णता (सं० स्त्री०) श्लक्ष्णस्य भावः तल टाप्। श्लक्ष्णत्व, श्लक्ष्णका भाव या धर्म।
श्लक्ष्णत्वच् (सं० पु०) श्लक्ष्णा मनोहरा त्वक् यस्य। १ अश्मन्तकवृक्ष। २ सुन्दर वल्कल।
श्लक्ष्णन (सं० क्ली०) मसृण।
श्लथ (सं० त्रि०) श्लथयतीति श्लथ-अच्। १ शिथिल, ढीला। २ दुर्बल, अशक्त। ३ मन्द, धीमा। ४ न बंधा हुआ, छूटा हुआ।
श्लथत्व (सं० क्ली०) श्लथस्य भावः तल् टाप्। श्लथका भाव या धर्म, शैथिल्य, ढीलापन।

श्लथबन्धन (सं० त्रि०) जिसके बन्धन ढीले हो गये हों।

श्लनवास (सं० पु०) अर्हत्‌भेद। (तारनाथ)

श्लवण (सं० त्रि०) श्रवण। (पञ्चविंशब्रा० २१।१४।१६)।

श्लाक्ष्णभारिक (सं० त्रि०) श्लक्ष्ण-भारवहन या हरण-कारी।

श्लाक्ष्णिक (सं० त्रि०) १ सुन्दररूपसे पाठकारी या ज्ञात। २ श्लक्ष्ण-वहनकारी। (पा० ५।१।५०)

श्लाघन (सं० त्रि०) श्लाघने इति श्लाघ-ल्यु। १ श्लाघा-कारी, अपनी प्रशंसा करनेवाला। (क्लो०) श्लाघ-ल्युट्। २ श्लाघा, अपनी प्रशंसा करना, डींग हांकना

श्लाघनीय (सं० त्रि०) श्लाघ-अनीयर्। १ श्लाघाके योग्य, तारीफके लायक। २ श्रेष्ठ, उत्तम।

श्लाघनीयता (सं० स्त्री०) श्लाघनीयस्य भावः तल्-टाप्। श्लाघनीयका भाव या धर्म, श्लाघा।

श्लाघा (सं० स्त्री०) श्लाघ-कत्थने अ-टाप्। १ प्रशंसा, तारीफ। २ स्तुति, बड़ाई। ३ खुशामद, चापलूसी। ४ इच्छा, चाह। ५ आज्ञा-पालन।

श्लाघित (सं० त्रि०) १ प्रशंसित, जिसकी तारीफ हुई हो। २ श्रेष्ठ, उत्तम, अच्छा।

श्लाघ्य (सं० त्रि०) श्लाघ-ण्यत्। १ श्लाघनीय, प्रशंस्य, सराहने योग्य। २ श्रेष्ठ, अच्छा।

श्लाघ्यता (सं० स्त्री०) श्लाघ्यस्य भावः तल् टाप्। श्लाघ्यका भाव या धर्म, श्लाघा।

श्लिकु (सं० क्ली०) श्लिष्यति ग्रहादीनिति श्लिष (श्लिषेः कश्च। उण् १।३३) इति कु, कश्चान्तादेशः १ ज्योतिःशास्त्र। २ भृत्य। ३ षिड्ग, लंपट।

श्लिषा (सं० स्त्री०) १ आलिङ्गन, परिरम्भण। २ संयुक्त होना, मिलना।

श्लिष्ट (सं० त्रि०) श्लिष-क्त। १ श्लेषयुक्त अर्थ, जिसके दोहरे अर्थ हों। इसका लक्षण—

"श्लिष्टमिष्टमविस्पष्टमेकरूपान्वितं वचः।"

(सरस्वतीकण्ठाभरण)

अभिलषित अथच अविस्पष्ट एकरूपान्वित वाक्य को श्लिष्ट कहते हैं। एककी निन्दा करनी होगी, किन्तु श्लेष द्वारा कहना होगा, यहां पर एक ऐसे वाक्यका प्रयोग करना होगा जिससे विस्पष्टभावमें समझ न सके फिर भी अन्तमें अभीष्ट विषयका प्रकाश हो, ऐसा ही पद श्लिष्ट है। श्लेष शब्द देखो।

२ संसृष्ट, मिला हुआ, सटा हुआ, एकमें जुड़ा हुआ। ३ संयुत, अच्छी तरह जमा हुआ, चिपका हुआ। ४ आलिङ्गित, भेटा हुआ।

श्लिष्टरूपक (सं० क्ली०) रूपकालङ्कारभेद। जहां श्लिष्ट शब्द द्वारा रूपकालङ्कार होता है, वहां यह अलङ्कार होता है।

श्लिष्टवर्त्मन् (सं० पु०) अक्लिन्न वर्त्म, परिष्कार पथ।

श्लिष्टाक्षेप (सं० पु०) आक्षेपालङ्कारविशेष।

जहां श्लिष्टपद प्रयोग द्वारा आक्षेप होता है वहां यह अलङ्कार होगा।

अमृतस्वरूप पद्मसदृश स्निग्ध तारकायुक्त मुखरूप चन्द्रके विद्यमान रहते दूसरे चन्द्रका फिर प्रयोजन हो क्या? यहां मुख्यचन्द्रके गुणोंका मुखचन्द्रमें उसी रूपमें वर्णन कर मुख्यचन्द्र आक्षिप्त निष्प्रयोजनरूपमें प्रतिषिद्ध हुआ है। ऐसे श्लिष्टपद द्वारा जहां आक्षेप अर्थात् निष्प्रयोजनरूपमें प्रतिषेध होता है वहां यह अलङ्कार होगा।

श्लिष्टि (सं० पु०) १ ध्रुवके एक पुत्रका नाम। (स्त्री०) २ जोड़, मिलान, लगाव। ३ आलिङ्गन, परिरम्भण।

श्लिष्टोक्ति (सं० स्त्री०) श्लिष्टा उक्तिः। श्लेषयुक्त वाक्य-कथन।

श्लीपद (सं० क्ली०) श्रीयुक्तं वृद्धिमत् पदमत्र ति पृषो-दरादित्वात् साधुः। स्फीतपादादि, टांग फूलनेका रोग, फीलपाव। पर्याय—पादवल्मीक।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि जिस देशकी भूमि बहुत नीची है और इस कारण जल नहीं सूख सकता तथा वह जमीन सर्वदा उस संरुद्ध जलसे डूबी रहती है और जहां सूर्यकिरणकी अल्पताके कारण जल बिलकुल नहीं सूखता उन सब स्थानोंमें श्लीपद रोग अधिक होता है।

इसकी चिकित्सा—उपवास, प्रलेप, स्वेद, विरेचन, रक्तमोक्षण और कफघ्न औषध द्वारा श्लीपद रोगकी चिकित्सा करनी होती है। सफेद सरसों, सहिजन, देवदारु और सोंठ, इनका समान भाग ले कर गोमूत्र

द्वारा पीस कर प्रलेप देनेसे श्लीपद प्रशमित होता है।

शाखोट वृक्षके वल्कलसे क्वाथ तैयार कर गोमूत्रके साथ पान करनेसे श्लीपद रोग विनष्ट होता है। कच्ची हल्दी और गुड़, दोनों मिला कर २ तोला, गोमूत्रके साथ पान करनेसे अथवा पुनर्णवा, त्रिफला और पिप्पली चूर्ण, इनका समान भाग मधुके साथ चाटनेसे बहुत दिनोंका श्लीपद रोग दूर होता है। भेरेण्डके तेलमें हरेंको सिद्ध कर गोमूत्रके साथ पान करनेसे ७ दिनमें श्लीपद विनष्ट होता है। (भावप्रकाश श्लीपदरोगाधि०)

इस रोगमें मदनादिलेप, कणादिचूर्ण, पिप्पल्यादि चूर्ण, वृद्धदारकादि चूर्ण, कृष्णादि मोदक, नित्यानन्द रस, श्लीपदारि, श्लीपदगजकेशरी, सोमेश्वरघृत और विड़ङ्गादि तैल विशेष उपकारी है।

श्लीपदगजकेशरी (सं० पु०) श्लीपदरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु, विष, यमानी, पारद, गंधक, चितामूल, मैनसिल, सोहागा, जमालगोटा, इनके समान भागको भीमराज, गोक्षुर, जम्बीर और अदरकके रसमें मर्दन कर १ रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान उष्ण जल है। इस औषधका सेवन करनेसे श्लीपद और प्लीहारोग दूर होते हैं। (भैषज्यरत्ना०)

श्लीपदप्रभव (सं० पु०) श्लीपदवत् प्रभवतीति प्र-भू अच्। आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

श्लीपदापह (सं० पु०) श्लीपदं अपहन्तीति हन-ड। पुत्रजीव वृक्ष।

श्लीपदारि (सं० पु०) औषधविशेष। नीमकी जड़की छाल और खैर समभाग मिला कर गोमूत्र और मधुके साथ १ तोला परिमाणमें खानेसे श्लीपदरोग शान्त होता है।

श्लीपदिन् (सं० पु०) श्लीपद-अस्त्यर्थे इनि। श्लीपदरोगी, जिसको श्लीपदरोग हो गया हो।

"आचारहीनः क्लीवश्च नित्यं याचनकस्तथा।
कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च ॥"
(मनु ३।१६५)

श्लील (सं० त्रि०) श्रीविद्यतेऽस्येति श्री-लच्, रस्य-ल। १ उत्तम, नफीस, जो भद्दा न हो। २ मङ्गलदायक, शुभ।

श्लेष (सं० पु०) श्लिष-घञ्। १ संयोग, जोड़, मिलान। २ दाह। ३ आलिङ्गन, भेंटना। श्लिष्यतीति श्लिष-ण (श्याद्व्यधास्रु संस्रिवति। पा ३।१।१४१) ४ शब्दालङ्कारविशेष। जहां दो या अनेक अर्थवाचित पद हों या अनेक अर्थोंमें प्रयुक्त हो सकते हों, वहां श्लेष अलङ्कार होता है। यह अलङ्कार वर्णश्लेष, प्रत्ययश्लेष, लिङ्गश्लेष, प्रकृतिश्लेष, पदश्लेष, विभक्तिश्लेष वचनश्लेष और भाषाश्लेषके भेदसे आठ प्रकारका है। उनमें फिर धातु और प्रतिपादिक भेदसे प्रकृतिश्लेष दो भागोंमें तथा सुबन्त और तिङन्त भेदसे पदश्लेष दो भागोंमें विभक्त होनेके कारण वह कुल दश भागोंमें विभक्त हुआ है। इसके फिर सभङ्ग, अभङ्ग और सभङ्गाभङ्ग, ये तीन प्रकारके भेद देखे जाते हैं। विस्तार हो जानेके भयसे इनका विवरण यहां पर नहीं दिया गया।

श्लेषक (सं० त्रि०) मिलानेवाला, जोड़नेवाला।

श्लेषण (सं० क्ली०) १ संयुक्त करना, मिलाना, जोड़ना। २ आलिङ्गन, परिरम्भण।

श्लेषभित्तिक (सं० त्रि०) संश्लिष्टता प्राप्त, संलग्नगत।

श्लेषा (सं० स्त्री०) आलिङ्गन, भेंटना।

श्लेषार्थ (सं० पु०) स्तुतिनिन्दावाद।

श्लेषोपमा (सं० स्त्री०) एक अलंकार जिसमें ऐसे श्लिष्ट शब्दोंका प्रयोग होता है जिनके उपमेय और उपमान दोनोंमें लग जाते हैं।

श्लेष्मक (सं० पु०) श्लेष्मा एव स्वार्थे कन्। कफ।

श्लेष्मघ्न (सं० त्रि०) श्लेष्माणं हन्तीति हन टक्। श्लेष्मनाशक।

श्लेष्मघ्ना (सं० स्त्री०) १ त्रिपुर मल्लिका। २ केतकी, केवड़ा। ३ महाज्योतिष्मतीलता। ४ त्रिकटु तीन कड़वे मसाले।

श्लेष्मघ्नी (सं० स्त्री०) श्लेष्मघ्न-टित्वात् ङीप्। श्लेष्मघ्ना देखो।

श्लेष्मज्वर (सं० पु०) कफ जन्य ज्वर। श्लेष्माके बढ़नेसे जो ज्वर होता है उसे श्लेष्मज्वर कहते हैं। इसका लक्षण—श्लेष्मवर्द्धक आहार और विहार द्वारा वर्द्धित कफ आमाशयमें आ कर कोष्ठस्थित अग्निको बाहर फेंक देता है तथा रसको दूषित कर ज्वर लाता है।

यह ज्वर होनेके पहले अन्नमें अरुचि होती है तथा इस ज्वरमें शरीर आर्द्र वस्त्र द्वारा आच्छादितकी तरह मालूम होता और ज्वर थोड़ा रहता है। इसमें आलस्य,

मुंह मीठा, मल, मूत्र और चक्षुकी शुक्लता, शरीरकी स्तब्धता, परिपूर्ण भोजनकी तरह तृप्तिबोध, अङ्गका गुरुत्व, शीतबोध, विवमिषा, रोमाञ्च, निद्राधिक्य, प्रतिश्याय, अरुचि और कास होता है तथा मुंह और नाकसे स्राव, पीड़िका, शोत, वमि, तन्द्रा, उष्णाभिलाष, कफ कर्तृक हृदयका अवरोध और अग्निमान्द्य भी होता है। (भावप्र० ज्वररोगाधि०)

विशेष विवरण ज्वर शब्दमें देखो।

श्लेष्मण (सं० त्रि०) श्लेष्मा अस्त्यस्येति श्लेष्मन् लोमादि पामादि पिच्छादिभ्यः शनेल चः। पा ५।२।१००) इति न। १ कफप्रकृतिवाला, कफवाला। (पु०) २ कफ।

श्लेष्मणा (सं० स्त्री०) एक पौधा।

श्लेष्मधरा (सं० स्त्री०) चतुर्थ कला। "या सर्वसन्धिषु प्राणभूतां भवति सेत्युच्यते।" (सुश्रुत शरीर ४ अ०)

श्लेष्मन् (सं० पु०) श्लिष-मणिन् (उण् ४।१४४) कफ। इसके द्वारा शरीरके सभी उदककर्म सम्पादित होते हैं। नीचे इसका आमूल वृत्तान्त दिया जाता है।

श्लेष्माकी उत्पत्तिका विवरण—जिस प्रकार वाह्य अग्नि और जल वरतनके चावलको अन्नरूपमें पाक करता है उसी प्रकार आमाशयकी अधःस्थित अग्नि अर्थात् तन्निम्नवर्त्ती पच्यमान आमाशयके पाचक नामक पित्तकी श्लेष्मा और आमाशयकी क्लेदक नामक श्लेष्मा उस आमाशय या पाकस्थलीस्थ भुक्त अन्नको परिपाक करती है। इस परिपाकके आरम्भमें मधुरादि छः रसविशिष्ट भुक्तान्नके मधुर भावसे जो फेन जैसा पदार्थ उत्पन्न होता है वही श्लेष्मा या कफ कहलाता है।

श्लेष्माके कार्यादि—उक्त प्रकारसे आमाशयमें उत्पन्न श्लेष्मा वहां रह कर ही नद नदी आदि सम्वन्धमें समुद्रकी तरह अपनी शक्ति द्वारा शरीरके अन्यान्य श्लेष्मस्थानको उदककर्मके साथ अर्थात् जलांश वितरण द्वारा पोषण करती है। वह वहांसे वक्षमें जा कर त्रिक अर्थात् स्कन्धास्थिद्वय और मेरुदण्ड, इन तीन सन्धि स्थानोंको धारण करती है तथा अन्नरसके साथ मिश्रित हो आत्मवीर्य द्वारा हृदयको अवलम्बन कर उसे तृप्त रखता है। वह जिह्वामूल और कण्ठमें रह कर रसनेन्द्रियका सौम्यत्व साधन करती और सम्यक् रसज्ञानकी कारण वनती है। इसी प्रकार मस्तकागत श्लेष्मा स्नेहन और सन्तर्पण कर्म द्वारा अपने वलसे इन्द्रियोंका पोषण करती है। फिर जव वह सन्धियोंमें जाती है, तव उनका संश्लेषण कार्य्य सम्पन्न करती है अर्थात् चक्रका नाभिप्रदेश स्नेहाक्त होनेसे जिस प्रकार वह निरुपद्रवसे स्वच्छन्दतापूर्वक चालित होता है उसी प्रकार सभी सन्धिस्थानगत श्लेष्मा उन्हें सर्वदा सन्तर्पित करती रहती है जिससे उन सन्धियोंके सर्वदा अपने कार्यमें नियुक्त रहने पर भी *कभी किसी प्रकारका व्यतिक्रम* नहीं होता। वे आसानीसे अपना अपना कार्य्य कर सकती हैं।

वाभटमें लिखा है, कि श्लेष्म द्वारा निम्नोक्त कार्य्य सम्पन्न होते हैं, यथा—स्निग्धता, कठिनता अर्थात् श्लेष्म जन्य शोथ या व्रणशोथादि वातादि जन्यकी अपेक्षा अत्यन्त कठिन हो जाता है। कण्डू, शैत्य, गुरुत्व अर्थात शरीरमें श्लेष्माधिक्य होनेसे वह अत्यन्त भारी मालूम पड़ता है, स्रोतोविवद्धता, अस्थ्यादिकी उपलिप्तता अर्थात् श्लेष्माके इस कार्य्य द्वारा अस्थि आदिका शुष्क भाव नहीं होता। स्तैमित्य अर्थात् वसनावृतवत् मालूम होना, शरीरमें श्वेतवर्णकारिता, मुखमें मधुर और लवणरसत्व, चिरकारिता अर्थात् श्लेष्मजन्य चाहे जो कोई रोग क्यों न हो, वह आरम्भसे वातादि जन्यापेक्षा अति दीर्घकालमें पूर्णता और ह्रासताको प्राप्त होता है।

चरकमें श्लेष्माके स्वरूप और तत्प्रकृतिक व्यक्तिका विषय इस प्रकार लिखा है, यथा—श्लेष्माकी स्निग्धताके कारण श्लेष्मल व्यक्तिगण स्निग्धाङ्ग, श्लक्ष्णताके कारण मसृण देहयुक्त, मृदुताके कारण कोमल और श्वेत वर्ण, मधुरताके कारण प्रभूत शुक्रशाली, बहुमैथुनक्षम और अनेक सन्तानवान्, सारत्वके कारण वहुसारात्मक, संहतावयव और दृढ़काय, गाढ़त्वके कारण उनके सभी अङ्ग परिपुष्ट और सम्पूर्णावयव होते हैं, मन्दता प्रयुक्त उनका कार्य्य और आहार विहार धीरे धीरे होता है, स्तैमित्य प्रयुक्त उनका आरम्भ अर्थात् कायमनोवाक्यका प्रवर्त्तन, मनकी क्षुब्धता और सभी रोग विलम्वसे उत्पन्न होते हैं। गुरुत्व रहनेसे श्लेष्मप्रकृतिकी गति अस्खलित और अधिष्ठित होती है।

(अर्थात् वे पदतलके सर्वांश द्वारा भूमिस्पर्श कर चलते हैं) शैत्यगुण रहनेसे उन्हें क्षुधा, तृष्णा, सन्ताप, स्वेद और दोषका भाग थोड़ा होता है, पिच्छिलताके कारण उनके सन्धिस्थान सुसंयुक्त और सारबन्धन विशिष्ट तथा निर्मलताके कारण उनकी मुखकान्ति, कण्ठस्वर और गात्रवर्ण परिष्कार और स्निग्ध होते हैं। ये सब गुण होनेसे श्लेष्म प्रकृतिके मनुष्य बलवान्, धनवान्, विद्यावान्, ओजस्वी, शान्त और दीर्घायु होते हैं।

दूसरे ग्रन्थमें लिखा है, कि श्लेष्म-प्रकृतिवाले स्थूलाङ्ग, गम्भीर बुद्धिविशिष्ट, चिकने केशवाले, अत्यन्त बलवान् और स्वप्नमें जलाशयदर्शी होते हैं।

श्लेष्मप्रकोपहेतु—गुरुपाक, मधुररसयुक्त और अतिशय स्नेहाक्त पदार्थ, दुग्ध, इक्षुजात भक्ष्यद्रव्य, द्रवद्रव्य, दधि, दिवानिद्रा, पूपादि पिष्टकान्न, घृतपूर अर्थात् चन्द्रपुली, हिम, शिशिर और वसन्तकाल तथा दिनको तीन भाग करके उसका प्रथम भाग और भोजनका परवर्त्तिकाल, ये सब श्लेष्मप्रकोपके कारण कहे गये हैं।

श्लेष्मवर्द्धक द्रव्य और हेतु—भोजनके बाद स्नान, प्यास नहीं रहने पर जलपान, तिलतैल, शैत्यगुणकारक प्रस्तुततैल, स्निग्धद्रव्य, आमलकी रस, पर्य्युषितान्न, तक्र, पक्वरम्भाफल, दधि, मायाफलरस, शर्कराजल, आर्द्र स्थानमें अवस्थान, नारिकेलोदक, अतैलस्नान, पर्युषित जल, सुपक्व कर्कटी फल, वर्षाकालमें अवगाहनस्नान और वृहत्मूलक, इसका रस ब्रह्मरन्ध्रमें देनेसे अत्यन्त वीर्यनाशक होता है।

अन्य प्रकार—एरण्डतैल, अनूपदेशजल, वर्षाकालोत्पन्न पानीय, कर्दमाक्त जल, सामान्य शालिधान्य, माष, तीसी, तन धान्य, मधुर द्रव्य, नारीच शाक, कञ्चट शाक, कलम्बी शाक, पोईका शाक, मध्यमकुष्माण्डफल, लौकी, तरबूज, छोटा तरबूज, धुन्दुल, अलाबूनाड़िका, पिण्डालु, छत्रिका शाक (अर्थात् गोबर, गोली जगह और बांस आदिमें उत्पन्न छत्राकार द्रव्य, वह यदि कीचड़ युक्त स्थानमें उत्पन्न हो तो और भी श्लेष्मवर्द्धक होता है।) सौंफ, श्लेष्मातक अर्थात् चालिता फल, कच्ची इमली, पक्का कटहल और उसका बीज, पक्का केला, सभी प्रकारका मछली, खास कर पाण्डु वर्णकी मछली, सड़ी मछली, लवणमें डुबोई मछली, बचारी मछली, शोलन मछली, विषैली मछली, हिलसा मछली, शिङ्गी मछली, छोटी झींगा मछली, बचवा मछली, गौरैया पक्षीका मांस, सभी प्रकारका दूध, विशेषतः कच्चा दूध, भेड़ेका दही, भैंसका दही, स्वादीष्ट दही, बहुत खट्टा दही, सभी प्रकारका घी, सभी प्रकारकी ईख, विशेषतः भीरु और कान्तार नामक ईख, अधपका ईखका रस, ईखका गुड़, नये चावलका भात, च्युंड़ा, पक्वान, पायस, पूरी, पक्वान्न, सुपारी, मधुररसविशिष्ट द्रव्यजात, अतिशय अल्प भोजन, लवणरस, शीतवीर्य्य द्रव्य, कुन्द, बन्धुक और यूथिका पुष्प, सभी जन्तुका मांस और मज्जा।

श्लेष्मनाशक द्रव्य—सर्षपतैल, अतिशय तैलमर्दन, उद्वर्त्तन, शैशिरजल, पोखरेका जल, झरनेका जल, नदीका जल, सामान्य गरम जल विशेषतः पादशेष उष्ण जल, पेषित वच और मुस्तक संयुक्त, जल द्वारा स्नान, अगुरु, कुंकुम, तेजपत्र, काकली, कचूर, दग्ध भूमिमें उत्पन्न धान, रोपा हुआ धान, जौ, श्यामाधान, कंगनीधान, कोदो धान, हस्तिश्यामाकधान्य, चीना धान्य, मूंग, वन मूंग, राजमाष, मसूर, चना, कुलथी, अरहर, नाना प्रकारकी शिंबी, शुष्क नारोचपत्र शाक, हिलमोची शाक, शालञ्चीशाक, शुषणी शाक, पुनर्णवाशाक, कलाय शाक, ब्राह्मी शाक, आमरुली या नोनी शाक तथा पृक्क, पालङ्गी, चनेका पत्ता, कौसुम्भ, पुरति और कावड़ा शाक, कदली मोचक, क्षुद्रवार्त्ताकु फल, दग्धवार्त्ताकु, पाटलाफल, करेला, कर्कोटकफल, पटोल और कुष्माण्डनाड़िका, वेत्राग्र, ओल, घृत या तैल द्वारा सिद्धमूल, मूलक पुष्प, सकरकन्द, मूलक बीज, आम्रपेशी, अम्लरस, अनार, मातुलङ्गत्वक्, कागजी नीबू, जंबीर, छोटा बेर, सभी प्रकारका सूखा बेर, बड़ा अमरूद, जुनहरी, लवलीफल, जम्बूफल, पकी इमली, पक्कगाव, यैलक, महाअदरक, करुण अर्थात् कागजी नीबू, तालास्थिमज्जा, कचर बेल, सोंठ, आंवला और बहेड़ा तथा उनकी मज्जा, नन्द्यावर्त्त मत्स्य, कवजी मछली, पलं मछली, इनकोना मछली, त्रिकण्ठ मछली, बड़ी पोठिया मछली, कच्छप और पक्षीका अण्डा, हरिन, गैंड़ा, कपिञ्जल और वार्त्तिक पक्षी तथा कच्छपको टांगका मांस, सुरामण्ड, अरिष्टमद्य, पुराना, नया और

अर्शःसंज्ञक मधु, भेंड़ेका दूध, ऊंटका दूध, गरम दूध, बकरीका दूध, हथनीका दही, दहीका पानी, दहीका छाली, मट्ठा, भेड़ और ऊंटका घी, पक्व ईखका रस, हिङ्गु, जीरक, वनमेथी, पुराना धनिया, हल्दी, यमानी, शुष्क पीपर, पक्व आर्द्र पिप्पली, सोंठ, आद्रक, सरसों, सफेद सरसों, प्याज, दारचीनी, तेजपत्र, यवक्षार, सज्जीक्षार, सोहागा, अन्नमण्ड, भूना चावल, लावा, लावेका मांड़, कच्चे जौका सत्तू, भुने जौका लांड़, मूंगका जूस, अनार और दाख संयुक्त मूंगका जूस, मसूरका रसा, कुलथीका जूस, खड़ और कांबलिकका जूस, शालि तण्डुलचूर्ण, तांबूलचूर्ण, खैर, इलायची, जातीफल, कपूर, कटु, तिक्त और कषाय रस, उष्णवीर्य द्रव्य, मालती और मल्लिकापुष्प, पद्मपुष्प, वकुल पुष्प, पुन्नाग पुष्प, श्वेतपद्म, उत्पल पुष्प, पाटल पुष्प, चंपापुष्प, रात्रिजागरण, बिल्वमूल, पाटला, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, एरण्डमूल, कण्टकारी, ग्वालककड़ी, लोध, भृङ्गराज, द्रोणपुष्पी, झिण्टी, वच, सिद्धिका पत्र और बीज, दारुहरिद्रा, सोमराजी, हेलाञ्ची, रेणुका, भूर्जपत्र, शाल, निंबपत्र, चिरायता, कूटजकी छाल, दुरालभा, कटुकी, सुगंधवला, कर्कटशृङ्गी, कायफल, कुट, अडूस, पद्मगुरूच, पिपरामूल, चई, गजपीपर, अकवन, धतूरा, सामान्य गुग्गुल, नया और पुराना गुग्गुल, अरुण त्रिवृत्, सफेद नसोथ, मैनसिल, सौराष्ट्र देशकी मिट्टी, तांबा और कांसा। (द्रव्यगुणसंग्रह)

श्लेष्मनाड़ी (सं० स्त्री०) दन्तमूलगत रोग, दन्तनाली। इस रोगमें दन्तमूलमें वेदनाविशिष्ट शोथ उत्पन्न होता तथा कण्डू और राल निकलती है। श्लेष्माके बिगड़ जानेसे ही यह रोग उत्पन्न होता है। रातमें यह बढ़ जाता है।

श्लेष्मपाण्डु (सं० पु०) श्लेष्म जन्य पांडु रोग।

विशेष विवरण पाण्डुरोग शब्दमें देखो।

श्लेष्मप्रकृति (सं० त्रि०) श्लेष्मप्रधाना प्रकृतिर्यस्य। कफ प्रकृतिवाले मनुष्य। जिन सब मानवकी प्रकृति श्लेष्मप्रधान है, उन्हें श्लेष्मप्रकृति कहते हैं।

सुस्निग्ध वर्ण, शुभनेत्र, श्यामवर्ण, उत्तम केशयुक्त दीर्घ नख और रोमयुक्त, गम्भीर शब्दविशिष्ट, शास्त्रामोदी, निद्रा और तन्द्राप्रिय, तिक्त, कटु और उष्ण भोजी, समांसल अर्थात् मोटा-ताजा, स्निग्ध रस प्रिय, गीतवाद्यप्रिय, अति सहिष्णु, व्यायामशील और रतिलालसान्वित, ये सब लक्षण होनेसे उसे श्लेष्मप्रकृति कहते हैं।

श्लेष्मन् शब्द देखो।

श्लेष्मल (सं० त्रि०) श्लेष्माऽस्त्य स्येति श्लेष्मन् (सिध्मादिभ्यश्च। ५।२।९७) इति लच्। १ श्लेष्मयुक्त, कफयुक्त, (पु०) २ बहुवार वृक्ष, लिसोड़ा।

श्लेष्मलफल (सं० पु०) बहुवार वृक्ष, लिसोड़ा।

श्लेष्मवत् (सं० त्रि०) श्लेष्मन्-मतुप् मस्य व। श्लेष्मयुक्त।

श्लेष्मविसर्प (सं० पु०) कफजन्य विसर्प।

श्लेष्मस्राव (सं० पु०) नेत्रसन्धिगत रोगविशेष। इस रोगमें नेत्रसन्धि-गत नाड़ीसे श्वेतवर्ण, गाढ़ा और पिच्छिल स्राव निकलता है।

श्लेष्महा (सं० पु०) श्लेष्माणं हन्तीति हन-ड। १ कट्फल वृक्ष, कायफल। २ पनसवृक्ष, कटहलका पेड़। (त्रि०) ३ कफनाशक।

श्लेष्महन्त्री (सं० स्त्री०) देवदाली लता।

श्लेष्माट (सं० पु०) शेलु वृक्ष, लिसोड़ा।

श्लेष्मात (सं० पु०) श्लेष्माणमततीति अत-अच्। श्लेष्मातक वृक्ष, लिसोड़ा।

श्लेष्मातक (सं० पु०) श्लेष्मात एव स्वार्थे कन्। बहुवारक वृक्ष, लिसोड़ा। मनुमें लिखा है, कि यह फल द्विजातिको नहीं खाना चाहिये।

श्लेष्मातकमय (सं० त्रि०) श्लेष्मातकसदृश।

श्लेष्मातकवन (सं० पु०) गोकर्णतीर्थके पासका जंगल। इसमें शिव एक बारहसिंगेके रूपमें छिपे थे।

श्लेष्मान्तक (सं० पु०) श्लेष्मणा स्वसेवनजनितकफेन् अन्तयति नाशयतीति अन्त-णिच् ण्वुल्। बहुवार, लिसोड़ा। पर्याय—पिच्छिल, द्विजकुत्सित, शेलु, शीतफल, शीत, शाकट, कच्छुंदारक, भूतद्रुम, गन्धपुष्प। गुण—कटु, हिम, मधुर, कषाय, स्वादु, पाचन, कृमि और शूलहर, आम, अस्रदोष, मलरोध, व्रणपीड़ा और विस्फोट शान्तिकारक।

भावप्रकाशके मतसे विष्टम्भी, रूक्ष, पित्त, कफ और अस्रनाशक। पक्वफलगुण—मधुर, स्निग्ध, श्लेष्मवर्द्धक, शीतल और गुरु।

श्लेष्माभिष्यन्द (सं० पु०) एक प्रकारका नेत्ररोग। इसका लक्षण—इस नेत्ररोगमें चक्षु गुरु, शोथ और कण्डुयुक्त, स्निग्ध और शीतल होता है तथा आंखसे हमेशा पिच्छिलस्राव निकलता रहता है। यह रोग होनेसे उष्ण क्रिया द्वारा सुखका अनुभव होता है।

श्लेष्मोल्वण (सं० त्रि०) १ श्लेष्माधिक्य। (वाभट चि० ७ अ०) (पु०) २ सन्निपात ज्वरभेद। इसका लक्षण—इस ज्वरमें सन्निपातके सब लक्षण तथा शरीरकी जड़ता, गद्गद वाक्य, रात्रिमें निद्रा, चक्षुकी स्तब्धता तथा मुखमें मधुरता आदि लक्षण होते हैं।

श्लैष्मिक (सं० त्रि०) श्लेष्मणः शमनं कोपनं वा श्लेष्मन् (वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोः। पा ५।१।३८) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ठञ्। १ कफशमन, श्लेष्मनाशक। २ कफकोपन, कफवर्द्धक। ३ श्लेष्मोद्भव। ४ श्लेष्म-सम्बन्धी। रक्तपित्त शब्द देखो।

श्लैष्मिकरक्तपित्त (सं० क्ली०) कफजन्य रक्तपित्तरोग।

श्लैष्मिकी (सं० स्त्री०) श्लेष्मजन्य योनिव्यापद्, श्लेष्म-जन्य योनिरोग। योनिरोग देखो।

श्लोक (सं० पु०) श्लोक्यते इति श्लोक संघाते घञ्। १ पद्य, कविता, छन्दोविशिष्ट वाक्य, पद्यका श्लोक। नाम पड़नेका कारण रामायणमें इस प्रकार लिखा है,—एक दिन एक व्याधने मिथुनधर्ममें नियुक्त नर-क्रौञ्चको मार डाला। इस पर क्रौञ्ची बड़ी कातर हो विलाप करने लगी। वाल्मीकिको उसके करुण रोदन पर दया आई और उन्होंने इस कार्यको बड़ा ही निन्दित समझ कर व्याधको शाप दिया, 'रे निषाद! मिथुन करते समय तूने इस क्रौञ्चको मारा है, इसलिये तू कभी प्रतिष्ठा लाभ नहीं कर सकता।' इतना कहते ही वाल्मीकिको बड़ी चिन्ता हुई, वे सोचने लगे, कि पक्षी-के शोक पर कातर हो मैंने यह क्या कहा। पीछे उन्होंने शिष्यसे कहा, यह चतुष्पादबद्ध, प्रति पादमें समानाक्षर, वीणालय समन्वित वाक्य शोकके समय मेरे मुखसे निकला है, अतएव यह श्लोक ही हो।

शोकसे होनेके कारण पद्यका नाम श्लोक हुआ है। तभीसे छन्दोबद्ध वाक्य मात्र ही श्लोक कहलाता है। २ शब्द, ध्वनि। ३ सुख्याति। ३ प्रसिद्धि। ४ यश, कीर्त्ति। ५ शब्द, ध्वनि। श्रु-श्रवणे इन भीकापाशु-स्यतिमचिभ्यः कन् इति कन् प्रत्ययो बाहुलकात् भवितेर्गुणः, कपिलकादित्वाल्लत्वं। संहन्यते कविभिः श्लोकः (टीका) ६ स्तुति, प्रशंसा। (ऋक् १।७३।६)

श्लोककृत् (सं० त्रि०) श्लोकं करोति कृ-क्विप् तुक् च। श्लोककारक, श्लोक बनानेवाला।

श्लोकगौतम (सं० पु०) गौतमप्रोक्त श्लोक।

श्लोकत्व (सं० क्ली०) श्लोकस्य भावः त्व। श्लोकका भाव या धर्म।

श्लोकयन्त्र (सं० त्रि०) स्तुतिनियमन।

श्लोकवार्त्तिक (सं० क्ली०) कुमारिलरचित संक्षिप्त मीमांसा-वार्त्तिक।

श्लोकिन् (सं० त्रि०) शब्दयुक्त। (ऋक् ८।८३।५)

श्लोक्य (सं० त्रि०) श्लोकभव, वैदिक मन्त्रभव या यशोभव।

श्लोण्य (सं० क्ली०) १ अङ्गहीन। २ त्वग्दोष।

श्वःकाल (सं० पु०) परदिन, आगामी कल्य।

श्वःश्रेयस् (सं० क्ली०) श्व आगामिकाले श्रेयो यत्र (श्वसो वसीयः श्रेयसः। पा ५।४।८०) इति अच्। १ कल्याण, शुभ। २ परमात्मा। ३ शर्म। (त्रि०) ४ कल्याणयुक्त।

श्वक (सं० पु०) वृक, भेड़िया।

श्वकण्टक (सं० पु०) व्रात्य और शूद्राके गर्भसे उत्पन्न पुरुष।

श्वकिष्किन् (सं० पु०) १ राक्षस। २ ऐन्द्रजालिक।

श्वक्रीडिन् (सं० त्रि०) श्वभिः क्रीडति क्रीड़-इनि। कुत्तेके साथ क्रीड़ा करनेवाला; जो खेलके लिये कुत्ते को पोसे।

श्वगण (सं० पु०) शुनां गणः। कुत्तोंका समूह।

श्वगणिक (सं० त्रि०) कुक्कुर-सम्बन्धी।

श्वगणिन् (सं० त्रि०) व्याध, कुत्तों द्वारा शिकार करने-वाला। (रघु ९।३)

श्वग्रह (सं० पु०) १ बच्चोंको कष्ट देनेवाला एक प्रेत। २ बालग्रहविशेष। इस ग्रह द्वारा आक्रान्त होने पर बालकके कम्प, रोमहर्ष, स्वेद, निमीलित चक्षु, वहिरायाम नुस्तंभ, जिह्वादंशन, अन्त्र और कण्ठ कूजन, अतिशय

स्पन्दन, शरीरमें विष्ठाकी-सी गंध और कुत्तेके समान क्रन्दन आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

श्वघ्निन् (सं० पु०) कितव, जूआचोर।

श्वचक्र (सं० क्ली०) शाकुनभेद। यदि यात्राकालमें कुत्तोकी गतिविधि और कार्यकलाप देख कर यात्रा करनेवालेका शुभाशुभ निर्णय किया जाय, तो उसे शाकुन या श्वचक्र कहते हैं। (वृहत्संहिता ८६ अ०)

श्वचिल्ली (सं० स्त्री०) कुक्कुरचिल्ली क्षुप, कुकुरदन्ता।

श्वजाघनी (सं० स्त्री०) कुक्कुरजघन-भक्षणकारी।

श्वजीवन (सं० त्रि०) जो कुत्तोको पोष कर अपनी प्राणरक्षा करता हो।

श्वजीविका (सं० स्त्री०) श्ववृत्ति, कुत्तोके समान दूसरेको दासत्ववृत्ति।

श्वदंष्ट्रक (सं० पु०) शुनो दंष्ट्रेव कण्टकोऽस्य। गोक्षुर, गोखरू।

श्वदंष्ट्रा (सं० स्त्री०) शुनो दंष्ट्रेव कण्टकावृतत्वात्। गोक्षुरक।

श्वदन्त (सं० पु०) कुत्तेके दाँतके समान तेज दाँत, शोघन दन्त।

श्वदायित (सं० स्त्री०) १ कुक्कुरी, कुत्ती। २ अस्थि, हड्डी।

श्वदृति (सं० पु०) कुत्तेका चमड़ा।

श्वधूर्त्त (सं० पु०) शुनि धूर्त्त तद्भक्षकत्वात्। शृगाल, गीदड़।

श्वन् (सं० पु०) श्वयति गच्छति श्वि-कनिन् (श्वन् उक्षन् पूषन्निति। उण् १।१५८) कुक्कुर, कुत्ता।

श्वनक (सं० पु०) कुक्कुर, कुत्ता।

श्वनिन् (सं० त्रि०) श्वगणी, जो कुत्तेको ले कर शिकार करे। (शुक्लयजु० १६।२७)

श्वनिश (सं० क्ली०) शुनां निशा "सुरासेनाच्छायाशालानिशाश्च" इति लिङ्गानुशासनसूत्रेण अथवा विभाषा सेनासुराच्छाया शाला निशानां (पा २।४।२५) इति विभाषया क्लीवत्वं। मत्तकुक्कुरनिशा, अर्थात् जिस रातको कुत्ते सब मत्त हो कर चित्कार करते हैं।

श्वनिशा (सं० स्त्री०) श्वनिश देखो।

श्वन्वत् (सं० त्रि०) अप्सराभेद।

श्वप (सं० त्रि०) कुत्तेको पोसनेवाला।

श्वपच् (सं० पु०) श्वानं पचतीति पच-क्विप्। चण्डाल, डोम।

श्वपच (सं० पु०) श्वानं पचतीति पच-अच्। चण्डालभेद। यह सात प्रकारके अन्त्यावसायोमेंसे एक है।

यह जाति लज्जाविहीन है, ग्रामके बाहर इनका वास है कुत्ता गदहा आदि ही धन है; मुर्देका कपड़ा परिधेय है, टूटे फूटे बरतन खाने पीनेके बरतन हैं, काला लोहा ही अलङ्कार है, सर्वदा देशान्तर जा कर अन्नभिक्षा ही एकमात्र उपजीविका है। राजाके हुक्मसे जरूरी कामके लिये यह ग्रामके भीतर घुस सकता है, किन्तु रातमें ग्राम या नगरमें इनका प्रवेश निषेध है।

भिन्न भिन्न स्मृतियोंमें इसकी उत्पत्ति भिन्न भिन्न कही गई है। जैसे,—कहीं चंडाल और ब्राह्मणीसे, कहीं निष्ट्य और किरातोसे, कहीं क्षत्रिय और उग्र जातिकी स्त्रीसे, कहीं अम्बष्ठ और ब्राह्मणीसे इत्यादि।

२ कुत्तोका मांस पका कर खानेवाला।

श्वपचता (सं० स्त्री०) श्वपचका भाव, चण्डालता।

श्वपति (सं० पु०) किरातवेशधारी रुद्रका अनुचर।

श्वपद (सं० पु०) शुनः पाद इव पादो यस्य। वृक, शृगाल आदि दुष्ट जंगली जानवर।

श्वपद (सं० क्ली०) शुनः पदम्। कुत्तोका पैर। मनुमें लिखा है, कि चोरके ललाट पर राजाको आज्ञाके अनुसार तप्त लौहशलाका द्वारा कुत्तोके पैरका चिह्न अङ्कित कर देना चाहिये।

श्वपाक (सं० पु०) शुनां पाकः कार्यत्वेन यस्य। चण्डाल, व्याध।

मनुमें लिखा है, कि यह जाति क्षत्ताके औरस और उग्राके गर्भसे उत्पन्न हुई है। शूद्र कर्त्तृक क्षत्रियासे उत्पन्न पुत्र क्षत्ता और क्षत्रिय कर्त्तृक शूद्रासे उत्पन्न कन्या उग्रा कहलाती है।

रजस्वला स्त्री स्वेच्छासे यदि इन्हें स्पर्श कर लें, तो निर्दिष्ट स्नान दिनके बाद तीन दिन उपवास कर पञ्चगव्य भक्षण द्वारा वह शुद्धि होती है। और यदि अज्ञानित अवस्थामें स्पर्श करे, तो प्रथम दिन स्पर्श करनेसे तीन रात, दूसरे दिन दो रात, तीसरे दिन एक रात उप-

वास तथा चौथे दिन शुद्धिस्नानके पूर्वाक्षणमें संस्पर्श होनेसे उस दिन दिनको उपवास कर रातको हविष्यान्न भोजन द्वारा शुद्धिलाभार्थ प्रायश्चित्त करे।

श्वपाद (सं० पु०) श्वपद देखो।

श्वपामन (सं० पु०) पपरी नामका पौधा। इसकी कड़वी जड़ रेचक होती है और औषधके काममें आती है। इसका दूसरा नाम काकच्छर्दि भी है।

श्वपुच्छ (सं० पु०) वृश्चिक, बिच्छू।

श्वपुच्छा (सं० स्त्री०) पृश्निपर्णी, पिठवन।

श्वफल (सं० पु०) श्वप्रियं फलमस्य। १ बीजपूर, बिजौरा नीबू। २ चूर्ण, चूना।

श्वफल्क (सं० पु०) वृष्णिपुत्र, अक्रूरके पिता। इनकी स्त्रीका नाम था गान्दिनी। श्वफल्कके औरस और गान्दिनीके गर्भसे ही अक्रूरका जन्म हुआ।

श्वभक्ष (सं० त्रि०) कुक्कुरमांसभक्षणकारी, कुत्तेका मांस खानेवाला।

श्वभीरु (सं० पु०) शुनः कुक्कुरात् भीरुर्भयशीलः। शृगाल, गीदड़।

श्वभोजन (सं० क्ली०) कुत्तेका मांस खाना।

श्वभ्र (सं० क्ली०) श्वभ्रयते यदिति श्वभ्र-घञ् कर्मणि। १ छिद्र, दरार, गड्ढा। २ एक नरक। ३ वासुदेवके एक पुत्रका नाम।

श्वभ्रपति (सं० पु०) रसातलपति।

श्वभ्रवत् (सं० त्रि०) गर्त्तयुक्त, दरारवाला।

श्वभ्रवती (सं० स्त्री०) नदीभेद। (हरिवंश)।

श्वभ्रित (सं० त्रि०) गर्त्तयुक्त दरारवाला।

श्वमांस (सं० क्ली०) कुत्तेका मांस। यह मांस खाना शास्त्र-विरुद्ध होनेपर भी मनुमें लिखा है, कि वामदेव ऋषिने क्षुधासे पीड़ित हो प्राण बचानेके लिये श्वमांस भक्षण किया था तथा इससे वे किसी प्रकारके पापमें लिप्त नहीं हुए। (मनु १०।२०६)

श्वमुख (सं० पु०) जनपदभेद।

श्वयथ (सं० पु०) शोथ, सूजन।

श्वयथु (सं० पु०) श्वि-गतिवृद्ध्योः (ट्वितोऽथुच्। पा ३।३।८९) इति अथुच्। शोथ, सूजन।

श्वयन (सं० क्ली०) शोथ, सूजन।

श्वयातु (सं० पु०) कुत्ते द्वारा हिंसा करनेवाला अथवा उसके साथ विचरण करनेवाला।

श्वयीची (सं० स्त्री०) श्वयतीति श्वि-गतिवृद्ध्योः। श्वेः तेश्चित्। उण् ४।७१) इति ईचि, बाहुलकात् ङीप्। पीड़ा।

श्वयूथ (सं० क्ली०) कुत्तोंका दल।

श्वलिह (सं० त्रि०) कुत्तोंने जिसको चाटा हो।

श्वलेह्य (सं० त्रि०) शुना लेह्यः। जिसको कुत्तोंने चाटा हो। (पा २।१।३३)

श्ववत् (सं० त्रि०) श्वन्-मतुप्, नस्य लोपः। कोड़ाके लिये जो कुत्तेको पोसता हो। मनुमें लिखा है, कि इसके घर भोजन करना नहीं चाहिए। (मनु ४।२१६)

श्वविष्ठा (सं० स्त्री०) शुनो विष्ठा। कुत्तेकी विष्ठा।

यदि कोई भोजन, मद्दन तथा दानको छोड़ तिल विक्रय करे, तो वह पितरोंके साथ कृमि हो कर कुत्तेकी विष्ठामें निमग्न होती है। यह विधि ब्राह्मणोंके पक्षमें समझनी होगी।

श्ववृत्ति (सं० स्त्री०) शुनः कुक्कुरस्येव पराधीना वृत्तिः। नीच सेवाकी वृत्ति, निकृष्ट नौकरी द्वारा जीवननिर्वाह।

वाणिज्यका नाम सत्यानृत है, वाणिज्य करनेमें सत्य और अनृत (मिथ्या) ये दो काम आते हैं, इसलिये उसका नाम सत्यानृत है। ब्राह्मण इस सत्यानृत द्वारा जीविका निर्वाह करें, सेवा या नौकरी नहीं करें, क्योंकि सेवा श्ववृत्ति कहलाती है।

श्ववृत्तिन् (सं० त्रि०) श्ववृत्ति द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाला। (याज्ञवल्क्य १।१६३)

श्वव्याघ्र (सं० पु०) शुनो व्याघ्रः। हिंस्र पशु।

श्वशीर्ष (सं० त्रि०) कुत्तेका सिरवाला।

श्वशुर (सं० पु०) शु आशु-अश्यते व्याप्यते इति अश (शाव शेरातौ। उण् १।४५) इति उरन्। शु शब्दोऽत्राशु शब्दाभिधायी, आशु व्याप्तव्यः श्वशुरः। १ पति या पत्नीका पिता, ससुर। (अमर) २ पूज्य। (मेदिनी)

श्वशुरक (सं० त्रि०) श्वशुर स्वार्थे कन्। श्वशुर, ससुर।

श्वशुरीय (सं० त्रि०) श्वशुर सम्बन्धी।

श्वशुर्य (सं० पु०) श्वशुरस्यापत्यमिति। श्वशुर (राज श्वशुरोद यत्। पा ४।१।७१) इति यत्। पति या पत्नीका भाई, देवर या शाला।

श्वश्रू (सं० स्त्री०) श्वशुरस्य पत्नी श्वशुर (श्वशुरस्योकारलोपश्च। पा ५।१।६८) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या उङ् उकारलोपश्च। पति और पत्नीकी प्रसू, पति और पत्नीकी माता, स्त्रियोंके पतिकी माता, पुरुषकी पत्नीकी माता, सास।

वराहपुराणमें लिखा है, कि धर्मरूपी व्याधने एक दिन जामाताके घर उसके पितासे कहा था, 'मैंने पुत्रके लिये कन्यादान किया है, किन्तु तुम्हारी स्त्री मेरी लड़कीको जीवनघाती कहती है, इसीसे तुम्हारे घर यह देखने आया हूं, कि सदाचार, देवपूजा और अतिथिसेवा आदि किस प्रकार होती है। किन्तु इन सबका बिलकुल अभाव है, इसलिये तुम्हारे घर भोजन नहीं करूंगा, मैं जीवघाती व्याध हूं जिस कन्याको विवाह किया है, वह जीवघातीकी कन्या है। इसलिये मैं शाप देता हूं, कि आजसे सास पर पतोहूका कभी विश्वास नहीं रहेगा और वह सर्वदा सासकी जिन्दगीको कोसा करेगी।

श्वसथ (सं० पु०) १ ध्वनि, शब्द। २ वन्यवृष, जंगली सांढ़।

श्वसन (सं० क्ली०) श्वस-ल्युट्। १ सांस लेना, दम लेना। २ हांफना। ३ फुटकार करना, फुफकारना। ४ लंबी सांस खींचना, आह भरना। ५ मुंहसे हवा छोड़ना, फूंकना। (पु०) श्वसितीति श्वस-ल्यु। ६ वायु, पवन देवता। ७ मदनफल, मैनफल। ८ एक वसुका नाम। श्वस्यतेऽनेन करणे ल्युट्। ९ जिससे श्वास लिया जाता है, नासिका। (भागवत १०।१६।२४)

श्वसनरन्ध्र (सं० क्ली०) श्वसनस्य रन्ध्रं। नासिकाविवर, नाकका छेद।

श्वसमान (सं० त्रि०) श्वस-शानच्। निश्वास छोड़नेवाला।

श्वसनाशन (सं० पु०) श्वसनो वायुरशनं भक्ष्यं यस्य। सर्प, सांप।

श्वसनेश्वर (सं० पु०) श्वसन ईश्वरो यस्य। अर्जुनवृक्ष।

श्वसनोत्सुक (सं० पु०) श्वसनाय उत्सुकः। सर्प, सांप।

श्वसित (सं० क्ली०) श्वस-क्त। श्वास।

श्वसीवत् (सं० त्रि०) श्वसनवत्, श्वसनविशिष्ट, श्वास प्रश्वासयुक्त। (ऋक् १।१४०।१०)

श्वसुन (सं० पु०) श्वस बाहुलकात् उनन्। क्षतघ्नवृक्ष, कंकरौंधा नामक पौधा।

श्वस्तन (सं० त्रि०) श्वो भवं श्वस (एषमोह्यः श्वसोऽन्यतरस्यां। पा ४।२।१०५) इति त्यवभावे टुट्युलौ। तुट्च। १ आनेवाले दिनका, कलका। (क्ली०) २ कलका दिन, आनेवाले दूसरा दिन।

श्वस्तनिक (सं० त्रि०) श्वस्तन धनयुक्त। जिसका धनादि आगामी कल तक विद्यमान रहे, उसे श्वस्तनिक या शौवस्तिक कहते हैं। (मनु ४।७)

श्वस्तनी (सं० स्त्री०) कलका दिन, आनेवाला दूसरा दिन।

श्वस्त्य (सं० त्रि०) श्वो भवमिति श्वस् (एषमोह्यः श्वसोऽन्यतरस्यां। पा ४।२।१०५) इति त्यप्। श्वोभव वस्तु।

श्वःसुत्या (सं० स्त्री०) दूसरे दिन सोमाभिषवकी प्रसक्ति या उसका निर्दिष्ट समय।

श्वःस्तोत्रिय (सं० पु०) दूसरे दिन स्तवनीय, दूसरे दिन जो स्तुतिपाठ करना होता है। (ऐतरेय ६।४।१)

श्वंस्थि (सं० स्त्री०) एक प्रकारका रत्न या बहुमूल्य पत्थर जो कांसे, रूपे, शंख, कुमुद आदिके रंगका कहा गया है।

श्वाकर्ण (सं० पु०) शुनः कर्णः। तस्य लोपः (अन्येषामपि दृश्यते। पा ६।३।१३७) इति दीर्घः। कुत्तेका कान।

श्वागणिक (सं० त्रि०) श्वगणेन चरति यः (श्वगणाद् ठञ् च। पा ४।४।११) इति ठञ्। श्वगण द्वारा विचरणकारी, व्याध; जो कुत्तेको ले कर शिकार करता है।

श्वाग्र (सं० क्ली०) कुत्तेका अगला हिस्सा।

श्वात (सं० त्रि०) शीघ्र परिणत, जल्द जीर्ण होनेवाला।

श्वातभाज् (सं० त्रि०) धनभाक्, धनी।

श्वात्र (सं० त्रि०) १ क्षिप्रगमनार्हं, शीघ्र गमनयोग्य। २ सुखावह सोम। (ऋक् १०।४६।१०)

श्वाद (सं० पु०) श्वपच, चाण्डाल। (भागवत ३।२३।६)

श्वादंष्ट्रा (सं० स्त्री०) शुनो दंष्ट्रा तस्य लोपः दृश्यते इति दीर्घः। श्वदंष्ट्रा, कुत्तेका दांत।

श्वादंष्ट्रि (सं० पु०) श्वदंष्ट्रका अपत्य।

श्वादन्त (सं० पु०) शुनो दन्त इव दन्तो यस्य। (शुनोदन्तदंष्ट्रेति। पा ६।४।१३७) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या दीर्घः। कुक्कुरदशन, कुत्तेके समान दाँतवाला।

श्वान (सं० पु०) श्वा एव श्वन् स्वार्थे अण्। १ कुक्कुर, कुत्ता। शुनां समूहः खण्डिकादित्वादञ्। (क्ली०) २ कुत्तोंका समूह। ३ छप्पयका पन्द्रहवाँ भेद। इसमें ५६ गुरु, ४ लघु, कुल ६६ वर्ण १५२ मात्राएं होती हैं। ४ दोहेका इक्कीसवाँ भेद। इसमें २ गुरु और ४४ लघु होते हैं।

श्वानचिल्लिका (सं० स्त्री०) श्वानप्रिया चिल्लिका। शुनकचिल्ली, बथुआ नामक साग।

श्वाननिद्रा (सं० स्त्री०) ऐसी नींद जो थोड़े खटकेसे भी चट खुल जाय, हलकी नींद, झपकी।

श्वानी (सं० स्त्री०) श्वान स्त्रियां ङीष्। कुक्कुरी, कुत्ती।

श्वान्त (सं० त्रि०) १ प्रवृद्ध। २ श्रान्त।

श्वान्नति (सं० स्त्री०) ब्राह्मणयष्टिका, भारंगी।

श्वापद (सं० पु०) शुन इव पदं यस्य (शुनोदन्तदंष्ट्राकर्ण कुन्दवराहपुच्छपदेषु। पा ६।४।१३७) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या दीर्घः। १ हिंस्र पशु। २ व्याघ्र, बाघ।

श्वापाकक (सं० त्रि०) श्वपाकेन कृतः श्वपाक (कुलालादिभ्यो वुञ्। पा ४।३।११८) इति वुञ्। श्वपाक कर्त्तृक कृत, चण्डाल द्वारा किया हुआ।

श्वापुच्छ (सं० क्ली०) शुनः पुच्छं, शुनो दन्तदंष्ट्रेति दीर्घं। श्वपुच्छ, कुत्तेकी पूंछ।

श्वाफल्क (सं० पु०) श्वफल्कस्य गोत्रापत्यं, शफल्क (ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च। पा ४।१।११) इति अपत्यार्थे अण्। श्वफल्कका गोत्रापत्य।

श्वाफल्कि (सं० पु०) श्वफल्क-इञ्। श्वफल्कका पुत्र, अक्रूर।

श्वायूथिक (सं० त्रि०) श्वयूथ-सम्बन्धी।

श्वावराह (सं० पु०) श्वा च वराहश्च ततो नस्य लोपः (अन्येषामपि दृश्यते। पा ६।३।१३७) इति दीर्घः। कुक्कुर और वराह, कुत्ता और सूअर।

श्वावराहिका (सं० स्त्री०) कुत्ते और सूअरकी लड़ाई।

श्वाविध् (सं० पु०) श्वानं विध्यतीति व्यध-क्विप्। (नहिवृतीति। पा ६।३।११६) इति दीर्घः। शल्य, साही नामक जन्तु। यह पञ्चनखोंके मध्य है, इसलिये इसका मांस खानेमें कोई दोष नहीं। (मनु ५।१८)

श्वाशुर (सं० त्रि०) श्वशुर-अण्। श्वशुर-सम्बन्धी।

श्वाशुरि (सं० पु०) श्वशुरस्यापत्यं श्वशुर (अत इञ्। पा ४।१।९५) इति इञ्। श्वशुरका अपत्य, पुरुषका साला और स्त्रियोंका देवर।

श्वाशुर्य (सं० पु०) श्वशुरका अपत्य, साला, देवर।

श्वाश्व (सं० पु०) श्वा कुकुरः अश्व इव वाहनं यस्य कुक्कुरवाहनत्वात्। भैरव, भैरवका वाहन कुत्ता।

श्वास (सं० पु०) श्वसित्यनेनेति श्वस-घञ् करणे। यद्वा श्वसितीति श्वस ण (श्याद्व्यधेति। पा ३।१।३४१। १ श्वसित, निश्वास, सांस, दम। २ प्राण वायु। पर्याय—प्राण। (राजनि०) ३ रोगविशेष, दमा। यह रोग महापातक और उपपातक पापकर्मसे उत्पन्न होता है उनमेंसे रोगकी अधिक प्रबलता होनेसे ही महापातकज तथा न्यूनता होनेसे उसे उपपातकज जानना होगा। क्योंकि, इस रोगको शुद्धितत्त्वमें नारदवचनानुसार महापातकके अन्तर्गत तथा मलमासतत्त्वमें उपपातकके अन्तर्गत उद्धृत किया गया है।

जो सब वस्तु खानेसे उपयुक्त समयमें वह परिपाक न हो कर स्तब्धभावमें पेटके अन्दर रहती है अथवा जो सब वस्तु खानेसे वक्षःस्थल और कण्ठकी नालीमें जलन देती है, वे सब वस्तु तथा गुरुपाक, रुक्ष, कफजनक और शीतल स्थानमें वास, नाककी राहसे धुओं और धूलका प्रवेश, आतप और प्रबल वायुका सेवन, वक्षःस्थलमें आघात लग सके, ऐसा व्यायाम, अधिक भारवहन, पथ पर्यटन, मलमूत्रादिका वेगधारण, अनसन और रुक्षताकारक कार्यादि द्वारा श्वास और हिक्कारोगकी उत्पत्ति होती है।

क्षुद्र, तमक, छिन्न, ऊद्‌र्ध्व और महाश्वासके भेदसे यह रोग पाँच प्रकारका है। नीचे यथाक्रम उनका यथायथ विवरण दिया जाता है,—

क्षुद्रश्वास—रूखी वस्तु खाने और अधिक परिश्रमसे अर्थात् दौड़ धूप या कठिन परिश्रमके बाद जो हांफनी आती है उसे क्षुद्रश्वास कहते हैं। यह दीर्घकाल-

स्थायी या विशेष कष्टदायक अथवा किसी प्रकारका प्राण नाशक नहीं है।

तमक श्वास—जब वायु ऊर्द्धगत स्रोतोंमें अवस्थित हो श्लेष्माको तरल करती है तथा श्लेष्म द्वारा स्वयं भी रुक जाती है, उस समय तमक श्वास उत्पन्न होता है। इस श्वासके आरम्भमें ग्रीवा और मस्तकमें वेदना होती है, पीछे कण्ठसे घड़ घड़ शब्द निकलता है, चारों ओर अंधकार दिखाई देता है; तृष्णा होती है, आलस्य आता है, खांसते खांसते जब श्लेष्मा निकलती है तब कुछ आराम मालूम होता है और जब नहीं निकलती, तब मूर्च्छा, पार्श्ववेदना, उष्ण द्रव्य या उष्ण स्पर्शकी इच्छा, दोनों आँखोंमें सूजन, ललाटसे पसीनेका निकलना, अत्यन्त यातना बोध, मुखशुष्कता, बार बार बड़ी तेज गतिसे श्वासका निकलना तथा गात्र सञ्चालन अर्थात् गजारूढ़ व्यक्तिकी तरह शरीर हमेशा हिलता रहता है। इस श्वासके साथ ज्वर और मूर्च्छा आनेसे उसे प्रतमक या सन्तमक श्वास कहते हैं। उक्त तमकश्वास मेघाम्बु, शैतक्रिया, पूर्व दिशाकी हवा तथा श्लेष्मवर्द्धक द्रव्यका व्यवहार करनेसे बहुत बढ़ जाता है।

छिन्नश्वास लक्षण—बड़े कष्ट और जोरसे विच्छिन्नभावमें अर्थात् एक एक कर जो श्वास ग्रहण करना होता है उसे छिन्न श्वास कहते हैं। इस श्वासमें अत्यन्त यन्त्रणा, हृदय विच्छिन्न होनेकी तरह वेदना, आनाह, घर्मनिर्गम, मूर्च्छा वस्तिदेशमें दाह, दोनों नेत्रकी चञ्चलता, और अश्रुस्राव, अङ्गकी कृशता और विवर्णता, एक चक्षुकी रक्तवर्णता, चित्तका उद्वेग, मुखशोष और प्रलाप, ये सब उपद्रव होते हैं।

ऊर्द्ध्वश्वास—इस श्वासमें रोगी जिस प्रकार दीर्घभावमें श्वास ग्रहण करता है उसका त्याग करते समय उसी वेगमें निश्वास नहीं छोड़ सकता। इस कारण क्रमशः थोड़े ही समयके अन्दर उसका दम बंद-सा मालूम होता है। उसका मुख और स्रोत श्लेष्मा द्वारा आवृत होनेके कारण वायु कुपित हो कर विशेष यातना पैदा करती है। इससे ऊर्द्धदृष्टि, विभ्रान्त, चक्षु, मूर्च्छा, अङ्गवेदना, मुखकी शुक्लवर्णता और चित्तकी विकलता आदि उपद्रव होते हैं।

महाश्वास—मतवाले बैलको बड़ी मजबूतीसे बांध रखने पर वह जिस प्रकार उछल कूद कर गों गों शब्द करता है, महाश्वास रोगमें वायुके ऊर्द्ध्वगत होनेसे उसी प्रकार शब्दके साथ दीर्घश्वास निकलता है। इस श्वासका शब्द दूरसे भी सुननेमें आता है। इस रोगमें रोगी अत्यन्त क्लिष्ट हो उठता है तथा उसके ज्ञान और विज्ञानशक्तिका नाश, दोनों नेत्र चञ्चल और विस्तृत, मुख-विकृत, मलमूत्रका रोध, वाक्य निस्तेज, मनकी क्लान्ति आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

साध्यासाध्यनिर्णय—उक्त पाँच प्रकारके श्वासमें छिन्न, ऊर्द्ध्व और महाश्वास स्वभावतः ही मारात्मक है; अर्थात् इनमेंसे किसी एकके उत्पन्न होनेसे ही रोगीकी मृत्यु होती है। तमक श्वासकी प्रथम अवस्थामें चिकित्सा होनेसे वह बड़ी मुश्किलसे आरोग्य होता है, किन्तु विलम्ब होनेसे वह चिकित्सा द्वारा भी आरोग्य नहीं होता, याप्यभावमें रहता है। परन्तु रोगीकी दुर्बल अवस्थामें इसकी प्रबलता रहनेसे सहसा प्राणनाशक हो उठता है। क्षुद्रश्वास रोग साध्यतम है। जो हो, प्राणनाशक जितने प्रकारके रोग हैं उनमें श्वास और हिक्काकी तरह शीघ्र प्राण लेनेवाला और कोई नहीं है।

श्वास वा हिक्कार्दित रोगीको पहले स्नेहकर्म द्वारा स्निग्ध और लवणान्वित तेलमें अभ्यक्त कर नाड़ीस्वेद, प्रस्तरस्वेद अथवा सङ्करस्वेद द्वारा चिकित्सा करे। ऐसा करनेसे रोगीकी स्रोतोगत ग्रथित श्लेष्मा तरलीकृत, रन्ध्र कोमल और वायु अनुलोमगामी होती है।

श्वासरोगमें स्वेदक्रिया अच्छी तरह होने पर भी जो श्वासग्रस्त, रोगी, दाहार्त्त, घर्मार्त्त, रक्तस्रावयुक्त, क्षीणधातु, क्षीणबल, रुक्ष, गर्भिणी और पित्तबहुल हैं, उन्हें स्वेद देना निषिद्ध है।

स्वेद और वमनादि द्वारा कफके निकलने पर भी यदि वह स्रोतादिमें कुछ अवशिष्ट रहे, तो धूम प्रयोग द्वारा उस दोषको निकाल दे। मोम, धूना और घृतको एक साथ मिला कर ढक्कन पर रखी हुई आग पर छोड़ दे। पीछे ऊपरसे एक दूसरा सच्छिद्र ढक्कन ढक कर सन्धिस्थलको अच्छी तरह जोड़ दे। ढक्कनके नीचे एक नल घुसेड़ कर उसीसे धूम पान करे। श्योणाक और

रेंड़ीकी डंठल अथवा कुशके नलको सुखा और घृताक्त कर उसका धूमपान करे। कनकधतूरेका फल, शाखा और पत्तको खंड खंड कर सुखा ले पीछे चिलम पर चढ़ा कर धूम पान करे तो प्रबल श्वासवेगका भी शीघ्र ही उपशम होता है। यह दृष्टफलप्रयोग है। कुछ सोरेको जलमें घोल कर उससे एक टुकड़े कागजको सिक्त करे। पीछे उसे सुखा कर चुरुटकी तरह नल बना कर उसका धूम पान करना होगा।

श्वासरोगमें अदरकके रसके साथ पीपरका चूर्ण दो आना और सैन्धव लवण दो आना, इन्हें एक साथ मिला कर पान करे। शोधित गंधकचूर्ण घृत अथवा मरिच और घृतके साथ सेवनीय है। बिल्वपत्रका रस, अडूसपत्रका रस अथवा श्वेत घनकुनीके पत्तका रस, इन्हें सरसों तेलमें मिला कर पान करे। गुलञ्च, सोंठ, करंजी, भटकटैया और तुलसी इनके काढ़े में पिपरा चूर्ण डाल कर पान करे। दशमूलके काढ़े में कूटचूर्ण डाल कर पान करनेसे श्वास, कास, पार्श्वशूल और वक्षस्थलकी वेदना दूर होती है।

पथ्य और पानीयादि—भटकटैया, वेलसोंठ, कर्कटश्रृङ्गी जवासा, गोखरू, गुलञ्च और चितामूल, इनके रसके साथ कुलथी कलायका जूस पाक कर छान ले। पीछे उसमें पीपर और सोंठका चूर्ण तथा लवण मिला कर घीमें भुन, हिक्का और श्वासरोगीको अन्नके साथ खिलावे। इससे श्वास, कास, हिक्का, पार्श्वशूल और हृद्रोग आदि विनष्ट होते हैं।

श्वासग्रस्त रोगीको साधारणतः दिवाभागमें मूंग, मसूर, चनेकी दाल, बड़ी झींगा मछलीका जूस, परवल, डूमर, पका कुम्हड़ा, मानकच्चू, आदिकी तरकारी, ब्राह्मीशाक, छाग, हरिण, शश, कबूतर, बटेर और बगले आदिके मांसका रस, बकरीका दूध, खजूर, अनार, सिंघाड़ा, किशमिश, आंवला, कच्चे ताड़का गूदा, मिस्री, नारियल, तिलतैल और घृतपक्व व्यञ्जनादि खानेको दिये जा सकते हैं। रात्रि कालमें गेहूं, जौकी रोटी अथवा पूरी और पूर्वोक्त तरकारी आदि, सूजी, चनेका वेसन, घृत और थोड़े मांठेसे तैयार किया हुआ जो कोई खाद्य, रोगी जहां तक पचा सके, खानेको दे सकते हैं। गरम जलको ठंढा कर अथवा अवस्थाविशेषमें कुछ गरम जल अथवा वायुका उपद्रव अधिक रहने पर पुरानी इमलीको जलमें डुबो कर वही जल या नीबूके रसके साथ मिसरीका शरबत पान करे। श्लेष्माकी अधिकता नहीं रहने पर नदी या परिष्कार सरोवरके जलमें स्नान किया जा सकता है।

कहनेका तात्पर्य यह है, कि जो कोई औषध, अन्न या जल वायु और श्लेष्मानाशक, उष्णवीर्य और वातानुलोमक हो उसीको हिक्का और श्वास रोगका हितकर जानना चाहिये। जो द्रव्य वातजनक है, पर कफनाशक अथवा वातनाशक है, वह ऐकान्तिक भावमें या अव्यभिचारित रूपमें इस रोगमें प्रयोग नहीं किया जा सकता। जो केवल वातनाशक है वह अनेक स्थलोंमें व्यवहृत हो सकता है। किन्तु जो केवल श्लेष्मानाशक है अर्थात् जो औषध, अन्न या जल व्यवहार करनेसे शरीर रसहीन हो कर अत्यन्त कर्शित होता है, उससे हिक्काश्वास रोगका कुछ भी उपशम नहीं होता। अतएव इस रोगमें औषध पथ्य आदि जिस किसीका व्यवहार क्यों न किया जाय, जिससे वायुका गमनपथ विशोधित रहे, सर्वदा उसी ओर लक्ष्य रख कर कार्य करना होगा। क्योंकि, नद, नदी आदि बृहज्जलाशयादिका गतिरोध होनेसे वह जिस प्रकार लवालव हो जाता है, उसी प्रकार श्वास रोगीकी वायु कफादि द्वारा रुद्धगति हो अधिक उदीर्ण हो जाती है तथा नाना प्रकारका उपद्रव पैदा करती है।

अपथ्य—गुरुपाक, रूक्ष, उष्णवीर्यद्रव्य, दधि, मत्स्य और लालमिर्च आदिका व्यवहार, रात्रिजागरण, अत्यन्त परिश्रम, अग्नि या रौद्रका उत्ताप, अति भोजन, अत्यन्त दुश्चिन्ता, शोक, क्षोभ, क्रोध आदि मनोविकार, इस रोगमें इन सबका सर्वथा परित्याग करना एकान्त कर्त्तव्य है।

श्वासकास (सं० पु०) श्वासयुक्तः कासः। १ दमा और खांसी, दमा।

श्वासकुठाररस (सं० पु०) श्वासस्य कुठार इव तन्नामको रसः। श्वासरोगमें उपकारी एक रसौषध। इसके तैयार करनेका तरीका—रस, गन्धक, विष, सोहागा, कालीमिर्च तथा त्रिकटु इनका समभाग ले कर जलमें

अच्छी तरह घोंटे, पीछे एक रत्ती भर गोली बनावे। इसका अनुपान अदरकका रस और मधु है। इसका सेवन करनेसे श्वासकास, स्वरभङ्ग और ज्वर आदि रोग विनष्ट होते हैं। (भैषज्यरत्ना०)

श्वासचिन्तामणि (सं० पु०) श्वासरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—लौहचूर्ण ४ तोला, गंधक २ तोला, अबरक २ तोला, पारा १ तोला, स्वर्णमाक्षिक १ तोला, मुक्ता आध तोला और सोना आध तोला इन्हें एक साथ घोंट कर भटकटैयाके रसमें, अदरकके रसमें, वकरीके दूधमें और मुलेठीके काढ़ेमें भावना दे, पीछे चार रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान मधु और बहेड़ेका चूर्ण है। इस औषधका सेवन करनेसे श्वास कास और यक्ष्मारोग आदि आरोग्य होते हैं।

(भैषज्यरत्ना०)

श्वासता (सं० स्त्री०) श्वासस्य भावः तल-टाप्। श्वासका भाव या धर्म।

श्वासप्रश्वासधारण (सं० क्ली०) श्वासप्रश्वासयो धारणं यत्र। प्राणायाम। (हेम) प्राणायाम करनेमें श्वास प्रश्वास धारण करना होता है।

श्वासभैरवरस (सं० पु०) श्वासरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रस, गन्धक, विष, त्रिकटु, मरिच, चई और चितामूल इनका चूर्ण समान भागमें ले कर अदरकके रसमें घोंटे। पीछे २ रत्तीकी गोली बनावे। यह औषध जलके साथ सेवन करनेसे श्वास, कास और स्वरभेद आदि रोग दूर होते हैं।

श्वासरोध (सं० क्ली०) १ सांस रोकना सांसको बाहर निकलनेसे रोके रहना। २ दम घुटना, सांस भीतर न समाना।

श्वासहेति (सं० पु०) श्वासस्य हेतिरिव। निद्रा, नींद।

श्वासा (हिं० स्त्री०) १ सांस, दम। २ प्राण, प्राणवायु।

श्वासारि (सं० पु०) श्वासस्य अरिः। १ पुष्करमूल। २ कुष्ठ नामक पौधा, कूट।

श्वासिन् (सं० पु०) श्वासयतीति श्वस णिच्-णिनि। १ वायु। श्वासोऽस्यास्तीति इनि। (त्रि०) २ श्वासरोगी।

धर्मशास्त्रमें लिखा है, कि यह रोग महापातकज है, अतः यह रोग होनेसे पहले प्रायश्चित्त कर, पीछे इसकी चिकित्सा करनी चाहिए। (प्रायश्चित्तवि०)

श्वासोच्छ्वास (सं० पु०) वेगसे सांस खींचना और निकालना।

श्वाह्नि (सं० पु०) यदुवंशीय राजभेद।

(भागवत ६।२३।३०)

श्विक्न (सं० पु०) १ एक देशका नाम। २ इस देशका निवासी। (शतपथ)

श्वितीची (सं० स्त्री०) श्वैत्यप्राप्ता, प्रकाश प्राप्ता, प्रकाशिता। (ऋक् १।१२३।६)

श्वित्न (सं० त्रि०) श्वेतवर्ण, सफेद। (ऋक् ८।४६।३१)

श्वित्न्य (सं० त्रि०) शुक्लवर्ण अलङ्कार द्वारा दीप्ताङ्ग, शुक्लवर्णाङ्ग। (ऋक् १।१००।१८)

श्वित्र (सं० क्ली०) श्वेतते इति श्वित-रक् (स्फायितञ्चिवञ्चीति। उण् २।१३) किलासभेद, श्वेत कुष्ठ, सफेद कोढ़। पर्याय—कुष्ठ, श्वेत या श्वेत्र। विरुद्ध भोजनादि और पापकर्म आदि कुष्ठरोगोक्त कारण ही श्वित्ररोगका निदान है। कुष्ठ देखो।

चरकमें लिखा है, कि मिथ्याकथन, विश्वासघातकता, गुरुलोकको निन्दा और उनका तिरस्कार अथवा जिस किसी तरह हो निर्यातन करना, इह और पूर्व जन्मकृत दुष्कर्म, देशकाल और संयोगविरुद्ध द्रव्य सेवन आदि कारणोंसे किलास रोगकी उत्पत्ति होती है।

भोजकृत ग्रन्थमें व्रणज और दोषज भेदसे श्वित्ररोगके दो प्रकार कहे गये हैं। पीछे दोषज फिर आत्मज और परज भेदसे यह दो प्रकारका है। क्षत अवस्थामें उसके ऊपर अयथोपचारके कारण व्रणज तथा दो प्रकारके दोषजमें परकीय संश्रवके कारण परज और देहस्थ वातादि कर्त्तृक आत्मज श्वित्ररोग उत्पन्न होता है।

सुश्रुतमें कुष्ठ तथा किलास, इन दोनोंके भेद निर्णय स्थलमें यह दिखलाया गया है, कि किलास त्वग्गत और अपरिस्रावी तथा कुष्ठ मात्र ही धात्वन्तरावगाही और स्रावशील है।

साध्यासाध्य लक्षण—जिस श्वित्रके रोम काले होते,

चमड़ा मोटा नहीं होता, जो आपसमें असंश्लिष्ट होते तथा जो अग्निदग्धज क्षतसे उत्पन्न नहीं है, उसे साध्य जानना चाहिये। इसका विपरीत अर्थात् जो सब श्वित्र क्रमशः वर्द्धित हो कर आपसमें मिले रहते हैं, जिसका चमड़ा मोटा मालूम होता और जिसकी अभ्यन्तरस्थ लोमावली लाल होती और जो बहुत पुराना है, उसे असाध्य जानना चाहिये। गुह्य तथा हस्त पदादिके तलदेश और ओष्ठभागमें उत्पन्न श्वित्र सर्वथा वर्जनीय है।

श्वित्रपञ्चानन तैल और कुष्ठरोगके सभी तैल, घृत, औषध और पथ्यापथ्यादि इस रोगमें सर्वदा व्यवहार्य हैं। पापजन्य श्वित्ररोगमें प्रायश्चित्तादि द्वारा पापक्षय होने पर पीछे वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण, रूक्षशक्तु भक्षण आदि द्वारा उसका नाश होता है। (चरक चि० ७ अ०)

श्वित्रक (सं० त्रि०) श्वित्ररोगयुक्त, सफेद कोढ़वाला।

श्वित्रघ्नी (सं० स्त्री०) श्वित्रं श्वित्ररोगं हन्तीति हन-टक्-ङीष्। शीतपर्णी, विछालीका पौधा।

श्वित्रिन् (सं० त्रि०) श्वित्रमस्त्यस्येति श्वित्र-इनि। श्वित्ररोगयुक्त, श्वेत कुष्ठयुक्त, सफेद कोढ़वाला। मनुमें लिखा है, कि यह रोग संक्रामक है। कन्याके पितामाताको यह रोग रहने पर उससे विवाह नहीं करना चाहिए। जिसे यह रोग हुआ हो; उसके साथ एक पंक्तिमें बैठ कर खाना मना है। याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि कपड़ा चुरानेके पापमें नरकभोगके बाद श्वित्ररोग होता है। (याज्ञवल्क्य ३।२१५)

श्वेत (सं० क्ली०) श्वेतते इति श्वित-अच्। १ रूप्य, चाँदी। (पु०) २ शुक्लवर्ण, सफेद रंग। ३ द्वीपविशेष। (भागवत १२।३३५।८) ४ पर्वतभेद। (मेदिनी) श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि यह पर्वत जम्बूद्वीपके पर्वतोंमेंसे एक है। भागवतके ५ स्कन्ध १६ अध्यायमें इस पर्वतका विवरण आया है। जम्बूद्वीप देखो। ५ कपर्द्दक, कौड़ी। ६ शुक्रग्रह। ७ श्वेताभ्र। ८ शङ्ख। ९ जीवक नामक अष्टवर्गीय औषध। १० शिवावतारविशेष। कूर्मपुराणमें लिखा है, कि कलियुगके पहले वैवस्वत मन्वन्तरमें भगवान् महादेव हिमालय पर्वतके रमणीय शिखर पर श्वेत रूपमें अवतीर्ण हुए। श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व और श्वेतलोहित ये चार ब्राह्मण इनके शिष्य थे।

११ राजविशेष। (अग्निपु० अन्नदाननामाध्याय) १२ नागविशेष। (भागवत ५।२४।३) १३ श्वेत वराह, वराहमूर्त्तिभेद। १४ श्वेत जीरक, सफेद जीरा। १५ श्वेत अश्व, घोड़ा। १६ सफेद बादल। १७ शोभाञ्जन वृक्ष, सहिंजन। १८ आयुर्वेदमें तीसरी त्वचाकी संज्ञा, शरीरके चमड़ीकी तीसरी तह। १९ स्कन्दानुचरभेद। २० केतुग्रह या पुच्छलतारा। (त्रि०) २१ जिसमें कोई रंग न मालूम हो। विना रंगका, सफेद धौला। विज्ञानसे सिद्ध है, कि श्वेत रंगमें सातों रंगोंका अभाव नहीं है बल्कि उनका गूढ़ मेल है। सूर्यकी किरणें देखनेमें सफेद जान पड़ती हैं पर रश्मि-विश्लेषण क्रियासे सातों रंगोंकी किरणें अलग हो जाती हैं। २२ शुभ्र, उज्ज्वल, साफ। २३ निष्कलङ्क, निर्दोष। २४ जो सांवला न हो, गोरा।

कविकल्पलतामें श्वेत वस्तुका विषय यों लिखा है—सुधांशु, उच्चैःश्रवा, शम्भु, कीर्त्ति, ज्योत्स्ना, शरद्घन, प्रासाद, सौध, तगर, मन्दारद्रुम, हिमाद्रि, सूर्यकान्त, इन्दुकान्त, कर्पूर, करभ, रजत, हली, हिम्मोक, भस्म, हिण्डीर, चन्दन, करका, हिम, हार, उर्णनाभतन्तु, अस्थि, स्वर्गङ्गा, हस्तिदन्त, अभ्र, शेषाहि, शर्करा, दुग्ध, दधि, गङ्गा, सुधाजल, मृणाल, सिकता, हंस, बक कैरव, चामर, रम्भागर्भ, पुण्डरीक, केतकी, शङ्ख, निर्झर, लोध्र, सिंहध्वज, छत्र, चूर्ण, सूक्ति, कपर्द्दक, मुक्ता, कुसुम, नक्षत्र, दन्त, पुण्य, उशना, सत्त्वगुण, कैलास, काश, कर्पास, हास, वासवकुञ्जर, नारद, पारद, कुन्द, खटिका और स्फटिक आदि वस्तु श्वेतवर्ण हैं।

श्वेतक (सं० क्ली०) श्वेतमेव स्वार्थे कन्। १ रूप्य, चांदी। २ कांस्य, कांसा। (पु०) ३ वराटक, कौड़ी। ४ श्वेत, सफेद रंग। (त्रि०) ४ श्वेतगुणविशिष्ट, सफेद।

श्वेतकटभी (सं० स्त्री०) १ शुक्लकटभी वृक्ष। २ श्वेतगुञ्जा।

श्वेतकण्टक (सं० पु०) श्वेत लज्जालुलता।

श्वेतकण्टकारिका (सं० स्त्री०) शुभ्रपुष्प कण्टकारी, सफेद फूलकी भटकटैया। गुण—रोचक, कटु, उष्ण, कफनाशक, चक्षुका हितकर, दीपन, रसनियामक।

भावप्रकाशके मतसे गुण—तिक्त, सारक, लघु, रुक्ष, पाचन तथा कास, श्वास, ज्वर, कफ, वायु, पीनस, पार्श्वपीड़ा, क्रिमि और हृद्रोगनाशक। श्वेत और पीत दोनों प्रकारकी कण्टकारिकाका फल कटु, रसयुक्त, तिक्त, पाकमें कटु, शुक्ररेचक, मलभेदक, लघु, पित्त और अग्न्युद्दीपक तथा कफ वायु, कण्डु, कास, कृमि और ज्वरनाशक होता है। कण्टकारीके फलमें इनके सिवाय गर्भकारित्व एक विशेष गुण है।

श्वेतकण्टकारी (सं० स्त्री०) श्वेतकण्टकारिका देखो।

श्वेतकण्टारिका (सं० स्त्री०) श्वेतकण्टकारी, सफेद भटकटैया। तेलगू—विलिय नेलमुलु। गुण—कटु, उष्ण, वात और श्लेष्मघ्न, चक्षुका हितकर, दीपन, रसपाचक।

श्वेतकन्द (सं० पु०) प्याज।

श्वेतकन्दा (सं० स्त्री०) शुक्लातिविषा, सफेद अतीस नामक औषध।

श्वेतकपोत (सं० पु०) १ एक प्रकारका चूहा। २ एक प्रकारका सांप।

श्वेतकरवीर (सं० पु०) श्वेत करवी, सफेद कनेर।

श्वेतकर्ण (सं० पु०) राजा सत्यकर्णके एक पुत्रका नाम।

श्वेतकाक (सं० पु०) शुक्ल काक, सफेद कौआ अर्थात् असम्भव बात।

श्वेतकाकीय (सं० त्रि०) १ कुक्कुर, मृग और काक सम्बन्धी या तत्तद्विषयाभिज्ञ अर्थात् जो कुक्कुरके नियत जागरूकत्व, मृगके भयचकितत्व और काकके इङ्गितत्वका विषय अच्छी तरह जानता हो। २ बक-सम्बन्धी। वर्षाकालमें बक जैसे स्वयं नीड़स्थ हो कर बकी द्वारा लाये हुए अन्नसे प्रतिपालित होता है वैसे उपायादि।

श्वेतकाञ्चन (सं० पु०) शुक्ल पुष्प काञ्चन वृक्ष, सफेद काञ्चन फूलका पेड़।

श्वेतकाण्डा (सं० स्त्री०) श्वेत दूर्व्वा, सफेद दूब।

श्वेतकापोती (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात महौषधि।

श्वेतकाम्बोजी (सं० स्त्री०) श्वेतगुञ्जा, सफेद घुंघची।

श्वेतकाष्ठा (सं० स्त्री०) श्वेतपाटला, सफेद पढार।

श्वेतकि (सं० पु०) एक धर्मपरायण राजा।

श्वेतकिणिही (सं० स्त्री०) श्वेता किणिही। वृक्षविशेष। गुण—कटु, उष्ण तथा गुल्म, विष, आध्मान, शूलदोष, वायु, कफ और जीर्णरोगनाशक।

श्वेतकुक्षि (सं० पु०) एक प्रकारकी मछली।

श्वेतकुञ्जर (सं० पु०) श्वेतः कुञ्जरः। १ ऐरावत हाथी। २ शुक्ल गज, सफेद हाथी।

श्वेतकुम्भिका (सं० स्त्री०) श्वेत पाटल वृक्ष।

श्वेतकुम्भी (सं० स्त्री०) श्वेतकुम्भिका देखो।

श्वेतकुण्टक (सं० पु०) शुक्लझिण्टी, सफेद कटसरैया। गुण—तिक्त, दन्त और केशका हितकर, स्निग्ध, मधुर, उष्ण, तीक्ष्णवीर्य तथा वली, पलित, कुष्ठ और वातरक्त-दोष, कफ, कण्डु और विषनाशक।

श्वेतकुश (सं० पु०) तृणविशेष, सफेद घास। इसकी जड़का गुण—शीतल, रुचिकर, मधुर तथा पित्त, रक्त, ज्वर, तृष्णा, श्वास और कामलानाशक।

श्वेतकुष्ठ (सं० क्ली०) श्वित्र या धवल रोग, सफेद दाग-वाला कोढ़। (माधवनिदान) मनुमें लिखा है, कि वस्त्र चुरानेसे यह रोग होता है।

श्वेतकुसुमा (सं० स्त्री०) श्वेत निर्गुण्डी, सफेद निसोथ।

श्वेतकृष्णा (सं० पु०) १ सफेद और काला। २ यह और वह पक्ष, एक बात और दूसरी बात। ३ एक प्रकार-का विषैला कीड़ा।

श्वेतकेतु (सं० पु०) श्वेतः केतुर्यस्य। १ मुनिविशेष, उद्दालक मुनिके पुत्र। छान्दोग्य उपनिषद् पढ़नेसे जाना जाता है, कि इन्होंने पिताके आदेशसे राजर्षि जनकके पास जा कर सबसे पहले ब्रह्मविद्याको सीखा। उप-निषद्में इनके ब्रह्मविद्यालाभके सम्बन्धमें विस्तृत विवरण देखा जाता है। प्राचीनकालमें स्त्रियां स्वामीके सामने भी परपुरुष ग्रहण करती थीं। स्त्रियोंके पुरुषग्रहणके विषयमें कोई विशेष नियम नहीं था। श्वेतकेतुने इस दोषको निवारण कर समाजकी मर्यादा स्थापन की। महाभारतमें लिखा है, कि उद्दालक नामक धर्मपरायण एक महर्षि थे। श्वेतकेतु उनका एकमात्र पुत्र था। एक दिन एक ब्राह्मणने श्वेतकेतुके पिताके सामने उनकी माताका हाथ पकड़ कर कहा, 'आओ, मेरे साथ चलो' श्वेतकेतु माताको परपुरुष द्वारा बलपूर्वक ले जाते देख

बड़े क्रुद्ध हुए। पिता उद्दालकने पुत्रका क्रोध देख उससे कहा, 'वत्स! तुम क्रोध न करो, यह सनातन धर्म है। इस भूमण्डल पर सभी वर्णों की स्त्री स्वाधीन हैं। पृथिवी पर गोगण जिस प्रकार व्यवहार करती हैं, प्रजा भी अपने अपने वर्णमें उसी प्रकार आचरण करती हैं।'

श्वेतकेतु पिताका यह वाक्य सुन कर भी अपना क्रोध रोक न सके। उन्होंने यह नियम चलाया, कि आजसे जो स्त्री स्वामीके रहते व्यभिचारिणी होगी, उसे घोर दुःखदायक भ्रूणहत्यासदृश पाप होगा। फिर जो पुरुष पतिव्रता प्रणयिनी भार्याका अतिक्रम कर पर-नारीसे संभोग करेगा, उसे भी वही पाप होगा और जो पत्नी स्वामी द्वारा पुत्रोत्पादनार्थ नियुक्त हो कर उसके वाक्यकी अवहेला करेगी, उसे भी उक्त पाप होगा। श्वेतकेतुने इसी प्रकार धर्मानुसारिणी समाजकी मर्यादा स्थापन की। तभीसे स्त्रीपुरुषका यदृच्छा व्यवहार निषिद्ध हुआ है। (भारत आदिप० १५३ अ०)

२ बुद्ध। ३ केतुग्रहविशेष।

पश्चिम दिशामें श्वेतकेतु, ऊर्मिकेतु और धूमकेतु ये तीन प्रकारके केतु उदय होते हैं। जिस समय श्वेत केतुका उदय होता है, उस समय पृथिवी श्वेतास्थिसे परिपूर्ण होती है, मनुष्य मनुष्यका मांस खाता है, अर्थात् घोर दुर्भिक्ष उपस्थित हो कर समस्त जीवको कष्ट देता है तथा समस्त जगत् क्षुधा और भयसे प्रपीड़ित हो चक्रवत् भ्रमण करता है।

दूसरेके मतसे चार प्रकारके केतुका उल्लेख देखा जाता है। उनमेंसे श्वेतकेतुके उदयसे अग्निभय, पीत केतुके उदयसे क्षुद्भय और कृष्णकेतुके उदयसे प्रबल रोगका प्रादुर्भाव होता है।

यह केतु जटा सदृश श्यामवर्ण तथा आकाशका त्रिभागगामी होता है और जिस ओर उदय होता है उसके विपरीत ओर निवर्त्तित होता है। इस केतुके उदयसे प्रजात्रिभागीकृत अर्थात् सारी प्रजाके चार भागमेंसे एक भाग विनष्ट होता है। (समयामृत)

श्वेतकेश (सं० पु०) श्वेताः केशा यस्मात्। १ रक्त शिग्रु, लाल सहिंजन। (जटाधर) श्वेतः केशः। २ शुक्लवर्ण केश, सफेद बाल।

श्वेतकोल (सं० पु०) श्वेतः कोलः क्रोड़देशो यस्य। शफर मत्स्य, पोठी या पोठिया मछली।

श्वेतखदिर (सं० पु०) श्वेतः खदिरः। शुक्ल खदिरवृक्ष, सफेद खैर। महाराष्ट्र—पाढ़रा खेरु। कलिङ्ग—विञ्जियतर्ञ्चि, पापरी, खैर, तैलङ्ग—तेल्लचण्ड। गुण—तिक्त, कषाय, कटु, उष्ण, कण्डुति, कुष्ठ, कफ, वात और व्रणनाशक। (राजनि०)

श्वेतगङ्गा (सं० स्त्री०) तीर्थभेद। इस तीर्थमें स्नान कर जो श्वेतमाधवको देखते हैं, उनकी श्वेतद्वीपमें गति होती है।

श्वेतगज (सं० पु०) श्वेतः शुक्लो गजः। १ इन्द्रहस्ती, ऐरावत हाथी। ऐरावत सफेद होता है इसीसे उसे श्वेतगज कहते हैं। २ शुभ्रवर्ण हस्ती, सफेद हाथी।

श्वेतगरुत् (सं० पु०) श्वेतः गरुत्पक्षो यस्य। हंस, राजहंस।

श्वेतगिरि (सं० पु०) श्वेत पर्वत, जम्बूद्वीपके वर्षपर्वतोंमेंसे एक पर्वत। (मार्कण्डेयपु० ५४।६)

श्वेतगुञ्जा (सं० स्त्री०) श्वेता गुञ्जा। शुक्लवर्ण गुञ्जा, सफेद घुंघची। गुण—तीक्ष्ण, उष्ण। इसका बीज वमनकारक, मूलशूल और विषनाशक होता है। इसका पत्ता वशीकार्यमें प्रशस्त माना गया है। (राजनि०)

श्वेतगुणवत् (सं० त्रि०) श्वेतगुण अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। श्वेतगुणविशिष्ट, सफेद गुणवाला।

श्वेतगोकर्णी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी लता।

श्वेतघण्टा (सं० स्त्री०) १ नागदन्ती। २ दन्ती।

श्वेतघण्टी (सं० स्त्री०) श्वेतघण्टा।

श्वेतचन्दन (सं० पु०) श्वेतं चन्दनं। शुभ्रवर्ण चन्दन, सारचन्दन चन्दन। कहनेसे सारचन्दनका बोध होता है। चन्दन देखो।

श्वेतचम्पक (सं० पु०) श्वेतः शुभ्रवर्णश्चम्पकः। शुभ्रवर्ण चम्पक, सफेद चंपा।

श्वेतचरण (सं० पु०) श्वेतौ चरणौ यस्य। १ प्लवचर जलपक्षिविशेष। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ अ०) (त्रि०) २ श्वेतचरणविशिष्ट, सफेद पैरवाला।

श्वेतचिल्लिका (सं० स्त्री०) श्वेता चिल्लिका। श्वेतचिल्ली, एक प्रकारका साग। गुण—मधुर, क्षार,

शीतल, त्रिदोषशमनकारी और ज्वरनाशक। (राजनि०)

श्वेतछत्र (सं० क्ली०) श्वेतं छत्रं। शुभ्रवर्णछत्र, सफेद छत्ता। (भागवत ६।१०।४२)

श्वेतछद (सं० पु०) श्वेतः छदो यस्य। १ हंस। (हला-युध) २ गन्धपत्र, वनतुलसी। (शब्दच०)

श्वेतजयन्ती (सं० स्त्री०) श्वेता जयन्ती, शुक्लजयन्तीवृक्ष।

श्वेतजरण (सं० पु०) शुक्ल जीरक, सफेद जीरा।

श्वेतजलज (सं० क्ली०) कुमुद।

श्वेतजीरक (सं० पु०) श्वेतजीरकः। गौरजीरक, सफेद जीरा। गुण—रुचिकर, कटु, मधुर, दीपन, क्रमि-नाशक, विष और ज्वरनाशक तथा उदराध्मानजनक।

श्वेतटङ्कक (सं० क्ली०) श्वेतं टङ्ककं। श्वेतटङ्कण, सफेद सोहागा। गुण—स्निग्ध, कटु, उष्ण, कफ, वात, आम, क्षय, श्वास, कास और मलनाशक।

श्वेतटङ्कण (सं० क्ली०) श्वेतटङ्कक देखो।

श्वेततण्डुलमण्ड (सं० पु० क्ली०) श्वेततण्डुलस्य मण्डं। आतपतण्डुलसिद्ध मण्ड, अरवा चावलका मांड़। गुण—मधुर, शीतल, किञ्चित् श्लेष्मवर्द्धक, शोषनाशक, अश्मरी, मेह, छर्द्दि और वातवर्द्धक। (अत्रिस० १२ अ०)

श्वेततपस् (सं० पु०) श्वेत नामक एक ऋषि।

श्वेततर (सं० पु०) वैदिक शाखाविशेष।

श्वेततरुलता (सं० स्त्री०) श्वेतवर्ण पुष्पविशिष्ट एक जातिकी तरुलता (Ipomoea quamoclit)।

श्वेतता (सं० स्त्री०) उज्ज्वलता, शुक्लता, सफेदी।

श्वेततुलसी (सं० स्त्री०) श्वेतपत्र तुलसी वृक्ष।

श्वेतत्रिवृत् (सं० स्त्री०) शुक्लमूल त्रिवृत्, सफेद निसोथ। गुण—रेचक, वायुनाशक, रुक्ष, पित्तज्वर, श्लेष्मा, पित्तज, शोथ और उदररोगनाशक। (भावप्र०)

श्वेतदन्ता (सं० क्ली०) श्वेतदन्ती, सफेद दूव।

श्वेतदन्ती (सं० स्त्री०) नागदन्ती।

श्वेतदूर्वा (सं० स्त्री०) श्वेता दूर्वा, सफेद दूव। इसका गुण—अति शिशिर, मधुर, वमन, पित्त, आम, अतिसार, कास, दाह और तृष्णानाशक, रुचिकर।

श्वेतद्युति (सं० पु०) चन्द्रमा।

श्वेतद्रुम (सं० पु०) श्वेतः द्रुमः। वरुणवृक्ष, वरुणाका पेड़।

श्वेतद्विप (सं० पु०) श्वेतः शुक्लः द्विपः। १ इन्द्रहस्ती, ऐरावत। २ शुक्लवर्ण हस्ती, सफेद हाथी।

श्वेतद्वीप (सं० पु०) श्वेतो द्वीपः। १ चन्द्रद्वीप। वैकुण्ठाख्य विष्णुधामको श्वेतद्वीप कहते हैं। (भाग० ८।४।१८) २ इङ्गलैण्डका एक नाम। अङ्गरेजी Albania नामके अनुकरण पर इसका श्वेतद्वीप नाम हुआ है।

श्वेतधातु (सं० पु०) श्वेतो धातुः। १ खटिका, दुग्ध पाषाण, दूधखल्ली। २ शुक्लवर्ण धातु द्रव्य।

श्वेतधामन् (सं० पु०) श्वेतं धाम किरणं यस्य। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर। ३ समुद्रफेन। ४ अपामार्ग चिचड़ा। ५ अपराजिता।

श्वेतधूनकी (सं० क्ली०) शुक्लधूनक, सफेद धूना।

श्वेतना (सं० स्त्री०) ऊषाकालका आह्वान।

श्वेतनाड़ी (सं० स्त्री०) १ खटिका, फूलखड़ी। २ श्वेता-पराजित, सफेद कोयल।

श्वेतनामन् (सं० पु०) श्वेतवर्ण अपराजिता पुष्प।

श्वेतनामा (सं० स्त्री०) श्वेतापराजिता, सफेद कोयल।

श्वेतनिष्पावा (सं० स्त्री०) श्वेतपुष्पनिष्पाव, सफेद सेम। इसका गुण—रुचिकर, मधुर, अल्प कषाय, शीतल, वातवर्द्धक, बल और आध्मानकर तथा पुष्टिकारक।

श्वेतनील (सं० पु०) श्वेतो नीलश्च 'वर्णोवर्णेनेति' समासः। १ मेघ, बादल। २ शुक्ल और नीलवर्ण, सफेद और नीला रङ्ग।

श्वेतपक्ष (सं० पु०) श्वेतः पक्षो यस्य। हंस।

श्वेतपट (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम।

श्वेतपटल (सं० क्ली०) यशद धातु, जस्ता नामक धातु।

श्वेतपत्र (सं० पु०) श्वेतं पत्रं पक्षो यस्य। १ हंस, राज-हंस। ३ श्वेत कमल। ३ श्वेत तुलसी। ४ ह्रस्वदर्भ, छोटा सफेद कुश।

श्वेतपत्ररथ (सं० पु०) १ श्वेत पत्रो हंसो रथो वाहनं यस्य। ब्रह्मा।

श्वेतपत्रा (सं० स्त्री०) श्वेत शिंशपा, सफेद शीशम।

श्वेतपद्म (सं० क्ली०) श्वेतं शुक्लं पद्मं। सिताम्भोज। गुण—हिम, तिक्त, मधुर, पित्त, दाह, अस्र, भ्रम और पिपासानाशक।

श्वेतपर्ण (सं० पु०) १ श्वेतार्जक, सफेद वनतुलसी। (पर्यायमुक्ता०) २ भद्राश्ववर्षके अन्तर्गत पर्वतविशेष।

श्वेतपर्णा (सं० स्त्री०) वारिपर्णी, जलकुम्भी।

श्वेतपर्णास (सं० पु०) श्वेत तुलसी, पर्याय—अर्जक, गन्धपत्र, कठेरक। (रत्नमाला)

श्वेतपर्वत (सं० पु०) पर्वतभेद। (भारत सभापर्व)

श्वेतपाकी (सं० स्त्री०) श्वेतपाक्याः फलं। श्वेतपाकी वृक्षका फल। (पा ४।३।१६७)

श्वेतपाटला (सं० स्त्री०) शुक्लपुष्प पाटल वृक्ष।

श्वेतपाद (सं० पु०) शिवके एक गणका नाम।

श्वेतपारावत (सं० पु०) शुभ्र कपोत, सफेद कबूतर।

श्वेतपाषाण (सं० पु०) १ शुभ्र प्रस्तर, सफ़ेद पत्थर। २ स्फटिक।

श्वेतपिङ्ग (सं० पु०) देहेन श्वेतः जटया पिङ्गश्च वर्णो वर्णेनेति समासः। सिंह।

श्वेतपिङ्गल (सं० पु०) १ सिंह। २ महादेव। (त्रि०) ३ शुक्ल कपिल वर्णयुक्त, सफेद मटमैला रंगवाला।

श्वेतपिङ्गलक (सं० पु०) श्वेतपिंगल कन् स्वार्थे। सिंह।

श्वेतपिण्डीतक (सं० पु०) महापिण्डी तरु, श्वेतपुष्प। मदनवृक्ष।

श्वेतपुङ्खा (सं० स्त्री०) श्वेतपुष्प, शरपुङ्खा।

श्वेतपुनर्नवा (सं० स्त्री०) शुभ्र पुनर्णवा, सफेद गदहपूरना। इसका गुण—कटु, कषायानुरस, दीपन तथा पाण्डु, शोथ, वायु, गरदोष, श्लेष्मा, व्रण और उदररोगनाशक।

श्वेतपुष्प (सं० पु०) १ श्वेत सिन्धुवार वृक्ष, सफेद निर्गुण्डी। २ महाशणक्षुप। ३ सेवन्ती पुष्पवृक्ष। ४ वरुण वृक्ष। ५ अर्कवृक्ष, अकवन। (क्ली०) ६ शुक्ल पुष्प, सफेद फूल।

श्वेतपुष्पक (सं० पु०) १ करवीर वृक्ष, कनेरका पेड़। २ श्वेतकाशतृण। (त्रि०) ३ शुक्ल पुष्पयुक्त, सफेद फूलवाला।

श्वेतपुष्पा (सं० स्त्री०) १ कोषातकी लता। २ श्वेत शण, सफ़ेद सन। ३ श्वेत निर्गुण्डी। ४ श्वेत गोकर्णिका, सफेद अपराजिता। ५ नागदन्ती। ६ मृगैर्वारु, सफेद इन्द्रायण।

श्वेतपुष्पिका (सं० स्त्री०) १ पुत्रदात्रीलता। २ महाशण-पुष्पिका, बड़ी सनपुष्पी।

श्वेतपुष्पी (सं० स्त्री०) श्वेतपुष्पिका देखो।

श्वेतपूरीका (सं० स्त्री०) खाद्य द्रव्यभेद। प्रस्तुत प्रणाली—गेहूंके चूर्णमें घी इस प्रकार मिलाना होगा, जिससे वह आपसे आप पिण्डाकारमें परिणत हो जाय। पीछे उक्त पिण्डमें थोड़ा जल मिला कर अच्छी तरह गूंधे और उसीका पूर अर्थात् पूआ बना कर घृतमें पाक करे। पाकके बाद चीनीके रस अर्थात् चाशनीमें डालनेसे यह अत्यन्त दुर्जर और जड़ताकारक होता है, किन्तु स्वभावतः यह धातुवर्द्धक, स्निग्ध, गुरु, वात और पित्तनाशक है।

श्वेतप्रदर (सं० क्ली०) वह प्रदर-रोग जिसमें स्त्रियोंको सफेद रंगकी धातु गिरती है।

श्वेतप्रसूनक (सं० पु०) श्वेतानि प्रसूनानि यस्य। १ शुक्र वृक्ष, सागौनका पेड़। (त्रि०) २ श्वेतवर्णपुष्पयुक्त, सफेद फूलवाला।

श्वेतफला (सं० स्त्री०) शुक्ल वृहती, सफेद भंटा।

श्वेतबुहा (सं० स्त्री०) अतिविषा।

श्वेतवृहती (सं० स्त्री०) शुक्ल क्षुद्र वार्त्ताकी, सफ़ेद भंटा। इसका गुण—वातश्लेष्मनाशक, व्यञ्जनयोगमें रोचक तथा नाना प्रकारके नेत्ररोगमें उपकारक।

श्वेतभण्टिका (सं० स्त्री०) शुक्ल वार्त्ताकी, सफ़ेद भंटा।

श्वेतभण्डा (सं० स्त्री०) श्वेत अपराजिता।

श्वेतभानु (सं० पु०) चन्द्रमा।

श्वेतभिक्षु (सं० पु०) पाण्डरभिक्षु। इस सम्प्रदायके लोग पाण्डुवर्ण वस्त्र पहनते और धूर्त तपस्वी होते हैं।

श्वेतभुजङ्ग (सं० पु०) ब्रह्माका एक अवतार।

श्वेतभृङ्गराज (सं० पु०) शुक्लपुष्प भृङ्गराज, सफेद भीमराज।

श्वेतमञ्जरी (सं० स्त्री०) क्षुप क्षुप।

श्वेतमण्डल (सं० पु०) १ चक्षुका अभ्यन्तरस्थ शुक्ल भाग, आंखके भीतरका सफ़ेद हिस्सा। २ मण्डलि सर्पविशेष। (सुश्रुतकल्प)

श्वेतमद्य (सं० पु०) मुस्तक, मोथा।

श्वेतमन्दार (सं० पु०) १ श्वेतार्क वृक्ष । सफेद अकवन । कर्ण—श्वेतमंदार । कर्णाट—बिलिमन्दारण । इसका गुण—अति उष्ण, तिक्त, मलशोधन तथा मूत्रकृच्छ्र और कृमिनाशक ।

श्वेतमन्दारक (सं० पु०) श्वेतमन्दार देखो ।

श्वेतमयूख (सं० पु०) चन्द्रमा ।

श्वेतमरिच (सं० पु०) १ शोभाञ्जन बीज, सहिंजनके बीज । महाराष्ट्र—पाण्डरे-मिरिये; कर्णाट—बिलिय मेनसु, तेलगू—तेलमिरियालु । इसका गुण—कटु, उष्ण तथा विष, भूतग्रह और दृष्टिरोगनिवर्त्तक । युक्तिपूर्वक प्रयोग करनेसे यह रसायनका काम करता है । २ श्वेत शिग्रु, सफेद सहिंजनका पेड़ । ३ सफेद मिर्च ।

श्वेतमहोटिका (सं० स्त्री०) श्वेता वृहती, सफेद भंटा ।

श्वेतमाण्डव्य (सं० पु०) ऋषिभेद ।

श्वेतमाधव (सं० क्ली०) १ तीर्थभेद । (पु०) २ विष्णुमूर्त्तिभेद ।

श्वेतमाल (सं० पु०) श्वेता शुक्लवर्णा माला यस्य । १ मेघ, बादल । २ धूम, धुआं । (विश्व) मेदिनी और शब्दरत्नावलीमें 'खतमाल' ऐसा पाठ है ।

श्वेतमाष (सं० क्ली०) सफेद उड़द ।

श्वेतमूर्गा (सं० स्त्री०) सफेद मोरंग फूल ।

श्वेतमूत्रता (सं० स्त्री०) कफरोगमें सफेद धूआं निकलना ।

श्वेतमूल (सं० पु०) श्वेत पुनर्णवा, सफेद गदहपूरना ।

श्वेतमूला (सं० स्त्री०) पुनर्णवाभेद, एक प्रकारकी गदहपूरना ।

श्वेतमृग (सं० पु०) भूरबमृगविशेष । (चरक)

श्वेतमेह (सं० क्ली०) शीतमेह ।

श्वेतमोद (सं० पु०) पीड़ाकारक ग्रहविशेष । इसके आवेगसे मनुष्यके शरीरमें अनेक प्रकारका रोग हो जाता है । (हरिवंश)

श्वेतयावन् (सं० त्रि०) श्वेतः यातीति श्वेत-या-वनिप् । श्वेत प्राप्त, जिसमें सफेदी हो ।

श्वेतयावरी (सं० स्त्री०) कुछ नदियोंके नाम । इनका जल बड़ा स्वच्छ और सफेद है, इसीसे इनका नाम यह हुआ है । (ऋक् ८।२६।१८)

श्वेतयूथिका (सं० स्त्री०) शुक्लयूथिका, सफेद जूही ।

श्वेतरक्त (सं० पु०) श्वेतो रक्तश्च । १ पाटल वर्ण, गुलाबी रंग । (त्रि०) २ पाटलवर्ण विशिष्ट, गुलाबी रंगका ।

श्वेतरञ्जन (सं० क्ली०) श्वेत सितांशुं रञ्जयति रञ्ज-ल्युट् । सीसक, सीसा ।

श्वेतरत्न (सं० क्ली०) स्फटिक । (पर्यायमुक्ता०)

श्वेतरथ (सं० पु०) श्वेतो रथो यस्य । १ शुक्रग्रह । २ शुक्लवर्ण स्यन्दन, सफेद रथ ।

श्वेतरश्मि (सं० पु०) १ चन्द्रमा । २ श्वेत ऐरावत रूपधारी गन्धर्वविशेष ।

श्वेतरस (सं० क्ली०) नवनीत, मक्खन ।

श्वेतराजि (सं० स्त्री०) श्वेतेन वर्णेन राजते इति राज-अच् ततो गौरादित्वात् ङीष् विकल्पे ह्रस्वश्च । चचेण्डा, चिचिण्डा । इसकी तरकारी होती है ।

श्वेतराजिका (सं० स्त्री०) श्वेतपीत सर्षप, सफेद और पीली सरसों ।

श्वेतराजी (सं० स्त्री०) श्वेतराजिका देखो ।

श्वेतरावक (सं० पु०) निर्गुण्डी वृक्ष ।

श्वेतरास्ना (सं० स्त्री०) श्वेतपुष्प रास्नाविशेष ।

श्वेतरूप्य (सं० क्ली०) जस्तामिश्रित प्युटर नामक धातु ।

श्वेतरोचिस् (सं० पु०) श्वेतं रोचिर्यस्य । चन्द्रमा ।

श्वेतरोध्र (सं० पु०) पट्टिका लोध्र, पठानी लोध ।

श्वेतरोहित (सं० पु०) पुष्पेण श्वेतः फलेन लोहितः लस्य रः । १ शुक्लपुष्प रोहित वृक्ष, सफेद रोहेड़ा । इसका गुण—कटु, स्निग्ध, कषाय, शीतल तथा क्रिमिदोष, व्रण, प्लीहा, रक्तदोष और नेत्ररोगप्रशमक । (राजनि०) २ गरुड़का एक नाम ।

श्वेतलक्ष्मणा (सं० स्त्री०) श्वेतकण्टकारिका, सफेद कंटकारी ।

श्वेतलोध्र (सं० पु०) पट्टिका लोध्र, पठानी लोध ।

श्वेतलोहित (सं० पु०) १ शिवका एक अवतार । २ शिवांशसम्भूत श्वेतकी प्रवर्त्तित शाखा ।

श्वेतवक्त्र (सं० पु०) स्कन्दके एक अनुचरका नाम ।

श्वेतवचा (सं० स्त्री०) १ वचा, सफेद बच । २ अतिविषा, अतीस । इसका गुण—बुद्धि, मेधा, आयु और

समृद्धिप्रद, वृष्य, दीपन तथा कफ, मूत्रग्रह, वात और क्रिमिदोषनिवर्त्तक। भावप्रकाशमें लिखा है, कि पारसीक वच भी सफेद तथा हैमवती कहलाता और श्वेत वचके समान गुणविशिष्ट होता है।

श्वेतवत्सा (सं० त्रि०) श्वेतवर्ण वत्सविशिष्टा गाभी, वह गाय जिसका बच्चा सफेद हो। (शतपथब्रा० ५।३।२।१)

श्वेतवर्णक (सं० क्ली०) श्वेत रक्तचन्दन, सफेद और लाल चंदन।

श्वेतवर्णा (सं० स्त्री०) १ वराटकभेद, सफेद कौड़ी। २ श्वेतपुष्प पाटलवृक्ष, सफेद पढारकी लता।

श्वेतवर्व्वरक (सं० क्ली०) वर्व्वर चन्दन।

श्वेतवर्व्वरिका (सं० स्त्री०) शुभ्र तुलसी, सफेद तुलसी।

श्वेतवल्कल (सं० पु०) श्वेतं वल्कलं यस्य। उदुम्बरवृक्ष, गूलर।

श्वेतवल्ली (सं० स्त्री०) शुक्लवास्तुक शाक, सफेद वथुआ।

श्वेतवस्त्रिन् (सं० त्रि०) श्वेत वस्त्रधारी, सफेद कपड़ा पहननेवाला।

श्वेतवह (सं० पु०) इन्द्र।

श्वेतवाराह (सं० पु०) १ ब्रह्माकी सृष्टिके आदियुगका प्रथम कल्प। इसका परिमाण ४३२००००००० वर्ष है; इस कल्पके स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तमज, तामस, रैवत और चाक्षुष आदि छः मनु यथाक्रम गुजर गये हैं। इस समय वैवस्वत नामक सप्तम मनुका अधिकारकाल है, इनका भी सत्ताईस युग व्यतीत हो कर वर्त्तमान अठाईस युगमें कलिका प्रारम्भ हुआ है। २ विष्णुका एक रूप। ३ एक तीर्थका नाम।

श्वेतवाजिन् (सं० पु०) श्वेतो वाजी घोटको यस्य। १ चन्द्रमा। २ अर्ज्जुन। ३ शुक्ल घोटक, सफेद घोड़ा।

श्वेतवारिज (सं० क्ली०) श्वेतपद्म।

श्वेतवार्त्ताकिनी (सं० स्त्री०) श्वेत वृहती, सफेद भंटा।

श्वेतवासस् (सं० पु०) श्वेतं वासो यस्य। १ शुक्लवस्त्रधारी संन्यासी। (हलायुध) (त्रि०) परिहित शुक्लवसन, जो सफेद कपड़ा पहने हुए हो।

श्वेतवाह् (सं० पु०) श्वेतेन वाहनेन उह्यते इति वह-णिव (पा ३।२।६४) इन्द्र।

श्वेतवाह (सं० पु०) श्वेतः शुक्लः वाहो घोटको यस्य। १ अर्जुन। २ इन्द्र। ३ अर्जुनवृक्ष। (वाभट सू०)

श्वेतवाहन (सं० पु०) श्वेतं वाहनं यस्य। १ शिव। (हरिवंश) २ चन्द्रमा। ३ अर्जुन। ये सफेद घोड़े वाले रथ पर चढ़ कर युद्ध करते थे इसलिये इनका यह नाम पड़ा। ४ मकर। ५ राजाधिदेवके पुत्र और विदुरथके पौत्र। (हरिवंश ३८।२)

श्वेतवाहिन (सं० पु०) श्वेतवाहः श्वेतघोटकोऽस्यास्तीति इनि। अर्जुन।

श्वेतविट्कता (सं० स्त्री०) श्वेता विट् यस्य, श्वेतविट्कः तस्य भावः तल्-टाप्। कफाधिक्य जन्य शुक्ल पुरीषता, कफकी अधिकता होनेसे विष्ठा सफेद हो जाती है।

श्वेतबीज (सं० पु०) श्वेतकुलत्थ, सफेद कुलथी कलाय।

श्वेतवृन्ताक (सं० पु०) शुक्लवर्ण वार्त्ताकु, सफेद बैंगन। यह बैंगन खाना नहीं चाहिये।

श्वेतवृहती (सं० स्त्री०) शुक्लवर्ण क्षुद्रवृहती, सफेद भंटा। कलिङ्ग—विलिय-गुल्लु, बम्बे—पाण्डरी और डोरली। यह वातश्लेष्मनाशक, रुचिकर, अञ्जनके साथ प्रयोग करनेसे नाना नेत्ररोगनाशक होता है।

श्वेतवृक्ष (सं० पु०) श्वेतोवृक्षः। १ वरुणवृक्ष। २ शुक्लवर्णवृक्ष, सफेद पेड़।

श्वेतव्रत (सं० पु०) धर्मसम्प्रदायभेद। (वासवदत्ता)

श्वेतशरपुङ्खा (सं० स्त्री०) श्वेता शरपुङ्खा। क्षुपविशेष, सफेद सरफोंका। गुण—कटु, उष्ण, कृमि और वातरोगनाशक।

श्वेतशर्कराकन्द (सं० पु०) सफेद शकरकंद।

श्वेतशारिवा (सं० स्त्री०) शारिवाभेद, सफेद अनन्तमूल। यह अनन्तमूल दुग्धगर्भा होता है अर्थात् इसको काटने या तोड़नेसे भीतरसे दूधके समान रस निकलता है; इसका गुण—शीतल, मधुर, शुक्रवर्द्धक, गुरु, स्निग्ध, तिक्त, सुगन्धि, कुष्ठ, कण्डू और ज्वरनाशक, देहदौर्गन्ध, अग्निमान्द्य, श्वास, कास और अरुचिनाशक, आमदोष, त्रिदोष, विष और रक्तदोषनाशक तथा कफ, अतिसार, तृष्णा, दाह और रक्तपित्तप्रशमक।

श्वेतशाल्मलि (सं० पु०) शुक्लपुष्प किंशुक वृक्ष, सफेद

सेमलका पेड़। इस शाल्मली वृक्षमें सफेद फूल होता है, इसलिये इसे श्वेतशाल्मलि कहते हैं।

श्वेतशिंशपा (सं० स्त्री०) श्वेतपत्र शिंशपावृक्ष, सफेद पत्तेवाला शीसमका पेड़। महाराष्ट्र—पाण्डराशिंशपा और शिशव, कलिङ्ग—विलिय इवीडु। इसका गुण—तिक्त, शीतल और पित्तदाहनाशक।

श्वेतशिख (सं० पु०) शिवावतार श्वेतप्रवर्त्तित शिष्य सम्प्रदाय।

श्वेतशिग्रु (सं० पु०) श्वेतः शुक्लः शिग्रुः। शुक्ल शोभाञ्जन, सफेद सहिंजन। महाराष्ट्र—पाण्डरा सेगवा, विलियनुगिम। इस पेड़के फूल और पत्ते सफेद होते हैं। गुण—कटु, तीक्ष्ण, शोफ, अङ्गव्यथा, मुखजाड्य और वायुनाशक, रुचिकर, दीपन।

श्वेतशिम्बा (सं० स्त्री०) श्वेता शिम्बा, श्वेतशिम्बी। सफेद सेम।

श्वेतशिला (सं० स्त्री०) श्वेतवर्ण पाषाणभेद, सफेद पथरचर। इसका गुण—शीतल, स्वादु, मेहकृच्छ्रनाशक, मूत्ररोध, अश्मरी, शूल, क्षय और पित्तनाशक।

श्वेतशीर्ष (सं० पु०) दैत्यविशेष। (हरिवंश)

श्वेतशुङ्ग (सं० पु०) श्वेता शुङ्गा यस्य। १ यव, जौ। (त्रि०) २ शुक्लवर्ण शुङ्गयुक्त।

श्वेतशूक (सं० पु०) श्वेतः शूको यस्य। यव, जौ।

श्वेतशूरण (सं० पु०) श्वेतः श्वेतवर्णः शूरणः। वन शूरण, वनओल। महाराष्ट्र और वम्बे—पाण्डराशूरण, कलिङ्ग—विलियशूरण। इसका गुण—रुचिकर, कटु, उष्ण, कृमिघ्न, गुल्म, शूल और अरुचिनाशक।

श्वेतशेफालिका (सं० स्त्री०) शुक्लशेफालिकावृक्ष, सफेद निर्गुण्डी।

श्वेतशैल (सं० पु०) पर्वतभेद। (हरिवंश)

श्वेतशैलमय (सं० त्रि०) श्वेतवर्ण मर्मर प्रस्तर द्वारा समाच्छादित। (राजत० ६।३०२)

श्वेतश्रेष्ठ (सं० पु०) चन्दन वृक्ष।

श्वेतसर्ज (सं० पु०) श्वेतः श्वेतवर्णः सर्जः। श्वेतधूनक, सफेद धूना।

श्वेतसर्प (सं० पु०) १ वरुण वृक्ष। (जटाधर) २ शुभ्रवर्ण सर्प, सफेद सांप।

श्वेतसर्षप (सं० पु०) श्वेतः सर्षपः। श्वेतवर्ण सर्षप, सफेद सरसों।

श्वेतसार (सं० पु०) श्वेतः सारो यस्य। १ खदिर, खैर। २ सजीव उद्भिज्जादिके अन्तर्निहित श्वेतवर्ण पदार्थ विशेष (starch)। यह ओसके समान सफेद, देखनेमें उज्ज्वल और टीपनेसे थोड़ा थोड़ा शब्द होता है गेहूं, आलू आदिमें यह बहुतायतसे पाया जाता है।

श्वेतसिंही (सं० स्त्री०) श्वेतवृहती, सफेद कंटकारी।

श्वेतसिद्ध (सं० पु०) स्कन्दके एक अनुचरका नाम।

श्वेतसुरसा (सं० स्त्री०) श्वेता सुरसा। १ शुक्ल शेफालिका, सफेद निर्गुण्डी। २ श्वेतपुष्प तुलसी वृक्ष।

श्वेतसुरा (सं० स्त्री०) सुराभेद, एक प्रकारकी शराब।

श्वेतस्पन्दा (सं० स्त्री०) श्वेतापराजिता।

श्वेतहनु (सं० पु०) सर्पभेद, एक प्रकारका सांप।

श्वेतहय (सं० पु०) श्वेतो हयः। १ इन्द्राश्व इन्द्रका घोड़ा उच्चैःश्रवा। श्वेतो हयो यस्य। २ अर्जुन। (हेम) ३ शुक्लवर्ण घोटक, सफेद घोड़ा। (त्रि०) श्वेतवर्ण अश्व विशिष्ट, सफेद घोड़ावाला।

श्वेतहर (सं० पु०) महाशाल वृक्ष।

श्वेतहस्तिन् (सं० पु०) श्वेतो हस्ती। १ ऐरावत। २ शुक्लवर्ण गज, सफेद हाथी। हस्ती देखो।

श्वेता (सं० स्त्री०) श्वेत टाप्। १ वराटिका, कौड़ी। २ काष्ठपाटला। ३ अतिविषा, अतीस। ४ अपराजिता। ५ श्वेत वृहती, सफेद वन-भंटा। ६ श्वेत कण्टकारी, भटकटैया। ७ पाषाणभेद, पखानभेदी। ८ शिलावल्कला। ९ श्वेतदूर्वा सफेद दूब। १० वंशरोचना। ११ स्फटी, फिटकरी। १२ स्फटिकारिका, फिटकरी। १३ गम्भारी वृक्ष। १४ लूताभेद, एक प्रकारकी मकड़ी। १५ शर्कराजात सुरा, चीनीकी शराब। इसका गुण—कास, अर्श, ग्रहणी, श्वास और प्रतिश्यायनाशक, मूत्र, कफ, स्तन्य रक्त और मांसवर्द्धक। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ अ०) १६ शरीरकी सात त्वचाओंमेंसे तीसरी त्वचा। इसका प्रमाण व्रीहिका १२वां भाग है। यह त्वचा चर्मदल, अजगल्ली और मशककी अधिष्ठानस्वरूप है अर्थात् अवल्ली आदि रोग इसी त्वचामें होता है दूसरी त्वचामें नहीं। १६ स्कन्दकी

अनुचरी एक मातृका। १८ कश्यपकी क्रोधवशा नाम्नी पत्नीसे उत्पन्न एक कन्या जो दिग्गजोंकी माता है। १८ श्वेतवचा, सफेद वच। १६ मिस्री। २० श्वेत पुनर्णवा, सफेद गदहपूरना। २१ भोजपत्रका पेड़। २२ श्वेत या शंख नामक हस्तीकी माता, शंखिनी। २३ क्षुपदी, पर्वमूला। यह तृण बरसातमें उगता है और जाड़ेमें नष्ट हो जाता है। यह एक या डेढ़ बालिश्त ऊंचा और छतनारा होता है। पत्तियां छोटी, फूल नीले या बैंगनी रंगके और बीज छोटे छोटे दानोंकी तरहके होते हैं। क्षुपदी मधुर, शीतल और स्त्रीका दूध बढ़ानेवाली कही गई है। २४ शुक्लागुञ्जा, सफेद घुंघची।

श्वेताक्ष (सं० पु०) सोमलताभेद। (सुश्रुत चि० २६ अ०)

श्वेताञ्जन (सं० क्ली०) शुक्लाञ्जन, सफेद सुरमा।

श्वेताढ़की (सं० स्त्री०) श्वेतपुष्पाढ़की, सफेद अरहर।

श्वेताण्ड (सं० त्रि०) जिसका अण्डकोष सफेद हो।

श्वेतात्रिवृत् (सं० त्रि०) शुक्लत्रिवृता, त्रिपुटा, सर्वानुभूती, सरला, निशोत्तरा, रेचनी। इसका गुण—रेचन, स्वादु, उष्ण, वायु, पित्त, ज्वर, श्लेष्म, शोथ, उदरनाशक, और रुक्ष।

श्वेतात्रेय (सं० पु०) ऋषिभेद।

श्वेताद्रि (सं० पु०) श्वेतः अद्रिः। १ श्वेतपर्वत। २ कैलास पर्वत। (भागवत ८।८।४)

श्वेताद्रिकर्णिका (सं० स्त्री०) शुक्लगिरिकर्णिका।

श्वेतानुलेपन (सं० त्रि०) श्वेतं अनुलेपनं यस्य। १ श्वेत अनुलेपनविशिष्ट। (पु०) २ बलराम।

श्वेतानूकाश (सं० त्रि०) शुभ्रदीप्तिविशिष्ट।

श्वेताभद्रा (सं० स्त्री०) श्वेतगोकर्णी, सफेद अपराजिता।

श्वेताभ्र (सं० क्ली०) श्वेतवर्ण अभ्र, सफेद अबरक।

श्वेताम्लि (सं० स्त्री०) क्षुपविशेष। पर्याय—अम्लिका, पिष्टोड़ी, पिण्डिका। इसका गुण—मधुर, वृष्य, पित्तनाशक और बलप्रद।

श्वेताम्बर (सं० त्रि०) १ श्वेतवस्त्रधारी, सफेद कपड़ा पहननेवाला। (पु०) २ श्वेत वस्त्र, सफेद कपड़ा। ३ शिव। ४ छन्दोमातङ्कके रचयिता। वृत्तरत्नाकरादर्शमें इनका उल्लेख है। ५ जैनोंके दो प्रधान सम्प्रदायोंमेंसे एक। ये लोग चंवरी रखते, बाल उखड़ाते, श्वेत वस्त्र पहनते, क्षमायुक्त रहते और भिक्षा मांग कर अपना निर्वाह करते हैं। ये स्त्रियोंका भी अपवर्ग मानते हैं। जैन देखो।

श्वेतायिन् (सं० त्रि०) श्वेतकी वंशपरम्परा।

श्वेतायुग्म (सं० क्ली०) श्वेतायाः युग्मं। दो प्रकारकी अपराजिता।

श्वेतारण्य (सं० क्ली०) तीर्थविशेष। मायावरमके पास तिरुवालाड़ प्रदेशमें कावेरी नदीके किनारे यह तीर्थ अवस्थित है।

श्वेतारिरस (सं० पु०) श्वित्ररोगाधिकारोक्त रसौषधविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—पारा, गंधक, त्रिफला, भृङ्गराज, कृष्णतिल, नीमबीज, इन्हें भृङ्गराजके रसमें तीन सप्ताह क्रमागत पीस और सुखा कर यह औषध तैयार करें। यह औषध आध तोला सेवन करना होता है। अनुपान मधु और घृत है। इसका सेवन करनेसे श्वित्रकुष्ठ (सफेद कोढ़) जल्द आराम होता है।

श्वेतार्क (सं० पु०) श्वेतः शुक्लवर्णः अर्कः। शुक्लार्क वृक्ष, सफेद अकवन। गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, मलशोधनकारक, मूत्रकृच्छ्र, अस्र, शोफ, व्रणदोष और विषनाशक।

श्वेतार्चिस् (सं० पु०) चन्द्रमा।

श्वेतालु (सं० पु०) महिषकन्द, भैसा कंद।

श्वेतावर (सं० पु०) श्वेतं शुक्लवर्णं आवृणोतीति आ-वृ-अच्। सितावर शाक।

श्वेतावलोकन (सं० पु०) श्वेतं अवलोकनं यस्मिन्। कफज रोगविशेष। कफकी वृद्धि होनेसे सभी वस्तु सफेद दिखाई पड़ती हैं।

श्वेताश्व (सं० क्ली०) १ कैटर्य, कायफल। (पर्याय पु०) (पु०) श्वेतोऽश्वो यस्य। २ अर्जुन। ३ श्वेतवर्ण अश्व, सफेद घोड़ा।

श्वेताश्वतर (सं० स्त्री०) १ कृष्ण यजुर्वेदकी एक शाखा। २ उपनिषद् विशेष। कृष्ण यजुर्वेदकी यह उपनिषद् छः अध्यायोंकी है। इसमें वेदान्तके प्रायः सब सिद्धान्तों के मूल पाये जाते हैं। भगवद्गीताके बहुतसे प्रसंग इससे लिये हुए जान पड़ते हैं। इसकी संस्कृत बड़ी

हो सरल और स्पष्ट है। वेदान्तके प्रसंगके अतिरिक्त इसमें योग और सांख्यके सिद्धान्तोंके मूल भी मिलते हैं। वेदान्त, सांख्य और योग तीनों शास्त्रोंके कर्त्ताओंने मानो इसीके मूल वाक्योंको लेकर ब्रह्मके स्वरूप तथा पुरुष प्रकृति भेद आदिका विस्तार किया है।

श्वेताश्व (सं० पु०) शिवावतार श्वेतका प्रवर्त्तित सम्प्रदाय।

श्वेताह्वा (सं० स्त्री०) श्वेता आह्वा यस्याः। १ श्वेत पाटला, सफेद पाडर। २ शुक्ल गोकर्णी।

श्वेतिका (सं० पु०) सौंफ।

श्वेतेक्षु (सं० पु०) श्वेत इक्षुः। शुक्लवर्ण इक्षु, सफेद ईख। पर्याय—सितेक्षु, कोष्ठेक्षु, वंशपत्रक, सुवेश, पाण्डुरेक्षु। इसका गुण—काठिन्य, रुचिकर, गुरु, कफ और मूत्रकारक, दीपन, पित्तजन्य दाहनाशक, पाकमें थोड़ा उष्ण। (राजनि०)

श्वेतोत्पल (सं० पु०) एक प्राचीन ज्योतिर्विद्।

श्वेतैरण्ड (सं० पु०) श्वेतः एरण्ड। शुक्ल एरण्ड वृक्ष, सफेद रेंडी। महाराष्ट्र—पाण्डरे एरण्ड। इसका गुण—कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, गुरु, मधुर, तिक्त, वृष्य, स्वादु, वात, उदावर्त्त, कफज्वर, कास और उदररोगनाशक, शोथ, शूल, कटि, वस्ति, शिरःपीड़ा, श्वास, आनाह, कुष्ठ, गुल्म, प्लीहा, आम और पित्तनाशक।

श्वेतोदर (सं० पु०) श्वेतमुदरं यस्य। १ कुबेर। २ दर्वीकर जातीय सर्पविशेष, एक प्रकारका फणवाला सांप। (सुश्रुत कल्पस्था० ४ अ०) ३ श्वेत वर्ण उदर, सफेद पेट। ४ एक पर्वत।

श्वेतौही (सं० स्त्री०) श्वेतवाह ङीष्। इन्द्राणी।

श्वैत्य (सं० त्रि०) १ श्वेतवर्णयुक्त, सफेद रंगका। २ श्वेतवर्णयुक्त उषा। (ऋक् १।११३।२)

श्वैत्र (सं० क्ली०) श्वित्ररोग, सफेद कोढ़।

श्वैक्न (सं० पु०) श्विक्न देशके राजा।

श्वैतच्छत्रिक (सं० त्रि०) श्वेतच्छत्र सम्बन्धी वा श्वेतच्छत्रके योग्य।

श्वैतरी (सं० स्त्री०) १ पयोयुक्ता, दुग्धवती। २ श्वेततरा, श्रेष्ठ श्वेत वर्णा। (ऋक् ४।३३।१)

श्वैत्य (सं० क्ली०) शुभ्रता, शुक्लत्व, सफेदी।

श्वैत्रेय (सं० पु०) श्वित्रा नाम्नी किसी स्त्रीका पुत्र। पुराकालमें यह व्यक्ति शत्रुके भयसे बहुत दिनों तक जलमें रहा। पीछे इन्द्रके अनुग्रहसे शत्रुका वेग सहने में समर्थ हो जलसे बाहर हुआ। (ऋक् १।३३।१४)

श्वैत्र्य (सं० क्ली०) श्वित्ररोगता।

श्वोभाव (सं० पु०) दूसरे दिनके कर्त्तव्य विषयमें यत्नशीलता।

श्वोभाविन् (सं० त्रि०) दूसरे दिनका कर्त्तव्यानुष्ठानकारी।

श्वोभूत (सं० अव्य०) दूसरे दिन संघटित।

श्वोमरण (सं० त्रि०) जो दूसरे दिन मरेगा।

श्वोवसीय (सं० क्ली०) श्वोवसीयस देखो।

श्वोवसीयस (सं० क्ली०) वसुशब्दः प्रशस्तवाची तत ईयसुनि वसीयः, श्वः शब्द उत्तरपदार्थप्रशंसामाशी विषयतामाह। मयूर व्यंसकादि त्वात् समासः। (श्वसो वसीयः श्रेयसः। पा ५।४।८०) इति अच्। १ कल्याण, कुशल, मंगल। २ मोक्ष। (त्रि०) ३ कल्याण युक्त। ४ भावी शुभसम्पन्न।

श्वोवस्यस (सं० त्रि०) ब्रह्मन्।

ष

ष—संस्कृत या हिन्दी वर्णमालाके व्यञ्जन वर्णोंमें ३१वां वर्ण या अक्षर। इसका उच्चारणस्थान मूर्द्धा है, इससे यह मूर्द्धन्य वर्णोंमें कहा गया है।

"सुमूर्द्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः।"

(शिक्षाशास्त्र)

तन्त्रोक्त पर्याय—श्वेत, वासुदेव, पीत, प्राज्ञ, विनायक, परमेष्ठी, वामबाहु, श्रेष्ठ, गर्भविमोचन, लम्बोदर, यमौजेश, कामधूक, कामधूमक, सुश्री, उशना, वृष; लज्जा, मरुद्भक्ष्य, प्रिय, शिव, सूर्यात्मा, अठर, कोष, मन्ता, वक्ष, विदारिणी, कलकण्ठ, मध्यभिन्ना, युद्धात्मा, मलपू, शिरः। (तन्त्र)

यह वर्ण अष्टकोणयुक्त, रक्तचन्दनसङ्काश, कुण्डलीकार, चतुर्वर्गप्रद, सुधानिर्मित शरीर, पञ्चदेव और पञ्चप्राणमय, रजः, सत्त्व और तमः गुणत्रय संयुक्त, त्रिशक्ति, त्रिबिन्दु और आत्मादि तत्त्वसंयुक्त तथा सर्वदेवमय है। इसकी सर्वदा हृदयमें चिन्तना करना कर्त्तव्य है।

इसका प्रयोग केवल संस्कृत शब्दोंमें होता है और उच्चारण दो प्रकारसे होता है। कुछ लोग 'श' के समान इसका उच्चारण करते हैं और कुछ लोग 'ख' के समान। इसीसे हिन्दीकी पुरानी लिखावटमें इस अक्षरका व्यवहार कवर्गीय 'ख' के स्थान पर होता था।

ष (सं० पु०) १ कच, केश। २ मानव ३ सर्व, सभी। ४ गर्भविमोचन। ५ शिक्षक। ६ नाश, ध्वंस, क्षति। ७ अवशेष, बाकी। ८ प्राक्तन संस्कार। ९ ज्ञानलोप। १० मुक्ति, निर्वाण। ११ स्वर्ग। १२ निद्रा। (क्लो०) १३ अङ्कुर। १४ धैर्य। (त्रि०) १५ विज्ञ। १६ श्रेष्ठ, उत्तम। १७ शोभन, सुन्दर।

षञ्जन (सं० पु०) १ आलिंगन। २ समागम, मिलना।

षष् (सं० त्रि०) १ छः, गिनतीमें ६। (पु०) २ छःकी संख्या। ३ षाड़व जातिका एक राग। यह दीपकका पुत्र माना गया है। इसके गानेका समय प्रातः १ दंडसे ५ दंड तक है। इसमें सबसे कोमल स्वर लगते हैं। कोई कोई इसे आसावारी, ललित, टोड़ी और भैरवी आदि रागिनियोंसे उत्पन्न संकर राग मानते हैं।

षटि (सं० स्त्री०) शटी, कचूर।

षट्क (सं० त्रि०) षड्भिः क्रीतं षट्-कन् (संख्यायां अतिदन्तायाः कन्। पा ५।१।२२) १ छः अर्थात् छःगुनेसे खरीदा हुआ। स्वार्थे कन्। (पु०) २ २६की संख्या। ३ छः वस्तुओंका समूह। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञानके समूहको प्रायः षट्क कहते हैं।

षट्कटु (सं० क्ली०) सोंठ, पीपल, मिर्च, चई, चीता और पिपरामूल ये छः कटु द्रव्य षट्कटु कहलाते हैं।

षट्कनिघण्टु (सं० पु०) वैद्यकनिघण्टुभेद।

षट्कपाल (सं० त्रि०) छः कपालकार पात्रविशिष्ट।

षट्कर्ण (सं० त्रि०) १ जहां छः कान एकत्र हों। प्राचीन नीति है, कि छः कान अथवा तीन मनुष्योंका समावेश हो, वहां कोई गुप्त मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए, करनेसे वह अवश्य ही सबों पर प्रकट हो जायगी। २ एक प्रकारकी वीणा या सितार जिसमें छः कान होते हैं।

षट्कर्मन् (सं० क्ली०) १ यजन प्रभृति छः प्रकारके कर्म। यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह आदि कर्मोंको भी षट्कर्म कहते हैं। ब्राह्मण इन छः प्रकारके कर्मों द्वारा जीविकानिर्वाह और धर्मानुष्ठान करते हैं, इसीसे ब्राह्मणका दूसरा नाम षट्कर्मा हुआ है। इस षट्कर्मके मध्य याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह ये तीन धर्म हैं। ऊक्त तीन कार्य द्वारा धर्मानुष्ठान तथा बाकी तीन द्वारा जीविका निर्वाह करना ब्राह्मणोंका कर्त्तव्य है।

२ छः प्रकारके शान्ति आदि कर्म। तन्त्रशास्त्रमें षट्कर्मका विधान इस प्रकार लिखा है—शान्तिकर्म, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और मारण इन छः प्रकारके कर्मोंके नाम षट्कर्म हैं। इस षट्कर्ममेंसे जिस कर्म द्वारा रोग, कुकृत्या और ग्रहदोष निवारण होते हैं, उसे शान्तिकर्म कहते हैं। सभी लोगोंको वशमें लानेका नाम वशीकरण अर्थात् जिस क्रिया द्वारा मनुष्य वशीभूत होते हैं उसीको वशीकरण कहते हैं। जिस क्रिया द्वारा सबोंकी प्रवृत्ति रुक जाती

है अर्थात् कार्यकारिताशक्ति जाती रहती है, उसे स्तम्भन, आपसके प्रणयिजनका द्वेषजनक जो कार्य्य है उसे विद्वेषण, जिस कर्म द्वारा स्वदेशसे उच्छेद कर दिया जाता है उसे उच्चाटन तथा जिसके द्वारा प्राणिहरण होता है उसे मारण कहते हैं। तन्त्रमें इस षट्कर्मको आभिचारिक क्रिया कहा है। तन्त्रशास्त्रमें अभिज्ञ व्यक्तिगण यदि यथाविधान इन सब कार्यों का अनुष्ठान करें तो शीघ्र ही फललाभ होता है। यह षट्कर्म करनेमें पहले सभी कर्मों के देवता, दिशा और कालादिका ज्ञान रहना आवश्यक है। इन सब कर्मों में शान्तिकार्यके देवता रति, वशीकरणके देवता वाणी, स्तम्भन कार्य्यके देवता रमा, विद्वेषणके ज्येष्ठा, उच्चाटनके दुर्गा और मारण कार्य्यके देवता काली हैं। अतएव इन षट्कर्मों में जो कर्म करना होगा उसके देवताका पहले यथानियम पूजनादि कर कार्य्यसाधन करना होता है।

षट्कर्ममें तिथि आदिका विशेष नियम है। तन्त्रोक्त तिथि वारादिका निरूपण करनेके बाद उस कार्य्यका अनुष्ठान करना होता है। बुध और वृहस्पतिवारमें पञ्चमी, द्वितीया, तृतीया और सप्तमी तिथिमें विद्वेषण-कार्य्य प्रशस्त है। शनिवार और कृष्णाष्टमी तिथिमें उच्चाटन कार्य्य करना होता है। इस कार्य्यमें प्रदोषकाल अति प्रशस्त है। शनि और मङ्गलवारमें कृष्णाष्टमी, कृष्णा चतुर्दशी या अमावस्या होनेसे उसी दिन मारण कार्य्य करना उचित है। चन्द्र और बुधवारमें शुक्ला पञ्चमी, शुक्ला दशमी और पूर्णिमा तिथि पड़नेसे स्तम्भन कार्य्य तथा शुभग्रहके उदय और शुभ दिनमें शान्ति कार्य्य करना होता है। अशुभ ग्रहके उदयमें विद्वेषणादि अशुभ कार्य्य उत्तम है। रविवारमें किसी तिथि होनेसे मृत्युयोगमें मारणकार्य्य करना चाहिये।

इस षट्कर्ममें जपकार्यका भी विशेष विशेष विधान लिखा है। वशीकरण कार्य्यमें पूर्वमुख हो जप, अभिचारकार्य्यमें पश्चिममुख, आकर्षणमें अग्निकोणमें, मारणमें नैऋतकोणमें और उच्चाटनमें वायुकोणमें बैठ कर जप करे। मारण कार्य्य करनेके समय वसन और उष्णीष आदि सभी लोहित वर्ण करने होते हैं। इस कार्य्यमें लौहनिर्मित भूषणका धारण तथा वाम हस्तसे पूजादि करने कहे गये हैं।

मारणकार्य्यमें मनुष्यको स्नायुनिर्मित रज्जु प्रस्तुत कर युद्ध भिन्न मृत व्यक्तिकी अथवा गदहेके दन्तकी जपमाला बना कर उसीसे जप करे। आकर्षण कार्य्यमें भग्न हस्तिदन्तनिर्मित माला द्वारा जप तथा विद्वेषण और उच्चाटन कार्य्यमें साध्य व्यक्तिके केशरूप सूत द्वारा अश्वदन्तनिर्मित माला बना कर जप करना होता है।

षट्कर्मका आसनादि नियम—पद्मासन, स्वस्तिकासन, विकटासन, कुक्कुटासन, वज्रासन और भद्रासन षट्कर्ममें प्रशस्त हैं। इसके सिवा पद्म, पाश, गदा, मूषल, वज्र और खड्ग नामकी ६ मुद्राकी भी षट्कर्ममें जरूरत होती है। यथा—शान्तिकर्ममें पद्ममुद्रा, वशीकरणमें पाशमुद्रा इत्यादि। षट्कर्म करनेके समय पञ्च तत्त्वका उदय स्थिर कर कार्य्य करना होता है। जलतत्त्वके उदय कालमें शान्तिकार्य्य, वह्नितत्त्वके उदयमें वशीकरण, पृथ्वीतत्त्वमें स्तम्भन, आकाश तत्त्वमें विद्वेषण, वायुतत्त्वके उदयमें मारण कार्य्य करे।

इस पञ्चतत्त्वका उदय निम्नोक्त प्रकारसे स्थिर होता है। भूमितत्त्वके उदयकालमें दोनों नासापुटसे दण्डाकारमें श्वास निकलता है, जलतत्त्व और अग्नितत्त्वके उदयकालमें नाकके ऊर्द्धभागसे, वायुतत्त्वके उदयकालमें वक्रभावसे और आकाशतत्त्वके उदयकालमें नाकके मध्य भागसे श्वास निकलता है। इन सब श्वास निर्गमनके लक्षणों द्वारा किस समय किस तत्त्वका उदय होता है, उसका निरूपण कर व्रती कार्य्य सम्पन्न करें।

पञ्चतत्त्वका उदय और पञ्चभूतका मण्डल जान कर पीछे कर्मानुष्ठान करना आवश्यक है। जिस तत्त्वके उदयमें जो कार्य्य कहा गया है, उसी तत्त्वका मण्डल बना कर वह कार्य्य करें।

उक्त षट्कर्ममें 'ठं, वं, लं, हं, यं, रं' इन छः वीज मन्त्र द्वारा यथाक्रम वह सब कर्म करने होंगे तथा उन कार्यों में ग्रथन, विदर्भ, संपुट, रोधन, योग और पल्लव इन छः प्रकारके मन्त्रोंका विन्यास करना होता है।

षट्कर्मके मन्त्र तथा देवताके श्वेत, रक्त, पीत, मिश्र, कृष्ण और धूम्र ये छः प्रकारके वर्ण कहे गये हैं। शान्ति आदि षट्कर्ममें यथाक्रम उक्त छः प्रकारके वर्णविशिष्ट मन्त्र और देवताका ध्यान कर चन्दन, गोरोचना, हरिद्रा,

गृहधूम चिताङ्गार और आठ प्रकारके विष इन द्रव्यों द्वारा यथाक्रम मन्त्र लिखना होगा। श्येन पक्षीकी विष्ठा, चितामूल, विट्‌लवण, धतूरेका रस, गृहधूम, मरिच, पीपर और शोंठ इन्हें अष्टविष कहते हैं।

उच्चाटन कर्म करनेके समय मन्त्रके अन्तमें वषट्, मारणमें हुं फट्, स्तम्भनमें नमः, शान्तिकर्म और पौष्टिक कार्यमें स्वाहा पदका योग करना होता है। होम और तर्पण में मन्त्रके अन्तमें स्वाहा तथा न्यास और पूजा-मन्त्रके शेषमें नमः शब्द भी जोड़ा जाता है।

शान्ति आदि षट्कर्मोंमें मन्त्रके ग्रन्थनादि संस्कार-के लिये पात्रकी पृथकता निर्दिष्ट हुई है। शान्तिकार्य्य में रजत या ताम्रपात्र और वशीकरणमें भूर्जपत्र पर मन्त्र लिख कर ग्रथनादि संस्कार करे। सुवर्ण पात्रोंका सभी प्रकारके कार्योंमें व्यवहार हो सकता है। मार-णादि क्रूर कर्मोंमें प्रेतके वस्त्र पर मन्त्र लिखना होता है। शान्तिकार्य्यमें तीन प्रकारकी गंध, वशीकरणमें पञ्चगव्य, सर्वकार्य्यमें अष्टगन्ध और मारणमें अष्टविषका व्यवहार करे। शान्तिकर्ममें दूर्व्वा, वशीकरण आदिमें मयूरपुच्छ, सभी कार्योंमें सुवर्ण तथा क्रूरकर्मोंमें काक पुच्छकी कलम बना कर उसीसे मन्त्र लिखना होगा। अपने घरमें बैठ शान्तिकार्य्य, चण्डिकालयमें वशीकरण, देव गृहमें सभी कार्य्य और श्मशानमें क्रूर कार्य्य करना होता है। साधकको चाहिये, कि वे सम्यगरूपसे देवता, काल और मुद्रादि जान कर षट्कर्मका अनुष्ठान करें। ऐसा करनेसे इस कर्मका फललाभ होगा। जो ये सब विषय अच्छी तरह नहीं जानते हैं उन्हें षट्कर्ममें नियुक्त होना उचित नहीं।

शान्ति आदि षट्कर्मोंका विधान तन्त्रसार और अन्यान्य तन्त्रोंमें लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां उनका उल्लेख नहीं किया गया।

३ योगशास्त्रोक्त छः प्रकारके कर्म। धौति, वस्ति, नेति, नौलिकी, त्राटक और कपालभाति आदि योगशास्त्रोक्त क्रियाको षट्कर्म कहते हैं।

योगशास्त्रके मतसे षट्कर्मका आचरण करनेसे देहादि विशुद्ध और ज्ञानलाभ होता है। इस षट्कर्मके अनुष्ठान द्वारा आसन दृढ़ तथा चित्त शुद्ध होता है। योग शब्द देखो।

षट्कल (सं० त्रि०) छः कलाविशिष्ट।

षट्कला (सं० पु०) संगीतमें ब्रह्मतालके चार भेदोंमेंसे एक भेद।

षट्कसम्पत्ति (सं० पु०) छः प्रकारके कर्म—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान।

षट्कार (सं० पु०) षट् शब्द उच्चारण, वषट्‌कार।

षट्कारक (सं० पु०) कर्त्तृ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण इन छःकी समष्टिको षट्कारक कहते हैं। कारक शब्दमें इनका विस्तृत विवरण देखो। कारक देखो।

षट्कुक्षि (सं० त्रि०) षड़ोदयसम्पन्न।

षट्कुलीय (सं० त्रि०) षट्‌कुल सम्बन्धी।

षट्कूटा (सं० स्त्री०) भैरवीविशेष। नीचे इसके मन्त्र, मन्त्र और पूजाविधिका विषय लिखा जाता है।

मन्त्र—ज्ञानार्णवमें लिखा है, कि 'डरलकसहैं डरलक-सहीं डरलकसहौं' इस मन्त्रसे षट्‌कूटा भैरवीकी पूजा करनी होती है। कोई कोई तृतीय बीज अर्थात् 'डरल-कसहौं' की जगह 'डरलकसहौः' ऐसा विसर्गान्त पढ़ते हैं। ध्यान—

"बालसूर्य्यप्रभां देवीं जवाकुसुमसन्निभाम्।
मुण्डमालावलीरम्यां बालसूर्य्यसमांशुकाम्।
सुवर्णकलसाकारपीनोन्नतपयोधराम्।
पाशाङ्कुशौ पुस्तकञ्च तथा च जपमालिकाम्।
(तन्त्रसार)

षट्‌कृत्वस् (सं० अव्य०) छः बार।

षट्‌कोण (सं० क्ली०) १ जातककी कोष्ठीके जातचक्रके लग्नस्थानसे छठवां घर। इस स्थानको ज्योतिषशास्त्रमें रिपुगृह कहते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व)

षट् कोणा यस्य। २ वज्र, हीरक। (राजनि०) ३ तन्त्रोक्त यन्त्रभेद, गणेश यन्त्र। यह यन्त्र प्रथमतः ऊर्द्ध्वमुख त्रिकोण, उसके ऊपर अधोमुख त्रिकोण लिखनेसे जो षट्कोण होगा, उसके मध्यस्थ प्रणवमें गं यह गणेशबीज लिखे। उस प्रणवके चारों ओर श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं यह मन्त्र लिखना होगा। पीछे उसके बाहरवाले छः कोष्ठों में ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं यह छः बीज लिखने होंगे। इसके बाद छः सन्धिस्थानोंमें नमः, स्वाहा, वषट्, हुं,

वौषट् और फट् ये छः अङ्ग मन्त्र लिखे। अनन्तर पद्मके अष्टदलमें तीन तीन मन्त्र वर्ण लिख कर अवशिष्ट वर्ण शेषदलमें विन्यास करे। यथा गणप १, तयेमव २, रद्वीष ३ रदःस ४ र्वजन ५ वश ६ मानय ७ स्वाहा ८। पीछे उसे एक पंक्ति अनुलोम वर्ण एक पंक्ति विलोम वर्ण द्वारा वेष्टन कर उसके वहिर्भागमें आं क्रों इस वर्ण द्वारा वेष्टन करे। यह मन्त्र फिरसे दो भूपुर द्वारा वेष्टन करना होगा। लाक्षा, कुंकुम, गोरोचन, और मृगमद द्वारा भोजपत्र पर मन्त्र लिख कर सुवर्णके कवचमें रख कर पहननेसे साधक सर्वजन प्रार्थनीय सम्पत्ति भी आसानीसे लाभ कर सकते हैं। महागणपतिका यह यन्त्रविधान देवताओंका भी पूज्य, सर्व सिद्धिकर और निखिल पुरुषार्थप्रद है।

षट्कोप (सं० पु०) एक पुराने आचार्यका नाम।

षट्खेटक—नगरभेद।

षट्चक्र—तन्त्रोक्त साधनाङ्गभूत निगूढ मानसप्रक्रियाके लिये दैहिक छः कल्पित पद्म। तान्त्रिक साधकोंने षट्चक्रभेदतत्त्व अच्छी तरह जान कर देहके सूक्ष्मतत्त्व नाड़ीज्ञानके सम्बन्धमें यथेष्ट उत्कर्ष लाभ किया था। हम श्रीमत्पूर्णानन्द प्रणीत षट्चक्रनिरूपण नामक ग्रन्थ पढ़नेसे उसका आभास पाते हैं। षट्चक्रनिरूपण ग्रन्थमें तान्त्रिक योगियोंके शरीरविचयशास्त्रकी सूक्ष्मज्ञानवाहिनी नाड़िकाओंके क्रियातत्त्व (Psycological Physiology of the nervous sytem) सम्बन्धमें अति सूक्ष्म आलोचना देखी जाती है। वर्त्तमान एनाटमी (Anatomy) या फिजिओलोजी (Physiology) शास्त्रमें षट्चक्रके सूक्ष्मतत्त्वका हाल नहीं रहने पर भी हम इन सब जड़ीय विज्ञानके षट्चक्रकी सूक्ष्म-भित्ति योगविद्याके प्रखर आलोकसे अति स्पष्टरूपमें देख पाते हैं। केवल nervous system षट्चक्रका आलोच्य विषय नहीं है, मास्तिष्क पदार्थमें भी (Cerebral substiance) परमतत्त्व प्रबोधक ज्ञान निरूपित हुआ है। इन सब विषयोंका समावेश होनेके कारण ही षट्चक्रमें लिखी हुई उक्तियोंकी अच्छी तरह आलोचना होना उचित है। यहां पर पहले षट्चक्रका कुछ स्थूल आभास दिया जाता है—

मेरुदण्डके (spinal chord) मध्य तीन नाड़ी हैं, इड़ा, सुषुम्ना और पिङ्गला; बाईं ओर इड़ा, दाहिनी ओर पिङ्गला और दोनोंके बीचमें सुषुम्नाका अवस्थान है।

षट्चक्रग्रन्थकारका कहना है, कि मेरुदण्डके बहिर्भागमें वाम ओर दक्षिण और इड़ा तथा पिङ्गला नामकी दो नाड़ियां तथा मध्यस्थलमें सुषुम्ना नामकी नाड़ी विद्यमान है। यह नाड़ी चन्द्रसूर्याग्निरूपा है तथा उसने मस्तककी ओर अग्रसर हो कर खिले हुए धतूरेपुष्पका आकार (medulla oblongata) धारण किया है। इस सुषुम्ना वज्रनाड़ी है। नाड़ीमें एक और नाड़ी है। उसका नाम वज्रनाड़ी मेढ़देशसे उत्पन्न हो कर मस्तकमें फैल गई है। वज्रनाड़ी ज्वलत् प्रभामयी है। मेरुदण्ड ही जीवसृष्टिका प्रधान गठन है। पाश्चात्यचिकित्साविज्ञानका Embriology पढ़नेसे जाना जाता है, कि मेरुदण्ड ही पहले पहल बनता है। फलतः मेरुदण्ड ही जैवशक्ति है। यह सबसे पहले अभिव्यक्त हो कर दैहिक क्रियाका सञ्चार करता है। ये सब नाड़ियाँ (nerves) पृष्ठवंश या मेरुदण्डसे उत्पन्न होती हैं। ये समुज्ज्वल और पद्मतन्तुको तरह पतली हैं। (शिवसंहिता)

हम पाश्चात्य शरीरविषय (Physiology) ग्रंथमें भी यह तत्त्व देखते हैं*।

* The spinal chord gives origin in its course to thirty one pairs of spinal nerves, each nerve having two roots anterior and posterior, the latter being distinguished by its greater thickness and by the presence of an enlargement called a ganglion, in which are found numerous bipolar cells. The anterior root is motor, the posterior sensory. The mixed nerve after junction of the roots contains (a) sensory fibres passing posterior roots; (b) motor fibres coming from the anterior roots; (c) sympathetic fibres, either Vaso-motor or Vaso-dilator. The trunk of the great sympathetic nerve consists of a chain of swellings or ganglia (चक्र) connected by intermidiate chords of grey nerve-fibres.

षट्चक्रके साथ सुषुम्ना नाड़ीका ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी सुषुम्ना नाड़ीमें षट्चक्रका अवस्थान है। सुषुम्ना नाड़ीमें जो सात पद्म दिखलाये गये हैं, उनमेंसे छः पद्म षट्चक्र कहलाते हैं। सप्तपद्मके नाम ये सब हैं,—१ मूलाधार, २ स्वाधिष्ठान, ३ मणिपुर, ४ अनाहत, ५ विशुद्ध, ६ आज्ञा और ७ सहस्रदल।

पहले साधारणभावमें इन सब पद्मोंका परिचय दिया जाता है। आधार-पद्म पायु-देशके कुछ ऊपर सुषुम्ना नाड़ीमें संलग्न है। उसके चार दल हैं; उन चार दलोंमें वं शं षं सं ये चार वर्ण हैं। इस पद्मके मध्य धारचक्र नामक एक चतुष्कोण चक्र है। उसके आठों ओर आठ शूल हैं। मध्यस्थलमें पृथ्वीबीज लं तथा कर्णिकामें त्रिकोणयन्त्र चिह्नित है। इस पद्मके मध्य लिङ्गरूपी महादेव वास करते हैं तथा उसके अमृत निर्गमन स्थानमें मुँह सटा कर सर्परूपा कुण्डलिनी शक्ति रहती है। स्वाधिष्ठान पद्म लिङ्गमूलमें रहता है। उसके छः दल हैं। उन छः दलोंमें बं भं मं यं रं लं ये छः वर्ण हैं। उस पद्मके मध्यस्थलमें गोलाकृति वरुण मण्डल और उस मण्डलके बीच अर्द्धचन्द्र है; उसमें वं यह वर्ण अङ्कित है। उस पद्ममें वारुणी शक्ति रहती है। मणिपुर पद्म नाभिमूलमें अधिष्ठित है। उसके दश दल हैं। उन दश दलोंमें डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं ये दश वर्ण लिखे हैं। उस पद्मके मध्यस्थलमें त्रिकोण अग्निमण्डल है। उस त्रिकोणके तीन पार्श्वमें स्वस्तिक आकारके तीन भूपुर और मध्यस्थलमें रं यह वर्ण चिह्नित है। इस पद्मके मध्य लाकिनी शक्ति रहती है। अनाहत नामक पद्म हृदयमें अवस्थित है। उनके बारह दल हैं। उन बारह दलोंमें कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं ये बारह वर्ण अङ्कित हैं। उस पद्ममें छः कोणवाला वायुमण्डल तथा उसके मध्य यं बीज विद्यमान है। उस पद्ममें शिव और काकिनी शक्ति वास करती है। विशुद्ध नामक पद्म कण्ठदेशमें अवस्थित है। उसके सोलह दल हैं। उन सोलह दलोंमें, अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ये सोलह वर्ण लिखे हैं। उस पद्मके मध्यस्थलमें गोलाकार चन्द्रमण्डल तथा उसके भीतर गोलाकृति नभोमण्डल और हं बीज वर्त्तमान है। उस पद्ममें शाकिनी शक्ति वास करती है। भ्रूके मध्य आज्ञा नामक द्विदल पद्म है। उसके दो दलोंमें हं क्षं ये दो वर्ण हैं। उसके मध्य त्रिकोणाकृति शक्ति और उस शक्तिके मध्य शिव अवस्थित हैं। इस पद्ममें हाकिनी शक्ति रहती है। इसके कुछ ऊपर प्रणवाकृति परमात्मा हैं। उसके ऊपरी भागमें चन्द्र-विन्दु, उसके ऊपर शङ्खिनी नाड़ी और सबके ऊपर सहस्रदल पद्म है। उसके पचास दलोंमें आकारादि लकार पर्यन्त सविन्दु पचास वर्ण हैं। इस पद्मके मध्य गोलाकृति चन्द्रमण्डल, उसके मध्य त्रिकोणयन्त्र तथा सबके मध्य शिवस्थानमें परम शिव वास करते हैं।

तान्त्रिकसाधनाके बहुत पहले उपनिषदादिमें भी नाड़ीतत्त्वकी आलोचना होती थी। हम छान्दोग्य-उपनिषद्में, यहां तक कि वेदसंहितामें भी नाड़ीका परिचय पाते हैं। धर्मसाधनाके साथ देहतत्त्वका सम्बन्ध जैसा अभिव्यक्त हुआ है, दूसरे और किसी भी शास्त्रमें वैसा नहीं देखा जाता। सुषुम्नाके किस चक्रका कैसा कार्य्य है, उसके अन्तर्गत किस नाड़ीकी कैसी अध्यात्मिक क्रिया है, शिवसंहिता और षट्चक्रनिरूपणमें उसकी यथेष्ट आलोचना देखी जाती है। हम इस श्रेणीके ग्रन्थोंका अंगरेजी भाषामें Physio-psychology नाम रख सकते हैं। फलतः शिवसंहिता और और षट्चक्रनिरूपण अध्यात्म-आधिभौतिक विज्ञान विशेष है। इन सब ग्रन्थोंमें नाड़ीविज्ञान (Nervous Physiology) के सम्बन्धमें अति सूक्ष्मतत्त्व लिखा गया है। हम यहां पर इस सम्बन्धमें और भी दो एक दृष्टान्त देते हैं।

पहले ही कहा जा चुका है, कि सुषुम्नाके मध्य वज्र नामकी एक नाड़ी है। षट्चक्र ग्रन्थका तृतीय श्लोक पढ़नेसे जाना जाता है, कि वज्र नाड़ीके मध्य

---

and extending nearly sympathetically on each side of the Vertibral column (इड़ा और पिङ्गला) from the base fo:ter of Cranium to the Coccyx (मूलाधार-चक्रस्थान)

चित्रिणी नामकी एक और नाड़ी है। यह नाड़ी मकड़ी के तन्तुकी तरह वारीक है। यह चर्मचक्षु की अगोचर है; किन्तु योगियोंकी योगगम्या और प्रणवविलसिता है। योग द्वारा जब तक चित्त विशुद्ध नहीं होता, तब तक यह नाड़ी किसीको भी दिखाई नहीं पड़ती। अणुवीक्षणकी सहायतासे भी इस नाड़ीको नहीं देख सकते। इस चित्रिणीमें एक और नाड़ी है जिसका नाम ब्रह्मनाड़ी है। यह नाड़ी गुह्यस्थ मूलाधार पद्मस्थित शिवलिङ्गके मुखगह्वरसे निकल कर शीर्षस्थ सहस्रदलाधिष्ठित आदिदेव परमात्माको स्पर्श किये हुए है। साधक जीवात्माको इस नाड़ीके बीचसे परिचालित कर परमात्मामें भेजते हैं।

ब्रह्मनाड़ी विद्युन्मालाविलासनी और अति सूक्ष्म है। यह नाड़ी शुद्ध ज्ञानको उद्बोधन करती है, सभी प्रकारके सुखकी उत्सस्वरूप है। इसके मुखभागमें ही ब्रह्मद्वार है।

पाश्चात्यचिकित्साविज्ञान पढ़नेसे जाना जाता है, कि ज्ञानक्रिया और गतिक्रिया स्नायु (nerve) नामक नाड़ीविशेषका ही कार्य है। ज्ञानक्रिया (Sensory) और गतिक्रिया (Motor) के कारण पृथक् पृथक् सूक्ष्म स्नायु द्वारा सारी देह ढकी हुई है। किन्तु पाश्चात्यविज्ञानसे जिन सब स्नायुओंका पता चला है, वे सब स्नायु केवल स्थूल ज्ञानके वाहक-मात्र हैं। षट्चक्र और शिवसंहिता आदि तान्त्रिक ग्रन्थोंमें स्थूलज्ञानवाहिनी नाड़ियोंका विशेष उल्लेख नहीं है। जिन सब सूक्ष्मसे सूक्ष्म नाड़ियोंकी सहायतासे तत्त्वज्ञानकी स्फूर्त्ति होती है, ब्रह्मतत्त्व उपलब्ध होता है, इन सब ग्रन्थोंमें उन नाड़ियोंकी आलोचना की गई है। स्नायु ताड़ितशक्ति (electricity) का जो विलासस्थल है, पाश्चात्यविज्ञानमें उसका स्पष्ट उल्लेख है। षट्चक्रकारने भी इन सब नाड़ियोंका 'तड़िन्माला विलासा' नामसे वर्णन किया है। जर्मनीके Physiologist या शरीरविज्ञानशास्त्रके पण्डित Nervous Electricity के सम्बन्धमें आज भी गहरी खोज कर रहे हैं। बहुत समय पहले तान्त्रिकयोगियोंने इन सब सूक्ष्मतत्त्वका सिद्धान्त संस्थापन किया है, यह कम गौरवकी बात नहीं है। आधुनिक पण्डित अनेक यन्त्रोंकी सहायतासे भी वैसे सूक्ष्मतत्त्व पर पहुंच न सके हैं। किन्तु भारतीय योगियोंने केवल योगविद्यावलसे वे सब सूक्ष्मतम तत्त्व मालूम कर लिये थे।

षट्चक्रकारने सूक्ष्म जैवपदार्थमें कई जगह तड़ितका (Electricity) कार्य देखा है। यथा—

१। "वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिका मध्यसंस्थं
कोणं तत्त्रैपुराख्यं तड़िदिव विलसत् कोमलं कामरूपम्।
कन्दर्पो नाम वायुर्निलसति सततं तस्य मध्ये समन्तात्
जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्यप्रकाशम्॥"

२। शङ्खावर्त्तनिभा नवीनचपलामाला विलासास्पदा
सुप्ता सर्पसमा शिरोपरिलसत् सार्द्ध त्रिवृत्ताकृतिः।

इससे जाना जाता है, कि ये सब तड़िन्मालाविलासा नाड़ियाँ जीवकी जीवनीशक्ति (Vital principle) की जड़ हैं। कन्दर्प-वायुका स्थान मूलाधार है। यह कन्दर्प वायु ही प्राणवायु है। उद्धृत छः श्लोकोंमें हम कुलकुण्डलिनी शक्तिका विवरण देखते हैं। उसके बादके श्लोकमें कुलकुण्डलिनीका और भी सविशेष परिचय है। यथा—

"कूजन्ती कुलकुण्डलीव मधुरं मत्तालिमालास्फुटं,
वाचःकोमलकाव्यबन्धरचनाभेदातिभेदक्रमैः।
श्वासोच्छ्वासविवर्त्तनेन जगतां जीवो यथा धार्यते
सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दामदीप्तावली॥"

यह कुलकुण्डलिनी भी नवीन चपलामालाकी तरह विराजित है। यह भुजङ्गवत् सार्द्धत्रयवेष्टनसे परिवेष्टित हैं तथा मूलाधारके कमलमें अवस्थित हैं। ये ही श्वासोच्छ्वासके गमनागमन द्वारा जीवकुलके प्राणकी रक्षा करते हैं। आधुनिक फिजिओलोजीका स्पष्ट कहना है, कि Spinal chord से श्वासक्रियाके स्नायु (Nerves) उत्पन्न हुए हैं, किन्तु षट्चक्रका उन्होंने जैसा निर्देश किया है, पाश्चात्य विज्ञानमें वैसा स्थान निर्देश नहीं है, पाश्चात्यविज्ञानका सिद्धान्त प्रमाण नहीं है, हम योगियोंके योगज्ञको प्रत्यक्ष प्रमाण मान सकते हैं। अतएव कुलकुण्डलिनी ही श्वासप्रश्वासक्रियाशक्तिका जो केन्द्रस्थान है यही सिद्धान्त अधिक समीचीन है।

इस कुलकुण्डलिनीमें महाप्रभा महादेवी विलास करती हैं। वे चपलामालाकी तरह समुज्ज्वल हैं।

इस षट्चक्रमें चतुर्बाहुधारी श्रीनारायण देवको ध्येयरूपमें देखते हैं।

श्रीमन्नारायण देव स्वाधिष्ठान पद्म पर विराजित हैं। इसी प्रकार षट्चक्रमें शक्तिशिवादि देवताओंका अधिष्ठान वर्णित है। किस चक्रमें किस देवताका ध्यान करनेसे कैसा फल मिलता है, उसकी भी फलश्रुति ग्रन्थमें लिखी है। सहस्रदलपद्ममें (Cerebral centre) एक शून्य स्थान प्रकल्पित हुआ है। उस स्थानका विशद विवरण और उस स्थानमें चित्तनिवेशकी फलश्रुति भी लिखी है। उस स्थानको शैव लोग शिवस्थान, वैष्णव लोग विष्णुस्थान, कोई हरिहरपद, शाक्त लोग शक्तिस्थान और ऋषि लोग प्रकृतिपुरुषका निर्मल स्थान कहते हैं। इसके सिवा इसमें अमा-कला, चन्द्रकला, निर्वाणकला आदि विराजमान हैं।

षट्चक्रभेदकी प्रणाली इस प्रकार है—साधक यमनियमादि अच्छी तरह सीख कर विशुद्ध ज्ञानलाभ करनेके बाद गुरुसे षटचक्रभेदका विषयक्रम जान लें। वे हुङ्कार बीजसे तेज और वायुके आक्रमण द्वारा सन्तप्ता कुलकुण्डलिनीको मूलाधार पद्मस्थित स्वयम्भुलिङ्गपथसे सहस्रदलकमलमें ला कर भावना करे, विना गुरुपदेशके इस प्रकारका साधन या इन सब विषयोंका ज्ञानलाभ होना बिलकुल असम्भव है। फलतः षटचक्र मोक्षलाभका एक प्रकारका अध्यात्म-आधिभौतिक साधन (Physio-psychological process) विशेष है। इसके बाद यह देहतत्त्व वाउल, सहजिया, किशोरी भजन आदि सम्प्रदायमें भी घुस गया है।

षट्चत्वारिंश (सं० त्रि०) षट्चत्वारिंशतत्पूरणः षट्-चत्वारिंशत्-डट्। षड़धिक चत्वारिंशत् संख्यकका पूरक, छियालीस।

षट्चत्वारिंशक (सं० त्रि०) छियालीस संख्यासे पूरित।

षट्चत्वारिंशत (सं० स्त्री०) छियालीसकी संख्या।

षट्चरण (सं० पु०) षट्चरणा यस्य। १ भ्रमर, भौंरा। (हलायुध) २ यूका, खटमल। (त्रि०) ३ षट पादविशिष्ट, छः पैरवाला।

षट्चरणयोग (सं० पु०) षड़्धारण योग।

षट्चितिक (सं० त्रि०) छः चिति विशिष्ट।

षट्तक्रतैल (सं० पु०) वैद्यकका एक तेल जिसमें तेलसे छः गुना तक्र या मट्ठा मिलाया जाता है।

षटतन्त्री (सं० स्त्री०) छः तन्त्रोंमें अभिज्ञ।

षट्तय (सं० त्रि०) छः प्रकारका, छः किस्मका।

षट्ताल (सं० पु०) १ मृदंगका एक ताल जो आठ मात्राओंका होता है। इसमें पहले २ आघात, १ खाली फिर ४ आघात और अंतमें १ खाली होता है। २ एक प्रकारका ख्याल जो एकताला ताल पर बजाया जाता है।

षट्तिलदान (सं० क्ली०) देवताके उद्देशसे तिलदानरूप व्रतविशेष।

षट्तिला (सं० स्त्री०) माघ महीनेके कृष्ण पक्षकी एकादशीका नाम। इसमें तिलके व्यवहार और दानका बहुत फल कहा गया है।

षट्तिलिन् (सं० त्रि०) उद्वर्त्तनादिभेदेन षट् प्रकारास्तिलाः सन्त्यस्येति षट् तिल-इनि। जन्मतिथि आदिमें तिल द्वारा षट्कर्मकारी अर्थात् जो जन्म तिथि आदिमें संपिष्ट तिल द्वारा गात्रोद्वर्त्तन और पीछे स्नान, तिलहोम, तिलदान, तिलभोजन तथा तिलवपन करते हैं, वे षटतिली कहलाते हैं। (तिथ्यादितत्त्व)

षट्त्रिंश (सं० त्रि०) षट त्रिंशतः पूरणः। छत्तीसकी संख्या पूरा करनेवाला।

षट्त्रिंशत् (सं० त्रि०) षड़धिका त्रिंशत्। संख्याविशेष, छत्तीस।

षटत्रिंशत्क (सं० त्रि०) षट्त्रिंश संख्या सम्वलित।

षट्त्रिंशद्दशस् (सं० अव्य०) छत्तीस दिनमें।

षट्त्रिंशन्मत (सं० क्ली०) षटत्रिंशतः तत्संख्यक धर्म्मशास्त्रकाराणां मुनीनां मतम्। छत्तीस धर्मशास्त्रप्रयोजक मुनियोंका मत। मनु, विष्णु, यम, दक्ष, अङ्गिरा, अत्रि, वृहस्पति, आपस्तम्ब, उशना, कात्यायन, पराशर, वशिष्ठ, व्यास, संवर्त्त, हारीत, गोतम, प्रचेताः, शङ्ख, लिखित, याज्ञवल्क्य, काश्यप, शातातप, लोमश, जमदग्नि, प्रजापति, विश्वामित्र, पैठीनसी, बौधायन, पितामह, छागलेय, जावाल, मरीचि, च्यवन, भृगु, ऋष्यशृंग और नारद इन छत्तीस स्मृतिशास्त्रकारक ऋषियोंका जो मत है, उसे षट्त्रिंशन्मत कहते हैं।

षट्त्व (सं० क्लो०) छः का भाव या धर्म।

षट्पक्ष (सं० क्ली०) तीन मास, एक एक कर छः पक्षान्त तकका काल।

षट्पञ्चवर्ण (सं० लि०) छः या पांच वर्णका।

षट्पञ्चाश (सं० लि०) षट्पञ्चाशतः पूरणः षट्पञ्चाशत-डट्। छप्पनका पूरक, जो गिनतीमें पचास और छः हो।

षट्पञ्चाशत् (सं० स्त्रो०) छप्पनकी संख्या, ५६।

षट्पञ्चाशत्तम (सं० लि०) षड्धिकपञ्चाशतः पूरणः षट्पञ्चाशत्-तमट् (विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्यां। पा ५।२।५६) षट्पञ्चाश, वा ५६।

षट्पत्र (सं० लि०) छः पत्तोंवाला। (नृसिंहोत्तापनीयोप०)

षट्पद् (सं० लि०) छः पैरवाला। (अथर्व १३।१।२७)

षट्पद (सं० लि०) षट्पदानि यस्य। १ षट्पदविशिष्ट, जिसके छः पैर हों। २ छः पदमात्र, षट्चरण। ३ भ्रमर।

वसन्तराजशाकुनमें लिखा है, कि यात्राकालमें बाईं ओर यदि भौंरे मनोहर शब्द करे या दूसरी ओरसे भन भनाता हुआ बाईं ओर चले जांय अथवा इसी प्रकार किसी सुगन्धित पुष्पके मधुपानमें रत हों, तो गमनकारी का अति शुभ फल तथा उसके चित्तकी प्रसन्नता होती है।

भ्रमरको छोड़ अन्यान्य छः पैरवाले जीव भी यदि यात्राकालमें बाईं ओर रहे, तो भी शुभ फल होता है। (वसन्तराजशाकुन) ४ यूक, जूं।

षट्पदज्या (सं० लि०) कामधेनु। कामदेवके धनुषकी-ज्या-मक्खियोंकी पंक्तिसे बनी थी।

षट्पदघातिन (सं० पु०) स्वर्णचंपक।

षट्पददल (सं० पु०) १ सुरपुन्नाग। नागरकेशर पुष्पवृक्ष।

षट्पदप्रिय (सं० पु०) १ पद्म, कमल। २ नागकेशरका वृक्ष।

षट्पदप्रिया (सं० स्त्री) वनमल्लिका।

षट्पदमोदिनी (सं० स्त्री०) बब्बूरवृक्ष, बबूरका पेड़।

षट्पदा (सं० स्त्री०) १ कीटभेद, एक प्रकारका कीड़ा। २ यूका, खटमल। ३ भ्रमरपत्नी, भौंरी।

षट्पदातिथि (सं० पु०) षट् पदः अतिथिरिव यत्र। १ आम्रवृक्ष, आमका पेड़। २ स्वर्णचंपक, चंपा।

षट्पदाधार (सं० पु०) कदम्बका वृक्ष।

षट्पदानन्दवर्द्धन (सं० पु०) षटपदानामानन्दं वर्द्धयतीति वृध-ल्यु। १ देववब्बूरक, देवबबूर। २ किङ्किरात वृक्ष, अशोकका पेड़।

षट्पदानन्दा (सं० स्त्री०) वार्षिकी मल्लिका, वेलमल्लिका।

षट्पदाभिधर्म (सं० पु०) बौद्धोंका एक धर्मशास्त्र।

षट्पदालय (सं० पु०) सुरपुन्नाग वृक्ष।

षट्पदाली (सं० स्त्री०) मक्षिका श्रेणी, मक्खियोंका समूह।

षट्पदिका (सं० स्त्री०) षट्पदी देखो।

षट्पदी (सं० लि०) १ छः पैवाली। (स्त्री०) २ भ्रमरी, भौंरी। १ एक छन्द जिसमें छः पद या चरण होते हैं छप्पय।

षट्पदीभक्ष (सं० पु०) गङ्गापतङ्ग भक्षणजन्य अश्वरोग। घोड़ोंका एक रोग जो उन्हें जहरीला कीड़ा खाने से होता है। इसमें घोड़ोंके शोथ, श्वास, भ्रम, मूर्च्छा आदि उपद्रव होते हैं।

षट्पदेष्ट (सं० पु०) कदम्ब। (रत्नमाला)

षट्पलिक (सं० लि०) छः पलका।

षट्पाद (सं० पु०) एक प्रकारका कीड़ा। यह थोड़ा पाण्डुवर्णयुक्त, कपिल या हरिद्वर्णविशिष्ट होता है। इसके छः पैर होते हैं और इसका माथा छोटा होता है।

षट्पितापुत्रक (सं० पु०) संगीतमें तालका एक भेद। इसमें १२ मात्राएं होती है। एक प्लुत, एक लघु, दो गुरु एक लघु, एक प्लुत यह इसका प्रमाण है।

षट्पुर (सं० क्ली०) असुराधिष्ठित एक नगर।

षट्प्रगाथ (सं० क्ली०) छः प्रगाथविशिष्ट।

षट्प्रज्ञ (सं० पु०) षट्सु रसेषु प्रज्ञा यस्य। १ कामुक, लंपट। पर्याय—विड़ग, व्यलीक, कामकेलि, विदूषक, पीठकेलि पीठमर्द, भविल, छिद्दुर, विध।

षट्सु धर्मादिषु प्रज्ञा यस्य। २ धर्मादिशास्त्राभिज्ञ बौद्ध। जो व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा लोकार्थ और तत्त्वार्थ इन छः विषयोंमें अति उन्नतम ज्ञान लाभ कर सकते हैं, वे षट्प्रज्ञ कहलाते हैं।

षट्प्रश्नोपनिषद् (सं० स्त्री०) प्रश्नोपनिषद् देखो।

षट्भद्रिका (सं० स्त्री०) बालरोगाधिकारोक्त औषध-विशेष। पारसीक अजवायन, मोथा, पीपर, काकड़ासिंगी, बिड़ंग और अतीस इन छः द्रव्योंको चूर्ण एक साथ मिला कर यह औषध तैय्यार होता है।

षट्रस (सं० पु०) छः प्रकारके रस या स्वाद।

षट्राग (सं० पु०) १ संगीतके छः राग—भैरव, मल्लार, श्रीराग, हिंडोला, मालकोस और दीपक। २ आडम्बर, बखेड़ा, जंजाल। ३ झंझट।

षट्रिपु (सं० पु०) षड़रिपु देखो।

षट्लवण (सं० क्ली०) मृत्लवणयुक्त पञ्चलवण, काच, सैन्धव, सामुद्र, विट् और सौवर्चल इन पांच लवणोंके साथ मृत्लवण संयुक्त होनेसे वह षट्लवण कहलाता है।

षट्लौहसम्भव (सं० क्ली०) शिलाजतु, शिलाजीत।

षट्शत (सं० क्ली०) १०६ या ६०को संख्या।

षट्शम (सं० त्रि०) छः शम्या विस्तृत या तत्परिमित।

षट्शस् (सं० अव्य०) छः छः बार।

षट्शास्त्र (सं० पु०) हिन्दुओंके छः दर्शन।

षट्शास्त्रिन् (सं० त्रि०) षट्दर्शनाभिज्ञ, छः दर्शनोंका जाननेवाला।

षट्वाङ्ग (सं० पु०) खट्वाङ्ग नामक राजर्षि जिन्हें केवल दो घड़ीकी साधनासे मुक्ति प्राप्त हुई थी।

षट्षष्ट (सं० त्रि०) षड़धिकषष्टेः पूरण षट्षष्टि डट्। छासठवां।

षट्षष्टि (सं० स्त्री०) ६६की संख्या।

षट्षष्टितम (सं० त्रि०) षट्षष्टि, जो गिनतीमें साठ और छः हो।

षट्षोड़शिन् (सं० त्रि०) छः षोड़स्तोमविशिष्ट।

षट्सप्त (सं० त्रि०) १ छिअत्तरकी संख्याका पूरक। २ छः गुना सात अर्थात् ४२की संख्या।

षट्सप्तत (सं० त्रि०) षट्सप्तति-डट् डिस्वाट्टिलोपः। षट्सप्ततितम, छिहत्तरवां।

षट्सप्तति (सं० स्त्री०) षड़धिका सप्ततिः। ७६की संख्या।

षट्सप्ततितम (सं० त्रि०) षट्सप्ततेः पूरणः षट्सप्तति-तमट्। (पा ५।२।५६) ७६की संख्याका पूरक।

षट्सहस्र (सं० त्रि०) छः हजार संख्या द्वारा पूरित।

षट्सहस्रशत (सं० त्रि०) छः लाख।

षड़ंश (सं० पु०) षष्ठांश, षड़् भाग, छः भागका एक भाग।

षड़क्ष (सं० त्रि०) षट् अक्षिविशिष्ट, ६ आंखवाला।

षड़क्षर (सं० त्रि०) षट् अक्षराणि यस्य। षड़क्षरविशिष्ट, छः अक्षरयुक्त। (शुक्लयजुः ३।३२) छः अक्षरविशिष्ट छन्दः, षड़क्षर मन्त्र, षड़क्षरी विद्या आदि।

षड़क्षरी (सं० स्त्री०) वैष्णवोंके रामानुज सम्प्रदायवालोंका मुख्य मन्त्र।

षड़क्षीण (सं० पु०) षट्सु रक्षेषु अक्षीणः। मत्स्य, मछली जिसे छः आँखें कही जाती हैं।

षड़ङ्ग (सं० क्ली०) षण्णां अङ्गानां समाहारः। १ शरीरका षड़वयव। शरीरके छः अवयवको षड़ङ्ग कहते हैं। दो जांघ, दो बाहु, मस्तक और मध्य यही छः शरीरके अवयव हैं।

२ वेदाङ्ग षट्शास्त्र, वेदके अङ्गभूत छः शास्त्रोंका नाम षड़ङ्ग है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द यही छः वेदके अङ्ग हैं।

ब्राह्मणको षड़ङ्गवेदका अध्ययन करना चाहिये। षड़ङ्ग-वेदका अध्ययन करनेसे उसकी ब्रह्मलोकमें गति होती है। वेदके दोनों पाद छन्द, कल्प हस्त, ज्योतिष नेत्रस्वरूप, निरुक्त श्रोत्र, शिक्षा, घ्राण और व्याकरण वेदके मुखस्वरूप हैं। वेदके यही छः अङ्ग हैं।

३ आद्यश्राद्धीय दानाङ्ग पीठादि। आद्यश्राद्धकालमें प्रेतके उद्देशसे षड़ङ्ग देना होता है; किन्तु शास्त्रमें इसका प्रमाण देखनेमें नहीं आता, सभी जगह व्यवहार देखनेमें आता है। प्रेतके स्वर्गार्थ षोड़शदान तथा प्रेतके उद्देशसे षड़ङ्गदान करना होता है। श्राद्धतत्त्वमें लिखा है, कि प्रेतको आसन, छत्र, उपानह और शय्या देनी होती है। ये चार द्रव्य तथा अन्न और जल, यही छः ले कर षड़ङ्ग हुआ है।

४ छः प्रकारके गव्यद्रव्यविशेष, यथा—गोमल, गोमूत्र, दधि, दुग्ध, घृत और गोरोचन ये छः प्रकारके गव्य-द्रव्य सर्वदा पवित्र हैं।

५ तन्त्रके मतसे हृदयादि षड़वयव। यथा—हृदय,

मस्तक, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और करतलपृष्ठ। षड़ङ्गन्यासमें इन सब स्थानोंमें न्यास करना होता है। किसी देवताका ह्रों बीज मन्त्र होने पर षड़ङ्गन्यास इस प्रकार होगा—

"ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट, ह्रः करतल पृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्' इस प्रकार षड़ङ्गमें हस्त द्वारा न्यास करना होता है। प्रति देवताकी पूजामें केवल बीजमन्त्रकी पृथकता होगी और सभी वैसे ही होंगे।

६ छः प्रकारके योगाङ्ग। अमृतनादोपनिषदमें इन छः प्रकारके योगाङ्गका वर्णन है। यथा—प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क और समाधि। ७ राजाओंके छः प्रकारके बल अर्थात् सेनावयवविशेष। मौल, भृत्य, सुहृत्, श्रेणी, द्विषत् और आटविक यही छः सेनावयव हैं।

(पु०) षट् अङ्गानि यस्य। ८ वेद।

"शिक्षाकल्पव्याकरणं निरुक्तं छन्दसाञ्च यः।
ज्योतिषामयनञ्चैव षड़ङ्गो वेद उच्यते॥" (राजनि०)

६ क्षुद्र गोक्षुरक, छोटा गोखरू।

षड़ङ्गक (सं० क्ली०) षड़वयवविशिष्ट देह।

षड़ङ्गघृत (सं० क्ली०) अतीसार रोगाधिकारमें उपकारक घृतौषधविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—इन्द्रयव, दारुहरिद्रात्वक् पीपर, सोंठ, लाख और कटकी, इन छः द्रव्योंका कल्क और क्वाथ द्वारा यथाविधान घृतपाक करना होता है। इस घृतका सेवन करनेसे अतिसाररोग अतिशीघ्र जाता रहता है। यह अत्यन्त पाचक है।

षड़ङ्गजित् (सं० पु०) षड़ङ्गं जितवान् जि-क्विप्-तुकच्। १ विष्णु। (त्रि०) २ षड़ङ्गजेता, सब अंगोंको वशमें लानेवाले।

षड़ङ्गपानीय (सं० क्ली०) पाचनरूप औषधविशेष। षड़ङ्गयूष देखो।

षड़ङ्गयूष (सं० पु०) षड़ङ्गपानीय, पाचनभेद। मोथा, पित्तपापड़, खसखसकी जड़, रक्तचन्दन, सुगंधवाला, सोंठ या हर्रे, कुल मिला कर २ तोला। इसे एक साथ कूट कर चार सेर जलमें पाक करे। पीछे दो सेर रहते उतार कर कपड़ेमें छान ले। इसके बाद ठंढा होने पर वह जल रोगीको पिलावे। इसका सेवन करनेसे पिपासाज्वर विनष्ट होता है।

वैद्यकशास्त्रमें लिखा है, कि ज्वर आनेके सात दिन बाद औषधका सेवन करना होता है, किन्तु सात दिनके भीतर ही इस षड़ङ्गपानीय पानकी व्यवस्था है। इससे समझना होगा, कि तरुण ज्वरमें मुख्य औषध अर्थात् दशमूलादिका क्वाथ आदि निषिद्ध है; किन्तु तोय और पेयादि सेवन निषिद्ध नहीं है।

षड़ङ्गिन् (सं० त्रि०) षड़ङ्गोऽस्यास्तीति षड़ङ्ग-इनि। षड़ङ्गबलविशिष्ट, छः अङ्गवाला।

षड़ङ्गुलिदत्त (सं० पु०) पाणिनिवर्णित एक व्यक्ति।

षड़ङ्घ्रि (सं० पु०) भ्रमर, भौंरा। (भाग० ३।२३।१५)

षड़ग्नि (सं० स्त्री०) कर्मकाण्डके अनुसार छः प्रकारकी अग्नि—गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, सभ्याग्नि, आवसथ्य और औपासनाग्नि। इनमेंसे प्रथम तीन प्रधान हैं। कुछ लोगोंने अग्निके ये छः भेद किये हैं—धूमाग्नि, मन्दाग्नि, दीपाग्नि, मध्यमाग्नि, खराग्नि और भवाग्नि।

षड़ण्ड (सं० पु०) एक देशका नाम। (पा ४।२।१२७)

षड़धिक (सं० त्रि०) छःसे बढ़ाया हुआ।

षड़धिकदशन् (सं० त्रि०) षोड़श, सोलह।

षड़धिकदशनाड़ीचक्र (सं० क्ली०) सोलह नाड़ी द्वारा वेष्टित चक्र अर्थात् हृदय।

षड़भिज्ञ (सं० पु०) षट्सु धर्मार्थकाममोक्ष-लोकतत्त्वार्थेषु अभिज्ञा यस्य। बुद्धदेव। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, लोक और तत्त्वार्थ इन छः विषयोंमें उनको अभिज्ञता थी, इसलिये उनका नाम बुद्ध हुआ है।

षड़र (सं० त्रि०) छः अरयुक्त, छः आरोंवाला।

षड़रत्नि (सं० त्रि०) छः अरत्नि परिमित, छः हाथका।

षड़र्च (सं० क्ली) षड़ृच। (शांख्यायन-श्रौ० १८।२३।६)

षड़वत्त (सं० क्ली०) अग्निधोंके निर्द्दिष्ट छः कार्य।

षड़शीति (सं० स्त्री०) रविसंक्रान्तिविशेष। मिथुन, कन्या, धनु और मीनराशिमें सूर्यका संक्रमण होनेसे उसको षड़शीतिसंक्रान्ति कहते हैं। ज्येष्ठमासके बाद आषाढ़के प्रथममें मिथुनराशिमें, भाद्रमासके बाद आश्विनके आरम्भमें कन्याराशिमें, फाल्गुनमासके बाद

चैत्रमासके आरम्भमें मीनराशिमें और अग्रहायण मासके बाद पौष मासके आरम्भमें जिस धनुराशिमें सूर्यका संक्रमण होता है, उसे षड़शीति संक्रान्ति कहते हैं।

२ षड़धिक अशीति संख्या, जो गिनतीमें अस्सीसे छः अधिक हो, छियासी, ८६।

षड़शीतिचक्र (सं० क्ली०) षड़शीतेश्चक्रं। संक्रान्तिचक्र विशेष। मिथुन, कन्या, धनु और मीनराशिस्थ सूर्य्यका शुभाशुभ जाननेके लिये नक्षत्राङ्कित नराकारचक्र। इस चक्र द्वारा उन सब मासोंके रविग्रहका शुभाशु। फल जाना जाता है। यह फल नक्षत्र द्वारा स्थिर करना होता है।

एक नरको अङ्कित कर उसके अङ्गविशेषमें सभी नक्षत्र विन्यास करने होते हैं। नक्षत्रविन्यासप्रणाली इस प्रकार है—सूर्य्य जिस नक्षत्रमें रह कर संक्रमित होते हैं, उस नक्षत्रसे नक्षत्र मान लेना होता है। सूर्य्यस्थित नक्षत्रसे उस नरके मुखमें १ नक्षत्र, वामहस्तमें ४, पादयुग्ममें दो दो, क्रोड़में ५, दक्षिण हस्तमें ४, नेत्रमें दो दो और मस्तकमें ३। इन सब नक्षत्रोंको सूर्य्यस्थित नक्षत्रसे ले कर दूसरेके बाद रखना होगा। मुखमें दुःख, करमें लाभ, दोनों पादमें भ्रमण, हृदयमें स्त्रीलाभ, वाम करमें बंधन, नेत्रद्वयमें सम्मान, मस्तकमें अपमान और गुह्यमें मृत्युफल होता है। जिसका जिस नक्षत्रमें जन्म हुआ है, उसका जन्मनक्षत्र, इस नरके किस स्थानमें पड़ा है, वह स्थिर कर उक्त प्रकारसे फलनिर्णय करना होगा।

यदि किसीकी भी संक्रान्ति अशुभ हो, तो कनकधतूरेका वीज, सर्वौषधि जलमें स्नान और विष्णुमन्त्रका जप करनेसे शुभ होता है।

षड़शीतितम (सं० त्रि०) ८६की संख्याका पूरक।

षड़श्व (सं० त्रि०) षट् अश्वाः यत्र। ६ घोड़ेका रथ, ६ घोड़ेकी गाड़ी। (ऋक् १।११६।४) जिसमें छः घोड़े हों।

षड़ष्टक (सं० क्ली०) योगविशेष, वर और कन्याकी अपनी अपनी राशिसे परस्पर छठवीं और आठवीं राशिका सम्बन्ध। विवाहस्थलमें वर और कन्याकी राशिका षष्ठाष्टम सम्बन्ध हुआ है या नहीं, यह देखनेके बाद विवाह करना उचित है। क्योंकि शास्त्रमें षड़ष्टक विशेष निन्दित हुआ है। यह मित्र-षड़ष्टक और अरि-षड़ष्टकके भेदसे दो प्रकारका है।

यदि कन्याके अष्टममें वरका और वरके षष्ठमें कन्याकी राशि हो, तो उसे अरिषड़ष्टक कहते हैं। इस अरि-षड़ष्टकका देवगण भी वर्जन करते हैं। अतएव विवाहकालमें वर और कन्याका अरिषड़ष्टक संबन्ध होने पर विवाह देना उचित नहीं। इससे अमङ्गल होता है।

अन्यविध—मकर और सिंह, कन्या और मेष, मीन और तुला, कर्कट और कुम्भ, वृष और धनु, वृश्चिक और मिथुन, कन्या और वरको राशि होने पर भी अरि-षड़ष्टक सम्बन्ध होता है, अतएव ऐसा सम्बन्ध होनेसे भी विवाह नहीं करना चाहिये।

मित्र-षड़ष्टक—मकर और मिथुन, कन्या और कुम्भ, सिंह और मीन, वृष और तुला, वृश्चिक और मेष, कर्कट और धनु कन्या और वरको राशि होनेसे मित्रषड़ष्टक होता है। यह मित्रषड़ष्टक भी विवाहमें निन्दनीय है। षड़ष्टक सम्बन्ध ही दोषावह है, पर उसमें अरि-षड़ष्टक ही विशेष निन्दनीय है। मित्रषड़ष्टकमें उन सब राशि अधिपति ग्रहोंको परस्पर मित्रता रहनेसे अशुभ होने पर भी कुछ शुभ होता है।

गरुड़पुराणमें मित्रषड़ष्टकका विषय इस प्रकार लिखा है,—सिंह और मकर, कन्या और मेष, तुला और मीन, कुम्भ और कर्कट, धनु और वृषभ, मिथुन और वृश्चिक ये सब राशि परस्पर मित्रषड़ष्टक हैं।

कोष्ठीविचार स्थलमें भी षड़ष्टक सम्बन्ध देखनेमें आता है। इस षड़ष्टक सम्बन्धमें ग्रहोंके रहनेसे उनका अशुभ फल होता है। शुभ भावाधिपति हो कर यदि ऐसे सम्बन्धमें रहे तो शुभफलके ह्रासकी कल्पना करनी होती है। पितापुत्रका यदि इस प्रकार षड़ष्टक राशि-सम्बन्ध हो तो उनके परस्पर मतका मेल नहीं रहता, विरोध होता है। मित्रषड़ष्टक होने पर कुछ शुभ होगा।

षड़स्र (सं० त्रि०) षट् कोणविशिष्ट, जिसमें छः कोने हों।

षड़स्रि (सं० त्रि०) जिसमें छः कोने हों।

षड़ह (सं० पु०) छः दिन।
षड़होरात्र (सं० पु०) छः दिन और रात।
षड़ात्मन् (सं० त्रि०) अग्नि।
षड़ानन (सं० पु०) कृत्तिकादीनां षण्णांस्तन्यपानार्थं षट् आननानि यस्य। कार्त्तिकेय। (महाभारत ३।२३१।२०) मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि अग्निपुत्र कुमार शरवनमें पैदा हुए तथा कृत्तिकादिके अपत्य होनेसे कार्त्तिकेय कहलाये। शाख, विशाख और नैगमेय नामक इनके और भी तीन अनुजोंने जन्मग्रहण किया। (मत्स्यपु० ५ अ०) २ संगीतमें स्वरसाधनकी एक प्रणाली। (त्रि०) ३ जिसे ६ मुंह हो।
षड़ाम्नाय (सं० पु०) शिवके मुखसे निकले हुए छःप्रकारके तन्त्रशास्त्र। शिवजीने यथाक्रम पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊद्दुर्ध्व और अधोमुखी हो कर इन तन्त्रोंकी यथायथ व्याख्या की, इस कारण इसका नाम षडाम्नाय नाम पड़ा है। नीचे उक्त छः आम्नायके देवताओंका क्रमशः उल्लेख किया जाता है, यथा—

पूर्वाम्नाय—श्रीविद्यासमूह तथा तारा, त्रिपुरा, भुवनेश्वरी और अन्नपूर्णा, ये सब पूर्वाम्नायके देवता है।

दक्षिणाम्नाय—वगलामुखी, वशिनी अर्थात् बालभैरवी, महिषघ्नी और महालक्ष्मी, दक्षिणाम्नायके ये देवता हैं।

पश्चिमाम्नाय—महासरस्वती, वाग्वादिनी, प्रत्यङ्गिरा और भवानी ये देवता पश्चिमाम्नाय सम्बन्धीय हैं।

उत्तराम्नाय—सभी तारे और कालिकाभेद, मातङ्गी, भैरवी, छिन्नमस्ता और धूमावती, ये उत्तराम्नायके देवता हैं तथा कलिमें आशु फल देनेवाली हैं।

ऊदुर्ध्वाम्नाय—कालिकादेवीके जितने प्रकारके भेद हो सकते हैं वे सभी इस आम्नायके देवता हैं।

अध आम्नाय—वागीश्वरी आदि देवियाँ इस आम्नायकी देवता मानी गई हैं।

इन छः आम्नायमें अधः और ऊदुर्ध्वाम्नाय केवल मोक्षप्रद है और बाकी चार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्वर्गका फल देनेवाले हैं। अतएव विधानानुसार वे सब आम्नायोक्त कार्य करनेसे अवश्य ही उपयुक्त फल मिलता है। विशेषतः उत्तराम्नायोक्त फल बहुत जल्द प्राप्त होता है।

निरुत्तरतन्त्रमें प्रत्येक आम्नायकी आचार-प्रणाली इस तरह लिखी है,—पूर्व और दक्षिणाम्नायका कार्य पश्वाचारमें, पश्चिमाम्नायका कार्य वीर और पशुभावमें, उत्तराम्नायका कार्य दिव्य और वीरभावमें तथा उद्दुर्ध्वाम्नायोक्त कर्म दिव्यभावमें सम्पन्न करना होगा। श्मशानमें बैठ कर विना वीरासनके वीरभावमें पूजा करनेसे भी उक्त दिव्याचारका कार्य सिद्ध हो सकता है।
षड़ायतन (सं० क्ली०) चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक् और मन।
षड़ावली (सं० स्त्री०) १ छः वस्तुकी श्रेणी। २ सूर्यशतकादि छः शतक।
षड़ाहुति (सं० स्त्री०) १ छः बार आहुति। (कात्यायनश्रौ० २६।४।३) (त्रि०) २ जिसके उद्देशसे छः आहुति दी जाती है। (आश्व० गृह्य० ३।६।३)
षड़ाहुतिक (सं० त्रि०) षड़ाहुतिविशिष्ट।
(कात्या० श्रौ० १०।८।३०)
षड़िक (सं० पु०) षड़ङ्गुलिदत्तका संक्षिप्त नाम।
(पा ५।३।८ वार्त्तिक)
षड़िड़ःपदस्तोभ (सं० क्ली०) सामभेद।
षडुत्तर (सं० त्रि०) छः दाता या धनशाली महद्व्यक्ति।
(पञ्चविंश ब्रा० १०।२।४)
षड़्दाम (सं० क्ली०) छः रज्जु।
षडून (सं० त्रि०) १ छः संख्याहीन, जिसमें छः कम हो। २ छः कम।
षडूर्मि (सं० स्त्री०) छः तरङ्ग।
षडूषण (सं० क्ली०) षण्णां ऊषणानां समाहारः। मिश्रित छः कटु द्रव्य अर्थात् सोंठ, पीपर, मिर्चा, चई, पिपरामूल और चितक इन छः कटु द्रव्योंका एकत्र समावेश होनेसे उसको षडूषण कहते हैं। इसका गुण—पञ्चकोलके समान अर्थात् यह रस और पाकमें कटु, रुचिकर, तीक्ष्ण, उष्ण, पाचक, दीपन, वात-कफघ्न, प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह और शूलनाशक तथा पित्त-प्रकोपक।

शब्दचन्द्रिकामें लिखा है, कि पीपर, मिर्चा और सोंठ ये तीन मिश्र त्रिकटु त्र्यूषण, व्योष और कटुत्रिक तथा इनके साथ पिपरामूल मिलनेसे चतुरूषण, चितक मिलनेसे पञ्चोषण और चई मिलनेसे वह षडूषण कहलाता है।

षड्ग (सं० पु०) षड्ज।

षड्गया (सं० स्त्री०) षड्विधा गया। छः प्रकारकी गया। गयाक्षेत्रके गयागज, गयादित्य, गायत्री, गदाधर, गया और गयासुरको ले कर यह षड्गया हुई है। इस षड्गयामें पिण्डदान करनेसे मुक्ति होती है।

षड्गर्भ (सं० पु०) दानवपुत्रगणभेद। हरिवंशटीकामें नीलकण्ठने लिखा है;—हंस, सुविक्रम, क्राथ, दमन, रिपुमर्द्दन और क्रोधहन्ता ये छः दानवपुत्र षड्गर्भ कहलाते हैं।

षड्गव (सं० त्रि०) षट्गावो यत्र: समासे अच्। १ गोषट्कयुक्त। आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि छः बैलोंको हलमें जोत कर अपनी जीविका निर्वाह करे। २ प्रत्ययविशेष। षट्त्व अर्थ होनेसे प्रकृतिके उत्तर षड्गव प्रत्यय होता है। प्रकृत्यर्थाद्य षट्त्वे षड्गवश्च। (पा ५।२।२९) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या भवतो।

(क्लो०) षण्णां गवां समाहारः। ३ छः बैलोंका समाहार, छः बैलोंका सम्मिलन।

षड्गवीय (सं० त्रि०) षट्गोसम्बन्धी।

षड्गुण (सं० पु०) षट्संख्यकाः गुणाः। १ छः गुणोंका समूह—ऐश्वर्य्य, ज्ञान, यश, श्री, वैराग्य और धर्म। २ राजनीतिकी छः बातें—सन्धि, विग्रह, यान (चढ़ाई), आसन (विराम), द्वैध और आश्रय। (त्रि०) ३ षट्गुण यस्य। ३ जिसमें उक्त छः प्रकारके गुण हों। ४ जो छःसे गुणा किया गया हो।

षड्गुरुशिष्य (सं० पु०) आश्वलायनश्रौतसूत्रटीका, वेदान्तदीपिका नामकी ऋग्वेदसर्वानुक्रमणीवृत्ति और सिद्धान्तरत्नावली नामक तीन ग्रन्थके रचयिता। इन्होंने विनायक, त्रिशूलाङ्क (शूलपाणि), गोविन्द, सूर्य, व्यास और शिवयोगी इन छः गुरुके शिष्य हो कर सर्वशास्त्र अध्ययन किया था, इसलिये ये उक्त नामसे प्रसिद्ध हुए हैं।

षड्ग्रन्थ (सं० पु०) करञ्जवृक्ष।

षड्ग्रन्था (सं० स्त्री०) षट्ग्रन्था यस्याः। १ वचा, वच। २ श्वेतवचा, सफेद वच। ३ शाठी, साड़ी। ४ महाकरञ्ज।

षड्ग्रन्थि (सं० क्ली०) षड्ग्रन्थयो यस्य। १ पिप्पलीमूल, पीपरामूल। २ वचा, वच। (पु०) षट्पर्व।

षड्ग्रन्थिका (सं० स्त्री०) षट्ग्रन्था एव स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वं। १ शटी, कचूर। २ आम्रहरिद्रा।

षड्ग्रन्थी (सं० स्त्री०) षड्ग्रन्था यस्या ङीप्। वचा, वच।

षड्ज (सं० पु०) षड्भ्यः जायते इति-जन-ड। संगीतके सात स्वरोंमेंसे चौथा स्वर। यह मयूरके स्वरसे मिलता जुलता माना गया है। इसका उच्चारणस्थान छः कहे गये हैं—नासा, कण्ठ, उरः, तालु, जिह्वा और दन्त इसीसे इसका नाम षड्ज पड़ा। मूल स्थान दन्त और अन्त स्थान कण्ठ है। देवता इसके अग्नि हैं। वर्ण रक्त, आकृति ब्रह्माकी ऋतु, हिमवार, रविवार, छन्द अनुष्टुभ और सन्तति इसकी भैरव राग है। सङ्गीतदर्पणके मतसे इसकी चार श्रुति है—तिव्रा, कुमुद्वती, मन्दा और छन्दोवती।

षड्दर्शन (सं० क्ली०) वैशेषिक, न्याय, सांख्य, पातञ्जल, वेदान्त और मीमांसा हिन्दुओंके छः दर्शन। इन सब दर्शनोंका विशेष विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें लिखा है।

षड्दर्शनी (हिं० पु०) दर्शनोंका जाननेवाला, ज्ञानी।

षड्दुर्ग (सं० क्ली०) षट् प्रकारं दुर्गं। छः प्रकार दुर्ग या कोट। महाभारत शान्तिपर्व राजधर्मपर्वाध्यायमें इन छः प्रकारके दुर्गोंका उल्लेख है। यथा—धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, गिरिदुर्ग, मनुष्यदुर्ग, मृद्दुर्ग और वनदुर्ग। (भारत शान्तिप०) मनुमें भी इस प्रकार छः दुर्गोंका विषय लिखा है। धन्वदुर्ग अर्थात् मरुवेष्टितदुर्ग, महीदुर्ग पाषाण या ईंटेका बना हुआ दुर्ग, अब्दुर्ग, या जलवेष्टित दुर्ग, वार्क्षदुर्ग अर्थात् महावृक्ष कण्टक गुल्मलतादि व्याप्त दुर्ग, नृदुर्ग चारों ओर बहुतेरे हाथी, घोड़े और सेनासे परिवृतदुर्ग तथा गिरिदुर्ग पर्वतके ऊपरीभागमें दुर्गम निभृत दुर्ग। राजा इन छः प्रकारके दुर्गोंको बना कर वहां वास करें।

षड्धरण (सं० पु०) वातव्याधिरोगाधिकारोक्त योगविशेष, यह योग इस प्रकार है—चोता, इन्द्रजौ, आकनादि, कटकी, आतइच और हरोतकी इन्हें यथाविधाना-नुसार पाक कर वातव्याधि रोगमें प्रयोग करनेसे यह रोग जल्द आराम होता है।

षड्भाग (सं० पु०) षष्ठ भाग, छः भागका एक भाग।

मन्वादिशास्त्रमें लिखा है, कि राजा प्रजासे छः भागका एक भाग कर ले ।

षड़्भाव (सं० पु०) १ षट् पदार्थ। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः प्रकारके भाव-पदार्थको षड़्भाव कहते हैं। वैशेषिक दर्शनमें यह षट्पदार्थ स्वीकृत हुआ है। वैशेषिक देखो। २ ज्योतिषके मतसे लज्जित आदि छः भाव। लज्जित, गर्वित, क्षुधित, तृषित, मुदित और क्षोभित ये छः भाव षड़्भाव कहलाते हैं। भाव देखो।

३ छः विभिन्न अवस्था।

षड़्भाववादिन् (सं० त्रि०) षड़्भावं वदति वद-णिनि। षट्पदार्थवादी; द्रव्य, गुण, कर्म आदि षट्पदार्थवादी कणाद। कणादने षट् पदार्थ स्वीकार किया है, इसलिये लोग उन्हें षट्पदार्थवादी कहते हैं।

षड़्भुज (सं० पु०) षट् भुजा यस्य। १ छः हाथवाला, जिसे छः हाथ हो अर्थात् मूर्त्तिमान ज्वररूप। हरिवंशमें लिखा है, कि मूर्त्तिमान ज्वरके तीन पैर, तीन मस्तक, छः हाथ और नौ चक्षु हैं। वे बड़े प्रचण्ड और कालान्तक यमके सदृश तथा भस्मप्रहरण अर्थात् भस्मास्त्रधारी हैं। २ चैतन्यदेव। जनसाधारणमें प्रसिद्ध है, कि ये पुरुषोत्तम क्षेत्र आ कर स्वयं षड़्भुज देख श्रीजगन्नाथ देवके शरीरमें विलीन हो गये।

षड़्भुजा (सं० स्त्री०) षट् भुजा इव रेखा यस्याः। १ फललताविशेष, खरबूजा। पर्याय—मधुफला, षड़्रेखा, वृत्तकर्कटी, सिका, तिक्तफला, मधुपाका, वृत्तेर्वारु, षण्मुखा। इसके फलका गुण—बहुत छोटी अवस्थामें तिक्त, आसन्न पक्व अवस्थामें मधुर, अमृत तुल्य, तर्पण, पुष्टिद, वृष्य, दाह और श्रमनाशक, मूत्रशुद्धिकारक, पित्तोन्मादापहारक, कफप्रद, वीर्यवर्द्धक और पकने पर कुछ अम्लजलन होता है। (राजनि०)

२ दुर्गामूर्त्तिभेद। वृहन्नन्दिकेश्वर पुराणकी दुर्गापूजापद्धतिमें चण्डिका, रुद्रचण्डा और चण्डवती ये तीन मूर्त्तियां षड़्भुजा कह कर निर्दिष्ट हुई हैं। यथा—

चण्डिका—पीनोन्नतपयोधरा, अग्निप्रभा, षड़्भुजा चण्डिका देवी पूर्वदलमें अवस्थित हैं, इनको दाहिनी तीन भुजाओंमें गदा, अभय और वज्र तथा बाईं भुजामें शक्ति, शूल और परशु विद्यमान हैं।

रुद्रचण्डा—ये दक्षिण दलमें अवस्थित हैं तथा कृष्णवर्णा, दिव्याभरणभूषिता, प्रसन्नवदना और षड़्भुजा हैं। दाहिनी तीन भुजामें वज्र, शूल और परशु तथा बाईं भुजामें पाश, अंकुश और केश हैं।

चण्डवती—ये वायुकोणस्थ दलमें अवस्थित हैं तथा धूम्रवर्णा, प्रसन्नवदना, सर्वालङ्कारभूषिता, षड़्भुजा है। दाहिनी तीन भुजामें अंकुश, पाश और अक्षसूत्र तथा बाईंमें दण्ड, शूल और डमरू हैं।

षड़्यन्त्र (सं० पु०) १ किसी मनुष्यके विरुद्ध गुप्त रीतिसे की गई कार्रवाई, भीतरी चाल। २ कपटपूर्ण आयोजन, चाल।

षड़्योग (सं० पु०) योगके छः प्रकरण।

षड़्योनि (सं० पु०) शिलाजतु, शिलाजीत। राँगा, सीसा, ताँबा, रूपा, सुवर्ण और लोहा इन छः धातुओंमेंसे किसी एककी सुगंध शिलाजीतमें अवश्य आती है इसीसे इसे षड़्योनि कहते हैं। कारण यह, कि ऊपर कही हुई धातुओंमेंसे किसी एक धातुका अंश जिसमें होगा उसी पर्वतसे शिलाजीतकी उत्पत्ति होगी।

षड़्रस (सं० पु०) छः प्रकारके रस या स्वाद—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय। इनके प्रत्येकके गुण कर्मादिका विशेष विवरण रस और उन्हीं सब शब्दोंमें लिखा गया है।

षड़्रसासव (सं० पु०) शरीरस्थ रसके पुष्टिरूप मेद धातु।

षड़्रात्र (सं० क्ली०) षण्णां रात्रीणां समाहारः। षड़ह, छः दिन और रात।

षड़्रिपु (सं० पु०) काम, क्रोध आदि मनुष्यके छः विकार।

षड़्रेखा (सं० स्त्री०) षट् रेखा यत्र। १ षड़्भुजा। २ षड़्राजी।

षड़्लवण (सं० क्ली०) षड़्गुणितं लवणं। मृज्जोपेत पञ्चलवण। षट्लवण देखो।

षड़्लोह (सं० क्ली०) छः धातु।

षड़्वक्त्र (सं० पु०) षट् वक्त्राणि यस्य। कार्त्तिकेय, षड़ानन।

षड़्वर्ग (सं० पु०) छः वस्तुओंका समूह या वर्ग।

क्षेत्र, होरा, द्रेक्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश षड्‌वर्ग कहलाते हैं। विशेष विवरण राशि और उन उन शब्दों में देखो। २ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरका समूह।

षड्‌विंश (सं० त्रि०) जो गिनतीमें बीस और छः हो।

षड्‌विंशक (सं० त्रि०) छब्बीस संख्यासे बनाया हुआ।

षड्‌विंशति (सं० स्त्री०) छब्बीसकी संख्या।

षड्‌विंशतिक (सं० त्रि०) षड्‌विंश, छब्बीसवां।

षड्‌विंशतितम (सं० त्रि०) षड्‌विंश, छब्बीसवां।

षड्‌विंशतक (सं० त्रि०) छब्बीस संख्या द्वारा कृत।

षड्‌विकार (सं० पु०) १ प्राणीके छःविकार या परिणाम अर्थात् (१) उत्पत्ति, (२) शरीरवृद्धि, (३) बालपन (४) प्रौढ़ता, (५) वृद्धता और (६) मृत्यु। २ काम क्रोध आदि छः विकार।

षड्‌विध (सं० स्त्री०) षड्‌विधाः प्रकारा यत्र। षड्‌ प्रकार, छः तरहका।

षड्‌विधान (सं० क्लीं०) विधान शब्द देखो।

षड्‌विन्दु (सं० पु०) १ विष्णु। २ कीटविशेष, गुवरालेको जातिका एक कीड़ा। इसकी पीठ पर छः गोल बिंदियां होती हैं। इसे पूरबमें 'छबुंदवा' कहते हैं।

षड्‌विन्दुतैल (सं० क्लो०) शिरोरोगाधिकारोक्त पक्कतैल विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—तिल तैल ४ सेर, भृङ्गराजरस १६ सेर। कल्कार्थं एरण्डमूल, तगरपादुका, सोयाँ, जीवन्ती, रास्ना, सैन्धव, दारचीनी, विड्ङ्ग, यष्टिमधु और सोंठ, प्रत्येक वस्तु ६ तोला ३ माशा और २ रत्ती ले कर यथोक्त विधानसे पाक करना होगा। यह तेल ललाट, शङ्ख और ब्रह्मरन्ध्रमें अभ्यङ्ग तथा नासिकाद्वारमें नस्यका व्यवहार करनेसे शीघ्र ही शिरोरोग दूर होता है।

षण्ड (सं० पु०) षणु दाने (अमन्तां डः। उण् १।११३) इति ड बहुलवचनात् सत्वाभावः। वृषभ, साँड़। पर्याय—गोपति, षण्ढ, शण्ड, शण्ढ। (शब्दरत्ना०) २ क्लीव, नंपुसक, हीजड़ा। शरीर देखो। ३ राशि समूह। ४ भाड़ी। ५ कमलोंका समूह। (माघ ११।१५) ६ चिह्न। (भागवत ४।१६।२३) ७ शिवका एक नाम। ८ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

षण्डक (सं० पु०) षण्डः स्वार्थे कन्। षण्ड देखो।

षण्डकापालिक (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम।

षण्डता (सं० स्त्री०) षण्डका भाव या धर्म।

षण्डत्व (सं० क्ली०) षण्डता, नामर्दी, हीजड़ापन।

षण्डयोनि (सं० स्त्री०) वह स्त्री जिसे मासिक धर्म न होता हो और जिसके स्तन न हों अर्थात् जो पुरुषसमागमकी अयोग्य हो।

षण्डामर्क (सं० पु०) शुक्राचार्यके पुत्रका नाम।

षण्डाली (सं० स्त्री०) १ तेल नापनेकी एक छोटी घरिया जिसमें एक छटांक वस्तु आ सकती हो। षण्डेन वृषभवत् कामुकपुरुषेण अलति पर्याप्नोतीति। अल्-अच् गौरादित्वात् ङीष्। २ कामुकी स्त्री, व्यभिचारिणी। ३ ताल, तलैया।

षण्डी (सं० स्त्री०) वह स्त्री जिसे मासिक धर्म न होता हो, स्तन छोटे हों और जो पुरुष-समागमके अयोग्य हो।

षण्ढ (सं० पु०) शाम्यति शिश्नाभावात् शम ढ (शमेढः उण् १।१०१) १ नपुंसक, हीजड़ा, नामर्द। नारदके मतसे चौदह और कामतन्त्रके मतसे बीस प्रकारके षण्ढ माने गये हैं। नीचे यथायथभावमें उनके नाम और लक्षणादि दिये जाते है।

नारदका कहना है, कि निसर्ग, वद्ध, पक्ष और ईर्ष्याषण्ढ तथा सेव्य, वातरेता, मुखेभग, आक्षिप्त, मोघवीज, शालीन और अन्यापति, ये ग्यारह प्रकार तथा गुरुजनका अभिशाप, आशु शुक्रक्षयकारक रोगादि और देवतादिके क्रोधसे उत्पन्न बाकी तीन प्रकारके षण्ढोंका विषय शास्त्रमें लिखा है।

कामतन्त्रमें निसर्ग, बद्ध, पक्ष, कोलक, स्तब्ध, ईर्षक, सेव्यक, आक्षिप्त, मोघवीज, शालीन, अन्यापति, मुखेभग, वातरेता, कुम्भीक, षण्ड, नष्टक, आसेव्य, सुगन्धी और छिन्नलिङ्गक, ये उन्नीस तथा गुरुजनके अभिशापसे भी एक प्रकार, इस तरह कुल बीस षण्ढोंका उल्लेख है। इनके विषय नीचे लिखे जाते हैं।

निसर्गषण्ढ—ये पुरुषाङ्गहीन हो कर ही जन्मग्रहण करते हैं।

बद्ध—अण्डहीन क्लीवका नाम बद्धषण्ढ है।

पक्षषण्ढ—ये एक पक्षके अन्तर पर मैथुन कार्य्यमें समर्थ होते हैं।

कोलक—ये षण्ढ अपनी स्त्रीको पहले पर-पुरुषके साथ सङ्गत कर पीछे स्वयं उनकी सेवा करते हैं।

रतिस्तम्भ—जिनका शुक्र रतिकालमें या सर्वदा स्तम्भित होता रहता है।

ईर्षक—दूसरेका मैथुन कार्य्य देखते ही जिन्हें संभोग करनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

सेव्यक—अपरिमित स्त्रीसेवाके कारण जिन्हें मैथुन की इच्छा नहीं होती।

आक्षिप्तवीज—मैथुन धर्मावसान कालमें स्त्रीके पहले जिनका रेत स्खलित हो जाता है।

मोघवीज—निर्लज्ज या असती स्त्रियोंके पास रहनेके कारण उनका हावभाव देखते ही जिनका रेतःपात होता है।

अन्यपति—दूसरेकी स्त्रीमें उपगत होनेके समय जिनका पुंस्त्व विद्यमान रहता है, किन्तु अपनी स्त्रीके समय विलोप हो जाता है।

मुखेभग—ये स्त्री या पुरुष जिस किसी व्यक्तिके मुखमें ग्राम्यधर्म मैथुनकर्म करते हैं।

वातरेत—जिनका रेतःपतनके समय सरेतोवात या केवल वायु निकलती है।

कुम्भीक—जो नर या नारीके हस्ततलमें मैथुनकार्य्य करते हैं।

पण्ड—जो पुंस्त्वहीन हैं अथच जिनका मेढ़ किसी तरह विकृत नहीं होता।

नष्टक—रोगादिके कारण जिनका शुक्र विनष्ट नहीं होता और न ध्वजोच्छ्राय ही होता है।

सुगन्धिक—जो योनि और लिङ्गका आघ्राण ले कर बल पाते हैं।

छिन्नलिङ्गक—जिनके वाक्य, चेष्टा, धर्म आदि सभी स्त्रियोंकी तरह हैं।

उक्त षण्ढोंका दर्शन या स्पर्शन करनेसे पुण्यतीर्थमें स्नानादि द्वारा पापक्षालन करना होता है।

लोगोंके प्रति विद्वेषकारी, पतिपुत्रहीना स्त्री तथा जो देव और पितृलोक, धर्मशास्त्र, यज्ञ और सत्रादिके निन्दक हैं उन्हें दर्शन या स्पर्शन करनेसे सूर्यावलोकन करके शुद्धिलाभ करना होता है। इसके सिवा रजस्वला स्त्री, अन्त्यज जातिका शव, भिन्न धर्मावलम्बिनी सूतिका, षण्ढ, चण्डाल जातिका उलंग व्यक्ति, मृत व्यक्तिका निर्यातनकारी, परदाररत; सद्यःप्रसवा, अखाद्य जन्तु, षण्ढ, इन्दुर और मार्जार, कुक्कुट, ग्रामशूकर तथा स्वयं निराश्रिता अथवा पितृमातृ-परित्यक्त परिपालित चण्डालादि, इन्हें स्पर्श करनेसे तीर्थस्नानादि द्वारा शुद्धिलाभ करना होता है।

२ वातोपहतापिता योनिमें उत्पन्न नरद्वेषिणी स्तनरहिता स्त्री-क्लीवविशेष। योनिकी वातोपसृष्टता और पुरुषबीजकी दुष्टताके कारण ऐसी सन्तान उत्पन्न होती है। ये अनुपक्रमणीया अर्थात् मैथुन धर्ममें अनुयुक्त है। (वाभट उ० ३३ अ०)

षण्ढक (सं० पु०) षण्ढ स्वार्थे कन्। षण्ढ देखो।

षण्ढता (सं० स्त्री०) षण्ढस्य भावः तल-टाप्। षण्ढका भाव या धर्म, षण्डत्व, नपुंसकता।

षण्ढतिल (सं० पु०) वह तिल जिससे तेल नहीं निकलता हो।

षण्ढा (सं० स्त्री०) वह स्त्री जिसकी चेष्टा पुरुषोंकी-सी हो।

षण्ढिता (सं० स्त्री०) षण्डी देखो।

षण्णगरिक (सं० पु०) षण्णगर जन पद-प्रचलित शाखाध्यायी।

षण्णगरी (सं० स्त्री०) छः नगरी, प्राचीन कालका छः नगरोंका एक देशभाग। (पा ८।४।४८)

षण्णवत (सं० त्रि०) जो गिनतीमें नब्बे और छः हों।

षण्णवति (सं० स्त्री०) षड्धिका नवतिः। षड् अधिक नवति संख्या, ९६।

षण्णवतितम (सं० त्रि०) छियानवां।

षण्णाड़ीचक्र (सं० पु०) षड्विधं नाड़ी चक्रं। मनुष्योंके जन्मादि छः नक्षत्रघटित चक्रविशेष। जन्म, कर्म, सांघातिक समुदाय, विलास और मानस इन छः नाड़ियोंको षण्णाड़ी कहते हैं। षण्णाड़ी इस प्रकार स्थिर करनी होती है। जिसका जिस नक्षत्रमें जन्म होता है उसका वही जन्मनक्षत्र जन्मनाड़ी कहलाता है।

जन्मनक्षत्रसे दशवें नक्षत्रको कर्मनाड़ी तथा जन्मसे सोलहवें नक्षत्रको सांघातिक नाड़ी, अठारहवें नक्षत्रमें समुदय नाड़ी, तेईसवें नक्षत्रमें विनाशनाड़ी और पचीसवें नक्षत्रमें मानसनाड़ी होती है।

इस नाड़ीका फल—जन्मनाड़ीमें देह और अर्थहानि, कर्मनाड़ीमें कर्महानि, मानस नाड़ीमें मनोपीड़ा, सांघातिक नाड़ीमें मित्र तथा अपने अर्थकी हानि, समुदय नाड़ीमें मित्र, भार्या और अर्थक्षय तथा विनाशनाड़ीमें देह, धन और सम्पत्तिका विनाश होता है।

जन्मकालमें इसी प्रकार जन्मनक्षत्र पकड़ कर षण्णाड़ी स्थिर करनी होती है। जो नक्षत्र षण्णाड़ीस्थ होता है, वह नक्षत्र उसके लिये अशुभ है। यदि किसीका भी कोई ग्रह उक्त षण्णाड़ीस्थ नक्षत्रमें हो, तो वह अशुभ फलदायक होता है। अतएव ग्रहोंका शुभाशुभत्व देखनेमें पहले यह देखना होगा, कि वह षण्णाड़ीस्थ हुआ है या नहीं। पीछे उसका शुभाशुभ विचार करना आवश्यक है। ग्रहोंके गोचर कालमें भी इस षण्णाड़ीका विषय विशदरूपमें देखा जाता। शुभग्रह भी यदि गोचरमें षण्णाड़ीस्थ हो, तो उक्त प्रकारका अशुभ फल तथा अशुभ ग्रह षण्णाड़ीस्थ हो, तो विशेष अशुभ होता है।

षण्णाभि (सं० पु०) छः नाभिविशिष्ट चक्र।

षण्मात्र (सं० त्रि०) षड़मात्राविशिष्ट।

षण्मास (सं० क्ली०) छः मास, आध साल।

षण्मासिक (सं० त्रि०) षण्मासे भवः ठञ् (अवयसि ठंश्च। पा ५।१।८४) छः मासमें होनेवाला।

षाण्मास्य (सं० त्रि०) षण्मासे भवः षण्मास (षण्मासात् ण्यच्च। पा ५।१।८३) इति यत्। षाण्मास्य, षाण्मासिक, छः मासमें होनेवाला।

षण्मुख (सं० पु०) षट् मुखानि यस्य। १ कार्त्तिकेय, षडानन। (हलायुध) (क्ली०) २ षट् संख्यक वदन, छः मुख। (त्रि०) ३ छः मुंहवाला।

षण्मुखा (सं० स्त्री०) षट् मुखानीव रेखा यस्यां। षड़भुजा, खरबूजा। इसमें छः मुखकी तरह रेखा है इसीसे इसे षण्मुखा कहते हैं।

षण्मुहूर्त्त (सं० पु०) छः मुहूर्त्त।

षत्व (सं० क्ली०) षस्य भावः ष-त्व। मूर्द्धन्य षकारका भाव, ष होना।

षत्वविधान (सं० क्ली०) दन्त्य स स्थानमें मूर्द्धन्य ष होनेकी व्याकरणोक्त विधि, वह सब विधि जिनके अनुसार शब्दके स को जगह ष हुआ हो।

षर्पणी (सं० स्त्री०) पक्षिविशेष। इस पक्षीकी आकृति खञ्जन पक्षी-सी होती है।

षष् (सं० स्त्री०) संख्याविशेष, छकी संख्या। तद्वाचक शब्द, वज्रकोण, त्रिशिरोनेत्र, तर्क, अङ्ग, दर्शन, चक्रवर्त्ती, कार्त्तिकेयमुख, गुण, रस, ऋतु, ज्वरबाहु और रूप।

षष्ट (सं० त्रि०) षष्टिसंख्या सम्बन्धी या ६०का।

षष्टि (सं० स्त्री०) षड् दशतः परिमाणमस्य। (पङ्क्ति विंशति त्रिंशदिति। पा ५।१।५९) इति निपातनात् साधुः। संख्याविशेष, ६०की संख्या।

षष्टिक (सं० पु०) षष्टिरात्रेण पच्यन्ते इति (षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते। पा ५।१।९०) इति कन् प्रत्ययेन निपातितः। धान्यविशेष, साठी धान। यह धान साठ दिनमें होता है, इसीसे इसको षष्टिक या साठी कहते हैं। पर्याय—षष्टिशालि, षष्टिज, स्निग्ध-तण्डुल, षष्टिवासरज। भावप्रकाशमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है, जो अन्न पेटमें जाते ही पच जाता है उसको षष्टिक धान्य कहते हैं।

षष्टिक, शतपुष्प, प्रमोदक, मुकुन्दक और महाषष्टिक नामभेदसे षष्टिक धान अनेक प्रकारका होता है। इसको व्रीहिधान्य भी कहते हैं। क्योंकि व्रीहिधान्यके लक्षण इसमें दिखाई देते हैं। गुण—मधुर रस, शीतवीर्य, लघु, मलरोधक, वातघ्न, पित्तनाशक, शालिधान्यकी तरह गुणयुक्त होता है।

षष्टिक धान्योंमें षष्टिकाख्य धान्य ही श्रेष्ठ गुणयुक्त है। यह लघु, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, मधुर रस, मृदुवीर्य, धारक, बलकारक, ज्वरनाशक तथा रक्तशालिकी तरह गुणयुक्त है। अन्यान्य षष्टिकधान्य इसकी अपेक्षा अल्प गुणान्वित है। (भावप्र०)

(त्रि०) २ षष्टि संख्या द्वारा क्रीत, जो साठ पर खरीदा गया हो।

षष्टिका (सं० स्त्री०) षष्टिक स्त्रियां टाप्। षष्टिकधान्य, साठी धान।

षष्टिकान्न (सं० क्ली०) षष्टिकभक्त, साठी धानका भात। गुण—दीपन, बलकर, नेत्रहितकर, पाचन, त्रिदोषशमन, क्षयरोग और विषदोषनाशक।

षष्टिक्य (सं० त्रि०) षष्टिकानां भवनं क्षेत्रं षष्टिक (यव-यवकषष्टिकत्वात् यत्। पा ५।१।३) इति यत्। षष्टिक धान्योपयुक्त क्षेत्रादि, वह खेत जो साठी धान बोनेके लायक हो।

षष्टिज (सं० पु०) षष्टिकशालि, साठी धान।

षष्टितन्त्र (सं० क्ली०) सांख्यशास्त्र। सांख्यशास्त्रको षष्टितन्त्र कहते हैं।

इस शास्त्रमें ६० पदार्थों पर विचार किया गया है, इसीसे इसको षष्टितन्त्र कहते हैं। ये ६० पदार्थ ये सब हैं,—१ प्रकृति और पुरुषका नित्यत्व, २ प्रकृति और पुरुषका एकत्व, ३ प्रकृतिमें भोग और विवेकसाक्षात्कारका वास्तविक सम्बन्ध, ४ प्रकृतिके बाद प्रयोजनसाधकत्व, ५ पुरुषमें प्रकृतिका भेद, ६ अकर्त्तृत्व, ७ पुरुषबहुत्व, ८ सृष्टिकार्यमें प्रकृति और पुरुषका संयोग, ९ मुक्तिकालमें प्रकृति और पुरुषका वियोग, १० महत्तत्त्व आदि कारणोंमें अवस्थिति, १५ पांच प्रकारके विपर्यय, यथा—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। इन पांच प्रकारके विपर्ययको तमः, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र भी कहते हैं। २४ तुष्टि—नौ प्रकार। आध्यात्मिक तुष्टि—४ प्रकार, उनके नाम हैं प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य। वाह्यतुष्टि ५ प्रकार, इस तुष्टिके हेतु शब्दादि ५ प्रकारके विषय वैराग्य। ५२ अशक्ति—अठाईस प्रकार। यथा—बुद्धि व्याघातके साथ ग्यारह प्रकारके इन्द्रिय व्याघातको अशक्ति कहते हैं। तुष्टि तथा सिद्धिका विपर्यय प्रयुक्त बुद्धि व्याघात सतह प्रकारका है। बुद्धि व्याघात शब्दमें बुद्धिकी अकर्मण्यता, तुष्टि सिद्धिके समय जिस प्रकार सत्त्वगुणका उदय होता है, उसकी हानि वशतः तुष्टिकी सिद्धि न होने या उसका विरोधी भावान्तर होनेसे बुद्धिव्याघात होता है। यद्यपि इन्द्रिय व्याघात बधिरता, अन्धता और मूकता आदि हैं, तथापि उसके लिये बुद्धिवृत्तिका अनुदय या बुद्धिकी अयथा भावोदय होनेके कारण यहां इन्द्रिय-व्याघात शब्दमें मानना होगा। तुष्टि ९ प्रकार तथा सिद्धि प्रकार उसका विपर्यय है अर्थात् उसको अभाव या विरोधी भावका उदय होता है यह तथा पूर्वोक्त और ग्यारह इन्द्रियोंका नाश, यही अठाईस प्रकारको अशक्ति है। ६० सिद्धि ८ प्रकारकी है, यथा आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीन दुःख नाश, आत्मतत्त्वविषयक ग्रन्थपाठ, उस ग्रन्थका अर्थग्रहण, प्रकृतिपुरुषके विवेकके विषयमें अनुमान, सुहृदोंके साथ उस विषयमें आलोचना तथा उक्त विवेकज्ञानकी विशुद्धि अर्थात् निदिध्यासन और विवेकसाक्षात्कार यह आठ प्रकारकी सिद्धि है।

षष्टितम (सं० त्रि०) षष्टि (षष्ठ्यादेश्चा संख्यादेः। पा ५।२।५८) इति तमट्। ६०का पूरक, साठवां।

षष्टिधा (सं० अव्य०) षष्टि प्रकारार्थे धाच्। षष्टि प्रकार, ६० किस्म।

षष्टिपथ (सं० पु०) शतपथब्राह्मणके ६० पथ या अध्याय।

षष्टिपथिक (सं० त्रि०) षष्टिपथ अध्ययनकारी।

षष्टिमत्त (सं० पु०) षष्ट्या वर्षैर्मत्तः। हस्ती, हाथी।

षष्टिरात्र (सं० पु०) षष्टिसंख्यक रजनी, ६० रात।

षष्टिलता (सं० स्त्री०) भ्रमरमारी, एक प्रकारका पौधा।

षष्टिवर्णिन् (सं० त्रि०) षष्टिवर्णविशिष्ट, जो ६० वर्णका हो।

षष्टिवासरज (सं० पु०) षष्टिवासरे जायते पचति जन-ड। षष्टिक धान्य, ६० दिनमें यह धान पकता है, इसलिये इसका नाम षष्टिवासरज है।

षष्टिविद्या (सं० स्त्री०) सांख्यविद्या, षष्टितन्त्र।

षष्टिव्रत (सं० क्ली०) व्रतभेद।

षष्टिशालि (सं० पु०) षष्टिक धान्य, साठी धान।

षष्टिसंवत्सर (सं० पु०) प्रभवादि षष्टि संख्यक वर्ष, प्रभव आदि ६० वत्सरको षष्टि-संवत्सर कहते हैं। ज्योतिषके मतसे इन सब वत्सरोंमें विभिन्न फल होते हैं। कौन वर्ष शुभ होगा और कौन वर्ष अशुभ इस साठ संवत्सरोंके फल द्वारा यह जाना जाता है। इन सब संवत्सरोंके नाम ये हैं—१ प्रभव, २ विभव, ३ शुक्र, ४ प्रमोद, ५ प्राजापत्य, ६ अङ्गिराः, ७ श्रीमुख, ८ भाव, ९ युवा, १० धाता, ११ ईश्वर, १२ बहुधान्य, १३ प्रमाथी, १४ विक्रम, १५ वृष, १६ चित्रभानु, १७ स्वर्भानु,

१८ दारुण, १६ पार्थिव, २० व्यय, २१ सर्वजित्, २२ सर्वधारी, २३ विरोधी, २४ विकृत, २५ खर, २६ नन्दन, २७ विजय, २८ जय, २६ मन्मथ, ३० दुर्मुख, ३१ हेमलम्ब, ३२ विलम्ब, ३३ विरोध, ३४ सर्वगी, ३५ प्लव, ३६ शुभिक्ष, ३७ शोभन, ३८ क्रोध, ३६ विश्वावसु, ४० पराभव, ४१ प्लवङ्ग, ४२ कालिक, ४३ सौम्य, ४४ सर्वसाधारण, ४५ विरोधी, ४६ परिवारी, ४७ प्रमाथी, ४८ आनन्द, ४६ राक्षस, ५० अनल, ५१ पिङ्गल, ५२ कालयुक्त, ५३ रौद्र, ५४ दुर्मति, ५५ रौद्र, ५६ दुन्दुभि, ५७ रक्त, ५८ रक्ताक्ष, ५६ क्रोध और ६० क्षर।

इन सब वत्सरोंमेंसे कौन वर्ष प्रभवादि होगा, वह गणना द्वारा स्थिर करना होता है। (ज्योतिस्तत्त्व)

वत्सर और संवत्सर शब्दमें विशेष विवरण देखो।

षष्टिहायन (सं० पु०) षष्टिर्हायना आयुः कालो यस्य। १ गज, हाथी। २ धान्यविशेष, एक प्रकारका धान। ३ ६० वत्सर। (त्रि०) ४ षष्टिवत्सरविशिष्ट, जो ६० वर्षका हो।

षष्टिह्रद (सं० क्ली०) तीर्थविशेष।

षष्ट्यब्द (सं० क्ली०) प्रभवादि ६० संवत्सर।

षष्ठ (सं० त्रि०) षष् (तस्य पूरणे डट्। पा ५।२।४८) इति डट् (षट् कति कतिपय चतुरां थुक्। पा ५।२।५१) इति थुक्। जिसका स्थान पाँचवें के उपरान्त हो, छठा।

षष्ठक (सं० त्रि०) षष्ठो भागः (मानपश्वङ्गयोः कन् लुकौ च। पा ५।३।५१) इति कन्। षष्ठ, छठा।

षष्ठकाल (सं० पु०) षष्ठः कालः। षष्ठ ऐसा काल, छठा समय।

षष्ठभक्त (सं० क्ली०) षष्ठकालीय भोजन।

षष्ठवत् (सं० त्रि०) षष्ठ अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। षष्ठ भागविशिष्ट, छठा।

षष्ठवती (सं० स्त्री०) छठी। (भाग० ५।१६।१८)

षष्ठांश (सं० पु०) षष्ठोऽशः। षष्ठभाग, छठा हिस्सा। ब्राह्मणसे इतर अन्य वर्ण यदि निधि पावे, जो राजा षष्ठांश दे कर बाकी सब भाग स्वयं ले लें।

षष्ठान्न (सं० पु०) वह भोजन जो तीन दिनोंके बीचमें केवल एक बार किया जाय।

षष्ठान्नकाल (सं० पु०) एक व्रत जिसमें तीन दिनमें केवल एक बार भोजन किया जाता है। एक मास तक षष्ठान्नकाल अर्थात् दो दिन अनाहार रह कर तीसरे दिन भोजन आदि द्वारा अपांक्तेयोंके पाप दूर होते हैं।

षष्ठान्नकालक (सं० क्ली०) षष्ठान्नकालता, दो दिन भूखा रह कर तीसरे दिन शामको भोजन करना।

षष्ठान्नकालिक (सं० त्रि०) षष्ठान्नकालभोजनयुक्त, जो दो दिन भूखा रह कर तीसरे दिन शामको भोजन करे।

षष्ठाह्नकालक (सं० त्रि०) द्वित्र्यहान्तरभुक्, दो या तीन दिनके बाद खानेवाला।

षष्ठाह्निक (सं० त्रि०) षड्ह, छः दिनमें होनेवाला।

षष्ठिका (सं० स्त्री०) षष्ठी स्वार्थे कन्। षष्ठी देवी।

षष्ठिमत्त (सं० पु०) हस्ती, हाथी।

षष्ठिहायन (सं० पु०) १ हस्ती, हाथी। २ षष्ठिक धान्य, साठी धान।

षष्ठी (सं० स्त्री०) षष्ठ-ङीप्। १ कात्यायनी। (मेदिनी) २ सोलह मातृकाओंमेंसे एक मातृका। यह देवी प्रकृतिकी षष्ठीकला और स्कन्दभार्या है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें लिखा है,—मातृकाओंमें यह देवी प्रधान है। यह छोटे छोटे बच्चोंका प्रतिपालन करनेवाली तथा प्रकृतिकी षष्ठांश स्वरूपिणी है, इसीसे इनका नाम षष्ठी हुआ है। ये कार्त्तिकेयकी स्त्री हैं। इस देवीके प्रसादसे पुत्रपौत्रादि लाभ होते हैं, इस कारण जगत्धात्री हैं। बारहों महीने इनके उद्देशसे शुक्लपक्षकी षष्ठीतिथिमें पूजा करना कर्त्तव्य है।

शिशुओंका लालनपालन और रक्षा, यह देवीका ही कार्य है, इस कारण बालकका जन्म होनेसे सूतिकागारमें छठे दिनको रातको इनकी पूजा करनी होती है। इस देवीके अप्रसन्न होनेसे सन्तानलाभ नहीं होता, अतएव सन्तानकामी व्यक्तिको चाहिये, कि वे तनमनसे इनकी पूजा करें।

किस समयसे इनका पूजाविधान प्रचलित हुआ और किस व्यक्तिने पहले पहल इस देवीकी पूजा की, इसका विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—स्वायम्भुव मन्वन्तरमें प्रियव्रत नामक एक राजा थे। ये अत्यन्त धर्मपरायण थे तथा सर्वदा तपस्यामें निरत रहते थे। एक दिन ब्रह्माने इन्हें सन्तानके लिये विवाह

करने कहा। प्रियव्रतने ब्रह्माकी आज्ञा शिरोधार्य मान कर विवाह कर लिया। बहुत दिन बीत गये, पर उन्हें एक भी सन्तान उत्पन्न न हुई। इस पर उन्होंने कश्यप ऋषि द्वारा पुत्रेष्टियज्ञ कराया। प्रियव्रतकी स्त्रीने चरु भोजन कर उसी समय गर्भधारण किया, किन्तु दैव-परिमाण बारहवर्ष गर्भधारणके बाद उन्होंने एक मृतपुत्र को प्रसव किया। राजा वह मृत पुत्र ले कर श्मशान गये। इसी समय उज्ज्वल विमान पर चढ़ कर एक देवी वहां उतरीं। राजाने बड़े विस्मयके साथ उनसे पूछा, 'हे सुशोभने! तुम कौन हो, किसकी कन्या और किसकी स्त्री हो?' देवीने जवाब दिया, मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या हूं, देवसेना मेरा नाम है, मैं मातृकामें विख्यात हूं, कार्त्तिकेय मेरे स्वामी हैं, मैं प्रकृतिके षष्ठांशसे उत्पन्न हुई हूं, इसीसे लोग इस विश्व-में मुझे षष्ठी कहते हैं),

अनन्तर इस षष्ठी देवीने उस मृत बालकको तपस्या द्वारा जिला दिया और वह उसे ले कर जानेको तैयार हो गईं। राजा यह अलौकिक व्यापार देख कर उनका स्तव करने लगे। राजाके स्तवसे षष्ठी देवीने संतुष्ट हो उनसे कहा, 'राजन् तुम यदि त्रिलोकमें सभी जगह मेरी पूजाका प्रचार कर स्वयं भी मेरी पूजा करो, तो तुम्हें यह बालक लौटा सकती हूं।' राजाने इसे स्वीकार कर लिया। षष्ठी-देवी बड़ी प्रसन्नतासे उन्हें पुत्र प्रदान कर त्रिदिव राज्यको चली गईं। राजा पुत्रको ले कर हृष्टचित्तसे घर लौटे। यहां उन्होंने षष्ठीदेवीकी धूमधामसे पूजा की तथा ब्राह्मणों को प्रचुर धन दान दिया। तभीसे राजा प्रतिमासकी शुक्लाषष्ठी तिथिको षष्ठीकी पूजा तथा उनके उद्देशसे महोत्सव करने लगे। बालकोंके सूतिकागृहके छठे और २१वें दिन शुभसंस्कार कार्यमें अर्थात् नामकरण, अन्न-प्राशन आदि कार्योंमें षष्ठीपूजा होती है। कहीं कहीं तीस दिनमें सूतिकाशौच दूर होनेके बाद षष्ठीदेवीकी पूजा होती देखी जाती है। शालग्राम शिला, घट, वटवृक्षमूल या घर-की दीवारमें पुत्तलिका बना कर इस देवीकी पूजा करनी होती है।

स्कन्दपुराणमें बारह मासकी बारह षष्ठीके पृथक् पृथक् नाम देखे जाते हैं। वैशाखमासमें चान्दनी षष्ठी, ज्यैष्ठमें अरण्यषष्ठी, आषाढ़में कार्दमीषष्ठी, श्रावणमें लुण्ठनषष्ठी, भाद्रमासमें चपेटीषष्ठी, आश्विन मासमें दुर्गाषष्ठी, कार्त्तिक मासमें नाड़ीषष्ठी, अग्रहायणमें मूलकषष्ठी, पौषमें अन्नषष्ठी, माघमासमें शीतलषष्ठी, फाल्गुनमें गोरूपिणी और चैत्र-मासमें अशोकषष्ठी।

प्रतिमासकी इन सब षष्ठियोंमें षष्ठीव्रत करना उचित है इस व्रतमें षष्ठीपूजाके विधानानुसार देवीकी पूजा कर षष्ठीकी कथा सुननी होती है तथा उस दिन अन्नभोजन न करके फलमूलादि भोजन कर रहना होता है।

ज्यैष्ठमासकी षष्ठीका नाम अरण्यषष्ठी है। उस दिन अरण्यषष्ठीव्रत करना होता है। यह षष्ठी जमाईषष्ठी कह-लाती है। इस दिन भी षष्ठीपूजा और छः प्रकारके फल षष्ठीदेवीके उद्देशसे उत्सर्ग कर पुत्र या जमाई आदिको देने होते हैं। इस दिन स्त्रियां स्नान करनेके समय ताड़-का पंखा हाथमें ले कर स्नान करती हैं तथा स्नानके बाद अपनी सन्तानोंको उसी पंखेसे हवा करती हैं।

तिथितत्त्वमें लिखा है, कि उस षष्ठी तिथिमें स्त्रियोंको तालवृक्ष और अन्यान्य पूजाके सामानादि ले कर वन जाना, और वहां अरण्यषष्ठीदेवीकी पूजा कर उपाख्यान श्रवण और व्रताचरण कर उस दिन फलमूलादि खा कर रहना चाहिये। इस तरह अरण्यषष्ठीव्रत करनेसे सन्तान आदि दीर्घायु और ऐश्वर्यशाली होती हैं।

षष्ठी तिथिमें सङ्कल्प कर आसनशुद्धि, जलशुद्धि और गणेशादि देवताओंकी पूजा करे, पीछे षष्ठीका ध्यान कर पूजा समाप्त करनी होती है। ध्यान इस प्रकार है—

"ओं द्विभुजां युवतीं षष्ठीं वराभययुतां स्मरेत्।
गौरवर्णां महादेवीं नानालङ्कारभूषिताम्॥
दिव्यवस्त्रपरिधानां वामक्रोड़े सुपुत्रिकां।
प्रसन्नवदनां नित्यां जगद्धात्रीं सुखप्रदां॥
सर्वलक्षणसम्पन्नां पीनोन्नतपयोधरां।
एवं ध्यायेत् स्कन्दषष्ठीं सर्वदा विन्ध्यवासिनीम्॥"

इस ध्यानसे यथाविधान पूजा कर निम्नोक्त मन्त्रसे प्रणाम करे। प्रणाम मन्त्र इस प्रकार है—

'जय देवि जगन्मातर्जगदानन्दकारिणि।
प्रसीद मम कल्याणि नमस्ते षष्ठीदेवि! ते॥'

इस मन्त्रसे प्रणाम कर व्रतकथा सुने। भविष्यपुराणमें इस देवीका व्रतोपाख्यान लिखा है।

विधि षष्ठी—भाद्रमासकी शुक्लाषष्ठीका नाम अक्षयाषष्ठी है। इस षष्ठी तिथिमें स्नानादि जो कुछ किया जाता है, वह अक्षय होता है। अग्रहायणमासकी शुक्लाषष्ठीका नाम गुहषष्ठी है। इस दिन शिवा-शान्ति करनी होती है। चैत्रमासकी शुक्लाषष्ठीको स्कन्दषष्ठी कहते हैं। इस तिथिमें कार्त्तिकेयकी पूजा करनेसे इहकालमें सुख और सौभाग्य तथा अन्तकालमें वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है।

पुत्रकन्यादिके जन्मके बाद छठे दिन रातको सूतिकागृहमें षष्ठी पूजा करनी होती है। इसको सूतिका षष्ठीपूजा कहते हैं, किन्तु कहीं कहीं अशौचके बाद अर्थात् ३१ दिनमें षष्ठीपूजा होती है। ब्राह्मणादि उच्च वर्णके घर पुत्र जन्म लेनेसे २१ दिनमें और कन्या होनेसे ३१ दिनमें षष्ठीपूजा होती है। अन्य वर्णकी पुत्रकन्या दोनों ही जगह ३१ दिनमें पूजा होती है। पुत्रकन्याके जन्म लेने पर पिताको अशौच होता है, किन्तु अशौच होने पर भी षष्ठीपूजाकालमें उसकी तात्कालिकी शुद्धि होती है। यह शुद्धि छः दिनके लिये जाननी होगी। उस दिन रातको षष्ठीपूजा कर रात्रिजागरण तथा जातसन्तानके समीप खड्गादि रखने होते हैं।

कहीं कहीं पुत्र कन्या जन्म लेनेके छठे दिन रातको षष्ठीदेवीके उद्देशसे एक सौ आठ मौलसिरीके पत्तेसे होम होता है। ६ठे दिनसे प्रतिदिन शामको षष्ठीका स्तव तथा आपदुद्धाका स्तव आदि सूतिकागृहमें प्रसूति सुनती है। जब तक सूतिका-षष्ठीपूजा नहीं होती, तब तक प्रसूति सूतिकागृहमें रहती है।

पुत्रादि जन्मके छठे दिन रातको प्रदोषकालमें पिता कृतस्नान हो पूर्वमुखसे स्वस्तिवाचन करें। पीछे संकल्प करना होता है। संकल्प इस प्रकार है— 'विष्णुरोम् तत्सदोमद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुके तिथौ अमुक गोत्रस्य मम अभिनवजातनवकुमारस्य संरक्षणकामः सूतिकागारदेवतापूजनमहं करिष्ये।' पीछे संकल्पसूक्त पढ़ कर सूतिकागृहके द्वार पर क्षेत्रपालकी पूजा करे। अनन्तर माषभक्त ले कर 'एष माषभक्त वलिः ओं क्षेत्रपालाय नमः' इस मन्त्रसे प्रदान कर प्रार्थना करे।

"ओं क्षेत्रपाल नमस्तुभ्यं सर्वशान्तिफलप्रद।
बालस्य विघ्ननाशाय मम गृहाण्विमं वलिं॥"

इसके बाद फिरसे माषभक्त वलि ले कर 'एष माषभक्त वलिः ओं भूतदैत्यपिशाचादि गन्धर्वयक्षराक्षसेभ्यो नमः' इस मन्त्रसे उत्सर्ग कर प्रार्थना करनी होती है।

पीछे इन्द्रादि दशदिक्पालकी पूजा कर द्वारपालोंकी पूजा करें।

द्वारदेश पर इन सबकी पूजा कर घरमें घुसे और घटस्थापन पूर्वक सामान्यपूजापद्धतिके नियमानुसार आसनशुद्धि भूतशुद्धि आदि करके गणेश, शिवादि, पञ्चदेवता आदित्यादि नवग्रह, इन्द्रादि दश दिक्पाल आदिकी पूजा करनी होती है। षष्ठीका ध्यान—

"द्विभुजां हेमगौराङ्गीं रत्नालङ्कारभूषितां।
वरदाभयहस्ताञ्च शरच्चन्द्रनिभाननां॥
पीतवस्त्रपरीधानां पीनोन्नतपयोधरां।
अङ्कार्पितसुतं षष्ठीमम्बुजस्थां विचिन्तयेत्॥"

इस ध्यानसे यथाविधान और यथाशक्ति उपचार द्वारा षष्ठीकी पूजा कर प्रार्थना करे।

इसके बाद कार्त्तिकेयकी पूजा कर उनके मन्त्रसे प्रणाम करना होता है।

अनन्तर योगिनी, डाकिनी, राक्षसी, ओजहारिणी, बालघातिनी घोरा, पिशिताशना, वासुदेव, देवकी, यशोदा और नन्द इन सबकी पूजा करनी होती है।

पीछे व्यजनस्थ वस्त्रके ऊपर बालकको रख कर षष्ठीदेवीके चरणोंमें समर्पण और मन्त्रपाठ करना होता है।

इसके बाद बालकको सर्वाङ्ग हस्त द्वारा स्पर्श करे। पीछे वस्त्र पर विष्णुके द्वादश नाम लिख कर उसे शिशुके मस्तक पर रखना होगा। द्वादश नाम ये सब हैं,— केशव, अच्युत, पद्मनाभ, गोविन्द, त्रिविक्रम, हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष, वासुदेव, नारायण, हयग्रीव और वामन। अनन्तर यथाक्रम त्रिलोचना, अश्वत्थामा, वलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृप और परशुराम इन सात चिरजीवीकी पूजा करनी होगी। षष्ठीके वाहन कृष्णमार्जार और अश्वत्थ वृक्षकी भी पूजा करनी होती है।

इस प्रकार पूजा समाप्त कर दक्षिणा, शान्ति और अच्छिद्रावधारण करे। (कृत्यतत्त्व)

जहां षष्ठीकी प्रतिमा बना कर पूजा की जाती है, वहां प्राणप्रतिष्ठा और विसर्जन करना होता है। षष्ठी ठाकुरको जलमें विसर्जन करनेकी प्रथा नहीं देखी जाती। अश्वत्थ वृक्षके नीचे उस ठाकुरको लाया जाता है। लोग उसी स्थानको षष्ठीतला कहते हैं।

२ चंद्रमाकी षष्ठकलाक्रियारूप तिथिविशेष, षष्ठी तिथि। शुक्ला और कृष्णाभेदसे यह तिथि दो प्रकारकी है। चंद्रके वृद्ध्यनुकूल षष्ठकला क्रियारूप जो तिथि है, उसे शुक्लाषष्ठी और चंद्रके ह्रासानुकूल षष्ठकला क्रियारूप तिथिको कृष्णाषष्ठी कहते हैं। यह तिथि सप्तमी युक्त ग्राह्य है अर्थात् जिस दिन षष्ठी सप्तमीका योग होता है उसी दिन षष्ठीके कार्यादि होंगे।

शारदीया दुर्गापूजाकालमें नवमीके दिन बोधनकी व्यवस्था है, यदि नवमी तिथिको बोधन न हो, तो षष्ठी तिथिमें शामको बोधन करना होगा।

"नवम्यां बोधनासामर्थ्यात्तु षष्ठ्यां सायं बोधनं यथा भविष्ये—'षष्ठ्यां बिल्वतरौ बोधं सायंसन्ध्यासु कारयेत्" नवमीके बोधनमें 'इषे मास्यसिते पक्षे नवम्याञ्चार्द्रयोगतः।' इस मंत्रस्थलमें—"अहमप्याश्विने षष्ठ्यां सायाह्ने बोधयाम्यतः।" इस मंत्रका पाठ करे।

षष्ठीके सायंकालमें बोधन करना होता है। यदि षष्ठी पूर्व दिन शामको पड़े, तो पूर्व दिन शामको बोधन होगा। दूसरे दिन आमंत्रण और अधिवास करना उचित है। यदि दोनों ही दिन शामको षष्ठी तिथि न पाई जाय तो दूसरे दिन पूर्वाह्णमें षष्ठी तिथिको बोधन होगा। (तिथितत्त्व) बोधन और दुर्गोत्सव देखो।

ज्योतिषमें लिखा है, कि षष्ठीतिथिमें जन्म होनेसे जातक विद्वान्, चतुर, श्रेष्ठ, सुकीर्त्ति, दीर्घबाहु, व्रणाङ्कित गात्र, सत्यवादी, धन और पुत्रविशिष्ट तथा दीर्घायु होता है। (कोष्ठीप्रदीप)

इस तिथिमें यात्रा नहीं करनी चाहिये। करनेसे व्याधि होती है।

षष्ठीजाय (सं० त्रि०) षष्ठी षष्ठसंख्यका जाया यस्य। जिसे छः स्त्री हो।

षष्ठीदास (सं० पु०) १ विख्यात ज्योतिषी, ज्योतिःसंग्रहकार। २ मूढ़विडम्बन संस्कृत काव्यके रचयिता। इनके पिताका नाम था जयकृष्ण। पद्यावलीमें इनकी कविता उद्धृत है।

षष्ठीप्रिय (सं० पु०) स्कन्द, कार्त्तिकेय।

षाट् (सं० अव्य०) सम्बोधन।

षाट्कौशिक (सं० त्रि०) छः कोषयुक्त, कोष देखो।

षाट्पौरुषिक (सं० त्रि०) षट्पुरुष सम्बन्धी।

षाड़व (सं० पु०) १ रागकी एक जाति। इसमें केवल छः स्वर लगते हैं निषाद वर्जित है। जैसे—दीपक और मेघ। षाड़व दो प्रकारका होता है—(१) शुद्ध षाड़व। २ मिठाई। ३ हलवाईका काम। ४ मनोविकार, मनोराग।

षाड़विक (सं० पु०) मिष्टान्नविक्रेता, हलवाई।

षाड्गुण्य (सं० क्ली०) षड् गुणा एव (चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थे। पा ५।१।१२४) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ष्यञ्। राज्यरक्षार्थ राजाओंके अवलम्बित छः प्रकारके उपाय। महाभारतमें राज्यरक्षाके लिये सन्धि, विग्रह अर्थात् युद्धयात्रा, शत्रुता करनेके बाद बड़े दृढ़ भावसे स्वस्थानमें रहना, शत्रुको भय दिखानेके लिये अनेक यानवाहनादि दिखलाते हुए स्वस्थानावस्थिति, द्वैधीभाव अर्थात् सन्धि और विग्रह; ये दो भाव दिखला कर अवस्थान तथा किसी दुर्गादि संश्रय या अन्य किसी बलवान् राजाधिराजका आश्रय ग्रहण, ये ही छः प्रकारके उपाय निर्दिष्ट हैं।

षाड्वर्गिक (सं० त्रि०) इन्द्रिय षड्वर्गका विषय, छः इन्द्रियके ग्रहणीय छः विषय। जैसे,—घ्राणका विषय गन्ध, रसनाका विषय आस्वाद इत्यादि।

षाड्विध्य (सं० क्ली०) छः प्रकारका भाव।

षाड्रसिक (सं० पु०) वह जिसे छओं रसोंका ज्ञान हो।

षाण्ड (सं० पु०) षण्ड, शिव।

षाण्ढ्य (सं० क्ली०) १ षण्ढता, क्लीवत्व। (सुश्रुत) २ लिङ्गका अनुत्थान।

षाण्मातुर (सं० पु०) षण्णां मातॄणामपत्यमिति षण्मातृ-अण् (मातुरुत् संख्या संभद्रपूर्वायाः। पा ४।१।११५) उकारश्चान्त्यादेशः। कार्त्तिकेय। इन्होंने कृत्तिकादि छः स्त्रियोंके स्तन पान कर जीवन धारण किया था इसीसे इनका यह नाम पड़ा।

षाण्मासिक (सं० त्रि०) षण्मास-ठञ् (पा ५।१।८३)। १ छ महीनेमें होनेवाला। मनुमें लिखा है, कि उत्कृष्ट कर्मचारी को भृतिस्वरूप प्रतिदिन छः पण तथा घरमें झाड़ू लगाने-वाले और भार ढोनेवाले निकृष्ट भृत्योंको एक मास पर द्रोण परिमित (एक माप जो चार आढक या १६ सेरकी होती है) धान तथा छः मास पर दो वस्त्र देना उचित है। (पु०) २ मृतक सम्बन्धी एक कृत्य जो किसीकी मृत्युके छः महीने पीछे किया जाता है, छमासी।

षाण्मास्य (सं० त्रि०) षण्मास यत् (पा ५।१।८३) षाण्मासिक, छः महीनेमें होनेवाला।

षात्वणत्विक (सं० त्रि०) षत्वणत्वविधायक शास्त्रकी व्याख्यासे उत्पन्न।

षादतर (सं० पु०) संगीतमें एक बनावटी सप्तक जो मंदसे भी नीचा होता है। यह सप्तक केवल बजानेके काममें आता है।

षाष्टिक (सं० त्रि०) षष्टिसम्बन्धी।

षाष्टिपथ (सं० त्रि०) षष्टिपथं वेत्ति अधीते या षष्टिपथ अण्। जो षष्टिपथ जानते या अध्ययन करते हों।

षाष्ठ (सं० त्रि०) षष्ठ-अण् स्वार्थे। १ षष्ठ, छठा। (षष्ठाष्टमाभ्याञ्च। पा ५।३।५०) इति ञ। (पु०) २ षष्ठ भाग, छः भागका एक भाग। (सिद्धान्तकौमुदी)

षिड्ग (सं० पु०) षिट् अनादरे बाहुलकात् अतोऽपि गन् सत्वाभावश्च (उण् १।१२३ टीका) १ कामुक, व्यभि-चारी, लंपट। २ शूरवीर।

षु (सं० पु०) गर्भविमोचन। (एकाक्षरकोष)

षू (सं० स्त्री०) गर्भविमोचन।

षोड़ (सं० पु०) षोड़त् देखो।

षोड़त् (सं० पु०) षट् दन्ता अस्य (षषउत्वं दतृदशधासू त्तरपदादेष्टुत्वञ्च। पा ६।३।१०६ वार्त्तिक) इति षष स्तरपदादेष्टुत्वञ्च। अन्तस्य उत्वं उत्तरपस्यादेष्टु त्वात् दस्य डः। छः दाँतका बैल, जवान बैल।

षोड़श (सं० त्रि०) षोड़शानां पूरणः षोड़शन-डट्। (सिद्धान्तकौ०) सोलहवां।

षोड़शकल (सं० त्रि०) १ षोड़श कलाविशिष्ट, जिसमें १६ कला या अंश हो। (पु०) २ चन्द्रमा। ३ भगवान् की एक विराट् मूर्त्ति। इसमें एकादश इन्द्रिय और पञ्च महाभूत है। षोड़श कला या अंश विद्यमान रहने-के कारण ऐसा कल्पित हुआ है।

षोड़शकला (सं० स्त्री०) षोड़श संख्यान्वित कला, चन्द्रमा-के सोलह भाग जो क्रमसे एक एक करके निकलते और क्षीण होते हैं। तन्त्रसारमें लिखा है, कि प्राण-प्रतिष्ठा कर निम्नोक्त रूपसे मन्त्रपाठ कर उक्त कला या अंशोंकी यथाविधान पूजा करनी होती है। मन्त्र जैसे—'अं अमृतायै नमः' इस प्रकार आं मानदायै, इं पूषायै, ईं तुषायै, उं पुष्टै, ऊं रत्यै, ऋं धृत्यै, ॠं शशिन्यै, लृं चन्द्रिकायै, ॡं कान्त्यै, एं ज्योत्स्नायै ऐं श्रियै, ओं प्रीत्यै, औं अङ्गदायै, अं पूर्णायै, अः पूर्णामितायै कह कर प्रत्येकके अन्तमें नमः शब्द उच्चारण करना होगा। शक्तिके अनुसार अलग अलग हर एकका आवाहन कर गन्धादि द्वारा पूजा की जाती है।

षोड़शगण (सं० पु०) पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच भूत और एक मन इन सबका समूह।

षोड़शगृहीत (सं० त्रि०) आहृत षोड़शबलि।

षोड़शदान (सं० क्ली०) षोड़श प्रकारं दानम्। सोलह प्रकारके दान जो श्राद्धादिके समय दिये जाते हैं। दान ये हैं—१ भूमि, २ आसन, ३ जल, ४ वस्त्र, ५ दीप, ६ अन्न, ७ ताम्बूल, ८ छत्र, ९ गन्ध, १० माल्य, ११ फल, १२ शय्या, १३ पादुकायुगल, १४ धेनु, १५ हिरण्य और १६ रजत। (शुद्धितत्त्व)

गयाश्राद्धपद्धतिमें सोलह दानके सम्बन्धमें सोलह द्रव्य इस प्रकार निर्दिष्ट हुए हैं। जैसे—स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, कांस्य, गो, हस्ती, अश्व, गृह, भूमि, वृष, वस्त्र, शय्या, क्षेत्र, पादुकायुगल, दासी और अन्न।

षोड़शधा (सं० अव्य०) सोलह प्रकार।

षोड़शन् (सं० त्रि०) षट् च दश च (पृषोदरादीनि यथोदिष्टम्। पा ६।३।१०९) १ जो गिनतीमें दशसे छः अधिक हो, सोलह। (पु०) २ सोलह कला। ३ सोलह मातृका। (कविकल्पलता)

षोड़शभाग (सं० पु०) सोलह भाग।

षोड़शपिण्ड (सं० पु०) पिण्डदान-क्रियाविशेष, उन्नीस पिण्डदानक्रिया, इसे षोड़शपिण्डदान कहते हैं। यह

शब्द पारिभाषिक है, अर्थात् उन्नीस पिण्डका नाम हो षोड़शपिण्ड है। प्रेतपक्षकी अमावस्या और तीर्थ-प्राप्तिमें यथाविधान पार्वणश्राद्ध करके १६ पिण्डदान करने होते हैं। प्रेतशिलोक रीतिके अनुसार द्वादशपिण्ड और षोड़श पिण्ड प्रदान करे। गयामें प्रेतशिला पर जिस रीतिसे मातृषोड़शी और पितृषोड़शी मन्त्र द्वारा षोड़श पिण्डदान करना होता है, उसी प्रणालीके अनुसार यह पिण्डदान करना उचित है। इस शब्दको पञ्चाम्र-शब्दकी तरह पारिभाषिक समझना होगा।

यथाविधान पार्वण श्राद्ध समाप्त करके षोड़श पिण्ड दान करे। इस पर पहले दक्षिणाग्र पांच रेखा, उसके ऊपर ६ रेखा अङ्कित करनेसे २० घर होंगे। इन सब स्थलोंमें नीचे कुश बिछा देना होगा। पीछे उस आस्तृत कुश पर तिलयुक्त जल द्वारा मन्त्र पढ़ कर पितृपुरुषोंकी अर्चना करे। मन्त्र पढ़ कर पितृकुल, मातृकुल और बन्धुकुलके गतिहीन व्यक्तियोंको आवाहन करे तथा कुशा-के ऊपर तिल छिड़क दे। इसके बाद सतिल जला-ञ्जलि ले कर इस मन्त्रसे कुशाके ऊपर सतिल जल देना होगा। पीछे यथाविधान घृतादि द्वारा पिण्डको सिक्त कर १६ पिण्ड बनावे। अनन्तर कुशके मूल स्थानसे क्रमशः एक एक मन्त्र पढ़ कर पितृरीति क्रमसे पांच पाँच करके तीन पंक्तिके पन्द्रह घरोंमें तथा नैऋतकोणस्थित घरको बाद दे कर पश्चिम ओरकी अन्तिम पंक्तिके चार घरोंमें चार, यही १६ पिण्ड देने होंगे।

१६ मन्त्रपाठ कर यह षोड़श पिण्डदान करे। श्राद्ध-तत्त्व और श्राद्धपद्धतिमें यह मन्त्र लिखा है, बढ़ जानेके भयसे यहां उसका उल्लेख नहीं किया गया। तीर्थ-स्थलमें तीर्थप्राप्तिनिमित्तक श्राद्ध और महालयामें पार्वण कर इसी प्रकार षोड़शपिण्ड है।

षोड़शपूजन (सं० पु०) सोलहों सामग्रीके साथ पूजन।

षोड़शभुज (सं० पु०) षोड़श हस्तविशिष्ट, जिसे सोलह हाथ हो।

षोड़शभुजा (सं० स्त्री०) षोड़श भुजा यस्याः सोलह हाथवाली दुर्गा।

कालिकापुराणमें इस देवीकी पूजाविधि इस प्रकार लिखी है—आश्विनमासकी कृष्ण एकादशीमें उपवास रह कर दूसरे दिन द्वादशीमें भी समस्त दिनोंके बाद रातको हविष्यान्न भोजन कर रहना होगा। इसके बाद चतु-र्दशीके दिन यथाविधान महामायाका बोधन करके नैवेद्यादि नाना प्रकारके उपकरण द्वारा गीतवाद्यादि कर उनकी पूजा शेष करनी होगी। दूसरे दिन अमावस्यासे परपक्षीय शुक्ला नवमी तक दिनको उपवासी रह कर रात-को हविष्यान्न भोजन करना होगा। ज्येष्ठा नक्षत्रमें आरम्भ कर उत्तराषाढामें पूजा समाप्त करनेके बाद श्रवणामें विसर्जन देना होगा। (कालिकापुराण)

षोड़शम (सं० त्रि०) सोलहवाँ।

षोड़शमातृका (सं० स्त्री०) षोड़शसंख्यकाः मातृकाः। एक प्रकारकी देवियां जो सोलह हैं—गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, लक्ष्मी, शान्ति, पुष्टि, धृति, तुष्टि और आत्मदेवता।

षोड़शर्त्विक्क्रतु (सं० पु०) षोड़श ऋत्विजो यत्र तादृशः क्रतुः। ज्योतिष्टोम याग।

षोड़शविध (सं० त्रि०) षोड़शविधा यस्य। सोलह प्रकारका।

षोड़शशृङ्गार (सं० पु०) पूर्ण शृङ्गार जिसके अन्तर्गत सोलह बातें हैं, पूरा सिंगार।

षोड़श संस्कार (सं० पु०) वैदिक रीतिके अनुसार गर्भा-धानसे ले कर मृतक कर्म तकके १६ संस्कार जो द्वि-जातियोंके लिये कहे गये हैं।

षोड़शसहस्र (सं० क्ली०) षोड़शानां सहस्रं। सोलह हजार।

षोड़शांश (सं० पु०) षोड़शोंऽशः। सोलहवां भाग।

षोड़शांशु (सं० पु०) षोड़श अंशवो यस्य। १ शुक्र ग्रह। (त्रि०) २ जिसमें सोलह किरणें हों।

षोड़शांह्रि (सं० त्रि०) षोड़शपदयुक्त, जिसे सोलह पैर हों।

षोड़शाक्षर (सं० त्रि०) षोड़श अक्षराणि यस्य। १ जिसमें सोलह अक्षर हो। (क्ली०) २ सोलह अक्षर।

षोड़शाङ्ग (सं० क्ली०) षोड़श द्रव्याणि अङ्गानि यस्य। धूप-विशेष, सोलह प्रकारके सुगन्धित द्रव्यमिश्रित धूप। तन्त्रमें इस षोड़शाङ्ग धूपका विषय इस प्रकार लिखा है—गुग्गुल, सरस, दारु, पत्र, श्वेतचन्दन, ह्रीवेर, अगुरु, कुष्ठ, गुड़, धूना, मोथा, हरीतकी, नखी, लाक्षा, जटामांसी और

शैलज इन सोलह प्रकारके द्रव्योंको मिला कर घृतके साथ धूप प्रस्तुत करना होता है। इसीको षोड़शाङ्ग धूप कहते हैं। यह दैव्य और पैत्रकार्यमें प्रशस्त है।

षोड़शाङ्घ्रि (सं० पु०) षोड़श अङ्घ्रयो यस्य। १ कर्कट, केकड़ा। (हेम) (त्रि०) २ षोड़श चरणयुक्त, जिसे सोलह पैर हो।

षोड़शात्मक (सं० पु०) सोलह गुणोंका चेतन करनेवाला।

षोड़शात्मन् (सं० पु०) षोड़श कला अर्थात् पञ्चभूत तथा एकादश इन्द्रियको प्रधान।

षोड़शार (सं० क्ली०) षोड़श अराणि इव दलानि यस्य। १ षोड़श दलपद्म। २ जलाशयोत्सर्गमें वेदीके ऊपर प्रयोजनीय चक्रविशेष। पञ्चवर्णके चूर्ण द्वारा वेदीके ऊपरी भागमें षोड़शदल पद्मगर्भ चतुर्मुख अर्थात् चार द्वार विशिष्ट चक्र बनाने होंगे। पीछे यथायथ मन्त्रोच्चारण कर उसमें प्रत्येक ओर समस्त लोकपाल और ग्रहोंको विन्यास करनेकी व्यवस्था है।

षोड़शार्चिस् (सं० त्रि०) षोड़श अर्चींषि यस्य। १ सोलह शिखायुक्त। (पु०) २ शुक्रग्रह।

षोड़शावर्त्त (सं० त्रि०) षोड़श आवर्त्ता यस्य। १ षोड़शावर्त्तनयुक्त, सोलह घुमाववाला। (पु०) २ शङ्ख।

षोड़शाश्रि (सं० पु०) वह घर या मन्दिर जो सोलह कोनोंका हो। ऐसे घरमें सदा अंधेरा रहता है।

षोड़शिक (सं० त्रि०) षोड़शयुक्त।

षोड़शिका (सं० स्त्री०) एक प्राचीन तौल जो मागधी मानसे १६ माशे और व्यवहारिक मानसे एक तोलेके बराबर होती थी। (परिभाषाप्रदीप)

षोड़शिकाम्र (सं० क्ली०) पल परिमाण, ८ तोला।

षोड़शिन् (सं० पु०) सोमरसपूर्ण यज्ञपात्रविशेष।

षोड़शिमत् (सं० त्रि०) सषोड़शिक, पलपरिमित, आठ तोलेका।

षोड़शिसामन् (सं० क्ली०) सामभेद।

षोड़शी (सं० त्रि स्त्री०) १ सोलहवीं। २ सोलह वर्णकी स्त्री। ३ सोलह वर्णकी स्त्री, नवयौवना स्त्री। ४ दश महाविद्याओंमेंसे एक। दशमहाविद्या देखो। ५ एक यज्ञपात्र। ६ इन सोलह पदार्थोंका समूह—ईक्षण, प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और नाम। ७ एक प्राचीन तौल, पलका एक भेद जो मागधी मानसे ५ तोला और व्यवहारिक मानसे ४ तोलेके बराबर होता था। ८ मृतक-सम्बन्धी एक कर्म जो मृत्युके दशवें या ग्यारहवें दिन होता है।

षोड़शीबिल्व (सं० क्ली०) पलपरिमाण, आठ तोला।

षोड़शोपचार (सं० पु०) पूजनके पूर्ण अंग जो सोलह माने गये हैं। नीचे उनके नाम दिये जाते हैं; जैसे—आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय, स्नान, वसन, आभरण, गन्ध, पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य और चन्दन।

शक्तिपूजामें इनकी अपेक्षा द्रव्यमें थोड़ा उलट-फेर दिखाई पड़ता है। जैसे—पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पुनराचमनीय, मद्य, ताम्बूल, तर्पण और नति।

षोढ़ा (सं० अव्य०) षष्-धाच् पृषोदरादित्वात् साधुः। छः प्रकार।

षोढ़ान्यास (सं० पु०) षोढ़ा षड्‌विधो न्यासः। विधिपूर्वक शरीरमें मन्त्रविन्यास।

षौड़त (सं० त्रि०) षोड़त्-अण् स्वार्थे। (पा ५।४।३८) षोड़त् देखो।

ष्ठ्यूम (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ दीप्ति।

ष्ठीवन (सं० क्ली०) थूकना।

ष्ठीवि (सं० त्रि०) निष्ठीवनयुक्त, थूकसे भरा हुआ।

ष्ठीविन् (सं० त्रि०) १ निष्ठीवनयुक्त, थूकसे भरा हुआ। २ थूकनेवाला।

ष्ठीवी (सं० स्त्री०) थूकना।

ष्ठेवन (सं० क्ली०) थूकना।

ष्ठ्यूत (सं० त्रि०) १ निरस्त। २ थूका हुआ।

स

स—हिन्दी वर्णमालाका बत्तीसवां व्यञ्जन। इसका उच्चारण स्थान दन्त है। इसलिये यह दन्ती स कहा जाता है।

कामधेनुतन्त्रमें इस वर्णको शक्तिबीज, कोटि विद्युल्लेखासदृश, कुण्डलीत्रयसंयुक्त, पञ्चदेवतामय, पञ्चप्राणात्मक तथा त्रिबिन्दु सहित सत्त्व, रज और तमोगुण कहा है।

स (सं० पु०) १ ईश्वर। २ शिव, महादेव। ३ सर्प, साँप। ४ पक्षी, चिड़िया। ५ विष्णु। ६ पूर्वोक्त कोई वस्तु, व्यक्ति या विषय। ७ वायु, हवा। ८ जीवात्मा। ९ चन्द्रमा। १० भृगु। ११ दीप्ति, कान्ति, चमक। (क्ली०) १२ ज्ञान। १३ चिन्ता। १४ गाड़ीका रास्ता, सड़क। १५ व्याकरणके सूत्रानुसार तद् शब्दके पुलिङ्गमें प्रथमाके एक वचनमें तथा समास और कृत् प्रकरणमें सह और समान शब्दकी जगह आदिष्ट वर्णविशेष। जैसे—तद्-सु=सः, पुत्र सह=सपुत्र; गोत्रके समान=सगोत्रः, 'समान इव दृश्यते' समासकी तरह दिखाई पड़ता है, समान दृश-टक्=सदृश।

१६ संगीतमें षड्ज स्वरका सूचक अक्षर। १७ छन्दः शास्त्रमें 'सगण' शब्दका सूचक अक्षर या संक्षिप्त रूप।

सं (सं० अव्य) १ एक अव्यय जिसका व्यवहार शोभा, समानता, संगति, उत्कृष्टता, निरन्तरता, औचित्य आदि सूचित करनेके लिये शब्दके आरम्भमें होता है। जैसे,—संभोग, संताप, संतुष्ट आदि। कभी कभी इसे जोड़ने पर भी मूल शब्दका अर्थ ज्योंका त्यों बना रहता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। २ से।

संइतना (हि० क्रि०) १ लीपना, पोतना, चौका लगाना। २ संचय करना। ३ यह देखना जितना और जैसा चाहिए उतना और वैसा है या नहीं, सहेजना।

संकट (हि० पु०) एक प्रकारका वत्तख।

संकट चौथ (हिं० स्त्री०) माघ मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी। इस दिन संकट दूर करनेवाले गणेश देवताके उद्देशसे व्रत आदि रखा जाता है।

संकरा (हिं० वि०) १ जो अधिक चौड़ा या विस्तृत न हो, पतला और तंग। (पु०) २ कष्ट, दुःख, विपत्ति।

संकराना (हिं क्रि०) १ संकुचित करना, तंग करना। २ बंद करना।

संकरिया (हि० पु०) एक प्रकारका हाथी जो कमरिया और मिरगीके बीचकी श्रेणीका होता है इसका मूल्य कमरियासे कम होता है।

संकलपना (हिं० क्रि०) १ किसी बातका दृढ़ निश्चय करना। २ किसी धार्मिक कार्यके निमित्त कुछ दान देना, संकल्प करना। २ विचार करना, इरादा करना।

संकला (हिं० पु०) शकद्वीप।

संकलपना (हिं० क्रि०) सङ्कल्पना देखो।

संकलृप्तकण्ठास्थिक (Pharyngognätha)—जिसके कण्ठकी सभी हड्डियां एकत्र मिल कर एकखण्ड हो गई हो।

संकेतना (हिं० क्रि०) संकटमें डालना।

संकोचना (हिं० क्रि०) संकुचित करना, संकोच करना।

संक्रन्दन (सं० पु०) १ शक्र, इन्द्र। २ पुराणानुसार भौत्य मनुके एक पुत्रका नाम। ३ क्रंदन देखो।

संक्रम (सं० पु०) १ संक्रमण, संक्रान्ति। २ प्राप्ति। ३ कष्ट या कठिनतापूर्वक बढ़नेकी क्रिया, संप्रवेश। ४ पुल आदि न कर किसी स्थानमें प्रवेश करना। ५ सेतु, पुल। ६ उपाय।

संक्रमण (सं० क्ली०) १ गमन, चलना। २ अतिक्रमण। ३ सूर्यका एक राशिसे निकल कर दूसरी राशिमें प्रवेश करना। ४ पर्यटन, घूमना, फिरना।

संक्रमणि (सं० स्त्री०) भोजवाजीविशेष।

संक्रमणिका (सं० स्त्री०) सोपानमञ्च (Gallery)।

संक्रमित (सं० त्रि०) १ निवेशित, स्थापित। २ प्रवेशित। ३ गमित। ४ प्रतिबिम्बित।

संक्रान्त (सं० त्रि०) १ संक्रमणविशिष्ट। २ सम्बन्धीय। ३ प्रतिबिम्बित। ४ गत, प्राप्त। ५ युक्त। ६ प्रविष्ट। ७ सञ्चारित। ८ व्याप्त। (पु०) ६ दायभागके अनुसार वह धन जो कई पीढ़ियोंसे चला आया हो। १० सूर्यका एक राशिसे दूसरी राशिमें प्रवेश करना।

संक्रान्ति (सं० स्त्री०) १ सञ्चार, गमन। २ सूर्यका एक

राशिसे दूसरी राशिमें जाना। ३ प्रतिबिम्बन। ४ व्याप्ति। सङ्क्रान्ति शब्द देखो।

संक्रामक (सं० त्रि०) जो संसर्ग या छूत आदिके कारण एकसे औरोंमें फैलता हो। जैसे,—चेचक, प्लेग, महामारी, क्षयी आदि रोग संक्रामक होते हैं।

संक्षोभ—एक हिन्दू राजा। ये परमवैष्णव थे, इसलिये परिव्राजक महाराज नामसे विख्यात हुए थे। शिलालिपिसे जाना जाता है, कि ये गुप्त-सम्राटोंके अधीन ५२८-२९ ई०में बुन्देलखण्डके अन्तर्गत डाहल नगरमें राज्य करते थे। ये धर्मप्राण राजा सुशर्म्माके पुत्र और भरद्वाज गोत्रीय थे।

संख (हिं० पु०) शङ्ख देखो।

संखहुली (हिं० स्त्री०) शङ्खपुष्पी देखो।

संखा (हिं० पु०) चक्कीके ऊपरी पाटमें लगी हुई लकड़ीकी खूंटी जिसमें एक ओर छोटी लकड़ी जड़ी रहती है, हथ्था।

संखार (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी। इसका रंग अबलक होता है और इसकी चोंच चिपटी होती है।

संखिया (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी बहुत जहरीली प्रसिद्ध उपधातु या पत्थर। यह कुमायूं, चित्राल, स्वात, काश्गर, उत्तरी बरमा और चीन आदिमें पाया जाता है। प्रायः इसका रंग सफेद या मटमैला होता है और यह चिकना तथा चमकीला होता है। जिस समय यह खानसे निकलता है, उस समय बहुत कड़ा होता और बहुत कठिनतासे गलता है। पाश्चात्य वैज्ञानिक हरताल और मैनसिलको भी इसीके अन्तर्गत मानते हैं। भारतवासी प्रायः यही समझते हैं, कि इस पत्थर पर बहुत जहरीले बिच्छूके डंक मारनेसे संखिया बनता है। २ उक्त धातुका तैयार किया हुआ भस्म जो देशी और विलायती दोनों तरहका होता है। यह बजारोंमें सफेद, पीले, लाल, काले आदि कई रंगोंका मिलता है और प्रायः औषधोंमें काम आता है। कुछ लोग कृत्रिम रूपसे भी संखिया बनाते हैं। यह बहुत विकट विष होता है और प्रायः हत्या आदिके लिये काममें आता है। वैद्यकके अनुसार यह वीर्य्य तथा बलवर्द्धक, कान्तिजनक, लोहभेदक, दाहजनक, वमनकारक, रेचक, त्रिदोषघ्न तथा सब प्रकारके दोषोंका नाश करनेवाला माना जाता है। वैद्यकके अतिरिक्त हिकमत और डाकृरीमें भी इसका व्यवहार होता है और उनमें भी इसे बहुत बलवर्द्धक माना गया है।

संग (फा० पु०) १ पाषाण, पत्थर। (वि०) पत्थरकी तरह कठोर, बहुत कड़ा।

संग अंगूर (हिं० पु०) एक प्रकारकी वनस्पति जो हिमालय पर पाई जाती है। यह औषधिके काममें आती है। इसे शेफा, गिरि बूटी या पेवराज भी कहते हैं।

संगअसवद (अ० पु०) काले रंगका एक बहुत प्रसिद्ध पत्थर। यह काबेकी एक दीवारमें लगा हुआ है और इसे हज करनेके लिये जानेवाले मुसलमान बहुत पवित्र समझते तथा चूमते हैं। मुसलमानोंका यह विश्वास है, कि यह पत्थर स्वर्गसे लाया गया है और इसे चूमनेसे पापोंका नष्ट होना माना जाता है।

संगकूपी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी वनस्पति जो औषधीके काममें आती है।

संगखारा (फा० पु०) एक प्रकारका पत्थर जो कुछ नीलापन लिये भूरे रंगका और बहुत कड़ा होता है, चकमक पत्थर।

संग जराहत (अ० पु०) एक प्रकारका सफेद चिकना पत्थर जो घाव भरनेके लिये बहुत उपयोगी होता है। इसे पीस कर बारीक चूर्ण बनाते हैं जिसे "गच" कहते हैं और जो सांचा बनानेके काममें भी आता है। इसका गुण यह है, कि पानीके साथ मिलने पर यह फूलता है और सूखने पर कड़ा हो जाता है। इसलिये इससे मूर्त्तियां आदि भी बनाते हैं। इसे कुलगार, फारसी, सफेद सुरमा या सिलखड़ी भी कहते हैं।

संगठन (हिं पु०) १ बिखरी हुई शक्तियों, लोगों या अंगों आदिको इस प्रकार मिला कर एक करना कि उनमें नवीन जीवन या बल आ जाय, किसी विशिष्ट उद्देश्य या कार्य्य सिद्धिके लिये बिखरे हुए अवयवोंको मिला कर एक और व्यवस्थित करना, एकमें मिलाने और उपयोगी बनानेके लिये की हुई व्यवस्था। २ वह संस्था या संघ आदि जो इस प्रकारकी व्यवस्थासे तैयार हो।

संगठित (हिं॰ वि॰) जो भली भांति व्यवस्था करके एकमें मिलाया हुआ हो, जो व्यवस्थित रूपमें और काम करनेके योग्य मिला कर बनाया गया हो।

संगणिका (सं॰ स्त्री॰) १ समाज। २ जगत्।

संगत (हिं॰ स्त्री॰) सङ्गत देखो।

संगतरा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी बड़ी और मीठी नारंगी, संतरा।

संगतराश (फा॰ पु॰) १ पत्थर काटने या गढ़नेवाला मजदूर, पत्थर-कट। २ एक औजार जो पत्थर काटनेके काममें आता है।

संगतिया (हिं॰ पु॰) वह जो गाने या नाचनेवालेके साथ रह कर सारंगी, तबला, या और कोई साज़ बजाता हो, साजिंदा।

संगती (हिं॰ पु॰) १ वह जो साथमें रहता हो। संगतिया देखो।

संगदिल (फा॰ वि॰) जिसका हृदय पत्थरकी तरह कठोर हो, निर्दय।

संगदिली (फा॰ स्त्री॰) संगदिल होनेका भाव, निर्दयता।

संगपुश्त (फा॰ पु॰) पत्थरकी तरह कड़ी पीठवाला, कच्छप, कछुआ।

संगबसरी (फा॰ पु॰) एक प्रकारकी मिट्टी जिसमें लोहेका अंश अधिक होता है और जो इसी कारण दवाके काममें आती है। यह फारसमें होती है और वहींसे आती है।

संगमर (हिं॰ पु॰) वैश्योंकी एक जाति।

संगमर्मर (अं॰ पु॰) एक प्रकारका बहुत चिकना, मुलायम और सफेद प्रसिद्ध पत्थर जो बहुत किमती होता है। यह मूर्त्ति, मन्दिर तथा महल इत्यादि बनानेमें काम आता है। आगरेका ताजमहल इसी पत्थरका बना है। भारतमें वह जयपुरमें अधिक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अजमेर, किशनगढ़ और जोधपुर आदिमें भी इसकी कुछ खानें हैं। मर्मर देखो।

संगमूसा (फा॰ पु॰) एक प्रकारका काला, चिकना, कीमती पत्थर जो मूर्त्ति आदि बनानेके काममें आता है।

संगयशब (फा॰ पु॰) एक प्रकारका कीमती पत्थर। इसका रंग कुछ हरापन लिये हुए होता है। इसे घो पीस कर पीनेसे दिलका धड़कना कम हो जाता है। इसका तावीज बना कर भी लोग पहनते हैं। इसका दूसरा नाम हौलदिली भी है।

संगर (फा॰ पु॰) १ वह धूस या दीवार जो ऐसे स्थानमें बनाई जाती है जहां सेना ठहरती है; रक्षा करनेके लिये सेनाके चारों ओर बनाई हुई खाई, धूस या दीवार। २ मोरचा।

संगरा (फा॰ पु॰) १ कूओंके तख्ते पर बना हुआ वह छेद जिसमें पानी खींचनेका पम्प बैठाया हुआ होता है। २ मोटे बांसका वह छोटा टुकड़ा जिसकी सहायतासे पेशराज लोग पत्थर उठाते हैं, संगरा।

संगरासिब (फा॰ पु॰) तांबेकी मैल जो खिजाब बनानेके काममें आती है।

संगरेजा (फा॰ पु॰) पत्थरके छोटे छोटे टुकड़े, कंकड़, बजरी।

संगल (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका रेशम जो अमृतसरसे आता है। यह दो तरहका होता है—वंरदवानी और वर्शारो। यह बारीक और मजबूत होता है, इसलिये गोटा, किनारी आदि बनानेके काममें बहुत आता है।

संगसार (फा॰ पु॰) १ प्राचीन कालका एक प्रकारका प्राणदंड। यह प्रायः अरब, फारस आदि देशोंमें प्रचलित था। इस दंडमें अपराधी भूमिमें आधा गाड़ दिया जाता था और लोग पत्थर मार मार कर उसकी हत्या कर डालते थे। (वि॰) २ नष्ट, चौपट।

संगसाल (फा॰ पु॰) अफगानिस्तानकी उत्तरी सीमा पर एक पहाड़ोमें कटी हुई पत्थरकी बहुत बड़ी मूर्त्तिका नाम। अफगानिस्तानकी उत्तरी सीमा पर तुर्किस्तानके मार्गमें समुद्रसे आठ हजार फुटकी ऊंचाई पर हिन्दुकुशकी घाटीमें बहुत-सी पुरानी इमारतोंके चिह्न हैं। वहीं पहाड़में बनी हुई दो बड़ी मूर्त्तियां भी हैं, जिनमेंसे एक १८० और दूसरी ११७ फुट ऊंची है। वहांके लोग इन्हें संगसाल और शाहयम्मा कहते हैं।

संगसी (हिं॰ स्त्री॰) सँड़सी देखो।

संगसुरमा (फा॰ पु॰) काले रंगकी वह उपधातु जिसे

पिस कर आँखोंमें लगानेका सुरमा बनाया जाता है।

संग सुलेमानी (अ० पु०) एक प्रकारके रंगीन पत्थरके नग जिनकी मालाएं आदि बना कर मुसलमान फकीर पहना करते हैं।

संगाती (हिं० पु०) १ वह जो संग रहता हो, साथी, संगी। २ मित्र, दोस्त।

संगी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका कपड़ा जो विवाहआदिमें वरका पाजामा तथा स्त्रियोंके लहंगे इत्यादिके बनानेके काममें आता है।

संगी (फा० वि०) पत्थरका, संगीन। जैसे,—संगी मकान।

संगीन (फा० पु०) १ एक प्रकारका अस्त्र जो लोहेका बना हुआ तिफला और नुकीला होता है। यह बंदूकके सिरे पर लगाया जाता है। इससे शत्रुको भोंक कर मारते हैं। (वि०) १ पत्थरका बना हुआ। जैसे,—संगीन इमारत। २ मोटा। जैसे,—संगीन कपड़ा। ३ टिकाऊ, पायदार। ४ पेचीदा। ५ असाधारण, विकट।

संगृहीत (सं० त्रि०) संकलित, संग्रह किया हुआ, एकत्र किया हुआ।

संगृहीतृ (सं० पु०) वह जो संग्रह करता हो, एकत्र करनेवाला, जमा करनेवाला।

संगोतरा (हिं० पु०) एक प्रकारकी नारंगी, संगतरा।

संगोपन (सं० क्ली०) छिपानेकी क्रिया, पोशीदा रखना, छिपाना।

संगोपनीय (सं० त्रि०) छिपानेके योग्य, पोशीदा रखनेके लायक।

संगोपित (सं० त्रि०) लुक्कायित, छिपा हुआ।

संग्रह (सं० पु०) सङ्ग्रह देखो।

संग्रामपुर—चम्पारण जिलेका एक नगर। यह गण्डक नदीके किनारे अक्षा० २६°२८'३८" उ० तथा देशा० ८४° ४४' पू० के मध्य अवस्थित है।

संग्रामशाह—दक्षिणविहारके अन्तर्गत खड़गपुरके एक हिन्दूराजा। इन्होंने मुगल-सम्राट् अकवर शाहकी अधीनता स्वीकार नहीं की, इस कारण सम्राट्ने उनके विरुद्ध मुगलवाहिनी भेजी थी। घमसान युद्धके बाद संग्रामशाह युद्धमें मारे गये और उनकी संतानोंको बलपूर्वक इस्लाम धर्ममें दीक्षित किया गया।

संग्राम सा—गढ़मण्डलके ४८वें गोंड़राज। ये वीर, योद्धा और उदार थे। इन्होंने अपने भुजबलसे सागर और जव्वलपुरके समीपस्थ प्रदेशोंको जीत कर अपनी राज्यसीमा बढ़ाई। इसके बाद उन्होंने नरसिंहपुर और शिवनी प्रदेशमें अपना राजदण्ड फैलाया था।

संग्रामसिंह—मेवारके एक प्रवल पराक्रान्त राजा। राणा सङ्ग नामसे ही इनकी प्रसिद्धि थी। ये राणा रायमल्लके बड़े लड़के थे। चित्तोरका सिंहासन ले कर इनके साथ छोटे भाई पृथ्वीराज और जयमल्लका विवाद खड़ा हुआ। इस सूत्रसे उन दोनोंने मिल कर निःसहाय अवस्थामें सङ्ग पर आक्रमण कर दिया। युद्धमें घायल हो कर सङ्गने उदावत् वंशीय बीदा नामक एक राठोर राजपूतके आश्रममें जा जान बचाई।

राणा रायमलने पुत्रोंके इस दुर्व्यवहारसे दुःखित हो पृथ्वीराजको राज्यसे निकाल बाहर कर दिया। पिताकी मृत्युके बाद राणा सङ्ग चित्तोरके सिंहासन पर बैठे। १५१२ ई० में इन्होंने ८० हजार घुड़सवार और ५०० निशादीसे अपनी शक्ति मजबूत कर राजपूत जातिका शीर्षस्थान अधिकार किया। इस समय राजपूतानेके अधीश्वरवर्ग, यहां तक कि जयपुर और मारवाड़के राजे उनके छत्रतलमें आ कर राजपूत जातिकी गौरव-रक्षामें बद्धपरिकर हुए थे।

१५२७ ई०में इन्होंने दिल्लीश्वरका पक्ष ले कर राजपूतराजाओंके साथ मुगलविजेता बावरशाहका मुकावला किया। इस समय लाखसे ऊपर राजपूतसेना उनके साथ गई थी। वियानाके निकटवर्त्ती कनूआ रणक्षेत्रमें अग्रगामी पन्द्रह सौ मुगलसेना राजपूतोंके हाथसे पराभूत और विध्वस्त हो प्राण ले कर भाग चली थी।

इसके बाद पिलाखालके किनारे बावरने फिरसे सेना इकट्ठा की। पहले संधिका प्रस्ताव चलने लगा। बावर राणाको कर देने और पिलाखालको दोनोंके अधिकृत सीमारूपमें निर्दिष्ट रखने स्वीकृत हुए, किन्तु शिलाइदि नामक एक विश्वासघातकके कौशलसे संधि टूट गई। अब युद्ध अनिवार्य हो उठा। शिलाइदिने राणाको आश्वासन दिया था, कि वह उन्होंको ओरसे लड़ेगा,

पर कार्यकालमें उसने बाबरका पक्ष ले कर राणाके विरुद्ध हथियार उठाया। राजपूतगण उसी गड़बड़ीमें रणक्षेत्रमें मारे गये। संग्राम युद्धमें हार खा कर चित्तौरकी राजधानीको छोड़ मेवारके पहाड़ी प्रदेशमें भाग गये। उसी साल मेवारके सम्मुखस्थ वशवा नामक स्थानमें भग्नमनोरथ संग्रामके प्राणपखेरू उड़ गये।

संग्राम सिंह (२ य)—उक्त वंशके एक दूसरे राणा। ये राणा २य अमर सिंहके पुत्र थे। जिस समय राणा संग्राम मेवाड़के सिंहासन पर बैठे, उस समय महम्मदशाह दिल्लीके सिंहासन पर अधिष्ठित थे। १७१६-१७३४ ई० तक उन्होंने मेवार राज्यका शासन किया। उनके सुयोग्य मन्त्री विहारीदास एक्वालीकी चातुरीसे मेवार राज्य फिरसे प्रणष्ट गौरवका उद्धार करनेमें समर्थ हुआ। खोये हुए बहुतसे राज्य भी फिर हाथ आ गये। संग्रामके मरने पर विहारी दास फिर बुद्धिबलसे मराठोंके आक्रमणसे राज्यरक्षा करनेमें समर्थ न हुए। महाराष्ट्र-सरदारने संग्रामके पुत्र २य जगत् सिंहसे चौथ अदा किया था।

संघराना (हिं० क्रि०) दुखी या उदासीन गौको, उसका दूध दूहनेके लिये परचाना और फुसलाना। जब बच्चा देनेके उपरान्त गौ उस बच्चेको नहीं चाटती या दूध नहीं पिलाती, तब उस बच्चेके शरीर पर शीरा आदि लगा देते हैं जिसकी मिठासके कारण वह उसे चाटने और दूध पिलाने लगती है। इसी प्रकार जब बच्चा मर जाता है और गौ दूध नहीं देती, तब कुछ लोग उसके बछड़ेकी खालमें भूसा भर कर उसे गौके सामने खड़ा कर देते हैं जिसे देख कर वह दूध दूहने देती है। गौके साथ इसी प्रकारकी क्रियाएं करनेको संघराना कहते हैं।

संघाती (हिं० पु०) १ साथी, सहचर। २ मित्र। (वि०) ३ संघातक, प्राणनाशक।

संघेरना (हिं० क्रि०) रस्सीसे दो गौओंमेंसे एकका दाहिना और दूसरीका बायां पैर एकमें, इसलिए बांधना कि जिसमें वे चरनेके समय जंगलमें बहुत दूर न निकल जायं।

संघेरा (हिं० पु०) वह रस्सी जिससे दो गौओंका एक पैर इसलिये एक साथ बांध दिया जाता है जिसमें वे जंगलमें चरती चरती बहुत दूर न निकल जायं।

संजमनी (हिं० स्त्री०) यमराजकी नगरी।

संजमीपति (हिं० पु०) यमराज, यमदेव।

संजमी (हिं० पु०) १ संयमी, नियमसे रहनेवाला। २ व्रती। ३ जितेन्द्रिय।

संजाफ (फा० स्त्री०) १ झालर, किनारा, कोर। २ चौड़ी और आड़ी गोट जो प्रायः रजाइयों और लिहाफों आदिके किनारे किनारे लगाई जाती है, गोट, मगजी। (पु०) ३ एक प्रकारका घोड़ा जिसका रंग या तो आधा लाल आधा सफेद होता है या आधा लाल आधा हरा।

संजाफी (फा० वि०) १ जिसमें संजाफ लगी हो, किनारेदार, झालरदार। (पु०) २ वह घोड़ा जिसका रंग संजाफी हो, आधा लाल आधा हरा घोड़ा।

संजाब (हिं० पु०) १ एक प्रकारका घोड़ा। संजाफ देखो। २ एक प्रकारका चमड़ा।

संजाब (फा० पु०) चूहेके आकारका एक जन्तु। यह प्रायः तुर्किस्तानमें होता है। इसका मांस वक्षस्थलकी पीड़ा, कास और व्रणके लिये उपकारक माना जाता है। इसकी खाल पर बहुत मुलायम रोएं होते हैं और उससे पोस्तीन बनाते हैं।

संजीदगी (फा० स्त्री०) विचार या व्यवहार आदिकी गम्भीरता।

संजीदा (फा० वि०) १ जिसके व्यवहार या विचारोंमें गंभीरता हो, गंभीर, शान्त। २ बुद्धिमान, समझदार।

संजुता (हिं स्त्री०) एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें स, ज, ज, ग, होते हैं। इसे 'संयुत' या 'संयुता' भी कहते हैं।

संजोग (हिं० पु०) संयोग देखो।

संजोगी (हिं वि०) १ संयुक्त, मिले हुए। २ भार्या सहित, प्रिया सहित। संयोगी देखो। (पु०) ३ दो जुड़े हुए पिंजड़े जो बहुधा तीतर पालनेवाले रखते हैं।

संजोना (हिं० क्रि०) सज्जित करना, सजाना।

संजोह (हिं० पु०) लकड़ीका वह चौखटा जो जुलाहे कपड़े बुनते समय छतसे लटका देते हैं और जिसमें राछ या कंघी लगी रहती है। ढरकी फेंकते समय इसे आगे बढ़ा देते हैं और उसके पश्चात् इसे खींच कर बानेको कसते हैं। इसे 'हत्था' भी कहते हैं।

संज्ञ (सं० त्रि०) सम्यक् प्रकारेण जानाति यः सं-ज्ञा क। १ जो सब बातें अच्छी तरह जानता हो, वह जो सब विषयोंका अच्छा जानकार हो। २ लग्न जानुक, जिसकी जंघा आपसमें मिली हो। ३ पीतकाष्ठ, झाऊ।

संज्ञक (सं० त्रि०) संज्ञावाला, जिसकी संज्ञा हो। इस शब्दका प्रयोग प्रायः यौगिक बनानेमें शब्दके अन्तमें होता है।

संज्ञपन (सं० क्ली०) सं-ज्ञा-णिच्-ल्युट्। १ मारण, हत्या। २ विज्ञापन, कोई बात लोगों पर प्रकट करनेकी क्रिया।

संज्ञप्ति (सं० स्त्री०) सं-ज्ञा-णिच्-क्तिन्। संज्ञपन देखो।

संज्ञा (सं० स्त्री०) सं-ज्ञा भावे अङ्। १ चेतना, होश। २ बुद्धि, अक्ल। ३ ज्ञान। ४ किसी पदार्थ आदिका बोधक शब्द, नाम, आख्या। ५ हाथ, आँख या सिर आदि हिला कर कोई भाव प्रकट करना, संकेत, इशारा। ६ गायत्री। ७ व्याकरणमें वह विकारी शब्द जिसमें किसी यथार्थ या कल्पित वस्तुका बोध होता है, जैसे—मकान, नदी, घोड़ा, राम, कृष्ण, खेल, नाटक आदि।

व्यवहार सिद्धिके लिये शास्त्रमें जो सङ्केत कहा गया है, उसे संज्ञा कहते हैं। संज्ञा छः प्रकारके सूत्रोंमें एक है।

"संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड़विधं सूत्रलक्षणम्॥"
(व्याकरण)

८ सूर्यकी पत्नी। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि संज्ञा विश्वकर्माकी कन्या थी। विश्वकर्माने सूर्यके साथ इसका विवाह कर दिया। संज्ञा भगवान् सूर्यका असहनीय तेज सहन नहीं कर सकती थी। वह सूर्य-दृष्टि पड़ते ही अपनी दोनों आंखें मूंद लेती थी। एक दिन सूर्यने गुस्सेमें आ कर उसे शाप दिया, 'संज्ञे! तुम मुझे देखते ही आंखें संयमन अर्थात् मूंद लेती हो, इससे तुम प्रजाके संयमन यमको प्रसव करोगी।' इस पर संज्ञा शापसे भयविह्वल हो चपलदृष्टिसे देखने लगी। सूर्यने इसकी लोल दृष्टि देख कर फिर कहा, 'मुझे देखते ही तुम्हारी दृष्टि चपल हो गई, इसलिये तुम चञ्चल-स्वभावा नदीको तनयारूपमें प्रसव करोगी।' अनन्तर इस शापसे संज्ञाके गर्भमें यम और अतिचञ्चला यमुनाने जन्मग्रहण किया। संज्ञा सूर्यका असहनीय तेज सहन न कर सकनेके कारण मन ही मन चिन्ता करने लगी, क्या करूं, कहां जाऊं और कहां जानेसे स्वामीके कोपसे छुटकारा पाऊं, बार बार इस प्रकार चिन्ता कर उसने पिताका आश्रय लेना ही अच्छा समझा। अनन्तर संज्ञाने अपनी जैसी छाया बना कर उसे कहा, 'तुम मेरी तरह स्वामीके घरमें रहना। मैं जिस प्रकार अपने पुत्रोंके प्रति व्यवहार करती हूं तुम भी उसी प्रकार करना। सूर्यदेव यदि पूछें तो मेरे चली जानेकी बात न कहना, केवल यही कहना, कि मैं ही संज्ञा हूं।'

छायाने संज्ञासे कहा, 'देवि! मैं तब तक आपकी आज्ञाका पालन करूंगी जब तक सूर्यदेव मेरा केशाकर्षण अथवा मुझे शाप प्रदान न करेंगे। शाप देने या केशाकर्षण करनेसे सभी बातें खोल दूंगी।' पीछे संज्ञा छायाको तरह तरहका उपदेश दे पितृभवनको चली गई और कुछ दिन वहां ठहरी।

एक दिन पिताने संज्ञासे कहा, 'बेटी! पिताके घर अधिक दिन रहना स्त्रियोंके लिये अच्छा नहीं। अतएव तुम स्वामीके घर चली जाओ।' पिताके इस प्रकार आदेश करने पर संज्ञा पितृभवनसे प्रस्थान कर उत्तर कुरुको चली गई और वहां सूर्यके तेजसे डर कर तथा उनके तापसहनमें अपनेको असमर्थ देख वड़वारूप धारण कर तपस्या करने लगी। इधर सूर्यने संज्ञा जान कर द्वितीय पत्नीसे दो पुत्र और कन्या उत्पादन कीं। किन्तु छाया अपने पुत्रोंके प्रति जैसा वात्सल्य दिखाती थी, संज्ञाके पुत्रोंके प्रति वैसा नहीं। मनु इस पर जरा भी दुःखित नहीं होते थे, किन्तु यम इसे सहन नहीं कर सके। उसने माताको मारनेके लिये दोनों पांव उठाये, किन्तु तुरत ही क्षमाके वशवर्त्ती हो उस दुष्कर्मसे हाथ खींच लिया। इस पर छायाने अत्यन्त क्रुद्ध हो यमको शाप दे कर कहा, 'मैं तुम्हारे पिताकी पत्नी हूं। फिर भी तुम मर्यादाशून्य हो कर मुझे लात मारने उद्यत हुए हो, इसलिये आज ही तुम्हारे ये पैर गिर पड़ेंगे।'

अनन्तर यमने माताके शापसे भयभीत हो पिताके पास जा कर कहा, 'तात! माताने हम लोगोंके प्रति

वात्सल्य त्याग कर शाप प्रदान किया है, यह बड़ा ही आश्चर्य हुआ। मनु हमेशा कहा करते हैं, कि वह हम लोगोंकी माता नहीं हैं। मुझे भी वैसा ही अनुमान होता है, क्योंकि पुत्रके अपराध करने पर भी माता उसे क्षमा कर देती है, बदला नहीं चुकाती।'

अनन्तर भगवान् सूर्यने यमकी यह बात सुन छायाको बुला कर पूछा, संज्ञा कहां गई है? छायाने छल करके कहा 'मैं ही त्वष्टाकी कन्या संज्ञा हूं और इन सब पुत्रोंकी माता हूं।' सूर्यके बार बार पूछने पर भी छायाने असल बात न कही। इस पर सूर्य बड़े बिगड़े और उसे शाप देनेको तैयार हो गये। यह देख कर छायाने आद्योपान्त कुल बातें कह दीं। सूर्य उसी समय त्वष्टाके घर गये और उनसे पूछा कि संज्ञा कहां है? त्वष्टाने जवाब दिया, 'संज्ञा यहां आई थी सही पर पीछे मैंने तुम्हारे घर जानेके लिये उससे कह दिया था, अब न मालूम वह कहां चली गई।'

अनन्तर सूर्यदेवने योगबलसे देखा, कि संज्ञा वड़वारूप धारण कर इस कामनासे तपस्या कर रही है, कि मेरे स्वामी सौम्यमूर्त्ति और शुभाकारविशिष्ट हों। सूर्यने उस की तपस्याका उद्देश जान कर त्वष्टासे कहा, 'आज आप मेरे तेजका क्षय कर दें।' विश्वकर्माने यन्त्र द्वारा वैसा ही किया।

इसके बाद भगवान् सूर्य अश्वरूप धारण कर उत्तरकुरु में वड़वारूपधारिणी संज्ञाके पास गये। संज्ञा उन्हें आते देख परपुरुष जान कर उनके पास गई। अनन्तर दोनोंके सम्मिलित होनेसे एककी नाक दूसरेमें सट गई। ऐसा करनेसे रेतःपात हुआ। अश्वीरूपी संज्ञाके मुखसे अश्विनी-कुमारद्वय तथा खड्ग, चर्म, वर्म, वाण और तूणधारण कर रैवन्त निकले। उस समय भगवान् सूर्यने अपना स्वरूप दिखलाया। उस रूपकी तुलना नहीं थी, वह अत्यन्त स्निग्ध और सौम्य था। संज्ञाने भी उनका स्वरूप देख परम पुलकित हो अपना रूप ग्रहण किया। अनन्तर संज्ञा स्वामीके साथ पुनः स्वामीके घर लौटी।

संज्ञाके प्रथम पुत्र वैवस्वत मनु और द्वितीय पुत्र यम थे। वे माताके शापसे धर्मदृष्टि हुए थे। पिताने यह कह कर उनका शाप दूर किया था, कि सभी कृमि इनके पाद-से मांस ग्रहण कर पृथ्वी पर गिरेंगे। वे शत्रु और मित्र पर समदर्शी थे, इस कारण पिताने इन्हें यमके पद पर नियुक्त किया। यमुना कालिन्दान्तरवाहिनी नदी हुई। अश्विनीकुमारद्वय पितासे देववैद्यपद पर प्रतिष्ठित और रैवन्त गुह्यकोंके आधिपत्य पर नियुक्त हुए।

संज्ञाकरणरस (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार चेतना लानेवाली एक औषधका नाम। इस औषधमें शुद्ध सिंगीमुहरा, सेंधानमक, काली मिर्च, रुद्राक्ष, कटाली, कायफल, महुआ और समुद्र फल आदि पड़ते हैं। इनकी मात्रा बराबर होती है। कहते हैं, कि इसके सेवनसे मनुष्यका सन्निपात रोग दूर होता है।

संज्ञान (सं० क्ली०) संज्ञा ल्युट्। १ संकेत, इशारा। २ ज्ञात।

संज्ञापन (सं० क्ली०) सम्-ज्ञा-णिच् ल्युट्। १ विज्ञापन, दूसरों पर कोई बात प्रकट करना। २ कथन।

संज्ञापुत्री (सं० स्त्री०) सूर्यकी पुत्री यमुनाका एक नाम।

संज्ञाहीन (सं० त्रि०) जिसे संज्ञा या चेतना न हो, चेतनारहित, बेहोश, बेसुध।

संज्ञु (सं० त्रि०) संहते संलग्ने जानुनी यस्य (प्रसंम्यां-जानुनोर्ज्ञुः। पा ५।४।१२९) इति ज्ञु। संहतजानुक, जिस की जांघा आपसमें मिली हो।

संज्वर (सं० पु०) सं ज्वरयतीति संज्वर-णिच्-अच्। १ बहुत तीव्र ज्वर, बहुत तेज बुखार। २ किसी प्रकारका बहुत अधिक ताप, बहुत तेज गरमी। ३ क्रोध आदिका बहुत अधिक आवेग।

संझवाती (हिं० स्त्री०) १ सन्ध्याके समय जलाया जानेवाला दीपक, शामका चिराग। २ वह गीत जो सन्ध्याके समय गाया जाता है। प्रायः यह विवाहके अवसर पर होता है। (त्रि०) ३ सन्ध्या-सम्बन्धी, सन्ध्याका।

संझा (हिं० स्त्री०) सूर्यास्तका समय, सन्ध्या, शाम।

संझिया (हिं० पु०) वह भोजन जो सन्ध्या समय किया जाता है, रात्रिका भोजन।

संठ (हि० पु०) १ शान्ति, निस्तब्धता, खामोशी। २ शठ, धूर्त्त। ३ नीच, वाहियात।

संड (हिं० पु०) साँड़।

संडमुसंड (हिं० त्रि०) हट्टा कट्टा, मोटा ताजा।

संडसा (हिं० पु०) लोहेका एक औजार जो दो छड़ोंसे बनता है। इनके एक सिरे पर थोड़ा-सा छोड़ कर दोनों छड़ोंको आपसमें कीलसे जड़ देते हैं। प्रायः इसे लोहार गरम लोहा आदि पकड़नेके लिये रखते हैं।

संड़सी (हि० स्त्री०) पतले छड़ोंका एक प्रकारका संड़सा। इसके दोनों छड़ोंका अगला भाग अर्द्ध वृत्ताकार मुड़ा हुआ होता है। इससे पकड़ कर प्रायः चूल्हे परसे गरम बटुली आदि गोल मुंहवाले बरतन उतारते हैं। इसे जंबूरी भी कहते हैं।

संडा (हिं० वि०) १ हृष्ट पुष्ट, मोटा ताजा। (पु०) २ मोटा और बलवान् मनुष्य।

संडाई (हिं० स्त्री०) मशककी तरह बना हुआ भैंस आदिका वह हवा भरा हुआ चमड़ा जिसे नदी आदि पार करनेके लिये नावके स्थान पर काममें लाते हैं।

संडास (हिं० पु०) १ कूएंकी तरहका एक प्रकारका गहरा पाखाना, शौच-कूप। यह जमीनके नीचे खोदा हुआ एक प्रकारका गहरा गड्ढा होता है जिसका ऊपरी भाग ढंका रहता है। केवल एक छिद्र बना रहता है जिस पर बैठ कर मल त्याग करते हैं। मल उसीमें जमा हो जाता है। अधिक दुर्गन्ध होने पर उसमें खारी नमक आदि कुछ ऐसी चीजें छोड़ते हैं जिसमें मल गल कर मिट्टी हो जाता है। इसका प्रचार अधिकतर ऐसे नगरोंमें है जिनमें नल नहीं होता और नित्य मल बाहर फेंकनेमें कठिनता होती है। पर जबसे नलका प्रचार हुआ तबसे इस प्रकारके पाखाने बंद होने लगे हैं। २ इसीसे मिलता जुलता वह पाखाना जिसका आकार ऊंचे खड़े नलका-सा होता है और जिसका नीचेका भाग पृथ्वी तल पर होता है। इसमें मकानसे बाहरकी ओर एक खिड़की रहती है जिसमेंसे मेहतर आ कर मल उठा ले जाता है।

संत (हिं० पु०) सत् देखो।

संतरा (हिं० पु०) एक प्रकारका बड़ा और मीठा नीबू, बड़ी नारंगी। सगतरा देखो।

संतरी (हिं० पु०) १ किसी स्थान पर पहरा देनेवाला सिपाही, पहरेदार। २ द्वार पर खड़ा हो कर पहरा देनेवाला, द्वारपाल।

संतोष (हिं० पु०) सन्तोष देखो।

संतोषना (हिं० क्रि०) १ सन्तोष दिलाना, सन्तुष्ट करना तबीयत भरना। २ सन्तुष्ट होना, प्रसन्न होना।

संथा (हिं० पु०) १ एक बारमें पढ़ाया हुआ अंश, पाठ, सबक़।

संद (हिं० पु०) दरार, छेद, बिल। २ चन्द्रमा। ३ दबाव।

संदल (फा० पु०) श्रीखण्ड चन्दन। चंदन देखो।

संदली (फा० वि०) १ संदलके रंगका, हलका पीला। २ संदलका, चन्दनका। (पु०) ३ एक प्रकारका हलका पीला रंग जो कपड़ेको चन्दनके बुरादेके साथ उबालनेसे आता है। इससे कपड़ेमें सुगन्धित भी आ जाती है। आज कल कई तरहकी बुकनियोंसे भी यह रंग तैयार किया जाता है। ४ एक प्रकारका हाथी जिसे दांत नहीं होते। ५ घोड़ेकी एक जाति।

संदान (फा० पु०) एक प्रकारका निहाई जिसका एक कोना नुकीला और दूसरा चौड़ा होता है, अहरन, घन। २ रस्सी, डोरी। ३ बांधनेकी सिकड़ी आदि। ४ बांधनेकी क्रिया। ५ हाथीका गंडस्थल जहांसे उसका मद बहता है।

संदास (हिं० पु०) सफेद डामर धूप, कहरुवा। इसका वृक्ष प्रायः पच्छिमी घाटमें पाया जाता है। यह सदा हरा रहता है।

संदि (हिं० स्त्री०) सन्धि, मेल।

संदूक (अ० पु०) लकड़ी, लोहे, चमड़े आदिका बना हुआ चौकोर पिटारा जिसमें प्रायः कपड़े गहने आदि चीजें रखते है, पेटी, बक्स।

संदूकचा (अ० पु०) छोटा संदूक, छोटी पेटी।

संदूख (अ० पु०) संदूक देखो।

संदूर (हिं० पु०) सिंदूर देखो।

संदृष्टिक (सं० त्रि०) दृष्टिगोचर।

संदेसा (हिं० पु०) किसीके द्वारा जबानी कहलाया हुआ समाचार आदि, खबर, हाल।

संधावेणिका (सं० स्त्री०) क्रीड़ाविशेष, एक प्रकारका खेल। (दिव्या० ४७५।१)

संनिधानिन् (सं० त्रि०) सामाजिक। (दिव्या० ६५६।४)

सँपेरा (हिं० पु०) सांप पालनेवाला मदारी, सांपका तमाशा दिखानेवाला ।

सँपोला (हिं० पु०) सांपका बच्चा ।

सँपोलिया (हिं० पु०) सांप पकड़नेवाला, सँपेरा ।

संप्रसिद्धि (सं० स्त्री०) सफलता ।

संप्रस्थित (सं० त्रि०) युद्धत्व प्राप्तिपथमें संरूढ़ ।

संबुल खताई (फा० पु०) तुर्किस्तानका एक पौधा। यह औषधके काममें आता है और इसकी पत्तियोंकी नसें मिठाईमें पड़ती हैं।

सँबैसर (हिं० पु०) निद्रा, नींद ।

सँबौधिया (हिं० पु०) वैश्योंकी एक जाति ।

सँभलना (हिं० क्रि०) १ किसी बोझ आदिका ऊपर लदा रह सकना, थामा जा सकना। २ किसी सहारे पर रुका रह सकना, आधार पर ठहरा रहना। ३ स्वस्थता प्राप्त करना, चंगा होना। ४ बुरी दशाको फिर सुधार लेना। ५ कार्यका भार उठाया जाना, निर्वाह सम्भव होना। ६ सचेत होना, होशियार होना। ७ चोट या हानिसे बचाव करना, गिरने पड़नेसे रुकना।

सँभली (हिं० स्त्री०) कुटनी, दूती ।

सँभवना (हिं० क्रि०) १ उत्पन्न करना, पैदा करना। २ उत्पन्न होना, पैदा होना। ३ संभव होना, हो सकना।

सँभाल (हिं० स्त्री०) १ रक्षा, हिफाजत। २ पोषणका भार। ३ प्रबन्ध, इन्तजाम। ४ तन बदनकी सुध, होश हवास। ५ देखरेख, निगरानी।

सँभालना (हिं० क्रि०) १ भारको ऊपर ठहराना, भार ऊपर ले सकना। २ रोक या पकड़में रखना, इस प्रकार थामे रहना कि छूटने या भागने न पावे, काबूमें रखना। ३ पालन पोषण करना, परवरिश करना। ४ प्रबन्ध करना, इंतजाम करना। ५ किसी मनोवेगको रोकना, जोश थामना। ६ दशा बिगड़नेसे बचाना ; रोग, व्याधि, आपत्ति, इत्यादिको रोक करना। ७ बुरी दशाको प्राप्त होनेसे बचाना, बिगड़ी दशामें सहायता करना, खराबीसे बचाना। ८ निर्वाह करना, किसी कार्यका भार अपने ऊपर लेना, चलाना। ९ कोई वस्तु ठीक ठीक है इसका इतमीनान कर लेना, सहेजना। १० किसी वस्तुको अपनी जगहसे हटने, गिरने, पड़ने, खिसकने आदिसे रोकना; थामना। ११ रक्षा करना, हिफाजत करना। १२ गिरने पड़नेसे रोकनेके लिये सहारा देना, गिरनेसे बचाना। १३ देख रेख करना, निगरानी करना।

संमत (सं० त्रि०) सम्मत देखो ।

संमित (सं० स्त्री०) सम्मित देखो ।

संमान (सं० पु०) सम्मान देखो ।

संमित (सं० त्रि०) सम्मित देखो ।

संमेलन (सं० पु०) सम्मेलन देखो ।

संय (सं० पु०) कङ्काल, पंजर ।

संयत् (सं० पु० स्त्री०) संयम्यतेऽनेनेति संयम-क्विप्, (गमादीनां । पा ६।४।४०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या मलोपः तुक् । १ युद्ध, समर । २ नियत स्थान, बंधी हुई जगह । ३ वादा, करार । ४ एक प्रकारकी ईंट जो यज्ञकी वेदी बनानेमें काम आती थी । (त्रि०) ५ सम्बद्ध, लगा हुआ । ६ अखण्डित, लगातार ।

संयत (सं० त्रि०) सं-यम-क्त । १ बद्ध, बंधा हुआ, जकड़ा हुआ । २ पकड़में रखा हुआ, दबावमें रखा हुआ । ३ बन्द किया हुआ, कैद । ४ क्रमबद्ध, व्यवस्थित, कायदेका पाबंद । ५ हदके भीतर रखा हुआ, उचित सीमाके भीतर रोका हुआ । ६ कृतसंयम, जिसने इन्द्रियों और मनको वशमें किया हो । संयत हो कर धर्म-कर्मका अनुष्ठान करना होता है । यही शास्त्रका आदेश है । असंयत चित्तसे किसी धर्म कार्यका अनुष्ठान किया जा नहीं सकता, करनेसे उसके सम्यक् फललाभ नहीं होता है । ७ उद्यत, तैयार । (पु०) ८ शिव । ९ कृतसंयमी, संन्यासी ।

संयतचेतस् (सं० त्रि०) कृतसंयमचित्तविशिष्ट, संयतमानस ।

संयतप्राण (सं० त्रि०) १ जिसने प्राणवायु या श्वासको वशमें किया हो, प्राणायाम करनेवाला । २ इन्द्रियोंको वशमें करनेवाला ।

संयताक्ष (सं० त्रि०) निमिलितनेत्र ।

संयताञ्जलि (सं० स्त्री०) बद्धाञ्जलि ।

संयतात्मन् (सं० त्रि०) चित्तवृत्तिका निरोध करनेवाला, जिसने मनको वशमें किया हो ।

संयताहार (सं० त्रि०) स्वल्प वा परिमिताहारी, थोड़ा खानेवाला।

संयति (सं० स्त्री०) निरोध, वशमें रखना।

संयतिन् (सं० त्रि०) संयमनशील।

संयतेन्द्रिय (सं० त्रि०) संयतानि इन्द्रियाणि यस्य। इन्द्रियको अपने वशमें करनेवाला।

संयत्त (सं० त्रि०) १ प्रस्तुत। २ अनुरक्त। ३ सतर्क।

संयत्वर (सं० पु०) १ वाग्यत, वह जिसने वाक्य संयम किया हो। २ जन्तुसमूह।

संयद्वर (सं० पु०) संयच्छतीति संयम (छित्वरच्छत्वरेति। उण् ३।१) इति ष्वरच् प्रत्ययेन साधुः। नृप, राजा।

संयद्वसु (सं० त्रि०) १ वहुत धनवाला, धनवान्। (पु०) २ सूर्यकी सात किरणोंमेंसे एक।

संयद्वाम (सं० त्रि०) अविच्छिन्न प्रेम या आकाङ्क्षा युक्त। (छान्दोग्य ४।१५।२)

संयद्वीर (सं० त्रि०) वीरोंका पोषणक्षम, संयत वीरयुक्त, जिसमें संयत वीर हो।

संयन्त (सं० त्रि०) संयम तृच्। १ नियन्ता, परिचालक। २ संयमकारक।

संयन्तृ (सं० त्रि०) १ संयम करनेवाला, रोकनेवाला। २ शासक, अधिकारी।

संयन्त्रित (सं० त्रि०) १ बद्ध, बंधा हुआ, जकड़ा हुआ। २ बन्द। ३ रुद्ध, रोका हुआ, दवाया हुआ।

संयपन (सं० क्ली०) जल या पीसे हुए द्रव्यका मिलाना।

संयम (सं० पु०) संयम (यमः समुपनिविषु। पा ३।३।६३) इति अप्। १ व्रतादिका अङ्ग, पूर्वदिनकर्त्तव्य आचार-विशेष। जिस दिन उपवास आदि और कार्यादि करने होते हैं, उसके पूर्व दिन संयम करना होता है। उस दिन कांस्य अर्थात् कांसेके वरतनमें भोजन, मांस, मसूर, चना, कोरदूषक, शाक, मधु, पराम्न और रात्रिकालमें भोजन, आमिष, द्यूत, अत्यम्बु पान, लोभ, मिथ्याकथन, व्यायाम, व्यवाय, दिवास्वप्न, अञ्जनलेपनकार्य और तिलपिष्टादि खाना मना है। उस दिन सभी इन्द्रियोंका निग्रह करना होता है।

इधर उधर फैले हुए सोतेंको एकत्र करनेसे उसमें शक्तिविशेषका प्रादुर्भाव होता है। वर्षाकालमें चारों ओरके प्रवाहको रोक कर एक धारा प्रवाहित रखनेसे उसमें जिस प्रकार जोरोंका वेग होता है, उसी प्रकार नाना विषयोंसे चित्तवृत्तिको प्रतिनिवृत्त कर एक विषयमें रख सकनेसे उसमें एक ऐसी अपूर्व शक्तिका प्रादुर्भाव होता है, कि उसके प्रभावसे सभी प्रकारकी सिद्धि हो सकती है। एकदम रोक कर नदीका वेग छोड़ देनेसे जिस प्रकार और भी अतिरिक्त वेग पैदा होता है, उसी प्रकार सारी चित्तवृत्तिको रोक कर वैसे परिशुद्ध चित्तको विषय विशेषमें अवस्थापित करनेसे उससे भी अधिक शक्तिका प्रादुर्भाव होता है। संयमकी पूर्वभूमि अर्थात् अवस्थाविशेषका दमन होते देख अजित अव्यवहित उत्तर भूमिमें उसे नियोग करना होता है।

२ बन्धन, बांधना। ३ वशमें रखनेकी क्रिया या भाव, रोक। ४ हानिकारक या बुरी वस्तुओंसे बचनेकी क्रिया, परहेज। ५ बन्द करना, मूंदना। ६ प्रयत्न, उद्योग। ७ धूम्राक्षके एक पुत्रका नाम। ८ प्रलय।

संयमक (सं० त्रि०) संयच्छतीति संयम ण्वुल्। नियन्ता।

संयमन (सं० क्ली०) संयम-ल्युट्। १ बांधना, जकड़ना, कसना। २ रोक। ३ आत्मनिग्रह, मनको वशमें रखना। ४ खींचना, तानना। ५ बन्द रखना, कैद रखना। ६ दमन, दवाव। ७ यमपुर। (पु०) संयच्छतीति संयम-ल्यु। ८ नियन्ता।

संयमनिन् (सं० पु०) १ राजा। २ शासन करनेवाला।

संयमनी (सं० स्त्री०) संयम्यतेऽस्यामिति संयम अधिकरणे ल्युट्। यमपुरी, यमकी नगरी। यह मेरु पर्वत पर मानी गई है।

संयमवत् (सं० त्रि०) संयम-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। संयमविशिष्ट, कृतसंयम।

संयमित (सं० त्रि०) संयमोऽस्य जातः तारकादित्वादितच्। १ इन्द्रियनिग्रही, जो मनको रोके हो। २ रोकमें रखा हुआ, काबूमें लाया हुआ। ३ दमन किया हुआ। ४ पकड़में लाया हुआ, कस कर पकड़ा हुआ। ५ बंधा हुआ, कसा हुआ।

संयमिन् (सं० पु०) संयमोऽस्यास्तीति संयम-इनि। १ मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला, आत्मनिग्रही, योगी। २ शासक, राजा। (त्रि०) ३ रोक या दबावमें

रखनेवाला, कावूमें रखनेवाला। ४ बुरी या हानि कारक वस्तुओंसे बचनेवाला, परहेज़गार।

संयाज (सं० पु०) १ यज्ञ और वलि। २ सम्यक् रूपसे याजन करना।

संयाज्य (सं० त्रि०) १ वलि देनेके उपयुक्त। (पु०) २ बलिकार्य। ३ स्विष्टकृत् यज्ञमें व्यवहृत याज्या और पुरोनुवाक्या मन्त्रभेद। (ऋक् ३।११२)

संयात (सं० त्रि०) १ एक साथ गया हुआ, साथ साथ लगा हुआ। २ प्राप्त, पहुंचा हुआ, दाखिल।

संयाति (सं० पु०) १ नहुषके एक पुत्रका नाम। (भाग० ६।१८।१) २ बहुगव या प्राचीनवतके एक पुत्रका नाम। (भारत आदिपर्व) ३ वंशदा गर्भजात पुरु राजाके एक पुत्रका नाम। (नृसिंहपु० २८।६)

संयात्रा (सं० स्त्री०) १ द्वीपान्तर गमन। २ सम्यक यात्रा।

संयान (सं० क्ली०) संया-ल्युट्। १ सहगमन, साथ जाना। २ यात्रा, सफ़र। ३ प्रस्थान, रवानगी। ४ प्रेतनिर्हार, भूत प्रेतके साथ जाना। ५ शकट, गाड़ी।

संयाम (सं० पु०) सम् यम (यमः समुपनिविषुच। पा ३।३।६३) इति पक्षे घञ्। संयम। (अमर)

संयाव (सं० पु०) सं यु-(समि युद्रु दुवः। पा ३।३।२३) इति घञ्। एक प्रकारका पकवान या मिठाई, पिराक, गोझिया।

संयुक्त (सं० त्रि०) संयुज्-क्त। १ जुड़ा हुआ, लगा हुआ। २ मिला हुआ। ३ सहित, साथ। ४ सम्बद्ध, लगाव रखता हुआ। ५ समन्वित, लिप्त हुए।

संयुक्तक (सं० त्रि०) जो आ कर संयुक्त हो, आगम।

संयुक्तसञ्चयपिटक (सं० क्ली०) बौद्धधर्म शास्त्रविशेष।

संयुक्ता (सं० स्त्री०) १ आवर्तकी लता, भगवतवल्ली। २ एक छन्दका नाम।

संयुक्ता—कन्नौजके राजा जयचन्दकी कन्या और भारतके अन्तिम हिन्दूराज पृथ्वीराजकी स्त्री।

विशेष विवरण पृथ्वीराज शब्दमें देखो।

संयुक्तागम—बौद्धागमभेद।

संयुक्ताभिधर्मशास्त्र (सं० क्ली०) बौद्धोंका एक धर्मग्रन्थ।

संयुग (सं० पु०) १ युद्ध, लड़ाई। २ संयोग, समागम। ३ भिड़न्त, भिड़ना।

संयुज् (सं० त्रि०) संयुज-क्विप्। १ गुणवान्, गुणाढ्य। २ संयुक्त। (पु०) ३ जामाता।

संयुत (सं० त्रि०) १ संयुक्त, जुड़ा हुआ। २ समन्वित। ३ सहित, साथ। ४ सम्बद्ध, एक साथ लगा हुआ। (पु०) ५ एक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें एक सगण, दो जगण और एक गुरु होता है।

संयुति (सं० स्त्री०) ग्रहसमावेश।

संयुयुत्सु (सं० त्रि०) सम् युध् सन् उ। सब तरह युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाला।

संयुयुसु (सं० त्रि०) सम् यु-सन्-उ। अच्छी तरह मिलानेमें इच्छुक।

संयोग (सं० पु०) सम्-युज्-घञ्। १ मिलन, दो वस्तुओंका एकमें या एक साथ होना, मिलान। २ न्यायके मतसे चौवीस गुणपदार्थोंके अन्तर्गत एक गुण। यह एक सम्बन्धविशेष है अर्थात् दो अप्राप्तवस्तुकी परस्पर प्राप्ति या उनकी गाढ़ी सन्निकृष्टता। यह एककर्मज, उभयकर्मज और संयोगज भेदसे तीन प्रकारका है।

३ सूर्योदयके पूर्व और दशमीका शेष भाग। सूर्योदयके कुछ पहले दशमी शेष होने पर उसे संयोग कहते हैं। (तिथ्यादितत्त्व)

४ समागम, मिलाप। यह शृङ्गाररसके दो भेदोंमेंसे एक है। इसीको संभोग शृङ्गार भी कहते हैं। ५ सम्बन्ध, लगाव। ६ स्त्री पुरुषका प्रसङ्ग, सहवास। ७ विवाह सम्बन्ध। ८ दो राजाओंकी किसी बातके लिये सन्धि। ९ किसी विषय पर भिन्न व्यक्तियोंका एक मत होना, मतैक्य। १० दो या अधिक व्यञ्जनोंका मेल। ११ योग, जोड़, मीज़ान। १२ दो या कई बातोंका इकट्ठा होना, इत्तफ़ाक़।

संयोगपृथक्त्व (सं० क्ली०) संयोगेन फलसम्बन्धभेदेन पृथक्त्वं नानाविधत्वं यत्र। ऐसा पृथक्त्व या अलगाव जो नित्य न हो।

संयोगमन्त्र (सं० क्ली०) विवाहके समय पढ़ा जानेवाला वेदमन्त्र।

संयोगविरुद्ध (सं० त्रि०) संयोगेन विरुद्धम्। वे पदार्थ जो परस्पर मिल कर खाने योग्य नहीं रहते और यदि

खाये जायं तो रोग उत्पन्न करते हैं। जैसे,—घी और मधु, मछली और दूध। विस्तृत विवरण विरुद्ध शब्दमें देखो।

संयोगित (सं० त्रि०) संयोग इतच्। जातसंयोग, जो मेल किया गया हो। (भरत)

संयोगिता—संयुक्ता देखो।

संयोगिन् (सं० त्रि०) संयोगोऽस्यास्तीति संयोग-इनि। १ संयोगविशिष्ट, मेलका। २ संयोग करनेवाला, मिलानेवाला। ३ विवाहिता, व्याहा हुआ। ४ जो अपनी प्रियाके साथ हो।

संयोगी—वैष्णव सम्प्रदायभेद। रामात् निमात् आदि चार सम्प्रदाययुक्त जो सब वैरागी विवाह कर स्त्री पुत्रादिके साथ संसारयात्रा निर्वाह करता है, वह संयोगी कहलाता है। मट्ठकाधारी देखो।

संयोगी स्वामिन्—हिन्दुस्तानवासी एक सम्प्रदाय।

संयोजक (सं० त्रि०) १ मिलानेवाला, जोड़नेवाला। (पु०) २ व्याकरणमें वह शब्द जो दो शब्दों या वाक्योंके बीच केवल जोड़नेके लिये आता है।

संयोजन (सं० क्ली०) सम् युज-ल्युट्। १ मैथुन, स्त्री-पुरुषका प्रसंग। २ एकत्रीकरण, जोड़ने या मिलानेकी क्रिया। ३ आयोजन, प्रबन्ध, इन्तज़ाम। ४ भवबन्धनका कारण, संसारके बंधनमें रखनेवाला।

संयोजना (सं० स्त्री०) १ आयोजन, व्यवस्था, इन्तज़ाम। २ मेल, मिलान। ३ सहवास, स्त्रीपुरुषका प्रसंग। ४ भवबन्धनका कारण, जन्म मरणके चक्रमें बद्ध रखनेवाली बातें। कामराग, रूपराग, अरूपराग, परिघ, मानस, दृष्टि, शीलव्रतपरभार्ष, विचिकित्सा, औद्धत्य और अविद्या इन सबकी गणना संयोजनामें होती है।

संयोजित (सं० त्रि०) सम्-युज्-णिच्-क्त। मिलाया हुआ, जोड़ा हुआ। पर्याय—उपाहित, संयोगित। (भरत)

संयोज्य (सं० त्रि०) १ संयोजनके योग्य, मिलाने लायक। २ जो मिलाया या जोड़ा जानेवाला हो।

संयोद्धृ (सं० त्रि०) समान वीर, जो प्रतिपक्षता कर युद्ध करनेमें समर्थ हो।

संयोद्धव्य (सं० त्रि०) प्रतिद्वन्द्वितापूर्वक युद्ध करनेमें उपयुक्त।

संयोधकण्टक (सं० पु०) एक यक्षका नाम।

संरक्त (सं० त्रि०) १ अनुरक्त, आसक्त। २ सुन्दर, मनोहर। ३ कुपित, क्रोधसे लाल।

संरक्षक (सं० त्रि०) १ रक्षक, रक्षा करनेवाला। २ देख रेख और पालन पोषण करनेवाला। ३ आश्रय देनेवाला। ४ सहायक।

संरक्षण (सं० क्ली०) १ परिरक्षण, हानि या नाश आदिसे बचानेका काम, हिफ़ाज़त। २ तत्त्वावधारण, देखरेख, निगरानी। ३ अधिकार, कब्ज़ा। ४ रख छोड़ना। ५ प्रतिबन्ध, रोक।

संरक्षणीय (सं० त्रि०) १ रक्षा करने योग्य, हिफ़ाज़तके लायक। २ रख छोड़ने लायक।

संरक्षित (सं० त्रि०) १ भली भांति रक्षित, हिफ़ाज़तसे रखा हुआ। २ अच्छी तरह बचाया हुआ।

संरक्षितव्य (सं० त्रि०) १ जिसका संरक्षण करना हो। २ जिसका संरक्षण उचित हो।

संरक्षिन् (सं० त्रि०) १ संरक्षण करनेवाला। २ देख भाल करनेवाला।

संरक्ष्य (सं० त्रि०) १ जिसका संरक्षण करना हो। २ जिसका संरक्षण उचित हो।

संरञ्जनीय (सं० त्रि०) सम्यक् प्रकारसे तुष्टिसाधनके योग्य।

संरब्ध (सं० त्रि०) १ आश्लिष्ट, खूब मिला हुआ। २ जो एक दूसरेको खूब पकड़े हुए हो। ३ क्षुब्ध, उद्विग्न। ४ हाथमें हाथ मिलाये हुए। ५ उत्तेजित, जोशमें आया हुआ। ६ सूजा हुआ, फूला हुआ। ७ क्रोधसे भरा हुआ। ८ क्रुद्ध, नाराज।

संरम्भ (सं० पु०) सम् रभ-घञ् नुम्। १ क्रोध, कोप। २ आटोप, आडम्बर। ३ सम्भ्रम। (भागवत ८।६।२४) ४ वेग। ५ उत्साह, उत्कंठा, शौक। ६ आक्रोश। ७ गर्व, ऐंठ, ठसक। ८ ग्रहण करना, पकड़ना। ९ फोड़े या घावका सूजना या लाल होना। १० युद्ध, लड़ाई। ११ शोक। १२ आयति, विस्तृति। १३ एक अस्त्रका नाम। १४ आरम्भ, शुरू।

संरम्भण (सं० क्ली०) सम् रम्भ-ल्युट्। १ संरम्भ। (त्रि०) २ संरम्भकारक।

संरम्भिन् (सं० त्रि०) संरम्भयुक्त। (भागवत ३।२१।५)

संरद्ध (सं० त्रि०) विशालमूल। (डुभुंत चि०)
संराग (सं० पु०) अनुरक्ति, अत्यासक्ति।
संराजित् (सं० त्रि०) सम्-राज्-तृच्। दीप्तिमान। (पा ८।३।२५)
संराद्धि (सं० स्त्री०) सम्-राध-क्ति। संराधन, अच्छी तरह सिद्धकरण।
संराधक (सं० त्रि०) ध्यान करनेवाला, आराधना करनेवाला।
संराधन (सं० पु०) १ तुष्टीकरण, प्रसन्न करना। २ पूजा करना। ३ ध्यान। ४ जयजयकार।
संराधनीय (सं० त्रि०) पूजाके योग्य।
संराधि (सं० क्ली०) सम्पूर्ण भावसे कार्य सुसिद्ध करना।
संराधित (सं० त्रि०) आराधित, सेवित, अर्चित।
संराध्य (सं० त्रि०) आराधनाके योग्य।
संराव (सं० पु०) सम्-रु-घञ्। (उपसर्गे रुवः। पा ३।३।२२) १ कोलाहल, शोर। २ हलचल, धूम।
संराविन् (सं० त्रि०) खूब शोर करनेवाला।
संरुग्ण (सं० त्रि०) सं-रुज-क्त। खण्डित, चूर चूर।
संरुजन (सं० क्ली०) रुक्, पीड़ा।
संरुद्ध (सं० त्रि०) १ अच्छी तरह रोका हुआ। २ घेरा हुआ। ३ अच्छी तरह बन्द। ४ ठसाठस भरा हुआ। ५ वर्जित, मना किया हुआ। ६ आच्छादित, ढका हुआ।
संरुध् (सं० स्त्री०) सम्-रुध-क्विप्। सम्यक् रोधकारी।
संरूढ़ (सं० त्रि०) सम्-रुह-क्त। १ प्रौढ़, दृढ़। २ अङ्कुरित, जमा हुआ। ३ आविर्भूत, प्रकट। ४ धृष्ट, प्रगल्भ। ५ अच्छी तरह चढ़ा हुआ। ६ खूब जमा हुआ, अच्छी तरह लगा हुआ। ७ अंगूर फेंकता हुआ पूजता हुआ, सूखता या अच्छा होता हुआ।
संरोचन (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।
संरोदन (सं० क्ली०) खूब रोना।
संरोध (सं० पु०) सम-रुध-घञ्। १ प्रतिबद्ध, रोक, छेंक। २ अवरोध, गढ़ आदिको चारों ओरसे घेरना। (भागवत १०।७३।१२) ३ निक्षेप, फेंकना। ४ परिमिति, हदबंदी। ५ बंद करने या मूंदनेकी क्रिया। ६ अड़चन, बाधा। ७ हिंसा, नाश।

संरोधन (सं० क्ली०) १ रोकना, छेंकना, रुकावट डालना। २ अवरोध करना, घेरना। ३ हद बांधना। ४ बाधा डालना, कार्यमें हानि पहुंचाना। ५ बंदी करना, कैद करना। ६ बंद करना, मूंदना।
संरोधनीय (सं० त्रि०) रोकने, छेंकने या घेरने योग्य।
संरोध्य (सं० त्रि०) १ जो रोका, छेंका या घेरा जानेवाला हो। २ जिसे रोना या घेरना उचित हो।
संरोपण (सं० क्ली०) १ पेड़ पौधा लगाना, जमाना, बैठाना। २ घाव सुखाना, घाव अच्छा करना।
संरोपित (सं० त्रि०) जमाया या लगाया हुआ।
संरोप्य (सं० त्रि०) १ जो जमाया या लगाया जाने-वाला हो। २ जिसे जमाना या लगाना उचित हो।
संरोषित (सं० त्रि०) ऊपर लगाया हुआ, छोपा हुआ, पोता हुआ।
संरोह (सं० पु०) १ जमना, ऊपर छाना या बैठना। २ घाव पर पपड़ी जमाना, घाव सूखना। ३ अंकुरित होना, जमना। ४ आविर्भूत होना, प्रकट होना।
संरोहण (सं० पु०) १ जमना, ऊपर छाना। २ घाव सूखना। ३ पेड़ पौधा लगाना, जमाना।
संरोहिन् (सं० त्रि०) उत्पन्न, जात।
संलक्षण (सं० पु०) रूप निश्चित करना, लखना, पहचाना, ताड़ना।
संलक्षित (सं० त्रि०) १ लखा हुआ, पहचाना हुआ, ताड़ा हुआ। २ रूप निश्चित किया हुआ, लक्षणोंसे जाना हुआ।
संलक्ष्य (सं० त्रि०) संदर्शनीय, जो लखा जाय, जो देखनेमें आ सके।
संलक्ष्य क्रम व्यङ्ग्य (सं० पु०) व्यंग्यके दो भेदोंमेंसे एक, वह व्यञ्जना जिसमें वाच्यार्थसे व्यंग्यार्थकी प्राप्तिका क्रम लक्षित हो। इसके द्वारा वस्तु और अलङ्कारकी व्यञ्जना होती है। जैसे—पेड़का पत्ता नहीं हिलता, इसका व्यंग्यार्थ हुआ कि हवा नहीं चलती। इसमें वाच्यार्थके उपरान्त व्यंग्यार्थकी प्राप्ति लक्षित होती है। रसव्यंजना या भाव व्यञ्जनामें क्रम लक्षित नहीं होता, इसीसे उसे असंलक्ष्य क्रम कहते हैं।
संलगन (सं० क्ली०) मिलन, संयोग।

संलग्न (सं० त्रि०) सम्-लग-क्त। १ संयुक्त, बिलकुल लगा हुआ, सटा हुआ। २ भिड़ा हुआ, लड़ाईमें गुथा हुआ। ३ आवद्ध, जुड़ा हुआ।

संलपन (सं० क्ली०) संलाप, प्रलाप, गपशप।

संलय (सं० पु०) १ निद्रा, नींद। २ प्रलय, लीन होनेकी क्रिया। ३ पक्षियोंका नीचे उतरना या नीचे बैठना।

संलयन (सं० क्ली०) १ लयको प्राप्त होना, लीन होना। २ नष्ट होना, व्यक्त न रहना। ३ पक्षियोंका नीचे उतरना या नीचे बैठना।

संलाप (सं० पु०) १ परस्पर वार्तालाप, आपसकी बातचीत। २ निर्जनमें बातचीत करना। (कौमुदी) ३ नाटकमें एक प्रकारका संवाद। इसमें क्षोभ या आवेग नहीं होता, पर धीरता होती है।

संलापक (सं० पु०) १ संलाप, नाटकमें एक प्रकारका संवाद। २ एक प्रकारका उपरूपक या छोटा अभिनय।

संलिप्त (सं० त्रि०) लीन, भलीभांति लिप्त। २ खूब लगा हुआ।

संलिप्सु (सं० त्रि०) अच्छी तरह लाभ करनेमें इच्छुक।

संलीन (सं० त्रि०) १ खूब लीन, अच्छी तरह लगा हुआ। २ आच्छादित, ढका हुआ। ३ संकुचित, सिकुड़ा हुआ।

संलेख (सं० पु०) पूर्ण संयम।

संलोकिन् (सं० त्रि०) सन्दर्शक, अच्छी तरह देखनेवाला।

संलोड़न (सं० क्ली०) सम्-लोड़ि-ल्युट्। १ जल आदिको खूब हिलाना या चलाना। २ मथना। २ खूब हिलाना डुलाना, उथलपुथल करना।

संवत् (सं० पु०) १ वत्सर, वर्ष, साल। २ वर्षविशेष जो किसी संख्या द्वारा सूचित किया जाता है, चली आती हुई वर्ष गणनाका कोई वर्ष, सन। ३ महाराज विक्रमादित्यके कालसे चली हुई मानी जानेवाली वर्ष गणना। विशेष विवरण संवत्सर शब्दमें देखो। ४ संग्राम, लड़ाई। (स्त्री०) ५ भूमि विशेष। (त्रि०) ६ सामभेद।

संवत्सम् (सं० अव्य०) संवत्सर पर्यन्त, वत्सरावधि।

संवत्सर (सं० पु०) संवसन्ति ऋतवो यत्र सम्-वस-त्सरन् (सं पूर्वात् चित्। उण् ३।७२) १ वत्सर, वर्ष, साल। २ पांच पांच वर्षके युगोंका प्रथम वर्ष। पञ्च वत्सर ये हैं—संवत्सर, परीवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर। इस वत्सरमें तिलदान करनेसे महाफल होता है। (विष्णुधर्मोत्तर)

संवत्सरसे संवत् शब्द हुआ है। संवत् कहनेसे लोग विक्रमसंवत् समझते हैं, किन्तु बहुत पहलेसे इस भारतवर्षमें अनेक प्रकारके संवत् प्रचलित थे। अभी अब्द, सन् या काल कहनेसे जिस प्रकार वर्ष समझा जाता है, पूर्व कालमें संवत्सर या संवत् कहनेसे उसी प्रकार विभिन्न राजवंशके राज्याङ्क निर्देशके विभिन्न वर्ष समझे जाते थे। पहले भारतवर्षमें प्रधानतः निम्न लिखित संवत् व्यवहृत होते थे—

नाम	आरम्भ काल	
१ सप्तर्षिकाल या लौकिक संवत्	६७७७	खृ० पू०
२ बार्हस्पत्य काल या षष्टि संवत्सर	३१२८	"
३ कलियुगगताब्द या कल्यब्द	३१०२	"
४ भारत युद्धाब्द या यौधिष्ठिर संवत्	"	"
५ परशुराम चक्र या सहस्र संवत्सर	११७७	"
६ बुद्धनिर्वाणाब्द या बौद्ध संवत्	५४३	"
७ महावीरमोक्षाब्द या वीर संवत् (जैन)	५२७	"
८ मौर्याब्द या मौर्य संवत्	३७२	"
९ सलौकी संवत् (Era of the Seleukidae)	३१२	"
१० पार्थिव संवत् (Era of the Parthia)	२४७	"
११ मालव-गताब्द या विक्रम संवत्	५७१	"
१२ ग्रहपरिवृत्तिचक्र	२४	"
१३ शकभूपकाल, शकाब्द या शक संवत्	७८	खृष्टाब्द
१४ चेदी या कलचुरी संवत्	२४९	"
१५ गुप्तकाल या गुप्त संवत्	३१९	"
१६ वलभीकाल या वलभी संवत्		"
१७ हर्षाब्द या श्रीहर्ष संवत्	६०७	"
१८ त्रिपुराब्द (पार्वत्य स्वाधीन त्रिपुरामें प्रचलित अब्द)	६२१	"

१९ कोलम्बाब्द (कोल्लम् आन्दु) या परशुराम शक या परशुराम संवत् ८२४ „
२० नेवार अब्द या नेपाली संवत् ८८० „
२१ चालुक्य संवत् १०१६ „
२२ सिंह संवत् (शिवसिंह संवत्) १११४ „
२३ लक्ष्मणसेनाब्द या लक्ष्मणसंवत् (लं सं) १११९ „
२४ चैतन्याब्द (महाप्रभु चैतन्यदेवके जन्म दिनसे) १४८६ „
२५ राज्याभिषेकाब्द या शिवसंवत् १६६४ „

उपरोक्त विभिन्न अब्दोंके अलावा पाश्चात्य, प्राच्य और मुसलमानी प्रभावसे और भी कितने अब्द प्रचलित हुए हैं, यथा—

२६ ब्रह्म संवत् (ब्रह्मदेशीय बौद्धोंका पवित्र अब्द खृ० पू० ५४३ अब्दमें आरंभ)
२७ खृष्टाब्द (ईसामसीहके जन्मदिनसे रोमक पञ्जिकानुसार ७५३ अब्द या जुलियन अब्दके ४५वें अङ्कसे आरम्भ)
२८ यवद्वीपमें प्रचलित शकाब्द ७४ ई०सन्‌से आरम्भ।
२९ वालिद्वीपमें प्रचलित शक ८१ ई०सन्‌से आरम्भ।
३० हिजरी (पैगम्बर महम्मदके मक्कासे मदीना भागनेके दिन १६२२ ई०की १६वीं जनवरीसे आरम्भ)
३१ पारसी जलाली (Yardezard Era) ६३२ ई०की १६वीं जूनसे आरम्भ।
३२ ब्रह्मदेशमें प्रचलित मगी ६३६ ई०से आरम्भ।
३३ मालिकी जलाली १०७९ ई०के मार्च माससे आरम्भ
३४ सूर सन (अरबी अब्द, हिजरीके १३वें अङ्कमें आरम्भ) १३४४ ई०को महाराष्ट्र देशमें प्रचलित हुआ।
३५ बङ्गला सन्—सुलतान हुसेन शाहके समय इस सनका प्रचार हुआ।
३६ फसली सन्—हिजरीको ४ वर्ष बाद दे कर गिना जाता है। यह १५५६ ई०से प्रचलित हुआ है।
३७ विलायती या अमली सन्—उत्कलमें प्रचलित, १५५६ ई०में आरम्भ।
३८ तारीख-इ इलाही—सम्राट् अकबर द्वारा १५८४ ई०में प्रवर्त्तित।
३९ विजापुरी जुलूस सन—विजापुरके २य आदिल शाह द्वारा १६५६ ई०में प्रवर्त्तित।
४० परगणाति सन्—पूर्व बङ्गालमें यह अब्द प्रचलित था, प्राचीन कागजातोंमें मिलता है।

उल्लिखित विभिन्न संवत् या अब्दोंके सिवा पाश्चात्य जगत्‌में और भी कुछ अब्द प्रचलित थे। उनमेंसे—

१ तुर्क या कनस्तुन्तिन् अब्द (Constantinople Era) जगत्‌की सृष्टि ले कर गिना जाता है। ईसाइयोंके ग्रीक चर्चमें आज भी यह अब्द प्रचलित है। वे लोग ई०सन्‌के ५५०६ वर्ष पहलेसे इस अब्दका आरम्भ मानते हैं।

२ नावोनासरका अब्द (Era of Nabonassar) ७४६ ई०की २६ वीं फरवरीसे यह अब्द आरम्भ है।

३ चीनाब्द—२३५७ ई० सन्‌से आरम्भ।

४ रोमकाब्द (Roman Era)—रोमनगरके प्रतिष्ठाकाल ७१२ ई० सन्‌के पहलेसे यह अब्द माना जाता है।

५ ओलिम्पियाद—७७६ ई०सन्‌के पहले १ली जुलाईसे आरम्भ।

संवत्सरकर (सं० पु०) शिव।
संवत्सरदीपव्रत (सं० क्ली०) दीपदानरूप उत्सवविशेष।
संवत्सरपर्व्वन् (सं० क्ली०) सम्वत्सरकृत्य पर्वसमूह।
संवत्सर प्रवर्ह (सं० पु०) गवामयन यागभेद।
संवत्सर-प्रवल्ह (सं० पु०) कृत्यविशेष। प्रवल्ह देखो।
संवत्सरभ्रमिन् (सं० त्रि०) वर्षभ्रमणकारी।
संवत्सरभृत (सं० त्रि०) सम्वत्सरपालनकारी।
संवत्सरमय (सं० त्रि०) संवत्सरयुक्त।
संवत्सरस्थ (सं० त्रि०) एक वर्ष तक होनेवाला।
संवत्सरसत्र (सं० क्ली०) सोमयज्ञ।
संवत्सरसद् (सं० त्रि०) संवत्सर वासकारी।
संवत्सरसम्मित (सं० त्रि०) संवत्सर परिमित।
संवत्सरसहस्र (सं० क्ली०) वर्ष सहस्र।
संवत्सरावर (सं० त्रि०) न्यूनकल्प एक वत्सर।
संवत्सरिक (सं० त्रि०) संवत्सरसम्बन्धी, सांवत्सरिक।
संवत्सरीण (सं० त्रि०) संवत्सरेण निर्वृत्तम् संवत्सर-ख (संपरिपूर्वात् ख च। पा ४।१।९२) संवत्सर तक उत्पन्न।
संवत्सरीय (सं० त्रि०) संवत्सरोत्पन्न।

संवत्सरोपासीत (सं० लि०) १ संवत्सरभृत। २ संवत्सर तक उपासित।

संवदन (सं० क्ली०) सम्-वद्-ल्युट्। १ आलोचना, विचार। २ वशीकरण। ३ संवाद, संदेशा, पैगाम। ४ परस्पर कथन, बातचीत। ५ सदृशीकरण। ६ दृष्टि।

संवदना (सं० स्त्री०) १ वशमें करनेकी क्रिया, वशीकरण। २ मन्त्र, औषधि आदिसे किसीको वशमें करनेकी क्रिया।

संवदितव्य (सं० लि०) १ संवदनके उपयुक्त। २ सम्यक् प्रकारसे कथितव्य, अच्छी तरह कहने लायक।

संवनन (सं० क्ली०) सम्-वन ल्युट्। संवदन देखो।

संवन्दन (सं० क्ली०) सम्यक् प्रकारसे वन्दन।

संवर (सं० क्ली०) सं-वृ-अप् (ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च। पा ३।३।५८) १ जल। २ धन। ३ बौद्धव्रतविशेष। (पु०) ४ दैत्यविशेष। शम्बर देखो। ५ मत्स्यविशेष। ६ हरिणविशेष। ७ शैलविशेष। ८ बौद्धविशेष। ९ सेतु, पुल। १० सञ्चय। ११ बंद, बांध। १२ रोक, परिहार। १३ इन्द्रिय निग्रह, मनको दबाना या वशमें करना। १४ चुनना, पसंद करना। १५ कन्याका वर चुनना।

संवरण (सं० क्ली०) सम्-वृ-ल्युट्। १ हटाना, दूर करना। २ बन्द करना, ढकना। ३ आच्छादित करना, छोपना। ४ गोपन करना, छिपाना। ५ छिपाव, दुराव। ६ ढकनेका परदा। ७ डेरा जिसको भीतर सब लोग न जा सके। ८ बंद, बाँध। ९ सेतु, पुल। १० किसी चित्तवृत्तिको रोकनेकी क्रिया, निग्रह। ११ गुदाके चमड़ेकी तीन परतोंमेंसे एक। १२ कुरुके पिताका नाम। १३ लेनेके लिये पसंद करना, चुनना। १४ कन्याका विवाहके लिये वर या पति चुनना। (पु०) १५ त्रपुषलता, खीराकी लता।

संवरणीय (सं० लि०) १ निवारण करने योग्य, रोकने लायक। २ संगोपनीय छिपाने लायक। ३ विवाहके योग्य, वरने लायक।

संवरना (हिं० क्रि०) १ बनना, दुरुस्त होना। २ सजना, अलंकृत होना।

संवरित (सं० लि०) १ गोपित, छिपा हुआ। २ आच्छादित, छोपा हुआ।

संवरिया (हिं० वि०) साँवला देखो।

संवर्ग (सं० पु०) १ अपनी ओर समेटना, अपने लिये बटोरना। २ भक्षण, भोजन, चट कर जाना। ३ खपत, लग जाना। ४ गुणनफल। ५ एक वस्तुका दूसरीमें समा जाना या लीन हो जाना।

संवर्गजित् (सं० पु०) लामकायन गोत्रमें उत्पन्न एक वैदिक आचार्यका नाम।

संवर्गम् (सं० अव्य०) सम्यक् रूपसे वर्जन करनेवाला।

संवर्ग्य (सं० लि०) वर्गके द्वारा गुणनके उपयुक्त।

संवर्जन (सं० क्ली०) १ हरण करना, छीनना, खसोटना। २ खा जाना, उड़ा जाना।

संवर्णन (सं० क्ली०) व्याख्याकरण।

संवर्त्त (सं० पु०) सं-वृत्-घञ्। १ प्रलय, कल्पान्त। (भाग० ८।१५।२६) २ मुनिविशेष। ये एक धर्मशास्त्र प्रवर्त्तक थे। इनके पिताका नाम अङ्गिरस तथा भाईका बृहस्पति था। (मार्क०पु १३०।११) ३ मेघ, बादल। ४ इन्द्रका अनुचर एक मेघ जिससे बहुत जल बरसता है। मेघोंके आवर्त्त, सम्वर्त्त, पुष्कर, द्रोण आदि कई नाम कहे गये हैं। जिस प्रकार आवर्त्त बिना जलका माना गया है, उसी प्रकार संवर्त्त अत्यन्त अधिक जलवाला कहा गया है। ५ ग्रहोंका एक योग। ६ संवत्सर, वर्ष। ७ एक दिव्यास्त्र। ८ जुटना, भिड़ना। ९ लपेटनेकी क्रिया या भाव। १० फेरा, घुमाव, चक्कर। ११ एक कल्पका नाम। १२ लपेटो या बटोरी हुई वस्तु। १३ पिण्डी, गोल। १४ बट्टी, टिकिया। १५ घनासमूह, घनी राशि। १६ कर्षफल वृक्ष। १७ विभीतक वृक्ष, बहेड़ा।

संवर्त्तक (सं० पु०) संवर्त्तयतीति सं वृत्-णिच्-ण्वुल्। १ कृष्णके भाई बलदेव। २ बलदेवका अस्त्र, लांगला हल। ३ वडवानल। (भागवत १२।४।६) ४ विभीतक वृक्ष, बहेड़ा। ५ प्रलय नामक मेघ। ६ प्रलय मेघकी अग्नि। ७ एक नाग। ८ लपेटनेवाला। ९ लय या नाश करनेवाला।

संवर्त्तकल्प (सं० पु०) प्रलयका एक भेद।

संवर्त्तकिन् (सं० पु०) संवर्त्तकोऽस्यास्तीति इनि। बलदेव।

संवर्त्तकेतु (सं० पु०) एक केतुका नाम। यह सन्ध्यां समय पश्चिम दिशामें उदय होता है और आकाशके तृतीयांश तक फैला रहता है। इसकी चोटी धूमिल रङ्ग लिये ताम्र वर्णकी होती है। इसके उदयका फल राजाओंका नाश कहा गया है।

संवर्त्तग (सं० पु०) मनु सावर्णके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

संवर्त्तन (सं० क्ली०) १ लपेटना। २ फेरा या चक्कर देना। ३ किसी ओर फिरना, प्रवृत्त होना। ४ प्राप्त होना, पहुंचना। ५ हल नामक अस्त्र।

संवर्त्तनी (सं० स्त्री०) सृष्टिका लय, प्रलय।

संवर्त्तनीय (सं० त्रि०) लपेटने योग्य, फेरने योग्य।

संवर्त्तम् (सं० अव्य०) सम्यक् प्रकारसे आवर्त्तन।

संवर्त्तमरुत्तीय (सं० त्रि०) सम्वर्त्त और मरुत्त सम्बन्धी। (भारत आदिपर्व)

संवर्त्ति (सं० स्त्री०) सम्यक् प्रकारेण वर्त्तते इति सम् वृत् इन् (इपिषिवहीति। उण् ४।११८) संवर्त्तिका। (अमरटीकामें भरत) संवर्त्तिका देखो।

संवर्त्तिका (सं० स्त्री०) १ कमलका बंधा पत्ता। २ कोई बंधा हुआ पत्ता। ३ वर्त्ति, बत्ती। ४ बलरामका अस्त्र, हल। ५ लपेटी हुई वस्तु।

संवर्त्तित (सं० त्रि०) १ लपेटा हुआ। २ फेरा या घुमाया हुआ।

संवर्द्धक (सं० त्रि०) संवर्द्धयतीति सम्-वृध णिच्-ण्वुल्। संवर्द्धनकारी, बढ़ानेवाला।

संवर्द्धन (सं० क्ली०) सम्-वृद्ध-ल्युट्। १ वृद्धिको प्राप्त होना, बढ़ना। २ पालना, पोसना। ३ उन्नत करना, बढ़ाना। ४ क्रीड़, करना, खेलना।

संवर्द्धनीय (सं० त्रि०) १ बढ़ाने या बढ़ने योग्य। २ पालने पोसने योग्य।

संवर्द्धित (सं० त्रि०) सम्-वृध-णिच्-क्त। १ बढ़ा हुआ। २ बढ़ाया हुआ। ३ पाला पोसा हुआ।

संवर्षण (सं० क्ली०) वृथानुमान, झूठा अनुमान।

संवल (सं० क्ली०) शम्बल देखो।

संवलन (सं० क्ली०) १ भिड़ना, जुटना। २ संयोग, मेल। ३ मिश्रण, मिलावट।

संवलित (सं० त्रि०) सम्-वल-क्त। १ मिश्रित, मिला हुआ। २ भिड़ा हुआ, जुटा हुआ। ३ युक्त, सहित। ४ चूर्णित, चूर्ण किया हुआ। ५ वेष्टित, घिरा हुआ।

संवसथ (सं० पु०) संवसत्यत्रेति सम्-वस्-अथ (उपसर्गे वसेः। उण् ३।११४) बस्ती, गांव या कस्बा।

संवसन (सं० त्रि०) वास करनेके योग्य, बसने लायक।

संवसु (सं० त्रि०) अच्छी तरह वास करनेवाला।

संवह (सं० पु०) संवहतीति सम्-वह-अच्। १ वहन करनेवाला, ले जानेवाला। २ एक वायु जो आकाशके सात मार्गोंमेंसे तीसरे मार्गमें रहती है। ३ अग्निकी जिह्वाओंमेंसे एक।

संवहन (सं० क्ली०) संवह-ल्युट्। १ वहन करना, ले जाना। २ प्रदर्शित करना, दिखाना।

संवहितृ (सं० त्रि०) संवहति संवह-तृच्। संवाहक, वहन करनेवाला।

संवाच्य (सं० पु०) बात चीत करने या कथा कहनेका ढंग। यह ६४ कलाओंमेंसे एक है।

संवाटिका (सं० स्त्री०) शृङ्गाटक, सिंघाड़ा।

संवाद (सं० पु०) संवाद-घञ्। १ संदेश वाक्य, समाचार। पर्याय—वाचिक, सन्देश, सन्देशवाच्। २ कथोपकथन, बातचीत। ३ वृत्तान्त, हाल। ४ प्रसङ्ग, कथा, चर्चा। ५ व्यवहार, मामला, मुकद्दमा। ६ स्वीकार, रजामंदी। ७ सहमति, एक राय। ८ नियुक्ति, नियति।

संवादक (सं० त्रि०) १ भाषण करनेवाला, बात चीत करनेवाला। २ सहमत होनेवाला। ३ स्वीकार करनेवाला, माननेवाला, राजी होनेवाला। ४ बजानेवाला।

संवादन (सं० क्ली०) १ भाषण, बात चीत करना। २ सहमत होना, एक मत होना। ३ राजी होना, मानना। ४ बजाना।

संवादिका (सं० स्त्री०) १ कीट, कीड़ा। २ पिपीलिका, च्यूंटी।

संवादित (सं० त्रि०) १ बोलनेमें प्रवृत्त किया हुआ। २ बातचीतमें लगाया हुआ। ३ मनाया हुआ, राजी किया हुआ।

संवादिता (सं० स्त्री०) १ सादृश्यता, समानता। २ एक मेलका होना।

संवादिन् (सं० त्रि०) १ संवाद करनेवाला, बातचीत करनेवाला। २ सहमत होनेवाला, राजी होनेवाला। ३ अनुकूल होनेवाला। ४ बजानेवाला। (पु०) ५ संगीतमें वह स्वर जो वादीके साथ सब स्वरोंके साथ मिलता और सहायक होता है।

संवार (सं० पु०) १ आच्छादन, ढाँकना, छिपाना। २ शब्दोंके उच्चारणमें कण्ठका आकुंचन या दबाव। ३ उच्चारणके बाह्य प्रयत्नोंमेंसे एक जिसमें कण्ठका आकुंचन होता है, विवारका उलटा। ४ बाधा, अड़चन।

संवारण (सं० क्ली०) १ हटाना, दूर करना। २ रोकना, न आने देना। ३ निषेध करना, मना करना। ४ छिपाना, ढाँकना।

संवारणीय (सं० त्रि०) १ हटाने या दूर करने योग्य। २ रोकने योग्य। ३ छिपाने या ढाँकने योग्य।

संवारना (हिं० क्रि०) १ सजाना, अलंकृत करना। २ दुरुस्त करना, ठीक करना। ३ क्रमसे रखना, ठीक ठीक लगाना। ४ कार्य सुचारुरूपसे सम्पन्न करना, काम ठीक करना।

संवारयिष्णु (सं० त्रि०) संवारणीय।

संवारित (सं० त्रि०) १ रोका हुआ, हटाया हुआ। २ मना किया हुआ। ३ ढाँका हुआ।

संवार्य (सं० त्रि०) १ हटाने योग्य, दूर करने लायक। २ मना करने योग्य, रोकने लायक। ३ ढाँकने या छिपाने योग्य।

संवास (सं० पु०) संवसन्त्यत्रेति सम्-वस-घञ्। १ मकान, घर, रहनेका स्थान। २ सार्वजनिक स्थान ३ वह खुला हुआ स्थान जहां लोग विनोद या मन बहलावके निमित्त एकत्र हों। ४ सभा, समाज। ५ साथ बसना या रहना। ६ परस्पर सम्बन्ध। ७ सहवास, प्रसंग, मैथुन।

संवास्य (सं० त्रि०) छेदने योग्य।

संवाह (सं० पु०) संवाहयतीति सम्-वह-णिच्-अच्। १ ले जाना, ढोना। २ खुला उपवन जहां लोग एकत्र हों। सम्-वह-घञ्। ३ अङ्गमर्दन, पैर दबाना। (मार्क०पु० १६।१५) ४ बाजार, मंडी। ५ पीड़न, सताना, जुल्म।

संवाहक (सं० त्रि०) संवाहयतीति सम्-वह-णिच् ण्वुल्। १ अङ्गमर्दकारक, बदन मलनेवाला, पैर दबानेवाला। पर्याय—अङ्गमर्दक, अङ्गमर्द। २ वाहक, ढोनेवाला, पहुंचानेवाला।

संवाहन (सं० क्ली०) सम-वह-णिच्-ल्युट्। १ अङ्गमर्दन, हाथ पैर दबाना या मलना। (मार्क०पु० १०।७४) वैद्यकमें इसका गुण—मांस, रक्त और त्वक्का प्रसन्नताकारक, सुखकर, प्रीतिवर्द्धक, निद्राकर, वृष्य तथा कफ, वायु और श्रमनाशक। (सुश्रुत चि० २४ अ०) २ भारादि वहन, ढोना। ३ ले जाना, पहुंचाना। ४ परिचालन, चलाना।

संवाहिका (सं० स्त्री०) पिपीलिकाविशेष, एक प्रकारकी च्यूंटी। (सुश्रुत कल्प०)

संवाहित (सं० त्रि०) १ मर्द्दित, जिसके हाथ पैर दबाये गये हों। २ ले गया हुआ, ढोया हुआ। ३ पहुंचाया हुआ। ४ परिचालित, चलाया हुआ।

संवाहिन् (सं० त्रि०) १ अङ्ग मर्द्दन करनेवाला, हाथ पैर दबानेवाला। २ ले जानेवाला, पहुंचानेवाला। ३ ढोनेवाला। ४ चलानेवाला।

संवाह्य (सं० त्रि०) सम्-वह-ण्यत्। १ मलने योग्य, दबाने लायक। २ वहन करने योग्य।

संविग्न (सं० त्रि०) सम-विज-क्त। १ भीत, डरा हुआ। २ उद्विग्न, घबराया हुआ।

संविज्ञात (सं० त्रि०) अच्छी तरह जानकार।

संविज्ञान (सं० क्ली०) सं-वि-ज्ञा-ल्युट्। १ सम्यक् बोध, पूर्ण ज्ञान। २ सहमति, एकमत। ३ स्वीकृति, मंजूरी।

संवित् (सं० स्त्री०) सम्-विद्-क्विप्। १ अङ्गीकार। २ ज्ञान। ३ सम्भाषा। ४ क्रियाकारी, कर्मठ। ५ युद्ध, लड़ाई। ६ आचार। ७ संकेत, इशारा। (रघु ७।३१) ८ नाम। ९ सन्तोष, तोषण। १० समाधि। ११ बुद्धि, महत्तत्त्व। १२ नियम। १३ युद्धको ललकार। १४ शरण। १५ भङ्ग, भांग। १६ सम्पत्ति, जायदाद। १७ प्राप्ति, लाभ।

१८ योगकी एक भूमि जिसकी प्राप्ति प्राणायामसे होती है।

संवितिकाफल (सं० क्लो०) सेवीफल, सेब।

संवित्ति (सं० स्त्री०) सम्-विद्-क्तिन्। १ प्रतिपत्ति। २ अविवाद, ऐकमत्य, एक राय। ३ चेतना, संज्ञा। ४ अनुभव। ५ बुद्धि। ६ संवित्। ७ पूर्वस्मृति।

संविद् (सं० लि०) १ चेतन, चेतनायुक्त। (पु०) २ वादा, समझौता, इकरार।

संविदामञ्जरी (सं० स्त्री०) गांजा।

संविदित (सं० लि०) सम्-विद्-क्त। १ पूर्णतया ज्ञात, जाना बूझा। २ ढूंढा हुआ, खोजा हुआ। ३ तै पाया हुआ, सबकी रायसे ठहराया हुआ। ४ उपदिष्ट, समझाया बुझाया हुआ। ५ वादा किया हुआ, जिसका करार हुआ हो।

संविद्वाद (सं० पु०) यूरोपीय दर्शनका एक सिद्धान्त जिसमें वेदान्तके समान चैतन्यके अतिरिक्त और किसी वस्तुकी पारमार्थिक सत्ता नहीं स्वीकार की गई हो, चैतन्य-वाद।

संविद्व्यतिक्रिया (सं० स्त्री०) प्रतिज्ञा भंग करना।

संविध् (सं० स्त्री०) संविधा, सेवाकी सामग्री, उपचार द्रव्य।

संविधा (सं० स्त्री०) १ आचार, व्यवहार, रहन सहन। २ व्यवस्था, आयोजन, डौल। ३ घटना। ४ विचित्रता, अनूठापन।

संविधातृ (सं० लि०) सं-वि-धा-तृच्। संविधानकारी।

संविधान (सं० क्लो०) १ व्यवस्था, आयोजन। २ विधि, रीति, दस्तूर। ३ रचना, सजना। ४ विचित्रता, अनूठापन।

संविधानक (सं० क्लो०) विचित्र क्रिया या व्यापार, अलौकिक घटना।

संविधि (सं० स्त्री०) संविधा देखो।

संविधेय (सं० लि०) १ जिसका प्रबन्ध या डौल करना हो। २ जिसे करना हो। ३ जिसका प्रबन्ध उचित हो।

संविन्मय (सं० लि०) चिन्मय, ज्ञानमय।

संविभक्त (सं० लि०) सम्-वि-भज-क्त। १ अच्छी तरह बंधा हुआ। २ जिसके सब अंग ठीक हिसाबसे हों, सुडौल। ३ प्रदत्त, दिया हुआ।

संविभक्तृ (सं० लि०) विभागकर्त्ता, भाग करनेवाला।

संविभजन (सं० क्लो०) १ बांट, बंटाई। २ साझा।

संविभाग (सं० पु०) १ पूर्णतया भाग करना, हिस्सा करना, बांट, बंटाई। २ प्रदान।

संविभागिन् (सं० लि०) प्रविभागकारी, अच्छी तरह विभाग करनेवाला।

संविभाज्य (सं० लि०) अच्छी तरह विभाग करनेके योग्य।

संविभाव्य (सं० लि०) संचिन्त्य।

संविमर्द (सं० पु०) अच्छी तरहसे विमर्दन।

संविवर्द्धयिषु (सं० लि०) सम्-वि-वृध-णिच्-सन्-उ। अच्छी तरह बढ़ानेमें इच्छुक।

संविवादिन् (सं० लि०) सं-वि-वद-णिनि। सम्यक् विवादयुक्त, परस्पर भिन्नमतविशिष्ट।

संविषा (सं० स्त्री०) अतिविषा, अतीस।

संविष्ट (सं० लि०) सम्-विश-क्त। १ शयित, सोया हुआ। २ निविष्ट, बैठा हुआ। ३ आगत, प्राप्त, पहुंचा हुआ। सं-विष क। ४ परिच्छदविशिष्ट।

संविहार (सं० पु०) अच्छी तरह विहार।

संवीक्षण (सं० क्लो०) सम्-वि-ईक्ष-ल्युट्। १ अन्वेषण, खोज, तलाश। २ अवलोकन, इधर उधर देखनेकी क्रिया।

संवीत (सं० लि०) सम्-व्ये-क्त। १ रुद्ध, रुका हुआ। २ आवृत, ढका हुआ, छिपा हुआ। ३ कवच धारण किये हुए। ४ पहने हुए। ५ अदृश्य, न दिखाई देता हुआ, नजरसे गायब। ६ अनदेखा किया हुआ, जिसे देख कर भी टाल गये हों। (पु०) ७ पहनावा, वस्त्र, आच्छादन। ८ श्वेत किणिही, सफेद करमी।

संवीतिन् (सं० लि०) जो यज्ञोपवीत पहने हो।

संवुवूर्षु (सं० लि०) सम्-वृ-सन्-उ। संवरण करनेमें इच्छुक।

संवृक (सं० लि०) १ छीना हुआ, हरण किया हुआ। २ उड़ाया हुआ, खरचा खाया हुआ।

संवृक्तधृष्णु (सं० त्रि०) घर्षणशील अर्थात् उद्धतोंका छिन्न विछिन्न करनेवाला।

संवृज् (सं० त्रि०) स्वीकर्त्ता, स्वीकार करनेवाला।

संवृत् (सं० त्रि०) आच्छादित, ढका हुआ।

संवृत (सं० त्रि०) सम्-वृ-क्त। १ आच्छादित; ढका हुआ। २ वेष्टित, घिरा हुआ। ३ रक्षित। ४ युक्त, सहित। ५ लपेटा हुआ। ६ जो किनारे या अलग हो गया हो। ७ रुंधा हुआ। ८ धीमा किया हुआ। ९ दमन किया हुआ, दबाया हुआ। (पु०) १० जलवेतस, एक प्रकारका वेंत। ११ वरुण देवता। १२ गुप्तस्थान।

संवृतकोष्ठ (सं० पु०) कोष्ठता, कब्जियत।

संवृतमन्त्र (सं० पु०) गुप्त मन्त्रणा, भेदकी बातचीत।

संवृति (सं० स्त्री०) ढकने या छिपानेकी क्रिया।

संवृत्त (सं० पु०) सम्-वृत्-क्त। १ वरुण देवता। २ एक नागका नाम। (त्रि०) ३ समागत, पहुंचा हुआ। ४ घटित, जो हुआ हो। ५ जो पूरा हुआ हो। ६ उपस्थित, मौजूद। ७ उत्पन्न, पैदा।

संवृत्ति (सं० स्त्री०) सम्-वृत्-क्तिन्। १ सम्यक् प्रकारसे प्रवर्त्तन। २ आवरण। ३ गोपन, छिपाना। ४ निष्पत्ति, सिद्धि। ५ एक देवीका नाम।

संवृद्ध (सं० स्त्री०) १ बढ़ा हुआ। २ उन्नत।

संवृद्धि (सं० स्त्री०) सम्-वृध्-क्ति। १ बढ़ानेकी क्रिया या भाव, बढ़ती। २ समृद्धि, धन आदिकी अधिकता।

संवेग (सं० पु०) सम्-विज-घञ्। १ पूर्ण वेग या तेजी। २ आवेग, घबराहट, खलबली। ३ अतिरेक, ज़ोर। ४ भय, सहम।

संवेजन (सं० क्ली०) १ उद्विग्न करना, घबराना, खलबली डालना। २ सहमाना, डराना। ३ उत्तेजित करना, भड़काना।

संवेद (सं० पु०) सम्-विद्-घञ्। १ अनुभव, सुख-दुःख आदिका ज्ञान पड़ना, वेदना। २ ज्ञान, बोध।

संवेदन (सं० पु०) १ अनुभव करना, सुख दुःख आदिकी प्रतीति करना, क्लेश, आनन्द, शीत, ताप आदिको मनमें मालूम करना। २ प्रकट करना, जताना। ३ छिक्किका, नकछिकनी नामकी घास।

संवेदना (सं० स्त्री०) संवेदन देखो।

संवेदनीय (सं० त्रि०) १ अनुभव योग्य, प्रतीति योग्य। २ बोध कराने योग्य, जताने लायक।

संवेदित (सं० त्रि०) १ अनुभव किया हुआ, प्रतीत किया हुआ। २ बोध कराया हुआ, जताया हुआ।

संवेद्य (सं० त्रि०) १ ज्ञेय, दूसरेको अनुभव कराने योग्य, जताने लायक। २ अनुभव करने योग्य, प्रतीत करनेयोग्य, मनमें मालूम करने लायक।

संवेश (सं० पु०) सम्-विश-घञ्। १ निद्रा, नींद। २ कामशास्त्रानुसार एक प्रकारका रतिबन्ध। ३ पीढ़, आसन। ४ उपभोग स्थान। (भागवत ३।२३।८ स्वामी) ५ शयन, लेटना, सोना। ६ उपवेशन, बैठना, आसन जमाना। ७ शय्या। ८ पास जाना, पहुंचना। ९ प्रवेश, घुसना। १० अग्नि देवता जो रतिके अधिष्ठाता माने गये हैं।

संवेशक (सं० त्रि०) ठीक ठिकानेसे रखनेवाला, तरकीब देनेवाला।

संवेशन (सं० पु०) १ रतिक्रिया, रमण। २ उपवेशन, बैठना। (भाग० ५।९।१०) ३ लेटना, पड़ रहना, सोना। ४ प्रवेश करना, घुसना। (क्ली०) ५ अनियत शयन स्थान। (चरकसू० १५ अ०)

संवेशनीय (सं० त्रि०) संवेशनं प्रयोजनमस्य संवेशन छ। (पा ५।१।१११) जिसे संवेशनका प्रयोजन हो।

संवेशपति (सं० पु०) सुरतपति। (शुक्लयजुः २।२०)

संवेश्य (सं० त्रि०) १ लेटने योग्य। २ घुसने योग्य।

संवेष्ट (सं० त्रि०) १ वेष्टित, घेरा हुआ। (पु०) २ आच्छादन, लपेटनेका कपड़ा इत्यादि।

संवेष्टन (सं० क्ली०) १ लपेटना, ढांकना, बन्द करना। २ घेरना।

संवोढृ (सं० त्रि०) सम् वह-तृच् (पा ५।३।१२० वार्त्तिक) अच्छी तरह ढोनेवाला।

संव्यवस्थ (सं० त्रि०) मीमांसनीय।

संव्यवहरण (सं० क्ली०) अच्छी तरहका व्यवहार।

संव्यवहार (सं० पु०) १ अच्छी तरहका व्यवहार, अच्छा सलूक, एक दूसरेके प्रति उत्तम आचरण। २ संसर्ग, लगाव। ३ उपभोग, पूरा सेवन, इस्तेमाल।

४ प्रसंग, मामला। ५ प्रचलित शब्द, आम फहम लफ ज। ६ व्यवसायी, लेनदेन करनेवाला, दूकानदार।
संव्यवहारवत् (सं० त्रि०) व्यवहारविशिष्ट।
संव्याध (सं० पु०) भिन्न स्थानसे समागत लोकसङ्घ।
संव्याध (सं० पु०) युद्ध, लड़ाई। (शतपथब्रा० १।२।४।२)
संव्यान (सं० क्ली०) संवीयते अनेनेति सम् व्या-ल्युट्। १ उत्तरीय वस्त्र, चादर, दुपट्टा। २ वस्त्र, आच्छादन, कपड़ा। ३ अंशुक।
संव्याप (सं० पु०) १ आच्छादन, वस्त्र। २ ओढ़ना।
संव्यूढ़ (सं० त्रि०) घृष्ट, धर्षणयुक्त।
संव्यूह (सं० पु०) १ संविभाग, प्रविभाग, अच्छी तरह भाग करना। (भागवत ३।७।२७) २ एकत्रीकरण, मिलाना।
संव्यूहन (सं० क्ली०) १ एकत्रीकरण, मिलाना। २ संविभाग।
संव्यूहिम (सं० पु०) मृदुवीर्य पक्वक्षारविशेष।
संव्रात (सं० पु०) १ प्रचुर, यथेष्ट। २ बहुसंख्यक।
संव्लय (सं० पु०) अच्छी तरह निमज्जन।
संशकला (सं० स्त्री०) जीवहत्या।
संशप्त (सं० त्रि०) १ जो शापग्रस्त हो। २ वाग्बद्ध, जिसने किसीके साथ प्रतिज्ञा की या शपथ खाई हो।
संशप्तक (सं० पु०) १ वह योद्धा जिसने विना सफल हुए लड़ाई आदिसे न हटनेकी शपथ खाई हो। २ वह जिसने यह शपथ खाई हो कि बिना मारे न लौटेंगे। ३ कुरुक्षेत्रके युद्धमें एक दल जिसने अर्जुनके वधकी प्रतिज्ञा की थी पर स्वयं मारा गया था। (महाभारत द्रोणपर्व)
संशब्द (सं० पु०) १ स्तुति, प्रशंसा। २ निर्वाचन, कथन। ३ अलङ्कार।
संशब्दन (सं० क्ली०) १ अच्छी तरह उल्लेख करना। २ स्तुति करना, प्रशंसा करना।
संशब्द्य (सं० त्रि०) १ सम्यक् उल्लेखनीय। २ स्तुतिवादयुक्त। (भारत वनपर्व)
संशम (सं० पु०) चित्तशान्ति, कामनाकी पूर्ण निवृत्ति।
संशमन (सं० क्ली०) सम्यक् शमयतीति सम् शम-ल्युट्। १ आकाशगुण भूयिष्ठद्रव्य। २ शान्त करना, निवृत्ति करना। ३ नष्ट करना, न रहने देना। ४ पञ्चकर्म द्वारा दुष्ट दोषोंका निर्हरण और अदुष्ट दोषका अनुदीरण कर शान्ति करना।

नीचे यथाक्रम वात, पित्त और कफप्रशमक कुछ संशमन द्रव्योंका उल्लेख किया जाता है, यथा—

वातसंशमन द्रव्य—देवदारु, कुट, हरिद्रा, वरुणत्वक, मेषशृङ्गी, बला, अतिबला, अर्जुनवृक्षत्वक्, केवाँच, सल्लकी, श्वेतपाटला, शर, कंटा, गनियारी, गोलञ्च, एरण्ड, पाषाणभेद, अलर्क, अर्क, शतमूली, पुनर्णवा, बकफूल, सूर्यावर्त्त, धुस्तूर, बरंगी, वनकपास, वृश्चिकाली, बकमकाष्ठ, बदर, यव, कोल और कुलथी आदि तथा विदारीगन्धादिगण और पञ्चमूल।

पित्तसंशमन—रक्तचन्दन, बकम, सुगन्धवाला, खसकी जड़, मंजीठ, क्षीरकाकोली, भूमिकुष्माण्ड, शतमूली, गोलञ्च, शैवाल, कह्लार, कुमुद, नीलोत्पल, कदली, दूर्वा और मूर्वा आदि तथा काकोल्यादि, सारिवादि, अञ्जनादि, उत्पलादि, न्यग्रोधादि और तृणपञ्चमूल।

श्लेष्मसंशमन—कालेयक, अगर, तिलपर्णी, कुट, हरिद्रा, कर्पूर, सोंयां, सरला, रास्ना, कटकरञ्ज, डहरकरञ्ज, इङ्गुदी, जाती, हिंसा, विषलाङ्गली, हस्तिकर्ण, मुञ्ज, वीरणमूल आदि तथा वल्ली पंञ्चमूल, कण्टकपञ्चमूल, पिप्पल्यादि, वृहत्यादि, मुष्ककादि, वचादि, सुरसादि और आरग्वधादिगण।

संशमनवर्ग (सं० पु०) वे औषधियां जो संशमन करे। जैसे,—देवदारु, कुट, हलदी आदि।
संशमनीय (सं० त्रि०) संशमनके योग्य।
संशय (सं० पु०) सम् शी-अच्। १ सन्देह, शक।

एक ही धर्मविशिष्ट पदार्थमें एक ही समय उसके विपरीत भाव और अभाव, ये दोनों प्रकारके ज्ञान उत्पन्न होनेसे उसको संशय कहते हैं। फलतः दो सन्दिग्ध पदार्थोंमें जो दोनोंका साधारण धर्म है, उसको उपलब्धि ही संशयका कारण है। जैसे, 'अयं स्थाणुर्वा पुरुषो वा' यह शाखा पल्लव विच्छिन्न तरु है या एक पुरुष। जिस समय इन दोनोंमेंसे किसी एकका विशेष धर्म मालूम न हो कर केवल उनके साधारण धर्मकी ऊंचाई मालूम होती है, तब 'हो पुतलीकी तरह चुपचाप खड़े पुरुषको देख कर स्थाणु या शाखापल्लवविहीन वृक्षका तथा वैसे वृक्षको देख कर पुरुषका-सा संशय होता है।

आयुर्वेदके मतसे विसदृश हेतुद्वयका दर्शन और सन्दिग्धार्थका अनिश्चय, इन दोनों प्रकारके ज्ञानको संशय कहते हैं।

२ लेट रहना, पड़ रहना। ३ आशंका, खतरा। ४ संदेह नामक काव्यालङ्कार।

संशयच्छेद (सं० पु०) सन्देहका नाश; संशय दूर करना।

संशयशमहेतु (सं० पु०) संशयच्छेदनहेतु।

संशयसम् (सं० पु०) न्यायदर्शनमें २४ जातियों अर्थात् खण्डनकी असंगत युक्तियोंमेंसे एक वादीके दृष्टान्तको ले कर उसमें साध्य और असाध्य दोनों धर्मोंका आरोप करके वादीके साध्य विषयको सन्दिग्ध सिद्ध करनेका प्रयत्न।

संशयस्थ (सं० त्रि०) सन्देहयुक्त, संशयापन्न।

संशयाक्षेप (सं० पु०) १ संशयका दूर होना। २ अलङ्कारविशेष। संशयकी जगह कोई कारण दिखाई पड़नेसे पुनः उसका अपलाप हो, तो वहां संशयाक्षेप अलङ्कार होता है।

संशयात्मक (सं० त्रि०) सन्देहजनक, जिसमें सन्देह हो, शुबहेका।

संशयात्मन् (सं० त्रि०) सन्देहवादी, विश्वासहीन, जिसका मन किसी बात पर विश्वास न करे।

संशयान (सं० त्रि०) संशययुक्त, सन्देहपरायण।

संशयापन्नमानस (सं० त्रि०) संशयमापन्नं मानसं यस्य यद्वेति वा। १ संशययुक्त। २ संशयान्वित विषय। पर्याय—सांशयिक।

संशयालु (सं० त्रि०) अतिशय सन्देहान्वित, बातबातमें सन्देह करनेवाला।

संशयित (सं० त्रि०) १ संशययुक्त, दुविधामें पड़ा हुआ। २ सन्दिग्ध, अनिश्चित।

संशयितृ (सं० त्रि०) सम् शी-तृच्। संशयकर्त्ता, संशय करनेवाला।

संशयोपमा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका उपमा अलंकार। इसमें कई वस्तुओंके साथ समानता संशयके रूपमें कही जाती है।

संशयोपेत (सं० त्रि०) संशययुक्त, सन्दिग्ध, अनिश्चित।

संशर (सं० पु०) सं सृ-अप्। एकत्र भङ्ग, एक साथ अलग अलग करना।

संशरण (सं० क्ली०) सम् शृ-ल्युट्। १ उपक्रम, युद्धका उपक्रम। २ शरणमें जाना, पनाह लेना। ३ दलित करना, चूर्ण करना। ४ भंग करना, तोड़ना।

संशरुक (सं० त्रि०) १ भंग करनेवाला, तोड़नेवाला। २ दलन या मर्दन करनेवाला।

संशान (सं० क्लो०) सामभेद। (शतपथब्रा० १२।८।३।२६)

संशान्ति (सं० स्त्री०) सम्यक् प्रकारसे निवृत्ति।

संशासन (सं० क्लो०) १ सम्यक् शासन, उत्तम राज्य-प्रबन्ध। २ निरूपित कर्म पालनका आदेश, आदेश-पत्र।

संशित (सं० त्रि०) सम्-शो-क्त। १ सम्यक् रूपसे सम्पादित, निर्वाहित। २ निर्णीत, स्थिरीकृत, निर्द्धारित। ३ सम्पूर्ण, पूरा। ४ सम्यक् शाणित, सान पर चढ़ाया हुआ, चोखा या तीखा किया हुआ। ५ उद्यत, उतारू, आमादा। ६ दक्ष, निपुण, पटु। ७ कर्कश, कटु कठोर।

संशितव्रत (सं० पु०) वह जो यथानियम व्रतके पालनमें पक्का हो, कठोरतासे नियम या व्रत आदिका पालन करनेवाला।

संशिति (सं० स्त्री०) १ संशय, सन्देह, शक। २ खूब टेना या तेज करना, खूब सान पर चढ़ाना।

संशिशरिषु (सं० त्रि०) सम् शृ-सन्-उ। संशरण करनेमें इच्छुक।

संशिशान (सं० त्रि०) खूब टेया या तेज किया हुआ, खूब सान पर चढ़ाया हुआ।

संशिश्रीषु (सं० त्रि०) सम् श्रि-सन् उ। आश्रय करनेके लिये इच्छुक, जो शरण पानेके लिये इच्छा करता हो।

संशिश्वन् (सं० त्रि०) एक शिशुक, एक बच्चावाला।

संशिश्वरी (सं० स्त्री०) वह्वपत्यका, जिसका दूध हमेशा बढ़ता रहे। (ऋक् ८।५४।११)

संशिष्ट (सं० त्रि०) बचा हुआ, बाकी रहा हुआ।

संशिस् (सं० स्त्री०) सं-शास् क्विप्, शिसादेशः। आदेश।

संशीत (सं० त्रि०) १ अत्यन्त शैत्ययुक्त, जो ठंढा हुआ हो। २ ठंढसे जमा हुआ।

संशोलन (सं० क्लो०) अभ्यास, पुनः पुनरालोचना।

संशुद्ध (सं० त्रि०) १ विशुद्ध, यथेष्ट शुद्ध। २ शुद्ध किया हुआ, साफ किया हुआ। ३ चुकता किया हुआ, चुकाया हुआ, बेबाक। ४ परीक्षित, जांचा हुआ। ५ अपराधसे मुक्त किया हुआ।

संशुद्धि (सं० स्त्री०) सं-शुध-क्तिन्। १ सम्यक् शोधन, पूरी सफाई। २ शरीर मार्जन, शरीरकी सफाई।

संशुष्क (सं० त्रि०) १ आतपादि द्वारा संशोधित वस्तु, धूपमें खूब सुखाई हुई वस्तु। २ नीरस। ३ जो सहृदय न हो, अरसिक।

संशोधक (सं० त्रि०) १ शोधन करनेवाला, दुरुस्त या ठीक करनेवाला। २ संस्कार करनेवाला, बुरीसे अच्छी दशामें लानेवाला। ३ चुकानेवाला, अदा करनेवाला।

संशोधन (सं० क्लो०) सम्-शुध-ल्युट्। १ शुद्ध करना, साफ करना। २ त्रुटि या दोष दूर करना, दुरुस्त करना। ३ चुकता करना, अदा करना, बेबाक। ५ देहस्थ वातादि दोषप्रशमक द्रव्य, वह सब वस्तु जिनके योगसे वमन, विरेचन, अनुवासन, निरूहण और नावन (नस्य), इन पांच कर्मोंसे शरीरस्थ प्रकुपित या प्रकिलन्न वातादि सभी दोष अच्छी तरहसे परिशोधित होते हैं।

संशोधनीय (सं० त्रि०) १ साफ करने योग्य। २ सुधारने या ठीक करने योग्य।

संशोधित (सं० त्रि०) सम्-शुध-क्त। १ परिशोधित, खूब शुद्ध किया हुआ। २ परिष्कृत, मार्जित, साफ किया हुआ। ३ सुधारा हुआ, ठीक किया हुआ।

संशोधिन् (सं० त्रि०) १ सुधारनेवाला, दुरुस्त करनेवाला। २ साफ करनेवाला।

संशोध्य (सं० त्रि०) १ साफ करने योग्य, सुधारने या ठीक करने योग्य, जिसका सुधार करना हो। ४ जिसे साफ करना हो।

संशोष (सं० पु०) शोषण, शुष्कता।

संशोषण (सं० क्लो०) १ बिलकुल सोखना, जज्ब करना। २ सुखाना।

संशोषणीय (सं० त्रि०) सोखने योग्य।

संशोषित (सं० त्रि०) सोखा हुआ।

संशोष्य (सं० त्रि०) सोखने योग्य, जिसे सोखना या सुखाना हो।

संश्चत् (सं० क्लो०) संचिनोति मायामिति सम्-चि-अति (संश्चितत्वपद्‌ इत्। उण् २।८५) इति निपातनात् साधु। कुहक, छल।

संश्यान (सं० त्रि०) १ शीत द्वारा संकुचित, ठिठुरा हुआ। २ घनीभूत, जमा हुआ। (वोपदेव)

संश्रय (सं० पु०) सं-श्रि-अच्। १ आश्रय, शरण, पनाह। २ संयोग, मेल। ३ समागम, लगाव। ४ अवलम्बन, सहारा। ५ राजाओंका परस्पर रक्षाके लिये मेल, अभिसन्धि। स्मृतियोंमें यह राजाके छः गुणोंमें कहा गया है और दो प्रकारका माना गया है—(१) शत्रुसे पीड़ित हो कर दूसरे राजाकी सहायता लेना और (२) शत्रुसे पहुंचनेवाली हानिकी आशंकासे किसी दूसरे बलवान् राजाका आश्रय लेना। ६ शरण-स्थान, पनाहकी जगह। (रामायण २।४१।६) ७ रहने या ठहरनेकी जगह, घर। ८ किसी वस्तुका अङ्ग, हिस्सा। ९ उद्देश्य, लक्ष्य, मतलब।

संश्रयण (सं० क्लो०) सं-श्रि-ल्युट्। १ अवलम्ब पकड़ना, सहारा लेना। २ शरण लेना, पनाह लेना।

संश्रयणीय (सं० त्रि०) सं-श्रि-अनीयर्। १ संश्रय योग्य, शरण लेने योग्य। २ सहारा लेने योग्य।

संश्रयितव्य (सं० पु०) सं-श्रि-तव्य। संश्रयके उपयुक्त, आश्रयार्ह।

संश्रयिन् (सं० त्रि०) सं-श्रि-इनि। १ शरण लेनेवाला। २ सहारा लेनेवाला। (पु०) ३ भृत्य, नौकर।

संश्रव (सं० पु०) सं-श्रु-अप्। १ अङ्गीकार, स्वीकार, रजामन्दी। २ कान देना, सुनना। ३ प्रतिज्ञा, वादा, करार। (त्रि०) ४ जो सुना जाय।

संश्रवण (सं० क्लो०) सं-श्रु-ल्युट्। १ अङ्गीकार करना, स्वीकार करना। २ खूब कान देना, सुनना। ३ वादा करना, करार करना।

संश्रवस् (सं० क्ली०) १ सामभेद। (शतपथब्रा० १२।८।३।२६) (पु०) २ सौवर्चनसका गोत्रापत्य एक ऋषि। (तैत्तिरीय स० १।७।२।१)

संश्रान्त (सं० त्रि०) शिथिल, बिल्कुल थका हुआ, पसमांदा।

संश्राव (सं० पु०) सं-श्रु-घञ्। १ अङ्गीकार, स्वीकार। २ कान देना सुजना। ३ सिञ्चन, छींटना।

संश्रावक (सं० पु०) १ श्रोता, सुनने वाला। २ शिष्य, चेला।

संश्रावयितृ (सं० त्रि०) सं-श्रु णिच् तृच्। अच्छी तरह सुननेवाला।

संश्राव्य (सं० त्रि०) १ संश्राव योग्य, सुनाने योग्य। २ सुनाई पड़नेवाला।

संश्रित (सं० त्रि०) सं-श्रि-क्त। १ संयुक्त, जुड़ा या मिला हुआ। २ संलग्न, लगा हुआ, अटका हुआ। ३ भाग कर शरणमें गया हुआ. जिसने जा कर पनाह ली हो। ४ जिसने आश्रय ग्रहण किया हो, जो निर्वाह-के लिये किसीके पास गया हो। ५ आलिंगित, संश्लिष्ट, गले या छातीसे लगाया हुआ। ६ टंगा हुआ, टिका या ठहरा हुआ। ७ जो किसी बातके लिये दूसरे पर निर्भर हो, आसरे या भरोसे पर रहनेवाला, पराधीन। ८ जिसने सेवा स्वीकार की हो। (पु०) ९ भृत्य, सेवक।

संश्रितव्य (सं० त्रि०) आश्रयार्ह, शरणके योग्य।

संश्रुत (सं० त्रि०) सं-श्रु-क्त। १ अङ्गीकृत, स्वीकृत, माना हुआ। २ खूब सुना हुआ। ३ खूब पढ़ कर सुनाया हुआ।

संश्रुत्य (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

संश्रेषिण (सं० पु०) इन्द्र। (अथर्व्व ८।५।१४)

संश्लिष (सं० क्लो०) आलिङ्गन, मिलन।

संश्लिष्ट (सं० त्रि०) सं-श्लिष-क्त। १ आश्लिष्ट, आलिङ्गित, भेंटा हुआ। २ सम्मिलित, मिश्रित। ३ एकमें मिलाया हुआ, गड्डबड्ड। ४ एक साथ किया हुआ। ५ खूब मिला हुआ, जड़ा हुआ। (पु०) राशि, ढेर, समूह। ७ एक प्रकारका चंदोवा या मण्डप।

संश्लेष (सं० पु०) सं-श्लिष-घञ्। १ आलिङ्गन, परिरम्भण, भेंटना। २ संयोग, मेल, मिलाप। ३ मिलान, सटाव।

संश्लेषण (सं० क्लो०) सं-श्लिष-ल्युट्। १ एकमें मिलाना, जुटाना, सटाना। २ लगाना, अटकाना, टांगना। ३ बांधने या जोड़नेवाली वस्तु।

संश्लेषित (सं० त्रि०) १ आलिङ्गन किया हुआ। २ मिलाया हुआ, जोड़ा हुआ, सटाया हुआ। ३ लगाया हुआ, अटकाया हुआ।

संश्लेषिन् (सं० त्रि०) सं-श्लिष इनि। १ आलिङ्गन करनेवाला, भेंटनेवाला। २ मिलानेवाला, जोड़नेवाला।

संश्वन् (सं० क्ली०) सं-श्वि-अति प्रत्ययेन निपातनात् सिद्धं सं पूर्वात् श्वयतेः संश्वादिति सुभूतिचन्द्रः। माया, कुहक।

संश्वायिन् (सं० त्रि०) सम्यक् भोजनकारी, खूब खाने-वाला। (तैत्तिरीयस० २।६।८।४)

संसक्त (सं० त्रि०) सं-सञ्ज क्त। १ संलग्न, लगा हुआ, सटा हुआ। २ संबद्ध, जुड़ा हुआ। ३ आसक्त, लुभाया हुआ, प्रेममें फंसाया हुआ। ४ विषय वासनामें लीन। ५ भिड़ा हुआ। ६ प्रवृत्त, लगा हुआ, मशगूल। ७ सघन, घना। ८ युक्त, सहित, पूर्ण।

संसक्ति (सं० स्त्री०) सं-सञ्ज-क्तिन्। १ लगाव, मिलान। २ बंध, जोड़। ३ सम्बन्ध। ४ आसक्ति, लगन। ५ लीनता। ६ प्रवृत्ति। ७ जो गुण रहनेसे सन्निकृष्ट पदार्थ द्वारा सभी परमाणु संसक्त अर्थात् मिलित होते हैं, उसे संसक्ति कहते हैं। (Chemical attraction or affinity)

संसङ्ग (सं० पु०) सं-सञ्ज-घञ्। सम्यक् मिलन, एकत्र ग्रन्थन। (लाट्यायन ७।६।२)

संसाङ्गिन् (सं० त्रि०) सं-सञ्ज इनि। मिलनकारी, सङ्गकारी।

संसत् (सं० स्त्री०) संसीदन्त्यस्यामिति सं-सद-क्विप्। १ समाज, सभामण्डली। २ राजसभा, दरबार। ३ धर्मसभा, न्यायालय, अदालत। ४ चौबीस दिनोंका एक यज्ञ।

संसद् (सं० स्त्री०) संसत देखो।

संसनाना (हिं० क्रि०) सनसनाना देखो।

संसय (सं० पु०) संशय देखो।

संसरण (सं० क्ली०) सं-सृ-गतौ-ल्युट्। १ गमन करना, चलना, सरकना। २ सेनाकी अबाध यात्रा।

३ राजपथ; बड़ा रास्ता। ४ रणारम्भ, लड़ाईका छिड़ना। ५ संसार, जगत्। ६ नगरके तोरणके पास यात्रियोंके लिये विश्रामस्थान, शहरके फाटकके पास मुसाफिरोंके ठहरनेका स्थान, सराय। ७ एक जन्मसे दूसरे जन्ममें जानेकी परम्परा, भवचक्र।

संसर्ग (सं० पु०) सं-सृज-घञ्। १ सम्बन्ध, सम्पर्क, लगाव। न्यायदर्शनके मतसे समवायादि सम्बन्धको संसर्ग कहते हैं। शास्त्रमें लिखा है, कि दुष्टके साथ संसर्ग नहीं करना चाहिये, करनेसे पतित होना पड़ता है। एक न्याय है, कि प्रायः सभी सहचर समान गुण-विशिष्ट होता है। "प्रायेण समानगुणाः सहचरा भवन्ति" (न्याय) सुतरां दुष्टका संसर्ग करनेसे दुष्ट होना पड़ता है। २ स्त्रीपुरुषका सहवास। ३ मेल, मिलाप। ४ सहवास, समागम, संग। ५ परिचय, घनिष्ठता। ६ जायदादका एकके होना, इजमाल। ७ वह विन्दु जहां एक रेखा दूसरीको काटती हो। ८ वात, पित्तादिमेंसे दोका एक साथ प्रकोप। ९ घाल-मेल, घपला।

संसर्गक (सं० पु०) संसर्ग स्वार्थे कन्। संसर्ग।

संसर्गदोष (सं० पु०) वह बुराई जो किसीके साथ रहनेसे आवे, संगतका दोष।

संसर्गवत् (सं० त्रि०) संसर्गो विद्यतेऽस्य संसर्ग-मतुप मस्य व। संसर्गविशिष्ट, संसर्गयुक्त।

संसर्गवत्व (सं० क्ली०) संसर्गवतो भावः, संसर्गवत् भावे त्व। संसर्गकारीका भाव या धर्म, संसर्ग, सहवास।

संसर्गविद्या (सं० स्त्री०) व्यवहारकुशलता, लोगोंसे मिलने जुलनेका हुनर।

संसर्गाभाव (सं० पु०) संसर्गेण सम्बन्धेन अवच्छिन्नोऽभावः। १ संसर्गका अभाव, सम्बन्धका न होना। २ न्यायमें अभावका एक भेद, किसी वस्तुके सम्बन्धमें दूसरी वस्तुका अभाव। नैयायिकोंके मतसे अभाव दो प्रकारका होता है,—संसर्गाभाव और अन्योन्या भाव। यह संसर्गाभाव फिर तीन प्रकारका होता है,—प्रागभाव, ध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव। भेद भिन्न अभावको ही संसर्गाभाव कहते हैं।

संसर्गिता (सं० स्त्री०) संसर्गिनो भावः तल् टाप्। संसर्गीका भाव या धर्म, संसर्ग।

संसर्गिन् (सं० त्रि०) संसर्गोऽस्यास्तीति इनि यद्वा सं-सृज (संपृचानुरुधेति। पा ३।२।१४२) इति घिणुन्। १ संसर्ग या लगाव रखनेवाला। (पु०) २ मित्र, सहचर। ३ वह जो पैतृक सम्पत्तिका विभाग हो जाने पर भी अपने भाइयों या कुटुम्बियों आदिके साथ रहता हो। (स्त्री०) ४ शुद्धि, सफाई।

संसर्जन (सं० क्ली०) १ संयोग होना, मिलना। २ सम्बद्ध होना, जुड़ना। ३ अपनी ओर मिलाना, राजी करना। ४ त्याग करना, छोड़ना, हटाना।

संसर्प (सं० पु०) सं-सृप-घञ्। १ धीरे धीरे चलना, खिसकना। २ रेंगना, सरकना। ३ वह अधिक मास जो क्षय मासवाले वर्षसे होता है।

संसर्पण (सं० क्ली०) सं-सृप-ल्युट्। १ धीरे धीरे चलना, खिसकना। २ रेंगना, सरकना। ३ चढ़ना। ४ सहसा आक्रमण, अचानक हमला।

संसर्पिन् (सं० त्रि०) संसर्पोऽस्यास्तीति इनि, यद्वा सं-सृप-णिनि। १ रेंगनेवाला, सरकनेवाला। २ संचार करनेवाला, फैलनेवाला। ३ पानीके ऊपर तैरनेवाला, उतरानेवाला।

संसव (सं० पु०) सोमयज्ञके समय होताओंका विपर्या-यात्मक कर्म।

संसाद (सं० पु०) १ गोष्ठी, जमावड़ा। २ सभा, समाज, मण्डली।

संसादन (सं० क्ली०) १ एकत्र करना, जुटाना। २ क्रम-बद्ध करना, तरकीबसे लगाना।

संसादित (सं० त्रि०) १ एकत्र किया हुआ, जुटाया हुआ। २ सजाया हुआ, तरकीब दिया हुआ।

संसाधक (सं० त्रि०) १ वशमें करनेवाला, जीतने-वाला। २ पूर्णतया साधन करनेवाला, सम्पन्न करने-वाला, अंजाम देनेवाला।

संसाधन (सं० क्ली०) १ वशमें करना, जीतना। २ आयोजन, तैयारी। ३ अच्छी तरह करना, पूरा करना, अंजाम देना।

संसाधनीय (सं० त्रि०) १ वशमें लाने योग्य, जीतने लायक। २ साधनेके योग्य, पूरा करने लायक।

संसाध्य (सं० त्रि०) १ दमन करने योग्य, जीतने लायक। २ पूरा करने योग्य। ३ जिसको वशमें करना या जीतना हो। ४ जिसे करना हो, करने लायक।

संसार (सं० पु०) संसरत्यस्मादिति सं-सृ गतौ घञ्। १ नैयायिकोंके मतसे मिथ्याज्ञानकी वासना।

मिथ्याज्ञानका जो संस्कार है, उसका नाम संसार है। स्वादृष्टोपनिबद्ध शरीर परिग्रहको भी संस्कार कहते हैं।

बौद्धके मतसे जन्ममरण परिग्रहरूप गतिका नाम संसार है। "संसरणं संसारः * * जन्ममरणपरम्परेत्यर्थः। अथवा संसरन्त्यस्मिन् सत्वा इति संसारः।"

जीव अपने अपने अदृष्ट द्वारा जो शरीर धारण करता है, उसीका नाम संसार है। अर्थात् अदृष्टानुसार जन्मग्रहण करनेको ही संसार कहते हैं। यह मिथ्याज्ञान जन्य वासना द्वारा होता है। अतएव मिथ्याज्ञान जन्म संस्कार हो इसका कारण है। इस कारण निवृत्ति होनेसे संस्कारकी निवृत्ति होती है। जब तक संस्कार विनष्ट नहीं होता, तब तक संसार अवश्यम्भावी है। ज्ञान द्वारा ही यह मिथ्याज्ञान निवृत्त होता है, अतएव जब तक ज्ञान नहीं होता, तब तक संसारको निवृत्ति नहीं होती। संसार ही दुःखका कारण है, जब तक संसरण अर्थात् यातायात या जन्ममृत्यु रहती है, तब तक दुःखसे छुटकारा पाना मुश्किल है। इस कारण जब तक संसार रहता है, तब तक दुःख रहता है, संसारकी निवृत्ति होनेसे दुःखकी भी निवृत्ति होती है। संसारका मूल ही अज्ञान है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा ही अज्ञान दूर होता है, अज्ञानके दूर होनेसे अज्ञानमूल जो संसार है, वह भी दूर होता है।

पर्याय—दुःखलोक, भव, कष्टकारक। (त्रिका०) २ मर्त्यलोक, जगत्। ३ परिवार।

संसारगमन (सं० क्ली०) जन्मान्तरपरिग्रह, आत्माक देहान्तरावगमन।

संसारगुरु (सं० पु०) संसारस्य गुरुः। १ कामदेव, स्मर। (त्रिका०) २ जगद्गुरु, संसारको आदेश देनेवाला।

संसारचक्र (सं० पु०) १ जन्म पर जन्म लेनेकी परम्परा, नाना योनियोंमें भ्रमण। २ मायाका जाल, दुनियाका चक्कर, प्रपंच। ३ जगत्की दशाका उलट फेर।

संसारण (सं० क्ली०) अग्रगमन, आगे चलना।

संसारतरणी (सं० पु०) भवनौका।

संसारतिलक (सं० पु०) एक प्रकारका उत्तम चावल।

संसारधारा—युक्तप्रदेशके देहरादून जिलेकी एक पहाड़ी धारा। यह अक्षा० ३०° २१´ उ० तथा देशा० ७८° ६´ पू०के मध्य विस्तृत है। यह जलधारा पर्वतको भेद कर जल प्रपाताकारमें नीचे गिरती है। उसकी बगलमें एक बहुत बड़ा गड्ढा है, उसका भीतरी भाग स्वभाव जात चूना पत्थरकी स्तम्भावली (Stalactites) द्वारा सुशोभित है। कुछ आज भी असम्पूर्ण अवस्थामें मौजूद है। देखने हीसे मालूम होता है, कि यह स्थान किसी देवताके निभृत निकुञ्जरूपमें विश्वकर्मा द्वारा बनाया गया था, कालवशतः वह क्रमशः लयको प्राप्त होता जा रहा है।

यहांके लोग उस स्थानको देवादिदेव महादेवकी पवित्र विहारभूमि समझते हैं। अभी यह हिन्दुओंका पुण्य तीर्थ माना जाता है। बहुतसे तीर्थयात्री वहां आ कर महादेवकी पूजा करते हैं। मसूरी शैलावाससे यह स्थान १२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

संसारपथ (सं० पु०) १ संसारमें आनेवाला मार्ग। २ स्त्रियोंकी जननेन्द्रिय।

संसार-भावन (सं० पु०) संसारको दुःखमय जानना, यह ज्ञान चार प्रकारका है—नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्य गति और देव गति।

संसारमण्डल (सं० क्ली०) भू मण्डल, जगन्मण्डल।

संसारमार्ग (सं० पु०) संसारस्य मार्गः। योनि, स्त्रियोंकी जननेन्द्रिय। योनिद्वार हो कर जीवकी उत्पत्ति होती है, इसलिये वह संसारमार्ग कहलाता है।

संसारमोक्षण (सं० क्ली०) संसारस्य मोक्षणं। १ भवमोचन, भवबन्धनमुक्ति, जन्म-मृत्युके हाथसे मुक्ति लाभ, मोक्ष-प्राप्ति। (त्रि०) संसारस्य मोक्षणं यस्मात्।

२ संसारतारक, जिनसे संसारका मोक्षण या जिनकी कृपासे भवबन्धन मुक्त होता है।

संसारवत् (सं० त्रि०) संसार अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व संसारविशिष्ट, संसारी।

संसारसागर (सं० पु०) संसाररूप समुद्र, संसार-महोदधि।

संसारसारथि (सं० पु०) १ संसारपथको पार करनेवाला। २ शिव, महादेव।

संसारावर्त्त (सं० पु०) जलावर्त्तकी तरह संसारचक्रमें जीव पुनः पुनः भ्रमण करता है, इसलिये संसार आवर्त्त रूपमें कहा गया है।

संसारिन् (सं० पु०) संसारोऽस्त्यस्येति इनि। १ संसार सम्बन्धी, लौकिक। २ संसारमें रहनेवाला। ३ बार बार जन्म लेनेवाला, भवचक्रके बंधा हुआ। ४ लोक-व्यवहारमें कुशल, दुनियादार।

संसिक्त (सं० त्रि०) खूब सींचा हुआ, जिस पर खूब पानी छिड़का गया हो।

संसिच् (सं० त्रि०) सेचनकारी, सींचनेवाला।

संसिद्ध (सं० त्रि०) सं-सिध-क्त। १ पूर्णतया सम्पन्न, अच्छी तरह किया हुआ। २ लब्ध, प्राप्त। ३ उद्यत, प्रस्तुत, तैयार। ४ मुक्त, जिसका योग सिद्ध हो गया हो। ५ स्वस्थ, जो नीरोग हो गया हो, चंगा। ६ अच्छी तरह सीखा या पका हुआ। ७ निपुण, कुशल, किसी बातमें पक्का।

संसिद्धि (सं० स्त्री०) सं-सिध-क्तिन्। १ स्वभाव, आदत। २ सम्यक् पूर्त्ति, किसी कार्यका अच्छी तरह पूरा होना। ३ परिणाम, आखिरी नतीजा। ४ पक्कता, सीझना। ५ कृतकार्यता, सफलता, कामयाबी। ६ मदोन्मा, मदमस्त स्त्री। ७ स्वस्थता। ८ निश्चित बात, पक्की बात, न टलनेवाला वचन। ९ पूर्णता। १० मोक्ष, मुक्ति। ११ निसर्ग, प्रकृति।

संसी (हिं० स्त्री०) संडसी देखो।

संसी—राजपूताने और उत्तर-पश्चिम प्रदेशकी गाङ्गेय अन्तर्वेदीवासी निम्न श्रेणीकी जातिविशेष। आचार-व्यवहारमें ये लोग उच्च श्रेणीके हिन्दूसे कहीं निकृष्ट हैं। चोरी और डकैती वृत्ति ही इनकी प्रधान उपजीविका है। रुपयेके लोभमें पड़ कर ये लोग नरहत्या करनेसे भी बाज नहीं आते। इस कारण अंग्रेजी राजकी शासन-विवरणीमें इन्हें 'क्रिमिनल ट्राइब' कहा है।

संसी—बम्बई प्रदेशके कोल्हापुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह पालसम्बे नगरसे (१६° ३४´ उ० तथा ७४° २६´ पू०) एक मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। यहां शेषशायी नारायणका एक मन्दिर विद्यमान है।

संसुतसोम (सं० पु०) संसत्र। (लाट्या० १।११।१०)

संसुद् (सं० त्रि०) सुष्ठु दानकारी। (ऋक् ८।१७।६)

संसुप्त (सं० त्रि०) खूब सोया हुआ।

संसूचक (सं० त्रि०) १ प्रकट करनेवाला, जतानेवाला। २ भेद खोलनेवाला। ३ समझाने बुझानेवाला। ४ कहने सुननेवाला। ४ डाँटने डपटनेवाला।

संसूचन (सं० क्ली०) १ प्रकट करना, जताना। २ बात खोलना। ३ कहना सुनना। ४ भर्त्सना करना, फटकारना, डाँटना डपटना।

संसूचित (सं० त्रि०) १ प्रकट किया हुआ, जताया हुआ। २ डाँटा डपटा हुआ, जिसे कुछ कहा सुना गया हो।

संसूचिन् (सं० त्रि०) १ प्रकट करनेवाला, जतानेवाला। २ भला बुरा कहनेवाला, फटकारनेवाला।

संसूच्य (सं० त्रि०) १ प्रकट करने योग्य, जताने लायक। २ जिसे प्रकट करना या जताना हो। ३ भला बुरा कहने योग्य, जिसे भला बुरा कहना हो या जिसके लिये भला बुरा कहना हो।

संसूद (सं० पु०) पशु आदिका मुखस्थित तालु भाग।

संसृज (सं० स्त्री०) मिश्रण, संसर्ग। (ऋक् १०।८४।६)

संसृति (सं० स्त्री०) सं सृ-क्तिन्। १ संसार, जगत्। २ जन्म पर जन्म लेनेकी परम्परा, आवागमन, भवचक्र।

संसृप् (सं० स्त्री०) देवसंघ; अग्नि, सरस्वती, सविता, पुषा, बृहस्पति, इन्द्र, सोम, त्वष्टा और विष्णु आदि देवता। राजसूय यज्ञके दशपेय यागमें इस देववृन्दका एकत्र आवाहन विधान है।

संसृपाहविस् (सं० क्ली०) संसृपादेववृन्दकी प्रीतिके लिये प्रदत्त हवि। (कात्यायनश्रौ० १५।८।१)

संसृपेष्टि (सं० स्त्री०) दर्शपेय यागमें अग्नि आदि देवताओंकी उद्देशक उत्सर्गादि यज्ञक्रिया।

संसृष्ट (सं० त्रि०) सं-सृज-क्त। १ एक साथ उत्पन्न या आविर्भूत। २ संश्लिष्ट, मिश्रित, एकमें मिला जुला। ३ सम्बद्ध, परस्पर लगा हुआ। ४ अन्तर्भूत, अन्तर्गत, शामिल। ५ बहुत परिचित, हिला मिला हुआ। ६ सम्पन्न किया हुआ, अंजाम दिया हुआ। ७ वमनादि द्वारा शुद्ध किया हुआ, कोठा साफ किया हुआ। ८ संगृहीत, जुटाया हुआ। ९ जो जायदादका बंटवारा होने पर भी सम्मिलित हो गया हो। (पु०) १० घनिष्ठता, हेलमेल। ११ पुराणानुसार एक पर्वतका नाम।

संसृष्टजित् (सं० त्रि०) संसृष्टं जयति जि-क्विप्। सम्मिलित व्यक्तियोंको जीतनेवाला। (ऋक् १०।१०३।३)

संसृष्टत्व (सं० क्ली०) संसृष्टस्य भावः त्व। १ संसृष्ट होनेका भाव या धर्म। २ जायदादका बंटवारा हो जानेके पीछे फिर एकमें होना या रहना।

संसृष्टहोम (सं० पु०) अग्नि और सूर्यकी एक होममें मिली हुई आहुति।

संसृष्टि (सं० स्त्री०) सं-सृज-क्तिन्। १ एक साथ उत्पत्ति या आविर्भाव। २ परस्पर सम्बन्ध, लगाव। ३ मिश्रण, एकमें मेल या मिलावट। ४ एकत्र करना, इकट्ठा करना, जुटाना। ५ घनिष्ठता, हेलमेल। ६ संयोजन, बनानेकी क्रिया या भाव। ७ अलङ्कारका एक साथ मिलन। एक श्लोकमें दो या तीन अलङ्कार रहनेसे संसृष्टि होती है। अलङ्कारशास्त्रमें संकर और संसृष्टि पृथक् रूपसे अभिहित हुई है। जहां उपमादि अलंकार समूहके प्रत्येक अलङ्कारकी प्रधानता रहती है, वहां संसृष्टि होती है।

संसृष्टिन् (सं० त्रि०) संसृष्टत्वमस्यास्तीति इनि। १ संसृष्टत्वविशिष्ट, संबन्धविशिष्ट। २ एकत्रवासी, विभागान्तर मिलित।

संसेक (सं० पु०) सम्-सिच-घञ्। सम्यक् रूपसे सेक, अच्छी तरह पानी आदिका छिड़काव।

संसेवन (सं० क्ली०) सम्-सेव-ल्युट्। १ पूर्णतया सेवन, हाजिरीमें रहना, नौकरी बजाना। २ उपयोगमें लाना, व्यवहार करना, खूब इस्तेमाल करना।

संसेवा (सं० स्त्री०) सं-सेव-अङ्-टाप्। सम्यक् सेवा।

संसेवित (सं० त्रि०) सं-सेव-तृच्। अच्छी तरह सेवा करनेवाला।

संसेविन् (सं० त्रि०) सं-सेव-णिनि। संसेविता, अच्छी तरह सेवा करनेवाला।

संसेव्य (सं० त्रि०) सं-सेव-यत्। अच्छी तरह सेवा करने योग्य।

संस्कन्ध (सं० पु०) बालग्रहभेद। (अथर्व १६।३४।५)

संस्करण (सं० क्ली०) १ ठीक करना, दुरुस्त करना। २ शुद्ध करना, सुधार करना। ३ परिष्कृत करना, सुन्दर या अच्छे रूपमें लाना। ४ आवृत्ति, पुस्तकोंकी एक बारकी छपाई। ५ द्विजातियोंके लिये विहित संस्कार करना।

संस्कर्त्ता (सं० त्रि०) सम्-कृ-तृच् सुडागमः। संस्कार करनेवाला।

संस्कर्त्तव्य (सं० त्रि०) सं-कृ-तव्य। संस्कारके योग्य।

संस्कार (सं० पु०) सं-कृ-घञ्। १ प्रतियत्न, दुरुस्ती, सुधार। २ अनुभव। ३ मानस कर्म, मनोवृत्ति या स्वभावका शोधन। ४ नैयायिकोंके मतसे गुणविशेष। यह संस्कार तीन प्रकारका है, वेगाख्य संस्कार, स्थितिस्थापकसंस्कार और भावनाख्य संस्कार। वेगाख्य संस्कार मूर्त्तिपदार्थ स्थायी है अर्थात् मूर्त्त पदार्थमें अवस्थितिशील एकमात्र मूर्त्तपदार्थमें ही यह संस्कार हुआ करता है। यह कहीं वेगजन्य और कहीं कर्मजन्य होता है। स्थितिस्थापक संस्कार पृथिवीका गुणविशेष है किसी किसीने यायिकोंके मतसे पृथिव्यादि चतुःपदार्थगुण है, यह अतीन्द्रिय और स्पन्दनकारक है। यह भावनाख्य संस्कार आत्माका अतीन्द्रिय गुण है। यह उपेक्षानात्मक निश्चय जन्य तथा स्मरण भी प्रत्यभिज्ञाका कारण है।

(भाषापरिच्छेद १५८।१५९)

५ वे कृत्य जो जन्मसे ले कर मरण काल तक द्विजातियोंके संबंधमें आवश्यक होते हैं। अशुद्ध द्रव्य संस्कार द्वारा विशुद्ध होते हैं, जिस क्रिया द्वारा अशुद्ध

दूर होती है, उसे संस्कार कहते हैं। शास्त्रमें लिखा है, कि जीव दश प्रकारके संस्कार द्वारा विशुद्ध होते हैं। वे दश प्रकारके संस्कार ये हैं—१ विवाह, २ गर्भाधान, ३ पुंसवन, ४ सीमन्तोन्नयन, ५ जातकर्म, ६ निष्क्रमण, ७ नामकरण, ८ अन्नप्राशन, ९ चूड़ाकरण, १० उपनयन। कोई कोई समावर्त्तनको भी संस्कार कहते हैं।

पुराणके मतसे देवगृहकी प्रतिष्ठा करनेमें जो फल है, देवगृहका संस्कार करनेसे उससे आठ गुना अधिक फललाभ होता है, अतएव अपना या दूसरेका देवगृह टूटने पर भी विभवके अनुसार जीर्णसंस्कार करे, यही शास्त्रका विधान है।

६ शुद्धि, दोष या त्रुटिका निकाला जाना। ७ निर्मली करना, पवित्र करना। ८ भूषित करना, सजाना। ९ जीर्णोद्धार, मरम्मत। १० व्याकरणादिशुद्धि, व्याकरणादिशास्त्रमें विशेष व्युत्पत्ति, जैसे अमुकका संस्कार है। ११ प्रस्तुतकरण, तैयार करना। १२ परिष्कार, धो मांज कर साफ करना। १३ शौच, बदनकी सफाई। १४ शिक्षा, उपदेश, संगत आदिका मन पर पड़ा हुआ प्रभाव, दिल पर जमा हुआ असर। १५ पूर्व जन्मकी वासना, पिछले जन्मकी बातोंका असर जो आत्माके साथ लगा रहता है। जैसे—विना पूर्व जन्मके संस्कारके विद्या नहीं आती। यह वैशेषिकके २४ गुणोंमेंसे एक है। १६ मृतककी क्रिया। १७ इन्द्रियोंके विषयोंके ग्रहणसे उत्पन्न मन पर जमा हुआ प्रभाव। १८ मन द्वारा कल्पित या आरोपित विषय, प्रत्यय। पञ्च स्कन्धोंमें चौथा स्कन्ध संस्कार है जो भवबंधनका कारण कहा गया है। १९ साफ करने या मांगनेका झांवां, पत्थर आदि; झंवाँ। २० धारणा, विश्वास।

संस्कारक (सं० त्रि०) सं-कृ-णिच्-ण्वुल्। १ संस्कार करनेवाला। २ शुद्ध करनेवाला।

संस्कारज (सं० त्रि०) संस्कारेण जातः जन-ड। संस्कार द्वारा जात, संस्कार द्वारा निष्पन्न।

संस्कारनामन् (सं० क्ली०) नामकर्म।

संस्कारमय (सं० त्रि०) १ संस्कारविशिष्ट। २ संस्कृत।

संस्कारवत् (सं० त्रि०) संस्कार-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। संस्कारविशिष्ट, संस्कारयुक्त।

संस्कारवर्ज्जित (सं० त्रि०) संस्कारेण वर्ज्जितः। १ उपनयन संस्कारहीन। संस्कारके मध्य उपनयन संस्कार ही प्रधान है, इसलिये संस्कारहीन कहनेसे उपनयनसंस्कार-रहित समझा जाता है; व्रात्य। २ दशविध संस्कारहीन, जिसका दशों प्रकारका संस्कार नहीं हुआ हो।

संस्कारहीन (सं० पु०) संस्कारेण हीनः। संस्काररहित, व्रात्य, जिनका उपनयन संस्कार नहीं हुआ है। उपनयन संस्कारका निम्नोक्त समय बीत जाने पर उसे संस्कारहीन कहते हैं, ब्राह्मणका १६ वर्ष, क्षत्रियका २२ और वैश्योंका २४ वर्ष बीत जाने पर पीछे १५ वर्ष सावित्री पतित रहनेसे उसीको संस्कारहीन कहते हैं। वह काल बीत जाने पर व्रात्य प्रायश्चित्त करनेके बाद उसका संस्कारकार्य होगा।

संस्कारादिमत् (सं० त्रि०) संस्कारादिविशिष्ट, संस्कार प्रभृति युक्त।

संस्कारिन् (सं० त्रि०) १ संस्कार करनेवाला। (पु०) २ सोलह मात्राओंका एक छन्द।

संस्कार्य (सं० त्रि०) सं-कृ-ण्यत्। १ संस्कारार्ह, संस्कार करने योग्य। २ जिसकी सफाई या सुधार करना हो। ३ भूषणार्ह, अलङ्करणके उपयुक्त।

संस्कृत (सं० क्ली०) सं-कृ-क्त। १ लक्षणोपेत अर्थात् पाणिन्यादि कृत व्याकरणसूत्र द्वारा उपेत साधु शब्द, व्याकरण लक्षणाधीन साधनयुक्त शब्द। जो सब शब्द आदि व्याकरण सूत्रादि द्वारा साधुरूपमें निष्पन्न होता है, उसे संस्कृत कहते हैं, पवित्र भाषा, देववाणी।

संस्कृतभाषा देखो।

(त्रि०) २ कृत्रिम, करण द्वारा निर्वृत्त। यथा—"कृत्रिमो घटादि" (भरत) घटादि क्रिया द्वारा निर्वृत्त। ३ पक्व, पकाया हुआ, सिझाया हुआ। ४ संस्कार किया हुआ। ५ शुद्ध किया हुआ। ६ धो मांज कर साफ किया हुआ। ७ भूषित, सजाया हुआ, आरास्ता। ८ मन्त्रपूत। ९ परिष्कृत, परिमार्जित। १० जिसका उपनयन आदि संस्कार हुआ हो।

संस्कृतत्व (सं० क्ली०) विशसनादि संस्कार।

संस्कृतभाषा—भारतमें प्रचलित एक सर्व प्राचीन भाषा। हम ऋक्-सूक्तमें प्राचीनतम संस्कृत भाषाका निदर्शन पाते हैं।

"संस्कृत" शब्दके प्रयोगसे ही स्वयं ऐसा मालूम होता है, कि इस देशमें बहुत पहले एक प्रकारकी भाषा प्रचलित थी। उस भाषाका संस्कार करके संस्कृत भाषा संगठित हुई। जिस नियमावली द्वारा उस आदिम प्राकृत भाषाका संस्कार होता है, वही नियमावली शब्दानुशासन या व्याकरण कहलाती है। सुप्राचीन वैदिक युगमें आर्योंने म्लेच्छ भाषाके संमिश्रणसे अपनी अपनी भाषाको विशुद्ध भावमें रखनेकी चेष्टा की थी। उसी चेष्टाके फलसे वर्त्तमान संस्कृत भाषाकी उत्पत्ति हुई थी। महाभाष्यकारने लिखा है—

"तेऽसुरा हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुस्तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै म्लेच्छोऽवा एष यदपशब्दः। म्लेच्छ मा भूतेत्यध्येयं व्याकरणम्।

यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलो विशेषे शब्दान् यथावद्व्यवहारकाले सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः।

योहि शब्दान् जानाति अपशब्दानप्यसौ जानाति। यथैव हि शब्दज्ञाने धर्म एवमपशब्दज्ञानेऽप्यधर्मः अथवा भूयानधर्मः प्राप्नोति भूयांसोऽप्यपशब्दा अल्पयांसः शब्दाः। एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशः, तद्यथा—गौरित्यस्य शब्दस्य गावीगोणी, गोता गोपोतलिकेत्येवमादयो बहवोपभ्रंशाः।

* * "प्रयाजाः सविभक्तिकाः कार्याः।" न चान्तरेण व्याकरणं प्रयाजाः सविभक्तिकाः शक्याः कर्त्तुम्। "यो वा इमां पदशः स्वरशोऽक्षरशो वाचं विदधाति स आर्त्विजीणो भवति।"

इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि अपशब्दके परिहार और विभक्ति आदिके प्रयोजन द्वारा वैदिक कार्य्य शुद्धिके लिये आर्योंने व्याकरण संगठन कर भाषाको संस्कृत कर दिया था। वही परिशोधित भाषा संस्कृत भाषा नामसे प्रसिद्ध हुई।

ऋङ्मन्त्र प्रकाशके पहले संस्कृत भाषा कैसी थी, प्राकृत ही कैसा था, उसका कोई भी निदर्शन नहीं है। ऋक् मन्त्रके प्रकाश-कालसे वैदिक संस्कृतका निदर्शन मिलता है, किन्तु उस समय प्राकृत भाषा कैसी थी, उसका निदर्शन नहीं मिलता।

अनन्तर वैदिक युगके तिरोधानके बाद लौकिक संस्कृत भाषाका प्रचार हुआ। वैदिक युगमें सच पूछिये तो सुप्राचीन भाषा 'संस्कृत' नामसे प्रचलित नहीं थी। महाभारतमें संस्कृत भाषाको ही 'ब्राह्मी वाक्' या 'ब्राह्मी भाषा' कहा है। यथा—"राजवत् रूपवेशौ ते ब्राह्मी वाचं बिभर्षि च।" (१।८१।१३) वाल्मीकि रामायणमें 'संस्कृतं वदन्' इत्यादि उक्तियोंसे हमें प्रथम संस्कृत भाषाका प्रयोग तथा वैदिक और लौकिक संस्कृतका पार्थक्य मालूम होता है। पाणिनिके बहुत पहले लौकिक संस्कृत भाषाके अनेक व्याकरण बनाये गये। उन सब व्याकरणका परिचय व्याकरण शब्दमें दिया जा चुका है। संस्कृत भाषाकी प्रकृति व्याकरण या शब्दानुशासन शास्त्रमें आलोचित हुई है। बिना व्याकरणकी आलोचनासे संस्कृत भाषाकी संगठन-प्रणाली नहीं जानी जा सकती। बहुत बढ़ जानेके भयसे यहां उसका कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया।

व्याकरण देखो।

हम संस्कृत भाषामें लिखे हुए ग्रन्थादिकी पर्यालोचना द्वारा दो प्रकारकी संस्कृत देखते हैं—वैदिक और लौकिक। ऋक्, यजुः, साम और अथर्वसंहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषद् वैदिक संस्कृत भाषामें लिखे गये हैं। परवर्त्ती कालके सूत्र ग्रन्थ, संहिता ग्रन्थ, इतिहास, पुराण और काव्यादि ग्रन्थ लौकिक संस्कृत भाषामें विरचित हैं। वैदिक संस्कृत भाषा व्याकरणकी नियमाधीन होने पर भी वैसा विकाश प्राप्त नहीं होता। परवर्त्ती कालमें व्याकरण जैसा पूर्णाङ्ग हो कर परिपुष्ट हो गया था तथा लौकिक साहित्यमें व्याकरणका नियमबन्धन जैसा सुदृढ़ भावसे प्रतिभात हुआ था, वैदिक भाषा व्याकरणके नियमोंसे वैसी आबद्ध नहीं है। लौकिक संस्कृत भाषाकी उन्नतिके साथ साथ प्राचीन वैदिक शब्दोंमें भी विभक्तियोंका बहुत हेर फेर हुआ। लौकिक संस्कृतमें वैदिक पदोंका बिलकुल व्यवहार नहीं है तथा विभक्तिका

भी यथेष्ट रूपान्तर हुआ है। शब्दोंमें बहुतसे शब्द भिन्न अर्थमें व्यवहृत होते हैं, इस परिवर्त्तनके फलसे वैदिक संस्कृत भाषा तथा लौकिक संस्कृत भाषामें ऐसा विशाल परिवर्त्तन हुआ, कि लौकिक संस्कृत भाषा में विशेष पाण्डित्य लाभ करने पर भी वैदिक संस्कृत भाषा एक प्रकारसे अबोध्य है। लौकिक संस्कृत भाषाविद् वैदिक संस्कृत भाषाका अर्थ कुछ भी समझ नहीं सकते तथा वैदिक संस्कृत समझने या सीखनेमें उन्हें उस विषयमें पारदर्शी एक शिक्षककी जरूरत पड़ जाती है। बिना भाष्यके वैदिक शब्दका अर्थबोध कठिन है। उसमें विभक्तके सम्बन्धमें भी यथेष्ट परिवर्त्तन दिखाई देता है।

वैदिक संस्कृतमें अनेक अप शब्दोंका संमिश्रण था। फलतः वैदिक संस्कृत भाषामें शब्दकी अधिक बहुलता थी। महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलिने लिखा है—

"एवं हि श्रूयते वृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रति पदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच—नान्तं जगाम। वृहस्पतिश्च प्रवक्ता, इन्द्रिश्चाध्येता, दिव्यं वर्षसहस्रमध्ययनकालो नाचान्तं जगाम।"

अर्थात्—ऐसा सुना जाता है, कि वृहस्पतिने इन्द्रको दिव्य सहस्र वर्ष तक प्रतिपदोक्त शब्दोंका शब्दपारायण कहा था, किन्तु फिर भी उन्हें शब्दपारायणका अन्त न मिला। वृहस्पति प्रवक्ता और इन्द्र अध्येता थे तथा देवपरिमाणका एक हजार वर्ष अध्ययन-काल था तथापि उन्होंने शब्दपारायणका अन्त नहीं पाया।

संस्कृत भाषाके शब्दपारायणकी इस प्रकार बहुलताके कारण वैयाकरणोंने अनेक शब्दोंका परित्याग कर तथा अनेक प्रकारके पदप्रयोगका परिहार कर प्राचीन भाषाकी लाघवता साधन की थी। लाघवता व्यापार भी भाषा-संस्कारके अन्तर्गत है। अतएव परवर्त्ती वैयाकरणोंने यद्यपि व्याकरणके अनेक नियमोंसे भाषाको परिशोभित, पूर्णाङ्ग और संस्कृत कर लिया था, तथापि इस कार्यके निष्पादनके लिये वे अनेक शब्दों और पद्यादिको छोड़नेमें वाध्य हुए थे।

जिस लौकिक संस्कृत भाषामें हम असंख्य ग्रन्थ देखते हैं, वह संस्कृतभाषा किसी भी समय जनसाधारण या पण्डितोंके मध्य वाक्यालापमें व्यवहृत होती थी या नहीं वह भी आलोचनाका विषय है। प्राचीन कालमें संस्कृत भाषामें जो सब नाटक लिखे गये थे, उन सब नाटकोंमें भी स्त्रियोंके मुखसे कथित प्राकृत भाषाका ही कवियोंने व्यवहार किया है। इससे जाना जाता है, कि अशिक्षित लोग कभी संस्कृत भाषामें वाक्यालाप नहीं करते थे। संस्कृत भाषा शिक्षित पण्डितोंकी भाषा थी। जनसाधारण देशभेदसे भिन्न भिन्न प्राकृत भाषामें बातचीत करते थे। इस कारण प्राकृत भाषा भी कई प्रकार की हो गई है।

भारतवर्षमें कई जगह पालि गाथाकी भाषाका प्रचार था। शाक्यसिंहके आविर्भावके बहुत पहलेसे पालि-भाषा परिपुष्ट थी तथा भारतवर्षके अनेक स्थानोंमें ही मातृभाषारूपमें प्रचलित हुई। शाक्यसिंहके समयमें भी इस भाषाका यथेष्ट प्रचार था। शाक्यसिंहने अपने शिष्योंको संस्कृत भाषाके बदले देशी लोकसमाजमें प्रचलित मातृभाषामें उपदेश देनेकी अनुमति दी थी। बौद्ध प्रभावसे संस्कृत भाषाओंका गौरव बहुत कुछ घट गया। अशोकके समय भी संस्कृत भाषाका गौरव भारतमें सर्वत्र दिखाई नहीं देता था। बौद्धसम्राट् अशोकके राज्यकालमें भारतमें सभी जगह उनका अनुशासन प्रचलित हुआ। वे सब अनुशासन भारतके अनेक स्थानोंमें बहुतसे पर्वतों तथा प्रस्तर स्तम्भ पर आज भी खोदे हुए हैं। अशोकने संस्कृत भाषाके बदलेमें स्थानीय बोलचालकी भाषामें ये सब आदेश लिपिबद्ध करनेकी अनुमति दी। उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें काबुल, दक्षिणमें वलभी, यहां तक कि पूर्वमें उड़ीसा पर्यन्त भूखण्डमें महाराज अशोकको जो सब खोदित लिपि दृष्टिगोचर होती है, वे सभी आदेशलिपि वहींकी भाषामें उत्कीर्ण हैं। ये सब भाषा संस्कृतसे विभिन्न हैं। फलतः बौद्ध प्रभावसे संस्कृत भाषाका गौरव ह्रास हो गया था, इसमें सन्देह नहीं।

कुल्लवग्ग नामक एक ग्रन्थ पढ़नेसे जाना जाता है, कि शाक्यसिंह संस्कृत भाषाके बदले जनसाधारणको कथित भाषाका ही अधिक आदर करते थे। उक्त ग्रन्थमें लिखा है, कि शाक्यसिंहके कुछ ब्राह्मण-शिष्य शाक्य-

सिंहके उपदेशोंका संस्कृत भाषामें अनुवाद कर उनके गौरवकी रक्षा करनेमें प्रयासी हुए थे। किन्तु शाक्यसिंहने इस पर बाधा डाल कर कहा, कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी मातृभाषामें मेरा उपदेश सोखेगा। शाक्यसिंह अपनी मागधी भाषामें बातचीत करते थे।

इससे मालूम होता है, कि शाक्यसिंहके पहले इस देशमें संस्कृत भाषाका यथेष्ट प्रचार था। अधिकांश मनुष्य संस्कृत भाषा लिखते थे, संस्कृत भाषामें बोलचाल करते थे, पत्रव्यवहारादि भी संस्कृत भाषामें हो चलता था। शाक्यसिंहके आविर्भावके पीछे भी भारतवर्षमें संस्कृत भाषाका यथेष्ट प्रचार था। परन्तु उनके प्रभावसे उनके शिष्यानुशिष्योंके मध्य संस्कृत शास्त्रके पाठ और संस्कृत भाषामें ग्रन्थ लिखनेका प्रचार बहुत ह्रास हो गया। फिर बौद्धाचार्यगण उस समय संस्कृत व्याकरण और कोषादि ग्रन्थ लिख कर संस्कृतभाषाके सम्मानकी रक्षा कर गये हैं। वे सब ग्रन्थ संस्कृत पाठार्थियोंके तत्त्वज्ञान लाभके परम सहायरूपमें गिने जाते हैं। बौद्धयुगमें भी राजकीय कागजात तथा शिलालिपि आदि संस्कृत भाषामें लिखी जाती थी। शाक्यसिंह स्वयं संस्कृत भाषामें अपना उपदेश प्रचार नहीं करने पर भी बौद्धगण संस्कृत भाषाकी यथेष्ट आलोचना करते थे। संस्कृतभाषाविद् प्रतिकूलवादी ब्राह्मणपण्डितोंके साथ संस्कृत भाषामें विचार तथा अपने धर्ममतका संस्थापन और हिन्दू दार्शनिक सिद्धान्तादिका खण्डन करनेके लिये संस्कृत भाषामें ग्रन्थरचना उनके संस्कृत शास्त्रपाठका अकाट्य प्रमाण है।

जैनों द्वारा भी संस्कृत भाषाकी यथेष्ट आलोचना हुई थी। जैनोंमें बहुतेरे पण्डितोंका आविर्भाव हुआ। वे सब पण्डित यथारीति संस्कृत शास्त्रका अध्ययन करते थे तथा बौद्ध और जैन लोग पाणिनीय व्याकरणकी प्रणाली अवलम्बन कर विशुद्ध साधुसंस्कृत भाषामें ग्रन्थकी रचना कर गये हैं। वे लोग मातृभाषाकी तरह विशुद्ध संस्कृत भाषामें बोलचाल भी करते थे।

यद्यपि हिन्दूसमाजको बड़ी बड़ी मुसीबतोंका सामना करना पड़ा है, यद्यपि हिन्दूधर्मसे अनेक अहिन्दू सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई है, यद्यपि वैदेशिक राजाओंके शासनप्रभावसे हिन्दूसमाजमें बहुत परिवर्त्तन हुआ है, तथापि आज भी संस्कृत भाषाका गौरव अटूट और अटल है। सारे भारतवर्षमें चिर गौरवाह संस्कृत भाषा आज भी गौरवान्वित है।

संस्कृति (सं० स्त्री०) सं-कृ-क्तिन्। १ शुद्धि, सफाई। २ संस्कार, सुधार, परिष्कार। ३ सजावट, आराइश। ४ सभ्यता, रहन सहन आदिकी रूढ़ि, शाइस्तगी। ५ २४ वर्णके वृत्तोंकी संज्ञा।

संस्क्रिया (सं० स्त्री०) सं कृ (कृञय श च। पा ३।३।१००) इति श। १ शवदाहादि क्रिया, अन्त्येष्टिक्रिया। (त्रिका०) २ संस्कार। ३ शोधन, परिष्कार करण।

संस्कृत्रिम (सं० त्रि०) संस्कारेण निर्वृत्तः सं-कृत्रिमक्। संस्कार द्वारा निर्वृत्त, संस्कृत।

संस्खलन (सं० क्ली०) १ च्युत होना, गिरना। २ भूल करना, चूकना।

संस्खलित (सं० त्रि०) १ च्युत, गिरा हुआ। २ भूला हुआ, चूका हुआ। (क्ली०) ३ भूल, चूक।

संस्तब्ध (सं० त्रि०) १ एक बारगी रुका या ठहरा हुआ। २ निश्चेष्ट, भौचक्को, ठक। ३ सहारा दिया हुआ, जिसे टेक या सहारा दिया हो।

संस्तम्भ (सं० पु०) संस्तम्भ-घञ्। १ गतिका सहसा रोध, एक बारगो रुकावट। २ निश्चेष्टता, चेष्टाका अभाव, ठक हो जाना, हाथ पैर रुक जाना। ३ शरीरकी गतिका मारा जाना, लकवा। ४ दृढ़ता, धीरता। ५ आधार, टेक, सहारा। ६ हठ, टेक, जिद।

संस्तम्भन (सं० क्ली०) सं स्तम्भ-ल्युट्। १ गतिका सहारा रुकना या रोकना, एकबारगी ठहर जाना। २ निश्चेष्ट करना या होना, ठक कर देना या हो जाना। ३ सहारा देना, टेकना। ४ बंद करना।

संस्तम्भनीय (सं० त्रि०) सं-स्तम्भ-अनीयर्। संस्तम्भनार्ह, संस्तम्भनके योग्य।

संस्तम्भयितृ (सं० त्रि०) सं-स्तम्भ-णिच्-तृच्। संस्तम्भकारक, निवारक। (रघु ६।६१)

संस्तम्भयिषु (सं० त्रि०) सं-स्तम्भयितुमिच्छुः, सं-स्तम्भ

णिच्-सन्-उ। संस्तम्भ करनेमें इच्छुक, निवारण करनेमें अभिलाषी।

संस्तर (सं० पु०) सं-स्तृ-अच्। १ शय्या, बिस्तर। २ तृणशय्या, घास फूस फैला कर बनाया हुआ बिस्तर। ३ घास फूससे बनाया हुआ आच्छादन। ४ तह, पहल। (त्रि०) ५ छितराया हुआ।

संस्तरण (सं० क्ली०) सं-स्तृ-ल्युट्। १ संस्तर, शय्या, बिस्तर। २ बिछाना, फैलाना। ३ छितराना, बिखेरना। ५ तह चढ़ाना, परत फैलाना।

संस्तव (सं० पु०) सं-स्तु-अप। १ परिचय, जान पहचान। (किरात ४।२५) २ प्रशंसा, स्तुति, तारीफ। ३ उल्लेख, जिक्र।

संस्तवन (सं० क्ली०) सं-स्तु-ल्युट्। १ यश गाना, कीर्त्ति बखानना। २ प्रशंसा करना, स्तुति करना।

संस्तवान (सं० त्रि०) संस्तवीतीति सं-स्तु (सम्यानच स्तुवः। उण् २।८६) इति आनच्। १ सद्वक्ता। २ वाग्मी। ३ उद्गाता। ४ हर्ष।

संस्तार (सं० पु०) सं-स्तृ-घञ्। १ शय्या, बिस्तर। २ तह, पहल। ३ एक यज्ञका नाम।

संस्तारपंक्ति (सं० स्त्री०) वैदिक छन्दोभेद।

संस्ताव (सं० पु०) समेत्य स्तुवन्ति यस्मिन् देशे छन्दोगा इति संस्तु (यज्ञे समि स्तुवः। पा ३।३।३१) इति घञ्। १ यज्ञमें स्तुति करनेवाले ब्राह्मणोंकी अवस्थान भूमि। २ परिचय, जान पहचान। ३ स्तुति, प्रशंसा।

संस्तिर (सं० पु०) सं-स्तृ क। आच्छन्न। (ऋक् १।१४०।७)

संस्तीर्ण (सं० त्रि०) १ फैलाया हुआ। २ बिखेरा हुआ, फैलाया हुआ। ३ छितराया हुआ।

संस्तुत (सं० त्रि०) सं-स्तु क्त। १ परिचित, ज्ञात। २ प्रशंसित, जिसकी खूब स्तुति की गई हो। ३ एक साथ गिना हुआ, गिनतीमें शामिल किया हुआ।

संस्तुति (सं० स्त्री०) सं-स्तु-क्तिन्। सम्यक् स्तुति, खूब प्रशंसा, गहरी तारीफ।

संस्तोभ (सं० पु०) सं-स्तुभ घञ्। १ सम्यक् रोग। (क्ली०) २ सामभेद।

संस्त्याय (सं० पु०) सं-स्त्यै-घञ्, आतो युक्। १ संघात, समूह। २ निविड़ सन्निवेश। ३ संस्थान। ४ विस्तार, फैलाव। (मेदिनी) ५ गृह, मकान। (हेम) ६ आलाप।

संस्थ (सं० पु०) संतिष्ठते स्वपरराष्ट्रेषु इति सं-स्था-क। १ चर, दूत। २ निजराष्ट्रक, स्वराजवासी। (त्रि०) ३ अवस्थित। ४ मृत, मरा हुआ।

संस्था (सं० स्त्री०) संतिष्ठतेऽनयेति सं-स्था-अङ्। १ ठहरनेकी क्रिया या भाव, ठहराव, स्थिति। २ व्यवस्था, बंधा, नियम। (मनु १।२१) ३ अभिव्यक्ति, प्रकाश, प्रकट होनेकी क्रिया या भाव। ४ आकृति, रूप, आकार। ५ गुण, सिफत। ६ ठिकाने लगाना। ७ अन्त, समाप्ति, खातमा। ८ मृत्यु, जीवनका अंत। ९ नाश। १० प्रलय चतुष्टय, नित्य, नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक इन चार प्रकारके प्रलयको संस्था कहते हैं। ११ यज्ञका मुख्य अंग। १२ हिंसा, वध। १३ गुप्तचरों या भेदियोंका वर्ग। इसके अन्तर्गत पाँच प्रकारके दूत कहे गये हैं—वणिक्, भिक्षु, छात्र, लिंगी (सम्प्रदायी) और कृषक। १४ व्यवसाय, पेशा। १५ जत्था, गरोह। १६ समाज, मंडल, सभा। १७ राजाज्ञा, फरमान। १८ सादृश्य, समानता। (मेदिनी)

संस्थात्व (सं० क्ली०) संस्थायाः भावः त्व। संस्थाका भाव या धर्म।

संस्थान (सं० क्ली०) सं-स्था-ल्युट्। १ ठहराव, स्थिति। २ खड़ा रहना, डटा रहना, जमा रहना। ३ सन्निवेश, विन्यास, बैठाना। (मनु ८।३७१) ४ अस्तित्व, जीवन। ५ सम्यक्-पालन, पूरा अनुसरण, पूरी पैरवी। ६ ठहरने या रहनेकी जगह, डेरा, घर। ७ जनपद, बस्ती। ८ सार्वजनिक स्थान, सर्वसाधारणको इकट्ठे होनेकी जगह। ९ आकृति, रूप, शकल। १० सौन्दर्य, कान्ति। ११ प्रकृति, स्वभाव। १२ रोगका लक्षण। १३ अवस्था, दशा, हालत। १४ समष्टि, योग, जोड़। १५ समाप्ति, अन्त, खातमा। १६ मृत्यु, नाश। (मेदिनी) १७ निर्माण, रचना, बनावट। १८ सामीप्य, निकटता। १९ चतुष्पथ, चौराहा। (अमर) २० प्रबन्ध, आयोजन, डौल। २१ ढांचा, चौखटा। २२ सांचा, ढांचा, डौल। २३ चिह्न।

संस्थानवत् (सं० त्रि०) संस्थानं अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। संस्थानविशिष्ट, संस्थानयुक्त।

संस्थापक (सं० त्रि०) संस्थापयति संस्था-णिच्

ण्वुल्। १ स्थापित करनेवाला, खड़ा करनेवाला, उठानेवाला। २ प्रवर्त्तक, कोई नई बात चलानेवाला। ३ कोई सभा, समाज या सर्वसाधारणके उपयोगी कार्य्य खोलनेवाला। ४ रूप या आकार देनेवाला। ५ चित्र, खिलौने आदि बनानेवाला।

संस्थापन (सं० क्ली०) सं-स्था-णिच्-ल्युट्। १ निर्मित करना, खड़ा करना, उठाना। २ स्थिर करना, जमाना, बैठाना। ३ कोई नई बात चलाना, नया काम जारी करना। ४ रूप या आकार देना। भगवान्‌ने गीतामें कहा है, कि जभी धर्मकी ग्लानि तथा अधर्मका अभ्युदय होता है, तभी भगवान् साधुओंके परित्राण, दुष्कृतके विनाश तथा धर्मसंस्थापनके लिये अवतीर्ण होते हैं।

संस्थापनीय (सं० त्रि०) संस्थापनके योग्य।

संस्थापित (सं० त्रि०) सं-स्था णिच्-क्त। १ निर्मित, खड़ा किया हुआ, उठाया हुआ। २ प्रतिष्ठित, बैठाया हुआ। ३ जारी किया हुआ, चलाया हुआ। ४ संचित, बटोरा हुआ। ५ ढेर लगाया हुआ।

संस्थाप्य (सं० त्रि०) सं-स्था णिच्-यत्। १ संस्थापनके योग्य। २ जिसका संस्थापन करना हो।

संस्थावन् (सं० त्रि०) समानरूपसे स्थितियुक्त।

संस्थावयववत् (सं० त्रि०) संस्थावयव अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। संस्था और अवयवविशिष्ट, संस्था अर्थात् रचना और अवयवयुक्त। (भाग० २।८।८)

संस्थास्नुचारिन् (सं० त्रि०) स्थितियुक्त और चलनशील। (भारत ७ पर्व नीलकण्ठ)

संस्थित (सं० त्रि०) संस्था-क्त। १ खड़ा या उठाया हुआ। २ ठहरा हुआ, टिका हुआ। ३ दृढ़तासे अड़ा हुआ, जमा हुआ। ४ निर्मित, रूपमें लाया हुआ। ५ समाप्त, ठिकाने लगाया हुआ, खतम। ६ मृत, मरा हुआ। ७ ढेर लगाया हुआ, बटोरा हुआ।

संस्थितयजुस् (सं० क्ली०) यज्ञ समाप्तिके पहले की जानेवाली सोमक्रिया। (ऐतरेयब्रा० १।११)

संस्थितहोम (सं० पु०) यज्ञान्तका पूर्ववर्त्ती होम।

संस्थिति (सं० स्त्री०) सं-स्था-क्तिन्। १ खड़े होनेकी क्रिया या भाव। २ ठहराव, जमाव। ३ बैठनेकी क्रिया या भाव। ४ एक अवस्थामें रहनेका भाव। ५ ज्योंका त्यों रहनेका भाव। ६ अस्तित्व, हस्ती। ७ रूप आकृति, सूरत। ८ व्यवस्था, तरकीब। ९ गुण, सिफत। १० प्रकृति, स्वभाव। ११ समाप्ति, खातमा। १२ मृत्यु, मरण। १३ कोष्ठबद्धता, कब्जियत। १४ राशि, ढेर।

संस्पर्द्धा (सं० स्त्री०) १ किसीके बराबर होनेकी प्रबल इच्छा, बराबरकी चाह। २ ईर्ष्या, डाह।

संस्पर्द्धिन् (सं० त्रि०) १ बराबरीकी इच्छा करनेवाला। २ ईर्ष्यालु, डाही।

संस्पर्श (सं० पु०) सं-स्पृश-घञ्। १ अच्छी तरह छू जानेका भाव, एक अंगका दूसरेसे लगना। धर्मशास्त्रोंमें कुछ लोगोंका संस्पर्श होने पर द्विजातियोंके लिये प्रायश्चित्तका विधान है। यह संस्पर्शदोष शरीरके छू जाने, आलाप, निश्वत, सहभोजन तथा एक शय्या पर बैठने या सोनेसे कहा गया है।

२ घनिष्ठ सम्बन्ध, गहरा लगाव। ३ मिलाप, मेल। ४ मिश्रण, मिलावट। ५ थोड़ा-सा आविर्भाव, कुछ प्रभाव। ६ इन्द्रियोंका विषय ग्रहण।

संस्पर्शन (सं० क्ली०) सं-स्पृश-ल्युट्। संस्पर्श अंगसे अंग लगना, छूना। २ मिलना, सटना।

संस्पर्शा (सं० स्त्री०) सं-स्पृश्यतेऽसौ इति सं-स्पृश कर्मणि घञ् टाप्। गन्धद्रव्यविशेष, जनी नामक गन्ध द्रव्य। (अमर)

संस्पर्शिन् (सं० त्रि०) सं-स्पृश-णिनि। संस्पर्श कारक, स्पर्श करनेवाला, छूनेवाला।

संस्पृश् (सं० त्रि०) संस्पृशतीति स्पृश क्विप्। संस्पर्शी, छूनेवाला।

संस्पृष्ट (सं० त्रि०) सं-स्पृश-क्त। १ छूआ हुआ। २ सटा हुआ, लगा हुआ। ३ परस्पर संबद्ध, जुड़ा हुआ। ४ पास ही पड़ता हुआ, जो निकट ही हो। ५ लेशमात्र प्रभावित, जिस पर बहुत कम असर पड़ा हो।

संस्फाल (सं० पु०) सम्यक् स्फालः स्फुरणं यस्य। मेष, भेड़।

संस्फुट (सं० त्रि०) संस्फुटतीति संस्फुट इगुपधेति क। १ विकसित, खूब खिला हुआ। २ प्रस्फुटित, खूब फूटा या खुल पड़ा हुआ।

संस्फेट (सं० पु०) संस्फिट अनादरे अधिकरणे घञ्। युद्ध, लड़ाई।

संस्फोट (सं० पु०) संस्फोटयत्यत्रेति संस्फुट भेदने घञ्। युद्ध, लड़ाई।

संस्मरण (सं० क्ली०) सं-स्मृ-ल्युट्। १ पूर्ण स्मरण, खूब याद, अच्छी तरह नाम लेना या सुमिरना। २ संस्कार जन्य ज्ञान।

संस्मरणीय (सं० त्रि०) सं-स्मृ-अनीयर्। १ पूर्ण स्मरण करने योग्य। २ नाम जपने योग्य। ३ महत्वका भूलनेवाला, जिसकी याद बराबर बनी रहे। ४ अतीत, जिसका स्मरण मात्र रह गया हो।

संस्मारक (सं० त्रि०) संस्मारयति सं-स्मृ-णिच्-ल्युट्। स्मरण करानेवाला, याद दिलानेवाला।

संस्मारण (सं० क्ली०) सं-स्मृ-णिच्-ल्युट्। १ स्मरण कराना, याद दिलाना। २ गिनती करना, गिनना।

संस्मारित (सं० त्रि०) १ स्मरण कराया हुआ। २ ध्यानमें लाया हुआ, याद किया हुआ।

संस्मृत (सं० त्रि०) स्मरण किया हुआ, याद किया हुआ।

संस्मृति (सं० स्त्री०) सं-स्मृ-क्तिन्। पूर्ण स्मृति, पूरी याद।

संस्यन्दिन् (सं० त्रि०) सं-स्यन्द्-णिनि। संस्यन्द-युक्त, सम्यक् गमनशील।

संस्रव (सं० पु०) सं-स्रु-अप्। १ एक साथ बहना। २ पूरा बहाव। ३ बहती हुई वस्तु। ४ बहता हुआ जल। ५ एक प्रकारका पिण्डदान। ६ किसी वस्तुका नीचा हुआ अंश, उखड़ा हुआ चिप्पड़। ७ रसना, चूना, झरना।

संस्रवण (सं० क्ली०) सं-स्रु-ल्युट। १ प्रवाहित होना, बहना। २ चूना, झरना, गिरना।

संस्रवभाग (सं० पु०) यज्ञमें प्रदत्त हविर्भागविशिष्ट, यज्ञमें जो सब हवि प्रदत्त हुई है, जिन सब देवताका इस हविमें भाग है। "संस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः।" (शुक्लयजुः २।१८) 'संस्रवभागाः विलीनमाज्यं संस्रवः स एव भागो येषां। (महीधर)

संस्रष्ट (सं० त्रि०) १ आयोजन करनेवाला। २ मिलाने जुलानेवाला। ३ रचनेवाला, बनानेवाला। ४ भिड़नेवाला, लड़ाईमें जुटनेवाला।

संस्राव (सं० पु०) सं-स्रु-घञ् (३।१।१४१) १ प्रवाह, बहाव। २ मवादका इकट्ठा होना। ३ किसी द्रव पदार्थके नीचे जमा हुआ पदार्थ, तलछट।

संस्रावण (सं० क्ली०) १ प्रवाहित करना, बहाना। २ प्रवाहित होना, बहना। ३ झरना, चूना, टपकना।

संस्रावभाग (सं० पु०) संस्रावः भागो यस्य। संस्रवभाग देखो।

संस्रावित (सं० त्रि०) १ बहाया हुआ। २ बहा हुआ। ३ झरा हुआ। ४ टपका हुआ।

संस्राव्य (सं० त्रि०) १ बहाने या टपकाने योग्य। २ जिसे बहाना या टपकाना हो।

संस्वेद (सं० पु०) सं-स्विद्-घञ्। स्वेद, पसीना।

संस्वेदज (सं० त्रि०) पसीनेसे उत्पन्न।

संस्वेदयु (सं० त्रि०) घर्मशील, जिसे खूब पसीना चलता हो। (पा ३।२।१७)

संस्वेदिन् (सं० त्रि०) संस्विद्-णिनि। संस्वेदविशिष्ट, पसीनावाला। (सुश्रुत)

संहत् (सं० स्त्री०) सं-हन्-क्विप्। पुञ्जीभूत।

संहत (सं० त्रि०) सं-हन्-क्त। १ सम्पूर्ण सम्बद्ध, खूब मिला हुआ, जुटा या सटा हुआ। २ एक हुआ, एकमें मिला हुआ। ३ संयुक्त, सहित। ४ जो मिल कर ठोस हो गया हो, कड़ा, सख्त। ५ जो विरल या झीना न हो, गठा हुआ, घना। ६ दृढ़ांग, मजबूत। ७ एकत्र, इकट्ठा। ८ मिश्रित, मिला हुआ। ९ आहत, घायल, चोट खाया हुआ। (पु०) १० नृत्यमें एक प्रकारकी मुद्रा।

संहतकुलीन (सं० त्रि०) सम्मिलित परिवारका।

संहतजानु (सं० त्रि०) संहते जानुनी यस्य। लग्नजानुक, जिसने दोनों घुटने सटाये हों।

संहतजानुक (सं० त्रि०) संहतजानुरेव स्वार्थे कन्। लग्न-जानुक, जिसने दोनों घुटने सटाये हों। पर्याय—संज्ञु, संहतजानु, संज्ञ। (भरत)

संहतता (सं० स्त्री०) संहतस्य भाव, तल्-टाप्। संहतत्व, संहतका भाव या धर्म।

संहतपत्रिका (सं० स्त्री०) शतपुष्पा, सोआ।

संहतपुच्छि (सं० अव्य०) संयुक्त पुच्छविशिष्ट, जिसकी पूंछ मिली हो।

संहतल (सं० पु०) मिलित पाणिद्वय, दोनों हाथ मिले हुए। (भरत)

संहताख्य (सं० पु०) पवमान नामक अग्नि।

संहताङ्ग (सं० त्रि०) दृढ़ाङ्ग, हृष्टपुष्ट, मजबूत।

संहताञ्जलि (सं० त्रि०) कर-बद्ध, जो हाथ जोड़े हो।

संहतापन (सं० पु०) नागभेद।

संतहाश्व (सं० पु०) निकुम्भ राजाके पुत्रका नाम।

संहति (सं० स्त्री०) सं-हन क्तिन्। १ समूह, झुंड। २ मेल, मिलाव। ३ जुटाव, इकट्ठा होनेका भाव। ४ राशि, ढेर। ५ निविड़ संयोग, परस्पर मिल कर ठोस होनेका भाव, ठोसपन, घनत्व। ६ सन्धि, जोड़। ७ सम्यक् वध, अच्छी तरह मार डालना। ८ पारमाणविक आकर्षणभेद, परमाणुओंका परस्पर मेल। जिस गुणके रहनेसे स्वजातीय परमाणु एक दूसरेको आकर्षण कर एकत्र हो जाते हैं, उसका नाम संहति है।

वैज्ञानिकोंके मतसे संसक्ति, संहति और सम्बन्धके भेदसे आणविक आकर्षण तीन प्रकारका है। जगत्‌की सभी जड़ वस्तु अत्यन्त सूक्ष्म अणुओंकी समष्टि है। अतएव जिस शक्ति द्वारा जड़ वस्तुके सभी अणु एकत्र हो जाते हैं, उसीको संहति कहते हैं। संहति अर्थात् इस शक्तिका पराक्रम अधिक होनेसे सङ्घात अर्थात् कठिन भावकी उत्पत्ति होती है। कठिनकी अपेक्षा तरलावस्थामें संहतिका प्रभाव बहुत थोड़ा है तथा वायवीय अवस्थामें उसका कोई प्रभाव ही नहीं दिखाई देता। उष्णताकी जितनी अधिकता होती है, उसका प्रभाव उतना ही घटता जाता है। इस कारण उत्तप्त होनेसे कठिन द्रव्य द्रव और द्रव द्रव्य वाष्प हो जाता है। बर्फ, जल और जलीय पदार्थका भिन्नरूप मात्र है। जब संहतिकी अधिकता होती है, तब जल जम कर बर्फ होता है, फिर जब उष्णताकी वृद्धि होती है, तब संहतिका बल घट जाता है, पीछे वही वाष्पाकार धारण करता है।

परमाणुओंका भिन्न भिन्न प्रकार होनेके कारण संहतिका अनेक तारतम्य हुआ करता है तथा उससे द्रव्यकी भारसहिष्णुता, कठोरता, आघातसहन आदि गुणोंमें भी हेरफेर होता है। जहां तरल द्रव्य अधिक मात्रामें रहता है, वहां मोध्याकर्षणका ही अधिक प्रभाव दिखाई देता है। इस कारण वहां तरल द्रव्यका कोई निर्दिष्ट आकार दिखाई नहीं देता, किन्तु जहां कोई तरल वस्तु बहुत थोड़ी मात्रामें रहती है, वहां संहतिके बलसे वह गोल हो जाता है।

संहतिपुष्पिका (सं० स्त्री०) शतपुष्पा, सोआ।

संहत्यकारिन् (सं० त्रि०) एकत्रकारी, मिल कर काम करनेवाला।

संहनन (सं० क्ली०) संहन्यते इति संहन ल्युट्। १ शरीर, देह। २ शरीरका मर्दन, मालिश। ३ वध, मार डालना। ४ संहत करना, एकमें मिलाना, जोड़ना। ५ खूब मिला कर घना या ठोस करना। ६ संयोग, मेल, मिलावट। ७ दृढ़ता, कड़ाई। ८ पुष्टता, बलिष्ठता, मजबूती। ९ सामञ्जस्य, अनुकूलता, मुआफिक। १० कवच, बक्तर। (त्रि०) ११ कठिन, कड़ा। (भागवत ५।६।१०)

संहननाङ्ग (सं० त्रि०) संहन्यन्ते निविड़ीभवन्ति अङ्गानि यस्य। कठिनावयव, कठिन अवयवविशिष्ट।

संहनु (सं० त्रि०) संहतहनुयुक्त। (अथर्व ५।२८।१३)

संहन्तृ (सं० त्रि०) सं-हन-तृच्। संहारकर्त्ता, वध करनेवाला, मारनेवाला।

संहर (सं० पु०) १ एक असुरका नाम। (हरिवंश) २ पवमान नामक अग्नि।

संहरण (सं० क्ली०) सं-हृ-ल्युट्। १. संहार करना, ध्वंस करना। २ संग्रह करना, बटोरना। ३ एक साथ बाँधना, गूथना। ४ प्रलय। ५ जबरदस्ती ले लेना, छीनना।

संहराख्य (सं० पु०) संहर इति आख्या यस्य। पावक।

संहर्त्तृ (सं० त्रि०) १ इकट्ठा करनेवाला, बटोरने या समेटनेवाला। २ नाश करनेवाला। ३ वध करनेवाला।

संहर्ष (सं० पु०) सं-हृष घञ्। १ पुलक, उमंगसे रोओंका खड़ा होना। २ भयसे रोंगटे खड़े होना। ३ स्पर्द्धा, चढ़ा ऊपरी, एक दूसरेसे बढ़नेकी चाह। ४ ईर्ष्या, डाह। ५ मर्दन, शरीरकी मालिश। ६ संघर्ष, रगड़।

संहर्षण (सं० क्ली०) सं-हृष-ल्युट्। १ पुलकित होना। २ स्पर्द्धा, लाग डांट, चढ़ा ऊपरी। (त्रि०) ३ पुलकित, करनेवाला, आनन्दसे प्रफुल्लित करनेवाला।

संहर्षा (सं० स्त्री०) पर्पटक, पित्त पापड़ा।

संहर्षित (सं० त्रि०) पुलकित।

संहर्षिन् (सं० त्रि०) संहृष णिनि, वा संहर्ष-अस्त्यर्थे इनि। १ पुलकित होनेवाला। २ पुलकित करनेवाला। ३ स्पर्द्धा या ईर्ष्या करनेवाला।

संहवन (सं० क्ली०) सं-हु-ल्युट्। सम्यक् प्रकारसे आहुति।

संहात (सं० पु०) १ संघात, समूह, जमावड़ा, नाटकमें उपयुक्त अथच संक्षेप पदयोजना द्वारा जो वर्णना व्यक्त की जाती है। (साहित्यद०) २ एक नरकका नाम। (मनु ४।८९) ३ शिवके एक गणका नाम।

संहात्य (सं० पु०) अदृष्टका पर्यायिक वैपरीत्य। संघात्य।

संहार (सं० पु०) संह्रियतेऽनेनेति संहृ घञ् (पा ३।३।१२२) १ एक साथ करना, इकट्ठा करना, बटोरना, समेटना। २ संग्रह, संचय। ३ समेट कर बांधना, गूंथना। ४ समाप्ति, अन्त, खातमा। ५ कल्पान्त, प्रलय। ६ कौशल, निपुणता। ७ व्यर्थ करनेकी क्रिया, निवारण, रोक। ८ ध्वंस, नाश। ९ संकोच, आकुंचन, सिकुड़ना। १० छोड़े हुए बाणको वापस लेना। ११ एक नगरका नाम। १२ संक्षेप कथन, खुलासा, सार।

संहारक (सं० त्रि०) संहारयति सं-हृ-णिच् ण्वुल्। १ संहारकारी, संहार करनेवाला, नाशक। २ संग्रह-कर्त्ता, एकत्र करनेवाला।

संहारकारिन् (सं० त्रि०) संहार या नाश करनेवाला।

संहारकाल (सं० पु०) संहारः कालः। विश्वके नाश-का समय, प्रलय-काल।

संहारना (हिं० क्रि०) १ मार डालना। २ ध्वंस करना, नाश करना।

संहारबुद्धिमत् (सं० त्रि०) संहारबुद्धि अस्त्यर्थे मतुप्। संहारबुद्धिविशिष्ट, संहारबुद्धियुक्त।

संहारभैरव (सं० पु०) भैरवके आठ रूपों या मूर्त्तियोंमेंसे एक, काल भैरव। (तन्त्रसार)

संहारमुद्रा (सं० स्त्री०) मुद्राविशेष, देवताको विसर्जन या आत्मसमर्पण करनेके समय यह मुद्रा प्रदर्शन करनी होती है। पूजाके अन्तमें संहारमुद्रा द्वारा पुष्प ले कर उसी पुष्पको सूंघ कर छोड़ देना होता है।

संहारवर्मन् (सं० पु०) दशकुमारचरितवर्णित राजभेद।

संहारवेगवत् (सं० त्रि०) संहारवेग अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। संहार वेगविशिष्ट।

संहारिक (सं० त्रि०) संहार करनेवाला।

संहारिन् (सं० त्रि०) सं-हृ-णिनि। १ संहारकारक, विनाश करनेवाला। (पु०) २ भैरवविशेष। दुर्गापूजाके समय इस भैरवकी पूजा करनी होती है।

संहार्य्य (सं० त्रि०) १ संहृ-ण्यत्। १ संहार करने योग्य। २ संग्रह करने योग्य, समेटने या बटोरने योग्य, इकट्ठा करने लायक। ३ एक स्थानसे हटा कर दूसरे स्थान पर करने योग्य, हटाने लायक। ४ जिसे ले जाना हो। ५ निवारण या परिहारके योग्य, रोकने योग्य। ६ जिसका निवारण या परिहार करना हो, जिसे रोकना हो।

संहित (सं० त्रि०) सं-धा-क, 'धाञोहि' इति-धा स्थाने 'हि' आदेशः। १ एकत्र किया हुआ, बटोरा हुआ, समेटा हुआ। २ सम्मिलित, मिलाया हुआ। ३ सम्बद्ध, जुड़ा हुआ, लगा हुआ। ४ संयुक्त, सहित। ५ मेलमें आया हुआ, हेलमेलवाला। ६ योगका चिह्न, + ऐसा चिह्न।

संहितपुष्पिका (सं० स्त्री०) संहितानि मिलितानि पुष्पाणि यस्याः कापि अत इत्वं। १ शतपुष्पा, सोआ नामका साग। २ धनियां।

संहिता (सं० स्त्री०) सम्यक् धीयते स्मेति वा कर्मणि क, यद्वा सम्यक् हितं प्रतिपाद्यं यस्याः। १ वह ग्रन्थ जिसमें पदपाठ आदिका क्रमनियमानुसार चला आता हो। मन्वादि प्रणीत उन्नीस धर्मशास्त्रको उन्नीस संहिता कहते हैं। पर्याय—स्मृति, धर्मसंहिता, श्रुतिजीविका।

मनु, अत्रि आदिने जो सब धर्मशास्त्र प्रणयन किये हैं, उन्हींका नाम संहिता है। मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, सम्वर्त्त, कात्यायन, वृहस्पति, पराशर, व्यास, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और वशिष्ठ प्रणीत उन्नीस संहिता है। इन सब संहिताओंमें धर्म अर्थात् जीवका कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म, चातुर्वर्ण्योंका धर्म, अशौच, संस्कारकर्म, जीविका आदि सभी विषय विशेषरूपसे लिखे हैं। इनमें धर्मतत्त्व लिखित होनेके कारण यह धर्मसंहिता नामसे भी प्रसिद्ध है।

२ सम्भोग, मेल। ३ व्याकरण या शब्दशास्त्रके अनुसार दो अक्षरोंका परस्पर मिल कर एक होना, सन्धि। ४ वेदोंका मन्त्र भाग, मुख्य वेद।

संहितान्त (सं० त्रि०) संहिताका शेष, शेषयुक्त।

संहितीभाव (सं० पु०) संहित-भू अभूततद्भावे च्वि। जो वस्तु संहित या मिली नहीं थी उसीका मिलन, एक भाव।

संहितोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।

संहितोरु (सं० त्रि०) संयुक्त ऊरुविशिष्ट।

संहूति (सं० स्त्री०) संह्वे-क्तिन्। बहुत लोगों द्वारा एक साथ आह्वान।

संहृत (सं० त्रि०) सं-हृ-क्त। १ एकत्र किया हुआ, समेटा हुआ। २ संगृहीत, जुटाया हुआ। ३ नष्ट, ध्वंस, नाश। ४ समाप्त, खतम। ५ निवारित, रोका हुआ। ६ संक्षिप्त। ७ संकुचित।

संहृतबुसम् (सं० अव्य०) आहरण साममेद। संहृत-बुसम् या संहृतयवम् दोनों पाठ देखा जाता है।

संहृति (सं० स्त्री०) सं-हृ-क्तिन्। १ संग्रह, जुटाव। २ बटोरने या समेटनेकी क्रिया। ३ ध्वंस, नाश। ४ प्रलय। ५ समाप्ति, अन्त। ६ परिहार, रोक। ७ संक्षेप, खुलासा। ८ हरण, छीनना, लूट।

संहृतिमत् (सं० त्रि०) संहृति अस्त्यर्थे मतुप्। संहार-विशिष्ट, विनाशयुक्त।

संहृष्ट (सं० त्रि०) सं-हृष-क्त। १ पुलकित, प्रफुल्ल, जिसके रोएं उमंगसे खड़े हों। २ खड़ा। ३ भीत, जिसके रोएं डरसे खड़े हों, डरा हुआ।

संहोत्र (सं० क्लो०) समीचीन यज्ञ। (ऋक् १०।८६।१०)

संह्राद (सं० पु०) संह्राद शब्दे घञ्। शब्द, ध्वनि, ऊंचा स्वर।

संह्रादन (सं० त्रि०) संह्रादयति संह्र-दि-ल्यु। १ संह्राद-कारक, शब्द करनेवाला। (क्ली०) संह्राद-ल्युट्। २ कोलाहल करना, शोर मचाना।

संह्रादि (सं० पु०) राक्षसभेद। (रामायण)

संह्रादिन (सं० त्रि०) सं-ह्राद-णिनि। १ संह्राद कारक, शब्द करनेवाला। (पु०) २ राक्षसविशेष।

संह्रादीय (सं० त्रि०) संह्राद-सम्बन्ध। (हरिवंश)

संह्रियमाण (सं० त्रि०) संहृ-शानच्। १ आहृत। २ विनष्ट।

संह्रीण (सं० त्रि०) सं-ह्री-क्त। लज्जाशील, लाजुक।

संह्लाद (सं० पु०) सं-ह्लाद-घञ्। सम्यक् ह्लाद आह्लाद।

संह्लादिन् (सं० त्रि०) सं-ह्लाद-णिनि। आनन्दित, आह्लादयुक्त।

सइल (हिं० स्त्री०) लकड़ीकी वह खूंटी या गुल्ली जो गाड़ीके कंधावरमें लगाई जाती है। इसके लगानेसे बैलकी गरदन दो सैलोंके बीच रहनेमें ठहरी रहती है और वह इधर उधर नहीं हो सकता। कभी कभी यह लोहेकी भी होती है। इसे समदूल या सैला भी कहते हैं।

सई (अ० स्त्री०) १ मल्लाहोंकी परिभाषामें नाव खींचनेकी गूनको कड़ा करना। २ प्रयत्न, कोशिश।

सईकंटा (हि० पु०) एक प्रकारका पेड़।

सईस (हिं० स्त्री०) सहल देखो।

सईस (हिं० पु०) साईस देखो।

सऊर (अ० पु०) शऊर देखो।

सऋक्ष (सं० त्रि०) नक्षत्र सहित।

सकंकर (हि० पु०) गोहकी तरहका एक जन्तु जिसका रङ्ग लाल या पीला होता है। इसका मांस खारा और फोका पर बहुत बलवद्धक माना जाता है। इसे रेतकी मछली या रेग माही भी कहते हैं।

सक (सं० पु०) वे, वह व्यक्ति।

सकङ्कट (सं० त्रि०) आलिङ्गन द्वारा अवरुद्ध, आलिङ्गित।

सकञ्चुक (सं० त्रि०) कञ्चुक सहित वर्त्तमान।

सकट (सं० पु०) कटेन अशुचिना शवादिना सह वर्त्तमानः। शाखोट वृक्ष, सिहोर।

सकट (हिं० पु०) शकट, गाड़ी, सग्गड़।

सकटाक्ष (सं० क्लो०) कटाक्षके सहित, वर्त्तमान।

सकटान्न (सं० क्लो०) कटशब्देर अशौचं लक्ष्यते तत्सहचरितमन्नं। सकटान्न, जिसेकिसी प्रकारका अशौच हो उसका अन्न। शास्त्रमें लिखा है, कि अशुद्ध अन्न भोजन नहीं करना चाहिये, जिन्हें अशौच है, उनका अन्न अशुद्ध होता है। जो अशुद्ध अन्न भोजन करते हैं, वे भी अशुद्ध होते हैं। अतएव जिन्हें अशौच है, उनका अन्नभोजन करनेसे अन्नभोजन करनेवालेको भी अशौच होता है।

सकटी (हिं० स्त्री०) १ गाड़ी। २ छोटा सग्गड़।

सकड़ी (हिं० स्त्री०) सिकरी देखो।

सकण्टक (सं० पु०) कण्टकेन सह वर्त्तमानः। १ शैवाल, सेवार। २ करञ्जविशेष, कंजा। (त्रि०) ३ कण्टकयुक्त, जिसमें कांटा हो। ४ लोमाञ्चित।

सकण्डुक (सं० पु०) कर्णपालीगत रोम।

सकता (हिं० स्त्री०) १ शक्ति, ताकत, बल। २ सामर्थ्य।

सकता (अ० पु०) १ एक प्रकारका मानसिक रोग जिसमें रोगी बेहोश हो जाता है, बेहोशीकी बीमारी। २ विराम, यति।

सकती (हिं० स्त्री०) १ शक्ति, ताकत, बल। २ शक्ति नामक अस्त्र। शक्ति शब्द देखो।

सकन (हिं० पु०) लता कस्तूरी, मुश्कदाना।

सकना (हिं० क्रि०) कोई काम करनेमें समर्थ होना, करने योग्य होना। जैसे,—खा सकना, चल सकना, बोल सकना, रोक सकना, कह सकना। इस क्रियाका व्यवहार सदा किसी दूसरी क्रियाके साथ संयोज्य क्रियाके रूपमें ही होता है, अलग नहीं होता। परन्तु बंगालमें कुछ लोग भूलसे या बंगलाके प्रभाववश कभी कभी अकेले भी इस क्रियाका व्यवहार कर बैठते हैं। जैसे,—हमसे नहीं सकेगा।

सकपकाना (हिं० क्रि०) १ चकपकाना, आश्चर्ययुक्त होना। २ हिचकना, आगा पीछा करना। ३ प्रेम, लज्जा या शंकाके कारण उद्भूत एक प्रकारकी चेष्टा। ४ लज्जित होना, शरमाना।

सकमल (सं० पु०) कमलेन सह वर्त्तमानः। पद्मके सहित वर्त्तमान। (रघु ६।१६)

सकम्प (सं० पु०) कम्पेन सह वर्त्तमानः। कम्पयुक्त, कम्पायमान। (कुमारस० ६।५६)

सकर (सं० त्रि०) करेण सह वर्त्तते योऽसौ। १ हस्तयुक्त। २ राजस्वविशिष्ट। ३ शुण्डयुक्त। ४ किरणविशिष्ट।

सकर (सक्कर)—सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। मुसलमानी अमलमें यह स्थान उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। स्थानीय मुसलमान कोठरियां आज भी उसकी साक्षी देती हैं। प्राचीन सकर भागमें शाह खैरउद्दीनका समाधि-मन्दिर है। उस मन्दिरमें जो शिलालिपि है उससे जाना जाता है, कि खैरउद्दीन बागदादवासी थे। १०२३ हिजरीमें उनकी मृत्यु हुई।

वर्त्तमान नगर भागमें मीर मसूमका प्रतिष्ठित मीनार उल्लेखयोग्य है। वह १००३ हिजरीमें मीर मसूम शाह द्वारा शुरू किया गया था और १०२७ हिजरीमें उसके लड़के मीर बुजिङ्ग मानवर द्वारा उसका निर्माण-कार्य समाप्त हुआ। मीनार ईंटोंका बना है, उसकी दीवारकी ऊपरवाली मेजकी परिधि ८४ फुट तथा उसके ऊपर एक सुन्दर गुम्बज है। इसके सिवा इस भागमें मीर मसूमके वंशधर मासुमी सैयदोंके कुछ समाधिस्तम्भ देखे जाते हैं। उन स्तम्भोंमें मीर मसूमके पिता मीर सफाईकी समाधि उल्लेखयोग्य है। उसमें मीर सफाई-का मृत्युकाल १५८३ ई०में लिखा हुआ है। इसकी बगलमें १००४ हिजरीमें निर्मित एक दूसरी मस-जिदका खंडहर दिखाई देता है। वह अष्टकोण तथा चार द्वारविशिष्ट है। पूर्व और पश्चिम द्वारके ऊपर छत लगा हुआ बरामदा है। भीतर १४ फुट ऊपर जाने पर सोपानमञ्च तथा उसके ऊपर कुरानके लिखे हुए कुछ प्रसिद्ध नीतिवाक्य दीवारमें लिखे हैं। मीर मसूम शाहका एक दूसरा मीनार भी है। उसमें जो शिलालिपि उत्कीर्ण है, उससे जाना जाता है, कि मीर मसूम शाह १६०५-६ ई०में इस लोकसे चल बसे।

सकरकंदी (हिं० स्त्री०) शकरकंद देखो।

सकरकन (हिं० पु०) शकरकंद देखो।

सकरना (हिं० क्रि०) १ सकारा जाना, मंजूर होना। २ कबूला जाना, माना जाना।

सकरपाला (फा० पु०) १ शकरपारा नामकी मिठाई। विशेष विवरण शकरपाला शब्दमें देखो। २ कपड़े पर की एक प्रकारकी सिलाई जो शकरपारेकी आकृतिकी होती है। शकरपारा देखो। ३ एक प्रकारका काबुली नीबू।

सकरा (हिं० वि०) सँकरा देखो।

सकरिया (फा० स्त्री०) लाल शकरकंद, रतालू।

सकरुंड (गुज० पु०) सकुरुंड या साकुंड नामका वृक्ष। इसकी पत्तियों आदिका व्यवहार ओषधिके रूपमें होता है। वैद्यकके अनुसार यह कषाय, रुचिकर, दीपन और वातनाशक माना जाता है।

सकरुण (सं० त्रि०) करुणया सह वर्त्तमानः। सदय, दयाशील।

सकर्ण (सं० त्रि०) कर्णाभ्यां सह वर्त्तमानः। १ श्रवण-

शील, जो सुनता या सुन सकता हो। पर्याय—श्रुतितत्पर। (जटाधर) २ कर्णयुक्त, कानवाला, जिसे कान हों।

सकर्णक (सं० पु०) १ एक प्राचीन ऋषिका नाम। (पा ४।२।८०) सकर्ण स्वार्थे कन्। २ कर्ण सहित वर्त्तमान।

सकर्त्तृक (सं० त्रि०) कर्त्रासह वर्त्तते, कप। जिसके कर्त्ता हो।

सकर्मक (सं० पु०) कर्मणा सह वर्त्तमानः, कप्। १ कर्मयुक्त धातु, जिस धातुका कर्म हो। धातु दो प्रकारकी है, सकर्मक और अकर्मक। जिन सब धातुका कर्मके साथ अन्वय होता है, उसे ही सकर्मक कहते हैं, कर्मान्वयि-क्रियार्थक। व्याकरणमें लिखा है, कि कहीं कहीं भाववाच्यमें सकर्मक धातुके उत्तर भी क्रिया व्याप्ति है। (त्रि०) २ कर्मयुक्त, कार्यविशिष्ट।

सकल (सं० त्रि०) कलया सह वर्त्तमानं। १ समुदाय, सम्पूर्ण। पर्याय—सम, सर्व, विश्व, अशेष, कृत्स्न, समस्त, निखिल, अखिल, निःशेष, समग्र, पूर्ण, अखण्ड, अमूलक, अनन्त। (शब्दरत्ना०)

(पु०) कलाप्रकृतिस्तया सह वर्त्तते इति। २ निर्गुण ब्रह्म और सगुण प्रकृति। ३ दर्शनशास्त्रके अनुसार तीन प्रकारके जीवोंमेंसे एक प्रकारके जीव, पशु। जीव तीन प्रकारके माने गये हैं—विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल। सकल जीव मल, माया और कर्मसे मुक्त होता है। इसके भी दो भेद कहे गये हैं—एक कलुष और अपक्व कलुष। ४ रोहित तृण, रोहिस घास।

सकल—उत्तर-पश्चिम भारतके पञ्जाब प्रदेशके झङ्ग जिलान्तर्गत एक प्राचीन जनपद। वर्त्तमान समयमें सङ्गल या साङ्गल कहलाता है। सङ्गल देखो।

सकलकल (सं० त्रि०) षोड़श कलाविशिष्ट, सोलहों कलाओंसे युक्त।

सकलकीर्त्ति—एक जैनसूरि। इन्होंने तत्त्वार्थसारप्रदीप और पार्श्वनाथचरित नामक दो ग्रन्थ प्रणयन किये। पहला ग्रन्थ १४६४ ई०में रचा गया था।

सकलखोरा (हिं० पु०) शकरखोरा देखो।

सकलजननी (सं० स्त्री०) समस्त भुवनप्रसवकर्त्री, प्रकृति।

सकलडिहा—युक्तप्रदेशके वाराणसी जिलान्तर्गत चन्दौली तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २५°२०′२८″ उ० तथा देशा० ८३°१९′०८″ पू०के मध्य वाराणसीसे २० मील पूरब तथा चन्दौलीसे ६ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहां राजा अचलसिंहका प्रतिष्ठित एक दुर्ग विद्यमान है। दो प्राचीन मसजिद और चार देवमन्दिर यहांको प्राचीन समृद्धिका परिचय देते हैं। नगर वाणिज्यप्रधान है। चार चीनीका कारखाना ही उसका प्रमाण है। इष्ट-इण्डिया रेलवेके सकलडिहाके स्टेशनसे यह नगर २ मील दूरमें पड़ता है।

सकलप्रिय (सं० पु०) १ वह जो सबको प्रिय हो, सबको अच्छा लगनेवाला। २ चणक, चना।

सकलभुवनमय (सं० त्रि०) त्रिभुवनमय, सकल भुवन स्वरूप।

सकलयज्ञमय (सं० त्रि०) सकल यज्ञ स्वरूपे मयट्। सकल यज्ञ स्वरूप। (भागवत ९।७।१)

सकललक्षण (सं० पु०) शाल निर्यास, राल, धूना।

सकलवर्ण (सं० क्ली०) समस्त वर्ण, ब्राह्मणादि वर्ण-चतुष्टय।

सकलसिद्धि (सं० त्रि०) अणिमादि सकल सिद्धियुक्त, जिसे अणिमादि आठों सिद्धियां प्राप्त हों।

सकलसिद्धिदा भैरवी (सं० स्त्री०) भैरवीविशेष। इस भैरवीका साधन करनेसे सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं, इस लिये इन्हें सकलसिद्धिदा भैरवी कहते हैं। 'सहैं सहकलरीं सहौं' यह बीज मन्त्र है। इस मन्त्रसे सकल सिद्धिदा भैरवीकी पूजा करनी होती है।

सकलागमाचार्य (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम।

सकलात (हिं० पु०) १ ओढ़नेकी रजाई, दुलाई। २ भेंट, सौगात, उपहार।

सकलाधार (सं० पु०) १ शिव। २ सबोंका आधार।

सकलिक (सं० त्रि०) कलिकाके सहित वर्त्तमान।

सकली (हिं० स्त्री०) मत्स्य, एक प्रकारकी मछली।

सकलीविधा (सं० स्त्री०) सब प्रकार।

सकलेन्दु (सं० पु०) पूर्णिमाका चन्द्रमा, पूरा चांद।

सकलेश्वर (सं० पु०) १ सबोंका ईश्वर। २ विष्णु।
सकलेश्वर—जातबोधिनीके रचयिता।
सकसकाना (हिं० क्रि०) बहुत डरना, डरके कारण कांपना।
सकसाना (हिं० क्रि०) भयभीत होना, डर मानना।
सका (अ० पु०) १ पानी भरनेवाला, भिश्ती। २ वह जो घूम घूम कर लोगोंको पानी पिलाता हो, विशेषतः मशकसे (मुसलमानोंको) पानी पिलानेवाला।
सका (सं० स्त्री०) वह स्त्री।
सकाकुल (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कन्द जिसे अम्बर-कन्द कहते हैं। २ एक प्रकारका शतावर। ३ शका-कुल मिस्री, सुधामूली।
सकाकुल मिस्री (हिं० स्त्री०) १ सुधामूली। २ अम्बर कन्द।
सकाकोल (सं० पु०) मनुके अनुसार एक नरकका नाम।
सकाना (हिं० क्रि०) १ शंका करना, सन्देह करना। २ भयके कारण संकोच करना। ३ दुःखी होना, रंज होना। ४ 'सकना'का प्रेरणार्थक रूप।
सकाम (सं० लि०) कामेन सह वर्त्तमानः। १ जिसे कोई कामना या इच्छा हो। २ लब्धकाम, जिसकी कामना पूरी हुई हो। ३ कामवासनायुक्त, कामी। ४ जो कोई कार्य भविष्यमें फल मिलनेकी इच्छासे करे, जो निःस्वार्थ हो कर कोई कार्य न करे बल्कि स्वार्थके विचारसे करे। ५ प्रेम करनेवाला।
सकामकर्म (सं० क्ली०) कामनाके सहित वर्त्तमान कर्म, कामनायुक्त कर्म। शास्त्रमें लिखा है, कि सकाम कर्म बन्धका कारण है; सकाम कर्मानुष्ठान करनेसे जीव भव-बन्धनसे मुक्त नहीं होता, उसे बार बार जन्म लेना पड़ता है, इस कारण सकाम कर्मका परित्याग कर निष्काम कर्मानुष्ठान करना उचित है।

फलाकी आकांक्षा करके अर्थात् सकाम कर्मका अनु-ष्ठान न करे अथवा कर्मत्यागमें भी आसक्त न हो। गीतामें यह भी लिखा है, कि सकाम कर्म जो बन्धनका कारण होता है, उसका हेतु यह है, कि जीव फलकी कामना करके आसक्त चित्तसे अहङ्कारबुद्धिसे कर्म करता है, किन्तु जीव यदि फलाकांक्षा रहित हो कर अनासक्त चित्तसे कर्त्तव्य बुद्धिकी प्रेरणासे कर्म कर सके, तो कर्म उसे बांध नहीं सकता।

"अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
सन्न्यासी च योगीच न निरग्निर्नचाक्रियः॥"
(गीता ६।१)

कर्मफलकी आकांक्षा न करके कर्त्तव्यबुद्धिसे जो कर्म करते हैं, वे ही संन्यासी हैं, वे ही योगी हैं, साधा-रण तौर पर यदि देखा जाय, तो मालूम होगा, कि कर्म बन्धका कारण है, किन्तु कर्मका अनुष्ठान इस तरह किया जा सकता है, कि कर्म भी किया जायेगा, साथ साथ कर्मजनित बन्धन न होगा। ऐसे कर्मकौशलका नाम ही योग है।

सकाम कर्मानुष्ठान द्वारा यह योग नहीं होता, अतः एव ऐसा योग करनेमें कर्मफलकी आकांक्षा छोड़ देनी होगी, अपने कर्तृत्वाभिमान त्याग तथा तृतीय कर्म ईश्वरमें समर्पण करना होगा।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" (गीता २।२७)

कर्ममें तुम्हारा अधिकार है, फलके साथ सम्पर्क न रखो। अनासक्त हो कर फलकामनाका परित्याग कर कर्त्तव्यबुद्धिसे कर्मका अनुष्ठान करो। इस प्रकार जो कर्म कर सकते हैं, वे ही यथार्थ निष्कामकर्मी हैं। उनके सभी कर्म कामना और सङ्कल्पविहीन हैं, वे कर्ममें प्रवृत्त होते हैं सही, पर वह कर्म उनकी देहका व्यापार मात्र हैं। उनके साथ उनके चित्तका आसङ्ग या लेप नहीं रहता। निष्कामकर्मन् देखो।
सकामनिर्जरा (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार चित्तकी वह वृत्ति जिसमें बहुत अधिक शक्ति होने पर भी शत्रु या पीड़ा देनेवालेको परम शान्तिपूर्वक क्षमा कर दिया जाता है। यह वृत्ति उपशान्त चित्तवाले साधुओंमें होती है।
सकामा (सं० स्त्री०) वह स्त्री जो मैथुनकी इच्छा रखती हो, काम-पीड़िता, कामवती।
सकामिन् (सं० लि०) १ कामनायुक्त, वासनायुक्त, जिसे किसी प्रकारकी कामना हो। २ कामी, विषयी।
सकार (सं० पु०) १ 'स' अक्षर। २ 'स' वर्णकी-सी ध्वनि।

सकारण (सं० क्ली०) कारणेन सह वर्त्तमानं । कारणके साथ विद्यमान, हेतुयुक्त, सहेतुक ।

सकारना (हिं० क्रि०) १ स्वीकार करना, मंजूर करना । २ महाजनोंका हुंडोकी मिती पूरी होनेके एक दिन पहले हुंडी देख कर उस पर हस्ताक्षर करना । जो लोग किसो महाजनको हुंडी पर रुपये देते हैं, वे मिती पूरी होनेसे एक दिन पहले अपनी हुंडी उस महाजनके पास उसे दिखलाने और उससे हस्ताक्षर करानेके लिये ले जाते हैं। इससे महाजनको दूसरे दिनके दातव्य धनकी सूचना भी मिल जाती है और रुपये पानेवालेको यह निश्चय भी हो जाता है, कि कल मुझे रुपये मिल जायंगे ।

सकारविपुला (सं० स्त्री०) अन्त्यगुरु त्रिपदांश छन्दोविशेष ।

सकारा (हिं० पु०) महाजनीमें वह धन जो हुंडी सकारने और उसका समय फिरसे बढ़ानेके लिये लिया जाता है ।

सकालत (अ० स्त्री०) १ सकील या गरिष्ठ होनेका भाव । २ गुरुता, भारीपन ।

सकाली (सं० स्त्री०) समुद्रके किनारेका एक स्थान ।

सकाश (सं० पु०) काशः प्रकाशस्तेन सह वर्त्तते इति । १ समीप, निकट । (त्रि०) २ काशयुक्त ।

सकीत—युक्तप्रदेशके एटा जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर यह अक्षा० २७° २६´ १०´´ उ० तथा देशा० ७८° ४६´ १५´´ पू०के मध्य विस्तृत है । एटा नगरसे १२ मील दक्षिण-पूर्व एक ऊंची भूमिके ऊपर यह नगर बसा हुआ था । अभी यह क्रमशः जनशून्य और श्रीहीन हो गया है । इस राजधानीकी विशेष समृद्धिके समय पार्श्ववर्त्ती शैलशृङ्ग पर स्थानीय राजाओंने एक गिरिदुर्ग बनवाया था । अभी वह बिलकुल तहस नहस हो गया है । नगरके मध्य १३वीं सदीमें स्थापित एक प्राचीन मसजिद उक्त स्थानके पूर्वतन मुसलमानी प्रभावका परिचय देती है । १४८८ ई०में बहलोल लोदीका यहीं पर देहान्त हुआ । इसके बाद १५१० ई०में इब्राहिमलोदीने यहां एक मुसलमान उपनिवेश बसाया था ।

सकीन (हिं० पु०) एक प्रकारका जन्तु ।

सकील (अ० वि०) १ जो जल्दी हजम न हो, गरिष्ठ, गुरुपाक । २ भारी, वजनी ।

सकुक्षि (सं० त्रि०) कुक्षियुक्त ।

सकुच (हिं० पु० स्त्री०) संकोच, लाज, शर्म ।

सकुचना (हिं० क्रि०) १ संकोच करना, लज्जा करना, शरमाना । २ फूलोंका संपुटित होना, बंद होना ।

सकुचाई (हिं० स्त्री०) १ संकुचित होनेका भाव । २ संकोच, शर्म, लज्जा, हया ।

सकुची (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली जो साधारण मछलियोंसे भिन्न और प्रायः कछुएके आकारकी होती है । इसके छोटे छोटे चार पैर होते हैं और एक लंबी पूंछ होती है । इसी पूंछसे यह शत्रुको मारती है। जहां पर इसकी चोट लगती है, वहां घाव हो जाता है और चमड़ा सड़ने लगता है । कहते हैं, कि यह मछली ताड़के वृक्ष पर चढ़ जाती है । पानीमें और जमीन पर दोनों जगह यह रह सकती है ।

सकुचीला (हिं० वि०) संकोच करनेवाला, जिसे अधिक संकोच हो, शरमीला ।

सकुचीली (हिं० स्त्री०) लज्जावती लता, लाजवंती ।

सकुड़ना (हिं० क्रि०) सिकुड़ना देखो ।

सकुतूहल (सं० त्रि०) कुतूहलेन सह वर्त्तते । कौतुकयुक्त ।

सकुन (हिं० पु०) १ पक्षी, चिड़िया । २ शकुन देखो ।

सकुनी (हिं० स्त्री०) पखेरू, चिड़िया ।

सकुरुण्ड (सं० पु०) साकुरुण्ड वृक्ष । गुण—कषाय, रुचिकर, दीपन, श्लेष्म और वातनाशक, वस्त्र-रञ्जक और लघु । (राजनि०)

सकुल (सं० पु०) १ मत्स्यविशेष, सकुची मछली । २ उत्तम कुल, अच्छा कुल, ऊंचा खानदान ।

सकुलज (सं० त्रि०) समान कुलजात, एक ही कुलमें उत्पन्न ।

सकुला (सं० पु०) बौद्ध भिक्षुओंका नेता या सरदार ।

सकुलादनी (सं० स्त्री०) १ महाराष्ट्री लता, मरेठी । २ कुटकी । (जयदत्त)

सकुली (सं० स्त्री०) मत्स्यविशेष, सकुली मछली ।

सकुल्य (सं० त्रि०) समानकुले भवः यत् । १ सगोत्र,

एक ही कुलका। २ आठवीं पीढ़ीसे दशवीं पीढ़ी तक ज्ञातिको सकुल्य कहते हैं। अपनेसे सात पीढ़ी ऊपर तक ज्ञातिका सपिण्ड ज्ञाति, उसके ऊपर अर्थात् आठवीं पीढ़ीसे दशवीं पीढ़ी तक ज्ञातिका नाम सकुल्य है। सकुल्य-ज्ञातिके जनन और मरणमें त्रिरात्राशौच होता है।

सकूतरा (हिं० पु०) एक द्वीप जो अरब सागरमें अफ्रीकाके पूर्वी तटके समीप है। यहां मोती और प्रवाल अधिक मिलते हैं।

सकूति (सं० त्रि०) प्राप्तकामी, अभिलाषी, प्रेमाकांक्षी। (तैत्तिरीयब्रा० २।४।६।४)

सकूनत (अ० स्त्री०) रहनेका स्थान, निवास स्थान, पता।

सकृत (सं० क्ली०) शूद्रशासन।

सकृत् (सं० अव्य०) एक (एकस्य सकृच्च। पा ५।४।१९) इति शुच्, सकृदादेशश्च, संयोगान्तश्चेति सुचो लोपः। १ एक बार, एक मरतबा। २ सह, साथ। ३ सदा। ४ विष्ठा, गुह। (अमरटीका) विष्ठा अर्थमें यह शब्द प्रायः तालव्य शकारादि देखा जाता है। ५ काक, कौआ।

सकृत्प्रज (सं० पु०) सकृत् प्रजा यस्य। १ काक, कौआ। (अमर) (त्रि०) २ जातैक मात्रापत्य, जिसके एक ही बच्चा हो।

सकृत्प्रजा (सं० स्त्री०) १ वन्ध्या रोग, बाँझपन। २ सिंहिनी, शेरनी।

सकृत्फल (सं० त्रि०) सकृत् फलं यस्य। जो एक ही बार फलता हो।

सकृत्फला (सं० स्त्री०) १ जो एक ही बार फले। २ कदली, केला।

सकृत्सू (सं० स्त्री०) सकृत् सूते सू-क्विप्। सकृत् प्रसवकारिणी, वह स्त्री जिसने अभी बालक प्रसव किया हो।

सकृदागामिन् (सं० त्रि०) १ एकक प्रत्यागमनकारी, एक एक कर लौटनेवाला। (पु०) २ बौद्ध मतानुसार एक प्रकारका धार्मिक मार्ग जिसमें जीव केवल एक बार जन्म ले कर मोक्ष प्राप्त करता है। बौद्ध देखो।

सकृदावृत्ति (सं० स्त्री०) निमित्तावृत्ति।

सकृद्गति (सं० स्त्री०) एक बार जो घटे केवल वही भाव। (पा ७।१।५०)

सकृद्गर्भ (सं० पु०) सकृत् गर्भो यस्य। अश्वतर, खच्चर।

सकृद्गर्भा (सं० स्त्री०) एकमात्र गर्भिणी स्त्री।

सकृद्ग्रह (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन देशका नाम। २ इस देशका निवासी। (भारत भीष्म ९।६५)

सकृद्वीर (सं० पु०) सकृत् वीर इव। एकवीर या अकलबीर नामक वृक्ष। (राजनि०)

सकृन्नन्दा (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन नदीका नाम। (भारत वनपर्व)

सकेत (हिं० पु०) १ संकेत इशारा। २ प्रेमी और प्रेमिकाके मिलनेका निर्दिष्ट, स्थान। ३ विपत्ति, कष्ट, दुःख। (वि०) ४ संकुचित, संकीर्ण, तंग।

सकेतना (हिं० क्रि०) संकुचित होना, सिकुड़ना।

सकेलंग (हिं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष जो बहुत ऊंचा होता है। इसकी लकड़ी नरम और सफेद होती है जो इमारत और संदूक आदि बनानेके काममें आती है। यह अधिकतर हिमालयके पूर्वी भागमें पाया जाता है।

सकेला (अ० स्त्री०) १ एक प्रकारकी तलवार जो कड़े और नरम लोहेके मेलसे बनाई जाती है। (पु०) २ एक प्रकारका लोहा।

सकोच (हिं० पु०) सङ्कोच देखो।

सकोड़ना (हिं० क्रि०) सिकोड़ना देखो।

सकोतरा (हिं० पु०) चकोतरा देखो।

सकोप (सं० त्रि०) कोपेन सह वर्त्तते। कोपयुक्त, क्रुद्ध, नाराज।

सकोपित (सं० त्रि०) कुपित, क्रुद्ध, नाराज़।

सकोरा (हिं० पु०) मिट्टीकी एक प्रकारकी छोटी कटोरी, कसोरा।

सकोश (सं० त्रि०) अभिधानयुक्त, कोषविशिष्ट।

सकौतुक (सं० त्रि०) कौतुकेन सहवर्त्तते। कौतुकयुक्त, कौतुकविशिष्ट।

सक्कपट्टो—१मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके तिन्नेवल्ली जिलेके तेङ्काशी तालुकान्तर्गत एक नगर।

सक्कर—१ बम्बईप्रदेशके सिन्ध विभागका एक जिला। यह अक्षा० २८° २६´ उ० तथा देशा० ६८° १५´ से ७०° १४´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ५४०३ वर्गमील है। इसके उत्तर अपर सिन्ध फ्रानटियर जिला और पंजाब का बहवलपुर जिला, पूर्वमें बहवलपुर और जैसलमेर, दक्षिणमें खैरपुर राज्य और लरकाना जिला तथा पश्चिममें लरकाना और अपर सिन्ध फ्रानटियर जिला है। १९०१ ई० तक सक्कर शिकारपुर जिलेका एक हिस्सा था जिसमें १४ तालुके थे। पीछे लरकाना जिला संगठित करनेके लिये उनमेंसे सात तालुके अलग कर लिये गये और बाकी सात तालुकवाला शिकारपुर सक्कर कहलाने लगा।

इस जिलेका ऐतिहासिक विवरण शिकारपुर शब्दमें दिया जा चुका है। शिकारपुर देखो। इस जिलेमें ५ शहर और ५२३३४५ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या पांच लाखसे ऊपर है। हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे २७ और मुसलमानकी ७२ है। गेहूं, जुआर, बाजरा, चना, और तेलहन यहांकी प्रधान उपज है। जिले भरमें ५०० स्कूल हैं जिनमेंसे १ हाई स्कूल, ६ मिडिल स्कूल, २ टेकनिकल स्कूल और बाकीमें प्राइमरी स्कूल हैं। स्कूलके अलावा तीन अस्पताल और छः चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २७° ४१´ से २७° ५८´ उ० तथा देशा० ६८° ३८´ से ६९° २´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३०२ वर्गमील और जनसंख्या ९० हजारसे ऊपर है। इसमें सक्कर नामक १ शहर और ५४ ग्राम लगते हैं। यहां एक दीवानी और छः फौजदारी अदालतें हैं।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २७° ४२´ उ० तथा देशा० ६८° ५४´ पू०के मध्य रोहड़ीनगरके दूसरे किनारे सिन्धुनदके पश्चिमी किनारे अवस्थित है।

सक्कर और रोहड़ी इन दो शहरोंके मध्यभागमें नदी गर्भस्थ द्वीपके ऊपर बक्कर नामक दुर्ग अवस्थित है। इसके कुछ दक्षिण साधबेला द्वीप है। नया सक्कर शहर प्राचीन शहरसे एक मील दूर पहाड़ी प्रदेशमें बसा हुआ है। इसके पार्श्वमें बहुतसे प्राचीन समाधि-स्थानोंका भग्नावशेष दिखाई देता है। शहरके पश्चिम मीर मसूम शाहका ऊंचा मीनार पासवाली नदीके किनारेसे दृष्टिगोचर होता है। १६०७ ई०में यह मीनार बनाया गया था। सक्करमें सरकारी आफिस, सिविल अस्पताल, डिसपेन्सरी, जेलखाना, डाकघर, टेलिग्राफ आफिस, भ्रमणकारियोंका बंगला और धर्मशाला आदि हैं।

रेशमी और देशी कपासका कपड़ा, रुई, पशम, अफीम, सोरा, चीनी, नाना प्रकारके रंग और पीतलके बरतन यहांकी प्रधान वाणिज्य-सामग्री है। शिकारपुर और सक्करमें वाणिज्यादिका प्रचलन है। सिन्धु, पंजाब और दिल्ली रेलपथसे तथा सिन्धु नदीसे नाव द्वारा यहांके पण्यद्रव्य मूलतान, कराची आदि स्थानोंमें लाये जाते हैं।

प्राचीन सक्करमें पुरानी और टूटी फूटी अवस्थामें पड़ी हुई मसजिद और समाधिस्थल हैं। फिर भी इस स्थानकी प्राचीनताका दूसरा कोई भी ऐतिहासिक निदर्शन देखनेमें नहीं आता। यहां शाह खैर उद्दीन शाहका एक मकबरा है जो १७५८ ई०में बनाया गया था। १८३५ ई०में अंगरेजी सेनाकी छावनीसे नया सक्कर शहर स्थापित हुआ। इसी समय बक्कर दुर्ग यूरोपियनोंके हाथ लगा दिया गया था।

इस समयसे बक्कर धीरे धीरे श्रीसम्पन्न हो उठा। १८४५ ई०में अंगरेजीसेनाके मध्य संक्रामक ज्वरका अत्यन्त प्रादुर्भाव होनेके कारण नये सक्करसे यूरोपीय सेनाको स्थानान्तरित किया गया। किन्तु अभी सक्करमें रेलवेका केन्द्र हो जानेसे कराची, मूलतान और कन्धारके साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है। अतएव यह शहर दिन पर दिन उन्नति कर रहा है। प्राचीन सक्करके अफगानी शासन सम्बन्धमें किसी भी बातका उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु १८०६ और १८२४ ई०के मध्यवर्ती किसी भी समय प्राचीन सक्कर सम्भवतः खैरपुरके पीर उपाधिधारी मुसलमान राजाओंके शासनभुक्त हुआ था। यहां १८३३ ई०में सिंहासनच्युत दुर्रानी सरदार शाह सुजा उल् मुल्क और तालपुरके मीर राजाओंका तुमुल संग्राम हुआ था। उसमें तालपुरके मीरोंकी हार हुई थी। १८४२ ई०में प्राचीन सक्कर, कराची, ठट्ठा और रोहड़ी अंगरेजोंके हाथ आया।

सक्करी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द । शर्करी देखो ।

सक्का (अ० पु०) १ भिश्ती, माशकी । २ वह जो मशक में पानी भर कर लोगोंको पिलाता फिरता हो ।

सक्त (सं० त्रि०) सन्ज-क्त । १ अविरत । (हेम) २ आसक्त, मनोयोग, अभिनिविष्ट । ३ संलग्न, सटा हुआ, मिला हुआ ।

सक्तमूत्र (सं० पु०) चरकके अनुसार वह व्यक्ति जो थोड़ा थोड़ा करके पेशाब करे । (चरक १।२७)

सक्तव्य (सं० त्रि०) शक्तुयोग्य । (पा ५।१।२)

सक्ति (सं० स्त्री०) सञ्ज-क्ति । १ सङ्ग, आसक्ति । २ संयोग । ३ निवेश, अभिनिवेश ।

सक्तिमत् (सं० त्रि०) सक्ति अस्त्यर्थे मतुप् । १ आसक्ति-विशिष्ट । २ सङ्गयुक्त ।

सक्तु (सं० पु०) सच्यते इति सच सेचने (सितनिगमि मसिसच्यीति । उण् १.७०) इति तुन् । १ भुने हुए अनाजको पीस कर तैयार किया हुआ आटा, सत्तू । विशेष विवरण शक्तु शब्दमें देखो । २ इस नामका विष । (हेमच०)

सक्तुक (सं० पु०) सक्तुरिव कन् । १ विषभेद, एक प्रकारका विष जिसकी गाँठमें सत्तूके समान चूरा भरा रहता है । स्वार्थे क । २ शक्तु, सत्तू ।

सक्तुकार (सं० पु०) वह जो सत्तू बनाता और बेचता हो । (योगवा० रामा० २।६०।२६)

सक्तुकारिका (सं० स्त्री०) वह स्त्री जो सत्तू बनाती और बेचती हो । (निरुक्त ६।६)

सक्तुपिण्डी (सं० स्त्री०) सत्तूका बना हुआ लड्डू ।

सक्तुप्रस्थीय (सं० त्रि०) सत्तूका वाणिज्य सम्बन्धी ।

सक्तुफला (सं० स्त्री०) सक्तव एव फलानि यस्याः, अजादित्वात् टाप् । शमीवृक्ष, सफेद कीकर ।

शक्तुफली (सं० स्त्री०) सक्तव एव फलानि यस्याः, ङीप् । शमीवृक्ष, सफेद कीकर ।

सक्तुल (सं० त्रि०) सक्तु मत्वर्थे सिध्मादित्वात् लच् । (पा ५।२।६७) सक्तुयुक्त, सक्तुविशिष्ट ।

सक्तुश्री (सं० त्रि०) सत्तु द्वारा मिश्रीकृत, सत्तूसे मिला हुआ । (शुक्लयजु० ८।५७)

सक्तसिन्धु (सं० पु०) सक्तुप्रधान सिन्धु । (पा ७।३।१६)

सक्थि (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका मर्म जो शरीरके ग्यारह मर्म-स्थानोंमें माना गया है ।

सक्थिन् (सं० क्ली०) सज्यते इति सन्ज सङ्गे (असिस-ञ्जिभ्यां क्थिन । उण् ३।१५४) इति क्थिन् । १ ऊरु, जंघा । (अमर) २ शकटावयवविशेष, छकड़े या बैलगाड़ीका एक अंग या अंश । ३ अस्थि, हड्डी, हाड़ ।

सक्थिमर्मन् (सं० क्ली०) ऊरुमर्म । सुश्रुतमें लिखा है, कि इसका स्थान एकादश है; जैसे—क्षिप्र, तल, हृदय, कूर्च, कूर्चशिरस्, गुल्फ, इन्द्रवस्ति, जानु, ऊरु, लोहिताक्ष और विटप । (सुश्रुत शारीरस्था० ६ अ०) मर्म देखो ।

सक्थ्य (सं० क्ली०) समवेतयोग्य, मिलने लायक ।

सक्म्य (सं० क्ली०) सम्भजनार्ह ।

सक्रघन (हिं० पु०) इन्द्रका अस्त्र, वज्र ।

सक्रतु (सं० त्रि०) समान कर्म या प्रज्ञावाला ।

सक्रपति (हिं० पु०) विष्णु ।

सक्रसन (हिं० पु०) कुटज वृक्ष ।

सक्र सरोवर (हिं० पु०) इन्द्रकुण्ड नामक स्थान जो व्रजमें है ।

सक्रायपत्तन—महिसुर राज्यके कादुर जिलेका एक बड़ा ग्राम । यह अक्षा० १३° २६´ उ० तथा देशा० ७५° ५८´ ५´´ पू० के मध्य चिकमङ्गलूरसे १५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है । यह नगर बहुत पुराना है । यहांके लोग इसे महाभारतोक्त रुक्माङ्गद राजाकी राजधानी समझते हैं । यहां कुछ कीर्त्तिस्तम्भ हैं, जिनमेंसे होनविल्ल नामक प्रहरीकी सायाङ्कर पुष्करणीकी रक्षाके लिये उसका प्राणदान-स्मृतिज्ञापक स्तम्भ उल्लेखयोग्य है । इसके सिवा यहां एक प्राचीन कमान है । एक समय हिन्दूराजे इस स्थान पर आधिपत्य कर गये हैं । १६६० ई०में यह स्थान महिसुरके शासनाधीन हुआ । यहां प्रतिवर्ष रङ्गनाथकी रथयात्राके उपलक्षमें ३००० बकरोंकी बलि होती है ।

सक्रिय (सं० त्रि०) क्रियया सह वर्त्तते । क्रियायुक्त, क्रियाविशिष्ट ।

सक्री—बिहार और उड़ीसाके हजारीबाग जिलेकी एक नदी । यह गया और पटना जिला होती हुई उत्तरकी ओर चली गई है । हजारीबाग जिलेका जलनिकास इसी नदीसे होता है । प्रायः ८१० वर्गमील स्थानका

जल इसी नदीमें गिरता है। मुङ्गेरमें यह नदी गङ्गासे मिली है। इस नदीका जल ले कर बहुस्थानके खेतोंकी सिंचाई होती है।

सक्रुध् (सं० त्रि०) उत्तरोत्तर क्रोधनशील, क्रोधपरायण, क्रोधी।

सक्रोध (सं० पु०) क्रोधेन सह वर्त्तमानः। सकोप, क्रुद्ध, नाराज।

सक्लेश्वर (सकलेश्वर)—महिसुर राज्यके हसन जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। अक्षा० १२° ५७´ २०″ उ० तथा देशा० ७५° ५०´ ३१″ पू० हैमवतीनदीके दाहिने किनारे हसन शहरसे २३ मील पश्चिममें यह ग्राम बसा हुआ है। यहां म्युनिसपलिटी है। यह ग्राम मञ्जराबाद तालुकका प्रधान सदर तथा काफीका वाणिज्य-केन्द्र है। इस ग्रामके नीचे हिमवती नदी पर एक लोहेका पुल है।

सक्ष (सं० त्रि०) १ अतिक्रमणीय। २ पराभूत, हारा हुआ। (तैत्तिरीयस० ३।५।५।१)

सक्षण (सं० त्रि०) १ पराभूत, हारा हुआ। (ऋक् ५।४१।४) २ लब्धावसर।

सक्षणि (सं० त्रि०) सचनीय, सेव्य, सेवा करने योग्य।

सक्षम (सं० त्रि०) क्षमेण क्षमया वा सह वर्त्तमानः। १ क्षमताविशिष्ट, जिसमें क्षमता हो। २ समर्थ, काम करनेके योग्य।

सक्षार (सं० त्रि०) क्षारेण सह वर्त्तमानः। क्षारयुक्त, नमकीन।

सक्षित् (सं० त्रि०) समानकार्य्य प्राप्त।

सक्षीर (सं० त्रि०) क्षीरेण सह वर्त्तमानः। क्षीरयुक्त।

सख (हिं० पु०) १ सखा, मित्र, साथी। २ एक प्रकारका वृक्ष।

सखत्व (सं० क्ली०) सखा होनेका भाव, सखापन, मित्रता, दोस्ती।

सखर (सं० पु०) एक राक्षसका नाम।

सखरस (हिं० पु०) मक्खन, नैनू।

सखरा (हिं० पु०) १ क्षारयुक्त, खारा। २ निखराका उलटा। सखरी देखो। ३ वह भोजन जो घीमें न पकाया गया हो, कच्ची रसोई। सखरी देखो।

सखरी (हिं० स्त्री०) १ कच्ची रसोई, कच्चा भोजन। २ छोटा पहाड़, पहाड़ी।

सखा (हिं० पु०) १ वह जो सदा साथ रहता हो, साथी, संगी। २ मित्र, दोस्त। ३ सहयोगी, सहचर। ४ साहित्यमें वह व्यक्ति जो 'नायक'का सहचर हो और जो सुख दुःखमें उसके समान सुख दुःखको प्राप्त हो। ये चार प्रकारके होते हैं—पीठमर्द, विट, चेट और विदूषक।

सखावत (अ० स्त्री०) १ सखी या दाता होनेका भाव, दानशीलता। २ उदारता, फैयाज़ी।

सखि (सं० पु०) समानः ख्यायते इति समान ख्या (समाने ख्याः सचोदात्तः। उणा् ४।१३६) इति इञ्, टिलोप यलोपौ समानस्य सभावश्च, यद्वा समानः ख्यायते जनैः नाम्नोति डिः मनीषादित्वात् ख्यातेर्यलोपः समानस्य सभावः। १ सौहार्द्दयुक्त, दोस्त। पर्याय—आक्रन्द, मित्र, सुहृत्, वयस्य, सवयस्, स्निग्ध, सहचर। (हेम) २ सहाय, सहचर। जो विच्छेद सह्य नहीं कर सकता, उसे बन्धु, जो सर्वदा अनुगामी रहता, उसे सुहृद् तथा सब विषयोंमें एक कार्य्यकारी होनेसे मित्र और अपना मत एक भावका होनेसे सखा होता है। शास्त्रमें लिखा है, कि जो कोई सखाकी पत्नीके साथ गमन करता है, उसे गुरुपत्नीगमनका प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

सखिता (सं० स्त्री०) सख्युर्भावः तल्-टाप्। १ सखी होनेका भाव। २ बन्धुता, मैत्री, दोस्ती।

सखित्व (सं० क्ली०) सख्युर्भावः त्वतलौ भावे, इति त्व। बन्धुता, मित्रता, दोस्ती।

सखित्वन (सं० क्ली०) सख्यार्थ। "कंस सखित्वनाय वावश्रुः" (ऋक् ६।५१।१४) 'सखित्वनाय सख्यार्थं'। (सायण)

सखिदत्त (सं० पु०) पाणिनि वर्णित व्यक्तिभेद।

सखिपूर्व्व (सं० क्ली०) बन्धुत्व, मित्रता।

सखिल (सं० त्रि०) परिशिष्टविशिष्ट।

सखिवत् (सं० त्रि०) सखि अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वा। सहायविशिष्ट, बन्धुयुक्त।

सखिविद् (सं० त्रि०) सखि-विद्-क्विप्। यजमानक्ष।

सखिसर्वार—देरा गाजी खाँ जिलान्तर्गत एक सुप्रसिद्ध मुसलमान मसजिद। सुलेमान गिरिश्रेणीके पाददेशस्थ निर्जन और मरुमय प्रदेशमें एक पहाड़ी नदीके किनारे यह मसजिद प्रतिष्ठित है। सयेदी अहमदके सम्मानार्थ

पहले यह मसजिद बनाई गई थी, पीछे स्वयं सयैदी अहमद-के सखिसर्वारी नामसे प्रसिद्धि लाभ करने पर मसजिद भी उसी नामसे पुकारी जाने लगी। १८२० ई०में उसका पिता बागदाद नगरसे आ कर सियालकोटमें बस गया। सयैदी अहमद यहां इबादतमें मशगूल रहता था। कहते हैं, कि दिल्लीके बादशाहने उसका अलौकिक कार्यादि देख कर चार खच्चरकी गाड़ी पर लदा हुआ धन दिया था। उसी धनसे यह मसजिद बनाई गई थी। लाहोरके दो हिन्दूवणिक्ने मसजिदमें सीढ़ी बनवा दी। मन्दिर-के पास ही नदी तट तक वह सीढ़ी चली गई थी। मस-जिदमें बहुतसे घर हैं, एक घरमें सखिसर्वारका मकबरा है। इसके सिवा यहां बाबा नानकका स्मृतिचिह्न, सखि-सर्वारकी स्त्री मुसम्मात बीबी भाईका मकबरा और एक ठाकुरघर प्रतिष्ठित है। इस मसजिदमें हिन्दू और मुसल-मान स्थापत्यका निदर्शन देखनेमें आता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही श्रेणीके लोग यह मसजिद देखने आते हैं। सखिसर्वारके तीन नौकरोंके वंशधर इस मसजिदके रक्षक और सेवाइत हैं। मसजिदकी आय १६५० भागोंमें विभक्त होती है। पहले नौकरके वंशधर ७५० भाग, दूसरेके ६०० भाग और तीसरेके वंशधर ३०० भाग पाते हैं। समूचा वर्ष यहां भक्तोंका मेला लगा रहता है। यहां खानेकी वस्तु बहुत मंहगी मिलती है।

सखी (सं० स्त्री०) सख्य (श्विखीति भाषायां। पा ४।१।६२) इति ङीष्। १ सहचरी, सहेली। पर्याय—आलि, वयस्या, सध्रीची। (हेम) २ साहित्य ग्रन्थोंके अनुसार वह स्त्री जो नायिकाके साथ रहती हो और जिससे वह अपनी कोई बात न छिपावे। सखीका चार प्रकारका कार्य होता है—मण्डन, शिक्षा, उपालम्भ और परिहास। ३ एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १४ मात्राएं और अन्तमें १ मगण या १ यगण होता है। इसकी रचनामें आदिसे अन्त तक दो दो कलें होती हैं—२+२+२+२+२+२ और कभी कभी २+३+३+२+२+२ भी होता है और विराम ८ और ६ पर होता है। विराम भेदके अनुसार कवियोंने इसके दो भेद किये हैं—(१) चिजात और (२) मनोरम।

सखी (अ० वि०) दाता, दानी।

सखीभाव—वैष्णवोंका भगवद्भजनप्रकारविशेष। वृन्दावन-में श्रीराधाकी सखियोंने श्रीकृष्णके प्रति जैसी निर्लिप्त और निस्पृह ऐकान्तिक आसक्तिसे प्रेम किया था, श्रीभगवान्‌के ऊपर उसी भावमें चित्तार्पण करनेका नाम सखीभाव है। गौड़ीय वैष्णवोंकी व्रजोपासनामें सच्चिदा-नन्द रसमूर्त्ति श्रीश्री राधाकृष्णलीलाविलासका आस्वा-दन केवल सखियोंका ही सम्भोग्य है। सखीको छोड़ इस लीलाविलासमें दूसरे किसीको भी प्रवेशाधिकार नहीं है।

सखुआ (हिं० पु०) शाल वृक्ष, साखू। शाल देखो।

सखुन (फा० पु०) १ वार्त्तालाप, बातचीत। २ कविता, काव्य। ३ कौल, वचन। ४ कथन, उक्ति।

सखुनचीन (फा० पु०) चुगुलखोर, चवाई, इधर उधर बात लगानेवाला।

सखुनचीनी (फा० स्त्री०) सखुनचीनका भाव; चुगुल-खोर, चवाव।

सखुनतकिया (फा० पु०) वह शब्द या वाक्यांश जो कुछ लोगोंकी जबान पर ऐसा चढ़ जाता है, कि बातचीत करनेमें प्रायः मुंहसे निकला करता है, तकिया कलाम। बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जो बातचीत करनेमें बार बार "जो है सो" "क्या नाम" "समझ लीजिए कि" आदि कहा करते हैं। ऐसे ही शब्दों या वाक्यांशोंको सखुन-तकिया कहते हैं।

सखुनदां (फा० पु०) १ वह जो सखुन या काव्य अच्छी तरह समझता हो, काव्यका रसिक। २ वह जो बातचीत-का मर्म अच्छी तरह समझता हो।

सखुनदानी (फा० स्त्री०) १ बातचीतकी समझदारी। २ काव्य मर्मज्ञता, काव्य-रसिकता।

सखुनपरवर (फा० पु०) १ वह जो अपनी कही हुई बात-का सदा पालन करता हो, जबानका बातका धनी। २ वह जो अपनी कही हुई अनुचित या गलत बातका भी बार बार समर्थन करता हो, हठी, जिद्दी।

सखुनशनास (फा० पु०) १ वह जो सखुन या काव्य भली भांति समझता हो, काव्यका मर्मज्ञ। २ वह जो बातचीतका मर्म बहुत अच्छी तरह समझता हो।

सखुनसंज (फा० पु०) १ वह जो बात समझता हो। २ वह जो काव्य समझता हो।

सखुनसञ्जी (सं० स्त्री०) सखुनसंगका भाव।

सखुनसाज (फा० पु०) १ वह जो सखुन कहता हो, कवि, शायर। २ वह जो सदा झूठो बातें गढ़ता हो अपने मनसे झूठी बातें बना कर कहनेवाला।

सखुनसाज़ी (फा० स्त्री०) १ सखुनसाजका भाव या काम २ कवि होनेका भाव या काम। ३ झूठी बात गढ़नेका गुण या भाव।

सखेद (सं० त्रि०) खेदेन सह वर्त्तमानः। खेदयुक्त, दुःखी।

सखेरा—बड़ोदा राज्यका एक शहर। यहां एक छोटा दुर्ग है। १८०२ ई०में बहुतेरे वृटिश सैन्योंने यह दुर्ग अपने कब्जेमें कर लिया। सखेराका छींट तथा रंगा हुआ कपड़ा बहुत प्रसिद्ध है। इसके अलावा काठ पर खुदाईका काम यहां सुचारुरूपसे होता है।

सखोल (सं० क्ली०) राजतरंगिणीके अनुसार एक प्राचीन नगरका नाम। (राजतर० १।३४२)

सख्य (सं० क्ली०) सख्युर्भावः कर्म्म वा सखि-यत्। १ सखाका भाव, सखत्व, सखापन। पर्याय—सौहार्द, साप्तपदीन, मैत्र, अजर्य, सङ्गत। २ वैष्णव मतानुसार ईश्वरके प्रति वह भाव जिसमें ईश्वरावतारको भक्त अपना सखा मानता है। ३ पल। (भैषज्यरत्ना०)

सख्यता (सं० स्त्री०) मैत्री, दोस्ती।

सग (फा० पु०) कुक्कुर, कुत्ता।

सगज़ुबान (फा० पु०) वह घोड़ा जिसकी जीभ कुत्तेके समान पतली और लम्बी हो। ऐसा घोड़ा प्रायः ऐबी समझा जाता है।

सगड़ी (हिं० स्त्री०) छोटा सग्गड़।

सगण (सं० त्रि०) गणेन सह वर्त्तते। १ गणयुक्त, फल-विशिष्ट। (शुक्लयजुः २५।४६) (पु०) २ छन्दःशास्त्रमें एक गण। इसमें दो लघु और एक गुरु अक्षर होते हैं। इस गणका प्रयोग छन्दके आदिमें अशुभ है। इसका रूप ॥ऽ है।

सगदा (हिं० पु०) एक प्रकारका मादक द्रव्य जो अनाजसे बनाया जाता है।

सगद्गद (सं० त्रि०) गद्गद वाक्यविशिष्ट, गद्गद वाक्ययुक्त।

सगन (सं० पु०) १ सगण देखो। २ शकुन देखो।

सगनौती (हिं० स्त्री०) शकुनौती देखो।

सगन्ध (सं० पु०) गन्धेन सह वर्त्तमान इति। १ ज्ञाति। (त्रिकां०) (त्रि०) २ गन्धयुक्त, जिसमें गन्ध हो, महकदार। ३ गर्वविशिष्ट, जिसे अभिमान हो, अभिमानी।

सगन्धा (सं० स्त्री०) सुगन्ध शालि, बासमती चावल।

सगन्धिन् (सं० त्रि०) सगन्ध अस्त्यर्थे इनि। गन्ध-विशिष्ट, जिसमें गन्ध हो, महकदार।

सगपन (हिं० पु०) सगापन देखो।

सगपहती (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी दाल जो साग मिला कर बनाई जाती है। प्रायः लोग सगपहती बनानेके लिये उड़दकी दालमें सोआ पालक या बथुएका साग मिलाते हैं। कभी कभी अरहरकी दाल भी मिला कर बनाई जाती है।

सगपिस्ताँ (फा० पु०) बहुवार, लिसोड़ा।

सगपु (सं० पु०) अमरवल्ली।

सगबग (हिं० वि०) १ सराबोर, लथपथ। २ द्रवित। ३ परिपूर्ण। (क्रि० वि०) ४ तेजीसे, जल्दीसे, चटपट।

सगबगाना (हिं० क्रि०) १ लथपथ होना, किसी वस्तुसे भीगना या सराबोर होना। २ शंकित होना, भयभीत होना, सकपकाना।

सगभत्ता (हिं० पु०) एक प्रकारका भात जो साग मिला कर बनाया जाता है। इसमें पकाते समय चावलमें साग मिला देते हैं।

सगर (सं० पु०) गरेण सह वर्त्तमानः। १ अर्हद्भेद। २ सूर्यवंशीय राजविशेष, अयोध्यापति बाहुराजपुत्र। पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें सगर राजाका उत्पत्ति विवरण इस प्रकार लिखा है,—सूर्यवंशमें बाहु नामक प्रबल पराक्रान्त एक राजा थे। इनकी स्त्रीका नाम यादवी था। एक दिन हैहय, तालजङ्घ, कम्बोज, पह्लव, पारद, यवन और शक सबोंने मिल कर बाहु राजाके राज्य पर चढ़ाई कर दी। युद्धमें बाहु परास्त हुए। पीछे पत्नीके साथ भाग कर उन्होंने वनमें आश्रय लिया। इस समय उनकी

को गर्भिणी थी। यादवकी सपत्नीको जब मालूम हुआ, कि यादवीके गर्भ रह गया है, तब उसने उसको विष पिला दिया था, किन्तु दैवशक्तिसे यादवी विषपान करके भी मृत्युमुखमें पतित न हुई और न उनका गर्भस्थ सन्तानका कोई अनिष्ट ही हुआ। राजा बाहु राज्यभ्रष्ट हो वनक्लेशका सहन न कर सकनेके कारण पञ्चत्वको प्राप्त हुए। रानी यादवी स्वामीकी चिता तैयार कर उन्हींके साथ सती होनेवाली थी। इसी समय ऋषि और्वने उन्हें इस काममें रोका। यादवी मान गई और और्वके आश्रममें जा कर रहने लगी। समय पूरा होने पर यादवीने विषके साथ एक पुत्र प्रसव किया। और्वने उसका जातकर्मादि संस्कार कर गर अर्थात् विषके साथ उत्पन्न होनेके कारण सगर नाम रखा। पीछे और्वने उनका यथाविधि संस्कारकार्य सम्पन्न कर उन्हें अखिल वेद और सभी शास्त्रोंकी शिक्षा दी। सगर अस्त्रशस्त्रमें विशेष पारदर्शिता लाभ कर हैहय आदिको युद्धमें परास्त कर एक कर एक उन्हें यमपुर भेजने लगे। इस पर उन्होंने अत्यन्त भयभीत हो कर वशिष्ठ देवकी शरण ली। वशिष्ठदेवने उन्हें अभय दे कर सगरको इस काममें रोका। इस पर सगरने उन लोगोंका धर्म नाश कर उन्हें दूसरा वेश धारण कराया। तभीसे शकगण अर्द्धशिरा मुण्डित, यवन और कम्बोज सर्वशिरा मुण्डित, पारद मुक्तकेश और पह्लव श्मश्रुधारी इत्यादि वेशोंमें विराजित हुए। किन्तु वे सबके सब तभीसे वेदरहित और धर्मच्युत हो रहे। राजा सगर इस प्रकार शत्रुओंको परास्त कर राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए थे।

महाभारतमें इनका विवरण कुछ स्वतन्त्र भावमें लिखा है। इक्ष्वाकुवंशमें सगर नामक एक राजाने जन्म लिया। इनके वैदर्भी और शैब्या नामकी दो पत्नी थीं। ये हैहय और तालजङ्घ आदिको समूल नष्ट कर राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। किन्तु कोई सन्तान न रहनेके कारण वे बड़े कष्टसे दिन बिताने लगे। पीछे उन्होंने यह स्थिर किया, कि देवताके प्रसन्न नहीं होनेसे पुत्रलाभका कोई उपाय नहीं है। इस कारण वे दोनों स्त्रियोंके साथ महादेवके उद्देशसे कठोर तपस्या करने लगे। उनकी तपस्यासे प्रसन्न हो महादेवने सगरके पास आ कर उन्हें वर दिया कि, तुम्हारी इन दो पत्नियोंमें एक पत्नीसे अति बलवान् साठ हजार पुत्र होंगे तथा उन सब पुत्रोंका एक साथ नाश होगा। दूसरी पत्नीसे शौर्यशील एक वंशधर जन्म लेगा।

इसके बाद राजा सगर अत्यन्त प्रसन्न हो कर दोनों पत्नियोंके साथ घर लौटे। यथा समय दोनों ही रानी गर्भवती हुईं। कुछ समय बाद वैदर्भीने एक कद्दू और शैब्याने कार्त्तिकके समान देवरूपी एक पुत्र प्रसव किया। पुत्रका नाम असमञ्जा रखा गया। राजा जब उस कद्दूको बहुत दूर फेंकनेको तैयार हुए, तब अन्तरीक्षसे दैववाणी हुई 'हे राजन्! तुम इस कद्दूको मत फेंको। इसमेंसे सभी बीज निकाल कर उन्हें पृथक् पृथक् घृतपूर्ण उष्ण पात्रमें यत्नपूर्वक रखो। उन बीजोंसे तुम्हें साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे। देववाक्य अन्यथा होनेको नहीं। महादेवने इसी नियमानुसार तुम्हें पुत्र होनेका उपदेश दिया है।'

राजा सगरने अन्तरीक्षसे यह दैववाणी सुन कर उस कद्दूमेंसे सभी बीज निकाल लिये और एक एक कर पृथक् पृथक् घृतकुम्भमें रखे। पीछे उन्होंने उनकी देख भाल करनेके लिये एक एक कुम्भके पास एक एक धात्री नियुक्त कर दी। इस प्रकार बहुत दिन बीत जानेके बाद महाबलिष्ठ पुत्र कुम्भसे निकले। कुछ समय बाद वे सब पुत्र अत्यन्त बलवान् और कर्मवीर हो देवदानवोंके प्रति भीषण अत्याचार करने लगे। इन लोगोंके अत्याचारसे सभी लोग भारी कष्ट पाने लगे। देवताओंने उनके अत्याचारको सहन न कर सकनेसे ब्रह्माकी शरण ली। आखिर ब्रह्माने उनसे कहा, 'तुम लोग अपने अपने आश्रममें जाओ, अभी इसका प्रतिविधान होगा।

अनन्तर कुछ दिन बीत जाने पर राजा सगरने अश्वमेध यज्ञ ठान दिया। यज्ञीय घोड़ेके साथ उनके साठ हजार लड़के पृथिवी पर विचरण करने निकले। वह घोड़ा समुद्रमें जा कर अन्तर्हित हो गया। पीछे राजपुत्रोंने पिताके पास जा कर उस घोड़ेके अपहृत और अदृश्य हो जानेकी बात उनसे कह दी। राजाने उन्हें कहा, 'तुम लोग चारों ओर उसकी तलाश करो।' अनन्तर उन लोगोंने पिताके आज्ञानुसार सभी दिशाओंमें भ्रमण

कर सारी पृथ्वी पर उसका अन्वेषण किया, किन्तु घोड़ या घोड़े के चुरानेवालेका पता न चला। आखिर सबोंने मिल कर पिताके पास आ उनसे कहा, 'पिताजी! हम लोगोंने आपके आज्ञानुसार समुद्र, नद, नदी, द्वीप, पर्वत, कन्दर, वन, उपवन और पृथिवी तमाम ढूंढा, पर कहीं भी घोड़ेका पता न लगा।

राजा सगर उन लोगोंकी यह बात सुन कर बहुत क्रोधित हुए और उन लोगोंसे बोले, 'विना घोड़ेके लौट आना तुम लोगोंको उचित न था, इसलिये फिर जा कर समस्त लोकमें इसका अन्वेषण करो। वह यज्ञका घोड़ा है, विना उसके यज्ञ किस प्रकार शेष होगा? अतः तुम लोग अभी उसकी खोजमें फिर निकलो, देर न करो।' अनन्तर सगरके पुत्रोंने पिताके आज्ञानुसार पुनः घोड़ेको ढूंढ निकालनेके लिये सारी पृथ्वी पर परिभ्रमण किया। किन्तु कहीं भी वह यज्ञीय अश्व देखनेमें न आया। आखिर वे लोग पर्यटन करते करते समुद्रके किनारे आये और वहां एक जगह उन्हें पृथिवी फटी हुई दिखाई दी। पीछे वे बड़े यत्नसे कुदाली ले कर वह गड्ढा खोदने लगे। इससे समुद्रको चोट पहुंची और वह बहुत दुःखित हुआ तथा असुर, पन्नग और राक्षसादि सभी प्राणी सगरके पुत्रके अत्याचारसे आर्त्तनाद करने लगे। हजारों प्राणीके मस्तक छिन्न हो गये, देह भग्न हो गई तथा चमड़े, अस्थि और सन्धि-स्थल भिन्न दिखाई देने लगे। सगरके पुत्रोंके इस प्रकार समुद्र खनन करनेमें बहुत समय बीत गये। किन्तु कहीं भी घोड़ा नहीं मिला। अनन्तर उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध हो पूर्व-उत्तरप्रदेशमें पातालतलको फाड़ डाला और वहां उस घोड़ेको भूपृष्ठ पर विचरण करते तथा तेजोराशिस्वरूप महात्मा कपिल मुनिको ज्वालाप्रदीप्त पावकको तरह देखा। राजपुत्रोंने उस घोड़ेको देख कपिलदेवकी अवज्ञा की और घोड़ेको लेनेको लिये तैयार हो गये। उस समय कपिलदेवने आंखें फाड़ कर उन लोगोंकी ओर देखा और साठों हजार सगरपुत्र उसी समय जल कर खाक हो गये।

पहले असमञ्जा दुर्बल बालकोंका गला पकड़ कर एक कोस दूर नदीमें फेंक आता था। इससे नगरवासियोंने भयभीत हो राजा सगरसे कहा था, कि आप हम लोगोंको सभी भयसे त्राण करते आये हैं, अभी असमञ्जाके अत्याचारसे हम लोग तंग तंग आ गये हैं। राजाने इस दुर्व्यवहारकी बात सुन कर पुत्रको निर्वासित किया। उसीका पुत्र अंशुमान था।

इधर देवर्षि नारद कपिल द्वारा साठ हजार सगरके पुत्रोंका भस्म वृत्तान्त सुन कर सगरके पास गये और उन्हें यह समाचार कह सुनाया। राजा सगर पुत्रोंके मृत्युसंवाद सुन कर बड़े दुःखित हुए और यज्ञसमाप्तिके विषयकी चिन्ता करने लगे। पीछे उन्होंने शैव्याके गर्भजात असमञ्जाके पुत्र अंशुमानको बुला कर कहा, वत्स! अमित तेजस्वी साठ हजार पुत्र कपिलदेवके क्रोधसे भस्म हो गये हैं। मैंने अपनी धर्मरक्षाके लिये पुरवासियोंके हितार्थ तुम्हारे पिताको निर्वासित कर दिया है। इसलिये अभी यज्ञीय अश्व ला कर जिससे यज्ञ समाप्त हो, उसीका उपाय करो। अंशुमान् पितामहके वाक्यानुसार समुद्र पथसे कपिलके पास गये और उन्हें विविध प्रकारके स्तव कर प्रसन्न किया। कपिलदेवने संतुष्ट हो कर उन्हें वर मांगने कहा। अंशुमानने पितामहके यज्ञीय अश्व और पितरोंके उद्धारके लिये प्रार्थना की। कपिलदेवने बड़े प्रसन्न हो कर कहा, 'तुम्हारा अभिलाष सिद्ध होगा। राजा सगर तुम्हारे ही द्वारा यज्ञ समाप्त करेंगे। सगरके साठ हजार पुत्र तुम्हारे ही प्रभावसे स्वर्गगामी होंगे। तुम्हारा पौत्र सगरके पुत्रोंको पवित्र करनेके लिये महादेवको आराधना कर गङ्गाको यहां लावेगा।' अनन्तर अंशुमान कपिलदेवसे विदा हो घोड़ेके साथ सगरके पास पहुंचे। राजाने वह अश्व पा कर यज्ञ समाप्त किया। पीछे उन्होंने बहुत दिनों तक राज्यशासन कर पौत्र पर राज्यभार सौंप स्वर्गयात्रा की।

अंशुमान्‌के पुत्र दिलीप थे। दिलीपने पितरोंका उद्धार करनेके लिये गंगा लानेकी बड़ी चेष्टा की, किन्तु वे कुछ भी कृतार्थ न हो सके। पीछे दिलीपके पुत्र भगीरथने गङ्गाको ला कर सगरके साठ हजार पुत्रोंका उद्धार किया। (भारत वनपर्व १०५-९ अ०)

रामायणके आदिकाण्डमें ४० सर्ग तक सगरका उपा-

ध्यान आया है। रामायणके मतमें विशेषता यह है, कि राजा सगरने अंशुमान्‌के मुखसे ही पुत्रोंका मृत्युसंवाद सुना तथा यज्ञीय अश्व न पा कर कल्पसूत्रोक्त विधानके अनुसार यज्ञ समाप्त किया था।

(त्रि०) ३ गर अर्थात् विषके साथ वर्त्तमान, विष युक्त।

सगर (हिं० पु०) १ तालाव। २ झील।

सगरी (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरीका नाम।

सगर्भ (सं० पु०) समानो गर्भो यस्य, समानस्य स आदेशः। १ एक ही गर्भसे उत्पन्न, सहोदर, सगा। (शब्दरत्ना०) २ अन्तर्गत सूक्ष्मपत्रादियुक्त। ३ गर्भ विशिष्ट।

सगर्भा (सं० स्त्री०) १ गर्भवती स्त्री, वह स्त्री जिसे गर्भ हो। २ सहोदरा, सगी बहन।

सगर्भ्य (सं० पु०) समानगर्भे-भवः (सगर्भसयूथसनुतात् यन्। पा ४।४।११४) इति यन्। १ सहोदर, एक ही गर्भमें उत्पन्न। (शुक्लयजु० ४।२०)

सगवती (सं० स्त्री०) खानेका मांस, गोश्त।

सगवा (हिं० पु०) शोभाञ्जन, सहिंजन।

सगर्व्व (सं० त्रि०) गर्व्वेण सह वर्त्तमानः। अहङ्कारी, अभिमानी।

सगा (हिं० वि०) १ एक मातासे उत्पन्न, सहोदर। २ जो सम्बन्धमें अपने ही कुलका हो, बहुत ही निकटके सम्बन्धका।

सगाई (हिं० स्त्री०) वह निश्चय कि अमुक कन्याके साथ अमुक वरका विवाह होगा, विवाहसम्बन्धी निश्चय, मंगनी। २ स्त्री-पुरुषका वह सम्बन्ध जो छोटी जातियों-में विवाह होके तुल्य माना जाता है। प्रायः ऐसा सम्बन्ध विधवा या पति-परित्यक्ता स्त्रीके साथ होता है। ३ सम्बन्ध, नाता, रिश्ता।

सगाना (फा० पु०) खञ्जन पक्षी, ममोला।

सगापन (हिं० पु०) सगा होनेका भाव, सम्बन्धकी आत्मीयता।

सगावी (फा० स्त्री०) १ एक प्रकारका नेवला। २ ऊद-बिलाव नामक जंतु जो पानीमें रहता है।

सगायत (हिं० स्त्री०) सगा होनेका भाव, सम्बन्धकी आत्मीयता, सगापन।

सगु (सं० त्रि०) गायमें सांड़का संगम।

सगुण (सं० त्रि०) गुणैः सह वर्त्तमानः। १ गुणयुक्त गुणवान्। २ (पु०) ३२ परमात्मा वह रूप जो सत्त्व, रज और तम तीनों गुणोंसे युक्त है, साकार ब्रह्म। ३ वह सम्प्रदाय जिसमें ईश्वरका सगुण रूप मान कर अवतारोंकी पूजा होती है। मध्यकालसे उत्त रीय भारतमें भक्तिमार्गके दो भिन्न सम्प्रदाय हो गये थे। एक ईश्वरके निर्गुण निराकार रूपका ध्यान करता हुआ मोक्षकी प्राप्तिकी आशा रखता था और दूसरा ईश्वरका सगुणरूप राम, कृष्ण आदि अवतारोंमें मान कर उनकी पूजा कर मोक्षकी इच्छा रखता था। पहले मतके कबीर, नानक आदि मुख्य प्रचारक थे और दूसरेके तुलसी, सूर दास आदि।

सगुणता (सं० स्त्री०) सगुण होनेका भाव, सगुण पन।

सगुणवती (सं० स्त्री०) सगुण मतुप् मस्य व, स्त्रियां ङीप्। सगुणविशिष्टा, गुणवती।

सगुणा (सं० स्त्री०) गुणविशिष्टा, गुणवती।

सगुणिन् (सं० त्रि०) सगुण अस्त्यर्थे इनि। सगुण-विशिष्ट, गुणयुक्त।

सगुन (हिं० पु०) १ शकुन देखो। २ सगुण देखो।

सगुनाना (हिं० क्रि०) १ शकुन बतलाना। २ शकुन निकालना या देखना।

सगुनिया (हिं० पु०) वह मनुष्य जो लोगोंको शकुन बत-लाता हो, शकुन विचारने या बतलानेवाला।

सगुनौती (हिं० स्त्री०) प्रचलित विश्वासके अनुसार वह क्रिया जिससे भावी शुभाशुभका निर्णय किया जाता है, शकुन विचारनेकी क्रिया।

सगृह (सं० त्रि०) गृहेण सह वर्त्तमानः। १ गृहयुक्त, घरवाला। २ सपत्नीक, जिसकी स्त्री वर्त्तमान हो।

सगोती (हिं० पु०) १ एक गोत्रके लोग, सगोत्र। २ आपसदारोंके या रिश्ते नातेके लोग, भाई बन्धु।

सगोत्र (सं० क्ली०) समानं गोत्रमिति समानस्य स-आ-देशः। कुल। (पु०) समानं गोत्रमस्य (ज्योतिर्जनपद वा नीति। पा ६।३।८५) इति समानस्य सः। २ सजातीय, एक गोत्रका।

सगोनीमर (हिं० पु०) शालवृक्ष, सागौन।

सगोष्ठी (सं० स्त्री०) जिसकी गोष्ठी वर्त्तमान हो।
सगौती (हिं० स्त्री०) खानेका मांस, गोश्त।
सगौरव (सं० त्रि०) गौरवविशिष्ट, गुरुतायुक्त।
सग्धि (सं० स्त्री०) सहभोजन, एकत्र भोजन।
सग्म (सं० पु०) यजमान। (शुक्ल यजु० ४।२६)
सघ—बौद्ध यतिभेद। (तारनाथ)
सघन् (सं० पु०) गृध्रिनी, शकुनि।
सघन (सं० त्रि०) १ घना, अविरल, गुंजान। २ ठोस, ठस।
सघनता (सं० स्त्री०) सघन होनेका भाव, निविड़ता।
सघृण (सं० त्रि०) घृणया सह वर्त्तमानः। घृणायुक्त, घृणाविशिष्ट।
सङ्कक्षिका (सं० स्त्री०) बौद्धोंका परिधेय वासविशेष।
सङ्कट (सं० त्रि०) सम् (संप्रोदश्च कटच्। पा ५।२।२९) वा सम्यक् कटति आवृणोतीति सङ्कटं अच्। १ आपद्-जनक, दुःखदायी। २ सङ्कीर्ण, संकरा, तंग। ३ जनता-युक्त, घनीभूत। ४ एकत्रित, एकत्र किया हुआ। ५ निविड़। ६ अभेद्य, अनुत्तीर्य। (क्लीं०) ७ विपत्ति, आफत, मुसीबत। ८ दुःख, कष्ट, तकलीफ। ९ समूह, भीड़। १० वह तंग पहाड़ी रास्ता जो दो बड़े और ऊंचे पहाड़ोंके बीचसे हो कर गया हो।
सङ्कटचतुर्थी (सं० स्त्री०) व्रतविशेष। श्रावण मासकी कृष्णा चतुर्थीमें यह व्रत करना होता है।
सङ्कटस्थ (सं० त्रि०) १ विपद्ग्रस्त, संकटमें पड़ा हुआ। २ दुःखी।
सङ्कटा (सं० स्त्री०) सम्यक् कटति आवृणोति या सम् कट्-अच् टाप्। देवीविशेष, सङ्कटा देवी। बड़े सङ्कट-में पड़ कर इस देवीकी पूजा करनेसे सङ्कटका निवारण होता है, इसीसे यह देवी सङ्कटा नामसे पूजित होती है। वाराणसीमें यह देवी प्रसिद्ध है। मनस्कामनाकी सिद्धिके लिये हिन्दू रमणियाँ सङ्कटाव्रत करती हैं। पहले अग्र-हायण मासके शुक्लपक्षके शुक्रवारको सङ्कटाव्रत आरम्भ करना होता है। इसके बाद प्रति वर्ष उसी मासके शुक्लपक्षके शुक्रवारको अन्यान्य मासके शुक्लपक्षमें भी इस देवी-पूजाका विधान है। देवीकी पूजाके बाद स्त्रियाँ पारणस्वरूप केवल मुखमें धूल रख कर व्रत समाप्त करती है। उक्त मासमें उसी दिन विना नमककी खिचड़ी पका कर खानेका विधान है।

२ ज्योतिषके मतसे आठ योगिनियोंमेंसे एक योगिनी।
सङ्कटाक्ष (सं० पु०) सङ्कट अक्षतीति अक्ष व्याप्तौ अण्। धववृक्ष, धौका पेड़।
सङ्कटिक (सं० त्रि०) सङ्कट-सम्बन्धी।
सङ्कटिन् (सं० त्रि०) सङ्कट (प्रेक्षादित्वादिन। पा ४।२।८०) सङ्कटयुक्त, विपद्ग्रस्त।
सङ्कथन (सं० क्लीं०) सम्यक कथनं। सम्यक् भाषण।
सङ्कथा (सं० स्त्री०) १ सम्यक् कथा। २ परस्पर भाषण।
सङ्कर (सं० पु०) सङ्कीर्यते इति संकॄ-विक्षेपे अप्। १ सम्मार्जनी द्वारा क्षिप्त धूलि प्रभृति, वह धूल जो झाड़ देनेके कारण उड़ती है।

पर्याय—अवकर, सङ्कार। (शब्दरत्ना०) २ मिश्रित-तत्त्व, मिश्रण, मिलन। ३ अग्नि-चटत्कार, आगके जलने-का शब्द। ४ नैयायिकोंके मतसे परस्पर अत्यन्ताभाव और समानाधिकरणका ऐकाधिकरण्य। ५ वर्णसङ्कर जाति। विभिन्न वर्णके संसर्गसे जिसका जन्म होता है, उसीको सङ्करवर्ण कहते हैं। वर्णसङ्कर देखो।

जिस राज्यमें वर्णदूषक सांकर वर्ण उत्पन्न होता है, वह राज्य जल्दी ही चौपट हो जाता है। इसलिये राज्यमें जिससे सङ्करवर्णकी सृष्टि होने न पावे, उस ओर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये।

५ शब्द और अलङ्कारोंका मिश्रण। एक जगह दो वा तीन अलङ्कार मिश्रित होनेसे सङ्कर कहलाता है। इस अलङ्कारका मिश्रण सङ्कर और संसृष्टि भेदसे दो प्रकार-का है। संसृष्टि शब्द देखो।

अलङ्कारोंके एकत्र मिश्रित होनेसे उन्हें संसृष्टि और सङ्कर कहते हैं। यह व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त भेदसे तीन प्रकारका है। जैसे,—तिल तण्डुल और छायादर्श अर्थात् तिल और तण्डुल पृथक् पृथक् हैं, फिर एक साथ भी हैं। दर्पण और प्रतिबिम्ब यह एकत्र है, फिर पृथक् भी है, इसीका नाम व्यक्त है। अलङ्कारका इस प्रकार मिश्रण जहां होता है, वहां

संसृष्टि हुई है, ऐसा कहना होगा। क्षीर और जल, पांशु और पानीय इनके मिश्रणसे एकीभाव प्राप्त होता है, इसीलिये इनका नाम अव्यक्त है। इस प्रकार अव्यक्त मिश्रण होनेसे सङ्कर होगा। (भोजराज)

सङ्करक (सं० त्रि०) मिश्रणशील, मिलनेवाला।

सङ्करकृत्या (सं० स्त्री०) सङ्करीकरण। (मनु ११।१२६)

सङ्करता (सं० स्त्री०) सङ्करस्य भावः तल-टाप्। संकर होनेका भाव या धर्म, साङ्कर्य, मिलावट।

सङ्कराश्व (सं० पु०) खच्चर।

सङ्करित (सं० त्रि०) मिश्रित, जिसमें मिलावट हो, मिला हुआ।

सङ्करिन् (सं० त्रि०) जो भिन्न वर्ण या जातिके पिता और मातासे उत्पन्न हो, सङ्कर, दोगला। (भारत शान्तिपर्व) (स्त्री०) २ शङ्करी देखो।

शङ्करी (सं० स्त्री०) सं-कृ-अप्, गौरादित्वात् ङीष्। नवदूषित कन्या। (मेदिनी)

सङ्करीकरण (सं० क्ली०) असङ्करः सङ्करः क्रियतेऽनेनेति सङ्कर-कृ ल्युट्, अभूततद्भावे च्वि। १ नौ प्रकारके पापोंमेंसे एक प्रकारका पाप। गधे, घोड़े, ऊंट, मृग, हाथी, बकरी, भेड़ा, मीन, साँप या भैंसेका वध करनेसे यह पाप होता है। प्रायश्चित्तविवेकमें लिखा है, कि इस सङ्करीकरण पापका अनुष्ठान किये जाने पर उसके प्रायश्चित्त स्वरूप एक महीना जौ भोजन तथा कृच्छ्र या अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्त करनेसे इस पापकी शुद्धि होती है। २ एकीकरण, दो पदार्थोंको एकमें मिलानेकी क्रिया। ३ जातिभ्रंशकरण।

सङ्कर्ष (सं० पु०) सङ्कृ-घञ्। सम्यक् कर्षण, आकर्षण।

सङ्कर्षण (सं० पु०) सम्यक् कर्षतीति संकृष-ल्यु। १ कृष्णके भाई बलरामका एक नाम। २ आकर्षण, खींचनेकी क्रिया। ३ कृषिकर्म, हलसे जोतनेकी क्रिया। ४ एकादश रुद्रोंमेंसे एक रुद्रका नाम। ५ वैष्णवोंका एक सम्प्रदाय। इसके प्रवर्त्तक निम्बार्कजी थे।

सङ्कर्षण—सत्यनाथमाहात्म्यरत्नाकर तथा सत्यनाथाभ्युदय और उसकी टीकाके रचयिता। ये शेषाचार्यके पुत्र थे।

शङ्कर्षणशरण—वैष्णवधर्मसुरद्रुममञ्जरीके प्रणेता।

सङ्कर्षणसूरि—नृसिंहचम्पूके प्रणेता।

सङ्कर्षणेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष। (हेम)

सङ्कर्षिन् (सं० त्रि०) सम्यक् रूपसे आकर्षणकारी, खूब खींचनेवाला।

सङ्कल (सं० पु०) सं-कल-भावे-अल्। १ सङ्कलन, बहुतसी चीजोंको एक स्थान पर एकत्र करना। २ योग, मिलाना। ३ गणितकी एक क्रिया जिसे जोड़ कहते हैं। सङ्कलन देखो।

सङ्कलन (सं० क्ली०) सं-कल-ल्युट्। १ एकत्रीकरण, योजन। लीलावतीमें लिखा है, कि 'संयोजनायुतां सङ्कलन" संयोजन अर्थात् एकत्र मिलन या योग होता है, इसलिये इसे सङ्कलन कहते हैं। २ संग्रह, ढेर। ३ अनेक ग्रन्थोंसे अच्छे अच्छे विषय चुननेकी क्रिया। ४ वह ग्रन्थ जिसमें ऐसे चुने हुए विषय हों।

सङ्कलित (सं० त्रि०) सं-कल-क्त। १ लेखादि द्वारा संवृत। पर्याय—संगूढ़। (अमर) २ योजित, जोड़ लगाया हुआ। ४ एकत्र किया हुआ, इकट्ठा किया हुआ।

सङ्कलितिन् (सं० त्रि०) सङ्कलित देखो।

सङ्कलुष (सं० पु०) साङ्कर्य पाप।

सङ्कल्प (सं० पु०) १ कार्य करनेकी वह इच्छा जो मनमें उत्पन्न हो, विचार, इरादा। २ दान, पुण्य या और कोई देवकार्य आरम्भ करनेसे पहले एक निश्चित मन्त्रका उच्चारण करते हुए अपना दृढ़ निश्चय या विचार प्रकट करना। ३ वह मन्त्र जिसका उच्चारण करके इस प्रकारका निश्चय या विचार प्रकट किया जाता है। इस मन्त्रमें प्रायः सम्वत्, मास, तिथि, वार, स्थान, दाता या कर्त्ताका नाम, उपलक्ष और दान या कृत्य आदिका उल्लेख होता है। ४ दृढ़ निश्चय, पक्का विचार। ५ सङ्कल्पाके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश) ६ ब्रह्माके एक पुत्रका नाम।

सङ्कल्पक (सं० त्रि०) सङ्कल्पविशिष्ट।

सङ्कल्पजन्मन् (सं० पु०) सङ्कल्पात् जन्म यस्य। कामदेव, कन्दर्प।

सङ्कल्पन (सं० क्ली०) सङ्कल्प ल्युट्। सङ्कल्प, अभिलाषा, इच्छा।

सङ्कल्पना (सं० स्त्री०) सङ्कल्पन-टाप्। १ सङ्कल्प करनेकी क्रिया। २ वासना, इच्छा, अभिलाषा।

सङ्कल्पनामय (सं० त्रि०) सङ्कल्पना-मयट्। सङ्कल्पनास्वरूप।

सङ्कल्पनामयी (सं० स्त्री०) अणिमादि सिद्धि।

सङ्कल्पनीय (सं० त्रि०) सङ्कल्प-अनीयर्। सङ्कल्पार्ह, सङ्कल्प करनेके योग्य।

सङ्कल्पभव (सं० पु०) सङ्कल्पात् भव उत्पत्तिर्यस्य। १ कामदेव। (त्रि०) २ अभिलाष सम्भूत मात्र।

सङ्कल्पयोनि (सं० पु०) सङ्कल्पात् योनिर्यस्य। कामदेव।

सङ्कल्पराम (सं० पु०) एक आचार्यका नाम। ये नारायणस्वामी और सत्सुखानुभवके प्रणेता इच्छारामके गुरु थे।

सङ्कल्पा (सं० स्त्री०) दक्षकी एक कन्या जो धर्मकी भार्या थी।

सङ्कल्पावत् (सं० त्रि०) सङ्कल्प अस्त्यर्थे मतुप् मस्य-व। सङ्कल्पविशिष्ट।

सङ्कल्पितव्य (सं० त्रि०) संकल्प-तव्य। सङ्कल्पके योग्य।

सङ्कष्टहरव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष।

सङ्कसुक (सं० त्रि०) सम्यक कसति इतस्ततो गच्छतीति सम् कस गतौ (शमि कसे रुकन्। उण् २।२६) इति उकन्। १ अस्थिर। २ दुर्व्वल। ३ मन्द। ४ सङ्कीर्ण। ५ अपवादशील। ६ दुर्ज्जन। ७ अनित्य।

सङ्का (सं० त्रि०) एकत्र शब्दकारक, एक साथ शब्द करने या चिल्लानेवाला। (मृक् ६।७५।५)

सङ्कार (सं० पु०) सङ्कीर्य्यते इति सं-कृ विक्षेपे घञ्। १ सम्मार्ज्जनी द्वारा क्षिप्त धूलि, कूड़ा करकट या धूल जो झाड़ू देनेसे उड़े। (शब्दरत्ना०) २ अग्नि चटत्कार, आगके जलनेका शब्द।

सङ्कारी (सं० स्त्री०) नवदूषित कन्या।

सङ्कालन (सं० क्ली०) सङ्कलन देखो।

शङ्काश (सं० अव्य०) सम्यक् काशते प्रकाशते इति काश पचाद्यच्। १ सदृश, समान, मिलते जुलते। २ अन्तिक, समीप, निकट।

सङ्किल (सं० पु०) दहनोल्का। (त्रिका०)

सङ्किश—युक्तप्रदेशके फर्रुखाबाद जिलान्तर्गत एक प्राचीन जनपद। अभी यह उजाड़-सा हो रहा है, पूर्वसमृद्धि बिलकुल नहीं है। वर्त्तमान सङ्किश ग्राम उसके ऊपर अवस्थित है। यह नगर फतेगढ़से २३ मील पश्चिम काली नदीके किनारे अवस्थित है। ४१५ ई०में फाहियान और ६३६ ई०में यूएनचुवंग यह नगर देख कर यहांके बौद्धप्रभावका उल्लेख कर गये हैं। यही सुप्राचीन साङ्काश्य नगरी है।

यह स्थान बौद्धोंका एक पवित्र तीर्थ है। प्रवाद है, कि शाक्यबुद्ध तीन मास त्रयस्त्रिंशत् स्वर्गमें रहनेके बाद स्वर्गसे इन्द्रके साथ यहां उतरे। यहां उन्होंने अपनी माता मायाको धर्मोपदेश दिया। बुद्धदेव जिन सोने, चांदी और मणिकी सीढ़ियोंके बल पृथ्वी पर उतरे थे, वे सीढ़ियां उनके आविर्भावके बाद ही भूगर्भमें विलीन हो गईं, केवल उनके सात पदचिह्न उस स्थानमें दिखाई देते हैं। सम्राट् अशोकने उस घटनाको चिरस्मरणीय रखनेके लिये एक बड़े मन्दिरमें स्तम्भ खड़ा करा दिया था। यूएनचुवंग वह मन्दिर और स्मृतिस्तम्भ देख गये हैं। दुःखका विषय है, कि अभी उसका चिह्नमात्र भी नहीं है।

वर्त्तमान ग्राम ४१ फुट ऊंचे और १५००×१००० फुट चौड़े स्तूपके ऊपर बसा हुआ है। उस स्थानके अधिवासी उसको किला या प्राचीन दुर्गस्थान कहते हैं। यहांसे एक मील दक्षिण एक दूसरा इष्टकस्तूप दिखाई देता है। उसके ऊपर बिशाड़ीदेवी (बिशाली)का मन्दिर विद्यमान है। उस मन्दिरस्तूपसे ४०० फुटकी दूरी पर एक स्तम्भचूड़ा पड़ी हुई है। उसका घण्टाकार गठन और उपरिस्थ हस्तिमूर्त्तिके साथ अशोकके प्रयागस्थ स्तम्भका सौसादृश्य देख कर डा० कनिंहम उसे ई०सन्‌से ३ सदी पहले स्थापित स्तम्भ अनुमान करते हैं।

बिशालीदेवीमन्दिरसे २०० फुट दक्षिण एक दूसरा छोटा स्तूप दिखाई देता है। इससे ६०० फुट पूरब ६००×५०० फुट विस्तृत निवि-का-कोट नामक एक और स्तूप है। वह किसी बौद्ध सङ्घारामका ध्वस्त निदर्शन-सा प्रतीत होता है। उक्त दुर्ग तथा बिशाली

मन्दिरके चारों ओर ३०००×२००० फुट विस्तृत स्थान-को स्तूपराशि तथा ध्वंसावशेषका निरीक्षण करनेसे प्राचीन नगरकी पूर्ण समृद्धिका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। ऐतिहासिकोंकी धारणा है, कि दिल्लीश्वर पृथ्वी-राजके साथ कन्नौजपतिका जो युद्ध हुआ था, उसीमें यह नगर ध्वंस हुआ। इसके पास ही सरायग्राट नामक मुहल्लेमें और भी कितने ध्वस्त निदर्शन पड़े हुए हैं।

सङ्कीर्ण (सं० पु०) सं-कृ-क। १ जनादि द्वारा निरवकाश, बहुत लोगोंका एकत्र होना, भीड़। पर्याय—सङ्कुल, आकीर्ण, निचित, व्याप्त, समाकीर्ण। (शब्दरत्ना०) २ सङ्कट, विपत्ति। (अमर) ३ परस्पर विजातीय। (भरत) ४ वर्णसङ्कर। ५ वह राग या रागिणी जो दो अन्य रागों या रागिणियोंको मिला कर बने। इसके सोलह भेद कहे गये हैं—चैत्र, मङ्गलक, नगनिका, चर्चा, अति-नाठ, उज्ज्वी, दोहा, वहुला, गुरुवला, गीता, गोवि, हेमना, कोपी, कारिका, त्रिपदिका और अधा। ६ साहित्यमें एक प्रकारका गद्य जिसमें कुछ वृत्तगन्धि और कुछ अवृत्त-गन्धिका मेल होता है। (त्रि०) ७ अशुद्ध, अपवित्र। ८ संकुचित, सँकरा, तंग। ६ तुच्छ, नीच। १० क्षुद्र, छोटा।

सङ्कीर्णता (सं० स्त्री०) १ सङ्कीर्ण होनेका भाव। २ सँकरापन, तंगी। ३ क्षुद्रता, ओछापन। ४ नीचता।

सङ्कीर्णीकरण (सं० क्ली०) सङ्कीरण, फैली हुई वस्तुको एकत्र करना या सिमेटना।

सङ्कीर्त्तन (सं० क्ली०) सं-कीर्त्त-ल्युट्। सम्यक् प्रकार-से देवताका नामोच्चारण। गुणादिकथन, गान द्वारा भग-वद्गुणवर्णन। सङ्कीर्त्तन-माहात्म्यके विषयमें लिखा है, कि जहां भगवान्‌का नामसंकीर्त्तन होता है, वह स्थान परम पवित्र है तथा उस स्थानमें जिसकी मृत्यु होती है, वह मुक्ति लाभ करता है। सङ्कीर्त्तन ध्वनि सुन कर जो व्यक्ति नृत्य करता है, उसके पादरजःस्पर्शसे पृथ्वी सद्यःपूता होती है। (बृहन्नारदीय)

नारदपञ्चरात्रमें लिखा है, कि पुष्करतीर्थमें नारदसे ब्रह्माने कहा था, कि तुम वीणाध्वनिके साथ श्रीकृष्णका रससङ्गीत अर्थात् गोपियोंका वस्त्रहरण, रास महोत्सव आदि भगवान्‌का गुणवर्णनरूप सङ्कीर्त्तन करो। यह कृष्णसङ्कीर्त्तन सुनते ही मनुष्य पवित्रता लाभ करते हैं। सात आदमी मिल कर जहाँ यह सङ्कीर्त्तन करते हैं, वहां सभी पुण्यतीर्थ तथा स्वयं मूर्त्तिमती पुण्य अचलभावमें खड़ी होती हैं तथा उनकी सङ्कीर्त्तनध्वनि सुननेसे पाप दूर भाग जाता है। कृष्णसङ्कीर्त्तन करनेसे जीवका अतिपातक, महापातक और उपपातक विनष्ट होता है।

भक्तिरसामृतसिन्धुग्रन्थमें लिखा है,—

"नामलीलागुणादीनामुच्चैर्भाषातुकीर्त्तनं।"

(२ लहरी पूर्वभाग)

अर्थात् नाम, लीला और गुणादिके उच्चैःस्वरसे उच्चारण करनेको ही कीर्त्तन कहते हैं। शास्त्रमें नाम-कीर्त्तन, लीलाकीर्त्तन और गुणकीर्त्तन इन तीनों ही प्रकारके कीर्त्तनका यथेष्ट माहात्म्य गाया गया है। उपास्य देवताको नामलीला और गुणसङ्कीर्त्तनकी प्रथा प्राचीन वैदिक कालसे हो चली आती है। ऋषि लोग एकत्र हो कर विविध छन्दोंसे वैदिक मन्त्रका उच्चारण करते थे। अन्तमें इस प्रथाको पुष्ट करनेके लिये गीत-छन्दोंमें मन्त्र रचे गये। परवर्त्ती कालमें इन सब कीर्त्तन-कारियोंकी भाषा साम गानमें परिणत हुई। सामवेद-संहिता इस वैदिक सङ्कीर्त्तनकी ही साक्षीरूपमें आज भी विराजमान है। सङ्कीर्त्तन द्वारा उपासना-प्रणाली जो वैदिक युगमें भी थी, साम तन्त्रगान ही उसका प्रमाण है। वैदिकयुगके बाद भी इस प्रथाका विलोप नहीं हुआ। पौराणिक साहित्यमें श्रीभगवान्‌के नामगुण-लीलादि कीर्त्तनका यथेष्ट उल्लेख है।

श्रीमद्भागवतमें कलियुगकी उपासनाके सम्बन्धमें संकीर्त्तनकी व्यवस्था की गई है। (११ स्कन्ध)

प्राचीन संस्कृत साहित्यकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि नामलीला और गुणादिका जोरसे उच्चारण करना ही सङ्कीर्त्तन है। किन्तु अति प्राचीन वैदिक युगका साममन्त्र ही यथार्थमें गाया जाता था। ऋषिगण दलके दल आ कर यज्ञादिमें सामगान करते थे। वैदिक मन्त्रके पवित्र संकीर्त्तनसे यज्ञस्थली गूँज उठती थी। सैकड़ों पवित्रचेता ऋषि विस्मयसे आंखें फाड़ फाड़ कर उस सङ्कीर्त्तन सम्प्रदायकी ओर देखते थे तथा भक्तिभावसे नामसङ्कीर्त्तन सुनते थे। कबसे

इस पद्धतिका प्रचार कम तथा कब यह लुप्तप्राय हो गया, उसका पता लगाना कठिन है। किन्तु परवर्त्ती समयमें बहुत दिनों तक शायद इस प्रथाका वैसा प्रचार न रहा होगा। पौराणिक साहित्यमें यह कीर्त्तन-माहात्म्य अच्छी तरह लिपिबद्ध रहने पर भी कीर्त्तन उपासनाका अङ्ग है, ऐसा कह कर इस देशमें बहुत दिनों तक न समझा गया।

वर्त्तमान कालमें सङ्कीर्त्तन कहनेसे जिस आनन्दमय कार्त्तनकी बात इस देशकी आबालवृद्धवनिताको याद आ जाती है, नवद्वीपके अवतार श्रीगौराङ्ग महाप्रभु ही उस सङ्कीर्त्तनके प्रवर्त्तक थे। मृदङ्ग, करताल, रामशिङ्गार, आदि वाद्यनादोंसे उद्घोषित, ध्वजपताकाशाही भक्तोंके भक्तिपूर्ण कण्ठसे निनादित, विविध नर्त्तनविलाससे पुष्ट जिस सङ्कीर्त्तनके महारोलसे गौड़ीय भक्तोंके प्राणमें गोलकका सुखमय भाव जग उठा वह श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके द्वारा ही सबसे पहले प्रवर्त्तित हुआ था।

फलतः हमलोगोंके श्रुतिपुराणादिमें सङ्कीर्त्तन द्वारा धर्मसाधनके यथेष्ट प्रमाण देखनेमें आते हैं। किन्तु श्रीगौराङ्गदेवने सङ्कीर्त्तन-प्रथाको जैसा अनुप्राणित और सञ्जीवित कर दिया था, सङ्कीर्त्तनके इतिहासमें इसका वैसा प्रभाव तथा विस्तार और कहीं भी दिखाई नहीं देता। आज भी भारतमें घर घर सङ्कीर्त्तनकी भुवन पावन मङ्गलमय ध्वनि प्रायः प्रतिदिन सुनी जाती है।

कृष्णकीर्त्तन देखो।

सङ्कीर्त्तना (सं० स्त्री०) सङ्कीर्त्तन-टाप्। सङ्कीर्त्तन देखो।

सङ्कीर्त्तित (सं० त्रि०) सं-कीर्त्ति-क्त।१ सम्यगुच्चारित। २ संस्तुत। ३ वर्णित।

सङ्कील (सं० पु०) पुराणानुसार एक ऋषिका नाम।

सङ्कुचन (सं० क्ली०) १ सङ्कुचित होनेकी क्रिया, सिकुड़ना। (पु०) २ बालकोंका एक प्रकारका रोग जिसकी गणना बाल-ग्रहमें होती है। ३ सङ्कुटन देखो।

सङ्कुचित (सं० क्ली०) सं-कुच-क्त। १ सङ्कोचयुक्त, लज्जित। २ सिकुड़ा हुआ, सिमटा हुआ। ३ सङ्कीर्ण, तंग, संकरा। ४ अनुदार, क्षुद्र।

सङ्कुटन (सं० क्ली०) सं-कुट-ल्युट्। मृत्यु, मरण।

सङ्कुल (सं० क्ली०) सङ्कुलतीति संकुल पं९णाते इगुपधेति क। १ युद्ध, समर, लड़ाई। २ परस्पर-पराहतवाक्य। पर्याय—क्लिष्ट (भारत) परस्पर-विरुद्ध-वाक्य। ३ असङ्गत वाक्य, ऐसे वाक्य जिनमें परस्पर किसी प्रकारकी संगति न हो। ४ समूह, झुंड। ५ भीड़। ६ जनता। (त्रि०) सङ्कुलति सङ्कुलं कुलज-वन्धुसंहत्योः संपूर्वः इगुपधत्वात् कः। ७ जनादि द्वारा निरवकाश, भरा हुआ, घना। पर्याय—संकीर्ण, आकीर्ण, कलिल, गहन, बहुलोकसमाकीर्ण।

सङ्कुलित (सं० त्रि०) सं-कुल-क्त। १ जो संकुलित हो, भरी हुई। २ एकत्र। ३ घना।

सङ्कुश (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। इसे शङ्कु भी कहते हैं।

सङ्कुसुमित (सं० त्रि०) सम्यक् प्रस्फुटित, विकसित। बुद्धका 'नक्षत्रराजसङ्कुसुमिताभिज्ञ' नाम है।

सङ्कॢप्त (सं० त्रि०) सम्यक्‌रूपसे या यथारीति निष्पन्न।

सङ्कॢप्ति (सं० स्त्री०) इच्छा, वासना।

सङ्केत (सं० पु०) सांकल्यते उच्यतेऽत्र सं-कित-घञ्। १ अपना भाव प्रकट करनेके लिये किया हुआ कायिक परिचालन या चेष्टा, इङ्गित, इशारा। २ कामशास्त्र-सम्बन्धी इंगित, शृंगार-चेष्टा। ३ प्रेमी प्रेमिकाके मिलनेका पूर्व निर्दिष्ट स्थान, वह स्थान जहां प्रेमी और प्रेमिका मिलना निश्चित करें, सहेट। ४ चिह्न, निशान। ५ पतेकी बातें।

सङ्केतक (सं० क्ली०) सङ्केत स्वार्थे कन्। सङ्केत।

सङ्केतकेतन (सं० क्ली०) सङ्केतस्थान।

सङ्केतनिकेतन (सं० क्ली०) संकेतस्य निकेतनं। संकेत निकेत, प्रेमी प्रेमिकाके मिलनेका निर्दिष्ट स्थान।

सङ्केतभूमि (सं० स्त्री०) संकेतस्य भूमिः। संकेतस्थान, संकेतनिकेत।

सङ्केतरूपप्रवेश (सं० पु०) बौद्धोंकी समाधि।

सङ्केतवाक्य (सं० क्ली०) संकेतजनकं वाक्यं। संकेतजनकवाक्य, जो वाक्य बोलनेसे प्रेमी उसका अभिप्राय जान सके उसे संकेतवाक्य कहते हैं।

सङ्केतस्तव (सं० पु०) शाक्तसम्प्रदायोक्त स्तुतिविशेष।

सङ्केतस्थान (सं० क्ली०) संकेतस्य स्थानं। संकेतभूमि, संकेतनिकेतन।

सङ्केतोद्यान (सं० क्ली०) संकेतकानन। श्रीकृष्ण गोपबालकोंको गौ चरानेमें नियुक्त कर संकेतकाननमें श्रीराधाको ले कर केली करते थे।

सङ्कोच (सं० पु०) संकुचतीति सं-कुच अच्। १ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। २ सिकुड़नेकी क्रिया, खिंचाव, तनाव। ३ लज्जा, शर्म। ४ भय। ५ आगा पीछा, पसो पेश, हिचकिचाहट। ६ कमी। ७ एक अलंकार जिसमें 'विकास अलंकार' से विरुद्ध वर्णन होता है। या किसी वस्तुका अतिशय संकोच वर्णन किया जाता है, संक्षेप। श्राद्धविवेकमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है, "सामान्यशब्दार्थस्य विशेषनिष्ठत्वं संकोचः।"

(क्ली०) ८ कुंकुम, केसर।

सङ्कोचक (सं० त्रि०) संकुचतीति सं-कुच-ण्वुल्। संकोचनकारी।

सङ्कोचन (सं० क्ली०) सं-कुच-ल्युट्। संकोचकरण, सिकुड़नेकी क्रिया।

सङ्कोचनी (सं० स्त्री०) सं-कुच-ल्यु, ङीष्। लजालू नामकी लता। (रत्नमाला)

सङ्कोचपत्रक (सं० त्रि०) वृक्षोंका एक प्रकारका राग। इसमें उनके पत्तोंमें ऊपर कुछ दाने-से निकल आते हैं और पत्ते सिकुड़ जाते हैं।

सङ्कोचपिशुन (सं० क्ली०) संकोचेन पिशुनं। कुंकुम, केसर। (भावप्र०)

सङ्कोचित (सं० त्रि०) १ संकोचयुक्त, जिसमें संकोच हो। २ अविकशित, जो विकशित या प्रफुल्लित न हो। ३ लज्जित, शरमिंदा। (पु०) ४ तलवारके बत्तीस हाथोंमेंसे एक हाथ, तलवार चलानेका एक ढंग या प्रकार।

सङ्कोचिन् (सं० त्रि०) १ संकोच करनेवाला। २ सिकुड़नेवाला। ३ जिसे संकोच या लज्जा हो, शर्म करनेवाला।

सङ्कोच्यता (सं० स्त्री०) संकोच्य-तल्-टाप्। संकोचका भाव या धर्म।

सङ्क्रन्द (सं० पु०) १ क्रन्दन, रोना। २ शोक प्रकाश करना। ३ युद्धार्थ आस्फालन।

सङ्क्रन्दन (सं० पु०) संक्रन्दयति असुरान् इति सं-क्रन्द-णिच्-ल्यु। १ शक्र, इन्द्र। (अमर) २ पुराणानुसार भौत्य मनुके एक पुत्रका नाम। (मार्कण्डेयपु० १००।३२) सङ्-क्रन्द भावे ल्युट्। (क्ली०) ३ क्रन्दन, रोना। सङ्क्रन्दयति शत्रून् इति। (त्रि०) ४ शत्रुनाशक।

सङ्क्रम (सं० पु० क्ली०) संक्रामति अनेन संक्रम्यतेऽसौ वा संक्रम-घञ्। १ संप्रवेश, कष्ट या कठिनतापूर्वक बढ़नेकी क्रिया। २ पुल आदि बना कर किसी स्थानमें प्रवेश करना। ३ सेतु, पुल। ४ संक्रमण संक्रान्ति। ५ प्राप्ति।

सङ्क्रमण (सं० पु०) सं-क्रम-ल्युट्। १ गमन, चलना। २ सूर्यका एक राशिसे निकल कर दूसरी राशिमें प्रवेश करना। (कालकौ०) ३ प्रायण। (हरिवंश ३२।१६) ४ कष्टगति, प्रतिहत गमन। ५ पर्यटन, घूमना। ६ अतिक्रम।

सङ्क्रमद्वादशाह (सं० पु०) द्वादशाह कृत्यभेद।

सङ्क्रान्त (सं० त्रि०) संक्रान्तिरस्यास्तीति अच्। १ संक्रान्तिविशिष्ट। (मलमासतत्त्व) सं-क्रम-क्त। २ प्राप्त। ३ गत। (पु०) ४ क्रमागत धनादि, दायभागके अनुसार वह धन जो कई पीढ़ियोंसे चला आया हो। ५ सूर्यका एक राशिसे दूसरी राशिमें जाना।

संक्रान्ति देखो।

सङ्क्रान्ति (सं०स्त्री०) सं-क्रम-क्तिन्। राश्यन्तर संयोगानुकूल व्यापार, एक राशिसे दूसरी राशिमें जाना। सूर्य एक राशिसे जो दूसरी राशिमें जाते हैं, उसको रविकी संक्रान्ति कहते हैं। सूर्य प्रायः ३० दिन एक राशिमें रह कर अन्य राशिमें जाते हैं। उनका यह जाना या संक्रमण ही संक्रान्ति है। यह संक्रमण अति अल्प कालमें होता है। शास्त्रमें लिखा है, कि संक्रान्तिमें स्नान, दान आदि विशेष पुण्यजनक है। संक्रमण-काल बहुत थोड़ा है। उस समय स्नान दानादि सम्भवपर नहीं है। अतएव संक्रान्तिकृत्य कहनेसे समझना होगा, कि संक्रान्तिके पुण्य कालमें वे सब कार्यादि करने होंगे। तिथितत्त्वमें संक्रान्तिकी व्यवस्था विशेषरूपमें वर्णित है, पर यहां संक्षेपमें लिखी जाती है—

पहले संक्रान्तिके दो नाम रखे गये हैं, उत्तरायण-संक्रान्ति और दक्षिणायन-संक्रान्ति। उत्तरायण और दक्षिणायनकी कारणीभूत दो संक्रान्ति एक सूर्यके मृग अर्थात् मकरराशिमें संक्रमण और दूसरी कर्कटमें संक्रमणसे होती है। सूर्यका तुला और मेष राशिमें संक्रमण विषुवत् रेखासे संघटित होता है, इससे उसको विषुवती संक्रान्ति कहते हैं।

इस उत्तरायण और दक्षिणायन संक्रान्तिके विषयकी आलोचनाके देखनेसे मालूम होता है, कि इस देशमें अश्विनी नक्षत्रके प्रथम अंशसे राशिचक्रका प्रथम आरम्भ निरूपित है। पृथिवीके निरक्षवृत्तकी तरह उस चक्रके मध्यभागमें पूर्व-पश्चिममें व्याप्त एक सरल रेखा कल्पित है जिसका नाम विषुवरेखा है। प्रति वर्ष अयनमण्डलके जिन दो स्थानों पर विषुवरेखा मिलती है, उसे क्रान्तिपात कहते हैं तथा वहां सूर्यके आने पर दिन-रात समान होती है। जिस दिन विषुवती संक्रान्ति होती है, उसी दिन दिनरातका मान बराबर होता है।

अभी ९वीं या १०वीं चैतको एक बार, तथा ९ वीं या १० वीं आश्विनको क्रान्तिपात होता है, अतएव उन दो दिनोंमें दिनरात समान होती है। ये दोनों क्रान्तिपात वासन्तिक (Vernalequinox) और शारदीय (Autumnal equinox) कहलाते हैं।

गणना द्वारा जाना गया है, कि १३८१ वर्ष पहले चैत्र और आश्विन मासके ३० या ३१ दिनमें अश्विनी नक्षत्रके प्रथमांशमें तथा चित्रानक्षत्रके षष्ठांश ४० कलामें ये दोनों क्रान्तिपात होते थे अर्थात् इन दोनों नक्षत्रके उल्लिखित अंशोंमें विषुव रेखा रहती थी तथा उन दो स्थानोंमें उसके साथ अयनमण्डलका संयोग हुआ करता था। भारतीय ज्योतिर्विदोंने अश्विनी नक्षत्रके प्रथमांशमें जो क्रान्तिपात होता है, सूर्यदेवके वहां आनेसे उस दिनका नाम महाविषुवसंक्रान्ति तथा चित्रा नक्षत्रके अर्द्धांशादिमें जो क्रान्तिपात होता है, सूर्यदेवके वहां उपस्थित होनेसे उस दिनका नाम जल विषुव-संक्रान्ति रखा है। आज भी यह नियम प्रचलित है किन्तु अभी इन दो स्थलोंमें विषुवरेखाके साथ अयनमण्डलका फिर सम्मिलन नहीं होता।

यूरोपियनोंके मतसे प्रति वर्ष ५० विकला १५ अनुकला तथा हिन्दुओंके मतसे ५४ विकला अयनमण्डलके पश्चिमभागमें हट जाता है। अर्थात् उसी प्रमाणसे प्रति वर्ष विषुवरेखाके सञ्चालनकी कल्पना की जाती है तथा उसके सञ्चालनको अयनांश कहते हैं।

अयनांश गणनामें इस प्रकार विभिन्नता होनेका कारण यह है, कि यद्यपि अश्विनीको अचल नक्षत्र कहते हैं, तथापि इस नक्षत्रके ३ विकलासे कुछ अधिक परिमाणमें एक स्वाभाविक गति है, ऐसा स्वीकार किया जाता है। इस गतिको क्रान्तिपातके वार्षिक सञ्चालनके साथ जोड़ कर हिन्दूज्योतिर्विदोंने इस सञ्चालनका परिमाण ५४ विकला स्थिर किया है।

अभी ९ वीं या १० वीं चैतको अश्विनी नक्षत्रके प्रथम अंशसे प्रायः २१ अंशके अन्तर पर इस देशमें जिस स्थानको मीनराशिका ९ अंशयुक्त माना जाता है, उस स्थानमें वासन्तिक क्रान्तिपात होता है तथा सूर्यदेव भी उस दिन क्रान्तिपातमें उपस्थित रह कर दिन और रात समान बनाते हैं। इस कारण इङ्गलैण्ड और अन्यान्य देशोंमें उस दिनसे रविका मेषसंक्रमण तथा उस स्थानसे मेषराशिका आरम्भ स्थिर हुआ है। इस प्रणालीके अनुसार जो गणना होती है उसको सायन गणना कहते हैं।

इस देशमें साधारणतः चैत्रमासके ३० या ३१ दिनमें सूर्य अश्विनी नक्षत्रके प्रथमांशमें उपस्थित होते हैं, इस कारण उस अंशसे मेषराशिके आरम्भकी गणना की जाती है, इस गणनाका नाम निरयन गणना है। इस निरयन मतसे ही हम लोगोंके देशमें पञ्जिकाकी गणना होती है तथा इसीसे हम ३० वीं या ३१ वीं चैतको महाविषुव संक्रान्तिकी गणना करते हैं।

हिन्दुओंके मध्य शेषोक्त मत प्रचलित रहनेका कारण यह है, कि सायनके मतसे किसी एक अपरिवर्त्तनीय स्थानसे मेषराशिका आरम्भ नहीं होता, प्रति वर्ष उसका आरम्भ स्थान बदलता रहता है। उस सम्बन्धमें निरयन-मत ही समीचीन मालूम होता है। क्योंकि अचल अश्विनी नक्षत्रसे मेषसंक्रान्तिकी गणना करनेसे एक ही स्थानसे मेषारम्भकी गणना होती है। फलतः

उक्त दोनों गणनामें प्रभेद यह है, कि सायन मतमें अभी जिस दिन मेषसंक्रान्ति होती है, उसके प्रायः २१ दिन बाद निरयन-मतमें वह संक्रान्ति होती है।

सायनके मतसे अभी जहां मेषारम्भ माना जाता है, निरयनके मतसे वहांसे प्रायः २१ अंश पीछे मेषारम्भ होता है। सायनके मतसे वास्तविक क्रान्तिपात अयन-मण्डलसे चाहे जितना ही पश्चिम क्यों न हट जाय, वहीं से मेषराशिका आरम्भ निर्दिष्ट होगा। अतएव उस मतमें कालक्रमसे मेषादि द्वादशराशिकी सीमा परिवर्त्तित होगी। सायन शब्द देखो।

पहले ही कहा जा चुका है, कि पृथिवीके निरक्ष-वृत्तकी तरह राशिचक्रका भी एक निरक्षवृत्त कल्पित हुआ है तथा उसका नाम है विषुवरेखा। उस रेखाके उत्तरदक्षिण २३ अंश २८ कलाके अन्तर पर दो विन्दु की कल्पना की जाती है। उनमेंसे एक उत्तरायणान्त विन्दु (Winter solstice) है अर्थात् सूर्यके उत्तर जाने-की अन्तिम सीमा है। दूसरा दक्षिणायनान्त विन्दु (Summer solstice) है, सूर्यके दक्षिण जानेकी अन्तिम सीमा है। उन दोनों विन्दुओंके मध्य जो एक कल्पित रेखा मौजूद है, उसका नाम अयनान्तवृत्त है। सूर्य जिस पथसे उत्तरकी ओर जाते हैं, उसे उत्तरायण तथा जिस पथसे दक्षिणकी ओर जाते हैं, उसे दक्षिणा-यन कहते हैं। १३:१ वर्ष पहले माघ और श्रावणमास-के प्रथम दिनमें अयन परिवर्त्तन होता था अर्थात् उत्त रायण और दक्षिणायन संक्रान्ति होती थी। १ली माघको सूर्यके मकरराशिमें प्रवेश होनेसे ले कर आषाढ़-के शेषमें सूर्यके मिथुनराशिके शेषांश गत होने तक वह काल उत्तरायण तथा १ली श्रावणको सूर्यके कर्कटराशि-में प्रवेश होनेसे ले कर पौषके शेषमें सूर्यके धनुराशि के शेषांशगत होने तक वह काल दक्षिणायन कहलाता है।

परन्तु अभी उक्त निर्दिष्ट समयके प्रायः २१ दिन पहले अयन-संक्रान्ति हो कर अयन परिवर्त्तन होता है अतएव धनुराशिके प्रायः ६ अंशमें आरम्भ हो कर मिथुन राशिके प्रायः ६ अंशमें उत्तरायण शेष होता है। फिर मिथुनराशिके उक्त अंशमें आरम्भ हो कर धनु-राशिके प्रायः ६ अंशमें दक्षिणायन शेष होता है, अतएव उन दोनों ही दिन उत्तरायण और दक्षिणायन-संक्रान्ति-का होना ही सङ्गत है। इसलिये अभी उत्तरायण-संक्रान्ति, दक्षिणायन-संक्रान्ति, महाविषुवसंक्रान्ति, और जलविषुवसंक्रान्ति इन चार संक्रान्तियोंमें बड़ी गड़बड़ी है।

उक्त नियमानुसार ९वीं या १०वीं चैत तथा ९वीं या १०वीं आश्विनमें विषुवसंक्रान्ति, ९वीं या १०वीं आषाढ़ तथा ९वीं या १०वीं पौषमासमें उत्तरायण और दक्षिणायन संक्रान्तिका होना उचित था।

शास्त्रमें इस अयनसंक्रान्ति और विषुवती संक्रान्ति-को विशेष पुण्यजनक कहा है। इन चार संक्रान्तियों-के अतिरिक्त अपर सभी संक्रान्ति गोल अर्थात् राशि-चक्रके मध्य ही होती है। सूर्यके बारह मासमें बारह राशिमें जानेसे १२ संक्रान्ति होती है। इन बारह संक्रान्तियोंमेंसे कुछ षड़शीति और विष्णुपदी संक्रान्ति कहलाती है। इनमेंसे सूर्यका धनु, मिथुन, कन्या और मीनराशिमें जो संक्रमण होता है, उसे षड़शीति संक्रान्ति और सूर्यके वृष, वृश्चिक, सिंह और कुम्भ राशिमें संक्र-मणको विष्णुपदी संक्रान्ति कहते हैं।

इन सब संक्रान्तियोंके पुण्यकाल विषयमें लिखा है, कि उत्तरायण-संक्रान्ति दिवाभागमें होनेसे सूर्यके संक्र-मण-कालके बादसे २० कलामें भोगकाल तक अर्थात् २० दण्ड तक पुण्यकाल है। दक्षिणायन-संक्रान्ति दिवाभागमें होनेसे संक्रान्तिके पूर्व ३० दण्ड पुण्य काल है। अर्द्ध रात्रिके पूर्व संक्रमण होनेसे उस अर्द्ध रात्रि-के पूर्ववर्त्ती दिवाका परार्द्ध पुण्यकाल तथा अर्द्धरात्रि बीत जानेके बाद संक्रमण होनेसे दूसरे दिनका प्रथमार्द्ध पुण्यकाल है। इस अर्द्धरात्र संक्रमणके सम्बन्धमें विशेषता यह है; कि अर्द्धरात्रिकी सम्पूर्णावस्थामें अर्थात् रात्रिके मध्यस्थित दो दण्ड कालमें संक्रमण होनेसे उदय तथा अस्त समयके सन्निहित दिवाका दो याम पुण्यकाल है अर्थात् पूर्व दिनका परार्द्ध और पर दिनका प्रथम दो प्रहर पुण्यकाल माना जाता है। अर्द्धरात्र पूर्ण नहीं होने पर अर्थात् पूर्ण होनेमें कुछ बाकी रहने पर संक्रमण होनेसे पूर्वदिनका परार्द्ध; अर्द्धरात्रिकी सम्पूर्णावस्थामें संक्र-

मण होनेसे भी पूर्वदिनका परार्द्ध तथा दूसरे दिनका प्रथम दो प्रहर काल ही पुण्यकाल होता है। अर्द्धरात-के बाद संक्रमण होनेसे केवल दूसरे दिनका प्रथम दो प्रहर ही पुण्य-काल होता है।

षड़शीति-संक्रान्ति तथा उभय विषुवसंक्रान्तिका पूर्व-वर्त्तीकाल ही पुण्यकाल है। दक्षिणायनका परवर्त्ती काल तथा उत्तरायणका पूर्ववर्त्ती काल पुण्यजनक है; यदि दिवाभागस्थित तिथिको ही रात्रिकालमें संक्रमण हो, तो उसके आदिमें ही पुण्यकाल होगा। अर्द्धरात्रके बाद इस प्रकार संक्रमण होनेसे दूसरे दिनका प्रथम काल ही पुण्यजनक माना जाता है।

१२ मासमें जो १२ संक्रान्ति होती है, उनके ध्रुवादि नक्षत्रोंमें होनेसे वे मन्दा, मन्दाकिनी, ध्वाङ्क्षी, घोरा, महोदरी, राक्षसी और मिश्रिता इन सात नामोंसे पुकारी जाती हैं। इनमेंसे उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्र-पद और रोहिणी नक्षत्रको ध्रुवगणमें सूर्य संक्रमण होने-से मन्दा संक्रान्ति होती है। इसी प्रकार मृदुगण नक्षत्रमें संक्रमण होनेसे मन्दाकिनी संक्रान्ति, क्षिप्र-गणमें ध्वाङ्क्षी संक्रान्ति, उग्रगणमें घोरा संक्रान्ति, चर-गणमें महोदरी संक्रान्ति, क्रूरगणमें राक्षसी और मिश्रित नक्षत्रमें संक्रमण होनेसे मिश्रिता संक्रान्ति होती है।

दिवाभागमें संक्रमण होनेसे समूचा दिन पुण्यकाल होता है। परन्तु 'षड़शीतिमुखेऽतीते' इत्यादि वचनों द्वारा जिस विशेष पुण्यकालका निर्देश किया गया है, वह समस्त काल दिवाभागके मध्य विशेष पुण्यकाल कहा गया है। मन्दा और मन्दाकिनी आदि संक्रान्तिमें ३ या ४ दण्ड आदि जो पुण्यकाल कहा गया है, उसे पुण्यतम काल कहते हैं केवल यही समझा जायेगा।

रात्रिसंक्रमण-स्थलमें रात्रिका प्रथमार्द्ध पूर्ण होनेके एक दण्ड पहले संक्रमण होनेसे उस रात्रिके ठीक पूर्व-वर्त्ती दिवाभागका शेष द्विप्रहरकाल पुण्य तथा रात्रिके ठीक मध्यवर्त्ती दो दण्डके मध्य संक्रमण होनेसे तथा उस समय दिवाभागकी तिथि वर्त्तमान रहनेसे उस दिवाभागका ही अन्तिम दो प्रहर पुण्यकाल होगा। फिर यदि उस समय दिवाभागकी तिथि वर्त्तमान न हो कर एक दूसरी तिथि वर्त्तमान हो, तो उस रात्रिके ठीक पूर्व-वर्त्ती दिवाका अन्तिम दो प्रहर तथा परवर्त्ती दिवाका भी प्रथम दो प्रहर पुण्य होगा। इस प्रकार दोनों दिन पुण्य काल होने पर भी यदि पूर्वदिन संक्रान्ति-विहित धर्म-कार्यका अनुष्ठान न हो, तो दूसरे दिनके कार्यका ही अनुष्ठान होगा।

ठीक दो प्रहर रातको यदि दक्षिणायन-संक्रमण हो तथा उसमें दिवाभागकी तिथि वर्त्तमान रहे या न रहे, उस दिवाभागका ही अन्तिम दो प्रहर मात्र पुण्यकाल होगा तथा ठीक दो प्रहर रातको यदि उत्तरायणसंक्रान्ति हो, तो तिथि जो चाहे हो, दूसरे दिनका प्रथम दो प्रहर काल पुण्यजनक होगा।

मध्यरात्रिके अन्तिम एक दण्डके बादसे रात्रिके शेष पर्यन्त कालके मध्य संक्रमण होनेसे दूसरे दिनका प्रथम दो प्रहर ही पुण्यकाल माना जाता है। संध्या-संक्रमण-के विषयमें केवल इतना ही कहना है, कि जिस संध्याके अन्तर्भूत दिवादण्डमें संक्रमण होनेसे दिवाभागके संक्र-मणकी जैसी व्यवस्था की गई है, उसीके अनुसार पुण्य-काल स्थिर करना होता है। संध्याके रात्रिदण्डमें संक्रमण होनेसे रात्रिकालके व्यवस्थानुसार पुण्यकाल स्थिर करना उचित है।

ग्रहोंका संक्रमण-काल—सूर्य एक राशिसे दूसरी राशिमें जाते हैं, इस कारण उक्त संक्रमणको रविसंक्रान्ति कहते हैं। इसी प्रकार चन्द्र मङ्गल आदि ग्रहगण भी एक राशिसे दूसरी राशिमें संक्रमण करते हैं। इस संक्रमण कालके विषयमें लिखा है, कि राशिचक्र ३६० अंशोंमें विभक्त है। रवि ३६५ दिन १५ दण्ड ३१ पल ३१ विपल और २४ अनुपलमें वह चक्र अतिक्रमण करते हैं। यही रविकी वार्षिक गति । फिर ५९ कला ८ विकला १० अनुकला उनकी दैनिक गति है। किन्तु राशिचक्रकी वक्रिमाके कारण सूर्यकी गति कभी बहुत तेज और कभी धीमी हो जाती है। इस कारण उक्त गतिको मन्दगति कहते हैं। रविकी दैनिक शीघ्र गति १ अंश १ कला और ५ विकला है तथा वह एक एक मास करके प्रत्येक राशिका भोग करते हैं। इसी प्रकार सभी रविसंक्रान्ति होती है। चन्द्र २७ दिन १९ दण्ड १७ पल ४२ विपलमें राशिचक्र अतिक्रमण करते हैं। चन्द्रका प्रत्येक राशि भोगकाल २। दिन है।

मङ्गल ६८६ दिन ५८ दण्ड ६ पल २० विपलमें राशिचक्र अतिक्रमण करते हैं। यह ग्रह चक्री नहीं होनेसे डेढ़ मास एक राशिका भोगकाल है।

बुध ८७ दिन ५८ दण्ड ६ पल १७ विपलमें एक बार राशिचक्रका परिभ्रमण करते हैं। १८ दिन इनका एक राशिका भोगकाल है।

वृहस्पति ११ वर्ष १० मास १५ दिन ३६ दण्ड ८ पलमें एक बार राशिचक्रको अतिक्रमण करते हैं। इनका प्रत्येक राशिका भोगकाल न्यूनाधिक एक वर्ष है।

शुक्र २२४ दिन ४२ दण्ड ३ पलमें एक बार राशिचक्रको घूम आते हैं।

शनिग्रह २९ वर्ष ५ मास १७ दिन १२ दण्ड ३० पलमें एक बार राशिचक्र पर्यटन करते हैं। इनका प्रत्येक राशिका भोगकाल न्यूनाधिक २ वर्ष ६ मास है। राहु और केतु वक्रगति द्वारा दक्षिणावर्त्तमें १८ वर्ष ७ मास १८ दिन १५ दण्डमें एक बार राशिचक्र परिभ्रमण करते हैं। यह ग्रह क्रमसे न्यूनाधिक १ वर्ष ६ मास २० दिनमें एक राशि भोग करते हैं।

ग्रहोंका यह जो राशिसंक्रमणकाल कहा गया, वह स्थूलमात्र है। उस कालमें वे संक्रमण करते हैं सही, पर ठीक उस प्रकृत अक्षांशमें उपस्थित नहीं होते। उस अक्षांशमें लौटनेमें जो समय लगता है, उसे सूक्ष्म संक्रमण काल कहते हैं। सूर्य जिस दिनमें जिस वारमें जिस अंशसे भ्रमण करना शुरू करते हैं, २८ वर्ष बाद उसी दिन उसी वारको उस पूर्व निर्दिष्ट स्थानमें पहुंचते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा १९ वर्षके बाद ठीक उसी स्थानमें उपस्थित होते हैं। उस समयसे पहलेकी तरह पूर्णिमा और अमावस्यादि तिथि तथा नक्षत्रका भोग होता है। मङ्गल ७९ वर्षके बाद, बुध ४६, वृहस्पति ८३, शुक्र ८, शनि ५९, राहु और केतु ९३ वर्षके बाद उक्त उक्त अक्षांशमें पुनरागमन करते हैं।

संक्रान्तिको शास्त्रमें पर्वदिन कहा है, अतएव इस दिन स्त्री, तैल, मत्स्य और मांसादि भक्षण निषिद्ध है। इस दिन सायं संध्या नहीं करनी चाहिये। किन्तु सायं संध्याके सम्बन्धमें वैदिक संध्या ही निषिद्ध है, तान्त्रिक संध्या नहीं। तर्पणस्थलमें संक्रान्तिके दिन कपड़ेके निचोड़े हुए जलसे तर्पण नहीं करना चाहिये तथा इस दिन कपड़ेमें खार आदि लगाना भी मना है।

चैत्रसंक्रान्तिमें आरोग्यकी कामना करके स्नुहीवृक्षके नीचे घण्टाकर्णकी पूजा करनी होती है।

घंटाकर्ण देखो।

मेषसंक्रांतिमें देवता और पितरोंके उद्देशसे सत्तु और जलपूर्ण घट दान करना होता है। इस दानसे सभी पाप विनष्ट होते हैं। (तिथितत्त्व)

सङ्क्रान्तिचक्र (सं० क्ली०) संक्रान्त्याश्चक्रं। मनुष्यका शुभाशुभ जाननेके लिये नक्षत्रांकित नराकारचक्र। मनुष्यको किस संक्रान्तिमें शुभ और किस संक्रान्तिमें अशुभ होगा, जन्मनक्षत्र द्वारा वह जाना जाता है। इस नराकार चक्रका वह नक्षत्र जिस स्थानमें रहता है, उसीके शुभाशुभ फल द्वारा शुभाशुभ फल जाना जायेगा। यह चक्र महाविषुव, जलविषुव, उत्तरायण और दक्षिणायन, षड़शीति और विष्णुपदी इन छः संक्रान्तियोंमें भिन्न रूपसे जानना होगा। ज्योतिस्तत्त्वमें इस चक्रका विशेष विवरण लिखा है। उन उनशब्दोंमें इसका विषय देखो।

सङ्क्राम (सं० पु०) संक्रम-घञ्। दुर्गसञ्चर।

संक्रमण देखो।

सङ्क्रामक (सं० त्रि०) संक्रमकारक, जो संसर्ग या छूत आदिके कारण एकसे औरोंमें फैलता हो।

सङ्क्रामकरोग (सं० पु०) संसर्गजरोग, वह रोग जो छूत आदिके कारण एकसे औरोंमें फैलता है। इस संक्रामकरोगके विषयमें माधवनिदानमें लिखा है, कि प्रसङ्ग, गात्रस्पर्शन, निःश्वास, एकत्र भोजन, एक शय्या पर शयन, एक आसन पर उपवेशन, एक वस्त्र परिधान, एक माल्य धारण इत्यादि कारणोंसे कुष्ठ, ज्वर, शोष, नेत्राभिष्यन्द तथा औपसर्गिक रोग एकसे दूसरेमें संक्रामित होता है, इसीसे इन सब रोगोंको संक्रामक रोग कहते हैं।

सङ्क्रामण (सं० क्ली०) अतिक्रम करना।

सङ्क्रामयितव्य (सं० त्रि०) अतिक्रम करनेके योग्य।

सङ्क्रामिन् (सं० त्रि०) संक्रम-णिनि। संक्रामक, जो लोगोंमें रोगोंका संक्रमण करता हो, रोग फैलानेवाला।

सङ्क्रीड़ (सं० पु०) १ सम्यक् क्रीड़ा। २ परिहास, हंसी ठट्ठा। ३ सामभेद।

सङ्क्रीड़न (सं० क्ली०) क्रीड़ा। (हरिवंश)

सङ्क्रोश (सं० पु०) १ जोरसे शब्द करना, चिल्लाना। (शुक्लयजुः २५।२) २ सामभेद। ३ इहलोक और परलोकमें दुःख।

सङ्क्लेद (सं० पु०) सं-क्लिद-घञ्। आर्द्रीभाव।

सङ्क्लेश (सं० पु०) सम्यक् कष्ट या दुःख।

सङ्क्षय (सं० पु०) सं-क्षि अ-अप्। १ नाश, ध्वंस, बरबादी। २ प्रलय।

सङ्क्षर (सं० पु०) १ सङ्गम, वह स्थान जहां दो नदियाँ मिलती हों। २ सामभेद। (शतपथब्रा० १०।५।२।१८)

सङ्क्षिप्त (सं० त्रि०) सं-क्षिप्-क्त। १ अल्पीकृत, जो संक्षेपमें कहा या लिखा गया हो, खुलासा। २ सञ्चित, संचय किया हुआ। ३ त्यक्त, छोड़ा या फेंका हुआ।

सङ्क्षिप्तक (सं०पु०) संक्षिप्ति। (भरतनाट्यशास्त्र २०।५६)

सङ्क्षिप्तत्व (सं० क्ली०) संक्षिप्तस्य भावः तल्-टाप्। संक्षिप्तका भाव या धर्म।

सङ्क्षिप्तलिपि (सं० स्त्री०) एक लेखनप्रणाली। इसमें ध्वनियोंके लिये ऐसे संक्षिप्त चिह्न या रेखायें नियत रहती हैं जिनके द्वारा लिखनेसे थोड़े काल और जिनके द्वारा लिखनेसे थोड़े काल और स्थानमें बहुत सी बातें लिखी जा सकती हैं। व्याख्यान आदिके लिखनेमें यह अधिक सहायता देती है। व्यापारिक कार्यालयोंमें भी इसका प्रयोग होता है।

सङ्क्षिप्ता (सं०स्त्री०) ज्योतिषके मतसे बुधग्रहकी सात प्रकारकी गतियोंमेंसे एक प्रकारकी गति। प्राकृत, विमिश्र और संक्षिप्त आदि बुधग्रहकी ७ प्रकारकी गति हैं। इनमेंसे बुध जब पुष्या, पुनर्वसु, पूर्वाफल्गुनी और उत्तरफल्गुनी नक्षत्रमें रहता है, तब उसकी संक्षिप्ता गति होती है। यह गति २२ दिन तक रहती है।

सङ्क्षिप्ति (सं० स्त्री०) नाटकमें चार प्रकारकी आरभटियोंमेंसे एक प्रकारकी आरभटी। चार आरभटीके नाम ये हैं,—वस्तूत्थापन, सम्फेट, संक्षिप्ति और अवपातन। (साहित्यद० ६।४२०-२२)

नाटकमें जहां माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्तादि चेष्टित तथा वध-बन्धनादि द्वारा संयुक्त दारुणा वृत्ति होती है, वहां उसे आरभटी कहते हैं। इनमेंसे जहां शिल्प या अन्य प्रकारसे वस्तु रचना होती है, वहां उसका नाम संक्षिप्ति है। इसमें नायककी स्वव्यापारनिवृत्तिसे दूसरे नायकका ज्ञान होता है।

सङ्क्षिप्तिका (सं० स्त्री०) संक्षिप्ति देखो।

सङ्क्षुब्ध (सं० त्रि०) सम्-क्षुभ-क्त। १ सञ्चलित, विलोड़ित। २ आकुल।

सङ्क्षेप (सं० पु०) सं-क्षिप-घञ्। १ संकोचन, घटाना, कम करना। २ थोड़ेमें कोई बात कहना। ३ समाहार, संग्रह, समास। ४ चुम्बक।

सङ्क्षेपक (सं० त्रि०) सं-क्षिप्-ण्वुल्। संक्षेपकारी, संक्षेप करनेवाला।

सङ्क्षेपण (सं० क्ली०) सं-क्षिप-ल्युट्। १ संक्षेप करना, कम करना। २ काट छांट करनेकी क्रिया।

सङ्क्षेपतः (सं० अव्य०) सारांशतः, संक्षेपमें, थोड़ेमें।

सङ्क्षेपतया (सं० अव्य०) संक्षेपमें, थोड़ेमें।

सङ्क्षेपदोष (सं० पु०) साहित्यमें एक प्रकारका दोष, जिस बातको जितने विस्तारसे कहने या लिखनेकी आवश्यकता हो उसे उतने विस्तारमें न कह या लिख कर कम विस्तारसे कहना या लिखना जिससे प्रायः सुनने या पढ़नेवालेकी समझमें ठीक ठीक अभिप्राय न आवे।

सङ्क्षेप्तृ (सं० त्रि०) सं-क्षिप-तृच्। संक्षेपकारी, संक्षेप या कम करनेवाला।

सङ्क्षोभ (सं० पु०) सम्-क्षुभ-घञ्। १ चाञ्चल्य, चंचलता। २ कम्पन, कांपना। ३ घर्षण। ४ अतिक्षोभ। ५ गर्व, घमंड, शेखी।

सङ्क्षोभण (सं० क्ली०) सञ्चालन, आलोड़न।

सङ्क्षोभिन् (सं० त्रि०) संक्षोभकारी।

सङ्खनारी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक पदमें दो यगण (य, य) होते हैं। इसको सोमराजी वृत्ति भी कहते हैं।

सङ्ख्य (सं० क्ली०) सम्यक् ख्यायतेऽत्रेति सं-ख्या बाहुलकात् क। १ युद्ध, लड़ाई। (अमर) (त्रि०) २ संख्येय।

सङ्ख्यक (सं०त्रि०) जिसमें संख्या हो, संख्यावाला।

सङ्ख्यता (सं० स्त्री०) संख्यस्य भावः तल् टाप्। संख्यत्व, संख्याका भाव या धर्म।

सङ्ख्या (सं० स्त्री०) संख्यायतेऽनयेति सं-ख्या-अङ् टाप्। १ बुद्धि। २ विचार। ३ वस्तुओंका वह परिमाण जो गिन कर जाना जाय, एक दो तीन चार आदिकी गिनती। नैयायिकोंके मतसे गणन-व्यवहारमें इसको कारणता अर्थात् गणना विषयमें इसका प्रयोजन होता है। नित्य वस्तुमें एकत्व संख्या नित्य है, अन्य स्थलमें अर्थात् नित्य वस्तुको छोड़ दूसरी जगह यह संख्या अनित्य है। द्वित्वसे परार्द्ध पर्यन्त यह संख्या अपेक्षा बुद्धिसे उत्पन्न होती है, अपेक्षा बुद्धिका नाश होनेसे इसका भी नाश होता है।

एकसे परार्द्ध पर्यन्त संख्या, इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार, दश हजार, लाख, दश लाख, करोड़, दश करोड़, अरब, दश अरब, खर्व, दश खर्व, शंख, पद्म, सागर, अन्त, मध्य और परार्द्ध। इस परार्द्ध पर्यन्त संख्याका व्यवहार होता है। ४ वैद्यकमें संप्राप्तिके पांच भेदोंमेंसे एक भेद। अन्य चार भेद विकल्प, प्राधान्य, बल और काल है।

सङ्ख्याक (सं० त्रि०) संख्यायुक्त, संख्याविशिष्ट।

सङ्ख्याङ्कबिन्दु (सं० पु०) संख्याका अङ्कज्ञापक बिन्दु, शून्य संख्या।

सङ्ख्यात (सं० त्रि०) संख्या-क्त। कृतसंख्य, जिसकी सङ्ख्या की गई हो। पर्याय—गणित।

सङ्ख्यातृ (सं० त्रि०) संख्या-तृच्। संख्याकारक, गणक, गणनाकारी।

सङ्ख्यातिग (सं० त्रि०) संख्यां अतिगच्छति संख्या अति गम-ड। संख्यातिक्रमकारी, गिनती करनेवाला।

सङ्ख्यान (सं० क्ली०) १ संख्या, गिनती। २ गिननेकी क्रिया, शुमार। ३ ध्यान। ४ प्रकाश।

सङ्ख्यानामन् (सं० क्ली०) वाक्य द्वारा संख्यालिखन।

सङ्ख्यापद (सं० क्ली०) वाक्ययुक्त संख्या।

सङ्ख्यामङ्गलग्रन्थि (सं० पु०) सौभाग्य वृद्धिकी कामनासे संख्यानुरूप ग्रन्थिबन्धन क्रियाविशेष।

सङ्ख्यायोग (सं० पु०) ग्रहसमावेश। (वराह बृ० १२।१०)

सङ्ख्यालिपि (सं० स्त्री०) लिपिभेद, एक प्रकारकी लेखन-प्रणाली जिसमें वर्णोंके स्थान पर संख्यासूचक चिह्न या अंक लिखे जाते हैं।

सङ्ख्यावत् (सं० पु०) संख्या बुद्धिरस्त्यस्येति मतुप् मस्य व। १ पण्डित। (अमर) (त्रि०) २ संख्यायुक्त, संख्याविशिष्ट।

सङ्ख्याविधान (सं० क्ली०) संख्यायाः विधानं। संख्याका विधान, गणनाका नियम। (बृहत्संहिता १२।१५)

सङ्ख्यावृत्तिकर (सं० त्रि०) बहुसंख्यक।

सङ्ख्याशब्द (सं० त्रि०) संख्यावाचक वाक्य।

सङ्ख्याशस् (सं० अव्य०) संख्या शस्। संख्याक्रमसे।

सङ्ख्येय (सं० त्रि०) संख्यातुं योग्यमिति संख्या यत्। संख्याके योग्य, गणनाके लायक। पर्याय—गणेय, गणनीय, गण्य। (हेम)

सङ्ग (सं० पु०) सञ्ज् सङ्ग घञ्। १ मेलन, मिलनेकी क्रिया। पर्याय—मेलक, सङ्गम। २ संसर्ग, सहवास, सोहबत। शास्त्रमें लिखा है, कि असत्का सङ्ग नहीं करना चाहिए, सत्सङ्ग करनेसे स्वर्गवासके समान फल तथा असत्सङ्गसे सर्वनाश होता है।

३ राग, विषयोंके प्रति होनेवाला अनुराग। ४ सम्बन्ध। ५ बन्धुत्व, दोस्ती। ६ वासना, आसक्ति। ७ नदियोंका संगम, वह स्थान जहां दो नदियां मिलती हैं।

सङ्गणना (सं० स्त्री०) सम्यक् गणन।

सङ्गणिका (सं० स्त्री०) अप्रतिरूप कथा, अनुपम वार्त्तालाप। (त्रिका०)

सङ्गत (सं० क्ली०) सम् गम-क्त। १ सौहार्द्द, संग रहने या होनेका भाव, सोहबत, संगति। २ युक्तियुक्त वाक्य। पर्याय—हृदयङ्गम, उपयुक्त वाक्य। ३ सम्बन्ध, संसर्ग। (त्रि०) ४ मिलित। ५ साक्षात्कृत। ६ सञ्चित। ७ दृष्ट। (पु०) ८ मौर्यवंशीय नृपतिविशेष। (भागवत १२।१।१३) ९ संग रहनेवाला, साथी। १० वेश्याओं या भाड़ों आदिके साथ रह कर सारंगी, तबला, मंजीरा आदि बजानेका काम। ११ वह जो इस प्रकार किसी गाने या नाचनेवालेके साथ रह कर साज बजाता हो। १२ वह मठ जहां उदासी या निर्मले आदि साधु रहते हैं। १३ प्रसंग, मैथुन।

सङ्गतल (सं० पु०) बौद्धयतिभेद। (तारनाथ)

सङ्गतार्थ (सं० त्रि०) सङ्गतोऽर्थो यत्र । युक्तार्थ, सुसङ्गत वाक्ययुक्त ।

सङ्गति (सं० स्त्री०) सम्-गम-क्तिन् । १ सङ्गम, मेल, मिलाप । २ संसर्ग, सहवास । ३ योग, संग, साथ, सोहबत । ४ सम्बन्ध, ताल्लुक । ५ किसी विषयका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये बार बार प्रश्न करनेकी क्रिया । ७ युक्ति । ८ पहले कही या लिखी हुई बातके साथ बादमें कही या लिखी हुई बातका मेल, आगे पीछे कहे जानेवाले वाक्यों आदिका मिलान ।

सङ्गतिन् (सं० त्रि०) एकत्र सम्मिलित । "श्राद्धसङ्गतिनो विप्राः ।" (मार्क० पु० १४।६०)

सङ्गथ (सं० पु०) १ सङ्गमन । (ऋक् २।३८।१०) २ संग्राम, लड़ाई । (निघण्टु २।१७)

सङ्गनेर—राजपूतानेके अन्तर्गत जयपुर राज्यका एक शहर । यह अक्षा० २६°४८´ उ० तथा देशा० ७५°४७´ पू०के मध्य आमन-इ-शाह नदीके किनारे जयपुर शहरसे ७ मीलकी दूरी पर अवस्थित है । यह शहर राजपूताना-मालव रेलवेके सङ्गनेर स्टेशनसे ३ मील दूर पड़ता है । जनसंख्या ४ हजारके करीब है । यहां बहुत देवमन्दिर और जैनकीर्त्ति हैं । इसकी एक कीर्त्ति हजार वर्षसे भी पुरानी है । यहां कपड़े में रंग चढ़ाया जाता और छाप दी जाती है । शहरमें एक डाकघर और एक अपर प्राइमरी स्कूल है ।

सङ्गम (सं० पु० क्ली०) सं-गम (ग्रहवृदनिश्चिगमश्च । पा ३।३।५८) इति अप् । १ सङ्ग, साथ, सोहबत । २ दो नदियोंके मिलनेका स्थान । जैसे, गंगासागरसङ्गम । ३ स्त्री और पुरुषका संयोग, मैथुन, प्रसंग । यह तीन प्रकारका है,—प्रथम, मध्यम और उत्तम ।

निर्जन स्थानमें परस्त्रीके साथ अदेशकालभावादि द्वारा अभिव्यक्ति, कटाक्षावेक्षण और हास्यादिको प्रथम सङ्गम ; गन्ध, माल्य, वस्त्र और भूषणादि प्रेरण तथा अन्नपानादि द्वारा प्रलोभनको मध्यम ; निर्जन स्थानमें स्त्रियोंके साथ एक जगह उपवेशन, परस्पर समाश्रय तथा केशाकेशि ग्रहणको उत्तम सङ्गम कहते हैं ।

४ दो वस्तुओंके मिलनेकी क्रिया, मिलाप, सम्मेलन । ५ ज्योतिषमें ग्रहोंका योग, कई ग्रहों आदिका एक स्थान पर मिलना या एकत्र होना ।

सङ्गम—मन्द्राज प्रदेशके नेल्लूर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम । यह नेल्लूर सदरके पश्चिमसे २० मील दूर पेन्नारनदीके किनारे अवस्थित है । यहां भी नदीके ऊपर एक पुल है ।

सङ्गमक (सं० त्रि०) पथज्ञापक, रास्ता दिखानेवाला ।

सङ्गम(श्रो)ज्ञान (सं० पु०) बौद्धयतिभेद ।

सङ्गमन (सं० त्रि०) १ गन्तव्य स्थान । (ऋक् १० १४।१) सम्-गम ल्युट् । (क्ली०) २ सम्यक् प्रकारसे गमन । ३ सङ्गम, मेल ।

सङ्गमनीय (सं० त्रि०) सङ्गमनके योग्य, सम्मिलनके योग्य ।

सङ्गमनेर—१ बम्बईके अहमदनगर जिलेका एक तालुका । यह अक्षा० १६°१२´से १६°४७´ उ० तथा देशा० ७४°१´ से ७४°३१´ पू०के मध्य विस्तृत है । भूपरिमाण ७०४ वर्गमील और जनसंख्या ६० हजारसे ऊपर है । इसमें सङ्गमनेर नामक १ शहर और १५१ ग्राम लगते हैं । यहां प्रवरा और मूला नामकी दो नदी बहती हैं । सूती कपड़ा, रेशमी कपड़ा, पगड़ी, कम्बल और सोरा आदि इस स्थानका प्रधान वाणिज्य द्रव्य है ।

२ उक्त तालुकेका एक शहर । यह अक्षा० १६°३४´ उ० तथा देशा० ७४°१३´ पू० अहमदनगरसे ४६ मील उत्तरपश्चिममें अवस्थित है । जनसंख्या १३ हजारसे ऊपर है । शहरमें एक सब-जजकी अदालत, डिसपेन्सरी और एक अंगरेजी स्कूल है ।

सङ्गमय (सं० त्रि०) १ सङ्गविशिष्ट । २ ऐकान्तिक आकांक्षायुक्त ।

सङ्गमिन् (सं० त्रि०) सङ्गमशील । (मार्क०पु० ५६।१६)

सङ्गमेश्वर—१ बम्बई प्रदेशके रत्नगिरि जिलेका एक तालुक । यह अक्षा० १६° ४६´ से १७° २०´ उ० तथा देशा० ७३° २५ से ७३° ५०´ पू०के मध्य विस्तृत है । भूपरिमाण ५७६ वर्ग मील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है । इसमें १६० ग्राम लगते हैं । शास्त्री नदी इसको दो भागोंमें विभक्त करती है ।

२ उक्त तालुकेका प्राचीन सदर । यह अक्षा० १७° १६´ उ० तथा देशा० ७३° ३३´ पू० शास्त्री नदीके किनारे अवस्थित है । जनसंख्या तीन हजार है ।

सह्याद्रिखण्डमें लिखा है, कि सङ्गमेश्वरका प्राचीन नाम रामक्षेत्र था। यहां परशुराम या भार्गवरामके बनाये हुए बहुतसे मन्दिर थे। ७वीं सदीमें यहां चालुक्य-राज कर्णको राजधानी थी। उन्होंने बहुतसे मन्दिर और किला बनवाये थे। उनमेंसे कर्णेश्वर नामका मन्दिर प्रधान था। १४वीं सदीमें लिङ्गायतवंशके प्रतिष्ठाता वासवने यहां बहुत दिनों तक वास किया था। जनवरी और फरवरीके महीनेमें यहां प्रति वर्ष मेला लगता है। नदीसङ्गम पर बहुतसे तीर्थस्थान हैं जिनमेंसे 'धूतपाप' या पापनाशक तीर्थ ही प्रधान है। इसी स्थानमें शिवाजीका लड़का शम्भाजी मुगलोंसे कैद किया गया और १६८६ ई०में मार डाला गया था। यहां पांच स्कूल हैं।

सङ्गमेश्वर (सं० पु०) १ विश्वनाथ शिवका एक नाम। २ शैवतीर्थ। ३ इस नामका एक नगर।

सङ्गर (सं० पु०) संगृणन्ति शब्दायन्ते वीरा यत्र सं गृ शब्दे अप्। १ युद्ध, लड़ाई। २ आपद्, विपत्ति। ३ अङ्गीकार, स्वीकार। ४ संवित्। (अमर) ५ क्रियाकार, कर्मकरण। ६ क्रयविक्रयनिर्द्धारण। ७ प्रतिज्ञा। ८ प्रश्न, सवाल। ९ नियम। १० विष, जहर। (क्ली०) ११ शमी वृक्षका फल। (मेदिनी)

सङ्गरण (सं० क्ली०) अनुधावन, किसीके पीछे चलना।

सङ्गल—पञ्जावके भङ्ग जिलेके एक प्राचीन शहरका ध्वंसावशेष। यह शहर पहाड़ी अधित्यकाके ऊपर बसा हुआ है। अभी इसे लोग संगालवाला टीला कहते हैं। पुराणमें जिसे शाकल देश कहा है, बौद्ध लोग जिसे सागल कहते थे और अलेकसन्दरके समसामयिक ऐतिहासिक जिसे सांगल कह गये हैं, जेनरल कनिंहमके मतसे यही संगल वह इतिहास-प्रसिद्ध स्थान है।

उक्त प्राचीन भग्नावशेषके उत्तर समतल भूमि है। उस समतल भूमिसे यह स्थान २१० फुट ऊंचा है। यहां ईटोंकी दीवारका खंडहर और पुरानी ईंटें आज भी दिखाई देती हैं। इसके दक्षिण पूर्व बहुत विस्तृत जलाभूमि है। वर्षाकालमें यहां तीन फुटसे अधिक जल होता है। किन्तु ग्रीष्मकालमें जल बिलकुल सूख जाता है। पर्वतके उत्तर पूर्व प्रदेशमें दो बड़े बड़े ईंटोंके भग्न मीनार दृष्टिगोचर होते हैं। उन ईंटोंका आकार बहुत बड़ा है। उसकी बगलमें ही एक प्राचीन कूप है। उत्तरपश्चिम पार्श्वमें मुण्डका-पुरा नामका एक पहाड़ है। इस पहाड़के ऊपर भी बहुतसी ईटें देखी जाती हैं। महाभारत पढ़नेसे जाना जाता है, कि शाकलमें मद्रराजोंकी राजधानी थी। जातक और बाहक राजाओंने भी परवर्त्ती कालमें यहीं पर राजधानी बसाई थी। आज भी इस स्थानका पार्श्ववर्त्ती भूखण्ड मद्रदेश कहलाता है। यह स्थान आपगा नदीके ऊपर स्थापित है। कोई कोई कहते हैं, कि यह आपगा नदी आयक नदका नामान्तर है।

पहले कहा जा चुका है, कि बौद्ध ग्रन्थमें यह स्थान सागल (शाकल) नामसे प्रसिद्ध है। उन लोगोंका कहना है, कि कुश राजाकी स्त्री प्रभावतीको हरण करनेके लिये इस सागल शहरमें सात विदेशी राजे आये। कुश एक हाथी पर चढ़ कर वज्रगम्भीर नादसे उन्हें भयभीत किया। उनका गर्जन सुनते ही सातों राजे जान ले कर भागे। ग्रीक ऐतिहासिक ऐरियन, कार्टियस् और दिओदोरस आदि बहुतोंने ही सांगल शहरका नामोल्लेख किया है। सांगल ऊंची दीवारसे घिरा था तथा उसके चारों ओर बड़े हद थे। अलेकसन्दरने इस शहर पर आक्रमण किया था। उस समय भी उन्होंने दुर्गका भग्न स्तूप देखा था। वे शहरमें बौद्ध भजनालय, २०० बौद्ध धर्मयाजक और दो बौद्धस्तूप देख गये हैं। उनमेंसे एक स्तूप राजा अशोकका बनाया हुआ है।

सङ्गव (सं० पु०) संगता गावो दोहनार्थं यत्र, निपातनात् साधु। प्रातःकालके बाद तीन मुहूर्त्तकाल। सूर्योदयसे तीन मुहूर्त्तकाल तकको प्रातःकाल, उसके बाद तीन मुहूर्त्त कालको संगव काल कहते हैं। दो दण्डसे कुछ कम कालका नाम मुहूर्त्तकाल है। इस हिसाबसे प्रायः ६ दण्डके बाद १२ दण्ड तक संगव काल हुआ।

ऋक् भाष्यमें सायणने लिखा है, कि गौएं जिस समय दोहन-भूमिमें सम्मिलित होती हैं, उस समयको सङ्गवकाल कहते हैं। रात्रिके शेषमें गौएं चरने हिमतृण खा कर संगवकालमें लौटती है।

सङ्गवत् (सं० त्रि०) सङ्गो विद्यतेऽस्य, सङ्ग-मतुप् मस्य व। सङ्गविशिष्ट, सङ्गी।

सङ्गविनी (सं० स्त्री०) दोहनभूमि पर समागत गवी।

सङ्गाद (सं० पु०) वाक्यालाप, कथा-वार्त्ता।

सङ्गायन (सं० क्ली०) परिचित गायक।

सङ्गिक (सं० पु०) काश्मीरराजका प्रतीहारभेद।

सङ्गिन् (सं० त्रि०) संगोऽस्यास्तीति सङ्ग-इनि। सङ्ग-विशिष्ट, संयुक्त, साथी।

सङ्गिनी (सं० स्त्री०) १ साथ रहनेवाली स्त्री, सहचरी। २ पत्नी, भार्या, जोरू।

सङ्गिय (सं० पु०) राजभेद। (राजतर० ३४।४९)

सङ्गिर् (सं० स्त्री०) सम्यक् गिरणाधारभूत उदर।

सङ्गिर (सं० त्रि०) सम्यक् गलाधःकरणशील।

सङ्गिरमाण (सं० त्रि०) सं-गृ-शानच्। प्रतिज्ञाकारी, प्रतिज्ञा करनेवाला।

सङ्गीत (सं० क्ली०) सं-गै-क्त। १ नृत्य, गीत और वाद्यका समाहार, वह कार्य्य जिसमें नाचना, गाना और बजाना तीनों हों।

सङ्गीतदर्पणमें संगीत शब्दका एक पारिभाषिक अर्थ लिखा है—

"गीतं वाद्यं नर्त्तनञ्च त्रयं सङ्गीतमुच्यते।"

(सङ्गीतदर्पण)

अर्थात् संगीत, वाद्य और नर्त्तन इन तीनोंको गीत कहते हैं। किसी किसीका कहना है, कि गीत, वाद्य और नर्त्तन इन तीनोंका ही समाहार सङ्गीत है। फिर कोई कहते हैं, कि इनमेंसे प्रत्येक संगीत कहलाता है। नृत्य वाद्यानुग है, वाद्य गीतका अनुग है, अतएव संगीत में गीतकी ही प्रधानता है। संगीतदर्पणकारने संगीत शास्त्रको दो भागोंमें विभक्त किया है, यथा—मार्ग और देशी।

ब्रह्मा जिसके प्रथमप्रदर्शक थे, भरत द्वारा जो महादेवके सामने अभिनीत हुआ था, जो लोगोंका विमुक्तिप्रद है, वही मार्ग कहलाता है।

भिन्न भिन्न देशमें भिन्न भिन्न रीतिके अनुसार लोकरञ्जनके लिये बीच बीचमें जिस जिस सङ्गीतकी उत्पत्ति हुई है, उसीका नाम देशी है।

सङ्गीतका मुख्य उद्देश्य मनोरञ्जन है और भिन्न भिन्न प्रकारसे मनोरञ्जनके लिये गाना बजाना हुआ करता है। सम्भवतः भारतवर्षमें ही सबसे पहले संगीतकी ओर लोगोंका ध्यान गया था। प्राचीन ग्रीक यूरोपीय सभ्यताकी मातृभूमि है। इस ग्रीकदेशमें जब सभ्यताका नामोनिशान न था, उस समय भी भारतवर्षमें संगीतशास्त्रकी बड़ी उन्नति हुई थी। प्राचीन ग्रीक लोगोंने हिन्दुओंका संगीतशास्त्र देख कर संगीत विद्याकी उन्नति की। पारस्य और अरबवासियोंने हिन्दूसंगीतके ग्रन्थादिकी आलोचना कर संगीतशास्त्रकी ओर ध्यान दौड़ाया। वैदिक ऋषियोंको मन्त्रध्वनि संगीतके आकारमें ही सबसे पहले प्रकाशित हुई। सामवेदका पवित्र मन्त्र वैदिक आर्यों का ही पवित्र गीतलहरी था। वैदिकयुगके पहलेसे ही भारतमें संगीतप्रथा प्रचलित थी, ऋग्वेदादिकी मात्रा और छन्दसे उसका पता चलता है।

आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि छन्दोमात्रात्मक प्राचीन वैदिक मन्त्र सुमधुर कण्ठसे संगीतकी तरह सुरताल और लययोगसे उच्चारित होते होते क्रमशः सामवेदीययुगमें सामगानमें परिणत हुआ। उसके बाद आरण्यक भी गाया जाता था, उसका प्रमाण महाभारतके १२।३३९।८ और १२।३३६।११ श्लोकसे हमें मिलता है। रामायणके २।६९।४ श्लोकके "नाटकान्याहुः" पदसे उस समय नाटकाभिनयकी प्रसारवृद्धि और संगीतकी भी परिपुष्टि होना अनुमानसिद्ध है। महाभारतीय युगमें इस नाट्याभिनयके समूह विकाशके साथ संगीतालोचनाका प्रसार होना ही सम्भवपर प्रतीत होता है। दुःखका विषय है, कि महाभारतमें कहीं भी वैसे उत्तम भावमें नाट्याभिनयका उल्लेख नहीं है। परन्तु भारतको ४।१६।४३ श्लोककी 'अकालज्ञासि सैरन्ध्रि शैलूषीव विरोदिषि।' तथा २।११।३६ श्लोककी "नाटका विविधाः काव्याः कथाख्यायिककारिकाः।" उक्तिसे महाभारतीययुगमें नाटकके विस्तारप्रसंगमें संगीतका बहुत कुछ अनुमान किया जाता है। दानमहाक्रतुमें (भारत १५।१४।१७) "नटनर्त्तकलास्याढ्यः" तथा ४।२२।२ और १६ श्लोकमें नर्त्तनशालाके तथा १।१३४। १०-११ श्लोकमें रंगभूमि और प्रेक्षागार पदके उल्लेखसे उस समयके रंगालय और नाट्याभिनयकी प्रधानता

भजनकर्त्ता हैं। उस समय नर्त्तक नाचते और गायक गान करते थे। (१।२१९।४)

उस समय सङ्गीत जो पूर्णरूपसे परिस्फुट हुआ था तथा एकमात्र गन्धर्व्वगण ही जो उसके परिपोषक थे, उसका प्रमाण १।२१६।८ श्लोकके "अनुगीयमानो गंधर्व्वैः स्त्रीसहस्रसहायवान्।" पदांशसे मिलता है। इसके सिवा महाभारतके ४।७०।२०, ४।७२।२६, ७।८२।२-३ ; २।४।७, १४।७०।७ आदि स्थलोंमें मागध, नान्दीवाद्य, वन्दी, गायन, सौख्यशायिक, वैतालिक, कथक, ग्रन्थिक, गाथी, कुशीलव, नट, सूत आदि सङ्गीतव्यवसायियोंका उल्लेख है। उक्त श्रेणीके व्यक्तियोंने राजदरबारमें रह कर स्तुतिवाद और वंशानुचरितगान या कीर्त्तन द्वारा निःसन्देह सङ्गीतकी पुष्टि की थी।

पुराणका अनुसन्धान करनेसे यह भी जाना जाता है, कि महर्षि नारद ही सङ्गीतके एकमात्र प्रवर्त्तक और प्रचारक थे।

महर्षि नारद हाथमें वीणा ले कर नृत्यगीतकी परिचर्या करते थे। शल्यपर्व्व (६।५४।१८) में लिखा है, कि देवर्षि श्रुतिसुखकर कच्छपी वीणा हाथमें ले कर भ्रमण करते तथा वे नृत्यगीतकुशल और देवब्राह्मणपूजित थे, साथ साथ कलहकर्त्ता और कलहप्रिय भी थे। उनके बाद नाट्यशास्त्रके प्रणेता भरत, वाल्मीकि विश्वामित्र आदि ऋषि ही सङ्गीताचार्यके पद पर बैठे।

पौराणिक युगमें जब संगीताभ्यालना और उसकी आलोचना सर्व्वजनपूजित ऋषियोंके हाथमें थी, तब सङ्गीतशास्त्र गन्धर्व्ववेद कहलाता था। वनपर्व्वके ६१वें अध्यायमें लिखा है, कि पार्थने विश्वावसुके पुत्रसे नृत्य गीत, वाद्य और सामगान सीखा था।

उस समय सङ्गीत कहनेसे गीत, नृत्य, वाद्य और सामगान इन चारोंका बोध होता था। उस समय शब्द भी त्रिःसामा (३।२०।१०) और स्वर भी सप्तविध (१२।१८४।३६ और १४।५०।५३) माना जाता था।

इस युगमें जब ऋषि लोग सङ्गीतकी आलोचना करते थे, तब नृत्यगीत समाजमें निन्दनीय नहीं समझा जाता था। अर्जुनने वृहन्नला रूपमें विराट् राजकन्या उत्तराको सङ्गीतविद्या सिखलाई थी। (विराटपर्व्व २।१८-१२ इस समय राजान्तःपुरवासिनी, राजकुलललनाएं भी सङ्गीतचर्चा करती थीं, यही उसका प्रमाण है।

पौराणिक युगके अन्तिम समयमें नाट्याभिनय और सङ्गीतका जो प्रसार हुआ था, वह हम हरिवंश (२।८६।७२) से जान सकते हैं। पीछे जब वह नटनर्त्तककी वृत्ति और जीविकारूपमें परिणत हुआ, तब ही लोग उसे दुष्कर्म समझने लगे थे तथा उस सम्प्रदायके लोगोंको रातदिन कुक्रियामें रत देख राजगण नट, नर्त्तक और गायकोंको नगरके बाहर रहनेका हुकुम देते थे।

महाभारतके अनुशासन पर्व्वमें यह भी लिखा है, कि राजा, गायक तथा नर्त्तकोंको कभी स्थान न दें।

इनमेंसे स्तुतिवादक कुशीलव आदि अपाङ्क्तेय थे। (१३।९०।११) पुरोहित भी वन्दी व्यवसायी होनेसे निन्दनीय समझे जाते थे।

बौद्धयुगमें भी सङ्गीताभिनयकी यथेष्ट चेष्टा देखी जाती है। जातक-निचयसे हम उसका आभास पाते हैं। महाकवि कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट आदि नाटककारोंके ग्रन्थमें गीतका आयोजन देखनेसे अनुमान होता है, कि उस समय भारतवर्षमें सङ्गीतका बड़ा आदर था। नाटक देखो।

अति प्राचीन कालसे भारतीय आदि आर्योंने प्रकृतिका मधुरतत्त्व जगद्वासीके सामने सङ्गीतशास्त्ररूपमें प्रकाश किया था। क्रमशः उनके अनुशीलन फलसे उसका पूर्ण विकाश हुआ तथा उसीके अनुसार भारतीय सङ्गीताचार्योंने बहुतसे संगीत शास्त्र प्रणयन किये। दुःखका विषय है, कि कालके करालकवलमें वे सब ग्रन्थ विलुप्त हो गये हैं। अभी बहुत थोड़े ग्रन्थ प्रचलित हैं जिनमेंसे निम्नलिखित ग्रन्थोंके नाम उल्लेखनीय है—

ग्रन्थोंके नाम।	रचयिता।
गीतप्रकाश	हरिभट्ट
गीतसंकर	मैथिल भीष्म मिश्र
रागचन्द्रोदय	विमल
रागतत्त्वविरोध	श्रीनिवास
रागध्यानादिकथनाध्याय	
रागप्रस्तार	

ग्रन्थोंके नाम।	रचयिता।
रागमञ्जरी	पुण्डरीक विट्ठल
रागमाला	क्षेमकर्ण (१५७० ई०)
रागमाला	जीवराज दीक्षित
रागमाला	पुण्डरीक विट्ठल
रागरत्नाकर	गन्धर्वराज
रागरागिणीस्वरूपवेलावर्णन	
रागलक्षण	
रागविरोध	मुद्गलपुत्र सोम
रागविरोधविवेक	सोमनाथ
रागविवेक	
रागाणां स्त्रीपुत्रादिपरिवारवर्णनम्	
रंगार्णव	
रागोत्पत्ति	
सङ्गीतकलानिधि	हरिभट्ट
संगीतकल्पद्रुम	
संगीतकौमुदी	„
संगीतचिन्तामणि	कमललोचन
संगीतदर्पण	हरिभट्ट
संगीतदामोदर	दामोदर
संगीतनारायण	नारायण
संगीतनृत्यरत्नाकर	विट्ठल
संगीतनृत्याकर	भरताचार्य
संगीतपारिजात	अहोवल
संगीतपुष्पाञ्जलि	वेद
संगीतमकरन्द	
संगीतमीमांसा	कुम्भकर्ण महिमेन्द्र
संगीतमुक्तावली	देवेन्द्र
संगीतरत्न	
संगीतरत्नमाला	मम्मट
संगीतरत्नाकर	शार्ङ्गदेव
संगीतरत्नावली	सोमराजदेव
संगीतरागलक्षण	
संगीतराघव	विम्मवोम्मभूपाल
संगीतराज	कुम्भकर्ण महिमेन्द्र
संगीत विनोद (नृत्याध्याय)	

ग्रन्थोंके नाम।	रचयिता।
संगीतशास्त्र	कैवल्याश्रमपृथु
संगीतशिरोमणि	
संगीतसागर	
संगीतसार	
संगीतसारसंग्रह	„
संगीतसारामृत	तुलजोराज
संगीतसारोद्धार	हरिभट्ट
संगीतसिद्धान्त	रामानन्द तीर्थ
संगीतसुधा	भीमनरेन्द्र
संगीतसुधाकर	सिंहभूपाल
संगीतसुन्दर	सदाशिव दीक्षित
संगीतामृत	कमललोचन
संगीतार्णव	
संगीतोपनिषद्	सुधाकलश (१३२४ ई०)
संगीतोपनिषत्सार	सुधाकलश (१३५० ई०)

इसके सिवा कण्ठसंगीतके सम्बन्धमे और भी कितने ग्रन्थ रचे गये, पर अभी वे दुष्प्राप्य हैं। हिन्दी भाषामें लिखित कृष्णानन्द व्यासदेव विरचित रागसागरोद्भवकल्पद्रुम नामक सुवृहत् ग्रन्थ सङ्गीतालोचनाका एक उत्कृष्ट उपादान है। इसमे प्रत्येक रागके स्त्रीपुत्र-परिवार तथा उनकी मूर्त्ति और उत्पत्तिका विवरण आदि लिपिवद्ध हैं।

उन सब ग्रन्थोंसे नाद और नादोत्पत्तिप्रकार, श्रुति-विवरण, स्वरविवरण, वाद्यविवरण, ग्राम्यविवरण, मूर्च्छना, कूटतान, रागविवरण, ऋतुभेदसे रागरागिणीका विनियोगविवरण, रागादिका ध्यान, नर्त्तनप्रकरण आदि संगीतशास्त्रोक्त अनेक विषय मालूम हो सकते हैं।

परवर्त्ती इतिहासका अनुसरण करने पर भी हम देखते हैं, कि हिन्दू और मुसलमान राजे राजसभाके अलङ्कारस्वरूप राजसभामे संगीत-शास्त्रवित् वहुतसे गायक रखते थे। मुगल-सम्राट् अकबर शाहकी सभामें सैकड़ों सुगायक थे।* उनमेंसे तानसेन सर्वप्रधान थे। प्रवाद है कि तानसेन हिन्दू थे तथा ग्वालियरके तत्-

* आइन-ई-अकबरी ग्रन्थमें उन सब प्रधान प्रधान गायकोंकी नाम तालिका दी हुई है।

सामयिक किसी हिन्दू राजाकी सभामें रहते थे। अकबर शाहके विशेष अनुरोध करने पर वे दिल्ली आये। यहां सम्राट्ने उन्हें मियां तानसेनकी उपाधिसे भूषित किया। इन्हीं तानसेनने सहनाई नामक वाद्ययन्त्रकी सृष्टि की।

मुसलमान जातिने भी जातीय उन्नतिके समय संगीतशास्त्रकी बड़ी उन्नति की। खलीफाओंके शासनकालसे ले कर भारतीय मुगल बादशाहोंके प्राधान्यकाल तक मुसलमान जगत्‌में संगीत (गीत और वाद्य) के नाना अंग प्रत्यंगकी सृष्टि हुई थी। उसके साथ साथ नाना प्रकारके वाद्ययन्त्र भी बनाये गये। उन वाद्ययन्त्रोंके विवरण और चित्र वाद्ययन्त्र शब्दमें दिये जा चुके हैं। वाद्ययन्त्र देखो। मुसलमान सभ्यता और विलासिता विस्तारके साथ सुदूर यूरोप खण्डमें भी संगीत-विलासका अभिनव छायापात हुआ।

प्राचीन सभ्य और श्रीसम्पन्न ग्रीक और रोमकोंके वैभव विलासके प्रति दृष्टि डालनेसे देखा जाता है, कि संगीतकी मोहिनी शक्तिने उन लोगोंके भी मनको चुरा लिया था। गृहांगनमें या मन्दिरके चबूतरे पर वीणादि यन्त्रधारिणी मोहिनी प्रस्तरपुतलियां आज भी उनको संगीत-साधनाके आतिशय्यका आभास देती हैं। प्राचीन ग्रन्थादिमें भी उसको स्मृत अक्षुण्ण है।

रोम राज्यके अधःपतनके बाद जब मुसलमानी प्रभाव सुदूर स्पेन राज्य तक फैल गया, तब यूरोपमें फिर संगीतालोचना नये भावमें जग उठी। उस समय हीनवीर्य रोमकोंके मध्य इस चित्तद्रवकर श्रुतिसुखमयी संगीतविद्याका आदर और भी बढ़ गया। अभी सारे यूरोपखण्डमें सभ्यताके घोर विकाशके साथ इस कलाविद्याकी बड़ी उन्नति हुई है। अभी वहां कण्ठ-संगीतका वैसा आदर नहीं रहने पर भी यन्त्रसंगीतकी उन्नति दिन पर दिन होती जा रही है।

हरिवंशमें लिखा है, कि सङ्गीतका अवसान होनेके बाद सङ्गीतकारियोंका ताम्बूलदान करना होता है।

सङ्गीतक (सं० क्ली०) संगीत-स्वार्थे कन्। सङ्गीत देखो।

सङ्गीतकगृह (सं० क्ली०) संगीतकस्य गृहं। संगीतशाला।

सङ्गीतविद्या (सं० स्त्री०) संगीत विषयक विद्या, संगीतशास्त्र।

सङ्गीतवेश्मन् (सं० क्ली०) संगीतस्य वेश्म। संगीत गृह, संगीतशाला।

सङ्गीतशास्त्र (सं० क्ली०) संगीतविषयकं शास्त्रं। संगीतविषयक शास्त्र, जिस शास्त्रमें गाने, बजाने, नाचने और हावभाव आदि दिखलानेकी कलाका विवेचन हो, उसे संगीतशास्त्र कहते हैं। सोमेश्वर, भरत, हनूमत् और कल्लिनाथके मतसे यह शास्त्र चार प्रकारका है। अभी हनूमत्-मत प्रचलित है। इसमें सात अध्याय हैं—स्वराध्याय, रागाध्याय, तालाध्याय, नृत्याध्याय, भावाध्याय, कोकाध्याय और हस्ताध्याय। संगीत देखो।

सङ्गीति (सं० स्त्री) सं-गै (स्थागापापचो भावे। पा ३।३।९५) इति क्तिन्। १ वार्त्तालाप, बातचीत। २ संगीत।

सङ्गीतिप्रासाद (सं० पु०) संगीतशाला।

सङ्गीर्ण (सं० त्रि०) सं-गॄ-क्त। अंगीकृत, प्रतिज्ञात।

सङ्गुण (सं० त्रि०) सम्यक् गुणन। (गोलाध्याय)

सङ्गुप्त (सं० पु०) सं-गुप-क्त। १ बुद्धभेद। (त्रि०) २ संगोपनाश्रय।

सङ्गुप्ति (सं० स्त्री०) सं-गुप-क्तिन्। सम्यक्गुप्ति, सम्यक्रूपसे गोपन।

सङ्गूढ (सं० पु०) सम-गुह-क्त। रेखा या लकीर आदि खींच कर निशान की हुई राशि या ढेर। प्रायः लोग अन्न या और किसी प्रकारकी राशि लगा कर उसे रेखाओंसे छेद या अंकित कर देते हैं जिसमें यदि कोई उस राशिमेंसे कुछ चुरावे, तो पता लग जाय। इसी प्रकार अंकित की हुई राशिको संगूढ़ कहते हैं।

सङ्गृहीत (सं० त्रि०) सङ्कलित, संग्रह किया हुआ, एकत्र किया हुआ, जमा किया हुआ।

सङ्गृहीति (सं० स्त्री०) धारणकारी। द्विजिह्व संगृहीत कहनेसे सर्प और खल समझा जाता है।

सङ्गृहीतृ (सं० त्रि०) संग्रहकारक, एकत्र करनेवाला, जमा करनेवाला।

सङ्गोपन (सं० क्ली०) सं-गुप-ल्युट्। छिपानेकी क्रिया, पोशीदा रखना, छिपाना।

सङ्गोपनीय (सं० त्रि०) सं-गुप-अनीयर्। संगोपनयोग्य, छिपानेके योग्य, पोशीदा रखने लायक।

सङ्ग्रथन (सं० क्ली०) सम् ग्रन्थ-ल्युट्। सम्यक्‌रूपसे ग्रन्थन।

सङ्ग्रसन (सं० क्ली०) अतिरिक्त भोजन, बहुत अधिक खाना।

सङ्ग्रह (सं० पु०) सम्-ग्रह अप्। १ समाहृति, समाहरण, एकत्र करनेकी क्रिया, जमा करना। २ ग्रन्थविशेष, वह ग्रन्थ जिसमें अनेक विषयोंकी बातें एकत्र की गई हों। सूत्र और भाष्यादिमें जो सब विषय सविस्तर वर्णित है, वही सब विषय संक्षेपमें एकत्र संग्रह कर जो निबन्ध रचा जाता है, उसे संग्रह कहते हैं। ३ मन्त्रबलसे अपने फेंके हुए अस्त्रको अपने पास लौटानेकी क्रिया। ४ भोजन, पान, औषध आदि खानेकी क्रिया। ५ निग्रह, संयम। ६ जमघट, जमाव। ७ सभा, गोष्ठी। ८ ग्रहण करनेकी क्रिया। ९ स्वीकार, मंजूरी। १० मैथुन, स्त्रीप्रसंग। ११ रक्षा, हिफाजत। १२ पाणिग्रहण, विवाह। १३ सोमयाग। १४ सूची, फेहरिस्त। १५ कोष्ठबद्धता, कब्ज। १६ शिवका एक नाम।

सङ्ग्रहग्रहणी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका रोग। इसमें भोजन किया हुआ पदार्थ पचता नहीं, बराबर पाखानेके रास्ते निकल जाता है। इसमें पेटमें पीड़ा होती है और दस्त दुर्गन्धयुक्त, कभी पतला कभी गाढ़ा और कभी रुक कर एक पखवारे, एक मास या दश दिनके अन्तर पर होता है। रोगीके पेटमें गुड़ गुड़ शब्द होता है, कमरमें वेदना होती है। शरीर दुर्बल और निस्तेज हो जाता है। रातकी अपेक्षा दिनके समय यह रोग अधिक कष्ट देता है। यह रोग प्रायः अधिक दिनों तक और कठिनतासे अच्छा होता है। यह रोग चार प्रकारका होता है, वातज, कफज, पित्तज, और सन्निपातज। विशेष विवरण ग्रहणी शब्दमें देखो।

सङ्ग्रहण (सं० क्ली०) सम्-ग्रह-ल्युट्। १ स्त्रीको हर ले जानेकी क्रिया। २ प्राप्ति। ३ ग्रहण। ४ मैथुन, सहवास। ५ अभिचार। ६ नगोंको जड़नेकी क्रिया।

सङ्ग्रहणी (सं० स्त्री०) संक्षिप्ता ग्रहणी। ग्रहणीरोगविशेष। ग्रहणी और संग्रहग्रहणी शब्द देखो।

सङ्ग्रहवत् (सं० त्रि०) संग्रह अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। संग्रहयुक्त।

सङ्ग्रहीतृ (सं० त्रि०) संग्रह-तृच्। संग्रहकारक, एकत्र करनेवाला।

सङ्ग्राम (सं० पु०) संग्राम-भावे घञ्। युद्ध, लड़ाई। संग्राम देखो।

सङ्ग्रामजित् (सं० त्रि०) संग्रामं जयति जि क्विप् तुक् च। युद्धजेता, संग्रामविजयी।

सङ्ग्रामपटह (सं० पु०) संग्रामस्य पटहः। रणभेरी, रणडिमडिम।

सङ्ग्रामभूमि (सं० स्त्री०) संग्रामस्य भूमिः। संग्रामस्थल, युद्धभूमि, लड़ाईका मैदान।

सङ्ग्राह (सं० पु० संग्रहणमिति सम्-ग्रह (समि मुष्टौ। पा ३।३।३६) इति घञ्। १ दस्ता या मूठ पकड़ना। २ हाथकी बंधी हुई मुट्ठी, मुक्का।

संग्राहक (सं० त्रि०) संग्रहकारी, एकत्र या जमा करनेवाला।

सङ्ग्राहिन् (सं० पु०) सङ्गृह्णाति मलमिति सं-ग्रह-णिनि। १ कुटजवृक्ष। (राजनि०) २ वह पदार्थ जो कफादि दोष, धातु, मल तथा तरल पदार्थोंका खींचता हो। ३ वह पदार्थ जो मलको पेटसे निकलनेमें बाधक होता है, कब्जियत करनेवाली चीज।

सङ्ग्राह्य (सं० त्रि०) सम्-ग्रह-ण्यत्। संग्रह करने योग्य, जमा करने लायक।

सङ्घ (सं० पु०) संहन (सङ्घोद्घौगणप्रशंसयोः। पा ३।३।८६) इति अप् टिलोपो घत्वञ्च निपात्यते। १ समूह, समुदाय, दल, गण। २ मनुष्योंका वह समुदाय जो किसी विशेष उद्देशसे एकत्र हुआ हो, समिति, सभा, समाज। ३ प्राचीन भारतका एक प्रकारका प्रजातन्त्र-राज्य जिसमें शासनाधिकार प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियोंके हाथमें होता था। ४ इसी संस्थाके ढंग पर बना हुआ बौद्ध श्रमणों आदिका धार्मिक समाज जिसकी स्थापना महात्मा बुद्धने की थी। पीछेसे यह बौद्ध-धर्मके त्रिरत्नोंमेंसे एक रत्न माना जाता था। त्रिरत्नमें शेष दो बुद्ध और धर्म थे। बौद्ध शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। ५ साधुओं आदिके रहनेका मठ, संगत।

सङ्घक (सं० पु०) सङ्घ-स्वार्थे-कन्। सङ्घ देखो।

सङ्घगुप्त (सं० पु०) वाग्भटके पिताका नाम।

सङ्घगुह्य (सं० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम।

सङ्घचारिन् (सं० पु०) संघेन चरतीति चर-णिनि।

१ मत्स्य, मछली। (हेम) (त्रि०) २ जो अधिकांश लोगोंका साथ दे, बहुपक्षका अनुसरण करनेवाला। ३ जो झुण्ड या समुदायमें चलता हो।

सङ्घजीविन् (सं० पु०) संघेन जीवतीति जीव-णिनि। व्रातीन, वह जो शारीरिक परिश्रम करके अपनी जीविका निर्वाह करता हो।

सङ्घट (सं० पु०) सं-घट-अच्। १ संघटन, मिलन, संयोग। २ परस्पर संघर्ष, लड़ाई, झगड़ा।

सङ्घटन (सं० क्ली०) सं-घट-ल्युट्। १ संयोग, मेल। २ संघर्ष। ३ उपकरणोंके द्वारा किसी पदार्थका निर्माण, रचना। ४ साहित्यमें नायक-नायिकाका संयोग, मिलाप। ५ बनाना। ६ संगठन देखो।

सङ्घटना (सं० स्त्री०) सङ्घटन-टाप्। परस्पर मिलन, सङ्घटन।

सङ्घट्ट (सं० पु०) सं-घट्ट-घञ्। १ अन्योऽन्य विमर्द्दन। २ गठन, रचना, बनावट। ३ चक्रविशेष, संघट्टचक्र।

सङ्घट्टचक्र (सं० क्ली०) संघट्ट एव चक्रं। फलित ज्योतिषमें युद्ध-फल विचारनेका नक्षत्रोंका एक चक्र। इस चक्र द्वारा यह जाना जाता है, कि युद्धमें जीत होगी या हार। यदि युद्धमें जानेवालेका जन्मनक्षत्र इस चक्रके शुभस्थानमें रहे, तो वह युद्धमें विजय लाभ करता है और यदि अशुभमें रहे, तो पराजय। स्वरोदयमें इस चक्रका विषय इस प्रकार दिया है। एक त्रिकोण चक्र बना कर उस चक्रमें टेढ़ी रेखाएं खींच कर उसमें अश्विनी आदि २७ नक्षत्र अङ्कित करने चाहिये। नौ नक्षत्रोंका एक साथ वेध होगा। वेधक्रम इस प्रकार होता है—अश्विनीका रेवती और ज्येष्ठाके साथ; मघाका पुष्याके साथ, सर्पनक्षत्रका पितृनक्षत्रके साथ, अश्लेषाका मूलाके साथ और ज्येष्ठाका मूलाके साथ वेध होता है। यदि राजाका जन्म नक्षत्र इस चक्रवेधमें न हो या शौम्यनक्षत्र और ग्रह सहित वेध हो, तो उस समय युद्ध नहीं होगा। यदि क्रूर नक्षत्रके साथ वेध हो, तो उस समय भीषण युद्ध होगा। सौम्य, स्वामी, मित्रामित्र आदि ग्रहोंसे वक्र तथा अतिचार प्रभृति गति द्वारा भी शुभाशुभका निर्णय होता है।

सङ्घट्टन (सं० क्ली०) संघट्ट ल्युट्। १ संयोग, मिलन। २ गठन, बनावट। ३ घटना। ४ संघटन देखो।

सङ्घट्टना (सं० स्त्री०) संघट्ट युच्-टाप्। १ सङ्घट्टन, मिलन। २ गठन, बनावट। ३ घटना।

सङ्घट्टा (सं० स्त्री०) सङ्घट्टते इति संघट्ट-अच्-टाप्। लता, वल्ली, बेल।

सङ्घट्टित (सं० त्रि०) सं-घट्ट क्त। १ संयोजित, एकत्र किया हुआ। २ गठित, निर्मित, बना हुआ। ३ चलित, चलाया हुआ। ४ घर्षित।

सङ्घट्टिन् (सं० पु०) १ सहचर। (त्रि०) २ सङ्घट्टकारक।

सङ्घतल (सं० पु०) सङ्घे संहते तले यत्र। मिलित प्रतलद्वय, संहतल।

सङ्घतिथ (सं० त्रि०) बहु संख्याविशिष्ट।

सङ्घदास (सं० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम।

सङ्घपति (सं० पु०) सङ्घस्य पतिः। दलपति, नायक, वह जो किसी संघ या समूहका प्रधान हो।

सङ्घपुष्पी (सं० स्त्री०) सङ्घानि पुष्पाणि यस्याः। धातकी, धौ। (राजनि०)

सङ्घभद्र (सं० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम। (तारनाथ)

सङ्घमण्डल (सं० क्ली०) दलसमूह।

सङ्घ(श्री)मित्र—एक प्राचीन कवि।

सङ्घरक्षित (सं० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम।

सङ्घश्री—एक कवि।

सङ्घर्ष (सं० पु०) सं-घृष-घञ्। १ सङ्घर्षण, रगड़, घिस्सा। २ दो विरोधी व्यक्तियों या दलों आदिमें स्वार्थके विरोधके कारण होनेवाली प्रतियोगिता या स्पर्द्धा। ३ मर्द्दन, घोटन, किसी चीजको घोटने या रगड़नेकी क्रिया। ४ वह अहंकारसूचक वाक्य जो अपने प्रतिपक्षीके सामने अपना बड़प्पन जतलानेके लिये कहा जाय। ५ धीरे धीरे चलना, टहलना। ६ शर्त लगाना, बाजी लगाना।

सङ्घर्षण (सं० क्ली०) सङ्घर्ष देखो।

सङ्घर्षिन् (सं० त्रि०) सं-घृष-णिनि। १ सङ्घर्षकारक, जो किसी प्रकारका संघर्ष करता हो। २ किसीके साथ प्रतियोगिता करता हो, प्रतिस्पर्द्धा करनेवाला। ३ घर्षणकारी, रगड़ने या घिसनेवाला।

सङ्घवर्द्धन (सं० पु०) एक बौद्ध आचार्यका नाम। (तारनाथ)

सङ्घवृत्ति (सं० स्त्री०) साथ कार्य करनेके निमित्त एकत्र होने या सम्मिलित होनेका क्रिया, सहयोग ।

सङ्घशस् (सं० अव्य) सङ्घ-शस् । भूरिशः, बहुशः, दल दलमें ।

सङ्घाट (सं० पु०) सङ्घेन अटति अट-घञ् । दल, समूह या संघ आदिमें रहनेवाला, वह जो दल बांध कर रहता हो ।

सङ्घाटिका (सं० स्त्री०) सङ्घाटयतीति सं-घट णिच् ण्वुल् टापि अत इत्वं । १ युग्म, जोड़ा । २ कुट्टनी, वह स्त्री जो प्रेमी और प्रेमिकाको मिलावे, कुटनी । ३ स्त्रियोंका प्राचीन कालका एक प्रकारका पहनावा । ४ सिंघाड़ा । ५ घ्राण ।

सङ्घाटी (सं० स्त्री०) बौद्ध भिक्षुओंके पहननेका एक प्रकारका वस्त्र ।

सङ्घाणक (सं० पु०) श्लेष्मा, कफ ।

सङ्घात (सं० पु०) सं-हन-घञ् । १ समूह, समष्टि, जमाव । २ आघात, चोट । ३ हत्या, वध । ४ कफ । ५ नरकभेद, इक्कीस नरकोंमेंसे एक नरकका नाम । ६ नाटकमें एक प्रकारकी गति । ७ निवास स्थान, संघात । ८ शरीर (त्रि०) ९ सघन, निविड़, घना ।

सङ्घातक (सं० पु०) १ संघातकारी, घात करनेवाला, प्राण लेनेवाला । २ वह जो बरबाद करता हो, नष्ट करनेवाला ।

सङ्घातचारिन् (सं० त्रि०) संघातेन चरति चर णिच् । जो अपने वर्गके और प्राणियों या लोगोंके साथ मिल कर या उनका संघ बना कर रहता हो ।

सङ्घातपत्रिका (सं० स्त्री०) संघातयुक्तानि पत्राणि यस्याः, कापि अत इत्वं । १ शतपुष्पा, सोआ । २ मिश्रेया, सौंफ ।

सङ्घातबलप्रवृत्त (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका आधिभौतिक और आगन्तुक रोग ।

सङ्घातवत् (सं० त्रि०) संघात अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । संघातविशिष्ट, संघातयुक्त ।

सङ्घातशूलवत् (सं० त्रि०) संघातशूल नामक रोगकी यन्त्रणाके समान ।

सङ्घातिन् (सं० त्रि०) संघातक, प्राणनाशक ।

सङ्घात्य (सं० पु०) संघातक, संहारय ।

सङ्घाधिप (सं० पु०) संघस्य अधिपः । संघपति ।

सङ्घानन्द (सं० पु०) बौद्धोंके सत्तरहवें आचार्यका नाम ।

सङ्घाराम (सं० पु०) बौद्ध भिक्षुओं तथा श्रमणों आदिके रहनेका मठ, विहार ।

सङ्घावशेष (सं० पु०) बौद्ध मतके अनुसार एक प्रकारका पाप ।

सङ्घुषित (सं० त्रि०) १ सम्यक् प्रकारसे घोषित, प्रचारित । २ शब्दित । भावे क्त । (क्लो०) ३ शब्दघोषणा ।

सङ्घुष्ट (सं० त्रि०) सङ्घुषित देखो ।

सङ्घोष (सं० पु०) सम्-घुष घञ् । घोष, जोरका शब्द ।

सङ्घोषिन् (सं० त्रि०) घोषणाकारी, जोरका शब्द करनेवाला ।

सच् (सं० स्त्री०) ब्रह्मणस्पति, इस नामका देवता ।

सच (हिं० वि०) जो यथार्थ हो, सत्य, वास्तविक ।

सचक्र (सं० त्रि०) चक्रेण सह वर्त्तमानः । चक्रके सहित वर्त्तमान, चक्रवाला ।

सचक्रिन् (सं० त्रि०) रथचालक, सारथी ।

सचक्षुस् (सं० त्रि०) चक्षुसा सह वर्त्तमानः । चक्षुष्मान् ।

सचप (सं० पु०) सचन, यागसहायकरण ।

सचथ्य (सं० क्लो०) सर्व, सकल । (ऋक् ५।५०।२)

सचन (सं० क्लो०) सेवा करनेकी क्रिया या भाव, सेवन ।

सचनावत् (सं० त्रि) सकल कर्तृक भजनविशिष्ट, जिसका भजन सब लोग करते हैं ।

सचमस् (सं० त्रि०) समानान्न, तुल्य अन्नविशिष्ट ।

सचमुच (हिं० अव्य०) १ यथार्थतः, ठीक ठीक, वास्तवमें । २ निश्चय, निस्सन्देह, अवश्य ।

सचर्म (सं० क्ली०) सम्मुखका पद । (कौशि० १३८)

सचर (सं० पु०) श्वेत खिरटी, सफेद कटसरैया ।

सचराचर (सं० पु०) संसारकी सब चर और अचर वस्तुएं, स्थावर और जंगम सभी वस्तुएं ।

सचल (सं० पु०) १ वह वस्तु जिसमें गतिकी सामर्थ्य हो, सचर, चर, जंगम । (त्रि०) २ चलायमान, चर, चलनेवाला ।

संचललवण (सं० पु०) सौवर्चल लवण, साँचर नमक।

सचा (सं० स्त्री०) सखा, मित्र।

सचाई (हिं० स्त्री०) १ सच्चा होनेका भाव, सत्यता, सच्चापन। २ यथार्थता, वास्तविकता।

सचान (सं० पु०) श्येन पक्षी, बाज।

सचाभू (सं० त्रि०) हमारे साथ अवस्थित।

सचि (सं० स्त्री०) सच समवाये (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११३) इति इन्। शची।

सचिकण (सं० त्रि०) अत्यन्त चिकना, बहुत अधिक चिकना।

सचिक्कन (सं० त्रि०) अत्यन्त स्निग्ध, बहुत अधिक चिकना।

सचित् (सं० त्रि०) चित्तयुक्त, जिसे ज्ञान या चेतना हो।

सचित्क (सं० त्रि०) चेतनाधिष्ठित। (भागवत १२।११।५)

सचित्त (सं० त्रि०) एकचित्तविशिष्ट, एकमना, जिसका ध्यान एक ही ओर लगा रहे। (अथर्व ६।१००।१)

सचिन्त (सं० त्रि०) चिन्तायुक्त, जिसे चिन्ता हो। फिक्रमंद। (मृच्छकटिक ७।७)

सचिल्लक (सं० पु०) १ क्लिन्न चक्षु। २ कुदर्शन।

सचिव (सं० पु०) सच समवाये इन्, तथा सन् वातीति वा-क। १ मन्त्री, वजीर। २ सहायक, मददगार। ३ मित्र, दोस्त। ४ कृष्ण धुस्तूर, काला धतूरा। (राजनि०)

सचिवता (सं० स्त्री०) सचिवस्य भावः तल्-टाप्। सचिव होनेका भाव या धर्म, मन्त्रित्व।

सचिवत्व (सं० क्ली०) सचिव होनेका भाव या धर्म, सचिवता।

सचिवामय (सं० पु०) सचिवानामामयः। १ पाण्डुरोग, पीलिया। (राजनि०) २ विसर्परोग।

सचिविद् (सं० त्रि०) सखिविद्, जो सखि अर्थात् सखाको जानता हो।

सचिह्न (सं० त्रि०) चिह्नयुक्त।

सची (सं० स्त्री०) सचि कृदिकारादिति ङीप्। १ शची, इन्द्राणी। २ अगुरु, अगर।

सचीन—गुजरात प्रदेशके अन्तर्गत एक देशी राज्य। जो सब ग्राम इस राज्यके अधीन हैं, वे एक सीमाभुक्त नहीं हैं। कोई कोई ग्राम वृटिश शासित स्थानमें और कोई बड़ौदा राज्यके मध्यवर्ती हैं। इस स्थानका जलवायु स्वास्थ्यकर है। यहां धान, कपास और ईख आदि की काफी आमदनी होती है। यहां तांती अधिक संख्यामें रहते हैं। वे लोग कपड़े और सूत आदि तैयार करते हैं।

यहांके नवाब जातिके हबसी हैं। इनके पूर्वपुरुष कब इस देशमें आये थे, उसका पक्का प्रमाण नहीं मिलता। ये लोग दण्डराजपुर तथा जञ्जिराके सिद्दी नामसे पश्चिम उपकूलमें परिचित हैं। पहले ये लोग अहमदनगर और बिजापुरराजके जंगी जहाजके अध्यक्ष थे। १६६० ई०में उन लोगोंके पूर्वपुरुष औरङ्गजेबके जंगी जहाजके अध्यक्षरूपमें नियुक्त हुए। उस समय उनके पारिवारिक खर्च वर्चके लिये औरङ्गजेबने उन्हें वार्षिक ३ लाख रुपये आयको एक सम्पत्ति दी। मुगल साम्राज्य ध्वंसके बाद सिद्दी लोग समुद्री डाकूके व्यवसायमें प्रवृत्त हुए। वे लोग जलपथसे जहाजका माल असबाब लूट लिया करते थे। केवल अंगरेज वणिकोंके साथ इनका सद्भाव था। शिवाजी और मुगलोंके युद्धके समय जंजीराके सिद्दी लोग जंजीरामें राज्य करते थे।

शिवाजी और मुगलोंके तथा पेशवा और अंगरेज गवर्मेण्टके युद्धमें सिद्दी लोग मौका देख कर कभी कभी एककी ओरसे युद्ध करते थे। बालुमोया सिद्दीने जंजीरासे ज्ञातियों द्वारा १७०१ ई०में भगाये जा कर महाराष्ट्र और अंगरेजोंकी शरण ली। पेशवा लोगोंने जंजीराका अधिकार पानेकी आशासे बालुमोयाको सचीन राज्य प्रदान किया।

सचीनक (सं० त्रि०) चीन पुष्पके सहित।

सचीसुत (सं० पु०) सच्या नन्दनः। १ शचीका पुत्र, जयन्त। २ श्रीचैतन्यदेव। चैतन्य देखो।

सचेत (हिं० वि०) १ चेतनायुक्त। सचेतन देखो। २ सज्ञान, समझदार। ३ सजग, सावधान, होशियार।

सचेतन (सं० त्रि०) चेतनया सह वर्त्तमानः। १ चैतन्य, चेतनायुक्त। २ सावधान, होशियार। ३ चतुर, समझदार। (पु०) ४ विवेकयुक्त प्राणी, वह प्राणी जिसे चेतना हो। ५ चेतन, वह वस्तु जो जड़ न हो।

सचेतस् (सं० त्रि०) १ समानमनस्क। (ऋक् १०।१।३) २ चेतनायुक्त।

सचेती (हिं० स्त्री०) १ सचेत होनेका भाव । २ सावधानी, होशियारी ।

सचेतु (सं० त्रि०) शोभनचित्त ।

सचेष्ट (सं० त्रि०) चेष्टया सह वर्त्तमानः । १ चेष्टायुक्त, जिसमें चेष्टा हो, जो चेष्टा करे, उद्योगी । (पु०) २ आम्र वृक्ष, आमका पेड़ ।

सचोर—गुजराती ब्राह्मणोंकी एक जाति । ये लोग प्रायः रसोईका काम कर अपनी जीविका चलाते हैं ।

सच्चरित (सं० क्ली०) सत्-चरितं । १ सच्चरित, साधु चरित्र । २ सदाचरण । (त्रि०) ३ उत्तम चरित्रविशिष्ट, जिसका चालचलन अच्छा हो ।

सच्चर्य्या (सं० स्त्री०) उत्तम आचरण, अच्छा चालचलन ।

सच्चा (हिं० वि०) १ सत्यवादी, सच बोलनेवाला, जो कभी झूठ न बोलता हो । २ यथार्थ, जिसमें झूठ न हो, ठीक, वास्तविक । ३ विशुद्ध, असली । ४ बिलकुल ठीक और पूरा, जितना या जैसा चाहिए उतना या वैसा ।

सच्चाई (हिं० स्त्री०) सच्चा होनेका भाव, सच्चापन, सत्यता ।

सच्चापन (हिं० पु०) सत्य होनेका भाव, सत्यता सच्चाई ।

सच्चार (सं० पु०) सम्पत्तिपरिरक्षक, वह जो सम्पत्तिकी रक्षा करता हो । (काम०नीति १२।३४)

सच्चारा (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हलदी ।

सच्चाहट (हिं० स्त्री०) सच्चा होनेका भाव, सच्चापन, सत्यता ।

सच्चित् (सं० क्ली०) संश्च चिच्च । सत् और चित्से युक्त, ब्रह्म ।

सच्चिदानन्द (सं० पु०) संश्चासौ चिच्चासौ आनन्दश्चेति त्रिपदे कर्मधारयः । नित्य ज्ञानसुखस्वरूप ब्रह्म । सत्, चित् और आनन्द ये तीन ब्रह्मके स्वरूप हैं ।

विशेष विवरण ब्रह्म शब्दमें देखो ।

सच्चिदानन्द—१ अनुभावसार और गुरुशतकके प्रणेता ये सच्चिदानन्द यति नामसे प्रसिद्ध थे । २ श्रुतिसारसमुद्धरण-तोटककी टीका और सिद्धान्ततत्त्वबिन्दुटीकाके रचयिता ।

सच्चिदानन्द तीर्थ—आकाशोपन्यासके प्रणेता चित्सुखेशानन्द तीर्थके गुरु ।

सच्चिदानन्द नाथ—सौभाग्यरत्नाकरके प्रणेता विद्यानन्दनाथके गुरु । इन्होंने लघुचन्द्रिकापद्धति और ललिताचनचन्द्रिका नामक दो तन्त्रोंकी रचना की है ।

सच्चिदानन्द भारती—गुरुवंशकाव्य, मीनाक्षीस्तवराज, रामचन्द्र महोदय और सन्धानकल्पवल्लीके रचयिता ।

सच्चिदानन्दमय (सं० त्रि०) सच्चिदानन्द स्वरूपे मयट् । सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म ।

सच्चिदानन्द योगीन्द्र—पञ्चपादिका और स्वच्छन्दपद्धतिके प्रणेता । ये विमलानन्द योगीन्द्रके शिष्य थे ।

सच्चिदानन्द शास्त्री—न्यायकौस्तुभके प्रणेता ।

सच्चिदानन्द सरस्वती—ब्रह्मनिरूपणव्याख्या और आर्याव्याख्या (वेदान्त)-के प्रणेता । ये शङ्कराचार्यके शिष्य कह कर विख्यात थे ।

सच्चिदानन्द स्वामी—वेदान्तसंग्रहके रचयिता ।

सच्चिन्मय (सं० त्रि०) सच्चित् मयट् । सत् और चैतन्य स्वरूप, सत् और चैतन्ययुक्त ।

सच्छन्दस् (सं० त्रि०) छन्दोलक्षणयुक्त ।

सच्छन्दस्य (सं० त्रि०) छन्दोलक्षणविशिष्ट ।

सच्छाय (सं० त्रि०) छायया सह वर्त्तमानः । छायायुक्त, छायाविशिष्ट ।

सच्छात्र (सं० क्ली०) सत् छात्र । उत्तम स्वभाव युक्त छात्र, उत्तम विद्यार्थी ।

सच्छेद (सं० त्रि०) छेदविशिष्ट, जिसमें छेद हो ।

सच्छ्लोक (सं० क्ली०) उत्तम श्लोक ।

सच्युति (सं० स्त्री०) दलबल सहित चलना ।

सज (हिं० स्त्री०) १ सजनेकी क्रिया या भाव । २ रूप बनाव, डौल, शकल । ३ शोभा, सौन्दर्य । (पु०) ४ एक प्रकारका बहुत लंबा वृक्ष । इसके पत्ते शिशिरमें झड़ जाते हैं । यह हिमालय, बंगाल और दक्षिणभारतमें अधिकतासे पाया जाता है । इसके हीरकी लकड़ी बहुत कड़ी और मजबूत होती है । इसकी लकड़ीका रंग स्याही लिये हुए भूरा होता है । लकड़ी जहाज, नाव आदि बनानेमें काम आती है । इसे कहीं कहीं असीन भी कहते हैं ।

सजग (हिं० वि०) सचेत, सावधान, सतर्क, होशियार।
सजदार (हिं० वि०) जिसकी आकृति अच्छी हो, सुन्दर।
सजधज (सं० स्त्री०) बनाव, सिंगार, सजावट।
सजन (सं० त्रि०) जनेन सह वर्त्तमानः। १ जनयुक्त, जिसमें लोग हों। (पु०) २ सज्जन, भला आदमी, शरीफ। ३ पति, भर्त्ता। ४ प्रियतम, अशना, यार।
सजनपद (सं० त्रि०) जनपदयुक्त।
सजना (हिं० क्रि०) १ भूषण वस्त्र आदिसे सज्जित करना, अलंकृत करना, शृंगार करना। २ शोभा देना, शोभित होना, भला जान पड़ना। ३ वस्तुओंको उचित स्थानमें रखना जिसमें वे सुन्दर जान पड़ें, सजाना, साजना। (पु०) ४ सहिजन देखो।
सजनीय (सं० क्ली०) लोकप्रसिद्ध, मशहूर।
सजनु (सं० त्रि०) सरलभावसे दण्डायमान।
सजन्य (सं० त्रि०) १ सम्पर्कयुक्त, अत्यन्तसंश्लिष्ट। (ऋक् ४।५०।६) २ सजनीय। (काठक ३४।४)
सजबज (हिं० स्त्री०) सजधज देखो।
सजम्बाल (सं० त्रि०) जम्बालेन पंकेन सह वर्त्तमानः। पङ्किल।
सजल (सं० त्रि०) १ जलसे युक्त या पूर्ण, जिसमें पानी हो। २ अश्रुपूर्ण, आँसुओंसे पूर्ण।
सजला (हिं० वि०) १ चार सहोदरोंमेंसे तीसरा, मंझलेसे छोटा, पर सबसे छोटेसे बड़ा। (स्त्री०) २ जलयुक्त, जलसे भरी हुई।
सजवाई (हिं० स्त्री०) १ सजवानेकी क्रिया। २ सुसज्जित करनेका भाव। ३ सजानेकी मजदूरी।
सजवाना (हिं० क्रि०) किसीके द्वारा किसी वस्तुको सुसज्जित कराना, सुसज्जित करना।
सजा (फा० स्त्री०) १ अपराध आदिके कारण होनेवाला दण्ड। २ कारागारका दण्ड, जेलमें रखनेका दंड।
सजाई (हिं० स्त्री०) १ सजनेकी क्रिया, सजानेका काम। २ सजनेका भाव। ३ सजानेकी मजदूरी।
सजागर (सं० त्रि०) १ जागता हुआ। २ सजग, होशियार।
सजात (सं० त्रि०) समानजन्मा, ज्ञाति भिन्न बान्धव

सजातवनस्या (सं० स्त्री०) राज्य और ज्ञातिकी कामना करनेवाली। (तैत्तिरीयस० २।६।६।७)
सजातवनि (सं० त्रि०) समान कुलमें जात व्यक्ति द्वारा यज्ञीय पुरोडाशादि स्वीकार करनेवाला।
सजातवत् (सं० त्रि०) सजात अस्त्यर्थे मतुप मस्य व। सजातविशिष्ट।
सजाति (सं० पु०) समाना जातिरस्य समानस्य सः। १ समान श्रेणी, एक जाति। २ समान जातीय स्त्रीपुरुषका पुत्र। (त्रि०) ३ समानजातिविशिष्ट, एक जातिका।
सजातीय (सं० त्रि०) जातौ भवः जातीयः समानो जातीयः, समानस्य सः। एक जाति या गोत्रका।
सजात्य (सं० त्रि०) सजाति देखो।
सजाना (हिं० क्रि०) १ वस्तुओंको यथास्थान रखना, यथाक्रम रखना, तरकीब लगाना। २ अलंकृत करना, संवारना।
सजाय (सं० त्रि०) जायया सह वर्त्तमानः। जो अपनी स्त्रीके साथ वर्त्तमान हो।
सज़ायाफ़्ता (फा० पु०) वह जिसने दंड विधानके अनुसार दंड पाया हो, वह जो सजा भोग चुका हो।
सजायाब (फा० वि०) १ दण्डनीय, जो दंड पानेके योग्य हो। २ जो कानूनके अनुसार सजा पा चुका हो, जिसे कारागारका दंड मिल चुका हो।
सजार (हिं० पु०) शल्यक, साहिली।
सजारु (हिं० पु०) साही देखो।
सजाव (हिं० पु०) एक प्रकारका दही। इसे बनानेके लिये दूधको पहले खूब गरम करते हैं और तब उसमें जामन छोड़ते हैं। इस प्रकार जमा हुआ दही बहुत उत्तम होता है। उसकी साढ़ी या मलाई बहुत मोटी और चिकनी होती है। (स्त्री०) २ सजावट देखो।
सजावट (हिं० स्त्री०) १ सज्जित होनेका भाव या धर्म। २ शोभा। ३ तैयारी।
सजावल (फा० पु०) १ सरकारी कर उगाहने वाला कर्मचारी, तहसीलदार। २ राजकर्मचारी। ३ सिपाही, जमादार।
सजावार (फा० वि०) दंडनीय, जो दंडका भागी हो, जो सजा पानेके योग्य हो।

सजित्वन् (सं०त्रि०) समान जेता, समान जीतनेवाला।

सजित्वरी (सं० स्त्री०) समान जीतनेवाली।

सजिना (हिं० पु०) सहिंजन देखो।

सजीला (हिं० वि०) १ सजधजके साथ रहनेवाला, छैला, छबीला। २ सुन्दर, सुडौल, मनोहर।

सजीव (सं० त्रि०) १ जीवयुक्त, जीवित, जिसमें प्राण हों। २ तेज, फुरतीला। ३ ओजयुक्त, ओजस्वी। (पु०) ४ जीवधारी, प्राणी।

सजीवता (सं० स्त्री०) सजीव होनेका भाव, सजीवपन।

सजीवन (हिं० पु०) संजीवनी नामक बूटी।

सजीवनबूटी (हिं० स्त्री०) रुदन्ती, रुद्रवन्ती।

सजीवनी मन्त्र (सं० पु०) १ वह कल्पित मन्त्र जिसके सम्बन्धमें लोगोंका विश्वास है कि मरे हुए मनुष्य या प्राणीको जिलानेकी शक्ति रखता है। ३ वह मन्त्र जिससे किसी कार्यमें सुभीता हो, उपकारी मन्त्रणा।

सजुना (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें एक सगण, दो जगण और एक गुरु होता है।

सजुष् (सं० अव्य०) सहार्थ, सहित।

सजूरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मिठाई।

सजूष् (सं० त्रि०) जुष सेवे क्विप् जुषा सह वर्त्तते इति सहस्य सः (स सजुषोः। पा ८।३।६६) इति रु ततो दीर्घः। १ प्रीतियुक्त। २ सेवायुक्त। ३ तापस।

सजोष (सं० त्रि०) समान प्रीतियुक्त, जिनमें समान प्रीति हो।

सजोषण (सं० त्रि०) परस्पर अभ्यस्त प्रीति या आनन्दालाप, बहुत दिनोंसे चली आई हुई समान प्रीति।

सजोषस् (सं० त्रि०) एकमत होनेके कारण परस्परमें सङ्गत।

सज्ज (सं० त्रि०) सज्जतीति सज्ज-अच। १ सम्बन्ध। २ सम्भूत। ३ निभृत। (शब्दरत्ना०) ४ सज्जित, सजा हुआ। ५ वर्म्मित, कवचधारी। ६ प्राकारादि द्वारा सुरक्षित।

सज्जक (सं० त्रि०) सज्ज स्वार्थे-कन्। सजा, सजावट।

सज्जटा (सं० स्त्री०) सुगन्धित जटा।

सज्जण (सं० पु०) १ फौजकी तैयारी। २ सज्जन देखो।

सज्जता (सं० स्त्री०) सज्जस्य भावः तल् टाप्। सज्जाका भाव या धर्म्म, सजावट।

सज्जन (सं० क्ली०) सज्ज-णिच् ल्युट्। १ चौकीदार, संतरी। पर्याय—उपरक्षण। (अमर) २ घट्ट, घाट। ३ सज्जा, सजावट। (पु०) सन् चासौ जनश्चेति। ४ सत्पुरुष, भला आदमी, शरीफ। ५ प्रियतम, प्रिय मनुष्य। ६ अच्छे कुलका मनुष्य।

जो वर्णाश्रमधर्मोक्त अपना आचार ग्रहण तथा वेद विधानानुसार कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं और सर्वदा पापाभिलाषसे रहित होते हैं, उन्हें सज्जन कहते हैं। जो धर्मपरायण हैं, वही सज्जन हैं।

७ आयोजन। ८ सजाना। ९ गज-सज्जीकरण, हाथी सजाना।

सज्जन—एक प्राचीन अभिधानकार। मल्लिनाथने इनका उल्लेख किया है। २ सूक्तामृतपुनरुक्तोपदंशनदशन नामक वैद्यक ग्रंथके रचयिता।

सज्जन—दाक्षिणात्यकी तेली जातिकी एक शाखा। ये लोग गलेमें लिङ्ग धारण करते हैं इसलिए समाजमें सम्मानित हैं और सज्जन कहलाते हैं। अन्यान्य शाखाभुक्त तेलियोंके साथ इनका सामाजिक संस्रव नहीं है।

सज्जनता (सं० स्त्री०) सज्जन होनेका भाव, सत्पुरुषता, भलमंसाहत, भलमंसी।

सज्जना (सं० स्त्री०) सज्ज-णिच्-न्यास श्रन्थेति युच् टाप्। वह हाथी जिस पर नायकका सरदार चढ़ता हो।

सज्जपुर (सं० पु०) १ एक जनपद या देशका नाम। २ उस देशका निवासी।

सज्जा (सं० स्त्री०) सज्ज-अच् टाप्। १ सजानेकी क्रिया या भाव, सजावट। २ वेशभूषा।

सज्जा (हिं० स्त्री०) १ सोनेकी चारपाई, शय्या। २ चारपाई, तोशक, चादर आदि वे सामान जो किसीके मरने पर उसके उद्देश्यसे महापात्रको दिये जाते हैं। विशेष विवरण शय्यादान शब्दमें देखो। वि० ३ दाहिना।

सज्जादा (अ० पु०) १ बिछानेका वह कपड़ा जिस पर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं, मुसल्ला, जानमाज़। २ आसन। ३ फकीरों या पीरों आदिकी गद्दी।

सज्जादानशीन (अ० पु०) १ वह जो गद्दी या तकिया लगा कर बैठता है। २ मुसलमान पीर या बड़ा फकीर।

सज्जित (सं० त्रि०) सज्ज-क्त । १ भूषित, सजा हुआ । आरास्ता । २ आवश्यक वस्तुओं से युक्त, तैयार । ३ वर्मित, कवच धारण करनेवाला ।

सज्जी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका प्रसिद्ध क्षार जो सफेदी लिए हुए भूरे रंगका होता है। सज्जी दो प्रकारकी होती हैं। एक वह जो मनुष्यकी ओर बनाई जाती है। इसमें बड़ी बड़ी खाइयां खोद कर उनमें वृक्षोंकी शाखाएं और पत्ते आदि भर कर आग लगा देते हैं। जब वे जल कर जम जाते हैं, तब उनको राखको खारी कहते हैं। इसी खारीसे भूमिमें सज्जी बनाते हैं। दूसरे प्रकारकी सज्जी खारवाली जमीनमें होती है। खारके कारण भूमि फूल जाती है और उसी फूली हुई मिट्टीको सज्जी कहते हैं। वैद्यकके अनुसार सज्जी गरम, तीक्ष्ण और वायुगोला, शूल, वात, कफ, कृमिरोग आदिको शान्त करनेवाली मानी जाती है।

सज्जीखार (हिं० पु०) सज्जी देखो।

सज्जी बूटी (हिं० स्त्री०) क्षुप जातिकी एक वनस्पति जो प्रति वर्ष उत्पन्न होती है। यह ६से १८ इंच तक ऊंची होती है। इसकी शाखाएं कोमल और पत्ते बहुत छोटे और तिकोने होते हैं। पुष्प छोटे और एकसे तीन तक साथ लगते हैं। बीजकोष १इंच तकके घेरेमें गोलाकार होता है। इसका रंग प्रायः चमकीला गुलाबी होता है। इसमें बहुत ही छोटे छोटे बीज होते हैं। प्रायः इसीके डंठलों और पत्तियोंसे सज्जीखार तैयार होता है। यह क्षुप तीन प्रकारका पाया जाता है।

सज्जुता (हिं० स्त्री०) संयुता नामक छंद।

सज्जुष्ट (सं० त्रि०) उत्तम आनन्दविधायक, सुखदायक।

सज्य (सं० त्रि०) गुणविशिष्ट, जिसमें ज्या हो।

सज्योतिस् (सं० त्रि०) समान ज्योतिस्, समान ज्योतिवाला।

सज्वर (सं० त्रि०) ज्वरयुक्त।

सझ (हिं० स्त्री०) १ सजावट। २ तैयारी।

सझणू (हिं० पु०) सेनाको सज्जित करनेकी क्रिया, फौज तैयार करना।

सझनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका छोटा पक्षी। इसकी पीठ काली, छाती सफेद और चोंच लम्बी होती है।

सञ्च (सं० पु०) सञ्चिनोति वर्णानिति सं-चि-ड। लिखनेकी स्याही।

सञ्चक (सं० पु०) छागाङ्कित मुद्राविशेष।

सञ्चत् (सं० पु०)(संश्चत्-पद्दे हृत्। उण् २।८५) स्यत सञ्चत्, अति प्रत्ययान्तो निपात्यते। प्रतारक।

सञ्चय (सं० पु०) सञ्चीयते इति सम्-चि (एरच्। पा ३।३।५६) इत्यच्। १ समूह, राशि, ढेर। २ संग्रह। ३ अधिकता, ज्यादती, बहुतायत।

सञ्चयन (सं० क्ली०) सं-चि-ल्युट्। सञ्चय, संग्रह।

सञ्चयवत् (सं० त्रि०) सञ्चयो विद्यतेऽस्य सञ्चय-मतुप् मस्य व। सञ्चयविशिष्ट, सञ्चयी, जमा करनेवाला।

सञ्चयिक (सं० त्रि०) संचयकारी, जमा करनेवाला।

सञ्चयित्व (सं० क्ली०) संचयिनो भावः त्व। संचयीका भाव या धर्म, संचय, संग्रह।

सञ्चयिन् (सं० त्रि०) सं-चि-इन्। १ संचयविशिष्ट, संचय करनेवाला, जमा करनेवाला। २ कृपण, कंजूस। नीतिशास्त्रमें लिखा है, कि 'संचयी नावसीदति' संचयी व्यक्ति अवसन्न नहीं होता, इसलिये सभीको सञ्चय करना परम आवश्यक है।

सञ्चर (सं० पु०) सञ्चरन्तेऽनेनेति सम्-चर (गोचरसंचरेति। पा ३।३।११९) इति घ। १ गमन, चलना। २ सेतु, पुल। ३ जल निकलनेका मार्ग। ४ मार्ग, पथ, रास्ता। ५ स्थान, जगह। ६ शरीर, देह। ७ सहायक, साथी।

सञ्चरण (सं० क्ली०) सं-चर ल्युट्। १ गमन, चलना। २ कम्पन, कांपना। ३ प्रसारण, फैलाना।

सञ्चरित (सं० त्रि०) सं-चर क्त। प्रचलित, प्रस्थित, गत।

सञ्चरिष्णु (सं० त्रि०) सं-चर शीलार्थे इष्णु। सञ्चरणशील, घूमनेवाला।

सञ्चरेण्य (सं० त्रि०) सर्वतः संचारी, चारों ओर घूमनेवाला। (ऋक् १।१७०।१)

सञ्चल (सं० क्ली०) सौवर्चल लवण, साँचर नमक।

सञ्चलन (सं० क्ली०) सम्-चल-ल्युट्। १ कम्पन, काँपना। २ हिलना डोलना। ३ चलना फिरना।

सञ्चलनाड़ी (सं० स्त्री०) धमनी, रग, नस।

सञ्चान (सं० पु०) श्येन पक्षी, बाज।

सञ्चाय्य (सं० पु०) सञ्चीयतेऽस्मिन् सोम इति सं-चि (क्रतौकुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ। पा ३।१।१३०) इति ण्यदायादेशौ निपात्येते। क्रतु, एक प्रकारका यज्ञ।

सञ्चार (सं० पु०) सं-चर-घञ्। १ दुर्गसञ्चर। २ गमन, चलना। ३ विस्तार, फैलने या विस्तृत होनेकी क्रिया। ४ कष्टगति. मुश्किलमें जाना। ५ कष्ट, विपत्ति। ६ पथप्रदर्शन, रास्ता दिखलानेकी क्रिया। ७ उत्तेजन। ८ चालन, चलानेकी क्रिया। ९ संक्रामण। १० सर्पमणि। सञ्चरत्यस्मिन्निति अधिकरणे घञ्। ११ देश। (रामायण टीका २।११६।१८) १२ रति- मन्दिरकी अवधि।

१३ ग्रहों या नक्षत्रोंका एक राशिसे दूसरी राशिमें जाना। ग्रहगण एक राशिसे जो दूसरी राशिमें जाते हैं उसको सञ्चार कहते हैं। ज्योतिषके मतसे ग्रहोंके सञ्चारकालमें चन्द्रमा जैसे भावमें रहते हैं, फल वैसा ही होता है अर्थात् सञ्चारकालमें चन्द्रमा यदि शुद्ध रहे तो जो ग्रह शुभ भावस्थ होता है उस ग्रहके शुभ फलकी वृद्धि होती है। सञ्चारकालमें चन्द्र शुद्ध यदि न रहे तो उस शुभ भावस्थ शुभ ग्रहके शुभ फलकी न्यूनता होती है। कोई अशुभ ग्रह यदि सञ्चारकालमें अशुभ भावस्थ हो तथा चन्द्र यदि शुद्ध रहें, तो सञ्चारकालमें चन्द्रशुद्धि रहनेसे अशुभ फलकी न्यूनता होती है। फिर यदि कोई अशुभग्रह अशुभभावस्थ हो, तथा चन्द्रशुद्धि न रहे तो विशेष अशुभ फल हुआ करता है।

चन्द्रके सञ्चारकालमें यदि तारा शुद्ध रहे, तो चन्द्र शुभ फल प्रदान करते हैं। रविके सञ्चारकालमें चन्द्रशुद्धि रहनेसे रवि शुभ फलप्रद होते हैं। मङ्गलादि ग्रह सञ्चार कालमें यदि रवि शुद्धि रहे तो शुभ फल होता है रवि, मङ्गल और शनि इन तीन ग्रहोंके सञ्चारकालमें यदि नाड़ी नक्षत्र हो, तो इन तीन ग्रहोंके गोचरमें अत्यन्त अशुभ फल होता है। (दीपिका) गोचर देखो।

सञ्चारक (सं० पु०) १ संचार करनेवाला, चलानेवाला। २ चलनेवाला। ३ दलपति, नायक, नेता। ४ स्कन्दानुचर भेद। (भारत शल्यपर्व)

सञ्चारजीविन् (सं० त्रि०) सञ्चारेण जीवति जीव-णिनि। शरणापन्न, शरणागत। (त्रिका०)

सञ्चारण (सं० क्ली०) प्रसारण, फैलाना।

सञ्चारणीय (सं० त्रि०) सञ्चर-णिच्-अनीयर्। सञ्चारण योग्य, सञ्चार करने लायक।

सञ्चारपथ (सं० पु०) सञ्चारस्य पन्थाः। सञ्चारमार्ग, सञ्चारका पथ।

सञ्चारिका (सं० स्त्री०) सञ्चारयति नायकयो वार्त्तामिति सं-चर-णिच् ण्वुल् टाप, अत इत्वं। १ कुट्टनी, कुटनी, दूती। २ युगल, जोड़ा। ३ नासिका, नाक।

सञ्चारिणी (सं० स्त्री०) १ हंसपदी नामकी लता। २ लाल लजालू।

सञ्चारित (सं० त्रि०) सं-चर-णिच्-क्त। जिसका सञ्चार किया गया हो, चलाया या फैलाया हुआ।

सञ्चारिन् (सं० पु०) सञ्चारतीति सं-चार-णिनि। १ धूप नामक गन्ध द्रव्य २ वायु, हवा। ३ भावविशेष। स्थायी सात्विक और सञ्चारी आदि भेदसे भाव अनेक प्रकारका है। नाना अभिनय सम्बन्धमें शृंगार आदि रसको भावित करता है, इसलिये उसे भाव कहते हैं। जहां यह भाव नाना विषयोंमें संचारशील होता है, वहां यह भाव होता है।

शृङ्गार आदि रसोंमें स्थायिभाव, सञ्चारिभाव और सात्त्विकभाव हैं। वात्सल्यरसमें अनिष्ट शङ्का, हर्ष और गर्व्वादि सञ्चारिभाव है।

इस प्रकार चार रसमें धृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमाञ्च ये सब सञ्चारि-भाव हैं। इन सब सञ्चारि भावों द्वारा स्थायिभावकी पुष्टि होती है।

जैसे श्लोक, गान, छन्दः आदिके चार चार चरण रहते हैं, संगीतके अनुसार वैसे ही आलापके भी चार चरण निर्दिष्ट हैं। पहले जिसमें मुखबन्धन किया जाता है अथवा जो पहला चरण है, उसका नाम आस्थायी, दूसरे चरणका नाम अन्तरा, तीसरेका सञ्चारी और चौथेका नाम आभोग है।

४ संगीतशास्त्रके अनुसार किसी गीतके चार चरणोंमेंसे तीसरा चरण। ५ आगन्तुक। (त्रि०) ६ सञ्चरण करनेवाला, गतिशील।

सञ्चारिणी (सं० स्त्री०) सञ्चारिन् ङीप्। १ हंसपदी लता। २ रक्तलज्जालुका, लाल लजालू। ३ गतिशीला।

सञ्चार्य (सं० त्रि०) सञ्चारण योग्य, प्रेरणशील।

सञ्चाल (सं० पु०) १ कम्पन, कांपना। २ चलन, चलना।

सञ्चालक (सं० त्रि०) परिचालक, जो संचालन करता हो, गति देने या चलानेवाला।

सञ्चालन (सं० पु०) १ परिचालक, चलानेकी क्रिया। २ प्रतिपादन, काम जारी रखना या चलाना। ३ नियन्त्रण। ४ देख रेख।

सञ्चाली (सं० स्त्री०) गुञ्जा, घुंघची।

सञ्चिकीर्षु (सं० त्रि०) सं-चि-सन्-उ। सञ्चयाभिलाषी, संचय करनेमें इच्छुक।

सञ्चिक्षिपसु (सं० त्रि०) सञ्चिक्षेप्तुं इच्छुः, सं-क्षिप्-सन्-उ। संक्षेप करनेमें इच्छुक।

सञ्चिचीषु (सं० त्रि०) सञ्चिकीर्षु देखो।

सञ्चित (सं० त्रि०) सं-चि-क्त। १ संगृहीत। २ सम्भूत, संचय किया हुआ। ३ राशीकृत, ढेर लगाया हुआ।

सञ्चिता (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी वनस्पति।

सञ्चिति (सं० स्त्री०) एक पर एक रखना, तही लगना।

सञ्चित्रा (सं० स्त्री०) सम्यक् चित्रमस्यामिति। मूषोकर्णी, मूसाकानी।

सञ्चिन्त्य (सं० त्रि०) सं-चिन्त-यत्। सम्यक्रूपसे चिन्तनीय, खूब चिन्ता करने योग्य।

सञ्चिन्वानक (सं० त्रि०) संचय करनेमें व्यापृत।

सञ्चृत् (सं० त्रि०) संबद्ध। (ऋक् ६।८५।१२)

सञ्चेय (सं० त्रि०) सं-चि-य। सञ्चयनीय, संचय करने योग्य।

सञ्चोदक (सं० पु०) १ ललितविस्तरके अनुसार एक देवपुत्रका नाम। (त्रि०) सं-चोद् ण्वुल्। २ सञ्चोदनकारी, प्रेरणकारी, भेजनेवाला।

सञ्चोदन (सं० क्ली०) सं-चोद्-ल्युट्। प्रेरण, भेजना।

सञ्चोदयितव्य (सं० त्रि०) सं-चोद्-णिच्-तव्य। प्रेरयितव्य, भेजने लायक।

सञ्चोर—राजपूतनावासी श्रीमाली ब्राह्मणोंकी एक शाखा। सिरोहीके अन्तर्गत सञ्चोरा नामक स्थानमें वास करनेके कारण ये लोग सञ्चोर ब्राह्मण कहलाये।

सञ्छर्द्दन (सं० क्ली०) १ वमन, कै। २ छर्दित्याग। ३ थूत्कार। ४ ग्रहणमें एक प्रकारका मोक्ष। राहु यदि ग्राह्य मंडलमें पूर्व भागसे ग्रसना आरंभ करके फिर पूर्व दिशाको ही चला आवे तो उसको संछर्द्दन मोक्ष कहते हैं। फलित ज्योतिषके अनुसार इससे संसारका मंगल और धान्यकी वृद्धि होती है।

सञ्छेत्तृ (सं० त्रि०) सं-छिद् तृच्। सम्यकछेत्ता, छेदकारक, निवारक।

सञ्छेत्तव्य (सं० त्रि०) सं-छिद्-तव्य। सञ्छेदार्ह, निवारणके योग्य।

सञ्ज (सं० पु०) सम्यक् जायते इति सं-जन ड, सम्यक् जयतीत जि अन्येष्वपाति वा ड। १ ब्रह्मा। २ शिव।

सञ्जय—कौरवराज धृतराष्ट्रके एक मन्त्री। ये गवल्गन नामक मुनिके पुत्र और धृतराष्ट्रके परामर्शदाता थे। व्यासदेवकी कृपासे दिव्यदृष्टि पा कर इन्होंने धृतराष्ट्रके सामने कुरुक्षेत्र युद्धका वर्णन किया था। यह भारतके युद्धके समाप्त होने पर युधिष्ठिरके राज्यकालमें हस्तिनापुरमें रहते थे, पीछे धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीके साथ वनको चले गये थे। वनमें जानेके थोड़े दिनोंके पीछे उस वनमें आग लगी। धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती इन तीनोंने वहां प्राणत्याग किये। परन्तु भाग कर सञ्जयने अपने प्राणकी रक्षा की। अनन्तर हिमालय प्रदेशकी ओर जा कर इन्होंने अपना शेष जीवन बिताया।

२ महाभारतके अनुवादक एक प्राचीन बंगाली कवि। प्रसिद्ध बंगाली कवि कवीन्द्र परमेश्वरने जो महाभारतका अनुवाद किया उसमें सञ्जय वर्णित भाव और भाषाका यथेष्ट सौसादृश्य है, इसीसे मालूम होता है, कि सञ्जय कवीन्द्रके पहले हो गये हैं।

सञ्जन (सं० क्ली०) सञ्ज-ल्युट्। १ बन्धन। २ बांधनेकी क्रिया। ३ संघटन, बिखरे हुए अंगों आदिको मिला कर एक करना।

सञ्जनन (सं० क्ली०) सं-जन-ल्युट्। सम्यक् जनन, उत्पादन।

सञ्जनी (सं० स्त्री०) वैदिक कालका एक प्रकारका अस्त्र जिससे वध या हत्या की जाती थी।

सञ्जपाल (सं० पु०) काश्मीरराजके अधीनस्थ एक सामन्त। (राजतर० ८।२२१)

सञ्जय (सं० त्रि०) सं-जि अप्। सम्यक् जेता।

सञ्जय कविशेखर—एक प्राचीन कवि।

सञ्जयत् (सं० त्रि०) प्राप्त, अधिकृत।

सञ्जयन्ती (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक नगरी का नाम।

सञ्जयिन् (सं० पु०) एक बौद्धयतिका नाम।

सञ्जल्प (सं० पु०) जल्पना, कथा-वार्त्ता, बातचीत।

सञ्जवन (सं० क्ली०) सञ्जवन्ति संमिलन्त्यत्रेति सं-जु-गतौ अधिकरणे ल्युट्। अन्योन्याभिमुख गृहचतुष्टय, चतुःशाल। पर्याय—चतुःशाल, संयमन, चतुःशाली, सञ्जीवन, शाला, निलय, चतुःशालक।

सञ्जा (सं० स्त्री०) छागी, बकरी। (त्रिका०)

सञ्जात (सं० त्रि०) १ प्राप्त। २ उत्पन्न। (पु०) ३ पुराणानुसार एक जातिका नाम। (विष्णुपुराण)

सञ्जान—बम्बई प्रदेशके थाना जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। पहले यह एक समृद्ध नगर था तथा यहीं पहले औपनिवेशिक पार्शी जाति भारतमें आ कर बस गई थी। पुर्त्तगीजोंकी विवरणोंमें तथा उसके पीछे भी यह स्थान सेण्टजन कहलाता था। इस समय उसकी पूर्व समृद्धि एक प्रकारसे विलुप्त हो गई है। यहां बम्बई बड़ौदा और मध्य-भारत-रेलवेका एक स्टेशन है।

सञ्जिघृक्षु (सं० त्रि०) संगृहीतुमिच्छुः, सं-ग्रह सन्, सन्नन्तादुः। संग्रह करनेमें इच्छुक।

सञ्जिजीवयिषु (सं० त्रि०) सञ्जिजीवयितुमिच्छुः, सं-जीव-णिच्-सन्-उ। सञ्जीवित करनेमें इच्छुक।

सञ्जिजीविषु (सं० त्रि०) सं-जीव-सन्-उ। जीवनाभिलाषी, जो अधिक दिन जीनेको इच्छा करता हो।

सञ्जित् (सं० त्रि०) सं-जि-क्विप्-तुक् च। सम्यक्जेता।

सञ्जिति (सं० स्त्री०) प्राप्ति, युद्धमें जयलाभ।

सञ्जिमत् (सं० त्रि०) जयवान्। (पा ८।२।९)

सञ्जिहीर्षु (सं० त्रि०) संहर्त्तुमिच्छुः सं-हृ सन्-उ। संहाराभिलाषी, संहार या नाश करनेमें इच्छुक।

सञ्जीव (सं० त्रि०) १ पुनर्जीवनदानकारी, मरे हुएको फिरसे जिलानेवाला। (पु०) २ पुनर्जीवन दान, मरे हुएको फिरसे जिलाना। ३ बौद्धोंके अनुसार एक नरकका नाम।

सञ्जीवक (सं० त्रि०) १ सञ्जीवनकारी, मरे हुएको जीवन दान देनेवाला। (पु०) २ वृषभेद।

सञ्जीवककरणी (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी विद्या जिसके प्रभावसे मृत मनुष्य जीवित हो जाता है। महाभारतमें लिखा है, कि शुक्राचार्य यह विद्या जानते थे। २ एक प्रकारकी कल्पित ओषधि जिसके सेवनसे मृत व्यक्तिका जीवित होना माना जाता है।

सञ्जीवन (सं० क्ली०) सञ्जीव्यतेऽस्मिन्निति सं-जीव अधिकरणे ल्युट्। १ सञ्जीवन। सं-जीव-भावे ल्युट्। २ भली भांति जीवन व्यतीत करनेकी क्रिया। (पु०) ३ मनुके अनुसार इक्कीस नरकोंमेंसे एक नरकका नाम। (मनु ४।८९) (त्रि०) ४ जीवन देनेवाला।

सञ्जीवनी (सं० स्त्री०) सञ्जीवन-ङीप्। १ जीवनदायिनी औषधिविशेष। २ विद्याविशेष, सञ्जीवनी-विद्या। इस विद्याके प्रभावसे मरा हुआ आदमी जी उठता है, इसीसे इसका नाम सञ्जीवनी-विद्या हुआ है। महाभारतमें लिखा है, कि दैत्यगुरु शुक्राचार्य यह विद्या जानते थे। इस विद्याके प्रभावसे शुक्राचार्य देवताओंके साथ युद्धमें मरे हुए दैत्योंको फिरसे जिला देते थे। देवताओं या उनके गुरु बृहस्पतिको यह विद्या मालूम न थी। देवताओंने यह विद्या पानेके लिये बृहस्पतिके पुत्र कचकी शरण ली तथा उनसे कहा, कि आप शुक्रसे यह विद्या सीख आइये, हम लोग आपको यज्ञफलका भागी बनायेंगे।

अनन्तर कच सञ्जीवनी विद्या सीखनेके लिये असुरपुरीमें शुक्राचार्यके पास गया। शुक्राचार्यने उसको अपना शिष्य बना लिया। पीछे कचने गुरुके आदेशसे ब्रह्मचर्य व्रतानुष्ठान कर पांच सौ वर्ष विताये। असुरोंने कचका अभिप्राय जान कर उन्हें कई बार मार डाला, पर शुक्राचार्यके इस मन्त्रप्रभावसे वह प्रत्येक बार जीवित होता गया। पीछे दानवोंने कोई उपाय न देख कचको एकान्तमें हत्या कर शुक्राचार्यको खिला दिया। शाम होने पर भी जब कच गुरुगृह नहीं लौटा, तब शुक्राचार्यकी लड़की देवयानीने पितासे कहा, 'कच अब तक नहीं लौटा है, सम्भव है, कि वह कहीं मारा गया, इसलिये आप मन्त्रशक्तिके प्रभावसे उसको जिला दीजिये।' इस पर शुक्राचार्यने कहा, 'दानवोंने कई बार उसकी हत्या की, पर मैं हर बार उसे जिलाता गया, इस प्रकार किस तरह उसकी रक्षा हो सकती है।' पीछे देवयानीके हठ करने

पर शुक्राचार्यने सञ्जीवनी मन्त्रका प्रयोग कर कचको आह्वान किया। कच शुक्राचार्यके उदरमेंसे बोला, 'हे गुरो! आपकी कृपासे मेरी स्मरणशक्ति विलुप्त नहीं हुई है, अब जैसी घटना घटती है, कुल मुझे याद है। फिर गुरुका उदर फाड़ कर निकल आनेमें कहीं मुझे पाप-पङ्कमें निमग्न होना न पड़े, इसीलिये जठरावासका क्लेश सहन कर रहा हूं। असुरोंने मुझे वध, दग्ध और चूर्ण कर सुराके साथ आपको पिला दिया था।' यह सुन कर शुक्राचार्यने सञ्जीवनी उसे दे दी। कच वह विद्या पा कर गुरुके पेटमेंसे निकल पड़े और उसी विद्या-के प्रभावसे पीछे उसने गुरुको जिला दिया। (भारत आदिप० ७२ ८० अ०) देवयानी और कच शब्द देखो।

सञ्जीविका (सं० स्त्री०) वासवदत्तावर्णित नायिका-भेद।

सञ्जीविन् (सं० त्रि०) सं-जीव-णिनि। सञ्जीवीक, जो मृतकोंको जीवन दान देता हो, मुरदोंको जिलानेवाला।

सञ्जुक (सं० पु०) संयुक्त देखो।

सञ्जेली—बम्बई प्रदेशके रेवाकन्था विभागान्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। भूपरिमाण ३६॥ वर्गमील है। यहांके ठाकुर साहब किसीको कर नहीं देते।

सञ्ज्ञ (सं० क्ली०) १ पीतकाष्ठ, झाऊं। (पु०) २ वह जो सब बातें अच्छी तरह जानता हो, वह जो सब विषयोंका अच्छा जानकार हो।

सञ्ज्ञक (सं० त्रि०) संज्ञ स्वार्थे कन्। संज्ञाविशिष्ट, संज्ञावाला। इस शब्दका प्रयोग प्रायः यौगिक बनानेमें शब्दके अन्तमें होता है।

सञ्ज्ञपन (सं० क्ली०) सं-ज्ञा-णिच्-ल्युट्। १ हत्या, मार डालनेकी क्रिया। २ विज्ञापन, कोई बात लोगों पर प्रकट करनेकी क्रिया।

सञ्ज्ञप्ति (सं० स्त्री०) सं-ज्ञा-णिच्-क्तिन्। सञ्ज्ञपन देखो।

सञ्ज्ञा (सं० स्त्री०) संज्ञा देखो।

सञ्ज्ञु (सं० त्रि०) संहते जानुनी यस्य (प्रसंभ्यां जानुनोर्ज्ञुः। पा ५।४।१२९) इति ज्ञुः। संज्ञु। (अमर)

सञ्ज्वर (सं० पु०) सम्यक् ज्वरः। संज्वर।

सञ्ज्वरवत् (सं० त्रि०) सं-ज्वरमतुप् मस्य व। सम्यक् ज्वरविशिष्ट, जिसे खूब ज्वर चढ़ा हो।

सञ्ज्वरिन् (सं० त्रि०) सं-ज्वर-इन्। सम्यक् ज्वर-विशिष्ट, जिसे खूब ज्वर चढ़ा हो।

सट (सं० क्ली०) सटतीति सट-अवयवे अच्। जटा।

सटक (हिं० स्त्री०) १ सटकनेकी क्रिया, धीरेसे चंपत होने या खिसकनेका व्यापार। २ तम्बाकू पीनेका लम्बा लचीला नैचा जो भीतर छल्लेदार तार दे कर बनाया जाता है। यह रबरकी नलीकी भांति लचीला और लपेटने योग्य होता है। अधिक लम्बे बांसकी निगाली रखनेमें अड़चन होती है, अतः लोग सटकका व्यवहार करते हैं। ३ पतली लचनेवाली छड़ी।

सटकना (हिं० क्रि०) १ धीरेसे खिसक जाना, रफूचक्कर होना, चंपत होना। २ बालोंमेंसे अनाज निकालनेके लिये उसे कूटनेकी क्रिया, कूटना, पीटना।

सटकाना (हिं० क्रि०) १ किसीको छड़ी, कोड़े आदिसे मारना जिसमें सट शब्द हो। २ सड़ सड़ या सट सट शब्द करते हुए हुक्का पीना।

सटकार (हिं० स्त्री०) १ सटकानेकी क्रिया या भाव। २ फटकारने या झटकारनेकी क्रिया। ३ गौ आदिको हांकने-की क्रिया, हटकार।

सटकारना (हिं० क्रि०) १ पतली लचीली छड़ी या कोड़े आदिसे किसीको सटसे मारना, सट सट मारना। २ फटकारना, झटकारना।

सटकारा (हिं० वि०) चिकना और लम्बा।

सटकारी (हिं० स्त्री०) लचनेवाली पतली छड़ी, सांटी।

सटका (हिं० पु०) १ सटका देखो। २ दौड़, झपट।

सटना (हिं० क्रि०) १ दो चीजोंका इस प्रकार एकमें मिलना जिसमें दोनोंके पार्श्व एक दूसरेसे लग जांय। २ चिपकना। ३ संयोग होना। ४ साथ होना, मिलना। ५ लाठी या डंडे आदिसे मार पीट होना।

सटपट (हिं० स्त्री०) १ सिटपिटानेकी क्रिया, चकपकाहट। २ शील, संकोच। ३ संकट, दुविधा, असमंजस।

सटपटाना (हिं० क्रि०) १ सटपटकी ध्वनि होना। २ सिटपिटाना देखो। ३ सटपट शब्द उत्पन्न करना।

सटरपटर (हिं० वि०) १ तुच्छ, छोटा मोटा। २ बहुत साधारण, बिलकुल मामूली। (स्त्री०) ३ उलझनका काम, बखेड़ेका काम। ४ व्यर्थका या तुच्छ काम।

सटसट (हिं० क्रि० वि०) १ सट शब्दके साथ, सटासट। २ शीघ्र, बहुत जल्दी, तुरंत।

सटा (सं० स्त्री०) सट-अवयवे अच्-टाप्। १ जटा। २ शिखा। ३ घोड़े या शेरके कंधे परके बाल, अयाल, केशर।

सटाक (हिं० पु०) सट शब्द।

सटाकी (हिं० स्त्री०) चमड़ेकी वह रस्सी या पट्टी जो पैनेके सिरे पर बांधी जाती है। पैना बांसका एक पतला छोटा डंडा होता है जिससे हल जोतनेवाला या गाड़ी हांकनेवाला बैल हाँकता है। इस पैनेको कोड़ेका आकार देनेके लिये इसमें चमड़ेकी पतली पतली पट्टियाँ बाँधते हैं। इन्हीं पट्टियोंको सटाकी कहते हैं। सटाकी डंडा दोनों मिल कर पैना होता है।

सटाङ्क (सं० पु०) सटा अङ्कश्चिह्नं यस्य। सिंह, शेर।

सटान (हिं० स्त्री०) १ सटनेको क्रिया या भाव, मिलान। २ दो वस्तुओंकी सटने या मिलनेका स्थान, जोड़।

सटाना (हिं० क्रि०) १ दो चीजोंको एकमें संयुक्त करना, मिलाना, जोड़ना। २ लाठी, डंडे आदिसे लड़ाई करना, मार पीट करना। ३ स्त्री और पुरुषका संयोग कर ना, संभोग करना।

सटाय (हिं० वि०) १ न्यून, कम। २ हलका, घटिया, खराब।

सटाल (सं० पु०) सटा-अस्त्यर्थे लच्। सटायुक्त, केशरि, सिंह।

सटि (सं० स्त्री०) सटतीति सटअवयवे इन्। सटी, कचूर।

सटिका (सं० स्त्री०) गन्धपत्रा, वन आदा, जंगली कचूर।

सटिया (हिं० स्त्री०) १ सोने या चांदीकी एक प्रकारकी चूड़ी। २ चांदीकी एक प्रकारकी कलम जिससे स्त्रियां मांगमें सिन्दूर देती हैं। ३ साटी देखो।

सटी (सं० स्त्री०) सटि-वा ङीष्। गन्धद्रव्यविशेष, वन आदी, जंगली कचूर। गुण—सुतिक्त, अम्लरस, लघु, उष्ण, रुचिप्रद, ज्वर, कफ, अस्र, कण्डु, व्रणदोष और वक्तामयनाशक तथा हृद्य।

सटीक (सं० त्रि०) जिसमें मूलके साथ टीका भी हो, टीका सहित, व्याख्या सहित।

सटीक (हिं० वि०) बिलकुल ठीक, जैसा चाहिये ठीक वैसा ही।

सट्ट (सं० पु०) १ दरवाजेके चौखटमें दोनो ओरकी लकड़ियां, बाजू।

सट्ट (हिं० पु०) सट्टा देखो।

सट्टक (सं० क्लो०) १ नाटकभेद। इसमें प्राकृत शब्द बहुत रहेगा तथा प्रवेशक और विष्कम्भक नहीं रहेगा। इस ग्रन्थमें बहुतायतसे अद्भुत रस वर्णित होगा। इसके सभी अंक यवनिका कहलायेंगे और सब नाटिकाके समान होंगे। नाटक देखो

२ जीरा मिलाहुआ मट्ठा।

सट्टा (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारका पक्षी। २ वाद्य, बाजा।

सट्टा (हिं० पु०) वह इकरारनामा जो काश्तकारोंमें खेतके साझे आदिके सम्बन्धमें होता है, बटाई। २ वह इकरारनामा जो दो पक्षोंमें कोई निश्चित काम करने या शर्तें पूरी करनेके लिये होता है, इकरारनामा। ३ वह स्थान जहां लोग वस्तुएं खरीदने बेचनेके लिये एकत्र होते हैं, हाट, बाजार।

सट्टा बट्टा (हिं०पु०) १ मेल मिलाप, हेल मेल। २ उद्देश्य सिद्धिके लिये की हुई धूर्त्ततापूर्ण युक्ति, चालबाजी।

सट्टी (हिं० स्त्री०) वह बाजार जिसमें एकही मेलकी बहुत-सी चीजें लोग दूर दूरसे ला कर बेचते हों, हाट।

सठ (हिं० पु०) शठ देखो।

सठता (हिं स्त्री०) १ शठ होनेका भाव, शठका धर्म्म, शठता। २ मूर्खता, बेवकूफी।

सठियाना (हिं० क्रि०) १ साठ वर्षकी अवस्थाको प्राप्त होना, साठ बरसका होना। २ वृद्धावस्थाको प्राप्त होना, बुड्ढा होना। ३ वृद्धावस्थाके कारण बुद्धि तथा विवेक शक्तिका कम हो जाना। इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग व्यक्ति और बुद्धि दोनोंके लिये होता है।

सठी (सं० स्त्री०) शठी, कचूर।

सठेरा (हिं० पु०) सनका वह डंठल जो सन निकल जाने पर बच रहता है, संठा, सरई।

सठोरा (हिं० पु०) सोंठौरा देखो।

सट्टोते (हिं० पु०) क्रमेलक, ऊंट।

सड़क (हिं० स्त्री०) १ राजमार्ग, राजपथ, आने जानेका चौड़ा रास्ता। २ मार्ग, रास्ता,

सड़का (हिं० पु०) सटका देखो।

सड़न (हिं० स्त्री०) सड़नेकी क्रिया या भाव, गलन।

सड़ना (हिं० क्रि०) किसी पदार्थमें ऐसा विकार होना जिससे उसके संयोजक तत्त्व या अंग बिलकुल अलग अलग हो जायं, उसमेंसे दुर्गन्ध आने लगे और वह कामके योग्य न रह जाय। २ किसी पदार्थमें खमीर उठना या आना। ३ दुर्दशामें पड़ा रहना, बहुत बुरी हालतमें रहना।

सड़सठ (हिं०पु०) १ साठ और सातकी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६७। (वि०) २ जो गिनतीमें साठसे सात अधिक हो।

सड़सठवां (हिं० वि०) गिनतीमें सड़सठके स्थान पर रहनेवाला।

सड़सी (हिं० स्त्री०) संड़सी देखो।

सड़ा (हिं० पु०) वह औषध जो गौओंको बच्चा होनेके समय पिलाते हैं। प्रायः यह औषध सड़ाकर बनाते हैं इसीसे इसे सड़ा कहते हैं।

सड़ा इंद (हिं० स्त्री०) सड़ायंध देखो।

सड़ाक (हिं० पु० स्त्री०) १ कोड़े आदिकी फटकारकी आवाज जो प्रायः सड़के समान होती है। २ शीघ्रता, जल्दी।

सड़ान (हिं० स्त्री०) सड़नेका व्यापार या क्रिया, सड़ना।

सड़ाना (हिं० क्रि०) सड़नाका सकर्मक रूप, किसी वस्तुको सड़नेमें प्रवृत्त करना, किसी पदार्थमें ऐसा विकार उत्पन्न करना कि उसके अवयव गलने लगें और उसमेंसे दुर्गन्ध आने लगे।

सड़ायंध (हिं० स्त्री०) सड़ी हुई चीजकी गन्ध।

सड़ाव (हिं० पु०) सड़नेकी क्रिया या भाव, सड़ना।

सड़ासड़ (हिं० अव्य०) सड़ शब्दके साथ, जिसमें सड़ शब्द हो।

सड़ियल (हिं० वि०) १ सड़ा हुआ, गला हुआ। २ निकम्मा रद्दी, खराब। ३ तुच्छ, नीच।

सढ़ (हिं पु०) वैश्योंकी एक जाति।

सणगार (हिं० पु०) शृंगार, सजावट।

सणसूत्र (सं० क्ली०) सणस्य सूत्रं। शणसूत्र पवित्रक।

सणहाप (सं० पु०) ग्राम भेद।

सण्ड (सं० पु०) षण्ड, सांड़।

सण्डिश (सं० पु०) षण्डिष, सन्देश।

सण्डीन (सं० क्ली०) खगगतिक्रियाविशेष, पक्षियोंकी एक प्रकारकी गति। डीन, उड्डीन, सण्डीन और प्रडीन आदि पक्षियोंकी गति निर्दिष्ट हुई है। उड्डयनके निमित्त प्रक्रमको डीन, आकाशगमनको उड्डीन तथा वृक्षादिसे पतनको सण्डीन कहते हैं।

सत् (सं० क्ली०) अस्तीति, अस-शतृ। १ ब्रह्म। ओं तत् सत् यह तीन ब्रह्मस्वरूप हैं।

स्मृतिशास्त्रमें लिखा है, कि कोई विहित कर्मानुष्ठान करनेसे पहले 'ओं तत् सत्' उच्चारण करके कर्ममें प्रवृत्त होगा। क्योंकि यह शब्द उच्चारण कर कर्ममें प्रवृत्त होनेसे तीन प्रकारका उपकार होता है। प्रथम अविद्यमान वस्तु विद्यमान होती है। द्वितीय असाधु वस्तुका साधुत्व, तृतीय आलस्य, भ्रम और प्रमादादिका वैगुण्यदोष दूर होता है।

(त्रि०) २ सत्य। ३ साधु, सज्जन। ४ विद्यमान। ५ प्रशस्त। ६ धीर। ७ नित्य, चिरस्थायी। ८ विद्वान्, पंडित। ९ मान्य, पूज्य। १० शुद्ध, पवित्र। ११ श्रेष्ठ, उत्तम, भला।

सत (सं० पु०) वैतस पात्र।

सत (हिं० पु०) १ सत्यतापूर्ण धर्म। २ किसी पदार्थका मूल तत्त्व, सार भाग। ३ जीवनीशक्ति, ताकत। (वि०) ४ शत देखो। ५ सातका संक्षिप्त रूप जिसका व्यवहार यौगिक शब्द बनानेमें होता है।

सतकार (हिं० पु०) सत्कार देखो।

सतकोन (हिं० वि०) जिसमें सात कोने हों, सात कोनोंवाला।

सतगंठिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी वनस्पति जिसकी तरकारी बनाई जाती है।

सतगुरु (हिं० पु०) १ अच्छा गुरु। २ परमेश्वर, परमात्मा।

सतजीत (हिं० अव्य०) सत्यजित देखो।

सतजुग (हिं० पु०) सत्ययुग देखो।

सतत (सं० क्ली०) सन्तन्यते स्मेति सम् तन-क्त (समो वा हिततत्योः । पा ६।१।१४४) इति सम् शब्दस्य मलोपः। १ सर्वदा, निरंतर, हमेशा। (त्रि०) २ तद्विशिष्ट, निरन्तर क्रियायुक्त, अनवरत। तत और हित शब्द पीछे रहनेसे सम् शब्दके विकल्पमें म-का लोप होता है। यथा— सतत, सन्तत।

सततग (सं० पु०) सततं गच्छतीति सतत-गम-ड। १ वायु, हवा। (त्रि०) २ सर्वदा गतिविशिष्ट, जो सदा चलता रहता हो।

सततगति (सं० पु०) वायु, हवा।

सततज्वर (सं० पु०) विषमज्वरविशेष। जो ज्वर दिन और रात दोनों समय आता है उसे सतत-ज्वर कहते हैं। इसे द्वैकालीन ज्वर भी कहते हैं। दिन और रात, इससे यही समझना होगा, कि यह ज्वर दिनको एक वार और रात्रिको एक वार आता है। क्योंकि, दिन और रातके भीतर प्रत्येक दोषके प्रकोपका काल दो वार है। इस पर वाग्भटने कहा है, कि वयःक्रम, दिवा, रात्रि और भक्षणका शेष, मध्य और आदिभाग यथाक्रम वायु, पित्त और कफका प्रकोपकाल है। किन्तु विजयरक्षितके मतसे जो दिनको एक वार और रातको एक वार अथवा दिनको दो वार हो, रातको नहीं हो, अथवा रातको दो वार और दिनको नहीं हो, वही सततज्वर कहलाता है।

इस ज्वरमें त्रिदोष कुपित होता है। अतएव इस ज्वरकी बड़ी सावधानीसे चिकित्सा करनी चाहिये, नहीं करनेसे यह धीरे धीरे दुःसाध्य हो जाता है। (भावप्र० ज्वराधि०) ज्वर शब्द देखो।

सततसमिताभियुक्त (सं० पु०) एक बोधिसत्वका नाम।

सतति (सं० स्त्री०) सदागतिविशिष्ट, जो सदा चला करे।

सतत्त्व (सं० क्ली०) स्वभाव, प्रकृति।

सतदन्त (हिं० पु०) वह पशु जिसके सात दाँत हो गये हों। प्रायः पशुओंको पूरे दाँत निकल आनेके पूर्व उनके दाँतोंकी संख्याके अनुसार पुकारते हैं। जैसे,— दुदंता, चौदंता, सतदंता आदि शब्द क्रमशः दो, चार और सात दाँतोंवाले बछड़ोंके लिये प्रयुक्त होते हैं।

सतदल (हिं० पु०) १ कमल। २ सौ दलोंवाला कमल।

सतध्रत (हिं० पु०) ब्रह्मा।

सतनजा (हिं० पु०) सात भिन्न प्रकारके अन्नोंका मेल, वह मिश्रण जिसमें सात भिन्न भिन्न प्रकारके अनाज हों।

सतनी (हिं० स्त्री०) १ सप्तपर्ण वृक्ष, सतिवन। २ एक प्रकारका बहुत ऊंचा वृक्ष जिसकी छालका रंग कालापन लिये होता है। इसकी लकड़ी संदूक आदि बनानेके काममें आती है। यह बंगाल, दक्षिण भारत और हिमालयमें अधिकतासे पाया जाता है।

सतनु (सं० त्रि०) देहविशिष्ट, जिसे तन हो, शरीरवाला।

सतन्त्र (सं० त्रि०) तन्त्रयुक्त, सुरसम्मिलित।

सतपतिया (हिं० स्त्री०) १ सतपुतिया देखो। २ वह स्त्री जिसने सात पति किये हों। ३ पुंश्चली, छिनाल।

सतपदी (हिं० स्त्री०) सप्तपदी देखो।

सतपुतिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी तरोई यह प्रायः सब प्रान्तोंमें होती है। इसके बोनेका समय वर्षा ऋतु है। इसकी लता भूमि पर फैलती है या मंढे पर चढ़ाई जाती है। इसके फल साधारण तरोईसे कुछ छोटे होते हैं और पाँच, सात या कभी कभी इससे भी अधिक संख्यामें एक साथ गुच्छोंमें लगते हैं।

सतपुरिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी जंगली मधुमक्खी।

सतफेरा (हिं० पु०) विवाहके समय होनेवाला सप्तपदी नामक कर्म। सप्तपदी देखो।

सतबरवा (हिं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष। यह नेपालमें होता है और इससे नैपाली कागज बनाया जाता है।

सतभइया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मैना जिसे पेंगिया मैना भी कहते हैं। इसकी लम्बाई प्रायः एक बालिश्त होती है। इसका रंग पीलापन लिये भूरा होता है। इसके पैर और पंजा पीला होता है। ऋतुभेदानुसार यह रंग बदलती है। यह झुंडमें रहती हैं और छोटे, घने वृक्षों या झाड़ियोंमें घोंसला बनाती हैं। यह एक बारमें प्रायः तीन अंडे देती है। यह बहुत शोर करती है। कहते हैं, कि कोयल प्रायः अपने अंडे इसीके घोंसलेमें रखती है।

सतभाव (हिं० पु०) १ सद्भाव, अच्छा भाव। २ सीधापन। ३ सच्चापन, सचाई।

सतभौंरी (हिं० स्त्री०) हिन्दुओंमें विवाहके समयकी एक रीति। इसमें वर और वधूको अग्निकी सात बार प्रदक्षिणा करनी पड़ती है। इसे भौंरी पड़ना भी कहते हैं।

सतमख (हिं० पु०) जिसने १०० यज्ञ किये हों, इन्द्र।

सतमसा (हिं० स्त्री०) मार्कण्डेयपुराणके अनुसार एक नदीका नाम।

सतमासा (हिं० पु०) १ सात मास पर उत्पन्न शिशु, वह बच्चा जो गर्भसे सातवें महीनेमें उत्पन्न हुआ हो। ऐसा बच्चा प्रायः बहुत रोगी और दुबला होता है और जल्दी जीता नहीं। २ वह रसम जो शिशुके गर्भमें आने पर सातवें महीने की जाती है।

सतमूली (हिं० स्त्री०) शतावरी, सतावर।

सतयुग (हिं० पु०) सत्ययुग देखो।

सतरंग (हिं० वि०) सतरंगा देखो।

सतरंगा (हिं० वि०) जिसमें सात रंग हों, सात रंगोंवाला। जैसे,—सतरंगा साफ, सतरंगी साड़ी।

सतरंज (हिं० स्त्री०) शतरंज देखो।

सतरंजी (हिं० स्त्री०) शतरंजी देखो।

सतर (अ० स्त्री०) १ लकीर, रेखा। २ पंक्ति, अवली, कतार। (पु० स्त्री०) ३ मनुष्यका वह अंग जो ढका रहा जाता है और जिसके न ढके रहने पर उसे लज्जा आती है, गुह्य इन्द्री। ४ ओट, आड़, परदा। (वि०) ५ वक्र, टेढ़ा। ६ कुपित, क्रुद्ध।

सतरह (हिं० पु०) सत्तरह देखो।

सतराना (हिं० क्रि०) १ क्रोध करना, कोप करना। २ कुढ़ना, चिढ़ना, बिगड़ना।

सतरी (हिं० स्त्री०) सर्पदंष्ट्रा नामक ओषधि।

सतर्क (सं० त्रि०) तर्केण सह वर्त्तमानः। तर्कयुक्त, युक्तिसे पुष्ट, दलीलके साथ। २ सावधान, होशियार, खबरदार।

सतर्कता (सं० स्त्री०) सतर्क होनेका भाव, सावधानी, होशियारी।

सतर्ष (सं० त्रि०) तृषित, प्यासा।

सतल (सं० त्रि०) तलयुक्त।

सतलज (हिं० स्त्री०) पंजाबकी पाँच नदियोंमेंसे एक, शतद्रु नदी।

सतलड़ा (हिं० वि०) जिसमें सात लड़ हों। जैसे, सतलड़ा हार।

सतलड़ी (हिं० स्त्री०) गलेमें पहननेकी सात लड़ियोंकी माला या हार।

सतवंती (हिं० स्त्री०) सती, पतिव्रता, सतवाली।

सतवर्ग (हिं० पु०) सप्तवर्ग देखो।

सतसंग (हिं० पु०) सत्संग देखो।

सतसंगति (हिं० स्त्री०) सत्संग देखो।

सतसंगी (हिं० वि०) सत्संगी देखो।

सतस् (सं० अव्य०) सरलभावसे। (निरुक्त ३।२०)

सतसई (हिं० स्त्री०) १ वह ग्रन्थ जिसमें सात सौ पद्य हों, सात सौ पद्योंका समूह या संग्रह, सप्तशती। हिन्दी साहित्यमें सतसई शब्दसे प्रायः सात सौ दोहे ही समझे जाते हैं। जैसे—बिहारीकी सतसई।

सतसल (हिं० पु०) शीशमका पेड़।

सतसा (सं० स्त्री०) नागवल्लीभेद, पानकी लता।

सतह (अ० स्त्री०) १ किसी वस्तुका ऊपरी भाग, बाहर या ऊपरका फैलाव, तल। २ रेखागणितके अनुसार वह विस्तार जिसमें लंबाई और चौड़ाई हो पर मोटाई न हो।

सतहत्तर (हिं० वि०) १ सत्तर और सात, जो गिनतीमें तीन कम अस्सी हो। (पु०) २ सत्तरसे सात अधिककी संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७७।

सतहत्तरवाँ (हिं० वि०) जिसका स्थान सतहत्तर पर हो, जो क्रमसे सतहत्तरके स्थान पर पड़ता हो।

सतांग (हिं० पु०) रथ, यान।

सतानन्द (सं० पु०) गौतम ऋषिके पुत्र। ये राजा जनकके पुरोहित थे। इनका दूसरा नाम शतानन्द भी था।

सताना (हिं० क्रि०) १ संताप देना, कष्ट पहुंचाना, दुःख देना। २ तंग करना, हैरान करना। ३ किसीके पीछे पड़ना।

सतार (सं० त्रि०) १ तारायुक्त। २ तारके सहित।

सतारा (हिं० स्त्री०) १ तारागणसह। २ राज्यभेद।

सतारुक (सं० पु०) एक प्रकारका कुष्ठ या कोढ़ जिसमें शरीर पर लाल और काली फुसियाँ निकलती हैं।

सताक्रु (सं० पु०) सताक्रु देखो ।

सताल्ू (हिं० पु०) एक पेड़ जिसके गोल फल खाये जाते हैं, शफताल्ू, आड़ू । यह पेड़ मझोले कदका होता है और भारतके ठंढे प्रदेशोंमें पाया जाता है। पत्ते लम्बे, नुकीले और श्यामता लिये गहरे रंगके होते हैं। पतझड़के पीछे नये पत्ते निकलनेके पहले इसमें लाल रंगके फूल लगते हैं। फल गूलरकी तरह गोल और पकने पर हरे और लाल रङ्गके होते हैं जिनके ऊपर बहुत महीन सफेद रोइयाँ होती हैं। ये खानेमें बड़े मीठे होते हैं। बीज कड़े छिलके और बादामकी तरहके होते हैं। इसकी लकड़ी मजबूत और ललाई लिये होती है तथा उसमेंसे एक प्रकारकी हलकी सुगंध निकलती है।

सतावर (हिं० स्त्री०) एक झाड़दार बेल जिसकी जड़ और बीज औषधके काममें आते हैं, शतमूली, नारायणी। यह बेल भारतके प्रायः सब प्रान्तोंमें होती है। इसकी टहनियों पर छोटे छोटे महीन कांटे होते हैं। पत्तियाँ सोयेकी पत्तियोंकी सी होती हैं और उनमें एक प्रकारकी क्षारयुक्त गंध होती है। फूल सफेद होते और गुच्छोंमें लगते हैं। फल जङ्गली बेरके समान होते हैं और पकने पर लाल रङ्गके हो जाते हैं। प्रत्येक फलमें एक या दो बीज होते हैं। इसकी जड़ बहुत पुष्टिकारक और वीर्य-वर्द्धक मानी जाती है। स्त्रियोंका दूध बढ़ानेके लिये भी यह दी जाती है। वैद्यकमें इसका गुण शीतल, मधुर, अग्निदीपक, बलकारक और वीर्यवर्द्धक माना गया है। ग्रहणी और अतिसारमें भी इसका क्वाथ देते हैं।

सतासती (सं० स्त्री०) १ सदसती। २ सपत्नी और सपत्नी-पुत्रादि। ३ तद्वत् द्वेषाद्रे विभाव।

सतासी (हिं० वि०) १ अस्सी और सात, जो गिनतीमें अस्सीसे सात अधिक हो। (पु०) २ सात ऊपर अस्सीकी संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८७।

सतासीवाँ (हिं० वि०) जिसका स्थान अस्सीसे सात अधिककी संख्या पर हो, जो क्रममें सतासी पर पड़ता हो।

सताह (सं०-क्ली०) एक प्राचीन गाँवका नाम।

सति (सं० स्त्री०) सनु दाने क्तिच् (सनः क्तिचि-लोप-श्चास्यान्यतरस्यां। पा ६।४।४५) इति नलोपः। १ दान। २ अवसान। (भरत)

सतितरा (सं० स्त्री०) सतीतरा, सत्तरा।

सतिवन (हिं० पु०) एक सदाबहार बड़ा पेड़ जिसकी छाल आदि दवाके काममें आती है, सप्तपर्णी, छतिवन। इसका पेड़ ४०-५० हाथ ऊंचा होता है और भारतके प्रायः सब तर स्थानोंमें पाया जाता है। भारतवर्षके बाहर अष्ट्रेलिया और अमेरिकाके कुछ स्थानोंमें भी यह मिलता है। यह बहुत जल्दी बढ़ता है। पत्ते सेमरके पत्तोंके समान और एक सींकेमें सात सात लगते हैं। इसकी लकड़ी मुलायम और सफेद होती है और सजावटके सामान बनानेके काममें आती है। फूल हरापन लिये सफेद होता है। फूलोंके झड़ जाने पर हाथ भरके लगभग लंबी पतली रोईंदार कलियां लगती हैं। यह वसन्त ऋतुमें फूलता और वैशाख जेठमें फलता है। फूलोंमें एक प्रकारकी मदायन गन्ध होती है इसीसे कवियोंने कहीं कहीं इस गन्धकी उपमा गजमदसे दी है। आयुर्वेदके अनुसार इसकी छाल त्रिदोषनाशक, अग्निदीपक, ज्वरघ्न और बलकारक होती है। ज्वर दूर करनेमें इसकी छालका काढ़ा कुनैनके समान ही होता है। ज्वरके पीछेकी कमजोरी भी इससे दूर होती है।

सतिमिर (सं० त्रि०) अन्धकारयुक्त, अन्धियाला।

सतिल (सं० स्त्री०) तिलके सहित, तिलयुक्त।

सती (सं० स्त्री०) अस्तीति अस-शतृ-उगित्वात् ङीप्। १ दुर्गा। २ साध्वी स्त्री, पतिव्रता स्त्री। ३ वह स्त्री जो अपने पतिके शवके साथ चितामें जले, सहगामिनी स्त्री। ४ दक्षकन्या, शिवानी, भवानी।

सती महादेवकी पत्नी और दक्षकी कन्या थी। कालिकापुराणमें इनका उत्पत्ति-विवरण इस प्रकार लिखा है—

पहले ब्रह्माके पुत्र प्रजापति दक्षने महामायाको कन्यारूपमें पानेके लिये महामायाके उद्देशसे कठोर तपस्या ठान दी। महामायाने दक्षकी तपस्यासे प्रसन्न हो उन्हें वर मांगने कहा। दक्षने उनसे प्रार्थना की, 'आप मुझे यही वर दीजिये, कि आप मेरी कन्याके रूपमें जन्मग्रहण कर शिवकी पत्नी हों।' इस पर महामाया

बोली, 'प्रजापते ! मैं तुम्हारी पत्नीके गर्भमें कन्यारूपमें उत्पन्न हो कर शङ्करको सहधर्मिणी हूंगी। किन्तु जिस-दिन तुम मेरा अनादर करोगे उसी दिन देह त्याग करूंगी और यदि आदरकी शिथिलता न हुई तो मैं सर्वदा सुखसे रहूंगी।'

प्रजापति दक्षने यह वर पा कर हृष्ट चित्तसे तपस्या बन्द कर दी। अनन्तर उन्होंने विना स्त्रीके प्रजासृष्टि करना चाहा और सङ्कल्प, अभिसन्धि, मानस तथा चिन्ताकी सहायतासे प्रजा उत्पादन की। किन्तु उन लोगोंमेंसे कोई भी सृष्टिका विस्तार न कर सके। अनन्तर उन्होंने मैथुन धर्मसे प्रजा उत्पादन करनेके लिये इच्छानुरूप वीरण की कन्यासे जिनका नाम वीरिणी या असिक्नी था, विवाह किया। इसके गर्भसे महामाया उत्पन्न हुई। महामायाके जन्म लेने पर आकाशसे पुष्प वृष्टि होने लगी, दिङ्मण्डलने प्रशान्तभाव धारण किया। महामायाने जन्म ग्रहण किया है, जब दक्षको यह मालूम हुआ, तब वे वीरिणीसे छिप कर महामायाका स्तव करने लगे। इस पर महामायाने दक्षको मायासे मोहित किया। कन्या दिन पर दिन बढ़ने लगी। दक्षने इस कन्याकी सत्ता अर्थात् साधुता और नीतिपरायणता देख उनका 'सती' नाम रखा।

अनन्तर महामाया एक दिन पिताकी बगलमें बैठी हुई थी, इसी समय ब्रह्मा और नारद कन्याकोदेखने वहां आये। सतीने दोनोंको प्रणाम किया। नारद-ने सतीके प्रति दृष्टिपात कर यह आशीर्वाद दिया, कि जो तुम्हारी कामना करते हैं, और जिसे तुम पतिरूपमें पाना चाहती हो, वह जगदीश्वर शिव तुम्हारे पति हों'। जो तुम्हें छोड़ कर दूसरी स्त्रीको ग्रहण नहीं करते और न करेंगे तुम्हें वही अनन्त सदृश पति लाभ हों। अनन्तर कुछ देर ठहर कर वे दोनों अपने स्थानको चल दिये।

अनन्तर सतीने युवावस्थामें कदम बढ़ाया। उनकी रूपराशि दूनी बढ़ चली। अब दक्षको महादेवके हाथ उसे सौंपनेकी चिन्ता होने लगी तथा सती भी महादेव-को पानेके लिये उनके उद्देशसे तपस्या करने लगी।

एक दिन शिवके परिणयके लिये सावित्रीके साथ ब्रह्मा और लक्ष्मीके साथ नारायण उनके पास गये। उन्होंने शिवसे कहा, 'भगवन्! आपको विवाह करना होगा। क्योंकि, आपके विवाह नहीं करनेसे सृष्टिमें धक्का पहुंचेगा।' महादेवने ब्रह्माकी यह बात सुन कर कहा, 'मैं सर्वदा ब्रह्मध्यानमें निरत रहता हूं, अतएव विवाह करने-की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है, पर यदि आप लोगोंके विशेष अनुरोध करने पर मुझे विवाह करना ही पड़ा तो एक ऐसी स्त्री स्थिर कर दीजिये जो मेरे योगमग्न होने पर योगिनी और कामासक्त होने पर मोहिनी होगी। फिर जब मैं परब्रह्मकी चिन्तामें आसक्त हो कर समाधिस्थ हूंगा और जो स्त्री उसमें विघ्न न डालेगी, वही मेरी भार्या हो सकती है।' यह सुन कर ब्रह्माने कहा, 'प्रजापति दक्षके सती नामक एक कन्या है। वह कन्या सभी प्रकार-से आपकी अनुरूपिणी है तथा वह आपको पतिरूपमें पानेके लिये आपके उद्देश्यसे तपस्या कर रही है। आखिर शिवके दारपरिग्रहका विषय स्वीकार कर लेने पर स्वयं ब्रह्मा दक्षके पास गये और विवाह सम्बन्ध स्थिर किया। पीछे महादेवने ब्रह्मा, विष्णु और ऋषियोंके साथ दक्षालय जा कर यथाविधान सतीसे विवाह किया। सतीसे ब्याह कर महादेव कभी कैलास पर, कभी देवदेवी परिवृत शिखर पर, कभी दिग्पालोंके उद्यानमें भ्रमण करने लगे। इस प्रकार नाना स्थानोंमें भ्रमण कर सुखसे सतीके साथ विहार करने लगे। सतीमें आसक्त महा-देवको दिनरातका ध्यान जाता रहा। वेद, तपस्या और शम दमादिकी ओर उनका ध्यान न जाने लगा, केवल सतीको सन्तोष रखना ही उनका एकमात्र कार्य हो उठा। सती भी एकमात्र शिवपरायण हो अवस्थान करने लगी।

इधर दक्ष अत्यन्त गर्वित हो उठा। उसने सर्व-जीवन एक यज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञमें ८० हजार ऋत्विक् होता, ६४ हजार देवर्षि उद्गाता, नारद आदि अनेक ऋषि अध्वर्यु तथा होता और सभी देवताओंके साथ विष्णु इस यज्ञके अधिष्ठाता हुए। स्वयं ब्रह्मा उनके वेदविधिदर्शक थे। इस यज्ञमें ऐसा कोई नहीं था जिसे दक्षने वरण न किया हो। देवता, देवर्षि, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी इस यज्ञमें आये। केवल शिव और सतीको इस यज्ञमें निमन्त्रण न दिया गया। दक्षने यह

सोच कर उन दोनोंको निमन्त्रण नहीं दिया, कि महादेव कपाली हैं, इसलिये वे यज्ञार्ह नहीं हैं, सती प्रियतनया होने पर भी कपालीकी भार्या है, इससे वह भी यज्ञमें आने योग्य नहीं है। जब सतीको मालूम हुआ, कि पिताने एक बड़े यज्ञका अनुष्ठान किया है, अभिमानके मारे मुझे कपालीकी स्त्री कह कर निमन्त्रण भी नहीं दिया, तब वह बड़ी बिगड़ी और मन ही मन कहने लगी, "गर्व वशतः दक्ष पूर्व वृत्तान्त भूल गया है, उसे मैंने कहा था, कि मेरे प्रति किसी तरह अप्रियाचरण करनेसे मैं देह त्याग कर दूंगी। अतएव दक्षसे प्राप्त यह शरीर अभी त्याग करना ही मुझे उचित है। अब तक भी देवताओंके सभी कार्य शेष नहीं हुए हैं, शङ्कर मेरे लिये ही रमणीके प्रति आसक्त हुए हैं, मेरे सिवा और किसी भी रमणीके प्रति उनका अनुराग नहीं है, यह भी निश्चित है, इसलिये मैं इस देहका परित्याग कर हिमालयके घर मेनकाकी कन्यारूपमें उत्पन्न हूंगी।' इस प्रकार स्थिर कर सती पिताके घर बिना निमन्त्रणके ही यज्ञस्थानमें चली गई। वहां शिवकी निन्दा सुन कर वह क्रोधके मारे अधीर हो उठी। सामनेमें किसी प्रकारका शाप न दे कर उन्होंने श्वास रोक कर देहका त्याग कर दिया। प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्रको भेद कर निकल गई।

सतीकी मृत्यु पर सभी देव बड़े चिन्तित हुए, सर्व जगत् मानों स्तब्धसा हो रहा। महादेवको जब यह बात मालूम हुई, तब उनके कोपानलसे वीरभद्रकी उत्पत्ति हुई। इसी वीरभद्रने यज्ञस्थलमें जा कर दक्षका यज्ञ ध्वंस किया। दक्ष और दक्षयज्ञ देखो।

अनन्तर महादेव यज्ञस्थानमें जा कर सतीकी देह ले कर बड़े जोरसे आर्त्तनाद करने लगे। सभी देव चिन्तित हुए और कहने लगे, कि यदि शिवका अश्रुजल एक बुन्द भी पृथ्वी पर गिरा, तो तीनों जगत् अभी ध्वंस हो जायंगे। उन लोगोंने कोई उपाय न देख शनिको आह्वान किया। शनिने आ कर कहा, मैं देवताओंका कार्य यथासाध्य करूंगा, किन्तु महादेव जिससे मुझे जान न सकें, आप लोगोंको वही करना होगा। इस पर ब्रह्मादि देवताओंने शङ्करके पास जा कर योगमायाके बल उन्हें संमोहित किया। शनिने भी भूतनाथके पास जा कर उनका अश्रुतपूर्ण मायाचक्र ले लिया। किन्तु वे मायाबलको धारण नहीं कर सके और जलधार नामक महागिरि पर उसे फेंक दिया। पीछे वही जल यमद्वारमें तप्त वैतरणी नदीरूपमें परिणत हुआ।

अनन्तर शोकसंतप्त महादेव सतीकी शवदेहको कंधे पर रख विलाप करते करते पूर्वकी ओर चल दिये। महादेवका उन्मत्त जैसा भाव देख कर ब्रह्मादि देवगण सतीकी शवदेहको विच्युत करनेका उपाय सोचने लगे। शिवके शरीरमें लगनेसे चाहे जितने दिन क्यों न हो, यह शवशरीर न सड़ेगा न पचेगा। अनंतर ब्रह्मा, विष्णु और शनि ये तीनों जने योगमायाके बलसे अदृश्य हो सतीकी शवदेहके भीतर घुस गये और उसे खण्ड खण्ड कर पुण्यतीर्थ करनेके उद्देश्यसे पृथ्वी पर जहां तहां फेंक दिया। सतीका अङ्ग जहां जहां गिरा, वे सब स्थान एक एक पीठस्थान कह कर प्रसिद्ध हुए। महादेव उन्हीं सब स्थानोंमें लिङ्गरूपमें रहने लगे।

सतीकी देह इस प्रकार खण्ड खण्ड हो कर पृथ्वी पर गिरने पर भी महादेवका वह उन्मत्त भाव दूर नहीं हुआ। तब ब्रह्मादि देवगण स्तव करने लगे। महादेवने देवताओंके स्तवसे कुछ प्रकृतिस्थ हो ब्रह्मासे कहा, 'ब्रह्मन्! मैं जब तक सतीशोकसागर पार न करूं तब तक आप लोग मेरे सहचर हो कर रहें।' ब्रह्मादि देवताओंने इसे स्वीकार कर लिया।

शिव मायामोहित होनेसे ही इस प्रकार सतीविरह पर कातर हुए हैं, अतएव यह माया जिससे शिवके शरीरसे निकल जायें, उसीका उपाय करना आवश्यक है। यह सोच कर देवगण महामायाका स्तव करने लगे। देवताओंके स्तव करने पर महामाया महादेवके हृदयसे एकदम निकल गई। मायाके निकल जाने पर स्वयं विष्णुने शान्ति स्थापनके लिये शिवके भीतर प्रवेश किया। जिस प्रकार प्रतिकल्पमें सृष्टि, स्थिति और प्रलय हुआ करता है, जिस प्रकार सती शिवकी पत्नी हुईं और सती कौन है, जिसकी कन्या है, तथा जिस प्रकार उन्होंने देह त्याग किया, सब कुछ दिखला दिया।

अनन्तर महादेवका चित्त शान्त हुआ और वे तब शिवमय हुए, उनका रुद्रभाव जाता रहा। वे फिर श्रम

दम आदिमें मनोनिवेश कर परम योगी हुए। पीछे देव-गण महादेवको प्रणाम कर अपने अपने स्थानको चल दिये। महादेवके मनसे सतीविरह बिलकुल दूर हो गया।

इसके बाद सतीने हिमालयके घर मेनकाके गर्भसे जन्म लिया। जिस समय दक्षकन्या सती शिवके साथ हिमालय पर क्रीड़ा कर रही थी, उस समय मेनका उनकी हितैषिणी थीं और महामायाको कन्यारूपमें पानेके लिये उसने तपस्या की। इसी पर महामायाने उसे यह वर दिया था कि, देहत्याग करने पर मैं तुम्हारी कन्यारूपमें उत्पन्न हूंगी। मेनकाकी उसी तपस्याके बल सतीने उनके घर कन्यारूपमें जन्म लिया था।

सती हिमालयगृहमें जन्म ले कर दिन-पर-दिन शशि-कलाकी तरह बढ़ने लगी। इधर सतीकी मृत्युके बाद महादेव कठोर ध्यानमें निमग्न रहते थे। उनका यह ध्यान भङ्ग करनेकी किसमें सामर्थ्य थी? वहां जानेसे सभी योगी हो जाते थे। देवगण महादेवके विवाहके लिये बड़े चिन्तित हुए। वे आपसमें कहने लगे कि जब तक उनका ध्यान भङ्ग नहीं किया जायेगा, तब तक विवाहका कोई भी उपाय नहीं है। उधर पार्वती भी महा-देवको पतिरूपमें पानेके लिये कठोर तपस्या करने लगी।

अनन्तर सभी देवताओंने सोच विचार कर काम-देवको महादेवकी तपस्या भङ्ग करनेके लिये नियुक्त किया। कामदेव जहां शिवजी तपस्या करते थे, वहां गये और उन पर सम्मोहनादि बाण फेंके। किन्तु इससे परमयोगी शिवका तपोभङ्ग नहीं हुआ, काम स्वयं उनकी नेत्राग्निसे जल कर खाक हो गये।

इधर पार्वतीने महादेवको न पा कर कठिन तपस्या ठान दी। आशुतोषने उनकी तपस्यासे प्रसन्न हो कर उन्हें यही वर दिया, कि तुम मेरी स्त्री होगी। देवताओं ने यह वृत्तान्त जान कर नारदको हिमालयके यहां भेजा। देवर्षि नारदने वहां जा कर विवाह-सम्बन्ध स्थिर किया। पीछे महादेवने देवता और प्रमथ आदि गणोंके साथ गिरि-भवनमें जा कर पार्वतीसे विवाह किया। (कालिकापु० १० से २४ अ० और ४१ से ४५ अ०) पार्वती देखो।

श्रीमद्भागवतमें दक्षके यज्ञ करनेका कारण इस प्रकार लिखा है। शिवने दक्षकी कन्या सतीसे व्याह किया, इसी लिये वे दक्षके जामाता हुए। दक्षको इसी बातका अहङ्कार था, कि यह शिवका पूज्य है। एक दिन विश्व-सृजके रूपमें सभी देवऋषिगण एकत्र हुए, इसी समय दक्ष प्रजापति भी पहुंचा। उसे आते देख देवताओं और ऋषियोंने खड़े हो कर उनका स्वागत किया। किन्तु ब्रह्मा, विष्णु, और शिव इन तीनोंमेंसे कोई भी खड़े नहीं हुए। शिवको खड़े हुए न देख दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हो देवताओंके सामने शिवकी निन्दा करने लगा। यथेच्छ निन्दा करके भी उसका चित्त शान्त नहीं हुआ। उसने कहा कि परमेष्ठी ब्रह्माकी बातमें पड़ कर मैंने सतीको उसके हाथ सौंप कर बड़ा भारी अन्याय किया है। जो व्यक्ति उन्मत्त है, श्मशान जिसका घर है उसे भले बुरेका विचार कहां? इस प्रकार निन्दा कर दक्षने महादेवको शाप दिया, कि यह अब देवताओंके साथ यज्ञका भाग नहीं पा सकता। इस पर महादेवने कुछ भी जवाब नहीं दिया। किन्तु नन्दीको यह बुरा मालूम हुआ, सो उसने दक्षको भी शाप दिया।

दक्ष इस प्रकार जामाताको शाप दे कर बड़े क्रुद्ध चित्तसे घर लौटा। इस शापसे शिवविहीन यज्ञ करने-का किसीको भी साहस नहीं हुआ। दक्षने जब देखा कि यज्ञ एक तरहसे लोप हुआ जा रहा है, तब वह स्वयं यज्ञ करने लग गया। इस यज्ञमें सभी बुलाये गये, सिवा शिव और सतीके। सती शिवके मना करने पर भी बिना निमन्त्रणके पिताके घर यज्ञ देखने गई। सतीको देख कर दक्ष शिवकी बार बार निन्दा करने लगा। सतीने शिवनिन्दा सुन कर उसी यज्ञस्थलमें देहत्याग किया। (भागवत ४।५-१० अ०)

महाभागवतपुराणमें लिखा है, कि जब सतीने दक्ष-यज्ञमें पिताके घर जानेकी इच्छा प्रगट की, तब महादेवने उसे निषेध किया। इस समय देवीने दशमहाविद्याका रूप धारण कर शिवको विभ्रान्त कर डाला।

५ सौराष्ट्रमृत्तिका, सोंधी मिट्टी। ६ दान। ७ अव-सान। ८ सावित्री। ९ विद्यमाना। १० छन्दोविशेष। इसके प्रत्येक चरणमें एक नगण और एक गुरु होता है।

"सुररिपो तव पदं नमति या ननु सती।" (छन्दोम०)

११ मादा स्त्री, पशु। १२ विश्वामित्रकी स्त्रीका नाम। १३ अङ्गिराकी स्त्रीका नाम।

सतीक (सं० क्ली०) जल, पानी।

सतीचौरा (हिं० पु०) वह वेदी या चबूतरा जो किसी स्त्रीके सती होनेके स्थान पर उसके स्मारकमें बनाया जाता है।

सतीत्व (सं० क्ली०) सती भावे त्व। सती होनेका भाव, पातिव्रत्य, पतिव्रता। पतिव्रता देखो।

सतीत्वहरण (सं० पु०) परस्त्रीके साथ बलात्कार, सतीत्व नष्ट करना।

सतीदाह—पतिव्रता स्त्रियोंका स्वामीकी मृत देहके साथ अनुमरण। अति प्राचीन कालमें भारतीय हिन्दू स्त्रियां स्वामीकी चिता पर जीते जी दग्ध हो कर सती नामसे यशस्विनी होती थीं। उसके पीछे भी हिन्दू ललनायें उस प्रथाका अवलम्बन करती रहीं। स्वामीके साथ इस प्रकार जीवन विसर्जन करनेका नाम 'सतीदाह' हुआ। अंगरेजी अमलमें राजप्रतिनिधि लार्ड विलियम वेण्टिङ्क महोदयने इस प्रथाको उठा दिया। अनुमरण और सहमरण देखो।

सतीदोषोन्माद (सं० पु०) स्त्रियोंका वह उन्माद रोग जिसका प्रकोप किसी सतीचौरेको अपवित्र आदि करनेके कारण होना माना जाता है।

सतीन (सं० पु०) १ वंश, वांस। २ जल। (निघण्टु १।१२) ३ एक प्रकारका मटर। ४ अपराजिता।

सतीनक (सं० पु०) सतीन एव स्वार्थे कन्। सतीलक।

सतीनकङ्कत (सं० पु०) उदकचारी अल्पविषविशिष्ट।

सतीनमन्यु (सं० त्रि०) उदकाभिवर्षण-बुद्धियुक्त।

सतीनसत्वन् (सं० त्रि०) उदकका सादयिता अर्थात् गमयिता, जो जलको चलाता हो। (ऋक् १।१००।१)

सतीय (सं० पु०) १ एक जनपदका नाम। २ इस जनपदका अधिवासी। (विष्णुपुराण)

सतीपन (हिं० पु०) सती रहनेका भाव, पातिव्रत्य, सतीत्व।

सतीर्थ (सं० पु०) समानस्तीर्थो गुरुर्यस्य, समानस्य सादेशः। सहपाठी ब्रह्मचारी, एक ही आचार्यसे पढ़नेवाला।

सतीर्थ्य (सं० पु०) समाने तीर्थे वासीति (समान तीर्थे वासी। पा ४.४।१०७) इति यत् (तीर्थे ये। पा ६।३।८७) इति समानस्य सः। सतीर्थ, एक ही आचार्यसे पढ़नेवाला।

सतील (सं० पु०) तीलेन तीलवत् कृष्णवर्णचिह्नेन सह वर्त्तते निपातनादिकारस्य दीर्घः। १ वंश, बाँस। २ वायु, हवा। ३ अपराजिता।

सतीलक (सं० पु०) सतील एव स्वार्थे कन्। कलाय। (अमर)

सतीला (सं० स्त्री०) अपराजिता, कोमल लता।

सतीव्रता (सं० स्त्री०) १ सतीव्रतावलम्बनीय स्त्री। २ वासवदत्ता-वर्णित नायिकाभेद।

सतीश्वर (सं० क्ली०) लिङ्गभेद, शिवलिङ्ग विशेष।

सतीसरस् (सं० क्ली०) सती नाम पर उत्सर्ग किया हुआ काश्मीरका पुण्यतोया ह्रदविशेष। (राजतर० १।२४)

सतुआ (हिं० पु०) भ्रष्ट यवादि चूर्ण, भुने हुए जौ और चनेका चूर्ण जो पानी डाल कर खाया जाता है, सत्तू।

सतुआन (हिं० स्त्री०) सतुआ संक्रांति।

सतुआ संक्रान्ति (हिं० स्त्री०) मेषकी संक्रान्ति जो प्रायः वैशाखमें पड़ती है। इस दिन लोग सत्तू दान करते और खाते हैं।

सतुआ सोंठ (हिं० स्त्री०) सोंठकी एक जाति,

सतुष (सं० क्ली०) तुषेण सह वर्त्तमानः। तुषयुक्त शस्य, धान्य।

सतून (फा० पु०) स्तम्भ, खंभा।

सतूना (फा० पु०) बाजकी एक झपट। इसमें वह पहले शिकारके ठीक ऊपरमें उड़ जाता है और फिर एकबारगी नीचेकी ओर उस पर टूट पड़ता है।

सतूल (सं० त्रि०) गुम्फ या पुच्छयुक्त।

सतृण (सं० त्रि०) तृणयुक्त।

सतृष् (सं० त्रि०) तृषासह वर्त्तमानः। तृष्णायुक्त। पर्याय—तृषित, तर्षित।

सतृष्ण (सं० त्रि०) १ तृष्णायुक्त, पिपासित। २ अभिलाषी, संस्पृह।

सतेजस् (सं० त्रि०) तेजसा सह वर्त्तमानः। तेजस्वी, बलवान्।

सतेर (सं० पु०) तुष, भूसा।

सतेरक (सं० पु०) ऋतु, मौसिम।

सतैरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मधुमक्खी।

सतोक (सं० त्रि०) पुत्र पौत्रादि अपत्य सहित।

सतोगुण (हिं० पु०) सत्त्वगुण देखो।

सतोगुणी (हिं० पु०) सात्विक, सत्वगुणवाला, उत्तम प्रकृतिका।

सतोदर (हिं० पु०) शतोदर देखा।

सतोवृहत् (सं० त्रि०) समदीर्घ, समान ऊंचाईका।

सतोवृहती (सं० त्रि०) त्रिपदी छन्दोविशेष। इसके प्रति पादमें १२ अक्षर रहते हैं। (शुक्लयजु० १४।९)

सतोवीर (सं० त्रि०) प्राप्तवीर्य। (ऋक् ६।७५।९)

सतौला (हिं० पु०) प्रसूता स्त्रीका वह विधिपूर्वक स्नान जो प्रसवके सातवें दिन होता है।

सतौसर (हिं० पु०) सतलड़ा, सात लड़का।

सत्कथा (सं० स्त्री०) १ साधुसंगत, अच्छोंका साथ। २ विष्णुकथा, विष्णुसम्बन्धी कथा। ३ साधु कथा, अच्छी बात।

सत्कदम्ब (सं० पु०) एक प्रकारका कदम्ब।

सत्कर (सं० त्रि०) सत्कार्ययुक्त।

सत्करण (सं० क्ली०) १ सत्कार करना, आदर करना। २ मृतककी अन्तिम क्रिया करना, क्रिया कर्म करना।

सत्करणीय (सं० त्रि०) आदरणीय, सत्कार करनेयोग्य, पूज्य।

सत्कर्तृ (सं० पु०) सतां कर्त्ता। १ विष्णु। (विष्णुसहस्रनाम) २ सत्कारक, आदर सत्कार करनेवाला। ३ सत्कर्म करनेवाला।

सत्कर्त्तव्य (सं० त्रि०) सत्-कृ-तव्य। १ सत्कारके योग्य। २ जिसका सत्कार करना हो।

सत्कर्मन् (सं० क्ली०) सत् प्रशस्तं कर्म। १ अच्छा कर्म, अच्छा काम। २ पुण्य, धर्म या उपकारका काम। ३ अच्छा सत्कार। (पु०) ४ धृतव्रतका पुत्र।

सत्कला (सं० स्त्री०) सुन्दर शिल्प।

सत्कवि (सं० पु०) १ श्रेष्ठ कवि। २ उत्तम कवि।

सत्कवि मिश्र—एक प्राचीन कवि।

सत्काञ्चनार (सं० पु०) रक्त काञ्चन।

सत्काण्ड (सं० पु०) श्येन पक्षी, बाज।

सत्कायदृष्टि (सं० स्त्री) मृत्युके उपरान्त आत्मा, लिंग, शरीर आदिके बने रहनेका मिथ्या सिद्धान्त।

सत्कार (सं० पु०) सत्करणमिति सत्-कृ-घञ्। १ पूजा। २ आये हुएके प्रति उत्तम व्यवहार, आदर, सम्मान, खातिरदारी। ३ आतिथ्य, मेहमानदारी। ४ पुरस्कार। ५ मङ्गल। ६ उत्सव, पर्व। ७ शवदाहादि क्रिया। (लोकप्रसिद्धि) शवदाहनादि अन्त्येष्टिक्रियाका नाम सत्कार है।

सत्कार्य (सं० क्ली०) सत् कार्य। १ सत्कर्म, उत्तम कार्य, अच्छा काम। (त्रि०) २ सत्कार करने योग्य। ३ जिसका सत्कार करना हो। ४ जिस मृतकका क्रिया कर्म करना हो।

सत्कार्यवाद (सं० पु०) सत्कार्यविषयक वाद। यह जगत्कार्य सत्कारणसे हुआ है। सांख्य सत्कार्यवादी हैं। सांख्यदर्शनके मतसे यह जगत् सत् पदार्थसे उत्पन्न हुआ है।

कार्य देख कर कारणका अनुमान किया जाता है। यह जगत् कार्य है, अतएव इसका कारण है। इस जगत्का कारण क्या है, तथा वह सत् है या असत्, इस विषयमें वादियोंके मध्य नाना प्रकारका मतभेद प्रचलित है। इस पर कोई कोई अर्थात् शून्यवादी बौद्ध लोग कहते हैं, कि असत्से सत्का जन्म होता है, असत्के अभावसे ही वस्तुकी उत्पत्ति होती है। वेदान्तविदोंका कहना है, कि सत् अर्थात् एक परमार्थ सत् वस्तुका विवर्त्त ही जगत् है, यह यथार्थमें सत् नहीं है, मिथ्या है। फिर नैयायिक लोग कहते हैं, कि सत् अर्थात् सत्कारण परमाणुसे इस असत् जगद्रूप कार्यकी उत्पत्ति होती है। किन्तु सांख्य लोग सत्कार्यवादी हैं, वे सत् कारणसे ही सत् कार्यकी उत्पत्ति बतलाते हैं।

बौद्धमतमें असत्से सत्की उत्पत्ति होती है, यह यदि स्वीकार किया जाय, तो असत् निरुपाख्य अर्थात् अनिर्वचनीय हो कर किस प्रकार सुखादिके स्वरूप शब्दादिसे अभिन्न होगा। सत् और असत्में अभेद नहीं हो सकता, अतएव असत्से सत्की उत्पत्ति होती है, ऐसा नहीं कह सकते।

असत्पदार्थवादी अपने मतको पुष्ट करनेके लिये 'असदेवेदमग्र आसीत्' इत्यादि श्रुति प्रमाण देते हैं। बीजादिका नाश होनेसे ही अङ्कुरादि उत्पन्न होता है, अतएव समझना होगा, कि असत्से ही सत्‌की उत्पत्ति होती है। इस असत् मतसे प्रधान सिद्धि नहीं होती, क्योंकि, अलीक असत् पदार्थ किस प्रकार सत् कार्यसे अभिन्न होगा। सांख्यकारके मतसे प्रधान सत् है, उसका कार्य भी सत् है तथा कार्य और कारणमें अभेद है अर्थात् कार्य और कारणमें कुछ भेद नहीं है। इस कारण असत्से सत्‌की उत्पत्ति नहीं होती।

वेदान्तके मतसे जगत् मिथ्या है, एक मात्र सच्चिदानन्द ब्रह्म ही परमार्थ सत् हैं। रज्जुके विषयमें अज्ञान तथा रज्जु और सर्पके सादृश्य ज्ञान जन्य संस्कार रहने पर रज्जु सर्पका ज्ञान होता है, 'अयं सर्पः प्रत्यक्षः' ऐसे ज्ञानसे एक अनिर्वचनीय सर्प उत्पन्न होता है, इसीको ज्ञानाध्यास या विषयाध्यास कहते हैं। अज्ञानके आवरण और विक्षेप नामक दो शक्ति हैं। आवरणशक्तिके द्वारा रज्जुरूप अधिष्ठानका आच्छादन होता है अर्थात् रज्जुको रज्जु नहीं कहा जाता, विक्षेपशक्ति द्वारा सर्पादिका उद्भावन होता है। उसी प्रकार अनादिकालसे ब्रह्म विषयमें जीवगणको जो अज्ञान चला आता है, जीवगण अपनेको ब्रह्म नहीं समझने, चिरकाल ही मैं सुखी दुखी इत्यादि हूं. ऐसा जो अनुभव है और तज्जन्य जो संस्कार होता आ रहा है, उक्त अज्ञानकी आवरण शक्ति द्वारा ब्रह्मस्वरूपका आच्छादन होनेसे संस्कारके साथ विक्षेपशक्ति द्वारा अद्वैत ब्रह्ममें द्वैत आकाशादिकी उत्पत्ति होती है। सृष्टिका आदि नहीं है, भ्रमज्ञानसे संस्कार तथा संस्कारसे पुनः भ्रम, इसी प्रकार संस्कार और भ्रमका चक्र घूमता आ रहा है, जगत् ब्रह्मका वैवर्त और अज्ञानका विकार है। जगत् मिथ्या है, उसमें पारमार्थिक सत्ता नहीं है। व्यवहारिक सत्ता है, अर्थात् व्यवहार दशामें सत् मालूम होता है। उक्त मतसे अद्वितीय सत् ब्रह्मतत्त्वसे सत् जगत्‌की उत्पत्ति नहीं होती। प्रपञ्चरहित ब्रह्मको सिर्फ प्रपञ्चविशिष्टरूपमें जाना जाता है, अतएव सत्‌से सत्‌की उत्पत्ति होनेके कारण प्रधानकी सिद्धि नहीं होती।

नैयायिकोंके मतसे परमाणु जगत्‌का मूल कारण है, वह सत् है, इस सत्कारणसे असत् उत्पन्न हुआ है अर्थात् पहले असत् नहीं था, पीछे असद् द्व्यणुकादिकी उत्पत्ति हुई है। इसके बाद कार्यनाश होनेसे उस कार्यकी सत्ता नहीं रहती, कार्यके ध्वंसका प्रतियोगी होता है। अतएव सभी कार्य जिसमें अव्यक्त रह कर कारण दूर होने पर आविर्भूत होते हैं तथा तिरोहित हो कर अव्यक्तरूपमें फिरसे जिसमें अवस्थान करते हैं, ऐसे मूल कारण प्रधानकी सिद्धि उक्त मतसे भी नहीं हो सकती। अतएव प्रधान सिद्धिके लिये सत्कार्यवाद स्वीकार करना पड़ेगा।

सांख्यकारिकामें सत्कार्यवादके कुछ हेतु दिखलाये गये हैं।—

"असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यं ॥"

(सांख्यका० ९)

असत्‌का अकरण, उपादानका ग्रहण, सर्वसम्भवका अभाव, शक्तका शक्यकरण और कारणभाव हेतु कार्य सत् हैं, इन सब हेतुओं द्वारा सत्कार्य सिद्धान्त हुआ है। इन सब हेतुओंका तात्पर्य इस प्रकार है,—उत्पत्तिके पहले भी कार्य सत् था, क्योंकि कार्यके असत् होनेसे कोई भी उसे उत्पन्न नहीं कर सकता था। कार्य और कारणका नियत सम्बन्ध रहना ही उचित है, नहीं तो सभी वस्तुसे सभी वस्तुकी उत्पत्ति हो सकती है, सत् और असत्‌का सम्बन्ध नहीं होता, अतएव कार्य सत् है, शक्त कारणसे ही शक्य कार्यकी उत्पत्ति होती है, असत्कार्य शक्तिका निरूपक नहीं होता, अतएव सत् कार्य कारणसे अभिन्न है, कारण भी सत् है, अतः कार्य कारणमें अभेद होनेसे कार्य भी सत् होगा।

सत्काव्य (सं० क्ली०) उत्तम काव्य, साधु काव्य।

सत्क्रिस्कु (सं० पु०) लम्बाईकी एक प्राचीन नाप जो सवा गजके लगभग होती थी।

सत्कीर्त्ति (सं० स्त्री०) सती कीर्त्तिः। १ उत्तम कीर्त्ति, यश, नेकनामी। (त्रि०) २ साधुकीर्त्तिविशिष्ट, उत्तम कार्य करनेवाला।

सत्कुल (सं० क्ली०) सत्कुलं। १ उत्तम कुल, अच्छा

या बड़ा खानदान। (त्रि०) २ अच्छे कुलका, खानदानी।

सत्कुली—उत्कलवासी एक प्रकारका गृहस्थ वैष्णव-सम्प्रदाय। ब्राह्मण, कायस्थ आदि नाना जातिके वैष्णव इस सम्प्रदायमें देखे जाते हैं। सत्कुली केवल स्वजातीय स्त्रियोंका ही पाणिग्रहण करते हैं, दूसरी जातिके साथ उनका आदान प्रदान नहीं चलता। मच्छवके समय यद्यपि सभी एक साथ भोजन करते हैं, फिर भी प्रत्येक जाति भिन्न भिन्न श्रेणी हो कर बैठती है।

सत्कुलीन (सं० त्रि०) सत्कुले जातः सत्कुल ख, सन् प्रशस्तस्तु कुलीन इति वा। सत्कुलोद्भव, अच्छे कुलमें जिसका जन्म हुआ हो।

सत्कृत (सं० त्रि०) सत्-कृ क्त। १ पूजित, जिसका पूजन किया गया हो। २ कृतसत्कार, जिसका सत्कार किया गया हो। ३ पुरस्कृत, जिसे पुरस्कार मिला हो। ४ समादृत, जिसका आदर किया गया हो। ५ सुसम्पन्न। ६ अलङ्कृत, सजाया हुआ।

सत्कृति (सं० स्त्री०) सत् कृ-क्तिन्। १ सत्कार। (पु०) २ विष्णु।

सत्क्रिय (सं० त्रि०) सती क्रिया यस्य। सत्क्रियाविशिष्ट, उत्तम कार्य्य करनेवाला।

सत्क्रिया (सं० स्त्री०) सती क्रिया। १ शवदाहादि क्रिया। पर्याय—संस्क्रिया, संस्कार। २ परिष्कार, साफ सुथरा। ३ साधुकर्म, धर्मका काम। ४ समादर, अच्छा व्यवहार, खातिरदारी। ५ पुरस्कार, इनाम। ६ आयोजन, तैयारी।

सत्क्षेत्र (सं० क्ली०) सत्क्षेत्र। उत्तम क्षेत्र।

सत्त (सं० पु०) १ किसी पदार्थका सार भाग, असली जुज, रस। २ तत्त्व, कामकी वस्तु।

सत्तम (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन सत्, सत्-तमप्। अति उत्तम, बहुत बढ़िया।

सत्तर (हिं० वि०) १ साठ और दस, जो गिनतीमें साठसे दश अधिक हो। (पु०) २ साठसे दश अधिककी संख्या या अंक, ७०।

सत्तरहवां (हिं० वि०) जो क्रमसे सत्तरहके स्थान पर पड़े।

सत्तर्क (सं० पु०) सतां तर्कः। १ साधुओंका तर्क। (भागवत ३।६।४०) २ साधुतर्क, उत्तम तर्क। शास्त्रमें लिखा है, कि असत् तर्क न करे, क्योंकि तर्कसे अप्रतिष्ठादोष उत्पन्न होता है। इस कारण कदापि असत्तर्क न करे। शास्त्र जाननेके लिये सत्तर्क करना चाहिये।

सत्ता (सं० स्त्री०) १ जातिविशेष। द्रव्य, गुण और कर्मविशिष्ट जाति। जाति देखो। सतो भावः तल्-टाप्। २ विद्यमानता, अस्तित्व, होनेका भाव। ३ उत्पत्ति, पैदाइश। ४ उत्कर्ष। ५ उत्कृष्टता, ५ शक्ति, दम। ६ अधिकार, प्रभुत्व, हुकूमत।

सत्ता (हिं० स्त्री०) ताश या गंजीफेका वह पत्ता जिसमें सात बूटियां हों।

सत्ताईस (हिं० वि०) सात और बीस, जो गिनतीमें बीससे सात अधिक हो। (पु०) २ बीससे सात अधिककी संख्या या अंक, २७।

सत्ताईसवां (हिं० वि०) जो क्रममें सत्ताईसके स्थान पर पड़ता है।

सत्ताधारी (सं० पु०) अधिकारी, अफसर, हाकिम।

सत्तानवे (हिं० वि०) १ नब्बे और सात, जो गिनतीमें सौसे तीन कम हो। (पु०) २ सौसे तीन कमकी संख्या या अंक, ९७।

सत्तानवेवां (हिं० वि०) जो क्रममें सत्तानवेके स्थान पर पड़ता हो।

सत्तावत् (सं० त्रि०) सत्ताविशिष्ट, सत्तायुक्त।

सत्तावन (हिं० वि०) १ पचास और सात, जो गिनतीमें तीन कम साठ हो। (पु०) २ तीन कम साठकी संख्या या अंक, ५७।

सत्तावनवां (हिं० वि०) जो क्रममें सत्तावनके स्थानमें पड़ा हो।

सत्ताशास्त्र (सं० पु०) पाश्चात्यदर्शनकी वह शाखा जिसमें मूल या पारमार्थिक सत्ताका विवेचन हो।

सत्तासामान्यत्व (सं० पु०) अनेक रूपोंके भीतर एक सामान्य द्रव्यका अस्तित्व। इस तथ्यका उपयोग वेदान्ती या दार्शनिक अनेक नामरूपात्मक जगत्की तहमें किसी एक अनिर्वचनीय और अव्यक्त सत्ताका प्रतिपादन करनेमें करते हैं।

सत्तासी (हिं० वि०) १ अस्सी और सात, जो गिनतीमें तीन कम नव्वे हो। (पु०) २ तीन कम नव्वेकी संख्या या अंक, ८७।

सत्तासीवां (हिं० वि०) जो क्रममें तीन कम नव्वेके स्थान पर पड़े।

सत्ति (सं० स्त्री०) प्रवेग।

सत्तू (हिं० पु०) भुने हुए जौ और चने या और किसी अन्नका चूर्ण या आटा जो पानी घोल कर खाया जाता है।

सत्त्र (सं० त्रि०) निषण्ण, उपविष्ट।

सत्त्र (सं० क्ली०) सतः साधून् त्रायते इति त्र-क, यद्वा सीदन्ति सज्जना यत्र सद् गतौ (गुधृवीपचिवचीति। उणा ४।१६६) इति त्र। १ यज्ञ। २ सदादान, सदावर्त्त। ३ परिवेषण, घरोपन। ४ वह स्थान जहां मनुष्य छिप सकता हो। ५ मकान, घर। ६ कैतव, धोखा। ७ धन, सम्पत्ति। ८ दान। ९ सरोवर, तालाव। १० एक सोमयाग जो १३ या १०० दिनोंमें पूरा होता है।

सत्त्रगृह (सं० क्ली०) सत्त्रस्य गृहं। शस्त्रशाला, यज्ञगृह।

सत्त्रयाग (सं० पु०) यज्ञ, सत्र।

सत्त्रराज् (सं० पु०) द्वादशाहादि साध्य यज्ञमें राजमान्। "सत्तराट् अस्य-भिमातिहा" (शुक्लयजुः ५।२४) 'सत्तराट् सत्त्रेषु द्वादशाहादिषु राजते' (महीधर)

सत्त्रवसति (सं० स्त्री०) सत्र, यज्ञ।

सत्त्रशाला (सं० स्त्री०) सत्त्रस्य शाला। अन्नादिदानगृह, यज्ञशाला।

सत्त्रसद् (सं० त्रि०) जीवनदाता; जीवन देनेवाला।

सत्त्रसद्मन् (सं० क्ली०) सत्रस्य सद्म,। सत्रगृह, यज्ञशाला।

सत्त्रायण (सं० त्रि०) १ शौनकका गोत्रापत्य। २ वृहद्भानुके पिता।

सत्त्रि (सं० पु०) १ मेघ, मेढ़ा। २ हस्ती, हाथी। (त्रि०) जयशील, जीतनेवाला।

सत्त्रिजातक (सं० क्ली०) सत् साधु त्रिजातकं तुल्यं त्वगेलापत्रादिकं यत्र। व्यञ्जनविशेष, एक प्रकारका मांसका व्यञ्जन।

प्रस्तुत प्रणाली—मांसको पहले घीमें अच्छी तरह भुन लेना होगा, पीछे उसे गरम जलमें सिद्ध तथा जीरादि डाल कर उसे परिशुद्ध करना होगा। यह परिशुद्ध मांस जब घृत और तक्रके साथ पाक किया जाता है, तब उसे सत्त्रिजातक कहते हैं।

सत्त्रिन् (सं० पु०) सत्त्रमस्त्यस्येति इनि। गृहपति, गृहस्थ। २ नित्य प्रवृत्तान्नदान, वह जो प्रतिदिन अन्नदान करते हों। (त्रि०) ३ यज्ञान्वित, यज्ञविशिष्ट।

सत्त्रिय (सं० त्रि०) सत्त्रविशिष्ट।

सत्त्वभूत (सं० त्रि०) भूतोंका रक्षक।

सत्त्रोत्थान (सं० क्ली०) सत्त्रसे उत्थान।

सत्त्व (सं० क्ली०) सतो भावः, सत्-त्व। प्रकृतिका गुणविशेष, सत्त्वगुण, प्रकाश ज्ञान, सुखजनक गुण। इसका धर्म प्रसाद, हर्ष, प्रीति, असन्देह, धृति और स्मृति है। सत्त्व, रजः और तमोगुणकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है। जगदवस्थामें इन तीन गुणोंका सर्वदा विरूप-परिणाम होता है, इससे सुख, दुःख और मोह होता है। जब इन तीन गुणोंका स्वरूप-परिणाम होगा, तब जगत्का प्रलय होगा। उस समय सुख दुःख मोह कुछ भी नहीं रहेगा।

"सत्त्वं लघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलञ्च रजः।
गुरुवरणमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः।" (सांख्यकारिका १३)

सत्त्व, रजः, और तमः इन तीन गुणोंमें जब जिस गुणकी प्रबलता होती है, तब उसी गुणका धर्म प्रकाश पाता है। सत्त्वगुणके प्रबल होनेसे रजः और तमः अभिभूत हो जाते हैं तथा उसका धर्मसुख ही प्रकाश पाता है। इसी प्रकार और सभी गुणोंके विषयमें जानना होगा। (सांख्यका०)

गीतामें लिखा है, कि सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण प्रकृतिसम्भव हैं। ये तीनों गुण निर्विकार देहीको देहमें आवद्ध करते हैं। इन तीन गुणोंमें सत्त्वगुण निर्मलताके कारण प्रकाशक, ज्ञानोद्दीपक और अनामय (दुःखशून्य) है। वह देहीको सुख और ज्ञानके साथ आवद्ध करता है। इसका तात्पर्य यह, कि जिसके हृदयमें सत्त्व गुणकी अधिकता रहती है, उसकी सभी चित्तवृत्तियां निर्मल होती हैं। वह सभी प्रकारके दुःखोंसे रहित हो कर सुख और ज्ञानमें रत रहता है।

सत्त्व गुण देहोंको तथा तमःगुण ज्ञानको आच्छन्न कर प्रमादादिमें संसक्त करता है। सत्त्वगुण जब प्रबल होता है, तब रज और तमोगुण परास्त हो कर सत्त्व गुणकी सहायता करता है। जिस समय इस देहमें ज्ञानका प्रकाश होता है, उस समय जानना चाहिये, कि सत्त्वगुणका उद्भव हुआ है। सत्त्वगुणके उद्भवकालमें सभी इन्द्रियोंमें ज्ञानका विकाश होता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दकी आवरणशक्ति नहीं रहती। सत्त्व गुणसे ज्ञान होता है। जिनका चित्त सत्त्वगुण-प्रधान है, वे ज्ञानलाभ कर सकते हैं।

सत्त्वगुणकी वृद्धि होनेसे दैवसम्पद् लाभ होता है अर्थात् उस समय अभय, अन्तःकरणकी पवित्रता, ज्ञान-योगमें अवस्थान, दम, यज्ञ, स्वाध्य, तपस्या, सरलता, अहिंसा, सत्य, सक्रोध, त्याग, शान्ति, परदोषका अदर्शन, सबभूत पर दया, लोभशून्यता, कोमलता, लज्जा और अचपलता, ये सब गुण होते हैं।

पातञ्जल-दर्शनमें लिखा है, कि शौचसिद्धि होनेसे सत्त्व-शुद्धि होती है। बाह्य शौच और आभ्यन्तर-शौच जब सिद्ध होता है, तब सत्त्व शुद्धि आदि पांचोंका उदय होता है। (पातञ्जलद० २।४१)

चित्त त्रिगुणात्मक होने पर भी इसमें सत्त्वगुणका भाग अधिक है। सत्त्व गुणका परिणाम ही सुख है। चित्तभूमिमें तृष्णा द्वारा सत्त्व अभिभूत रहनेसे नैसर्गिक सुखका प्रकाश नहीं हो सकता। तृष्णाका क्षय होनेसे वह अखण्ड आनन्द लाभ होता है। सुखके लिये प्राणान्त न कर विषय-सुखको दुःखका कारण समझ उसे छोड़ देनेसे ही सभी विषयोंका कल्याण होता है।

प्रकृति और त्रिगुण देखो।

२ असु, प्राणवायु। ३ व्यवसाय, पेशा। ४ पिशाचादि। ५ बल, शक्ति। ६ स्वभाव। ७ आत्मा। ८ चित्त। ९ रस। १० आयु। ११ कुबेर। १२ धन। १३ आत्मता। १४ द्रव्य, पदार्थ। १५ मन, अन्तःकरण। १६ स्वाभाविक अवस्था। १७ धैर्य। १८ उत्साह। १९ स्थिति। २० पराक्रम, साहस। २१ जन्तु, प्राणी। २२ गर्भ, हमल। २३ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

सत्त्वकर्त्तृ (सं० पु०) प्रजापति।

सत्त्वधामन् (सं० क्ली०) १ सत्त्वप्रकाश। २ विष्णु।

सत्त्वपति (सं० पु०) जीवजगत्का पति।

सत्त्वप्रकाश (सं० पु०) १ सत्त्वगुणका प्रकाश। २ विष्णु।

सत्त्वमय (सं० त्रि०) सत्त्वस्वरूपे मयट्। सत्त्वस्वरूप।

सत्त्वमूर्त्ति (सं० त्रि०) सत्त्वं मूर्त्तिर्यस्य। सत्त्व ही हैं जिनकी मूर्त्ति, विष्णु।

सत्त्वलक्षण (सं० स्त्री०) १ गुर्विणी, गर्भवती। २ जिसे सन्तान होनेकी सम्भावना हो।

सत्त्ववत् (सं० त्रि०) सत्त्व अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। १ सत्त्वगुणविशिष्ट। २ स्थायी। ३ स्वाभाविक। ४ धार्मिक, निष्पाप।

सत्त्ववती (सं० स्त्री०) १ तन्त्रवर्णित देवीभेद। २ गर्भवती स्त्री।

सत्त्वशालिन् (सं० त्रि०) सत्त्वेन शालते शाल-णिनि। सत्त्वविशिष्ट, सत्त्वगुणयुक्त।

सत्त्वसर्ग (सं० पु०) सत्त्वेन सर्गः। सत्त्वगुण द्वारा सृष्ट।

सत्त्वस्थ (सं० त्रि०) सत्त्वे तिष्ठतीति-स्था-क। सत्त्व वृत्तिशाली, सत्त्वप्रधान, जो विशुद्ध सत्त्वप्रधान हैं, उन्हें ऊर्द्ध्वगति होती है।

सत्त्वस्थान (सं० क्ली०) सत्त्वका आधार।

सत्त्वहर (सं० त्रि०) हरतीति हृ-अच्, सत्त्वस्य हरः। सत्त्वनाशक, सत्त्वगुणनाशक। (भागवत ३।१।२२)

सत्त्वात्मन् (सं० त्रि०) सत्त्वं आत्मा स्वरूपो यस्य। सत्त्वस्वरूप सत् मूर्त्ति, विष्णु। (भागवत ६।१२।२१)

सत्नामी—वैष्णव सम्प्रदायविशेष। ये लोग परमेश्वरको 'सत्नाम' कहते हैं। इसीसे इनका सत्नामी नाम पड़ा है। अयोध्या प्रदेशके अधिवासी जगजीवन दास नामक एक क्षत्रियने इस पन्थीको चलाया। ऐसा प्रवाद है, कि वे आसफउद्दौला नवाबके समय विद्यमान थे। वह नवाब १७७५ ई०में अयोध्याके वजीरी पद पर अधिरूढ़ हुए। इस हिसाबसे १८ वीं सदीके शेषभागमें यह पन्थी चलाया गया। अयोध्यापुरीके पास ही सरयूतीरस्थ सदोहा ग्राम जगजीवनका जन्म स्थान था। कोटैया ग्राममें उनकी गद्दी और समाधि है। प्रति वर्षके वैशाख और

कार्त्तिक महीनेमें आवरणकुण्ड-स्थानके उपलक्षमें वहां मेला लगता है। उस समय गृहस्थ शिष्य वहां जा कर पूजा करते हैं। बैशवाड़ा, तेलोई, हरचन्द्रपुर, उमापुर आदि स्थानोंमें भी इनका आस्थान है। ये सब ग्राम लखनऊ जिलेके अन्तर्गत हैं।

जगजीवन साहबके शिष्य जलाली दास, जलाली दासके शिष्य गिरिवर दास, गिरिवर दासके शिष्य जवाहिर दास, जवाहिर दासके शिष्य यशकरण दास और यशकरण दासके शिष्य हनूमान दास और बलदेव दास थे। शेषोक्त दो जने १८०६ शकमें मौजूद थे। पूर्वोक्त आसफउद्दौलाकी स्त्रीने सत्नामियोंको बहुत सताया था, इस सम्बन्धमें गिरिवर भी एक श्लोक बना गये हैं, जो इस प्रकार है, —

"गुल्ला मारे बन्दरे रात राखिये चोर।
भजन करे भगवान्के बेगम लेगी पोर॥"

अर्थात् बानरको गोलोंसे मारो। सारी रात भजन कर चोरको भगाओ। भगवान्की साधना करते रहो, बेगम क्या लेगी?

गिरिवर दासके शिष्य रामदासने भी इस विषयमें एक और श्लोककी रचना की जो इस प्रकार है—

"अवद्पुरीको वसिवो वसिये कौनि ओर।
ए तीनों दुःख देवत् हैं बेगम बान्दर चोर॥"

अर्थात् अयोध्यापुरीके किस अंशमें वास करें? बेगम, बानर और चोर ये तीनों ही यहां दुःख देते हैं।

जगजीवन दास यावज्जीवन संसाराश्रममें रह कर हिन्दी भाषामें ज्ञानप्रकाश, महाप्रलय, प्रथम ग्रन्थ आदि कई ग्रन्थ लिख गये हैं। उनका ज्ञानप्रकाश नामक ग्रन्थ १८१७ सम्वत्में लिखा गया।

ये लोग निर्गुण सत्स्वरूप परब्रह्मके उपासक कह कर अपना परिचय देते हैं तथा वैदान्तिक मतानुरूप जीवब्रह्मके अभेद भावादि भी स्वीकार करते हैं। बाउल आदि कोई कोई वैष्णव-सम्प्रदायी जिस प्रकार देहको ही ब्रह्माण्ड स्वरूप मानते हैं, इन लोगोंमें भी वैसा ही मत प्रचलित देखा जाता है,—

"अन्दर खोज मिलेसो ज्ञानी।
नीचे थुल मूल है ऊंचे अनभो अकत कहानी।
सात द्वीप नौखण्ड मा सोऽहं सो घर सन्तन जानी।"

अर्थात् जो व्यक्ति भीतरका अनुसन्धान पा लेता है, वही ज्ञानी है। निम्नभागमें स्कन्ध और शाखा तथा ऊर्द्ध्वभागमें मूल यह असम्भव और अकथ्य कथन है। साधु लोग सात द्वीप नौ खण्ड और सोऽहं शब्द जानते हैं।

सत्नामियोंमें गृहस्थ और उदासीन दोनों प्रकारके लोग हैं। गृहस्थ लोग नेपाल, काशी, कानपुर, मथुरा, दिल्ली, लाहोर, अयोध्या, मूलतान, हैदराबाद, गुजरात, आदि नाना प्रदेशोंमें वास करते हैं। वे सब भी पलटुदासी और आपा पन्थियोंकी तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि नाना जातियोंमें विभक्त हैं। किन्तु फकीर अर्थात् उदासिनोंके मध्य वैसा वर्णविचार प्रचलित नहीं है। उन लोगोंमेंसे कोई भी भीख नहीं मांगता, गृहस्थ शिष्य-सेवक द्वारा अपना गुजारा चलाता है। इस सम्प्रदायके फकीरोंकी उपाधि दास और साहब है। महंतको साहब तथा बाकी सभाको दास कहते हैं। इसके सिवा किसी फकीरको सम्मान दिखलानेकी इच्छासे साहब भी कहा जाता है।

किसी गृहस्थ सत्नामीकी जब मृत्यु होती है, तब मुखाग्नि क्रिया करके उसे जमीनमें गाड़ देते हैं। स्त्रियोंकी मृत्यु होने पर दश दिन अशौच मान कर अन्तिम दिन उसका श्राद्ध करना होता है। पुरुषके मरने पर दशवें दिनमें अशौचान्त और तेरवें दिनमें श्राद्ध होता है। उदासीन सत्नामीकी मृत्यु पर इसी प्रकार देह-सत्कार और आद्यकृत अनुष्ठान करनेकी प्रथा प्रचलित है।

इस सम्प्रदायके गृहस्थ राम-मन्त्रसे दीक्षित होते हैं। वह मन्त्र इस प्रकार है—" ओं रा रा रङ्कार ओं ओंङ्कार शून्य शब्द निरङ्कार आदु जोत किन् पसार अहावरे उतरे पार, जगजीवन गुरु सत्नाम आधार, राम नाम गहिं भज उपरि पार दया सद् गुरुकी।"

सत्नामी फकीर भी यही मन्त्र ग्रहण कर पहले भजनादि, पीछे साधनामें कुछ परिपक्व होने पर गायत्री क्रियाका अनुष्ठान करते हैं। ये लोग प्रति दिन हनूमानजीको धूप दान कर पूर्वलिखित राममन्त्र पढ़ते हैं। फिर मङ्गलवारको हनुमानजीका, कृष्णपक्षीय सप्तमीको भस्म-

पुरुषका और पूर्णिमाको अन्तर पुरुषका व्रत करते हैं। उस दिन एक पहर दिनके समय और शामके बाद पुष्प, पान, लवङ्ग और मिष्टान्नसे पूजा करते हैं। सारा दिन उपवास रह कर शामको मालपूआ आदि भोग चढ़ा कर स्वयं प्रसाद पाते हैं तथा पासमें जो शिष्य सङ्गीतादि करते हैं उन्हें भी प्रसाद दिया जाता है।

इस सम्प्रदायके फकीर गिंगरफमें रंगे हुए लोहित वर्णके कुर्त्ते और लाल गेरुएकी तैयार की हुई अलफी और सिर पर भी उसी रंगकी या उसी कपड़ेकी टोपी, हाथमें रेशमी सूतेका धागा और सुमेरनी तथा गलेमें सूती सेलीका व्यवहार करते हैं तथा भष्मावशेष या श्याम विन्दि नामकी मिट्टीसे दोनों भौंहके बीचसे केश तक उंगली भर चौड़ा एक ऊर्द्ध्वपुण्ड्र खींचते हैं। कोई कोई केश और दाढ़ी मूंछ रखते और कोई समूचा मस्तक मुंड़वा लेते हैं। ये लोग तिलक पहननेके समय निम्नलिखित मन्त्र दो बार पढ़ते हैं।

तिलकधारणका मन्त्र—"आदु जोत फिन् पसार, जल गई पारस, रह गई खाक, सो खाक शिव गुरुके वाक्, सो खाक ब्रह्माके मस्तक चढ़े, विष्णुके मस्तक चढ़, सो खाक जगजीवन साहबके मस्तक चढ़े सत्यनाम आधार।"

सेली धारणका मन्त्र—"सेली सत्यसनेहकी डार गले सत्यनाम भवत् निशान हैं रे, ताकी तस्वनि चोय फिरता फरफुन्द वन्धन है रे, श्याम और श्वेत दोनों चैंडका पहिर पहुंच पैहचान है रे, चेत् दाना सुमेरनिगुहे कैथ कूवका औंदुपड़ा ये भी एक भेद मस्तान है रे, पांच पचीस को डाढ़वेको हाथ छड़ी लिये गुरुज्ञान है रे। जगजीवन दास पहरे सन्त निर्वान हेरे दया सद्गुरुको।"

सत्नामी फकीर जब आपसमें मिलते हैं, तब 'बन्दगी साहब' कह कर अभिवादन करते हैं। महन्तके सम्भाषणमें वे सत्यनाम कहते हैं।

सत्पक्षिन् (सं० पु०) १ निरोह पक्षी। २ सम्पत्ति या द्रव्यादि। ३ उपकारार्थक सुपन्था।

सत्पति (सं० पु०) सत्यं पतिः। साधुओंका पति या पालन करनेवाला। (ऋक् १.५४.७)

सत्पत्र (सं० क्ली०) सत्पत्रं यस्य। पद्मका नवदल, नये कमलका पत्ता।

सत्पथ (सं० पु०) सन् पन्थाः टच् समासान्तः। १ प्रशस्त पथ, उत्तम मार्ग। पर्याय—अतिपन्था, सुपन्था, अर्चितापथा, सुपथ। (शब्दरत्ना०) २ उत्तम सम्प्रदाय या सिद्धान्त, अच्छा पन्था।

सत्पशु (सं० पु०) सत्पशुः। १ यज्ञीय पशु। २ उत्तम पशु।

सत्पात्र (सं० क्ली०) १ उपयुक्त पात्र, दान आदि देनेके योग्य उत्तम व्यक्ति। २ श्रेष्ठ और सदाचारी, योग्य मनुष्य। ३ कन्या देनेके योग्य उत्तम पुरुष, अच्छा वर। ४ अभिनन्दनार्थ उपयुक्त उपहार।

सत्पुत्र (सं० पु०) सत् पुत्रः। उत्तम सन्तान, सुपुत्र, वेदातिविहित पित्रादि कार्य्यकर्त्ता। जो पुत्र वेदविधिके अनुसार पित्रादिका पारलौकिक कार्य्यानुष्ठान करता हैं उसे सुपुत्र कहते हैं। एक सुपुत्र ही पिताको पुन्नाम नरकसे त्राण करता है।

सत्पुरुष (सं० पु०) सत्पुरुषः। पूज्यमान पुरुष, भला आदमी।

सत्पुष्प (सं० त्रि०) १ उत्तमपुष्प, बढ़िया फूल। २ जिस पुष्पसे देवपूजादि होता है। ३ सुकुसुमित, सुन्दर पुष्पविशिष्ट, सुन्दर खिले हुए फूलोंसे भरा हुआ।

सत्प्रक्रिया (सं० स्त्री०) १ सत्कार्य्य। २ व्याकरणके मतसे क्रियाविशेष।

सत्प्रतिग्रह (सं० पु०) सद्भ्यः प्रतिग्रहो दानग्रहणं। वह दान जो साधुओंसे लिया जाता है। ब्राह्मणकी जीविकामें प्रतिग्रह एक है। यह प्रतिग्रह सत्प्रतिग्रह होना आवश्यक है, सदाचारी पुरुषसे दान लेना चाहिये, दुराचारीसे कदापि नहीं। असत्प्रतिग्रह पापजनक होता है।

सत्प्रतिज्ञ (सं० त्रि०) मङ्गलजनक कार्य्य करनेमें अङ्गीकार।

सत्प्रतिपक्ष (सं० पु०) सन् प्रतिपक्षः। १ तुल्य व्यक्ति, समकक्ष, प्रतियोगी। २ जिसका उचित खण्डन हो सके, जिसके विपक्षमें बहुत कुछ कहा जा सके।

न्याय और हेतु शब्द देखो।

सत्प्रतिपक्षित (सं० त्रि०) सत्प्रतिपक्ष द्वारा निष्पन्न।

सत्प्रतिपक्षिन् (सं० त्रि०) सत्प्रतिपक्ष अस्त्यर्थे इन्। सत्प्रतिपक्षविशिष्ट।

सत्फल (सं० पु०) सत्फलं यस्य। १ दाड़िम वृक्ष, अनारका पेड़। २ शोभन फलविशिष्ट वृक्ष, उत्तम फलवाला पेड़।

सत्य (सं० क्ली०) सते हितं सत्-यत्। १ कृतयुग, सत्ययुग। २ शपथ, कसम। ३ प्रतिज्ञा, कौल। ४ यथार्थ, तथ्य, वास्तविक बात, ठीक बात।

बौद्ध धर्ममें चार आर्य्य सत्य कहे गये हैं—दुःख सत्य (संसार दुःख रूप है; यह सत्य बात), दुःख समुदय (दुःखके कारण), दुःख निरोध (दुःख रोका जाता है) और मार्ग (निर्वाणका मार्ग) बौद्ध दार्शनिक दो प्रकारका सत्य मानते हैं—संवृति सत्य (जो बहुमतसे माना गया हो) और परमार्थ सत्य (जो स्वतः सत्य हो)

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियं।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।" (मनु ४।१३८)

सदा सत्य वचन कहो, किन्तु यह सत्य वचन प्रिय होना उचित है। मनुष्यके मर्मभेदी अप्रिय सत्य कभी न बोलो और न प्रीतिकर असत्य वाक्यका ही व्यवहार करो; यही सनातन धर्म है। नीतिशास्त्रका भी यही मत है, कि अप्रिय सत्य न बोलो। सत्य ही परमधर्म है। शास्त्रमें लिखा है, कि असत्य वचन बोलनेसे नरक होता है, इस कारण कभी भी असत्य वाक्य न बोलो।

पातञ्जल-दर्शनके व्यासभाष्यमें लिखा है, कि यथार्थ वाक्य और मनको सत्य कहते हैं। अर्थात् जिस प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमिति या शब्द जन्य ज्ञान हुआ है, बोलनेकी इच्छा होने पर वैसे ही वाक्य और मनका व्यापार होगा। प्रत्यक्षादि द्वारा स्वयं जिस प्रकार ज्ञान हुआ है उसी प्रकार जिससे श्रोताको ज्ञान हो वैसे वचन कहनेको सत्य कहते हैं। ऐसा वाक्य यदि वञ्चनाका कारण या भ्रमजन्य हो तो वह सत्य नहीं कहलाता। श्रोता समझ न सके, ऐसे वाक्यका प्रयोग करनेसे भी उसे सत्य नहीं कहते। वाक्यका प्रयोग इस प्रकार करना चाहिये, कि उससे समस्त जीवोंका उपकार हो तथा वह किसी प्रकार अनिष्टका कारण न समझा जाय। पूर्वोक्त रूपसे वाक्य प्रयोग करने पर भी यदि दूसरेका अनिष्ट हो, तो उससे सत्यकी रक्षा नहीं होती, बल्कि उससे पाप होता है। दूसरेके अनिष्टकारक सत्यवाक्यका प्रयोग करना पुण्य नहीं है। वह पुण्य तो समझा जाता है, पर उससे कष्टतम नरकदुःख होता है। अतएव सोच विचार कर ऐसे वाक्यका प्रयोग करना चाहिये जिससे जीवोंका हित छोड़ अहित न हो। जो सब योगी सत्यप्रतिष्ठ हैं अर्थात् सत्य संयम कर चुके हैं वे जिसको जो कुछ कहते हैं, वह उसी समय हो जाता है।

"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वं" (पातञ्जलद० २।३७)

५ ब्रह्म। इनके वैदिक पर्याय—ऋत्, श्रत्, सत्य, अद्धा, इत्था, ऋत। (निघण्टु ३।१०)

(पु०) सते हितः सत्-यत्। ६ श्रीराम। ७ विष्णु। ८ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। ९ श्राद्धदेवताविशेष। नान्दीमुखश्राद्धमें श्राद्धदेवताका नाम सत्य है। १० मुनिविशेष। ११ देवगणविशेष। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि तृतीय मन्वन्तरमें देवताओंका नाम सत्य था। १२ ऊपरके सात लोकोंमेंसे सबसे ऊपरका लोक जहां ब्रह्मा अवस्थान करते हैं। १३ नवें कल्पका नाम। १४ उचित पक्ष, धर्मकी बात। जैसे, हम सत्य पर दृढ़ रहेंगे। १५ पारमार्थिक सत्ता।

सत्यक (सं० क्ली०) १ सत्यङ्कार। सत्यमेव स्वार्थे कन्। २ सत्य। (त्रि०) ३ सत्ययुक्त। (पु०) ४ वृष्णिवंशीय एक नायक।

सत्य आचार्य—एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्। ब्रह्मजातक और होराशास्त्र नामक दो ग्रन्थ इन्होंने बनाये हैं। वराहमिहिरने वृहज्जातक और भट्टोत्पलने राजमार्त्तण्डमें इनका उल्लेख किया है।

सत्यकर्ण (सं० पु०) चन्द्रापीड़ राजाके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

सत्यकर्मन् (सं० पु०) सत्यं कर्म यस्य। सत्य कर्मकारी, सत्कार्य करनेवाला। (ऋक् ६।१११।४)

सत्यकाम (सं० पु०) १ ऋषिभेद, छान्दोग्य उपनिषद्में इन ऋषिका विवरण आया है। (त्रि०) २ सत्यकामनाविशिष्ट, सत्यप्रेमी।

सत्यकामतीर्थ—एक संन्यासी। पहले ये श्रीनिवासाचार्य नामसे परिचित थे। अपने गुरु सत्यपरायणतीर्थके बाद इन्होंने सम्प्रदायका गुरुपद पाया। १८७२ ई०में इनका देहान्त हुआ।

सत्यकीर्त्ति (सं० त्रि०) १ धर्मकार्यशाली। (पु०) २ एक वानरका नाम। (रामा० ६।३०।४) एक अस्त्र जो मन्त्रबलसे चलाया जाता है।

सत्यकृत् (सं० त्रि०) सत्यं करोति कृ-क्विप्-तुक् च। सत्यकारक, सत्य करनेवाला।

सत्यकेतु (सं० पु०) १ यदुवंशीय एक राजाका नाम, धर्मकेतुके पुत्र। ८ सुकुमारके एक पुत्रका नाम। ३ अक्रूरके एक पुत्रका नाम। ४ एक बुद्धका नाम।

सत्यक्रिया (सं० स्त्री०) बौद्धोंका मन्त्रात्मक कर्मभेद।

सत्यक्षेत्र—दाक्षिणात्यका एक पुण्यतीर्थ। सत्यक्षेत्र माहात्म्यमें इसका विशेष विवरण लिपिबद्ध है।

सत्यखान्—१ बङ्गालके जमींदार। आप पुराणसर्वस्वके प्रणेता गोवर्द्धन पाठकके प्रतिपालक थे।

२ ईशानके एक पुत्रका नाम। ये महाभारतटीकाके प्रणेता अर्जुनमिश्रके पृष्ठपोषक थे।

सत्यग्राम—एक प्राचीन ग्राम। (दिग्वि० प्र०)

सत्यगिर् (सं० त्रि०) सत्यागीर्यस्य। सत्यवाक्, सच बोलनेवाला।

सत्यगिर्वाहस् (सं० त्रि०) अविसंवादिफलरूपी राज्यवहनकारी, जिनका वाक्यफल अन्यथा न हो।

सत्यघ्न (सं० त्रि०) सत्यं हन्ति-हन-क। सत्यनाशक, जो सत्यका प्रतिपालन न करे।

सत्यङ्कार (सं० पु०) सत्यस्य कार इति-कृ घञ् (कारे सत्यागदस्य। पा ६।३।७०) इति मुम्। मैं यह अवश्य करूंगा, ऐसी प्रतिज्ञा। पर्याय—सत्यार्पण, सत्याकृति, सत्या-पना। (अमर)

सत्यङ्कारकृत (सं० त्रि०) सत्यङ्कारेण कृतः। अवश्य-मैं यह खरीदूंगा, ऐसी प्रतिज्ञा कर जो देता है, दर स्थिर कर पेशगी देना।

सत्यङ्गलम्—मन्द्राज प्रदेशके तिन्नेवल्ली जिलान्तर्गत तेङ्कराई तालुकाका एक नगर। यहां क्षेत्रजात पण्य-द्रव्यादिके क्रयविक्रयका जोरों वाणिज्य चलता है।

सत्यजा (सं० त्रि०) ऋतजा। (ऐतरेयब्रा० ४।२०)

सत्यजित् (सं० त्रि०) १ सत्यवान्। (शुक्लयजु १७,८३। (पु०) २ राजभेद। (भारत आदिप०) ३ बृहद्धर्मके पुत्रभेद। (हरिवंश) ४ कृष्णके पुत्रभेद। (हरिवंश) ५ सुनीतके पुत्र। (विष्णुपु०) ६ अमित्रजितके पुत्र। ७ दानवभेद। ८ यक्षभेद। (भागवत १२।११।४४) ९ तृतीय मन्वन्तरके इन्द्र। (भाग० ८।१।२४) १० आनकके पुत्र। ११ सुनीथके पुत्र।

सत्यज्ञ (सं० त्रि०) सत्यं जानाति ज्ञा-क। सत्य-प्रतिज्ञ, सत्यको जाननेवाले।

सत्यज्ञानानन्दतीर्थ—१ वाराणसीवासी एक साधु पुरुष, रामकृष्णानन्दतीर्थके शिष्य। काशीस्तोत्र, गङ्गाष्टक और रामात्मैक्यप्रकाशिका नामक ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुये हैं। २ हंसमौल और हंसविवेक नामक दो योगशास्त्रके प्रणेता।

सत्यज्योतिस् (सं० त्रि०) अति उज्ज्वल, दिव्यज्योति-विशिष्ट।

सत्यतपस् (सं० पु०) सत्यं तपो यस्य। १ मुनि-विशेष। वराहपुराणमें इन मुनिका विवरण है। ये पहले व्याध थे, पीछे घोर तपस्या करके दुर्वासा ऋषिके वरसे वेदादि सर्वशास्त्रज्ञ हो सत्यतपा नामसे विख्यात हुए थे। (वराहपु०)

सत्यतपस्—एक प्राचीन स्मृतिनिबन्धकार, हेमाद्रिने इन-का उल्लेख किया है। इसके सिवा कालमाधवका मदन-पारिजात और निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें इनका निबंध उद्धृत है। सत्यव्रतस्मृति नामक एक स्मृति पैङ्गिनसी, हेमाद्रि और माधवाचार्यने उद्धृत की है। क्या यही सत्य-तपस् विरचित है।

सत्यतस् (सं० अव्य०) सत्य-तसिल्। सत्य विषयमें, ठीक ठीक, वास्तवमें, सचमुच।

सत्यता (सं० स्त्री०) सत्यस्य भाव तल् टाप्। १ सत्य-का भाव या धर्म, सच्चाई। २ नित्यता।

सत्यतितिक्षावत् (सं० त्रि०) सत्य और तितिक्षा सद्गुण।

सत्यदर्शी (सं० त्रि०) सत्यं पश्यति दृश-क्विप्। १ सत्य-दर्शी, तत्त्वदर्शी। (पु०) २ बौद्धयतिभेद। (ललित-विस्तर) ३ त्रयोदश मन्वन्तरोक्त सप्तर्षिभेद।

सत्यदृश् (सं० त्रि०) सत्यं पश्यति दृश-क्विप्। सत्य-दर्शी, तत्त्वदर्शी।

सत्यदेव—एक प्राचीन कवि।

सत्यधन (सं० त्रि०) जिसका सर्वस्व सत्य हो, जिसे सत्य सबसे प्रिय हो।

सत्यधर्म (सं० पु०) सत्यमेव धर्मः। सत्यरूप धर्म।

सत्यधर्मतीर्थ—एक प्रसिद्ध संन्यासी और साम्प्रदायिक गुरु। ये पहले अन्नयाचार्य नामसे परिचित थे। १८३१ ई०में इनका देहान्त हुआ।

सत्यधर्म (सं० त्रि०) १ सत्‌रूप धर्मविशिष्ट। २ त्रयोदश मनुके एक पुत्रका नाम। (भाग० ८।१३।२५) वेदादि ग्रन्थमें अग्नि, वरुण, सविता और मित्रावरुण 'सत्यधर्म' नामसे अभिहित हैं।

सत्यधर्मविपुलकीर्त्ति (सं० पु०) सत्यधर्ममें विपुलाकीर्त्ति र्यस्य। बुद्धभेद। (ललितवि०)

सत्यधावन् (सं० त्रि०) सत्यधावन्।

सत्यधृत (सं० पु०) पुष्पवानके एक पुत्रका नाम।

सत्यधृति (सं० पु०) १ ऋषिविशेष। (मत्स्यपु० ४८ अ०) २ वारुणी गोतापत्य ऋषिभेद। ये ऋक् १०।१८५ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा थे। ३ धृतिमुनिके पुत्र। (हरिवंश) ४ कीर्त्तिमत्‌के पुत्र। (भाग० ६।२१।२७) ५ शतानन्दके पुत्र। (हरिवंश) ६ महावीर्यके पुत्र। (विष्णुपु०) ७ सारणके पुत्र। (त्रि०) ८ सत्यशील, सत्यभाव।

सत्यध्वज (सं० पु०) ऊर्ध्ववहके पुत्रभेद।

सत्यध्रुत् (सं० त्रि०) सत्यहिंसक, मिथ्यावादी।

सत्यनपल्ली—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलेका एक उपविभाग। भूपरिमाण १७१४ वर्गमील है। इस उपविभागके अमरावती नगरके पास वेल्लमकोण्डा और धरणीकोट नामक स्थानमें दो प्राचीन दुर्ग विद्यमान हैं।

सत्यनाथतीर्थ—तत्त्वसंग्रहके प्रणेता श्रीनिवासके गुरु। पहले इनका रघुनाथाचार्य नाम था। संन्यासाश्रम ग्रहणके बाद ये सत्यनाथ तीर्थ या यति कहलाने लगे। इनकी बनाई हुई अभिनवगदा, अभिनवचन्द्रिका (आनन्दतीर्थकृत ब्रह्मसूत्रभाष्यके जयतीर्थकृत तत्त्वप्रकाशिका नामकी टीकाका टीका) अभिनवतर्कताण्डव, जयतीर्थकृत प्रमाणपद्धतिकी अभिनवामृत नामकी टीका, जयतीर्थकृत कर्मनिर्णयटीकाकी कर्मप्रकाशिका नामनी टिप्पनी तथा आनन्दतीर्थके ब्रह्मसूत्रभाष्यकी तत्त्वप्रकाशिका-टीका मिलती है। ये सत्यनिधितीर्थके शिष्य थे। १६७४ ई०में इनका देहान्त हुआ।

सत्यनाम (सं० त्रि०) सत्यनामन्। धर्म अभिधा। स्त्रियां टाप्।

सत्यनामन् (सं० त्रि०) १ सत्यनाम। (पु०) २ ब्राह्मी शाक। ३ आदित्यभक्ता, हुरहुर।

सत्यनारायण (सं० पु०) सत्यो नारायणः। देवताविशेष, सत्यदेव। २ व्रतविशेष। सत्यनारायण देवताके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है, इसीसे इसका नाम सत्यनारायणव्रत हुआ है। यह व्रत सर्वाभीष्टफलप्रद है। इस व्रतकी फलश्रुतिके विषयमें लिखा है, कि जो जिस विषयकी कामना करके यह व्रत करते हैं उनकी वह कामना सिद्ध होती है। जनसाधारण इसे सत्यनारायणकी सिन्नी देना कहते हैं। कोई कोई इसे सत्यपीरकी सिन्नी भी कहते हैं। व्रत मात्र ही पूर्वाह्नमें किया जाता है, किन्तु यह व्रत सायंकालमें प्रदोषके समय किया जाता है। हिन्दुओंमें प्रायः प्रत्येकके घर इस व्रतका अनुष्ठान होता है। यह व्रत करनेमें किसी दिनक्षणका विचार नहीं करना होता, जिस किसी दिन किया जा सकता है। इस व्रतानुष्ठानका विधान स्कन्दपुराणके रेवाखण्डमें लिखा है। इस सत्यनारायणकी कथासे बङ्ग, उत्कल, हिन्दी आदि बहुत-सी भाषाओंमें पांचाली रची गई है। वे सब पांचाली व्रतके अन्तमें पढ़ी जाती हैं। विभिन्न स्थानमें इस व्रतका प्रणालीका भी पार्थक्य देखा जाता है। जिस किसी दिन यह व्रत होने पर भी संक्रान्ति, पूर्णिमा आदि पुण्य दिनोंमें होना विशेष पुण्यजनक है।

इस व्रतकी पूजादिका विधान—सायंकालमें शालग्राम शिला या घटस्थापन कर यह व्रताचरण करे। पूजापद्धतिके नियमानुसार स्वस्तिवाचन, सङ्कल्प, सामान्यार्घ, आसनशुद्धि, जलशुद्धि, भूतशुद्धि आदि गणविधान करके सत्यनारायणकी पूजा करनी होती है।

सत्यनारायण या सत्यपीरकी पूजा मुसलमान प्रभावका फल है। एक दिन हिन्दू मुसलमान मिलकर सत्यपीरकी सिन्नी चढ़ाते थे। इसी समय हिन्दू मुसलमान कवियोंने सत्यपीरकी पांचाली प्रकाशित की।

सत्यनिधितीर्थ—सत्यव्रततीर्थके शिष्य। गुरुकी मृत्युके बाद इन्होंने साम्प्रदायिक गुरुपद प्राप्त किया। १६६१ ई०में इनका तिरोधान हुआ। इनका बनाया हुआ वायुभारतीस्तोत्र नामक एक ग्रन्थ मिलता है। पहले ये रघुनाथाचार्यके नामसे परिचित थे।

सत्यनेत्र (सं० पु०) ऋषिभेद। (हरिवंश)

सत्यपर (सं० त्रि०) सत्यमें प्रवृत्त, ईमानदार।

सत्यपराक्रम (सं० त्रि०) सत्यशील, सत्यविक्रम।

सत्यपराक्रमतीर्थ—सत्येष्टतीर्थके बाद ये साम्प्रदायिक गुरुके पद पर अधिष्ठित हुए। १८८० ई०में इनकी मृत्यु हुई। संन्यासाश्रम ग्रहणके पहले ये श्रीनिवासाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे।

सत्यपरायणतीर्थ—सत्यसन्तुष्टतीर्थके शिष्य। १६६४ ई०में इनका तिरोधान हुआ। संन्यासाश्रम ग्रहणके पहले गुरुाचार्य नामसे इनकी प्रसिद्धि थी।

सत्यपाल (सं० पु०) मुनिभेद। (भारत सभाप)

सत्यपीर—मुसलमानोंके निकट सत्यपीर और हिन्दुओंके निकट सत्यनारायण नामसे परिचित थे।

सत्यनारायण देखो।

सत्यपुर (सं० क्ली०) सत्यं पुरं वा सत्यदेवस्य पुरं। विष्णुलोक। सत्यनारायणव्रत करनेसे अन्तमें सत्यपुरकी गति होती है। सत्यनारायणको पुरी।

सत्यपुरुष (सं० पु०) ईश्वर, परमात्मा।

सत्यपुष्टि (सं० स्त्री०) सत्यानुरागी।

सत्यपूर्णतीर्थ—सत्याभिनवतीर्थके शिष्य। संन्यासाश्रम ग्रहणके पहले ये केशवाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे। १७२७ ई०में इनका तिरोधान हुआ।

सत्यप्रतिज्ञ (सं० त्रि०) सत्यं प्रतिज्ञा यस्य। सत्यवादी, वचनका सच्चा।

सत्यप्रबोधभट्टारक—सारस्वतप्रक्रियादीपिका नाम्नी व्याकरणके प्रणेता। ये ब्रह्मसागरके शिष्य थे।

सत्यप्रसव (सं० त्रि०) सत्यः प्रसवोऽनुज्ञा यस्य। सत्यानुज्ञ।

सत्यप्राशू (सं० त्रि०) सत्यपराक्रम। (तैत्तिरीयब्रा० ३।१।५।१)

सत्यप्रियतीर्थ—सत्यविजयतीर्थके शिष्य। प्रथमजीवनमें इनको रामचन्द्राचार्य नामसे प्रसिद्धि थी। १७४५ ई०में इनका देहान्त हुआ।

सत्यफल (सं० पु०) सत्यं फलं यस्य। बिल्ववृक्ष, श्रीफल, बेल।

सत्यभामा (सं० स्त्री०) सत्राजितकी कन्या और श्रीकृष्णकी एक प्रधाना महिषी। रुक्मिणी आदि करके श्रीकृष्णके ८ प्रधाना महिषी थीं, सत्यभामा उनमेंसे एक थी। इन्हींके लिये कृष्ण पारिजात लाने गये थे और इन्द्रसे लड़े थे। कृष्ण देखो।

सत्यभारत (सं० पु०) सत्यं भारतं यस्य। वेदव्यास।

सत्यभाषण (सं० क्ली०) सत्यमय भाषण। सत्यवाक्यकथन, सच बात कहना।

सत्यमङ्गलम्—मन्द्राज प्रदेशके कोयम्वतोर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ११° ५७´ उ० तथा देशा० ८५° ४६´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण डेढ़ हजारसे ऊपर है। यहां कृष्णावतार साक्षीगोपालका एक मन्दिर है। तीर्थयात्री इसी स्थान हो कर पुरी जाते हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० ११° १५´ से ११° ४६´ उ० तथा देशा० ७६° ५०´ से ७७° ३५´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ११७७ वर्गमील और जनसंख्या २ लाखसे ऊपर है। इसमें १६५ ग्राम लगते हैं। यहां भवानी नदीके किनारे मदुराके नायकोंका प्रतिष्ठित एक दुर्ग विद्यमान है। १६५७ ई०में महिसुरराजके सेनापतिने इस दुर्गको अधिकार किया। यह दुर्ग उस प्रदेशमें ऐसे स्थानमें बनाया गया था, कि बाहरी शत्रुके चढ़ाई करने पर भी वे दुर्गाधिकारीको सहजमें परास्त नहीं कर सकते थे। हैदर अली और टीपू सुलतानके साथ अंगरेजोंका जब युद्ध चल रहा था, उस समय महिसुरसेनाने उस दुर्गमें आश्रय ले कर अंगरेजोंको तंग तंग कर दिया था। १७६८ ई०में अंगरेज सेनापति कर्नल उडने दुर्ग पर दखल जमाया, किन्तु दूसरे ही वर्ष हैदर अलीने फिरसे छीन लिया। १७६० ई०में अंगरेजोंकी ओरसे कर्नल फलयिडने पुनः नगर और दुर्गको कब्जा किया। उसी वर्ष दुर्ग और दनयकङ्कोट्टई नामक स्थानके मध्यवर्ती विस्तृत मैदानमें टीपूके साथ फलुयिडका पुनः घमासान हुआ। इस युद्धमें अंगरेजसेनापति जिस ढंगसे टीपूको निर्जित कर भाग गये, उससे उनका यह भागना रणजय कह कर घोषित किया गया। यहां गञ्जल-

हाट्टी और हसनूर नामक दो गिरिसङ्कट हैं। अन्तिम पथसे बहुतसे लोग महिसुर राजधानी जाते हैं।

सत्यमद्रन् (सं० त्रि०) सत्यमद, अवितथमद।

सत्यमन्त्र (सं० त्रि०) अवितथ मन्त्रसामर्थ्यार्पित, सत्य-मन्त्रार्थयुक्त, जो मन्त्र जिस कार्यमें प्रयुक्त होता है वही मन्त्रार्थयुक्त। जो मन्त्र निष्फल नहीं होता, उसे सत्य-मन्त्र कहते हैं। (ऋक् १।२०।४)

पुरश्चरणादिका अनुष्ठान करनेसे मन्त्रसिद्ध होता है, मन्त्र सिद्ध होनेसे जिस जिस फलका उद्देश करे मन्त्र प्रयुक्त होता है। मन्त्रशक्तिके प्रभावसे उसी समय वह फल मिलता है। इस मन्त्रको सत्यमन्त्र कहते हैं।

सत्यमन्मन् (सं० त्रि०) सत्यज्ञानी, यथार्थदर्शी।

सत्यमय (सं० त्रि०) सत्यस्वरूपे मयट्। सत्य स्वरूप।

सत्यमान (सं० क्ली०) सत्यं यत्र मानं प्रमाणं। सत्य-भूत प्रमाण।

सत्यमुग्र (सं० त्रि०) संग्राम सत्य द्वारा शत्रुओंका उद्धारयिता या उद्गूर्ण सत्य।

सत्यमेधस् (सं० पु०) विष्णु।

सत्यमौद्गल (सं० पु०) वैदिक शाखाभेद।

सत्यम्भरा (सं० स्त्री०) प्लक्षद्वीपस्थित महानदीविशेष। इस नदीका जल स्पर्श करनेसे रजस्तमोमल उसी समय दूर होता है। (भागवत ५।२०।४)

सत्ययज् (सं० त्रि०) अन्नदाता या हविके द्वारा देवताओं-का यज्ञ करनेवाला, जो देवताओंके उद्देशसे हविर्द्वारा याग करते हैं।

सत्ययुग (सं० क्ली०) सत्यं युगं। युगभेद। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि यही चार युग हैं। इन चार युगोंमें सत्ययुग प्रथम युग है। इसका दूसरा नाम कृतयुग है। सत्ययुगकी उत्पत्ति आदिके विषयमें प्रचलित पञ्जिकामें लिखा है, कि वैशाख मासकी शुक्ला तृतीया तिथि रवि-वारको इस युगकी उत्पत्ति हुई। तभीसे वैशाखी शुक्ला तृतीया सत्ययुगाद्य कहलाती है। इस युगमें भगवान्-के चार अवतार हुए हैं, मत्स्य, कूर्म, वराह और नृसिंह। इस युगमें पुण्य पूरा था, पाप कुछ भी नहीं था। सभी पुण्यकर्मा थे। धर्म चतुष्पाद, कुरुक्षेत्र तीर्थ, प्रद्यांश ब्राह्मण तथा प्राण मज्जागत थे, इच्छा मृत्यु व्याधि आदिसे किसीकी भी मृत्यु नहीं होती थी, मनुष्य इक्कीस हाथ लम्बे होते थे। लाख वर्ष उनकी परमायु थी। भोजन-पात्र सोनेके थे। सत्ययुगाब्द १७२८००० था। इस युगमें बलि, वेण, मान्धाता, पुरूरवा, धुन्धुमार और कार्त्तवीर्य ये सब राजा हो गये हैं। इस युगका लक्षण यह कि सभी नित्य सत्यधर्मरत, तीर्थसेवापरायण तथा सत्यवादी और सभी देवता सर्वदा आनन्दित रहते थे।

इस युगमें तारक ब्रह्मनाम, यथा—

"नारायणपरा वेदा नारायणपराक्षराः।
नारायणपरा मुक्ति र्नारायणपरा गतिः॥" (पञ्जिका)

मनुसंहितामें लिखा है, कि देव-परिमाण चार हजार वर्ष सत्ययुग है। मनुष्य-मानका एक वर्ष देवताओंका एक दिन होता है। इस सत्ययुगके चार सौ वर्ष संध्या और चार सौ वर्ष सन्ध्यांश है। सत्ययुगमें सभी धर्म सर्वाङ्गसम्पन्न होते और सत्य सम्पूर्णभावमें विराजमान रहता है। इस कालमें शास्त्रनिषिद्ध उपाय द्वारा अर्थ या विद्याका अर्जन नहीं किया जाता। इस युगमें कोई भी रोग मनुष्यको नहीं छूता और उनका आयुपरिमाण चार सौ वर्ष होता है। इस समय तपस्या ही प्रधान धर्म है। (मनु १ अ०)

महाभारतमें लिखा है, कि कृत्स्न जगत्के क्षय होने पर आदिकारण परमात्मासे यह जगत् ऐन्द्रजालिक व्यापारकी तरह निष्पन्न होता है। दैवपरिमाण ४ हजार वर्षमें सत्ययुग होता है तथा उसकी युगसन्धि ४ सौ वर्ष तथा संध्यांश भी ४ सौ वर्ष है। सत्ययुगमें अधर्मका विनाश, धर्मकी वृद्धि और मनुष्य क्रियावान् होते हैं। इस युगमें आश्रम, यज्ञस्थान, चतुष्पाठी, तड़ाग, पुष्करिणी, देवायतन, नानाविध यज्ञ और क्रिया कलाप होते हैं। प्रजा ब्रह्मपरायण, साधु, मुनि और तपस्वी होते हैं, क्या आश्रमी क्या आश्रमभ्रष्ट सभी सत्यवादी और सत्यव्यवस्थायी हैं। बीज मात्र ही रोप्यमाण है, सभी ऋतुमें समान शस्य होता है। मानवगण दान, व्रत और तपोनिरत, ब्राह्मणगण धर्मार्थी और जपयज्ञपरायण होते हैं। क्षत्रियगण धर्मानुसार इस वसुन्धराके पालनमें वैश्य कृषिकार्यमें और शूद्र इन तीनोंकी सेवामें लगे रहते हैं। किसीको भी कोई दुःख नहीं रहता, सभी प्रसन्न रहते हैं, दुःख शोक नहीं कहनेमें भी अत्युक्ति न होगी। यही सत्ययुगका लक्षण है। (भारत वनपर्व १८९ अ०)

सत्ययुगाद्या (सं० स्त्री०) सत्ययुगस्य आद्या तिथिरित्यर्थः। वैशाख शुक्ल-तृतीया जिस दिनसे सत्ययुगका आरंभ माना गया है, अक्षय-तृतीया तिथि।

सत्ययुगी (सं० त्रि०) १ सत्युगका, सत्ययुग सम्बन्धी। २ बहुत प्राचीन। ३ बहुत सीधा और सज्जन, सच्चरित्र। कलियुगीका उलटा।

सत्ययोनि (सं० त्रि०) सत्यं योनिर्यस्य, सत्यनिवास।

सत्ययौवन (सं० पु०) सत्यमेव यौवनमिव यस्य। विद्याधर।

सत्यरत (सं० त्रि०) सत्येरतः। १ सत्यानुरक्त। (पु०) २ सत्यव्रत राजपुत्र। (मत्स्यपु० १२ अ०)

सत्यरथ (सं० पु०) मैथिल राजभेद, सोमरथके पुत्र। आप अत्यन्त आत्मतत्त्वविशारद थे।

सत्यराज (सं० पु०) सह्याद्रिवर्णित राजभेद।

सत्यराजन् (सं० त्रि०) जिनके प्रभु अविनाशी हैं।

सत्यराधस् (सं० त्रि०) सत्यं राधः धनं यस्य। सत्य धन, जिसका सत्य ही एक मात्र धन है।

सत्यरूप (सं० पु०) सत्यं रूपं यस्य। सत्यस्वरूप, विष्णु।

सत्यलोक (सं० पु०) सत्योलोकः। ऊपरके सात लोकोंमेंसे सबसे ऊपरका लोक जहां ब्रह्मा रहते हैं। इसे ब्रह्मलोक भी कहते हैं।

यह लोक पृथ्वीसे तेईस करोड़ पन्द्रह लाख मील ऊपर है। इस लोकमें मनुष्यकी मृत्यु नहीं होती। इस लोकमें जानेसे फिर लौटना नहीं पड़ता।

सत्यलौकिक (सं० क्ली०) सत्य और लौकिक अर्थात् वैदिक और लौकिक कृत्य।

सत्यवचन (सं० क्ली०) सत्यं वचनं। १ सत्यवाक्य, यथार्थ कथन, सच कहना। २ सत्यवादी, सच बोलनेवाला। ३ प्रतिज्ञा, कौल, वादा।

सत्यवचस् (सं० पु०) सत्यं वचो यस्य। १ ऋषिविशेष। (त्रि०) २ सत्यवादी। (क्ली०) सत्यं वचः। ३ सत्यवाक्य, सच कहना।

सत्यवत् (सं० त्रि०) सत्यं विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। सत्यविशिष्ट, सत्ययुक्त।

सत्यवती (सं० स्त्री०) सत्यवत् ङीप्। व्यासकी माता। पर्याय—काली, योजनगंधा, गंधकाली, झसोदरी, सत्या, चित्राङ्गदप्रसू, विचित्रवीर्यसू, कन्या, दासेया, दासनन्दिनी। (शब्दरत्ना०)

पराशरके औरस और सत्यवतीके गर्भसे व्यासदेवका जन्म हुआ। मत्स्यगन्धा शब्दमें विशेष विवरण देखो।

२ ऋचिकमुनिकी स्त्री, जमदग्निकी माता। कालिकापुराणमें लिखा है, कि ब्रह्माके पुत्र भृगु और भृगुके पुत्र ऋचीक थे। एक दिन किसी जंगलमें कुशिकपुत्र गाधि तपस्या कर रहे थे। इसी समय उन्हें एक कन्या पैदा हुई। सत्यवती उस कन्याका नाम रखा गया। इधर ऋचीक विवाह करनेकी इच्छासे गाधिके पास आये और पत्नीके लिये कन्या मांगने लगे। गाधिने कहा, "ब्राह्मणको कन्या देना मुझे उचित नहीं, किन्तु शुल्कग्रहण करना हम लोगोंका धर्म है। फिर वह शुल्क वैसा तैसा नहीं, जो व्यक्ति एक हजार काले घोड़े मुझे ला कर देगा, उसीके हाथमें अपनी कन्या सौंपूंगा।' ऋचीकने जवाब दिया, "राजन्! मैं ठीक वैसे ही एक हजार घोड़े दूंगा, आप कुछ समय ठहरें, ला कर देता हूं।" अनन्तर ऋचीक घोड़े लानेके लिये कान्यकुब्जमें गङ्गाकिनारे गये। वहां उन्होंने जलपति वरुणको स्तवादि द्वारा प्रसन्न कर उनके प्रसादसे उक्त लक्षणके हजार घोड़े पाये। जहां वे सब अश्व मिले थे, वह स्थान आज भी अश्वतीर्थ कहलाता है। ऋचीकने उन घोड़ोंको ला कर गाधीको दिया। पीछे गाधीने भी अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार सत्यवतीको ऋचीकके हाथ सौंप दिया। ऋचीक सत्यवतीको भार्यारूपमें पा कर बड़े हृष्टचित्तसे अपने आश्रममें लौटे और आनन्दपूर्वक दिन बिताने लगे। भृगुको जब मालूम हुआ, कि पुत्र ऋचीकने विवाह कर लिया है, तब वे पुत्रवधूको देखनेके लिये उनके आश्रममें गये और उन्हें देख कर बड़े प्रसन्न हुए। पीछे उन्होंने पुत्रवधूसे कहा, 'पुत्रि! वर मांगो।' सत्यवतीने अपने लिये वेदपारग तपोनिष्ठ पुत्र तथा माताके लिये अमितविक्रमशाली वीरपुत्रके लिये प्रार्थना की। 'वैसा ही होगा' कहते कहते भृगु ध्यानमग्न हो गये। पीछे उनके विश्वाससे दो चरु निकले। भृगुने पुत्रवधू सत्यवतीको दोनों चरु दे कर कहा, 'तुम और तुम्हारी

माता ऋतुस्नान करके ये दोनों चरु खाना। तुम्हारी माता पुत्र प्रसव करनेके लिये पीपल वृक्षका आलिङ्गन कर यह लाल चरु खायेगी और तुम गूलर वृक्षका आलिङ्गन कर यह सफेद चरु खाना। इससे तुम्हारे तपोधन अत्युत्कृष्ट पुत्र होगा।'

अनन्तर ऋतु स्नानके दिन सत्यवतीने भूलसे पीपल वृक्षका आलिङ्गन कर लाल चरु और उनकी माताने सफेद चरु खा लिया। महर्षि भृगुको जब यह बात मालूम हुई तब वे दौड़े आये और बोले 'भद्रे! तुमने चरु खाने और वृक्षालिङ्गन करनेमें बड़ी भारी भूल कर दी, इससे तुम्हारा पुत्र क्षत्रियाचारी ब्राह्मण और तुम्हारी माताका पुत्र ब्राह्मणाचारी क्षत्रिय होगा।' भृगुकी बात सुन कर सत्यवतीने उन्हें प्रसन्न कर कहा 'मेरा पुत्र जिस से गुणसम्पन्न हो, वैसा ही उपाय कर दीजिये।' इस पर भृगु, 'तथास्तु' कह कर चले गये। अनन्तर सत्यवतीने यथासमय जमदग्निको और उनकी माताने विश्वामित्रको प्रसव किया। यही कारण है, कि जमदग्नि क्षत्रियाचारी हुए थे।

सत्यवतीसुत (सं० पु०) सत्यवत्याः सुतः। १ व्यास। २ जमदग्नि। (कालिकापु० ८४ अ०)

सत्यवदन (सं० त्रि०) सत्यवादी।

सत्यवरतीर्थ—एक संन्यासी और सम्प्रदायके गुरु। ये पहले कृष्णाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे। अपने गुरु सत्यसन्ध तीर्थकी मृत्युके बाद ये गुरुपद पर अधिष्ठित हुए। १७१८ ई०में इनका देहान्त हुआ।

सत्यवर्त्मन् (सं० त्रि०) सत्यपथ, सत्यमार्ग।

सत्यवर्या—पञ्चपदी विवृति नामक व्याकरणके प्रणेता।

सत्यवसु (सं० पु०) विश्वेदेवामेंसे एक।

सत्यवाक् (सं० पु०) सत्यवाचन, सच कहना।

सत्यवाक्य (सं० क्ली०) सत्यं वाक्यं। १ यथार्थ कथन, सच वचन। (त्रि०) सत्यं वाक्यं यस्य। २ सत्यवादी, सच बोलनेवाला।

सत्यवाक्यदेव—दाक्षिणात्यके चेरराजवंशका एक राजा।

सत्यवाच् (सं० पु०) सत्या वाक् यस्य। १ ऋषि। २ काक, कौआ। ३ सावर्ण मनुके एक पुत्रका नाम। (मार्कपु० ८०।११) ४ सत्य वचन। ५ प्रतिज्ञा, करार। (त्रि०) सत्या वाक् यस्य। ४ सत्यवादी, सच बोलने वाला।

सत्यवाचक (सं० त्रि०) सत्यं वाचयतीति, सत्य-वच ण्वुल्। सत्यवादी, सच बोलनेवाला।

सत्यवाद (सं० पु०) सत्यस्य वादः। १ सत्यविषयक वाद, सच वचन। २ धर्म पर दृढ़ रहना, ईमान पर रहना।

सत्यवादिता (सं० स्त्री०) सत्यवादिनो भावः तल् टाप्। सत्यवादित्व, सत्य कथन।

सत्यवादिन् (सं० त्रि०) सत्यं वदतीति वद-णिनि। १ यथार्थवक्ता, सच बोलनेवाला। २ प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला, वचनको पूरा करनेवाला। ३ धर्म पर दृढ़ रहनेवाला, धर्म कभी न छोड़नेवाला।

सत्यवादिनी (सं० स्त्री०) १ दाक्षायिणीका एक नाम। २ बोधिद्रुमकी एक देवी।

सत्यवादी (सं० त्रि०) सत्यवादिन् देखो।

सत्यवान् (सं० पु०) सत्यवत्। राजविशेष, सावित्रीके पति।

"सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यमाता प्रभाषते।
ततोऽस्य ब्राह्मणाश्चक्रुर्नामैतं सत्यवानिति॥"
(भारत ३।२९३।१२)

इनके मातापिता सर्वदा सत्यवाक्य कहा करते थे, इसीसे ब्राह्मणोंने इनका सत्यवान् नाम रखा। महाभारतमें लिखा है, कि, शाल्वदेशमें द्युमत्सेन नामक एक राजा थे। कालक्रमसे वे अंधे हो गये। इसी समय उन्हें एक पुत्र हुआ। ब्राह्मणोंने उस पुत्रका नाम सत्यवान् रखा। द्युमत्सेनको नेत्रहीन देख उनके पूर्व शत्रुओंने राज्य पर चढ़ाई कर दी। राजा कोई उपाय न देख स्त्री समेत जंगल चले गये। यहां वे सर्वदा तपस्यामें निरत रह कर समय बिताने लगे। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिन अश्वपतिकी कन्या सावित्री पतिकी खोजमें घरसे निकल कर जंगल आई। यहां सत्यवान् पर उनकी एकाएक दृष्टि पड़ी और मन ही मन उनको वरमाला पहना दी। पीछे घर आ कर सावित्रीने कुल वृतान्त अपने पितासे कह सुनाया। उसी समय नारद ऋषि भी वहीं बैठे थे। नारदने यह वृतान्त सुन कर

राजासे कहा 'राजन्! सत्यवान् सभी गुणोंसे युक्त होने पर भी उनकी परमायु बहुत थोड़ी है, आजसे एक वर्ष पूरा होने पर उनकी आयु शेष होगी।'

तब राजा अश्वपतिने सावित्रीसे कहा, 'तुम सत्यवानकी आशा छोड़ दो, किसी दूसरे गुणवान् व्यक्तिको वरो। क्योंकि, सत्यवान् एक वर्ष बाद ही शरीरत्याग करेगा, पीछे तुम्हें दारुण वैधव्यका भोग करना होगा।' सावित्रीने कहा, 'पिताजी! आप ऐसा न कहें, मैं जब उन्हें वर चुकी हूं, तब किसी हालतसे रुक नहीं सकती।'

अश्वपतिने सावित्रीका दृढ़ सङ्कल्प जान कर सत्यवान्के साथ उसका विवाह सम्बन्ध स्थिर किया। शुभ दिन देख कर वे विवाहोपयोगी उपकरण और सावित्रीको साथ ले जङ्गलमें गये। वहां द्युमत्सेनके पास जा कर उन्होंने राजासे कहा, 'राजर्षे! सावित्री नामकी मेरे एक सुन्दरी कन्या है, आप स्वधर्मानुसार उसे अपनी पुत्रवधू बनावें।'

द्युमत्सेनने कहा, 'हम लोग राज्यसे विच्युत हो कर जङ्गल आये हैं, यहां संयत और तपस्वी हो कर धर्माचरण करते हैं, किन्तु आपकी कन्या वनमें रहने योग्य नहीं है, तब फिर किस प्रकार आश्रममें रह कर वे वन क्लेश सहन करेगी?'

अश्वपतिने उत्तरमें कहा, 'राजन्! सुख और दुःख ये दोनों ही अनित्य हैं, कभी उत्पन्न और कभी विनष्ट होता है, मेरी कन्या यह अच्छी तरह जानती है। अतएव आप मुझे निराश न लौटावें, सावित्रीको वधूरूपमें ग्रहण करें।' अश्वपतिके विशेष हठ करने पर द्युमत्सेनने उस आश्रमके सभी ब्राह्मणोंको बुलाया और यथाविधि विवाह कार्य सम्पन्न कराया। राजा अश्वपति सत्यवान्को कन्या तथा यथायोग्य परिच्छदादि प्रदान कर हृष्टचित्तसे घर लौटे। सत्यवान् उस सर्वगुणान्विता भार्याको पा कर बड़े प्रसन्न हुए और अभिलषित पति पा कर सावित्रीके भी आनन्दका पारावार न रहा। इसके बाद सावित्रीने सभी आभरण परित्याग कर वल्कल पहना। सावित्री परिचर्याशील सत्यादि गुणावलि, स्नेह, इन्द्रियनिग्रह और सबोंके अभिलाषानुरूप कार्यानुष्ठान द्वारा सबोंको प्रसन्न करने लगी। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। किन्तु नारदने जो बात कही थी, सावित्रीके अन्तःकरणमें वह दिनरात जगमगा रही थी, सोते, बैठते किसी भी अवस्थामें वह उसे भूल नहीं सकी थी।

अनन्तर कुछ दिन इसी प्रकार बीत गया। सावित्री नारदके कथनानुसार दिन गिनती जाती थी। आजसे चौथे दिन सत्यवान्की मृत्यु होगी यह अच्छी तरह जान कर उन्होंने त्रिरात्रव्रतका अनुष्ठान किया। इस व्रतमें तीन दिन उपवास रहना होता है। जिस दिन सत्यवानकी मृत्यु होगी, सूर्यदेवके उदय होनेके बाद आज ही वह दिन है, ऐसा समझ कर प्रदीप्त हुताशनमें आहुति देने लगी, पीछे ब्राह्मण, ससुर सासको अभिवादन कर कृताञ्जलि हो खड़ी रही। ब्राह्मणोंने उन्हें अवैधव्यसूचक आशीर्वाद दिया। ससुर और सासने अब सावित्रीसे कहा, 'तुम्हारा त्रिरात्रव्रत शेष हो गया, अब भोजन कर लो, क्योंकि तीन दिनसे तुम भूखी हो।' सावित्रीने उत्तर दिया, 'मेरा व्रतशेष हुआ सही परन्तु विधाता यदि मुझे भोजन देंगे तो आज सूर्यास्त होने पर भोजन करूंगी।'

इस समय सत्यवान् कुठार हाथमें लिये वन जानेके लिये तैयार हुए। सावित्रीने स्वामीसे कहा, 'आज अकेले आपको जाने नहीं दूंगी, मैं आपके साथ चलूंगी। किसी हालतसे आज आपको छोड़ न सकती।' इस पर सत्यवान्ने कहा, 'तुम पहले कभी वन नहीं गई हो, वनका रास्ता बड़ा ही दुर्गम है, विशेष तीन दिन उपवास करनेसे तुम्हारा शरीर कमजोर हो गया है, इस लिये पैदल किस प्रकार जा सकोगी?' सावित्री बोली, 'मैं उपवासके कारण क्लान्त या परिश्रमका कुछ भी अनुभव नहीं करती, आपके साथ जानेकी मेरी उत्कट इच्छा है, इसमें आप बाधा न डालें।' तब सत्यवान्ने कहा, 'यदि तुम सच मुच वन जाना चाहती हो, तो मेरे माता-पितासे अनुमति ले लो।' अनन्तर सावित्री ससुर और सासके पास गई और उन्हें प्रणाम कर कहा, 'स्वामी फल लानेके लिये वन जा रहे हैं, आज मेरी भी इच्छा उनके साथ जानेकी है, इस लिये प्रार्थना है, कि आप मुझे सहर्ष जानेकी अनुमति दीजिये। गुरु और अग्निहोत्रके लिये आर्यपुत्र वन जा रहे हैं, इस लिये उन्हें रोकना

भी उचित नहीं'।' द्यु मत्सेनने सावित्रीका नितान्त आग्रह देख कर वन जानेकी अनुमति दे दी।

सावित्री सत्यवान्‌के साथ वनको चली। किन्तु नारदोक्त मुहूर्त्तके विषयकी चिन्ता कर उनका कलेजा फटने लगा। अनन्तर फलकाष्ठादि तोड़ते समय सत्यवान्‌का शिर प्रगाढ़ चकराने लगा। शिरके दर्दसे अत्यन्त व्याकुल हो उन्होंने सावित्रीसे कहा, 'सावित्री! मेरे अङ्ग प्रत्यङ्ग मानो टूट रहे हैं, जरा भी चैन नहीं है, मालूम होता है मेरा मृत्युकाल पहुंच गया है, क्षणकाल भी अब मैं ठहर नहीं सकता' इतना कह कर वे सावित्रीकी गोद पर मस्तक रख कर सो गये।

अनन्तर सावित्री नारदोक्त मुहूर्त्त उपस्थित देख कर अत्यन्त व्याकुल और विषण्ण हुई। पीछे सावित्रीने देखा कि लाल वस्त्र पहने, डील डौलमें सुन्दर, श्याम गौरवर्ण और लोहितलोचनवाले एक भयङ्कर पुरुष हाथमें पाश लिये सत्यवान्‌की बगलमें खड़े हैं और उन्हें एक टकसे देख रहे हैं। सावित्रीने उन्हें देख कर कहा, 'आप क्या देवता हैं, किस अभिप्रायसे यहां आये हैं।' इस पर उक्त पुरुषने जवाब दिया, 'मेरा नाम यम है, तुम्हारी पतिकी मृत्यु हो गई है, मैं उसे लेने आया हूं। सत्यवान् अत्यन्त पुण्यात्मा और तुम पतिव्रता हो, मेरे दूतगण तुम्हारे सामने इन्हें नहीं ले जा सकेंगे, यह जान कर मैं ही स्वयं आया हूं।'

इतना कह कर यम अङ्गुष्ठ मात्र पुरुषको पाशमें बांध कर दक्षिणकी ओर जाने लगे। सावित्री भी उनके पीछे पीछे चली। यम उन्हें लौट जानेके लिये बार बार कहने लगे, 'सावित्री! तुम जा कर इसकी अन्त्येष्टिक्रिया करो, तुम स्वामीके ऋणसे उऋण हो गई। मनुष्यको जहां तक करना सम्भव है वहां तक तुम कर चुकी, इस लिये अब लौट जाओ, और अन्त्येष्टिक्रिया जा कर करो।'

अनन्तर सावित्रीने कहा, 'मेरे स्वामीको आप जहां ले जा रहे हैं और आप भी जहां जाते हैं, मुझे भी वहीं जाना उचित है। क्योंकि, यही सनातन धर्म है। तपस्या, गुरुभक्ति, पतिस्नेह, व्रत और आपके प्रसादसे मेरी गति अप्रतिहत होगी।' इत्यादि प्रकारसे वे यमसे पूछने लगी। तब यमने सावित्रीसे कहा, 'हम तुम्हारी बातसे बहुत सन्तुष्ट हुए, तुम सत्यवान्‌का जीवन छोड़ कर जो इच्छा हो, वर मांगो।' सावित्री बोली, 'मेरे श्वशुर अपने राज्यसे विच्युत हो अंधे हो गये हैं, इससे यही वर चाहती हूं कि वे जिससे नेत्रलाभ कर सूर्यके समान तेजस्वी हों।' यमने वैसा ही वर दिया और कहा, 'अब लौट जाओ, आनेका वृथा कष्ट न करो।'

अनन्तर सावित्रीने कहा, 'स्वामीके पास रहते मुझे कष्ट किस बातका? स्वामीकी जो गति है, वही मेरी स्थिर गति होगी। आप जहां मेरे पतिको ले जायगे, मैं वहीं जाऊंगी।' इत्यादि प्रकारसे सावित्रीने यमको मुग्ध कर दिया।

यमने फिर सावित्रीसे कहा, 'तुम सत्यवान्‌का जीवन छोड़ दूसरा वर ले कर लौट जाओ।' इस बार सावित्रीने श्वशुरके राज्यलाभ तथा पिताके सौ पुत्रलाभके लिये प्रार्थना की। यमने उन्हें वही वर दे कर कहा, कि अब घर लौट जाओ। अनन्तर सावित्री फिर यमको नाना प्रकारके स्तवादि द्वारा प्रसन्न करने लगी। यमने फिर कहा, 'सत्यवान्‌के जीवनको छोड़ कर चौथा वर मांगो।' इस पर सावित्री बोली, 'सत्यवान्‌के औरस और मेरे गर्भसे जिससे सौ पुत्र उत्पन्न हो, वही वर मुझे दीजिये।' 'तथास्तु' कह कर यम जाने लगे। किन्तु सावित्रीने फिर मधुर और हितार्थयुक्त वचनोंसे यमको मोहित किया। यमने नितान्त परितुष्ट हो कर उससे कहा, 'सावित्री! तुम एक वर और ऐसा मांगो, जो पाये हुए चार वरोंसे परे हो।' सावित्री बोली, 'मैं यही वर प्रार्थना करती हूं, कि सत्यवान् जीवित हों। क्योंकि, बिना पतिके मैं मृतवत् हूं, पतिविहीन हो कर मैं सुख, स्वर्ग, ऐश्वर्य्य यहां तक कि जीवनधारणकी भी इच्छा नहीं करती। देखिये! आपने ही मेरे सौ पुत्र होनेका वर दिया है, फिर भी आप मेरे पतिको लिये जा रहे हैं।' तब यमने सावित्रीके प्रति दया दिखला कर उन्हें सत्यवान्‌के जीवनदानरूप वर दिया, 'भद्रे! मैंने यही तुम्हारे स्वामीको छोड़ दिया। सत्यवान् रोगमुक्त और सिद्धार्थ हुए, तुम्हारे साथ चार सौ वर्ष परमायु लाभ कर सुख भोग करेंगे। तुम्हारे गर्भसे भी सौ पुत्र

उत्पन्न होंगे।' इस प्रकार वर दे कर यमने प्रस्थान किया।

अनन्तर सत्यवान्ने सोते की तरह उठ कर सावित्री-से कहा, 'अब तक तुमने मुझे उठाया था क्यों नहीं? एक श्यामवर्ण पुरुष मानो मुझे खींचे जा रहे थे, वे कहां गये? यदि तुम जानती हो, तो मुझे कहो।' सावित्री बोली, 'रात अधिक चढ़ आई। आपके माता-पिता आपके लिये बहुत व्याकुल होते होंगे, इस लिये यह वृत्तान्त कल कहूंगी। अभी यदि आपका शरीर स्वस्थ हो गया हो, तो घर चलिये अथवा रात यहीं बिता कर कल सवेरे जाया जायेगा।' इस पर सत्य-वान्ने कहा, 'बहुत अच्छा, अभी जाना ही अच्छा है, क्योंकि वे लोग हमारे लिये घबड़ाते होंगे। जंगली पथ मेरा चिराभ्यस्त है, तारोंकी ज्योतिसे जानेमें कष्ट न होगा।' इतना कह कर दोनों घरकी ओर चल दिये।

इधर राजा द्युमत्सेनने हठात् चक्षुलाभ किया। किन्तु सावित्री और सत्यवान्को आश्रममें अब तक आये न देख कर बड़े कातर भावमें रोने लगे। ऋषि गण वहां आ कर उन्हें सान्त्वना देने लगे। इसी समय उस गहरी रातको सावित्री और सत्यवान्ने वहां पहुंच ऋषियों और पितामाताका अभिवादन किया।

अनन्तर ऋषियोंने उन दोनोंसे कहा, 'तुम्हारे माता पिता मृतप्राय हो गये हैं, हम लोगोंने उन्हें नाना प्रकार-की सान्त्वना दे कर अब तक जीवित रखा है। तुम लोगों को आनेमें क्यों विलम्ब हुआ? यदि यह बात कोई गोप नीय न रहे, तो क्या बात है, कहो जिससे हमलोगोंका कुतूहल दूर हो।' इस पर सत्यवान्ने कहा, मैं कुछ भी नहीं जानता, वनमें लकड़ी तोड़ते समय मेरे शिरमें एकाएक दर्द हुआ, इससे मैं कातर हो कर बड़ी देर तक सावित्री-की गोद पर सो रहा। इस समय यदि कोई घटना घटी हो, उसे सावित्री ही जानती होगी, मैं नहीं।' अनन्तर उन्होंने सावित्रीसे पूछा। सावित्रीने नारदसे पतिकी मृत्युके विषयसे ले कर सत्यवान्की मृत्यु तथा यमको प्रसन्न कर किस प्रकार उन्होंने वरलाभ किया, कुल वृत्तान्त कह सुनाया। श्वशुरके चक्षु और राज्यलाभ, पिताके सौ पुत्र और अपने सौ पुत्र तथा सत्यवान्की चार सौ वर्ष परमायु, ये पांच वर जो पाये हैं, यह भी उन्होंने कह दिया। ऋषिगण यह वृत्तान्त सुन कर सावित्रीकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

इधर द्युमत्सेनके अमात्यने शत्रुओंको विनाश और राज्यका उद्धार कर द्युमत्सेनको राज्य लौटा दिया। पीछे सत्यवान्के सौ पुत्र और मालवीके गर्भसे अश्वपतिके भी सौ पुत्र हुए। एक सावित्रीने ही पिता, माता, सास, ससुर और पति इन सबोंको सभी प्रकारकी विपदसे उद्धार किया था। (भारत वनप० २९६से-२९८अ०)।

सावित्री देखो।

सत्यवाह (सं० पु०) भरद्वाज गोत्रीय ऋषिभेद।

सत्यवाहन (सं० त्रि०) १ सत्यशील, सच बोलनेवाला। २ धर्मपर दृढ़ रहने वाला।

सत्यविजयतीर्थ—सत्यपूर्ण तीर्थके शिष्य। आप प्रथम जीवनमें केशवाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे। १७४० ई०में आपका देहान्त हुआ।

सत्यविजयशिष्य—वेङ्कटेशसहस्रनामटीकाके प्रणेता।

सत्यविक्रम (सं० त्रि०) १ सत्यपराक्रम। २ सत्यवादी।

सत्यवीरतीर्थ—माध्वसम्प्रदायके एक गुरु, सत्यपराक्रम तीर्थ (१८६४ ई०) के शिष्य। ये पहले बोधरायाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे।

सत्यवृत्त (सं० त्रि०) सत्यं वृत्तं यस्य। १ सत्यवादी। (क्ली०) २ सच्चरित्र।

सत्यवृत्ति (सं० त्रि०) सत्य कथनका भार, सच्च-रित्रता।

सत्यवृध (सं० त्रि०) ऋतावृध। (शतपथब्रा० ६।८।३।४२)

सत्यबोध—एक प्राचीन कवि।

सत्यबोध—परमहंसपरिव्राजक, महाभारतटीकाके प्रणेता देवबोधके गुरु।

सत्यबोधतीर्थ—सत्यप्रिय तीर्थके शिष्य। ये अपने गुरुके मरने पर सम्प्रदायके गुरुपद पर अधिष्ठित हुए। प्रथम जीवनमें रामाचार्य नामसे इनकी प्रसिद्धि थी। १७८४ ई०में इनका देहान्त हुआ।

सत्यव्रत (सं० पु०) सत्यमेव व्रतं यस्य। १ त्रेता-युगमें सूर्यवंशीय पचीसवें राजा। (मत्स्यपु० १२ अ०) विष्णुपुराणमें लिखा है, कि ये ही त्रिशंकु राजा थे। (विष्णुपु० ४।३ अ०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

(भारत १।६३।११७) ३ महादेव। (भारत १३।१७।१५०) (क्ली०) ४ सत्यरूप व्रत। ५ सत्य बोलनेकी प्रतिज्ञा या नियम। (त्रि०) ६ सत्यव्रतविशिष्ट, जिसने सत्य बोलनेकी प्रतिज्ञा की हो।

सत्यव्रततीर्थ—वेदनिधितीर्थके शिष्य। पहले ये जनार्दनाचार्य नामसे परिचित थे। १६३६ ई०में इनका तिरोधान हुआ।

सत्यशपथ (सं० त्रि०) सत्यप्रतिज्ञ, जिसका सत्य ही शपथ है।

सत्यशवस् (सं० त्रि०) अवितथ बल, सत्यबलयुक्त मरुत्। (ऋक् १।८६।८)

सत्यशील (सं० त्रि०) सत्यं शीलं यस्य। सत्यस्वभाव, सत्यका पालन करनेवाला, सच्चा।

सत्यशीलिन् (सं० त्रि०) सत्यशीलयुक्त, सत्यस्वभाव।

सत्यशुष्म (सं० त्रि०) अवितथ बलयुक्त, यथार्थ बल रखनेवाला।

सत्यश्रवस् (सं० क्ली०) १ सत्यविषयश्रवणाकारी। २ वाय्यके पुत्र ऋषिभेद। ये वैदिक आचार्य थे। (ऋक् ५।७९।१) ३ मार्कण्डेयके पुत्रभेद। ४ वीतिहोत्रके पुत्रभेद। (भाग० ९।२।२०)

सत्यश्री (सं० पु०) १ सत्यहितके पुत्रभेद। (स्त्री०) २ एक जैन श्राविका। (शत्रुञ्जयमा० १४।३१७)

सत्यश्रुत् (सं० त्रि०) सत्य द्वारा प्रसिद्ध।

सत्यसंहति (सं० त्रि०) सत्ये संहतिः। सत्यप्रतिज्ञ, सत्यका नियम पालन करनेवाला।

सत्यसङ्कल्प (सं० पु०) सत्ये सङ्कल्पो यस्य। दृढ़ सङ्कल्प, जो विचारे हुए कार्यको पूरा करे।

सत्यसङ्कल्पतीर्थ—माध्व सम्प्रदायके एक गुरु, सत्यधर्मतीर्थके शिष्य। ये पहले श्रीनिवासाचार्य नामसे परिचित थे। १८४२ ई०में इनका परलोकवास हुआ।

सत्यसङ्काश (सं० त्रि०) सत्यस्य सङ्काशः सदृशः। सत्यसन्निभ।

सत्यसङ्गर (सं० पु०) सत्यः सङ्गरः, प्रतिज्ञा युद्धं वा यस्य। १ कुबेर। २ ऋषि विशेष। (त्रि०) ३ अन्यायरहित युद्ध।

सत्यसती (सं० स्त्री०) सत्यशीला रमणी।

सत्यसत्वन् (सं० पु०)। 'स सत्यसत्वन् सत्याः सत्वानो भटा यस्य।' (सायण)

सत्यसद् (सं० त्रि०) ऋतसद्। (ऐतरेयब्रा० ४।२०)

सत्यसन्तुष्टतीर्थ—सत्यसङ्कल्पतीर्थके शिष्य। ये पहले रामाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे। १८४२ ई०में इनका तिरोधान हुआ।

सत्यसन्ध (सं० पु०) सत्ये सन्धा अभिसन्धिर्यस्य। १ रामानुज। (भरत)। २ रामचन्द्र। ३ जनमेजय। ४ विष्णु। ५ धृतराष्ट्रपुत्र। ६ स्कन्दका अनुचर। ७ सह्याद्रिवर्णित राजभेद। (त्रि०) ८ सत्यप्रदित, वचनको पूरा करनेवाला।

सत्यसन्धता (सं० स्त्री०) सत्यसन्धस्य भावः तल्-टाप्। सत्यसंधका भाव या धर्म।

सत्यसन्धा (सं० स्त्री०) सत्य सत्याभिसन्धि यस्याः। द्रौपदी।

सत्यसव (सं० त्रि०) अवितथ प्रेरण।

सत्यसवन (सं० त्रि०) अवितथ प्रेरणशील।

सत्यसवस् (सं० त्रि०) अवितथ प्रेरणकारी।

सत्यसह (सं० त्रि०) सत्ययुक्त।

सत्यसहस (सं० पु०) मनुपुत्र विशेष, स्वधाममनुके पुत्र। (भाग० ८।१३।२६)

सत्यसाक्षिन् (सं० त्रि०) सत्यप्रधान साक्षी।

सत्यसार (सं० त्रि०) सत्यं सारो यस्य। सत्यवादी, जिनका एक मात्र सार ही सत्य है।

सत्यसेन (सं० पु०) १ धर्म और सुनृतासे उत्पन्न मनुपुत्रविशेष। (भागवत ८।१।२५) २ भारतवर्णित एक योद्धाका नाम। (भारत कर्णपर्व) ३ दाक्षिणात्यके एक सामन्त राजा। ये यवनमल्ल उपाधिसे भूषित थे।

सत्यस्थ (सं० त्रि०) सत्येतिष्ठति स्था-क। सत्यमें अवस्थित, सत्यावलम्बी, जो सर्वदा सत्य पर डटे रहते हैं।

सत्यहविस् (सं० त्रि०) यज्ञमें प्रदत्त हविर्भेद।

सत्यहव्य (सं० पु०) ऋषिभेद। सातहव्य देखो।

सत्यहित (सं० त्रि०) १ सत्य अथच हितकर। (पु०) २ राजभेद, राजा पुष्पवान्के पिता और पुत्र। (भागवत ९।२२।७) ३ आचार्यभेद।

सत्या (सं० स्त्री०) सत्यमस्त्यस्या इति सत्य-अच्-टाप्। १ सीता, रामकी स्त्री। २ व्यासकी माता सत्यवती। ३ दुर्गा। ४ कृष्णकी पत्नी सत्यभामा। ५ शंयुकी पत्नी। ६ सत्यता, सच्चाई।

सत्याकृति (सं० स्त्री०) सत्यस्य आकृतिः करणं (सत्यादशपथे। पा ५।४।६६) इति डाच्। कोई चीज खरीदनेकी प्रतिज्ञा। पर्याय—सत्यङ्कार, सत्यापण।

सत्याग्नि (सं० पु०) सत्यस्य अग्निः। अगस्त्यमुनि।

सत्याग्रह (सं० पु०) सत्यके लिये आग्रह या हठ।

सत्याङ्क (सं० पु०) जम्बूद्वीपवासी शूद्रजातिभेद।

सत्यात्मक (सं० त्रि०) सत्यं आत्मा यस्य। सत्यस्वरूप।

सत्यात्मज (सं० पु०) सत्यभामाके पुत्र।

सत्यात्मन् (सं० त्रि०) सत्यस्वरूप, सत्यमय।

सत्याधारहिरण्यकेशिन्—हिरण्यकेशि-श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र ग्रन्थके प्रणेता। इन तीनों ग्रन्थों को छोड़ निम्नोक्त ग्रन्थ भी उन्हींके विरचित हैं। यथा—आग्रयणप्रयोग, आधान, आप्तोर्य्यामप्रयोग, चयनप्रयोग, चातुर्मास्यप्रयोग, ज्योतिष्टोमप्रयोग, दर्शपूर्णमासप्रयोग, पितृमेधसूत्र, प्रवर्ग्यप्रयोग, प्रायश्चित्तप्रयोग, वाजपेयप्रयोग, सोमप्रयोग।

सत्यानन्द—शिवभुजङ्गके रचयिता।

सत्यानन्दतीर्थ—वेदप्रकाशके रचयिता। ये रामकृष्णानन्दतीर्थके शिष्य थे।

सत्यानन्दपरमहंस (परिव्राजक)—एक, साधुपुरुष महाभाष्यप्रदीप-विवरणके प्रणेता ईश्वरानन्दके गुरु ये पहले रामचन्द्र सरस्वती नामसे प्रसिद्ध थे।

सत्यानास (हिं० पु०) सर्वनाश। मटियामेट।

सत्यानासी (हिं० वि०) १ सत्यानास करनेवाला, चौपट करनेवाला। २ अभागा, बदकिस्मत। (स्त्री०) ३ एक कंटीला पौधा। यह प्रायः खंड़हरों और उजाड़ स्थानों पर जमता है। इस पौधेके मध्यमें गोभीके पौधेकी तरह एक काण्ड ऊपरकी ओर रहता है। उसके चारों ओर नीलापन लिए हरे कटावदार पत्ते निकलते हैं जिन पर चारों ओर विषैले कांटे होते हैं। इस पौधेको काटने या दबानेसे एक प्रकारका पीला दूध या रस निकलता है। फूल पीला, कटोरेके आकारका और देखनेमें सुन्दर, पर गंधहीन होता है। जब फूल झड़ जाते, तब गुच्छोंमें फल या बीजकोश लगते हैं जिनमें राईकी तरह काले काले बीज भरे रहते हैं। इन बीजोंसे एक प्रकारका बहुत तीक्ष्ण तेल निकलता है। यह तेल खुजली पर लगाया जाता है। वैद्यकमें सत्यनासी कड़वी, दस्तावर, शीतल तथा कृमिरोग, खुजली और विषको दूर करनेवाली मानी गई है।

सत्यानृत (सं० क्ली०) किञ्चित् सत्यं किञ्चिदनृतं सत्यसहितमनृतं वा यत्र। वाणिज्य, व्यापार, दूकानदारी। इसमें कुछ सच और कुछ झूठ दोनों ही बोलने पड़ते हैं, इसीसे वाणिज्यको सत्यानृत कहते हैं। २ झूठ सचका मेल।

सत्यापण (सं० क्ली०) सत्यस्य करणं सत्य (सत्यापपाशेति। पा ३।१।२५) इति णिच्। आपुकच्, ततो ल्युट्। सत्याकृति, किसी सौदे या इकरारका पूरा होना।

सत्यापणा (सं० स्त्री०) सत्याप युच्-टाप्। सत्यपणा देखो।

सत्यापन (सं० पु०) सत्यापण देखो।

सत्याभिनवतीर्थ—भागवतपुराणटीकाके प्रणेता। ये पहले नरसिंहाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे। ये माध्वसम्प्रदायके अन्यतम गुरु सत्यनाथ तीर्थसे यतिधर्ममें दीक्षित हुए और पीछे कुछ समय गुरुपद पर बैठ कर १७०७ ई०में सुरधामको सिधारे।

सत्यायु (सं० पु०) पेलके औरस और उर्वशीके गर्भसे उत्पन्न एक पुत्रका नाम। इनके पुत्र श्रुतञ्जय थे।

सत्यावन् (सं० त्रि०) ऋतावन्। (शतपथब्रा० ७।३।१।३४) अथर्ववेदके ४।२९।१ मन्त्रमें सत्यावान् और सत्यवन् पाठ देखा जाता है। ग्रन्थविशेषमें प्रथमोक्त शब्दसे व्यक्तिविशेषका बोध होता है। शेषोक्त शब्द सत्ययुक्त या सत्यप्रतिज्ञ पुरुष अर्थप्रकाशक है।

सत्याशिस् (सं० स्त्री०) १ सत्य आशीर्वाद। (त्रि०) सत्या आशीर्यस्य। २ आशीर्वादविशिष्ट।

सत्याश्रय (सं० पु०) चालुक्यवंशीय सुप्रसिद्ध राजा। चालुक्य राजवंश देखो।

सत्याषाढ़ (सं० पु०) मुनिभेद।

सत्याषाढ़ी (सं० स्त्री०) कृष्ण-यजुर्वेदकी एक शाखाका नाम।

सत्येतर (सं० त्रि०) सत्यादितरः। सत्यसे इतर, मिथ्या।

सत्येप्सु (सं० पु०) असुरभेद। (भारत १२ पर्व)

सत्येष्टतीर्थ—सत्यकामतीर्थके शिष्य। इनका पूर्व नाम नरसिंहाचार्य था। १८७३ ई०में इनका देहान्त हुआ।

सत्येयु (सं० पु०) रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम।

सत्योक्ति (सं० स्त्री०) सत्यस्य उक्तिः। सत्यकथन, सच बोलना।

सत्योत्तर (सं० त्रि०) सत्यभूयिष्ठ, सत्य वातका स्वीकार।

सत्योद्य (सं० त्रि०) सत्यस्य वदनं क्यप्। सत्यवादी, सच बोलनेवाला।

सत्योपयाचन (सं० क्ली०) सत्यभिक्षा।

सत्योपपावन (सं० पु०) शरदंडा नदीके पश्चिम तट-पर स्थित एक पवित्र फलप्रद वृक्ष।

सत्यौजस् (सं० त्रि०) अवितथ बल।

सत्र (सं० क्ली०) सत्यते संतन्यते इति सत-घञ्। यज्ञ विशेष। सत्त् देखो।

सत्रप (सं० क्ली०) १ दूसरी जगह उठा कर रखना। २ क्षत्रपशब्दका अपभ्रंश (Satrap)

सत्रह (हिं० वि०) सत्तरह देखो।

सत्रा (सं० स्त्री०) १ सत्यनाम। (ऋक् १।५७।६) २ सह, साथ।

सत्राकर (सं० त्रि०) फलविषयमें सत्यकारी।

सत्राज (सं० पु०) पूर्ण जय, पूरी जीत।

सत्राजित् (सं०पु०) सत्रेण आजयति लोकानिति आ-जि-क्विप्। १ एक यादव जिसकी कन्या सत्यभामा श्रीकृष्णको ब्याही थी। इसने सूर्यकी तपस्या करके दिव्य स्यमन्तक मणि प्राप्त की थी उसके खो जाने पर इसने श्रीकृष्णको चोरी लगाई। जब श्रीकृष्णने वह मणिढूंढ़ कर ला दी, तब सत्राजित बहुत लज्जित हुआ और उसने श्रीकृष्णको अपनी कन्या सत्यभामा ब्याह दी। २ सन्तत जयशील।

सत्राजिती (सं० स्त्री०) सत्राजित्की कन्या सत्यभामाका एक नाम।

सत्रादावन् (सं० त्रि०) अभीष्ट फलके साथ प्रदाता, जो सभी प्रकारके अभीष्ट फलके साथ देते हैं।

सत्रास (सं० त्रि०) त्रासेन सह वर्त्तमानः। त्रासके साथ वर्त्तमान, भयभीत।

सत्रासाह (सं० त्रि०) युगपद् दारिद्र्यनाशक।

सत्रासाहीय (सं० क्ली०) सामभेद।

सत्राहन् (सं० त्रि०) अनेक शत्रुओंका हनन करनेवाला।

सत्रिजातक (सं० क्ली०) त्रिजातकेन सह वर्त्तमानः। मांसव्यञ्जनविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—मांसको अधिक घीमें भून कर गरम जलमें पाक करे। पीछे जीरा, मट्ठा आदि डाल कर उतार ले। इसीको सत्रिजातक कहते हैं। (पाकच०)

सत्रि (सं० पु०) १ बहुत यज्ञ करनेवाला। २ हाथी। ३ बादल। ४ मेघ।

सत्त्व (सं० पु०) सत्त्व देखो।

सत्वक (सं० पु०) मृत मनुष्यकी जीवात्मा, प्रेत।

सत्वच् (सं० पु०) त्वचा सह वर्त्तमानं। त्वचके साथ वर्त्तमान,, वल्कलयुक्त। (मनु ४।४७)

सत्वचस् (सं० त्रि०) त्वचविशिष्ट।

सत्वत् (सं० पु०) देशभेद और उस देशके अधिवासी।

सत्वत (सं० पु०) १ माधव (मागध) राजपुत्र भेद। (हरिवंश) २ अंशके पुत्रभेद।

सत्वधाम (सं० पु०) विष्णुका एक नाम।

सत्वन् (सं० पु०) प्रभूत बलयुक्त, शत्रुओंका सादक।

सत्वप्रधान (सं० त्रि०) जिसकी प्रकृतिमें सत्वगुणकी अधिकता या प्रधानता हो।

सत्वभारत (सं० पु०) व्यासका एक नाम।

सत्वर (सं० क्ली०) त्वरया सह वर्त्तते इति। शीघ्र, जल्द, तुरंत, झटपट।

सत्वी (सं० स्त्री०) वैनतेयकी कन्या और बृहन्मनाकी पत्नी।

सत्सङ्ग (सं० पु०) साधुओं या सज्जनोंके साथ उठना बैठना। सत्सङ्ग करनेसे स्वर्गवासके समान फल और असत्सङ्गसे सर्वनाश होता है।

सत्सङ्गति (सं० स्त्री०) सत्सङ्ग देखो।

सत्सङ्गी (सं० त्रि०) १ सत्संग करनेवाला, अच्छी

सोहबतमें रहनेवाला। २ लोगोंके साथ बातचीत आदिका व्यवहार रखनेवाला, मेलजोल रखनेवाला।
सत्सन्निन्मय (सं० त्रि०) सच्चिन्मय।
सत्समागम (सं० पु०) भले आदमियोंका संसर्ग।
सत्सार (सं० पु०) सत्सारो यस्य। १ वृक्षविशेष, एक प्रकारका पौधा। २ चित्रकर, चितेरा। ३ कवि। (त्रि०) ४ उत्तम सारयुक्त
सथम्बा—बम्बई प्रदेशके महीकान्था विभागके अन्तर्गत एक छोटा राज्य। यहांके सामन्त सरदार बड़ौदाके गायकवाड़को वार्षिक ५६१) रु०, बालासिनोरके अधिपतिको ४०१) रु० और लूनावाड़के राजाको १२७) रु० कर देते हैं। यहांके सरदार बरिया कोलिवंश सम्भूत और ठाकुर साहबकी उपाधिसे परिचित हैं। ठाकुर आज़ाबसिंह (१८८७ ई०) अपने शिक्षागुणसे राज्यकी बहुत उन्नति की। यहांके सरदारको गोद लेनेका अधिकार नहीं है। एकमात्र बड़े लड़के ही सिंहासनके अधिकारी होते हैं।
सथिया (हिं० पु०) १ एक प्रकारका मङ्गलसूचक या सिद्धिदायक चिह्न जो कलश, दीवार आदि पर बनाते हैं और जो समकोण पर काटती हुई दो रेखाओंके रूपमें होता है, स्वस्तिक चिह्न। २ देवता आदिके पदतलका एक चिह्न। ३ फोड़े आदिकी चीरफाड़ करनेवाला, जर्राह।
सथुत्कार (सं० क्ली०) अम्बूकृत, थुत्कारके साथ वर्त्तमान।
सद्—१ विशारण भेद। २ गमन। ३ अवसादन, विषाद।
सदंशक (सं० पु०) सदंशकेन सह वर्त्तमानः। कर्कट, केकड़ा।
सदंशवदन (सं० पु०) सदंश दंशाकारसहितं वदनं यस्य। कङ्कपक्षी।
सद (हिं० अव्य०) १ तत्क्षण, तुरन्त। (वि०) २ ताजा। ३ नवीन, ताजा, हालका। (स्त्री०) ४ प्रकृति, आदत, टेव। (पु०) ५ गड़रियोंका एक प्रकारका गीत।
सदक (सं० पु०) भूसी रहित अनाज।
सदका (अ० पु०) १ वह वस्तु जो ईश्वरके नाम पर दी जाय, दान। २ वह वस्तु जो किसीके शिर परसे उतार कर रास्तेमें रखी जाय, उतारन, उतारा। ३ निछावर।
सदक्ष (सं० त्रि०) ज्ञानयुक्त, अक्षमन्द।
सदक्षिण (सं० त्रि०) दक्षिणाया सह वर्त्तमानः। दक्षिणाके साथ वर्त्तमान, दक्षिणायुक्त।
सदञ्जन (सं० क्ली०) सत् अञ्जनं। कुसुमाञ्जन, पीतलसे निकलनेवाला एक प्रकारका अञ्जन।
सदण्ड (सं० त्रि०) दण्डके साथ वर्त्तमान, दण्डयुक्त।
सदन (सं० क्ली०) सीदन्त्यवेति सद् अधिकरणे ल्युट्। १ गृह, घर, मकान। २ जल, पानी। ३ विराम, स्थिरता। ४ शैथिल्य, थकावट।
सदन—एक हरिभक्तिपरायण साधक। म्लेच्छ अर्थात् कसाई कुलमें जन्म लेने पर भी एकान्त भगवद्भक्त होनेके कारण वह वैष्णव-समाजमें पूजार्ह हुआ था।
सदना (हिं० क्रि०) १ छेदमेंसे रसना, चूना। २ नावके छेदोंमेंसे पानी आना।
सदनासद् (सं० त्रि०) यज्ञगृहमें रहनेवाला।
सदन्त (सं० त्रि०) दन्तयुक्त, दांतवाला।
सदन्दि (सं० त्रि०) सर्वदा शृङ्खलित।
सदपदेश (सं० त्रि०) मन्त्रविषयमें शिक्षादान।
सदबर्ग (फा० पु०) हजारा गेंदा।
सदम (सं० त्रि०) दमयुक्त। (ऋक् १।१०६।५)
सदमा (अ० पु०) १ आघात, धक्का। २ मानसिक आघात, रंज, दुःख। ३ बड़ी हानि, भारी नुकसान।
सदम्भ (सं० त्रि०) दम्भेन सह वर्त्तमानः। दम्भयुक्त, अहंकारके साथ वर्त्तमान।
सदय (सं० त्रि०) दयया सह वर्त्तमानः। दयाविशिष्ट, दयालु।
सदर (सं० पु०) १ असुरभेद। (त्रि०) २ भययुक्त, डरा हुआ।
सदर (अ० वि०) १ प्रधान, खास। (पु०) २ वह स्थान जहां कोई बड़ी कचहरी हो या बड़ा हाकिम रहता हो। ३ सज नामका वृक्ष।
सदर अदालत (अ० स्त्री०) प्रधान दण्डविधान-विचारालय।
सदर आला (अ० पु०) अदालतका वह हाकिम जो जजके नीचे हो, छोटा जज।
सदर दरवाजा (फा० पु०) खास दरवाजा, सामनेका द्वार, फाटक।

सदरदीवानी अदालत—अंगरेज कम्पनीके अमलका प्रथम प्रतिष्ठित विचारालय। बंगेश्वर मुर्शिदकुली खांने बङ्गालकी विचार प्रणालीका संशोधन कर मुर्शिदाबाद्में विशेष विशेष अपराधका विचार करनेके लिये चार प्रकारके विचारालय स्थापन किये। उनमेंसे अदालत उल-आलिया-इनिजानत और महकूमे अदालते-दीवानी सर्वप्रधान थी। इसके सिवा महकूमें काजी (क़ाज़ीकी अदालत) और फौजदारी भी थी। १७६५ ई०में लार्ड-क्लाइवने दिल्लीश्वरकी सनदके बल बङ्गालकी दीवानी पा कर नवाब निजामउद्दौलाको निजामती खर्चवर्चके लिये कुल वार्षिक ५३८६१३१॥ निर्द्धारित कर दिया। १७६६ ई०के अप्रिल मासमें प्रचलित प्रथानुसार मुर्शिदाबाद दरबारमें कम्पनीका प्रथम पुण्याह (तौजी) हुआ। उस दिन दीवान कम्पनीके प्रतिनिधि क्लाइवने नवाबी मसनदके दाहिनी ओर आसन ग्रहण किया था। इस घटनाके बादसे राजस्व संग्रहका भार सम्पूर्णरूपसे कम्पनीके अधीन हुआ। अंगरेजी राजपुरुषोंने भी उस सूत्रसे दुर्बल नवाबोंका वेतन घटा दिया। १७७१ ई०की ८ वीं अगस्तके पत्रानुसार इष्टइण्डिया कम्पनीके कलकत्ता गवर्नरने दीवानीका कार्य्य अपने हाथ लिया और राजस्व वसूलीका फरमान निकाला। १७७२ ई०में वारेन हेष्टिंग्सकी कृपासे नवाबी वृत्ति १६ लाख रुपये हो गई। इस समय खालसा-दफ्तर (राजस्व-विभाग) मुर्शिदाबादसे उठा कर कलकत्तेके खास गवर्नर और और कौन्सिलके अधीन रखा गया। राजा दुर्लभरामके पुत्र महाराज राजवल्लभ उस समय कम्पनीकी ओरसे प्रथम रायरायाँ नियुक्त हो कर राजस्वविभागका कार्य्य करने लगे।

बड़े लाट वारेन हेष्टिंग्सने इस समय फौजदारी विचारका भार भी सकौन्सिल गवर्नरके अधीन कर लिया। चार वर्ष इसी तरह चलता रहा सही, पर उससे विचारभागमें बड़ी गड़बड़ी मची। यह देख कर उन्होंने इस विभागका भार पुनः नवाब कर्मचारीके ऊपर सौंप देनेकी व्यवस्था कर दी। इसी समय राजकीय व्यापारमें लिप्त नन्दकुमार हेष्टिंग्सकी आँखों पर चढ़ गये। नयी सुप्रामकोर्टके विचारमें उन्हें जाली अपराधमें अपराधी पा कर फांसी दे दी गई। १७९० ई०में लार्ड कार्नवालिसके हुकमसे फौजदारी विचार विभाग भी अंगरेज गवर्मेन्टने अपने हाथमें ले लिया। इस समयसे कलकत्तेमें फिर निज़ामत अदालत खुली थी। १७९९ ई०में समस्त बङ्गालका विचार कार्य्य चलानेके लिये कोर्ट आव सर्किट नामकी चार मफःस्सल अदालत खोली गई। विस्तृत विवरण कलकत्ता और बङ्गदेश शब्दमें देखो।

सदरपुर—१ युक्तप्रदेशके अयोध्या-विभागान्तर्गत सीतापुर जिलेका एक परगना। भूपरिमाण १०८ वर्गमील है। २ उक्त जिलेका एक नगर और सदर। यह सीतापुर नगरसे ३० मील दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है।

सदरबाजार (अ० पु०) १ बड़ा बाजार, खास बाजार। २ छावनीका बाजार।

सदर बोर्ड (अं० पु०) मालकी सबसे बड़ी अदालत।

सदरस (शतरञ्ज पत्तन)—मन्द्राज प्रदेशके चिङ्गलपट जिलान्तर्गत चिङ्गलपट तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १२° २३´ २५´´ उ० तथा देशा० ८०° ११´ पू०के मध्य मन्द्राजसे ४३ मील दक्षिणमें अवस्थित है। बहुत प्राचीन कालसे यह नगर दाक्षिणात्यके वाणिज्य-केन्द्ररूपमें गिना जाता था। १६४७ ई०में ओलन्दाज वणिकोंने भारतीय वाणिज्य फैलानेकी आशासे यहां सबसे पहले एक कोठी खोली। उस समयके बहुत पहलेसे ही यहांके जुलाहोंसे तैयार किया हुआ एक प्रकारका 'मसलिन' कपड़ा बहुत प्रसिद्ध चला आता था। वैदेशिक वणिकप्रधान ओलन्दाजने उस वस्त्र संग्रहके लिये ही यहां वाणिज्यकेन्द्र खोला था। उन लोगोंने अपने वाणिज्यको अक्षुण्ण रखनेके अभिप्रायसे तथा औपनिवेशिकोंको शत्रुके हाथसे बचानेके लिये यहां समुद्रके किनारे एक बहुत बड़ा और मजबूत किला बनवाया। वह किला तथा उस समयके प्रधान प्रधान ओलन्दाज राजकर्मचारियोंके मकान आज भी नजर आते हैं। दुःखका विषय है, कि वे सब अभी खंडहरमें पड़े हैं।

१७८१ ई०में अंगरेजोंने यह नगर आक्रमण और अधिकार

किया तथा वे १८१८ ई०में फिरसे ओलन्दाजोंके हाथ समर्पण करने बाध्य हुए। इसके कुछ वर्ष वाद १८२४ ई०में कमजोर ओलन्दाजोंने सन्धिसूत्रसे आवद्ध हो अंगरेजोंको नगर और दुर्ग लौटा दिये। तभीसे ले कर आज तक वह स्थान अंगरेजोंके हाथमें है। अंगरेज लोग सन्धि शर्तके अनुसार आज भी यथाविधान दुर्ग मध्यस्थ ओलन्दाज समाधिके सम्मान और मर्यादाको रक्षा करते आ रहे हैं।

यहां ईसा-धर्म प्रचार करनेके लिये दुर्गके दूसरी ओर एसप्लानेड नामक रास्तेके किनारे जर्मन लुदारन और वेसलियन मिसनके दो गिरजा-घर स्थापित हैं। नगरमें अब वैसा वणिक्‌समागम नहीं है, वस्त्रवयनशिल्पकी यथेष्ट अवनति हुई है। बहुत थोड़े जुलाहे यद्यपि पूर्व गौरवको रक्षा कर भी रहे हैं, पर वे अब अपने अपने अध्यवसाय और बुद्धिकौशलसे वैसे बारीक कपड़े नहीं बुन सकते। नगरसे कुछ मील दक्षिण पालरनदीके मुहाने पर वालुका चर पड़ जानेसे नदीगर्भ बहुत उन्नत हो गया है। अतएव उस पथसे अब समुद्रगामी पोतादिके जाने आनेकी सुविधा नहीं है, इस कारण यहांकी वाणिज्य समृद्धिकी दिनों दिन ह्रास होता जा रहा है। वकिंहम नहरसे यह नगर मन्द्राज राजधानीके साथ मिला हुआ है।

सदरी (अ० स्त्री०) विना आस्तीनकी एक प्रकारकी कुरती या बंडी जो और कपड़ोंके ऊपर पहनी जाती है। इसका चलन अरबमें बहुत अधिक है। मुसलमानी मतके साथ इसका प्रचार अफगानिस्तान, तुर्किस्तान और हिन्दुस्तानमें भी हुआ।

सदर्थ (सं० पु०) १ साधु अर्थ, मुख्य विषय, असल बात। (त्रि०) २ सङ्गत अर्थविशिष्ट, धनी।

सदर्प (सं० त्रि०) दर्पके साथ वर्त्तमान, अभिमानी।

सदलगि—बम्बई प्रदेशके बेलगाम जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६° ३३' उ० तथा देशा० ७४° ३३' पू० बेलगाम शहरसे ५१ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहां चीनी तैयार करनेके लिये ईखकी खेती होती है तथा गुड़ और चीनी बनानेका बड़ा कारबार है।

सदलङ्कृति (सं० स्त्री०) अलङ्कारवती।

सदश (सं० त्रि०) १ दश (स्तोम) विशिष्ट। (शाङ्खा० श्रौ० १४।२७।६) २ जिसमें पाड़ या किनारा हो, हाशियेदार।

सदशन (सं० त्रि०) दशनके साथ वर्त्तमान, दन्तयुक्त, दांतवाला।

सदशनार्चिस् (सं० त्रि०) दशनार्चिके साथ वर्त्तमान।

सदश्व (सं० पु०) १ समरराजके पुत्र। (हरिवंश) २ उत्कृष्ट अश्वयोजित रथ, वह रथ जिसमें अच्छे घोड़े जोते गये हों। ३ विद्यमानाश्व, बहुवश्व।

सदश्वसेन (सं० पु०) राजभेद।

सदश्वोर्मि (सं० पु०) राजभेद। (भारत सभापर्व)

सदस् (सं० स्त्री० क्ली०) सीदन्त्यस्यामिति सद (सर्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८८) इति असुन्। १ सभा, समाज मण्डली। २ मकान, घर। ३ यज्ञशालामें एक छोटा मण्डप जो प्राचीन वंशके पूर्व बनाया जाता था।

सदसत् (सं० त्रि०) १ सच और झूठ। २ किसी वस्तुके होने और न होनेका भाव। ३ अच्छा और खराब, बुरा और भला।

सदसत्त्व (सं० क्ली०) सदसद्-त्व। १ सत् और असतता धर्म। २ प्रधान गुणभाव।

सदसत्पति (सं० पु०) सत् और असत् कार्यका नायक।

सदसद्फल (सं० क्ली०) सत् और असत् फल, भला और बुरा फल।

सदसदात्मक (सं० त्रि०) सत् असच्च आत्मा स्वरूपं यस्य। सत् और असत् स्वरूप।

सदसदात्मता (सं० स्त्री०) सदसदात्मनो भावः तल्-टाप। सत् और असत् रूपका भाव या धर्म।

सदसद्भाव (सं० पु०) सदसदोर्भावः। सत् और असत्का भाव, सत् और असत्की विद्यमानता।

सदसद्रूप (सं० त्रि०) सच और असच्च रूपं यस्य। सत् और असत् रूप विशिष्ट, सत् और असद्रूपयुक्त।

सदसद्विवेक (सं० पु०) अच्छे और बुरेकी पहचान, भले बुरेका ज्ञान।

सदसन्मय (सं० त्रि०) सदसत् स्वरूपे मयट्। सत् और असत् स्वरूप।

सदस्पति (सं० पु०) १ एतत् संज्ञक देवमय आशीर्वाद।

सदस्य (सं० पु०) सदसि साधुः यत्। १ विधिदर्शी, याजक। यज्ञादि स्थलमें सदस्य रखना होता है। यज्ञादि स्थलमें कोई चीज घटी या बढ़ी तो नहीं है, किसी बातमें भूल तो नहीं है, यह देखनेके लिये जो नियुक्त रहते हैं उनका नाम सदस्य है।

"प्रश्नवक्ता सदस्यः" (संस्कारतत्त्व)

२ किसी सभा या समाजमें सम्मिलित व्यक्ति, सभ्य, सभासद, मेम्बर।

सदहा (सं० पु०) १ यज्ञ करनेवाला, याजक। २ सभासद, मेम्बर।

सदहा (हिं० वि०) सैकड़ों।

सदहा (हिं० पु०) अनाज लादनेकी बड़ी बैलगाड़ी।

सदा (सं० अव्य०) १ नित्य, हमेशा। २ निरन्तर, लगातार।

सदा (अ० स्त्री०) १ प्रतिध्वनि, गूंज। २ ध्वनि, आवाज। ३ पुकार।

सदाकृत (अ० स्त्री०) सत्यता; सच्चाई।

सदाकान्ता (सं० स्त्री०) नदीभेद। (भारत भीष्मपर्व)

सदाकारिन् (सं० त्रि०) आकारविशिष्ट।

सदाकाल (सं० अव्य०) सकल समय, हमेशा।

सदाकालवह (सं० त्रि०) सदाकालं वहति वह-अच्। १ जो हमेशा बहती हो।

सदाकालवहा (सं० स्त्री०) सदाकाल वहा नदी, हमेशा बहनेवाली दरिया। (मार्कण्डेय पु० ५७।३२)

सदाकुसुम (सं० पु०) धातकी, धव।

सदागति (सं० पु०) सदा सर्वदा गतिर्यस्य। १ वायु, हवा। २ सूर्य। ३ निर्वाण। ४ विभु, ईश्वर। (त्रि) ५ सर्वदा गमनशील, हमेशा चलनेवाला।

सदागतिशत्रु (सं० पु०) एरण्ड, अण्डीका पेड़।

सदागम (सं० पु०) १ सज्जनका आगमन। २ सत् शास्त्र, अच्छा सिद्धांत।

सदाचरण (सं० क्ली०) सत् आचरणं। २ साधु आचरण, अच्छा चाल चलन। सतां आचरणं। २ साधुओंका आचरण।

सदाचार (सं० पु०) सतां साधुनामाचारः। १ साधुओंका आचरण, सात्त्विक व्यवहार। मनुमें लिखा है, कि सरस्वती और दृषद्वती इन दो देवनदियोंके मध्य जो सब प्रदेश हैं उनका नाम ब्रह्मावर्त्त है। इस देशमें चारों वर्ण और उनके अन्तर्गत जातियोंके मध्य जो सब आचरण परम्परासे चला आता है उसको सदाचार कहते हैं। इन सब देशसम्भूत अग्रजन्मा ब्राह्मणोंसे पृथ्वी परके सभी लोगोंको सदाचार सीखना कर्त्तव्य है। साधु लोग जिस आचारका अवलम्बन करते हैं, वही सदाचार कहलाता है। पद्मपुराण स्वर्गखण्ड २६, ३०, ३१ अध्याय, विष्णुपुराण ३।२१ अध्याय, वामनपुराण १४ अ०, मनु ४ अ०; मार्कण्डेयपुराण सदाचार नामक अध्याय आदि ग्रन्थोंमें सदाचारके विषयमें विशेष विवरण लिखा है। सन साधुराचारो यस्य। २ शिष्ट व्यवहार, भलमनसाहत। ३ रीति, रवाज। ४ (त्रि०) सदाचारणीय, सदाचारी।

सदाचारवत् (सं० त्रि०) सदाचार अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। सदाचारविशिष्ट, सदाचारयुक्त।

सदाचारी (सं० पु०) सदाचार अस्त्यर्थे इनि। १ सदाचारविशिष्ट, अच्छे आचरणवाला। २ धर्मात्मा, पुण्यात्मा। सदा चरतीति चर णिनि। ३ सदा विचरणशील, हमेशा भ्रमण करनेवाला।

सदाचार्य—एकाक्षरनिघण्टुके प्रणेता।

सदातन (सं० पु०) सदा भवः सदा सोयं चिरमिति। इति ट्यु ट्युलौ तुट च। (पा ४।३।२३) १ विष्णु। (त्रि०) २ नित्य।

सदातोया (सं० स्त्री०) सदा तोयं यत्र। १ पलापर्णी। २ करतोया नदी।

सदात्मन् मुनि—प्रबोधचन्द्रोदयटीकाके रचयिता।

सदादान (सं० पु०) सदादानं मदजलं यस्य। १ ऐरावत। २ गणेश। ३ मत्तहस्ती, वह हाथी जिसे सदा मद बहता हो। ४ नित्यदान, सदाव्रत।

सदान (सं० त्रि०) दानके साथ।

सदानन्द (सं० पु०) सदा आनन्दो यस्य। १ शिव। (त्रि०) २ सदा आनन्दविशिष्ट, हमेशा प्रसन्न रहनेवाला।

सदानन्द—१ छन्दोगाह्निकके प्रणेता। २ तत्त्वविवेकटीका, प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणि और स्वप्रभा नाम्नी उसकी टीकाके रचयिता। ३ दिव्यसंग्रह नामक दीधितिके प्रणेता। ४ नैषधीय टीकाके रचयिता। ५ पाराशरटीका और भास्वती टीका नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ६ ब्रह्मसूत्रतात्पर्यप्रकाशके प्रणेता। ७ भागवतपद्यत्रयी व्याख्याके रचयिता। ८ मोक्षधर्मसारोद्धारके प्रणेता। ९ वामकेश्वर तन्त्रटीका और विष्णुपूजाक्रमदीपिकाटीका, इन दो ग्रन्थोंके रचयिता। १० वज्रेन्द्रचरितके प्रणेता। ११ अद्वैतदीपिकाविवरण, अध्यात्मरामायणटिप्पन, अवधूतगीताटीका, ज्ञानामृत-टिप्पनी गङ्गादशीटीका, ब्रह्मगीताव्याख्या, योगवाशिष्ठतात्पर्यप्रकाश और शिवसंहितारीका नामक अनेक ग्रन्थोंके प्रणेता। किन्तु भाषा देखनेसे उक्त नवों टीका ग्रन्थोंको एक आदमीकी रचना नहीं कह सकते।

सदानन्द काश्मीर—अद्वैतब्रह्मसिद्धि, स्वरूपनिर्णय और स्वप्रकाश नामक तीन ग्रन्थोंके रचयिता। ये ब्रह्मानन्द और नारायणके शिष्य थे।

सदानन्द नाथ—तन्त्रकौमुदीके प्रणेता।

सदानन्दमय (सं० त्रि०) सदानन्द स्वरूपे मयट्। सदानन्द स्वरूप।

सदानन्द योगीन्द्र—वेदान्तसारके प्रणेता। ये अद्वयानन्दके शिष्य थे।

सदानन्द व्यास—भगवद्गीताभावप्रकाशके प्रणेता। इन्होंने १७८० ई०में उक्त ग्रन्थकी रचना की।

सदानन्द शुक्ल—गणेशार्च्चनचन्द्रिकाके रचयिता।

सदानर्त्त (सं० पु०) सदा नृत्यतीति नृत-अच्। १ खञ्जन पक्षी। (त्रि०) २ सदा नृत्यकारक, जो बराबर नाचता हो।

सदानिरामया (सं० स्त्री०) नदीभेद।

सदानीरवहा (सं० स्त्री०) वहतीति वह-अच्। सदा सर्वदा नीरस्य वहा। करतोया नदी।

सदानीरा (सं० स्त्री०) सदा नीरं यस्याः। करतोया नदी। गौरीके विवाह कालमें महादेवके कर अर्थात् हाथसे जो जल गिरा था उसीसे इस नदीको उत्पत्ति हुई, इसीसे इसका नाम करतोया पड़ा है। करतोया देखो। श्रावणमासमें सभी नदियां रजस्वला होती हैं, किन्तु यह नदी नहीं होती। इस कारण इसका जल हमेशा काममें लाया जाता है और इसीसे इसका एक नाम सदानीरा भी हुआ।

वेदमें इस नदीका उल्लेख है। आर्य शब्द देखो।

सदापर्णा (सं० स्त्री०) पलावर्णी, पलानी।

सदाम्वा (सं० स्त्री०) सर्वदा आक्रोशकारिणी।

सदापरिभूत (सं० पु०) १ बोधिसत्त्वभेद। (त्रि०) २ सदापरिभवप्राप्त, जो सर्वदा परिभूत होते हैं।

सदापर्ण (सं० त्रि०) सर्वदा पत्रयुक्त।

सदापुर (सं० पु०) कैवर्त्त मुस्तक, केवटी पौधा।

सदापुष्प (सं० पु०) सदापुष्पं यस्य। १ नारिकेल वृक्ष, नारियलका पेड़। २ श्वेत आकन्द, सफेद मदार। ३ रक्त आकन्द, लाल मदार। ४ कुन्द वृक्ष और उसका फूल। ५ कार्पास वृक्ष, कपासका पौधा। ६ आकन्द वृक्ष, अकवन। (त्रि०) ७ सर्वदा कुसुमयुक्त, जिसमें हमेशा फूल लगते हों।

सदापुष्पफलद्रुम (सं० त्रि०) सदा पुष्प फलद्रुमो यत्र। सर्वदा पुष्प और फलयुक्त वृक्षविशिष्ट।

सदापुष्पी (सं० स्त्री०) सदा पुष्पं यस्याः ङीप्। १ रक्तार्क वृक्ष, लाल आक। २ आकन्द, आक। ३ कार्पास, कपास। ४ मल्लिका, एक प्रकारकी चमेली।

सदापृण (सं० त्रि०) सर्वदा दानशील, सदा दान देनेवाला।

सदाप्रमुदित (सं० क्ली०) सिद्धिभेद।

सदाप्रमुदिता (सं० स्त्री०) सत् प्रमुदिता सिद्धि।

सदाप्रसून (सं० पु०) सदा प्रसूनं यस्य। १ रोहितक वृक्ष। २ रक्त रोहितक। ३ कुन्दवृक्ष। ४ अर्कवृक्ष। (त्रि०) ५ सर्वदा पुष्पविशिष्ट।

सदाफल (सं० पु०) सदा फलं यस्य। १ स्कन्ध फल, नारियल। २ उदुम्बर वृक्ष, गूलर। ३ श्रीफल, विल्व। ४ पनस, कटहल। ५ एक प्रकारका नीबू।

सदाफला (सं० स्त्री०) सदा फलं यस्याः। त्रिसन्धि पुष्प, एक प्रकारका बैंगन। इसका गुण—त्रिदोषनाशक, रक्तपित्तप्रसादक, कण्डु और कच्छुरोगनाशक।

सदाफली (सं० स्त्री०) सदाफल देखो।

सदावरत (हिं० पु०) सदवर्त देखो।

सदाबहार (हिं० त्रि०) १ जो सदा फूले। २ जो सदा हरा रहे। वृक्ष दो प्रकारके होते हैं, एक तो पतझड़वाले अर्थात् जिनकी सब पत्तियां शिशिर ऋतुमें झड़ जाती और वसन्तमें सब पत्तियाँ नई निकलती हैं। दूसरे सदाबहार अर्थात् वे जिनके पत्ते झड़नेकी नियत ऋतु नहीं होती और जिनमें सदा हरी पत्तियाँ रहती हैं। (पु०) ३ एक प्रकारके फूलका नाम।

सदाभद्रा (सं० स्त्री०) सदा भद्रमस्याः। गम्भारी वृक्ष, गंभारीका पेड़।

सदाभव (सं० त्रि०) चिरन्तन।

सदाभास (सं० त्रि०) सत्का आभास।

सदाभ्रम (सं० त्रि०) सदा भ्रमो यस्य। सर्वदा भ्रम-विशिष्ट।

सदामण्डलपत्रक (सं० पु०) श्वेत पुनर्नवा, सफेद गदहपुरना।

सदामत्त (सं० त्रि०) सदा सर्वस्मिन् काले मत्तः। १ सभी समय मत्त। (पु०) २ एक प्रकारके क्षय।

सदामत्ता (सं० स्त्री०) देवगणभेद।

सदामद (सं० त्रि०) १ सदामत्त, हमेशा मतवाला। (पु०) २ पक्षिभेद। ३ सदामदक्षरणशील हस्ती, वह हाथी जिसे सदा मद बहता हो।

सदामांसी (सं० स्त्री०) मांसरोहिणी।

सदायोगी (सं० पु०) सदा सर्वस्मिन् काले योगी। १ विष्णु। हरिशयनकालमें मधुमांसवर्जन फलभागी। हरि-शयनमें मधु और मांस नहीं खानेसे सदायोगी होता है।

सदाराम—आचारचन्द्रोदयके प्रणेता।

सदारामत्रिपाठी—उद्गात्ररत्नाकर, द्वादशाहप्रयोगटीका, द्वादशाहान्तसामप्रयोग और सर्वतोमुखौद्गात्रके प्रणेता। ये देवेश्वरके पुत्र और सूरजितके पौत्र थे।

सदासह (सं० पु०) बिल्ववृक्ष, बेल।

सदार्जव (सं० त्रि०) निरन्तर सरलचित्त, सत् प्रकृति-वाला।

सदावृध (सं० त्रि०) सदा वर्द्धमान।

सदाशङ्कर—प्रायश्चित्तसेतुके प्रणेता।

सदाशय (सं० त्रि०) जिसका भाव उदार और श्रेष्ठ हो, उत्तम विचारका, भलामानस।

सदाशिव (सं० त्रि०) १ सर्वदा मङ्गलयुक्त। २ सदा कल्याणकारी, सदा कृपालु। (पु०) ३ महादेव, शिव। ये सर्वदा मङ्गलमय होनेके कारण सदाशिव कहलाये।

सदाशिव—कुछ प्राचीन ग्रन्थकारोंके नाम। १ कर्पूरस्तव-टीकाके प्रणेता। २ कालतत्त्वविवेचनसारसंग्रहके प्रणेता। ये सुप्रसिद्ध दार्शनिक खण्डदेवके शिष्य थे। ३ चतुरशीतिज्ञातिप्रशस्तिके प्रणेता। ४ दायभागटीका-कार। ५ धातुमञ्जरी नामक वैद्यकग्रन्थके रचयिता। ६ प्रचण्डभैरव नामक व्यायोगके प्रणेता। ७ भूतडामर-तन्त्रटीकाके रचयिता। ८ मकरन्दसारिणी नामक ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता। ९ मनीषापञ्चकके प्रणेता। १० महाभाष्यगूढ़ार्थदीपनीके प्रणेता। ११ युधिष्ठिरविजय-टीकाके प्रणयनकर्त्ता। १२ योगसूत्रवृत्तिकार। १३ शरभार्च्चनचन्द्रिकाके रचयिता। १४ सापिण्ड्यकल्प-लतिकाके प्रणेता। १५ अशौचस्मृतिचन्द्रिका और लिङ्गार्च्चनचन्द्रिकाके प्रणेता। शेषोक्त ग्रन्थको इन्होंने महाराज जयसिंहकी सभामें रह कर रचना की थी। ये गदाधरके पुत्र और विष्णुके पौत्र तथा दशपुत्र गोत्र-सम्भूत थे। १६ जगन्नाथ पण्डितकृत गङ्गालहरीकी टीकाके प्रणेता, माणिकभट्टके पुत्र और नारायणके पौत्र।

सदाशिव कविराज गोस्वामी—विलक्षणचतुर्दर्शक नामक ग्रन्थके कर्त्ता।

सदाशिवगढ़—बम्बई प्रदेशके उत्तरकनाड़ा जिलेका एक गिरिदुर्ग और नगर। यह अक्षा० १४° ५०' २५" उ० तथा देशा० ७४° १०' ५५" पू०के मध्य काली नदीके प्रवेश-पथके उत्तरी किनारे अवस्थित है। भूपृष्ठसे २२० फुट ऊंचे एक बड़े पहाड़के समतल अधित्यकादेश पर सदाशिव-गढ़ दुर्ग बना है। नदीतटसे पर्वत पर चढ़ना बहुत कठिन है, अतएव उस पथसे शत्रुके आक्रमणकी आशङ्का नहीं हो सकती। स्थलभागका सम्मुखस्थ दुर्गप्राचीर २० फुट ऊंचे और ६ फुट चौड़े दानेदार पत्थरोंका बना है। प्राचीरका अहाता १० एकड़ जमीन है। प्राचीरके ऊपर जहां तहां सेनासमावेशके लिये बुर्ज और कमान सजानेके लिये छेद बने हुए हैं। प्राचीरके बाहरमें बड़ी खाई है। दक्षिण दिशामें वनभूमि और प्राचीरको छोड़ दुर्गके और सभी स्थान आज भी सुसंस्कृत और सुर-

क्षित हैं। दुर्गके बहिर्भागमें दुर्गसंक्रान्त और भी तीन कार्यालय हैं। उनमेंसे पर्वतके दक्षिण जलगर्भसे उत्तोलित एक कार्यालय, दूसरा पर्वतके पूर्व ढालवें प्रदेशमें और तोसरा मूल दुर्गके दूसरी ओर अवस्थित है। अन्तिम अट्टालिका खाई और वप्रादिसे सुशोभित हैं। प्रवर्त्तिकालमें अंगरेज गवर्मेण्टने पर्वतके दक्षिण कोणमें दो बङ्गले बनवा दिये थे।

१६७४से १७१५ ई०के मध्य किसी समय सोण्ड-सरदारने इस दुर्गका निर्माण कराया। १७५२ ई०में पुर्त्तगीजोंने सोण्डराज पर आक्रमण कर वह दुर्ग अधिकार किया तथा पीछे उस दुर्गमें पुर्त्तगीज सेना रखी गई थी। १७५४ ई०में पुर्त्तगीजोंने वह दुर्ग फिरसे सोण्ड सरदारके हाथ समर्पण किया। १७६३ ई०में हैदरअलीके सेनापति फजल उल्ला खांने दुर्गको अधिकार कर लिया। १७८० ई०में अंगरेज सेनापति जेनरल मेथिऊने दलबलके साथ आ कर दुर्ग पर छापा मारा। १७९९ ई०में टीपू सुलतानने इस दुर्गमें अपनी सेना रखी थी।

सदाशिवगढ़ पहाड़के नीचे चिताकुल नामक ग्राम और बन्दर अवस्थित है। एक समय यह चिताकुल बहुत दूर तक फैला हुआ एक प्रधान वाणिज्यकेन्द्र था। करीब ९०० ई०में अरबवासी भ्रमणकारी मसूदीसे ले कर अंगरेज भौगोलिक आगिलबी तक अनेक ग्रन्थकारोंने इस स्थानको चिन्ताकोर, चिन्तापोर, चिन्ताकोला, चिन्ताकारा, चित्तकुला या चितेकुला शब्दसे उल्लेख किया है। अंगरेजी अधिकारमें आनेसे यह सदाशिवगढ़ या चिताकुल कारवाड़ शुल्कविभागके एक केन्द्ररूपमें निर्द्धारित हुआ है और इसीसे यहां एक कष्टम हाउस स्थापित हुआ है।

सदाशिव तीर्थ—एक संन्यासी। ये सर्वलिङ्गसंन्यास-निर्णयके प्रणेताके गुरु थे।

सदाशिव त्रिपाठी—दानमनोहरके रचयिता। इन्होंने १६७६ ई०में अपने प्रतिपालक राजा मनोहर दासके आदेशसे उक्त ग्रन्थकी रचना की।

सदाशिव दीक्षित—१. अद्वयब्रह्मदीपिकाके प्रणेता। २ सङ्गीत-सुन्दके रचयिता। ये परमशिवके पुत्र थे।

सदाशिवद्विवेदी—दण्डिनीरहस्य और शालग्रामलक्षणके रचयिता।

सदाशिव ब्रह्मेन्द्र—आत्मविद्याविलास, नक्षत्रमालिका, नवमणिमाला, नववर्णमाला, बोधार्या और सदाशिवब्रह्म-वृत्तिके प्रणेता।

सदाशिव भट्ट—शब्देन्दुशेखरटीकाके रचयिता।

सदाशिव भाउ—एक प्रसिद्ध महाराष्ट्र-सरदार। ये चिम्-नाजीके पुत्र और पेशवा बालाजी बाजीरावके भतीजे थे। ये १७६२ ई०की १४वीं जनवरीको पानीपतकी लड़ाईमें अहमदशाह अबदलीसे मारे गये। इनके साथ साथ महाराष्ट्रशक्ति भी जाती रही। इतिहासमें ये सदाशिव चिमनाजी भाउ नामसे भी परिचित हैं।

सदाशिवकी वीरता और रणप्रतिभाने उस समय विशेष प्रतिष्ठा लाभ की थी। इनकी मृत्युके बाद नाना स्थानोंमें जाली भाउ सहाबका आविर्भाव हुआ। उन सब जाली सदाशिव भाउमेंसे एकने १७७६ ई०में वाराणसीधाममें जा कर अपनेको भाउ साहब बतलाते हुए लोगोंको उत्तेजित किया। पीछे उन्होंने सेनासंग्रह करके नगरमें अशान्ति मचा दी। उनका दमन करनेके लिये अंगरेज-कम्पनीने उन्हें चुनार दुर्गमें कैद रखा। १७८२ ई०में महामति हेष्टिंग्सने इन्हें छोड़ दिया।

सदाशिव भाउ भास्कर—एक महाराष्ट्र सेनापति। ये सिन्देराजकी ओरसे १८०१ ई०में होलकरराजके विरुद्ध लड़े थे। १८०२ से १८०४ ई०में इन्होंने कभी सिन्दे, कभी होलकरपति और कभी अंगरेजोंकी ओरसे युद्ध किया था।

सदाशिव भाउ मङ्केशिर—एक मराठा राजसचिव। १८०३ ई०में पेशवा बाजीराजरावने पुनः राजत्व पर बैठ कर इन्हें अंगरेज-रेसिडेन्सीकी कार्यावली देखनेके लिये नियुक्त किया। १८८७ ई०में मि: एलफिन्ष्टनके रेसिडेण्ट रहनेके समय तक इन्होंने इस पद पर रह कर कूट-नीतिका परिचय दिया था।

सदाशिवमुनिसारस्वत—वृत्तरत्नावली नाम्नी वृत्तरत्ना-करटीकाके रचयिता।

सदाशिव मूलोपाध्य—दण्डपाणिस्तवके प्रणेता। ये विट्ठलके पुत्र थे।

सदाशिव शुक्ल—कुलचूड़ामणिटीका और पञ्चचूड़ामणिटीकाके रचयिता।

सदाशिवानन्दनाथ—गुरुस्तोत्रग्रन्थके रचयिता।

सदाशिवेन्द्र—सांख्यकर्मदीपिका विवरणके प्रणेता।

सदाशिवेन्द्रसरस्वती—एक प्रसिद्ध पण्डित और संन्यासी। ये गोपालेन्द्र सरस्वतीके शिष्य और शिवाष्टमूर्त्तितत्त्वप्रकाशके प्रणेता रामेश्वरके गुरु थे।

सदाशिस् (सं० स्त्री०) सदा आशीर्वाद।

सदासह (सं० त्रि०) सर्वदा शत्रुओंके अभिभूत हेतु।

सदासा (सं० त्रि०) सर्वदा भजमान।

सदासुख (सं० त्रि०) सदा सुखं यस्य। १ सर्वदा सुखयुक्त, सर्वदा सुखी। (क्ली०) २ सर्वदा सुख।

सदासुख—प्रयागवासी एक कायस्थ कवि। ये गुलाब रायके पौत्र और विष्णुप्रसादके पुत्र थे। इन्होंने १८०२ ई०में उर्दू भाषामें 'मुरासा खुर्सेद' नामसे गद्य और पद्य रचनाप्रणालीविषयक एक अलङ्कार काव्यकी रचना की। इसके सिवा इनकी बनाई हुई उर्दूभाषाकी एक उपाख्यानमाला भी मिलती है।

सदासुहागिन (हिं० वि०) १ जो सदा सुहागवती रहे, जो कभी पतिहीन न हो। (स्त्री०) २ वेश्या, रंडी। ३ सिन्दूरपुष्पोंका पौधा। ४ एक प्रकारकी छोटी चिड़िया। ५ एक प्रकारका मुसलमान फकीर जो स्त्रियोंके वेशमें घूमते हैं।

सदिया (फा० स्त्री०) लाल पक्षीका एक भेद जिसका शरीर भूरे रंगका होता है, बिना चित्तोंकी मुनियां।

सदिया—ब्रह्मपुत्र नदीके दक्षिणी या उत्तरी किनारेसे विस्तृत एक भूभाग। यह आसामके उत्तर पूर्वसीमा पर अवस्थित है। वर्त्तमान सदिया थाना लखिमपुर जिलेके डिब्रूगढ़ उपविभागके मध्य बसा है। भूपरिमाण १७८ वर्गमील है।

सदिया—आसाम विभागके लखिमपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह ब्रह्मपुत्र नदीके दाहिनी किनारे डिब्रूगढ़से ७० मील दूर अक्षा० २७°४९´४५´´ उ० तथा देशा० ९५°४१´३५´´ पू०के मध्य विस्तृत है।

ब्रह्मराज्यसे अहोम राजाओंने आसाम पर आक्रमण कर पहले सदियाको कब्जा किया। यहां रह कर अहोमराजप्रतिनिधि अधिकृत प्रदेशोंका शासन करते थे। सदियामें उनका वास निरूपित था, इस कारण 'सदिया खोया' नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। ब्रह्म-सेनाने जब सारे आसामको फतह किया, तभीसे वह उपाधि स्थानीय किसी खामृती सरदारके ऊपर सौंपी गई। अंगरेजोंने १८२६ ई०में आसाम विजयके बाद उक्त वंशीय सरदारको ही 'सदिया खोया' करार किया। अंगरेजोंकी सन्धिके अनुसार उक्त सदिया खोया १०० सेनासे मदद पहुंचाने बाध्य हुआ।

स्थानीय खामती, मिशमी और सिङ्गपो आदि असभ्य जातियोंके साथ मित्रता बढ़ानेके लिये प्रति वर्षकी माघीपूर्णिमामें यहां एक मेला लगता है। राजनीतिकुशल बृटिश सरकार ही यह मेला लगाती है। लखिमपुरके डिपटी कमिश्नर स्वयं उस मेलेमें उपस्थित रह कर भिन्न भिन्न जातिके सरदारोंको इनाम देते हैं।

पहाड़ी असभ्य मिशमी, खामती, आब आदि जातियां उस मेलेमें नाना प्रकारके पहाड़ी द्रव्य, खैर, मोम, मृगनाभि, वस्त्र, चटाई, कटारी, हस्तिदन्त और रबर आदि बेचने आती हैं। सदिया-रबर कलकत्तेका एक प्रधान वाणिज्योपकरण है। अभी तेजपुर दार्जिलिङ्ग आदि पहाड़ी प्रदेशोंसे भी अधिक तादादमें रबरकी आमदनी होती है। आबर और मिशमी जातिमें मतान्तर हो जानेसे इस मेलेमें भारी धक्का पहुंचा था।

वर्षाकालमें जब ब्रह्मपुत्र नद लबालब हो जाता है, तब लोग स्टीमरसे सदिया जाते हैं। इस स्थानसे चीनराज्यके साथ थोड़ा वाणिज्य चलता है।

सदिवस् (सं० अव्य०) दीप्तियुक्त, चमकीला।

सदी (अ० स्त्री०) १ सौ वर्षोंका समूह, शताब्दी। २ किसी विशेष सौ वर्षके बीचका काल।

सदीश्वर (सं० पु०) सदागति, वायु।

सदुःख (सं० त्रि०) दुःखके साथ वर्त्तमान, दुःखित।

सदुक्ति (सं० स्त्री०) सती उक्तिः। उत्तम उक्ति, साधु कथन।

सदुपदेश (सं० पु०) १ अच्छा उपदेश, उत्तम शिक्षा। २ अच्छी सलाह।

सदूर्ण (सं० त्रि०) दूर्वायुक्त।

सद्रूक् (सं० पु०) सुमिष्ट खाद्यविशेष।

सद्रूक (सं० पु०) एक प्रकारकी मिठाई।

सदृक्ष (सं० त्रि०) समान दृश्यते इति समान दृश-कस्। समानस्य सादेशः। सदृश।

सदृग्बोध (सं० क्ली०) वस्तुके अनुरूप ज्ञान।

सदृश (सं० त्रि०) समान इव दृश्यतेऽसौ समान दृश (समानान्ययोश्चेति वक्तव्यं। पा ३।२।६०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या क्विन्, (इकद्दशवतुषु। पा ६।३।८९) इति समानस्य सा देशः। १ सम, तुल्य, बराबर। २ उचित, मुनासिब। ३ अनुरूप, समान।

सदृशचिकित्सा (सं० स्त्री०) Homeopathy (Similia Scinilibus Curantor)। सदृशव्यवस्था देखो।

सदृशता (सं० स्त्री०) सदृशत्व देखो।

सदृशत्व (सं० क्ली०) सदृशस्य भावः त्व। सदृशका भाव या धर्म, समानता, तुल्यता।

सदृशवृत्ति (सं० त्रि०) समानकार्यविशिष्ट, जिनका जीवनोपाय अभिन्न है।

सदृशव्यवस्था (सं० स्त्री०) तुल्य व्यवस्था (Homeopathy)। जिस औषधका सेवन करनेसे किसी रोगके सदृश रोग उत्पन्न होने पर भी उसी औषध द्वारा फिर वह रोग दूर हो, जिस चिकित्साशास्त्रमें ऐसा विधान है उसे सदृशव्यवस्था कहते हैं।

सदृशस्पन्दन (सं० क्ली०) निष्पन्द।

सदेव (सं० त्रि०) देवेन सह वर्त्तमानः। देवताके साथ वर्त्तमान, देवतायुक्त।

सदेवक (सं० त्रि०) देव स्वार्थे कन् देवकः देवकेन सह वर्त्तमानः। देवकके साथ वर्त्तमान, देवयुक्त।

सदेश (सं० त्रि०) देशेन सह वर्त्तमानः। १ निकट, पास, नजदीक। २ देशान्वित।

सदेह (सं० क्रि० वि०) इसी शरीरसे, बिना शरीर त्याग किये। जैसे, त्रिशङ्कु सदेह स्वर्ग जाना चाहते थे।

सदैकरस (सं० त्रि०) सदा एकरसो यस्य। सर्वदा एकरसविशिष्ट। (पु०) २ ब्रह्मा।

सदैव (सं० अव्य०) सर्वदा, हमेशा।

सदोद्यम (सं० त्रि०) सदा उद्यमो यस्य। १ सर्वदा उद्यमविशिष्ट, उद्योगी। (पु०) २ सदा ही उद्यम, हमेशा यत्न करते रहनेकी क्रिया।

सदोविशीय (सं० क्ली०) सामभेद।

सदोहविर्धान (सं० क्ली०) सामभेद।

सदोहविर्धानिन् (सं० त्रि०) सदः और हविर्धानविशिष्ट।

सदोष (सं० त्रि०) दोषेण सह वर्त्तमानः। १ दोषके साथ वर्त्तमान, जिसमें दोष हो। २ अपराधी, दोषी।

सद्गति (सं० त्रि०) सती गतिर्यस्य। १ उत्तम गतिविशिष्ट। (स्त्री०) २ उत्तम गति, मुक्ति, निर्वाण। मृत्युके बाद धर्मात्माको जो उत्तमलोककी गति होती है उसीको सद्गति कहते हैं। शास्त्रमें लिखा है, कि जो सर्वदा धर्मकार्यका अनुष्ठान करते हैं, उन्हींको सद्गति मिलती है। पापका फल असद्गति लाभ है। अतएव सबोंको सद्गति पानेके लिये धर्मकर्मका अनुष्ठान करना कर्त्तव्य है। ३ सद्व्यवहार, अच्छा वर्त्ताव। ४ सच्चरित्र, अच्छा चाल चलन।

सद्गुण (सं० त्रि०) सद्गुणं यस्य। १ सद्गुणविशिष्ट, जिनके पास दया दाक्षिण्यादि सद्गुण हो। (क्ली०) २ उत्तम गुण, दया आदि गुण।

सद्गुण आचार्य—प्रमेयमार्त्तण्डके रचयिता।

सद्गुणी (सं० पु०) अच्छे गुणवाला।

सद्गुरु (सं० पु०) सद् गुरुः। १ उत्तम गुणविशिष्ट गुरु। जो गुरु सभी प्रकारके गुणोंसे युक्त, विद्वान् और क्रियाशील हैं, उन्हींको सद्गुरु कहते हैं। सद्गुरुसे मन्त्र ले कर यथाविधान कार्य करनेसे शीघ्र ही मन्त्र सिद्ध होता है।

शिष्य होनेसे ही सद्गुरु उसे मन्त्र देंगे, सो नहीं, उसे एक वर्ष अपने पास रख कर विशेष रूपसे परीक्षा करनेके बाद उसे मन्त्र दें। शास्त्रमें सद्गुरुका लक्षण इस प्रकार लिखा है—जो शान्त, दान्त, कुलीन, विनीत, शुद्धवेशसम्पन्न, विशुद्धाचार, सुप्रतिष्ठ, पवित्रस्वभाव, कार्यदक्ष, सुबुद्धि, आश्रमी, ध्याननिष्ठ, तन्त्रमन्त्रविशारद, शिष्यके प्रति शासन और अनुग्रह करनेमें समर्थ, सत्यवादी और गृही हैं, वे ही सद्गुरु कहलानेके योग्य हैं। ऐसे ही गुरुसे मन्त्र लेना उचित है। (तन्त्रसार) गुरु देखो।

बहुजन्मार्जित तपस्याके फलसे सद्गुरु लाभ होता है। वेदान्तसारमें लिखा है, कि जो संसारविरागी, मुमुक्षु हैं, जिनके शम, दम, उपरति और तितिक्षादि साधन सिद्ध हो चुके हैं, वे ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय सद्गुरुके

पास जाय। सद्गुरु उन्हें तत्त्वमस्यादि तत्त्वोपदेश दें।

सद्गोप—बङ्गदेशवासी कृषिजीवी हिन्दूजाति विशेष।

बङ्गालमें सभी जगह सद्गोप जातिका वास देखा जाता है। जमीन जोत कोड़ कर खेतीबारी करना ही इनकी प्रधान वृत्ति और उपजीविका है। इनकी सामाजिक अवस्था विशेष उन्नत है तथा आचार व्यवहारमें ये उच्चवर्णके समान हैं। अभी पाश्चात्य शिक्षाके प्रभावसे इस सम्प्रदायके बहुतोंने राजकार्यमें नियुक्त हो उच्च सम्मान पाया है। इनमें अनेक जमींदार भी उदारताके कारण स्वनाम-धन्य हो गये हैं। मणिमाधवके 'सद्गोप-कुलाचार' नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि सद्गोप जाति गोप (ग्वाले) से सम्पूर्ण स्वतन्त्र हैं। बहुतोंका अनुमान है, कि ये लोग पहले गोपजातिके थे, दूध बेचनेका व्यवसाय छोड़ देनेसे समाजमें सद्गोप नामसे परिचित हुए हैं। लेकिन यह कहां तक सच है, कह नहीं सकते, पर हां ब्राह्मणप्रधानता-कालमें सद्गोपगण जो हिन्दूसमाजमें जलाचरणीय नवशाखके मध्य लिये गये हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। सद्गोपके हाथका जल और मिष्टान्नादि खानेमें कोई दोष नहीं।

कायस्थोंकी तरह इन लोगोंमें भी कुलीन और मौलिक नामक दो समाजगत विभाग देखे जाते हैं। स्थानविशेषमें रहनेके कारण कुलीन लोग दो भागोंमें विभक्त हैं। गङ्गा नदीके पूर्व-दिग्वासी सद्गोप कुलीन पूर्व-कुलिया कहलाते हैं। इनमें शूर, विश्वास और नियोगी पदवी देखी जाती है। गङ्गाके पश्चिमवासी पश्चिमकुलिया कहलाते हैं। इनमें कुण्डार, मल्लिक, हाजरा, राणा, राय और लोहा पदवी प्रचलित है। इसके सिवा घोष, पाल, सरकार, हालदार, पान, चौधरी और काफी मौलिक सद्गोपोंकी वंशोपाधि है। वे सब उपाधियां कर्मज्ञापक और स्थान-वाचक हैं। मणिमाधवके कुलग्रन्थमें उन सब उपाधियोंके प्रथम प्रचलनका कारण विस्तृत भावमें लिखा है।

बङ्गालके अन्तर्गत वर्द्धमान, मेदिनीपुर, हुगली, नदिया, २४ परगना और बांकुड़ा जिलोंमें प्रधानतः सद्गोप जातिका वास है। उन लोगोंकी संख्या ६ लाखसे ऊपर नहीं है।

सद्गोरक्ष (सं० पु०) एक प्रसिद्ध आयुर्वेदवित्।

सद्ग्रन्थ (सं० पु०) अच्छा ग्रन्थ, सन्मार्ग बतानेवाली पुस्तक।

सद्ग्रह (सं० पु०) सन् ग्रहः। शुभग्रह, वृहस्पति और शुक्र ग्रह। ग्रहोंमें उक्त दो ग्रह ही सद्ग्रह कहलाते हैं। चन्द्र और बुध ये शुभग्रह होने पर भी जब पापयुक्त होते हैं, तब वे पापग्रह कहलाते हैं। अतएव वृहस्पति और शुक्र ही सद्ग्रह है। (वृहत्संहिता २८।२१)

सद्घन (सं० पु०) चिद्घन, आनन्दघन, सच्चिदानन्द ब्रह्म।

सद्धर्म (सं० पु०) सन्-धर्मः। १ साधुधर्म, उत्तम धर्म। जो सर्ववादिसम्मत है, जिसमें कोई विरोध नहीं है, वही सद्धर्म कहलाता है। २ बौद्ध धर्म।

सद्धर्मचारी (सं० त्रि०) सद्धर्ममाचरतीति चर णिनि। जो साधुधर्माचरण करते हैं।

सद्धेतु (सं० पु०) सत् हेतुः। साधुहेतु, वह हेतु जिसमें कोई दोष नहीं है। न्यायदर्शनमें सन् और असद्भेदसे हेतु दो प्रकारका कहा गया है। जिन सब हेतुमें हेत्वाभास आदि कोई दोष नहीं, वही सद्धेतु कहलाता है। यह सद्धेतु पांच प्रकारका है, यथा—पक्षसत्त्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षसत्त्व, अबाधित विषयत्व और असत्प्रतिपक्षितत्व। विशेष विवरण हेतु शब्दमें देखो।

सद्भाग्य (सं० क्ली०) सत्भाग्यं। सुभाग्य, शुभादृष्ट।

सद्भाव (सं० पु०) सतोभावः। १ सत्ता, स्थिति। २ प्रेम और हितका भाव, अच्छा भाव। ३ मैत्री, मेल जोल। ४ निष्कपट भाव, अच्छी नीयत।

सद्भावश्री (सं० स्त्री०) काश्मीरकी एक देवीमूर्त्ति।

सद्भूत (सं० त्रि०) सन् भूतः। सत्य, यथार्थ।

सद्भृत्य (सं० पु०) साधुभृत्य, उत्तम नौकर।

सद्मन् (सं० क्ली०) सीदन्त्यत्रेति सद मनिन्। १ गृह, मकान। (रघु ३।१६) २ जल, पानी। अवसायन्ते प्राणिनो यत्र। ३ संग्राम, युद्ध। ४ बैठनेवाला। ५ दर्शक। ६ पृथ्वी और आकाश।

सद्मिनी (सं० स्त्री०) १ बड़ा मकान, हवेली। २ प्रासाद, महल।

सद्मबर्हिस् (सं० त्रि०) सोमविशेष, जिन सब सोमोंका बर्हिःशब्दोपलक्षित यज्ञ हुआ है, उसे सद्मबर्हिस् कहते हैं।

सद्मभस् (सं० त्रि०) प्राप्ततेजस्क, जो तेजको प्राप्त हुए हैं। (ऋक् १।१८।६)

सद्य (सं० क्ली०) तत्क्षणात्, इसी समय, अभी। २ आज ही। ३ शीघ्र, तुरन्त। (पु०) ४ शिवका एक नाम, सद्योजात।

सद्यऊति (सं० त्रि०) सद्योगमनयुक्त, अभी जानेवाला। (ऋक् १०।७८।२)

सद्यकृत (सं० क्ली०) सद्यस्तत्क्षणात् कृतं। १ नाम। (त्रि०) २ तत्क्षणकृत, जो उसी समय किया गया हो।

सद्यः (सं० अव्य०) सद्य देखो।

सद्यःक्री (सं० त्रि०) १ जो अभी निष्पन्न हुआ हो। (पु०) २ एकाहसाध्य सोमयाग। ३ दीक्षा, उपसद् और सुत्या आदि सद्यकीय कर्म।

सद्यःक्षत (सं० त्रि०) तत्क्षणात् जो क्षत हुआ है, जो अभी घायल हुआ है।

सद्यःपर्युषित (सं० त्रि०) सद्यस्तत्क्षणात् पर्युषितः। तत्क्षणात् जो पर्युसित हुआ है, जो अभी वासी हो।

सद्यःपाक (सं० त्रि०) जिसका फल तुरत मिले, जिसके परिणाममें विलम्ब न हो। २ जो तुरत पाक किया गया हो। (पु०) ३ रातके चौथे पहरका स्वप्न, जो लोगोंके विश्वासके अनुसार ठीक घटा करता है।

सद्यःपातिन् (सं० त्रि०) सद्यः पतति पत-णिनि। सद्यः पतनशील, जो तुरत गिरा हो।

सद्यःप्रक्षालक (सं० त्रि०) तत्क्षणात् प्रक्षालनकारी, तुरत साफ करनेवाला।

सद्यःप्रसूता (सं० स्त्री०) तत्क्षणात् प्रसूता, जिसे अभी बच्चा हुआ हो।

सद्यःप्राणकर (सं० त्रि०) सद्यस्तत्क्षणात् प्राणस्य वलस्य करः। तत्क्षणात् वलकारक द्रव्य।

"सद्योमांसं नवान्नञ्च बाला स्त्री क्षीरभोजनम्।
घृतमुष्णोदकञ्चैव सद्यःप्राणकराणि षट्॥" (चाणक्य)

जिन सब द्रव्योंका सेवन करनेसे उसी समय वल आ जाता है उन्हें सद्यःप्राणकर कहते हैं। वे सब वलकारक द्रव्य ये हैं—ताजा मांस, नवान्न अन्न वालास्त्री, सहवास, क्षीर, घृत, और उष्ण जल।

सद्यःप्राणहृ (सं० त्रि०) सद्यस्तत्क्षणात् वल और आयु नाशक द्रव्यादि, वे सब द्रव्य जिनका सेवन करनेसे वल और आयुका तुरत नाश होता है।

"शुष्कं मांसं स्त्रियो वृद्धा वालार्कस्तरुणं दधि।
प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यःप्राणहराणि षट्॥" (चाणक्य)

शुष्क अर्थात् वासी मांस भोजन, वृद्धा स्त्री सहवास, शरत्कालका रौद्रसेवन, वासी दधि भोजन, प्रभात कालमें मैथुन और निद्रा, ये छः सद्यःप्राणहर हैं।

सद्यःप्रीणन (सं० क्ली०) सद्यस्तत्क्षणात् प्रीणनं। आहार। भोजन करते ही मन प्रसन्न रहता है।

सद्यःफल (सं० त्रि०) सद्यः फलं यस्य। तत्क्षणात् फलयुक्त, जिसका फल तुरन्त मिल जाय।

सद्यश्छिन्न (सं० स्त्री०) सद्यः छिन्नः। तत्क्षणात् छिन्न।

सद्यःशुद्धि (सं० स्त्री०) सद्यः शुद्धिः। तत्क्षणात् शुद्धि, सद्यःशौच।

सद्यःशोथा (सं० स्त्री०) सद्यः शोथो यस्या। कपिकच्छू, केवांच। केवांच छू जानेसे तुरन्त खुजली और सूजन होती है।

सद्यःशौच (सं० क्ली०) सद्यःएव शौचं शुद्धिः। तत्क्षणात् शुद्धि, जो सब अशौच उसी समय निवृत्त होता है, उसे सद्यःशौच कहते हैं।

शिल्पी, वैद्य, दासी, दास, भृत्य, चाह्य-कर्मकारी, सात्विक ब्राह्मण, श्रोत्रिय और राजा इन लोगोंका सद्यःशौच होता है अर्थात् अशौच होने पर उसी समय शुद्धि होती है। क्योंकि, शास्त्रमें लिखा है, कि चित्रकारादि शिल्पी जो कर्म करते हैं, वह कर्म दूसरा नहीं कर सकता, इस कारण वे कर्मविषयमें शुद्ध हैं अर्थात् अशौच होने पर भी उनका सद्यःशौच होता है। इसी प्रकार दास दासी आदिका काम भी दूसरा नहीं कर सकता, इससे ये लोग अपने अपने काम करनेमें विशुद्ध हैं।

दुर्भिक्ष, राष्ट्र विप्लव, औपसर्गिक महामारी और पीड़न आदि समयमें सबोंका सद्यःशौच होता है।

मनुमें सद्यःशौचका विषय इस प्रकार लिखा है,—वर्ष वीतने पर यदि सपिण्डादिका मृत्यु संवाद सुना जाय तो सद्यःशौच होता है। राजकर्मके समाप्तिकालमें राजाका, ब्रह्मचर्य कालमें ब्रह्मचारीका और यज्ञ कालमें यागकारीका सद्यःशौच होता है। क्योंकि, प्रजाको रक्षा करनेके लिये राजाको राजसिंहासन पर बैठना

पड़ता है। इससे उन्हें अशौच दोष नहीं होता। राजा विहीन युद्धमें जो मारा गया है, वज्र या राजदण्ड द्वारा जिसकी मृत्यु हुई है, गोब्राह्मणकी भलाईमे जिनके प्राण गये हैं तथा राजा जिनके अशौचाभावकी इच्छा करते हैं, उन सब व्यक्तियोंका सद्यःशौच होता है।

सद्यस् (सं० अव्य०) समानेऽहनि इति (सद्यः परुत्परार्य्यैषम इति। पा ५।३।२२) इति द्यप्रत्ययः समानस्य सभावश्च निपात्यते। तत्क्षण, तुरन्त।

सद्यस्क (सं० त्रि०) सद्यः कायतीति कै-क। अभिनव, नया।

सद्यस्कार (सं० त्रि०) सद्योजात, तुरन्तका उत्पन्न।

सद्यस्काल (सं० पु०) सद्यः कालः। तत्क्षणात्, उसी समय।

सद्यस्त्व (सं० क्ली०) सद्यः भावे त्व। सद्यस्कालत्व, तुरंतका किया हुआ काम।

सद्यसुत्या (सं० स्त्री०) सद्यनिष्काशिन, वह दिन जब सोमरस निकाला जाता है। (ऐतरेयब्रा० ६।३४)

सद्यस्नेहन (सं० क्ली०) नित्य तैलसिक्तकरण, रोज तेलमें डुबाना।

सद्युक्ति (सं० स्त्री०) सती युक्तिः। उत्तमयुक्ति, साधु मन्त्रणा।

सद्योअर्थ (सं० त्रि०) जिस समय हविके द्वारा होम किया जाता है उसी समय हविके साथ देवताओंके पास जानेवाला। २ सद्योगमनविशिष्ट, तुरंत जानेवाला।

सद्योज (सं० त्रि०) सद्यस्तत्क्षणात् जायते जन-ड। तत्क्षणात् जात, तुरतका उत्पन्न।

सद्योजात (सं० पु०) सद्यस्तत्क्षणात् जातः। १ तुरंतका उत्पन्न बछड़ा। २ शिवका एक स्वरूप या मूर्त्ति। शिवरात्रि व्रतमें 'ओं सद्योजाताय नमः' इस मन्त्रसे महादेवको स्नान करना होता है। शिवरात्रिव्रत देखो। (त्रि०) तत्क्षणोत्पन्न, जो तुरंत उत्पन्न हुआ हो।

सद्योजातपाद (सं० पु०) शिव, महादेव।

सद्योजू (सं० त्रि०) सद्य उत्तेजनशील।

सद्योदुग्ध (सं० क्ली०) सद्यस्तत्क्षणादुत्पन्नं दुग्धः। तत्क्षणात् जात दुग्ध, तुरन्तका उत्पन्न दूध।

सद्योभव (सं० त्रि०) सद्यो भवः उत्पत्तिर्यस्य। १ तत्क्षणात् उत्पत्तिविशिष्ट। २ तत्क्षणात् जात।

सद्योभाविन् (सं० पु०) सद्यो भवतीति भू-णिनि। सद्यःजात वत्स, तुरंतका जन्मा बछड़ा।

सद्योऽभिवर्ष (सं० पु०) सद्योवृष्टि।

सद्योमण्डलपत्रक (सं० पु०) श्वेत पुनर्नवा, सफेद गदहपूरना।

सद्योमन्यु (सं० त्रि०) सद्यस्तत्क्षणादेव मन्युर्यस्य। तत्क्षणात् क्रोधान्वित, चिढ़चिढ़ा।

सद्योमरण (सं० क्ली०) तत्क्षणात् मृत्यु, तुरन्तकी मौत।

सद्योमांस (सं० क्ली०) अभिनव मांस, ताजा मांस। मांस यदि खाना हो, तो सद्योमांस भोजन करे, क्योंकि यह सद्यःप्राणकर माना गया है। बासी मांस कदापि नहीं खाना चाहिये। सद्यःप्राणकर देखो।

सद्योमृत (सं० त्रि०) तत्क्षणात् मृत, तुरंतका मरा हुआ।

सद्योयज्ञसंस्था (सं० स्त्री०) एकाहयज्ञमें उत्सर्गार्थ स्थापन या संरक्षण। (षड्विंशब्रा० ४।१)

सद्योवर्ष (सं० पु०) सद्यो वर्षणः। सद्योवृष्टि, तत्क्षणात् वर्षण।

सद्योवृध (सं० त्रि०) उसी समय वर्द्धमान।

सद्योवृष्टि (सं० स्त्री०) सद्यस्तत्क्षणात् वृष्टिः। तत्क्षणात् वर्षण। वराहकृत बृहत्संहितामें सद्योवृष्टिका विशेष विवरण लिखा है। नीचे संक्षेपमें दिया जाता है।

आकाशमण्डल और चन्द्रसूर्यका कोई कोई लक्षण देखनेसे तत्क्षणात वृष्टि होगी, किन्तु वह वर्षण कम होगी या अधिक, उसका भी पता लक्षणसे लग जायेगा। वर्षा होगी या नहीं? यदि ऐसा प्रश्न किया जाय तथा उस समय चन्द्र यदि कर्कट, कुम्भ, मीन, कन्या और मकरके शेषार्द्धमें रह कर लग्नगत अथवा शुक्लपक्षमें केन्द्रगत हों और शुभ ग्रह यदि उसे देखता हो, तो उस समय प्रचुर वृष्टि और यदि पापग्रहकी दृष्टि पड़ती हो, तो कम वृष्टि होगी तथा वह वृष्टि बहुत देर तक नहीं रहती। फिर यह भी देखना होगा, कि प्रश्नकर्त्ता यदि आर्द्र द्रव्य या जल अथवा तत्संश्लिष्ट कोई द्रव्य स्पर्श करे, यदि जलके निकटवर्त्ती या जल सम्बन्धीय किसी कर्ममें रत हो तथा प्रश्न कालमें

जल या जलवाचक कोई शब्द सुना जाय, तो शीघ्र ही जल होगा, ऐसा जानना चाहिये। जल विरस, आकाशमण्डल गोनेत्रसदृश, सभी दिशाएं विमल, लवणके जलरूपमें विकृति, काकाण्ड-सदृश मेघोदय, पवन निश्चल, मत्स्यगणका पुनः पुनः लम्फन और मण्डूक गणकी बार बार ध्वनि, मार्जारके नख द्वारा पृथ्वी विलेखन, लोहेके मलमें कच्चे मांसकी सी गन्धका अनुभव, विना उपघातके पिपीलिकाकी डिम्बव्याप्ति, सर्पगणका स्त्रीसङ्ग, भुजङ्गगणका वृक्षादि रोहण, गोसमूहका लम्फन तथा पशुओंकी घरसे बाहर निकलनेकी अनिच्छा, यदि ये सब लक्षण दिखाई दें, तो सद्योवृष्टि होगी।

यदि गिरगिट वृक्षके शिखर पर चढ़ कर आकाशकी ओर दृष्टि डाले तथा गो-वृन्द ऊदुर्ध्वनेत्रसे सूर्यको देखे तथा गृहपटलमें कुत्ते रहे या अपना मुंह ऊपरको ओर उठाये रहे, तो भी शीघ्र ही वृष्टि होगी। जब चन्द्रमा शुक या कपोत लोचनसदृश या मधु सन्निभ हो और जब आकाशमें प्रतिचन्द्र विराजित हो, तो जानना चाहिये, कि वृष्टि शीघ्र होनेवाली है। लताओंके नव-पल्लव यदि गगनतलोन्मुख हो, विहङ्गम पांशु या जल द्वारा स्नान और सरीसृपगण तृणके अग्रभागमें विचरण करे, तो जल्द ही वर्षा होगी। सूर्यास्त समय यदि आकाश तीतर पक्षीके डैनेके रंगसा दिखाई दे तथा पक्षिगण आनन्दित हो कर कलरव करे, तो भी वृष्टि शीघ्र ही होगी।

वर्षाकालमें चन्द्रमा यदि शुभग्रहसे दृष्ट हो कर शुक्रसे सप्तमराशिगत अथवा शनिसे नवम, पञ्चम या सप्तम राशिगत हो, तो वृष्टि शीघ्र होगी, ऐसा जानना चाहिये। ग्रहोंके उदयास्तकालमें मण्डल संक्रमण और समागम होनेसे, पक्षक्षयमें, अयनान्तमें और सूर्यके आर्द्रा नक्षत्रगत होने पर उसी समय वृष्टि होती है। बुध शुक्रके समागममें बुधबृहस्पति या बृहस्पति और शुक्र सङ्गममें जल्द पानी बरसेगा।

ये सब लक्षण देख कर सद्योवृष्टि स्थिर करनी होगी।

सद्योव्रण (सं० पु०) सद्द्योजात व्रण, जो फोड़ा अभी निकला हो। नाना प्रकारके शस्त्रादिके शरीरके नाना स्थानोंमें पड़नेसे जो विभिन्न प्रकारके व्रण उत्पन्न होते हैं उन्हें सद्द्योव्रण कहते हैं। यह सद्द्योव्रण ६ प्रकारका है, छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्छित और घृष्ट।

वाभटके मतसे उक्त व्रण ८ प्रकारका है, यथा—घृष्ट, अवकृत्त, विच्छिन्न, प्रविलम्बित, पातित, विद्ध, भिन्न और विदलित।

वाह्यहेतु अर्थात् अस्त्रपात, बंधन, पतन, दन्ताघात, नखाघात, विषस्पर्श, अग्नि और शस्त्रसे जो सब व्रण उत्पन्न होते हैं, उनका नाम सद्द्योव्रण है इसे आगन्तव्रण भी कहते हैं। व्रण रोग देखो।

सद्योहत (सं० त्रि०) तत्क्षणात् हत, तत्क्षणात् विनष्ट।

सद्रत्न (सं० क्ली०) सत्‌रत्न। उत्तम रत्न।

सद्रि (बड़ा)—राजपूतानेके उदयपुरराज्यान्तर्गत एक नगर। यह निमाचसे २३ मील दक्षिण-पश्चिम अवस्थित है। नगर पहले पत्थरकी दीवारसे घिरा था और बीचमें पहाड़के ऊपर दुर्ग अवस्थित था। अभी वह दुर्ग और प्राचीर भग्नावस्थामें पड़ा है। स्थानीय सामन्तराज उस दुर्गमें रहते हैं। ८० ग्राम ले कर सद्रि सामन्तराज्य संगठित है।

सद्रि (छोटा) उक्त राज्यका एक दूसरा नगर। यह निमाचसे १३ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। यह नगर भी मजबूत दीवारसे घिरा है। यहांके वनमें बांस और शालके पेड़ बहुतायतसे मिलते हैं।

सद्रु (सं० त्रि०) सीदति गच्छतीति सद गतौ (सिसदसतोरुः। पा ३।२।१५९) इति रु। गमनकर्त्ता, जानेवाला।

सद्वंश (सं० पु०) १ उत्तम वंश। २ सद्वंशोत्पन्न, वह जिसका उत्तम कुलमें जन्म हुआ है।

सद्वक्तृ (सं० पु०) सत् वक्ता। उत्तम वक्ता, वाग्मी।

सद्वक्तृता (सं० स्त्री०) सद्वक्तुर्भावः तल-टाप्, वा सती वक्तृता। उत्तम वक्तृता, सद्वक्ता।

सद्वचस् (सं० क्ली०) उत्तम वाक्य, साधु वचन।

सद्वत् (सं० त्रि०) उत्तम, साधु।

सद्वती (सं० स्त्री०) पुलस्त्यकी कन्या और अग्निकी स्त्री।

सद्वन्द्व (सं० त्रि०) द्वन्द्वयुक्त, आपसका विरोध।

सद्वसथ (सं० पु०) सद्-वस-अथच्। ग्राम, गांव।

सद्वह (सं० पु०) राजपुत्र भेद।

सद्वार्त्ता (सं० स्त्री०) सती वार्त्ता, उत्तम वार्त्ता, सुसंवाद, खुश खबरी।

सद्विच्छेद (सं० पु०) वह विच्छेद जो सुखकर हो।

सद्विद्या (सं० स्त्री०) सती विद्या। उत्तम विद्या, ब्रह्मविद्या, ब्रह्मज्ञान। एक मात्र ब्रह्महो सत् पदार्थ है, ब्रह्मको छोड़ और सभी असत् है। अतएव ब्रह्मविषयक विद्या ही सद्विद्या कहलाती है।

सद्विधान (सं० क्ली०) सत् विधानं। सुविधान, उत्तम विधान।

सद्विवेचना (सं० स्त्री०) सती विवेचना। उत्तम विवेचना, साधु विवेचना।

सद्बुद्धि (सं० स्त्री०) सती बुद्धिः। उत्तम बुद्धि, साधु विचार। (त्रि०) सती बुद्धिर्यस्य। २ सद्बुद्धिविशिष्ट, जिसका उत्तम विचार हो।

सद्वृक्ष (सं० पु०) सुवृक्ष, उत्तम पेड़।

सद्वृत्त (सं० त्रि०) सद्वृत्तं यस्य। सच्चरित्र, साधु।

सद्वृत्ति (सं० स्त्री०) सती वृत्तिः। साधुवृत्ति, सुवृत्ति, उत्तम व्यवहार। शास्त्रमें लिखा है, कि सद्वृत्तिका अवलम्बन कर सबों को जीविकार्जन करना चाहिये।

शास्त्रमें जो सब वृत्तियां निन्दित बताई गई हैं उन्हें छोड़ देने और जो निन्दित नहीं बताई गई हैं उन्हें करने को ही सद्वृत्ति कहते हैं। (त्रि) २ सद्वृत्तिविशिष्ट, उत्तम व्यवहारवाला।

सद्वृत्तिभाज् (सं० त्रि०) सद्वृत्तिं भजतीति भज क्विप्। सद्वृत्तिविशिष्ट।

सद्वैद्य (सं० पु०) सन् वैद्यः। उत्तम वैद्य, सुचिकित्सक। जो चिकित्सा कार्य्य करता है, उसका साधारण नाम वैद्य है। जो शास्त्रार्थमें विशेष व्युत्पन्न, दृष्टकर्मा, चिकित्साकुशल, सुसिद्धहस्त, शुचि, कार्य्यदक्ष, अभिनव औषध और चिकित्साके उपयोगी उपकरणोंसे सुसज्जित, उपस्थित-बुद्धि, धीशक्ति-सम्पन्न, चिकित्सा व्यवसायी, मिष्टभाषी, सत्यवादी और धर्मपरायण आदि गुण जिस वैद्यमें रहते हैं, उसे सद्वैद्य कहते हैं। (भावप्र०) वैद्य देखो।

सध (सं० अव्य०) सहार्थे।

सधन (सं० त्रि०) धनके साथ वर्त्तमान, धनयुक्त, धनी।

सधनता (सं० स्त्री) सधनस्य भावः तल् टाप्। सधनत्व, धनविशिष्टका भाव या कार्य्य, धनीका धर्म।

सधना (हिं० क्रि०) १ सिद्ध होना, पूरा होना, काम होना। २ काम चलाना, मतलब निकालना। ३ अभ्यस्त होना, हाथ बैठना। ४ प्रयोजन सिद्धिके अनुकूल होना, गौं पर चढ़ना। ५ लक्ष्य ठोक करना, निशाना ठीक होना। ६ घोड़े आदिका शिक्षित होना, निकालना। ७ ठीक नपना, नापा जाना।

सधनित्र (सं० त्रि०) धनिना सह वर्त्तमानः। धनीके साथ वर्त्तमान।

सधनी (सं० त्रि०) समानधनविशिष्ट। (ऋक् ४।४।१४)

सधनुष्क (सं० त्रि०) समानः धनुर्यस्य, कप्। समानशब्दस्य स आदेशः। समान धनुविशिष्ट, तुल्य धनुष्क।

सधनुस् (सं० त्रि०) धनुके साथ वर्त्तमान, धनुर्विशिष्ट, धनुष्पाणि।

सधमाद् (सं० पु०) मत्तताविशिष्ट। (ऋक् ७।२७।१)।

सधमाद्य (सं० त्रि०) सहमदनिमित्त, मद निमित्त।

सधमित्र (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद।

सधर (सं० पु०) ऊपरका ओंठ।

सधर्म (सं० पु०) १ समान धर्म, समान गुण या क्रियावाला। २ तुल्य, समान।

सधर्मक (सं० त्रि०) समधर्मविशिष्ट।

सधर्मचारिणी (सं० स्त्री०) सहधर्मं चरतीति चर-णिनि (वोपसर्जनस्य। पा ६।३।८२) इति सहस्य सः। भार्या, स्त्री। शास्त्रमें लिखा है, कि पत्नीके साथ धर्माचरण करना होता है, इसीसे पत्नोको सधर्मचारिणी कहते हैं।

सधर्मत्व (सं० क्ली०) सधर्मणो भाव त्व। सधर्माका भाव या धर्म, तुल्य धर्मत्व।

सधर्मन् (सं० त्रि०) समानो धर्मो यस्य (धर्मादनिच केवलात्। पा ५।४।१२४) इति अनिच्। सदृश, तुल्य।

सधर्मिन् (सं० त्रि०) सहधर्मोऽस्त्यस्येति (धर्मशील वर्णान्ताच्च। पा ५।२।८२) इति इनि, (वोपसर्जनस्य। पा ६।३।८२) इति सहस्य सः। १ समानधर्मचारी, एक धर्माक्रान्त। २ सदृश, समान।

सधर्मिणी (सं० स्त्री०) सधर्मिन् ङीप्। भार्या, पत्नी।

सधवा (सं० स्त्री०) धवेन भर्त्रासह वर्त्तमाना। जीवितपतिका स्त्री, वह स्त्री जिसका पति जीवित हो, जो

विधवा न हो, सुहागिन । संस्कृत पर्याय—सभर्तृका, पतीवत्नी, सनाथा । (जटाधर)

स्वामीकी शुश्रूषा ही एकमात्र सधवा स्त्रियोंका श्रेष्ठ धर्म है। स्वामी दुःशील, दुर्भाव, वृद्ध, जड़रोगी या धनहीन होने पर भी सधवा सर्व्वदा उसकी अनुगामिनी और सेवापरायण होगी।

सध्रवीर (सं० पु०) सहवीर।

सधस्तुति (सं० स्त्री०) सहस्तुति, एक साथ मिल कर जो स्तुति की जाती है उसे सधस्तुति कहते हैं।

सधस्तुत्य (सं० क्ली०) अन्यके साथ स्तुत्य, दूसरेके साथ स्तवके उपयुक्त। (ऋक् ८।२६।१)

सधस्थ (सं० क्ली०) अन्तरीक्ष। (ऋक् २।६।३)

सधाना (हिं० क्रि०) साधनेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको साधनेमें प्रवृत्त करना।

सधावर (हिं० पु०) वह उपहार जो गर्भवती स्त्रीको गर्भके सातवें महीने दिया जाता है।

सधि (सं० पु०) अग्नि।

सधिस् (सं० पु०) सहते इति सह (सहेर्धश्च। उण् २।११।४) इति इसिन् धश्चान्तादेशः। वृषभ, बैल।

सधुर (सं० त्रि०) समान कार्योद्वहन। (अथर्व ३।३०।५)

सधूम (सं० त्रि०) धूमके साथ वर्त्तमान, धूमविशिष्ट।

सधूमक (सं० त्रि०) धूमयुक्त।

सधूमवर्णा (सं० स्त्री०) सधूम्रवर्णा, अग्निकी सात जिह्वाओंमेंसे एक जिह्वा।

सधूम्र (सं० त्रि०) धूम्रके साथ वर्त्तमान, धूम्रविशिष्ट।

सधूम्रवर्णा (सं० स्त्री०) धूमवर्णयुक्ता।

सधौर (हिं० पु०) सधावर देखो।

सध्रि (सं० पु०) ऋग्वेदोक्त ऋषिविशेष।

सध्री (सं० अव्य०) सीमारूपमें।

सध्रीची (सं० स्त्री०) सह अञ्चति या सा अञ्च ऋत्विगादिना क्विन्। सहस्सध्रि, अञ्चतेश्चोपसंख्यान' इति ङीप्, अच् इत्यकारलोपः, चाविति दीर्घः। सखी।

सध्रीचीन (सं० त्रि०) सहगमनकारी।

सध्र्यच् (सं० त्रि०) सह अञ्चतीति अञ्च गतौ ऋत्विगादिना क्विन्, सहस्य सध्रि। १ सहचर। २ सम्यक्।

सध्वंस (सं० पु०) ऋङ्मन्त्रद्रष्टा काण्वगोत्रीय ऋषिभेद।

सन् (सं० पु०) व्याकरणीय प्रत्ययविशेष। व्याकरणके मतसे इच्छार्थमें धातुके उत्तर सन् प्रत्यय होता है।

सन् (अ० पु०) १ वर्ष, साल। २ कोई विशेष वर्ष, संवत्।

सन (सं० पु० स्त्री०) १ हस्तिकर्णास्फाल। (पु०) २ मोखा नामक पेड़। ३ सनत्कुमार। ४ सनक। ५ सनन्दन। ६ सनातन। (क्लो०) ७ दान। (त्रि०) ८ अखण्डित।

सन (हिं० पु०) बोया जानेवाला एक प्रसिद्ध पौधा। इसकी छालके रेशेसे मजबूत रस्सियां आदि बनती हैं। विशेष विवरण शण शब्दमें देखो।

सनई (हिं० स्त्री०) छोटी जातिका सन।

सनक (सं० पु०) विष्णु-पारिषद्भेद। ये ब्रह्माके चार मानस पुत्रोंमें एक पुत्र है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि ब्रह्माने आदिमें सृष्टि करनेका सङ्कल्प कर पहले अविद्याकी सृष्टि की, इससे तामिस्र, अन्धतामिस्र, मोह और महामोह आदि उत्पन्न हुए। ब्रह्माको ये सब असत् सृष्टि देख कर शान्ति न मिली, उन्होंने ध्यानमग्न हो मनः द्वारा अन्य प्रकारकी सृष्टि करना चाहा। अनन्तर उनके सनक, सनन्द, सनातन और सनत्कुमार ये चार मानस पुत्र उत्पन्न हुए। ये सब पुत्र निष्क्रिय और ऊर्द्ध्वरेता हुए। ब्रह्माने जब इन पुत्रोंको सृष्टि करने कहा, तब वे लोग बोले, 'संसार दुःख और मायामय है। अतएव मायामें आबद्ध हो हम लोग दुःखभोग करना नहीं चाहते।' इतना कह कर वे लोग भगवद्ध्यानपरायण हो कालातिपात करने लगे।

काशीखण्डमें लिखा है, कि सनकका वासस्थान जनलोक है। धर्मशास्त्रके मतानुसार देव तर्पणके बाद ही सनक आदि ऋषियोंके उद्देशसे तर्पण करना होता है। यह तर्पण प्रतिदिन करना कर्त्तव्य है। पहले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और प्रजापतिका तर्पण कर सनक, सनन्द, सनातन, कपिल, आसुरि आदि ऋषियोंके उद्देशसे तर्पण करना होगा। यह तर्पण प्रत्येकके उद्देशसे दो बार करके करना होता है। सामवेदी ब्राह्मणोंको निवीती और प्रत्यङ्मुख हो कर प्राजापत्यतीर्थमें करना चाहिये। सामभिन्न अन्य वेदीगण

उत्तरमुखसे तर्पण करें। निम्नोक्त मन्त्र पढ़ कर दो अञ्जलि जल देनेसे इनका तर्पण किया जाता है। मन्त्र इस प्रकार है,—

"ओं सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः।
कपिलश्चासुरश्चैव वोढ़ुः पञ्चशिखास्तथा।
सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा॥"
(आह्निकतत्त्व) तर्पण देखो।

२ एक असुरका नाम। (ऋक् १।३३।४)

सनक (हिं० स्त्री०) १ किसी बातकी धुन, मनकी झोंक। २ उन्मादकी-सी वृत्ति, खब्त।

सनकना (हिं० क्रि०) १ पागल हो जाना, पगलाना। २ वेगसे हवामें जाना या फेंका जाना।

सनकाना (हिं० क्रि०) किसीको सनकनेमें प्रवृत्त करना।

सनकानीक (सं० पु०) देशभेद और उस देशके अधिवासी।

सनकियाना (हिं० क्रि०) सङ्केत करना, इशारा करना।

सनकुरंगी (हिं० पु०) एक प्रकारका बड़ा पेड़। इसके हीरकी लकड़ी बहुत मजबूत और स्याही लिए लाल होती है। इसको कुर्सियाँ आदि बनती हैं। यह वृक्ष तिनेवली और त्रिवाङ्कोड़में अधिक पाया जाता है।

सनग (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद।

सनगढ़—पञ्जाब प्रदेशके डेरागाजी खाँ जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०° २७´से ३१° २०´ उ० तथा देशा० ७०° २४´से ७०° ५०´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १०६५ वर्गमील और जनसंख्या ८० हजारके लगभग है। इसमें १६६ ग्राम लगते हैं। इसके उत्तरमें सिन्ध नद और पश्चिममें स्वाधीन राज्य है। इस तहसीलमें सनगढ़ नदी बहती है, उसी नदीके नामसे तहसीलका नामकरण हुआ है।

सनगढ़—बम्बईके थर और पार्कर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २५° ४०´से २६°१५´ उ० तथा देशा० ६८°५१´ से ६६° २५´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १०५० वर्गमील और जनसंख्या ४० हजारसे ऊपर है।

सनगिरि—पञ्जाब प्रदेशके सिमला पहाड़ी राज्यके अन्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। यह शतद्रु नदीके दक्षिणमें अवस्थित है। पहले यह राज्य कूलूराजके अधिकारमें था। १८१५ ई०में अंगरेजी सेनाने गोरखोंको यहांसे भगा कर यह स्थान कुलूपतिको दे दिया। सिखसेनाके कुलूराज्य पर आक्रमण करनेसे कुलूराजने भाग कर सनगिरिमें आश्रय लिया था। प्रथम सिखयुद्धके बाद जब यह प्रदेश अंगरेजोंके अधिकारमें आया, तब अंगरेज गवर्मेण्टने १८४७ ई०में कुलूराजके भतीजेको यहांका राजा बनाया। १८८४ ई०में राजपूत कुलतिलक हीरासिंह 'सनगिरिके टीका' अर्थात् राजा थे।

सनगुड़—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत हङ्गल तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह हङ्गलसे १४ मील पूर्व उत्तरमें अवस्थित है। यहांके वीरभद्रमन्दिरमें १०८६ शकमें उत्कीर्ण एक शिलालिपि देखी जाती है।

सनगोड़—राजपूतानेके कोटाराज्यान्तर्गत एक नगर।

सनङ्गु (सं० पु० स्त्री०) परिष्कृत चर्म, साफ चमड़ा।

सनज (सं० त्रि०) नित्य जात, प्रति दिन होनेवाला।

सनत् (सं० पु०) १ ब्रह्मा। २ सर्वदा, सभी समय।

सनता (सं० स्त्री०) सनातन, नित्य। (ऋक् ३।३।१)

सनत्कुमार (सं० पु०) सनतो ब्रह्मणः कुमारः। ब्रह्माके पुत्र। सत् शब्दका अर्थ ब्रह्मा है, उनका कुमार, या सनत् शब्दका अर्थ नित्य है, जो नित्य हैं, उनका कुमार, इसी अर्थमें सनत्कुमार हुआ।

हरिवंशमें लिखा है, कि ये ब्रह्माके मानसपुत्रोंमें सर्वश्रेष्ठ थे। जन्म लेते ही इन्होंने यतिधर्मका आश्रय ले कर परमात्मामें मन लगाया तथा प्रजाधर्म और भोग विलासका बिलकुल परित्याग कर दिया। जैसे शरीरमें ये उत्पन्न हुए थे वैसे ही शरीरमें विद्यमान हैं, इसीसे इनका नित्यकुमार या सनत्कुमार नाम पड़ा। मार्कण्डेय मुनिके कठोर तपस्या करने पर सनत्कुमारने उनके पास जा उनके कुल सन्देह दूर किये थे। हरिवंश १७।१८।१६ अध्यायके सनत्कुमारसंवाद नामक अध्यायमें इनका विस्तृत विवरण लिखा है।

२ धर्मके औरस और अहिंसाके गर्भसे उत्पन्न एक पुत्रका नाम। ये ब्रह्माके दत्तक पुत्र थे। वामनपुराणमें लिखा है, कि धर्मके अहिंसा नामकी एक पत्नी थी। उनके गर्भसे सनत्कुमार, सनातन, सनक, सनन्दन और कपिल आदि पुत्र उत्पन्न हुए। धर्मने इन सब पुत्रोंमें पञ्चशिखको श्रेष्ठ समझ कर उन्हींको सांख्ययोगकी

शिक्षा दी। बड़े तो थे सनत्कुमार, पर उन्हें योगोपदेश न दिया गया। इस पर सनत्कुमार ब्रह्माके पास गये और योग-विज्ञान सिखानेके लिये अनुरोध किया। ब्रह्माने कहा, कि मैं तुम्हें उसी शर्त पर सांख्ययोग विज्ञानका उपदेश दे सकता हूं, यदि तुम्हारे मातापिता तुम्हें मुझे पुत्ररूपमें दें। पीछे धर्म और अहिंसाने सनत्कुमारको ब्रह्माके हाथ सौंप दिया और तब ब्रह्माने उन्हें सांख्य योगकी शिक्षा दी। (वामन पु० ५।७।५८।अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा हैं, कि ये पञ्चहायन वयस्क, चूड़ादि संस्कार और वेद-संध्याविहीन हैं। ये ब्रह्मलोकमें ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो नग्नावस्थामें रहते हैं और सर्वदा कृष्णमन्त्र जपा करते हैं। अनन्त कल्पकाल ये तीन भाइयोंके साथ विद्यमान हैं। ये वैष्णवोंमें अग्रणी और ज्ञानियोंके गुरु हैं। (श्रीकृष्णजा० १२६ अ०)

३ जिनमतसे बारह सार्वभौमके अन्तर्गत एक सार्वभौम।

सनत्कुमारज (सं० पु०) जैनोंके देवगणविशेष।

सनत्कुमारीय (सं० स्त्री०) सनत्कुमारप्रोक्त।

सनता (हिं० पु०) वह वृक्ष जिस पर रेशमके कीड़े पाले जाते हैं।

सनतन (सं० त्रि०) सनातन। (अथर्व १०।८।३०)

सनत्सुजात (सं० पु०) ब्रह्माके पुत्र ऋषिभेद।

सनद (अ० स्त्री०) १ तकिया गाह। २ भरोसा करनेकी वस्तु। ३ प्रमाण, दलील। ४ प्रमाणपत्र, सर्टिफिकेट।

सनदयाफ्ता (फा० वि०) १ जिसे किसी बातकी सनद मिली हो, प्रमाणपत्र-प्राप्त। २ किसी परीक्षामें उत्तीर्ण।

सनद्रयि (सं० त्रि०) दीयमान धन। (ऋक् ६।५२।१)

सनद्वाज (सं० त्रि०) दीयमानान्न। (ऋक् ६।६२।२३)

सनना (हिं० क्रि०) १ जलके योगसे किसी चूर्णके कणोंका एकमें मिलना या लगना, गीला हो कर लेईके रूपमें मिलना। २ आप्लावित होना, ओतप्रोत होना।

सननी (हिं० स्त्री०) पानीमें भिगाया हुआ भूसा या सूखा चारा जो चौपायोंको दिया जाता है, सानी।

सनन्द (सं० पु०) ब्रह्माके चार पुत्रोंमेंसे मानस पुत्रविशेष। ये जनलोकवासी और दिव्य मनुष्य थे। सनक देखो।

सनन्दक (सं० पु०) ब्रह्माके मानसपुत्रविशेष।

सनन्दन (सं० पु०) १ ब्रह्माके मानसपुत्रविशेष। (त्रि०) नन्दयतीति नन्द-ल्यु। २ नन्दन, आनन्दकारी।

सनम (अ० पु०) प्रिय, प्यारा।

सनपर्णी (सं० स्त्री०) आसनपर्णी।

सनमान (हिं० पु०) सम्मान देखो।

सनय (सं० त्रि०) सनातन, पुराना।

सनर (सं० त्रि०) १ संभजनीय। (ऋक् १।९६।८) नरेण सह वर्त्तमानः। ८ मनुष्यके साथ वर्त्तमान, मनुष्ययुक्त।

सनय (सं० क्ली०) मरुदेशभेद। (तारनाथ)

सनवित्त (सं० त्रि०) चिरकालसे आरम्भ करके लब्ध, जो बहुत परिश्रमके बाद मिला हो।

सनश्रुत (सं० त्रि०) सनातनरूपमें प्रसिद्ध।

सनस (सं० अव्य०) सना देखो।

सनसनाना (हिं० क्रि०) १ हवामें झोंकेसे निकलने या जानेका शब्द होना। २ खौलते हुए पानीका शब्द होना। ३ हवा बहनेका शब्द होना।

सनसनाहट (हिं० पु०) १ हवा बहनेका शब्द। २ हवामें किसी वस्तुके वेगसे निकलनेका शब्द। ३ खौलते हुए पानीका शब्द। ४ सनसनी।

सनसनी (हिं० क्रि०) १ संवेदन सूत्रोंमें एक प्रकारका स्पन्दन, झनझनाहट। २ उद्वेग, घबराहट, खलबली। ३ अत्यन्त भय, आश्चर्य आदिके कारण उत्पन्न स्तब्धता। ४ नीरवता, सन्नाटा।

सनसय (सं० पु०) आचार्यभेद।

सनसूत्र (सं० क्ली०) सनका सूत। पवित्रक। क्षत्रियोंका उपवीत सनसूत्रमय होना चाहिये। (मनु०)

सनहाना (हिं० पु०) वह नांद या बड़ा बरतन जिसमें भरे हुए खटाई मिले जलमें धोनेके पूर्व मलनेके लिये डाले जाते हैं।

सनहकी (अ० स्त्री०) मिट्टीका एक बरतन जो बहुधा मुसलमान काममें लाते हैं।

सना (सं० अव्य०) नित्य, सनातन।

सनाज्यु (सं० त्रि०) दीर्घकाल तक वियोगविशिष्ट।

सनाज्वर् (सं० त्रि०) सदाजीर्ण।

सनाढ्य (हिं० पु०) ब्राह्मणों की एक शाखा जो गौड़ों के अन्तर्गत कही जाती है।

सनात् (सं० अव्य०) नित्य, सनातन।

सनातन (सं० पु०) सदाभवः (सायञ्चिरं प्राह्णे पगे इति। पा ४।३।२३) इति ट्युट्युलौ तुट् च। १ विष्णु। २ शिव। ३ ब्रह्मा। ४ पितरों के अतिथि। ५ ब्रह्माके मानसपुत्रभेद। ये दिव्यमनुष्य और जनलोकवासी थे। सनन्द शब्द देखो। अग्निपुराणके मतसे इनका तपोलोक है। मत्स्यपुराणमें इन्हें वैष्णवराज कहा है।

६ प्राचीनकाल, अत्यन्त पुराना समय। ७ प्राचीन परम्परा, बहुत दिनोंसे चला आता हुआ क्रम। ८ वह जिसे सब श्राद्धों में भोजन कराना कर्त्तव्य हो। (त्रि०) ९ अत्यन्त प्राचीन, बहुत पुराना। १० परम्परागत, जो बहुत दिनोंसे चला आता हो। ११ नित्य, सदा रहनेवाला।

सनातन गोस्वामी—कर्णाटराज अनिरुद्धदेवके वंशधर कुमारदेवके पुत्र और एक परम वैष्णव साधु पुरुष। दुर्भाग्यवशतः पैतृक राज्यसे वञ्चित हो उनके पूर्व पुरुष पहले नवहट्ट ग्राममें, पीछे वहांसे चल कर इनके पिता कुमारदेव फरीदपुरके अन्तर्गत फतेयाबाद; परगनेमें बस गये। यहां सनातन और छोटे भाई रूप गोस्वामीने आर्यशास्त्रादिमें अच्छी व्युत्पत्ति लाभ कर गौड़राज सभामें मन्त्रीका पद पाया। इन्होंने तथा दक्षिणराढ़ीय कायस्थसमाजके प्रतिष्ठाता पुरन्दर खांने मिल कर गौड़ेश्वर सुलतान हुसेन शाहकी सभाको उज्ज्वल कर दिया था।

पूज्यपाद सनातन गोस्वामी प्रायः १४८० से १५८८ ई० तक जीवित थे। प्रवाद है, कि एक दिन सवेरे जोरोंसे वृष्टि हो रही थी, इसी समय बादशाहके हुक्मसे इन्हें दरबारमें जाना पड़ा। इसी समय एक भिखारिणीने अपने स्वामीसे कहा, "सवेरा हो चला, भिक्षाके लिये निकलो।" स्वामीने जवाब दिया, 'वृष्टि जोरोंसे हो रही है, इस समय शृगाल कुत्ते भी घरसे निकल नहीं सकते। जो इस समय घरसे निकले हैं, वे निश्चय ही दूसरेके अन्नदास होंगे।' भिक्षुककी बात सुन कर सनातनने शृगालसे भी अधम और म्लेच्छका अन्नदास समझ अपनेको खूब ललकारा और उसी समय उन्हें संसार-मर्यादासे घृणा हो गई। उसके साथ साथ विवेकका उदय होनेसे उन्होंने कुछ समय बाद ही वैराग्यका अवलम्बन किया। उनके साथ उनके छोटे भाई श्रीरूप और वल्लभ संसारधर्मका त्याग कर श्रीचैतन्य महाप्रभुके शिष्य हो गये। सनातनके वैराग्य-सम्बन्धमें यह संवाद भित्तिहीन है।

वैष्णवतोषिणी ग्रन्थमें सनातनके सम्बन्धमें ऐसा लिखा है,—

पूर्वकालमें सर्वज्ञ जगद्गुरु नामक कर्णाटकदेशके एक राजा थे। भरद्वाजगोत्रीय ब्राह्मणवंशमें इनका जन्म हुआ था। इनमें ऐसी क्षमता थी, कि सभी राजे इनका सम्मान करते थे। उनके अनिरुद्धदेव नामक एक पुत्र था। उन्हीं विख्यातयशा अनिरुद्धदेवके औरससे उनकी दो स्त्रियोंके गर्भसे दो गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुए। उन दोनोंके नाम थे रूपेश्वर और हरिहर। रूपेश्वरने सभी शास्त्रोंमें पाण्डित्य लाभ किया था।

अनिरुद्धदेवने सुरधाम सिधारनेके पहले अपना राज्य रूपेश्वर और हरिहरके बीच बांट दिया था। छोटा हरिहर बड़े रूपेश्वरको राज्यसे निकाल कर स्वयं समूचे राज्यका अधिकारी बन बैठा।

श्रीरूपेश्वर देव इस प्रकार दुश्मनों द्वारा राज्यसे भगाये जाने पर अपनी स्त्री और आठ घोड़ोंके साथ उत्तर पौलस्त्य देशको चल दिये। वहां शिखरेश्वर नामक राजाके साथ इनकी मित्रता हो गई और वे परम सुखसे वहीं रहने लगे। उसी स्थानमें रूपेश्वरके पद्मनाभ नामक एक गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। यथासमय पद्मनाभके अठारह कन्या और पांच पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे पहलेका नाम पुरुषोत्तम, दूसरेका जगन्नाथ, तीसरेका नारायण, चौथेका मुरारि और पांचवेंका नाम मुकुन्द था।

मुकुन्दके पुत्रका नाम द्विजवर कुमार था। लड़ाई झगड़ा हो जानेके कारण ये जन्म भूमि छोड़ बङ्गालमें आ बसे*। जो हो, कुमारके पुत्रोंमें तीन श्रेष्ठ तथा

* इस स्थानका नाम फतेयाबाद है जो फरीदपुर जिलेके अधीन है। (भक्तिरत्नाकर)

माननोय वैष्णवोंके प्रियतम थे। इन तीन पुत्रों ने इहकाल और परकालमें अपने गोत्रका उद्धार किया है। उन तीनोंके नाम यथाक्रम ये थे,—सनातन, रूप और वल्लभ (महाप्रभुने इनका नाम अनुपम रखा था)। ये तीनों भाई संसारविरागी हो गये और अपनी सम्पद् छोड़ कर भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके कृपाभाजन हुए। श्रीकृष्णकी प्रेमभक्तिरूप सम्पत्ति द्वारा इन्होंने साम्राज्यलाभ किया था। अर्थात् वे सम्राट् हुए थे। इन तीनोंमें सबसे छोटेका नाम वल्लभ था। वे ही हमारे (जीवके) पिता थे। श्रीरूपके साथ नीलाचल पर आते इन्होंने गौड़देशमें गङ्गामें देहत्याग कर श्रीरामचन्द्रका पादपद्मलाभ किया। सनातन और रूपने जा कर मथुरामण्डलके सभी गुप्त तीर्थोंका आविष्कार किया। वहां रह कर उन्होंने श्रीव्रजराजनन्दन श्रीकृष्णके प्रति जो भक्ति है, उसीका सर्वत्र प्रचार किया था। सनातन और रूपके प्रियतम मित्र रघुनाथ दास थे। वे श्रीराधाकृष्णके महाप्रेमरूप समुद्रकी तरंगमालामें हमेशा लहर खाया करते थे। श्रेष्ठ आर्यों ने कहा है, कि त्रिभुवनमें विख्यात सनातन और रूपका दृष्टान्त नहीं है, किन्तु आश्चर्य्य यही है, कि रघुनाथ दासने इन दोनोंका तुल्य पद ग्रहण किया था। गोपबालकका रूप धारण कर दूध दुहनेके बहाने स्वयं श्रीकृष्णने सनातन और रूपको दर्शन दिये थे। सनातन और रूपमें रूप ही छोटा था। उनके प्रणीत ग्रन्थ ये सब हैं, १ हंसदूतकाव्य, २ उद्धवसन्देश, ३ अष्टादश छन्द। स्तव ग्रन्थ—४ उत्कलिकावल्ली, ५ गोविन्दविरुदावली, ६ प्रेमसिन्धुसागर आदि (इन सबोंका समष्टि ही स्तवमाला है। इसमें ७३ छोटे छोटे स्तवग्रन्थ हैं)

७ विदग्धमाधव और ८ ललितमाधव ये दो नाटक, ९ दानकेलिकौमुदी नामकी भाणिका, १० दो रसामृत अर्थात् भक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणि। ११ मथुरामाहात्म्य, १२ पद्यावली, १३ नाटकचन्द्रिका और १४ संक्षिप्तभागवतामृत। रसामृतसे ये सब ग्रन्थ रूप गोस्वामीके संग्रह हैं। इनके एक दूसरे बड़े भाई श्रीलसनातनगोस्वामीकृत ग्रन्थोंमें प्रधान ये हैं,—१ श्रीभागवतामृत, हरिभक्तिविलास और उसकी दिक्‌दर्शिनी नामकी टीका। ३ लीलास्तवटिप्पनी अर्थात् वैष्णवतोषणी।

सुविख्यात नैयायिक वासुदेव सार्वभौम और उनके सहचर विद्यावाचस्पति सनातनके शिक्षागुरु थे। श्रीपाद सनातनने अपनी श्रीभागवत-(तोषणी) व्याख्यामें स्पष्ट रूपसे उसका उल्लेख किया है। यथा—

"भट्टाचार्यसार्वभौमं विद्यावाचस्पतीन् गुरून्।"

यह एक ओर जैसे संस्कृतज्ञ थे, दूसरी ओर अरबी भाषामें भी वैसी ही उनकी यथेष्ट अभिज्ञता थी। इसके सिवा राजकार्य्यमें सनातनकी अतुलनीय क्षमता थी। वे उस समय गौड़के शासनकर्त्ता हुसेन शाहके मन्त्री थे। हुसेन शाह इनके ऊपर कुल कार्य्यभार सौंप कर निश्चिन्त रहते थे। मालदहके प्राचीन रामकेलि ग्रामके ध्वंसावशेषमें आज भी श्रीपाद सनातन और उनके छोटे भाई श्रीरूपके अनेक स्मृति-चिह्न दिखाई देते हैं। इसके सिवा यशोर जिलेके चेङ्गुटिया परगनेमें चेङ्गुटिया ग्रामके पास रूपसनातनका मठ और उनकी खुदवाई हुई एक बड़ी पुष्करिणी नजर आती है। वे श्रीमन्महाप्रभु गौराङ्गदेवके प्रधानतम पार्षद थे।

जिस दिन सनातनको श्रीगौराङ्गकी सुशीतल पदच्छाया मिली, उसी दिनसे इन महाप्रभावशील राजपुरुषके हृदयमें एक विशाल परिवर्त्तन हुआ। विषय व्यापारकी ओरसे इनका मन खिंच गया, राजकार्य्यमें धीरे धीरे उनका चित्त शिथिल होने लगा। मुसलमान राजाके यहां नौकरी करनेकी सनातनकी पहलेसे ही इच्छा न थी, केवल डरके मारे उन्होंने नौकरी पकड़ ली थी।

हुसेन शाहने सनातनको साकरमल्लिक उपाधिसे भूषित किया था। जो हो, सनातनका हृदय धीरे धीरे वैराग्यकी ओर झुकने लगा। किस प्रकार श्रीचैतन्यका आश्रय ले कर तापित प्राणको शीतल करें, धर्म-पिपासा चरितार्थ करें, वे केवल दिनरात इसीकी चिन्ता करने लगे। ऐसी अवस्थामें राजकार्य्यमें शिथिलता अवश्यम्भावी थी।

सनातनके प्रति महाप्रभुका अनुग्रह हुआ। वृन्दावन जाते समय वे रामकेलि ग्राममें पहुंचे। रामकेलि मालदह जिलेमें पड़ता है। आज भी रामकेलि

विद्यमान है, आज भी यहां वैष्णव महोत्सवादि हुआ करते हैं। महाप्रभुके रामकेलि ग्राम पहुंचने पर चारों ओर हर्षध्वनिकी बाढ़ उमड़ने लगी। गौड़ाधिप हुसेन शाह यह अद्भुत जनसङ्घ और हरिध्वनि सुन कर विस्मित हो गये। केशव छत्री, श्रीपाद सनातन और रूपने उन्हें श्रीगौराङ्गदेवके आनेका समाचार दिया। इस समय हुसेन शाह भी श्रीगौराङ्गके अलौकिक प्रभावसे अभिभूत हो उठे थे। जो हो, एक दिन रातको सनातन अपने छोटे भाई रूपको साथ ले दीनवेशमें महाप्रभुके पास गये और भूमि पर दण्डवत् हो दीनातिदीनकी तरह रोने लगे।

दोनोंमें अनेक धर्मालाप हुए। कुछ दिन ठहरनेके बाद महाप्रभुने वृन्दावन जानेकी इच्छा प्रकट की। इस समय श्रीपाद सनातनने महाप्रभुको कुछ सारगर्भ बातें कही थीं।

वैराग्य-तरङ्ग श्रीरूपके हृदयमें इस प्रकार उमड़ आई कि वे अधिक दिन घरमें ठहर न सके। वैराग्यका अवलम्बन कर वे श्रीमद्गौराङ्गचन्द्रसे मिलनेके लिये वृन्दावनकी ओर दौड़ पड़े। इधर सनातन तब भी विषय बंधनसे मुक्त नहीं हुए थे। परन्तु एक वणिक्के यहां वे दश हजार रुपये जमा कर संसार-बंधनसे मुक्त होनेका उपाय सोचने लगे।

राजकार्य्य हो सनातनका कठिन बंधन था। हुसेन शाह सनातनको दक्ष और बुद्धिमान् मन्त्री जान कर किसी हालतसे छोड़ना नहीं चाहते थे। किन्तु संसार वैराग्य और भगवदनुरागने बड़े जोरसे उनके हृदयको अधिकार कर लिया था। आखिर सनातनने यह स्थिर किया, कि हुसेन शाहका अप्रीतिभाजन होना ही मुक्तिका प्रधान उपाय है।

धीरे धीरे सनातनका हृदय वैराग्य और भगवद्भक्तिसे परिपूर्ण हो गया। अपनी अस्वस्थता प्रकट करते हुए उन्होंने नौकरी छोड़ दी। राजकार्य्यमें विशृङ्खला उपस्थित हुई। सनातनकी हालत कैसी है, यह जाननेके लिये हुसेन शाहने राजवैद्यको सनातनके पास भेजा। वैद्यने जा कर देखा, कि सनातनके शारीरिक कोई अस्वस्थता नहीं है। वे रात दिन पण्डितोंके साथ शास्त्रालोचना किया करते हैं। राजवैद्यने यह हाल हुसेन शाहसे जा कहा। हुसेन शाहको अब समझनेमें देर न लगी, कि सनातनका संसारमें रहनेकी बिलकुल इच्छा नहीं है। वे मन्त्रीके ऐसे आचरण पर बड़े बिगड़े जिससे बुद्धिमान् सनातनकी आशालता मुकुलित हुई। सुलतान हुसेन शाह एक दिन अपने नौकरके साथ सनातनके घर पर हठात् जा पहुंचे और असली बात अपनी आंखों देखी।

बादशाहके पूछने पर सनातन अब मनका भाव छिपा न सके, उन्होंने सुलतानसे अपना भाव साफ साफ कह सुनाया। इस पर सुलतान उन्हें भय दिखलाने लगा। सनातनने बड़े विनीत भावसे कहा, आपकी जो इच्छा हो, कर सकते हैं। सनातनका स्वाधीन उत्तर सुन कर हुसेन शाह और भी आग बबूला हो गया। डर दिखलानेसे कहीं सनातनका भाव बदल न जाय, यह सोच कर उसने सनातनको कैद कर लिया। इस समय सनातनने एक ऐसी कविता बनाई जिसे सुन कर जिस रक्षकके हवाले उन्हें कर दिया था, उसका हृदय पिघल गया। लेकिन वह करता ही क्या, राजाज्ञाको किस प्रकार टाल सकता था। सनातनने उसे समझा कर कहा, सुलतान दक्षिणकी ओर गये हैं, आनेमें विलम्ब है। आने पर मैं उन्हें समझा बुझा दूंगा। आखिर सात हजार रुपये ले कर उसने सनातनको छोड़ दिया। अब वे छुटकारा पा कर ईशान नामक एक नौकरके साथ श्रीगौराङ्गके उद्देशसे श्रीवृन्दावनकी ओर चल दिये। जंगली और पहाड़ी रास्तामें उन्हें कई दिन भूखों रहना पड़ा। एक पहाड़ पर आठ डकैतोंके चंगुलमें पड़ कर उनके प्राण जाने जाने पर हो गये थे। वृन्दावन यात्राके पहले ईशानने आठ हजार अशर्फियां साथ लेली थीं। सनातनको यह बिलकुल मालूम नहीं था। उन अशर्फियोंको आठो डकैतोंके हवाले कर ईशानने सनातनकी जान बचायी। उसने केवल सात ही अशर्फी दी थी, एक अपने पास रख ली थी। सनातनने ईशानसे कहा, तुम रुपये ले कर मेरे साथ चले हो, इसलिये मेरे साथ जानेकी अब तुम्हारी जरूरत नहीं। वही एक अशर्फी ले कर तुम चले जाओ।' ईशान बड़ा ही दुःखित हो कर वहांसे विदा हुआ।

सनातन हाजीपुर पहुंचे, श्रीकान्त हाजीपुरमें हुसेन शाहके लिये घोड़ खरीद रहे थे। वे सनातनके बहनोई होते थे। श्रीकान्तने दूर हीसे साधारण वस्त्र पहने मैले कुचेले वेशमें सनातनको आते देखा। आपसमें मिलने पर जब सब बातें मालूम हुईं, तब श्रीकान्तने सनातनके एक मोट कम्बल दे कर वह सङ्कल्प छोड़ देनेके लिये तरह तरहके उपदेश दिये। किन्तु सनातनने एक भी न सुना। वे वाराणसीकी ओर चल दिये। जब उन्होंने सुना कि महाप्रभु काशीधाम पहुंच गये तब उनके आनन्दका पारावार न रहा। काशी जा कर वे बड़ी व्यग्रतासे महा प्रभुकी खोज करने लगे।

इस समय महाप्रभु चन्द्रशेखर नामक किसी वैद्यके घर ठहरे हुए थे। सनातनका अनुसन्धान सफल हुआ। महाप्रभु सनातनका दैन्य आर्त्तनाद सुन कर बड़े व्याकुल हुए उनकी दोनों आंखें डब डबा आईं।

महाप्रभुने बड़े प्यारसे आलिङ्गन कर सनातनसे कहा मैं तुम्हारे जैसे भक्तको स्पर्श कर पवित्र हो गया।

इसके बाद चन्द्रशेखर और तपन मिश्रसे वे मिले। चन्द्रशेखरको जब मालूम हुआ, कि वे सिर्फ एक वस्त्र ले- कर आये हैं, तब उन्होंने पहननेके लिये सनातनको एक नया कपड़ा दिया। सनातनने उसे न लेते हुए कहा, नया वस्त्र ले कर मैं क्या करूंगा, मुझे एक पुराना कपड़ा दीजिये। सनातनने पुराना वस्त्र ले कर उसे फाड़ डाला और उससे दो कौपीन और एक झूला बनाये। इस समय वे बिलकुल वैरागीसे दिखाई देने लगे। यह वेश देख कर दयामय महाप्रभु बड़े आनन्दित हुए। भोजनका समय उपस्थित हुआ, सनातन महाप्रभुका जूंठा पा कर कृतार्थ हुए। एक महाराष्ट्री ब्राह्मण यद्यपि सनातनको प्रतिदिन अपने यहां जिमाते थे, पर उन्होंने प्रतिदिन ब्राह्मण का अन्न ध्वंस करना अच्छा नहीं समझा। इस प्रकार काशीमें महाप्रभुके साथ रह कर वे माधुकरी वृत्तिके अव- लम्बन पर दिन बिताने लगे।

सनातनके विनय, वैराग्य और दैन्य देख कर महाप्रभु परम सन्तुष्ट हुए। सनातन कौपीन पहनते, माधुकरी वृत्तिसे जीवन बिताते थे, फिर भी श्रीकान्तका दिया हुआ मोट कम्बल सर्वदा उनके शरीर पर रहता था। महाप्रभुने देखा, कि सनातनके शरीर पर अब मूल्यवान् कम्बल शोभा नहीं पाता। उन्होंने कुछ कटाक्ष भावमें मोट कम्बलकी ओर दृष्टि फेरी। बुद्धिमान् सनातन उसी समय महाप्रभु- का मनोगत भाव समझ कर स्नान करने गंगामें चले गये। वहां उन्होंने देखा, कि एक गौड़ीय अपने शरीरका फटा हुआ कपड़ा सुखा रहा है। सनातनने उससे कहा, कि मेरा यह कम्बल आप लीजिये और अपना चीथड़ा मुझे दीजिये। गौड़ीयाने पहले तो इसे मजाक समझा, पीछे सना- तनके विशेष हठ करने पर आपसमें बदल लिया। सनातन बड़े हृष्ट चित्तसे वही चीथड़ा ले कर चल दिये। गौड़ीया विस्मित भावसे जहां तक नजर जा सकी सनातनको देखता रहा। इसके बाद सनातन महाप्रभुके पास पहुंचे।

श्रीगौराङ्ग महाप्रभु सनातनके आचरण पर बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने समझा, कि प्रेमभक्तिका विमल धर्म प्रचार करनेके लिये श्रीरूप और सनातन ही उप- युक्त पात्र हैं। इसके पहले वे श्रीरूपको शक्तिसञ्चार कर उपदेश दे चुके थे। अब वे काशीधाममें वैष्णव- धर्मके सारसिद्धान्तका उपदेश सनातनको देने प्रवृत्त हुए। श्रीपाद सनातनने जिज्ञासु भावमें महाप्रभुके पास बैठ कर जो सब धर्मतत्त्व सुने, उनके ग्रन्थोंमें वही अभिव्यक्त हुए हैं। काशीधाममें ही श्रीपाद सनातनने महाप्रभुसे जो सब उपदेश पाये थे, चैतन्यचरितामृत ग्रन्थमें उन्हीं उपदेशोंका संक्षिप्त मर्म लिपिबद्ध है।

इसके बाद महाप्रभुके आदेशसे वे वृन्दावन गये। वहां जा कर वे कठोर साधनामें लग गये।

श्रीपाद सनातन इस समय जो सब ग्रन्थ लिख गये हैं गौड़ीय वैष्णवोंका वही प्रधान अवलम्बन है। उनके बनाये हुए हरिभक्तिविलास और उसकी टीका गौड़ीय वैष्णवोंके दैनिक आचार व्यवहार और भजनपूजनका प्रधान ग्रन्थ है। उनकी 'तोषणी' व्याख्यामें श्रीमद्- भागवतके दशमस्कन्धके श्लोकोंका जैसा अति अद्भुत समुज्ज्वल आलोक विकीर्ण हुआ है, किसी प्राचीन टीकामें श्रीभागवतका प्रकृत मर्म वैसा नहीं दिखलाया गया है।

उनका बनाया वृहद्भागवतामृत वैष्णव सिद्धान्तका एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। भजननिपुण सनातन जब विषय

व्यापारमें लिप्त थे, उस समय भी वे हुसेन शाहके वृहत् राज्यके महामन्त्री थे। सनातनने जब भक्ति राज्यमें प्रवेश किया, तब भी उनका पदगौरव प्रधानतम मन्त्रीकी तरह हो उठा। कौपीनधारी सनातन जो विधि व्यवस्था कर गये हैं, सारा वैष्णवसमाज उसीको मान कर चलता है। श्रीवृन्दावनमें भुवनविख्यात श्रीगोविन्दजीका जो विशाल मन्दिर है, वह इन्हीं कौपीन-कन्था-करङ्गधारी सनातन और उनके छोटे भाई श्रीरूपके प्रयत्नसे बनाया गया है। इन दोनों भाइयोंके कीर्त्तिकलापके अनेक चिह्न आज भी श्रीवृन्दावनधाममें दिखाई देते हैं। फलतः वर्त्तमान श्रीवृन्दावनतीर्थ इन्हींके विशालकीर्त्तिका साक्षिस्वरूप है। आज भी भक्त लोग भक्तिपूत चित्तसे श्रीवृन्दावनमें सनातनका समाधिस्थान देखने आते हैं। जयपुर आदि स्थानोंमें आज भी सनातनके अनेक अनुशिष्य वर्त्तमान हैं। सनातन बीच बीचमें पुरीधाम जा कर श्रीमन्महाप्रभुके दर्शन कर आते थे। उड़ीसामें भी सनातनकी शिष्यशाखा है। तोषणीटीकाकी भूमिका पढ़नेसे जाना जाता है, कि सनातनने जब भागवतके दशम स्कन्धकी यह टीका लिखनी आरम्भ की, तब श्रीमद् गोपालभट्ट और दास रघुनाथ गोस्वामी आदि उनके सहचर थे।

श्रीपाद सनातन दीर्घजीवी थे, महाप्रभुके तिरोधानके बहुत पीछे ये श्रीवृन्दावनधाममें वैशाखीपूर्णिमाको सुरधाम सिधारे।

गौड़ीय वैष्णव जनसाधारणका विश्वास है, कि गोस्वामीने किसीको भी मन्त्रदीक्षा नहीं दी। किन्तु उनके समसामयिक उत्कलका 'निराकार-सारस्वत' ग्रन्थ पढ़नेसे जाना जाता है, कि उन्होंने महाप्रभु श्रीचैतन्य देवके आदेशसे उड़ीसाके प्रसिद्ध भक्तकवि अच्युत दासके कानोंमें मंत्र दिया था।

सनातन चक्रवर्त्ती—एक प्राचीन वङ्गकवि। इन्होंने द्वादशस्कन्ध भागवत सुललित छन्दमें वङ्गभाषामें अनुवाद किया।

सनातनतम (सं० पु०) अयमेषामतिशयेन सनातनः तमप्। विष्णु। (भारत १३।१४९।१०६)

सनातनधर्म (सं० पु०) १ प्राचीन धर्म। २ परम्परागत धर्म। ३ वर्त्तमान हिन्दू धर्मका वह स्वरूप जो परम्परासे चला आता हुआ माना जाता है। इस धर्ममें पुराण, तन्त्र, बहुदेवोपासना, प्रतिमापूजन, तीर्थमाहात्म्य सब समान रूपसे माननीय हैं।

सनातनपुरुष (सं० पु०) विष्णु भगवान्।

सनातनशर्मन् (सं० पु०) तात्पर्यदीपिका नाम्नी मेघदूतटीकाके प्रणेता।

सनातनी (सं० स्त्री०) सनातन टित्वात् ङीप्। १ दुर्गा। २ लक्ष्मी। ३ सरस्वती। ४ जो बहुत दिनोंसे चला आता हो, जिसकी परंपरा बहुत पुरानी हो। ५ सनातनधर्मका अनुयायी।

सनाथ (सं० त्रि०) नाथेन प्रभुणा सह वर्त्तमानः। १ प्रभुके साथ वर्त्तमान, जिसकी रक्षा करनेवाला कोई स्वामी हो। (स्त्री०) २ सनाथा जीवद्भर्तृका स्त्री, वह स्त्री जिसका स्वामी मौजूद हो।

सनाथता (सं० स्त्री०) सनाथस्य भावः तल् टाप्। सनाथका भाव या धर्म।

सनाभ (सं० पु०) सनाभि, सहोदर भाई।

सनाभा (सं० स्त्री०) श्वेत पाटलवृक्ष, सफेद पढारका पेड़।

सनाभि (सं० पु०) समानो नाभिर्गोत्रमस्य। (ज्योतिर्जनपदस्येति। पा ६।३।८५) इति समानस्य स। १ सपिण्ड, एक ही पूर्वजसे उत्पन्न पुरुष। २ सहोदर भाई। (त्रि०) ३ तुल्य, समान। ४ स्नेहयुक्त।

सनाभ्य (सं० पु०) सपिण्ड, ज्ञाति, सात पीढ़ियोंके भीतर एक ही वंशका मनुष्य। (मनु ५।८४)

सनाम (सं० त्रि०) समानं नाम यस्य, समानशब्दस्य, स आदेशः। समान नामयुक्त, एक नामका।

सनामक (सं० त्रि०) समानं नाम यस्य, कन्। १ समान नामयुक्त। (पु०) २ शोभाञ्जनवृक्ष, सहिजनका पेड़।

सनामन् (सं० त्रि०) समान नामयुक्त।

सनाय (अ० स्त्री०) एक पौधा जिसकी पत्तियां दस्तावर होती हैं, स्वर्णपत्री, सोनामुखी।

इस पौधेकी अधिकतर जातियाँ अरब, मिस्र, यूनान, इटली आदि पश्चिमके देशोंमें होती हैं। केवल एक जातिका पौधा भारतवर्षके सिन्ध, पंजाब, मन्द्राज आदि

प्रान्तोंमें थोड़ा बहुत होता है। इसकी पत्तियाँ इमलीकी तरह एक सींकेके दोनों ओर लगती हैं। एक सींकेमें ५से ८ जोड़े तक पत्तियाँ लगती हैं। ये पत्तियां देखनेमें पीलापन लिये हुरे रंगकी होती हैं। इसमें चिपटी लंबी कलियाँ लगती हैं जो सिरे पर गोल होती हैं। इसकी पत्तियोंका जुलाव हकीम और वैद्य दोनों साधारणतः दिया करते हैं। कलियोंमें भी रेचन गुण होता है, पर पत्तियोंसे कम। वैद्यकमें सनाय रेचक तथा मन्दाग्नि, विषम ज्वर, अजीर्ण, प्लीहा, यकृत्, पाण्डु रोग आदिको दूर करनेवाली मानी गई है।

सनायु (सं० त्रि०) जो अपने लिये सनातन अर्थात् नित्य अग्निहोत्रादि कर्मकी इच्छा करते हैं।

सनारु (सं० पु०) वैदिक आचार्य भेद।

सनासन (हिं० पु०) सनसन देखो।

सनाह (हिं० पु०) कवच, बकतर।

सनि (सं० पु०) सन (खनिकष्यज्ञीति। उण् ४।१०९) इति इ। १ पूजा। २ दान। (पु०स्त्री०) ३ अध्येषणा। ४ दिक्।

सनिकाम (सं० त्रि०) दानार्थं इच्छुक।

सनिति (सं० स्त्री०) लाभ। (ऋक् १।८८।६)

सनितृ (सं० त्रि०) सनु-दाने तृच्। दाता, दान देनेवाला।

सनित्र (सं० क्ली०) भजन साधन धन।

सनित्व (सं० त्रि०) धनलाभयुक्त। (ऋक् ८।७०।८)

सनित्वन् (सं० क्ली) सम्भक्ता, पुत्रपौत्रादि।

सनिद्र (सं० त्रि०) निद्रया सह वर्त्तमानः। निद्राके साथ वर्त्तमान, निद्रायुक्त।

सनिन्द (सं० त्रि०) निन्दया सह वर्त्तमानः। निन्दाविशिष्ट, निन्दित।

सनिमेष (सं० त्रि०) निमेषेण सह वर्त्तमानः। निमेष विशिष्ट।

सनियम (सं० पु०) नियमेन सहः वर्त्तमानः। नियमयुक्त।

सनिर्वेद (सं० त्रि०) निर्वेदविशिष्ट, वैराग्ययुक्त।

सनिःश्वास (सं० त्रि०) निःश्वासके साथ वर्त्तमान।

सनिष्ठ (सं० त्रि०) श्रेष्ठ धनवान्।

सनिष्ठिव (सं० क्ली०) निष्ठीवेन सह वर्त्तमानं। सनिष्ठेव देखो।

सनिष्ठेव (सं० क्ली०) अम्बुकृत, निष्ठीवनयुक्त वाक्य।

सनिष्यंद (सं० त्रि०) प्रवाहशील, गतिविशिष्ट।

सनिष्यु (सं० त्रि०) सम्भक्तु-काम, सम्विभाग करनेमें अभिलाषी। (ऋक् १।१३२।२)

सनिस्रस (सं० त्रि०) हीनाङ्ग। (अथर्व ५।६।४)

सनी (सं० स्त्री०) सन-बाहुलकात् ङीष्। सनि देखो।

सनीचर (हिं० पु०) शनैश्चर देखो।

सनीचरी (हिं० पु०) शनिकी दशा, जिसमें दुःख, व्याधि आदिकी अधिकता होती है।

सनीड़ (सं० अव्य) नीड़ेन वासस्थानेन सह वर्त्तमानः। १ निकट, पास। २ नीड़युक्त, पड़ोसमें, बगलमें। (त्रि०) ३ पड़ोसी, बगलका। ४ समीपका, पासका।

सनीप (सं० पु०) देशभेद और उस देशके अधिवासी।

सनीयस् (सं० त्रि०) श्रेष्ठ धनशाली।

सनुतृ (सं० त्रि०) सनिता, दाता। (ऋक् १०.७।४)

सनूतर (सं० त्रि०) सम्भक्तृतर। (ऋक् ३।३८।४)

सनूत्य (सं० त्रि०) अन्तर्हित देशभव।

सनूदपर्वत (सं० पु०) पर्वतविशेष, पारियात्र पर्वत।

सनेमि (सं० त्रि०) १ नेमिविशिष्ट, पहियेके साथ। (अव्य०) २ क्षिप्रम्, जल्दी। (पु०) ३ पुराण। (नैघण्टु ३।२७)

सनेरु (सं० त्रि०) सम्भक्ता।

सनेह (हिं० पु०) स्नेह देखो।

सनेही (हिं० वि०) १ स्नेह या प्रेम करनेवाला, प्रेमी। (पु०) २ प्रियतम, प्यारा।

सनोजा (सं० त्रि०) चिरज्ञात। (ऋक् १०।२६।८)

सनोवर (अ० पु०) चीड़का पेड़।

सन्त (सं० पु०) १ संहतल, दोनों जुड़ा हुआ हाथ। २ साधु, संन्यासी, विरक्त या त्यागी पुरुष, महात्मा। २ हरिभक्त, ईश्वरका भक्त। ३ एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें २७ मात्रायें होती हैं।

सन्तक्षण (सं० क्ली०) क्षतकरण, नुकसान करना।

सन्तत (सं० क्ली०) सम्-तन्-क्त, 'समो वा हिततयोः' इति पक्षे मलोपाभावः। १ सतत, अनादि, अनन्त, अविच्छिन्न। (त्रि०) २ हतविशिष्ट, सम्यक् विस्तृत। सम्

शब्दके बाद तत शब्द रहनेसे विकल्पमें सम् शब्दके मकार-का लोप होता है। सन्तत, सतत। (अव्य०) ३ सदा निरन्तर, बराबर, लगातार।

सन्ततज्वर (सं० पु०) ज्वरभेद। सात दिन, दश दिन या बारह दिन तक लगातार जो ज्वर रहता है उसे संतत कहते हैं। ७, १० या १२ दिन यह जो अनियत कालकी कल्पना की गई है उससे समझना होगा; कि वातिकादि भेद अर्थात् वायुकी प्रबलतासे ७ दिन, पित्तकी प्रबलतासे १० दिन, पित्तकी प्रबलतासे १२ दिन लगातार ज्वर भुगतना होगा। इसकी गणना विषम ज्वरमें की जाती है।

सन्तताभ्यास (सं० पु०) सन्ततं यथा तथा अभ्यासः। निरन्तराभ्यास, स्वाध्याय। (भूरिप्र०)

सन्तति (सं० स्त्री०) सम्-तम्-क्तिन्। १ गोत्र। २ पंक्ति। ३ विस्तार, प्रसार। ४ परम्पराभव, किसी बातका लगातार होता रहना। ५ बालबच्चे, सन्तान, औलाद। ६ व्याप्ति, फैलाव। ७ पारम्पर्य्य। ८ अविच्छेद, धारा। ९ दल, झुण्ड। १० दक्षकी कन्या और क्रतुकी पत्नी। (मार्कं० पु० ५०।२३) ११ अलर्कके एक पुत्रका नाम।

सन्ततिपथ (सं० पु०) योनि, जिस मार्गसे संतान उत्पन्न होती है, भग।

सन्ततिमत् (सं० त्रि०) सन्तति अस्त्यर्थे मतुप्। सन्तति-विशिष्ट, औलादवाला।

सन्ततिहोम (सं० पु०) होमभेद।

सन्ततेयु (सं० पु०) रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम।

सन्तनि (सं० त्रि०) सतत गमनकारी, हमेशा चलनेवाला।

सन्तनु (सं० पु०) राधाके साथ रहनेवाला एक बालकका नाम। (पद्मरत्न २।४।४६)

सन्तपन (सं० क्ली०) सम्-तप-ल्युट। सम्यक्‌रूपसे तपन।

सन्तप्त (सं० त्रि०) सम्-तप-क्त। १ परिश्रम द्वारा श्रान्त, बहुत थका हुआ। २ जला हुआ। ३ जिसे बहुत अधिक सन्ताप हो, दुःखी, पीड़ित। ४ विमनस, मलिन मन।

सन्तमक (सं० पु०) एक प्रकारका रोग, दमा।

सन्तमस् (सं० क्ली०) समन्तात् तमः (अवसमन्धेभ्यस्तमसः। पा ५।४।७९) इति अच्। १ अन्धार, तम, अंधेरा। २ मोह।

सन्तरण (सं० क्ली०) सम्-तृ-ल्युट्। १ सम्यक् प्रकारसे तरण, अच्छी तरह तैरने या पार होनेकी क्रिया। (त्रि०) २ तारक, तारनेवाला। ३ नाशक, नष्ट करनेवाला।

सन्तरुत (सं० त्रि०) उपद्रवके निवारक।

सन्तर्जन (सं० पु०) १ डाँट डपट करना, डराना धमकाना। २ ताड़ना, भगाना। ३ कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम।

सन्तर्दन (सं० पु०) भागवतके अनुसार राजा धृष्टकेतुके एक पुत्रका नाम।

सन्तर्पक (सं० त्रि०) सन्तर्पकारक, तृप्तिकारक।

सन्तर्पण (सं० क्ली०) सन्तर्पयति इन्द्रियानीति सम्-तृप्-णिच्-ल्युट्। १ एक प्रकारका चूर्ण जिसमें दाख, अनार, खजूर, केला, लाजाका चूर्ण, मधु और घृत पड़ता है। (त्रि०) २ तृप्तिकारक, संतुष्ट करनेवाला।

सन्तर्पणीय (सं० त्रि०) सम्-तृप्-णिच्-अनीयर्। सन्तर्पण-योग्य।

सन्तर्प्य (सं० त्रि०) सम्-तर्पि-यत्। सन्तर्पणार्ह।

सन्तस्थान (सं० पु०) संतोंके रहनेका स्थान, साधुओंका निवासस्थान, मठ।

सन्ताड्य (सं० त्रि०) सम्-तड़-ण्यत्। सम्यक्‌रूपसे ताड़नके योग्य, भगाने लायक।

सन्तान (सं० पु०) सन्तनोति विस्तारयति पुत्रपुष्पादीनिति सम्-तन-विस्तारे (तनो ते रूपसंख्यानं। पा ३।११४०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ण। १ कल्पवृक्ष, देवतरु। संतन्यते इति तन्-घञ्। २ वंश, कुल। ३ बालबच्चे, लड़के वाले, औलाद ४। विस्तार, फैलाव। ५ प्रबन्ध, इन्तजाम। ६ धारा, वह प्रवाह जो अविच्छिन्न रूपसे चलता हो। ७ व्याप्ति। ८ अस्त्रविशेष। महाभारतमें लिखा है, कि इस अस्त्रसे विद्ध होने पर मनुष्य पञ्चत्वको प्राप्त होता है। (५।९६।४०)

सन्तानक (सं० पु०) सन्तान-कन्। १ कल्पवृक्ष, देवतरु। २ पुराणनुसार एक लोक जो ब्रह्मलोकसे परे हैं। (त्रि०) ३ विस्तृत, फैला हुआ।

सन्तानकमय (सं० त्रि०) १ देवतरुविशिष्ट। २ पुत्रादियुक्त।

सन्तानगणपति (सं० पु०) गणपतिभेद।

सन्तानगोपाल (सं० पु०)गोपालभेद।

सन्तानवत् (सं० त्रि०) सन्तान अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। सन्तानविशिष्ट, औलादवाला।

सन्तानिक (सं० त्रि०) सन्तानविशिष्ट।

सन्तानिका (सं० स्त्री०) सन्तानो विस्तारोऽस्त्यस्या इति सन्तान-ठन्-टाप्। १ मर्कटजाल नामकी घास। २ छुरीका फल, चाकूका फल। ३ फेन। ४ दुग्धका सर, मलाई, साढ़ी। इसका गुण—गुरु, शीतल, बलकर, पित्त, रक्तवातनाशक। ५ सुमिष्ट द्रव्यविशेष। पाक-राजेश्वरमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है,—चार शराव या चार सेर दूधको उबाल कर मलाई निकाले। पाव भर घीमें उसे भून कर आध सेर चाशनीमें उसे मिलावे। इसीका नाम सन्तानिका है। यह अत्यन्त स्वादिष्ट और गुरु होती है। (पाकराजेश्वर)

५ क्षीरसागर।

सन्तानिन् (सं० पु०) पारम्पर्य।

सन्तानित (सं० त्रि०) सन्तान अस्त्यर्थे-इतच्। विस्तारित, फैला हुआ।

सन्ताप (सं० पु०) सं-तप-घञ्। १ अग्निज ताप, अग्नि या धूप आदिका ताप, जलन, आंच। संस्कृत पर्याय—संज्वर, ताप, प्लोष, उष्ण,। २ सम्यक् ताप, कष्ट, दुःख। ३ मानसिक कष्ट, मनोव्यथा। ४ रिपु, शत्रु। ५ ज्वर। ६ दाहरोग। दाहरोग देखो।

सन्तापन (सं० पु०) सन्तापयतीति सं-तप-णिच्-ल्यु। १ कामदेवके पांच वाणोंमेंसे एक वाणका नाम। २ सन्ताप देनेकी क्रिया, जलाना। ३ बहुत अधिक दुःख या कष्ट देना। ४ पुराणानुसार एक प्रकारका अस्त्र जिसके प्रयोगसे शत्रुको सन्ताप होना माना जाता है। (त्रि०) ५ ताप पहुंचानेवाला, जलानेवाला। ६ दुःख देनेवाला, कष्ट पहुंचानेवाला।

सन्तापवत् (सं० त्रि०) सन्ताप अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। सन्तानविशिष्ट, औलादवाला।

सन्तापित (सं० त्रि०) सं-तप-णिच्-क्त। सन्तापयुक्त, जिसे बहुत सन्ताप पहुंचाया गया हो।

सन्तापितृ (सं० त्रि०) सम्-तप्-णिच्-तृच्। सन्तापकारक, दुःख देनेवाला।

सन्तापी (सं० पु०) सन्ताप देनेवाला, दुःखदायी।

सन्ताप्य (सं० त्रि०) सम्-तप्-णिच्-ण्यत्। १ सन्तापाई, कष्ट या दुःख देनेके योग्य। २ जलानेके योग्य, तपानेके लायक।

सन्तार (सं० पु०) १ तैरना। २ तरण, पार करना।

सन्तारक (सं० त्रि०) सन्तारकारी, तैरनेवाला।

सन्तार्य्य (सं० त्रि०) सन्तरणशील, तैरनेवाला।

सन्ति (सं० स्त्री०) सनु दाने क्तिच् (सनः क्तिचि-लोपश्चास्यान्यतरस्यां। पा ६।४।४५) इति न लोपाभावः। १ दान। २ अवसान, अन्त।

सन्तुषित (सं० पु०) देवपुत्रभेद।

सन्तुष्ट (सं० त्रि०) सं-तुष-क्त। १ जिसका सन्तोष हो गया हो, जिसकी तृप्ति हो गई हो। २ जो माना गया हो, जो राजी हो गया हो।

सन्तृप्ति (सं० स्त्री०) सम्-तृप्-क्तिन्। सम्यक् तृप्ति, सन्तोष।

सन्तेजन (सं० क्ली०) तीक्ष्णीकरण, तेज करना।

सन्तोदिन् (सं० त्रि०) आघातकारी।

सन्तोष (सं० पु०) सम्-तुष-घञ्। १ मनकी वह वृत्ति या अवस्था जिसमें मनुष्य अपनी वर्त्तमान दशामें ही पूर्ण सुखका अनुभव करता है। पर्याय—धृति, स्वास्थ्य। जो सभी विषयोंमें सन्तुष्ट रहते हैं उन्हें फिर किसी विषयमें दुःख नहीं होता। पातञ्जल दर्शनमें लिखा है, कि सन्तोष एक योगाङ्ग है, यह नियमके अन्तर्गत है। शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये सब नियम कहलाते हैं। योगियोंको पहले शौच सिद्धि हो जाने पर सन्तोष अवलम्बन करना चाहिये। चाहे जिस अवस्थामें क्यों न रहे, सभी अवस्थामें सन्तोष रखना होगा। इस प्रकार जब सन्तोषकी सिद्धि होती है, तब अनुत्तम सुख लाभ होता है।

शास्त्रमें लिखा है, कि योगी जब योगमार्गका अवलम्बन करें, तब पहले यत्नपूर्वक बाह्यशौच और पीछे अभ्यन्तर-शौचसे सिद्ध होंगे। इस अभ्यन्तर-शौचसे सिद्धि होनेसे ही सन्तोष लाभ होता है। सुखके लिये प्राणांत न करके यदि विषय सुखको दुःखका कारण समझ कर परित्याग किया जाय, तो सभी विषयों और

सभी अवस्थामें सन्तोषलाभ होता है। इस सन्तोषके सिद्ध होनेसे अखण्ड सुख प्राप्त होता है। (पातञ्जलद०)

२ शान्ति, तृप्ति। ३ प्रसन्नता, सुख, हर्ष, आनन्द।

सन्तोषण (सं० क्ली०) सम्-तुष-ल्युट्। संतोष, सन्तुष्टि।

सन्तोषणीय (सं० त्रि०) सम्-तुष्-अनीयर्। सन्तोषार्ह, सन्तोष करने योग्य।

सन्तोषवत् (सं० त्रि०) सन्तोष अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। सन्तोष युक्त, संतुष्ट, आल्हादित।

सन्तोषित (सं० पु०) जिसका सन्तोष हो गया हो, संतुष्ट। इस शब्दका प्रयोग केवल हिन्दी कवितामें होता है।

सन्तोषिन् (सं० त्रि०) सन्-तुष-णिनि। सन्तोषविशिष्ट, सन्तुष्ट।

सन्तोष्टव्य (सं० क्ली०) संतुष्टिके योग्य।

सन्तोष्य (सं० त्रि०) सम् तुष यत्। सन्तोषार्ह, सन्तोषके लायक।

सन्त्य (सं० त्रि०) १ फलप्रद, फल देने वाला। (पु०) २ अग्निदेव। (ऋक् १।१५।१२)

सन्त्याग (सं० पु०) सम् त्यज-घञ्। सम्यकरूपसे त्याग, एक दम छोड़ देना।

सन्त्यागिन् (सं० त्रि०) सम्-त्यज्-णिनि। सम्यकरूपसे त्यागकारी, एकदम छोड़ देनेवाला।

सन्त्याज्य (सं० त्रि०) सम्-त्यज्-ण्यत्। त्यागयोग्य, छोड़ देने लायक।

सन्त्राण (सं० क्ली०) सम्-त्रा-ल्युट्। सम्यकरूपसे त्राण, अच्छी तरह रक्षा करनेकी क्रिया। (मार्कण्डेयपु० ६१।७१)

सन्त्रास (सं० पु०) सम्-त्रसु-घञ्। सम्यक् भय।

सन्त्रासन (सं० क्ली०) सम्-त्रस्-णिच् ल्युट्। सम्यक् त्रास, भय।

सन्दंश (सं० पु०) सन्दशतीवेति सम्-दन्श-अच्। १ कङ्कमुख, संड़सी नामका लोहेका औजार। यह दो प्रकारका होता है, सनिग्रह सन्दंश और अनिग्रह सन्दंश। कर्मकारकी संड़सीकी तरह अर्थात् कीलदार औजारको सनिग्रह सन्दंश और जिसमें कील नहीं होती उसे अनिग्रह सन्दंश कहते हैं। ये दोनों प्रकारके औजार १६ अंगुल लंबे होंगे। चमड़े, मास, शिरा और स्नायुमें चुभे हुए कांटे आदि इस औजारसे निकाले जाते हैं।

२ न्याय या तर्कके अनुसार अपने प्रतिपक्षीको दोनों ओरसे उसी प्रकार जकड़ या बांध देना जिस प्रकार सड़सीसे कोई बरतन पकड़ते हैं।

सन्दंशक (सं० पु०) सन्दंश स्वार्थे कन्। सन्दंश।

सन्दंशिका (सं० स्त्री०) सन्दशतीवेति सम् दन्श-ण्वुल्, टापि अत इत्वं। १ संड़सी। २ चिमटी। ३ कैंची।

सन्दंशित (सं० त्रि०) सम्-दंश-क्त। सम्यक्‌रूपसे दंशित।

सन्ददि (सं० त्रि०) सम्मुखमें सम्यक् दानकारी।

सन्दर्प (सं० पु०) सन्-दृप् घञ्। सम्यक् दर्प, अत्यन्त अभिमान।

सन्दर्भ (सं० पु०) सम् दृभ ग्रन्थने-घञ्। १ रचना। २ प्रबन्ध। ३ ग्रन्थन। ४ ग्रन्थ विशेष, परम्परान्वित रचना।

जिस ग्रन्थमें गूढ़ अर्थोंका प्रकाश और सारोक्ति है तथा जो नाना अर्थविशिष्ट है और जिससे सभी विषय जाने जाते हैं, उसे सन्दर्भ कहते हैं। सन्दर्भ ग्रन्थको टीका ग्रन्थ विशेष कहा जा सकता है। ५ संग्रह। ६ विस्तार।

सन्दरु—पञ्जाब प्रदेशके बसहर राज्यान्तर्गत एक गिरिसङ्कट, हिमालयको पार कर उस पथसे कुणावर जाया जाता है। उसका सर्वोच्च स्थान समुद्रपृष्ठसे १६ हज़ार फुट ऊंचा है। यह अक्षा० ३१°२४´ उ० तथा देशा० ७८°२´ पू०के बीच विस्तृत है। वर्षमें सिर्फ दो मास यह स्थान वर्फहीन रहता है। उस समय स्थानीय अधिवासी उसी पथसे जाते आते हैं।

सन्दर्श (सं० पु०) सम्-दृश-अच्। सन्दर्शन।

सन्दर्शन (सं० पु०) सम् दृश-ल्युट्। १ सम्यक् प्रकारसे दर्शन, अच्छी तरह देखनेकी क्रिया, अवलोकन। २ परीक्षा, इम्तहान। ३ ज्ञान। ४ मूर्त्ति, आकृति, शक्ल। ५ अच्छी तरह दिखाना। ६ रामायणके अनुसार एक द्वीपका नाम।

सन्दर्शनद्वीप (सं० पु०) द्वीपभेद। (रामायण ४।४०।६४)

सन्दर्शनपथ (सं० पु०) सन्दर्शनस्य पन्था, पच् समासान्त। सन्दर्शनका पथ, अवलोकनपथ।

सन्दर्शयितृ (सं० त्रि०) सम्-दृश णिच् तृच्। सम्यक्‌रूपसे दर्शनकारक, अच्छी तरह देखनेवाला।

सन्दष्ट (सं० त्रि०) सम्-दंश क्त । १ संश्लिष्ट, संलग्न । २ काटना, नोचना ।

सन्दातृ (सं० क्ली०) सम्-दा-तृच् । सम्यक् दान ।

सन्दान (सं० क्ली०) सं-दा-ल्युट् । १ दाम, रस्सी । २ शृङ्खल, बांधनेकी सिकड़ी आदि । ३ सम्यक् रूपसे दान । ४ बंधन, बांधनेकी क्रिया । ५ सम्यक् छेदन । ६ हाथीके दोनों जानुका अधोभाग, गुल्फका ऊद्धर्वदेश, कपोलदेश, जहांसे उसका मद बहता है ।

सन्दानिका (सं० स्त्री०) विट्खदिर ।

सन्दानित (सं० त्रि०) संदानं जातमस्येति सन्दान-इतच् । १ बद्ध, शृङ्खलित । २ पदादिमें बद्ध । ३ छिन्न ।

सन्दानिनी (सं० स्त्री०) गोगृह, गोशाला ।

सन्दाय (सं० पु०) सम्यक् दाय ।

सन्दाव (सं० पु०) सं-द्रु (समि-युद्रुदुवः । पा ३।३।२३) इति घञ् । पलायन, भागनेकी क्रिया ।

सन्दिग्ध (सं० त्रि०) सम् दिह क्त । १ संदेहयुक्त, जिसमें किसी प्रकारका संदेह हो । (पु०) उत्तराभास, मिथ्या उत्तरका एक लक्षण । ३ एक प्रकारका व्यंगय जिसमें यह नहीं प्रकट होता, कि वाचक या व्यंजकमें व्यंगय है ।

सन्दिग्धत्व (सं० क्ली०) सन्दिग्धस्य भावः त्व । १ सन्दिग्धका भाव या धर्म, संदेह । २ अलङ्कारशास्त्रोक्त दोषभेद । यह दोष उस समय माना जाता है जब कि किसी उक्तिका ठीक ठीक अर्थ प्रकट नहीं होता, अर्थके सम्बन्धमें कुछ संदेह बना रहता है ।

सन्दिग्धमति (सं० त्रि०) सन्दिग्धा मतिर्यस्य । जिसकी बुद्धि सर्वदा संदेहयुक्त हो, शक्की, वहमी ।

सन्दिग्धार्थ (सं० पु०) संदिग्धोऽर्थः । १ संदेहविषयीभूतार्थ, वह अर्थ जिसमें संदेह हो । (त्रि०) २ संदिग्धार्थविशिष्ट, जिसमें संदेह हो ।

सन्दित (सं० त्रि०) सन्-दो-क्त । बद्ध, बंधा हुआ ।

सन्दिदृक्षु (सं० त्रि०) संद्रष्टुमिच्छुः, सम्-दृश-सन् उ । संदर्शन करनेमें इच्छुक, देखनेका अभिलाषी ।

सन्दिधक्षु (सं० त्रि०) संदग्धुमिच्छुः, सम् दह सन उ । सम्यक् रूपसे दग्ध करनेमें इच्छुक ।

सन्दिष्ट (सं० क्ली०) सम् दिश-क्त । १ वार्त्ता, बातचीत । २ समाचार, खबर । (त्रि०) ३ कथित, कहा हुआ, बताया हुआ ।

सन्दिष्टार्थ (सं० पु०) संदिष्टोऽर्थो यस्य । वह जो एकका समाचार दूसरे तक पहुंचाता हो, संदेसा ले जानेवाला दूत ।

सन्दिह (सं० स्त्री०) सम्यक् उपस्थित ।

सन्दिहान (सं० पु०) सं-दिह-शानच् । संदिग्ध, संदेहान्वित ।

सन्दी (सं० स्त्री०) शय्या, पलंग । "निषद्या खट्टिका संदी" (त्रिका०)

सन्दीन (सं० त्रि०) दीन, दुःखी, दरिद्र ।

सन्दीपक (सं० त्रि०) सन् दीप-ल्यु । सम्यक् रूपसे उद्दीपक, उद्दीपन करनेवाला ।

संदीपन (सं० क्ली०) सम् दीप-ल्युट् । १ सम्यक् रूपसे दीपन, सम्यक् प्रकारसे उत्तेजन, उद्दीप्त करनेकी क्रिया । (पु०) २ कृष्णके गुरुका नाम । ३ कामदेवके पांच बाणोंमेंसे एक बाणका नाम । (त्रि०) ४ संदीपनकारी, उत्तेजन करनेवाला ।

सन्दीपनवत् (सं० त्रि०) संदीपन अस्त्यर्थे मतुप्-मस्य व । संदीपनविशिष्ट, उत्तेजनविशिष्ट ।

सन्दीपनी (सं० स्त्री०) १ सङ्गीतमें पञ्चम स्वरकी चार श्रुतियोंमेंसे तीसरी श्रुति । (त्रि०) २ संदीपन करनेवाली ।

सन्दीपित (हिं० वि०) १ जिसका संदीपन किया गया हो, संदीप्त, उद्दीप्त । २ प्रज्वलित, जलाया हुआ ।

सन्दीप्य (सं० पु०) १ मयूरशिखावृक्ष । (त्रि०) २ संदीपन करनेके लिये योग्य, संदीपनीय ।

सन्दूर—मंद्राज प्रदेशके अंगरेजाधिकृत बेल्लरी जिलेका एक सामंत राज्य । यह अक्षा० १४°५८' से १५°१४' उ० तथा देशा० ७६°२५' से ७६°४२' पू०के मध्य अवस्थित है । इसका भूपरिमाण १६१ वर्गमील और जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है । इसमें बीस ग्राम लगते हैं । इस राज्यका अधिकांश स्थान जंगल और पर्वतसे ढंका है ।

इसके पश्चिममें संदूर या रामणदुर्ग-गिरिमाला शोभा देती है । उत्तरसे तिम्मप्पा शैलश्रेणी राज्यको

पूर्व सीमा तक फैल गई है। उस पर्वत पर तीन: घाटी या पहाड़ी रास्ते हैं। येङ्गिनहट्टि या भीमगण्डीर घाटसे वेल्लरी आया जाता है। रामणगण्डी नामक उपत्यकासे हसपेट नगरवासियोंके साथ वाणिज्य व्यापार चलता है। ओवलागण्डी गिरिपथसे बैलगाड़ी जाती आती है। इस शैल पर रामणदुर्ग, कुमारस्वामी और कोम्बथरबू नामकी तीन अधित्यका भी है। ये तीनों ही समुद्र पृष्ठसे प्रायः ३ हजार फुट ऊंची है।

पर्वतगात्रका अधिकांश स्थान शालवनसे समाच्छन्न है। उस शालवन हो कर पहाड़ी सोते बह गये हैं। इस प्रकार अनेक सोते सन्दूर नदी या नादि नालारूपमें पुष्ट हो हसपेटके अन्तर्गत दरोजी बांधमें जा गिरे हैं।

यहांके जंगलमें बाघ, चिता, साही नामक जन्तु, भालू, सूअर, सम्बर-हरिण और जंगली बकरे मिलते हैं। धातव पदार्थोंमें खनिज लौह तथा स्लेट, लौहका आक्सिद मिश्रित क्लोरिटिक स्लेट और कोआर्टज यहां बहुतायतसे पाया जाता है। रामणदुर्ग शैल पर भिन्न भिन्न रंगकी मिट्टी देखी जाती है। उनमेंसे कपास बुनने लायक काली मिट्टी और चूनामिट्टी विशेष उल्लेखयोग्य हैं। कुमारस्वामी-शैल-शिखर पर एक मन्दिर है।

मल्लजी राव घोरपड़े नामक एक मरठा सेनापति इस राजवंशके प्रतिष्ठाता थे। ये पहले विजयपुरराजके सेनापति थे। पिताके उपयुक्त पुत्र वीर वीराजो दूसरेके दासत्व बंधनको घृणित समझ कर महाराष्ट्र-केशरी शिवाजीके अधीन जातीय गौरव-रक्षामें बद्धपरिकर हुए। पहले यह राज्य किसी वेदार-पोलिगारके शासनाधीन था। वीराजोके पुत्र सिदाजीने अपने बाहुबलसे वेदारके राजाको परास्त कर सन्दूरराज्य अधिकार किया। शिवाजीके वंशधर शम्भाजीने सिदाजीको इस लब्धराज्यका अधीश्वर स्वीकार कर उन्हींको सन्दूरकी मसनद पर बैठाया। १७१५ ई०में सिदाजीकी मृत्यु हुई। पीछे उसके लड़के गोपाल राव सन्दूरकी राजसिंहासन पर बैठे। किन्तु वे पिताकी तरह प्रतिष्ठालाभ न कर सके। इतिहासकी आलोचना करनेसे केवल इतना ही जाना जाता है, कि गोपाल रावके बादसे ही सन्दूर-राजवंश कमजोर होता गया। १७७६ ई०में गुटी जीतनेके कुछ बाद ही हैदरअलीने इस स्थानको दखल किया। हैदर अलीने यहां दुर्ग बनाना शुरू किया, पर वह उसे पूरा न कर सका, उसके लड़के टीपू सुलतानने पूरा किया। १७८५ ई०में गोपालरावके पुत्र शिवराव पितृराज्यका उद्धार करनेके लिये हैदर अलीके विरुद्ध खड़े हुए और उसी युद्धमें खेत रहे।

१७९० ई०में शिवरावके भाई वेङ्कटरावने अपने भतीजे सिदाजीका पक्ष ले सन्दूरसे टीपू सुलतानके सेनादलको मार भगाया, किन्तु श्रीरङ्गपत्तनका पतन न होने तक उन्हें संदूर पर चढ़ाई करनेका साहस नहीं हुआ। १७९६ ई०में सिदाजीकी मृत्यु हुई। इसके बाद पेशवाने संदूर राज्य अपने अधिकारभुक्त करनेका दावा किया। पीछे वह राज्य जीत कर उन्होंने यशोवन्त राव घोरपड़े नामक सिन्देराजके एक सेनापतिको उसके कार्यके पुरस्कारमें दे दिया। यशोवन्त राव मल्लजी राव घोरपड़ेके वंशधर थे। यशोवन्त रावके भाग्यमें राज्यसुखभोग बदा नहीं था। अकस्मात् उनकी मृत्यु हो गई। पीछे सिदाजीकी पत्नीने यशोवन्तके छोटे भाई खण्डेरावके पुत्र शिवरावको गोद लिया। जो हो, पेशवा बहुत दिनों तक संदूर राज्यकी आकांक्षाका त्याग न कर सके। धीरे धीरे उनकी राज्य पिपासा बलवती होती गई। उन्होंने नाबालिग शिवरावके विरुद्ध १८१५ ई०में सेना भेजी, किन्तु वे विफल मनोरथ हो लौट आये। इसके बाद उन्हींकी प्रार्थनाके अनुसार १८१७ ई०में अंगरेज गवर्मेण्टने सर-टामस मनरोको सन्दूर जीतनेके लिये भेजा। उसी सालके अक्तूबर महीनेमें सन्दूर दुर्ग और राज्य अंगरेज सेनापतिके हाथ सपुर्द हुआ। सर टामस मनरोके अनुरोधसे पेशवाने वार्षिक १० हजार रुपये आयकी जागीर शिवरावको क्षतिपूरणस्वरूप दी थी।

१८१८ ई०में पेशवाकी राज्यशासनशक्ति एकदम विलुप्त हो गई। इसी समय अंगरेज गवर्मेण्टने शिवरावको उनका पैतृक राज्य प्रदान किया। १८२६ ई०में अंगरेज गवर्मेण्टने उनके आचरण पर प्रसन्न हो उन्हें तथा

उनके उत्तराधिकारियोंको सन्दूर प्रदेश निष्कर भोग करनेके लिये एक सनद दी। १८४० ई०में शिवरावकी मृत्यु हुई। पीछे उनके भतीजे वेङ्कटराव तख्त पर बैठे। १८६१ ई० तक राज्य करनेके बाद वे परलोक सिधारे। अनन्तर उनके बड़े लड़के नावालिग शिवषणमुख राव राज्येश्वर हुए। किन्तु १८६३ ई० तक उन्हें सनद नहीं मिली। १८७६ ई०की २४वीं जनवरीको भारतराजप्रतिनिधि लार्ड नार्थव्रूकने उन्हें राजाकी उपाधि दी। वह उपाधि उनके जो वंशधर मसनद पर बैठेंगे, वे भी पा सकेंगे। १८७८ ई०में शिवषणमुख रावकी मृत्यु हुई। पश्चात् उनके वैमात्रेय भाई रामचन्द्र विट्ठल राव राजा हुए। १८९२ ई०में उन्हें सी आई, ई, की उपाधिसे भूषित किया गया। परन्तु दुःखका विषय, कि उसी साल उनका देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। वही वर्त्तमान राजा हैं।

इस राज्यका रामणमलय नामक शैलावास उल्लेखयोग्य है। वह स्थान समुद्रपृष्ठसे ३१५० फुट ऊंचा है। पीड़ित सेनाको ही साधारणतः इस स्वास्थ्यावासमें स्थान दिया जाता है।

कुमारस्वामी शैलशिखरके ऊपर जो मन्दिर है उनका हाल पहले लिखा जा चुका है। वह मन्दिर बहुत प्राचीन और प्रत्नतत्त्वविदोंके आदरकी सामग्री है। मन्दिरका द्वार पूर्वमुखी है। प्रवेशपथके वामभागमें पार्वतीका मन्दिर है तथा दक्षिणमें साक्षात्-लयमूर्त्ति शिवका मन्दिर शोभा दे रहा है। शिव और पार्वतीको पार कर पश्चिमकी ओर जानेसे उनके पुत्र कुमार-स्वामी (षड़ानन कार्त्तिकेय) का मन्दिर दृष्टिगोचर होता है। कुमारस्वामी मन्दिरके सामने अगस्त्यतीर्थ नामक एक कुण्ड है। दरवाजेके सामने भी एक अठकोना स्तम्भ दिखाई देता है। उसकी पेंदीमें तीन मुंहका आकार खुदा हुआ है। उनमेंसे सबसे बड़ा मुंह कुमारस्वामी द्वारा मारे गये तारकासुरका मुंह माना जाता है। प्रति तीन वर्षमें यहां एक महोत्सव होता है। उस महोत्सवमें खूब धूमधाम होती है। प्रायः ३० हजार तीर्थयात्री उस मेलेमें आते और देवपूजादि करते हैं। मन्दिराध्यक्षके पास ६९५ संवत् (७१३ ई०)-में उत्कीर्ण एक 'शासन' है, कुमारस्वामी शैलका जलवायु विशेष स्वास्थ्यकर है। रामणदुर्गकी तरह शीतल नहीं है।

राजाको पुलिसविभागमें १ इन्सपेक्टर, प्रधान कान्सटेबल और २५ कान्सटेबल तथा ४ पुलिस-स्टेशन रखनेका अधिकार है। कम और ज्यादे मुद्दतके कैदी जेलखानेमें रखे जाते हैं जिनकी संख्या १५ से ऊपर नहीं हो सकती। वे सब कैदी सड़क आदि मरम्मत किया करते हैं। विना मन्द्राज सरकारकी अनुमतिके इन्हें प्राण-दण्ड देनेका अधिकार नहीं है। इस राज्यमें लोअर सिकेन्ड्री स्कूल, सात प्राइमरी स्कूल और एक बालिका स्कूल है।

सन्दूर—मन्द्राज प्रदेशके वेल्लरी जिलांतर्गत एक शैलमाला। यह १५ मील लम्बी तथा उत्तर-पश्चिमसे दक्षिण-पूर्व हसपेट तक विस्तृत है। यह संदूरराज्यकी पश्चिमी सीमा है। इस पर्वतकी सबसे ऊंची चूड़ा रामणदुर्ग (३१५० फुट) कहलाती है। इस कारण इस पर्वतको लोग रामणदुर्ग कहते हैं। १८४६ ई०में यहांके रामणमलय नामक पर्वत पर एक स्वास्थ्यावास स्थापित है।

सन्दुह्य (सं० त्रि०) सम् दुह-क्यप्। संदोह्य, सम्यक् दोहनीय, अच्छी तरह दूहने लायक।

सन्दुषण (सं० क्ली०) सम्-दूष-ल्युट्। १ सम्यक् रूपसे दूषण। (त्रि०) २ सम्यक् प्रकारसे दूषणकारक।

सन्दृश् (सं० स्त्री०) सम्-दृश्-क्विप्। संदर्शन, अवलोकन।

सन्दृश्य (सं० त्रि०) सम्-दृश्-यत्। संदर्शनयोग्य, देखनेके लायक।

सन्दृष्टि (सं० स्त्री०) सम् दृश-क्तिन्। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् दर्शन। (ऋक् १।१४५।७)

सन्देघ (सं० पु०) सम्-दिघ् (दिह्) घञ्। संदेह।

सन्देव (सं० पु०) हरिवंशके अनुसार देवकके एक पुत्रका नाम।

सन्देवा (सं० स्त्री०) वसुदेवकी स्त्री और देवककी कन्याका नाम। इनका नाम श्रीदेवा या सुदेवा भी है।

सन्देश (सं० पु०) सम्-दिश-घञ्। १ संवाद, खबर, हाल। २ एक प्रकारकी बंगला मिठाई जो छेने और चीनीके योगसे बनती है। ३ संदेश देखो।

सन्देशक (सं० पु०) संदेश स्वार्थे कन्। संदेशवाक्य, संवाद।

सन्देशपद (सं० क्लो०) १ जिस पदके शब्द द्वारा प्रकृत संदेश सुगम होता है। २ शब्द या स्वर लक्षण।

सन्देशवाच् (सं० स्त्री०) संदेश एव वाक्। संदेशरूप वाक्य, संवाद, वार्त्ता। पर्याय—वाचिक।

सन्देशहर (सं० पु०) हरतीति हृ-अच्, हरः, संदेशस्य हरः। समाचार या संदेसा ले जानेवाला, वार्त्तावह, दूत, कासिद।

सन्देशहार (सं० पु०) संदेशं हरति 'कर्मण्युपपदे इति' हृ-अण्। वार्त्तावह, दूत।

सन्देशहारक (सं० पु०) संदेशं संवादं हरतीति हृ-ण्वुल्।

सन्देशहारिन् (सं० त्रि०) संदेशं हरति हृ-णिनि। दूत, संवाद ले जानेवाला।

सन्देशार्थ (सं० पु०) वार्त्ताके लिये, संवादके लिये।

सन्देशोक्ति (सं० स्त्री०) संदेशस्य उक्तिः। संदेश-कथन, संवाद कहना।

सन्देश्य (सं० त्रि०) संदेश-ण्यत्। समानदेशभव, स्वदेशजात।

सन्देह्य (सं० त्रि०) अनुसंधेय। "किं नु खलु दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः सन्देह्यम्"। (शकुन्तला)

सन्देसा (हिं० पु०) किसीके द्वारा जबानी कहलाया हुआ समाचार आदि, खबर, हाल।

सन्देह (सं० पु०) सं-दिह-घञ्। एकधर्मिक विरुद्धभावाभावप्रकाशक ज्ञान, वह ज्ञान जो किसी पदार्थकी वास्तविकताके विषयमें स्थिर न हो। पर्याय—विचिकित्सा, संशय, द्वापर। एक धर्माक्रान्त दो पदार्थोंका संशयात्मक जो ज्ञान है उसे सन्देह कहते हैं। द्वैध ज्ञान, रज्जु देख कर यह सर्प है या रज्जु, इस प्रकार जो संशयात्मक ज्ञान होता है, वही सन्देह है।

साधुओंकी संदेहपद वस्तुमें अर्थात् जिस वस्तुमें साधुओंको संदेह होता है वहां उनकी अंतःकरणवृत्ति ही प्रमाण है, मन जो कहता है, वही ठीक है।

२ अर्थालङ्कार विशेष। यह उस समय माना जाता है जब किसी चीजको देख कर संदेह बना रहता है, कुछ निश्चय नहीं होता। 'भ्रान्ति में' और इसमें यह अन्तर है, कि भ्रान्तिमें तो भ्रमवश किसी एक वस्तुका निश्चय हो भी जाता है, पर इसमें कुछ भी निश्चय नहीं होता। कवितामें इस अलङ्कारके सूचक प्रायः धौं, किधौं आदि संदेह-वाचक शब्द आते हैं। यह अलङ्कार तीन प्रकारका है—शुद्ध, निश्चयगर्भ और निश्चयान्त। जहां संशय ही पर्यवसान होता है वहां शुद्ध सन्देह, जहां आदि और अन्तमें संशय तथा मध्यमें निश्चय होता है उसे निश्चयगर्भ संदेह तथा जहां आदिमें सन्देह और अन्तमें निश्चय होता है वहां उसे निश्चयान्त सन्देह कहते हैं। जैसे, सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है।

सन्देहत्व (सं० क्ली०) संदेहस्य भावः त्व। संदेहका भाव या धर्म।

सन्देहालङ्कार (सं० पु०) संदेह नामक अलङ्कार। सन्देह देखो।

सन्देहालङ्कृति (सं० स्त्री०) संदेहालङ्कार।

सन्दोल (सं० त्रि०) १ सुंदर हिंडोला। २ कानमें पहननेका कर्णफूल नामका गहना।

सन्दोह (सं० पु०) सम्-दुह-घञ्। समूह, झुण्ड।

सन्दोह्य (सं० त्रि०) सम् दुह-ण्यत्। संदोहनीय, अच्छी तरह दुहनेके योग्य।

सन्द्रन (सं० पु०) गूंथनेकी क्रिया, गुंथन।

सन्द्रष्टव्य (सं० त्रि०) सम् दृश्-तव्य। सम्यक् द्रष्टव्य, अच्छी तरह देखनेके योग्य।

सन्द्रष्टृ (सं० त्रि०) सम्-दृश-तृच्। सम्यक् द्रष्टा, सम्यक् दर्शनकारी।

सन्द्राव (सं० पु०) सम्-द्रु (समि-युद्रुदुवः। पा ३।३।२३) इति घञ्। पलायन, युद्धक्षेत्रसे भागनेकी क्रिया।

सन्द्वीप (सनद्वीप)—वङ्गालके नोआखाली और चट्टग्राम जिलेका एक द्वीप। यह नोआखाली जिलेके एक अंश मेघनासागर-सङ्गम पर अवस्थित है। मेघना नदी जहां समुद्रमें मिली है वहां मुहाने पर जितने चर पड़ गये है उनमें यही चर सबसे बड़ा है। यह अक्षा० २२'२३' से २२' ३७' उ० तथा देशा० ९१' २२' से ९१' ३५' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २५८ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है।

सन्द्वीप द्वीपाकारमें समुद्रसे निकलनेके बाद उसके

दक्षिण दो तीन मीलकी दूरी पर एक और चर बन गया है। वह चर धीरे धीरे पुष्ट हो गया है। १८६५ ई०में इस अंतिम चरका नाम कालीचर रखा गया। यह चर इतना ऊंचा हो गया है, कि समुद्रके भीषण तरङ्गाघात और जलप्लावनसे सन्द्वीपके उपकूलभागका उतना नुकसान नहीं हो सकता। सन्द्वीप और कालीचरके बीच पहले जो खाई थी वह अभी भर कर मूल सन्द्वीपके साथ मिल गई है।

भूतत्वकी आलोचनासे हमें मालूम होता है, कि इतिहासातीत कालसे सन्द्वीपका गठन आरम्भ हुआ था। जलगर्भसे निकलनेके बाद यहां बङ्गालदेशवासियोंकी आबादी हुई। पाश्चात्य वणिक् और भ्रमणकारिगण इस राहसे बङ्गालमें प्रवेश कर सन्द्वीपके सौंदर्यका वर्णन कर गये हैं। १५६५ ई०में भेनिस नगरवासी देशपर्य्यटक सिजर फ्रेडरिकने इस देशके लोगोंको 'मूर' अर्थात् मुसलमान कह कर लिपिबद्ध किया है। उनके विवरणसे यह भी मालूम होता है, कि यह द्वीप उस समय विशेष उर्वरा, शस्यशाली और धनजनसे पूर्ण था। फसल काफी तौरमें उपजनेसे अनाज सस्ता बिकता था। तथा प्रति वर्ष प्रायः २०० मन लवणकी बोझाई करके जहाज यहांसे देशांतर भेजा जाता था। इसके सिवा यहां जहाज बनानेकी लकड़ी इतनी सस्ते दरमें मिलती थी, कि कुस्तुनतुनियाके सुलतान अलेकजंद्रिया बंदरसे अपने आवश्यकीय पोतादि न बना कर यहांसे तुर्कराज्यके सभी अर्णवपोत तैयार करा कर ले जाते थे। करीब १६२० ई०में पार्कासने लिखा है, कि यहांके उपकूलके अधिकांश अधिवासी मुसलमान थे। उन लोगोंकी उपासनाके लिये जो सब मसजिद बनी हैं, वे दो सौ वर्षसे भी पुरानी हैं। १६२५ ई०में सर टामस हार्वर्टने यहांकी शस्यसमृद्धिकी बातका उल्लेख कर लिखा है, कि सन्द्वीपमें नारियल बहुत उपजता है तथा वहांसे चट्टग्राम और आकायाब प्रदेशमें उसकी रफतनी होती है। यहां ईखकी खेती भी काफी होती है।

१७वीं सदीमें आराकनी मुसलमान और पुर्त्तगीजोंमें चट्टग्रामकी उपकूलस्थ वाणिज्य-प्रधानता ले कर जो घोर युद्ध चला था, उसका भारी धक्का सन्द्वीप पर लगा। उस समय यहां बहुतसे दुर्ग भी बनाये गये। १६०६ ई०के मार्च मासमें पुर्त्तगीजोंने जब इस द्वीपमें पदार्पण किया, तब उन दुर्गोंमेंसे एकमें मुसलमानी फौज रखी गई थी। पुर्त्तगीजोंने बहुत दिनों तक घेरा डालनेके बाद दुर्ग को जीता और दुर्गवासी मुसलमान सेनाको तलवारसे कतल किया। १६१६ ई०में भीषण प्रकृतिवाले आराकनियोंने पुर्त्तगीजोंसे सन्द्वीप छीन लिया। १६६५ ई०में बङ्गेश्वर साइस्ता खाँने सन्द्वीप फिरसे दखल करनेके लिये बड़ी सजधजके साथ यात्रा की। फरासी भ्रमणकारी वार्णियरके भ्रमणवृत्तान्तमें उसका पूर्णचित्र दिया गया है।

मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबके हुक्मसे नवाब साइस्ता खाँने नौवाहिनी तैयार कर आराकनपतिका दमन किया और उसी समयसे चट्टग्राम मुगलोंके अधीन हुआ। आराकान, चट्टग्राम, नोआखाली और पुर्त्तगीज शब्द देखो।

मुगलोंके जमानेमें ढाकाके दक्षिणतीरवासी डकैत अथवा राजद्वारमें दण्डित अपराधी इसी द्वीपमें भेजे जाते थे। यह द्वीप पीछे हिन्दू, मुसलमान और मग आदि जातियोंके उपनिवेशमें बदल गया। उन सब अधिवासियोंमेंसे कुछ जमीन जोत कर, कुछ मछली पकड़ कर और कुछ जल या स्थल पथमें डकैती कर जीविकानिर्वाह करते थे। वे सब ऐसे उद्धत प्रकृतिके लोग थे, कि स्थानीय जमींदारोंके साथ हमेशा लड़ाई दंगा किया करते थे। इस कारण प्रत्येक जाति दूसरी जातिकी दुश्मन बन गई थी। छोटी छोटी बातोंके लिये वे आपसमें लड़ पड़ते थे। १७६० ई०में यह द्वीप जब अंगरेजोंके दखलमें आया, तब उसके बाद भी कई बार यहां अशान्ति फैल गई थी। तालुकदारोंके आवेदनसे अंगरेज गवर्मेण्टने वह अशांति दूर करनेका प्रयत्न किया। १७८५ ई०में सन्द्वीपको भिन्न भिन्न जोतमें विभक्त कर प्रजाके बीच बांट देनेकी व्यवस्था हुई। एक कलक्टर उसकी देखनेमें नियुक्त हुए। १८२२ ई० तक सन्द्वीप चट्टग्रामके शासनभुक्त रहा। उसी साल नोआखाली स्वतंत्र जिला हो जानेसे सन्द्वीप उसीके साथ मिला दिया गया है।

पहले सन्द्वीप एक फौजदार द्वारा शासित होता था। १७७६ ई०में यहां सेना रखनेमें बहुत खर्च देख अंगरेज

गवर्मेण्टने डनकान साहबको सेनावास उठा लानेके लिये भेजा। तदनुसार फौजदारी पद विलुप्त हुआ और एक दारोगा उस स्थानके शासनकर्त्ता हुए। किन्तु वे फौजदारकी तरह यहांके सर्वमय कर्त्ता नहीं थे। वह दारोगा १७६० ई० सन्‌के पहले ही से नायब-आहददारके अधीन थे। सात दिनमें सिर्फ एक दिन नायबआहद्दार अदालतमें बैठ कर राज्यशासन संबंधीय कार्य पर्यवेक्षण करते थे। दारोगा और उसके सहकारी मुकदमेकी नत्थी उनके सामने रखते थे। किन्तु विचारकार्यके समय नायब आहद्दार, दारोगा, कानूनगो और स्थानीय जमींदार अदालतमें बैठ कर मुकदमे पर विचार करते थे। उस विचारालयमें दीवानी और फौजदारी सभी का विचार होता था। केवल आहददार ही राजस्वविभागके एकमात्र कर्त्ता थे।

डानकनसाहबके विवरणसे जाना जाता है, कि उस समय यहां भी क्रीतदासकी प्रथा प्रचलित थी। उन दासोंके साथ जो व्यक्ति विवाह सम्बंधमें आवद्ध होता था, उसे भी उस दासके नियमाधीन अपने मालिकको सेवामें नियुक्त रहना पड़ता था।

समुद्रपृष्ठसे सन्द्वीपकी ऊंचाई अधिक नहीं होनेसे यह स्थान प्रायः समुद्रकी बाढ़में डूब जाया करता है। १८६४ और १८७६ ई०के भीषण तूफानसे समुद्रका जल इतना ऊंचा उठा, कि इसकी महती क्षति हुई। करीब ४० हजार लोगोंके प्राण गये थे। उसके बाद महामारीके प्रकोपसे आबादी और भी घट गई। इसी दुःखके ऊपर डकैत अधिवासियोंके अत्याचारसे यह स्थान और भी उजाड़-सा हो गया था।

सन्धनाजित् (सं० त्रि०) सम्यक् धनजयकारी।

सन्धा (सं० स्त्री०) सम्-धा-घञ्। १ स्थिति। २ प्रतिज्ञा, करार। ३ संधान, मिलन। ४ संध्याकाल, साँझ। ५ अनुसंधान, तलाश।

सन्धातव्य (सं० त्रि०) सम्-धा-तव्य। संधानके योग्य, तलाश करने, लायक।

सन्धातृ (सं० पु०) १ शिव। २ विष्णु।

सन्धान (सं० क्ली०) संधीयते यदिति सं-धा ल्युट्। १ मद्यसज्जीकरण, शराब बनानेका काम। पर्याय—अभिषव, संधानी, संधिका। संधीयते संधानं वंशाङ्कारफलादीन् बहुकालं संधाययत् क्रियते। २ सङ्घट्टन, योजन। ३ काञ्जिक, काँजी। ४ मदिरा, शराब। ५ अवदंश, गजक, चार। ६ सौराष्ट्र या काठियावाड़का एक नाम। ७ धनुष पर बाण चढ़ानेकी क्रिया, निशाना लगाना। ८ अन्वेषण, खोज। ९ संधि, मेल। १० सुस्वादु वस्तु, अच्छे स्वादकी चीज। ११ मुरदेको जलानेकी क्रिया, संजीवन। (त्रि०) सन्दधातीति सं-धा-ल्यु। १२ धारक।

सन्धानक (सं० त्रि०) १ संलग्नकरण, जोड़ना।

सन्धानकारिन् (सं० त्रि०) संधानं करोतीति कृ-णिनि। संधानकारक, तलाश करनेवाला।

सन्धानताल (सं० पु०) कालमानभेद।

सन्धाना (सं० पु०) अचार, खटाई।

सन्धानिका (सं० स्त्री०) संधानमस्त्यस्या इति संधानठन्। खाद्यद्रव्यविशेष, एक प्रकारका आमका अचार। पाकराजेश्वरमें इसकी प्रस्तुतप्रणाली इस प्रकार लिखी है—सर्षप एक शरावका सोलहवाँ भाग, मरिच २ तोला, हलदी १ तोला, नागरमोथा १ तोला, मंगरैला। १ तोला इन सब द्रव्योंको अच्छी तरह चूर्ण करे। पीछे २० आमको दो या चार खण्ड कर उनमेंसे गुठली निकाल ले। बादमें उन कटे हुए आमोंके बीच उक्त चूर्ण भर कर तेलके बरतनमें डुबो दे। इसीका नाम संधानिका है। (पाकराजेश्वर)

सन्धानित (सं० त्रि०) संधान-इतच्। १ संधानविशिष्ट। २ सङ्घट्टित।

सन्धानिनी (सं० स्त्री०) गोगृह, गोशाला।

सन्धानी (सं० स्त्री०) संधीयते यस्यामिति सं-धा-ल्युट्। ङीप्। १ संधि, मिलन। २ प्राप्ति। ३ बंधन। ४ अन्वेषण। ५ पालन। ६ त्वक्सङ्कोच, चमड़ेका सिकुड़ना। ७ अचार, खटाई। ८ संयोजन। ९ सुस्वादु वस्तु, अच्छे स्वादकी चीज। १० सङ्घट्टन। ११ संधान, धनुष पर बाण चढ़ानेकी क्रिया। १२ वह स्थान जहां ढलाई की जाती है। १३ वह स्थान जहां मदिरा बनाई जाती है।

सन्धानीय (सं० त्रि०) सम्-धा अनीयर। संधान योग्य, तलाश करनेके लायक।

सन्धानीयवर्ग (सं० पु०) वैद्यकोक्त भंगनसंयोजन कषाय द्रव्यगण। वे द्रव्य ये सब हैं,—मुलेठी, गुलंच, पिठवन, आकनादि, वराक्रान्ता, मोचरस, धवका फूल, लोध, प्रियङ्गु, और कायफल।

सन्धारण (सं० त्रि०) सम्-धृ-ल्युट्। सम्यक्रूपसे धारण।

सन्धार्य (सं० त्रि०) सम्-धृ-ण्यत्। सन्धारणके योग्य। अच्छी तरह पकड़नेके लायक।

सन्धि (सं० पु०) सन्धानमिति सन्-धा-कि। १ राजाओंके छः गुणोंमेंसे एक गुण, आपसका मिलान। एक राजा जब दूसरे एक विपक्ष राजाके साथ विशेष नियमसे आबद्ध हो कर मिलते हैं, तब उसे सन्धि कहते हैं। मनुमें लिखा है, कि राजा सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय इन छः गुणोंका अवलम्बन कर अवस्थान करें।

राजाको जब यह अच्छी तरह मालूम हो जाय, कि थोड़े ही दिन बाद उनकी सैन्यसंख्या बढ़ेगी तथा अपेक्षाकृत वे विशेष बलशाली हो सकेंगे, तब कुछ न कुछ क्षति स्वीकार करके भी उन्हें संधि कर लेना कर्त्तव्य है। यदि विपक्ष राजा युद्ध न करके मित्र भावमें जीतनेवालेके हाथ आत्मसमर्पण कर दे अथवा उत्कृष्ट रत्नादि या स्वराज्यका कुछ अंश उन्हें दे दें, तो उनके साथ युद्ध न करके संधि कर लेना ही उचित है। (मनु ७ अ०)

भोजराजके युक्तिकल्पतरुमें लिखा है, कि रत्नादि दे कर आपसमें जो मिलन होता है उसका नाम संधि है। दलबद्ध अर्थात् कुछ नियमोंसे आपसमें आबद्ध होने पर उसको भी संधि कहते हैं। एक दूसरेमें जो कमजोर है वे ही संधि करते हैं। आपसमें संधि हो जाने पर मर्यादाका उल्लङ्घन करना उचित नहीं। नियम भङ्ग करनेसे संधि शिथिल होती है, अतएव संधिकी मर्यादाकी रक्षा करना सर्वतोभावमें उचित है।

विष्णुशर्मकृत हितोपदेशमें संधि नामक चतुर्थ कथा संग्रहमें संधिका विशेष विवरण है। कोई राजा यदि प्रबल राजासे आक्रान्त हो बचावका कोई उपाय न देखे, तो उसे उचित है, कि उससे मेल कर ले। यह संधि १६ प्रकारकी है, यथा—१ कपाल, २ उपहार, ३ संतान, ४ सङ्गत, ५ उपन्यास, ६ प्रतिकार, ७ संयोग, ८ पुरुषान्तर, ९ अदृष्टनर, १० आदिष्ट, ११ आत्मादिष्ट, १२ उपग्रह, १३ परिक्रम, १४ ततोच्छिन्न, १५ परभूषण, और स्कंधोपनेय।

२ अस्थिसंयोगस्थान, जोड़। जहां दो हड्डियां मिलती हैं उसे संधि कहते हैं।

अस्थिके संधियां दो प्रकारकी हैं एक काम करनेवाली और दूसरी स्थिर। हाथ, पैर, हनु और कटि इन सब स्थानोंमें जो सब संधि हैं, वे काम करनेवाली हैं इसके सिवा और सभी संधियोंको निश्चल संधि कहते हैं।

महर्षि सुश्रुतने कहा है, कि देहियोंकी देहमें कुल २१० संधि है। उनमेंसे हाथ पैरमें ६८, कोष्ठदेशमें ५९, गलेके ऊपर ८३, प्रत्येक पैरकी उंगलीमें तीन तीन करके १२ और अंगूठेमें २, कुल मिला कर १४, घुटने, पंडी और वङ्क्षणमें एक एक, इसी प्रकार एक एक पादमें १७ करके ३४ संधि है, कटी और कपालदेशमें ३, पृष्ठदण्डमें २४, दोनों पार्श्वमें २४, वक्षमें ८, ग्रीवामें ८, और स्कन्धदेशमें ३। नाड़ी, हृदय और क्लोमको संधि १८ है, जितने दांत है उतनी ही दंतसंधि हैं, कण्ठदेशमें १, नासिकामें १, नेत्रमें २, गण्ड, कर्ण और शङ्खमें एक एक, हनुमें दो, भ्रूके ऊपरी भागमें दो, दोनों शङ्खमें दो, मस्तकके कपाल अर्थात् खोपड़ीमें पांच तथा मूर्द्धदेशमें एक।

उक्त संधियां फिर आठ प्रकारकी है, यथा—कोर, प्रतर, उदूखल, सामुद्र, तुन्नसेवनी, वायसतुण्ड, मण्डल और शङ्खावर्त्त। अङ्गुलि, मणिबंध, गुल्फ, जानु और कूर्पर संश्रित संधिको कोरसंधि, वक्ष, वङ्क्षण और दंतकी संधिको उदूखल, अंसपीठ, गुह्य, योनिदेश और नितम्बसंश्रित संधिको सामुद्र; ग्रीवा और पृष्ठवंशकी संधिको प्रतर, मस्तक, कटिदेश और कपालसंश्रित संधिको तुन्नसेवनी, दोनों हनूकी संधिको काकतुण्ड, कण्ठ, हृदय, क्लोम और नाड़ीकी संधिको शङ्खावर्त्त संधि कहते हैं।

सन्धि कहनेसे ही अस्थिसंधि समझी जायगी।

क्योंकि, पेशी, स्नायु और शिरा आदिमें सन्धि नहीं हैं सन्धियोंकी आकृतिके अनुसार उक्त सात प्रकारके नाम रखे गये हैं। (सुश्रुत शारीरस्था० ५ अ० भावप्र० पूर्व ख०)

३ संयोग। पर्याय—श्लेष। ४ सुरङ्गा। ५ भग। ६ सङ्कट्टन। ७ रूपकके मुखादि अङ्ग। ८ सावकाश। ९ भेद। १० साधन। ११ व्याकरणके मतसे दो वर्णों का मिलन। दो स्वर या व्यञ्जनके एकत्र मिलनेसे उसको सन्धि कहते हैं। अर्द्धमात्रोच्चारण काल द्वारा अव्यवहित दो वर्णोंका जो द्रुततर उच्चारण होता है उसका नाम संधि है। जो दो शब्द अर्द्धमात्रामें उच्चारित होते थे उन सन्निहित दो शब्दोंका जो द्रुततर अर्थात् अति शीघ्र जो उच्चारण होता है उसीको सन्धि कहते हैं। इस नियमके अनुसार श्लोकार्द्ध या मन्त्रार्द्धकी संधि नहीं होगी, क्योंकि अर्द्धमात्रोच्चारण कालका व्यवधान ही युक्तियुक्त है, अतएव वहां व्यवधान रहनेसे संधि नहीं होती।

व्याकरणके सन्धिप्रकरणमें जो सब सूत्र दिये गये हैं, उन सब सूत्रोंके अनुसार जो सब कार्य्य किये जाते हैं, उन्हींको संधि कहते हैं।

स्वर, विसर्ग और व्यञ्जनसंधिके भेदसे संधि तीन प्रकारकी है। जहां स्वरवर्णके साथ स्वरवर्णको संधि होती है वहां उसे स्वरसंधि जहां स और र की जगह विसर्ग और इस विसर्ग संबंधीय संधियां होती है वहां उसे विसर्गसंधि, जहां स्वर और व्यञ्जनवर्णमें अथवा व्यञ्जन और व्यञ्जनवर्णमें संधि होती है वहां उसे व्यञ्जनसंधि कहते हैं।

१२ सत्य-त्रेतादि युगका मध्य समय। इसका नाम युगसंधि है। सत्यत्रेतादि प्रत्येक युगका निर्दिष्ट संधिकाल है। युग शब्द देखो। १३ नाटक ग्रंथका अंश विशेष।

सन्धिक (सं० पु०) स्वनामख्यात सन्निपातज्वरविशेष। इसका लक्षण—समस्त शरीरमें अत्यन्त वेदना, सभी संधियोंमें सूजन, मुख कफसे भरा हुआ, नींदका नहीं आना और खांसी, ये सब लक्षण जिस सन्निपात ज्वरमें होते हैं उसे संधिक-सन्निपात कहते हैं। यह सन्निपातज्वर अतिकष्टसाध्य है। संधिक ज्वरको कोई कोई संधिग भी कहते हैं। ज्वर और सन्निपात देखो।

सन्धिका (सं० स्त्री०) संधा एव स्वार्थे कन्। मद्यसंधान।

सन्धिकुसुमा (सं० स्त्री०) त्रिसंधिपुष्पवृक्ष।

सन्धिगा (सं० पु०) संधिक नामक सन्निपात ज्वर।

सन्धिगुप्त (सं० पु०) वह स्थान जहां शत्रुकी आनेवाली सेना पर छापा मारनेके लिये सैनिक लोग छिप कर बैठते हैं। (Ambush)

सन्धिचौर (सं० पु०) संधिकृत्-सुरङ्गाकारी चौरः, संधिना चौरः इति वा। चौरविशेष, सेंध लगा कर चोरी करनेवाला।

सन्धिच्छेद (सं० पु०) संधिका छेद, संधि-भङ्ग, संधि तोड़ना।

सन्धिच्छेदक (सं० त्रि०) जो संधिके नियमोंका भंग करता हो, आहदनामेकी शर्तें तोड़नेवाला।

सन्धिज (सं० क्ली०) संधेर्जायते यदिति जन ड। मद्य आसवादि; चुआ कर तैयार किया हुआ मद्य, आस आदि, २ वह फोड़ा जो शरीरकी किसी संधि या गांठ पर हो। (त्रि०) ३ संधिसमुत्पन्न, गिरह पर होनेवाला।

सन्धिजीवक (सं० पु०) संधिना अभिसंधिना जीवतीति जीव-ण्वुल्। कुत्सित द्वारा विभवान्वेषी, वह जो स्त्रियोंको पुरुषोंसे मिला कर जीविका चलाता हो, कुटना। पर्याय—पार्श्वक।

सन्धित (सं० त्रि०) संधा जाताऽस्येति संधा इतच्। १ संधियुक्त; जिसमें संधि हो। (पु०) २ आसव, अर्क।

सन्धितस्कर (सं० पु०) संधिकृत् तस्करः। संधिचोर, सेंध लगा कर चोरी करनेवाला।

सन्धित्सु (सं० त्रि०) संधातुमिच्छुः, सम्-धा-सन्-उ। संधि करनेमें इच्छुक, संधिका अभिलाषी।

सन्धिन् (सं० पु०) संधिविग्रहिक, वह सचिव जो युद्धमें संधि करता है।

सन्धिनी (सं० स्त्री०) संध्यास्तस्या इति इनि ङीप्। वृष द्वारा आक्रांत ऋतुमती गाभी, गाभिन गौ। २ अकालदुग्धदायिनी गाभी, वह गौ जो गाभिन होने पर भी दूध दे। ऐसी गौका दूध सेवन नहीं करना चाहिये। ३ गौ जो दिनरातमें केवल एक बार दूध दे। ४ वह गौ जो विना बछड़ेके दूध दे।

सन्धिपूजा (सं० स्त्री०) संधौ अष्टमी नवमी संधिक्षणे पूजा। शारदीया और वासन्ती महापूजाके अंतर्गत तृतीया पूजा। महाष्टमी और महानवमी संधिक्षणमें यह पूजा होती है, इसीसे इसको संधिपूजा कहते हैं। अष्टमीका अंतिम एक दण्ड तथा नवमीका प्रथम एक दण्ड, ये दोनों ही दण्डकाल संधिक्षण हैं। इस कालमें उक्त पूजा करनी होती है। दिवा या रात्रिके जिस समय यह संधिक्षण होगा, उसी समय उक्त पूजा करनी होगी। इस संधिक्षणमें पूजाका विशेष फल कहा है। संधिक्षणका काल बहुत थोड़ा है, अतएव उस समय अष्टमी और नवमी आदिकी तरह यथाविधान समस्त पूजा होना असम्भव है। इसलिये उस समय नियमपूर्वक केवल मूलपूजा करनी होगी, इसीसे समस्त पूजाका फललाभ होगा।

अष्टमी और नवमी संधिकालमें जो पूजा होती है, वह तृतीया पूजा है। क्योंकि सप्तमीमें प्रथमा पूजा, अष्टमीमें द्वितीया पूजा और संधिक्षणमें जो पूजा होती है उसका नाम तृतीया पूजा है। इस संधिक्षणमें जो पूजा की जाती है उससे तिगुना फल मिलता है। संधिक्षण दिवाभागकी अपेक्षा रात्रिभागमें ही प्रशस्त है।

संधिपूजाके बलिदानस्थानमें अष्टमी नवमीके संधिक्षणमें अर्थात् जिस समय अष्टमी जा कर नवमी तिथिमें पड़ती है, उसी मुहूर्त्तमें प्रशस्त है, किंतु अष्टमी दण्डमें बलिदान नहीं होगा। अष्टमी बीतने पर यदि कुछ नवमी भी पड़े, तो कोई दोष नहीं, किंतु अष्टमी रहते कदापि बलि न चढ़ावे। क्योंकि संधिपूजामें अष्टमीमें बलिदान करनेसे पुत्रादि नाश होते हैं।

बृहन्नन्दिकेश्वर और देवीपुराणादिके मतसे संधिपूजा कालमें भगवती दुर्गाकी पूजा करनी होती है। किंतु कालिकापुराणके मतसे पूजाकालमें भगवती दुर्गाको चामुण्डारूपिणी समझ कर उनकी पूजा करनी होती है। दुर्गा शब्द देखो।

सन्धिप्रच्छादन (सं० पु०) सङ्गीतमें स्वर साधनकी एक प्रणाली।

सन्धिबन्ध (सं० पु०) संधिबध्नातीति बंध-अच्। भूमिचम्पक, भुईं चम्पा।

सन्धिबन्धन (सं० क्ली०) संधेर्बन्धनं यस्यात्। १ शिरा, नाड़ी, नस। यही शिरा संधिस्थानको बांधे रहती है, इसीसे इसको संधिबंधन कहते हैं। २ अस्थि-भङ्ग, संधिस्थलका टूट जाना।

सन्धिभग्न (सं० पु०) एक प्रकारका रोग। इसमें अंगकी संधियोंमें अत्यंत पीड़ा होती है।

सन्धिभङ्ग (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार हाथ या पैर आदिके किसी जोड़का फूटना।

सन्धिमत् (सं० त्रि०) संधियुक्त।

सन्धिमति (सं० पु०) काश्मीरके जयेंद्रराजमंत्री। ये पीछे काश्मीरके राजा हुए।

सन्धिमुक्तभग्न (सं० क्ली०) दो प्रकारके भग्नरोगोंमेंसे एक प्रकार। इसका लक्षण—संधिके विश्लेष होने पर वह स्थान स्पर्शासहिष्णु होता है तथा प्रसारण, आकुञ्चन या करवट बदलनेमें बहुत पीड़ा होती है। यह संधि छः प्रकारकी है। यथा—उत्श्लिष्टसन्धिविश्लेष, विश्लिष्ट सन्धि, विवर्त्तित, तिर्य्यग्गत, क्षिप्त और अधःक्षिप्त।

सन्धिरन्ध्रका (सं० स्त्री०) सधिरन्ध्रेण कायतीति कै कः टाप्। सुरङ्गा, सेंध।

सन्धिराग (सं० पु०) संध्यायाः रागः। सिंदूर, सेंदुर।

सन्धिला (सं० स्त्री०) संधिं लातीति ला-क। १ सुरङ्गा, सेंध। २ नदी। ३ मदिरा, शराब।

सन्धिविग्रह (सं० पु०) वह मंत्री जिसकी सलाहसे संधि और युद्धका काम चलता है।

सन्धिविग्रहकायस्थ (सं० पु०) सांधिविग्रहिक।

सन्धिविद्ध (सं० पु०) एक प्रकारका रोग जिसमें हाथ पैरके जोड़ोंमें सूजन और पीड़ा होती है।

सन्धिवेला (सं० स्त्री०) संधिरूपा वेला। कालविशेष, संध्याका समय। दिवा और रात्रिकी संधिवेलामें संध्याकी उपासना करनी होती है। सन्ध्या देखो।

सन्धिषामन् (सं० क्ली०) साममेद।

सन्धिसितासितरोग (सं० पु०) चक्षुरोगभेद।

सन्धिहारक (सं० पु०) संधिना हरतीति हृ-ण्वुल्। संधिचौर, वह चोर जो सेंध लगा कर चोरी करता हो, सेंधिया चोर।

सन्धुक्षण (सं० त्रि०) १ उद्दीपनकारी। २ प्रज्वलनकारी। (क्ली०) ३ उद्दीपन। ४ प्रज्वलन।

सन्धुक्षित (सं० त्रि०) सम्-धुक्ष-क्त। उद्दीपित, प्रज्वलित, उत्तेजित।

सन्धेय (सं० त्रि०) सम्-धा-यत्। संधि करनेके योग्य, जिसके साथ संधि की जा सके।

सन्ध्य (सं० त्रि०) संधिमय, संधिका।

सन्ध्यक्षर (सं० क्ली०) संधिगत अक्षर, स्वरवर्ण या युक्त व्यञ्जनवर्ण।

सन्ध्यर्क्ष (सं० क्ली०) संधि ऋक्ष, संधि नक्षत्र; जिस नक्षत्रमें दोनों राशि होती है उसे संधिनक्षत्र कहते हैं। जैसे कृत्तिका नक्षत्र, इस नक्षत्रके प्रथम पादमें मेषराशि और शेष तीन पादोंमें वृष राशि होनो है, इस नक्षत्रमें दो राशि होनेसे कृत्तिका संधि नक्षत्र है।

सन्ध्यवेला (सं० स्त्री०) ऊषा और सायंकाल।

सन्ध्या (सं० स्त्री०) सं सम्यक् ध्यायत्यस्यामिति सं ध्यै चिंतने आतश्चोपसर्गे इत्यङ्, यद्वा संदधातीति सं धा (अघ्न्यादयश्च। उण् ४।१११) इति यक् प्रत्ययेन निपातितः। १ कालविशेष, दिवारात्रसम्बंधीय दण्डद्वयरूप काल, दिवारात्रिका मिलनकाल। दिवा और रात्रिका एक एक दण्ड करके दो दण्ड कालको संध्या काल कहते हैं। प्रातः और सायंके भेदसे संध्या दो प्रकारकी है। रात्रिके अंतिम एक दण्ड और दिनके प्रथम दण्डात्मक कालको प्रातः संध्याकाल तथा दिनके अंतिम एक दण्ड और रात्रिके प्रथम दण्डात्मक कालको सायंसंध्या कहते हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि संध्या, रात्रि और दिवा ये तीन कालकी भार्या हैं।

दिवा और रात्रिका जो संधिकाल है, उसीको संध्या कहते हैं। अर्द्ध अस्तमित और अर्द्ध उदित सूर्यमण्डल जिस समय होता है, वही प्रकृत संध्याकाल है। यह काल प्रकृत संध्या होने पर भी दिवा और रात्रिका एक एक दण्ड करके संध्याकाल माना गया है। सूर्य जिस समय आधे डूब जाते और तारोंका उदय नहीं होता तथा सवेरे सूर्यका जब उदित अर्द्धोदय होता है और तेजका सम्यक् विकाश नहीं होता, तब उन्हीं दोनों कालोंको संध्या कहते हैं।

प्रातः और सायंको छोड़ कर और भी एक संध्या है जिसे मध्याह्न कहते हैं। जिस समय समसूर्य अर्थात् आकाशमण्डलके ठीक मध्यस्थलमें सूर्यदेव जाते हैं, वही समय मध्याह्नसंध्या है। यह संध्याकाल सप्तमुहूर्त्तके बाद अष्टम मुहूर्त्तकालमें होता है। मुहूर्त्त प्रायः दो दण्डका है, दिवा और रात्रिके परिमाणभेदसे मुहूर्त्तकालके दण्डादिका भी न्यूनाधिक्य होता है।

योगी याज्ञवल्क्यने तीनों संध्याका साधारण लक्षण इस प्रकार बताया है। जिस समय तीन वेद तथा ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वर इन तीन देवताओंका समागम और अन्यान्य सभी देवताओंकी संधि होती है, उसी कालका नाम संध्या है।

२ त्रिसंध्यकालोपासना। उक्त तीन संध्याकालमें जो उपासना की जाती है उसको संध्या कहते हैं। ३ संध्याकालोपास्य देवता। संध्याकालमें जिस देवताकी उपासना की जाती है उसे भी संध्या कहते हैं। श्रुतिमें लिखा है, "अहरहः संध्यामुपासीत" (श्रुति) प्रतिदिन संध्या समय उपासना करे। संध्योपासना अवश्य कर्त्तव्य है। यह संध्या नित्यकार्यमें गिनी जाती है, इसलिये नहीं करनेसे प्रत्यवाय होगा।

उक्त त्रिकालमें ही द्विजातियोंको संध्योपासना अवश्य कर्त्तव्य है। बिना संध्या किये उन्हें जलग्रहण नहीं करना चाहिये। मन्वादि सभी शास्त्रोंमें संध्योपासनाका विशेष विवरण दिखाई देता है। आह्निकतत्त्वमें संध्योपासनिक विधिका विषय इस प्रकार लिखा है,—एकमात्र संध्याके ऊपर ही ब्राह्मण्य प्रतिष्ठित है। संध्याहीन ब्राह्मण किसी कर्मके योग्य नहीं हैं अर्थात् उनसे कोई कर्म नहीं कराना चाहिये तथा उन्हें किसी कर्ममें अधिकार नहीं रहता। वे अब्राह्मण कहलाते हैं। शातातपने छः छः प्रकारके अब्राह्मणका उल्लेख किया है उनमेंसे संध्योपासनावर्जित ब्राह्मण एक है।

अतएव द्विजातिके लिये संध्योपासना अवश्य कर्त्तव्य है और एकमात्र श्रेय है। ब्राह्मण यदि संध्योपासनादि न करें तो वे कदापि ब्राह्मण नहीं कहला सकते। अतएव प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल इन तीनों ही समय यथाविधान संध्योपासना करना कर्त्तव्य है।

प्रातःकालमें पूर्वमुख बैठ कर प्रातःसंध्या और

मध्याह्न कालमें पूर्व या उत्तरमुख बैठ कर तथा सायं-कालमें पश्चिमोत्तरकोणादिकी ओर बैठ कर संध्या करनी होती है। प्रातःकालमें अखण्ड सूर्यमण्डल देखते देखते संध्योपासना करना उचित है। किंतु सायंकालमें पूर्वमुख बैठ कर कदापि संध्या न करे।

एकमात्र सन्ध्योपासना द्वारा ब्राह्मण ब्राह्मण्यसे हीन नहीं होते। सन्ध्या प्रतिदिन करनी चाहिये, किन्तु दिन-में सायं सन्ध्या निषिद्ध है। द्वादशी, अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति और श्राद्ध (जिस दिन पितरोंके उद्देशसे पार्वण और एकोद्दिष्ट श्राद्धादि किये जाते हैं उस) दिन सायंकालमें संध्या नहीं करनी चाहिये।

जब प्रातःसन्ध्या करनी होती है, तब सूर्यदर्शन पर्यन्त एक जगह खड़े हो कर गायत्री जप तथा सायंसंध्या कालमें आसन पर बैठ कर नक्षत्रदर्शन पर्यन्त गायत्री जप करना उचित है। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि जप प्रातःकालमें खड़ा हो कर करनेसे रातके किये हुए सभी पाप तथा सायंकालमें बैठ कर जप करनेसे दिनमें किये हुए पाप दूर होते हैं। अतएव सन्ध्या करनेसे दैनन्दिन कृत पाप दूर होते हैं। किन्तु जो दिवा और सायंकालमें ऐसी संध्याकी उपासना नहीं करते, वे शूद्रकी तरह सभी द्विज-कर्मोंसे वहिष्कृत होते हैं।

ब्राह्मण एकमात्र गायत्रीकी उपासना द्वारा ही परम पद पाते हैं। यह गायत्री प्रातःकालमें गायत्री, मध्याह्न-कालमें सावित्री और सायंकालमें सरस्वती कहलाती हैं। शास्त्रकी उक्ति है, कि जो इसका जप करते, उन्हें प्रति-ग्रह, अन्नदोष आदि पाप स्पर्श नहीं कर सकते, इस कारण इसका गायत्री नाम, सवितृद्योतनके कारण सावित्री और जगत्‌की प्रसवित्री तथा वागरूपत्वके कारण सरस्वती नाम पड़ा है। इसकी उपासना करनेसे सभी प्रकारका मङ्गल होता है और एकमात्र ब्रह्मकी उपासना की जाती है। ब्रह्मकी उपासना द्वारा चित्तशुद्धि और पीछे ब्रह्मसाक्षात्कार लाभ होता है। अतएव संध्योपासना ही एकमात्र ब्रह्मप्राप्तिका उपाय है।

प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर, सत्त्व, रजः और तमः तथा भूः, भुवः और स्वः इन सबकी उपासना होती है। प्रातःकालमें ब्रह्माकी, मध्याह्नकालमें विष्णुकी और सायंकालमें महादेवकी उपासना की जाती है। अतएव एकमात्र सन्ध्योपासनासे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी उपासना होती है। अस्तु ब्रह्मा सन्ध्याका परित्याग कर दूसरेकी उपासना न करें, एक सन्ध्याकी उपासना करने होसे सबोंकी उपा-सना होती है।

पहले कहा जा चुका है, कि ब्राह्मण अवहित हो कर इस सन्ध्यात्रयकी उपासना करें। जो ब्राह्मण त्रिसन्ध्या-वर्जित हैं, वे अब्राह्मण हैं, विषहीन सर्पकी तरह निस्तेजस्क हैं, उन्हें धर्म-कर्ममें कोई अधिकार नहीं है। पितृगण उनका पिण्डग्रहण नहीं करते।

उपनयन संस्कारके बादसे इसी प्रकार त्रिकालमें संध्या करनी होती है, इस कारण इस संध्याका नाम वैदिकी संध्या है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंको उक्त संध्यामें अधिकार है। इसके सिवा एक और तंत्रोक्त संध्या है। जो तंत्रके मतसे दीक्षा ग्रहण करते हैं, उन्हें दीक्षा लेनेके बादसे हो संध्या करना कर्त्तव्य है। तान्त्रिकी संध्यामें सभी वर्णोंको अधिकार है। दीक्षित मात्र हो यह संध्या कर सकते हैं। अमा-वस्या, द्वादशी आदिमें जो सायंसंध्या निषिद्ध बताई गई है, वह वैदिकी संध्याके विषयमें जानना होगा। तान्त्रिकी संध्या निषिद्ध नहीं है। सभी दिन यह संध्या कर सकते हैं। केवल अशौच होने पर यह संध्या नहीं होगी।

ब्राह्मणादि तीनों वर्ण पहले वैदिकी संध्या कर पीछे तान्त्रिकी संध्या करें। वैदिकी प्रातःसंध्या करनेके बाद तान्त्रिक संध्या करनी होती है। इसी प्रकार वैदिक मध्याह्न संध्याके बाद तान्त्रिकी मध्याह्न संध्या तथा सायंसंध्या विषयमें भी जानना चाहिये। समय पर संध्या नहीं करनेसे वैदिक संध्याकी तरह तान्त्रिक गायत्रीका दश बार जप कर पीछे तान्त्रिक संध्या करे।

साम, ऋक् और यजुर्वेदसे वैदिकी संध्या भी तीन प्रकारकी है। सामवेदिगण सामवेदानुसार, यजुर्वेदि-गण यजुर्वेदानुसार और ऋग्वेदिगण ऋग्वेदानुसार संध्या करे। किंतु तान्त्रिकी संध्यामें ऐसा कोई प्रभेद नहीं है, सभी वर्ण एक प्रकारसे संध्या कर सकते हैं।

तान्त्रिक संध्या।

इस वैदिक संध्याके अतिरिक्त और भी एक संध्या करनी होती है। उसे तान्त्रिक सन्ध्या कहते हैं। ब्राह्मणादि चार वर्ण जो तन्त्रके मतसे दीक्षित हुए हैं, उन सबोंको यह संध्या करनी होती है। वेदभेदसे जिस प्रकार संध्या भिन्न प्रकारकी है, तन्त्रमतसे उसी प्रकार वर्णभेदमें संध्याका कोई प्रभेद नहीं है। सभी वर्ण उपास्य देवके उद्देशसे एक ही प्रकारकी संध्या विधिका आचरण करें। वैदिक संध्याकी तरह यह तान्त्रिक संध्या भी नित्य है, अर्थात् नहीं करने पर प्रत्यवाय हैं। तीनों संध्याकी उपासना नहीं करनेसे दीक्षाका फललाभ नहीं होता। तंत्रोक्त वचनमें लिखा है, कि प्रातः संध्या नहीं करनेसे स्नानका फल और मध्याह्न संध्या नहीं करनेसे पूजाका फल नहीं होता तथा सायंसंध्या नहीं करनेसे जपमें विघ्न पड़ता है। अतएव दीक्षित व्यक्ति यदि सिद्धि-लाभ करना चाहें तो एकान्त चित्तसे तीनों संध्याकी उपासना करें।

स्त्रियोंको भी तांत्रिक संध्यामें अधिकार है। वे भी यथाविधान संध्याका अनुष्ठान करें। संक्रांति, अमावस्या, पूर्णिमा, द्वादशी और श्राद्धदिन इन सब दिनोंमें सायंकालको वैदिक संध्या नहीं करनी चाहिये। यह विधि वैदिक संध्या स्थलमें कही गई है। किंतु तांत्रिक संध्याविषयमें यह निषिद्ध नहीं है। वरन् तंत्रमें लिखा है, कि इन सब दिनोंमें यदि तांत्रिक संध्या न की जाय, तो नरक होता है, उसे इस लोकमें दरिद्रता और मरनेके वाद शूकरयोनिकी प्राप्ति होती है, अतएव द्वादशी आदिमें सायंकालमें यत्नपूर्वक संध्याकी उपासना करे।

वैदिक संध्याके वाद तांत्रिक संध्या करनी होती है, तंत्रमें ऐसा ही विधान है। अतएव द्वादशी आदिमें जव संध्या निषिद्ध हुई है, तव दोनों ही संध्या निषिद्ध है, ऐसा जो कहते हैं, वे भूलते हैं। क्योंकि विशेष वचनमें यह संध्या कही गई है, इस कारण यह संध्या अवश्य कर्त्तव्य है। फिर किसी किसीका कहना है, कि यह कौलपर है, जो कौल हैं केवल वे ही उक्त निषिद्ध दिनमें संध्यानुष्ठान करेंगे, यह भी युक्तिसंगत नहीं है। किन्तु जनन या मरणाशौच होने पर किसीको भी संध्यामें अधिकार नहीं है। कोई भी संध्याचरण नहीं कर सकता, किन्तु संध्या नहीं करनी चाहिये कह कर मूलमंत्र जप निषिद्ध नहीं है, यथाविधान संध्या न करके केवल मूलमंत्रका जप करना होगा। कोई कोई कहते हैं, कि जनन या मरणाशौच संध्या निषिद्ध नहीं है अर्थात् अशौचमें भी करनी होगी, यह मत सङ्गत नहीं है। क्योंकि, दूसरे वचनमें संध्या निषिद्ध नहीं होने पर भी वैसे अधिकारीभेदसे संध्याको कर्त्तव्य वताया है, यह सर्वसाधारणके लिये नहीं है।

संध्याका समय वीत जाने पर प्रायश्चित्त करके संध्यानुष्ठान करना होता है, यह पहले ही कहा जा चुका है। दश वार गायत्री जप ही उसका प्रायश्चित्त है। समयातिपातमें वैदिक और तांत्रिक इन दोनों ही संध्यास्थानमें वैदिक गायत्री दश वार जप करके वैदिक संध्या और तांत्रिक गायत्रीका दश वार जप करके तांत्रिक संध्याका आचरण करना होगा या केवल वैदिक गायत्री दश वार जप करके दोनों संध्या करनी होगी? यह संदेह शास्त्रमें मीमांसित हुआ है, केवल वैदिक प्रायश्चित्तात्मक दश वार वैदिक गायत्री जप करके दोनों ही संध्या करनी होगी, भिन्न भिन्न रूपमें प्रायश्चित्त नहीं करना होगा, एक वार प्रायश्चित्त करनेसे उसके द्वारा दोनोंका ही प्रायश्चित्त सिद्ध हो। क्योंकि शास्त्रमें वैदिक गायत्रीका प्राशस्त्य कहा गया है। प्रातःकृत्य किये विना संध्या और संध्या नहीं किये विना देवपूजा नहीं करनी चाहिये।

वैदिक संध्याकी तरह तांत्रिकसंध्यामें भी तर्पण है। जिसके पिता जीवित हैं, उसे वैदिक संध्यामें पितरोंके उद्देशसे तर्पण नहीं करना चाहिये, किन्तु तांत्रिक संध्यामें ऐसी छान वीन नहीं है। संध्या स्थानमें जो तर्पण लिखा है, सभी त्रिसन्ध्याकालमें वह तर्पण कर सकते हैं। वैदिक सन्ध्यास्थलमें मध्याह्न संध्याको ही केवल तर्पण करने कहा गया है, अन्य संध्यामें नहीं। वैदिक संध्याङ्ग जो तर्पण है उसमें पित्रादिके नाम गोत्रका उल्लेख कर तर्पण करना होता है, किन्तु तांत्रिक संध्यामें उस

प्रकार नामगोत्रका कोई उल्लेख नहीं है, अतएव पितरोंके उद्देशसे जो तर्पण किया जाता है वहां पितृ शब्दके अर्थसे प्राप्तपितृलोक समझना होगा। सुतरां जीवत्पितृकके दोष नहीं होगा।

वैदिक संध्यामें जिस प्रकार सबोंको एक गायत्री निर्दिष्ट हुई है, तांत्रिक संध्यामें उस प्रकार नहीं है, प्रत्येक देवताकी भिन्न भिन्न गायत्री है। जो जिस देवताकी उपासना करेंगे, वे उसी देवताकी गायत्री और जप आदि करें। संध्याविधिमें जो साधारणरूपसे कर्त्तव्य है, सिर्फ उसीका उल्लेख यहां पर किया गया। तांत्रिक संध्यामें शक्ति और वैष्णवादि भेदसे कुछ कुछ प्रभेद है।

३ नदीविशेष। ४ युगसंधि, एक युगकी समाप्ति और दूसरे युगको संधिका समय, दो युगोंके मिलने का समय। ५ सीमा, हद। ६ संधान। ७ पुष्पविशेष।

सन्ध्यांश (सं० पु०) संध्यायाः अंशः। युगसंधि, सत्य और त्रेतादियुगका प्रथम और शेषांश। प्रत्येक युगके संध्या और संध्यांश है।

दैव परिमाणके चार हजार वर्षका सत्ययुग होता है। उस युगके पूर्व चार सौ वर्ष संध्यांश होता है अन्यान्य और तीन युग हैं उनका संध्या और संध्यांश एक हजार और एक सौ वर्ष करके घटता जाता है अर्थात् त्रेता युगका परिमाण तीन हजार वर्ष, इसके पूर्व तीन सौ वर्ष संध्या और उत्तर तीन सौ वर्ष संध्यांश होता है। इसी प्रकार द्वापरयुग दो हजार वर्ष, इसके पूर्व दो सौ वर्ष संध्या और शेष दो सौ वर्ष संध्यांश है। कलियुगका परिमाण हजार वर्ष, इसका प्रथम एक सौ वर्ष संध्या और शेष एक सौ वर्ष संध्यांश होता है। अन्यान्य विवरण उन्हीं सब युगमें देखो।

सन्ध्याकाल (सं० पु०) सन्ध्यारूपः कालः। १ सायंकाल। २ संध्या करनेका समय, संध्योपासना करनेका समय। सन्ध्या शब्द देखो।

सन्ध्याचल (सं० पु०) संध्याया अचलः। पर्वतविशेष। कालिकापुराणमें लिखा है, कि इस पर्वतसे कांता नदी निकली है। वशिष्ठदेवने उस नदीके किनारे बैठ कर संध्योपासना की थी, इसीसे पर्वतका नाम संध्याचल पड़ा है।

सन्ध्यात्व (सं० क्ली०) संध्यायाः भावः त्व। संध्याका भाव या धर्म।

सन्ध्यानाटिन् (सं० पु०) संध्यायां नटतीति नट-इनि। शिव, महादेव।

सन्ध्यापुष्पी (सं० स्त्री०) संध्यां पुष्पं यस्याः, ङीष्। जातीपुष्प।

सन्ध्यावधू (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

सन्ध्यावल (सं० पु०) राक्षस, निशाचर।

सन्ध्यावाल (सं० पु०) शिवालयस्थित मृतकाष्ठादि-निर्मित वृष, शिवालयमेंका वह बैल जो मिट्टी या काठका बना होता है।

सन्ध्याभ्र (सं० क्ली०) संध्याया अभ्रमिव तद्वर्णत्वात्। १ सुवर्णगैरिक। २ संध्याकालीन मेघ, शामके समयका बादल।

सन्ध्याराग (सं० क्ली०) सन्ध्याया राग इव रागो यस्य। सिंदूर, सेंदुर।

सन्ध्याराम (सं० पु०) संध्यां रामो रमणं यस्य। ब्रह्मा।

सन्ध्याविद्या (सं० स्त्री०) वरदा देवी।

सन्ध्याशङ्खध्वनि (सं० क्ली०) संध्यायां यो शङ्खध्वनिः। संध्याकालीन शङ्खशब्द। शास्त्रमें लिखा है, कि सायंकाल में शङ्खध्वनि करनी होती है, इससे अमङ्गल दूर होता है तथा वह शब्द जहां तक जाता है, वहां तक शुभ होता है। आज भी प्रति हिंदूके घर संध्याकालमें शङ्खध्वनि होती है।

सन्ध्योपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्विशेष।

सन्न (सं० त्रि०) सद-क्त। १ अवसन्न, नष्ट, गत। २ स्तम्भित, भौचक, ठक। ३ हीन, रहित। ४ स्तब्ध, जड़, संज्ञाशून्य। ५ भयसे नीरव, डरसे चुप। ६ सहसा मौन, एक बारगी खामोश। (पु०) ७ पियाल वृक्ष, चिरौंजीका पेड़।

सन्नक (सं० पु०) सीदति स्मेति सद्-क्त, ततः स्वार्थे कन्। खर्व।

सन्नकद्रु (सं० पु०) पियालवृक्ष, चिरौंजीका पेड़।

सन्नत (सं० त्रि०) सम् नम-क्त । १ प्रणत, झुका हुआ । २ शब्दित, शब्द किया हुआ । ३ नीचे गया हुआ । (पु०) ४ रामकी सेना एक बंदर ।

सन्नति (सं० स्त्री०) सम्-नम-क्तिन् । १ प्रणति, प्रणाम । २ ध्वनि, शब्द । ३ नम्रता, विनय । जहां लज्जा है, वहीं लक्ष्मी है और जहां लक्ष्मी है, वहीं नम्रता है । ४ होम-भेद । ५ झुकाव । ६ किसी ओर प्रवृत्ति, मनका झुकाव । ७ कृपादृष्टि, मेहरबानी । ८ दक्षकी पुत्री और क्रतुकी स्त्रीका नाम ।

सन्नतिमत् (सं० त्रि०) सन्नति अस्त्यर्थे मतुप् । १ सन्नतिविशिष्ट । (पु०) २ सुमतिके पुत्रका नाम ।

सन्नतेय (सं० पु०) रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम ।

सन्नद्ध (सं० त्रि०) सम्-नह-क्त । १ वर्मित, कवचधारी । २ व्यूढ़, जो व्यूह-बद्ध कर खड़ा हो । ३ अस्त्रसज्जित, कवच आदि बांध कर तैयार । ४ आततायी, उपद्रवी । ५ वधोद्यत, मारनेके लिये तैयार । ६ मन्त्रादि संयुत । ७ आबद्ध, बंधा हुआ, कसा या जकड़ा हुआ । ८ लगा हुआ, जुड़ा हुआ । ९ समीपका, पासका ।

सन्नद्धव्य (सं० त्रि०) सम्-नह तव्य । सन्नाहयोग्य, सन्नाह्य ।

सन्नय (सं० पु०) समूह, झुंड ।

सन्नभाव (सं० त्रि०) अवसन्नता, भीरुता ।

सन्नम् (सं० स्त्री०) सन्नति, प्रणाम ।

सन्नय (सं० पु०) सं-नी-अच् । १ समूह, ढेर । २ पृष्ठ-स्थायिबल, पीछे खड़ी सेना ।

सन्नहन (सं० क्ली०) सम् नह-ल्युट् । १ वर्मपरिधान, कवच पहनना । २ उद्योग, तैयारी । ३ अस्त्रबन्धन । ४ रणसज्जा ।

सन्नाटा (हिं० पु०) १ चारों ओर किसी प्रकारका शब्द न सुनाई पड़नेकी अवस्था, निःशब्दता, नीरवता । २ अत्यन्त भय या आश्चर्यके कारण उत्पन्न मौन और निश्चेष्टता, ठक रह जानेका भाव । ३ किसी प्राणीके न होनेका भाव, निर्जनता, निरालापन । ४ काम धंधेसे गुलज़ार न रहना । ५ सहसा मौन, एकदम खामोशी । ६ हवाके ज़ोरसे चलनेकी आवाज, वायुके बहनेका शब्द । ७ हवा चीरते हुए तेज़ीसे निकल जानेका शब्द, वेगसे वायुमें गमन करनेकी आवाज । (वि०) ८ स्तब्ध, नीरव । ९ निर्जन, निराला ।

सन्नाद (सं० पु०) सम्-नद-घञ् । सम्यक् रूपसे नाद, भीषण शब्द ।

सन्नादन (सं० त्रि०) १ सन्नादकारी, शब्द करनेवाला । (क्ली०) २ सम्यक् नाद, सम्यक् शब्द । ३ रामकी सेनाका एक यूथप बन्दर ।

सन्नाम (सं० पु०) नम्रता ।

सन्नामन् (सं० क्ली०) उत्तम नाम, कीर्त्ति ।

सन्नाह (सं० पु०) संनह्यतेऽसौ इति सं नह घञ् । १ अङ्गत्राण, कवच, बकतर । २ उद्योग, प्रयत्न । ३ परिच्छद, पहनावा ।

सन्नाह्य (सं० पु०) संनह्यते इति सम् नह-यत् । १ युद्ध योग्य गज, लड़ाई करने लायक एक विशेष प्रकारका हाथी । (वि०) २ सन्नाहयोग्य, वर्मित ।

सन्निकट (सं० अव्य०) समीप, पास ।

सन्निकर्ष (सं० पु०) सम् नि-कृष-घञ् । १ सामिप्य, समीपता । २ सम्बन्ध, लगाव । ३ नाता, रिश्ता । ४ पात्र, आधार । ५ इंद्रियोंका विषयोंके साथ सम्बन्ध । विषयके साथ इन्द्रियका जो सम्बन्ध अर्थात् व्यापार है, उसे सन्निकर्ष कहते हैं । भाषापरिच्छेदमें लिखा है, कि विषयके साथ इन्द्रियका जो सम्बंध है, वही सन्निकर्ष है । यह सन्निकर्ष ही ज्ञान सामान्यका प्रति कारण अर्थात् इसीसे ज्ञान लाभ होता है । यह सन्निकर्ष दो प्रकारका है—लौकिक सन्निकर्ष और अलौकिक सन्निकर्ष । लौकिक सन्निकर्षके फिर ६ भेद हैं, यथा—१ इंद्रियसंयोग । २ इंद्रियसंयुक्त समवाय । ३ इंद्रियसंयुक्त समवेत समवाय । ४ श्रोत्रादि समवाय । ५ श्रोत्रादि समवेतसमवाय । ६ तदादि विशेषणता । अलौकिक सन्निकर्षके तीन भेद हैं—सामान्य-लक्षणा, ज्ञानलक्षणा और योगज ।

सन्निकर्षण (सं० क्ली०) सम् नि-कृष ल्युट् । १ सन्निधान । पर्याय—सन्निधि, सन्निध । २ सम्बन्ध, लगाव, रिश्ता ।

सन्निकाश (सं० त्रि०) १ ज्योतिर्दान, सम्यक् विकाश । २ तुल्य, समान ।

सन्निकृष्ट (सं० त्रि०) सम्-नि-कृष-क्त। सन्निकर्षविशिष्ट, निकट, पास।

सन्निग्रह (सं० पु०) सम्यक् निग्रह, सजा देना।

सन्निचय (सं० पु०) सम्-नि-चि-घञ्। सम्यक्निचय, सम्यक् रूपसे सञ्चय।

सन्निदाघ (सं० पु०) निदाघ। (भागवत ५।१२।२)

सन्निध (सं० पु०) १ सामिप्य। २ अपने सामनेकी स्थिति।

सन्निधातृ (सं० त्रि०) सम्-नि-धा-तृ। कर्त्ता।

सन्निधान (सं० त्रि०) सम्-नि-धा-ल्युट्। १ नैकट्य, समीपता। सम्यक् निधीयतेऽस्मिन्निति। २ आश्रय। ३ अवस्थान। ४ आविर्भाव। ५ समागम। ६ इंद्रिय विषय। ७ स्थापित करना, रखना। ८ किसी वस्तुके सामनेका स्थान। ९ वह स्थान जहां धन एकत्र किया जाय, निधि।

सन्निधि (सं० स्त्री०) सम्-नि-धा-कि। १ सन्निकर्ष, समीपता, निकटता। २ इंद्रियगोचर। ३ अवस्थान। ४ उत्तम निधि। ५ आमने सामनेकी स्थिति। ६ पड़ोस।

सन्निनद (सं० पु०) सम्-नि-नद-अप्। सम्यक् निनाद, जोरका शब्द।

सन्निनाद (सं० पु०) सम्-नि-नद-घञ्। सम्यक्रूपसे नाद, जोरका शब्द।

सन्निपतित (सं० त्रि०) सम्-नि-पत-क्त। १ मिश्रित, मिला हुआ। २ सम्यक् प्रकारसे पतित, एकदम गिरा हुआ। ३ उपस्थित, हाजिर। ४ मृत, मरा हुआ। ५ अवतीर्ण। ६ आगत।

सन्निपात (सं० पु०) सम्यक् निपातो पतनं यत्र। १ तालभेद।

"एकएव गुरुर्यत्र सन्निपातः स उच्यते।" (सङ्गीतदामोदर)

२ समूह, समाहार। ३ मिश्रण, संयोग, मेल। ४ संग्राम, युद्ध। ५ सम्यक् प्रकारसे पतन, एक साथ गिरना या पड़ना। ६ नाश, बरबादी। ७ अवतरण। ८ उपस्थित। ९ जुटना, भिड़ना। १० इकट्ठा होना, एक साथ जुटना। ११ कफ, वात और पित्त तीनोंका एक साथ बिगड़ना, त्रिदोष। सन्निपातज्वर देखो।

सन्निपातकलिका (सं० स्त्री०) १ अश्विनीकुमारकृत सन्निपात चिकित्सा। २ रुद्रटकृत सन्निपातचिकित्सा।

सन्निपातज्वर (सं० पु०) सम्यक् निपातो नाशो यस्मात् तादृशो ज्वरः। त्रिदोषज ज्वर, त्रिदोषसे उत्पन्न ज्वर। जहां वायु, पित्त और कफ नामके तीनों दोष कुपित हो कर ज्वर रोग होता है वहां उसे सन्निपात ज्वर कहते हैं। वैद्यकमें लिखा है, कि त्रिदोषवर्द्धक आहार, विहार द्वारा शरीरके वायु, पित्त और कफ बढ़ कर आमाशयमें जाते हैं तथा वहां उन तीनों दोषोंको दूषित और कोष्ठकी अग्निको बहिर्गत कर सन्निपात ज्वर उत्पादन करते हैं। सन्निपातज्वर होनेके पहले वातज्वर, पित्तज्वर और कफज्वरके जो सब पूर्वलक्षण होते हैं, इस ज्वरको प्रथमावस्थामें भी वही सब पूर्वरूप दिखाई देते हैं। ज्वर देखो।

सन्निपातन (सं० क्ली०) १ सम्यक्रूपसे पातितकरण, अच्छी तरह गिराने या बिछानेकी क्रिया। २ सन्निपात।

सन्निपातनुत् (सं० पु०) सन्निपातं नुदतीति नुद-क्विप्। नेपालनिम्ब।

सन्निपातभैरवरस (सं० पु०) सन्निपातज्वराधिकारोक्त रसौषधविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—हिङ्गुल ४॥ तोला, गन्धक २ तोला २ माशा, विष २ तोला २ माशा, धतूरेका वीज तीन तोला, सोहागेका लावा १ तोला १ माशा इन्हें बिजौरा नीबूके रसमें घोंट कर छायामें सुखा ले। पीछे सुख जाने पर १ रत्तीको गोली बनावे। अनुपान अदरकका रस और मधु है। घोरतर सान्निपातिकमें इसकी एक गोली सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है।

सन्निपातमृत्युञ्जयरस (सं० पु०) ज्वराधिकारोक्त रसौषधविशेष।

सन्निपातसूर्य्यरस (सं० पु०) ज्वराधिकारोक्त रसौषधविशेष।

सन्निपातिन् (सं० त्रि०) सन्निपातयुक्त।

सन्निपात्य (सं० त्रि०) सम्-नि-पत-ण्यत्। सन्निपातयोग्य, निपातनार्ह।

सन्निबद्ध (सं० त्रि०) सम्-नि-बध-क्त। १ सम्यक् बंधनयुक्त जकड़ा हुआ। २ लगा हुआ। ३ सहारे पर टिका हुआ।

सन्निबन्धन (सं० क्ली०) सम्-नि-बन्ध-ल्युट्। १ सम्यक्रूपसे निश्चित बंधन, एकमें कस कर बांधना।

२ सम्बंध, लगाव। ३ प्रभाव, तासीर। ४ परिणाम, फल।

सन्निभ (सं० त्रि०) सम्यक् निभातीति सम्-निभा-क। सदृश, तुल्य, समान, मिलता जुलता।

सन्निभृत (सं० त्रि०) १ अच्छी तरह छिपाया हुआ, गुप्त। २ समझ बूझ कर बोलनेवाला।

सन्निमग्न (सं० त्रि०) १ खूब डूबा हुआ। २ सोया हुआ।

सन्निमित्त (सं० क्ली०) सत्निमित्तं। १ साधुनिमित्त, उत्तम निमित्त। २ साधुओंके निमित्त।

सन्नियन्तृ (सं० त्रि०) सम्-नि-यम् तृच्। सम्यक् नियन्ता, सम्यक्‌रूपसे नियमकारी।

सन्नियम (सं० पु०) सम्-नि यम्, अप्। सम्यक् रूपसे नियम।

सन्निरुद्ध (सं० त्रि०) सम् नि-रुध-क्त। १ सम्यक्‌रूपसे निरुद्ध, सम्यक् प्रकारसे निरोधविशिष्ट, रोका हुआ, ठहराया हुआ। २ दमन किया हुआ, दवाया हुआ। ३ ठसाठस भरा हुआ।

सन्निरुद्धगुद (सं० पु०) सन्निरुद्धं गुदं यस्मात्। गुह्यद्वारोद्भव रोगविशेष। मलवेगको रोकनेसे कुपित अपान वायु मलवाहिनी स्रोतको संकुचित कर वृहत् द्वारको सूक्ष्म कर डालती है, इस कारण बड़ी मुश्किलसे मल निकलता है। इसी दारुण रोगको सन्निरुद्धगुद कहते हैं। इस रोगके आरम्भ होते ही चिकित्सा करनी उचित है।

सन्निरोद्धव्य (सं० त्रि०) सम-नि-रुध-तव्य। सम्यक्‌रूपसे निरोधयोग्य, अच्छी तरह रोकने या ठहरानेके लायक।

सन्निरोध (सं० पु०) सम्-नि-रुध-घञ्। १ सम्यक्‌रूपसे निरोध, रोक, रुकावट, बाधा। २ निवारण, दमन। ३ संकोच, तंगी। ४ तंग रास्ता, संकरी गली।

सन्निवपन (सं० क्ली०) १ अच्छी तरह बोनेकी क्रिया। २ अच्छी तरह कूटा या छांटा हुआ।

सन्निवर्त्तन (सं० क्ली०) सम्यक् रूपसे निवर्त्तन, प्रत्यावर्त्तन, लौटना।

सन्निवाप (सं० पु०) अच्छी तरह बोना।

सन्निवाय (सं० पु०) समुदाय, समूह।

सन्निवारण (सं० क्ली०) सम्यक्‌रूपसे निवारण।

सन्निवार्य्य (सं० त्रि०) सन्निवारणयोग्य, अच्छी तरह रोकनेके लायक।

सन्निवास (सं० पु०) सं-नि-वस-घञ्। १ सम्यक् निवास। २ विष्णु।

सन्निविष्ट (सं० त्रि०) सम् नि-विश-क्त। १ उपविष्ट, एक साथ बैठा हुआ। २ निकट, पास। ३ सम्मुखमें उपस्थित, हाजिर। ४ निकटस्थ, पासका। ५ संक्रान्त, लगा हुआ। ६ स्थापित, रखा हुआ। ७ अंटा हुआ, आया हुआ।

सन्निवृत्त (सं० त्रि०) सम्-नि-वृत-क्त। निवृत्त, विरत, प्रत्यागत।

सन्निवृत्ति (सं० स्त्री०) सम्-नि-वृत क्तिन्। सम्यक् निवर्त्तन, लौटनेकी क्रिया।

सन्निवेश (सं० पु०) संनिविशंन्ते अत्रेति सं-नि विश-घञ्। १ पत्तनादिमें दिगादिपरिच्छिन्न प्रदेश। २ पूर्वदिगाद्यवच्छिन्न गृह। (कलिङ्ग) ३ पुरादिकी वहिर्विहरण-भूमि, नगर आदिके बाहरमें अवस्थित विहार-भूमि। पर्याय—आकर्षण। ४ एक साथ बैठना। ५ स्थिति होना, जमना। ६ रखना, ठहरना। ७ लगाना, बैठाना। ८ अंटना, भीतर आना। ९ स्थिति, आधार। १० आसन, बैठकी। ११ निवास, घर। १२ पुर या ग्रामके लोगोंके एकत्र होनेका स्थान, चौपाल। १३ एकत्र होना, जुटना। १४ समाज, समूह। १५ व्यवस्था, योजना। १६ रचना। १७ आकृति, गढ़न। १८ स्तम्भ मूर्त्ति आदिकी स्थापना। १९ भीतर प्रवेश करना, घुसना।

सन्निवेशन (सं० पु०) १ एक साथ बैठना। २ रखना, धरना। ३ स्थित होना, जमना। ४ बैठाना, जड़ना। ५ टिकाना, ठहराना। ६ स्थापित करना, खड़ा करना। ७ व्यवस्था, विधान।

सन्निवेशित (सं० त्रि०) १ बैठाया हुआ, जमाया हुआ। २ ठहराया हुआ, रखा हुआ। ३ स्थापित, प्रतिष्ठित। ४ भीतर डाला हुआ, अंटाया हुआ।

सन्निवेशिन् (सं० त्रि०) सम् नि-विश-णिनि। सन्निवेशयुक्त।

सन्निवेश्य (सं० त्रि०) सन्निवेशयोग्य, सन्निवेशके लायक।

सन्निश्चय (सं० पु०) सम्यक्‌रूपसे निश्चय।
सन्निषेव्य (सं० त्रि०) सम् नि सेव यत्। सम्यक् प्रकारसे सेवाके योग्य।
सन्निसर्ग (सं० पु०) सम्यक् निसर्ग।
सन्निहती (सं० स्त्री०) सन्निधि, समीपता।
सन्निहित (सं० त्रि०) सं-नि-धा-क्त। १ निकटस्थ, समीपस्थ। २ सम्यक् स्थापित, एक साथ या पास रखा हुआ। ३ रखा हुआ, धरा हुआ। ४ ठहराया हुआ, टिकाया हुआ। ५ उद्यत, तैयार। (पु०) ६ अग्नि-विशेष। यह अग्नि प्राणियोंके प्राणमें आश्रय ले कर शरीरको परिवर्त्तन करती है।
सन्नृत्य (सं० क्ली०) सम्यक्‌रूपसे नृत्य, अच्छी तरह नाचनेकी क्रिया।
सन्नेय (सं० त्रि०) सम्यक् नयनयोग्य।
सन्नोदन (सं० पु०) १ पशु आदिको चलाना, हांकना। २ प्रेरित करना, उभारना।
सन्नोदयितव्य (सं० त्रि०) सम्यक्‌रूपसे उदयके योग्य।
सन्न्यसन (सं० क्ली०) सम्-नि-अस-ल्युट्। १ सांसारिक विषयोंका त्याग, दुनियाका जंजाल छोड़ना। २ फेंकना, छोड़ना। ३ रखना, धरना। ४ स्थापित करना, बैठाना। ५ खड़ा करना।
सन्न्यस्त (सं० त्रि०) सम्-नि-अस-क्त। सम्यक् न्यासीकृत, समर्पित, जिन्होंने संन्यास या अर्पण कर दिया है।
सन्न्यास (सं० पु०) सं-नि-अस-घञ्। १ जटामांसी। (शब्दचन्द्रिका) २ काम्यकर्मोंका न्यास, काम्यकर्मों-का त्याग। श्रीमद्भगवद्गीतामें लिखा है,—

"काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः॥"

काम्यकर्मोंके त्यागका नाम संन्यास है। काम्य और नित्य अर्थात् सब तरहके कर्मफलोंके त्यागका नाम संन्यास है। स्वर्ग आदि फल-लाभकी कामना कर जो कर्म अनुष्ठित किया जाता है, उसको काम्यकर्म कहते हैं तथा सन्ध्या, उपासना, नित्य होम, कर्त्तव्यके ज्ञानसे तपस्या और दान आदि नित्य कर्म कहे गये हैं। जिन्होंने स्वरूपतः काम्यकर्मोंका त्याग किया है, वे ही यथार्थ संन्यासी कहलाने योग्य हैं। संन्यासियोंको काम्य-कर्मोंके त्याग करनेकी दृष्टिसे नित्य कर्म छोड़ देना न चाहिये। नित्य कर्मोंका यथाविधि अनुष्ठान करना चाहिये। नित्य कर्मका भी फल शास्त्रमें लिखा गया है। नित्यकर्मके अनुष्ठानों द्वारा दैनन्दिन पाप दूर होते हैं। इसलिये नित्यकर्मोंका परित्याग करना न चाहिये। अनासक्त हो कर्त्तव्य बुद्धिसे नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करना उचित है।

ऐसा नहीं हो सकता, कि नित्यकर्मका फल होता ही नहीं। क्योंकि फलशून्य कार्य कोई करता ही नहीं। श्रुतिका कहना है, कि "अहरहः सन्ध्यामुपासीत" (श्रुति) यावज्जीवन प्रतिदिन सन्ध्या उपासना करनी होगी। यदि काम्यकर्मकी तरह स्वर्ग आदि इसके फल होते, तो मुमुक्षु व्यक्ति कदापि इसका अनुष्ठान नहीं करते। क्योंकि जिसके अन्तःकरणसे कामना हट गई है, उसके लिये ऐसे कर्मोंकी जरूरत नहीं। इसीलिये मीमांसकने निर्देश किया है, कि नित्यसञ्चित पापक्षय जन्य नित्य-कर्मानुष्ठान करना चाहिये। अज्ञान और भ्रम आदि निब-न्धन मुमुक्षु लोग भी पाप किया करते हैं। नित्यकर्मोंके अनुष्ठानसे उनके वे पाप दूर होते हैं, इसलिये ये कर्म सबके लिये अनुष्ठेय है। सुतरां जो संन्यासी हैं, उनको भी नित्य कर्म कर्त्तव्य है।

भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको कर्मयोग और कर्म-संन्यासका विषय बताते हुए अल्पाधिकारीके लिये कर्म संन्यासको अपेक्षा उक्त प्रकारके कर्मानुष्ठानको श्रेष्ठ कहा है। गीताके ५वें अध्यायमें कर्मसंन्यासयोगका विषय वर्णित हुआ है।

३ चतुर्थाश्रम। शास्त्रमें चार आश्रम निर्द्धारित है—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास। संन्यास ही शेषाश्रम है। वर्णाश्रमधर्म ही हिन्दूधर्मका मूल है। हिन्दूमात्रको ही आश्रमधर्मका प्रतिपालन करना पड़ता हैं। ब्रह्मचर्याश्रम—द्विज उपनयन-संस्कार होनेके बाद गुरुके घर जा कर जीवनके चार भागका एक भाग ब्रह्मचर्यमें बिताता है। इस आश्रममें गुरुके समीप यथाविधि अनुशासित हो कर गार्हस्थ्य आश्रम अर्थात् जीवनका दूसरा भाग बिताता

है। इस तरह गार्हस्थ्य आश्रमके बाद जीवनका तीसरा भाग वानप्रस्थका अवलम्बन लेना है। इसके उपरान्त संन्यासाश्रम है। द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन वर्ण ही उक्त चार आश्रमके अधिकारी हैं। रघुनन्दन आदि आधुनिक स्मार्त्तोंने तो कलिमें एकमात्र ब्राह्मणोंको ही संन्यासका अधिकारी बनाया है।

जिस गृहस्थकी देहका चमड़ा फूलने लगे, बाल पकने लगे और पुत्रके भी पुत्र हो जाये, उसको चाहिये कि वह वानप्रस्थका अवलंबन करे। वानप्रस्थ शब्द देखो।

वानप्रस्थाश्रममें जीवनका तीसरा भाग बिता कर चतुर्थ भागमें सर्वसंग छोड़ संन्यासाश्रमका अवलंबन लेना होता है।

प्रजापतियाग समाधा तथा सर्वस्व दक्षिणान्त कर आत्मामें अग्नि आधानपूर्वक ब्राह्मणको संन्यासाश्रम ग्रहण करना चाहिये। जिसने सर्वभूतमें अभयदान कर संन्यासाश्रम ग्रहण किया है, वह इसके फलसे तेजोमय लोक प्राप्त करता है। उससे किसी भी प्राणीको भय नहीं रहता और उसे भी देहत्यागके बाद कुत्रापि कुछ भी भय प्राप्त नहीं होता। द्विज संन्यास अवलम्बन कर दण्ड कमण्डलु आदि साथमें ले काम्यविषय उपस्थित होने पर भी उससे वह आस्थाशून्य हो और सर्वदा मौनावलंबन धारण करे। उस समय वह ऐक्यमें सिद्धि समझ आत्मसिद्धिके लिये नित्य अकेला असहाय अवस्थामें विचरण करे। जो सङ्गशून्य हो कर अकेला विचरण करता है, वह किसीको भी त्याग नहीं करता अथवा किसीके द्वारा वह परित्यक्त नहीं होता, अर्थात् आत्मसम्बन्धीय त्याग दुःखादिका उसको अनुभव नहीं होता।

इस संन्यासाश्रममें सदा अग्निहीन, वासहीन, व्याधि प्रतिकारकी प्रतीक्षा, स्थिरमति और सदा ब्रह्मभावमें समाहित हो अवस्थान करना होता है। मृण्मय शरावादि भिक्षापात्र, वासके लिये वृक्षका मूल, पहननेके लिये पुराने कौपीन आदि वसन, असहाय भावसे अकेला अवस्थान और सर्वत्र ही समदृष्टि, ये सब संन्यासाश्रमके लक्षण हैं। इस आश्रमी जीवन या मरण किसीकी भी कामना न करे, किंतु नौकर जैसे वेतनके लिये निर्दिष्ट समयकी प्रतीक्षा करता है, वैसे ही संन्यासी जीवनकाल या मरणकालकी प्रतीक्षा करे। इस आश्रमका अवलम्बन कर पथमें विचरण करते समय पथको खूब अच्छी तरह देख भाल कर चलना चाहिये। जलपान करनेके समय कपड़ेसे जलको छान कर पीना उचित है, वाक्य प्रयोगमें कभी भी झूठ नहीं बोलना चाहिये और मनमें जो पवित्र बोध हो, उसीका अनुष्ठान करना विधिसङ्गत है।

संन्यासियोंका विनाश होता है, उस पापके छुटकारेके लिये उन्हें प्रति दिन स्नान कर छः बार प्राणायाम करना चाहिये। सप्तव्याहृति और दश प्रणवयुक्त प्राणायामत्रय पूरक, कुम्भक और रेचक विधानके अनुसार अनुष्ठित होने पर वह प्राणायाम परम तपस्या कहा जाता है। सोने चांदीमें लगे हुए मल जैसे गर्म करनेसे दूर हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम द्वारा प्राणवायुका निग्रह करनेसे इन्द्रियोंके समूचे दोष दग्ध हो जाते हैं। अतएव प्राणायाम द्वारा इन्द्रियविकारादि दोषोंको संन्यासी दग्ध करे। स्थानविशेषमें चित्तबन्धनरूप धारण द्वारा सब पापोंको नष्ट करना होगा। अपने अपने विषयसे इन्द्रियको आकर्षणरूप प्रत्याहार द्वारा विषय संसर्गरूप सब पापोंसे दूर रखनेकी चेष्टा करे और परब्रह्मके ध्यानमें नियुक्त रह करके कामक्रोध आदि सब अनीश्वर गुणोंको जीते। जीवका देवपश्वादि उत्कृष्टोपकृष्ट योनिमें क्यों जन्म होता है, आत्मज्ञानहीन लोगोंके लिये सम्पूर्णरूपसे दुर्ज्ञेय है। इससे सर्वदा ध्यानपरायण होना विशेष आवश्यक है।

योगी याज्ञवल्क्यने संन्यासके समय और कर्त्तव्य आदिका विषय इस तरह निर्देश किया है, कि सर्ववेद दक्षिणायुक्त प्राजापत्य यज्ञानुष्ठानके बाद यथानियम वैतान और औपासन अग्नि अपने ही आरोपित कर वानप्रस्थ आश्रमसे संन्यासाश्रम अवलम्बन करना होता है। गृहस्थाश्रमसे वानप्रस्थ अवलम्बन न करके भी यह चतुर्थाश्रम (संन्यास) ग्रहण किया जा सकता है। यथार्थरूपसे इस आश्रमका अधिकार हो तो इस आश्रमका अवलम्बन करना चाहिये। जिस व्यक्तिने वेदाध्ययन और सूक्त जप किया है, जो पुत्रवान् है, जिसने अन्धे

लंगड़ेको यथाशक्ति दान दिया है, आहिताग्नि और नित्यनैमित्तिक यज्ञानुष्ठान किया है, उसका ही इस आश्रमका अधिकार है। इसके विपरीत गुणयुक्त होने पर द्विज चतुर्थाश्रमका अधिकारी नहीं होता और यदि वह संन्यास ग्रहण करे, तो अधर्म होता है। इष्टानिष्ट कर सभी प्राणियोंके प्रति ही औदासीन्य प्रकाश इस आश्रमवासीका एकान्त कर्त्तव्य है। संन्यासी सदा शान्ति गुणावलम्बी हो, वह दण्ड और कमण्डलु धारण, एकान्त अवस्थान, और अभिमानमूलक श्रौतस्मार्त्त-क्रियाकलाप परित्याग करे। वह केवल भिक्षाके लिये ग्रामोंमें प्रवेश करे, इसके सिवा संन्यासीको ग्राममें जाना उचित नहीं। किसी गुणका परिचय न दे वाक्य-नेत्रादिका चापल्य और लोभ परित्याग कर भिक्षुकान्तर वर्जित ग्राममें प्राण धारणके लिये आठ भागोंमें विभक्त दिनके पांचवें भागमें भिक्षाटन करे। मृण्मय, वेणु (बांस), दारु (लौकी) का पात्र संन्यासीको व्यवहार करना चाहिये। इनके सिवा दूसरे किसी तरहका पात्र संन्यासी व्यवहार न करे। ये सब पात्र गोलाङ्गुल केश और जल द्वारा विशुद्ध होते हैं।

यह आश्रमी इन्द्रियोंको विषयसे दूर रखनेकी सर्वदा चेष्टा करे। अनुराग और द्वेष परित्याग तथा इस तरहका काम जिससे प्राणियोंको भय उत्पन्न न हो, संन्यासियोंके लिये विधिसङ्गत है। संन्यासी विषयकामनादि जनित दोषकलुषित अन्तःकरणको विशेषरूपसे विशुद्ध करे। क्योंकि अन्तःकरण विशुद्धि ही तत्त्वज्ञानोत्पत्ति तथा ध्यान धारणादि कर्मोंमें सामर्थ्यलाभकी कारण है। विविध गर्भयन्त्रणा, जन्म मृत्यु, निषिद्धाचरणादि जनित नरकगति, आधि, व्याधि, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, ये पांच क्लेश, जरा, अन्धत्व-पङ्गुत्वादिजनित रूपविपर्यय, सहस्र सहस्र जातियोंमें उत्पत्ति, इष्ट वस्तुओंकी अप्राप्ति और अनिष्ट प्राप्तिका विषय पर्यालोचना कर जिससे फिर संसारमें आना न पड़े, इसके लिये संन्यासीको निदिध्यासनादि द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार करना होगा। (याज्ञवल्क्य ३ अ०)

जो मुमुक्षु हैं, वे इस आश्रमका अवलम्बन कर मुक्ति लाभ किया करते हैं। मुक्तिकी प्राप्तिमें इस संन्याससे बढ़ कर कोई दूसरा मार्ग नहीं। सन्न्यासी देखो।

४ शिवपूजाके उद्देशसे मानसीकृत संन्यास व्रतावलम्बनरूप व्रतविशेष। चैत्रके महीनेमें संक्रान्तिके दिन महादेवके उद्देशसे ये सब संन्यासी नाना तरहके उत्सव कर महादेवकी पूजा करते हैं। रघुनन्दन आदि प्रणीत धर्मनिबन्धोंमें इसका कुछ उल्लेख दिखाई नहीं देता। बृहद्धर्मपुराणमें लिखा है, कि चैत्र महीनेमें यह उत्सव कर संक्रान्तिके दिन खतम कर देना चाहिये। लिखा है—

"चैत्रे शिवोत्सवं कुर्यात् नृत्यगीतमहोत्सवैः।
स्नायात् त्रिसंध्यं रात्रौ च हविष्याशी जितेन्द्रियः॥"
(बृहद्धर्मपुराण उत्तरख० ६ अ०)

बङ्गालमें 'चड़क पूजा' के समय संन्यासी होनेकी जो प्रथा है, वह संन्यासी सभी वर्णके लोग हो सकते हैं। साधारणतः नीच जातिके लोग ही ऐसे संन्यासी होते हैं। इन सब संन्यासियोंमें एक मूल संन्यासी होता है। यह मूल संन्यासी महादेव मूर्त्तिको शिर पर रख कर लोगोंके घर घर घूमता है। अन्यान्य संन्यासी नृत्य गान करते करते उसका अनुगमन करते हैं। ये दिन भर उपवास रह कर रातको हविष्य भोजन करते हैं। संक्रान्तिके दिन इनकी यह पूजा समाप्त हो जाती है।
चड़क, दोल आदि शब्द देखो।

५ रोगविशेष, संन्यास रोग। अत्यन्त बलवत् प्रकुपित दोष प्राणाधिष्ठित स्थान हृदयका आश्रय कर वाक्य और शारीरिक तथा मानसिक चेष्टाका विनाश कर दुर्बल व्यक्तिको मूर्च्छित करता है, यह व्यक्ति काष्ठवत् या मृतवत् भूमि पर पड़ जाता है, इसको संन्यासरोग कहते हैं। यह रोग एक तरहकी मूर्च्छा है। इसके होने पर सूई लेने (Enjection) की यदि व्यवस्था शीघ्र न की जाये, तो अविलम्ब ही रोगी मानवलीला सम्बरण करता है।

इसकी चिकित्सा—अति बर्द्धित दोष और तमोगुणाधिक्य-प्रयुक्त जो व्यक्ति मूर्च्छित हो कर चैतन्य लाभ नहीं करता, उसको संन्यास रोगका रोगी समझना चाहिये। इस अवस्थामें रोगीको तीक्ष्ण अञ्जन, नासापुटमें निसिन्दादिका रस प्रदान, उष्ण लौह शलाकादिद्वारा नखके भीतरी हिस्सेका दहन और पीड़न, केश लोमादि-

का उखाड़ना, दाँतोंसे काटना और शरीरमें केवाँचका घिसना, आदि कार्य्य करना चाहिये। इन प्रक्रियाओंसे यदि रोगी संज्ञालाभ करे, तो उसको मूर्च्छा रोगोक्त औषधियोंका प्रयोग कर रोगमुक्त किया जा सकता है। इस रोगमें सुधानिधिरस, अश्वगन्धारिष्ट आदि और दोष आदिकी अवस्थाका विचार कर अपस्मार और उन्माद रोगोक्त चिकित्सा करनी चाहिये। शिशु तथा बालकोंको यह रोग हो जाने पर एरण्डतैल या रसाञ्जन चूर्ण द्वारा दस्त करा कर उदरमें स्वेद कराना चाहिये। क्रिमिनाशक औषधोंका प्रयोग कराना चाहिये।

इस रोगसे आरोग्य लाभ करने पर जब तक शरीर सरल नहीं हो जाता, तब तक निम्नोक्त निषिद्ध कर्मोंका त्याग करना चाहिये। जैसे—गुरुपाक, तीक्ष्ण वीर्य्य, रुक्ष और अम्लजनक द्रव्य भोजन, श्रमजनक कार्य्य सम्पादन, चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, मानसिक उद्वेग, मद्यपान, निरन्तर बैठे रहना, आतप-सेवा, इच्छाके प्रतिकूल कार्य्य, घोड़े पर चढ़ना, मल, मूत्र, तृष्णा, निद्रा और क्षुधा आदिका वेग धारण, रात्रिजागरण, मैथुन और दतवन द्वारा दाँतोंका साफ करना निषिद्ध है। इस रोगमें यावतीय पुष्टिकर और बलकारक आहार देना चाहिये। मूर्च्छा रोग देखो।

सन्न्यासग्रहण (सं० क्ली०) सन्न्यासस्य ग्रहणं। सन्न्यासाश्रम ग्रहण। वानप्रस्थाश्रमके बाद या गृहस्थाश्रमके बाद संन्यास ग्रहण करना होता है। सन्न्यास देखो।

सन्न्यासवत् (सं० त्रि०) संन्यास अस्त्यर्थे-मतुप् मस्य व। १ संन्यासविशिष्ट, संन्यासी। २ संन्यासरोगी।

सन्न्यासी (सं० पु०) संन्यासोऽस्यास्तीति इनि। संन्यासाश्रमविशिष्ट, चतुर्थाश्रमी, जिसने संन्यासाश्रम ग्रहण किया है। पर्य्याय—पाराशरी, मस्करी, कर्मन्दी, श्रमण, भिक्षु, यति। (जटाधर) इनके लक्षण—जो विषयतृष्णा पूर्वक गृहादि त्याग, मस्तकमुण्डन, गैरिक कौपीनाच्छादन, दण्डकमण्डलु धारण और भिक्षावृत्ति द्वारा जीवन धारण कर निर्जन प्रदेशमें अवस्थान पूर्वक केवल परमेश्वरकी उपासना करता है, उसको संन्यासी कहते हैं।

सदन्न या कदन्न, लोष्ट्र या काञ्चन इनमें जिसको नित्य ही समबुद्धि है, उसको संन्यासी कहते हैं। जो दण्डकमण्डलु धारण और गैरिक वस्त्र पहनते हैं, नित्य प्रवासी या एक स्थानमें अधिक दिन नहीं रहते और लोभादि वर्जित हो केवलमात्र ब्राह्मणके घर अन्नभोजन और किसीसे भी कुछ मांगते नहीं जो किसी तरहके व्यापार तथा किसी आश्रममें अवस्थान नहीं करते, सर्व्व कर्मविवर्जित हो सदा नारायणके ध्यानपरायण रहते हैं, जो हर समय मौनावलम्बन कर रहते हैं, किसीसे बातचीत या आलाप नहीं करते; जो सब जगह ब्रह्ममय देखते हैं, हिंसामायावर्जन, सब जगह समान बुद्धि, क्रोध और अहङ्कार आदि रहित और अयाचित रूपसे मीठा या बिना मीठा जो मिल जाता है, वह भोजन कर लेते हैं, भोजनके लिये किसीसे कुछ मांगते नहीं, जो स्त्रियोंका मुख दर्शन तथा उनके निकट नहीं रहते और तो क्या—जो पाषाण या काष्ठनिर्मित स्त्री मूर्त्तिका भी स्पर्श नहीं करते, जो इन धर्मनियमोंके अनुसार चलते हैं, वे ही संन्यासी कहे जाते हैं।

संन्यासी तीन तरहके होते हैं—ज्ञानसंन्यासी, वेदसंन्यासी और कर्मसंन्यासी। इनमें जो सब तरहके संग साथ छोड़, निर्द्वन्द्व, निर्भय और सर्वदा ही आत्मामें अवस्थित अर्थात् आत्माराम हो अवस्थान करते हैं, उनको ज्ञानसंन्यासी कहते हैं। जो मुमुक्षु इन्द्रियोंको जीत कर निराशी और परिग्रह रहित हो कर केवल वेदाभ्यास करते हैं, उनको वेदसंन्यासी तथा जो ब्रह्मार्पण परायण द्विज अग्निको आत्मसात् कर महायज्ञ परायण हो कर अवस्थान करते हैं, उनको कर्मसंन्यासी कहते हैं। इन तीन प्रकारके संन्यासियोंमें ज्ञानसंन्यासी ही श्रेष्ठ हैं। इनका कोई कर्म या लिङ्ग कुछ भी नहीं है। ये मायादिशून्य, निर्भय, निर्द्वन्द्व, पर्णभोजन, जीर्णकौपीनधारी या नग्न और सदा ही ब्रह्मध्यानपरायण हो कर अवस्थान करते हैं। संन्यासी मरण या जीवन किसीकी भी इच्छा न करे, निरपेक्ष भावसे केवल मृत्युकालकी प्रतीक्षा करे। (कूर्मपु० उपवि० २७ अ०)

गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा है, कि जिसने भगवान्‌को सर्वकर्म संन्यास अर्थात् सर्व कर्म अर्पण कर दिये हैं, उसको सन्यासी कहते हैं। यह संन्यासी दो तरहके हैं—मुख्य और गौण। यह मुख्य संन्यासी भी फिर

दो भागोंमें विभक्त हुए हैं,—विविदिषा संन्यासी और विद्वत् संन्यासी। जो सर्व कर्म परित्याग कर गुणातीत हुए हैं और जो भक्तियोग द्वारा भगवान्‌की उपासना करते हैं, उनको गुणातीत संन्यासी कहते हैं।

जो साधनमार्गमें आरोहण कर सर्वत्यागी हुए हैं, वे ही विविदिषा संन्यासी हैं और जो पूर्व जन्मार्जित कर्मफलसे शुक आदिकी तरह आजन्म सर्व त्यागी हैं, उनको विद्वत्संन्यासी कहते हैं।

बहुत प्राचीन वैदिक युगसे ही संसारवैरागी संन्यासीका परिचय मिलता है। अथर्ववेदमें "व्रात्य" नामके जो एक तरहके गृहत्यागी परिव्राजकोंका उल्लेख दिखाई देता है, वे भी वैदिककालके संन्यासी मालूम होते हैं।

स्कन्दपुराणमें सुतसंहितामें चार तरहके संन्यासियोंका प्रसङ्ग आया है—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। वृत्तिभेदसे ये चार तरहके संन्यासी देखे जाते हैं। कुटीचक संन्यास ग्रहण कर अपने तथा मित्रके घरमें भिक्षा करते। वे शिखा रखते, यज्ञोपवीत और काषाय वस्त्र पहनते, शुद्धाचारी बन कर गायत्रीका जप करते और दण्डकमण्डलु हाथमें लिये फिरते हैं। शरीरमें भभूत लगाना, ललाटमें त्रिपुण्ड् करना, त्रिसंध्यावन्दन और श्रद्धाके साथ शिवकी पूजा करना इनका कर्त्तव्य है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि कुटीचक संन्यासी मन्वादि संहितोक्त यति और भिक्षुसे पृथक् हैं।

बहूदक संन्यासाश्रम अवलम्बन और बंधुपुत्रादि परित्याग कर सात घरोंमें भिक्षा माँग कर उससे जो प्राप्त होगा, उसीसे अपनी जीविका निर्वाह करें; बहूदक संन्यासी एक गृहस्थका अन्न न खायें; गोपुच्छ लोमकी रस्सी बंधा त्रिदण्ड, शिक्य, जलपूत पात्र, कौपीन, कमण्डलु, गात्राच्छादन कन्था, पादुका, छत्र, पवित्र चर्म, सूची, पक्षिणी, रुद्राक्षमाला, योगपट्ट, बहिर्वास खनित्र और कृपाण ग्रहण करें; सर्वाङ्गमें भस्मलेपन, त्रिपुण्ड्, शिखा और यज्ञोपवीत धारण करें; वेदाध्ययन और देवताराधनामें निरत रहें; मौनव्रतावलम्बन कर इष्टदेवकी पूजा करें और सन्ध्याके समय गायत्रीका जप कर स्वधर्मोक्त क्रिया सम्पन्न करें।

हंस कमण्डलु, शिक्य, भिक्षापात्र, कन्था, कौपीन, आच्छादन, अङ्ग वस्त्र, बहिर्वास और वंशदण्ड सदा धारण करें, शरीरमें भस्मलेपन, त्रिपुण्ड् धारण और शिवलिङ्गकी अर्चना करें, प्रतिदिन एक बार आठ ग्रास भोजन करें; शिखाके साथ शिरके सभी केश मुण्डन करें; सन्ध्याको गायत्रीका जप और अध्यात्मचिन्तन करें; तीर्थसेवा, कृच्छ्र और चान्द्रायणादि व्रतानुष्ठानके साथ साथ एक रात्रिमात्र एक एक ग्राममें अवस्थान करें और यथारीति आचरण करें।

परमहंसके लक्षण—परमहंस त्रिदण्ड, गोवाल मिश्रित रस्सी, जलपवित्र शिक्य, पवित्र कमण्डलु, पक्षिणी, अजिन, सूची, मृत्, खनित्री, कृपाण, शिखा, यज्ञोपवीत और नित्यकर्म परित्याग करें; कौपीन आच्छादन वस्त्र, शीत निवारण करनेवाली कन्था, योगपट्ट, बहिर्वास, पादुका, छत्र, अक्ष माला और वंशदण्ड व्यवहार करें, अग्नि इत्यादि मन्त्र द्वारा अङ्गमें भस्म लेपन करें और तीन बार ओं उच्चारण कर त्रिपुण्ड्धारण करें; परमहंस नाना स्थानोंसे थोड़ा थोड़ा आहारीय द्रव्य एकत्र कर केवल दिनमें एक बार भोजन करें। अनाहारी और अत्याहारी दोनोंका योग असम्भव है। सुतरां योगानुरूप भोजन, निन्दित आचारत्याग और सर्ववर्णोचित व्यवहार करना इनका विधान है।

परमहंस दो प्रकारके हैं—दण्डी परमहंस और अवधूत परमहंस। जो दण्ड छोड़ कर परमहंस होते हैं, वे दण्डी परमहंस और दूसरे जो अवधूत वृत्तिको अवलम्बन करते हैं, वे अवधूत कहलाते हैं। इनमें कोई ओंकारोपासक, कोई ब्रह्मसंस्थ, कोई देवमूर्त्तिके ही उपासक, फिर कोई वीराचारी होते हैं। वीराचारी सुरापान किया करते हैं।

महानिर्वाण तन्त्रमें है—

"अवधूताश्रमं देवि कलौ सन्न्यासमुच्यते ॥"

कलिमें वैदिक संन्यास निषिद्ध होनेसे अवधूताश्रम ही संन्यास कहा गया है।

किन्तु रघुनन्दनके मलमासतत्त्वमें लिखा है, कि कलिमें संन्यासग्रहणके निषेधसूचक वचन क्षत्रिय और

वैश्यके पक्षमें हैं, किन्तु ब्राह्मणके पक्षमें नहीं। तन्त्रमें चार तरहके अवधूत संन्यासियोंका उल्लेख दिखाई देता है—ब्रह्मावधूत, शैवावधूत, भक्तावधूत और हंसावधूत। ब्राह्मण क्षत्रिय आदि ब्रह्ममन्त्र ग्रहण करनेके बाद गृहस्थ होने पर भी वे अवधूत कहलाते हैं। जो सब मनुष्य पूर्णाभिषेकके नियमसे संन्यास ग्रहण करते हैं, वे शैवावधूत हैं। महानिर्वाण तन्त्र चतुर्दश उल्लास, दशनामी नागा आदि शब्द देखो।

मुण्डमालातन्त्रमें द्वितीय पटलके अनुसार भैरवी, संन्यासिनी और अवधूतादि प्रसङ्ग भी दिखाई देते हैं। ये विभूति, त्रिशूल, गेरुआ और रुद्राक्षादि धारण करते हैं।

सन्न्यासोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद। इस उपनिषद्का शङ्कराचार्य प्रणीत भाष्य देखनेमें आता है।

सन्मङ्गल (सं० क्ली०) सत् मङ्गलञ्च। साधु और मङ्गलजनक।

सन्मणि (सं० पु०) सन् मणिः। सद्‌रत्न, उत्तम मणि।

सन्मति (सं० स्त्री०) सत्-मन-क्ति। उत्तम बुद्धि।

सन्मन्त्र (सं० पु०) सन् मन्त्रः। साधुमन्त्र, उत्तम मन्त्र। (रघु १७।१६)

सन्मात्र (सं० त्रि०) शिवका एक नाम।

सन्मानि (सं० पु०) सम्मान देखो।

सन्मार्ग (सं० पु०) सन् मार्गः। उत्तम मार्ग, सत्पथ, साधु पन्था।

सन्मित्र (सं० क्ली०) सत् मित्रं। उत्तम बंधु, साधु मित्र।

सन्मिश्रकेशव (सं० पु०) द्वैतपरिशिष्ट ग्रन्थके रचयिता, वाचस्पतिमिश्रके शिष्य।

सन्मुनि (सं० पु०) सन् मुनिः। १ साधु मुनि, उत्तम मुनि। २ दैवज्ञ, ज्योतिषी।

सपई (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका लंबा कीड़ा जो मनुष्यों और पशुओंकी आंतोंमें उत्पन्न होता है, पेटका केंचुआ। २ वेला नामक फूल।

सपक्ष (सं० त्रि०) समानः पक्षः यस्य समानशब्दस्थाने सादेशः। १ पक्षावलंबी, तरफदार। २ सहाय, मददगार। ३ अनुकूल। ४ तुल्य, समान। ५ समर्थक, पोषक। ६ पक्षविशिष्ट, जिसके पर हो। (पु०) ७ मित्र, सहायक। ८ न्यायमें वह बात या दृष्टान्त जिसमें साध्य अवश्य हो। ९ अनुकूल पक्ष, मुवाफिक राय।

सपक्षक (सं० त्रि०) सपक्ष-स्वार्थे कन्। सपक्ष देखो।

सपक्षता (सं० स्त्री०) सपक्षस्य भावः तल्-टाप्। १ सपक्षका भाव या धर्म, पक्षावलम्बन, आनुकूल्य। २ पक्ष, डैना, पर।

सपक्षी (सं० त्रि०) सपक्ष देखो।

सपटा (हिं० पु०) १ सफेद वाचनार। २ एक प्रकारका टाट।

सपट्टी (सं० स्त्री०) द्वारके चौखटकी दोनों खड़ी लकड़ियां, वाजू।

सपत्र (सं० त्रि०) १ पत्रके साथ वर्त्तमान, पत्रविशिष्ट, जिसमें पत्ते हों। २ वाण, तीर।

सपत्रक (सं० त्रि०) सपत्र-स्वार्थे-कन्। सपत्र देखो।

सपत्राकरण (सं० क्ली०) सपत्र-कृ-ल्युट्। (सपत्त निष्पत्रादति व्यथने। पा ५।४।६१) इति डाच्। अत्यन्त पीड़न, बहुत कष्ट देना।

सपत्राकृत (सं० पु०) सपत्र कृ-क्त डाच्। १ क्षत मृगादि, घायल मृग। २ अतिशय पीड़ित, अत्यन्त क्लिष्ट।

सपत्राकृति (सं० स्त्री०) सपत्र-कृ-क्तिन्-डाच्। अत्यन्त पीड़न। पर्याय—निष्पत्राकृति।

सपत्न (सं० पु०) सह-पतति एकार्थे इति पत-न सहस्य स। शत्रु, वैरी, विरोधी।

सपत्नकर्षन (सं० क्ली०) शत्रुजय, शत्रुको जीतना।

सपत्नक्षयण (सं० क्ली०) शत्रुविनाशन, शत्रुका संहार।

सपत्नक्षित् (सं० त्रि०) शत्रुहन्ता, दुश्मनका संहार करनेवाला।

सपत्नघातन (सं० त्रि०) शत्रुघातन, शत्रुनाशकारी।

सपत्नजित् (सं० त्रि०) सपत्नं शत्रुं जयति जि क्विप् तुक्-च। १ शत्रुजेता, वैरीको जीतनेवाला। (पु०) २ सुदत्ताके गर्भसे उत्पन्न कृष्णके एक पुत्रका नाम।

सपत्नता (सं० स्त्री०) सपत्नस्य भावः तल्-टाप्। सपत्नका भाव या धर्म, शत्रुता।

सपत्नदम्भन (सं० त्रि०) शत्रु हिंसक, दुश्मनका संहार करनेवाला।

सपत्नदूषण (सं० क्ली०) शत्रु दूषण।

सपत्नहन् (सं० त्रि०) सपत्नं शत्रु हन्ति हन-क्विप्। शत्रु नाशक, रिपुहन्ता।

सपत्नारि (सं० पु०) सपत्नस्य शत्रोररिरिव दुर्गप्रभत्वात्। एक प्रकारका ठोस बांस जिसके डंडे या छड़ियां बनती हैं।

सपत्नी (सं० स्त्री०) समान एकः पतिर्यस्याः (नित्यं सपत्न्यादिषु। पा ४।१।३५) इति ङीप्; पातुर्णकारादेशः, समानस्य सभावोऽपि निपात्यते। समानपतिकी स्त्री, एक ही पतिकी दूसरी स्त्री, सौतिन।

शास्त्रमें लिखा है, कि पतिपुत्ररहित स्त्रीका सपिण्डीकरण नहीं होता। किन्तु सपत्नी पुत्रसे भी सपत्नीका पुत्रत्व सिद्ध होता है। सपत्नीके पुत्र रहने पर उसका सपिण्डन होगा, यह मैथिल ब्राह्मणोंका मत है।

परन्तु रघुनन्दन मैथिलोंका यह मत स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं, कि सपत्नीपुत्रसे पुत्रत्व सिद्ध होता है सही, पर सपत्नीपुत्र रहनेसे अन्य सपत्नीका सपिण्डीकरण नहीं होगा क्योंकि लघुहारीत वचनमें लिखा है, कि पुत्र ही स्त्रियोंका सपिण्डीकरण करेगा, "पुत्रेणैव तु कर्त्तव्यं" यहां 'एव' शब्दसे अतिदिष्ट पुत्र निषिद्ध हुआ है, ऐसा जानना होगा। अतएव सपत्नीपुत्र रहने हुए भी अन्य सपत्नीका सपिण्डीकरण शास्त्रसङ्गत नहीं है।

सपत्नीक (सं० त्रि०) पत्नीसह वर्त्तमानः कप्। सस्त्रीक, स्त्रीके सहित, जोरूके साथ। जैसे—आप सपत्नीक तीर्थ करने जायंगे।

सपत्नीत्व (सं० क्ली०) सपत्न्याः भावः त्व। सपत्नीका भाव या धर्म, सौतिनका काम।

सपत्न्य (सं० क्ली०) सपत्नीयुक्त, सपत्नीविशिष्ट। बृहत्संहितामें लिखा है, कि स्त्रियोंके विवाह लग्नमें चौथेमें यदि राहु रहे, तो उसे सौतिन होगी।

सपथ (सं० पु०) शपथ देखो।

सपदि (सं० अव्य०) संपद्यते इति पद गतौ इन् पृषोदरादित्वात् मलोपः। उसी समय, तुरंत, शीघ्र, जल्द।

सपन (हिं० पु०) सपना देखो।

सपना (हिं० पु०) १ वह दृश्य जो निद्राकी दशामें दिखाई पड़े, नींदमें अनुभव होनेवाली बात। २ निद्राकी दशामें दृश्य देखना।

सपद्म (सं० त्रि०) पद्मयुक्त, जिसमें कमल हो।

सपर (सं० क्ली०) साधिक, परार्द्धसे भी अधिक।

सपरदाई (हिं० पु०) गानेवाली तवायफके साथ तबला, सारंगी आदि बजानेवाला; भंड़ुवा; समाजी।

सपरना (हिं० क्रि०) १ किसी कामका पूरा होना, समाप्त होना, निबटना। २ कामका किया जा सकना, हो सकना। ३ तैयारी करना, तैयार होना।

सपराना (हिं० क्रि०) १ काम पूरा करना, निबटाना। २ पूरा कर सकना, कर सकना।

सपरिकर (सं० त्रि०) अनुचर वर्गके साथ, ठाठ बाटके साथ।

सपरिच्छद (सं० त्रि०) तैयारीके साथ, ठाठ बाटके साथ।

सपरितोष (सं० त्रि०) परितोषके साथ वर्त्तमान, संतुष्ट।

सपरिषत्क (सं० त्रि०) परिषत् सम्वलित, दल बलके साथ।

सपर्या (सं० स्त्री०) पूजा, आराधना, उपासना।

सपर्यु (सं० त्रि०) परिचरणकर्त्ता।

सपर्येण्य (सं० त्रि०) पूज्य, पूजनीय।

सपलाश (सं० त्रि०) पलाश अर्थात् पत्रके साथ वर्त्तमान, पत्रविशिष्ट। (ऐत० ब्रा० ८।१३)

सपशु (सं० त्रि०) पशुके साथ वर्त्तमान; पशुविशिष्ट।

सपशुक (सं० त्रि०) सपशु स्वार्थे कन्। पशुयुक्त।

सपाट (हिं० वि०) १ समतल, बराबर। २ जिसकी सतह पर कोई उभरी या जमी हुई वस्तु न हो, चिकना।

सपाटा (हिं० पु०) १ चलने, दौड़ने या उड़नेका वेग, झोंक, तेजी। २ तीव्रगति, दौड़, झपट।

सपाद (सं० त्रि०) पादेन सह वर्त्तमानः। १ पादयुक्त, जिसके पैर हों। २ चतुर्थ भागके साथ, जिसमें एकका चौथाई और मिला हो।

सपादक (सं० त्रि०) पादविशिष्ट, चरणसहित।

सपादपीठ (सं० त्रि०) सपादं पादसहितं पीठं यस्य। पादपीठयुक्त सिंहासनादि।

सपादमत्स्य (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली ।

सपादुक (सं० त्रि०) पादुकया सह वर्त्तमानः, पादुकाके सहित, पादुकाविशिष्ट ।

सपाल (सं० त्रि०) १ पशुपालके साथ । २ राजपुत्र भेद । ३ लोकका पालन करनेवाला ।

सपिण्ड (सं० पु०) समानः पिण्डो मूल पुरुषो निवापो वा यस्य, समानस्य स । सप्तपुरुषान्तर्गत ज्ञाति, सात पुरुष तक ज्ञातिको सपिण्ड कहते हैं । पर्याय—सनाभि । (अमर)

यह सपिण्ड अशौच, विवाह और दायभेदसे कई तरहका है । अशौच विषयमें सात पुरुष तक ही सपिण्ड नामसे परिचित होते हैं । तीन पुरुष तक पिण्डभोजी और उसके ऊपर तीन पुरुष पिण्डके लेपभोजी और पिण्डदाता ये सात पुरुष ही सपिण्ड हैं । यह बात पुरुषके विषयमें जानना चाहिये । स्त्रियोंके लिये विशेष विधान यह है, कि दत्ता कन्याओंके भर्त्तार सपिण्डन ही उनके सपिण्ड हैं । अदत्ता कन्याओंके लिये पित्रावधि अर्थात् पिता, पितामह और प्रपितामह ये तीन पुरुष ही सपिण्ड हैं । इनके ऊपरके पुरुषोंमें सपिण्डत्व नहीं रहता ।

सपिण्ड ज्ञातिके जनन और मरणमें पूर्ण शौच होता है; किन्तु स्त्रियोंके सपिण्ड तीन ही पुरुष होते हैं, इससे कन्या जननमें तीन पुरुष तक ही पूर्ण शौच होता है । इनके बादके तीन पुरुष त्रिरात्राशौच जानना होगा । अशौचके सम्बन्धमें इसी तरहका सपिण्ड स्थिर कर लेना चाहिये ।

विवाहविषयमें सपिण्ड विचारके सम्बन्धमें यह लिखा है, कि पिता और पिताके फुफेरे भाईसे सात पुरुष तक तथा मातामह और मातृबंधु अर्थात् मौसेरे भाईसे पांच पुरुष तक सपिण्ड कहते हैं । विवाहस्थलमें इसी तरह सपिण्ड स्थिर कर लेना चाहिये । वर और कन्याके पितृपक्षमें सप्तम और मातृपक्षसे पंचम पुरुष छोड़ कर विवाह स्थिर करना चाहिये ।

दाय विषयमें पिता, पितामह, और प्रपितामह तथा उनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और दौहित्र तथा मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह और उनके पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र सपिण्ड शब्दसे अभिहित हुआ करते हैं अर्थात् ये ही दाय विषयमें सपिण्ड हैं ।

सपिण्डता (सं० स्त्री०) सपिण्डस्य भावः सपिण्ड-तल्-टाप् । सपिण्डका भाव या धर्म, सापिण्ड्य ।

सपिण्डन (सं० क्ली०) सपिण्डीकरण देखो ।

सपिण्डी (सं० स्त्री०) सपिण्डीकरण देखो ।

सपिण्डीकरण (सं० क्ली०) असपिण्डः सपिण्डकरणं सपिण्ड कृ ल्युट् अभूततद्भावे च्वि । श्राद्ध-विशेष । मृतके पूर्ण संवत्सर होने पर पार्वण और एकोद्दिष्ट करना होता है । पिण्ड आदिके साथ समन्वय कर पहले जो असपिण्ड थे, उनको सपिण्डमें परिगणित करना होता है, इसीसे इसका नाम सपिण्डीकरण हुआ है । प्रेतपिण्डके पितृपिण्डके साथ मिश्रीकरणको ही सपिण्डीकरण कहते हैं । मनुष्यमात्रको ही मृत्यु होनेके बाद जितने दिनों तक सपिण्डीकरण नहीं होता, उतने दिनों तक उसे प्रेत कहते हैं । इस सपिण्डीकरणके बाद वे भोगदेह पाते हैं । मृत तिथिसे पूर्ण संवत्सर पर अर्थात् एक वर्ष पर मुख्यचान्द्र मृततिथिमें सपिण्डीकरण करना चाहिये । जिस तिथिमें मृत्यु हो, उसी तिथिमें सपिण्डीकरण करना चाहिये । प्रेतके उद्देशसे सपिण्डीकरणान्त श्राद्ध षोडश ही प्रेत विमुक्तिका कारण है अर्थात् इस सपिण्डीकरणके बाद प्रेतलोक विमुक्त हो कर भोगदेह प्राप्ति होती है । एकोद्दिष्ट, पार्व्वण प्रभृति सब तरहके श्राद्धोंके भिन्न भिन्न काल निर्दिष्ट हुए हैं । अतः सपिण्डीकरणश्राद्धमें भी अपराह्न है । इस अपराह्नकालमें जब चाहे तब सपिण्डीकरण नहीं हो सकता । इसमें यह विशेषता है, कि अपराह्न शब्दसे मुख्यापराह्न समझना होगा । शास्त्रमें दिन पांच भागोंमें विभक्त हुआ है । १८ दण्डके बाद २४ दण्ड तक समयको अपराह्न कहते हैं । यह मुख्यापराह्न समय ही सपिण्डीकरणका उपयुक्त काल है । मुहूर्त्त साधारणतः प्रायः दो दण्डमें ही होता है, किन्तु दिनमानके न्यूनाधिक्यवश मुहूर्त्तमें भी कमी वेशी हुआ करती है । इसके बाद तीन मुहूर्त्त कालका नाम सायाह्न है । इस सायाह्न कालमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये ।

इस कालका नाम राक्षसी काल है। अतएव इस कालमें दैव और पैत्र कर्म नहीं किये जाते। पितृकृत्य एकोद्दिष्ट मध्याह्नमें करना चाहिये। इस साधारण नियमके अनुसार सपिण्डीकरण मध्याह्न कृत्य न हो कर क्यों अपराह्नमें करना होगा? इस संबंधमें शास्त्रमें बहुत विचार करनेके बाद स्थिर हुआ है, कि अपराह्नमें करना उचित है।

पहले ही कह आये हैं, कि षोड़श श्राद्ध ही प्रेत विमुक्तिका कारण है। आद्यश्राद्ध, द्वादश मासमें द्वादश मासिक श्राद्ध और दो षाण्मासिक श्राद्ध तथा सपिण्डीकरण श्राद्ध, इन सोलह श्राद्धोंसे प्रेतत्वका परिहार होता है। पूरे एक वर्ष पर सपिण्डीकरण होगा। किसी किसी स्थलमें वर्ष १३ महीनेका भी हुआ करता है अर्थात् जिस वर्षमें मलमास होता है, वह वर्ष १३ महीनेका होता है अतः ऐसे स्थलमें १३ महीनेसे ले कर १७ श्राद्ध करने होंगे।

यदि प्रथम छः महीनेमें मलमास पड़ जाये, तो षण्मासिककी पूर्व तिथि ही प्रथम षाण्मासिकका काल है। क्योंकि छः मास पूर्ण होनेमें एक दिन बाकी रहने पर जो तिथि हो, उसी तिथिको षाण्मासिक करनेकी विधि बताई गई है। इसी तरह त्रयोदश षाण्मासिककी पूर्व-तिथि ही द्वितीय षाण्मासिकका उपयुक्त काल है। सुतरां मलमास प्रथम षाण्मासिक या द्वितीय षाण्मासिकमें हुआ है यह स्थिर कर फिर श्राद्ध करना चाहिये। प्रतिमासकी मृत तिथिमें ही मासिक श्राद्ध करना उचित है।

पूर्ण संवत्सर पर सपिण्डीकरण करनेका विधान है। इसके सिवा एक वर्षके भीतर भी सपिण्डीकरण किया जा सकता है, उसको अपकर्ष सपिण्डीकरण कहते हैं। पुत्रादिकोंके संस्कार कार्य उपस्थित होने पर उसमें वृद्धि अर्थात् नान्दीमुखश्राद्ध उपलक्ष कर जो सपिण्डीकरण किया जाता है, उसको भी अपकर्ष सपिण्डीकरण कहते हैं। इस अपकर्ष सपिण्डीकरणकी विधि-व्यवस्थादिके विधानके संबंधमें लिखा है, कि सपिण्डीकरणान्त षोड़श श्राद्ध द्वारा प्रेतत्व परिहार होता है। किन्तु जिसका वर्ष पूर्ण होनेसे पहले ही अपकर्ष कर सपिण्डन होता है, उसका प्रेतत्व परिहार होगा या नहीं? इसका उत्तर शास्त्रमें इस तरह दिया है,—कुछ लोगोंका कहना है, कि अपकर्ष द्वारा सपिण्डीकरण होता है सही, किन्तु उससे प्रेतत्व नहीं छूटता। एक वर्ष तक मृत व्यक्तिका प्रेतत्व रहता है। किन्तु यह मत सर्वसङ्गत नहीं। सपिण्डन होनेसे प्रेतका परिहार होता है। इसमें पूर्ण वर्ष या अपकर्ष आदि कुछ भी अपेक्षा नहीं करते। अपकर्षस्थलमें प्रेतत्व विमुक्त नहीं होता कहनेसे जितने दिन मृत व्यक्तिका प्रेतत्व रहता है, उतने दिन तक उसके पुत्र आदिके वृद्धि-श्राद्ध आदि कार्योंके अधिकारी नहीं समझना होगा।

स्त्रियां भी सपिण्डीकरण श्राद्ध करें। स्त्रियोंके पार्वणमें अधिकार नहीं है सही, किन्तु सपिण्डीकरण श्राद्ध करनेमें उनको कोई बाधा नहीं।

सपिण्डीकरण स्थलमें पुरुषके साथ पुरुष और स्त्रीके साथ स्त्रीका सपिण्ड समन्वय करना होता है। अर्थात् पिताका सपिण्डीकरण करना हो, तो पितामह, प्रपितामह और वृद्धप्रपितामहके पिण्डोंमें प्रेतका पिण्ड मिश्रित करना होगा। माताका सपिण्डीकरण करना हो, तो विशेष विधान यह है, कि पिता यदि जीवित हों, तो पितामही आदिके साथ पिण्ड मिश्रित करना होगा और यदि मर गये हों, तो माता सपिण्डीकरण स्थलमें पिताके साथ ही पिण्डसमन्वय करना होगा। जब माताके साथ पति (पिता)का सपिण्डन किया जाये, तब ससुर और ससुरके पिताका अर्थात् पितामह और प्रपितामहका पिण्ड कुश द्वारा आच्छादन कर रखना होता है। इसके सम्बंधमें गर्गका कहना है, कि केवल पतिके साथ स्त्रियोंका सपिण्डीकरण अर्थात् पिण्डका मिश्रण करना चाहिये। क्योंकि स्त्रियां मृत्युके बाद स्वामीके साथ ही एकत्व प्राप्त होती हैं। ससुरोंके सामने स्त्रियोंके मस्तकावगुण्ठन सदाचार हैं, इसलिये पितामह और प्रपितामहका पिण्ड दर्भ द्वारा आच्छादन कर माताके अभ्युदयका प्रार्थी पुत्र पिताके पिण्डके साथ ही माताका पिण्ड मिलाये।

पिता यदि संन्यास लेने तथा पतित होने पर मृत्युको

प्राप्त हों, तो भी माताका पिण्ड पितामह या प्रपितामहके पिण्डोंके साथ न मिलाना चाहिये। किन्तु पिताके पिण्डसे न मिला कर पितामही आदिके पिण्डोंसे मिलाना चाहिये।

सपिण्डीकरणका प्रयोग-पद्धतिमें लिखा है, किंतु बढ़ जानेके कारण यहां दिया नहीं जाता। साम, ऋक्, यजु, इन तीन वेदियोंके सपिण्डीकरण-मंत्रमें कुछ प्रभेद है। किंतु मंत्र आदिका कुछ कुछ प्रभेद रहने पर भो साधारण नियम एक सा ही है। अर्थात् इसमें विकृत पार्वण और एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना होगा। विकृत पार्वण शब्दका अर्थ यह है, कि पार्वण श्राद्धमें साधारणतः पितृपक्ष और मातामह पक्ष इन छः पुरुषोंका श्राद्ध करना होगा। किंतु जहां पार्वण विधि द्वारा केवल तीन पुरुषोंका श्राद्ध होता है, उसको विकृत पार्वण कहते हैं। सपिण्डीकरणमें भी यह विकृत पार्वण प्रचलित हुआ है।

वर्ष पूरा होने पर मृततिथिमें सपिण्डीकरण करना होता है। यदि अशौचादि कारणोंसे इसमें बाधा उपस्थित हो अर्थात् श्राद्ध करनेमें किसी तरहकी बाधा उपस्थित हो, तो कृष्ण-एकादशी या अमावस्याको श्राद्ध करना आवश्यक। किंतु इच्छापूर्वक मृत तिथिमें न कर इन तिथियोंमें श्राद्ध किया जाये, तो श्राद्धाधिकारीको प्रत्यवायभागी होना होगा। अतएव मृत तिथि त्याग सर्वतोभावसे निषिद्ध है।

यदि आद्य श्राद्ध और दो चार मासिक श्राद्ध कर ज्येष्ठ पुत्र मृत्युमुखमें पतित हो, तो उसके अव्यवहित कनिष्ठ ही इन सब श्राद्धोंका अनुष्ठान करे। तिथितत्व के सामान्य काण्डमें, श्राद्धतत्वमें और श्राद्धविवेकमें इन विषयोंकी विशेष रूपसे मीमांसा की गई है।

श्राद्ध देखो।

सपित्व (सं० क्ली०) सह प्राप्तव्य, जो एक साथ मिलने-योग्य है।

सपीतक (सं० पु०) राज-कोषातकी, घीया तुरई, नेनुवा।

सपीति (सं० स्त्री०) बंधु बांधवोंके साथ मिलकर खाना पीना।

सपीतिका (सं० स्त्री०) हस्तिघोषा, लंबी घीया या कद्दू।

सपुत्र (सं० त्रि०) पुत्रेण सह वर्त्तमानः। पुत्रके साथ वर्त्तमान, पुत्रविशिष्ट, पुत्रयुक्त।

सपुरुष (सं० त्रि०) पुरुषके साथ वर्त्तमान, पुरुषविशिष्ट।

सपुष्प (सं० त्रि०) पुष्पयुक्त, जिसमें फूल हो।

सपूत (हिं० पु०) वह पुत्र जो अपने कर्त्तव्यका पालन करे, अच्छा पुत्र।

सपूती (हिं० स्त्री०) १ सपूत होनेका भाव, लायकी। २ योग्य पुत्र उत्पन्न करनेवाली माता।

सपूर्व (सं० त्रि०) सपूर्वी यस्य। जिसके वे प्रथम हुए हैं।

सपेरा (हिं० पु०) संपेरा देखो।

सपेला (हिं० पु०) सांपका छोटा बच्चा।

सपोला (हिं० पु०) सांपका छोटा बच्चा।

सप्त (सं० त्रि०) गिनतीमें सात।

सप्तऋषि (सं० पु०) सप्तर्षि देखो।

सप्तक (सं० त्रि०) सप्तन् कन्। १ सप्तसंख्याका पूरण, सातवां। २ सप्तसंख्याविशिष्ट, जिसमें सातकी संख्या मिली हो। सप्त एव स्वार्थे कन्। (क्ली०) ३ सप्त संख्या, सातकी संख्या। ४ सात वस्तुओंका समूह। ५ सङ्गीतके मतमें स, ऋ, ग, म, प, ध, नि इन सब सुरोंके एकत्र होनेसे उसको एक पूर्णस्वर कहते हैं। इसीका नाम सप्तक है।

सप्तकर्ण (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

सप्तकी (सं० स्त्री०) काञ्ची, चन्द्रहार, स्त्रियोंका कमरबंद।

सप्तकृत् (सं० पु०) विश्वेदेवाः नामक देव गणभेद, विश्वेदेवामेंसे एक।

सप्तकृत्वन् (सं० अव्य०) सप्त कृतम्। सात सात करके।

सप्तगङ्ग (सं० क्ली०) सप्तानां गङ्गानां समाहारः। १ सात नदियोंका सम्मिलन स्थान। २ ग्रामभेद।

सप्तगण (सं० त्रि०) १ सप्तसंख्याका समष्टियुक्त, सात सात संख्याका समाहार। २ मरुद्गण।

सप्तगु (सं० त्रि०) १ सात गायोंविशिष्ट, जिसमें सात गाय हों। (पु०) २ आङ्गिरसगोत्रीय एक ऋषिका नाम। ये १०।४७ सूक्तके ऋङ्‌मन्त्रद्रष्टा थे।

सप्तगुण (सं॰ त्रि॰) सप्तगुणविशिष्ट, सतगुना।

सप्तगृध्र (सं॰ पु॰) सप्तसंख्यक गृध्र, सात गीध। अथर्ववेद ८।६।१८ मन्त्रमें सात शकुनि लेकर याग-विशेषका उल्लेख देखा जाता है।

सप्तगोदावर (सं॰ पु॰) सप्तानां गोदावरीनां समाहारः। सात गोदावरीका मिलन। यहां संयत चित्त हो कर स्नान करनेसे महत्पुण्य-लाभ तथा देवलोककी प्राप्ति होती है।

सप्तग्रही (सं॰ स्त्री॰) एक ही राशिमें सात ग्रहोंका एकत्र होना।

सप्तग्राम (सातगाँव)—बङ्गदेशका एक प्राचीन विख्यात अंश, तथा उक्तविभागकी राजधानी। बखतियार खिलजी (महम्मद-इ-बखतियार) के बङ्गविजयके पहले बङ्गदेश राढ़, बागड़ी, बङ्ग, बरेन्द्र और मिथिला इन पांच विभागोंमें विभक्त था। उनमेंसे बङ्गके फिर तीन उपविभाग हुए, लक्ष्मणावती, सुवर्णग्राम और सप्तग्राम। इन तीन विभागोंके प्रधान तीन शहर भी उक्त तीन नामोंसे पुकारे जाते थे। उस समय ये तीन प्रधान शहर अत्यन्त समृद्धिशाली राजधानीरूपमें गिने जाते थे।

मुसलमान शासनकर्त्ताओंके अमलमें ऊपर कहे गये पांच विभाग उन्नीस खण्डोंमें विभक्त हो 'सरकार' नामसे पुकारे जाते थे। उनमेंसे 'सरकार सातगाँव' एक था। वर्त्तमान चौबीस परगना, नदियाजिलेका पश्चिमांश, मुर्शिदाबादका दक्षिण-पश्चिमांश और दक्षिण डायमण्ड-हारबर तक यह विस्तृत भूभाग 'सरकार सातगाँव' कहलाता था। सप्तग्राम नगरमें उक्त सरकारकी राजधानी थी। वर्त्तमान हुगली जिलान्तर्गत त्रिवेणी तीर्थके गङ्गासरस्वती सङ्गमके समीप तथा ई आई रेलवेके तीसवीघा स्टेशनके पास सप्तग्राम बन्दर अवस्थित था। अभी सातगाँव नामक एक अति दरिद्र छोटा मुहल्ला उस इतिहासविख्यात अतुल वैभवसम्पन्न महानगरीका साक्ष्य प्रदान करता है। यह स्थान हुगली शहरसे उत्तर-पश्चिम प्रायः डेढ़ कोस दूर (अक्षा॰ २२° ५८' २०'' उ॰ तथा देशा॰ ८८° २५' १०'' पू॰) अवस्थित है।

सप्तग्राम एक अति प्राचीन स्थान है। हिन्दूशासनके समयमें यहां बहुतेरे राजाओंने राज्य किया था। सप्तग्रामके नामकरणके सम्बन्धमें एक पौराणिक उपाख्यान है जिसका मर्म इस प्रकार है—कान्यकुब्जमें प्रियवस्तु नामक एक राजा थे। उनके सात लड़के थे, सातों ही ऋषि थे, प्रत्येक एक एक ग्राममें रह कर तपस्या करते थे। उनका तप-स्थान होनेके कारण वह सप्तग्राम कहलाया। प्राचीन कालमें यह स्थान तीर्थस्थलरूपमें गिना जाता था।

अंगरेजोंके आनेके बहुत पहलेसे ही यूरोपीयवणिक् वृन्द सप्तग्रामकी सम्पद् और वाणिज्य-वैभवसे आकृष्ट हुए थे। सप्तग्राम पुण्यतोया सरस्वतीके तट पर अवस्थित था। चार सौ वर्ष पहले सरस्वतीके विशाल वक्ष पर नाना देशोंकी सुविशाल वाणिज्य नावें चक्कर लगाती थीं। किसी किसीका कहना है, कि एक समय यह सरस्वती सप्तग्रामके नीचेसे क्रमशः पश्चिम-दक्षिणकी ओर होती हुई आदमजूड़, आमता और तमलुक आदि देशोंके बीच हो कर भीषण कल्लोलसे बहती थी। मूल सरस्वती शिवपुरके भैषज्योद्यान (Botanical garden) के कुछ नीचे शाँकराइल ग्रामके पास भागीरथीसे मिलती है। तमलुकप्रवाहिणी ऊपर कही गई नदी मूल सरस्वतीकी शाखा मानी जाती थी। यूरोपीय लेखकोंमेंसे किसी किसीने सरस्वती नदीका 'सातगांव रीभर' नाम रखा है। इससे प्राचीन सप्तग्राम और सरस्वती दोनोंके ही प्राचीन गौरवका परिचय मिलता है। सोलहवीं सदीके अंतमें सरस्वती धीरे धीरे भरी जाने लगी। पीछे उसकी चौड़ाई इतनी छोटी हो गई, कि अभी उसका खातचिह्न मात्र दिखाई देता है। किन्तु सरस्वती नदीका गर्भ खोद कर नावोंके तख्तों, शृङ्खलों, यहां तक कि मिट्टीके बहुत नीचेसे बड़े बड़े अर्णवयानके मस्तूलोंका भग्नावशेष पाया गया है।

लं साहब कहते हैं, कि प्लिनिके समयसे पुर्त्तगीजोंके आगमन काल तक सप्तग्राममें राजकीय बन्दर था।

भ्रमणकारी फ्रेडरिक (Fredericke) १५७० ई॰में बङ्गदेश आये। उन्होंने सप्तग्राम देख कर लिखा है,—वाणिज्य व्यवसाय करनेके लिये दूर दूर देशके वणिक् यहां आते हैं। सप्तग्राम वाणिज्यका एक प्रधान केन्द्र है। सप्तग्रामके दक्षिण भागीरथी तट पर बेतड़ (Buttor)

नामक ग्राम है। ज्वारके समय बेतड़से थोड़े ही समय-में नाव सप्तग्राम जाया जाता है। प्रति वर्ष सप्तग्राम बन्दरसे ३०।३५ वाणिज्य-नावें चावल, सूती कपड़ा, लाह, चीनी, कागज, तेल (oil of zerzeline) तथा और भी अनेक प्रकारके वाणिज्य द्रव्य देशान्तर भेजे जाते थे।

जो हो, प्राचीन सप्तग्राम जो अत्यन्त समृद्धिशाली महानगर था वह ऐतिहासिक वृत्तान्त पढ़नेसे सहजमें जाना जाता है। फिर यह भी मालूम होता है, कि यह महानगर सारे जगत्के वाणिज्य सम्बन्ध रक्षाका एक प्रधान केन्द्र था। एशिया, यूरोप और अफ्रिका आदि देशोंकी विविध पण्यवाही विशाल वाणिज्य तरणी सप्तग्राममें पहुंच कर सरस्वतीवक्ष पर श्रेणीबद्ध पल्लीकी तरह दिखाई देती थीं। सप्तग्राम नगरमें जिस प्रकार बहुतसे लोगोंका वास था, सप्तग्रामके तलदेश-वाहिनी सरस्वती वक्ष पर भी उसी प्रकार असंख्य अधिवासी नावों पर रहते थे। वाणिज्यालय, धनियोंका सुविपुल प्रासाद, विभिन्न जातिके लोगोंके ऊंचे शिखर-वाले धर्ममन्दिर, खूब लंबा चौड़ा राजपथ तथा उन सब राजपथोंका अविराम जनप्रवाह मानो इस विशाल नगरकी शोभा बढ़ा रहा तथा सजीवताकी रक्षा कर रहा था। गौड़के नवाब प्रतिवर्ष इस स्थानसे बारह लाख रुपये राजस्व वसूल करते थे। सप्तग्रामके वणिक् विशेष समृद्धिशाली थे।

कविकङ्कण चण्डी, विप्रदासके मनसार गीत, चैतन्य-भागवत आदि ग्रंथोंमें सप्तग्रामकी समृद्धिका परिचय दिया गया है।

१८५० ई०के पहले मि डि० मनी नामक एक यूरो-पीय परिव्राजक सप्तग्राम देखने आये थे। उन्होंने जाफर खाँ गाजीकी दरगाहमें संस्कृतमें शिलालिपि देखी। स्थानीय एक हिंदू मंदिरको ही जो इस दरगाहमें परि-णत किया गया था, दरगाह देखने होसे उसका पता चलता है। दरगाहका जो अंश आज भी वर्त्तमान है, उसकी सूक्ष्मरूपसे परीक्षा करने पर सहजमें मालूम हो जायेगा, कि वह हिंदू मंदिरका अंतराल भाग है। कक्षके उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिमकी ओर दृष्टि डालने-से ही दर्शकगण देख सकेंगे कि सीताविवाहः, खरत्रि-शिरसोर्वधः, श्रीरामेण रावणवधः, श्रीसीतानिर्वासः, श्रीरामाभिषेकः, भरताभिषेकः आदि रामायणकी घटना-वली अङ्कित और शिलालिपिमें उनका परिचय लिखा है। महाभारतकी दृश्यावलीमें भृगुदुःशासनयोर्युद्धम्, चानूरवधः, श्रीकृष्णवाणासुरयोर्युद्धम्, कंसवधः, इत्यादि चिह्न भी अङ्कित हैं तथा उसका परिचय दिया गया है। मुसलमानोंने इस मंदिरका ऊपरी अंश विनष्ट कर डाला था, किंतु नीचेका अंश विनष्ट न करके वह दरगाहमें परिणत किया गया। नीचे जो हिंदू-मूर्त्ति हैं वे आपत्तिजनक न समझी जा कर दरगाहमें शोभा-के लिये रखी गई हैं। इस मसजिदमें गदाधारी विष्णु-मन्दिर भी देखनेमें आता है। प्राचीरमें ध्यानमग्न चार साधुकी मूर्त्ति है। यह देख कर कोई कोई समझते हैं, कि वे बौद्धमूर्त्ति हैं। तेईसवें जैन तीर्थङ्कर पार्श्वनाथकी मूर्त्ति इस दरगाहमें है, ऐसा किसी किसी दर्शकका अनु-मान है। फलतः जहां रुकनुद्दीन वारवक शाहकी शिलालिपि (हिजरी ८६०) खोदित हैं, उसीके सामने-की ओर वह मूर्त्ति देखनेमें आती है। उसके दोनों पैरके पीछेसे खड़ा हो कर शेषनाग अपना फण काढ़े हुए हैं।

सप्तग्रामके मुसलमान शासनकर्त्ताओंमें जाफर खाँ सर्वप्रथम था। १२९८ ई०में अरबी भाषामें लिखित शिलालिपि पढ़नेसे जाना जाता है, कि जाफर खाँने काफरोंको तलवार और वल्लमसे मार भगा कर ईश्वरके नाम मसजिद बनवाई। सम्राट् गयासुद्दीन बलबनके पौत्र रुकनुद्दीन कैयस शाह जब बङ्गदेशका शासनकर्त्ता था, उस समय जाफर खाँने अपने भुजबल और दुर्द्धम प्रतापसे सप्तग्रामको दखल किया। शायद जाफर खाँ बङ्गेश्वरका सैन्याध्यक्ष था। त्रिवेणीकी शिलालिपि पढ़नेसे मालूम होता है, कि उक्त जाफर खाँ तुरुष्क जातिका था। सप्तग्राम अभियानके पहले यह देवकोट-का शासनकर्त्ता था। इसका पहला नाम दिनाजपुरमें प्राप्त शिलालिपिमें 'उलाघ-इ-आजन हुमायूं जाफर खाँ वहम इंसिल' लिखा है। गयासुद्दीन तुगलकके शासन-कालमें लिखित तारीख-इ-फिरोजशाही ग्रन्थमें भी सप्त-

ग्रामका उल्लेख है। यह बङ्गका अन्तिम सुलतान वहादूर शाहको परास्त करनेके लिये सप्तग्राम आया था।

इसके बाद इजुद्दीन इयाह अजमल मुलुकने जङ्गीलाट (Military governor) हो कर सप्तग्रामका शासन किया। हिजरी ७२६ ई०में यहां पहले पहल टकसाल घर खोला गया। इस समय महम्मद तुगलक दिल्लीका सम्राट् था। शेरशाहके पुत्र इसलाम शाहके शासनकाल तक भी सप्तग्राममें टकसालघर रहा। कुछ शिलालिपि देखनेसे जाना जाता है, कि १४५५ ई०में इकवार खाँ, १४५६ ई०में तरवियत खाँ, १४८६ उलाघ मजलिस खाँ और १५०५ ई०में उलाघ मसनद खाँ सप्तग्रामके शासनकर्त्ता थे।

महम्मद शाहकी अमलदारीमें गौड़, सुवर्णग्राम, सप्तग्राम, पाण्डुआ, दिनाजपुर, कालना आदि स्थानोंमें मुसलमान शासनकर्त्ताओं द्वारा मसजिदें बनवाई गई थीं। इन सब मसजिदोंके प्रस्तरफलकमें शासनकर्त्ताओंके नाम और कार्यादि सम्बन्धमें संक्षिप्तभावसे कुछ कुछ तथ्य लिखे हैं तथा वे सब पत्थर मसजिदकी दीवारमें जुड़े हुए हैं। आज भी अनेक प्राचीन मसजिदोंमें अरबी भाषामें लिखित शिलालिपि देखनेमें आती है। सप्तग्रामकी मसजिदके सम्बन्धमें अध्यापक एच ब्लैकमान साहबने लिखा है, कि सैयद फकिरुद्दीन कास्पियन समुद्रके उपकूलस्थित आमुन नगरसे सप्तग्राम आये थे। इस मसजिदकी भीतरी दीवारमें एक मेहराब है जो देखनेमें बड़ा ही सुन्दर है। इसके गुम्बज देख कर मालूम होता है, कि ये अपेक्षाकृत आधुनिक हैं। सम्भवतः पठान अधिकारके अन्तमें वे सब मसजिदें बनाई गई हैं। पठानोंके मकान जिस ढंगके बने हैं उस ढंगकी वे सब मसजिदें नहीं हैं। मसजिदके भीतर घुसनेमें भीतरकी ओर द्वारके ऊपर अर्द्धचन्द्राकृति स्थानमें अनेक कारुकार्य देखनेमें आते हैं। मसजिदके बाहर दक्षिणपूर्वकोणके पास दीवारसे घिरा एक स्थान दिखाई देता है। वहां तीन समाधिस्तम्भ विद्यमान हैं। इन तीन स्थानोंमें सैयद फकिरुद्दीन, उसकी स्त्री और एक खोजाकी मृतदेह दफनाई गई है। यहां दो काले पत्थर पर पारसी भाषामें लिखित लिपि उत्कीर्ण है। इन सब उत्कीर्ण लिपियोंके साथ दफनाये गये लोगोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। कहींसे यह शिलाखण्ड ला कर यत्नपूर्वक यहां रखा गया है। फकरुद्दीनके समाधिमन्दिरके गात्रसंलग्न प्रस्तर उत्कीर्ण शिलालिपि देखी जाती है। उसके अक्षर अस्पष्ट हैं।

इस स्थानमें ८६१ हिजरीकी मसजिद निर्माणज्ञापक शिलालिपि देखनेमें आती है। वह अक्षरमें लिखी है।

वर्त्तमान समयमें प्राचीन सप्तग्राम शहरकी परिचायक और दो एक कीर्त्ति देखनेमें आती है। जमालउद्दीनकी समाधिके पास ही वैष्णव-महात्मा उद्धारणदत्तका एक मन्दिर विद्यमान है। इस प्राचीन मन्दिरकी अभी मरम्मत हुई है। सुवर्णवणिक् प्रतिवर्ष यहां उत्सवादि करते हैं। यहां एक प्राचीन माधवीलता है। इस स्थानसे एक मील पूरब सरस्वती नदीके किनारे श्रीमद्रघुनाथ दास गोस्वामीका एक प्राचीन स्मृति मन्दिर दिखाई देता है। इसके कुछ दूर पूरब एक विशाल इष्टकस्तूप पड़ा है। प्रवाद है, कि वही सप्तग्रामके प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष है। तीस बीघासे ले कर त्रिवेणी तक भूखण्डमें यद्यपि लंबे लंबे पेड़ बहुत थोड़े हैं, फिर भी यह स्थान जंगलसे आवृत है। इस जंगलमें जमीनके अंदर बहुतसी ईंटें मिलती हैं। वे सब ईंटें प्राचीन सप्तग्रामकी पूर्व समृद्धिकी अन्तिम निदर्शन हैं। सरस्वती तटके ईंटोंके बने घाट या सीढ़ियोंके कितने चिह्न आज भी कई जगह देखनेमें आते हैं। वे सब घाट किनारेसे बहुत दूर नदीगर्भमें चले गये थे। आज भी उन सब घाटोंकी प्राचीन स्मृति ईंटोंसे जड़ी हुई है।

सप्तग्राममें पुर्त्तगीजोंके आगमन-विवरणसे वहांका इतिहास पाया जाता है। १५३० ई०से इस देशमें पुर्त्तगीज लोग वाणिज्यके लिये आये। इसके ८ वर्ष पीछे सुलतान गयासुद्दीन महम्मद शाह फकरुद्दीन शेरशाह द्वारा मार भगाया गया। फरासीके इतिहास लेखक डू बारो (Du Barros) ने अपने Da Asi. नामक ग्रन्थमें इसका पलरी मामूद नाम रखा है। वे हुसेनी वंशसम्भूत थे। इसी समयसे सप्तग्रामका अधःपतन शुरू हुआ। १५४० ई०में सरस्वती धीरे धीरे कीचड़ और बालूसे भर गई। जलपथसे वाणिज्यकी सुविधा

नहीं रहनेके कारण यह बन्दर क्रमशः विलुप्त हो गया। १५५० ई०में हिजरी ९५७ सालमें यहां अन्तिम वारके लिये सिक्का ढाला गया था। इसके १५ वर्ष बाद सीजर फ्रेडरिक नामक एक परिव्राजकने सप्तग्राममें एक वाणिज्यमेला अपनी आंखों देखा था। सम्राट् अकबर-के समयसे ही सप्तग्रामका अधःपतन शुरू हुआ। उन्होंने पुर्त्तगीजोंको हुगलीमें एक शहर बनानेका हुकुम दिया। तदनुसार कप्तान तेमरेजने हुगलीशहर बसाया। उस नये शहरके बस जानेसे सप्तग्राम जनशून्य हो गया, किन्तु टोडरमलके समयमें भी सप्त-ग्राम एक परगनो या 'सरकार' कह कर अकबरके दफ्तर-में मशहूर था। आईन-इ-अकबरी पढ़नेसे जाना जाता है, कि १७ वीं और १८ वीं सदीमें सप्तग्रामका विपुल वाणिज्यकेन्द्र चुंचड़ा, चन्दननगर, श्रीरामपुर और कल-कत्तेमें विभक्त हो गया। इसी प्रकार प्राचीन समृद्धि-शाली सप्तग्रामका अधःपतन हुआ है।

सप्तचत्वारिंश (सं० त्रि०) सप्तचत्वारिंशत् संख्याका पूरण, सैंतालीसवां।

सप्तचत्वारिंशत् (सं० स्त्री०) सैंतालीस।

सप्तचरु (सं० क्ली०) ग्रामभेद।

सप्तचितिक (सं० त्रि०) अग्नि। (शतपथब्रा० ६।६।२।१४)

सप्तच्छद (सं० पु०) सप्त सप्तच्छदा यस्य। वृक्षविशेष, छतिवन। गुण—तिक्त, उष्ण, त्रिदोषघ्न, दीपन, मद-गन्धित्व, व्रण, रक्तामय और क्रमिनाशक। (राजनि०)

सप्तजन (सं० पु०) १ मुनिविशेष। (रामायण ४।१३।१७) २ सात व्यक्ति, सात आदमी।

सप्तजिह्व (सं० पु०) सप्तजिह्वा काल्याद्या आहुतिग्रस-नार्था यस्य। १ अग्नि। अग्निकी सात जिह्वाओंके नाम ये है,—

"काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता चैव सुधूम्रवर्णा।
उग्रा प्रदीप्ता च कृपीटयोनेः सप्तैव काली: कथिताश्च जिह्वा॥"

कर्म विशेषमें इसका नामान्तर इस प्रकार लिखा है, सात्त्विक याग कर्ममें हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरिक्ता, राजसिक यागकर्म काम्यकर्ममें पद्मरागा, सुवर्णा, भद्रलोहिता, लोहिता, श्वेता, धूमिनी और करालिका ये सात नाम तथा तामसिक यज्ञ या क्रूरकर्ममें विश्वमूर्त्ति, स्फुलिङ्गिनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहिता, कराली और काली। इन सब जिह्वाओंके एक एक अधिष्ठात्री देवता हैं। यथा—अमर्त्य, पितृ, गंधर्व, यक्ष, नाग, पिशाच और राक्षस।

इन जिह्वाओंका वर्ण और दिक्‌नियम इस प्रकार है,—हिरण्या देखनेमें तपे सोनेके समान वर्णविशिष्टा और उत्तर दिशामें अवस्थित है; कनका वैदूर्यकी-तरह तथा पूर्व दिशामें अवस्थित है, रक्ता तरुणादित्यकी तरह वर्ण-विशिष्टा और अग्निकोणमें स्थित, सुप्रभा पद्म रागकी तरह आभाविशिष्टा और पश्चिमको ओर अवस्थित, अति-रिक्ता जवाकुसुमकी तरह रक्तवर्णा तथा वायुकोणमें अवस्थित है। बहुरूपा बहुरूपधारिणी और दक्षिणोत्तर दिशामें अवस्थित है।

सप्तज्वाल (सं० पु०) सप्तज्वाला यस्य। अग्नि।

सप्ततन्तु (सं० पु०) यज्ञ।

सप्तति (सं० स्त्री०) संख्या विशेष, सत्तर।

सप्ततितम (सं० त्रि०) सप्तति संख्याका पूरण, सत्तरवां।

सप्तत्रिंश (सं० त्रि०) सप्तत्रिंशत् संख्याका पूरण, सैंतीसवां।

सप्तत्रिंशत् (सं० स्त्री०) सप्ताधिक त्रिंशत्। सप्त अधिक त्रिंशत्, सैंतीस।

सप्तत्रिंशति (सं० स्त्री०) सप्तत्रिंशकी संख्याका पूरण, सैंतीस।

सप्तथ (सं० त्रि०) सप्तसंख्याका पूरण, सातवाँ।

सप्तदश (सं० त्रि०) सप्तदश संख्याका पूरण, सत्तरहवाँ।

सप्तदशक (सं० त्रि०) सप्तदश-स्वार्थे कन्। सप्तदश देखो।

सप्तदशता (सं० स्त्री०) सप्तदशन् भावे तल्-टाप्। सप्त-दशका भाव या धर्म।

सप्तदशधा (सं० अव्य०) सप्तदशन् प्रकारार्थे धाच्। सत्तरह प्रकार।

सप्तदशन् (सं० त्रि०) सप्ताधिकादश। संख्या विशेष। सत्तरह।

सप्तदशम (सं० त्रि०) सप्तदशका पूरण, सत्तरहवाँ।

सप्तदशरात्र (सं० पु०) सप्तदशदिन व्यापी उत्सवविशेष, वह उत्सव जो सत्तरह दिन तक होता है।

सप्तदशर्च (सं० त्रि०) सप्तदश ऋग्मन्त्रयुक्त, जिसमें सत्तरह ऋग्मन्त्र हों।

सप्तदशवत् (सं० त्रि०) सप्तदशस्तोमकारी।

सप्तदशिन् (सं० त्रि०) सप्तदशसंख्या (स्तोत्र) युक्त, सत्तरहका।

सप्तदिन (सं० क्ली०) सप्त संख्यक दिन, सात दिन।

सप्तदिवस (सं० पु०) सप्त दिन, सात रोज।

सप्तदीधिति (सं० पु०) सप्तदीधितयो ऽस्य। अग्नि।

सप्तद्वीप (सं० पु०) सप्तसंख्यक द्वीप, पुराणानुसार पृथ्वीके सात बड़े और मुख्य विभाग। सात द्वीप ये हैं—जम्बूद्वीप, कुशद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप।

सप्तद्वीपा (सं० स्त्री०) सप्त द्वीपा यस्यां। पृथिवी पर सात द्वीप हैं, इसीसे पृथिवीका नाम सप्तद्वीपा हुआ है। द्वीप शब्द देखो।

सप्तधा (सं० अव्य०) सप्तन् प्रकारार्थे धाच्। सात प्रकार।

सप्तधातु (सं० पु०) सप्तगुणिता धातवः। १ शरीरस्थित सप्त संख्यक धातु। रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, और शुक्र ये सातधातु हैं।

ये ही सात धातु शरीरको धारण करती हैं। इसीसे इनको धातु कहते हैं, इन सबका क्षय और वृद्धि एकमात्र शोणित (रक्त) के ऊपर निर्भर करता है। अर्थात् शोणितक्षय प्राप्त होने पर सभी धातु क्षीण हो जाती हैं और शोणित वृद्धि होने पर सब धातु बढ़ जाती हैं।

आहारजात रस ही सप्तधातुओंमें परिणत हो जाता है। जो द्रव्य आहार किया जाता है, उसका असार अंश मलमूत्रके रूपमें बाहर निकल आता है और उसका सार अंश सप्तधातुओंमें परिणत होता है। आहारजात रससे पहले रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे मज्जा और मज्जासे शुक्र (वीर्य)की उत्पत्ति होती है।

इन सब धातुओंमें रस द्वारा शरीरके प्रणीन अर्थात् स्निग्धता आदि कार्य और रक्तकी पोषणक्रिया सम्पादित होती है। मांस शरीरका पोषण तथा मेदका पुष्टिसाधन करता है तथा मेद, स्नेह और स्वेदका पोषण और अस्थिका दृढ़ता-सम्पादन करता है। अस्थि देहधारक और मज्जाका पोषणकार्यसम्पादक है, फिर मज्जा प्रीति, स्नेह, बल और शुक्रका पोषक और अस्थिका पूर्णतानिष्पादक है। शुक्र धातु द्वारा वीर्यस्खलन, प्रीति, स्त्रीमें अनुराग, देहका बल, वर्ण और बीजार्थ गर्भका प्रयोजन आदि निर्वाहित होता है।

इन सब धातुओंके उपचय और क्षयसे शरीर क्षीण हो जाता है। रसक्षय होनेसे हृदयमें वेदना, हृत्कम्प, हृदयकी शून्यता और तृष्णा उत्पन्न होती है। रक्तधातु क्षय होने पर चर्मकी रुक्षता (रुखरापन) अम्ल द्रव्य भोजनकी इच्छा और शिराओंमें शिथिलता हो जाती है। मांस धातुके क्षय होने पर नितम्ब (चूतड़), गण्डदेश, ओष्ठ, उपस्थ, उरु, वक्षःस्थल, बाहुमूल, पैरकी पसूली, उदर और ग्रीवा—ये सब स्थान शुष्क, रुक्ष, और वेदनायुक्त तथा गात्र शिथिल हो जाता है। मेदके क्षय होनेसे प्लीहाकी वृद्धि होती है। सन्धियां मेदशून्य और शरीर रुक्ष हो जाता है। स्निग्ध मांस भोजनकी अभिलाषा होती है, अस्थि क्षीण होनेसे अस्थिमें वेदना उत्पन्न होती है और दाँत, नख आदि रुक्ष हो कर सहज ही टूट जाते हैं। इसीलिये शरीर भी रुक्ष हो जाता है। मज्जाक्षय होनेसे शुक्रकी अल्पता, सन्धि-स्थल और आंखमें वेदना तथा अस्थि मज्जाहीन हो जाती है। शुक्रक्षय होनेसे अण्डकोषमें वेदना और मैथुन शक्तिहीन हो जाता है। इससे शुक्रको अल्पताप्रयुक्त मज्जामिश्रित अल्प शुक्र भी निकलता है। (सुश्रुत) विशेष विवरण इनके प्रत्येकके नामवाले शब्दमें देखिये।

२ चन्द्रमाके घोड़ोंमेंसे एक। (त्रि०) ३ सात धातुओंसे बना हुआ।

सप्तधान्य (सं० पु०) जौ, धान, उरद आदि सात अन्नोंका मेल जो पूजामें काम आता है।

सप्तधार (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

सप्तन् (सं० त्रि०) सप-समवाये कनिन् तुट्। (उण् १।१५६) संख्याविशेष, सात। यह शब्द बहुवचनान्त है।

सप्तनली (सं० स्त्री०) पक्षी पकड़नेका एक यन्त्र।

सप्तनवत (सं० त्रि०) सप्तनवति संख्याका पूरण, सन्तानवे।

सप्तनवति (सं० स्त्री०) संख्याविशेष, नव्वेसे सात अधिक, ९७।

सप्तनवतितम (सं० त्रि०) सप्तनवति संख्या, सन्तानवाँ।

सप्तनाड़िक (सं० त्रि०) सप्तनाड़ी चक्रविशिष्ट।

सप्तनाड़िका (सं० स्त्री०) शृङ्गाटक, सिंघाड़ा।

सप्तनाड़ीचक्र (सं० क्ली०) सप्तनाड़ीनां चक्रं। फलित ज्योतिषमें सात टेढ़ी रेखाओंका एक चक्र जिसमें सब नक्षत्रोंके नाम भरे रहते हैं और जिसके द्वारा वर्षाका आगमन बताया जाता है।

सप्तनामन् (सं० पु०) वायु।

सप्तनामा (सं० स्त्री०) आदित्यभक्ता, हुलहुल नामका पौधा।

सप्तपञ्चाश (सं० त्रि०) सप्तपञ्चाशत्, संख्याका पूरण, सत्तावनवाँ।

सप्तपञ्चाशत् (सं० पु०) संख्याविशेष, सत्तावन।

सप्तपत्र (सं० त्रि०) सप्त सप्त पत्राणि यस्य। १ जिसमें सात पत्ते या दल हों। २ जिसके वाहन सात घोड़े हों। (पु०) ३ मोतिया, मोगरा, बेला। ४ सप्तपर्ण वृक्ष, छतिवन। ५ सूर्य।

सप्तपद (सं० क्ली०) १ सप्तपादविशेष। २ विवाहकालमें दी जानेवाली वह सात वस्तु जो वरको दी जाती है। ३ वह मन्त्र जिसके आगे सप्तपदी शब्द हो।

सप्तपदी (सं० स्त्री०) सप्तानां पदानां समाहारः (द्विगोः पा ४।१।२१) इति ङीप्। सप्तपदका मिलन।

विवाहकी एक रीति जिसमें वर और वधू अग्निके चारों ओर सात परिक्रमाएं करते हैं और जिससे विवाह पक्का हो जाता है। भवदेवभट्टने इस सप्तपदीगमनके विषयमें इस प्रकार लिखा है—यथाविधान पाणिग्रहण हो जानेके बाद सात पिठारसे मण्डल बनाना होता है। उस सात मण्डलमें जमाईको पूर्वकी ओर ले जा कर सात मन्त्र पढ़ वधूको उस सात मण्डलमें एकके बाद दूसरेमें ले जाय। इस प्रकार पादन्यास करनेका नाम सप्तपदीगमन है। वधू पहले अपना दाहिना पैर और पीछे बायां पैर उसमें रखे। उस समय जामाता कहे, बांये पैरसे दाहिना पैर ठुकरावो। वधूको उसी प्रकार कार्य करना चाहिये। इस प्रकार सात मण्डलमें पाद-विक्षेप कर गमन करना होता है। विवाह शब्द देखो।

सप्तपदार्थ (सं० पु०) द्रव्यादि ७ पदार्थ। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये सात पदार्थ हैं। भाषापरिच्छेदमें इन सात पदार्थोंके लक्षण और विशेष विवरण लिखे हैं। न्याय, वैशेषिक दर्शन और उन्हीं सब शब्दोंमें विशेष विवरण देखो।

सप्तपराक (सं० पु०) १ वाह्यवस्तुसे प्रवृत्तिको रोके रखना। २ सात दिन उपवासी रहना।

सप्तपर्ण (सं० क्ली०) १ मिष्टान्नभेद, एक प्रकारकी मिठाई। दाख, अनार, खजूर, कृतिवनामल, इनसे पहले शक्कर, पीछे लाजचूर्ण, मधु और घी मिलानेसे सप्तपर्ण बनता है। (पु०) सप्त सप्त पर्णानि यस्य। २ वृक्षविशेष, छतिवनका पेड़। (Alstonia Scholaris or Echites Scholaris) कलिङ्ग—एलेलग; महाराष्ट्र—सातवर्णा, पड़ाकुल, अरिटाकु; बम्बई—छातवीन। संस्कृत पर्याय—विशालत्वक्, शारदी, विषमच्छद, शारद, देववृक्ष, दानगन्धि, शिरोरुजा, ग्रहनाशन, गुत्सपुष्प, शुक्तिपर्ण, सुपर्णक, वृहत्त्वक्। (रत्नमाला) गुण—व्रण, श्लेष्मा, वात, कुष्ठ, रक्तदोष और कृमिनाशक, दीपन, श्वास और गुल्मघ्न, स्निग्ध, उष्ण। (राजनि० सप्तच्छद शब्द देखो।

सप्तपर्णक (सं० पु०) सप्तपर्ण स्वार्थे कन्। सप्तपर्ण देखो।

सप्तपर्णी (सं० स्त्री०) सप्त सप्त पर्णान्यस्याः ङीप्। लज्जालुलता, लज्जावंती।

सप्तपलाश (सं० पु०) सप्तपर्ण देखो।

सप्तपाताल (सं० क्ली०) सप्तानां पातालानां समाहारः। पृथ्वीके नीचेके सात लोक जिनके नाम ये हैं—अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल।

सप्तपुत्र (सं० त्रि०) १ सप्तलोक जिसके पुत्र हैं। (ऋक् १।१६४।१) 'सप्तपुत्रं सप्तलोकाः पुत्रा यस्य तं, तादृशं" २ सप्तपुत्रविशिष्ट, जिसके सात पुत्र हों। (पु०) ३ सात पुत्र।

सप्तपुत्रसू (सं० स्त्री०) सप्त पुत्रान् सूते इति सू-क्विप्। सप्त पुत्रप्रसूता स्त्री, वह औरत जिसने सात पुत्र प्रसव किये हैं।

सप्तपुत्री (सं० स्त्री०) तुरईकी तरहकी सतपुतिया नामकी तरकारी।

सप्तपुरी (सं० स्त्री०) सात पवित्र नगर या तीर्थ जो मोक्षदायक कहे गये हैं। अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका (उज्जयिनी) और द्वारका ये सात पवित्र पुरियाँ हैं।

सप्तप्रकृति (सं० स्त्री०) राज्यके सात अंग जो ये हैं—राजा, मन्त्री, सामन्त, देश, कोश, गढ़ और सेना।

सप्तबाह्य (सं० क्ली०) बाह्लिक देशके अन्तर्गत राज्यविशेष। (हरिवंश)

सप्तभङ्गिनय (सं० पु०) जैनोंके चिरास्थस्त वादानुवादकी अङ्गभङ्गिविशेष। सप्तभंगी देखो।

सप्तभङ्गी (सं० स्त्री०) जैन न्याय या तर्कके सात अवयव जिन पर स्याद्वादकी प्रतिष्ठा है। ये सातों अवयव या सूत्र स्यात् शब्दसे आरम्भ होते हैं। यथा—स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिचनास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्तिचावक्तव्य, स्यान्नास्तिचावक्तव्य, स्यादस्तिचनास्तिचावक्तव्य।

सप्तभद्र (सं० पु०) सप्तसु स्थानेषु भद्रमस्य। १ शिरीष वृक्ष, सिरिसका पेड़। (शब्दच०) २ नवमल्लिका, नेवारी। ३ गुंजा, चिरमटी।

सप्तभुवन (सं० पु०) ऊपरके सात लोक। लोक देखो।

सप्तभूम (सं० पु०) १ मकानके सात खण्ड या मरातिब। (त्रि०) २ सतमंजिला, सात खंडोंका।

सप्तम (सं० त्रि०) सप्तानां पूरणः (तस्य पूरणे डट्। पा ५।२।४८) इति डट् (नान्तादसंख्यादेर्मट्। पा ५।२।४९) इति डटो मडागमः। सप्त संख्याका पूरण, सातवाँ।

सप्तमक (सं० त्रि०) सप्तम स्वार्थे कन्। सप्तम देखो।

सप्तमन्त्र (सं० पु०) अग्नि।

सप्तमरीच (सं० पु०) अग्नि। (वृहत्स० ४३।३७)

सप्तमातृ (सं० स्त्री०) सप्त मातरो यस्याः। १ जिसकी माता सात हैं, गङ्गादि ७ नदियां जिसकी माता अर्थात् उत्पादिका हुई हैं। (ऋक् १।३४।८)

जो जल विशेषमें गङ्गादि सात नदियोंकी माता अर्थात् उत्पत्ति स्वरूप हुई हैं, उसे सप्तमातृ कहते हैं।

२ तन्त्रोक्त सात मातृका। मातृका देखो।

सप्तमातृका (सं० स्त्री०) सात माताएं या शक्तियां जिनका पूजन विवाह आदि शुभ अवसरोंके पहले होता है। इनके नाम ये हैं—ब्राह्मी या ब्राह्मणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री या इन्द्राणी और चामुण्डा।

सप्तमानुष (सं० पु०) अग्नि। (ऋक् ८।३९।८)

सप्तमास्य (सं० त्रि०) सप्तपुत्र। (काठक ३३।८)

सप्तमी (सं० स्त्री०) सप्तम ङित्वात् ङीप्। सप्तमकी पूरणी तिथि, सप्तमी तिथि। चन्द्रकी सप्तकलाक्रिया। यह शुक्ल कृष्ण भेदसे दो प्रकारकी है। अर्थात् शुक्ला सप्तमी तथा कृष्णा सप्तमी। अमृत पूर्वावच्छिन्न सप्तमकला क्रियारूपा शुक्ल सप्तमी अर्थात् जिस समय चन्द्रकी सप्तमकला पूरण होती है, उसको शुक्ला सप्तमी कहते हैं और अमृतह्रासानुकूल सप्तमकलाक्रिया अर्थात् जिस समय चन्द्रको सप्तमकलाका ह्रास होता है, उसे कृष्णसप्तमी कहते हैं। पञ्जिकामें शुक्ला और कृष्णा सप्तमीका अङ्क २२ लिखा रहता है। तिथितत्त्वमें इस सप्तमी तिथिकी व्यवस्था आदिके विषयमें यों लिखा है, कि जिस दिन सप्तमी तिथि अखण्डिता होगी, उसी दिन सप्तमीविहित धर्मकर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। किन्तु सप्तमी तिथि यदि खण्डिता अर्थात् दो दिनव्यापिनी हो और दोनों दिन ही यदि कर्मयोग्य कालकी प्राप्ति हो, तो सप्तमी विहितकार्य षष्ठीयुक्त सप्तमीके दिन करना होगा। क्योंकि पञ्चमी, सप्तमी, त्रयोदशी, प्रतिपदा, नवमी, ये कई तिथियां जिस दिन साम्मुखा होंगी, उसी दिन इन सब तिथियोंके विहित कर्म करना आवश्यक है। साम्मुखी शब्दका अर्थ यह है, कि जिस दिन तिथि सायाह्नव्यापिनी होती है, उसी दिन इसका साम्मुख्य होता है।

अतएव दूसरे दिन सप्तमी सन्ध्याव्यापिनी होने पर सप्तमीविहित उपवास षष्ठीयुक्त सप्तमीमें ही होगा। भविष्यपुराणमें भी इसका प्रमाण है। यथा-षष्ठीयुक्त सप्तमीमें उपवास करना उचित है, अष्टमीयुक्त सप्तमीमें नहीं।

शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको यदि रविवार पड़ जाये, तो उसको विजया सप्तमी कहते हैं। इस दिन दान करनेसे बड़ा फल होता है। इस तिथिमें सूर्यदेवको

तण्डुल (चावल) द्वारा चरुपाक चढ़ानेसे इस चरुमें जितने तण्डुल रहते हैं, उतने वर्ष उसकी सूर्यलोकमें गति होती है। यदि अन्यान्य देवताके उद्देशसे भी इस तिथिमें जिस देवताकी पूजा की जाये और नैवेद्य चढ़ाया जाये, तो तण्डुलके परिमाणानुसार उस देवताके लोकमें वास होता है।

माघ मासकी शुक्लासप्तमी तिथिके दिन उपवास कर सूर्यदेवकी पूजा करनी होती है। इसका विधान यह है, कि षष्ठीके दिन हविष्य और एक बार भोजन कर सप्तमीके दिन उपवास करे। दूसरे दिन अष्टमीके दिन पारण किया जाता है। सप्तमीके दिन सूर्यकी पूजा ही प्रधान कार्य है। जो इस तरहके विधानानुसार एक वर्ष तक इसका अनुष्ठान करते हैं, वह इस जन्ममें आरोग्य, धन, धान्य और अन्त कालमें इस तरहका स्थान अधिकार करते हैं, कि उनको इहलोकमें लौटनेकी जरूरत नहीं होती। इसको आरोग्य-सप्तमी कहते हैं, यह सब पापोंका नाश करनेवाली है।

अष्टमीके दिन तिक्त और अम्लशून्य वस्तु द्वारा पारण करे। मूँग, उड़द, तिल और घृत इस पारणमें निषिद्ध है। सूर्यमाहात्म्यप्रकाशक शास्त्रके अनुसार एक पाकमें जो सिद्ध हो जाये, पारणके समय उसी तरहकी वस्तु विहित हुई है।

माघ मासकी शुक्ला सप्तमीका नाम माकरी सप्तमी है। यह सप्तमी तिथि सूर्यग्रहण तुल्य फलप्रद है। अरुणोदयकालमें इस तिथिको स्नान करनेसे वृहत् फल हुआ करता है। यदि अरुणोदयके समय इस तिथिको गङ्गास्नान किया जाय, तो कोटि सूर्यग्रहणकालीन फल होता है।

यह सप्तमी तिथि यदि पूर्णा हो अर्थात् पूर्व दिनके अरुणोदयकाल तक व्यापिनी हो, तो पूर्व दिनका अरुणोदय काल ही सप्तमी स्नान विधेय है।

यह माकरी सप्तमी माघ और फाल्गुन इन दो मासोंमें ही सम्भव है। कुछ लोग ऐसा ख्याल कर सकते हैं, कि माघी सप्तमी मकर राशिगत सूर्यघटित मासकी ही सप्तमी होनेसे इसका नाम माघी सप्तमी हुआ है। सुतरां माघी सप्तमी विहित स्नान करनेके समय राशिका उल्लेख कर स्नान करना होगा। इसके उत्तरमें स्मार्त्तने कहा है, कि इस स्नानमें राशिका उल्लेख नहीं होगा। मकर राशिस्थ सूर्यावच्छिन्न मासमें सप्तमी तिथि होनेसे इसका नाम माकरी सप्तमी या माघी सप्तमी नहीं हुआ। किन्तु सप्तमी तिथिमें चन्द्रमा मकराकार प्राप्त होते हैं अर्थात् अर्द्धचन्द्र होते हैं, इससे ऐसे चन्द्रमाघटित चान्द्रमासीय सप्तमीको माकरी सप्तमी कहते हैं और भी जिस स्थलमें तिथिविहित कार्य होगा, उस स्थलमें चान्द्रमासका ही ग्रहण समझना होगा। चान्द्रमासानुसार यह सप्तमी मकर और कुम्भ इन दो मासोंमें ही सम्भव है।

इस सप्तमीका दूसरा नाम रथसप्तमी है। क्योंकि आदिमन्वन्तरमें इस सप्तमी तिथिमें दिवाकर रथप्राप्त हुए थे। इसीलिये इसको रथसप्तमी कहते हैं। इस दिन स्नान दान विशेष पुण्यजनक है। इस तिथिमें स्नानके बाद सूर्यदेवके उद्देशसे अष्टाङ्ग अर्घ देना होता है। इस अर्घमें ८ द्रव्य होते हैं। यथा—जल, दूध, दधि, घी, तिल, तण्डुल, सरसों, कुशाग्र और पुष्प। किसी किसीके मतसे पुष्पके बदले मधु देनेकी व्यवस्था है।

भाद्र मासकी शुक्ला सप्तमीको ललिता सप्तमी या कुक्कुटी सप्तमी कहते हैं। इस सप्तमी तिथिमें नियमपूर्वक स्नान कर जो व्यक्ति मण्डलमें अम्बिकाके साथ शिवकी प्रतिकृति लिख कर पूजा करते हैं, उनके लिये कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं रहता। श्राद्ध शब्द देखो।

रघुनन्दनने जिन कई सप्तमियोंका उल्लेख किया है, वही केवल यहां लिखी गई हैं। हेमाद्रिके व्रतखण्ड आदिमें सप्तमी व्रतका उल्लेख दिखाई देता है। वे सब व्रत भी इस व्यवस्थाके अनुसार होंगे।

व्रत और श्राद्ध शब्द देखो।

सप्तमार्कव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष, सप्तमी तिथिमें कर्त्तव्य सूर्यदेवके उद्देशसे व्रतविशेष।

सप्तमृत्तिका (सं० पु०) शान्ति पूजनमें काम आनेवाली सात स्थानोंकी मिट्टी। राजद्वारकी, राजशालाकी तथा इसी प्रकार और स्थानोंकी मिट्टी मंगाई जाती है।

सप्तरक्त (सं० क्ली०) सप्तानां रक्तानां तद्वर्णानां समाहारः। शरीरके रक्तवर्ण सात अवयव। हस्त और

पदतल, नेत्रान्तर अर्थात् चक्षुका मध्यभाग, तालु, अधर, जिह्वा और नख। सामुद्रिकमें लिखा है, कि शरीरके ये सात अवयव यदि रक्तवर्ण हों, तो शुभ जानना चाहिये।

सप्तर्च (सं० क्ली०) सात ऋग्मन्त्र।

सप्तरत्नपद्मविक्रामिन् (सं० पु०) बुद्धभेद।

सप्तरश्मि (सं० त्रि०) १ सप्तसंख्यक गायत्र्यादि छन्दोयुक्त (ऋक् २।१८।१) २ सप्तरज्जुविशिष्ट।

सप्तरात्र (सं० पु०) सप्ताहः, सात दिन।

सप्तरात्रिक (सं० क्ली०) सप्तरात्र, सात दिन।

सप्तराव (सं० पु०) गरुड़के एक पुत्रका नाम।

सप्तराशिक (सं० पु०) गणितकी एक क्रिया जिसमें सात राशियां होती हैं।

सप्तरुचि (सं० पु०) अग्निका एक नाम।

सप्तर्षि (सं० पु०) सप्त चासौ ऋषयश्चेति। ब्रह्माके मानसपुत्र सात ऋषि। पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें लिखा है, कि आकाश दिग्भागमें सर्वोपरि सप्तर्षि मण्डल संस्थित है। ये सप्तर्षि ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। इनका नाम मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अङ्गिरा और वशिष्ठ। इन सातों ऋषियोंके यथाक्रम संभूति, अनुसूया, क्षमा, प्रीति, सन्नति, अरुन्धती और लज्जा ये सात स्त्रियां हैं। ये सभी लोकजननी हैं, इन लोगोंकी तपस्यासे तीनों लोक अवस्थित है। ये सन्ध्यात्रय उपासना और गायत्री जपमें तत्पर हो सप्तर्षिमण्डलके साथ अवस्थित हैं।

प्रत्येक मन्वन्तरमें सप्तर्षि भिन्न भिन्न हैं। हरिवंशमें लिखा है,—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, और वशिष्ठ ये सात ऋषि ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। ये ही पृथ्वीके उत्तर और अवस्थानपूर्वक सप्तर्षिमण्डल नामसे परिचित और विराजित हुए हैं। ये सब सप्तर्षि स्वायम्भुव मन्वन्तरमें थे। मनु १४ हैं, इसलिये १४ मन्वन्तरके सप्तर्षि भी भिन्न भिन्न हैं। (हरिवंश ६ अ०)

पुराणोंमें सात ऋषियोंके नाममें भी पार्थक्य दिखाई देता है। १४ मन्वन्तरके सप्त ऋषियोंके नाम इस तरह हैं—

१ स्वायम्भुव मन्वन्तरमें—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह क्रतु, और वशिष्ठ। २ स्वारोचिष मन्वन्तरमें—उर्ज्जता, प्रम्भण, दत्तोली, ऋषभ, निश्चर, चारु और अर्वीर, ये सप्तर्षि हैं। ३ उत्तम मन्वन्तरमें—वशिष्ठके प्रमद आदि सात पुत्र ही सप्तर्षि थे। ४ तामस मन्वन्तरमें—ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वलक और पीवर। ५ रैवत मन्वन्तरमें—हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्द्ध्ववाहु, वेदवाहु, सुधामा, पर्जन्य और वशिष्ठ। ६ चाक्षुष मन्वन्तरमें—सुमेधा, विरजाः, हविष्मान्, उन्नत, मधु, अतिनामा, और सहिष्णु। ७ वैवस्वत मन्वन्तरमें—काश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, और भरद्वाज। ८ सावर्णिक मन्वन्तरमें—गालव, दीप्तिमान्, परशुराम, अश्वत्थामा, कृप, ऋष्यशृङ्ग और व्यास। ९ दक्ष सावर्णिक मन्वन्तरमें—मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सवल और हव्यवाहन। १० ब्रह्मसावर्णिक मन्वन्तरमें—आपोमूर्ति, हविष्मत्, सुकृति, सत्य, नाभाग, अप्रतिम और वशिष्ठ। ११ धर्म सावर्णिक मन्वन्तरमें—हविष्मत्, वशिष्ठ, आरुणि, निश्चर, अनघ, विष्टि और अग्निदेव। १२ रुद्रसावर्णिक मन्वन्तरमें—द्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्त्ति, तपोनिधि, तपोरति और तपोधृति। १३ देवसावर्णिक मन्वन्तरमें—धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और निष्प्रकम्प। १४ इन्द्रसावर्णिक मन्वन्तरमें—अग्नीध्र, अग्निवाहु, शुचि, मुक्त, माधव, शुक्र और अजित नामके ऋषि सप्तरूपसे विद्यमान थे। (मार्कण्डेयपु०) विष्णुपुराणके तृतीय अंशमें इन सप्तऋषियोंका विशेष विवरण वर्णित हुआ है। काशीखण्डमें लिखा है, कि शनिलोकके ऊपर और ध्रुव लोकके नीचे सप्तर्षिमण्डल अवस्थित है।

ज्योतिःशास्त्रमतसे सप्तर्षिमण्डल इस समय मघा नक्षत्रमें अवस्थित है। इस सप्तर्षिमण्डलके साथ वशिष्ठपत्नी अरुन्धती भी विराजित हैं। संवत्सर देखो।

धर्मशास्त्रमें लिखा है, कि प्रति दिन स्नान या सन्ध्याके बाद इन सप्त ऋषियोंके उद्देशसे तर्पण करना होता है। देवतर्पणके बाद ही इस ऋषितर्पणका होना विधिसङ्गत है। तर्पणस्थलमें जो सप्तऋषियोंका विषय लिखा गया है, वहां सात नहीं, वरं दश ऋषियोंका

उल्लेख है। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद ये दश ऋषि भप्त-ऋषि नामसे परिचित हैं। इन दशों ऋषियोंके उद्देशसे तर्पण किया जाता है। सप्तचासौ ऋषयश्चेति, इस समास वाक्यसे सात ऋषि ही होने चाहिये। इसलिये व्याकरणमें कहा है, कि पञ्चाम्र, सप्तर्षि आदि शब्द सप्त संख्याका बोधक न होने पर भी इससे दोष न होगा।

सप्तर्षिक (सं० पु०) सप्तर्षि स्वार्थे कन्। सप्तर्षि देखो।

सप्तर्षिचार (सं० पु०) सप्तर्षीणां चारः। सप्तऋषियोंका विचरण। वराहके बृहत्संहितामें सप्तऋषियोंकी गतिका विषय इस तरह लिखा है, कि उत्तर ओर सप्तर्षिमण्डल अवस्थित है। राजा युधिष्ठिर जब पृथ्वीका शासन करते थे, उस समय यह सप्तर्षिमण्डल मघा-नक्षत्रमें अवस्थित था। यह सप्तर्षिमण्डल एक एक नक्षत्रमें एक एक सौ वर्ष विचरण करता है। उत्तर पूर्व ओर यह सप्तर्षिमण्डल अरुन्धतीके साथ उदित होता है। इस मण्डलके पूर्व भागमें मरीचि, मरीचिसे पश्चिम वशिष्ठ' इसके बाद अङ्गिरा, इसके उपरान्त अत्रि और इसके निक पुलस्त्य, पुलह और क्रतु यथाक्रमसे पूर्व ओर अवस्थित हैं। इनमें साध्वी अरुन्धतीने वशिष्ठ देवका आश्रय लिया है। यह सप्तर्षिमण्डल यदि उल्का, अशनि या धूम आदिसे हत, विवर्ण, ज्योतिर्विहीन अथवा ह्रस्व हो, तो नाना तरहके संसारमें अमङ्गल हुआ करता है। विपुल और स्निग्ध होनेसे जगत्का मङ्गल होता है।

मरीचि यदि किसी तरह पीड़ित हों, तो गन्धर्व, देव, दानव, मन्त्रौषधि, सिद्ध, यक्ष, नाग और विद्याधरोंको भी पीड़ा होती है। वशिष्ठके अभिहत होनेसे शाक, यवन, दरद, पारद, काम्बोज और वनवासी तपस्वियोंका अनिष्ट होता है और किरणशाली होने पर उनका उपचय हुआ करता है। अङ्गिराके उपहत होनेसे ज्ञानी, बुद्धिमान् व्यक्ति तथा ब्राह्मण विनष्ट होते हैं। अत्रिके व्याघात-से वन और जलजात द्रव्य तथा जलनिधि और सरितायें विलुप्त होती हैं, पुलस्त्यके व्याघात होने पर रक्षः, पिशाच दानव, दैत्य, सर्प, पुलहके व्याघात होने पर मूल और फल और क्रतुके विघ्न होने पर याज्ञिकोंका विघ्न हुआ करता है। (बृहत्संहिता १३ अ०)

सप्तर्षिज (सं० पु०) बृहस्पतिग्रह।

सप्तर्षिता (सं० स्त्री०) सप्तर्षि नक्षत्रयुक्ता।

सप्तल (सं० पु०) पाणिनि-उक्त व्यक्तिभेद।

सप्तला (सं० स्त्री०) सप्तलातीति ला-क। १ नवमालि-का, चमेली। २ चर्मकषा, चमरखा। ३ गुञ्जा, घुंघची। ४ पाटला, पाढ़रका वृक्ष। ५ अरण्य, रीठा-करञ्ज।

सप्तलिका (सं० स्त्री०) सप्तला।

सप्तवती (सं० स्त्री०) नदीभेद। भागवतमें लिखा है, कि यह नदी भारतवर्षमें अवस्थित है तथा सबसे बड़ी नदी है। इस नदीमें स्नान करनेसे पुण्य लाभ होता है।

सप्तवध्रि (सं० त्रि०) १ बन्धनभूत धातु। (भागवत ३।३१।१।१((पु०) २ ऋषि। (ऋक् ५।७८।५)

सप्तवर्ग (सं० पु०) सात दल।

सप्तवर्मन् (सं० पु०) एक प्राचीन वैयाकरण।

सप्तवादी (सं० पु०) सप्तभंगी न्यायका अनुयायी, जैन।

सप्तवार (सं० पु०) १ रवि, सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि ये सात वार। इन सात वारोंमें सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र ये चार वार शुभ हैं, बाकी सभी अशुभ। २ गरुड़के एक पुत्रका नाम।

सप्तविंश (सं० त्रि०) सप्तविंशति संख्याका पूरण, सत्ताई-सवाँ।

सप्तविंशक (सं० त्रि०) सप्तविंश—स्वार्थे कन्। सत्ताई-सवाँ।

सप्तविंशति (सं० स्त्री०) १ सत्ताईसकी संख्या या अंक। (त्रि०) २ सत्ताईस।

सप्तविंशतिक (सं० त्रि०) सप्तविंशति-स्वार्थे कन्। सत्ताईस।

सप्तविंशतिगुग्गुल (सं० पु०) भगन्दर रोगाधिकारोक्त औषधविशेष।

सप्तविंशतितम (सं० त्रि०) सप्तविंशति संख्याका पूरण, सत्ताईसवाँ।

सप्तविंशतिम (सं० त्रि०) सप्तविंशति संख्याका पूरण, सत्ताईसवाँ।

सप्तविंशिन् (सं० त्रि०) सप्तविंशति संख्याविशिष्ट, सत्ताईसवाँ।

सप्तविदाह (सं॰ पु॰) वृक्षभेद ।

सप्तविध (सं॰ त्रि॰) सप्तविधा यस्य । सात प्रकार, सात तरहका ।

सप्तशत (सं॰ त्रि॰) सात सौ ।

सप्तशतिका (सं॰ स्त्री॰) सप्तशती देखो ।

सप्तशती (सं॰ स्त्री॰) सप्तानां शतानां समाहारः (द्विगोः । पा ४।१।२१) इति ङीप् । १ सप्तशतिका, सात सौ श्लोकों-का देवीमाहात्म्य । चण्डीमें सात सौ श्लोक हैं, इसीसे उसको सप्तशती कहते हैं ।

सात सौ श्लोक जिसमें हैं, उसीको सप्तशती कहते हैं भगवद्गीताको भी सप्तशती कहा जा सकता है । क्योंकि उसमें भी ७०० श्लोक हैं । २ सात सौका समूह ।

सप्तशती—बङ्गालमें ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी । गौड़राज आदिशूर द्वारा बङ्गदेशमें पांच साग्निक ब्राह्मण लाये जाने-के पहले राढ़देशमें सात सौ घर ब्राह्मण रहते थे, वे सप्तशती कहलाते थे ।

कुलीन राढ़ीय और वारेन्द्र शब्द देखो ।

सप्तशलाक (सं॰ पु॰) सप्तशलाकाः तद्वत् रेखा यत्र । विवाहके शुभाशुभ दिन जाननेके लिये टेढी और ऊंची सात रेखाओंका एक चक्र । उत्तर और दक्षिण सात रेखायें तथा पूर्व और पश्चिम सात रेखायें अङ्कित करनी पड़ती है । पीछे उत्तर ओरकी प्रथम रेखासे आरम्भ कर कृत्तिकादि कर अभिजित्‌के साथ २८ नक्षत्र बैठाने होंगे । २७ नक्षत्र और एक अभिजित कुल २८ नक्षत्र टेढ़ी और ऊंची सात रेखाओंके चारो ओर सात सात नक्षत्र बैठानेसे २८ नक्षत्र बैठाये जा सकते हैं । इस तरह यह देखना होगा, कि नक्षत्र न्यास करनेसे सप्त-शलाका वेध होता है या नहीं । जिस नक्षत्रमें विवाह होगा, उसमें या उसके सामनेवाले नक्षत्रमें चन्द्रके सिवा यदि कोई ग्रह हो, तो सप्तशलाकावेध होता है । इससे विवाह विशेष रूपसे निषिद्ध है । यदि इस निषेधको न मान कर विवाह कर डालें, तो विवाहिता स्त्री उसी रातको उस विवाहका वस्त्र पहने हुए ही पतिके मुखानल देनेको श्मशानमें गमन करती है । इससे विवाहके दिन सप्तशलाकावेध देख लेना चाहिये ।

उत्तराषाढ़ाके अन्तिम ५ दण्ड और श्रवणाके पहले चार दण्डको अभिजित कहते हैं । इस अभिजित्‌के साथ रोहिणी नक्षत्रका वेध अर्थात् अभिजित् नक्षत्रमें यदि विवाह हो और इस दिन रोहिणी नक्षत्र पर चन्द्रके सिवा अन्य कोई ग्रह हो, तो समझना होगा, कि इस दिन सप्तशलाकावेध हुआ है । इसी तरह कृत्तिकाके साथ श्रवणाका वेध, मृगशिराके साथ उत्तराषाढ़ाका वेध, मघाके साथ भरणीका वेध और पूर्वफल्गुनीके साथ अश्विनीका वेध जानना होगा ।

सप्तशिरा (सं॰ स्त्री॰) सप्तशिरा यस्याः । नागवल्ली लता ।

सप्तशिव (सं॰ त्रि॰) सप्तलोकमें शिवकर, सप्तलोकका मङ्गलकर ।

सप्तशिवा (सं॰ स्त्री॰) नागवल्ली ।

सप्तशीर्षन् (सं॰ त्रि॰) १ सप्तशीर्षविशिष्ट । (पु॰) २ विष्णुका एक नाम ।

सप्तषष्ठ (सं॰ त्रि॰) सप्तषष्ठि संख्याका पूरण, सड़-सठवां ।

सप्तषष्ठि (सं॰ स्त्री॰) सप्ताधिकषष्ठि संख्या, सड़सठ ।

सप्तषष्ठितम (सं॰ त्रि॰) सप्तषष्ठि संख्याका पूरण, सड़सठवां ।

सप्तसप्तक (सं॰ त्रि॰) सात गुना सात, उनचास ।

सप्तसप्तति (सं॰ त्रि॰) सप्त सप्तति संख्याका पूरण, सतहत्तर ।

सप्तसप्ततितम (सं॰ त्रि॰) सतहत्तरवां ।

सप्तसप्ति (सं॰ पु॰) सप्तसप्तयो घोटका यस्य । १ सूर्य । (त्रि॰) २ जिसके रथमें सात घोड़े हों ।

सप्तसमुद्र (सं॰ पु॰) दधि, दुग्ध आदि ७ सागर ।

सप्तसमुद्रवत् (सं॰ त्रि॰) सप्तः समुद्र अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । सप्तसमुद्रविशिष्ट । स्त्रियां ङीप् । सप्तसमुद्र-वती, सप्तसागरविशिष्ट पृथिवी ।

सप्तसागर (सं॰ पु॰) १ सप्तसमुद्र । सप्त-सागरा इव कुण्डालि यत्र । २ एक दान जिसमें सात पात्रोंमें घी, दूध, मधु, दही आदि रख कर ब्राह्मणको देते हैं । मत्स्यपुराणमें इस दानका विवरण है ।

सप्तसिध (सं॰ स्त्री॰) ताम्बूल, पान ।

सप्तसू (सं॰ स्त्री॰) सप्त सूते इति सू-क्विप् । सप्तपुत्र-

प्रसूता, वह जिसने ७ पुत्र या कन्याप्रसव की हो। पर्याय-सुत-वस्करा।

सप्तस्पर्द्धा (सं० स्त्री०) नदीभेद।

सप्तस्रोतस् (सं० क्ली०) तीर्थविशेष। भागवतमें लिखा है कि गङ्गादेवीने सप्तर्षियोंको प्रसन्न करनेके लिये अपने स्रोतोंको ७ भागोंमें विभक्त किये हैं। इस कारण वे तभीसे सप्तस्रोत कहलाती हैं।

सप्तस्वर (सं० पु०) सङ्गीतके सात स्वर; स, ऋ, ग, म प, ध, नि।

सप्तस्वसृ (सं० त्रि०) गायत्री आदि ७ छन्द जिसके स्वसृस्वरूप हैं या गङ्गादि ८ नदी जिसकी स्वसा हैं।

सप्तह (सं० क्ली०) सामभेद।

सप्तहन् (सं० त्रि०) सप्तहन्ति हन्-क्विप्। सप्तसंख्यक पुरका हन्ता, सात पुरोंका संहार करनेवाला, नमुचि आदि सात असुरोंका विनाशक। (ऋक् १०।४६।८)

सप्तहोतृ (सं० त्रि०) सप्तहोतृविशिष्ट अग्नि, जिस अग्निमें ७ आदमी बैठ कर होम करते हैं, उसे सप्तहोता कहते हैं।

सप्तांशुपुङ्गव (सं० पु०) सप्तभिरंशुभिः पुङ्गव इव श्रेष्ठ त्वात्। शनिग्रह। (जटाधर)

सप्ताक्षर (सं० त्रि०) सप्त अक्षराणि यस्य। सात अक्षर-विशिष्ट, सप्ताक्षर मन्त्र, जिस मन्त्रमें ७ अक्षर हों।

सप्तागारम् (सं० अव्य०) सप्तप्रकोष्ठ पर, सात घरों पर।

सप्ताङ्ग (सं० पु०) सप्त अङ्गानि यस्य। सात अङ्गविशिष्ट राज्य। मनुमें लिखा है, कि राजा, अमात्य, पुर, राष्ट्र, कोष और सुहृद् ये सात राज्योंके अङ्गमें हैं, इसीसे राज्यको सप्ताङ्ग कहते हैं।

याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि राजा, अमात्य अर्थात् मन्त्री और पुरोहितादि, ब्राह्मणादि प्रजा, दुर्ग, कोषागार, हस्त्यश्वरथ पदाति ये चतुरङ्ग सेना तथा मित्र ये सात राज्यके मूल हैं, इसीसे राज्यका नाम सप्ताङ्ग हुआ है। राज्य देखो।

सप्ताङ्गगुग्गुलु (सं० पु०) व्रणशोथाधिकारोक्त औषध-विशेष। इस औषधका सेवन करनेसे दुष्ट व्रण, अपची, मेह, कुष्ठ आदि रोग शान्त होते हैं।

सप्तात्मन् (सं० त्रि०) सप्त आत्माविशिष्ट। सप्त प्रकृति-वान्।

सप्ताद्रि (सं० पु०) सप्त सप्त संख्यकाः अद्रयः। सप्त पर्वत, महेन्द्र आदि ७ कुलाचल।

सप्तामृतलौह (सं० क्ली०) शूलरोगाधिकारोक्त औषधविशेष।

सप्तार्चिस् (सं० पु०) सप्तअर्चींषि यस्य। १ अग्नि। २ चित्रक वृक्ष, चीता। ३ शनिग्रह। (त्रि०) ४ क्रूर चक्षुविशिष्ट।

सप्तार्णव (सं० पु०) सप्त समुद्र, दधि दुग्ध आदि सात सागर।

सप्तालु (सं० पु०) सताल्, शफताल्।

सप्ताशीति (सं० त्रि०) सत्तासी।

सप्तास्र (सं० त्रि०) सप्त कोणविशिष्ट, सप्तकोणाकार।

सप्ताश्व (सं० पु०) सप्त अश्वा यस्य। १ सूर्य। २ अर्क वृक्ष, अकवन। ३ सात घोड़े।

सप्ताश्ववाहन (सं० त्रि०) सप्त अश्व वाहना यस्य। सूर्य।

सप्ताष्ट (सं० त्रि०) सप्त या अष्ट, सात या आठ।

सप्तास्य (सं० त्रि०) १ सप्त संख्यक छन्दोमय मुखविशिष्ट। (ऋक् ४ ५०।४) २ सप्त मुखविशिष्ट, ७ मुंहवाला।

सप्ताह (सं० पु०) १ सात दिनोंका काल; हफ्ता। २ कोई यज्ञ या पुण्य कर्म जो सात दिनोंमें समाप्त हो। ३ भागवतकी कथा जो सात ही दिनोंमें सब पढ़ी या सुनी जाय। इसका बहुत शुभ फल माना जाता है।

सप्ति (सं० पु०) अश्व, घोड़ा।

सप्तिता (सं० स्त्री०) सप्तिका भाव या धर्म, द्रुतगामीत्व, तेजी।

सप्तिन् (सं० त्रि०) सप्तसंख्याविशिष्ट, सप्तसंख्या-युक्त।

सप्तिनी (सं० स्त्री०) वाजिनी, घोड़ी।

सप्तिवत् (सं० त्रि०) सर्पणयुक्त, तेज चलनेवाला।

सप्तिस्पाद (सं० त्रि०) सप्तांशमें खण्डित देह।

सप्त्य (सं० क्ली०) सर्पणीय, गमनयोग्य।

सप्पन (हिं० पु०) बकमका पेड़।

सप्रकारक (सं० त्रि०) विभिन्न प्रकार, भिन्न भिन्न आकारवाला।

सप्रज (सं० त्रि०) प्रजाके साथ वर्त्तमान, सन्तति-विशिष्ट, प्रजायुक्त। (भागवत ६।१८।३१)

सप्रजस् (सं० त्रि०) प्रजायुक्त, पुत्रवान्। (कौशी० ३)

सप्रजापतिक (सं० त्रि०) प्रजापतिके साथ वर्त्तमान, प्रजापतियुक्त, प्रजापतिविशिष्ट।

सप्रणय (सं० त्रि०) प्रणयके साथ।
सप्रथस् (सं० त्रि०) गमनयुक्त, गतिविशिष्ट।
सप्रभ (सं० त्रि०) प्रभा या दीप्तिविशिष्ट।
सप्रभत्व (सं० क्ली०) दीप्ति, चमक।
सप्रभाव (सं० त्रि०) प्रभावके साथ विद्यमान, पराक्रमशील, तेजस्वी, पराक्रमी।
सप्रभृति (सं० त्रि०) समान प्रभृति।
सप्रवाद (सं० त्रि०) प्रवादेन सह वर्त्तमानः। प्रवादयुक्त, प्रवादविशिष्ट।
सप्रमाण (सं० त्रि०) १ प्रमाण सहित, सबूतके साथ। २ प्रामाणिक, ठीक।
सप्रवाद (सं० त्रि०) प्रवादेन सह वर्त्तमानः। प्रवादयुक्त, प्रवादविशिष्ट।
सप्रसव (सं० त्रि०) प्रसवयुक्त, प्रसवके साथ वर्त्तमान।
सप्राण (सं० त्रि०) प्राणयुक्त, प्राणविशिष्ट, जीवित।
सप्राय (सं० त्रि०) एक प्रकार, एक जातिका।
सप्रेमन् (सं० त्रि०) प्रेम या बन्धुत्वयुक्त।
सप्सर (सं० त्रि०) १ समान रूप। २ हिंसक।
सफ (सं० पु०) १ वासिष्ठ गोत्रीय वैदिक आचार्यभेद। २ भिन्न भिन्न सामभेद।
सफ (अ० स्त्री०) १ पंक्ति, कतार। २ लम्बी चटाई, सीतलपाटी। ३ बिछावन, फर्श, बिस्तर।
सफगोल (हिं० पु०) इसबगोल।
सफतालू (हिं० पु०) एक पेड़ जिसके गोल फल खाए जाते हैं, सतालू, आड़ू।

यह हिन्दुस्तानमें ठंढी जगहोंमें होता है। पेड़ मझोले कदका और लकड़ी लाल मजबूत और सुगंधित होती है। पत्तियां लंबी नोकदार तथा कालापन लिये गहरे हरे रंगकी होती हैं। फल पकने पर कुछ लाल और कुछ हरे होते हैं और उनके ऊपर महीन महीन रोइयाँ सी होती है। बीजोंमें बादामकी तरहका कड़ा छिलका होता है।

सफर (सं० पु०) मत्स्यविशेष, सौरी मछली।
सफर (अ० पु०) १ प्रस्थान, यात्रा। २ रास्तेमें चलनेका समय या दशा।
सफरदाई (हिं० पु०) सपरदाई देखो।
सफरमैना (अ० स्त्री०) सेनाके वे सिपाही जो सुरंग लगाने तथा खाई आदि खोदनेको आगे चलते हैं।
सफरा (अ० पु०) पित्त।
सफरी (सं० स्त्री०) सफर-ङीप्। मत्स्यविशेष, सौरी मछली।
सफरी (अ० वि०) १ सफरमेंका, सफरमें काम आनेवाला। (पु०) २ राह-खर्च। ३ अमरूद।
सफरौल (हिं० पु०) कपूरके लाल तेलसे तैयार होनेवाली एक दवा या मसाला।
सफल (सं० त्रि०) फलेन सह वर्त्तमानः। १ जिसमें फल लगा हो, फलसे युक्त। पर्याय—अमोघ। २ जिसका कुछ परिणाम हो, जो व्यर्थ न जाय, सार्थक। ३ कृतकार्य, कामयाब। ४ अण्डकोशयुक्त, जो बधिया न हो। ५ सशस्य, शस्ययुक्त। ६ पूरा होना। गया तीर्थ जा कर वहांके शास्त्रविहित कृत्य करनेके बाद तीर्थगुरुको पंडा लोगोंके महत्वके पास जा तीर्थकृत्यकी सफलताके लिये प्रार्थना करनी होती है। उस समय वे तीर्थकामीसे प्रणामी स्वरूप कुछ अर्थ ले कर सफल देते हैं। इसका अर्थ यह, कि तीर्थमें जो सब क्रिया की गई है, वह अभी फलविशिष्ट हुई।
सफलक (सं० त्रि०) जिसके पास ढाल हो।
सफलता (सं० स्त्री०) १ सफल होनेका भाव, कामयाबी, सिद्धि। २ पूर्णता।
सफला (सं० स्त्री०) पौष मासके कृष्ण पक्षकी एकादशी जो विशेष रूपसे व्रतका दिन है।
सफलीकरण (सं० पु०) १ सफल करना। २ सिद्ध करना, पूर्ण करना।
सफलीभूत (सं० त्रि०) जो सफल हुआ हो, जो सिद्ध या पूरा हुआ हो।
सफहा (अ० पु०) १ रुख, तल। २ पृष्ठ, वरक, पन्ना।
सफ़ा (अ० वि०) १ निर्मल, स्वच्छ, साफ़। २ पवित्र, पाक। ३ जो खुरदरा न हो, चिकना।
सफ़ाई (अ० स्त्री०) १ निर्मलता, स्वच्छता। २ अर्थ या अभिप्राय प्रकट होनेका गुण। ३ स्पष्टता, चित्तसे दुर्भाव आदिका निकलना, मनमें मैल न रहना। ४ मैल, कूड़ा, करकट आदि हटानेकी क्रिया। ५ दोषारोपका हटना, इलजामका दूर होना। ६ कपट या कुटिलताका अभाव। ७ ऋणका परिशोध, कर्ज या हिसाबका चुकता होना। ८ मामलेका निबटेरा, निर्णय।

सफ़ाचट (हिं० वि०) १ एक दम स्वच्छ, बिलकुल साफ। २ जो जमा या लगा न रहने दिया जाय, जो निकाल, उखाड़ या दूर कर दिया जाय। ३ जिस पर कुछ जमा या लगा न रह गया हो, जो बिलकुल चिकना हो।

सफिपुर—१ युक्तप्रदेशके अयोध्या विभागान्तर्गत उन्नाव जिलेका एक उपविभाग या तहसील। यह अक्षा० २६° ३७' से २७° २' उ० तथा देशा० ८०° ६' से ८०° ३०' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३९५ वर्गमील है। सफिपुर, फतेपुर, चौरासी और बाङ्गड़मौ परगनेको ले कर यह उपविभाग बना है।

२ उक्त उपविभागके अन्तर्गत एक परगना। भूपरिमाण १३२ वर्गमील है। यहांकी मिट्टो दलदल कीचड़मय है। इस कारण यहां जौकी फसल अच्छी लगती है। इसके सिवा यहां वनमाला भी यथेष्ट दिखाई देती है।

३ उक्त जिलेका एक नगर और सफिपुर तहसीलका विचार सदर। यह अक्षा० २६° ४४' १०" उ० तथा देशा० ८०° २३' १५" पू०के मध्य अवस्थित है। उन्नावसे यह १७ मील उत्तर पश्चिम हरदोई जानेके रास्ते पर पड़ता है। नगर खूब समृद्धिशाली है। यहां १४ मसजिद और ६ मन्दिर हैं। कहते हैं, कि साइ-शुक्र नामक एक ब्राह्मणने अपने नाम पर इस नगरका नाम साइपुर रखा। कुछ समय पीछे एक मुसलमान फकीरने यहां आ कर अस्ताना किया। इसी नगरमें वह दफनाया गया। तभीसे यह स्थान उस सुफीकी मर्यादाके स्मरणार्थ सफिपुर कहलाता है। १३८६ ई०में जौनपुरके राजा इब्राहिमने नगरके अधिष्ठाता साइ-शुक्रको पराजित और निहत कर अपने सेनापतिके हाथ नगररक्षाका भार सौंपा। तभीसे आज तक उनके वंशधर इस नगरका भोग करते आ रहे हैं।

सफीना (अ० पु०) १ बही, किताब। २ अदालती परवाना, इत्तलानामा, समन।

सफीर (अ० स्त्री०) १ चिड़ियोंकी आवाज। २ वह सीटी जो पक्षियोंको बुलानेके लिये दी जाती है। ३ राजदूत, एलची।

सफील (अ० स्त्री०) पक्की चहारदीवारी, शहरपनाह, परकोटा।

सफूफ (अ० पु०) चूर्ण, बुकनी।

सफेद (फा० वि०) १ श्वेत, धौला। २ जिस पर कुछ लिखा या चिह्न न हो, कोरा, सादा।

सफेदकोे—अफगानिस्तान राज्यके अन्तर्गत एक पर्वत-श्रेणी। उक्त राज्यकी राजधानी काबुल और गजनी शहरके मध्यवर्त्ती अलोका नदीके पूर्वांशसे निकल कर यह गिरिमाला ३४° अक्षा०से ७०° ३५' देशा० ७५ मील पथ तक फैली हुई है और दो शाखामें विभक्त है। उनमेंसे एक खैबर और काबुल नदीके उत्तरपूर्व तथा दूसरी काबुल-सिन्धुसङ्गमके ठीक पूरब तक विस्तृत है। बहुत कुछ अनुसंधान करनेसे पता चला है, कि इस पर्वतके उत्तर और दक्षिणागामवाही स्रोतों द्वारा खैबर, काबुल, खुर्द काबुल, लोगर तेजिन, सुरखब, गण्डामाक, कारासु, छिप्रियाल, हिसारक, कोट, मोमन्द, हजारदरखत, हरिआब, केरिया, पैवार, किर्मान दारा और किर्मान आदि छोटी बड़ी नदियां बहती हैं।

इस पर्वतपृष्ठ पर बहुतसे ऊंचे शृङ्ग और गिरिसङ्कट दिखाई देते हैं। उनमेंसे सीतारामशैल समुद्रपृष्ठसे १५६२२ फुट ऊंचा है। इसके बाद कुछ दूरमें पर्वतपृष्ठ १२५०० से १४८०० फुट ऊंचा देखा जाता है। गिरिसङ्कटके मध्य हफत-कोटाल, लताबंध, सुतर गार्डेन, आलतिमुर आदि उल्लेखयोग्य हैं।

जलालाबादकी गण्डशैलमालाके बाद जहांसे सफेदकोे पर्वतकी उत्तरी सीमा आरम्भ हुई है, उस स्थानके पर्वत भाग पर कोई विशेष फलजात वृक्ष दृष्टिगोचर नहीं होता। यह स्थान उतना उर्वरा भी नहीं है। कुन्द, कर्कर और सफेदकोे शैलके ऊंचे पृष्ठ पर पाइन (pine) बादाम और अन्यान्य बड़े बड़े पेड़ लगते हैं। पर्वतके उपत्यकाभागमें प्रचुर मेवेका बागाना और धानके खेत भी हैं। उस स्थानसे अनार, अखरोट, पेस्ता, बादाम, अंगूर, किसमिस, आलूबोखारा आदिकी आमदनी होती है।

सफेद धावी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका बड़ा पेड़, चकड़ी। यह वृक्ष हिमालय पर पाया जाता है। इसकी लकड़ीकी कंघियां बनाई जाती हैं। इसके फूलोंमें सुगन्ध होती है। इसके पत्ते खादके काममें आते हैं।

सफेद पलका (फा० पु०) वह कबूतर जिसके पर कुछ सफेद और कुछ काले हों।

सफेदपोश (फा० पु०) १ साफ कपड़े पहननेवाला। २ शिक्षित और कुलीन, भलामानस।

सफेदा (फा० पु०) १ जस्तेका चूर्ण या भस्म जो दवा तथा लोहे लकड़ो आदि पर रंगाईके काममें आता है। २ लखनऊके आस-पास मिलनेवाला एक प्रकारका आम ३ एक प्रकारका खरबूजा। ४ एक बहुत ऊंचा और खंभेकी तरह सीधा जानेवाला पेड़। यह पंजाब और काश्मीरमें पाया जाता है। इसकी छालका रंग सफेद होता है। इसकी लकड़ी सजावटके सामान बनानेके काममें आती है। ५ जूते आदि बनानेका सफेद चमड़ा।

सफेदार (हिं० पु०) सोसमका पेड़।

सफेदी (फा० स्त्री०) १ सफेद होनेका भाव, धवलता। २ दीवार आदि पर सफेद रंग या चूनेकी पोताई, चूनाकारी। ३ सूर्य निकलनेके पहलेका उज्ज्वल प्रकाश जो पूर्व दिशामें दिखाई पड़ता है।

सफेन (सं० त्रि०) फेनयुक्त, फेनविशिष्ट।

सफ्ताल् (हिं० पु०) सफतालू देखो।

सब (हिं० वि०) १ जितने हों वे कुल, समस्त। २ पूरा, सारा। (अ० वि०) ३ गौण, अप्रधान। ४ अर्थमें इस शब्दका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दोंके आरंभमें होता है।

सबक (फा० पु०) १ उतना अंश जितना एक बारमें पढ़ाया जाय, पाठ। २ शिक्षा, नसीहत।

सबकत (अ० स्त्री०) किसी विषयमें औरोंकी अपेक्षा आगे बढ़ जाना, विशेषता प्राप्त करना।

सबज (फा० वि०) सब्ज देखो।

सबन्धु (सं० त्रि०) बंधुके साथ, मित्र सहित।

सबब (अ० पु०) १ कारण, वजह। २ द्वार, साधन।

सबर (अ० पु०) सब्र देखो।

सबर्दुह् (सं० त्रि०) सबः दोग्धि दुह-क्विप्। दुग्धदोहनकारी, दूध दुहनेवाला।

सबल (सं० त्रि०) बलेन सह वर्त्तमानः। १ बलविशिष्ट, बलशाली, ताकतवर। २ सैन्ययुक्त, फौजवाला।

सबलि (सं० पु०) १ विकाल। (त्रि०) २ बलिविशिष्ट, बलिके साथ वर्त्तमान।

सबा (अ० स्त्री०) वह हवा जो प्रभात और प्रातःकालके समय पूर्वकी ओर चलती है।

सबाध (सं० त्रि०) बाधया बाधेन च सह वर्त्तमानः। १ पीड़ायुक्त, पीड़ित। २ निषेधयुक्त।

सबाधस् (सं० त्रि०) बाधाके साथ।

सबाह्यान्तःकरण (सं० त्रि०) बाह्य और अन्तःकरणके साथ वर्त्तमान।

सबाह्याभ्यन्तर (सं० पु०) बाह्य और अभ्यन्तरके साथ, बाहर और भीतरके साथ। शास्त्रमें लिखा है, कि अपवित्र या पवित्र जिस अवस्थामें चाहे क्यों न हो, भगवान् पुण्डरीकाक्षका नाम जो स्मरण करते हैं, वे उसी समय भीतर और बाहरसे पवित्र होते हैं।

सबाह्याभ्यन्तरात्मन् (सं० पु०) पवित्रात्मा, वह जिसका चित्त पापरहित हो।

सबिन्दु (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

सबीज (सं० त्रि०) बीजेन सह वर्त्तमानः। बीजके साथ वर्त्तमान, बीजयुक्त, बीजविशिष्ट। पातञ्जलदर्शनमें सबीज और निर्बीज इन दोनों प्रकारकी समाधिका विषय लिखा है। उनमेंसे सम्प्रज्ञात समाधि सबीज समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि निर्बीज समाधि है। समाधि शब्द देखो।

सबील (अ० स्त्री०) १ रास्ता, मार्ग। २ उपाय, यत्न। ३ वह स्थान जहां पर पथिकों आदिको धर्मार्थ जल या शरबत पिलाया जाता है।

सबू (फा० पु०) मिट्टीका घड़ा, मटका।

सबूरा (अ० पु०) काठ या चमड़े आदिका बना हुआ एक प्रकारका लंबा खंड। इससे विधवा या पतिहीना स्त्रियाँ अपनी काम वासना तृप्त करती हैं।

सब्ज (फा० वि०) १ कच्चा और ताजा। २ हरित, हरा। ३ शुभ, उत्तम।

सब्जकदम (अ० वि०) जिसके कहीं पहुंचते ही कोई अशुभ घटना हो, जिसके चरण अशुभ हों। इस शब्दमें सब्जका प्रयोग व्यंग्यरूपसे होता है।

सब्जा (फा० पु०) १ हरी घास और वनस्पति आदि, हरियाली। २ भंग, भांग। ३ पन्ना नामक रत्न। ४ एक

प्रकारका गहना जिसे स्त्रियां कानमें पहनती हैं। ५ घोड़े-का एक रंग जिसमें सफेदीके साथ कुछ कालापन भी मिला होता है। ६ वह घोड़ा जो इस रंगका हो।

सब्जी (फा० स्त्री०) १ हरी घास और वनस्पति आदि, हरियाली। २ हरी तरकारी। ३ भंग, भांग।

सब्द (सं० पु०) अज्ञात शब्दविशिष्ट।

सब्र (अ० पु०) धैर्य, संतोष।

सब्रह्मक (सं० त्रि०) सब्रह्म स्वार्थे-कन्। ब्रह्मके साथ, ब्रह्मविशिष्ट। सुरासुर मनुष्य आदि सभी ब्रह्म हैं, उपाधि विशेषसे देवता असुर आदि कहलाते हैं।

"इमे सब्रह्मका लोकाः ससुरासुरमानवाः।"

सब्रह्मचारिक (सं० त्रि०) माध्यन्दिनशाखाध्ययनयुक्त ब्रह्मचारिविशेष।

सब्रह्मचारी (सं० पु०) परस्पर वे ब्रह्मचारी जिन्होंने एक साथ ही एक गुरुके यहां रह कर शिक्षा प्राप्त की हो। सब्रह्मचारी अर्थात् सहपाठीकी यदि मृत्यु हो, तो एक दिन अशौच होगा।

सभरस् (सं० त्रि०) बलविशिष्ट, बलवान्, मरुद्गण।

सभर्त्तृका (सं० स्त्री०) भर्त्तासह वर्त्तमाना। विद्यमान पतिका स्त्री, वह स्त्री जिसका पति जीवित हो, सधवा।

सभव (सं० त्रि०) १ भव अर्थात् शिवयुक्त, शिवके साथ वर्त्तमान। (भागवत ८।२३।३) २ उत्पत्तियुक्त, उत्पत्ति-विशिष्ट।

सभस्मन् (सं० त्रि०) भस्मवान्, वराहकृत वृहत्संहितामें (६०।१६) 'सभस्मद्विजाः' शब्दसे भस्म या विभूतिलिप्ताङ्ग पाशुपत सम्प्रदायभुक्त ब्राह्मणोंका उल्लेख देखा जाता है।

सभा (सं० स्त्री०) सह भान्ति शोभन्ते यत्रेति भा दीप्तौ भिदादित्वादधिकरणे अङ्, सहस्य सः। १ वह स्थान जहां बहुतसे लोग बैठ कर शोभा पाते हों, मजलिस। पर्याय- समज्या, परिषत्, गोष्ठी, समिति, संसत्, आस्थानी आस्थान, सदः, समाज, पर्षत्। (जटाधर)

व्यवहारतत्त्वमें सभाके लक्षणादिका विषय इस प्रकार लिखा है—जहां राजाके प्रतिनिधिस्वरूप तीन वेदविद् ब्राह्मण बैठते हैं, उसे सभा कहते हैं। जहां विद्वत् समूह रहते हैं अर्थात् पण्डितमण्डली जहां बैठते हैं, वह भी सभा कहलाती है। परिषद् देखो।

जिस कार्यके लिये लोग इकट्ठे होते हैं, उसे भी सभा कहते हैं। कूर्मपुराणमें लिखा है, कि सभास्थलमें अकेला नहीं जाना चाहिये।

मनुमें लिखा है, कि राजा सुसज्जित सभागृहमें बैठ कर प्रजाका विचारकार्य करें, उन लोगोंके साथ मीठीःमीठी बातें बोलें और प्रशान्त दृष्टिसे उन्हें देखें।

२ सामाजिक, सभासद्। ३ द्यूत, जूआ। ४ गृह, मकान, घर। ५ समूह, झुंड। ६ प्रजापतिकी कन्या। अथर्ववेद १७।१२।१२ मन्त्रमें सभा और समितिको प्रजापतिकी कन्यारूपमें वर्णित देखा जाता है।

सभाकार (सं० पु०) सभां करोतीति कृ-अण्। सभाकारक, वह जो सभा करता हो।

सभाक्ष (सं० पु०) हरिवंश वर्णित व्यक्तिभेद।

सभाग (सं० त्रि०) भागेन सह वर्त्तमानः। १ भागके साथ वर्त्तमान, भागविशिष्ट। सभां गच्छतीति गम-ड। २ सभागामी जो सभामें जाते हैं।

सभागृह (सं० क्ली०) सभा एव गृहं। सभास्थल, वह स्थान जहां किसी सभा या समितिका अधिवेशन होता हो।

सभाग्य (सं० त्रि०) भाग्ययुक्त, भाग्यवान्।

सभाचर (सं० त्रि०) सभायां विचरति चर-अच्। सभास्थलमें विचरणकारी, सभागामी।

सभाजन (सं० क्ली०) सभा-जन ल्युट्। १ गमन और आगमनादिके समय सुहृदादिका आलिङ्गन, अपने मित्रों या संबंधियों आदिके आने पर उनसे गले मिलना, उनका कुशल मंगल पूछना और स्वागत करना। (त्रि०) २ प्रीति-दायक। ३ भाजन अर्थात् पात्रके साथ वर्त्तमान, भाजन-विशिष्ट।

सभानर (सं० पु०) १ कक्षके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश) २ अणुके एक पुत्रका नाम।

सभापति (सं० पु०) सभायाः पतिः। १ समाजाधिपति। २ सभाके नेता। जिनके अधीन सभाके सभी कार्य सम्पादित तथा सभास्थलमें सभी लोग जिनके अधीन परिचालित होते हैं, उन्हें सभापति कहते हैं।

सभापति—धारणालक्षण नामक ग्रन्थके रचयिता।

सभापरिषद् (सं० स्त्री०) १ बहुतसे लोगोंका एकत्र हो

कर साहित्य या राजनीति आदिसे संबंध रखनेवाले किसी विषय पर विचार करना। २ वह स्थान जहां इस प्रकारके कार्योंके लिये लोग एकत्र होते हैं, सभागृह, सभाभवन।

सभापर्व (सं० क्ली०) महाभारतका द्वितीय पर्व। इस पर्वमें राजा युधिष्ठिरकी सभा आदिका विषय वर्णित है।

सभापाल (सं० पु०) सभागृहका परिदर्शक।

सभापूजन—महाराष्ट्र देशमें प्रचलित विवाह कालकी एक सामाजिक प्रक्रिया। अभ्यागतोंको अभ्यर्थना और सम्मान दानसे इस आचाराङ्गका सभापूजन नाम पड़ा है। विवाह उत्सवमें लग्न-कङ्कण पहननेके बाद इसका अनुष्ठान होता है। इस उद्देशसे कन्या या वर पूर्वदिन आत्मीय स्वजन, ग्रामवासी और बंधुबांधवोंको निमन्त्रण दे आता है। जब वे सभी जीमने पहुंचते हैं, तो पहले उन्हें आंगन या बैठकखानेमें बैठने दिया जाता है। इस समय नर्त्तकियाँ नाच गान करती हैं। पीछे गृहस्वामी पान, इतर, फूलकी माला या गुलदानसे निमन्त्रणमें आये हुए व्यक्तियोंका सत्कार करते हैं। उसके बाद उन लोगोंके ऊपर गुलाब-जल छिड़का जाता और हाथकी कलाई पर सुगंधित तेल लगाया जाता है। गाना बजाना समाप्त होने पर आत्मीय स्वजनको एक एक कर नारियल दिया जाता है तथा पुरोहित अथवा उस श्रेणीके अन्यान्य ब्राह्मण और भिक्षुक कुछ कुछ दक्षिणा पा कर घरवालोंको मङ्गलकामना करते हुए घर लौटते हैं।

सभावत् (सं० त्रि०) सभा अस्त्यर्थे मतुप् छान्दस् वत्वं। उपद्रष्टृरूप सभायुक्त।

सभावी (सं० पु०) वह जो द्यूतग्रहका प्रधान हो, जूएखानेका मालिक।

सभाविन् (सं० पु०) सभावी देखो।

सभासद् (सं० पु०) वह जो किसी सभामें सम्मिलित हो और उसमें उपस्थित होनेवाले विषयों पर सम्मति देनेका अधिकार रखता हो। पर्याय सभास्तार, सामाजिक, परिषद्वल, पर्षद्वल, परिषद्, पार्षद्, परिसभ्य।

जो धर्मशास्त्रमें अभिज्ञ, कुलीन और सत्यवादी हैं तथा शत्रुके और मित्रके प्रति जिनका तुल्य ज्ञान है, राजा उन्हींको सभासद् बनावें।

वृहस्पतिके मतसे ७, ५ या ३ सभासद् होंगे। राजा इन सभासदोंके साथ मिल कर विचार करें। लोक, वेद और धर्मज्ञ ब्राह्मण ही सभासद् होंगे।

सभासाह (सं० त्रि०) सभासहन करनेमें समर्थ।

सभासिंह (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

सभासिंह—१ वरदाके एक राजा। ये १६७८ शकमें विद्यमान थे। शोभासिंह देखो।

२ बुन्देलखण्डके एक राजा, छत्रशालके पौत्र और हृदयशाके पुत्र। ये प्रद्युम्नविजयके प्रणेता शङ्कर दीक्षित के गुरु थे।

सभास्तार (सं० पु०) सभांस्तृणातीति स्तृञ् आच्छादने (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) इत्यण्। सदस्य।

सभास्थाणु (सं० पु०) सभायां स्थाणुरिव। सभामें स्थिर, निश्चल।

सभिक (सं० पु०) सभा द्यूतसभा आश्रयत्वेनास्त्यस्येति, सभाव्रीह्यादित्वात् ठन्। द्यूतकारक, वह जो लोगोंको जूआ खेलाता हो।

सभीक (सं० पु०) सभिक देखो।

सभृति (सं० त्रि०) सह भ्रियमाण ऋत्विक्।

सभेय (सं० पु०) सभाका सदस्य, सभासद, सभ्य।

सभेय (सं० त्रि०) सभायां साधुः (ढश्छन्दसि। पा ४।४।१०६) इति ढ। सभ्य।

सभोचित (सं० पु०) सभायामुचितः। १ पण्डित। (त्रि०) २ सभायोग्य, सभाके लायक।

सभ्य (सं० पु०) सभायां साधुः सभा (सभाया यः। पा ४।४।१०५) इति य। १ सभासद, सदस्य, वह जो किसी सभामें सम्मिलित हो और उसके विचारणीय विषयों पर सम्मति दे सकता हो।

२ प्रत्ययित। ३ सभासम्बन्धी।

सभ्यता (सं० स्त्री०) १ सभ्य होनेका भाव। २ सदस्यता। ३ व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनकी वह अवस्था जिसमें लोगोंका आचार व्यवहार बहुत सुधर कर अच्छा हो चुका हो। ४ भलमनसाहत, शराफत।

सभ्याभिनव यति—आनन्दतीर्थकृत महाभारततात्पर्यकी दुर्घटार्थ-प्रकाशिका नाम्नी वृत्तिके रचयिता। ये सत्यनाथके शिष्य थे।

सभ्येतर (सं० त्रि०) सभ्यादितरः। सभ्यसे भिन्न।

सम् (सं० अव्य) १ समार्थ, तुल्यार्थ। २ प्रकृष्टार्थ। ३ सङ्गत। ४ शोभन। ५ समुच्चय। व्याकरणके मतसे प्रपरादि उपसर्गके मध्य सम् चतुर्थ उपसर्ग है। इसका अर्थ प्रकर्ष, आश्लेष, नैरन्तर्य, औचित्य और आभिमुख्य है। (मुग्धबोधटीका-दुर्गादास)

सम (सं० त्रि०) समतीति सम वैक्लव्ये पचाद्यच्। १ सब, कुल, तमाम। सम शब्दका जहां सर्व यह अर्थ होता है, वहां इस शब्दकी सर्वनाम संज्ञा होती है। सर्व नाम संज्ञा होनेसे शब्दरूपके स्थलमें सर्व शब्दकी तरह रूप होता है। २ समान, बराबर। ३ जिसका तल ऊबड़ खाबड़ न हो, चौरस। ४ जिसे दोसे भाग देने पर शेष कुछ न बचे, जूस।

(पु०) ५ राशियोंकी एक संज्ञा। राशि सम और विषमके भेदसे दो प्रकारकी है। वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये सब सम राशि और बाकी सभी विषम राशि हैं।

६ सङ्गीतमें वह स्थान जहां गाने बजानेवालोंका सिर या हाथ आपसे आप हिल जाता है। यह स्थान तालके अनुसार निश्चित होता है। जैसे तितालेमें दूसरे ताल पर और चौतालमें पहले ताल पर सम होता है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न तालोंमें भिन्न भिन्न स्थानों पर सम होता है। वाद्योंका आरम्भ और गीतों तथा वाद्योंका अन्त इसी सम पर होता है, परन्तु गाने बजानेके बीच बीचमें भी सम बराबर आता रहता है।

७ गणितमें वह सीधी रेखा जो उस अंकके ऊपर दी जाती है जिसका वर्गमूल निकालना होता है। ८ अर्थालङ्कार विशेष। इसमें योग्य वस्तुओंके संयोग या संबंधका वर्णन होता है। यह विषमालङ्कारका बिलकुल उलटा है।

सम (अ० पु०) विष, जहर।

समक (सं० त्रि०) सम-क-स्वार्थे कन्। सम देखो।

समकक्ष (सं० त्रि०) तुल्य, समान, बराबरीका।

समकक्षा (सं० स्त्री०) समतुल्य।

समकन्या (सं० स्त्री०) समा विवाहयुक्ता कन्या, वह कन्या जो विवाहके योग्य हो गई हो।

समकर्ण (सं० पु०) १ शिवका एक नाम। २ गौतम बुद्धका एक नाम। ३ ज्यामितिमें किसी चतुर्भुजके आमने सामनेवाले कोणोंके ऊपरकी रेखाएं। अंगरेजीमें उसका नाम Diagonal है।

समकर्मन् (सं० त्रि०) समं कर्म यस्य। तुल्यकर्मयुक्त, जिसके काम समान हों।

समश्रवण (सं० पु०) शास्त्रविशेष। (वैद्यकनि०)

समकाल (सं० अव्य०) तुल्यकाल, एक समय।

समकालीन (सं० त्रि०) १ समकालोद्भव, जो एक ही समयमें हो। २ एककालीय, एक ही समयमें होनेवाला।

समकृत् (सं० पु०) समं करोति कृ-क्विप्। कफ, श्लेष्मा।

समकोट—वङ्गके अन्तर्गत एक प्राचीन जनपद।

समकोण (सं० त्रि०) समान कोणविशिष्ट, जिसके आमने सामनेके दो कोण समान हों।

समकोल (सं० पु०) समः कोलो यस्य। सर्प, सांप।

समकोश (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन देशका नाम। (भारत भीष्म ९।६१)

समकोष्ठमिति (सं० स्त्री०) भूम्यादिका परिमाण निर्देशक अङ्क प्रक्रियाविशेष। आर्य्य बीजगणितमें भूमिका परिमाण (Superficial cont-nts) निकालनेके लिये समकोष्ठमिति नामक अङ्कसंज्ञा दी हुई है। इससे किसी सम परिमाण वर्गफलके द्वारा एक विस्तृतसीम भूमिका परिमाण सहजमें लाया जाता है।

समक्त (सं० त्रि०) सम्-अञ्ज क। गमनकर्त्ता, जानेवाला।

समक्रिय (सं० त्रि०) समा क्रिया यस्य। तुल्यरूप-क्रियाविशिष्ट।

समक्काथ (सं० पु०) अष्टमांशविशिष्ट क्काथ। वह काढ़ा जिसका पानी आदि जल कर आठवां भाग रह जाय।

समक्ष (सं० त्रि०) अक्ष्णोः समीपं समासान्त अप्रत्ययः। चक्षुके समीप, आंखोंके सामने।

समखात (सं० क्ली०) कूपाकार गर्त्त, वह गड़हा जिसके पार्श्व चोङ्ग या Cyl nd r पाइपकी तरह निरन्तर समान्तराल हो। (बीजगणित)

समगन्धक (सं० पु०) कृत्रिम धूप, नकली धूप।

समगन्धिक (सं० क्ली०) १ उशीर, खस। (त्रि०) २ तुल्य गन्धयुक्त, समान गंधवाला।

समग्र (सं० त्रि०) १ समस्त, कुल। २ पूर्ण, पूरा।

समग्रणी (सं० त्रि०) सम्यक्रूपसे अग्रणी।

समङ्गा (सं० स्त्री०) १ मञ्जिष्ठा, मजीठ। २ लज्जालुलता, लाजवंती। ३ वराहक्रान्ता, गेंठी। ४ वाला।

समङ्गिन् (सं० त्रि०) १ पूर्णावयवविशिष्ट। २ प्रयोजनीय द्रव्यादि पूर्ण शकट, जरूरी माल असवावोंसे लदी हुई वैलगाड़ी। (कात्या० श्रौ० २।३।१२)

समङ्गिनी (सं० स्त्री०) बौद्धोंकी एक देवी।

समचतुर (सं० त्रि०) समचतुष्कोण।

समचतुर्भुज (सं० पु०) वह चतुर्भुज जिसके चारों भुज समान हों।

समचित्त (सं० क्ली०) समं तुल्यं चित्तं। वह जिसके चित्तकी अवस्था सब जगह समान रहती हो, वह जिसका चित्त कहीं दुःखी या क्षुब्ध न होता हो, समचेता।

समचेत (सं० पु०) वह जिसके चित्तकी वृत्ति सब जगह समान रहती हो, समचित्त।

समज (सं० क्ली०) १ वन, जंगल। (पु०) सम्-अज (समुदोरजः पशुषु। पा ३।३।६९) इति अप्। २ पशुसमूह, पशुओंका झुंड। ३ मूर्खसंहति, मूर्खोंका साथ।

समजातीय (सं० त्रि०) स्वजातीय, एक जातिका।

समज्ञा (सं० स्त्री०) कीर्त्ति, यश।

समञ्जन (सं० क्ली०) १ वेशभूषा। (अथर्व ७।३६।१) (त्रि०) २ तद्विशिष्ट।

समञ्जनीय (सं० स्त्री०) वेशभूषायुक्त।

समञ्जस (सं० त्रि०) १ सम्यक् अञ्ज औचित्यं यत्र, अच्। १ उचित, ठीक, वाजिव। २ अभ्यस्त, जिसे किसी बातका अभ्यास हो। ३ समीचीन।

समण्ठ (सं० पु०) वे फल जिनकी तरकारी बनती हो, तरकारीके काम आनेवाले फल। जैसे—पपीता, ककड़ी आदि।

समतट (सं० क्ली०) १ समुद्रतीरवर्त्ती देशभाग। २ पूर्ववङ्गालका एक प्राचीन विभाग। वङ्ग देश शब्द देखो।

समता (सं० स्त्री०) सम या समान होनेका भाव, वरावरी।

समतिक्रम (सं० पु०) सम्यक्रूपसे अतिक्रम।

समतिरिक्त (सं० क्ली०) सम्यक् अधिक, सम्यक् प्रकारसे अतिरिक्त।

समतुला (सं० स्त्री०) समकक्ष, वरावरी।

समतल (सं० त्रि०) समदेश, समानभूमि।

समत्रय (सं० क्ली०) समत्रयं यत्र। हरें, नागरमोथा और गुड़ इन तीनोंके समान भागोंका समूह।

समत्रिभुज (सं० त्रि०) १ तीन समान भुजवाला। (पु०) २ वह त्रिभुज जिसके तीनों भुज समान हों।

समत्व (सं० क्ली०) समस्य भावः त्व। समता, वरावरी

समत्सर (सं० त्रि०) मत्सरेण सह वर्त्तमानः। मत्सरविशिष्ट, डाह करनेवाला।

समद् (सं० स्त्री०) युद्ध, लड़ाई। (ऋक् १।५।४)

समद (सं० त्रि०) मदेन सह वर्त्तमानः। मदयुक्त, मत्तताविशिष्ट।

समदन (सं० क्ली०) संग्राम, युद्ध। (ऋक् १।१००।६)

समदर्शन (सं० त्रि०) समं सर्वत्रतुल्यं दर्शनं यस्य। सर्वत्र तुल्यदर्शी, जो सब मनुष्यों, स्थानों और पदार्थोंको समान दृष्टिसे देखता हो, सबको एक-सा देखनेवाला।

समदर्शी (सं० स्त्री०) जो सब मनुष्यों, स्थानों और पदार्थों आदिको समान दृष्टिसे देखता हो।

समदलक (सं० त्रि०) समान दलविशिष्ट, समान दलवाला।

समदुःख (सं० त्रि०) समं दुःखं यस्य। समान दुःखविशिष्ट, जिसके दुःख समान हो।

समदुःखसुख (सं० त्रि०) समे दुःख सुखे यस्य। जिसके सुख और दुःख दोनों ही समान हो। (गीता २।१५)

समदृश् (सं० त्रि०) समं पश्यति दृश्-क्विप्।
समदर्शी देखो।

समदृष्टि (सं० स्त्री०) समा दृष्टिः। १ सर्वत्र तुल्यदर्शन, वह दृष्टि जो सब अवस्थाओंमें और सब पदार्थोंको देखनेके समय समान रहे।

सुख या दुःख, शत्रु या मित्र इनके प्रति जो वरावर निगाह डाली जाती है, उसे समदृष्टि कहते हैं। (त्रि०) समा दृष्टिर्यस्य। २ समदर्शी, जिनकी दृष्टि सबों पर समान हो।

समद्वन् (सं० त्रि०) यजमानके साथ युद्धविशिष्ट ।

समद्वादशास्त्र (सं० क्लो०) द्वादश समभुज और समकोण-विशिष्ट (Dodecahadron) चित्रविशिष्ट, वह क्षेत्र आदि जिसके बारह समान भुज हो ।

समद्विद्विभुज (सं० त्रि०) चतुर्भुज, वह चतुर्भुज जिसका प्रत्येक भुज अपने सामनेवाले भुजके समान हो ।

समद्विभुज (सं० त्रि०) समान द्विभुजयुक्त, दो समान भुजवाला ।

समधपुर—युक्तप्रदेशके जौनपुर जिलेका एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २६° ३´ ५५" उ० तथा देशा० ८२° ३१´ ३" पू०के मध्य विस्तृत है। यहांके जमींदारोंके प्रतिष्ठाता समध पाइकने अपने नाम पर यह ग्राम बसा कर वासयोग्य बनाया ।

समधर्मन् (सं० त्रि०) समान धर्मविशिष्ट, तुल्यधर्मी ।

समधिक (सं० त्रि०) सम्यक् अधिकः । अधिक, ज्यादा, बहुत ।

समधिगम (सं० पु०) सम-अधि-गम अप् । सम्यक्रूपसे अधिगम, प्राप्ति ।

समधुर (सं० त्रि०) मधुरके साथ वर्त्तमान ।

समधृत (सं० त्रि०) तुल्यरूप, एक ढंगका ।

समन (सं० क्ली०) समनस्क । (ऋक् ६।७५।४)

समनगा (सं० स्त्री०) १ विद्युत्, बिजली । २ सूर्यरश्मि, सूर्यकी किरण ।

समनन (सं० क्ली०) समभावमें श्वासप्रश्वासत्याग ।

समनन्तर (सं० त्रि०) अव्यवहित परवर्त्ती, ठीक बगलवाला ।

समनर (सं० पु०) समशङ्कु । (गोलाध्याय)

समनस् (सं० त्रि०) समनस्क, समान मनोयुक्त ।

समनस्क (सं० त्रि०) समान मनोविशिष्ट, एक सा ख्याल करनेवाला ।

समना (सं० स्त्री०) सम्यगानयन्ती, सम्यक् चेष्टयित्री, अच्छी तरह चेष्टा करनेवाली ।

समनीक (सं० क्ली०) संग्राम, युद्ध ।

समनुकीर्त्तन (सं० क्ली०) सम् अनु-कीर्त्त ल्युट् । सम्यक् रूपसे अनुकीर्त्तन, अच्छी तरह कहना ।

समनुग्राह्य (सं० त्रि०) सम् अनु-ग्रह-ण्यत् । सम्यक् रूपसे अनुग्राह्य, भलीभांति अनुग्रह करनेवाली ।

समनुज (सं० त्रि०) अनुजसहित, शिष्ययुक्त ।

समनुज्ञा (सं० स्त्री०) अनुज्ञा, अनुमति ।

समनुबन्ध (सं० पु०) अनुबन्ध, अच्छी तरह अनुबंध ।

समनुयोज्य (सं० त्रि०) सम अनु-युज् ण्यत् । समनुयोजनीय, सम्यक् प्रकारसे योगके लायक ।

समनुवर्त्तिन् (सं० त्रि०) सम् अनु-वृत-णिनि । सम्यक्रूपसे अनुवर्त्ती, ठीक ठीक पीछा करनेवाला ।

समनुव्रत (सं० त्रि०) सम्पूर्णरूपसे अनुव्रत, भक्त ।

समनुष्ठेय (सं० त्रि०) सम्-अनु-स्था य । सम्यक् रूपसे अनुष्ठेय, अच्छी तरह करने लायक ।

समन्त (सं० पु०) सम्यक् प्रकारेण अन्तः इति तत्पुरुष समासः । १ सीमा, प्रान्त, किनारा । (त्रि०) २ समस्त, सब, कुल ।

समन्तकुसुम (सं० पु०) देवपुत्रभेद ।

समन्तगन्ध (सं० पु०) देवपुत्रभेद ।

समन्तचारित्रमति (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद ।

समन्तस् (सं० अव्य०) सम्यक् प्रकारेण अन्तः तस् । चारों ओर अभिव्याप्त, चारों ओर फैला हुआ ।

समन्तदर्शी (सं० पु०) १ बुद्ध । (ललितवि०) (त्रि०) समन्तं पश्यति दृश णिनि । २ सकल द्रष्टा, जिसे सब कुछ दिखाई देता हो ।

समन्तदुग्धा (सं० स्त्री०) समन्तात् दुग्धं क्षीरमस्याः । स्नुही वृक्ष, थूहर ।

समन्तनेत्र (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद ।

समन्तपञ्चक (सं० क्ली०) कुरुक्षेत्रतीर्थ, कुरुपाण्डवोंका युद्धक्षेत्र । एकबार परशुरामने समस्त क्षत्रियोंको मार कर उनके रक्तसे यहीं पांच तालाब बनाए थे। पीछे उन्होंने उसी रक्तसे अपने पिताका तर्पण किया था। तभीसे इस स्थानका नाम समन्तपञ्चक पड़ा ।

समन्तप्रभ (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद ।

समन्तप्रभास (सं० पु०) बुद्ध ।

समन्तप्रसादिक (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद ।

समन्तभद्र (सं० पु०) समन्तात् भद्रमस्य । १ बुद्ध । २ एक प्राचीन कवि । ३ एक जैन-ग्रन्थकर्त्ता । इन्होंने प्राकृतव्याकरण, लङ्कावतार और यक्षवर्मा रचित शाकटायनव्याकरणवृत्तिकी टीका आदि ग्रन्थ लिखे ।

समन्तभुज (सं० पु०) समन्तात् भुङ्क्ते इति भुज क्विप् । अग्नि ।

समन्तर (सं॰ पु॰) १ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन देशका नाम। २ इस देशका निवासी।
समन्तरश्मि (सं॰ पु॰) बोधिसत्वभेद।
समन्तविलोकिता (सं॰ स्त्री॰) बौद्धमतानुसार जगद्भेद।
समन्तव्यूहसागरवर्यव्यवलोकन (सं॰ पु॰) गरुड़-राजभेद।
समन्तस्थूलावलोकन (सं॰ क्ली॰) पुष्पभेद।
समन्तस्फारणमुखदर्शन (सं॰ पु॰) गरुड़राजभेद।
समन्तात् (सं॰ अव्य॰) समन्तः, चारों ओर फैला हुआ।
समन्तालोक (सं॰ पु॰) ध्यान करनेका एक प्रकार।
समन्तावलोकित (सं॰ पु॰) बोधिसत्व भेद।
समन्तिक (सं॰ अव्य॰) सोमाके पास।
समन्त्रक (सं॰ स्त्री॰) मन्त्रेण सह वर्त्तमानः। मन्त्रके साथ वर्त्तमान, मन्त्रयुक्त।
समन्त्रिन् (सं॰ त्रि॰) समन्त्र अस्त्यर्थे इनि। १ मन्त्र युक्त, मन्त्रविशिष्ट। २ मन्त्रोंके साथ।
समन्यु (सं॰ पु॰) मन्युना क्रतुना क्रोधेन वा सह वर्त्तमानः। १ शिव। (त्रि॰) २ क्रोधयुक्त। ३ यज्ञविशिष्ट।
समन्वय (सं॰ पु॰) १ संयोग, मिलन, मिलाप। २ अविरोध, विरोधका अभाव। ३ कार्य कारणका प्रवाह या निर्वाह।
समन्वित (सं॰ त्रि॰) सम्-अनु-इन्-क्त। १ संयुक्त, मिला हुआ। २ अविरुद्ध, जिसमें कोई रुकावट न हो।
समपद (सं॰ क्ली॰) समे पदे यत्र। १ धनुर्द्धारियोंका अवस्थान विशेष, धनुष चलानेवालोंका एक प्रकारका खड़े होनेका ढंग जिसमें वे अपने दोनों पैर बराबर रखते हैं। २ कामशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका रति-बन्ध या आसन।

"योषित्पादौ हृदि स्थाप्य कराभ्यां पीड़येत् स्तनौ।
यथेष्टं ताड़येद् योनिं बन्धः समपदः स्मृतः॥" (रतिम॰)

समपाद (सं॰ क्ली॰) समौ पादौ यत्र। १ समपद देखो। २ वह छन्द या कविता जिसके चारों चरण समान या बराबर हों।
समप्राधान्यसङ्कर (सं॰ पु॰) सम्यक् प्रधानता दिखलानेमें सारहीन कृत्रिमता।
समबुद्धि (सं॰ त्रि॰) समा बुद्धिर्यस्य। जिसकी बुद्धि सुख और दुःख, हानि और लाभ सबमें समान रहती हो।
समभाग (सं॰ त्रि॰) समो भागो यत्र। १ समानभाग-विशिष्ट, समान हिस्सा वाला। (पु॰) २ समान भाग, बराबर हिस्सा।
समभिधा (सं॰ स्त्री॰) समनाम, अभिधा।
समभिभाषण (सं॰ क्ली॰) सम्-अभि-भाष-ल्युट्। सम्यक्-रूपसे अभिभाषण।
समभिव्याहार (सं॰ पु॰) सम्-अभि-वि-आ-हृ-घञ्। सहित, साथ।
समभिव्याहारिन् (सं॰ त्रि॰) सम्-अभि-वि-आ-हृ-णिनि। सङ्गी, साथी।
समभिव्याहृत (सं॰ त्रि॰) सम्-अभि-वि-आ-हृ-क्त। १ एकत्र मिलित, एक साथ मिला हुआ। २ सहोच्चरित, एक साथ उच्चारण किया हुआ। ३ चलित, गया हुआ।
समभिहार (सं॰ पु॰) सम्-अभि-हृ-घञ्। १ पौनःपुन्य, बार बार होनेका भाव। २ भृशार्थ, अधिकता, ज्यादती।
समभूमि (सं॰ स्त्री॰) समाभूमिः। समान स्थान। पर्याय—आजि। मन्दिर अट्टालिकादिको ढाह ढाह कर चौरस करना।
समभ्यर्थयितृ (सं॰ त्रि॰) सम्-अभि-अर्थ-णिच्-तृच्। सम्यक् रूपसे अभ्यर्थनाकारी, अच्छी तरह स्वागत करनेवाला।
समभ्यास (सं॰ पु॰) सम्यक् रूपसे अभ्यास।
समभ्युद्धरण (सं॰ क्ली॰) सम्यक् रूपसे उद्धार।
समभ्युपगमन (सं॰ क्ली॰) सम्यक् अभ्युपगमन, अच्छी तरह सोच विचार कर अनुमोदन।
समभ्युपेय (सं॰ क्ली॰) समभ्युपगमन।
सममण्डल (सं॰ क्ली॰) समान मण्डल, ग्रीष्म-मण्डल-के उत्तर और दक्षिण उदीच्यवृत्त और उदीच्येतर वृत्त तक दो भूभाग। (Temperate zone)
सममति (सं॰ त्रि॰) समा मतिर्बुद्धिर्यस्य। समबुद्धि-विशिष्ट, जिसकी बुद्धि समान रहती हो।
सममय (सं॰ त्रि॰) समान भावविशिष्ट।
सममात्र (सं॰ त्रि॰) समान मात्राविशिष्ट।

समय (सं० पु०) समागतोति सम्-इण्-गतौ पचाद्यच्। १ काल, योग्यकाल। २ शपथ, सौगन्द। ३ आचार। ४ सिद्धान्त। ५ संवत्। ६ क्रियाकार। ७ निर्देश। ८ भाषा। ९ सङ्केत। १० व्यवहार। ११ सम्पद्। १२ नियम। १३ अवसर। १४ कर्त्तव्यनिर्वाह। १५ वाक्य, वक्तृता, प्रचार, घोषणा। १६ दुःखावसान। १७ निर्देशाज्ञा। १८ उपदेश। १९ धर्म। (त्रि०) २० सौभाग्यशाली।

समयकार (सं० पु०) समयस्य कारः करणं। सङ्केत, परिभाषा।

समयक्रिया (सं० स्त्री०) समयस्य क्रिया। समय पर करना।

समयज्ञ (सं० पु०) १ विष्णु। (त्रि०) २ जो समयका ज्ञान रखता हो, समयके अनुसार चलनेवाला।

समयधर्म (सं० पु०) समयक्रिया।

समयवज्र (सं० पु०) बौद्धयतिभेद।

समयविद्या (सं० स्त्री०) १ समयधर्म। २ योग्यकाल। ३ उपदेश, शिक्षा।

समयसुन्दर गणि—सुगमवृत्ति नाम्नी वृत्तरत्नाकरटीकाके प्रणेता।

समयसुन्दर उपाध्याय (जैन)—समाचारी शतक, विशेष शतक, कल्पलता और शब्दार्थवृत्तिके रचयिता।

समया (सं० अव्य०) समयनमिति सम-इन् गतौ (आ समिन् निकषिभ्यां। उण् ४।१७४) इति आ प्रत्ययः। १ निकट, पास, समीप। २ मध्य, बीच। ३ कालविज्ञापन।

समयाचार (सं० पु०) १ धर्म। २ एक प्रसिद्ध तन्त्रशास्त्र।

समयाचारनिरूपण (सं० क्ली०) एक आधुनिक तन्त्रग्रन्थ। सीताराम इसके रचयिता थे।

समयातन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

समयाध्युषित (सं० त्रि०) समयविशेष, वह समय जब कि न सूर्य्य ही दिखाई देता हो और न नक्षत्र ही, ठीक संध्याका समय।

समयानन्द (सं० पु०) तान्त्रिकोंके एक भैरवका नाम जिनका पूजन कालीपूजाके समय होता है।

समयानन्दनाथ (सं० पु०) समयानन्द देखो।

समयानन्दसन्तोष (सं० पु०) एक प्रसिद्ध शाक्त और तान्त्रिक आचार्य्य। इन्होंने स्वयं कितने पूजामन्त्रोंकी व्यवस्था की थी।

समयाविपित (सं० त्रि०) कालवशतः नष्ट या विलय प्राप्त। (ऐत० ब्रा० ५।२४)

समयास्तमिपित (सं० त्रि०) कालक्रमसे विध्वस्त।

समर (सं० पु० क्ली०) सम्यक् अरणं प्रापणमिति सं-ऋ गतौ अप्, यद्वा सम्यक् ऋच्छन्त्यत्रेति (मन्दन कन्दर शिकरेति। उण् ३।१३१) इति बाहुलकात् अर प्रत्ययेन साधु। युद्ध, संग्राम, लड़ाई।

समरकन्द—रूस राज्यके अधिकृत तुर्किस्तानके अन्तर्गत दुर्गाधिष्ठित तथा प्राचीर और परिखादि परिवेष्टित एक नगर। यह सुप्रसिद्ध बोखारा राजधानीसे १४५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यह नगर बहुत प्राचीन है। इसी स्थानमें मुगल-सम्राट् तैमूरलङ्गने अपनी राजधानी बसाई। उस प्राचीन वैभवकी कीर्त्तियां आज भी अतीत स्मृतियोंको जगाए हुई हैं। प्राचीन नगर जब पीछे विध्वस्त हो गया, तब जार-अफशान नदीके किनारे नया समरकन्द स्थापित हुआ। दैवक्रमसे नदीकी गति बदल जाने पर नये नगरके सौंदर्यमें भी बहुत हेर-फेर हो गया है। प्राचीन नगरभागमें तीन मदरसा और बोखाराके अमीरोंका प्रासाद है। शेषोक्त अट्टालिका अभी अस्पतालमें परिणत हो गई है तथा मदरसा और विश्वविद्यालयमें आज भी मुसलमान धर्मशास्त्रकी आलोचना और शिक्षा चलती है। पहले यह महानगरी इसलाम धर्म और साहित्य-चर्चाका एक प्रधान केन्द्र समझा जाता था। नया नगरभाग भी प्राचीरसे घिरा है। उसमें घुसनेके छः दरवाजे हैं।

अरबी ग्रन्थादिसे जाना जाता है, कि यह स्थान पहले मरकन्द (मकरन्द) नामसे मशहूर था। पीछे समरकन्द कहलाने लगा। ७०२ ई०में इसलामधर्मावलम्बी अरब जातिने यह स्थान दखल किया। १२१९ ई०में यह चेङ्गीस खाँ तथा १३५९ ई०में तैमूरलङ्गके हाथ लगा। तैमूरके समय नगरकी बड़ी उन्नति हुई थी। इसके बाद परवर्त्ती कुछ सदी तक यह विद्यार्जनका प्रधान केन्द्र रहा। नाना स्थानोंसे मुसलमान लोग समरकन्दके विश्वविद्यालयमें पढ़नेके लिये आया करते हैं। १८६८ ई०में यह रूस राज्यके इलाकेमें आ गया है।

समरकर्मन् (सं० क्ली०) युद्धकर्म, लड़ाईका काम ।
समरक्षिति (सं० स्त्री०) युद्धक्षेत्र, युद्धस्थान ।
समरजित् (सं० पु०) समरं जयति जि-क्विप्-तुक्-च । समरजेता, लड़ाईमें फतह पानेवाला ।
समररज्जु (सं० स्त्री०) दो वस्तुके बीचमें संन्यस्त रज्जु, वह रस्सी जिससे दो वस्तुओंके बीचकी दूरी मापी जाती है, बीजगणितमें दूरी या गहराई मापनेकी रेखा ।
समरञ्जय (सं० पु०) समरं जयति जि-खस्-मुम् । युद्धजेता, समरविजयी ।
समरण (सं० क्ली०) १ सम्यक् रूपसे यागदेशगमन । (ऋक् १।१५।२) (त्रि०) २ मरणके साथ वर्त्तमान ।
समरत (सं० पु०) रतिबन्धविशेष, कामशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका रतिबंध या आसन ।

"उजङ्घाद्वयसंयुक्तं कृत्वा योषित्पदद्वयं ।
स्तनौ धृत्वा रमेत् कामी बन्धः समरतः स्मृतः ॥"
(रतिमञ्जरी)

समरतुङ्ग (सं० पु०) योद्धभेद । (कथासरित्सा० ५४।१३७)
समरथ (सं० पु०) मैथिलराजभेद, क्षेमाधिराजपुत्र ।
समरपुङ्गव दीक्षित—चम्पूकाव्य और यात्राप्रबन्धकाव्यके प्रणेता ।
समरपोत (सं० क्ली०) समर सम्बन्धीय पोत, लड़ाईका जहाज ।
समरबल (सं० क्ली०) १ युद्धका बल । (पु०) २ राजपुत्रभेद ।
समरभट (सं० पु०) १ योद्ध पुरुष । २ राजपुत्रभेद ।
समरभू (सं० स्त्री०) युद्धस्थल, लड़ाईका मैदान ।
समरभूमि (सं० स्त्री०) समरभू देखो ।
समरवर्मन् (सं० क्ली०) १ समरोपयुक्त वर्म, युद्ध करने लायक ढाल । (पु०) २ राजपुत्रभेद । (राजतर० ५।१३५)
समरवसुधा (सं० स्त्री०) युद्धस्थल, लड़ाईका मैदान ।
समरमूर्द्धा (सं० पु०) लड़नेवाली सेनाका अगला भाग ।
समरवीर (सं० पु०) १ समरमें वीर । जो युद्धस्थलमें वीरता दिखलाते हैं, उन्हें समरवीर कहते हैं । २ यशोदाके पिता ।
समरशायी (सं० पु०) वह जो युद्धमें मारा गया हो ।
समरसिंह—एक विख्यात ज्योतिर्विद् । ये प्राग्वाटवंशसम्भूत कुमारसिंहके पुत्र थे । हायनरत्नमें इनका मत उद्धृत है । जगद्भूषणकोष्ठक, ताजिकतन्त्र, ताजिक-तन्त्रसार (गणकभूषण या कर्मप्रकाश), ताजिकसिद्धान्त, मनुष्यजातक और वर्णचर्यावर्णन आदि ग्रन्थ इनके रचित हैं । उक्त ग्रन्थोंसे इनकी वंशधारा इस तरह मिलती है—गुजरातके एक चालुक्यराजके प्रसिद्ध मन्त्री चन्द्रसिंहके पुत्र शोभनदेवके पुत्र सामन्त थे । इन सामन्तसिंहके पुत्र कुमारसिंह ही ग्रन्थकारका पिता था ।

समरसिंह—चौहान-वंशी एक राजपूत राजा, मेवाड़के एक प्रसिद्ध महाराणा । टाड-लिखित "मेवाड़का इतिहास" में समरसिंहका जो विवरण प्रकाशित हुआ है, वह भ्रमपूर्ण होने पर भी यहां अविकलरूपसे उद्धृत किया जाता है । मेवाड़की राजविवरणीके अनुसार १२०६ शकमें समरसिंहका जन्म हुआ ।

उक्त राजविवरणी पर निर्भर कर टाड साहबने लिखा है, कि सुयोग्य बाप्पारावके वंशधर समरसिंह जिस समय चित्तौरके राजसिंहासन पर बैठे थे, उस समय भारतकी राजधानी दिल्लीमें पृथ्वीराज और कन्नौजमें जयचन्द राजत्व करते थे । चौहानराज पृथ्वीराजकी बहनके साथ समरसिंहका विवाह हुआ । इस सम्बन्धके कारण ही इन दोनों राज्योंमें प्रेम और सौहार्द्द बढ़ गया था ।

देशद्रोही ईर्षालु जयचन्दसे पृथ्वीराजका सुख-सौभाग्य तथा समरसिंहका पृथ्वीराजसे सम्बन्ध होना सहा न गया । अतएव वह पृथ्वीराजकी प्रतिद्वन्द्विता चरणमें प्रवृत्त हुआ । पृथ्वीराजको उसने "राजेश्वर" स्वीकार न किया वरं अपनेको दिल्लीका उत्तराधिकारी होनेका दावा कर पृथ्वीराजके पास एक पत्र भेजा । फलतः शत्रुताकी वृद्धि हुई । पाटन, अनहलवाड़ा और मन्दोरके राजे जयचन्दके पक्षमें आ गये । कन्नौजाधिपति जयचन्दने पहले पृथ्वीराजके साथ अपनी पुत्री संयोगिताके विवाह करनेकी बात पक्की कर ली थी; किन्तु इधर शत्रुताकी वृद्धि तथा कुछ राजोंके साहाय्य-प्राप्त होनेसे वह अपनी उस बातसे हट गया । दिल्लीश्वरने अपमानित हो कर उसके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की ।

राणा समरसिंहने यह खबर पाते ही अपने सालेका पक्षावलम्बन किया। जयचन्दको समरसिंहके वीरत्वका परिचय पहले होसे मिल चुका था। उसके पहले ही कई युद्धोंमें पाटन, कन्नौज और धारके राजा और उनके अधीनस्थ सामन्तोंको समरसिंहके हाथ पराजित और पददलित होना पड़ा था।

इस बार प्रतिहिंसा साधनार्थं परश्रीकातर दुर्वृत्त जयचन्द और उनके साथियोंने उनके सम्यक् ध्वंस साधनके उद्देशसे गजनीके साहाबुद्दीन् महमूदको बुला भेजा। धूर्त्त महमूद इस सुयोगको ही भारत पर अधिकारका शुभावसर जान जयचन्दके प्रस्तावमें राय दे कर उनके शत्रुओंका दमन करनेके लिये ससैन्य भारतकी ओर अग्रसर हुआ।

पृथ्वीराजने महमूदके आनेकी बात सुन कर अपने अधीनस्थ लाहोरके सामन्तराज चांद पुण्डीरको समरसिंहके निकट भेजा और उनसे इस विपदमें सहायता मांगी। समरसिंह अपने सालेको महान् विपदमें फंसा देख अपने पुत्र कर्णके हाथ चित्तौरका राज्यभार समर्पण कर सदलबल दिल्लीकी ओर बढ़े। दोनोंकी सम्मिलित सेना कागार नदीके तट पर शत्रुको सम्मुखीन हुई। तीन दिन अविश्रान्त युद्धके बाद राजपूतकुलकेतन समरसिंह राजपूत जातिकी गौरव-रक्षा करनेमें असमर्थ हो अपने पुत्र कल्याणसिंहके साथ रणक्षेत्रमें धराशायी हुए। इनके साथ तेरह सौ राजपूत वीर और प्रधान प्रधान सरदार मारे गये थे। सन् ११९३ ई०में कागार-रणक्षेत्रमें इस तरह भारतके गौरवसूर्यको वीरत्वदीप्तिका अवसान हुआ। पृथ्वीराज मुसलमानोंके हाथ कैदी हुए। उधर स्वामीको मरा जान कर समरसिंहकी विधवा पत्नी पृथादेवीने अग्निमें आत्मोत्सर्ग किया।

महाराणा समरसिंह द्वारा राजपूतानेके चित्तौरगढ़से अर्बुद पर्वतके अचलेश्वर मन्दिरसे तथा उदयपुरसे जो शिलालिपियां मिली हैं, उनसे १३२५, १३४२, १३४४ विक्रम संवत्सर लिपिबद्ध है। इन सब शिलालिपियोंसे मालूम होता है, कि उनके पिताका नाम तेजसिंह और माताका नाम जयतल्लदेवी था। इन सब शिलालिपियों तथा महाराणा कुम्भकर्णकी शिलालिपियोंसे जो वंशसूची प्राप्त हुई है, वह टाड साहबकी वंशविवरणोंसे बिलकुल स्वतन्त्र है। शिलालिपियोंके अनुसार—१ बप्प, २ गुहिल, ३ भोज, ४ शील, ५ कालभोज, ६ भर्त्तृभट्ट, ७ सिंह, ८ महायक, ९ खुम्मान, १० अल्लट, ११ नरवाहन, १२ शक्तिकुमार, १३ शुचिवर्म्मन्, १४ नरवर्मन्, १५ कीर्त्तिवर्म्मन्, १६ योगराज, १७ वैराट, १८ वंशपाल, १९ वैरीसिंह, २० विजयसिंह, २१ अरिसिंह, २२ चोड़सिंह, २३ विक्रमसिंह, रणसिंह, २४ क्षेमसिंह, २५ सामन्तसिंह, २६ कुमारसिंह, २७ मथनसिंह, २८ पद्मसिंह, २९ जैत्रसिंह, ३० तेजसिंह, ३१ समरसिंह। सुतरां टाड साहबने समरसिंह और पृथ्वीराजके सम्बन्धकी जो बात लिखी है, वह सम्पूर्णरूपसे कविकल्पना है।

समरस्वामिन् (सं० पु०) काश्मीरस्थ समरतीर्थ स्थ प्रतिष्ठित देवमूर्त्तिभेद। (राजतर० ५।२५)

समरा—युक्तप्रदेशके आगरा जिलान्तर्गत इतिमादपुर तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २७° १९' २६" उ० तथा देशा० ७८° ७' १०" पू०के मध्य विस्तृत है। यह इतिमादपुर नगरसे १३ मील उत्तर-पश्चिम पड़ता है।

समराङ्गण (सं० क्ली०) समरमेवाङ्गनः। युद्धस्थान, लड़ाईका मैदान।

समरातिथि (सं० पु०) समरस्यातिथिः। समरस्थलमें अतिथिस्वरूप, वह जो युद्धस्थलमें जाता हो।

समराला—१ पञ्जाब प्रदेशके लुधियाना जिलेकी एक तहसील। भूपरिमाण २८८ वर्गमील है।

२ उक्त तहसीलका प्रधान ग्राम और विचारसदर। यहां एक तहसीलदार और एक मुनसफ हैं। उनके द्वारा एक फौजदारी और दो दीवानी अदालतका कार्य चलता है।

समरशायिन् (सं० त्रि०) समरे शेते शी णिनि। जिसकी मृत्यु युद्धस्थलमें हुई हो।

समराशि (सं० पु०) राशियोंकी एक संज्ञा, वह राशि जो समान अंशोंमें विभक्त हो सकती है। २, ४, ६, ८ आदि राशि। सम शब्द देखो।

समरूप्य (सं० त्रि०) समाद्‌आगतः इति सम (हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः। पा ४।३।८१) इति रूप्यः। साधुके भूतपूर्व गवादि।

समरेख (सं० त्रि०) समा रेखा यत्र। समान रेखा-युक्त, जिसमें सीधी रेखा हो।

समरोचित (सं० त्रि०) युद्धोपयुक्त, समरके लायक।

समरोत्सव (सं० पु०) समरस्य उत्सवः। युद्धयात्राके लिये उत्सव, युद्धोल्लास।

समरोद्देश (सं० पु०) रणक्षेत्र, लड़ाईका मैदान।

समरोपाय (सं० पु०) समरकौशल, लड़ाईमें दक्ष।

समर्घ (सं० त्रि०) सुलभ मूल्य, कम दामका, सस्ता।

समर्च (सं० त्रि०) १ सम्यक् ऋक् संख्याविशिष्ट। २ सूक्त।

समर्चन (सं० क्ली०) सम्यक् रूपसे अर्चन, पूजन।

समर्ण (सं० त्रि०) सम्-अर्द्द-क्त। १ सम्यक् पीड़ित। २ प्रार्थित।

समर्त्ति (सं० स्त्री०) सम्यक् आर्त्ति या दुःख।

समर्थ (सं० त्रि०) समर्थयते इति सम-अर्थ पचाद्यच्। १ शक्तिविशिष्ट, बलवान्, क्षमतापन्न, ताकतवर। २ प्रशस्त, लंबा चौड़ा। ३ उपयुक्त, योग्य। ४ जो अभिलषित हो, अभीष्ट। ५ युक्तिके अनुकूल, ठीक। (पु०) ६ हित, भलाई। ७ सह्याद्रिवर्णित एक राजाका नाम।

समर्थक (सं० त्रि०) १ समर्थनकारी, समर्थन करने-वाला। (पु०) २ चन्दनकाष्ठ, चन्दनकी लकड़ी।

समर्थता (सं० स्त्री०) समर्थका भाव या धर्म, सामर्थ्य, शक्ति, ताकत।

समर्थन (सं० क्ली०) सम अर्थ-ल्युट्। १ यह निश्चय करना, कि अमुक बात उचित है या अनुचित, वाजिब और गैर वाजिबका फैसला करना। २ विवेचना, मीमांसा। ३ निषेध, मनाही। ४ सम्भावना। ५ उत्साह। ६ सामर्थ्य, शक्ति, ताकत। ७ विवाद-भङ्ग करना, विवादकी समाप्ति या अन्त करना। ८ किसी मतमें सहमत होना, किसीके मतका पोषण करना। ९ दृढ़ीकरण, पक्का करना।

समर्थना (सं० स्त्री०) सम्-अर्थ-युच्-टाप्। १ अशक्य विषयमें अध्यवसाय, किसी ऐसे कामके लिये प्रयत्न करना जो असम्भव हो। ८ समर्थन देखो।

समर्थनीय (सं० त्रि०) सम्-अर्थ-अनीयर्। समर्थनयोग्य। जिसका समर्थन किया जा सके।

समर्थित (सं० त्रि०) १ विवेचित, जिसकी विवेचना हो। २ मीमांसित, जिस पर विचार हो चुका हो। ३ दृढ़ीकृत, जो मजबूत किया जा चुका हो। ४ स्थिरीकृत, जो निश्चित हो चुका हो। ५ सम्भावित, जो हो सकता हो।

समर्थ्य (सं० त्रि०) जो समर्थन किया जा सके।

समर्द्धक (सं० त्रि०) सामृध्नोतीति सम्-ऋधु वृद्धौ ण्वुल्। वरदानकारी, वर देनेवाला देवता आदि।

समर्द्धयितृ (सं० त्रि०) पूर्णकारी, कामना पूरी करने-वाला।

समर्द्धुक (सं० त्रि०) समर्द्धक, इष्टफलदाता देवतादि।

समर्पक (सं० त्रि०) समर्पयतीति-सम्-अर्पि-ण्वुल्। समर्पणकारी, समर्पण करनेवाला।

समर्पण (सं० क्ली०) सम्-अर्पि-ल्युट्। १ सम्यक् प्रकार-से अर्पण, किसीको कोई चीज आदरपूर्वक भेंट करना। तन्त्रोक्त पूजा करके पूजाके अन्तमें उसी देवताके उद्देशसे आत्मसमर्पण करना होता है। २ दान, देना। ३ स्थापना, स्थापित करना।

समर्पित (सं० त्रि०) १ सम्यक् रूपसे अर्पित, एकदम समर्पण किया हुआ। २ स्थापित, जिसकी स्थापना की गई हो।

समर्पितृ (सं० त्रि०) सम-अर्पि-तृच्। समर्पणकारी, समर्पण करनेवाला।

समर्प्य (सं० त्रि०) सम-अर्पि-यत्। समर्पणयोग्य, जो समर्पण किया जा सके।

समर्य्य (सं० पु०) शत्रु, दुश्मन। समर्य्यजित् देखो।

समर्य्यजित् (सं० त्रि०) शत्रुजेता। (ऋक् १।१११।१५)

समर्य्यराज्य (सं० क्ली० मनुष्य सहित राज्य।

समर्य्याद (सं० पु०) मर्यादया सह वर्त्तमानः। १ निकट, पास, करीब। (त्रि०) २ सीमायुक्त। ३ मर्यादाके साथ। ४ सच्चरित, जिसका चाल चलन अच्छा हो।

समर्हण (सं० क्ली०) सम्-अर्ह-ल्युट्। सम्यक्रूपसे पूजा, तनमनसे अर्चाना करना।

समल (सं० क्ली०) मलेन सह वर्त्तमानः। १ विष्ठा, मल, गू। (त्रि०) २ आविल, मैला, मलिन। ३ कलङ्क-विशिष्ट।

समलोष्ट्राश्मकाञ्चन (सं० त्रि०) समानि लोष्ट्राश्मकाञ्चनानि यस्य। जिन्हें ढेले, पत्थर और सोनेमें समान ज्ञान हो।

समवकार (सं० पु०) नाटकभेद। नाटक, प्रकरण, भान, समवकार और डिम आदिके भेदसे नाटक नाना प्रकारका है। इसमें अनेक अर्थोंका समवकिरण अर्थात् एकत्र सन्निवेश होता है, इसीसे इसका नाम समवकार हुआ है। इस समवकारमें ख्यात वृत्त होगा अर्थात् देवता असुरादिका आश्रय कर किसी एक प्रसिद्ध वृत्तान्तके अवलम्बन पर यह प्रणयन करना होगा। यह वीररस-प्रधान है, देवता और असुरोंका युद्ध वर्णन ही इसका प्रधान उद्देश्य है। इसमें तीन अङ्क रहेंगे। नाटकमें जो पञ्चसन्धि कही गई है, उसकी चार सन्धि इसमें वर्णित होगी, केवल विमर्षसन्धि इसमें निषिद्ध है। इसका नायक धीरोदात्त है, इसमें प्रत्येकका फल भिन्न प्रकारका है। मन्दकौशिकी वृत्ति तथा गायत्री और उष्णीक् छन्दमें इसका मुखभाग रचा जाता है। पीछे नाना प्रकारके छन्दोंका विन्यास दिखाई होगा। इसमें हस्ती रथादि परिपूर्ण युद्धक्षेत्र, तुमुल संग्राम और नगरादि ध्वंसका वर्णन बड़े ठिकानेसे रहता है। त्रिश्रृङ्गार अर्थात् शास्त्रके अविरोधमें धर्मश्रृङ्गार, अर्थलाभार्थ कल्पित अर्थश्रृङ्गार और कामश्रृङ्गार इन तीन प्रकारके श्रृङ्गारोंका इसमें वर्णन करना होता है। इन तीन प्रकारके श्रृङ्गारोंमें कामश्रृङ्गारका प्रथम अङ्कमें वर्णन करना होगा। पीछे जिस किसी जगह बाकी दो श्रृङ्गारोंका वर्णन कर सकते हैं। नाटकोक्त त्रिकपट और त्रिविद्रव इसमें वर्णनीय है। नाटकको तरह विन्दु या प्रवेशक इसमें नहीं होगा। साहित्यदर्पणमें समुद्रमन्थन नामक एक समवकारका नाम देख पड़ता है।

नाटक शब्द देखो।

समवतार (सं० पु०) सम्-अव-तॄ घञ्। १ तीर्थ, घाट, सोपान। २ अवतरण, उतरनेकी क्रिया। ३ उतरनेकी जगह, उतार।

समवधान (सं० क्लो०) सम् अव-धा-ल्युट्। १ सम्यक् मनोयोग। २ निष्पत्ति।

समवन (सं० क्लो०) सम्-अव-ल्युट्। सम्यक्‌रूपसे अवन, सम्यक् प्रकारसे रक्षण।

समवर्ण (सं० पु०) समान वर्ण, एक वर्ण।

समवर्त्ती (सं० पु०) १ यमका एक नाम। (त्रि०) २ तुल्यरूपसे स्थित, तुल्यवर्त्तनशील।

समवलम्ब (सं० त्रि०) १ समान अवलम्बविशिष्ट। २ जिस चतुर्भुजकी दोनों लम्बरेखा (Perpendicular) समान हों। (Trapezoid) नामक चतुर्भुज (Rectangle) होनेसे आयतसमलम्ब कहलाता है।

समवसरण (सं० पु०) वह स्थान जहां किसी प्रकारका धार्मिक उपदेश होता हो। (शत्रुञ्जयमा० १७४)

समवसर्ग (सं० त्रि०) १ रज्जु अवनमन। २ परित्याग।

समवसृज्य (सं० त्रि०) सम्यक् परित्याज्य, अच्छी तरह छोड़ने योग्य।

समवस्कन्द (सं० पु०) सम्यक्‌रूपसे दुर्ग द्वारा सुरक्षितकरण, किलेका प्राकार।

समवस्था (सं० स्त्री०) समा तुल्या अवस्था। १ समान अवस्था, एक-सी दशा। २ कालकृत विशेष अवस्था।

समवस्थान (सं० क्लो०) सम्-अव-स्था ल्युट्। सम्यक्‌रूपसे अवस्थान, सम्यक् प्रकारसे स्थिति।

समवस्रव (सं० पु०) सम्-अव-स्रु अप्। सम्यक्‌रूपसे अवस्रव, क्षरण, टपकना।

समवहार (सं० पु०) सम् अव-हृ-घञ्। विभक्त, बटा हुआ। (भागवत ५।१४।१)

समवहास्य (सं० त्रि०) सम् अव-हस्-ण्यत्। सम्यक्‌रूपसे अवहसनीय, उपहासयोग्य।

समवाय (सं० पु०) सम वाय्यते इति सम् अव-घञ्। १ समूह। (अमर) २ सम्बन्धविशेष, समवायसम्बन्ध, नित्य सम्बन्ध।

घटादिका कपाल आदिसे जो सम्बन्ध है, द्रव्यमें गुण और कर्मका जो सम्बन्ध है तथा द्रव्य, गुण और कर्ममें जातिका जो सम्बन्ध है, उसको समवाय कहते हैं।

घटादि इस आदि पदमें साधारणतः अवयवमें अवयवीका सम्बन्ध मालूम हुआ। सुतरां घट और कपालमें जो सम्बन्ध है, द्व्यणुकका अणुमें और त्रसरेणुका द्व्यणुकमें जो सम्बन्ध है, वही समवाय सम्बन्ध है। मूलका सूत्र समवायका केवल परिचायक है, लक्षण नहीं।

समवायका लक्षण करने पर नित्य संबन्धत्व ही समवायत्व है। अर्थात् नित्य संबंधको समवाय कहते

हैं। अवयवके साथ अवयवीका, जाति और व्यक्तिका, गुण और गुणीका, क्रिया और क्रियावान्‌का नित्य द्रव्य और विशेषका जो संबन्ध है, उसको समवाय कहते हैं। समवाय सम्बन्ध क्यों स्वीकार करना पड़ता है, इसका अनुमान इस तरह लिखा है,—गुण क्रियादिविशिष्ट बुद्धि अर्थात् गुणवान् घट, क्रियावान् घट इत्यादि ज्ञान विशेषण, विशेष्य और संबन्धको विशेष करता है; इसीलिये वह विशिष्ट बुद्धि है, जैसे दण्डो पुरुष। दण्डोपुरुष इस स्थलमें पुरुष विशेष्य दण्डी विशेषण और संयोग है। इस तरह समस्त विशिष्ट बुद्धिके स्थलमें ही विशेष्य और विशेषण तथा संबन्ध विशेषका भान होता है। और एक उदाहरण दिया जाये—रूपवान् घट, यह विशिष्ट बुद्धि है, सुतरां यहां भी विशेषण, विशेष्य और सम्बन्ध विशेषका ज्ञान होना आवश्यक है। रूप विशेषण और घट विशेष्य है। किन्तु अपेक्षित संबन्ध संयोगादि हो नहीं सकता, क्योंकि संयोग होनेसे दो द्रव्योंके बीचमें होता है। किन्तु यहां एक गुण और अन्य द्रव्य है, इसलिये संयोग संबन्ध नहीं हो सकता है। कारण यहां दो द्रव्य नहीं हैं। दो द्रव्य न रहनेसे संयोग संबन्ध नहीं हुआ, तब सम्बन्धान्तरकी कल्पना करनी पड़ी; वही कल्पित संबन्धान्तर ही समवाय है।

इस समवायके संबन्धमें नव्य नैयायिकोंने विशेष विचार किया है। विषय बढ़ जानेके कारण तथा नैयायिकोंकी भाषाकी दुर्बोधताके कारण उसे यहां दिया न गया।

समवायत्व (सं० क्ली०) समवायस्य भावः त्व। समवायका भाव या धर्म, समवायता।

समवायन (सं० क्ली०) परस्परमें संघात प्राप्ति।

समवायिन् (सं० त्रि०) समवाय अस्त्यर्थे इनि। नित्यसम्बन्धयुक्त, जिसमें समवाय या नित्य संबन्ध हो।

समवृत्त (सं० त्रि०) १ समान, गोल। २ समवृत्तविशिष्ट, समान गोलाईका। (क्ली०) ३ छन्दोभेद, वह छन्द जिसके चारों चरण समान हों।

समवेक्षण (सं० क्ली०) सम-अव-ईक्ष-ल्युट्। सम्यक् रूपसे अवेक्षण, भली भांति देखना।

समवेगवश (सं० पु०) १ देशभेद। २ उस देशके निवासी। (भारत भीष्मपर्व्व)

समवेत (सं० त्रि०) सम् अव-इण-क्त। १ मिलित, एकमें मिला हुआ। २ संबन्ध। ३ सञ्चित, जमा किया हुआ। ४ एक श्रेणीयुक्त, किसीके साथ एक श्रेणीमें आया हुआ। (पु०) ५ सम्बन्ध, लगाव, ताल्लुक।

समवेध (सं० पु०) १ समान वेध। (त्रि०) २ समान वेधविशिष्ट।

समवेश (सं० क्ली०) १ समान वेश या सज्जा। २ युद्धसज्जा, सेना सजाना।

समशङ्कु (सं० त्रि०) वह समय जब कि सूर्य ठीक सिर पर आते हों, ठीक दो पहरका समय।

समशन (सं० क्ली०) सम् अश-ल्युट्। सम्यक्‌रूपसे अशन, तृप्तिपूर्व्वक खाना।

समशनीय (सं० त्रि०) सम्-अश-अनीयर्। सम्यक् प्रकारसे अशनयोग्य, खाने लायक।

समशशिन् (सं० पु०) १ समचन्द्र। वृहत्संहितामें लिखा है, कि समशशी अर्थात् चन्द्रमा यदि समान भावमें उदय हों, तो सुभिक्ष, उत्तम वृष्टि और मङ्गल होता है। (त्रि०) सम् अश-णिनि। २ सम्यक् प्रकारसे भोजनशील, खूब खानेवाला, पेटू।

समशर्करचूर्ण (सं० क्ली०) ग्रहणी और कासाधिकारोक्त चूर्णौषधविशेष।

समशर्करलौह (सं० पु०) रक्तपित्ताधिकारोक्त औषधभेद।

समशीतोष्ण-कटिबन्ध (सं० पु०) पृथ्वीके वे भाग जो उष्ण कटिबंधके उत्तरमें कर्कटरेखासे उत्तर वृत्त तक और दक्षिणमें मकर रेखासे दक्षिण वृत्त तक पड़ते हैं। इन भूभागोंमें न तो बहुत अधिक सरदी पड़ती है और न बहुत अधिक गरमी; दोनों प्रायः समान भावमें रहती हैं।

समशीर्षिका (सं० स्त्री०) सम्यक् अवस्थान, शीर्षकी समरेखा पर अवस्थित।

समशोधन (सं० क्ली०) बीजगणितोक्त सम-व्यवकलन नामक अङ्कविशेष।

समश्नुव (सं० त्रि०) १ प्रापण, पाना। २ उपनीत होना, पहुंचना। (आश्व० गृ० ४।८।२७)

समश्नुवान (सं० त्रि०) सम-अश-शानच्। सम्यक् प्रकारसे व्याप्तिविशिष्ट, खूब फैलनेवाला।

समश्रेणी (सं० स्त्री०) समान श्रेणी, एक श्रेणी।

समष्टि (सं० स्त्री०) सम्-अश-व्याप्तौ-क्तिन्। समस्त मिलित, सबका समूह, कुल एक साथ।

समष्ठिल (सं० पु०) समं तिष्ठतीति स्था बाहुलकात् इलच्। १ पश्चिमदेशजात क्षुपविशेष, कोकुआ नामका कंटीला पौधा जो प्रायः पश्चिममें नदियोंके किनारे होता है। वैद्यकमें इसे कटु, उष्ण, रुचिकर, दीपन और कफ तथा वातका नाशक माना है। २ गण्डीर या गिंडनी नामका साग।

समष्ठिला (सं० स्त्री०) समष्ठिल स्त्रियां टाप्। १ समष्ठिल, कोंकुआ। २ जमीकन्द, सूरन। ३ गिंडनी या गंडीर नामका साग। ३ नद्याम्र। ४ शमठ नामक शाकविशेष, सुठिया साग।

समष्ठीला (सं० स्त्री०) समष्ठिला देखो।

समसंख्यात (सं० त्रि०) सम्-संख्या-क्त। समसंख्याविशिष्ट, समान अंकवाला।

समसंस्थान (सं० क्ली०) समरूपे संस्थान, दोनों ओरके भावका समान करना।

समसंस्थित (सं० त्रि०) सम-संस्था-क्त। समानरूपमें संस्थानयुक्त, दोनों ओर समरूपसे संस्थित।

समसन (सं० क्ली०) सम् अस् ल्युट्। १ संक्षेपण, संक्षेप करना। २ समास।

समसप्तकचूर्ण—चूर्णौषधभेद। (चिकित्सासार)

समसमयवर्त्तिन् (सं० त्रि०) समसमये वर्त्तते वृत णिनि। समकालस्थित, समकालवर्त्तनशील।

समसापर्वत—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलान्तर्गत पश्चिमघाट पर्वतमालाका एक गिरिशृङ्ग। इसकी ऊंचाई ६३०० फुट है। यह मङ्गलूरसे ५६ मील दूर अक्षा० १३°८´ उ० और देशा० ७५°१८´ पू०के मध्य विस्तृत है। इस पर्वतकी चोटी पर दक्षिण कनाड़ावासी यूरोपीयगणका स्वास्थ्यावास स्थापित है। स्थानीय जलवायु परम रमणीय है। यहां नाना प्रकारके फलमूलादि उत्पन्न होते हैं।

समसुप्ति (सं० पु०) समेषां सर्वेषां सुप्तिर्यत्र। १ कल्पान्त, महाप्रलय। (स्त्री०) समा सुप्तिः। २ तुल्यशयन, समान सोना।

समसूत्र (सं० त्रि०) समान सूत्र या रेखामें जो हो।

समसूत्रग (सं० त्रि०) समसूत्रे गच्छतीति गम-ड। समसूत्रगामी, एक-सा चलनेवाला।

समसौरभ (सं० पु०) १ समान सौरभ, एक-सी गंध। (त्रि०) २ तुल्यगंधविशिष्ट, जिसमें एक सी गंध हो।

समस्त (सं० त्रि०) सम्-अस-क्त। १ समग्र, कुल, सब। २ संयुक्त, एकमें मिलाया हुआ। ३ समासयुक्त, जो समास द्वारा मिलाया गया हो। ४ संक्षिप्त, जो थोड़ेमें किया गया हो।

समस्तल—प्रभासके अन्तर्गत एक तीर्थ। यहां देवीाध्यक्ष मूर्त्ति विराजित हैं। (प्रभासख० १६ अ०)

समस्थ (सं० त्रि०) समे तिष्ठतीति स्था-क। समान।

समस्थली (सं० स्त्री०) समा स्थली, गंगा और यमुनाके बीचका देश।

समस्या (सं० स्त्री०) समसनं उक्ता संक्षेपणं सम्-अस यन्। १ किसी श्लोक या छन्द आदिका वह अंतिम पद या टुकड़ा जो पूरा श्लोक या छन्द बनानेके लिये तैयार करके दूसरोंको दिया जाता है और जिसके आधार पर पूरा श्लोक या छंद बनाया जाता है। पर्याय—समासार्था, समस्यार्था, समासार्था। (भरत) २ संघटन। ३ मिश्रण, मिलानेकी क्रिया। ४ कठिन अवसर या प्रसङ्ग।

समस्यापूर्त्ति (सं० स्त्री०) किसी समस्याके आधार पर कोई छन्द या श्लोक आदि बनाना।

समस्यार्था (सं० स्त्री०) समस्या अर्थो यस्याः। समस्या।

समस्वर (सं० त्रि०) समान स्वरविशिष्ट, समान स्वरवाला।

समस्वामित्व (सं० क्ली०) तुल्यस्वत्व, तुल्याधिकार, समान हक।

समह (सं० त्रि०) धनके साथ, धनयुक्त।

समह्वा (सं० स्त्री०) यश, कीर्त्ति।

समां (हिं० पु०) समय, वक्त।

समांश (सं० पु०) समोऽंशः। १ तुल्य अंश, बराबर भाग। (त्रि०) समोंऽशो यस्य। २ तुल्यांशविशिष्ट, समान भागवाला।

समांशहारिन् (सं० त्रि०) समांशं हरतीति हृ णिनि। समभागार्ह, समानभागविशिष्ट। दायभागमें लिखा है, कि पतिकी मृत्युके बाद स्त्री पुत्रोंके साथ समान अंश पाती है।

समांशिक (सं० त्रि०) समांशोऽस्त्यस्येति ठन्। समतागार्ह, समान भागके योग्य।

समांशिन् (सं० त्रि०) समांशोऽस्त्यस्येति इनि। तुल्य भागविशिष्ट, समान अंशवाला।

समांस (सं० त्रि०) मांसेन सह वर्त्तमानः। मांसके साथ वर्त्तमान, मांसयुक्त, मांसविशिष्ट, मांसल। शास्त्रमें लिखा है, कि देवताओंके उद्देशसे पशु हनन कर समांस रुधिर उस देवताके उद्देशसे उत्सर्ग करना होता है।

समांसमीना (सं० स्त्री०) समां समां विजायते इति (समां समां विजायते। पा ५।२।१२) इति ख। प्रति वर्ष प्रसूतगवी, प्रत्येक वर्ष बच्चा देनेवाली गाय।

समा (सं० स्त्री०) सम् वैक्लव्ये पचाद्यच् ततष्टाप्। वर्ष, साल।

समाकर (सं० त्रि०) समान आकारविशिष्ट।

समाकर्षण (सं० क्ली०) सम् आ-कर्षि-ल्युट्। सम्यक्-रूपसे आकर्षण, अच्छी तरह जोतना।

समाकर्षिन् (सं० पु०) समाकर्षति चित्तमिति सम् आ कृष णिनि। १ अति दूरगामी गन्ध, दूर तक फैलनेवाली महक। पर्याय—निर्हारी। (त्रि०) २ आकर्षणकारी, खींचनेवाला।

समाकार (सं० त्रि०) समान औज्ज्वल्यविशिष्ट, जो एकदम सफेद हो।

समाकुल (सं० त्रि०) सम् आकुल-अच्। १ जिसकी अक्ल ठिकाने न हो, बहुत अधिक घबराया हुआ। २ संशयित, सन्दिग्ध। ३ हतबुद्धि, अभागा।

समाक्रन्दन (सं० क्ली०) सम् आ क्रन्द-ल्युट्। सम्यक् प्रकारसे आक्रमण।

समाक्रान्त (सं० त्रि०) सम्-आ क्रम क्त। १ व्याप्त, फैला हुआ। २ सम्यक्रूपसे आक्रान्त। ३ गृहीत। ४ अधिष्ठित।

समाक्षर (सं० त्रि०) समान अक्षरविशिष्ट, तुल्य अक्षर।

समाक्षरावकर (सं० पु०) ध्यानका एक प्रकार।

समाक्षेप (सं० पु०) सम् आ-क्षिप् घञ्। सम्यक्रूपसे आक्षेप या क्षेपण।

समाख्या (सं० स्त्री०) समाख्यायतेऽनयेति सम्-आ-ख्या-अङ्। १ कीर्त्ति, यश। २ संज्ञा, नाम।

समाख्यान (सं० क्ली०) १ सम्यक् प्रकारसे आख्यान, भली भाँति कहना। २ सम्-आख्यान, एक-सा वर्णन।

समागत (सं० त्रि०) सम्-आ-गम्-क्त। १ सम्यक् आगमनविशिष्ट, आया हुआ। २ मिलित, उपस्थित। ३ असाक्षात्कृत्य, भेंट की हुई।

समागति (सं० स्त्री०) सम् आ-गम-क्तिन्। सम्यक आगमन।

समागम (सं० क्ली०) सम्-आ-गम-घञ्। १ समागमन, आगमन, आना। २ सम्प्राप्ति। ३ मिलन, भेंट।

समागमन (सं० क्ली०) सम्-आ-गम ल्युट्। समागम, आना, पहुंचना।

समाघात (सं० पु०) समा हन्यतेऽत्रेति सम् आ-हन-घञ्। १ युद्ध, लड़ाई। २ वध, हत्या, जानसे मार डालना।

समाङ्घ्रिक (सं० त्रि०) समानचरणविशिष्ट, तुल्य चरण-युक्त।

समाचयन (सं० क्ली०) एकत्र स्थापन, एक साथ रखना। (पा ३।१।२० वार्त्तिक)

समाचरणीय (सं० त्रि०) सम्-आ चर-अनीयर। सम्यक्-रूपसे आचरणीय।

समाचार (सं० पु०) सम्-आ-चर-घञ्। १ सम्यक् आचरण, उत्तम व्यवहार। २ संवाद, खबर।

समाचारपत्र (सं० पु०) वह पत्र जिसमें सब देशोंके अनेक प्रकारके समाचार रहते हों, खबरका कागज, अखबार।

समाच्छन्न (सं० त्रि०) सम्-आ-छद्-क्त। आच्छादित, ढंका हुआ।

समाज (सं० पु०) संवीयतेऽत्रेति सं अज-घञ्। (अजेर्वी घञ् पोः। पा २।४।५६) इति वीभावो न। (अजिव्रज्योश्च। पा ७।३।६०१) समूह, संघ, गेराह, दल। २ सभा।

३ वैष्णवोंका समाधि स्थान। ४ हस्ती, हाथी। ५ एक ही स्थान पर रहनेवाले अथवा एक ही प्रकारका व्यवसाय आदि करनेवाले वे लोग जो मिल कर अपना एक अलग समूह बनाते हैं, समुदाय। ६ ब्राह्मणादि वर्णकी सभा। सभी वर्णके प्रधान प्रधान व्यक्ति मिल कर समाज स्थापन करते हैं। सभी समाजके आदेशानुसार चलनेके लिये बाध्य हैं। सभी वर्णोंका समाजबन्धन है, जैसे ब्राह्मण समाज, कायस्थ समाज इत्यादि। ब्राह्मण ब्राह्मण-समाजके नियमानुसार आदान प्रदान और कायस्थ कायस्थ समाजके नियमानुसार आदान प्रदान करते हैं। समाजमें एक प्रधान पुरुष रहता है जिसे समाजपति या गोष्ठीपति कहते हैं। किसी सामाजिक क्रियामें वे समाजपति भी मान्यस्वरूप माला चन्दन पाते हैं।

समाज्ञा (सं० स्त्री०) समाज्ञायते इति सम्-आ-ज्ञा आतश्चापसर्गे इत्यङ् टाप्। समज्ञा, ख्याति, यश।

समाञ्जन (सं० क्ली०) मिश्रित अञ्जनौषध भेद।

समाता- समातृ देखो।

समातृ (सं० स्त्री०) मातुः समा। १ वह जो माताके समान हो। २ माताकी विपत्नी, विमाता, सौतेली माँ।

समातृक (सं० त्रि०) माता सह वर्त्तमानः। 'उरःप्रभृतिभ्यः कप्' इति कप् समासान्तः। माताके साथ वर्त्तमान, मातृविशिष्ट।

समात्मक (सं० त्रि०) सम आत्मा स्वभावो यस्य। तुल्यस्वभाव, एक-सा स्वभाववाला।

समात्मन् (सं० त्रि०) तुल्यस्वभाव, जिसकी चित्तवृत्ति परस्पर समान हो।

समादर (सं० पु०) सम आ दृ-अप्। आदर, सम्मान, खातिर।

समादरणीय (सं० त्रि०) सम् आ-दृ अनीयर्। सम्मानार्ह, आदर सत्कार करनेके लायक।

समादान (सं० क्ली०) सम्-आ-दा-ल्युट्। बौद्धोंका सौगताह्निक नामक नित्यकर्म। शमादान देखो।

समादृत (सं० त्रि०) सम्-आ दृ-क्त। सम्मानित, जिसका अच्छी तरह आदर हुआ हो।

समादेय (सं० त्रि०) १ प्राप्त, पाया हुआ। २ अभ्यर्थनाके उपयुक्त, स्वागत करने योग्य। ३ आदर या प्रतिष्ठा करनेके योग्य।

समादेश (सं० पु०) सम् आ-दिश-घञ्। सम्यक्‌रूप आदेश आज्ञा, हुक्म।

समादेशन (सं० क्ली०) सम् आ-दिश-ल्युट्। सम्यक् आदेश, आज्ञा।

समाधा (सं० पु०) सम्-आ धा-क्विप्। १ निष्पत्ति, निपटारा। २ विरोध भञ्जन, विरोध दूर करना। ३ सिद्धान्त। ४ समाधान।

समाधान (सं० क्ली०) सम् आ-धा-ल्युट्। १ चित्तको सब ओरसे हटा कर ब्रह्मकी ओर लगाना, मनको एकाग्र करके ब्रह्ममें लगाना। पर्याय—समाधि, चित्तैकाग्र, अवधान, प्रणिधान। २ किसीके शंका या प्रश्न करने पर दिया जानेवाला वह उत्तर जिससे जिज्ञासु या प्रश्नकर्त्ताका संतोष हो जाय, किसीके मनका संदेह दूर करनेवाली बात। ३ विरोधभञ्जन, किसी प्रकारका विरोध दूर करना। ४ निष्पत्ति, निपटारा। ५ नियम। ६ तपस्या। ७ अनुसन्धान, अन्वेषण। ८ समर्थन। ९ ध्यान। १० नाटकाङ्गविशेष। उत्क्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति और समाधान आदि नाटकके अङ्ग हैं, अर्थात् नाटकके इन सब अङ्गोंका वर्णन करना होता है।

समाधानीय (सं० त्रि०) सम्-आ-धा-अनीयर्। समाधानके योग्य।

समाधि (सं० पु०) समाधीयतेऽस्मिन् मनो जनैरिति सम-आ धा-उपसर्गे घोः किः इतिः किः। १ समर्थन। २ नीवाक। ३ नियम। ४ अङ्गीकार। ५ ध्यान। ६ काव्यका गुणविशेष। जहां दो घटनायें दैवक्रमसे एक ही समयमें होती हैं और एक क्रियाके साथ दो कर्त्ताका अन्वय हो कर इस घटना द्वारा प्रकाशित होता है। (काव्यादर्श १।९३-४)

जहां अन्य धर्म अर्थात् अप्रस्तुत गुणक्रियारूप धर्म और उससे दूसरी जगह किसी प्रस्तुत विषयमें लोकमर्य्यादाके अनुसार वक्ता गौण-शब्द प्रयोग द्वारा वाक्यार्थका सम्यक् आधान करते हैं, वहां यह समाधिगुण होता है।

७ अलङ्कारविशेष।

सुकर कार्यमें यदि दैवात् अन्य एक वस्तुका आगमन हो, तो यह अलङ्कार होता है।

मान अपनोदनके लिये मानिनीके पादद्वयमें निपतित हमारे सौभाग्य क्रमसे उदीर्ण यह मेघगर्ज्जन उपकारके लिये ही हुआ है। यहां पाद ग्रहण द्वारा ही मानिनीका मान अपनोदन होता अतएव इस सूकरकार्य्यमें हठात् मेघगर्जनरूप वस्तुका निपतन होना यही अलङ्कार हुआ। साहित्य देखो।

८ कारण सामग्री। ९ आरोप। १० प्रतिज्ञा, सम्मति, स्वीकृति। ११ प्रतिशोध। १२ विवादभञ्जन। १३ अलाभाव होनेसे शस्यसञ्चय कर रखना। १४ असाध्य विषयमें अध्यवसाय। १५ मौनीभाव। १६ निद्रा। १७ भविष्य युगके जैन मुनिविशेष। १८ योग। १९ ध्यान। २० एकाग्रता। २१ निवेश।

योगका चरमफल समाधि है। पहले एकाग्र चित्तसे धारणा, इसके बाद ध्यान और समाधि है। इन्द्रियोंको निरोध कर किसी एक विषयमें चित्त स्थिर करनेको एकाग्रता कहते हैं। मन एकाग्र होने पर धारणा, यह धारणा बद्धमूल होनेसे ध्यान और ध्यान जब बद्धमूल होता है, तब उसको समाधि कहते हैं। पातञ्जल और वेदान्त आदि दर्शनोंमें इस समाधिका विस्तृत विवरण लिखा है।

मैं सत्य, अनन्त, अद्वय ब्रह्मस्वरूप हूं, जब यह ज्ञान होगा और चित्त विनष्ट हो कर अखण्ड ब्रह्मस्वरूपमें अवस्थान करनेमें समर्थ होगा, तभी मार्गस्थ योगीको वास्तवमें समाधिस्थ कहा जाता है। इस समाधि के चरमोत्कर्षको निर्विकल्पिक समाधि कहते हैं।

ध्यानका परिणाम समाधि है, ध्यान दीर्घकालस्थायी होने पर ही समाधि होती है। मैं अमुककी चिन्ता कर रहा हूं। यही भाव ध्यानकी अवस्थामें रहता है। समाधिमें वह नहीं रहता, उस समय ज्ञान ध्येय विषयके आकारमें ही भासमान होता है। सुतरां मालूम होता है, कि चित्तवृत्ति नहीं है। चित्तवृत्ति रह कर भी न रहनेकी तरह है।

ध्यान ही ध्येय है अर्थात् ध्यानके विषयाकारमें भासमान हो विषय स्वरूपमें उपरत हो जब प्रत्ययात्मक वृत्तिस्वरूप ज्ञानको परित्याग कर ही अवभासित होता है, तब उसको समाधि कहते हैं। जैसे जवाकुसुमके सन्निधानमें परिशुद्ध स्फटिकका अपना शुक्ल गुण भासमान नहीं होता, वैसे ही विषयाकारमें सर्वथा लीन हो कर चित्तवृत्ति पृथक् भावसे अनुभूत नहीं होती, इसी अवस्थाको समाधि कहते हैं। यह सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात भेदसे दो प्रकारकी है। सम्प्रज्ञात समाधि भी चार प्रकारकी है—सवितर्क, सविचार, सानन्द और सास्मित।

चित्त स्थिर करना अतीव कठिन कार्य्य है। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा था—

"चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़ं।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥" (गीता ६ अ०)

मन बड़ा ही चञ्चल है, वायुकी तरह इसको वशीभूत करना दुष्कर है। भाग्यवशतः यद्यपि चित्त प्रशान्त होता है तथापि पुनर्वार अस्थिर होनेकी विशेष संभावना है। अतएव जिसमें चित्त अस्थिर न हो, इसके लिये अतिशय दृढ़ताके साथ चेष्टा करना योगियोंका सर्वथा कर्त्तव्य है।

इसलिये अभ्यास दृढ करना होता है। अभ्यास दृढ़ और परवैराग्य होनेसे चित्त स्थिर होता है। राग द्वेष आदि चित्तके मल हैं, इन्हींके द्वारा इन्द्रियां विषय की ओर दौड़ती हैं। जिससे उक्त राग आदि द्वारा इन्द्रियां विषयकी ओर परिचालित न हों, ऐसे उपाय अवलंबनको यतमान संज्ञा कहते हैं। यही वैराग्यका प्रथम भूमिक है। अनन्तर देखना होगा, कि किस किस विषयसे इन्द्रियनिवृत्ति हुई है और कौन कौन बाकी है। इसके पृथक्‌रूपसे अवधारण करनेका नाम व्यतिरेक संज्ञा है। बहिरिन्द्रियोंके विषयसे निवृत्त होने पर भी औत्सुक्यके साथ मनमें विषयकी चिन्ताका नाम एकेन्द्रिय संज्ञा है। अर्थात् चित्तरूप केवल एक इन्द्रियमें विषयका अवस्थान है। अन्तमें जब इस औत्सुक्यकी निवृत्ति हो जाती है, तो वशीकार संज्ञा नामक वैराग्यका उदय होता है। अभ्यास और इस वैराग्यके द्वारा चित्त स्थिर होता है। इस तरह जब चित्त स्थिर होता है, तभी धारणा आ कर समुपस्थित होती है। यही धारणा काल पा कर ध्यान और ध्यान ही दीर्घ काल तक स्थायी रहनेसे समाधि होती है।

किसी भी एक स्थूल वस्तुका अवलम्बन कर केवल तदाकारमें चित्तकी वृत्तिधाराको संन्यस्त रखनेको हो सवितर्कसमाधि कहते हैं। इस वस्तुके सूक्ष्म भागका अवलम्बन कर तदाकारमें चित्तवृत्ति धारण करनेका नाम सविचारसमाधि है।

चार प्रकारके सम्प्रज्ञात समाधिमें प्रथम सवितर्कमें उक्त चार समाधि ही सन्निविष्ट है। द्वितीय सविचारमें वितर्क नहीं रहता, अन्य तीन रहते हैं। तृतीय सानन्द-समाधिमें वितर्क और विचार नहीं रहता, अन्य दो रहते हैं। चतुर्थ अस्मिता-समाधिमें वितर्क, विचार और आनन्द ये तीनों ही नहीं रहते, केवल अस्मिता रहती है। उक्त चार प्रकारकी समाधि ही सालंबन है अर्थात् इनमें कोई न कोई आलंबन रह जाते हैं। समाधि जब आलंबनशून्य होती है, तब वह असंप्रज्ञात कहलाती है।

उल्लिखित चार तरहकी संप्रज्ञात-समाधिके प्रकारन्तरसे तीन तरहकी कही जाती है,—ग्राह्यविषयक, ग्रहणविषयक और गृहीताविषयक। गुणत्रयके तामस भागसे पञ्चभूत और सात्त्विक भागसे इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। ग्राह्य (जिसके ग्रहणका ज्ञान हो) विषय भी स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो प्रकारका है। स्थूल पञ्चमहाभूत विषयमें समाधिका नाम सवितर्क है और सूक्ष्म पञ्चभूत विषयमें समाधिका नाम सविचार है। ग्रहण—जिसके द्वारा ग्रहण-ज्ञान हो, अर्थात् इन्द्रियां। यह भी स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो तरहका है। चक्षुः (नेत्र) प्रभृति स्थूलग्रहण, स्थूलेन्द्रिय और अहंकारतत्त्व सूक्ष्मग्रहण इन्द्रियरूप स्थूलग्रहण विषयमें समाधिका नाम सानन्द, अहंकाररूप सूक्ष्म-ग्रहण विषयमें समाधिका नाम सास्मित है सब स्थलोंमें ही कार्यको स्थूल और कारणको सूक्ष्म कहते हैं। क्योंकि इसमें गृहीता (जो ग्रहण करे और जाने) आत्म अहंकारके साथ अभिन्न भावसे भासमान रहता है।

कार्यावस्थामें सूक्ष्म भावसे कारण रहता है। कारणावस्थामें कार्य रहता ही नहीं। समवायी कारणको परित्याग कर देनेसे कार्य रह नहीं सकता ; किन्तु कार्यको परित्याग कर समवायी कारण रह सकता है। सुतरां स्थूल कार्यविषयमें सवितर्क समाधिमें अन्य तीन समाधियोंकी सम्भावना है। ये स्थूलग्राह्य विषयमें ही सूक्ष्मग्राह्य और द्विविधग्रहण विषयक समाधि हो सकती है। यही सम्प्रज्ञात-समाधि या सबीज-समाधि है।

जिससे चित्तकी सारी वृत्तियां तिरोहित हों, इस तरह के उपाय पर वैराग्य अवलम्बन करनेसे केवलमात्र संस्कार अवशिष्ट रहता है। ऐसी अवस्थाको असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। इसका प्रधान उपाय सर्वदा चित्तवृत्तिनिरोध है। चित्तकी जब सारी वृत्तियां तिरोहित हो जाती हैं, केवल संस्कार रह जाता है, तब असम्प्रज्ञात समाधि होती है, असम्प्रज्ञात समाधिका कारण परवैराग्य है।

असम्प्रज्ञात समाधिमें जैसे कोई विषय रह नहीं जाता, पर-वैराग्यमें जैसे कोई भी विषय अभीष्ट रह नहीं जाता, सुतरां दोनों ही सदृश ज्ञानपर हैं; दूसरे वैसे हो वैराग्यमें कोई न कोई विषय अभीष्ट रह जाता; इसलिये उससे असम्प्रज्ञात समाधि हो नहीं सकती। सम्प्रज्ञात समाधि अपर वैराग्यसे उत्पन्न हो सकती है, क्योंकि कुछ विषय रहने पर कुछ विषयोंका न रहना दोनोंमें समान हैं।

इस समाधिके प्राप्त कर लेने पर ऋतंभरा-प्रज्ञा लाभ होती है, अर्थात् पूर्वोक्त इस समाधिसे चित्तका नैर्मल्य होने पर जो ज्ञान होता है, उसको ऋतम्भराप्रज्ञा कहते हैं। यह संज्ञा अनुगतार्थक अर्थात् यौगिक है। क्योंकि उक्त प्रज्ञा केवल सत्यको ही धारण अर्थात् विषय करती है, इसमें मिथ्याका लेशमात्र भी नहीं रहता। शास्त्रमें लिखा है, कि श्रवण, मनन और निदिध्यासन इन तीन तरहकी समाधिका अनुष्ठान करनेसे उत्तम योगफल लाभ होता है।

समाधिप्रज्ञा लाभ करने पर योगियोंके प्रज्ञाकृत नये नये संस्कार उत्पन्न होने लगते हैं। इस समाधिसे उत्पन्न संस्कार व्युत्थान संस्कारका नाशक होता है। व्युत्थान संस्कारका अभिभव होने पर उससे फिर ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। संस्कार रहने पर ही ज्ञान होता है।

ज्ञान या संस्कार या सुख दुःख आदि किसी भी एक धर्मके आरोप होनेसे ही पुरुषका बन्धन होता है। पुरुषके स्वरूपमें अवस्थितिको ही मुक्ति कहते हैं। समाधि-

जन्य संस्कार चिरकाल रहनेसे पुरुषकी मुक्ति नहीं होती। इसीसे भाष्यकारने कहा है, "न ते चित्तमधिकारविशिष्टं कुर्वन्ति" चित्तका धर्म ही पुरुषमें आरोप होता है। उसके चित्तमें प्रतिविम्ब नहीं पड़ता। चित्त स्थिर और वृत्तिविहीन होने पर अपने हीसे पुरुष स्थिर हो सकता है।

सम्प्रज्ञात-समाधिका उत्तर योगीका और भी कुछ होता है। निर्वीज समाधि केवल सवीज सम्प्रज्ञात समाधि प्रज्ञाका विरोधी होता है, ऐसा नहीं, प्रज्ञाकृत संस्कार समुदायका विनाशक होता है। निरोधके स्थिति कालक्रमके अर्थात् दिन मासादिके अनुभवके अनुसार इतना समय मैं समाहित था, समाधि-भङ्गके बाद योगीको ऐसा ही स्मरण होता है, इसके अनुसार निरोधकालमें चित्तमें संस्कार हुआ इसका अनुमान किया जाता है। व्युत्थान और इसकी निरोध सम्प्रज्ञात समाधि इन दोनोंसे उत्पन्न संस्कार और कैवल्यभागी निरोध-संस्कारके साथ चित्त अपनी प्रकृतिमें अर्थात् अपने कारणमें लय होता है। अतएव उक्त सभी संस्कार चित्तके अधिकारका विरोधी होता है अर्थात् विनाशका भी कारण होता है, स्थितिका कारण नहीं होता। क्योंकि चित्त अधिकारका अवसान होने पर कैवल्य-प्रयोजक निरोध-संस्कारके साथ निवृत्त होता है, चित्त विनष्ट होने पर पुरुष स्वरूपमें अवस्थान करता है, इसीलिये वह उस समय शुद्ध है, अतएव मुक्त कहा जाता है।

योगकी पहली अवस्था संप्रज्ञात समाधि है, इससे व्युत्थान वृत्तिका तिरोधान होता है। समाधि संस्कारसे व्युत्थान-संस्कार विनष्ट होता है, संस्कारके सिवा संस्कारका नाशक नहीं होता। संप्रज्ञात समाधि असंप्रज्ञात समाधि द्वारा विनष्ट होती है। संप्रज्ञात-समाधि संस्कारके विनाशके लिये असंप्रज्ञात समाधि संस्कार स्वीकार करना पड़ता है। बन्धन अवस्थामें आत्मज्ञान लाभकी चेष्टा रहती है। किन्तु एक बार आत्मदर्शन होनेसे फिर वैसे ज्ञानकी भी इच्छा नहीं होती। यही पर-वैराग्य है।

ज्ञानाग्निके प्रभावसे अविद्यादि सभी क्लेश जैसे दग्धवीजभाव अर्थात् भुने धानकी तरह प्ररोह अर्थात् अंकुरजननयोग्य नहीं होता, सब पूर्व संस्कार भी उसी तरह ज्ञानाग्निमें दग्ध हो फिर व्युत्थान ज्ञानका जनक नहीं हो सकता। सब ज्ञानसंस्कार चित्तकी अधिकार समाप्ति अपवर्ग तक अपेक्षा करते हैं अर्थात् अपने अधिकारके अन्त होने पर चित्तविनाशके साथ ही नष्ट हो जाते हैं; आश्रय नाशसे विनष्ट हो जाते हैं। तब असम्प्रज्ञात समाधि होती है। इस समाधिका अन्तिम धर्म-मेघ-समाधि है।

जिस समय तत्त्वज्ञानी प्रसंख्यानमें भी अर्थात् विवेक साक्षात्कारमें भी अकुसीद अनुरागविहीन होता है, किसी तरहके अणिमादि ऐश्वर्यकी कामना नहीं करता और वह विवेकज्ञानसे भी विरक्त होता है, उस समय उसके सर्वदा केवल विवेकज्ञान ही उत्पन्न होता है। संस्कारके वीज अविद्यादि विनष्ट हो जानेसे फिर दूसरी तरह प्रत्यय (व्युत्थान ज्ञान) उत्पन्न नहीं हो सकता, इस समय योगीको धर्ममेघ-समाधि होती है। यही समाधिका अन्त है।

समाधि दो तरहकी है,—सविकल्प और निर्विकल्प। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इन तीन विकल्पोंके ज्ञान होने पर भी अद्वितीय ब्रह्म वस्तुमें अखण्डाकारमें आकारित चित्तवृत्तिके अवस्थानको सविकल्प-समाधि कहते हैं। उस समय जैसे मृण्मय हस्तीमें हस्तिज्ञान रहने पर भी मिट्टीका ज्ञान रहता है, वैसे ही द्वैत-ज्ञान होने पर भी अद्वैतज्ञान होता है। तब द्वैतज्ञान रहने पर भी इस ज्ञानमें साक्षिस्वरूप, सर्वव्यापी, उत्कृष्ट, प्रकाशस्वरूप, जन्म और नाशरहित, अलिप्त, सर्वज्ञात, सर्वदा विमुक्त स्वभाव, जो अद्वितीय चैतन्य है, वही मैं हूं यही ज्ञान हुआ करता है। द्वैतमें जो अद्वैत ज्ञान है, वही सविकल्प समाधि है।

जब ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इन तीन विकल्प ज्ञानके अभावसे अद्वितीय ब्रह्म वस्तुमें एकीभूत हो कर अखण्डाकाराकारित चित्तवृत्तिका अवस्थान होता है, तब निर्विकल्प समाधि होती है। इस समाधिके होने पर ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इनमें किसी तरहका ज्ञान नहीं रहता, केवल एक अद्वितीय अद्वैत ब्रह्मका ही ज्ञान रहता है। उस समय जैसे जलमिश्रित जलाकाराकारित

लवण (नमक) के लवणत्व ज्ञानके अभावमें केवल जलमात्रका ज्ञान रहता है, वैसे ही अद्वितीय ब्रह्माकाराकारितचित्तवृत्तिके ज्ञानासत्त्वमें भी अद्वितीय ब्रह्मवस्तुमात्रमें ही ज्ञान होता है।

समाधि सुषुप्तिकी तरह है अर्थात् सुषुप्तिके समयमें जैसे कोई ज्ञान नहीं रहता, समाधिकालमें भी वैसे ही वहिर्ज्ञान नहीं रहता केवल ब्रह्मरूपमें अवस्थान रहता है। ऐसा कहनेका यह अर्थ नहीं, कि सुषुप्ति और समाधि एक ही रूप है। दोनोंमें फर्क यह है, कि समाधि और सुषुप्ति दोनों समयमें वृत्तिज्ञानका असत्त्वांश समान होने पर भी वृत्तिकी सत्त्वा और असत्त्वा द्वारा दोनोंकी भिन्नता स्थिर करनी होगी। सुषुप्तिकालमें वृत्तिको सत्त्वा रहती है, समाधिमें वृत्तिकी सत्ताका लोप होता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और सविकल्प समाधि ही निर्विकल्प समाधिके अङ्ग हैं। समाधिलाभ करनेमें पहले इन सब अङ्गोंका अभ्यास करना होता है। इन सब अङ्गोंका सम्यक् अनुष्ठान करने पर पीछे निर्विकल्प समाधि प्राप्त होती है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहको यम कहते हैं। यम समाधिका पहला अङ्ग है। अहिंसा आदिका ही पहले विशेष रूपसे अनुष्ठान करना होता है। इसके अनुष्ठानमें चित्त विशुद्ध होने पर नियमका अभ्यास करना चाहिये। शुचि, सन्तोष, तपस्या, अध्ययन और ईश्वरप्रणिधानको नियम कहते हैं। इस नियमके बाद आसन (हस्तपदादिके संस्थानविशेषको आसन कहते हैं) जैसे पद्मासन आदि। तब आसन पर बैठ कर प्राणायाम करना होता है। रेचक, पूरक और कुम्भक द्वारा प्राण दमन करनेके उपायको प्राणायाम कहते हैं। इस प्राणायामके अनुष्ठानसे प्राणका निरोध होता है। इसके फलसे इन्द्रिय-विजय, चित्तशुद्धि और चित्तके सब विक्षेप दूर हो जाते हैं। इस प्राणायामके अभ्यास कर लेने पर प्रत्याहार अभ्यास करना होता है। इन्द्रियोंके अपने अपने विषयसे खींचनेको ही प्रत्याहार कहते हैं। इससे फिर इन्द्रियां विषय न करेंगी। चक्षु देख कर भी देखेगा नहीं, कान सुन कर भी न सुनेगा, मन सङ्कल्प कुछ भी न करेगा। इस तरह जब प्रत्याहार अभ्यस्त हो जायेगा, तब धारणा होगी—अद्वितीय ब्रह्मवस्तुमें अन्तःकरणके अभिनिवेशको धारणा कहते हैं। अद्वितीय ब्रह्ममें चित्त अभिनिविष्ट होनेके बाद ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। अद्वितीय ब्रह्ममें अन्तःकरणके वृत्तिप्रवाहको ध्यान कहते हैं। यह ध्यान स्थायी होनेसे पहले सविकल्प समाधि होती है।

ये सब अङ्गविशिष्ट अङ्गी जो निर्विकल्प समाधि है, उसमें चार प्रकारके विघ्न होनेकी संभावना है। उक्त समाधिमें प्रायः चार प्रकारका ही विघ्न उपस्थित होता है। यथा,—लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वादन। अखण्डब्रह्मवस्तुको अवलम्बन करनेमें असमर्थ होनेसे अन्तःकरणवृत्तिकी निद्राको लय कहते हैं। अखण्ड ब्रह्मवस्तुको अवलंबन करनेमें समर्थ न हो कर अन्तःकरण वृत्ति यदि अन्य किसी वस्तुका अवलम्बन करे, तो उसे विक्षेप कहते हैं। लय और विक्षेपके अभावमें और कामना द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो अखण्ड ब्रह्मवस्तुको अवलम्बन करनेमें असमर्थ होने पर कषाय कहा जाता है। निर्विकल्प अखण्ड ब्रह्मवस्तुके अनवलंबनमें अन्तःकरण-वृत्तिका सविकल्पक आनन्द आस्वादन या निर्विकल्पक समाधिके आरंभकालीन सविकल्पानन्द आस्वादनको रसास्वादन कहते हैं। ये चार प्रकारके विघ्न निर्विकल्प-समाधिके अन्तराय-स्वरूप हैं।

इन चारों विघ्नोंसे रहित चित्त जब वायुशून्य प्रदीपकी तरह अचल हो कर केवल अखण्ड चैतन्य मात्रकी चिन्तापर होता है, तब उसको निर्विकल्प समाधि कहते हैं। जब यह समाधि होगी, तब यदि पूर्वोक्त लयरूप विघ्न उपस्थित हो, तो अन्तःकरणमें उद्बोध करे, विक्षेपयुक्त हो, तो उसे शान्ति और कषाययुक्त हो, तो उसको जान कर निवृत्त रखे। अखण्ड ब्रह्मवस्तुमें प्रणिधान होने पर अन्तःकरणको फिर हिलावे डोलावे नहीं। उसीमें स्थिर रखे, उस समय सविकल्प किसी तरह आनन्द आस्वादन करे और प्रज्ञा द्वारा निःसङ्ग हो, तब निर्वात निष्कम्प प्रदीपकी तरह निश्चय हो अवस्थान करे।

यही समाधिका अन्त है। यह समाधि होने पर मुक्ति

होती है। उस व्यक्तिका और कभी पतन नहीं होता है, उस समय वह जीवन्मुक्त हो अवस्थान करता है। पञ्चदशी, वेदान्तदर्शन प्रभृति ग्रन्थोंमें इसका विशेष विवरण लिखा है। विषय बढ़ जानेके भयसे यहां स्थान न दिया गया।

२२ वैश्यभेद, समाधि नामक वैश्य। मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत चण्डीमें इसका विवरण लिखा है। राजा सुरथ राज्य च्युत हो मेधस मुनिके आश्रममें गये। समाधि वैश्य भी उसी समय वहां गया। राजाने उसे शोककातर देख कर पूछा, कि तुम्हारा क्या नाम है? तुम अत्यन्त कातर क्यों हो रहे हो? इन प्रश्नोंके उत्तरमें समाधि वैश्यने कहा था,—मैंने धनाढ्य कुलमें जन्म लिया है और मेरा नाम समाधि वैश्य है। असाधु स्त्री पुत्रोंने मुझे धनलोभसे निकाल दिया है। मेरा धन उन सबोंने छीन लिया है। उन सबोंके मेरे प्रति इस तरह प्रतिकूलाचरण करने पर भी उनके प्रति मेरा चित्त ममता-शून्य नहीं होता। उनकी कुशलवार्त्ताके लिये चित्त व्याकुल हो रहा है। मेधस मुनिने कहा, कि यह महामायाका कार्य है। इसके बाद उन्होंने महामायाका माहात्म्य कहा। उस समय समाधि वैश्यको निर्वेद उपस्थित हुआ। समाधि वैश्य और राजा सुरथ दोनों नदीके किनारे गये और वहां देवीकी मिट्टीकी मूर्त्ति निर्माण कर देवीसूक्त जप करते हुए देवीकी पूजामें प्रवृत्त हुए। इस तरह उन्होंने विधि विधानके साथ तीन वर्ष तक देवीकी आराधना की। देवी चण्डिकाने प्रसन्न हो कर उनको वर दिया। राजाको देवीके प्रसादसे राज्य मिल गया। समाधि वैश्यने देवीसे यह वर मांगा था, कि यह संसार अनित्य है, सभी मायाके जालमें फंसे हुए हैं, मुझे ऐसा वर दीजिये, जिससे मैं मायाके जाल-फांससे बच कर ज्ञान प्राप्त कर सकूं। देवीने 'तथास्तु' कहा। समाधि वैश्य अल्प समयमें ही देवीकी कृपासे दिव्य ज्ञान प्राप्त कर मायाके जाल फांससे मुक्त हुए। (मार्कण्डेयपु० चण्डी)

सुरथ शब्दमें विशेष विवरण देखो।

२३ मृत शवदेह या अस्थिको मिट्टीमें गाड़ना, कब्र देना। भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न जातिके विभिन्न समाजमें यह समाधिप्रथा स्वतन्त्र है। पाश्चात्य जगत्में शवप्रोथित कर उस पर एक स्तम्भ (Tomb-stone) निर्माण करनेकी व्यवस्था है। इस स्तम्भमें मृतककी स्मृतिके लिये एक लिपि (Epitaph) खोदी जाती है। प्राच्य और प्रतीच्य जगत्की आदिम असभ्य जातियोंमें भी कबरकी प्रथा थी, उसका नमूना आज भी बहुत विद्यमान हैं। हमारे देशमें वैष्णव और शैव संन्यासियोंमें समाधि देनेकी विधि है। श्रीवृन्दावनधाममें बहुतेरे वैष्णवोंकी समाधि दिखाई देती है।

समाधिक्षेत्र (सं० क्ली०) समाधिस्थान, वह जगह जहां लाश गाड़ी जाती है, कब्रिस्तान। योगियोंकी लाशको न जला कर गाड़ देनेका ही नियम है।

समाधिगर्भ (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

समाधित (सं० त्रि०) १ समाधियुक्त, जिसने समाधि लगाई हो। २ बन्धुत्व सम्बन्धयुक्त, जिसके साथ मित्रता की गई हो।

समाधित्व (सं० क्ली०) समाधेर्भावः त्व। समाधिका भाव या धर्म।

समाधित्सु (सं० त्रि०) समाधातुमिच्छुः सम्-आ-धा-सन्-उ। समाधान करनेमें इच्छुक।

समाधिदशा (सं० स्त्री०) वह दशा जब योगी समाधिमें स्थित होता है और परमात्मामें प्रेमबद्ध हो कर निमग्न और तन्मय होता है और अपने आपको भूल कर चारों ओर ब्रह्म ही ब्रह्म देखता है।

समाधिमत् (सं० त्रि०) समाधि अस्त्यर्थे मतुप्। १ समाधिविशिष्ट, समाधियुक्त। २ मनोयोगी।

समाधिमतिका (सं० स्त्री०) १ मालविकाग्निमित्रवर्णित पुरस्त्रीभेद। २ एकाग्रमना, एकान्त मनोयोगी। समाधिमती पद भी होता है।

समाधिशाला—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ जिलान्तर्गत गोहेलवाड़ प्रान्तका एक सामन्त राज्य। यहांके सरदार जूनागढ़के नवाब और बड़ौदाके गायकवाड़को कर देते हैं।

समाधियाला चारण—बम्बई प्रदेशके गोहेलवाड़ प्रान्तका एक सामन्त राज्य।

समाधियाला-छभारिया—बम्बई प्रदेशके गोहेलवाड़ प्रान्त-

का एक सामन्त राज्य। समाधियाला छभारिया ग्राममें सामन्तराज रहते हैं। यहांके सरदार बड़ौदाके गायकवाड़को वार्षिक १८६१ रु० और जूनागढ़के नवाबको ३८६ रु० कर देते हैं।

समाधिविधि (सं० पु०) चित्ताग्रता समाधानपूर्वक भगवदाराधनामें आत्मनियोगके नियमादि।

समाधिसमानता (सं० स्त्री०) बौद्धमतानुसार ध्यानका एक भेद।

समाधिस्तम्भ (सं० पु०) समाधिके ऊपर बनाया हुआ स्तंभ। लाशको जमीनमें गाड़ कर उसके ऊपर जो स्तम्भ खड़ा किया जाता है, उसे समाधिस्तंभ कहते हैं।

समाधिस्थ (सं० त्रि०) समाधेः तिष्ठतीति स्था-क। जो समाधिमें स्थित हो, जो समाधि लगाए हुए हो। समाधि देखो।

समाधिस्थल (सं० क्ली०) १ समाधिस्थान, समाधि क्षेत्र। २ ब्राह्मजगत्‌का पवित्र स्थानभेद।

समाधेय (सं० त्रि०) सम्-आ-धा-यत्। समाधानके योग्य, समाधानके लायक, जिनका समाधान हो सके।

समाध्मात (सं० त्रि०) सम्-आ-ध्मा-क्त। १ सम्यक् शब्दित। २ गर्वित। ३ समुद्दीपित। ४ उत्साहित।

समान (सं० त्रि०) समानीति सम्यक् प्रकारेण प्राणितीति सम्-आ-अन्-ल्यु, यद्वा समानं मानमस्य समानस्य छन्दसीति सः। १ सत्। २ सम, बराबर। ३ एक रूप, अभिन्न।

मानेन सह वर्त्तमानं। ४ सगर्व, अहङ्कारके साथ। (पु०) समन्तादनित्यानयेति सम् अन-घञ्। ५ शरीरस्थ वायुविशेष, समानवायु, पञ्च प्राणके अन्तर्गत तृतीय प्राण। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान यही पांच प्राण हैं। यह वायु नाभिदेशमें अवस्थित है। प्राण देखो। ६ वर्णभेद, एकस्थानोच्चार्यमान वर्ण। जो वर्ण एक स्थानसे उच्चारित होते हैं उन्हें समानवर्ण कहते हैं।

समानकरण (सं० त्रि०) १ टेढ़ेको सीधा करना, एक जातिको दो वस्तुओंको समान आकारमें लाना। २ शिथिलशिश्नका संयमननिराश।

समानकर्त्तृक (सं० त्रि०) समानः कर्त्ता यस्य। समानकर्त्तायुक्त, तुल्य कर्त्ताविशिष्ट, एककर्त्तृक।

समानकर्मन् (सं० त्रि०) समानं कर्म यस्य। १ समान कर्मविशिष्ट, एक ही तरहका व्यवसाय या कार्य करनेवाले। (क्ली०) २ समान समान कार्य, तुल्य कर्म।

समानकारण (सं० त्रि०) समानं कारणं यस्य। तुल्य कारणविशिष्ट, समानकारणयुक्त। (क्ली०) २ तुल्य कारण, समान हेतु।

समानकाल (सं० त्रि०) समानः कालो यस्य। १ समानकालविशिष्ट, तुल्य समययुक्त। (पु०) २ तुल्यकाल, समान समय।

समानकालिक (सं० त्रि०) तुल्यकालिक, समानकालोत्पन्न।

समानकालीन (सं० त्रि०) समानकाले भवः, समानकाल-छ। समकालीन, वे जो एक ही समयमें उत्पन्न हुए या अवस्थित रहे हों।

समानगति (सं० त्रि०) समाना गतिर्यस्य। १ तुल्यगतिविशिष्ट, समान चालवाला। (स्त्री०) २ समानगति, तुल्य गमन।

समानगुण (सं० त्रि०) समानगुणविशिष्ट, तुल्यगुणयुक्त।

समानगोत्र (सं० त्रि०) समानं गोत्रं यस्य। तुल्यगोत्र, जो एक ही गोत्रमें उत्पन्न हुए हों।

समानग्राम (सं० पु०) एक ग्राम।

समानग्रामीय (सं० त्रि०) समानग्रामे भवः (गहादिभ्यश्छः। पा ४।२।१३८) इति छ। एक ग्रामके रहनेवाले।

समानजन (सं० पु०) तुल्य जन, समानलोक।

समानजन्मन् (सं० त्रि०) समानवयस्क, एक उमरका, जो अवस्था या उम्रमें बराबर हों।

समानजन्य (सं० त्रि०) समानजन सम्बन्धीय।

समानजाति (सं० त्रि०) तुल्यजाति, एक जात, समान वर्ण।

समानजातीय (सं० त्रि०) तुल्यजातीय, सजातीय।

समानतन्त्र (सं० क्ली०) १ एकव्यवसायी, हम-पेशा, वे जो वेदकी किसी एक ही शाखाका अध्ययन करते हों और उसीके अनुसार यज्ञ आदि कर्म करते हों।

समानतस् (सं० अव्य०) समान-तसिल्। समानरूपमें, समानभावमें।

समानता (सं० स्त्री०) समानस्य भावः तल-टाप्। समानत्व, तुल्यत्व, समानका भाव या धर्म।

समानत्र (सं० अव्य०) एकस्थानस्थायी, एक जगह रहनेवाला। (शतपथब्रा० ३।४।४।१४)

समानत्व (सं० क्ली०) तुल्यरूपता, समान होनेका भाव।

समानदक्ष (सं० त्रि०) समानोत्साह, समान उत्साहवाला।

समानधर्मन् (सं० त्रि०) १ एकरूप धर्मविशिष्ट। २ सधर्मन्।

समानन (सं० त्रि०) सम आननो यस्य। तुल्य-आननविशिष्ट, एक-सा मुंहवाला।

समाननामन् (सं० त्रि०) समानं नाम यस्य। जिनके नाम एकसे ही हों, एक ही नामवाले।

समानप्रभृति (सं० त्रि०) सप्रभृति, वे सब।

समानबन्धु (सं० त्रि०) सूर्यरूप एक बंधुविशिष्ट, समान बंधनयुक्त। (ऋक् १।११३।२)

समानबर्हिस् (सं० त्रि०) यज्ञीय होमाग्निविशिष्ट समान तन्त्रकी हविर्द्दानकालीन अग्नि।

समानब्रह्मचारिन् (सं० त्रि०) परस्पर एक व्रताचारी, सतीर्थ, एक प्रकारके ब्रह्मचर्यवाले। सब्रह्मचारिन् देखो।

समानमूर्द्धन् (सं० त्रि०) समानो मूर्द्धा यस्य (समानस्य छन्दस्यमूर्द्धप्रभृत्युदर्केषु। पा ६।३।८४) इति समानस्य सादेशो भवति। समानमूर्द्धायुक्त, समानमूर्द्धाविशिष्ट।

समानयन (सं० क्ली०) सम्-आ-नी-ल्युट्। सम्यक् प्रकारसे आनयन, आदरपूर्वक आनेकी क्रिया।

समानयोजन (सं० त्रि०) तुल्य योजन।

समानयोनि (सं० पु०) वे जो एक ही योनि या स्थानसे उत्पन्न हुए हों।

समानरुचि (सं० त्रि०) तुल्य-रुचिविशिष्ट, समान रुचिवाला।

समानरूप (सं० त्रि०) तुल्यरूपयुक्त, समान शक्ल या आकारवाला।

समानर्ष (सं० त्रि०) जो एक ही ऋषिके गोत्र या वंशमें उत्पन्न हुए हों। (गोभिल ३।५।३)

समानलोक (सं० त्रि०) तुल्य-लोक, एकलोक।

समानवचन (सं० त्रि०) सवचन, समानवाक्यविशिष्ट।

समानवयस् (सं० त्रि०) समानं वयो यस्य। १ तुल्यवयस्क, समान उम्रवाला। (पु०) २ तुल्यरूप वयस, समान उमर।

समानवर्चस् (सं० त्रि०) तुल्यदीप्तियुक्त, समान ज्योतिवाला। (ऋक् १।६।७)

समानवर्चस् (सं० त्रि०) तुल्य-दीप्तिशाली, एक-सा चमकनेवाला।

समानवर्ण (सं० त्रि०) सवर्ण, समानवर्णविशिष्ट, एक-सा वर्णवाला।

समानवल (सं० त्रि०) १ तुल्य वलविशिष्ट, समान ताकतवाला। (पु०) २ किसी जड़ बिन्दुके ऊपर विपरीत ओरसे वलप्रयुक्त होने पर यदि वह बिन्दु किसी ओर न जा कर स्थिर हो कर रहे, तो दोनों वलको समवल कहते हैं। (*E*qual Force)

समानशब्द (सं० त्रि०) तुल्य शब्द, समान शब्दवाला।

समानशय्य (सं० त्रि०) १ एक शय्या पर सोनेवाला। २ जिनकी शयनार्थ शय्या एक हो। लाट्यायनमें (८।१२।२) समानशय्यता पद है।

समानशाख (सं० त्रि०) समशाखायुक्त, जो एक शाखाध्यायी हो।

समानशील (सं० त्रि०) तुल्यस्वभाव, समान स्वभाववाला। (भाग० ३।२१।१५)

समानसंख्य (सं० त्रि०) समानसंख्याविशिष्ट, जिसमें बराबर अंक हों।

समान-सुखदुःख (सं० त्रि०) समानानि सुखदुःखानि यस्य। जिसके लिये सुख और दुःख दोनों ही समान हों।

समानस्थान (सं० क्ली०) वह स्थान जहां दिन रात दोनों बराबर होते हैं।

समानाक्षर (सं० क्ली०) स्वरवर्ण, जो सन्ध्यक्षर या युक्ताक्षर नहीं है।

समानाधिकरण (सं० क्ली०) व्याकरणमें वह शब्द या वाक्यांश जो वाक्यमें किसी समानार्थी शब्दका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये आता है।

समानार्थ (सं० पु०) तुल्यार्थ, समान अर्थवाला, पर्याय।

समानीत (सं० त्रि०) सम्-आ-नी-क्त। १ सम्यक्

प्रकारसे आनीत, आदर या यत्नपूर्वक लाया हुआ। २ सङ्गत, मिला हुआ।
समानार्षेय (सं० पु०) एक ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न।
समानास (सं० पु०) नागभेद।
समानास्यप्रयत्न (सं० त्रि०) शिश्नोत्था प्रयास।
समानिका (सं० स्त्री०) छन्दोभेद।
समानुपात (सं० पु०) दो अथवा बहुत-से अनुपातका समानत्व संबंध। (*Proportion*)
समानोदक (सं० पु०) समानं एकं तर्पणकाले देयं उदकं यस्य। एकोदक, ज्ञातिविशेष, जिनको ग्यारहवीं से चौदहवीं पीढ़ी तकके पूर्वज एक हों। समानोदक ज्ञातिके जनन मरणमें पक्षिणी अशौच होता है। जन्म-नामस्मृति पर्य्यन्त ज्ञातिको भी समानोदक कहते हैं।
समानोदर्य्य (सं० पु०) समाने उदरे शयितः (समानोदरे शयित उ चोदात्तः। पा ४।४।१०८) इति यत्। (विभा-षोदरे। पा ६।३।८८) इति पक्षे सादेशो। सहोदर। पक्षमें समान शब्दकी जगह सादेश हो कर सौन्दर्य्य पद बनता है।
समानोदर्य्या (सं० स्त्री०) सहोदरा, सगी बहन।
समानोपमा (सं० स्त्री०) उपमालङ्कारभेद।

जहां स्वरूप शब्द वाच्य अर्थात् स्वरूप श्लिष्टपद द्वारा साधारण धर्मका वर्णन होता है, वहां यह अल-ङ्कार होगा। समान शब्द इस प्रकार प्रयुक्त होगा, कि वह यदि वाच्यभेदसे श्लिष्ट हो एक शब्दकी तरह प्रतीत हो, तो वहां यह अलङ्कार होगा।

यह उपमा श्लिष्ट पद द्वारा होता है, अतएव इसे समानोपमा न कह कर श्लिष्टोपमा कहना चाहिये था, परन्तु इन दोनों उपमामें भेद यह है, कि जहां अर्थश्लेष हो कर उपमा होगी, वहीं श्लेषोपमा और जहां शब्द-श्लेष हो कर उपमा होगी, वहां समानोपमा अलङ्कार होगा। (काव्यादर्श)

समान्तक (सं० पु०) कामदेव।
समान्तर (सं० त्रि०) परस्पर समान या एक रूप।
समान्तरश्रेणी (सं० स्त्री०) वह राशि जो अपनी अपनी परवर्त्ती राशिकी अपेक्षा समान परिमाणमें गुरु या समान परिमाणमें लघु होती है।
समान्तराल—जो दो सरल रेखा बहुत दूर तक जा कर भी एक दूसरीसे न मिले।
समाप (सं० पु०) समा-आपो-यस्मिन्, ऋक्पूरित्यः (समापईत्वे प्रतिषेधो वक्तव्यः। पा ६।३।९७) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्यां इत्वप्रतिषेधः। देवयजन स्थान।
समापक (सं० त्रि०) समापयति सम् आप् ण्वुल्। समापनकर्त्ता, समाप्त करनेवाला।
समापत्ति (सं० स्त्री०) सम् आ-पद्-क्तिन्। यदृच्छा-सङ्गति, एक ही समयमें एक ही स्थान पर उपस्थित होना, मिलना।
समापन (सं० क्ली०) सम् आप-ल्युट्। १ परिच्छेद, समाप्ति। २ वध, मार डालना। ३ समाधान। (त्रि०) ४ लब्ध, पाया हुआ।
समापनीय (सं० त्रि०) सम् आप्-अनीयर्। १ समा-पनके योग्य, खतम करनेके लायक। २ वध करनेके योग्य, मार डालनेके लायक।
समापन्न (सं० पु०) सम्-आ-पद्-क्त। १ वध, हत्या करना, मार डालना। (त्रि०) २ समाप्त किया हुआ, खतम किया हुआ। ३ क्लिष्ट, कठिन।
समापाद्य (सं० त्रि०) समापत्ति, सन्निकट, सङ्गति।
समापिका (सं० स्त्री०) व्याकरणमें दो प्रकारकी क्रियाओं मेंसे एक प्रकारकी क्रिया जिससे किसी कार्य्यका समाप्त हो जाना सूचित होता है। जैसे—वह परसों यहांसे चला गया। इस वाक्यमें चला गया समापिका क्रिया है। जहां वाक्यका शेष नहीं होता, आकांक्षा रह जाती हैं, उसे असमापिका क्रिया कहते हैं। जैसे—जा कर खा कर, भोजन कर इत्यादि असमापिका क्रिया है।
समापित (सं० त्रि०) सम् आप् णिच् क्त। कृत समा-पन, खतम या पूरा किया हुआ।
समापिन् (सं० त्रि०) सम्-आप्-णिनि। समापनकारी, खतम करनेवाला।
समापिपयिषु (सं० त्रि०) समापयितुमिच्छुः सम् आप् सन् उ। समाप्त करनेमें इच्छुक शेष करनेमें अभिलाषी।
समाप्त (सं० त्रि०) सम्-आप् क्त। जिसका अन्त हो गया हो, जो खतम या पूरा हो गया हो।
समाप्तपुनरात्तता (सं० स्त्री०) काव्योक्त दोषभेद। जहां वाक्य समाप्त करके पीछे फिरसे उस वाक्यका ग्रहण होता है, वहां यह दोष हुआ करता है।

समासलम्म (सं० क्ली०) उच्च संख्याभेद ।

समासाल (सं० पु०) समासाय अलताति अल-अच् । पति, स्वामी ।

समाप्ति (सं० स्त्री०) सम्-आप्-क्तिन् । १ अवसान, खतम या पूरा होना । २ प्राप्त होने या मिलनेका भाव, प्राप्ति ।

समाप्तिक (सं० त्रि०) १ समापनकारी, खतम करनेवाला । २ जो वेदोंका अध्ययन समाप्त कर चुका हो ।

समाप्त्यर्था (सं० स्त्री०) समाप्त्या अर्थो यस्याः । समस्या ।

समाप्य (सं० त्रि०) सम् आप्-ण्यत् । समापनीय, खतम या पूरा करने लायक ।

समाप्रिय (सं० त्रि०) सम्यक् प्रिय, अत्यन्त प्यारा ।

समाप्लव (सं० पु०) स्नान, अवगाहन ।

समाप्लाव (सं० पु०) सम्-आ-प्लु-घञ् । सम्यक्‌रूपसे आप्लावन, अवगाहन ।

समाभाषण (सं० क्ली०) सम्-आ-भाष-ल्युट् । सम्यक्-रूपसे आभाषण ।

समाम (सं० पु०) दैर्घ्य, लम्बाई । समाम्य देखो ।

समाम्नान (सं० क्ली०) १ श्रुति । २ अर्थदान ।

समाम्नाय (सं० पु०) सम्-आ-म्ना-घ । १ शास्त्र । २ समष्टि, समूह ।

समाम्नायमय (सं० त्रि०) शास्त्रमय, शास्त्रस्वरूप ।

समाम्नायिक (सं० पु०) १ शास्त्रवेत्ता, वह जिसे शास्त्रोंका अच्छा ज्ञान हो । (त्रि०) २ शास्त्र संबंधी, शास्त्रका ।

समाम्य (सं० त्रि०) दैर्घ्यत्वयुक्त, जिसमें लंबाई हो ।

समाय (सं० पु०) १ उपस्थिति, आगमन । २ साक्षात्में गमन ।

समायिन् (सं० त्रि०) १ परस्पर एकत्र गमनशील, एक साथ जानेवाला । २ परस्पर एकत्र प्रापणशील, एक साथ मिलनेवाला । (ऐतरेयब्रा० ६।८६)

समायोग (सं० पु०) सम्-आ-युज घञ् । १ संयोग । २ बहुतसे लोगोंका एक साथ एकत्र होना । ३ प्रयोजन, जरूरत ।

समारभ्य (सं० त्रि०) सम्-आ-रभ-यत् । समारम्भके योग्य, आरम्भ करनेके लायक ।

समारम्भ (सं० पु०) १ आरम्भित कार्य्य । २ आरम्भ ।

समारम्भण (सं० क्ली०) १ आलिङ्गन, ग्रहण । २ समालम्भन ।

समारम्भिन् (सं० त्रि०) आरम्भशील ।

समाराधन (सं० क्ली०) सम्-आ-राध-ल्युट् । सम्यक्-रूपसे आराधन, आराधना, सेवा ।

समारुरुक्षु (सं० त्रि०) समारोढुमिच्छुः, सम-आ-रुह-सन्-उ । समारोहणाभिलाषी, सम्यक् रूपसे चढ़नेमें इच्छुक ।

समारोप (सं० पु०) सम्-आ-रुह-घञ्, हस्य प । सम्यक् प्रकारसे आरोप । (साहित्यद० १०।१०३)

समारोपण (सं० क्ली०) सम्यक् आरोपण, आरोप । आरोपण देखो ।

समारोह (सं० पु०) सम्-आ-रुह-अप् । १ आडम्बर, तड़क भड़क, धूमधाम । २ आरोहण, चढ़ना । ३ कोई ऐसा कार्य्य या उत्सव जिसमें बहुत धूमधाम हो । ४ सम्मत होना ।

समारोहण (सं० क्ली०) सम् आ-रुह-ल्युट् । सम्यक् आरोहण, बड़ी होशियारीसे चढ़ना ।

समार्थ (सं० त्रि०) १ समान अर्थयुक्त, समान अर्थवाला शब्द । २ पर्यायक शब्द ।

समार्थक (सं० त्रि०) समोऽर्थो यस्य, कप् । समान अर्थविशिष्ट, समार्थ, पर्याय ।

समार्थिन् (सं० त्रि०) १ शान्तिका इच्छुक । २ मनका समतासाधनप्रयासी ।

समार्बुद (सं० क्ली०) अर्बुद संख्यातुल्य तत्पूरण, एक अरबके समान ।

समार्ष (सं० त्रि०) सम्यक् रूपसे ऋषिसे आगत ।

समालक्ष्य (सं० त्रि०) दर्शनयोग्य, देखने लायक ।

समालभन (सं० क्ली०) समालम्भन, आलेपन ।

समालम्ब (सं० पु०) सुगंधरोषित तृण, रूसा नामक घास ।

समालम्बि (सं० पु०) समालंबते इति सम्-आ-लंब-णिनि । भूतृण ।

समालम्भ (सं० पु०) सम्-आ-लभ् घञ् । (उपसर्गात् खलघञोः । पा ७।१।६७) इति नुम् । १ कुङ्कुमादि विलेपन, शरीर पर केसर आदिका लेप करना । २ मारण, वध ।

समालम्भन (सं० क्ली०) सम्-आ-लभ-ल्युट् । १ कुङ्कुमादि विलेपन, शरीर पर केसर आदिका लेप करना । २ सम्यक् मारण, हत्या करना । ३ सम्यक् स्पर्शन, छूना ।

समालम्भिन् (सं० त्रि०) सम्-आ लंभ-णिनि । १ समालंभकारी, केसर आदि लेपनेवाला । २ मारणकारी, हत्या करनेवाला ।

समालाप (सं० पु०) सम्-आ-लप-घञ् । सम्यक् रूपसे आलाप, अच्छी तरह बातचीत करना ।

समालिङ्गन (सं० क्ली०) सम्-आ-लिङ्ग-ल्युट् । सम्यक्-आलिङ्गन, अच्छी तरह मिलना ।

समाली (सं० स्त्री०) कुसुमकार, फूलका गुच्छा ।

समालोक (सं० पु०) सम्-आ-लोक-घञ् । सम्यक् आलोकन, अच्छी तरह देखना ।

समालोकन (सं० क्ली०) सम्-आ-लोक-ल्युट् । सम्यक् रूपसे आलोकन, अच्छी तरह देखना ।

समालोकिन् (सं० त्रि०) सम्-आ-लोक णिनि । समालोकनकारी, द्रष्टा, देखनेवाला ।

समालोक्य (सं० त्रि०) सम्-आ-लोक-यत् । समालोकनार्ह, देखने योग्य ।

समालोच (सं० पु०) सम्-आ-लोच्-घञ् । सम्यक् प्रकारसे आलोचन, समालोचना ।

समालोचक (सं० पु०) वह जो किसी चीजके गुण और दोष देख कर बतलाता हो, समालोचना करनेवाला ।

समालोचन (सं० क्ली०) सम्-आ-लोच-ल्युट् । समालोचना, दोष गुणकी सम्यक् प्रकारसे आलोचना ।

समालोचना (सं० स्त्री०) समालोचनमिति सम्-आ-लोच युच् टाप् । १ सम्यक् प्रकारसे आलोचना, अच्छी तरह देखनेकी क्रिया, खूब देखना भालना । २ किसी पदार्थके दोषों और गुणोंको अच्छी तरह देखना, यह देखना कि किस चीजमें कौनसी बातें अच्छी और कौनसी बातें खराब हैं ; विशेषतः किसी पुस्तकके गुण और दोष आदि देखना । ३ वह कथन, लेख या निबन्ध आदि जिसमें इस प्रकार गुणों और दोषोंकी विवेचना हो, आलोचना ।

समालोचिन् (सं० त्रि०) सम्-आ-लोच-णिनि । समालोचनाकारी, जो किसी चीजके गुण और दोष देखता हो, समालोचना करनेवाला ।

समावच्छस् (सं० अव्य०) साथे और लंबे भावमें ।

समावज्जामि (सं० त्रि०) तुल्यजाति, एक जातिका ।

समावद्वीर्य (सं० त्रि०) तुल्यसामर्थ ।

समावद्भाज् (सं० त्रि०) समान भागयुक्त ।

समावत् (सं० त्रि०) सम्यक् रूपसे महत्, सुन्दर या श्रेष्ठ ।

समावर्जन (सं० क्ली०) सम्-आ वर्ज ल्युट् । सम्यक् रूपसे आवर्जन ।

समावर्त्त (सं० पु०) १ वापस आना, लौटना । २ समावर्त्तन देखो ।

समावर्त्तन (सं० क्लो०) सम्-आ-वृत ल्युट् । वेदाध्ययनके बाद गार्हस्थ्याधिकार-प्रयोजक कर्म । उपनयन संस्कारके बाद गुरुगृहमें ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर वेदाध्ययन करना होता है । वेदाध्ययन समाप्त होने पर गुरुकी अनुमति ले समावर्त्तन करना होगा । विद्याशिक्षा कर गुरुके घरसे अपने घर लौट आनेका नाम ही समावर्त्तन है । इस उपलक्षमें जो होमादि कार्य किये जाते हैं, उसको भी समावर्त्तन कहते हैं । मनुमें लिखा है, कि ब्रह्मचारी उपनयन संस्कारके बाद छत्तीस वर्ष तीन वेद अध्ययनके लिये ब्रह्मचर्याश्रमविहित धर्मका आचरण करें अथवा उसका अर्द्धकाल या चतुर्थांश काल अथवा जब तक तीनों वेद समाप्त न हो जाय, तब तक उसे गुरुगृहमें ही रहना होगा । तीन वेद, दो वेद, अथवा एक वेद शास्त्रादिके साथ यथाक्रम अध्ययन कर विद्यालाभ हो जाने पर गार्हस्थ आश्रम अवलंबन करनेके लिये गुरुगृहसे समावर्त्तन करना होता है । ब्रह्मचारी समावर्त्तनके पहले गुरुको कुछ भी धन और गुरुदक्षिणा न दें । जब वे समावर्त्तन-स्नान करें, तब उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देनी होगी । समावर्त्तनके बाद विवाह कर गार्हस्थ्याश्रम अवलंबन करना होता है । (मनु ३।४)

विद्याशिक्षाके बाद जिस किसी दिन समावर्त्तन नहीं होता । ज्योतिषोक्त शुभ दिन देख कर यह करना होता है । शुभ दिन ये सब हैं—शनि और मङ्गलवारको तथा उपनयनके दिन जो सब नक्षत्र कहे गये हैं, उन

सब नक्षत्रोंमें, व्यतीपात, त्र्यहस्पर्श, चन्द्रदग्धा, रिक्ता आदि जिसमें साधारण शुभकार्य्य मात्र निषिद्ध है, उन्हें छोड़ शुभ दिनमें, तारा और चन्द्र शुद्धिमें समावर्त्तन करे।

समावर्त्तनकी पद्धतिके अनुसार यथाविधान होम करके नूतन वस्त्र, छत्र, उपानत्, माल्य और अलङ्कारादि धारण कर गृह लौटे। समावर्त्तनके होमादिका विशेष विवरण भवदेवादिकी पद्धतिमें विशेषरूपसे वर्णित है। विस्तार हो जानेके भयसे कुलका उल्लेख यहां पर नहीं किया गया। साम, यजुः और ऋक् इन तीन वेदियोंकी ही पद्धति भिन्न भिन्न है। यज्ञोपवीत शब्द देखो।

समावर्त्तनीय (सं० त्रि०) सम्-आ-वृत-अनीयर्। १ समावर्त्तनार्ह, वापस होनेके योग्य। २ जो समावर्त्तन नामक संस्कार करनेके योग्य हो गया हो।

समावह (सं० त्रि०) सम्यक्‌वहनशील।

समावाय (सं० पु०) समूह। समवाय देखो।

समावास (सं० पु०) सम्यक्‌रूपसे अधिवास।

समाविद्ध (सं० त्रि०) सम्-आ-विध-क्त। संघटित, जिसका संयोग या संघटन हुआ हो।

समाविष्ट (सं० त्रि०) सम्-आ-विश-क्त। १ एकाग्रचित्त, जिसका चित्त किसी एक ओर लगा हो। २ प्रविष्ट, जिसका समावेश हुआ हो।

समावृत (सं० त्रि०) सम्-आ-वृ-क्त। सम्यक् प्रकारसे आवृत, अच्छी तरह ढका या छाया हुआ।

समावृत्त (सं० त्रि०) सम्-आ-वृत-क्त। जो विद्या अध्ययन करके समावर्त्तन संस्कारके उपरान्त घर लौट आया हो।

समावृत्तक (सं० पु०) समावृत्त एव स्वार्थे कन्। समावृत्त।

समावृत्ति (सं० स्त्री०) सम-आ-वृत्-क्तिन्। समावर्त्तन। समावर्त्तन देखो।

समावेश (सं० पु०) सम्-आ-विश् घञ्। १ एक साथ या एक जगह रहना। २ एक पदार्थका दूसरे पदार्थके अन्तर्गत होना। ३ मनोयोग, चित्तको किसी एक ओर लगाना। ४ एकत्र स्थापन, एक साथ रखना।

समावेशित (सं० त्रि०) समावेशः अस्त्यर्थे तारकादित्वादितच्। समाविष्ट देखो।

समाश (सं० पु०) सम्यक् भक्षण, अच्छी तरह खाना।

समाशङ्कित (सं० त्रि०) १ सम्यक् भीत, खूब डरा हुआ। २ सम्यक् सन्दिग्ध, खूब सकी।

समाश्रु (सं० त्रि०) सम्यक् आश्मश्रुक (लोम)।

समाश्रय (सं० पु०) सम् आ-श्रि-अच्। १ सम्यगाश्रय, आश्रय, अवलंबन, रक्षा। २ सम्यक् आधार। ३ सहाय, मदद।

समाश्रित (सं० त्रि०) सम-आ-श्रि-क्त। जिसने किसी स्थान पर अच्छी तरह आश्रय ग्रहण किया हो।

समाश्रयणीय (सं० त्रि०) सम्-आश्रि-अनीयर्। सम्यक्‌रूपसे आश्रयनीय, आश्रयके योग्य।

समाश्रयिन् (सं० त्रि०) सम्-आ-श्रि-णिनि। समाश्रययुक्त, सम्यक्‌रूपसे आश्रित, समाश्रयविशिष्ट।

समाश्लेष (सं० पु०) सम्-आ-श्लिष-घञ्। सम्यक्‌रूपसे आश्लेष, आलिङ्गन।

समाश्लेषण (सं० क्ली०) सम्-आ-श्लिष-ल्युट्। समाश्लेष।

समाश्वास (सं० पु०) सम्-आ-श्वस-घञ्। १ सम्यक् प्रकारसे आश्वास, धीरज। (त्रि०) २ आश्वासदाता, धीरज देनेवाला। (भारत वनपर्व)

समाश्वासन (सं० त्रि०) सम्यक् आश्वासशील, धीरज देनेवाला।

समाश्वास्य (सं० त्रि०) सम्यक् आश्वासयोग्य, धीरज देने लायक।

समास (सं० पु०) सम्-अस-घञ्। १ संक्षेप। २ समर्थन। ३ समाहार, सम्मिलन। ४ संग्रह। ५ एक पद्य, दो या बहुपदोंका एक पद बनानेका नाम समास है।

दो या अधिक पदको एक पद करने पर समास होता है। समास होने पर पूर्व पूर्व पदमें जो विभक्तियां होंगी, उनका लोप हो जायगा। "समार्थानां समासः" अर्थात् जो पद समर्थ है, उन्हीं पदोंका समास होगा। जिन पदोंका परस्पर अन्वय, आकांक्षा और सम्बन्ध रहता है, वे ही समर्थ पद हैं, उन्हींका समास होगा। अन्वय, आकांक्षा और सम्बन्ध न रहने पर परस्पर समास न होगा।

समास छः प्रकारका है, द्वन्द्व, बहुव्रीहि, कर्मधारय,

तत्पुरुष, द्विगु और अव्ययीभाव। इन शब्दोंको देखो। इनके सिवा सुप् सुप् और उपपद प्रभृति समास होते हैं। छः समास प्रधान हैं, इसीसे षट् समास कहा गया है। सुप्सुपादि समास अप्रधान हैं। सुप्के साथ सुपका जहां समास होता है, उसको सुप्सुप् समास कहते हैं।

इन छः समासोंके बाद समासोत्तर विभक्तिका लोप हो कर टच् अन् आदि कई प्रत्यय होते हैं, इनको समासान्त प्रत्यय कहते हैं। इसीलिये व्याकरणमें यह समासान्त प्रकरण नामसे अभिहित किये गये हैं। यथा—इन्द्रसख, इन्द्रका सखा, यहां इन्द्र और सखिशब्दोंका समास हो कर इन्द्रसखि ऐसा पद बना, पीछे समासोत्तर टच् समासान्त हो कर सखिशब्दके इकारका लोप हो कर इन्द्रसख यह पद हुआ। इसी तरह सब समासान्त विधियोंको जानना चाहिये।

समास होने पर समासके बाद पूर्वपदकी विभक्तिका लोप होता है। किन्तु कहीं कहीं विशेष विधानानुसार विभक्तिका लोप नहीं होता, उसको अलुक् समास कहते हैं। जैसे मातुष्वसा, यहां मातृशब्दके साथ स्वसृ शब्दके मिलानेसे षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ है। मातृ शब्दकी षष्ठोके एकवचनमें "मातुः" पद हुआ है, समासके बाद इस विभक्तिका लोप हो जाना चाहिये था, किन्तु विशेष विधानानुसार अलुक् समास हुआ अर्थात् विभक्तिका लोप नहीं हुआ। फिर ऐसा भी नहीं, कि जहां चाहें अलुक् समास बना लें। व्याकरणमें जहां जहां अलुक् समासका विधान है, केवल वहां वहां ही यह समास होगा। व्याकरणके अलुक् समास प्रकरणमें इसका विशेष विधान कहा गया है। युधिष्ठिर, खेचर, सरसिज आदि पद अलुक् समासान्त हुए हैं।

नित्य समास—कुशब्द और प्रादि शब्दके साथ जो समास होता है, उसको नित्य समास कहते हैं। "कु प्रादयो नित्य" कु अर्थात् कुत्सित, प्र, परा, अप आदि उपसर्ग, अलं, अन्तर, पुरस्, तिरस्, प्रादुस्, आविस्, अव्यय शब्द और च्वि, क्ताच् आदि प्रत्ययके साथ साथ जो समास होता है, उसको ही नित्य समास कहते हैं। कुराज, कुत्सितो राजा, इस स्थलमें कुशब्द और राजन् शब्दोंके साथ समास हो कर कुराज शब्द बना हुआ है; सुतरां यहाँ कुशब्दके साथ नित्य समास हुआ, नित्य समासकी जगह ऐसी ही विधि समझनी चाहिये। प्रणाम, झनत्कार, अलङ्कार, अन्तर्हित आदि नित्य समास हैं।

अर्थ शब्दके साथ चतुर्थ्यन्त पदका नित्य समास होता है। नित्य समासवाक्य उल्लेख न कर इदं शब्दका उल्लेख करना होता है। भोजनाय इदं भोजनार्थं यह भी नित्य समास है।

प्राचीन लोग उक्त छः प्रकारके समास नहीं मानते थे। उन्होंने चार प्रकारके समासोंका निर्देश किया है, अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि और द्वन्द्व, किन्तु चार प्रकारके समाससे सब जगहोंमें समास सिद्ध न होनेसे इन चार समासोंके अतिरिक्त और जो समास हैं, उनको "सह सुपा" इस सूत्र द्वारा समास विधान किया गया है। इन प्राचीन लोगोंके मतसे पूर्वपदार्थप्रधानका नाम अव्ययीभाव अर्थात् दो पदोंका समास होता है। इन दो पदोंमें पूर्व जो पदार्थ है, उसीका प्राधान्य होगा, पिछला पद अप्रधान रहेगा। जिस समासमें उत्तरपद प्रधान हो, उसको तत्पुरुष, जिस समासमें अन्यपद प्रधान हो, उसको बहुव्रीहि और जिस समासमें उत्तर पद प्रधान हो, उसको द्वन्द्व समास कहते हैं।

उक्त समास-स्थलमें ये यथार्थरूप होने पर भी किसी किसी स्थलमें इसका व्यभिचार दिखाई देता है। इसीलिये सिद्धान्तकौमुदी और उसके बादके व्याकरणोंमें छः प्रधान समास स्वीकृत हुए हैं।

समास वाक्यविन्यास कालमें पदको विश्लेषण करना होता है, इसके द्वारा अर्थ परिस्फुट होता है, इससे इसको विग्रह या व्याख्यावाक्य कहते हैं। कृत्, तद्धित, समास, एकशेष और सनादि प्रत्ययान्त धातुरूप भेदसे वृत्ति पांच प्रकारकी है। प्रत्ययान्तभाव द्वारा हो या परपदार्थान्त भाव द्वारा ही हो, पदका जो विशिष्ट अर्थ है, उसका नाम पदार्थ है। जिसके द्वारा वह पदार्थ वर्णित किया जाये, उसको वृत्ति कहते हैं। इस वृत्त्यर्थज्ञापक वाक्यका नाम विग्रह है। यह विग्रह दो तरहका है। लौकिक और अलौकिक। राज्ञः पुरुषः

यहां दो लौकिक विग्रह हुए और राज्ञः, राजन् शब्दकी षष्ठीका एकवचन ङस् विभक्ति, पुरुषः प्रथमाका एक वचन सुप् विभक्ति है यह अलौकिक विग्रह है। सब समासस्थलोंमें ही इस तरह लौकिक और अलौकिक दो तरहके विग्रह हुआ करते हैं।

समासस्थलमें सुप्‌के साथ सुप्‌का, तिङ्के साथ सुप्‌का, नामके साथ सुपका, धातुके साथ सुपका, तिङ् के साथ तिङ्का और सुप्‌के साथ तिङ्का समास होता है। इनके क्रमसे उदाहरण दिये जाते हैं, यथा— राजपुरुष, पर्य्यभूयत, कुम्भकार, अजस्र, पिवत-खादता, कृन्तविचक्षणा। राजपुरुषके स्थलमें राज्ञः पुरुषः, सुप्‌के साथ सुप्‌का समास हुआ है, क्योंकि राज्ञः षष्ठीका एकवचन, पुरुषः प्रथमाका एकवचन, इन दो सुपोंके साथ समास हुआ है। इसी तरह सब पदोंमें समझ लेना चाहिये। (सिद्धान्तकौमुदी)

पाणिनि आदि व्याकरणोंमें समासका विशेष विवरण और विचार विशेषरूपसे अभिहित हुआ है। शब्द-शक्तिप्रकाशिकामें इन समासोंके नामोंका विशेष विवरण, लक्षण और विचार-प्रणाली अत्यन्त पाण्डित्यके साथ आलोचित हुई है।

समासक्त (सं० त्रि०) सम्-आ-सञ्ज-क्त। १ संयुक्त, मिला हुआ। २ अभिनिविष्ट। ३ अति आसक्त। ४ लब्ध। ५ राशिकृत।

समासक्ति (सं० स्त्री०) सम्-आ-सञ्ज-क्तिन्। सम्यक् प्रकारसे आसक्ति।

समासङ्ग (सं० पु०) सम्-आ-सञ्ज-घञ्। सम्यकरूपसे आसङ्ग, मेल, संयोग।

समासञ्जन (सं० क्ली०) सम्-आ-सञ्ज-ल्युट्। मेलन, संयोग।

समासत्ति (सं० स्त्री०) सम्-आ-सद्-क्तिन्। सन्निकर्ष, निकट, पास।

समासन (सं० क्ली०) समान आसन, एकासन।

समासन्न (सं० त्रि०) सम्-आ-सद्-क्त। निकटस्थ, पासका।

समासपुर—प्राचीन भोजराज्यके अन्तर्गत एक नगर।

समासभावना (सं० स्त्री०) बीजगणितोक्त अङ्कप्रक्रियाभेद, विभिन्न गुणफलका योगफल निराकरण। सिद्धान्तशिरोमणिके मतसे यह दो वृत्तांशकी शरसमष्टि (Sine of the Sum of two arcs) निकालनेकी एक प्रणाली है।

समासवत् (सं० पु०) १ तुन्नवृक्ष। (त्रि०) २ समास-विशिष्ट, समासयुक्त, संक्षिप्त।

समासादित (सं० त्रि०) सम्-आ-सद्-णिच्-क्त। १ प्राप्त, पाया हुआ। २ आहृत, चुराया हुआ। ३ समानीत, लाया हुआ। ४ उद्धृत, लिखा हुआ। ५ आक्रान्त, आक्रमण किया हुआ।

समासाद्य (सं० त्रि०) प्राप्य, पानेके योग्य।

समासान्त (सं० पु०) समास होनेके बाद प्रत्ययविशेष। व्याकरणमें समासान्त एक प्रकरण है, समास होनेके बाद यह प्रत्यय होता है। जैसे—महाराज, महान् राजा। इन दो पदोंमें कर्मधारय समास हो कर महाराजन् यह शब्द हुआ। 'राजाहसखिभ्यष्टच्' इस सूत्रके अनुसार टच्, समासान्त, न-का लोप हुआ; इसी प्रकार महाराज पद बना है। समासके बाद टच् प्रत्यय, यह समासान्त प्रत्यय है। इस प्रकार समासविधानके बाद जो प्रत्यय आता है, उसीको समासान्त कहते हैं। व्याकरणमें इसकी विशेष विधि दी गई है।

समासार्था (सं० स्त्री०) समस्या, श्लोककी एक, दो या तीन पाद द्वारा पूर्त्ति।

समासार्द्ध (सं० त्रि०) अर्द्धमासविशिष्ट, पक्षव्यापी। स्त्रियां टाप्।

समासेचन (सं० क्ली०) सम्यकरूपसे अभिषेक।

समासोक्त (सं० पु०) समासेन उक्तः। समास द्वारा उक्त, संक्षेप रूपसे कथित।

समासोक्ति (सं० स्त्री०) अर्थालङ्कारभेद, एक प्रकारका अर्थालङ्कार। इसमें समान कार्य्य, समान लिङ्ग और समान विशेषण आदिके द्वारा किसी प्रस्तुत वर्णनसे अप्रस्तुतका ज्ञान होता है।

यह समासोक्ति चार प्रकारकी है। जहां विशेषण-साम्य होता है, वहां श्लिष्ट विशेषण द्वारा उत्थापित और साधारण विशेषण द्वारा उत्थापित दो प्रकार तथा कार्य्य और लिङ्गसाम्यमें भी दो प्रकार, यह चार प्रकारकी समासोक्ति है। इन सभी स्थानोंमें व्यवहारका समारोप हो

इस अलङ्कारका एकमात्र कारण जानना होगा। किसी जगह लौकिक वस्तुमें लौकिक वस्तुका व्यवहार समारोप या शास्त्रीय वस्तुके साथ शास्त्रीय वस्तुका व्यवहार समारोप अथवा शास्त्रीय वस्तुमें लौकिक वस्तु और लौकिक वस्तुमें शास्त्रीय वस्तुका, ये ही चार प्रकारसे व्यवहार समारोप होते हैं। (साहित्यद० १०।७०३ वृत्ति)

समाहत (सं० त्रि०) सम्-आ-हन-क्त। आहत, घायल।

समाहर (सं० त्रि०) सम्यक्‌रूपसे आहरणशील।

समाहरण (सं० क्ली०) सं-आ-हृ-ल्युट्। समाहार।

समाहर्त्ता (सं० त्रि०) सम्-आ-हृ-तृण्। १ समाहरणकारी, मिलनेवाला। २ संक्षेपकारी जो किसी चीजका संक्षेप करता हो।

समाहार (सं० पु०) सम्-आ-हृ-घञ्। १ समुच्चय। २ मिलन, मिलाप। ३ संग्रह, बहुत-सी चीजोंका एक जगह इकट्ठा करना। ४ समूह, ढेर, राशि। ५ संक्षेप। ६ समास विशेष, द्वन्द्व और द्विगु समासविशेष, समाहारद्वन्द्व और समाहारद्विगु। समास देखो।

समाहारद्वन्द्व (सं० पु०) एक प्रकारका द्वन्द्व समास, वह द्वन्द्व समास जिससे उसके पदोंके अर्थके सिवा कुछ और अर्थ भी सूचित होता है। जैसे,—सेठ-साहूकार, हाथ-पाँव, दाल रोटी आदि। इनमेंसे प्रत्येकसे उनके पदोंके अर्थके सिवा उसी प्रकारके कुछ और व्यक्तियों या पदार्थोंका भी बोध होता है।

समाहारवर्ण (सं० पु०) संक्षेप वर्ण।

समाहार्य (सं० त्रि०) सम्-आ-हृ-ण्यत्। १ समाहार-योग्य, समाहारके लायक। २ संक्षेपयोग्य। ३ मिलनेके योग्य।

समाहित (सं० त्रि०) सम्-आ-धा-क्त। १ समाधिस्थ, जो ध्यानमग्न हो। २ कृतसिद्धान्त, मीमांसित। ३ अङ्गीकृत, स्वीकार किया हुआ। ४ अभ्रान्तचित्त। ५ अवहित, एकाग्रचित्त। ६ निष्पादित। ७ आहित। ८ स्थापित। ९ निर्विवादीकृत। १० प्रतिज्ञात। ११ समाधिक्षेत्रमें निहित। १२ अविचलित, दृढ़। १३ निष्पन्न। (पु०) १४ शुचि, पवित्र।

समाहितिका (सं० स्त्री०) मालविकाग्निमित्रवर्णित-पुरनारीभेद।

समाह्वेय (सं० त्रि०) माह्वेय नामक जातिसंयुक्त।

समाहृत (सं० त्रि०) सम्-आ-हृ-क्त। १ सम्यक् प्रकारसे आहरणीकृत। २ संगृहीत, संग्रह किया हुआ। ३ एकत्रीकृत, इकट्ठा किया हुआ। ४ संक्षेप-रूपसे प्रतिवादित, थोड़ेमें किया हुआ।

समाहृति (सं० स्त्री०) सम्-आ-हृ-क्तिन्। संग्रह, संक्षेप। एक या अनेक द्वारा एकाभिप्राय वाक्यके एकीकरणको समाहृति कहते हैं।

समाह्वय (सं० पु०) समाहूयतेऽत्रेति सम-आ-ह्वे पुंसीति घ, बाहुलकात् नात्व। १ द्यूत, क्रीड़ा। २ आह्वान, युद्धमें आह्वान। ३ पशुपक्षिद्यूत, प्राणिद्यूत, मेष कुक्कुटादि द्वारा लड़ाई कराना। ४ सङ्गर, युद्ध।

"अप्राणिभिर्यत् क्रियते तल्लोकेद्यूतमुच्यते।
प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः॥
द्यूतं समाह्वयञ्चैव यः कुर्यात् कारयेत वा।
तान् सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः॥"

राजा राज्यसे द्यूतक्रीड़ा और समाह्वय निवारण करें। ये दो राजाओंके राज्यनाशक होते हैं। द्यूत तथा समाह्वय ये दो प्रकाश्य चौर्यमात्र हैं। इसलिये इसके निवारणमें विशेष यत्नपर होना आवश्यक है। अक्षशलाकादि अप्राणि द्वारा पणपूर्वक क्रीड़ा करनेको द्यूत तथा मेषकुक्कुटादि प्राणी द्वारा पणपूर्वक जो क्रीड़ा की जाती है, उसे समाह्वय कहते हैं। अतएव जो व्यक्ति द्यूतक्रीड़ा और समाह्वय स्वयं करता या दूसरेसे कराता हो, राजा उसे अपराधी जान कर हाथ कटवा डालें, यहां तक कि उसे मरवा भी डालें। द्यूत और समाह्वयकर्त्ता, नरवृत्तिजीवी, क्रूरचेष्ट चौरादि और कितव आदिको राजा नगरमें रहने न दें। क्योंकि इनके राज्यमें रहनेसे भद्र प्रजाको बड़ी बड़ी मुसीबतोंका सामना करना पड़ता है। इसलिये राजाको चाहिये, कि वे इन्हें राज्यसे निकाल बाहर कर दें।

समाह्वा (सं० स्त्री०) सम्यक् आह्वा यस्याः। गोजिह्वा, गोजिया या वनगोभी नामकी घास।

समाह्वातृ (सं० त्रि०) सम्-आ-ह्वे-तृच्। १ समाह्वानकारी, बुलानेवाला। २ द्यूतके लिये आह्वानकारी, जूआ खेलनेके लिये बुलाना या ललकारना।

समाह्वान (सं० क्ली०) सम्-आ-ह्वे ल्युट्। १ सम्यक् प्रकारसे आह्वान, बुलाना। २ द्यूतके लिये आह्वान, जूआ खेलनेके लिये बुलाने या ललकारनेवाला।

समिक (सं० क्ली०) अस्त्रविशेष, बर्छा।

समित् (सं० स्त्री०) समोयतेऽत्रेति सम्-इण्-क्विप्। युद्ध, लड़ाई।

समित (सं० त्रि०) सम्यक् प्राप्त, पाया हुआ।

समिता (सं० स्त्री०) सम्यक् प्रकारेण इता प्राप्ता। गोधूमचूर्ण, मैदा। इसका लक्षण—

"गोधूमा धवला धौताः कुट्टिता शोषितास्ततः।
प्रोक्षिता यन्त्रनिष्पिष्टाश्चालिता समिता स्मृता॥"

सफेद गेहूं को अच्छी तरह धो कर कूटे, पीछे उसे सुखा कर जलका छींटा दे यन्त्रमें पीस चलनीमें छान ले। इस प्रकार जो द्रव्य प्रस्तुत होता है, उसे समिता कहते हैं। गेहूं जैसा इसमें गुण होता है। इससे नाना प्रकारके खाद्य द्रव्य बनते हैं। कई जगह तो लोगोंका यही प्रधान खाद्य है।

समिति (सं० स्त्री०) संयन्त्यस्यामिति सं-इण्-क्तिन्। १ सभा, समाज। २ युद्ध, समर, लड़ाई। ३ सङ्ग, साथ। ४ साम्य, समानता। ५ सन्निपात नामक रोग। ६ प्राचीन वैदिक कालकी एक प्रकारकी संस्था जिसमें राजनीतिक विषयों पर विचार हुआ करता था। ७ किसी विशिष्ट कार्यके लिये नियुक्त की हुई कुछ आदमियोंकी सभा।

समितिक—एक प्राचीन जाति। बाइबलमें इस जातिके लोग सेमके वंशधर Semites नामसे प्रसिद्ध हैं। किसीके मतसे समितिकास नामक फिणिकराजसे इस जातिका नामकरण हुआ है। एक समय फारससे ले कर समग्र पश्चिम एशियामें इस जातिका वास था। कुछ समय बाद ये लोग विभिन्न सम्प्रदायमें विभक्त हो गये हैं।

समितिङ्गम (सं० पु०) सभासमितिमें जानेवाला।

समितिञ्जय (सं० त्रि०) समितिं जयति जि-खच् मुमागमः। १ युद्धजेता, जिसने युद्धमें विजय प्राप्त की हो। २ सभाजयकारी, जिसने किसी सभा आदिमें विजय प्राप्त की हो। (पु०) ३ यम। ४ विष्णु। ५ भारतवर्णित एक योद्धाका नाम।

समित्कलाप (सं० पु०) समिधकाष्ठका पुलिंदा या बोझा।

समित्पाणि (सं० त्रि०) समित्पाणौ यस्य। समिद्धस्त, जिसके हाथमें समिध् हो।

समित्व (सं० क्ली०) समिध्के धर्मविशिष्ट।

समिथ (सं० पु०) समेतीति सम्-इण् (समीणः। उण् २।११) इति थक्। १ अग्नि, आग। २ युद्ध, लड़ाई। ३ आहुति।

समिथुन (सं० त्रि०) मिथुनेन सह वर्त्तमानः। मिथुनके साथ वर्त्तमान, मिथुनयुक्त।

समिद्ध (सं० त्रि०) सम्-इन्ध-क्त। प्रदीप्त, जलता हुआ। होम प्रज्वलित अग्निमें करना चाहिये, असमिद्ध अग्निमें होम करनेसे पीड़ित और दरिद्र होता है।

समिन्धन (सं० क्ली०) सम्-इन्ध-ल्युट्। १ अग्निप्रज्वलनार्थ काष्ठादि, जलानेकी लकड़ी। २ उद्दीपन, उत्तेजना देना। ३ जलानेकी क्रिया, सुलगाना।

समिद्धवत् (सं० त्रि०) समिद्ध अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। समिद्धविशिष्ट, समिद्ध। (कात्या० श्रौ० १६।१।११)

समिद्धाग्नि (सं० त्रि०) समिद्धः अग्निर्यस्य। प्रदीप्त अग्निविशिष्ट।

समिद्धार (सं० त्रि०) समिध् आहरणमें नियुक्त, यज्ञकी लकड़ी संग्रह करनेवाला।

समिद्धार्थक (सं० पु०) मुद्राराक्षसवर्णित व्यक्तिभेद।

समिद्भार (सं० पु०) समिधां भारः। समिध्का भार।

समिद्वत् (सं० त्रि०) समिध्-मतुप्, मस्य व। समिध्विशिष्ट, समिध्युक्त।

समिध् (सं० स्त्री०) समोध्यतेऽनयेति इन्ध-क्विप्। अग्निसन्दीपनार्थ तृणकाष्ठादि, अग्नि जलानेके लिये तृण या काष्ठ (काठ), लकड़ी। पर्याय—इन्धन, एध, इध्म, समिन्धन। (शब्दरत्नावली) अर्क, पलास, यज्ञडुम्बर आदिके साग्रपत्रको समिध् कहते हैं। शास्त्रमें लिखा है, कि समिध् द्वारा होम करना होता है।

अग्रभाग, वन्धन और पत्रके साथ यज्ञडुम्बर प्रभृति

शाखाको प्रादेश परिमाणसे समिध्की कल्पना करनी चाहिये। समिध् ग्रहणके समय यदि उसका अग्रभाग, छिलका कटा और पत्ते टूटे हुए हों, तो वह समिध् कहलानेके योग्य नहीं अर्थात् पूर्वोलिखित किसी भी वृक्षको वह टहनी जिसके अग्रभाग पत्तेके साथ मौजूद हों ऐसी टहनीको समिध् कहते हैं। 'समिधेञ्जुहुयात्' समिध् द्वारा होम करे। इस विधानके अनुसार लक्षणाक्रान्त समिध् चुन लेने चाहिये पीछे उसके द्वारा होम करना चाहिये।

यह समिध् या टहनी अंगुष्ठ अर्थात् अंगूठेकी तरह मोटी होनी चाहिये, इसका छिलका हटाया न जाय, इस टहनी या समिध्में कोड़े न लगे हुए हों और इसका परिमाण प्रादेश तुल्य हो। निर्वीर्य अर्थात् सूखी टहनीसे समिधका काम न निकालना चाहिये।

विशीर्ण, विदल, ह्रस्व, वक्र, स्थूल, द्विधाकृत (जिसके लम्बाईमें दो टुकड़े किये गये हों), कृमिदष्ट और दीर्घ इस तरहके समिध निषिद्ध हैं अतएव इनके द्वारा होम करना उचित नहीं। करनेसे नाना प्रकारके अमङ्गल होते हैं। समिध् विशीर्ण हो और होमकर्त्ता उससे होम करें, तो उनका आयुक्षय, विदलसे पुत्रनाश, ह्रस्व होनेसे पत्नीनाश, वक्र होनेसे बन्धुनाश, कृमिदष्ट होनेसे रोग, द्विधा होनेसे विद्वेष, दीर्घसे पशुनाश और स्थूल होनेसे अर्थनाश होता है।

अतएव गुणयुक्त समिध् द्वारा होम करना चाहिये। उक्त दोषयुक्त समिध् कभी होमके कार्यमें व्यवहार नहीं करना चाहिये। नवग्रहके होम करनेके लिये अलग अलग नौ तरहके समिध् चाहिये। रविके होममें अर्कके समिध्, चन्द्रके पलास, मङ्गलके खैर, बुधके अपामार्ग, वृहस्पतिके पीपल, शुक्रके उदुम्बर (गूलर) शनिके शमी; राहुके दूर्वा (दूब) और केतुग्रहके लिये कुश—नौ प्रकारके समिध् द्वारा नवग्रहका होम करना चाहिये।

उपनयन आदि संस्कार कार्यमें यज्ञडुम्बरके समिध्से ही होम करना चाहिये। तान्त्रिक होमस्थलमें प्रायः ही विल्वपत्र द्वारा होम होता है।

समिध (सं० पु०) समिध्यते इति सं-इन्ध-क। अग्नि।
समिर (सं० पु०) समीर, वायु।
समिश्र (सं० त्रि०) एक साथ मिल कर रहना।
समिष (सं० पु०) १ प्रक्षेपणशील अस्त्रयुक्त। २ इन्द्र।
समिष्टयजुस् (सं० क्ली०) यज्ञ सम्पादनार्थक मन्त्र।
समिष्टि (सं० स्त्री०) यज्ञसम्पादन।
समीक (सं० क्ली०) सम्-अली काद्यश्चेति ईक। युद्ध, संग्राम। (अमर)
समीकरण (सं० क्ली०) सम-कृ-च्वि-ल्युट्। १ गणितमें एक विशेष प्रकारकी क्रिया जिससे किसी व्यक्ति या ज्ञात राशिकी सहायतासे किसी अव्यक्त या अज्ञात राशिका पता लगाया जाता है। (Equation) २ तुल्य करण, समान करनेकी क्रिया, तुल्य या बराबर करना। ३ गौड़देशमें गोष्ठीपतियोंके यत्न और आग्रहसे ब्राह्मण और कायस्थ समपर्य्यायके कुलीनोंका जो एकत्र समावेश हुआ था, उसे समीकरण कहते हैं।
समीकार (सं० पु०) सम-कृ-च्वि-घञ्। समानीकार, वह जो छोटी बड़ी, ऊंची नीची या अच्छी बुरी चीजोंको समान करता हो, बराबर करनेवाला।
समीकृत (सं० त्रि०) समानीकृत, समान या बराबर किया हुआ।
समीकृति (सं० स्त्री०) समान या तुल्य करनेकी क्रिया।
समीक्रिया (सं० स्त्री०) वीजगणितोक्त अङ्कप्रक्रियाविशेष। (Equation) समीकरण देखो।
समीक्ष (सं० क्ली०) सम्यगीक्ष्यतेऽनेनेति सम्-ईक्ष घञ्। १ सांख्यशास्त्र जिसके द्वारा प्रकृति और पुरुषका ठीक ठीक स्वरूप दिखाई देता है। २ सम्यक् दर्शन, अच्छी तरह देखनेकी क्रिया। ३ दृष्टि, दर्शन। ४ यत्न। ५ अन्वेषण, जाँच पड़ताल। ६ विवेचन। ७ सम्यक् ज्ञान।
समीक्षण (सं० क्ली०) सम्-ईक्ष-ल्युट्। १ सम्यक प्रकारसे दर्शन, अच्छी तरह देखना। २ अन्वेषण, जाँच पड़ताल। ३ आलोचना (त्रि०) ४ प्रकाशक।
समीक्षा (सं० स्त्री०) सम्-ईक्ष-गुरोश्चेत्यः, टाप्। १ सांख्यमें बतलाये हुए पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार आदि तत्त्व। २ बुद्धि, अक्ल। ३ मीमांसाशास्त्र। ४ यत्न, कोशिश ५ आत्मविद्या। ६ सम्यक् दर्शन, अच्छी तरह देखनेकी क्रिया।
समीक्षित (सं० त्रि०) सम्-ईक्ष-क्त। १ आलोचित। २ अन्वेषित। ३ सम्यक् प्रकारसे दृष्ट।

समीक्षितव्य (सं० त्रि०) सम् ईक्ष तव्य । सम्यक् प्रकारसे देखने योग्य।

समीक्ष्य (सं० त्रि०) सम् ईक्ष-यत्। समीक्षणयोग्य, भली भांति देखने लायक ।

समीक्ष्यकारिन् (सं० त्रि०) समीक्ष्य-कृ-णिनि। बुद्धिसे काम करनेवाला।

समीक्ष्यवादी (सं० त्रि०) समीक्ष्य वद्-णिनि। जो किसी विषयको अच्छी तरह जांच या समझ कर कोई बात कहता हो।

समीच (सं० पु०) संयन्ति नद्यो यस्मिन्निति सं-इण (समीचः। उण् ४।६२) इति चट दीर्घश्च। समुद्र, सागर।

समीचक (सं० पु०) मैथुन, संभोग।

समीची (सं० स्त्री०) संयातीति सं-इण् टच् दीर्घ ङीप्। १ मृगी। २ वन्दना, गुणगान।

समीचीन (सं० त्रि०) सम्यगेव सम्यक् (विभाषाञ्चेरदिक् स्त्रियां। पा ५।४।८) इति ख। १ यथार्थ, ठीक। पर्याय—सत्य, सम्यक्, ऋत, तथ्य, यथातथ, यथास्थित, सद्भूत। २ उचित, वाजिब। ३ न्यायसङ्गत।

समीचीनता (सं० स्त्री०) समीचीनस्य भावः तल् टाप्। समीचीन होनेका भाव या धर्म।

समीद (सं० पु०) गोधूमच्चूर्ण, मैदा।

समीन (सं० त्रि०) समामधीष्टो भृतो भूतो भावी वा समा (समयाः खः। पा ५।१।८५) इति ख। १ वत्सरसम्बन्धी, वार्षिक। २ मीनके साथ वर्त्तमान, जिसमें मछली हो।

समीनिका (सं० स्त्री०) प्रतिवर्ष-प्रसूता गाभी, वह गाय जो प्रति वर्ष बच्चा देती है, हर साल व्यानेवाली गाय।

समीप (सं० त्रि०) सङ्गता आपो यत्र (ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे। पा ५।४।७४) इति क। (द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽपईत्। पा ६।३।९७) इति ईत्। निकट, नजदीक, दूरका उलटा। इस शब्दका क्लीवलिङ्गमें भी प्रयोग होता है।

समीपकाल (सं० पु०) समीपः कालः। निकट समय, समीपदेश।

समीपग (सं० त्रि०) समीपं गच्छति गम-ड; समीपगामी, जो पास हो गया हो।

समीपगमन (सं० क्ली०) समीप-गम-ल्युट्। निकट गमन।

समीपज (सं० त्रि०) समीप-जन-ड। समीपजात, जो नजदीकमें उत्पन्न हुआ हो।

समीपता (सं० स्त्री०) समीपस्य भावः तल्-टाप्। समीपका भाव या धर्म।

समीपनयन (सं० क्ली०) समीप-नी-ल्युट्। नजदीक लाना।

समीपवर्त्ती (सं० त्रि०) समीपं वर्त्तते वृत-णिनि। १ निकटगामी, समीपगामी। २ पासका, नजदीकका।

समीपस्थ (सं० त्रि०) समीपे तिष्ठति-स्था-क। समीपस्थित, जो समीपमें हो।

समीय (सं० त्रि०) सम (गहादिभ्यश्च। पा ४।२।१३८) इति छ। समसम्बन्धी, तुल्य कारणक, समका।

समीर (सं० पु०) सम्यगीर्ते गच्छतीति सं-ईर गतौ क। १ वायु, हवा। २ शमी वृक्ष।

समीरण (सं० पु०) समीरयतीति सम् ईर-ल्यु। १ वायु, हवा। २ मरुवक वृक्ष, गंध तुलसी। ३ पथिक, रास्ता चलनेवाला। (क्ली०) सं-ईर-ल्युट्। ४ प्रेरण। (त्रि०) ५ प्रेरक।

समीरित (सं० त्रि०) सम-ईर् प्रेरणे क। १ सम्यक्रूपसे प्रेरित। २ उच्चारित। भावे क। (क्ली०) ३ प्रेरण।

समीषन्ती (सं० स्त्री०) विष्टुतिभेद। (लाट्या० ६।२।२२)

समीहन (सं० क्ली०) सम्-ईह-ल्युट्। १ सम्यक् प्रकारसे ईहन, सम्यक्रूपसे चेष्टा। (पु०) २ विष्णु।

समीहा (सं० स्त्री०) सम्-ईह- अच्-टाप्। १ सम्यक् इच्छा, ख्वाहिश। २ उद्योग, प्रयत्न, कोशिश। ३ अनुसन्धान, तलाश, जांच पड़ताल।

समीहित (सं० त्रि०) सम् ईह क। १ सम्यक् चेष्टित। २ अभीष्ट। भावे क। (क्ली०) ३ चेष्टा। ४ इच्छा।

समुंदर (हिं० पु०) समुद्र देखो।

समुंदरफूल (हिं० पु०) एक प्रकारका विधारा। यह वैद्यकके अनुसार मधुर, कसैला, शीतल और कफ, पित्त तथा रुचि-विकारको दूर करनेवाला तथा गर्भिणी स्त्रीकी पीड़ा हरनेवाला होता है।

समुंदरसोख (हिं० पु०) एक प्रकारका क्षुप। यह प्रायः सारे भारतवर्षमें थोड़ा बहुत पाया जाता है। इसकी पत्तियां तीन चार अंगुल लंबी, अंडाकार और नुकीली होती हैं। डालियोंके अन्तमें छोटे छोटे सफेद फूलोंके गुच्छे लगते हैं। उन फूलोंमें छोटे छोटे बीज होते हैं। वैद्यकमें यह वातकारक, मलरोधक, पित्त-कारक तथा कफकारक कहा गया है।

समुक्षण (सं० क्ली०) सम्यक् प्रकारसे सिञ्चन, अच्छी तरह सी चनेकी क्रिया।

समुख (सं० त्रि०) मुखेन सह वर्त्तमानः। वाग्मी, जो अच्छी तरह बातें करना जानता हो।

समुचित (सं० त्रि०) १ यथेष्ट, उचित, योग्य, ठीक। २ उपयुक्त, जैसा चाहिये वैसा।

समुच्चय (सं० पु०) सम्-उत्-चि-अच्। १ समाहार, मिलन। २ समूह, राशि। दो या दोसे अधिक राशियोंमें मिलनेको समुच्चय कहते हैं। ३ साहित्यमें एक प्रकारका अलंकार।

कार्यका साधक एक होने पर खल अर्थात् जालमें कपोतन्यायमें यदि दूसरा भी वैसा ही करे अर्थात् उस कार्यका साधक बने, तो यह अलङ्कार होगा। वृद्ध, युवा, शिशु, कपोत सभी जिस प्रकार जालमें फंसते हैं, उसी प्रकार सभी पदार्थ एक समय परस्पर अन्वय-विशिष्ट होने पर उसे कपोतिक न्याय कहते हैं। इस अलङ्कारमें कार्यका साधक एक और उससे एक समय अनेक कार्योंका साधक होगा। गुण और क्रियामें यदि युगपत् गुणक्रियाका आपतन हो, तो भी यह अलङ्कार होता है। (साहित्यद० १०।७३६)

समुच्चरत् (सं० त्रि०) सम्-उत्-चर-शतृ। १ उत्पतन-शील, गिरनेवाला। २ उच्चारण करनेवाला।

समुच्चारण (सं० क्ली०) सम्यक् रूपसे उच्चारण।

समुच्चिचीर्षा (सं० स्त्री०) एकत्र उत्सर्ग करनेकी इच्छा।

समुच्चित (सं० त्रि०) सम-उत्-चि-क्त। १ राशीकृत, ढेर लगाया हुआ। २ संगृहीत, एकत्र किया हुआ।

समुच्छलित (सं० त्रि०) सम्-उत्-शल-क्त। १ सम न्तात् विस्तीर्ण, चारों ओर फैला हुआ। २ अच्छी तरह कूदा या उछला हुआ।

समुच्छित्ति (सं० स्त्री०) ध्वंस, विनाश, बरबादी।

समुच्छेद (सं० पु०) सम्-उत्-छिद्-घञ्। ध्वंस, विनाश, बरबादी।

समुच्छेदन (सं० क्ली०) सम्-उत्-छिद्-ल्युट्। १ जड़से उखाड़ना। २ नष्ट करना, बरबाद करना।

समुच्छ्रय (सं० पु०) सम्-उत्-श्रि-अच्। १ विरोध, मनमुटाव। २ उत्सेध, ऊंचाई।

समुच्छ्राय (सं० पु०) सम्-उत्-श्रि-घञ्। समुच्छ्रय देखो।

समुच्छ्रित (सं० त्रि०) सम्-उत्-श्रि-क्त। उच्च, उन्नत।

समुच्छ्रिति (सं० स्त्री०) सम्-उत्-श्रि-क्तिन्। समुच्छ्रय।

समुच्छ्वसित (सं० त्रि०) सम्-उत्-श्वस-क्त। पुनर्जी-वित, उच्छ्वासयुक्त।

समुच्छ्वास (सं० पु०) सम्-उत्-श्वस-घञ्। १ निश्वास प्रश्वास। २ स्फीति और स्फूर्त्ति।

समुज्जिहीर्षु (सं० त्रि०) समुद्धर्त्तुमिच्छुः, सम-उत्-हृ-सन्, सन्नन्तादु। सम्यक् रूपसे उद्धार करनेका अभि-लाषी। (भागवत १०।७५।३६)

समुज्ज्वल (सं० त्रि०) सम्-उत्-ज्वल-अच्। खूब उज्ज्वल, चमकता हुआ।

समुज्झित (सं० त्रि०) सम्-उज्झ-क्त। त्यक्त, छोड़ा हुआ।

समुत्क (सं० त्रि०) सम्यक् उत्क, सम्यक् अभिलाषी।

समुत्कच (सं० त्रि०) सम्यक् प्रकारसे उत्कच, जिसके बाल अच्छी तरह खड़े हों।

समुत्कण्ठ (सं० त्रि०) सम्यक् रूपसे उत्कण्ठान्वित, व्यग्र, व्यस्त।

समुत्कर्ष (सं० त्रि०) सम्-उत्-कृष-घञ्। सम्यक् उत्कर्ष।

समुत्क्रम (सं० पु०) सम्-उत्-क्रम्-अप्। सम्यक् उत्क्रम।

समुत्कीर्ण (सं० त्रि०) सम्-उत्-कृ-क्त। १ क्षोदित, विद्ध। २ विदीर्ण, भग्न।

समुत्क्रोश (सं० पु०) समुत्क्रोशतीति सम्-उत्-क्रुश-अच्। १ कुरर नामका पक्षी। भावे-घञ्। २ उच्च शब्द, जोरकी आवाज।

समुत्क्षेप (सं० पु०) अच्छी तरह उठा कर फेंक देना।

समुत्क्षेपण (सं० क्लो०) समुत्क्षेप देखो।

समुत्तर (सं० क्लो०) सम्यगुत्तरं। सम्यक् उत्तर, ठीक ठीक जवाब।

समुत्तान (सं० त्रि०) उत्तान, चित।

समुत्तार (सं० पु०) सम्-उत्-तृ घञ्। सम्यक्रूपसे उत्तरण, अच्छी तरह पार हो जाना।

समुत्थ (सं० त्रि०) समुत्तिष्ठतीति सम्-उत्-स्था-क। १ समुद्भव, उत्पन्न। २ उत्थित, उठा हुआ।

समुत्थान (सं० पु०) सम्-उत्-स्था-ल्युट्। १ आरम्भ। २ उत्थान, उठनेकी क्रिया। ३ उदय, उत्पत्ति। ४ उत्तोलन, उठाना। ५ व्याधिनिर्णय। ६ रोगशान्ति, रोगका शान्त होना।

समुत्थाप्य (सं० त्रि०) सम्-उत्-स्था-णिच्-यत्। समुत्थापनके योग्य, उठाने लायक।

समुत्थित (सं० त्रि०) सम्-उत्-स्था-क्त। सम्यक्रूपसे उत्थित, अच्छी तरह उठा हुआ।

समुत्थेय (सं० त्रि०) सम्-उत्-स्था-य। समुत्थानके उपयुक्त, उठानेके योग्य।

समुत्पतन (सं० क्लो०) सम्-उत्-पत-ल्युट्। सम्यक्रूपसे उत्पतन, अच्छी तरह उड़नेकी क्रिया।

समुत्पत्ति (सं० स्त्री) सम्-उत्-पद्-क्तिन्। सम्यक् विकाश, सम्यक् रूप उत्पत्ति।

समुत्पन्न (सं० त्रि०) सम्-उत्-पद्-क्त। १ समुद्भूत, उत्पन्न। २ उद्भूत, घटित।

समुत्पाटन (सं० क्लो०) सम्-उत्-पाटि-ल्युट्। सम्यक् उत्पाटन, जड़से उखाड़ना।

समुत्पाटित (सं० त्रि०) उन्मूलित, जड़से उखाड़ा हुआ।

समुत्पात (सं० त्रि०) सम्-उत्-पत-घञ्। उत्पात, उपद्रव।

समुत्पाद (सं० पु०) सम्यक् उत्पत्ति।

समुत्पाद्य (सं० त्रि०) सम्-उत्-पद्-ण्यत्। समुत्पादनयोग्य।

समुत्पिञ्ज (सं० त्रि०) सम्-उत्-पिजि हिंसायां अच्। १ अत्यन्त व्याकुल, बहुत घबराया हुआ। (पु०) २ व्याकुल सैन्य, जो सब सेना तितर बितर गई हो।

समुत्पीड़न (सं० क्लो०) सम्-उत्-पीड़-ल्युट्। सम्यक् रूपसे उत्पीड़न, बहुत कष्ट देना।

समुत्फाल (सं० पु०) घोड़ोंका उछलता हुआ जाना।

समुत्सर्ग (सं० पु०) सम्-उत्-सृज-घञ्। उत्सर्ग, त्याग।

समुत्सव (सं० पु०) सम्-उत्-सु-अच्। सम्यक् उत्सव, खूब धूमधाम।

समुत्साह (सं० पु०) सम्-उत्-सह-घञ्। अत्यन्त उत्साह।

समुत्साहता (सं० स्त्री०) समुत्साहस्य भावः समुत्साह-तल-टाप्। समुत्साहित्व, उत्साहका भाव या धर्म, अत्यन्त उत्साहके साथ कार्य।

समुत्सुक (सं० त्रि०) सम्यगुत्सुकः। सम्यक् उत्कण्ठित, अभीष्ट लाभके लिये आग्रहयुक्त।

समुत्सृष्ट (सं० त्रि०) सम्-उत्-सृज-क्त। सम्यक् रूपसे उत्सृष्ट, त्यक्त, छोड़ा हुआ।

समुत्सेध (सं० पुं०) सम्-उत्-सिध-घञ्। उच्चता, ऊंचाई।

समुदक्त (सं० त्रि०) समुदच्यते, स्मेति सम्-उत्-अन्च-क्त। १ उद्धृत, निकाला हुआ। २ कूप आदिसे निकाला हुआ जल आदि।

समुदन्त (सं० त्रि०) १ सोमन्त उच्चताविशिष्ट, समान ऊंचाईका। २ सम्यक् उदन्त, विना दांतका।

समुदय (सं० पु०) सम-उन-इन अच्। १ उत्थान, उठने या उदित होनेकी क्रिया। २ युद्ध, समर, लड़ाई। ३ दिवस, दिन। ४ ज्योतिषके मतसे लग्नको समुदय कहते हैं। ५ छः नाड़ीचक्रके अन्तर्गत चौथी नाड़ी। यह नाड़ी जन्मनक्षत्रसे अठारह अधिक नक्षत्ररूप है। जिसका जो नक्षत्र जन्मनक्षत्र होगा, उस नक्षत्रसे अठारह नक्षत्रको समुदय नाड़ी कहते हैं।

विशेष विवरण षन्नाड़ीचक्रमें देखो।

(त्रि०) ६ समस्त, सब, कुल।

समुदागम (सं० पु०) सम्-उत्-आ-गम-घञ्। सम्यक् ज्ञान।

समुदाचार (सं० पु०) सम्-उत्-आ-चर-घञ्। १ आशय, अभिप्राय, मतलब। २ शिष्टाचार, भलमनसतको व्यवहार। ३ अभिवादन, नमस्कार, प्रणाम आदि।

समुचारवत् (सं० त्रि०) समुदाचार अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । १ समुदाचारविशिष्ट, शिष्टाचारयुक्त। २ आशययुक्त, मतलवका।

समुदानय (सं० पु०) १ समिति। २ सम्पादन, समाप्त करना।

समुदाय (सं० पु०) सम्-उत्-अय-घञ्। १ समूह, ढेर। २ झुंड, गरोह। ३ युद्ध, समर, लड़ाई। ४ पृष्ठस्थायि बल, पीछेकी ओरकी सेना। ५ उदय। ६ उन्नति, तरक्की।

समुदाहार (सं० पु०) कथोपकथन, वाक्यालाप।

समुदित (सं० त्रि०) सम्-वद-क्त। १ सम्यक् प्रकारसे कथित, स्पष्ट कहा हुआ। २ उत्थित, उठा हुआ। ३ उन्नत। ४ उत्पन्न, जात।

समुदीरण (सं० क्ली०) सम्-उत-ईर-ल्युट्। सम्यक् उदीरण, अच्छी तरह कहना।

समुदीरित (सं० त्रि०) सम्-उत्-ईर-क्त। १ उच्चारित, उच्चारण किया हुआ। (क्ली०) भावे क्त। २ उदीरण, उच्चारण।

समुदीर्ण (सं० त्रि०) सम्यक् उदीर्ण, सम्यक् कथन।

समुद्ग (सं० पु०) समुद्गच्छतीति सम्-उत्-गम अन्येष्वपीति ड। १ सम्पूटक। (त्रि०) मुद्गेन सह वर्त्तमानः। २ मुद्गके साथ वर्त्तमान, मुद्गयुक्त, मूंगका।

समुद्गक (सं० पु०) समुद्ग एव स्वार्थे कन्, संमुद्गच्छतीति हनजनादुगमादेरिति डे समुद्गः ततः स्वार्थे क। १ सम्पूटक। २ छन्दोविशेष।

समुद्गत (सं० त्रि०) सम्-उत्-गम-क्त। १ उदित, जो उदय हुआ हो। २ जात, उत्पन्न।

समुद्गार (सं० पु०) सम्यक् उद्गार, बहुत अधिक वमन होना, ज्यादा कै होना।

समुद्गीत (सं० त्रि०) सम्-उत्-गै-क्त। उच्चैर्गीत, जोरसे गाया हुआ।

समुद्गीर्ण (सं० त्रि०) सम्-उत्-गृ-क्त। १ वमित, कै किया हुआ। २ कथित, कहा हुआ। ३ उत्तोलित, उठाया हुआ।

समुद्घातिन् (सं० त्रि०) सम्यक्-उद्घातयुक्त।

समुद्घर्ष (सं० क्ली०) युद्ध, समर, लड़ाई।

समुद्दिधीर्षु (सं० त्रि०) समुद्धर्त्तुमिच्छुः, सम्-उत्-धृ सन्-सन्नन्तात् उ। सम्यक्रूपसे उद्धार करनेमें इच्छुक।

समुद्देश (सं० पु०) सम्-उत्-दिश-घञ्। सम्यक् उद्देश, अनुसन्धान।

समुद्दिष्ट (सं० त्रि०) सम्-उत्-दिश-क्त। सम्यक् उद्दिष्ट।

समुद्धत (सं० त्रि०) सम्-उत्-हन-क्त। १ सम्यक् प्रकारसे उद्धत, बड़ा ही अक्खड़। २ समुद्गीर्ण।

समुद्धरण (सं० क्ली०) सम्-उत्-हृ-ल्युट्। १ वान्तान्न, वह अन्न जो वमन करने पर पेटसे निकला हो। २ उत्तोलन, ऊपरकी ओर उठाने या निकालनेकी क्रिया। ३ उन्मूलन, उखाड़नेकी क्रिया। ४ उद्धार, मोचन।

समुद्धर्त्ता (सं० त्रि०) सम्-उत्-हृ-तृण्। १ उद्धारकर्त्ता, उद्धार करनेवाला। २ उन्मूलयिता, उखाड़ने या निकालनेवाला। ३ ऋणशोधनकारी, कर्ज अदा करनेवाला।

समुद्धर्ष (सं० पु०) सम्यक् धर्षण।

समुद्धस्त (सं० त्रि०) हाथसे पकड़ कर फेंका हुआ।

समुद्धार (सं० पु०) सम्-उत्-हृ-घञ्। समुद्धरण देखो

समुद्धृत (सं० त्रि०) सम्-उत्-हृ-क्त। १ समुत्कीर्ण, फैला हुआ। २ मोचित, उद्धार किया हुआ। ३ अपनीत, दूर किया हुआ। ४ उत्तोलित, उठाया हुआ। ५ वान्त, कै किया हुआ। ६ उन्मूलित, जड़से उखाड़ा हुआ। ७ असद्व्यवहारप्राप्त, बदचलनीसे मिला हुआ। ८ अंशीकृत, भाग किया हुआ। ९ गृहीत, लिया हुआ। १० अधिकृत, दखल जमाया हुआ। ११ उत्थापित, अच्छी तरह उठाया हुआ।

समुद्धूसर (सं० त्रि०) धूसर वर्णमय।

समुद्बोध (सं० पु०) सम-उद्-बुध-घञ्। उद्बोध, ज्ञान।

समुद्भव (सं० पु०) सम्-उत्-भू-अप्। १ उत्पत्ति, जन्म। २ अग्निका नामभेद। कार्यविशेषमें होम करनेके समय अग्निका नाम समुद्भव स्थिर कर होम करना होता है।

समुद्भासित (सं० त्रि०) सम्-उत्-भास-क्त। १ प्रदीप्त, जगमगाता हुआ। २ शोभित, सजाया हुआ। ३ उज्ज्वलीकृत, झलकाया हुआ।

समुद्भूत (सं० त्रि०) सम्-उत्-भू-क्त। उत्पन्न, जात।

समुद्भूति (सं० स्त्री०) सम्-उत्-भू क्तिन्। उद्भव, उत्पत्ति।

समुद्भेद (सं० पु०) १ उद्भेदन। २ विकाश। ३ उत्पत्ति। ४ प्रस्रवण, जलादिका उद्गमन।

समुद्यत (सं० त्रि०) सम-उत्-यम-क्त। सम्यक् उद्यत, अच्छी तरहसे तैयार।

समुद्यम (सं० पु०) सम्यक् उद्यमः उद्-यम्-अप्। १ सम्यक् उद्यम, चेष्टा। २ आरम्भ, शुरू।

समुद्यमिन् (सं० त्रि०) सम्-उद्-यम्-इन्। १ समुद्यम-विशिष्ट, चेष्टावान्। २ आरम्भकारी, शुरु करनेवाला।

समुद्योग (सं० पु०) सम्-उद्-युज्-घञ्। सम्यक् उद्योग, यत्न।

समुद्र (सं० पु०) १ जल समूह स्थान, अम्बुधि, सागर। चन्द्रोदयसे जहांका जल बढ़ता है, उसको समुद्र कहते हैं। श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि समुद्र भगवान्‌के मेढ़ देशसे उत्पन्न हुआ है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि श्रीकृष्णके औरस तथा विरजाके गर्भसे सात पुत्र उत्पन्न हुए। विरजा शब्द देखो। एक समय विरजा और श्रीकृष्ण एक जगह बैठे हुए थे, ऐसे समय पुत्रोंमें झगड़ा हुआ। इस झगड़ेमें छोटा पुत्र मार खा कर चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा। पुत्रकी क्रन्दनध्वनि सुन कर विरजाने जा उसे गोदमें उठा लिया और उसे वे सान्त्वना देने लगीं। इसी समय श्रीकृष्ण राधिकाके घरमें चले गये। विरजा लौट कर देखती हैं, कि कृष्ण वहां नहीं हैं। उस समय श्रीकृष्णके विरहमें विलाप करने लगीं। अन्तमें उन्होंने पुत्रोंके लिये प्रियतमका विरह उपस्थित हुआ है, यह सोच कर पुत्रों पर क्रोधित हो शाप दिया, कि तुम लोग लवण समुद्र होगे, तुम्हारे जल भी कोई न पोयेगा। उन्हींके सात पुत्रोंसे ये सात समुद्र हुए। (श्रीकृष्णज० ख० ३ अ०)

मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि चन्द्रके उदय होने पर समुद्र उदित अर्थात् स्फीत और चन्द्रके अस्त होने पर समुद्र क्षीण होता है। जलराशिका समुद्रेक होता है, इसलिये इसका नाम समुद्र हुआ।

'अपां चैव समुद्रेकात् समुद्र इति संज्ञितः।
उदयतीन्दौ पूर्णे तु समुद्रः पूर्यते सदा॥
प्रक्षीयमाणे बहुले क्षीयतेऽस्तमितेन वै।
आपूर्यमाणोह्युदधिरात्मनैवाभि पूर्यते॥'' इत्यादि।

चन्द्रमा जैसे उदित होते हैं, वैसे ही समुद्रका जल अतिशय स्फीत हो जाता है। इससे समुद्रकी निकटवर्त्ती नदियोंमें 'ज्वार' होता है और जब चन्द्रमा अस्त होते हैं, तब समुद्रका जल घट जाता है, फलतः नदियोंमें 'भाटा' होता है। अतएव समुद्रके घटने बढ़नेका कारण चन्द्रोदय और चन्द्रास्त है। एक समय देवता और राक्षसोंने सम्मिलित हो कर समुद्रमन्थन किया। श्रीमद्भागवतके छठे अध्यायसे ले कर १२वें अध्याय तक इसका विस्तृत विवरण दिया गया है। अमृत प्राप्त करनेके लिये समुद्र मथा गया। किन्तु पहले हलाहल विष उत्पन्न हुआ। इस विषकी ज्वालासे सभी उत्पीड़ित हो उठे। तब वे अन्य उपाय न देख महादेवजीका स्तव करने लगे। महादेवने देवताओंके स्तवपाठसे तुष्ट हो कर यह विष पान किया। इसके बाद फिर समुद्र मथा जाने लगा। इस बार सुरभि और लक्ष्मी आदि तथा धन्वन्तरि अमृत भाण्ड ले कर आविर्भूत हुए। असुरोंने अमृत भाण्डको छीन कर भागना चाहा; किंतु भगवान् विष्णुने मोहिनी मूर्त्ति धारण कर असुरोंको ठग कर अमृत भाण्ड देवताओंको दे दिया। इस पर तुमुल देवासुर संग्राम हुआ। अन्तमें नारदने आ कर इस संग्रामको मिटाया था। देवताओं द्वारा जो असुर मारे गये थे, उन सबको शुक्राचार्यने जिलाया।

पहले आर्यजातिके लोग समुद्रपथसे बहुत वाणिज्य यात्रा करते थे। यवद्वीपके बोरोबुदुरके मन्दिरसे तथा सारनाथके ध्वंसावशेषसे मिले कई प्रस्तरफलकों पर जहाजके चित्र देखे गये हैं।

उपनिवेश, आर्य और वैश्य शब्द देखो।

कविकल्पलतामें लिखा है, कि समुद्रका वर्णन करते समय द्वीप, अद्रि, रत्न, ऊर्मि, जहाज, जलजन्तु तथा लक्ष्मीकी उत्पत्तिका जरूर वर्णन करना चाहिये।

२ किसी विषय या गुण आदिका बहुत बड़ा आगार। ३ एक प्राचीन जातिका नाम।

समुद्रकफ (सं० पु०) समुद्रस्य कफ इव। समुद्रफेन।

समुद्रकर—एक प्राचीन दीधितिकार। रघुनन्दनने इनका उल्लेख किया है।

समुद्रकल्लोल (सं० पु०) समुद्रस्य कल्लोलः। समुद्रका कल्लोल, सागरकी गरज।

समुद्रकाञ्ची (सं० स्त्रि०) समुद्राः काञ्चीव मेखलेव यस्याः। पृथ्वी जिसकी मेखला समुद्र है।

समुद्रकान्ता (सं० स्त्री०) समुद्रस्य कान्ता। नदी जिसका पति समुद्र माना जाता है और जो समुद्रमें जा कर मिलती है।

समुद्रग (सं० त्रि०) समुद्रं गच्छतीति गम-ड। समुद्र गामिमात्र, जो समुद्रमें मिलती है।

समुद्रगा (सं० स्त्री०) १ नदी जो समुद्रकी ओर गमन करती है। २ गङ्गाका एक नाम।

समुद्रगुप्त (सं० पु०) गुप्तराजवंशीय एक प्रबल पराक्रान्त सम्राट्। इनका समय सन् ३३५ से ३७५ ई० तक माना जाता है। अनेक बड़े बड़े राज्योंको दखल कर इन्होंने गुप्त साम्राज्यकी स्थापना की थी। इनका साम्राज्य हुगलीसे चंबल तक और हिमालयसे नर्मदा तक विस्तृत था। पाटलिपुत्रमें इनकी राजधानी थी। परन्तु अयोध्या और कौशाम्बी भी इनकी राजधानियां थीं। इन्होंने एक बार अश्वमेध यज्ञ भी किया था। गुप्तराजवंश देखो।

समुद्रगृह (सं० क्ली०) समुद्र इव जलयुक्तं गृहं। जल यन्त्र गृह, फुहारेका घर।

समुद्रचुलुक (सं० पु०) समुद्रश्चुलुक इव अनायासेन पेयत्वात् यस्य। अगस्त्यमुनि। इन्होंने चुल्लुओंसे समुद्र पी डाला था, इसीसे यह नाम पड़ा।

समुद्रज (सं० त्रि०) समुद्रे जायते जन-ड। १ समुद्रजात, समुद्रसे उत्पन्न। (पु०) २ मोती, हीरा, पन्ना आदि रत्न जिनकी उत्पत्ति समुद्रसे मानी जाती है।

समुद्रज्येष्ठ (सं० त्रि०) समुद्रप्रधान। (ऋक् ८।४९।१)

समुद्रझाग (हिं० पु०) समुद्रफेन देखो।

समुद्रतता (सं० स्त्री०) छन्दोभेद। इस छन्दके प्रति चरणमें १६ अक्षर करके होते हैं। इन सब अक्षरोंमें २, ३, ४, ११, १२, १४, १७ और १६वां अक्षर गुरु, बाकी अक्षर लघु तथा ८वें और १२वें अक्षरमें यति होती है।

समुद्रतीर (सं० क्ली०) समुद्रस्य तीरं। समुद्रका किनारा।

समुद्रतीरीय (सं० त्रि०) समुद्रतीरवासी, समुद्रतट पर रहनेवाला।

समुद्रदत्त (सं० पु०) एक ग्रन्थकार।

समुद्रदयिता (सं० स्त्री०) समुद्रस्य दयिता। नदी, दरिया।

समुद्रनवनीत (सं० क्ली०) समुद्रस्य क्षीरोदस्य नवनीतमिव। १ अमृत। २ चन्द्रमा।

समुद्रनिष्कुट (सं० पु०) १ समुद्रोपकूलस्थ उपवनभेद। २ वनभेद। (भारत सभापर्व)

समुद्रनेमि (सं० स्त्री०) पृथिवी।

समुद्रपत्नी (सं० स्त्री०) समुद्रस्य पत्नी। नदी, दरिया।

समुद्रपर्यन्त (सं० त्रि०) सागरावधि, समुद्र तक।

समुद्रपात (सं० पु०) सारे भारतमें मिलनेवाली एक प्रकारकी झाड़दार लता। इसके डंठल बहुत मजबूत और चमकीले होते हैं और पत्ते प्रायः पानके आकारके होते हैं। पत्ते ऊपरकी ओर चिकने और सफेद तथा नीचेकी ओर हरे और मुलायम होते हैं। इन पत्तोंमें एक विशेष गुण यह होता है, कि यदि घाव आदि पर इनका ऊपरी चिकना तल रख कर बांधा जाय, तो वह घाव सूख जाता है। फिर यदि नीचेका रोएंदार भाग रख कर फोड़े आदि पर बांधा जाय, तो वह पक कर बह जाता है। वसन्तके आखिरमें इसमें एक प्रकारके गुलाबी रंगके फूल लगते हैं जो नलीके आकारके लंबे होते हैं। ये फूल प्रायः रातके समय खिलते हैं और इनमेंसे बहुत मोठी गंध निकलती है। इसमें एक प्रकारके गोल, चिकने, चमकीले और हलके भूरे रंगके फल भी लगते हैं। वैद्यकके अनुसार इसकी जड़ बलकारक और आमवात तथा स्नायु संबंधी रोगोंको दूर करनेवाली मानी गई है और इसके पत्ते उत्तेजक, चर्मरोगनाशक तथा घावको भरनेवाले कहे गये हैं। इसे समुंदरसोख भी कहते हैं।

समुद्रफल (सं० क्ली०) समुद्रफलमिव। १ अब्धिफल, औषधविशेष। गुण—कटु, उष्णकर, वातरोगनाशक, भूतनिरोधकारी, कफ और भ्रम वृद्धिकारक।

२ एक प्रकारका सदाबहार वृक्ष। यह अवध, बंगाल, मध्यभारत आदिमें नदियोंके किनारे और तर-

भूमिमें तथा कोङ्कणमें समुद्रके किनारे बहुत अधिकतासे पाया जाता है। यह प्रायः ३०से ५० फुट तक ऊंचा होता है। इसकी लकड़ी सफेद और बहुत मुलायम होती है। छिलका कुछ भूरा या काला होता है। पत्तियां प्रायः तीन इञ्च तक चौड़ी और दश इञ्च तक लंबी होती हैं। शाखाओंके अन्तमें दो ढाई इञ्चके घेरे-के गोलाकार सफेद फूल लगते हैं। इसके फल पकने पर नीचेकी ओरसे चिपटे या चौपहल हो जाते हैं। इसकी जड़ वातनाशक और स्नायुदौर्बल्यमें हितकर मानी गई है। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—कटु, उष्ण, वातघ्न, मकड़ेका विषनाशक, त्रिदोषघ्न, कफरोग और भ्रान्ति-नाशक है। इसे बम्बईमें समुंदरसोख और तैलङ्गमें समुंदरपाल कहते हैं।

समुद्रफेन (सं० पु०) समुद्रस्य फेनः। समुद्रके पानीका फेन या भाग। यह समुद्रके किनारे पाया जाता है। इसका व्यवहार औषधिके रूपमें होता है।

समुद्रमें लहरें उठनेके कारण उसके खारे पानीमें एक प्रकारका भाग उत्पन्न होता है। वह भाग किनारे पर आ कर जम जाता है। यही बाजारोंमें समुद्रफेनके नामसे बिकता है। देखनेमें यह सफेद रंगका, खरखरा, हलका और जालीदार होता है। इसका स्वाद फीका, तीखा और खारा होता है। कुछ लोग इसे एक प्रकारकी मछलीकी हड्डियोंका पंजर भी मानते हैं। इसका गुण—शीतल, नेत्ररोग, कफ, कण्ठामय, अरुचि और कर्णरोग-नाशक। (राजनि०)

वैद्यकनिघण्टुके मतसे यह कसैला, हलका, शीतल, सारक, रुचिकारक, नेत्रोंको हितकारी, विष तथा पित्त विकारनाशक और नेत्र तथा कंठ आदिके रोगोंको दूर करनेवाला होता है।

समुद्रमण्डूकी (सं० स्त्री०) जलशुक्ति, सीप।

समुद्रमथन (सं० पु०) १ दैत्यभेद, पुराणानुसार एक दानवका नाम। २ समुद्रालोड़न, समुद्रको मथना।

समुद्रमालिन् (सं० स्त्री०) पृथिवी।

समुद्रमालिनी (सं० स्त्री०) पृथ्वी जो समुद्रको अपने चारों ओर मालाकी भाँति धारण किये हुए हैं।

समुद्रमेखला (सं० स्त्री०) समुद्रः मेखलेव यस्याः। पृथ्वी जो समुद्रको मेखलाके समान धारण किये हुए हैं।

समुद्रयात्रा (सं० स्त्री०) समुद्र-यात्रा-गमनं। समुद्र-गमन, समुद्रके द्वारा दूसरे देशोंकी यात्रा।

समुद्र शब्द देखो।

समुद्रयान (सं० क्ली०) समुद्रस्य यानं। १ अर्णवपोत, समुद्र पर चलनेवाली सवारी। जैसे—जहाज, स्टीमर आदि। २ समुद्रयात्रा।

समुद्रयायिन् (सं० त्रि०) समुद्रं गच्छतीति गम-णिनि। समुद्रगामी, जिसने समुद्रयात्रा की हो। मनुने इन्हें अपांक्तेय कहा है अर्थात् इन लोगोंके साथ एक पंक्तिमें बैठ कर खानेसे निषेध किया है। ये लोग द्विजाधम हैं।

समुद्ररसना (सं० स्त्री०) समुद्रः रसनेव यस्याः। पृथिवी। कहीं कहीं समुद्ररमणा ऐसा पाठ भी देखनेमें आता है।

समुद्रलवण (सं० क्ली०) समुद्रजातं लवणं। जलजात-लवण, करकच नामका लवण जो समुद्रके जलसे तैयार किया जाता है। पर्याय—समुद्रक, सामुद्र, शिव, वशिर, सारोत्थ, अक्षीव, लवणाब्धिज। वैद्यकके अनुसार यह लघु, हृद्य, पित्तवर्द्धक, विदाही, दीपन, रुचिकारक और कफ तथा वातका नाशक माना जाता है।

लवण शब्द देखो।

समुद्रवर्मन् (सं० पु०) राजभेद। (कथासरित्सा० ५२।३६५)

समुद्रवसना (सं० स्त्री०) समुद्रा एवं वसनं यस्याः। पृथिवी।

समुद्रवह्नि (सं० पु०) समुद्रस्य वह्निः। वड़वानल।

समुद्रवास (सं० त्रि०) समुद्रजल जिसका आच्छादन है, अग्नि। (ऋक् ८।६१।४)

समुद्रवासिन् (सं० त्रि०) समुद्रे समुद्रतीरे वसतीति वस-णिनि। १ जो समुद्रमें रहता हो। २ जो समुद्रके तट पर रहता हो।

समुद्रविजय (सं० पु०) १ वृत्ताईत्के पिता। ये जैनतीर्थ-ङ्कर व. देवके पुत्र और कृष्णके भाई थे। जैन शब्द देखो।

समुद्रव्यचस् (सं० त्रि०) समुद्रकी तरह व्याप्तियुक्त, समुद्र जिस प्रकार चारों ओर फैला है उसी प्रकार फैला हुआ।

समुद्रशूर (सं० पु०) वणिग्भेद।

समुद्रसूरि—रघुवंशटीकाके प्रणेता।
समुद्रसार (सं० पु०) १ सूक्ति, सीप। २ मुक्ता, मोती।
समुद्रसुभगा (सं० स्त्री०) समुद्रस्य सुभगा, गङ्गा।
समुद्रसेन (सं० पु०) १ वङ्गराजभेद, चन्द्रसेनके पिता। (भारत आदिपर्व.) २ वणिग्भेद। (कथासरित्सा० २६।११६) ३ कांगड़ा जिलेके कुलूविभागका एक सामन्त राज। यह ७वीं सदीमें विद्यमान था। शिलालिपिसे जाना जाता है, कि वरुणसेनका पुत्र सञ्जयसेन, सञ्जयका पुत्र वरिसेन, वरिका पुत्र समुद्रसेन था। यह महासामन्त और महाराजकी उपाधिसे भूषित था।
समुद्रस्थली (सं० स्त्री०) समुद्रतीरस्थ तीर्थक्षेत्रभेद।
समुद्रा (सं० स्त्री०) सम्यगुद्गतो रोऽग्निर्यस्याः। १ शमी, सेम। २ शटी, कचूर।
समुद्रान्त (सं० क्ली०) समुद्रस्य अन्त उत्पत्तिस्थानत्वेनास्त्यस्येति अच्। १ जातिफल, जायफल। समुद्रस्य अन्तं। २ समुद्रतीर, समुद्रका किनारा। समुद्रः अन्तो यस्य। (त्रि०) ३ समुद्रान्तविशिष्ट।
समुद्रान्ता (सं० स्त्री०) समुद्रान्त-अच्-टाप्। १ दुरालभा। २ कार्पासी। ३ पृक्का। ४ जवासा।
समुद्राभिसारिणी (सं० स्त्री०) समुद्रदेवकी अनुचारिणी देवबाला, वह कल्पित देवबाला जो समुद्रदेवकी सहचरी मानी जाती है।
समुद्राम्बरा (सं० स्त्री०) समुद्रः अम्बरमिव यस्याः। पृथिवी।
समुद्रायण (सं० त्रि०) समुद्रमें जानेवाली।
समुद्रायणा (सं० स्त्री०) नदी, दरिया।
समुद्रारु (सं० पु०) समुद्रं ऋच्छतीति ऋ-उन्। १ कुम्भीर नामक जलजन्तु। २ सेतुबन्ध। ३ तिमिंगिल नामकी मछली।
समुद्रार्थ (सं० त्रि०) समुद्र ही जिनका एकमात्र गन्तव्य है। (ऋक् ७।४६।२)
समुद्रार्था (सं० स्त्री०) नदी। नदियोंका एकमात्र गन्तव्य स्थान समुद्र है, इसीसे यह नाम पड़ा है।
समुद्रावरण (सं० त्रि०) सागरसमाच्छादित।
समुद्रावरणा (सं० स्त्री०) पृथ्वी।
समुद्रिय (सं० त्रि०) समुद्रे भवः इति समुद्र (समुद्राभ्राद्घः। पा ४।४।११८) इति घ। १ समुद्रभव। २ समुद्रसम्बन्धी, समुद्रका। (शुक्लयजुः ११।४६)
समुद्रीय (सं० त्रि०) समुद्र-णीय। समुद्रसंबन्धी।
समुद्रेक (सं० पु०) सम्-उत्-रिच-घञ्। सम्यक् प्रकारसे उद्रेक।
समुद्रोन्मादन (सं० पु०) स्कन्दानुचरभेद।
समुद्वह (सं० त्रि०) सम्-उत्-वह-क। १ श्रेष्ठ, उत्तम, बढ़िया। २ वहनकारी, ढोनेवाला।
समुद्वाह (सं० पु०) सम्-उत्-वह घञ्। १ सम्यक् प्रकारसे वहन, अच्छी तरह ढोना। २ विवाह, शादी।
समुद्वेग (सं० पु०) सम् उत्-विज घञ। सम्यक् उद्वेग, बड़ी उत्कंठा।
समुन्दन (सं० क्ली०) सम्-उन्द-ल्युट्। आर्द्रीभाव, आर्द्रता, भींगा। पर्याय—तेम, स्तेम।
समुन्न (सं० त्रि०) सम्-उन्द-क्त। आर्द्र, जलसिक्त।
समुन्नत (सं० त्रि०) सम-उत्-नम-क्त। १ सम्यक् उन्नत, जिसकी यथेष्ट उन्नति हुई हो। २ अति उन्नत, बहुत ऊंचा। (पु०) ३ वास्तुविद्याके अनुसार एक प्रकारका स्तम्भ या खंभा।
समुन्नति (सं० स्त्री०) सम्-उत्-नम-क्तिन्। १ सम्यक् उन्नति, काफी तरक्की। २ महत्त्व, बड़ाई। ३ उच्चता, ऊंचाई।
समुन्नद (सं० पु०) राक्षसभेद।
समुन्नद्ध (सं० त्रि०) सम्-उत्-नह-क्त। १ पण्डित, जो अपनेको आप बड़ा पण्डित समझता हो। २ गर्वित, अभिमानी। ३ समुद्भूत, जात, उत्पन्न। ४ ऊर्द्ध्वोद्बद्ध, ऊपरकी ओर उठाया या बंधा हुआ। (पु०) ५ प्रभु, स्वामी, मालिक।
समुन्नमन (सं० क्ली०) ऊपरकी ओर उठाने या ले जानेकी क्रिया।
समुन्नय (सं० पु०) सम्-उत्-नी अप्। समुन्नयम।
समुन्नयन (सं० क्ली०) सम्-उत्-नी-ल्युट्। १ ऊपरकी ओर उठाने या ले जानेकी क्रिया। २ उद्भावन। ३ लाभ, प्राप्ति।
समुन्नस (सं० त्रि०) ऊर्द्ध्वनासिकाविशिष्ट, जिसकी नाक ऊपर उठी हो।

समुन्नाद (सं० पु०) अनुक्रमिक चित्कार, समूह शब्द।

समुन्नाह (सं० पु०) सम्-उत्-नह-घञ्। उच्छ्राय, ऊंचाई।

समुन्नेय (सं० त्रि०) १ अभिव्यक्तियोग्य, प्रकट करने लायक। २ जो सम्यक् आयत्तमें लाया जाय, जो अच्छी तरह काबूमें किया जाय।

समुन्मुख (सं० त्रि०) उन्मुख।

समुन्मिश्र (सं० त्रि०) उन्मिश्र, मिला हुआ।

समुन्मूलन (सं० क्ली०) सम्यक् रूपसे उन्मूलन, नाश, बरबादी।

समुपक्रम (सं० पु०) सम्-उप-क्रम-अप्। सम्यक् उपक्रम, आरम्भ।

समुपगन्तव्य (सं० त्रि०) गमनकर्त्तव्य, जानेयोग्य।

समुपचार (सं० पु०) सम्-उप-चर-घञ्। सम्यक् उपचार, पूजा।

समुपचित (सं० त्रि०) सम्-उप-चि-क्त। १ वृद्धिप्राप्त, बढ़ाया हुआ। २ गृहीत, लिया हुआ।

समुपच्छाद (सं० पु०) सम्-उप-छद-घञ्। सम्यक् आच्छादन, बिलकुल ढका हुआ।

समुपजोषम् (सं० अव्य०) सम्-उप-जुष-अम्। १ आनन्दपूर्वक। २ भाग्यक्रमसे, सौभाग्यवशतः। यह शब्द तालव्य शकार भी होता है।

समुपधान (सं० क्ली०) १ उत्पादन, जनन। २ स्थापन, रखना।

समुपभोग (सं० पु०) सम्-उप-भुज-घञ्। सम्यक् उपभोग।

समुपवेश (सं० पु०) १ अभ्यर्थना, आदर-सत्कार। २ बैठानेकी क्रिया।

समुपवेशन (सं० क्ली०) सम्-उप-विश-ल्युट्। १ अच्छी तरह बैठानेकी क्रिया। २ अभ्यर्थना।

समुपस्तम्भ (सं० पु०) संक्षेप करनेकी क्रिया।

समुपस्था (सं० स्त्री०) सम्-उप-स्था-अङ्। १ नैकट्य, समीपता। २ घटना।

समुपह्वव (सं० पु०) होमादिके द्वारा देवादिको आमन्त्रण करना।

समुपहर (सं० पु०) १ लुका चोरीकी तरह एक प्रकारका खेल। २ गुप्तस्थान। ३ छिपानेका स्थान।

समुपानयन (सं० क्ली०) सम्-उप-आ-नी-ल्युट्। सम्यक् रूपसे उपानयन।

समुपाभिच्छाद (सं० पु०) समुपच्छाद।

समुपार्जन (सं० क्ली०) सम्-उप-अर्ज-ल्युट्। सम्यक् उपार्जन। (मनु ७।१५२)

समुपालम्भ (सं० पु०) सम्-उप-आ-लम्भ-घञ्। १ सम्यक् उपालम्भ, तिरस्कार। २ सरोषवाक्य, क्रोधयुक्त वचन।

समुपेक्षक (सं० त्रि०) समुपेक्षाकारी, उपेक्षा करनेवाला। जो ब्राह्मण दीन दुःखियोंकी उपेक्षा करता है उसकी तपस्या विनष्ट होती है।

समुपेत (सं० त्रि०) सम्-उप-इण-क्त। समागत, आया हुआ।

समुपेयिवस् (सं० त्रि०) सम्-उप-इण-क्वसु। १ गमनकर्त्ता, गमनविशिष्ट। २ उपस्थित। ३ प्राप्त।

समुपेप्सु (सं० त्रि०) सम्-प्राप्तुमिच्छुः सम्-उप-आपसन्-उ। सम्यक् प्रकारसे पानेमें इच्छुक।

समुपोढ़ (सं० त्रि०) सम्-उप-वह-क्त। १ समासन्न। २ सङ्कृत। ३ सञ्जात। ४ समुदित। ५ शान्त, दबा रखना।

समुपोषक (सं० त्रि०) सम्यक् रूपसे उपवासकारी।

समुल्लसत् (सं० त्रि०) सम्-उत्-लस-शतृ। १ सम्यक् उल्लासयुक्त, आनन्दित। २ दीप्तिविशिष्ट, चमकता हुआ।

समुल्लसित (सं० त्रि०) सम्-उत्-लस-क्त। १ उल्लासयुक्त, आनन्दित। २ शोभित। ३ क्रीड़ाशील।

समुल्लास (सं० पु०) सम्-उत्-लस-घञ्। १ सम्यक् उल्लास, आनन्द, प्रसन्नता, खुशी। ५ ग्रन्थ आदिका प्रकरण या परिच्छेद।

समुल्लासिन् (सं० त्रि०) सम्-उत्-लस-णिनि। हर्षविशिष्ट, आनन्दित।

समुल्लिखत् (सं० त्रि०) सम्-उत्-लिख-शतृ। पादादि द्वारा भूमिखननकर्त्ता, पैरोंसे जमीन कोड़नेवाला।

समुल्लेख (सं० पु०) सम्-उत्-लिख-घञ्। समुल्लेखन।

समुल्लेखन (सं० क्ली०) सम्-उत्-लिख-ल्युट्। १ सम्यक्रूपसे उल्लेख, कथन। २ खनन, खोदना। ३ कुन्दन, खालिस सोना। ४ छिलना।

समुल्वण (सं० त्रि०) १ सम्यक् उल्वण, विलक्षण। २ पुष्ट देह, तगड़ा शरीर।

समुष्ण (सं० त्रि०) १ सम्यक् उष्ण, खूब गरम। २ दीप्तिशील, चमकता हुआ।

समुष्फल (सं० त्रि०) सम्यक् उत्तफल।

समुह्यपुरीष (सं० पु०) अग्नि, आग।

समूढ़ (सं० त्रि०) सम्-वह क्त। १ पुञ्जित, ढेर लगाया हुआ। २ धृत, पकड़ा हुआ। ३ सञ्चित, एकत्र किया हुआ। ४ भुक्त, भोगा हुआ। ५ विवाहित, जिसका विवाह हो चुका हो। ६ परिष्कृत, साफ किया हुआ। ७ शोधित, संशोधन किया हुआ। ८ सद्योजात, जो अभी उत्पन्न हुआ हो। ९ दमित, दमन किया हुआ। १० अनुपद्रुत। ११ सङ्गत, ठीक। १२ मूढ़, बेवकूफ।

समूर (सं० पु०) मृगभेद, शंवर या साबर नामक हिरन।

समूरु (सं० पु०) समूर देखो।

समूल (सं० त्रि०, मूलेन सह वर्त्तमान। १ मूलके साथ, मूलयुक्त, जड़वाला। २ कारणविशिष्ट, जिसका कोई हेतु हो। (क्रि० वि०) ३ मूल सहित, जड़से।

समूलक (सं० त्रि०) समूल-स्वार्थे-कन्। समूल, मूलके साथ।

समूलकाष (सं० अव्य०) समूलं कषति (निमूलसमूलयोः कषः। पा ३।४।३४) इति नमुल्। मूलके साथ हनन, जड़से उखाड़ डालना। "अविद्यादयः पञ्चक्लेशाः समूलकाषं कषिता भवन्ति" (सर्वदर्शनस०) इस शब्दके बाद कष धातुका अनुप्रयोग होता है।

समूलघाति (सं० अव्य०) समूलं हन्ति समूल-हन (समूलाकृतजीवेषु हन् कृञ् ग्रहः। पा ३।४।३६) णमुल्। मूलके साथ हननकारी, जड़से नाश करनेवाला।

समूह (सं० पु०) समूह्यते इति सम्-ऊह-घञ्। १ समुदाय, झुंड, गरोह। २ एक ही तरहकी बहुत-सी चीजोंका ढेर, राशि।

समूहक (सं० पु०) समूह-स्वार्थे-कन्। समूह देखो।

समूहगन्ध (सं० पु०) गन्धराज, मोतिया नामक फूल।

समूहन (सं० त्रि०) १ समाहरणकारी, नाश करनेवाला। २ उत्सारण। ३ समूह तर्क।

समूहनी (सं० स्त्री०) समूह्यतेऽनयेति सम्-ऊह-ल्युट्, स्त्रियां ङीष्। सम्मार्जनी, झाड़ू।

समूह्य (सं० पु०) समूह्यते इति सम्-ऊह-ण्यत्। १ यज्ञाग्नि, पर्याय—परिचार्य्य, उपचार्य्य। (त्रि०) २ सम्यक् ऊहयोग्य, तर्क करनेके लायक, ऊहा करनेके योग्य।

समृजीक (सं० त्रि०) सत्त्वशुद्धिविशिष्ट। मृजीका शब्दका अर्थ सत्त्वशुद्धि है, उसके उद्देशसे उसके लिये किये जानेवाले कार्य्यको समृजीक कहते हैं।

समृत (सं० त्रि०) सम-ऋ-क्त। संप्राप्त।

समृति (सं० स्त्री०) सम् ऋ-क्तिन्। संप्राप्ति।

समृद्ध (सं० त्रि०) सम्-ऋधु वृद्धौ क्त। १ समृद्धियुक्त, जिसके पास बहुत अधिक संपत्ति हो, धनवान्। २ उत्पन्न, जात। (पु०) ३ महाभारतके अनुसार एक नागका नाम।

समृद्धि (सं० स्त्री०) सम्-ऋध-क्तिन्। १ सम्यक् वृद्धि, अतिशय सम्पत्ति, ऐश्वर्य्य, अमीरी। पर्याय—ऋधा, विधा, सम्पत्ति, ऐश्वर्य्य, उन्नत्ति, वृद्धि, श्रेयः, मङ्गल। २ कृतकार्य्यता, सफलता। ३ प्रभाव, आधिपत्य।

समृद्धिन् (सं० त्रि०) वर्द्धनशील, जो बराबर अपनी समृद्धि बढ़ाता रहता हो।

समृद्धिमत् (सं० त्रि०) समृद्धि अस्त्यर्थे मतुप्। समृद्धिविशिष्ट।

समृध् (सं० त्रि०) सम् ऋध-क्विप्। समृद्ध, समृद्धिविशिष्ट।

समृध (सं० त्रि०) सम्-ऋध-क। समृद्ध।

समेटना (हिं० क्रि०) १ बिखरी हुई चीजोंको इकट्ठा करना। २ अपने ऊपर लेना।

समेड़ी (सं० स्त्री०) स्कन्दमातृभेद। (भारत ९ प०)

समेत (सं० त्रि०) सम्-आ-इण-क्त। १ सम्यक् प्राप्त। २ संयुक्त, मिला हुआ। (अव्य०) ३ सहित, साथ। (पु०) ४ पुराणानुसार एक पर्वतका नाम।

समेतम् (सं० अव्य०) युक्तभावमें।

समेद्धृ (सं० त्रि०) सम्-इध-तृच्। प्रबोधक।

समेध (सं० त्रि०) १ यज्ञयोग्य, हविर्भागयुक्त (ऐतरे ब्रा ३।८) (पु०) २ मेरुके अन्तर्गत एक पर्वतका नाम।

समेधन (सं० क्ली०) सम्-एध ल्युट्। सम्यक् वर्द्धन, अतिशय वर्द्धन।

समेधित (सं० त्रि०) सम्-एध-क्त। सम्यक् वर्द्धित।

समेश्वरी (सोमेश्वरी)—आसाम प्रदेशके गारोहिल विभागमें प्रवाहित एक नदी। उस देशके वासिन्दे इसे समसांग कहते हैं। तुरा शैलमालाके तुरा नामक एक बड़े गाँवके पाससे निकल कर यह क्रमशः उक्त पर्वतके उत्तरसे होती हुई पूर्वकी ओर बह चली है। वहांसे दक्षिणाभिमुखी हो कर बंगालके मैमनसिंह जिलेके समतल प्रान्तर होती हुई अन्तमें सुसङ्ग परगनेकी कंस नदीमें आ मिली है।

गारो पहाड़ी प्रदेशकी यह एक प्रधान नदी है। उक्त पहाड़ी प्रदेशमें इस नदी वक्षसे प्रायः २० मील तक पण्यद्रव्य ले कर जाया जाता है। सिजू नामक स्थानसे उत्तर दानेदार पत्थरका पहाड़ रहनेसे नदीकी धारा थोड़ी रुक सी गई है, इस कारण यहां कितना तीव्र प्रवाह देखा जाता है। इस प्रपातके तीव्र होनेसे नीचेसे नावें ऊपरको नहीं उठ सकतीं। उसके उत्तरदेशके अधिवासी छोटी छोटी नावें ले कर यातायात करते हैं। समेश्वरी उपत्यकाके जिस स्थानमें यह नदी दानेदार पत्थरसे हो कर बह चली गई, वहां बहुत-सी कोयलेकी खान हैं। नदीके दोनों किनारे जगह जगह पर चून पत्थरका स्तर भी देख पड़ता है। इन सब स्तरोंमें बहुतेरी गुफायें हैं। कोई कोई गुफा तो ऐसी कौतुकावह हैं, कि परिदर्शकगण उसे देख विस्मित हो जाते हैं। जहांसे यह नदी निकलती है, उसके निकट इसका दृश्य परम रमणीय है। इस नदीमें बड़ी बड़ी मछलियां होती हैं जिसे गारो लोग पकड़ते और खाते हैं।

समोकस (सं० त्रि०) सम्-समानं ओकः वासस्थानं यस्य। समान निवास, समान वासयुक्त।

समोद—राजपूतानेके जयपुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। समोद जमींदारीमें यह एक वाणिज्य-प्रधान स्थान है। नगर खूब समृद्धिशाली है। जयपुरराजके अधीन प्रधान सामन्तोंमें यहांके ठाकुर एक हैं। राठोर राजदरबारमें समोद-पतियोंका यथेष्ट सम्मान था तथा वे लोग सच्चे राजपूत वीर कहलाते थे। अभी जिस शैलपादमूलमें समोद नगर अवस्थित है, उस शैलशृङ्ग पर एक दुर्ग बना कर समोदपतिने अपने देश और बलकी रक्षा की थी।

समोदक (सं० क्ली०) समं उदकं यत्र। १ मथिताद्धाम्बुदधि, वह मट्ठा जिसमें आधा जल रहता है। पर्याय—उदश्वित्। (त्रि०) २ समान उदकविशिष्ट, जिसमें बराबर जल हो।

समोह (सं० पु०) १ संग्राम, युद्ध, लड़ाई। (त्रि०) २ मोहके साथ वर्त्तमान, मोहयुक्त, मोहविशिष्ट।

सम्प (सं० पु०) पतन, गिरना।

सम्पक्व (सं० त्रि०) सम्-पच-क्त। पक्व, जो अच्छी तरह पकाया गया हो।

सम्पत्ति (सं० स्त्री०) सम्-पद-क्तिन्। १ विभवोत्कर्ष। पर्याय—श्री, लक्ष्मी, सम्पद्, ऋद्धि, भूति, धन, ऐश्वर्य। २ शोभा। ३ गुणोत्कर्ष। ४ गौरव। ५ अधिकता, बहुतायत। ६ प्राप्ति, लाभ। ७ सफलता, पूर्णता।

सम्पत्तिक (सं० त्रि०) सम्पत्तिविशिष्ट, धनवान्।

सम्पत्तोय (सं० पु०) पितरोंको जल देनेका एक भेद।

सम्पत्प्रद (सं० त्रि०) सम्पत् प्रददातीति प्र-दा-क। सम्पत्ति प्रदानकारी, जायदाद दान करनेवाला।

सम्पत्प्रदाभैरवी (सं० स्त्री०) भैरवीविशेष। इस भैरवीको उपासना कर सिद्धलाभ करनेसे सम्पद् लाभ होती है। इसीसे इसका नाम सम्पत्प्रदा भैरवी हुआ है। इस भैरवीकी पूजा त्रिपुराभैरवीको तरह करनी होती है। केवल मन्त्रमें प्रभेद है। त्रिपुराभैरवीके जो पीठ पूजनादि कहे गये हैं, उसीके अनुसार पूजा करे। इनका ध्यान इस प्रकार है—

"आताम्रार्कसहस्राभां स्फुरच्चन्द्रकलाजटां।
किरीटरत्नविलसच्चित्रचित्रितमौक्तिकां॥
स्रवद्रुधिरपङ्काढ्यमुण्डमालाविराजितां।
नयनत्रयशोभाढ्यां पूर्णेन्दुवदनान्वितां॥
मुक्ताहाररत्नताराजत् पीनोन्नतघटस्तनीं।
रक्ताम्बरपरीधानां यौवनोन्मत्तरूपिणीं॥
पुस्तकञ्चाभयं वामे दक्षिणे चाक्षमालिकां।
वरदानप्रदां नित्यां महासम्पत्प्रदां स्मरेत्॥" (तन्त्रसार)

इस ध्यानसे देवीकी पूजा करे, त्रिपुराभैरवीकी पूजाके साथ केवल अङ्गन्यासमें कुछ प्रभेद है। इस भैरवी मन्त्रका पुरश्चरण तीन लाख जप और जपका दशांश

होम होता है। दूसरे तन्त्रमें लिखा है, कि एक लाख जपसे भी यह मन्त्र पुरश्चरण हो सकता है।

विशेष विवरण तन्त्रसार शब्दमें देखो।

सम्पद् (सं० स्त्री०) सम्-पद्-क्विप्। १ सम्पत्ति, जायदाद। २ सिद्धि, पूर्णता। ३ ऐश्वर्य, वैभव, गौरव। ४ सौभाग्य, अच्छे दिन। ५ प्राप्ति, लाभ, फायदा। ६ अधिकता, बहुतायत। ७ मोतियोंका हार। ८ वृद्धि नामकी ओषधि।

सम्पद (सं० क्ली०) सम्यक्पदं यत्र। समपदयुग, दोनों पैर जोड़ कर खड़ा होना।

सम्पदा (हिं० स्त्री०) १ धन, दौलत। २ ऐश्वर्य, वैभव।

सम्पदी (सं० पु०) बौद्ध सम्राट् अशोकके एक पुत्रका नाम।

सम्पद्वर (सं० पु०) सम्-पद्-ष्वरच्। राजा, नरपति।

सम्पद्वसु (सं० पु०) सूर्यरश्मिभेद। (विष्णुपु०)

सम्पद्विपद (सं० क्ली०) सम्पदां विपदां समाहारः (द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारो। पा ५।४।१०६) इति समाहारे टच्, क्लीवत्वं। सम्पद् और विपद्का समाहार, सम्पद् और विपद्का एकत्र मिलन।

सम्पन्न (सं० त्रि०) सम्-पद्-क्त। १ साधित, पूरा किया हुआ। (पञ्चदशी ८।८१) पर्याय—समग्र, सम्पूर्ण, निष्पन्न, सम्पादित। २ सहित, युक्त, भरा पूरा। ३ सम्पत्तियुक्त, दौलतमन्द। ४ जिसे कुछ कमी न हो, धन धान्यसे पूर्ण, खुशहाल। (पु०) ५ सुस्वादु भोजन, व्यञ्जन।

सम्पन्नक्रम (सं० पु०) बौद्ध-समाधिभेद। (तारनाथ)

सम्पन्नक्रम (सं० पु०) एक प्रकारकी समाधि।

सम्पन्नता (सं० स्त्री०) सम्पन्नस्य भावः तल्-टाप्। सम्पन्नका भाव या धर्म, सम्पूर्णता।

सम्पर (सं० स्त्री०) परवर्त्तीकाल। (पा ४।२।८०)

सम्पराय (सं० पु०) सम्यक् परे काले ईयते इति इण-घञ्। १ आपत्, दुर्दिन। २ युद्ध, समर। ३ उत्तरकाल, भविष्य। ४ सन्तान। ५ मृत्यु, मौत। ६ अनादि कालसे स्थिति।

सम्परायक (सं० क्ली०) युद्ध, समर, लड़ाई।

सम्परायिक (सं० क्ली०) युद्ध, समर, लड़ाई।

सम्परिग्रह (सं० पु०) सम्-परि ग्रह-अच्। १ सम्यक् रूपसे परिग्रह, स्वीकार। २ विवाह, शादी।

सम्परिपालन (सं० क्ली०) सम-परि-पालि-ल्युट्। सम्यक् रूपसे परिपालन।

सम्परिप्रेप्सु (सं० त्रि०) परिदर्शनेच्छुक, देखनेका अभिलाषी।

सम्परिमार्गन (सं० क्ली०) अन्वेषण, तलाश।

सम्परिशोषण (सं० क्ली०) सम्यक् शोषण, क्षय, लोप।

सम्परीय (सं० त्रि०) सम्पर सम्बन्धीय।

सम्पर्क (सं० पु०) सम्-पृच-घञ्। १ मिश्रण, मिलावट। २ संयोग, मिलाप, मेल। ३ संसर्ग, वास्ता, लगाव। ४ मैथुन, रति। ५ स्पर्श, सटना। ६ योग, जोड़।

सम्पर्किन् (सं० त्रि०) सम्-पृच-सम्पर्क (सम्पृचेति। पा ३।२।१४२) इति घिनुण् वा सम्पर्क, अस्त्यर्थे इन्। संपर्कविशिष्ट, संपर्कयुक्त।

सम्पर्कीय (सं० त्रि०) १ सम्पर्कयुक्त। २ संपर्क संबन्धीय।

सम्पर्यासन (सं० क्ली०) सम्यक् परिवर्त्तन।

सम्पवन (सं० क्ली०) पूतकरण, पवित्र करना।

सम्पा (सं० स्त्री०) सम्पततीति सम् पत-उ, टाप्। क्षणप्रभा, विद्युत्, बिजली।

सम्पाक (सं० पु०) सम्यक् पाको यस्य। १ आरग्वध वृक्ष, अमलतास। २ सम्यक् परिपक्व, अच्छी तरह पकना। ३ तर्क करनेवाला। (त्रि०) ४ धृष्ट। ५ लम्पट। ६ अल्प। ७ तर्ककारी।

सम्पाचन (सं० क्ली०) सम्यक् पक्व, अच्छी तरह पकना।

सम्पाट (सं० पु०) १ तर्का, तकला। २ किसी त्रिभुजकी बढ़ी हुई भुजा पर लंबका गिरना।

सम्पाठ्य (सं० त्रि०) सम-पठ-ण्यत्। सम्यक् रूपसे पाठनके योग्य, पढ़ने लायक।

सम्पात (सं० पु०) सम्-पत-घञ्। १ एक साथ गिरना या पड़ना। २ गमन, जाना। ३ प्रवेश, पहुंच। ४ समूह, ढेर। ५ पक्षियोंकी गतिविशेष। ६ संसर्ग, मेल। ७ संगम, समागम। ८ संगमस्थान, मिलनेकी

जगह। ९ वह स्थान जहां एक रेखा दूसरी पर पड़े या मिले। १० कुदान, उड़ान। ११ युद्धका एक भेद। १२ घटित होना, होना। १३ द्रव पदार्थके नीचे बैठी हुई वस्तु, तलछट। १४ अवशिष्ट अंश, व्यवहारसे बचा हुआ भाग।

सम्पातवत् (सं० लि०) प्रस्तुत, तैयार।

सम्पाति (सं० पु०) १ अरुण पुत्र, पक्षिविशेष, जटायुका बड़ा भाई। अरुणके दो पुत्र थे, सम्पाति और जटायु। अरुणकी पत्नीका नाम श्येनी था। इस श्येनीके गर्भसे महाबलिष्ठ दो पुत्र उत्पन्न हुए, बड़ा सम्पाति और छोटा जटायु। ये दोनों पक्षी चिरजीवी थे। सूर्यकी किरणसे इनके पर जल गये। रामायणमें लिखा है, कि पुरा कालमें इन्द्र द्वारा वृत्रासुर मारे जाने पर सम्पाति और जटायु इन्द्रको जीतनेके लिये सुरपुरमें गये। वहां वे युद्ध करते करते सूर्यके सामने आ गये। जटायु सूर्यकी प्रखर किरण सह न सकनेके कारण छटपटाने लगा। इस पर सम्पातिने जटायुको विह्वल देख अपने डैनेसे उसे ढंक दिया। सम्पाति भी दग्धपक्ष हो विन्ध्य पर आ गिरा।

वानरगण जब सीताकी तलाशमें निकले, तब उन्होंने रावण कर्तृक सीताहरणका वृत्तान्त सम्पातिसे ही सुना था। रामायणके किष्किन्धाकाण्डमें ५६ सर्गसे ६२ सर्ग तक इसका विवरण आया है।

जटायुस् शब्द देखो।

सम्पातिक (सं० पु०) सम्पाति स्वार्थे कन्। गरुड़का बड़ा भाई।

सम्पातिन् (सं० लि०) सम्-पत-णिनि। सम्यक् पतनशील, एक साथ कूदने या झपटनेवाला।

सम्पाद (सं० पु०) सम्-पद-घञ्। सम्यक् निष्पादन, अच्छी तरह करना।

सम्पादक (सं० लि०) सम्पादयति सम्-पद-णिच्-ण्वुल्। १ सम्पन्न करनेवाला, कोई काम पूरा करनेवाला। २ प्रस्तुत करनेवाला, तैयार करनेवाला। ३ प्रदान करनेवाला, लाभ करनेवाला। ४ किसी समाचारपत्र या पुस्तकको क्रम आदि लगा कर निकालनेवाला, एडीटर।

सम्पादकत्व (सं० पु०) सम्पादन करनेका भाव या अवस्था।

सम्पादकीय (सं० लि०) सम्पादक-संबंधी, सम्पादकका।

सम्पादन (सं० क्ली०) सम्-पद-णिच्-ल्युट्। १ निष्पादन, किसी कामको पूरा करना। २ प्रस्तुत करना। ३ उपार्जन, हासिल करना। ४ ठीक करना, दुरुस्त करना। ५ किसी पुस्तक या संवादपत्र आदिका क्रम, पाठ आदि लगा कर प्रकाशित करना।

सम्पादनीय (सं० लि०) सम्-पादि-अनीयर्। सम्पादनके योग्य, सम्पादनके लायक।

सम्पादयितृ (सं० लि०) सम्-पादि-तृच्। सम्पादनकारी, संपादन करनेवाला।

सम्पादित (सं० लि०) सम्-पादि-क्त। १ निष्पादित, पूर्ण किया हुआ। २ प्रस्तुत, तैयार। ३ क्रम, पाठ आदि लगा कर ठीक किया हुआ।

सम्पादिन् (सं० लि०) १ संपादनकारी, संपादन करनेवाला। २ शोभाविशिष्ट, शोभासम्पन्न।

सम्पाद्य (सं० लि०) सम्-पादि-यत्। १ संपादन करनेके योग्य। २ जिस प्रतिज्ञामें कोई क्रियासाधन उद्देश रहे। ज्यामिति शास्त्रकी उद्देशसाधक प्रतिज्ञा (Problem) कहलाती है।

सम्पार (सं० पु०) राजभेद, समरके पुत्र और पारके भाई। (विष्णुपु० ४।१९।१२)

सम्पारण (सं० लि०) सम्यक् पूरक, पूरा करनेवाला।

सम्पारिन् (सं० लि०) गवामयनयज्ञका सम्यक् पारनयनशील। (ऐतरेयब्रा० ४।१३)

सम्पावन (सं० क्ली०) सम्यक् पवित्र।

सम्पवैयश्व (सं० क्ली०) सामभेद।

सम्पिण्डित (सं० लि०) सम्यक् पिण्डीकृत, एकत्र, मिलित, युक्त।

सम्पित (हिं० पु०) एक प्रकारका बांस जिसका टोकरा बनता है। यह खसिया पहाड़ियोंमें होता है।

सम्पिधान (सं० क्ली०) सम्-अपि-धा-ल्युट्। सम्यक् विधान, आच्छादन।

सम्पिब-(सं० लि०) सम्यक् पाता।

सम्पीड़ (सं० पु०) सम्-पीड़-अच्। संपीड़न, अत्यन्त पीड़ा, बहुत तकलीफ।

सम्पीड़न (सं० क्ली०) सम्-पीड़-ल्युट्। १ अतिशय निपीड़न, खूब पीड़ा देना। २ खूब दबाना या निचोड़ना। ३ शब्दोच्चारणका एक दोष। ४ प्रेरण।

सम्पीति (सं० स्त्री०) सम्-पा पाने क्तिन्। सम्यक् पान, हदसे ज्यादा पीना।

सम्पुट (सं० पु०) सम्-पुट-क। १ कुरुवक वृक्ष, कटसरैयाका पेड़। २ पात्रके आकारकी वस्तु, कटोरे या दोनेकी तरह चीज जिसमें कुछ भरनेके लिये खाली जगह हो। ३ एकजातीय उभयमध्यवर्त्ती, एक जातिके पदार्थमें भिन्न पदार्थकी सम्यक् व्याप्ति। तन्त्रसारमें लिखा है, कि जो सकाम व्यक्ति हैं उन्हें मन्त्रसम्पुट करके जप तथा निष्कामोंको विना सम्पुटके जप करना चाहिये।

"सकामः सम्पुटो जप्यो निष्कामः सम्पुटं विना।" (तन्त्रसार) चण्डीपाठस्थलमें सम्पुट करके पाठ करनेसे विशेष फल होता है। चण्डीपाठ करनेके समय एक एक श्लोक पढ़ना होगा और जिस मन्त्र द्वारा सम्पुट होगा वह पहले और पीछे पाठ करना होता है।

४ रतिबन्धविशेष। इसका लक्षण—

"सम्प्रसार्योभयो पादौ शय्यागतकपोलकः।
भगलिङ्गस्य संयोगात् रमते सम्पुटो हि सः॥" (रतिम०)

५ खप्पर, ठीकरा, कपाल। ६ दोना। ७ ढक्कनदार पिटारी या डिबिया, डिब्बा। ८ अंजली। ९ फूलके दलोंका ऐसा समूह जिसके बीच खाली जगह हो, कोश। १० कपड़े और गीली मिट्टीसे लपेटा हुआ वह बरतन जिसके भीतर कोई रस या ओषधि फूंकते हैं। ११ हिसाबमें बाकी या उधार।

सम्पुटक (सं० पु०) सम्पुट्यते इति संपुट-क्वन्। आधारविशेष। पर्याय—समुद्गक, समुद्ग, सम्पुट।

सम्पुटी (सं० स्त्री०) छोटी कटोरी या तश्तरी जिसमें पूजनके लिये पिसा हुआ चन्दन अक्षत आदि रखते हैं।

सम्पुष्टि (सं० स्त्री०) सम्-पुष-क्तिन्। सम्यक् पुष्टि, पोषण।

सम्पूजन (सं० क्ली०) सम्-पूजि-ल्युट्। सम्यक् पूजा, अतिशय पूजन।

सम्पूजा (सं० स्त्री०) सम्-पूज-अङ्-टाप्। सम्यक् पूजा।

सम्पूजित (सं० त्रि०) सम्-पूज-क्त। १ विशेषरूपसे पूजित, अत्यन्त सम्मानित। (पु०) २ बुद्ध।

सम्पूज्य (सं० त्रि०) सम्-पूज-ण्यत्। १ सम्यक् पूजनीय, पूजाके योग्य। २ सम्मानार्ह, आदरसत्कारके लायक।

सम्पूर्ण (सं० त्रि०) सम्-पृ-क्त। १ खूब भरा हुआ। २ सब, बिलकुल। यज्ञ, पूजा और होम आदिमें यदि अज्ञान, मोह आदि कारणोंसे असम्पूर्णता हो, तो अन्तमें भगवान् विष्णुका नाम लेनेसे सम्पूर्ण होता है। ३ पूर्णरूपसे युक्त। (पु०) ४ वह राग जिसमें सातों स्वर लगते हों। सम्पूर्ण स्वर—सा, ऋ, ग, म, प, ध, नि।

सम्पूर्णकालीन (सं० त्रि०) सम्पूर्णकालभव, पूरे समयमें होनेवाला।

सम्पूर्णतया (सं० क्रि० वि०) पूरी तरहसे, भलीभांति।

सम्पूर्णता (सं० स्त्री०) सम्पूर्णस्य भावः तल्-टाप्। सम्पूर्णका भाव या धर्म, समाप्ति।

सम्पूर्णमूर्च्छा (सं० स्त्री०) १ पूर्णरूप मूर्च्छा, बेहोशी। २ मृत्यु, मौत। रणक्षेत्रमें निहत सेनाओंको मूर्च्छा और सम्पूर्णमूर्च्छा होती है। मूर्च्छा दूर होनेसे ज्ञान होता है, किन्तु सम्पूर्ण मूर्च्छामें वैसा नहीं होता।

सम्पूर्णा (सं० स्त्री०) सम्पूर्ण-टाप्। एकादशीविशेष। एकादशी यदि सूर्योदय कालमें पूर्व दो मुहूर्त्त तक हो, तो उसे सम्पूर्णा कहते हैं। इसको अन्यथा होनेसे वह विद्धा कहलाती है।

"आदित्योदयवेलायाः प्राङ्मुहूर्त्तद्वयान्विता।
सैकादशी हि सम्पूर्णा विद्धान्या परिकीर्त्तिता॥"
(तिथितत्त्व)

सम्पूर्त्ति (सं० स्त्री०) सम्-पृ-क्तिन्। सम्यक् पूरण, एकदम पूरा।

सम्पृक्त (सं० त्रि०) सम्-पृ-क्त। १ मिश्रित, मिला हुआ। पर्याय—करम्ब, कबर, मिश्र, खचित। (हेम) २ संसर्गमें आया हुआ, छूआ हुआ। ३ मेलमें आया हुआ।

सम्पृच् (सं० त्रि०) सम्पृक्त, मिला हुआ।

सम्पृण (सं० त्रि०) पूर्णतायुक्त, जो पूरा किया गया हो।

सम्पेष (सं० पु०) सम्-पिष-घञ्। सम्पेषण, चूर्ण।

सम्प्रकाशक (सं० त्रि०) सम्प्रकाशयतीति सम्-प्र-काशि-

ण्वुल्। सम्यक् रूप प्रकाशकारी, अच्छी तरह जाहिर कर देनेवाला।

सम्प्रकाशन (सं० क्ली०) सम्-प्र-काशि-ल्युट्। १ सम्यक् प्रकाश। २ सम्यक् विकाश।

सम्प्रकाश्य (सं० त्रि०) सम्-प्र-काशि-यत्। सम्यक् प्रकाशके योग्य, सम्यक प्रकाशके लायक।

सम्प्रक्षाल (सं० पु०) सम्-प्र-क्षालि-अच। १ सम्यक् प्रक्षालन, पूर्णविधिसे स्नान करनेवाला। २ एक प्रकारके यति या साधु। ३ प्रजापतिके पैर धोए हुए जलसे उत्पन्न एक ऋषि।

सम्प्रक्षालन (सं० क्ली०) सम्-प्र-क्षालि-ल्युट्। १ सम्यक् रूपसे प्रक्षालन, अच्छी तरह धोना। २ पूर्ण स्नान। ३ जल-प्रलय।

सम्प्रक्षालनी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी जीविका या वृत्ति।

सम्प्रज्ञात (सं० पु०) योगमें समाधिके दो प्रधान भेदोंमेंसे एक, वह समाधि जिसमें आत्मा विषयोंके बोधसे सर्वथा निवृत्त होनेके कारण अपने स्वरूपके बोध तक न पहुंचो हो।

ध्यान या समाधिकी पूर्ण दशामें चार प्रकारकी समापत्तियां कही गई हैं जिनमें शब्द, अर्थ, विषय आदिमेंसे किसी न किसीका बोध अवश्य बना रहता है। इन चारोंमेंसे किसी समापत्तिके रहनेसे समाधि सम्प्रज्ञात कहलाती है। सम्प्रज्ञात समाधि या समापत्तिके चार भेद हैं—सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार।

सम्प्रणाद (सं० पु०) सं-प्र-नद-घञ्, ततो णत्वं। अतिशय नाद, जोरोंका शब्द।

सम्प्रणेतृ (सं० त्रि०) सं-प्र-णी-तृच्। सम्यक् रूपसे प्रणयनकारी, प्रस्तुतकारी, बनानेवाला।

सम्प्रतर्द्दन (सं० पु०) विष्णु। सम्प्रमर्द्दन पाठ भी देखा जाता है।

सम्प्रतापन (सं० क्ली०) सम्-प्र-तापि-ल्युट्। १ सम्यक् रूपसे तापन, पीड़न, कष्ट। (पु०) २ नरकभेद। इस नरकमें सभी जीव अत्यन्त कष्ट पाते हैं, इसीसे इसका नाम संप्रतापन हुआ है।

लुब्ध शास्त्रमार्ग-परित्यागी राजासे जो वेदविद् ब्राह्मण दान लेते हैं, उन्हें यही नरक होता है।

सम्प्रति (सं० अव्य०) सम् च प्रति च द्वयो समाहारः। १ इस समय, अभी। पर्याय—एतर्हि, इदानीं, अधुना, सांप्रत। २ मुक्तावलेमें। ३ ठीक तौरसे। (पु०) ४ पूर्व अवसर्पिणीके २४वें अर्हत्का नाम। ५ अशोकका पिता, कुणालका एक पुत्र।

सम्प्रतिपत्ति (सं० स्त्री०) सम्-प्रति-पद्-क्तिन्। १ उत्तरविशेष, अभियुक्तका न्यायालयमें सत्य बात स्वीकार करना। २ सम्यक् ज्ञान, ठीक ठीक समझमें आना। ३ संग। ४ समझ, बुद्धि। ५ पहुंच, गुजर। ६ प्राप्ति, लाभ। ७ मतैक्य, एकमत होना। ८ स्वीकृति, मंजूरी। ९ संपादन, सिद्धि, कार्यकी पूर्णता। १० साहचर्य, सहायता। ११ आक्रमण, हमला।

सम्प्रतिपत्तिमत् (सं० त्रि०) संप्रतिपत्ति अस्त्यर्थे मतुप्। संप्रतिपत्तिविशिष्ट।

सम्प्रतिपन्न (सं० त्रि०) १ पहुंचा हुआ, गया हुआ। २ स्वीकृत, मंजूर। ३ उपस्थित बुद्धिका, तेज समझवाला।

सम्प्रतिपादन (सं० क्ली०) सम्यक् प्रतिपादन, पूरा करना।

सम्प्रतिपूजा (सं० स्त्री०) सम्यक् पूजा, सम्मानदान।

सम्प्रतिरोधक (सं० त्रि०) सम्यक् प्रकारेण प्रतिरुणद्धीति सं-प्रति-रुध-ण्वुल्। प्रतिबन्धक।

सम्प्रतिविद् (सं० त्रि०) वर्त्तमान विषयाभिज्ञ।

सम्प्रतिष्ठा (सं० स्त्री०) सम्-प्रति-स्था-अङ्। स्थिति।

सम्प्रतिसञ्चर (सं० पु०) प्रलयविशेष, प्रतिसञ्चर, ब्राह्मप्रलय। इस प्रलयमें ब्रह्माका भी विनाश होता है।

प्रतिसञ्चर शब्द देखो।

सम्प्रतीक्ष्य (सं० त्रि०) सम्-प्रति-ईक्ष-यत्। सम्यक् रूपसे प्रतीक्षणीय, अच्छी तरह देखने योग्य। स्त्री स्वामीके वाक्यका पालन करे, यही परम धर्म है, किन्तु स्वामी यदि महापातकी हो तो स्त्री शुद्धिकाल तक उसकी प्रतीक्षा करे।

सम्प्रतीति (सं० स्त्री०) सम्-प्रति-इन्-क्तिन्। १ सम्यक् ख्याति, प्रसिद्धि। २ सम्यक्ज्ञान, प्रत्यय।

सम्प्रतोलि (सं० स्त्री०) प्रतोली, रास्ता, पथ।

प्रतोली देखो।

सम्प्रत्यय (सं० पु०) सम्-प्रति-इ-घञ् । १ सम्यक् प्रत्यय, ज्ञान, ठीक ठीक समझ । २ स्वीकृति, मंजूरी । ३ दृढ़ विश्वास, पूरा यकीन । ४ भावना, विचार ।

सम्प्रदातन (सं० पु०) इक्कीस नरकोंमेंसे एक ।

सम्प्रदातृ (सं० त्रि०) सम्-प्र-दा-तृच् । सम्प्रदानकर्त्ता, दान करनेवाला ।

सम्प्रदान (सं० क्लो०) सम्-प्र-दा-ल्युट् । १ सम्यक् प्रकारसे दान, अच्छी तरह दान देनेकी क्रिया या भाव। जो दान करते हैं, उन्हें कर्त्ता और जिन्हें दान किया जाता है, उन्हें सम्प्रदान कहते हैं ।

पूजा और अनुग्रहको कामना करके जो दान किया जाता है और उसमें यदि उसका स्वामित्व लाभ हो, तो उसे सम्प्रदान कहते हैं ।

कन्यासम्प्रदान स्थलमें पिता स्वयं दान करें । यदि वे दान न कर सकें, तो पितामह, भ्राता, सपिण्डज्ञाति, सकुल्य ज्ञाति, मातामह या मामा कन्यादान करें । इन सबोंका यदि अभाव हो, तो तत्सजातिको कन्यादान करना चाहिये । (उद्वाहतत्त्व) विवाह शब्द देखो ।

२ दीक्षा, मन्त्रोपदेश । ३ भेंट, नजर । ४ व्याकरण में एक कारक जिसमें शब्द, 'देना' क्रियाका लक्ष्य होता है। हिन्दीमें इस कारकके चिह्न 'को' और 'के लिये' हैं ।

सम्प्रदानीय (सं० त्रि०) सम्-प्र-दा-अनीयर् । सम्प्रदानके योग्य, दान देने लायक ।

सम्प्रदाय (सं० पु०) सम्-प्र-दा-घञ् (आतो युक् चिन्कृतोः । पा ७।३।३३) १ गुरुपरंपरागत उपदेश, गुरुमन्त्र । पर्याय—आम्नाय । (भरत)

२ गुरुपरंपरागत सदुपदिष्ट व्यक्तिसमूह । जैसे—वैष्णव सम्प्रदाय, शाक्तसंप्रदाय । लोगोंको गुरुपरंपरासे विष्णु या शक्ति विषयमें उपदेश दिया जाता है । ३ दल, सजातीय ।

संप्रदायहीन जो मन्त्र है, वह निष्फल है । कलिमें चार संप्रदाय हैं, यथा—श्री, माध्व, रुद्र और सनक । ये चारों वैष्णव संप्रदाय हैं । तन्त्रमें सौर, गाणपत्य और वैष्णव आदि संप्रदायोंका भी विषय लिखा है । ४ दाता, देनेवाला । ५ कोई विशेष धर्मसंबन्धी मत । ६ मार्ग, पथ । ७ रीति, परिपाटी ।

सम्प्रदायी (सं० त्रि०) १ संप्रदायविशिष्ट, मतावलम्बी । २ दाता, देनेवाला । ३ सिद्ध करनेवाला, करनेवाला ।

सम्प्रधारण (सं० क्लो०) सम्-प्र-धृ-णिच्-ल्युट् । संप्रधारण, उचित अनुचितका विचार ।

सम्प्रधारणा (सं० स्त्री०) सम्-प्र-धृ-णिच्-युच् टाप् । कर्त्तव्याकर्त्तव्य निर्णय, उचित अनुचितका विचार । पर्याय—समर्थन ।

सम्प्रधार्य (सं० त्रि०) संप्रधारणयोग्य ।

सम्प्रपद (सं० क्लो०) सम्-प्र-पद्-गतौ-क । भ्रमण, पर्यटन ।

सम्प्रपुष्पित (सं० त्रि०) प्रचुर पुष्पयुक्त, जिसमें खूब खिले हुए फूल हों

सम्प्रभव (सं० पु०) सम-प्र-भू-अप् । सम्यक् उत्पत्तिविशिष्ट ।

सम्प्रमर्द्दन (सं० पु०) विष्णु ।

सम्प्रमाद (सं० पु०) सम्-प्र-मद्-घञ् । सम्यक् प्रमाद, मोह, भ्रान्ति ।

सम्प्रमुक्ति (सं० स्त्री०) सम्-प्र-मुच्-क्तिन् । सम्यक मुक्ति, मोचन, छुटकारा ।

सम्प्रमेह (सं० पु०) प्रमेह रोग । प्रमेह देखो ।

सम्प्रमोद (सं० पु०) सम्यक् आमोद ।

सम्प्रमोष (सं० पु०) सम्-प्र-मुष-घञ् । चौर्य, चोरी ।

सम्प्रमोह (सं० पु०) सम्यक् मोह, मानसिक विकृति ।

सम्प्रयाण (सं० क्लो०) सम्-प्र-या-ल्युट् । सम्यक् गमन, स्वर्गारोहण, महाप्रस्थान ।

सम्प्रयास (सं० पु०) सम्-प्र-यस्-घञ् । सम्यक् प्रयास, अत्यन्त यत्न, बहुत कोशिश ।

सम्प्रयुक्त (सं० त्रि०) १ जोड़ा हुआ, एक साथ किया हुआ । २ जोता हुआ, नधा हुआ । ३ संबद्ध, मिला हुआ । ४ भिड़ा हुआ । ५ व्यवहारमें लाया हुआ ।

सम्प्रयोग (सं० पु०) सम-प्र-युज्-घञ् । १ निधुवन, रति, रमण । २ जोड़नेकी क्रिया या भाव, एक साथ करना । ३ संयोग, मेल, मिलाप । ४ धनादिका विनियोग । ५ सापेक्षता । ६ इन्द्रजाल । ७ वशीकरण आदि कार्य । ८ नक्षत्रमें चन्द्रमाका योग । (त्रि०) ९ अर्थित, प्रार्थित ।

सम्प्रयोगिन (सं० पु०) संप्रयोगऽस्त्यास्तीति इनि। १ कलाकेलि, कामुक, लंपट। (त्रि०) २ प्रयोगकर्त्ता। ३ ऐन्द्रजालिक।

सम्प्रयोजन (सं० पु०) अच्छी तरह जोड़ना,या मिलाना।

सम्प्रयोज्य (सं० पु०) सम्-प्र-युज-ण्यत्। प्रयोगार्ह, जोड़ने लायक।

सम्प्रलाप (सं० पु०) सम्-प्र-लप-घञ्। सम्यक् प्रलाप, बहुत बकना।

सम्प्रवर्त्तक (सं० त्रि०) सम्प्रवर्त्तयतीति सम्-प्र-वर्त्ति-ण्वुल्। १ प्रवर्त्तनकारी, चलानेवाला। २ प्रचलनकारी, जारी करनेवाला।

सम्प्रवर्त्तन (सं० क्ली०) सम्-प्र-वृत-ल्युट्। १ प्रवर्त्तन, चलाना। २ प्रचलन, जारी करना। ३ घुमाना।

सम्प्रवाह (सं० पु०) सम्-प्र-वह-घञ्। प्रवाह, धारा।

सम्प्रवृत्त (सं० त्रि०) १ अग्रसर, आगे गया हुआ। २ उपस्थित, मौजूद। ३ आरम्भ किया हुआ, जारी किया हुआ।

सम्प्रवृत्ति (सं० स्त्री०) १ सम्यक् आसक्ति। २ अनुगमनेच्छा, अनुकरण करनेको इच्छा। ३ विकाश, आविर्भाव। ४ उपस्थिति, मौजूदगी। ५ संघटन, मेल।

सम्प्रवृद्धि (सं० स्त्री०) सम्यक् प्रवृद्धि, बहुत उन्नति।

वनस्पतियोंके फल और पुष्पकी यदि अत्यन्त वृद्धि हो, तो शस्य सुलभ होता है अर्थात् अनाज सस्ता मिलता है।

सम्प्रवेश (सं० पु०) सम्-प्र-विश-घञ्। सम्यक् प्रवेश।

सम्प्रश्न (सं० पु०) सम्यक् प्रश्न, उचित सवाल।

सम्प्रश्रय (सं० पु०) प्रश्रय, विनय, नम्रता।

सम्प्रसर्पण (सं० क्ली०) सम्यक् प्रसर्पण, सामनेकी ओर जाना।

सम्प्रसाद (सं० पु०) सम्-प्र सद-घञ्। १ सम्यक् प्रसाद, चित्तकी प्रसन्नता। २ योगशास्त्रोक्त चित्तका निर्मलतासाधक यत्नविशेष, वह जिससे चित्तकी प्रसन्नता हो। ३ सुषुप्ति। ४ प्रसन्नता। ५ विश्वास।

सम्प्रसाध्य (सं० त्रि०) १ प्रसाधनार्ह। २ सुशृङ्खला या सुव्यवस्था स्थापन।

सम्प्रसारण (सं० क्ली०) सम्-प्र-सृ-णिच्-ल्युट्। १ सम्यक् प्रसारण, विस्तारण, बिछाना। २ व्याकरणके मतसे संज्ञाविशेष। इकार, उकार, ऋकार और लृकारकी जगह य, व, र और ल होनेको सम्प्रसारण कहते हैं। व्याकरणमें इसका विशेष विधान लिखा है।

सम्प्रसूति (सं० स्त्री०) प्रसवकारिणी। जो स्त्री दो तीन या उससे अधिक सन्तान पैदा करती है, उसे सम्प्रसूति कहते हैं। (वृहत्स० ४६।५२)

सम्प्रस्थित (सं० त्रि०) सम्-प्र-स्था-क्त। १ सम्यक् प्रस्थित, चलित, गत, जो प्रस्थान कर चुके या चले गये हों। २ प्रस्थानोद्यत, चलनेको तैयार।

सम्प्रहर्ष (सं० पु०) सम्-प्र-हृष्-घञ्। सम्यक् हर्ष, बड़ी प्रसन्नता।

सम्प्रहर्षिन् (सं० त्रि०) सम्-प्र-हृष्-णिनि। हर्षविशिष्ट, आह्लादित।

सम्प्रहार (सं० पु०) सम्यक् प्रहारेण प्रह्रियतेऽत्रेति सम्-प्र-हृ-घञ्। १ युद्ध, समर, लड़ाई। २ गमन, चलना। ३ हनन, मारना।

सम्प्रहारि (सं० पु०) सम्-प्र हृ (बाहुलकाद्‌भोऽपि। उण् ४।१२४ इति उज्ज्वलोक्त्या) इञ्। पथिक संहति।

सम्प्रहारिन् (सं० त्रि०) युद्धकारी, लड़ाई करनेवाला।

सम्प्रहास्य (सं० त्रि०) सम्यक् हास्य, उपहास, हंसी।

सम्प्राप्त (सं० त्रि०) सम्-प्र-आप-क्त। १ सम्यक् प्रकारसे प्राप्त, पाया हुआ। २ उपस्थित, पहुंचा हुआ। ३ कथित, कहा हुआ। ४ घटित, जो हुआ हो।

सम्प्राप्तव्य (सं० त्रि०) सम्-प्र-आप-तव्य। सम्यक् रूपसे पानेके योग्य।

सम्प्राप्ति (सं० स्त्री०) सम्-प्र-आप-क्तिन्। १ सम्यक् प्रापण, प्राप्ति, लाभ। २ उपस्थित, पहुंचना। ३ संघटित, होना। ४ रोगका सन्निकृष्ट कारण। ५ रूपविशिष्ट हो कर रोगकी उत्पत्ति। रोगके पञ्चनिदानमें सम्प्राप्ति एक है। वैद्यकमें इसका लक्षण यों लिखा है—

यथाकारण दूषित दोष ऊर्द्ध्व, अधः और तिर्यक्-भावमें प्रसारित हो कर रोग उत्पादन करनेसे उसको संप्राप्ति कहते हैं। जाति और आगति इसके कालविशेष द्वारा संप्राप्तिका भेद जानना होगा।

संप्राप्ति ही रोगज्ञानका कारण है। अतएव एकमात्र

संप्राप्ति द्वारा ही रोगका ज्ञान होता है। अनियमित आहार और विहार द्वारा वातादि दोष कुपित रसको तथा वह कुपित दोष आमाशयमें जा कर रसको दूषित और जठराग्निको बहिष्करणादि द्वारा ज्वरकी उत्पत्तिसे लक्षण प्रकट करते हैं तथा व्याधिकी संख्या, दोष, दोषके अंशांशकी कल्पना, रोगकी प्रधानता, बल और काल ये सभी संप्राप्ति द्वारा जाने जाते हैं। चिकित्सकको चाहिये, कि वे इस संप्राप्तिका विषय अच्छी तरह जान कर चिकित्सा करें। (भावप्र० पूर्वख०)

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति इन पांचों द्वारा ही रोगका संपूर्ण ज्ञान होता है। माधव निदानके पञ्चनिदानमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। सुश्रुतमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—दोष जिस प्रकार कुपित हो कर शारीरिक अवयवविशेषमें अव-स्थान या विचरण कर रोगोत्पादन करता है, उसे संप्राप्ति कहते हैं। संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और काला-नुसार यह संप्राप्ति भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है। (सुश्रुत) निदान शब्द देखो।

सम्प्राप्तिद्वादशी (सं० स्त्री०) द्वादशीव्रतविशेष।

सम्प्रार्थना (सं० स्त्री०) सम्यक् रूप प्रार्थना, अर्ज, विनती।

सम्प्रार्थ्य (सं० त्रि०) सम्-प्र-अर्थि-यत्। सम्यक्रूपसे प्रार्थनीय।

सम्प्रिय (सं० त्रि०) सम्यक् प्रिय, अति प्रिय, बहुत प्यारा।

सम्प्रीणन (सं० क्ली०) सम्-प्री-ल्युट्। सम्यक् प्रीणन, प्रीति, प्रणय।

सम्प्रीति (सं० स्त्री०) सम्-प्री-क्तिन्। १ सम्यक् प्रणय। २ सन्तोष, हर्ष।

सम्प्रीतिमत् (सं० त्रि०) संप्रीति अस्त्यर्थे मतुप्। संप्रीतिविशिष्ट, प्रणययुक्त।

सम्प्रेक्षक (सं० त्रि०) सम्-प्र-ईक्ष-ण्वुल्। सम्यक्रूप-से दर्शनकारी, सम्यक् द्रष्टा, देखनेवाला।

सम्प्रेप्सु (सं० त्रि०) संप्राप्तमिच्छुः, सं-प्र-आप्-सन्-उ। सम्यक् रूपसे पानेके लिये इच्छुक, सम्यक् लाभ करनेमें अभिलाषी।

सम्प्रेक्षण (सं० पु०) १ सम्यक् दर्शन, अच्छी तरह देखना। २ निरीक्षण, खूब देखभाल करना।

सम्प्रेरण (सं० क्ली०) सम्-प्र-ईर-ल्युट्। सम्यक् रूपसे प्रेरण, अच्छी तरह भेजना।

सम्प्रेष (सं० पु०) सम्प्रैष देखो।

सम्प्रेषण (सं० पु०) सम्-प्र-इष-ल्युट्। सम्यक् रूपसे प्रेषण, अच्छी तरह भेजना।

सम्प्रेषणी (सं० स्त्री०) मृतकका एक कृत्य जो द्वादशाह को होता है।

सम्प्रैष (सं० पु०) १ यज्ञादिमें ऋत्विजोंका लगाना, नियुक्ति। २ आह्वान, आमन्त्रण।

सम्प्रोक्षण (सं० क्ली०) सम्-प्र-उक्ष-ल्युट्। १ सम्यक् प्रोक्षण, खूब पानी छिड़कना। पूजादिमें पशुबद्ध स्थानमें पशु पर पहले विशुद्ध जल द्वारा संप्रोक्षण करना होता है। २ खूब पानी छिड़क कर मन्दिर आदि साफ करना, धोना।

सम्प्लव (सं० पु०) सम्-प्लु-अप्। १ प्रलय। २ चाञ्चल्य, हलचल। ३ इतस्ततः पतन, चारों ओर वर्षण। ४ बन्या, बाढ़। ५ भारी समूह, घनी राशि।

सम्प्लुत (सं० पु०) जलसे तराबोर, डूबा हुआ।

सम्फाल (सं० पु०) सम्यक् फाले गमनं यस्य। मेष, भेड़।

सम्फुल्ल (सं० त्रि०) सम्-फुल-क्त (उत्फुल्लसम्फुल्लयो-रिति वक्तव्यं। पा ८।२।५५) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या निपा-तितः। विकसित, प्रफुल्ल, प्रस्फुटित।

सम्फेट (सं० पु०) १ क्रोधसे परस्पर भिड़ना, भिड़न्त। २ नाट्योक्तिमें आस्फालन, क्रोधसे कहना। नाटकमें क्रुद्धसे जो आस्फालन किया जाता है, उसे संफेट कहते हैं।

सम्ब (सं० क्ली०) सम्बति सर्पतीति सम्ब-अच्। १ जल, पानी। २ वारद्वय कर्षण, दो बार जोतना। ३ प्रतिलोम-कर्षण, उलटा जोतना।

सम्बद्ध (सं० त्रि०) सम्-बन्ध-क्त। १ बंधा हुआ, जुड़ा हुआ, मिला हुआ, संबन्धयुक्त, मिला हुआ। ३ बन्द। ४ संयुक्त, साथ।

सम्बन्ध (सं० पु०) संबध्यते इति सम्-बन्ध-घञ्।

१ समृद्धि, उन्नति। २ न्याय। ३ गहरी मित्रता, बहुत मेल जोल। ४ संसर्ग। यह संसर्ग प्रतियोगी, अनुयोगी, आधार, आधेय, विषय और विषयिभावरूप है। शब्दशक्तिप्रकाशिका और प्रथमाव्युत्पत्तिवाद आदिमें इसका विशेष विवरण दिया गया है।

५ सम्पर्क, लगाव, वास्ता। यह तीन प्रकारके कहे गये हैं—विद्याज, यौनिज और प्रीतिज। अध्ययन और अध्यापनादि द्वारा विद्याज संबंध, उत्पत्तिहेतुक यौनिज और परस्परके प्रणयसे प्रीतिज संबंध होता है। इन तीनके सिवा और किसी प्रकारका संबंध नहीं है।

६ एक साथ बंधना, जुड़ना या मिलना। ७ एक कुलमें होनेके कारण अथवा विवाह, दत्तक आदि संस्कारोंके कारण परस्पर लगाव, नाता, रिश्ता। ८ संयोग, मेल। ६ विवाह, सगाई। १० ग्रंथ, पोथी। ११ एक प्रकारकी ईति या उपद्रव। १२ किसो सिद्धान्तका हवाला। १३ योग्यता। १४ समीचीनता। १५ उपयुक्तता। १६ व्याकरणके मतसे जन्यजनकादि। १७ व्याकरणमें एक कारक जिससे एक शब्दके साथ दूसरे शब्दका संबंध या लगाव सूचित होता है। बहुतसे वैयाकरण 'सम्बन्ध'को शुद्ध कारक नहीं मानते। हिंदीमें संबंधके चिह्न 'का' 'की' 'के' हैं। (त्रि०) १८ शक्त, कठिन। १६ हित, भलाई। २० उपयुक्त, लायक। २१ मिलित, मिला हुआ।

सम्बन्धक (सं० पु०) संबंध स्वार्थे कन्। सम्बन्ध देखो।

सम्बन्धन (सं० क्ली०) सम् बंध-ल्युट्। सम्यक्‌बंधन, अच्छी तरह बांधनेकी क्रिया।

सम्बन्धयितृ (सं० त्रि०) संबंधकारक।

सम्बन्धातिशयोक्ति (सं० स्त्री०) अतिशयोक्ति अलङ्कारका एक भेद। इसमें असंबंधमें संबंध दिखाया जाता है। अतिशयोक्ति देखो।

सम्बन्धिता (सं० स्त्री०) संबंधिनो भावः तल्-टाप्। संबंधित्व, संबंधविशिष्टका भाव या धर्म।

सम्बन्धी (सं० त्रि०) संबंधोऽस्यास्तीति इनि। १ संबंधविशिष्ट, संबंध रखनेवाला, लगाव रखनेवाला। पर्याय—गुणवत, संयुज्। २ विषयक, सिलसिले या प्रसङ्गका। (पु०) ३ मातृपक्षीय। ४ श्वशुरादि। ५ जामाता, जमाई। ६ श्यालकादि, साला। ७ वैवाहिक। ८ मित्र। ९ विद्वान्। १० रिश्तेदार। ११ जिसके पुत्र या पुत्रीका विवाह हुआ हो, समधी।

सम्बन्धु (सं० त्रि०) १ शोभनबन्धु, नातेदार, रिश्तेदार। २ आत्मीय, भाई बिरादर।

सम्बल (सं० क्ली०) १ शाल्मली, सेमलका वृक्ष। २ रास्तेका भोजन, सफर खर्च। ३ गेहूंकी फसलका एक रोग। यह रोग पूरबकी हवा अधिक चलनेसे होता है। ४ संखिया, सोमल क्षार। ५ मत्सर।

शम्बल देखो।

सम्बहुल (सं० त्रि०) सम्यक्-बहुल, प्रचुर, ज्यादा।

सम्बाकृत (सं० त्रि०) सम्बं कृतं डाच्। वारद्वयकृष्ट क्षेत्र, दो बार जोती हुई जमीन। यह शब्द तालव्य शकारादिमें भी होता है।

सम्बादी—सङ्गीतके मतसे सुरभेद, वादीका सहगामो सुर।

सम्बाध (सं० पु०) सम्यक् बाधा यत्र। १ सङ्कट, कष्ट। २ बाधा, अड़चन। ३ भीड़, सङ्कीर्ण। ४ भग, योनि। ५ नरकका पथ। (त्रि०) ६ अप्रशस्त, सङ्कीर्ण, तंग। ७ जनतापूर्ण, भीड़से भरा। ८ संकुल, पूर्ण।

सम्बाधक (सं० पु०) १ दबानेवाला, सतानेवाला २ बाधा पहुंचानेवाला।

सम्बाधन (सं० क्ली०) सम्यक् बाधनं यत्र। १ मदनका द्वार, योनि, भग। २ शूलाग्र। ३ द्वारपाल। ४ दबाव, रेलपेल। ५ बाधा देना, रोकना।

सम्बुद्ध (सं० त्रि०) सं-बुध-क्त। १ जाग्रत, ज्ञानप्राप्त। २ ज्ञानी, ज्ञानवान्। ३ ज्ञात, पूर्ण रूपसे जाना हुआ। (पु०) ४ बुद्धावतार। भगवान् बुद्धदेवके सम्यक् बोध हुआ था, इसीसे उनका नाम सम्बुद्ध हुआ है।

सम्बुद्धि (सं० स्त्री०) सम् बुध-क्तिन्। १ सम्बोधन, आह्वान, दूरसे पुकार। २ आमन्त्रण। ३ दर्शन। ४ विशेषण। ५ पूर्णज्ञान, सम्यक् बोध। ६ बुद्धिमानी, होशियारी।

सम्बुबोधयिषु (सं० त्रि०) सम्यक् बोधलाभ करनेमें इच्छुक।

सम्बृंहण (सं० क्ली०) बलसंविधान। (चरक ८।४)

सम्बोध (सं० पु०) सम्-बुध-घञ्। १ बोधन, सम्यक् ज्ञान, पूरा बोध। २ पूर्ण तत्त्वबोध, पूरी जानकारी। ३ धीरज, सान्त्वना, ढारस। ४ क्षेप। ५ नाश।

सम्बोधन (सं० क्ली०) सम्-बुध-ल्युट्। १ आह्वान करना, पुकारना। २ जगाना, नींदसे उठाना। ३ व्याकरणमें वह कारक जिससे शब्दका किसीको पुकारने या बुलानेके लिये प्रयोग सूचित होता है। व्याकरणके मतसे सम्बोधनमें प्रथमा विभक्ति होती है। नाटकमें सम्बोधनोक्ति और प्रत्युक्ति आकाश-भाषित द्वारा निष्पन्न होती है। ४ जताना, ज्ञान कराना। ५ समझाना, बुझाना।

सम्बोधयितृ (सं० त्रि०) १ सम्बोधनकारी। २ ज्ञानदाता।

सम्बोधि (सं० स्त्री०) सम्यक् ज्ञान, प्रज्ञा।

सम्बोध्य (सं० त्रि०) सम्-बुध-ण्यत्। १ जिसको संबोधन किया जाय। २ जिसे समझाया या जताया जाय।

सम्भक्तृ (सं० त्रि०) सम्-भज-तृच्। सम्यक् विभागकारी, अच्छी तरह बांटनेवाला।

सम्भक्ति (सं० त्रि०) १ सम्यक् विभाजन। २ सम्यक् भक्ति।

सम्भक्ष (सं० पु०) सम्-भक्ष-अच्। सम्यक्भक्षण, अच्छी तरह खाना।

सम्भग्न (सं० त्रि०) १ सम्पूर्ण खण्डित, बहुत टूटा हुआ। २ हारा हुआ। ३ विफल। (पु०) ४ शिवका एक नाम।

सम्भय (सं० पु०) सम्-भी-घञ्। सम्यक् भय, बहुत डर।

सम्भर (सं० पु०) १ भरण करनेवाला, पोषण करनेवाला। २ सांभर झील।

सम्भरण (सं० पु०) १ इष्टकाभेद, एक प्रकारकी ईंट जो यज्ञकी वेदीमें लगती थी। २ पालन पोषण। ३ एकत्र करना, जुटाना। ४ योजना, विधान। ५ सामान, तैयारी।

सम्भरणी (सं० स्त्री०) सोमरस रखनेका एक यज्ञपात्र।

सम्भरणीय (सं० स्त्री०) सम्भरणके योग्य।

सम्भल (सं० पु०) १ कन्यार्थी पुरुष, किसी लड़कीसे विवाहकी इच्छा रखनेवाला व्यक्ति। २ चेटक, दलाल। ३ एक स्थान जहां विष्णुयास नामक ब्राह्मणके घर विष्णु दसवां कल्कि अवतार होनेवाला है। इसे कुछ लोग मुरादाबाद जिलेका संभल नामका कसबा बतलाते हैं।

सम्भली (सं० स्त्री०) कुट्टनी, कुटनी, दूती।

सम्भव (सं० पु०) सम्-भू-अप्। १ हेतु, कारण। २ उत्पत्ति, जन्म। ३ सम्भावना, मुमकिन होना। ४ सङ्केत, इशारा। ५ उपाय, तदबीर। ६ युक्ति उपाय। ७ क्षति, ध्वंस। ८ समीचीनता, उपयुक्तता। ९ शक्ति, क्षमता। १० संयोग, समागम, मेल। ११ प्रसङ्ग, सहवास। १२ घटना, समाई। १३ घटित होना, होना। १४ परिमाणका एक होना, एक ही बात होना। १५ वर्त्तमान अवसर्पिणीके दूसरे अर्हत् (जैन)। १६ एक लोकका नाम।

सम्भवतः (सं० अव्य०) हो सकता है, मुमकिन है।

सम्भवन (सं० क्ली०) १ उद्भावन, जन्म। २ मुमकिन होना, हो सकना। ३ घटित होना, होना। (त्रि०) ४ उत्पन्न होनेके योग्य।

सम्भवनाथ (सं० पु०) वर्त्तमान अवसर्पिणीके तीसरे तीर्थङ्कर।

सम्भवनीय (सं० त्रि०) जो हो सकता हो, मुमकीन।

सम्भवपर्वन् (सं० क्ली०) महाभारतके आदिपर्वमें ६५वां अध्याय।

सम्भविन् (सं० त्रि०) सम्भवनीय, मुमकिन।

सम्भविष्णु (सं० त्रि०) सम्-भू-इष्णुच, सहचरेत्यादि इष्णुच्। १ संभवनशील। २ उत्पादनशील।

सम्भव्य (सं० त्रि०) सम्-भू-यत्। १ संभवनीय, संभव या उत्पत्तिके योग्य, मुमकिन। (पु०) २ कपित्थ, कैथ।

सम्भार (सं० पु०) सम्-भृ-घञ्। १ संग्रह, इकट्ठा करना। २ समूह, राशि। ३ परिपूर्णता, अधिकता। ४ पुष्टि-साधन। ५ पोषण, यज्ञका सामान।

सम्भारिन् (सं० त्रि०) संभारविशिष्ट, पूर्ण, भरा हुआ।

सम्भार्य (सं० त्रि०) १ संभरणीय, पालन पोषण करनेके योग्य। (पु०) २ अहीनभेद।

सम्भाव (सं० पु०) अवस्था, दशा।

सम्भावन (सं० क्ली०) संभावयत्यनेनेति सम्-भू-णिच्-ल्युट्। १ सुख्याति, यश। २ पूजा, सत्कार, आदर। ३ चिन्ता, फिक्र। ४ योग्यता, पात्रता, काबिलीयत। ५ स्वीकार, मंजूर। ६ सम्पादन। ७ कल्पना, अनु-

मान। ८ किसी बातके हो सकनेका भाव, हो सकना, मुमकिन होना। ९ प्रतिष्ठा, मान, इज्जत। १० एक अलङ्कार जिसमें किसी एक बातके होने पर दूसरी बातका होना निर्भर कहा जाता है। ११ व्याकरणके मतसे क्रियामें योग्यताके अध्यवसायको संभावन कहते हैं। (त्रि०) १२ संभावक, संभावनाकारी।

सम्भावना (सं० स्त्री०) सम्भावन देखो।

सम्भावनीय (सं० त्रि०) सम्-भू-णिच्-अनीयर्। १ संभावनयोग्य, मुमकिन। २ कल्पनाके योग्य, ध्यानमें आने लायक। ३ आदरके योग्य, सत्कारके लायक।

सम्भावयितव्य (सं० त्रि०) सम्-भू-णिच्-तव्य। सम्भावनीय, सम्भावनाके योग्य।

सम्भावित (सं० त्रि० ०) सम्-भू-णिच्-क्त। १ संभावनाविशिष्ट, कल्पित, मनमें माना हुआ। २ उपस्थित किया हुआ, जुटाया हुआ। ३ पूजित, आदृत। ४ विख्यात, प्रसिद्ध। ५ संभव, मुमकिन। (क्ली०) ६ संभावनाका विषय, सन्देहका विषय।

सम्भावितव्य (सं० त्रि०) १ सम्माननीय, सत्कारके योग्य। २ जिसका सत्कार होनेवाला हो। ३ संभव, मुमकिन। ४ कल्पना या अनुमानके योग्य।

सम्भाव्य (सं० त्रि०) सम्-भू-णिच्-यत्। १ श्लाघ्य, प्रशंसनीय। २ जो हो सकता हो, मुमकिन। ३ पूजा या सत्कारके योग्य। ४ कल्पना या अनुमानके योग्य।

सम्भाष (सं० पु०) सम्-भाष-घञ्। १ संभाषण, कथन। २ वादा, करार।

सम्भाषण (सं० क्ली०) सम्-भाष-ल्युट्। कथोपकथन, बातचीत। सत्ययुगमें पतितके साथ संभाषण करनेसे पातित्य होता था, किन्तु कलियुगमें केवल कर्म द्वारा ही पातित्य होता है।

सम्भाषणीय (सं० त्रि०) सम्-भाष-अनीयर्। संभाषणके योग्य, जिससे भाषण करना उचित हो।

सम्भाषा (सं० स्त्री०) सम्-भाष-अङ्-टाप्। संभाषण।

सम्भाषिन् (सं० त्रि०) संभाषणकारी, कहनेवाला, बातचीत करनेवाला।

सम्भाष्य (सं० त्रि०) सम्-भाष-यत्। संभाषणीय, भाषण करनेके योग्य।

सम्भिन्न (सं० त्रि०) सम्-भिद्-क्त। १ सम्यक् भेदविशिष्ट, भली भांति अलग। २ मिलित, मिला हुआ। ३ पूर्ण भग्न, बिलकुल टूटा हुआ। ४ विदलित। ५ संक्षोभित, चालित। ६ प्रस्फुटित, खिला हुआ। ७ गठा हुआ, ठोस।

सम्भु (सं० त्रि०) संभवतीति सम्-भू (विप्रसम्भ्योड्वसंज्ञायां। पा ३।२।१८०) इति डु। जनिता, जो संभव हों अर्थात् उत्पन्न हों उन्हें संभु कहते हैं।

सम्भुज् (सं० त्रि०) सन्ततव्यापक या सम्यक् भोगके लिये साधु।

सम्भूत (सं० त्रि०) सम्-भू-क्त। १ एक साथ उत्पन्न। २ उत्पन्न, पैदा। ३ युक्त, सहित। ४ कुछसे कुछ हो गया हुआ। ५ उपयुक्त, योग्य।

सम्भूतविजय (सं० पु०) संभूतो विजयो यस्य। जैनोंके एक श्रुतकेवलि। जैन देखो।

सम्भूति (सं० स्त्री०) सम्-भू-क्तिन्। १ उत्पत्ति, उद्भव। २ योगकी विभूति, करामात। ३ क्षमता, शक्ति। ४ बढ़ती, बरकत। ५ उपयुक्तता, योग्यता। ६ दक्ष प्रजापतिकी एक कन्या जो मरीचिकी पत्नी थी।

सम्भूय (सं० अव्य०) एक साथ, एकमें, साझेमें।

सम्भूयसन्धान (सं० क्ली०) संभूय मिलित्वा यत् संधानं। संधिकरण, मेल करना।

सम्भूयसमुत्थान (सं० क्ली०) संभूय मिलित्वा समुत्थानं कर्मकरणं यत्र। १ मिल कर किया हुआ व्यापार, साझेका कारबार। २ वह विवाद या मुकदमा जो साझेदारोंमें हो।

सम्भृत (सं० त्रि०) सम्-भृ-क्त। १ सम्यक् पुष्ट, खूब मोटा ताजा। २ यत्नसिद्ध, सञ्चित, जमा किया हुआ। ३ दत्त, दिया हुआ। ४ लब्ध, पाया हुआ। ५ परिपूर्ण, भरा हुआ। ६ सम्यक् वर्द्धित, बढ़ा हुआ। ७ प्रस्तुत, तैयार। ८ सङ्कलित, बनाया हुआ। ९ जनित, पैदा किया हुआ। १० धृत, पकड़ा हुआ। ११ समान रूप। १२ युक्त, सहित। १३ पाला पोसा हुआ। १४ समादृत, जिसकी इज्जत की गई हो। (पु०) १५ उच्च स्वर, चीख।

सम्भृतक्रतु (सं० त्रि०) सम्पादितकर्मा, जिन्होंने काम कर डाला है। (ऋक् १।५२।८)

सम्भृतश्री (सं० त्रि०) सम्भृता श्रीर्यस्याः। जलद, मेघ।

सम्भृतसम्भार (सं० पु०) संपादित यज्ञोपकरण, वह जिन्होंने यज्ञीय उपकरण संग्रह किया हो।

सम्भृताङ्ग (सं० त्रि०) पुष्टाङ्ग, जो खूब तगड़ा हो।

सम्भृताश्व (सं० त्रि०) पुष्टाश्व, मजबूत घोड़े के साथ।

सम्भृति (सं० स्त्री०) सम्-भृ-क्तिन्। १ सम्यक् भरण-पोषण, खूब पालना पोसना; २ सामान, सामग्री। ३ समूह, भीड़। ४ राशि, ढेर। ५ अधिकता, बहुतायत।

सम्भृत्य (सं० त्रि०) सम्-भृञ् (भृञोऽसंज्ञायां। पा ३।१।११२) क्यप्-तुक् च। सम्भार्य।

सम्भृत्वन् (सं० त्रि०) सम्भरणशील।

सम्भेद (सं० पु०) सम्-भिद्-घञ्। १ सङ्गम, नदीसङ्गम। २ सम्यक् भेद, खूब छिदना या भिदना। ३ शिथिल होना, ढीला हो कर खिसकना। ४ वियोग, जुदाई। ५ मिले हुए शत्रुओंमें परस्पर विरोध उत्पन्न करना, भेदनीति। ६ किस्म, प्रकार। ७ भिड़ना, जुटना। ८ आसामके अन्तर्गत एक तीर्थ। यहां शुभवासिनी देवी विद्यमान हैं। (बृहन्नील० २२ अ०)

सम्भेदन (सं० क्ली०) सम्-भिद्-ल्युट्। १ सम्यक् भेदन, खूब छेदना या आर पार घुसाना, धंसना। २ जुटाना, मिलाना, भिड़ाना।

सम्भेद्य (सं० त्रि०) सं-भिद यत्। सम्भेदयोग्य, छेदने-के लायक।

सम्भोक्तृ (सं० त्रि०) सम्-भुज-तृच्। सम्यक् भोग-कारी।

सम्भोग (सं० पु०) सम्-भुज-घञ्। १ भोग, किसी वस्तुका भलीभांति उपयोग। २ रतिक्रीड़ा, सुरत, मैथुन। ३ हर्ष, आनन्द। ४ केलिनागर। ५ शृङ्गारभेद। साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि शृङ्गार दो प्रकारका है, करुण विप्रलंभाख्य शृङ्गार और संभोगाख्य शृङ्गार।

जहां विलासी और विलासिनी परस्पर दर्शन और स्पर्शादि द्वारा अनुरक्त हो कर एक दूसरेको प्यार करता है, वह संभोगाख्य शृङ्गार होता है। इस शृङ्गारके वर्णन करनेमें आपसके चुम्बन, आलिङ्गन, अधरपान, चन्द्र और सूर्यका अस्त, षट्-ऋतुवर्णन, जलकेलि, वनविहार, प्रभात, मधुपान, रात्रिवर्णन, अनुलेपन और वेशभूषादिका वर्णन करना होता है।

विप्रलंभ अर्थात् विना विरहके संभोगका पुष्टिलाभ नहीं होता, इसलिये संभोगशृङ्गारमें विप्रलंभका वर्णन करना होता है। पहले नायक और नायिकाके मिलने पर पूर्वराग उत्पन्न होता है। यह अनुराग जब प्रबल होता है, तब एक दूसरेसे मिलनेकी कोशिश करता है। किसी मौके पर दोनोंमें भेंट हो जानेके बाद फिर इनका विप्रलंभ अर्थात् विच्छेद होता है। इस विच्छेदके समय आपसका अनुराग अत्यन्त प्रबल हो कर संभोगशृङ्गार पूर्ण होता है।

सम्भोगकार (सं० पु०) बुद्धभेद।

सम्भोगयक्षिणी (सं० स्त्री०) योगिनीभेद।

सम्भोगवत् (सं० त्रि०) संभोग अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। भोगविशिष्ट, भोगयुक्त।

सम्भोगवेश्मन् (सं० क्ली०) संभोगगृह, रतिगृह, केलिगृह।

सम्भोगिन् (सं० त्रि०) संभोगोऽस्यास्तीति इनि। १ संभोगविशिष्ट, संभोग करनेवाला। (पु०) २ केलि-नागर।

सम्भोग्य (सं० त्रि०) सम्-भुज-ण्यत्। १ भोग्य, व्यव-हार योग्य। २ जिसका व्यवहार होनेवाला हो, जो काममें लाया जानेवाला हो।

सम्भोज (सं० पु०) भोजन, खाना।

सम्भोजक (सं० त्रि०) १ भोजनकारी, भोजन करनेवाला। २ भोजन परसनेवाला।

सम्भोजन (सं० क्ली०) भोज, दावत। जिन्हें भोजन करानेसे मित्रता होती है, उन्हींका नाम सम्भोजन है। श्राद्धमें ऐसे भोजनको निन्दित बताया है। द्विजगण श्राद्धकर्ममें कभी भी यह सम्भोजन न करावें। द्विजगण द्वारा मित्रताके कारण जो सम्भोजन अर्थात् गोष्ठी-भोजन कराया जाता है, ऋषियोंने उसे पिशाचधर्म बताया है। जो ब्राह्मण श्राद्धमें इस प्रकार भोजन कराते हैं, उन्हें इस लोकमें मित्रतालाभ हो सकता है, पर इससे पितरोंका कोई उपकार नहीं होता।

सम्भोजनीय (सं० त्रि०) १ जो खाया जानेवाला हो। २ भक्षणीय, खाने योग्य।

सम्भोज्य (सं० त्रि०) १ जो खाया जानेवाला हो। २ भक्षणीय, खाने योग्य।

सम्भ्रम (सं० पु०) सम्-भ्रम-घञ्। १ भयादि जनित व्यस्तता, डरके मारे व्याकुलता। पर्याय—सम्वेग, आवेग, प्रवेग, त्वरा, त्वरि। २ भय, डर। ३ सम्मान, आदर। ४ भ्रान्ति, भूल। ५ घूर्णन, घूमना, चक्कर। ६ उतावली, आतुरता। ७ हलचल, धूम। ८ उत्कण्ठा, गहरी चाह। ९ श्री, शोभा। १० शिवके एक प्रकारके गण।

सम्भ्रान्त (सं० त्रि०) सम्-भ्रम-क्त। १ मान्य, प्रतिष्ठित, गौरवान्वित। २ घूर्णित, घुमाया हुआ, चक्कर दिया हुआ। ३ उद्विग्न, घबराया हुआ। ४ स्फूर्त्तियुक्त, तेजस्वी।

सम्भ्रान्ततन्त्र—प्रतिष्ठित व्यक्तियोंका हस्तगत राज्यशासन।

सम्भ्रान्तसमाज—इङ्गलैण्ड देशके राजकीय सभासंक्रान्त प्रतिष्ठित व्यक्तियोंकी सभा। (House of Lords)

सम्भ्रान्ति (सं० स्त्री०) सम्-भ्रम्-क्तिन्। १ संभ्रम, मान। २ उद्वेग, घबराहट। ३ आतुरता, हड़बड़ी। ४ चकपकाहट।

सम्मत (सं० त्रि०) सम्-मन-क्त, क्तिति नस्य लोपः। १ अभिमत, अभिप्रेत, जिसकी राय मिलती हो। (पु०) २ सम्मति, राय, सलाह। ३ अनुमति, आज्ञा।

सम्मति (सं० स्त्री०) सम्-मन-क्तिन्। १ अनुमति, आदेश, आज्ञा। २ मत, अभिप्राय। ३ सम्मान, प्रतिष्ठा। ४ इच्छा, वासना। ५ ऐकमत्य। ६ आत्मज्ञान। ७ सलाह, राय।

सम्मतिमत् (सं० पु०) पाणिग्युक्त व्यक्तिभेद।

सम्मतीय (सं० त्रि०) सम्मत शाखाभेद।

सम्मद (सं० पु०) सम्-द (प्रमदसम्मदौ हर्षे। पा ३।३।६८) इति अप्। १ हर्ष, आमोद, आह्लाद। २ एक प्रकारकी मछली। विष्णुपुराणमें लिखा है, कि यह मछली अधिक जलमें रहती है और बहुत बड़ी होती है। इसके बहुत बच्चे होते हैं। (त्रि०) ३ आनन्दित, सुखी।

सम्मदमय (सं० त्रि०) सम्यक् हर्ष या आनन्दविशिष्ट, आह्लादित।

सम्मनस् (सं० त्रि०) १ समान मनस्क। २ परस्परानुरागयुक्त

सम्मनिमन् (सं० त्रि०) आपसमें समान अनुराग करनेवाला।

सम्मन्तव्य (सं० त्रि०) सम्-मन तव्य। सम्यक् मनन योग्य, अच्छी तरह सोचने विचारनेलायक।

सम्मन्त्रणीय (सं० त्रि०) सम्-मन्त्र-अनीयर्। सम्यक् रूपसे मन्त्रणीय, सम्यक् मन्त्रणाके योग्य।

सम्मयन (सं० क्ली०) यूपप्रोथन या यूपके चारों ओर खाई खुदवाना।

सम्मर्द (सं० पु०) सम्मृद्यतेऽत्रेति सम्-मृद-घञ्। १ युद्ध, लड़ाई। २ जनता, भीड़। ३ परस्पर विमर्द, परस्परका विवाद।

सम्मर्दन (सं० पु०) १ वासुदेवके एक पुत्रका नाम। (भागवत ९।२४।५१) २ विद्याधरविशेष। ३ भली भांति मर्दन करनेका व्यापार। ४ वह जो भलीभांति मर्दन करता हो।

सम्मर्दिन् (सं० त्रि०) सम्मर्दयतीति सम्-मृद् ग्रहादित्वाद् णिन्। (पा ३।१।१३०) सम्मर्दनकारी, भली भांति मर्दन करनेवाला।

सम्मर्शन (सं० क्ली०) सम्यक् व्यापन, इधर उधर बिखरा हुआ।

सम्मर्शिन् (सं० त्रि०) विचारकारी, विचार करनेवाला।

सम्मर्ष (सं० पु०) सम्यक् मर्ष, सहन।

सम्महा (हिं० पु०) अग्नि, आग।

सम्मा (सं० स्त्री०) तुल्य, समान।

सम्मातृ (सं० त्रि०) पतिव्रतापुत्र, जिसकी माता पतिव्रता हो।

सम्मातुर (सं० त्रि०) सतीतनय, सतीमातावाला।

सम्माद (सं० पु०) सम्-मद-घञ्। उन्माद, पागलपन।

सम्मान (सं० पु०) सं मन-अच्। १ समादर, प्रतिष्ठा, इज्जत, मान। (क्ली०) २ सम्-मा-ल्युट्। २ सम्यक् परिमाण। ३ मानसहित। ४ जिसका मान पूरा हो, ठीक मानवाला।

सम्मानन (सं० क्ली०) सम्-मान-ल्युट्। सम्मान, इज्जत।

सम्मानना (सं० स्त्री०) सम्-मान-युच्-टाप्। सम्मान, प्रतिष्ठा।

सम्माननीय (सं० त्रि०) सम्-मान-अनीयर्। सम्मानके योग्य, आदरके लायक।

सम्मानित (सं० त्रि०) सम्मानोऽस्य जातः तारकादित्वादितच्। समादृत, जिसका आदर हुआ हो।

सम्मानिन् (सं० त्रि०) सम्मान अस्त्यर्थे इन्। सम्मानविशिष्ट, सम्मानयुक्त।

सम्मान्य (सं० त्रि०) सं-मान-यत्। सम्मानार्ह, आदर सत्कारके योग्य।

सम्मार्ग (सं० पु०) १ साधुमार्ग, श्रेष्ठ पद प्राप्त करनेका रास्ता। २ वह मार्ग जिससे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

सम्मार्जक (सं० त्रि०) सम्मार्जयतीति सं-मृज-ण्वुल्। १ सम्यक्-मार्जनकारी, अच्छी तरह झाड़ू देनेवाला। (पु०) २ सम्मार्जनी, झाड़ू, बुहारन।

सम्मार्जन (सं० क्ली०) सम्-मृज-ल्युट्। १ संशोधन। २ परिष्कारण।

सम्मार्जनी (सं० स्त्री०) सम्मृज्यतेऽनयेति सम्-मृज-ल्युट्। झाड़ू, बुहारी। पर्याय—शोधनी, ऊहनी, समूहनी, बहुकारी, वर्द्धनी। गृहस्थोंके पञ्चसूनामें यह एक है, कुण्डली, पेषणी, चुल्ली, उदकुम्भी और सम्मार्जनी यही पांच पञ्चसूना है, गृहस्थ लोग झाड़ू देते समय प्रति दिन छोटे छोटे अनेक प्राणियोंका वध करते हैं। इस पञ्चसूनासे जो पाप होता है, उससे मनुष्य स्वर्गलाभके अधिकारी नहीं होते, इसी कारण शास्त्रमें प्रति दिन पञ्चयज्ञका विधान है। जो विधिपूर्वक पञ्चयज्ञका अनुष्ठान करते हैं, उनका पञ्चसूना जन्य पाप दूर होता है। पञ्चसूना देखो।

सम्मित (सं० त्रि०) सम्-मा-क्त। समान सदृश, मिलता जुलता।

सम्मिति (सं० स्त्री०) उच्चाकाङ्क्षा, ऊंची और बड़ी कामना।

सम्मिलन (सं० क्ली०) सम्-मिल-ल्युट्। सम्यक् मिलन, मिलाप, मेल।

सम्मिलित (सं० त्रि०) सम्-मिल-क्त। युक्त, मिला हुआ।

सम्मिश्र (सं० त्रि०) सम्यक् प्रकारेण मिश्रयतीति मिश्र मिश्रणे अच्। संयुक्त, मिला हुआ।

सम्मिश्रण (सं० पु०) १ मिलनेकी क्रिया। २ मेल, मिलावट।

सम्मीलन (सं० क्ली०) सम्-मील-ल्युट्। सम्यक् मीलन, सङ्कोचन।

सम्मील्य (सं० त्रि०) सम्-मील-यत्। १ सम्मीलनके योग्य। (क्ली०) २ सामभेद।

सम्मुख (सं० त्रि०) सम्यक् मुखं यस्य। १ अभिमुखागत। पर्याय—अग्रपृष्ठ। (क्ली०) २ समक्ष, अभिमुख, सामने, आगे। ३ समग्र मुख, समूचा मुंह।

सम्मुखिन् (सं० पु०) सम्मुखमस्यास्तीति इनि। १ दर्पण, मुकुर, आइना। २ वह जो सामने हो।

सम्मुखीन (सं० त्रि०) सर्वस्य मुखस्य दर्शनः सम्मुख (यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः। पा ५।२।६) इति ख। १ अभिमुख, सामने। २ सम्मुखवर्त्ती, जो सामने हो।

सम्मूढ (सं० त्रि०) सम्-मुह-क्त। १ मुग्ध, मोहयुक्त। २ निर्बोध, अज्ञान। ३ भग्न, टूटा हुआ। ४ राशिकृत, ढेर लगाया हुआ।

सम्मूढपिड़का (सं० स्त्री०) शूकरोगभेद। इसमें लिङ्ग टेढ़ा हो जाता है और उस पर फुंसियां निकल आती हैं। वायुके कुपित होनेसे इसकी उत्पत्ति होती है। शूकरोग देखो।

सम्मूत्रण (सं० क्ली०) सम्यक् मूत्रण, सम्यक् मूत्रत्याग।

सम्मूर्च्छ (सं० पु०) सम्-मूर्च्छ-अच्। १ सम्यक् मोह। २ व्याप्ति।

सम्मूर्च्छज (सं० पु०) तृणादि।

सम्मूर्च्छन (सं० क्ली०) सम्-मूर्च्छ व्याप्तौ मोहे च ल्युट्। १ सर्वतो व्याप्ति, भली भांति व्याप्त होनेकी क्रिया। २ मोह, मूर्च्छा। ३ वृद्धि, बढ़ती। ४ विस्तार, फैलाव। ५ ऊंचता, ऊंचाई।

सम्मूर्च्छनोद्भव (सं० पु०) संमूर्च्छनामुद्भवतीति उत्-भू-अच्। मत्स्यादि।

सम्मृष्ट (सं० त्रि०) सम्-मृज-क्त। संशोधित, जिसका संशोधन भली भांति हुआ हो, अच्छी तरह साफ किया हुआ।

सम्मेघ (सं० पु०) १ सम्यक् मेघ। २ मेघयुक्त आकाश।

सम्मेत (सं० पु०) पर्वतभेद, बङ्गालका पारशनाथ पहाड़ ।

सम्मेलन (सं० क्ली०) १ संयोग, मिलन, मनुष्योंका किसी निमित्त एकत्र हुआ समाज । २ जमावड़ा, जमघट । ३ सङ्गम, मेल ।

सम्मोद (सं० पु०) सम्-मुद-घञ् । १ आमोद, आनन्द, हर्ष । २ प्रीति, प्रेम ।

सम्मोदन (सं० क्ली०) सम्-मुद-ल्युट् । सम्मोद, हर्ष, आनन्द ।

सम्मोह (सं० पु०) सम्-मुह-घञ् । १ मोह, प्रेम । २ भ्रम, संदेह । ३ मूर्च्छा, बेहोशी । ४ एक प्रकारका छंद जिसके प्रत्येक चरणमें एक तगण और एक गुरु होता है ।

सम्मोहक (सं० त्रि०) सम्मोहयतीति सम्-मोहि-ण्वुल् । १ मोहकारक, लुभावना । (पु०) २ सन्निपात ज्वर-विशेष ।

जब वायु अत्यन्त प्रवल, पित्त मध्यवल और कफ अति हीनवल हो सन्निपातके लक्षणयुक्त ज्वर उत्पादन करता है, तब उसे सम्मोहक सन्निपात कहते हैं । इस रोगमें वायु अत्यन्त प्रवल रहती है, इस कारण वेदना, कम्प, निद्रा नाश और विष्टम्भ आदि वायुकोपजन्य सभी लक्षण दिखाई देते हैं । दाह, पिपासा, उष्णता और घर्म आदि पित्तज लक्षण भी उसके साथ साथ मध्यरूप-में दिखाई देते हैं । गुरुत्व, अग्निमान्द्य, उत्कास और मुखनासिकास्राव आदि कफज लक्षण अल्परूपमें दिखाई पड़ते हैं । इसके सिवा प्रलाप, आयास अर्थात् अकारण श्रमबोध, मोह, कम्प, मूर्च्छा, भ्रम और वाम या दक्षिण कोई एक पथ अवसन्न हो जाता है । यह सन्निपातज्वर अति भयानक और कष्टसाध्य है । यह ज्वर होने पर सुविज्ञ चिकित्सकको चाहिये, कि वे बड़ी सावधानीसे चिकित्सा करें । सन्निपात और ज्वर देखो ।

सम्मोहन (सं० क्ली०) सम्-मुह-ल्युट् । १ मुग्ध करना, मोहित करनेकी क्रिया । २ वह जिससे मोह उत्पन्न होता हो, मोहकारक । (पु०) ३ प्राचीन कालका एक प्रकारका अस्त्र जिससे शत्रुको मोहित कर लेते थे । ४ कामदेवके पांच वाणोंमें एक वाणका नाम ।

सम्मोहनतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद ।

सम्यक (सं० पु०) १ समुदाय, समूह । (त्रि०) २ पूरा, सब । (क्रि० वि०) ३ सब प्रकारसे । ४ अच्छी तरह, भली भाँति ।

सम्यक्कर्मान्त (सं० पु०) सम्यक् रूपसे कर्मका सर्व-शेष, निष्पादनावस्था ।

सम्यक्चारित्र (सं० क्ली०) जैनियोंके अनुसार धर्मत्रय-मेंसे एक धर्म, बहुत ही धर्म तथा शुद्धतापूर्वक आचरण करना ।

सम्यक्त (सं० क्ली०) उपयुक्तता ।

सम्यक्ज्ञान (सं० क्ली०) जैनियोंके धर्मत्रयमेंसे एक, न्यायप्रमाण द्वारा प्रतिष्ठित सात या नौ तत्त्वोंका ठीक और पूरा ज्ञान ।

सम्यक्दर्शन (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार धर्मत्रय-मेंसे एक, रत्नत्रय, सातों तत्त्वों और आत्मा आदिमें पूरी पूरी श्रद्धा होना । जैन देखो ।

सम्यक्दर्शिन् (सं० त्रि०) धर्मतत्त्वार्थदर्शी, जिसे सम्यक्दर्शन प्राप्त हो ।

सम्यक्दृश् (सं० त्रि०) सम्पूर्ण दृष्टियुक्त ।

सम्यक्दृष्टि (सं० स्त्री०) १ सम्यक् दर्शन । २ अच्छी तरह देखना ।

सम्यक्प्रवृत्ति (सं० स्त्री०) सम्यक् इच्छा ।

सम्यक्सङ्कल्प (सं० पु०) सम्यक् रूपसे सङ्कल्प ।

सम्यक्सत्य (सं० पु०) बौद्धयतिभेद ।

सम्यक्समाधि (सं० पु०) बौद्धोंका समाधिविशेष ।

सम्यक्सम्बुद्ध (सं० पु०) १ बुद्धका एक नाम । २ वह जिसे सब बातोंका पूरा और ठीक ज्ञान प्राप्त हो गया हो ।

सम्यक्सम्बोध (सं० पु०) १ बुद्धभेद । २ सम्यक् ज्ञानयुक्त ।

सम्यग्योग (सं० पु०) संपूर्ण योग, समाधि ।

सम्यग्वाच् (सं० स्त्री०) सम्यक् आलाप, कथोपकथन ।

सम्यच् (सं० त्रि०) सम्-अञ्च्-ऋत्विगादिना क्विन् (समः समि । पा ६।३।९३) इति सम्यादेशः । १ सत्यवचन । अर्थेन सह समञ्चति सङ्गच्छते अञ्च-क्विन् । २ सङ्गत । ३ मनोज्ञ ।

सम्राज् (सं० पु०) सम्यक् राजते इति सम्-राज क्विप् ।

(मोरजिसम क्वो। पा ८।३।२५) इति समो मकारस्य माङ्गेश स्तेन नानुस्वारः। सार्व्वभौम नरपति, राजसूययज्ञकारी। जिन्हों ने सभी राजाओं को जीत कर राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया है, उन्हें सम्राट् कहते हैं। मण्डलेश्वर, द्वादश राजमण्डलके अधिपति, सर्व्वभूमीश्वर, राजा, राजाधिराज, ससागरा पृथ्वीके अधिपति, ये सब सम्राज्के पर्याय हैं। अमरसिंहने लिखा है, कि जिनके आज्ञानुसार राजगण पृथिवीका शासन करते हैं, उन्हें सम्राट् कहते हैं। इस शब्दका स्त्रीलिङ्गमें सम्राजी ऐसा पद होता है।

सम्राज्ञी (सं० स्त्री०) सम्राजन्-ङीप्। १ सम्राट्पत्नी, राजमहिषी। २ साम्राज्यकी अधीश्वरी।

सम्राट् (सं० पु०) सम्राज् देखो।

सयति (सं० त्रि०) समान यतिविशिष्ट।

सयत्न (सं० त्रि०) यत्नेन सह वर्त्तमानः। यत्नके साथ वर्त्तमान, यत्नविशिष्ट।

सयत्व (सं० क्लो०) सङ्गम, मिलन, सहवास।

सयन (सं० क्लो०) १ बन्धन। (पु०) २ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

सयव (सं० त्रि०) यवके साथ वर्त्तमान, यवयुक्त, यवविशिष्ट।

सयावक (सं० त्रि०) १ यावकयुक्त। २ समान गतिविशिष्ट।

सयावन् (सं० त्रि०) समानगतिविशिष्ट, तुल्यगति। स्त्रीलिङ्गमें शब्दके अन्तस्थ न की जगह र करके सयावरी पद होगा।

संयुक्त्व (सं० क्लो०) सयुक् भावे त्व। संयोगका भाव या धर्म।

सयुग्वन् (सं० त्रि०) सहाययुक्त। (ऋक् १०।३०।४)

सयुज् (सं० त्रि०) समानयोगविशिष्ट, समानयोगयुक्त।

सयूथ्य (सं० त्रि०) सयूथे भवः (सगर्भसयूथसनुताथद् यत्। पा ४।४।११४) इति यत्। सयूथभव।

सयोग (सं० त्रि०) योगके साथ वर्त्तमान, योगयुक्त, संयोग।

सयोनि (सं० पु०) योनिभिः सह वर्त्तमानः। १ इन्द्र। (त्रि०) २ योनिके साथ वर्त्तमान, जो एक ही योनिसे उत्पन्न हुए हों, जिनका उत्पत्तिस्थान एक है।

सयोनिता (सं० स्त्री०) सयोनि भावे तल्-टाप्। सयोनिका भाव या धर्म।

सर (सं० क्लो०) सरतीति सृ-अच्। १ सरोवर, ताल, तालाब। २ जल, पानी। ३ दध्यग्र, दधिका अग्रभाग। ४ गति। ५ वाण। ६ लवण। (पु० स्त्री०) ७ निर्भर, झरना। (पु०) ८ महापिण्डीतरु। (त्रि०) ९ सारक। १० भेदक।

सर (फा० पु०) १ सिर। २ सिरा, चोटी, उच्च स्थान।

सर (अं० पु०) एक बड़ी उपाधि जो अङ्गरेजी सरकार देती है।

सर—बङ्गालके पुरी जिलान्तर्गत एक छोटा ह्रद। यह अक्षा० १९° ५१' ३०" उ० तथा देशा० ८५° ५५' पू०के मध्य पुरी नगरसे उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। यह पूर्व-पश्चिममें ४ मील लम्बा तथा उत्तर-दक्षिणमें २ मील चौड़ा है। चिल्का झीलकी तरह इस छोटी झीलके साथ समुद्रका कोई संयोग नहीं है। यह स्थान प्रायः जनशून्य है। मल्लाह लोग यहांसे मछली पकड़ कर नगरमें बेचने ले जाते हैं। जब वृष्टि बिलकुल नहीं होती, तब आस-पासके कृषक यहांसे नली द्वारा जल ले जा कर अपना अपना खेत सींचते हैं।

सरःकाक (सं० पु०) सरसः काकः। हंस।

सरःकाकी (सं० स्त्री०) हंसी।

सरअंजाम (फा० पु०) सामान, सामग्री, असबाब।

सरई (हिं० स्त्री०) सरहरी देखो।

सरकंडा (हिं० पु०) सरपतकी जातिका एक पौधा जिसमें गांठवाली छड़ें होती हैं।

सरक (सं० क्लो०) सरमेव स्वार्थे कन्। १ सरोवर, तालाब। २ आकाश। (पु० क्लो०) सरतीति सृ-वुन्। ३ शीधुपात्र, शराबका प्याला। ४ शीधुपान, मद्यपान। ५ गुड़की बनी शराब। ६ सरकनेकी क्रिया, खिसकना। ७ यात्रियोंका दल, कारवां। (त्रि०) ८ गतिशील।

सरकना (हिं० क्रि०) १ जमीनसे लगे हुए किसी ओर धीरेसे बढ़ना, किसी तरफ हटना। २ नियत कालसे और आगे जाना, टलना। ३ काम चलना, निर्वाह होना।

सरकश (फा० वि०) १ उद्धत, अक्खड़। २ शासन न माननेवाला, विरोधमें सिर उठानेवाला। ३ शरारती।

सरकशी (फा० स्त्री०) १ उद्दण्डता, औद्धत्य। २ नट-खटी, शरारत।
सरकार (फा० स्त्री०) १ प्रधान, अधिपति। २ राज्य, शासनसत्ता, गवमेंण्ट। ३ राज्य, रियासत।
सरकारी (फा० वि०) १ सरकारका, मालिकका। २ राज-कीय, राजका।
सरक्त (सं० त्रि०) रक्तके साथ, खूनसे तराबोर।
सरक्तगौर (सं० त्रि०) रक्तिमाभ गौरवर्णयुक्त।
सरखत (फा० पु०) १ वह कागज या दस्तावेज जिस पर मकान आदि किराए पर दिये जानेकी शर्तें होती हैं। २ दिये और चुकाए हुए ऋण आदिका व्योरा।
सरगना (फा० पु०) डींग मारना, शेखी बघारना।
सरग़ना (फा० पु०) सरदार, अगुवा। इस शब्दका प्रयोग प्रायः बुरे अर्थमें ही होता है।
सरगम (हिं० पु०) सङ्गीतमें सात स्वरोंके चढ़ाव उतार-का क्रम, स्वरग्राम।
सरगर्दानी (फा० स्त्री०) परेशानी, हैरानी, दिक्कत।
सरगर्म (फा० वि०) १ जोशीला, आवेशपूर्ण। २ उत्साही, उमंगसे भरा हुआ।
सरगर्मी (फा० स्त्री०) १ जोश, आवेश। २ उत्साह, उमंग।
सरगुजा—मध्यप्रदेशका एक बहुत बड़ा सामन्त राज्य। यह अक्षा० २२° ३८' से २४° ६' उ० तथा देशा० ८२° ३१' से ८४° ५' पू०के मध्य विस्तृत है। भू-परिमाण ६०८९ वर्गमील है। १९०५ ई० तक यह छोटानागपुर जिलेमें शामिल था। इसके उत्तरमें युक्तप्रदेशका मिर्जापुर जिला और रेवां राज्य, पूरबमें पलामू और रांची जिला, दक्षिणमें जशपुर और उदयपुर राज्य तथा विलासपुर जिला और पश्चिम-में कोरिया राज्य है।

इस राज्यका अधिकांश स्थान अधित्यका, उपत्यका और पहाड़ी ऊंची नीची भूमिसे भरा हुआ है। इसका पूर्वांश समुद्रपृष्ठसे २५०० फुट ऊंचा है। पलामू और यशपुरके सीमान्त देशभागमें प्रायः ३५००से ४००० फुट ऊंची शैलमाला देखी जाती है। यहांके मेनपाट नामक अधित्यकाभाग १८ मील लम्बा और ६से ८ मील चौड़ा है। इसका सर्वोच्च स्थान समुद्रपृष्ठसे ३९८१ फुट ऊंचा है। जमीरा पाट नामकी दूसरी अधित्यकाभूमि भी प्रायः २ मील लंबी होगी। उक्त दोनों अधित्यका वनमालाविभूषित और श्यामल तृणाच्छादित खूब लम्बे चौड़े मैदानसे परिशोभित है। इस मैदानमें मवेशी चरा करते हैं। यहांसे राजाको प्रायः ढाई हजारकी वार्षिक आमदनी होती है। शैलशृङ्गोंमेंसे मैलान ४०२४ फुट, जाम ३८२७ फुट और पार्वागर्सा ३८०४ फुट ऊंचा है।

यहां बहुत-सी पर्वतगात्रवाहिनी नदियां देखी जाती हैं। उनमेंसे कनहार, वेड़ा और महान उत्तर-वाहिनी हो कर शोणनदमें मिली हैं। शङ्ख नामकी नदी ब्राह्मणी नदीकी एक शाखा है। इन नदियोंमें केवल वर्षाकालमें ही अधिक जल रहता है; अन्यान्य ऋतुओंमें बिलकुल जल नहीं रहता। वर्षाके समय इन नदियोंमें नाव ले जानेमें बड़ा डर लगता है। राज्यके उत्तर तप्तपाणि नामक स्थानमें कुछ गरम सोते बहते हैं। विश्रामपुरमें कोयलेकी खान देखी जाती है। प्रायः राज्यमें सभी जगह शालके वन हैं।

इस राज्यका प्राचीन इतिहास मालूम नहीं। राज-वंशमालाकी आलोचना करनेसे जो ऐतिहासिक तत्त्व मालूम हुआ है, वह संदेहजनक है तथा उससे प्रकृत इतिहासका सङ्कलन करना बिलकुल असंभव है। १७५८ ई०के प्रारम्भसे ही यहांका प्रकृत इतिहास आरम्भ हुआ है। उस समय एक दल मराठा-सेनाने गङ्गातीर-की ओर अग्रसर हो कर पहले इस राज्यको अधिकार किया और पीछे लूटा तथा यहांके सरदारको बेरारराज के शासनाधीन किया। १८वीं सदीके आखिरमें अंगरेज-राजके विरुद्ध पलामू नामक स्थानमें एक विद्रोह खड़ा हुआ। इस विद्रोहमें सरगुजाके राजाने सहायता पहुंचाई थी, इस कारण अंगरेज गवर्मेण्टने कर्नल जोन्सको उनके विरुद्ध दलबलके साथ भेजा। अंगरेजी सेनाके पहुंचने पर विद्रोह शान्त हो गया तथा छोटानागपुरके राजाके साथ अंगरेज गवर्मेण्टकी एक सन्धि हो गई। किन्तु उस संधि-शर्तका पालन दोनों पक्ष अधिक दिन तक न कर सके। अंगरेजी सेनाके वापस जानेके ठीक बाद ही राजा और राजपरिवारमें यहां फिरसे अन्तर्विप्लव आरम्भ हो गया। तदनुसार

१८१२ ई०में पालिटिकल एजेण्ट मेजर रफसेजने स्वयं सरगुजा जा कर राज्यकी श्रृङ्खला स्थापन और विप्लव शान्त करनेकी कोशिश की। बहुत समझाने बुझाने पर भी जब राजकुमारने पोलिटिकल एजेण्टकी सलाह न मानी, तब राजकार्यका सुचारुरूपसे परिचालन करनेके लिये एक दीवान नियुक्त किया गया। उद्धत युवराज और उनके अनुचरोंने उस अंगरेज कर्मचारीको चुपके मार डाला तथा वृद्ध राजा और उनकी दोनों रानियों-को कैद करनेको चेष्टा की। मेजर रफसेज राजाकी रक्षाके लिये जो अंगरेजी सिपाही छोड़ गये थे, उन्होंने बड़ी वीरता दिखा कर विद्रोहियोंके हाथसे उन्हें बचाया। १८१८ ई० तक यहां घोर शासनविश्रृङ्खला चलती रही। उसी साल मधुजी भोंसले (अप्पा साहब)-ने अंगरेज गवर्मेण्टके साथ बन्दोबस्तके अनुसार यह प्रदेश अंग-रेज गवर्मेण्टको सुपुर्द कर दिया। तभीसे यहां शान्ति विराजने लगी। १८२६ ई०में यहांके सरदारने अंगरेज गवर्मेण्टने महाराजकी उपाधि और यथोपयुक्त उपढौकन पाया। १८८२ ई०में राजा रघुनाथशरण सिंहने बालिग हो कर राजकार्यका भार अपने हाथ लिया। इन्हें १८९५ ई०में महाराजा बहादुरकी पदवी मिली। इन्हें वृटिश गवर्मेण्टको वार्षिक २५००) रु० कर देना पड़ता है।

इस राज्यमें कुल १३७२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े तीन लाखसे ऊपर है। विसरामपुरमें एक ज्ञातव्य चिकित्सालय और एक कारागार है। राज्यमें कुल मिला कर १५ पाठशाला और एक अस्पताल है।

सरघा (सं० स्त्री०) सरं मधुविशेषं हन्तीति हन-ड निपातनात् साधु। मधुमक्षिका, मधुमक्खी।

सरङ्ग (सं० पु०) सरतीति सृ-अङ्गच्। १ चतुष्पात्। २ पक्षी।

सरज (सं० क्ली०) सरात् जायते इति जन-ड। १ नवनीत, मक्खन। २ मलिन, मैला।

सरजत् (सं० त्रि०) एककालीन रञ्जनकारी।

सरजत (सं० त्रि०) रजतके साथ वर्त्तमान, रजतयुक्त।

सरजस् (सं० स्त्री०) रजसा सह वर्त्तमाना। १ ऋतुमती स्त्री। २ पङ्कज, कमल।

सरजा (फा० पु०) १ श्रेष्ठव्यक्ति, सरदार। २ सिंह।

सरजाङ्क (सं० त्रि०) रजोयुक्त।

सरजाङ्का (सं० स्त्री०) ऋतुमती स्त्री।

सरजीवन (हिं० वि०) १ सजीवन, जिलानेवाला। २ उपजाऊ, हरा भरा।

सरजोर (फा० वि०) १ जबरदस्त। २ उद्दंड, दुर्दमनीय।

सरजोरी (फा० स्त्री०) १ जबरदस्ती। २ उद्दंडता।

सरट् (सं० पु०) सरतीति सृ-गतौ (सर्त्तेरटिः। उण् ११३३) इति अटिः। १ वायु, हवा। २ मेघ, बादल। ३ मधुमक्षिका, मधुमक्खी। ४ कृकलास, गिरगिट। ५ छिपकली।

सरट (सं० पु०) सरतीति सृ-गतौ शकादित्वादटन्। १ कृकलास, गिरगिट। ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है, कि यदि सरट मस्तक पर चढ़े, तो राज्यलाभ, कपाल पर ऐश्वर्य, दोनों कान पर भूषणलाभ, दोनों नेत्र पर बन्धुदर्शन, नाक पर सुगन्ध वस्तु लाभ, मुख पर मिष्टान्न भोजन, कण्ठ पर लक्ष्मीलाभ, दोनों भुज पर ऐश्वर्य, बाहुमूल पर धनलाभ, स्तनमूल पर सौभाग्य, हृदय पर सुख, पृष्ठ पर महीलाभ, दोनों पार्श्व पर बन्धुदर्शन, दोनों कटि पर वस्त्रलाभ, गुह्य पर मृत्यु, जङ्घा पर अर्थक्षय, गुह्यदेश पर रोग, दोनों ऊरू पर वाहनलाभ, जानु जङ्घा पर अर्थक्षति, वाम और दक्षिण पाद पर गिरनेसे वह व्यक्ति हमेशा भ्रमण करता रहेगा। रातको यदि यह शरीर पर गिरे, तो मृत्यु या व्याधि आदि नाना प्रकार-के अमङ्गल होते हैं। यह यदि ऊपर मुंह किये चढ़े और औंधे मुंह गिरे, तो निश्चय ही शुभफल होता है। जमीन पर गिरते ही यदि यह शरीर पर चढ़ जाय, तो भी शुभफल होता है।

कृकलासके शरीर पर गिरनेसे उसी समय स्नान कर लेना उचित है। स्नानके बाद पञ्चगव्य भक्षण और सूर्यावलोकन करना आवश्यक है। इसके दोषकी शान्ति-के लिये शिवस्वस्त्ययनका भी विधान है।

२ वात, वायु। (उण् ४।१०५ उज्ज्वल)

सरटक (सं० पु०) कृकलास, गिरगिट।

सर टामस रो—एक अङ्गरेज पर्यटक और राजदूत।

थे इंग्लैण्डके राजा प्रथम जेम्सकी आज्ञासे भारतके दिल्ली दरबारमें आये। उस समय मुगलसम्राट् जहांगीर बादशाह थे। उन्होंने राजदूतका खूब आदर सत्कार कर अङ्गरेजराज प्रथम जेम्सका कुशलसंवाद पूछा। इसके बाद बादशाहने अङ्गरेज कम्पनीको सूरत, अहमदाबाद और बंबई आदि स्थानोंमें वाणिज्यकी सुविधाके लिये कोठियां खोलनेको आज्ञा दे दी। सर टामस रोने अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें हिन्दुस्तानके इस श्रेष्ठतम राजदरबारके समृद्धिगौरवका यथेष्ट परिचय दिया है। किन्तु बड़े दुःखकी बात है, कि भारतीय अथवा पाश्चात्य किसी इतिहासमें उन प्राच्य देशी दौत्यके प्रकृत तात्पर्य या मर्मका उल्लेख नहीं है।

सरटि (सं० पु०) सरतीति सृ-अटिन्। १ वायु, हवा। २ मेघ, बादल।

सरटु (सं० पु०) सृ-अटु। कृकलास, गिरगिट।

सरण (सं० क्ली०) सरतीति सृ-गतौ, (जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्य सृगृधीति। पा ३।२।१५०) इति युच्। १ लौहमल। सृ-ल्युट्। २ गमन, आगे बढ़ना। ३ माधवी मद्य। (त्रि०) ४ गमनशील, जानेवाला।

सरणा (सं० स्त्री०) सृ-युच्-टाप्। १ प्रसारणी लता। २ त्रिवृता, निसोथ। (त्रि०) ३ गमनकर्त्ता, जानेवाला।

सरणि (सं० स्त्री०) सरत्यनयेति सृ गतौ (अर्त्तिसृधृ-मीति। उण् २।१०३) इति अणि। १ पंक्ति। २ पन्था, रास्ता। ३ प्रसारणी लता। (भरत)

सरणी (सं० स्त्री०) सरणि वा ङीष्। १ पंक्ति। २ पन्था, रास्ता। ३ पगडंडी, डुरीं। ४ लकीर। ५ ढर्रो। ६ प्रसारणीलता। ७ त्रिवृत।

सरण्ड (सं० पु०) सरतीति सृ-(अण्डन् कृसृभृवृञः। उण् १।१२८) इति अण्डन्। १ धूर्त्त। २ सरट, छिपकली। ३ भूषणभेद। ४ कामुक। ५ पक्षी।

सरण्य (सं० त्रि०) सरण-ध्यञ्। गम्य, जाने योग्य।

सरण्यु (सं० पु०) सरतीति सृ-गतौ (सृयुवचिभ्योऽन्युजागूजक्नुचः। उण् ३।८१) इति अन्युच्। १ मेघ, बादल। २ वायु, हवा। ३ जल, पानी। ४ वसन्त। ५ अग्नि।

सरत् (सं० क्ली०) सृ-शतृ। १ सूत। (त्रि०) २ गन्ता, जानेवाला।

सरता बरता (हिं० पु०) बांट, बंटाई।

सरत्नि (सं० पु० स्त्री०) रत्नि परिमाण, एक हाथ।

सरथ (सं० त्रि०) रथके साथ वर्त्तमान, रथयुक्त।

सरथिन् (सं० त्रि०) समानरथयुक्त, एक रथारूढ़।

सरद (फा० वि०) सर्द देखो।

सरदई (फा० वि०) सरदेके रंगका, हरापन लिये पीला।

सरदण्डा (सं० स्त्री०) नदीभेद।

सरदर (फा० क्रि० वि०) १ एक सिरेसे। २ सब एक साथ मिला कर, औसतसे।

सरदल (हिं० पु०) दरवाजेका बाजू या साह।

सरदा (फा० पु०) एक प्रकारका बहुत बढ़िया खरबूजा जो काबुलसे आता है।

सरदार (फा० पु०) १ किसी मण्डलीका नायक, अगुवा। २ किसी प्रदेशका शासक। ३ अमीर, रईस। ४ वेश्याओंकी परिभाषामें वह व्यक्ति जिसका किसी वेश्याके साथ सम्बन्ध हो।

सरदार कवि—१ एक बन्दीजन और भाषाके कवि। संवत् १७३५ में इनका जन्म हुआ था। राणा राजसिंहकी सभामें ये रहा करते थे। इन्होंने राणाजीका जीवन-चरित बनाया है जिसका नाम राजरत्नगढ़ है।

२ बनारसके रहनेवाले एक बन्दीजन। ये काशीके महाराज ईश्वरीनारायण सिंहके दरबारमें रहते थे तथा शिवसिंह जीके समयमें जीवित थे। ये बड़े उत्तम कवि थे। इन्होंने ये ग्रन्थ बनाये हैं,—साहित्यसरसी, हनुमतभूषण, तुलसीभूषण, मानसभूषण, कविप्रियाकी टीका, रसिकप्रियाकी टीका, सतसईकी टीका, तीन सौ अस्सी सूरदासके कूटोंकी टीका। नारायण राय आदि बड़े बड़े कवि इनके शिष्य हैं।

सरदारसिंह—१ मेवाड़के एक महाराणाका नाम। ये भीमसिंहके पुत्र जवानसिंहके दत्तक पुत्र थे। ये बड़े कड़े स्वभावके थे। इसलिये सामन्तोंसे इनका मनमुटाव सदा ही रहा करता था। सामन्तोंको शान्त करनेके लिये इन्होंने गवर्नमेंटसे प्रार्थना की, तदनुसार गवर्नमेंटने सन्धि करा दी। परन्तु वह सन्धि कब तक स्थिर रह

सकती थी। अन्तमें महाराणाने गवर्नमेंटके निकट यह प्रस्ताव उपस्थित किया, कि गोरी पल्टन यहां कुछ दिनों तक रहे, परन्तु गवर्नमेंटने इस प्रस्तावको नामंजूर कर दिया। इनके राज्यकालमें मेवाड़ राज्यमें कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ। इनका राज्यकाल इधर उधरसे सहायता मांगने हीमें गया। सन् १८४२ ई०में इनका मायामय शरीरसे सम्बन्ध टूट गया।

२ बीकानेरके महाराज। इनके पिताका नाम था महाराज रत्नसिंह जी। महाराज रत्नसिंह जीके परलोकवास होने पर सन् १८५२ ई०में सरदारसिंह बीकानेर की राजगद्दी पर बैठे। उस समय भारतके राजपूत गृहविवादके कारण अपनी वीरता तथा अपना साहस आदि सभी खो चुके थे और वृटिश सिंह उस समय अपनी विशाल मूर्त्ति प्रकट कर रहा था। यह सब देख कर सरदारसिंहने यही निश्चित किया, कि जिस प्रकार हो वृटिशसिंहको प्रसन्न रखनेमें कल्याण है। महाराज सरदारसिंहके राज्यके पाँचवें वर्ष १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहकी आग भड़क उठी। सरदारसिंहने बड़े प्रयत्नसे उस समय भीत अंगरेजोंको शरण दी, युद्धमें धन तथा सेनाकी सहायता दी। सिपाहीविद्रोहकी आग बुझ जाने पर सरकारने इन्हें ४१ गाँव उपहारमें दिये जिनकी आय १४२९१) रुपये प्रति वर्ष थी। इन्होंने सामन्तोंके विद्रोहको गवर्नमेंटकी सहायतासे दूर किया।

सरदारी (फा० स्त्री०) सरदारका पद या भाव।

सरद्वत (सं० पु०) १ गौतम मुनि। २ इनके पुत्र।

सरना (हिं० क्रि०) १ चलना, खिसकना। २ हिलना, डोलना। ३ काम चलाना, पूरा पड़ना। ४ संपादित होना, किया जाना।

सरनाम (फा० वि०) प्रसिद्ध, मशहूर।

सरनामा (फा० पु०) १ किसी लेख या विषयका निर्देश जो ऊपर लिखा रहता है, शीर्षक। २ पत्रका आरम्भ या संबोधन। ३ पत्र आदि पर लिखा जानेवाला पता।

सरन्ध्र (सं० त्रि०) रंध्रके सहित, छिद्रविशिष्ट, छेदवाला।

सरपंच (फा० पु०) पंचोंमें बड़ा व्यक्ति, पंचायतका सभापति।

सरपट (हिं० क्रि० वि०) घोड़ेकी बहुत तेज दौड़ जिसमें वह दोनों अगले पैर साथ साथ आगे फेंकता है।

सरपत (हिं० पु०) कुशकी तरहकी एक घास। इसमें टहनियां नहीं होतीं, बहुत पतली और दो हाथ लंबी पत्तियां ही मध्य भागसे निकल कर चारों ओर घनी फैली रहती हैं। इसके बीचसे पतली छड़ निकलती है जिसमें फूल लगते हैं। यह घास छप्पर आदि छानेके काममें आती है।

सरपत्रिका (सं० स्त्री०) सरपत्रं जलस्थपत्रमस्त्यस्या इति ठन्-टाप् अतइत्वं। १ पद्म, कमल। २ पद्मपाल।

सरपरस्त (फा० पु०) १ रक्षा करनेवाला, श्रेष्ठ पुरुष। २ अभिभावक, संरक्षक।

सरपरस्ती (फा० स्त्री०) १ संरक्षा। २ अभिभावकता।

सरपेच (फा० पु०) १ पगड़ीके ऊपर लगानेका एक जड़ाऊ गहना। २ दो ढाई अंगुल चौड़ा गोटा।

सरपोश (फा० पु०) थाल या तश्तरी ढकनेका कपड़ा।

सरफराज (फा० वि०) १ उच्च पदस्थ, बड़ाईको पहुंचा हुआ। २ धन्य, कृतार्थ।

सरफराज खाँ—बङ्गालके एक मुसलमान नवाब। वे नवाब सुजाउद्दौला या सुजाउद्दीन् खाँके पुत्र थे। उनकी माता नवाब मुर्शिद कुली खाँकी कन्या थीं। कुली खाँने अपने जमाईको नायब दीवान और पीछे नायब नाजिम पदसे तरक्की कर उड़ीसाका शासनकर्त्ता बना दिया।

श्वसुरकी कृपासे पदोन्नति हुई सही, पर कामासक्तिके कारण उनका चरित्र दिन पर दिन कलुषित होने लगा। सरफराजकी माता जिन्नत् उन्निसा बेगम धर्मपरायण और पतिव्रता थीं। उसने स्वामीके इस व्यभिचार पर विरक्त हो कर उनका संसर्ग छोड़ दिया और वह मुर्शिदाबादमें जा कर रहने लगीं।

मुर्शिदकी मृत्युके बाद सुजा बंगालका नवाबी पद पानेके लिये दलबलके साथ मुर्शिदाबादकी ओर अग्रसर हुए। उनके पुत्र सरफराज उस समय राजधानीमें ही मौजूद थे। वे अपनेको मातामहकी सम्पत्तिका अधिकारी बतलाते हुए निश्चिन्त मनसे राज्यभोग सुखका उपभोग कर रहे थे। सुजा पुत्रके विरुद्ध खड़ा होना

अकर्त्तव्य जान कर भी राज्यका लालसा छोड़ न सके। मन्त्रियोंके उकसानेसे उन्होंने मुर्शिदाबादकी ओर यात्रा कर दी। इधर सरफराजने पिताके आनेके खबर पा कर उन्हें रोकनेके लिये सेना भेजना चाहा, किन्तु धर्मशीला माता और मातामहीके कहनेसे वे रुक गये और पिताको बड़े आदर सत्कारसे ले आये।

सुजा नवाव-पद पर प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने अपने पुत्र सरफराज खाँको बादशाही दीवानके पद पर नियुक्त किया। नवाव सुजा उद्दीनका १७३९ ई०को १३वीं मार्चको देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के अलाउद्दौला नवाव सरफराज खां नामसे बेरोकटोक राजपद पर बैठे। राजोचित गुणग्रामका उतना अभाव नहीं रहने पर भी राज्यशासनको ओर उनका वैसा ध्यान नहीं था। धर्म कर्मके लौकिक आचारमें ही वे अपना अधिक समय विताते थे। दुःखका विषय, कि यह सुख भोग अधिक दिन तक उनके भाग्यमें बदा नहीं था, सिर्फ एक वर्ष दो मास राज्य करनेके बाद ये दुर्बल नवाव कूटबुद्धि राजकर्मचारियोंके चक्रान्तमें पड़ कर राज्यच्युत हुए। अलीवर्दी खाँ और हाजी अहमद नवावके विरुद्ध षड्यन्त्रकारियोंमें प्रधान थे।

नवावके विरुद्ध राजविद्रोहियोंके अस्त्रधारणके संबन्धमें विभिन्न ऐतिहासिकोंने विभिन्न कारण बताया। अलीवर्दी खांके बड़े भाई हाजी अहमदने जब नवावके दरबारमें विशृंखला खड़ी कर दी, तब वे राजकार्यसे निकाल दिये गये। पीछे उन्होंने इसमें और भी नमक तेल लगा कर विहारमें अपने भाईके पास इसकी खबर दी तथा वे भाईको बङ्गाल-बिहार-उड़ीसाकी सुबादारीको सनद देनेके लिये दिल्ली दरबारमें चेष्टा करने लगे। सरफराज अपने वकील द्वारा यह संवाद पा कर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। आखिर अलीवर्दीका बल क्षय करनेके लिये विहारमें प्रेरित सेनाओंको लौट आनेका उन्होंने हुकुम दिया, उसके साथ साथ विहारका पूर्ण हिसाब भी मांग भेजा। किन्तु अलीवर्दीके उकसानेसे किसीने भी नवावका आदेश नहीं माना। यह देख सरफराजने समझा कि, एकबारगी इतनी दूर बढ़ आना अच्छा नहीं। हाजीको प्रसन्न करनेके लिये उन्होंने अपनी दौहित्री तथा राजमहलके फौजदार आता उल्ला खाँकी कन्याके साथ अपने पुत्रका विवाह सम्बन्ध स्थिर किया।

इस कन्याके साथ पहले ही मिर्जा महम्मदका संबन्ध स्थिर हो चुका था। सरफराजने बलपूर्वक विवाह देनेसे वंशमें कलङ्क लगेगा, यह सब बातें हाजी अलीवर्दीको लिख भेजीं। यह संवाद पा कर अलीवर्दी नवावके विरुद्ध दलबलके साथ रवाना हुए। बङ्गाल पहुंच कर अलीवर्दी मौका ढूंढने लगे। आखिर युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। सरफराज खाँ ससैन्य गिरियामें अपेक्षा कर रहे थे। भागीरथीके किनारे युद्ध करते करते वे मारे गये। दूसरे ग्रन्थमें लिखा है, कि अलाउद्दौलाने वजीर महब्बत जङ्गकी भतीजीके अलौकिक रूपकी बात सुन कर एक बार उसका मुख देखनेकी इच्छा प्रकट की। बहुत आरजू-मिन्नत करनेके बाद भी जब इच्छा पूरी न हुई, तब उन्होंने आखिर बलपूर्वक उस ललामभूता सुन्दरीका घूंघट उठा कर मुंह देख लिया। सम्भ्रान्तवंशकी पतिव्रता ललना यह अपमान सहन न कर सकी, उसने आखिर विष खा कर अपने अपवित्र शरीरका परित्याग कर दिया। इस अपमानका प्रतिशोध लेनेके लिये ही आताउद्दौला और वजीरने नवावके प्राण ले लिये।

एक दूसरे इतिहासमें लिखा है, कि नवाव सरफराज खाँने जगत्‌शेठ फतेचाँद महताब रायकी बालिकापत्नीके अनिन्दित सौन्दर्यकी बात सुन कर उसे एक बार देखना चाहा। जगत्‌शेठ डरके मारे गहरी रातमें कुलवधूको नवावके महलमें ले गये और फिर लौटा लाये। इसके सिवा सरफराज खां मुर्शिद अलीखांके गच्छित सात करोड़ रुपयेका दावा करके फतेचांदको बहुत फटकारा और अपमान किया। जगत्‌शेठ नाना प्रकारसे अपमानित हो इस समय हाजीके साथ मिल गये और अलीवर्दीको नवावके विरुद्ध उसकाया।

सरफोंका (हिं० पु०) सरकंडा।

सरवराह (फा० पु०) १ प्रबंधकर्त्ता, इन्तजाम करनेवाला। २ राज-मजदूरों आदिका सरदार।

सरवराहकार (फा० पु०) किसी कार्यका प्रबंध करनेवाला, कारिंदा।

सरवराही (फा० स्त्री०) १ प्रबंध, इन्तजाम। २ माल-असबावकी निगरानी। ३ सरवराहका पद या कार्य।

सरभ (सं० पु०) शरभ देखो।

सरभस (सं० त्रि०) रभसके साथ वर्त्तमान, वेगयुक्त, वेगवाला।

सरमा (सं० स्त्री०) रमया शोभया सह-वर्त्तमाना। १ राक्षसीभेद। बिभीषणकी स्त्री। रावण जब सीताको लङ्कामें हर ले गया, तब उसने सरमाको ही उनकी देखरेख-में रखा था। सीताके साथ इसका गाढ़ा प्रेम हो गया। एकमात्र सरमाके यत्नसे ही सीता दुःखक्लिष्ट हो कर भी सुखसे रहती थी और इससे सीताको लङ्कापुरी और श्री-रामचन्द्रका कुल हाल मालूम होता था। लङ्काकाण्डमें इसका विशेष परिचय दिया गया है। २ देवताओंकी एक कुतिया। ऋग्वेदमें यह इन्द्रकी कुतिया यमराजके चार आंखवाले कुत्तोंकी माता कही गई है। पणि लोग जब इन्द्रकी या आर्योंकी गौएं चुरा ले गये थे, तब यह उन्हें जा कर ढूंढ़ लाई थी। महाभारतमें इसका उल्लेख देव-शुनीके नामसे हुआ है। सरमा देवशुनी ऋग्वेदके एक मन्त्रकी द्रष्टा भी है। ३ कुक्कुरी, कुतिया। ४ कश्यपकी एक स्त्रीका नाम। भ्रमरादिगण इसकी सन्तान-सन्तति हैं।

सरमात्मज (सं० पु०) १ सरमाका आत्मज, सरमाका पुत्र, तरणीसेन। २ कुक्कुरवत्स, कुत्तेका बच्चा, पिल्ला।

सरया (हिं० पु०) एक प्रकारका मोटा धान। इसका चावल लाल होता है और कुआरमें तैयार होता है।

सरयु (सं० पु०) सरतीति सृ गतौ (शत्तेरयुः। उण् ३।२२) इति अयु। १ वायु, हवा। २ एक नदीका नाम।

सरयू (सं० स्त्री०) सरयु-ऊङ्। स्वनामख्यात नदी-विशेष। इस नदीका जल स्वादिष्ट, बलकर और पुष्टि-प्रदायक है। (राजनि०)

कालिकापुराणमें लिखा है, कि स्वर्णमय मानस-पर्वत पर जब अरुन्धतीके साथ वशिष्ठका विवाह हुआ, तब उनका विवाहभूत जल और शान्तिजल पहले मानस-पर्वतके कन्दरमें गिरा, पीछे वह वहांसे सात भागोंमें विभक्त हो हिमालय पर्वतकी गुहा, सानु और सरोवरमें में पृथक् पृथक् भावमें गिर कर सात नदीरूपमें बह गया था जो जल हंसावतार-समीपवर्त्ती गुहामें गिरा, उससे सरयू नामकी पुण्यतमा नदीकी उत्पत्ति हुई। यह नदी दक्षिण समुद्रगामिनी और चिरकालस्थायिनी है। इस नदीमें स्नानादि करनेसे गङ्गास्नानादि जैसा फल होता है। अतएव यह नदी गङ्गाके समान पुण्यतोया है। इसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका निदान कहा है।

रामायणमें अयोध्याप्रदेशमें प्रवाहित सरयू नदीका उल्लेख है। लक्ष्मण इसी सरयूमें देह विसर्जन कर अनन्तदेवरूपमें स्वर्गधाम गये थे। रामचन्द्रने भी लक्ष्मणके महाप्रस्थानका हाल सुन कर इसी नदीमें अपना शरीर रख छोड़ा। यह नदी बहुत प्राचीन है। वैदिक युगमें इस पुण्यसलिला नदीके किनारे आर्य ऋषियोंका उपनिवेश स्थापित हुआ था।

ऋग्वेदके ४।३०।१८ मन्त्रसे जाना जाता है, कि सरयू-तीरवर्त्ती देशमें अर्ण और चित्ररथ नामक दो राजाओंकी राजधानी थी। आर्य ऋषियोंने उन दोनों राजाओंके मङ्गलकी कामना की है। इसके सिवा ५।५३।६ और १०।६४।६ मन्त्रमें लिखा है, कि ऋषिगण पुण्यसलिला इस नदीके किनारे बैठ कर यज्ञादि किया करते थे। महाभारत, हरिवंश और रामायणमें सरयूका कई जगह उल्लेख देखनेमें आता है। रामायणीयुगमें अयोध्या-प्रवाहित सरयूकी बड़ी उन्नति हुई थी। अयोध्याधिपति राजा दशरथ और श्रीरामचन्द्रने इस नदीके किनारे अव-स्थित अयोध्या नगरमें राज्य किया था।

समूची नदी घघरो नामसे परिचित है और यह हिमवत्पाद विनिसृता है। अयोध्याप्रदेशमें ही इसका कुछ अंश सरयू कहलाता है। घर्घरा देखो।

सरर (हिं० पु०) बांस या सरकंडेकी पतली छड़ी जो ताना ठीक करनेके लिये जुलाहे लगाते हैं, सथिया, सतगारा।

सरराना (हिं० क्रि०) हवा बहने या हवामें किसी वस्तु-के वेगसे चलनेका शब्द होना।

सरल (सं० पु०) सरतीति सृ (वृषादिभ्यश्चित्। उण् १।१०८) इति कलच् बाहुलकात् गुणः। १ वृक्षविशेष, चीड़का पेड़ जिससे गंधाबिरोजा निकलता है। यह

भिन्न भिन्न देशमें भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। यथा—बम्बई—सुरुचे, झाड़; तैलङ्ग—सरल, देवदारु, गरिक, देवदारि चेट्टु; तामिल—सरल, देवदारी; द्राविड़—चिर। संस्कृत पर्याय—पीतद्रु, पूतिकाष्ठ, धूपवृक्षक, पीतदारु, भद्रदारु, मनोज्ञ, पीतस्निग्धदारुसंज्ञ, स्निग्ध, मरिचपत्रक, पीतवृक्ष, सुरभिदारु। इसका गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, कफवात, त्वग्दोष, कण्डति और व्रणनाशक तथा कोष्ठशुद्धिकारक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—मधुर, तिक्त, पाकमें कटु, लघु, स्निग्धोष्ण, कर्ण, कण्ठ और अक्षिरोगहारक तथा कफ, वायु स्वेद, यूक, कामला और अक्षिव्रणनाशक। (भावप्र०) २ बुद्ध। ३ अग्नि। ४ पक्षी। ५ सरलका गोंद, गंधा विरोजा। (त्रि०) ६ जो सीधा चला गया हो। ७ जो टेढ़ा न हो, सीधा। ८ जो कुटिल न हो, सीधासादा, भोलाभाला।

सरलकद्रु (सं० पु०) चिरौंजी, पियाल वृक्ष।

सरलकाष्ठ (सं० पु०) चीड़की लकड़ी।

सरलता (सं० स्त्री०) १ टेढ़ा न होनेका भाव, सीधापन। २ निष्कपटता, सिधाई। ३ सुगमता, आसानी। ४ सादगी, सादापन। ५ सत्यता, सचाई।

सरलतृण (सं० क्ली०) सुगन्धतृण।

सरलद्रव (सं० पु०) सरलस्य द्रवः। १ सरलवृक्षरस, तारपीनका तेल। इसका गुण—कटु, तिक्त, कषाय, श्लेष्म और पित्तनाशक, योनिदोष, अजीर्ण, व्रण और आध्माननाशक। (राजनि०) २ गंधा-विरोजा, सरलका गोंद।

सरल-निर्यास (सं० पु०) सरलस्य निर्यास। १ गंधा-विरोजा। २ श्रीवेष्ट, तारपीनका तेल।

सरलपुण्ठी (सं० स्त्री०) पहिना मछली।

सरलरका (सं० स्त्री०) विकंकत, कंटाई।

सरलरस (सं० पु०) १ गंधाविरोजा। २ तारपीनका तेल।

सरलस्यन्द (सं० पु०) १ गंधा-विरोजा। २ तारपीनका तेल।

सरला (सं० स्त्री०) सरल-टाप्। १ त्रिपुटा, मोतिया। २ नदीविशेष। ३ त्रिवृता, निसोथ। ४ श्वेत त्रिवृत, सफेद निसोथ। ५ कपिलद्राक्षा। ६ कृष्णतुलसी, काली तुलसी। ७ चीड़का पेड़। ८ सरल प्रकृतिवाली स्त्री। भोलीभाली औरत।

सरलाङ्ग (सं० पु०) सरलः पीतद्रुरङ्गमस्य। १ श्रीवेष्ट, तारपीनका तेल। २ गंधा-विरोजा।

सरलित (सं० त्रि०) सीधा या सहज किया हुआ।

सरव (सं० पु०) १ पर्वतभेद। २ पितृभेद। ३ ऋषिभेद।

सरवन—अंधक मुनिके पुत्र जो अपने पिताको एक बहंगीमें बैठा कर ढोया करते थे।

विस्तृत विवरण श्रवण शब्दमें देखो।

सरवर (हिं० पु०) सरोवर देखो।

सरवर (फा० पु०) अधिपति, सरदार।

सरवा (हिं० पु०) १ सम्पुट, प्याला। २ दीया, कसोरा।

सरविस (अं० स्त्री०) १ नौकरी। २ सेवा, खिदमत।

सरवे (अं० पु०) १ जमीनकी पैमाइश। २ वह सरकारी विभाग जो जमीनकी पैमाइश किया करता है।

सरव्य (सं० क्ली०) सरं रागं व्ययतीति व्ये-ड। लक्ष्य। तालव्य शकारमें भी इस शब्दका अधिक प्रयोग है।

सरश्मि (सं० त्रि०) १ समानदीप्ति, समान ज्योतिवाला। (ऋक् १।१३५।३) २ रश्मिके साथ वर्त्तमान, रश्मियुक्त।

सरषट्ट (सं० क्ली०) १ बौद्धमतानुसार संख्याभेद। (पु०) २ जनपदभेद।

सरस् (सं० क्ली०) सरतीति सृ (सर्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८८) इति असुन्। १ सरोवर, तालाब। इसके जलका गुण—लघु, तृष्णानाशक, बलकर, स्वादिष्ट और कषाय। २ नीर, जल। ३ वाक्य, वाच्।

सरस (सं० त्रि०) रसेन सह वर्त्तमानं। १ रसयुक्त, रसीला। २ सुस्वादु, मीठा स्वाद। ३ मधुर, मीठा। ४ नूतन, नया। ५ गीला, भींगा। ६ हरा, ताजा। ७ सुन्दर, मनोहर। ८ भावपूर्ण, जिसमें भाव जगानेकी शक्ति हो। (क्ली०) ६ सरोवर, तालाब। १० काष्ठागुरु। ११ छप्पय छन्दके ३५वें भेदका नाम। इसमें ३६ गुरु, ८० लघु, कुल ११६ वर्ण या १५२ मात्राएं होती हैं। १२ सहृदय, रसिक।

सरसठ (हिं० वि०) सड़सठ देखो ।

सरसठवाँ (हिं० वि०) सड़सठवां देखो ।

सरसता (सं० स्त्री०) सरसस्य भावः तल्-टाप् । सरसत्व, रसयुक्तता, रसदार ।

सरसना (हिं० क्रि०) १ हरा होना, पनपना । २ वृद्धिको प्राप्त होना, बढ़ना । ३ शोभित होना, सोहाना । ४ रस पूर्ण होना । ५ भावकी उमंगसे भरना ।

सरसब्ज (फा० वि०) १ हरा भरा, लहलहाता । २ जहां हरियाली हो, जो घास और पेड़ पौधोंसे हरा हो ।

सरसमन (सं० क्ली०) त्रिकण्टवृक्ष, तिकांटा थूहर ।

सरसर (हिं० पु०) १ जमीन पर रेंगनेका शब्द । २ वायुके चलनेसे उत्पन्न ध्वनि ।

सरसराना (हिं० क्रि०) १ सरसरकी ध्वनि होना । २ वायुका सरसरकी ध्वनि करते हुए बहना, वायुका तेजीसे चलना, सनसनाना ।

सरसराहट (हिं० स्त्री०) १ सांप आदिके रेंगनेसे उत्पन्न ध्वनि । २ शरीर पर रेंगनेका-सा अनुभव, खुजली । ३ वायु बहनेका शब्द ।

सरसरी (फा० वि०) १ जम कर या अच्छी तरह नहीं, जल्दीमें । २ चलते ढंग पर, स्थूलरूपसे ।

सरसवाणी (सं० स्त्री०) १ मण्डन मिश्रकी स्त्री । मण्डनमिश्र और शङ्कराचार्य देखो । २ सुमिष्ट वाक्य, मीठा वचन ।

सरसा (सं० स्त्री०) रसेन सह वर्त्तमाना ।१ श्वेत त्रिवृता, सफेद निसोथ । २ रसयुक्ता ।

सरसाई (हिं० स्त्री०) १ सरसता । २ शोभा, सुन्दरता । ३ अधिकता ।

सरसाना (हिं० क्रि०) १ रसपूर्ण करना । २ हरा भरा करना ।

सरसाम (फा० पु०) सन्निपात, त्रिदोष, वाई ।

सरसार (फा० वि०) १ मग्न, डूबा हुआ । २ मदमत्त, चूर ।

सरसिका (सं० स्त्री०) १ हिङ्गुपत्री । २ छोटा ताल । ३ बावली ।

सरसिज (सं० क्ली०) सरसि जायते इति जन-ड, सप्तम्या अलुक् समासः । १ पद्म, कमल । (त्रि०) २ सरोवरजात, जो तालावमें होता हो ।

सरसिजयोनि (सं० पु०) कमलसे उत्पन्न, ब्रह्मा ।

सरसिरुह (सं० पु०) कमल ।

सरसी (सं० स्त्री०) सृ-असुन् गौरादित्वात् ङीप् । १ सरोवर, छोटा ताल । २ पुष्करणी, बावली । ३ एक वर्णवृत्त । इसके प्रत्येक चरणमें न, ज, भ, ज, ज, ज, र होते हैं । इस छन्दका प्रयोग बहुत कम देखा जाता है । कहीं कहीं इस छन्दका नाम सिंहक और सलिलनिधि है ।

सरसीक (सं० पु०) सरस्यां कायति शब्दायते इति कैक । सारस पक्षी ।

सरसीरुह (सं० क्ली०) सरस्यां रोहतीति रुह क । पद्म, कमल ।

सरसुल गोरंटो (हिं० स्त्री०) श्वेत झिण्टी, सफेद करसरैया ।

सरसेटना (हिं० क्रि०) खरी खोटी सुनाना, फटकारना, भला बुरा कहना ।

सरसों (हिं० स्त्री०) एक धान्य या पौधा जिसके गोल गोल छोटे बीजोंसे तेल निकलता है, एक तेलहन ।

विशेष विवरण सर्षप शब्दमें देखो ।

सरस्य (सं० त्रि०) सरसि भवः यत् । सरोवरभव, तालमें होनेवाला । (शुक्लयजु० १६।३७)

सरस्वत् (सं० पु०) सरस् अस्त्यर्थे मतुप् । १ समुद्र, सागर । २ सरोवर, ताल । ३ नद । ४ महिष, भैंस । (त्रि०) ५ रसयुक्त, रसदार ।

सरस्वती (सं० स्त्री०) सरो नीरं तद्वत् सरो वास्त्यस्या इति सरस-मतुप् मस्य वः, ततो मत्वर्थे इति भत्वान्न पदकार्यं । १ नदीभेद, सरस्वती नदी । सप्तपुण्यतोया नदीमेंसे यह एक नदी है । यह नदी पुण्यसलिला है कोई भी पूजादि करनेमें पहले इस नदीका आह्वान करना होता है ।

> "गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
> नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥"
>
> (पूजापद्धति जलशुद्धिका मन्त्र)

पूजाके समय पूजार्थ जलमें उक्त पूतसलिला ७ नदी अवस्थित हैं, इस प्रकार करनी है । मनुमें लिखा है, कि सरस्वती और दृषद्वती ये दोनों देवनदियां हैं । इन दोनों

नदियोंका मध्यवर्ती देश ब्रह्मावर्त्त कहलाता है तथा इस देशका जो प्रचलित आचार है वही सदाचार है।

इस नदीके पर्याय—प्लक्षसमुद्भवा, वाक्प्रदा, ब्रह्मसुता, भारती, वेदाग्रणी, पयोष्णीजाता, वाणी, विशाला, कुटिला। देशभेदसे इस नदीके सात नाम हुए हैं—पुष्करमें पितामहके यज्ञमें यह नदी आहूत हो कर सुप्रभा नामसे, इसी प्रकार नैमिषारण्यमें सत्रयाजी ऋषियों द्वारा आहूत हो कर काञ्चनाक्षी, गयदेशमें गयराज, यज्ञमें आहूत हो कर विशाला, उत्तर कोशलामें औद्दालक मुनियज्ञमें मनोरमा, कुरुक्षेत्रमें कुरुराजयज्ञमें ओघवती, गङ्गाद्वारमें दक्ष प्रजापतिके यज्ञमें सुरेणु और हिमालय पर्वत पर ब्रह्माके यज्ञमें आहूत हो कर विमलोदा, उक्त सात स्थानोंमें सरस्वती सात नामोंसे विख्यात हुई हैं।

सरस्वती एक महापुण्यतीर्थ है। महाभारतमें लिखा है,—सभी सरितोंमें सरस्वती अति पवित्रा और सब लोकोंको शुभ देनेवाली है। मानवगणके सरस्वती नदी प्राप्त करनेसे इहलोक या परलोकमें वे अत्यन्त दुष्कृत विषयके लिये भी शोकप्रकाश नहीं करते। इस नदीमें स्नानादि करनेसे सभी पाप विनष्ट होते हैं। सरस्वतीके किनारे वास करनेसे जैसा गुण प्राप्त होता है, वैसा और कहीं भी नहीं होता। कितने मनुष्य सरस्वतीको आश्रय कर स्वर्गारोहण कर गये हैं, उसकी शुमार नहीं अतएव सरस्वती नदी पुण्यनदियोंमें प्रधान है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि यह नदी अति पुण्यतमा है। यदि कोई इस नदीमें स्नान करे, तो उसके सभी पाप विनष्ट होते हैं तथा वैकुण्ठमें वे विष्णुलोकमें वास करते हैं। चातुर्मास्य, पूर्णिमा, अक्षयो, अमावस्या आदि शुभ तिथियोंमें जो सरस्वतीके जलमें अवगाहन करते, वे सभी पापोंसे विमुक्त हो मुक्तिलाभ करते हैं। अग्निमें सभी वस्तु जिस प्रकार दग्ध हो जाती हैं, उसी प्रकार इस सरस्वती नदीमें सभी पाप तत्क्षणात् भस्मीभूत होते हैं। (प्रकृतिख० ६ अ०)

लक्ष्मी, सरस्वती और गङ्गा ये तीनों हरिप्रिया थीं और सर्वदा हरिके पास रहती थीं। हरि भी इन तीनोंको समान भावसे देखते थे, किसीके भी प्रति व्यवहारमें कमबेशी नहीं करते थे। किन्तु एक दिन सरस्वती विष्णुको गङ्गाके प्रति अधिक प्रेमासक्ति देख कर बड़ी क्रोधित हुई और विष्णुकी निन्दा करती हुई बोली, 'जो अच्छे स्वामी हैं, वे कामिनियोंके प्रति सभी स्थानोंमें समान व्यवहार करते हैं, वे इसका विपरीत आचरण करते हैं। अतएव गङ्गाके प्रति आपको अधिक प्रीति दिखलाना युक्तियुक्त और धर्मसङ्गत नहीं है। लक्ष्मी इसे भले ही क्षमा कर सकती, पर मैं कदापि नहीं।' सरस्वतीके इस प्रकार विष्णुको तिरस्कार करने पर गङ्गाने उनसे कहा, 'स्वामीके सामने ही तुम्हारा दर्प चूर्ण करूंगी, देखूं तो सही, तुम्हारा कान्त क्या कर सकता?' इतना कह कर उन्होंने सरस्वतीको शाप दिया कि, 'तुम आजसे सरिद्रूपमें धरातल पर अवतीर्ण होगी।' इस पर सरस्वतीने भी गङ्गाको वही शाप दिया। इसके बाद एक दूसरेके अभिशापसे दोनों नदीरूपमें परिणत हुईं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां संक्षेपमें लिखा गया। (ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० ६ अ०)

सरस्वतीका ऐसा माहात्म्य क्यों है, उसका कारण हम वेदमें पाते हैं।

सुप्राचीन वैदिक युगमें आर्योंने जब धीरे धीरे उत्तर-पश्चिम भारतसे आर्यावर्त्तभूममें आ कर भिन्न भिन्न स्थानमें उपनिवेश बसाया, तब उन्होंने प्रधानतः एक एक निर्मल-सलिला खरप्रवाहा पुण्यप्रदा नदीके किनारे अपना अपना वासभवन बनाना स्थिर किया। ऋग्वेदसंहिता की आलोचना करनेसे हमें मालूम होता है, कि मध्य-एशियासे यह नदी प्रवाहित हो भारतीय आर्य उपनिवेशके मध्यसे बहती थी। इस नदीके किनारे उन्हें स्वभावजात काफी अनाज मिलते थे। ऋक् २।४१।१६-१८ मन्त्रमें सरस्वतीका अन्नवती, उदकवती और द्युतिमतीरूपमें वर्णन किया गया है। अन्न उनका हमेशा आश्रय किये हुए रहता है तथा वे असमृद्धको समृद्धि दान करती हैं। इसी कारण प्राचीन वैदिक समाजमें सरस्वती "अम्बितमे, नदीतमे देवीतमे" कह कर पूजित हुई थीं। यह नदी सर्वदा वर्द्धमान कलेवरमें (सरस्वती सिन्धुभि पिन्वमाना। ऋक् ६।५२।६) रहती थीं। सरस्वती आर्यजातिकी जीवनरक्षाकी एकमात्र उपायस्वरूप थी कह

कर आर्य ऋषिगण हृदयकी भक्तिपुष्पाञ्जलि ले कर उनका स्तुतिगान कर गये हैं। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलसे दशम मण्डलके अनेक मन्त्रोंमें सरस्वती नदीका उल्लेख रहनेसे मालूम होता है, कि आर्य-समाजने बहुत दिनों तक इस नदीके किनारे वास किया था। (वाजसनेयसंहिता १९।९३, अथर्ववेद ४।४।६ इत्यादि, तैत्तिरीयसंहिता १।८।१३।३, शतपथब्राह्मण १।६।२।४)। आर्य-उपनिवेश जितना ही उत्तर-पश्चिम भारतसे हटता गया, उतनी ही सरस्वतीकी सीमा बढ़ती गई। इस कारण भगवान् मनुने लिखा है—

"सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्यो यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते॥" (मनु २।१७)

ऋग्वेदके ३।२३।४ मन्त्रकी "दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने" उक्तिसे प्रतीत होता है, कि आर्य ऋषियोंने इन्हीं सब स्थानोंको आर्योपनिवेशका उपयुक्त स्थान मनोनीत किया था तथा वे लोग वहां यज्ञ करते थे। "ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत" (ऐतरेयब्रा० २।१९)" अथर्ववेदके ६।३०।१ मन्त्र पढ़नेसे जाना जाता है, कि आर्यगण सरस्वतीके किनारे जमीन जोत कर जौ पैदा करते थे।

भारतवर्षमें तीन नदी प्रधानतः सरस्वती नामसे बहती हैं। उनमेंसे वेदोक्त पुण्यतोया सरस्वती पंजाबमें अक्षा० ३०° २३´ उ० तथा देशा० ७७° १९´ पू० सिरमूर राज्यकी छोटी शैलमालासे निकल कर अम्बालामें आध बदरी नामक प्रान्तर होती हुई थानेश्वर और कुरुक्षेत्रको भेद कर कर्नाल जिला और पातियाला राज्यमें घुस गई है। आखिर सिरसा जिलेकी (अक्षा० २९° ५१´ उ० तथा देशा० ७६° ५´ पू०) कागार (दृषद्वती) नदीमें आ कर विलीन हो गई है। पूर्वकालमें इस मिलित नदीने राजपूतानेके अनेक स्थानोंको जलसिक्त कर दिया था तथा सिन्धुके साथ वह मिल गई थी। इधर प्रयागके निकट गङ्गा और यमुनामें मिल कर त्रिवेणी हो गई थी। जिन सब स्थानोंसे सरस्वती तिरोहित हुई है, वह पौराणिक ग्रन्थमें विनसन नामसे प्रसिद्ध है। लोगोंका विश्वास है, कि प्रयागमें सरस्वती अन्तःसलिला बहती है।

वैदिक कालसे सरस्वती हिन्दूके निकट अति पुण्यतोया कह कर पूजित होती आ रही है। मनुसंहितासे हमें पता चलता है, कि सरस्वती और दृषद्वतीका मध्यवर्त्ती जनपद ही ब्रह्मावर्त्त कहलाता था। इसी स्थानसे भारतमें चातुर्वर्ण्य समाजकी सम्यक् प्रतिष्ठा हुई थी। यह सुप्राचीन नदी जन्द अवस्थामें 'हरकुइति' और चीनोंके निकट 'चौकुत' नामसे परिचित थी। जिस जिस प्राचीन स्थानसे सरस्वती बह गई है, उन्हीं सब स्थानोंमें पापनाशक अनेक तीर्थोंकी उत्पत्ति हुई है। महाभारत और नाना प्राचीन पुराणोंमें उन सब प्राचीन तीर्थोंका माहात्म्य वर्णित है।

२ एक दूसरी सरस्वती राजपूतानेके आबू पहाड़से निकल कर पालनपुर और राधनपुर राज्यके बीचसे बह गई है। स्कन्दपुराणके रेवाखण्डमें इस सरस्वतीका माहात्म्य आया है।

३ बङ्गालके हुगली जिलेमें एक सरस्वती नदी बहती है। पहले यही गङ्गाका मूल स्रोत समझा जाता था। १६वीं शताब्दी पर्यन्त सप्तग्राम तक इस नदीसे बड़े बड़े जहाज जाते आते थे। अभी यह एकदम भर कर खाड़ीमें परिणत हो गई है। प्रयागकी तरह नैहाटीके पास भी एक त्रिवेणी है। त्रिवेणी देखो।

दो सौसे अधिक वर्ष पहले यहां गङ्गा, यमुना और सरस्वतीके स्रोत विलीन हो जाने पर भी आज त्रिवेणी बङ्गवासीके निकट महातीर्थ समझी जाती है।

सरस्वती (स्त्री०) १ जलवती, नदी। २ वाणी। ३ स्त्रीरत्न। ४ गो, गाय। ५ मनुपत्नी। (मेदिनी) ६ ज्योतिष्मती। ७ ब्राह्मी। ८ सोमलता। ९ बुद्धशक्तिविशेष। १० दुर्गा। ११ वाग्देवता। पर्याय—ब्राह्मी, भारती, भाषा, गिर्, वाच्, वाणी, इरा, सारदा, गिरा, गिरांदेवी, गीर्देवी, ईश्वरी, वाचा, वचसामीश, वाग्देवी, वर्णमातृका, गो, श्री, वागीश्वरी, अन्त्यसन्ध्येश्वरी, सायं संध्यादेवता। (कविकल्पलता)

इस देवीका उत्पत्तिविवरण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस तरह लिखा है—परमात्माके मुखसे एक देवीका आविर्भाव हुआ। यह देवी शुक्लवर्णा, वीणाधारिणी और करोड़ चन्द्रकी तरह शोभायुक्ता है। यह देवी श्रुति

और शास्त्रोंमें श्रेष्ठा और पण्डितोंकी जननी हैं। वागधिष्ठात्री देवी कवियोंके इष्टदेवता और शुद्धसत्त्वस्वरूपा होनेकी वजह सरस्वती नामसे प्रसिद्ध हैं।

इस पुराणके गणेशखण्डमें लिखा है, कि सृष्टिकाल में प्रधानाशक्ति ईश्वरकी इच्छाके अनुसार पांच भागोंमें विभक्त हुई। ये पञ्चशक्तियां ये हैं—राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गा और सरस्वती। इन पांच धाराओंमें विभक्त शक्तियोंमें जो देवी वागधिष्ठात्री और शास्त्रज्ञानदायिनी और कृष्ण कण्ठोद्भव हैं, उनका नाम सरस्वती है।

श्रीकृष्णने पहले इन्हीं देवीकी पूजा की। उसी समयसे इन देवीकी पूजा प्रचलित हुई। इनकी आराधना करनेसे मूर्ख भी पण्डित होता है। जब यह देवी कृष्णयोषित्के मुखसे आविर्भूत हुई, तब उन्होंने श्रीकृष्णकी कामना की। इस पर श्रीकृष्णने कहा—"हे साध्वि! तुम मदुव'शस्वरूप चतुर्भुज नारायणकी कामना करो, उनको भजो और वैकुण्ठमें वास करो। माघमासकी शुक्लापञ्चमी तिथिमें और विद्यारम्भके समय सभी तुम्हारी पूजा करेंगे। तुम्हारे प्रसन्न न होनेसे कोई भी विद्यालाभ नहीं कर सकता।' श्रीकृष्णकी यह बात सुन कर सरस्वतीने चतुर्भुज नारायणका आश्रय लिया। इसी समयसे माघ सुदी पञ्चमी तथा विद्यारम्भके समय इनकी पूजा होती है।

देवीभागवतमें लिखा है, कि अनन्तशक्तिने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरको सरस्वती, लक्ष्मी और काली तीन शक्तियोंको क्रमसे प्रदान किया। सृष्टिके प्रारम्भमें अनन्तशक्तिने ब्रह्मासे कहा, 'ब्रह्मन्! तुम इस दिव्यरूपा चारुहासिनी रजोगुणयुक्ता, श्वेताम्बरधारिणी, श्वेतसरोजवासिनी महासरस्वती नाम्नी शक्तिको क्रीड़ासहचारिणी करनेके लिये ग्रहण करो। यह अनुत्तमा ललना तुम्हारी प्रियसहचरी होगी। इसको मेरी विभूति समझ सदा ही पूज्यतमा समझना और कभी भी इसकी अवमानना न करना। तुम इसके साथ सत्यलोकमें गमन करो और वहां रह कर महत्तत्त्वरूप बीजसे चतुर्विध जीवोंकी सृष्टि करो। (देवीभागवत ३।६ अ०)

देवीभागवतके अनुसार सरस्वती ब्रह्माकी स्त्री है। किन्तु ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके अनुसार लक्ष्मी और सरस्वती दोनों चतुर्भुज नारायणकी स्त्री हैं।

फिर कई पुराणोंमें लिखा है, कि सरस्वती ब्रह्माकी मानसकन्या हैं। किसी समय ब्रह्मा अपनी कन्या सरस्वतीको देख कामविमोहित हुए। पीछे बड़े परितापसे कामवेगका दमन कर ब्रह्माने कामदेवको अभिशाप दिया। ब्रह्माके इस शापके बाद ही कामदेव महादेवके त्रिनेत्रानलसे दग्ध हुआ था। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें सरस्वतीकी उपासनाका विस्तृत विवरण लिखा है। विषय बढ़ जानेके कारण यहां नहीं दिया गया।

विद्याकामनासे प्रति हिन्दूके घर सरस्वती देवीकी पूजा होती है। माघ महीनेकी शुक्लापञ्चमी ही इनकी पूजाका दिन स्थिर है। सिवा इसके बालकोंको जिस दिन पढ़ाई आरम्भ की जाती है, उस दिन भी इनकी पूजा होती है। इनकी पूजा आदिका विषय स्मृतिमें भी विस्तृतरूपसे लिखा है, उसका विवरण अत्यन्त संक्षेपमें यहां दिया जाता है। वेदमें जैसे श्रीसूक्त द्वारा लक्ष्मीकी पूजा आदि निर्दिष्ट हुई है, वैसे सरस्वतीका सूक्त भी देखा जाता है। लक्ष्मीपूजा करने पर भी सरस्वतीकी पूजा की जाती है और सरस्वती पूजाके दिन भी पहले लक्ष्मीकी पूजा करनेका विधान है। इसके बाद अन्य देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। सरस्वती देवीके आठ अङ्ग हैं—लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा और धृति। अतएव इन सब अङ्गोंकी भी पूजा होनी चाहिये। पूजाके अन्तमें दक्षिणान्त और अच्छिद्रावधारण कर पूजाका अन्त करना चाहिये। (कृत्यतत्त्व) सरस्वती पूजामें वन्धुजीव और द्रोणपुष्प, ये दोनों पुष्प न चढ़ाने चाहिये। इस पूजामें वासक या अड़ाहुलका पुष्प बहुत उत्तम है।

तन्त्रसारमें भी इन देवीकी पूजा और मन्त्रादिका विवरण है। 'वद वद वाग्वादिनि वह्निवल्लभा' सरस्वतीका यह दशाक्षर मन्त्र है। इस मन्त्र द्वारा इनकी उपासना करनेसे सभी विद्या सिद्ध होती है। मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, श्री, धृति, स्मृति, बुद्धि और विद्येश्वर्य—ये सब इनके पीठदेवता हैं। इन पीठदेवताओंको भी यथाविधान पूजा करना चाहिये। इस मन्त्रका दश लाख जप करनेसे पुरश्चरण होता है।

इस दशाक्षर मन्त्रके सिवा अन्य मन्त्र भी हैं। उन सबोंके द्वारा भी पूजन और पुरश्चरण करनेकी विधि है। इन सब मन्त्रोंके ध्यान और पीठशक्ति भिन्न भिन्न हैं। ध्यान—

"शुभ्रां स्वच्छविलेपमाल्यवसनां शीतांशुखण्डोज्ज्वलां
व्याख्यामक्षगुणं सुधाढ्यकलसं विद्याञ्च हस्ताम्बुजैः।
बिभ्राणां कमलासनां कुचनतां वाग्देवतां सस्मितां
वन्दे वाग्विभवप्रदां त्रिनयनां सौभाग्यसम्पत्करीं॥"

इसी ध्यानसे पूजा करनी चाहिये। इसके सिवा और भी इनके ध्यान हैं। तन्त्रसारमें इसका विशेष विवरण और यन्त्र, स्तव, कवच आदि भी उल्लिखित है।

तन्त्रसारमें तो पारिजातसरस्वती नामकी एक और सरस्वतीका उल्लेख है। उसमें इनकी पूजापद्धति और मंत्र लिखे गये हैं। तन्त्रमें यह तारादेवी तथा नील सरस्वतीके नामसे प्रसिद्ध है।

तारा और नीलसरस्वती शब्द देखो।

सरस्वती-कण्ठाभरण (सं० पु०) १ तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक। २ भोजकृत अलंकारका एक ग्रन्थ। ३ एक पाठशाला जिसे धाराके परमारवंशी राजा भोजने स्थापित की थी।

सरस्वतीकुटुम्ब (सं० पु०) कवि।

सरस्वतीतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद। इस तन्त्रमें सरस्वतीदेवीके मन्त्रतन्त्रादिका विशेष विवरण वर्णित है।

सरस्वतीतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष, सरस्वतीनदीरूप-तीर्थ। सरस्वती देखो।

सरस्वतीपूजा (सं० स्त्री०) सरस्वतीका उत्सव जो कहीं वसन्तपञ्चमीको और कहीं आश्विनमें होता है।

सरस्वतीवल्वाणी (सं० स्त्री०) बालकथित भाषा, भाषाभेद।

सरस्वतीवत् (सं० त्रि०) सरस्वती अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। स्तुतिविशिष्ट।

सरस्वतीव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष, सरस्वती देवीके उद्देशसे जो व्रत किया जाता है, श्रीपञ्चमीव्रत।

सरस्वतीसूक्त (सं० क्ली०) वैदिक सूक्तभेद।

सरहंग (फा० पु०) १ सेनाका अफसर, नायक, कप्तान। २ मल्ल, पहलवान। ३ बलवान, जबरदस्त। ४ पैदल सिपाही। ५ चोबदार। ६ कोतवाल।

सरहंगी (फा० स्त्री०) १ सिपहगिरी, सेनाकी नौकरी। २ वीरता। ३ पहलवानी।

सरह (हिं० पु०) १ पतंग, फतिंगा। २ टिड्डी।

सरहज (हिं० स्त्री०) पत्नीके भाईकी स्त्री, सालेकी स्त्री।

सरहटी (हिं० स्त्री०) सर्पाक्षी नामका पौधा। यह पौधा दक्षिणके पहाड़ों, आसाम, बरमा और लंका आदिमें पाया जाता है। इसकी पत्तियां समवर्त्ती, २से ५ इञ्च तक लम्बी और १से १॥० इञ्च तक चौड़ी, अंडाकार, अनीदार और नुकीली होती हैं। टहनियोंके अन्तमें छोटे छोटे सफेद रंगके फल लगते हैं। बीज बारीक तथा तिकोने होते हैं। सरहटी स्वादमें कुछ खट्टी और कड़वी होती है। कहते हैं, कि जब सांप और नेवलेमें युद्ध होता है, तब नेवला अपना विष उतारनेके लिये इसे खाता है। इसीसे भारतवर्ष और सिंहल आदिमें इसकी जड़ सांपका विष उतारनेकी दवा समझी जाती है। इसकी छाल, पत्ती और जड़का काढ़ा पुष्ट होता है और पेटके दर्दमें भी दिया जाता है।

सरहत (हिं० पु०) खलिहानमें फैला हुआ अनाज बुहारनेका झाड़ू।

सरहद (फा० स्त्री०) १ सीमा। २ किसी भूमिकी चौहद्दी निर्धारित करनेवाली रेखा या चिह्न। ३ सीमा परकी भूमि, सीमान्त, सिवान।

सरहद्दी (फा० वि०) सरहद-संबंधी, सीमा-सम्बन्धी।

सरहना (हिं० स्त्री०) मछलीके ऊपरका छिलका, चूई।

सरहर (हिं० पु०) भद्रमञ्जु, रामशर, सरपत।

सरहरा (हिं० वि०) सीधा ऊपरको गया हुआ, जिसमें इधर उधर शाखाएं न निकली हों। २ जिस पर हाथ पैर रखनेसे न जमे, फिसलाववाला, चिकना।

सरहस्य (सं० त्रि०) रहस्यके साथ वर्त्तमान, मन्त्रयुक्त, मन्त्रके साथ।

सरहिंद (फा० पु०) पञ्जाबका एक स्थान।

सरांग (हिं० स्त्री०) लोहेकी एक मोटी छड़ जिस पर पीट कर लोहार बरतन बनाते हैं।

सराइकला—१ बङ्गालके सिंहभूम जिलान्तर्गत एक छोटा

राज्य। यह अक्षा० २२°३३´ से २२°५४´ ३०´´ पू०के मध्य विस्तृत है और अंगरेज गवर्मेण्टके पालिटिकल विभाग द्वारा परिचालित होता है।

२ उक्त सामन्त राज्यका प्रधान ग्राम। यह अक्षा० २२° ४१´ ५२´´ उ० तथा देशा० ८५° ५८´ २८´´ पू०के मध्य विस्तृत है।

सराइ खेट—युक्तप्रदेशके जौनपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह खुटाहन नगरसे ६ मील पूर्वमें अक्षा० २५° ५८´ १६´´ उ० तथा देशा० ८२° ४३´ २१´´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां अवध और रोहिलखण्ड रेलवेका एक स्टेशन रहनेसे स्थानीय वाणिज्यकी बड़ी सुविधा हुई है। यहां एक बड़ी सराय है। सात दिनमें दो वार हाट लगती है।

सराइ मीर—युक्तप्रदेशके आजमगढ़ जिलेका एक नगर।

सराइगा खोल—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद जिलेकी छैल तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २५° २२´ ४३´´ उ० तथा देशा० ८१° ३३´ १५´´ पू०के मध्य प्रधान नगरसे २० मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। यहां ठठेरा वनियोंका वास है। उनके बनाये पीतलका वरतन और धातव अलङ्कारादि जनसाधारणके आदरकी वस्तु है।

सराइया घाट—युक्तप्रदेशके इटा जिलेमें अवस्थित एक प्राचीन नगर। अभी इसका अधिकांश तहस नहस हो गया है। इटा नगरसे ६३ मील पश्चिम-पूर्व और सङ्किशसे आध कोससे अधिककी दूरी पर कालीनदीके दोनों किनारे यह नगर अवस्थित है।

१७वीं सदीके शेष भागमें फर्रुखावाद जिलेसे तीन अफगान सरदारोंने आ कर यह नगर वसाया और यहां सराय अवदर रसूल और एक मसजिद बनवाई। इस नगरके पश्चिम एक विस्तृत ध्वस्तस्तूप दृष्टिगोचर होता है। वह स्तूप भूपृष्ठसे प्रायः ४० फुट ऊंचा और उसका व्यास प्रायः आध मील है। उसके उत्तर ईंटोंके बने कुछ घर देखे जाते हैं। इन घरोंकी ईंटें जमीनके अन्दरसे निकाली गई हैं। जमीनके खोदते समय कुछ बुद्धादि देवमूर्त्ति तथा विभिन्न समयके सोने और तांबेके सिक्के पाये गये हैं। १८०३ ई०में वहां एक जगह खोदते समय प्रायः २० हजार रुपयेके घरके सामान और सिक्के पाये गये थे। स्थानीय किंवदन्तीके अनुसार यह स्तूप अगस्त्य मुनिके नाम पर उत्सर्ग किया गया है। अगस्त्यसे उसका नाम अगात और पीछे आघाट हुआ है। ऐसा मालूम होता है, कि यह आघाट प्राचीन साङ्काश्य नगरोंका अंशभूत था।

सराइ सालेह—पञ्जाब प्रदेशके हजारा जिलान्तर्गत एक नगर। बहुत प्राचीन कालसे यह स्थान वाणिज्यमें बड़ा प्रसिद्ध हो गया है। हरिपुरके विस्तृत प्रान्तरमें स्थापित होनेके कारण दूर दूर देशोंसे पण्य द्रव्य ले कर इस नगरमें आनेकी सुविधा हुई है। अभी भी यहां पहलेकी वाणिज्यसमृद्धिका अवसान नहीं हुआ है। हल्दी ही यहांका प्रधान वाणिज्यद्रव्य है। स्थानीय जुलाहोंने उत्साह और उद्यमसे कपड़ा बुन कर अपनी बड़ी उन्नति की है। यहां तांबे और पीतलके वरतनका विस्तृत कारोबार है। यहांके सुनार अपनी वाणिज्यवृद्धिकी प्रत्याशासे समय समय पर अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक जाया करते हैं। कोई कोई सुनार वंश-परम्परासे इन सब स्थानोंमें रहते हैं।

सराइ सिधु—१ पञ्जाब प्रदेशके मुलतान जिलेकी एक तहसील। भूपरिमाण १७५२ वर्गमील है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० ३०° ३५´ ०३´´ उ० तथा देशा० ७२° १´ पू०के बीच पड़ता है।

सराई (हिं० स्त्री०) मिट्टीका प्याला या दीया, सकोरा।

सरागूड़—दाक्षिणात्यके महिसुर जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। यह अक्षा० १२° ०´ १०´´ उ० तथा देशा० ७६° २५´ पू० महिसुर राजधानीसे ३६ मील दक्षिण पश्चिममें कब्बनी नदीके दाहिने किनारे पर अवस्थित है। १८७० ई०से इस नगरमें हेग्गा-देव्वनकोट तालुकका विचार सदर स्थापित हुआ है। यहां म्युनिसपलिटी रहनेसे नगर बड़ा साफ सुथरा है।

सराजक (सं० त्रि०) राजासह वर्त्तमानः। राजयुक्त, राजविशिष्ट।

सराजन् (सं० त्रि०) राजाके सहित वर्त्तमान।

सराट (सं० पु०) एक जनपदका नाम।

सराति (सं० त्रि०) दानयुक्त, दानविशिष्ट।

सराशि (सं० त्रि०) समाना राशिः (ज्योतिर्जनपदरात्री-त्यादि । पा ६।३।८५) इति सामनस्य सादेशः । समान राशि)

सराफ (हिं० पु०) १ रुपये पैसे या चांदी सोनेका लेन देन करनेवाला महाजन । २ सोने चांदीका व्यापारी । ३ सोने चांदीके बरतन, जेवर आदिका लेन देन करने-वाला । ४ बदलेमें रुपये पैसे रख कर बैठनेवाला दूकानदार ।

सराफा (हिं० पु०) १ सराफीका काम, रुपये पैसे या सोने चांदीके लेन देनेका काम । २ कोठी, बंक । ३ वह स्थान जहां सराफोंकी दूकानें अधिक हों, सराफोंका बाजार ।

सराफी (हिं० स्त्री०) १ सराफका काम, चाँदी सोने या रुपये पैसेके लेन देनका रोजगार । २ वह वर्णमाला जिसमें अधिकतर महाजन लोग लिखते हैं, महाजनी, मुंडा । ३ नोट, रुपये आदि भुनानेका वट्टा जो भुनाने-वालेको देना पड़ता है ।

सराब (अ० पुं०) १ मृगतृष्णा । २ धोखा देनेवाली वस्तु । ३ धोखा ।

सराबोर (हिं० वि०) बिलकुल भींगा हुआ, तरबतर, नहाया हुआ ।

सराय (फा० स्त्री०) १ रहनेका स्थान, घर, मकान । २ यात्रियोंके ठहरनेका स्थान, मुसाफिरखाना ।

सराय (हिं० पु०) गुल्लूनामका पहाड़ी पेड़ । यह वृक्ष बहुत ऊंचा होता है और हिमालय पर अधिक होता है । इसकी हीरकी लकड़ी सुगन्धित और हलकी होती है और मकान आदि बनानेके काममें आती है ।

सरायन—अयोध्या प्रदेशमें प्रवाहित एक छोटी नदी । यह खेरी जिलेमें अक्षा० २७° ४६′ उ० तथा देशा० ८०° ३२′ पू०से निकल कर तथा २६ मील दक्षिणपूर्वगतिमें बहती हुई सीतापुर जिलेमें घुस गई है । इसके बाद इस जिलेके अक्षा० २७° ६′ उ० तथा देशा० ८०° ५५′ पू०के मध्य जम्वारी नामकी एक स्रोतस्विनी बाईं ओरसे आ कर इस-में मिल गई है । जम्वारी संगमके बाद यह नदी ३ मील उत्तर-पश्चिम ओर बहती हुई पुनः दक्षिण-पूर्वकी ओर जा कर तथा अक्षा० २७° ६′ उ० तथा देशा० ८०° ५५′ पू०में गोमतीमें मिल गई है । इस नदीकी गति ६५ मिल है । बीच बीचमें बाढ़ होनेसे आस-पासके खेतोंकी फसल नष्ट हो जाती है ।

सराव (सं० पु०) सरात सरणात् अवनीति अव रक्षणे अच् । मृण्मयपात्रविशेष, सराई ।

सराव (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी पहाड़ी बकरी ।

सरावग (हिं० पु०) जैन, सरावगी ।

सरावगी (हिं० पु०) श्रावक धर्मावलम्बी, जैन धर्म मानने-वाला । प्रायः इस मतके अनुयायी आज कल वैश्य ही अधिक पाये जाते हैं ।

सराव सम्पुट (सं० क्ली०) रसौषध फूंकनेके लिये मिट्टी के दो कसोरोंका मुंह मिला कर बनाया हुआ एक बर तन ।

सराविका (सं० स्त्री०) शरावक देखो ।

सरासर (फा० अव्य०) १ एक सिरेसे दूसरे सिरे तक, यहांसे वहां तक । २ बिलकुल, पूर्णतया । ३ साक्षात्, प्रत्यक्ष ।

सरासरी (फा० स्त्री०) १ आसानी, फुरती । २ शीघ्रता, जल्दी । ३ मोटा अंदाज, स्थूल अनुमान । ४ बकाया लगानका दावा । (क्रि० वि०) ५ जल्दीमें, हड़बड़ीमें । ६ मोटे तौर पर, स्थूल रूपसे ।

सराहन—पञ्जाब प्रदेशके बुसहर राज्यान्तर्गत एक नगर । यह शतद्रु नदीके बायें किनारेसे प्रायः ३ मील दूर हिमा-लयके तराईमें अवस्थित है । इसकी एक ओर तुषार-धवलित हिमवत्शृङ्ग तथा बाकी तीनों ओर वनमाला विराजित है । यह समुद्रकी तहसे प्रायः ७२४६ फीट ऊंचा है । यहां बुसहर राज्यका ग्रीष्मावास है । यहां-का कालो-मन्दिर दर्शनीय है । ब्राह्मण अधिवासी नगरके उत्तर प्रान्तमें वास नहीं कर सकते ।

सराहना (हिं० क्रि०) १ तारीफ करना, बड़ाई करना । (स्त्री०) २ प्रशंसा, तारीफ ।

सराहनीय (हिं० वि०) १ प्रशंसाके योग्य, तारीफके लायक । २ अच्छा, बढ़िया, उम्दा ।

सरि (सं० पु० स्त्री०) सरतीति सृ-इन् । १ निर्झर, झरना । (त्रि०) २ सदृश, समान, बराबर ।

सरिक (सं० त्रि०) गमनकारी, जानेवाला ।

सरिका (सं० स्त्री०) १ हिंगुपत्री, हींगपत्ती। २ मोतियोंकी लड़ी। ३ रत्न। ४ मुक्ता, मोती। ५ एक तीर्थ। ६ छोटा ताल या सरोवर।

सरिगम (हिं० पु०) सरगम देखो।

सरित् (सं० स्त्री०) सरतीति सृ-गतौ (हृसृरुहियुषिभ्य इतिः। उण् १।९९) इति इति। १ नदी। २ सूत्र। ३ दुर्गा।

सरिता (सं० स्त्री०) १ धारा। २ नदी, दरिया।

सरिताम्पति (सं० पु०) सरितां पतिः अलुक्समासः। सरित्पति, समुद्र।

सरित्कफ (सं० क्ली०) नदीका फेन।

सरित्पति (सं० पु०) सरितां पतिः। समुद्र।

सरित्वत् (सं० पु०) सरितः सन्त्यस्येति सरित्-मतुप् मस्य वः। समुद्र।

सरित्सुत (सं० पु०) सरितो गङ्गायाः सुतः। भीष्म।

सरिदधिपति (सं० पु०) सरितामधिपतिः। समुद्र।

सरिदिही (फा० स्त्री०) वह नजर या भेंट जो जमींदार या उसका कारिंदा किसानोंसे हर फसल पर लेता है।

सरिद्भर्तृ (सं० पु०) सरितां भर्त्ता। समुद्र।

सरिद्वरा (सं० स्त्री०) सरित्सु वरा श्रेष्ठा। १ गङ्गा। २ श्रेष्ठ नदी।

सरिन् (सं० त्रि०) सरतीति सर्त्तेरौणादिक इनि। गन्ता, गमनशील। (ऋक् १।१३८।३)

सरिन्नाथ (सं० पु०) सरितां नाथः। समुद्र।

सरिन्मुख (सं० क्ली०) सरितां मुखं। नदीका मुख, नदीका मुहाना।

सरिमन् (सं० पु०) सरतीति सृ-(हृभृधृसृस्तृशृभ्य इमनिच्। उण् ४।१४७) इति इमनिच्। १ गमन, जाना। २ वायु।

सरिया (हिं० स्त्री०) १ ऊंची भूमि। २ पैसा या और कोई छोटा सिक्का। (पु०) ३ सरकंडेकी छड़ जो सुनहले या रुपहले तार बनानेमें काम आती है, सरई। ४ पतली छड़।

सरियाना (हिं० क्रि०) १ तरकीबसे लगा कर इकट्ठा करना, बिखरी हुई चीजें ढंगसे समेटना। २ मारना, लगाना।

सरिर (सं० क्ली०) १ सरित्, सलिल, जल। (त्रि०) २ बहु, अनेक।

सरिल (सं० क्ली०) सलिलं रलयोरैक्यात् लस्य रः। सलिल, जल।

सरिवन (हिं० पु०) शालपर्ण नामका पौधा, त्रिपर्णी, अंशुमती। यह क्षुप जातिकी वनौषधि है और भारत के प्रायः सभी प्रान्तोंमें होती है। इसकी ऊंचाई तीन चार फुट होती है। यह जंगली झाड़ियोंमें पाई जाती है। इसका कांड सीधा और पतला होता है। पत्ते बेलके पत्तोंकी भांति एक सींकमें तीन तीन होते हैं। ग्रीष्म ऋतुको छोड़ प्रायः सभी ऋतुओंमें इसके फल फूल देखे जाते हैं। फूल छोटे और आसमानी रंगके होते हैं। कलियां चिपटी, पतली और प्रायः आध इंच लंबी होती हैं। सरिवन औषधके काममें आती है।

सरिषप (सं० पु०) सृ गतौ अपः युगागमश्च पृषोदरादित्वात् साधु। (उज्ज्वल ३।१४१ उणादि) सर्षप, सरसों।

सरिश्ता (फा० पु०) १ अदालत, कचहरी। २ शासन या कार्यालयका विभाग, महकमा, दफ्तर।

सरिश्तेदार (फा० पु०) १ किसी विभागका प्रधान कर्मचारी। २ अदालतोंमें देशी भाषाओंमें मुकदमोंकी मिसलें रखनेवाला कर्मचारी।

सरिश्तेदारी (फा० स्त्री०) १ सरिश्तेदार होनेका भाव। २ सरिश्तेदारका काम या पद।

सरी (सं० स्त्री०) सरि कृदिकारादिति ङीष्। निर्झर, झरना।

सरीखा (हिं० वि०) सदृश, समान, तुल्य।

सरीफा (हिं० पु०) एक छोटा पेड़ जिसके फल खाये जाते हैं। इसकी छाल पतली खाकी रंगकी होती है और पत्ते अमरूदके पत्तोंके-से होते हैं। फूल तीन दलवाले, चौड़े और कुछ अनीदार होते हैं। फल गोलाई लिये हरे रंगका होता है और उस पर उभरे हुए दाने होते हैं। बीजकोशोंका गूदा बहुत मीठा होता है। इस फलमें बीज अधिक होते हैं। शरीफा गरमीके दिनोंमें फूलता है और कातिक अगहन तक फल पकते हैं। विन्ध्य पर्वत पर बहुत-से स्थानोंमें यह आपसे आप उगता है। वहां इसके जंगलके जंगल खड़े हैं। जंगली सरीफेके फल छोटे और गूदा बहुत कम होता है।

सरोमन् (सं० क्लो०) सृ-ईम-निच् । १ वायु । २ गमन । यह प्रत्यय किसीके मतसे इकारान्त हो कर 'सरिमन्' होता है।

सरोसृप (सं० पु०) सरीसृप-क्विप् । सरीसृप देखो।

सरोसृप (सं० पु०) कुटिलं सर्पतीति सृप्-यङ्-लुक्, पच-अच् । १ रेंगनेवाला जन्तु । जैसे—साँप, कनखजूरा आदि। २ सर्प, साँप। ३ विष्णुका एक नाम। (त्रि०) ४ जङ्गम।

सरु (सं० पु०) सृ-उन् । १ खड्गमुष्टि, तलवारकी मूठ। (त्रि०) २ सूक्ष्म।

सरुच् (सं० त्रि०) शोभायुक्त, कान्तिमान्।

सरुज् (सं० त्रि०) रोगयुक्त, रोगी।

सरुज (सं० त्रि०) रुजा पीड़ा तया सह वर्त्तमानः। रोगयुक्त, रोगी।

सरुजसिद्धाचार्य (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

सरुद्भव (सं० क्लो०) सरोद्भव, सरोजपद्म।

सरुप् (सं० त्रि०) क्रोधयुक्त, कुपित।

सरूप (सं० त्रि०) समानं रूपं यस्य (ज्योतिर्जनपदेति। पा ६।३।८५) इति समानस्य स। १ सदृश, समान। २ रूपयुक्त, आकारवाला। ३ रूपवान्, सुन्दर।

सरूपकृत् (सं० त्रि०) सरूपं करोति कृ-क्विप् तुक् च। सदृशकारी, सरूपकारी।

सरूपङ्करण (सं० त्रि०) स्वरूपकृत्।

सरूपता (सं० स्त्री०) सरूपस्य भावः तल्-टाप्। सरूपका भाव या धर्म, सरूपत्व, समानता।

सरूपवत्सा (सं० स्त्री०) सवत्सा गो, वह गाय जिसके बछड़ा हो।

सरूपा (सं० स्त्री०) भूतकी स्त्री जो असंख्य रुद्रोंकी माता कही गई है।

सरूपोपमा (सं० स्त्री०) उपमालङ्कारभेद, समानोपमा। समानोपमा देखो।

सरूर (फा० पु०) १ आनन्द, खुशी। २ हलका नशा, नशेकी तरंग, मादकता।

सरेख (हिं० वि०) अवस्थामें बड़ा और समझदार, श्रेष्ठ बालक, सयाना।

सरेखना (हिं० क्रि०) सहेजना देखो।

सरेखा (हिं० पु०) श्लेषा देखो।

सरेतस् (सं० त्रि०) रेतोयुक्त।

सरेदस्त (फा० क्रि० वि०) १ इस समय, अभी। २ फिलहाल, अभीके लिये, इस समयके लिये।

सरेफ (सं० त्रि०) रेफयुक्त।

सरेबाजार (फा० क्रि० वि०) १ बाजारमें, जनताके सामने। २ खुले आम, सबके सामने।

सरेरा (हिं० पु०) १ पालमें लगी हुई रस्सी जिसे ढीला करनेसे पालकी हवा निकल जाती है। २ मछलीकी बंसीकी डोरी, शिस्त।

सरेला (हिं० पु०) सरेरा देखो।

सरेस (फा० पु०) १ एक लसदार वस्तु जो ऊंट, गाय, भैंस आदिके चमड़े या मछलीके पेटेको पका कर निकालते है। इसे सहरेस भी कहते हैं। यह कागज, कपड़े, चमड़े आदिको आपसमें जोड़ने या चिपकानेके काममें आता है। जिल्दबंदोंमें इसका व्यवहार बहुत होता है। (त्रि०) २ चिपकनेवाला, लसीला।

सरेसमाह (फा० पु०) सफेद या काले रंगका गोंदके समान एक द्रव्य। यह एक प्रकारकी मछलीके पेटसे निकलता है जिसकी नाक लंबी होती है और जिसे नदी का सूअर कहते हैं। यह दुर्गन्धयुक्त और स्वादमें कड़ुआ होता है।

सरो (हिं० पु०) एक सीधा पेड़ जो बगीचोंमें शोभाके लिये लगाया जाता है, बनझाऊ। इस पेड़का स्थान काश्मीर, अफगानिस्तान और फारस आदि एशियाके पश्चिमी प्रदेश है। फारसीकी शायरीमें इसका उल्लेख बहुत अधिक है। ये शायर नायिकाके सीधे डील डौलकी उपमा प्रायः इसीसे दिया करते हैं। यह पेड़ बिलकुल सीधा ऊपरको जाता है। इसकी टहनियां पतली पतली होती हैं और पत्तियोंसे भरी होनेके कारण दिखाई नहीं देती। पत्तियां टेढ़ी रेखाओंके जालके रूपमें बहुत घनी और सुन्दर होती हैं। यह पेड़ झाऊकी जातिका है और उसीकेसे फल भी इसमें लगते हैं।

सरोई (हिं० पु०) एक प्रकारका बड़ा पेड़। यह बहुत ऊंचा होता है। इसकी लकड़ी ललाई लिये सफेद होती है

और चारपाइयां आदि बनानेके काममें आती है। इसकी छालसे रंग भी निकाला जाता है।

सरोकार (फा० पु०) १ परस्पर व्यवहारका सम्बन्ध। २ लगाव, वास्ता, मतलब।

सरोग (सं० त्रि०) रोगेण सह वर्त्तमानः। रोगयुक्त, रोगी।

सरोज (सं० क्ली०) सरसि जायते इति जन-ड। १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ सरोवरजात, तालावमें उत्पन्न होनेवाला।

सरोजन्मन् (सं० क्ली०) सरसः जन्म उत्पत्तिर्यस्य। पद्म, कमल।

सरोजमुखी (सं० स्त्री०) कमलके समान मुखवाली, सुंदरी।

सरोजिन् (सं० पु०) सरोजं उत्पत्तिस्थानत्वेनास्त्यस्येति इनि। १ ब्रह्मा। २ बुद्ध। (त्रि०) ३ कमलवाला। ४ जहां कमल हो।

सरोजिनी (सं० स्त्री०) सरोजानि सन्त्यस्यामिति (सरोजपुष्करादिभ्यो देशे। पा ५।२।१३५) इति इनि। १ कमलाकर। २ पद्म, कमल। ३ कमलोंका समूह, कमलवन। ४ कमलका फूल। ५ पद्मबहुलपुष्करिणी, कमलोंसे भरा हुआ ताल, कमलपूर्ण सरसी।

सरोत्सव (सं० पु०) सरे सरोवरे उत्सवो यस्य। १ सारस पक्षी। २ वक पक्षी, बकुला।

सरोद (फा० पु०) १ बीनकी तरहका एक प्रकारका बाजा। इसमें तांत और लोहेके तार लगे रहते हैं और इसके आगेका हिस्सा चमड़ेसे मढ़ा रहता है। २ नाचने गानेकी क्रिया, गान और नृत्य।

सरोध (सं० त्रि०) रोधेन सह-वर्त्तमानः। रुद्ध, रोधयुक्त।

सरोधा (हिं० पु०) श्वासका दाहिने या बायें नथनेसे निकलना देख कर भविष्यकी बातें कहनेकी विद्या।

सरोबिन्दु (सं० पु०) एक प्रकारका वैदिक गीत।

सरोमन्नगर—१ अयोध्या प्रदेशके हरदोई जिलान्तर्गत एक परगना। भूपरिमाण ३५ वर्गमील है। पूर्वकालमें यह स्थान ठठेरोंके अधिकारमें था। १२वीं सदीके मध्यभागमें गौड़-राजपूतोंने ठठेरोंको भगा कर यह स्थान अधिकार कर लिया। इसके कुछ बाद सोमवंशीने फिर गौड़राजपूतोंको भगा कर यहां अपना आधिपत्य जमाया। महम्मदीके अधीश्वर राजा भवानीप्रसादने १८०३ ई०में पाली और सारी परगनेसे कुछ ग्राम निकाल कर इस प्रदेशमें मिला लिया और इसका नाम सरोमन्नगर रखा।

२ उक्त जिलेके उक्त परगनेका एक नगर। यहां विचारसदर प्रतिष्ठित है। शाहाबादसे यह स्थान ६ मील दक्षिण और हरदोईसे १५ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके अधिवासी सभी हिन्दू हैं। सात दिनमें दो बार हाट लगती है।

सरोरुह् (सं० क्ली०) सरसि रोहतीति रुह-क्विप्। पद्म, कमल।

सरोरुह (सं० क्ली०) सरसि रोहतीति रुह-क। पद्म, कमल।

सरोरुहवज्र (सं० पु०) एक बौद्ध आचार्यका नाम।

सरोरुहासन (सं० पु०) सरोरुहमासनं यस्य। पद्मासन। ब्रह्माने प्रलयकालमें विष्णुके नाभिपद्ममें अवस्थान किया था, इसलिये इसका नाम पद्मासन हुआ है।

सरोरुहिनी (सं० स्त्री०) सरोजिनी, पद्मिनी।

सरोला (हिं० पु०) एक प्रकारकी मिठाई। यह पोस्ते, छुहारे, बादाम आदि मेवोंके साथ मैदेको घी और चीनीमें पका कर बनाई जाती है।

सरोवर (सं० क्ली०) सरःसु वरः श्रेष्ठः पद्माकरत्वात्। १ तालाव, पोखरा। २ ताल, झील। पुष्करिणी देखो।

सरोष (सं० त्रि०) रोषेण सह वर्त्तमानः। क्रोधयुक्त, कुपित।

सरोसामान (फा० पु०) सामग्री, उपकरण, असबाब।

सरोही (हिं० स्त्री०) सिरोही देखो।

सरौ (हिं० पु०) १ कटोरी, प्याली। २ ढक्कन, ढकना। ३ सरो देखो।

सरौता (हिं० पु०) सुपारी काटनेका औजार। यह लोहेके दो खंडोंका होता है। ऊपरका खंड गंड़ासोकी भांति धारदार होता है और नीचेका मोटा जिस पर सुपारी रखते हैं। दोनों खंडोंके सिरे ढीली कीलसे जुड़े रहते हैं जिससे वे ऊपर नीचे घूम सकते हैं। इन्हीं दोनों खंडोंके बीचमें रख कर और ऊपरसे दबा कर सुपारी काटी जाती है।

सरौती (हिं० स्त्री०) १ छोटा सरौता। २ एक प्रकारकी ईख जिसकी छड़ पतली होती है। इस ऊखकी गांठें काली होती हैं और सब तना सफेद होता है।

सर्क (सं० पु०) १ वायु। २ मन, चित्त। ३ प्रजापति।

सर्कस (अं० पु०) १ वह स्थान जहां जानवरोंका खेल दिखाया जाता है। २ वह मंडली जो पशुओं तथा नटोंको साथ रखती है और खेलकूदके तमाशे दिखाती है।

सर्का (अ० पु०) १ चोरी। २ दूसरेके भाव या लेखको चुरा लेनेकी क्रिया, साहित्यिक चोरी।

सर्कण्डी—फतेपुर जिलेके गाजीपुर तहसीलके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २५° ४४′ ३२″ उ० तथा देशा० ८०° ५८′ ४″ पू० गाजीपुर नगरसे ६ मील दूर यमुना नदीके तट पर अवस्थित है। यहांके सभी अधिवासी प्रायः ब्राह्मण हैं।

सर्कार (फा० पु०) सरकार देखो।

सर्कारी (फा० वि०) सरकारी देखो।

सर्क्युलर (अं० पु०) १ गश्ती चिट्ठी। २ सरकारी आज्ञापत्र जो सब दफ्तरोंमें घुमाया जाता है। ३ वह पत्र जिसमें किसी विषयकी आवश्यक सूचनाएं रहती है।

सर्ग (सं० पु०) सृज-घञ्। १ स्वभाव, प्रकृति। २ निर्मोक्ष। ३ अध्याय, प्रकरण, परिच्छेद। काव्यमें अध्यायको सर्ग कहते हैं। ४ मोह, मूर्च्छा। ५ उत्साह। ६ अनुमति, आज्ञा। ७ विष्णु। ८ शिव। ९ वस्तुकी प्रवणता, मत, सलाह। १० परित्याग, छोड़ना। ११ सृष्टि, जगत्‌की उत्पत्ति। सांख्यादि दर्शनशास्त्रमें लिखा है, कि प्रकृति और पुरुषका संयोग ही सर्गका कारण है, अर्थात् प्रकृति और पुरुषके संयोगसे सृष्टि हुई है। पुरुष द्वारा प्रकृतिका जो भोग होता है तथा पुरुषका जो मुक्ति है, इन दोनोंके कारण पंगु और अन्धकी तरह प्रकृतिपुरुषके सम्बन्ध वशतः सर्ग अर्थात् सृष्टि होती है।

श्रीमद्भागवतमें (३।१० अ०) लिखा है, कि सभी गुणोंके महत्त्वादि रूपमें जो परिणाम है, उसके द्वारा जो व्यक्त होता है, वही काल है। किन्तु वह काल स्वतः और निर्विशेष है तथा आद्यन्त शून्य है, वही आत्मामें निमित्तरूपसे वर्त्तमान है। भगवान् परम पुरुष लीलावशतः उसीको निमित्त करके अपनेको ब्रह्माण्ड रूपमें सर्ग अर्थात् सृष्टि करते हैं।

एकमात्र काल ही सर्ग और प्रलयकारी है। कालका प्रथम भाग बीत जाने पर ज्ञानस्वरूप परमब्रह्मकी सृष्टिकी इच्छा अतीत होती है। प्रकृतिको इच्छामात्र विक्षोभित करनेमें यही प्रकृति सर्गकार्यको उपयोगिनी हुई। सभी दर्शनशास्त्रोंमें सृष्टिका क्रम विशेषरूपसे आलोचित हुआ है। दर्शन शब्द देखो।

१२ गमन, गति। १३ बहाव, झोंक। १४ छोड़ा हुआ अस्त्र। १५ मूल, उद्गम। १६ प्राणी, जीव। १७ संतति, संतान। १८ प्रवृत्ति, झुकाव। १९ प्रयत्न, चेष्टा। २० सङ्कल्प।

सर्गकर्तृ (सं० पु०) सर्गस्य कर्त्ता। १ सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा। ब्रह्मा इस जगत्‌की सृष्टि करते हैं। (त्रि०) २ सृष्टिकारिमात्र।

सर्गकृत् (सं० पु०) सर्गं सृष्टिं करोति-कृ क्विप्-तुक् च। सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा।

सर्गतक्त (सं० त्रि०) गानेमें प्रवृत्त। (ऋक् ३।३३।४)

सर्गपताली (सं० पु०) १ जिसकी आंखें ऐंची, ऐंचाताना। २ वह बैल जिसका एक सींग ऊपरको ओर उठा हो और दूसरा नीचेको ओर झुका हो।

सर्गपुर (सं० पु०) शुद्ध रागका एक भेद।

सर्गप्रतक्त (सं० त्रि०) सर्गेण प्रतक्तः। विसर्ज्जन अर्थात् त्याग द्वारा प्रगमित, गमनप्रापित।

सर्गबन्ध (सं० पु०) सर्गैरध्यायैर्बन्धो यस्य। महाकाव्य। साहित्यदर्पणमें है, कि महाकाव्यका अध्याय सर्ग द्वारा निबद्ध करना होता है। महाकाव्य शब्द देखो।

सर्जेंट (अ० पु०) १ हवलदार, जमादार। २ नाजिर। प्रथम श्रेणीका वकील।

सर्ज (सं० पु०) सृजति निर्यासादीनिति सृज-अच्। १ शालवृक्ष। २ सर्जरस। ३ पीतसाल। ४ शल्लकीवृक्ष।

सर्ज (अं० स्त्री०) एक प्रकारका बढ़िया मोटा ऊनी कपड़ा जो प्रायः कोट आदि बनानेके काममें आता है।

सर्जक (सं० पु०) सर्ज एव स्वार्थे कन्। १ पीतशाल।

२ शाल। ३ सलईका पेड़। ४ मट्ठा छोड़ने पर गरम दूधका फटाव।

सर्जगन्धा (सं० स्त्री०) सर्जस्येव गन्धो यस्या। रास्ना।

सर्जन (सं० क्ली०) सृज-ल्युट्। १ सैन्यपश्चाद्भाग, सेनाका पिछला भाग। २ विसर्जन, त्याग करना, छोड़ना। ३ सृष्टि, सर्ग। ४ निकालना। ५ सालका गोंद।

सर्जन (अं० पु०) अस्त्रचिकित्सा करनेवाला, चीरफाड़ करनेवाला डाक्टर।

सर्जनामन् (सं० पु०) सर्ज नाम यस्य। सर्जतरु।

सर्जनिर्यासक (सं० पु०) सर्जस्य निर्यासः स्वार्थे कन्। राल, धूना।

सर्जनी (सं० स्त्री०) गुदाकी बलियोंमेंसे बीचवाली बली जो मल, पवनादि निकालती है।

सर्जमणि (सं० पु०) सर्जस्य मणिरिव। १ धूनक, धूना। २ सेमलका गोंद, मोचरस।

सर्जरस (सं० पु०) सर्जस्य रसः। शालवृक्षका निर्यास, धूना।

सर्जरी (अं० स्त्री०) चीर फाड़ करके चिकित्सा करनेकी क्रिया या विद्या।

सर्जापुर—महिसुर राज्यके बङ्गलूर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १२° ५२' उ० तथा देशा० ७७° ४१' ५" पू०के मध्य अवस्थित है। हैदर अली और उनके पुत्र टीपू सुलतानके समय यह स्थान बड़ा समृद्धिशाली हो उठा था। उस समय यहां बड़े बड़े धनाढ्य मुसलमान रहते थे। आज कल वे सभी प्रायः दुःस्थ हो गये हैं, उनकी बड़ी बड़ी अट्टालिकाएं भी टूट फूट गई हैं। यहां आज भी सूती कपड़े, कार्पेट और फीते आदि बनानेका विस्तृत कारबार है। पूर्वकी तरह यहां और बढ़िया सूती कपड़ा तैयार नहीं होता।

सर्जि (सं० स्त्री०) सर्ज अर्जने इन्। सर्जिकाक्षार, सज्जी।

सर्जिका (सं० स्त्री०) सर्जिरिव स्वार्थे कन्-टाप्। १ सर्जिकाक्षार, सज्जी, खार। २ नदीविशेष।

सर्जिकाक्षार (सं० पु०) सर्जिका एव क्षारः, यद्वा सर्जिकायाः नद्याक्षारः। साचिक्षार, सज्जी मिट्टी। गुण—कटु, उष्ण, कफ और वातोदरपीड़ानाशक।

सर्जी (सं० स्त्री०) सर्जि वाहुलकात् ङीष्। सर्जिकाक्षार, सज्जी मट्टी।

सर्जीक्षार (सं० पु०) सर्जिकाक्षार, सज्जी मिट्टी।

सर्जु (सं० पु०) वणिक्, व्यापारी।

सर्जू (सं० स्त्री) सर्जतीति सर्ज (कृषिचमितनिधनीति। उण् १।८२) इति ऊ। १ विद्युत्, बिजली। २ अभिसार। ३ हार। ४ वणिक्, व्यापारी। ५ सरयू देखो।

सर्जूर (सं० पु०) दिन।

सर्टिफिकेट (अं० पु०) १ परीक्षामें उत्तीर्ण होनेका प्रमाणपत्र, सनद। २ चाल चलन, स्वास्थ्य, योग्यता आदिका प्रमाणपत्र।

सर्त (फा० स्त्री०) शर्त देखो।

सर्ता (हिं० पु०) घोड़ा।

सर्द (फा० वि०) १ ठंढा, शीतल। २ सुस्त, काहिल, ढीला। ३ मंद, धीमा। ४ बेस्वाद, बेमजा। ५ नपुंसक, नामर्द।

सर्दबाई (हिं० स्त्री०) हाथीकी एक बीमारी जिसमें उसके पैर जकड़ जाते हैं।

सर्दमिजाज (अ० वि०) १ मुर्दा दिल, जिसमें उत्साह न हो। २ जिसमें शील न हो, बेमुरौवत, रूखा।

सर्दा (फा० पु०) बढ़िया जातिका लंबोतरा खरबूजा जो काबुलसे आता है।

सर्दाबा (फा० पु०) कब्र, समाधि।

सर्दार (फा० पु०) सरदार देखो।

सर्दारशहर—राजपूतानेके बीकानेर-राज्यान्तर्गत एक नगर। यह बीकानेर नगरसे ७५ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है।

सर्दी (फा० स्त्री०) १ सर्दी होनेका भाव, ठंढ, शीतलता। २ जाड़ा, शीत। ३ जुकाम, नजला।

सर्द्धाना (सरधान)—१ युक्तप्रदेशके मीरट जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २९° १' से २९° १६' उ० तथा देशा० ७७° १६' से ७७° ४३' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २५० वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसमें एक शहर और १२४ ग्राम लगते हैं। इस उप-

विभागके ठीक मध्यस्थलसे हिन्द नदी वहती है। गङ्गा-नदी और पूर्व-यमुना नहरके जलसे यहांके खेतोंमें जल चढ़ाया जाता है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २६° ६´ ३० तथा देशा० ७७°३८´ पू०के मध्य मीरट नगरसे १२ मील उत्तर पश्चिम गङ्गा-नहरके निकटवर्त्ती निम्नप्रान्तरमें अवस्थित है। एक समय इस नगरमें वेगम समरूकी राजधानी प्रतिष्ठित थी। उस समय यहां बहुत-से बड़े मकान थे जिनसे नगरकी शोभा और भी बढ़ गई थी। अभी वह पूर्वश्री विलकुल नहीं है। वेगम समरूकी मृत्युके ठीक वाद ही राजधानीकी शोभा विलकुल जाती रही। वेगम समरूने इस नगरके उत्तर लस्करगञ्ज नामक एक नगर वसाया। यहां उनका सेनावास और एक प्राचीन दुर्ग विद्यमान है। उसके दक्षिण विस्तृत सेना-परिक्रम-स्थान (parade grounds) है। उसके दक्षिण सर्द्धाना नगर अवस्थित है। स्थानीय प्रवाद है, कि इस प्रदेशमें मुसलमानी विजयवाहिनी सुप्रतिष्ठित होनेके वहुत पहले राजा सरकतने यह नगर वसाया। मार्क-ण्डेय पुराणमें यह नगर सरधान नामसे वर्णित हुआ है। (मार्कण्डेयपु० ५८।४४)

१८ वीं सदीमें यहां वालटर रीनहार्डट् और जार्ज टामस नामक दो यूरोपियनोंका अभ्युदय हुआ। भाग्यकी खोजमें वे लोग भारतवर्ष आये और अपने अध्यवसाय तथा भाग्यवशतः यहांका शासनदण्ड अपने हाथमें ले कर यूरोपीय सैनिककी सौभाग्यपराकाष्ठा दिखला गये हैं।

समरूने मुगल सम्राट्के अधीन सामन्त पद पाया सही, पर अधिक दिन वह राज्यसुख भोग न कर सका। १७७८ ई०में अकस्मात् उसकी मृत्यु हुई। पीछे उसकी विधवा पत्नी वेगम समरूने अपने हाथमें उस सेनावाहि-नीके परिचालनका भार लिया। वीरत्वप्रतिभासे प्रतिष्ठा-पन्नो यह रमणी अरवदेशीय किसी मुसलमानकी अवैध सन्तान थी। समरू मुसलमान राजसरकारमें काम करनेके वाद एक दिन इस रमणीके रूप पर आकृष्ट हो गया। पीछे शास्त्रमतानुसार विवाहित होनेके पहले रीनहार्डट-रमणीने सर्द्धाना प्रदेशका शासनभार ग्रहण किया था और आप स्वयं सेनादलकी परिचालना करती थी। उसके अधीन ५ वाटेलियन सिपाही, ३०० यूरोपीय सेनानायक और कमानचालक, ५० कमान और वहुतसे घुड़सवार थे।

१७८१ ई०में वेगम रोमन काथलिक गिरजा-घरमें जोहाना नाम धारण कर ईसाई धर्ममें दीक्षित हुई। १७८४ ई०में गोकुलगढ़के युद्धमें वेगमपरिचालित सर्द्धाना-के सेनादलने बड़ी धीरतासे दिल्लीश्वरकी ओरसे युद्ध किया था। इस समय जार्ज टामस नामक वेगमके सेनापतिने भीमवेगसे शत्रु सैन्य पर आक्रमण कर सम्राट्-की सम्मान रक्षा की थी। १७९२ ई०में वेगमने अपने अधीनस्थ अश्वारोही सेनादलके नायक विख्यात फरासी योद्धा लेभासौल्टका पाणिग्रहण किया। इस पर उसके अन्यान्य यूरोपीय कर्मचारी जलने लगे। १७९५ ई०में उसके अधीनस्थ यूरोपीय सेनानायक खुल्लम खुल्ला वाजी हो गये और रीनहार्डटके अवैधतनय जाफर आयव खाँको अपना दलपति बना कर वेगमके विरुद्ध खड़े हो गये। उन लोगोंके अत्याचारसे वेगम अपने नये स्वामीको ले कर प्राणरक्षार्थ भाग गई, किन्तु वे लोग वहुत दूर भी जाने नहीं पाये थे, कि विद्रोही दलने वेगमकी पालकी को घेर लिया। वेगमने शत्रुके हाथमें पड़ कर घृणित-भावसे मरना विलकुल नहीं चाहा और अपने वीरजीवन-को वीरभावसे ही अपसारित करनेके लिये स्वयं अपने वक्षमें छुरी भोंक दी। पूर्व कथनानुसार लेभासौल्टने भी अपने कण्ठमें वन्दूक मार कर जीवन विसर्जन किया। वेगमके प्राण नहीं गये, पर वह बुरी तरह घायल हो गई थी, इस कारण उसे पालकी पर विठा कर सरधाना पहुं-चाया गया। भली भांति चिकित्सा करनेसे वेगम थोड़े ही दिनोंमें चंगी हो गई। एक दूसरी किंवदन्तीसे मालूम होता है, कि वेगम अपने वर्त्तमान स्वामीके व्यवहारसे वहुत तंग आ गई थी, इस कारण उसके हाथसे छुटकारा पाने और उसे दण्ड देनेकी इच्छासे उसने अपने अंगमें अस्त्राघात किया था।

वेगमके अंगमें अस्त्राघात चाहे जिस कारणसे क्यों न हुआ हो, उसके हाथसे सर्द्धानाका शासनकर्तृत्व कुछ समयके लिये उसके पुत्र जाफर आयव खाँके हाथ

सौंपा गया था। इस समय समरूपुत्र जाफरने माताके प्रति अत्यन्त घृणित व्यवहार किया था। वेगमके प्रति यह कठोर अत्याचार उसके विश्वस्त पुराने नौकर जार्ज टामसको अच्छा नहीं लगा। उन्होंने उस विप्लवमें बेगमका पक्ष लिया। उनकी वीरता और राजनीतिक कौशलसे बेगम फिरसे राजतख्त पर बैठ कर राजकार्य चलाने लगी। इस समयसे ले कर १८३६ ई०में उसके मृत्युकाल पर्यन्त बेगमने निर्विरोधसे राज्यभोग किया था।

दिल्ली-युद्धके बाद १८०३ ई०में उत्तर अन्तर्वेदी प्रदेशमें अंगरेजोंकी विजयपताका जब फहरने लगी, तब बेगमने अङ्गरेजोंके प्रति विशेष भक्ति दिखला कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस समय बेगम समरूका राज्य बहुत दूर तक फैला हुआ था। सर्द्धाना, बराउत, बर्नावा, धनकौर आदि वाणिज्यप्रधान नगर उसके दखल में थे। ये सब नगर आदि मीरट राजधानीके निकटवर्ती होनेके कारण विशेष समृद्धिशाली भी हो गये थे। एकमात्र मीरट जिलेकी सम्पत्तिसे उसे वार्षिक ५६७२१०) रु०की आय थी। सर्द्धाना, दिल्ली, मीरट, खीरवा, जलालपुर आदि स्थानोंमें बेगम समरूका वासभवन था। इसके सिवा उसके उद्योगसे सर्द्धानामें एक गिरजा-घर और दरिद्रावास स्थापित हुआ था। इन दोनोंके कुल खर्च तथा कलकत्ता, मन्द्राज, बम्बई और आगराके कुछ कैथलिक गिरजा घरका, सेण्ट जान्स रोमन कैथलिक कालेज और मीरट कैथलिक चापेलके खर्चवर्चके लिये उसने बहुत रुपये दान किये। साधारणके दानार्थ उसने कलकत्तेके विशपको लाखसे अधिक सोनेकी मुद्रा दी थी। हिन्दू और मुसलमान धर्म प्रचारक कितनी समितियोंमें भी उसने रुपये दिये थे।

१८०२ ई०में समरूके पुत्र जाफर आयावकी मृत्यु हुई। उसके एक मात्र कन्या थी। बेगमने उस कन्याको अपने अधीनस्थ डाइस नामक एक सेनापतिके हाथ समर्पण किया। उस कन्याके गर्भजात एकमात्र पुत्र डेभिड अक्टर्लोनी डाइस समरू का १८८१ ई०में पेरिस राजधानीमें देहान्त हुआ। पीछे सर्द्धानाराज्य उसकी विधवापत्नी भाईकाउण्ट सेण्ट भिनसेण्टकी कन्या आन रैवन मेरी पेनी फारेष्टके दखलमें आया।

सर्द्धाना नगरके पूरब बेगमका प्रासाद है जो देखने लायक है। १८२२ ई०में यहांका रोमन कैथलिक काथिड्रेल बनाया गया। चार जैनमन्दिर आज भी यहांके जैन समाजके प्रभावका परिचय देते हैं। लस्करगञ्जका प्राचीन दुर्ग अभी खंडहरमें पड़ा है। १८८३ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक मिड्लि और छः प्राइमरी स्कूल हैं।

सर्द्धाना—युक्तप्रदेशके मीरट जिलेका एक प्रसिद्ध राज्य। भूपरिमाण २८ वर्गमील है और आय लाख रुपयेसे ऊपर की है। राज्यका सदर सर्द्धाना शहरमें हैं यह मुसवी सयीद के अधिकारमें है जो अपनेको आठवें इमाम अली मूसारजाके वंशधर बतलाते हैं। ये लोग पहले काबुलके निकट पघमानमें रहते थे, पर पीछे कई कारणोंसे वहांसे भगा दिये गये। पीछे एक हजार रुपया मासिक वृत्ति उस वंशको दी गई। सिपाहीविद्रोहमें सयीद महम्मद जान फिसान खाँने अंगरेजोंको मीरट और दिल्लीमें काफी मदद पहुंचाई थी। इसके पुरस्कारमें उसे नवाब बहादुरकी उपाधि और सर्द्धानाको जागीर मिली। वर्त्तमान नवाबका नाम सयीद अहमदशाह है।

सर्प (सं० पु०) सृप्यते सृप-घञ्। १ नागकेशर। (रत्नमाला) सृप भावे घञ्। २ गमन। सर्पति इतस्ततो गच्छतीति सृप-अच्। ३ श्मश्रुधारी या दाढ़ीदार म्लेच्छ जाति विशेष। यह जाति पहले क्षत्रिय थी। पुराणानुसार राजा सगरने वशिष्ठके आज्ञानुसार इनका विनाश न कर वेदका अधिकार छीन हिन्दूवेश बदल देशसे निकाल दिया था। इससे यह जाति दाढ़ीदार म्लेच्छ जातिमें गिनी गई।

"शका यवनकम्बोजाः पारदाः पह्लवास्तथा।
कोलि-सर्पा महिषका दार्वाश्चोलाः सकेरलाः॥
सर्वे ते क्षत्रियास्तात! धर्मस्तेषां निराकृतः।
वशिष्ठवचनाद्राजन् सगरेण महात्मना॥"

४ स्वनामख्यात सरीसृप जातिविशेष। प्रचलितभाषामें सांप कहते हैं। पर्याय—पृदाकु, भुजग, भुजङ्ग, अहि, भुजङ्गम, आशीविष, विषधर, चक्री, व्याल, सरीसृप, कुण्डली, गूढ़पात्, चक्षुश्रवस्, काकोदर, फणी, दर्वीकर, दीर्घपृष्ठ, दन्दशूक, बिलेशय, उरग, पन्नग, भोगी,

श्वसनाशन, कुम्भोलस, द्विरसन, भेकभुज्, श्वसनोत्सुक, फणाधर, फणधर, फणावत, फणाकर, फणकर, समकोल, व्याड़, दंष्ट्री, विषास्य, गोकर्ण, उरङ्गम, गूढ़पाद, विलवासी, दर्वीभृत्, हरि, प्रचलाकिन्, द्विजिह्व, जलरुण्ड, कञ्चुकी, चिकुर, भुजं। इनकी उत्पत्तिका विवरण नाग शब्दमें देखो।

पाश्चात्य प्राणीतत्त्वविदोंने बहु गवेषणा द्वारा इस तरह सर्पतत्त्व प्रकाशित किया है—सर्प जातिकी देह दीर्घायतन, नलाकार या अर्द्ध-नलाकार है। कुछ सांप तो पुच्छाग्र सूचीमुख या अपेक्षाकृत कुछ मोटा होता है। इनकी देहमें पैर आदि कोई अङ्ग प्रत्यङ्ग दिखाई नहीं देता, समूची देह केंचुलदार चमड़ेसे आवृत रहती है। इस केंचुलदार चमड़ेके नीचे कुछ रेखाएं बनी हुई हैं। इन रेखाओंके सहारे छातीके बलसे सर्प जाति अनायास ही चलती है। देहाभ्यन्तरकी कसेरुकास्थिके सिवा और कोई अस्थि नहीं है। पञ्जरास्थियां उनके अङ्ग चालनाके साथ ही चालित होती हैं। मस्तक भागमें तालू और हनुकी अस्थि इच्छाक्रमसे सञ्चलित होती है। उक्त तालू और हनुमें सूक्ष्म बारीक सूईकी तरह बहुतेरे दांत दिखाई देते हैं। दोनों आंखें खुली रहती हैं, उन पर परदा नहीं रहता वा है ही नहीं। जिह्वा या जीभ बारीक सूतकी तरह दो खण्डोंमें बंटी हुई है। कर्णरन्ध्र भी नहीं है इसलिये सर्प जाति द्विजिह्वा अर्थात् दो जीभवाली भी कही जाती है। इनके दोनों गलफड़ आपसमें मिले हुए आगेको और मुंहमें ऐसे मिल गये हैं, जिससे आवश्यकता पड़ने पर बड़े चौड़े हो सकते हैं। जिस सर्पका शिरोभाग कपित्थाकार है, वह सहज ही पूर्ण वयस्क मनुष्यको अपने गलेमें घर दबाता है अर्थात् सर्पका गलफड़ इतना चौड़ा हो सकता है, कि उसकी दशगुनी देह भी उसके मुंहमें सहज ही आ सकती है।

ये अण्डे देते हैं। एक बारमें १० से ८० अण्डे तक देखे गये हैं। अण्डे अर्द्धवृत्ताकार और कोमल चमड़ेसे आच्छादित रहते हैं। उष्ण प्रधान देशोंमें सर्पोंके अण्डोंको फोड़नेमें किसी तरहका यत्न नहीं करना पड़ता। एक जगह अण्डे दे कर हट जाते हैं। ये अण्डे सूर्य उत्तापसे या वहांके जलवायुके कोमल उत्तापसे आप ही फुट जाते हैं और इनसे छोटे सर्प शावक (पोआ) बाहर निकल आते हैं। केवल मयाल सर्प ही अपने अण्डेके फोड़नेमें विशेष यत्नवान होते हैं। ये सर्प जब अण्डे देते, तभीसे मण्डली बांध कर अण्डोंको घेर कर बैठ जाते हैं और उन्हें अपनी गर्मीसे ताप देते हैं। जब तक इन अण्डोंसे सर्प बाहर निकल नहीं आते, तब तक ये सर्प बड़े यत्नसे उनकी रक्षा करते हैं। अण्डे देनेवाली सर्पिणी अपनेको शत्रु द्वारा आक्रान्त जान कर शावकोंको रक्षाके लिये अति भीषण भावसे आततायी पर टूट पड़ती है। सुमिष्ट जलमें वास करनेवाले नाना जातीय सर्प, लवण समुद्रज सर्प जाति और वाइपेरिड (Viperidae) और क्रोटालिडि (Crotalidae) श्रेणीकी सर्प जातिके डिम्ब पूर्णकाल तक डिम्बाधारमें रहते हैं। पीछे यथासमय गर्भान्तरमें डिम्बस्थ शावक आवरणोन्मुक्त हो मातृजठरसे प्रसूत होते हैं। इसीलिये इन सर्पोंकी Ovoviviparous संज्ञा हुई है।

प्राणीतत्त्वविदोंकी चेष्टासे अब तक जितने सर्पोंका विवरण प्रकृत हुआ है, उनकी संख्या १५०० है। कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंने इनकी संख्या १८०० तक बताई है। यूरोपके ६०° उ० अक्षांश और अमेरिकाके कालिफर्निया प्रदेशके ५४° उत्तर अक्षा० और विषुवरेखाके दक्षिण ४०° तक स्थानमें सर्प जातिका वास देखा जाता है। शीतप्रधान या नाति शीतोष्ण देशोंमें सर्पकी जाति और उनकी संख्या बहुत कम है। एकमात्र उष्णप्रधान देशमें ही सर्पकी बहुलता दिखाई देती है। वहां ये स्वच्छन्दतासे नदी और पोखरोंमें डूबे रहते हैं, कभी सूर्यके उत्तापसे अपनी देहको उत्तप्त कर निश्चिन्त मनसे वायुसेवन करते हैं। इसीलिये यह 'वायु भक्ष' भी कहे जाते हैं।

उष्णप्रधान देशमें कीटपतङ्गादि छोटे छोटे प्राणीसे पूर्ण रहनेसे सर्पोंके आहारका अभाव नहीं रहता। कुछ सर्प छोटे छोटे जानवरोंको भी खा डालते हैं, जैसे—चूहे, छछून्दर, मेढ़क और तो क्या ये सर्प कभी कभी बकरीके छोटे छोटे बच्चों या मेमनोंको खा जाते हैं। उष्णप्रधान देशमें अजगर, मयाल आदि भीषणदेह सर्प वृक्षारोहणकारी

सर्प, समुद्र सर्प, नाना जातीय विषधर सर्प आदि जो सब विशेष विशेष सर्पजाति दिखाई देती है, पृथ्वीके दूसरे किसी स्थानमें ऐसे सर्प दिखलाई नहीं देते। किन्तु केवल इतना ही कहा जा सकता है, कि प्रत्येक देशमें ही वहांकी मिट्टीमें रहने योग्य एक एक तरहके सर्प हैं। जनशून्य मरुभूमिमें भी सर्प देखे जाते हैं। सर्प जातिके इस तरह सर्वस्थलोंमें वासव्यवस्था देख कर हम जान सके हैं, कि स्थानभेदसे इनके जीवनकी अवस्था, देहगठन और गतिविधिका वैलक्षण्य हुआ है। एक सर्प देखनेसे ही उसके आकारसे ही उसके अन्तरज गुणका अनुमव किया जाता है। नीचे उसके दृष्टान्त लिखे जाते हैं।

१ बिलेशय सर्प—ये बिल खोद कर जमीनमें रहते हैं, कभी भी ऊपर नहीं निकलते। इनकी देह नलाकार और मजबूत है, ऊपरी भाग कठिन और चिकनी केंचुलसे आच्छादित है, मस्तक गोलाकार क्षुद्र और मुख-विवर अप्रशस्त है। चक्षु छोटे तथा दांत विरल होते हैं। ये मिट्टीके भीतर ही कृमि कीट खाते हैं। इनके दांतोंमें विष नहीं है।

२ भूचारी सर्प—ये जमीन पर ही रहते हैं, जल और जङ्गलमें रहना पसन्द नहीं करते, कभी भी गुल्म-लता पर नहीं चढ़ते। इनकी देह नलाकार, कोमल और केंचुलदार चमड़ेसे आच्छादित है। इनमें अधिकांश ही विषहीन, किन्तु किसी किसी जातिमें विष अवश्य है। ये प्रायः कीटपतङ्ग पकड़ कर खाते हैं।

३ वृक्षारोही सर्प—ये प्रायः ही वृक्षों पर रहते हैं। जिस वृक्ष पर ये रहते हैं, इनके शरीरका रङ्ग प्रायः उस वृक्षसा ही हो जाता है। इनका शरीर पतला और चिपटा है। इस जातिके अनेक सर्पोंको वृक्ष पर पक्षियोंके घोंसलोंमें जा पक्षिशावकोंको खा डालते देखा गया है। हरहरा सर्पका वर्ण कद्दूकी लताके समान ठीक उज्ज्वल हरिद्वर्ण है। इस जातिके सर्प साधारणतः विषाक्त हैं।

४ मीठे जलमें रहनेवाले सर्प—ढोंड़ सांप। ये सदा पोखरे या क्षुद्र जलाशयमें रहते हैं। कभी जल पर तैरते दिखाई देते हैं, कभी जलमें डूब जाते हैं। ये मेढ़क, मछली या अन्य छोटे छोटे जलीय जीवोंको खा कर जीवनधारण करते हैं। इनकी देह मध्यमाकार और गोलाकार होती है, मस्तक चपटा और छोटा, आँख छोटी और पूंछ पतली होती है, मस्तक पर नासारन्ध्र है, इसके द्वारा ही इनकी श्वासक्रिया सम्पादित होती है।

५ समुद्रसर्प—इसकी देह चिपटी और पूंछ ढालकी तरह, पीठ वंशास्थिसंयुक्त; पूंछकी हड्डी स्नायुबन्धनी द्वारा ऊर्द्ध्वाधोभावसे रक्षित और परिचालित होती है। ये समुद्रमें ही रहते हैं, कभी भी जलसे बाहर जमीन पर नहीं आते। मत्स्यादि इनकी केवल उपजीविका है। ये विषाक्त हैं, ये पहले शावक ही प्रसव करते हैं।

सर्पमात्र ही दिनमें विचरण करता है। दिनका आलोक या प्रकाश जितना ही तेज होता है, उतना ही सर्पोंको स्फूर्त्ति बढ़ती है, कोई सर्प दारुण प्रखर सूर्य रश्मिमें दो पहरको सो कर अपनी देहको सुखा रहे हैं, कोई सर्प जङ्गलकी जलीय भूमिमें आनन्द कर रहे हैं और कोई वायुसेवन करनेके लिये जमीन पर घूम फिर रहे हैं। दिनमें इनकी प्रकृति जितनी चञ्चल होती है, रातको उतनी नहीं होती। रातको इनकी आँख बन्द हो जाती और चक्षुका उपरिस्थ भाग अस्थिके ऊपर चढ़ जाता है।

शीतकालमें ये प्रायः एक स्थानमें ही रहते हैं। शीतका कठोर प्रभाव इनकी कोमल शीतल देहमें सहन नहीं होता। सिवा इसके ये गर्मीमें भी दो एक ही स्थानमें रहना पसन्द करते हैं। जितने दिनों तक एक स्थानमें इनको आहारका अभाव नहीं होता, उतने दिनों तक ये स्थान परिवर्त्तनकी कोशिश नहीं करते।

सर्पमात्र ही मांसभोजी हैं। पहले कह चुके हैं, कि सामने आये हुए कीट पतङ्गोंको सर्प खाते हैं। केवल ये ही नहीं, कोई कोई सर्प पक्षियोंके डिम्ब खाना बहुत पसन्द करते हैं और प्रायः उनकी खोजमें घूमते फिरते हैं। प्रायः सब सर्प ही अपने अण्डे या शावक को खा डालते हैं। कभी कभी मेढकको पकड़ कर निगल जाते हैं। कुछ सर्प अपने शिकारको पकड़ कर अपनी पूंछसे दबा लेते हैं और धीरे धीरे उसको दबाते दबाते

निर्जीव कर देते हैं। विषाक्त सर्प पहले ही छोटे छोटे पशु या पक्षीको काटते हैं, काटते ही वे मर जाते हैं और वहां गिर पड़ते हैं। कभी कभी शिकार आहत होने पर भी वे उसी समय उसको उदरस्थ नहीं करते, इच्छानुसार और समयके मुताबिक इस निहत पशुदेहको निगलते हैं। जीवदेहको निगलते समय अपने दोनों गलफड़ सर्वापेक्षा फैलाते हैं और पहले मस्तक निगलने लगते हैं। इनका यह निगलनेका काम इतना धीरे धीरे होता है, कि कवलित पशुदेह सर्पदेहकी अपेक्षा दशगुनी अधिक होने पर भी अनायास ही सर्पके उदरमें स्थान पाती है। क्योंकि इनके गलेकी नली और उदरदेश इतना स्थितिस्थापक है, कि निगली हुई जीवदेह बड़ी होने पर भी स्थान पाती है और कभी कभी उदरका चमड़ा इतना फैल जाता है, कि निगली हुई जीवदेह बाहरसे स्पष्ट दिखाई देती है। निगलते समय सर्पोंके मुंहसे यथेष्ट लाला या लार निकलती है। इसके द्वारा भी विषधर सर्पके विषके संयोगसे रासायनिक प्रक्रियासे निगली पशुकी अस्थि कोमल हो जाती है।

सर्पजाति साधारणतः हिंस्र नहीं, मनुष्य या पशुको आते देख कर ही आक्रमण नहीं करती ; वरं वह वृहदाकार जीवदेहको देख कर भागनेकी चेष्टा करती है। किन्तु करैत आदि दो एक जातिके सर्प मनुष्यके देखते ही उस पर आक्रमण करनेके लिये अपनी फणा फैलाते और उठाते हैं। कई बार देखा गया है, कि करैत साँप मनुष्यकी छाया देख कर ही आक्रमण करते हैं और उन्हें काट लेते हैं। कभी भी तो वे मनुष्यको खदेड़ते खदेड़ते उनके घर तक जा कर काटते हैं। गोखुरा आदि विषधर सर्प करैतकी तरह हिंस्र नहीं हैं, वे कदाचित आत्मरक्षार्थ ही काटा करते हैं।

भारतकी मृत्युसूचीको देखनेसे मालूम होता है, कि प्रति वर्ष भारतके बीस हजार मनुष्य सर्पके काटनेसे मरते हैं। इनके विषका तेज इतना प्रखर है, कि साँपके काटनेके थोड़ी देर बाद ही मनुष्य मृत्युके लक्षण प्रकाशित करने लगता है। उसके मुखसे उस समय लार निकलने लगती है, हाथ पैर नीले रङ्गके हो जाते और ठण्डे पड़ने लगते हैं। यह केवल विषके प्रभावसे ही होता है, लोग ऐसा स्वीकार नहीं करते। स्नायविक धातुविशिष्ट व्यक्ति सर्पदंशनसे मृत्यु सुनिश्चित समझ इतना भीत और शीर्ण हो जाता है, कि उसे तुरत:ही हृद्रोग हो जाता है। ऐसा होने पर सर्प विष न होने पर भी मनुष्य मरते देखे गये हैं।

सर्पजाति सरीसृप जगत्में Ophidia श्रेणीमें गिनी जाती है। देश भेदसे और स्थानीय जलवायुके विपर्यय से इनकी आकृति और गठनमें वैलक्षण्य दिखाई देता है। सर्पविद् इनकी जाति और वंशगत पार्थक्य निर्देश करते हैं इसके अनुसार हम भी एक एक जातिको भिन्न भिन्न दलमें निबद्ध करते हैं—

1 Hopoterodontes—(a) *Typhlopidæ*, (b) *Steno stomatidæ*.

2 Ophidri Colubri ormes—(a) Tortricidæ, (b) Xenopeltidæ, c) Uropeltidæ, (d) Calamariidæ, (e) Oligodontidæ, (f) Colubridæ, (g) Homalopsidæ, (h) *Psammophidæ*, (i) Rhaciodontidæ, (j) Denbrophidae, (k) Dryophidae, 1 Dipsadidae, (m) Scytalidae, (n, Lycodontidae, (o) Amblycephalidae, p) Erycidae, (q) Boidae, (r) *Pythonieae*, (s) Acrochordidae, (t) Xenodermidae.

इन्हीं बीस दलोंमें नाना जातिके सर्प हैं। ये जमीन पर चलनेवाले और विषहीन हैं।

3 Ophidi Colubriformes Venenosi—(a) Elapid e, (b) Atractaspididae, (c) Cansidae, (d) Dinophidae, (e) Hydrophidae.

करैत, गोखुरा, समुद्र सर्प आदि विषधर सांप इन पांच दलोंके अन्तर्गत हैं।

4 Ophidii Viperiformes—(a) Viperidae, (b) Crotalidae. झमझम शब्दकारी Rattle snake नामक विषधर सर्प और पिट भाईपार आदि सर्प अन्तिम दलमें हैं।

ऊपर जो कई दल निर्देश किये गये, उनमें पूर्वोक्त प्रायः १८०० विभिन्न प्रकारके सर्प हैं।

हमारे देशमें नागपूजाका विधान है। नागपञ्चमीमें

स्त्रियां सर्पका चित्र अङ्कित कर पूजा करती हैं। मनसा देवी सर्पकी अधिपति हैं। बेहुलाके उपाख्यानसे बङ्गालमें सर्पपूजाका प्रसार हुआ।

हरिवंशमें सर्पसत्रकी कथा लिखी है। तक्षक द्वारा परीक्षित निहत हुए। उनके सुपुत्र जनमेजयने तक्षक-विनाशके लिये सर्पहन्ता यज्ञानुष्ठान किया था। इस यज्ञकी होमाग्निमें बहुतेरे सर्पोंका नाश हुआ था। जनमेजय देखो।

अग्निपुराण आदि पुराणोंमें नाना जातीय सर्पोंका विवरण लिखा है।

वैद्यक मतसे सर्प दो तरहका है, दिव्य और भौम। जिनकी दृष्टि और निःश्वासमें विष है, वह दिव्य तथा जिनके दांतोंमें विष है, उसको भौम सर्प कहते हैं।

भौम सर्पोंका विष दांतोंमें ही है। इनके काटनेसे ही विकार होता है। जब तक यह काटते नहीं, तब तक इनके विषसे कुछ भी भय नहीं। ये सब सर्प ८० प्रकारके हैं। ये पांच श्रेणियोंमें विभक्त हुए हैं, यथा—दर्वीकर, मण्डली, राजिमन्त, निर्विष और वैकरञ्ज। इनमें दर्वीकर जातीय २६ प्रकार, मण्डली २२ प्रकार, राजिमन्त १० प्रकार, वैकरञ्ज ३ प्रकार और निर्विष १२ प्रकारके हैं। वैकरञ्ज जातिसे सात प्रकारकी चित्रा उत्पन्न हुई है। वे मण्डली और राजिमन्त दोनोंके गुणविशिष्ट हैं। पैरसे कुचलने, दुष्ट, क्रुद्ध या क्षुधार्त्त होने पर वे बड़े क्रोधसे काटते हैं, उनका दंशन या काटना तीन तरहका है—सर्पित, रदित और निर्विष।

जिसके काटनेसे एक, दो अथवा अनेक दांतोंके गम्भीर चिह्न सरक्त हो फूल उठते हैं और दंशन या दंशन स्थान विकृत हो जाता है अथवा संक्षिप्तभावमें दन्तश्रेणी चिह्नयुक्त हो फूल उठती है, उसको सर्पित कहते हैं। दंशन स्थानमें रक्त, नील, पीत और कृष्ण वर्ण रेखा दिखाई दे, तो उसको रदित कहते हैं। इस दंशनमें कम विष रहता है। यदि दंशनका स्थान फूल न उठे और अल्प दूषित रक्त या अधिक दंशनका चिह्न न दिखाई दे, तो उसको निर्विष दंशन कहते हैं।

डरपोक आदमीके शरीरमें किसी तरह सर्प गिर पड़े या छू ले तो उसका वायु बिगड़ जाती है, इससे उसका शरीर फूल जाता, उसको सर्पाङ्गाभिहत कहते हैं। सर्प पीड़ित या उद्विग्न हो कर दंशन करने अथवा देवता, ब्रह्मर्षि, यक्ष या सिद्धोंके निसेवित स्थानोंमें दंशन करनेसे या दंशनकालमें विषघ्न औषध शरीरमें लगा देने पर शरीरमें विषका सञ्चार नहीं होता।

मनुष्योंकी तरह सर्प भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंमें विभाजित हुए हैं। जिन सर्पोंके मस्तक पर रथाङ्ग, हल, छत्र, स्वस्तिक अथवा अङ्कुशका चिह्न रहता है, उनको दर्वीकर सर्प कहते हैं। जो फणविशिष्ट, शीघ्रगामी और विविध प्रकारके मण्डलमें आभाविशिष्ट होते हैं, उनको मण्डली कहते हैं। जो सब सर्प चमकीले और उनके शरीर नीचे ऊपर कई प्रकारकी रेखाओं द्वारा चित्रित हैं, उनका नाम राजिमन्त है। ये सब सर्प मुक्ता अथवा रौप्यकी तरह आभाविशिष्ट हैं। जिन सर्पोंका शरीर सुगन्ध और सुवर्णकी तरह उज्ज्वल है, उनको ब्राह्मण वर्ण कहते हैं, जिनका वर्ण मुलायम अथवा चिकना और जो शीघ्र कुपित होते हैं, वे क्षत्रिय जातिके हैं, जिनके शरीरकी आकृति चन्द्र, सूर्य, छत्र या पद्मके रङ्गकी तरह हो अथवा जिनके शरीरमें कृष्ण लोहित, धूम्र या पारावतका रङ्ग और देह वज्र सदृश दृढ़ हो, उसको वैश्य कहते हैं और जिन सर्पोंका वर्ण भैंस या हस्तीकी तरह है अथवा अन्य प्रकार और जिसका चमड़ा अतिशय परुष है, वे शूद्र जातिके हैं।

जो सर्प सङ्कर वर्ण अर्थात् जो असवर्ण जातिके समागमसे उत्पन्न हैं, उनके विषमें दोष कुपित होते हैं। इन लक्षणोंके द्वारा सर्पके पिता माताकी जाति जानी जाती है। रातके अन्त भागमें चित्रा जाति और अवशिष्ट भागमें मण्डली जाति और दिनमें दर्वीकर जाति विचरण करती है।

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातु और इनके एक एकका अतिक्रम कर विषका एक-एक वेग उत्पन्न होता है। विष वायु द्वारा चालित हो कर जितने समयमें पूर्वोक्त किसी एक धातुको भेद करता है, उतने समयको वेगान्तर कहते हैं।

यदि शिशुओंको साँप काटे, तो विषके प्रथम वेगमें

अङ्ग स्फीत होता है और उनका मन दुःखित तथा चिन्ता युक्त दिखाई देने लगता है। दूसरे वेगमें लार टपकने लगती है। अङ्ग काला होने लगता है, हृदयकी पीड़ा उपस्थित होती है तथा कण्ठ और ग्रीवा (गरदन) टूट जाता है। चतुर्थ वेगमें वे पुनः पुनः कांपने लगते हैं, निश्चेष्ट होते, दांत पर दांत लगने लगते तथा इसके बाद वे प्राण त्याग कर देते हैं। पक्षियोंके साँपके काटने पर पहले वेगमें वे खिन्तित हो जाते और निश्चेष्ट हो जाते हैं, दूसरे वेगमें विह्वलता और तीसरे वेगमें प्राण त्याग कर देते हैं। कुछ लोगोंका कहना है, कि पक्षियोंका एक ही वेगमें प्राणनष्ट होता। बिल्ली तथा नेवलके शरीरमें सर्प विष अधिक सञ्चारित नहीं हो सकता। विषधर सर्पके दंशन करने पर अधिकांश स्थलमें ही प्राण नाश होता है। किन्तु सर्पके काटनेके बाद ही यथोक्तरूपसे चिकित्सा की जाये, तो आरोग्य होनेकी सम्भावना है। विषकी क्रिया इतनी जल्द होती है, कि चिकित्साका समय नहीं रहता। विष द्वारा रसादि धातु दूषित होने पर फिर किसी तरह उसका प्रतीकार नहीं हो सकता।

सर्पदंशन-चिकित्सा—हाथ और पैरमें सर्पके काटने पर तुरत ही चार उंगुल ऊपर मुलायम रस्सीसे बांध देना चाहिये। ऐसा करनेसे विषका वेग आगे शरीरमें फैल न सकेगा। इस बंधे हुए स्थानके नीचे तुम्बी या सिंघी द्वारा खून चुसवाना और दग्ध कराना चाहिये। जगह जगह जरा-जरा छेद कर उससे खून चूस लेना चाहिये। वस्तियन्त्रका मुख प्रतिपूरित कर चूसने पर उपकार होता है। पिचकारी या सिंगाकी तरह एक प्रकारके यन्त्रका नाम वस्तियन्त्र है। यह यन्त्र कहे हुए स्थानमें बैठा कर अधोभागसे आकर्षण कर ऊपरको पूरण करनेको प्रतिपूरण कहते हैं। सिङ्गा बैठानेकी तरह वस्तियन्त्रका एक मुख सर्पदष्ट स्थानमें बैठा कर दूसरा मुख मुंहमें लगा कर आकर्षण करने पर, दंष्ट स्थानसे रक्त समेत विष आकृष्ट हो वस्तियन्त्रमें आ जाता है।

मण्डली सर्पके काटने पर कटे हुए स्थानको दग्ध तुरत ही करना चाहिये। क्योंकि वह पित्तबहुल, तत्क्षणात् देहमें सञ्चारित होता है।

मन्त्रज्ञ चिकित्सक मन्त्र द्वारा भी विषबन्धन कर रखते हैं। जैसे रस्सीसे बांधने पर विषका वेग आगे बढ़ नहीं सकता वैसे ही मन्त्रसे बांधने पर सर्पविषका वेग आगे बढ़ नहीं सकता। सत्य और तपोमय मन्त्र-समूह और देवता और ब्रह्मर्षियोंके वाक्यसे दुर्जय विष शीघ्र ही विनष्ट होता है। सत्य, ब्रह्म और तपोमय मन्त्र द्वारा विष जैसे शीघ्र दूर होता है, औषध द्वारा वैसे जल्द दूर नहीं होता। मन्त्र-चिकित्सा ही सर्प विष-निवारणके लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

राजिमन्त विषके प्रथम वेगमें पूर्वकी तरह रक्तमोक्षण, घृत और मधु मिला कर अगदपान, द्वितीय वेगमें वमन (कै) करा कर अगद पान, तृतीय वेगमें विषनाशक नस्य और अञ्जनका प्रयोग कराना चाहिये, चतुर्थमें वमन और घृत मधु मिला कर यवका मण्डपान, पञ्चम वेगमें शीतल प्रक्रिया, षष्ठमें अतिशय तीक्ष्ण अञ्जन और सप्तममें नस्य प्रयोग कर्त्तव्य है।

गर्भिणी, बालक और वृद्धोंको सर्पके काटने पर शिरा (नसें) न काट कर मृदु प्रतीकार करना चाहिये। सुविज्ञ चिकित्सक देश, रोगीकी प्रकृति, अभ्यास, ऋतु, विषका वेग, रोगीके बलाबल पर खूब विचार कर शास्त्रोक्त प्रक्रियाके अनुसार चिकित्सा करें।

मानवके समान बकरी, गदहा और गो आदिको भी सर्पके काटने पर उनके भी उक्त प्रणालीसे रक्तमोक्षण तथा औषध अधिक परिमाणसे खिलाना चाहिये।

विषविकारमें चाहे जिस तरह हो देहसे पूरी तरहसे विषका निकालना ही सर्वतोभावसे कर्त्तव्य है। विष अल्पमात्र भी यदि शरीरमें रह जाय, तो पुनर्वार उसका वेग उत्पन्न होता है। इससे शरीरकी अवसन्नता, विवर्णता, ज्वर, खांसी, शिरोरोग, फूलना, शोथ, प्रतिश्याय, तिमिररोग, दृष्टिहीनता, अरुचि और पीनस आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इनमें जो रोग उत्पन्न हो, उसका विधानानुसार चिकित्सा करना, इसके बाद विषदोष विमोचनके लिये दष्ट स्थानका बन्धन मोचन कर उसे आच्छादन कर प्रलेप देना चाहिये।

दष्टस्थानमें शुष्क विष रहने पर फिर उसमें वेग उत्पन्न होता है। मन्त्र, औषध और चिकित्सा द्वारा

विषका तेज नष्ट होने पर भी पीछे यदि कोई दोष कुपित हो, तो तैल, मत्स्य, कुलत्थ, और अम्ल—इन सबके सिवा अन्य प्रकार स्नेह प्रभृति वायुशान्तिप्रद औषध द्वारा वायुकी शान्ति करना चाहिए। पित्तज्वरनाशक क्वाथ और स्नेह विरेचन द्वारा पित्तकी शान्ति और मधुके साथ आरग्वधादिके क्वाथ द्वारा श्लेष्मनाशक अगद और तिक्त रूक्ष भोजन द्वारा कफकी शान्ति करनी चाहिये।

शास्त्रानुसार सर्प दंशनकी मन्त्र चिकित्सा ही सर्वप्रधान है। मंत्रशक्तिके प्रभावसे चाहे जो सर्प दंशन करे, वह शीघ्र ही आरोग्य लाभ करेगा। किंतु इस समय ऐसे चिकित्सक अति विरल हैं।

ऐसे अनेक सँपेरे देखे जाते हैं, कि अति विषधर सर्पको देखते ही पकड़ लेते और उससे क्रीड़ा करने लगते हैं। वे पहले उसे पकड़ उसके विषैले दाँतोंको तोड़ देते हैं, फिर उसके काटने पर किसीको विष नहीं असर करता।

मन्त्र, जलसार, कंपान आदि बहु प्रकारसे सर्प विष निवारण करनेका उपाय है, ऐसा सुना जाता है, किंतु इनमें मंत्रों और औषधोंमें बहुतोंका लोप हो गया है। जो दो चार जानते हैं सही, किंतु वे दूसरोंको बताते ही नहीं, उनका यह ख्याल है, कि इस मंत्र या औषधको साधारणमें प्रचार करने पर यह सब उतने फलदायक नहीं रह सकते। इसलिए वे बहुत छिपा कर रखते हैं। पुराण और तन्त्र आदिमें भी सर्प और सर्पदंशनचिकित्सा तथा मंत्रकी बात लिखी है।

अग्निपुराणमें लिखा है, कि शेष, वासुकि, तक्षक, आदि नौ नाग सर्वश्रेष्ठ हैं। इन सब नागोंसे असंख्य भुजङ्गोंने जन्म ग्रहण किया है। इन सब भुजङ्गोंसे यह धरामण्डल परिव्याप्त है। फणी, मण्डली और राजिल, इन तीन तरहके सर्प क्रमसे वायुपित्तकफात्मक हैं। इनमें मिश्र सर्प दर्वीकर नामसे विख्यात हैं। ये सब सर्प आषाढ़ आदि तीन मासोंमें गर्भ धारण करते हैं, इसके बाद चौथे मासमें २४ अण्डे देते हैं, सर्पिणी स्त्रीको छोड़ कर पुंनपुंसकसुतसमूहको ग्रास करती है काले साँप ७ दिनोंमें ही अंडफोड़ हो जाते हैं। १२ दिनके बाद इनको ज्ञान होता है और सूर्यदर्शनसे ही इनके दांत निकल आते हैं। इनमें कुछ ३२ दिनोंमें, कुछके २० दिनोंमें ही चार दंष्ट्रा या वृहद्दन्त निकल आते हैं। छः महीनेके बाद ये त्वक् उत्पादन करते हैं। सर्पोंके छत्र, हल, स्वस्तिक, अंकुश आदि चिह्न रहते हैं। इनको परमायु भी ठीक मनुष्यकी तरह १२० वर्षको है।

गोनस साँप दीर्घाकार, मन्दगामी, नाना प्रकार तथा मण्डलाकारमें अवस्थित रहता है। राजिल मुलायम वाणके चिह्न द्वारा ऊर्द्ध्व और वक्रभावसे चित्रित रहता है। व्यन्तर मिश्रचिह्नविशिष्ट और भू, वर्षा, अग्नि और वायु भेदसे चार प्रकारका होता है। इनमें २० प्रकारका अवान्तर भेद है। गोनस १६ प्रकारके, राजिल १३ प्रकारके और व्यन्तर २१ प्रकारके होते हैं। जो सांप अनृतकालमें जन्म लेते हैं, उनको व्यन्तर कहते हैं।

इन सांपोंके काटनेसे प्राणनाश होता है। कुलिकोदयकाल, इसके सिवा कृत्तिका, भरणी, स्वाती, मूला, पूर्वफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, अश्विनी, विशाखा, आर्द्रा, मघा, अश्लेषा, चित्रा, श्रवणा, रोहिणी, हस्ता, शनि और मङ्गलवार, पञ्चमी, षष्ठी, रिक्ता, नन्दा और चतुर्दशी, सन्ध्याकाल, दग्धा योग और दग्ध राशि इन सब समयोंमें यदि सांप काटे, तो प्रायः मृत्यु होती है।

देवालय, शून्यगृह, वल्मीक, उद्यान, वृक्षकोटर, पथसन्धि (चौराहे पर), श्मशान, नदी, सिन्धुसंगम, द्वीप, चतुष्पद, सौध, गृह, अब्धि, पर्वताग्र, बिल, जीर्णकूप, दीवार, श्लेषात्मक, बहुधारक, जम्बू, डुम्बर, वट और पुरानी चाहारदिवारी इन्हीं सब स्थानोंमें सांप रहते हैं और मुख, हृदय, कक्ष, जत्रु, तालु, शङ्ख, गला, मस्तक, चिबुक, नाभि और पैर इन सब अङ्गोंमें काटने पर प्रायः ही मृत्यु होती है। इस तरहका काटना प्रायः ही अशुभ है।

सांप काटने पर जो आदमी (दूत) खबर देता है, उसके द्वारा ही सर्प दंशनका शुभाशुभ स्थिर किया जा सकता है। दूतके पुष्पहस्त, सुवाक्, सुधी, शुक्ल वस्त्र और शुचि आदि होने पर शुभ जानना और अप्रशस्त, द्वारस्थित, अस्त्रधारी, प्रमादी, भूतलमें देखनेवाला, गद्गद्भाषी, आर्द्रवस्त्रपरिधायी, पादलेखन (पद द्वारा

भूमि खोदना) इत्यादि गुणयुक्त होनेसे अशुभ समझना।

सर्पदंशनके चिकित्सास्थलमें लिखा है, कि प्रथम 'ओं नमो भगवते नीलकण्ठायस्य' इस मन्त्रसे भगवान् नीलकण्ठको प्रणाम कर इस मन्त्रका जप करना चाहिये।

"ओं ज्वल महामते हृदयाय गरुड़ विरलशिरसे गरुड़ शिखायै गरुड़ विषभञ्जन प्रभेदन, विनाशय विनाशय विमर्द्दय विमर्द्दय कवचाय अप्रतिहतशासनं वं हुं फट्, अस्त्राय उग्ररूपधारक सर्वभयङ्कर भीषय सर्वं दह दह भस्मी कुरु कुरु स्वाहा नेत्राय।" इत्यादि।

ये सब मन्त्र यथायथरूपसे प्रयोग करने पर सर्पविष निवारित होता है। ऐसे मन्त्र बहुतेरे हैं, किन्तु विशेष बढ़ जानेके कारण यहां नहीं दिया गया।

गरुड़पुराण आदिमें इसका विशेषरूपसे विवरण है। सिवा इनके बहुतेरे लोग अन्य तरहके मन्त्रसे अवगत हैं।

सर्पभय निवारण करनेके लिये मनसादेवीकी पूजा होती है। मनसापूजाके समय साथ ही वासुकि, पद्म, महापद्म, शङ्ख, कुलीर, कर्कट और शङ्ख इन प्रधान अष्टनागकी भी पूजा होती है। नागपञ्चमी और दशहरा तिथिको मनसाकी पूजा होती है।

नागपञ्चमी और मनसा शब्द देखो।

सर्पऋषि (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

सर्पकङ्कालिका (सं० स्त्री०) सर्प कङ्कालीयव स्वार्थे कन्। १ वृक्षविशेष, सर्पलता। पर्याय—तीक्ष्णा, विषदंष्ट्रा, विषापहा। २ गन्धरास्ना।

सर्पकङ्काली (सं० स्त्री०) सर्पस्य कङ्कालमिवाङ्गं यस्याः ङीष्। सर्पकङ्कालिका, सर्पलता।

सर्पगति (सं० स्त्री०) सर्पस्य गतिः। १ सर्पकी गति। २ कुटिल गति, कपटकी चाल। (त्रि०) ३ सर्पके समान गतिवाला।

सर्पगन्धा (सं० स्त्री०) सर्प गन्धयते हिनस्तीति गन्ध हिंसने अण् टाप्। १ वृक्षविशेष। २ गन्धरास्ना, रास्ना। ३ नाकुली नामक महाकन्दशाक। ४ नागदमनी।

सर्पगन्धिनी (सं० स्त्री०) सर्पगन्धा।

सर्पगृह (सं० पु०) साँपका घर, बांबी।

सर्पग्राम—विन्ध्यपार्श्वस्थ एक प्राचीन ग्राम।

सर्पघाति (सं० पु०) इस नामका फलविषभेद।

सर्पघातिन् (सं० त्रि०) सर्पं हन्ति हन-णिनि। सर्पहन्ता, साँप मारनेवाला।

सर्पघातिनी (सं० स्त्री०) सर्पघातिन्-ङीप्। सर्पाक्षी, सरहँटी।

सर्पछत्र (सं० क्ली०) शाकविशेष, अहिछत्रक। गुण—मलभेदक, रूक्ष, मधुर, शीतल और विभ्रम।

सर्पछिद्र (सं० पु०) साँपका बिल, बांबी।

सर्पण (सं० पु०) १ रेंगना, धीरे धीरे चलना। २ छोड़े हुए तीरका भूमिसे लगा हुआ जाना।

सर्पतनु (सं० पु०) वृहतीका एक भेद।

सर्पतृण (सं० पु०) सर्पस्तृणमिव छेद्यो यस्य। नकुल।

सर्पदंष्ट्र (सं० पु०) सर्पस्य दंष्ट्रेव पुष्पमस्य। १ साँपका दाँत। २ जमालगोटा।

सर्पदंष्ट्रा (सं० स्त्री०) सर्पस्य दंष्ट्रेव। १ उदुम्बरपर्णी, दन्ती। २ सिंहपिप्पली। गुण—सारक, उष्ण, कटु, कफ और वातनाशक।

सर्पदंष्ट्रिका (सं० स्त्री०) सर्पदंष्ट्रा स्वार्थे कन्, टापि अत-इत्वं। अजशृङ्गी, मेढ़ासिंगी।

सर्पदंष्ट्री (सं० स्त्री०) १ वृश्चिकाली। २ उदुम्बरपर्णी, दन्ती। ३ वृश्चिका, बिछुआ।

सर्पदण्डा (सं० स्त्री०) सर्पं दण्डयतीति दण्ड-अण् टाप्। सैंहली, सिंहपिप्पली।

सर्पदण्डी (सं० स्त्री०) सर्पं दण्डयतीति दण्ड-अण्-ङीप्। १ गोरक्षी, गोरखइमली। २ नागबाला, गंगेरन।

सर्पदन्ती (सं० स्त्री०) सिंहली पीपल।

सर्पदन्ती (सं० स्त्री०) नागदन्ती, हाथी शुंडी।

सर्पदमनी (सं० स्त्री०) सर्पस्य दमनमस्याः ङीप्। १ वन्ध्या-कर्कोटकी, बांझ ककड़ी। २ नागदन्ती, हाथी शुंडी।

सर्पदष्ट (सं० क्ली०) १ दंशन, साँपका काटना। सुश्रुतमें लिखा है, कि सर्पदष्ट तीन प्रकारका है,—सर्पित, रदित और निर्विष। (सुश्रुत) सर्प देखो।

(त्रि०) २ सर्पकर्तृक दष्ट, जिसको साँपने काटा हो।
सर्पदेवी (सं० स्त्री०) तीर्थविशेष। (भारत वनप०)
सर्पद्विष् (सं० पु०) मयूर, मोर।
सर्पनाम (सं० क्ली०) साधु वाक्य, सदुपदेश।
सर्पनामा (सं० स्त्री०) सर्पस्य नाम यस्याः। १ सर्पकङ्कालीभेद, सरहंटी। २ सर्पघातिनी, सांपको मारनेवाली।
सर्पनिर्मोक (सं० पु०) सर्पस्य निर्मोकः। सर्पत्वच्, केंचु। (चरक शारीरस्था० ८ अ०)
सर्पनेत्रा (सं० स्त्री०) १ सुगन्धरास्ना। २ सर्पाक्षी, केंचुल।
सर्पमालिक—दाक्षिणात्यके एक राजा। उत्तर काणाडा जिलेके होनावर तालुकके चन्द्रावर नगरमें इनकी राजधानी थी। अभी यह नगर ध्वस्त और परित्यक्त हो गया है।
सर्पपति (सं० पु०) सर्पस्य पतिः। नागाधिपति वासुकि।
सर्पपुष्पी (सं० स्त्री०) सर्पस्य दन्तइव पुष्पमस्याः ङीष्। १ नागदन्ती। २ बांझ खेखसा।
सर्पप्रिय (सं० पु०) सर्पस्य प्रियः। चन्दनवृक्ष। इस वृक्ष पर सांप रहता है, इसलिये इसका नाम सर्पप्रिय है। (वैद्यकनि०)।
सर्पफण (सं० पु०) सर्पस्य फणः। सांपको फणा।
सर्पफणज (सं० पु०) सर्पस्य फणात् जायते इति जन ड। सर्पमणि।
सर्पफेण (सं० क्ली०) अहिफेन, अफीम।
सर्पबन्ध (सं० पु०) कुटिल या पेचीली चाल।
सर्पबल (सं० क्ली०) १ सर्पकी शक्ति या वीर्य्य। २ विष। ३ अमृताहरण।
सर्पबलि (सं० पु०) १ सर्पयज्ञ। २ दानक्रियाविशेष।
सर्पबेलि (सं० स्त्री०) नागवल्ली, पान।
सर्पभक्षक (सं० पु०) १ नकुलकन्द, नाकुलीकन्द। २ मयूर, मोर।
सर्पभुक् (सं० पु०) सर्पभुज देखो।
सर्पभुज् (सं० पु०) सर्पं भुंक्ते भुज् क्विप्। १ मयूर, मोर। २ राजसर्प। (हलायुध) ३ सारस पक्षी। ४ नकुली कन्द। (त्रि०) ५ सर्पभक्षक, साँप खानेवाला।
सर्पमाला (सं० स्त्री०) सर्पस्य मालेव। सर्पकङ्कालीभेद, सरहंटी।
सर्पमालिन् (सं० पु०) १ शिव। २ ऋषिभेद।
सर्पयज्ञ (सं० पु०) सर्पयाग देखो।
सर्पयाग (सं० पु०) सर्पनाशको यागः। सर्पनाशक यज्ञ। सर्पसत्र देखो।
सर्पराज (सं० पु०) सर्पाणां राजा, समासे टच् समासान्तः। १ सर्पों के राजा, शेषनाग। २ वासुकि। (त्रि०) ३ सर्पश्रेष्ठ।
सर्पराज्ञी (सं० स्त्री०) ऋषिकन्याभेद। यह ऋक् १०।१८९ सूक्तकी मन्त्रद्रष्टा थी।
सर्पलता (सं० स्त्री०) सर्पइव लता। नागवल्ली, पान।
सर्पवल्ली (सं० स्त्री०) सर्पइव वल्ली। नागवल्ली, पान।
सर्पविद् (सं० त्रि०) १ सर्पज्ञानविशिष्ट। २ सर्पतत्त्वज्ञ।
सर्पविद्या (सं० स्त्री०) सांपको पकड़ने या वशमें करनेकी विद्या।
सर्पविष (सं० क्ली०) सर्पस्य विषं। सांपका विष। औषध बनानेमें सर्पविषशोधन कर व्यवहार करना होता है।
सर्पवेद (सं० पु०) सर्पविद्या। (गोपथब्रा० १।१०)
सर्पव्यूह (सं० पु०) सेनाका एक प्रकारका व्यूह जिसकी रचना सर्पके आकारकी होती है।
सर्पशिरस् (सं० पु०) हस्तविन्यासभेद, हाथ सांपके फनके समान रखना।
सर्पशीर्ष (सं० पु०) १ सांपका सिर। २ इष्टकाभेद, एक प्रकारकी ईंट जो यज्ञकी वेदी बनानेके काममें आती थी। ३ तान्त्रिक पूजामें हाथ और पंजेकी एक मुद्रा।
सर्पसत्र (सं० क्ली०) सर्पनाशकं सत्रं। सर्पनाशक यज्ञविशेष। परीक्षित् सर्पके काटने पर मरे थे। इससे जनमेजयने सर्पों के विनाश करनेके उद्देशसे इस यज्ञका अनुष्ठान किया था। महाभारतमें इस यज्ञका विषय लिखा हुआ है। एक समय राजा परीक्षित् शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। वहां उन्होंने एक मृगको एक वाणसे विद्ध किया। मृग भागा। वे उसके पीछे दौड़े। किन्तु मृगके पीछे पीछे दौड़ते रहने पर भी वे मृगका

पता न पा सके और श्रमसे कातर हो उठे। कुछ दूर पर शमीक मुनि मौनी अवस्थामें बैठे थे। राजाने बार-बार उस मृगकी बात उनसे पूछी। किन्तु मुनिने मौनी होनेके कारण कोई उत्तर न दिया। इस पर राजा क्रुद्ध हुए और निकट हीमें एक सर्पको उठा मुनिके गलेमें लपेट दिया। राजा वहांसे चले गये।

शमीकके पुत्र शृङ्गीने यह देख कर परीक्षित्‌को शाप दिया, कि आजसे सातवें दिन तक्षकके दंशनसे राजा परीक्षित्‌की मृत्यु होगी, जिसने मेरे पिताके गलेमें मृत सर्प लपेटा है। ब्रह्मशापसे तक्षकने यथा समय परीक्षित्‌को काटा। इसके काटते ही राजाने प्राणत्याग किया।

राजा परीक्षित्‌के स्वर्गारोहण करनेके बाद जनमेजयने मन्त्रियों, पुरोहित और ऋषिओंको बुला कर कहा, कि मेरे पिताका तक्षकके काटनेसे प्राण नाश हुआ है, अतएव आप लोग ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे तक्षक और उसके बन्धुबान्धवोंका विनाश हो। इस पर ऋत्विकोंने कहा—'राजन्! पुराणमें एक सर्पसत्रका विधान है; पहलेसे ही देवताओंने आपके लिये इस यज्ञकी सृष्टि कर रखी है। आपके सिवा अन्य कोई इस महायज्ञका अनुष्ठान कर न सकेगा। हम लोग इस यज्ञके सम्यक विधानको जानते हैं। आपके इस यज्ञके करनेसे सर्प समूल नष्ट होंगे।' राजाने ऋत्विकोंके मुखसे यह बात सुन कर इस सर्पसत्र यज्ञका अनुष्ठान किया था।

ऋत्विकोंके इस सत्रमें आहुति प्रदान करने पर घोर और भीषण सर्प आ कर भस्मीभूत होने लगे। उनके वसा और मेदसे नदी बह चली। निरन्तर जलते हुए सर्पोंकी गन्ध चारों ओर फैल गई। तक्षक भीत हो कर इन्द्रके शरणापन्न हुआ। इधर हुताशनमें बहुतेरे सर्पोंके निपतित होने पर वासुकि अपने परिवारके लोगोंको अल्पावशिष्ट देख कर अत्यन्त दुःखित और किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो उठे। उन्होंने अपनी बहनसे कहा, 'बहन! इस समय हम लोगोंका विनाशकाल उपस्थित है। पहले पितामहने मुझसे कहा था, कि सर्पसत्र आरम्भ होनेसे आस्तीक ऋषि उसे निवारण करेंगे। इस समय तुम आस्तीकको इस यज्ञके निवारण करनेके लिये भेजो।' पीछे आस्तीक मातृ द्वारा आदिष्ट हो वासुकिकी मनोव्यथाको दूर कर सर्पोंके उद्धारके लिये जनमेजयके इस सर्पसत्रमें पधारे। वहां जा कर उन्होंने राजाकी बड़ी प्रशंसा की। राजाने प्रसन्न हो कर वर मांगनेकी आज्ञा दी। आस्तीकने कहा,'राजन्! यदि आप मुझको वर देना चाहते हैं, तो मुझे यही वर दीजिये, कि आजसे यह सर्पसत्र बन्द हो जाये और एक भी सर्प अबसे न गिरने पाये।' राजाने कहा, 'तुम धनरत्न आदि अन्य वरकी प्रार्थना करो। सर्पसत्र बन्द नहीं हो सकता।' आस्तीकने कहा, 'हे राजन्! मुझे अन्य किसी द्रव्यकी आवश्यकता नहीं। मेरी एकमात्र प्रार्थना है, कि यह सर्पसत्र बन्द हो जाये।' राजाके बारंबार दूसरे वर मांगनेके लिये कहने पर भी आस्तीकने दूसरे किसी वरकी अभिलाषा प्रकट नहीं की। पीछे वेदविशारद सभी सदस्योंने मिल कर राजासे कहा, 'अब आप इस ब्राह्मण-कुमारका अभिलषित वर प्रदान करें। इस समय राजा किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो क्षणकाल ठहर सदस्योंके अनुरोधसे कहा, 'आस्तीक जो कहते हैं, वही हो। ऋत्विक् अपने सर्पसत्र सम्पन्न करें।' राजाके मुंहसे यह बात निकलते ही सर्पसत्र बन्द कर दिया गया। सब सर्प भयशून्य हो कर अपने स्थानमें पधारे। आस्तीक भी जनमेजयको भूरि भूरि साधुवाद और आशीर्वाद देते हुए अपने स्थानको पधारे। आस्तीकको वर प्रार्थनाके फलसे सर्पोंकी जान बची। इससे सर्पोंने एकत्र हो कर उनको यह वर दिया, कि 'आस्तीक' नाम लेनेवालेको सर्पभय न होगा। सर्पगण जननी कद्रुके शाप और जनमेजयके यज्ञमें इस तरह विनष्ट हुए। महाभारतके आदि पर्वमें विस्तृतरूप यह विवरण लिखा है। (भारत आदिप० ४०-४७ अ०)

सर्पसत्रिन् (सं० पु०) सर्पसत्रमस्यास्तीति इनि। राजा जनमेजयका एक नाम। इन्होंने सर्पयज्ञ किया था।

सर्पसहा (सं० स्त्री०) सर्पं सहते इति सह-अच्। सर्पाक्षी, सरहटी।

सर्पसामन् (सं० क्ली०) साममेद।

सर्पसुगन्धा (सं० स्त्री०) सर्पगन्धा, गन्धनाकुली।

सर्पसुगन्धिका (सं० स्त्री०) सर्पगन्धा, गन्धनाकुली।

सर्पहन् (सं० पु०) सर्पं हन्तीति हन-क्विप्। १ सर्पको मारनेवाला, नेवल। (स्त्री०) २ सर्पाक्षी सरहंटी।

सर्पहृदयनन्दन (सं० पु०) चन्दनकाष्ठ।

सर्पाक्ष (सं० क्ली०) सर्पस्य अक्षीव अक्षं यस्य षच् समासान्त। १ रुद्राक्ष, शिवाक्ष। २ सर्पाक्षी, सरहंटी।

सर्पाक्षी (सं० स्त्री०) सर्पस्य अक्षीव पुष्पं यस्याः ङीष्। १ गन्धनाकुली। २ वृक्षविशेष। सरहंटी देखो। पर्याय—गण्डाली, नाड़ीकलापक। गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, कृमिनाशक और व्रणरोपण। ३ श्वेत अपराजिता। ४ रक्त शंखिनी। ५ सर्पिणी, सांपिन।

सर्पाख्य (सं० पु०) सर्पस्य आख्या यस्य। १ महिषकन्दभेद, भैसाकंद। २ नागकेशर। (त्रि०) ३ सर्प नामक, सर्प नामविशिष्ट।

सर्पाङ्गी (सं० स्त्री०) सर्पस्येव अङ्गं यस्याः ङीष्। १ सर्पकङ्कालीभेद, सरहंटी। २ सैंहली, सिंहली पोपल। ३ नकुलकन्द।

सर्पादनी (सं० स्त्री०) सर्पस्य तद्विषस्य अदनं भक्षणं यस्याः ङीष्। १ गन्ध नाकुली, गंध रास्ना। २ नकुल कन्द।

सर्पान्त (सं० पु०) सर्पं अन्तयति नाशयति अन्त-अच्। गरुड़।

सर्पाराति (सं० पु०) सर्पस्य अरातिः। गरुड़।

सर्पारि (सं० पु०) सर्पस्य अरिः। १ नकुल, नेवल। २ गरुड़। ३ मयूर, मोर। (हरिवंश ६८।३७)

सर्पावास (सं० क्ली०) सर्पस्य आवासो यत्र। १ चन्दन, मलयज, संदल। चन्दनके पेड़ पर सर्प रहता है, इसलिये इसका नाम सर्पावास है। (पु०) २ सर्पस्थान, सर्पों के रहनेका स्थान। (हरिवंश ६८।२५)

सर्पाशन (सं० पु०) सर्पमश्नातीति अश ल्यु। १ मयूर, मोर। २ गरुड़।

सर्पास्य (सं० पु०) १ खर नामक राक्षसका एक सेनापति जिसे रामने युद्धमें मारा था। २ सांपके समान मुखवाला।

सर्पि (सं० पु०) १ एक वैदिक ऋषिका नाम। (ऐतरेय ब्रा० ६।२४) २ घृत, घी।

सर्पिका (सं० स्त्री०) १ छोटा सांप। २ एक प्राचीन नदी। (रामायण २।४४।१२) यह गोमतीकी शाखारूपमें प्रवाहित और वर्त्तमान सई नामसे विख्यात है।

सई देखो।

सर्पिणी (सं० स्त्री०) सर्पतीति सृप्-णिनि, ङीष्। १ सर्पभार्या, सांपिन। २ भुजंगी लता। यह सर्पके आकारकी होती है और इसमें विषका नाश करने और स्तनोंका बढ़ानेका गुण होता है।

सर्पित (सं० क्ली०) सर्पदंशन, सांपके काटनेका क्षत।

सर्पिन् (सं० त्रि०) सर्पति गच्छतीति सृप-णिनि। धीरे धीरे चलनेवाला।

सर्पिरन्न (सं० क्ली०) घृतौदन, घृतमिश्रित ओदन।

सर्पिरब्धि (सं० पु०) घृतसमुद्र। (मार्कण्डेयपु० ५४।७)

सर्पिरासुति (सं० त्रि०) सर्पि या घी जिस अग्निमें आसिञ्चित हो। (ऋक् १।७।६)

सर्पिरिला (सं० स्त्री०) रुद्राणीविशेष।

सर्पिर्गर्भ (सं० क्ली०) नवनीतक।

सर्पिर्ग्रीव (सं० त्रि०) घृतसिक्त ग्रीवाविशिष्ट।

सर्पिर्मण्ड (सं० पु०) नवनीत खण्ड।

सर्पिर्मालिन् (सं० पु०) ऋषिभेद।

सर्पिर्मेह (सं० पु०) प्रमेहरोगविशेष; वायुके बिगड़ जानेसे यह रोग उत्पन्न होता है तथा इससे सर्पि या घीके समान मेह झड़ता है। (सुश्रुत नि० ६ अ०)

प्रमेह देखो।

सर्पिर्मेहिन् (सं० त्रि०) सर्पिर्मेह रोगविशिष्ट, जिसे सर्पिर्मेह रोग हुआ हो। (सुश्रुत नि० ६ अ०)

सर्पिष्कुण्डिका (सं० स्त्री०) सर्पिपात्र, घृतकुम्भ या कुण्ड।

सर्पिष्म (सं० क्ली०) घृतविशिष्ट। (पा ३।४।४२)

सर्पिष्टर (सं० क्ली०) सर्पियुक्त। (पा ८।३।१०१)

सर्पिष्टा (सं० स्त्री०) घृतयुक्तका भाव।

सर्पिष्ट्व (सं० क्ली०) घृतयुक्तका भाव या धर्म।

सर्पिस् (सं० क्ली०) सर्पतीति सृप गतौ (अर्चिशुचिहुसृपिच्छादीति। उण् २।१०६) इति इसि। १ घृत, आज्य, हविस्। (अमर) २ उदक, पानी। (निघण्टु १।१२)

सर्पिःसमुद्र (सं० पु०) सात समुद्रमेंसे एक समुद्र।

सर्पिस्सात् (सं० अव्य०) सर्पिस् देयार्थे-चसात्। सर्पिमें देय।

सर्पी (सं० स्त्री०) सर्प-जातौ ङीष्। सर्पिणी।

सर्पीष्ट (सं० क्ली०) सर्पीणां सर्पभार्याणामिष्टं। श्रीखण्डचन्दन।

सर्पेश्वर (सं० पु०) सर्पाणामीश्वरः। १ सर्पाधिपति वासुकि, नागराज। २ तीर्थविशेष, सर्पेश्वरतीर्थ।

सर्पेष्ट (सं० क्ली०) सर्पाणामिष्टं। श्रीखण्डचन्दन।

सर्पोन्माद (सं० पु०) एक प्रकारका उन्माद। इसमें मनुष्य सर्पकी भांति लोटता, जीभ निकालता और क्रोध करता है। इसमें गुड़, दूध आदि खानेकी अधिक इच्छा होती है।

सर्फ (अ० पु०) व्यय किया हुआ, खपा हुआ, खर्च किया हुआ।

सर्फा (अ० पु०) व्यय, खर्च।

सर्बस (हिं० वि०) सर्वस्व देखो।

सर्म (फा० पु०) शर्म देखो।

सर्या—मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह मुजफ्फरपुर नगरसे १८ मील दक्षिण-पश्चिम बया नामक नदीके किनारे अवस्थित है। छपरा जानेको एक पक्की सड़क इस गांवके सामनेसे होकर नदीवक्षको पार कर गई है। पहले यह स्थान विशेष समृद्ध था। एक नीलकी कोठी खुल जानेके बादसे ही यहां भिन्न भिन्न श्रेणीके लोगोंका वास हो गया है। इस गांवके पास ही एक ब्राह्मणके डीह पर पत्थरका बना एक २० फुट ऊंचा स्तम्भ खड़ा है। उसकी चोटी पर एक सिंहमूर्त्ति स्थापित है। मिट्टीके भीतर उसकी नींव बहुत दूर तक चली गई है, बहुत दूर खोदने पर भी उसके मूलदेशका पता नहीं चला है। जिस ब्राह्मणके डीह पर वह स्तम्भ है, उसका तथा ग्रामवासी साधारणका विश्वास है, कि उस स्तम्भके नीचे प्रचुर धनरत्न गड़ा हुआ है। धनकी आशासे ब्राह्मणने उसकी बगलमें एक कूप खोदवाया, पर दुःखका विषय है, कि उससे कोई फल नहीं हुआ। स्थानीय लोग उस स्तम्भको 'भीमसेनकी गदा' कहते हैं।

सर्रा (अ० पु०) लोहे या लकड़ीकी छड़ जिस पर गराड़ी घूमती है, धुरी, धुरा।

सर्राफ (अ० पु०) १ सोने चांदी या रुपये पैसेका व्यापार करनेवाला। २ बदलेके लिये पैसे रुपये आदि ले कर बैठनेवाला। ३ धनी, दौलतमंद। ४ पारखी, परखनेवाला।

सर्राफ नानुआ (अ० पु०) विवाह आदि शुभ अवसरों पर कोठीवालों या महाजनोंका नौकरोंको मिठाई, रुपया पैसा आदि बांटना।

सर्राफा (अ० पु०) सराफा देखो।

सर्राफी (अ० स्त्री०) सराफी देखो।

सर्व (सं० पु०) सर्वस्मिन् सर्वतीति सर्व गतौ पचाद्यच् वा सृ-गतौ (सर्वनिसृष्वेति। उण् १।१५३) इति वन् प्रत्ययेन साधुः। १ शिव, महादेव। यह महादेवकी क्षितिमूर्त्ति है, शिवपूजाकालमें इस सर्वस्वरूप क्षितिमूर्त्तिकी पूजा करनी होती है। 'ओं सर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः' इस मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये। २ विष्णु। जो असत् तथा सब कार्योंका मूल तथा अव्यय और जिसे सब विषयमें सर्वदा ज्ञान है, उसे सर्व कहते हैं। ३ पारद, पारा। ४ शिलाजतु, शिलाजीत। ५ रसौत।

सर्व (सं० त्रि०) सृ वन्। सम्पूर्ण, सकल, समग्र, तमाम। यह शब्द सर्वनाम है। सुतरां व्याकरणके मतसे साधारण अकारान्त शब्दकी तरह रूप न हो कर सर्वनाम शब्दकी तरह रूप होगा।

सर्वसह (सं० त्रि०) सर्वं सहते इति सह-(पूःसर्वयोर्दारिसहोः। पा ३।२।४१) इति खच्, अरुर्द्विषदिति मुम्। १ सकल सहिष्णु, सर्वक्लेशादिसह, जो सब प्रकारका क्लेश सह्य कर सके। (पु०) २ राजा, भूपति।

सर्वसहा (सं० स्त्री०) पृथ्वी।

सर्वहर (सं० त्रि०) सकल हरणकारी जो सब कुछ हरण या वहन करे। (शाङ्खा० ब्रा० २।६)

सर्वक (सं० त्रि०) सर्वशब्दस्य टेः पूर्वमकः तस्मात् स्वार्थे कः। सकल, समुदाय।

सर्वकभार्य्य (सं० त्रि०) सर्विका भार्या यस्य। सर्विकाका स्वामी।

सर्वकर्त्तृ (सं० पु०) सर्वेषां कर्त्ता। ब्रह्मा। ब्रह्माने सकल जगत्की सृष्टि की है, इसलिये वे सर्वकर्त्ता कहलाते हैं। (शब्दरत्ना०)

सर्वकर्मन् (सं० क्ली०) सर्वं कर्म। सकल प्रकार कर्म, समुदाय कार्य।

सर्वकर्मीण (सं० त्रि०) सर्वकर्माणि व्याप्नोतीति सर्व-कर्म (तत्सर्वादेः पथ्यङ्ग कर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति । पा ५।२।७) इति ख । सकल कर्मकर्त्ता, सब प्रकारका कर्म करनेवाला ।

सर्वकाञ्चन (सं० त्रि०) सर्वं काञ्चनं यस्य । सकल काञ्चनयुक्त ।

सर्वकाम (सं० पु०) सर्वः कामः । १ सकल कामना, सब प्रकारकी कामना । २ शिवका एक नाम । ३ एक बुद्ध या अर्हत्का नाम । (त्रि०) सर्वः कामो यस्य । ४ सब इच्छाएं रखनेवाला । ५ सब इच्छाएं पूरी करनेवाला ।

सर्वकामदा (सं० स्त्री०) सब कामनाएं पूरी करनेवाली ।

सर्वकामदुघ (सं० त्रि०) सर्वान् कामान् दोग्धि दुह-क । सकल कामना दोहनकारी ।

सर्वकामदुह् (सं० त्रि०) सर्व्वान् कामान् दोग्धि दुह-क्विप् । सकल कामना दोहनकारी ।

सर्वकाममय (सं० त्रि०) सर्वकाम-स्वरूपे मयट् । सकल कामनास्वरूप ।

सर्वकामिक (सं० त्रि०) १ सब कामनाएं पूरी करनेवाला । (भागवत ६।५।१६) २ सब विषयोंकी वासना करनेवाला ।

सर्वकामिन् (सं० त्रि०) सर्वकाम अस्त्यर्थे इनि । सब प्रकारकी कामनासे युक्त ।

सर्वकाम्य (सं० त्रि०) सब कामनाका विषयभूत ।

सर्वकारक (सं० त्रि०) सर्वस्य कारकः । १ सबका कारक । (पु०) २ व्याकरणोक्त कर्त्ता कर्म आदि सब प्रकार कारक ।

सर्वकारण (सं० क्ली०) सर्वस्य कारणं । सबका कारण ।

सर्वकारिन् (सं० त्रि०) सर्वं करोति कृ-णिनि । जो सब करें, सर्वजगत्स्रष्टा, ब्रह्मा ।

सर्वकाल (सं० पु०) १ सब समय, सदा । २ चिरन्तन ।

सर्वकृच्छ्र (सं० त्रि०) सब प्रकारका कष्ट या तद्विशिष्ट ।

सर्वकृत् (सं० त्रि०) सर्वं करोति-कृ-क्विप्-तुक् च । सर्वस्रष्टा ।

सर्वकृष्ण (सं० त्रि०) सर्वः कृष्णो यस्य । सकल कृष्ण-वर्णविशिष्ट ।

सर्वकेश (सं० पु०) सकल केश ।

सर्वकेशक (सं० त्रि०) सर्व गात्रमें उत्पन्न केशयुक्त ।

सर्वकेशिन् (सं० पु०) नट, नृत्यकारक ।

सर्वकेसर (सं० पु०) वकुल वृक्ष या पुष्प, मौलसिरी ।

सर्वक्रतु (सं० पु०) ससोम यागनिचय । सर्वक्रतु और सर्वयज्ञ शब्द साधारणतः श्रीभगवान्‌के स्वरूप ही कहा जाता है ।

सर्वक्रतुमय (सं० त्रि०) सर्वक्रतु-मयट् । सर्वयज्ञ-स्वरूप विष्णु ।

सर्वक्षार (सं० पु०) सर्वेषां क्षारः । क्षारभेद । पर्याय—बहुक्षार, समूहक्षारक, स्तोमक्षार, महाक्षार, मलारि, क्षार-मेदक । गुण—अतिशयक्षारत्व, चक्षुष्यत्व, वस्तिशोधन, उदावर्त्त और कृमिनाशक, मल और वस्त्र विशोधन ।

सर्वक्षित् (सं० त्रि०) सर्वव्यापी ।

सर्वग (सं० क्ली०) १ जल, पानी । (पु०) २ शिव । ३ ब्रह्मा । ४ आत्मा । ५ भीमका पुत्र । (त्रि०) ६ सर्वव्यापक, जिसकी गति सब जगह हो, जो सब जगह जा सके ।

सर्वगत (सं० त्रि०) सर्वव्यापी, जो सबमें हो ।

सर्वगति (सं० त्रि०) जिसको शरण सब लोग लें, जिसमें सब आश्रय ले ।

सर्वगन्ध (सं० पु०) १ गुड़त्वक्, दालचीनी । २ एला, इलायची । ३ नागपुष्प, नागकेसर । ४ तेजपात । ५ शीतल चीनी । ६ लवंग, लौंग । ७ कुंकुम, केसर । ८ शिलारस । ९ अगरु, अगर । (त्रि०) १० सर्व-गन्धविशिष्ट ।

सर्वगन्धिक (सं० त्रि०) सब प्रकार गन्धविशिष्ट ।

सर्वगा (सं० स्त्री०) सर्वं गच्छतीति गम-ड-टाप् । १ प्रियंगुवृक्ष । २ सर्वत्रगामिनी ।

सर्वगामिन् (सं० त्रि०) सर्वग देखो ।

सर्वगायत्र (सं० त्रि०) सम्पूर्ण गायत्री मन्त्रविशिष्ट ।

सर्वगु (सं० त्रि०) गवादि पशुसमृद्धिविशिष्ट ।

सर्वगुण (सं० त्रि०) १ सकल गुणविशिष्ट, सब प्रकारके गुणवाला । (क्ली०) २ सब प्रकारका गुण ।

सर्वगुणविशुद्धिगर्भ (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद ।

सर्वगुणसञ्चयगत (सं० पु०) बौद्धमतसे समाधिभेद ।

सर्वगुणिन् (सं० त्रि०) सर्वगुणमस्यास्तीति गुण-णिनि। सर्वगुणान्वित।

सर्वगुप्त—१ एक जैन सूरि। २ एक कवि। ये भट्टसर्वगुप्त नामसे परिचित थे। ७४६ विक्रमसम्वत्में राजा दुर्गगणके राजत्वकालमें उत्कीर्ण झालरापाटनकी शिलालिपि इनकी रची है।

सर्वगुरु (सं० पु०) सर्वस्य गुरु। सर्वोका गुरु।

सर्वगुह्यमय (सं० त्रि०) जो सर्वतोभावसे गोपनीय भावापन्न हो।

सर्वगृह्य (सं० त्रि०) समग्र गृहस्थ, भृत्यादियुक्त परिवार।

सर्वग्रन्थि (सं० पु०) पिप्पलीमूल, पीपलामूल।

सर्वग्रन्थिक (सं० क्ली०) पिप्पलीमूल, पीपलामूल।

सर्वग्रह (सं० पु०) समुदय ग्रह, आदित्यादि सकल ग्रह।

सर्वग्रहरूपिन् (सं० पु०) सकल ग्रहस्वरूप, विष्णु, कृष्ण, जनार्दन।

सर्वग्रहापहा (सं० स्त्री०) नागदमनी, नागदौना।

सर्वग्रास (सं० पु०) चन्द्र या सूर्यका वह ग्रहण जिसमें उनका मंडल पूर्ण रूपसे छिप जाता है, पूर्ण ग्रहण, सर्वग्रास ग्रहण।

सर्वग्रासम् (सं० अव्य०) रोम और चर्म तक खा जाना।

सर्वङ्कष (सं० त्रि०) सर्वं कषति कष-(सर्वकुलाभ्रकरीषेषु कषः। पा ३।२।४२) इति खच् ततो मुम्। खल, सर्वातिक्रामक।

सर्वचक्रा (सं० स्त्री०) बौद्धोंकी एक तान्त्रिक देवी।

सर्वचण्डाल (सं० पु०) मारपुत्रभेद।

सर्वचन्द्र—वासवदत्ताटीकाके प्रणेता।

सर्वचरु (सं० पु०) ऋषिभेद।

सर्वचर्मीण (सं० त्रि०) सर्वचर्मणा कृतः सर्वचर्मीन (सर्वचर्मणः कृतः खखञौ। पा ५।२।५) इति ख। सकल चर्मनिर्मित।

सर्वचारिन् (सं० त्रि०) १ व्यापक, सबमें रहनेवाला। (पु०) २ शिवका एक नाम।

सर्वच्छन्दक (सं० त्रि०) सर्ववाञ्छापूर्णकारी।

सर्वज (सं० त्रि०) सब कारणोंसे उत्पन्न।

सर्वजन (सं० पु०) सकल जन, सब लोग।

सर्वजनता (सं० स्त्री०) सर्वजन।

सर्वजनप्रिय (सं० त्रि०) सबोंका प्रिय।

सर्वजनप्रिया (सं० स्त्री०) ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

सर्वजनीन (सं० त्रि०) सर्वजनाय हितः सर्वजन (सर्वजनात् ठञ् खश्च। पा ५।१।६) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या खः। १ सर्वजन-सम्बन्धी, सब लोगोंसे सम्बन्ध रखनेवाला। २ सबोंका हित करनेवाला। ३ विख्यात।

सर्वजनीय (सं० त्रि०) सबोंका हितकर।

सर्वजन्मन् (सं० त्रि०) सर्वजनविशिष्ट।

सर्वजय (सं० पु०) सर्वस्य जयः। सबोंकी जय, सब कार्योंमें जय।

सर्वजया (सं० स्त्री०) सर्वेषां जयो यस्याः। १ योषिद्व्रतविशेष, अग्रहायण मासकी संक्रान्तिसे आरम्भ करके द्वादश मासकी संक्रान्तिमें कर्त्तव्य एक व्रत। यह व्रत एक वर्ष तक होता है। वर्षके अन्तमें इसकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए। इस व्रतके फलसे स्त्रियोंके सब प्रकारका सौभाग्यलाभ होता है। स्कन्दपुराणमें इस व्रतका विधान लिखा है। लक्ष्मीने एक दिन नारायणसे पूछा, "भगवन्! किस व्रतका व्रती होनेसे स्त्रियां सकल मनोरथ, अतुल सौभाग्य तथा पुत्रपौत्रादि प्राप्त कर सकती हैं?" इसके उत्तरमें भगवान्ने कहा—सर्वजया नामका एक व्रत है जो सब व्रतोंमें श्रेष्ठ है, पुरुषोंमें जैसे गयाश्राद्ध है, उसी प्रकार स्त्रियोंमें यह व्रत है। यह व्रत करनेसे अग्रहायण मासमें शाक, पौष मासमें लवण, माघ मासमें तैल, फाल्गुनमें पूग, चैत्रमें पुष्प, वैशाखमें भक्त, ज्यैष्ठमें धाराजल, आषाढ़में दधि, श्रावणमें वस्त्र, भाद्रमें व्यञ्जन, आश्विनमें घृत तथा कार्त्तिक मासमें शय्या यह बारह द्रव्य यथाक्रम परित्याग करना चाहिए। प्रतिष्ठा करनेके समय यह सब दान कर पुनः वह ग्रहण करना होता है। जो इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं, वे सफल मनोरथसिद्धि, पुत्रपौत्रादि लाभ तथा स्वर्गलाभ करते हैं। बारह मासमें जो बारह द्रव्योंके त्याग करनेका विधान है, इस बारह द्रव्योंका त्याग करनेके समय यथायथ वाक्य कर त्याग करना होता है तथा वाक्यस्थलमें अमुक द्रव्य

त्याग करनेसे अमुक फल प्राप्तिकामा होता है, ऐसा वाक्य करना होता है। पहले लक्ष्मीदेवीने इस व्रतका अनुष्ठान किया तथा पीछे उन्होंने ही इस व्रतका प्रचार किया। (कृत्यचन्द्रिका)

२ सवजय नामका पौधा जो बगीचोंमें फूलोंके लिये लगाया जाता है, देवकली।

सर्वजित् (सं० पु०) सर्व्वान् जयतीति जि-क्विप्-तुकच। १ साठ संवत्सरोंमेंसे इक्कीसवां संवत्सर। २ मृत्यु, काल। ३ एक प्रकारका एकाह यज्ञ। (त्रि०) ४ सबको जीतनेवाला। ५ सबसे बढ़ा चढ़ा, उत्तम।

सर्वजित्—सह्याद्रिवर्णित बहुतेरे राजे।

सर्वजीव (सं० पु०) सर्व्व जीवः। समुदय जीव।

सर्व्वजीवमय (सं० त्रि०) सर्वजीवस्वरूपे मयट्। सकल जीवस्वरूप।

सर्वजीविन् (सं० त्रि०) सर्वजीव-इनि। जिसके पिता, पितामह और प्रपितामह तीनों जीते हों।

सर्वज्वरहरलौह (सं० पु०) विषमज्वरकी एक औषध। यह दो प्रकारकी होती है—स्वल्प और वृहत्। इस औषधका सेवन करनेसे सब प्रकारका ज्वर शीघ्र जाता रहता है।

सर्वज्ञ (सं० पु०) सर्वं जानाति ज्ञा-क। १ शिव। २ बुद्ध। ३ विष्णु। (त्रि०) ४ सकल ज्ञाता, सब कुछ जाननेवाला।

सर्वज्ञ—१ कर्णाट देशके एक राजा। इनके पुत्र अनिरुद्ध, अनिरुद्धके पुत्र रूपेश्वर और हरिहर थे। रूपेश्वरके पुत्र पद्मनाभके पुरुषोत्तम आदि पांच पुत्र हुए। पवें मुकुन्द-के पुत्र कुमारदेव थे। इस कुमारदेवके औरससे वङ्गके राजमन्त्री और वैष्णवप्रधान श्रीसनातन, श्रीरूप और श्रीवल्लभने जन्मग्रहण किया। रूप और सनातन देखो।

२ पद्यावलीधृत एक कवि।

सर्वज्ञता (सं० स्त्री०) सर्व्वज्ञस्य भावः तल्-टाप्। सर्व्वज्ञ होनेका भाव, सर्व्वज्ञता।

सर्व्वज्ञत्व (सं० क्ली०) सर्व्वज्ञ होनेका भाव, सर्वज्ञता।

सर्वज्ञदेव (सं० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम। ये सर्व-शास्त्रमें सुपण्डित थे। (तारनाथ)

सर्वज्ञश्रीनारायण (सं० पु०) शूद्र धर्मतत्त्वधृत एक स्मृति-निबन्धकार।

सर्वज्ञपुत्र (सं० पु०) एक जैनसूरि। इनका दूसरा नाम था श्रीसिद्धसेना दिवाकर थे। कान्यकुब्जपति श्रीमरुण्ड राजके प्रतिपालित श्रीस्कन्दिलाचार्यके शिष्य श्रीवृद्ध वादसूरिके शिष्य थे।

सर्वज्ञमन्य (सं० त्रि०) आत्मानं सर्वं मन्यते सर्वज्ञ-मन-खश् य। सर्वज्ञमानी, जो अपनेको सर्वज्ञ समझे।

सर्वज्ञ रामेश्वर भट्टारक - एक प्रसिद्ध दार्शनिक और आयुर्वेदवित्। सर्वदर्शनसंग्रहके रसेश्वर दर्शनमें इनका उल्लेख है।

सर्वज्ञवासुदेव (सं० पु०) शार्ङ्गधरपद्धतिधृत एक कवि।

सर्व्वज्ञविष्णु (सं० पु०) एक प्रसिद्ध दार्शनिक।

सर्व्वज्ञा (सं० स्त्री०) १ सब कुछ जाननेवाली। २ दुर्गा-देवी। ३ एक योगिनी।

सर्व्वज्ञातृ (सं० त्रि०) सर्वस्य ज्ञाता। सर्वज्ञ, जो सब विषयोंमें जानकार हो।

सर्वज्ञात्मगिरि (सं० पु०) सर्वज्ञात्ममुनिका एक नाम।

सर्वज्ञात्ममुनि—संक्षेपशारीरकके रचयिता। ये देवेश्वर-के शिष्य थे। मनुकुलादित्य नामक एक राजाके आश्रय-में रह कर इन्होंने उक्त ग्रन्थ रचा। सर्व्वज्ञात्मगिरि देखो।

सर्वज्ञान (सं० क्ली०) सब विषयोंमें ज्ञान।

सर्वज्ञानमय (सं० त्रि०) सर्वज्ञानस्वरूपे मयट्। सर्वज्ञानस्वरूप। (मनु २।७)

सर्वज्ञानी (सं० पु०) सर्वज्ञ, सब कुछ जाननेवाला।

सर्वज्यानि (सं० स्त्री०) समग्र सम्पत्तिका नाश या विलय। (अथर्व्व ११।३।५५)

सर्वज्योतिस् (सं० क्ली०) चार सहस्रभेद।

सर्वतः (सं० अव्य०) १ सब ओर, चारों ओर। २ सब प्रकारसे, हर तरहसे। ३ पूर्णरूपसे, पूरी तरहसे।

सर्व्वतःपाणिपाद (सं० पु०) विष्णु, जिसका सब जगह हाथ और पैर हो।

"सर्व्वतः पाणिपादन्त सर्व्वतोऽक्षिशिरोमुखं।"

(गीता १३।१४)

सर्वतनु (सं० त्रि०) अङ्गप्रत्यङ्गादिविशिष्ट समग्र देहयष्टि।

सर्वतनू (सं० पु०) सर्वतनु देखो।

सर्वतपोमय (सं० त्रि०) सर्वतपः स्वरूपे मयट्। सकल तपस्या स्वरूप, समस्त तपोस्वरूप।

सर्वतन्त्र (सं० त्रि०) सर्वं तन्त्रमस्येति सर्वं तन्त्रमधीते वेदा वा। १ सर्व शास्त्रसम्मत, जिसे सब शास्त्र मानते हों। (क्ली०) २ सकल शास्त्र। ३ समुदाय तन्त्र शास्त्र। ४ साधारण तन्त्र। ५ स्वतःसिद्ध।

सर्वतश्चक्षुस् (सं० त्रि०) सर्वंश्चक्षुर्यस्य। चारों ओर चक्षुविशिष्ट, जिसके चारों तरह नेत्र हों।

सर्वतःशुभा (सं० स्त्री०) १ प्रियंगु वृक्ष। (त्रि०) २ चारों ओर शुभविशिष्ट।

सर्वतःश्रुतिमत् (सं० त्रि०) सब जगह श्रवणेन्द्रिय-विशिष्ट, ब्रह्म। (गीता १३।१५)

सर्वतस् (सं० अव्य०) सर्वतः देखो।

सर्वतापन (सं० पु०) १ कामदेव। २ सबको तपानेवाला सूर्य।

सर्वतिका (सं० स्त्री०) सर्वतो तिका। १ भंटाकी, बरहंटा। २ काकमाची, मकोय।

सर्वतीर्थ (सं० क्ली०) १ सकल तीर्थ, सभी तीर्थ। २ एक प्राचीन गाँवका नाम। (रामायण २।७१।१४)

सर्वतेजस् (सं० पु०) व्युष्टका पुत्र।

सर्वतेजोमय (सं० त्रि०) सकल तेजःस्वरूप।

सर्वतोऽक्षिशिरोमुख (सं० त्रि०) सब जगह जिसका चक्षु, मस्तक और मुख हो, ब्रह्म। (गीता १३।१४)

सर्वतोगामिन् (सं० त्रि०) सर्वतो गच्छति गम-णिनि। सब जगह जानेवाला।

सर्वतोभद्र (सं० पु० क्ली०) सर्वतोभद्रमस्यादिति। १ ईश्वरगृहविशेष। (अमर) २ द्वार और अलिन्दादिके सिवा आढ्य गृह। यह गृह देवता, राजा और राजाश्रित व्यक्तियोंके लिये शुभप्रद हैं। युक्तिकल्पतरु, बृहत्संहिता आदि ग्रन्थोंके वास्तुप्रकरणमें सर्वतोभद्र-गृहका विस्तृत विवरण लिखा है। वास्तु देखो। (त्रि०) ३ सर्वतोमङ्गलप्रद। (भागवत १६।७१।११) सब जगह जिसका मङ्गल हो। (पु०) सर्वतोभद्रमस्य। ४ निम्ब वृक्ष। (अमर) ५ व्यूहविशेष। ६ विष्णुरथ। (शब्दरत्नावली) ७ वंश। (शब्दचन्द्रिका) ८ चित्रकारविशेष। (मेदिनी)

महाकाव्यमें सर्वतोभद्र आदि चित्रकाव्यका समावेश करना होता है। उदाहरण। (माघ १६।२७)

स	का	र	ना	ना	र	कां	स
का	य	सा	द	द	सा	व	का
र	स	ह	वा	वा	ह	सा	र
ना	द	वा	फ	द	वा	द	न

इसका प्रथम और शेष 'सकारना', द्वितीय और षष्ठ 'कायसाद', तृतीय और पञ्चम 'रसाहवा', चतुर्थ और पञ्चम 'नादवाद' हुआ है और अन्तसे पकड़ने पर भी सकारना, कायसाद, रसाहवा, नादवाद होता है, जिस ओरसे पकड़ा जाये, उसी ओरसे ये सब अक्षर प्रति ओर ही होंगे। केवल इस तरहके अक्षर समावेश करनेसे ही यह चित्रकाव्य नहीं होगा। अर्थ और छन्दः आदिकी भी संगति रहना आवश्यक है।

"तदिदं सर्वतोभद्रं भ्रमणं यदि सर्वतः।" (दण्डी)

जिस चित्रबन्धमें चारों ओर अक्षरोंका भ्रमण होता है, वह सर्वतोभद्र चित्रबन्ध होता है। मल्लिनाथने माघके इस श्लोककी टीकामें लिखा है, कि इस चित्रबन्धका उद्धार इस तरह होता है। प्रथम चार कोष्ठ बनावे, इसके बाद चतुरङ्ग द्वारा चार पाद इस प्रत्येक कोष्ठमें लिख कर पंक्ति चतुष्टयमें अधःक्रम द्वारा प्रथम और चार पादमें चारों ओर ही इन सब पादोंके अक्षर होंगे, ऐसा होनेसे यह चित्रबन्ध होगा।

"उद्धारस्तु चतुःकोष्ठे चतुरङ्गवद्धे पंक्तिचतुष्टये पादचतुष्कं विलिख्यानन्तरं पंक्तिचतुष्टये ऽप्यधःक्रमेण पादचतुष्टयलेखने प्रथमासु चतसृषु प्रथमपादः सर्वतो वाच्यते एवं द्वितीयादिषु द्वितीयः इत्यादि।"

सर्वतोभद्रचक्र (सं० क्ली०) सर्वतोभद्रं नाम चक्रं। मनुष्योंके जीवितकालमें शुभाशुभ जाननेका चक्रविशेष। इस चक्र द्वारा गमन आदि कार्य्यमें यह जाना जाता है, कि शुभ होगा या अशुभ।

सर्वतोभद्रच्छेद (सं० पु०) भगंदरकी चिकित्साके लिये अस्त्रसे भगाया हुआ चौकोर चीरा। (सुश्रुत)

सर्वतोभद्रमण्डल (सं० क्लो०) सर्वतोभद्रमस्य सर्व-

तोभद्रं यत् मण्डलं। मण्डलविशेष। देवप्रतिष्ठा, व्रतप्रतिष्ठा आदिमें पञ्चवर्णके चूरसे जो मण्डल बनाया जाता है, उसे सर्वतोभद्रमण्डल कहते हैं। यह एक प्रकारका पूजाधारयन्त्र है। इस मण्डलके ऊपर घटादि स्थापन कर उसके ऊपर देवपूजा करनी होती है। यह मण्डल अङ्कन करनेसे एक सुन्दर आसन जैसा दिखाई देता है। तन्त्रसारमें इस मण्डल अङ्कनको प्रणाली विशेषरूपसे वर्णित है। सर्वतोभद्रमण्डल अङ्कन नहीं कर सकनेसे स्वल्प सर्वतोभद्रमण्डल और यदि उसको भी अङ्कन न कर सके, तो अष्टदल पद्म अङ्कन कर पूजादि करे।

सर्वतोभद्ररस (सं० पु०) १ रसौषधविशेष। इसका सेवन करनेसे सब प्रकारका ज्वर, मन्दाग्नि, आमदोष, विसूचिका, आनाह, मूत्रकृच्छ्र आदि रोग जल्द नष्ट होते हैं। २ प्लीहरोगाधिकारोक्त रसौषधविशेष। इस औषध को सेवनेसे प्लीहा, यकृत्, सब प्रकारके ज्वर आदि शीघ्र विदूरित होते हैं। (रसेन्द्रसारस० प्लीहाचि०)

सर्वतोभद्रलौह (सं० पु०) अम्लपित्तरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। इसको सेवनेसे अम्लपित्त और शूल आदि रोग जल्द प्रशमित होते हैं।

सर्वतोभद्रा (सं० स्त्री०) सर्वतो- भद्रमङ्गलमस्याः। १ गम्भारी, काश्मरी वृक्ष। २ अभिनय करनेवाली, नटी।

सर्वतोभद्रिका (सं० स्त्री०) गंभारी, काश्मरी वृक्ष।

सर्वतोभाव (सं० अव्य०) सर्व प्रकारसे, सम्पूर्णरूपसे, भली भांति।

सर्वतोमुख (सं० क्ली०) १ जल, पानी। २ आकाश। (त्रि०) ३ समन्तत मुखविशिष्ट, जिसका मुंह चारों ओर हो। ४ जो सब दिशाओंमें प्रवृत्त हो। ५ व्यापक, पूर्ण। (पु०) ६ एक प्रकारकी व्यूहरचना। ७ शिव। ८ ब्रह्मा। ६ आत्मा। १० विष्णु। ११ ब्राह्मण। १२ स्वर्ग। १३ अग्नि।

सर्वतोवृत्त (सं० त्रि०) सर्वव्यापक।

सर्वत्र (सं० अव्य०) सब कहां, सब जगह, हर जगह।

सर्वत्रग (सं० पु०) १ वायु। २ मनुके एक पुत्रका नाम। ३ भीमसेनके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ४ सर्वत्रगामी, सर्वव्यापक।

सर्वत्रगत (सं० त्रि०) सर्वत्रव्याप्त, सम्पूर्ण।

सर्वत्रगामिन् (सं० पु०) १ वायु। (त्रि०) २ सर्वव्यापक।

सर्वत्रसत्त्व (सं० त्रि०) सब जगह सत्ताविशिष्ट, जो सब जगह विद्यमान हैं।

सर्वथा (सं० अव्य०) १ सब प्रकारसे, सब तरहसे। २ बिलकुल, सब। ३ भृश, अतिशय। ४ हेतु, कारण। ५ स्वीकार। ६ निश्चय। ७ प्रतिज्ञा।

सर्वद (सं० त्रि०) १ सर्वदानकारी, सब कुछ देनेवाला। (पु०) २ शिवका एक नाम।

सर्वदण्डधर (सं० पु०) शिव।

सर्वदमन (सं० पु०) १ भरतराज, शकुन्तलाका पुत्र। महाभारतमें इसकी नामनिरुक्ति इस प्रकार लिखी है, कि यह बालक छः वर्षकी उम्रमें ही आश्रमस्थित सिंह, बाघ, वराह आदिको पकड़ कर निकटवर्त्ती वृक्षमें बांध आता था तथा उनमेंसे किसीकी पीठ पर चढ़ कर क्रीड़ा करता था और इन सबोंको दमन कर रखता था। ऋषियोंने इसका यह अलौकिक सत्त्व देख कर इसका नाम सर्वदमन रखा। (भारत १।७४) शकुन्तला और भरत देखो।

(त्रि०) २ सर्वदमनकर्त्ता, सबको दमन करनेवाला।

सर्वदराज (सं० पु०) राजभेद, शाक्यमुनि।

सर्वदर्शन (सं० क्ली०) १ सब विषयोंमें दृष्टि, दर्शन। (त्रि०) २ सब विषयोंमें दृष्टियुक्त, जिसकी सब विषयोंमें दृष्टि हो।

सर्वदर्शनसंग्रह (सं० पु०) दर्शनशास्त्रका एक संग्रह माधवाचार्यने सब दर्शनोंका सारसंग्रह कर यह ग्रन्थ प्रणयन किया। इसमें चार्वाक आदि करके १८ दर्शनोंके सार संग्रह और साधारण-मत दिये हुए हैं। इस ग्रन्थको पढ़नेसे सब दर्शनोंका बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है। कुछ दिन हुए शङ्कराचार्य रचित 'सर्वदर्शनसिद्धान्तरत्न' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जिसमें शङ्कराचार्य पूर्ववर्त्ती लोकायत, आर्हत आदि सब दर्शनोंका सार लिखा गया है। दर्शन शब्द देखो।

सर्वदर्शिन् (सं० पु०) १ बुद्ध। २ परमेश्वर। (त्रि०) ३ सर्वद्रष्टा, सब कुछ देखनेवाला।

सर्वदा (सं० अव्य०) सर्व (सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा। पा ५।३।१५) इति दा। सदा, हमेशा, सब कालमें।
सर्वदास (सं० पु०) एक प्राचीन कवि।
सर्वदुःख (सं० क्लो०) सब प्रकारका दुःख। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आदिभौतिक तीन प्रकारका दुःख है। इनके अतिरिक्त और किसी तरहका दुःख नहीं है। जो कोई दुःख क्यों न हो, वह इन्हीं तीन दुःखोंके अन्तर्गत है।
सर्वदुःखक्षय (सं० पु०) १ मोक्ष। सब प्रकारके दुःखोंकी निवृत्ति होनेसे मोक्ष होता है। २ सकल पीड़ानाशक।
सर्वदुष्टान्तकृत् (सं० त्रि०) सब प्रकारके दुष्टोंका दमन या नाश करनेवाला।
सर्वदृश् (सं० त्रि०) सर्वद्रष्टा, सर्वदर्शी।
सर्वदेवत्य (सं० त्रि०) सर्वदेवतासम्बन्धी, सर्वदेवताका निवासभूत।
सर्वदेवमय (सं० त्रि०) सकल देवताके स्वरूप।
सर्वदेवमुख (सं० पु०) अग्नि। अग्नि सब देवताओंके मुखस्वरूप हैं, क्योंकि अग्निमें सब देवताओंका होम करनेसे उसे देवग्रहण करते हैं।
सर्वदेव सूरि—प्रमाणमञ्जरी नामक वैशेषिक ग्रन्थके रचयिता।
सर्वदेवात्मक (सं० त्रि०) सर्व देवः आत्मस्वरूपं। सर्वदेवस्वरूप।
सर्वदेवात्मन् (सं० त्रि०) सर्वदेवात्मक।
सर्वदेशीय (सं० त्रि०) सर्वदेशसम्बन्धी।
सर्वदेश्य (सं० त्रि०) सर्वदेशभव। (ऋक्प्राति० ६।२०)
सर्वदैवसत्त्व (सं० क्ली०) सर्वदा एव सत्त्वं यस्य। सर्वसत्त्व। (रामतापनीय उपनि० २४७)
सर्वद्रष्टृ (सं० त्रि०) सर्वदर्शी। (नृसिंहतापनी उप०)
सर्वद्रञ्च् (सं० त्रि०) सर्वानञ्चति इति क्विप्। सबोंका पूजक।
सर्वद्वारिका (सं० त्रि०) जिसकी विजय-यात्राके लिये सब दिशाएं खुली हों, दिग्विजयी।
सर्वधनिन् (सं० त्रि०) सर्वं धनमस्तीति इनि। सकल प्रकार धनयुक्त।
सर्वधन्वन् (सं० पु०) कामदेव। (हेम)
सर्वधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, सर्वस्य धरः। सबोंका धारक।
सर्वधर—१ एक प्राचीन वैयाकरण। रायमुकुटने इनका किया है। २ एक प्राचीन आभिधानिक।
सर्वधर्मपदप्रभेद (सं० स्त्री०) बौद्ध समाधिभेद।
सर्वधर्ममय (सं० त्रि०) सर्वधर्म-स्वरूपे मयट्। सर्वधर्म स्वरूप।
सर्वधर्ममुद्रा (सं० स्त्री०) बौद्ध समाधिभेद।
सर्वधर्मसञ्ज्ञका (सं० स्त्री०) समाधिभेद।
सर्वधर्मसमता (सं० स्त्री०) सर्वधर्मस्य समता। १ सब धर्मकी समता। २ बौद्ध समाधिभेद।
सर्वधर्मोत्तरघोष (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।
सर्वधा (सं० त्रि०) सबोंका धाता या दाता।
सर्वधातम (सं० त्रि०) सर्वधातृतम, सर्वभोगप्रद।
सर्वधातुक (सं० पु०) ताम्र, ताँबा।
सर्वधामन् (सं० क्ली०) १ वासगृह। २ जन्मभूमि, स्वदेश।
सर्वधारिन् (सं० पु०) सर्वं धरतीति धृ-णिनि। १ षष्ठि संवत्सरोंमेंसे बाईसवां संवत्सर। २ शिवका एक नाम। (त्रि०) ३ सर्वधारक।
सर्वधुरावह (सं० पु०) सर्वधुरायाः वहः। सकलभारवाहक, रथलाङ्गलादिका भारवाहक गवादि।
सर्वधुरीण (सं० पु०) सर्वधुरां वहतीति (खः सर्वधुरात्। पा ४।४।७८) इति ख। सकल भारवाहक गवादि।
सर्वनाग—१ कोटाके एक सामन्तराज, विन्दुनागके पौत्र और पद्मनागके पुत्र। सेरगढ़के बौद्ध शिलाफलकसे जाना जाता है, कि ८४७ विक्रम संवत्में इनके पुत्र देवदत्त विद्यमान थे।

२ एक सामन्त। ये गुप्तसम्राट् महाराजाधिराज स्कन्दगुप्तके अधीन (गुप्तस० १४६) अन्तर्वेदीके विषयपति थे।
सर्वनाथ—उच्चकल्पके एक अधीश्वर। ये महाराज जयनाथके पुत्र थे तथा १९३ कलचूरी संवत्में विद्यमान थे।
सर्वनाभ (सं० पु०) एक प्रकारका अस्त्र।
सर्वनाम (सं० त्रि०) सर्व नाम यस्य। १ सकल नाम

विशिष्ट, ब्रह्म, जिसके सभी नाम हैं। (पु०) २ सबोंके नाम या संज्ञा। ३ व्याकरणकी एक संज्ञा। व्याकरणमें सर्वप्रभृति शब्द सर्वनाम कहलाते हैं। व्याकरणमें सर्वनाम प्रकरण कह कर एक प्रकरण है। इस प्रकरणमें किसी किसी शब्दका सर्वनाम संज्ञा होती तथा सर्वनाम शब्दके उत्तर कार्य आदिका विषय कहा गया है।

इसे साधारण भाषामें प्रतिसंज्ञा भी कहते हैं। यह व्यक्ति या वस्तु विशेषको प्रतिपन्न करनेका द्वितीय प्रकारका नाम या शब्द है। इस श्रेणीके शब्द व्यक्ति विशेषको या व्यक्तिसमूहको स्वतन्त्र भावमें निर्द्धारित करनेमें समर्थ नहीं है, यह पूर्व-वर्णित व्यक्ति या वस्तुका अभिधापक मात्र हैं। हिन्दीमें सर्वनाम शब्द मैं, तू, वह, हैं।

सर्वनामस्थान (सं० क्ली०) पाणिनिके अष्टाध्यायिवर्णित संज्ञाभेद। (पा १।१।४२, १।४।१७)

सर्वनाश (सं० पु०) सर्वस्य नाशः। सत्यानाश, विध्वंस, पूरी बरवादी। नीतिशास्त्रमें कहा है, कि जब देखा जाय शीघ्र सर्वनाशकी सम्भावना है, तब पण्डित व्यक्ति अर्द्धेक त्याग करें। अर्द्धेक त्याग कर यदि और अर्द्धेक रखा जाय, तो वह श्रेष्ठ है।

"सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः।"

(चाणक्यश्लोक)

सर्वनाशी (सं० त्रि०) विध्वंसकारी, सर्वनाश करने वाला, चौपट करनेवाला।

सर्वनिक्षेपा (सं० स्त्री०) संख्याभेद। (ललितवि०)

सर्वनिधान (सं० पु०) १ सबका नाश या वध। १ एक प्रकारका एकाह यज्ञ। (सांख्य० श्रौ०)

सर्वनियन्ता (सं० त्रि०) सबको अपने नियमके अनुसार ले चलनेवाला, सबको वशमें करनेवाला।

सर्वनियोजक (सं० त्रि०) सर्वस्य नियोजकः। १ सबका नियोजन करनेवाला। (पु०) २ विष्णु।

सर्वनिलय (सं० पु०) १ सर्वधारसम्पन्न। २ वासगृहयुक्त।

सर्वनिवरणविष्कम्भिन् (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

सर्वन्दद (सं० पु०) बौद्धयतिभेद।

सर्वन्दम (सं० पु०) सर्वं दमयतीति दम-अच्, द्वितीयायां अलुक्। भरतराज, शकुन्तलापुत्र। (हेम)

सर्वन्दमन (सं० पु०) सर्वदमन, भरत।

सर्वपति (सं० पु०) सर्वस्य पतिः। सबोंका पति, विष्णु।

सर्वपत्तोण (सं० पु०) सारथि।

सर्वपथीन (सं० पु०) सर्वपथ-ख (पा ५।२।७) रथ, जो रथ सकल पथ व्याप्त हो।

सर्वपदु (सं० त्रि०) बहुपदविशिष्ट।

सर्वपद (सं० क्ली०) सब तरहका पद। (नैषध ३।१२)

सर्वपरिफुल्ल (सं० त्रि०) सर्वतोभावसे स्फीत, उत्फुल्ल।

सर्वपरुस् (सं० त्रि०) सब प्रकार ग्रन्थिविशिष्ट।

सर्वपशु (सं० पु०) १ मृगवलि। (कात्या० श्रौ० ५।४।३१) २ सब प्रकारका पशु।

सर्वपा (सं० स्त्री०) सर्वं पातीति पा-क-टाप्। १ बलि राजाकी स्त्री। (त्रि०) २ सर्वपानकर्त्ता, सब कुछ पीनेवाला। ३ सर्वरक्षणकर्त्ता।

सर्वपाचक (सं० क्ली०) टङ्कणक्षार, सुहागा।

सर्वपाञ्चाल (सं० पु०) पाञ्चालवासी एक आचार्यका नाम।

सर्वपात्रीण (सं० त्रि०) सर्वपात्र-ख (पा ५।२।७) ओदन।

सर्वपाद (सं० पु०) एक राजामात्य।

सर्वपाल (सं० त्रि०) सर्वं पालयति पाल-अच्। सबका पालक।

सर्वपालक (सं० त्रि०) सबका पालन करनेवाला।

सर्वपुण्य (सं० क्ली०) सकल पुण्य, समुदय पुण्य।

सर्वपुण्यसमुच्चय (सं० पु०) समाधिविशेष।

सर्वपुर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके राजमहेन्द्री तालुकके अन्तर्गत एक तीर्थक्षेत्र। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके सर्वपुरक्षेत्र माहात्म्यमें इसका विशेष विवरण दिया हुआ है।

सर्वपुरुष (सं० त्रि०) १ सकल पुरुषयुक्त। (पु०) २ सकल पुरुष।

सर्वपूत (सं० त्रि०) सब विषयमें पवित्र।

सर्वपूरक (सं० त्रि०) सबका पूरणकारी।

सर्वपूर्णत्व (सं० क्ली०) सम्भार।

सर्वपूर्व (सं० त्रि०) सबके पूर्व, सबके पहले।

सर्वपृष्ठ (सं० पु०) १ यागभेद। (त्रि०) २ सबके पश्चात्, सबके पीछे।

सर्वप्रद (सं० त्रि०) सर्वं प्रददातीति प्र-दा-क। सर्वद, सकल प्रदानकारी।

सर्वप्रभु (सं० पु०) सर्वस्य प्रभुः। सबका प्रभु।

सर्वप्रायश्चित्त (सं० त्रि०) १ सकल प्रकार प्रायश्चित्त-युक्त, जिसने सब प्रकारका प्रायश्चित्त किया है। (क्ली०) २ आहवनीय, अग्निमें त्याग।

सर्वप्रिय (सं० त्रि०) सर्वेषां जनानां प्रियः। १ सकल जनवल्लभ, सबका प्रिय, सबका प्यारा, जो सबको अच्छा लगे। सर्वस्य शिवस्य प्रियः। २ महादेवका प्रिय। सर्वः शिवः प्रियो यस्य। ३ शिवभक्त।

सर्वफलत्यागचतुर्द्दशीव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष। सब फलकामना वर्ज्जन कर चतुर्दशी तिथिमें इस व्रत-का अनुष्ठान करना होता है।

सर्ववर्म्मन्—१ एक हिन्दू नरपति, महासामन्तमहाराज समुद्रसेनके पूर्वपुरुष। समुद्रसेन देखो।
२ दूसरे एक राजा। मगधके गुप्तराजवंशकी एक शाखाके २य जीवितगुप्तदेवकी शिलालिपिमें ये पूर्ववर्त्ती राजा कह कर उल्लिखित हैं। ३ मौखरीवंशीय एक महाराजाधिराज। इनके पिताका नाम ईशानवर्म्मन् और माताका लक्ष्मीवती था।

सर्वबल (सं० क्ली०) १ संख्याविशेष। २ कातन्त्रसूत्र और धातुपाठ नामक व्याकरण ग्रन्थके रचयिता। शर्ववर्म्मन् देखो।

सर्ववाहु (सं० पु०) युद्ध करनेकी एक विधि।

सर्ववाह्य (सं० त्रि०) सब लोगों द्वारा परित्यक्त।

सर्ववीजिन् (सं० त्रि०) सकल वीजविशिष्ट।

सर्वबुद्धसन्दर्शन (सं० क्ली०) बौद्धजगत्भेद।

सर्वभक्ष (सं० त्रि०) सर्वभक्षणकर्त्ता, सब कुछ खाने-वाला।

सर्वभक्षा (सं० स्त्री०) छागी, बकरी।

सर्वभक्षिन् (सं० त्रि०) १ सर्वभक्षक, सब कुछ खाने-वाला। (पु०) २ अग्नि।

सर्वभट्ट—पद्यावलीधृत एक कवि।

सर्वभवारणि (सं० स्त्री०) सबकी जननी।

सर्व्वभाज् (सं० त्रि०) सर्व्वं भज-ण्वि। सकल प्रकार भजनाकारी।

सर्व्वभाव (सं० पु०) १ सम्पूर्ण सत्ता, सारा अस्तित्व। २ सम्पूर्ण आत्मा। ३ पूर्ण तुष्टि, मनका पूरा भरना।

सर्व्वभावन (सं० त्रि०) सकल प्रकार भावनायुक्त।

सर्व्वभुज् (सं० त्रि०) सर्व्वं भुङ्क्ते भुज-क्विप्। सर्व्व-भक्ष, सब कुछ खानेवाला।

सर्व्वभूत (सं० क्ली०) १ सब प्राणी या सृष्टि, चराचर। २ क्षित्यादि पञ्च महाभूत। (मनु १।१६) (त्रि०) ३ सर्वस्वरूप, जो सब कुछ हो या सबमें हो।

सर्व्वभूतमय (सं० त्रि०) सर्व्वभूतस्वरूप, सर्वजीव-स्वरूप।

सर्व्वभूतरुतग्रहणीलिपि (सं० पु०) लिपिभेद। ललित-विस्तरमें इस लिपिका उल्लेख देखनेमें आता है।

सर्व्वभूतहित (सं० पु०) सब प्राणियोंकी भलाई।

सर्व्वभूतात्मक (सं० त्रि०) सर्व्वभूतस्वरूप। यह जगत् सर्व्वभूतात्मक है।

सर्वभूतात्मन् (सं० पु०) सब प्राणियोंको आत्मा।

सर्वभूतात्मभूत (सं० त्रि०) सब भूतोंका आत्मभूत, सब प्राणियोंका आत्मस्वरूप।

सर्वभूताधिपति (सं० पु०) सब प्राणियोंका अधिपति, विष्णु।

सर्व्वभूताधिवास (सं० पु०) सब भूतोंकी निवासभूमि, विष्णु, श्रीकृष्ण।

सर्व्वभूतान्तक (सं० पु०) सब भूतोंका अन्तकारी, यम।

सर्वभूतान्तरात्मन् (सं० पु०) सब जीवोंका आत्मा-स्वरूप। (भारत० १२ प०)

सर्वभूमिक (सं० क्ली०) गुड़त्वक्, दारचीनी।

सर्वभोगिन् (सं० त्रि०) १ सबका आनन्द लेनेवाला। २ सब कुछ खानेवाला।

सर्वभोग्य (सं० त्रि०) सबोंका भोग्य, सबोंके भोगके उपयुक्त।

सर्व्वमङ्गल (सं० क्ली०) १ सब प्रकारका मंगल। (रामायण १।१८।१८) (त्रि०) २ सब प्रकार मंगल विशिष्ट।

सर्वमङ्गला (सं० स्त्री०) सर्वाणि मङ्गलानि यस्याः। १ सब प्रकारका मंगल करनेवाली। २ दुर्गा, लक्ष्मी।

"मङ्गलं मोक्षवचनं चा शब्दो दातृवाचकः।
सर्व्वान् मोक्षान् या ददाति सा एव सर्वमंगला॥
हर्षे सम्पदि कल्याणे मंगलं परिकीर्त्तितं।
तान् ददाति च या देवी सा एव सर्व्वमंगला॥"

मोक्षका नाम मङ्गल और आ शब्दका अर्थ दाता है। जो सब प्रकार मोक्षरूप मंगल दान करती है, उसे सर्व-मंगला कहते हैं अथवा हर्ष, सम्पद् और कल्याण ये तीन मंगल कहलाते हैं, जो इस प्रकार मङ्गलदान करती हैं, वे भी सर्वमङ्गला कहलाती हैं। देवीपुराणमें लिखा है—

"सर्व्वाणि हृदयस्थानि मंगलानि शुभानि च।
ददाति चेप्सितान् लोके तेन सा सर्वमंगला॥"

जो हृदयस्थितसे सब तरहका शुभ दान करती हैं, उनका नाम सर्वमङ्गला है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी नामनिरुक्ति हैं। वर्द्धमानमें सर्वमङ्गलादेवी बड़ी प्रसिद्ध हैं।

सर्वमय (सं० त्रि०) सर्वात्मक, सर्वस्वरूप।

सर्वमलापगत (सं० पु०) समाधिभेद। यह समाधि होनेसे सब चित्तमल विदूरित होता है।

सर्वमहत् (सं० त्रि०) अति वृहत्, बहुत बड़ा।

सर्वमागधक (सं० त्रि०) जो समूचा मगधदेश अव-लम्बन करता है।

सर्वमातृ (सं० स्त्री०) सबोंकी माता।

सर्वमात्रा (सं० स्त्री०) विराज छन्दोभेद।

सर्वमारमण्डलविध्वंसनकारी (सं० स्त्री०) रश्मि, किरण। (ललितवि०)

सर्वमित्र (सं० क्ली०) सबोंका मित्र।

सर्वमूर्द्धन्य (सं० पु०) शाक्त ग्रन्थकारभेद।

सर्वमूल्य (सं० क्ली०) १ कपर्द्दक, कौड़ी। २ कोई छोटा सिक्का।

सर्वमूषक (सं० पु०) काल, सर्वनाशक समय।

सर्वमृत्यु (सं० पु०) सब तरहका मरण।

सर्वमेध (सं० पु०) १ एक प्रकारका सोमयाग जो दश दिनों तक होता था। (शत० ब्रा० १३।७।४।१) २ सर्व यज्ञ। ३ उपनिषद्भेद, सर्वमेधोपनिषद्।

सर्व्वमेध्यत्व (सं० क्ली०) सम्पूर्ण पूतत्व, पूर्ण पवित्रता।

सर्व्वम्भरि (सं० पु०) प्राण, प्राण सबका पोषण करता है। (छान्दोग्य उप०)

सर्व्वयज्ञ (सं० पु०) सब प्रकारका यज्ञ।

सर्व्वयत्नवत् (सं० त्रि०) सर्व्वयत्न-अस्त्यर्थे-मतुप् मस्य व। सकल प्रकार यत्नविशिष्ट।

सर्व्वयज्विन् (सं० त्रि०) सर्वयज्ञकुशली।

सर्व्वयोगिन् (सं० पु०) शिवका एक नाम।

सर्व्वयोनि (सं० पु०) सर्व्वेषां योनिः। १ सबोंकी योनि, सबका कारण। २ सकल प्रकार योनि।

सर्व्वरक्षण (सं० क्ली०) सर्व्वस्य रक्षणं। १ सबका रक्षण, सबकी रक्षा करना। (त्रि०) २ सबका रक्षक, सर्व्व-रक्षाकर।

सर्व्वरक्षणकवच (सं० क्ली०) सर्व्वरक्षाकर कवच। यह कवच धारण करनेसे सब विपद्से रक्षा होती है। ब्रह्म-वैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डमें इस कवचका विषय और इसका विशेष विधान लिखा है। भोजपत्र पर यह कवच गोरोचन और केसर द्वारा लिख कर पीछे कवच-संस्कारके विधानानुसार संस्कार कर हस्त और कण्ठ-में धारण करे। इससे सब विपद् दूर होती और सब प्रकारका शुभ होता है। कवच पर लिखे जानवाले श्लोक बहुत हो जानेके भयसे लिखे न गये।

सर्व्वरत्न (सं० क्ली०) सब प्रकारका रत्न।

सर्व्वरत्नक (सं० पु०) जैन शास्त्रानुसार नौ निधियोंमेंसे एक।

सर्व्वरत्नमय (सं० त्रि०) सर्व्वरत्न स्वरूपे मयट्। सर्व्व-रत्नस्वरूप, सकल प्रकार रत्न द्वारा निर्मित।

सर्व्वरथ (सं० क्ली०) सर्व्वत व्याप्त रथ।

सर्व्वरस (सं० पु०) १ सूरि, पण्डित। २ धूनक, धूना। ३ वाद्यभाण्ड, एक प्रकारका बाजा। ४ लवणरस। ५ मधुरादि सकल रस। (त्रि०) ६ सर्व्वरसविशिष्ट।

सर्व्वरसा (सं० स्त्री०) लाजाका मांड़, धानकी खीलोंका मांड़।

सर्व्वरसोत्तम (सं० पु०) लवणरस।

सर्व्वराज् (सं० पु०) सभी विषयमें शोभित व्यक्ति।

सर्वराजेन्द्र (सं० पु०) सकल राजश्रेष्ठ, प्रधान नरपति।

सर्वरी (सं० स्त्री०) शर्वरी, रात्रि। (धरणि)

सर्वरुतकौशल्य (सं० क्ली०) समाधिभेद।

सर्वरुतसंग्रहणलिपि (सं० स्त्री०) लिपिभेद। ललितविस्तरमें इस लिपिका उल्लेख देखनेमें आता है। इस शब्दका 'सर्वरुतसंग्रहणीलिपि' पाठान्तर देखा जाता है।

सर्वरूप (सं० क्ली०) १ सब प्रकारका रूप। २ एक प्रकारकी समाधि। (त्रि०) ३ सर्वस्वरूप, जो सब रूपोंका हो।

सर्वरूपिन् (सं० त्रि०) सर्वरूप अस्त्यर्थे इनि। सकल रूपविशिष्ट।

सर्वरोग (सं० पु०) सकल प्रकार रोग, सब तरहकी पीड़ा। वैद्यकमें लिखा है, कि कुपित मल ही सब रोगोंका कारण है, मल शब्दसे वायु, पित्त और कफ समझा जाता है। वायु, पित्त और कफ कुपित हो कर ही रोगोत्पादन करता है। मल शब्दसे विष्ठाका भी बोध होता है, कोष्ठ परिष्कार न होनेसे सभी रोग हो सकते हैं।

सर्वरोहित (सं० त्रि०) सम्पूर्णरूपसे रक्तवर्णमण्डित।

सर्वर्त्तु (सं० पु०) सर्वः ऋतुः। सकल ऋतु, ग्रीष्म आदि षड् ऋतु।

सर्वर्त्तुक (सं० त्रि०) सब ऋतुमें उत्पन्न पुष्पमाल्य और फलादि द्वारा शोभित। (मनु ७।७६)

सर्वर्त्तुपरिवर्त्त (सं० पु०) वत्सर, वर्षमें छः ऋतुका परिवर्त्तन होता है। (जटाधर)

सर्वलवण (सं० क्ली०) औषर लवण।

सर्वला (सं० स्त्री०) सर्वं लातीति ला-क, टाप्। तोमर, लोहेका डंडा।

सर्वलिङ्गिन् (सं० त्रि०) १ सब प्रकारके ऊपरी आडम्बर रखनेवाला, पाषण्डी। २ सब प्रकार चिह्नधारी। (पु०) ३ नास्तिक।

सर्वलोक (सं० पु०) सर्वः लोकः। समस्त लोक, निखिल जगत्।

सर्वलोकधातूपद्रवोद्वेगप्रत्युत्तीर्ण (सं० पु०) बुद्ध।

सर्वलोकपितामह (सं० पु०) ब्रह्मा। ब्रह्माके आदेशसे मनुने इस जगत्की सृष्टि की, मनुके पिता ब्रह्मा हैं, इसलिये वे सकल लोकके पितामह कहलाते हैं। (मनु १।९)

सर्वलोकभयास्तम्भितत्वविध्वंसनकर (सं० पु०) बुद्धभेद।

सर्वलोकमय (सं० त्रि०) सकल लोकस्वरूप।

सर्वलोकान्तरात्मन् (सं० पु०) सर्वलोकान्तरव्यापी आत्माविशिष्ट, विष्णु। (भारत १३ प०)

सर्वलोकिन् (सं० त्रि०) सर्वलोकविशिष्ट, सकल लोकयुक्त।

सर्वलोकेश (सं० पु०) १ शिव। २ ब्रह्मा। ३ विष्णु। ४ कृष्ण।

सर्वलोकेश्वर (सं० पु०) सर्वलोकेश देखो।

सर्वलोचना (सं० स्त्री०) एक पौधा जो औषधके काममें आता है।

सर्वलोह (सं० पु०) १ लौहमय वाण। २ सब धातु।

सर्वलोहित (सं० त्रि०) सर्वरोहित।

सर्वलौह (सं० क्ली०) ताम्र, तांबा।

सर्ववर्ण (सं० क्ली०) सकल प्रकार वर्ण, ब्राह्मणादि।

सर्ववर्णिका (सं० स्त्री०) गाम्भारी वृक्ष। (जटाधर)

सर्ववर्मन् (सं० पु०) कातन्त्रसूत्रके प्रणेता एक वैयाकरण। शर्ववर्मन देखो।

सर्ववल्लभा (सं० स्त्री०) १ असती नारी, कुलटा स्त्री। (त्रि०) २ सबोंका प्रिय।

सर्ववाङ्निधन (सं० पु०) एकाहभेद।

सर्ववाङ्मय (सं० त्रि०) सकल वाक्यस्वरूप, प्रणव, सबी वाक्यका बीजभूत।

सर्ववादिन् (सं० त्रि०) १ सकल वादी, जो सब बोलें। (पु०) २ शिव। (भारत अनुशा०)

सर्ववास (सं० पु०) शिव।

सर्वविक्रयिन् (सं० त्रि०) सकल वस्तुविक्रयकारी, निषिद्ध वस्तुविक्रयकारी। (मनु० २।११८)

सर्वविग्रह (सं० पु०) शिव।

सर्वविज्ञानिन् (सं० त्रि०) सकल विज्ञानविशिष्ट, जो सब विज्ञान जानता हो।

सर्ववित् (सं० पु०) १ परमेश्वर, परब्रह्म। २ ओंकार। (त्रि०) ३ सर्वज्ञ।

सर्वविद्त्व (सं० क्ली०) सर्वविद्का भाव या धर्म, सर्वज्ञत्व।

सर्वविद्य (सं० त्रि०) सकल विद्याविशिष्ट, सब विषयमें विद्वान्।

सर्वविद्या (सं० स्त्री०) सकल विद्या, सब प्रकारकी विद्या।

सर्वविद्यामय (सं० पु०) सकल विद्यास्वरूप।

सर्वविद्यालङ्कार—संक्षिप्तसारकारकटिप्पणीके प्रणेता। ये गङ्घट्टवंशीय थे।

सर्वविद्याविनोद भट्टाचार्य (सं० पु०) पद्यावलीधृत एक कवि।

सर्वविश्व (सं० क्ली०) सकल विश्व, समुदय जगत्।

सर्ववीर (सं० त्रि०) जिसके बहुत-से पुत्र हों।

सर्ववीरजित् (सं० त्रि०) सकल वीरपुरुष-जयकारी।

सर्ववेत्तृ (सं० पु०) सर्वविद्-तृण्। सर्व-विद्, सर्वज्ञ।

सर्ववेद (सं० पु०) १ सर्ववेदाध्येता ब्राह्मण। (त्रि०) २ सर्वज्ञ।

सर्ववेदत्रिरात्र (सं० पु०) अहीनयागभेद। (शाङ्ख० श्रौ०)

सर्ववेदमय (सं० त्रि०) सकल वेदस्वरूप, प्रणव।

सर्ववेदस् (सं० पु०) सर्वस्वदक्षिण विश्वजिन्नामक यज्ञकारी। जिन्होंने सर्वस्वदक्षिणायुक्त विश्वजित् नामक यज्ञका अनुष्ठान किया है, उन्हें सर्ववेदस् कहते हैं।

सर्ववेदस् (सं० पु०) विश्वजित् याग। (मनु ११।१)

सर्ववेदसिन् (सं० त्रि०) सर्वस्व दक्षिणादानरूप यज्ञकारी।

सर्ववेदात्मन् (सं० पु०) सर्ववेदस्वरूप।

सर्ववेदिन् (सं० त्रि०) १ सर्ववेदविशिष्ट। २ जो सब जानते हों। (पु०) ३ शिव। (भारत)

सर्ववेशिन (सं० पु०) १ नट। (हेम) (त्रि०) २ सकल वेशधारी, जो सब प्रकारका वेश धारण करता हो।

सर्ववैनाशिक (सं० त्रि०) आत्मा आदि सबको नाशवान् माननेवाला, क्षणिकवादी, बौद्ध।

सर्वव्यापिन् (सं० त्रि०) १ सब पदार्थोंमें गमणशील, सबमें रहनेवाला। (पु०) २ ईश्वर। ३ शिव।

सर्वव्रत (सं० क्ली०) १ सकल व्रत। (त्रि०) २ सकल व्रतविशिष्ट।

सर्व्वशक्तिमान् (सं० त्रि०) १ सब कुछ करनेकी सामर्थ्य रखनेवाला। (पु०) २ ईश्वर।

सर्वशस् (सं० अव्य०) सर्व्व-चशस्। १ पूर्णरूपसे, समूचा। २ पूरा पूरा।

सर्व्वशाकुन (सं० क्ली०) सकल प्रकार शाकुन-शास्त्र। १ वृहत्संहितामें लिखा है, कि वराह-मिहिरने शिष्योंकी प्रीतिके लिये सर्वशाकुनसंग्रह प्रणयन किया। जितना प्रकारका शाकुनफल शास्त्रमें निर्दिष्ट है, संक्षिप्तभावसे इसमें सन्निविष्ट है। (वृहत्संहिता ८६।४)

सर्व्वशान्ति (सं० स्त्री०) सब प्रकारकी शान्ति।

सर्व्वशान्तिकृत् (सं० पु०) १ शकुन्तलाका पुत्र भरत-राज। (त्रि०) २ सकल समकारक, सब प्रकारका शान्ति करनेवाला।

सर्व्वशास (सं० त्रि०) सर्व्व शास्ति शास्-अच्। सबों-का शासक। (ऋक् ५।४४।४)

सर्व्वशास्त्र (सं० क्ली०) सब प्रकारका शास्त्र।

सर्व्वशास्त्रमय (सं० त्रि०) सर्वशास्त्रस्वरूपे मयट्। सकल शास्त्र-स्वरूप।

सर्व्वशुचि (सं० पु०) १ अग्नि जो सबको शुचि अर्थात् पवित्र करती है। २ सब पवित्र।

सर्व्वशुद्धवाल (सं० त्रि०) सकल शुभ्र केश, जिसके सब बाल उजले हो गये हों। (शुक्लयजु० २४।३)

सर्व्वशून्य (सं० त्रि०) सब शून्य। जिस व्यक्तिके लग्न-का दशवाँ शून्य अर्थात् कोई ग्रह न रहे, इस प्रकार रवि-का ग्यारहवाँ तथा चन्द्रका अठारहवाँ होनेसे सर्वशून्य होता है। ये सब प्रधान दारिद्र्ययोग हैं।

सर्व्वशून्यता (सं० स्त्री०) सर्व्वशून्यका भाव या धर्म।

सर्व्वशून्यवादिन् (सं० पु०) बौद्ध।

सर्व्वशूर (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

सर्व्वश्रेष्ठ (सं० त्रि०) सबसे बड़ा, सबसे उत्तम।

सर्व्वश्वेत (सं० त्रि०) सकल श्वेतवर्णविशिष्ट, सब सफेद।

सर्व्वश्वेता (सं० स्त्री०) सर्व्वपिका, एक प्रकारका विषैला कीड़ा। (सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०)

सर्व्वसंसर्गलवण (सं० क्ली०) औवर लवण।

सर्व्वसंस्थ (सं० त्रि०) सर्व्वरूप, सब रूपोंमें रहनेवाला।

सर्व्वसंहार (सं० पु०) काल।

सर्व्वस (हिं० वि०) सर्वस्व देखो।

सर्व्वसङ्कुत (सं० पु०) १ षष्टिकाधान्य, साठी धान।

(शब्दार्थ०) (त्रि०) २ सङ्गतियुक्त। ३ सर्वलोचित।

सर्वसत्वप्रियदर्शन (सं० पु०) १ बुद्ध। २ बोधिसत्व-भेद।

सर्वसत्वौजोहारी (सं० स्त्री०) राक्षसी। यह सब प्राणी का बल हरण करती है, इसलिये इसका यह नाम हुआ।

सर्वसत्य (सं० त्रि०) प्रकृत, यथार्थ।

सर्वसन्नहन (सं० क्ली०) समुदय सैन्य समवेत और सज्जित करना।

सर्वसन्नहनार्थक (सं० पु०) चतुरङ्गसैन्य-सन्नाह।

सर्वसन्नाह (सं० पु०) १ सर्वात्मा। २ सर्वसन्नहन।

सर्वसमता (सं० स्त्री०) सबोंके प्रति समान ज्ञान या व्यवहार। (मनु १२।१२५)

सर्वसमृद्ध (सं० त्रि०) सब विषयोंमें समृद्ध, सब विषयों-में सम्पन्न।

सर्वसम्पन्न (सं० त्रि०) सर्वसमृद्ध, सब विषयोंमें सम्पन्न।

सर्वसस्यान्नशस्या (सं० स्त्री०) वसुमती, पृथ्वी।

सर्वसम्भव (सं० पु०) सब विषयका प्रस्रवण स्वरूप, जहांसे सब विषय उत्पन्न हुआ हो।

सर्वसर (सं० पु०) मुखरोग विशेष, मुंहका एक रोग। इसमें छाले-से पड़ जाते हैं तथा खुजली तथा पीड़ा होती है। यह तीन प्रकारका होता है—वातज, पित्तज, और कफज। वातमें मुखमें सूई चुभनेकी-सी पीड़ा होती है। पित्तजमें पीले या लाल रंगके दाहयुक्त छाले पड़ते हैं। कफजमें पीड़ा रहित खुजली होती है।

मुखरोग देखो।

सर्वसह (सं० पु०) १ गुग्गुलु, गुग्गुल। (त्रि०) २ सकल सहिष्णु।

सर्वसहा (सं० क्ली०) पुराण-वर्णित ईप्सितप्रद गाभी-भेद। (भारत १३ प०)

सर्वसाक्षिन् (सं० पु०) १ सबोंका साक्षि-स्वरूप, ब्रह्म। २ अग्नि। ३ वायु।

सर्वसाद (सं० त्रि०) जिसमें सब लीन हो।

सर्वसाधन (सं० क्ली०) १ स्वर्ण, सोना। २ धन। (पु०) ३ शिव।

सर्वसाधारण (सं० त्रि०) १ सामान्य, जो सबमें पाया जाता हो, आम। (पु०) २ साधारण लोग, जनता, आम लोग।

सर्वसामान्य (सं० त्रि०) जो सबमें एक-सा पाया जाय, मामूली।

सर्वसार (सं० क्ली०) सब विषयोंका सार।

सर्वसारङ्ग (सं० पु०) एक नागका नाम।

(भारत आदिपर्व)

सर्वसारसंग्रहणीलिपि (सं० क्ली०) लिपिविशेष। ललित-विस्तरमें इस लिपिका उल्लेख देखनेमें आता है।

सर्वसारोपनिषद् (सं० क्ली०) उपनिषद्भेद।

सर्वसाह (सं० त्रि०) सर्वं सहते सह-ण्वि। सकल सहनकारी, सब सहन करनेवाला।

सर्वसिद्धा (सं० स्त्री०) शुक्लपक्षको चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी इन तीन तिथिकी राति।

सर्वसिद्धार्थ (सं० त्रि०) सर्वसिद्ध-काम्यफल, जिसका सब प्रयोजन सिद्ध हुआ हो। (मनु १।८३)

सर्वसिद्धि (सं० क्ली०) १ सब कार्यों और कामनाओं-का पूरा होना। २ पूर्ण तर्क। ३ श्रीफल, विल्व वृक्ष।

सर्वसिद्धि—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विजगापट्टम् जिलेका एक तालुक। भू-परिमाण ३११ वर्गमील है। खेलमञ्चिलि-नगर यहांका विचार-सदर है।

सर्वसुखदुःखनिरभिनन्दिन् (सं० पु०) समाधिभेद।

सर्वसुरभि (सं० पु०) सम्यक् सुरभि।

सर्वसूक्ष्म (सं० क्ली०) कृष्ण। (भारत १३ प०)

सर्वसेन (सं० त्रि०) कृत्स्नसेनायुक्त, समग्र सेना-विशिष्ट। (ऋक् १।३३।३)

सर्वसेन—यशोधरचरित और हरिविजयकाव्यके प्रणेता। ध्वन्यालोकमें आनन्दवर्द्धनने इनका उल्लेख किया है।

सर्वसौवर्ण (सं० त्रि०) सुवर्णमय। (पा ६।२।९३)

सर्वस्तोम (सं० पु०) १ एकाहभेद। (कात्या० श्रौ० २०।८।१३) (त्रि०) २ समग्र स्तोममन्त्रविशिष्ट।

सर्वस्व (सं० क्ली०) जो कुछ अपना हो वह सब किसीकी सारी सम्पत्ति, कुल माल मता।

सर्वस्वरित (सं० त्रि०) स्वरित पाठके युक्त।

(वाजसनेय प्राति० २।१)

सर्वस्वर्णमय (सं० त्रि०) सम्पूर्णरूपसे स्वर्णमण्डित।

सर्वस्वार (सं० पु०) एकाहभेद ।
सर्वस्विन् (सं० पु०) १ वर्णसंकर जातिविशेष । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके अनुसार इस जातिकी उत्पत्ति नापित पिता और गोपकन्या मातासे हुई है । (त्रि०) २ सकल धनविशिष्ट, सकल धनयुक्त ।
सर्वहत्या (सं० स्त्री०) सबोंका नाश ।
सर्वहर (सं० पु०) १ सब कुछ हर लेनेवाला । २ वह जो किसीको सारी सम्पत्तिका उत्तराधिकार हो । ३ महादेव, शंकर । ४ काल । ५ यमराज ।
सर्वहरण (सं० क्ली०) सकल हरण, सर्वनाश ।
सर्वहरि (सं० पु०) हरिमन्त्रमय सूक्त ।
सर्वहर्षकर (सं० त्रि०) सकल आनन्ददायक ।
सर्वहायस (सं० त्रि०) बहुबलयुक्त, बड़ा ताकतवर ।
सर्वहार (सं० पु०) सकल हर । (मनु ८।३९९)
सर्वहारिन् (सं० त्रि०) सकल हरणकारी, सब कुछ हरण करनेवाला ।
सर्वहित (सं० क्ली०) १ मरिच, मिर्च । (पु०) २ शाक्य मुनि, गौतम बुद्ध । (त्रि०) ३ सकल हितकारक ।
सर्वहुत् (सं० त्रि०) सर्वात्मक पुरुष जो यज्ञमें हुत होते हैं, उन्हें सर्वहुत् कहते हैं । (ऋक् १०।९०।८)
सर्वहुत (सं० पु०) यज्ञ । (अथर्व १८।४।१३)
सर्वहुति (सं० स्त्री०) यज्ञ, जिसमें नाना द्रव्यकी आहुति दी जाती है ।
सर्वहृद् (सं० त्रि०) अविकल हृदयविशिष्ट या सब ऋत्विकोंका हृदय । (ऋक् १०।१६०।३)
सर्वहोम (सं० पु०) यज्ञमें सब द्रव्योंका होम ।
सर्वाकरप्रभाकर (सं० पु०) समाधिभेद ।
सर्वाकारवरोपेत (सं० पु०) समाधिभेद ।
सर्वाक्ष (सं० पु०) रुद्राक्ष, शिवाक्ष ।
सर्वाक्षिरोग (सं० पु०) सर्व नेत्रगतरोग । समूची आँखमें यह रोग उत्पन्न होता है, इसलिये इसे सर्वाक्षिरोग कहते हैं । वाताभिष्यन्द, अधिमन्थ, हताधिमन्थ, अन्यतोवात, जिह्मनेत्र, पित्ताभिष्यन्द, रक्ताभिष्यन्द, शुष्काक्षिपाक, सशोफाक्षिपाक, अक्षिपाकात्यय, अम्लोषित, सन्निपाताभिष्यन्द, वातपित्ताभिष्यन्द, वातकफाभिष्यन्द और पित्तश्लेष्माभिष्यन्द सोलह प्रकारके सर्वाक्षिरोग हैं ।
सर्वाक्षी (सं० स्त्री०) दुग्धिका, दुधिया घास, दुद्धी ।
सर्वाख्य (सं० पु०) पारद, पारा ।
सर्वागमोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद ।
सर्वाग्नेय (सं० त्रि०) सकल अग्निसम्बन्धी ।
सर्वाङ्ग (सं० क्ली०) १ सम्पूर्ण शरीर, सारा बदन । २ सब अवयव या अंश । ३ सब वेदांग । (पु०) ४ महादेव ।
सर्वाङ्गरूप (सं० पु०) शिव ।
सर्वाङ्ग्य (सं० क्ली०) वह पद्य जिसके चारों चरणोंके अंत्याक्षर एक-से हों ।
सर्वाङ्गसुन्दर (सं० त्रि०) जिसका सारा अंग सुन्दर हो, मनोरम ।
सर्वाङ्गसुन्दररस (सं० पु०) कासाधिकारोक्त औषधविशेष । यह औषध शुभ दिनमें महादेव आदिकी पूजा कर सेवन करनी पड़ती है । इसके सेवनसे सब प्रकारके कासरोग जल्द दूर होते हैं । विशेषतः क्षय और राजयक्ष्मरोगमें यह बड़ा फायदेमंद है । वातपित्तज्वर, घोर सन्निपातज्वर, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, मेह और भगन्दर आदि रोगमें भी यह बड़ा फायदा पहुंचाता है ।

सर्वाङ्गसुन्दर-महागंधक—बालकोंके लिये महौषध । यह औषध ज्वर, ग्रहणी, प्रवाहिका, सूतिका, रक्तार्श आदि सर्वव्याधिविनाशक तथा बालका पिशाच, दानव आदि विघ्ननाशक है । (रसेन्द्रसार० ग्रहणी-रोगाधि०)
सर्वाङ्गिन् (सं० त्रि०) सर्वावयव सम्बन्धयुक्त, सर्वावयवव्याप्त ।
सर्वाजीव (सं० त्रि०) समस्त उपजीविकाविशिष्ट ।
सर्वाणी (सं० स्त्री०) शर्वाणी, दुर्गा । जो चराचर विश्वस्थ सभीको मोक्ष देती हैं उन्हें सर्वाणी कहते हैं ।
सर्वातिथि (सं० पु०) वह जो सबका आतिथ्य करे, वह जो सब आये लोगोंका सत्कार करे ।
सर्वातिरथजित् (सं० त्रि०) सब अतिरथोंको जय करनेवाला । (भागवत)
सर्वातिसारिन् (सं० त्रि०) सब प्रकार अतिसारयुक्त ।
सर्वात्मक (सं० पु०) सर्वात्मन्, सर्वस्वरूप ।
सर्वात्मदृश् (सं० त्रि०) सर्वद्रष्टा, सब कुछ देखनेवाला ।
सर्वात्मन् (सं० पु०) १ सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त चेतन

सत्ता, सबकी आत्मा, ब्रह्म। २ शिवका एक नाम। ३ अर्हत्, जिन।

सर्वाधार (सं० पु०) सर्वोका आधार।

सर्वाधिकार (सं० पु०) १ सब कुछ करनेका अधिकार, पूर्ण प्रभुत्व, पूरा इख्तियार। २ सब प्रकारका अधिकार।

सर्वाधिकारिन् (सं० पु०) १ पूरा अधिकार रखनेवाला, वह जिसके हाथमें पूरो इख्तियार हो। २ हाकिम।

सर्वाधिपत्य (सं० क्ली०) सर्वोका आधिपत्य, सबोंके ऊपर प्रभुत्व।

सर्वाध्यक्ष (सं० पु०) सर्वोका अध्यक्ष।

सर्वान् (शरवाण)—युक्तप्रदेशके अयोध्या विभागान्तर्गत उनाव जिलेका एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २६° ३६´ उ० तथा देशा० ८०° ५६´ पू०के मध्य उनाव नगरसे २६ मोल पूर्व और पूर्वासे ६ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहांके प्राचीन कीर्त्तिस्वरूप यहां एक शिवमन्दिर विद्यमान है। इस नगरकी प्राचीनताके सम्बन्धमें कहते हैं, कि अयोध्यापति महाराज दशरथ एक समय इस प्रदेशमें शिकार खेलनेको आये। रात हो जाने पर उन्होंने सर्वरा नामक स्थानमें एक तालावके किनारे खेमा डाला। ठीक दो पहर रातको वहां सर्वान् नामक एक वैश्य ऋषि आये। वे अपने अन्ध मातापिताके साथ तीर्थपर्यटनको निकले थे। सर्वान्को बड़ी प्यास लगी, इस कारण वे पितामाताको अपने कंधे परसे जमीन पर रख आप पानी पीने तालावमें गये। जलके बुदबुद शब्दसे राजाने समझा, कि कोई जंगली जानवर पानी पीने आया है। अस्तु उन्होंने उस शब्दको लक्ष्य कर वाण फेंका। वाण लगने पर सर्वान उसी जगह चित हो रहे। उनके आर्त्तनादसे पितामाताने पुत्रका सर्वनाश समझ पुत्रघातीको अभिशाप दिया और दोनों देहत्याग कर स्वर्गगामी हुए।

सर्वान्के नामानुसार यह स्थान पीछे सर्वान् कहलाया तथा यहां एक नगर भी प्रतिष्ठित हुआ। ऋषिका अभिशप्त स्थान जान कर किसी भी क्षत्रियसन्तानने यहां बसना नहीं चाहा। क्योंकि-जिस किसीने कभी यहां आ कर वास किया, उसका किसी न किसी प्रकार अमङ्गल हुआ ही। आज भी सर्वान् नगरमें वह दिग्गी मौजूद है। उसीके किनारे एक वृक्षके नीचे सर्वान्की प्रस्तरप्रतिमूर्त्ति दिखाई देती है। सर्वान्की प्यास यहां बुझने न पाई थी, कि वे मारे गये। स्थानीय लोग उस पिपासातुर ऋषिप्रेतकी शान्तिकामनासे उस प्रस्तरमूर्त्तिके नाभिकुण्डमें जल देने आते हैं। आश्चर्यका विषय है, कि नाभिकुण्डमें जितना भी जल क्यों न दिया जाय, वह तुरत सूख जाता है।

सर्वानन्द (सं० त्रि०) १ सब विषयमें आनन्दयुक्त, जिसे सब विषयमें ही आनन्द हो। (पु०) २ सब प्रकारका आनन्द।

सर्वानन्द—१ पद्यावलीधृत एक कवि। २ त्रिपुरार्च्चनदीपिकाके प्रणेता। ३ सन्ध्यामालाकाव्यके रचयिता।

सर्वानन्द कवि—सदुपदेशरत्नाकरके प्रणेता।

सर्वानन्दनाथ—सर्वोल्लासतन्त्रके रचयिता।

सर्वानन्द मिश्र—एक विख्यात पण्डित। इनके वंशमें सांख्यतत्त्वविलासके प्रणेता रघुनाथ तर्कवागीश भट्टाचार्य आविर्भूत हुए।

सर्वानन्द वन्द्यघटीय—अमरकोष टीकाके प्रणेता। १०८१ शकाब्दमें उक्त टीका रची गई। रायमुकुटने इनका मत उद्धृत किया है।

सर्वानवद्याङ्ग (सं० त्रि०) सकल अनिन्दित अङ्ग सम्पन्न, सकल सुन्दर अङ्गयुक्त।

सर्वानुकारिणी (सं० स्त्री०) शालपर्णी।

सर्वानुक्रमणिका (सं० पु०) वेदकी अनुक्रमणिका।

सर्वानुदात्त (सं० त्रि०) सकल अनुदात्त स्वरविशिष्ट।

सर्वानुभू (सं० त्रि०) सब विषयोंका अनुभव करनेवाला।

सर्वानुभूति (सं० स्त्री०) १ श्वेतत्रिवृता। (अमर) (पु०) २ चौबीस भूत अर्हतोंमेंसे एक। (हेम)

सर्वान्तक (सं० त्रि०) सबोंका अन्त करनेवाला।

सर्वान्तकृत् (सं० त्रि०) सबोंका अन्त करनेवाला।

सर्वान्तर (सं० पु०) सकल अन्तरयुक्त।

सर्वान्तरस्थ (सं० त्रि०) सकल अन्तरस्थित।

सर्वान्तरात्मन् (सं० पु०) सबोंकी अन्तरात्मा।

सर्वान्तर्यामिन् (सं० पु०) वह जो सबके मनकी बात जानता हो।

सर्वान्नभक्षक (सं० त्रि०) सर्वान्नभोजी। सर्वान्न खानेसे प्रायश्चित्त करना होता है। जो प्रायश्चित्त नहीं करता, वह पतित होता है। प्रायश्चित्त देखो।

सर्वान्नभोजिन् (सं० त्रि०) चारों वर्णों का अन्न खानेवाला।

सर्वान्नीन (सं० त्रि०) सर्वान्नानि भक्षयतीति सर्वान्न (अनुपदसर्वान्नायानयमिति। पा ५।२।९) इति ख। सर्वान्नभोजी, सबोंका अन्न खानेवाला।

सर्वापरत्व (सं० क्ली०) सर्व और अपरका भाव और धर्म।

सर्वाप्ति (सं० स्त्री०) सब विषयोंकी प्राप्ति।

सर्वाभाव (सं० पु०) सब प्रकारका अभाव।

सर्वाभिभू (सं० पु०) १ बुद्ध। (ललितवि०) (त्रि०) २ सबोंका अभिभव करनेवाला।

सर्वाभिसन्धक (सं० त्रि०) सबको धोखा देनेवाला।

सर्वाभिसन्धिन् (सं० त्रि०) १ वैड़ालव्रतिक, छद्मतापस। २ सकलाभिसन्धानविशिष्ट।

सर्वाभिसार (सं० पु०) चतुरङ्ग सैन्यसन्नाह, चढ़ाईके लिये सम्पूर्ण सेनाकी तैयारी या सजाव।

सर्वामात्य (सं० पु०) किसी परिवार या गृहस्थीमें रहनेवाले घरके प्राणी, नौकर चाकर आदि सब लोग।

सर्वायनी (सं० स्त्री०) सफेद निसोथ।

सर्वायस (सं० त्रि०) सकल लौहमय।

सर्वार—राजपूतानेके किसनगंज राज्यके अन्तर्गत एक नगर।

सर्वार्थ (सं० पु०) १ सकल अर्थ, कोई प्रयोजन। (त्रि०) २ सकल प्रयोजनविशिष्ट।

सर्वार्थचिन्तक (सं० त्रि०) सर्वार्थ विषयकी चिन्ता करनेवाला। राजा प्रत्येक नगरमें एक एक सर्वार्थचिन्तक नियुक्त करें। (मनु ७।१२१)

सर्वार्थनामन् (सं० पु०) बोधिसत्वभेद।

सर्वार्थसाधक (सं० त्रि०) सकल प्रयोजनकारी, सर्वार्थसाधनकारी।

सर्वार्थसाधन (सं० क्ली०) सब प्रयोजन सिद्ध होना, सारे मतलब पूरे होना।

सर्वार्थसाधिका (सं० स्त्री०) दुर्गा।

सर्वार्थसिद्ध (सं० पु०) १ शाक्यमुनि, बुद्ध। (त्रि०) २ सकल प्रयोजन सिद्धियुक्त।

सर्वार्थसिद्धि (सं० पु०) १ जैनमतसे देवगणभेद। (स्त्री०) २ सब अर्थकी सिद्धि।

सर्वार्थानुसाधिनी (सं० स्त्री०) दुर्गा।

सर्वावसर (सं० पु०) अर्द्धरात, आधी रात।

सर्वावसु (सं० पु०) सूर्यरश्मिभेद, सूर्यकी एक किरण का नाम।

सर्वावास (सं० पु०) शिव। (भारत १२ पर्व)

सर्वाशय (सं० पु०) १ सबका शरण या आधार स्थान। २ शिव।

सर्वाशिन् (सं० त्रि०) सर्वभक्षक, सब कुछ खानेवाला।

सर्वाश्चर्यमय (सं० त्रि०) सकल आश्चर्यस्वरूप, अच्युत। (भाग० ३।८।१६)

सर्वाश्य (सं० क्ली०) सर्व भक्ष्य।

सर्वाश्रमिन् (सं० त्रि०) सकल आश्रमविशिष्ट।

सर्वास्तिवाद (सं० पु०) वह दार्शनिक सिद्धान्त कि सब वस्तुओंकी वास्तव सत्ता है, वे असत् नहीं हैं। यह बौद्धमतकी वैभाषिक शाखाको चार भिन्न भिन्न मतोंमेंसे एक है जिसके प्रवर्त्तक गौतम बुद्धके पुत्र राहुल माने जाते हैं।

सर्वास्तिवादिन् (सं० त्रि०) सर्वास्तिवादको माननेवाला, बौद्ध।

सर्वास्त्रमहाज्वाला (सं० स्त्री०) जैनोंकी सोलह विद्यादेवियोंमेंसे एक।

सर्वास्त्रा (सं० स्त्री०) १ जैनोंको सोलह विद्यादेवियोंमेंसे एक। (हेम) २ सकल अस्त्रयुक्ता।

सर्वास्य (सं० क्ली०) सब मुख।

सर्वाहम्मानिन् (सं० त्रि०) मैं ही सब कुछ हूं ऐसा जो समझते हैं।

सर्वाह्न (सं० पु०) समस्त दिन, सारा दिन।

सर्वाह्निक (सं० त्रि०) समूचे दिनका, सारा दिनसम्बन्धी।

सर्वीय (सं० त्रि०) सर्वस्मै हितः सर्व (सर्वाययस्य वा वचनं। पा ५।१।१०) इति छ। सर्व-सम्बन्धी।

सर्वे (अं० पु०) १ भूमिको नाप जोख, पैमाइश। २ वह

सरकारी विभाग जो भूमिको नाप कर उसका नकशा बनाता है।

सर्वेपल्ली—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके नल्लूर जिलेके गुद्दूर तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १४° १७′ ३०″ तथा देशा० ८०° ०′ ४०″ पू०के बीच पड़ता है। यहां रोहिलोंका एक प्राचीन दुर्ग है। फसलका खेत सींचनेके लिये यहां एक सुन्दर दीर्घिका है।

सर्वेश (सं० पु०) सर्वस्य ईशः। सर्वेश्वर।

सर्वेश्वर (सं० पु०) १ शिव। २ ईश्वर। ३ चक्रवर्त्ती, राजा। ४ सबका स्वामी, सबका मालिक। ५ एक प्रकारकी औषधि।

सर्वेश्वर—१ कामसूत्रटीकाके प्रणेता भास्करनृसिंहके गुरु। २ पद्यावलीधृत एक कवि।

सर्वेश्वरत्व (सं० क्ली०) सर्वेश्वरका भाव या धर्म।

सर्वेश्वर देव—एक हिन्दू नरपति।

सर्वेष्ट्द (सं० त्रि०) अभिलषित वस्तुदानकारी।

सर्वैश्वर्य (सं० क्ली०) सब प्रकारका ऐश्वर्य।

सर्वोरु त्रिवेदी—विवादसारार्णव नामक एक व्यवहार शास्त्रके प्रणेता। ये मिथिलावासी व्यवहार-शास्त्रविद् थे। सर विलियम जोन्सके अनुरोधसे इन्होंने उक्त ग्रन्थ लिखा।

सर्वोल्लासतन्त्र—एक तन्त्रग्रन्थ, सर्वानन्दनाथ विरचित।

सर्वोच्छेदन (सं० क्ली०) समूल उच्छेद।

सर्वोत्तम (सं० त्रि०) सबसे श्रेष्ठ, सबमें उत्तम।

सर्वोदात्त (सं० त्रि०) सकल उदात्त स्वरविशिष्ट।

सर्वोद्युक्त (सं० त्रि०) सब विषयमें उद्योगी।

सर्वोपध (सं० त्रि०) सकल उपधास्वरयुक्त।

सर्वोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद। इस उपनिषद्का शङ्कराचार्य प्रणीत भाष्य देखनेमें आता है।

सर्वौघ (सं० पु०) १ चतुरंग सैन्यसन्नाह, सर्वाङ्गपूर्ण सेना। २ एक प्रकारका मधु या शहद।

सर्वौषध (सं० क्ली०) सर्वौषधि।

सर्वौषधि (सं० स्त्री०) आयुर्वेदमें ओषधियोंका एक वर्ग जिसके अन्तर्गत दस जड़ी बूटियाँ हैं। जैसे—कुष्ठ, जटामांसी, हरिद्रा, वच, शैलेय, चन्दन, मुरा, रक्तचन्दन, कर्पूर और मुस्त।

अन्यविध—मुरा, जटामांसी, वच, कुष्ठ, शिलाजतु, रजनीद्वय (हरिद्रा और दारुहरिद्रा), चम्पक, शटी और मुस्त इन सब द्रव्योंका नाम सर्वौषधि है।

ग्रहवैगुण्य, संक्रान्ति और अशुभ आदि होनेसे सर्वौषधि जलमें स्नान करनेसे शुभ होता है। महास्नानमें भी सर्वौषधि और महौषधिसे देवताका स्नान कराना होता है। पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें इन सर्वौषधियोंका विषय इस प्रकार लिखा है—

हरिद्रा, चन्दन, दारुहरिद्रा, मुस्ता, देवताड़क, धन्याक, जीरक, मेथी, धात्रीफल, उशीरक, त्रिसुगन्धि, शटी, गन्धमाद्री, कर्पूर, वच, नखी, मरुवक, कुष्ठ, देवदारु, विड़ङ्ग, सरल, पद्मकाष्ठ, वालक, भद्रमुस्त, ग्रन्थिक, जटामांसी, पलाश, शैलज, शमी, अर्कपर्ण, गरुड़, दूर्वा, मुरामांसी, कुङ्कुम, अपामार्ग, मधुरिका, विकासा, खदिर, कुश, चातुर्जातकसत्त्व, अष्टवर्ग, यज्ञडुम्बुर, नागेश्वर, कस्तूरी, त्रिफला, पद्मकेशर, कक्कोल, धातकीपुष्प, त्रिकटु, रेणुक, यव, तिल, कुन्दुरु, ललुक, भार्गी, गोरोचना, वक, शुण्ठीपुष्प, तुहुली श्रीफल, वंशलोचन, इन्दीवर, बहुसुता, वकुल, मालतीदल, इन्द्रवीज, कोकनद, जयन्ती, गजपिप्पल और श्वेतापराजिता पुष्प, ये सब सर्वौषधिगण हैं।

सर्वौषधिनिष्यन्दा (सं० स्त्री०) लिपिविशेष।

सर्षप (सं० पु०) सरतीति सृ गतौ (सर्त्तेरपः षुक् च। उण् ३।१४१) इति अपः षुगागमश्च। १ शस्यविशेष। प्रचलित भाषामें इसे सरसों कहते हैं। संस्कृत-पर्याय—तन्तुभ, कदम्बक, सरिषप, तण्डुक, सर्षप, राजक्षवक। (राजनि०) इसके गुण—कफवातघ्न, तीक्ष्ण, उष्ण, रक्तकारक, कटु, कृमि और कुष्ठनाशक। सरसों दो तरहकी होती है, काली और गोरी। इसके दाने दो तरहके हैं—एक छोटे छोटे दाने, दूसरे बड़े बड़े दानेवाली राई सरसों नामसे मशहूर हैं। गोरी सरसोंको बाजारमें सफेद सरसों भी कहते हैं।

सरसोंका पौधा भारतवर्षके विभिन्न विभागमें विभिन्न आकारका होता है। इसका पौधा अन्ततः छोटे-

से छोटा एक बालिस्त और बड़े से बड़ा दो ढाई या तीन हाथ तक देखा जाता है। नदी तट पर जो सरसों पैदा होती है, वह प्रायः तीन तीन हाथ ऊंची होती है। इसका अग्रभाग नोकदार होता है। इसकी फली लम्बी और नोकदार होती है। इसकी फली मटरकी फलीकी तरह दो भागोंमें विभक्त की जा सकती है। इसके बीचमें १५ से २० तक दाने रहते हैं। इन बीजोंके पक जाने पर वृक्ष समेत यह फलियां सूख जाती हैं। उस समय किसान उन्हें काट कर खलिहानके एक कोनेमें रख देते हैं। जब धूपमें ये खूब सूख जाते हैं, तब इसे झाड़ कर इससे सरसों निकाल ली जाती है।

पाश्चात्य उद्भिद्विद् इस श्रेणीके तैलकर बीजको Brassica नामसे पुकारते हैं और उन्होंने इसको दो भागोंमें विभक्त किया है। १ एशियाई सरसों और २ यूरोपीय। एशिया खण्डमें सब तरहकी पैदा होनेवाली सरसोंको एशियाई और यूरोपके सारे देशोंमें पैदा होनेवाली सरसोंको यूरोपीय सरसों कहते हैं। इन दोनों महादेशजात सरसोंमें और भी सैकड़ों प्रकारके भेद हैं। इन सबोंमें कई तरहकी सरसों साधारणतः बाजारोंमें बिकती हैं। अन्यान्य तैलकर बीजोंमें सरसों भारतीय वणिकोंका एक प्रधान उपकरण है। साधारणकी जानकारीके लिये नीचे कई तरहकी सरसोंका वर्णन किया जाता है—

१ सफेद सरसों—The white mustard (B. alba) यह यूरोप और पश्चिम एशियाखण्डके दक्षिणांशमें प्रचुर परिमाणसे उत्पन्न होती है। पीली हल्दीके रङ्गके फूलोंके सिवा इसके पौधोंके पहचाननेका अन्य कोई सहज उपाय नहीं है। इसकी फलीमें कम तायदादमें दाने रहते हैं।

हिन्दीमें तो इसे सफेद सरसों या सफेद राई भी कहते हैं। गुजराती भाषामें—उजली राई, मराठी—पान्धोरा-मोहरे; तामिलमें—वेलई-कोदुगु; तेलगू—तेल्ल अवलु; मलयालम्—वेल्ल-कदुक; कनाड़ी—बिलिसासवे, संस्कृत—सिद्धार्थ, श्वेत सर्षप; अरबीमें—खर्दने आबयाज; फारसीमें—सिपान्दने सुपीद कहते हैं।

इसके बीज कुछ बड़े और सफेद होते हैं। इन बीजोंसे बहुत कम तेल निकलता है, तेलकी अपेक्षा तेल निकालनेका खर्च अधिक पड़ जाता है, इससे कोई इस बीजसे तेल नहीं निकालते। इसका चूर्ण भी वैसा फलदायक नहीं होता, किन्तु इसमें तेजी काली सरसों मिला कर चूर्ण करनेसे यह व्यवहारके उपयुक्त होती है। इसमें Sulphocyanate of acrinyl रहनेसे यह शीतल जलमें घोल कर शरीरमें लेपनेसे ज्वाला अनुभूत होती है।

इसके पत्तोंकी भाजी बना कर भी लोग खाते हैं। इसको कोमल पत्तियोंकी चटनी बना कर भी यूरोप या भारतमें खाते हैं। यूरोपवाले बकरोंकी पुष्ट करनेके लिये इसकी खली उन्हें खिलाते हैं।

काली सरसों—B. Campestris। यही भारतका एक प्रधान अनाज है। इसके पत्ते रुएदार होते हैं। इस श्रेणीमें B. glauca=राड़-सरसों, सफेद राई या राजिका गृहीत हुई हैं। काली सरसोंकी अपेक्षा इस राजिकासे ही अधिक परिमाणमें तेल निकलता है। इस कारणसे यूरोपीय वणिक् इसे समधिक समादरके साथ लेते हैं। वे इसे Rape-seed कहते हैं।

तेली कोल्हूमें पेर कर इसका तेल निकालते हैं। सरसोंसे सम्पूर्णरूपसे तेल बाहर नहीं निकलता इसलिये शोरगुजा आदि अन्यान्य तैलकर बीजोंको भी इसमें मिलाते हैं। प्रायः प्रति मनमें कमसे कम १३ सेर तेल और २७ सेर खली होती है।

इसका शुद्ध तेल चर्मरोगके लिये बहुत उपकारी है। उत्तमरूपसे इसे शरीरमें मालिश करने पर बलवृद्धि तथा मांसपेशियां दृढ़ होती हैं, शरीरमें किसी तरहकी चुनचुनाहट शान्त तथा चमड़ा शीतल होता है। सरसोंके शुद्ध आध छटांक तेलमें आध आना भर कपूर मिला कर प्रयोग करने पर गरदनकी आकस्मिक वेदना और वातव्याधि उपशम होती है। सुकुमार बालक-बालिकाओंके सर्दीसे होनेवाले ज्वरमें श्वास प्रश्वास लेनेका कष्ट होने पर पैरके तलवों और वक्षमें कपूर मिश्रित सरसोंका तेल मालिश करने पर विशेष उपकार होता है। केवल शुद्ध सरसोंका तेल मालिश करने पर डेंगु नामक ज्वरमें लाभ होता देखा गया है। शुद्ध सरसोंके तेलमें नमक

मिला गर्म कर बालक बालिकाओंके सर्दीजनित ज्वरमें उनके पैरके तलवे, वक्ष, कण्ठ और रगोंमें मालिश करने पर दो दिनमें हा सर्दीकी शान्ति होती है।

इसी श्रेणोकी शाहजादा-राई दूसरी एक तरहकी सरसों है। यह राई या राई सरसोंके नामसे भी प्रसिद्ध है। भारतमें इसकी खेती बहुतायतसे होती है। युक्त-प्रदेश और अयोध्याके कृषिक्षेत्रमें बीच बीच या बगलमें किनारे किनारे बोई जाती है। पश्चिम देशोंमें मिश्र और पूर्वके चीन तक यही सरसों थोड़ी बहुत उत्पन्न होते दिखी जाती है। रूस साम्राज्यके दक्षिण, कास्पीय-सागरके उत्तर-पूर्वस्थ ष्टेपी प्रान्तर, सरेप्ता, सारादु और मध्य अफरिकामें यह प्रभूत परिमाणमें उत्पन्न होती है। सफेद या काली सरसोंकी तरह इसका रङ्ग भूरा (brown) है। तेलका गुण प्रायः ही समान है। इसका पत्ता मनुष्य और गाय खाती है। काली-राई या तीरा B. nigra मकरा राई नामसे भी कहीं कहीं प्रसिद्ध है। भारत और तिब्बतके पार्वतीय प्रदेशमें तथा मध्य और दक्षिण यूरोपके प्रायः सभी जगह इसी जातिकी राई सरसों उत्पन्न होती है। थिओफ्रासटस, दाउसकोरिडिस, प्लिनि आदि पाश्चात्य पण्डितोंने इस सरसोंके व्यवहारका उल्लेख किया है। यूरोपमें खाद्य द्रव्यरूपसे ईस्वीसन्‌की १३वीं शताब्दीमें इसकी खेती की गई है। सन् १६६० ई०में इसका तेल पहले परीक्षित हुआ था।

इसके बीजसे सैकड़ा प्रायः २३ भाग तेल होता है। इस तेलमें glycerides, stearic, oleic, erucic और brassic एसिड मिलते हैं। जल द्वारा तेल संशोधन कर लिया जाता है। यह सूखता नहीं, ०° फारेन हिटमें जम जाता है। शुद्ध सरसोंके तेलमें विशेष कोई गन्ध नहीं। फिर जो हम नाकसे अनुभव करते हैं, वह केवल अन्य तैलकर बीजके मिश्रणके फलसे ही होता है। इसमें Myrosin रहनेसे शरीरमें 'फोस्का' उत्पादनका कार्य करता है और सरसोंके चूर्णके प्रलेपसे वेदनादि उपशम होती है।

पहले ही कह आये हैं, कि सरसों एक भारतीय प्रधान वाणिज्य पण्यद्रव्य है। बङ्गालसे प्रतिवर्ष १७ लाख, बम्बईसे प्रायः १३ लाख, सिन्धुप्रदेशसे ६ लाख और मद्रासले १ लाख मन सरसों इङ्गलण्ड, अष्ट्रिया, बेल्जियम, डेनमार्क, फ्रान्स, जर्म्मनी, इटली, मिश्र, अदन आदि पाश्चात्य देशोंमें रफतनी होती है।

तेलका गुण—तिक्त, कटु, वातकफविकारनाशक, पित्तवर्द्धक, अस्रदोषप्रद, कृमि, कुष्ठनाशक और तिलतेलको तरह आँखके लिये हितकारक है। इसके शाकका गुण—अत्युष्ण, रक्तपित्तप्रकोपन, विदाही, कटुक, स्वादु, शुक्रनाशक और रुचिकर। (राजनि०) राजिका शब्द देखो। २ सरसों भरका मान या तौल। ३ एक प्रकारका विष।

सर्षपक (सं० पु०) एक प्रकारका सांप।

सर्षपकन्द (सं० पु०) एक प्रकारका पौधा जिसकी जड़ विष होती है।

सर्षपकी (सं० स्त्री०) एक विषैला कीड़ा।

सर्षपतैल (सं० क्ली०) सर्षपजातस्नेह, सरसोंका तेल।

सर्षपनाल (सं० क्ली०) सर्षपदण्ड, सरसोंका साग।

सर्षपा (सं० स्त्री०) श्वेतसर्षप, सफेद सरसों।

सर्षपारुण (सं० पु०) पारस्कर गृह्यसूत्रके अनुसार असुरोंका एक नाम। (पारस्क० गृ० १।१६)

सर्षपिक (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका बहुत जहरीला कीड़ा जिसके काटनेसे आदमी मर जाता है।

सर्षपिका (सं० स्त्री०) १ शुकरोगभेद, एक प्रकारका लिङ्गरोग। इस रोगमें लिङ्ग पर सरसोंके समान छोटे छोटे दाने निकल आते हैं। यह रोग प्रायः दुष्ट मैथुनसे होता है। शूकरोग देखो। २ मसूरिका रोगका एक भेद। मसूरिका देखो। ३ सर्षपिक नामका जहरीला कीड़ा।

सर्षपी (सं० स्त्री०) १ खञ्जनिका, ममोला। २ खाविका। ३ श्वेत सर्षप, सफेद सरसों। ४ पीड़काविशेष, एक प्रकारके छोटे दाने जो शरीर पर निकल आते हैं।

सर्षांका (सं० स्त्री०) छन्दोभेद, विराट्छन्द।

सर्साबा—युक्तप्रदेशके शहारनपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह शहारनपुरसे १० मील पश्चिममें अम्बाला जानेके रास्ते पर पड़ता है। पंजाब प्रदेशमें यहांका थोड़ा बहुत वाणिज्य चलता है।

जेनरल कनिंहम इस स्थानको राजा चाँदकी राजधानी सर्वा या सरसारहा अनुमान कर गये हैं। गजनी-

पति मह्मूदने १०१६ ई०में यह नगर लूटा था। पलातक राजा और उनके अनुचरोंको पासके पर्वतके जंगलोंमें परा जित कर उन्हें काफी रकम हाथ लगी थी।
सर्सों (हिं० स्त्री०) सरसों देखो।
सर्हद (फा० स्त्री०) सरहद देखो।
सलंवा नोन (हिं० पु०) काच लवण, कचिया नोन।
सल (सं० क्ली०) १ जल, पानी। २ सरल वृक्ष। ३ एक प्रकारका कीड़ा जो प्रायः घासमें रहता है। उसे चींट भी कहते हैं।
सलई (हिं० स्त्री०) १ शल्लकी वृक्ष, चीढ़। २ चीढ़का गोंद, कुंदुर।
सलक (अ० पु०) कन्दशाक, चुकन्दर।
सलक्षण (सं० त्रि०) लक्षणयुक्त।
सलक्ष्मन (सं० त्रि०) चिह्नयुक्त।
सलखगात (हिं० पु०) कच्छप, कछुआ।
सलगम (फा० पु०) शलजम देखो।
सलज (हिं० पु०) पहाड़ी बरफका पानी।
सलजम (फा० पु०) शलजम देखो।
सलज्ज (सं० त्रि०) लज्जाया सह वर्त्तमानः। लज्जाविशिष्ट, जिसे लज्जा हो, शर्म और हयावाला।
सलटुक (सं० क्ली०) चौलाईका साग।
सलतनत (अ० स्त्री०) १ राज्य, बादशाहत। २ साम्राज्य। ३ प्रबन्ध, इंतजाम। ४ सुभीता, आराम।
सलना (हिं० क्रि०) १ साला जाना, छिदना, भिदना। २ किसी छेदमें किसी चीजका डाला या पहनाया जाना। (पु०) ३ लकड़ी छेदनेका बरमा।
सलना (सं० क्ली०) मोती।
सलपत्र (सं० क्ली०) गुड़त्वक्, दाल चीनी।
सलब (अ० वि०) नष्ट, बरबाद।
सलमह (फा० पु०) बथुआ नामका साग।
सलमा (अ० पु०) सोने या चांदीका बना हुआ चमकदार गोल लपेटा हुआ तार जो टोपी साड़ी आदिमें बेल बूटे बनानेके काममें आता है। इसे बादला भी कहते हैं।
सलल्लुक (सं० त्रि०) सरणशील, गमनशील।
सलवट (हिं० स्त्री०) सिलवट देखो।
सलवण (सं० त्रि०) लवणयुक्त, नमकीन।

सलवन (हिं० पु०) सरिवन।
सलवात (अ० स्त्री०) १ बरकत। १ कुवाच्य, गाली। ३ रहमत, मेहरबानी।
सलसलबोल (अ० पु०) बहुमूत्र रोग या मधु प्रमेह नामक रोग।
सलसलाना (हिं० क्रि०) १ धीरे धीरे खुजली होना, सरसराहट होना। २ गुदगुदी होना। ३ कीड़ोंका पेटके बल चलना, सरसराना, रेंगना। ४ खुजलाना। ५ गुदगुदाना। ६ शीघ्रतासे कोई कार्य्य करना।
सलसलाहट (हिं० स्त्री०) १ सलसल शब्द। २ खुजली, खारिश। ३ गुदगुदी, कुलकुली।
सलसी (हिं० स्त्री०) माजूफलको जातिका एक प्रकारका बड़ा वृक्ष जो बूक भी कहलाता है। बूक देखो।
सलहज (हिं० स्त्री०) सालेकी स्त्री, सरहज।
सलाई (हिं० स्त्री०) १ धातुकी बनी हुई कोई पतली छोटी छड़ी। २ दिया-सलाई। ३ सालनेकी क्रिया या भाव। ४ सालनेकी मजदूरी। ५ शल्लकी, सलई। ६ चीड़की लकड़ी।
सलाख (फा० स्त्री०) १ धातुकी बनी हुई छड़, शलाका, सलाई। २ लकीर, खत।
सलाजीत (हिं० स्त्री०) शिलाजीत देखो।
सलाद (हिं० पु०) १ गाजर, मूली, राई, प्याज आदिके पत्तोंका अंगरेजी ढंगसे सिरके आदिमें डाला हुआ अचार। २ एक विशिष्ट जातिके कन्दके पत्ते जो प्रायः कच्चे खाये जाते हैं और बहुत पाचक होते हैं। इसके कई भेद होते हैं।
सलावत् खां—एक मुसलमान उमराव। ये मुगल सम्राट् शाहजहां बादशाहके अधीन मीर-बक्सीका कार्य्य करते थे। किसी कारण वशतः गजसिंहके पुत्र अमरसिंह राठोर नामक एक राजपूत सरदारके साथ इनका विवाद खड़ा हुआ। राजपूत वीरने १६४४ ई०में एक दिन शामको आगरा-दुर्गमें सम्राट्के सामने ही मीरबक्सीके प्राण ले लिये। सम्राट्के अनुचरोंने उसी समय उनका पीछा कर दुर्गद्वारके पास उन्हें मार डाला। तभीसे वह द्वार 'अमरसिंह दरवाजा' नामसे प्रसिद्ध हुआ है।
सलावतजङ्ग—दाक्षिणात्यके एक मुसलमान अधिपति।

थे निजाम उल-मुल्क आसफ-जाके तृतीय पुत्र थे। १७४१ ई०में नवाव मुजफ्फरजङ्ग गुप्तहत्याकारीके द्वारा मारे गये। इस समय फरासियोंने एकमत हो कर सलावत् जङ्गको ही दाक्षिणात्यका सिंहासन दिया। इस प्रत्युपकारमें नवाव सलावत् जङ्गने फरासी सेनापति मुसो बुसीको अपने दरवारके उमरावमें गिना तथा फरासी जातिके प्रति कृतज्ञता दिखानेके लिये उन्होंने उत्तर-सरकार प्रदेश बूसीको दे दिया था।

इस समय दाक्षिणात्यमें अपना अपना प्रभाव फैलानेके लिये अङ्गरेज और फरासीमें घोर प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। बूसीके आने पर पहले फरासीदल प्रबल हो उठा और कुछ समयके लिये समस्त दाक्षिणात्य राज्यका राजकीय शासनकार्य बूसी द्वारा ही परिचालित होने लगा। १७५८ ई०में नवावके भाई निजाम अलीने षड़यन्त्र कर हैदरजङ्गको मार डाला। बूसीने जब देखा कि इस समय राज्यमें एक भीषण अन्तर्विप्लवकी सूचना हो रही है और आर्काट प्रदेशमें महम्मद अली खांके साथ मिल कर अङ्गरेज लोग अपनी ताकत बढ़ा रहे हैं, तब वे अपने स्वजाति वर्गकी रक्षा करनेके अभिप्रायसे राजकार्यसे अपसृत हो फरासी अधिकारमें लौटे निजामअलीने इस समय सिंहासनको निष्कण्टक जान १७६२ ई०में सलावत् जङ्गको राज्यच्युत और काराबद्ध किया। इस प्रकार बन्दी अवस्थामें १७६३ ई०के सितम्बर मासमें सलावतकी मृत्यु हुई।

सलाम (अ० पु०) प्रणाम करनेकी क्रिया, बंदगी, आदाब।

सलामकराई (हिं० स्त्री०) १ सलाम करनेकी क्रिया या भाव। २ वह धन जो कन्या-पक्षवाले मिलनीके समय वर-पक्षके लोगोंको देते हैं।

सलामत (अ० वि०) १ सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचा हुआ, रक्षित। २ जीवित और स्वस्थ, तंदुरुस्त और जिंदा। ३ कायम। (क्रि० वि०) ४ कुशलपूर्वक, खैरियतसे। (स्त्री०) ५ सालिम या पूरा होनेका भाव, अखण्डित और सम्पूर्ण होनेका भाव।

सलामत् अली—इलाहाबाद राजधानीका एक मुनसिफ। सिपाही-विद्रोहके समय इसने अङ्गरेजके विरुद्ध अस्त्र धारण किया था। १८५७ ई०को उसी नगरमें पकड़ें जा कर यह राजाके हुक्मसे प्राणदण्डसे दण्डित हुआ।

सलामत अली खां (हकीम)—एक मुसलमान कवि। वाराणसीधाममें इनका घर था। १९वीं सदीके शुरूमें इन्होंने काशीधाममें रह कर सङ्गीतविषयमें एक ग्रन्थ लिखा।

सलामती (अ० स्त्री०) १ स्वस्थता, तंदुरुस्ती। २ कुशल, क्षेम। ३ जीवन, जिंदगी। ४ एक प्रकारका मोटा कपड़ा।

सलामी (अ० स्त्री०) १ प्रणाम करनेकी क्रिया, सलाम करना। २ शास्त्रोंसे प्रणाम करनेकी क्रिया, सैनिकोंको प्रणाम करनेकी प्रणाली, सिपाहियाना सलाम। ३ तोपें या वन्दुकोंकी बाढ़ जो किसी बड़े अधिकारी या माननीय व्यक्तिके आने पर दागी जाती है।

सलाम्मा—पञ्जाव प्रदेशके गुरगांव जिलान्तर्गत नूह तहसीलका एक बड़ा गांव। यह सोनारसे उत्तर मेवात शैलमालाके पादमूलमें विस्तीर्ण 'नूह-महल' नामक खारी मिट्टीवाले भूमिखण्डके मध्यस्थलमें बसा हुआ है। पहले यहां जो लवण बनता था, उसे लोग सलाम्मा लवण कहते थे। उस लवणकूपका जल सुखा कर और मिट्टी धो कर नमक तैयार किया जाता था। पहले जो नमक बनता था, वह उतना परिष्कार नहीं होता था, उसमें मैगनेसिया, क्लोराइड और अन्यान्य पदार्थ मिले रहते थे। अभी वहां नमक बिलकुल नहीं बनता, क्योंकि सम्बर-झीलसे उत्कृष्ट नमककी आमदनी होनेसे यहांके लोगोंने इस निकृष्ट नमकका कारवार बिलकुल बन्द कर दिया।

सलाया—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके नवानगर राज्यका एक बन्दर। यह स्थान खम्भालिया नगरसे ६ मील उत्तरमें अवस्थित है। उक्त नगरका जो कुछ वाणिज्य है, वही इस बन्दर द्वारा परिचालित होता है। भारतके पश्चिम उपकूलमें बम्बई और करांचीके बाद ही इस बंदरका प्राधान्य है। इस बन्दरमें घुसनेके दो पथ हैं। एक पथ कुरुम्भर द्वीप और भारतोपकूल तथा दूसरा कुरुम्भर और धानिवेत नामक स्थानके मध्यवर्त्ती हैं। बन्दरमें रात्रिके समय पोतादि आनेकी सुविधा-

के लिये कुरुम्भरद्वीपके उत्तर-पश्चिम ३० फुट ऊंचा एक लाइट-हाउस है। मुगल-शासनाधिकारमें भी इस नगरको यथेष्ट वाणिज्यसमृद्धि थी। मीरातई अहमदी नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि यह बन्दर इसलाम नगरके अधीन था। यहांसे आज भी काफी घी और रूईकी बम्बई, करांची और गुजरात आदि स्थानोंमें रफ्तनी होती है।

सलाह (सं० स्त्री०) सम्मति, परामर्श, राय, मशवरा।

सलाहकार (फा० पु०) वह जो परामर्श देता हो, राय देनेवाला।

सलिङ्ग (सं० त्रि०) लिङ्गयुक्त, चिह्नविशिष्ट।

सलिल (सं० क्ली०) सलति गच्छतीति सल-गतौ (सलिकल्यनीति। उणा् १।५५) इति इलच्। जल, पानी।

जल शब्द देखो।

सलिलकुन्तल (सं० पु०) सलिलस्य कुन्तल इव। शैवाल, सिवार।

सलिलक्रिया (सं० स्त्री०) सलिलकर्म, उदकक्रिया, तर्पण, जलाञ्जलि।

सलिलग्रह (सं० पु०) घोड़ेका एक ग्रह। (जयद०)

सलिलचर (सं० त्रि०) सलिलचारी, जलचर, जलमें विचरण करनेवाला।

सलिलज (सं० क्ली०) सलिले जायते इति जन-ड। १ पद्म, कमल। २ जलजातमात्र, वह जो जलसे उत्पन्न हो।

सलिलजन्मन् (सं० क्ली०) सलिले जन्म यस्या। १ पद्म, कमल। २ सलिलजात, वह जो जलसे उत्पन्न हो।

सलिलद (सं० त्रि०) सलिलं ददाति दा क। १ सलिलदायी, जल देनेवाला। (पु०) २ मेघ, बादल।

सलिलधर (सं० पु०) मुस्तक, मोथा।

सलिलनिधि (सं० पु०) १ जलनिधि, समुद्र। २ छन्दोभेद। इस छन्दके प्रत्येक चरणमें २१ अक्षर होते हैं। इस छन्दका नाम कोई कोई सरसी और सिंहक बतलाते हैं। छन्दोमञ्जरीमें यह छन्द सरसी कहलाता है।

सरसी देखो।

सलिलपति (सं० पु०) १ जलके स्वामी, वरुण। २ समुद्र, सागर।

सलिलपवनाशिन् (सं० त्रि०) जल और वायुभोजी।

सलिलप्रिय (सं० पु०) शूकर, सुअर।

सलिलमय (सं० त्रि०) सलिल स्वरूपे मयट्। जलमय, जलस्वरूप।

सलिलमुच् (सं० पु०) सलिलं मुञ्चति मुच्-क्विप्। सलिल मोचनकारी, मेघ, बादल।

सलिलयोनि (सं० त्रि०) सलिलं योनिरुत्पत्तिस्थानमस्य। १ ब्रह्मा। सलिलमें इनकी उत्पत्ति हुई है। २ वह वस्तु जो जलमें उत्पन्न होती है।

सलिलराज (सं० पु० १ जलका स्वामी, वरुण। २ समुद्र, सागर।

सलिलवत् (सं० त्रि०) सलिलविशिष्ट, जलविशिष्ट, जलयुक्त।

सलिलस्थलचर (सं० त्रि०) जो जल और स्थल दोनोंमें विचरण करता हो। जैसे,—हंस, सर्प आदि।

सलिलाकर (सं० पु०) समुद्र, सागर।

सलिलाञ्जलि (सं० स्त्री०) मृतकके उद्देश्यसे दी जानेवाली जलाञ्जलि।

सलिलाधिप (सं० पु०) जलके अधिष्ठाता देवता वरुण।

सलिलार्णव (सं० पु०) समुद्र, सागर। (रामायण ५।३५।५)

सलिलाशय (सं० पु०) समुद्र, सागर। (रामा० ५।५६।५५)

सलिलाशन (सं० त्रि०) सलिलभोजी, केवल जल पी कर रहनेवाला। (भाग० ६।२४।१०) हमारे देशको रमणियां किसी किसी व्रतमें सामान्य मात्र गङ्गोदक पान कर कृच्छ्र साधन करती हैं।

सलिलाशय (सं० पु०) जलाशय, पुष्करिणी, तालाब।

जलाशय देखो।

सलिलाहार (सं० त्रि०) १ सलिलभोजी, केवल जल पी कर रहनेवाला। (पु०) २ केवल जल पी कर रहनेकी क्रिया।

सलिलेचर (सं० पु०) जलमें रहनेवाला जीव, जलचर।

सलिलेन्द्र (सं० पु०) जलके अधिष्ठाता देवता, वरुण।

सलिलेन्धन (सं० पु०) सलिलं इन्धनं यस्य। वाड़वानल।

सलिलेश (सं० पु०) सलिलस्य ईशः। वरुण।

सलिलेशय (सं० त्रि०) जलशायी, जलमें सोनेवाला।

सलिलोद्भव (सं० पु०) १ पद्म, कमल। २ जलमें उत्पन्न

होनेवाली कोई चीज। जैसे,—शंख, घोंघा आदि।

सलिलोपजीविन् (सं० त्रि०) जलोपजीवी, केवल जल पर निर्भर रहनेवाला।

सलिलौकस् (सं० त्रि०) १ सलिलवासी, जलमें रहनेवाला। (पु०) २ जलौका, जोंक।

सलिलौदन (सं० पु०) सिद्ध तण्डुल, पकाया हुआ अन्न।

सलीका (अ० पु०) १ काम करनेका ठीक ढौक या अच्छा ढंग, शऊर, तमीज़। २ सभ्यता, तहज़ीब। ३ हुनर, लियाकत। ४ चालचलन, बरताव।

सलीकामंद (फा० वि०) १ जिसे सलीका हो, शऊरदार, तमीजदार। २ सभ्य। ३ हुनरमंद।

सलीखा (हिं० पु०) त्वक् पत्र, तज।

सलीता (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत मोटा कपड़ा जो प्रायः मारकीन या गजीकी तरहका होता है।

सलीपर (अं० पु०) १ एक प्रकारका हलका जूता जिसके पहनने पर पंजा ढंका रहता है और एड़ी खुली रहती है, आराम पाई, सलपट जूती। २ वह लकड़ीका तख्ता जो रेलकी पटरियोंके नीचे बिछाया रहता है। स्लीपर देखो। ३ हाल जो पहिये पर चढ़ाई जाती है।

सलीम—एक मुसलमान कवि। इनका असल नाम महम्मद कुली था। मुगलसम्राट् शाहजहां बादशाहके शासनकालमें ये अपनी जन्मभूमि फारसका परित्याग कर भारतवर्ष आये और वजीर प्रवर इसलाम खाँ कर्त्तृक दरबारमें नियुक्त हुए। फारसमें रहते समय उन्होंने लहिजान प्रदेशका प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन कर एक दीवान और एक मसनवि प्रणयन की। भारतवर्षमें आ कर उन्होंने उसका कुछ परिवर्त्तन कर 'काश्मीरवर्णन' नाम रखा। १६४७ ई०में उनकी मृत्यु हुई।

सलीमचिश्ती (शेख)—फतेपुर सिक्रीवासी एक मुसलमान-साधु। इन्हें लोग शेख-उल्-इसलाम् कहते थे। मुगल-बादशाह अकबर इन फकीरका बड़ा सम्मान करते थे। ये शेख फरीद सखरगञ्जके वंशधर बहाउद्दीनके पुत्र थे। १४७८ ई०को दिल्ली-राजधानीमें इनका जन्म हुआ। बड़े होने पर इन्होंने उपयुक्त शिक्षा पा कर ख्वाजा इब्राहिम चिश्तीका शिष्यत्व ग्रहण किया। पीछे ये सिक्रीके पास ही एक बड़े पहाड़ पर निर्जन स्थानमें धर्मशास्त्रानुशीलनमें दिन बिताने लगे। प्रवाद है, कि इन्होंके भजनाप्रभावसे अकबरको औलाद हुई थी तथा इन्हींके अनुसार अकबरने अपने पुत्र जहांगीरका नाम सलीमशाह रखा।

सम्राट् इन फकीरकी इतनी भक्ति श्रद्धा करते थे, कि इनके रहनेके लिये प्रायः ५ लाख रुपये खर्च कर पूर्वोक्त शैल पर १५७१ ई०में एक मसजिद बनवा दी थी। वह मसजिद आज भी फतेपुर-सिक्रीकी मसजिद नामसे मशहूर है। १५७२ ई०में फकीरका देहान्त हुआ और खूब धूमधामसे उसी पहाड़की चोटी पर इन्हें दफनाया गया। भारतवर्षके इतिहासमें जितने श्रेष्ठ मुसलमान साधुओंका उल्लेख पाया जाता है, उनमें यह एक प्रधान थे। ये अपने जीवित-कालमें चौबीस बार मक्का गये थे। प्रवाद है, कि ये सिंघाड़ेकी रोटी छोड़ कर और कुछ नहीं खाते थे।

इनके पुत्र कुतबुद्दीन जब बङ्गालके शेर अफगान द्वारा मारे गये, तब अन्यतम पुत्र बदरुद्दीन पिताकी मृत्युके बाद गद्दी पर बैठे। इन्हीं बदरुद्दीनके पुत्र इसलाम् खाँको सम्राट् जहानगीरने अमीरकी पदवी दे कर १६०८ ई०में बङ्गालका शासनकर्त्ता बना कर भेजा।

सलीमपुर—अयोध्या प्रदेशके लखनऊ जिलान्तर्गत एक नगर। यह लखनऊ नगरसे २० मील दूर सुलतानपुर जानेके रास्ते पर गोमती नदीके किनारे एक टीले पर बसा हुआ है। यहां नदीके ऊपर एक पुल है।

सलीमपुर—युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत अमरोहा तहसीलका एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २८°५´४५´´ उ० तथा देशा० ७८° ४१´ पू०के मध्य विस्तृत है। एक समय यह स्थान समृद्धिशाली नगरमें परिणत था। प्राचीन ध्वस्त मन्दिर और समाधिमन्दिरादि उसके प्रमाण हैं।

सलीमपुर-मझौली—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत देवरिया तहसीलके दो ग्राम। यह अक्षा० २६° १७´ उ० तथा देशा० ८३° ५७´ पू०के मध्य गण्डक नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है। इसके पूरबमें मझौलीके राजा रहते हैं। लोग इसे मझौली सलीमपुर भी कहते हैं। दोनों ग्राम वाणिज्यप्रधान और सुसमृद्ध हैं।

सलीम शाह—मुगल-सम्राट् अकबर शाहके पुत्र। जहाङ्गीर देखो।

सलीमशाह शूर—दिल्लीके शूरवंशीय एक मुसलमान राजा। ये सम्राट् शेरशाहके छोटे लड़के थे। इनका असल नाम जलाल खाँ था। पिताके मृत्युकालमें इनके बड़े भाई आदिल खाँ बाहर गये हुए थे, इस कारण ये ही १५४५ ई०में कालिञ्जर दुर्गमें अपने पिताके सिंहासन पर बैठे। सिंहासन पर बैठते समय उन्होंने इसलाम शाह नाम ग्रहण किया था। भगन्दर रोगसे आक्रान्त हो १५५४ ई०में ग्वालियर नगरमें इनका देहान्त हुआ। उनकी लाश ससेराम लाई गई और पिताके मकबरेकी बगलमें दफनाई गई।

जिस वर्ष सलीम शाहकी मृत्यु हुई, उसी वर्ष गुजरात् के राजा महमूद शाह और अहमदनगरके अधिपति बुर्हान-निजाम शाहकी भी मृत्यु हुई। इन सर्वजनप्रसिद्ध तीनों राजाओंकी मृत्युघटना ले कर ऐतिहासिक फिरिस्ता-के पिता मौलाना अलीने 'राज-नामा' नामकी एक कविता रची है।

सलीमसिंह—जैसलमेरके एक प्रधान मन्त्रीका नाम। इस-के पिताका नाम स्वरूपसिंह था। स्वरूपसिंह अपनी क्रूरतासे जब मारा गया, तब उसका पुत्र सलीम सिंह ११ वर्षका था। पुनः वयस्क होने पर यह प्रधान मन्त्रीके पद पर नियुक्त हुआ। प्रधान मन्त्रीका पद मिलने पर यह पितृहत्याका बदला लेनेके लिये उद्यत हुआ। एक बार यह जोधपुर भेजा गया था, उस समय निर्वासित सामन्तोंने इसे घेर कर मारना निश्चित किया। परन्तु इसके गिड़गिड़ा कर प्राणभिक्षा मांगने पर सामन्तोंने इसे छोड़ दिया। अब इसने संहारमूर्त्ति धारण की। पहले तो बड़े बड़े सामन्तोंको इसने विष द्वारा मरवा डाला, फिर राजवंश पर भी इसने हाथ साफ किया था। रावल मूलराज और गजसिंह दोनोंके समयमें यह था। अन्तमें यह मारा गया।

सलीमा बानो बेगम—दाराशिकोहके लड़के सुलेमान-शिकोहकी लड़की। बादशाह औरङ्गजेबके चौथे लड़के शाहजादा महम्मद अकबरके साथ इसका विवाह हुआ था। इसके गर्भसे उत्पन्न लड़का निकोसियर आगरेमें सम्राट् पद पर अभिषिक्त हुआ था, किन्तु दुर्भाग्यवशतः वह रुकनउद्दौला द्वारा राज्यच्युत और बन्दी हुआ।

सलीमा सुलताना बेगम—मुगल-सम्राट् बाबरशाहकी दौहित्री। यह बाबरकी कन्या गुलरुख बेगमकी बेटी थी। बाबरके जमाई मिर्जा नूरउद्दीन महम्मदने अपनी लड़की सलीमाको १५५८ ई०में खानखानान् बैराम खाँके हाथ सौंपा था। मुगल सम्राट् अकबर शाहके हुकुमसे जाल-न्धरमें यह विवाह सुसम्पन्न हुआ। बैराम खाँकी मृत्युके बाद अकबर शाहने उसे अपनी स्त्री बनाया। इस स्त्रीके गर्भसे सम्राट्के शाहजादी खानुम नामकी कन्या और सुलतान मुराद नामक एक शाहजादा उत्पन्न हुआ। सलीमा पारसी भाषामें सुपण्डिता थी और कवितादि भी लिख सकती थी। सम्राट् जहांगीरके राज्यकालमें १६१२ ई०को इसका देहान्त हुआ।

सलीमी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका कपड़ा।

सलील (सं० त्रि०) लीलाविशिष्ट, लीलायुक्त।

सलीलगजगामिन् (सं० पु०) बुद्ध। (ललितवि०)

सलीस (अ० वि०) १ सहज, सुगम, आसान। २ जिसका तल बराबर हो, समतल, हमवार। ३ महावरेदार और चलती हुई।

सलूक (अ० पु०) १ तौर, तरीका, ढंग। २ बरताव, आचरण। ३ भलाई, नेकी। ४ मिलाप, मेल।

सलूग (सं० पु०) १ शार्ङ्गधरसंहिताके अनुसार एक प्रकारके बहुत छोटे कीड़े। २ जूं, लीख।

सलूना (हिं० पु०) १ पकी हुई तरकारी या भाजी। २ सलोना देखो।

सलूनी (हिं० स्त्री०) चुक्रिका, चूका शाक।

सलेक (सं० पु०) तैत्तिरीयसंहिताके अनुसार एक आदित्यका नाम। (तैत्तिरीयस० १।५।३।३)

सलेम—मन्द्राज-प्रदेशका एक जिला। सालेन देखो।

सलोक (सं० पु०) १ नगर, शहर। २ वह जो नगरमें रहता हो, नागरिक।

सलोकता (सं० स्त्री०) एक स्थाननिवास।

सलोक्य (सं० त्रि०) लोक-सम्बन्धी।

सलोतर (हिं० पु०) पशुओं विशेषतः घोड़ोंकी चिकित्सा-का विज्ञान, शालिहोत्र।

सलोतरी (हिं० पु०) पशुओं विशेषतः घोड़ोंकी चिकित्सा करनेवाला, शालिहोत्री।

सलोन—१ अयोध्या-प्रदेशके रायबरेली जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २५°४६´ से २६°१६´ ३० तथा देशा० ८१° १३´ से ८१° ३१´ पू० गङ्गाके उत्तरमें अवस्थित है। भूपरिमाण ४४० वर्गमील और जनसंख्या तीन लाखके करीब है। इसमें दो शहर और ४४४ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागके मध्यवर्त्ती एक परगना। पहले यह राय बरेली जिलेके अन्तर्भुक्त था। अभी विचार-कार्यकी सुविधाके लिये उसे प्रतापगढ़ जिलेमें मिला लिया गया है। इसके दक्षिण गङ्गा नदी और मध्यदेश हो कर सई नदी बहती है। यहांके विस्तृत जङ्गलमें बहुतसे भग्न दुर्ग दिखाई देते हैं। यहांके लोगोंका कहना है, कि हिन्दू राजाओंके अमलमें उन सब स्थानोंमें दुर्वृत्त दस्युदलका वास था। नाहन तालुकदारने भी एक समय उस जंगलमें दुर्गनिर्माण कर अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखा था। कानपुरिया राजपूत-वंशधर ही यहांके जमींदार हैं।

३ रायबरेली जिलेका एक नगर और सलोन तहसील-का विचार सदर। यह अक्षा० २६° २´ ३० तथा देशा० ८१° २८´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है। एक समय यह नगर खूब समृद्धि-शाली था, अभी वैसी पूर्वश्री नहीं है। प्राचीन भर जातिके अभ्युदयकालमें यह स्थान दुर्गादि द्वारा सुरक्षित हुआ था। मुसलमानी अमलमें भी इस नगरकी यथेष्ट उन्नति थी। उस समय मुसलमानोंके प्रभावसे यहां कुछ मसजिद बनवाई गई थीं। आज भी १० मसजिद उसके निदर्शनस्वरूप दण्डायमान हैं। इस नगरके पार्श्व देशमें सम्राट् औरङ्गजेबप्रदत्त एक निष्कर जागीर है। उस जागीरके वर्त्तमान स्वत्वाधिकारी शाह महम्मद मेहन्दी आता हैं। वृटिश-सरकार आज भी अधिकारीका पूर्व-स्वत्व कायम रखती आ रही है। शहरमें एक मिडिल वर्नैक्युलर स्कूल है।

सलोना (हिं० वि०) १ जिसमें नमक पड़ा हो, नमक मिला हुआ, नमकीन। २ जिसमें नमक या सौंदर्य हो, रसीला, सुन्दर।

सलोनापन (हिं० पु०) सलोना होनेका भाव।

सलोनो (हिं० पु०) हिन्दुओंका एक त्योहार जो श्रावण-मासमें पूर्णिमाके दिन पड़ता है। इस दिन लोग राखी बांधते और बंधवाते हैं।

सलोमन् (सं० त्रि०) लोमयुक्त, रोएंवाला।

सलोहित (सं० त्रि०) लोहितवर्णयुक्त, सरक्त, लाल।

सल्ल (हिं० पु०) सरलद्रुम, सरल वृक्ष।

सल्लकी (सं० स्त्री०) शल्लकी वृक्ष, सलई। महाराष्ट्र—सल्लकि, कलिङ्ग—सदिकु, बम्बे—शालई। (भरत) गुण—तिक्त, मधुर, कषाय, ग्राहक तथा कुष्ठ, रक्त, कफ, वात, अर्श और व्रणरोगनाशक। (राजनि०)

सल्लक्षणतीर्थ (सं० पु०) एक प्राचीन तीर्थका नाम।

सल्लक्ष्य (सं० क्ली०) साधुलक्ष्य, उत्तम लक्षण।

सल्लम (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका मोटा कपड़ा, गजी, गाढ़ा।

सल्लाह (अ० स्त्री०) सलाह देखो।

सल्ली (हिं० स्त्री०) शल्लकी, सलई।

सल्लू (हिं० पु०) चमड़ेकी डोरी।

सल्लोक (सं० पु०) उत्तम लोक, उत्तम स्थान।

सल्व (सं० पु०) १ एक देशका नाम। २ इस देशका अधिवासी। शल्व देखो।

सवंशा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका वृक्ष।

सव (सं० क्ली०) १ जल, पानी। २ पुष्परस, पुष्पद्रव। (पु०) सूयते सोमोऽत्रेति सू-अप्। ३ यज्ञ। ४ सन्तान, औलाद। ५ सूर्य। ६ चन्द्रमा। (त्रि०) ७ अज्ञ, अनाड़ी।

सवगात (तु० स्त्री०) सौगात देखो।

सवजा (सं० स्त्री०) अजगन्धा, वर्वरी।

सवत (हिं० स्त्री०) सौत देखो।

सवत्स (सं० त्रि०) वत्सयुक्त, बच्चेके सहित, जिसके साथ बच्चा हो।

सवन (सं० क्ली०) सु-अभिषवे ल्युट्। १ यज्ञस्नान। २ सोमपान। ३ अध्वर, यज्ञ। ४ सोम-निर्द्दलन। ५ प्रसव, बच्चा जनना। ६ श्योनाक वृक्ष, सोनापाठा। (पु०) सु युच्। ७ चन्द्रमा। (उणा् २।७४) ८ भृगुके एक पुत्रका नाम। ९ वशिष्ठके एक पुत्रका नाम। १० रोहित मन्व-न्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक ऋषिका नाम। ११ स्वायम्भुव मनुके एक पुत्रका नाम। १२ प्रियव्रतके एक पुत्रका नाम (मार्क०पु० ५३।१६) १३ अग्निका एक नाम। (त्रि०) १४ धनविशिष्ट, धनयुक्त

सवनकर्मन् (सं० क्लो०) यज्ञकर्म।

सवनदुर्ग—मन्द्राज प्रदेशके महिसुर राज्यान्तर्गत बङ्गलूर जिलेका एक गिरिदुर्ग। दुर्गके नामसे यह पर्वत भी सवन-दुर्ग कहलाता है। इसका दूसरा नाम मगदी शैल है। यह समुद्रपृष्ठसे ४०२४ फुट ऊंचा और अक्षा० १२° ५५' उ० तथा देशा० ७७° २१' पू०के मध्य विस्तृत है। यह पर्वत दानेदार पत्थरसे गठित तथा प्रायः ८ वर्गमील तक फैला हुआ है। इसका शिखरभाग दो चूड़ाके दो भागोंमें विभक्त है। उनमेंसे एकका नाम करि (कृष्ण) और दूसरे-का नाम बिलि (श्वेत) है। दोनों हो शिखर पर प्रचुर जल मिलता है। १५४३ ई०में राजा सामन्तरायने इस शैलशृङ्ग के ऊपर अपने नाम पर दुर्ग स्थापन किया। तभीसे यह शैल सामन्त-दुर्ग कहलाता है। १६वीं सदीके शेषभागमें बङ्गलूरवासी इमड़ी केम्पे गौड़ इस दुर्गका संस्कार कर परिवारके साथ यहां रहने लगे। उस समय से इसका सवनदुर्ग नाम पड़ा है। १७२८ ई० तक इमड़ी गौड़के वंशधरोंने दुर्गको अधिकार कर यहां वास किया था। उसी साल महिसुरके किसी हिन्दू राजाने यह दुर्ग अधिकार कर लिया। कुछ दिन बाद महिसुर-राजके हाथसे यह पुनः हैदरअलीके हाथ आया। मुसलमानोंने इस दुर्गको सेनाबल द्वारा सुदृढ़ किया सही, पर वे अङ्ग-रेजोंके साथ युद्धमें आत्मरक्षा कर न सके। हैदरके पुत्र टोपू सुलतानके साथ जब अङ्गरेजोंका विवाद चल रहा था, उस समय अर्थात् १७९१ ई०में लार्ड कार्नवालिस परिचालित अङ्गरेजी सेना दुर्गके सामने आ धमकी। सेनापतिसे आदेश पा कर १० दिसम्बरको कर्नल स्टु-आर्टने दलबलके साथ आ कर दुर्गसे ३ मीलकी दूरी पर छावनी डाली। उन्होंने यहां रह कर बड़े कष्टसे दुर्ग-ध्वंसके लिये कमान सजाई थी। २०वीं दिसम्बरसे लगातार गोलावर्षण शुरू हुआ। तीन दिनमें दुर्गप्राचीर-के एक अंशको ढह जाते देख कर्नल स्टुआर्टने लार्ड कार्नवालिसके ऊपर कुल कर्त्तृत्वभार सौंप दिया था। रणकुशल कार्नवालिसकी दक्षता और वीरतासे एक घण्टेके मध्य एक बगलके प्राचीर परिखादि लांघ कर अङ्गरेजी सेना दुर्गमें घुसी और दुर्गको फतह किया। इस युद्धमें अंगरेजोंको ओरसे एक आदमी भी नहीं मरा था।

सवनभाज् (सं० त्रि०) यज्ञभागविशिष्ट।

सवनमुख (सं० क्लो०) यज्ञका आरम्भ।

सवनविध (सं० क्लो०) यज्ञका कार्य।

सवनशस् (सं० अव्य०) सवन-शसृ। १ त्रिकालम्। २ मन्द्रमध्यम और तारस्वरयुक्त। (गीतध्वनि)

सवनिक (सं० त्रि०) सवन-सम्बन्धी, सवनका।

सवनीय (सं० त्रि०) सोमयज्ञ-सम्बन्धी।

सवनूर—१ बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक सामन्त राज्य। यह अक्षा० १४° ५७' से १५° २' उ० तथा देशा० ७५° २२' से ७५° २५' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ७० वर्गमील है। इसमें १३ शहर और २ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या २० हजारके करीब है।

यहांके राजवंश मुसलमान और अफगान जातिके हैं। मुगलसम्राट् औरङ्गजेबने अबदुल रऊफ खाँ नामक किसी पठान सेनापतिके युद्धकौशल पर प्रसन्न हो उसे सातहजारी मनसबदार बनाया। उसके साथ साथ सम्राट्की कृपासे अश्वारोही सेनादलके पालन और अपनी मर्यादारक्षाके लिये उसने बङ्कापुर, तोड़गल और आजीमनगर जागीरमें पाया था।

परवर्त्तीकालमें यहांका नवाब टीपू सुलतानके साथ विवाहसूत्रसे आबद्ध हुआ था सही, फिर भी १७८६ ई०में विश्वासघातक टीपू सुलतान कुटुम्बका राज्य हड़प करने-से बाज नहीं आया। टीपू द्वारा राज्य छिन जाने पर नवाबने पेशवाकी शरण ली। पेशवा उसके नष्टराज्यका पुनरुद्धार न कर सके और उन्होंने वार्षिक ४८०००) रु० उसकी वृत्ति कायम कर दी। पीछे जेनरल वेलेस्लीके कहने से पेशवा उतने नगद रुपयेकी वृत्तिके बदले भूसम्पत्ति देनेको बाध्य हुए। टीपू द्वारा यह नगर अधिकृत होने-के पहले यहां नवाबोंके यत्नसे एक टकसाल घर खोला गया। उस टकसालघरसे नवनूरी-हुन नामक सोनेके सिक्केका प्रचार होता था। उसका मोल प्रायः ४ रुपया था और उसमें नवाबकी मूर्त्ति अङ्कित रहती थी।

१८६८ ई०से इस राज्यका शासनभार धारवाड़के कलक्टरके अधीन रहा। १८८३ ई०में नवाब अबदुल दलाल खाँके बालिग होने पर राज्यभार उसीके हाथ

सौंपा गया। पर दुःखका विषय है, कुछ ही समय राज्य करनेके बाद वह परलोक सिधारा।

राज्यकी आय करीब लाख रुपया है। वृटिश-सरकारको कुछ भी कर नहीं देना पड़ता। नवावको गोद लेनेका अधिकार है। धारवाड़के कलकूर राज्यके पोलिटिकल एजेण्ट हैं। इन्हें डिष्ट्रिक्ट जजका अधिकार है। यहां दो फौजदारी और एक दीवानी अदालत है। राज्यमें ११ स्कूल और एक अस्पताल है।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह धारवाड़से ४० मील दक्षिण-पूर्व अक्षा० १४° ५८´ उ० तथा देशा० ७५° २३´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या १० हजारके करीब है। नगर गोलाकार और छोटा है। चारों ओर खाई और प्राचीर है। प्राचीर गात्रमें ८ प्रवेशद्वार हैं जिनमेंसे तीन ढहदुह गये है। १८६८ से १८७६ ई०के मध्य नगर पथ घाट और कूप आदिसे खूब परिशोभित किया गया। यहां प्रति वर्ष देवताके उद्देशसे मेला लगता है।

सवयस् (सं० पु०) समानं वयो यस्य। १ वयस्य। (त्रि०) २ समान वयस्क, एक उमरका। (स्त्री०) समानं वयो यस्याः (ज्योतिर्जनपदेति। ६।३।८५) इति समानस्य सः। ३ सखी, सहचरी।

सवयस्क (सं० त्रि०) समान वयोविशिष्ट, समान अवस्थावाले, बराबरीकी उम्रवाले।

सवर (सं० पु०) १ सलिल, जल। २ शिव। (त्रिका०)

सवरलोध्र (सं० क्ली०) पठानी लोध, सफेद लोध।

सवर्ण (सं० त्रि०) समानो वर्णोऽस्य (ज्योतिर्जनपदेति। पा ६।३।८५) इति समानस्य स। १ सदृश, समान। २ समान वर्णका, समान जातिका।

शास्त्रमें ऐसा विधान है, कि सवर्णा कन्या ही विवाह करना चाहिए। ब्राह्मणादि तीन वर्ण असवर्ण विवाह कर सकते थे, किन्तु कलिमें यह निषिद्ध हो गया है। कलिमें एकमात्र सवर्ण विवाह ही प्रशस्त है।

विवाह देखो।

३ एक स्थानोत्पन्न वर्ण। व्याकरणके मतसे इसकी सवर्ण संज्ञा होती है। यथा—अ, आ, अर्थात् अकारके साथ आकारकी सवर्णता है

सवर्णा (सं० स्त्री०) समानो वर्णो यस्याः। १ सूर्यकी पत्नी छायाका नाम। (शब्दरत्ना०) २ समान वर्ण स्त्री।

सवर्णाभ (सं० त्रि०) सवर्ण।

सवर्चा (सं० त्रि०) श्रेष्ठ गुण या धनविशिष्ट, वरीयान्।

सवल—चम्पारण्यके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।

सवलपुर—विशालराज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन पुरी।

सवलसिंह—बड़वानके एक हिन्दू राजा। इन्होंने १७३६ ई०में अहमदनगर जिलेका रणपुर दुर्ग अधिकार करनेके लिये दलबलके साथ यात्रा की। इस समय दुर्गाधिकारी अहोमभाई सिंहासन पर अधिष्ठित थे। वे घमसान युद्ध करके भी दुर्गकी रक्षा न कर सके। दुर्ग शत्रुके हाथ आया, दुर्गवासीको बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ीं। इस समय बड़ौदाके अधिपति दामाजी गायकवाड़ ढोलकामें राजस्व उगाहने आये थे। अहोमभाई छिपके उनके पास गये और अपना दुःखड़ा रोया, साथ साथ उनसे सहायता भी मांगी। तदनुसार अहोमभाईके साथ गायकवाड़का सेनादल जब वहां पहुंचा, तब सवलसिंह दुर्गावरोध परित्याग कर नागेशकी ओर भाग गये। गायकवाड़ सेनाने पीछा कर उन पर हमला बोल दिया। इस युद्धमें सवलसिंह पराजित और बन्दी हुए।

सवलसिंह चौहान—चौहानवंशी क्षत्रिय हैं। महाभारतके २४ हजार श्लोकोंका अनुवाद दोहे चौपाइयोंमें बहुत संक्षेपमें किया है। कोई कोई कहते हैं, कि ये कवि चन्द्रगढ़के राजा थे। कोई सवलगढ़का राजा इन्हें बतलाता है। इनके वंशवाले जिला हरदोईमें रहते हैं। परन्तु शिवसिंहका कहना है, कि ये कवि जिला इटावेके किसी गाँवके जमींदार थे।

सवविध (सं० त्रि०) सवनविध।

सवस (सं० क्ली०) सवन। सवन देखो।

सवहा (सं० स्त्री०) त्रिवृता, निसोथ। (भरत)

सवा (हिं० स्त्री०) सम्पूर्ण और एकका चतुर्थांश, चौथाई सहित।

सवाई (हिं० स्त्री०) १ ऋणका एक प्रकार जिसमें मूलधनका चतुर्थांश ब्याजमें देना पड़ता है। २ मूल धन

सम्बन्धी एक प्रकारका रोग। ३ जयपुरके महाराजाओं-की एक उपाधि। (वि०) ४ एक और चौथाई, सवा।
सवागी (हिं० पु०) टङ्कणक्षार, सुहागा।
सवाचस् (सं० त्रि०) उत्कृष्ट वाक्सम्वलित।
सवात् (सं० त्रि०) समान वत्सरविशिष्ट, समान वर्णका।
सवात्य (सं० त्रि०) वातमण्डली मध्यस्थ।
सवार्त्तिक (सं० त्रि०) वार्त्तिकके सहित, जिन सब सूत्रोंमें वार्त्तिक हो।
सवाद (हिं० पु०) स्वाद देखो।
सवाब (अ० पु०) १ शुभ कृत्यका फल जो स्वर्गमें मिलेगा पुण्य। २ भलाई. नेकी।
सवार (फा० पु०) १ वह जो घोड़े पर चढ़ा हो, अश्वारोही। २ अश्वरोही सैनिक, रिसालेका सिपाही। ३ वह जो किसी चीज पर चढ़ा हो। (वि०) ४ किसी चीज पर चढ़ा या बैठा हुआ।
सवारना (हिं० क्रि०) सवारना देखो।
सवारी (फा० स्त्री०) १ किसी चीज पर विशेषतः चलनेके लिये चढ़नेकी क्रिया। २ वह चीज जिस पर यात्रा आदिके लिये चढ़ाते हों, सवार होनेकी वस्तु, चढ़नेकी चीज। ३ वह व्यक्ति जो सवार हो। ४ कुश्तीमें अपने विपक्षीको जमीन पर गिरा कर उसकी पीठ पर बैठना और उसी दशामें उसे चित करनेका प्रयत्न करना। ५ जलूस। ६ सम्भोग या प्रसङ्गके लिये स्त्री पर चढ़नेकी क्रिया।
सवाल (अ० पु०) १ पूछनेकी क्रिया। २ वह जो कुछ पूछा जाय, प्रश्न। ३ दरखास्त, मांग, याचना। ४ विनती, निवेदन, प्रार्थना। ५ भिक्षाकी याचना। ६ गणितका प्रश्न जो उत्तर निकालनेके लिये दिया जाता है।
सवाल जवाब (अ० पु०) १ वादविवाद, वहस। २ तकरार, हुज्जत, झगड़ा।
सवासस् (सं० त्रि०) वासयुक्त, परिच्छदविशिष्ट।
सवासिन् (सं० त्रि०) एक वस्त्रधारी या एकत्रवासकारी।
सविकल्प (सं० त्रि०) १ विकल्प सहित, संदेहयुक्त, संदिग्ध। २ जो किसी विषयके दोनों पक्षों वा मतों आदिको कुछ निर्णय न कर सकनेके कारण मानता हो। (पु०) ३ दो प्रकारकी समाधियोंमेंसे एक प्रकारकी समाधि, वह समाधि जो किसी आलंबनकी सहायतासे होती है। समाधि देखो। ४ वेदान्तके अनुसार ज्ञाता और ज्ञेयके भेदका ज्ञान।
सविकार (सं० त्रि०) विकारयुक्त, जिसमें विकार हो।
सविकाश (सं० त्रि०) १ विकसित, खिला हुआ। २ असंकुचित, प्रसारित, विस्तारित, फैला हुआ।
सविग्रह (सं० त्रि०) विग्रहयुक्त, विग्रहविशिष्ट।
सविचार (सं० त्रि०) १ विचारयुक्त, विचारवान्। (पु०) २ समाधिविशेष। सविकल्प समाधि चार प्रकारकी है,—वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मित। विशेष विवरण समाधि शब्दमें देखो।
सविज्ञान (सं० त्रि०) विज्ञानके सहित, विज्ञानविशिष्ट।
सविडालम्भ (सं० क्ली०) नाट्यशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका परिहास या मजाक।
सवितर्क (सं० त्रि०) १ वितर्क सहित, वितर्कयुक्त। (पु०) २ चार प्रकारकी सविकल्प समाधियोंमेंसे एक प्रकारकी समाधि। समाधि देखो।
सविताचल—मेरुके उत्तरका एक पर्वत।
सवितृ (सं० पु०) सूते लोकादीनिति सु-तृच्। १ सूर्य, दिवाकर। इनकी नामनिरुक्ति यों है—

"धीशब्दवाच्यो ब्रह्माणं प्रचोदयति सर्वदा।
सृष्ट्यर्थं भगवान् विष्णुः सविता स तु कीर्त्तितः॥
सर्वलोक प्रसवनात् सविता स तु कीर्त्त्यते।
यतस्तद्देवता देवी सावित्रीत्युच्यते ततः॥"
(अग्निपु० गायत्रीकल्प)

विष्णु धी शब्दवाच्य है। विष्णु सृष्टिके लिये सर्वदा ब्रह्माको भेजते हैं, इसलिये वे सविता कहलाते अथवा उन्होंने जगत्‌की सृष्टि की है, इसीसे सविता नामसे कीर्त्तित हुए हैं। ऋग्वेदमें सविता ही आदि देवता कह कर पूजित हैं। ब्राह्मणादि तीन वर्णोंकी मूल गायत्रीमें सविता ही उपासित हुए हैं। सूर्य देखो। २ अर्कवृक्ष, मदारका पेड़।
सवितृतनय (सं० पु०) सवितुस्तनयः। सूर्यके पुत्र, हिरण्यपाणि।
सवितृदैवत (सं० पु०) नक्षत्रभेद, हस्ता नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिष्ठाता देवता सूर्य माने जाते हैं।

सवितृपुत्र (सं० पु०) सवितुः पुत्रः। सूर्यके पुत्र, हिरण्य पाणि।

सवितृप्रसूत (सं० त्रि०) सवितृसे जात।

सवितृल (सं० त्रि०) सवितृ सम्बन्धी।

सवितृसुत (सं० पु०) सूर्यके पुत्र, शनैश्चर।

सवित्र (सं० क्ली०) सूयतेऽनेन सू (अर्त्ति-लुधूसुखनसहचर इत्रः। पा ३।२।१८४) इति करणे इत्र। प्रसव करना, लड़का जनना।

सवित्रिय (सं० त्रि०) सूर्य-सम्बन्धी, सविता या सूर्यका।

सवित्री (सं० स्त्री०) १ प्रसव करनेवाली, माता, मां। २ गाभी, गौ।

सविद्य (सं० त्रि०) विद्यया सह वर्त्तमानः। विद्वान्, पण्डित।

सविद्युत (सं० क्ली०) विद्युत सहित।

सविध (सं० त्रि०) समाना विधास्येति। १ निकट, पास, समीप। २ समान प्रकार।

सविनय (सं० त्रि०) विनयके साथ, विनीत।

सविभाल (सं० पु०) नखी या हट्टविलासिनी नामक गन्धद्रव्य।

सविभास (सं० पु०) सूर्यका एक नाम।

सविलास (सं० त्रि०) भोगविलास करनेवाला, विलासी।

सविशेष (सं० त्रि०) विशेषके साथ।

सविशेषक (सं० त्रि०) १ विशेष पदार्थके साथ। (भाषा-परि०) २ तीन श्लोकोंमें जहाँ एक क्रियाका अन्वय होता है, उसे विशेषक कहते हैं। इस प्रकार विशेषकयुक्त। (साहित्यद०)

सविशेषण (सं० त्रि०) विशेषणयुक्त, विशेषणविशिष्ट।

सविस्मय (सं० त्रि०) विस्मयापन्न। पर्याय—वीक्षापन्न।

सवीमन् (सं० क्ली०) प्रसव, जनना। (ऋक् ५।५३।३)

सवीर्य (सं० त्रि०) वीर्यविशिष्ट, तेजोयुक्त।

सवीर्या (सं० स्त्री०) शतावरी, सतावर।

सवृत् (सं० त्रि०) सहवर्त्तनशील, सहवर्त्ती।

सवृध् (सं० त्रि०) पण्डितके सहित वर्त्तमान।

सवृष्टिक (सं० त्रि०) वृष्टियुक्त।

सवेग (सं० त्रि०) वेगयुक्त, वेगविशिष्ट।

सवेणी (सं० स्त्री०) समानवेणी।

सवेदस् (सं० त्रि०) समान एक वेद अर्थात् हविर्लक्षण-धन द्वारायुक्त, एक प्रकार हविर्युक्त। (ऋक् १।६३।६)

सवेरा (हिं० पु०) १ सूर्य निकलनेके लगभगका समय, प्रातःकाल, सुबह। २ निश्चित समयके पूर्वका समय।

सवेश (सं० त्रि०) १ वेशान्वित, वेशविशिष्ट, वेशयुक्त। (धरणि) २ निकट, समीप। (अमर)

सवेशीय (सं० क्ली०) साममेद।

सवैया (हिं० पु०) १ तौलनेका एक बाट जो सवा सेर-का होता है। २ एक पहाड़ा जिसमें एक, दो, तीन आदि संख्याओंका सवाया रहता है। ३ एक छन्द जिसके प्रत्येक चरणमें सात भगण और एक गुरु होता है। इसे मालिनी और दिवा भी कहते हैं। इस अर्थमें कुछ लोग इसे स्त्रीलिङ्ग भी बोलते हैं। ४ सवाई देखो।

सव्य (सं० त्रि०) सू प्रेरणे (माच्छाससिसूभ्यो यः। उण् ४।१०९) इति य। १ वाम, बायां। २ दक्षिण, दाहिना। सव्य शब्दका वाम और दक्षिण दोनों अर्थ होता है, पर साधारणतः यह वामके ही अर्थमें प्रयुक्त होता है। ३ प्रतिकूल, विरुद्ध, खिलाफ। (पु०) सूते विश्वमिति सू य। ४ विष्णु। ५ यज्ञोपवीत। ६ चन्द्र या सूर्यग्रहणके दश प्रकारके ग्रासोंमें एक प्रकारका ग्रास। (वृहत्स० ५।४३) ७ इन्द्राश्रितमेद। (ऋक् १०।४९।७ सायण) ८ अङ्गिराके एक पुत्रका नाम। कहते हैं, कि अङ्गिराके तपस्या करने पर इन्द्रने उनके घर पुत्र रूपमें जन्मग्रहण किया था जिनका नाम सव्य पड़ा। ये ऋग्वेदके १।५१-५७ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा थे।

सव्यचारिन् (सं० पु०) १ सव्यसाची, अर्जुन। २ अर्जुन वृक्ष, कोह वृक्ष।

सव्यञ्जन (सं० त्रि०) व्यञ्जनवर्णविशिष्ट।

सव्यतस् (सं० अव्य०) सव्य-तसिल्। सव्य भागमें, सव्य-पार्श्वमें। (ऋक् २।११।१८)

सव्यभिचार (सं० त्रि०) १ व्यभिचारविशिष्ट। (पु०) २ नैयायिक मतसे हेत्वाभासमेद। हेत्वाभास देखो।

सव्यष्ठा (सं० त्रि०) रथाधिष्ठित योद्धा। (अथर्व ८।८।२३)

सव्यसाचीन् (सं० पु०) अर्जुन। कहते हैं, कि अर्जुन

दाहिने हाथसे भी तीर चला सकते थे और बायें हाथसे भी, इसीलिये उनका यह नाम पड़ा।
सव्याधि (सं० त्रि०) व्याधियुक्त, पीड़ित।
सव्यानत (सं० त्रि०) बाईं ओर नत या झुका हुआ।
सव्याप्रष्टि (सं० पु०) मृगया करनेके समय घोड़ का बाईं ओर हो कर जाना।
सव्यायुग्य (सं० पु०) दाहिने और बायें दो घोड़े।
सव्यावृत् (सं० त्रि०) दाहिने और बायें हिल मिल कर चलनेवाला।
सव्यावृत्त (सं० त्रि०) दाहिने और बायें आवर्त्तित।
सव्याशून्य (सं० त्रि०) सव्य अशून्य। सर्वसुखपूर्ण।
सव्याहृति (सं० त्रि०) व्याहृतियुक्त, प्रणवविशिष्ट।
सव्येतर (सं० त्रि०) सव्यसे भिन्न।
सव्येतरतस् (सं० अव्य०) सव्येतर-तसिल्। दक्षिणकी ओर, दक्षिण भागमें। (भागवत ४।८।७६)
सव्येष्ठ (सं० पु०) सारथि। (हलायुध)
सव्येष्ठृ (सं० पु०) सारथि। (अमर)
सव्योत्तान—दाहिने या बायें झुक कर सोना।
सव्रण (सं० त्रि०) व्रणयुक्त, व्रणविशिष्ट।
सव्रत—१ समानकर्म, तुल्यकर्मविशिष्ट। (ऋक् ८।७०।३) २ व्रतविशिष्ट, नियमयुक्त।
सव्रतिन् (सं० त्रि०) व्रतीयुक्त, समान व्रतविशिष्ट।
सशङ्क (सं० त्रि०) १ शंकायुक्त, शंकित, जिसे शंका हो। २ भयभीत, डरा हुआ। ३ भयकारी, भयानक। ४ भ्रामक, शंका उत्पन्न करनेवाला।
सशब्द (सं० त्रि०) शब्दयुक्त।
सशयन (सं० त्रि०) शयनयुक्त, शय्याविशिष्ट।
सशरीर (सं० त्रि०) शरीरधारी।
सशल्य (सं० त्रि०) १ शल्ययुक्त। (पु०) २ शाछ, भालू।
सशल्यव्रण (सं० पु०) व्रणरोगका एक भेद। कांटे आदिके चुभ जानेसे यह व्रण उत्पन्न होता है। इसमें विद्ध स्थानमें सूजन होती और वह पक जाता है।
सशल्या (सं० स्त्री०) १ नागदन्ती, हाथी शुंडी। २ शल्ययुक्त भूम्यादि।
सशवो (हिं० पु०) कृष्णजीरक, काला जीरा।
सशाक (सं० क्ली०) अदरक, आर्द्री।
सशिरस्क (सं० त्रि०) शिरोविशिष्ट, मस्तकयुक्त।
सशिर्षन् (सं० त्रि०) शीर्षविशिष्ट, मस्तकयुक्त।
सशुक्र (सं० त्रि०) शुक्रयुक्त।
सशूक (सं० पु०) १ आस्तिक। (त्रि०) २ शूकरोगविशिष्ट।
सशेष (सं० त्रि०) शेषयुक्त, अन्तवाला।
सशोक (सं० त्रि०) शोकविशिष्ट, जिसे शोक या दुःख हो।
सशोथपाक (सं० पु०) एक प्रकारका नेत्ररोग। इस रोगमें आँखोंमेंसे आँसू निकलते हैं और उनमें खुजली तथा शोथ होता है। आँखें लाल भी हो जाती हैं।
सश्चत (सं० त्रि०) सश्च-शतृ। बाधनके लिये प्राप्तिविशिष्ट। (ऋक् १।४२।७)
सश्मश्रु (सं० स्त्री०) १ श्मश्रुयुक्त स्त्री। पर्याय—नरमालिनी। (त्रि०) २ श्मश्रुयुक्त, मूंछ दाढ़ीवाला।
सश्रीक (सं० त्रि०) लक्ष्मीयुक्त, धनवान्।
सश्लेष (सं० त्रि०) श्लेषयुक्त।
ससंज्ञ (सं० त्रि०) संज्ञाविशिष्ट।
ससङ्ग (सं० त्रि०) सङ्गयुक्त, साथवाला।
ससत्त्व (सं० त्रि०) प्राणीयुक्त।
ससत्त्वा (सं० स्त्री०) गर्भिणी, गर्भवती स्त्री।
ससन (सं० क्ली०) यज्ञार्थ पशुहनन, यज्ञमें पशुका वध करना। (अमरटीका)
ससरना (हिं० क्रि०) सरकना, खिसकना।
ससर्परी (सं० स्त्री०) सब जगह शब्दरूपमें सर्पणशील वाक्य। (ऋक् ३।५३।१५)
ससस्तिन् (सं० पु०) शस्त्रधारीके साथ।
ससाक्षिक (सं० त्रि०) साक्षीके सहित, साक्षियुक्त।
ससाध्वस (सं० त्रि०) सभय, भययुक्त।
ससोमन् (सं० त्रि०) सोमाके सहित।
ससुर (सं० त्रि०) देवताके सहित।
ससुर (हिं० पु०) जिसके पुत्री या पुत्रसे ब्याह हुआ हो, पति या पत्नीका पिता, श्वसुर। श्वसुर देखो।
ससुराल (हिं० स्त्री०) १ श्वसुरका घर, पति या पत्नीके पिताका घर। २ जेलखाना, बंदीगृह।

ससौष्ठव (सं० त्रि०) १ वेगगामी, तेज चलनेवाला । २ अति सुन्दर ।

सस्ता (हिं० वि०) १ जो मंहगा न हो, जिसका मूल्य साधारणसे कुछ कम हो, थोड़े मूल्यका । २ जिसका भाव बहुत उतर गया हो । ३ घटिया, साधारण, मामूली । ४ जो सहजमें प्राप्त हो सके, जिसका विशेष आदर न हो ।

सस्ती (हिं० स्त्री०) १ सस्ता होनेका भाव, सस्तापन । २ वह समय जब कि सब चीजें सस्ते दाम पर मिला करती हों ।

सस्त्रीक (सं० त्रि०) सपत्नीक, जिसके साथ स्त्री हो, स्त्री या पत्नीके सहित ।

सस्थान (सं० क्ली०) समान स्थान ।

सस्नि (सं० त्रि०) सम्भक्त । (ऋक् ६।६१।२०)

सस्नेह (सं० त्रि०) स्नेहयुक्त, प्रीतियुक्त ।

सस्मित (सं० त्रि०) ईषद्धास्ययुक्त, सहास्य ।

सस्य (सं० क्ली०) सस स्वप्ने (माच्छाससिसूभ्यो यः । उण् ४।१०६) इति य । १ वृक्षोंका फल । २ धान्य । ३ शस्त्र । ४ गुण । ५ शस्य देखो ।

सस्यक (सं० पु०) सस्येन गुणेन परिजातः सम्बन्धः सस्य (सस्येन परिजातः । पा ५।२।६८) इति कन् । १ वृहत्संहिताके अनुसार एक प्रकारकी मणि । २ असि, तलवार । ३ शालि । ४ साधु ।

सस्यक्षेत्र (सं० क्ली०) शस्यपरिपूर्ण क्षेत्र ।

सस्यपाल (सं० पु०) शस्यरक्षक, धानका रखवाला ।

सस्यमञ्जरी (सं० स्त्री०) अभिनव निर्गत धान्यादि शीर्षक, धानकी नई सींक ।

सस्यमारिन् (सं० पु०) १ मूसा, चूहा । (त्रि०) २ शस्य या अनाजका नाश करनेवाला ।

सस्यरक्षक (सं० पु०) शस्य-रक्षाकारी, अनाजकी रखवाली करनेवाला ।

सस्यवत् (सं० त्रि०) शस्यविशिष्ट, शस्ययुक्त ।

सस्यशीर्षक (सं० क्ली०) कर्ण ।

सस्यशूक (सं० क्ली०) सस्यका तीक्ष्णाग्र सूंग ।

सस्यसंवत्सर (सं० पु०) शाल, साखू ।

सस्यसम्बर (सं० पु०) सं-वृ-(ग्रह-वृदृनिश्चि गमश्च । पा ३।३।५८) इति अप् । १ शालवृक्ष । २ शल्लकी, सलई ।

सस्यसम्वरण (सं० पु०) शाल या अश्वकर्ण वृक्ष, साखू ।

सस्यहन् (सं० त्रि०) १ सस्यहन्ता, सस्य या अनाजका नाश करनेवाला । २ मेघ, बादल । (पु०) ३ कलि कन्या निर्मोष्टिके गर्भसे दुःसहका औरसजात पुत्र ।

सस्यहन्तृ (सं० पु०) शस्यनाशकारी, शस्य या अनाजका नाश करनेवाला । (मार्क०पु० ५१।८०१)

सस्या (सं० स्त्री०) गणिकारिका, अरनी ।

सस्र (सं० त्रि०) सरणशील, गमनशील, जानेवाला ।

सस्रि (सं० त्रि०) सरणकुशल, गमनकुशल ।

सस्रुत् (सं० त्रि०) सह प्रवर्त्तमान । (ऋक् १।११।२)

सस्वन (सं० त्रि०) सशब्द, शब्दके सहित ।

सस्वर (सं० त्रि०) स्वरवर्णके सहित, स्वरयुक्त ।

सस्वेद (सं० त्रि०) १ घर्मविशिष्ट, पसीनावाला । (स्त्री०) २ दूषिता कन्या । (शब्दरत्ना०)

सह (सं० अव्य०) १ सहित, समेत । (त्रि०) २ विद्यमान, उपस्थित, मौजूद । ३ सहिष्णु, सहनशील । ४ समर्थ, योग्य । (क्ली०) ५ सादृश्य, समानता, बराबरी । ६ यौगपद्य । ७ सम्बन्ध, लगाव । ८ सामर्थ्य, बल, ताकत । ९ पांशुलवण, रेहका नोन । (पु०) १० अग्रहायण मास, अगहनका महीना । (शुक्लयजु० १४।२७) ११ महादेव । (भारत १३।१७।१२६) (स्त्री०) १२ समृद्धि ।

सहकण्ठक (सं० त्रि०) वायुनली ।

सहकर्तृ (सं० पु०) यज्ञका सहकारी ।

सहकर्मन् (सं० त्रि०) सहाय, साहाय्यकारी, सहायता करनेवाला ।

सहकार (सं० पु०) १ सुगन्धियुक्त पदार्थ । २ आमका पेड़ । ३ कलमी आम । ४ सहयोग, साथ मिल कर काम करना । ५ सहायक, मददगार ।

सहकारता (सं० स्त्री०) सहायता, मदद ।

सहकारभञ्जिका (सं० स्त्री०) प्राचीन कालकी एक प्रकारकी क्रीड़ा या अभिनय ।

सहकारिता (सं० स्त्री०) १ सहकारी होनेका भाव, सहायक होनेका भाव । २ सहायता, मदद ।

सहकारिन् (सं० पु०) १ प्रत्यय। (लि०) २ सहयोगी, एक साथ काम करनेवाला, साथी। ३ सहायक, मददगार।

सहकृत् (सं० लि०) सहकारी, मददगार।

सहकृत्वन् (सं० लि०) सहकारी, मददगार।

सहकम्य (सं० लि०) क्रमबद्ध। (ऋक्‌प्राति० १८।१८)

सहखट्वासन (सं० क्ली०) खट्वा या आसन सहित।

सहगमन (सं० क्ली०) सह पत्या सह-गमनं। १ साथ जानेकी क्रिया। २ पतिके शवके साथ पत्नीके सती होनेका व्यापार, सती होनेकी क्रिया। सहमरण देखो।

सहगामिन् (सं० पु०) १ साथ चलनेवाला, साथी। २ अनुकरण करनेवाला, अनुगामी।

सहगामिनी (सं० स्त्री०) १ वह स्त्री जो पतिके शवके साथ सती हो जाय, पतिकी मृत्यु पर उसके साथ जल मरनेवाली स्त्री। २ स्त्री, पत्नी, सहचरी, साथिन।

सहगोप (सं० पु०) पशुपालकके सहित।

सहचर (सं० पु०) १ झिण्टी, कटसरैया। २ भृत्य, नौकर, दास। ३ मित्र, सखा, दोस्त। ४ वह जो साथ चलता हो, साथ चलनेवाला, हमराही।

सहचरद्वय (सं० क्ली०) पीत झिण्टी और नीलझिण्टी, पीली और नीली कटसरैया।

सहचरा (सं० स्त्री०) नील झिण्टी, नीली कटसरैया।

सहचराद्यतैल (सं० क्ली०) वैद्यकमें एक प्रकारका तेल। यह तेल बनानेके लिये नीले फूलवाली कटसरैया, धमासा, कत्था, जामुनकी छाल, आमकी छाल, मुलेठी, कमलगट्टा सब एक एक टके भर लेते हैं और उनका चूर्ण बना कर १६ सेर जलमें डाल कर औटाते हैं। जब चौथाई रह जाता है, तब उसे तेल या बकरीके दूधमें पकाते हैं। कहते हैं, कि इसके सेवनसे दाँत मजबूत हो जाते हैं।

सहचरित (सं० लि०) एकत्रवास और एकरूप आचरणशील।

सहचरी (सं० स्त्री०) १ पीत झिण्टी, नीली कटसरैया। २ वयस्या, सखी। ३ पत्नी, भार्या, जोरू।

सहचार (सं० पु०) १ सहचरी, संगी। २ साथ, संग, सोहबत।

सहचार उपाधि लक्षणा (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी लक्षणा जिसमें जड़ सहचारीके कहनेसे चेतन सहचरीका बोध होता है। जैसे, 'गद्दीको नमस्कार करो' यहां गद्दी शब्दसे गद्दी पर बैठनेवालेका बोध होता है।

सहचारिणी (सं० स्त्री०) १ साथमें रहनेवाली, सहचरी, सखी। २ पत्नी, स्त्री, जोरू।

सहचारिता (सं० स्त्री०) सहचारी होनेका भाव।

सहचारित्व (सं० क्ली०) सहचारी होनेका भाव।

सहचारिन् (सं० पु०) १ संगी, सहचर, साथी। २ सेवक, नौकर।

सहछन्दस् (सं० लि०) गायत्री आदि छन्दोंके सहित।

सहज (सं० पु०) सह जायते इति जन-ड। १ सहोदर भाई, सगा भाई, एक मांका जाया भाई। २ निसर्ग, स्वभाव। ३ ज्योतिषमें जन्म लग्नसे तृतीय स्थान, भाइयों और बहनों आदिका विचार इसी स्थानको देख कर किया जाता है। (लि०) ४ स्वाभाविक, स्वभावोत्पन्न, प्राकृतिक। ५ साधारण। ६ सरल, सुगम, आसान। ७ साथ उत्पन्न होनेवाला।

सहज—एक तान्त्रिक आचार्यका नाम। (शक्तिरत्नाकर)

सहजकीर्त्ति—एक जैन वैयाकरण, सारस्वतटीकाकार।

सहजकृति (सं० पु०) स्वर्ण, सोना।

सहजक्लैव्य (सं० क्ली०) नपुंसकता रोगका एक भेद, वह नपुंसकता जो जन्मसे हो हो।

सहजन्धि (सं० स्त्री०) सन्धि देखो।

सहजता (सं० स्त्री०) १ सहज होनेका भाव। २ सरलता, स्वाभाविकता।

सहजन (हिं० पु०) सहिजन देखो।

सहजन्मन् (सं० लि०) सह जन्म यस्य। १ एक गर्भसे एक साथ ही होनेवाली दो संतानें, यमज, यमल, जोड़ा। २ एक ही गर्भसे उत्पन्न, सहोदर, सगा।

सहजन्य (सं० पु०) एक यक्षका नाम।

सहजन्या (सं० स्त्री०) एक अप्सराका नाम।

सहजपंथ (हिं० पु०) गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका एक निम्न वर्ग। इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तकोंके मतानुसार भजन साधनके लिये पहले एक नवयौवनसम्पन्न सुन्दर परकीया रमणीकी आवश्यकता होती है। बाद रसिक भक्त या गुरुसे सम्यक् रूपसे उपदेश ले कर उस नायिकाके

प्रति तन मन अर्पण कर साधन भजन करनेसे अविलम्ब व्रजनन्दन रसिकशिरोमणि श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है। सहजियोंका कहना है, कि इस प्रकारको लीला महाप्रभु सर्वसाधारणको न दिखा कर गुप्तरूपसे राय रामानन्द और स्वरूप दामोदर आदि कई धार्मिक भक्तोंको बता गये हैं।

सहजपाल (सं० पु०) काश्मीरराजपुङ्गवभेद।

सहजमित्र (सं० पु०) स्वाभाविक मित्र। शास्त्रमें भानजा, मौसेरा भाई और फुफेरा भाई सहजमित्र और वैमात्रेय तथा चचेरे भाई सहज शत्रु बताये गये हैं। भानजे आदिसे सम्पत्तिका कोई सम्बन्ध नहीं होता, इसीसे ये सहजमित्र हैं। परन्तु चचेरे भाई सम्पत्तिके लिये झगड़ा कर सकते हैं, इससे वे सहजशत्रु कहे गये हैं। (मिताक्षरा)

सहजललित (सं० पु०) बौद्धयतिभेद। (तारनाथ)

सहजविलास (सं० पु०) बौद्धयतिभेद। (तारनाथ)

सहजशत्रु (सं० पु०) शास्त्रोंके अनुसार वैमात्रेय या चचेरा भाई जो सम्पत्तिके लिये झगड़ा कर सकता है। विशेष विवरण सहजमित्र शब्दमें देखो।

सहजा (सं० स्त्री०) सहज, सदैव उत्पन्न।

सहजात (सं० त्रि०) १ सहोदर। २ यमज। (त्रि०) ३ सहोत्थ।

सहजादित्य—एक सामन्तराज, उपाधि राजराज। १२३३ विक्रम-सम्वत्में बुलन्दशहरमें उत्कीर्ण अनङ्ग शिलाफलकमें वे उनके पूर्ववर्त्ती राजा रूपमें वर्णित हैं।

सहजाधिनाथ (सं० पु०) ज्योतिषके अनुसार जन्म कुंडलीके तीसरे या सहज स्थानका अधिपति ग्रह।

सहजानन्द तीर्थ—अद्वैतसिद्धि नामक ग्रन्थके प्रणेता।

सहजानन्दनाथ—पुरश्चरणप्रपञ्चके प्रणेता।

सहजानि (सं० स्त्री०) पत्नी, स्त्री, जोरू।

सहजानुप (सं० त्रि०) जानु (जंघा) द्वारा भूमि पर चलनेवालेको जानुप कहते हैं, उसके सहित।

सहजारि (सं० पु०) शास्त्रोंके अनुसार वैमात्रेय या चचेरा भाई जो समय पड़ने पर सम्पत्ति आदिके लिये झगड़ा कर सकता है, सहज शत्रु। शत्रु शब्द देखो।

सहजार्श (सं० पु०) वह अर्श या ववासीर जिसके मस्से कठोर, पीले रंगके और अंदरकी ओर मुंहवाले हों।

सहजित् (सं० त्रि०) एकत्र मिल कर जय करनेवाला।

सहजिया (सहजपन्थी)—धर्मसम्प्रदायभेद। वर्त्तमान समयमें गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायकी यह एक निम्नश्रेणी है। साधारणका विश्वास है, कि श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुके पुत्र वीरभद्र गोस्वामीसे ही इस पन्थीका उद्भव हुआ है। किन्तु इसका यथेष्ट प्रमाण है, कि सहज मत बहुत पहलेसे ही गौड़मण्डलमें प्रचलित था। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री महाशयने नेपालसे ८।९ सौ वर्षका पुराना कानुपाद, डोम्बिपाद, शान्तिदेव आदिके बहुतेरे प्राचीन पद और दोहे संग्रह किये हैं। उन सब पदोंमें सहजियोंके मूल धर्ममतका यथेष्ट उपकरण है। उन सब प्राचीन पदावलियोंकी आलोचना करने पर निःसन्देह यह धारणा होगी, कि बौद्धतान्त्रिक समाजसे ही इस सहजिया मतकी उत्पत्ति हुई है।

ईस्वी सन्‌की पहली शताब्दीमें महायान सम्प्रदाय प्रबल हो उठा था। इनमें फिर माध्यमिक और योगाचार ये दोनों मत प्रचलित हुए। माध्यमिकोंने शून्यवादी होने पर भी नाना बौद्ध और बोधिसत्त्वकी उपासना स्वीकार कर ली, इधर योगाचार मतावलम्बियोंने योगशास्त्र चर्चाके फलसे, जीवात्मा और परमात्माका मिलन स्वीकार कर अनात्मवादी महायानोंमें भी परोक्षमें आत्मवादका प्रचार किया। विभिन्न बुद्ध और बोधिसत्त्वोंकी मूर्त्तिपूजा और साथ ही प्रायः ४थी शताब्दीमें महायानमें मन्त्रयानका प्रभाव विस्तृत होने पर बुद्ध और बोधिसत्त्वोंकी एक एक शक्ति कल्पित हुई। महायान सम्प्रदायसम्भूत मन्त्रदानोंने ही विभिन्न शक्ति पूजाके साथ सर्वत्र तान्त्रिकता घोषणा की थी।

विभिन्न महायान बौद्ध सम्प्रदायमें ज्ञाननिष्ठा, इन्द्रियसंयम और संन्यास वैराग्य द्वारा ही प्रथमतः निर्वाणपद लाभका एकमात्र लक्ष्य था। भगवान बुद्धशिष्य आनन्दने नारी जातिको भी संन्यासका अधिकार दिया था। समय पा कर बौद्धविहार और संघाराममें बहुतेरे

श्रावक भिक्षुसंघकी तरह सैकड़ों श्राविकाओंने भी आश्रय लाभ किया था। अवश्य ही प्रथमतः दोनों पक्षोंका निवृत्तिकी ओर ही लक्ष्य था, किन्तु स्त्रीपुरुषके एकत्र अवस्थानका विषमय फल अवश्यम्भावी है। ज्ञाननिष्ठ जितेन्द्रिय श्रावक कामिनीकाञ्चन' या प्रवृत्तिमार्गका यथेष्ट विरोधी होने पर भी स्त्रीसंसर्गके फलसे कोई कोई अल्पधी प्रवृत्तिकी साधना द्वारा निवृत्ति या मोक्षपथ लाभके उपायके अनुसन्धानमें प्रवृत्त हुए। निरवच्छिन्न भोगसाधन द्वारा जो सहजानन्द लाभ होता है, उसके द्वारा ही निर्वाणपद सिद्ध हो सकता है, यह नव सम्प्रदाय छिप कर उक्त बातका प्रचार करने लगे। यह नव सम्प्रदाय 'वज्रयान' नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके पूर्वका मन्त्रयानसम्प्रदाय स्वयम्भू या आदिबुद्ध और उनकी प्रज्ञा या धर्मसे सम्भूत क्रमसे वैरोचन, अक्षोभ्य, रत्नसम्भव, अमिताभ और अमोघसिद्ध इन पञ्चध्यानी बुद्धोंने और इन पांचोंकी क्रमसे वैरोचनी, लोचना, मामुखी, पाण्डरा और तारा इन पांच शक्तियोंने तथा पञ्चबुद्ध और पञ्च शक्तियोंके पुत्रस्थानीय समन्तभद्र, वज्रपाणि, रत्नपाणि, पद्मपाणि और विश्वपाणि इन पञ्च ध्यानियोंने बोधिसत्त्व स्वीकार किया। इनका उपासक बोधिसत्त्वयान कहा जाता था; किन्तु प्रवृत्ति मार्गी नये सम्प्रदायने वज्रसत्त्व नामक षष्ठ ध्यानी बुद्ध और वज्रधात्वेश्वरी या वज्रेश्वरी नामकी उनकी शक्ति और घण्टापाणि नामक एक बोधिसत्त्वकी कल्पना कर जो नये मार्गका प्रचार किया, वही 'वज्रसत्त्वयान' या 'वज्रयान' नामसे प्रसिद्ध हुआ। उनकी आचारपद्धति रीति नीति अतिगुह्य तान्त्रिकोंकी तरह समाच्छन्न है। जिस सम्भोग-लालसाको पूर्वतन धर्मपन्थी अत्यन्त हेय घृण्य समझते थे, वज्रयान श्रावकोंने उसीको श्रेयः लाभ का उपाय है, ऐसी घोषणा की। उनके मतसमर्थक बहुतेरे तन्त्र भी प्रचलित हुए थे और यह धर्माचरण अति सहजसाध्य और आपात मनोरम होनेसे आपामर साधारण सभी प्रीतिकी दृष्टिसे देखते थे। इस सम्प्रदायका चण्डरोषणमहातन्त्र अत्यन्त प्राचीन है। महामहोपाध्याय शास्त्री महाशय नेपालसे प्रायः ८ सौ वर्षके हस्तलिखित एक चण्डरोषणतन्त्रकी टीकाका कुछ अंश अपने हाथसे नकल कर लाये हैं। उसके आरम्भमें ही 'सहजतत्त्व' की व्याख्या इस तरह है।

आनन्द चार प्रकारका है—आनन्द, परमानन्द, सहजानन्द और विरमानन्द। इनमें प्रज्ञा और उपाय जिससे आपसमें अनुराग उत्पन्न हो, वैसे लक्षण-विशिष्ट, आलिङ्गन, चुम्बन, स्तनमर्दन आदि द्वारा यन्त्रारूढ़की तरह वज्रपद्मसंयोगसे जो आनन्द अनुभूत होता है, उसको आनन्द कहते हैं। इसके बाद पद्मान्तर्गत वज्रचालन द्वारा मणिमूल बोधिचित्त प्राप्त होनेसे उसको परमानन्द कहते हैं। इस परमानन्दमें आनन्दकी अपेक्षा अधिक सुख होता है। इसके बाद फिर यदि इस मणिमूलसे पद्मोदयके अन्तर्गत अशेषरूपसे कार्य न हो, तो उसे सहजानन्द कहते हैं। इसमें ग्राह्य, ग्राहक और ग्रहणाभिमानवर्जित परम सुख उत्पन्न होता है। इसके बाद निश्चेष्ट हो कर मैंने सुखभोग किया है, इस तरहके विकल्प अनुभवको विरमानन्द, या पूर्वोक्त तीन प्रकारके सुखोंके त्याग देनेसे जो आनन्द होता है, उसको विरमानन्द कहते हैं। शून्यताका नाम ही विरमानन्द* है। यही अनादिनिधन सहजैकस्वभावज्ञानरूप महासुख है।

यद्यपि चण्डरोषण-महातन्त्र हमारे हाथमें नहीं आया है, तथापि उसकी सुप्राचीन टीकासे हम अच्छी तरह समझते हैं, कि 'सहजानन्द' और 'सहजैकस्वभावज्ञानरूप' महासुख वज्रयान बौद्ध सम्प्रदायका प्रधान लक्ष्य था। आज भी नेपालमें बौद्ध वज्रयानसम्प्रदायभुक्त हैं। उक्त तन्त्रकी व्याख्यासे आभास मिलता है कि इस सम्प्रदायके दीपङ्कर और श्रावकोंने ही इस गुप्त आनन्दका तत्त्व प्रकाशित किया। उन्होंने साधारणको यह समझा दिया, कि स्वयं भगवान् वज्रसत्त्वने अपनी शक्तिके साथ एकीभूत हो कर 'सहजानन्द' और 'सहजैकस्वभावतत्त्व' प्रकाश किया था। एक समय गौड़वङ्गमें भी यह वज्रयान विशेष प्रबल था। यद्यपि यह सम्प्रदाय महायानकी एक शाखा है, तथापि यह सम्प्रदायी मूल पारमिता महायानसे भी अपनेको श्रेष्ठ कहनेमें कुण्ठित नहीं होते। बौद्ध

---

* वेदान्तमें जो ब्रह्मानन्द लाभ बताया है, उसीको महायान शून्यता या निर्वाणपद कहते हैं।

तन्त्रकी टीकासे ही यह बात समझमें आ जाती है। इन्द्रियचरितार्थतारूप सहजसाधन जब धर्मका अङ्ग मान लिया गया, तब आपातसुख पिपासी जनसाधारण अनायास ही इस सहजधर्मका आश्रय लेंगे, यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है? गौड़वङ्गमें जब बौद्धोंका अधःपतन आरम्भ हुआ, तब वैदिक और हिन्दू तान्त्रिक ब्राह्मणोंके प्रभावसे उच्च जातिके प्रकाश्यरूपसे वज्रयान मत परित्याग कर उच्च धर्मका आश्रय लेने पर भी साधारणके हृदयमें इस सहजधर्मने इतनी जड़ पकड़ ली थी, कि उसके उखाड़ फेंकनेकी किसीमें शक्ति नहीं थी। जनसाधारणको हाथमें करनेके लिये शैव और शाक्तोंने 'शक्तिसाधन' और वैष्णवोंने 'सहजभजना' का प्रचार किया। नाममें और व्यवहारमें सामान्य वैलक्षण्य रहने पर भी 'शक्तिसाधन' और 'सहजभजन' वज्रयानका ही संस्कार है, इसमें सन्देह नहीं। शाक्तोंने 'शक्तिसाधन' उपलक्षमें जप ध्यान आदि कुछ पूजाविधि जोड़ कर इस साधनको वज्रसाधनसे कुछ दूर हटा लिया है। किन्तु 'सहजभजन'-निरत सहजिया अधिक दूर पीछे हट नहीं सके। जो वज्रसाधन गौड़-वङ्गके जनसाधारणमें नित्यानुष्ठानके रूपमें बहुत दिनों तक मान्य था, सामाजिक और राजनीतिक विप्लवके झकोरेमें कहीं उड़ जायगा, यह कभी सम्भवपर नहीं। महामहोपाध्याय शास्त्री महाशयको धर्मपूजक डोम आदि नीच जातियोंमें बौद्ध धर्मका अन्तिम निदर्शन दिखाई दिया है। हम भी उनके अनुवर्त्ती हो इस समय सहजियोंमें उस भ्रष्ट बौद्धधर्मकी शेष स्मृतिका कुछ परिचय पा रहे हैं। धर्मपूजकोंकी तरह सहजियोंने भी आद्या-शक्तिके संभ्रममें अनादि निरञ्जनसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी उत्पत्तिकी कल्पना की है। किसी भी हिन्दूशास्त्रमें ऐसी बात नहीं पाई जाती।

धर्मठाकुर देखो।

वज्रयानोंने जैसे वज्रसत्त्व और अपनी शक्तिको मिलनावस्थामें 'सहजानन्द' और 'सहजैकस्वभावज्ञान' की उत्पत्ति प्रकाशित की है, वर्त्तमान सहजियोंके वैष्णव कह अपना परिचय देने पर भी उनके 'आगमसार'में हर-गौरीकी मिलनावस्थामें वैसे ही तत्त्वप्रकाशका आभास पाया गया है। चण्डरोषणतन्त्रकी प्राचीन व्याख्या और गौरीदास रचित 'निगूढ़ार्थप्रकाशावली' नामके सहजिया ग्रन्थको मिला कर देखनेसे यह धारणा होती है, कि चण्डरोषण-तन्त्रकी व्याख्या ही विशदभावसे वङ्गभाषामें निगूढ़ार्थप्रकाशावली नामसे प्रकाशित हुई है।

महाप्रभु चैतन्यदेवके अभ्युदयके बहुत पहले हो वैष्णव तान्त्रिकोंने सहजमत ग्रहण किया था, यह बात चण्डिदासकी पदावलीसे प्रमाणित होती है। चण्डिदासके बहुत पदोंमें 'वाशुली' देवीका नाम मिलता है। इन्हीं देवीके प्रत्यादेशसे चण्डिदासने सहजतत्त्व प्रकाशित किया था।

नेपालके वज्राचार्योंने वज्रसत्त्वकी शक्तिवज्रधात्वीश्वरीकी जिस तरह गुह्यमूर्त्ति चित्रित की थी, उनके साथ नान्नूरकी वाशुली मूर्त्तिका बहुत सादृश्य है। यह कहना व्यर्थ है, कि नान्नूरकी अधिष्ठात्री मूर्त्ति ही चण्डिदासकी इष्टदेवी है। संस्कृतमें वज्रधात्वीश्वरी प्रथमतः वज्रेश्वरी और साधारणके मुखसे अपभ्रंश हो कर बाजशली या वाशुलीमें परिणत हो जाना कुछ विचित्र बात नहीं। अतएव वैष्णव सहजियोंकी आदि उपास्या वाशुली और वज्रयानोंकी वज्रधात्वीश्वरी, मानो एक और अभिन्न देवी मालूम होती है।

गौड़-वङ्गसे बौद्धधर्मके प्रभाव विलोपके साथ साथ मुण्डितकेश बौद्ध श्रावक और श्राविकाओंकी नितान्त दुरवस्था उपस्थित हुई। उस समय वैष्णव समाजका आश्रय लाभ कर परवर्त्ती समयमें 'नाड़ा नाड़ी' वा 'नेड़ा नेड़ी' नामसे परिचित हुए। नित्यानन्द प्रभुके पुत्र वीरभद्रने बहुतेरे नेड़ा नेड़ियोंका उद्धार किया था। सम्भवतः उन्होंने उन्हींसे प्रच्छन्न वज्रयान मत (सहजतत्त्व)-को शिक्षा पाई होगी।

पूर्वतन महायान सम्प्रदाय जैसे ज्ञानमार्गका पथिक था, वज्रयान सम्प्रदाय उसी तरह इस मार्गका पथिक है। इस मार्गके पथिकको सहजिया 'रसिक' कहते हैं।

सुतरां देखा जाता है, कि सहजपन्थी ज्ञानमार्ग नहीं चाहते। वे प्रकृति और पुरुषके मिलनको ही पुरुषार्थ समझते हैं। जो इस साधनोंमें सिद्ध हैं, वे ही रसिक

भक्त हैं। उनमें गृही और उदासीन भेद नहीं है, इससे सभी इसके अधिकारी हैं।

वर्त्तमान सहजिया प्रेमदास-रचित आनन्दभैरव, आगमसार, मुकुन्ददास-रचित अमृतरत्नावली और अमृतरसावली इन चार ग्रन्थोंको ही सहजतत्त्व-निर्देशक सर्वप्रधान ग्रन्थ समझते हैं।

इनके मतसे छः गोस्वामी और अन्यान्य साधकवृन्द अपने जीवनमें विशेषरूपसे इस भजन-प्रणालीको दिखा गये हैं, जो बाहरमें किसी ग्रन्थमें नहीं है। किन्तु सङ्ग साथ करते करते यह जाना जाता है और इनके पथावलम्बनमें उस श्यामसुन्दर और राधारानीकी कृपा प्राप्त होती है और भी ये कहते हैं, कि इसमें नियम-कानून आचार-विचार कुछ भी नहीं है। स्त्रियोंके ऋतुके तीन दिन भी ये अस्पृश्य नहीं मानते। उक्त अवस्थामें भी श्रीभगवान्‌की सेवा पूजा आदि सभी करते हैं। वे नायिकाकी देह ही श्रीवृन्दावन और उक्त नायिकामें ही श्रीश्यामसुन्दर और राधा रानीका अधिष्ठान होनेका विश्वास करते हैं।

सहजतत्त्व समझनेके लिये उनके भाव और प्रेम क्या है? बीजमन्त्र स्वरूप अमृततत्त्व क्या है? सम्बन्धतत्त्व, रतितत्त्व, वर्णतत्त्व क्या है? इत्यादि गूढ़ रहस्योंका जानना आवश्यक था। ये सब जाने जाने पर साधन भजन द्वारा भावदेह प्राप्त हो व्रजके व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको प्राप्त किया जाता है।

सहजीविन् (सं० त्रि०) एक साथ जीवन धारण करनेवाले, साथ रहनेवाले।

सहजेन्द्र (सं० पु०) फलितज्योतिषके अनुसार जन्मकुण्डलीके तीसरे या सहज स्थानके अधिपति ग्रह।

सहजोषण (सं० त्रि०) परस्परमें आनन्दानुभव।
सजोषण देखो।

सहण्डुक (सं० क्ली०) मांसव्यञ्जनविशेष, एक प्रकारका मांसका जूस। बनानेका तरीका—बकरे आदिकी जांघके मांसल स्थानका मांस खण्ड खण्ड कर कूटे और अच्छी तरह धो डाले। पीछे एक पाकपात्रमें घृत (घृतके अभावमें तैल) डाल कर हींग और हल्दी भूने। पीछे उसे छान कर फेंक दें। घृत या तैलमें मोठी आंचमें मांस भून ले। जब मालूम पड़े, कि मांस सिद्ध होता आ रहा है, तब उपयुक्त जल और लवण डाल कर पाक करे। मांस पाककी मध्यावस्थामें नमक, मिर्च, धनिया आदि मसाले डाल दे। पीछे वह जब अच्छी तरह सिद्ध हो जाय, तो नीचे उतार ले। इस प्रणालीसे पाक करने पर उसे सहण्डुक कहते हैं। इसका गुण—अत्यन्त शुक्रवर्द्धक, बलकारक, रुचिकर, शरीरका उपचयकारक, त्रिदोषशान्तिके पक्षमें श्रेष्ठ, अग्निप्रदीपक और धातुपोषक।

सहत (अ० पु०) शहद देखो।

सहत महत (हिं० पु०) श्रावस्ती देखो।

सहतरा (फा० पु०) पर्पटक, पित्तपापड़ा।

सहतूत (फा० पु०) शहतूत देखो।

सहत्व (सं० क्ली०) १ सहका भाव। २ एक होनेका भाव, एकता। ३ मेल जोल।

सहदइया (हिं० स्त्री०) सहदेई देखो।

सहदान (सं० क्ली०) बहुतसे देवताओंके उद्देश्यसे एक साथ ही या एकमें किया जानेवाला दान।

सहदानु (सं० त्रि०) दानु शब्दका अर्थ दानवी, वृत्रमाता है, उसके सहित या दानवके सहित। (ऋक् ३।३०।८)

सहदेई (हिं० स्त्री०) क्षुप जातिकी एक वनौषधि जो पहाड़ी भूमिमें अधिक उपजती है। यह तीन चार फुट ऊंची होती है। इसके पत्ते महुएके पत्तोंके समान होते हैं। वर्षा ऋतुमें यह उगती है। बढ़नेके साथ साथ इसके पत्ते छोटे होते जाते हैं। पत्तोंकी जड़में फूलोंकी कलियां निकलती हैं। ये फूल बरियारेके फूलोंकी भांति पीले रङ्गके होते हैं। इसके पौधे चार प्रकारके पाये जाते हैं।

सहदेव (सं० पु०) १ पाण्डुके पञ्चम पुत्र। पञ्च-पाण्डवमें सहदेव पञ्चम थे। माद्रीके गर्भसे इनका जन्म हुआ था। महाभारतमें इनके जन्मादिका विवरण लिखा है। राजा पाण्डुके दो स्त्री थीं—कुन्ती और माद्री। मुनिके शापसे पाण्डु स्त्री-सहवाससे वञ्चित थे। कुन्तीके गर्भसे पाण्डुके युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। पाण्डु शब्द देखो।

कुन्तीके पुत्र हुआ है, देख कर माद्रीने एक दिन पाण्डुसे एकान्तमें कहा, 'हम दोनों सपत्नी समान हैं, परन्तु मेरे एक भी सन्तान नहीं, भाग्यक्रमसे कुन्तीके

तीन पुत्र हुए हैं। अभी यदि कुन्ती मेरी सन्तानोत्पत्तिका उपाय कर दें, तो उनका मेरे प्रति अनुग्रह होगा और इसमें आपको भी भलाई होगी। कुन्ती मेरी सपत्नी हैं, इसलिये मैं उन्हें नहीं कह सकती, आप भले ही कह सकते हैं।

इसके बाद पाण्डुने निर्जनमें कुन्तीसे कहा, 'कल्याणि! जिससे मेरा वंश विच्छिन्न न हो तथा जिससे तेरे जैसे माद्रीमें सन्तान हो, वैसा उपाय करो।' यह बात सुन कर कुन्तीने माद्रीसे कहा, 'तुम एक बार किसी देवताका स्मरण करो, इससे तुम्हारे तदनुरूप पुत्र होगा, इसमें सन्देह नहीं। तब माद्रीने मन ही मन अश्विनीकुमारद्वयका स्मरण किया। अश्विनीकुमारद्वयने वहां आ कर निरुपम रूपसम्पन्न यमज पुत्र उत्पादन किये। दोनों पुत्रोंके नाम नकुल और सहदेव रखे गये। ये दोनों सर्वदा युधिष्ठिरके अनुगत थे। (भारत आदिप०)

नकुल शब्द देखो।

२ जरासन्धके पुत्र। ये युधिष्ठिरके समय मगधदेशके राजा थे। ३ हर्य्यश्वके पुत्र। (हरिवंश २६।३) ४ सोमदत्तके पुत्र। (हरिवंश ३२।८०) (त्रि०) देवैः सह वर्त्तमानः। ५ देवताके साथ वर्त्तमान।

सहदेव—अग्निस्तोत्र, व्याधिसङ्कविमर्द्दन और शाकुनशास्त्रके रचयिता। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इनका उल्लेख है।

सहदेव चक्रवर्त्ती—धर्ममङ्गलके प्रणेता एक सुप्रसिद्ध बंगाली कवि। घनरामका धर्ममङ्गल रचित होनेके बाद इन्होंने भी तत्संक्रान्त और एक काव्यकी भी रचना की। हुगली जिलेके बालीगढ़ परगनेके राधानगर ग्राममें कविका जन्म हुआ। १७४० ई०में कालू राय नामक देवताके स्वप्नादेशसे इन्होंने धर्ममङ्गलकी रचना आरंभ की। यह धर्ममङ्गल घनराम आदि कवियोंके काव्यानुकरण नहीं है। इसका विषय सम्पूर्ण स्वतन्त्र है। इसमें नाना हिन्दू देव देवियोंके प्रसङ्गके साथ बौद्ध उपाख्यान भी सन्निविष्ट हुए हैं। ग्रन्थ ग्राम्यभाषासे पूर्ण और कई जगह मर्मस्पर्शी है।

सहदेवा (सं० स्त्री०) १ बला, बरियारा। २ दन्तोत्पल। ३ पीतपुष्पी, सहदेई। सहदेई देखो। ४ अनन्तमूल, शारिवा। ५ नील। ६ सर्पाक्षी, सरहंटी। ७ प्रियंगु। ८ सोनवली नामकी वनस्पति। यह क्षुप जातिकी वनस्पति है तथा भारतवर्षके प्रायः सभी प्रान्तोंमें पाई जाती है। इसकी ऊंचाई दो फुट तक होती है। इसकी डंडीके नीचेके भागमें पत्ते नहीं होते। पत्ते दोसे चार इञ्च तक चौड़े, गोल और सिरे पर कुछ तिकोने होते हैं। इनको डंडियां १-२ इंच लंबी होती हैं। फूल छोटे छोटे होते हैं। यह औषधके काममें आती है। ६ भागवतके अनुसार देवककी कन्या और वसुदेवकी पत्नी।

सहदेवी (सं० स्त्री०) १ पीतपुष्पी, सहदेई। सहदेई देखो। २ सर्पाक्षी, सरहंटी। ३ महानीली। ४ प्रियंगु। ५ सहदेवकी स्त्री।

सहदेवीगण (सं० पु०) ओषधिसमूह। सहदेवी, बला, शतमूली, शतावरी, कुमारी, गुडूची, सिंही और व्याघ्री इन सब द्रव्योंको सहदेवीगण कहते हैं। "या ओषधिः सोमराज्ञी" इत्यादि वैदिक मन्त्र पढ़ कर इन सब द्रव्योंसे स्नान कराना होता है। (गरुड़पु० ४८ अ०)

सहधर्म (सं० पु०) १ धर्म। २ धर्मके सहित। ३ समान धर्म।

सहधर्मचर (सं० त्रि०) सहित धर्माचरणकारी, एकत्र धर्माचरण करनेवाला।

सहधर्मचरण (सं० क्ली०) एकत्र धर्माचरण, सहित धर्मानुष्ठान।

सधर्मचरी (सं० स्त्री०) स्त्री, पत्नी, जोरू।

सधर्मचारिन् (सं० त्रि०) एकत्र धर्मानुष्ठानकारी, एक साथ धर्म करनेवाला।

सहधर्मचारिणी (सं० स्त्री०) सहधर्मचरी, सहधर्मिणी, पत्नी, जोरू।

सहधर्मन् (सं० त्रि०) धर्मके सहित।

सहधर्मिणी (सं० स्त्री०) पत्नी, स्त्री, जोरू।

सहधान्य (सं० त्रि०) १ धान्यके सहित। २ जीवनरक्षाका उपायविशिष्ट।

सहन (सं० क्ली०) सह-ल्युट्। १ क्षान्ति, क्षमा, तितिक्षा। २ सहनेकी क्रिया, बरदाश्त करना। (त्रि०) ३ सहनशील, सहनेवाला।

सहन (अ० पु०) १ मकानके बीचमें या सामनेका खुला छोड़ा हुआ भाग, आँगन, चौक। २ एक प्रकारका मोटा

गफ, चिकना सूती कपड़ा जो मगहरमें अच्छा बनता है, गाढ़ा। ३ एक प्रकारका बढ़िया रेशमी कपड़ा।

सहनक (अ० पु०) १ एक प्रकारकी छिछली रिकावी जिसका व्यवहार प्रायः मुसलमान लोग करते हैं, तबक। २ बीबी फातिमाकी निमाज या फातिहा।

सहनभण्डार (सं० पु०) १ कोष, खज़ाना, निधि। २ धन राशि, दौलत।

सहनर्त्तन (सं० क्ली०) एकत्र गोलाकारमें नाचना।

सहनशील (सं० त्रि०) १ जिसका स्वभाव सहन करनेका हो, जो सरलतासे सह लेता हो, बरदाश्त करनेवाला। २ सन्तोषी, सब्र करनेवाला।

सहनशीलता (सं० स्त्री०) १ सहनशील होनेका भाव। २ सन्तोष, सब्र।

सहना (हिं० क्रि०) १ बरदाश्त करना, झेलना, भोगना। २ परिणाम भोगना, अपने ऊपर लेना, फल भोगना ३ बोझ बरदाश्त करना, भार वहन करना।

सहनाई (फा० स्त्री०) शहनाई देखो।

सहनीय (सं० त्रि०) सह्य, सहन करनेके योग्य, जो सहा जा सके।

सहन्तम (सं० त्रि०) शत्रुओंका अभिभवकारी।

सहन्त्य (सं० त्रि०) शत्रुओंका अभिभवनशील, अग्नि।

सहपति (सं० पु०) १ ब्रह्मा। (त्रि०) २ भर्त्तृयुक्त, पतिके सहित। (शुक्लयजु० ३७।२०)

सहपत्नी (सं० स्त्री०) पतिपत्नीयुक्त, दम्पती।

सहपांशुकिल (सं० पु०) वयस्य, सखा। (त्रिका०)

सहपांशुक्रीड़न (सं० क्ली०) धूल खेलना।

सहपाठ (सं० स्त्री०) एकत्रपाठ, एक साथ पढ़ना।

सहपाठिन् (सं० त्रि०) सहाध्यायी, जो साथमें पढ़ा हो, जिसने साथमें विद्याका अध्ययन किया हो।

सहपान (सं० क्ली०) एकत्र मद्यभक्षण, एक साथ शराब पीना।

सपिण्डक्रिया (सं० स्त्री०) सपिण्डीकरणक्रिया, सपिण्डीकरण श्राद्ध।

सहपीति (सं० स्त्री०) एकत्र मद्यपान, एक साथ शराब पीना।

सहपुरुष (सं० त्रि०) पुरुषयुक्त।

सहपूर्वाह्ण (सं० क्ली०) पूर्वाह्ण सदृश।

सहप्रम (सं० त्रि०) यज्ञको इयत्ता परिज्ञान।

सहप्रयायिन् (सं० त्रि०) एकत्रगामी, सहगामी।

सहप्रयोग (सं० पु०) एकत्र प्रयोग।

सहप्रवाद (सं० त्रि०) सप्रवाद, प्रवादयुक्त।

सहप्रस्थायिन् (सं० त्रि०) एकत्र प्रस्थानकारी, एक साथ जानेवाला।

सहभक्ष (सं० त्रि०) १ समान सोमपानविशिष्ट। (क्ली०) २ सहभोजन, साथ खाना।

सहभस्मन् (सं० त्रि०) भस्मके सहित।

सहभाव (सं० पु०) भावके साथ, समान भावविशिष्ट।

सहभाविन् (सं० पु०) १ वह जो सहायता करता हो, सहायक, मददगार। २ सहोदर। ३ सहचर, सखा।

सहभुज् (सं० त्रि०) सह-भुज-क्विप्। एकत्र भोजनकारी, एक साथ खानेवाला।

सहभू (सं० त्रि०) एकत्रोत्पन्न, एक साथ उत्पन्न।

सहभूति (सं० स्त्री०) एश्वर्यके साथ।

सहभोजन (सं० क्ली०) सह-मिलित्वा भोजनं। १ एकत्र भक्षण, एक साथ बैठ कर भोजन करना, साथ खाना। २ सहभोगकरण।

सहभोजिन् (सं० त्रि०) सह-भुज-णिनि। एकत्र भोजनकारी, जो एक साथ बैठ कर खाते हों, साथ भोजन करनेवाले।

सहम (सं० क्ली०) १ सङ्कोच, लिहाज। २ ज्योतिषके मतसे ताजकोक्त योग। वर्षप्रवेश विचारके समय सहम स्थिर कर तब फलाफल निरूपण करना होता है। ताजकमें लिखा है—सहम पचास तरहका होता है। पचासोंके नाम इस तरह हैं-- १ पुण्यसहम, २ गुरु, ३ ज्ञान, ४ यशः, ५ मित्र, ६ माहात्म्य, ७ आशा, ८ बलत्व, ९ भ्राता, १० गौरव, ११ राजा, १२ पिता, १३ माता, १४ पुत्र, १५ जीवित, १६ जल, १७ कर्म, १८ रोग, १९ काम, २० कलि, २१ क्षमा, २२ शास्त्र, २३ बन्धु, २४ वन्दक, २५ मृत्यु, २६ परदेश, २७ धर्म, २८ परदार, २९ अन्यकर्म, ३० वाणिज्य, ३१ कार्यसिद्धि, ३२ उद्वाह, ३३ प्रसव, ३४ सन्ताप, ३५ श्रद्धा, ३६ प्रीति, ३७ बल, ३८ शरीर, ३९ जड़ता, ४० व्यापार, ४१ जलपतन, ४२ रिपु, ४३

शौर्य्य, ४४ उपाय, ४५ दरिद्रता, ४६ गुरुता, ४७ जलपथ, ४८ बन्धन, ४९ कन्या और ५० अश्वसहम। गणनाके समय पहले यह स्थिर किया जाता है, कि इन पचास सहमोंमें कौन सहम हुआ। इसके बाद फलनिरूपण करना होता है।

ताजकमें सहम विचारस्थलमें इनके प्रत्येकका विशेष विवरण दिया गया है। बाहुल्यके भयसे यहां दिया न गया।

सहम (फा० पु०) १ डर, भय, खौफ। २ संकोच, लिहाज, मोलाहजा।

सहमत (सं० त्रि०) जिसका मत दूसरेके साथ मिलता हो, एक मतका।

सहमना (फा० क्रि०) भय खाना, भयभीत होना, डरना।

सहमरण (सं० क्ली०) सहपत्या मरणं। यह मृत्यु संकल्पपूर्वक और क्रिया विशेषके साथ सम्पादित की की जाती थी। सहमरण पद्धति देखो। मृतपतिके शव के साथ ज्वलच्चितामें बैठ कर अपनी देहको भस्म करना। जो स्त्री पतिके साथ अनुगमन करती है, उसको सती कहते हैं।

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यकमें इसके सम्बन्धमें जो कुछ मन्त्र उद्धृत हुआ है. वह यह है—

"इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यते उपत्वा मर्त्त्य प्रेतम्। विश्वं पुराण मनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥"

सायणाचार्य्यने इसका निम्न प्रकारसे भाष्य किया है—'हे मर्त्त्य मनुष्य या नारी मृतस्य तव भार्य्या सा पतिलोकं वृणाना कामयमाना प्रेतं मृतं त्वामुपनिपद्यते समीपे नितरां प्राप्नोति। कीदृशी। पुराणं विश्वमनादिकालप्रवृत्तं कृत्स्नं स्त्रीधर्ममनुक्रमेण पालयन्ती पतिव्रतानां स्त्रीणां पत्या सहैव वासः परमोधर्मः। तस्यै धर्मपत्नै त्वमिह लोके निवासार्थं मनुज्ञां दत्वा प्रजां पूर्ववियमानां पुत्रादिकां द्रविणं धनं च धेहि सम्पादय अनुजानीहीत्यर्थः।'

इससे प्रतिपन्न होता है, कि सहमरण ही विधवा स्त्रियोंका कर्त्तव्य था, किन्तु पुत्रधन आदिकी रक्षाके लिये मृत पतिको अनुज्ञा ले उनको सहमरणके दायित्वकी रक्षा करनी पड़ती थी।

और एक ऋक् यह है—

"उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि।"

सायणने इसका भाष्य यों किया है—"हे नारि त्वमितासुं गतप्राणमेतं पतिमुपशेष उपेत्य शयनं करोसि। उदीर्ष्वास्मात् पतिसमीपात् उत्तिष्ठ। जीवलोकमभिजीवन्तं प्राणिसमूहमभिलक्ष्यैहि।"

ये दोनों मन्त्र ही तैत्तिरीय-आरण्यक ग्रन्थके छठे प्रपाठकके प्रथम अनुवाकमें उद्धृत हुए हैं। इन दो मन्त्रों द्वारा विशिष्टरूपसे प्रमाणित होता है, कि वैदिक समयमें भी सहमरणकी प्रथा प्रचलित थी। किन्तु पुत्रादि रक्षणके लिये सहमरणमें बाधा उपस्थित होती थी। पिछले कालमें और स्थल-विशेषमें सहमरणप्रथाप्रतिनिवर्त्तक निषेध स्पष्टरूपसे ही विधिबद्ध हुआ था।

"बालापत्यान्श्चगर्भिण्यो ह्यदृष्टे ऋतवस्तथा।
रजस्वला राजसूने नारोहन्ति चितां शुभे॥"

(कृत्यतत्त्वार्णवधृत बृहन्नारदीयम्)

सायणके भाष्यमें अग्निप्रवेशकी कोई बात नहीं है। किन्तु स्मार्त्त रघुनन्दनने उक्तमन्त्रके 'अग्रे' पाठके स्थानमें 'अग्ने' पाठकी कल्पना कर यह मन्त्र सहमरणका श्रौतमन्त्र निर्द्धारित किया है। अनुमृता शब्द देखो।

महाभारतमें भी सहमरणका प्रमाण मिलता है। माद्री पाण्डु राजाकी चिता पर चढ़ कर सहमृता हुई थी।

मौषलपर्वमें दिखाई देता है, कि वसुदेवकी मृत्युके बाद उनकी चार रानियाँ उनकी मृतदेहके साथ भस्मीभूत हुई थीं। उन्होंने भी स्वेच्छापूर्वक पतिकी ज्वलच्चितामें बैठ कर अपनी देहकी आहुति कर डाली।

(मौषलप० ७म अध्याय)

द्रोणकी पत्नी भी सहमृता हुई। महाभारतके पन्नोंको उलटनेसे ऐसी सहमृता साध्वी नारियोंकी घटना और अधिक दिखाई दे सकती है। सहमरणकी यह प्रथा बहुत प्राचीनकालसे चली आती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। हाँ, यह अवश्य है, कि स्त्रीमात्र सहमृता होती न थी। कोई कोई मृतपतिका अनुगमन करती

थी। मनुसंहितामें पति मृत होने पर साध्वी स्त्रीकी ब्रह्मचारिणी होनेकी सुस्पष्ट व्यवस्था है। यथा—

"मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता"

सुतरां सहमरणप्रथा अवश्य-कर्त्तव्य कभी न थी।

सन् १८२९ ई०की ४थी दिसम्बरको लार्ड विलियम बेंटिङ्कके शासनमें यह प्रथा कानून बना कर रद्द कर दी गई। कलकत्तेके स्वर्गीय राजा राममोहन रायने इस प्रथाके प्रतिषेधमें यथेष्ट आलोचना और आन्दोलन किया था।

सन् १८१८ ई०के आरम्भमें राजा राममोहन रायने बंगभाषामें सतीदाहके प्रतिषेधके निमित्त शास्त्रीय आलोचनापूर्वक एक पुस्तक प्रकाशित की थी। इसमें दोनों पक्षकी शास्त्रयुक्तियोंकी आलोचना की गई थी।

अनुकूल मतावलम्बियोंका कहना है, कि शास्त्रका मर्म इसी तरह हो सकता है। किन्तु हारीत, अङ्गिरा और विष्णु आदि संहिताकारोंको बात भी उपेक्षणीय नहीं। इसके उत्तरमें प्रतिकूलवादियोंका कहना है, कि साधारणतः सहमरणकी जो सब घटनायें दिखाई देती हैं, वे किसी शास्त्रको अभिमत नहीं कही जा सकती। सहमरणका संकल्प यही है, कि सती अपनी इच्छासे ज्वलन्त चितामें प्रवेश करें। किन्तु कार्यतः ऐसा देखा गया है, कि विधवाको स्वामीकी मृतदेहके साथ एकत्र बांध कर चिताकाष्ठराशिके दबावसे विधवा मृतप्राय हो जाती है, वह उठनेकी चेष्टा करने पर भी उठ नहीं सकती। इसके बाद चिताकी अग्निसे असहनीय यातना भोग करते हुए यदि वह शिर उठाता है, तो दण्ड द्वारा उसका शिर चूर्णविचूर्ण कर दिया जाता है। ऐसी भीषण घटना कभी भी शास्त्रसम्मत नहीं हो सकती। अनुकूल मतावलम्बियोंका कहना है, कि यह प्रथा अवश्य ही शास्त्रसम्मत नहीं, यह स्वीकार्य है; किन्तु सहमरणका संकल्प कर सहमृता नहीं होना पापजनक है। सम्भवतः इसीलिये स्थान-स्थानमें ऐसी प्रथा प्रचलित नहीं होगी। इस आपत्तिका खण्डन कर प्रतिकूलवादियोंका कहना है, कि इस पापकी बात भित्तिमूल नहीं। शास्त्रमें है—

"चितिभ्रष्टाच या नारी मोहाद्विचलिता भवेत्।
प्राजापत्येन शुध्येत् तु तस्माद्धि पापकर्मणः॥"

उक्त आपस्तम्ब वचन द्वारा स्पष्टतः ही चिति-भ्रष्टता पापके प्रायश्चित्तका विधान परिलक्षित होता है। फिर यदि यह न रहता, तो क्या यह निष्ठुर नारीहत्या परम कारुणिक शास्त्रकारोंकी अभिप्रेत होती? यह कभी स्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रतिकूलावलम्बी और भी कहते हैं, कि विष्णुने कहा है, कि—"मृते भर्त्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं वा।" सुतरां ब्रह्मचर्य ही प्रथम कल्प है। ब्रह्मचर्यावलम्बनमें मुक्ति लाभका पथ प्रशस्ततर है।

सहमरणके सम्बन्धमें श्रुति-स्मृतिमें विधि है और अवस्थाविशेषमें निषेध भी है। सुविख्यात राजा राममोहन राय महाशयने इस विषय पर जब आन्दोलन किया था, तब सहमरणके अनुकूल ई पण्डित पुस्तिका लिख उनके साथ विचारमें प्रवृत्त हुए थे। उन्होंने भी ग्रन्थाकारमें उन सब पण्डितोंकी शास्त्रीय उक्तियों और युक्तियोंका प्रतिवाद किया था। हम उसीका संक्षिप्त मर्म प्रकाशित करते हैं।

राजा राममोहन रायने इसके सम्बन्धमें जो दो पुस्तिका लिखी थीं, पीछे उसका अंग्रेजीमें अनुवाद हुआ था। अपनी पुस्तिकाओंमें महात्मा राममोहन रायने यह प्रतिपन्न किया था, कि सहमरणकी प्रथा अतीव निष्ठुर, अमानुषिक तथा अशास्त्रीय है। यूरोपमें जिन विद्वानोंने अंग्रेजी अनुवादको पढ़ा, उनमें विल्सन साहब भी एक व्यक्ति हैं। इङ्गलैण्डके सुप्रसिद्ध रायल एशियाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित सामयिक पत्रके षोड़श खण्डमें प्रोफेसर हेरिस हेमन्स विल्सन साहबने हिन्दूविधवाकी जीवितावस्थामें स्वामीको चिता पर दग्ध हो प्राण परित्याग करनेके विरुद्ध एक प्रबन्ध लिखा था। उनका कहना था—ऐसी निष्ठुर प्रथा वेदादि शास्त्रोंके अनुसार विपरीत है। कलकत्ता महानगरीके सुविख्यात राजा सर राधाकान्त देव बहादुर महोदयने इस प्रबन्धका प्रतिवाद कर प्रोफेसर विलसनको सन् १८५८ ई०की ३०वीं जूनको एक पत्र लिखा था। प्रोफेसर विलसनने इस पत्रका जो उत्तर दिया था, वह उनके द्वारा प्रणीत "Religous sects of the Hindoos" नामक सुपरिचित ग्रन्थके द्वितीय खण्डके (सन् १८६२ ई०के संस्करणमें)

२६३ पृष्ठ पर मुद्रित हुआ था। वहां राजा बहादुरके पत्रका शास्त्रीय मर्म उद्धृत कर देते हैं—

तैत्तिरीय संहिताकी अश्व नामकी शाखाके दो श्लोकोंमें "सती" होनेकी कथा सुस्पष्टरूपसे उल्लिखित है। नारायण उपनिषद्‌के ८४ संख्यक श्लोकमें यह उद्धृत हुआ है।

भरद्वाज और आश्वलायन आदि वैदिक शास्त्रोंमें सहमरणविधिका उल्लेख है। दाक्षिणात्यमें प्रचलित और सर्वजनगृहीत 'सहमरणविधि' सुपरिचित ग्रन्थमें उद्धृत सहमरणकी व्यवस्था दिखाई देती है।

रघुनन्दन भट्टाचार्यने 'शुद्धितत्त्व'में उक्त ऋग्वेद और ब्रह्मपुराणसे श्लोक उद्धृत कर प्रमाणित किया था, कि सहमरणप्रथा वेदविधिसम्मत है। आचार्य कोलब्रुक साहब रघुनन्दनके इस प्रसिद्ध श्लोकको अपने 'विधवाका कर्त्तव्य' नामक अङ्गरेजी प्रबन्धमें सन्निविष्ट किया है। राजा राधाकान्तने उक्त प्रमाण दिखा कर लिखा था,—'इमा नारीरविधवा,-सपत्नीः रांजनेन सर्पिषा सं विशन्तु। अनश्रवोऽनमीराः सुवत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे। ऋग्वेदवादात् साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी।' आश्वलायनी, सांख्यायनी, शाकला, वाष्कला, माण्डुकेयी आदि" यहां देखा जाता है, कि सहमरणके समय विधवाको सधवाके समुदय लक्षण धारण करने होते हैं। यहां "साध्वी" शब्दका अर्थ—स्वामीके साथ चितामें दग्ध हो प्राण त्यागकारिणी स्त्री।

भरद्वाज और आश्वलायन सूत्रग्रन्थसे भी स्पष्टतः जाना जाता है, कि वैदिक युगमें सहमरणकी प्रथा प्रचलित थी।

राजाका* कहना है, कि वेदमें यदि सहमरणकी प्रथा न हुई होती, तो स्मृति और पुराण आदिमें यह प्रथा कभी भी प्रवर्त्तित नहीं होती। क्योंकि ऐसे गुरुतर कार्यमें वेदके प्रमाणकी आवश्यकता है। सचमुच वैदिक शास्त्रमें सहमरणका निषेध नहीं किया गया है। तैत्तिरीय संहिताकी अश्वशाखाके श्लोक सहमरणके अनुकूल हैं। अग्निके प्रति सतीका सम्बोधन वाक्य इसका अकाट्य प्रमाण है।

मीमांसकोंका कहना है, कि—जब दो भिन्न भिन्न विरोधी व्यवस्था दिखाई देती है, तब तीसरी व्यवस्था बना लेना युक्तिसंगत है। "तुल्यबलविरोधे विकल्पः"—गौतम-न्याय। कुल्लूक भट्टका भी यही राय है। वैदिक सूत्रकारोंने किस तरह मीमांसा की है, अब उसकी आलोचना करें। सूत्रकारोंका कहना है, कि ब्राह्मणके बलिदानार्थ अस्त्रादि या पात्रादि जैसे अग्नि पर रखना होता है, वैसे ही सतीको आग पर रखना कर्त्तव्य है, नहीं तो शुद्धा नहीं होती। किन्तु जो विधवा इच्छापूर्वक सहमृता होना चाहे, उसको अग्निके समीप ले जानेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह स्वयं चिताके पास चली जाती है, जो वहां जाने पर राजी नहीं, वह वहां जा कर शुद्धा हो सकती है, किन्तु शुद्धा होना या न होना उसकी इच्छा है। इसीसे श्रुतिने व्यवस्था की है,—विधवाको अपने वशवर्त्तिनी होने दो, बलपूर्वक कोई कार्य करना अनुचित है। तर्क यह है, कि यदि विधवा स्वेच्छापूर्वक सहमृता होना न चाहे तो उसकी इच्छाके विरुद्ध कार्य करना उचित है या नहीं? कभी नहीं। विधवा जब चिता पर शयन कर चुकी, तब समझ लेना होगा कि सहमृता होनेकी उसकी इच्छा है। आठवें श्लोकको आवृत्ति कर पूछा गया है, कि "तुम स्वेच्छापूर्वक सहमृता होने आई हो या नहीं?" दाक्षिणात्यदेशकी,सहमरणविधि नामक ग्रन्थ देखो। यदि वह कहे—"स्वेच्छापूर्वक मैं सती होती हूं।" तो सहमरणकी क्रिया अवश्य हो सकेगी। सम्मता न हो, तो चितासे उठ कर विधवा जा सकती है। ऐसी विधवाओंका नाम चिताभ्रष्टा है। प्राजापत्य नामधेय प्रायश्चित्त द्वारा ऐसी विधवाओंका पाप नष्ट हो सकता है। क्योंकि शास्त्रमें ऐसी व्यवस्था है। ८वीं ऋक्‌के सायणकृत भाष्य पढ़िये, "यस्माद् अनुमरणनिश्चयम् आकर्षोग तस्मादागच्छ।" यह अवश्य स्वीकार्य है, कि हिन्दू-स्त्री विधवा होने पर सहमरणका परामर्श उसको कोई सहज ही दे नहीं सकता। वरं उसको लोग ऐसा ही परामर्श देते हैं,

* राजा राधाकान्त देवके पत्रमें मूल श्रौत प्रमाण उद्धृत हुआ है।

जिससे वह परिवारमें रह कर प्रकृत वैधव्य धर्मका पालन करते हुए गार्हस्थ्यकर्म सम्पादन करे। किन्तु यदि वह स्त्री सहमृता होना चाहे, तो उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई बाधा नहीं दे सकता। अब देखा गया, कि ऋग्वेदकी ८वीं ऋक् सहमरणकी केवल अनुकूल नहीं, वरं मन्त्र स्वरूप है। राजा राधाकान्तदेवने इसी तरह के सतीदाहका समर्थन किया है।

दो सहस्र वर्ष पहले प्पारटीयस् नामक सुप्रसिद्ध यूनानी पण्डित भारतवर्षको सहमरणप्रथाका विवरण लिख गये हैं। वयशेश नामक एक अङ्गरेज पण्डितने इस ग्रन्थके कई श्लोकोंका अङ्गरेजीमें अनुवाद किया था।

उन्होंने और भी कहा है, इसके भी बहुत वर्ष पहले सिसिरो नामक भुवनविख्यात यूनानी पण्डित अपने ग्रन्थ में Tusculune सहमरणप्रथाका उल्लेख कर गये हैं। हेरोदोतसने जो विश्वप्रसिद्ध ऐतिहासिक हैं, लिखा है, कि थ्रेस देशमें एक जातीया स्त्रियां अपने मृत पतिकी कब्रमें आत्मवलि दे कर प्राणत्याग करती थीं।

सतीदाहके सम्बन्धमें एक सत्य कहानी सुनिये। पहले ही कहा जा चुका है, कि सन् १८२६ ई०में अङ्गरेज सरकारने कानून बना कर सतीदाहकी प्रथा रोक दी सन् १८२६ ई०से कुछ पूर्व बङ्गालके छोटे लाट सर हालिडे हुगली जिलेके मजिस्ट्रेट थे। उन्होंने अपनी आंखोंसे एक सतीदाहकी घटना देख कर जो विवरण लिपिबद्ध किया था, वह वकलैण्ड साहबके लिखे ग्रन्थमें उद्धृत हुआ है। सर एफ हालिडेने लिखा है,—मैं जब हुगलीका मजिस्ट्रेट था, तब एक दिन सहसा मुझको समाचार मिला, कि मेरे घरसे कुछ मील दूर गङ्गाके किनारे सतीदाहका आयोजन हो रहा है। उस समय गङ्गाके किनारे ऐसी घटना होते सुनी जाती थी। जब यह समाचार मुझे प्राप्त हुआ, उस समय डाक्टर वाइज तथा गवरनर जनरेल चापलैन मेरे पास बैठे थे। हम लोग तीनों आदमी घटनास्थल पर उपस्थित हुए। जा कर हम लोगोंने देखा, कि गङ्गातीरके घटनास्थलमें अपार भीड़ खड़ी है। जनतामें सती रमणी बैठी है। हम लोग उनके पास जा कर बैठे। मेरे दो साथियोंने उनको आत्महत्यासे प्रतिनिवृत्त होनेके लिये बहुतेरे उपदेश किये। सती रमणीने ध्यान दे कर उनकी सारी बातें सुनीं, किन्तु वे अपने दृढ़ सङ्कल्पसे तिल भर भी पीछे न हटीं।

कुछ देरके बाद उन्होंने पतिकी शवदेहके साथ सोनेके लिये निरतिशय उत्कण्ठा प्रकाश करना आरम्भ किया और अनुमति मांगी। उनको प्रतिनिवृत्त करना कठिन समझ मैंने अनुमति दे डाली। इस समय पादरी साहबने बाधा दे कर कहा, कि 'मुझे दो एक बातें पूछनी हैं।' उन्होंने सतीसे पूछना आरम्भ किया। सती आपने यह सोच लिया है, कि आप जिस काममें प्रवृत्त हो रही हैं, उसमें कितनी यातना होगी। सतीने मेरी ओर अवनत दृष्टिसे देख कर कहा,—"एक प्रदीप लाइये।" उन्होंने अपने हाथसे घृतमें डुबो कर बत्ती ठीक कर दी। सतीने जलते हुए दीपक पर अपनी एक उंगली रखी। सती रमणी तीव्रभावसे मेरी ओर देखने लगी। मानो वे मुझको नीरवरूपसे समझा रही थीं, कि हम लोग जो सोच रहे हैं, वह कुछ भी नहीं है। अग्नि सर्वदाहक और सर्वपीड़क होने पर भी सतीरमणीको इससे जरा भी यातना नहीं होती। देखते देखते उनकी उंगली झुलस गई, फोड़ा निकल आया तथापि रमणी अटल और अचलभावसे खड़ी थीं। उनके मुख पर विन्दुमात्र भी यातनाका चिह्न दिखाई नहीं दिया। देखते देखते उंगली जल कर कालीसी हो गई। किन्तु सतीने उस पर जरा भी अनुभूतिका चिह्न प्रकाश नहीं किया। अन्तमें उंगली जल कर सङ्कुचित पतली और टेढ़ी हो गई। एक हंसपुच्छको कुछ देर अग्निसन्तापमें रखने या उसकी जैसी अवस्था होती है, सती रमणीकी अवस्था वैसी ही हो गई। इतने समयके भीतर उन्होंने अपनी उंगलीको जरा भी न हिलाया और न वाक्य द्वारा चाहे भाव भङ्गीसे यातना ही प्रगट की। उन्होंने पूछा—आप लोग समझ गये हैं क्या ?

मैंने कहा,—"अच्छी तरह समझ गया हूं।" तब सतीने कहा,—तब मैं चितामें प्रवेश कर सकती हूं ? मैंने शिर हिला कर कहा—हां। सतीने श्मशान शय्या पर शयन किया। उन पर हलकी हलकी लकड़िया रखी गई। यदि वे वहांसे उठनेकी इच्छा करतीं, तो सहज ही

उठ जाती। श्मशान-बन्धुओंने उनको बांध देनेकी चेष्टा की थी, किन्तु मेरी बोजहसे वे ऐसा कर न सके। इसी समय उनके बीस वर्षके लड़केने चितामें अग्नि लगा दी दूर देशमें सतीके पतिकी मृत्यु हुई थी, इससे शवदेह लाई न जा सकी। इससे उनके कपड़ेको ले कर ही सती सहमृता हुईं। घृत और धूपसे अग्नि प्रज्वलित हो उठी। चिताके खूब निकट मैं खड़ा हो गया। मैंने देखा कि सजाये हुए काष्ठखण्डोंसे आगकी लपट निकल रही है। इसके भीतर सतीकी देह निष्पन्दभावसे जल रही है। एक बार सामान्य रूपसे काष्ठखण्ड हिले, किन्तु कुछ भी शब्द सुनाई न दिया। नीरव निष्पन्दभावसे सतीकी देह जल उठी। पुत्र शोकाकुल हो कर गङ्गाके किनारे गिर कर रोने लगा। हम लोग वहांसे घर लौट आये। भारतवर्षमें इस तरहके एक दो नहीं, लाखों उदाहरण मिल सकते हैं।

ई० १८११से १८२१ ई० तक कलकत्ते तथा उसके निकटके स्थानोंमें सतीदाहके विवरण मिले हैं। कहीं कहीं बलपूर्वक भी यह घटना हुई है, इसका भी रोमाञ्चकारी विवरण लोगोंको जबानी सुना गया है। कलकत्तेके सुप्रसिद्ध फोर्टविलियम कालेजमें रामनाथ नामक एक संस्कृत अध्यापक रहते थे, उनसे मालूम हुआ, कि शान्तिपुरके निकट उलाग्रामके मुक्ताराम बाबू नामक कुलीन ब्राह्मणकी १३ पत्नियां पतिके साथ सहमृता हुई थीं। इनमें एक महिला पहले उत्साहके साथ सहमृता होनेके लिये आई थी, किन्तु मन्त्रोच्चारण करते ही भयभीत हो कर भाग खड़ी हुई। तब उसीके लड़केने बलपूर्वक उसे चितामें फेंक दिया। अपनी एक सपत्नीके गलेमें गला जोड़ उसकी अनिच्छा रहते हुए भ उसको ले कर चिताग्निमें कूदना पड़ा।

सन् १८२९ ई०को चौथी दिसम्बरको Regulation xvii of 1329 सतीदाहके विरुद्ध कानून बनवाने पर भी भारतके बहुत स्थानोंमें सतीदाहकी घटनाएं हुई हैं। कानूनके अनुसार अपराधी भी राजदण्डसे दण्डित हुए हैं। इस समय कानूनके प्रबल शासनमें सती रमणी पति वियोगके दुर्विसह शोकमें आच्छन्न हो कर भी कभी कभी चितानलमें आत्मदेह अर्पण करनेमें सुविधा पा जाती हैं। फिर ऐसी घटना विरल नहीं। अब उसका रूप बदल गया है। शोककी उत्तेजनासे सती रमणियां पतिवियोगकी असीम यन्त्रणाको न सह आत्महत्या कर इस यातनासे छुटकारा पाती हैं। भारतवर्षमें सर्वत्र ही यह प्रथा प्रचलित थी। सन् १८८३ ई०में जयपुरराज्यमें उतर्णा नामक स्थानमें श्यामसिंह ठाकुरकी पत्नी मृत तणामीकी देहके साथ एक चिता पर भस्मीभूत हुई थी। इसके लिये अपराधीको दण्डित भी होना पड़ा था। कानूनकी प्रबल रुकावट रहने पर भी उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें और राजपूतानेमें आज भी कभी कभी सतीदाहकी घटनाका समाचार मिलता ही रहता है।

महाराष्ट्र और राजपूतानेके सम्भ्रान्त महिलाओंमें सहमरणकी प्रथा अत्यन्त प्रचलित था। राजनीतिक कारणसे भी वे मृतपतिका अनुगमन करतीं थी। युद्धमें मुसलमानोंकी जय होने पर पाछे मुसलमानोंके हाथ पड़ जायेंगी, इस भयसे राजपूतानेकी वीर क्षत्राणियां चिता सजा कर जल जाती थीं। सिक्खोंमें भी यह घटना विरल न थी। इदूरके सुविख्यात जीवनसिंहकी पत्नी सन् १८४३ ई०में सहमृता हुई थी।

मानसिंहकी १५०० पत्नियोंमें ६० स्त्रियां सहमृता हुई थीं। टाड साहबके राजस्थानमें लिखा है, कि सन् १७८० ई०में आषाढ़ मासमें मारवाड़के राजा अजितसिंहकी मृत्यु हुई। इस समय उनकी चौहान रानी, देरावल राजकुमारी, तुष्वर रानी, छवरा रानी, सेखावती रानी, अन्यान्य और भी पचास रानियां सहमृता हुई थी।

महाराष्ट्र प्रदेशमें सती दाह स्थल पर कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित करनेकी रीति प्रचलित थी। ऐसे स्तम्भों पर सतीका पैर या हाथ अङ्कित किया जाता था। औंकोलके अन्तर्गत ब्रह्मवाडी नामक स्थानमें नापू गोखलेकी कन्याके चिता भस्म पर जो कीर्त्तिस्तम्भ निर्मित हुआ था, उस पर उनका पैर अङ्कित है। कुड़िया गांके युद्धमें अपने स्वामीकी मृत्युका समाचार पा कर इस वीररमणीने प्रज्वलित अग्निमें अपनी देह-भस्मीभूत कर दी थी।

भोजनगरमें सन् १७७० ई०में राजा लक्षरावने प्राण-

त्याग किया था। उनके श्मशानस्तम्भके ऊपर अश्वकी पीठ पर उनकी मूर्त्ति खुदी हुई है। उनके दक्षिणपार्श्वमें आठ और बाईं ओर सात पत्नियोंकी मूर्त्तियां हैं। कुल १५ स्त्रियां सहमृता हुई थीं।

सरगुजाकी काउर जातिमें भी यह प्रथा प्रचलित है। आज भी वहां प्रतापपुरके निकट सतीक्षेत्र विद्यमान है। सम्राट् अकबर इस प्रथाके विरोधी थे। योधपुरके राजकुमारकी मृत्यु होने पर उनकी पुत्रवधू सहमृता होने पर उद्यत हुईं। यह समाचार पा कर इसे रोकनेके लिये अकबर एक तीव्रगामी घोड़े पर चढ़ कर एक सौ मीलकी दूरीके घटनास्थल पर पहुंचे थे। अकबरका कहना था, कि जो स्वेच्छापूर्वक मरती है, उनको मरने दो, किन्तु बलपूर्वक यह कार्य्य कराना अत्यन्त गर्हित और निन्दनीय काम है। हिन्दू भी सतियोंको प्रतिनिवृत्त करनेके लिये सहानुभूतिसूचक वाक्योंमें उन लोगोंको सान्त्वना करते थे। इसका भी यथेष्ट प्रमाण है।

महाराष्ट्र प्रदेशके राजा शाहुकी पत्नी सुखवार बाईके सहमृता होनेके लिये उद्यत होने पर उनको रोकनेकी भरसक चेष्टा की गई। किन्तु उन्होंने कहा, "मैं अपने स्वामी कुलके गौरवकी रक्षाके लिये निश्चय ही सहमृता हूंगी।" यह कह कर वह प्रज्वलित चितामें कूद पड़ी थीं।

यूरोपके परिव्राजकों और ऐतिहासिकोंमें बहुतेरोंका ख्याल इस प्रथाके प्रति दृष्टि पड़ी थी। किन्तु उनका विवरण अत्यन्त विभिन्न है। मिष्टर एलफिन्सन साहबका कहना है, कि दक्षिण-भारतमें यह प्रथा सर्वत्र प्रचलित न थी। कृष्णा नदीके दक्षिण भागमें कभी भी ऐसी घटना होनेका समाचार नहीं मिलता था। आवी दुबई इसका समर्थन कर गये हैं। किन्तु मार्कोपोलो और ओडरिकका कहना है, कि दक्षिण-भारतमें इस प्रथाका प्रचलन अधिक था। सन् १५८० ई०में पुर्त्तगीज परिव्राजक गैसपारो बालबीने नागपत्तनमें सतीदाह अपनी आखों देखा था और यह लिखा है, कि यह प्रथा सर्वत्र ही प्रचलित थी। कर्णेलाइतोंके प्रक्यूरेटर जेनरल पी०विनसेजो १७वीं शताब्दीके मध्यभागमें यहां उपस्थित थे, उन्होंने कनाड़ा अञ्चलमें कितनी ही सतीदाह देखी हैं। उन्होंने यहां कहानी सुनी थी, कि मदुराके नायककी ग्यारह हजार स्त्रियां स्वामीके साथ सहमृता हुई थीं। ११ हजार सतीकी बात अत्युक्तिपूर्ण हो सकती है, किन्तु मदुरा अञ्चलमें १८वीं शताब्दीके अन्तभाग तक भी सतीदाह प्रथा प्रचलित थी, इसका प्रमाण मिष्टर पी० मार्टिनके १७१३ ई०के लिखे एक पत्रमें लिखा है, कि यहांके तीन सम्भ्रान्त व्यक्तियोंके मरने पर एकके साथ ४५, दूसरेके साथ १७ और तीसरेके साथ १२ स्त्रियां सहमृता हुई थी। त्रिचनापल्लीके राजाकी जब मृत्यु हुई, उस समय उनकी पत्नी अन्तःसत्वा थीं, वह सन्तान प्रसव करनेके बाद सहमृता हुई थी।

१८वीं सताब्दीके अन्त तक बङ्गालमें सतीदाहकी प्रथा बहुत प्रचलित थी। मद्रास तथा उड़ीसेमें बङ्गालकी तरह अधिक सतीदाह देखा जाता न था। किन्तु गञ्जाम, राजमहेन्द्री और विशाखपत्तनमें सतीदाहका प्रचलन था। महाराष्ट्रोंके शासनमें बम्बईमें सर्वत्र ही यह प्रथा प्रचलित हुई।

१९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें भी अनेक बार सतीदाहकी प्रथा दिखाई दी। मिष्टर मूरने एक वर्षमें मुट्टा और मूला नदीके सङ्गमस्थलमें छः सतीदाह देखे थे। नदियोंका सङ्गमस्थल ही सतीदाहका पुण्यस्थल कहा गया है।

भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें सतीदाहके पृथक्-पृथक् नियम थे। बङ्गदेशमें सतीको चिताके साथ रस्सीमें बांध रखनेकी प्रथा थी। उड़ीसेमें मिट्टीके नीचे श्मशानशय्या सज्जित होता और सती उस पर झपट कर कूद जाती थी। दाक्षिणात्यमें सती मृतपतिके शिरको गोदमें ले कर बैठ जाती थी। सन् १८१७ ई०में केवल बङ्गदेशमें ७०६ और १८१८ ई०में ८३९ सतीदाह हुए थे। पतिशोकसे सतियां जलमें डूब कर भी प्राणत्याग करती थीं। काशीधाममें श्मशानमें कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित किया जाता था। रमणियाँ स्नान करनेके बाद इन कीर्त्तिस्तम्भे पर जल चढ़ाया करती थीं। सन् १९०१ ई०में गयामें दुखिया नामकी एक स्त्रीने मृत स्वामीकी चिता पर आरो-

हण किया था। कलकत्ता हाईकोर्टके जस्टिश घोष और वेलरके सामने उसका फैसला हुआ।

सिखोंमें सतीदाहकी प्रथा बहुत कम है, सिखग्रन्थोंमें लिखा है, कि जो स्त्री सहमृता होती है, वह यथार्थ सती नहीं। जो पतिके वियोगमें भग्नहृदय हो कर सदा शोकाभिभूत रहा करती है, वही प्रकृत सती है। किन्तु ऐसा उपदेश रहने पर भी कभी कभी सिख रमणियाँ मृतस्वामीका अनुगमन करती थीं, सिखराज सुचेत सिंहकी मृत्यु पर उनकी ३०० रानियोंने सहमृता होनेका सौभाग्य प्राप्त किया था। रणजित्सिंहकी मृत्युमें भी चार रानियोंने उनका अनुगमन किया था। प्रत्येक रानीने बड़े अनुरागसे प्रसन्न चित्तसे चितानलमें देह समर्पण कर दिया था। रणजित्सिंह और अनुमरण शब्द देखो।

प्राचीन शाकद्वीपियोंमें भी यह प्रथा यथेष्ट थी। सुप्राचीन थ्रेसीय, जिट और शाकगण 'सती'के गौरवसे गौरवान्वित थे। ईसाके ४४ वर्ष पहले दियोदोरस लिख गये हैं, कि ईसाके जन्मके ३ सौ वर्षसे भी अधिक पहले युमेनिसकी सेनावाहिनियोंमें ऐसी एक घटना हुई थी, आरिष्टविलास तथा ओनेसिक्रिटसकी विवरणीका उल्लेख कर ष्ट्रावो, सती माहात्म्यकी क्षीण स्मृति पाश्चात्य जगत्में विकाश कर गये हैं। आरिष्टोविउलास तक्षशिलावासिनी पतिहीना रमणियोंको आत्मोत्सर्ग प्रथाका परिचय दे गये हैं। सिसिरोके 'टासविलियन डिसपिउटेसन' ग्रन्थमें और ६६ ई०में, प्लुतार्क रचित नीतिमालामें, भारतीय सतियोंकी सहमरण कहानी उज्ज्वल भाषामें वर्णित है। प्रोपार्सियस वर्णित सती कहानी रामुस्थोरकी लेखनीमें लिखी हुई है।' भारतीय सतीकी कीर्त्ति १६०० वर्ष पहले सुसभ्य रोमन बड़ी मर्यादाकी दृष्टिसे देखते थे। उस दृश्यने दाम्पत्य-प्रणयका शीर्ष स्थान अधिकार कर एक दिन समग्र जगत्‌को पागल बना दिया था।

उत्तर देशवासी डेनमार्कोंने इस सती-कहानीको अपने देशके बलदारके उपाख्यानमें विवृत कर रखा है। बलदारकी सुन्दरी पत्नी नान्नाने स्वामीकी मृत्युसे अपना जीवन असार समझ उसकी चिताग्निमें अपनी देह जला दी थी।

शाकद्वीपीय लोग जानते हैं, कि जो स्त्री अनन्तकालस्वामी प्रेमाकांक्षिणी और अपने सुख दुःख भागिनी है, वही सती हैं। स्त्रियां भी परलोकमें स्वामिसङ्ग-लाभकी आशासे स्वामीकी मृत्युदेहके साथ कब्रमें अपनी देह रखनेके लिये अग्रसर होती हैं। थेसियाओंमें साधारणतः बहुविवाह प्रचलित हैं। इन सब पत्नियोंमें जो सर्वापेक्षा स्वामीकी प्रियतमा होती, मृतपुरुषका निकटात्मीय उसको अपने हाथसे समाधि पर मार कर इसके बाद मृत-स्वामी-देहके साथ ही गाड़ देते हैं।

चीन देशके तातार कुलोद्भवोंमें शाकद्वीपीय सती प्रथा आज भी जोरोंसे है। यहां सम्भ्रान्तवंशीय व्यक्तियोंमें, विशेषतः राजपुरुषोंमें किसी व्यक्तिकी मृत्यु होनेसे केवल उसकी स्त्री ही नहीं, साथ उनके अनुचरोंको भी मृत्युमुखमें भेज दिया जाता था। सन् १६६२ ई०में सम्राट्की मृत्यु होने पर उनके अनुचर परलोकमें सम्राट्के कार्यमें नियुक्त होनेकी आशासे आपसमें मार काट मचा कर मर गये थे।

भारतीय द्वीपपुञ्जके बीच बालि और लम्बक द्वीपमें आज भी ब्रह्मण्य धर्मका प्रबल प्रभाव है। यहाँ आज भी सतीदाहकी प्रथा जैसी प्रचलित है, वैसी भारतमें दिखाई नहीं देती। केवल विधवा पत्नी नहीं, यहां गुलाम स्त्रियां या खरीदी हुई स्त्रियां भी अपने प्रभुकी प्रज्वलित चितामें अपनी देह जला देती हैं। चितानलदाहके सिवा कभी कभी 'किरीच' नामक अस्त्रसे ऐसी नारियां मार डाली जाती हैं। लम्बक द्वीपमें विधवा रमणियां चितानलमें जलनेकी अपेक्षा किरीचसे विद्ध हो कर पतिका अनुगमन करना अधिक पसन्द करती हैं। यहां केवल पुरोहितोंकी स्त्रियां आत्मोत्सर्ग नहीं करतीं, किन्तु जो विशेष धनशाली या सम्भ्रान्त व्यक्ति हैं, उनकी विधवा पत्नियां मृतस्वामीकी चिता पर देह रख कर 'सती' ख्याति प्राप्त करनेमें समर्थ होती हैं। इस समय मृतकी चिताकी बगलमें एक बांसका मञ्च बनता है। विधवा रमणी इस मञ्च पर चढ़ जाती और इससे पूर्व कई क्रियाओंका अनुष्ठान करती जिससे परलोकमें स्वामीका संगलाभ हो। उसके इन अनुष्ठानोंका अन्त होने पर चितामें अग्नि डाल दी जाती, मृतदेह दग्धीभूत कर

चितानलके प्रबल प्रभावसे प्रज्वलित हो उठने पर विधवा पत्नी इस मन्त्रसे कूद कर अग्निगर्भमें आत्मोत्सर्ग कर देती हैं।

सहमातृक (सं० त्रि०) समातृक, माताके सहित।

सहमान (सं० त्रि०) १ समर्याद, मानके साथ। २ सर्वशक्तिमान् ईश्वर। (छान्दोग्य उप० ३।१५।२)

सहमाना (सं० स्त्री०) वृक्षभेद। (अथर्व २।२५।२)

सहमाना (फा० क्रि०) किसीको सहमनेमें प्रवृत्त करना, भयभीत करना, डराना।

सहमूर (सं० त्रि०) सहमूल लस्य र। मूलके सहित, मूलयुक्त। (ऋक् १०।८७।१६)

सहमूल (सं० त्रि०) समूल, मूलयुक्त।

सहमृता (सं० स्त्री०) भर्त्रा सह मृता। वह स्त्री जो अपने मृत-पतिके शवके साथ जल मरे, सहमरण करनेवाली स्त्री, सती। अनुमृता और सहमरण देखो।

सहयशस् (सं० त्रि०) यशस्वत्, यशोयुक्त।

सहयायिन् (सं० त्रि०) मिलितगामी, सहयात्री।

सहयुज् (सं० त्रि०) सहयुक्त, एकत्र।

सहयुध्वन् (सं० त्रि०) सहयुद्धकारी, एक साथ लड़नेवाला।

सहयोग (सं० पु०) १ साथ मिल कर काम करनेका भाव, सहयोगी होनेका भाव। २ साथ, संग। ३ मदद, सहायता। ४ आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्रमें सरकारके साथ मिल कर काम करने, काउन्सिलों आदिमें सम्मिलित होने और उसके पद आदि ग्रहण करनेका सिद्धान्त।

सहयोगी (सं० पु०) १ सहायक, मददगार। २ वह जो किसीके साथ मिल कर कोई काम करता हो, साथमें काम करनेवाला, सहयोग करनेवाला। ३ वह जो किसीके साथ एक ही समयमें वर्त्तमान हो, समकालीन। ४ समवयस्क, कम उमर। ५ आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्रमें सब कामोंमें सरकारके साथ मिले रहने, उसकी काउन्सिलों आदिमें सम्मिलित होने और उसके पद तथा उपाधियों आदि ग्रहण करनेवाला व्यक्ति।

सहर (सं० पु०) हरिवंशके अनुसार एक दानवका नाम।

सहर (अ० पु०) प्रातःकाल, सवेरा।

सहर (हिं० पु०) १ जादू, टोना। २ शहर देखो। ३ सिहोर देखो।

सहरक्षस् (सं० त्रि०) अग्नि और असुर।

सहरगही (फा० स्त्री०) वह भोजन जो किसी दिन निर्जल व्रत करनेके पहले बहुत तड़के या कुछ रात रहे ही किया जाता है, सहरी। इस प्रकारका भोजन प्रायः मुसलमान लोग रमजानके दिनोंमें रोजा रखने पर करते हैं। वे प्रायः ३ बजे रातको उठ कर कुछ भोजन कर लेते हैं और दिन भर निर्जल और निराहार रहते हैं। हिन्दुओंमें स्त्रियां प्रायः हरतालिका तोजका व्रत रखनेसे पहले भी इसी प्रकार बहुत तड़के उठ कर भोजन कर लिया करती हैं।

सहरना (हिं० क्रि०) सिहरना देखो।

सहरसा (सं० स्त्री०) मुद्गपर्णी, मुगानी।

सहरा (अ० पु०) १ अरण्य, वन, जंगल। २ सियागोश नामक जन्तु।

सहराजक (सं० त्रि०) सराजक, राजयुक्त।

सहरि (सं० अव्य०) १ हरिके सदृश। (पु०) २ सूर्य। ३ वृष, सांड़।

सहरिया (हिं० पु०) एक प्रकारका गेहूं।

सहरी (अ० स्त्री०) सफरी मछली।

सहरी (अ० स्त्री०) व्रतके दिन बहुत तड़के किया जानेवाला भोजन, सहरगही। सहरगही देखो।

सहरुण (सं० पु०) चन्द्राश्वभेद, चन्द्रमाके एक घोड़ेका नाम।

सहर्ष (सं० पु०) १ स्पर्द्धन। २ हर्ष। (त्रि०) ३ हर्षयुक्त, हर्षविशिष्ट।

सहर्षभ (सं० त्रि०) वृषयुक्त। (तैत्तिरीयसं० २६।७।३)

सहल (अ० वि०) जो कठिन न हो, सरल।

सहलनीय (सं० त्रि०) हलसे जोतनेके योग्य।

सहलाना (हिं० क्रि०) १ धीरे धीरे किसी वस्तु पर हाथ फेरना, सहराना, सुहराना। २ गुदगुदाना। ३ मलना।

सहलोकधातु (सं० पु०) बौद्धोंके अनुसार एक लोकका नाम।

सहवत्स (सं० त्रि०) वत्सके सहित, बच्चेके साथ।

सहवत्सा (सं० स्त्री०) धेनु, गाय ।

सहवन (हिं० पु०) एक प्रकारका तेलहन जिससे तेल निकाला जाता है ।

सहवसति (सं० स्त्री०) एकत्रावस्थान ।

सहवसु (सं० पु०) एक असुरका नाम जिसका उल्लेख ऋग्वेदमें है । (ऋक् २।१३।८ सायण)

सहवह (सं० त्रि०) एकत्र वहन । (ऋक् ७।९७।६)

सहवाच्य (सं० त्रि०) एकत्र कथनयोग्य, कहने लायक ।

सहवाद (सं० पु०) सह-वद-घञ् । एकत्र कथन, आपसमें होनेवाला तर्क, वितर्क, विवाद, बहस ।

सहवास (सं० पु०) सह-वस्-घञ् । १ एकत्र अवस्थिति, साथ रहनेका व्यापार, संग । २ मैथुन, रति, संभोग ।

सहवासिक (सं० त्रि०) एकत्र वासकारी, साथ रहनेवाला ।

सहवासिन् (सं० त्रि०) सह वासति वस-णिनि । एकत्रवासकारी साथ रहनेवाला ।

सहवाह (सं० त्रि०) मिल कर वहन करनेवाला ।

सहवीर (सं० त्रि०) पुत्र सहित । (ऋक् ३।४५।१३)

सहवीर्य (सं० त्रि०) वीर्य सहित, सदर्प ।

सहव्रत (सं० त्रि०) सहव्रतं यस्य । एकत्र व्रताचरणकारी, साथ व्रत करनेवाला ।

सहव्रता (सं० स्त्री०) सहधर्मिणी, पत्नी, भार्या ।

सहशेय्य (सं० क्लो०) सहशयन, साथ सोना ।

सहस (सं० पु०) सहते इति (सहते रसुन । उण् ४।१८८) इति असुन् । १ मार्गशीर्षमास, अगहनका महीना । (उज्ज्वल) २ ज्योतिः । ३ बल ।

सहसंवाद (सं० त्रि०) संवाद सहित, संवादयुक्त ।

सहसंवास (सं० पु०) एकत्र वास, साथ रहना ।

सहसंसर्ग (सं० पु०) परस्पर चर्मसंघर्ष, परस्पर सहवास ।

सहसकिरन (हिं० पु०) मरीचिमाली, सूर्य ।

सहसजीभ (हिं० पु०) शेषनाग ।

सहसज्ञातवृद्ध (सं० पु०) एकत्रजात और परिवृद्ध, एक पैदा होना और बढ़ना ।

सहसदल (हिं० पु०) शतपत्र, कमल ।

सहसनयन (हिं० पु०) सहस्र आँखोंवाला इन्द्र ।

सहसफण (हिं० पु०) हजार फणोंवाला, शेषनाग ।

सहसबाहु (हिं० पु०) सहस्रबाहु देखो ।

सहसमुख (हिं० पु०) हजार मुखोंवाला, शेषनाग ।

सहसम्मला (सं० स्त्री०) प्रेमार्थीयुक्त, प्रणय सहित ।

सहसम्भव (सं० त्रि०) एकत्र जात, जो एक साथ पैदा हुए हों ।

सहसवदन (हिं० पु०) शेषनाग ।

सहससीस (हिं० पु०) शेषनाग ।

सहसा (सं० अव्य०) १ हठात्, एकदमसे, एकाएक, अचानक । पर्याय—अतर्कित, अकस्मात् ।

(त्रि०) २ हास्ययुक्त, सहास्य । (माघ ६।५७)

सहसादृष्ट (सं० त्रि०) १ हठात् दृष्ट, अचानक देखा हुआ । (पु०) २ दत्तकपुत्र, गोद लिया हुआ लड़का ।

सहसान (सं० पु०) सहते इति सह (ऋञ्जिवृधि मन्दि सहिभ्यः कित् । उण् ३।८७) इति असानच् । १ मयूर, मोर । २ यज्ञ । (त्रि०) ३ क्षमायुक्त । (उज्ज्वल) ४ शत्रुओंका अभिभवकारी । (ऋक् १।१८९।८)

सहसामान् (सं० त्रि०) वेदत्रयतेजः सहित ।

सहसावत् (सं० त्रि०) सहस्वत्, तेजोयुक्त, बलयुक्त ।

सहसिद्ध (सं० त्रि०) जन्मसे सिद्ध ।

सहसिन् (सं० त्रि०) बलवान्, बलयुक्त, ताकतवर ।

सहसूक्तवाक् (सं० त्रि०) मन्त्रसूक्तके वाक्ययुक्त ।

सहसेविन् (सं० त्रि०) सहसेवाकारी, साथ सेवा करनेवाला ।

सहसोद्गत (सं० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम ।

सहसोम (सं० त्रि०) सोमके सहित । (शुक्लयजु० ८।११)

सहस्कृत् (सं० त्रि०) बलकारक । (शुक्लयजु० ३।१८)

सहस्कृत (सं० त्रि०) बलसे किया हुआ ।

सहस्त (सं० त्रि०) हस्तयुक्त, हस्तवाला ।

सहस्तोम (सं० त्रि०) स्तोमके सहित, त्रिवृत् और पञ्चदशादि स्तोमके सहित । (ऋक् १०।१३०।७)

सहस्थ (सं० त्रि०) एकत्र स्थितियुक्त, साथ रहनेवाला ।

सहस्थान (सं० क्लो०) साथ रहनेका स्थान ।

सहस्थित (सं० त्रि०) एकत्रावस्थित, सहस्थ ।

सहस्य (सं० पु०) पौष मास, पूसका महीना ।

सहस्र (सं० क्लो०) १ दश सौकी संख्या जो इस प्रकार

लिखी जाती है—१०२०। वाचक शब्द—जाह्नवीवक्त्र, शेषशीर्ष, पद्मछत्र, रविकर, अर्जुन, वेदशाखा, इन्द्रवृष्टि। (कविकल्पलता)

(त्रि०) २ जो गिनतीमें दश सौ हो, पांच सौका दूना।

सहस्रक (सं० त्रि०) सहस्र शीर्षविशिष्ट, हजार मुखवाला। सहस्रकरपन्नेत्र देखो।

सहस्रकर (सं० पु०) सहस्रकिरण, सूर्य्य।

सहस्रकरपन्नेत्र (सं० पु०) सहस्र हस्त, पद और नेत्रयुक्त; हजार हाथ, पैर और आंखोंवाला।

सहस्रकाण्ड (सं० त्रि०) सहस्रसंख्यक काण्डयुक्त, हजार काण्डोंवाला।

सहस्रकाण्डा (सं० स्त्री०) श्वेत दूर्वा, सफेद दूब।

सहस्रकिरण (सं० पु०) सहस्ररश्मि, सूर्य्य।

सहस्रकृत्वस् (सं० त्रि०) सहस्रावृत्ति, सहस्र वार।

सहस्रकेतु (सं० त्रि०) अनेक ध्वजविशिष्ट, बहु पताकायुक्त। (ऋक् १।११६।१)

सहस्रगु (सं० त्रि०) १ गोसहस्रपरिमित धन। (पु०) २ सूर्य, सहस्रकिरण। (बृहत्स० २८।१८)

सहस्रगुण (सं० त्रि०) सहस्रगुणयुक्त, हजार गुना।

सहस्रगुणित (सं० त्रि०) सहस्र द्वारा गुणित, हजारसे गुना किया हुआ।

सहस्रचक्षुस् (सं० पु०) सहस्रं चक्षूंषि यस्य। हजार आंखोंवाला, इन्द्र।

सहस्रचरण (सं० त्रि०) सहस्रं चरणानि यस्य। विष्णु।

सहस्रचित्त (सं० पु०) विष्णु।

सहस्रचित्य (सं० पु०) राजभेद। (भारत अनु०प०)

सहस्रचेतस् (सं० पु०) सहस्रचित्त, विष्णु।

सहस्रजित् (सं० त्रि०) १ धनजेता यासहस्र शत्रुजयकारी। (ऋक् १।१८८।१) (पु०) २ विष्णु। ३ मृगमद, कस्तूरी। ४ कृष्णकी पटरानी जाम्बवतीके दश पुत्रोंमेंसे एक।

सहस्रणी (सं० पु०) हजार रथियोंकी रक्षा करनेवाले, भीष्म।

सहस्रतम (सं० त्रि०) सहस्र संख्याका पूरण, हजारवां।

सहस्रतय (सं० क्ली०) सहस्रकी संख्या, हजार।

सहस्रदंष्ट्र (सं० पु०) पाठीन मत्स्य, वोआरी मछली।

सहस्रदंष्ट्रिन् (सं० पु०) वोदार मत्स्य, वोआरी मछली।

सहस्रद (सं० त्रि०) १ बहुत बड़ा दानी, हजारों गौएं आदि दान करनेवाला। (पु०) २ पाठीन मत्स्य, वोआरी मछली।

सहस्रदक्षिण (सं० पु०) यागभेद, एक प्रकारका यज्ञ जिसमें हजार गौएं या हजार मोहरें दान दी जाती है।

सहस्रदल (सं० क्ली०) १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ सहस्रपत्रविशिष्ट, जिसमें हजार पत्ते हों।

सहस्रदावन् (सं० त्रि०) सहस्र धनदाता।

सहस्रदृश् (सं० पु०) १ विष्णु। २ इन्द्र।

सहस्रदोस् (सं० पु०) कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुन।

सहस्रद्वार (सं० त्रि०) बहुद्वारविशिष्ट, जिस घरमें बहुत दरवाजे हों। (ऋक ७।८८।५)

सहस्रधा (सं० अव्य०) सहस्र प्रकारार्थे धाच्। सहस्रप्रकार, बहुत किस्म। (ऋक् १०।११४।८)

सहस्रधार (सं० त्रि०) सहस्रधारायुक्त, जिसमें हजार धारा हो।

सहस्रधारा (सं० स्त्री०) देवताओं आदिको स्नान करानेका एक प्रकारका पात्र जिसमें हजार छेद होते हैं। इन्हीं छेदोंमेंसे जल निकल कर देवता पर पड़ता है।

सहस्रधी (सं० त्रि०) तीक्ष्णबुद्धिशाली, बड़ा चतुर।

सहस्रधौत (सं० त्रि०) हजार वार धोया हुआ।

सहस्रनयन (सं० पु०) १ इन्द्र। २ सहस्र नयनयुक्त।

सहस्रनामन् (सं० क्ली०) १ वह स्तोत्र जिसमें किसी देवताके हजार नाम हों। जैसे,—विष्णुका सहस्रनाम, शिवका सहस्रनाम आदि। (पु०) २ विष्णु। ३ शिव। ४ अमलबेंत। (भावप्र०)

सहस्रनीति (सं० पु०) इन्द्र। (ऋक् ६।७१।७)

सहस्रनेत्र (सं० पु०) १ इन्द्र। २ विष्णु।

सहस्रनेत्राननपदबाहु (सं० पु०) विष्णु।

सहस्रपति (सं० पु०) वह जो हजार गांवोंका स्वामी और शासक हो। (मनु० ७।११५)

सहस्रपत्र (सं० क्ली०) कमलपत्र।

सहस्रपर्ण (सं० पु०) १ शर, तीर। (ऋक् ८।६६।७) २ एक प्रकारका वृक्ष। (अथर्व्व)

सहस्रपर्व्वा (सं० स्त्री०) श्वेत दूर्वा, सफेद दूब।

सहस्रपाद् (सं० पु०) १ विष्णु। २ महादेव। (भारत १३।१४९।३९) ३ ऋषिविशेष। (भारत १।१०।७)
सहस्रपाद (सं० पु०) १ विष्णु। २ सूर्य। ३ कारण्ड-पक्षी, सारस।
सहस्रपोष (सं० पु०) हजार प्रकारसे पोषण।
सहस्रप्राण (सं० त्रि०) सहस्र प्राणयुक्त।
सहस्रबल (सं० पु०) विष्णुपुराणके अनुसार एक राजा-का नाम।
सहस्रबाहनीय (सं० क्ली०) सामभेद।
सहस्रबाहु (सं० पु०) १ बाणराज। ये बलिके ज्येष्ठ पुत्र थे। (भागवत १०।६२।२) २ कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुन। इसके विषयमें पुराणोंमें कई कथाएं हैं। यह क्षत्रिय राजा कृतवीर्य्यका पुत्र था। इसका दूसरा नाम था हैहय। इसकी राजधानी माहिष्मतीमें थी। एक बार यह नर्मदामें स्त्रियों सहित जलक्रीड़ा कर रहा था। उस समय इसने अपनी सहस्र भुजाओंसे नदीकी धारा रोक दी जिसके कारण समीपमें शिवपूजा करते हुए रावणकी पूजामें विघ्न पड़ा। उसने क्रुद्ध हो कर इससे युद्ध किया, पर परास्त हुआ। एक बार यह अपनी सेना-सहित जमदग्नि मुनिके आश्रमके निकट ठहरा। मुनिके पास कपिला कामधेनु थी। उन्होंने कार्त्तिकेयकी अच्छी खातिर की। राजाने लालचमें आ कर मुनिसे कामधेनु छीन ली। जमदग्निने राजाको रोका और वे मारे गये। कार्त्तिकेय गौ ले कर चला, पर वह स्वर्ग चली गई। परशुराम उस समय आश्रममें नहीं थे। लौटने पर जब उन्होंने अपने पिताके मारे जानेका हाल सुना, तो उन्होंने कार्त्तिकेयको मार डालनेकी प्रतिज्ञा की और अन्तमें उन्हें मार भी डाला। ३ शिव, महा-देव। (त्रि०) ४ बहुबाहुयुक्त। (भागवत ४।५।३)
सहस्रबुद्धि (सं० त्रि०) सहस्र धी।
सहस्रभक्त (सं० क्ली०) उत्सवविशेष। (राजतर० ४।२४३)
सहस्रभर (सं० त्रि०) धनभर्त्ता, धनपति।
सहस्रभागवती (सं० स्त्री०) देवीमूर्त्तिभेद।
सहस्रभाव (सं० पु०) हजार प्रकारकी अवस्था।
सहस्रभित् (सं० पु०) १ अमलवेत। २ मृगमद, कस्तूरी।

सहस्रभुज (सं० पु०) सहस्रबाहु देखो।
सहस्रभुजा (सं० स्त्री०) देवीका वह रूप जो उन्होंने महिषासुरको मारनेके लिये धारण किया था। उस समय उनकी हजार भुजाएं हो गयी थीं इसीसे उनका यह नाम पड़ा था। चण्डीपाठके समय उनकी पूजा करनी होती है। इस देवीकी पूजा करनेसे सब प्रकार-का हित होता है।
सहस्रमङ्गल (सं० क्ली०) नगरभेद।
सहस्रमन्यु (सं० त्रि०) सहस्र प्रकार मनोवृत्तिविशिष्ट।
सहस्रमूति (सं० त्रि०) बहुविध रक्षणविशिष्ट।
सहस्रमूर्त्ति (सं० पु०) विष्णु, ब्रह्मरुद्रादि बहुमूर्त्तिविशिष्ट।
सहस्रमूर्द्धन (सं० पु०) १ विष्णु। २ शिव।
सहस्रमूल (सं० त्रि०) बहुसंख्यक मूलयुक्त।
सहस्रमूलिका (सं० स्त्री०) सहस्रमूली देखो।
सहस्रमूली (सं० स्त्री०) १ काण्डपत्नी। २ मुद्गपर्णी, वनमूंग। ३ मूसाकानी। ४ बड़ी शतावर। ५ बड़ी दन्ती।
सहस्रमौलि (सं० पु०) १ विष्णु। २ अनन्तदेव।
सहस्रयज्ञ (सं० पु०) एक बौद्ध यतिका नाम।
सहस्रयाज् (सं० त्रि०) सहस्रयाजिन्, हजार यज्ञ करने-वाला।
सहस्रयाजिन् (सं० त्रि०) सहस्र यज्ञ यजनाकारी।
सहस्रयामन् (सं० त्रि०) बहुमार्ग।
सहस्ररश्मि (सं० पु०) सूर्य।
सहस्ररश्मितनय (सं० पु०) सूर्यतनय, सूर्यके पुत्र।
सहस्ररेतस् (सं० त्रि०) बहुविध हिरण्यरेतस्क या प्रभूत-सार। (ऋक् ४।५।३)
सहस्रलोचन (सं० पु०) सहस्रलोचन, इन्द्र।
सहस्रवक्त्र (सं० पु०) सहस्रवदन, विष्णु।
सहस्रवत् (सं० पु०) सहस्रविशिष्ट।
सहस्रवर्चस् (सं० त्रि०) सहस्र किरणविशिष्ट, अतिशय दीप्तिमान्।
सहस्रवाच् (सं० पु०) महाभारतके अनुसार धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत आदि०)
सहस्रवाज (सं० त्रि०) १ अपरिमितान्न। २ अपरि-मित बलशाली। (ऋक् १०।१०४।७)

सहस्रवीर (सं० त्रि०) हजार शत्रुको जो विशेषरूपसे प्रेरण करें या अनेक पुत्रादिविशिष्ट।

सहस्रवीर्य (सं० त्रि०) प्रभूत बलशाली, बहुत ताकतवर।

सहस्रवीर्या (सं० स्त्री०) १ दूर्वा, दूब। २ महाशतावरी, बड़ी शतावर।

सहस्रवेध (सं० क्ली०) १ चुक, चूक नामक खटाई। २ काञ्जी। ३ हिङ्गु, हींग।

सहस्रवेधिका (सं० स्त्री०) मृगमद, कस्तूरी।

सहस्रवेधिन् (सं० क्ली०) १ हिंगु, हींग। (पु०) २ अम्लवेतस्, जलबेंत। ३ कस्तूरी। (त्रि०) ४ सहस्रवेधकर्त्ता, हजार वेध करनेवाला।

सहस्रशतदक्षिण (सं० त्रि०) सहस्र शत-दक्षिणायुक्त; जिस यज्ञकी दक्षिणा सौ हजार हो।

सहस्रशस् (सं० अव्य०) सहस्र सहस्र, हजार हजार।

सहस्रशाख (सं० पु०) सहस्र शाखाविशिष्ट चार वेद। एक एक वेदकी हजार शाखाएं हैं।

सहस्रशिखर (सं० पु०) विन्ध्य पर्वत।

सहस्रशिरस् (सं० पु०) सहस्रमस्तक, वासुकि।

सहस्रशीर्षन् (सं० पु०) विष्णु।

सहस्रशीर्षजापिन् (सं० त्रि०) विष्णुमन्त्रजपकारी।

सहस्रशोचस् (सं० त्रि०) अपरिमित दीप्ति।

सहस्रश्रवण (सं०) विष्णु।

सहस्रश्रुति (सं० पु०) पर्वतभेद, जम्बूद्वीपके मध्य एक वर्षपर्वतका नाम।

सहस्रसम्वत्सर (सं० क्ली०) हजार वर्ष।

सहस्रसनि (सं० त्रि०) सहस्र दान, बहु धनदान।

सहस्रसम्मित (सं० त्रि०) सर्ववादिसम्मत।

सहस्रसा (सं० त्रि०) सहस्रसंख्यक लाभोपेत, हजार लाभयुक्त।

सहस्रसाव (सं० पु०) अश्वमेध यज्ञ।

सहस्रसाव्य (सं० क्ली०) अयनभेद, एक प्रकारका अयन।

सहस्रस्तुति (सं० स्त्री०) भागवतके अनुसार एक नदी-का नाम।

सहस्रस्रोत (सं० पु०) भागवतके अनुसार एक वर्षपर्वतका नाम।

सहस्रहर्यश्व (सं० पु०) इन्द्रका रथ।

सहस्रांशु (सं० पु०) सूर्य।

सहस्रांशुज (सं० पु०) शनिग्रह।

सहस्रा (सं० स्त्री०) १ अम्बष्ठा, मालिका, मोइया। २ मयूरशिखा, मोरशिखा।

सहस्राक्ष (सं० पु०) १ इन्द्र। २ विष्णु। ३ देवी भागवतके अनुसार एक पीठस्थान। इस स्थानकी देवी उत्पलाक्षी कही गई हैं।

सहस्राक्षजित् (सं० पु०) रावणका पुत्र, इन्द्रजित। इन्द्रजित देखो।

सहस्राक्षधनुस् (सं० क्ली०) इन्द्रधनुस्, शक्रधनुष।

सहस्राक्षः (सं० त्रि०) अपरिमित वचनयुक्त।

सहस्राख्य (सं० पु०) सहस्र आख्यायुक्त, सहस्र आख्याविशिष्ट।

सहस्राङ्क (सं० पु०) हजार अंक।

सहस्राङ्गी (सं० स्त्री०) १ मयूरशिखा, मोरशिखा। २ मधुपीलु वृक्ष, पीलू।

सहस्राजित (सं० पु०) भगवान्के पुत्र एक राजाका नाम।

सहस्रात्मन् (सं० पु०) आदिदेव, ब्रह्मा।

सहस्राधिपति (सं० पु०) वह जो किसी राजाकी ओरसे एक हजार गांवोंका शासन करनेके लिये नियुक्त हो।

सहस्रानन (सं० पु०) विष्णु।

सहस्रानीक (सं० पु०) राजा शतानीकके एक पुत्रका नाम। राजा शतानीक यज्ञमें हजारों हाथी, घोड़े दान करते थे तथा अशेष गुणके आधार थे। ब्राह्मणोंने ऐसे गुणयुक्तके पुत्रको सहस्रानीक नाम रखा।

सहस्रापोष (सं० पु०) सहस्रपोष।

सहस्राप्सस् (सं० त्रि०) बहुरूप, अनेक रूपविशिष्ट।

सहस्रामघ (सं० त्रि०) बहुधन, अनेक धनयुक्त।

सहस्रायु (सं० पु०) सहस्र वत्सर परमायुविशिष्ट, हजार वर्षका।

सहस्रायुतीय (सं० क्ली०) सामभेद।

सहस्रायुध (सं० त्रि०) सहस्र आयुधविशिष्ट।

सहस्रायुष्व (सं० क्ली०) सहस्र वत्सर परमायुवान्, हजार वर्षवाला।

सहस्रायुस् (सं० त्रि०) सहस्रायुः।

सहस्रार (सं० पु० क्ली०) १ हजार दलोंवाला एक प्रकारका कल्पित कमल। कहते हैं, कि यह कमल मनुष्यके मस्तकमें उलटा लगा रहता है और इसीमें सृष्टि, स्थिति तथा लयवाला परबिन्दु रहता है।

(त्रि०) २ बहु चक्राङ्कविशिष्ट।

सहस्रारज (सं० पु०) जैनोंके एक देवताका नाम।

सहस्रार्च्चिस् (सं० पु०) १ शिव। २ सूर्य।

सहस्रावर्त्तक (सं० क्ली०) पुराणानुसार एक तीर्थका नाम।

सहस्रावर्त्ता (सं० स्त्री०) देवीकी एक मूर्त्तिका नाम।

सहस्राश्व (सं० पु०) पुराणानुसार एक राजाका नाम।

सहस्राह (सं० पु०) सहस्र दिन, हजार रोज।

सहस्रिक (सं० क्ली०) सहस्रक साधु-पाठ।

सहस्रिन् (सं० पु०) सहस्रं बलमस्त्यस्येति सहस्र (तपः सहस्राभ्यां विनीनी। पा ५।२।१०२) इति इनि। १ वह वीर या नायक जिसके पास हजार योद्धा, घोड़े या हाथी हों। (त्रि०) २ सहस्रविशिष्ट, हजारका।

सहस्रिय (सं० त्रि०) सहस्र (सहस्रेण सम्मितौ यः। पा ४।४।१३५) सहस्रं विद्यतेऽस्यां अस्मिन् वा इति मत्वर्थे वेदे घ। सहस्रयुक्त, हजारवाला।

सहस्रीय (सं० त्रि०) सहस्र-सम्बन्धी, हजारका।

सहस्रोति (सं० क्ली०) सहस्र रक्षण, हजार बचाव।

सहस्वत् (सं० त्रि०) सहनयुक्त, सहिष्णु।

सहा (सं० पु०) १ ग्वारपाठा, घीकुआर। २ वनमूंग। ३ दण्डोत्पल। ४ सफेद कटसरैया। ५ ककही या कंघी नामका वृक्ष। ६ रास्ना। ७ सर्पिणी। ८ सेवती। ९ हेमन्त ऋतु। १० सत्यानाशी। ११ मषवन। १२ देवताड़ वृक्ष। १३ नखरंजक, मेंहदी। १४ अगहन मास।

सहाउ (हिं० पु०) सहाय देखो।

सहाचर (सं० पु०) १ पीतझिण्टी, पीली कटसरैया। २ सहचर देखो।

सहादर (सं० अव्य०) सादर, आदरके साथ।

सहाद्रय (सं० क्ली०) वनमूंग, जङ्गली मूंग।

सहाध्ययन (सं० क्ली०) सहपाठ, एकत्र अध्ययन, साथ पढ़ना।

सहाध्यायिन् (सं० पु०) वह जो साथ पढ़ा हो, सहपाठी।

सहाना (हिं० पु०) एक प्रकारका राग।

शहाना देखो।

सहानी (फा० वि०) एक प्रकारका रंग जो पीलापन लिये हुए लाल रंगका होता है। शहानी देखो।

सहानुगमन (सं० क्ली०) सहमरण, स्त्रीका अपने मृत पतिके शवके साथ जल मरना, सती होना।

सहानुभूति (सं० स्त्री०) किसीको दुःखी देख कर स्वयं दुःखी होना, दूसरेके कष्टसे दुःखी होना, हमदर्दी।

सहापवाद (सं० त्रि०) अपवादके साथ, निन्दायुक्त।

सहाब (फा० पु०) शहाब देखो।

सहाभरति (सं० पु०) ब्रह्मा। (ललितवि०)

सहाय (सं० पु०) १ सहायता, मदद, सहारा। २ आश्रय, भरोसा। ३ सहायक, मददगार। ४ एक प्रकारका हंस। ५ एक प्रकारकी वनस्पति।

सहायक (सं० त्रि०) १ सहायता करनेवाला, मददगार। २ वह छोटी नदी जो किसी बड़ी नदीमें मिलती हो। जैसे,—यमुना भी गंगाकी सहायक नदियोंमेंसे एक है। ३ किसीकी अधीनतामें रह कर काममें उसकी सहायता करनेवाला। जैसे,—सहायक सम्पादक।

सहायता (सं० स्त्री०) सहाय (ग्रामजनबन्धुसहायेभ्यस्तल्। पा ४।२।४३) इति तल्-टाप्। १ किसीके कार्य-सम्पादनमें शारीरिक या और किसी प्रकार योग देना, ऐसा प्रयत्न करना जिसमें किसीका काम कुछ आगे बढ़े, मदद। २ वह धन जो किसीका कार्य आगे बढ़ानेके लिये दिया जाय, मदद।

सहायन (सं० क्ली०) सहित गमन, साथ जाना।

सहायवत् (सं० त्रि०) सहायविशिष्ट, सहाययुक्त।

सहायिन् (सं० त्रि०) सहाययुक्त, सहायक।

सहायिनी (सं० स्त्री०) सहायता करनेवाली।

सहार (सं० पु०) सह (तुषारादयश्च। उण् ३।१३९) इत्यारन्। १ आम्रवृक्ष, आमका पेड़। २ महाप्रलय।

सहार (हिं० पु०) १ सहनशीलता, बर्दाश्त। २ सहन करनेकी क्रिया।

सहार—युक्तप्रदेशके मथुरा जिलान्तर्गत छाता तहसीलका

एक नगर। यह छाता नगरसे ७ मील दक्षिण आगरा-खालके बाएं किनारे अवस्थित है। इस नगरमें भरतपुरके प्रबल पराक्रान्त राजा सूर्यमल्लके पिता ठाकुर बदनसिंहका वासभवन था। उनका प्रासाद अभी खंडहरमें पड़ा है। एक समय उसका गठननैपुण्य और दीर्घायतन बड़ा ही नेत्राकर्षक था। नगरमें स्थापत्यविद्याकी पराकाष्ठाज्ञापक और भी कितनी प्राचीन अट्टालिका देखी जाती है। उनका पत्थरका बना प्रवेशद्वार आज भी शिल्पनैपुण्यसे परिपूर्ण है। उसके एक स्थानमें एक प्राचीन मन्दिरके ध्वस्त निदर्शन स्वरूप बहुतसे स्तम्भ पाये गये हैं जो अभी मथुराके जादूघरमें रखे हुए हैं।

सहार—गयाक्षेत्रके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।

सहारनपुर—युक्तप्रदेशके लाटके शासनाधीन एक जिला और नगर। शाहरानपुर देखो।

सहारा (हिं० पु०) १ मदद, सहायता। २ जिस पर बोझ डाला जा सके, आश्रय, आसरा। ३ भरोसा। ४ इतमीनान।

सहारा—अफ्रिकाकी प्रसिद्ध मरुभूमि। यह उत्तरमें आटलस पर्वतसे ले कर पूरबमें भूमध्यसागर तथा दक्षिणमें नाइगारा नदीके उत्तर तक तथा चादसे ले कर पश्चिममें अटलाण्टिक महासागर तक फैली हुई है। इसकी लम्बाई २००० मील और चौड़ाई उसका आधा है। यही विशाल भूमिखण्ड सहारा कहलाता है। इस विस्तृत भूभागका अधिकांश स्थान समतल है, किन्तु इसके उत्तरांशके नाना स्थान समुद्रपृष्ठसे बहुत नीचे हैं। इस कारण बहुतोंका खयाल है, कि पहले यहां भीषण तरङ्गसंकुल विशाल समुद्र था।

सहाराके किसी किसी स्थानमें कभी भी वृष्टिपात नहीं होता। इस कारण वे सब स्थान बिलकुल अनुर्वर हैं—वहां किसी प्रकारकी घास भी नहीं उपजती। सहाराका उत्तरी अंश बालूसे भरा पड़ा है। ये सब बालू तूफानके समय आकाशमें उड़ कर पथिकोंके भीतिजनक बालुका-मेघमें परिणत होते हैं। इस प्रकार बालुका-मेघ जब आकाशमें उड़ता है, तब पथिकगण अन्धकारमें पथभ्रष्ट हो नाना प्रकारकी विपदोंमें फंस जाते हैं। सहाराके अनेक स्थानोंमें बड़ी बड़ी मिट्टी होती देखी जाती है। तृणशून्य मरुदेशके स्थान स्थानमें विशेषतः पूर्वभागमें छोटी छोटी गिरिश्रेणी विद्यमान हैं। इन सब गिरिश्रेणीके पास कई जगह भूगर्भस्थ प्रस्रवण हैं, इससे उन सब प्रस्रवणोंके निकटवर्ती स्थानोंकी उर्वराशक्ति है। सभी स्थानोंमें शस्यादि उत्पन्न नहीं होते। इन सब तृणशस्यपरिपूर्ण उर्वर स्थानोंमें कितने इतने विस्तृत हैं, कि वहां सैकड़ों आदमी वास करते हैं। ऐसे कितने ग्राम सहाराकी मरुभूमिमें देखे जाते हैं। व्यवसायिगण सैकड़ों ऊंटकी पीठ पर पण्यद्रव्य लाद कर मरक्को, त्रिपलि, तिम्बाक्टु और सुदानके भिन्न भिन्न स्थानोंमें वाणिज्य करने जाते आते हैं।

दिनमानमें सहाराका उत्ताप अत्यन्त अधिक है। ग्रीष्मकालमें कभी कभी ११२° फा० अधिक उत्ताप मालूम होता है, किन्तु फिर शीतकालमें भी वैसी ही अधिक ठंढ पड़ती है। मरुभूमि शुष्क बालुकापूर्ण है, इस कारण इस मरुभूमिका उपरिस्थित वायुमण्डल अति शुष्क और परिष्कार है। इस स्थानके वायुमण्डलमें बहुत कम जलीयवाष्प मिश्रित रहता है। वायु अत्यन्त पतली और परिष्कार रहनेसे ग्रीष्मकालकी रातको सहारा मरुभूमिसे जितने तारे दिखाई देते हैं, पृथ्वीके और किसी भी स्थानसे उतने दिखाई नहीं देते।

सहारोग्य (सं० त्रि०) रोगशून्य, नीरोग।

सहार्द्र (सं० त्रि०) सप्रेम, स्नेहयुक्त।

सहालग (हिं० पु०) १ वह वर्ष जो हिन्दू ज्योतिषियोंकी गणनानुसार शुभ माना जाता है। २ वे मास या दिन जिनमें विवाहके मुहूर्त्त हो, ब्याह शादीके दिन।

सहालाप (सं० त्रि०) आलापके साथ, आलापयुक्त।

सहावत् (सं० त्रि०) सहनयुक्त, सहिष्णु। (सायण)

सहावन् (सं० त्रि०) बलवान्, बलयुक्त, ताकतवर।

सहावर—युक्तप्रदेशके इटा जिलान्तर्गत कासगञ्ज तहसीलका एक नगर। यह इटा नगरसे २४ मील उत्तर पूर्व अक्षा० २७° ४८´ उ० तथा देशा० ७८° ५१´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ५ हजारसे ऊपर है। राजा नौरङ्गदेव नामक एक चौहान राजपूत इस नगरके प्रतिष्ठाता थे। उन्हींके नामानुसार इसका नौरङ्गाबाद नाम हुआ है। कुछ दिन बाद मुसलमानोंने इस नगर पर आक-

मण किया। राजा शिरहपुरा राज्यमें भाग गये। नगर वासी विजेता मुसलमान द्वारा धृत और उत्पीड़ित हो कर इसलामधर्ममें दीक्षित हुए। प्रजावर्गके ऊपर अत्याचार होते देख प्रजावत्सल राजा नौरङ्ग विचलित हो गये। उन्होंने शिरहपुराके राजा और प्रजासाधारणसे मुसलमानोंका अयथा अत्याचार और उनकी राज्यापहरण-वार्त्ता सुन कर उन लोगोंको मुसलमानोंके विरुद्ध अस्त्र धारण करनेके लिये उत्तेजित किया। उन लोगोंकी सहायतासे राजा नौरङ्गदेवने मुसलमानोंको नौरङ्गाबाद-से भगा दिया और अपना राज्योद्धार कर उसका सहावर नाम रखा। अभी इस नगरकी पूर्व समृद्धि बिलकुल नहीं है। एकमात्र फौज उद्दीन फकीरका समाधि-मन्दिर यहांके प्राचीनत्वका निदर्शन है।

सहावल (फा० पु०) लोहे या पत्थरका वह लट्टू जिसे तागेसे लटका कर दीवारकी सिधाई नापी जाती है, शाकूल, सनगाल।

सहासन (सं० क्ली०) सह आसनं। एकासन।

सहासपुर—युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलान्तर्गत धामपुर तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २९° ७´ उ० तथा देशा० ७८° ३१´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ६ हजारके करीब है। यहां एक प्रकारका बढ़िया सूती कपड़ा तैयार होता है। सात दिनमें दो दिन हाट लगती है। यहां अवध-रोहिलखण्ड रेलवेकी उत्तरशाखाका एक स्टेशन है। इस नगरमें सिर्फ एक प्राइमरी स्कूल है।

सहिंजन (हिं० पु०) सहिजन देखो।

सहिजन (हिं० पु०) एक प्रकारका बड़ा वृक्ष जो भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंमें उत्पन्न होता है, पर अवधमें अधिक देखा जाता है। शोभाञ्जन देखो।

सहित (सं० त्रि०) १ समभिव्याहृत, मिलित, संयुक्त। २ संहित। ३ सहयक् हित, हितकर, भलाई चाहनेवाला।

सहितत्व (सं० क्ली०) सहितका भाव या धर्म।

सहितव्य (सं० त्रि०) सह-तव्य। सोढ़व्य, सहन करने-के योग्य, जो सहा जा सके।

सहितस्थित (सं० त्रि०) एकत्र अवस्थित।

सहिताङ्गुल (सं० त्रि०) अङ्गुलियुक्त। (पा ४।१।७०)

सहितृ (सं० त्रि०) सहते इति सह-तृच, (तीषसहेति। पा ७।२।४८) इति पक्षे इट्। सहनशील।

सहितोरु (सं० त्रि०) उरुसंयुक्त, जांघा मिला हुआ। संहितोरु देखो।

सहित्र (सं० क्ली०) सह्यतेऽनेनेति सह (अर्त्ति-लू धू-सू-सहचर इत्रः। पा ३।२।१८४) इति इत्रः। सहनकरण, सहन करना, सहना।

सहिरण्य (सं० त्रि०) हिरण्येन सह वर्त्तमानः। हिरण्य-युक्त, स्वर्णयुक्त।

सहिष्ठ (सं० त्रि०) बलवत्तम, बलवान्, ताकतवर।

सहिष्णु (सं० त्रि०) सहते इति सह (अलंकृञ् निराकृञिति। पा ३।२।१३६) इति इष्णुच्। सहनशील, जो सहन कर सके, बर्दाश्त करनेवाला।

सहिष्णुता (सं० स्त्री०) सहिष्णुका भाव या धर्म। पर्याय—तितिक्षा, क्षमा, शान्ति।

सहिसवान (सहासवान्)—१ युक्तप्रदेशके बुदाऊं जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २७° ५७´ से २८° २०´ उ० तथा देशा० ७८° ३०´ से ७९° ४´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४५४ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसमें सहिसवान और बिलासी नामक २ शहर और ३२८ ग्राम लगते हैं। सोन नदीके बहनेसे जमीन खूब उपजाऊ हो गई है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और सहिसवान तहसीलका विचारसदर। यह अक्षा० २८°४´ उ० तथा देशा० ७८°४५´ पू०के मध्य बुदाऊं नगरसे १ मील दूर महरवा नदीके बायें किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण १८००४ वर्गमील है। म्युनिसपलिटी रहनेसे नगर खूब साफ सुथरा है। प्रवाद है, कि फर्रुखाबाद जिलेके सङ्कीशाके राजा सहस्रबाहु-ने इस नगरको बसाया। उन्होंने यहां एक दुर्ग भी बनवाया था। गुन्नौर, बिर्शोली, बिलसी और उझाणी नगरके साथ वाणिज्य चलानेके लिये कई सड़कें चली गई हैं। केवड़ा फूलसे केवड़ा जल तैयार करनेके लिए यहां केवड़ाके पौधेकी खेती होती है। इसके सिवा यहां और किसी प्रकारका कारबार नहीं चलता। इस नगरके एक अंशमें एक बहुत बड़ा स्तूप दिखाई देता है। वह एक प्राचीन दुर्ग और प्रासादका ध्वस्त निदर्शन है। स्थानीय लोग उसे राजा सहस्रबाहु निर्मित दुर्ग बतलाते हैं। अपर प्राइमरी और मिडिल स्कूलकी संख्या मिला कर दश है।

सही (फा० वि०) १ सत्य, सच। २ प्रामाणिक, ठीक, यथार्थ। ३ जो गलत न हो, शुद्ध, ठीक। ४ हस्ताक्षर, दस्तखत।

सहीयस् (सं० त्रि०) शत्रुओंका अभिभवकारी।

सही सलामत (फा० वि०) १ स्वस्थ, आरोग्य, भला चंगा। २ जिसमें कोई दोष या न्यूनता न आई हो।

सहुरि (सं० पु०) सहते इति सह (जसि-सहोरुरिन्। उण् ४।७३) इति उरिन्। १ सूर्य। (स्त्री०) २ पृथ्वी।

सहूति (सं० स्त्री०) स्तुति, स्तव।

सहूलियत (फा० स्त्री०) १ आसानी, सुगमता। २ अदब, कायदा, शऊर।

सहृदय (सं० त्रि०) १ समवेदनायुक्त, जो दूसरेके दुःख सुख आदि समझनेकी योग्यता रखता हो। २ दयालु, दयावान्। ३ सज्जन, भला आदमी। ४ प्रसन्नचित्त, खुशदिल। ५ सुस्वभाव, अच्छे मिजाजवाला। ६ रसिक।

सहृदयता (सं० स्त्री०) १ सहृदय होनेका भाव। २ दयालुता। ३ सौजन्य। ४ रसिकता।

सहृल्लेख (सं० क्ली०) विचिकित्सितान्न, दूषितान्न।

सहेजना (हिं० क्रि०) १ भली भांति जांचना, अच्छी तरहसे देखना कि ठीक या पूरा है या नहीं, संभालना। २ अच्छी तरह कह सुन कर सपुर्द करना।

सहेजवाना (हिं० क्रि०) सहेजनेका काम दूसरेसे कराना।

सहेतिकरण (सं० त्रि०) इतिपदयुक्त।

सहेतिकार (सं० क्ली०) उपसंहार या इतिपद द्वारा समाप्त करना।

सहेतु (सं० त्रि०) हेतुके सहित, हेतुयुक्त।

सहेतुक (सं० त्रि०) हेतुयुक्त, जिसका कोई हेतु हो, जिसका कुछ उद्देश्य या मतलब हो।

सहेरवा (हिं० पु०) हरसिंहार या पारिजातका वृक्ष।

सहेल (सं० त्रि०) हेलायुक्त।

सहेल (हिं० पु०) वह सहायता जो असामी या काश्तकार अपने जमींदारको उसके खुदकाश्त खेतको काश्त करनेके बदलेमें देता है। यह सहायता प्रायः बेगारी और बीज आदिके रूपमें होती है।

सहेलवाल (हिं० पु०) वैश्योंकी एक जाति।

सहेली (हिं० स्त्री०) १ साथमें रहनेवाली स्त्री, संगिनी। २ अनुचरी, परिचारिका, दासी।

सहैकस्थान (सं० त्रि०) एक स्थानविशिष्ट, एक जगहका।

सहैया (हिं० वि०) सहन करनेवाला, सहनेवाला।

सहोक्ति (सं० स्त्री०) सह उक्तिः। एक प्रकारका काव्यालंकार। इसमें सह, संग, साथ आदि शब्दोंका व्यवहार होता है और अनेक कार्य साथ ही होते हुए दिखाए जाते हैं। प्रायः इन अलंकारोंमें क्रिया एक ही होती है।

सहोजा (सं० पु०) १ अग्नि। (ऋक् १।८८।१) २ इन्द्र।

सहोटज (सं० पु०) ऋषियों आदिके रहनेकी पर्णकुटी।

सहोढ़ (सं० पु०) १ बारह प्रकारके पुत्रोंमेंसे एक प्रकारका पुत्र। गर्भकी अवस्थामें व्याही हुई कन्याका पुत्र सहोढ़ कहलाता है। (मनु ८ अ०)

(त्रि०) २ हृत द्रव्यके साथ वर्त्तमान। मनुमें लिखा है, कि राजा हृत या चुराई हुई वस्तुके साथ चोरको दण्ड दें। (मनु ९।२७०)

सहोत्थ (सं० त्रि०) सह उत्थ, सहित उत्थानकारी।

सहोत्थायिन् (सं० त्रि०) सह उत्थानकारी।

सहोदक (सं० त्रि०) समानोदक।

सहोदर (सं० पु०) १ एक ही उदरसे उत्पन्न संतान, एक माताके पुत्र। (त्रि०) २ सगा, अपना, खास।

सहोदा (सं० त्रि०) पराभिभवसामर्थ्य बलदाता, शत्रुको अभिभव करनेकी शक्ति देनेवाला।

सहोपध (सं० त्रि०) उपधास्वरविशिष्ट।

सहोपलम्भ (सं० त्रि०) उपलम्भके सहित।

सहोर (सं० त्रि०) सहते सर्वमितिसह। (किशोरादयश्च। उण् १।६०) इति ओरन्। साधु, धार्मिक (उज्ज्वल)

सहोर (हिं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष। यह प्रायः जंगली प्रदेशोंमें होता है और विशेषतः शुष्क भूमिमें अधिक उत्पन्न होता है। इसका वृक्ष अत्यन्त गठीला और झाड़दार होता है। प्रायः यह सदा हरा भरा रहता है। पतझड़में भी इसके पत्ते नहीं गिरते। इसकी छाल मोटी होती है और रंग भूरा खाकी होता है। इसकी लकड़ी सफेद और साधारणतः मजबूत होती है। इसके पत्ते हरे, छोटे और खुरदुरे होते हैं। फाल्गुन मास तक इसका वृक्ष फूलता फलता है और वैशाखसे आषाढ़ तक फल पकते हैं। फूल

आध इंच लम्बे, गोल और सफेद या पीलापन लिये होते हैं। इसके गोल फल गूदेदार होते और वीज गोलाकार होते हैं। इसकी टहनियोंको काट कर लोग दातुन बनाते हैं। चिकित्साशास्त्रके अनुसार यह रक्तपित्त, बवासीर वात, कफ और अतिसारका नाशक है। इसका दूसरा नाम सिहोर भी है।

सहोरु (सं० त्रि०) ऊरुके सहित।

सहोवल (सं० क्ली०) दौरात्म्य।

सहोवृध् (सं० त्रि०) वलवर्द्ध यिता, बल बढ़ानेवाला।

सहोपित (सं० त्रि०) एक साथ वास करनेवाला।

सहौजस् (सं० त्रि०) बलके सहित, ताकतके साथ।

सह्य (सं० त्रि०) सह (शकिसहोश्च। पा ३।१।६६) इति यत्। १ सोढ़व्य, सहने योग्य, बर्दाश्त करने लायक। २ आरोग्य। ३ प्रिय, प्यारा। (पु०) ४ दक्षिणदेशमें स्थित एक पर्वत। सह्याद्रि देखो। ५ साम्य, समानता, बराबरी।

सह्यता (सं० स्त्री०) सह्यका भाव या धर्म, सहन।

सह्याद्रि—बम्बई प्रदेशकी एक पर्वतमाला। ताप्ती नदीसे कुमारिका अन्तरीप पर्य्यन्त विस्तृत पश्चिम घाट पर्वतकी शाखा प्रशाखा ही सह्याद्रिशैल कहलाती है। किन्तु लोग दाक्षिणात्यके उपकूलवर्त्ती जिलोंओंमें विस्तृत पर्वतमालाको ही सह्याद्रि कहते हैं। यह सह्याद्रि शैलखण्ड खान्देशसे दक्षिण और दक्षिण-पश्चिममें पुर्त्तगीज उपनिवेश गोआ राजधानी तक फैला हुआ है। पालघाट नामक शाखापर्वत भी इसी पर्वतश्रेणीके अन्तर्भुक्त है। यह उत्तर और दक्षिण कोङ्कण प्रदेशके पूर्व सीमारूप समुद्रोपकूलके प्रायः समान्तराल भावमें खड़ा है। रत्नगिरि नामक उपकूलवर्त्ती जिला इस पर्वतके दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है।

यह पर्वतपृष्ठ साधारणतः २ हजारसे ३ हजार फुट ऊंचा है। इसकी कोई कोई चोटी ५ हजार फुट तक ऊंची चली गई है। कहीं कहीं ऊपर और नीचे आग्नेयगिरिसे उत्पन्न धातव स्तर दिखाई देता है। इस कारण उक्त पर्वतशिखरस्थ भूमि साधारणतः दुरारोह है। थोड़ी मेहनत करनेसे आसानीसे उस पर्वतके ऊपर दुर्गम और दुर्भेद्य दृढ़ गिरिदुर्ग बनाया जा सकता है। यही सुविधा रहनेसे महाराष्ट्र अभ्युदय कालमें यहां बहुतसे दुर्भेद्य दुर्ग बनाये गये थे। अनेक गिरि शिखरों पर ही मीठे जलवाले सोते हैं। इस कारण यहां कभी भी जलाभाव नहीं होता। वह जल स्वास्थ्यकर है और दुर्गरक्षित सेनादलके काममें आसानीसे लाया जा सकता है। बहुतसे बांध और चहबच्चेमें वह जल जमा किया जाता है।

इस पर्वतपृष्ठ पर असंख्य गिरिपथ देखे जाते हैं। पूर्वकालमें उन सब घाटियोंसे महाराष्ट्र-सैन्य और देशी-वणिक् आते जाते थे। वाणिज्यकी सुविधाके लिये वृटिश सरकारने उस पर्वत पर बहुतसे रास्ते करवा दिये हैं। उन घाटियोंका प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही मनोरम है। चार हजार फुट पर्य्यन्त ऊंचे स्थान पर भी अच्छे अच्छे वृक्ष गुल्मादि शोभा दे रहे हैं। देखने हीसे मालूम होता है, कि वसन्त ऋतु यहां हमेशा विराज करती है तथा यहां वसन्त सखाका विश्रामोपवन है। केवल जिन सब स्थानोंमें घोर काले पत्थर दिखाई देते हैं, उन सब स्थानोंमें एक भी लता और उद्भिद् उत्पन्न नहीं होता है।

सह्याद्रि शैलश्रृङ्गके मध्य महाबलेश्वर (४७१७ फुट) सबसे ऊंचा है। यहां इतिहास-प्रसिद्ध दुर्ग और देवमन्दिरादि विद्यमान हैं। महाबलेश्वर देखो। पालघाट और सह्याद्रि शैलके मध्य पथ हो कर मन्द्राजसे बेपुर पर्य्यन्त एक रेलवे लाइन दौड़ गई है। इसके द्वारा दक्षिण भारतके पूर्व और पश्चिम उपकूलके वाणिज्यादि निर्विघ्नपूर्वक नाना स्थानोंमें परिचालित होते हैं। पश्चिम घाट, पालघाट, नीलगिरि, पालनिस आदि शब्दोंमें इस पर्वतका प्राकृतिक विवरण लिपिबद्ध हुआ है। विस्तार हो जानेके भयसे उसकी दुहरा कर आलोचना नहीं की गई।

दक्षिण-पश्चिम मौसुम वायुके आरम्भ और शेषमें यहां साधारणतः तूफान, वृष्टि और वज्राघात हुआ करता है।

सह्याद्रिखण्ड—स्कन्दपुराणका एक अंश। इस अंशमें सह्याद्रि शैलके विभिन्न प्रदेशके विभिन्न राजवंशकी वंशावली और परिचय तथा देवस्थानादि कीर्त्तित हैं।

स्कन्दपुराणके सह्यवर्णन अध्यायमें भी सह्याद्रि प्रदेशका विशद विवरण आया है।

सह्यु (सं० त्रि०) शत्रुओंको अभिभवकारी।

सांई (हिं० पु०) १ स्वामी, मालिक। २ ईश्वर, परमात्मा। ३ पति, भर्त्तार, शौहर। ४ मुसलमान फकीरोंकी एक उपाधि।

सांकड़ (हिं० पु०) १ शृंखला, जंजीर, सीकड़। २ सिकड़ी जो दरवाजेमें लगाई जाती है। ३ चांदीका बना हुआ एक प्रकारका गहना जो पैरमें पहना जाता है।

सांकड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारका आभूषण जो पैरमें पहना जाता है। यह मोटी चपटी सिकड़ीको भांति होता है। प्रायः मारवाड़ी स्त्रियां इसे पहनती हैं।

सांकर (हिं स्त्री०) १ शृंखला, जंजीर, सीकड़। (वि०) २ संकीर्ण, तंग, संकरा। ३ दुःखमय, कष्टमय।

सांकरा (हिं० वि०) १ संकरा देखो। २ सांकड़ा देखो।

सांकाहुली (हिं० त्रि०) शंखाहुली देखो।

सांक्रामिक (सं० त्रि०) संक्राम-ठञ्। संक्रमणशील, छूतसे जो उत्पन्न हो।

सांख्य—महर्षि कपिल प्रणीत दर्शनशास्त्र। साङ्ख्य देखो।

सांग (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी बरछी जो भालेके आकारकी होती है। पर इसकी लंबाई कम होती है और यह फेंक कर मारी जाती है, शक्ति। २ एक प्रकारका औजार जो कुंआ खोदते समय पानी फोड़नेके काममें आता है। ३ भारी बोझ उठानेका डंडा।

सांगरी (हिं स्त्री०) एक प्रकारका रंग जो कपड़े रंगनेके काममें आता है। यह जंगारसे निकलता है।

सांगी (हिं० स्त्री०) १ बरछी, सांग। २ बैलगाड़ीमें गाड़ीवानके बैठनेका स्थान, जुआ। ३ जाली जो पक्के या गाड़ीसे नीचे लगी रहती है और जिसमें मामूली चीजें रखी जाती हैं।

सांग्रामिक (सं० त्रि०) १ युद्धोपयोगी। २ युद्ध सम्बन्धी। ३ युद्धनिपुण, रणकुशल। (पु०) ४ सेनापति।

सांघातिक (सं० त्रि०) संघात साधुः संघात (गुडादिभ्य ठञ्। पा ४।४।१०३) इति ठञ्। १ सम्यक् प्रकारका हनन कारक, मारात्मक। जब रोगादि अति प्रबल हो मारात्मक हो जाता है, तब उसे सांघातिक कहते हैं। (पु०) २ षण्णाड़ीचक्रोक्त नक्षत्रविशेष। जन्म नक्षत्रसे षोड़श नक्षत्रको सांघातिक नाड़ी कहते हैं। इस नक्षत्रमें जो सब ग्रह रहते हैं, वे विशेष अनिष्टफलप्रद हैं। ग्रहके इस नाड़ीस्थ होने पर देह, द्रविण और बंधुनाश होता है। ग्रहोंके शुभाशुभ फल विचारकालमें ग्रहगण षण्णाड़ीस्थ हुए हैं या नहीं यह पहले अच्छी तरह देख लेना होगा। षण्णाड़ीके मध्य यह सांघातिक विशेष अनिष्ट फल देनेवाला है। षण्णाड़ी शब्द देखो।

सांचा (हिं० पु०) १ वह उपकरण जिसमें कोई तरल पदार्थ ढाल कर अथवा गीली चीज रख कर किसी विशिष्ट आकार प्रकारकी कोई चीज बनाई जाती है, फरमा। जैसे—ईंटोंका सांचा, टाइपका सांचा। जब कोई चीज किसी विशिष्ट आकार-प्रकारकी बनानी होती है, तब पहले एक ऐसा उपकरण बना लेते हैं जिसके अंदर वह आकार बना होता है। तब उसीमें वह चीज डाल या भर दी जाती है जिससे अभीष्ट पदार्थ बनाना होता है। जब वह चीज जम जाती है, तब उसी उपकरणके भीतरी आकारकी हो जाती है। जैसे,—ईंटें बनानेके लिये पहले उनका एक सांचा तैयार किया जाता है और तब उसी सांचेमें सुरखी, चूना आदि भर कर ईंटें बनाते हैं। २ वह छोटी आकृति जो कोई बड़ी आकृति बनानेसे पहले नमूनेके तौर पर तैयार की जाती है और जिसे देख कर वही बड़ी आकृति बनाई जाती है। प्रायः कारीगर जब कोई बड़ी मूर्त्ति आदि बनाने लगते हैं, तब वे उसके आकारकी मिट्टी, चूने, प्लैस्टर आफ पेरिस आदिकी एक आकृति बना लेते हैं और तब उसीके अनुसार पत्थर या धातुकी आकृति बनाते हैं। ३ जुलाहोंकी वे दो लकड़ियां जिनके बीचमें कूंचके सालको दबा कर कसते हैं। ४ एक हाथ लंबी एक लकड़ी जिस पर सटक बनानेके लिये सल्ला बनाते हैं। ५ कपड़े पर बेल बूटा छापनेका ठप्पा जो लकड़ीका बनता है, छापा।

सांचिया (हिं० पु०) १ किसी चीजका सांचा बनानेवाला। २ धातु गला कर सांचेमें ढालनेवाला।

सांची (हिं० पु०) १ एक प्रकारका पान जो खानेमें ठंढा होता है। पान देखो। २ पुस्तकोंकी छपाईका वह प्रकार जिसमें पंक्तियां सीधे बलमें न हो कर बेड़े बलमें

होती है। इसमें पुस्तकें चौड़ाईके बलमें नहीं बल्कि लम्बाईके बलमें लिखी या छापी जाती हैं। प्राचीन कालके जो लिखे हुए ग्रन्थ मिलते हैं, वे अधिकांश ऐसे ही होते हैं। इनमें पृष्ठ लम्बा अधिक और चौड़ा कम रहता है और पंक्तियां लम्बाईके बलमें होती हैं। प्रायः ऐसी पुस्तकें बिना सिली हुई ही होती हैं और उनके पन्ने बिलकुल एक दूसरेसे अलग अलग होते हैं।

साँझ (हिं० स्त्री०) सन्ध्या, शाम।

साँझा (हिं० पु०) व्यापार, व्यवसाय आदिमें होनेवाला हिस्सा, पत्ती। साझा देखो।

साँझी (हिं० स्त्री०) देव-मन्दिरों आदिमें देवताओंके सामने जमीन पर की हुई फूल पत्तों आदिकी सजावट जो प्रायः सावनके महीनेमें होती है।

साँट (हिं० स्त्री०) १ छड़ी, साँटी, पतली कमची। २ कोड़ा। ३ शरीर परका वह लम्बा गहरा दाग जो कोड़े या बेंत आदिका आघात पड़नेसे होता है। ४ लाल गदहपूरना।

साँटा (हिं० पु०) १ करघेके आगे लगा हुआ वह डंडा जिसे ऊपर नीचे करनेसे तानेके तार ऊपर नीचे होते है। २ कोड़ा। ३ ऐंड। ४ ईख, गन्ना।

साँटी (हिं० स्त्री०) १ पतली छोटी छड़ी। २ बांसकी पतली कमची, शाखा। ३ मेल, मिलाप। ४ प्रतिकार, प्रतिहिंसा, बदला।

साँठ (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कड़ा जिसे प्रायः राजपूतानेके किसान पैरमें पहनते हैं। २ सांकड़ा देखो। ३ सरकंडा। ४ वह लम्बा डंडा जिससे अन्न पीट कर दाने निकालते हैं। ५ ईख, गन्ना।

साँठी (हिं० स्त्री०) १ पूंजी, धन। २ पुनर्णवा, गदहपूरना। (पु०) ३ साठी देखो।

साँड़ (हिं० पु०) १ वह बैल या घोड़ा जिसे लोग केवल जोड़ा खिलानेके लिये पालते हैं। ऐसा जानवर बधिया नहीं किया जाता और न उससे कोई काम लिया जाता है। २ वह बैल जो मृतककी स्मृतिमें हिन्दू लोग दाग कर छोड़ देते हैं, वृषोत्सर्गमें छोड़ा हुआ वृषभ। (वि०) ३ बलिष्ठ, मजबूत। ४ आवारा, बदचलन।

साँड़नी (हिं० स्त्री०) ऊंटनी या मादा ऊंट जिसकी चाल बहुत तेज होती है। ऊंट देखो।

सांड़ा (हिं० पु०) छिपकलीकी जातिका पर आकारमें उससे कुछ बड़ा एक प्रकारका जंगली जानवर। इसकी चरबी निकाली जाती है जो दवाके काममें आती है।

सांड़िया (हिं० पु०) १ तेज चलनेवाला ऊंट। २ सांड़नी पर सवारी करनेवाला।

सांढ़िया (हिं० पु०) क्रमेलक, ऊंट।

सांथड़ा (हिं० पु०) बाढ़ियाका वह हिस्सा जो पेंच बनानेके लिये घुमाया जाता है।

सांथरी (हिं० स्त्री०) १ चटाई। २ बिछौना, डासन।

सांथा (हिं० पु०) लोहेका एक औजार जो चमड़ा कूटनेके काममें आता है।

साँथी (हिं० स्त्री०) १ वह लकड़ी जो तानेके तारोंको ठीक रखनेके लिये करघेके ऊपर लगी रहती है। २ तानेके सूतोंके ऊपर नीचे होनेकी क्रिया।

साँद (हिं० पु०) वह लकड़ी आदि जो पशुओंके गलेमें इसलिये बांध दी जाती है जिसमें वे भागने न पावें, लंगर, ढेका।

सांदृष्टिक (सं० क्ली०) १ प्रत्यक्ष दृष्टिमय, एक ही दृष्टिमें होनेवाला, देखते ही होनेवाला। (क्ली०) २ दृष्टपरिकल्पनान्याय, पहले देखे हुए विषयको मन ही मन कल्पना। पहले जो प्रणाली देखी गई है, वैसे स्थानमें वैसी ही कल्पना कर लेनेको सांदृष्टिक न्याय कहते हैं।

पिताके अभावमें माता अधिकारिणी एक जगह कहा गया है, लेकिन पितामहके अभावमें कौन अधिकारी होगा, वह कहा नहीं गया, किन्तु पहले देखा गया है, कि पिताके अभावमें माता—इस सांदृष्टिक न्यायमें पितामहके अभावमें पितामही होगी। जहां ऐसी कल्पना होती है, वहां सांदृष्टिक न्याय होता है।

सांध (हिं० पु०) वह वस्तु जिस पर निशाना लगाया जाय, लक्ष्य, निशाना।

सांधना (हिं० क्रि०) १ निशाना साधना, लक्ष्य करना, संधान करना। २ मिश्रित करना, एकमें मिलाना। ३ रस्सियों आदिमें जोड़ लगाना। ४ पूरा करना, साधना।

सांधा (हिं॰ पु॰) दो रस्सियों आदिमें दी हुई गांठ।

सांप (हिं॰ पु॰) १ एक प्रसिद्ध रेंगनेवाला लम्बा कोड़ा जिसके हाथ पैर नहीं होते और जो पेटके वल जमीन पर रेंगता है। विशेष विवरण सर्प शब्दमें देखो। २ बहुत दुष्ट आदमी।

सांपा (हिं॰ पु॰) सियापा देखो।

सांपिन (हिं॰ स्त्री॰) १ सांपकी मादा। २ घोड़ेके शरीर परकी एक प्रकारकी भौंरी जो अशुभ समझी जाती है।

सांपिया (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका काला रंग जो प्रायः साधारण सांपके रंगसे मिलता जुलता होता है।

सांभर (हिं॰ पु॰) १ राजपूतानेकी एक झील जहांका पानी बहुत खारा है। इसी झीलके पानीसे सांभर नमक बनाया जाता है। २ उक्त झीलके जलसे बना हुआ नमक। ३ भारतीय मृगोंकी एक जाति। इस जातिका मृग बहुत बड़ा होता है। इसके कान लम्बे होते हैं और सींग बारहसिंगोंके सींगोंके समान होते हैं। इसकी गरदन पर बड़े बड़े बाल होते हैं। अक्तूबरके महीनेमें यह जोड़ा खाता है।

सांयात्रिक (सं॰ पु॰) संयात्रा द्वीपान्तरगमनं सा प्रयोजनमस्येति, तदस्य प्रयोजनं इति ठञ्। पोतवणिक्, वह व्यापारी जो जलपथसे वाणिज्य करता है।

सांयुगीन (सं॰ त्रि॰) संयुग (प्रतिजनादिभ्यः खञ्। पा ४।४।९९) इति खञ्। युद्धकुशल।

सांयोगिक (सं॰ त्रि॰) संयोगाय प्रभवति संयोगस्तस्मै प्रभवति (सन्तापादिभ्यः। पा ५।१।१०१) इति ठञ्। संयोगके निमित्त जो प्रभव हो।

सांरक्ष्य (सं॰ क्ली॰) संरक्षका भाव या कर्म।

सांराविन् (सं॰ क्ली॰) सं रु-ध्वनौ (अभिविधौ भावे इनुन्। पा ३।३।४४) इति इनुन् (आनिनुणः। पा ५।४।१५) इति स्वार्थे अण्। हट्ट सम्यक् शब्द, हाटका गोलमाल।

सांवक (हिं॰ पु॰) १ वह ऋण जो हलवाहोंको दिया जाता है और जिसके सूदके बदलेमें वे काम करते हैं। २ सांवां नामक अन्न।

सांवत (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका राग।

सांवती (हिं॰ स्त्री॰) बैलगाड़ी या घोड़ा गाड़ीके नीचे लगी हुई जाली जिसमें घास आदि रखते हैं।

सांवत्सर (सं॰ पु॰) संवत्सर-अण्। गणक। बृहत्संहितामें इसका लक्षण लिखा गया है, कि सद्वंश-सम्भूत, प्रियदर्शन, विनीतवेश, सत्यवादी, असूयाशून्य, समव्यवहारी और अविकलांग, जिसके गोलकी सन्धियां सुसंहत अथच उपचित, सुस्वरयुक्त और गम्भीर प्रकृति इन सब लक्षणोंसे सम्पन्न व्यक्ति सांवत्सर हो सकेंगे और वे शुचि, दक्ष, प्रगल्भ, वाक्पटु, उपस्थित बुद्धि, देशकालज्ञ, अनभिभवनीय, निपुण, अव्यसनी, शान्ति-पौष्टिक, अभिचार-स्नानादि, विद्याविषयमें अभिज्ञ, देव-पूजाव्रत और उपवासनिरत, ग्रहगणनामें कौतूहली हो, ज्ञानप्रभावविशिष्ट, जिज्ञासित विषयका वक्ता, भौमादि उत्पाततत्त्वकी शान्तिका अजिज्ञासित वक्ता, ग्रहगणित, संहिता और होरा आदि ग्रन्थोंका अर्थवक्ता आदि गुण-युक्त होंगे।

ग्रहगणित अर्थात् पौलिश, रोमक, वाशिष्ठ, सौर और पितामह इस पञ्चसिद्धान्त शास्त्रमें जो युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, याम, मुहूर्त्त, नाड़ो, विनाड़ी, प्राण और त्रुटि प्रभृति काल और क्षेत्र कहे गये हैं, उनके सम्यक् वेत्ता, सौर, सावन, नाक्षत्र और चान्द्र-रूप चतुर्विध मास, अधिमास और अवम प्रभृतिका कारणाभिज्ञ, षष्ठ्रसंवत्सर, युग, वर्ष, मास, दिन और होरा प्रभृतिका अधिपतियोंके प्रति शक्तिविषयक विच्छेदमें अभिज्ञ, सौरादि परिमाणोंके सदृशासदृशत्व और योग्यायोग्यत्वके प्रतिपादन विषयमें निपुण, अयननिवृत्तिमें सिद्धान्त-भेद होने पर सममण्डल, रेखा सम्प्रयोग और अभ्युदित अंशोंके प्रत्यक्षकरणमें और छाया, जलयन्त्र और दृग्-गणितकी समता प्रतिपादनमें कुशल, सूर्यादि ग्रहोंके शीघ्र, मन्द, याम्य, उत्तर और नीच-उच्च प्रभृति गतियोंके कारणाभिज्ञ, सूर्य या चन्द्रग्रहणके आदि और मोक्षकाल, दिक्-निरूपण, परिमाण, स्थितिकाल, विमर्द, वर्णभेद और देशोंके उपदेष्टा, अनागत ग्रहोंके समागम और युद्धादिका समयनिरूपक प्रत्येक ग्रहके ही भ्रमणयोजन, भ्रमण-कक्षा आदि प्रति विषयके ही योजनोंका परिच्छेद विषयमें कुशल, पृथ्वी और ग्रहनक्षत्रादिके भ्रमण संस्थान आदि, अक्षांश अवलम्बन, दिन, व्यास, चरार्द्ध, काल, राशि, उदय, छाया, नाड़ी और करण आदि विषयोंमें अभिज्ञ और नाना प्रकारके कथित प्रश्नोंका भेदज्ञान

द्वारा वाक्यसारसम्पन्न, सब तरहके ज्योतिःशास्त्रके ही सब विषयोंका वक्ता इन सब गुणोंसे गुणान्वित व्यक्ति सांवत्सर नामसे अभिहित होते हैं। मोटी बात यह है, कि ज्योतिःशास्त्रीय सब संहिताओंमें सुनिपुण व्यक्तिको ही सांवत्सर कहते हैं। (बृहत्संहिता २ अ०)

जिनका ज्योतिःशास्त्रमें सम्यक् अधिकार नहीं, शुभाशुभ या ग्रहणकी गति आदिका विषय पूछने पर सम्यक् बोध नहीं होता, वे सांवत्सर पदवाच्य नहीं।

सांवत्सरक (सं० त्रि०) संवत्सरे देयं ऋणं (संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ् च। पा ४।३।५०) ठञ्। १ संवत्सरमें दिया जानेवाला ऋण। (पु०) संवत्सर स्वार्थे कन्। २ सांवत्सर, दैवज्ञ, गणक।

सांवत्सरिक (सं० त्रि०) सांवत्सर (कालात् ठञ्। पा ४।३।११) इति ठञ्। १ संवत्सरमें भव, संवत्सर सम्बन्धीय, वार्षिक। २ प्रतिवर्ष कर्त्तव्य श्राद्ध, वर्ष वर्ष पर मृत तिथिमें पित्रादिके उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है, उसको सांवत्सरिक श्राद्ध कहते हैं।

सपिण्डीकरण श्राद्धके बाद प्रति वर्ष मृताह तिथिमें सांवत्सरिक श्राद्ध करना होता है, जितने दिन सपिण्डीकरण नहीं होता, उतने दिनों तक यह श्राद्ध नहीं करना चाहिये। मृताहके पूर्ण संवत्सर पर चान्द्र मृततिथिमें सपिण्डीकरण करना होता है। यदि कोई संवत्सर तिथि छोड़ दे अर्थात् इस तिथि पर सपिण्डीकरण न करे, तो जितने दिनों तक यह छुटा सपिण्डीकरण न हो, उतने दिनों तक सांवत्सरिक श्राद्ध न होगा।

यदि किसीके भी अपकर्ष सपिण्डीकरणमें अर्थात् संवत्सरमें वृद्धिके उपलक्षमें सपिण्डीकरण श्राद्ध करना होता है, ऐसा होने पर संवत्सरमें मृत तिथिमें सांवत्सरिक श्राद्ध नहीं होगा। इसके बाद वर्ष वर्ष पर सांवत्सरिक श्राद्ध करना होगा। पित्रादि तीन पुरुष अर्थात् पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही और प्रपितामही इन छः पितरोंका सांवत्सरिक श्राद्ध करना उचित है।

पिता और माताकी मृत्युमें जब तक उसका सपिण्डीकरण न हो, तब तक देहाशुद्धि रहती है। सुतरां यह एक वर्ष नित्य कर्म छोड़ अन्य किसी कर्मका अधिकार नहीं रहता। किन्तु उसके उक्तरूपसे कालाशौचमें देह अशुद्ध होनेसे पितामहादिका मृताह तिथिमें सांवत्सरिक श्राद्ध कर सकते हैं। यह अशौच इस श्राद्धमें बाधक नहीं होगा। सुतरां यह श्राद्ध अवश्य कर्त्तव्य है। सांवत्सरिक श्राद्ध न करनेसे विशेष प्रत्यवायभागी होना पड़ता है। छोटे चाचा, पितासे बड़े चाचा और उनकी पत्नी, उनके यदि पुत्र न हो, तो उनके भी सांवत्सरिक श्राद्ध अवश्य कर्त्तव्य है। इस श्राद्धको एकोद्दिष्ट श्राद्ध कहते हैं, क्योंकि यह श्राद्ध एकके उद्देशसे किया जाता है। संवत्सर कर्त्तव्य होनेसे ही सांवत्सरिक नाम हुआ है।

स्त्रियोंके श्राद्धमें अधिकार नहीं। किन्तु सांवत्सरिक श्राद्धका विशेष विधान है, कि सधवा स्त्रियां पिता और माताकी मृत्यु पर प्रति संवत्सरकी मृताह तिथिमें यह सांवत्सरिक श्राद्ध कुश और तिलके परिवर्त्तनमें दूर्वा और यव द्वारा सम्पन्न कर सकेंगी। किन्तु यदि मृताह तिथिमें वे कर न सके, तो पतित या छुटे हुए श्राद्धकी तरह कृष्ण एकादशी या अमावस्या तिथिमें कर सकेंगी। विधवा स्त्रियां यदि उनको पुत्र, पौत्र न हो, तो तिल तथा कुश द्वारा स्वामीकी मृताह तिथिमें सांवत्सरिक श्राद्ध कर सकेंगी। यह श्राद्ध उनके लिये अवश्य कर्त्तव्य है। विधवा अपने पितामाताका सांवत्सरिक तिल और कुश द्वारा करें। पण्डित, ज्ञानी, मूर्ख, स्त्री, ब्रह्मचारी, चाहे कोई व्यक्ति मृत तिथिको यदि अतिक्रम करे अर्थात् मृताह तिथिमें सांवत्सरिक श्राद्ध न करे, तो वे धर्महीन चण्डालरूप धारण करते हैं। सुतरां यह श्राद्ध सबके लिये अवश्य कर्त्तव्य है। किसी तरह यह मृताह-तिथि छोड़नी न चाहिये।

(पु०) ३ गणक, दैवज्ञ। बृहत्संहितामें लिखा है, कि जहां सांवत्सरिक श्राद्ध नहीं होता, वहां ऐश्वर्यकामी मनुष्य वास न करें।

सांवत्सरीय (सं० त्रि०) संवत्सर-सम्बन्धी।

सांवरण (सं० पु०) मनुके गोत्रसम्भूत संवरणात्मज।

सांवर्णि (सं० पु०) सांवरणका अपत्यादि।

सांवर्गजित (सं० पु०) गौतमका गोत्रापत्य, वर्गजितका अपत्यादि।

सांवर्त्त (सं० क्ली०) सामभेद।

सांवर्त्तक (सं० पु०) १ सम्वर्त्त। २ प्रलयाग्नि। ३ सूर्य्य।

सांवला (हिं० वि०) १ जिसके शरीरका रंग कुछ कालापन लिये हुए हो, श्याम वर्णका। (पु०) २ श्रीकृष्णका एक नाम। ३ पति या प्रेमी आदिका बोधक एक नाम।

सांवलापन (हिं० पु०) वर्णकी श्यामता, सांवला होनेका भाव।

सांवहित (सं० वि०) संवहित्-सम्बन्धी।

सांवां (हिं० पु०) कंगनी या चेनाकी जातिका एक अन्न जो प्रायः सारे भारतमें बोया जाता है। यह प्रायः फागुन चैतमें बोया जाता है और जेठमें तैयार होता है। यह अन्न बहुत सुपाच्य और बलवर्द्धक माना जाता है और प्रायः चावलकी भांति उबाल कर खाया जाता है। कहीं कहीं रोटीके लिये इसका आटा भी तैयार किया जाता है। इसकी हरी पत्तियां और डंठल पशुओंके लिये चारेकी भांति काममें आती हैं और पंजाबमें कहीं कहीं केवल चारेके लिये भी इसकी खेती होती है। अनुमान है, कि यह मिस्र या अरबसे इस देशमें आया है।

सांवादिक (सं० पु०) १ नैयायिक। (त्रि०) २ संवाददाता, खबर देनेवाला।

सांवाद्य (सं० क्ली०) संवादिनो भावः कर्म वा (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। पा ५।१।१२४) इति ष्यञ्, इन्भागस्य लोपः। संवादीका भाव या कर्म, संवादवार्त्ता।

सांवासिक (सं० त्रि०) संवासाय प्रभवति संवास (तस्मै प्रभवति संतापादिभ्यः। पा ५।१।१०१) इति ठञ्। सहवासके निमित्त जो प्रभु हो।

सांवास्यक (सं० क्ली०) संवास, एकत्र वास।

सांवाहिक (सं० त्रि०) एकत्र वहनकारी।

सांविक्तिक (सं० त्रि०) सांवृत्तिक, पारमार्थिक वृत्तिचारी।

सांविद्य (सं० क्ली०) संविद्।

सांवेशनिक (सं० त्रि०) संवेशन-ठञ्। जो संवेशनके लिये प्रभु हों। (पा ५।१।१०१)

सांवेश्य (सं० क्ली०) संवेशीका भाव या कर्म।

सांवेद्य (सं० त्रि०) संवेदनीय।

सांव्यवहारिक (सं० त्रि०) संव्यवहार-सम्बन्धी।

सांशयिक (सं० त्रि०) संशयमापन्नः संशय (संशयमापन्नः। पा ५।१।७३) इति ठञ्। १ संशययुक्त, सन्देहविशिष्ट। पर्याय—संशयापन्नमानस, सन्दिहान। २ संशय-विषयक।

सांशित्य (सं० पु०) संशितस्य गोत्रापत्यं संशित (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति यञ्। संशितका गोत्रापत्य।

सांस (हिं० स्त्री०) १ नाक या मुंहके द्वारा बाहरसे हवा खींच कर अंदर फेफड़ों तक पहुंचाने और उसे फिर बाहर निकालनेकी क्रिया, श्वास, दम। यद्यपि यह शब्द संस्कृत 'श्वास' (पुलिङ्ग)से निकला है और इसलिये पुलिङ्ग ही होना चाहिये, परन्तु प्रायः लोग इसे स्त्रीलिंग ही बोलते हैं। परन्तु कुछ अवसरों पर कुछ विशिष्ट क्रियाओं आदिके साथ यह पुलिंग भी बोला जाता है। जैसे—इतनी दूरसे दौड़े हुए आये हैं, सांस फूलने लगा। २ अवकाश, छुट्टी। ३ गुंजाइश, दम। जैसे,—अभी इस मामलेमें बहुत कुछ सांस है। ४ वह सन्धि या दरार जिसमेंसे हो कर हवा जा या आ सकती है। ५ किसी अवकाशके अंदर भरी हुई हवा। ६ वह रोग जिसमें मनुष्य बहुत जोरोंसे पर बहुत कठिनतासे सांस लेता है, दम फूलनेका रोग, श्वास, दमा।

सांसत (हिं० स्त्री०) १ दम घुटनेकासा कष्ट। २ बहुत अधिक कष्ट या पीड़ा। ३ झंझट।

सांसतघर (हिं० पु०) १ कारागारमें एक प्रकारकी बहुत तंग और अंधेरी कोठरी जिसमें अपराधियोंको विशेष दंड देनेके लिये रखा जाता है, काल कोठरी। २ बहुत तंग और छोटा मकान जिसमें हवा या रोशनी न आती हो।

सांसना (हिं० क्रि०) १ शासन करना, दंड देना। २ डांटना, डपटना। ४ कष्ट देना, दुःख देना।

सासर्गविद्य (हिं० स्त्री०) जिसने संसर्गविद्या अध्ययन की हो या उससे ज्ञात हो।

सांसर्गिक (सं० लि०) संसर्ग-ठक्। संसर्गसम्बन्धी।

सांसल (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कम्बल। २ वीज बोनेकी क्रिया।

सांसा (हिं० पु०) १ श्वास, सांस। २ जिन्दगी, जीवन। ३ प्राण। ४ घोर कष्ट, भारी पीड़ा, तकलीफ। ५ चिन्ता, फिक्र। ६ संशय, सन्देह, शक। ७ भय, डर, दहशत।

सांसारिक (सं० लि०) संसार-ठक्। १ संसार-सम्बन्धो, इस संसारका, लौकिक, ऐहिक। २ संसारोपयोगी।

सांसिद्धिक (सं० लि०) स्वाभाविक, जो स्वभावसिद्ध हो, संसिद्धि-सम्बन्धी।

सांसिद्धय (सं० क्ली०) संसिद्ध-यत्। संसिद्धका भाव या कार्य, सम्यक् रूपसिद्ध।

सांसृष्टिक (सं० लि०) संसृष्टि-सम्बन्धी, अकस्मात् उत्पन्न।

सांस्कारिक (सं० लि०) संस्कार-सम्बन्धी, जो संस्कारोपयोगी हो।

सांस्थानिक (सं० त्रि०) संस्थाने व्यवहरतीति संस्थान (कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति। पा ४।४।७२) इति ठक्। १ समान देशीय, एक देशका। २ संस्थानयुक्त।

सांस्फीयक (सं० लि०) संस्फीय-सम्बन्धी।

सांहत्य (सं० क्ली०) मिलितका भाव या कर्म, मिलन, एकत्र सम्मिलन।

सांहातिक (सं० क्ली०) षण्णाड़ीचक्रस्थ सांघातिक नक्षत्र।

सांहार (सं० लि०) संहार-अण्। संहार-सम्बन्धी।

सांहित (सं० लि०) संहिता-अण्। संहिता-सम्बन्धी।

सांहितिक (सं० लि०) संहितामधीते वेद-ठञ्। जिन्होंने संहिता अध्ययन की हो या जो संहिताओंके मर्म जानते हों।

सा (सं० स्त्री०) १ गौरी। २ लक्ष्मी। ३ पूर्वोक्त परामर्श विषयीभूता, पहले जिसका उल्लेख हुआ है, पीछे उसका और उल्लेख न कर सा शब्दका प्रयोग करनेसे उस पदार्थका बोध कराता है। ४ प्रसिद्ध। ५ संस्कृत भाषामें सर्वनाम उस शब्दके स्त्रीलिङ्गमें प्रथमाके एक वचनमें सा होता है।

सा (हिं० अव्य०) १ तुल्य, सदृश, समान। जैसे,—उनका रंग तुम्हीं-सा है। २ एक प्रकारका मानसूचक शब्द। जैसे,—बहुत-सा, थोड़ा-सा, जरा-सा।

साइक्लोपीडिया (अं० स्त्री०) १ वह बड़ा ग्रन्थ जिसमें किसी एक विषयके सब अंगों और उपांगों आदिका पूरा पूरा वर्णन हो। २ वह बड़ा ग्रन्थ जिसमें संसार भरके सब मुख्य मुख्य विषयों और विज्ञानों आदिका पूरा पूरा विवेचन हो, विश्वकोष, इन्साइक्लोपीडिया।

साइत (अ० स्त्री०) १ एक घण्टे या ढाई घड़ीका समय। २ पल, लहमा। ३ मुहूर्त्त, शुभ लग्न।

साइनबोर्ड (अं० पु०) वह तख्ता या टीन आदिका टुकड़ा जिस पर किसी व्यक्ति, दूकान या व्यवसाय आदिका नाम और पता आदि अथवा सर्वसाधारणके सूचनार्थ इसी प्रकारकी और कोई सूचना बड़े बड़े अक्षरोंमें लिखी हो। ऐसा तख्ता मकान या दूकान आदिके आगे अथवा किसी ऐसी जगह लगाया जाता है, जहां सब लोगोंकी दृष्टि पड़े।

साइन्स (अं० स्त्री०) १ किसी विषयका विशेष ज्ञान, विज्ञान, शास्त्र। विज्ञान देखो। २ रासायनिक और भौतिक विज्ञान।

साइवान (फा० पु०) सायबान देखो।

साइयां (हिं० पु०) साईं देखो।

साईं (हिं० पु०) १ स्वामी, मालिक, प्रभु। २ ईश्वर, परमात्मा। ३ पति, खाविन्द। ४ एक प्रकारका पेड़।

साई (हिं० स्त्री०) १ वह धन जो गाने बजानेवाले या इसी प्रकारके और पेशेकारोंको किसी अवसरके लिये उनकी नियुक्ति पक्की करके पेशगी दिया जाता है, पेशगी, बयाना। २ एक प्रकारका कीड़ा जिसके घाव पर बीट कर देनेसे घावमें कीड़े पैदा हो जाते हैं। ३ वे छड़ जो गाड़ीके अगले हिस्सेमें बेड़े बलमें एक दूसरेको काटते हुए रखे जाते हैं और जिनके कारण उनकी मजबूती और भी बढ़ जाती है। ४ साईकाँटा देखो।

साईकाँटा (हिं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष। यह बंगाल, दक्षिण भारत, गुजरात और मध्यप्रदेशमें पाया जाता है।

इसकी लकड़ी सफेद होती है और छाल चमड़ा सिझानेके काममें आती है। इसमेंसे एक प्रकारका कत्था भी निकलता है। इसका दूसरा नाम साई या मोगली भी है।

साईस (हिं० पु०) वह आदमी जो घोड़ेकी खबरदारी और सेवा करता है, उसे दाना घास आदि देता, मलता और टहलाता तथा इसी प्रकारके दूसरे काम करता है।

साईसी (हिं० स्त्री०) साईसका काम, भाव या पद।

साईस्ता खाँ (अमीर-उल्-उमरा)—बङ्गालका एक विख्यात मुगल-शासनकर्त्ता। इसका असल नाम आबु-तालिब और मिर्ज़ा मुराद था। यह वजीर आसफ खाँका लड़का और इतिमाद उद्दौलाका पोता था। १८४१ ई०में प्रधान मन्त्री आसफ खाँके मरने पर सम्राट् शाहजहांने इसे वजीर बनाया। इसके पहले यह सम्राट्की कृपासे १६३८ ई०में बेरारका शासनकर्त्ता हो चुका था। १६५२ ई०में साईस्ता खाँ गुजरात जीतनेके लिये गया। १६५६ ई०में सम्राट् आलमगीर (औरङ्गजेब)ने इसे दाक्षिणात्यके राजप्रतिनिधिरूपमें नियुक्त कर अपने बड़े लड़के सुलतान महम्मदकी मददमें गोलकुण्डा-युद्धमें नायकता करनेका हुकुम दिया। १६५८ ई०में जब सम्राट् शाहजहांके पुत्रोंमें पितृसिंहासन लेकर तकरार खड़ा हुआ, तब साईस्ता खाँने खुल्लमखुल्ला दारासिकोहका पक्ष लिया। किन्तु औरङ्गजेबकी गतिविधि, गोपनीय संवादादि और परामर्श दे कर इसने दारासिकोहका लक्ष्य भ्रष्ट किया था। १६५६ ई०में सम्राट् आलमगीरने अपने लड़के महम्मद मुआज़िमको दाक्षिणात्यसे अपने पास दिल्लीदरबारमें बुलाया और साईस्ता खाँको ही वहांका शासनकर्त्ता बनाया। इस समय शिवाजीके साथ इसका युद्ध छिड़ा। १६६६ ई०में यह बङ्गालका शासनकर्त्ता हुआ। इसके समय बङ्गालमें मुगलोंकी अच्छी धाक जम गई थी, तमाम शान्ति विराजती थी। कहते हैं, कि साईस्ता खाँके जमानेमें बङ्गालमें दो आने मन चावल बिकता था।

साईस्ता खाँने बङ्गाल आ कर ढाका नगरीमें राजपाट स्थापन कर राजकार्य परिचालन किया था। यह सम्राट् औरङ्गजेबका मन्त्रशिष्य था, उसीके जैसा न्याय चतुर और कूटनीतिपरायण था। इसने उस समय कलकत्तेकी ईष्ट इण्डिया कम्पनीको स्वार्थहानि करनेके उद्देशसे उनके प्रति अन्याय व्यवहार किया। इस कारण हुगलाके निकटवर्त्ती घोलघाट नामक स्थानमें उस समयकी कम्पनीकी कोठीके गवर्नर जाव चार्णकके साथ इसकी लड़ाई हुई। इस लड़ाईमें किसी भी पक्षका कुछ नुकसान नहीं हुआ।

जाव चार्णक देखो।

१६६४ ई०में ६३ चान्द्रवर्षमें साईस्ता खाँकी मृत्यु हुई। आगरा नगरमें यमुनाके किनारे इसके बनाये हुए रौजा और उद्यानका खंडहर आज भी दिखाई देता है। सम्राट् शाहजहांके जमानेमें इसने इलाहाबाद (प्रयाग)-दुर्गके पश्चिम यमुनाके किनारे एक जुमा मसजिद बनवाई, वह मसजिद १८५७ ई० तक विद्यमान थी। सिपाही विद्रोहके बाद ध्वस्त और नष्टभ्रष्ट हो गई है।

साकंभरी (हिं० पु०) सांभर झील या उसके आस पासका प्रान्त जो राजपूतानेमें है।

साकंज (सं० त्रि०) सहोत्पन्न। (ऋक् १।१६४।१५)

साकंयुज (सं० त्रि०) सहित युक्त, सहित वर्त्तमान।

साकंवत् (सं० त्रि०) सहयुक्त।

साकंवृध् (सं० त्रि०) प्रवृद्ध। (ऋक् ७।६३।२)

साक (सं० अव्य०) सहार्थ, सह, सहित, संगमें।

साक (हिं० पु०) १ शाक, साग, सब्जी, भाजी, तरकारी। २ सागौन देखो। ३ धाक देखो।

साकट (हिं० पु०) १ शाक्त मतका अनुयायी। २ वह जो मद्य मांस आदि खाता हो। ३ वह जिसने किसी गुरुसे दीक्षा न ली हो, गुरुरहित। ४ दुष्ट, पाजी, शरीर।

साकमुक्ष (सं० त्रि०) सहित या युगपत्सिञ्चनकारी, साथ जल सींचनेवाला। (ऋक् ९।६३।१)

साकमेध (सं० पु०) चातुर्मास्यमें यागभेद।

साकम्प्रस्थायीय (सं० पु०) यागभेद।

साकर (सं० स्त्री०) सांकल देखो।

साकल (हिं० स्त्री०) सांकल देखो।

साकल्य (सं० क्ली०) सकल भावे ष्यञ्। १ समुदाय। २ सकलका भाव।

साका (हिं० पु०) १ संवत्, शाका। २ ख्याति, प्रसिद्धि, शोहरत। ३ यश, कीर्त्ति। ४ कीर्त्तिका स्मारक। ५ धाक, रोब। ६ कोई ऐसा बड़ा काम जो सब लोग

न कर सकें और जिसके कारण कर्त्ताकी कीर्त्ति हो।

साकाङ्क्ष (सं० त्रि०) १ आकाङ्क्षाके सहित, सस्पृह, लालस। २ लोभी, इच्छुक।

साकार (सं० त्रि०, आकारेण सह वर्त्तमानः। १ आकार-विशिष्ट, जिसका कोई आकार हो, जिसका स्वरूप हो। २ मूर्त्तिमान्, साक्षात्। ३ स्थूल। (पु०) ४ ईश्वरका वह रूप जो साकार हो, ब्रह्मका मूर्त्तिमान् रूप।

साकारता (सं० स्त्री०) साकार होनेका भाव, साकारपन।

साकारोपासना (सं० स्त्री०) साकारस्य उपासना। ईश्वरकी वह उपासना जो उसका कोई आकार या मूर्त्ति बना कर की जाती है, ईश्वरकी मूर्त्ति बना कर उसकी उपासना करना। सगुण-ब्रह्मकी उपासना, प्रथमाधि-कारीके लिये साकारोपासना ही श्रेय है। जिसकी चित्तशुद्धि और इन्द्रियग्राम विजित नहीं हुआ है, वे साकारोपासना द्वारा चित्त शुद्धि आदि लाभ करें।

साकिन (अ० वि०) निवासी, रहनेवाला, वाशिंदा।

साकी (हिं० पु०) गन्ध-पलाशी, कपूर कचरी।

साकी (अ० पु०) १ वह जो लोगोंको मद्य पिलाता हो, शराब पिलानेवाला। २ वह जिसके साथ प्रेम किया जाय, माशूक।

साकुच (सं० पु०) शकुल मत्स्य, सकुची मछली।

साकुरुण्ड (सं० पु०) वृक्षविशेष। पर्याय—ग्रन्थिफल, विकट, वस्त्रभूषण, कर्वूरफल, सकुरुण्ड। इसका गुण—कषाय, रुचिकारक, दीपन, सारक, श्लेष्मा, वात-नाशक, वस्त्ररञ्जक और लघु। (राजनि०)

साकुश (हिं० पु०) अश्व, घोड़ा, वाजि।

साकूत (सं० त्रि०) साभिप्राय, अभिप्रायविशिष्ट।

साकेत (सं० क्ली०) अयोध्यानगरी, अवधपुरी।

साकेतक (सं० त्रि०) साकेत (धूमादिभ्यश्च। पा ४।२।१२७) इति वुञ्। साकेतदेशवासी, अयोध्याका रहनेवाला।

साकेतन (सं० क्ली०) साकेत, अयोध्या नगर।

साक्तुक (सं० पु०) सक्तुषु साधुः सक्तु (गुड़ादिभ्यष्ठञ्। पा ४।४।१०३) इति ठञ्। १ यव, जौ। सक्तूनां समूहः सक्तु (अचित्तहस्तिधेन्वोष्ठक्। पा ४।२।४७) इति ठक्। (क्ली०) २ सक्तुसमूह। (त्रि०) ३ सक्तु सम्बन्धी, सत्तूका।

साक्षत (सं० त्रि०) अक्षत या अरवा चावलके सहित।

साक्षर (सं० त्रि०) १ अक्षरयुक्त, विद्वान्। (क्ली०) २ अपना नाम लिखना, सही करना।

साक्षात् (सं० अव्य०) १ प्रत्यक्ष, सम्मुख। २ प्रत्यक्षी-भूत। ३ स्वयं। ४ तुल्य, सदृश। (पु०) ५ भेंट, मुलाकात, देखा देखी। (त्रि०) ६ मूर्त्तिमान्, साकार।

साक्षात्कर (सं० त्रि०) प्रत्यक्षजनक।

साक्षात्करण (सं० क्ली०) साक्षात्कार, प्रत्यक्ष करना।

साक्षात्कार (सं० पु०) १ मिलन, मुलाकात, भेंट। २ पदार्थोंका इन्द्रियों द्वारा होनेवाला ज्ञान।

साक्षात्कारिन् (सं० त्रि०) १ साक्षात् करनेवाला। २ भेंट या मुलाकात करनेवाला।

साक्षात्कृति (सं० स्त्री०) साक्षात्कार, भेंट, मुलाकात।

साक्षिता (सं० स्त्री०) साक्षीका काम, साक्षित्व, गवाही।

साक्षी (सं० त्रि०) वृत्तज्ञ, प्रत्यक्षदर्शन, प्रत्यक्षदर्शी, स्वयंद्रष्टा, जिसने प्रत्यक्षरूपसे सब देखा है। किसी विषय पर जब दो आदमीका विवाद उपस्थित होता है, तब उसकी साक्षी द्वारा मीमांसा होती है। अतः विवाद की मीमांसाके लिये साक्षी ही मूल है।

याज्ञवल्क्यसंहितामें यह विषय यों लिखा है - किसी विषयकी मीमांसाके लिये राजाके यहां नालिश करने पर कमसे कम तीन साक्षी गवाहोंकी गवाहियां दिला कर उसे प्रमाणित करना पड़ता है। तपोनिष्ठ, दानशील, सद्वंशीय, सत्यवादी, धर्मप्रधान, सरल स्वभाव, पुत्र-वान्, सम्पत्तिशाली, यथासम्भव, श्रौतस्मार्त्त और नित्य नैमित्तिक कर्मानुचारी तथा व्यवहर्त्ताके सजाति या सवर्ण इन सब गुणोंसे विशिष्ट तीन साक्षी होने चाहिये। सजाति तथा सवर्ण साक्षी यदि न मिले, तो सब जातिके सभी वर्णोंके साक्षी माने जा सकते हैं।

स्त्री, बालक, वृद्ध, कितव, श्रोत्रियवृद्ध, तापसवृद्ध और परिव्राजक आदि शास्त्रीय वचनानुसार साक्षियोंमें गिने नहीं जाते। इस विषयमें शास्त्रमें भी कोई कारण निर्दिष्ट नहीं हुआ है। मद्य आदिके सेवनसे मत्त, उन्मत्त, अभिशप्त, रङ्गावतारी, पाषण्डी, कूटकारी, विकलेन्द्रिय, पतित, बन्धु, अर्थसम्बन्धी अर्थात् जिसके

साथ विवादी विषयका स्वार्थ सम्बन्ध है, सहाय, शत्रु, चोर, साहसी, दृष्टदोष, मित्र-परित्यक्त इत्यादि गुणवाले व्यक्ति साक्षी होनेके अयोग्य हैं। उभयपक्ष सम्मत अर्थात् एक ही साक्षी हो, किन्तु निन्दित गुणयुक्त व्यक्तियोंको कभी साक्षी न बनावे। राजाको चाहिये, कि गवाही लेते समय गवाहको चेता दे, कि झूठ गवाही देने पर क्या दोष है।

गवाह गवाही देना स्वीकार कर गवाही न दे, तो उसको पाप और दण्ड कूटसाक्षीकी तरह होगा। गवाही जिसकी लिखित प्रतिज्ञाको सत्य कहता है, वह जयी होता है और जिसकी लिखित प्रतिज्ञा झूठ कहता है, वह पराजित। कितने ही गवाहोंके एक तरह बोल चुकने पर भी यदि दूसरे पक्षके या अपने पक्षके वादके अत्यन्त गुणवान् व्यक्ति दूसरी तरहकी गवाही दे, तो पहलेके गवाह या साक्षी कूटसाक्षी गिने जाते हैं। जो झूठ साक्ष्य दे, राजा उसका दण्डविधान करे। मुकदमेमें हारे हुए व्यक्तिको जो दण्ड मिले, उससे दूना दण्ड कूटसाक्ष्य प्रदान करनेवालोंको देना चाहिये। राजाको चाहिये, कि कूटसाक्षीको देशसे भगा दें। किन्तु ब्राह्मण कूट साक्षी होनेसे अन्य कोई दण्ड न दे देशसे निकाल देना चाहिये।

साक्षी साक्ष्य देना स्वीकार कर पीछे अस्वीकार करे, तो मुकदमेमें हारे हुए व्यक्तिको जो दण्ड मिले, उसके अठगुने दण्ड उसे मिलना चाहिये। राजा पहले इस तरह उसे दण्डित कर पीछे उसे देशसे निकाल दें। जिस मामलेमें किसी एक ब्रह्मचारीको प्राणदण्डकी सम्भावना है, उसमें साक्षी उसको प्राणरक्षाके निमित्त झूठी गवाही दे सकता है। पीछे इस मिथ्याजनित पापका प्रायश्चित्त सारस्वत चरु निर्वपण करे।

साक्षित (सं० अव्य०) आक्षिप्त अर्थात् आक्षेप, मनोवैकल्य।

साक्षिभूत (सं० पु०) भगवान् विष्णु।

साक्षिमत् (सं० त्रि०) साक्षीयुक्त, साक्षीविशिष्ट।

साक्षी (हिं० स्त्री०) किसी बातको कह कर प्रमाणित करनेकी क्रिया, गवाही, शहादत।

साक्षेप (सं० त्रि०) आक्षेपयुक्त, आक्षेपविशिष्ट।

साक्ष्य (सं० क्ली०) साक्षिन् (दिगादिभ्यो यत्। पा ४।३।५४) इति यत्। १ साक्षीका काम, गवाही, शहादत। २ दृश्य।

साख (हिं० पु०) १ साक्षी, गवाह। २ गवाही, प्रमाण, शहादत। ३ धाक, रोब। ४ मर्यादा। ५ बाजारमें वह मर्यादा या प्रतिष्ठा जिसके कारण आदमी लेन देन कर सकता हो, लेन देनका खरापन या प्रामाणिकता।

साखी (हिं० पु०) १ साक्षी, गवाह। (स्त्री०) २ साक्षी, गवाही। ३ ज्ञानसम्बन्धी पद या दोहे, वह कविता जिसका विषय ज्ञान हो। जैसे—कबीरकी साखी।

साखू (हिं० पु०) शालवृक्ष, सखुआ।

साखेय (सं० त्रि०) सखि (कुत्सुद्ग्रा कटजिति। ४।२।८०) इति ढञ्। सखिसम्बन्धी।

सखोट (हिं० पु०) सिहोर वृक्ष, सिहोरा, भूतावास। सिहोर देखो।

साख्य (सं० क्ली०) सखि ष्यञ्। सख्य, सखित्व, बन्धुत्व।

साग (हिं० पु०) १ पौधोंकी खाने योग्य पत्तियां, शाक, भाजी। २ पकाई हुई भाजी, तरकारी।

सागर (सं० पु०) सगरस्य राज्ञोऽयमिति सगर-अण्। १ समुद्र, उदधि, जलधि। अमरटीकामें भरतने लिखा है, कि राजा सगरने इसे अवतारित किया, इसलिये समुद्रका नाम सागर हुआ। २ बड़ा तालाव, झील, जलाशय। ३ संन्यासियोंका एक भेद। ४ सगरके एक पुत्रका नाम। (भाग० ३।१०७) ५ एक प्रकारका मृग। (त्रि०) ६ सागर-सम्बन्धी।

सागरक (सं० पु०) जनपदभेद।

सागरग (सं० त्रि०) सागर-गम-ड। सागरगामी, सागर पर्यन्त गमनकारी।

सागरगम (सं० त्रि०) सागर पर्यन्त गमनकारी।

सागरगा (सं० स्त्री०) १ नदी, दरिया। २ गङ्गा।

सागरगामिन् (सं० त्रि०) सागर पर्यन्त गमनकारी।

सागरगामिनी (सं० स्त्री०) १ नदी। २ सूक्ष्मैला।

सागरज (सं० पु०) समुद्रलवण।

सागरजमल (सं० पु०) समुद्रफेन, अब्धि कफ।

सागरदत्त (सं० पु०) १ गार्ग्यवंशीय एक प्रसिद्ध व्यक्ति। २ गन्धर्वराजभेद।

सागरधरा (सं० स्त्री०) पृथ्वी, भूमि।

सागरनन्दिन् (सं० पु०) एक कोषकार।

सागरनेमि (सं० स्त्री०) पृथ्वी। (हेम)

सागरपर्यन्त (सं० त्रि०) समुद्र पर्यन्त, समुद्र तक।

सागरपाल (सं० पु०) नागराज। (तारनाथ)

सागरमुद्रा (सं० स्त्री०) ध्यानमुद्राभेद।

सागरमेखला (सं० स्त्री०) पृथ्वी। (हेम)

सागरलिपि (सं० स्त्री०) लिपिभेद। ललितविस्तरमें इस लिपिका उल्लेख पाया जाता है। (ललितवि०)

सागरवर्म्मन् (सं० पु०) राजभेद।

सागरवासी (सं० पु०) १ वह जो समुद्रमें रहता हो, समुद्रमें रहनेवाला। २ वह जो समुद्रके तट पर रहता हो, समुद्रके किनारे रहनेवाला।

सागरव्यूहगर्भ (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

सागरसूनु (सं० पु०) सागरके पुत्र।

सागरानूपक (सं० त्रि०) सागरवासी, समुद्रमें रहनेवाला।

सागरान्त (सं० त्रि०) सागर पर्यन्त, समुद्र तक।

सागराम्बरा (सं० स्त्री०) सागरः अम्बरं वस्त्रमिव यस्याः। पृथ्वी।

सागरालय (सं० पु०) सागरमें रहनेवाला, वरुण।

सागरावर्त्त (सं० पु०) सागरद्वीप। (महाभारत वनपर्व)

सागरीका (सं० स्त्री०) रत्नावलीकी सखी।

सागरोत्थ (सं० क्ली०) समुद्रलवण।

सागरोदक (सं० क्ली०) समुद्रजल। महास्नानके समय सागरोदकसे स्नान कराना होता है।

सागवना (हिं० पु०) सागौन देखो।

सागस् (सं० त्रि०) पापके सहित, पापयुक्त।

सागू (हिं० पु०) १ ताड़की जातिका एक प्रकारका पेड़। यह जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदिमें अधिकतासे पाया जाता है। इसके कई उपभेद हैं जिनमेंसे एकको माड़ भी कहते हैं। इसके पत्ते ताड़के पत्तोंकी अपेक्षा कुछ लम्बे होते और फल सुडौल गोलाकार होते हैं। इसके रेशोंसे रस्से, टोकरे और बुरुश आदि बनते हैं। कहीं कहीं इसमेंसे पाछ कर एक प्रकारका मादक रस भी निकाला जाता है और उस रससे गुड़ भी बनाया जाता है। जब यह पन्द्रह वर्षका हो जाता है, तब इसमें फल लगते हैं और इसके मोटे तनेमें आटेकी तरहका एक प्रकारका सफेद पदार्थ उत्पन्न हो कर जम जाता है। यदि यह पदार्थ काट कर निकाल न लिया जाय, तो पेड़ सूख जाता है। यही पदार्थ निकाल कर पीसते हैं और तब छोटे छोटे दानोंके रूपमें बना कर सुखाते हैं। कुछ वृक्ष ऐसे भी होते हैं जिनके तनेके टुकड़े टुकड़े करके उनमेंसे गूदा निकाला जाता है और पानीमें कूट कर दानोंके रूपमें सुखा लिया जाता है। इन्हीं दानोंको सागूदाना या साबूदाना कहते हैं। इस वृक्षका तना पानीमें जल्दी नहीं सड़ता, इसलिये उसे खोखला करके उससे नालीका काम लेते हैं। यह वृक्ष वर्षा ऋतुमें बीजोंसे लगाया जाता है। २ सागूदाना देखो।

सागूदाना (साबूदाना) (हिं० पु०) सागू नामक वृक्षके तनेका गूदा। यह भिन्न भिन्न देशमें भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। यथा—तामिल—सावारिसि, दाक्षिणात्यमें—सउके-छवल, मलय—सागु, चीन—सिकुमी, फरासी—सागों, जर्मन—सगो, अंगरेजी—स्यागो। पपुआ भाषामें साबू शब्दका अर्थ रोटी है।

पूर्वभारतीय द्वीपपुञ्जमें हमारे देशके ताड़के पेड़की तरह एक प्रकारका पेड़ है जिसे सागूका पेड़ कहते हैं। उद्भिद्विदोंने उसे ताड़ (Palm)की जातिका बताया है और उसका Metroxylon Sago नाम रखा है। साबूके पेड़को दूसरे किसी किसी वृक्षके श्वेतसारसे सागू तैयार हो कर बाजारमें साबूदाना या सागू नामसे ही बिकता है। ज्वर, अजीर्ण आदि रोगोंमें यह अरारोट, बारली आदिकी तरह पथ्य है।

पेड़में फूल और फल लगनेके पहले ठीक उपयुक्त समय जान कर पेड़को काट डालते हैं, पीछे तनेको खंड खंड कर चीरते हैं। उसके भीतर जो सार या मज्जा रहता है, उसे छिछल कर बाहर करके पीसते हैं। पीछे उस चूर्णको मैदेकी तरह जलमें घोल कपड़ेसे छान लेते हैं। छलनीमेंसे जलके साथ सारपदार्थ माड़के जैसा निकल जाता है और वृक्षज तन्तु उसीमें रह जाते हैं।

इसके बाद वह श्वेतसारमिश्रित जल एक काठके दौने या बड़े बरतनमें ढाल दिया जाता है। बरतनकी पेंदीमें श्वेत-सार जम जाता है। बरतनके ऊपरका जल धीरे धीरे फेंक कर देशी साबू बनाने और फिरसे उस श्वेतसारको दो बार धो डालते हैं। इस प्रकार धौत और परिष्कृत होनेके बाद साबू-सार खाने लायक हो जाता है।

प्रकृत साबू-पेड़को छोड़ भारतीय प्रायोद्वीपमें दूसरे जिन सब वृक्षोंसे प्रचुर परिमाणमें साबू तैयार होता है तथा जो बजारमें साबूदानेके रूपमें साबूकी तरह उत्कृष्ट वस्तु कह कर बिकते हैं, उन वृक्षोंकी एक तालिका नीचे दी गई है—

1. Arenga saccharifera.
2. Borassus flabelliformis.
3. Caryota urens.
4. Corypha Umbraculifera.
5. Cycas circinalis.
6. C. Pectinata.
7. C. Rumphili.
8. Metroxylon
9. Phoenix acaulis.
10. P. Rupicola.
11. Tacca pinnatifida.

ऊपर जो वृक्षतालिका दी गई, उसे देखनेसे जाना जाता है, कि ५, ६, ७ और १० पेड़ ताड़की जातिके नहीं हैं। भारतवर्षके एकमात्र तालजातीय साबूके पेड़ Caryota urens से साबूदाना तैयार होता है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि उदरामय और ज्वर आदिमें साबू रोगीके लिये उत्कृष्ट पथ्य है। बहुत दिन ज्वर भुगतनेके बाद आरोग्य लाभ करने पर भी जब रोगी दुर्बल अवस्थामें रहता है, तब भी साबू खानेको दिया जाता है।

भारत महासागरस्थ पूर्वद्वीपपुञ्जवासी और भारत-वासी साधारणतः साबूको गरम जलमें कुछ सिद्ध कर कपड़ेमें छान लेते हैं। सागू सिद्ध हो जाने पर वर्णहीन पने जलकी तरह दिखाई देता है तथा उसमें किसी प्रकार-की गंध नहीं रहती। यह रोगीको दूध, मछलीके जूस या नीबूके रसके रस खानेको दिया जाता है। कभी कभी लोग साबूका पुडिंग भी तैयार करते हैं। बड़े दानेका सागू मूंगकी दालके साथ खिचड़ी बना कर खानेमें बड़ा अच्छा लगता है। द्वीपवासी साबूके सफेदसारको जलमें घोल बिस्कुट बना कर सुखा रखते हैं। यह बिस्कुट बहुत दिन रहता है।

सागो (हिं० पु०) सागू देखो।

सागौन (हिं० पु०) शाल देखो।

साग्नि (सं० त्रि०) अग्निके सहित, अग्नियुक्त।

साग्निक (सं० त्रि०) अग्निके सहित, अग्नियुक्त। कलि-को छोड़ अन्य युगमें सभी ब्राह्मण साग्निक थे। उप-नयनके समय जो अग्नि प्रज्वलित होती थी, उपनीत ब्राह्मण यत्नपूर्वक उस अग्निकी रक्षा तथा प्रति दिन उसमें होम करते थे, पीछे अन्तमें उसी अग्निसे उनकी अन्त्येष्टि क्रिया होती थी। साग्निक ब्राह्मणको स्नातक कहते हैं। कलिकालमें सभी ब्राह्मण-निरग्निक हैं।

साग्निचित्य (सं० त्रि०) अग्निचयन क्रियायुक्त।

साग्र (सं० त्रि०) १ अग्रके सहित, अग्रयुक्त। २ समस्त, कुल, सब।

साग्रह (सं० त्रि०) आग्रहके साथ, आग्रहयुक्त।

साङ्ख्यिक (सं० त्रि०) सङ्ख्यायां साधुः (कथादिभ्य-ष्ठक्। पा ४।४।१०२) इति ठक्। सङ्ख्या विषयमें साधु।

साङ्करिक (सं० त्रि०) सङ्करवर्ण या मिश्रवर्ण-सम्बन्धी।

साङ्कर्य (सं० क्लो०) सङ्करस्य भावः ष्यञ्। सङ्करका भाव, मिश्रण।

साङ्कल (सं० त्रि०) सङ्कल (सङ्कलादिभ्यश्च। पा ४।२।७५) इति अञ्। १ सङ्कल द्वारा निर्वृत्त। २ सङ्कलनसे जात।

साङ्कलिक (सं० त्रि०) सङ्कल-सम्बन्धी।

साङ्काशिन् (सं० क्लो०) प्रगुण।

साङ्काश्य (सं० पु०) उत्तर-भारतका प्रसिद्ध एक प्राचीन नगर। इसका वर्त्तमान नाम सङ्किश है। सङ्किश देखो।

साङ्कुश्यक (सं० त्रि०) साङ्कुश्य-सम्बन्धी।

सङ्कुची (सं० स्त्री०) मत्स्यविशेष, सकुची मछली।

साङ्कृत (सं० त्रि०) सङ्कृति प्रवर-सम्बन्धी।

साङ्कृति (सं० पु०) एक मुनिका नाम। ये वैयाघ्रपद्य-गोत्रके प्रवर थे।

साङ्कृत्य (सं० पु०) सङ्कृतिका गोत्रापत्य।

साङ्कृत्यायन (सं० पु०) साङ्कृत्यका गोत्रापत्य।

साङ्केतिक (सं० त्रि०) १ सङ्केतकारक, सङ्केत-संबन्धी। (क्ली०) २ संक्षेपसे हिसाब बनाना।

साङ्केत्य (सं० क्ली०) मूल प्रमाणशून्य पाषण्डोंका शास्त्र। (भागव० ५।१४।२६)

साङ्क्रामिक (सं० त्रि०) साङ्क्रामे साधु (गुडादिभ्यष्ठञ्। पा ४।४।१०३) इति ठञ्। जो शीघ्र संक्रम करे।

साङ्क्षेपिक (सं० त्रि०) १ संक्षिप्त। २ सङ्क्षेपकारक।

साङ्ख्य (सं० क्ली० पु०) संख्या सम्यकज्ञानं सा अस्त्यस्येति संख्या-अण् वा सम्यक् ख्यायते प्रकाश्यते वस्तुतत्त्वमनयेति संख्या सम्यक् ज्ञानं तस्यां प्रकाशमानं आत्मतत्त्वं साङ्ख्यं। षट्दर्शनोंमें दर्शनशास्त्रविशेष। पर्याय—कापिल। (हेम) महर्षि कपिलने इस शास्त्रको प्रणयन किया था। इस दर्शनके भाष्यकार विज्ञान भिक्षुने इसकी इस तरह व्युत्पत्ति की है—

"सांख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृतिञ्च प्रचक्षते।
तत्त्वानि च चतुर्विंशत् तेन सांख्याः प्रकीर्त्तिताः॥
संख्या सम्यक् विवेकेनात्मकथनं। अतः सांख्य शब्दस्य योगरूढ तथा तत्कारणं सांख्ययोगं।"

सांख्य उसीको कहते हैं, जिसमें संख्या, प्रकृति तथा २४ तत्त्व अभिहित हुए हों। सम्यक् विवेक द्वारा आत्मकथनका नाम संख्या है। अतएव जिसमें सम्यक् विवेकख्याति द्वारा आत्मतत्त्व लाभ हो, उसीको सांख्य कहते हैं।

परमज्ञानी भगवान् कपिलने जीवोंके दुःख विमोचनके लिये इस दर्शनशास्त्रका उपदेश दिया है। उन्होंने जिस सांख्यका उपदेश दिया है, उसका नाम तत्त्वसमास है, यह अति संक्षिप्त है। उन्होंने दया कर आसुरि मुनिको यह श्रेष्ठ पवित्र ज्ञान पहले पहल प्रदान किया। पीछे आसुरि मुनिने पञ्चशिखको तथा पञ्चशिख मुनिने पीछे बहुत तरहसे इस ज्ञानका प्रचार किया। इस तरह शिष्य परम्पराक्रमसे यह ज्ञान प्रचारित हुआ।

इस समय जो सांख्यसूत्र प्रचलित हैं, उन्हें विज्ञान भिक्षु, कपिलप्रणीत स्वीकार करते हैं। उनका कहना है, कि वर्त्तमान सूत्रमें संक्षिप्त सांख्य है, दर्शनके प्रपञ्चन-अर्थात् विस्तृत भावसे व्याख्या इससे इसका नाम सांख्य प्रवचन है। यह भी प्रकारान्तरसे उन्होंने स्वीकार किया है, कि कालक्रमसे यह शास्त्र विलुप्त हुआ था।

"कालार्कभक्षितंसांख्य शास्त्रं ज्ञान सुधाकरं।
कलावशिष्टं भूयोऽपि पूरयिष्ये वचोऽमृतैः॥"
(सांख्यभाष्य)

कपिलके शिष्य आसुरिने पञ्चशिखाचार्यको इस शास्त्रका उपदेश दिया, उन्होंने इस दर्शनके प्रकाशके सम्बन्धमें बहुतेरे ग्रन्थ प्रणयन किये। किन्तु कालक्रमसे उन ग्रन्थोंमें अधिकांश विलुप्त हो गये हैं। पीछे ईश्वरकृष्णने इस ज्ञानका अवलम्बन कर आर्याश्लोकमें सांख्यकारिका प्रणयन की। यह कारिका ही सांख्यदर्शनका अति समीचीन तथा प्रामाणिक ग्रन्थ है। प्राचीन आचार्योंसे आज कलके सूत्रोंकी अपेक्षा सांख्यकारिका समादृत और विशेष प्रामाणिक रूपसे स्वीकृत हुई है। शङ्कराचार्यने शारीरकभाष्यमें सांख्यदर्शनके मत खण्डन प्रसङ्गमें प्रचलित सांख्य दर्शनका सूत्र उद्धृत न कर ईश्वर कृष्णकी सांख्यकारिका उद्धृत की है। ५वीं शताब्दीमें परमार्थने चीनभाषामें इस कारिकाका अनुवाद प्रकाशित किया। अतः इसमें सन्देह नहीं, कि यह कारिका भी अतिप्राचीन ग्रन्थ है। सुतरां इससे मालूम होता है, कि प्रचलित सांख्यसूत्रकी अपेक्षा किसी समय सांख्यकारिका ही विशेष समादृत थी। षड्दर्शन टीकाकृत् वाचस्पति मिश्रने भी सांख्यसूत्रकी टीका न कर इस कारिकाकी ही टीका की है। इसका नाम सांख्यतत्त्वकौमुदी है। यह भी अतिप्रामाणिक ग्रन्थ है। वाचस्पति मिश्र इस दर्शनकी टीका न करनेसे षड्दर्शनके टीकाकार नहीं होते, सुतरां उन्होंने भी सांख्यसूत्रकी अपेक्षा इस कारिकाको ही प्रामाणिक स्वीकार कर इसीकी टीका की है।

इस समय जो सांख्यदर्शन प्रचलित है, वह भी अध्यायोंमें विभक्त है और सब अध्यायोंमें कुल ४५६ सूत्र हैं। विज्ञानभिक्षुने लिखा है, कि आयुर्वेद शास्त्रमें जैसे रोग, आरोग्य, रोगनिदान और भैषज्य ये चार

व्यूह हैं, वैसे ही सांख्यशास्त्रमें भी हेय, हान, हेयहेतु और हानोपाय ये चार व्यूह हैं।

आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीन प्रकारके दुःख हेय, इन तीन प्रकारके दुःखहानके योग्य, परित्यागके उपयुक्त है इसीलिये यह हेय हैं। इन तीन प्रकारके दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिका नाम हान है, प्रकृति और पुरुषके अविवेक या अभेदज्ञान हेयहेतु, विवेकज्ञान अर्थात् प्रकृति या उसका कार्य बुद्ध्यादि पुरुष नहीं। पुरुष उससे भिन्न हैं, प्रकृति और पुरुषका जो भिन्न ज्ञान है, वही हेयहेतु है। इस ज्ञानके उदय होनेसे इन तीनों प्रकारके दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति होती है।

सांख्यशास्त्रके प्रथम अध्यायमें हेय, हान, हेयहेतु और हानोपाय निर्णीत हुआ है। दूसरे अध्यायमें प्रकृतिका सूक्ष्मकार्य, तीसरे अध्यायमें प्रकृतिका स्थूल कार्य, लिङ्गशरीर, अपर वैराग्य और परवैराग्य, चौथे अध्यायमें शास्त्रप्रसिद्ध कई आख्यायिकाओंका प्रदर्शन करते हुए प्रकारान्तरमें विवेकज्ञानसाधनका उपदेश, पांचवें अध्यायमें परपक्षनिरास अर्थात् स्वसिद्धान्तमें वादियोंके समुद्भावित दोषोंका निरास और उनके मतोंका खण्डन, तथा छठे अध्यायमें विस्तृत रूपसे शास्त्रके मुख्य विषयकी व्याख्या और शास्त्रार्थका उपसंहारवर्णित हुआ है।

सांख्यदर्शनमें ईश्वरका प्रमाण स्वीकृत नहीं हुआ है। इससे इसका नाम निरीश्वरसांख्य है। शङ्कराचार्यने सांख्यको निरीश्वर और सेश्वर इन दो भागोंमें विभक्त किया है। उनके मतसे कपिलप्रणीत निरीश्वर सांख्य और पतञ्जलि-प्रणीत सेश्वरसांख्य है। कपिल स्वयं वासुदेव और पतञ्जलि अनन्तके अवतार हैं। ईश्वर स्वीकार नहीं करते, ऐसी बात नहीं है, किन्तु उनका कहना है, कि उसको प्रमाणित किया जा नहीं सकता अर्थात् ईश्वर अप्रमेय है। उन्होंने यह प्रतिपादन किया है, कि 'ईश्वरासिद्धेः' इस सूत्र द्वारा ही ईश्वर सिद्ध नहीं किया जा सकता। यदि ईश्वर नहीं है, यही उनका मत होता, तो वे 'ईश्वरासिद्धेः' इस सूत्रके बदले "ईश्वराभावात्" ऐसा सूत्र करते और भी उन्होंने कहा है, कि "ईश्वरोऽहिदुर्ज्ञेय इति निरीश्वरत्वम्" (विज्ञानभिक्षु) ईश्वर अत्यन्त दुर्ज्ञेय है इसलिये निरो-

कपिलके मतसे ज्ञान द्वारा मुक्ति और पतञ्जलिके मतसे योगप्रभावसे मुक्ति होती है।

शङ्कराचार्यने लिखा है, कि योगी कापोलीय तत्त्वज्ञानके लिये प्रस्तुत होंगे। इसी कारणसे श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण और भारत और तो क्या, शैवागमादिमें भी स्पष्ट सांख्यमत दिखाई देता है*। भगवान्‌ने गीतामें "नैव सांख्यात् परं ज्ञानं" इत्यादि उक्ति द्वारा ज्ञानलाभके पक्षमें सांख्य ही प्रधानशास्त्र स्वीकार किया है। इधर सुप्रसिद्ध राजनीतिक चाणक्यने अपने अर्थशास्त्रमें सांख्य और योग इन दोनों दर्शनको ही आन्वीक्षिकी विद्यामें गिना है†। सेश्वर सांख्यका विवरण पहले लिखा गया है। योग देखो।

सांख्यसूत्र और विज्ञानभिक्षुके भाष्य और ईश्वरकृष्णके कारिका, योगसूत्र और वाचस्पति मिश्रकी तत्त्वकौमुदी—इन कई ग्रन्थोंकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि वाचस्पतिमिश्रकी तत्त्वकौमुदीमें ईश्वर स्वीकृत नहीं हुए हैं। किन्तु विज्ञानभिक्षुने प्रकारान्तरसे ईश्वर स्वीकार किया है। उनका कहना है, कि सूत्रकारने अभ्युपगमवाद अवलम्बन कर ईश्वरका प्रत्याख्यान किया है। सूत्रकारका अभिप्राय यह है, कि माना, कि विचार मुखसे ईश्वर सिद्ध नहीं हुए, किन्तु इसके द्वारा विवेकसाक्षात्कार होने पर मुक्ति होनेमें कोई बाधा नहीं हो सकती—विचारस्थलमें यदि ईश्वर न माना जाये, तो उसमें क्षति क्या है? कारण जीवका प्रयोजन क्या है? मुक्ति। किन्तु ईश्वर स्वीकार न करनेसे विवेक साक्षात्कार होनेसे ही जब मुक्ति होगी, तब ईश्वरके स्वीकार या अस्वीकार करनेसे क्या आता जाता है? विज्ञानभिक्षु

* "योगी कपिल पक्षीकं तत्त्वज्ञानमपेक्षते।
श्रुतिस्मृतिर्ह्यर्थेषु पुराणेभारतादिके।
साङ्ख्योक्तं दृश्यते स्पष्टं तथा शैवागमादिषु।"
(ऐ ६।३।४)

† "सांख्ययोगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षिकी।"
(अर्थशास्त्र १ अ०)

श्वरत्व अभिहित हुआ है। जो प्रयोजन है, वह यदि सिद्ध हो, तो अन्य विषय पर विशेष रूपसे आलोचना करनेकी क्या आवश्यकता है? ईश्वरको स्वीकार न करने से ही जब मुक्तिमें किसी तरहकी बाधा नहीं, तब सेश्वर और निरीश्वर विषय पर वातवितण्डा करनेकी क्या आवश्यकता है? उनके इन सब वाक्योंं द्वारा स्पष्ट ही मालूम होता है, कि वे ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार करते थे।

किन्तु सांख्यसूत्रोंकी विशेषरूपसे पर्यालोचना करने पर मालूम होता है, कि उन्होंने "ईश्वरासिद्धेः" इसी सूत्र द्वारा केवल ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया, वरं उन्होंने और भी कितने ही सूत्रों द्वारा निरीश्वरत्व ही प्रतिपादन किया है—"प्रमाणाभावात् न तत् सिद्धिः" (सांख्यसू० ५।१०) प्रमाणके अभाववश उनकी सिद्धि नहीं होती अर्थात् प्रमाणके विना ईश्वरकी सिद्धि नहीं होती।

सांख्यके अनुसार प्रमाण तीन तरहका है—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। इन तीनों प्रमाणोंसे ईश्वर सिद्धि नहीं की जाती। यह कहना ही व्यर्थ है, ईश्वर प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं हैं अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा किसी तरह ईश्वरकी सिद्धि नहीं होती। जहां प्रत्यक्ष द्वारा सिद्धि नहीं होती वहां अनुमान प्रयोग किया जाता है। किन्तु अनुमान प्रमाण द्वारा भी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता। "सम्बन्धाभावान्नानुमानं" (सांख्यसू० ५।११) किसी वस्तुके साथ यदि अन्य किसी वस्तुका नित्य सम्बन्ध हो, तो एक देखनेसे दूसरेका अनुमान होता है। यह नित्य सम्बन्ध या व्याप्ति ही अनुमानका एकमात्र कारण है। जहां यह सम्बन्ध नहीं, वहां पदार्थान्तर अनुमित हो नहीं सकता। इस समय जगत्में किसके साथ ईश्वरका नित्य सम्बन्ध है, कि उससे ईश्वरानुमान किया जा सके। इस पर सांख्यकार-का कहना है, कि किसीके साथ नहीं।

तीसरा प्रमाण शब्द है। वेद ही आप्तोपदेश है। वेदमें ईश्वरका कोई प्रसङ्ग नहीं है। वरं वेदसे यही प्रतिपादित होता है, कि सृष्टि प्रकृतिकी ही क्रिया है; ईश्वरकृत नहीं।

"श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य" (सांख्यसू० ५।१२) किन्तु वेदमें ईश्वरका जो उल्लेख दिखाई देता है, वह मुक्तात्माकी प्रशंसा या सिद्धकी उपासना है। सुतरां आप्त प्रमाण द्वारा भी ईश्वर सिद्ध नहीं होता। ईश्वरके अस्तित्वका प्रमाण नहीं है। इस तरह उन्होंने प्रतिपादन किया है और ईश्वरके अनस्तित्वके सम्बन्धमें उक्त रूपसे प्रमाण दिया है। यथा—ईश्वरका लक्षण क्या है? जो सृष्टिकर्त्ता हैं या पाप-पुण्यके फलविधाता है, वह बद्ध हैं या मुक्त? यदि मुक्त रहे, तो उसकी सृष्टि-कार्यमें प्रवृत्ति हो नहीं सकती। यदि कहो, कि बद्ध है, तो उसको अनन्त ज्ञानशक्ति हो नहीं सकती। अत एव एक कोई सृष्टिकर्त्ता है, यह असम्भव है।

"मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः॥"
'उभयथाप्यसत्करत्वं" (सांख्यसू० १।९३, ९४)

यदि कहो, कि ईश्वर पापपुण्यका दंड विधाता हैं, तो उसको कर्मके अनुसार फलविधान करना होगा। यदि वह ऐसा न करे अर्थात् स्वेच्छानुसार फलविधान करे, तो उसका इस आत्मोपकारके लिये ही करना सम्भव है। इसमें उसको सामान्य लौकिक राजाकी तरह आत्मोपकारी और दुःखके अधीन हो जाना पड़ेगा।

यदि यह न कह वह कर्मानुयायी ही फलविधाता हो, तो कर्मको फल विधाता क्यों नहीं कहते, फल-निष्पत्तिके लिये फिर कर्म पर ईश्वरानुमानकी प्रयोजन क्या? इत्यादि कारणोंसे निरीश्वरत्व ही प्रतिपादित हुआ है।

यह निःसंशयरूपसे कहा जा सकता है, कि ईश्वर-कृष्णकी कारिकामें ईश्वर अङ्गीकृत नहीं हुआ। सब सांख्यसूत्रोंको देखनेसे भी यह बोध होता है, कि इस कारिकाके अवलम्बन करके ही विज्ञानभिक्षुने अधिकांश सूत्र प्रकाशित किये हैं। ईश्वर-कृष्णकी सांख्यकारिका, गौड़पादाचार्यकृत सांख्यकारिकाभाष्य, वाचस्पतिमिश्र कृत सांख्यतत्त्वकौमुदी, विज्ञानभिक्षुकृत सांख्यभाष्य और सांख्यसार आदि सांख्यशास्त्रके विशेष प्रामाणिक ग्रन्थ हैं।

वाचस्पतिमिश्रने स्वयं कहा है, कि यह सांख्य-कारिका ही सांख्यशास्त्र है। सिवा इसके कोई सांख्य-

शास्त्र विद्यमान नहीं था। शङ्कराचार्य, उदयनाचार्य और इनके पूर्ववर्त्ती दार्शनिक पण्डित इस कारिकाको ही सांख्यशास्त्र मानते हैं। जिसको इस समय सांख्य-दर्शन या सांख्यप्रवचन कहते हैं, पहले उसका लोग नाम तक नहीं जानते थे।

सांख्याचार्योंके मतसे दुःखत्रयकी अत्यन्त निवृत्तिका नाम परमपुरुषार्थ है। इसकी निवृत्ति ही मुक्ति है। पुरुषका प्रयोजन ही क्या है? मुक्ति है, त्रिविध दुःखोंके हाथसे एकान्त और अत्यन्त निवृत्ति ऐसे उपायका अवलम्बन जिसके किसी समय भी दुःखोत्पत्ति न हो सके। दुःख तीन प्रकारका है, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। जो दुःख आत्माको अधिकार कर निष्पन्न हो, आभ्यन्तरीण उपायोंसे जो दुःख समुत्पन्न हो, उसको आध्यात्मिक दुःख कहते हैं। साधारण मनुष्य संघात अर्थात् शरीर और इन्द्रादिको ही आत्मा कहा करते हैं, सुतरां ऐसे उपायसाध्य दुःख ही आध्यात्मिक दुःख है। यह आध्यात्मिक दुःख दो तरहका है—शरीर और मानस। शरीर भी स्थूल और सूक्ष्मभेदसे दो प्रकारका है। इस परिदृश्यमान देहको स्थूल देह और बुद्धि, मन, दशो इन्द्रिय और पञ्चतन्मात्रसे गठित अदृश्य देहको सूक्ष्म देह कहते हैं। रोगसे स्थूल देहका दुःख संघटित होता है, वात पित्त कफ, (श्लेष्मा)-के स्वरूपावस्थाका नाम आरोग्य है, वही स्वास्थ्यका निदान है। इनके वैषम्य होनेसे रोगकी उत्पत्ति होती है। सुतरां रोगजनित जो दुःख अनुभव होता है, उसको ही शारीर दुःख कहते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और भयादिसे जो दुःख अनुभव होता है, उसका नाम मानस दुःख है। आधिभौतिक और आधिदैविक ये दोनों दुःख बाह्य उपायसाध्य हैं। आभ्यन्तरीण उपायसाध्य नहीं। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि भूतोंसे जो दुःख मिलता है, उसको आधिभौतिक दुःख कहते हैं। भूतोंसे यह दुःख होता है, इससे ईश्वरका नाम आधिभौतिक हुआ है। यक्ष राक्षसोंके आवेशसे जो दुःख होता है, उसको आधिदैविक कहते हैं। इन तीनों दुःखोंको अत्यन्त निवृत्ति का नाम मुक्ति है। एकमात्र विवेकज्ञान ही इस दुःखकी निवृत्तिका उपाय है। प्रकृति और पुरुषके भेदज्ञानसे अर्थात् प्रकृति तथा उसके कार्य्य बुद्ध्यादिसे पुरुष पृथक् है यही ज्ञान ज्ञानविवेक है। इस विवेकज्ञानके प्रकाशनार्थ सांख्यदर्शनका प्रयोजन है।

विवेकज्ञान ही दुःखनिवृत्तिका एकमात्र ऐकान्तिक उपाय है। इस विवेकज्ञान द्वारा एक बार दुःखका उच्छेद-साधन होने पर फिर उसकी आवृत्ति नहीं हो सकती। क्योंकि मिथ्याज्ञान दुःखका निदान या आदिकारण है। विवेकज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञान समूल उन्मूलित होने पर कारणके अभावमें कार्यको उत्पत्तिको आशङ्का ही नहीं हो सकती। वृक्ष उखाड़ देने पर कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति उससे फल पानेकी आशा नहीं कर सकता।

सांख्याचार्योंका कहना है, कि 'मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि' किसी भी प्राणीकी हत्या न करना, हिंसा करनेसे ही पाप होगा, यही इस निषेधाज्ञाका तात्पर्य्य है। 'अग्निषोमीयं पशुमालभेत' अग्निषोम यज्ञमें पशुहिंसा करो। इस विधिसे मालूम होता है, कि यज्ञसम्पादनके लिये पशुहिंसा विहित है। इसका तात्पर्य्य यही है, कि पशुप्रभृतिकी हिंसाके बिना यज्ञसम्पन्न नहीं होता, अतः ये सब हिंसा करते हुए भी यज्ञसम्पादन करो।

किसी प्राणीकी हिंसा न करो—यह सामान्यशास्त्र है और अग्निषोमीय पशुको हिंसा करो—यह विशेषशास्त्र है। एक श्रुतिका कहना है, कि हिंसा न करो, करनेसे पाप होगा, फिर दूसरी श्रुतिका कहना है, कि पशुहिंसा बिना यज्ञ नहीं होता, पशुहिंसा यज्ञका उपकारक है। सुतरां इन दो विधियोंका कुछ भी विरोध नहीं, ये सम्पूर्ण रूपसे स्वतन्त्रविधि हैं। क्योंकि यज्ञीय पशुहिंसा यज्ञका सम्पादन और पुरुषके प्रत्यवाय यह दोनों निर्वाह करनेमें समर्थ है।

सांख्याचार्योंने प्रतिपादन किया, कि वैधहिंसासे भी पाप होगा और यज्ञ सम्पूर्णके लिये पुण्य भी। अतएव वैदिक यज्ञके अनुष्ठानसे जैसे प्रभूत पुण्य सञ्चय होता है, वैसे ही इस यज्ञके हिंसासाध्य होनेसे प्रभूत पुण्यके साथ साथ यत्किञ्चित् पापका भी सञ्चय होता है। अतएव यज्ञकर्त्ता जब स्वोपार्जित पुण्यराशिके फलस्वरूप स्वर्ग-सुखका उपभोग करेंगे, तब उनको हिंसाजनित पापांशके फलस्वरूप यत्किञ्चित् दुःख भी भोगना पड़ेगा। किन्तु

स्वर्गवासी पुरुष स्वर्गकी मोहिनी शक्तिके प्रभावसे ऐसे मुग्ध हो जाते हैं, कि इस दुःखकणिकाको वह दुःख समझते ही नहीं, अनायास ही उसे सह्य कर लेते हैं।

"मृष्यन्ते हि पुण्यसम्भारोपनीतस्वर्गसुधामहाह्रदावगाहिनः कुशलाः पापमात्रोपपादितां दुःखवह्निकणिकां"

(तत्त्वकौमुदी)

वेदोक्त स्वर्गफलजनक कर्म एक प्रकारका नहीं है, उसमें इतरविशेष है। कर्मके तारतम्यके अनुसार कर्मफल स्वर्गके तारतम्य या उत्कर्षापकर्ष हैं। स्वर्गवासी सम्पूर्णरूपेण दुःखविमुक्त नहीं हैं। स्वर्गवासियोंमें प्रधान अप्रधान हैं। सुतरां इनके भी दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति नहीं हो सकती।

दूसरी एक बात यह है, कि स्वर्ग विनाशी है, वह चिरस्थायी भी नहीं है। स्वर्गका अर्थ केवल सुखविशेष है। सुख जैसे उत्पन्न होता है, वैसे ही विनष्ट भी होता है। सुख नित्य या अविनाशी नहीं हो सकता। जो कारणवश उत्पन्न होता है, वह कारण विगमसे उसका विनाश होगा ही होगा। इसके विपरीत दुःखनिवृत्ति विवेकज्ञानरूप कारणसाध्य होने पर भी वह अभावस्वरूप भावपदार्थ नहीं है। अभाव उत्पन्न होने पर भी उसका विनाश नहीं होता। मुद्गर गिरानेसे घटका और पाटनके पटका विनाश होता है सही, किन्तु मुद्गरपात या पाटनके विगममें तज्जनित घट-पट विनाशका विनाश नहीं होता। घट-पटका विनाश विनष्ट होनेसे या न होनेसे घट-पटकी सत्ता रहनेकी बात है। किन्तु वह सर्वप्रमाणविरुद्ध है और प्रकृतिस्थ व्यक्तिका अनुमत नहीं है। घट-पटादिरूप समुत्पन्न भावपदार्थका विनाश किन्तु प्रत्यक्षसिद्ध है। किन्तु दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति वैदिक यज्ञानुष्ठानके फलरूपसे कीर्त्तित नहीं हुआ है। स्वर्ग नामक सुख-विशेष ही उसका फल अभिहित हुआ है। सुख अभावरूप नहीं, यह भावरूप है। उत्पन्न भावपदार्थका विनाश है, सुतरां स्वर्गका भी विनाश है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है, कि "वे उस विशाल स्वर्गका भोग कर पुण्यक्षीण होनेसे फिर मर्त्यलोकमें प्रवेश करते हैं।"

सुतरां इस वाक्य द्वारा भी समझमें आता है, कि दृष्ट या लौकिक उपायसे औषध आदि या अदृष्ट उपाय याग यज्ञादि किसी प्रकारके उपायसे ही दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति हो नहीं सकती। इसीलिये कपिलने यह प्रमाण द्वारा प्रमाणित किया है, कि एकमात्र विवेक ज्ञान ही अत्यन्त दुःखकी निवृत्तिका उपाय है।

पहले ही कहा गया है, कि सांख्यके मतसे प्रमाण तीन प्रकारका है—प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्तवाक्य अर्थात् शब्दप्रमाण। वाचस्पतिमिश्रने और विज्ञानभिक्षुने इन तीनों प्रमाणोंकी विशेष रूपसे आलोचना की है।

विषय और इन्द्रियके सन्निकर्षसे जो अध्यवसाय है अर्थात् बुद्धिवृत्तिविशेष वही प्रत्यक्ष प्रमाण है। व्याप्यव्यापकभाव और पक्षधर्मता ज्ञानजनित जो बुद्धिवृत्ति है, वही अनुमान और आप्त वाक्यके लिये वाक्यार्थ ज्ञान ही शब्द प्रमाण है।

वाचस्पतिमिश्रका कहना है, कि पहले विषयके साथ इन्द्रियोंका संयोग होता है। यह संयोग ही वृत्ति नामसे विख्यात है। इन्द्रियकी उक्त रूप वृत्ति होनेसे भी त्रिगुणात्मिका बुद्धिका तमोगुण अभिभूत हो सत्त्वगुणका समुद्रेक होता है। उस समय सत्त्वगुण प्रधान या प्रबल हो उठता है। यही सत्त्व समुद्रेक ही अध्यवसाय वृत्ति या ज्ञान नामसे विख्यात है। अतएव बुद्धिका यह वृत्ति रूप ज्ञान ही प्रमाण पदवाच्य है।

विषयके साथ जब इन्द्रियका सम्बन्ध होता है, तब मन पहले विषयरूपमें परिणत होता है, उसके बाद अहंकारका परिणाम होता है, इसके बाद विषय। यह और कृति, ज्ञान, इच्छा, या द्वेष इस त्रिविध वस्तु पर बुद्धिके तीन विकार या परिमाण होते हैं। उक्त तीनोंके परिणामोंमें विषयघटित जो बुद्धि परिणाम है, उसको यहां कथित बुद्धिवृत्ति ही जानना होगा। यही प्रत्यक्ष प्रमाण है।

सांख्यके मतसे अनुमान भी बुद्धिवृत्तिविशेष है, किस तरह बुद्धिवृत्ति अनुमान है, इसका विषय इस तरह लिखा है,—व्याप्यव्यापक भाव और पक्षधर्मता ज्ञानसे जो बुद्धिवृत्ति होती है, वही अनुमान है। यह अनुमान भी तीन प्रकारका है—पूर्ववत्, शेषवत् और

सामान्यतोदृष्ट। वाचस्पतिमिश्रने इसको वीत और अवीत दो भागोंमें विभक्त किया है। जो साध्य है, ठीक वही वस्तु यदि अन्यत्र दिखाई दे, तो उस साध्य अनुमानको पूर्ववत् कहते हैं। किन्तु जो अतीन्द्रिय है, दृष्टिके अगोचर है, वैसे साध्यका अनुमान पूर्ववत् हो नहीं सकता, वह शेषवत् होता है। नहीं तो सामान्यतोदृष्ट अनुमान होता है। किन्तु शेषवत् अनुमानकी जगह हेतुसाध्यके व्याप्य व्यापकका भावज्ञान नहीं और इसमें साध्यभाव और हेत्वभावका व्याप्य व्यापक भावज्ञान आवश्यक है। इसके फलसे साध्यभावका निषेध होता है, सुतरां साध्य ज्ञान हो जाता है।

पृथ्वीभेद गन्धाभावका व्याप्य है तथा गन्धाभाव पृथ्वीमें नहीं, यह ज्ञान होनेसे पृथ्वीमें पृथ्वीभेद नहीं है, ऐसा ज्ञान होता है। परिणाममें पृथ्वीत्व उसमे है, ऐसा ज्ञान होता है। पृथ्वीत्व इस अनुमितिका विधेय नहीं है, विषयमात्र अनुमान द्वारा पर्वत पर जिस वह्निकी (अग्नि) अनुमिति होती है, उसमें वह्नि विधेय होता है। विधेयता भी मनोवृत्ति विशेष है। जिस अनुमितिमें विधेयरूप मनोवृत्तिका सम्पर्क नहीं, वह अनुमितिसाधन प्रमाण ही शेषवत् अनुमान है। सामान्यतोदृष्ट अनुमानपूर्ववत् के विपरीत है। जिस साध्यके अनुमानमें प्रवृत्त हो रहा है, उसकी या ठीक आकारकी दूसरी एक वस्तुका प्रत्यक्ष कभी न होगा। किन्तु उसका तुलना प्राप्त विभिन्न प्रकार ज्ञानपथागत यावतीय वस्तुका व्याप्य व्यापक भावज्ञान और प्रकृत हेतुमें पक्षधर्मताज्ञान होनेसे जो बुद्धिवृत्ति होती है, वही सामान्योदृष्ट अनुमान है। (न्यायदर्शनमें भी पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट ये ही तीन प्रकारके अनुमान माने गये है)। न्यायदर्शन देखो।

वक्ताका दोष अर्थात् वक्तव्य विषयमें भ्रम प्रमाद प्रभृति यदि न रहे, वाक्य श्रवणके बाद प्रतिपाद्य विषयमें जो मनोवृत्ति है, वही शब्द प्रमाण है। उसका फल शब्दबोध है। वेद अपौरुषेय है, सुतरां इसमें प्रमाद नहीं है। इसमें वक्ता या रचयितामें दोषकी सम्भावना नहीं है। उस वेदवाक्यके सुननेके बाद वेदवाक्यके सम्बन्धमें जो चित्तवृत्ति होती है, वही शब्द प्रमाण है। जो भ्रमप्रमाद आदि शून्य ऋषि हैं, उनके वाक्य ही प्रमाण होते हैं। यही शब्द प्रमाण है। सब प्रमाणोंमें यही प्रमाण श्रेष्ठ है।

वाचस्पति मिश्रने इन तीनों प्रमाणोंके सम्बन्धमें लिखा है, कि पहले विषयके साथ इन्द्रियका संयोग होता है। इस संयोगको वृत्ति कहते हैं। इन्द्रियकी उक्त रूप वृत्ति होनेसे ही त्रिगुणात्मिका बुद्धिका तमोगुण अभिभूत होता है, तब सत्त्व समुद्रेक अर्थात् सत्त्वगुणका उद्भव और वह प्रबल हो उठता है। इसका नाम अध्यवसायवृत्ति या ज्ञान है। बुद्धिका यह वृत्तिरूप ज्ञान ही प्रमाण नामसे अभिहित होता है। इस ज्ञान द्वारा चेतनाशक्तिका या चेतनाका जो अनुग्रह है, वही प्रमाणफल या प्रमा है। इसीका दूसरा नाम बोध है।

प्रकृति अचेतन है, तदुसमुद्भूत बुद्धिसत्त्व भी अचेतन है। सुतरां बुद्धिका अध्यवसाय या वृत्ति भी अचेतन है। अचेतन होनेसे बुद्धिवृत्ति स्वयं विषयके प्रकाश करनेमें असमर्थ नहीं होती। पुरुषचेतन और अपरिणामी है। सुतरां अपरिणामी पुरुषका ज्ञान या वृत्तिरूप परिणाम हो नहीं सकता।

बुद्धिसत्त्वसे ही पुरुष प्रतिबिम्बित होता है। आवरक तमोगुणके अभिभूत होने पर सत्त्वगुणका उद्भव होता है। सत्त्व स्वच्छ है, उस पर पुरुषका प्रतिबिम्ब पड़ता है। मलिन आदर्श उज्ज्वल आलोकके निकटवर्त्ती होने पर भी उज्ज्वलित नहीं होता, किन्तु निर्मल आदर्श उज्ज्वल वस्तुके सन्निधानमें उज्ज्वलता धारण करता है। उसी तरह चिच्छक्तिके सन्निधान रहने पर भी तमोभिभूत चित्तमें चिच्छाया या प्रकाशरूपता नहीं होती। सत्त्व समुद्रके होनेसे चिच्छक्तिके सन्निधानवशतः चित्तको भी उज्ज्वलता या प्रकाशरूपता प्राप्त होती है। इसके द्वारा कुछ समझमें आता है, कि चित्त प्रतिबिम्बका विषय है।

बुद्धि सत्त्वमें चितिशक्तिके प्रतिबिम्ब पड़नेसे ज्ञानादि वृत्तियाँ वस्तुगत्या बुद्धितत्त्वकी धर्म होने पर भी पुरुषके धर्मकी तरह प्रतीयमान होती हैं। मलिन दर्पणमें मुखका प्रतिबिम्ब पड़नेसे दर्पणका मालिन्य

जैसे मुखमें दिखाई देता है, वैसे बुद्धितत्त्व ज्ञानादि वृत्तियाँ भी पुरुषगत रूपमें प्रतिभात होती हैं। इसीका नाम चेतनाशक्तिका अनुग्रह या पुरुषका बोध है। इसके विपरीत बुद्धितत्त्व और उसका अध्यवसाय अचेतन होने पर भी उसमें चेतन पुरुष प्रतिष्ठित होता है, इससे यह चैतनकी तरह प्रतीयमान होता है। इस अवस्थामें पुरुष और बुद्धिसत्त्व अभिन्न प्रतीयमान होता है। इससे समझमें आता है, कि वाचस्पतिमिश्रके मतसे बुद्धिवृत्तिमें पुरुष प्रतिविम्बित होता है, किन्तु पुरुषमें बुद्धिवृत्ति प्रतिविम्बित नहीं होती। प्रकृति और पुरुषके परस्पर प्रतिविम्बके विषय पर पातञ्जलभाष्यकार वेद व्यासका भी यही मत है। किन्तु विज्ञान भिक्षुका यह मत नहीं। उनका कहना है, कि बुद्धि वृत्ति और पुरुष इन दोनोंमें ही दोनोंका प्रतिबिम्ब पड़ता है। उनके मतसे पुरुष जैसे बुद्धि वृत्तिमें प्रतिविम्बित होता है, बुद्धि वृत्ति भी वैसे ही पुरुषमें प्रतिविम्बित होती है। उनका कहना है, कि विषयके साथ इन्द्रियका सन्निकर्ष होनेसे बुद्धिका विषयाकार परिणाम या वृत्ति होती है। वही विषयाकार बुद्धिवृत्ति पुरुषमें प्रतिविम्बित हो कर भासमान होती है। पुरुष अपरिणामी है, फिर भी, उसका बुद्धिकी तरह विषयाकारताके सिवा विषयग्रहण या विषयभोग हो नहीं सकता। अतएव पुरुषमें प्रतिविम्बरूपसे विषयाकारता स्वीकार करनी पड़ती है। विज्ञानभिक्षुने इस मतके समर्थन लिये उक्त प्रमाण दिये हैं।

तटस्थ वृक्षोंका प्रतिबिम्ब जैसे सरोवरमें प्रतिफलित होता है, वैसे ही चैतन्यरूप निर्मल दर्पणमें समस्त वस्तुएं प्रतिबिम्बित होती हैं अर्थात् बुद्धिकी विषयाकार वृत्तियां उसमें प्रतिविम्बित होती हैं। उन्होंने और भी कहा है—

"प्रमाता चेतनः शुद्धः प्रमाणं वृत्तिरेव नः।
प्रमार्थाकारवृत्तीनां चेतने प्रतिबिम्बनम्।"

(भाष्य)

सांख्याचार्योंके मतसे चेतन पुरुष प्रमाता अर्थात् प्रमासाक्षी है। विषयाकारबुद्धिवृत्ति प्रमाण है। इन बुद्धिवृत्तियोंके पुरुषमें जो प्रतिविम्बन होता है, वही प्रमा है। पुरुष सुखदुःखभोगविवर्जित है, प्रकृतिके प्रतिबिम्बनसे पुरुष सुखी, दुःखी, भोगी है और उसको इत्याकार ज्ञान होता है, प्रकृति अचेतन है। पुरुषके प्रतिबिम्बनमें प्रकृतिका चैतन्ययुक्त ज्ञान हो जाता। परस्परके प्रतिबिम्बनमें परस्परका ऐसा ज्ञान होता है।

बुद्धिवृत्ति और चैतन्यका इस तरह प्रतिबिम्ब होता है, इससे प्रज्वलित लौहपिण्डमें अग्नि व्यवहारकी तरह बुद्धिवृत्तिमें बोध व्यवहार होता है। बुद्धिवृत्ति क्षणभङ्गुर है, इसने बोध भी क्षणभङ्गुर है। विज्ञानभिक्षुने स्पर्द्धाके साथ कहा है, कि अल्प बुद्धिवाले बुद्धिवृत्ति और बोधकके विवेकको पार्थक्यता नहीं समझ सकते। और तो क्या तार्किक भी इसके समझनेमें भ्रम कर गये हैं। (तार्किक शब्दमें नैयायिक) सांख्याचार्य बुद्धिवृत्ति और बोधके विवेकको समझ सके हैं, इससे वे सर्वापेक्षा श्रेष्ठ माने जाते हैं और यह विवेकज्ञान ही अन्य सब शास्त्रोंसे उत्कृष्ट है।

पुरुषमें साक्षात्के संबंधमें सुख दुःख आदिका अस्तित्व न रहनेसे भी प्रतिबिम्बरूपसे सुख दुःखादिका अस्तित्व है।

इस मतसे प्रमेय या सब पदार्थ तत्त्व नामसे अभिहित हुए हैं। प्रमाण द्वारा ही ये सब प्रमेय पदार्थ प्रमाणित हुए हैं। तत्त्व २५ हैं। मूलतत्त्व प्रकृति और पुरुष हैं। प्रकृतिसे २४ तत्त्व और पुरुष ये २५ तत्त्व हुए। पातञ्जलदर्शनमें ईश्वरको ले कर २६ तत्त्व हुए हैं। प्रकृतिके परिणाममें जगत्‌की सृष्टि और प्रलय हो रहा है। प्रकृतिका यह परिणाम दो तरहका है—सरूप परिणाम और विरूप परिणाम। जब प्रकृतिका विरूप परिणाम होता है, तब जगत्‌की सृष्टि होती है और जब इसका सरूप परिणाम होता है तब संसार ध्वंस हो कर प्रलय हो जाता है।

प्रकृति, महत्, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्र, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये ही पञ्चतन्मात्र हैं, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, मन ये ग्यारह इन्द्रियां हैं; पञ्चमहाभूत और पुरुष—ये २५ तत्त्व हुए। इनमें प्रकृत्यादि २४ तत्त्व जड़ हैं और पुरुष चेतन है।

ये सब तत्त्व चार श्रेणियोंमें विभक्त हुए हैं। कोई

तत्त्व केवल प्रकृति, कोई तत्त्व प्रकृतिको विकृति, कोई तत्त्व केवल विकृति और कोई तत्त्व अनुभयात्मक अर्थात् प्रकृति भी नहीं और विकृति भी नहीं है।

"मूल प्रकृतिरविकृतिर्म्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोड़शकस्तु विकारो न प्रकृति र्न विकृतिः पुरुषः।"
(सांख्यका० ३)

प्रकृति शब्दका अर्थ उपादानकारण है। विकृति शब्दका अर्थ कार्य्य है। मूल प्रकृति अर्थात् जिससे जगत्‌की उत्पत्ति हुई है, उसका दूसरा नाम प्रधान है, उसकी किसी कारणसे उत्पत्ति सम्भव नहीं। क्योंकि मूल प्रकृति कारणजनित होनेसे वह कारण भी कारणान्तरजनित, वह कारणान्तर भी अन्य कारणजनित हो सकता है। इत्यादि रूप अनवस्थादोष आ पड़ता है। अतएव मूलकारण उत्पन्न वस्तु नहीं है। यह स्वतःसिद्ध है, यह स्वीकार करना ही होगा। मूल प्रकृति केवल ही प्रकृति है। महतत्त्व अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र ये सात प्रकृतिकी विकृतियां हैं। क्योंकि ये किसी किसी तत्त्वकी प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं। सुतरां ये मूल प्रकृतिकी विकृति हैं और इस महत्‌से अहङ्कार उत्पन्न हुआ है। अतएव अहङ्कारकी प्रकृति महत् है। इसलिये यह प्रकृति है और यह उत्पन्न हुआ है, इससे केवल विकृति है। पञ्चमहाभूत और एकादश इन्द्रियां केवल विकृति हैं अर्थात् इन सबोंसे किसी तत्त्वान्तरको उत्पत्ति नहीं हुई। पुरुष अनुभयरूप है अर्थात् प्रकृति भी नहीं विकृति भी नहीं।

जिससे वस्त्वान्तरकी उत्पत्ति होती है, उसका नाम प्रकृति है। इसीलिये इसका नाम प्रधान हुआ है। सत्त्व, रजः और तमोगुणकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है, यह प्रधान ही विश्वसंसारके कार्य्योंका मूल है।

पुरुष कूटस्थ अर्थात् जन्यधर्मका अनाश्रय, अधिकारी और सङ्गशून्य है। इसलिये पुरुष कारण नहीं हो सकता। पुरुष नित्य है; उसकी उत्पत्ति नहीं। सुतरां कार्य भी हो नहीं सकता। अतएव पुरुष अनुभयात्मक है।

इस विषय पर दार्शनिकोंका अत्यधिक मतभेद है, कि इस जगत्‌का कारण सत् है या असत्। सांख्याचार्य्य सत्पदार्थवादी हैं। इस जगत्‌का मूल कारण प्रकृति है, वह सत् है। वाचस्पतिमिश्रने अन्यान्यवादियोंके मतको निराश कर सत्पदार्थवाद स्थिर किया है।

बौद्ध दार्शनिक असत्पदार्थवादी हैं। उनका कहना है, कि यह जगत् असत् पदार्थसे उत्पन्न हुआ है। उनके मतसे बीजसे अंकुरकी उत्पत्ति नहीं होती किन्तु पार्थिव उष्णता और जलादिके संयोगसे बीजके विनष्ट होने पर उसके बाद अंकुरकी उत्पत्ति होती है। सुतरां भावरूप बीज अंकुरका कारण नहीं। बीजके प्रध्वंस रूप अभाव ही अंकुररूप भावपदार्थका कारण है। इस दृष्टान्त द्वारा सब स्थलमें ही अभाव ही भावोत्पत्तिका कारण है, यही बौद्धाचार्य्योंका सिद्धान्त है। इसके उत्तरमें सांख्याचार्य्यने कहा है, कि यह सम्पूर्ण भ्रमात्मक है। कारण बीजके ध्वंस होने पर अंकुरकी उत्पत्ति होती है सही, किन्तु इससे बीजका निरन्वय विनष्ट नहीं होता। यह सच है, कि बीज विनष्ट होता है, किन्तु विनष्ट बीजका अवयव विनष्ट नहीं होता। यही भावस्वरूप बीजावयव अंकुरका उत्पादन है। बीजका अभाव अंकुरका उत्पादक नहीं है। अभाव भावोत्पत्तिका कारण होनेसे अभाव सब स्थलोंमें सुलभ हो कर सब स्थलमें सब पदार्थोंको उत्पादन कर सकता था। ऐसा होने पर सब जगह ही सब पदार्थोंकी उत्पत्ति सम्भव है। अतएव स्वीकार करना होगा, कि अभाव भावोत्पत्तिका कारण नहीं। यही भावपदार्थ ही सब भावपदार्थोंकी उत्पत्तिका कारण है। इसी तरह बौद्धोंका असत्पदार्थवाद खण्डित हुआ है।

वैदान्तिक आचार्य विवर्त्तवादी हैं। बौद्धोंकी तरह वेदान्तियोंका मत भी खण्डित हुआ है। उनके मतोक्त विवर्त्तवादके परिवर्त्तनमें परिणामवाद संस्थापित हुआ है। यह भी सांख्याचार्य कहते हैं, कि रस्सीसे सर्पकी प्रतीति होनेके बाद नैपुण्यके साथ प्रणिधानपूर्वक विवेचना करके देखनेसे मालूम होता है, कि यह सर्प नहीं है। रस्सीसे ऐसा बाधज्ञान उपस्थित होता है। सुतरां यह अच्छी तरह समझमें आता है, कि रस्सीमें सर्पका ज्ञान भ्रमात्मक है। किन्तु जगत्प्रपञ्चके सम्बन्धमें ऐसा बाधज्ञान कभी नहीं हो सकता। सुतरां

यह प्रपञ्चप्रतीति भी भ्रमात्मक है, यह भी नहीं कहा जा सकता। इस युक्ति द्वारा सांख्याचार्योंने विवर्त्तवादमें अनास्था प्रदर्शन कर परिणामवादका समर्थन किया है। उनका कहना है, कि कुछ विशेष प्रणिधान कर देखनेसे मालूम होता है, कि कार्यकारणसे भिन्न नहीं, कारणका अवस्थान्तरमात्र है। दूध दधिरूपमें, सुवर्ण कुण्डलरूपमें, मिट्टी घड़ेके रूपमें परिणत होती है। अतएव दधि, कुण्डल और घट और पट क्रमसे दूध, सुवर्ण, मिट्टी और तन्तुवस्तु स्वरूप रूपसे भिन्न नहीं, एक ही हैं। कार्य यदि कारणसे भिन्न नहीं हुआ, तो इससे यही मालूम हो सकता है, कि उत्पत्तिके पहले भी कार्य सूक्ष्मरूपसे कारणमें विद्यमान था। कारकव्यापार अर्थात् जिन सब उपायोंसे कार्यकी उत्पत्ति होनेसे सचराचर विवेचना की जाती है, यथार्थमें ये सब उपाय या कारकव्यापार कार्यका उत्पादक नहीं। क्योंकि उसके पूर्व भी कार्य सूक्ष्मरूपसे कारणमें विद्यमान था। सुतरां कारकव्यापार कार्यका उत्पादक नहीं, वरं अभिव्यञ्जक या प्रकाशक है। पहले कारणमें सूक्ष्म और अव्यक्तरूपसे कार्य था, कारकव्यापार द्वारा उसकी केवल स्थूलरूपसे अभिव्यक्ति हुई। सांख्याचार्योंने इत्यादि रूपसे विवर्त्तवाद पर दोषारोपण कर परिणामवादका अवलम्बन ले जगत्‌का मूलकारण सत् है, यही निरूपण किया है। इन्हीं ने स्वीकार किया है, कि सत् पदार्थसे असत् पदार्थकी उत्पत्ति होती है। इनके मतसे जगत्‌का मूल कारण चतुर्विध परमाणु सत् अर्थात् सर्वदा विद्यमान है। द्व्यणुकसे महाचयविपर्यस्त कार्य साक्षात् या परम्पराके सम्बन्धमें परमाणुसे उत्पन्न है; अतः कार्योंको उत्पत्तिके पूर्व असत् नहीं था, सत् था, उत्पत्तिके बाद ही असत् हुआ है; अतः यह सिद्ध हुआ, कि सत्से ही असत्‌की उत्पत्ति है। इनके मतसे कार्य कारणसे सम्पूर्ण पृथक् है। क्योंकि कार्योत्पत्तिके पहले कारण सत् अर्थात् विद्यमान किन्तु कार्यकालमें असत् विद्यमान नहीं।

इस पर सांख्याचार्योंका कहना है, कि यदि वास्तवमें कार्य असत् विद्यमान नहीं रहता, तो किसी भी कार्यका सत्त्व अर्थात् विद्यमानत्व सम्पादन कर नहीं सकता। शतसहस्र शिल्पी भी यत्न करके नीलेको पीला और पीलेको नीला बना नहीं सकता। ऐसा ही कार्य वस्तुतः असत् होनेसे किसी मतसे ही सत् हो नहीं सकता। जो असत् है, वह सदा असत् है। किसी समय भी वह सत् नहीं हो सकता और जो सत् है, वह चिरकाल ही सत् है। सुतरां कार्य, कारणव्यापारके पहले भी सत् था, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। किन्तु कारण व्यापारके पूर्व केवल अनभिव्यक्त रहता है। कारण व्यापार द्वारा उसकी केवल अभिव्यक्ति होती है।

जो स्वतःप्रमाण है, उसके और प्रमाणका प्रयोजन क्या है? किन्तु असत्‌की उत्पत्तिका एक भी दृष्टान्त नहीं। जो असत् है किसी समय भी उसकी उत्पत्ति नहीं होती और हो भी नहीं सकती। मनुष्य शृङ्ग, कूर्मरोम और आकाशकुसुम—ये सब सत् नहीं, इसीलिये इनकी उत्पत्ति किसीको दिखाई नहीं देती और न सुननेमें ही आती है। अतएव सिद्ध हुआ, कि सत् अर्थात् विद्यमान कार्यका ही कारण व्यापार द्वारा अभिव्यक्ति या आविर्भाव प्रकाश होता है, इससे जगत्‌की उत्पत्ति नहीं होती और भी एक विशेष बात यह है, कि जिस कारणके साथ जिस कार्यका सम्बन्ध रहता है, उसी कारण द्वारा ही उस कार्यका आविर्भाव होता है। जिस कार्यके साथ जिस कारणका सम्बन्ध नहीं है, उस कारण द्वारा उस कार्यका आविर्भाव नहीं होता। यह अवश्य ही स्वीकार करना होगा।

कार्य सत् है, हेतु असत्‌का अकरण है, उपादानका ग्रहण, सब सम्भवोंका अभाव और शक्तका शक्य करण इन सब हेतुओंसे अनुमान किया जाता है, कि कार्य सत् है। इन सब हेतुओंका तात्पर्य पहले अभिहित हुआ है। विषय बढ़ जानेके डरसे यहां और अधिक आलोचना नहीं की गई। केवल शब्दार्थमात्र विवृत किया गया। असत्‌का अकरण, जो था ही नहीं; उसको कभी उत्पन्न नहीं किया जा सकता। उपादानका ग्रहण जब सब स्थलमें सब कार्योंकी उत्पत्ति नहीं होती, तब कार्यके साथ कारणका एक सम्बन्ध है, इस हेतुसे भी कार्य सत् है, शक्तका शक्यकरण अस्तित्व शून्य कार्यमें शक्तिसम्बन्ध असम्भव है, सुतरां कारणमें कार्यका सम्बन्ध

मान लेने पर भी शक्ति सम्बन्धमें कार्यको सत् कहना होगा। इस तरह सत्कार्यवादका समर्थन हुआ है।

वाचस्पति मिश्रने इस तरह बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, वैदान्तिक आदि वादियोंके मत उद्धृत कर नाना तरहके युक्तितर्कों द्वारा उन सबोंका खण्डन कर सांख्योक्त सत्कार्यवादका समर्थन किया है। कपिलसूत्रमें—'नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः' (सांख्य १।७८) इत्यादि सूत्र द्वारा भी यह समर्थित हुआ है।

सांख्य मतसे सिद्ध होता है, कि जगत्का जो कारण है, वह सत् है, सत् कारणसे ही इस सत् जगत्की उत्पत्ति हुई है। कार्य कारणात्मक है, यह पूर्व ही प्रतिपन्न हुआ है। कार्यकारणशृङ्खला सर्वत्र ही स्वीकृत और समादृत है। कारण भिन्न कार्य हो ही नहीं सकता। जगत् कार्य, उसका कारण, प्रधान या प्रकृति ये प्रधान सुख दुःख और मोहात्मक, जगत्की सब वस्तुओंमें ही सुख दुःख और मोह है। कारणमें यदि सुख दुःख मोह नहीं रहता, तो कार्यमें जो जगत् है, उसमें भी सुख दुःख और मोह नहीं रह सकता। कार्य जब कारणात्मक है, तब सुख, दुःख और मोह देख कर इसके कारणमें भी सुख दुःख और मोह है, यह निःसन्देह कहा जा सकता है।

प्रत्येक द्रव्यमें ही सुख दुःख और मोह है। वाचस्पति मिश्रने इसका एक दृष्टान्त दिया है, कि रूपयौवनकुलशीलसम्पन्ना एक स्त्री अपने स्वामीको सुखी; सपत्नीको दुःखिनी और अपने लोभसे वञ्चित पुरुषान्तरको मोह या विषादयुक्त बना देती है। उसका कारण यही है, कि स्वामीके प्रति उसका सुखरूप समुद्भूत है, दुःखादिरूप अभिभूत है; सपत्नीके प्रति दुःखरूप समुद्भूत और सुखादिरूप अभिभूत है। जो दूसरा पुरुष उसके लोभसे वञ्चित है, उसके प्रति उसका मोहरूप समुद्भूत और सुखादिरूप अभिभूत है।

इसके द्वारा सिद्ध हुआ, कि जगत्का जो मूलकारण है, वह सुख दुःख और मोहात्मक है। प्रकृति जब ही जगत्का मूल कारण है, तब प्रकृति सुख दुःख और मोहात्मिका है। सत्त्व, रजः और तमोगुणकी साम्यावस्थाको प्रकृति कहते हैं।

सत्त्व, रजः और तमः इनको गुण कहते हैं। ये क्या वैशेषिकोक्त गुण पदार्थ हैं? आचार्यों ने इसके उत्तरमें कहा है, कि वे गुण पदार्थ नहीं। सत्त्वादिके परस्पर संयोग और लघुत्वादि गुण हैं, इससे वे द्रव्य पदार्थ हैं।

पहले ही कहा गया है, कि सत्त्व, रजः और तमोगुणकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है। यह प्रकृति सदा ही परिणामिनी है। प्रकृतिका यह परिणाम दो प्रकारका है—स्वरूप या सदृशपरिणाम एवं विरूप या विसदृश परिणाम। जब जगत्का प्रलयकाल उपस्थित होता है, तब प्रकृतिका सदृश-परिणाम होता है अर्थात् तब सत्त्व सत्त्वरूपमें और रजः रजो रूपमें परिणाम होता है। इस परिणाममें महत् अहङ्कार आदि तत्त्वोंका उद्भव नहीं होता। वरं ये सब सत्त्व स्व स्व कारणमें लीन होता है। इन तीन गुणोंका जब विसदृश परिणाम होता है, तब इस जगत्की सृष्टि होती है। समय आने पर तीनों गुण मिल कर एकमें परिणत हो जाते हैं। पृथक्रूपसे इनका परिणाम नहीं होता। जगत्में जो वैषम्य दिखाई देता है, इन तीनों गुणोंका परिणामवैषम्य ही उसका एकमात्र कारण है।

प्रकृतिसे आरम्भ कर चरम कार्य तक समस्त जड़वर्ग ही संहत अर्थात् मिलित गुणत्रयका स्वरूप है, सुतरां सुखदुःख-मोहात्मक है। ये सभी परार्थ हैं अर्थात् अपरके प्रयोजन सम्पादनके लिये ही इसका उद्भव है, गृह, शय्या और आसन प्रभृति पदार्थ संघातरूप है। फिर भी परार्थ है, यह प्रत्यक्षसिद्ध है। इसके द्वारा अनुमान किया जाता है, कि संघातमात्र हो परार्थ है। प्रकृति महदादि सब तत्त्व संघात है, अतएव यह परार्थ है। यहां पर कौन है? किसके प्रयोजनके लिये इनकी प्रवृत्ति होती है। यह परपुरुष ही आत्मा है। इस पुरुषके प्रयोजनके लिये ही प्रकृतिकी प्रवृत्ति होती है।

पुरुष संघातातिरिक्त है अर्थात् यह त्रिगुणात्मक नहीं, त्रिगुणातीत है। क्योंकि पुरुष संघात होनेसे परार्थ होता। इसके परसंघातमक होनेसे यह भी परार्थ होगा। इसी तरह अनवस्थादोष उपस्थित होता है। सुतरां पुरुष असंहत है।

त्रिगुणात्मक रथादि सारथि आदि चेतन द्वारा अधिष्ठित है। बुद्धि आदि भी त्रिगुणात्मक हैं, सुतरां वे भी अन्य चेतन द्वारा अधिष्ठित होंगे। इसलिये चेतन ही पुरुष या आत्मा है। सुख अनुकूलवेदनीय और दुःख प्रतिकूल वेदनीय है, बुद्ध्यादि अपने ही सुख और दुःखात्मक है। इसलिये पुरुष सुखके अनुकूलनीय या दुःखके प्रतिकूलनीय हो नहीं सकता। क्योंकि ऐसा होनेसे स्वक्रिया विरोध हो जाता है। बुद्ध्यादि दृश्य उसके द्रष्टारूपसे पुरुष सिद्ध होता है। क्योंकि द्रष्टाके विना दृश्य रह नहीं सकता। यह पुरुष प्रति शरीरमें भिन्न है। सब शरीरमें एक पुरुष होनेसे जन्म मरण आदिकी व्यवस्था हो नहीं सकती। यह पुरुष साक्षी है। प्रकृति अपने सब आचरणोंको इस पुरुषको दिखाती है। वादी और प्रतिवादी विवाद विषय जिसको दिखाते हैं, उसे लोग साक्षी कहते हैं। प्रकृति भी अपने आचरणको पुरुषसे दिखाती है, इससे पुरुष साक्षी और द्रष्टा है। पुरुष त्रिगुणोंसे अतीत है। इसलिये अकर्त्ता, उदासीन और केवल है अर्थात् कैवल्ययुक्त है। पूर्वोक्त गुणत्रयका अभाव ही कैवल्य है। दुःख गुण धर्म पुरुष गुणातीत है।

प्रधान महद् आदि भोग्य होनेसे भोक्ताकी अपेक्षा करते हैं। क्योंकि भोक्ताके विना भोग ही नहीं हो सकता। बुद्ध्यादिमें प्रतिविम्बित पुरुष बुद्ध्यादिगत दुःखको अपना समझता है, विवेकज्ञान द्वारा इस दुःखका परिहार होता है।

विवेकज्ञान और बुद्धि वृत्तिविशेष है, इस कारणसे विवेकज्ञानके लिये पुरुष भी प्रकृतिकी अपेक्षा करता है। इस तरह दोनोंको परस्पर अपेक्षा है, इससे पुरुष और प्रकृतिका आपसमें संयोग होता है। यह संयोग स्वतः ही सृष्ट होता है। गतिशक्तिहीन और दृष्टिशक्तिसम्पन्न पंगु और दृक्शक्तिहीन गतिशक्तियुक्त अन्ध ये दोनों परस्पर संयुक्त होते हैं। दृक्शक्तिविशिष्ट पङ्गु गतिशक्तियुक्त अन्धेके कन्धे पर चढ़ कर प्रदर्शन करता है और अन्धा उसके अनुसार गमन करता है। इस तरह दोनोंकी अभिलाषा पूर्ण होती है। प्रकृति पुरुषका संयोग भी ऐसा ही है। पुरुषदृग्शक्तियुक्त और क्रियाशक्तिशून्य है, पङ्गुके स्थानमें प्रकृति क्रियाशक्तियुक्त और दृक्शक्तिशून्य अन्धेके स्थानमें है। इन दोनोंके संयोगवशतः ही प्रकृति महद् आदि अचेतन हो कर भी चेतनकी तरह और पुरुष स्वरूपतः अकर्त्ता हो कर भी गुणके कर्तृत्वमें कर्त्ताकी तरह प्रतीयमान होता है। पुरुषके कैवल्यार्थ प्रकृतिकी यह प्रकृति होती है। भोग और मुक्ति पुरुषार्थ है।

जितने दिनों तक पुरुषका अपवर्ग साधन न होगा, उतने दिनों तक प्रकृति पुरुषको परित्याग नहीं करेगी। पुरुषके अपवर्ग साधन होनेसे फिर उसकी प्रवृत्ति न होगी। एक दिन न एक दिन प्रकृतिपुरुषको विवेकका साक्षात्कार करायेगी ही करायेगी। जितने दिन यह नहीं होता, उतने दिनों तक जन्म मृत्यु अपरिहार्य है। पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे सृष्टि होती है। यह सृष्टि दो प्रकारकी है प्रत्ययसर्ग तथा तन्मात्रसर्ग। बुद्धिसृष्टिका नाम प्रत्ययसर्ग और भूतभौतिक सर्गको तन्मात्र सर्ग कहते हैं। प्रकृतिका जो प्रथम परिणाम होता है, उसका नाम बुद्धि या महत् है, इसकी साधारण वृत्ति अध्यवसाय या निश्चय है। इस बुद्धिके धर्म ८ हैं—धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य इन आठोंमें प्रथम चार सात्त्विक और परवर्ती चार तामसिक हैं।

महत्तत्त्वका कार्य अहङ्कारतत्त्व है, उसकी वृत्ति अभिमान है। मैं इसमें शक्त हूं ये सब विषय मेरे प्रयोजन हैं, इत्यादि अभिमान अहङ्कारकी असाधारण वृत्ति है। यह अहङ्कार तीन प्रकारका है—वैकारिक या सात्त्विक, तैजस या राजस और भूतादि या तामस। सात्त्विक एकादश इन्द्रिय सात्त्विक अहङ्कारसे और तामस पञ्चतन्मात्र तामस अहङ्कारसे उत्पन्न है। राजस अहङ्कार इन दोनों वर्गोंकी उत्पत्तिके साहाय्यकारी मात्र हैं चक्षुः, श्रोत्र, घ्राण, रसन और त्वक्—ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं। मन ग्यारहवीं इन्द्रिय है और यह उभयात्मक है अर्थात् कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनोंमें इसकी गणना होती है। ज्ञानेन्द्रिय या कर्मेन्द्रिय मनके अधिष्ठानके विना कोई भी स्व स्व विषयमें प्रवृत्त हो नहीं सकता।

सब गुणोंके परिणाम विशेषवशतः ही नाना इन्द्रियों तथा नाना बाह्य पदार्थों की उत्पत्ति हुई है।

मनकी असाधारण वृत्ति सङ्कल्प है अर्थात् सम्यक् रूपसे विशेष्यका विशेषणरूपमें कल्पना। चक्षुका रूप, श्रोत्रका शब्द, घ्राणकी गन्ध, रसनाका रस और त्वक्का स्पर्श ये पांच बुद्धीन्द्रियका व्यापार या धर्म हैं। वाक्यका वचन या कथन, पाणिका आदान या ग्रहण, पादका विहरण या गमन, पायुका उत्सर्ग या त्याग और उपस्थका आनन्द, ये पांच कर्मेन्द्रियके व्यापार या धर्म है। मन अहङ्कार और बुद्धि इन तीनोंका नाम अन्तःकरण है। चक्षु आदि दश बाह्यकरण है।

सिवा इसके अन्तःकरणकी एक साधारण वृत्ति भी है। प्राण आदि पञ्चवायु हैं। नासाग्र, हृदय, नाभि, पादांगुष्ठमें स्थित प्राणवायु; कृकाटिका, पृष्ठ, पाद, पायु, उपस्थ और पार्श्ववृत्ति अपान वायु, हृदय, नाभि और सब सन्धिस्थानोंमें समान वायु, हृदय, कण्ठ, तालु, मस्तक और भ्रू स्थित वायुका नाम उदान और त्वक्वृत्ति वायुको व्यानवायु कहते हैं; यह वायु सारे शरीरमें व्याप्त है। ये ही अन्तःकरणकी साधारण वृत्तियाँ हैं।

पहले किसी वस्तुके साथ इन्द्रियका योग होनेसे अपरिस्फुट रूपसे वस्तुका जो ज्ञान होता है; उसका नाम आलोचन-ज्ञान या निर्विकल्पक ज्ञान है। क्योंकि यह ज्ञान विकल्प है अर्थात् विशेष्यविशेषणभावशून्य है। मूक या बालक जैसे अपने ज्ञान शब्द द्वारा दूसरेको समझा नहीं सकते, वैसे ही यह आलोचना-ज्ञान भी शब्द द्वारा दूसरेको समझाया जा नहीं सकता अर्थात् अपरिस्फुटरूपसे यह आलोचन ज्ञात होता है। शब्द द्वारा जो प्रतिपादित होता है, वह विशेष्यविशेषणभावापन्न होता है, यही आलोचनज्ञान विशेष्य और विशेषण-भावापन्न नहीं है।

सांख्याचार्योंका कहना है, कि सब बाह्येन्द्रियाँ ग्रामाध्यक्ष हैं, मन देशाध्यक्ष, बुद्धि सर्वाध्यक्ष और पुरुष महाराजके स्थानमें है। जैसे ग्रामके राजा प्रजासे कर वसूल कर देशपति सर्वाध्य को तथा वह महाराजको दे देता है, इससे महाराजका प्रयोजन सम्पादन होता है, वैसे ही बाह्येन्द्रिय सब विषयोंको आलोचना मनके पास अर्पण करता है। बुद्धि उक्त क्रमसे पुरुषके भोगापवर्ग सम्पादन करती है।

भोग अपवर्गरूप पुरुषार्थ निर्वाहके लिये ही सब इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति है। पुरुष चिरकाल ही केवल है। किसी समयमें ही वह कैवल्यशून्य नहीं है। सुतरां संसारदशामें भी वह मुक्त है। उक्त प्रणाली क्रमसे बुद्धि ही पुरुषको भोगसम्पादिका है और बुद्धि ही विवेकज्ञान द्वारा पुरुषका मुक्तिसाधन किया करती है। बन्ध, मोक्ष और संसार स्वरूपतः पुरुष नहीं है। बुद्धि पुरुषके आश्रयमें ही बन्ध मोक्ष और संसारभागिनी होती है।

इसी तरह करण तेरह तरहका होता है। दश इन्द्रिय, मन, अहङ्कार और बुद्धि—इन तेरह करणोंमें सब कर्मेन्द्रिय आहरण और अन्तःकरणत्रय साधारण वृत्तिरूप पञ्चप्राण द्वारा शरीर धारण और पञ्च ज्ञानेन्द्रियां स्व स्व विषय प्रकाश करती हैं। इसका नाम प्रत्यक्ष सर्ग है।

तन्मात्र सर्ग—तन्मात्र सब सर्ग सूक्ष्म हैं, सुतरां यह अस्मदादिके योग्य नहीं हैं। इस कारणसे वे अविशेष नामसे अभिहित हैं। पञ्च तन्मात्रसे पञ्च महाभूतकी उत्पत्ति होती हैं। शब्द तन्मात्रसे आकाश और इस आकाशका गुण शब्द है, शब्द तन्मात्रयुक्त स्पर्शतन्मात्रसे वायु, इस वायुका गुण शब्द और स्पर्श है, शब्द स्पर्श तन्मात्रयुक्त है। रूप तन्मात्रसे तेजः और इस तेजका गुण शब्द, स्पर्श और रूप है; शब्द स्पर्श-रूपतन्मात्रके साथ रसतन्मात्रसे जल और उसका गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस और उक्त चार तन्मात्रके साथ गन्धतन्मात्रसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है, इसका गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध है।

इन पांच महाभूतोंमें कोई सुखकर और लघु, कोई दुःखकर और चञ्चल है, कोई विषादकर या गुरु है। इसीलिये ये विशेष नामसे अभिहित हैं। यह विशेष फिर तीन श्रेणियोंमें विभक्त हुए हैं। सूक्ष्म शरीर, माता-पितृज या स्थूल शरीर और इसके अतिरिक्त महाभूत। पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन, पञ्च तन्मात्र, अहङ्कार और बुद्धि इस अट्ठाईसको सूक्ष्मशरीर कहते हैं। यह सूक्ष्म शरीर कल्पान्त कालस्थायी है।

वाचस्पति मिश्रके मतसे शरीर दो हैं, सूक्ष्म और स्थूल। परन्तु सूत्रभाष्यकार विज्ञानभिक्षुके मतसे शरीर तीन हैं—सूक्ष्म शरीर, अधिष्ठान शरीर और स्थूल शरीर। उनका कहना है, कि स्थूल देहके परित्यागके बाद लिङ्गदेहका जो लोकान्तरगमन होता है, उसका इस अधिष्ठान शरीरमें ही आश्रय होता है। उनके मतसे किसी समयमें भी लिङ्गशरीर आश्रय विना रह नहीं सकता। स्थूल भूतका सूक्ष्म अंश ही अधिष्ठान शरीर नामसे अभिहित होता है। इस अधिष्ठान-शरीरको आतिवाहिक शरीर कहते हैं। मृत्युके बाद रसान्त, भस्मांत और विष्ठान्त रूपसे स्थूल शरीरका नाश होता है। यह स्थूल शरीर मिट्टीमें गाड़ कर रखनेसे रस, दग्ध करनेसे भस्म और किसी प्राणीके भक्षण कर जाने पर यह विष्ठाके रूपमें परिणत होता है। यह सूक्ष्मशरीर धर्म और अधर्म आदि कारणोंसे नानाविध स्थूलशरीर धारण करता है। ये धर्म आदि किसीके स्वाभाविक और किसीके उपायानुष्ठानसाध्य हैं।

प्रत्यय सर्गको फिर प्रकारान्तरसे चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। जैसे विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि और सिद्धि। फिर विपर्यय अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश भेदसे पांच प्रकारका है। इनका दूसरा नामक्रमसे इस तरह है—तमः, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र। अनात्म वस्तुमें आत्म ख्यातिको अविद्या कहते हैं। अनित्य और अनात्मीय वस्तुमें नित्य और आत्मीय रूपमें अभिमानका नाम अस्मिता है, सुखानुशयीको राग, दुःखानुशयीको द्वेष और भयको अभिनिवेश कहते हैं।

उक्त अविद्या भी विषयभेदसे ८ प्रकारकी है। जैसे—प्रकृति, बुद्धि, अहङ्कार और पञ्च तन्मात्र ये आठ प्रकारके अनात्मामें आत्मबुद्धि होती है, इससे अविद्या आठ प्रकारकी कही जाती है। देवगण अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्य लाभ कर उसकी नित्य और आत्मीय रूपसे विवेचना करते हैं। किन्तु वास्तविक वह अनात्मीय और अनित्य है।

भोग्य शब्द आदिके उपाय स्वरूप अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्य स्वभावतः द्वेष-विषय हैं। क्योंकि अणिमादि ऐश्वर्योंका सम्पादन बहु आयाससाध्य है। शब्द आदि दश योग्य विषय हैं और उनके सम्पादक हैं अणिमादि अष्ट प्रकारके ऐश्वर्यसमूह—इन १८ विषयोंमें द्वेष होता है, इससे द्वेष भी १८ प्रकारका है। उक्त १८ विषयोंमें विनाश होता है, अतः विषयभेदसे अभिनिवेश भी १८ प्रकारका है।

ग्यारह इन्द्रियोंकी अशक्ति भी ग्यारह हैं और बुद्धिकी अपनी अशक्ति भी १७ प्रकारकी है, सुतरां अशक्ति २८ प्रकारकी है। चक्षुः आदि इन्द्रियोंकी अशक्ति अन्धत्वादि हैं। तुष्टि नौ प्रकारकी है। सिद्धि आठ प्रकारकी है। इनका विपर्यय या अभावनिबन्धन बुद्धिकी अपनी अशक्ति १७ प्रकारकी है। विषयवैराग्यजनित तुष्टि पांच प्रकारकी है। वैराग्यका हेतु भी पांच प्रकारका है, जैसे—अर्जनदोष, रक्षणदोष, क्षयदोष, भोग और हिंसादोष—ये पाँच दोष देख कर विषयवैराग्य उपस्थित होता है।

धनार्जनके उपाय बड़े कठिन हैं, यह सोच कर विषयवैराग्य होने पर जो तुष्टि होती है, उसका नाम परा है। अर्जित धन-रक्षा करना विशेष कष्टसाध्य समझ कर जो तुष्टि होती है, उसका नाम सुपार है। महाकष्टसे धन अर्ज्जन और कष्टसे उसकी रक्षा करना तथा भोग द्वारा उसका क्षय होते देख कर जो तुष्टि उत्पन्न होती है, उसका नाम पारापार है। विषयभोगके अभ्याससे भोगाभिलाष दिन पर दिन बढ़ता है। किसी तरह विषयभोग न किया जा सके, तो विशेष कष्ट होता है, यह सोच विषय वैराग्य होनेसे जो तुष्टि उपस्थित होत है, उसका नाम अनुत्तमाम्भ है। प्राणियोंको पीड़ा न दे कर भोग नहीं होता, समस्त भोगोंमें कमवेश प्राणी हिंसा है, इत्यादि हिंसादोष देख विषय वैराग्य होने पर जो तुष्टि उपस्थित होती है, उसका नाम उत्तमाम्भः है विषय वैराग्यजनित इन पांच प्रकारकी तुष्टियोंको बाह्य-तुष्टि कहते हैं। आध्यात्मिक तुष्टि चार प्रकारकी है—प्रकृति तुष्टि, उपादानतुष्टि, कालतुष्टि, और भाग्यतुष्टि। विवेक साक्षात्कार भी प्रकृतिका परिणामविशेष है। सुतरां यह प्रकृतिका कार्य है। प्रकृति ही विवेक साक्षात्कारकी कर्त्ता है। मैं (पुरुष) साक्षात्कारका कर्त्ता

नहीं। सुतरां मैं कूटस्थ और पूर्ण हूं, ऐसी भावनासे जो तुष्टि होती है, उसका नाम प्रकृतितुष्टि है, इसका दूसरा नाम अम्भः है। संन्यास ग्रहण करने पर जो तुष्टि होती है, उसको उपादानतुष्टि और उसका दूसरा नाम सलिल है। संन्यास ग्रहण पूर्वक दीर्घकाल ध्यान अभ्यास या समाधि अनुष्ठानसे जो तुष्टि होती है, उसका नाम कालतुष्टि है और इसका दूसरा नाम ओघ है। सम्प्रज्ञात समाधिका चरमोत्कर्ष स्वरूप धर्ममेघसमाधिलाभ होनेसे जो तुष्टि होती है, उसका नाम भाग्यतुष्टि है और इसका दूसरा नाम वृष्टि है। यही भाष्यकार विज्ञानभिक्षुका मत है।

किन्तु वाचस्पतिमिश्रके मतसे आध्यात्मिक तुष्टियाँ असदुपदेश जनित हैं। उनका कहना है, कि आत्मा प्रकृत्यादिसे अतिरिक्त है। जहाँ शिष्य असदुपदेशसे सन्तुष्ट हो श्रवण मनन आदि क्रमसे विवेक-साक्षात्कार-के लिये कोई यत्न नहीं करता, शिष्यकी ऐसी तुष्टि ही आध्यात्मिक तुष्टि है। विवेक साक्षात्कार प्रकृतिका ही परिणाम विशेष है। प्रकृति इसका सम्पादन करेगी। श्रवण, मनन, निदिध्यासन इसमें प्रयोजन नहीं है, ऐसा उपदेश सुन कर प्रकृति विषयमें जो तुष्टि होती है, उसको प्रकृतितुष्टि कहते हैं। विवेकख्याति प्रकृतिका कार्य है सही, किन्तु प्रकृतिमात्रका कार्य नहीं। क्योंकि यह प्रकृतिमात्रका ही कार्य होने पर सब समयमें सब लोगोंको विवेकख्याति हो सकती है। सुतरां विवेक-ख्याति सहकारिकारणान्तरकी अपेक्षा करती है। वह सहकारिकारणान्तर प्रव्रज्या या संन्यास है। अतएव संन्यास अवलम्बन करो। ध्यान अभ्यास कर कष्ट स्वीकार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। ऐसा उपदेश सुन कर जो तुष्टि होती है, उसको उपादानतुष्टि कहते हैं। ऐसा नहीं है, कि संन्यास ग्रहण करने पर तुरत ही मुक्ति मिल जाती है, संन्यास लेने पर अवश्य काल-क्रमसे इसके द्वारा ही मुक्ति होगी, उद्विग्न होनेका कोई कारण नहीं है। यह असदुपदेश सुन कर जो तुष्टि होती है उसको कालतुष्टि कहते हैं। संन्यास या काल इनमें कोई भी मुक्तिके कारण नहीं है। एकमात्र भाग्य ही मुक्तिका कारण है। अतएव ध्यानाभ्यास आदिके लिये अत्यन्त आयास करनेकी आवश्यता नहीं। भाग्य होनेसे अवश्य ही मुक्ति होगी। पुराणप्रसिद्ध मदालसा-के पुत्रोंने संन्यास या ध्यानाभ्यास कुछ भी अनुष्ठान नहीं किये। फिर भी माताके उपदेशसे बाल्यकालमें ही जीवन्मुक्त हुए थे। ऐसी असदुपदेश श्रवणजनित तुष्टिका नाम भाग्यतुष्टि है।

उनके मतसे भी सिद्धि आठ हैं। आध्यात्मिक आदि भेदसे दुःख तीन तरहके हैं और प्रतियोगि भेदसे दुःखनिवृत्ति भी तीन तरहकी हैं। इन तीन प्रकारकी दुःखनिवृत्ति ही मुख्यसिद्धि है। इन तीन सिद्धियोंका नाम—प्रमोद, मुदित और मोदमान है। इनके साधन गौण सिद्धि कहे जाते हैं। यह गौणसिद्धि भी पांच प्रकार-की है—अध्ययन, शब्द, ऊह, सुहृत्प्राप्ति और दान। गुरुके समीप अध्यात्मशास्त्रके यथावत् अक्षरग्रहणको नाम अध्ययन है, इसका दूसरा नाम तार है। गुरुके समीप जो अध्यात्मशास्त्र अध्ययन किया जाता है, उसके सम्यक्‌रूपसे अर्थावबोध करनेका नाम शब्द है, इसका दूसरा नाम सुतार है। ये दो प्रकारकी सिद्धि शास्त्रोक्त श्रवण नामसे अभिहित है। 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' (श्रुति) आत्मामें श्रवण, मनन और निदिध्या-सन करो, ऐसी श्रुति है। विवेकसाक्षात् करनेके लिये इस तरह पहले श्रवण करो, श्रवणके बाद मनन करना चाहिये। ऊह शब्दका अर्थ तर्क है, शास्त्रमें अवि-रोधादि युक्ति द्वारा संशय और पूर्वपक्ष निरसन पूर्वक शास्त्रार्थका अवधारण ही तर्क नामसे अभिहित होता है। इसीको मनन कहते हैं। शास्त्रके अविरोधी तर्क नहीं करने चाहिये। क्योंकि ऐसे बहुतेरे विषय हैं, जिनकी मीमांसा तर्कसे नहीं हो सकती। वरं और भी उनमें सन्देह उपस्थित हो जाता है। इसलिये ऐसी युक्ति-के द्वारा तर्क करना चाहिये, जिससे आर्ष शास्त्रवाक्य-के साथ विरोध न हो। तर्कमें अप्रतिष्ठादोष होता है, इसलिये केवल तर्क परित्याग करना चाहिये।

अतएव यही प्रतिपादित होता है, कि वेदके अविरुद्ध तर्क द्वारा ही अर्थ निश्चय होता है। इस तरह शास्त्रार्थकी चिन्ता करनेसे ही मनन सिद्धि होती है। इस तृतीय सिद्धिका नामान्तर तारतार है। स्वयं युक्ति द्वारा प्रकृत

शास्त्रार्थं अवधारण करनेसे ही जब तक दूसरेका अर्थात् गुरुशिष्य या सब्रह्मचारीके अनुमोदित न हो, तब तक उसमें विश्वास किया नहीं जाता। अतएव सुहृद्प्राप्ति अर्थात् गुरुशिष्य सब्रह्मचारी आदिकी प्राप्ति चतुर्थ सिद्धि है। इसका दूसरा नाम रम्यक है। विवेक-ज्ञान शुद्धिका नाम दान है। यह सदामुदित नामसे अभिहित है। आदरके साथ बहुत दिनों तक योगानुशील और विवेकशास्त्राभ्यास द्वारा विवेकख्यातिकी शुद्धि सम्पादित होती है। इसी तरहकी विशुद्धविवेकख्याति ही सब तरहके संशय विपर्यायके उच्छेद करनेमें समर्थ होती है। जो कहते हैं, कि एक बार तत्त्वकथा सुननेसे ही तत्त्वज्ञ हुआ जा सकता है, यह उनका भ्रम है। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है, कि बारंबार तत्त्वकथा सुनने पर भी मिथ्याज्ञान अपनीत नहीं होता। और भी उनको विवेचना करनी चाहिये, कि शुक्ति रजतादि सैकड़ों स्थलोंमें दिखाई देता है, कि तत्त्वज्ञान मिथ्याज्ञान अपनयन करनेमें समर्थ है। रज्जुसर्प भ्रम और दिङ्मोहादि स्थलमें दिखाई देता है, कि अपरोक्ष मिथ्याज्ञान परोक्ष तत्त्वज्ञान द्वारा अपनीत होता है। संसारनिदान, मिथ्या ज्ञान या अविवेक अपरोक्ष ज्ञान है। सुतरां तत्त्वज्ञानका अपरोक्षत्व सम्पादनके लिये दीर्घकाल तक श्रवण, मनन और निदिध्यासन आवश्यक है। यही वाचस्पतिमिश्रका मत है।

सांख्यप्रवचन-भाष्यकार विज्ञानभिक्षुके साथ इस विषयमें वाचस्पतिमिश्रका मतभेद है। विज्ञानभिक्षुका कहना है, कि गुरुशिष्यभावसे गुरुके समीप जो अध्ययन किया जाता है, उसका नाम अध्ययनसिद्धि है। गुरुशिष्यरूपसे कोई अध्यात्मशास्त्र अध्ययन नहीं किया जाता, किन्तु जो अध्यात्मशास्त्रको पढ़े उससे सुन कर और अपने अध्यात्मशास्त्रकी आलोचना कर जो ज्ञानलाभ किया जाता है, उसका नाम शब्द है। किसी तरहके उपदेश आदि प्राप्त हुए बिना ही पूर्वजन्मके शुभादृष्ट वशतः जो तत्त्वज्ञान लाभ हो, उसका नाम ऊह है। दया परवश कोई साधु स्वयं गृहमें उपस्थित हो जो तत्त्वोपदेश करता है और उससे जो ज्ञानलाभ होता है, उसको सुहृद्प्राप्ति कहते हैं। किसी ज्ञानी व्यक्तिको धन द्वारा परितुष्ट कर ज्ञान लाभ करनेका नाम दान है। इन सब सिद्धियोंमें अध्ययन, शब्द और ऊह—इन तीनोंको गौणसिद्धि कहते हैं। यही मुख्यसिद्धि त्रयके अन्तःसाधन हैं।

वाचस्पतिमिश्रका कहना है, कि विपर्याय, अशक्ति और तुष्टि, ये तीन तत्त्वज्ञानलाभके प्रतिबन्धक हैं। उनके मतसे प्रत्यय सर्गके बीच सिद्धि ही उपादेय है। विपर्याय, अशक्ति और तुष्टि हेय हैं। प्रत्ययसर्गके बिना तन्मात्र सर्ग और उसका पुरुषार्थ साधन नहीं हो सकता। फिर तन्मात्रसर्गके बिना भी प्रत्ययसर्ग और उसका पुरुषार्थसाधन सम्भव नहीं है। इसलिये द्विविध सर्गके अर्थात् तन्मात्रसर्ग और प्रत्ययसर्गको प्रवृत्ति हुई है। भोग्य शब्दादिका विषय है और भोगायतन शरीरद्वयके बिना भोगरूप पुरुषार्थ हो नहीं सकता, इससे तन्मात्रसर्गकी विशेष उपयोगिता है। क्योंकि शब्दादि विषय और शरीरद्वय तन्मात्रसर्गके अन्तर्मुक्त हैं। पहले यह भी कहा गया है, कि भोगसाधन इन्द्रिय और अन्तःकरणके बिना भोग नहीं हो सकता। धर्मादिके बिना इन्द्रिय और शरीर आदिकी सृष्टि हो नहीं सकती। धर्माधर्मके द्वारा ही सूक्ष्म शरीर बार बार स्थूल शरीर ग्रहण और शरीरमें धर्माधर्मका भोग कर फिर शरीर त्याग करता है। जब तक विवेकख्याति द्वारा धर्माधर्मका नाश नहीं होता, तब तक इस तरहकी जन्ममृत्यु अपरिहार्य है। सुतरां प्रत्ययसर्गकी आवश्यकता अवश्य ही स्वीकार करनी होगी।

अपवर्गरूप पुरुषार्थ विवेकख्याति साध्य है। यह विवेकख्याति भी प्रत्ययसर्ग और तन्मात्रसर्ग ये दोनों सापेक्ष है। इसके द्वारा भी दोनों तरहके सर्गकी आवश्यकता प्रतिपादन हो सकती है। इस पर आपत्ति हो सकती है, कि धर्मादि सृष्टिके सापेक्ष या सृष्टि धर्मादिके सापेक्ष है। अर्थात् धर्म आदिसे सृष्टि होती है, या सृष्टिसे धर्मादिकी उत्पत्ति होती है। सुतरां इससे अन्योन्याश्रयदोष होता है। इस दोषका परिहार करनेके लिये शास्त्रमें लिखा है, कि पूर्वजन्मार्जित धर्मादि द्वारा वर्त्तमान शरीरकी उत्पत्ति हुई है। पूर्वतर जन्मसञ्चित धर्मादि द्वारा पूर्व जन्मके एवं पूर्वतम जन्ममें आचरित कर्मराशि द्वारा पूर्वतर जन्मके शरीर आदि हुए हैं।

यह संसार विचित्र प्रकारके भोगोंकी लीलाभूमि है।

भोगके हाथसे कोई भी परित्राण पा नहीं सकता। संसारमें भोगका वैचित्र्य रहने पर भी जीवका मरणभय स्वाभाविक है। कोई प्राणी ही मृत्युसे बच नहीं सकता। जरामरण आदि जैसे स्वाभाविक है, सुख किन्तु वैसा स्वाभाविक नहीं है। यह आगन्तुक उपायसाध्य है।

संसार प्रकृतिका कार्य है। प्रकृति त्रिगुणमयी है। उनमें रजोगुण दुःख स्वरूप है। सुतरां यह संसार दुःखात्मक है, उसमें किसी तरहका कोई सन्देह नहीं हो सकता। सत्त्वगुण सुखात्मक है, रजोगुणका धर्म जैसे दुःख है, वैसे ही सत्त्वगुणका धर्म सुख है। संसारमें जैसे दुःख है, वैसे सुख भी है। ऐसा कौन कहता है, कि संसारमें सुख नहीं है? शास्त्रोंने कहा है कि संसारमें सुख है सही, किन्तु वह दुःखके सामने नहींके समान है।

उनके मतसे द्युलोकसे सत्यलोक तक सत्त्वबाहुल्य है। वहां सत्त्वकी अधिकता होनेके कारण सुखका भाग अधिक है। जो स्वर्ग आदिका भोग करते हैं, वहीं सुख भोग करते हैं। भूलोक या मनुष्यलोक रजोबाहुल्य है। सुतरां यहां दुःख ही अधिक और स्वाभाविक है। पश्वादि स्थावरान्त सृष्टि तमोबाहुल्य है। सुतरां मोहात्मक है। इसीसे पश्वादि मोहबाहुल्य हैं। समस्त कार्य ही प्रकृतिसे उद्भूत हुए हैं।

साक्षात् या परम्परा प्रकृति ही कार्यमात्रका एकमात्र कारण है। प्रकृतिसे ही सृष्टि हुई है। किन्तु वैदान्तिकोंके मतसे प्रकृति जगत्का कारण नहीं। ब्रह्म ही एकमात्र जगत्का कारण है। एक ब्रह्मसे ही जगत्की उत्पत्ति हुई है। सांख्याचार्योंने वेदान्तिकोंका यह मत खण्डन कर प्रकृतिको जगत्का कर्त्ता बताया है। चितिशक्ति या ब्रह्म अपरिणाम है, सुतरां इस ब्रह्मके जगदाकारमें परिणाम हो ही नहीं सकता।

प्रकृति स्वयं सृष्टिकर्त्री है। वत्सका परिपोषण करनेके लिये जैसे अज्ञके निकट दुग्धकी प्रवृत्ति होती है, पुरुषके भोगापवर्गके लिये वैसे ही अचेतन प्रकृतिकी भी प्रवृत्ति होती है। नर्त्तकी जैसे सभासदोंको नृत्य दिखा कर नृत्यसे पृथक् हो जाती है, वैसे ही प्रकृति भी पुरुषके सामने अपना रूप दिखा कर निवृत्त हो जाती है। गुणवान् भृत्य निर्गुणस्वामीकी आराधना कर किसी तरहकी प्रत्युपकारकी आशा नहीं करता है, वैसे ही गुणवती प्रकृति भी नाना तरहके उपायसे निर्गुण पुरुषका उपकार कर उससे किसी तरहकी आशा नहीं करती। असूर्यम्पश्या कुलवधू दैवात् स्खलित वस्त्राञ्चल अवस्थामें केवल एक बार किसी पुरुष द्वारा देख लेने पर लज्जासे जैसे द्वितीय बार उसको देखना नहीं चाहती, वैसे ही प्रकृति भी किसी पुरुष कर्तृक विवेकज्ञान द्वारा दृष्ट होने पर फिर उसको देखनेकी इच्छा नहीं करती।

(सांख्यका० ५७-६०)

प्रकृतिके विवेकसाक्षात्कार द्वारा जब पुरुष मुक्त होता है, तब प्रकृतिकी फिर सृष्टि नहीं होती। पुरुषके आश्रयमें ही प्रकृतिका बन्ध, मोक्ष और संसार है। स्वभावतः पुरुषको बन्ध, मोक्ष और संसार नहीं है। भृत्यागत जय पराजय जैसे स्वामीमें उपचरित होती हैं, वैसे प्रकृतिगत बन्धमोक्ष भी पुरुषमें उपचरित होते हैं। रेशमके कीड़े जैसे अपने ही आपको बन्धन करते हैं, प्रकृति भी स्वयं अपनेको बन्धन करती है।

आदरके साथ दीर्घ काल तक निरन्तर भावसे पूर्व कथित तत्त्वोंके विवेकज्ञानका अभ्यास करने पर 'मैं पुरुष हूं, मैं प्रकृति बुद्ध्यादि नहीं हूं, मैं कर्त्ता नहीं हूं, किसी विषयमें मेरा स्वाभाविक स्वामित्व नहीं है।' ऐसे विवेक विषयमें साक्षात्कारात्मक ज्ञान उत्पन्न होता है। यद्यपि मिथ्याज्ञान या मिथ्याज्ञानवासना अनादि है, तथापि विवेकज्ञान और विवेकज्ञानवासना आदि युक्त है। एक सादि और एक अनादि, ऐसा विवेकज्ञान मिथ्याज्ञानको और विवेकज्ञानवासना मिथ्याज्ञान वासनाको उच्छेद सम्पादन कर सकती है। इसमें किसी तरहकी बाधा नहीं होती। क्योंकि तत्त्वविषयमें बुद्धिका स्वाभाविक पक्षपात है, इससे तत्त्वज्ञान प्रबल है और मिथ्याज्ञान दुर्बल। शास्त्रमें लिखा है, कि विरोधस्थलोंमें प्रबल दुर्बलका उच्छेद करता है, सुतरां इस न्यायके अनुसार प्रबल तत्त्वज्ञान दुर्बल मिथ्याज्ञानको बिलकुल उच्छेद साधन करनेमें समर्थ होता है। सुतरां विवेकज्ञान होने पर फिर मिथ्याज्ञानकी सम्भावना ही नहीं रहती। सुतरां मिथ्याज्ञानजनित जो संसार, जन्म, मृत्यु हैं, उनका भी उद्भव नहीं होता। अतएव वहां

मुक्ति होती है। जैसे बीजके अभावसे अङ्कुर नहीं होता, वैसे प्रकृति पुरुषका संयोग रहनेसे भी विवेकख्याति द्वारा अविवेक विनष्ट हुआ है, इससे जिसको विवेकख्याति हुई है, उसके लिये फिर सृष्टि नहीं होती।

शब्दादि विषय भोग पुरुषका स्वाभाविक नहीं है, वह उपचरित है। एकमात्र मिथ्याज्ञान ही भोगका निबन्धन या हेतु है। मिथ्याज्ञान विनष्ट होनेसे भोग हो नहीं सकता। सुतरां तब सृष्टिका कोई प्रयोजन नहीं। उक्त रूपसे विवेक साक्षात्कार होनेसे सञ्चित धर्माधर्मका बीजभाव नष्ट हो जाता है, इससे वह जन्मादि रूप फल उत्पादन नहीं कर सकता। जैसे धान्यादि भुन जाने पर पीछे वह अङ्कुरोत्पादनमें समर्थ नहीं होता, वैसे ही विवेक ज्ञान द्वारा अज्ञान नष्ट होनेसे अज्ञानका कार्य जो संसार है, वह फिर उत्पन्न नहीं हो सकता है। भगवानने गीतामें कहा है—

"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।" (गीता)

ज्ञानरूपी अग्नि प्रज्वलित होनेसे सर्वकर्म तत्क्षणात् भस्मीभूत होते हैं। वाचस्पतिमिश्रने अपनी तत्त्वकौमुदीमें लिखा है—

जलसे सींची हुई जमीनमें बीज अङ्कुरोत्पादन करनेमें समर्थ होता है। प्रखर सूर्यातपमें जिस भूमिका जल सूख गया है, ऐसी भूमिमें बीजका अङ्कुरोत्पादन असम्भव है, वैसे मिथ्याज्ञानादिरूप क्लेश रहनेसे ही सञ्चित कर्मफलजननमें समर्थ होता है। उक्त तत्त्व ज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञान आदि क्लेश अपनीत होने पर फिर कर्मफल उत्पन्न नहीं हो सकता। इसीसे वाचस्पति मिश्रने कहा है, कि क्लेशरूपी जलसे अवसिक्त (सींचा) बुद्धिरूपी भूमिमें फलरूप बीज अङ्कुर उत्पादन करता है। तत्त्वज्ञानरूपी प्रखर सूर्यकिरणमें समस्त क्लेशरूपी जलके परिशुष्क हो जाने पर बुद्धिरूपी भूमि ऊसर हो जाती है। सुतरां ऐसी ऊसर भूमिमें अङ्कुरोत्पत्ति किस तरह हो सकती है?

इससे प्रतिपन्न हुआ, कि तत्त्वज्ञानलाभ होनेसे ही मुक्तिलाभ होता है। यद्यपि तत्त्वज्ञानीके कर्म फल नहीं हो सकता, तथापि जो धर्माधर्म फल प्रसव करने लगा है अर्थात् जिस धर्माधर्म प्रभावसे जिसके फल भोग करनेके लिये वर्त्तमान शरीर उत्पन्न हुआ है, वह प्रवृत्ति वेग है, इससे उसका प्रतिरोध हो नहीं सकता।

ज्ञानी या अज्ञानी जो हो क्यों न हो, जितने दिनों तक देह रहेगी, उतने दिनों तक कर्माशयके लिये कर्मभोग करना होगा। इसमें ज्ञानी और अज्ञानीके सम्बन्धमें विशेषता यह है, कि ज्ञानी केवलमात्र प्रारब्ध कर्मभोग क्षय करेंगे और अज्ञानी प्रारब्ध कर्मका भोग और फिर कर्मका बीज सञ्चय करेंगे और उसके फलसे अज्ञानीकी बारंबार जन्ममृत्यु होती रहेगी। ज्ञानीकी जन्ममृत्यु नहीं होगी।

सैकड़ों करोड़ कल्पमें भी बिना भोग किये कर्मक्षय नहीं होता। कर्माशयमें विचित्र कर्मका अनन्त बीज सञ्चित रहता है। भोगके बिना जब कर्मका क्षय नहीं होता और कर्मक्षयके बिना मुक्ति नहीं होती, तब मुक्ति एक तरहसे असम्भव हो जाती है। इसलिये सांख्यशास्त्रने कहा है, कि जिसने कर्मफल प्रदान करना आरम्भ किया है, वह कर्म भोगके बिना किसी तरह क्षय नहीं होता, किन्तु जो कर्म कर्माशयमें बीज भावसे हैं, वे ज्ञान द्वारा भ्रष्ट भावापन्न हो जाता है, सुतरां इन सब कर्म बीजके रहने पर भी मुक्तिमें बाधा नहीं होती। तब पुरुष अपनी स्वरूपावस्थाको प्राप्त करता है।

"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं।" (पातञ्जलद०)

पुरुषकी यह अवस्था होने पर जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु नहीं होती, त्रिताप फिर उसको व्यथित कर नहीं सकता। तब वह मुक्त हो जाता है।

साङ्ख्यदर्शन—कपिल प्रदर्शित शास्त्रभेद।

साङ्ख्यमय (सं० त्रि०) सांख्यस्वरूपे मयट्। सांख्यज्ञान स्वरूप। यह ज्ञान अवलम्बन कर मुमुक्षु मुक्तिलाभ करते हैं। (भाग० ६।८।१३)

साङ्ख्ययोग (सं० पु०) सांख्योक्तः योगः। ज्ञानयोग, ब्रह्मविद्या। भगवान् श्रीकृष्णने गीताके दूसरे अध्यायमें अर्जुनको इसी योगका उपदेश दिया था।

कौरवों और पाण्डवोंसे जो तुमुल संग्राम होगा उसमें आत्मीय स्वजनोंका ही विनाश होगा। यह सोच कर अर्जुनको निर्वेद उपस्थित हुआ। उनका यह

निर्वेद या कुछ मजाक करते हुए भगवान्‌ने सांख्ययोगका उपदेश दिया। भगवान्‌ने उनसे पहले कहा, कि जिनके लिये शोक करनेका कर्त्तव्य नहीं, तुम उनके लिये शोक कर रहे हो? पण्डितकी तरह बात कर रहे हो, फिर भी जो पण्डित हैं, वे गतासु या अगतासुके लिये शोक नहीं करते। अर्जुनके प्रति भगवान्‌का प्रथम यही उपदेश था। उन्होंने अर्जुनको यह अच्छी तरह युक्तियों द्वारा समझा बुझा दिया, कि आत्मा अजर और अमर है, इसका विनाश नहीं होता। तुम जिनके विनाश होनेकी सम्भावनासे व्याकुल हो रहे हो, कोई भी उनका विनाश नहीं कर सकता। देह आत्मा नहीं है। उनकी यदि यह पार्थिव देह नष्ट भी हो जाय, तो वे कभी विनष्ट नहीं हो सकते। तुम उनके लिये शोक क्यों करते हो? वे पहले भी थे और भविष्यमें भी होंगे। जैसे वस्त्र पुराना हो जाने पर मनुष्य उसे त्याग कर दूसरा नया वस्त्र पहनता है, वैसे ही आत्मा बाल्य कौमार, यौवन, जरा अपनी इस पुरानी देहको छोड़ कर नयी देहका आश्रय लेती है। यही आत्माकी जन्ममृत्यु है। यथार्थमें उसकी जन्म मृत्यु है ही नहीं। तुम अज्ञानवश उनके लिये शोकाभिभूत हुए हो। कालने स्वयं उन लोगोंका विनाश कर रखा है। तुम इस युद्धमें निमित्तमात्र हो। अतएव तुम्हारा कर्त्तव्य है, कि तुम शोक परित्याग कर युद्ध करो।

जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु और जिसकी मृत्यु हो चुकी है, उसका जन्म होना आवश्यम्भावी है। इसकी गति कोई जान नहीं सकता। अदृष्टवश मनुष्यकी जन्म-मृत्यु हुआ करती है। यही प्राकृतिक नियम है। प्राणी जन्मसे पहले अप्रकाशमें और मध्यमें अर्थात् जन्म हो जाने पर प्रकाशमें और इसके बाद फिर अप्रकाशमें पड़ जाते हैं। इस तरह आत्मीय अविनाशिता सिद्ध कर श्रीकृष्णने अर्जुनका मोह अपहरण किया था। गीताके दूसरे अध्यायमें यह विषय विशेषरूपसे लिखा गया है। विषय बढ़ जानेके भयसे यहां और अधिक न लिखा गया। इसका मोटा तात्पर्य यह है, कि सांख्य शब्दका अर्थ ज्ञान है। यह ज्ञानसम्बन्धीय योग ही सांख्ययोग है। भगवान्‌ने कहा था, कि सांख्ययोग और कर्मयोग

अवलम्बन कर निश्रेय लाभ करते रहो; किन्तु कर्मयोगसे सांख्ययोग श्रेष्ठ है। इस पर अर्जुनने विशेष संशयापन्न हो कर श्रीकृष्णसे कहा था, कि आप कर्मयोगकी अपेक्षा इस योगकी श्रेष्ठता प्रतिपादित कर मुझको घोर कर्म करनेकी क्यों आज्ञा देते हैं। इस विभिन्न वाक्योंका अर्थ मैं नहीं समझ रहा हूं। इस पर भगवान्‌ने कहा था,—

"लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥"
(गीता ३।३)

सांख्ययोग और कर्मयोग इन दोनों योगों द्वारा ही निश्रेय लाभ किया जाता है; वे पहले कर्मयोगका आश्रय कर चित्त शुद्धि करें, इसके बाद वे सांख्य या ज्ञानयोगका आश्रय कर मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होंगे। सुतरां पहले कर्मयोग, इसके बाद सांख्ययोगका अवलम्बन करना चाहिये।

सांख्यदर्शनमें जिस योगका विषय अभिहित हुआ है, वह भी सांख्ययोगके नामसे ही प्रसिद्ध है।

साङ्ख्य देखो।

साङ्ख्यायन (सं० पु०) एक प्राचीन आचार्य। इन्होंने ऋग्वेदके सांख्यायनब्राह्मणकी रचना की थी। इनके कुछ श्रौतसूत्र भी हैं। सांख्यायनकामसूत्र इन्हींका बनाया हुआ है।

साङ्ग (सं० त्रि०) अङ्गयुक्त, सम्पूर्ण।

साङ्गतिक (सं० पु०) सङ्गतिरेव (विनयादिभ्यष्ठक्। पा ५।४।३४) इति ठक्। १ सङ्गति, सम्मिलन। २ सहाध्यायी ३ विचित्र परिहासादि कथाजीवी। (मनु ३।१०३)

साङ्गत्य (सं० क्ली०) साङ्गतिक।

साङ्गम (सं० पु०) सङ्गम एव स्वार्थे। सङ्गम।

साङ्गमन (सं० पु०) सङ्गम

साङ्गमिष्णु (सं० पु०) सङ्ग...

साङ्गलक्षण (सं० त्रि०) अङ्गलक्षणयुक्त।

साङ्गुष्ठ (सं० त्रि०) अङ्गुष्ठके साथ, अङ्गुष्ठयुक्त।

साङ्गुष्ठा (सं० स्त्री०) १ गंजा। २ करंजनी।

साङ्गोपाङ्ग (सं० अव्य०) अंगों और उपांगों सहित।

साङ्ग्रहण (सं० क्ली०) संग्रह।

साङ्ग्रहसूत्रिक (सं० त्रि०) सङ्ग्रहसूत्रमधीते वेद वा (क्रतूक्थादि सूत्रान्ताट्ठक्। पा ४।२।६०) इति ठक्। संग्रह-सूत्र अध्ययन करनेवाला।

साङ्ग्रहिक (सं० त्रि०) संग्रहे साधुः संग्रह (कथादिभ्यष्ठक्। पा ४।४।१०२) इति ठक्। १ संग्रहकारी, संग्रह करनेवाला। संग्रहग्रन्थं अधीते वेत्ति वा संग्रह-ठक्। २ सभी संग्रह ग्रन्थ जानेवाले।

साङ्ग्राम (सं० त्रि०) संग्रामे कार्यं दीयते इति (व्युष्टादिभ्योऽण्। पा ५।१।९७) इति अण्। १ संग्रामकार्यकारी। (पु०) २ युद्ध, लड़ाई।

साङ्ग्रामजित्य (सं० क्ली०) संग्रामजय।

साङ्ग्रामिक (सं० पु०) संग्रामे साधुः संग्राम (गुड़ादिभ्यष्ठञ्। पा ४।४।१०३) इति ठञ्। १ सेनापति। (त्रि०) २ संग्रामकुशल। ३ युद्ध-सम्बन्धी।

साङ्कटिक (सं० त्रि०) सङ्कटमधीते वेद या सङ्कट ठञ्। (पा ४।४।६०) जो सङ्कट अध्ययन करे।

साङ्कट्टिक (सं० त्रि०) सङ्कट्ट अध्ययनकारी।

साङ्घाटिका (सं० स्त्री०) १ स्त्रीप्रसंग, मैथुन। २ एक प्रकारका वृक्ष। ३ वह स्त्री जो प्रेमी और प्रेमिकाका संयोग कराती हो, कुटनी, दूती।

साङ्घात (सं० क्ली०) सङ्घाते दीयते कार्यं अण् (पा ५।१।९१) समूह, दल।

साङ्घातिक (सं० त्रि०) सङ्घाते साधुः (गुड़ादिभ्योष्ठञ्। पा ४।४।१०३) इति ठञ्। १ सम्यक् प्रकारसे हननकारी, मारात्मक। (पु०) २ सोलह नाड़ीचक्रोंमेंसे एक नाड़ी। जन्म नक्षत्रसे सोलहवीं नाड़ी है। षण्णाड़ीचक्र देखो। ३ एक प्रकारका भिक्षुक।

साङ्घात्य (सं० क्ली०) संहात्य।

साङ्मुखी (सं० स्त्री०) सङ्मुखाय हिता सङ्मुख-अण्-ङीप्। सायाह्नव्यापिनी तिथि। यह तिथि सायंकाल तक रहती है। स्मृतिमें लिखा है, कि पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी, प्रतिपद और नवमी ये सब तिथि साङ्मुखी अर्थात् सायंकालव्यापिनी होनेसे ग्रहण करनी होगी। (तिथितत्त्व)

साचक (तु० स्त्री०) मुसलमानोंमें विवाहकी एक रस्म। इसमें विवाहसे एक दिन पहले वर पक्षवाले अपने यहांसे कन्याके लिये मेहंदी, मेवे, फल तथा कुछ सुगन्धित द्रव्य आदि भेजते हैं।

साचरी (सं० स्त्री०) एक रागिनी जो कुछ लोगोंके मतसे भैरव रागकी पत्नी है।

साचार (सं० त्रि०) आचारेण सह वर्त्तमानः। आचार-युक्त।

साचि (सं० अव्य०) सच-इन्। तिर्यक्, वक्र, नत। पर्याय—तिरः।

साचिवाटिका (सं० स्त्री०) श्वेतपुनर्नवा, सफेद गदह-पूरना।

साचिव्य (सं० क्लो०) १ सचिवका भाव या धर्म, सचिवता। २ सहायता, मदद।

साचिव्याक्षेप (सं० पु०) अलङ्कारभेद।

साचीकुम्हड़ा (हिं० पु०) सफेद कुम्हड़ा, भतुआ कुम्हड़ा, पेठा।

साचीकृत (सं० त्रि०) वक्रीकृत, टेढा किया हुआ।

साचीगुण (सं० पु०) १ एक देशका नाम। (ऐतरेयब्रा० ८। २३) २ प्रकृष्ट गुणवान् देश। (भाग० ६।२०।२६ स्वामी)

साचेय (सं० त्रि०) पूरक।

साच्य (सं० त्रि०) समवेतव्य। (ऋक् १।१४०।३)

साज (सं० पु०) १ पूर्णभाद्रपद नक्षत्र। (वृहत्सं० १०।१७) (त्रि०) २ अजके साथ।

साज (फा० पु०) १ सजावटका काम, तैयारी, ठाट बाट। २ वह उपकरण जिसकी आवश्यकता सजावट आदिके लिये होती, वे चीजें जिनकी सहायतासे सजावट की जाती है, सजावटका सामान। ३ लड़ाईमें काम आनेवाले हथियार। ४ मेल जोल, घनिष्ठता। ५ वाद्य, बाजा। ६ बढ़इयोंका एक प्रकारका रंदा जिससे गोल गलता बनाया जाता है। (वि०) ७ बनानेवाला, मरम्मत या तैयार करनेवाला, काम करनेवाला। इस अर्थमें इस शब्दका व्यवहार यौगिक शब्दोंके अन्तमें होता है।

साजक (सं० क्ली०) बाजरा, बजरा।

साजगिरी (हिं० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिका एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

साजड़ (हिं० पु०) गुल्लू नामक वृक्ष। इससे कतीरा गोंद निकलता है। गुल्लू देखो।

साजन (हिं० पु) १ भर्त्ता, पति, स्वामी। २ प्रेमी, वल्लभ। ३ ईश्वर। ४ सज्जन, भला आदमी।

साजना (हिं० पु०) साजन देखो।

साज बाज (हिं० पु०) १ तैयारी। २ घनिष्ठता, मेल जोल।

साजर (हिं० पु०) गूलू नामक वृक्ष। इससे कतीरा गोंद निकलता है। गुलू देखो।

साज सामान (फा० पु०) १ सामग्री, उपकरण, असबाब। २ ठाट बाट।

साजात्य (सं० क्ली०) सजाति-ष्यञ्। सजाति होनेका भाव। वस्तु धर्म दो प्रकारका है,—साजात्य और वैजात्य। समान जाति सम्बन्धी जो धर्म है, उसका नाम साजात्य, सजातीयता, एकधर्माकान्तता, एक-विधता है।

साजिंदा (फा० पु०) १ वह जो कोई साज बजाता हो, साज या बाजा बजानेवाला। २ वेश्याओंकी परिभाषा-में तबला, सारंगी या जोड़ी बजानेवाला, समाजी, सपर-दाई।

साज़िश (फा० स्त्री०) १ मेल, मिलाप। २ किसीके विरुद्ध कोई काम करनेमें सहायक होना, किसीको हानि पहुंचानेमें किसीको सलाह या मदद देना।

साझा (हिं० पु०) १ किसी वस्तुमें भाग पानेका अधिकार, शराकत, हिस्सेदारी। २ हिस्सा, भाग, बांट।

साझी (हिं० पु०) वह जिसका किसी काम या चीजमें साझा हो, साझेदार, हिस्सेदार।

साझेदार (हिं० पु०) शरीर होनेवाला, हिस्सेदार, साझी।

साझेदारी (हिं० स्त्री०) साझेदार होनेका भाव, हिस्से-दारी, शराकत।

साञ्चरिक (सं० त्रि०) सञ्चारके योग्य।

साञ्ज (सं० पु०) एक प्राचीन ग्रन्थकारका नाम।

साञ्जन (सं० पु०) १ कृकलास, गिरगिट। (त्रि०) २ अञ्जन-विशिष्ट। ३ शरीरेन्द्रिय-सम्बन्धी। सर्वदर्शन संग्रहमें लिखा है, कि साञ्जन और निरञ्जन ये दो प्रकारके पिण्ड हैं। जहां शरीरके साथ इन्द्रियका सम्बन्ध है, उसे साञ्जन और उससे रहितका नाम निरञ्जन है।

साञ्जीवीपुत्र (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम।

साञ्ज्ञायनि (सं० पु०) संज्ञाका अपत्य।

साट (हिं० स्त्री०) सांट देखो।

साटक (हिं० पु०) १ छिलका, भूसी। २ बिलकुल तुच्छ और निरर्थक वस्तु, निकम्मी चीज। ३ एक प्रकारका छन्द।

साटन (हिं० पु०) एक प्रकारका बढ़िया रेशमी कपड़ा जो प्रायः एकरुखा और कई रंगोंका होता है।

साटना (हिं० क्रि०) १ दो चीजोंका इस प्रकार मिलना कि उनके तल आपसमें मिल जाय, सटाना, जोड़ना। २ सटाना देखो।

साटनी (हिं० स्त्री०) कलंदरोंकी परिभाषामें भालूका नाम।

साटी (हिं० स्त्री०) १ पुनर्नवा, गदहपूरना। २ सामग्री, सामान। सांटी देखो। ३ कमची, सांटी।

साठ (हिं० वि०) १ पचास और दश, जो पचपनसे पांच ऊपर हो। (पु०) २ पचास और दशके योगकी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६०। (स्त्री०) ३ साठी देखो।

साठनाठ (हिं० वि०) १ जिसकी पूंजी नष्ट हो गई हो, निर्धन, दरिद्र। २ नीरस, रूखा। ३ तितर बितर, इधर उधर।

साठसाती (हिं० स्त्री०) साढ़ेसाती देखो।

साठा (हिं० पु०) १ ईख, गन्ना, ऊख। २ एक प्रकारका धान जिसे साठी कहते हैं। साठी देखो। ३ एक प्रकार-की मधुमक्खी जिसे सडपुरिया कहते हैं। ४ वह खेत जो बहुत लंबा चौड़ा हो। (वि०) ५ जिसकी अवस्था साठ वर्षकी हो, साठ वर्षकी उम्रवाला।

साठी (हिं० पु०) एक प्रकारका धान। कहते हैं, कि यह धान ६० दिनमें तैयार हो जाता है इसीसे इसे साठी कहते हैं। इसके दाने दो प्रकारके होते हैं—काले और सफेद। कालेकी अपेक्षा सफेद दानेवाला अधिक अच्छा होता है। इसमें गुण अधिक होता है।

साड़ा (हिं० पु०) १ घोड़ोंका एक प्राणघातक रोग। २ बांसका वह टुकड़ा जो नावमें मल्लाहोंके बैठनेके स्थान-के नीचे लगा रहता है।

साड़ि (सं० पु०) सड़का गोत्रापत्य।

साड़ी (हिं० स्त्री०) १ स्त्रियोंके पहननेकी धोती जिसमें चौड़ा किनारा या बेल आदि बनी होती है, सारी। २ साड़ी देखो।

साढ़साती (हिं० स्त्री०) साढ़ेसाती देखो।

साढ़ो (हिं० स्त्री०) वह फसल जो आषाढ़में बोई जाती है, असाढ़ो। २ दूधके ऊपर जमनेवाली बालाई, मलाई। ३ शाल वृक्षका गोंद। ४ साड़ी देखो।

साढ़ू (हिं० पु०) पत्नीकी बहनका पति, सालीका पति।

साढ़ेचौहारा (हिं० पु०) एक प्रकारकी बांट जिसमें फसलका ५वां अंश जमींदारको मिलता है और शेष ११वां अंश काश्तकारको।

साढ़ेसाती (हिं० स्त्री०) शनि ग्रहकी साढ़े सात वर्ष, साढ़े सात मास या साढ़े सात दिन आदिकी दशा। फलित ज्योतिषके अनुसार इसका फल बहुत बुरा होता है।

साण्ड (सं० पु०) अण्डेन सह वर्त्तते। अण्डयुक्त, अण्डविशिष्ट।

सात् (सं० क्ली०) सात् सुखे क्विप्। ब्रह्म।

सात (सं० क्ली०) १ सुख। २ दत्त। ३ नष्ट।

सात (हिं० वि०) १ पांच और दो, छः से एक अधिक। (पु०) २ पांच और दोके योगकी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—७।

सातत्य (सं० क्ली०) सतत-ष्यञ्। सतत सम्बन्धी, अविच्छेद।

सातदौला—मेदिनीपुर जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह मोगलमारी ग्रामसे ५ मील दूरमें अवस्थित है। विख्यात दांतनसे मोगलमारी २ मील उत्तर पड़ता है। यहां एक समय मोगल (मुगल) और मराठी सेनाकी घोर लड़ाई छिड़ी थी, इसलिये इसका नाम मोगलमारी पड़ा।

राजपाटका रास्ता जब सातदौला ग्राम हो कर निकाला गया था, उस समय यहांकी जमीन खोदते समय बड़े बड़े राजभवनादिके ध्वंसावशेष निदर्शन बहुतेरे ईंट और पत्थरके टुकड़े मिले थे। इन्हें देखनेसे अनुमान होता है, कि एक समय यहां किसी प्राचीन राजवंशकी राजधानी थी। मुगलमारी देखो।

सातपूती (सं० स्त्री०) सतपुतिया देखो।

सातफेरी (हिं० स्त्री०) विवाहकी भांवर नामक रीति जिसमें वर और वधू अग्निकी सात बार परिक्रमा करते हैं।

सातभाई (हिं० स्त्री०) सतभइया देखो।

सातय (सं० त्रि०) सातयतीति सात सुखे (अनुपसर्गात् लिम्पविन्दे ति। पा ३।१।१३८) इति श। सुखजनक।

सातला (सं० स्त्री०) एक प्रकारका थूहर जिसका दूध पीले रंगका होता है, सप्तला, भूरिफेना। शालग्राम निघंटुमें लिखा है, कि यह एक प्रकारकी बेल है जो जङ्गलोंमें पाई जाती है। इसके पत्ते खैरके पत्तोंकी भांति और फूल पीले होते हैं। इसमें पतली चिपटी फली लगती है जिसे सोकाकाई कहते हैं। इसके बीज काले होते हैं जिनमें पीले रंगका दूध निकलता है। परन्तु इंडियन मेडिकल प्लान्ट्सके मतानुसार यह क्षुप जातिकी वनस्पति है। इसकी डाल एकसे तीन फुट तक लंबी होती है जिसमें रोएं होते हैं। इसके पत्ते एक इञ्च लंबे और चौथाई इंच चौड़े अण्डाकार अनीदार होते हैं। डालके अन्तमें बारीक फूलोंके घने गुच्छे लगते हैं जो लाल रंगके होते हैं। फल चिकने और छोटे होते हैं। यह वनस्पति सुगंधयुक्त होती है। इसका तेल सुगन्धित और उत्तेजक होता है जो मिरगी रोगमें काम आता है।

सातवाहन (सं० पु०) राजा शालिवाहन। कथासरित्सागरमें लिखा है, कि सात नामक गुह्यक इनको वहन करता था, इसलिये राजाका नाम सातवाहन हुआ।

भारतवर्ष शब्दमें अन्ध्रभृत्यवंशका विवरण देखो।

सातसइका—वर्द्धमान जिलान्तर्गत एक बड़ा परगना। इस परगनेके पूर्वतन अधिवासी ब्राह्मण ही सप्तशती या सातशती नामसे परिचित हैं।

सातहन् (सं० त्रि०) सातं सुखं हन्ति हन-क्विप्। सुखहन्ता, सुखनाशक।

साति (सं० स्त्री०) सन्-क्तिन् (जनसनखनामिति। पा ६।४।४२) इति नस्य आत्वं, यद्वा सनु दाने क्तिन्,

(ऊतियूतिजूतिसातीति । पा ३।३।९७) इति आत्व । १ अव सान, शेष । २ दान । ३ वेदना । (अमर) ४ संभजन ।

सातिरेक (सं० त्रि०) अतिरिक्त, अतिरिक्त विशिष्ट ।

सातिशय (सं० त्रि०) अतिशयके साथ, अतिशययुक्त ।

सातिसार (सं० त्रि०) अतिसारके साथ, अतिसार रोग विशिष्ट ।

साती (हिं० स्त्री०) सांप काटनेकी एक प्रकारकी चिकित्सा जिसमें सांप काटे हुए स्थानको चीर कर उस पर नमक या बारूद मलते हैं ।

सातीन (सं० पु०) १ वंश । २ सतीलक । (क्ली०) ३ जल ।

सातीलक (सं० पु०) सतीलक, कलाय ।

सातु (सं० पु०) १ पश्वादि लक्षण दान । २ दीप्ति ।

सातोबृहत (सं० त्रि०) सतोबृहती नामक यज्ञसम्बन्धी ।

सात्त (सं० त्रि०) सत्-अण् । सत्त सम्बन्धी ।

सात्त्विक (सं० त्रि०) सत्-ठञ् । सत्त सम्बन्धी ।

सात्व (सं० त्रि०) सत्वगुण सम्बन्धी, सात्त्विक ।

सात्वकि (सं० पु०) सत्वकस्य गोत्रापत्यं (बाह्वादिभ्यश्च । पा ४।१।९६) इति इञ् । सत्त्वकका गोत्रापत्य ।

सात्वत (सं० पु०) १ बलराम । २ श्रीकृष्ण । ३ यादवमात्र । ४ विष्णु । ५ विष्णुभक्त विशेष । जगत्में भगवान् ही एकमात्र सत्व है, उस भगवान्की जो उपासना करता है, वही सात्त्वत कहलाता है । पद्मपुराणके उत्तर-खण्डमें इसके लक्षण यों लिखे हैं—

जो अनन्यचित्तसे सत्वगुणाश्रय सत्वस्वरूप एकमात्र केशवकी सेवा करता है, उसको सात्वत कहते हैं और जो सब तरहके काम्य कर्मोंको त्याग कर एकान्तचित्तसे सत्वगुणविशिष्ट हो कर हरिकी उपासना करता है, उसीको सात्वत कहते हैं । जो सदा मुकुन्दकी पादसेवामें रत रहता है, जो भगवान् हरिके अर्चनमें दास्य और सख्यभावसे सदा विद्यमान रहता है और आत्मसमर्पणमें दृढ़ रति, वही सात्वत पदवाच्य है ।

जो सब कर्मोंको त्याग कर अनन्यचित्तसे श्रीकृष्णकी उपासना करता है, वही सात्वत नामके योग्य है ।

हिन्दू धर्ममें जो सब उपासक सम्प्रदाय हैं, साधारणतः वे सब सम्प्रदाय पांच भागोंमें विभक्त हैं—सौर, गाणपत्य, शैव, शाक्त और वैष्णव । इसका अत्यधिक प्रमाण है, कि वैष्णव धर्म बहुत प्राचीन तथा वैदिक है । विष्णु देखो । सुप्राचीन ऋग्वेदमें विष्णुकी उपासनाके बहुतेरे मन्त्र हैं । एक श्रेणीके उपासक सात्त्विक भावसे विष्णुका भजन करते थे, उनको स्वर्गकामना न थी, जीवनबलि भी न थी और न उनमें सोम (मद्य) पानकी ही प्रथा थी । वे विशुद्ध सात्त्विक भावसे भगवान् विष्णुकी आराधना करते थे । वे विष्णुको 'सत्त्व' कहते थे । सत् शब्दका अर्थ सत्त्वमूर्त्ति श्री भगवान् मालूम होता है । जो सात्त्विकभावसे इस सत्त्वमूर्त्ति श्रीविष्णुकी उपासना करते, वे ही सात्त्वत नामसे अभिहित होते थे ।

यह सात्त्वत सम्प्रदाय समूचे वैष्णव सम्प्रदायमें सर्वश्रेष्ठ गिने जाते । इनका आचार-व्यवहार, रीति-नीति और उपासनापद्धति सर्वतोभावसे उत्तम, निष्काम और भगवद्भावपूर्ण था । वे सर्वप्रकारके काम्य कर्मोंका परित्याग कर एकान्तभावसे श्रीहरिकी उपासना करते थे । उनकी पादसेवा और उनका नाम सुनाते तथा उनका नाम गुणगान किया करते थे । उनका जीवन श्रीभगवान्के स्मरण, मनन, उनके नाम गुणादि कीर्त्तन और उनकी सेवामें निरन्तर निमग्न रहता था । इसी श्रेणीके भगवद्भक्त वैदिक समयमें भी सात्त्वत कहे जाते थे ।

सात्वत सम्प्रदाय ही विशुद्ध वैष्णव सम्प्रदायका प्रवर्त्तक है । कूर्मपुराणके पढ़नेसे मालूम होता है, कि यदुवंशके सत्वत नृपतिने इस सात्त्वत धर्मकी यथेष्ट उन्नति की थी । सत्वत नृपति अंशु राजाके पुत्र थे । इनके पुत्रका नाम सात्वत है । सात्वत राजाने नारदसे इस सात्त्वत धर्मका उपदेश ग्रहण किया था । वे सदा वासुदेवकी अर्चनामें ही निमग्न रहते थे । इन्होंने कुण्डगोल आदि द्वारा सात्त्वत धर्मका प्रवर्त्तन किया ।

पञ्चरात्र शब्दमें विस्तृत विवरण देखो ।

६ यदुवंशीय सात्त्वत राजपुत्र ।

७ वर्णसंकर जातिविशेष । मनुसंहितामें इसका विवरण इस तरह लिखा है, कि व्रात्य वैश्य द्वारा सवर्णा

स्त्रीसे उत्पन्न सन्तान सुधन्वाचार्य, कारुष, विजन्मा मैत्र, और सत्वत नामसे परिचित हुए।

(पु०) ८ एक देशका नाम, सात्त्वदेश।

सात्वती (सं० स्त्री०) १ शिशुपालको माता। (भारत २।४५।६) २ सुभद्रा। (भारत १।२२२।६६) ३ साहित्य-के अनुसार एक प्रकारकी वृत्ति। इसका व्यवहार वीर, रौद्र, अद्भुत और शान्त रसों में होता है। यह वृत्ति उस समय मानी जाती हैं, जब कि नायक द्वारा ऐसे सुन्दर और आनन्दवर्द्धक वाक्योंका प्रयोग होता है जिससे उसकी शूरता, दानशीलता, दाक्षिण्य आदि गुण प्रकट होते हैं।

सात्त्विक (सं० पु०) १ ब्रह्मा। २ विष्णु। (भारत १३।१४६। १०६) ३ तीन भावों में भावविशेष। सत्त्वगुण प्रबल हो कर अन्तःकरणमें जो भाव प्रबल होता है, उसको सात्त्विक भाव कहते हैं। इस सात्त्विक भावके उपस्थित होने पर ये सब लक्षण दिखाई देते हैं—स्वेद, स्तम्भ, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, वेपथु, वैवर्ण, अश्रुपात, और प्रलय अर्थात् मूर्च्छा।

(त्रि०) ४ सत्त्वगुणविशिष्ट, सत्त्वगुणयुक्त। सत्त्व-गुणसे जो वस्तुएं उत्पन्न होती हैं, उनको सात्त्विक कहते हैं। यह जगत् सत्त्व, रजः और तमोगुणसे उत्पन्न हुआ है, सुतरां यह सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे तीन प्रकारका है। जिन विषयोंमें सत्त्वगुणका भाग अधिक है, वे विषय सात्त्विक समझने चाहिये। आयु, सत्त्व, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिवर्द्धक अर्थात् जिन द्रव्योंके भोजन करनेसे आयु, बल-आदि बढ़ते हैं, जो रस्य या रसाल, स्थिर या हृद्य है, वे ही सात्त्विक आहार कहे जाते हैं।

शास्त्रमें लिखा है, कि जो मुक्तिकामी हैं, वे पहले यत्न-पूर्वक सात्त्विक भोजन करें, देह अन्नमय कोष है और इन्द्रियां भोजन द्वारा पुष्ट होती हैं, अतएव यदि सात्त्विक भोजन किया जाये, तो इसमें तनिक सन्देह नहीं, कि उससे देह और इन्द्रियां सत्त्वगुणविशिष्ट होती हैं शास्त्रमें भोजनके लिये जो इतनी बाध्य बाधकता दिखाई देती है, उसका कारण यह है, कि सात्त्विक भोजन न करनेसे सात्त्विक प्रकृति नहीं होती। अतएव मुक्ति चाहनेवालोंको राजसिक और तामसिक आहारोंका परि-त्याग कर सात्विक भोजन करना अवश्य कर्त्तव्य है। इस आहारसे शरीर सुस्थ, मानसिक बल तथा आयु बढ़-ती है। छांदोग्य उपनिषद्में लिखा है, कि—"आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः" आहारकी शुद्धिसे सत्त्वकी शुद्धि होती है।

जिस यज्ञमें किसी तरहकी फल कामना नहीं है, और वह विधिपूर्वक शास्त्रके नियमानुसार अनुष्ठित हुआ है तथा यह यज्ञ करना मेरा अवश्य कर्त्तव्य है, ऐसा समझ कर जो यज्ञ किया जाता हैं, वह यज्ञ अवश्य ही सात्त्विक यज्ञ कहलाता है।

फलकामना रहित हो अत्यन्त भक्तिके साथ जो तीन प्रकारकी तपस्याओंका अनुष्ठान होता है, उनको सात्त्विक तपस्या कहते हैं। यह मैं दान करूंगा, ऐसा निश्चय कर किसी तरहके उपकारकी प्रत्याशा न रख गङ्गा तीर्थ चन्द्रग्रहण आदिके समय और ब्राह्मण आदि सत्पात्रको जो दान किया जाता है, उसको सात्त्विक दान कहते हैं।

आत्माभिमान और फलकामनाका परित्याग कर यह कर्म मेरा कर्त्तव्य है, इस बुद्धिसे जो किया जाता है, उसको सात्त्विक त्याग कहते हैं जिस ज्ञानसे सब भूतोंमें एक अविनाशी अभिन्नभाव लक्षित होता है, उसको ही ज्ञान कहते हैं। जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति, कार्य और अकार्य, भय और अभय तथा बन्धन और मुक्ति समझनेमें समर्थ है, उसीको सात्त्विक बुद्धि कहते हैं। सात्त्विकी बुद्धि द्वारा सब विषयोंका स्वरूप जाना जा सकता है।

जो किसी तरहके फलकी आकांक्षा नहीं करता, अन-हंवादी अर्थात् यह मैं कर रहा हूं, इस तरहका अहंज्ञान-शून्य, धृति और उत्साहयुक्त, सिद्धि और असिद्धि विषयमें विकारशून्य हैं, उनको ही सात्त्विककर्त्ता कहते हैं। जिसको फलकी आकांक्षा नहीं है, उनको कार्यकी सिद्धि और असिद्धिकी कुछ भी परवाह नहीं रहती, अतएव उनको सब अवस्थामें तुल्य ज्ञान रहता है, मैं कुछका कर्त्ता नहीं और उनके कार्यों में सदा धैर्य (धृति) और उत्साह बना रहता है, कार्य करना ही होगा, इस बुद्धिसे जो कार्यानुष्ठान करते हैं, वह सात्त्विक कर्त्ता हैं।

जो पुरुष फलाशक्तिशून्य, निःसङ्ग और रागद्वेषादि-

शून्य हो कर नित्य कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, उस पुरुष-के द्वारा अनुष्ठित होनेवाले कर्म 'सात्त्विक कर्म' कहलाते हैं। फलकामनारहित कर्माधिकारी पुरुष अहङ्कार और अभिमानशून्य तथा रागद्वेषादि विरहित हो कर जिन सब नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे ही सात्त्विक कर्म कहे जाते हैं।

जो सुख पहले विषकी तरह, पीछे अमृत तुल्य होता है, आत्मज्ञान द्वारा उत्पन्न सुख ही सात्त्विक सुख कहलाता है। यह सुख पहले बहुत कष्टकर होता है, क्योंकि यम नियम आदिका अनुष्ठान करने पर बहुत कष्ट होता है, इससे इसकी पहली अवस्था क्लेशकर है, किन्तु परिणाममें यह अमृत तुल्य है। ऐसा सुख आत्मतत्त्वज्ञान द्वारा उत्पन्न होता है, इस सुखकी उत्पत्ति होनेसे फिर निवृत्ति नहीं होती है। इसीलिये यह अमृत तुल्य है।

गीतामें इस तरह सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे त्रिविध कर्म और उनके पृथक् पृथक् लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं। सत्त्वगुणका फल सुख है, जिससे सुख होता है और जो सब वस्तुएं सुखकर है, वे सात्त्विक हैं।

वेदव्यास-प्रणीत जो अट्ठारह महापुराण हैं, वे भी सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे त्रिविध हैं। पाद्ममतसे इन अट्ठारहों पुराणोंमें विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म और वराह, ये छः पुराण सात्त्विक हैं।

स्मृति भी इसी तरह सात्त्विकादि भेदसे तीन तरह की है, सात्त्विक स्मृति यह है—वाशिष्ठ, हारीत, व्यास, पराशर, भारद्वाज और काश्यप।

सात्त्विकी (सं० स्त्री०) सात्त्वं सत्त्वगुणोऽस्त्यस्या इति सात्त्व-ठन्, ङीप्। १ दुर्गा। २ पूजाविशेष। सात्त्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकारकी पूजा है। उसमें जपयज्ञादि और निरामिष नैवेद्य द्वारा जो पूजा की जाती है, उसे सात्त्विकी पूजा कहते हैं। ४ सत्त्वगुणसे सम्बन्ध रखनेवाली, सत्त्वगुणकी।

सात्म (सं० त्रि०) आत्माके सहित, आत्मायुक्त।

सात्मक (सं० त्रि०) आत्मना सह वर्त्तते कप्। आत्माके सहित, आत्मायुक्त। सर्वदर्शनसंग्रहमें लिखा है, कि दुःखान्त दो प्रकारका है—अनात्मक और सात्मक। इसमें सब प्रकारके दुःखके अत्यन्त उच्छेद रूपको अनात्मक तथा दृक्क्रियाशक्तिलक्षण ऐश्वर्यको सात्मक कहते हैं।

सात्मन् (सं० त्रि०) आत्माके सहित।

सात्म्य (सं० क्ली०) आत्मनो हितं कर्म आत्म्यं, आत्म्येन सह वर्त्तमानं। सुखजनक। जिस रसके सेवन करनेसे शरीरके उपकार और व्यायाम आदि चाहे किसी तरहसे शरीरके उपचय होनेका नाम सात्म्य है। देश, काल, ऋतु, रोग, व्यायाम, जाति, बल, रस और दिनका सोना प्रकृतिविरुद्ध होनेपर भी यदि शरीरमें कोई पीड़ा न हो और शरीरपोषणमें उपकारी हो, तो वह सात्म्य नामसे अभिहित होते हैं। चरकमें लिखा है, कि जो कुछ शरीरके लिये उपकारी हैं, वे सात्म्य हैं, जिस ऋतुमें जैसा आहार विहार हितकर है उस तरहका आहार विहार हो उस ऋतुका सात्म्य है अर्थात् उसको ऋतुसात्म्य कहते हैं। जिस ऋतुमें जो सब द्रव्य शरीरके पीड़ाकारक हैं, उनको सात्म्य नहीं, वरं असात्म्य कहते हैं। फिर, किसी व्यक्तिविशेषकी प्रकृतिके अनुसार अभ्यासवशतः उसको जिस तरहका आहार विहार सुखजनक होता है, उस तरहके आहार विहारको ओक सात्म्य कहते हैं। और अनूप आदि देशोंके और ज्वर आदि रोगोंके जो जो धर्म है, उस धर्मके विपरीत धर्मविशिष्ट जो आहार और विहार है वही उस देशका और उस रोगका सात्म्य समझना चाहिये। आयुर्वेदमें ऋतुसात्म्य, ओकसात्म्य, देशसात्म्य, रोगसात्म्य आदिका विशेष विवरण वर्णित हुआ है। इसका तात्पर्य यह है, कि ऋतु, काल, रोग आदि सब विषयोंमें जो कुछ शरीरका उपकारक हो, वह सात्म्य है। (चरकसूत्र स्था० ७ अ०) घृत, क्षीर (दूध, तैल, और मांसरस, तथा मधुर आदि छः रस ही जिनके सात्म्य हैं, वे बलवान्, क्लेशसह, और दीर्घजीवी होते हैं। रूक्ष द्रव्य, और एक रस जिनका सात्म्य है, वे अल्प बलवान्, क्लेशासहिष्णु और अल्पायु होते हैं। फिर जो व्यामिश्रसात्म्य है,—अर्थात् जो कुछ सात्म्य और कुछ असात्म्य है, वे मध्यबलवान् होते हैं।

(चरक विमानस्था० ८ अ०) २ द्वैवत्य । ३ सारूप्य, सरूपता ।

सात्यक (सं० पु०) सात्यकि ।

सात्यकामि (सं० पु०) सत्यकामका गोत्रापत्य ।

सात्यकायन (सं० पु०) सात्यका गोत्रापत्य ।

सात्यकि (सं० पु०) वृष्णिवंशीय सत्यकके पुत्र । ये श्री कृष्णके सारथि थे । पर्याय—शैनेय, शिनिनप्ता, युयुधान, योध । महाभारतमें लिखा है, कि सात्यकि अर्जुनके प्रिय शिष्य थे । कौरव-पाण्डवकी लड़ाईमें इन्होंने पाण्डवोंका पक्ष लिया था । महाभारतकी लड़ाईमें दोनोंके पक्षके सभी योद्धाओंके हत होने पर भी ये जीवित थे । पाण्डवोंके पक्षमें पांचों पाण्डव, वासुदेव तथा सात्यकि ये सात तथा कौरवोंके पक्षमें अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कृप और शारद्वत ये चार जीवित थे ।

सात्यकिन् (सं० पु०) सात्यकि देखो ।

सात्यङ्कार्य (सं० पु०) सत्यङ्कारस्य गोत्रापत्यं सत्यङ्कार यत् । (पा ४।१।६१) सत्यङ्कारका गोत्रापत्य ।

सात्यदूत (सं० पु०) वह होम जो सरस्वती आदि देवियोंके उद्देशसे किया जाय ।

सात्यमुग्र (सं० पु०) सत्यमुग्रका गोत्रापत्य ।

सात्यमुग्रि (सं० पु०) सत्यमुग्र इञ् (पा ४।१ ८१) सात्यमुग्रत्य, सत्यमुग्रका गोत्रापत्य । ये एक सामवेदके आचार्य थे ।

सात्यमुग्र्व (सं० पु०) सामवेदीय एक शाखा या तत्-शाखाध्यायी मात्र ।

सात्ययज्ञ (सं० पु०) १ एक वैदिक आचार्यका नाम । (शतपथब्रा० ३।१।१।४) २ सत्ययज्ञका गोत्रापत्य, सोमशुष्माका अपत्य । (शत० ब्रा० ११।६।२।१)

सात्यरथि (सं० पु०) सत्यरथ-इञ् । सत्यरथका गोत्रापत्य ।

सात्यवत (सं० पु०) सत्यवत्यां भव-अण् । सत्यवतीके पुत्र वेदव्यास ।

सात्यवतेय (सं० पु०) सात्यवत देखो ।

सात्यहव्य (सं० पु०) सत्यहव्य गोत्रापत्यार्थे अञ् । १ सत्यहव्यका गोत्रापत्य । (ऐत० ब्रा० ८।२३) २ वशिष्ठके वंशके एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

सात्व (सं० पु०) गंधक ।

सात्राजित (सं० पु०) सत्राजितो गोत्रापत्यं सत्राजित् अञ् । सत्राजितका गोत्रापत्य, शतानीक ।

सात्राजिती (सं० स्त्री०) सत्यभामा ।

सात्रासाह (सं० पु०) १ पाञ्चालराज शोणका गोत्रापत्य । २ नागभेद ।

सात्व (सं० त्रि०) सत्वगुण-सम्बन्धी, सात्विक ।

सात्वत (सं० पु०) सत्वतस्यापत्यं पुमान् अञ् । १ बलदेव । २ श्रीकृष्ण । ३ यादवमात्र । ४ विष्णु

सात्वत शब्द देखो ।

सात्वतीय (सं० त्रि०) सात्वत-सम्बन्धी, यादव सम्बन्धी ।

साथ (हिं० पु०) १ मिल कर या संग रहनेका भाव, सहचार । २ वह जो संग रहता हो, बराबर पास रहनेवाला । ३ मेल मिलाप, घनिष्ठता । ४ कबूतरोंका झुंड या टुकड़ी । (अव्य०) ५ एक सम्बन्ध-सूचक अव्यय जिससे प्रायः सहचारका बोध होता है, सहित । ६ प्रति, से । ७ द्वारा । ८ विरुद्ध, से ।

साथरा (हिं० पु०) १ बिस्तर, बिछौना । २ चटाई । ३ कुशकी बनी चटाई ।

साथी (हिं० पु०) १ वह जो साथ रहता हो, साथ रहनेवाला, हमराही । २ दोस्त, मित्र ।

साद सं० पु०) सद-घञ् । १ विषाद, अवसन्नता, आलस्य । (रघु ३।२) २ स्मरण । ३ गति । ४ कार्श्य, क्षीणता । ५ विनाश । ६ हिंसा । ७ पवित्रता, विशुद्धि । ८ इच्छा, अभिलाष ।

सादगी (फा० स्त्री०) १ सादा होनेका भाव, सादापन । २ निष्कपटता, सीधापन ।

सादत्—एक मुसलमान कवि । यथार्थ नाम मीर सादत् अली था । आप अमरोहाके वाशिन्दे थे । प्रसिद्ध मुसलमान मौलवी शाह विलायत उल्ला आपके शिक्षा गुरु थे । आप "सहेलो सखियाँ" की रचना कर बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं । आपकी यह पुस्तक लैला मजनूके ढंग पर दो प्रेमी प्रेमिकाओंके प्रेमचित्रका चित्रण है । वजीर-प्रधान नवाब कमारुद्दीन खाँ आपके प्रतिपालक थे ।

सादत् अली खाँ (नवाब)—अयोध्याके एक मुसलमान नवाब । इसका नाम जेमेन उद्दौला भी है । इसके भ्राता-

का नाम आसफुद्दौला था। आसफकी मृत्युके बाद उसका दत्तक-पुत्र वजीर अली खाँ लखनऊमें अयोध्या को मसनद पर बैठा। इसको बेकार समझ कर अङ्गरेज प्रतिनिधि सर जान शोरने सन् १७९८ ई०की २१वीं जनवरीको इसे राज्यच्युत कर इसकी जगह सादत् अली खाँको बैठाया। सन् १८१४ ई० तक यह इस तख्त पर बैठा रहा। इसके बाद इनका पुत्र गाजी उद्दीन् हैदर अयोध्याके सिंहासन पर बैठा। यह यहांका राजा कहलाता था। सादत् अलीके साथ अङ्गरेजोंकी जो सन्धि हुई, उस शर्तके अनुसार अङ्गरेज ७६ लाख रुपये कर स्वरूप पाने लगे। इसके साथ साथ अयोध्याप्रदेशमें १० हजार अङ्गरेज सैनिक रखनेका अधिकार तथा क्षतिपूरणस्वरूप इलाहाबादका प्रसिद्ध किला अङ्गरेजोंको मिला। उसको गद्दी पर बैठनेमें जो कष्ट अङ्गरेजोंको सहना पड़ा था, उसके पुरस्कार स्वरूप उन्हें १२ लाख रुपये मिले। अङ्गरेजोंकी आज्ञासे ही नवाबको वैदेशिक सम्बन्ध और अन्यान्य अङ्गरेज कर्मचारियोंकी नियुक्तिके अधिकारसे वञ्चित रहना पड़ा था।

सादत् उल्ला खाँ—दाक्षिणात्यके कर्णाटक प्रदेशका एक मुसलमान नवाब। यह अपुत्रक था, इससे इसने अपने दो भतीजोंको गोद लिया। अपने ज्येष्ठ पुत्र दोस्त अलीको नवाबी आसन पर बैठा अपने छोटे पुत्र बाकर अलीको वेलूरका शासक बनाया। सिवा इसके उसने अपनी स्त्रीके भतीजे गुलामको अपने राज्यका प्रधान मन्त्री या दीवान बनाया। सन् १७१० ई०से १७२२ ई० तक राज्यशासन कर उसने प्रजाको शोक-सागरमें निमग्न कर परलोक गमन किया।

मशीर-उल-उमरा नामक मुसलमान इतिहासके पढ़नेसे मालूम होता है, कि नवाब सादत् उल्लाने सम्राट् आलमगीरके राज्यकालसे सन् १७३२ ई० तक राज्यशासन किया था। दोस्त अली और उसका पुत्र हसनअली सन् १७४० ई०में महाराष्ट्रोंसे युद्ध करते समय मारे गये। इसके बाद उसका पुत्र सफदर अली नवाबी मसनद पर बैठ कर कर्णाटकका राज्यशासन करने लगा। उसका यह राज्यसुख उसके साला मुर्तजा अलीसे देखा न गया। सन् १७४२ ई०की २ री अक्तूबरको मुर्त्तजाने अपने बहनोई नवाब सफदर अलीको विष दे कर यमसदन भेज दिया। इसके बाद मुर्त्तजा ही कर्णाटककी नवाबी करने लगा। किन्तु उसके भाग्यमें भी यह सुख अधिक दिन तक बदा न था। सन् १७४४ ई०में निजाम-उल-मुल्क दाक्षिणात्यका सूबेदार नियुक्त हुआ। उसकी आज्ञासे अर्काटके नवाब अनवरउद्दीनने मुर्त्तजाको सिंहासनच्युत कर उस प्रदेशका शासनभार अपने हाथमें लिया।

सादत् खाँ—अयोध्याके मुसलमान राजवंशका प्रतिष्ठाता। इसीके शौर्य और वीर्यबलसे अयोध्या प्रदेश एक मुसलमान नवाब-वंशके अधिकारमें आया। यह खुरासानवासी एक बनिये नासीर खाँका पुत्र था। इसका असल नाम महम्मद अमीन था। उसका बाप मुगल-सम्राट् बहादुरशाहके राजत्वकालमें भारतमें माल बेचनेके लिये आया था। उसकी मृत्युके बाद महम्मद अमीन भी कारोबार देखनेके लिये भारत आया। इसने अत्यन्त अध्यवसाय और अपनी अद्भुत अस्त्रचालन-शक्तिसे बहुत धन कमा लिया। सम्राट् महम्मद शाहके राजत्वकालके आरम्भकालमें यह रैचनाके फौजदार पद पर नियुक्त हुआ। इसके बाद अयोध्याके शासनकर्त्ता राजा गिरिधरको मालवके शासक पदसे अलग कर सन् १७२४ ई०में इसीको यह पद दिया गया। इस समय इसको बुरहान उल्-मुल्क खिताब मिला। प्रसिद्ध जुल्मी नादिर शाहके विरुद्ध इसने दिल्लीके बादशाहकी ओरसे अस्त्र उठाया था। किन्तु सौभाग्यसे यह नादिरके दिल्लीके कत्लेआमकी एक रात पहले ही इस दुनियासे कूंच कर गया (१७३९ ई० ९ वीं मार्च)। इसके बाद इसकी शवदेह इसके भाई सादत् खाँकी बनाई कब्रकी इमारतमें गाड़ी गई।

इसके भतीजा अबुल् मन्सुर खाँ सफदर जङ्गके साथ इसकी एकलौती पुत्रीका विवाह हुआ। इसका यह भतीजा ही पीछे अयोध्याके नवाब पद पर नियुक्त किया गया। नीचे नवाब-वंशकी सूची दी गई—

१ बुर्हान-उल्-मुल्क सादत् खाँ
२ अबुल मन्सुर खाँ सफदर जङ्ग

३ सुजाउद्दौला
४ आसफ उद्दौला
५ वजीर अली खां
६ सादत्अली खां
७ गाजीउद्दीन हैदर
८ नसीरुद्दीन हैदर
९ महम्मद अली शाह
१० आमजद्अली शाह
११ वाजिद् अली शाह

यही अयोध्याका अन्तिम नवाब था। अङ्गरेजोंने इसको राज्यच्युत कर अयोध्याका राज्य अपने हाथमें ले लिया।

सादत् यार खाँ—१ एक मुसलमान ऐतिहासिक। यह प्रसिद्ध रोहिला-सर्दार हाफिज रहमत् खाँका पौत्र और महम्मद यार खाँका पुत्र था। अपने चचा मुस्तजा खाँ-रचित 'गुलिस्तान रहमत्' नामक इतिहासके आधार पर सन् १८३३ ई०में इसने "अली रहमत" नामक एक संक्षिप्त इतिहासकी रचना की। इस पुस्तकमें उसके पिताकी जीवनी और युद्धकी विवरणी भी लिपिबद्ध है।

२ एक मुसलमान कवि भी इसी नामका हो गया है। यह कवि मुखन्-उद्दौला तहःमाप्स-बेग खाँ यातकाह जङ्ग बहादुरका पुत्र था। "मेहेर-व माह" नामकी एक कविताको रचना कर इसने रङ्गीन खिताब पाया। यह पुस्तक सम्राट् जहांगीरके राजत्वकालमें दिल्ली राजधानी में विद्यमान एक सैयद पुत्रके साथ एक जौहरीकी कन्याकी प्रेम-कहानीके आधार पर रची गई है। इस पुस्तकमें कुछ ऐतिहासिक छाया भी मिलती है। सिवा इसके ग्रन्थकार विरचित कई दीवान भी मिले हैं। इनमें एक उर्दू भाषामें लिखा और आदिरसपूर्ण है। दिल्ली और लखनऊ नगरके महलोंमें रहनेवाली ललनाओंके चरित्र-चित्रकी अद्भुत केच्छा कहानी इसमें विशदरूपसे लिखी गई है। सन् १८३४ ई०में ८० वर्षकी उम्रमें ग्रन्थकारकी मृत्यु हुई।

सादयोनि (सं० त्रि०) योनिमें अवसन्न।

सादन (सं० क्ली०) सद स्वार्थे णिच्-ल्युट्। सदन, गृह। २ उच्छेदन, विनाश करना। ३ विनाशन। ४ अवसादन, क्लान्तकरण। ५ दूरीकरण।

सादनस्पृश् (सं० त्रि०) गृहपुत्रादि दाता।

सादनी (सं० स्त्री०) कटुकी।

सादन्य (सं० त्रि०) गृहकर्मकुशल, घरके कामोंमें चतुर। (ऋक् १।९१।२०)

सादमय (सं० त्रि०) अवसन्न, अवसादविशिष्ट।

सादर (सं० त्रि०) आदरके साथ, आदरयुक्त।

सादस (सं० त्रि०) सदः-विद्यतेऽस्य। सदोयुक्त।

सादसत (सं० त्रि०) सदसत्शब्दोऽस्मिन्नस्ति (विमुक्तादिभ्योऽण्। पा ५।२।६१) इति अण्। सत् और असत् पदार्थका विषयक।

त्रयोविंश भाग सम्पूर्ण।